हिन्दी

विश्वकोष

(द्वादश भाग)

निद्रा (सं॰ स्त्री॰) निन्द्यते इति निदि कुत्सायां इति रक् नलोपश्च (निन्देर्नलोपश्च । उण २।१७)। स्वप्न, नींन्द । पर्याय—शयन, स्वाप, संवेश, सुप्ति और स्वपन। कालाग्निरुद्रपत्नी सिद्धयोगिनी हैं, रातको ये योग द्वारा लोगोंको आच्छन्न किये रहती हैं।

"कालाग्निरुद्रपत्नी च निद्रा सा सिद्धयोगिनी।
सर्वलोकाः समाच्छन्ना यया योगेन रात्रिषु॥" (तन्त्र)

नैयायिकोंके मतसे इन्द्रियनाड़ीमें मनःसंयोग होनेसे निद्रा होती है। पातञ्जलदर्शनने इसे मनकी एक वृत्ति बतलाया है।

जिसमें सभी मनोवृत्तियां लीन हो जाती हैं उस अज्ञानका अवलम्बन कर जब मनोवृत्ति उदित रहती है, तब उसे निद्रा वा सुषुप्ति कहते हैं।

वस्तुतः निद्रा भी एक प्रकारकी मनोवृत्ति है। प्रकाश-स्वभाव सत्त्वगुणके आच्छादक तमोगुणकी उद्रेक अवस्थाको ही हम लोग निद्रा कहते हैं। तमः वा अज्ञान पदार्थ ही निद्रावृत्तिका आलम्बन है। जब तमोमय अर्थात् अज्ञान-मय निद्रावृत्तिका उदय होता है, तब सर्वप्रकाशक सत्त्व-गुण अभिभूत रहता है। सुतरां उस समय किसी प्रकाश्य वस्तुका प्रकाश नहीं रहता। यही कारण है, कि लोग कहते हैं—मैं निद्रित था, मुझे कुछ भी ज्ञान न था। यथार्थमें उस समय किसी विषयका ज्ञान नहीं रहता सो नहीं, उस समय अज्ञान विषयका ज्ञान अवश्य रहता है उसी अज्ञानविषयक ज्ञानके रहनेके कारण निद्राभङ्गके बाद उस समयकी अज्ञानवृत्तिका स्मरण किया करते हैं। निद्राके समय अज्ञानमय वा तमोमय वृत्ति अनुभूत रहती है, इस कारण नींद टूटने पर उसका स्मरण होता है और उसी स्मरण द्वारा निद्राका वृत्तित्व जाना जाता है।

मनकी पांच प्रकारकी वृत्तियाँ हैं, यथा—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। ये पांच प्रकारकी वृत्तियां अभ्यास और वैराग्य द्वारा रोकी जाती हैं। वेदान्तपण्डित निद्राको सुषुप्ति बतलाते हैं। सुषुप्ति देखो।

मन जब रजः सत्त्व और तमोगुणसे अभिभूत होता है, तब निद्रा आती है। तमोगुणका कार्य अज्ञान है। इस निद्राकालमें अज्ञानात्मक-ज्ञान होता है, अर्थात् उस समय अज्ञानविषयक ज्ञान हो रहता है और कुछ भी नहीं।

निद्राका विषय आयुर्वेदमें इस प्रकार लिखा है—मानवसमूहको स्वभावतः ही प्रतिदिन चार अभिलाषाएं रहती हैं। आहारेच्छा, पानेच्छा, निद्रा और सुरतस्पृहा। जब निद्रा पहुंचती है, तब उसका वेग रोकनेसे जृम्भा, मस्तक और चक्षुका गुरुत्व, शरीरमें वेदना और तन्द्रा होती है तथा खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।

दिनकी निद्रा हितकर नहीं है, क्योंकि कफकी वृद्धि होती है। किन्तु ग्रीष्मकालमें दिवा-निद्रा उतना दोषा-

वह नहीं है। ग्रीष्मकालके सिवा अन्य ऋतुओंमें दिवा-निद्रा निषिद्ध है। जिनका प्रतिदिन दिवा-निद्राका अभ्यास है वे यदि उसका परित्याग करें, तो वायु, पित्त और कफ ये त्रिदोष कुपित हो जाते हैं। जो सब मनुष्य व्यायाम वा स्त्री-प्रसंगसे दुर्बल अथवा पथ-पर्यटनसे क्लान्त हो गये हों तथा जो अतीसार, शूल, श्वास, पिपासा, हिक्का, वायुरोग, मदात्यय तथा अजीर्ण आदि रोगोंसे ग्रस्त हों अथवा जो क्षीण देह, क्षीण कफ, शिशु, वृद्ध और रातमें जगे हों उनके लिए दिवा-निद्रा हितकर है जिनको दिवा-निद्रा और रात्रि-जागरणका अभ्यास पड़ गया हो, उनके रात्रि-जागरण और दिवा-निद्रामें कोई दोष नहीं होता।

भोजन करनेके बाद सोनेके लिए अवश्य जाना चाहिए। इससे वायु और पित्त नष्ट होता है, कफकी वृद्धि तथा शरीरकी पुष्टि होती है और मन प्रफुल्ल रहता है। भोजन करनेके कमसे कम दो दण्ड बाद निद्रा-को जाना चाहिए। जो खानेके साथ ही सोनेको जाते हैं उनके स्वास्थ्यमें हानि पहुंचती है।

यथासमय निद्रा लेनेसे धातुकी समता और आलस्य विनष्ट होता है, शरीरकी पुष्टि होती है तथा बल, वर्ण, उज्ज्वलता, उत्साह और जठराग्नि प्रदीप्त रहती है। सोनेके समय खट्टा-नीबूके पत्र-चूर्णको मधुके साथ मिला कर लेहन करनेसे वायुकी प्रसरताका गुण बन्द हो जाता है, सुतरां वायुके सङ्कोचनके कारण निद्रा आती है।

जब मनुष्योंके मन, कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय विश्रान्त-भावका अवलम्बन करती हैं और सभी विषय-कर्मोंकी निवृत्ति हो जाती है तभी मनुष्य निन्द्राभिभूत हो जाते हैं। मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निन्द्रा प्रत्येक एक दूसरे-से विभिन्न है। पित्त और तमोगुणकी अधिकतासे मूर्च्छा; पित्त, वायु और रजोगुणकी अधिकतासे भ्रम; वायु, कफ और तमोगुणकी अधिकतासे तन्द्रा तथा कफ और तमोगुणकी अधिकतासे निन्द्रा होती है। जिससे इन्द्रिय विषयग्रहणकी शक्तिसे रहित हो जाय और देह-की गुरुता, जृम्भन, क्लान्ति-बोध और निद्राकर्षितकी तरह अनुभूत हो, उसे तन्द्रा कहते हैं। निद्रा और तन्द्रामें फर्क यह है, कि निद्राके बाद जागनेसे क्लान्ति दूर हो जाती है और तन्द्राभिभूत व्यक्तिको जागरणावस्थामें भी क्लान्ति दूर नहीं होती। (भावप्रकाश)

सुश्रुतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—हृदय चेतनाका स्थान है। जब वह अज्ञानसे आवृत्त हो जाता है, तब प्राणीको निद्रा आती है। निन्द्रा वैष्णवी-शक्ति है। यह सभी प्राणीको अभिभूत करती है। जब संज्ञा-वहा शिराएं तमःप्रधान श्लेष्मासे आवृत होती हैं, तब तामसी नामक निन्द्रा पहुंचती है। मृत्युके समय जो निन्द्रा आती है उसे अनवबोधिनी निन्द्रा कहते हैं। तमो-गुणविशिष्ट व्यक्तियोंको दिन और रात दोनों समय, रजोगुणविशिष्टको अकारण और सत्त्वगुणविशिष्ट व्यक्तियोंको अर्द्ध रात्रिमें निद्रा आती है। श्लेष्माका क्षय और वायुकी वृद्धि होनेसे अथवा मन वा शरीरके तापित होनेसे निद्रा नहीं आती। हृदय ही सब प्राणियोंका चेतनाका स्थान है, यह पहले ही कहा जा चुका है। वह हृदय जब तमोगुणसे अभिभूत होता है, तब देहमें निद्रा प्रवेश करती है। तमोगुण ही एकमात्र निद्राका कारण है और सत्त्वगुण बोधका हेतु अथवा स्वभावको ही इनका प्रधान हेतु कह सकते हैं। जाग्रत् अवस्थामें जो सब शुभाशुभ विषय अनुभूत होते हैं, निद्राके समय जीवात्मा रजोगुणविशिष्ट मन द्वारा उन सब विषयोंको ग्रहण करती है। इन्द्रियोंके विफल होनेसे तथा अज्ञा-नताकी वृद्धि होनेसे जीवात्माके निद्रित नहीं होने पर भी उसे निद्रित-सी कह सकते हैं।

वर्त्तमान यूरोपीय वैज्ञानिकोंका कहना है कि प्राणिगण जिस स्वाभाविक अचेतन अवस्थाके वशवर्त्ती हो कर वाह्यज्ञानशून्यावस्थामें कालयापन करते हैं और जिस अवस्थाके बाद ही कार्यकारिणी शक्ति प्रबल वेगसे पहलेकी अपेक्षा आनन्द और सामर्थ्यके साथ लगी रहती है उसी अवस्थाका नाम निद्रा है। जिस प्रकार किसी यन्त्र वा कलके लगातार व्यवहार द्वारा क्षय प्राप्त हो जाने पर उसमें जब तक उस कल वा यन्त्रके उपादान-का संयोजन नहीं होता, तब तक वह उद्देश्य कर्मका अनुपयोगी रहता है; ठीक उसी प्रकार हस्त पदादिके कार्य द्वारा हम लोगोंके देहाभ्यन्तरस्थ भिन्न भिन्न यन्त्रोंका

क्षय होते रहने पर भी जब तक उसका कोई परिपोषण नहीं होता, तब तक वे सब यन्त्र अकर्मण्य हो रहते हैं और उन यन्त्रोंसे चालित जीवदेह बहुत जल्द ही कार्याक्षम हो कर मृत नाम धारण करती है। इसी कारण सामञ्जस्यकी रक्षाके लिये करुणामय परमेश्वरने निद्राकी सृष्टि की है। कारण जीवगणके जाग्रत् अवस्थामें कर्म करनेसे उनके जिन सब यन्त्रों और वीर्योंका ह्रास होता है, निद्रित होनेसे उन सब यन्त्रों और वीर्योंके निष्कर्मावस्थामें रहनेके कारण उनका ह्रास वा क्षय होना बन्द हो जाता है। इसके अलावा निद्रासे पूर्वभुक्त आहार द्वारा विनष्ट वीर्यका अभाव पूर्ण हो जाता है। इसी कारण निद्राका विशेष आवश्यक है। पृथिवी जिस प्रकार रात्रि और दिवा इन दो अवस्थाओंके अधीन है और जिस प्रकार उन दो अवस्थाओंके आगमनका भी निर्दिष्ट समय अवधारित है उसी प्रकार जीवदेह निद्रित और जाग्रत् अवस्थाके अधीन है और उन दो अवस्थाओंके आगमनका भी समय निर्दिष्ट है। निर्जनता और अन्धकारके लिये रात्रि ही मनुष्य और अन्य प्राणियोंके पक्षमें निद्राका उपयुक्त समय है। किन्तु कई जगह इसका विपरीत देखा जाता है, जैसे-प्रजापति गण दिनके समय, इकमथ नामक कीट सन्ध्याके समय और मथकीट रात्रिमें कार्य करते हैं। पक्षियोंमें उल्लू और अन्यान्य दो एक पक्षियोंके सिवा सभी पक्षी दिनमें काम करते हैं और रातको सोते हैं। मांसजीवी व्याघ्र प्रभृति हिंसक जन्तु दिनमें सोते हैं और रातको आहारकी तलाशमें विचरण करते हैं।

साधारणतः निद्राके दो कारण लिखे हैं, एक मुख्य और दूसरा उसका सहयोगी। मुख्य कारण यह है, जाग्रत् अवस्थामें परिश्रम करके सभी इन्द्रियां क्लान्त हो जाती हैं, सर्वेन्द्रियका कर्त्ता मस्तिष्क है जो विश्रामके सिवा और कोई कार्य नहीं करता है। निद्रा भिन्न मस्तिष्कका विश्राम असम्भव है, इसीसे उक्त क्लान्ति द्वारा निद्राका आविर्भाव होता है। किन्तु अनेक समय मानसिक और शारीरिक अत्यधिक परिश्रम निद्राका विघ्नजनक होता है। निद्राके साहाय्यकारी कारणोंमेंसे जो मस्तिष्कको उत्यक्त नहीं करते अथवा जो मस्तिष्कबोधगम्य बातोंकी बार बार आवृत्ति करते, वे ही निद्राके पोषक हैं। जैसे, अन्धकार और निर्जनता साधारणतः निद्राकी उद्दीपक है और जिनका किसी कल वा सदर रास्तेके पार्श्ववर्त्ती कोलाहलपूर्ण स्थानोंमें रहनेका अभ्यास है वे उन निर्जन और निस्तब्ध स्थानोंमें कभी भी नहीं सो सकते। पूर्वोक्त दो अन्यान्य कारणसमूह मनको उसके कार्यक्षेत्रसे आकर्षण और उसकी इच्छाशक्तिकी क्षमताको कम कर देते हैं, सुतरां निद्रादेवीका आगमन अनिवार्य हो जाता है। निद्रा आनेके कुछ पहलेसे ही आलस्य भाव पहुंच जाता है और मनोयोगका अभाव देखनेमें आता है। इन्द्रियां बाह्य दृश्य-पदार्थोंका अस्तित्व ग्रहण नहीं कर सकती और उस समय निर्जनता तथा निस्तब्धता अत्यन्त प्रिय हो जाती है। निद्रा आनेके समय हम लोगोंको धारणाशक्ति कम हो जाती है, शरीरमें आलस आ जाता है, आंखें बन्द हो जाती हैं, कान यद्यपि कुछ काल तक शब्दका अस्तित्व समझ सकते हैं, पर उसका अर्थबोध नहीं कर सकते और वह शब्द किसी दूर स्थानोंमें हो रहा है, ऐसा अनुभव करते हैं। उसी समय हम लोग घोर निद्रामें अभिभूत हो जाते हैं। निद्राकी प्रथमावस्थामें इन्द्रिय और युक्ति-शक्ति सबसे पहले अचेतन हो जाती है। कल्पना और अन्यान्य छोटी छोटी शक्तियां बहुत देर तक सचेतन रहती हैं। निद्रावस्थाको तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। निद्रा सबसे पहले अत्यन्त गाढ़, पीछे उससे कुछ चैतन्य मिश्रित और सबसे अन्तमें जाग्रत् अवस्थाके आगमनकी प्रतीक्षामें सचेतनभाव धारण करती है। साधारतः निद्रा और चैतन्यके मध्यवर्त्ती एक समय देखा जाता है। उस समयमें निद्राका आवेग बहुत कम हो जाता है, इसीसे उस समय निद्रित व्यक्तिको सहजमें जगा सकते हैं। वयस, अभ्यास, प्रकृति और क्लान्तिके अनुसार मनुष्यकी निद्राका विशेष तारतम्य देखा जाता है। भ्रूण मातृगर्भमें प्रायः चिरनिद्रामें अभिभूत रहता है। भूमिष्ठ होने पर वह पहले कुछ दिनों तक गाढ़ी निद्रामें सोता है। विशेषतः अकालप्रसूत सन्तान केवल खानेका समय छोड़ कर अवशिष्ट सभी समय निद्रित रहती है। पीछे शरीरके

पूर्णत्वके लिये जब तक क्षयकी अपेक्षा पुष्टिका भाग अधिक आवश्यक है, तब तक अधिक निद्राका प्रयोजन पड़ता है। यौवनावस्थामें शरीरमें क्षय और वृद्धि दोनों ही प्रायः समान रहनेसे निद्राका भाग बहुत कम हो जाता है। लेकिन वृद्धकालमें साधारणतः पोषण-शक्तिके अभावके कारण उसके पूरणके लिये अधिक निद्राकी जरूरत पड़ती है। स्त्रियोंकी निद्रा पुरुषोंसे बहुत कम है। नीरोग मनुष्योंको ८ घण्टेसे अधिक समय तक नहीं सोना चाहिए।

यथार्थमें ऐसा देखा जाता है कि स्थूलकाय मनुष्य क्षीणकायकी अपेक्षा अत्यन्त निद्राप्रिय हैं। अभ्यासके अनुसार भी निद्राकी कमी वेशी देखी जाती है। जनरल एलियट २४ घण्टेके मध्य ४ घण्टेसे अधिक नहीं सोते थे। विख्यात आध्यात्मिक शास्त्रवेत्ता डाक्टर रीड़ एक समयमें दो दिनका भोजन खा लेते और दो दिन तक सोये रहते थे। फिर अभ्यासके वशमें आ कर निर्दिष्ट समयमें निद्रित और जागरित होनेकी कथा सभी स्वीकार करते हैं।

मिष्टर डरहमने एक कुत्तेकी खोपड़ी काट कर मस्तिष्क द्वारा यह स्थिर किया है कि—(१) मस्तिष्कको ऊपरी शिरा स्फीत हो कर मस्तिष्क पर दवाव डालती है इसीसे निद्रा आती है, यह भूल है। कारण निद्राके समय वे सब शिराएं कुछ भी स्फीत नहीं होतीं। (२) निद्राके समय मस्तिष्क दूसरे समयकी अपेक्षा अधिक रक्तशून्यावस्थामें रहता है। मस्तिष्कको ऊपरी शिराओंमें केवल रक्तका परिमाण घटता है, सो नहीं, रक्तकी गति भी मन्द हो जाती है। (३) निद्रावस्थामें मस्तिष्कमें रक्तकी गति इस प्रकार सम्पादित होती है कि उससे मस्तिष्ककी भिल्ली पुष्टता लाभ करती है।

यहां पर अत्यधिक निद्रा वा उसका विपरीत भाव जिस अवस्थामें देखा जाता है उसके दो एक उदाहरण नहीं देनेसे वह समझमें नहीं आ सकता। इसीसे यहां पर दो एक उदाहरण उद्धृत करते हैं। भिन्न जातीय पुस्तकके अभ्यास द्वारा निद्रा कई एक सप्ताह वा मास तक किसी व्यक्तिमें स्थायी रहते देखी जाती है। डाक्टर कारपेण्टरने दो रोगियोंका इसी प्रकार उल्लेख किया है। फरासी डाक्टर ब्लाचेंटने सम्प्रति इसी प्रकारके तीन रोगियोंका उल्लेख कर उनमेंसे एकके विषयमें लिखा है कि यह रोगी स्त्री है। १८ वर्षकी अवस्थामें यह ४० दिन, २० वर्षकी अवस्थामें ५० दिन और २४ वर्षकी अवस्था लगातार एक वर्ष सोती थी। इस समय उसके सामनेका एक दांत उखाड़ कर उसी छेद हो कर दूध वा मछलीका शिरवा मुखमें दिया जाता था और उसीसे उसकी जीवनरक्षा होती थी। वह उस समय गतिहीन और अज्ञानावस्थामें रहती थी। उसकी नाड़ीकी गति बहुत मन्द थी, निश्वास-प्रश्वास दुर्ज्ञेय था, मलमूत्रादि कुछ भी नहीं होता था और समूचा शरीर लावण्यमय और सुस्थ रहता था। इस निद्राको स्वाभाविक निद्रा नहीं कहते, यह निद्रा कष्टजनक है।

फिर कोई कोई मनुष्य सम्पूर्ण निद्राशून्यावस्थामें अथवा अल्प तन्द्रावस्थामें बहुत दिन तक रहते देखा गया है। सम्पूर्ण निद्राशून्यावस्था भावी पीड़ाज्ञापक है। ऐसी अवस्थामें दीर्घकालव्यापी ज्वर, मस्तिष्कका प्रदाह, रक्तस्फोटज्वर इत्यादि पीड़ाएं उत्पन्न होती हैं। दीर्घकाल अनिद्रावस्थामें रहनेसे बीच बीचमें प्रलाप और अचेतनावस्था भी पहुंच जाती है। यदि इस प्रकार जागरित रहनेका कोई विशेष कारण न रहे, तो रोगी शीघ्र ही उत्कट पीड़ाग्रस्त होता है। साधारणतः पक्षाघात, संन्यास वा उन्मादरोग उन्हें आक्रमण करता है।

स्वल्प-निद्रा इस प्रकार पीड़ाज्ञापक नहीं है। साधारणतः जो सब मनुष्य कार्यमें लगे रहते हैं, जिनका मस्तिष्क बहुत चालित होता है अथवा जो अर्थकष्टता-भोग करते हैं वे ही ऐसे स्वल्प-निद्रालु होते हैं। फिर जो बहुत दिनोंसे वात, चर्मरोग, मूत्ररोग, पेटकी पीड़ा और मूर्च्छा रोगसे आक्रान्त हैं, उनकी भी निद्रा बहुत कम हो जाती है।

इस अनिद्रावस्थाको दूर करनेमें अनिद्राके कारणकी चिकित्सा करनी होती है। उक्त रोगी जिस घरमें रहे, उस घरमें निर्मल वायुके आने जानेका रास्ता रखे। घर यदि अधिक गर्म हो तो उसकी उष्णताको कम कर दे। रोगी जिस शय्या पर सोवे, वह गर्म न हो। उस रोगीको वे सब चिन्ताएं न आने दे जो उसके मनको

अत्यन्त आकृष्ट, चञ्चल और विरक्त करती हैं। इस समय जुलाब देना उचित है।

आयुर्वेदके मतसे ग्रीष्मऋतुके सिवा अन्य सभी ऋतुओंमें दिवा-निद्रा निषिद्ध है। किन्तु बालक, वृद्ध, स्त्रीसंसर्गजनित कृश, क्षतक्षीण अथवा मद्यपानसे उन्मत्त व्यक्तिके लिये ; सवारी वा पथगमनसे श्रान्त अथवा अन्य कर्म द्वारा श्रान्त वा अभुक्त व्यक्तिके लिए अथवा जिसका मेद, घाम, कफ, रस और रक्त क्षीण हो गया हो उसके लिए अथवा अजीर्ण रोगीके लिये दिवा-निद्रा निषिद्ध नहीं है, लेकिन वे दो दण्डसे अधिक समय तक न सोवें। रातमें जितना समय तक जगें, दिनमें उसके आधे समय तक सो सकते हैं। दिवानिद्रा देहके विकार स्वरूप अत्यन्त कदर्य कर्म है। दिवाभागमें निद्रित व्यक्तिको कभी सुखवृद्धि नहीं होती तथा उसे सब दोषोंका प्रकोप झेलना पड़ता है।

दोषका प्रकोप होनेसे कास, श्वास, प्रतिश्याय, मस्तकका भार, अङ्गमर्द, अरुचि, ज्वर और अग्निमान्द्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं, इसी कारण रात्रिजागरण और दिवा-निद्राका त्याग एकमात्र कर्त्तव्य है। रातमें परिमित रूपसे सो सकते हैं। परिमित निद्रासे देह निरोग और सबल बनी रहती है, लावण्यकी वृद्धि होती है, मन प्रफुल्ल रहता है तथा सौ वर्ष परमायु होती है। निद्राको वशमें कर लेनेसे दिनको वा रातको जगे वा सोये रहनेसे शरीरमें कोई हानि नहीं पहुंचती।

निद्रानाश।—वायु, पित्त, मनस्ताप, क्षय वा अभिघातके कारण निद्रा नाश होती है। इन सब दोषोंके विपरीत क्रिया करनेसे ही साम्य होता है। निद्रानाश होनेसे शरीरमें तेल लगावे। इस समय गात्रविलेपन और संवाहन हितकर है। शालितण्डुल, गोधूमपिष्टान्न, इक्षुरससंयुक्त मधुर और स्निग्धद्रव्य भोजन, दुग्ध वा मांसरसयुक्त भोजन, रातमें द्राक्षा, शर्करा वा गुड़द्रव्यका भोजन और कोमल तथा मनोहर शय्या और आसन आदिका व्यवहार करना कर्त्तव्य है। निद्राकी अधिकता होनेसे वमन, संशोधन, लङ्घन और रक्तमोक्षण करे तथा मनको भी चञ्चल करते रहे जिससे नींद न आवे। कफ वा मेदविशिष्ट अथवा विषार्त्त व्यक्तियोंके लिए रात्रि-जागरण और तृष्णा, शूल, हिक्का, अजीर्ण और अतीसाररोगमें दिवा-निद्रा हितकर है। इन्द्रियोंका विषय अर्थात् शब्दस्पर्शादिका ज्ञान न होना, शरीरकी गुरुता, जृम्भण, क्लान्ति और निद्रामें कातरता ये सब तन्द्राके लक्षण हैं। तमोगुणके वातश्लेष्माके साथ मिलनेसे तन्द्रा और श्लेष्माके साथ मिलनेसे निद्रा होती है। (सुश्रुत शारीरस्थान ४ अ०)

जिस समय देही आत्मा तमसे व्याप्त रहती है उस समय निद्रा पहुंचती है। सत्त्वगुणके प्राबल्य होनेसे ज्ञान होता है, इस समय अन्तरात्मा विश्राम करती है, इसी कारण इसे निद्रा कहते हैं। अन्तरात्मा इस समय नाभाई वा दोनों भ्रूके मध्यस्थलमें लीन रहती है। निद्रारहित व्यक्ति—

"कुतोनिद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यकरस्य च।
परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च॥"

सुखसुप्त—

"सुखं स्वपित्यनृणवान् व्याधिमुक्तश्च यो नरः।
सावकाशस्तु यो भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न शंकितः॥"

(गारुड़-नीतिसार)

दरिद्र, पराधीन, परदाररत क्या कभी सुखसे सो सकता है? जिन्हें किसी प्रकारका ऋण नहीं है, जो व्याधिमुक्त हैं, स्त्रीसे विशेष संसर्ग नहीं करते और स्वच्छन्द भोजन करते हैं वे ही सुखसे सोते हैं।

धर्मशास्त्रके मतसे एक प्रहर रात्रिके बाद भोजनादि करके निद्राको जाय और चार दण्ड रात रहते निद्राका परित्याग करे। निर्जन पवित्र स्थानमें मनोहर शय्या पर सोनेसे नींद बहुत जल्द आती है। सोनेके पहले सिरहनेमें एक लोटा जल भरके निम्नलिखित वैदिक वा गारुड़ मन्त्रसे रखना मङ्गलप्रद है।

"शुचौ देशे विविक्ते तु गोमयेनोपलिप्तके।
प्रागुदक्प्लावने चैव सम्विशेत्तु सदा बुधः॥
मांगल्यं पूर्णकुम्भं च शिरःस्थाने विधापयेत्।
वैदिके गारुडैर्मन्त्रै रक्षां कृत्वा स्वपेत्ततः॥"

(आह्निकतत्त्व)

अपने घरमें पूर्वकी ओर मस्तक करके सोना चाहिये। आयुष्कामी व्यक्ति दक्षिणकी ओर मस्तक रख

कर भी सकती हैं। प्रवासिव्यक्तिको पश्चिमकी ओर मस्तक रख कर सोना चाहिए। उत्तरकी ओर मस्तक रख कर सोना अतिशय दूषणीय है। पूर्वकी ओर सिराहना करके सोनेसे धन-प्राप्ति, दक्षिणकी ओर आयुवृद्धि, पश्चिमकी ओर प्रबल चिन्ता और उत्तरकी ओर सिराहना करके सोनेसे मृत्यु होती है।

निद्रा जानेके पहले विष्णुको प्रणाम करना अवश्य कर्त्तव्य है। इन सब स्थानोंमें कदापि सोना न चाहिये, शून्यालय, निर्जन घर, श्मशान, एक वृक्ष, चतुष्पथ, महादेवगृह, पथरीली जमीनके ऊपर, धान्य, गो, विप्र, देवता और गुरुके ऊपर। इसके अलावा भग्नशयन और अशुचि हो कर अथवा आर्द्र वासमें वा नग्नावस्थामें, खुले शिरसे, खुले मैदानमें तथा चैत्यवृक्षके तले सोना मना है।

(आह्निकतत्त्व)

निद्राकर (सं० त्रि०) निद्रायाः करः। निद्राकारक, सुलानेवाला।

निद्राकरम् (सं० क्लो०) सुनिषण्णक शाक, एक प्रकारका साग।

निद्राकर्षण (सं० क्लो०) निद्रायाः आकर्षणः। निद्राका आकर्षण, निद्रालुता।

निद्राकारिन् (सं० त्रि०) निद्रा-कृ-णिनि। निद्राकर, निद्राकारक, सुलानेवाला।

निद्राकाल (सं० पु०) निद्रायाः कालः। निद्राका काल, सोनेका समय।

निद्राकुल (सं० त्रि०) निद्रायाः आकुलः। निद्रातुर, निद्रापीड़ित।

निद्राकृष्ट (सं० त्रि०) निद्रया आकृष्टः। आगतनिद्रा, जिसे नींद आ गई हो।

निद्राक्रान्त (सं० त्रि०) निद्रया आक्रान्तः। निद्राकुल, निद्रातुर।

निद्रागत (सं० त्रि०) निद्रांगतः। निद्रित, जो सो गया हो।

निद्रागार (सं० पु०) निद्राया आगारः। निद्रागृह, सोनेका कमरा।

निद्रागौरव (सं० क्लो०) निद्रावाहुल्य।

निद्राग्रस्त (सं० त्रि०) निद्रया ग्रस्तः। निद्राकुल, निद्रातुर।

निद्राजनक (सं० त्रि०) निद्राकर, सुलानेवाला।

निद्राण (सं० त्रि०) नि-द्रा-क्त, तस्य न, ततो णत्वं। निद्रागत, जो सो गया हो। पर्याय—निद्रित, शयित।

निद्रादरिद्र (सं० पु०) निद्राया, दरिद्रः अभावः। १ निद्राका अभाव, नींदका नहीं होना। २ एक संस्कृतज्ञ कवि।

निद्रान्वित (सं० त्रि०) निद्रया अन्वितः। निद्रित, निद्रागत, सोया हुआ।

निद्राभङ्ग (सं० क्लो०) नींद टूटना।

निद्राभाव (सं० पु०) निद्राया अभावः। १ निद्राका अभाव, नींद नहीं पड़ना। २ योगनिद्रा।

निद्रायमान (सं० त्रि०) जो नींदमें हो, सोता हुआ।

निद्रायोग (सं० पु०) निद्रा और गहरी चिन्ता।

निद्रारि (सं० पु०) नेपालनिम्ब, चिरायता।

निद्रालु (सं० त्रि०) निद्रातीति निद्रा-आलुच् (स्पृहि गृहीति। पा ३।२।१५८) १ निद्राशील, सोनेवाला। (स्त्री०) निद्रा देयत्वेनास्त्यस्या इति निद्रा वाहुलकात् आलु। २ वार्त्ताकु, बैंगन, भंटा। ३ वनवर्वरिका, वनतुलसी। ४ नली नामक गन्धद्रव्य।

निद्रावस्था (सं० स्त्री०) निद्राया अवस्था। निद्रित अवस्था।

निद्राविमुख (सं० त्रि०) अनिद्रा, जागरूक।

निद्रावृक्ष (सं० पु०) निद्राया वृक्ष इव। अन्धकार।

निद्रावेग (सं० पु०) निद्राका उपक्रम वा इच्छा।

निद्राशाला (सं० स्त्री०) निद्रागृह, सोनेका कमरा।

निद्राशील (सं० त्रि०) निद्रालु, सोनेवाला।

निद्रासंजन (सं० क्लो०) निद्रां संजनयतीति संजन-णिच्-ल्युट्। १ श्लेष्मा, कफ, कफकी वृद्धिसे निद्रा आती है।

निद्रित (सं० त्रि०) निद्राऽस्य सञ्जातः, निद्रा तारकादित्वादितच्। निद्रागत, सुप्त, सोया हुआ।

निद्रोत्थित (सं० त्रि०) निद्रासे उत्थित, जो सो कर उठा हो।

निधड़क (हिं० क्रि० वि०) १ विना किसी रुकावटके, बेरोक। २ विना सङ्कोचके, विना हिचकके, विना आगा पीछा किये। ३ निःशङ्क, बेखटके, विना किसी भय या चिन्ताके।

निधन (सं० पु० क्ली०) नि-धा-क्यु । १ मरण । २ नाश । ३ लग्नस्थानसे आठवां स्थान । ज्योतिषके मतमें इस स्थानसे नदीपार, अत्यन्त वैषम्य, दुर्ग शस्त्र, आयु और सङ्कटका विचार किया जाता है। यदि लग्नके चौथे स्थान पर सूर्य हों और गृह पर शनिकी दृष्टि हो, तो जिस दिन निधनस्थान पर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि होगी, उसी दिन मृत्यु अवश्य होगी ।

निधनस्थान पर सूर्यादि ग्रहोंके रहनेसे निम्नलिखित फल मिलते हैं—

यदि लग्नसे आठवें स्थान पर सूर्य हो और वह गृह सूर्यसे उच्च अथवा स्वीय गृह हो, तो वह रविग्रह सुखदाता होता है, उक्त स्थान न हो कर यदि अन्य स्थान हो, तो प्राणनाशकी सम्भावना है। सूर्य अपनेसे उच्च अथवा अपने गृहमें रह कर जिसके लग्नसे अष्टम स्थानगत होंगे, उसकी सुखसे मृत्यु होगी। उक्त दो स्थान छोड़ कर अन्य स्थानमें रहनेसे कष्ट, यातना वा दुःखसे मृत्यु होती है। रविके अष्टम स्थानमें रहनेसे वज्राघात, सर्प अथवा ज्वर इन तीनमेंसे किसी एक द्वारा स्थलभूमि पर मृत्यु होगी। लग्नसे आठवें स्थान पर चन्द्रके रहनेसे उसे कास, शोथ और ज्वर होता है, देहका निम्नभाग कृश हो जाता है तथा उसको जलमें मृत्यु होती है। लग्नसे आठवां स्थान यदि पापग्रहसे देखा जाय और उस स्थान पर चन्द्र रहें, तो वह थोड़े ही दिनोंके मध्य यमराजका मेहमान बनता है। फिर वह अष्टम स्थान यदि चन्द्रका अपना अथवा शुक्रका या बुधका घर हो और वह चन्द्र यदि पूर्ण हों, तो काश और पित्तरोगकी उत्पत्ति होती है। लग्नसे आठवें स्थान पर मङ्गलके रहनेसे अस्त्र द्वारा, अग्नि अथवा राजविचारसे और क्षयकाश, कुष्ठ, व्रण, अर्श वा ग्रहणी इनमेंसे किसी एक रोगसे आक्रान्त हो कर राह चलते मृत्यु होती है। बाद मरनेके उसे नरक होता है। यदि लग्नसे अष्टमस्थान पर मङ्गल रहे और वह मङ्गल दुर्बल अथवा स्वीय नीचराशिस्थ हों, तो वह मनुष्य अत्यन्त भयानक दुष्ट व्रण, अतिसार अथवा दग्ध हो कर किसी निन्दित स्थानोंमें मरता है। लग्नसे अष्टम राशिमें यदि बुध रहे और वह यदि शुभग्रहोंका क्षेत्र हो, तो श्रेष्ठ-तीर्थमें सुखसे उसकी मृत्यु होती है। लेकिन वह अष्टमस्थान यदि पापग्रहका क्षेत्र हो, तो शूल, पाद अथवा जङ्घा वा उदरके किसी प्रकारके रोगसे पीड़ित हो कर राजभवनमें उसकी मृत्यु होती है। शुभ-बुध यदि अष्टम स्थान पर हों, तो श्रेष्ठ तीर्थ स्थल पर मरण होता है और वह बुध यदि पापग्रहके साथ मिले हों तथा शत्रुगृहगत हों, तो मनुष्य वदनकम्परोगसे मरता है। वृहस्पति अपने घरमें किंवा शुभग्रहके घरमें रह कर यदि लग्नकी अष्टमराशिमें हो, तो होश रहते किसी पुण्यतीर्थमें उसका देहावसान होता है और यदि वह स्थान वृहस्पतिका स्वीय गृह वा शुभग्रहका गृह न हो, तो भी मरते समय उसे होश रहता है। लग्नसे अष्टमस्थानमें शुक्रके रहनेसे मनुष्य उत्तमाचारी, राजसेवक, मांसप्रिय और सुबुद्धि होता है तथा उसके दोनों नेत्र स्थूल होते हैं। अन्तिम समय किसी सुतीर्थमें उसकी मृत्यु होती है। लग्नसे अष्टम स्थानमें शनिके रहनेसे मनुष्य शोकाभिभूत, वदनकम्प वा शूलरोगाक्रान्त हो विदेशमें अथवा किसी नीच जाति द्वारा निधनको प्राप्त होता है। शनिके अष्टम गृहमें रहनेसे मानव दुःखभोगी हो कर देशान्तरवासी होता है। या तो चोरीमें नीच लोगोंके हाथ या नेत्ररोगसे उसकी मृत्यु होती है।

राहुके अष्टम स्थानमें रहनेसे शत्रुके समक्षमें ही उसका मरण होता है तथा वह रोगी, पापकर्मनिरत, गम्भीरस्वभाव, चोर, कृश, कापुरुष और धनवान् होता है। (फलितज्योतिष)

४ ताराभेद, जन्मनक्षत्रसे सातवां, सोलहवां और तेईसवां नक्षत्र। यह निधन तारा दूषणीय माना गया है। दोषशान्तिके लिये तिल और काञ्चन दान देना चाहिये।

'प्रत्यरौ लवणं दद्यात् निधने तिलकाञ्चनम्।'

(ज्योतिस्तत्त्व)

५ विष्णु। ६ कुल, खानदान। ७ कुलका अधिपति। ८ पांच अवयव वा सात अवयवयुक्त सामका अन्तिम अवयव। (त्रि०) निहतं धनं यस्य। ९ धनहीन, निधन, दरिद्र।

निधनकाम (सं० क्ली०) सामभेद।

निधनक्रिया (सं० स्त्री०) निधनस्य क्रिया। मृतव्यक्ति का सत्कार, अन्त्येष्टिकार्य।

निधनता (सं० स्त्री०) निधनस्य भावः, नि-धन-तल्-टाप्। दरिद्रता, कंगाली।

निधनपति (सं० पु०) प्रलयकर्त्ता, शिव।

निधनवत् (सं० त्रि०) निधनं विद्यते यस्य नि-धन मतुप्, मस्य वः। १ मरणयुक्त। (क्ली०) २ निधनावयवयुक्त सामभेद।

निधनी (हिं० वि०) निर्धन, धनहीन, दरिद्र।

निधमन (सं० पु०) निम्बवृक्ष, नीमका पेड़।

निधा (सं० स्त्री०) निधीयते धार्यते बध्यतेनानया नि-धा-अ। १ पाशसमूह। २ निधान। ३ अर्पण।

निधातव्य (सं० त्रि०) नि-धा-तव्य। स्थापनीय।

निधान (सं० क्ली०) निधीयतेऽत्र नि-धा-आधारे ल्युट्। १ निधि। २ आधार, आश्रय। ३ लयस्थान, जहां सभी वस्तु लीन हों। ४ अप्रकाश। ५ स्थापन।

निधान—एक कवि। ये अली-अकबरखाँ-महम्मदीके सभापण्डित थे। कविताशक्तिकी विशेष पराकाष्ठा दिखा कर इन्होंने 'शालिहोत्र' नामक हिन्दी भाषामें एक अश्ववैद्यकग्रन्थकी रचना की। ये १७५१ ई०में विद्यमान थे। कवि प्रेमनाथ और पण्डित गुमानजी मिश्र इन्हींके समसामयिक थे।

निधि—एक कवि। ये १६०० ई०में विद्यमान थे। वाराणसीके राजपण्डित ठाकुर प्रसाद त्रिपाठीने अपने बनाये हुए 'शृङ्गार-संग्रह' ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

निधि (सं० पु०) निधीयतेऽस्मिन्निति नि-धा-कि। १ नलिका नामक द्रव्यविशेष। २ समुद्र। ३ जीवकौषधि, जीवक नामकी दवा। ४ आधार। यथा—गुणनिधि, जलनिधि इत्यादि। ५ विष्णु।

जब प्रलयकाल आता है, तब सभी विष्णुमें लीन हो जाते हैं। विष्णु सभीके आश्रय स्वरूप हैं, इसी कारण निधिशब्दसे विष्णुका बोध होता है। ६ चिरप्रनष्टस्वामिक भूजातधनविशेष, गाड़ा हुआ खजाना। मिताक्षरामें लिखा है, कि पृथ्वीमें गड़ा हुआ धन यदि राजाको मिले, तो उसका आधा ब्राह्मणादिको दे कर आधा उसे ले लेना चाहिये। विद्वान् ब्राह्मण यदि पावें, तो उसे सब ले लेना चाहिये। क्योंकि इस प्रकारके ब्राह्मण जगत्के प्रभु हैं। यदि राजा और विद्वान्को छोड़ कर अपण्डित ब्राह्मण वा क्षत्रिय आदि पावें, तो राजाको उन्हें छठां भाग दे कर शेष ले लेना चाहिये। यदि कोई निधि पा कर राजाको संवाद न दे, तो राजाको उसे दण्ड देना चाहिये और सारा खजाना ले लेना चाहिए।

(मिताक्षरा)

यदि कोई मनुष्य निधि पावे और वह निधि खास उसीकी है, ऐसा प्रमाण दिखावे, तो राजाको छठां भाग वा बारहवां भाग ले कर उसे शेष निधि लौटा देनी चाहिये। ७ कुबेरके नौ प्रकारके रत्न। पर्याय—शेवधि, सेवधि।

"पद्मोऽस्त्रियां महापद्मः शङ्खो मकरकच्छपौ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च वर्चोऽपि निधयो नव॥"

(हारावली)

पद्म, महापद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च ये नौ प्रकारकी निधियां हैं। मार्कण्डेयपुराणमें आठ प्रकारकी निधियोंका उल्लेख है।

यथा—

"पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याधिदेवता।
तदाधाराश्च निधयः स्तान्मे निगदतः शृणु॥"

(मार्कण्डेयपु० ६८ अ०)

पद्मिनी नामकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। ये सब निधियां उन्हींकी आश्रित हैं। पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्द, नील और शङ्ख ये आठ प्रकारकी निधियां हैं। जहां ऋद्धिका आविर्भाव है इनका भी आविर्भाव वहीं है और वहां बहुत जल्द सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। देवताओंकी प्रसन्नता तथा साधुओंकी सेवा, इन्हीं दो उपायोंसे यह निधि प्राप्त होती है।

पद्मनिधि—यही निधि प्रथम निधि और समयको अधिकृत है। पुत्र और पौत्रादि क्रमसे इस निधिका भोग होता है। पुरुष यदि इस निधिसे अधिष्ठित हो, तो वह दाक्षिण्यसार, सत्त्वाधार और परमभोगशाली होता है। यह निधि सत्त्वगुणमें अधिष्ठित है। इसके प्रभावसे मनुष्य सुवर्ण, रौप्य और ताम्रादि जितनी धातुएं हैं

सबोंका भोग करता और क्रय विक्रय करता है।

महापद्मनिधि—यह भी सत्त्वगुणको आधार है। इसके अधिष्ठानसे सभी मनुष्य सत्त्वगुणप्रधान होते हैं और सर्वदा पद्मरागादि रत्न, प्रवाल और मुक्तादिका भोग तथा उन सब रत्नोंका क्रय विक्रय करते हैं। पुत्रपौत्रादिक्रमसे इस निधिका भोग होता है।

मकरनिधि—यह तमःप्रधान है। जिसके पास यह निधि है, वह व्यक्ति सत्त्वप्रधान होने पर भी तमःप्रधान होता है तथा बाण, खड्ग, असि, धनु और चर्म इनका भोग करता है। राजाके साथ भी उसकी मित्रता होती है।

कच्छपनिधि—यह निधि भी तमःप्रधान है, इसी कारण जिसके पास यह निधि रहती है, उसका स्वभाव भी तमःप्रधान होता है। वह मनुष्य पुण्यपरम्पराके अनुष्ठानप्रसङ्गसे अनेक प्रकारके व्यापारमें प्रवृत्त रहता है। किसी पर उसका विश्वास नहीं होता। जिस प्रकार कच्छप अपना सारा अङ्ग संहरण करता है, उसी प्रकार वह भी आयत्तचित्त हो कर जनताके चित्तको संहरणपूर्वक आत्मभाव छिपाये रहता है। वह मनुष्य विनाशके भयसे कोई वस्तु किसीको नहीं देता और आप भी उसका भोग नहीं करता। वह वस्तु जमीनमें गाड़ रखता है।

मुकुन्दनिधि—यह निधि रजोगुणप्रधान है। इस निधिकी दृष्टि होनेसे स्वभाव भी रजोमय होता है। वह मनुष्य वीणा, वेणु, मृदङ्ग आदिका सम्भोग करता तथा गायक और नर्त्तकोंको वित्त देता है। बन्दी, सूत, मागध और नास्तिकोंको रातदिन भोग्यवस्तु देता और आप भी उनके साथ भोग करता है। कुलटा तथा उसी प्रकारके अन्यान्य व्यक्तियोंके प्रति उसकी आसक्ति होती है। यह निधि जिसको भजना करती है, वह एकका ही सङ्गी होता है।

नन्दनिधि—यह निधि रज और तमोगुणविशिष्ट है। इसकी दृष्टि होनेसे मनुष्य धनवान् होता तथा वह तरह तरहके धनरत्नादिका भोग और क्रय विक्रयादि करता है। वह मनुष्य स्वजन, आगत, अभ्यागत सबोंको आश्रय देता है। वह जरा-सा भी अपमान सह नहीं सकता। कोई उसके पाससे विमुख लौट नहीं आता, और सबोंको वह मुंह मांगा दान देता है। उस व्यक्तिकी पत्नी भी सौन्दर्यशालिनी होती है तथा उसके अनेक सन्तान होती हैं। सात पीढ़ी तक इस निधिका भोग होता है। इस निधिके अधिपति दीर्घजीवन-लाभ कर सुखसे समय व्यतीत करते हैं।

नीलनिधि—यह निधि सत्त्व और रजःप्रधान है। जिसके प्रति इसकी दृष्टि पड़ती है, उसका स्वभाव भी सत्त्व और रजःप्रधान होता है। वह मनुष्य तरह तरहके वस्त्र, कपास, धान्यादि, फल, पुष्प, मुक्ता, विद्रुम, शङ्ख और शुक्तिका भोग करता है। इन सब द्रव्योंमें उसका जरा भी अनुराग उत्पन्न नहीं होता। उसका अधिकांश समय तड़ाग, देवालय आदि सत्कर्मोंमें बीतता है। यह निधि तीन पीढ़ी तक रहती है।

शङ्खनिधि—यह निधि रज और तमोमय है। जिसके पास यह निधि है उसका स्वभाव भी रजः और तमोमय होता है। यह निधि केवल एक पीढ़ी तक रहती है। इस निधिका अधिपति दिव्यभोजन करता तथा केवल अपनेको ही अच्छे अच्छे अलङ्कारोंसे सजाना पसन्द करता है। दूसरेकी बात तो दूर रहे, अपनी स्त्री और बच्चोंको भी कुछ नहीं देता है। स्वयं पद्मिनी देवी इन सब निधियोंके ऊपर अपना आधिपत्य फैलाए हुई है। (मार्कण्डेयपु० ६८ अ०)

८ पौरवंशीय नृपविशेष। ये राजा दण्डपाणिके पुत्र थे। मत्स्यपुराणादिमें ये निरामित्र नामसे प्रसिद्ध हैं। ९ महादेव, शिव। १० ऋषियोंका कल्पभूत पाठयुत वेद। निधिगोप देखो। ११ नौ की संख्या।

निधिगोप (सं० पु०) निधिरूपोपाकरणभूतपाठो वेदस्तं गोपयति, गुप-अण्। अनूचान, वह जो वेद वेदाङ्गमें पारंगत हो कर गुरुकुलसे आया हो।

निधिनाथ (सं० पु०) निधीनां नाथः। निधियोंके स्वामी, कुबेर। पर्याय—निधीश, निधीश्वर, निधिप्रभु।

निधिनाथ (सं० पु०) एक संस्कृतज्ञ पण्डित। इन्होंने न्यायसारसंग्रह नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

निधिप (सं० पु०) निधि-पा-क। धनेश्वर, कुबेर।

निधिपति (सं० पु०) निधीनां पति। कुबेर।

निधिपा (सं॰ पुं॰) यक्षाधिपति ।
निधिपाल (सं॰ पु॰) यक्षेश्वर, कुवेर ।
निधिमत् (सं॰ त्रि॰) धनयुक्त, जिसके पास धन हो ।
निधिराम कविचन्द्र—एक विख्यात कवि । ये विष्णुपुरके राजा गोपालसिंहके सभा-पण्डित थे । इन्होंने बङ्गलाभाषामें संक्षिप्त रामायण और महाभारत तथा श्रीमद्भागवतके आधार पर गोविन्दमङ्गल, दाताकर्ण आदि कई एक छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे हैं ।
निधिराम गुप्त—एक स्वभावजात बङ्गाली कवि । इनका प्रकृत नाम रामनिधि था । १६६२ शकको वैद्यवंशमें ये उत्पन्न हुए थे । ईष्ट-इण्डिया-कम्पनीके अधीन ये काम करते थे । १७५६ शक अर्थात् १८३४ ई॰में ८४ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ ।
निधिराम शर्मा—एक ग्रन्थकार । इन्होंने 'आचारमाला' नामक एक संस्कृत ग्रन्थ बनाया है ।
निधिवास (निवास)—१ अहमदनगरके अन्तर्गत एक महकुमा । इसके उत्तरमें गोदावरी नदी निजामराज्यकी सीमा निर्देश करती है, पूर्वमें शिवगांव, दक्षिणमें नगर और पश्चिममें राहुड़ी है । क्षेत्रफल ४७७१३८ एकड़ है । इसमें १८० ग्राम लगते हैं । १८१८ ई॰में यह अंगरेजोंके शासनाधीन हुआ ।

कहते हैं, कि प्राचीन हिन्दू राजाओंके समय निधिवास अत्यन्त समृद्धिशाली था । यहां अनेक सुसभ्य मनुष्य रहते थे । १४८० से १६३६ ई॰ तक यह नगर निजामशाही राजाओंके राज्यभुक्त था । १६३६ ई॰में यह मुगलसम्राट् शाहजहान्‌के हाथ लगा । १८वीं शताब्दीमें शिवाजीके पौत्र शाहुने यौतुकमें यह स्थान प्राप्त किया । १७५८ ई॰ तक यह नगर यथार्थमें महाराष्ट्रोंके ही अधीन रहा । अधिवासिगण इस नगरको निवास कहते हैं ।

१८०१-१८०३ ई॰में होलकर इसी नगरके मध्य हो कर पूना जाते आते थे जिससे यहांके लोग विशेष क्षतिग्रस्त हो गये थे । पीछे १८०६ ई॰ तक दुर्दान्त भीलजाति इस देशमें लूटमार मचाती रही । उसी साल दुर्भिक्ष भी पड़ गया, इन सब कारणोंसे देश जनशून्य और हतश्री हो पड़ा । अन्तमें १८१८ ई॰में जब यह अंगरेजोंके हाथ लगा, तबसे यहां चारों ओर शान्ति विराजने लगी ।

किसी किसीका कहना है, कि १६०५ ई॰में मालिक अम्बरने 'निवास'को दिल्लीके अधीन कर लिया, लेकिन इस विषयमें कोई प्रमाण नहीं मिलता । यहां 'विघावनी' नियम प्रचलित था । कुल खजानाकी 'तंखा' या 'कमाल' और एक ग्राममें जितनी जमीन पड़ती थी, उसके क्षेत्रफलको 'रकबा' कहते थे । ग्यारह ग्रामोंमें 'मुण्डबन्दी' नियमानुसार मालगुजारी वसूल होती थी । निवाससे तरह तरहके कर वसूल किये जाते थे, जिससे लोग बहुत तंग आ गये थे ।

इस प्रदेशमें निवास, शोनाई, चन्दा आदि बारह शहर हैं । यहां तथा ग्रामग्रामके शहरोंमें बहुसंख्यक तांती रहते हैं । प्रतिवर्ष यहांसे हाथके बुने हुए कपड़े की रफ़तनी होती है । धांगड़ लोग एक प्रकारका कम्बल तैयार करते हैं ।

अहमदनगरसे औरङ्गाबादका रास्ता इसी शहर हो कर गया है । इसके अलावा एक दूसरा रास्ता निवासके सिङ्गरकेश होता हुआ पैठानको चला गया है ।

२ उक्त महकूमेका एक सदर । यह अक्षा॰ १८ ३४´ उ॰ और देशा॰ ७५´ पू॰के मध्य अहमदनगरसे ३५ मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है । यह एक दातव्य चिकित्सालय है । यह शहर १८७७ ई॰में बसाया गया है । निवासके पश्चिम प्रायः आध पावकी दूरी पर एक प्रस्तर-स्तम्भ देखनेमें आता है जिसका घेरा ४ फुटसे कम नहीं होगा । ऐसा अनुमान किया जाता है, कि यह मन्दिरका भग्नांश है और ध्यानदेवका स्तम्भ कहलाता है । प्रवाद है, कि ध्यानदेवने इसी स्तम्भ पर टेक दे कर भगवद्गीताकी रचना की थी (१२७१-१३०० ई॰में) । स्तम्भ एक घरके बीच मट्टीमें गड़ा हुई है । मट्टीके ऊपर इसकी लम्बाई प्रायः ४२ फुट है । इसका निचला भाग चिपटा और ऊपर तथा नीचेका भाग गोल है । जहां चिपटा है, वहां एक शिलालिपिमें दो संस्कृत पद और ७ कुल लिखे हुए हैं । *

१२९० ई॰में महाराष्ट्रकवि ध्यानेश्वरने निवासमें

* See Bom. Gaz. Vol. XVII, p. 729.

रह कर भगवद्गीताकी टीका लिखी थी। उसमें उन्होंने लिखा है, कि निवास महाराष्ट्रदेशके मध्य ५ कोस तक फैल कर गोदावरीके समीप चला गया है। उक्त ग्रन्थमें इस स्थानको महालय वा देवताका आवास बतलाया है।

निधिवास (निवास)के विषयमें और भी कई एक दन्त-कहानियां प्रचलित हैं। * उनमेंसे केवल एक दन्त-कहानी यहां देते हैं जिसका विषय स्कान्दपुराणके 'महालयमाहात्म्य'में लिखा है। यह 'माहात्म्य' वहांके अधिवासियोंके बड़े आदरकी वस्तु है।

महालयमाहात्म्यके मतसे पुराकालमें तारकासुर नामक एक दैत्य था। वह दैत्य ब्रह्माको स्तवसे सन्तुष्ट कर उनके वरके प्रभावसे स्वर्गको चला गया। देवदुर्लभ स्वर्गमें स्थान पा कर वह दैत्य अहङ्कारसे चूर चूर हो गया और देवताओंके प्रति अत्याचार करने लगा यहां तक कि उसने धीरे धीरे देवताओंको स्वर्गसे भगाना आरम्भ कर दिया। असुरके उत्पातसे देवगण स्थिर न रह सके। वे अनन्योपाय हो कर ब्रह्माको शरणमें पहुंचे। ब्रह्माने उनकी रक्षाके लिये विष्णुका स्मरण किया। स्मरणके साथ ही विष्णु वहां पहुंच गये। बाद ब्रह्मासे सब बातें जान कर विष्णुने कहा कि, "कार्त्तिकेय शङ्करके औरस और पार्वतीके गर्भसे उत्पन्न हो कर उस दैत्यका नाश करेंगे।" फिर ब्रह्माने विष्णुसे पूछा कि, 'कार्त्तिकके जन्मकाल तक देवगण कहां रहेंगे?' इस पर विष्णु बोले कि 'निवास' नामक एक देश है, वहीं देवताओंके रहनेका स्थान होगा। वहां वह दैत्य उनका कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता। उन्होंने स्वयं निवासका जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है—"विन्ध्य-पर्वतके दक्षिण भागमें गोदावरी नदीके दाहिने किनारे पांच कोस तक विस्तृत एक तीर्थस्थान है। वहां मङ्गलमयी वरानदी कलकल शब्द करती हुई बहती है। उस नदीकी पूर्वदिशामें असाधारण वैष्णवी शक्तिका वास है।" अनन्तर देवगण उसी निर्धारित स्थान पर जा कर रहने लगे।

महालयमाहात्म्यमें निवासके 'महालय' और 'निधिवास' ये दो नाम रखे गए हैं और यहांकी नदी प्रवरा, पापहरा और वरा नामसे वर्णित है। सनत्कुमारने व्यासके निकट उक्त नामोंकी इस प्रकार व्याख्या की है।

व्यासने प्रश्न किया, "महर्षि! इस पुण्य स्थानका नाम 'महालय' और 'निधिवास' क्यों पड़ा? 'प्रवरा' और 'पापहरा' शब्दका व्यवहार क्यों किया गया? एवं नदीका नाम 'वरा' होनेका क्या कारण? यह सब विषय मुझे बतला कर मेरे हृदयमें जो सन्देह है, कृपया उसे दूर कीजिए।"

इसके उत्तरमें सनत्कुमारने कहा था, "यह स्थान महत् (देवताओं)का आलय है, इस कारण इसका नाम 'महालय' पड़ा है। जब विष्णुके आदेशानुसार देवगण यहां रहनेको राजी हुए, तब वे अपनी अपनी सम्पत्ति ले कर यहां आए थे। धनाधिपति कुवेर अपनी नवनिधि ले कर यहां रहने लगे और तभीसे वे इसी स्थान पर रहते हैं। "निधिवास" नाम पड़नेका यही कारण है। प्रवरा नदीने देवताओंसे प्रार्थना की थी, कि जिससे मैं सुमिष्ट, विशुद्ध और सबोंको जीवनरक्षिणी हो सकूं, वह वर मुझे देनेकी कृपा करें। देवताओंसे यह वर पा कर वह 'प्रवरा' (अर्थात् सुमिष्ट जलपूर्णा नदी) नामसे प्रसिद्ध हुई। 'पापहरा' पापधौतकारी नदीको और 'वरा' स्वास्थ्यकरजलपूर्णा नदीको कहते हैं।"

महालयमाहात्म्यमें लिखा है, कि पूर्वोक्त वैष्णवी शक्ति निवासकी अधिष्ठात्री देवी है। आज भी ये निवास रक्षाकारिणी देवी कहलाती हैं। निवासमें वैष्णवीशक्तिका एक मनोहर मन्दिर है। विष्णुने राहुका संहार करते समय जिस प्रकारकी मूर्त्ति धारण की थी, वैष्णवी शक्तिकी मूर्त्ति भी ठीक उसी प्रकारकी है।

निधीश्वर (सं० पु०) निधीनां ईश्वरः। कुवेर।

निधुवन (सं० क्ली०) नितरां धुवनं हस्तपदादि कम्पनं यत्र। १ मैथुन। २ नर्म, केलि। ३ कम्प। ४ हंसीठट्ठा।

निधुवन—श्रीवृन्दावन-धाममें स्थित तीर्थविशेष। श्रीकृष्ण राधिका, वृन्दा आदि सखियोंके साथ यहां विहार करते थे। इसका आदि नाम वृन्दारण्य वा वृन्दाकुञ्ज है। सम्भवतः वृन्दारण्य नामसे वृन्दावन नामकी उत्पत्ति हुई है। इस उद्यानमें कृत्रिम मुक्ता और पद्मरागका पेड़ है।

* Indian Antiquary, Vol. XVII. p. 353-4.

प्रवाद है, कि श्रीराधिकाने कृष्णसे जब मणिमुक्ताके अलङ्कार मांगे थे, तब उन्होंने मायायोगसे मणि और मुक्ताके वृक्षको सृष्टि की थी। इसी अपरिमेय और अमूल्य निधिके कारण यह निधुवन नामसे मशहूर है। श्रीकृष्णने मक्खन खा कर पेड़में हाथ पोंछा था, ऐसा प्रवाद है और वे श्रीराधिकाका नूपुर ले कर एक पेड़ पर छिप रहे थे, इस कारण कुछ पेड़ोंमें नूपुराकृतिके फल देखे जाते हैं। यह वन नारायणभट्टसे आविष्कृत चौरासी वनके अन्तर्गत है।

निधृति (सं० पु०) वृष्णिपुत्रभेद, वृष्णिके एक पुत्रका नाम।

निधेय (सं० त्रि०) नि-धा-यत्। स्थाप्य, स्थापन करने योग्य।

निधौली—युक्तप्रदेशके एटा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। फर्रुखाबादके नवाबके राजस्व-कर्मचारी खुशालसिंहने यहां एक दुर्ग बनवाया था जिसका खंडहर आज भी नजर आता है। यह स्थान नील और रूईके कारबारके लिये प्रसिद्ध है।

निध्यान (सं० क्ली०) नि-ध्यै-ल्युट। १ दर्शन, देखना। २ निदर्शन।

निध्रुव (सं० पु०) गोत्र प्रवर्त्तक ऋषिभेद।

निध्रुवि (सं० त्रि०) नितरां ध्रुवति ध्र स्थैर्ये कि। १ स्थैर्यान्वित, स्थिरतायुक्त, जिसमें चञ्चलता न हो। (पु०) २ एक काश्यप। कात्यायनके ऋग्वेदानुक्रमणिकाके मतसे ये नवम मण्डलके ६३ सूक्तके ऋषि थे।

निध्वान (सं० पु०) ध्वन शब्दे नि-ध्वन-घञ्। शब्दमात्र।

निनङ्क्षु (सं० त्रि०) नष्टुमिच्छुः नश-सन्, 'सनाशंस-भिक्ष उः' इति सनन्तादुः, ततो नुम्। नाश करनेमें इच्छुक।

निनद (सं० पु०) नि-नद-अप् (नौगदनदपठस्वनः। पा ३।३।६४) १ शब्द, आवाज। २ रथतुल्यशब्द, घरघराहट।

निनन्दु (सं० स्त्री०) मृतवत्सा, मरा हुआ बछड़ा।

निनय (सं० स्त्री०) नम्रता, नीताई, आजजी।

निनयन (सं० क्ली०) नि-नी-ल्युट। १ निष्पादन। २ प्रणीताके जलको कुशसे यज्ञकी वेदी पर छिड़कनेका कार्य।

निनरा (हिं० पु०) न्यारा, अलग, जुदा, दूर।

निनर्त्तशत्रु (सं० पु०) देवश्रवा उग्रके एक पुत्रका नाम।

निनर्द (सं० पु०) नि नर्द भावे-घञ्। वेदशब्दका उच्चारणभेद।

निनाद (सं० पु०) नि-नद भावे घञ्। शब्दमात्र, आवाज।

निनादित (सं० त्रि०) निनाद अस्य सञ्जातः तारकादित्वादितच्। शब्दित, ध्वनित।

निनादिन् (सं० त्रि०) नि-नद-णिनि। निनादकारी, शब्द करनेवाला।

निनान (हिं० वि०) १ बिलकुल, एकदम, घोर। २ निकृष्ट, बुरा।

निनार (हिं० वि०) निनारा देखो।

निनारा (हिं० वि०) १ भिन्न, न्यारा, जुदा, अलग। २ दूर, हटा हुआ।

निनावां (हिं० पु०) जीभ, मसूड़े तथा मुंहके भीतरके और भागोंमें निकलनेवाले महीन महीन लाल दाने जिनमें छरछराहट और पीड़ा होती है।

निनावीं (हिं० स्त्री०) १ वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ या बुरा समझा जाता हो। २ चुड़ैल, भुतनी।

निनाड्य (सं० पु०) नीचैर्नाड्यां भूमौ निखननीयः नि-नड कर्मणि ण्यत्। भूमि पर खननीय माणिक।

निनित्सु (सं० पु०) निन्दितुमिच्छुः, निन्दि-सन्-उ, वेदे निपातनात् साधुः। निन्दा करनेमें इच्छुक, जो शिकायत करना चाहता हो।

निनिभि (Nineveh)—ऐतिहासिक जगत्में एक अत्यन्त प्राचीन नगर। यह ताइग्रीस नदीके पूर्व किनारे और वर्त्तमान मुसल राजधानीके दूसरे किनारे अवस्थित था। १८वीं शताब्दीके पहले यहां आसिरीय राजाओंकी राजधानी थी। उस समयके वाणिज्यकी उन्नति, अट्टालिका सौन्दर्य और कारुकार्य देखनेसे मालूम पड़ता है कि एक समय यह समृद्धिशाली नगर था। उस समय इसकी लम्बाई और चौड़ाईका विस्तार आठ मील था। राजधानी दुर्गसे सुरक्षित थी और बहुसंख्यक वणिक् व्यवसायकी कामनासे यहां रहते थे। जब योनस् इस्रायलके राजा जेरबोयमसे आदिष्ट हो कर यहां आये थे;

तेव उन्हें नगर प्रदक्षिण करनेमें तीन दिन लगे थे। इसके बाद दिवदोरस सिकुलस (Diodorus Siculus) जिस समय यहां आए, उस समय इसकी चतुःसीमा ४७ मील थी और सीमान्तप्रदेश १०० फुट उच्च प्राचीरसे घिरा था। उस विस्तृत प्राचीरके बीच बीचमें कुल १५०० बुर्ज थे। प्राचीरके प्रस्थके विषयमें उनका यह भी कहना है, कि उसके ऊपर तीन गाड़ी एक साथ बखूबीसे आ जा सकती थीं। ६५० ई० सन्‌के पहले असिरीय-राज सार्दिनेपल्‌सके राजत्वकालमें प्रदत्त अनेक अनुशासन् लिपियां पाई जाती हैं। उन अनुशासनोंमें अधिकांश अभी यूरोपखण्डमें विद्यमान हैं।

६०६ ई० सन्‌के पहले वाबिलन, इजिप्ट, मिडिया, अर्मेणिया आदि स्थानोंके राजाओंने मिल कर इस नगर पर आक्रमण किया था। निनिभिराज असुर-इविक्रीने राजप्रासादमें आग लगा कर सपरिवार जीवन विसर्जन किया। इसी समयसे निनिभिके अधःपतनका सूत्रपात आरम्भ हुआ, यहांके अधिवासी असुर, निवो और उनकी सहधर्मिणी उर्मितु, मेरोदचकी तथा उनकी पत्नी जिरात्वर्णित, इस्तर, निर्गल, निनिप, वल, अशु और हिय नामक देवताओंकी पूजा करती थीं। इनके पुस्तकागारमें कोणाकार अक्षरोंमें लिखित जली हुई मट्टीकी अनुशासनलिपि पाई गई है। उस समय इनका धर्म, विज्ञान, भाषा और लिखन-प्रणाली वाबिलोनियों-सी थी।

यह नगर इतना तहस नहस हो गया कि इसका विषय पढ़नेसे ही आश्चर्य खाना पड़ता है। स्मिथ साहबने इस स्थानके परिदर्शन कालमें अनुमान किया था, कि यहां शायद १०००० शिलालिपियां होंगी। वर्त्तमान समयमें मृत्तिकास्तूप छोड़ कर और कुछ भी प्राचीन नगरका स्मृतिचिह्न रह नहीं गया है।

निनीषा (सं० स्त्री०) नेतुमिच्छा नी-सन्-अप, टाप्। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें ले जानेकी इच्छा।

निनीषु (सं० त्रि०) नेतुमिच्छुः, नी सन-उ। नयनेच्छु, ले जानेका अभिलाषी।

निनौना (हिं० क्रि०) झुकाना, नवाना, नीचे करना।

निनौरा (हिं० पु०) नाना वा नानीका घर। वह स्थान जहां नानानानीका वास हो।

निन्दक (सं० त्रि०) निन्दति तच्छीलः, निदि कुत्सायां वुञ् (निदिहिंसेति। पा ३।२।१४६) निन्दाकारी, दूसरोंके दोष या बुराई कहनेवाला।

"न भाराः पर्वता भारा न भाराः सप्तसागराः।
निन्दका हि महाभारा भारा विश्वासघातकाः॥"
(कर्मलोचन)

पृथ्वीके लिए पर्वत वा सप्तसागर भार नहीं है, किन्तु विश्वासघातक वा निन्दक महाभार है। पृथ्वी इसका भार सहन नहीं कर सकती।

निन्दतल (सं० त्रि०) निन्दं निन्दार्हं तलं हस्ततलं यस्य। निन्दितहस्त।

निन्दन (सं० क्ली०) निदि कुत्सायां भावे ल्युट्। निन्दा, बुराईका वर्णन।

निन्दनीय (सं० त्रि०) निदि-अनियर्। १ निन्द्य, निन्दा करने योग्य, बुरा कहने काबिल। २ गर्ह्य, बुरा।

निन्दा (सं० स्त्री०) निन्दनमिति निदि-अ, (गुरोश्च हलः। पा ३।३।१०३) १ अपवाद, दुष्कृति, बदनामी, कुख्याति। पर्याय—निन्दन, अवर्ण, आक्षेप, निर्वाद, परीवाद, अपवाद, उपक्रोश, जुगुप्सा, कुत्सा, गर्हण, धिक्क्रिया।

जहां गुरुका परीवाद अथवा निन्दा होती हो, उस जगह खड़ा नहीं रहना चाहिये, अगर खड़ा रहे भी तो दोनों कान मूंद ले। निन्दा और परीवादमें प्रभेद यह है, कि जो दोष उसमें नहीं हैं, वे सब दोष उस पर लगा कर दूसरेके सामने कहनेको निन्दा और जो दोष वास्तवमें है उसके कथनको परीवाद कहते हैं। कुल्लूकने अपनी व्याख्यामें कहा है, कि विद्यमान दोषके अभिधानको परीवाद और अविद्यमान दोषके अभिधानको निन्दा कहते हैं।

देवता और द्विज आदिकी निन्दा महापापजनक है। इसका विषय ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

शिव और विष्णुके भक्त, ब्राह्मण, राजा, निज गुरु, पतिव्रता स्त्री, यति, भिक्षु, ब्रह्मचारी और देवता इनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए; करनेसे जब तक चन्द्र सूर्य रहेंगे, तब तक कालसूत्र नामक नरकका भोग होता है। वहां दिवारात्र श्लेष्मा, मूत्र और पुरीष

पर सोना पड़ता है। कीड़े मकोड़े उसके अंग प्रत्यंग खाते हैं और इससे वह बहुत व्याकुल हो कर चीत्कार करता है।

देवादिदेव शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सीता, तुलसी, गङ्गा, वेद, सभी व्रत, तपस्या, पूजामन्त्र, मन्त्र प्रद गुरु इन सबकी जो निन्दा करते हैं, वे विधाताको परमायुके अर्द्धकाल तक अन्धकूप नरकमें पतित होते हैं और सर्पसमूहसे भक्षित हो कर घोर शब्द करते हैं।

जो हृषीकेशको अन्य देवताओंके साथ समान मानते हैं और राधा तथा तदङ्गजा गोपियों और सद्ब्राह्मणोंकी निन्दा करते हैं, वे अवट नामक नरकमें सदाके लिये वास करते हैं। इस नरकमें रह कर उन्हें श्लेष्मा, मूत्र और पुरीष खाना पड़ता है।

परनिन्दा मात्र ही दूषणीय है, इस कारण परनिन्दाका त्याग करना सर्वतोभावसे उत्तम है। केवल अपनी निन्दा करनेसे यश प्राप्त होता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पुराण श्रीकृष्णजन्म० ४०।४१ अ०)

कौर्म उपपुराणमें लिखा है, कि जो वेद, देव और ब्राह्मणकी निन्दा करते हैं उनका मुख देखनेसे पाप होता है। अपनी प्रशंसा, वेदनिन्दा और देवनिन्दाका यत्नपूर्वक परित्याग करना चाहिये।

जहां पर सज्जनोंकी निन्दा होती हो, उस स्थान पर किसी हालतसे ठहरना न चाहिए और यदि ठहर भी जाय तो चुप रहना ही उचित है। साधुनिन्दकके मतानुसार भूल कर भी न चलना चाहिए।

निन्दाकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अच्। निन्दाया करः। अपवादक, निन्दा करनेवाला, दूसरेके दोष या बुराई कहनेवाला।

निन्दान्वित (सं० त्रि०) निन्दया अन्वितः। निन्दायुक्त, निन्दित, बुरा।

निन्दार्थवाद (सं० पु०) निन्दारूपोऽर्थवादः। मीमांसकोंके मतानुसार अर्थवाद भेद।

निन्दार्ह (सं० त्रि०) निन्दनीय, निन्दाके योग्य।

निन्दास्तुति (सं० स्त्री०) निन्दया स्तुतिः। व्याजस्तुति, निन्दाके बहाने स्तुति।

निन्दित (सं० त्रि०) निन्दा-अस्य जाता, इति। निन्दायुक्त, जिसे लोग बुरा कहते हैं। पर्याय—धिक्कृत, अपध्वस्त, निर्भत्सित।

"मधु पश्यति मूढ़ात्मा प्रपातं नैव पश्यति।
करोति निन्दितं कर्म नरकान्न बिभेति च॥"

(देवीभाग० ४।७।४८)

शास्त्र और लोकाचारमें जो विहित नहीं है, उसे निन्दित कहते हैं। अहितभोजन और ब्राह्मण कर्त्तृक शूद्रका प्रतिग्रह ये सब निन्दित शब्दवाच्य हैं।

निन्दितव्य (सं० क्ली०) निन्द-तव्य। निन्दनीय।

निन्दितृ (सं० त्रि०) निदि, कुत्सायां तृच्। निन्दाकारक, दूसरोंके दोष या बुराई कहनेवाला।

निन्दिन् (सं० त्रि०) निन्द-इनि। निन्दाकारी।

निन्दु (सं० स्त्री०) निन्द्यतेऽप्रजस्त्वेनासौ निदि कुत्सायां औणादिक उ। मृतवत्सा, वह औरत जिसके सन्तान हो कर मर मर जाती हो।

निन्द्य (सं० त्रि०) निन्द-यत्। १ निन्दनीय, निन्दा करनेयोग्य। २ दूषित, बुरा।

निन्द्यता (सं० स्त्री०) निन्द्यस्य भावः निन्द्य-तल्-टाप्। निन्दनीयता, दूषणीयता।

निन्यानवे (हिं० वि०) १ नब्बे और नौ, जो संख्यामें एक कम सौ हो। (पु०) २ नब्बे और नौकी संख्या, ९९।

निप (सं० पु० क्ली०) नियतं पिवत्यनेन नि पा बाहुलकात् क। १ कलस। (पु०) नीप पृषोदरादित्वात् साधुः। २ कदम्बवृक्ष।

निपक्षति (सं० स्त्री०) नीचा पक्षतिः। घोड़ोंकी दाहिनी बगलकी तरह हड्डियोंमेंसे दूसरी हड्डी।

निपट (हिं० अव्य०) १ विशुद्ध, खाली, निरा। २ नितान्त, एकदम, बिलकुल।

निपटना (हिं० क्रि०) निबटना देखो।

निपट निरञ्जनस्वामी—एक कवि। इनका जन्म १५८३ ई०में हुआ था। शिवसिंहके मतसे ये तुलसीदासकी जैसे निष्ठावान् धार्मिक थे। 'शान्त-सरसी' और 'निरञ्जन' नामक दो ग्रन्थोंके सिवा इनके बनाये हुए और भी छोटे छोटे हिन्दीपद्य ग्रन्थ पाये जाते हैं।

निपटाना (हिं० क्रि०) निबटाना देखो।

निपटारा (हिं० पु०) निबटारा देखो।

निपटावा (हिं० पु०) निबटावा देखो।
निपटेरा (हिं० पु०) निबटेरा देखो।
निपठ (सं० पु०) निपठनमिति नि-पठ-अप् (नौ गदनद-पठस्वनः। पा ३।३।६४) पाठ, अध्ययन।
निपठित (सं० त्रि०) नि-पठ-क्त। जो पढ़ा गया हो।
निपठितिन् (सं० त्रि०) नि-पठितमनेन इष्टादित्वात् कर्त्तरि इनि। कृतपाठ, जो पढ़ा गया हो।
निपतन (सं० क्ली०) नि-पत-ल्युट्। निपात, अध-पतन, गिराव।
निपतित (सं० त्रि०) नि-पत-क्त। पतित, गिरा हुआ।
निपत्यरोहिणी (सं० स्त्री०) निपत्य रोहिणी रोहितवर्णा स्त्री मयूरव्। निपत्यरोहितवर्णा स्त्री।
निपत्या (सं० स्त्री०) निपतत्यस्यामिति, नि-पत-क्यप्, ततष्टाप्। (संज्ञायां समजनिषदनिपतेति। पा ३।३।९९) १ युद्धभूमि। २ पिच्छिलाभूमि, गीली चिकनी जमीन ऐसी भूमि जिस पर पैर फिसले।
निपरन (सं० क्ली०) निषिद्धं परणं प्रीतिः नि-पृ-प्रीतौ भावे ल्युट्। प्रीत्यभाव, प्रीतिका अभाव।
निपलाश (सं० त्रि०) निपतितं पलाशं यस्य। निपतित पत्र।
निपाक (सं० पु०) नियमेन पचनमिति नि-पच-घञ्। पाक।
निपात (सं० पु०) नि-पत-भावे घञ्। १ पतन, पात, गिराव। २ मृत्यु, क्षय, नाश। ३ अधःपतन। ४ विनाश। ५ शाब्दिकोंके मतसे वह शब्द जिसके बननेके नियमका पता न चले अर्थात् जो व्याकरणमें दिए नियमोंके अनुसार न बना हो।
निपातन (सं० क्ली०) निपात्यतेऽनेनेति नि-पत-णिच् करणे ल्युट्। १ मारण, वध करनेका काम। २ गिरानेका काम। ३ अधोनयन। पर्याय—प्रवनाय, निपातन। ४ व्याकरणके लक्षण द्वारा अनुत्पन्नपदसाधन, व्याकरणके नियमके प्रतिकूल व्याकरणका पदसिद्ध करनेके लिये सूत्रोक्त जो सब नियम हैं, उनका अतिक्रम कर पदसाधन।

जो सब पद व्याकरणके लक्षण द्वारा साधित नहीं होते वे सब पद निपातप्रयुक्त सिद्ध हुए हैं। निपातप्रयुक्त पदसिद्ध करनेमें किसी किसी वर्णका आगम और कहीं वर्णविकार अथवा वर्णनाश करना होता है।
निपातना (हिं० क्रि०) १ गिराना, नीचे गिराना। २ नष्ट करना, काट कर गिराना। ३ वध करना, मार गिराना, मारना।
निपातनीय (सं० त्रि०) नि-पत-णिच् अनीयर्। निपातनके उपयुक्त, वध करने योग्य।
निपातित (सं० त्रि०) नि-पत-णिच्-क्त। अधोनीत, जो नीचे फेंक दिया गया हो।
निपातिन् (सं० पु०) निपातः अस्यास्ति इनि। १ महादेव। ये सभीका निपात अर्थात् नाश करते हैं, इस कारण इनका यह नाम पड़ा है। (त्रि०) २ गिरानेवाला, फेंकनेवाला, चलानेवाला। ३ घातक, मारनेवाला।
निपाती (हिं० वि०) निपातिन् देखो।
निपाद (सं० पु०) निकृष्टो न्यग्भूतो पादोयत्र। निम्न-प्रदेश।
निपान (सं० क्ली०) निपीयतेऽस्मिन्निति। नि पा-आधारे ल्युट्। १ कुएंके पास दीवार घेर कर बनाया हुआ कुण्ड या खोदा हुआ गड्ढा। इसमें पशुपक्षी आदिके पीनेके लिए पानी इकट्ठा रहता है। २ गोदोहन पात्र, दूध दुहनेका बरतन। ३ तालाब, गड्ढा, खत्ता।

"परकीय निपानेषु न स्नायाच्च कदाचन।
निपानकर्त्तुः स्नात्वा च दुष्कृतांशेन लिप्यते॥"
(मनु ४।२०१)

'निपिबन्त्यस्मिन्नतो वेति निपानं जलाशयः'
(मेधातिथि)

यहां पर निपान शब्दका अर्थ जलाशय मात्र है। दूसरेके निपानमें कदापि स्नान नहीं करना चाहिये; करनेसे निपानकर्त्ताका चौथाई पाप निजमें चला आता है। नि-पा भावे-क्त। ४ निःशेष पान।
निपानी—बम्बई प्रदेशके बेलगाम जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १६° २४´ उ० और देशा० ७४° २३´ पू० बेलगाम शहरसे ४० मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ११६३२ है। यह शहर १८३८ ई०में अंगरेजोंने

हस्तगत किया, पीछे १८५२ ई०में वृटिशराज्यभुक्त हो गया है। यहांका वाणिज्य व्यवसाय जोरोंसे चलता है। शहरमें कुल ३ स्कूल हैं।

निपीड़क (सं० त्रि०) निपीड़यतीति नि-पीड़ ण्वुल्। १ निपीड़नकारी, पीड़ा देनेवाला। २ निचोड़नेवाला। ३ पेरनेवाला।

निपीड़न (सं० त्रि०) नि-पीड़ भावे ल्युट्। १ कष्ट पहुंचाने या पीड़ित करनेका कार्य, तकलीफ देना। २ पसेव निकालना, पसाना। ३ पेरना, पेर कर निकालना। ४ मलना, दलना।

निपीड़ित (सं० त्रि०) नितरां पीड़ितः, नि-पीड़-क्त। १ निष्पीड़ित, जिसे पीड़ा पहुंचाई गई हो। २ आक्रान्त। ३ दवाया हुआ। ४ पेरा हुआ, निचोड़ा हुआ।

निपीत (सं० त्रि०) पा-कर्मणि क्त, निःशेषेण पीतं वा पानमस्यास्तीति अर्शादित्वाच्। निःशेषमें पीत, जो आखिरमें पीया गया हो।

निपीति (सं० स्त्री०) निःशेष पान।

निपीयमान (सं० त्रि०) जो पीया जा रहा हो।

निपुड़ना (हिं० क्रि०) खोलना, उघारना।

निपुण (सं० त्रि०) पुण राशीकरणे नि-पुण-क। १ कार्यक्षम, कार्य करनेमें पटु। पर्याय—प्रवीण, अभिज्ञ, विज्ञ, निष्णात, शिक्षित, वैज्ञानिक, कृतमुख, कृती, कुशल, संख्यावान्, मतिमान्, कुशाग्रीयमति, कृष्टि, विदुर, बुध, दक्ष, नेदिष्ठ, कृतधी, सुधी, विद्वान्, कृतकर्मा, विचक्षण, विदग्ध, चतुर, प्रौढ़, बोद्धा, विशारद, सुमेधा, सुमति, तीक्ष्ण, प्रेक्षावान्, विबुध, विदत्, विज्ञानिक, कुशली। (पु०) २ चिकित्सक, वैद्य, हकीम।

निपुणता (सं० स्त्री०) निपुणस्य भावः, नि-पुण-तल्-टाप्। दक्षता, कुशलता, पटुता, अभिज्ञता, पारदर्शिता।

निपुणिका (सं० स्त्री०) विक्रमोर्वशी नाटकोक्त एक परिचारिका।

निपुती (हिं० वि०) निःसन्तान, निपूता।

निपुर (सं० पु०) निकृष्टं पूर्यते पृ कर्मणि क्विप्। लिङ्गदेह, सूक्ष्म शरीर। सञ्चित अन्नपानादि द्वारा बहुत सूक्ष्म रूपसे यह शरीर पूरा होता है, इस कारण इसका निपुर नाम पड़ा है।

निपूता (हिं० वि०) अपुत्र, जिसे पुत्र न हो।

निफरना (हिं० क्रि०) १ चुभकर या धंस कर इस पारसे उस पार होना, छिद कर आरपार होना। २ उद्घाटित होना, खुलना, साफ होना, प्रकट होना।

निफला (सं० स्त्री०) निवृत्तं फलं यस्याः। ज्योतिष्मती लता।

निफाक (अ० पु०) १ विरोध, द्रोह, वैर। २ भेद, फूट, बिगाड़, अनबन।

निफाड़—१ बम्बईके नासिक जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १८ ५५ से २० १४ उ० और देशा० ७३ ४५ से ७४ २० पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१५ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ८२७८१ है। इसके उत्तरमें चन्दोर, पूर्वमें येवला और कोपरगांव, दक्षिणमें सिनार तथा पश्चिममें दिन्दोरी और नासिक-महकूमा है। यहांकी जमीन बिलकुल काली होती है। यहांका जलवायु स्वास्थ्यकर है। किन्तु ग्रीष्मकालमें असह्य गरमी पड़ती है। गोदावरी तालुकके मध्य हो कर बह गई है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह नासिक नगरसे २० मील उत्तरपूर्वमें अवस्थित है।

निफारना (हिं० क्रि०) १ इस पारसे उस पार तक छेद करना, आर पार करना, वेधना। २ इस पारसे उस पार निकालना। ३ उद्घाटित करना, खोलना, स्पष्ट करना, साफ करना।

निफालन (सं० क्ली०) दृष्टि, दर्शन।

निफेन (सं० क्ली०) निवृत्तः फेनो यस्मादिति। अहिफेन, अफीम।

निफोट (हिं० वि०) स्पष्ट, साफ साफ।

निब (अ० स्त्री०) लोहेकी चद्दरकी बनी हुई चोंच जो अङ्गरेजी कलमोंकी नोकका काम देती है। यह ऊपरसे खोंसी जाती है।

निबकौरी (हिं० स्त्री०) १ नीमका फल, निबौली, निबौरी। २ नीमका बीज।

निबटना (हिं० क्रि०) १ निवृत्त होना, छुट्टी पाना, फुरसत पाना, फारिग होना। २ समाप्त होना, पूरा होना, किए जानेको बाकी न रहना। ३ शौचआदिसे निवृत्त

होना। ४ निर्णीत होना, अनिश्चित दशामें रह न जाना। ५ चुकना, रह न जाना।

निबटाना (हिं० क्रि०) १ समाप्त करना, पूरा करना, खतम करना। २ निर्णीत करना, झंझट न रखना, ते करना। ३ भुगताना, चुकाना, बेबाक करना।

निबटाव (हिं० स्त्री०) १ निबटनेको भाव या क्रिया, निबटेरा। २ निर्णय, झगड़ेका फैसला।

निबटेरा (हिं० पु०) १ निबटनेका भाव या क्रिया, छुट्टी। २ समाप्ति। ३ निश्चय, झगड़ेका फैसला।

निबड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका बड़ा घड़ा।

निबद्ध (सं० त्रि०) १ बद्ध, बँधा हुआ। २ निरुद्ध, रुका हुआ। ३ ग्रथित, गुथा हुआ। ४ निवेशित, बैठाया हुआ, जड़ा हुआ।

निबद्ध (हिं० पु०) वह गीत जिसे गाते समय अक्षर, तालमान, गमक, रस आदिके नियमोंका विशेष ध्यान रखा जाय।

निबन्ध (सं० पु०) निबध्नातीति निबन्ध-घञ्। १ आनाह-रोग, पेशाब बन्द होनेकी बीमारी, करक। २ ग्रन्थकी वृत्ति, पुस्तककी टीका। ३ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ४ बन्धन। ५ संग्रहग्रन्थभेद, वह व्याख्या जिसमें अनेक मतोंका संग्रह हो। ६ लिखित प्रबन्ध, लेख। ७ काल विशेषसे देय रूपमें प्रतिश्रुत वस्तु, किसी तीर्थादिमें वा पुण्यदिनमें 'तुम्हें यह वस्तु दी' ऐसा प्रतिश्रुत द्रव्य, वह वस्तु जिसे किसीको देनेका वादा कर दिया गया हो। (क्ली०) नितरां बन्धः ताललयादि सहित बन्धनं यत्र। ८ गीत।

निबन्धदान (सं० क्ली०) निबन्धस्य दानं। धनसमर्पण, द्रव्यसमर्पण।

निबन्धन (सं० क्ली०) निबध्यतेऽनेनास्मिन् वा नि-बन्ध-ल्युट्। १ हेतु, कारण। २ उपनाह, वीणा वा सितारकी खूंटी, कान। ३ ग्रन्थि, गाँठ। ४ बन्धन, नियम, व्यवस्था। ५ ग्रन्थ, पुस्तक। निबध्यतेऽनया करणे ल्युट्। ६ निबन्धसाधन।

निबन्धनक (सं० त्रि०) निबन्धनं तत्समीपदेशादिः चतुरर्थ्यां क। निबिन्धनसमीप देशादि।

निबन्धना (सं० स्त्री०) १ बन्धन। २ बेड़ी।

निबन्धसंग्रह (सं० पु०) सुश्रुतकी एक टीका।

निबन्धिन् (सं० त्रि०) निबन्धकारी।

निबन्धृ (सं० पु०) निबन्धकर्त्ता, ग्रन्थकर्त्ता, टीकाकार।

निबन्धित (सं० त्रि०) निबन्धोऽस्य जातः, तारकादि-त्वादितच्। बद्ध, बँधा हुआ।

निबर (हिं० वि०) निर्बल देखो।

निबरना (हिं० क्रि०) १ बंधी फँसी, या लगी वस्तुका अलग होना, छूटना। २ मुक्त होना, उद्धार पाना। ३ उलझन दूर होना, सुलझना। ४ खतम होना, जाता रहना, दूर होना। ५ अवकाश पाना, छुट्टी पाना, फुरसत पाना। ६ समाप्त होना, भुगतना, सपरना। ७ निर्णय होना, ते होना, फैसला होना। ८ एकमें मिली जुली वस्तुओंका अलग होना, बिलग होना, छंटना।

निबर्हण (सं० क्ली०) निबर्हति इति नि-वर्ह-ल्युट्। मारण, नष्ट करनेकी क्रिया या भाव।

निबह (हिं० पु०) निर्वह देखो।

निबहना (हिं० क्रि०) १ छुटकारा पाना, छुट्टी पाना, निकलना, पार पाना। २ किसी स्थिति, सम्बन्ध आदिका लगातार बना रहना, निर्वाह होना, बराबर चला चलना। ३ किसी बातके अनुसार निरन्तर व्यवहार होना, चरितार्थ होना, पालन होना, पूरा होना। ४ बराबर होता चलना, पूरा होना, सपरना।

निबाज (नवाज)—हारवंशीय एक ब्राह्मण सन्तान। ये एक सुपण्डित और कवि थे। १६५० ई०में इन्होंने जन्म-ग्रहण किया था। ये पन्नाके बुन्देलाराज छत्रशालके सभासद थे। आजमशाहकी कहनेसे इन्होंने शकुन्तला-नाटकका हिन्दी भाषामें अनुवाद किया है। निबाज नामक एक मुसलमान ताँती भी था। लोग कभी कभी भ्रममें पड़ कर इन्हें ही निवाजताँती समझते हैं। किसी किसीका कहना है, कि पूर्वोक्त निबाज ही अन्तमें मुसल-मान धर्मावलम्बी हुए थे। प्रोक्त मुसलमान निवाजका जन्म हरदोई जिलेके बिलग्राममें १७४७ ई०को हुआ था।

निबाधई—बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह कलकत्तेसे १८ मील दूर दत्तपुकुर स्टेशन-के निकट अवस्थित है।

निबारी—आसामके अन्तर्गत गारोपहाड़ जिलेका एक

ग्राम। यह जिनारी नदीके किनारे बसा हुआ है। यह स्थान यहांके वाणिज्यका बन्दरस्वरूप है। यहांके जङ्गल-में शालके अनेक पेड़ देखनेमें आते हैं। जंगलसे काफी आमदनी होती है जिसमें गवर्नमेण्टका भी कर निर्दिष्ट है। १८८३ ई०के जून मासमें १० वर्गमील स्थान गवर्नमेण्टको दिया था जो अभी 'जिनारी फारेस्ट रिजर्भ' नामसे प्रसिद्ध है।

निबाह (हिं० पु०) १ निबाहनेकी क्रिया या भाव, रहन, गुजारा। २ मुक्तिका उपाय, छुटकारेका ढंग, बचावका रास्ता। ३ लगातार साधन, किसी बातके अनुसार निरन्तर व्यवहार, सम्बन्ध या परम्पराकी रक्षा। ४ चरितार्थ करनेका कार्य, पूरा करनेका काम।

निबाहक (हिं० वि०) निबाह करनेवाला।

निबाहना (हिं० क्रि०) १ निर्वाह करना, बराबर चलाए चलना, जारी रखना। २ निरन्तर साधन करना, बराबर करते जाना, सपरना। ३ चरितार्थ करना, पालन करना, पूरा करना।

निबिड़ (हिं० वि०) निविड़ देखो।

निबेड़ना (हि० क्रि०) १ उन्मुक्त करना, छुड़ाना। २ छोड़ना, हटाना, दूर करना, अलग करना। ३ परस्पर मिली हुई वस्तुओंको अलग अलग करना, बिलगाना, छाँटना, चुनना। ४ उलझन दूर करना। ५ निर्णय करना, फैसल करना। ६ निबटाना, भुगताना।

निबेड़ा (हिं० पु०) निबेरा देखो।

निबेरना (हिं० क्रि०) १ उन्मुक्त करना, बंधी, फंसी या लगी वस्तुको अलग करना। २ उलझन दूर करना, सुलझाना, फैलाव या अड़चन दूर करना। ३ निर्णय करना, फैसला करना, तै करना। ४ एकमें मिली हुई वस्तुओंको अलग अलग करना, बिलगाना, छाँटना, चुनना। ५ पूरा करना, निबटाना, सपराना, भुगताना। ६ त्यागना, तजना, छोड़ना। ७ दूर करना, हटाना, मिटाना।

निबेरा (हिं० पु०) १ मुक्ति, उद्धार, छुटकारा। २ समाप्ति, पूर्त्ति, भुगतान, निबटेरा। ३ मिली जुली वस्तुओंके अलग अलग होनेकी क्रिया या भाव, छाँट, चुनाव। ४ सुलझानेकी क्रिया या भाव, उलझन या फंसावका दूर होना। ५ निर्णय, फैसला, निबटेरा।

निबोली (हिं० स्त्री०) नीमका फल, निबकौरी।

निब्रङ्ग—पञ्जाबके मध्य बशाहिर जिलेका एक पहाड़ी रास्ता। कुनावरके दक्षिण जो पर्वतश्रेणी है, उसीके ऊपर यह रास्ता अवस्थित है। यह अक्षा० ३७° २२' उ० और ७८° १३' पू०के मध्य पड़ता है। इसके दोनों बगल ३५ फुट ऊंचाईके दो पर्वत सीधे खड़े हैं जो सदर-दरवाजेके जैसे दीख पड़ते हैं।

निभ (सं० त्रि०) नियतं भातीति नि-भा क। १ सदृश, तुल्य, समान। (पु०) २ प्रकाश, प्रभा, चमकदमक। ३ व्याज।

निभना (हिं० क्रि०) १ निकलना, पार पाना, बचना, छुट्टी पाना, छुटकारा पाना। २ निर्वाह होना, बराबर चला चलना, जारी रहना। ३ किसी स्थितिके अनुकूल जीवन व्यतीत होना, गुजारा होना, रहायस होना। ४ किसी बातके अनुसार निरन्तर व्यवहार होना, पालन होना, पूरा होना। ५ बराबर होता चलना, पूरा होना, सपरना, भुगतना।

निभरमा (हिं० वि०) जिसका विश्वास उठ गया हो, जिसकी थाप या मर्यादा न रह गई हो, जिसकी कलई खुल गई हो, जिसका परदा ढका न हो।

निभरोस (हिं० वि०) निराश, हताश, जिसे भरोसा न हो।

निभागा (हिं० वि०) अभागा, बदकिस्मत।

निभाना (हिं० क्रि०) १ निर्वाह करना, बराबर चलाए चलना, बनाए और जारी रखना। २ निरन्तर साधन करना, बराबर करते जाना, चलाना, भुगताना। ३ किसी बातके अनुसार निरन्तर व्यवहार करना, चरितार्थ करना, पूरा करना, पालन करना।

निभालन (सं० क्ली०) नि-भल-णिच्-भावे ल्युट्। दर्शन।

निभाव (हिं० पु०) निबाह देखो।

निभीम (सं० त्रि०) भयानक, डरावना।

निभूत (सं० त्रि०) निश्चलं भूतः। अतीत, भूत, बीता हुआ।

निभूयप (सं० पु०) निभूय नितरां भूत्वा मत्स्यादिरूपेणावतीर्य पाति पा-क। विष्णु, भगवान्।

निभृत (सं० त्रि०) नि-भृ-क्त। १ हत, धरा हुआ, रखा

हुआ। २ निश्चल, अटल। ३ विनीत, नम्र। ४ एकाग्र, सुना। ५ गुप्त, छिपा हुआ। ६ निर्जन, सूना। ७ अस्तमयासन्न, अस्त होनेके निकट। ८ बन्द किया हुआ। ९ निश्चित, स्थिर, अनुद्विग्न, धीर, शान्त। १० पूर्ण, भरा हुआ।

निम (सं० पु०) शलाका, शङ्कु।

निमकी (हिं० स्त्री०) १ नीबूका अचार। २ घीमें तली हुई मैदेकी खोयनदार नमकीन टिकिया।

निमकौड़ी (सं० स्त्री०) निबकौरी देखो।

निमखार अयोध्याके अन्तर्गत सीतापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २७° २०´ ५५´´ उ० और देशा० ८०° ३१´ ४०´´ पू०के मध्य सीतापुर शहरसे २० कोस दूर गोमती नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। यह एक पवित्र तीर्थ है। यहां अनेक मन्दिर और पुष्करिणी हैं। प्रवाद है, कि जब रामचन्द्रजी रावणको मार कर सीताको साथ लिए अयोध्याको लौट रहे थे, तब ब्रह्महत्या-पापसे मुक्त होनेके लिए उन्होंने इसी स्थान पर स्नान किया था।

निमखेरा—मध्यभारतमें भुपावरके ठाकुरसामन्तराज वा भील एजेन्सीके अधीन एक छोटा राज्य। यह विन्ध्य पर्वतके पास अवस्थित है। सर जन मैकमके बज़ाह बन्दोवस्तके समयसे तिरला ग्रामके भुंइया वा प्रधान सरदार धाराराजको वार्षिक ५००) रु० करस्वरूप दे कर वंशपरम्परासे इस राज्यका भोग कर रहे हैं। धारा और सुलतानपुरमें यदि कहीं चोरी हो वा डाका पड़े, तो उसके दायी भुंइया ही हैं। भुंइया भील जातीय दरियासिंह यहांके प्रसिद्ध सरदार थे। कुछ दिन हुए उनकी मृत्यु हो गई।

निमगांव—भीमानदीके तीरवर्त्ती एक क्षुद्र जनपद। यह खेड़ासे ६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। इस ग्रामके उत्तर एक छोटे पहाड़के ऊपर खण्डोवाका एक मन्दिर है। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें गोविन्दराव गायकवाड़ने यह मन्दिर बनवाया था। चैत्रमासकी पूर्णिमाको उक्त मन्दिरमें एक मेला लगता है जिसमें लगभग पांच हजार मनुष्य समागम होते हैं। मन्दिरके खर्चके लिये बहुतसी निष्कर जमीन दी गई है।

निमग्न (सं० त्रि०) नितरां मग्नः नि-मस्ज-क्त। १ जलादिमें मग्न, डूबा हुआ। २ तन्मय।

निमच—ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत मण्डसोर जिलेका एक शहर और छावनी। यह अक्षा० २४° २८´ उ० और देशा० ७४° ५४´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या लगभग २१५८८ है, जिनमेंसे ६१९० मनुष्य शहरमें और १५३९८ छावनीमें रहते हैं। १८१७ ई०को ग्वालियरमें अंगरेज और सिन्धियाके बीच एक सन्धि हुई। सन्धिकी शर्तके अनुसार दौलतराव सिन्धियाने सेनाओंका अड्डा-स्थान और कुछ जमीन प्रदान की। इसके बाद एक और सन्धि हुई जिसमें अंगरेजोंको और भी कई एक स्थान मिले। जब योद्धागण दूर देशोंमें लड़ने जायंगे, तब उनके परिवारादिके रहनेके लिये यहां एक छोटा दुर्ग बनाया गया था। वर्त्तमान समयमें इसमें अस्त्रशस्त्रादि रखे जाते हैं।

यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १६१२ फुट ऊंचा है। जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। किसी समय भी यहां न तो अधिक गरमी ही पड़ती और न ठंढ। यहां एक कारागार, डाकघर, स्कूल और चिकित्सालय है।

निमचा—अफगान और उच्चगिरिशृङ्गवासी जातिके मेलसे उत्पन्न एक सङ्करजाति। ये लोग भारतवर्षीय ककेसस पर्वतके दक्षिण ढालुवें स्थान पर रहते हैं। इनकी प्रचलित भाषाके साथ भारतवर्षीय भाषाकी विशेष घनिष्ठता है। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि लैटिन भाषाके साथ भी इनकी भाषा बहुत कुछ मिलती जुलती है।

निमछड़ा (हिं० पु०) ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो, अवकाश, फुरसत, छुट्टी।

निमज्जक (सं० त्रि०) समुद्र आदि जलाशयोंमें डुब्बी लगानेवाला, गोते मार कर समुद्र आदिके नीचेकी चीजों-को निकाल कर जीविका चलानेवाला।

निमज्जथु (सं० पु०) नि-मस्ज अथुच्। १ शयन, सोना। २ निमज्जन, स्नान। ३ निद्रा, नींद।

निमज्जन (सं० क्ली०) निमज्जतेऽनेनेति, नि-मस्ज-भावे ल्युट्। अवगाहन, डूब कर किया जानेवाला स्नान।

निमज्जित (सं० त्रि०) १ मग्न, डूबा हुआ। २ स्नात, नहाया हुआ।

निमटना (हिं० क्रि०) निबटना देखो।

निमटानी (हिं० क्रि०) निवटाना देखो।

निमटाना—खेतमें कितनी फसल हुई है, उसे स्थिर करने-का एक प्रकारका नियम। काप्टेन रावर्टसन-* इसी उपायसे शस्यका परिमाण स्थिर करते थे। किसी एक शस्यपूर्ण खेतसे तीन तरहके ऐसे पौधे लिए जाते थे जिसमें एकमें उत्तम दूसरे मध्यम और तीसरेमें सामान्य रकम लगी रहती थी। तीनों पौधोंके अनाजको गिन कर उसका औसत निकाला जाता था। पीछे खेतके पौधे गिने जाते थे। पौधोंकी संख्या जितनी होती थी, उससे शस्यसंख्यामें गुना करनेसे, खेतके शस्यका परिमाण निकल जाता था। रावर्टसन साहबने कहा है, कि उत्तर भारतवर्ष, खान्देश और गुजरातमें यह प्रथा प्रचलित थी। शिवाजीके पिता शाहजीके प्रधान कर्मचारी दादाजी कोण्डदेवने १६४५ ई०में पूनामें जब बन्दोबस्त किया, तब उन्होंने इसी नियमका अवलम्बन किया था।

निमटेरा (हिं० पु०) निवटेरा देखो।

निमतोर—राजपूतानेमें निमच और झालरापाटन जिस राजपथ पर अवस्थित है, उसी राजपथ पर यह छोटा ग्राम भी बसा हुआ है। सम्भवतः निमतोर शब्द निमतला वा निमधर शब्दका अपभ्रंशमात्र है।

इस ग्राममें ३ मन्दिर हैं जिनमेंसे एक बहुत प्राचीन कालका है और उसमें वृषमूर्त्ति स्थापित है। दूसरे मन्दिरमें प्रकाण्ड शिवलिङ्ग है और उसके चारों ओर मनुष्यके मुख खुदे रहनेके कारण शिवलिङ्गने चतुर्मुख धारण किया है। प्रवाद है, कि यह मन्दिर और वृष स्वर्गसे अवतीर्ण हो कर पहले नाना स्थानोंमें भ्रमण करते हुए अन्तमें गुजरातसे यहां आए और तभीसे इसी स्थान पर रहने लगे हैं। वृषकी गति मन्द होनेके कारण मन्दिर कुछ पहले पहुंचा था। यह प्रवाद सुन कर ऐसा अनुमान किया जाता है, कि सबसे पहले मन्दिर बनाया गया और पीछे वृषमूर्त्ति स्थापित हुई। मन्दिर भी एक हजार वर्ष पहलेका बना होगा ऐसा प्रतीत होता है।

निमद (सं० पु०) स्पष्टरूपसे और मन्दभावसे उच्चारण।

* East-India Paper, iv. 420.

निमदारी—पूना जिलेका एक छोटा ग्राम। यह जुनार-से ६ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां रेणुकादेवी-की एक वेदी है। चैत्रमासकी पौर्णमासीको वार्षिक मेला लगता है।

निमन्त्रक (सं० पु०) नि-मन्त्र-ण्वुल्। निमन्त्रकारी, वह जो न्योता देता हो।

निमन्त्रण (सं० क्ली०) निमन्त्र्यते इति, नि-मन्त्र-ल्युट्। १ आह्वान, किसी कार्यके लिए नियत समय पर आनेके लिए ऐसा अनुरोध जिसका अकारण पालन न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है। २ भोजन आदिके लिये नियत समय पर आनेका अनुरोध, खानेका बुलावा, न्योता। श्राद्धादि कार्यके एक दिन पहले वेदज्ञ ब्राह्मणको श्राद्धमें खानेके लिए आना पड़ता है, इसीको निमन्त्रण कहते हैं। निमन्त्रण और आमन्त्रण-में यह भेद है, कि निमन्त्रणका पालन न करने पर दोष का भागी होना पड़ता है और आमन्त्रणका पालन न भी किया जाय, तो कोई पाप नहीं है।

'आप यहां भोजन करें' इस प्रकारके आह्वानका नाम निमन्त्रण और 'आप यहां शयन करें' इसका नाम आमन्त्रण है। सोना वा नहीं सोना अपनी इच्छाके ऊपर निर्भर है, लेकिन निमन्त्रित हो कर यदि निमन्त्रणका पालन न किया जाय, तो पापभागी होना पड़ता है।

यदि ब्राह्मणको निमन्त्रण दे कर उनका यथाविधि पूजन न किया जाय, तो निमन्त्रणकारी तिर्यक्‌योनिमें जन्म लेता है। यदि भ्रमप्रमादवशतः निमन्त्रित ब्राह्मण-की पूजा न करे, तो उन्हें यत्नपूर्वक प्रसन्न करके भोजनादि कराना चाहिये।

"आमन्त्र्य ब्राह्मणं यस्तु यथान्यायं न पूजयेत्।
अतिकृच्छ्रासु घोरासु तिर्य्यग्योनिषु जायते॥" (यम)

यमके मतानुसार ब्राह्मण यदि एक जगह निमन्त्रित हो कर दूसरी जगह खाने चले जांय, तो वे नरकका भोग कर चण्डालयोनिमें जन्म लेते हैं।

"आमन्त्रितस्तु यो विप्रः भोक्तुमन्यत्र गच्छति।
नरकाणां शतं गत्वा चाण्डालेष्वभिजायते॥" (यम)

इस श्लोकमें 'आमन्त्रित' ऐसा पद प्रयुक्त हुआ है,

इससे मालूम पड़ता है, कि आमन्त्रण और निमन्त्रणका कभी कभी एक ही अर्थ होता है। यदि ब्राह्मण एकसे निमन्त्रित हो कर दूसरेका पुनः निमन्त्रण ग्रहण करे अथवा एक जगह भोजन करके दूसरी जगह भोजन करे, तो उसके सब पुण्य नष्ट होते हैं।

"पूर्वे निमन्त्रितेऽन्येन कुर्यादन्यप्रतिग्रहम्।
भुक्त्वाहारोऽथ वा भुंक्ते सुकृतं तस्य नश्यति॥"
(देवल)

यदि निमन्त्रित ब्राह्मण विलम्बसे आवें, तो वे नरकगामी होते हैं।

"आमन्त्रितश्चिरं नैव कुर्याद्विप्रः कदाचन।
देवतानां पितॄणांच दातुरन्नस्य चैव हि॥
चिरकारी भवेद्द्रोही पच्यते नरकाग्निना॥"
(आदित्यपु०)

निमन्त्रण ग्रहण कर ब्राह्मणको पथगमन, भारवहन, हिंसा, कलह और मैथुन कार्य नहीं करना चाहिये। यदि करे, तो पापभागी होना पड़ता है।

ऋतुकालमें स्त्रीगमनकी अवश्य-कर्त्तव्यता रहने पर भी यदि निमन्त्रण ग्रहण किया जा चुका हो, तो मैथुन नहीं कर सकते। विज्ञानेश्वरके मतानुसार निमन्त्रित होने पर भी ऋतुकालमें स्त्रीगमन विधेय है। पर हां, मैथुन-निषेध ऋतुविभिन्न कालको जानना चाहिये।

निमन्त्रकी ये सब विधि और निषेध जो कहे गये, वे केवल श्राद्ध विषयमें काम आते हैं। (निर्णयसिन्धु)

पूर्व समयमें श्राद्धकालीन ब्राह्मणको निमन्त्रण दे कर उनके सामने पितृगणका श्राद्धकार्य किया जाता था। लेकिन अभी ब्राह्मणके गुणहीन होनेसे कुशमय ब्राह्मणकी स्थापना करके श्राद्धविधिका अनुष्ठान होता है। रघुनन्दनने भी निमन्त्रणका विषय इस प्रकार लिखा है—

ब्राह्मणको निमन्त्रण करके श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध करूंगा, ऐसा स्थिर हो जाने पर एक दिन पहले ब्राह्मणको प्रणाम करके निमन्त्रण देना चाहिये। जो ब्राह्मण निमन्त्रण ग्रहण करके उसका पालन नहीं करते वे पापभागी होते हैं; लेकिन आमन्त्रणका पालन नहीं करनेमें पाप नहीं है। निमन्त्रण और आमन्त्रणमें केवल इतना ही फर्क है।

पूर्व दिनमें यदि किसी विशेष कार्यवश ब्राह्मणको निमन्त्रण न दे सकें, तो उस दिन भी निमन्त्रण दे सकते हैं।

आपस्तम्बने निमन्त्रण शब्दका ऐसा अर्थ लगाया है—

आगामी दिन में श्राद्ध करूंगा, इससे आप निमन्त्रणीय हैं, इस प्रकारका प्रथम निवेदन और मैं आपको निमन्त्रण देता हूं, यह द्वितीय निवेदन है। इस प्रकारके निवेदनको ही निमन्त्रण कहते हैं।

निमन्त्रणपत्र (सं० क्ली) आह्वानपत्र, वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुषसे भोज उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिये अनुरोध किया गया हो।

निमन्त्रित (सं० त्रि०) नि-मन्त्र-क्त। आहूत, जिसे न्योता दिया गया हो।

निमन्यु (सं० त्रि०) क्रोधरहित, जिसे गुस्सा न हो।

निमय (सं० पु०) निमीयते ऽनेनेति नि-मि-अच्। (एरच्। पा ३।३।५६) विनिमय, बदला।

निमराणा—राजपूतानेके मध्य अलवार राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २८° उ० और देशा० ७६° २३' पू० अलवार शहरसे ३३ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। लोकसंख्या लगभग २२३२ है। १४६७ ई०में यह शहर दूपराजसे बसाया गया है। १८०३ ई०में राजाने महाराष्ट्रोंको अपने यहां आश्रय दिया था, इस कारण लार्ड लेकने यह स्थान अलवारके अधीन कर लिया। पीछे १८१५ ई०में बहुत अनुनय विनय करनेके बाद इसका कुछ अंश राजाको लौटा दिया गया। १८६४ ई०में निमराण अलवारकी जागीर कायम की गई और यह भी स्थिर हुआ कि इसे वार्षिक २०००) रु० करस्वरूप देने होंगे। राज्यकी आय २८०००) रु०की है। यहां एक वर्नाक्यूलर स्कूल और एक अस्पताल है।

निमरी (हिं० स्त्री०) मध्यभारतमें होनेवाली एक प्रकारकी कपास, बरही, बंगई।

निमरुद्—एक प्रसिद्ध मृगयादक्ष राजा। ईसाइयोंके धर्मग्रन्थ (बाइबल)में लिखा है, कि ये व्याबेल, इरेक, आक्काद, कालन और रैजेन देशके अधिपति थे। लार्ज स्मिथ कह गए हैं, कि ये बाबिलन देशके एक शासनकर्त्ता थे। इनके अधिकृत स्थानका नाम था इरेक जिसे आजकल

श्रोयाकी कहते हैं। अध्यापक सेसका कहना है, कि निमरुदका नाम और किसी ग्रन्थमें नहीं मिलता है।

बोगदादसे प्रायः ८ मीलकी दूरी पर मिट्टीका एक टीला है जिसे अरबवासी तुल-अकेर-कीफ और तुर्क लोग निमरुदतपसी कहते हैं। दोनों शब्दका अर्थ निमरुदबाँध है। जाब नदीके किनारे सुद्दानेके समीप एक प्राचीन नगर है, वही निमरुद नामसे प्रसिद्ध है।

निमाज (अ० पु०) मुसलमानोंके मतानुसार ईश्वरको आराधना जो दिन रातमें पांच बार की जाती है, इसलाम मतके अनुसार ईश्वरप्रार्थना।

निमाजबंद (फा० पु०) कुश्तीका एक पेच। इसमें जोड़के दाहिनी ओर ऐंठ कर उसको दाहिनी कलाईको अपने दाहिने हाथसे खींचता है और पुनः अपना बायां पैर उसकी पीठको ओरसे ला कर उसकी दाहिनी भुजाको इस प्रकार बांध लेता है, कि वह चूतड़के ठीक मध्यमें आ जाती है। पीछे उसके दाहिने अंगूठेको अपने दाहिने हाथसे खींचते हुए बाएं हाथसे उसको जांघिया पकड़ कर उसे उलट कर चित कर देता है। इस पेचके विषयमें दन्तकहानी है, कि इसके आविष्कर्त्ता इसलामी मल्लविद्याके आचार्य अली साहब हैं। एक बार किसी जङ्गलमें एक दैत्यसे उनका मल्लयुद्ध हुआ। उसे नीचे तो वे लाए, पर चित करनेके लिए समय न था। क्योंकि नमाजका समय गुजर रहा था। इसलिए उन्होंने उस दैत्यको इस प्रकार बाँध डाला कि उसे उसी स्थितिमें रहते हुए नमाज पढ़ सकें। जब वे खड़े होते, तब उसे भी खड़ा होना और जब बैठते या झुकते, तब उसे बैठना या झुकना पड़ता था। इसका निमाजबन्द नाम पड़नेका यही कारण है।

निमाजी (फा० वि०) १ जो नियमपूर्वक निमाज पढ़ता हो। २ धार्मिक, दीनदार।

निमात्—वैष्णवोंका चतुर्थ सम्प्रदाय। निम्बादित्य इसके प्रवर्त्तक थे, इसी कारण कोई कोई इसे निम्बार्क वा निमात् कहते हैं। इस सम्प्रदायका दूसरा नाम है सनकादि सम्प्रदाय।

इनका विश्वास है, कि निम्बादित्य सूर्यके अवतार थे और पाखण्डियोंका दमन करनेके लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए थे। वृन्दावनके समीप इनका वास था।

इनके साम्प्रदायिक नियमादि किसी ग्रन्थमें लिखे नहीं हैं। इनका कहना है, कि सम्राट् औरङ्गजेब बादशाहके शासनकालमें मुसलमानोंने मथुरामें इनके धर्मविषयक सभी ग्रन्थ जला डाले।

राधाकृष्णका युगलरूप इनके एकमात्र उपास्य हैं और श्रीमद्भागवत इनका प्रधान शास्त्रग्रन्थ है। ये लोग ललाट पर गोपीचन्दनकी दो खड़ी रेखा लगाते हैं और उसके बीचमें काला गोल तिलक अङ्कित करते हैं। इनमेंसे कितने ऐसे हैं जो गलेमें तुलसीकाष्ठकी माला भी पहनते हैं।

निम्बादित्यके केशवभट्ट और हरिदास नामक दो शिष्योंसे 'विरक्त' और 'गृहस्थ' इन दो सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति हुई है। यमुनाके किनारे मथुराके समीप ध्रुवक्षेत्र नामका एक पहाड़ है। उसी पहाड़के ऊपर निम्बार्ककी गद्दी है। लोगोंका विश्वास है, कि गृहस्थश्रेणीभुक्त हरिदासके वंशधर ही उनके अधिकारी चले आ रहे हैं। किन्तु वहांके महन्त लोग अपनेको निम्बार्कके वंशोद्भव बतलाते हैं। उनका मत है, कि ध्रुवक्षेत्रकी गद्दी करीब १४०० वर्ष हुए प्रतिष्ठित हुई है। पश्चिमप्रदेशके मथुराके सन्निकटवर्त्ती स्थानोंमें तथा बङ्गालदेशमें इस सम्प्रदायके अनेक लोग देखनेमें आते हैं। प्रसिद्ध जयदेव गोस्वामी इसी सम्प्रदायके वैष्णव थे।

निमातव्य (सं० त्रि०) निं-मा-तव्य। विनिमययोग्य, बदलने लायक।

निमाद—मध्यभारतके मध्यवर्त्ती एक जिला। इसका प्रधान नगर बुरहानपुर है। निमार देखो।

निमान (सं० क्ली०) निमीयतेऽनेन. नि-मा-ल्युट्। मूल्य, दाम, कीमत।

निमान (हिं० वि०) १ नीचा, ढलुवाँ, नीचेको ओर गया हुआ। २ नम्र, विनीत, सीधा सादा, भोलाभाला। ३ दब्बू।

निमानुज—एक वैष्णव गुरु।

निमार—१ मध्यप्रदेशके नरबुदा विभागका एक जिला। यह अक्षा० २१° ५' से २२° २५' उ० और देशा० ७५° ५७' से ७७° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके

उत्तरमें इन्दोर और धारराज्य, पश्चिममें इन्दोर और खान्देश जिला, दक्षिणमें खान्देश, अमरावती और अकोला जिला तथा पूर्वमें होसङ्गाबाद और बैतूल है।

इस जिलेका उत्तरस्थ स्थानसमूह छोटी छोटी गिरिमालाओंसे शोभित रहनेके कारण यहां समतल भूमिका बिलकुल अभाव है। इस कारण इस प्रान्तमें खेतीबारी कुछ भी नहीं होती। उत्तर-पूर्वांशमें बहुत दूर तक परती जमीन पड़ी हुई है। इसके सिवा इस अंशकी सभी जमीन साधारणतः अनुर्वर नहीं है। जिलेके दक्षिणांशमें ताप्ती नदीकी तीरस्थ भूमि अपेक्षाकृत उर्वरा है, पश्चिमांशकी जमीनमें भी अच्छी फसल लगती है। किन्तु नर्मदा नदीकी सर्वोत्तरस्थ भूमि सर्वापेक्षा उर्वर होने पर भी परती पड़ी हुई है, क्योंकि इस प्रान्तमें मनुष्योंका वास बहुत कम है। नर्मदा और ताप्ती नदीकी तीरस्थ भूमि १५ मील विस्तृत एक पहाड़ द्वारा विभक्त है। यह सतपुरा पहाड़ नामसे प्रसिद्ध है। इस पहाड़के शिखर पर समतल भूमिसे ८५० फुट ऊपर आशीरगढ़ नामक दुर्ग और एक गिरिपथ है। उत्तरभारतसे दक्षिणभारतमें आनेके लिये बहुत दिनोंसे यही रास्ता प्रशस्त गिना जाता था। जिलेका अधिकांश स्थान पहाड़ और जङ्गलसे परिपूर्ण है। पथरियाकोयला यहां कहीं भी नहीं मिलता, लेकिन चांदगढ़ और पुनासाके निकटवर्ती जङ्गलमें लोहेकी खान देखनेमें आती है। निमार जिलेमें जितने जङ्गल हैं उनमेंसे पुनासा नामक जङ्गल गवर्मेण्टके दखलमें है। सभी जङ्गलोंमें बहुमूल्य काष्ठ पाये जाते हैं। चांदगढ़ परगनेमें भी विस्तृत अरण्य है। ये सब अरण्य व्याघ्रकी आवास-भूमि हैं, किन्तु ये मनुष्य पर आक्रमण नहीं करते। व्याघ्रके सिवा यहां भालू, चीता, जङ्गली सूअर आदि अनेक प्रकारके हिंस्र जन्तु तथा हिरण, खरगोश प्रभृति भांति भांतिके निरीह जन्तु एवं वन्यकुक्कुट आदि नाना जातीय पक्षी देखनेमें आते हैं।

इतिहास।—हैहयराजगण पूर्वकालमें माहिष्मती (वर्त्तमान महेश्वर) में रह कर प्रान्त-निमारका शासन करते थे। पीछे ब्राह्मणोंने उन्हें राज्यच्युत किया। उन ब्राह्मणों द्वारा नर्मदा नदीवेष्टित मान्धाता नामक स्थानमें शिवपूजा प्रवर्त्तित हुई। पीछे अशीरगढ़के चौहानराजपूत लोग हिन्दू देवदेवीके उपासक हुए। पीछे प्रमार राजपूतोंने अशीरगढ़ पर अपना अधिकार जमाया। इस वंशके ताक नामक एक शाखाने ८वीं शताब्दीसे ले कर १२वीं शताब्दी तक अशीरगढ़का शासन किया। चांदकवि उन्हें हिन्दूवीर बतला गये हैं। इस समय निमारमें जैनधर्म बढ़ा चढ़ा था। खाण्डवा और मान्धाताके निकटवर्त्ती स्थानोंमें अनेक मनोहर जैनधर्ममन्दिर आज भी विद्यमान हैं। १२८५ ई०में अलाउद्दीनने जब दाक्षिणात्य पर आक्रमण किया था, उस समय चौहानवंशीय राजपूत अशीरगढ़के राजा थे। अलाउद्दीनने उन्हें परास्त कर एकके सिवा और सबोंको मार डाला। इस समय उत्तर निमार भील जातीय अलाराजाके शासनाधीन था। उनकी वंशावली आजकल भी भीमगढ़, मान्धाता और सिलानी नामक स्थानमें देखी जाती है। फेरिस्ताका कहना है कि इस समय दक्षिण निमारमें आशा नामक गोपवंशीय एक राजा थे। उन्होंने जो दुर्ग प्रस्तुत किया वह उनके नामानुसार अशीरगढ़ कहलाया। कहनेका तात्पर्य यह कि जिस समय मुसलमानोंने इस राज्य पर आक्रमण किया उस समय यह राज्य जो चौहान और भीलराजाओंके शासनाधीन था इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

प्रायः १३८७ ई०में उत्तरनिमार मालवके स्वाधीन मुसलमानराज्यके अन्तर्गत हुआ और माण्डूमें राजधानी बसाई गई। १३७० ई०में मालकराज फरूखीने दिल्लीके सम्राट्से दक्षिण निमार प्राप्त किया। तदनन्तर उनके पुत्र नसीर खाँने अशीरगढ़ अधिकार करके बुर्हानपुर और जैनाबाद नगर बसाया। १३९९ ई०से १६०० ई० तक खान्देशके फरूखीवंशने क्रमशः ग्यारह पीढ़ी तक बुर्हानपुरमें राज्य किया। किन्तु गुजरात और मालववासियोंके आक्रमणसे बुर्हानपुर अनेक बार विध्वस्तप्राय हो गया। १६०० ई०में दिल्लीश्वर अकबरने अशीरगढ़ पर चढ़ाई करके फरूखीवंशके शेष राजा बहादुर खाँसे निमार और खान्देश जीत लिया। अकबरने उत्तरनिमारको बीजागढ़ और हण्डिया नामक दो

जिलोंमें विभक्त करके उसे मालवसूबाके अधीन किया। दक्षिण-निमार खान्देशसूबाके अन्तर्भुक्त हुआ। राजपुत्र दानियाल जब दाक्षिणात्यके शासनकर्त्ता हुए, तब वे बुर्हानपुरमें रह कर राजकार्यकी पर्यालोचना करते थे। अन्तमें १६०५ ई०में इसी स्थान पर उनकी मृत्यु हुई।

अकबर और उनकी वंशावलीकी कौशलपूर्ण सन्नत-शासनप्रणालीके गुणसे निमार उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस समय समस्त भूमि सुनियमसे जोती जाती थी। मालव और दाक्षिणात्यके मध्यवर्त्ती स्थानोंमें व्यवसायिगण प्रचुर द्रव्य ले कर जाते आते थे। १६७० ई०में मराठोंने पहले पहल जो खान्देश पर आक्रमण किया था उसमें बुर्हानपुर तक प्रायः सभी देश लूट गये थे। पीछे प्रति वर्ष फसलके समय मराठे यहां आ कर राज्यमें स्थान स्थान पर लूटपाट मचाया करते थे और १६८४ ई०में उन्होंने बुर्हानपुर नगर भी लूटा। १६९० ई०में मराठोंने समस्त उत्तर निमारको लूटपाट द्वारा उत्सन्नप्राय कर दिया। तब १७१६ ई०से मुगल लोग उन्हें चौथ और सरदेशमुखी देनेको वाध्य हुए। इसके ४ वर्ष बाद आसफजाहके दाक्षिणात्यका शासनभार ग्रहण करने पर भी वे बहुत दिनों तक मराठोंको चौथ आदि देते आ रहे थे। किन्तु इस पर भी मराठालोग सन्तुष्ट न हुए और नाना प्रकारके उत्पात मचाने लगे। अन्तमें १७४० ई०की सन्धिके अनुसार पेशवाने उत्तरनिमार प्राप्त किया। पन्द्रह वर्ष पीछे असीरगढ़ और बुर्हानपुर छोड़ कर समस्त दक्षिण निमार उनके हाथ लगा और १७६० ई०में उन्होंने बुर्हानपुर और असीरगढ़को भी जीत लिया। १७७८ ई०में कानापुर और वेरिया परगना छोड़ कर अवशिष्ट निमार जिला सिन्धिया महाराजके राज्यभुक्त हुआ और होलकरने भी अवशिष्ट प्रान्तनिमार द्वारा स्वराज्यके कलेवरको वृद्धि की। १८वीं शताब्दी तक यह राज्य इसी प्रकार शान्ति उपभोग करता आ रहा था। किन्तु उस समयसे ले कर १८१८ ई०तक आक्रमण, लूटपाट आदिसे यह तहस नहस हो गया। १८०३ ई०में आसाइके युद्धमें अंगरेज गवर्मेण्टने दक्षिण-निमार प्राप्त किया, किन्तु वह सिन्धियाराजको दिया गया। पीछे १५ वर्ष तक होलकरके कर्मचारी, पिण्डारी और सिन्धियाके विपक्ष नायक, गुमाश्ता आदि द्वारा यह राज्य नियत आक्रान्त और क्षतिग्रस्त होता गया। अन्तमें शेष पेशवा बाजीरावने १८१८ ई०में सर जन मकोमके निकट आत्मसमर्पण किया। इस समय नागपुरके पूर्वतन राजा अप्पासाहबके असीरगढ़में आश्रय लेनेसे अंगरेजोंने उस गढ़को अधिकारमें कर लिया। १८२४ ई०में सिन्धियाके साथ जो सन्धि हुई उसमें अवशिष्ट समस्त निमार अंगरेज-शासनाधीन हुआ। १८५४ होसङ्गाबाद जिलेके कुछ परगने निमार जिलेमें मिला दिये गये और १८६० ई०में सिन्धियाने विनिमय द्वारा जैनाबाद, मान्जरोड परगना और बुर्हानपुरनगर अंगरेजोंने लाभ किया। पीछे वृटिशराजने होलकर महाराजको १८६५ ई०में कसावद, बरगांव, वरवाई और मण्डलेश्वर प्रदान कर उनसे दाक्षिणात्यके कतिपय परगने ग्रहण किये।

निमार जब पहले पहले अंगरेजोंके दखलमें आया, उस समय यह जिला प्रायः जनशून्य था। शान्तिस्थापनका सूत्रपात होनेसे ही अनेक कृषिजीवी यहां पुनः लौट कर आने लगी। यहां तक कि कप्तान (पीछे सर जेम्स) आउट्रमके यत्नसे यहांके दुर्वृत्त भीलोंने भी शान्तभाव धारण किया।

पहले पहल यहांकी अंगरेज-शासनप्रणाली सफलता लाभ कर न सकी। पीछे १८४५ ई०में करविभागके सम्बन्धमें नूतन बन्दोबस्त हो जानेसे निमार जिला पहलेकी तरह उन्नतिपथ पर जाने लगा। १८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके उपस्थित होने पर भी यहांके लोग प्रभुभक्ति दिखानेसे जरा भी विमुख न हुए थे। इस समय तांतियातोपी बहुसंख्यक सेनाको साथ ले जिलेके मध्य हो कर गुजरे और पीपलोद, खाण्डवा तथा मुगलगांवके पुलिसघर वा थानाको जला डाला। किन्तु इस जिलेका एक भी मनुष्य उनकी सेनामें न मिला था।

इस जिलेमें २ शहर और ८२२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या प्रायः ३२९८६१५ है। यहांका उत्पन्न द्रव्य ज्वार, जुन्हरी, तिल, चना और तेलहन अनाज है। यहां अफीम और रूईका विस्तृत व्यवसाय होता है। ग्रेट-

इण्डियन पेनिनसुला रेलवे जिलेके मध्य हो कर गई है, इस कारण यहां वाणिज्यको विशेष सुविधा है। १८६४ ई०से निमार अंगरेजोंके अधीन एक स्वतन्त्र जिलेके रूपमें शासित होता आ रहा है। एक डिपुटी कमिश्नर, उनके सहकारी कार्याध्यक्षों और तहसीलदारों द्वारा शासनकार्य सम्पन्न होता है।

निमारका जो अंश जनरहित है उस अंशका जलवायु अस्वास्थ्यकर नहीं है। किन्तु नर्मदा और ताप्तीकी उपत्यका भूमिमें अप्रिल और मई मासमें अधिक गरमी पड़ती है। महामारी और ज्वर यहांका प्रधान रोग है। विद्याशिक्षामें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। यहां हाई स्कूल, ३ इङ्गलिश और ४ वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल, ८५ प्राइमरी स्कूल तथा २ प्राइमरी बालिका स्कूल है। शिक्षाविभागमें वार्षिक ४२०००) रु० खर्च होते हैं।

२ मध्यभारतके इन्दोरराज्यके उत्तरका एक जिला। यह अक्षा० २१' २२ से २२' ३२' उ० और देशा ७४' २०' से ७६' १७' पू० नर्मदा नदीके उत्तरमें अवस्थित है। भूपरिमाण ३८७१ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः २५७११० है। इसमें खरगोन, महेश्वर और वड़वाह नामके तीन शहर और १०६५ ग्राम लगते हैं। जिलेकी आय ८ लाख रुपयेसे अधिककी है।

नेमाल—पञ्जाबमें बन्नु जिलान्तर्गत स्थानवाली तहसीलका नगर। यह लवणपहाड़के पूर्वमें अवस्थित है।

निमि (सं० पु०) १ अत्रिवंशोद्भूत दत्तात्रेयके एक पुत्रका नाम। २ कौरववंशीय भाविनृपभेद, कौरववंशके भावि राजाका एक नाम। ३ द्वापरयुगीय असुरांशनृपभेद, द्वापर युगके एक राजा जो असुरांशमें उत्पन्न हुए थे। ४ मिथिलावंशस्थापयिता इक्ष्वाकुवंशीय नृपभेद। इनका विवरण विष्णुपुराणादिमें इस प्रकार लिखा है,—

राजा इक्ष्वाकुके निमि नामक एक पुत्र था। इन्हींसे मिथिलाका विदेहवंश चला। एक बार महाराज निमिने सहस्रवार्षिक यज्ञ करानेके लिए वशिष्ठजीको बुलाया। वशिष्ठजीने कहा, 'मुझे देवराज इन्द्र पहलेसे ही पञ्चशत वार्षिकयज्ञमें वरण कर चुके हैं। अतः तब तकके लिए आप प्रतीक्षा करें। इन्द्रका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ कराऊँगा।' वशिष्ठकी यह बात सुन कर निमि चुप हो रहे। वशिष्ठजी भी समझ गए कि राजाने मेरी बात स्वीकार कर ली है; इसलिए इन्होंने इन्द्रका यज्ञ आरम्भ कर दिया।

वशिष्ठके चले जाने पर निमिने गौतमादि ऋषियोंको बुला कर यज्ञ प्रारम्भ किया। इन्द्रका यज्ञ हो जाने पर वशिष्ठजी देवलोकसे बहुत तेजीसे चले और यज्ञस्थलमें पहुंच कर उन्होंने देखा कि निमि गौतमको बुला कर यज्ञ कर रहे हैं। इस पर उन्होंने निद्रागत राजा निमिको शाप दिया, 'तू मेरी अवज्ञा करके गौतम द्वारा यज्ञ करा रहा है, इस कारण तू देहहीन होगा और तुम्हारा यह शरीर न रहेगा।'

पीछे राजाने वशिष्ठको शाप दिया, 'आपने बिना जाने सुने व्यर्थमें शाप दिया है। इस कारण आपका भी यह शरीर न रहेगा।' इतना कह कर राजाने अपना शरीर छोड़ दिया। निमिके शापसे वशिष्ठदेवका तेज मित्रावरुणके तेजमें प्रविष्ट हो गया। अनन्तर एक दिन उर्वशीको देख कर मित्रावरुणका वीर्य नीचे गिर पड़ा। उसी वीर्यसे वशिष्ठने दूसरा शरीर धारण किया।

निमि राजाको वह मृत देह अति मनोहर तैल और गन्धद्रव्योंमें रखी गई थी, इस कारण जरा भी विकृत न हुई थी। यज्ञकी समाप्ति कर जब देवताओंने यज्ञभाग ग्रहण किया, उस समय ऋत्विकोंने यजमानको वर देनेके लिए देवताओंसे प्रार्थना की। अनन्तर देवताओंने जब वर ग्रहण करनेके लिए निमिसे कहा, तब वे बोले, 'मुझे इससे बढ़ कर और कुछ भी दुःख नहीं है कि, शरीर और आत्माका परस्पर वियोग होता है। इसी कारण मैं पुनः शरीर धारण करनेकी इच्छा नहीं रखता, केवल एक यही इच्छा है, कि मैं सबकी आँखों पर वास करूं।' देवताओंने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उनको मनुष्योंकी आंखोंकी पलक पर जगह दी। राजाके कोई पुत्र न रहनेके कारण मुनियोंको डर हुआ कि शायद कहीं अराजकता न फैल जाय, इस कारण वे उस मृतदेहको अरणीसे मथने लगे। कुछ देर बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम मृतदेहसे उत्पन्न होनेके

कारण जनक रखा गया। मथनेसे ये उत्पन्न हुए थे, इस लिए इनका दूसरा नाम मिथि भी था।

(विष्णुपु० ४ अंश ५ अ०)

मनुसंहिताकी टीकामें कुल्लूकने लिखा है, कि निमि अपने अविनयके कारण विनष्ट हुए थे। भागवत और मत्स्यपुराण आदिमें भी इनका विवरण लिखा है। रामायण उत्तरकाण्डके ५५ अध्यायमें लिखा है, कि निमि देवताओंके वरसे वायुभूत हो कर प्राणिसमूहके नेत्रों पर अवस्थान करते हैं, इसीसे मानवके निमेष हुआ करता है। ५ निमेष, आँखोंका मिचना।

निमिख (हिं० पु०) निमिष देखो।

निमित (सं० त्रि०) नि-मि-क्त। समदीर्घविस्तार परिमाणयुक्त, जिसकी लम्बाई और चौड़ाई समान हो।

निमित्त (सं० क्ली०) नि-मिद-क्त, संज्ञापूर्वकत्वात् न नत्वम्। १ हेतु, कारण। २ चिह्न, लक्षण। ३ शकुन, सगुन। ४ उद्देश्य, फलकी ओर लक्ष्य।

निमित्तक (सं० क्ली०) निमित्त संज्ञायां कन्। १ निमित्त कारण। २ चुम्बन। ३ निमित्त, कारण। (त्रि०) ४ जनित, उत्पन्न, किसी हेतुसे होनेवाला।

निमित्तकारण (सं० क्ली०) निमित्तं कारणम्। कारणभेद, वह जिसकी सहायता वा कर्तृत्वसे कोई वस्तु बने। नैयायिकोंके मतसे कारण तीन प्रकारका है—समवायिकारण, असमवायिकारण और निमित्तकारण। घटोत्पत्तिके प्रति कुलालदण्ड, चक्र, सलिल और सूत्रादि निमित्तकारण हैं।

निमित्तकाल (सं० पु०) विशेष काल।

निमित्तकृत (सं० पु०) निमित्तं स्वरुतेन शुभाशुभशकुनं करोतीति कृ-क्विप्। काक, कौवा। कौवेके शब्दसे शुभाशुभ जाना जाता है, इसीसे इसे निमित्तकृत् कहते हैं।

निमित्ततस् (सं० अव्य०) निमित्त-तस्। कारण व्यतीत, कारण भिन्न।

निमित्तत्व (सं० क्ली०) निमित्त-त्व। कारणत्व, प्रयोजककर्तृत्व।

निमित्तधर्म (सं० पु०) निष्कृति, प्रायश्चित्त।

निमित्तमात्र (सं० क्ली०) निमित्तं मात्रच्। हेतुमात्र, कारणमात्र।

"मयैव पूर्वं निहता धार्त्तराष्ट्राः
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्॥" (गीता)

निमित्तवध (सं० पु०) निमित्तेन रोधादिहेतुना वधः। रोधादि निमित्त गवादिवध। बंधी हुई अवस्थामें यदि गाय मर जाय, तो बाँधनेवालेको प्रायश्चित्त करना होता है।

"रोधने बन्धने चापि योजने च गवां रुजः।
उत्पाद्यमरणं वापि निमित्ती तत्र लिप्यते॥"

(प्रायश्चित्ततत्त्व) प्रायश्चित्त देखो।

निमित्तविद् (सं० पु०) निमित्तं शुभाशुभलक्षणम् वेत्तीति विद्-क्विप्। दैवज्ञ, गणक, ज्योतिषी।

निमित्तिन् (सं० त्रि०) निमित्तमस्त्यस्य इनि। १ निमित्तयुक्त कार्य। २ वधकर्तृभेद। कर्त्ता, प्रयोजक, अनुमन्ता, अनुग्राहक और निमित्ती ये पांच प्रकारके वधकर्त्ता हैं। प्रायश्चित्त देखो।

निमिन्धर (सं० पु०) एक राजपुत्र, एक राजकुमारका नाम।

निमिश्र (सं० त्रि०) नियम द्वारा मिश्रित किया हुआ।

निमिष (सं० पु०) नि-मिष घञर्थे क। १ चक्षुर्निमीलनरूप व्यापार, आँखका मिचना, पलकोंका गिरना। २ तदुपलक्षित कालभेद, उतना काल जितना पलक गिरनेमें लगता है, पलक मारने भरका समय। ३ परमेश्वर। ४ सुश्रुतोक्त नेत्रवर्त्माश्रित रोगभेद, सुश्रुतके अनुसार एक रोग जो पलक पर होता है।

निमिषक्षेत्र (सं० क्ली०) नैमिषारण्य।

निमिषित (सं० क्ली०) नि-मिष-क्त। १ नेत्रव्यापारभेद, आँखका मिचना। (त्रि०) २ निमीलित, मिचा हुआ।

निमीलन (सं० क्ली०) निमिलत्यनेनेति नि-मील करणे ल्युट्। १ मरण, मौत। २ निमेष, पलक मारना। ३ पलक मारने भरका समय, पल, क्षण। ४ अविकाश।

निमीला (सं० स्त्री०) नि-मील भावे स्त्रियां अ। १ नेत्रमुद्रण, आँखका मूंदना। २ निद्रा, नींद।

निमीलिका (सं० स्त्री०) निमीलयतीति नि-मील णिच-ण्वुल्, टापि अत इत्वं। १ व्याज, छल। २ निमीलन, आँखकी झपक।

निमीलित (सं० त्रि०) नि-मील-क्त। १ मुद्रित, बंद, ढका हुआ। २ मृत, मरा हुआ।

निमीश्वर (सं० पु०) जिनेश्वरभेद।

निमु पारक—अंगरेज गवर्नर अनजियर जब १६८७ ई०में सूरतसे बम्बईनगरमें अंगरेजी अधिवासको उठा ले गये, उस समय उन्होंने यहांके वणिक, निमु पारकके साथ एक सन्धि की, "निमु-पारक और ब्राह्मणगण अपने घरमें इच्छानुसार धर्मकी उपासना कर सकते हैं, कोई उसमें छेड़ छाड़ नहीं कर सकता। अंगरेज, ओलन्दाज या अन्य खृष्टधर्मावलम्बी अथवा कोई मुसलमान उनको चतुःसीमाके मध्य रह कर प्राणिहत्या अथवा उनके ऊपर किसी प्रकारका अत्याचार नहीं कर सकता, करनेसे उसे गवर्मेण्टको ओरसे उचित दण्ड मिलेगा। वे अपनी जातीय प्रथाके अनुसार शवदाह कर सकते हैं और विवाहके समय खूब धूमधामसे बारात भी ले जा सकते हैं। बलपूर्वक कोई ईसाई नहीं बनाया जायगा और न वे उनकी इच्छाके विरुद्ध किसी कार्यमें नियुक्त हो किये जायंगे।"

निमुहां (हिं० वि०) जिसे बोलनेको मुंह न हो, न बोलनेवाला, चुपका।

निमृग्र (सं० त्रि०) नितरां शोधनीय, जो हमेशा शोधनेके योग्य हो।

निमूल (सं० त्रि०) निवृत्तं मूलं यस्य। १ मूलरहित। नि-मूल-क। २ प्रकाशन।

निमूलिया—चम्पारणके मध्यवर्ती ग्रामविशेष। यह अक्षा० २६° ४५´ ३०" उ० और देशा० ८४° ६´ पू०के मध्य अवस्थित है।

निमेय (सं० पु०) निमीयते परिमीयते इति मा-माने नि-यत् यत्प्रत्यये ईत्। (अचोयत्। पा ३।१।८७) (ईद्यति। पा ६।४।६५) १ नैमेय, वस्तुओंका बदला। (त्रि०) २ परिवर्त्तनीय, बदलने योग्य।

निमेष (सं० पु०) निमिष्यते नि-मिष-भावे घञ्। १ पक्ष्मस्पन्दनकाल, पलक मारने भरका समय, उतना वक्त जितना पलकोंके उठ कर फिर गिरनेमें लगता है, पल। पर्याय—निमिष, दृष्टिनिमीलन।

अग्निपुराणमें लिखा है, कि पलक भरके मारनेके समयको निमेष कहते हैं। दो निमेषकी एक त्रुटि और दो त्रुटिका एक लव होता है। २ पलकका गिरना, आँखका झपकना। ३ सुश्रुतोक्त रोगविशेष, आँखका एक रोग जिसमें आँखें फड़कती हैं। नेत्ररोग देखो। ४ स्वनामख्यात यक्षविशेष, एक यक्षका नाम।

निमेषक (सं० पु०) निमेष-कन्। १ चक्षुकी पलक। २ खद्योत, जुगनू।

निमेषकृत् (सं० स्त्री०) निमेषं करोतीति कृ-क्विप् तुक् च निमेषे निमेषमात्रकाले कृत् स्फुरणकार्यं यस्याः। विद्युत्, बिजली। निमेषकालके मध्य विद्युत्का स्फुरण होता है, इसीसे विद्युत्को निमेषकृत् कहते हैं।

निमेषण (सं० क्ली०) नि मिष-ल्युट्। चक्षुरुन्मीलन, निमिषसाधन शिराभेद।

निमेषरुच् (सं० पु०) निमेषेण निमेषकालं व्याप्य रोचते दीप्यते रुच-क्विप्। खद्योत, जुगनू।

निमोची (सं० स्त्री०) राक्षसविशेष।

निमोना (हिं० पु०) चने या मटरके पिसे हुए हरे दानोंके हलदी मसालेके साथ घीमें भून कर बनाया हुआ रसेदार व्यंजन।

निमौनी (हिं० स्त्री०) वह दिन जब ईख पहले पहल काटी जाती।

निम्न (सं० त्रि०) निकृष्टा म्ना अभ्यासः शीलमत्र वा निकृष्टं म्नातीति म्ना-क। १ नीच, नीचा। पर्याय—गभीर, गम्भीर, गभीरक। (पु०) २ अनमित्रपुत्र, अनमित्रके एक पुत्रका नाम। इनके दो पुत्र थे, सत्राजित् और प्रसेन।

निम्नग (सं० त्रि०) निम्न-गम-ड। अधोगामी, नीचे जानेवाला।

निम्नगत (सं० त्रि०) निम्नं गतः। जो नीचेकी ओर गया हो।

निम्नगा (सं० स्त्री०) निम्नं गच्छतीति निम्न-गम-ड, स्त्रियां टाप्। नदी, दरया।

निम्नदेश (सं० पु०) तलदेश, निम्नभाग, निचला हिस्सा।

निम्ब (सं० पु०) निवि सेचने अच्, ववयोरैक्यात् मः। स्वनामख्यात वृक्ष, नीम। संस्कृत पर्याय—अरिष्ट, सर्वतोभद्र, हिङ्गुनिर्यास, मालक, पिचुमर्द, पत्रकृत्, पूयारि, छर्दन, अर्कपादप, शूकमालक, कीटक, विवम्ब,

निम्बक, कैटर्य, वरत्वच, छर्दिघ्न, प्रभद्र, पारिभद्रक, काकफल, कीरेष्ट, नेता, सुमना, विशीर्णपर्ण, यवनेष्ट, पीतसारक, शीत, राजभद्रक, कोकट, तिक्तक, प्रियशाल, पार्वत।

नीमकी पत्तियां डेढ़ दो विलेकी पतली सींकोंके दोनों ओर लगती हैं। इनके किनारे आरेकी तरह होते हैं। छोटे छोटे श्वेतपुष्प गुच्छोंमें लगते हैं। फलियां भी पुष्पकी तरह गुच्छोंमें लगती हैं और निबौली कहलाती हैं। ये फलियां खिरनीकी तरह लम्बोतरी होती हैं और पकने पर चिप चिपे गूदेसे भर जाती हैं। इस फलीमें एक बीज रहता है। बीजोंसे तेल निकलता जो कड़ एपनके कारण केवल औषधके या जलानेके कामका होता है। नीमकी तिताई या कड़ुवापन प्रसिद्ध है। नीमका प्रत्येक अङ्ग कड़ुआ होता है। जो पेड़ पुराने होते हैं उनसे कभी कभी एक प्रकारका पतला पानी निकलता है और महीनों बहा करता है। यह पानी भी कड़ुआ होता है और नीमका मद कहलाता है। इसकी लकड़ी लकड़ी लिए मजबूत होती है तथा किवाड़, गाड़ी, नाव आदि बनानेके काममें आती हैं। पतली टहनियां दातूनके लिये बहुत तोड़ी जाती हैं।

राजनिघण्टुके मतसे इनका गुण—शीत और तिक्त-जनक, कफ, व्रण, क्रमि, वमि, शोफ और शान्तिकारी, पित्तदोष और हृदयविदाहनाशक है।

भावप्रकाशके मतमें—शीतल, लघु, ग्राही, कटुपाक, अग्निवातकर, अहृद्य, श्रम, तृष्णा, कास, ज्वर, अरुचि और क्रमिनाशक, पित्त, कफ, छर्दि, कुष्ठ, हृल्लास और मेहनाशक।

नीमकी पत्तियां नेत्रकी हितकर, क्रमि, पित्त, विष, सब प्रकारकी अरुचि और कुष्ठनाशक, वातल और कटुपाकी होती है।

नीमफलका गुण—रसमें तिक्त, पाकमें कटु, भेदन, स्निग्ध, लघु, उष्ण और कुष्ठ, गुल्म, अर्श, क्रमि और मेहनाशक।

राजवल्लभके मतसे निम्ब तैलका गुण—कुष्ठघ्न, तिक्त और क्रमिनाशक।

राजनिघण्टुके मतसे तैलगुण—नात्युष्ण, क्रमि, कुष्ठ, कफ, व्रणदोष, व्रणकण्डूति और शोफहारी तथा पित्तल।

रघुनन्दनके तिथितत्त्वमें लिखा है कि षष्ठीमें नीम नहीं खाना चाहिये, खानेसे तिर्यक्‌योनिमें जन्म होता है।

"आम्रं छित्वा कुठारेण निम्बं परिचरेत्तु यः।
यश्चैनं पयसा सिञ्चेन्नैवास्य मधुरो भवेत्॥"

(रामायण २।३५।१८) विशेष विवरण नीम शब्दमें देखो।

निम्ब—सताराके अन्तर्गत एक समृद्धिशाली नगर। यह सतारासे ८ मील उत्तरमें अवस्थित है। पहले यह नगर सताराकी मृत रानीके पोष्यपुत्र राजाराम भोंसले-के हाथ था। १७५१ ई०में इसके समीप ताराबाईके पक्षभुक्त दमाजी गायकवाड़ और पेशवाका घमसान युद्ध हुआ था। युद्धमें दमाजीकी जीत हुई। प्रायः बीस हजार सेनाओंने शालपी नामक पार्वत्यपथ पर उन्हें रोका। वे निम्ब तक खदेड़े गये और वहीं पराजित हुए। अन्तमें उन्हें बाध्य हो कर कितने ही पार्वत्य दुर्ग ताराबाईको देने पड़े।

निम्बक (सं० पु०) निम्ब एव स्वार्थे कन्। १ निम्ब, नीम। २ महानिम्ब।

निम्बग्राम—चट्टलके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

निम्बतरु (सं० पु०) १ मन्दारवृक्ष, सफेद अकवन। २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। ३ पारिभद्रवृक्ष, फरहदका पेड़।

निम्बदेव—एक संस्कृतज्ञ पण्डित। ये लक्ष्मीधर और नागनाथके पिता तथा कमलदेवके पुत्र थे। चन्द्रपुर ग्राममें इनका वासस्थान था।

निम्बपञ्चकम् (सं० क्ली०) पञ्चनिम्ब।

निम्बपत्र (सं० क्ली०) निम्बवृक्षस्य पत्रं। नीमका पत्ता।

निम्बप्रसव (सं० पु०) निम्बपत्र, नीमका पत्ता।

निम्बरजस (सं० पु०) महानिंब।

निम्बर्गी—बीजापुर जिलेके इन्दी शहरसे २७ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित एक ग्राम। इस ग्रामके उत्तर-पश्चिम भागमें जलाशयके किनारे हनुमान्‌का एक मन्दिर है। मन्दिरका दरवाजा ठीक उत्तरकी ओर है। इसका आयतन बड़ा है। भीतरमें सीतारामकी मूर्ति और एक लिङ्ग प्रतिष्ठित है। कहते हैं, कि १४८० ई०में धनाई नामक किसी मेषपालकने उक्त मन्दिर बनवाया था।

मन्दिर-निर्माणके विषयमें किम्बदन्ती है, कि धनाईकी एक गाय बच्चा जननेके बादसे ही दुबली पतली होने लगी। बहुत तलाश करनेके बाद एक दिन इसने देखा कि एक साँपके बिलमें गायका दूध गिरता है। यह देख धनाईने दूसरे दिनसे उसे घरमें ही बाँध रखा, बाहर न होने दिया। बाद रातको उसे स्वप्न हुआ कि 'उस सर्पके बिलके ऊपर एक मन्दिर बनाओ और नौ मास तक उसका द्वार बन्द रखो।' तदनुसार धनाईने उसी स्थान पर एक मन्दिर बनाया और नौ मास तक दरवाजा बन्द रखा। बाद नौ मासके दरवाजा खोलने पर उसने देखा कि एक लिङ्ग और सीतारामकी मूर्त्ति अर्द्धसमाप्तावस्थामें वर्त्तमान है।

निम्बवीज (सं० पु०) १ राजादनीवृक्ष, चीरिणी, खिरनीका पेड़। २ नीमका बीया।

निम्बाक (सं० पु०) कोषफला, कागजी नीबू।

निम्बादित्य—वैष्णवसम्प्रदायके निमातृशाखाके प्रवर्त्तक। यह एक विख्यात पण्डित और साधु पुरुष थे तथा वृन्दावनके समीप ध्रुव पहाड़ पर रहते थे। वहीं पर इनके शिष्योंने इनके मरने पर गद्दी स्थापित की। वैष्णवोंका यह एक पवित्र तीर्थ-स्थान माना जाता है। इनके पिताका नाम जगन्नाथ था। बचपनमें जगन्नाथने इनका नाम भास्कराचार्य रखा था। बहुतसे लोग इन्हें सूर्यके अंशसे उत्पन्न बतलाते थे। इसका कारण यह था, कि ये कृष्णके बड़े भारी भक्त थे। इनका दूसरा नाम नियमानन्द भी था। भक्तोंके मानकी रक्षा करनेके लिए नारायणने सूर्यरूपमें आविर्भूत हो उनकी प्रार्थना पूरी की थी। इस विषयमें एक किंवदन्ती इस प्रकार है,—

किसी समय एक दण्डी (किसीके मतसे जैन-संन्यासी) इनके समीप पहुंचे। दोनोंमें शास्त्रीय विचार होने लगा। सूर्यास्त हो रहा था, निम्बादित्यने अभ्यागत अतिथिकी श्रान्ति दूर करनेकी इच्छासे कुछ खाद्य सामग्री इकट्ठी की और उनसे खानेको कहा। किन्तु सूर्यास्तके उपरान्त उनका भोजन करनेका नियम नहीं था। इस पर भास्कराचार्यने सूर्यकी गति रोक रखी और जब तक उनका अन्नपाक तथा भोजनकार्य शेष न हो गया, तब तक सूर्यदेव उनकी प्रार्थना और भक्तिसे प्रीत हो निकटस्थ एक निम्बवृक्ष पर छिपे रहे। सूर्यदेवने उनकी आज्ञाका पालन किया था, इस कारण भास्कराचार्य तभीसे निम्बार्क वा निम्बादित्य नामसे प्रसिद्ध हुए।

मृत्युके बाद उनके प्रधान शिष्य श्रीनिवासाचार्य उनके उत्तराधिकारी हुए। इनके बनाए हुए कृष्णस्तवराज, गुरुपरम्परा, दशश्लोकी वा सिद्धान्तरत्न, मध्वमुखमर्दन, वेदान्ततत्त्वबोध वेदान्तपारिजातसौरभ, वेदान्तसिद्धान्तप्रदीप, स्वधर्माध्वबोध, ऐतिह्यतत्त्वसिद्धान्त आदि कई एक ग्रन्थ मिलते हैं।

निम्बार्क (सं० पु०) १ निम्बादित्य। २ निम्बादित्यका चलाया हुआ वैष्णव सम्प्रदाय।

निम्बार्कशिष्य—शिष्टगीता और संन्यासपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता।

निम्बू (सं० स्त्री०) निवि सेवने ऊ बवयोरैक्यात् मः। नीबू। संस्कृत पर्याय—निम्बूक, अम्लजम्बीर, दन्ताघातशोधन, अम्लसार, वह्निवीज, दीप्त, वह्नि, दन्तशठ, जम्बीरज, अम्ल, रोचन, जम्भीर, शोधन, दीप्तक।

विशेष विवरण नीबू शब्दमें देखो।

निम्बूक (सं० पु०) अम्लजम्बीरवृक्ष, कागजी नीबू।

निम्बूकपानकम् (सं० क्ली०) निम्बुरस, नीबूका शरबत।

निम्बूफलपानक (सं० क्ली०) पानीयभेद। एक भाग नीबूके रसमें छः भाग चीनीका जल डाल कर उसमें लवङ्ग और मिर्चका चूर्ण मिला देते हैं। इसीको निम्बूफलपानक कहते हैं। यह बहुत सुगन्धित होता है।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—अत्यम्ल, वातनाशक, अग्निदीपक और रुच्य है तथा समस्त आहारमें पाचकका काम करता है।

निम्भ—धारवारसे ८ मील उत्तरमें अवस्थित एक ग्राम। इस ग्रामसे १½ मील दक्षिण-पश्चिममें औदरलालेयका ईंटोंका बना हुआ एक मन्दिर है। महाड़के महन्त जनार्दन भरतीने करीब ३००-वर्ष हुए, मन्दिरका निर्माण किया है। इसकी ऊंचाई ६० फुटसे कम नहीं होगी। मन्दिरके मध्य जमीनके नीचे एक कुठार है। बारह गोलाकार स्तम्भ और चार चतुष्कोणाकृति स्तम्भ-

के ऊपर छत टिकी हुई है। कुठारमें दत्तात्रेय और दश अवतारकी छवि अङ्कित है। श्राद्धादि कर्मके लिए यह स्थान बहुत प्रसिद्ध है।

निम्रुच् (सं॰ स्त्री॰) नि-म्रुच-क्विप्। नितरां गमन, लगातार चलते रहना।

निम्रुक्ति (सं॰ स्त्री॰) निमुक्ति। अस्तगमन।

निम्लोच (सं॰ पु॰) नि-म्लुच-घञ्। अस्तमय, सूर्यका अस्त होना।

निम्लोचनी (सं॰ स्त्री॰) वरुणकी नगरीका नाम जो मानसोत्तर पर्वतके पश्चिम है।

निम्लोचा (सं॰ स्त्री॰) एक अप्सराका नाम।

निम्लोचि (सं॰ पु॰) सात्वतवंशीय भजमानके एक पुत्रका नाम।

नियत (सं॰ त्रि॰) नि-यम-क्त। १ संयत, कृतसंयम, नियम द्वारा स्थिर, बंधा हुआ। २ स्थिर, ठहराया हुआ, ठीक किया हुआ, मुकर्रर। ३ नियोजित, स्थापित, प्रतिष्ठित, मुकर्रर, तैनात। ४ आसक्त। (पु॰) ५ महादेव, शिव। ६ गन्धक।

नियतमानस (सं॰ त्रि॰) नियतं मानसं येन। संयतेन्द्रिय, जितमानस, जिसने इन्द्रियोंको वशमें कर लिया हो।

नियतव्यवहारिककाल—ज्योतिःशास्त्रोक्त पुण्यकालविशेष, ज्योतिषमें पुण्य, दान, व्रत, श्राद्ध, यात्रा, विवाह इत्यादिके लिए नियत समय।

कालमान नौ प्रकारके माने गए हैं, सौर, सावन, चान्द्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वन्तर), ब्राह्म (कल्प) और बार्हस्पत्य। इनमेंसे ऊपर लिखी बातोंके लिए तीन प्रकारके कालमान लिए जाते हैं—सौर, चान्द्र और सावन (संक्रान्ति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्यकाल सौर कालके अनुसार नियत किए जाते हैं। तिथि, करण, विवाह, क्षौर, व्रत, उपास और यात्रा इत्यादिमें चान्द्र काल लिया जाता है। जन्म, मरण (सूतक), चान्द्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञ दिनाधिपति, मासाधिपति, वर्षाधिपति और ग्रहोंकी मध्यगति आदिका निर्णय सावनकाल द्वारा होता है।

नियतात्मा (सं॰ त्रि॰) नियतः आत्मा येन। संयतेन्द्रिय, अपने ऊपर प्रतिबन्ध रखनेवाला, अपने आपको वशमें रखनेवाला।

नियताप्ति (सं॰ स्त्री॰) नियता निश्चिता आप्तिः। नाटकमें प्रारब्ध कार्यको अवस्थाभेद, नाटकमें अन्य उपायोंको छोड़ एक ही उपायसे फल प्राप्तिका निश्चय।

अपायाभावसे निर्द्धारित जो एकान्त फलप्राप्ति है, उसीको नियताप्ति कहते हैं। उदाहरण—राजाने कहा, देवीके अनुग्रहके सिवा और कोई उपाय नहीं देखता हूं। यहां पर कार्यसिद्धि सम्पूर्णरूपसे दैवसिद्धिके ऊपर निर्भर है। दैवके प्रसन्न होने पर निश्चय ही फलकी प्राप्ति होगी, इस प्रकारकी फलप्राप्तिको नियताप्ति कहते हैं।

नियताहार (सं॰ त्रि॰) नियत आहार येन। परिमिताहारी, थोड़ा खानेवाला।

नियति (सं॰ स्त्री॰) नियम्यतेऽनया नि-यम-करणे क्तिन्। १ भाग्य, दैव, अदृष्ट। २ नियम, बन्दोज। ३ स्थिरता, मुकर्ररी, ठहराव। ४ अवश्य होनेवाली बात, बन्धी हुई बात। ५ पूर्वकृत कर्मका परिणाम जिसका होना निश्चय होता है। ६ जड़, प्रकृति। ७ चतुर्दशधारिणी देवयोषितोंकी अन्यतमा स्त्री।

नियती (सं॰ स्त्री॰) नियम्यते कालो यया, नि यम-क्तिच्, बाहुलकात्, ङीप्। दुर्गा, भगवती।

नियतेन्द्रिय (सं॰ त्रि॰) नियतानि इन्द्रियाणि येन। संयतेन्द्रिय, इन्द्रियदमनशील, इन्द्रियको वशमें रखनेवाला।

नियन्तव्य (सं॰ क्ली॰) नि-यम-तव्य। नियमनीय, दमन योग्य, शासन योग्य।

नियन्ता (हिं॰ पु॰) नियन्तृ देखो।

नियन्त्रण (सं॰ क्ली॰) नि-यन्त्रि-ल्युट्। प्रतिबन्ध दूरी करण, एकत्र स्थापनार्थ व्यापारभेद।

नियन्त्रित (सं॰ त्रि॰) नि-यन्त्रि क्त। १ अबाधं, अनर्गल। २ कृतनियम। ३ प्रतिबन्धादि द्वारा एकत्र स्थापित, नियमसे बंधा हुआ, कायदेका पाबंद।

नियन्तृ (सं॰ त्रि॰) नियच्छति अश्वादीनिति नि-यम-तृच्। १ नियमकारी, नियम बांधनेवाला, कायदा बांधनेवाला। २ विधायक, कार्यका चलानेवाला। (पु॰)

३ अश्वनियमकारी, घोड़ा फेरनेवाला, सारथि। ४ विष्णु, भगवान्। ५ शिक्षक, नियम पर चलनेवाला शासक।
नियम (सं॰ पु॰) नियमनमिति नि-यम-अप्। १ प्रतिज्ञा, अङ्गीकार। २ विधि या निश्चयके अनुकूल प्रतिबन्ध, परिमिति, रोक, पाबन्दी। जैनग्रंथोंमें चौदह वस्तुओंके परिमाण बांधनेको नियम कहा है—जैसे द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानहनियम, ताम्बूलनियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शय्यानियम, इत्यादि। ३ शासन, दबाव। ४ परम्परा, बन्धा हुआ क्रम, दस्तूर। ५ व्यवस्था, पद्धति, विधि, कायदा, कानून, जाब्ता। ६ निश्चय। ७ ऐसी बातका निर्द्धारण जिसके होने पर दूसरी बातका होना निर्भर किया गया हो, शर्त। ८ योगाङ्गविशेष। पातञ्जल-दर्शनमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

यम, नियम, आसन और प्राणायाम आदि योगके आठ अङ्ग हैं। योगाभ्यास करनेमें दूसरे दूसरे यम-नियमादिका साधन करना होता है। पहले यम, पीछे नियम है अर्थात् यम नामक योगाङ्गके सिद्ध हो जाने पर नियमयोगाङ्गका अनुष्ठान किया जाता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांच प्रकारके कार्योंका नाम यम है। यमयोगाङ्गका अनुष्ठान करके नियमयोगाङ्गका साधन करना पड़ता है। इसीसे संक्षेपमें यमयोगाङ्गका विषय लिखा जाता है। पहले अहिंसानुष्ठान है, केवल प्राणिवध नहीं करनेसे ही अहिंसानुष्ठान सिद्ध होता है सो नहीं, किसी उपलक्षमें वा किसी समयमें प्राणियोंको कायिक, वाचिक वा मानसिक किसी प्रकारका कष्ट नहीं देनेसे ही अहिंसानुष्ठान सिद्ध होता है। इस अहिंसानुष्ठानकी पराकाष्ठा प्राप्त करनेसे चित्त निर्मल रहता है। अहिंसानुष्ठानके बाद सत्यानुष्ठान है। सत्यनिष्ठ होनेसे चित्त शीघ्र ही योगशक्ति लाभ करनेके योग्य हो जाता है। इसके बाद अचौर्य है। इसके साथ ब्रह्मचर्यका करना आवश्यक है। ब्रह्मचर्यका मूल अर्थ वीर्यधारण है। शरीरमें शुक्रधातु यदि पुष्ट रहे, विकृत, स्खलित वा विचलित न हो, अचल, अटल वा स्थिरभावसे रहे, तो सभी बुद्धीन्द्रिय और मनकी शक्ति बढ़ती है। चित्तकी प्रकाशशक्तिकी भी वृद्धि होती है। ब्रह्मचर्यके साथ अपरिग्रहवृत्तिका अवलम्बन करना होता है। लोभपूर्वक द्रव्यहरणका नाम परिग्रह है। केवल देहयात्रा निर्वाहके वा शरीररक्षाके उपयुक्त द्रव्यस्वीकारको परिग्रह नहीं कहते। इस प्रकार अनुष्ठान करनेका नाम अपरिग्रह है। इस अपरिग्रहसे चित्तमें योगोपयुक्त वैराग्यका बीज उत्पन्न होता है। अहिंसादि पांच प्रकारके यमजाति देश और कालसे विच्छिन्न नहीं होते।

यमयोगाङ्गमें दृढ़ हो जानेसे नियम नामक योगाङ्गका अनुष्ठान करना होता है।

शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान इन पांच प्रकारको अनुष्ठेय क्रियाओंका नाम नियम है। शौच दो प्रकारका होता है—बाह्य और आभ्यन्तर। जल, मिट्टी, गोबर आदिसे शरीरको साफ रखना बाह्यशौच है। करुणा, मैत्री, भक्ति आदि सात्त्विक वृत्तियोंको धारण करना आभ्यन्तर शौच है। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे शरीर और मन विशुद्ध हो जाता है तथा अन्तर नामक चेतात्मा वा आध्यात्मिक तेजमें शुद्धता और सबलता आ जाती है।

सन्तोष, तृप्ति; (बिना परिश्रमके जो लाभ हो, उसीमें परितृप्त रहना चाहिए) कुछ दिन तक इस योगाङ्गका अनुष्ठान करनेसे सन्तोषचित्तमें दृढ़ हो जाता है। तपः, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान—श्रद्धापूर्वक शास्त्रोक्त व्रत नियमादिके अनुष्ठान करनेका नाम तपस्या है। प्रणव आदि ईश्वरवाचक शब्दके जप अर्थात् अर्थका स्मरणपूर्वक उच्चारण और अध्यात्मशास्त्रके मर्मानुसन्धानमें रत रहनेका नाम स्वाध्याय है। भक्तिपूर्वक ईश्वरार्पितचित्त हो जो कार्य किया जाता है, उसे ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं। इन तीन प्रकारको क्रियाओंका नाम क्रियायोग है। बिना तपस्याके योगसिद्ध होनेकी सम्भावना नहीं। क्योंकि मनुष्यके चित्तमें अनादिकालकी विषयवासना और अविद्या बद्धमूल हो पड़ी है। बिना तपस्याके उसका दूर होना सम्भव नहीं है। चित्तमें वासनाके रहनेसे योग हो नहीं सकता। इस वासनानाशके लिए तपस्या अवश्य विधेय है। इन सब

क्रियायोगोंमें यदि युगपद्का अनुष्ठान कर सकें, तो बहुत अच्छा ; नहीं तो एक एक करके करना चाहिए। इस नियमयोगाङ्गके आयत्त होनेसे एक एक शक्ति प्राप्त होती है।

पहले अहिंसादिकी प्रतिष्ठा हो जानेसे वैरत्याग आदि शक्तिका लाभ होता है। यम देखो।

नियमका प्रथम अनुष्ठान शौच है। इसी शौचकी सिद्धि द्वारा अपने शरीरके प्रति तुच्छ ज्ञान उत्पन्न होता है और परसङ्गकी इच्छा भी दूर हो जाती है। वाह्य शौचका अभ्यास करते करते क्रमशः आत्मशरीरके प्रति एक प्रकारकी घृणा पैदा होती है। उस समय जल-वुद्बुदकी तरह मरणधर्मी और मलमूत्रादिमय अव-विश्वास शरीरके प्रति किसी प्रकारकी आस्था वा आदर नहीं रहता और परशरीरसंसर्गकी इच्छा भी दूर हो जाती। आभ्यन्तर शौचका आरम्भ करनेसे पहले सत्त्व-शुद्धि, पीछे एकाग्रता और आत्मदर्शनक्षमता होती है। भावशुद्धिरूप आभ्यन्तर शौच जब चरम सीमा तक पहुंच जाता है, तब अन्तःकरण ऐसा अभूतपूर्व सुखमय और प्रकाशमय हो जाता है, कि उस समय खेदका कुछ भी अनुभव नहीं रहता। इस पूर्ण परिस्फुतताका दूसरा नाम सौमनस्य है। सौमनस्यके उदय होनेसे एकाग्रताशक्ति प्रादुर्भूत होती है। एकाग्रताशक्तिके उत्पन्न होनेसे इन्द्रियजय और इन्द्रियजय होनेसे ही चित्त आत्मदर्शन-में समर्थ होता है।

सन्तोष होनेसे योगी एक प्रकारका अनुपम सुख प्राप्त करता है। वह सुखविषय निरपेक्ष है, सुतरां वह सुख निरतिशय है।

तपस्या क्रममें दृढ़ हो जाने पर तपोनिष्ठ होता है। श्रद्धाभक्तिसे तद्गतचित्त हो कर कृच्छ्रव्रतप्रभृति शास्त्र-विहित तपस्यामें रत रहनेसे शरीर वा मनके शक्तिप्रति-बन्धक ज्ञानका आवरण नष्ट हो जाता है। सुतरां उस समय तपःसिद्धयोगी शरीर या इन्द्रियको जिस ओर चाहें, उस ओर घुमा सकते हैं। उस समय वे अपने शरीरको इच्छानुसार छोटा या बड़ा बना सकते हैं।

स्वाध्यायका उत्कर्ष होनेसे इष्टदेवता देखनेमें आते हैं। संयतचित्त हो सर्वदा प्रणवजप, इष्टमन्त्रजप, देवताका स्तव-पाठ अथवा अन्य किसी प्रकार शास्त्र-वाक्यका पाठ करते करते जब वह परिपक्व अवस्थामें आ जाता है, तब उस स्वाध्यायनिष्ठ वा जपादिपरायण योगीके इष्टदेवता देखनेमें आते हैं।

ईश्वर प्रणिधान—ईश्वरमें चित्तनिवेश जब दृढ़ हो जाता है, तब अन्य कोई साधन नहीं करनेसे भी उत्कृष्ट-तर समाधि लाभ होती है। ईश्वरप्रणिधाता योगी-को योगलाभके लिए अन्य किसी योगाङ्गका अवलम्बन नहीं करना होता, एकमात्र भक्तिबलसे ही वे ईश्वरमें समाहित हो जाते हैं। भक्त लोग केवल भक्तिके द्वारा ही ईश्वरको उद्बोधित वा प्रसन्न करके उनके अनुग्रहके तेजसे आत्मक्लेशको दग्ध और विघ्नसमूहको नाश करते हैं तथा पीछे निष्प्रतिबन्धरूपमें समाहित और योगफलको पाते हैं।

याज्ञवल्क्य-स्मृतिमें चौदह नियम गिनाए हैं—स्नान, मौन, उपवास, यज्ञ, वेदपाठ, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध, अप्रमाद, तुष्टि, सन्तोष, उपस्थनिग्रह अर्थात् ब्रह्मचर्य और इज्या।

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि योगी यदि अपने मनको तत्त्वज्ञानके उपयोगी बनाना चाहें, तो पहले निष्काम-भावसे ब्रह्मचर्या, अहिंसा, सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन पांच यमोंका एवं स्वाध्याय, शौच, सन्तोष, तपस्या और ईश्वरप्रणिधान इन पांच नियमोंका अनुष्ठान करें।
(विष्णुपु० ६ अंश ७ अ०)

तन्त्रसारमें दश नियम बतलाया है यथा—तपस्या, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, देवपूजा, सिद्धान्तश्रवण, ह्री, मति, जप और होम।

जैनशास्त्रमें गृहस्थधर्मके अन्तर्गत १२ प्रकारके नियम कहे गए हैं—प्राणातिपातविरमण, मृषावाद-विरमण, अदत्तादानविरमण, मैथुनविरमण, परिग्रह-विरमण, दिग्व्रत, भोगोपभोग नियम, अनार्थदण्डनिषेध, सामयिकशिक्षाव्रत, देशावकाशिक शिक्षाव्रत, पौषध और अतिथिसंविभाग। ८ विष्णु। १० महादेव, शिव। ११ विधिभेद। १२ एक अर्थालङ्कार जिसमें किसी बातका एक ही स्थान पर नियम कर दिया जाय अर्थात् उसका होना एक ही स्थान पर बतलाया जाय।

नियमतन्त्र (-सं॰ त्रि॰) नियमोंके अधीन, नियमोंसे बंधा हुआ।

नियमन (सं॰ क्लो॰) नि-यम भावे ल्युट्। १ नियम-शब्दार्थ। २ नियमबद्ध करनेका कार्य, कायदा बांधना। ३ शासन। ४ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। (त्रि॰) नि-यम ल्युट्। ५ नियामक, नियम करनेवाला, नियम या कायदा बांधनेवाला।

नियमपत्र (सं॰ क्लो॰) नियमस्य पत्रं। प्रतिज्ञापत्र, सन्धिपत्र, शर्त्तनामा।

नियमपर (सं॰ त्रि॰) नियमे परः। नियमानुवर्त्ती, नियमाधीन।

नियमबद्ध (सं॰ त्रि॰) नियमोंके अनुकूल, नियमोंसे बंधा हुआ, कायदेका पाबंद।

नियमभङ्ग (सं॰ पु॰) नियमस्य भङ्गः। प्रतिज्ञाभङ्ग, नियमका उल्लङ्घन करना।

नियमवत् (सं॰ त्रि॰) नियमो विद्यतेऽस्य नियम-मतुप्, मस्य व। नियमयुक्त, नियमविशिष्ट।

नियमसेवा (सं॰ स्त्री॰) नियमेन भगवतः सेवा। कार्त्तिक-मासमें नियमपूर्वक भगवदाराधना, नियम-पूर्वक ईश्वरोपासना। हरिभक्तिविलासमें इसका विवरण इस प्रकार लिखा है,—

आश्विन मासकी शुक्ला एकादशीसे नियमपूर्वक कार्त्तिक व्रत करना चाहिए। जो कार्त्तिकव्रतानुष्ठान नहीं करते वे जन्मजन्मोपार्जित पुण्यके फलभोगी नहीं होते हैं।

नियमस्थिति (सं॰ स्त्री॰) नियमेन स्थितिरत्र। तपस्या।

नियमानन्द—निम्बार्कका दूसरा नाम। निम्बादित्य देखो।

किसी किसीका कहना है, कि इस नामके निम्बार्क-ने वेदान्तसिद्धान्त नामक एक संस्कृत ग्रन्थ लिखा है।

नियमित (सं॰ त्रि॰) नि-यम-णिच्-क्त। नियमबद्ध, नियमों-के भीतर लाया हुआ, कायदे कानूनके मुताबिक।

नियमी (सं॰ पु॰) नियमका पालन करनेवाला।

नियम्य (सं॰ त्रि॰) नि-यम-यत्। १ प्रतिबद्ध होने योग्य, नियमित करने योग्य, नियमोंसे बांधने लायक। २ शासित होने योग्य, रोके या दबाए जाने योग्य।

निययिन् (सं॰ पु॰) नी-भावे क्विप्, निये नयनाय इनः प्रभुः बाहुलकात् अलुक् समास। रथ सहग सर्वाभि-मत प्राप्तिसाधन।

नियर (हिं॰ अव्य॰) समीप, पास, नजदीक।

नियराई (हिं॰ स्त्री॰) सामीप्य, निकटता।

नियराना (हिं॰ क्रि॰) पास होना, निकट पहुंचना।

नियव (सं॰ पु॰) नि-यु-मिश्रणे वेदे बाहुलकात् अप्। मिश्रीभाव।

नियागांवरेवाई—एक छोटा राज्य। इसका क्षेत्रफल १६ वर्गमील है। बुन्देलखण्डके दस्युपतिके वंशधर लक्ष्मण-सिंहने वृटिश गवर्मेण्टसे (१८०७ ई॰में) पांच ग्राम सनदमें पाए थे। १८०८ ई॰में उनकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र जगत्सिंह सिंहासन पर बैठे। यहांके राजाको पचास सेना रखनेका हुक्म है। गवर्मेण्टको दश हजार रुपये करमें देने पड़ते हैं।

नियातन (सं॰ क्लो॰) नि-यत णिच् ल्युट्। निपातन, नाश या ध्वंस करनेका कार्य।

नियान (सं॰ क्लो॰) नियमेन यान्ति गावो यत्र या आधारे ल्युट्। गोष्ठस्थान, गोशाला।

नियाम (सं॰ पु॰) नि-यम पक्षे घञ्। नियम।

नियामक (सं॰ त्रि॰) नि-यम-णिच्-ण्वुल्। १ नियम करनेवाला, नियम या कायदा बांधनेवाला। २ व्यवस्था करनेवाला, विधान करनेवाला। ३ मारनेवाला। (पु॰) ४ पोतवाह, मल्लाह, मांझी।

नियामकगण (सं॰ पु॰) रसायनमें पारेको मारनेवाली ओषधियोंका समूह। सर्पाक्षी, वनककड़ी, सतावर, शंखाहुली, सरफोंका, गदहपूर्ना, मूसाकानी, मत्स्याक्षी, ब्रह्मदण्डी, शिखंडिनि, अनन्ता, काकजंघा, काकमाची, पोतिक (पोईका साग), विष्णुक्रान्ता, पीली कटसरैया, सहदेइया, महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, चकवंड़, करंज, पाठा, नील, गोजिह्वा इत्यादि।

नियामत (अ॰ स्त्री॰) १ अलभ्य पदार्थ, दुर्लभ वस्तु। २ स्वादिष्ट भोजन, उत्तम भोजन, मजेदार खाना। ३ धन, दौलत, माल।

नियामिका (हिं॰ वि॰) नियम करनेवाली।

नियार (हिं॰ पु॰) जौहरी या सुनारोंकी दूकानका कूड़ा कतवार।

नियारा (हिं० वि०) १ पृथक्, अलग, जुदा। (पु०) २ सुनारों या जौहरियोंके यहांका कूड़ा करकट।

नियारिया (हिं० पु०) १ चतुर मनुष्य, चालाक आदमी। २ मिली हुई वस्तुओंको अलग अलग करनेवाला। ३ वह जो सुनारों या जौहरियोंको राख, कूड़ा करकट आदिमेंसे माल निकालता हो।

नियुक्त (सं० त्रि०) नि-युज-क्त। १ अधिकृत, अधिकार किया हुआ। २ नियोजित, लगाया हुआ। ३ प्रेरित, तत्पर किया हुआ। ४ अवधारित, स्थिर किया हुआ, ठहराया हुआ। ५ लगाया हुआ, जोता हुआ, तैनात, मुकर्रर।

नियुक्ति (सं० स्त्री०) मुकर्ररी, तैनाती।

नियुत् (सं० पु०) नि-यु-कर्मणि क्विप् तुक्। वायुका अश्व। (वैदिक)

नियुत (सं० क्ली०) नियूयते बहुसंख्या प्राप्यतेऽनेनेति, नि-यु-क्त। १ लक्ष, एक लाख। २ दश लक्ष, दश लाख। नियुत शब्दका प्रायः दश लक्षमें ही व्यवहार हुआ करता है।

नियुत्वतीय (सं० त्रि०) नियुत्वतः इदं नियुत्वत् छ। वायुदेवताके हविः आदि।

नियुत्वत् (सं० पु०) नियुतोऽश्वाः सन्त्यस्य मतुप्—मस्य वः। वायु, हवा।

नियुत्वा (सं० स्त्री०) भरतवंशीय प्रस्तार राजाकी स्त्रीका नाम।

नियुद्ध (सं० क्ली०) नि-युध-क्त। बाहुयुद्ध, हाथाबाहीं, कुश्ती।

नियुद्रथ (सं० त्रि०) नियुत् नियोजितो नियतो वा रथो यस्य। जानेके लिये नियोजित रथ।

नियोक्तव्य (सं० क्ली०) नि-युज-तव्य। नियोगार्ह, नियोजित करने योग्य।

नियोक्ता (हिं० पु०) १ नियोजित करनेवाला, लगानेवाला। २ नियोग करनेवाला।

नियोक्तृ (सं० त्रि०) नि-युज-तृच्। नियोक्ता देखो।

नियोग (सं० पु०) नि-युज-घञ्। १ प्रेरण, कार्यमें प्रवृत्त करना। २ इष्टसाधनत्वादि बोधन द्वारा प्रवर्त्तन। ३ अवधारण। ४ आज्ञा। ५ निश्चय। ६ अपुत्रभ्रातृ-पत्नीपुत्त्रार्थ नियोजन, पुत्र उत्पादन करनेके लिए निःसन्तान भौजाईके साथ संभोग।

नियोगविधिका विषय मनुने इस प्रकार लिखा है। यदि अपने स्वामीसे कोई सन्तान उत्पन्न न हो, तो स्त्री अपने देवर अथवा पतिके और किसी गोत्रजसे सन्तान उत्पन्न करा सकती है। रातको मौनावलम्बनपूर्वक स्वामी या गुरु कर्त्तृक नियुक्त व्यक्ति विधवा स्त्रीमें केवल एक सन्तान उत्पन्न कर सकता है। किसी किसी आचार्यका मत है, कि एक सन्तान द्वारा नियोजकका नियोग-उद्देश्य फलीभूत नहीं हो सकता, इस कारण वह स्त्री और नियोजित व्यक्ति दो सन्तान तक उत्पन्न कर सकते हैं। नियोजित ज्येष्ठ वा कनिष्ठ भ्राता यदि शास्त्रानुगामी न हो कर नियोगविधिका उल्लङ्घन करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है। (मनु ९ अ०) पर कलिमें यह रीति वर्जित है।

नियोगी (सं० त्रि०) नियोगोऽस्यास्तीति नियोग-इनि। १ नियोगविशिष्ट, जो नियोग किया गया हो, जो लगाया या मुकर्रर किया गया हो। पर्याय—कर्मसचिव, आयुक्त, व्यापृत। २ जो किसी स्त्रीके साथ नियोग करे।

नियोगकर्त्तृ (सं० त्रि०) नियोगस्य कर्त्ता। कर्ममें नियुक्तकारी, काममें लगानेवाला, मुकर्रर करनेवाला।

नियोगपत्र (सं० क्ली०) नियोगस्य पत्रम्। वह पत्र जिसमें किसी मनुष्यको नियुक्तिका विषय लिखा रहता है।

नियोगविधि (सं० पु०) विधीयते इति वि-धा-कि, नियोगस्य विधिः। किसी कार्यमें नियुक्त करनेकी प्रथा।

नियोगार्थ (सं० पु०) नियुक्त करनेका उद्देश्य।

नियोग्य (सं० त्रि०) नियोक्तुमर्हः, नि-युज-ण्यत्। नियोगार्ह, नियोग करने योग्य।

नियोजक (सं० पु०) नियोजयति नि-युज-णिच्-ण्वुल्। नियोगकारी, काममें लगानेवाला, मुकर्रर करनेवाला।

नियोजन (सं० क्ली०) नि-युज-ल्युट्। १ नियोग। २ प्रेरणा, किसी काममें लगाना, तैनात या मुकर्रर करना। ३ प्रवर्त्तन, उत्तेजना, उसकाना।

नियोजित (सं० त्रि०) नियुक्त किया हुआ, लगाया हुआ, मुकर्रर, तैनात।

नियोज्य (सं० त्रि०) नियोक्तुं शक्यः, नि-युज-शक्यार्थे ण्यत् प्रत्ययेन साधुः। १ नियोगार्ह, नियोग करने योग्य, जो नियुक्त करने काबिल हो।

नियोद्धा (सं० पुं०) नि-युध्यते इति नि-युध-तृच्। १ कुक्कुट, मुर्गा। २ बाहुयुद्धकारी, मल्लयोद्धा, कुश्ती लड़नेवाला, पहलवान।

नियोद्दृष्ट (सं० पुं०) नियोद्धा देखो।

निय्या (सं० स्त्री०) सर्षपषष्ठांशमान, एक परिमाण जो सरसोंके छठें भागके बराबर होता है।

निर् (सं० अव्य०) नृ-क्वप्, न दीर्घ। १ वियोग। २ अत्यय। ३ आदेश। ४ अतिक्रम। ५ भोग। ६ निश्चित। निर् एक उपसर्ग भी है जो धात्वादिके पहले रह कर अर्थ प्रकाश करता है; यथाक्रम उसका उदाहरण लिखा जाता है। १ निःसङ्ग। २ निर्मेघ। ३ निर्देश। ४ निष्क्रान्त। ५ निर्वेश। ६ निश्चित। ७ निषेध।

निरंश (सं० पुं०) निर्गतो अंशात्। १ सूर्यभुज्यमान राशिकी प्रथम राशिका तीसवां भाग, राशिके भोगकालका प्रथम और शेष दिन, संक्रान्ति। (त्रि०) निर्गतो भागो यस्य। २ भागरहित, जिसे उसका भाग न मिला हो।

पतित, उसका पुत्र और क्लीव आदि निरंशक अर्थात् भागहीन हैं, इन्हें सम्पत्तिका भाग नहीं मिल सकता, केवल प्रतिपालनके लिए कुछ दे देना चाहिए। ३ बिना अर्थांशका।

निरकेवल (हिं० वि०) १ खाली, खालिस, बिना मेलका। २ स्वच्छ, साफ।

निरक्ष (सं०) निर्गतः अक्षस्तदुन्नति यस्य। अक्षोन्नतिशून्यदेश, निरक्षदेश : पृथ्वीकी उत्तरार्द्ध और दक्षिणार्द्ध दो भाग करनेमें जिस रेखा द्वारा भाग करते हैं उसे वृत्त और उसके ऊपरवाले देशोंको निरक्षदेश कहते हैं। निरक्षदेशमें रात और दिन बराबर होता है। पूर्वमें भद्राश्ववर्ष और यमकोटि, दक्षिणमें भारतवर्ष और लङ्का, पश्चिममें केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तरकुरु और सिद्धपुरी निरक्षदेश कहे गए हैं। सूर्य इन सब देशोंको विषुवरेखा हो कर जाते हैं, इसीसे दिन और रातका मान बराबर होता है।

निरक्षर (सं० त्रि०) १ अक्षरशून्य। २ जिसने एक अक्षर भी न पढ़ा हो, अनपढ़ा, मूर्ख। जैसे—निरक्षर भट्टाचार्य—पण्डित बना हुआ मूर्ख।

निरक्षरेखा (सं० स्त्री०) नाड़ीमण्डल, निरक्षवृत्त, क्रान्तिवृत्त।

निरखना (हिं० क्रि०) देखना, ताकना।

निरगुनिया (हिं० वि०) निगुनी देखो।

निरगुन (हिं० वि०) जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो, अनाड़ी।

निरग्नि (सं० पुं०) निर्गतोऽग्निस्तत्साध्यकार्यं यस्मात्। श्रौत और स्मार्त्त अग्निसाध्यकर्मरहित ब्राह्मण, वह ब्राह्मण जो श्रौत और स्मार्त्त विधिके अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरग्नि ब्राह्मणको हमेशा एकोदिष्ट श्राद्ध-विधिका अनुष्ठान करना चाहिए। साग्निकब्राह्मण यदि अग्निका परित्याग करे, तो उसे पुत्र-हत्याके समान पाप लगता है। मनुने अग्नि-परित्यागको उपपातक बतलाया है।

निरङ्कुश (सं० त्रि०) निर्गतम् अंकुश इव प्रतिबन्धको यस्य। १ प्रतिबन्धशून्य, जिसके लिये कोई अंकुश या प्रतिबन्ध न हो। २ अनिवार्य, जो निवारण करनेयोग्य न हो। ४ स्वेच्छाचारी, बिना डर दावका, बे-कहा।

निरङ्ग (सं० त्रि०) निर्गत अङ्ग यस्य। १ अङ्गहीन, जिसे अङ्ग न हो। २ केवल, खाली, जिसमें कुछ न हो, जैसे, यह दूध निरंग पानी है। (क्ली०) ३ रूपक अलङ्कारका एक भेद। रूपक दो प्रकारका होता है, एक अभेद, दूसरा ताद्रूप्य। अभेद रूपकके भी फिर तीन भेद माने गये हैं, सम, अधिक और न्यून। इनमेंसे 'सम अभेद रूपक'के तीन भेद हैं, यथा—सङ्ग वा सावयव, निरङ्ग वा निरवयव और परम्परीत। जहां उपमेयमें उपमानका इस प्रकार आरोप होता है कि उपमानके और सब अङ्ग नहीं आते, वहां निरवयव या निरङ्गरूपक होता है—जैसे, "रैनन नींद न चैन हिए छिनहू घरमें कुछ और न भावै, सींचनको अब प्रेमलता यहिके हिय काम प्रवेश लखावै।" यहां प्रेममें केवल लताका आरोप है, उसके दूसरे दूसरे अङ्गों या सामग्रियोंका कथन नहीं है। निरङ्ग या निरवयव रूपक भी दो प्रकारका माना गया है, पहला शुद्ध और दूसरा मालाकार। ऊपरमें जो उदाहरण लिखा गया है, वह शुद्ध निरवयवका है क्योंकि उसमें एक उपमेयमें एक ही उपमानका

(प्रेममें लताका) आरोप हुआ है। मालाकार निरवयव उसे कहते हैं जिसमें एक एक उपमेयमें अनेकों उपमानोंका आरोप हो। जैसे—"भँवर संदेहको अविवेक आवरत यह, गेह त्यों अनम्रताको देह दुति धारी है। दोषको निधान, कोटि कपट प्रधान जामें, मान न विश्वास द्रुम ज्ञानकी कुठारी है। कहै तोष हरि स्वर्गद्वार विघन धार, नरक अपारको विचार अधिकारी हैं। भारी भयकारो यह पापको पिटारी नारी क्यों करि विचारि याहि भाखें सुख प्यारो है।"

यहां एक स्त्री उपमेयमें संदेहका भंवर, अविनयका घर इत्यादि बहुतसे आरोप किये गये हैं।

निरङ्ग (हिं० वि०) १ विवर्ण, बेरङ्ग, बदरंग। २ उदास, फीका, बेरौनक।

निरङ्गुल (सं० त्रि०) निर्गतमंगुलिभ्यः अच, समासान्तः। अंगुलिसे निर्गत, जिसे उंगली न हो।

निरचू (हिं० वि०) निश्चिन्त, खाली, जिसे फुरसत मिल गई हो, जिसने छुट्टी पाई हो।

निरजल (हिं० वि०) निर्जल देखो।

निरजिन (सं० क्ली०) निर्गतमजिनात्। अजिनसे निर्गत, जिसे चमड़ा न हो।

निरजी (हिं० स्त्री०) संगतराशोंकी महीन टांकी जिससे संगमर्मर पर काम बनाया जाता है।

निरजोस (हिं० पु०) १ निचोड़। २ निर्णय।

निरजोसी (हिं० वि०) १ निर्णय करनेवाला। २ निचोड़ निकालनेवाला।

निरञ्छन (सं० क्ली०) वह चिह्न या निशान जो मापनेकी रेखामें किया जाता है।

निरञ्जन (सं० त्रि०) निर्गतं अञ्जनं कज्जलं तदिव मलं अज्ञानं वा यस्मात्। १ कज्जलरहित, बिना काजलका २ दोषरहित, बिना बुराइका। ३ मायासे निर्लिप्त। (पु०) ४ योगिविशेष। ५ परमात्मा। ६ महादेव।

निरञ्जनदास—हिन्दीके एक कवि। ये अनन्दपुरके निवासो थे। इनके पिताका नाम वसन्त और गुरुका पीताम्बर था। संवत् १७८५ इनका कविताकाल कहा जाता है। इन्होंने एक पुस्तक रची है जिसका नाम हरिनाममाला है।

निरञ्जनयति—भगवन्नामे-माहात्म्य ग्रन्थके रचयिता।

निरञ्जना (सं० स्त्री०) निर्नास्ति अञ्जनमिव अन्धकारो यत्र टाप्। १ पूर्णिमा। २ दुर्गाका एक नाम।

निरञ्जनी—एक उपासक सम्प्रदाय। कहते हैं, कि इस सम्प्रदायके प्रवर्त्तक निरानन्दस्वामी थे। उन्होंने निरञ्जन निराकार ईश्वरको उपासना चलाई थी, इससे उनके सम्प्रदायको निरञ्जनीसम्प्रदाय कहने लगे; किन्तु आजकल निरञ्जनो साधु रामानन्दके मतानुसार साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवोंमें हो गए हैं। वे कौपीन पहनते तथा तिलक और कण्ठी धारण करते हैं। मारवाड़में इनके अखाड़े बहुत हैं। ये लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि उच्च श्रेणीके मनुष्योंका अन्न ग्रहण करते हैं, इसीसे रामानन्दी या साधारण धर्मनिष्ठ वैरागी इनके हाथका भोजन नहीं करते।

इनके मन्दिरमें सीतारामकी मूर्त्ति, शालग्रामशिला, गोमतीचक्र आदि प्रतिष्ठित हैं।

निरत (सं० त्रि०) नि-रम-क्त। नियुक्त, किसी काममें लगा हुआ, तत्पर, लीन, मशगूल।

निरति (सं० स्त्री०) नितरां रतिः, नि-रम-क्तिन्। १ अत्यन्त रति, अधिक प्रीति। २ लिप्त होनेका भाव, लीन होनेका भाव।

निरतिशय (सं० पु०) निर्गतोऽतिशयो यस्मात् नितरां अतिशयो वा। अत्यन्तातिशय, स्वापेक्षद्वारा अतिशय शून्य परमेश्वर।

परमेश्वरमें निरतिशय ज्ञान है, वे सर्वज्ञ हैं अर्थात् उनमें सर्वज्ञताको अनुमापक परिपूर्ण ज्ञानशक्ति विद्यमान है, अन्य आत्मामें वैसा नहीं है। उनका स्वरूप जब दूसरेको समझाना होता है, तब अनुमानकी सहायता लेनी पड़ती है। वह अनुमान प्रणालो ऐसी है कि उससे ज्ञात होता है कि सभी आत्माओंमें कुछ न कुछ अवश्य ज्ञान है, सभी आत्मा अतीत, अनागत और वर्त्तमान समझ सकती हैं। कोई तो अल्पज्ञ और कोई उससे अधिकज्ञ है। अतएव जिससे और अधिकज्ञ आत्मा नहीं है, जिसमें ज्ञानकी पराकाष्ठा है, उसो परमेश्वरमें सर्वज्ञबीज निरतिशय है। तदपेक्षा और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। (पात० द०)

निरत्यय (सं॰ त्रि॰) निर्गतोऽत्ययो यस्य। १ अत्यय-शून्य, जिसका कष्ट न हो। २ अत्ययाभाव, जिसका नाश न हो। ३ आपत्तिरहित, जिसे किसी बातका डर न हो।

निरदई (हिं॰ वि॰) निर्दय देखो।

निरधातु (हिं॰ वि॰) वीर्यहीन, शक्तिहीन, अशक्त।

निरधारना (हिं॰ क्रि॰) १ निश्चय करना, ठहराना, स्थिर करना। २ मनमें धारण करना, समझना।

निरध्व (सं॰ त्रि॰) निष्क्रान्तोऽध्वनः, प्रादिसमासे अच् समासान्तः। अध्वसे निष्क्रान्त, जो अपना रास्ता भूल गया हो।

निरना (हिं॰ वि॰) निरन्ना देखो।

निरनुक्रोश (सं॰ पु॰) निर्दयता, निष्ठुरता, बेरहमी।

निरनुक्रोशकारी (सं॰ त्रि॰) जो निर्दयतासे काम करता हो, बेरहम।

निरनुक्रोशता (सं॰ स्त्री॰) निर्दयता, निष्ठुरता, बेरहमी

निरनुक्रोशयुक्त (सं॰ त्रि॰) निर्दय, कठोर, बेरहम।

निरनुग (सं॰ त्रि॰) जिसे अनुगामी न हो, जो विना नौकरका हो।

निरनुनासिक (सं॰ त्रि॰) निर्गतं अनुनासिकं अनु-नासिकत्वं यस्य। अनुनासिक भिन्न वर्णभेद, जिसका उच्चारण नाकके सम्बन्धसे न हो।

निरनुयोज्यानुयोग (सं॰ पु॰) न्यायसूत्रोक्त निग्रहस्थान यह चार प्रकारका है—छल, जाति, आभास और अन-वसरग्रहण।

निरनुरोध (सं॰ त्रि॰) अप्रीतिकर, निष्ठुर, कृतघ्न।

निरन्तर (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति अन्तरं यस्मिन् यस्माद्वा १ निविड़, घना। २ सन्तत, अविच्छिन्न, जिसमें या जिसके बीच अन्तर या फासला न हो, जो बराबर चला गया हो। सन्ततिके दो भेद हैं, दैशिकी और कालिकी इनमेंसे दैशिक विच्छेदशून्य है। ३ अनवकाश, जिसकी परम्परा खण्डित न हो, लगातार होनेवाला। ४ अपरि-मान, सदा रहनेवाला, बराबर बना रहनेवाला। ५ घन, घना, गझिन। ६ अनन्तर्धान, जो अन्तर्धान न हो, जो दृष्टिसे ओझल न हो। ७ अभेद, जिसमें भेद या अन्तर न हो, जो समान या एक ही हो। ८ तादात्म्यरहित। ९ विना। १० अनात्मीय। ११ असभ्य। १२ अनन्त-रात्मा।

निरन्तर (हिं॰ क्रि॰ वि॰) सदा, हमेशा, बराबर।

निरन्तराभ्यास (सं॰ पु॰) निरन्तरः सततोऽभ्यासो यत्र: कर्मधा॰। १ स्वाध्याय। २ सतत आवृत्ति।

निरन्तराल (सं॰ त्रि॰) १ अन्तरालशून्य। २ निरन्तर अर्थ।

निरन्तरालता (सं॰ स्त्री॰) घनिष्ठ मेल।

निरन्ध (हिं॰ वि॰) १ भारी अंधा। २ महा मूर्ख। ३ ज्ञानशून्य।

निरम्बस् (सं॰ त्रि॰) निरन्न, विना अन्नका।

निरन्न (सं॰ त्रि॰) १ अन्नहीन, विना अन्नका। २ निराहार, जो अन्न न खाए हो।

निरन्नता (सं॰ स्त्री॰) उपवास।

निरन्ना (हिं॰ वि॰) निराहार, जो अन्न न खाए हो।

निरन्वय (सं॰ त्रि॰) नास्ति अन्वयः सम्बन्धो यत्र। १ सम्बन्धरहित। २ स्वामिसमक्षताकृत संबन्धशून्यस्तेय-भेद। ३ स्वामिसम्बन्धशून्य स्तेय। ४ निर्वंश।

निरप (सं॰ त्रि॰) जलहीन, विना पानीका।

निरपत्रप (सं॰ त्रि॰) निर्गतो अपत्रपा लज्जा यस्येति। १ धृष्ट। २ निर्लज्ज, बेहया।

निरपराध (सं॰ पु॰) १ निर्दोषिता, अकलङ्कता, शुद्धता, दोषविहीनता। (त्रि॰) नास्ति अपराधो यस्य। २ निर्दोष, अपराधरहित, बेकसूर।

निरपराध (हिं॰ क्रि॰ वि॰) विना अपराधके, विना कोई कसूर किये।

निरपवर्त्त (सं॰ त्रि॰) १ जो लौटा न देता हो। २ जिसमें भाजकके द्वारा भाग लगे।

निरपवाद (सं॰ त्रि॰) १ अपवादशून्य, जिसकी कोई बुराई न की जाय। २ निर्दोष, बेकसूर। ३ जिसका कभी अन्यथा न हो।

निरपाय (सं॰ त्रि॰) अपायशून्य, जिसका विनाश न हो।

निरपेक्ष (सं॰ त्रि॰) निर्गता अपेक्षा यस्य प्रादिबहु॰। १ अपेक्षाशून्य, जिसे किसी बातकी अपेक्षा या चाह न हो, बेपरवा। २ जो किसी पर अवलम्बित न हो, जो

किसी पर निर्भर न हो। ३ आशाशून्य, जिसे किसी दूसरेको आशा न हो। ४ जिसे कुछ लगाव न हो, अलग। (स्त्री०) ५ अनादर। ६ अवहेलना।

निरपेक्षा (सं० स्त्री०) निरपेक्ष-स्त्रियां टाप्। १ अवज्ञा, परवा न होना। २ निराशा। ३ अपेक्षा या चाहका अभाव। ४ लगावका न होना।

निरपेक्षित (सं० त्रि०) १ जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो। २ जिसके साथ लगाव न रखा गया हो।

निरपेक्षी (सं० त्रि०) १ अपेक्षा या चाह न रखनेवाला। २ लगाव न रखनेवाला।

निरबंसी (हिं० वि०) जिसे वंश या सन्तान न हो।

निरबिसी (हिं० स्त्री०) निर्विषी देखो।

निरभिभव (सं० त्रि०) १ अभिभवशून्य, अपराजेय, जो जीता न जा सके। २ जो अपमानित न हो।

निरभिमान (सं० त्रि०) नास्ति अभिमानं यस्य। १ अभिमानशून्य, अहङ्काररहित।

निरभिलाष (सं० त्रि०) अभिलाषरहित, इच्छाशून्य।

निरभीमान (सं० त्रि०) निरभिमान, अहङ्कारशून्य, अभिमानरहित।

निरभ्र (सं० त्रि०) १ अभ्र वा मेघशून्य, विना बादलका। (अव्य०) २ मेघशून्य आकाशमें।

निरमण (सं० क्ली०) नियतं रमणं। १ नियत रति, अत्यन्त अनुराग। नि-रम-आधारे ल्युट्, नियतं रम्यत्यस्मिन्। २ नियताधार।

निरमर्ष (सं० त्रि०) १ अमर्षशून्य, धीर, जिसमें धैर्य हो। २ तेजोहीन, जिसमें तेज न हो।

निरमल—१ हैदराबादके अदीलाबाद जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ५४८ वर्गमील और जनसंख्या ४५५५१ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ११५ गांव लगते हैं जिनमेंसे ३५ जागीर हैं। यहांकी आय एक लाखसे अधिककी है। यहां नहरके द्वारा पानी सींचनेका अच्छा इन्तजाम है जिससे धान अधिक पैदा होता है। गोदावरी नदी इसके दक्षिणमें पड़ती है।

२ उक्त तालुकका सदर। यह अक्षां० १९° ६' उ० और देशा० ७८° २१' पू०के मध्य अवस्थित है। लोकसंख्या ७७५१ है। १७५२ ई०में यहांके राजाने निजाम सलावतजङ्ग पर जो बूसीके साथ औरङ्गाबादसे गोलकुण्डाको जा रहे थे, चढ़ाई कर दी। लड़ाईमें राजा मारे गए और इनकी सेना युद्धक्षेत्रसे भाग गई। यहां अनेक आफिस, एक अस्पताल, डाकघर और एक स्कूल है।

३ बम्बई प्रदेशके थाना जिलेका बसीन तालुकान्तर्गत एक गांव। यह अक्षा० १९° २४' उ० और देशा० ७२° ४७' पू०के मध्य बसीनशहरसे ६ मील उत्तरमें अवस्थित है। जनसंख्या २४३ है। यह एक पवित्र स्थान माना जाता है। यहां प्रतिवर्षकी ११वीं नवम्बरको एक भारी मेला लगता है जिसमें बहुतसे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी समागत होते हैं। मेला आठ दिन तक रहता है और तरह तरहकी चीजोंकी खरीद-बिक्री होती है। यहां आठ मन्दिर और एक गिर्जा घर भी देखनेमें आता है।

निरममोर (हिं० पु०) एक ओषधि या जड़ी जिससे अफीमके विषका प्रभाव दूर हो जाता है। यह जड़ी पञ्जाबमें होती है। १८६८ ई०में यह लन्दननगरके महामेलेमें भेजी गई थी।

निरमाली—बम्बई प्रदेशके माहीकान्त्य जिलेके अन्तर्गत एक छोटा राज्य।

निरमित्र (सं० त्रि०) निर्गतोऽमित्रोयस्य। १ शत्रुरहित जिसका कोई शत्रु न हो। (पु०) २ चौथे पाण्डव नकुलके पुत्रका नाम। ३ त्रिगर्त्तराजके एक पुत्रका नाम। ४ बार्हद्रथवंशीय भविष्यन्नृपभेद, अयुतायुके एक पुत्रका नाम। ५ दण्डपाणिके एक पुत्रका नाम। ६ एक ऋषि जो शिवके पुत्र माने जाते हैं। (ब्रह्माण्डपु०)

निरमोल (हिं० वि०) १ अमूल्य, जिसका मोल न हो। २ बहुत बढ़िया।

निरम्बर (सं० त्रि०) अम्बर वा वस्त्रशून्य, दिगम्बर।

निरम्बु (सं० त्रि०) १ जलहीन, विना पानीका। २ निषिद्ध जल। ३ जो जल न पीए, जो विना पानीके रहे। ४ जिसमें विना जलके रहना पड़े।

निरय (सं० पु०) निर्गतः अयोगमनं यत्र निर-इ-आधारे अच्। नरक, दोजख।

निरयस (सं० क्ली०) निर्-अय-भावे ल्युट्। १ निर्गमन। करणे ल्युट्। २ निर्गमनोपाय। ३ अयनरहित गणना,

ज्योतिषमें गणनाकी एक रीति। सूर्य राशिचक्रमें हमेशा घूमता रहता है। जितने समयमें वह एक चक्कर पूरा कर लेता है, उतने समयको एक वर्ष कहते हैं। ज्योतिषकी गणनाके लिये यह आवश्यक है, कि सूर्यके भ्रमणका आरम्भ किसी स्थानसे माना जाय। सूर्यके पथ में दो स्थान ऐसे पड़ते हैं जिन पर उसके आने पर रात और दिन समान होते हैं। इन दो स्थानोंमेंसे किसी एक स्थानसे भ्रमणका आरम्भ माना जा सकता है। लेकिन विषुवरेखा (सूर्यके मार्ग)के जिस स्थान पर सूर्यके आनेसे दिनमानकी वृद्धि होने लगती है उसे वासन्तिक विषुवपद कहते हैं। इस स्थानसे आरम्भ करके सूर्य-मार्गको ३६० अंशोंमें विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशोंको मेष, द्वितीयको वृष इत्यादि मान कर राशि विभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं, उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

परन्तु गणनाका एक दूसरा तरीका भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणनाके आरम्भकालमें मेष-राशिस्थित अश्विनीनक्षत्रके आरम्भमें दिन और रात्रि-मान बराबर स्थिर हुआ था। लेकिन नक्षत्रगण खसकता जाता है। इसलिए हरएक वर्ष अश्विनोनक्षत्र विषुव-रेखासे जहां खसका रहेगा, वहींसे राशिचक्रका आरम्भ और वर्षका प्रथम दिन मान कर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे 'निरयण' कहते हैं। भारतवर्षमें अधि-कांश पञ्चाङ्ग निरयण-गणनाके अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियोंमें 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनोंसे चले आ रहे हैं। बहुतसे विद्वानोंके मतानुसार सायन मत ही ठीक है।

निरर्गल (सं० त्रि०) निर्नास्ति अर्गलमिव प्रतिबन्धको यत्र। अनर्गल, प्रतिबन्धकशून्य, जिसे कोई बाधा न हो।

निरर्थ (सं० त्रि०) निर्गतोऽर्थो यस्मात्। १ अर्थ-शून्य, जिसका अर्थ न हो। २ व्यर्थ, निष्फल। ३ अभिधेयशून्य।

निरर्थक (सं० त्रि०) निर्गतोऽर्थो यस्य प्रादिवहु वा कप्। १ निष्फल, वेफायदा। २ अर्थशून्य, वेमानी। ३ न्यायमें एक निग्रहस्थान। ४ निष्प्रयोजन, व्यर्थ, विना मतलबका। ५ काव्यदोषभेद, काव्यका एक दोष।

निरर्थता (सं० स्त्री०) निरर्थस्य भावः निरर्थ-तल्-टाप्। अर्थशून्यता।

निरर्बुद (सं० क्लो०) १ नरकभेद, एक नरकका नाम।

निरव (सं० पु०) नि-रु-भावे अप्। नीरव, शब्दका अभाव। नि-रु-अप्। २ निष्पन्न। ३ अपालन। ४ निर्गतरक्षक।

निरवकाश (सं० त्रि०) निर्गतोऽवकाशो यस्य। १ अव-काशशून्य जिसमें अवकाश या गुंजायश न हो। (पु०) २ असम्भव कालान्तरकर्त्तव्यताक कार्य।

निरवग्रह (सं० त्रि०) निर्गतोऽवग्रहः प्रतिबन्धो यस्मात्। १ स्वतन्त्र, स्वच्छन्द, प्रतिबंधरहित। २ जो दूसरेकी इच्छा पर न हो। ३ विना विघ्न या बाधाका।

निरवच्छिन्न (सं० त्रि०) १ अनवच्छिन्न, जिसका सिल-सिला न टूटे। २ विशुद्ध, निर्मल। ३ निरन्तर, लगा-तार।

निरवद्य (सं० त्रि०) निर्गतं अवद्यं दोषः, अज्ञानं रागद्वेषादि वा यस्य। १ निर्दोष, अनिन्द्य, जिसे कोई बुरा न कहे। २ अज्ञानशून्य, रागादिशून्य परमात्मा। स्त्रियां टाप्। ३ गायत्रीभेद।

निरवद्यपुष्पवल्लभ—प्राचीन कनेरकी शिलालिपिके रच-यिता। यह एक प्रधान मंत्री थे। युद्ध और सन्धिका दारमदार इन्हींके ऊपर था।

निरवधि (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवधिर्यस्य। १ निरन्तर, लगातार, बराबर। २ असीम, अपार, वेहद। ३ सर्वदा, हमेशा।

निरवयव (सं० त्रि०) निर्गतोऽवयवो यस्य। १ अव-यवशून्य, अङ्गोंसे रहित, निराकार। न्यायके मतसे पर-माणु और आकाशादि। २ सर्वथा अवयवशून्य ब्रह्म।

निरवरोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवरोधः यस्य। अव-रोधरहित, प्रतिबन्धरहित।

निरवलम्ब (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवलम्बो यस्य। १ अवलम्बनशून्य, आधाररहित, बिना सहारेका। २ निरा-श्रय, जिसे कहीं ठिकाना न हो, जिसका कोई सहायक न हो।

निरवलम्बन (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवलम्बनं यस्य। निराश्रय, असहाय।

निरवशेष (सं० त्रि०) निर्गतोऽवशेषो यस्य। अवशेषशून्य, समग्र, समूचा।

निरवशेषित (सं० त्रि०) निःशेषित, जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो।

निरवसाद (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवसादो यस्य। अवसादशून्य, जिसे दुःख या चिन्ता न हो।

निरवसित (सं० त्रि०) निर्-अव-सो-क्त। जिसके भोजन या स्पर्शसे पात्र आदि अशुद्ध हो जायं, चाण्डाल आदि।

निरवस्कृत (सं० त्रि०) परिष्कृत, साफ किया हुआ।

निरवस्तार (सं० त्रि०) निर्नास्ति अवस्तारः आस्तरणं यत्र। आस्तरणहीन, बिना बिछौनेका।

निरवहालिका (सं० स्त्री०) निर्-अव-हल-ण्वुल्-टापि अत इत्वं। प्राचीर, दीवार, घेरा।

निरवाना (हिं० क्रि०) निरानेका काम कराना।

निरवार (हिं० पु०) १ निस्तार, छुटकारा, बचाव। २ छुड़ाने या सुलझानेका काम। ३ निबटेरा, फैसला। ४ गांठ आदि छुड़ाना, सुलझाना। ५ निर्णय करना, निबटाना, तै करना।

निरविन्द (सं० क्ली०) पर्वतरूप तीर्थभेद।

निरशन (सं० क्ली०) निर्-अश-ल्युट्। अशनस्य अभावः, अव्ययीभावः। १ अनशन, भोजनका न करना, लङ्घन, उपवास। (त्रि०) २ भोजनरहित, जिसने खाया न हो या जो न खाय। ३ जिसके अनुष्ठानमें भोजन न किया जाय, जो बिना कुछ खाए किया जाय।

निरष्ट (सं० त्रि०) अशू-आप्तौ क्त, छान्दसत्वात् षत्वम्। १ निराकृत, दूर की हुई, हटाई हुई। (पु०) निर्गतानि अष्टौ वयोव्यञ्जनानि यस्मात् डट् समासान्तः। २ चतुर्विंशतिवर्षीय अश्व, वह घोड़ा जिसकी अवस्था चौबीस वर्षकी हो।

निरस (सं० त्रि०) निवृत्तो रसो यस्मात्। १ नीरस, रसहीन, जिसमें रस न हो। २ बिना स्वादका, बदजायका, फीका। ३ निस्तत्व, असार। ४ रूखा, सूखा। ५ विरक्त। (पु०) रसस्य अभावः। ६ रसाभाव, वह जिसमें रस न हो।

निरसन (सं० क्ली०) निरस्यते क्षिप्यते इति निर्-अस-ल्युट्। १ प्रत्याख्यान, निराकरण, परिहार। २ वध। ३ निष्ठीवन, थूक। ४ प्रतिक्षेप, फेंकना, दूर करना, हटाना। ५ खारिज करना, रद करना। ६ बहिष्कृत करना, निकालना। ७ नाश।

निरसा (सं० स्त्री०) निरस-टाप्। निःश्रेणिकातृण, कोङ्कणदेशमें होनेवाली एक किस्मकी घास।

निरस्त (सं० त्रि०) निर्-अस्-क्त। १ प्रहितबाण, छोड़ा हुआ शर। २ त्वरितोदित, जल्दी निकाला हुआ। ३ शीघ्रोच्चारित, मुंहसे अस्पष्टरूपसे जल्दी जल्दी बोला हुआ। ४ निराकरणविशिष्ट, त्याग किया हुआ, अलग किया हुआ। पर्याय—प्रत्यादिष्ट, प्रत्याख्यात, निराकृत, विकृत, विप्रकृत, प्रतिक्षिप्त, अपविद्ध। ५ निष्ठ्यूत, थूका हुआ, उगला हुआ। ६ प्रेषित, भेजा हुआ। ७ वर्जित, रहित। ८ प्रतिहत, खारिज किया हुआ, रद किया हुआ। (पु०) भावे-क्त। ९ निष्ठीवन, थूक। १० विचारण, सोचनेकी क्रिया या भाव। ११ क्षेपण, फेंकनेकी क्रिया।

निरस्त्र (सं० त्रि०) निर्नास्ति अस्त्रं यस्य। अस्त्रशून्य, बिना हथियारका।

निरस्थि (सं० क्ली०) निर्गतं अस्थि यस्मात्। अस्थिहीन मांस, वह मांस जिससे हड्डी अलग की गई हो।

निरस्य (सं० त्रि०) १ निरसनीय, परिहरणीय, निरसनके योग्य। २ खण्डनीय, खण्डन करने योग्य।

निरस्यमान (सं० त्रि०) १ दूरीक्रियमाण, अलग किया हुआ, निकाला हुआ।

निरहंकृत (सं० त्रि०) अभिमानशून्य, अहङ्काररहित।

निरहंकृति (सं० स्त्री०) निरहङ्कार, निरभिमान।

निरहंक्रिय (सं० त्रि०) नष्टाहङ्कार, जिसका घमण्ड चूर हो गया हो।

निरहंमति (सं० त्रि०) निरहङ्कार, अभिमानरहित।

निरहङ्कार (सं० त्रि०) निर्गतोऽहङ्कारो यस्य। १ अभिमानशून्य, जिसे घमण्ड न हो। २ धनविद्यावत्त्वादिनिमित्त आत्मोत्कर्ष, सम्भावनाहीन, अहङ्काररहित, निरभिमान।

निरहम् (सं० त्रि०) निर्गतमहमिति बुद्धिर्यस्य। अहङ्कारशून्य, अहंभावशून्य।

निरह्न (सं० पु०) निर्गतमह्नः टच् समा०। १ निर्गत दिन। (त्रि०) २ दिनसे निर्गत।

निरा (हिं० वि०) १ विशुद्ध, बिना मेलका, खालिस। २ एकमात्र, केवल, जिसके साथ और कुछ न हो। ३ निपट, नितान्त।

निराई (हिं० स्त्री०) १ निरानेका काम, फसलके पौधोंके आसपास उगनेवाले तृण आदिको दूर करनेका काम। २ निरानेकी मजदूरी।

निराक (सं० पु०) निर्-अक-वक्रगतौ भावे घञ्। १ पाक। २ स्वेद। ३ असत् कर्मफल।

निराकरण (सं० क्ली०) निर्-आ-कृ-भावे ल्युट्। १ निवारण, किसी बुराईको दूर करनेका काम। २ खण्डन युक्ति या दलीलको काटनेका काम। ३ प्रत्याख्यान, छांटना, अलग करना। ४ मीमांसा, सिद्धान्त। ५ अवधारण, निर्णय। ६ हटाना, दूर करना। ७ मिटाना, रद करना।

निराकरिष्णु (सं० त्रि०) निराकरोति तच्छील: निर्-आ-कृ इष्णुच्। निराकरणशील, जो निवारण या दूर कर सके।

निराकरिष्णुता (सं० स्त्री०) निराकरिष्णु भावे-तल्-टाप्। निराकरणशीलका कार्य या भाव।

निराकाङ्क्ष (सं० त्रि०) निर्नास्ति आकाङ्क्षा यस्य। आकाङ्क्षाशून्य, जिसे आकाङ्क्षा न हो।

निराकाङ्क्षा (सं० स्त्री०) आकाङ्क्षाशून्यता, निस्पृहता, लोभ या लालसा न होनेका भाव।

निराकाङ्क्षिन् (सं० त्रि०) निराकाङ्क्ष अस्त्यर्थे-इनि। निराकाङ्क्षयुक्त, निस्पृह, जिसे कुछ इच्छा न हो।

निराकार (सं० पु०) निर्गत आकारो देहादि दृश्यरूपं यस्मात्। १ परमेश्वर, ब्रह्म।

"साकारञ्च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम्।
सर्वाधारञ्च सर्वञ्च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्॥
तेज: स्वरूपो भगवान् निराकारो निराश्रय:।
निर्लिप्तो निर्गुण: साक्षी स्वात्मारामपरात्पर:॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० गणपतिख० ३ अ०)

परब्रह्म निराकार हैं, वस्तुतः उनका कोई आकार नहीं हैं। ब्रह्म विषयक किसी तत्त्वकी आलोचना करना विड़म्बना मात्र है।

यह विषय वेदान्तमें इस प्रकार लिखा है,-निराकार और साकारबोधक दो प्रकारकी श्रुतियां देखनेमें आती हैं। जब श्रुतिके ही दो भेद हैं, तब ब्रह्म निराकार हैं वा साकार यह किस प्रकार स्थिर किया जा सकता है? इस प्रकारकी आपत्तिमें ब्रह्म रूपादिरहित निराकार हैं, यही स्थिर करना कर्त्तव्य है, उन्हें रूपादिमत् अर्थात् साकार स्थिर करना ठीक नहीं। क्योंकि ब्रह्मप्रतिपादक उन सब वाक्योंको निराकार ब्रह्मने ही प्रतिपादित किया है। वे स्थूल, सूक्ष्म, ह्रस्व वा दीर्घ नहीं हैं; वे अशब्द, अस्पर्श, अरूप और अव्यय हैं। वे आकाश, नाम और रूपके निर्वाहक हैं; नाम और रूप जिनके अन्तर हैं; वे ही ब्रह्म हैं। वे दिव्य, मूर्त्तिहीन, पुरुष अर्थात् पूर्ण हैं, सुतरां बाहर और भीतरमें विराजमान हैं। वे अपूर्व अनपर, अनन्तर और अवाह्य हैं। यही आत्मा ब्रह्म है और सबको अनुभूतस्वरूप है। इन सब वाक्योंसे निष्प्रपञ्च ब्रह्मात्मभावका बोध होता है और शब्दानुयायी निराकार ब्रह्मप्रधान है तथा साकार ब्रह्मबोधक वाक्य राशि उपासनाविधि प्रधान है, ऐसा अवधारित होता है। फिर भी साकार और निराकार ये दो प्रकारकी ब्रह्मबोधक श्रुतियां रहने पर भी निराकार श्रुतिमें निराकार ब्रह्मके अवधारण और साकारबोधक श्रुति अर्थके प्रत्युत्तरमें लिखा है, कि जिस प्रकार सूर्यसम्बन्धीय वा चन्द्रसम्बन्धीय आलोकके आकाशमें आच्छन्न रहने पर भी वह ऋजु और वक्रादिभाव प्राप्त अङ्गुलि आदि उपाधिके संसर्गसे ऋजु और वक्रादि भाव प्राप्तके जैसा होता है, उसी प्रकार ब्रह्म भी पृथिव्यादि उपाधिसंसर्गसे पृथिव्यादिके आकार प्राप्तके जैसे होते हैं। अतएव उपासनाके उद्देश्यसे पृथिव्यादि उपाधि अवलम्बनपूर्वक ब्रह्मका जो आकार विशेष उपदिष्ट हुआ है, वह व्यर्थ वा विरुद्ध नहीं है। वेदवाक्यका कुछ अंश सार्थक है और कुछ निरर्थक, सो नहीं। सभी वेदवाक्य प्रमाणरूपसे गण्य हैं।

उपाधियोगसे परब्रह्मकी उभय विधता—साकार और निराकार, दो प्रकारका रूप होना असम्भव है। पृथिव्यादि उपाधिसंसर्गसे ब्रह्म तदाकार प्राप्तकी तरह नहीं होते, यह विरुद्धवत् होने पर भी यथार्थमें विरुद्ध नहीं है। क्योंकि जो उपाधिसमूहका निमित्त है, वह वस्तुका धर्म नहीं है। वह अविद्याकृत है, उपाधिमात्र ही अविद्यासे उपस्थापित है। स्वभाविकी अविद्यासे रहनेसे ही लौकिक व्यवहार और शास्त्रीय व्यवहार अवतरित हुआ है।

श्रुतिमें भी लिखा है, कि ब्रह्म निर्विशेष, एकाकार और केवलचैतन्य हैं। जिस प्रकार लवणपिण्ड अनन्तर, अवाह्य, सम्पूर्ण और रसघन है, उसी प्रकार यह आत्मा अनन्तर, अवाह्य, पूर्ण और चैतन्यघन अर्थात् केवलचैतन्य है। कहनेका तात्पर्य यह, कि आत्माके अन्तर बाहर नहीं है, चैतन्य भिन्न अन्य रूप या आकार नहीं है, वे निराकार, निरवच्छिन्न हैं, चैतन्य ही उनका सार्वकालिकरूप है। जिस प्रकार लवण-पिण्डके बाहर और भीतरमें लवणरस रहता है, दूसरा कोई रस नहीं रहता, उसी प्रकार आत्मा भी बाहर और भीतरमें चैतन्यरूपी हैं, उसमें चैतन्यके सिवा और कोई रूप नहीं है।

स्मृतयन्तरमें विश्वरूपधर नारायणने नारदसे कहा था, 'तुम जो मुझे दिव्यगन्धादियुक्त अर्थात् मूर्त्ति विशिष्ट देखते हो, वह माया है। यह मुझसे ही सृष्ट हुई है। इस प्रकार जब तक मैं मायिकरूपधारी न होगा, तब तक तुम मुझे पहचान नहीं सकते।'

ब्रह्मके दो रूप हैं, मूर्त्त और अमूर्त्त। परमार्थ-रूपमें वे अरूप हैं। परन्तु उपाधिके अनुसार उनके मूर्त्त और अमूर्त्त हैं; मूर्त्तका अर्थ मूर्त्तिमत् अर्थात् स्थूल और अमूर्त्तका अर्थ सूक्ष्म होता है। पृथ्वी, जल और तेज ये तीनों ब्रह्मके मूर्त्तरूप हैं तथा वायु और आकाशद्वय अमूर्त्तरूप। मूर्त्तरूप मर्त्य मरणशील है और अमूर्त्तरूप अविनाशी। (वेदान्तद० ३।२ पु०) विशेष विवरण ब्रह्ममें देखो।

२ निर्गताकाश। ३ आकाश। (त्रि०) ४ जिसका कोई आकार न हो, जिसके आकारकी भावना न हो।

निराकाश (सं० त्रि०) निर्नास्ति आकाशं यस्य। अव-काशशून्य, पूर्ण।

निराकुल (सं० त्रि०) नितरां आकुलः। १ अत्यन्त आकुल, बहुत घबराया हुआ। २ अव्याकुल, जो क्षुब्ध या डांवाडोल न हो। ३ अनुद्विग्न, जो घबराया न हो।

निराकृत (सं० त्रि०) निर्-आ-कृ-क्त। १ प्रत्याख्यात, दूरीकृत, दूर की हुई, हटाई हुई। २ निरस्त, खंडन की हुई। ३ निवारित, रद की हुई, मिटाई हुई। ४ निर्णीत, स्थिर की हुई। ५ मीमांसित, विचारी हुई, सोची हुई।

निराकृति (सं० स्त्री०) निर्-आ-कृ-क्तिन्। १ प्रत्यादेश, निराकरण, परिहार। निर्गता आकृतिर्यस्मादिति। (त्रि०) २ आकृतिरहित, निराकार। ३ स्वाध्याय रहित, वेदपाठरहित। ४ पञ्चमहायज्ञके अनुष्ठानसे रहित। (पु०) ५ रौहितमनुपुत्र, रोहित मनुके पुत्र-का नाम।

निराकृतिन् (सं० त्रि०) निराकृतमनेन निराकृत-इनि (इष्टादिभ्यश्च। पा ५।२।८८) निराकरणकर्त्ता।

निराक्रन्द (सं० त्रि०) निर्नास्ति आक्रन्दः यस्य। १ जहां कोई पुकार सुननेवाला न हो, जहां कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो। २ जो रक्षा या सहायता न करे, जो पुकार न सुने। ३ जिसकी पुकार न सुनी जाय, जिसको कोई सहायता न करे।

निराक्रिया (सं० स्त्री०) १ बहिष्करण। २ अस्वीकार। ३ प्रतिबन्ध।

निराखाल—सतारा जिलेकी एक कृत्रिम नदी। नीरा नदी तथा भीमा नदकी उपत्यकाका कुछ अंश सींचने-के लिये निराखाल काटी गई है। निकटवर्त्ती जिले सब नगरों और ग्रामोंमें जलकष्ट था वहां इसे दूर करनेके लिए गवर्नमेण्टने यह सत्कार्य किया है। यह नहर कटवानेमें लगभग आठ लाख रुपये खर्च हुए थे। १८६८ ई०में अनावृष्टिके कारण जब पूनामें दुर्भिक्ष पड़ा था, तब प्रधान प्रधान राजकर्मचारियोंने आ कर नहर काटनेका उपाय सोचा। भीमा और नीरा नदी-के मध्य इन्दापुर इसके लिये उपयुक्त स्थान चुना गया। उसी स्थान पर नहर काटना उचित है, ऐसा उन्होंने स्थिर किया। १८७६ ई०में दुर्भिक्षनिपीड़ित लोगोंको अन्नकष्ट-से मुक्त करनेके लिये ष्ट्रेटिंग साहबने उनसे खाल कट-वाना शुरू कर दिया। नीरा नदीकी बाईं बगल हो कर निराखाल चली गई है। इसकी लम्बाई १०२ मील है। इस खालने पुरन्दर, भीमठाड़ी और इन्दा-पुर महकूमेके ८० ग्रामोंके मध्य लगभग २८०००० एकड़ जमीनको उर्वरा बना दिया है। जून माससे लेकर आधा अक्टूबर तक नीरा नदीका सब जल निराखाल हो कर बह नहीं सकता। दिसम्बरके शेष भाग तक भी नीरामें काफी जल रहता है।

कई जगह पहाड़के कारण निराखांनकी गति टेढ़ी हो गई है। कोड़ाली, मालिगांव और निमगांव आदि स्थानोंमें पहाड़को काट कर सीधा रास्ता बना दिया गया है।

निराग (सं० त्रि०) रागशून्य, रागहीन।

निरागम (सं० त्रि) आगमहीन।

निरागस् (सं० त्रि०) निर्नास्ति आगः यस्य। निष्पाप, पापशून्य।

निराग्रह (सं० त्रि०) आग्रहहीन।

निराचार (सं० वि०) निर्न विद्यते आचारो यस्य। आचारशून्य; अनाचार।

निराजी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंके करघेकी वह लकड़ी जो हत्थे और तरौंछीको मिलानेके लिये दोनोंके सिरों पर लगी रहती है।

निराजीव्य (सं० त्रि०) निर्नास्ति आजीव्य यस्य। जिसका जीविकोपाय कुछ भी न हो।

निराट (हिं० वि०) एकमात्र, बिलकुल, निपट, निरा।

निराडम्बर (सं० त्रि०) आडम्बरशून्य, आडम्बररहित।

निरातङ्क (सं० त्रि०) निर्गता आतङ्का यस्य, यस्माद्वा। १ भयशून्य। २ रोगरहित, नीरोग।

निरातप (सं० त्रि०) निर्गत आतपो यस्मात्। १ आतपशून्य। स्त्रियां टाप्। २ रात्रि, रात।

निरातपा (सं० स्त्री०) रात्रि, रात।

निरात्मक (सं० त्रि०) आत्माशून्य।

निरादर (सं० पु०) आदरका अभाव, अपमान।

निरादान (सं० पु०) १ आदान वा लेनेका अभाव २ एक बुद्धका नाम।

निरादिष्ट (सं० त्रि०) जो समाप्त कर दिया गया हो।

निरादेश (सं० पु०) १ सम्पूर्ण शोध, भुगतान, अदा करने वा चुकानेका काम। (त्रि०) २ आदेशशून्य।

निराधान (सं० त्रि०) आधाररहित।

निराधार (सं० त्रि०) १ अवलम्ब या आश्रयरहित, जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो। २ जो बिना अन्न जल आदिके हो। ३ जो प्रमाणोंसे पुष्ट न हो, बेजड़ बुनियादका, जिसे या जिसमें जीविका आदिका सहारा न हो।

निराधि (सं० त्रि०) निर्नास्ति आधिः रोगः यस्य। १ रोगशून्य, नीरोग। २ चिन्ताशून्य, मानसिक पीड़ा रहित।

निरानन्द (सं० त्रि०) १ आनन्दरहित, जिसे आनन्द न हो। २ शोकाकुल, शोकादिके कारण जिसका आनन्द नष्ट हो गया हो। (पु०) ३ आनन्दका अभाव। ४ दुःख, चिन्ता।

निराना (हिं० क्रि०) फसलके पौधोंके आसपास उगी हुई घासको खोद कर दूर करना जिसमें पौधोंकी बाढ़ न रुके, नौंदना, निकाना।

निरान्न (सं० त्रि०) निरङ्ग, अङ्गरहित।

निरापद् (सं० स्त्री०) १ आपद् वा दुःखादि परिशून्यता, जिसे कोई आपदा न हो, जिसे कोई आफत या डर न हो। २ जिससे किसी प्रकार विपत्तिकी सम्भावना न हो, जिससे हानि वा अनर्थकी आशङ्का न हो। ३ जहां अनर्थ वा विपत्तिकी आशङ्का न हो, जहां किसी बातका डर या खतरा न हो।

निराबाध (सं० पु०) निर्गता अबाधा प्रतिबन्धो यस्मात्। १ पक्षाभासविशेष। (त्रि०) २ आबाधाशून्य। ३ व्यथा शून्य। ४ प्रतिबन्धशून्य।

निराबाधकर (सं० त्रि०) जो अनिष्ट वा कष्टकर न हो।

निरामज्वर (सं० पु०) पक्वज्वर।

निरामय (सं० त्रि०) निर्गत आमयो व्याधिर्यस्मात्। १ रोगशून्य, जिसे रोग न हो, नीरोग, भलाचङ्गा, तन्दुरुस्त। पर्याय—वार्त्त, कल्य, नीरुज, पटु, उल्लाघ, लघु, अगद, निरातङ्क, अनातङ्क। २ उपद्रवशून्य। ३ रोगनाशक। (पु०) ४ वनछागल, जंगली बकरा। ५ शूकर, सूअर। ६ नृपभेद, एक राजाका नाम। ७ महादेव, शिव। (क्ली०) ८ कुशल।

निरामर्द (सं० पु०) महाभारतीय नृपभेद, महाभारतमें एक राजाका नाम।

निरामालु (सं० पु०) १ कपित्थ, कैथका पेड़। २ कतबेल, निर्मली।

निरामिन् (सं० त्रि०) नितरां रमणशील।

निरामिष (सं० त्रि०) निर्गतमामिषाभिलाषो मांसाद्यामिषं वा यस्मात् प्रादिबहु०। १ लोमशून्य, जिसके रोएं

न हो। २ मांसादि आमिषशून्य, मांसरहित, जिसमें मांस न मिला हो। ३ जो मांस न खाय। (पु०) ४ आमिषरहित अन्नादि, बिना मांसका भोजन।

निरामिषाशिन् (सं॰ त्रि॰) १ निरामिषभोजी। २ जितेन्द्रिय।

निराय (सं॰ त्रि॰) आयरहित, करशून्य।

निरायण—अयनरहित (Destitute of precession)। सौरमण्डलके ध्रुवकको किसी निर्दिष्ट स्थानसे गणना की जाती है। इस निर्दिष्ट स्थानका नाम है 'वासन्तिक विषुवपद'। वासन्तिक विषुवपदसे घूम कर पुनः उसी स्थान पर आनेमें सूर्यको ३६५ दिन १४ घड़ी ३१' ९७२ पल लगता है। इस समयको 'सायनवत्सर' (The tropical year) कहते हैं। किन्तु सूर्यसिद्धान्तके मतसे वर्षका परिमाण ३६५ दिन १५ घड़ी ३१' ५२२ पल है। शेषोक्त समयमें सूर्य वासन्तिक विषुवपदसे चल कर पुनः वार यह स्थान पार कर ५८८६८८१ सेकेण्डमें इतखण्डका परिभ्रमण करता है। सुतरां हिन्दूज्योतिषियोंके मतसे गतिके आरम्भका स्थान क्रमशः पूर्वकी ओर हट जाता है। इस प्रकार यह २२ डिग्रीसे भी अधिक हट जाता है। इन दोनोंके पार्थक्य (difference)को अयनांश (Degrees of precession) कहते हैं।

अभी सौरमण्डलस्थ पदार्थोंके ध्रुवकको दो प्रकारसे गणना की जा सकती है; यथा—प्रथम विषुव (Equinox)से; द्वितीय हिन्दूज्योतिषियोंके मतसे। प्रथम प्रकारसे सौरमण्डलके पदार्थोंका ध्रुवक अयनांशविशिष्ट है, अतएव वही ध्रुवक समुदाय 'सायन' कहलाता है। किन्तु द्वितीय प्रकारसे सभी ध्रुवक अयनांशरहित हैं, सुतरां वे 'निरायण' कहलाते हैं।

निरायत (सं॰ त्रि॰) १ विस्तृत। २ बद्ध, अनायत।

निरायव्ययवत् (सं॰ पु॰) अलसव्यक्ति, वह जो अपनी जीविका निर्वाहके लिए कुछ भी चेष्टा नहीं करता।

निरायास (सं॰ त्रि॰) आयास वा चेष्टारहित।

निरायुध (सं॰ त्रि॰) निरस्त्र, अस्त्रहीन, बिना हथियारका।

निरारम्भ (सं॰ त्रि॰) आरम्भ वा कार्यशून्य।

निरालक (सं॰ पु॰) समुद्र-मत्स्यभेद, एक प्रकारकी समुद्री मछली।

निरालम्ब (सं॰ त्रि॰) निर्गत आलम्बः अवलम्बनं यस्य, प्रादिबहु॰। १ अवलम्बनशून्य, बिना आलम्ब या सहारेका, निराधार। २ निराश्रय, बिना ठिकानेका। (पु॰) ३ यजुर्वेदीय उपनिषद्भेद।

निरालम्बा (सं॰ स्त्री॰) निर्नास्ति आलम्बो यस्याः। आकाशमांसी, छोटी जटामांसी।

निरालम्बन (सं॰ त्रि॰) निर्गतः आलम्बनः अवलम्बनं यस्य। निराश्रय, बिना ठिकानेका।

निरालम्बोपनिषद् (सं॰ स्त्री॰) यजुर्वेदीय उपनिषद्भेद।

निरालस (हिं॰ वि॰) निरालस्य देखो।

निरालस्य (सं॰ त्रि॰) १ आलस्यरहित, जिसमें आलस्य न हो, तत्पर, फुरतीला, चुस्त। (पु॰) २ आलस्यका अभाव।

निराला (हिं॰ पु॰) १ एकान्त स्थान, ऐसा स्थान जहां कोई मनुष्य या बस्ती न हो। (वि॰) २ एकान्त, निर्जन। ३ विलक्षण, अद्भुत, सबसे भिन्न। ४ अनुपम, अपूर्व, अनोखा, बहुत बढ़िया।

निराली—एक प्रकारकी निम्न जाति। ये लोग अहमदनगर, पूना और शोलापुरमें अधिक संख्यामें पाए जाते हैं। इनका दूसरा नाम नील-रंगकारी है। उक्त तीन स्थानके निरालियोंके आचार व्यवहार, रीतिनीति आदिमें सादृश्य तो है, लेकिन यहां पर प्रत्येक स्थानके निरालियोंके कार्यकलापका पृथक् रूपसे वर्णन किया गया है।

इसके पहले वे कहां वास करते थे और कब इस अञ्चलमें आए, इसके विषयमें कुछ भी पता नहीं चलता। बहुतोंका विश्वास है, कि ये लोग पहले महाराष्ट्रके 'कुणबी' सम्प्रदायभुक्त थे। पीछे नील रंगका कार्य करनेके कारण ये जातिच्युत किये गये और निराली कहलाए। तभीसे इस जातिके लोग निम्न समझे जाते हैं। इन लोगोंमें पुरुष नामके पहले आपा अर्थात् पिता और स्त्री नामके पहले बाई या आई (अर्थात् माता) शब्द रहता है। इन लोगोंके कुल देवताओंमें अहमदनगरके सोमारोके भैरव, निजामराज्यके तुलजापुरकी देवी, अहमदनगरकी कालकादेवी और पूनाके अन्तर्गत जेजुरीके खण्डोवा प्रसिद्ध हैं। पुष्पचन्दनादि द्वारा ये

लोग उक्त कुलदेवताओंकी पूजा करते हैं। हिन्दूके जितने पर्व और उत्सवादि हैं उनका ये लोग प्रतिपालन करते हैं।

ये लोग देखनेमें काले और बलवान् होते हैं। स्थानीय कुनबियोंकी तरह इनको गठन बहुत सुन्दर है। किन्तु हाथोंमें काले काले दाग रहनेके कारण ये लोग कुनबियोंमें छिपते नहीं, बहुत आसानीसे पहचाने जाते हैं। घर तथा बाहर सभी जगह ये लोग मराठी भाषा बोलते हैं।

निरालीपुरुषगण समूचा सिर मुँड़ा लेते हैं, केवल बीचमें थोड़ी शिखा रहने देते हैं। दाढ़ी और मूँछ भी ये लोग बढ़ाते हैं। इनका पहरावा धोती, कोट और महाराष्ट्रमें प्रचलित पगड़ी है। जूता और खड़ाऊंका भी व्यवहार होता है। स्त्रियां महाराष्ट्रीय रमणियोंसी पोशाक पहनती हैं। स्त्री पुरुष दोनों ही अलङ्कार पहनना पसन्द करते हैं और सब कोई पर्वके दिनमें उत्कृष्ट-पोशाक परिच्छदका व्यवहार करते हैं। ये लोग उच्च हिन्दूके जैसा प्रतिदिन स्नान करते और सन्ध्याह्निक समाप्त करके भोजनादि करते हैं।

निराली लोग अतीव परिष्कारपरिच्छन्न, श्रमशील, शान्तिप्रिय, सच्चरित्र, मितव्ययी और दानशील होते हैं, नीलरंग करना ही इनका पैतृक व्यवसाय है। स्त्रियां रंगको चूरने और कपड़ा रंगानेमें पुरुषकी सहायता करती है। बचपनमें ये लोग थोड़ा लिख पढ़ कर जातीय व्यवसायमें लग जाते हैं।

विवाह और श्राद्धोपलक्षमें आत्मीय वन्धु निमन्त्रित होते हैं। स्थानीय पुरोहितगण विवाह और श्राद्धकार्य कराते हैं। निराली लोग स्मार्त्त हैं। ये लोग आलन्दी, काशी, जेजुरी और तुलजापुर आदि तीर्थोंमें जाते हैं। इनमें विधवाविवाह, बहुविवाह और बाल्यविवाह प्रचलित है। ज्योतिषियोंकी गणना शान्तिस्वस्त्ययन और यादु आदिमें इनका पूरा विश्वास है। मराठी कुनबीकी आचारपद्धति और इनकी पद्धतिमें कोई प्रभेद देखनेमें नहीं आता। पञ्चायत द्वारा सामाजिक व्यवस्था मीमांसित होती है।

शोलापुरके निराली दो श्रेणियोंमें विभक्त है। यथा—१म मूलनिराली, २य काडू अर्थात् शङ्कर-निराली। इस श्रेणीके लोग एक साथ खाते पीते हैं, किन्तु आपसमें आदान प्रदान नहीं होता। इनके आदि-पुरुषका नाम 'प्रकाश' है। प्रकाशकी माताका नाम कुकुत और पिताका नाम शाभोर था। ये लोग महाराष्ट्रीय भाषा बोलते हैं।

सर्वदा प्रचलित नामोंके मध्य चित्रकार, कज, कालस्कार, कण्डारकर आदिका अधिक प्रचार है। क्रियाकर्मके उपलक्षमें ये लोग भात, रोटी और दालका भोज देते हैं सही, किन्तु साधारणतः इनका प्रधान भोजन रोटी, दाल और तरकारी है। ये लोग मांस, मछली नहीं खाते और न शराब ही पीते हैं।

इनकी स्त्री और पुत्रकन्याएं इन्हें काम-काजमें सहायता पहुंचाती रहती हैं। इनके प्रधान आराध्य देवता अम्बाबाई, खाण्डोबा और वाल्होबा हैं।

ये लोग शवदाह करते हैं और कभी कभी जमीनमें गाड़ भी देते हैं। दश दिन तक अशौच मानते और तेरहवें दिनमें श्राद्धादि करते हैं।

पूना और शोलापुरमें अहमदनगरवासी निराली आ कर बस गए हैं। इनकी संख्या बहुत कम है। आचार व्यवहार दूसरे स्थानके निरालियोंके जैसा है। पर हां, कहीं कहीं प्रभेद भी देखनेमें आता है।

इनको आकृति नातिस्थूल और खर्व है। ये लोग बहुत बलवान् होते और दाढ़ी मूंछ कुछ भी नहीं रखते, केवल मस्तकके ऊपर थोड़ी शिखा रहने देते हैं। मद, मांस, मत्स्य आदिके व्यवहारमें ये तनिक भी आपत्ति नहीं करते।

सन्तान भूमिष्ठ होनेके पांचवें दिन ये लोग जांतेके ऊपर पांच नीबू और पांच अनारकी कली रख कर दीप जलाते और पूजा करते हैं। दशवें दिनमें प्रसूतिके शुचि होनेके बाद ग्यारहवें दिनमें सन्तानका नामकरण होता है।

मुर्देको सफेद कपड़ेसे ढक कर उस पर पुष्पादि बिछा देते और श्मशान ले जाते हैं। जो स्त्री विवाहित होती, उसकी मृतदेहको हल्दी रङ्गके कपड़ेसे ढक देते हैं। कोई मृतदेहको दग्ध करते और कोई गाड़ते है।

निरालोक (सं० त्रि०) निर्गत आलोको यस्मात्। १ आलोकशून्य, अन्धकार। २ आलोकरहित, जिससे प्रकाश निकल गया हो।

निरावर्ष (सं० त्रि०) वृष्टिसे निवारित, वृष्टिसे रक्षणीय।

निरावलम्ब (सं० त्रि०) निराधार, बिना सहारेका।

निराश (सं० त्रि०) निर्गता आशा यस्य। आशारहित, जिसकी आशा न हो, नाउम्मीद।

निराशक (सं० त्रि०) निराशकारी, निराश करनेवाला।

निराशङ्क (सं० त्रि०) निर्नास्ति आशङ्का यस्य। आशङ्कारहित, जिसमें किसी बातका सन्देह न हो।

निराशता (सं० स्त्री०) निराशस्य भावः, निराश-तल्-टाप्। निराशाका भाव या धर्म।

निराशा (सं० स्त्री०) आशाका अभाव, नाउम्मेदी।

निराशित्व (सं० क्ली०) निराशिनो भावः, निराशिन्-त्व। आशारहित्य, निराशाका भाव।

निराशिन् (सं० त्रि०) हताश, नाउम्मीद।

निराशिष् (सं० त्रि०) निर्गता आशीराशंसनं यस्य। १ आशीर्वादशून्य। २ दृढ़ वैराग्यवशतः विगततृष्ण, तृष्णारहित।

निराश्रम (सं० त्रि०) निर्नास्ति आश्रमो यस्य। आश्रमरहित, आश्रमशून्य, बिना आश्रय या सहारेका।

निराश्रय (सं० त्रि०) निर्गत आश्रय आधारो अवलम्बनं वा यस्य। १ आश्रयरहित, आधारहीन, बिना सहारेका। २ असहाय, जिसे कहीं ठिकाना न हो। ३ निर्लिप्त, जिसे शरीर आदि पर ममता न हो।

निरास (सं० पु०) निर्-अस भावे घञ्। १ प्रत्याख्यान, निराकरण, दूर करना। २ खण्डन। (त्रि०) ३ निरासक्त।

निरासन (सं० क्ली०) निर्, आस उपवेशने ल्युट्। १ निरसन, दूर करना। २ खण्डन। (त्रि०) ३ आसनरहित।

निरास्वाद (सं० त्रि०) निर्नास्ति आस्वादो यस्य। आस्वादहीन।

निरास्वाद्य (सं० त्रि०) १ आस्वादरहित। २ सम्भोगरहित।

निराह्वानत् (सं० त्रि०) आह्वानरहित, प्रार्थनाशून्य।

निराहार (सं० त्रि०) निर्गत आहारो यस्य। १ आहाररहित, जो बिना भोजनके हो। २ निवृत्त आहार, जिसके अनुष्ठानमें भोजन न किया जाता हो। (क्ली०) ३ आहारका अभाव।

निरिङ्ग (सं० त्रि०) निश्चल, अचल।

निरिङ्गिणी (सं० स्त्री०) नि-निश्चितं जनं इङ्गति प्राप्नोतीति निर्-इङ्ग-इनि। ततो ङीप्। तिरस्करिणी, चिक, झिलमिली, परदा। पर्याय—अवगुण्ठिका, पटी, यवनिका।

निरिच्छ (सं० त्रि०) निर्नास्ति इच्छा यस्य। इच्छाशून्य, जिसे कोई इच्छा न हो।

निरिन्द्रिय (सं० त्रि०) निर्गतानि इन्द्रियाणि यस्मात्। १ इन्द्रियशून्य, जिसमें कोई इन्द्रिय न हो।

> अनंशौ क्लीवपतितौ जात्यन्धबधिरौ तथा।
> उन्मत्तजड़मूकाश्च ये च केचिन्निरिन्द्रियाः॥"
>
> (मनु० ९।२०१)

क्लीव, पतित, जन्मान्ध, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक और काना ये सब निरिन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियरहित हैं। निरिन्द्रियव्यक्ति पितृधनके अधिकारी नहीं हैं। २ जिसके हाथ, पैर, आंख, कान आदि न हों या कामके न हों।

निरिन्धन (सं० त्रि०) इन्धनशून्य।

निरी (हिं० वि०) निरा देखो।

निरीक्षक (सं० त्रि०) निर्-ईक्ष-ण्वुल्। १ दर्शक, देखनेवाला। २ देखरेख करनेवाला।

निरीक्षण (सं० क्ली०) निर्-ईक्ष- ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ देखरेख, निगरानी। ३ देखनेकी मुद्रा या ढंग, चितवन। ४ नेत्र, आंख। निरीक्षते निर्-ईक्ष-ल्यु। (त्रि०) ५ दर्शक, देखनेवाला।

निरीक्षमाण (सं० त्रि०) निर्-ईक्ष-शानच्। जो देख रहा हो।

निरीक्षा (सं० स्त्री०) निर्-ईक्ष-स्त्रियां-अ। दर्शन, देखना।

निरीक्षित (सं० क्ली०) निर्-ईक्ष-क्त। १ अवलोकित, देखा हुआ। २ देखा भाला हुआ, जांच किया हुआ।

निरीक्ष्य (सं० त्रि०) दर्शनयोग्य, देखने लायक।

निरीक्ष्यमाण (सं० त्रि०) निर्-ईक्ष-शानच्। दृश्यमान, जिसको देखते हों, जो देखा जाता हो।

निरीति (सं० त्रि०) निर्गता ईतिर्यत्र। ईतिरहित, अतिवृष्ट्यादिशून्य। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषिक, पतङ्ग, पक्षी और निकटस्थित शत्रु राजा ये छः ईतिरहित हैं।

निरीश (सं० क्ली०) निर्गता ईशा यस्मात्। १ हलका फाल। (त्रि०) निर्नास्ति ईश ईश्वरो यस्य। २ ईश-शून्य, जिसे ईश या स्वामी न हो, बिना मालिकका। ३ अनीश्वरवादी, नास्तिक, जिसकी समझमें ईश्वर न हो।

निरीश्वर (सं० त्रि०) निरस्त्यक्त ईश्वरो यत्र। १ ईश्वर-रहितवाद, जिस वादसे ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। २ नास्तिक, अनीश्वरवादी।

निरीश्वरवाद (सं० पु०) निरीश्वरो वादः। निरीश्वर-विषयक वाद, यह सिद्धान्त कि कोई ईश्वर नहीं है।

निरीश्वरवादिन् (सं० पु०) निरीश्वरोवादोऽस्यास्तीति इनि। नास्तिकवादी, जो ईश्वरका अस्तित्व न माने।

निरीष (सं० क्ली०) निर्गता ईषा यस्मात्। निरीश, हलका फाल।

निरीह (सं० त्रि०) निर्गता ईहा यस्य। १ चेष्टाशून्य, जो किसी बातके लिये प्रयत्न न करे। २ जिसे किसी बातकी चाह न हो। ३ विरक्त, उदासीन, जो सब बातोंसे किनारे रहे। ४ तटस्थ, जो किसी बखेड़ेमें न पड़े। ५ शान्तिप्रिय, जो सबके साथ मेलसे रहता हो। (पु०) ६ विष्णु।

निरीहा (सं० स्त्री०) निरीह-टाप्। १ चेष्टाविरोधि-व्यापार, निश्चेष्टा, चेष्टाका अभाव। २ विरक्त, चाहका न होना।

निरुआर (हिं० पु०) निरुवार देखो।

निरुआरना (हिं० क्रि०) निरुवारना देखो।

निरुक्त (सं० क्ली०) निर्-वच-क्त, नि निश्चयेन उक्तं। १ निर्वचन, छः वेदाङ्गोंमेंसे एक वेदका चौथा अंग।

निरुक्त पांच प्रकारका है—वर्णागम, वर्णविपर्यय, वर्णविकारनाश, धातु और उसका अर्थातिशययोग। वैदिक शब्दोंके निघण्टुकी जो व्याख्या यास्क मुनिने की है उसे निरुक्त कहते हैं। इसमें वैदिक शब्दोंके अर्थोंका निर्णय किया गया है। यह पञ्चाध्यायात्मक है, जिनके नाम ये हैं—अध्ययनविधि, छन्दःप्रविभाग, छन्दविनियोग, उपलक्षित कर्माङ्ग भूतकाल और उपदर्शित लक्षण। इन सब अङ्गोंसे वेदका अर्थ जाना जाता है, इसीसे निरुक्त वेदका अङ्ग माना गया है। यह सभी अङ्गोंमें प्रधान है। क्योंकि इसमें अर्थ दिया गया है। अर्थ ही सर्वापेक्षा प्रधान है। कारण अर्थका बोध नहीं होनेसे कोई फल नहीं होता, वैदिक शब्दका अर्थ जाननेके लिये निरुक्त ही प्रधान है। इसमें तात्पर्यके साथ अशेष सभी शब्दोंकी व्याख्या की गई है। अनिरुक्त अर्थात् निरुक्तसम्मत नहीं है, इस प्रकार मन्त्रार्थ व्याख्या करना उचित नहीं। निरुक्तसम्मत सभी मन्त्रार्थ-की व्याख्या करनी होती है। इस प्रकार अर्थका परि-ज्ञान होनेके कारण यह प्रधान है। इसमें निम्नलिखित विषय प्रतिपादित हुए हैं—

नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातलक्षण, भाव विकारलक्षण, नाम और आख्यातज यथाक्रम उपन्यस्त हो कर पक्ष और प्रतिपक्षके रूपमें उनका विचार कर अवधारण, पदविभागपरिज्ञान, प्रतिज्ञानबोधके अव-लम्बित प्रदर्शनके लिये आदि, मध्य और अन्त तथा अनेकदैवतलिङ्गसङ्कटमन्त्रसे याज्ञिक परिज्ञान द्वारा दैवतापरिज्ञानप्रतिज्ञा, अर्थज्ञप्रशंसा, अनर्थज्ञावधारण, वेदवेदाङ्गव्यूह, सप्रयोजन निघण्टुसमाम्नायविर-चन, प्रकरणत्रयविभाग द्वारा नैघण्टुकप्रधान दैवता-भिधान प्रविभागलक्षण, निर्वचन-लक्षण द्वारा शब्दवृत्ति विषयोपदेश, अर्थप्राधान्यानुसारलोप, उपधा, विकार, वर्णलोप और वर्णविपर्यय, इन सब उपदेश द्वारा सामर्थ्यप्रदर्शनके निमित्त आदि, मध्य और अन्त लोप तथा उपधा, विकार, वर्णलोपविपर्यय, आद्यन्तवर्ण-व्यापत्ति और वर्णोपजनन उदाहरणचिन्ता, अन्तःस्थ और अन्तधातुनिमित्त सम्प्रसार्य और असम्प्रसार्य उभय-प्रकृतिधातु निर्वचनोपदेश भाषिकप्रवृत्तिसे नैगम शब्दार्थ प्रसिद्धि, देश व्यवस्था द्वारा शब्दरूपव्ययदेश, शिष्यलक्षण, विशेष व्याख्या द्वारा तत्त्वपर्यायभेद, संख्या, संदिग्ध और उदाहरण द्वारा नाम, आख्यात उपसर्ग और निपातके विभागानुसार नैघण्टु प्रकरणका अनुक्रम, अनेकार्थ शब्दके अनवगतसंस्कारका अनुक्रमण, परोक्षकृत आध्यात्मिक मन्त्रलक्षण, स्तुति, आशीर्वाद, शपथ, अभिशाप, अभिख्या, परिवेदना, निन्दा और

प्रश्न आदि द्वारा मन्त्राभिव्यक्तिहेतूपदेश; निदान-परिज्ञान-व्याख्यापनके निमित्त अनादिष्टदेवतोपपरीक्षणके लिये अध्यात्मोपदेशका प्रकृतिमूलत्व; इतरेतरजन्मत्व; स्थान त्रयभेदसे तीनकी एकावस्था, महाभाग्यवत्तके अनेक नामधेय प्रतिलम्भ; उत्पत्तिके सम्बन्धमें पृथक् अभिधान; देवताओंका आकारचिन्तन; भक्तिसाहचर्य, संस्तव कम, सूक्तभाक्, हविर्भाक् और व्यञ्जनभाक् संवद; पृथिवी, अन्तरीक्ष, द्युस्थान और देवताओंका अभिधेयभिधान तथा व्युत्पत्तिप्राधान्यका अत्युदाहरण; इन सबका निर्वाचनविचार और उपपत्ति अवधारणानुसार दैवतप्रकरणनिर्णय; विद्यापारप्राप्त्युपायोपदेश और मन्त्रके अर्थ निर्वचन द्वारा देवताभिधान निर्वचनफल। निरुक्तशास्त्रमें यही सब विषय प्रतिपादित हुए हैं।'

अमरटीकाकार भरतने निरुक्त शब्दका अर्थ किया है, निश्चयरूपसे उक्त=निरुक्त।

हेमचन्द्रके मतसे पदभञ्जनका नाम निरुक्त है। ऋगनुक्रमणिकामें लिखा है, कि निरुक्त वेदव्याख्याका प्रधानतम उपकरण है। यह वैदिक अभिधान विशेष है। शाकपूणि, ऊर्णनाभ और स्थौलाष्ठिवी ये तीन प्राचीन निरुक्तकार हैं। यास्क इन सबके बहुत पहले हुए हैं। निरुक्तमें वेदमन्त्रकी यथारीति व्याख्या की गई है। यास्कने उक्त ग्रन्थमें नाम, संख्या, आख्यात, उपसर्ग और निपातकी सविशेष आलोचना की है।

किसीके मतसे निरुक्तके १२ अध्याय हैं। प्रथममें व्याकरण और शब्दशास्त्र पर सूक्ष्म विचार हैं। इतने प्राचीन कालमें शब्दशास्त्र पर ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता। शब्दशास्त्र पर दो मत प्रचलित थे, इसका पता हम लोगोंको यास्कके निरुक्तसे लगता है। कुछ लोगोंका मत था, कि सब शब्द धातुमूलक हैं और धातु क्रियापदमात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगा कर भिन्न भिन्न शब्द बनते हैं। यास्कने इसी मतका मण्डन किया है। इस मतके विरोधियोंका कहना था, कि कुछ शब्द धातुरूप क्रियापदोंसे बनते हैं, पर सब नहीं। क्योंकि यदि 'अश'से अश्व माना जाय, तो प्रत्येक चलने या आगे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलायगा। इसके उत्तरमें यास्क मुनिने कहा है, कि जब एक क्रियासे एक पदार्थका नाम पड़ जाता है, तब वही क्रिया करनेवाले और पदार्थको वह नाम नहीं दिया जाता। दूसरे पक्षका एक और विरोध यह था, कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए हैं, तो किसी पदार्थमें जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी होने चाहिए। इस पर यास्क कहते हैं, कि एक पदार्थ किसी एक गुण या कर्मसे एक नामको धारण करता है। इसी प्रकार और भी समझिए।

दूसरे और तीसरे अध्यायमें तीन निघण्टुओंके शब्दोंके अर्थ प्रायः व्याख्या सहित हैं, चौथेसे छठे अध्याय तक चौथे निघण्टुकी व्याख्या है। सातवेंसे बारहवें तक पाँचवें निघण्टुके वैदिक देवताओंकी व्याख्या है। (त्रि०) २ निश्चयरूपसे कहा हुआ, व्याख्या किया हुआ। ३ नियुक्त, ठहराया हुआ।

निरुक्तकार (सं० पु०) निरुक्तः नामग्रंथं करोतीति कृ-अण्। १ यास्क। २ शाकपूणि। ३ स्थौलष्ठिवी। ४ मेघदूतके एक टीकाकार। मल्लिनाथने इनका नामोल्लेख किया है।

निरुक्तकृत् (सं० पु०) निरुक्तं करोति कृ-क्विप् तुक् च। निरुक्तकार।

निरुक्तज (सं० पु०) निरुक्तः नियुक्तः अस्यां पुत्रमुत्पादयेत्युक्तः अन्यस्तस्माद् जायते जन-ड। क्षेत्रज पुत्र।

निरुक्तवत् (सं० पु०) निरुक्तकार।

निरुक्ति (सं० स्त्री०) निर्-वच-क्तिन्। १ निर्वचन, किसी पद या वाक्यकी ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदिका पूरा कथन हो। २ एक काव्यालङ्कार जिसमें किसी शब्दका मनमाना अर्थ किया जाय, परन्तु वह अर्थ मयुक्तिक हो। जैसे, रूप आदि गुणसों भरो तजि कै व्रज वनितान उद्धव कुबजा वस भए, निर्गुण वहै निदान। तात्पर्य यह कि गुणवती व्रज वनिताओंको छोड़ कर 'गुणरहित' कुब्जाके वश होनेसे कृष्ण अब सचमुच 'निर्गुण' हो गए हैं।

निरुक्तिसम्वित् (सं० स्त्री०) धर्मविचारके लिये जो ऐकान्तिकी इच्छा होती है, उसीको बौद्धके मतसे निरुक्तिसम्वित् कहते हैं।

निरुच्छ्वास (सं० त्रि०) १ सङ्कीर्ण, सँकरा, जो बहुतसे

लोग न अट सकें। २ अनाकीर्ण, जहां ठसाठस लोग भरे हों, जहां खड़े होने तककी जगह न हो। ३ आनन्दविहीन, क्षुब्ध।

निरुत्तर (सं॰ त्रि॰) १ उत्तररहित, जिसका कुछ उत्तर न हो, लाजवाब। २ जो उत्तर न दे सके, जो कायल हो जाय।

निरुत्पात (सं॰ त्रि॰) उत्पातहीन, उपद्रवशून्य।

निरुत्सव (सं॰ त्रि॰) निर्गतिः उत्सवो यस्य। उत्सवहीन, धूमधामरहित।

निरुत्साह (सं॰ त्रि॰) उत्साहहीन, जिसे उत्साह न हो।

निरुत्सुक (सं॰ त्रि॰) नितरामुत्सुकः। १ अत्यन्त उत्सुक। २ औत्सुक्यहीन। (पु॰) ३ रैवतक मनुके एक पुत्रका नाम।

निरुदक (सं॰ त्रि॰) जलहीन, जलाभाव।

निरुदकादि (सं॰ पु॰) पाणिनिगणसूत्रोक्त शब्दगणभेद। यथा—निरुदक, निरुपल, निर्मक्षिक, निर्मशक, निष्कालिक, निर्द्वेष, दुस्तरीप, निस्तरीप, निस्तरीक, निराजित उदजिन, उपाजिन।

निरुद्ध (सं॰ त्रि॰) नि-रुध-कर्मणि-क्त। १ संरुद्ध, रुका हुआ, बंधा हुआ। (पु॰) २ योगमें पांच प्रकारकी मनोवृत्तियोंमेंसे एक, चित्तकी वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृतिको प्राप्त हो कर निश्चेष्ट हो जाता है। इसका विषय पातञ्जलदर्शनमें इस प्रकार लिखा है—मनोवृत्ति रुद्ध करनेका नाम योग है। मनकी वृत्तियां पांच प्रकारकी हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। यहां पर निरुद्ध वृत्ति ही वर्णनीय है, इस कारण क्षिप्त आदिका विषय विशेषरूपसे नहीं लिखा गया। मनकी अस्थिरता अर्थात् चञ्चलताका नाम क्षिप्तावस्था है। मन कभी स्थिर नहीं रहता, कभी इधर, कभी उधर हमेशा चलायमान रहता है। मन जब कर्त्तव्याकर्त्तव्यको अग्राह्य कर कामक्रोधादिके वशीभूत हो जाता है, निन्द्रा तन्द्रादिके अधीन होता है तथा आलस्यादि विविध तमोमय अवस्थामें निमग्न रहता है, तब उसे मूढ़ावस्था कहते हैं।

विक्षिप्त अवस्थाके साथ पूर्वोक्त क्षिप्तावस्थाका बहुत थोड़ा प्रभेद है; वह प्रभेद है केवल चित्तके पूर्वोक्त प्रकारके चाञ्चल्यके मध्य क्षणिकस्थिरता। मनका चञ्चलस्वभाव होने पर भी बीच बीचमें वह जो स्थिर हो जाता है, उसी क्षणिकस्थिरताका नाम विक्षिप्तावस्था है। चित्त जब दुःखजनक विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर रहता है, विराम्यस्त चञ्चलताका परित्याग कर क्षणकालके लिये निरवतुल्य होता है, तब उसकी वैसी अवस्था विक्षिप्तावस्था कहलाती है।

एकाग्र और एकतान ये दो शब्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक बाह्य वस्तु अथवा आभ्यन्तरीण वस्तुका अवलम्बन कर निर्वातस्थ निश्चल, निष्कम्प दीपशिखाकी तरह स्थिर वा अकम्पित भावमें वर्त्तमान रहता है अथवा चित्तकी रजस्तमोवृत्तिका अभिभूत हो जानेसे केवलमात्र सात्त्विकवृत्ति उदित रहती है अर्थात् प्रकाशमय और सुखमय सात्त्विक वृत्ति मात्र प्रवाहित रहती, तब उसकी ऐसी अवस्थाको एकाग्र अवस्था कहते हैं।

अब निरुद्ध अवस्थाका भी विषय जानना आवश्यक है। पूर्वोक्त एकाग्र अवस्थाकी अपेक्षा निरुद्धावस्थामें बहुत अन्तर है। एकाग्र अवस्थामें चित्तका कोई न कोई अवलम्बन अवश्य रहता है, किन्तु निरुद्धावस्थामें वह नहीं रहता। चित्त जब अपनी कारणीभूत प्रकृतिको पा कर कृतकृतार्थकी तरह निश्चेष्ट रहता है, उस समय उससे दग्धसूत्रकी तरह केवलमात्र संस्कारभावापन्न हो कर रहने पर भी उसका किसी प्रकारका विसदृश परिणाम नहीं रहता। इस प्रकार चित्तकी अवस्था होनेसे उसे निरुद्धावस्था कहते हैं।

इन पांच प्रकारकी चित्तवृत्तियोंमेंसे एकाग्र और निरुद्ध अवस्थामें योग हुआ करता है। चित्तकी निरुद्ध अवस्था ही योग शब्दका प्रकृत वा मुख्य अर्थ है।

निरुद्ध अवस्था सहजमें बोधगम्य नहीं हो सकती। चित्तको निरुद्ध करनेमें पहले क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त अवस्थाको दूर करना होता है। उसके बाद एकाग्र और निरुद्ध अवस्था होती है।

चित्तकी निरुद्धावस्था होनेसे मनका लय होता है। मनका लय होनेसे आत्मा द्रष्टृस्वरूपमें अवस्थान करती है। (पातंजलद॰ समाधिपा॰)

निरुद्धगुद (सं० पु०) क्षुद्ररोगविशेष, एक रोग जिसमें मलद्वार बंद सा हो जाता है। मलवेग धारण करनेसे वायु प्रतिहत हो कर गुह्यदेशमें आश्रय लेती है और मल निकलनेके प्रधान स्रोतको बन्द कर देती है। ऐसा करनेसे मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कष्टसे निकलता है। इसीको निरुद्धगुदव्याधि कहते हैं। यह व्याधि बहुत कष्टकर है। (सुश्रुत) निरुद्धप्रकाश देखो।

मलवेगके धारण करनेसे कुपित अपानवायु मलवाही स्रोतको सङ्कुचित कर गुह्यद्वारको सूक्ष्म कर देती है, इसी कारण मल बहुत कष्टसे निकलता है। इस रोगमें वातघ्न तैल द्वारा परिषेक और निरुद्धप्रकाश रोगके जैसा चिकित्सा करनी चाहिये। (भावप्र०)

निरुद्धप्रकाश (सं० पु०) मेढ्रजात क्षुद्ररोगविशेष, एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बन्द सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है।

भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है— कुपित वायुसे मेढ्रचर्मका अगला भाग यदि बन्द हो जाय, तो द्वारका अल्पताप्रयुक्त मूत्रस्रोत रुक जाता है, इसीसे वेदना न हो कर पेशाब रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है। इस प्रकारको वातजव्याधिको निरुद्ध-प्रकाश कहते हैं। इस रोगमें लोहेके दो मुंहवाले नल अथवा काठके नलको वा जतुको घृताक्त करके लिङ्गमें प्रविष्ट करते हैं और पीछे सूत्र तथा सुअरकी चर्बी और मज्जाद्वारा परिषेक करते हैं। वातनाशक द्रव्ययुक्त चक्रतैलका प्रयोग करनेसे भी निरुद्धप्रकाश रोग अच्छा हो जाता है। इस रोगमें तीन तीन दिनके बाद उत्तरो-त्तर स्थूल नलको लिङ्गमार्गमें प्रविष्ट करना चाहिए। ऐसा करनेसे उसका स्थान धीरे धीरे बढ़ जायेगा और पेशाब भी निकलने लगेगा। इस रोगमें स्निग्ध अन्नका प्रयोग हितकर है।

सुश्रुतके मतसे—जब पुंचिह्नका चर्म वायुयुक्त हो जाता है, तब वह मणिस्थानमें आश्रय लेता है और मणिचर्म द्वारा आच्छादित हो कर मूत्रस्रोतको रोक देता है। इससे मणिस्थान तो विदीर्ण नहीं होता, लेकिन पेशाब रुक रुक कर और थोड़ा थोड़ा होता है। इसीको निरुद्धप्रकाश कहते हैं।

(सुश्रुत निदान स्थान १३ अ०)

निरुद्यम (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्यमः यस्य। उद्यमशून्य, निरुद्योग, जिसके पास कोई उद्यम न हो।

निरुद्यमता (सं० स्त्री०) निरुद्यम होनेको क्रिया या भाव।

निरुद्यमी (सं० त्रि०) जो कोई उद्यम न करता हो, बेकार, निकम्मा।

निरुद्योग (सं० पु०) निर्नास्ति उद्योगः यस्य। निरुद्यम, जिसके पास कोई उद्योग न हो, बेकार, निकम्मा।

निरुद्योगी (सं० त्रि०) जो कुछ उद्योग न करे, निकम्मा, बेकार।

निरुद्विग्न (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्विग्नः यस्य। उद्वेग-रहित, निश्चिन्त।

निरुद्वेग (सं० त्रि०) निर्नास्ति उद्वेगो यस्य। उद्वेग-शून्य, निश्चिन्त।

निरुपक्रम (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपक्रमो यस्य। उपक्रम-शून्य।

निरुपद्रव (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपद्रवोऽस्य। उपद्रव-रहित, जिसमें कोई उपद्रव न हो, जो उत्पात या उप-द्रव न करता हो।

निरुपद्रवता (सं० स्त्री०) निरुपद्रवस्य भावः निरुपद्रव-तल्-टाप्। उपद्रवशून्यता, निरुपद्रव होनेको क्रिया या भाव।

निरुपद्रवी (सं० त्रि०) जो उपद्रव न करे, शान्त।

निरुपद्रुत (सं० त्रि०) उपद्रवरहित।

निरुपधि (सं० त्रि०) शठताविहीन, जिसमें किसी प्रकारकी उपाधि न हो, जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपपत्ति यस्य। उपपत्ति-शून्य, जिसकी कोई उपपत्ति न हो।

निरुपपद (सं० त्रि०) उपपदरहित, उपपदहीन।

निरुपप्लव (सं० त्रि०) उपप्लवरहित, उत्पातरहित।

निरुपभोग (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपभोगः यस्य। उप-भोगरहित, उपभोगहीन, जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम (सं० त्रि०) निर्विद्यते उपमा यस्य। १ उपमा-रहित, तुलनारहित, जिसकी उपमा न हो, बेजोड़। (स्त्री०) २ गायत्री। (पु०) ३ राष्ट्रकूटके वंशके एक राजाका नाम। राष्ट्रकूट राजवंश देखो।

निरुपमा (सं० स्त्री०) गायत्रीका एक नाम।

निरुपयोगी (सं० त्रि०) जो उपभोगमें न आ सके, व्यर्थ, निरर्थक।

निरुपरोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपरोधः यस्य। उपरोधरहित, अपक्षपाती।

निरुपल (सं० त्रि०) प्रस्तररहित, बिना पत्थरका।

निरुपलेप (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपलेपः यत्र। उपलेपरहित, प्रलेपशून्य।

निरुपसर्ग (सं० त्रि०) उत्पातरहित, उपसर्गहीन।

निरुपस्कृत (सं० त्रि०) १ पवित्र। २ स्वाभाविक, अकृत्रिम।

निरुपहत (सं० त्रि०) १ अनाहत। २ शुभसूचक। ३ अक्षत।

निरुपाख्य (सं० त्रि०) निर्गता उपाख्या यस्मात्। १ असत्पदार्थ, जो बिलकुल मिथ्या हो और जिसके होनेकी कोई सम्भावना नहीं। २ जिसकी व्याख्या न हो सके। (पु०) ३ ब्रह्म। ४ निःस्वरूप।

निरुपाधि (सं० त्रि०) निर्नास्ति उपाधि यस्य। १ उपाधिशून्य, बाधारहित। २ मायारहित। (पु०) ३ ब्रह्म। उपाधि तिरोहित होनेसे जीव ब्रह्म हो जाता है। एक चैतन्य सभी जीवोंमें विराजमान है। वह अनादि अनन्त ब्रह्मचैतन्य उपाधिभेदसे अर्थात् आधारदेहादिके भेदसे विभिन्न भावको प्राप्त हुए हैं। यथार्थमें ये अभिन्न हैं, विभिन्न नहीं।

उपाधिके अन्तर्हित होनेसे वे एक हैं, नहीं तो अनेक। स्वर्ग, मर्त्य, पाताल ये तीनों लोक ब्रह्मचैतन्यसे आभासित हो कर मायिकरूपमें देखे जाते हैं। क्योंकि एक, अद्वय, महान् और व्यापिचैतन्यमें स्वाश्रित अज्ञानके प्रभावसे विश्वरूप इन्द्रजाल प्रकाश पाता है। इसी कारण विश्व मिथ्या है, केवल प्रकाशक चैतन्य ही सत्य है। इतना ही नहीं, सत्य अचैतन्यमें जो जो भासमान हैं, सभी असत्य हैं, वे सब चैतन्याश्रित अज्ञानके विलास वा विभ्रमके सिवा और कुछ नहीं हैं।

शक्तिरूपी ब्रह्माश्रित अज्ञान ब्रह्ममें वा ब्रह्मको जगत् दिखाता है। इसलिए जगत् और ब्रह्म अभी विमिश्रित है। इसी कारण अभी प्रत्येक दृश्य ही पञ्चरूपी हैं, १ अस्ति—है, २ भाति—प्रकाश पाता है, ३ प्रिय—सुन्दर, उत्तम, बढ़िया है, ४ रूप—यह एक प्रकार है, ५ नाम—यह अमुक वस्तु है। इन पञ्चरूपोंके प्रथमोक्त तीन रूप ब्रह्म हैं, अवशिष्ट दो रूप जगत् अर्थात् अज्ञान विकार हैं। यह अज्ञान विकार वा जगत् परमार्थतः सत्य नहीं है। इसीसे जगत् मिथ्या माना जाता है।

यह दृश्यमान् जगत् तात्त्विक सत्ताशून्य अर्थात् मिथ्या है। जिस प्रकार कोई ऐन्द्रजालिक माया द्वारा इन्द्रजालकी सृष्टि करता है उसी प्रकार महामायावी ईश्वरने भी बिना व्यापारके स्वेच्छा द्वारा जगत्की सृष्टि की है। उनकी वैसी इच्छाशक्ति ही माया कहलाती है। सत्त्व, रजः और तमोमयी मायाके एक होने पर भी गुणके प्रभेदसे वे विभिन्न है। उसी प्रभेदसे जीवेश्वरविभाग प्रचलित है। मायामें उपहित ईश्वर और अविद्यामें उपहित जीव है। उत्कृष्ट सत्त्वप्राधान्यमें माया और मलिनसत्त्व प्राबल्यमें अविद्या है। जीव केवल उपहित हो नहीं है, अविद्याके वशमें भी है। आकाश एक ही है, किन्तु घटरूप उपाधिसे घटाकाश और पटाकाश ऐसा प्रभेद हुआ करता है। उसी प्रकार एक अद्वितीय ब्रह्म होने पर भी मनुजादि उपाधिसे जीव और इस उपाधिके अपगत होनेसे ही ब्रह्म कहलाता है। जब यह सम्पूर्णरूपसे उपाधिरहित होता है, तब ही उसे निरुपाधि कहते हैं। जब तक अज्ञान वा माया रहेगी, तब तक निरुपाधि होनेकी सम्भावना नहीं। समस्त उपाधिके तिरोहित होनेसे ही जीव ब्रह्म होता है, इसीसे निरुपाधि शब्दका अर्थ ब्रह्म कहा गया है। उपाधिशून्य होनेमें श्रवण, मनन और निदिध्यासन करना होता है। जब तक उपाधि रहती है, तब तक ब्रह्ममें दृश्यभ्रान्ति होती है। ज्योंही उपाधि चली जाती है त्योंही जीव ब्रह्मको साक्षात्कार करके ब्रह्म हो जाता है। (वेदान्तदर्शन) ब्रह्म देखो।

निरुपाय (सं० त्रि०) निर्न विद्यते उपायो यस्य। १ उपायरहित, उपायहीन, जिसका कोई उपाय न हो। २ जो कुछ उपाय न कर सके।

निरुपेक्ष (सं० त्रि०) १ उपेक्षारहित, जिसमें उपेक्षा न हो। २ सत्, चातुर्यशून्य।

निरुप्त (सं० त्रि०) निर्-वप्-क्त । यज्ञादिके भाग भागमें पृथक् करके दिया हुआ ।

निरुप्ति (सं० स्त्री०) निर्-वप्-क्तिन् । वह जो यज्ञादि के भाग भागमें पृथक् कर दिया जाता हो ।

निरुवार (हिं० पु०) १ मोचन, छुड़ानेका काम । २ मुक्ति, छुटकारा, बचाव । ३ सुलझानेका काम, उलझन मिटानेका काम । ४ तै करनेका काम, निबटानेका काम । ५ निर्णय, फैसला ।

निरुवारना (हिं० क्रि०) १ मुक्त करना, छुड़ाना । २ निर्णय करना, फैसला करना, तै करना, निबटाना । ३ सुलझाना, उलझन मिटाना ।

निरुष्णीष (सं० त्रि०) उष्णीषशून्य, शून्यमस्तक ।

निरुष्मन् (सं० त्रि०) उष्मारहित, शीतल ।

निरूढ़ (सं० त्रि०) निर्-रुह-क्त । १ उत्पन्न । २ प्रसिद्ध, विख्यात । ३ अविवाहित, कुंआरा । (पु०) ४ शक्ति तुल्य लक्षण द्वारा अर्थबोधक शब्द । ५ पशुयागभेद, एक प्रकारका पशु-याग ।

निरूढ़लक्षणा (सं० स्त्री०) निरूढ़ा शक्तितुल्या लक्षणा । लक्षणाभेद, वह लक्षणा जिसमें शब्दका गृहीत अर्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल प्रसंग वा प्रयोजनवश ही न ग्रहण किया गया हो । जैसे, कर्मकुशल । यहां कुशल शब्दका मुख्य अर्थ है कुश उखाड़नेमें प्रवीण, लेकिन यहां लक्षण द्वारा वह साधारणतः दक्ष या प्रवीणके अर्थमें ग्रहण किया जाता है । लक्षण देखो ।

निरूढ़वस्ति (सं० स्त्री०) वस्तिभेद । कषाय वा क्षीर-तैलसे जो वस्तिका प्रयोग किया जाता है, उसे निरूढ़-वस्ति कहते हैं ।

निरूढ़वस्तिके प्रयोगकी व्यवस्था सुश्रुतमें इस प्रकार लिखी है,—अनुवासन-प्रयोगके बाद आस्थापनका प्रयोग करे । अभ्यङ्ग और स्वेदका प्रयोग करके विष्ठा, मूत्र और वायुका वेग परित्यागपूर्वक मध्याह्नकालमें पवित्र घरमें स्रोपोदेश अच्छी तरह रखे और विस्तीर्ण तथा उपाधान-रहित शय्या पर बाईं करवटसे सो जावे । रोगी भुक्तद्रव्यके परिपाकके बाद दक्षिण शक्तिको आकुञ्चित और वामशक्ति-को प्रसारित करे और प्रफुल्ल मनसे निस्तब्धभावमें रहे । पीछे बाएं पैरके ऊपर आंखें रख कर दाहिने हाथकी तर्जन्यङ्गुलि और तर्जनीसे आंखोंको मूंद ले और बाएं हाथकी कनिष्ठा तथा अनामिकासे वस्तिके मुखके अर्द्ध-भागको सङ्कुचित कर मध्यमा, प्रदेशिनी और अङ्गुष्ठ नामक तीन उंगलियोंसे दूसरे अर्द्धमुखको ढक कर वस्ति-के मध्य औषध भर दे । औषध भरते समय वस्ति जिससे अधिक आयत वा सङ्कुचित न हो जाय अथवा उसमें वायु रहने न पावे इस पर विशेष ध्यान रहे । ऐसी वस्तिमें जहां तक औषध भरी जायगी उसके अन्त भागको सूतेसे बांध दे । अनन्तर दाहिना हाथ उठा कर वस्तिको पकड़े । बाद बाएं हाथकी मध्यमाङ्गुलि तथा प्रदेशिनीसे आंख पकड़ कर अङ्गुष्ठ द्वारा उसके छुताक्त मुखको ढक दे और छुताक्त-मलद्वारके मध्य ठूंस दे । रीढ़की समरेखासे ले कर नेत्र-की कर्णिका तक सञ्चालित करके रोगीको स्थिर भावसे पकड़े रहे । बाएं हाथमें वस्ति पकड़ कर दाहिने हाथ-से प्रयोग करना पड़ता है । एक समय प्रयोग करनेका विधान है, जल्दी वा देरीसे काम नहीं लेना चाहिए । अनन्तर वस्तिको खोल कर एकसे ले कर तीस तक बोलने-में जितना समय लगता है, उतने ही समयकी अपेक्षा कर रोगीको बैठने उठने कहे । औषधद्रव्यको निकालने-के लिये रोगीको उत्कट भावमें बैठावे । एक मुहूर्त्त-कालके मध्य निरूढ़द्रव्य बाहर निकल आवेगा । इस नियमसे दो तीन बार वस्तिके प्रयोगसे जब सम्यक् निरूढ़के लक्षण मालूम पड़ने लगे, तब फिर वस्तिप्रयोग-की जरूरत नहीं । निरूढ़का बढ़ना अच्छा नहीं, थोड़ा रहना ही अच्छा है । विशेषतः सुकुमार व्यक्तिके लिये सामान्य ही हितकर है ।

वस्तिप्रयोगसे जिसकी मलवायु सामान्य वेगमें न निकले उसे दुर्निरूढ़ कहते हैं । इससे मूत्ररोग, अरुचि और जड़तादोष उत्पन्न होता है । वस्तिका प्रयोग करनेके साथ जिसका पुरीष पित्त, कफ और वायुक्रमसे निकल कर शरीर हलका मालूम पड़े, उसे सुनिरूढ़ कहते हैं । सुनिरूढ़ होने पर रोगीको स्नान और भोजन करावे । पित्त, श्लेष्मा वा वायुजन्यरोगमें यथाक्रमसे क्षीर, जूस वा मांसका रस पीनेको दे । मांस रस सभी दोषोंमें दे सकते हैं । दीपाग्निके अनुसार तीन भाग, वा अर्द्धभाग वा चौथाई भाग कम भोजन करावे । बाद

दोषके अनुसार स्नेहवस्तिका प्रयोग करे। आस्थापन और स्नेहवस्तिका सम्यक्‌रूपसे प्रयोग करनेसे मनकी तुष्टि, देहकी स्निग्धता और व्याधिका निग्रह ये सब लक्षण उत्पन्न होते हैं। जिस दिन आस्थापनका प्रयोग किया जायगा, उस दिन वायुसे विशेष अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव रोगीको उस दिन मांसरसके साथ अन्नभोजन करावे और अनुवासनका प्रयोग करे। पीछे अग्निकी दीप्ति और वायुकी गति जान कर स्नेहवस्तिका प्रयोग करना हितकर है। मुहूर्त्त भरमें यदि निरूढ़द्रव्य बाहर न निकल आवे, तो क्षारमूत्र वा अम्ल-संयुक्त तीक्ष्णनिरूढ़ द्वारा शोधन करे। निरूढ़द्रव्यके अधिक काल तक शरीरमें रहनेसे वायु बिगड़ जाती है जिससे विष्टम्भशूल, अरति, ज्वर, आनाह यहां तक कि मृत्यु भी हो जाया करती है। भोजन करनेके बाद आस्थापनका प्रयोग करना उचित नहीं है, करनेसे सभी दोष कुपित हो कर विसूचिका वा दारुण वमनरोग उत्पन्न हो जाते हैं। यही कारण है, कि अभुक्त अवस्थामें आस्थापनका प्रयोग बतलाया है।

दुग्ध, अम्लरस, मूत्र, स्नेह, क्वाथ, रस, लवण, फल, मधु, शतमूली, सर्षप, वच, इलायची, त्रिकटु, रास्ना, सरल, देवदारु, हरिद्रा, यष्टिमधु, हिङ्गु, कुष्ठ, शोधनीवर्गस्थित द्रव्यसमूह—कुट, शर्करा, मोथा, खसकी जड़, चन्दन, कचूर, मंजीठ, मदनफल, चरहा, त्रायमाण, रसाञ्जन, विल्वफलका सार, अजवायन, प्रियङ्गु, कुटजफल, कंकोल, क्षीरकंकोल, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, ऋद्धि, वृद्धि और मधुलिका इन सब वर्गोंमेंसे जो जो द्रव्य मिले उसे निरूढ़में प्रयोग करे। अपनी अपनी अवस्थामें निरूढ़में जितना क्वाथका प्रयोग करे उसका पांचवां भाग स्नेह, पित्तमें छठां भाग और कफमें आठवां भाग मिला कर प्रयोग करना होता है। सान्निपातिककल्कका अष्टम भाग स्नेह और उतना ही लवण देना उचित है।

मधु, गोमूत्र, फल, दुग्ध, अम्ल और मांसरस इनमेंसे जो आवश्यक समझे उसीका प्रयोग करे। कल्क, स्नेह और कषायका उल्लेख नहीं रहने पर भी युक्तिक्रमसे कोई एक ले लेवे। जो सब द्रव्य बतलाये गए हैं, उन्हें अच्छी तरह पोसना होता है।

निरूढ़ा (सं० स्त्री०) निरूढ़ स्त्रियां टाप्। १ लक्षणाविशेष। (त्रि०) २ अविवाहिता, कुंआरी।

निरूढ़ि (सं० स्त्री०) निर्-रुह-क्तिन्। १ प्रसिद्धि। २ निरूढ़लक्षणा।

निरूप (सं० त्रि०) १ रूपहीन, निराकार। २ कुरूप, बदशकल। (पु०) ३ वायु। ४ देवता। ५ आकाश। नीरूप देखो।

निरूपक (सं० त्रि०) निरूपयति निरूप ण्वुल्। निरूपणकर्त्ता, किसी विषयका निरूपण करनेवाला।

निरूपकता (सं० स्त्री०) निरूपकस्य भावः निरूपक-तल्-टाप्। स्वरूपसम्बन्धभेद।

निरूपण (सं० क्ली०) नि-रूप-णिच् ल्युट्। १ आलोक। २ विचार, किसी विषयका विवेचनापूर्वक निर्णय। ३ निदर्शन। (त्रि०) निरूपयतीति नि-रूप-णिच्-ल्यु। ४ निरूपक, निरूपण करनेवाला।

निरूपम (हिं० वि०) निरुपम देखो।

निरूपित (सं० त्रि०) नि-रूप-णिच्-क्त। १ कृतनिरूपण, निरूपण किया हुआ, जिसका निर्णय हो चुका हो। २ विचारित, जिसका विचार हो चुका हो। ३ दृष्ट, जो देखा जा चुका हो।

निरूपिति (सं० स्त्री०) १ निश्चयत्व, स्थिरभावत्व। २ भावादिका व्याख्यान।

निरूप्य (सं० त्रि०) दृष्ट, स्थिरीकृत, व्याख्यात।

निरूष्मन् (सं० त्रि०) उष्णरहित, शीतल, ठण्ढा।

निरूह (सं० पु०) निर्-उह करणे घञ्। वस्तिभेद, एक प्रकारकी पिचकारी।

निरूहण (सं० क्ली०) स्थिरत्व, निश्चयका भाव।

निरूहवस्ति (सं० स्त्री०) निरूढवस्ति देखो।

निर्ऋति (सं० स्त्री०) निर्निर्गता ऋति घृणा अशुभं वा यस्य। १ अलक्ष्मी, दरिद्रता। २ दक्षिण-पश्चिमदिक्‌पति, नैऋतकोणकी स्वामिनी। ३ निरुपद्रव। ४ अधर्मकी पत्नी। ५ हिंसाके गर्भसे उत्पन्न अधर्मकी कन्या। ६ मृतभार्या। ७ मूलानक्षत्र। ८ विपत्ति। ९ मृत्यु। १० रुद्रविशेष, एक रुद्रका नाम।

ऋग्वेदमें निर्ऋतिका अर्थ पापदेवता बतलाया है।
"दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम।" (ऋक् १०।१६५।१)
'निर्ऋत्याः पापदेवतायाः दूतोऽनुचरः।' (सायण)

पद्मपुराणमें इसका उपाख्यान इस प्रकार लिखा है। समुद्र मथनेमें पहले निर्ऋति और पीछे लक्ष्मीकी उत्पत्ति हुई। उद्दालकके साथ निर्ऋतिका-विवाह हुआ।

जब निर्ऋति उद्दालकके साथ गई, तब उनका घर देख कर वह दुःखित हुई और उद्दालकसे बोली, 'यह स्थान मेरे रहने योग्य नहीं है। जहां सर्वदा वेदध्वनि होती हो तथा जहां देवता और अतिथिपूजा आदि सत्कार्य होते हों, वहां मैं वास नहीं कर सकती। जहां सब प्रकारके असत् कार्य होते हों, वही स्थान मेरे रहने लायक है।' इतना सुनते ही उद्दालक घरसे निकल गये। पीछे निर्ऋति स्वामिविरहसे व्याकुल हो कर रहने लगी। जब लक्ष्मीको अपनी बहनके दुःखका हाल मालूम हुआ, तब वे नारायणके साथ वहां पहुंचीं। नारायणने निर्ऋतिको समझा कर कहा, 'पीपलका वृक्ष मेरे अंशसे निकला है, इसी वृक्ष पर तुम वास करो। मन्दवारको लक्ष्मी यहां आवेंगी और उसी दिन तुम्हारी पूजा होगी।'
(पाद्मोत्तरखण्ड १६१ अ०)

संयमनीपुरीके पश्चिम भागकी दिक्स्वामिनीका नाम निर्ऋति है। उनके अधिष्ठित लोकको निर्ऋतिलोक कहते हैं। वहां पुण्यशील और अपुण्यशील दो प्रकारके लोग वास करते हैं।

जिन्होंने राक्षसयोनिमें जन्म ले कर भी परहिंसा, परद्वेष आदि कुकर्मोंको विषवत् छोड़ दिया है वे ही पुण्यश्रेणीभुक्त हैं। जो नीच योनिमें जन्म ले कर शास्त्रोक्त नियमोंका प्रतिपालन करते, कभी भी अखाद्य-भोजन नहीं करते और न परस्त्रीगमन, परद्रव्यहरण आदि असत् कर्म ही करते, जो सर्वदा अच्छे अच्छे कर्मोंमें अपना समय बिताते, द्विजसेवा, देवसेवा तीर्थदर्शनादिमें लगे रहते हैं, वे ही सर्वविधि भोगसम्पन्न होकर उक्त पुरीमें वास करते हैं। म्लेच्छ होकर भी जो आत्महत्या नहीं करते और मुक्तिक्षेत्र काशीके सिवा जिनकी अन्य तीर्थोंमें मृत्यु होती है, वे भी इस स्थानमें वास करते हैं।

दिक्पति निर्ऋति पूर्वकालमें विन्ध्याचलके वनमें निर्विन्ध्या नदीके किनारे रहती थीं। पूर्वजन्ममें इनका नाम पिङ्गाक्ष था जो शबरोंके अधिपति माने जाते थे। शबरश्रेष्ठ पिङ्गाक्ष बहुत बलवान् और सच्चरित्र मनुष्य थे। पथिकोंको विपद्से दूर करनेके लिये उन्होंने कितने सिंह, बाघ आदि मार कर पथको निरापद कर दिया था। व्याधवृत्ति उनकी उपजीविका होने पर भी वे हमेशा निष्ठुराचरणसे पराङ्मुख रहते और कभी भी विश्वस्त, सुप्त, व्यवाययुक्त, जलपानमें निरत, शिशु वा गर्भयुक्त जीव जन्तुको नहीं मारते थे। यह धर्मात्मा श्रमातुर पथिकको विश्रामस्थान, क्षुधातुरको आहारदान और दुर्गम प्रान्तरपथमें पथिकोंका अनुगमन कर उन्हें अभयदान देते थे।

पिङ्गाक्षके ऐसे आचरणसे वह प्रान्तरभूमि नगरके समान हो गई थी। कोई मनुष्य डरके मारे पथिकोंका मार्ग नहीं रोक सकता था। किसी समय निकटस्थ ग्रामनिवासी पिङ्गाक्षके चाचाको जब पथिकोंके महाकोलाहलका शब्द सुनाई पड़ा, तब वे उन्हें लूटनेके लिये आगे बढ़े और वहां जा कर सड़क पर डट रहे। दैवक्रमसे पिङ्गाक्ष भी उस दिन रातको शिकार खेलनेके लिए उसी जङ्गलमें गये थे और वहीं सो रहे थे।

इधर सुबह होनेके साथ ही पिङ्गाक्षके चाचाने अपने साथियोंसे चिल्ला कर कहा, 'पथिकोंको मारो, मारो, गिरावो, नंगा करो, सब असबाब छीन लो।' बेचारे पथिकगण बहुत डर गए और विनीत स्वरसे बोले, 'भाई! हम लोग तीर्थयात्री हैं, मत मारो, रक्षा करो। हमारे पास जो कुछ असबाब है, उसे हम लोग खुशीसे दे देते हैं, ले लो। हम लोग पथिक और अनाथ हैं, किन्तु विश्वनाथपरायण हैं। सुतरां वे ही हम लोगोंके रक्षाकर्त्ता हैं। किन्तु वे भी दूरमें हैं, यहां अभी हमारो रक्षा करनेवाला कोई नहीं है। हम लोग पिङ्गाक्षके भरोसे सर्वदा इस राह हो कर जाते आते थे, किन्तु वे भी इस जङ्गलसे बहुत दूरमें रहते हैं।' यह कोलाहल सुन कर दूरसे "मत डरो, मत डरो" ऐसा कहते हुए पथिकबन्धु पिङ्गाक्ष वहां आ धमके और कहने लगे, 'मेरे जीते जी ऐसा कौन माईका लाल है, जो मेरे प्राणतुल्य पथिकोंको मार कर उनका सर्वस्व हरण कर सके?' यह कठोर वचन सुन कर पिङ्गाक्षके चचाने अपने साथी दस्युगणसे पिङ्गाक्षको मार डालने कहा।

पिङ्गाक्ष अकेले थे, दस्यु दलके साथ लड़ते लड़ते किसी तरह यात्रियोंको अपने आश्रमके पास लाए। पीछे शत्रुओंने उनका धनुर्वाण और कवच काट डाला। बाद अस्त्राघातसे पिङ्गाक्षका शरीर छिन्न भिन्न हो गया और वे इस लोकसे चल बसे। इसी पिङ्गाक्षने दूसरे जन्ममें नैऋत नामसे जन्मग्रहण किया और वे दिक्पति हो कर नैऋतकोणमें रहने लगे। (काशीख०)

निर्ऋथ (सं० पु०) निर्-ऋ-थक्। सामवेद।

निरेक (सं० पु०) १ चिरकालव्याप्य, चिरसम्बन्धीय। परिपूर्ण, पूरा।

निरोद्धव्य (सं० त्रि०) नि-रुध-कर्मणि तव्य। १ आवरणीय, रोकने योग्य। २ प्रतिरोधनीय।

निरोध (सं० पु०) नि-रुध-घञ्। १ नाश। २ गति आदिका प्रतिरोध, रुकावट, बन्धन। ३ अवरोध, घेरा। निरुद्धाख्य चित्तावस्थाभेद, योगमें चित्तकी समस्त वृत्तियोंको रोकना। इसमें अभ्यास और वैराग्यकी आवश्यकता होती है। चित्तवृत्तियोंके निरोधके उपरान्त मनुष्यको निर्वीजसमाधि प्राप्त होती है।

निरोधक (सं० त्रि०) नितरां रुणद्धि नि-रुध-ण्वुल्। निरोधकारक, रोकनेवाला।

निरोधन (सं० क्लो०) नि-रुध-ल्युट। १ कारागारादिमें प्रवेश द्वारा गतिरोध, रोक, रुकावट। २ पारेका छठा संस्कार।

निरोधपरिणाम (सं० पु०) पातञ्जलोक्त परिणामविशेष। इसका विषय पातञ्जल दर्शनमें इस प्रकार लिखा है—

चित्तके क्षिप्तादि राजसिक परिणामका नाम व्युत्थान और केवलमात्र विशुद्धसत्त्व परिणामका नाम निरोध है। चित्तकी सम्प्रज्ञात अवस्था और परवैराग्यवस्था भी यथाक्रमसे व्युत्थान और निरोध कहलाती है। जब व्युत्थानसे उत्पन्न संस्कारोंका अन्त हो जाता है और निरोधका आरम्भ होनेको होता है, तब चित्तका थोड़ा थोड़ा सम्बन्ध दोनों ओर रहता है, उसी अवस्थाको निरोधपरिणाम कहते हैं।

योगी संयम द्वारा विविध ऐश्वर्य वा अलौकिक चमत्कार आहरण कर सकते हैं सही, किन्तु किस प्रकारके विषयके लिये किस प्रकारका संयम करना होता है, वह उसके पहले ही जानना आवश्यक है। कहां किस प्रकारका संयम करना चाहिए, किस संयमका क्या फल है, जब तक उसका बोध नहीं होता, तब तक फलका प्राप्त होना असम्भव है। सुतरां संयमशिक्षाके पहले संयमके स्थानका निर्णय कर लेना होता है तथा विविध चित्तपरिणाम अर्थात् चित्तके भिन्न भिन्न विकारभावोंको प्रत्यक्षवत् प्रतीतियोग्य कर लेना पड़ता है। चित्तव्युत्थानके समय, एकाग्रताके समय और निरुद्धके समय चित्तकी कैसी अवस्था रहती है, उस पर *निपुणताके साथ निगाह रखनी होती है।* निरोधकालकी चित्तावस्थाका जानना जितना आवश्यक है, व्युत्थानकालकी चित्तावस्थाके चित्तपरिमाणका अनुसन्धान करना उतना आवश्यक नहीं है। निरोधपरिणामका यथार्थ स्वरूप क्या है? अर्थात् निर्वीजसमाधिके समय चित्तकी कैसी अवस्था रहती है, अभी उस पर विचार करना उचित है।

चाहे कोई संस्कार क्यों न हो, सभी चित्तके धर्म हैं और चित्त ही तत्तावतका धर्मी अर्थात् आधार है। चित्त जब विविध विषयाकारमें परिणत होता है, तब उसमें उसी उसी परिणामका संस्कार अवस्थित रहता है। चित्त जब केवलमात्र संप्रज्ञातवृत्तिमें स्थित रहता है, एकाग्र वा एकतान होता है, उस समय भी उसमें उसका संस्कार निहित रहता है। चित्त जब तक वृत्तिशून्य नहीं होता, तब तक उसमें संस्कार रहता है। एकाग्रवृत्ति जब अविश्रान्तरूपमें वा प्रवाहाकारमें उदित रहती है, तब तज्जनित संस्कार भी उसमें आवद्ध रहता है। क्योंकि संस्कार वा स्रोत बिना निरोधपरिणामके तिरोहित वा अभिभूत नहीं होता। पीछे वैराग्याभ्यास द्वारा जब व्युत्थानसंस्कार अभिभूत, तिरोहित और निःशक्ति अथवा विलीन हो जाता है, तब वह निरोधसंस्कार प्रबल वा पुष्ट हो कर विद्यमान रहता है। चित्त इसी समय पूर्वसञ्चित व्युत्थानसंस्कारसे अपहृत हो कर केवल निरोधसंस्कार ले कर रहता है। चित्तके ऐसी अवस्थामें रहनेको योगी लोग निरोधपरिणाम कहते हैं।

यह निरोध अवस्था भी परिणामविशेष है। सुतरां

निरोधपरिणाम इस नामको भी अन्वर्थ जानना चाहिए। चित्त जब गुणमय अर्थात् प्रकृतिमय है, तब वह जब तक रहेगा, तब तक उसमें अविश्रान्त परिणाम होगा। क्योंकि प्रकृतिका यह स्वभाव है, कि वह क्षण काल भी बिना परिणत हुए रह नहीं सकती। सुतरां जिसे निरोध कहा है, यथार्थमें वह भी एक प्रकारका परिणाम है। कारण चित्त उस समय भी परिणत होता है वा नहीं, वह उसके स्वरूपका ही अनुरूप है। तादृश स्वरूपपरिणामका दूसरा नाम स्थैर्य है। चित्त स्थिर हुआ है, ऐसा कहनेसे किसी प्रकारका परिणाम नहीं होता, ऐसा न समझ कर इस प्रकार समझना चाहिए कि विषयावगता वृत्ति नहीं होती, किन्तु स्वरूपका अनुरूपपरिणाम ही होता है। अब यह स्थिर हुआ कि स्थैर्य अथवा निर्वृत्तिक अवस्थाका नाम ही निरोध-परिणाम है। संस्कारके दृढ़ होनेसे ही उसके प्रभावसे निरोधपरिणामकी प्रशान्तावाहिता वा स्थैर्यप्रवाह उत्पन्न होता है। (पातञ्जलद०)

निरोधिन् (सं० त्रि०) प्रतिबन्धक, रुकावट करनेवाला।

निरोध्यशालि (सं० पु०) वाधितशालि, एक प्रकारका धान।

निर्ख (फा० पु०) दर, भाव।

निर्ख-दारोगा (फा० पु०) मुसलमानोंके राजत्वकालका दारोगा जिसका काम बाजारको चीजोंके भाव या दर आदिको निगरानी करना था।

निर्खनामा (फा० पु०) मुसलमानोंके राजत्वकालको वह सूची जिसमें बाजारको प्रत्येक वस्तुका भाव लिखा रहता था।

निर्खबंदी (फा० स्त्री०) किसी चोजका भाव या दर निश्चित करनेकी क्रिया।

निर्ग (सं० पु०) निरन्तर गच्छत्यत्रेति, निर्-गम-ड। देश।

निर्गत (सं० त्रि०) निर्-गम-क्त। वहिःप्राप्त, वहिर्गत, निकला हुआ, बाहर आया हुआ।

निर्गन्ध (सं० त्रि०) निर्नास्ति गन्धो यत्र। गन्धशून्य, जिसमें किसी प्रकारको गन्ध न हो।

निर्गन्धता (सं० स्त्री०) निर्गन्ध होनेको क्रिया या भाव।

निर्गन्धन (सं० क्ली०) निर्-गन्ध अर्दने भावे ल्युट्। १ निग्रन्थन। २ मारण।

निर्गन्धपुष्पी (सं० स्त्री०) निर्गन्धं गन्धशून्यं पुष्पं यस्य, ङीप्। शाल्मलिवृक्ष, सेमरका पेड़।

निर्गम (सं० पु०) निर्-गम-अप्। निःसरण, निर्गत, निकास।

निर्गमन (सं० क्ली०) निर्-गम-करणे ल्युट्। १ द्वार, दरवाजा। २ प्रतिहारी, द्वारपाल, ड्योढ़ीदार।

निर्गमना (हिं० क्रि०) निकलना।

निर्गर्व (सं० त्रि०) निर्नास्ति गर्वः यस्य। गर्वरहित, अहङ्कारशून्य, जिसे किसी प्रकारका गर्व या अभिमान न हो।

निर्गवाक्ष (सं० त्रि०) गवाक्षरहित, जिसमें झरोखा न हो।

निर्गुण (सं० पु०) निर्गता गुणा यस्मात्। १ सत्त्व, रज और तमोगुणातीत, जिसमें सत्त्व, रज और तमोगुण न हो, परमेश्वर। (त्रि०) २ विद्यादिशून्य, मूर्ख, जड़। ३ गुणरहित, जिसमें ज्या न हो, जैसे निर्गुण धनु। (ब्रह्म देखो)

निर्गुणता (सं० स्त्री०) निर्गुणस्य भावः, निर्गुण-भावे तल्, टाप्। गुणहीनता, निर्गुण होनेकी क्रिया या भाव।

निर्गुणत्व (सं० क्ली०) निर्गुण भावे-त्व। गुणहीनत्व, मूर्खत्व।

निर्गुणसाधु—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने भजनकीर्त्तन नामक एक ग्रन्थ बनाया है।

निर्गुणात्मक (सं० त्रि०) निर्गुण आत्मा यस्य कन्। निर्गुणस्वरूप, ब्रह्म।

निर्गुणिया (हिं० वि०) जो निर्गुण ब्रह्मको उपासना करता हो।

निर्गुणी (हिं० वि०) गुणोंसे रहित, जिसमें कोई गुण न हो, मूर्ख।

निर्गुणोपासना (सं० स्त्री०) निर्गुणस्य ब्रह्मणः उपासना। निर्गुण ब्रह्मको उपासना। ब्रह्म देखो।

निर्गुण्ठी (सं० स्त्री०) निर्गता गुण्ठात् गुण्ठनात् गौरादित्वात् ङीष्। १ निर्गुण्डी। २ सिसोय।

निर्गुण्ड—महिसुर राज्यके अन्तर्गत चित्तलदुर्ग जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० १३° ४७´ उ० और देशा० ७६° ११´ पू०, होसदुर्ग शहरसे ७ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३५२ है। पूर्व समयमें यह गङ्गराज्यके अन्तर्गत था और यहां जैनियोंकी राजधानी थी। लगभग दो सौ वर्ष हुए उत्तर भारतके नोलशेखर नामक किसी राजाने इसे बसाया और इसका नाम नोलवती पाटन रखा।

निर्गुण्डी (सं० स्त्री०) निर्गतं गुण्डं वेष्टनं यस्याः ङीष्। एक प्रकारका क्षुप। इसके प्रत्येक सींकेमें अरहरकी पत्तियोंके समान पांच पांच पत्तियां होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचेका भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियां हैं। किसीमें काले और किसीमें सफेद फूल लगते हैं। फूल आमके मौरके समान मंजरीके रूपमें लगते हैं और केसरिया रंगके होते हैं। यह स्मरणशक्तिवर्द्धक, गरम, रूखी, कसैली, चरपरी, हलकी, नेत्रोंके लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, आमवात, कृमि, प्रदर, कोढ़, अरुचि, कफ और ज्वरको दूर करती है। ओषधियोंमें इसकी जड़का व्यवहार होता है। हिन्दीमें इसे संभालू, सम्हालू वा सिम्भुवार कहते हैं। इसके संस्कृत पर्याय—नीलिका, नीलनिर्गुण्डी, सिन्दुक, नीलसिन्दुक, पीतसहा, भूतकेशी, इन्द्राणी, कपिका, शेफालिका, शीतभोरु, नीलमञ्जरी, वनजा, महत्यली और कर्त्तरीपत्रा हैं।

निर्गुण्डीकल्प (सं० पु०) भैषज्यरत्नावलोक्त औषधभेद। भैषज्यरत्नावलीके मतसे पिङ्गला योगिनीने इस औषधका प्रकाश किया। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—निर्गुण्डीका मूल ८ पल और मधु १६ पल दोनोंको एक साथ मिला कर घीके बरतनमें रखते हैं। पीछे ढकनेसे उसका मुंह बन्द कर तथा अच्छी तरह लेप दे कर उसे धानके ढेरमें एक मास तक रख छोड़ते हैं। यह चूर्ण गोमूत्र और तक्रादिके साथ कुछ दिन सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं और पीछे बल, वीर्य तथा आयुकी वृद्धि होती है। एक मास तक सेवनेसे शरीर कनकवर्ण-सा होता, दृष्टि गृध्र-सी होती और सब रोग जाते रहते हैं। जो व्यक्ति एक वर्ष तक इसका सेवन करता है उसका शुक्र यावज्जीवन एक-सा बना रहता है और उसे हरवक्त स्त्रीगमनकी इच्छा रहती है। गोमूत्रके साथ इसका सेवन करनेसे आंखोंकी ज्योति बढ़ती, कोढ़, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदर आदि रोग दूर होते तथा शरीर पुष्ट बना रहता है।

निर्गुण्डीतैल—(सं० पु०) वैद्यकोक्त औषधभेद, वैद्यकमें एक विशेष प्रकारसे तैयार किया हुआ निर्गुण्डीका तेल जो सब प्रकारके फोड़े, फुंसियों, अपची तथा कण्ठमाला आदिको अच्छा करनेवाला माना जाता है।

निर्गूढ़ (सं० त्रि०) निर्निश्चयेन गुह्यते संव्रियते आत्मा अत्रेति निर्-गुह अधिकरणे क्त। १ वृक्षकोटर। (त्रि०) २ संवृत। ३ नितान्त गूढ़, जो बहुत ही गूढ़ हो।

निर्गेह (सं० त्रि०) गृहशून्य, जिसके घर न हो।

निर्गौरव (सं० त्रि०) १ गौरवहीन, अहङ्कारशून्य। २ सुशील, नम्र।

निर्ग्रन्थ (सं० पु०) निर्गतो ग्रन्थिभ्यः। १ क्षपणक। २ दिगम्बर। प्राचीनकालमें दिगम्बर जैनी कपड़ा नहीं पहनते थे, इसीसे वे दिगम्बर वा निर्ग्रन्थ कहलाए। अभी वृटिश-आईन और देशप्रथाके अनुसार वे कपड़े पहनने लगे हैं। इन लोगोंका कहना है, कि मानव जब सम्पूर्ण निर्मम और स्पृहाशून्य होते हैं, तब ही वे मुक्तिके योग्य हैं। अतएव प्रकृत संन्यासियोंको कपड़ा पहनना अनुचित है। जैन देखो। ३ मुनिभेद, एक मुनिका नाम। (त्रि०) ४ द्यूतकर, जुआ खेलनेवाला, जुआरी। ५ निर्धन, गरीब। ६ मूर्ख, बेवकूफ। ७ निःसहाय, जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो। ८ निर्वंदप्राप्त।

निर्ग्रन्थक (सं० पु०) निर्ग्रन्थ एव स्वार्थे कन्। १ क्षपणक। (त्रि०) २ निष्फल, बेकाम। ३ अपरिच्छद, नंगा, खुला हुआ। ४ वस्त्ररहित, जिसे कपड़ा न हो।

निर्ग्रन्थन (सं० क्ली०) ग्रथि कौटिल्ये निर्-ग्रथि-ल्युट्। मारण।

निर्ग्रन्थि (सं० त्रि०) ग्रन्थिशून्य, जिसमें गांठ वा गिरह न हो।

निर्ग्रन्थिक (सं० पु०) निर्गतो ग्रन्थिर्हठग्रन्थिर्यस्य। १ क्षपणक। (त्रि०) २ निपुण, होशियार। ३ हीन। स्त्रियां टाप्। ४ जैनसंन्यासिनी।

निर्ग्राह्य (सं० त्रि०) निर्-ग्रह कर्म णि ण्यत्। जो निश्चयरूपसे ग्रहण करनेमें समर्थ हो।

निर्घट (सं० क्ली०) निर्गतो घटो यस्मात्। १ घटशून्य देश। २ राजकरशून्य हट्ट, वह हाट या बाजार जहां किसी प्रकारका राजकर न लगता हो। ३ बहुजनाकीर्ण हट्ट, वह हाट या बाजार जहां बहुतसे लोग हों। ४ घटाभाव।

निर्घण्ट (सं० पु०) निर्-घण्ट-दीप्तौ घञ्। निर्घण्टन, शब्द या ग्रन्थसूची, फिहरिस्त।

निर्घर्षण (सं० क्ली०) संघर्ष, मर्द्दन।

निर्घात (सं० पु०) निर्-हन-घञ्। १ वायु कर्त्तृक अभिहत वायुप्रपतनजन्य शब्दविशेष, वह शब्द जो हवाके बहुत तेज चलनेसे होता है।

वायुसे वायु टकरा कर जब आकाशतलसे पृथिवी पर गिरती है, तब वही निर्घात कहलाता है। वह निर्घातदीप्त दिक्स्थित विहगोंसे जब शब्दित होता है, तब वह पापकर माना जाता है। सूर्योदयके समय निर्घात होनेसे वह विचारक, धनी, योद्धा, अङ्गना, वणिक और वेश्यागणको तथा एक पहरके भीतर होनेसे शूद्र और पौरगणको निहत करता है। मध्याह्नके समय होनेसे राजोपसेवी व्यक्ति और ब्राह्मणगण कष्ट पाते हैं। तृतीय प्रहरमें निर्घात होनेसे वह वैश्य और जलदातृगणको तथा चतुर्थ प्रहरमें होनेसे चोरोंको पीड़ित करता है। सूर्यास्तमें होनेसे वह नीचोंको और रात्रिके प्रथम याममें होनेसे शस्यको, द्वितीय याममें होनेसे पिशाचगणको, तृतीय याममें होनेसे हस्ती और अश्वगणको तथा चतुर्थ याममें होनेसे पदातिकगणको नष्ट करता है। जिस दिशासे निर्घात आता है, पहले वही दिशा नष्ट होती है। (वृहत्संहिता ३८ अ०) जिस समय निर्घात होता हो, उस समय किसी प्रकारका मंगल कार्य करना निषिद्ध है। २ अस्त्रभेद, प्राचीन कालका एक प्रकारका अस्त्र। ३ बिजलीकी कड़क।

निर्घातन (सं० क्ली०) निर्-हनस्वार्थे णिच्, भावे ल्युट्। सुश्रुतोक्त यन्त्रनिष्पाद्य क्रियाभेद। सुश्रुतके अनुसार अस्त्रचिकित्साकी एक क्रियाका नाम।

निर्घात्य (सं० त्रि०) निर्-हन-ण्यत्। छेदनीय, छेदने-योग्य।

निर्घृणिणी (सं० स्त्री०) नदी, निर्झरिणी, सोता।

निर्घृण (सं० त्रि०) निर्गता घृणा दया वा यस्मात्। १ निर्दय, दयाशून्य, बेरहम। २ घृणाशून्य, जिसे घृणा न हो, जिसे गन्दी और बुरी वस्तुओंसे घिन न लगे। ३ जिसे बुरे कामोंसे घृणा या लज्जा न हो। ४ निन्दित, अयोग्य, निकम्मा।

निर्घोष (सं० पु०) निर्-घुष-घञ्। १ शब्दमात्र, आवाज। (त्रि०) निर्नास्ति दोषो यत्र। २ शब्दशून्य, शब्द-रहित।

निर्घोषाक्षरविमुक्त (सं० पु०) समाधिभेदका नाम।

निर्चा (हिं० पु०) चंचु नामक साग।

निर्जन (सं० त्रि०) निर्गतो जनो यस्मात्। जनशून्य-स्थानादि, वह स्थान जहां कोई मनुष्य न हो, सुनसान।

निर्जर (सं० पु०) जराया निष्क्रान्तः। १ देवता। ये जरा अर्थात् बुढ़ापेसे सदा बचे हुए माने जाते हैं, इसी लिये इनका निर्जर नाम पड़ा है। (त्रि०) २ जरा-रहित, जिसे कभी बुढ़ापा न आये, कभी बुड्ढा न होने-वाला। (क्ली०) ३ सुधा, अमृत। सुधा पीनेसे बुढ़ापा जाता रहता है, इसीसे सुधाको निर्जर कहते हैं।

निर्जरसर्षप (सं० पु०) निर्जरप्रियः सर्षपः। देवसर्षप वृक्ष।

निर्जरा (सं० स्त्री०) निर्जर-टाप्। १ गुडूची, गिलोय। २ तालपर्णी। ३ सञ्चित कर्मका तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना।

निर्जरायु (सं० पु०) निर्गतो जरायुतः। १ जरायुसे निर्गत। २ जरायुहीन।

निर्जर्जल्य (सं० त्रि०) जर्जरीभूत, पुराना, टूटाफूटा, बेकाम।

निर्जल (सं० त्रि०) निर्गतं जलं यस्मात्। १ जलशून्य (देशादि), बिना जलका, जलके संसर्गसे रहित। २ जिसमें जल पीनेका विधान न हो। (पु०) ३ वह स्थान जहां जल बिलकुल न हो।

निर्जलव्रत (सं० पु०) वह व्रत या उपवास जिसमें अतो जल तक न पीए।

निर्जलैकादशी (सं० स्त्री०) निर्जला एकादशी। जैष्ठ

शुक्ला एकादशी तिथि, जेठ सुदी एकादशी तिथि। इस दिन लोग निर्जलव्रत रखते हैं। इस दिन स्नान, आचमन आदि किसी काममें जलस्पर्श तक करना मना है। यदि कोई जलस्पर्श करे, तो उसका व्रतभङ्ग होता है। इस एकादशीके उदयकालसे ले कर दूसरे दिनके उदयकाल तक जल वर्जन करना होता है। निर्जला एकादशी करनेसे द्वादशद्वादशीका फल होता है। दूसरे दिन सवेरे अर्थात् द्वादशीमें स्नान करके ब्राह्मणोंको जल और सुवर्ण दान कर भोजन करना चाहिये। जो इस प्रकार नियमपूर्वक एकादशीव्रत करते हैं, उन्हें यमभय नहीं रहता है, अन्तकालमें वे विष्णुलोकको जाते और उनके पितृगण उद्धार पाते हैं। जो यह एकादशी नहीं करते, वे पापात्मा, दुराचार और नष्ट होते हैं।

जो यह एकादशीव्रतविवरण भक्तिपूर्वक सुनते वा कीर्त्तन करते हैं, वे दोनों ही स्वर्गको जाते हैं।

निर्जल व्रतविधि—इस व्रतमें पहले निम्नलिखित मन्त्रसे सङ्कल्प करके जलग्रहण करे। मन्त्र—

"एकादश्यां निराहारो वर्जयिष्यामि वै जलम्।
केशवप्रीणनार्थाय अत्यन्तदमनेन च॥"

जल वर्जन करके एकादशीके दिन उपवास करे और रातको सुवर्णमय विष्णुमूर्त्तिकी स्थापना करके उन्हें दूध आदिसे स्नान करावे। अनन्तर यथाशक्ति पूजा करके रातको जागरण करे। दूसरे दिन प्रातःस्नानादि करके यथाशक्ति जलकुम्भ ब्राह्मणको इस मन्त्रसे दान दे। मन्त्र—

"देवदेव हृषीकेश संसारार्णवतारक।
जलकुम्भप्रदानेन यास्यामि परमांगतिम्॥"
(हरिभक्तिविलास १५ वि०)

इतना हो जाने पर छत्र और वस्त्रादिका दान करना कर्त्तव्य है।

निर्जरिमक (सं० पु०) निर्जरत्व, अत्यन्त जीर्ण, बहुत पुराना

निर्जित (सं० त्रि०) निर्-जि-क्त। १ पराजित, जीता हुआ, जिसे जीत लिया हो। पर्याय—पराजित, पराभूत, विजित, जित। २ वशीकृत, जो वशमें कर लिया गया हो।

निर्जिति (सं० स्त्री०) निर्-जि क्तिच्। जय वा वशीभूतकरण।

निर्जितेन्द्रियग्राम (सं० पु०) निन्दितानि इन्द्रियग्रामाणि येन। जितेन्द्रिय, यति।

निर्जिह्व (सं० त्रि०) निर्गता मुखान्निःसृता जिह्वा यस्य। १ मुखसे बाहर करना। २ जिह्वाशून्य, जिसे जीभ न हो।

निर्जीव (सं० त्रि०) निर्गतः जीव-या जीवात्मा यस्य। १ जीवात्मरहित प्राणहीन, मृतक, बेजान। २ अशक्त या उत्साहहीन।

निर्झर (सं० पु०) निर्-झृ-अप्। १ पर्वतनिःसृत जलप्रवाह, सोता। जगत्पाता जगदीश्वरने जीवोंकी भलाईके लिये ऐसे अद्भुत अद्भुत कार्योंकी सृष्टि की है, कि एक बार उन्हें देखनेसे ही भगवान्‌की अनन्त महिमाको अनन्तमुखसे गा कर भी परितृप्ति नहीं होती। निर्झर उन्हीं आश्चर्य पदार्थोंमेंसे एक है। जहां एक भी जलाशय नहीं है, वहां भी इस अत्याश्चर्य दृश्यानाशक निर्झरसे निर्मल जल प्रबल वेगसे निकल कर जीवके प्रति ईश्वरकी अनन्त दया प्रकाश करता है। अंग्रेजीमें निर्झरको Spring कहते हैं। निर्झरकी उत्पत्तिका कारण जाननेके पहले यह स्मरण रखना अत्यावश्यक है, कि तरलपदार्थ उच्चनीच असमान अवस्थामें स्थिरभावमें नहीं रह सकता। यदि एक वक्र और सच्छिद्र दो खुले हुए मुंहवाले नलके एक मुंहमें कुछ तरल पदार्थ डाल दिया जाय, तो जब तक दोनों नलमें उक्त तरल पदार्थ समान ऊंचाई पर न आ जाय, तब तक वह तरल पदार्थ स्थिर नहीं रह सकता। जब उक्त नलका तरल पदार्थ समान ऊंचाई पर आ जाता है, तब वह स्थिर रहता है। दूसरी बात यह है, कि जगदीश्वरने प्राणियोंके कल्याणके लिये इस वृहत् पृथ्वीकी सृष्टि की है, जिसकी प्रत्येक वस्तु आश्चर्य वा भिन्न प्रकृतिविशिष्ट है। हम लोग मट्टीके ऊपर जो भ्रमण करते, सोते, तथा और अन्यान्य कार्य करते हैं, उन्हें यदि गौर कर देखें तो यह स्पष्ट मालूम हो जायगा, कि यह मट्टी भी भिन्न भिन्न धर्मविशिष्ट है। जो एक प्रकार अत्यन्त सच्छिद्र है, उसके मध्य हो कर जल बहुत आसानीसे आ जा सकता है और जो अर्द्ध छिद्रविशिष्ट है उसके मध्य जल

सहजमें आ जा नहीं सकता। इसी कारण वह कर्दम-में परिणत हो जाती है। तीसरी तरहको मट्टीको निश्छिद्र कह भी दें, तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। फलतः उसके मध्य हो कर जल नहीं जा सकता, जैसे पहाड़, कड़ी मट्टी, काली मट्टी इत्यादि।

यदि यह विषय ध्यानमें आ जाय, तो निर्झरका उत्पत्तिकारण सहजमें मालूम हो जायगा। वृष्टिपात वा तुहिनज जलसमूह जब पर्वतसे निकल कर प्रबल वेगमें नीचेकी ओर जाता है, तब उसमेंसे कुछ जल पृथ्वीके ऊपर बह कर समुद्र वा जलाशयमें गिरता और नदी उत्पादन करता है, कुछ जल वाष्पके रूपमें परिणत हो कर मेघ उत्पादन करता है और बचा खुचा जल मट्टीके नीचे जा कर सूख जाता है। किन्तु परमाणुका जब ध्वंस नहीं है, तब वह शोषित जलराशि कहां किस अवस्थामें रहती है? इसका तत्त्वानुसन्धान करनेसे यह साफ साफ जाना जाता है, कि पृथ्वी जिन भिन्न भिन्न स्तरोंसे बनी है, उक्त जलराशि भी उन्हीं स्तरोंको भेद कर एक ऐसे स्तरमें पहुँच जाती है जिसे वह और भेद नहीं कर सकती। सुतरां उक्त जलराशि वहांसे और नीचे नहीं जाती, बल्कि उसी दुर्भेद्य स्तर पर जमा रहती है। पीछे वह सञ्चित जल जितना ही बढ़ता जाता है, उतना ही उसके रहनेके लिये स्थानकी जरूरत पड़ती है। विशे-षतः माध्याकर्षण उसे हमेशा केन्द्रकी ओर खींचता रहता है जिससे उक्त जलराशि पूर्वोक्त दुर्भेद्य स्तरके ऊपर ढालकी ओर दौड़ती है। (भूमध्यस्थ जलस्रोतका प्रधान कारण ही यही है।) इस प्रकार गतिकी अवस्था-में यदि उस जलस्रोतके सामने भी ऐसा ही दुर्भेद्य पदार्थ उपस्थित हो कर गतिको रोक दे और भूपृष्ठसे यदि जल अधिक परिमाणमें उस स्रोतसे अनुकूल पहुँच जाय, तो वह प्रकाण्ड जलराशि इधर उधर न बह कर पृथ्वीको छेद करते हुए ऊपर पहुंच जायगी, इसीका नाम निर्झर वा झरना है। दुर्भेद्य स्तरके अवस्थानके अनुसार इस निर्झरके वेगका तारतम्य देखा जाता है अर्थात् उक्त दुर्भेद्य स्तर भूपृष्ठसे जितना नीचे होगा, निर्झरका वेग भी उतना ही बलवान् होगा।

पर्वत आदि उच्च स्थानसे जो जल भूगर्भमें प्रवेश कर पूर्वोक्त निर्झर उत्पादन करता है, उस निर्झरकी जल-राशि भूपृष्ठसे प्रायः उतना ही उच्च स्थान तक जा कर गिरती है। युक्तिके अनुसार उस जलको उतना ही ऊंचा जाना उचित है, लेकिन नीचा होनेके कारण वह उतनी दूर नहीं जा सकता।

(क) निर्झरका जल जब मट्टीको भेद कर जाता है, तब उसका वेग कुछ मंद हो जाता है।

(ख) भूपृष्ठको भेद कर आकाशमुखी होनेसे वायु उसे रोकती है।

(ग) वह जल जब छिन्न भिन्न हो कर पृथ्वी पर गिरता है, तब पतित जलसमूहके उत्थित जलस्रोतकी तरह गिरते रहनेके कारण उक्त जलस्रोतकी गतिका ह्रास हो जाता है।

(घ) उत्थित जलस्रोतमें जो धातुज पदार्थ मिला रहता है वह भी उक्त स्रोतके वेगसे ऊपरकी ओर चढ़ जाता है जिससे उसका भार जलवेगके प्रतिकूल कार्य करता है।

(ङ) माध्याकर्षण भी ऊर्ध्वगामी पदार्थका विर-प्रतिकूल है।

यदि ये सब कारण न होते, तो पार्वत्य प्रदेशका निर्झर बहुत ऊर्ध्वगामी होता। अल्पदूरस्थ दुर्भेद्यस्तर-प्रतिहत-निर्झर अधिक वेगवान् नहीं होता है।

कूआं खोदनेसे जो जल निकलता है, वह उक्त निर्झर उत्पादक मट्टीके मध्य प्रवाहित जलस्रोतके सिवा और कुछ भी नहीं है। जिस स्तर हो कर उक्त भूगर्भस्थ जलस्रोत सहजमें आ जा सके, वह स्तर जिस स्थानमें वा जिस प्रदेशमें जितना नीचे रहेगा, उस स्थानका कूप भी उतना ही गहरा होगा।

अभी राजवर्त्म वा सुन्दर सुन्दर उद्यानोंमें जो सब कृत्रिम निर्झर वा फुहारे देखे जाते हैं, वे स्वाभाविक निर्झरके अनुकरणसे निर्मित हैं। अलेकसन्द्रियावासी हायरोने ई० सन्के १२० वर्ष पहले जो अत्याश्चर्य निर्झरका निर्माण किया, उसकी निर्माणप्रणालीकी समालोचना करनेसे कृत्रिम निर्झरके विषयमें कुछ ज्ञान उत्पन्न हो सकता है। हायरोका कृत्रिम निर्झर वायु-प्रसारणगुण-मूलसे निर्मित है। उन्होंने निम्नोक्त उपायसे उसे बनाया।

एक पीतलकी बड़ी डिब या रिकाबोके मध्य भागमें एक छेद है और वह नलके संयोगसे निम्नस्थित एक पात्रके ऊपरी भागमें दृढ़रूपसे लगा हुआ है। उस निम्नस्थ पात्रके तलदेशसे दोनों बगल हो कर दो नल उसके निम्नस्थित एक जलपात्रके साथ संलग्न हैं। सर्वोपरि रिकाबीमें दक्षिणस्थ नल और मध्यस्थित पात्रके साथ वामदिकस्थ नल संयुक्त है और उस मध्यस्थित पात्रके बीचमें एक छोटा वायुप्रसारक नल है। इस प्रकार दक्षिण ओरके नल हो कर सर्वनिम्नस्थ पात्रमें जल प्रवेश करेगा और वहां वायुका दवाव पड़नेसे वह वामभागस्थ नल द्वारा मध्यस्थित पात्रमें प्रवेश करता और उसके मध्यस्थ जल पर दवाव डालता है। सुतरां उस पात्रको ऊपरी रिकावीमें संलग्न नल द्वारा जल ऊपरकी ओर निर्झरके रूपमें गिरता है।

वायुका घर्षण आदि पूर्ववर्णित कारणसमूह यदि उस निर्झरके विरुद्ध कार्य न करता, तो यह जल उक्त दोनों पात्रके मध्यस्थित जलके व्यवधानानुसार ऊर्ध्वगामी होता। यथार्थमें यह उससे कम दूर तक ऊपर उठता है। इसके बाद नाना स्थानोंमें नाना प्रकारके निर्झर तैयार हुए हैं। अविराम-निर्झरप्रवाह उसका प्रकारभेदमात्र है। फुहारा देखो।

भारतमें भी बहुत पहलेसे कृत्रिम निर्झर प्रस्तुत होता था। कालिदासके ऋतुसंहारमें यह जलयन्त्र नामसे वर्णित है।

साधारणतः पार्वत्य प्रदेश ही स्वाभाविक निर्झरका स्थान है। कृत्रिम निर्झरका होना सभी जगह सम्भव है। अत्युत्कृष्ट राजप्रासाद वा सुन्दर सुन्दर हर्म्यके ऊपर नाना प्रकारकी खोदित मूर्त्तिके किसी न किसी स्थानसे उत्थित यह कृत्रिम निर्झर देखा जाता है।

पुराकालमें ग्रीकदेशीय अनेक नगरोंमें इस प्रकारके कृत्रिम निर्झर देखे जाते थे। पोसेनसने लिखा है, कि करिन्थके अनेक स्थानोंमें इस प्रकारका निर्झर था और डायनरके निकटस्थ पेगासामें मूर्त्तिके पदतल हो कर इस प्रकारका जलस्रोत प्रवाहित होता था। ग्रीसके और भी अनेक कृत्रिम फुहारे थे और आज भी कहीं कहीं देखे जाते हैं। पम्पिनगरका राजपथ यहां तक कि अनेक घर भी निर्झरसे सुशोभित थे। नेपल्स नगरको चित्रशालिकामें बहुतसी 'ब्रोञ्ज' निर्मित प्रतिमूर्त्तियां विद्यमान हैं जिनसे कृत्रिम उपायसे निर्झरके आकारमें जलस्रोत प्रवाहित होता है। इटलीमें आजकल अनेक शोभाशाली निर्झर प्रवाहित हैं जिनसे वहांके अधिवासियोंकी विलासिताका परिचय मिलता है। ये सब निर्झर नाना वर्णोंमें चित्रित और अति विशाल हैं तथा नाना प्रकारकी मूर्त्तियोंसे निकलते हैं। चित्रकर, सूत्रधार और राजमिस्त्रियोंने इन सब निर्झरोंको बनानेमें कल्पना, युक्ति और नैपुण्यका यथेष्ट परिचय दिया है। पारी शहर आदि स्थानोंमें भी बहुत पहलेसे कृत्रिम निर्झर बनानेकी प्रथा प्रचलित थी।

लन्दन नगरमें जलका कोई अभाव नहीं होनेके कारण आज तक निर्झरका उतना आदर नहीं था। लेकिन दर्शन और विज्ञानकी उन्नति तथा सभ्यताके विस्तारके लिये अभी नाना स्थानोंमें निर्झरका प्रचार हो गया है।

वैद्यकके मतसे निर्झरका जल लघु, पथ्य, दीपन और कफनाशक माना गया है।

पर्वतके सानुदेशसे जो जल निकलता है उसे भी निर्झर कहते हैं। इसका जल रुचिकर, कफनाशक, दीपन, लघु, मधुर, कटुपाक और शीतल होता है। २ सूर्याश्व, सूर्यका घोड़ा। ३ तुषानल। ४ हस्ती, हाथी।

निर्झरिणी (सं॰ स्त्री॰) निर्झर-इनि ङीप्। १ नदी, दरया।

निर्झरिन् (सं॰ पु॰) निर्झरोऽस्त्यस्येति निर्झर-इनि। गिरि, पहाड़।

निर्झरी (सं॰ स्त्री॰) निर्-झॄ-अच्, गौरादित्वात् ङीष्। निर्झर, पर्वतसे निकला हुआ पानीका झरना, सोता, चश्मा।

निर्णय (सं॰ पु॰) निर्णयनमिति निर्-नी-अच्। १ अवधारण, औचित्य और अनौचित्य आदिका विचार करके किसी विषयके दो पक्षोंमेंसे एक पक्षको ठीक ठहराना, किसी विषयमें कोई सिद्धान्त स्थिर करना। इसका पर्याय निश्चय, निर्णयन और निचय है। २ विचार। पर्याय—तर्क, गुञ्जा, चर्चा। ३ न्यायदर्शनोक्त सोलह पदार्थोंके अन्तर्गत पदार्थभेद।

वादी और प्रतिवादी इन दोनोंका किसी विषयमें यदि वाक्यसंशय उपस्थित हो, तो उनमें न्यायप्रयोग करना चाहिए अर्थात् तुम जो कहते हो वह इस कारणसे प्रकृत नहीं है, इस प्रकार न्यायप्रयोग करना होता है। उस वाक्यके प्रति दोषोद्भावन और पीछे उन दोषोंका उद्धार करनेसे जो एक पक्षका अवधारण होता है, उसका नाम निर्णय है। इसी प्रकार निर्णय विचारकी जगह जानना चाहिए। एक विषय ले कर आपसमें विचार चल रहा है, उस विचार-विषयके एक पक्षके अवधारण-का नाम निर्णय है। जो निर्णीत होगा, उसमें किसी प्रकारका दोष न रहे, दोषदुष्ट होनेसे उसे निर्णय नहीं कह सकते। ४ मीमांसकोक्त अधिकरणका अवयवभेद, मीमांसामें किसी सिद्धान्तसे कोई परिणाम निकालना।

विषय, अविषय, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष, निर्णय और सिद्धान्त ये सब अधिकरण हैं। तत्त्वकौमुदीमें निर्णयका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

सिद्धान्त द्वारा जो सिद्ध है अर्थात् जो विचार्य विषय सिद्धान्तवाक्य द्वारा सिद्धान्तीकृत हुआ है वैसे वाक्यके तात्पर्यावधारणका नाम निर्णय है। ५ विरोधपरिहार, चतुष्पाद व्यवहारके अन्तर्गत शेष पाद, वादी और प्रतिवादीकी बातोंको सुन कर उसके सत्य अथवा असत्य होनेके सम्बन्धमें कोई विचार स्थिर करना, फैसला, निबटारा। आपसमें कोई विवाद उपस्थित होनेसे राजाके पास नालिश की जाती है। वादी, प्रतिवादी और साक्षियोंको सब बातें सुन कर राजप्रतिनिधि जो निश्चय कर देते हैं, उसीको निर्णय कहते हैं।

व्यवहारशास्त्र चतुष्पाद है और निर्णयपाद उसका शेषपाद है। राजाके पास इसका अभियोग लानेसे, वे जो इसकी निष्पत्ति कर दें, वही निर्णय है।

जब आपसमें कोई विवाद उपस्थित हो, तब राजाको चाहिए कि उसकी मीमांसा कर दें। साक्षिगण प्रतिज्ञा वा शपथ करके जो कुछ कहें और वादी-प्रतिवादी भी जो कहें, राजा भलीभांति उसे सुन लें; पीछे जिसका दोष निकले, उसे धर्मशास्त्रानुसार दण्ड दें। वीरमित्रोदयमें इसका विशेष विवरण लिखा है।

प्रमाण, हेतु, चरित, शपथ, नृपाज्ञा और वादिसम्प्रति-पत्ति द्वारा निर्णय आठ प्रकारका है।

निर्णयकी जगह यदि शास्त्रीय विवाद उपस्थित हों, तो वहां युक्तिका अवलम्बन करके निर्णय करना होता है, कारण शास्त्रविरोधमें न्याय ही बलवान् है।

"धर्मशास्त्रविरोधेतु युक्तियुक्तो विधिः स्मृतः।
केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो हि निर्णयः॥
युक्तिहीनविचारे ही धर्महानिः प्रजायते॥"
(वीरमित्रोदयधृत वचन)

निर्णयन (सं० क्ली०) निर्-नी-भावे ल्युट्। निर्णय।

निर्णयपाद (सं० पु०) निर्णयात्मको पादः भागविशेषः। चतुष्पाद व्यवहारके अन्तर्गत व्यवहारविशेष।

निर्णयोपमा (सं० पु०) एक अर्थालङ्कार। इसमें उपमेय और उपमानके गुणों और दोषोंकी विवेचना की जाती है।

निर्णाम (सं० पु०) नितरां नामः नमनम्। नितरां नमन, अत्यन्त नमन।

निर्णायन (सं० क्ली०) निर्-नी-णिच् ल्युट्। निर्णयका कारण। २ गजापाङ्गदेश, निर्याण, हाथीकी आंखका बाहरी कोना।

निर्णिक्त (सं० त्रि०) निर्-णिज-क्त। १ शोधित। २ अपगत ताप।

निर्णिज् (सं० पु०) निर्-निज-क्विप्। १ रूप। (त्रि०) २ शोधक।

निर्णिज (सं० त्रि०) निर्-निज क। निर्जित, जीता हुआ, जिसे जीत लिया हो।

निर्णीत (सं० क्ली०) निर्-नी-क्त। कृतनिर्णय, निर्णय किया हुआ, जिसका निर्णय हो चुका हो। पर्याय—निश्च, सत्य, संस्तुत, हिरुक्, प्रतीच्य, अपीच्य।

निर्णेक (सं० पु०) निर्-निज-घञ्। नितरां शुद्ध, अत्यन्त शुद्ध।

निर्णेजक (सं० पु०) निर्-निज-ण्वुल्। रजक, धोबी।

निर्णेजन (सं० क्ली०) निर्-निज भावे ल्युट्। १ शुद्धि। २ प्रायश्चित्त। ३ चालन। ४ धावन।

निर्णेतृ (सं० त्रि०) निर्-नी-तृच्। निश्चयकर्त्ता, विवाद-को निबटा देनेवाला।

निर्णेय (सं० त्रि०) निर्णय योग्य।

निर्णोद (सं० पु०) स्थानान्तरकरण, निर्वासन।

निर्दंशिन् (सं॰ त्रि॰) १ नितरां दंशनकारी। २ दंशनहीन।

निर्दग्ध (सं॰ त्रि॰) १ जो अच्छी तरह दग्ध हो। २ जो दग्ध नहीं हो।

निर्दग्धिका (सं॰ स्त्री॰) निर्दिग्धिका, इलायची।

निर्दट (सं॰ त्रि॰) निर्दय पृषोदरादित्वात् साधुः। १ निर्दय, कठोर, बेरहम। २ परनिन्दाकारी, दूसरेके दोष या बुराई कहनेवाला। ३ निष्प्रयोजन, जिससे कुछ अर्थ सिद्ध न हो। ४ तीव्र, तेज। ५ मत्त, मतवाला

निर्दड़ (सं॰ त्रि॰) १ निर्दर, कठिन। २ निर्दय, कठोर, बेरहम। ३ निष्प्रयोजन, बेकाम।

निर्दण्ड (सं॰ त्रि॰) निःशेषेण दण्डो यस्य प्रादिबहु॰। १ सर्वप्रकार दण्डार्ह, जिसे सब प्रकारके दण्ड दिये जा सकें। २ दण्डहीन, जिसे दण्ड न दिए जांय। (पु॰) ३ शूद्र, जिसे सब प्रकारके दण्ड दिये जा सकते हैं।

निर्दम्भ (सं॰ त्रि॰) दम्भहीन, जिसे दम्भ या अभिमान न हो।

निर्दय (सं॰ त्रि॰) निर्गता दया यस्मात्। दयाशून्य, निष्ठुर, बेरहम।

निर्दयता (सं॰ स्त्री॰) निष्ठुरता, बेरहमी।

निर्दयत्व (सं॰ क्ली॰) निर्दयस्य भावः निर्दय भावे त्व। निर्दयका भाव या क्रिया।

निर्दर (सं॰ क्ली॰) निर्-दृ-अप्। १ गुहा, कन्दरा। २ निर्झर। ३ वृक्षका निर्यास। (त्रि॰) निर्गतो दरश्छिद्रं यस्मात्। ४ सार। ५ कठिन। ६ अपत्रप।

निर्दलन (सं॰ क्ली॰) १ दलनरहित। २ विदारण।

निर्दश (सं॰ त्रि॰) निर्गतानि दशदिनानि यस्य। अशौच अतिक्रान्त दशाह, जिसका दश दिन बीत गया हो।

निर्दशन (सं॰ त्रि॰) निर्गतानि दशनानि यस्य। दशनहीन, बिना दांतका।

निर्दस्यु (सं॰ त्रि॰) दस्युहीन, दस्युरहित।

निर्दहन (सं॰ पु॰) नितरां दहतीति निर्-दह ल्यु। १ भल्लातक, भिलावेंका पेड़। २ भल्लातकका बीज। निर्नास्ति दहनो अग्निर्यत्र। ३ अग्निशून्य।

निर्दहनी (सं॰ स्त्री॰) निर्दहन-स्त्रियां ङीप्। मूर्वा-लता, चूरनहार, मुर्रा, मरोड़फली।

निर्दाह (सं॰ त्रि॰) निर्-दा-तृच्। १ छेदक। २ दाता। ३ शोधक।

निर्दाह (सं॰ त्रि॰) अग्निदग्ध।

निर्दिग्ध (सं॰ त्रि॰) निर्-दिह-क्त। १ बली। २ मांसल, मोटा ताजा।

निर्दिग्धिका (सं॰ स्त्री॰) निर्दिग्धका, इलायची।

निर्दिष्ट (सं॰ त्रि॰) निर्-दिश-क्त। १ निश्चित, जिसका निश्चय कर दिया गया हो, ठहराया हुआ। २ आदिष्ट, जिसको आज्ञा दी गई हो।

निर्देश (सं॰ पु॰) निर्-दिश-भावे घञ्। १ आज्ञा, हुकुम। २ कथन। ३ किसी पदार्थको बतलाना। ४ निश्चित करना या ठहराना। ५ उल्लेख, जिक्र। ६ वर्णन। ७ नाम, संज्ञा। ८ वेतन।

निर्देष्टृ (सं॰ त्रि॰) निर्दिशतीति निर्-दिश-तृच्। निर्देशकर्त्ता।

निर्दैन्य (सं॰ त्रि॰) दीनता रहित।

निर्दोष (सं॰ त्रि॰) निर्गतो दोषो यस्मात्। १ दोषरहित, जिसमें कोई दोष न हो, बे-ऐब, बे-दाग। २ जिसने कोई अपराध न किया हो, बेकसूर।

निर्दोषता (सं॰ स्त्री॰) निर्दोष होनेको क्रिया या भाव, अकलङ्कता, शुद्धता, दोषविहीनता।

निर्दोषी (हिं॰ वि॰) जिसने कोई अपराध न किया हो, बेकसूर।

निर्द्रव्य (सं॰ त्रि॰) १ द्रव्यहीन। २ दरिद्र।

निर्द्रोह (सं॰ त्रि॰) १ द्रोहरहित, मित्र। २ निरीह।

निर्द्वन्द्व (सं॰ त्रि॰) निर्गतो द्वन्द्वात्। १ जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो, जिसका कोई द्वन्द्वी न हो। २ जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वन्द्वोंसे रहित या परे हो। ३ स्वच्छन्द, बिना बाधाका।

निर्धन (सं॰ त्रि॰) निर्गतं धनं यस्य। १ धनशून्य, दरिद्र, कंगाल। (पु॰) २ जरद्गव।

निर्धनता (सं॰ स्त्री॰) निर्धन-तल्-टाप्। निर्धन होनेकी क्रिया या भाव, गरीबी, कंगाली।

निर्धर्म (सं॰ त्रि॰) निर्गतः धर्मात्। धर्मरहित, जो धर्मसे रहित हो।

निर्धार (सं॰ पु॰) निर्-धृणि-च् भावे घञ्। निर्धारण, ठहराना या निश्चित करना।

निर्धारण (सं० क्ली०) निर्-धृ-णिच्-भावे ल्युट्। १ न्यायके अनुसार किसी एक जातिके पदार्थोंमेंसे गुण या कर्म आदिके विचारसे कुछको अलग करना। जैसे, काली गौएं बहुत दूध देनेवाली होती हैं। यहां 'गो' जातिमेंसे अधिक दूध देनेवाली होनेके कारण काली गौएं पृथक् की गई हैं। २ ठहराना या निश्चित करना। ३ निश्चय, निर्णय।

निर्धारना (हिं० क्रि०) निश्चित करना, निर्धारित करना, ठहराना।

निर्धारित (सं० त्रि०) निर्-धारि-क्त। १ निर्धारण विषय। २ निश्चित, ठहराया हुआ।

निर्धार्त्तराष्ट्र (सं० त्रि०) धार्त्तराष्ट्र-शून्य, धृतराष्ट्रपुत्र शून्य ऐसा स्थान।

निर्धार्य (सं० त्रि०) निधार्य्यते स्थिरो क्रियते वा निश्चि-यते निर्-धृ-ण्यत् वा धारि-ण्यत्। १ निर्धारण कर्म, सामान्यसे पृथक्करण। २ निश्चय। ३ निभयकर्म कर्त्ता। (क्ली०) ४ अवश्य निर्धारण।

निर्धूत (सं० त्रि०) निर्-धू-क्त। १ खण्डित, टूटा हुआ। २ परित्यक्त, जिसका त्याग कर दिया हो। ३ निरस्त, फेंका हुआ, छोड़ा हुआ। ४ भर्त्सित, जिसकी निन्दा की गई हो। ५ धोया हुआ।

निर्धूम (सं० त्रि०) धूमरहित, जहां या जिसमें धुआं न हो।

निर्धौत (सं० त्रि०) निर्-धाव-कर्मणि क्त। प्रक्षालित, धोया हुआ, साफ किया हुआ।

निर्ध्मापन (सं० क्ली०) निर्-ध्मा-णिच् भावे ल्युट्। सुश्रुतोक्त शल्योधारणार्थ व्यापारभेद।

निर्नमस्कार (सं० त्रि०) निर्नास्ति नमस्कारो यस्य। नमस्कार या प्रणामरहित।

निर्नर (सं० त्रि०) नररहित, मनुष्यशून्य।

निर्नाथ (सं० त्रि०) नाथशून्य, बिना मालिकका।

निर्नाभि (सं० त्रि०) १ नाभिशून्य, जिसे ढोढ़ी न हो।

निर्नाशन (सं० क्ली०) १ स्थानान्तरितकरण, दूसरी जगह ले जाना। २ वहिष्करण, निर्वासन।

निर्नाशिन् (सं० त्रि०) निर्नाशन देखो।

निर्निमित्त (सं० त्रि०) अकारण, बिना वजह।

निर्निमेष (सं० त्रि०) १ पलकशून्य, जो पलक न गिरावे। २ जिसमें पलक न गिरे। (क्रि०-वि०) ३ बिना पलक झपकाए, एकटक।

निर्निरोध (सं० त्रि०) अनिवार्य, अप्रतिहत।

निर्नीड़ (सं० त्रि०) निर्गतं नीड़ं यस्मात्। नीड़रहित, आश्रयशून्य, बिना घरका।

निर्फल (हिं० वि०) निष्फल देखो।

निर्बन्ध (सं० पु०) निर्-बन्ध भावे घञ्। १ अभिनिवेश, आग्रह। २ जिद, हठ। ३ रुकावट, अड़चन।

निर्बन्धनीय (सं० क्ली०) विवाद, लड़ाई, झगड़ा।

निर्बन्धिन् (सं० त्रि०) बहुत जरूरी कामका।

निर्बन्धु (सं० त्रि०) बन्धुरहित, बन्धुहीन।

निर्बर्हण (सं० क्ली०) निर्-बर्ह-भावे ल्युट्। १ निब-र्हण, मारण। (त्रि०) २ बलहीन, कमजोर।

निर्बल (सं० त्रि०) बलहीन, कमजोर।

निर्बलता (सं० स्त्री०) कमजोरी।

निर्बहना (हिं० क्रि०) १ पार होना, अलग होना, दूर होना। २ कामका चलना, निभना, पालन होना।

निर्बाचन (सं० पु०) निर्वाचन देखो।

निर्बाण (सं० पु०) निर्वाण देखो।

निर्बाध (सं० त्रि०) निर्गता बाधा यस्मात्। १ अप्रति बन्ध। २ निरुपद्रव। ३ विविक्त। ४ निष्कासन। (पु०) ५ मल्लभागभेद

निर्बाधिन् (सं० त्रि०) ग्रन्थियुक्त, स्फीत।

निर्बुद्धि (सं० त्रि०) निर्नास्ति बुद्धिर्यस्य। बुद्धिहीन, जिसे बुद्धि न हो, मूर्ख, बेवकूफ।

निर्बुष (सं० त्रि०) निर्गतं बुषं यस्मात्। बुषरहित, बिना भूसीका।

निर्बुसीकृत (सं० त्रि०) तुषरहित, बिना भूसीका।

निर्बोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति बोधो यस्य। जिसे हिता-हितका ज्ञान न हो, अज्ञान, अनजान।

निर्भक्त (सं० त्रि०) १ अविभक्त। २ जो बिना भोजन किए ग्रहण किया गया हो।

निर्भट (सं० त्रि०) निर्-भट-अच्। दृढ़, मजबूत।

निर्भर्त्सना (सं० स्त्री०) अलक्तक, लाचा, अलता।

निर्भय (सं० त्रि०) निर्गतं भयं यस्मात्। १ भयरहित,

जिसे कोई डर न हो, बेखौफ। (पु०) २ रौच्यमनुके पुत्रभेद, पुराणानुसार रौच्यमनुके एक पुत्रका नाम। ३ श्रेष्ठ अश्व, बढ़िया घोड़ा।

निर्भयता (हिं० स्त्री०) १ निडरपन, निडर होनेका भाव। २ निडर होनेकी अवस्था।

निर्भयरामभट्ट—व्रतोपवाससंग्रह और सम्वत्सरोत्सव-कालनिर्णय नामक दो संस्कृत ग्रन्थोंके रचयिता।

निर्भयानन्द—हिन्दीके एक कवि। इनका कविताकाल सं० १८१५ कहा जाता है। इन्होंने शिवाविभागकी कुछ पुस्तकें बनाई हैं।

निर्भर (सं० त्रि०) निःशेषेण भरो भरणं यत्र। १ बहुत, ज्यादा। २ युक्त, मिला हुआ। (पु०) ३ वेतनशून्य भृत्य, वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो, बेगार।

निर्भर्त्सन (सं० क्ली०) नितरां भर्त्सनम् निर्-भर्त्स-ल्युट्। १ निन्दा, बदनामी। २ अलक्तक, अलता। ३ भर्त्सन, तिरस्कार, डांट डपट। ४ अभिभव। ५ अनर्थक।

निर्भर्त्सना (सं० स्त्री०) १ तिरस्कार, डांट डपट, बुरा भला कहना। २ निन्दा, बदनामी।

निर्भर्त्सित (सं० त्रि०) निर्-भर्त्स-क्त। कृतभर्त्स, जिसकी निन्दा की गई हो। पर्याय—निन्दित, धिक्कृत, अपध्वस्त।

निर्भाग्य (सं० त्रि०) निर्-निकृष्टं भाग्यं यस्य। मन्द-भाग्य, मूढ़।

निर्भाज्य (सं० त्रि०) अविभाज्य, जो भागयोग्य न हो।

निर्भिन्न (सं० त्रि०) निर्-भिद्-क्त। १ विदलित, खण्डित। २ अभिन्न, विकसित।

निर्भिन्नचिर्भिंट (सं० पु०) फुटिका।

निर्भीक (सं० त्रि०) भयरहित, निःशङ्क, बेडर, निडर

निर्भीकता (सं० स्त्री०) निर्भीक होनेकी क्रिया या भाव।

निर्भीत (सं० त्रि०) निर्-भी-क्त। भयरहित, निडर

निर्भुज (सं० त्रि०) जिसका एक ओर मोड़ा हुआ हो

निर्भूति (सं० स्त्री०) तिरोधान, अन्तर्धान, गायब होना।

निर्भृति (सं० त्रि०) निर्गता भृतिर्यस्य। वेतनशून्य कर्मकार, बेगार।

निर्भेद (सं० पु०) १ विदारण, फाड़ना। २ विभाजन।

निर्भेदिन् (सं० त्रि०) भेदकारी।

निर्भेद्य (सं० त्रि०) विभेदयोग्य।

निर्भोग (सं० त्रि०) भोग वा सम्भोगरहित, सुखहीन।

निर्भ्रम (सं० त्रि०) १ भ्रमरहित, जिसमें कोई सन्देह न हो। (क्रि० वि०) २ स्वच्छन्दतासे, बेडर, बेखटके, बिना संकोचके।

निर्भ्रान्त (सं० त्रि०) १ भ्रमरहित, निश्चित, जिसमें कोई सन्देह न हो। २ जिसको कोई भ्रम न हो।

निर्मक्षिक (सं० अव्य०) मक्षिकायाः अभावः। १ मक्षिका-का अभाव। निर्गतो मक्षिका यस्मात्। २ मक्षिकाशून्य-देश। ३ तदुपलक्षित निर्जनदेश, निभृतस्थान।

निर्मञ्छन (सं० क्ली०) १ नीराजन, आरती करना। २ सेवा।

निर्मज् (सं० त्रि०) निर्-मृज-क्विप्, वेदे पृषोदरा-दित्वात् साधुः। नितान्त शुद्ध।

निर्मज्ज (सं० स्त्री०) मज्जाहीन।

निर्मण्डूक (सं० त्रि०) भेकशून्य, जहां बेंग न हो।

निर्मत्सर (सं० त्रि०) मत्सररहित, अहङ्कारहीन।

निर्मत्स्य (सं० त्रि०) मत्स्यहीन, जहां या जिसमें मछली न हो।

निर्मथ (सं० पु०) निर्मथ्यतेऽनेन निर्-मथ-करणे-ल्युट्। अग्निमन्थनदारु, अरणि, जिसे रगड़ कर यज्ञोंके लिये आग निकालते हैं।

निर्मथन (सं० क्ली०) १ मन्थन, मथना। २ अग्नि-मन्थनदारु, अरणि।

निर्मथ्या (सं० स्त्री०) १ नलिका नामक गन्धद्रव्य। (त्रि०) २ जो मथने लायक न हो।

निर्मद (सं० त्रि०) निर्गतो मदो दानजलं दर्पोगर्वो वा यस्मात्। १ निरभिमान। २ दर्पशून्य। ३ दानजलशून्य।

निर्मध्या (सं० स्त्री०) नलिका, गन्धद्रव्यविशेष।

निर्मनस्क (सं० त्रि०) अमनस्क।

निर्मनुज (सं० त्रि०) निर्न विद्यते मनुजो यत्र। मनुष्य-शून्य, निर्जन।

निर्मनुष्य (सं० त्रि०) निर्जन, जहां आदमी न हो।

निर्मन्त्र (सं० त्रि०) निर्नास्ति मन्त्रः यत्र। मन्त्रशून्य, बिना मन्त्रका।

निर्मन्थ (सं० पु०) अग्निमन्थनदारु, अरणि।

निर्मन्थन (सं० क्ली०) १ सम्यक् मन्थन, अच्छी तरह मथना। २ मर्दन। ३ घर्षण।

निर्मन्थ्यदारु (सं० क्ली०) निर्मन्थ्यतं यज्ञार्थं घर्षणीयं दारु अरणिः। अरणि जिसे रगड़ कर यज्ञोंके लिये आग निकालते हैं।

निर्मन्यु (सं० त्रि०) क्रोधरहित, जिसे गुस्सा न हो।

निर्मम (सं० त्रि०) निर्नविद्यते 'मम' इत्यभिमानं यस्य। जिसे ममता न हो, जिसके कोई वासना न हो।

निर्ममता (सं० स्त्री०) निर्मम भावे तल्, टाप्, निर्ममका भाव वा धर्म।

निर्ममत्व (सं० क्ली०) निर्मम भावे त्व। १ निर्ममका धर्म। (त्रि०) २ ममत्वशून्य, जिसे ममता न हो।

निर्मर्याद (सं० त्रि०) निर्गतो मर्यादायाः निरादय क्रान्ताद्यर्थेषु समासः। १ मर्यादातीत, बिना मर्यादाका। २ अविनीत।

निर्मल (सं० त्रि०) निर्गतो मलो यस्य। १ मलहीन, साफ, स्वच्छ। २ पापरहित, शुद्ध, पवित्र। ३ दोषरहित, निर्दोष, कलङ्कहीन। (क्ली०) निर्गतं मलं यस्मात्। ४ निर्माल्य। ५ अभ्रक। ६ वृक्षविशेष, निर्मली। (Strychnus potatorum) निर्मली देखो।

निर्मल—हिन्दीके एक कवि। इनका नाम सूर्यमल्ल नामक कविके बनाए हुए ग्रन्थमें मिलता है। इन्होंने भक्तिपक्षको अनेक कविताएं रची हैं; उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

> "आंखिनमें दुराय प्यारीकाहू देखन न दीजिये।
> हृदय लगाई सुख पाई सुखे सब गुणनिधि पूर्ण
> जोइ जोइ मन इच्छा होइ सोइ सोइ क्यों न कीजिये॥
> मधुर मधुर वचन कहत श्रवणनि सुख दीजिये।
> निर्मल प्रभु नन्दनन्दन निरखि निरखि जीजिये॥"

निर्मलता (सं० त्रि०) निर्मल तल्-टाप्। १ विशुद्धता, स्वच्छता, सफाई। २ निष्कलङ्कता। ३ शुद्धता, पवित्रता।

निर्मला (हिं० पु०) १ एक नानकपन्थी सम्प्रदाय जिसके प्रवर्त्तक रामदास नामक एक महात्मा थे। इस सम्प्रदायके लोग गेरुए वस्त्र पहनते और साधु-संन्यासियोंकी भांति रहते हैं। २ इस सम्प्रदायका कोई व्यक्ति।

निर्मली (हिं० स्त्री०) १ बङ्गाल, मध्यभारत, दक्षिणभारत और बरमामें होनेवाला एक प्रकारका मझला सदाबहार पेड़। इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, कड़ी और मजबूत होती है और इमारत, खेतीके औजार तथा गाड़ियां आदि बनानेके काममें आती है। चीरनेके समय इसकी लकड़ीका रंग भीतरसे सफेद निकलता है, लेकिन हवा लगते ही कुछ भूरा या काला हो जाता है। इस वृक्षके फलका गूदा खानेके काममें आता है। इसके पके हुए बीजोंका, जो कुचलेकी तरहके परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं, आंखों, पेट तथा मूत्रयन्त्रके अनेक रोगोंमें व्यवहार होता है। गंदले पानीको साफ करनेके लिए भी ये बीज उसमें घिस कर डाल दिए जाते हैं। इससे पानीमें मिली हुई मिट्टी जल्दी बैठ जाती है। दीर्घकालव्यापी उदरामयरोगमें इसके एक या आध फलको ले कर मट्ठेके साथ मिला कर सेवन करनेसे वह सात दिनके अन्दर आराम हो जाता है। फलके चूर्णको दूधके साथ मिला कर सेवन करनेसे धातुकी पीड़ा जाती रहती है।

डा० एन्सलीका कहना है, कि वमन करानेकी जरूरत होने पर तामिल डाक्टर पके फलको चूर कर एक चमचा भर रोगीको खिलाते हैं। मुदीन सरीफने निजकृत असमाम मैं मन्यरत्नावलीमें लिखा है, कि इस फलका गूदा आमाशय और वायुनलीप्रदाहमें विशेष उपकारी है। २ रीठेका वृक्ष या फल।

निर्मलोपल (सं० पु०) निर्मलः विशुद्धः उपलः। स्फटिक।

निर्मल्या (सं० स्त्री०) स्पृक्का, असबरग।

निर्मशक (सं० त्रि०) निर्गतो मशको यस्मात्। १ मशकरहित, जहां मच्छड़ न हो। (अव्य०) २ मशकका अभाव।

निर्मांस (सं० त्रि०) निर्गतं मांसं यस्य। १ मांसविहीन, जिसमें मांस न हो। (पु०) २ वह मनुष्य जो भोजनके अभावके कारण बहुत दुबला हो गया हो, तपस्वी या दरिद्र भिखमंगा आदि।

निर्मांसवक्त्र (सं० पु०) कुमारानुचरभेद, कुमारके एक अनुचरका नाम।

निर्मा (सं० स्त्री०) १ मूल्य, कीमत। २ परिमाण।

निर्माण (सं० क्ली०) निर्मीयते निर्-मा-ल्युट्। १ निर्मिति, बनानेका काम। २ घटादिकी रचना, बनावट। ३ निर्माणसाधन कार्यादि। ४ मानातीत।

निर्माणविद्या (सं० स्त्री०) इमारत, नहर, पुल इत्यादि बनानेकी विद्या, वास्तु-विद्या, इंजीनियरी।

निर्माता (हिं० पु०) निर्माण करनेवाला, बनानेवाला।

निर्मात्रिक (सं० वि०) विना मात्राका, जिसमें मात्रा न हो।

निर्मली—सिख जातिके अन्तर्गत सम्प्रदायविशेष। ये लोग ईश्वराराधनामें अपना जीवन उत्सर्ग कर देते हैं और प्रायः उलङ्ग रहते हैं। सेरिंका कहना है, कि निर्मली काशीधामके ये खश्रोंके सम्प्रदायभेदमात्र हैं। पवित्र रहना ही इनके जीवनका मुख्य उद्देश्य है। ये लोग प्रतिदिन १०४ बार हाथ धोते हैं और दिन भरमें कई बार स्नान करते हैं। ये लोग संसारका त्याग नहीं करते, किन्तु अपवित्र हो जानेकी आशङ्कासे सन्तानोंको स्पर्श नहीं करते हैं। बौद्धधर्मावलम्बियोंकी तरह ये लोग भी जीवहिंसा नहीं करते। सिख देखो।

निर्माल्य (सं० क्ली०) निर्-मल-ष्यञ्। देवोच्छिष्ट वस्तु, वह पदार्थ जो किसी देवता पर चढ़ चुका हो, देवता पर चढ़ चुकी हुई चीज। जो पुष्प, फल और मिष्टान्न आदि किसी देवता पर चढ़ाये जाते हैं वे विसर्जनसे पहले "नैवेद्य" और विसर्जनके उपरान्त 'निर्माल्य' कहलाते हैं। देव-निर्माल्य मस्तक पर धारण और शरीरमें अनुलेपन करना तथा नैवेद्य भक्तोंको दे कर आप खाना चाहिए।

"निर्माल्यं शिरसा धार्यं सर्वाङ्गे चानुलेपनम्।
नैवेद्यंचोपभुञ्जीत दत्त्वा तद्भक्तिशालिने॥"
(तन्त्रसार)

पूजाके बाद ईशानकोणमें एक मण्डल बना कर उसमें निम्नलिखित मन्त्रसे निर्माल्य रख देना चाहिए। विष्णुका निर्माल्य होनेसे—'ओं विश्वक्सेनाय नमः' शक्तिका होनेसे—'ओं शेषिकायै नमः' शिवका होनेसे—'ओं चण्डेश्वराय नमः'; सूर्यका होनेसे—'ओं तेजश्चण्डाय नमः'; कालिकाका होनेसे—'ओं चाण्डालिन्यै नमः'

यही सब मन्त्र पढ़ कर निर्माल्य रखना होता है। कालिकापुराणमें लिखा है, कि निर्माल्यको जल वा तरुमूलमें फेंक देना चाहिए।

तन्त्रसारके मतानुसार देवताके उद्देशसे जो मणि-मुक्ता, सुवर्ण और ताम्र चढ़ाए जाते हैं, वे १२ वर्षके बाद, पटी और शाटी ६ मासके बाद, नैवेद्य चढ़ानेके साथ ही, मोदक और क्षमर अर्द्ध यामके बाद, पट्टवस्त्र तीन मासके बाद, यज्ञसूत्र एक दिनके बाद और अन्न तथा परमान्न शीतल होनेके बाद ही निर्माल्य हो जाता है।

शिवको चढ़ा हुआ निर्माल्य खानेका निषेध है, खानेसे पापभागी होना पड़ता है।

"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम्॥"
(तिथितत्त्व)

शिवनैवेद्य तथा पत्र, पुष्प, फल और जल ग्रहणीय नहीं है, किन्तु ये सब शालग्राम शिलास्पर्शसे पवित्र हो जाते हैं अर्थात् ये सब यदि शालग्राम शिलामें स्पर्श कराये जांय, तो ग्रहणके योग्य हो सकते हैं। प्रातःकालमें प्रतिदिन निर्माल्य फेंक देना चाहिए। देवता यदि निर्माल्ययुक्त रहें, तो पुराकृत सभी पुण्य नष्ट हो जाते हैं।

"प्रातःकाले सदा कुर्यात् निर्माल्योत्तरणं बुधः।
तृषितः पशवो बद्धाः कन्यका च रजस्वला॥
देवता च सनिर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम्॥"
(अत्रिस्मृति)

प्रातःकालमें देवताका निर्माल्य फेंक देना चाहिए। यदि तृषित पशु बद्ध रहे, कन्या सरजस्का हो और देवता निर्माल्ययुक्त हों, तो पुराकृत पुण्य नष्ट होते हैं।

प्रातःकाल उठ कर प्रतिदिन जो मनुष्य देवनिर्माल्य तिरस्कार करता है, उसके दुःख, दरिद्रता और अकालमृत्यु नहीं होती।

"यः प्रातःरुत्थाय विधाय नित्यं
निर्माल्यमीशस्य निराकरोति ।
न तस्य दुःखं न दरिद्रता च
नाकालमृत्युर्न च रोगमात्रम् ॥"
(नारदपञ्च०)

हरिभक्तिविलासमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

अरुणोदयके समय यदि निर्माल्य परिष्कार न किया जाय, तो वह अल्पस्वरूप, एक घड़ीके बाद महाशल्य, एक पहरके बाद अति शल्य और उसके बाद वज्रप्रहार-तुल्य हो जाता है। एक घड़ीके बाद क्षुद्रपातक, मुहूर्त्त-के बाद महापातक, चार घड़ीके बाद अतिपातक, तीन मुहूर्त्तके बाद महापातक और उसके बाद ब्रह्मवधतुल्य पाप होता है। इस पापकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्त विधेय है। अर्द्ध मुहूर्त्तके बाद सहस्र जप, मुहूर्त्तके बाद डेढ़ हजार जप, तीन मुहूर्त्तके बाद दश हजार जप और एक प्रहरके बाद पुरश्चरण करना होता है। इसीसे उक्त पापका नाश होता है। प्रहर बीत जाने पर जो पाप होता है, वह प्रायश्चित्त करने पर भी दूर नहीं होता।

निर्माल्या (सं० स्त्री०) निर्माल्यते इति निर-मल-ण्यत् तत टाप्। स्पृक्का, असबरग।

निर्मित (सं० त्रि०) निर-मा-क्त। कृत-निर्माण, रचित, बनाया हुआ।

निर्मिति (सं० स्त्री०) निर-मा-भावे-क्तिन्। निर्माण करण।

निर्मुक्त (सं० पु०) निर्-मुच्-क्त। १ मुक्तकञ्चुक सर्प, वह साँप जिसने हालमें केंचुली छोड़ी हो। (त्रि०) २ जो मुक्त हो गया हो, जो छूट गया हो। ३ जिसके लिए किसी प्रकारका बन्धन न हो।

निर्मुक्ति (सं० स्त्री०) निर-मुच्-क्तिन्। १ सम्पूर्ण स्वाधीनताप्राप्ति, मुक्ति, छुटकारा। २ मोक्ष।

निर्मुट (सं० क्ली०) निर्गतं मुटं यस्मात्। १ कर-शून्य हट्ट, जिस बाजारमें चुंगी न ली जाती हो। २ वनस्पतिविशेष, एक प्रकारकी लता। ३ खर्पर, खपड़ा। ४ वह वृक्ष जिसमें बहुत फूल लगे हों। ५ सूर्य। ६ धूर्त्त, शठ, खल।

निर्मूल (सं० त्रि०) निर्गतं मूलं यस्य। १ मूलरहित, जिसमें जड़ न हो, बिना जड़का। २ जिसकी जड़ न रह गई हो, जड़से उखाड़ा हुआ। ३ जिसका कोई आधार, बुनियाद या असलियत न हो, बेजड़। ४ जो सर्वथा नष्ट हो गया हो, जिसका मूल ही न रह गया हो।

निर्मूलक (सं० त्रि०) निर्मूल देखो।

निर्मूलन (सं० क्ली०) निर्मूलं क्रतो णिच्-भावे ल्युट्। १ उत्पाटन, उखाड़ना। २ निर्मूल करना या होना, विनाश।

निर्मेघ (सं० त्रि०) मेघशून्य, बिना बादलका।

निर्मेध (सं० त्रि०) मेधाशून्य, जिसे अक्ल न हो।

निर्म्रजस् (सं० अव्य०) निर्-मृज 'ईश्वरे तोसुन्कसुनौ' इति सूत्रेण तुमर्थे कसुन्। निर्मार्जन करना।

निर्मृष्ट (सं० त्रि०) निर्-मृज-क्त। प्रोञ्छित, पोंछा हुआ।

निर्मोक (सं० पु०) नितरां मुच्यते इति निर्-मुच्-घञ्। १ सर्पत्वक्, साँपकी केंचुली। पर्याय—अहिकोष, निर्व्वयनी, कञ्चुक। २ मोचन, छुटकारा। ३ त्वक्मात्र शरीरके ऊपरकी खाल। ४ पुराणानुसार सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम। ५ तेरहवें मनुके सप्तर्षियोंमें-से एकका नाम। ६ आकाश। ७ सन्नाह, कवच, जिरह-बकतर।

निर्मोक्तृ (सं० त्रि०) निर्-मुच्-तृच्। १ निर्मोचनकारी, मुक्त करनेवाला। २ संशयछेदक। (पु०) ३ स्वतन्त्रता, मुक्ति।

निर्मोक्ष (सं० पु०) नितरां मोक्षः। १ त्याग। २ पूर्ण मोक्ष, जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी न रह जाय।

निर्मोचन (सं० क्ली०) निर्-मुच्-णिच्-ल्युट्। मुक्ति, मोक्ष।

निर्मोच्य (सं० त्रि०) निर्-मुच्-ण्यत्। मुक्ति पाने योग्य।

निर्मोह (सं० त्रि०) निर्गतः मोहो यस्मात्। १ मोह-शून्य, जिसके मनमें मोह या ममता न हो। (पु०) २ रैवतमनुका पुत्रभेद, रैवत मनुके एक पुत्रका नाम। ३ सावर्णिमनुका पुत्रभेद, सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम।

निर्मोहनी (हिं॰ वि॰) निर्दय, जिसके चित्तमें ममता या दया न हो, कठोर हृदय।

निर्मोही (हिं॰ वि॰) जिसके हृदयमें मोह या ममता न हो, निर्दय, कठोर हृदय।

निर्म्लुतुका (सं॰ स्त्री॰) निर्-म्ला-तुन्, संज्ञायां कन्, पृषोदरादित्वात् साधुः। म्लानिशून्य ओषधिभेद।

निर्म्लुक्ति (सं॰ स्त्री॰) निर्मुक्ति देखो।

निर्यत्न (सं॰ त्रि॰) निर्न विद्यते यत्नः यस्य। यत्नशून्य, आलसी, जो अपने लिए कुछ भी उपाय न करे।

निर्यन्त्रण (सं॰ क्ली॰) निर्-यन्त्र-ल्युट्। १ निष्पीड़न। (त्रि॰) २ यन्त्रणाशून्य, बाधारहित। ३ निरर्गल। ४ उच्छृङ्खल।

निर्याण (सं॰ क्ली॰) निर्याति मदोऽनेन निर्-या-करणे ल्युट्। १ गजापाङ्गदेश, हाथीकी आँखका बाहरी कोना। भावे ल्युट्। २ मोचन, मोक्ष, मुक्ति। ३ बाहर निकलना। ४ यात्रा, रवानगी, विशेषतः सेनाका युद्धक्षेत्रकी ओर अथवा पशुओंका चराईकी ओर प्रस्थान। ५ वह सड़क जो किसी नगरके बाहरकी ओर जाती हो। ६ अदृश्य होना, गायब होना। ७ शरीरसे आत्माका निकलना। ८ पशुओंके पैरोंमें बांधनेकी रस्सी।

निर्यात (सं॰ त्रि॰) निर्-या-क्त। निःसृत, निर्गत, निकला हुआ।

निर्यातक (सं॰ त्रि॰) निर्यातं निर्याणं बहिष्करणं तत्करोति-णिच्-ण्वुल्। निर्हारक, अनिष्ट करनेवाला।

निर्यातन (सं॰ क्ली॰) निर्-यत-णिच्-ल्युट्। १ वैरशुद्धि, शत्रुप्रतीकार, बदला चुकाना। २ प्रतीकार। ३ प्रतिदान। ४ न्यासमर्पण, गच्छित द्रव्यका लौटा देना। ५ मारण, मार डालना। ६ ऋणादिका शोधन, ऋण चुकाना।

निर्याति (सं॰ स्त्री॰) १ निर्गमन, प्रस्थान, रवानगी। २ मुमुर्षु।

निर्याद्ध (सं॰ त्रि॰) क्षेत्रकर्षक, कृषक, किसान। निर्दाद्ध देखो।

निर्यात्य (सं॰ त्रि॰) निर्-याति कर्मणि यत्। १ शोधनीय, चुकाने योग्य। २ प्रतिदेय, देने योग्य।

निर्यादव (सं॰ त्रि॰) यादवशून्य स्थान, यादवरहित।

निर्याम (सं॰ पु॰) निर्-यम-घञ्। पोतवाह, नाविक, मल्लाह, माझी।

निर्यास (सं॰ पु॰-क्ली॰) निर्-यस-घञ्। १ कषाय। २ क्वाथ, काढ़ा। ३ वृक्षों या पौधोंमेंसे आपसे आप अथवा उनका तना आदि चीरनेसे निकलनेवाला रस। ४ गोंद। ५ क्षरण, बहना या झरना। ६ वल्कल, छाल। ७ लाक्षा।

निर्यासिक (सं॰ त्रि॰) निर्याससः अदूरदेशः ततो ठञ्। निर्याससन्निकृष्ट देशादि।

निर्यासी (सं॰ पु॰) शाखोटकवृक्ष।

निर्युक्ति (सं॰ स्त्री॰) असंयोग, युक्तिहीनता।

निर्युक्तिक (सं॰ त्रि॰) निर्गता युक्ति यस्मात्, कप्। युक्तिरहित, युक्तिहीन, बिना युक्तिका।

निर्यूथ (सं॰ त्रि॰) यूथभ्रष्ट, दलसे पृथक् किया हुआ।

निर्यूष (सं॰ पु॰) नितरां यूषः। निर्यास, गोंद।

निर्यूह (सं॰ पु॰) निर्-उह-क्त पृषोदरादित्वात् साधुः। १ मत्तवारण। २ नागदन्त। ३ हस्तिदन्तके सदृश निर्मित द्वार-वेदिकाका काष्ठभेद, दीवारमें लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय। ४ शेखर। ५ आपीड़, सिर पर पहनी जानेवाली कोई चीज। ६ द्वार, दरवाजा। ७ क्वाथ, काढ़ा।

निर्योग (सं॰ पु॰) अलङ्कार, साज।

निर्योगक्षेम (सं॰ त्रि॰) विषयविरत, वैषयिकचिन्ताविहीन।

निर्लक्षण (सं॰ त्रि॰) निर्गतं लक्षणं यस्य। १ शुभलक्षणयुक्त, अच्छे लक्षणोंका। २ अप्रसिद्ध, क्षुद्र।

निर्लक्ष्य (सं॰ त्रि॰) लक्ष्यहीन, जो निगाह पर न पड़े।

निर्लज्ज (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति लज्जा यस्य। लज्जाहीन, बेशर्म, बेहया।

निर्लज्जता (हिं॰ स्त्री॰) निर्लज्ज होनेका भाव, बेशर्मी, बेहयाई।

निर्लिङ्ग (सं॰ त्रि॰) १ जिसका कोई निश्चित लिङ्ग या चिह्न न हो। २ जिसका लिङ्गसाधन नहीं होता हो।

निर्लिप्त (सं॰ त्रि॰) निर्-लिप्-क्त। १ सम्बन्धशून्य,

जो कोई सम्बन्ध न रखता हो, बेलौस। २ लेपरहित, राग द्वेष आदिसे मुक्त, जो किसी विषयमें आसक्त न हो।

निर्लुञ्चन (सं० क्लो०) निर्-लुन्च, भावे ल्युट्। वितुषीकरणादि, लूटमार करनेका काम।

निर्लुण्ठन (सं० क्लो०) निर्-लुठि-भावे ल्युट्। अपहरण, लूटना।

निर्लेखन (सं० क्लो०) निर्-लिख-भावे ल्युट्। १ किसी चीज पर जमी हुई मैल आदि खुरचना। २ वह वस्तु जिससे मैल खुरची जाय।

निर्लेप (सं० त्रि०) निर्गतः लेपो यस्मात्। १ लेपशून्य, विषयों आदिसे अलग रहनेवाला। २ पापशून्य। ३ परिणामकी कारण संयोगादि शून्य।

निर्लोभ (सं० त्रि०) जिसे लोभ न हो, लालच न करनेवाला।

निर्लोभी (हिं० वि०) निर्लोभ देखो।

निर्लोमन् (सं० त्रि०) निर्गतं लोम यस्य। लोमरहित, जिसके रोएं न हों।

निर्लोह (सं० क्लो०) १ बोल नामक गन्धद्रव्य। २ व्याघ्रनख नामक गन्धद्रव्य।

निर्ल्वयनी (सं० स्त्री०) नितरां लीयते संलीनो भवति, निर्-ली-ल्युट्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ कञ्चुक, जामा, चोलक। २ सर्पत्वक्, केंचुली।

निर्वंश (सं० त्रि०) जिसके आगे वंश चलानेवाला कोई न हो, जिसका वंश नष्ट हो गया हो।

निर्वंशता (सं० स्त्री०) निर्वंश होनेका भाव।

निर्वक्तव्य (सं० त्रि०) निर्-वच तव्य। निर्वाच्य, प्रकाश न करने योग्य।

निर्वचन (सं० क्लो०) निर्-वच-भावे ल्युट्। १ निरुक्ति, किसी पद या वाक्यकी ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदिका पूरा कथन हो। (त्रि०) २ प्रसिद्ध, मशहूर। निर्गतं वचनं यस्य। ३ वचनशून्य, मौनावलम्बन। ४ वक्तव्यताशून्य, जिसमें बोलनेके लिये कुछ भी न रह गया हो।

निर्वण (सं० त्रि०) निर्गतो वनात् असंज्ञायां णत्वम्। वनसे निष्क्रान्त, जंगलसे निकला हुआ या जंगलसे बाहर।

निर्वपण (सं० क्लो०) निर्-वप-भावे ल्युट्। १ दान। २ अन्नादिका संविभाग।

निर्वयणी (सं० स्त्री०) निर्ल्वयनी, सांपकी केंचुली।

निर्वर (सं० त्रि०) निर्गतो वरो वरणमस्य। १ निर्लज्ज, बेशर्म, बेहया। २ निर्भय, निडर। ३ सार, कठिन।

निर्वरुणता (सं० स्त्री०) वरुणके अधिकारसे विमोचन।

निर्वर्णन (सं० क्लो०) निर्-वर्ण-भावे ल्युट्। दर्शन।

निर्वर्तित (सं० त्रि०) निर्-वृत-णिच्-कर्मणि-क्त। निष्पादित।

निर्वर्त्य (सं० त्रि०) निर्-वृत-णिच्-कर्मणि-यत्। निष्पाद्य, व्याकरण-परिभाषित कर्मभेद।

निर्वहण (सं० क्लो०) निर्-वह-भावे ल्युट्। १ नाट्योक्ति, समाप्ति। २ निर्वाह, गुजर, निबाह।

निर्विष्ट (सं० त्रि०) विभक्त, अलग करनेवाला।

निर्वाक् (सं० त्रि०) वाक्यहीन, जिसके मुंहसे बात न निकले, जो चुप हो।

निर्वाक्य (सं० त्रि०) वाक्यहीन, जो बोल न सकता हो, गूंगा।

निर्वार्च (सं० त्रि०) १ बहिर्भाग, बाह्य। २ निर्गत।

निर्वाच्य (सं० त्रि०) निर्वचनीय।

निर्वाञ्च् (सं० त्रि०) निर्-अव-अञ्च् क्विप्। निर्गत, निकाला हुआ।

निर्वाण (सं० क्लो०) निर्-वा-क्त। (निर्वाणोऽवाते। पा ८।२।५०) अवाते इति छेदः। १ गजमज्जन। २ विनाश। ३ निवृत्ति। ४ शान्ति। ५ समाप्ति। ६ विष्णु। ७ नाभिदेशमें जपनेयोग्य प्रणवपुटित और मातृकापुटित स्वाभिलषित मूलमन्त्र। ८ बाणशून्य। ९ अस्तगमन। १० संगम। ११ विश्रान्ति। १२ निश्चल। १३ शून्य। १४ विद्योपदेश। १५ मुक्ति। दर्शनमें यही अर्थ सब जगह लिया गया है।

अमरकोषमें मुक्तिवाचक आठ विशेष शब्दोंका उल्लेख है,—अमृत, श्रेयः, मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति, कैवल्य और निर्वाण।

उपनिषद्के मतानुसार प्रत्यगात्म ब्रह्मके सम्यग्ज्ञानद्वारा अमृत लाभ होता है। श्रेयः (मुक्ति) और प्रेयः (अभ्युदय) इन दोनों मार्गोंका सम्यक् विचार कर जो

और व्यक्ति हैं वे अयोमार्गका ही अवलम्बन करते हैं। सांख्यदर्शनकार कपिलका कहना है, कि प्रकृति और पुरुष इन दोनों तत्त्वोंके भेदज्ञान द्वारा दुःखत्रयका ध्वंस और मोक्षलाभ होता है। गोतमने अपने न्यायदर्शनमें लिखा है, कि प्रमाण प्रमेयादि षोड़श पदार्थोंके सम्यग्‌ज्ञान द्वारा दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञानके उत्तरोत्तर अपायसे अपवर्गलाभ होता है। द्रव्य गुण इत्यादि षट् पदार्थोंके सम्यग्‌ज्ञान द्वारा निःश्रेयसाधिगम होता है। वैशेषिक दर्शनकार कणादका भी यही मत है। पातञ्जलदर्शनके मतसे—योग द्वारा जीवात्माके परमात्मामें लय होनेका नाम मुक्ति है। मीमांसक सम्प्रदायोंमेंसे किसी किसीका कहना है, कि नित्यसुखसाक्षात्कारका नाम मुक्ति है। वैदान्तिक लोग कहते हैं, कि पारमार्थिक ज्ञान द्वारा अविद्याका ध्वंस और कैवल्य लाभ होता है। फिर बौद्ध लोगोंका कहना है, कि प्रतीत्यसमुत्पन्न धर्मसमूहकी सम्बुद्धि द्वारा प्रपञ्चका उपशम, राग, द्वेष और मोहका क्षय तथा निर्वाण लाभ होता है।

मुक्तिवादग्रन्थमें लिखा है, कि प्राचीन लोग सायुज्य, सालोक्य, सामीप्य, सार्ष्टि और निर्वाण इन पांच प्रकारकी मुक्तियोंको स्वीकार करते हैं। निम्नलिखित श्लोकमें श्रीहर्षने सायुज्य मुक्तिका विषय व्यक्त किया है।

"सायुज्यमृच्छति भवस्य भवाब्धियाद
स्तां पत्युरेत्य नगरीं नगराजपुत्र्याः।
भूताभिधानपटुभूपतनीमवाप्य
भीर्योऽद्भवे भवति भावमिवास्ति धातुः॥"

(नैषध ११।११७)

इस प्रकार सालोक्य, सामीप्य और सार्ष्टि मुक्तिका विषय विभिन्न ग्रन्थोंमें वर्णित है।

निर्वाणमुक्तिका विषय विष्णुपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

एक दिन मायामोहावतार बुद्ध लाल वस्त्र पहने, आँखोंमें सुरमा लगाए असुरोंके निकट गए और मधुर स्वरसे कहने लगे—हे असुरगण! यदि निर्वाण, मुक्ति वा स्वर्गकी तुम लोग कामना करते हो, तो पशुहिंसा आदि कोई दुष्कर्म न करो, क्योंकि इससे कोई फल नहीं निकलता है। इस संसारको विज्ञानमय समझो। पण्डितोंने भी कहा है, कि यह जगत् अनाधार है, भवसङ्कटमें सर्वदा परिभ्रमण करता है और राग आदि दोषोंसे दूषित है।

निर्वाण शब्दका व्यवहार चाहे किसी समयमें क्यों न आरम्भ हो वह शब्द मुक्ति अर्थमें ही बौद्धदर्शनमें कई जगह व्यवहृत हुआ है और वस्तुतः निर्वाण बौद्धोंका मुक्तिव्यञ्जक पारिभाषिक शब्द है। मुक्ति कहनेसे बौद्ध लोग जो समझते हैं, वह निर्वाण शब्दसे ही प्रकृष्टरूपमें जाना जा सकता है। जिस तरह इंधनके अभावमें अग्नि निर्वाण हो जाती है उसी तरह काम, लोभ, मोह, संस्कार इत्यादिके उन्मूलनसे सत्ता वा अस्तित्वका विलोप होता है। सत्ताका निरोध ही निर्वाण है। उदीच्य बौद्ध ग्रन्थोंमें निर्वाण शब्दका लक्षण विस्तृतरूपसे वर्णित है। नीचे कुछ ग्रंथोंका मत उद्धृत हुआ है—

१। अश्वघोषने बुद्धचरितकाव्यमें लिखा है—

"करुणायमाना ज्यायसो मृत्युभयविमोहिताः।
नैर्वाणे स्थापनीयास्तत् पुनर्जन्मनिवर्त्तके॥"

(बुद्धचरित)

निर्वाण पुनर्जन्मका निवर्त्तक है। संस्कारसमूहका क्षय नहीं होनेसे जन्मान्तरका उच्छेद नहीं होता। सुतरां संस्कारसमूहके क्षयका नाम निर्वाण है।

२। आर्य नागार्जुनने माध्यमिकसूत्रमें लिखा है—

"निर्वाणकाले वोच्छेदः प्रशमाद्भवसन्ततेः॥"

(माध्यमिकसूत्र)

भवसन्ततिके उच्छेदका नाम निर्वाण है। भव शब्दका साधारण अर्थ संसार है क्योंकि इसका प्रकृत अर्थ है कायिक, वाचिक और मानसिक कर्मजनित संस्कार। जण नाभ जिस प्रकार अपने यत्नसे जाल प्रस्तुत कर उसमें स्वयं आबद्ध हो जाता है, हम लोग भी उसी प्रकार पूर्व संस्कारके वशसे अपने संसारको सृष्टि कर उसमें नाना प्रकारके सम्बन्धोंसे आबद्ध हो गए हैं। संस्कारके क्षय द्वारा संसारका उच्छेद साधन ही निर्वाण है।

३। रत्नकूटसूत्रमें बुद्धोक्ति इस प्रकार है—

"रागद्वेषमोहक्षयात् परिनिर्वाणं॥" (रत्नकूटसूत्र)

राग, द्वेष और मोहके क्षयका नाम निर्वाण है। अग्नि

जिस प्रकार इंधनके अभावमें निर्वाण हो जाता है, उसी प्रकार राग, द्वेष और मोहके चय होनेसे जोवका आत्माभिमान लुप्त हो जाता है। अहङ्कारके ममकारका ध्वंस होनेसे ही निर्वाणलाभ होता है।

४। वज्रच्छेदिका ग्रन्थमें बुद्धने लिखा है।

'इह हि सुभूते बोधिसत्त्वयानसंप्रस्थितेन एवं चित्तमुत्पादयितव्यं सर्वे सत्वा मयानुपधिशेषेनिर्वाणधातौ परिनिर्वापयितव्या ॥' (वज्रच्छेदिका)

निर्वाण पदार्थके अनुपधि अर्थात् प्राप्त होनेसे संस्कारादि कुछ भी नहीं रहते।

५। बोधिचर्यावतारग्रन्थमें शान्तिदेवने लिखा है—

"सर्वत्यागश्च निर्वाणं निर्वाणर्थि च मे मनः ॥"

सर्वत्याग अर्थात् संसार, सुख, दुःख, आत्माभिमान इत्यादि सभी त्यागोंका नाम निर्वाण है।

६। रत्नमेघ ग्रन्थमें इस प्रकार लिखा है,—

"तृष्णया विप्रहाणेन निर्वाणमिति कथ्यते ॥"

(रत्नमेघ०)

तृष्णाकी सम्यक् निवृत्तिका नाम निर्वाण है। यह संसार अनाधार और कल्पित है, इस मिथ्या संसारके साथ अपना सम्बन्ध रखनेकी प्रबल इच्छाका नाम तृष्णा है। उस तृष्णाके चय होनेसे ही संसारका उच्छेद, आत्माभिमानका विलय और निर्वाणलाभ होता है।

७। अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितामें लिखा है—

"निरोधस्य निर्वाणस्य विगमस्यैतत् सुभूतेऽधिवचनं यदुत गम्भीरमिति।" (अष्टसाहस्रिका०)

निरोध, निर्वाण और विगम ये सभी समार्थक हैं और इनका अर्थ अत्यन्त गम्भीर है। अपनापन और संसारके अपायका नाम निर्वाण है और जिस अवस्थामें संसार भी नहीं है, मैं भी नहीं हूं, वही अवस्था अति दुर्बोध और गम्भीर है।

८। प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्रमें लिखा है—

'बोधिसत्त्वस्य प्रज्ञापारमितामाश्रित्य विहरति चित्तावरणः। चित्तावरणनास्तित्वात् अत्रस्तो विपर्यासातिक्रान्तो निष्ठनिर्वाणः ॥"

बोधिसत्त्वका चित्तावरण परमार्थज्ञानका अवलम्बन कर अवस्थित है। चित्तावरणके अभावमें विपर्यासका अभाव और निर्वाणलाभ होता है। संसार मिथ्या है, मैं मिथ्या हूं, आन्तर और बाह्य जगत् एक महाशून्य मात्र है, इसी ज्ञानका नाम परमार्थज्ञान है। परमार्थज्ञानके अनुशीलनसे संसाराभिमान और आत्माभिमान रूप विपर्यासका ध्वंस और निर्वाणका लाभ होता है।

९। शतक ग्रन्थमें लिखा है—

'धर्मं समासतोऽहिंसां वर्णयन्ति तथागताः।
शून्यतामेव निर्वाणं केवलं तदिहोभयम् ॥"

बौद्धगण अहिंसाको ही धर्म और शून्यताको निर्वाण मानते हैं। जिस अवस्थामें संसारका ध्वंस हुआ है, हम लोगोंका अस्तित्व भी लुप्त हुआ है, उस अवस्थामें कौन रहता है? यदि लौकिक भाषामें कहा जाय, तो अवश्य ही यह स्वीकार करना होगा कि उस अवस्थामें केवल शून्यतामात्र अवशिष्ट रहती है। यही शून्यता निर्वाण है।

१०। माध्यमिकवृत्तिकामें चन्द्रकीर्त्तिने इस प्रकार लिखा है,—

शून्यताके ज्ञान द्वारा अशेष प्रपञ्चके उपशमरूप श्रेयका लाभ होता है। प्रपञ्चके अभावमें विकल्पकी निवृत्ति, कर्मक्लेशका चय और जन्मका उच्छेद होता है। अतएव सर्व प्रपञ्चकी निवर्तक शून्यता ही निर्वाण कहलाती है।

उक्त मतोंकी पर्यालोचना करनेसे जान पड़ता है कि निर्वाणकालमें अपनापन और संसारका लोप होता है। संसारसमूहके चय होनेसे ही अपनापनका लोप होता है और मेरे साथ संसारका जो सम्बन्ध था वह भी विच्छेद हो जाता है। उस समय मेरे लिए संसारका अस्तित्व और अभाव दोनों ही समान हैं। निर्वाणके समय न संसार ही रहा और मैं ही। मेरा अस्तित्व फिर कभी भी नहीं होगा, संसारके साथ मेरा पुनः सम्बन्ध नहीं होगा और इस प्रकार मेरे पुनर्जन्मकी निवृत्ति हुई। मेरा और संसारका चरमध्वंस हुआ। मैं और संसार दोनों ही शून्यतामें निमग्न हुए। यही शून्यता निर्वाण है।

अब यह देखना चाहिए, कि शून्यता कौन-सी वस्तु है। माध्यमिकसूत्रमें नागार्जुनने इसके विषयमें जो बुद्धवाक्य उद्धृत किया है वह इस प्रकार है—

"अनक्षरस्य धर्मस्य श्रुतिः का देशना च का ।
श्रूयते देश्य तच्चापि समारोपादनक्षरः ॥"

जो पदार्थ किसी अक्षर द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता, उस दुर्ज्ञेय पदार्थके सम्बन्धमें क्या विवरण दिया जा सकता है? अनक्षर क, ख, ग इत्यादि अक्षर द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता। इतना भी जो विवरण दिया गया वह भी पारमार्थिक पदार्थमें मिथ्या अक्षरका आरोप करके।

यह शून्यता पदार्थ अत्यन्त दुर्बोध है। यह न तो भावपदार्थ है और न अभावपदार्थ। शून्यता नामक ऐसी कोई वस्तु हो नहीं जिसे हम लोग निर्वाणके समय प्राप्त कर सकते हैं। इस संसार वा अपनापनका ध्वंस वा अभाव भी शून्यता नहीं है। यदि शून्यता नामक कोई द्रव्य वा भाव पदार्थ रहता, तो अवश्य ही ध्वंसशील होता। सुतरां उस शून्यताके अधिगममें नित्य निर्वाणका लाभ नहीं हो सकता था। संसार अथवा अपनापनके अभावको ही किस प्रकार शून्यता कह सकते? संसार और मैं दोनों ही मिथ्या पदार्थ हैं; क्योंकि इनका पारमार्थिक अस्तित्व कभी भी न था। अतः शिरःशून्य पदार्थकी शिरःपीड़ाकी तरह इनका अभाव किस प्रकार होगा? रत्नावलीग्रन्थमें लिखा है,—

'न चाभावोऽपि निर्वाणं कुत एवास्य भावना।
भावाभावपरामर्शक्षयो निर्वाणमुच्यते ॥" (रत्नावली)

निर्वाण (शून्यता) जब अभावपदार्थ नहीं है, तब इसे किस प्रकार भावपदार्थ कह सकते? भाव और अभावज्ञानका क्षय ही निर्वाण नामसे प्रसिद्ध है। भाव और अभाव पदार्थ परस्पर सापेक्ष है, किन्तु जिस पदार्थके अधिगममें निर्वाण लाभ होता है वह किसीका भी सापेक्ष नहीं है। सुतरां निर्वाण वा शून्यता भावपदार्थ भी नहीं है और न अभावपदार्थ ही है। यह निर्वाण वा शून्यता अनिर्वचनीय पदार्थ है। जिन्होंने निर्वाण लाभ किया है वे भाव और अभावपदार्थके अस्तित्व तथा नास्तित्वसे अतीत हो चुके हैं। उनकी अवस्थाका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सकता।

इस शून्यता वा निर्वाणके सम्बन्धमें नीचे कुछ मत उद्धृत किये गए हैं।

१। हिन्दू-दार्शनिक माधवाचार्यने बौद्धदर्शनके मतकी समालोचना करते हुए कहा है कि अस्ति, नास्ति, उभय और अनुभय ये चतुष्कोटि विनिर्मुक्त पदार्थ ही शून्यता हैं।

२। समाधिराजसूत्रमें लिखा है कि अस्ति और नास्ति दोनों ही मिथ्या है; शुद्धि और अशुद्धि ये भी कल्पित हैं। सुतरां पण्डित लोग उभय अन्तका त्याग कर मध्यमें भी नहीं रहते। वे निर्वाणलाभ कर अस्ति और नास्तिके अतीत तथा सत्ताहीन हो जाते हैं।

३। नागार्जुनने कहा है, कि अल्प बुद्धिके लोग अस्तित्व और नास्तित्वका अनुभव करते हैं। किन्तु धीर मनुष्य अस्तित्व और नास्तित्वके उपशमरूप श्रेयको उपलब्ध करते हैं। शून्यता पदार्थ "है" ऐसा नहीं कह सकते और "नहीं है" ऐसा भी नहीं कह सकते।

४। रत्नावलीग्रन्थमें इस विषयमें इस प्रकार लिखा है,—जो 'नहीं' अर्थात् संसार और मेरे ध्वंसरूप अभावपदार्थको ही शून्यता मानते हैं वे दुर्गतिको प्राप्त होते हैं और जो नहीं मानते वे भाव और अभावके अतीत शून्यताको लाभ कर सुगति और मुक्ति पाते हैं।

५। ललितविस्तरग्रन्थमें यों लिखा है,—इस संसारमें कोई पदार्थ "है" ऐसा नहीं कह सकते और "नहीं है" ऐसा भी नहीं कह सकते। जो कार्यकारणकी परम्परासे अवगत हैं वे अस्ति और नास्तिसे अतीत हो कर निर्वाण लाभ करते हैं।

६। रत्नाकरसूत्रमें लिखा है,—यह विश्व महाशून्य है। जिस प्रकार अन्तरीक्षमें शकुनका पद विद्यमान नहीं रह सकता, उसी प्रकार इस महाशून्यमें भी कोई पदार्थ विद्यमान नहीं है। पदार्थोंमेंसे किसीको भी स्वभाव वा अन्य निरपेक्ष सत्ता नहीं है, सुतरां वे किस प्रकार दूसरे पदार्थोंके जन्य वा जनक हो सकते?

७। रत्नमेघसूत्रमें लिखा है, कि पदार्थसमूहके आदि और अन्तमें शून्यस्वभाव है। इनका कोई आधार वा स्थिति नहीं है। ये सब असार और मायामात्र हैं। शुद्ध अशुद्ध सभी आकाशके सदृश निर्लेप हैं।

८। अनवतप्त ह्रदापसंक्रमणसूत्रमें लिखा है,—जो पदार्थ अन्य पदार्थोंके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ है,

उसकी उत्पत्ति हो नहीं हुई है, ऐसा जानना चाहिए। उस पदार्थके स्वभाव वा स्वाधीन सत्ता नहीं है। जिसे अन्य निरपेक्ष सत्ता नहीं हैं, उसे शून्य कह सकते हैं और जिसने शून्यता उपलब्ध की है, वह कभी भी संसारमें मत्त नहीं रह सकता।

८। बुद्धदेवने स्वयं इस शून्यताका विषय जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है,—

"निर्वाण' यह गम्भीर पदार्थ शब्द द्वारा प्रकाशित हुआ है, किन्तु कोई भी निर्वाण लाभ नहीं कर सकता। 'अनिर्वाण' यह भी एक शब्द है और इसे भी कोई लाभ नहीं कर सकता। शून्य पदार्थको भी निर्वाण कहते हैं और प्रपञ्चकी निवृत्ति भी निर्वाण कहलाती है। निर्वाण को पदार्थका कैसा ही लक्षण क्यों न कहें, उसके साथ जीवका ग्राह्य ग्राहक सम्बन्ध नहीं हो सकता। क्योंकि जीवकी प्रकृत सत्ता नहीं है। अतः उसने निर्वाण "लाभ" किया, ऐसा किस प्रकार कह सकते। निर्वाण कोई भावपदार्थ नहीं है, अतः उसकी प्राप्ति भी असम्भव है। संसार और मैं दोनों ही मिथ्या पदार्थ हैं और इन दोनोंकी मिथ्या प्रतीति द्वारा प्रपञ्चका उपशम हुआ सही, लेकिन परमार्थतः जो था वही रहा। वही पारमार्थिक पदार्थ निर्वाण है। नीचे निर्वाणलाभकी प्रणाली संक्षेपमें दी जाती है,—

यह संसार दुःखमय है। जन्मलाभ करके जरा-शोकपरिदेव-दुःख-दौर्मनस्य इत्यादि द्वारा जीव रात दिन सन्तप्त रहता है। मृत्युसे भी इस सन्तापकी चिर-निवृत्ति नहीं होती, क्योंकि मृत्युके बाद ही पुनर्जन्म-लाभ होता है। जब तक कर्मका सम्पूर्ण क्षय नहीं हो जाता, तब तक जन्ममरणप्रवाह अव्याहतभावसे होता रहता है। बुद्धने कहा है,—

"न प्रणश्यन्ति कर्माणि कल्पकोटीशतैरपि।
सामग्रीं प्राप्य कालंच फलन्ति खलु देहिनाम्॥"

शतकोटिकल्पमें भी कर्मका क्षय नहीं होता। काल और पात्रको प्राप्त होनेसे ही जीवोंको कर्मफल मिलता है।

कर्मफलानुसार जीव नरक, तिर्यक्, प्रेत, असुर, मनुष्य और देव इन छः लोकोंमें जन्म ले कर छः प्रकारकी गतिको पाता है। इन सब लोकोंमें जन्म ले कर भी कभी अण्डज, कभी स्वेदज, कभी जरायुज और कभी उपपादुक योनिमें जन्म होता है।

जिस प्रकार कुम्भकारका चक्र अन्तर्निहित शक्ति प्रभावसे लगातार घूमता रहता है, जीव भी उसी प्रकार अपने अपने कर्मफलसे इस संसारचक्रमें बराबर परिभ्रमण करता है। फिर जिस प्रकार किसी कांचकी शीशीमें कुछ भौरोंको डाल कर शीशीका मुंह बन्द कर देनेसे कोई भौरा ऊपरमें, कोई नीचे और कोई बीचमें घूमता रहता है, एक भी उससे निकलने नहीं पाता, उसी प्रकार जीवगण अपने कर्मफलसे इस संसारचक्रके मध्य कभी नरक, कभी तिर्यक्, कभी मनुष्य आदि लोकोंमें जन्मग्रहण करते हैं, कोई भी उससे छुटकारा नहीं पाता।

"सर्वे अनित्या अकामा अध्रुवा न च शाश्वताऽपि न कल्पाः।"
(ललितविस्तर)

संसारके सब पदार्थ अनित्य, अकाम, अध्रुव, अशाश्वत और कल्पित हैं।

संसाररूप महाविद्यान्धकारगहनमें प्रक्षिप्त अज्ञान-पटलतिमिराहतनयन प्रज्ञाचक्षुर्विरहित लोगोंको धर्मालोक प्रदान और सर्वदुःखसे प्रमोचनके लिए भगवान् बुद्धने निर्वाण-मार्गका उपदेश दिया है। उन्होंने कहा है,—

"धिग् यौवनेन जरया समभिद्रुतेन
आरोग्यधिग् विविधव्याधि पराहतेन।
धिग् जीवितेन पुरुषो न चिरस्थितेन
धिक् पंडितस्य पुरुषस्य रतिःप्रसंगः॥
यदि जर न भवेया नैव व्याधिर्न मृत्यु
स्तथापि च महद्दुःखं पंचस्कन्धं धरन्तो।
किं पुन जरव्याधिमृत्युनित्यानुबद्धाः
साधु प्रतिनिवर्त्य चिन्तयिष्ये प्रमोचम्॥"
(ललितविस्तर)

यौवनको धिक्, क्योंकि जरा इसके पीछे पीछे आती है; आरोग्यको धिक्, क्योंकि यह विविधव्याधि द्वारा पराहत रहता है; जीवनको धिक्, क्योंकि यह चिरस्थायी नहीं है और पण्डित लोगोंकी संसारासक्तिको भी धिक्कार

है; यदि जरा, व्याधि वा मृत्यु नहीं रहती, तो भी रूपादि पञ्चस्कन्ध धारण करनेमें जीवोंको अत्यन्त दुःख झेलना पड़ता। जरा, व्याधि और मृत्युके साथ चिरानुबद्ध लोगोंके दुःखकी बात और क्या कही जाय।

इस दुःखसमूहके चरमध्वंसके लिये बुद्धदेवने प्रारम्भमें चतुरार्यसत्यका उपदेश दिया है।

"चत्वारि आर्यसत्यानि। यथा। दुःखं, समुदयो, निरोधो, मार्गश्चेति।" (धर्मसंग्रह)

दुःख, दुःखका उदय वा उत्पत्ति, दुःखका निरोध वा निवृत्ति और दुःखनिरोधका उपाय वा आर्य ये अष्ट मार्ग हैं।

जब सबके सब रात दिन दुःखभोग करते हैं, तब दुःख पदार्थ क्या है, यह समझानेकी कोई जरूरत नहीं। दुःखकी उत्पत्ति और निरोधका क्रम, ललित विस्तर, माध्यमिकसूत्र इत्यादि समस्त ग्रन्थोंमें विशदरूपसे वर्णित है। अश्वघोषके बुद्धचरितसे दुःखकी उत्पत्ति और निवृत्तिका क्रम नीचे उद्धृत हुआ है,—

विविध प्रकारके दुःख और संसारविषवृक्षकी जड़ अविद्या है। अविद्यासे कायिक, वाचिक और मानसिक संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। संस्कारसे विज्ञान, विज्ञानसे नामरूप, नामरूपसे षड़ायतन, षड़ायतनसे स्पर्श, स्पर्शसे वेदना, वेदनासे तृष्णा, तृष्णासे उपादान, उपादानसे भव, भवसे जाति और जातिसे जरा, मरण तथा शोक उत्पन्न होता है। अविद्याके निरोध द्वारा क्रमशः इस समुदायका निरोध होता है। अविद्यादि द्वादश पदार्थको प्रतीत्यसमुत्पाद कहते हैं।

उदीच्य बौद्धोंने संसारका जो चित्र अङ्कित किया है उसकी प्रतिकृति एक चक्र है। इस चक्रके केन्द्रमें कपोतरूपी राग, सर्परूपी द्वेष और शूकररूपी मोह विद्यमान है। इस राग, द्वेष और मोह द्वारा ही संसारचक्र घूमता रहता है। संसारचक्रके नेमिदेशमें प्रतीत्यसमुत्पादकी द्वादश मूर्तियां अङ्कित हैं। प्रथम घरमें एक अन्धी स्त्री एक प्रदीपके सामने बैठी हुई है। दूसरे घरमें एक कुम्भकार लगातार एक चक्रको घुमा रहा है। तीसरे घरमें एक बन्दर अस्थिर भावसे उछल कूद रहा है। चौथे घरमें एक नाव पर एक आरोही बैठा हुआ है। पांचवें घरमें एक गृहको प्रतिकृति अङ्कित है। छठे घरमें एक पुरुष और एक स्त्री बैठी हुई है। सातवें घरमें एक तीर एक मनुष्यके चक्षुमें प्रवेश कर रहा है। आठवें घरमें एक मनुष्य शराब पी रहा है। नवें घरमें एक बूढ़ा डण्डा टेक कर खड़ा है। दशवें घरमें आलिङ्गनबद्ध दम्पति है। ग्यारहवें घरमें एक स्त्री सन्तान प्रसव कर रही है। बारहवें घरमें एक मनुष्य मुर्देको कंधे पर ले कर श्मशानकी ओर दौड़ रहा है। इस प्रतीत्य-समुत्पादकचक्रके चारों ओर नरक, तिर्यक्, प्रेत, असुर, मनुष्य और देवलोकको प्रतिकृति है। इन सब लोकोंके मध्य मनुष्यलोक ही श्रेष्ठ है। क्योंकि बुद्धत्व वा निर्वाण केवल मनुष्यलोकमें ही सम्भव है। अन्यान्य लोकोंमें सुख दुःखादिका भोगमात्र हुआ करता है। इस षड़्लोकके चारों तरफ बुद्धोंकी प्रतिमूर्त्ति है। उन्होंने राग, द्वेष, मोह और अविद्यादिको जीत लिया है। उन्हें नरकादिमें पुनः जन्म नहीं लेना पड़ता। उन्होंने भवचक्रको पार कर निर्वाणलाभ किया है।

अब यह देखा गया, कि अविद्यादिकी निवृत्ति द्वारा दुःखकी निवृत्ति और निर्वाणलाभ हुआ करता है। वह कौनसा उपाय है जिसका अवलम्बन करनेसे अविद्यादिका निरोधसाधन किया जा सकता है? बौद्धग्रन्थमें लिखा है, कि आर्य अष्टमार्गका अनुगमन ही वह उपाय है। सम्यग् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यग् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यगाजीव, सम्यग् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन आठ प्रकारके आर्यमार्गोंके अनुधावन द्वारा अविद्यादि निरोधका सोपान प्राप्त होता है। अविद्याका चरमध्वंस कर सकनेसे ही बुद्धत्व या निर्वाणलाभ होता है।

उपरोक्त विषयका संक्षिप्तभाव नीचे लिखा जाता है। पहले प्राणातिपात, अदत्तादान, काममिथ्याचार, मृषावाद, पैशुन्य, पारुष्य, सम्भिन्नप्रलाप, अभिध्या, व्यापाद और मिथ्यादृष्टि इन दश प्रकारके अकुशल कर्मपथोंका परिहार करना चाहिए।

महावस्तु ग्रन्थमें लिखा है, कि उक्त दश प्रकारके और अकुशल कर्मपथोंका त्याग करनेसे लोभ (राग), मोह और द्वेषका नाश होता है। इनके नाश होनेसे चतुर्विध धर्मपदका लाभ होता है।

"चत्वारि धर्मपदानि। अनित्याः सर्वसंस्काराः। दुःखाः सर्वसंस्काराः। निरात्मनः सर्वसंस्काराः। शान्तं निर्वाणं चेति।" (धर्मसंग्रह)

सभी पदार्थ अनित्य और दुःखदायक हैं। किसीमें भी स्वभाव वा अन्यनिरपेक्ष-सत्ता नहीं है, शान्ति ही निर्वाण है। इस प्रकार चतुर्विध भावना ही धर्मके चार पद हैं।

इन चतुर्विध धर्मपदका अनुशीलन करनेसे आर्याष्ट-मार्गमें प्रवेश लाभ होता है। सम्यक् दृष्टिसे ले कर सम्यक् समाधि पर्यन्त आठ आर्यमार्गोंके अनुसरण द्वारा अविद्यादि निरोधका द्वार प्राप्त होता है। तदनन्तर दान-पारमिता, शीलपारमिता, क्षान्तिपारमिता, वीर्यपारमिता, ध्यानपारमिता और प्रज्ञापारमिता ये छः प्रकारकी पार-मिता और प्रतीत्यसमुत्पादका सम्यक्ज्ञान लाभ होता है। इस प्रतीत्यसमुत्पादका ज्ञान उत्पन्न होनेसे अर्थात् दुःखक उत्पत्ति और निरोधका क्रम समझ सकनेसे अविद्यादिका विलय होना शुरू होता है। अविद्यादिके विनाश होनेसे बुद्धत्व वा निर्वाणलाभ होता है। इस समय जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु और दुःख इत्यादिका चिर-उच्छेद हो जाता है। निर्वाण लाभके बाद फिर भवचक्रमें लौटना नहीं पड़ता, उस समय अपनापन और संसाररूप अग्नि चिर-कालके लिए बुझ जाती है।

अब प्रश्न यह उठता है, कि यदि संसार और मैं दोनों ही मिथ्या हैं और शून्यता ही इस विश्वका प्रकृत स्वभाव है, तो किस प्रकार मैं, तुम, घट, पट इत्यादिका व्यवहार निष्पन्न होता है। शशविषाण, गगनकुसुम, वन्ध्यापुत्र इत्यादि द्वारा कोई कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता, किन्तु "संसार" और "मैं" द्वारा अनेक कार्य हो रहे हैं, दुःखभोग भी बराबर चल रहा है। इस प्रश्नका उत्तर यही है कि बौद्धोंने सत्यद्वयकी अवतारणा की है नागार्जुनने निम्नलिखित सूत्रमें उस सत्यद्वयका उल्लेख किया है,—

"द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना।
लोकसंवृतिसत्यञ्च सत्यञ्च परमार्थतः।

(माध्यमिकसूत्र)

बौद्धोंकी धर्मदेशना साम्वृतिक (व्यवहारिक) और पारमार्थिक इन दो प्रकारके सत्योंका आश्रय ले कर प्रवर्त्तित होती है। नागार्जुनने और भी कहा है,—

"व्यवहारमनाश्रित्य परमार्थो न देश्यते।
परमार्थमनागम्य निर्वाणं नाधिगम्यते॥"

(माध्यमिकसूत्र)

व्यवहारिक सत्यके आश्रय बिना परमार्थसत्यका उपदेश नहीं दिया जा सकता और परमार्थसत्यकी उपलब्धिके बिना निर्वाणलाभ नहीं होता।

सत्यद्वयावतारसूत्र, लङ्कावतारसूत्र, माध्यमिकसूत्र, इत्यादि ग्रन्थोंमें व्यवहारिक और पारमार्थिक सत्यको विस्तृत व्याख्या दी गई है। यहां पर इतना कहना ही पर्याप्त होगा, कि साम्वृतिक (व्यवहारिक) सत्य द्वारा विचार करनेसे संसार और मैं ये दोनों मिथ्या नहीं हैं। किन्तु पारमार्थिक सत्य द्वारा विचार करनेसे यह संसार अनाधार, कल्पित और मिथ्या प्रतीत होगा। जब परमार्थ सत्यका सम्यक्ज्ञान हो जायगा, तब संसार और मैं दोनों ही मिथ्या हो जायंगे और तभी निर्वाणलाभ होगा।

यह स्पष्ट देखा जाता है, कि निर्वाण कोई वस्तु नहीं है। संसार और मैं ये ही दो मिथ्या वस्तु हैं। मिथ्या साबित हो जाने पर भी प्रकृत जो था वही रहेगा। वही प्रकृत अवस्था ही निर्वाण है। इस कारण निर्वाण और शून्यता ये दोनों असंस्कृत पदार्थ माने गये हैं। चन्द्रकीर्त्तिने कहा है,—

जिस पदार्थका उत्पाद, स्थिति और विनाश है वही संस्कृत पदार्थ है निर्वाण वा शून्यताका उत्पाद स्थिति वा क्षय नहीं है। सुतरां यह असंस्कृत पदार्थ है। यहां तक निर्वाणलाभ, शून्यताप्राप्ति इत्यादि वाक्योंसे निर्वाण और शून्यताके लाभ और प्राप्तिकी कथा कही गई है, किन्तु यदि सच पूछा जाय, तो उसका लाभ और प्राप्ति नहीं हो सकती। संसार और मैं इन दोनों मिथ्या पदार्थके मिथ्या हो जाने पर परमार्थतः जो पहले था, पीछे भी वही रहा। वही पारमार्थिक प्रकृत अवस्था निर्वाण है। उस प्रकृत अवस्थाका भगवान् बुद्धने आर्यरत्नकूटसूत्रमें निम्नलिखित भावसे वर्णन किया है—

"नात्र स्त्री न पुरुषो न सत्त्वा न जीवो न पुरुषो न

पुंकेशी वितथा इमे सर्वधर्माः। असन्त इमे सर्वधर्माः। विठपिता इमे सर्वधर्माः। मायोपमा इमे सर्वधर्माः। स्वप्नोपमा इमे सर्वधर्माः। निर्मितोपमा इमे सर्वधर्माः। उदकचन्द्रोपमा इमे सर्वधर्मा इति विस्तरः। ते इमां तथागतस्य धर्मदेशनां श्रुत्वा विगत् रागान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति विगतमोहान् सर्वधर्मान् पश्यन्ति अस्वभावान् अनावरणान्। ते आकाशस्थितेन चेतसा कालं कुर्वन्ति ते कालगताः समानाः निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वान्ति।"

बुद्धने और भी कहा है,—

"शून्यमाध्यात्मिकं पश्य पश्य शून्यं बहिर्गतम्।
न विद्यते सोऽपि कश्चिद् यो भावयति शून्यताम्।"

निर्वाणके विषयमें दाक्षिणात्य बौद्धग्रन्थोंका मत उदीच्यमतसे पृथक् नहीं है।

विसुद्धिमग्ग ग्रन्थमें लिखा है,—

"सोतानिकङ्खमिति नेक गुणावहत्ता।
निब्बाननिन्नहदयेन निसेवितब्बन्ति॥" (विसुद्धिमग्ग)
"यस्मिं हि सामञ्ञ पज्जन्ति सबे निब्बानसन्तिके।"
(विसुद्धिमग्ग)

निर्वाणमें निविष्टहृदय व्यक्तिको निरन्तर श्मशानाङ्गका सेवन करना उचित है। श्मशान बहुगुणोंका आधार है। इस श्मशानके सेवन द्वारा साधक समझ सकेंगे, कि जीव और संसार मिथ्या है। जिन्होंने ध्यान और प्रज्ञाका लाभ किया है, वे ही निर्वाणके पास पहुंच चुके हैं। अविरत संसारके अनित्यत्वचिन्तन द्वारा परमार्थ ज्ञानलाभ होता है और तदनन्तर संसार तथा मैं ये दोनों मिथ्या साबित होते हैं। यही निर्वाण है।

धम्मपदग्रन्थमें लिखा है, क्षान्ति ही परम तप है, तितिक्षा ही परम निर्वाण है। लोभके समान अग्नि, द्वेषके समान पाप नहीं। स्कन्धके समान दुःख, शान्तिके समान सुख और क्षुधाके समान रोग नहीं है। संस्कारसमूह ही परम दुःख है। इन सबका ज्ञान हो जानेसे जीव परमसुखके आधार स्वरूप निर्वाणको लाभ करता है। हस्त द्वारा शारदकुसुम जिस प्रकार छिन्न हो जाता है, उसी प्रकार खुदसे आत्माभिमानको छेदन करो। ऐसा करनेसे सुगतप्रदर्शित निर्वाणरूप शान्तिमार्ग लाभ कर सकोगे। हे भिक्षु! इस देहरूप नौकाको छिन्न डालो, इसको हो जायगी। राग, द्वेष इत्यादिको छिन्न डालनेसे अर्थात् इनका त्याग करनेसे निर्वाणलाभ होगा।

इन सब वाक्योंसे प्रतीत होता है, कि निर्वाणलाभ करना दाक्षिणात्य बौद्धोंका भी चरम उद्देश्य है। इन निर्वाण प्राप्तिके लिये उन्होंने भी प्राणातिपातादि दशविध अकुशल कर्म पथके परिहार और चतुरार्यसत्यके अनुसरणका उपदेश दिया है।

धर्मपदके मलवग्गमें लिखा है—

जो मनुष्य प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, परदारगमन, सुरापान इत्यादि कार्योंका अनुष्ठान करते हैं, वे इसी लोकमें आत्मोन्नतिका मूल विनष्ट कर डालते हैं।

धर्मपदके बुद्धवग्गमें लिखा है,—

दुःख, दुःखकी उत्पत्ति, दुःखका ध्वंस और दुःखनिरोधोपायक अष्टविध आर्यमार्ग, यह चतुरार्य सत्य ही श्रेयस्कर और उत्तम शरण है। इन्हींको शरणसे सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं।

परमत्थजोतिकाग्रन्थमें लिखा है,—"एत्थ पन सोतापत्तिमग्गं भवेत्वा दिट्ठि-विचिकिच्छा पहानेन पहीनापायगमनो सत्तखत्तुपरमो सोतापन्नो नाम होति। सकदागामि मग्गं भावेत्वा रागदोषमोहानं तनुकरत्ता सकदागामि नाम होति। सकिदेव इमं लोकं अनागन्त्वा इत्थत्तं अरहत्तं भावेत्वा अनवसेसकिलेसपहानेन अरहा नाम होति खीणासवो।" (परमत्थजोतिका)

चतुरार्यसत्यके अनुगामी व्यक्ति दृष्टि विचि-चिकित्सा प्रहाण द्वारा स्रोत आपन्न, राग, द्वेष और मोहके क्षय द्वारा सकृदागामी केवल एक बार संसारमें प्रत्यावर्त्तनपूर्वक अनागामी और अन्तमें सर्वक्लेशके प्रहाण द्वारा क्षीणास्रव हो कर अर्हत्पद लाभ करते हैं। जिन्होंने दशविध अकुशल कर्मपथका त्याग किया है तथा अष्टाविध आर्यमार्गके अनुसरण द्वारा चतुरार्यसत्यको अच्छी तरह पा लिया है, वे ही जीवनकी पवित्रता द्वारा संसार-स्रोतको पार गये हैं और स्रोत-आपन्न नामसे प्रसिद्ध हैं। उन्हें इस संसारमें सात बार लौटना पड़ेगा, किन्तु उनका निर्वाण निश्चित है। नरकका द्वार उनके लिये चिररुद्ध है। जिन्होंने राग, द्वेष और मोहका त्याग कर दिया

है, वे सकृदागामी कहलाते हैं। उन्हें इस संसारमें केवल एक बार आना पड़ता है, पीछे निर्वाणलाभ होता है। अनागामियोंको इस संसारमें एक बार भी लौटना नहीं पड़ता। वे अनेकों वर्ष शुद्धावास ब्रह्मलोकमें वास कर निर्वाणलाभ करते हैं। वाक्‌कर्मकाय-शुद्ध षट्‌पारमिताप्राप्त अर्हत्‌गण देह-त्याग मात्रसे ही निर्वाण लाभ करते हैं। अर्हत्त्व ही चरम और पूर्णपवित्रताकी अवस्था है। इस अवस्थामें धर्माधर्म, रागद्वेष इत्यादि निर्मूल हो जाते हैं। अर्हत्‌को पुनः इस संसारमें जन्मग्रहण नहीं करना पड़ता। उनकी देह मात्र अवशिष्ट रहती है, किन्तु उस देहमें पापादि प्रवेश नहीं कर सकते। उनका अस्तित्वबीज पहले ही शुष्क हो गया है और जीवन प्रदीप पहले ही बुझ चुका है, उनकी केवल देह रह गई है। कुछ समय बाद मृत्यु पहुंच कर उनकी देहको ध्वंस कर डालती है। वे निर्वाण लाभ कर अस्तित्व और नास्तित्वसे अतीत हो जाते हैं। अर्हत्त्व (बुद्धत्व) और निर्वाणमें अन्तर यह है, कि अर्हत्‌की अपनी सत्ता रहती है, किन्तु निर्वाणलाभ हो जाने पर सत्ताका नाश हो जाता है। निर्वाण और अर्हत्त्व (बुद्धत्व) इनमेंसे किसी अवस्थामें भी राग, द्वेष और मोह नहीं रहता। अर्हत्त्व (बुद्धत्व)को सोपाधिशेष निर्वाण और निर्वाण-को अनुपधिशेष निर्वाण कह सकते हैं।

रामचन्द्रने भारती भक्तिशतक ग्रन्थमें लिखा है—

"सर्वे प्राणातिपातात् परधनहरणात् सङ्गमादङ्गनाया
मिथ्यावादाच्च मद्याद्भवति जगति योऽकालभुक्तेर्निवृत्तः
सङ्गीतस्रक्‌सुगन्धाभरणविलसिताद्दुच्चशय्यासनाद
व्यासीद्धीमान् स एव त्रिदशनरगुरो त्वत्सुतो नात्र शंका॥
स्रोतापत्त्यादिमार्गान् सदवयवयुतान् घ्नन्ति रागादिदोषान्।
दोषास्ते छिन्नमूला हतभवगतयस्तत्फलैर्यान्तिशान्तिम्॥"

(भक्तिशतक)

पाश्चात्य पण्डितोंकी निर्वाणविषयक समालोचना।

किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है,—निर्वाण "शान्ति और सुखका आलय है" और अन्यान्य ग्रन्थोंमें शून्यताके लयको निर्वाण बतलाया है। इस प्रकार परस्पर विरोधी मत देख कर १८६८ ई०में अध्यापक मेक्समूलरने इन सब मतोंके परस्पर सामञ्जस्यके स्थापनकी चेष्टा की। उनका कहना है, कि सूत्रादि ग्रन्थोंमें बुद्धकी निज उक्ति है और उन सब ग्रन्थोंके मतमें आत्माके चिरशान्तिमें प्रवेशका नाम निर्वाण है। परवर्ती बौद्ध दार्शनिकों-ने कूटतर्कावलम्बन करके अभिधर्मादि ग्रन्थमें निर्वाणका जो लक्षण बतलाया है तदनुसार शून्यताके लयका नाम निर्वाण है।

१८७० ई०में अध्यापक चाइल्डर्सने निर्वाणविष-यक परस्पर विरोधीमतसमूहको एक वाक्यता प्रतिपन्न करते हुए कहा है, कि अर्हत्त्व (बुद्धत्व) और निर्वाण ये दोनों ही शब्द बौद्धदार्शनिकोंने निर्वाण अर्थमें व्यव-हार किये हैं। अर्हत्त्व और निर्वाण प्रायः एकार्थवाचक होने पर भी उनमें कुछ प्रभेद है। अर्हत्त्व शान्ति और सुखका निदान है, किन्तु सत्ताका ध्वंस ही निर्वाण है। जहां पर बौद्धदार्शनिकोंने निर्वाणको शान्तिका निकेतन बतलाया है, वहां पर निर्वाण शब्दसे अर्हत्त्व (बुद्धत्व)-का बोध होता है।

१८७१ ई०में जेम्स-डी-अलविस महोदयने निर्वाण-विषयक नाना गवेषणापूर्ण प्रबन्धमें अर्हत्त्व और निर्वाण-का परस्पर भेद बतलाते हुए बौद्धग्रन्थके परस्पर विरुद्ध वाक्यसमूहके सामञ्जस्यकी रक्षा की है। बौद्धग्रन्थोंमें उपधिशेष निर्वाण (अर्हत्त्व) और अनुपधिशेष निर्वाण दोनोंका वर्णन है।

महामति बार्नूफने निर्वाण, परिनिर्वाण और महा-परिनिर्वाण इन सब शब्दोंका अवलोकन कर उनके अर्थोंमें प्रभेद बतलाया है। किन्तु यथार्थमें वे सभी समार्थक हैं।

किसी किसी पाश्चात्य पण्डितने निर्वाण और सुखा-वतीको एक बतलाया है। फिर किसी किसीने कामा-वचर देवलोक और निर्वाण दोनोंको एक ही पदार्थ माना है। वस्तुतः निर्वाणका प्रकृत अर्थ नहीं मालूम होनेसे ही इस प्रकार अपसिद्धान्तकी कल्पना की गई है।

डाक्टर रीज डेभिड्‌सके मतानुसार चित्तकी पाप-शून्य स्थिर अवस्था ही निर्वाण है। पूर्णशान्ति, पूर्णज्ञान और पूर्णविशुद्धि ये सब अवस्थाके फल हैं।

सुप्रसिद्ध डाक्टर स्लागिण्टविटने लिखा है, कि

'निर्वाण साक्षात्कार और अर्हत्त्वलाभ दोनों एक ही बात हैं। प्रसङ्ग सम्प्रदायके मतसे स्वर्ग और निर्वाण दो पथ बोधिसत्त्वोंके अवलम्बनीय हैं। सत्कार्यके अनुष्ठान द्वारा सुखावतीमें पूर्ण सुखभोग किया जाता है और सम्यक् ज्ञानके अधिगममें संसारका उच्छेद और निर्वाण लाभ होता है। सत्ताका सम्यक् ध्वंस और संसारका सम्पूर्ण उच्छेद निर्वाणके विषयीभूत हैं।'

हेनरी अलवष्टरने लिखा है, कि निर्वाण शब्दका अर्थ सत्ताका ध्वंस है वा नहीं, इस विषयमें बौद्धोंमें मत भेद हैं। जो कुछ हो, भविष्यत् उद्वेग, दुःख और जन्मका सम्पूर्ण उच्छेद ही निर्वाण है। उनका कहना है, कि श्यामवासियोंके मतसे निर्वाण सुखका एक स्थान है जहां उद्वेगादि कुछ भी नहीं है और जो अत्यन्त मनोरम तथा पवित्र है। बुद्धदेवने संसारके आदि और अन्तका निरूपण नहीं किया। बुद्धके मतानुसार परिदृश्यमान जड़जगत् दुःखमय है, सुतरां उससे सम्पूर्ण विमुक्तिलाभ करना नितान्त प्रार्थनीय है। इस दुःखमय जगत्‌का उच्छेद ही निर्वाण है।

रेभारेण्ड विलने चीन देशीय बौद्धमतकी समालोचना करते हुए लिखा है, कि नागार्जुनकी प्रज्ञामूल शास्त्रटीकाके मतमें जो अप्राप्य, क्षणिकत्व और शाश्वतिकत्वसे अतीत है और जिसके उत्पाद तथा निरोध नहीं है, उसीको निर्वाण कहते हैं। उनका सिद्धान्त यह है, कि जो तीनों कालमें अविकृत रहता है और जो देशविशेषसे परिच्छिन्न नहीं है, इस प्रकारकी प्रत्यक्षातिरिक्त अवस्था ही निर्वाण है। उनके मतानुसार समग्र ग्रन्थका सारमर्म यह कि उपाधिसे अतिरिक्त अवस्था ही निर्वाण है।

रेभारेण्ड फ्रान्सनूने तिब्बतीय बौद्धमतकी आलोचना करते हुए कहा है, कि दुःखका ध्वंस ही निर्वाण है। क्योंकि चतुरार्यसत्यका तत्त्वानुसन्धान करनेसे देखा जाता है कि सत्तामात्र ही दुःख है, अतएव निर्वाण शब्दका अर्थ सत्ताका ध्वंस है।

महामति ओल्डनवर्ग, रिज डेभिड्स, मोनियर विलियम्स, डाक्टर पलजेरस आदि विद्वानोंने निर्वाणके विषयमें बहुत खोज की है।

तिब्बतीय भाषामें निर्वाण शब्दका अर्थ दुःखका चरम ध्वंस है।

चीनभाषामें निर्वाणवाचक "मृत्यु" शब्दका प्रयोग है। इस मृत्युशब्दसे सत्ताका ध्वंस और निर्वाण दोनोंका ही बोध होता है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि पुनर्जन्मरहित मृत्यु ही निर्वाण है।

निर्वाणका प्रादुर्भावकाल

भारतवर्षमें दुरूह निर्वाणतत्त्वका आविष्कार कब हुआ है, इसका निर्णय करना बहुत कठिन नहीं है। भगवान् बुद्ध ही इस तत्त्वके प्रथम प्रवर्त्तक हैं, इसमें सन्देह नहीं। संसार मिथ्या है, अहं मिथ्या है, इस मतका उन्होंने ही सबसे पहले जनतामें प्रचार किया और अपने जीवनमें उसका प्रदीप्त दृष्टान्त दिखला दिया। ढाई हजार वर्ष पहले बुद्धदेवने जीवलीला संवरण की, अतएव निर्वाणतत्त्वका वयःक्रम कमसे कम ढाई हजार वर्ष है।

बौद्धोंका कहना है, कि मूल प्रज्ञापारमिता महाकाश्यपकी बनाई हुई है। महाकाश्यप बुद्धके शिष्य थे। प्रज्ञापारमिता ग्रन्थमें निर्वाणतत्त्व और अविद्याकी सुन्दर तथा विशद व्याख्या लिखी है।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता द्वितीय बौधिसङ्घमके समयमें रची गई। ई०सन्‌के ४०० वर्ष पहले द्वितीय बोधिसङ्गमकी प्रतिष्ठा हुई। इस अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमितामें निर्वाणतत्त्वका जैसा विशद विवरण लिखा है, उससे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि उस समय निर्वाणमत जनसाधारणमें बहुत दूर तक विस्तृत था।

बुद्धचरितकाव्यके प्रणेता अश्वघोष ई०सन्‌को १म या २य शताब्दीके पहले विद्यमान थे। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्गने ६४५ ई०में भारतवर्षसे लौटते समय अश्वघोषको प्राचीन कवि बतलाया है। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि अश्वघोष कनिष्कके धर्मोपदेष्टा थे। उनका बुद्धचरितकाव्य ५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें चीनभाषामें और ७वीं वा ८वीं शताब्दीमें तिब्बतीय भाषामें अनुवादित हुआ। इस बुद्धचरितकाव्यमें निर्वाण और अविद्याकी जैसी सुन्दर व्याख्या देखी जाती है उससे जान पड़ता है, कि अश्वघोषके समयमें भी निर्वाणतत्त्व लेकर विशेष समालोचना चलती थी।

सुप्रसिद्ध ललितविस्तर ग्रन्थ ईसाजन्मके बहुत पहलेका लिखा हुआ है। यह पहली शताब्दीकी चीन

भाषामें अनुवादित हुआ। इस ग्रन्थमें भी निर्वाणविषयक दुर्बोध तत्त्वसमूहका विशद विवरण देखा जाता है

ईसा-जन्मके प्रायः दो सौ वर्ष पहले सुविख्यात नागार्जुनने अपने माध्यमिकसूत्रमें निर्वाणतत्त्वकी सविशेष समालोचना की।

गाथाभाषामें लिखित और प्रायः दो हजार वर्ष पहले विरचित समाधिराजसूत्र नामक ग्रन्थमें भी निर्वाणकी वर्णना है।

२री शताब्दीमें धर्मपद चीनभाषामें अनुवादित हुआ। इस ग्रन्थमें भी निर्वाण मतका विवरण देखनेमें आता है।

लङ्कावतारसूत्र ३री शताब्दीके प्रारम्भमें चीन भाषामें अनुवादित हुआ। इसमें भी निर्वाणविषयक जटिल प्रश्नसमूहकी मीमांसा लिखी है।

२री शताब्दी (१४८-१७०)-में सुखावतीव्यूह चीन भाषामें अनुवादित हुआ। इस ग्रन्थमें निर्वाणतत्त्वका विवरण लिखा है।

प्रज्ञापारमिताहृदयसूत्र ४०० ई०में कुमारजीवसे और ६४८ ई०में यूएनचुवङ्गसे चीनभाषामें अनुवादित हुआ। इस ग्रन्थमें भी निर्वाणविषयक दुरूह प्रश्नसमूहकी मीमांसा लिखी है।

४थी शताब्दीके प्रारम्भमें वज्रच्छेदिका ग्रन्थ कुमारजीवसे चीनभाषामें अनुवादित हुआ। इस ग्रन्थमें भी निर्वाण-मतका विवरण है।

६ठी शताब्दीके प्रारम्भ (५२८ ई०)-में बोधिरुचि नामक किसी पण्डितने वसुबन्धुके 'अपरिमितायुःसूत्र' शास्त्रका चीन भाषामें अनुवाद किया। इस ग्रन्थमें भी निर्वाणतत्त्वके अनेक विषय लिखे हैं।

६ठी शताब्दीमें वसुबन्धु, दिङ्नाग आदि सुविख्यात पण्डितोंने इस निर्वाणतत्त्वकी सूक्ष्मतम समालोचना की। तदनन्तर ७वीं, ८वीं, ९वीं और १०वीं शताब्दीमें धर्मकीर्त्ति, शान्तिदेव, चन्द्रकीर्त्ति आदि मनीषियोंने माध्यमिकावृत्ति, बोधिचर्यावतार आदि ग्रन्थोंमें निर्वाणतत्त्वका सम्यक् विचार किया।

खृष्टपूर्व षष्ठ शताब्दीसे ले कर खृष्टपरवर्त्ती प्रथम शताब्दी तक निर्वाणविषयक असंख्य मौलिक ग्रन्थ प्रकाशित हुए। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ बोधिसङ्गमकालमें असंख्य ग्रन्थ बनाए गए। वस्तुतः निर्वाण आदि जटिल तत्त्वकी पर्यालोचनाके लिए ही इन सब बोधिसङ्गमोंकी प्रतिष्ठा हुई। अशोक, कनिष्क आदिके राजत्वकालमें जितने तत्त्व हैं सबोंकी सम्यक् समालोचना होती थी।

२री शताब्दीसे ७वीं शताब्दी तक ६००वर्षके भीतर भारतवर्षमें निर्वाणविषयक असंख्य बौद्ध ग्रन्थ लिखे गए और उस समय हजारों संस्कृत ग्रन्थोंके चीन भाषामें अनुवादित होनेसे निर्वाण-मतका चीनमें भी प्रचार हुआ। ८वीं, ९वीं और १०वीं शताब्दीमें भी भारतवर्षमें बहुसंख्यक बौद्ध पण्डितोंने जन्म ले कर निर्वाणविषयक अनेक ग्रन्थ लिखे। उस समय तिब्बतीय भाषामें भी कितने ग्रन्थ अनुवादित हुए जिनसे निर्वाण-मत तिब्बत भरमें भी प्रचलित हो गया।

पुराविदोंने २री, ३री, ४थी और ५वीं शताब्दीको भारत इतिहासका तमसावृत अंश बतलाया है। किन्तु बौद्ध-इतिहासके पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि उस समय ज्ञानचर्चामें भारतवर्षने महोन्नति लाभ की थी और उसी समय भारतकी ज्योतिःकणाने विस्फुटित हो कर सुदूर विस्तीर्ण चीन आदि राज्योंको धर्मालोकसे आलोकित किया था। वस्तुतः २री शताब्दीसे ले कर १०वीं शताब्दी तक भारतवर्षमें निर्वाणधर्मकी असीम पर्यालोचना हुई और उस पर्यालोचनाके फलसे चीन, तिब्बत आदि जनपदोंमें ज्ञानालोकका संचार हुआ। १०वीं शताब्दीमें बौद्धविहारोंका ध्वंस हुआ। बङ्गदेशमें नयपालके राजत्वकालमें हो दीपङ्कर श्रीज्ञान (अतीश) निर्वाणमतकी शिक्षाके लिये सुवर्ण द्वीप (ब्रह्मदेश)-में गए थे। इस प्रकार निर्वाणने इस १०वीं शताब्दीके शेष भागमें भारतवर्षमें स्वनामकी सार्थकता लाभ की। बुद्ध और बौद्धदर्शन देखो।

निर्वाणग्नि (निर्वङ्गनो)—पूना जिलान्तर्गत एक छोटा गांव। यह इन्द्रपुरसे १२ मील दक्षिणपश्चिम नीरा नदीके किनारे अवस्थित है। यहां महादेवजीका एक मन्दिर है। तीर्थयात्री लोग पहले मन्दिर, मध्यस्थ महादेव और रूपमूर्त्तिके दर्शन करते हैं, पीछे सताराके सिङ्गनापुर-तीर्थदर्शनको जाते हैं। प्रवाद है, कि पूर्व समयमें

महादेवजी यहां रहते थे। एक दिन उनका वृष किसी मालीके उद्यानमें चरनेको गया। जब मालीको उस पर निगाह पड़ी, तब उसने उसे बहुत दूर तक खदेरा और बाएं कंधे पर खुरपीसे आघात किया। (उस क्षतका दाग आज भी मन्दिरके अभ्यन्तरस्थ वृषके कंधे पर देखनेमें आता है।) पीछे महादेवजी उस वृषको ले कर सिङ्गनापुरको चल दिये। किन्तु वह वृष फिर भी एक दिन उसी मालीके उद्यानमें गया। इस पर महादेवने ऐसा बन्दोबस्त कर दिया कि वे सिङ्गनापुरमें रहेंगे और उनका वृष निर्वङ्गनोमें। तीर्थयात्री लोग वृषदर्शन करके शिवदर्शन करेंगे। जब यह देश मुसलमान राजाओंके हाथ आया था, तब उन्होंने एक दिन वृषमूर्त्ति तहस नहस कर डालनेकी इच्छासे उसके सींगमें आघात किया। कहते हैं, कि आघात लगते ही सींगसे लहूकी धारा बह निकली थी। इस पर वे लोग बहुत डर गये और तभीसे कोई भी उस वृषमूर्त्ति के प्रति अत्याचार नहीं करता है।

निर्वाणपुराण (सं॰ क्लो॰) मृत व्यक्तिके उद्देशसे बलिदान।

निर्वाणप्रकरण (सं॰ पु॰) योगवाशिष्ठ रामायणके चतुर्थ खण्डका नाम।

निर्वाणप्रिया (सं॰ स्त्री॰) एक गन्धर्वीका नाम।

निर्वाणभूयिष्ठ (सं॰ त्रि॰) निर्वाणप्राय, निवाणोन्मुख।

निर्वाणमण्डप (सं॰ पु॰) काशीके मुक्ति-मण्डपाख्य तीर्थभेद।

निर्वाणमस्तक (सं॰ पु॰) निर्वाणं निवृत्तिर्मस्तकमिव यत्र। मोक्ष।

निर्वाणरुचि (सं॰ त्रि॰) निर्वाणे रुचिरस्य। १ मोक्षसाधनासक्त, जो मोक्षसाधनमें तत्पर हो। (पु॰) २ देवभेद, एक देवताका नाम।

निर्वाणसूत्र (सं॰ क्लो॰) १ एक बौद्धसूत्रका नाम। २ एक बौद्धका नाम।

निर्वाणिन् (सं॰ पु॰) उत्सर्पिणीका अर्हत्‌भेद। जैन देखो।

निर्वाणी (सं॰ स्त्री॰) १ जैनोंके एक शासनदेवता। निर्गता वाणी यस्य, बाहुलकात् न कप्। २ वाक्यरहित, गूंगा।

निर्वात (सं॰ त्रि॰) निर्गतो वातो वायुर्यस्मात्। १ वायुरहित, जहां हवा न हो, जहां हवाका झोंका न लग सके। २ जो चञ्चल न हो, स्थिर। (पु॰) ३ वह स्थान जहां हवाका झोंका न लगता हो।

निर्वाद (सं॰ पु॰) निर्वदनमिति, निर्-वद्-भावे घञ्। १ अपवाद, निन्दा, लोकापवाद। २ अवज्ञा, लापरवाई। निर्निश्चितं वादः कथनं। ३ निश्चितवाद। वादस्य अभावः, अभावार्थेऽव्ययीभावः। ४ वादका अभाव।

निर्वानर (सं॰ त्रि॰) वानरहीन, जहां बन्दर न हो।

निर्वान्त (सं॰ त्रि॰) वहिर्गत, प्रेरित, भेजा हुआ।

निर्वाप (सं॰ पु॰) निर्वपणमिति निर्-वप-घञ्। १ वह दान जो पितरोंके उद्देशसे किया जाय। २ दान। ३ भक्षण, खाना।

निर्वापण (सं॰ क्लो॰) निर्-वप-णिच्-ल्युट्। १ वध, मारना। २ दान। ३ रोपण, गोपना। ४ निर्वापणासम्पादन।

निर्वापयितृ (सं॰ त्रि॰) निर्-वप-णिच्-तृच्। निर्वापणकारी, निवपक।

निर्वापित (सं॰ त्रि॰) निर्-वप-णिच्-क्त। १ निर्वाणप्राप्त, जिसे निर्वाण मिला हो। २ नाशित, जिसका नाश किया गया हो। ३ दत्त, जो दिया गया हो।

निर्वाप्य (सं॰ त्रि॰) १ निर्वापित, निर्वाणयोग्य। २ आनन्दित, प्रसन्न।

निर्वार्य (सं॰ त्रि॰) निश्चयेन व्रियते निर्-वृ-ण्यत्। निःशङ्ककर्मकर्त्ता, जो निःसङ्कोचभावसे काम करता हो।

निर्वास (सं॰ पु॰) निर्-वस-घञ्। १ निर्वासन, देशनिकाला। २ प्रवास, विदेशयात्रा।

निर्वासक (सं॰ पु॰) निर्-वस-णिच्-ण्वु। निर्वासनकारी, निर्वासन करनेवाला।

निर्वासन (सं॰ क्लो॰) निर्-वस-णिच्-ल्युट्। १ वध, मार डालना। २ गांव, शहर या देश आदिसे दण्डस्वरूप बाहर निकाल देना, देशनिकाला। ३ निःसारण, निकालना। ४ विसर्जन।

निर्वासनीय (सं॰ त्रि॰) निर्-वस-णिच् अनीयर्। निर्वासन योग्य, देशनिकाला लायक।

निर्वास्य (सं॰ त्रि॰) निर्-वस-णिच् कर्मणि यत्। नगरसे बाहर करने योग्य।

निर्वाह (सं० पु०) निर्-वह-घञ्। १ कार्यसम्पादन। २ किसी क्रम या परम्पराका चला चलना, किसी बातका जारी रहना, निबाह। ३ किसी बातके अनुसार बराबर आचरण, पालन। ४ समाप्ति, पूरा होना।

निर्वाहक (सं० त्रि०) निर्-वह-णिच्-ण्वुल्। निष्पादक, किसी कामका निर्वाह करनेवाला।

निर्वहण (सं० क्ली०) निर्-वह-स्वार्थे णिच्-ल्युट्। निर्वाहण, नाट्योक्तिमें प्रस्तुत कथाकी समाप्ति।

निर्वाहिन् (सं० त्रि०) निर्वाह अस्त्यर्थे-इनि। चरणशील।

निर्वाहित (सं० त्रि०) निर्-वह-णिच्-क्त। सम्पादित, निष्पादित।

निर्विकल्पक (सं० त्रि०) निर्गतो विकल्पो ज्ञातृज्ञेयत्वादि विभागो विशेष्यविशेषणतासम्बन्धो वा यस्मात्, ततो कप्। १ वेदान्तोक्त ज्ञातृज्ञेयत्वादि विभागशून्य समाधिभेद, वेदान्तके अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेयमें भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। २ न्यायके मतसे अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञानभेद, न्यायके अनुसार वह अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञान जो इन्द्रियजन्य ज्ञानसे बिलकुल शून्य होता है। बौद्ध शास्त्रोंके अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्पसमाधि (सं० पु०) निर्विकल्पः समाधिः। समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदिका कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

वेदान्तसारमें इसका विषय यों लिखा है—समाधि दो प्रकारकी है, सविकल्प और निर्विकल्प। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय इन तीनोंका ज्ञान रहने पर भी अद्वितीय-ब्रह्म वस्तुमें अखण्डाकारसे आकारित चित्तवृत्तिके अवस्थानका नाम सविकल्पसमाधि है। इस सविकल्प अवस्थामें जिस प्रकार मृण्मय हस्तिसे हस्तिका ज्ञान रहते भी मट्टीका ज्ञान होता है, उसी प्रकार द्वैतज्ञान रहते भी अद्वैत ज्ञान होता है। जब ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय ये तीन विकल्प ज्ञानके अभावमें हों, अद्वितीय ब्रह्म वस्तुमें एक हो कर रहें, अखण्डाकारमें आकारित चित्तवृत्तिका अवस्थान हो, तब ऐसी अवस्था होनेसे निर्विकल्पसमाधि होती है। इस समय ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता ये सब एक हो जाते हैं, ज्ञानात्मक सच्चिदानन्द ब्रह्मके सिवा और कुछ भी नहीं रहता। जिस प्रकार जलमें लवणखण्ड मिलानेसे जलाकारमें आकारित लवणके लवणत्वज्ञानके अभावमें केवल जलका ज्ञान होता है, उसी प्रकार अद्वितीय ब्रह्माकारमें आकारित चित्तवृत्तिका ज्ञान रहते हुए भी अद्वितीय ब्रह्मवस्तुमात्रका ही ज्ञान होता है।

इस समाधिकी तुलना योगकी सुषुप्ति अवस्थाके साथ की जाती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और सविकल्पसमाधि ये सब इसके अङ्ग हैं।

निर्विकार (सं० पु०) प्रकृतेरन्यथा भावः विकारः निर्गतो यस्मात्। १ विकाररहित, वह जिसमें किसी प्रकारका विकार या परिवर्त्तन न हो, परमात्मा। (त्रि०) २ विकारशून्य, जिसमें कोई विकार या परिवर्त्तन न हो।

निर्विकारवत् (सं० त्रि०) निर्विकारः विद्यतेऽस्य, मतुप्, मस्य व। अपरिवर्त्तनीय, जो परिवर्त्तनके योग्य न हो, सदा एक-सा रहनेवाला।

निर्विकाश (सं० त्रि०) अस्फुट, विकाशरहित।

निर्विघ्न (सं० त्रि०) १ विघ्नरहित, जिसमें कोई विघ्न न हो। (क्रि० वि०) २ विघ्नका अभाव, बिना किसी प्रकारके विघ्न या बाधाके।

निर्विचार (सं० त्रि०) निर्गतो विचारो यत्र। १ विचाररहित। (पु०) २ पातञ्जलदर्शनोक्त सूक्ष्मविषयक समापत्तिरूप समाधिभेद।

सवितर्क और निर्वितर्क समाधि द्वारा सूक्ष्मविषयक सविचार और निर्विचार समाधिका निर्णय होता है।

सविचार और निर्विचार समाधिका विषय सूक्ष्म और उसकी सीमा प्रकृति है। इन्द्रिय तन्मात्र और अहङ्कार इनकी मूल प्रकृति है। ये सब क्रमपरम्पराके अनुसार प्रकृतिमें जा कर परिसमाप्त हो जाते हैं।

निर्मल चित्त जब किसी एक अभिमत वस्तुमें तन्मय हो जाता है, तब उसे सम्प्रज्ञातयोग कहते हैं। यह

संप्रज्ञातयोग सविकल्प, समाधि आदि नामोंसे पुकारा जाता है। इस समाधिके चार प्रकारके भेद कल्पित हुए हैं, सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। स्थूलके आलम्बनमें तन्मय होनेसे वह सवितर्क और निर्वितर्क तथा सूक्ष्मके आलम्बनमें तन्मय होनेसे सविचार और निर्विचार कहलाता है। चित्त जब स्थूलमें तन्मय रहता है, तब यदि उसके साथ विकल्पज्ञान रहे, तो उस तन्मयताको सवितर्क और यदि विकल्पका ज्ञान न रहे, तो उसे निर्वितर्क कहते हैं।

चित्त चाहे जिस किसी पदार्थमें अभिनिविष्ट हो, पहले नाम, पीछे सङ्केत-स्मृति और सबसे पीछे वस्तुके स्वरूपमें पर्यवसित होता है। जैसे, घट शब्द कहनेसे पहले घ-अ+ट-अ इन चार वर्णोंका बोध होता है, पीछे कम्बुग्रीवादिके जैसा वस्तुविशेषके साथ उसका जो सङ्केत है, उसका स्मरण होता है और सबसे पीछे घटाकारकी चित्तवृत्ति निष्पन्न होती है वा नहीं? यदि होती है, तो यह ठीक जाना गया कि प्रत्येक तन्मयतामें उक्त आनुपूर्विक ज्ञानत्रयका संभव है। फिर ऐसा भी होता है, कि घट देखनेके साथ अथवा घट शब्दके उल्लेखके समय कम्बुग्रीवादिमद्वस्तु और उसके साथ घटशब्दका सङ्केतज्ञान तथा घ-अ+ट-अ इन चारों वर्णका ज्ञान अथवा घटाकार नामका ज्ञान अति शीघ्र उत्पन्न हो कर प्रथमोत्पन्न ज्ञान लुप्त हो जाता है। केवल घटाकार ज्ञान वा घटाकार मनोवृत्ति विद्यमान रहती है। अतएव जहां स्थूल आलम्बनका नामज्ञान और सङ्केतज्ञान रहता है वहां सवितर्क और जहां सङ्केतज्ञान वा नामज्ञान नहीं रहता, केवल अर्थाकार ज्ञान रहता है वहां निर्वितर्क होता है। मान लो, चित्त यदि कृष्णमें तन्मय हो और उसके साथ यदि नामज्ञान और सङ्केतज्ञान रहे, तो सवितर्क कृष्णयोग और यदि नामज्ञान तथा सङ्केतज्ञान न रहे, केवल नव जलधरमूर्ति स्फुरित हो, तो उस अवस्थाको निर्वितर्क कहते हैं। सविचार और निर्विचार भी इसका नामान्तर है। इसका अवलम्बनीय विषय सूक्ष्म वस्तु है। सूक्ष्म वस्तुके मध्य पहले पञ्चभूत, तदपेक्षा सूक्ष्म तन्मात्र और इन्द्रिय हैं। इन्द्रियसे भी सूक्ष्म अहंतत्त्व है, पीछे महत्तत्त्व और प्रकृति। यही योगकी चरम सीमा है। परमात्मसंयोग इससे भी सूक्ष्म और स्वतन्त्र है। जिन सब समाधियोंका विषय कहा गया वे सबीजसमाधि हैं। सबीजसमाधिके मध्य सवितर्कसमाधि हो निकृष्ट और निर्विचार समाधि सबसे श्रेष्ठ है। इस निर्विचार योगका अच्छी तरह अभ्यास हो जानेसे ही चित्तका स्वच्छस्थितिप्रवाह दृढ़ हो जाता है। उस समय कोई दोष वा किसी प्रकारका क्लेश अथवा कोई मालिन्य हो नहीं रहता। सर्वप्रकाशक चित्तसत्त्व नितान्त निर्मल होता है और आत्मा भी उस समय विज्ञात होती है। निर्विचारयोगके सम्यक् आयत्त होने पर निर्मल प्रज्ञा उत्पन्न होती है। इस निर्विचारप्रज्ञाके साथ अन्य किसी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती। इन्द्रियजनित प्रज्ञा वा अनुमानजात अथवा शास्त्रज्ञानजनित प्रज्ञा कोई भी निर्विचारप्रज्ञाके समकक्ष नहीं है। क्योंकि उल्लिखित प्रज्ञाएँ वस्तुका एकदेश वा सामान्यकारमात्र ग्रहण करती हैं, विशेष तत्त्व जान नहीं सकतीं। किन्तु निर्विचार नामक योगज प्रज्ञा क्या सूक्ष्म क्या विप्रकृष्ट क्या व्यवहित सभी प्रकाश करती है। इसका कारण यह है कि बुद्धि पदार्थ महान्, सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक है। उसकी सार्वज्ञशक्ति रज और तमोगुणसे आवृत्त रहती है। इस मलस्वरूप रज और तमःके अपनीत होनेसे बुद्धिकी सर्वप्रकाशत्वशक्ति आपसे आप प्रादुर्भूत होती है। यही कारण है, कि निर्विचारप्रज्ञाके साथ किसी प्रज्ञाकी तुलना नहीं होती। (पातञ्जलद०) विशेष विवरण समाधि शब्दमें देखो।

निर्विचिकित्स (सं० त्रि०) निर्गता विचिकित्सा यस्य। निःसन्देह।

निर्विचेष्ट (सं० त्रि०) अज्ञान, जड़, मूर्ख, बेवकूफ।

निर्वितर्क (सं० त्रि०) निर्गतो वितर्क यस्मात्। १ वितर्कशून्य। (पु०) २ पातञ्जलदर्शनोक्त समाधि भेद। निर्विचार देखो।

निर्वितर्कसमाधि (सं० स्त्री०) योगदर्शनके अनुसार एक प्रकारकी सबीज समाधि जो किसी स्थूल आलम्बनमें तन्मय होनेसे प्राप्त होती है और जिसमें उस आलम्बनके नाम और सङ्केत आदिका कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदिका ही भास होता है।

निर्विद्य (सं० त्रि०) निर्नविद्यते विद्या यस्य। १ विद्याहीन, मूर्ख, जो पढ़ा लिखा न हो।

निर्विधित्स (सं० त्रि०) १ कार्य करनेमें अनिच्छुक। २ आसक्तिविहीन।

निर्विन्ध्य (सं० त्रि०) निर्गतः विन्ध्यात्। १ विन्ध्यपर्वत निःसृत, जो विन्ध्यपर्वतसे निकली हो। स्त्रियां टाप. २ विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई एक नदीका नाम।

निर्विभेद (सं० त्रि०) अभिन्न, भेदरहित।

निर्विमर्श (सं० त्रि०) चिन्ताहीन, विमर्शशून्य।

निर्विरोध (सं० त्रि०) विरोधहीन, अविवादी, निरीह, शान्त।

निर्विरोधिन् (सं० त्रि०) निर्विरोध अस्त्यर्थे इनि। निरीह, शान्त, निर्विवादी।

निर्विवर (सं० त्रि०) १ छिद्रशून्य, बिना छेदका। २ अविराम, नियत।

निर्विवाद (सं० त्रि०) कलहशून्य, जिसमें कोई विवाद न हो, बिना झगड़ेका।

निर्विवित्सु (सं० त्रि०) जो जानना नहीं चाहता हो।

निर्विवेक (सं० त्रि०) विवेचनारहित, अविवेकी, जो किसी बातकी विवेचना न कर सकता हो।

निर्विवेकता (हिं० स्त्री०) निर्विवेक होनेका भाव।

निर्विशङ्क (सं० त्रि०) शङ्कारहित, निर्भय, निडर।

निर्विशङ्कित (सं० त्रि०) शङ्काहीन, भयरहित।

निर्विशेष (सं० क्ली०) निर्गतो विशेषो यस्य। १ सर्वदैशक्त्य विशेषरहित परब्रह्म। (त्रि०) २ विशेषरहित, तुल्यरूप।

निर्विशेषण (सं० क्ली०) पार्थक्यहीनता, अभेदत्व।

निर्विशेषत्व (सं० क्ली०) १ विशेषणरहित, परब्रह्म। (त्रि०) २ विशेषणरहित।

निर्विशेषवत् (सं० त्रि०) निर्विशेष तुल्य।

निर्विष (सं० त्रि०) निर्गतं विषं यस्मात्। १ विषरहित, जिसमें विष न हो। (पु०) २ जलसर्प, पानीका सांप।

निर्विषङ्ग (सं० त्रि०) आसक्तिरहित।

निर्विषय (सं० त्रि०) अगोचर, जो इन्द्रियग्राह्य नहीं है।

निर्विषा (सं० स्त्री०) निर्विष-टाप्। तृणभेद, एक प्रकारकी घास। पर्याय—अपविषा, निर्विषी, विषहा, विषापहा, विषहन्त्री, विषाभावा, अविषा, विषवैरिणी। गुण—कट, शीतल, कफ, वात और अस्रदोषनाशक। निर्विषी देखो।

निर्विषी (सं० स्त्री०) अमवर्गकी जातिकी एक घास जो पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और मलयगिरिमें अधिकतासे होती है। इसकी जड़ अतीसके समान होती है जिसका व्यवहार सांप-बिच्छू आदिके विषोंके अतिरिक्त शरीरके और भी अनेक प्रकारके विषोंका नाश करनेके लिए होता है।

डाक्टर एफ. हैमिल्टनका कहना है, कि नेपालमें जो एकोनाइट मिलती है, वह चार जातियोंमें विभक्त है,—१ सिंगिया विष, २ विष, ३ विषम और ४ निर्विषी।

वे कहते हैं, कि निर्विषीमें विष जातीय कोई वस्तु नहीं है। यह निर्विषी एकोनाइटविशेषकी जड़ है। मिष्टर कोलब्रूकका कहना है, कि यह निर्विषी विषनाशक है और इससे शरीरका विष निकल कर लेहू साफ होता है। डाक्टर डायमक (Dr. Dymock)-के मतसे हिन्दू चिकित्सकगण एकोनाइटको निर्विषी नहीं कहते, बल्कि उसे लता मानते हैं जो विषनाशक है। हिन्दुओंका निर्विष शब्द निर्विषीसे भिन्न है। विषसे, जितने विष हैं सबका बोध होता है।

इससे साबित होता है, कि पुराकालमें निर्विषी नामक कोई निर्दिष्ट वृक्ष नहीं था। पर हां, जब एकोनाइट विषनाशक है और लतापत्ता-जात औषध प्रस्तुत हुई है, तब वही औषध निर्विषी कहलाती थी। आसामसे जो Costus root पाई गई थी, उसीको वहांके अधिवासी निर्विषी कहते थे। हिमालयके मेषपालकगण एक प्रकारकी एकोनाइट खाते हैं, उसमें कुछ भी विष नहीं है, वरन् वह बलकारक है। कोलब्रूकका कहना है, कि निर्विषी और जदवार ये दोनों एक ही हैं। एनेसली (Ainslie)-के मतसे हैमिल्टनवर्णित Nirbishie शब्द Nirbisi-से पृथक् है। उनका कहना है, कि Nirbisi शब्दका लैटिन नाम Curcuma Zedoaria है, किन्तु आधुनिक उद्भिद्‌विद्या-विद् इसे Delphinium denudatum बतलाते हैं। हिमालयके किसी

किसी स्थानके लोग शिपोक्त औषधके वृक्षको ही निर्विषी कहते हैं। Cynantus Lobatus नामक नेपालीय प्रकृत निर्विषी वृक्षके मूलको तेलमें सिद्ध कर उसे वात-के ऊपर लगानेसे वातरोग आरोग्य हो जाता है। मोट-राज्यमें जो निर्विषी है उसके मूलका वे लोग दन्त-वेदनाके समय व्यवहार करते हैं। हिमालय पर्वतका Delphinium denudatum दक्षिणभागमें उत्पन्न होता है। शिमलासे ले कर कुमायून और कुल तक यह मूनील नामसे प्रसिद्ध है। कहीं कहीं इसीको निर्विषी कहते हैं।

मीर महम्मद होसेनने ५ प्रकारके जड़वारका उल्लेख किया है। इनमेंसे खटाई वृक्ष सबसे उपकारी है। इसका आस्वाद पहले मीठा और पीछे तीता है। यह बाहरसे तो देखनेमें काला, पर भीतरसे बैंगनी रंगका लगता है। तिब्बत, नेपाल और रङ्गपुरमें द्वितीय और तृतीय प्रकारका वृक्ष पाया जाता है। चतुर्थ प्रकार-का वृक्ष कुछ काला होता है और स्वादमें बहुत तीता। कहते हैं, कि दक्षिण प्रदेशके पार्श्वस्थप्रदेशमें यह वृक्ष बहुत उत्पन्न होता है। सुतरां वह Delphinium or Aconitum जातिका नहीं है। पञ्चम प्रकारके वृक्षका नाम Antilá है जो स्पेन देशमें पैदा होता है। डाक्टर सुद्दीन सरीफका कहना है, कि दक्षिण भारतके बाजार-में तीन प्रकारका जड़वार बिकता है जो विषाक्त पदार्थ वर्जित है और एकोनाइट जातिका है। इस प्रकार नाना स्थानोंमें नाना प्रकारकी निर्विषी देखनेमें आती है।

निर्विष्ट (सं० त्रि०) निर्-विश-क्त। १ कृतभोग, जो भोग कर चुका हो। २ प्राप्तवेतन, जो अपनी तन-खाह पा चुका हो। ३ कृतविवाह, जो विवाह कर चुका हो। ४ कृताग्निहोत्र, जो अग्निहोत्र कर चुका हो। ५ भोग्य, जो भोग करने योग्य हो। ६ मुक्त, जो छोड़ दिया गया हो।

निर्वीज (सं० पु०) निर्गतं वीजमस्य। १ वीजशून्य. जिसमें वीज न हो। २ कारणरहित, जो बिना कारण-का हो। (पु०) ३ पातञ्जलोक्त समाधिभेद, पातञ्जल-के अनुसार एक समाधि।

सम्प्रज्ञात वृत्ति जब बन्द हो जाती है, तब सर्व-निरोध नामक समाधि होती है। तात्पर्य यह कि योगी लोग बहुत पहलेसे निरोध-अभ्यास करते आ रहे थे. अभी उसी अभ्यासके बलसे उनके चित्तका वह अव-लम्बन भी निरुद्ध वा विलीन हो गया। चित्त जिस वीज-का अवलम्बन कर वर्त्तमान था, अभी वह भी नष्ट हो गया। इसी अवस्थाको निर्वीजसमाधि कहते हैं। यह निर्वीजसमाधि जब परिपक्व होगी, चित्त उसी समय अपनी चित्तभूमि प्रकृतिका आश्रय लेगा। प्रकृति भी स्वतन्त्र हो जायगी, सच्चिदानन्दमय परमात्मा भी प्रकृतिके बन्धनसे मुक्त हो जायँगे। इस अवस्थामें मनुष्यको सुख, दुःख आदिका कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्वीजा (सं० स्त्री०) निर्वीज-टाप्। काकलीद्राक्षा, किशमिश नामका मेवा।

निर्वीर (सं० त्रि०) निर्गतो वीरो यस्मात्। वीरशून्य, प्रसुताहीन।

निर्वीरा (सं० स्त्री०) निर्गतो वीरवत् पतिःपुत्रो वा यस्याः। पतिपुत्रविहीन, वह स्त्री जिसके पति और पुत्र न हो।

निर्वीरुध (सं० त्रि०) निर्गता वीरुधा यस्याः। वीरुध-शून्य, जहाँ लता न हो।

निर्वीर्य (सं० त्रि०) वीर्यहीन, बल वा तेजरहित।

निर्वृक्ष (सं० त्रि०) वृक्षशून्य, बिना पेड़का।

निर्वृत (सं० त्रि०) निर्-वृ-क्त। सुस्थ, प्रसन्न, खुश।

निर्वृति (सं० स्त्री०) निर्-वृ-क्तिन्। १ सुस्थिति, प्रस-न्नता, आनन्द। २ मोक्ष। ३ मृत्यु। ४ शान्ति। (पु०) ५ विदर्भवंशीय वृष्णिके पुत्र।

निर्वृत्त (सं० त्रि०) निर्-वृत-क्त। निष्पन्न, जो पूरा हो गया हो।

निर्वृत्तशत्रु (सं० पु०) द्वापरयुगके यदुवंशीय नृपभेद

निर्वृत्तात्मन् (सं० पु०) विष्णु।

निर्वृत्ति (सं० स्त्री०) निर्-वृत भावे-क्तिन्। १ निष्पत्ति। (त्रि०) निर्गता वृत्तिर्जीविका यस्य। २ जीविकारहित, जीविकाहीन।

निर्वृष (सं० त्रि०) १ वर्षणरहित, बिना बरसाका। २ वृषभरहित, बिना बैलका।

निर्वेग (सं० त्रि०) गतिहीन, स्थिर।

निर्वेतन सं० त्रि०) वेतनहीन, जो तनखाह नहीं लेता हो।

निर्वेद (सं० पु०) निर्-विद-भावे-घञ्। १ स्वावमानना, अपमान। २ शान्तरसका स्थायिभाव। ३ परम वैराग्य। ४ वैराग्य। ५ खेद, दुःख। ६ अनुताप। (त्रि०) निर्गतो वेदो यस्मात्। ७ वेदरहित।

निर्वेदवत् (सं० त्रि०) निर्वेद-मतुप् मस्य वः। वेदद्वेषी।

निर्वेधिम (सं० पु०) सुश्रुतोक्त कर्णवेधन आकारभेद, सुश्रुतके अनुसार कान छेदनेका एक औजार।

निर्वेपन (सं० त्रि०) कम्पनहीन।

निर्वेश (सं० पु०) निर्-विश् घञ्। १ भोग। २ वेतन, तनखाह। ३ मूर्च्छन, मूर्च्छा। ४ विवाह, ब्याह, शादी।

निर्वेशनीय (सं० त्रि०) भोग्य, लभ्य, भोग करने योग्य, पाने लायक।

निर्वेष्टन (सं० क्ली०) नितरां वेष्टनमत्र। १ नाड़ीचीर, सूत्रवेष्टन नलिका, जुलाहोंका एक औजार, ढरकी। (त्रि०) निर्गतं वेष्टं यस्मात्। २ वेष्टनरहित।

निर्वेष्टव्य (सं० त्रि०) १ प्रवेशनीय। २ परिशोभित। ३ पुरस्कार योग्य।

निर्वेष्टुकाम (सं० पु०) निर्वेष्टुं कामः यस्य, तुमोऽन्त-लोपः। विवोढुकाम, वह जो विवाह करना चाहता हो।

निर्वैर (सं० त्रि०) शत्रुभाववर्जित, मित्र।

निर्वैरिण (सं० क्ली०) शत्रुताहीन, द्वेषसे रहित।

निर्वोढ़ृ (सं० त्रि०) वहनकारी, विभाग करनेवाला।

निर्वोध (सं० त्रि०) ज्ञानहीन, मूर्ख।

निर्व्यञ्जन (सं० त्रि०) व्यञ्जनहीन।

निर्व्यथ (सं० त्रि०) व्यथाहीन।

निर्व्यथन (सं० क्ली०) निर्-व्यथ-भावे ल्युट्। १ छिद्र, छेद। २ नितरां व्यथन, निश्चयरूपसे पीड़न। (त्रि०) ३ व्यथाशून्य, जिसे तकलीफ न हो।

निर्व्यपेक्ष (सं० त्रि०) निरपेक्ष, बेपरवा।

निर्व्यलीक (सं० त्रि०) अकपट, सत्य, छलरहित।

निर्व्याकुल (सं० त्रि०) व्याकुलताशून्य, स्थिरचित्त।

निर्व्याघ्र (सं० त्रि०) व्याघ्रपरिशून्य, जहां बाघका डर न हो।

निर्व्याज (सं० त्रि०) १ अकपट, छलरहित। २ बाधाहीन।

निर्व्याधि (सं० त्रि०) व्याधिशून्य, रोगमुक्त, नीरोग, चंगा।

निर्व्यापार (सं० त्रि०) निर्गतो व्यापारो यस्मात्। व्यापारशून्य, बिना कामकाजका।

निर्व्यूढ़ (सं० त्रि०) निर्-वि-वह-क्त। १ निष्पन्न। २ समाप्त। ३ सुसम्पन्न। ४ स्थिर, अप्रतिबन्ध।

निर्व्यूह (सं० पु०) निर्यूह पृषोदरादित्वात् साधुः। निर्यूह, नागदन्तिका, दीवारमें लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय, खूंटी। (त्रि०) २ व्यूहरहित सैन्यादि।

निर्व्रण (सं० त्रि०) १ व्रणरहित, जिसे फोड़ा न हो। २ अक्षत, जिसे घाव न हो।

निर्व्रत (सं० त्रि०) यागयज्ञहीन, व्रताचारशून्य।

निर्व्रस्क (सं० त्रि०) १ उन्मूलित, उखाड़ा हुआ। २ ध्वंसप्राप्त, नाश किया हुआ।

निर्ल्वयनी (सं० स्त्री०) सर्पत्वक्, सांपकी केंचुली। —निर्ल्वयनी देखो।

निर्हरण (सं० क्ली०) निश्चयेन हरणं, निर्-हृ-ल्युट्। १ शवदाह, शवको जलानेके लिये ले जाना। २ दहन, जलाना। ३ नाशन, नाश करना।

निर्हरणीय (सं० त्रि०) निःसारणयोग्य, अलग करने योग्य, बाहर करने लायक।

निर्हर्त्तव्य (सं० त्रि०) अपसारितकरण योग्य, हटाने योग्य।

निर्हस्त (सं० त्रि०) १ हस्तशून्य, बिना हाथका। २ कर्मादिमें अपारग। ३ लोकबलहीन।

निर्ह्राद (सं० पु०) निर्-ह्रद-घञ्। शब्दभेद।

निर्हार (सं० पु०) निर्-हृ-घञ्। १ मलमूत्रादित्याग। २ प्रेतदेहको दाहार्थ वहिर्नयन, शवको जलानेके लिए ले जाना। ३ अभीष्ट विनियोग। ४ उत्पाटन, जड़से उखाड़ना। ५ नाश, बरबादी। ६ खजाना, पूंजी।

निर्हारक (सं० त्रि०) निर्हरति वहिर्नयति निर्-हृ-ण्वुल्। शवको जलानेके लिए घरसे बाहर ले जानेवाला।

निहारगृह (सं॰ क्ली॰) निहारभवन, पाखाना।

निहारिन् (सं॰ पु॰) निर्हरति दूरं गच्छति निर्-हृ-णिनि। १ दूरगामिगन्ध, वह गन्ध जो बहुत दूर तक फैले। (त्रि॰) २ निर्हरणकर्त्ता, शवको जलानेके लिये ले जानेवाला।

निहिम (सं॰ अव्य॰) हिमस्याभावः अव्ययीभावः। १ हिमाभाव। निर्गतं हिमं यस्मात्। (त्रि॰) २ हिमशून्य।

निर्हृत (सं॰ त्रि॰) अपहृत, हटाया हुआ, निकाला हुआ।

निर्हृत्य (सं॰ त्रि॰) भूलसे लाया हुआ।

निर्हृति (सं॰ स्त्री॰) स्वपस्थाच्युत, वह जो अपने स्थानसे हटाया गया हो।

निर्हेतु (सं॰ त्रि॰) १ कारणहीन, जिसमें कोई हेतु वा कारण न हो।

निर्ह्राद (सं॰ पु॰) नि-ह्राद-घञ्। शब्दभेद, पक्षी आदिका शब्द।

निर्ह्रादिन् (सं॰ पु॰) शब्दयुक्त, ध्वनित।

निर्ह्रास (सं॰ पु॰) निःशेषेण ह्रासः। नितान्त ह्रास, क्षयप्राप्त।

निर्ह्रीक (सं॰ त्रि॰) निर्भीक, साहसी।

निल (सं॰ पु॰) एक राक्षसका नाम जो माली नामक राक्षसकी वसुदा नामकी स्त्रीसे उत्पन्न हुआ था और जो विभीषणका मन्त्री था।

निल—एक अङ्गरेज सेनाध्यक्ष। द्वितीय ब्रह्मयुद्धमें इन्होंने अच्छा नाम कमाया था। सिपाहीयुद्धके समयमें भी इन्होंने अपने बल, बुद्धि और साहसका अच्छा परिचय दिया था। सिपाहीयुद्ध देखो।

निलङ्ग—हैदराबाद राज्यके बोदर जिलेका एक तालुक। इसका भूपरिमाण ३१५ वर्गमील और लोकसंख्या लगभग ४८०००से है। इसमें ८८ ग्राम लगते हैं जिनमें २७ जागीर हैं। यहांका राजस्व डेढ़ लाखसे कुछ ऊपर है।

निलन—१ तिब्बतस्थ एक ग्राम। यह चुङ्गस (Chungsa) जिलेकी जाह्नवी अथवा निलन् (Nilun) नदीके किनारे अवस्थित है। २ उत्तर भारतको एक नदी। यह तिब्बतसे निकल कर हिमालयको पार करती हुई भागीरथी अर्थात् गङ्गा नदीके साथ मिल गई है। कलकत्तेमें जो नदी हुगली नामसे बहती है, कोई कोई इसे भी निलन कहते हैं।

निलम्बूर—मन्द्राज प्रदेशके मलवार जिलेका कूरनाद तालुकान्तर्गत एक गांव। यह अक्षा॰ ११° १७' उ॰ और देशा॰ ७६° १४' पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या २७०० है। यहां रबरके पेड़ तथा महाजनी नामके एक प्रकारकी अद्भुत लकड़ी पाई जाती है।

निलय (सं॰ पु॰) निलीयते अस्मिन्निति नि-ली-अच्। १ गृह, घर, मकान। २ निःशेषरूपसे लय, अदर्शन, गायब। ३ आश्रयस्थान।

निलयन (सं॰ क्ली॰) निलीयते अत्र नि-ली आधारे ल्युट्। १ नीड़, बैठने वा ठहरनेका स्थान। २ श्लेषण, सम्बन्ध।

निलवाल—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत काठियावाड़के गोहिलवार विभागका एक छोटा राज्य। यहांकी वार्षिक आय २४५०) रु॰ है जिसमेंसे वृटिश गवर्मेण्टको ५११) और जूनागढ़के नवाबको १५४) रु॰ करमें देने होते हैं।

निलाम (हिं॰ पु॰) नीलाम देखो।

निलिम्प (सं॰ पु॰) निलिम्पतीति नि-लिप (नौ लिम्पेर्वाच्यः। पा ३।१।१३८) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या शः। देव, देवता।

निलिम्प-निर्झरी (सं॰ स्त्री॰) निलिम्पानां देवानां निर्झरी नदी। गङ्गा।

निलिम्पा (सं॰ स्त्री॰) नि-लिप-श, मुचादित्वात् नुम्, स्त्रियां टाप्। १ स्त्रीगवी, गाय। २ दोहनभाण्ड, दूध दूहनेका बरतन।

निलिम्पिका (सं॰ स्त्री॰) निलिम्पा एव स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। सौरभेयी, गाय।

निलीन (सं॰ त्रि॰) नितरां लीनः नि-ली-क्त। निःशेषरूपसे लीन, संलग्न, अत्यन्त सम्बद्ध।

निलीनक (सं॰ त्रि॰) निलीनस्य अदूरदेशादि, इति ऋश्यादित्वात् क। निलीन सन्निकृष्टदेश प्रभृति।

निवच (सं॰ पु॰) यज्ञादिमें उत्सर्ग जीवको संज्ञाभेद, वह जीव या पशु जो यज्ञ आदिमें उत्सर्ग किया जाय।

निवचन (सं॰ क्ली॰) निरन्तरं वचनं, प्रादितत्। निरन्तर वचन, निरन्तर वाक्य।

निवछार (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

निवड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

निवत् (सं० लिं०) नि विद्दे वति। १ निम्नगतादि, जो बहुत नीचेमें हो। (पु०) २ निम्नदेश, तराई।

निवता (सं० स्त्री०) १ निम्नगामी, वह जो नीचेको ओर जाता हो। २ पर्वतनिम्नादिकी ओर अवतरण, पहाड़ परसे नीचे उतरना।

निवदुङ्ग विठोवा—प्रसिद्ध मन्दिर जो पूना जिलेके नाम नामक विभागमें अवस्थित है। एक गोसाई इसके प्रतिष्ठाता हैं। १८३० ई०में पुरुषोत्तम अम्बादास नामक गुजरातके किसी धनीने ३०००) रु० खर्च करके इसका जीर्ण संस्कार किया। मन्दिरमें जो देवमूर्त्ति स्थापित है, वह निवदुङ्ग जङ्गलमें पाई गई थी। इसी कारण उक्त विठोवा देव निवदुङ्ग नामसे प्रसिद्ध हैं। मन्दिर बहुत प्रशस्त और मनोरम है। इसके चारों ओर एक बहुत लम्बा चौड़ा उद्यान है जहां मनुष्योंके स्नानोपयोगी एक प्रकाण्ड चहवंचा भी विद्यमान है। संन्यासी और भिक्षुकोंके रहनेके लिये पश्चिम ओर मन्दिरमें संलग्न एक विशाल आश्रम है।

निवपन (सं० क्ली०) नि-वप-भावे-ल्युट्। १ पित्रादिके उद्देशसे दान। २ वह जो कुछ पितरों आदिके उद्देशसे दान किया जाय।

निवर (सं० त्रि०) नि-अन्तर्भूतण्यर्थे वृ-कर्त्तरि अच्। १ निवारक, निवारण करनेवाला।

निवरा (सं० स्त्री०) नितरां व्रियते-इति नि-वृ-अप्। अविवाहिता, कुमारी।

निवर्त्त (सं० त्रि०) प्रत्यावृत्त, लौटा हुआ।

निवर्त्तक (सं० त्रि०) प्रतिबन्धक, प्रत्याख्यात।

निवर्त्तन (सं० क्ली०) नि-वृत-णिच् भावे ल्युट्। १ निवारण। २ क्षेत्रभेद, प्राचीनकालमें भूमिकी एक नाप जो २१० हाथ लम्बाई और २१० हाथ चौड़ाईकी होती थी। जो मनुष्य एक निवर्त्तन भूमि विष्णुको दान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जा कर आनन्द लूटते हैं। ३ साधन, सुसम्पन्नकरण। ४ पीछे हटाना या लौटाना।

निवर्त्तनस्तूप—एक बौद्ध स्तूप। छन्दक जब बुद्धदेवको रथ पर चढ़ा राज्यके बाहर दे आये, तब कपिल-वस्तु लौटते समय जहां पर उन्होंने रथ रख कर विश्राम किया था, उसी स्थान पर यह स्तूप निर्मित है। चीनपरिव्राजक युएनचुवङ्ग यह स्तूप देख गए हैं।

निवर्त्तनीय (सं० त्रि०) नि वृत-णिच् अनीयर्। भ्रमणशील, लौटने योग्य, पीछेकी ओर हटने योग्य।

निवर्त्तमान (सं० त्रि०) जो लौट रहा हो।

निवर्त्तयितव्य (सं० त्रि०) नि-वृत-णिच्-तव्य। निवारण योग्य।

निवर्त्तित (सं० त्रि०) नि-वृत-णिच्-क्त। प्रत्याकृष्ट, जो लौटाया गया हो।

निवर्त्तितव्य (सं० त्रि०) नि-वृत णिच्-तव्य। जिसको लौटा लाना उचित हो।

निवर्त्तितपूर्व (सं० त्रि०) जो पहले लौट गया हो।

निवर्त्तिन् (सं० त्रि०) १ संग्रामादिसे प्रत्यावृत्त, जो युद्धसेसे भाग आया हो। २ निर्लिप्त। ३ जो पीछेकी ओर हट आया हो।

निवर्त्य (सं० त्रि०) १ प्रत्यावृत्त। २ निवारित। ३ पुनर्प्राप्त।

निवर्हण (सं० त्रि०) उत्सन्न, ध्वंस, हत।

निवसति (सं० स्त्री०) निवसत्यत्रेति, नि-वस-अतिच्। गृह, मकान।

निवसथ (सं० पु०) निवसत्यत्रेति, नि-वस आधारे अथच्। १ ग्राम, गांव। २ सीमा, हद।

निवसन (सं० क्ली०) न्युष्यतेऽत्र, नि-वस आधारे ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ वस्त्र, कपड़ा।

निवसना (हिं० क्रि०) निवास करना, रहना।

निवस्तव्य (सं० त्रि०) नि-वस-तव्य। जीवनयात्रानिर्वाहयोग्य।

निवह (सं० पु०) नितरामुह्यते इति नि-वह पुंसोति घ। १ समूह, यूथ। नितरां वहतीति पचाद्यच्। २ सप्तवायुके अन्तर्गत वायुविशेष, सात वायुओंमेंसे एक वायु। फलितज्योतिषमें सात वायु मानी गई हैं जिनमेंसे प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहती है। निवह वायु भी उन्हींमेंसे एक है। वह न तो बहुत तेज चलती है और न धीमी। जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी नहीं रहता।

निवाई (हिं० वि०) १ नवीन, नया। २ विलक्षण, अनोखा।

निवाकू (सं० वि०) नि-वच्-बाहुलकात् घुण्। निवचनशील।

निवाज (फा० वि०) कृपा करनेवाला, अनुग्रह करनेवाला।

निवाज—१ हिन्दीके एक कवि। ये बिलग्रामके निवासी और जातिके जुलाहे थे। इनकी शृङ्गाररसकी कविता अच्छी होती थी।

२ हिन्दीके एक कवि। ये जातिके ब्राह्मण और अन्तरवेदनिवासी थे। महाराज छत्रसाल बुन्देला पन्ना नरेशके दरबारमें ये रहते थे। आजमशाहकी आज्ञासे इन्होंने शकुन्तलानाटकका संस्कृतसे हिन्दीमें अनुवाद किया था।

३ एक हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डी ब्राह्मण थे और भगवन्तराय खोंचो गाजोपुरवालेके यहां रहते थे।

निवाजिश (फा० स्त्री०) १ कृपा, मेहरबानी। २ दया

निवाड़ (हिं० स्त्री०) निवार देखो।

निवाड़ा (हिं० पु०) १ छोटी नाव। २ नावको एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीचमें ले जा कर चक्कर देते हैं, नावर।

निवाड़ी (हिं० स्त्री०) निवारी देखो।

निवात (सं० स्त्री०) नितरां वाति गच्छत्यत्र नि-वा अधिकरणे-क्त। १ आश्रय, निवास, घर। निवृत्तो वातो यस्मिन्। २ अवात, वातशून्य। (पु०) ३ शस्त्राभेद्यवर्म, कवच जो हथियारसे छेदा न जा सके। ४ निवातक।

निवातकवच (सं० पु०) १ दैत्यविशेष, एक असुर जो हिरण्यकशिपुका पौत्र और संह्लादका पुत्र था। निवातं शस्त्राभेद्यं कवचं येषामिति। २ दानवविशेष।

महाभारतमें लिखा है, कि देवद्वेषी अमितवीर्य प्रायः तीन करोड़ दानव थे जो निवातकवच कहलाते थे। पुराण आदि ग्रन्थोंमें लिखा है, कि निवातकवचोंने अपने बाहुबलसे देवेन्द्र आदि अमरवृन्दको कई बार परास्त किया था और देवगण भी उनसे डरा करते थे। कठोर तपस्याके प्रभावसे उन्होंने ब्रह्माको सन्तुष्ट कर वर पाया था, कि वे निरापदसे समुद्रकुक्षिमें वास करेंगे और देवताओंसे कभी पराभूत न होंगे। उनको अधिकृत समुद्रकुक्षि और वहांको चित्रित विशाल सौधश्रेणी पहले देवराज इन्द्रके शासनाधीन थी। पीछे ब्रह्माके वरसे गर्वित हो कर उन्होंने देवराजको पराजित किया और वहांसे उन्हें निकाल भगाया।

वीरश्रेष्ठ तृतीय पाण्डव धनञ्जय जब दुर्योधनके षड़यन्त्रसे अपने चार भाइयोंके साथ जंगलमें वास करते थे, उस समय वे महादेवको प्रसन्न कर उनके वरप्रभावसे अस्त्र सीखनेके लिये स्वर्ग गये थे। वहां देवराज, चित्रसेन और अन्यान्य बहुसंख्यक अस्त्रविद् देव, यक्ष और गन्धर्वोंने अर्जुनको अस्त्रविद्या सिखाई: दिव्यास्त्रप्रयोग, पुनः पुनः प्रयोग और उपसंहार, अस्त्रादि-दग्ध व्यक्तिका पुनरुज्जीवन और परास्त्रसे अभिभूत निज अस्त्रका उद्दीपन ये पांच प्रकारको अस्त्र चलानेकी विधि जब अर्जुनको अच्छी तरह मालूम हो गई, तब इन्द्र आदि देवताओंने उन्हें सन्तोष चिह्नस्वरूप अनेक प्रकारके दिव्यास्त्र दिये। आते समय अर्जुनने जब गुरुदक्षिणा देनेकी इच्छा प्रकट की, तब इन्द्रने उन पर निवातकवचोंको मारनेका भार सौंप दिया।

तदनन्तर देवतुल्य वीर्यवान् समरकुशल धनञ्जय दिव्य विमान पर चढ़ कर जहां निवातकवच रहते थे वहां पहुंच गए। दानवगण अर्जुनकी स्वर्ग, मर्त्य और पातालभेदी शङ्खध्वनि सुन कर लौहमुद्गर, मुषल, पट्टिश आदि नाना प्रकारके खड्ग और बहुसंख्यक अस्त्रशस्त्रको अपने अपने हाथमें लिये उन पर टूट पड़े। निवातकवच ऐसे मायावी थे, कि उनके मायायुद्धसे दैववली, लघुहस्त सव्यसाचीको भी रणसे पीठ दिखानी पड़ी थी। जो कुछ हो, अर्जुनने बहुत आसानीसे उन दुर्द्धर्ष दानवोंको एक एक कर युद्धमें मार डाला और इस प्रकार देवताओंका मनोरथ सिद्ध किया।

(महाभारत वनपर्व १६८-१७३ अ०)

भागवतमें लिखा है, कि रसातलमें निवातकवच रहते थे।

निवान (हिं० पु०) १ नीची जमीन जहां सीड़, कीचड़

या पानी भरा रहता हो। २ जलाशय, बड़ा तालाब, झील।

निवाना (हिं॰ क्रि॰) नीचेकी तरफ करना, झुकाना

निवान्यवत्सा (सं॰ स्त्री॰) निवः पाता अन्यस्याः वत्सः अन्यवत्सो यस्याः। निवान्या देखो।

निवान्या (सं॰ स्त्री॰) नितरां वाति गच्छति पातृत्वेन नि-वा-क, निवः पाता अन्यः परकीयो वत्सो यस्याः मृतवत्सा गाभी, वह गाय जिसका बछड़ा मर गया और दूसरे बछड़ेको लगा कर दूही जाती हो।

निवाप (सं॰ पु॰) नितरामुप्यते इति नि-वप-घञ्। १ मृतोद्देश्यक दान मृत व्यक्तिके उद्देशसे जो दान किया जाता है उसे निवाप कहते हैं। पर्याय—पितृदान, पितृतर्पण, निवपन, पितृदानक। २ दान। न्युप्यते बीजमस्मिन्निति। ३ खेत।

निवापक (सं॰ पु॰) बीजवपनकारी, वह जो बीज बोता हो।

निवापिन् (सं॰ त्रि॰) निवपतीति नि-वप-णिनि (नन्दि ग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) १ निवापकारी दाता। २ वपनकर्त्ता, बोनेवाला।

निवार (सं॰ पु॰) नि-वृ-भावे घञ्। निवारण, बाधा। नीवार देखो।

निवार (हिं॰ स्त्री॰) १ पहियेके आकारका लकड़ीका वह गोल चक्कर जो कुएँकी नींवमें दिया जाता है और जिसके ऊपर कोठीकी जोड़ाई होती है, जाखन, जमवट। (पु॰) २ सुगन्ध, तिन्नीका धान, पसही। ३ एक प्रकारकी मूली जो बहुत मोटी और स्वादमें कुछ मीठी होती है, कड़ुई नहीं होती। (फा॰ स्त्री॰) ४ बहुत मोटे सूतेकी बुनी हुई प्रायः तीन चार अङ्गुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने जाते हैं, निवार, निवाड़।

निवारक (सं॰ त्रि॰) निवारयतीति नि-वारि-ण्वुल्। १ निवारणकारी, रोकनेवाला, रोधक। २ दूर करनेवाला, मिटानेवाला।

निवारण (सं॰ क्ली॰) नि-वृ-णिच्-करणे ल्युट्। १ रोकनेकी क्रिया। २ निवृत्ति, छुटकारा। ३ हटाने या दूर करनेकी क्रिया।

निवारणीय (सं॰ त्रि॰) नि-वृ-णिच् अनीयर्। निवारणयोग्य, रोकने या हटाने लायक।

निवारन (हिं॰ पु॰) निवारण देखो।

निवार-बाफ (फा॰ पु॰) निवार बुननेवाला।

निवारित (सं॰ त्रि॰) नि-वृ-णिच्-क्त। कृतनिवारण, निषिद्ध, जिसका निषेध किया गया हो।

निवारी (हिं॰ स्त्री॰) १ जूहीकी जातिका एक फूलनेवाला झाड़ या पौधा जो जूहीके पौधोंसे बड़ा होता है। इसके पत्ते कुछ गोलाई लिये लम्बोतरे होते हैं और बरसातमें इसमें जूहीकी तरहके छोटे सफेद फूल लगते हैं। ये फूल आमके मौरकी तरह गुच्छोंमें होते हैं और इनमेंसे मनोहर सुगन्ध निकलती है। यह चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग तथा कर्णरोग आदिको दूर करनेवाली मानी गई है। २ इस पौधेका फूल।

निवाला (फा॰ पु॰) उतना भोजन जितना एक बार मुंहमें डाला जाय, कौर, लुकमा।

निवाश (सं॰ पु॰) यन्त्र वा गीतादिका उत्थित शब्द।

निवास (सं॰ पु॰) नि-वस आधारे घञ्। १ गृह, घर। २ आश्रय। ३ वास, रहनेका स्थान। ४ वस्त्र, कपड़ा।

निवासक (सं॰ त्रि॰) निवासस्य अदूरदेशादि, निवास-चतुरर्थ्यां क। तत्सन्निकृष्ट देशादि।

निवासन (सं॰ पु॰) बौद्धोंकी वस्तुविशेष।

निवासस्थान (सं॰ पु॰) १ रहनेका स्थान, वह जगह जहां कोई रहता हो। २ घर, मकान।

निवासिन् (सं॰ त्रि॰) नि-वसतीति नि-वस णिनि। निवासकर्त्ता, रहनेवाला, बसनेवाला, वासी।

निवास्य (सं॰ त्रि॰) १ वासयोग्य, रहने लायक। २ वस्त्राच्छादित, कपड़ेसे ढका हुआ।

निविड़ (सं॰ त्रि॰) नितरां विड़ति संहन्यते नि-विड़-क। १ नीरन्ध्र, गहरा। २ सान्द्र, घना, घनघोर। पर्याय—निरवकाश, निरन्तर, निविरीष, नीरन्ध्र, बहुल, दृढ़, गाढ़, अविरल। ३ नत-नासिकायुक्त, जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो।

निविड़ता (हिं॰ स्त्री॰) वंशी या इसी प्रकारके किसी और बाजेके स्वरका गम्भीर होना जो उसके पांच गुणोंमेंसे एक गुण माना जाता है।

निविद्‌ (सं० स्त्री०) नि-विद्‌-करणे क्विप्‌। १ वाक्य। २ वैश्वदेवके शस्त्रविषयमें शंसनीय मन्त्रपदभेद। ३ न्युङ्ख शब्दार्थ।

निविद्धान (सं० क्ली०) निविद्‌ न्युङ्खो धीयतेऽस्मिन्‌ धा-आधारे ल्युट्‌। ऐकाहिक यज्ञादि, वह यज्ञ आदि जो एक ही दिनमें समाप्त हो जाय।

निविद्धानीय (सं० त्रि०) निविद्‌ सम्बन्धीय वैदिक मन्त्र-संयुक्त।

निविरीस (सं० त्रि०) नि-नता नासिका यस्य, विरीसच्‌ (नेर्विड्‌च विरीसचौ। पा ५।२।३२) १ नत-नासिकायुक्त, जिसकी नाक चिपटी या दबी हो। २ सान्द्र, घना। (स्त्री०) ३ नत-नासिका, चिपटी नाक।

निविवृत्स (सं० त्रि०) निवारणेच्छु, जो रोकना या हटाना चाहता हो।

निविष्ट (सं० त्रि०) नि-विश-क्त। १ चित्ताभिनिवेश-युक्त, जिसका चित्त एकाग्र हो। २ एकाग्र। ३ आविष्ट, लपेटा हुआ। ४ प्रविष्ट, घुसा या घुसाया हुआ। ५ आवद्ध, बांधा हुआ। ६ स्थित, ठहरा हुआ।

निविष्टि (सं० स्त्री०) नि-विश-क्तिच्‌। स्त्रीसंसर्ग, कामासक्त।

निवीत (सं० क्ली०) निवीयते स्मेति नि-व्ये आच्छादने-क्त, ततो सम्प्रसारणं। १ आच्छादन वस्त्र, ओढ़नेका कपड़ा, चादर। इसका पर्याय प्रावृत है। २ कण्ठ-लम्बित यज्ञसूत्र, यज्ञका वह सूता जो गलेमें पहना जाता है। ३ निवृत।

निवीतिन्‌ (सं० त्रि०) निवीतमस्त्यस्य इनि। निवीत-युक्त, जिसने यज्ञसूत्र धारण किया हो। जिसके गलेमें यज्ञसूत्र मालाकी तरह झूलता रहता है, उसीको निवीती कहते हैं। जिसका बायाँ हाथ यज्ञसूत्रसे बाहर रहता और यज्ञसूत्र दाहिने कन्धे पर रहता है उसे प्राचीना-वीती और जिसका दाहिना हाथ यज्ञसूत्रसे बाहर रहता और यज्ञसूत्र बाएँ कन्धे पर रहता है उसे उपवीती कहते हैं।

निवीर्य (सं० त्रि०) वीर्यहीन, जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो।

निवृत्‌ (सं० स्त्री०) कात्यायनोक्त छन्दोभेद, एक प्रकार-का वर्णवृत्त जिसमें गायत्री आदि आठ प्रकारके छन्दोंसे प्रतिपादमें एक एक अक्षर कम रहता है।

निवृत (सं० त्रि०) निव्रियते आच्छाद्यते स्मेति नि-वृ-क्त। १ निवीत, बाहरसे ढका हुआ। परिवेष्टित, घिरा हुआ।

निवृत्त (सं० क्ली०) नि-वृत भावे क्त। १ निवृत्ति, मुक्ति, छुटकारा। २ यत्नभेद, चित्त विषयसे उपरम। ३ अभाव। ४ निवृत्तिपूर्वक कर्म। (त्रि०) ५ छूटा हुआ। ६ विरक्त, जो अलग हो गया हो। ७ जो छुट्टी पा गया हो, खाली।

निवृत्तमंश (सं० क्ली०) गुह्यरोगभेद।

निवृत्तसन्तापन (सं० क्ली०) निवृत्तं सन्तापनं यस्य। सन्तापविहीन।

निवृत्तसन्तापनीय (सं० क्ली०) निवृत्तं सन्तापनं यस्य तस्मै हितं छ। रसायनभेद।

"यथा निवृत्तसन्तापा मोदन्ते दिवि देवताः।
तथौषधीरिमा प्राप्य मोदन्ते भुवि मानवाः॥"
(सुश्रुत चिकि० ३० अ०)

इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है—देव-गण जिस प्रकार सन्तापशून्य हो कर स्वर्गमें विचरण करते हैं, मानवगण भी उसी प्रकार निम्नलिखित ओषध-के सेवन करनेसे देवगणकी तरह सन्तापशून्य हो कर पृथ्वी पर विचरण कर सकते हैं। इनके सेवनसे मनुष्य-का शरीर युवाके समान और बल सिंहके समान हो जाता है।

इस रसायनका सेवन ७ प्रकारके मनुष्योंके लिए कष्टसाध्य है, यथा—अनात्मवान्‌ (अजितेन्द्रिय), अलस, दरिद्र, प्रमादी, क्रोड़ासक्त, पापकारी और भेषजापमानी। इन सब मनुष्योंकी अज्ञानता, अनारम्भ, अस्थिरचित्तता, दरिद्रता, अनायत्तता, अधार्मिकता और ओषधकी अप्राप्ति इन सब कारणोंसे निवृत्तसन्तापनीय रसायनका सेवन दुर्घट होता है।

इस रसायनमें अठारह ओषधियां हैं जो सोमरसके समान वीर्ययुक्त मानी जाती हैं। इनके नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, अतिछत्रा, करेणु, अजा, चक्रका, आदित्यपर्णिनी, ब्रह्म-

सुवर्चला, श्रावणी, महाश्रावणी, गोलोमी और महावेगवती। इनमेंसे जो सब औषध क्षीरहीन मूलविशिष्ट हैं, उनके प्रदेशनीप्रमाणके तीन काण्ड सेवन करने होते हैं। श्वेतकपोतीका पत्र समेत मूल सेवन विधेय है। क्षीरवती ओषधियोंका क्षीर कुड़व परिमाणमें एक समयमें सेवन करना चाहिए। गोनसी, अजगरी और कृष्णकपोती इनको खण्ड खण्ड कर एक मुष्टि परिमाण ले कर दूधमें सिद्ध करे, पीछे उस दूधको छान कर एक ही बारमें पी लेना चाहिए। चक्रकाका दुग्ध एक बार पेय और ब्रह्मसुवर्चला महाराज सेवनीय है। इस निवृत्तसन्तापनीय रसायनके सेवनसे मनुष्यकी आयु बढ़ती है और वह दिव्य शरीर धारण कर नभस्थलमें अमोघसङ्कल्प हो विचरण करता है।

निम्नलिखित लक्षण द्वारा सब औषध स्थिर की जाती हैं। निष्पत्र, कनकतुल्य आभायुक्त, दो अङ्गुल परिमित मूलविशिष्ट, सर्पकी तरह आकार और अन्तभाग लोहितवर्ण, ऐसे लक्षणकी औषधको श्वेतकपोती; द्विपत्र, मूलजात, अरुणवर्ण, कृष्णवर्ण मण्डलविशिष्ट, दो अरत्निप्रमाण दीर्घ और गोनसके समान होनेसे उसे गोनसी; क्षीरयुक्त, सरोम, मृदु और इक्षुरसके समान रसविशिष्ट होनेसे उसे कृष्णकपोती; कृष्णसर्प स्वरूप और कन्दसम्भव होनेसे उसे वाराही और एक पत्र, अत्यन्त वीर्यवान्, अञ्जनप्रभ तथा कन्दजात लक्षणविशिष्ट औषधको श्वेतकपोती कहते हैं। इन सब ओषधियोंसे जरा और मृत्यु निवारित होती है। मयूरके लोमकी तरह बारह पत्रविशिष्ट, कन्दजात और स्वर्णवर्ण क्षीरविशिष्ट औषधको कन्या; द्विपत्र, हस्तिकर्ण, पलाशके समान पत्र और प्रचुर क्षीरविशिष्ट तथा गजाकृति कन्दको करेणु; अजाके स्तनके समान कन्द, सक्षीर, चन्द्र या शङ्खकी तरह श्वेत और पाण्डुर तथा क्षुपवृक्षके सदृश ओषधिको अजा; श्वेतकर्ण विचित्र पुष्पविशिष्ट, काकादनीके जैसे क्षुद्र वृक्षको चक्रका कहते हैं। इन औषधोंके सेवन करनेसे जरामृत्युका नाश होता है। मूलविशिष्ट, कोमल रक्तवर्ण पञ्चपत्रविशिष्ट और सर्वदा सूर्यका अनुवर्ती होनेसे उसे आदित्यपर्णिनी; कनकसी आभाविशिष्ट, सक्षीर और देखनेमें पद्मिनीके समान तथा वर्षाके समयमें जो चारों ओर प्रसारित हो ऐसी ओषधिको ब्रह्मसुवर्चला, अरत्निप्रमाणवृक्ष, द्वि-अङ्गुलपरिमित पत्र, नीलोत्पलसदृश पुष्प एवं अञ्जनसन्निभ फल होनेसे उसे श्रावणी और इन्हीं सब लक्षणोंको, पर उनसे अधिक कनकवर्ण क्षीर और पाण्डुवर्णविशिष्ट ओषधिको महाश्रावणी कहते हैं। गोलोमी और अजलोमी ओषधि रोमविशिष्ट और कन्दयुक्त होती है। मूलजात, हंसपदी लताकी तरह विच्छिन्नपत्रविशिष्ट अथवा सर्वतोभावमें शङ्खपुष्पीके सदृश अत्यन्त वेगविशिष्ट और सर्पनिर्मोकतुल्य औषधको वेगवती कहते हैं। यह औषध वर्षाके अन्तमें उत्पन्न होती है।

इन सब ओषधियोंको निम्नलिखित मन्त्रसे अभिमन्त्रण कर उखाड़ना होता है। मन्त्र यों है—

"महेन्द्रामकृष्णाणां ब्राह्मणानां गवामपि।
तपसा तेजसावापि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै॥"

श्रद्धाहीन, अलस, कृतघ्न और पापकारी आदिको ये सब औषध दुष्प्राप्य हैं। देवताओंने पानावशिष्ट अमृतसोममें अथवा सोमतुल्य इन सब ओषधियोंमें और चन्द्रमें निहित किया है।

ओषधि-प्राप्तिके स्थान—देवसुन्द नामक ह्रदमें और सिन्धुनदीमें वर्षाके अन्तमें ब्रह्मसुवर्चला नामक ओषधि; उक्त दो प्रदेशोंमें हेमन्तके शेषमें आदित्यपर्णिनी और वर्षाके प्रारम्भमें गोनसी; काश्मीर प्रदेशके क्षुद्र मानस नामक दिव्य-सरोवरमें करेणु, कन्या, छत्रा, अतिछत्रा, गोलोमी, अजलोमी और महाश्रावणी नामकी ओषधि मिलती है। कौशिकी नदीके दूसरे किनारे पूर्वकी ओर तीन योजन भूमि तक वल्मीक व्याप्त है। इस वल्मीकके ऊपरी भाग पर श्वेतकपोती उत्पन्न होती है। मलय और नलसेतु नामक पर्वत पर वेगवती ओषधि पाई जाती है। इन सब ओषधियोंका कार्त्तिक पूर्णिमामें सेवन विधेय है।

जिसके अत्युच्च शृङ्ग पर देवगण विचरण करते हैं उस सोमगिरि और अर्बुदगिरि पर सब प्रकारकी ओषधियां मिलती हैं। इसके अलावा नदी, पर्वत, सरोवर, पवित्र अरण्य और आश्रम सभी जगह इन सब ओषधियोंका अनुसन्धान करना कर्त्तव्य है; क्योंकि यह वसुन्धरा

सर्व जगद्‌रक्षधारणी करती हैं। (सुश्रुत चिकि० ३० अ०)

निवृत्तात्मन् (सं० त्रि०) निवृत्तः विषयेभ्यः उपरतः आत्मा अन्तःकरणं यस्य। १ विषयरागशून्य, जो विषयवासनासे रहित हो (पु०) २ विष्णु।

निवृत्ति (सं० स्त्री०) नि-वृत-क्तिन्। १ निवृत्ति, मुक्ति, छुटकारा। पर्याय—उपरम, विरति, अपरति, उपरति, आरति। २ न्यायमतसिद्ध यत्नभेद। ३ बौद्धोंके अनुसार मुक्ति वा मोक्ष। ४ बौद्धोंको निवृत्ति और ब्राह्मणोंका मोक्ष एक ही है। निवृत्ति या निर्वाण शब्दका अर्थ पुनर्जन्मसे मुक्ति लाभ करना है। ५ महादेव, शिव। ६ तीर्थविशेष। यहां विजयनगरके प्रसिद्ध राजा नरसिंहदेवने बहुत दान पुण्य किए थे। ७ एक जनपद। यह वरेन्द्रके उत्तर और वङ्गदेशके पश्चिम विराटराज्यके समीप अवस्थित है। यहां मवेशियोंके चरनेके लिये बहुत लम्बा चौड़ा मैदान है। इसका दूसरा नाम मत्स्य है, क्योंकि यहां मछलियां बहुत पाई जाती हैं। किन्तु इस स्थानके जिस अंशमें पहाड़ी और जंगली लोग रहते हैं, वही अंश साधारणतः उक्त नामसे प्रसिद्ध है। इसका प्रधान नगर अर्द्धनकुठ, काच्छप और श्रीरङ्ग वा विहारिका है। दूसरा नगर गुरा नदीके किनारे बसा हुआ है और पहला एक मुसलमान शासनकर्त्ताके दखलमें है। यहांके अधिवासी खर्वाकृति, अपरिच्छन्न और मूर्ख हैं। यवनशासित स्थानमें जातिविभागकी कोई सुव्यवस्था नहीं है।

निवृत्त्यात्मन् (सं० त्रि०) निवृत्तिः आत्मा स्वरूपं यस्य। निषेध, वर्जन, मनाही।

निवेदक (सं० त्रि०) निवेदयतीति नि-विद-णिच्-ण्वुल्। निवेदनकारी, निवेदन करनेवाला, प्रार्थी।

निवेदन (सं० क्ली०) निविद्यते विज्ञाप्यतेऽनेनेति नि-विद-ल्युट्। १ आवेदन, विनय, विनती, प्रार्थना। २ समर्पण।

निवेदनीय (सं० त्रि०) नि-विद-णिच्-अनीयर्। निवेदनार्ह, निवेदन करने योग्य।

निवेदयिषु (सं० पु०) निवेदयितुमिच्छुः, नि-विद-णिच्-सन्, ततो उ। निवेदन करनेमें इच्छुक।

निवेदित (सं० त्रि०) नि-विद-कर्मणि क्त। १ कृतनिवेदन, निवेदन किया हुआ। २ ज्ञापित, सुनाया हुआ, कहा हुआ। ३ अर्पित, चढ़ाया हुआ, दिया हुआ।

निवेदी (सं० त्रि०) नि-वेद अस्त्यर्थे इनि। निवेदनकारी, प्रकाशक।

निवेद्य (सं० त्रि०) नि-विद-ण्यत्। निवेदनयोग्य, ज्ञापनीय, जताने लायक।

निवेश (सं० पु०) नि-विश-घञ्। १ विन्यास। २ शिविर, डेरा। ३ उद्वाह, विवाह। ४ प्रवेश। ५ गृह, घर, मकान।

निवेशन (सं० क्ली०) निविशन्त्यस्मिन्निति नि-विश-अधिकरणे ल्युट्। १ गृह, घर, मकान। २ नगर। ३ प्रवेश। नि-विश-णिच्-भावे ल्युट्। ४ स्थापन। ५ स्थिति। ६ विन्यास। (त्रि०) ७ प्रवेशक।

निवेशवत् (सं० त्रि०) निवेशः विद्यते यस्य, मतुप्, मस्य व। विन्यासयुक्त।

निवेशिन् (सं० त्रि०) आश्रयप्राप्त, प्रविष्ट, अवस्थित।

निवेशनीय (सं० त्रि०) नि-विश-अनीयर्। प्रवेशार्ह, प्रवेशयोग्य।

निवेशित (सं० त्रि०) नि-विश-णिच्-क्त। १ स्थापित, २ विन्यस्त। ३ प्रवेशित।

निवेश्य (सं० त्रि०) नि-विश-ण्यत्। १ निवेशनीय, प्रवेशयोग्य। २ शोधनीय।

निवेष्ट (सं० पु०) १ आच्छादन, आवरणवस्त्र, वह कपड़ा जिससे कोई चीज ढांकी जाय। २ सामभेद।

निवेष्टन (सं० क्ली०) वस्त्र द्वारा आच्छादन, कपड़ेसे ढांकनेकी क्रिया।

निवेष्टव्य (सं० त्रि०) नि-विश-तव्य। निवेशनीय, ढांकने योग्य।

निवेष्य (सं० क्ली०) नि-विष-भावे ण्यत्। १ व्याप्ति। (पु०) २ व्यापक देवभेद। ३ आवर्त्त, पानीका भंवर ४ नीहार जल, कुहासेका पानी। ५ जलस्तम्भ। ६ रुद्र। (त्रि०) ७ व्यापित, फैला हुआ।

निव्याधिन् (सं० पु०) नितरां विध्यति हन्ति शत्रून् नि-व्यध-णिनि। १ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम। (त्रि०) २ नितान्त व्याधक।

निव्यूढ़ (सं० क्ली०) अभिनिवेश, निरन्तर चेष्टा, लगातार परिश्रम।

निश् (सं० स्त्री०) नितरां श्यति तनूकरोति व्यापारान्, शो-क्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हल्दी।

निशंक (हिं० वि०) १ जिसे किसी बातकी शंका या भय न हो, निर्भय, निडर, बेखौफ। (पु०) २ एक प्रकारका नृत्यविशेष।

निशङ्कपुरकूंरा—भागलपुर जिलेका एक परगना। क्षेत्रफल ४४५८०६ एकड़ या लगभग ६८६५ वर्गमील है। इस परगनेमें कुल १६८ जमींदारी लगती हैं। यहांकी अधिकांश जमीन उर्वरा है, अतः प्रति साल काफी अनाज उपजता है।

इस परगनेके मध्य दुर्गापुरका राजवंश बहुत प्रसिद्ध है इस वंशके आदिपुरुष एक पमार राजपूत थे जिनका नाम हसलमसिंह था। अपने भाई मधुके साथ ये पश्चिम तिरहुतके द्वारानगरसे आ कर यहां बस गए थे। पहले ये दोनों भाई दरभङ्गा नरेशके यहां नौकरी करते थे।

एक दिन वर्षाका समय था, दोनों भाई राजाकी देहरक्षामें नियुक्त थे। कुछ समय बाद राजाने उन्हें विश्राम करनेका आदेश दिया। वहांकी स्थानीय भाषामें विश्राम शब्दके लिये 'ओथ लो' शब्द व्यवहृत होता है। किन्तु 'ओथ' नामक पूर्व दिशामें एक जागीर थी। मालूम पड़ता है, कि वर्त्तमान उत्तरखण्ड ही उस समय 'ओथ' नामसे प्रसिद्ध था। दोनों भाइयोंने 'ओथ लो' शब्दका दूसरा ही अर्थ लगा लिया। वे इसका प्रकृत अर्थ जानते हुए भी इसे न समझ सके। अतः उन्होंने कुछ स्वजातियोंको साथ ले निर्दिष्ट 'ओथ' ग्रामको जीतनेके लिये कदम बढ़ाए। केवल 'ओथ' जीत कर वे शान्त न रह सके, समूचा निशङ्कपुर परगना उन्होंने अपने कब्जेमें कर लिया। बाद यहां पर स्थायी आवासभूमि बसा कर मधु दिल्लीके बादशाहसे सनद पानेके लिये दिल्ली गए। किन्तु वहां जा कर वे मुसलमानी धर्ममें दीक्षित हुए। जब वे लौट रहे थे, तब उनके अनुचरोंने जो उनके मुसलमानी धर्म ग्रहण करने पर बहुत क्रोधित थे, उन्हें मार डाला। मधुपुरसे १८ मील दक्षिण लदारीघाटमें उनका शिरच्छेद हुआ था। घोड़ा उनका बहुत सुशिक्षित था, अतः वह मस्तकहीन देहको लिये सुपुलके पश्चिम-दक्षिणमें अवस्थित नौहाटां ग्राममें पहुँच गया। लदारीघाटमें उनकी कब्रके ऊपर एक मन्दिर बनाया गया जहां एक फकीर वास करता है। इसके भरण पोषणके लिये ४० बीघा निष्कर जमीन दी गई है। मधुके वंशधर मुसलमान हैं। ये लोग नौहाटामें रहते हैं।

निशठ (सं० पु०) बलदेवपुत्रभेद, पुराणानुसार बलदेवके एक पुत्रका नाम।

निशमन (सं० क्ली०) नि-शम-णिच् ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ श्रवण, सुनना।

निशल्या (सं० स्त्री०) ह्रस्वदन्तीक्षुप।

निशा (सं० स्त्री०) नितरां श्यति तनूकरोति व्यापारानिति नि-शो-क-टाप्। १ रात्रि, रात,। पर्याय—रात्री, रजनी, शर्वरी, चक्रभेदिनी, घोरा, श्यामा, याम्या, दोषा, तुङ्गी, भीती, शताची, वासवा, क्षपा, वासतेयी, तमा, निट्। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ दारुहरिद्रा। ४ फलित ज्योतिषमें मेष, वृष, मिथुन आदि छः राशियां।

निशाकर (सं० पु०) निशां करोतीति निशा-कृ-ट। १ चन्द्रमा। २ कुक्कुट, मुरगा। ३ कर्पूर, कपूर। ४ महादेव। ५ एक महर्षिका नाम।

निशाकरकलामौलि (सं० पु०) निशाकरस्य चन्द्रस्य कला मौलौ यस्य। शिव, महादेव।

निशाखातिर (हिं० स्त्री०) प्रबोध, तसल्ली, दिलजमई।

निशाख्या (सं० स्त्री०) निशाया आख्या यस्याः। निशाह्वा, हरिद्रा, हल्दी।

निशाचर (सं० पु०) निशायां रात्रौ चरतीति निशा-चर-ट। १ राक्षस। २ शृगाल, गीदड़। ३ पेचक, उल्लू। ४ सर्प, सांप। ५ चोर, चोर। ६ भूत। ७ चोरक नामक गन्धद्रव्य। ८ चक्रवाक पक्षी। ९ बिड़ाल, बिल्ली। १० तद्दूलिका पक्षी, बादुर। ११ महादेव। १२ एक संस्कृत कवि। १३ नेपाली भटेतर पक्षी। (त्रि०) १४ रात्रिचर मात्र, जो रातको चले, कुलटा, पिशाच आदि।

निशाचरपति (सं० पु०) निशाचराणां भूतानां पतिः, ६ तत्। प्रमथपति, शिव, महादेव। २ रावण।

निशाचरी (सं० स्त्री०) निशाचर ङीप्। १ कुलटा। २ राक्षसी। ३ केशिनी नामक गन्धद्रव्यविशेष। ४ अभिसारिका नायिका।

निशाचर्म (सं॰ पु॰) निशायां चर्मेव आवरकत्वात्। अन्धकार, अँधेरा।

निशाचारी (सं॰ पु॰) १ शिव। २ निशाचर।

निशाच्छद (सं॰ पु॰) गुल्मभेद।

निशाजल (सं॰ क्लो॰) निशोद्भवं जलं मध्यपदलोपि कर्म॰ १ हिम, पाला। २ ओस।

निशाट (सं॰ पु॰) निशायां रात्रौ अटतीति अट्-अच्। १ पेचक, उल्लू। (त्रि॰) २ निशाचर, रातको फिरने-वाला।

निशाटक (सं॰ पु॰) निशायां अटति, निशावत् कृष्णत्वं अटतीति वा अट-ण्वुल्। १ गुग्गुलु, गूगल। (त्रि॰) २ रात्रिचर, रातको विचरण करनेवाला।

निशाटन (सं॰ पु॰) निशायां अटतीति अट-ल्यु। १ पेचक, उल्लू। (त्रि॰) २ निशाचर, जो रातको विचरण करे।

निशात (सं॰ त्रि॰) शो निशाने नि-शो-क्त (शाच्छोरन्य-तरस्याम्। पा ७।४।४१) इति सूत्रेण इत्वाभावः शाणित, तीक्ष्णीकृत, तेज किया हुआ।

निशातिक्रम (सं॰ पु॰) निशाका अतिक्रमण, रात्रिका अवसान।

निशातैल—आयुर्वेदोक्त तैलविशेष, वैद्यकमें एक प्रकारका तैल। यह सेर भर कड़वे तेल, धतूरेके पत्तोंके चार सेर रस, आठ तोले पीसी हुई हल्दी और चार तोले गन्धकके मेलसे बनता है। यह तैल कानके रोगोंके लिये विशेष उपकारी है।

निशात्यय (सं॰ पु॰) निशाया अत्ययः। निशावसान, प्रभात, सवेरा।

निशाद (सं॰ पु॰) निशायां अत्ति भक्षयतीति निशा-अद-अच्। १ निषाद। (त्रि॰) २ रात्रिभोजिमात्र, केवल रातको खानेवाला।

निशादर्शिन् (सं॰ पु॰) निशायां पश्यतीति दृश-णिनि पेचक, उल्लू।

निशादि (सं॰ स्त्री॰) निशाया आदिर्यत्र। सायं, सन्ध्या।

निशाद्यतैल—आयुर्वेदसम्मत तैलौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तैल चार सेर; कल्क हरिद्रा, अकवनका दूध, सैन्धव, चितामूल, गुग्गुल, कुटकी छाल, कारवीरका मूल सब मिला कर एक सेर; जल १६ सेर। इससे भगन्दररोग जाता रहता है।

निशाधीश (सं॰ पु॰) निशायाः अधीशः। निशापति।

निशान (सं॰ क्लो॰) नि-शो भावे ल्युट्। तीक्ष्णकरण, तेज करना।

निशान (फा॰ पु॰) १ चिह्न, लक्षण। २ वह लक्षण या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहलेकी घटना अथवा पदार्थका परिचय मिले। ३ किसी पदार्थका परिचय करनेके लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न। ४ किसी पदार्थसे अङ्कित किया हुआ अथवा और किसी प्रकारका बना हुआ चिह्न। ५ शरीर अथवा और किसी पदार्थ पर बना हुआ स्वाभाविक या और किसी प्रकारका चिह्न। ६ वह चिह्न जो अपढ़ मनुष्य अपने हस्ताक्षरके बदलेमें किसी कागज आदि पर बनाता है। ७ ध्वजा, पताका, झंडा। ८ पता, ठिकाना। ९ वह चिह्न या सङ्केत जो किसी विशेष कार्य या पहचानके लिये नियत किया जाय। १० समुद्रमें या पहाड़ों आदि पर बना हुआ वह स्थान जहां लोगोंको मार्ग आदि दिखानेके लिये कोई प्रयोग किया जाता हो।

निशानकोना (हिं॰ पु॰) उत्तर और पश्चिमका कोण।

निशानची (फा॰ पु॰) वह जो किसी राजा, सेना या दल आदिके आगे झंडा ले कर चलता हो, निशान बरदार।

निशानदिही (हिं॰ स्त्री॰) निशानदेही देखो।

निशानदेही (फा॰ स्त्री॰) आसामीको सम्मन आदिकी तामीलके लिए पहचनवानेकी क्रिया, आसामीका पता बतलानेका काम।

निशानपट्टी (फा॰ स्त्री॰) चेहरेकी बनावट आदि अथवा उसका वर्णन, हुलिया।

निशानबरदार (फा॰ पु॰) वह जो किसी राजा, सेना या दल आदिके आगे आगे झंडा ले कर चलता हो, निशानची।

निशानवाला—सङ्गतसिंह और मोहरसिंहने यह मिस्ल स्थापित किया। ये लोग जाट जातिके थे और 'दल' वा दलबद्ध खालसा सेनाको पताका ले जाते थे, इस कारण इनका नाम निशानवाला पड़ा। शतद्रुनदीके

दूसरे किनारे ये लोग बहुत लूट मार मचाते थे और लूटका माल ले कर बहुत दूर भाग जाते थे। एक दिन इन लोगोंने समृद्धशाली मीरटनगर पर आक्रमण किया और उसे लूटा। लूटमें इन्हें असंख्य धनरत्न हाथ लगे जिन्हें ले कर वे अपने प्रधान अड्डा अम्बालाको चले गए। यहीं पर इनका अस्त्र शस्त्र और खाद्यादि रहता था। इनके अधीन बहुत सेना थी। बङ्कतसिंह-के मरनेके बाद मोहरसिंहने इस दलका कर्तृत्व ग्रहण किया। मोहरकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। इन-के मरते समय रणजितसिंह शतद्रुके दूसरे किनारे तक पहुँच गए थे। मृत्यु-संवाद सुनते ही उन्होंने अपने दीवान मोखमचांदको एक दल सेना साथ दे दस्यु-दलको नष्ट करनेका हुकुम दिया। रणजितसिंहकी सेनाने निशानवालोंको वहांसे निकाल भगाया। उनके पास जितने धनरत्नादि थे वे सब मोखमचांदके हाथ लगे

निशाना (फा० पु०) १ वह जिस पर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदिका वार किया जाय, लक्ष्य। २ मट्टी आदिका वह ढेर या और कोई पदार्थ जिस पर निशाना साधा जाय। ३ किसी पदार्थको लक्ष्य बना कर उसको ओर किसी प्रकारका वार करना। ४ वह जिस पर लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या बात कही जाय।

निशानाथ (सं० पु०) निशायाः नाथः ६-तत्। १ चन्द्र, निशापति। २ कर्पूर, कपूर।

निशानारायण (सं० पु०) एक संस्कृत कवि।

निशानी (फा० स्त्री०) १ वह चिह्न जिससे कोई चीज पहचानी जाय, निशान। २ स्मृतिके उद्देश्यसे दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ, वह जिससे किसीका स्मरण हो, स्मृतिचिह्न, यादगार।

निशान्त (सं० क्ली०) निशाम्यते विश्रम्यतेऽस्मिन्निति, नि-शम-अधिकरणे क्त। १ गृह, घर, मकान। २ रात्रि-का अन्त, पिछली रात। ३ प्रभात, तड़का। (त्रि०) नितरां शान्तः। ३ नितान्त शान्त, बहुत शान्त।

निशान्तीय (सं० त्रि०) निशान्तस्य अदूरदेशः निशान्त उत्करादित्वात् छ। निशान्त सन्निकृष्ट देशादि।

निशान्ध (सं० पु०) १ फलित ज्योतिषमें एक प्रकारका योग। यह योग उस समय पड़ता है जब सिंह राशि-में सूर्य हो। कहते हैं, कि इस योगके पड़नेसे मनुष्य-को रतौंधी होती है। (त्रि०) २ रातका अन्धा, जिसे रातको न सूझे, जिसे रतौंधी होती हो।

निशान्धा (सं० स्त्री०) निशायां अन्धयति उपसंहरति आत्मानमिति अन्ध-अच्-टाप्। १ जतुकालता। २ राजकन्या।

निशान्धी (सं० स्त्री०) निशान्धा देखो।

निशापति (सं० पु०) निशायाः पतिः। १ निशाकर, चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशापुत्र (सं० पु०) निशायाः पुत्र इव। नक्षत्र आदि आकाशीय पिण्ड।

निशापुर—१ खोरासनका एक जिला। यह मेशिदके दक्षिणमें अवस्थित है।

२ उक्त जिलेका एक शहर। यह अक्षा० ३६° १२' २०" उ० और देशा० ५८° ४८' २७" पू०के मध्य अव-स्थित है। पेशदादीय वंशोद्भव तापासुर अथवा तैमूर नामक किसी युवराजसे यह नगर बसाया गया है।

पहले अलेकसन्दरने इसे जीत कर तहस नहस कर डाला था। पीछे अरबों और तुर्कोंने इस पर अपना अधिकार जमाया। १२२० ई०में चेङ्गीज खाँके पुत्र कुलीन खाँने इसे अपना कर आस पासके प्रायः २० करोड़ निरपराध लोगोंकी हत्या कर डाली। तभीसे मुगल, तुर्क और उजबक जातिने कई बार इस पर चढ़ाई की।

निशापुरसे ४० मील पश्चिममें एक उपत्यका है जहां रत्नकी बहुतसी खानें हैं। इसके सिवा पहाड़ पर और भी कितनी खानें देखनेमें आती हैं।

निशापुष्प (सं० क्ली०) निशायां रात्रौ पुष्यति विकस-तीति पुष्प-विकासे अच्। कुमुद, उत्पल, कोईं।

निशाप्राणेश्वर (सं० पु०) निशायाः प्राणेश्वरः। निशापति।

निशाबल (सं० पु०) निशायां रात्रौ बलं यस्य। मेष, वृष, मिथुन, कर्कट, धन और मकर ये छः राशियां जो रातके समय अधिक बलवती मानी जाती हैं।

फलित ज्योतिषमें दो प्रकारकी राशियां बतलाई गई हैं,—निशाबल और दिनबल। ऊपरकी छः राशियां निशा-बल और शेष सभी राशियां दिनबल मानी जाती हैं। कहते हैं, कि जो काम दिनके समय करना हो, वह

दिनबल राशियोंमें और जो काम रातके समय करना हो, वह रात्रिबल राशियोंमें करना चाहिए।

निशाभङ्गा (सं॰ स्त्री॰) निशा हरिद्रा तद्वत्भङ्गो यस्याः। दुग्धपुच्छी नामक पौधा।

निशाभाग (सं॰ पु॰) निशायाः भागः। रात्रि, रात।

निशामणि (सं॰ पु॰) निशायामणिरिव। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशामन (सं॰ क्ली॰) नि-शम-णिच्-ल्युट्। १ दर्शन, देखना। २ आलोचन, विचार। ३ श्रवण, सुनना।

निशामय (सं॰ पु॰) शिव, महादेव।

निशामिश्र—सुपद्मव्याकरणके एक टीकाकार।

निशामुख (सं॰ क्ली॰) निशायाः मुखं ६-तत्। प्रदोषकाल, गोधूलीका समय।

निशामृषा (सं॰ स्त्री॰) अन्धमूषा।

निशामृग (सं॰ पु॰) निशाचरीमृगः पशुः। शृगाल, गीदड़।

निशायिन् (सं॰ त्रि॰) निद्रागत, सोया हुआ।

निशारण (सं॰ क्ली॰) नि-शृ हिंसायां णिच्-ल्युट्। १ मारण, मारना। निशायाः रणम्। २ रात्रियुद्ध। ३ रात्रिशब्द।

निशारत्न (सं॰ क्ली॰) निशायाः निशायां वा रत्नमिव। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

निशारुक (सं॰ पु॰) १ तालविशेष, सात प्रकारके रूपक तालोंमेंसे एक प्रकारका ताल। द्रुढ़, प्रौढ़, खचर, विभव, चतुरस्र, निशारुक और प्रतिताल ये सात रूपक ताल हैं। इनमें दो लघु और दो गुरु मात्राएं होती हैं। इनका व्यवहार प्रायः हास्यरसके गीतोंके साथ होता है। (त्रि॰) २ नितान्त हिंसक, बहुत अधिक हिंसा करनेवाला।

निशार्द्धकाल (सं॰ पु॰) रात्रिका प्रथमार्द्ध अर्थात् प्रथम दो याम।

निशावन (सं॰ पु॰) निशावत् अन्धकारजनकं वनं यत्र। शणवृक्ष, सनका पौधा।

निशावसान (सं॰ क्ली॰) निशायाः अवसानं। रात्रिका अवसान, रातका अन्तिम भाग, तड़का।

निशाविहार (सं॰ पु॰) निशायां विहारो यस्य। राक्षस।

निशावृन्द (सं॰ क्ली॰) निशायाः वृन्दं समूहं। रात्रिगण, रात्रिसमूह।

निशावेदिन् (सं॰ पु॰) निशां निशापरिमाणं वेत्ति वेदयति वा विद वा वेद-णिनि। कुक्कुट, मुरगा।

निशास्ता (फा॰ पु॰) १ गेहूँको भिगो कर उसका निकाला और जमाया हुआ सत या गूदा। २ मांड़ी, कलफ।

निशाहस (सं॰ पु॰) निशायां हसति पुष्पविकाशेन हस-अच्, वा निशायां हसो विकाशो यस्य। कुमुद, कुमोदिनी।

निशाह्वासा (सं॰ स्त्री॰) निशायां ह्वासो यस्याः। शेफालिका, सिंदुवार, निशुंडी।

निशाह्वा (सं॰ स्त्री॰) निशाया आह्वा अभिधानं यस्याः। १ हरिद्रा, हलदी। २ मालवदेशमें प्रसिद्ध जतुका नामकी लता।

निशि (सं॰ स्त्री॰) १ रात्रि, रजनी, रात। २ हरिद्रा, हलदी।

निशिकर (सं॰ पु॰) चन्द्रमा, शशि।

निशिका (सं॰ स्त्री॰) वर्त्तलौह।

निशिचर (हिं॰ पु॰) निशाचर देखो।

निशित (सं॰ त्रि॰) नि-शो-क्त (शाच्छोरन्यतरस्याम्। पा ७।४।४१) १ शाणित, सान पर चढ़ा हुआ, तेज, चोखा। (क्ली॰) २ लौह, लोहा।

निशिता (सं॰ स्त्री॰) नि-शो-क्त, टाप्। निशीथ, रात्रि, रात।

निशिति (सं॰ स्त्री॰) नि-शो कर्म णि-क्तिन्, ततो इत्वम्। तनक्षत, उत्तेजना, दिलासा।

निशिथ (सं॰ पु॰) दोषा (रात्रि)-के एक पुत्रका नाम।

निशिदिन (हिं॰ क्रि॰वि॰) सर्वदा, रातदिन, सदा।

निशिनाथ (हिं॰ पु॰) निशानाथ देखो।

निशिनायक (हिं॰ पु॰) निशानाथ देखो।

निशिपति (हिं॰ पु॰) निशापति देखो।

निशिपाल (सं॰ पु॰) १ चन्द्रमा। २ एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें भगण जगण सगण नगण और रगण होता है।

निशिपालक (सं॰ क्ली॰) १ छन्दोभेद, एक वर्णवृत्तका नाम। निशिपाल देखो। (पु॰) २ निशिपालक प्रहरिभेद, वह द्वारपाल जो रातको पहरा देता है।

निशिपालिका (सं॰ स्त्री॰) निशिपाल देखो।

निशिपुष्पा (सं॰ स्त्री॰) निशि पुष्यति विकाशते पुष्प अच्, ततो टाप्। शेफालिका, निशुंडी, सिंदुवार।

निशिपुष्पिका (सं॰ स्त्री॰) निशिपुष्पा स्वार्थे कन्। शेफालिका, निशुंडी।

निशिपुष्पी (सं॰ स्त्री॰) शेफालिका, सिंदुवार।

निशिवासर (हिं॰ पु॰) सर्वदा, सदा, हमेशा, रातदिन।

निशिविन्—एक अत्यन्त प्राचीन नगर। यह पारस्य और रोम इन दो साम्राज्योंके सीमान्त पर तथा ताइग्रीस और युफ्रेटिस नदीके बीचमें अवस्थित है। पहले यह स्थान दृढ़ पार्वत्य दुर्ग द्वारा सुरक्षित था। रोम और अरबवासियोंने कई बार इस अभेद्य दुर्गको जीतनेकी चेष्टा की थी, किन्तु एक बार भी वे कृतकार्य न हुए। यह नगर और दुर्ग तीन पंक्तिमें ईंटोंकी दीवारसे घिरा था और प्रत्येक दो पंक्तिके मध्यभागमें नहर काट कर निकाली गई थी। पारस्यराज शाहपुर ३३८, ३४६ और ३५० ई॰में क्रमशः ६०, ८० और १०० दिन तक यहां घेरा डाले हुए थे, लेकिन प्रति बार उन्हें निराश हो कर लौट जाना पड़ा था। अन्तमें ३६३ ई॰को जोवियनके कौशलसे यह राज्य पारस्यराजके हाथ लगा था

इस दुर्गके चारों ओर पर्वत हैं जहां बड़े बड़े काले विच्छू और विषैले सांप पाये जाते हैं। जब उत्तेजित अरब जातिने १७ हिजरीमें ८ मास तक इस नगरको घेरे रखा था, उस समय विच्छूके काटनेसे कितनी अरबसेना यमलोककी सिधारी थीं। यह देख कर अरबसेनापति बहुत कुपित हुए और उन्होंने एक हजार बड़े बड़े मट्टीके वरतनोंमें विषाक्त सरीसृप भर कर रातको उन्हें यन्त्रकी सहायतासे नगरमें फेंकवा दिया। वरतनके फूट जानेसे विच्छू बाहर निकले और निद्रावस्थामें ही बहुतोंको काटा जिससे वे सबके सब पञ्चत्वको प्राप्त हुए। जो कुछ बच रहे, वे सुबह होते ही हताश हो गए और दुर्गरक्षाकी उनमें जरा भी शक्ति न रह गई। पीछे मुसलमानोंने दुर्गद्वारको तोड़ फोड़ कर भीतर प्रवेश किया और कितने अधिवासियोंको मार कर दुर्ग दखल किया था। कहते हैं, कि पारस्यराजने नौशेरवानके राजत्वकालमें उक्त उपायसे नगरको जीता था।

वर्त्तमान समयमें नगरका वह प्राचीन सौन्दर्य नहीं है, सामान्य ग्राममात्र देखा जाता है। इसके चारों ओर जो खंडहर पड़े हैं, वे प्राचीन कीर्त्तिका परिचय देते हैं। यहां सफेद गुलाबके अच्छे अच्छे पौधे देखनेमें आते हैं, जिधर ही नजर दौड़ाइये, उधर फूल ही फूल है। सरीसृप जातिका वास आज भी पूर्ववत् है।

निशीथ (सं॰ पु॰) नितरां शेरतेऽस्मिन्निति नि-शी-थक् प्रत्ययेन निपातनात् साधुः (निशीथगोपीथावगथाः। उण् २।८) १ अर्द्धरात्र, आधी रात। २ रात्रि, रात। ३ रात्रिका पुत्रभेद, भागवतके अनुसार रात्रिके एक कल्पित पुत्रका नाम।

निशीथिनी (सं॰ स्त्री॰) निशीथोऽस्त्यस्याः इति इनि ङीप्। रात्रि, रात।

निशीथिनीनाथ (सं॰ पु॰) निशीथिन्याः नाथः। १ चन्द्रमा। २ कपूर।

निशीथ्या (सं॰ स्त्री॰) रात्रि, रात।

निशुम्भ (सं॰ पु॰) नि-शुम्भ-हिंसायां घञ्। १ वध, हत्या। २ हिंसन, मारना। ३ मर्दन। ४ असुरभेद। इनका विवरण वामनपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

कश्यपके दनु नामक एक स्त्री थी। दनुके गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न हुए, शुम्भ, निशुम्भ और नमुचि। ये तीनों इन्द्रसे भी अधिक बलशाली थे। नमुचि इन्द्रके हाथसे मारे गए। पीछे शुम्भ और निशुम्भ घोरतर युद्धका आयोजन कर देवताओंके साथ लड़नेको तैयार हो गए। युद्धमें देवताओंकी हार हुई और उन्होंने दानवोंकी अधीनता स्वीकार कर ली। शुम्भ और निशुम्भ जब स्वर्गराज्यके अधिकारी हुए, तब देवगण पृथ्वी पर आ कर रहने लगे। देवताओंके पास जितने श्रेष्ठ रत्नादि थे उन्हें दानवोंने जबर्दस्ती ले लिया। शुम्भ और निशुम्भने एक दिन रक्तवीज नामक एक दानवको इधर उधर भटकते देख कर उससे कहा, 'तुम क्यों इस प्रकार दीनभावसे विचरण करते हो?' रक्तवीजने जवाब दिया, 'मैं महिषासुरका सचिव हूं। विन्ध्यपर्वत पर कात्यायनी देवीने महिषासुरको मार डाला है। देवीके भयसे चण्ड और मुण्ड नामक दो महावीर जलमें छिप कर रहते हैं।' यह सुन कर शुम्भ और निशुम्भने प्रतिज्ञा की,

'हम लोग महिषासुरहन्त्री देवीका अवश्य प्राणनाश करेंगे।' उसी समय नर्मदा नदीसे चण्ड और मुण्ड निकल कर शुम्भ और निशुम्भके साथ मिल गये। सबोंने मिल कर सुग्रीव नामक एक दूतको विन्ध्यपर्वत पर देवीके निकट भेजा। देवीके पास पहुंच दूतने उनसे कहा, 'संसार भरमें शुम्भ और निशुम्भ सबसे वीर हैं और तुम भी त्रिलोकके मध्य सुन्दरी हो। इन दोनोंमेंसे तुम्हें जो पसन्द आवे उसीके गलेमें वरमाला डाल दो।' यह सुन कर देवीने कहा, 'तुम्हारा कहना अक्षरशः सत्य है, लेकिन मैंने एक भीषण प्रतिज्ञा की है, वह यह है कि, जो मुझे संग्राममें जीत सकेगा उसीको मैं वरमाला पहनाऊँगी।' दूतने जा कर यह वृत्तान्त दानवराजसे कह सुनाया। इस पर दानवराजने देवीको पकड़ लानेके लिए धूम्रलोचनको भेजा। धूम्रलोचन ज्यों ही दलबलके साथ देवीके पास पहुंचा, त्योंही देवीने एक हुङ्कार दी जिससे वह ससैन्य भस्म हो गया। बाद दानवश्रेष्ठ शुम्भ अति प्रचण्ड सेनाको साथ दे चण्ड मुण्डको भेजा। ये लोग भी देवीके साथ युद्धमें जहांके तहां ढेर हो रहे।

चण्ड मुण्डके मारे जानेके बाद तीस कोटि अक्षौहिणी सेनाके साथ रक्तवीज भेजा गया। रक्तवीज देवीके साथ घमसान युद्ध करने लगा। रक्तवीजके शरीरसे जब एक बिन्दु रक्त जमीन पर गिरता था, तब उसीके सदृश एक दूसरा रक्तवीज उससे उत्पन्न हो जाता था। पर वे एक एक करके देवीके अमित तेजसे मरने लगे। अन्तमें रक्तवीज भी मारा गया। विशेष विवरण रक्तवीजमें देखो।

बाद निशुम्भ स्वयं युद्धक्षेत्रमें पधारे। उन्होंने देवीका अलोकसामान्य रूपलावण्य देख कर कहा, 'कौशिकि! तुम्हारी देह बहुत कोमल है, अतः तुम मुझे अपना पति वरो।' इस पर देवीने गर्वित वाक्यमें उत्तर दिया, 'जब तक तुम मुझे युद्धमें पराजय नहीं करोगे, तब तक मैं तुम्हें अपना पति बना नहीं सकती।' फिर क्या था, दोनोंमें युद्ध होने लगा। क्रमशः देवीके हाथसे निशुम्भ भी मारा गया। पीछे शुम्भकी भी वही दशा हुई। इस प्रकार दानवोंके निहत होने पर देवगण फूले न समाए और सब कोई मिल कर उनकी स्तुति करने लगे। इन्द्रने भी फिरसे स्वर्गराज्य प्राप्त किया। देवीकी कृपासे देवताओंका दुर्दिन जाता रहा; पृथ्वीने भी शान्तभाव धारण किया। (वामनपु० २६–२७ अ०)

मार्कण्डेयपुराणके मध्य देवीमाहात्म्य अर्थात् चण्डीमें इस निशुम्भ दानवका विषय लिखा तो है, लेकिन इसकी उत्पत्तिका विषय कहीं भी देखनेमें नहीं आता। चण्डीमें इसका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है,—पुराकालमें निशुम्भ और शुम्भ नामक दो भाई असुरोंके अधिपति थे। ये देवताओंके राज्य, यहां तक कि यज्ञका हविर्भाग भी, बलपूर्वक ग्रहण करने लगे। नितान्त निपीड़ित हो देवताओंने देवी भगवतीकी शरण ली। इस समयसे देवी मनोहर रूप धारण कर रहने लगीं। एक दिन शुम्भ और निशुम्भके भृत्य चण्ड और मुण्डने ऐसा अलौकिक रूप देख कर शुम्भ और निशुम्भसे कहा, 'महाराज! हमने हिमाचल पर एक कामिनीको देखा। उसका जैसा रूप था वैसा संसार भरमें किसीका भी नहीं है। आपके पास त्रिभुवनमें जितनी अच्छी अच्छी चीजें हैं, सभी तो हैं; लेकिन वैसी कामिनी नहीं है। अतः निवेदन है कि आप उसे अपनी स्त्री बना लें।' यह सुन शुम्भ और निशुम्भने सुग्रीव दूतको देवीके पास भेजा। देवीने दानवराजकी कथा सुन कर कहा,—

"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति॥" (चण्डी)

जो मुझे संग्राममें जीत सकेगा और मेरा दर्प नाश करनेमें समर्थ होगा अथवा जो मेरे समान बल रखता होगा, वही मेरा भर्त्ता होगा, दूसरा नहीं। शुम्भ निशुम्भ देवताओंसे भी बलशाली हैं। अतएव मुझे जय करना उनके जैसे वीरपुरुषोंके लिए हाथका खेल है। यदि वे मुझसे विवाह करना चाहते हों, तो मुझे लड़ाईमें जीत कर ग्रहण करें। सुग्रीवने यह वृत्तान्त जब दैत्यराज शुम्भनिशुम्भसे जा कर सुनाया, तब उन्होंने पहले धूम्रलोचनको, पीछे चण्डमुण्ड और रक्तवीजको देवीके विरुद्ध भेजा। जब वे दलबलके साथ देवीके हाथसे मारे गये, तब निशुम्भ स्वयं वहां पहुंचे और सौ वर्ष तक देवीसे लड़ते रहे। अन्तमें वे भी युद्धमें निहत हुए। निशुम्भके मारे जाने पर शुम्भके भी सिर पर काल नाचने लगा। वह

उसी समय युद्धक्षेत्रमें आ खड़ा हुआ और देवीके हाथसे मारा गया। (मार्कण्डेयपु० चण्डी) वामनपुराणमें लिखा है कि, रक्तबीज और चण्डमुण्ड महिषासुरके अमात्य थे, किन्तु चण्डीमें इसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। शुम्भ देखो।

मार्कण्डेय पुराणान्तर्गत चण्डीमें एक दूसरे निशुम्भासुरका उल्लेख है। शुम्भनिशुम्भकी मृत्युके बाद देवताओंने जब देवीकी स्तुति की, तब देवीने उन्हें वर दिया था, 'वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामक अत्यन्त बलवान् दो असुर जन्म ग्रहण करेंगे। मैं नन्दगोपगृहमें यशोदाके गर्भसे उत्पन्न हो कर उनका नाश करूंगी।'

"वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्यते महासुरौ॥
नन्दगोपगृहे जाता यशोदा गर्भ सम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥"
(मार्कण्डेयपु० ९१।३६-३७)

निशुम्भन (सं० क्ली०) नि-शुम्भ हिंसायां भावे ल्युट्। बध, मार डालना।

निशुम्भमर्दिनी (सं० स्त्री०) निशुम्भं मर्दयति मृद्-णिनि, ततो ङीप्। दुर्गा।

निशुम्भशुम्भमथनी (सं० स्त्री०) निशुम्भं शुम्भञ्च मथ्नोति, मन्थ-ल्युट् न लोपः, ततो ङीप्। दुर्गा।

निशुम्भिन् (सं० पु०) निशुम्भो मोहनाशोऽस्त्यस्येति इनि, वा नि-शुम्भ-णिनि। १ बुद्धविशेष, एक बुद्धका नाम। पर्याय—हेरम्ब, हेरुक, चक्रसम्बर, देव, वज्रकपाली, शशिशेखर, वज्रटीक। (त्रि०) २ नाशक, नाश करनेवाला।

निसृष्ट (सं० त्रि०) गत, उपनीत, लाया हुआ।

निशृम्भ (सं० त्रि०) निश्रथ्य सम्बध्य हरति नि-श्रन्थ बाहुलकात् भक्, वेदे सम्प्रसारं ततो पृषोदरादित्वात् साधुः। निश्रथ्य, साज लगाया हुआ।

निशेश (सं० पु०) निशाया ईशः। चन्द्रमा।

निशैत (सं० पु०) निशायामपि एतं ईषद्गमनं यस्य। बक, बगुला।

निशोत्सर्ग (सं० पु०) निशाका अपनयन, प्रभात, तड़का।

निशोथा (सं० स्त्री०) श्वेत त्रिवृत्, सफेद निशोथ।

निशोपशाय (सं० पु०) वह जो रातमें विश्राम करता हो।

निश्कुला (सं० त्रि०) अपने कुलसे निकली हुई।

निश्चक्षुस् (सं० त्रि०) चक्षुहीन, अंधा।

निश्चत्वारिंश (सं० त्रि०) निर्गतः चत्वारिंशतः ग्रहत्वात्। ड। चत्वारिंशत् संख्यासे निर्गत, जिसमें चालीसकी संख्या न हो।

निश्चन्द्र (सं० त्रि०) १ चन्द्रमारहित। २ जिसमें चमक न हो।

निश्चन्द्रअभ्र (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारका अभ्रक। यह दूध, ग्वारपाठा, आदमीके मूत्र, बकरीकी लेड़ आदि कई पदार्थोंमें मिला कर और सौ बार उनका पुट दे कर तैयार किया जाता है। कहते हैं, कि यह पद्मरागके समान हो जाता है। यह वीर्यवर्द्धक, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है।

निश्चप्रच (सं० त्रि०) निश्चितञ्च प्रचितञ्च मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। निश्चित और प्रचित वस्तु।

निश्चय (सं० पु०) निश्चीयतेऽनेनेति निर्-चि-अप्। (ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। पा ३।३।५८) १ निःसंशयज्ञान, ऐसी धारणा जिसमें कोई सन्देह न हो। पर्याय—निर्णय, निर्णयन, निचय, संशयका अभाव ज्ञान। किसी वस्तुका संशय होनेसे उसका एक पक्ष स्थिर करनेका नाम निश्चय है। २ विश्वास, यकीन। ३ निर्णय। ४ बुद्धिकी असाधारण वृत्तिभेद। ५ दृढ़ सङ्कल्प, पक्का विचार, पूरा इरादा। ६ अर्थालङ्कारभेद, एक अर्थालङ्कार जिसमें अन्य विषयका निषेध हो कर प्रकृत वा यथार्थ विषयका स्थापन होता है। उदाहरण—

"वदनमिदं न सरोजं नयने नेन्दीवरे एते।
इह सविधे मुग्धदृशो मधुकर न मुधा परिभ्राम्य॥"
(साहित्यद० १० परि०)

यह वदन पद्म नहीं है, ये दो नीलोत्पल नहीं हैं—चक्षु हैं; हे मधुकर! इस कामिनीके समीप तुम वृथा क्यों परिभ्रमण करते हो। यहां पर पद्म और नीलोत्पल इन दो अन्य विषयोंका निषेध करके प्रकृत विषयका स्थापन हुआ। अतएव यहां निश्चयालङ्कार हुआ।

निश्चयरूप (सं० त्रि०) निश्चितका भाव वा आकृतियुक्त।

निश्चयात्मक (सं० त्रि०) असंदिग्ध, जो बिलकुल निश्चित हो, ठीकठीक ।

निश्चयात्मकता (सं० स्त्री०) निश्चयात्मक होनेका भाव, यथार्थता, असंदिग्धता ।

निश्चयिन् (सं० त्रि०) स्थिरीकृत, स्थिर किया हुआ, त्रिचारा हुआ, ठीक किया हुआ ।

निश्चर (सं० पु०) एकादश मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, एकादश मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एक ।

निश्चल (सं० त्रि०) निर्-चल-अच् । १ स्थिर, जो जरा भी न हिले डुले । २ अचल, जो अपने स्थानसे न हटे । ३ असम्भावना, विपरीत भावनारहित ।

निश्चलता (हिं० स्त्री०) स्थिरता, दृढ़ता, निश्चल होनेका भाव ।

निश्चलदासस्वामी—एक प्रसिद्ध दार्शनिक । इन्होंने प्रभाकर नामक पञ्चदशीकी एक टीका लिखी है ।

निश्चला (सं० स्त्री०) निश्चल-टाप् । १ शालपर्णी । २ पृथिवी । ३ नदीविशेष, एक नदीका नाम ।

निश्चलाङ्ग (सं० पु०) निश्चलवत् अङ्गं यस्य । १ बक, बगुला । २ पर्वत प्रभृति । (त्रि०) ३ स्पन्दरहित, जो हिलता डोलता न हो ।

निश्चायक (सं० त्रि०) निश्चिनोतीति निर्-चि-ण्वुल् । निश्चयकर्त्ता, जो किसी बातका निश्चय या निर्णय करता हो ।

निश्चारक (सं० पु०) निश्चरतीति निर्-चर-ण्वुल् । १ वायु, हवा । २ स्वच्छन्द । ३ पुरीषचय, प्रवाहिका नामका रोग जो अतिसारका एक भेद है । यह बच्चोंको प्रायः होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं ।

निश्चित (सं० त्रि०) निर्-चि-कर्मणि-क्त । १ जिसके सम्बन्धमें निश्चय हो चुका हो, ते किया हुआ । २ जिसमें कोई परिवर्त्तन या फेर बदल न हो सके । (स्त्री०) ३ नदीभेद, एक नदीका नाम ।

निश्चिति (सं० स्त्री०) निर्-चि-क्तिन् । अवधारण, निश्चय करना ।

निश्चित (सं० पु०) समाधिभेद, योगमें एक प्रकारकी समाधि ।

निश्चिन्त (सं० त्रि०) निर्गता चिन्ता यस्मात् । चिन्तारहित, जिसे कोई चिन्ता या फिक्र न हो, बेफिक्र ।

निश्चिरा (सं० स्त्री०) नदीभेद, एक नदीका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है ।

निश्चीयमान (सं० त्रि०) निर्-चि-कर्मणि शानच् । निश्चय विषय ।

निश्चुक्कण (सं० क्ली०) निःशेषेण चुक्कणम् । दन्तशाण, मिस्सी ।

निश्चेतन (सं० त्रि०) निर्गता चेतना यस्मात् । १ चेतनरहित, चैतन्यशून्य, बेहोश, बदहवास । २ जड़ ।

निश्चेतस् (सं० त्रि०) निर्गतं चेतः यस्मात् । चेतनारहित, बेसुध ।

निश्चेष्ट (सं० त्रि०) निर्गता चेष्टा यस्मात् । १ चेष्टारहित, चेष्टाहीन, बेहोश, अचेत । २ अक्षम, असहाय । ३ निश्चल, स्थित ।

निश्चेष्टा (सं० स्त्री०) चेष्टाराहित्य, बेहोशी ।

निश्चेष्टाकरण (सं० क्ली०) निश्चेष्टा चेष्टाराहित्यं क्रियते अनेन कृ करणे ल्युट् । १ कामबाणभेद, कामदेवके एक प्रकारके बाणका नाम । २ मनःशिलाघटित औषधभेद, वैद्यकमें एक प्रकारकी औषध जो मैनसिलसे बनाई जाती है ।

निश्चौर (सं० त्रि०) दस्यु वा चोर-वहिर्भूत स्थान, जहां से चोर डकैतोंका अड्डा उठा दिया गया हो ।

निश्च्यवन (सं० पु०) १ वैवस्वत मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमें-से एक ऋषिका नाम । २ महाभारतके अनुसार एक प्रकारकी अग्नि । ३ च्युतिहीन ।

निश्छन्द (सं० त्रि०) निर्गतं छन्दो वेदो अस्य । वेदाध्ययनहीन, जिसने वेद न पढ़ा हो ।

निश्छल (सं० त्रि०) निष्कपट, छलरहित, सीधा ।

निश्छिद्र (सं० त्रि०) निर्गतं छिद्रं यस्मात् । छिद्रशून्य, जिसमें छेद न हो ।

निश्छेद (सं० त्रि०) अविभाज्य, गणितमें वह राशि जिसका किसी गुणकके द्वारा भाग न दिया जा सके ।

निश्न (सं० त्रि०) निश समाधौ बाहुलकात् नक् । समाहित ।

निश्रव्य (सं० त्रि०) दृढ़वद्ध, साज पहनाया हुआ ।

निश्रम (सं० पु०) कार्यादिमें सहिष्णुता, किसी कामसे न थकना अथवा न घबराना ।

निश्रयणी (सं० स्त्री०) सोपान, सीढ़ी।
निश्राविन् (सं० त्रि०) अधःपतनशील, जिसका नाश हो।
निश्रीक (सं० त्रि०) सोपान, सीढ़ी।
निश्रेणिकाढण (सं० पु०) एक प्रकारकी घास जो रस-हीन और गरम होती तथा पशुओंको कमजोर बना देती है।
निश्रेणी (सं० स्त्री०) १ सोपान, सीढ़ी, ज़ीना। २ मुक्ति। ३ खर्जूरवृक्ष, खजूरका पेड़।
निश्रेयस (हिं०पु०) १ मोक्ष। २ दुःखका अत्यन्त अभाव। ३ कल्याण।
निश्वस्य (सं० त्रि०) निश्वासयुक्त। दीर्घ निश्वासका परित्याग करना, आह भरना।
निश्वास (सं० पु०) नि-श्वस भावे घञ्। बहिर्मुख श्वास, नाक या मुँहसे बाहर निकलनेवाला श्वास, प्राणवायुके नाकके बाहर निकलनेका व्यापार। पर्याय—पान, एतन।
निश्वाससंहिता (सं० स्त्री०) निश्वासाख्या संहिता। शिवप्रणीत शास्त्रविशेष, शिवजीका बनाया हुआ एक शास्त्रका नाम। ब्राह्मणोंके अनुरोधसे उन्होंने यह संहिता लिखी है। इसमें पाशुपती दीक्षा और पाशुपत योग वर्णित है।
निश्शक्त (सं० त्रि०) निर्बल, जिसमें शक्ति न हो।
निश्शङ्क (सं० त्रि०) १ निर्भय, निडर, बेखौफ। २ सन्देहरहित, जिसमें शंका न हो।
निश्शील (सं० त्रि०) बेमुरौवत, बदमिजाज, बुरे स्वभाव-वाला।
निश्शीलता (सं० स्त्री०) दुष्ट स्वभाव, बदमिजाजी।
निश्शेष (सं० त्रि०) जिसका कुछ अवशिष्ट न हो, जिसमेंसे कुछ भी बाकी न बचा हो।
निषकपुत्र (सं० पु०) राक्षस, निशाचर, असुर।
निषकर्ष (सं० पु०) स्वरसाधनकी एक प्रणाली। इसमें प्रत्येक स्वरका दो दो बार अलापना पड़ता है। जैसे सा सा रे रे ग ग म म प प ध ध नि नि सा सा। सा सा नि नि ध ध प प म म ग ग रे रे सा सा।
निषक्त (सं० पु०) जनक, पिता, बाप।
निषङ्ग (सं० पु०) नितरां सजन्ति शरा यत्र। नि-सन्ज अधिकरणे घञ्। १ तूणीर, तूण, तरकश। २ खड्ग। ३ प्राचीन कालका एक बाजा जो मुँहसे फूँक कर बजाया जाता था।
निषङ्गथि (सं० पु०) नि-सन्ज-अथिन्। १ आलिङ्गन। २ धनुष धारण करनेवाला। ३ रथ। ४ स्कन्ध, कन्धा। ५ तृण, घास। ६ सारथि। (त्रि०) ७ आलिङ्गक, आलि-ङ्गन करनेवाला।
निषङ्गधि (सं० पु०) निषङ्गः खड्गः धीयतेऽस्मिन् धा-आधारे कि। खड्गविधान, म्यान।
निषङ्गी (सं० त्रि०) निषङ्गोऽस्त्यस्य इति इनि। १ धनुर्धर, तीर चलानेवाला। २ खड्गधारी, खड्ग धारण करनेवाला। ३ नितान्त सङ्गयुक्त। ४ तूणीरयुक्त। (पु०) ६ तूणीर, तरकश। ७ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम।
निषण्ण (सं० त्रि०) निषीदतिस्मेति नि-सद-गत्यर्थेति क्त निष्ठातस्यन (रदाभ्यां निष्ठातो न पूर्वस्य च दः। पा ८।२।४२) उपविष्ट, शलिस, स्थित, अवलम्बनकारी।
निषण्णक (सं० क्ली०) निषण्ण संज्ञायां कन्। सुनिष-ण्णक शाक, सुसनी नामका साग।
निषत्ति (सं० स्त्री०) नि-सद-क्तिन्। निषदन, स्थिति।
निषत्नु (सं० त्रि०) नि-सद बाहुलकात् त्नु। निषण्ण, स्थित।
निषद् (सं० स्त्री०) निषीदत्यस्यां नि-सद-आधारे क्विप्। १ यज्ञदीक्षा। २ वेदवाक्यविशेष। भावे क्विप्। ३ उपसदन। नि-सद-कर्त्तरि-क्विप्। ४ उपवेष्टा।
निषद (सं० पु०) निषीदन्ति षड्जादयः स्वरा यत्र, नि-सद-बाहुलकात् अप्। १ निषादस्वर। २ स्वनामख्यात नृपविशेष, एक राजाका नाम।
निषदन (सं० क्ली०) निषीदत्यत्र नि-सद-आधारे ल्युट्। १ गृह, घर। २ उपवेशन स्थान, बैठनेकी जगह। (पु०) निषीदति पापकर्मत, ल्युट्। ३ निषाद।
निषद्या (सं० स्त्री०) निषीदन्त्यस्यामिति नि-सद-क्यप् (संज्ञायां समजनिषदेति। पा ३।३।९९) १ पण्यविक्रयशाला, वह स्थान जहां कोई चीज बिकती हो, हाट। २ हट्ट, हाट। ३ क्षुद्र खट्वा, छोटी खाट।
निषद्यापरीषह (सं० पु०) ऐसे स्थानमें जहां स्त्री पशु आदिका आगम हो न रहना और यदि दुष्टानिष्टका

उपसर्ग हो, तो भी अपने चित्तको चलायमान न करना। (जैन)

निषद्वर (सं० पु०) निषीदन्ति विषण्णाभवन्ति जना अत्रेति नि-सद-ष्वरच (नौ सदेः। उण् २।१२४) ततो "सदिरप्रतेः" इति षत्वम्। १ कर्दम, कीचड़, चहला। निषदां उपवेष्टॄणां वरः। २ प्रधान उपवेष्टा।

निषद्वरी (सं० स्त्री०) निषद्वर स्त्रित्वात् ङीप्। रात्रि, रात।

निषध (सं० पु०) १ पर्वतभेद, एक पर्वतका नाम। लङ्काके उत्तर पूर्वसागर तक विस्तृत हिमगिरि है, हिमगिरिके उत्तर हेमकूट है। यह भी समुद्र तक फैला हुआ है। इसी हेमकूटके उत्तरमें निषध पर्वत अवस्थित है। भागवतमें इस पर्वतके विषयमें इस प्रकार लिखा है—इलावृतवर्षके उत्तर उत्तरादि दिक्क्रमसे क्रमशः नीलगिरि, श्वेतगिरि और शृङ्गवान्‌गिरि है। ये तीनों पर्वत यथाक्रमसे रम्यक वर्ष, हिरण्मयवर्ष और कुरुवर्षकी सीमाके रूपमें कल्पित हुए हैं और पूर्वकी ओर विस्तृत हैं। इसी तरह इलावृतवर्षके दक्षिणमें निषध, हेमकूट और हिमालय नामके तीन पर्वत हैं।

(भागवत ५।१६ अ०)

२ सूर्यवंशीय रामात्मज कुशके पौत्र। ३ महाराज जनमेजयके पुत्रका नाम। ४ देशभेद, एक प्राचीन देशका नाम। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि यह जनपद विन्ध्याचल पर अवस्थित था। किसी किसीके मतसे यह वर्त्तमान कमाऊंका एक भाग है और दमयन्ती-पति नल यहींके राजा थे। ५ निषधदेशके अधिपति। ६ निषादस्वर। ७ कुरुके एक लड़केका नाम। (त्रि०) ८ कठिन।

निषधवंश (सं० पु०) निषधदेशवासी जातिविशेष निषाद देखो

निषधाधिप (सं० पु०) निषधदेशके राजा।

निषधाधिपति (सं० पु०) निषधराज, राजा नल।

निषधाभास (सं० पु०) आक्षेप, अलङ्कारके पांच भेदोंमेंसे एक।

निषधावती (सं० स्त्री०) विन्ध्यपर्वतजात नदीविशेष। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार एक नदीका नाम जो विन्ध्य-पर्वतसे निकलती है।

निषधाश्व (सं० पु०-स्त्री०) कुरुके एक पुत्रका नाम।

निषाद (सं० पु०) निषदति ग्रामस्थ षड्‌जीमायां यद्वा निषीदति पापमत्र, नि-सद्-कर्मणि अधिकरणे वा घञ्। १ अनार्यजातिभेद। आर्यजातिके भारतवर्ष आनेसे पहले यह जाति यहांके भिन्न भिन्न स्थानोंमें वास करती थी। इस जातिके लोग शिकार खेलते, मछलियां मारते, डाका डालते और इसी तरहके पापकर्म किया करते थे, इसीसे इनका नाम निषाद पड़ा है। २ वेणशरीरोद्भव जातिविशेष। इसका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—जिस समय राजा वेणको जांघ मथी गई थी, उस समय उसमेंसे काले रंगका एक छोटा-सा आदमी निकला था। वही आदमी इस वंशका आदिपुरुष था। धीवर इन लोगोंकी पारिभाषिक उपाधि है। मनुके मतसे इस जातिकी सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा मातासे हुई है।

"ब्राह्मणाद्वैश्यकन्यायामम्बष्ठोनाम जायते।
निषादः शूद्रकन्यायां यः पारशव उच्यते॥"

(मनु १०।८)

यह निषादजाति पारशव नामसे प्रसिद्ध है। विवाहिता शूद्रकन्या और ब्राह्मणसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वही निषाद कहलाती है। ब्राह्मण यदि शूद्रकन्यासे विवाह करे तो उससे उत्पन्न सन्तान निषाद कहलायगी वा नहीं, इस सन्देहको दूर करनेके लिए कुल्लूक भट्टने ऐसा लिखा है,—

'ऊढ़ायां शूद्रकन्यायां निषाद उत्पद्यते।'

(कुल्लूक मनु १०।८)

याज्ञवल्क्यसंहिताके मतसे भी यह जाति ब्राह्मण पिता और शूद्राणी माताके गर्भसे उत्पन्न हुई है।

"विप्रान्मूर्द्धाभिषिक्तो हि क्षत्रियाणां विशः स्त्रियाम्।
अम्बष्ठः शूद्र्यां निषादोजातः पारशवोऽपि वा॥"

(याज्ञवल्क्यसं १।९३)

मिताक्षरा आदिके मतसे ये लोग मछली मार कर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, इसीसे इनका दूसरा नाम धीवर पड़ा है। ये लोग क्रूर और पापी माने गये हैं। ३ स्थानविशेषका नाम। मि० वारगेसने निषादको वर्त्तमान वरार बतलाया है, किन्तु यह ठीक प्रतीत

नहीं होता। नल राजाके राज्यका नाम भी निषाद नहीं है, निषध है। मालूम पड़ता है, कि महाभारतोक्त उत्तरपश्चिम निषादसे हिसार और भाटनर जिलेका बोध होता है।

ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है, कि पूतसलिला गङ्गाको पूर्वाभिमुखी शाखा ह्लादिनी नदी निषाद देश होती हुई पूर्वसागरमें गिरी है। गरुड़पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—यह निषाद जाति "विन्ध्यशैलनिवासकः" है अर्थात् ये लोग पहले विन्ध्यगिरिके निकटवर्ती स्थानोंमें वास करते थे और यही स्थान जहां तक सम्भव है कि महाभारतोक्त निषादभूमि नामसे उक्त हुआ है। महाभारतके वनपर्वमें विनशनका जो उल्लेख है उसके दक्षिण पश्चिममें एक छोटा राष्ट्र है जो लुप्त सरस्वतीके किनारे बसा हुआ है। सम्भवतः किसी निषादवंशीय राजाने यह राज्य बसाया होगा। रामायणोक्त शृङ्गवेरपुरमें इस निषाद-राज्यकी राजधानी थी। शृङ्गवेरपुर देखो। ४ कल्पभेद। निषीदन्ति षड्जादयः स्वरा यत्र नि-सद-घञ्। ५ सङ्गीतके सात स्वरोंमेंसे अन्तिम और सबसे ऊंचा स्वर। नारदके मतसे यह स्वर हस्तिस्वरके समान है। इसका उच्चारण-स्थान ललाट है, लेकिन व्याकरणके मतानुसार दन्त। इस स्वरका वर्ण वैश्य है।

सङ्गीतदर्पणके अनुसार इस स्वरकी उत्पत्ति असुर-वंशमें हुई है। इसकी जाति वैश्य, वर्ण विचित्र, जन्म पुष्करद्वीपमें, ऋषि तुम्बरु, देवता सूर्य और छन्द जगती है। यह सम्पूर्ण जातिका स्वर है और करुण रसके लिये विशेष उपयोगी है। इसकी कूट तान ५०४० है। इसका वार शनि और समय रात्रिके अन्तको ८ दण्ड ३४ पल है। इसका स्वरूप गणेशजीके समान, वर्ण कृष्ण-श्वेत और स्थान पुष्करद्वीप माना गया है। इसकी श्रुति उग्रा और शोभिनी है। मन्द्रस्थानमें मूर्च्छना सखा और मध्यस्थानमें प्रहकृता है। तारस्थानमें लोचना है। आसावरी और मल्लारी ये दो रागिणियां निषादवर्जिता हैं। नारदपुराणके मतसे यह स्वर निःसन्तान है।

निषादकर्षु (सं० पु०) देशभेद, एक देशका प्राचीन नाम।

निषादवत् (सं० पु०) निषादोऽस्त्यस्य मतुप्, मस्य व। १ निषादस्वर। (त्रि०) २ निषादस्वरयुक्त।

निषादित (सं० क्ली०) नि-सद णिच्-क्त। १ निषदन, बैठनेकी क्रिया। (त्रि०) कर्मणि क्त। २ उपवेशित, बैठा हुआ।

निषादिन् (सं० पु०) निषीदत्यवश्यमिति नि-सद-णिनि। १ हस्तिपक, हाथीवान, महावत। (त्रि०) २ उपविष्ट, बैठा हुआ।

निषिक्त (सं० त्रि०) नि-सिच-क्त। १ नितान्तसिक्त। (क्ली०) २ शुक्रजात गर्भ, वीर्यसे उत्पन्न गर्भ।

निषिक्तपा (सं० त्रि०) निषिक्तं पातीति वेदे निपातनात् साधुः। १ गर्भरक्षा-कर्त्ता, गर्भकी रक्षा करनेवाला। २ सोमपानकर्त्ता, सोमपान करनेवाला।

निषिद्ध (सं० त्रि०) निषिध्यते स्मेति नि-सिध-क्त। १ निषेधविषय, जिसका निषेध किया गया हो, जिसके लिये मनाही हो, जो न करनेके योग्य हो।

पद्मपुराणके स्वर्गखण्डमें निषिद्धकर्मका विषय इस प्रकार लिखा है,—

ब्राह्मणोंके लिए व्याकर्षण, मनुनिवर्हण, कृषि, वाणिज्य, पशुपालन, अर्थके लिये शुश्रुषा, कुटिलता, कुपोद और वृषलीगमन आदि कार्य निषिद्ध हैं। ये सब निषिद्ध कर्मान्वित ब्राह्मण वैदिक और तान्त्रिक कार्यके योग्य नहीं हैं। कर व्यतीत प्रतिग्रह, युद्धमें पलायन, याचकके प्रति कातरता, प्रजाका अपालन, दान और धर्ममें विरक्तता, स्वराष्ट्रको अनपेक्षा, ब्राह्मणका अनादर, अमात्यका असम्मान और उनके काम पर निगाह न रखना तथा भृत्योंके प्रति परिहास आदि कार्य क्षत्रियोंके लिए निषिद्ध हैं। धनलोभसे मिथ्या मूलकथन, पशुओंका अपालन, सम्पदसत्त्वमें यज्ञानुष्ठान नहीं करना, ये सब कार्य वैश्योंके लिए तथा धनसञ्चय और दशविधकर्म शूद्रोंके लिए निषिद्ध बतलाए गए हैं। (पद्मपु० स्वर्गख० २७ अ०)

शालपत्रमें खाना और उसे छेदना तथा पीपल और वटवृक्षका काटना मना है। शास्त्रोंमें जिन सब वर्णोंके जो कार्य नहीं बतलाए गए हैं, वे सभी कार्य निषिद्ध हैं। निषिद्ध कर्मका अनुष्ठान करनेसे निरयभागी होना पड़ता है। २ निवारित, दूषित, खराब, बुरा।

निषिद्धधात्री (सं० स्त्री०) आयुर्वेदसम्मतगुणवर्जित धात्री। सन्तानादिके पालनके लिए निम्नलिखित स्त्रियों को धात्री नहीं बनाना चाहिए। शोकाकुला, क्षुधिता परिश्रान्ता, व्याधियुक्ता, बहुवयस्का अथवा अतिखर्वा, अत्यन्त स्थूलाङ्गी, अतिशय कृशाङ्गी, गर्भिणी, ज्वर-पीड़िता और जिसके स्तन लम्बे तथा ऊंचे हों (ऊंचा स्तन चूसनेसे बालकका ग्रास बड़ा होता है और बड़ा स्तनसे बालकका मुख नाक ढक जाती जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है), अजीर्णभोजी, अपथ्यसेवी, दूषित कार्यमें आसक्त, दुःखान्विता और चञ्चलचित्ता इन सब दोषयुक्त स्त्रीसे स्तन पीनेसे बालक रोगग्रस्त होता है

निषिद्धि (सं० स्त्री०) नि सिध्-क्तिन्। निषेध, मनाही।

निषूदन (सं० त्रि०) मारनेवाला।

निषेक (सं० पु०) निषिच्यते प्रक्षिप्यते इति नि-सिच्-घञ्। १ जलादिका नितान्त सेचन। २ गर्भाधान। ३ रेत, वीर्य। ४ क्षरण, चूना, टपकना।

निषेकादिकृत् (सं० पु०) निषेकादि गर्भाधानादिकं करोतीति कृ-क्विप्। गर्भाधानादि कर्त्ता।

निषेक्तव्य (सं० त्रि०) नि-सिच-तव्य। सेचनीय, सींचने योग्य।

निषेचन (सं० क्ली०) नि-सिच्-णिच्-ल्युट्। सेचन, सींचना, तर करना, भिगोना।

निषेचितृ (सं० त्रि०) नि-सिच्-तृच्। सेचनकर्त्ता, सींचनेवाला।

निषेदिवस् (सं० त्रि०) नि-सद्-क्वसु। निषण्ण, उपविष्ट, बैठा हुआ।

निषेद्धव्य (सं० त्रि०) नि-सिध-तव्य। निषेधनीय, निषेध करने योग्य मनाही लायक।

निषेद्धृ (सं० त्रि०) नि-सिध्-तृच्। निषेधक, निषेध करनेवाला।

निषेद्ध्र (सं० त्रि०) प्रतिबन्धकशून्य, जिसका दमन वा रोकनेवाला कोई न हो।

निषेध (सं० पु०) नि-सिध्-घञ्। १ प्रतिषेध, वर्जन, मनाही। २ निवृत्ति, बाधा, रुकावट। ३ विधिविपरीत ४ निवर्त्तन, वारण। निषिध्यतेऽनेन करणे घञ्। ५ अनिष्टसाधनतादि बोधक वेदादि वाक्यभेद। पुरुषके निव र्त्तक वाक्यका नाम निषेध है। जिस शास्त्रविधि द्वारा मनुष्य निवर्त्तित होते हैं, उसीको निषेध कहते हैं।

निषेधक (सं० त्रि०) नि-सिध्-ण्वुल्। निवारक, रोकने-वाला।

निषेधन (सं० क्ली०) नि-सिध्-ल्युट्। निषेध, निवारण, मना करना।

निषेधपत्र (सं० क्ली०) वारणलिपि, वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकारका निषेध किया जाय।

निषेधविधि (सं० पु०) निषेधे अभावे विधिः इष्टसाधनताबोधकः। अभावविषयमें इष्टसाधनताबोधक वाक्यभेद, वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बातका निषेध किया जाय।

निषेधित (सं० पु०) नि-सिध्-णिच्-क्त। प्रतिषिद्ध, निवारित, जिसके लिये निषेध किया गया हो, मना किया हुआ।

निषेधिन् (सं० त्रि०) नि-सिध्-णिनि। निषेधक, निषेध करनेवाला।

निषेधोक्ति (सं० स्त्री०) निषेधवाक्य।

निषेव (सं० त्रि०) १ शिष्यारत, अनुरक्त। २ अभ्यासयोग। (क्ली०) ३ अवलोकन। ४ वास। ५ पूजा। ६ अनुसरण।

निषेवक (सं० त्रि०) १ अनुरक्त। २ पुनः पुनः एक स्थान पर आगमन वा एक विषयमें अभिनिवेश।

निषेवण (सं० क्ली०) नि-सेव-भावे ल्युट्। १ सेवा। २ सेवन, व्यवहार।

निषेवणीय (सं० त्रि०) नि-सेव्-अनीयर्। सेवायोग्य।

निषेवितृ (सं० त्रि०) नि-सेव्-तृच्। निसेवक, सेवा करनेवाला।

निषेवितव्य (सं० क्ली०) नि-सेव्-तव्य। सेवनीय, सेवा के योग्य।

निषेविन् (सं० त्रि०) अवलोकित, अनुरत, सुखभोगी।

निषेव्य (सं० त्रि०) नि-सेव-भावे ण्यत्। सेवनीय, सेवाके योग्य।

निष्क (सं० पु०) निश्चयेन कायति शोभते निस्-कै-क, वा निष्क-अच्। १ वैदिककालका एक प्रकारका सोने-का सिक्का या मोहर। भिन्न भिन्न समयोंमें इसका मान भिन्न भिन्न था।

पूर्व समयमें यज्ञोंमें राजा लोग ऋत्विजों और ब्राह्मणोंको दक्षिणामें देनेके लिए सोनेके समान तौलके टुकड़े कटवा लिया करते थे जो 'निष्क' कहलाते थे। सोनेके इस प्रकार टुकड़े करानेका मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणामें सब लोगोंको बराबर बराबर सोना मिले, किसीको कम वा ज्यादा न मिले। पीछेसे सोनेके इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदिके चिह्न और नाम आदि बनाए या खोदे जाने लगे। इन्हीं टुकड़ोंने आगे चल कर सिक्कोंका रूप धारण कर लिया। उस समय कुछ लोग इन टुकड़ोंको गूंथ कर और उनकी माला बना कर गलेमें भी पहनते थे। भिन्न भिन्न समयोंमें निष्कका मान नीचे लिखे अनुसार था।

एक निष्क = एक कर्ष (१६ माशे)
" " = " सुवर्ण "
" " = " दीनार "
" " = " पल (४ या ५ सुवर्ण)
" " = चार माशे
" " = १०८ अथवा १५० सुवर्ण

२ सुवर्ण, सोना। ३ प्राचीन कालमें चांदीकी एक प्रकारकी तौल जो चार सुवर्णके बराबर होती थी। ४ वैद्यकमें चार माशेकी तौल। ५ सुवर्णपात्र, सोनेका बरतन। ६ हीरक, हीरा। ७ कण्ठभूषा, गलेका गहना।

निष्ककण्ठ (सं॰ पु॰) १ सुवर्णालङ्कारविशिष्ट कण्ठ, सोनेके जेवरोंसे सजा हुआ गला। २ वरुणवृक्ष।

निष्कग्रीव (सं॰ त्रि॰) जिसके गलेमें सोनेका अलङ्कार हो।

निष्कण्टक (सं॰ त्रि॰) निर्गतः कण्टको यस्य। १ उपसर्गहीन। २ बाधारहित, जिसमें किसी प्रकारकी बाधा, आपत्ति या झंझट आदि न हो। ३ कण्टकहीन, जिसमें कांटा न हो। ४ शत्रुपरिशून्य, उपद्रवरहित।

निष्कण्ठ (सं॰ पु॰) निर्गतः कण्ठः स्कन्धो यस्य। वरुणवृक्ष, वरुण नामका पेड़।

निष्कनिष्ठ (सं॰ त्रि॰) कनिष्ठाङ्गुलिशून्य, जिसकी कनिष्ठाङ्गुलि कट गई हो।

निष्कन्द (सं॰ त्रि॰) जो कन्द खाने योग्य न हो।

निष्कपट (सं॰ त्रि॰) निश्छल, छलरहित, जो किसी प्रकारका छल या कपट न जानता हो।

निष्कपटता (सं॰ स्त्री॰) निष्कपट होनेका भाव। निश्छलता, सरलता, सीधापन।

निष्कपटी (हिं॰ वि॰) निष्कपट देखो।

निष्कम्प (सं॰ त्रि॰) निर्गतः कम्पो यस्य। कम्पहीन, जिसमें किसी प्रकारका कंप न हो।

निष्कम्प (सं॰ पु॰) गरुड़का पुत्रभेद, गरुड़के एक पुत्रका नाम।

निष्कम्भु (सं॰ पु॰) देवसेनाधिपभेद, पुराणानुसार देवताओंके एक सेनापतिका नाम।

निष्कर (सं॰ त्रि॰) करशून्य, वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो।

निष्करुण (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति करुणा यस्य। करुणाहीन, जिसमें करुणा या दया न हो, निर्दय, बेरहम।

निष्करूष (सं॰ त्रि॰) परिष्कृत, साफ सुथरा।

निष्कर्म (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति कर्म यस्य। कार्यविरत, जो कामोंमें लिप्त न हो।

निष्कर्मण्य (सं॰ त्रि॰) अकर्मण्य, अयोग्य, निकम्मा।

निष्कर्मन् (सं॰ त्रि॰) १ जो कर्मोंमें लिप्त न हो, अकर्मा। २ आलसी, निकम्मा।

निष्कर्ष (सं॰ पु॰) निस्-कृष भावे घञ्। १ निश्चय, खुलासा। २ करार्थ प्रजापीड़न, राजाका अपने लाभ या कर आदिके लिए प्रजाको दुःख देना। ३ निःसारण, निकालनेकी क्रिया। ४ सारांश, सार, निचोड़।

निष्कर्षण (सं॰ क्ली॰) निस्-कृष भावे ल्युट्। १ निष्कासन, निकालना, बाहर करना। २ निःसारण, बाहर निकालनेकी क्रिया।

निष्कर्षिन् (सं॰ पु॰) मरुद्गणभेद, एक प्रकारके मरुत्।

निष्कल (सं॰ त्रि॰) निर्गता कला यस्मात्। १ कलाशून्य, जिसमें कला न हो। २ निरवयव, जिसका कोई अङ्ग या भाग नष्ट हो गया हो। ३ नष्टवीर्य, जिसका वीर्य नष्ट हो गया हो। ४ नपुंसक। ५ सम्पूर्ण, पूरा, समूचा। (पु॰) ६ ब्रह्मा।

निष्कलङ्क (सं॰ त्रि॰) १ कलङ्कहीन, जिसमें किसी प्रकारका कलङ्क न हो, निर्दोष, बेऐब।

निष्कलङ्कतीर्थ (सं॰ क्ली॰) पुराणानुसार एक तीर्थका

नाम। इसमें स्नान करनेसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

निष्कलत्व (सं० क्ली०) अविभाज्य होनेकी अवस्था, किसी पदार्थकी वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें।

निष्कला (सं० स्त्री०) निर्गता कला यस्याः। रजोहीना स्त्री, वृद्धा स्त्री, बुढ़िया।

निष्कली (सं० स्त्री०) निष्कल-ङीष्। ऋतुहीना, अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिकधर्म बन्द हो गया हो।

निष्कल्मष (सं० त्रि०) पापरहित, कलङ्कहीन, बेऐब।

निष्कषाय (सं० त्रि०) निर्गतः कषायः चित्तमलभेदो यस्य। १ चित्तदोषशून्य, जिसके चित्तमें किसी प्रकारका दोष न हो, जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो। २ मुमुक्षु। (पु०) ३ जिनभेद, एक जिनका नाम।

निष्कादि (सं० पु०) निष्क प्रभृति करके पाणिन्युक्त शब्दगण। यथा—निष्क, पण, पाद, माष, वाह, द्रोण, षष्टि।

निष्काम (सं० त्रि०) निर्गतः कामो अभिलाषो यस्य। १ विषयभोगेच्छाशून्य, जिसमें किसी प्रकारकी कामना, आसक्ति या इच्छा न हो। २ कामनारहित, जो बिना किसी प्रकारकी कामना या इच्छाके किया जाय। सांख्य और गीता आदिके मतसे ऐसा काम करनेसे चित्त शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है।

निष्कामकर्म (सं० क्ली०) कामनारहित कार्य। जो सब कार्य आसक्तिपरिशून्य हो कर किया जाता है उसे निष्काम कहते हैं। गीतामें भगवान्‌ने अर्जुनको इसी निष्कामकर्मका उपदेश दिया था। ज्ञानयोग और निष्कामकर्म योग इन दोनोंमेंसे कौन श्रेय है, अर्जुनको जब यह सन्देह हुआ, तब उन्होंने भगवान्‌से पूछा था, 'भगवन्! ब्रह्मयोग वा ज्ञानयोग एवं निष्कामकर्म इन दोनोंमें यदि ज्ञानयोग ही श्रेष्ठ हो, तो मुझे घोर निष्काम कर्म मार्गमें क्यों भेजते हैं?' यह सुन कर भगवान्‌ने कहा था, 'अर्जुन! मैंने तुझे कोई विमिश्रित वाक्य नहीं कहा। तुमने बुद्धिदोषसे ऐसा समझा है। मैंने, जो कल्याणकर है, वही तुम्हें उपदेश दिया है। पुनः ध्यान दे कर जो कुछ मैं कहता हूं, सुनो। जो कुछ भी तुम्हारे हृदयमें मोह है वह दूर हो जायगा। इस जगत्‌में जो प्रकृत कल्याणकी अभिलाषा करते हैं, उनके लिए मैंने पहले ही वेदके मध्य द्विविध निष्ठाका उपदेश दे दिया है। उन दो निष्ठाओंके नाम हैं ज्ञाननिष्ठा और निष्कामकर्म निष्ठा। जो सांख्य अर्थात् आत्मविषयमें विवेकज्ञानसम्पन्न हैं और ब्रह्मचर्य आश्रमके बाद ही समस्त कामनादिका परित्याग कर सकते हैं, जो वेदान्तविज्ञान द्वारा परमार्थ तत्त्वका निश्चय करते हैं तथा जो परमहंस और परिव्राजक हैं उन्हींके लिए ज्ञाननिष्ठा है। ज्ञानयोगका अधिकारी न हो कर जो ज्ञानयोगका आश्रय लेते हैं उन्हें किसी हालतसे श्रेय लाभ नहीं होता; बल्कि उन्हें नरकगामी होना पड़ता है। जो कर्मके अधिकारी हैं, पूर्वोक्त लक्षणयुक्त नहीं हैं उन्हींके लिए कर्मयोग बतलाया गया है। कारण निष्कामभावसे कर्मानुष्ठान किए बिना पुरुष कभी भी ज्ञाननिष्ठा नहीं पाते अर्थात् अन्तमें समस्त कर्म विरहित हो कर केवल ब्रह्मस्वरूपमें नहीं रह सकते। क्योंकि निष्कामभावसे कर्म करते करते ही क्रमशः बुद्धि विशुद्ध होती है—तत्त्वज्ञानग्रहणके उपयुक्त हो जाती है, उसके बाद ही ज्ञाननिष्ठा हो सकती है। जो ब्रह्मचर्यके बाद ही बुद्धिविशुद्धि हो कर ज्ञाननिष्ठाके अधिकारी होते हैं उनकी पूर्वजन्मार्जित कर्मानुष्ठान द्वारा ही बुद्धि विशुद्ध होती है। सुतरां इस जन्ममें फिर कर्मानुष्ठानकी आवश्यकता नहीं रहती। तत्त्वज्ञानका स्फुरण हुए बिना केवल कर्मपरित्यागसे सिद्धिलाभ नहीं होता; क्योंकि तत्त्वका ज्ञान नहीं होनेसे यदि समस्त क्रियाएं परित्याग की जायं, तो वह केवल बाहरकी हस्तपदादि क्रियाके सम्बन्धमें ही सम्भव है। अन्तरकी क्रिया कुछ भी परित्यक्त नहीं होती। कारण जब तक आत्मा मनसे समस्त कामनाओंको निःशेषरूपसे परित्याग न कर लें, तब तक क्षणकालके लिये भी कोई निष्क्रियभावमें नहीं रह सकता। क्योंकि सत्त्व, रज और तमोगुण द्वारा परिचालित हो कर चाहे भीतर या बाहर कोई न कोई काम करना ही होगा। निष्क्रियभावमें रहना जब असम्भव हो जाता है, तब कार्यके कारण सत्त्वादि गुण रहनेसे काम भी निश्चय होगा। गुण जब बलपूर्वक काम करावेगा, तब निष्काम कर्मानुष्ठान ही मङ्गलजनक है। शास्त्रमें भी लिखा है, कि जो हस्त, पद

और शिश्नादि कर्मेन्द्रियको बाहरमें संयत करके मन ही मन इन्द्रियके सभी विषय स्मरण किया करते हैं उन्हीं विमूढ़ात्मा व्यक्तियोंको मिथ्याचारी वा कपटाचारी कहते हैं। फिर जो कामनाको जीत कर मन ही मन इन्द्रियों-को आयत्त करके अनासक्तभावसे केवल बाहरमें ही कर्मेन्द्रिय द्वारा विहितकर्म करते हैं वे ही श्रेष्ठ हैं। अतएव हे अर्जुन! तुम भी फल-कामनाशून्य हो कर अपने जात्युचित जो सब कर्म हैं तथा जो नित्य और नैमित्तिक अर्थात् काम्य नहीं है उन सब कर्मोंको करो। तुम्हारे जैसे अधिकारीके लिये कर्म परित्यागकी अपेक्षा कर्म करना ही श्रेष्ठ कल्प है। विशेषतः तुम यदि हस्तपदादि समस्त वाह्येन्द्रिय क्रियाओंका एक ही काल-में परित्याग कर दो तो शरीर-यात्रा ही निर्वाह नहीं होगी, तुम्हें कर्मानुष्ठान करना ही होगा। यदि कर्म भिन्न रहना असम्भव हो, तो स्वधर्मोक्त निष्कामकर्मका अनुष्ठान ही विधेय है। यह निष्कामकर्मानुष्ठान करने से संसार-बंधनमें फंसना नहीं पड़ता। क्योंकि निष्कामभावसे ईश्वरके लिये जो काम किया जाता है उसके सिवा अन्य कर्म द्वारा ही अर्थात् कामनामूलक कर्मानुष्ठान द्वारा ही लोगोंको संसार-बंधन हुआ करता है। किसी किसीका कहना है, कि निष्काम कर्म नहीं हो सकता। विष्णुके उद्देशसे या अन्य कोई कामना कर जो कर्मानुष्ठान किया जाता है उसे किस प्रकार निष्काम-कर्म कह सकते हैं? इस पर शास्त्रका कहना है, 'अकामो विष्णुकामो वा' विष्णुके उद्देशसे जो काम किया जाता है उसीको निष्कामकर्म कहते हैं। अत-एव हे अर्जुन! तुम भी समस्त कामनाओं या आस-क्तियोंका परित्याग कर केवल ईश्वरार्थमें ही विहित क्रियाकलापका अनुष्ठान करो। ईश्वरके प्रसन्न होनेसे ही तुम्हारी कोई कामना अधूरी रहने न पायगी।

पुराकालमें मनुष्य और उसके साथ साथ नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंकी सृष्टि कर प्रजापतिने कहा था, "हे मनुष्य गण! महत्त इस नित्य नैमित्तिक कर्मानुष्ठान द्वारा तुम्हारी वृद्धि हुआ करेगी। इसी कर्मसे तुम्हारे सभी प्रकारके अभीष्ट सिद्ध होंगे। ये सब कार्य करने से देवता प्रसन्न होंगे और देवताओंके प्रसन्न होनेसे तुम्हारा कल्याण होगा। इस प्रकार तुम धीरे धीरे मुक्ति लाभ कर सकोगे। कारण उस कर्मस्वरूप यज्ञ द्वारा परितोषित हो कर देवगण तुम्हें नाना प्रकारके अभि-लषित भोग प्रदान करेंगे। अतएव उनके दिए हुए उन सब भोग्य द्रव्योंको यदि पुनः उन्हें समर्पण न कर केवल स्वयं भोग करोगे, तो तुम चोर कहलाओगे। वेदसे कर्मोंका उद्भव है। वेद परमात्मा ब्रह्मप्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म जब सर्वव्यापक हैं, तब वे कर्ममें भी अनुस्यूत हैं। अतएव इस प्रकारका कर्मानुष्ठान करना तुम्हें अवश्य कर्त्तव्य है। जो इस प्रकार निष्कामकर्मका अनुष्ठान नहीं करते, वे अपनी आत्माका किसी प्रकार कल्याण नहीं कर सकते। अतएव निष्कामभावमें सब प्रकारसे नित्यनैमित्तिक क्रियानुष्ठान करना तुम्हें सर्वतोभावसे उचित है। जो योगी वा आत्माराम हैं और एककालीन निःशेषरूपसे समस्त कामनाओं तथा वासनादिसे परि-शून्य हैं, उन्हें इस प्रकार कर्मानुष्ठान करनेका प्रयोजन नहीं।' आत्माराम व्यक्तिको किसी प्रकारका निष्काम-कर्म करना नहीं पड़ता, क्योंकि बुद्धिशुद्धि ही निष्काम कर्मका फल है। किन्तु जिसकी बुद्धि शुद्ध हो चुकी है, उन्हें निष्कामकर्म करनेकी आवश्यकता नहीं। लेकिन तुम लोगोंकी अब भी चित्तशुद्धि नहीं हुई है। जब तक चित्तकी शुद्धि नहीं होती, तब तक तुम्हें निष्कामकर्म करना पड़ेगा। चित्तकी शुद्धिके लिये एक मात्र निष्काम कर्म द्वारा मोक्ष होता है। कुछ राजर्षि ऐसे हो गये हैं जिन्होंने निष्कामकर्म द्वारा ही बुद्धिशुद्धि करके ज्ञान-लाभ कर मोक्ष पा लिया है। फिर देखो, मेरा कुछ भी कर्त्तव्यकर्म नहीं है, तिस पर भी मैं विहित कर्मों-का अनुष्ठान किया करता हूं। इन्हीं सब कारणोंसे निष्काम कर्मका अनुष्ठान ही विधेय है। जब तक ज्ञाने-न्द्रिय और कर्मेन्द्रिय शम, दम आदि द्वारा निरुद्ध नहीं होती, तब तक कर्म करना पड़ेगा। यह कर्म यदि सकामभावसे किया जाय, तो उसका फल बन्धन अवश्य आवेगा है। किन्तु वे सब कर्म यदि निष्कामभावसे अर्थात् आत्मनिरपेक्षित हो कर किए जांय, तो धीरे धीरे चित्तकी शुद्धि होती है और पीछे मोक्षलाभ होता है। कर्मानुष्ठान कर्त्तव्य इसी बुद्धिसे करना होता है। उस

कर्मके प्रति किसी प्रकारकी आसक्ति न रहे, यदि कुछ भी आसक्ति रह जाय, तो वह कर्म निष्कामकर्म नहीं होगा। वर्णाश्रमोचित ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि जिस वर्णका जो धर्मानुष्ठान विहित है, उसके अविरोधमें उस वर्णको वे सब धर्मानुष्ठान विधेय हैं। ये सब कर्मानुष्ठान आसक्ति-परिशून्य हो कर करने होते हैं। इस प्रकार कर्मानुष्ठित होनेसे चित्तकी शुद्धि होती है। ब्राह्मण ब्राह्मणोचित कर्मका और क्षत्रिय क्षत्रियोचित कर्मका अनुष्ठान करे। ब्राह्मण क्षत्रियका वा क्षत्रिय ब्राह्मणका कार्य न करे, करनेसे वर्णाश्रम धर्ममें व्याघात पहुंचता है। अतएव आश्रमोचित कर्मोंको आसक्ति-परिशून्य हो कर करे, यही निष्कामकर्म है।'

निष्कामता (सं० स्त्री०) निष्काम होनेकी अवस्था या भाव।

निष्कामी (सं० त्रि०) निष्काम' अस्त्यर्थे इनि। कामना-शून्य, जिसमें किसी प्रकारकी कामना या आसक्ति न हो।

निष्कारण (सं० त्रि०) निर्नास्ति कारणं यस्य। १ कारण-शून्य, बिना कारण, बेसबब। २ व्यर्थ, वृथा।

निष्कालक (सं० पु०) निष्कालयतीति निर्-कालि-ण्वुल् मुण्डित केशलोमादि, मूंड़े हुए बाल या रोएं आदि।

निष्कालन (सं० क्ली०) निर्-कलभावे ल्युट्। १ चालन, चलानेकी क्रिया। २ मारण, मार डालनेकी क्रिया।

निष्कालिक (सं० अव्य०) कालिकस्याभावः अभावार्थे-ऽव्ययीभावः। १ कालिकका अभाव। २ कालयितृहीन, जेतृशून्य, अजय।

निष्काश (सं० पु०) नितरां काशते शोभते प्रासादादौ निर्-काश्-अच्। १ प्रासाद आदिका बाहर निकला हुआ भाग, बरामदा। २ निष्कासन। ३ निःसारण।

निष्काशन (सं० पु०) निःसारण, निकालना, बाहर करना।

निष्काशित (सं० त्रि०) निस्-काश-णिच्-क्त। १ निष्कासित, बहिष्कृत, निकाला हुआ। २ निन्दित, जिसकी निन्दा की गई हो।

निष्कास (सं० पु०) १ निकालनेकी क्रिया या भाव। २ मकानका बरामदा।

निष्कासन (सं० पु०) निस्-कास-ल्युट्। निष्काशन, बाहर करना, निकालना।

निष्कासित (सं० त्रि०) निस्-कस-णिच्-क्त। १ बहिष्कृत, निकाला हुआ। २ निःसारित। ३ निर्गमित। ४ अहित। ५ निन्दित।

निष्किञ्चन (सं० त्रि०) निर्गतं किञ्चन गम्यं धनं वा यस्य। अकिञ्चन, धनहीन, दरिद्र, जिसके पास कुछ न हो।

निष्किञ्चन—एक वैष्णव। भक्तमालमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—निष्किञ्चन हरिपाल एक ब्राह्मणके पुत्र थे। रात दिन ये विष्णुकी भक्तिमें लगे रहते और वैष्णवोंको सेवा करना हो ये अपने जीवनका मुख्य कर्त्तव्य समझते थे। धीरे धीरे वैष्णवसेवासे उनका सर्वस्व जाता रहा, एक कौड़ी पासमें न बची। एक दिन इसी विषयकी चिन्ता करते करते इन्होंने किसी एक जङ्गलमें प्रवेश किया। यहां इन्होंने यह निश्चय कर लिया कि जो कोई इस राहसे गुजरेगा, उसका सर्वस्व लूट कर उसीसे वैष्णवको सेवा करूंगा। इसी समय भगवान् रुक्मिणीके साथ उसी हो कर लीलास्थल पर पहुंच गए। निष्किञ्चनने रुक्मिणीके अलङ्कार लेनेके लिए उन्हें पकड़ा और कहा, 'जननि! तुम अपने शरीरके सभी अलङ्कार हमें उतार कर दे दो।' कृष्ण कौतुक करनेके लिए उस समय दस्यु को देख कर भाग गए। इधर रुक्मिणी अपनेको अकेली जान रोने लगी। निष्किञ्चनने तिस पर भी न माना, रुक्मिणीकी अङ्गूठी और कङ्कण छीन ही लिए और बोले, 'मातः! ये सब द्रव्य वैष्णवोंकी सेवाके लिए लेता हूं, न कि अपना पेट भरनेके लिए।' इसी समय कृष्ण अपनी मूर्त्ति धारण कर वहां उपस्थित हुए। निष्किञ्चन उनकी स्तुति करने लगे। बाद 'वैष्णव-सेवामें अचल भक्ति हो' इतना कह श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये।

निष्किरीय (सं० क्ली०) जातिविशेष।

निष्किल्विष (सं० त्रि०) निर्नास्ति किल्विषः यस्य। किल्विषशून्य, पापरहित।

निष्कुट (सं० पु०) कुटात् गृहात् निष्क्रान्तः वा निस्-कुट-क। १ गृहसमीपस्थ उपवन, घरके पासका बाग, नजरबाग। २ क्षेत्रविशेष, खेत। ३ कपाट, किवाड़। ४ अवरोध, अन्तःपुर, जनानामहल। ५ पर्वतविशेष, एक पर्वतका नाम।

निष्कुटि (सं० स्त्री०) निष्कुटी देखो।

निष्कुटिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचरमातृभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृकाका नाम।

निष्कुटी (सं० स्त्री०) निष्कुटि-ङीष्। एला, इलायची।

निष्कुतूहल (सं० त्रि०) कुतूहलशून्य।

निष्कुम्भ (सं० पु०) निस्-कुम्भ-अच्। १ दन्तीवृक्ष। (त्रि०) निर्गतः कुम्भो यस्मात्। २ कुम्भशून्य।

निष्कुल (सं० त्रि०) निर्गतं कुलं अवयवानां समूहो यस्मात्। १ अवयवसमूहशून्य। २ सपिण्डादि कुलरहित।

निष्कुलीन (सं० त्रि०) कौलिन्यशून्य।

निष्कुषित (सं० त्रि०) निस्-कुष-क्त। १ निष्काषित। २ आकृष्ट। ३ निःसारित। ४ निस्त्वचीकृत। ५ क्षतविक्षत। ६ खण्डित। (पु०) ७ मरुद्गणभेद।

निष्कुह (सं० पु०) नितरां कुहयति, कुह विस्मापने अच्। वृक्ष-कोटर, पेड़का खोड़रा।

निष्कृत (सं० त्रि०) १ मुक्त, छुटा हुआ। २ निश्चित, निश्चय किया हुआ। ३ मृत, मरा हुआ। ४ अपसारित, हटाया हुआ।

निष्कृति (सं० स्त्री०) निर्-कृ-क्तिन्। १ निस्तार, छुटकारा। २ निर्मुक्ति। ३ पापादिसे उद्धार। जो जानबूझ ब्राह्मणका वध करता है, उसकी निष्कृति नहीं है। ४ प्रायश्चित्त। ५ अग्निविशेष, एक अग्निका नाम।

(भारत ३।२१८।१४)

निष्कृप (सं० त्रि०) तीक्ष्ण, तेज, धारदार।

निष्कृष्ट (सं० त्रि०) निर्-कृष-क्त। १ सारांश। २ निश्चित।

निष्कैवल्य (सं० पु०) १ यज्ञिय स्तोमकारित शंसनात्मक शस्त्रभेद। २ यज्ञ द्वारा ग्रहणीय यज्ञपात्ररूप ग्रहभेद।

निष्कैवल्य (सं० त्रि०) केवलस्य भावः कैवल्यम्। निश्चितं कैवल्यं असहायत्वं यस्य। १ निश्चित केवलत्व। २ अन्यासहकारी, दूसरेको मदद नहीं पहुंचानेवाला। ३ निरपेक्ष। ४ निहत्तके वस्य। ५ मोक्षहीन।

निष्कोष (सं० पु०) निस्-कुष-घञ्। निष्कोषण, बहिर्निःसारण, बाहर निकालनेकी क्रिया।

निष्कोषण (सं० क्ली०) निर्-कुष-ल्युट्। अन्तरवयवका बहिर्निःसारण।

निष्कोषणक (सं० त्रि०) १ उत्तोलनयोग्य, उठाने लायक। २ उत्पाटनशील, उखाड़नेयोग्य। ३ अन्तरावयवसे विच्छिन्न। ४ निःसारित, अलग किया हुआ।

निष्कोषितव्य (सं० त्रि०) निस्-कुष-तव्य। निष्कोषणयोग्य।

निष्कौरव (सं० त्रि०) निर्नास्ति कौरवः यस्य। कौरवशून्य, बिना कौरवका।

निष्कौशाम्बि (सं० त्रि०) निर्गतः कौशाम्ब्याः नगर्याः, तत्सुखसमासे गोणत्वेन ह्रस्वः। कौशाम्बिनगरीसे निर्गत, जो कौशाम्बिनगरसे बाहर चला गया हो।

निष्क्रम (सं० पु०) निर्-क्रम-घञ्। १ गृहादिसे बहिर्गमन, घरसे बाहर निकलना। २ निष्क्रमणकी रीति, हिन्दुओंमें कोटि बच्चोंका एक संस्कार। ३ पतित होना। ४ मनकी वृत्ति। (त्रि०) ५ बिना क्रम या सिलसिलेका, बेतरतीब।

निष्क्रमण (सं० क्ली०) निर्-क्रम-ल्युट्। १ गृहादिसे बहिर्गमन, घरसे बाहर निकलना। २ दश प्रकारके संस्कारोंमेंसे एक संस्कार। जब बालक चार महीनेका होता है, तब निष्क्रमण किया जाता है।

शौनकने भी ऐसा ही कहा है।

"चतुर्थे मासि पुण्येऽह्नि शुभे निष्क्रमणं शिशोः।"

(शौनक)

किन्तु किसी किसी धर्मशास्त्रमें तृतीय मासमें भी निष्क्रमणका होना बतलाया है। यथा—

"मासे तृतीये शशिवृद्धिवह्नि क्षपाकरे शोभनगोचरस्थे।
उत्पातपापग्रहवर्जिते मे निष्क्रामणं शोभकरं शिशूनाम्॥"

(राजमार्त्तण्ड)

जन्मसे तृतीय मासमें बच्चोंका जो निष्क्रमण होता है, वह शुभप्रद माना गया है। निष्क्रमण शब्दका अर्थ बृहस्पतिने ऐसा लिखा है,—

"अथ निष्क्रमणं नाम गृहात् प्रथम निर्गमः।
अकृतायां कृतायां स्यादायुः श्रीनाशनं शिशोः॥"
(बृहस्पति)

बच्चोंका घरसे जो प्रथम निर्गमन या बाहर आना होता है, उसीका नाम निष्क्रमण है। बच्चोंका यथोक्त विधानसे यदि यह निष्क्रमण कार्य न किया जाय, तो उनकी आयु और भी नष्ट हो जाती है। यहां पर इस प्रकार अनिष्टफलश्रुति द्वारा निषेधविधि कही गई है अर्थात् यथोक्त विधानसे बच्चोंका निष्क्रमण अवश्य विधेय है। शास्त्रानुसार निष्क्रमणकार्य करनेसे सम्पत्तिवृद्धि और दीर्घायु प्राप्त होती है। यमसंहितामें लिखा है,—

"तृतीये मासि कर्त्तव्यं शिशोः सूर्य्यस्य दर्शनम्।
चतुर्थे मासि कर्त्तव्यमग्नेश्चन्द्रस्यदर्शनम्॥" (यम-स)

बच्चोंका तृतीयमासमें सूर्यदर्शन और चतुर्थमासमें अग्नि तथा चन्द्रदर्शन कर्त्तव्य है। गोभिलगृह्यसूत्रमें भी तृतीयमासमें निष्क्रमणका होना बतलाया है।

"जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्यतृतीयायाम्॥"
(गोभिल)

किसी किसी धर्मशास्त्रके मतसे तृतीय मासमें और किसीके मतसे चतुर्थ मासमें निष्क्रमणका काल बतलाया है। इसमें परस्पर विरोध उपस्थित होता है। किन्तु ज्योतिस्तत्त्वमें इसकी व्यवस्था इस प्रकार लिखी है,—सामवेदियोंको तृतीय मासमें और यजुर्वेदियों तथा ऋग्वेदियोंके चतुर्थमासमें निष्क्रमण करना चाहिए।

'मासे तृतीय इति तु छन्दोगानां गोभिलेन
जननान्तरं तृतीय शुक्लतृतीयायामिति" (ज्योतिस्तत्त्व)

निष्क्रमणके विहित दिन,—रिक्ताभिन्न तिथि अर्थात् चतुर्थी, अष्टमी और चतुर्दशी भिन्न तिथि, शनि और मङ्गल भिन्नवार एवं आर्द्रा, अश्लेषा, कृत्तिका, भरणी, मघा, विशाखा, पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद और शतभिषा भिन्न नक्षत्र, कन्या, तुला, कुम्भ और सिंह-लग्नमें तीसरे या चौथे मासमें बच्चोंका जो निष्क्रमण होता है वह प्रशस्त है।

सामवेदियोंके लिये निष्क्रमणका विषय भवदेव भट्टने इस प्रकार लिखा है,—शिशुको जनन-दिवससे तृतीय शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें प्रातःकाल स्नान करावे। पीछे दिवावसान होने पर, सायं सन्ध्या करनेके बाद जातशिशुका पिता चन्द्रमाकी ओर कृताञ्जलि हो खड़ा रहे। अनन्तर माता शिशुद्ध वस्त्रसे कुमारको ढक कर दक्षिणको ओर अपने स्वामीके वामपार्श्वमें पश्चिमको मुख किए खड़ी रहे और शिशुका मस्तक उत्तरकी ओर करके पिताको समर्पण कर दे। इतना हो जाने पर माता स्वामीके पीछे हो कर उत्तरको ओर चली जाय और चन्द्रमाकी ओर मुँह किये खड़ी रहे। इस समय पिताको निम्नलिखित मन्त्रका जप करना चाहिए—

मन्त्र—"प्रजापति ऋर्षिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यत्ते सुषीमे हृदयं हितमन्तः प्रजापतौ वेदाहं मन्ये तद्ब्रह्ममाहं पौत्रमघं नियाम्।

प्रजापति ऋर्षिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रो देवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यत् पृथिव्या अनामृतं दिवि चन्द्रमसि श्रितं वेदामृतस्याहं वेद नाममाहं पौत्रमघं रुषम्।

प्रजापति ऋर्षिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्राग्नी देवते कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं इन्द्राग्नी शर्म यच्छतं प्रजायै मे प्रजापती यथायं न प्रमीयते पुत्रो जनित्र्या अधि।" इन तीन मन्त्रोंका जप करके पिता पुत्रको चन्द्रदर्शन करावे, पीछे चन्द्रमाको अर्घ्य दे। अर्घमन्त्र—

"क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव।
गृहाणार्घं शशांकेदं रोहिण्या सहितोमम॥"

सूर्यको अर्घ्य देना हो, तो इस मन्त्रसे दे—

"एहि सूर्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते।
अनुकम्पय मां भक्त्यं गृहाणार्घं दिवाकर॥"

बादमें पिता उसी प्रकार कुमारको उत्तर मुंह किए माताकी गोदमें दे दे। पीछे यथाविधि 'वामदेव्य' आदि द्वारा शान्तिकर्म करके गृहप्रवेश करे। अनन्तर अपर शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिमें सायं सन्ध्याके बाद पिता चन्द्राभिमुख हो कर जलाञ्जलि ग्रहण करे। बादमें इस मन्त्रसे जलाञ्जलिका त्याग कर दे,—

मन्त्र—"प्रजापति ऋर्षिरनुष्टुप्छन्दश्चन्द्रोदेवता कुमारस्य चन्द्रदर्शने विनियोगः। ओं यददश्चन्द्रमसि कृष्णं पृथिव्या हृदयं श्रितं तदहं विद्वांस्तत् पश्यन्माहं पौत्र-

मघं इदम्।' पीछे अमन्त्रक दो बार जलाञ्जलि देनी पड़ती है।

इतना हो जाने पर शान्तिकार्य और अच्छिद्राव धारण करके गृहप्रवेश करे। (भवदेवभट्ट) ३ संसारासक्तित्यागान्तमें वनगमन, सांसारिक विषयवासनाके बाद वनका जाना।

निष्क्रमणिका (सं० स्त्री०) चार महीनेके बालकको पहले पहल घरसे निकाल कर सूर्यके दर्शन कराना।

निष्क्रमणित (सं० त्रि०) निष्क्रमण सञ्जातमस्य तारकादित्वादितच्। सञ्जातनिष्क्रमणेष्ट, जिसका निष्क्रमण संस्कार हो चुका हो।

निष्क्रय (सं० पुं०) निष्क्रीयते विनिमीयतेऽनेनेति निर्-क्री-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) १ भृति, वेतन, तनखाह। २ विनिमयद्रव्य, वह वस्तु जो बराबर मोलकी वस्तुसे बदला की गई हो। ३ विक्रय बिक्री। ४ क्रय, खरीदना। ५ सामर्थ्य, शक्ति। ६ पुरस्कार, इनाम। ७ बुद्धियोग। ८ निर्गमन। ९ प्रत्युपकार।

निष्क्रामण (सं० क्ली०) निर्-क्रम-णिच्-ल्युट्। निष्क्रमण देखो।

निष्क्रिय (सं० त्रि०) निर्गता क्रिया, ततो मत्वम्। क्रिया-व्यापार शून्य, जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो।

"निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरपेक्षं निरञ्जनम्॥"

(श्रुति)

आत्मा निर्गुण है, निष्क्रिय है, उसका कोई कार्य नहीं है।

"निष्क्रियस्य तदसम्भवात्।" (सांख्यद० ११४७)

आत्मा यदि निष्क्रिय हो, तो उसकी गति किस प्रकार हो सकती है? जो निष्क्रिय है उसकी गति असम्भव है। पूर्ण और सर्वव्यापक आत्माका कहीं भी प्रवेश और निर्गम नहीं है। आकाश क्या कभी कहीं जाता वा आता है? जो परिच्छिन्न वस्तु है, उसीका प्रवेश और निर्गम होता है, दूसरेका नहीं। आत्माको यदि परिच्छिन्न मान लें, तो वह अपकृष्ट सिद्धान्त होगा, यह प्रमाणसे बाहर है।

श्रुतिमें आत्माकी परलोकगतिरूप क्रियाका उल्लेख है सही, किन्तु वह औपाधिक है, यथार्थ नहीं। आत्माकी लिङ्गशरीररूप उपाधि है, यह परलोकमें गमनागमन करती है। ऐसा देख कर श्रुतिने उपचारक्रमसे तदुपहित आत्माकी परलोकगतिकी वर्णना की है। सच पूछिये तो आत्मा कहीं भी नहीं जाती। जिस प्रकार घटके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके बाद तदुपहित आकाश गया है ऐसा उल्लेख किया जाता है, श्रुतियुक्त आत्माकी गतिको भी ठीक उसी प्रकार जानना चाहिए। अतएव आत्मा निष्क्रिय है।

निष्क्रियता (सं० स्त्री०) निष्क्रियस्य भावः, तल्-टाप्। निष्क्रिय होनेका भाव या अवस्था।

निष्क्रियात्मता (सं० स्त्री०) निष्क्रिय आत्मा यस्य, निष्क्रियात्मन्, तस्य भावः तल्-टाप्। निष्क्रिय स्वरूपता, निर्यत्न, अनवधानता।

निष्क्रीति (सं० स्त्री०) मुक्ति।

निष्क्रोध (सं० त्रि०) निर्नास्ति क्रोधः यस्य। क्रोधहीन, जिसे गुस्सा न हो।

निष्क्लेश (सं० त्रि०) १ क्लेशहीन, सब प्रकारके कष्टोंसे मुक्त। २ बौद्धमतानुसार दशों प्रकारके क्लेशोंसे मुक्त।

निष्क्लेशलेश (सं० त्रि०) निर्नास्ति क्लेशलेशः यस्य। क्लेशलेशशून्य, सब प्रकारके कष्टोंसे मुक्त।

निष्क्वाथ (सं० पु०) निःसृतः क्वाथो यत्र। मांसादिका क्वाथ, मांस आदिका रस, शोरवा। इसका पर्यायवाची शब्द रसक है।

निष्टक्वन् (सं० त्रि०) निर्-तक-सहने-क्वनिप्, ततो वेदे साधुः। नितरां सहनशील।

निष्टक्वरी (सं० स्त्री०) निष्टक्वन् वनोरश्च इति ङीप्, रश्चान्तादेशः। नितान्त सहनशीला।

निष्टपन (सं० क्ली०) जलाना।

निष्टप्त (सं० त्रि०) १ उज्ज्वलीकृत, चमका दिया हुआ। २ उत्कृष्ट रन्धनयुक्त, अच्छी तरह पकाया हुआ।

निष्टर्क्य (सं० त्रि०) १ उधेड़ कर छुटकारा देना। २ तर्कका अयोग्य।

निष्टानक (सं० पु०) नितान्तस्तानकः शब्दभेदः, ततो मत्वं टुत्वञ्च। सव्यय शब्द, पानीकी सी आवाज होना।

निष्टि (सं० स्त्री०) निश-समाधौ-क्तिच्। दक्षकी कन्या और कश्यपकी स्त्री दितिका एक नाम।

निष्टिग्री (सं॰ स्त्री॰) अदितिका एक नाम।

निष्टुर् (सं॰ त्रि॰) निस्-तृ-क्विप् वेदे बाहुलकात् उ, ततो षत्वं टुत्वञ्च। शत्रुओंका अभिभावक, शत्रु-विजेता।

निष्ट्य (सं॰ पु॰) निर्गत्य स्त्यायते स्त्यै-क। निस्-गतार्थे त्यप् वा, (अव्ययात् त्यप्। पा ४.२।१०४) इत्यस्य 'निसो गते' इति वार्त्तिकोक्त्या त्यप्, ततो विसर्गलोपः षत्वं टुत्वञ्च। १ चण्डालादि। २ म्लेच्छ जातिभेद, म्लेच्छोंको एक जातिका नाम जिसका उल्लेख वेदोंमें है।

निष्ठ (सं॰ त्रि॰) नितरां तिष्ठतीति नि-स्था-क। १ स्थित, ठहरा हुआ। २ तत्पर, लगा हुआ। ३ जिसमें किसीके प्रति श्रद्धा या भक्ति हो।

निष्ठा (सं॰ स्त्री॰) नितरां तिष्ठतीति, नि-स्था-क, ततो षत्वं स्त्रियां टाप्-च। १ निष्पत्ति, इति, समाप्ति। २ नाश। ३ सिद्धावस्थाकी अन्तिम स्थिति, ज्ञानकी वह चरमावस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्मकी एकता हो जाती है। ४ निर्वहन, निर्वाह, गुजर। ५ धर्मादिमें श्रद्धा, चित्तका जमना। धर्मादिविषयमें ऐकान्तिक अनुरागका नाम निष्ठा है। यह निष्ठा दो प्रकारकी है—ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा। विवेकियोंके लिये ज्ञाननिष्ठा और कर्मयोगियोंके लिये कर्मनिष्ठा हो प्रशस्त है। इस धर्मनिष्ठा द्वारा जगत्में प्रतिष्ठा होती है, नैष्ठिक व्यक्ति बहुत आसानीसे अपने धर्मको रक्षा करनेमें समर्थ होते हैं। ६ धर्म, गुरु या बड़े आदिके प्रति श्रद्धा भक्ति, पूज्यबुद्धि। ७ अवधारण, निश्चय। ८ व्याकरण-परिभाषित क्त, क्तवतु प्रत्यय। ९ स्थिति, अवस्था, ठहराव। नितरां तिष्ठन्ति भूतान्यत्र आधारे बाहुलकात् अ। १० प्रलय-कालमें सर्वभूतस्थितिके आधार विष्णु, जिनमें प्रलयके समय समस्तभूतोंको स्थिति होगी। ११ चिकित्सा।

निष्ठागत (सं॰ त्रि॰) निष्ठां गतः, 'द्वितीयाश्रितेतरादिना द्वितीया तत्पुरुषः। निष्ठाप्राप्त।

निष्ठान (सं॰ क्ली॰) नि-स्था-करणे ल्युट्। व्यञ्जन, चटनी आदि।

निष्ठानक (सं॰ पु॰) १ नागभेद, एक नागका नाम। निष्ठान स्वार्थे कन्। निष्ठान, व्यञ्जन, चटनी आदि।

निष्ठान्त (सं॰ त्रि॰) निष्ठा नाशोऽन्ते यस्य। नाशान्त वस्तु, जिसका नाश अवश्य हो, जो अविनाशी न हो।

निष्ठाव (सं॰ त्रि॰) निष्ठायुक्त।

निष्ठावत् (सं॰ त्रि॰) निष्ठा विद्यतेऽस्य, निष्ठा मतुप् मस्य व। निष्ठायुक्त, जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो।

निष्ठावान् (हिं॰ वि॰) निष्ठावत् देखो।

निष्ठित (सं॰ त्रि॰) नि-स्था-क्त। १ स्थित, दृढ़, ठहरा या जमा हुआ। २ निष्ठायुक्त, जिसमें निष्ठा हो। ३ सम्यक् ज्ञाता।

निष्ठीव (सं॰ पु॰) नि-ष्ठिव भावे घञ्, बाहुलकात् दीर्घः। ष्ठीवन, थूक।

निष्ठीवन (सं॰ क्ली॰) नि-ष्ठिव-भावे ल्युट्, ष्ठिवुसिव्योः ल्युटि दीर्घो वा इति दीर्घः वा पृषोदरादित्वात् साधुः। १ मुख द्वारा श्लेष्मादिका वमन, थूक। पर्याय-निष्ठेव, निष्ठ्यूति, निष्ठेवन, निष्ठेवा। २ वैद्यकके अनुसार एक औषध। इस औषधको कुल्ली करनी पड़ती है, इसीसे इसका नाम निष्ठीवन पड़ा है। सैन्धव, सोंठ, पीपर और मिर्चका चूर्ण बना कर उसे अदरकके रसमें मिलावे। बाद उसे भर मुंह ले कर कुछ काल तक रहने दे। ऐसा करनेसे हृदय, मन्या, पार्श्व, मस्तक और गलेमेंसे कफ आसानीसे निकलने लगता है और शरीर कुछ हलका मालूम पड़ता है। इसके सेवन करने-से पर्वभेद ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, कास, गलरोग, मुख और चक्षुका भार, जड़ता, उत्क्लेद आदि रोग जाते रहते हैं। दोषके बलाबलका विचार कर एक, दो, तीन वा चार बार तक भी निष्ठीवन व्यवहार्य है। यह सान्निपातिक रोगकी अति उत्कृष्ट औषध है।

(भैषज्यरत्नावली ज्वराधिकार)

निष्ठीविका (सं॰ स्त्री॰) निष्ठीवन।

निष्ठीवित (सं॰ क्ली॰) निष्ठीवं करोति क्तौ नि-ष्ठीव-णिच्-भावे-क्त। निष्ठीवनकरण, थूक फेंकनेकी क्रिया।

निष्ठुर (सं॰ क्ली॰) नि-स्था-मद्गुरादयश्चेति उरच्। १ अश्लील वाक्य। (त्रि॰) २ कठिन, कड़ा, सख्त। ३ कठोर, क्रूर, बेरहम।

निष्ठुरता (सं॰ स्त्री॰) निष्ठुरस्य भावः निष्ठुर-तल्-टाप्। १ निष्ठुरका कार्य, कठोरता, कड़ाई, सख्ती। २ निर्दयता, क्रूरता, बेरहमी।

निष्ठुरिक (सं० पु०) नागभेद, एक नागका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है।

निष्ठ्यूत (सं० त्रि०) नि-ष्ठिव-क्त ततो ऊट्। (च्छ्वोः शूडिति। पा ६।४।१९) १ क्षिप्त, फेंका हुआ। २ उद्गीर्ण, उगला हुआ, मुँहसे निकाला हुआ।

निष्ठ्यूति (सं० स्त्री०) नि-ष्ठीव-क्तिन्। निष्ठीवन, थूक

निष्ठेव (सं० पु०) नि-ष्ठीव-वञ्। १ निष्ठीवन, थूक

निष्ठेवन (सं० क्ली०) नि-ष्ठिव-भावे ल्युट्। निष्ठीवन, थूक।

निष्ण (सं० त्रि०) नि-स्ना-क, 'निनदीभ्यां स्नातेः कौशले' इति सूत्रेण षत्वं, षत्वे ष्टुत्वं। कुशल, होशियार।

निष्णात (सं० त्रि०) नितरां स्नाति स्नोति नि-स्ना-क्त, ततो षत्वं, षत्वे ष्टुत्वं (निनदीभ्यां स्नातेः कौशले। पा ८।३।८९) १ विज्ञ, किसी विषयका अच्छा ज्ञाता। २ निपुण, कुशल, चतुर। ३ पारगत, पूरा जानकार ४ प्रधान, श्रेष्ठ, मुखिया।

निष्पक्व (सं० त्रि०) नितान्तं पक्वम्। क्वथित, पकाया हुआ, उबाला हुआ।

निष्पक्ष (सं० त्रि०) पक्षपातरहित, जो किसीके पक्षमें न हो।

निष्पक्षता (सं० स्त्री०) निष्पक्ष होनेका भाव, पक्षपात न करनेका भाव।

निष्पङ्क (सं० त्रि०) पङ्कशून्य, निर्मल, साफ, सुथरा।

निष्पतन (सं० क्ली०) निर्-पत-ल्युट्। निर्गमन, बाहर होना।

निष्पताकध्वज (सं० पु०-स्त्री०) राजाओंका पताकाशून्य दण्डविशेष, प्राचीन कालका एक प्रकारका दण्ड जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे। यह दण्ड ठीक पताकाके दण्डके समान होता था, अन्तर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी।

निष्पतिष्णु (सं० त्रि०) निर्-पत-बाहुलकात् इष्णुच्, ततो षत्वं। नितान्त पतनशील, गिरने योग्य।

निष्पतिसुता (सं० स्त्री०) निर्गतो पतिः सुतश्च यस्याः, ततो वाच्य षत्वं। अवीरा स्त्री, वह स्त्री जिसे स्वामी-पुत्र न हो, सुतसन्तान।

निष्पत्ति (सं० स्त्री०) निर्-पद-क्तिन्। १ समाप्ति, अन्त। २ सिद्धि, परिपाक। ३ नादकी अवस्थाविशेष, हठयोगके अनुसार नादकी चार प्रकारकी अवस्थाओंमेंसे अन्तिम अवस्था। चार अवस्थाओंके नाम ये हैं, आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। ४ अवधारण, निश्चय। ५ चुकता, अदा। ६ मीमांसा। ७ निर्वाह, निबाह। ८ अनुपात (Ratio)।

निष्पत्र (सं० त्रि०) निर्गतं अस्य पार्श्वेन निःसृतं पत्रं शरपुङ्खो यस्य। १ जो मनुष्य शर मृगका एक पार्श्व छेद कर दूसरा पार्श्व हो कर निकल जाय। २ जिसमें पत्ते न हो, बिना पत्तोंका।

निष्पत्रक (सं० त्रि०) निर्गतं पत्रं पर्णं यस्य कप्। १ पत्रशून्य, जिसमें पत्ते न हो। (पु०) २ करीरवृक्ष, करीलका पेड़।

निष्पत्रिका (सं० स्त्री०) निष्पत्र-क-टाप्, टापि अत इत्वम्। करीरवृक्ष, करीलका पेड़।

निष्पत्राकृति (सं० स्त्री०) निष्पत्र-डाच्-कृ-भावे-क्तिन्। अतिव्यथन, अत्यन्त कष्ट, भारी तकलीफ।

निष्पद् (सं० स्त्री०) निर्-पद-क्विप्। १ निर्गत, बाहर निकालना।

निष्पद (सं० त्रि०) १ पादहीन, बिना पहिए या पैरका। (क्ली०) निर्गतं पदं पादो यस्य, ततो षत्वम्। २ पाद-हीन यान, वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हो।

निष्पदी (सं० स्त्री०) निर्गतः पादोऽस्याः पादोऽन्तलोपः, ततो कुम्भपद्यादित्वात् ङीष्, पद्भावः विसर्गस्य षः। १ पदहीना स्त्री, बिना पैरकी औरत।

निष्पन्द (सं० त्रि०) निर्गतः स्पन्दो यस्य। स्पन्दन-रहित, जिसमें किसी प्रकारका कम्प न हो।

निष्पन्दन (सं० त्रि०) स्पन्दनशून्य, कम्पनरहित।

निष्पन्न (सं० त्रि०) निर्-पद-क्त। १ निष्पत्तिविशिष्ट, जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो। २ सम्पन्न, जो समाप्त या पूरा हो चुका हो।

निष्पराक्रम (सं० त्रि०) सामर्थ्यहीन, कमजोर।

निष्परिकर (सं० त्रि०) १ जो युक्तहस्त नहीं हो। २ जो प्रस्तुत नहीं है, बिना किसी तैयारीका। ३ दृढ़सङ्कल्प-हीन।

निष्परिग्रह (सं० त्रि०) निर्गतः परिग्रहः यस्य।

विषयादि सन्निरहित, जिसे कोई सम्पत्ति न हो। २ जो दान आदि न ले। ३ जिसके स्त्री न हो, रँडुआ। ४ अविवाहित, कुँवारा।

निष्परिच्छद (सं० त्रि०) १ परिच्छदशून्य, विना कपड़े का। २ अनुचरशून्य, विना नौकरका।

निष्परिदाह (सं० त्रि०) जो दग्ध न हो सके, जो सहज में न जले।

निष्परीक्ष (सं० त्रि०) जिसकी परीक्षा न हो।

निष्परीहार (सं० त्रि०) जिसका परिहार न हो।

निष्परुष (सं० त्रि०) १ कोमल, जो सुननेमें कर्कश न हो। २ जो कर्कश या कठोर न हो।

निष्पवन (सं० क्ली०) निस् पू-भावे ल्युट्, ततो षत्वं। धान्यादिका निस्तुषकरण, धान आदिको भूसी निकालना, कूटना, छाँटना।

निष्पाण्डव (सं० त्रि०) पाण्डवशून्य।

निष्पाद् (सं० पु०) निर्गतौ पादौ यस्य, अन्त्यलोपः ततो विसर्गस्य षः। निर्गतपादक।

निष्पाद (सं० पु०) १ अनाजकी भूसी निकालनेका काम। २ बोड़ा नामकी तरकारी या फली। ३ मटर। ४ सेम।

निष्पादक (सं० त्रि०) निर्-पद्-णिच्-ण्वुल्। निष्पत्तिकारक, निष्पत्ति करनेवाला।

निष्पादन (सं० क्ली०) निर्-पद-णिच्-ल्युट्। निष्पत्तिकरण, निष्पति करना।

निष्पादित (सं० त्रि०) निर्-पद-णिच्-क्त। १ सम्पादित। २ उत्पादित। ३ चेष्टित।

निष्पादी (सं० स्त्री०) बोड़ा नामकी तरकारी या फली, लोबिया।

निष्पाद्य (सं० स्त्री०) निस्-पद-णिच्-यत्। सम्पाद्य, निर्वाह करने योग्य।

निष्पान (सं० क्ली०) निःशेषरूपसे पान, इस प्रकार पा लेना कि कुछ भी बच न रहे।

निष्पाव (सं० पु०) निष्पूयते तुषाद्यपनयनेन शोध्यतेऽनेन निर्-पू-करणे घञ्। १ धान्यादिका निस्तुषीकरण, अनाजकी भूसी निकालनेका काम। पर्याय—पवन, पव, पूतीकरण। २ सूर्पादिको वायु, सूपकी हवा, जिससे धानकी भूसी आदि उड़ाई जाती हैं। ३ राजमाष, लोबिया। ४ निर्विकल्प। ५ कड़ङ्कर, भूसी, पैरा। ६ श्वेतशिम्बी, सफेद सेम। भावप्रकाशमें निष्पाव, राजशिम्बी, वल्लक और श्वेतशिम्बिक एक पर्यायक शब्द बतलाए गये हैं। गुण—मधुर, कषायरस, रुच, अम्ल, विपाक, गुरु, सारक, स्तन्य, पित्त रक्त, मूत्र, वायु और विष्ठाविबन्धजनक, उष्णवीर्य, विष, कफ, शोथ और शुक्रनाशक है। ७ द्विगुञ्जा परिमाण।

निष्पावक (सं० पु०) निष्पाव एव स्वार्थे कन्। श्वेतशिम्बी, सफेद सेम।

निष्पावी (सं० स्त्री०) निष्पाव-स्त्रियां ङीष्। शिम्बीविशेष, बोड़ा नामकी तरकारी या फली। यह दो प्रकारको होती है, हरिद्वर्णकी और शुभ्रवर्णकी। हरिद्वर्णके पर्याय—ग्रामजा, फलिनी, नखपूर्विका, मण्डपो फलिका, शिम्बी, गुच्छफला, विशालफलिका, निष्पावि और चिपिटा। शुभ्राके पर्याय—अङ्गुलिफला, नखनिष्पाविका, वृन्तनिष्पाविका, ग्राम्या, नख-गुच्छफला और अग्रना। गुण—कषाय, मधुर रस, कण्ठशुद्धिकर, मेध्य, दीपन और रुचिकारक।

निष्पिष्ट (सं० त्रि०) नि-पिष-क्त। चूर्णीकृत, चूर किया हुआ।

निष्पीड़ (सं० त्रि०) निस्-पीड़-अच्। निष्पीड़न, निचोड़ना।

निष्पीड़न (सं० क्ली०) निस्-पीड़-ल्युट्। निपीड़न, निचोड़ना, गीले कपड़ेको दबा कर उसमेंसे पानी निकालना।

निष्पीड़ित (सं० त्रि०) निस्-पीड़-क्त। जो निचोड़ा गया हो।

निष्पुलिगन्धिक (सं० त्रि०) स्वर्गीय वा देवभोग्य चावलको सद्गन्धविशिष्ट।

निष्पुत्र (सं० त्रि०) निर्नास्ति पुत्रः यस्य। अपुत्रक, जिसके पुत्र न हो।

निष्पुराण (सं० त्रि०) पुराणशून्य, पुरातनरहित, नया।

निष्पुरुष (सं० त्रि०) पुरुषशून्य, पुरुषहीन, जहां आदमी न हो।

निष्पुलाक (सं० त्रि०) निर्गत-पुलाको यस्मात्। १

पुलाकरहित, जिसमें भूँसी आदि न हो। (पु०) २ जैनभेद, आगामी उत्सर्पिणीके अनुसार १४वें अर्हत्का नाम।

निष्पेष (सं० पु०) निर्-पिष्-घञ्। १ निष्पोड़न, निचोड़ना। २ निघर्षण, घिसना, रगड़ना। ३ चूर्णन, चूर करना। अभावार्थे अव्ययीभाव। ४ पेषणाभाव।

निष्पेषण (सं० क्ली०) निर्-पिष्-ल्युट्। घर्षण, घिसना, पीसना।

निष्पौरुष (सं० त्रि०) पौरुषहीन, जिसमें पुरुषत्व न हो।

निष्प्रकम्प (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकम्पो यस्य। १ प्रकृष्ट कम्पशून्य। (पु०) २ त्रयोदश मन्वन्तरीय सप्तर्षिभेद, पुराणानुसार तेरहवें मन्वन्तरके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम।

निष्प्रकारक (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकारकः यस्य। प्रकारकशून्य, निर्विकल्पक, जिसमें ज्ञाता और ज्ञेयमें भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं।

निष्प्रकाश (सं० त्रि०) निर्गतः प्रकाशः यस्मात्। प्रकाशहीन, जिसमें रोशनी न हो।

निष्प्रचार (सं० त्रि०) प्रचारशून्य, जो एक स्थानसे दूसरे स्थान पर न जा सके, जिसमें गति न हो।

निष्प्रताप (सं० त्रि०) प्रतापहीन, हेय, नीच।

निष्प्रतिक्रिय (सं० त्रि०) प्रतिक्रियारहित, प्रतीकारहीन, जिसका प्रतीकार न किया जाय।

निष्प्रतिग्रह (सं० त्रि०) प्रतिग्रहहीन।

निष्प्रतिघ (सं० त्रि०) प्रतिबन्धकशून्य, जिसमें कोई रोकटोक न हो।

निष्प्रतिद्वन्द्व (सं० त्रि०) प्रतिद्वन्द्वरहित।

निष्प्रतिपक्ष (सं० त्रि०) प्रतिपक्षशून्य, शत्रुहीन।

निष्प्रतिभ (सं० त्रि०) निर्नास्ति प्रतिभा यस्य। १ अज्ञ, नासमझ, नादान। २ जड़, मूर्ख। निर्गता प्रतिभा दीप्तिर्यस्य। ३ दीप्तिशून्य, जिसमें चमक दमक न हो।

निष्प्रतिभान (सं० त्रि०) भीरु, कापुरुष, कायर, निकम्मा।

निष्प्रतीकार (सं० त्रि०) प्रतीकाररहित, विघ्नशून्य।

निष्प्रतीप (सं० त्रि०) सम्मुखदृष्टि, दर्शनविहीन दृष्टि।

निष्प्रत्यूह (सं० त्रि०) निर्गतः प्रत्यूहः बाधा यस्य। प्रत्यूहरहित, निर्विघ्न, जिसमें कोई विघ्न न हो।

निष्प्रधान (सं० त्रि०) प्रधानशून्य, नेतृहीन।

निष्प्रपञ्च (सं० त्रि०) प्रपञ्चशून्य, सत्स्वरूप।

निष्प्रपञ्चात्मन् (सं० पु०) शिव, महादेव।

निष्प्रभ (सं० त्रि०) निर्गता प्रभा यस्य। प्रभाशून्य, जिसमें किसी प्रकारकी प्रभा या चमक न हो। पर्याय—विगत, अरोक।

निष्प्रभाव (सं० त्रि०) प्रभावरहित, सामर्थ्यहीन।

निष्प्रमाणक (सं० त्रि०) प्रमाणशून्य, जिसका कोई सबूत न हो।

निष्प्रयत्न (सं० त्रि०) यत्नहीन, उपायरहित।

निष्प्रयोजन (सं० त्रि०) निर्गतं प्रयोजनं यस्मिन्। १ प्रयोजनरहित, जिसमें कोई मतलब न हो। २ जिसमें कुछ अर्थ सिद्ध न हो। ३ निरर्थक, व्यर्थ। (क्रि० वि०) ४ बिना अर्थ या मतलबका। ५ व्यर्थ, फजूल।

निष्प्रवाण (सं० त्रि०) नितरां प्रकर्षेण उयते, निर्-प्र-वे-करणे ल्युट्। तन्तुविमुक्त वास, जो कपड़ा अभी तुरत तांत परसे निकाला गया हो।

निष्प्रवाणि (सं० त्रि०) निर्गता प्रवाणी तन्तुवायशलाका अस्मादस्य वा। (निष्प्रवाणिश्च। पा ५।४।१६०) इति-निपात्यते। नूतनवस्त्र, नया कपड़ा। पर्याय—अनाहत, तन्त्रक, नवाम्बर, आहत, अहत, नववस्त्र।

निष्प्राण (सं० त्रि०) निर्गताः प्राणाः प्राणवायवः यस्य। श्वासप्रश्वासादिशून्य, मुर्दा, मरा हुआ।

निष्प्रीति (सं० त्रि०) निर्नास्ति प्रीतिर्यस्य। प्रीतिशून्य, जिसमें प्रेम न हो।

निष्फल (सं० त्रि०) निर्गतं फलं यस्मात्। १ फलशून्य, जिसका कोई फल न हो। २ अण्डकोषरहित, जिसमें अण्डकोष न हो। (पु०) ३ धानका पयाल, पूला।

निष्फला (सं० स्त्री०) निर्गतं फलं यस्याः टाप्। १ विगतरजस्का स्त्री, वह स्त्री जिसका रजोधर्म होना बन्द हो गया हो, पचास वर्षसे ऊपरकी स्त्री। पर्याय—निष्कली, निष्फली, निष्कला, विकली, विकला, ऋतुहीना, विरजा, विगतार्त्तवा। ५५ वर्षकी अवस्थासे स्त्रियोंका रजोधर्म होना बन्द हो जाता है, उस समयसे और कोई सन्तान जन्म नहीं लेती। इसी कारण उनका निष्फला नाम पड़ा है।

निष्फलि (सं॰ पु॰) अस्त्रोंके निष्फल करनेका अस्त्र। वाल्मीकिके अनुसार जिस समय विश्वामित्र अपने साथ रामचन्द्रको वनमें ले गए थे उस समय उन्होंने रामचन्द्र-को और और अस्त्रोंके साथ यह अस्त्र भी दिया था।

निष्फली (सं॰ स्त्री॰) १ निष्फला, वृद्धा स्त्री। २ वन्ध्या-ककोंटी, बांझ ककड़ी।

निष्फेन (सं॰ त्रि॰) निर्गतं फेनं यस्मा। फेनरहित, जिसमें फेन न हो।

निष्यन्द (सं॰ पु॰) नि-स्पन्द-भावे घञ्, बाहुलकात् षत्वं। १ क्षरण, जल आदिका गिरना। (त्रि॰) निस्पन्द-अच्। २ निस्पन्दयुक्त।

निष्यूत (सं॰ त्रि॰) नि-सिव-क्त, ततो ऊट् षत्वम्। नितान्त ग्रथित।

निष्षन्धि (सं॰ त्रि॰) निर्गतः सन्धिः सन्धानं यस्य, सुषामादित्वात् षत्वम्। सन्धिरहित।

निष्षम (सं॰ अव्य॰) निर्गता समा यस्य, तिष्ठद्गुप्रभृतीनि च सूत्रानुसारे अव्ययीभावः, ततो षत्वम्। वत्सरातीत।

निष्षामन् (सं॰ त्रि॰) निर्गतं साम यस्य, सुषामादि-त्वात् षत्वम्। सामशून्य।

निष्षेध (सं॰ पु॰) निस्-सिध-भावे घञ्, ततो सुषा-मादित्वात् षत्वं। नितान्त सेध।

निस् (सं॰ अव्य॰) निस्-क्विप्। उपसर्गभेद, एक उप-सर्गका नाम। इस उपसर्गसे निम्नलिखित अर्थोंका बोध होता है। १ निषेध। २ निश्चय। ३ साकल्य। ४ अतिक्रम। निर् और निस् ये दोनों उपसर्ग एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। निर् देखो।

निसंकल्प (सं॰ त्रि॰) संकल्परहित।

निसंज्ञ (सं॰ त्रि॰) संज्ञाहीन।

निसक (हिं॰ वि॰) अशक्त, कमजोर, दुर्बल।

निसतार (हिं॰ पु॰) निस्तार देखो।

निसबत (अ॰ स्त्री॰) १ सम्बन्ध, लगाव, ताल्लुक। २ विवाह सम्बन्धकी बात, मंगनी। ३ अपेक्षा, तुलना, मुकाबला।

निसम्पात (सं॰ पु॰) निवृत्तं संपातः सञ्चारो यत्र। निशीथ, दोपहर रात।

निसर (सं॰ त्रि॰) निसरति नि-सृ-अच्। नितान्त गामुक, खूब चलनेवाला।

निसर्ग (सं॰ पु॰) नि-सृज्-घञ्। १ स्वभाव, प्रकृति। २ स्वरूप, आकृति। ३ सृष्टि। ४ दान।

निसर्गज (सं॰ त्रि॰) निसर्गाज्जायते जन-ड। १ स्वभाव जात, जो स्वभावसे उत्पन्न हो।

निसर्गायुस् (सं॰ क्लो॰) आयुर्विषयक गणनाभेद, एक प्रकारकी गणना जिससे किसी व्यक्तिकी आयुका पता लगाया जाता है। वृहज्जातक आदि ज्योतिःग्रन्थोंमें इसका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है,—

सबसे पहले आयुकी गणना नितान्त आवश्यक है। क्योंकि मनुष्यको परमायुके ऊपर ऐहिक और पारत्रिक सभी कार्य निर्भर हैं। यह आयुर्गणना चार प्रकारकी है—अंशायुः, पिण्डायुः, निसर्गायुः और जीवायुः। इन-मेंसे जिनका लग्न बलवान् है, उनके लिए अंशायुःकी, सूर्यके बलवान् होनेसे पिण्डायुःको, चन्द्रके बलवान् होनेसे निसर्गायुःकी और जिनके लग्न, चन्द्र और रवि ये तीनों बलहीन हैं उनके लिए जीवायुःकी गणना करनी होती है। आयुर्गणनामें ग्रहोंकी उच्च और नीच राशि तथा उच्चांश और नीचांशका जानना आवश्यक है।

जिसके जन्मकालमें लग्न और चन्द्र दोनों ही बल-वान् हों, उसकी अंशायुः और निसर्गायुः दोनों प्रकारसे गणना की जाती है; गणना करके दोनों आयुके अङ्कोंको जोड़ दें। अब योगफलको दोसे भाग दे कर जो कुछ उत्तर निकलेगा, वही उस मनुष्यकी आयु है; ऐसा जानना चाहिए।

जिसके जन्मकालमें चन्द्र और सूर्य दोनों ही बल-वान् हों, उसके लिए भी पिण्डायुः ही प्रशस्त है। पिण्डायुः और निसर्गायुःकी गणना करके दोनों अङ्कको एक साथ जोड़ दें और योगफलका अर्द्धक वर्ष, मास और दिन जितना होगा उसीको परमायुः जानना चाहिए।

निम्नलिखित प्रकारसे निसर्गायुःकी गणना करनी होती है। चन्द्रका आयुःपल ग्रहण करके उसमें ६०का भाग दे और भागफलमें जितनी कला विकलादि आवेंगी, उतने दिन और दण्डादिको चन्द्रदत्त निसर्गायुः समझना चाहिये।

बुधका आयुःपल ग्रहण करके उसे २से गुना करें।

गुणनफल जो होगा उसे २०से भाग दे कर जितनी कला विकला होगी, उतना ही दिन और दण्डादि बुधकी निसर्गायु होगी।

रवि और शुक्रके आयुःपलको ग्रहण ३से भाग दे, भागफल जितना होगा, उतना ही दिन और दण्डादि रवि और शुक्रका निसर्गायुः होगा।

मङ्गलके आयुःपलमें ३०का भाग दे कर भागफलमें जितनी कला विकलादि आवेगी, उतना ही दिन और दण्डादि मङ्गलकी निसर्गायु है।

वृहस्पतिके आयुःपलमें ३का गुना कर गुणनफल जो हो, उसे १०से भाग दे और भागफलमें जितनी कला विकला होगी, उतना दिन और दण्डादि वृहस्पतिका निसर्गायुः होगा।

शनिके आयुःपलको ग्रहण कर उसे दो जगह रखे। पीछे एक अङ्कको ६से भाग दे कर भागफल जो होगा उसमेंसे द्वितीय अङ्क घटावे। अब जितनी कला विकलादि बच रहेगी, उतना दिन और दण्डादि शनिका निसर्गायुः होगा।

आयुःपलकी इस प्रकार गणना की जाती है,—जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिके जितने अंशादिमें रहेगा उस ग्रहस्फुटकी राशि अंश और कलादिके अङ्कमें उस ग्रहकी उच्च राशि और अंशके अङ्कको घटावे। अब घटावफल जो होगा उसे ३०से गुणा करे। गुणनफलको अंशाङ्कके साथ जोड़ दे। पीछे उस योग वा अंशको ६०से गुणा करके कलाङ्कके साथ योग करने पर जो अङ्क होगा उसी अङ्कसंख्याका नाम उस ग्रहका आयुःपल है।

यदि उस ६०से गुणित योग कलाङ्क छः राशिके कलाङ्क अर्थात् दश हजार आठ सौसे कम हो, तो उसे इक्कीस हजार छः सौसे वियोग करना होता है। अवशिष्टाङ्क जो रहेगा, उसीको उस ग्रहका आयुःपल जानना चाहिये।

अन्य प्रकारसे आयुःपलका निकालना—जन्मकालमें जो ग्रह जिस राशिके जिस अंशादिमें रहेगा, उस ग्रहस्फुटकी राशि अंशकलादिका अङ्क और उस ग्रहकी नीच राशि तथा अंशका अङ्क, इन तीनोंका अन्तर करनेसे जो बचेगा, उस राशिके अंशको ३०से गुणा करे। गुणनफलको अंशाङ्कमें जोड़ दे। पीछे उस योग वा अङ्कको ६०से गुणा करे और गुणनफलको कलाङ्कके साथ योग कर जो योगफल होगा, उसीका नाम उस ग्रहका आयुःपल है। किन्तु उस नीचान्तरित राशिका अङ्क यदि छःसे न्यून हो, तो उसे राशिके अङ्कमें छः जोड़ दे और योगफलको पूर्व प्रक्रियाके अनुसार कला बनावे। जितनी कला होगी, वही उस ग्रहका आयुःपल है। दोनोंकी गणना प्रणाली तो भिन्न है, पर फल एक-सा होता है।

मङ्गल भिन्न ग्रहगण शत्रु वा अधिशत्रुके गृहमें हो, तो पूर्वोक्त प्रकारसे आयुःपल बना कर उसमेंसे तृतीयांश निकाल ले। इस प्रकार जो कुछ बचेगा, वही अङ्क उस ग्रहका आयुःपल होगा।

शुक्र और शनि भिन्न ग्रहोंके अस्तगत होनेसे पूर्वोक्त आयुःपलमेंसे उसका अर्द्धांश निकाल लें। इस प्रकार जो बचेगा वही आयुःपल होगा।

ग्रहगण शत्रुके घरमें रह कर यदि अस्तगत हो जांय, तो पहलेकी तरह अर्द्धांश निकाल लेना पड़ता है। शुक्र और शनिके शत्रुगृहस्थित हो कर अस्तमित हो जानेसे आयुःपलमेंसे उसका तृतीयांश वियोग करे। वियोगफल जो होगा, वही उस ग्रहका आयुःपल है।

इस प्रकार आयुःपलका स्थिर करके पूर्वोक्त प्रकारसे निसर्गायुःकी गणना करते हैं।

पिण्डायुः, निसर्गायुः और जीवायुः तीनों प्रकारकी गणनामें इसी प्रकारसे आयुःपल स्थिर कर उसके बाद गणना की जाती है।

निसर्गायुः गणनाके समय आयु-हानिकी गणनाकी प्रक्रिया करनी होती है। (राघवानन्द कृत विदग्धतोषिणी) पिण्डायुःकी गणनाका विषय पिण्डायु शब्दमें देखो।

निसा (हिं० स्त्री०) सन्तोष, तृप्ति।

निसाकर (हिं० पु०) निशाकर देखो।

निसाचर (हिं० पु०) निशाचर देखो।

निसाद (हिं० पु०) भंगी, मेहतर।

निसान (फा० पु०) १ निशान देखो। २ नगाड़ा, धौंसा।

निसाना (हिं० पु०) निशाना देखो।

निसानी (हिं० स्त्री०) निशानी देखो।

निसापति (हिं० पु०) निशापति देखो।

निसार (सं० पु०) नि-सृ-घञ्। १ समूह। २ सहोरा या सोनापाठा नामका वृक्ष।

निसार (अ० पु०) १ निछावर, सदका, उतारा। २ मुगलोंके शासनकालका एक सिक्का जो चौथाई रुपये या चार आने मूल्यका होता था।

निसारक (सं० पु०) मालव रागका एक भेद।

निसारना (हिं० क्रि०) बाहर करना, निकालना।

निसारा (सं० स्त्री०) कदलीवृक्ष, केलेका पेड़।

निसावरा (हिं० पु०) एक प्रकारका कबूतर।

निसि (हिं० स्त्री०) १ निशि देखो। २ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक भगण और एक लघु होता है।

निसिकर (हिं० पु०) निशिकर देखो।

निसिदिन (हिं० क्रि० वि०) १ रातदिन, आठो पहर। २ सर्वदा, सदा, हमेशा।

निसिनिसि (हिं० स्त्री०) अर्द्धरात्रि, निशीथ, आधी रात।

निसिन्धु (सं० पु०) वृक्षविशेष, निर्गुण्डी, सम्हालू।

निसिबासर (हिं० क्रि०-वि०) रातदिन, सर्वदा, सदा।

निसोठी (हिं० वि०) जिसमें कुछ तत्त्व न हो, निःसार, नीरस, थोथा।

निसुन्धार (सं० पु०) निर्गुण्डीवृक्ष, सम्हालूका पेड़।

निसुन्द (सं० पु०) असुरभेद, प्रह्लादके भाई ह्लादके पुत्रका नाम।

निसूदक (सं० त्रि०) निसूदयति नि-सूदि-ण्वुल्। हिंसक, हिंसा करनेवाला।

निसूदन (सं० क्ली०) नि-सूद-भावे ल्युट्। १ निहिंसन, हिंसा। २ वध। (त्रि०) ३ नि-सूद-ल्यु। ४ विनाशक, मारनेवाला, नाश करनेवाला।

निसृत (हिं० वि०) निःसृत देखो।

निसृता (सं० स्त्री०) नितरां सृता, नि-सृ-क्त स्त्रियां टाप्। १ त्रिवृता, निसोथ। २ स्योनाकवृक्ष, सोनापाठा।

निसृतात्मक (सं० पु०) कोष्ठगतरोगभेद।

निसृष्ट (सं० त्रि०) नि-सृज-क्त। १ न्यस्त, अर्पित किया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ। ३ दत्त, दिया हुआ। ४ मध्यस्थ, जो बीचमें पड़ कर कोई बात करे। ५ छोड़ा हुआ, जो छोड़ दिया गया हो।

निसृष्टार्थ (सं० पु०) निसृष्टः न्यस्तः अर्थः प्रयोजनं यस्मिन्निति। दूतविशेष, एक प्रकारका दूत। दूत तीन प्रकारका माना गया है—निसृष्टार्थ, मितार्थ और सन्देशहारक। जो दोनों पक्षोंका अभिप्राय अच्छी तरह समझ कर स्वयं ही सब प्रश्नोंका उत्तर दे देता है और कार्य सिद्ध कर लेता है, उसे निसृष्टार्थ कहते हैं। २ धनके अपव्यय और पालनादिमें नियुक्त पुरुषविशेष, वह मनुष्य जो धनके आयव्यय और कृषि तथा वाणिज्य-की देखरेखके लिए नियुक्त किया जाय। ३ पुरुषविशेष, सङ्गीत दामोदरमें लिखा है, कि जो मनुष्य धीर और शूर हो, अपने मालिकका काम तत्परतासे करते रहे और अपना पौरुष प्रकट करे, उसे निसृष्टार्थ कहते हैं।

निसैनी (हिं० स्त्री०) सोपान, सीढ़ी, जीना।

निसैनी (हिं० स्त्री०) निसेनी देखो।

निसोढ़ (सं० त्रि०) नि-सह-क्त, ततो ओत्, ओत्त्वास्यात्वं यः। नितान्तसह्य।

निसोत (हिं० वि०) जिसमें और किसी चीजका मेल न हो, शुद्ध, निरा।

निसोत्तर (हिं० पु०) निसोत देखो।

निसोथ (हिं० स्त्री०) सारे भारतवर्षके जङ्गलों और पहाड़ों पर होनेवाली एक प्रकारकी लता। इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोल फल लगते हैं। यह तीन प्रकारकी होती है—सफेद, काली और लाल। सफेद निसोथमें सफेद रंगके, कालीमें काला पन लिये बैंगनी रंगके और लालके फल कुछ लाल रंगके होते हैं। सफेद निसोथके पत्ते और फल कुछ लाल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और वैद्यकमें वही अधिक गुणकारी मानी जाती है। वैद्य लोग इसका जुलाब सबसे अच्छा समझते हैं। विशेष विवरण त्रिवृत शब्दमें देखो।

निस्की (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रेशमका कीड़ा जिसे निस्तरी भी कहते हैं।

निस्कुट—इवल साहबने इसे 'हस्तक-वप्र' ग्राम बतलाया

है। यह हस्तक-वप्र नगर वर्त्तमान भवनगरके पास बसा हुआ था। अभी वह हथवाल नामसे मशहूर है। वलभीवंशके १म ध्रुवसेनके प्रदत्त शासनमें इस ग्रामका उल्लेख है। येरिप्लसने अपने ग्रन्थमें इस स्थानका 'अष्टक' नामसे वर्णन किया है।

निष्केवल (हिं० वि०) शुद्ध, निर्मल, बेमेल।

निस्तत्त्व (सं० त्रि०) निर्गतं तत्त्वं वास्तवं रूपं स्वरूपं वा यस्य। असत्पदार्थ, तत्त्वहीन, जिसमें कोई तत्त्व न हो।

निस्तनी (सं० स्त्री०) नितरां स्तनवदाकारोऽस्त्यस्या इति अच्, गौरादित्वात् ङीष्। १ वटिका, बटी, गोली। २ स्तनरहित स्त्री, वह औरत जिसे स्तन न हों।

निस्तन्तु (सं० त्रि०) पुत्रहीन, जिसके कोई सन्तान न हो।

निस्तन्द्र (सं० त्रि०) निष्क्रान्ता तन्द्रा यस्य। १ आलस्यरहित, जिसमें आलस्य न हो। २ तन्द्रारहित। ३ सुस्थ, सबल, बलवान्, मजबूत।

निस्तन्द्रि (सं० त्रि०) निर्गता तन्द्रिरालस्यं यस्य। आलस्यरहित, जिसमें आलस्य न हो।

निस्तब्ध (सं० त्रि०) नि-स्तन्भ-क्त। १ नीरव, सन्नाटा, जरा भी शब्द न होना। २ निश्चेष्ट, जड़वत्। ३ स्पन्दरहित, जो हिलता डोलता न हो, जिसमें गति या व्यापार न हो।

निस्तब्धता (सं० स्त्री०) १ स्तब्ध होनेका भाव, खामोशी। २ सन्नाटा, जरा भी शब्द न होनेका भाव।

निस्तमस्क (सं० त्रि०) तमविहीन, अन्धकारशून्य, उजेला।

निस्तम्भ (सं० त्रि०) स्तम्भहीन, जिसमें खंभे न हों।

निस्तरण (सं० क्ली०) निस्तीर्यतेऽनेनेति निर्-तृ करणे ल्युट्। १ उपाय, निस्तार, छुटकारा। २ निर्गम, बाहर निकलना। ३ पारगमन, पार जानेकी क्रिया या भाव।

निस्तरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रेशमका कीड़ा। इस कीड़ेका रेशम बङ्गालके देशी कीड़ोंके रेशमकी अपेक्षा कुछ कम मुलायम और चमकीला होता है। इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और क्रमि।

निस्तरीक (सं० अव्य०) तरे देयः टक् तरीकः तरीकस्याभावः, अभावे अव्ययीभावः। १ तैरनेके लिए हाथका सहारा देना। (त्रि०) २ तरीकशून्य, बिना बेड़ेका।

निस्तरीप (सं० त्रि०) तरीं पाति पा-क, तरीपः निर्गतः स्तरीपः तस्मात्। नौकापालकशून्य।

निस्तर्क्य (सं० त्रि०) तर्कहीन, जिसकी कल्पना न की जाय।

निस्तर्त्तव्य (सं० त्रि०) दमित, जिसका दमन किया गया हो, जो जीता गया हो।

निस्तर्हण (सं० क्ली०) निर्-तृह-हिंसायां भावे ल्युट्। मारण, वध।

निस्तल (सं० त्रि०) निरस्तं तलं प्रतिष्ठा यस्य। १ वर्त्तुल, गोल। २ तलशून्य, बिना पेंदीका। ३ कम्पित, चलायमान। नितान्तं तलं। ४ तल, नीचे।

निस्तार (सं० पु०) निर्-तृ घञ्। १ निस्तरण। २ उद्धार। ३ पारगमन। ४ अभीष्टप्राप्ति।

निस्तारक (सं० पु०) नि-स्तृ-ण्वुल्। १ निस्तारकर्त्ता, बचानेवाला, छुड़ानेवाला। २ मोक्षदाता, मोक्ष देनेवाला।

निस्तारण (सं० क्ली०) निर्-स्तृ-ल्युट्। १ निस्तारकरण, बचाना, छुड़ाना। २ पारगमन, पार करना। ३ जयकरण, जीतना। ४ मुक्तकरण, छुटकारा देना।

निस्तारवीज (सं० क्ली०) निस्तारस्य संसारसमुद्रसमुत्तरणस्य वीजम्। संसारतरणकारण, पुराणानुसार वह उपाय या काम जिससे मनुष्यको इस संसार तथा जन्ममरण आदिसे मुक्ति हो जाय।

भगवान्‌के नामका स्मरण, कीर्त्तन, अर्चन, पादसेवन, वन्दन, स्तवन और प्रतिदिन भक्तिपूर्वक नैवेद्यभक्षण, चरणोदकपान और विष्णुमन्त्रजप ये सब एकमात्र निस्तारवीज हैं अर्थात् उद्धारके एकमात्र उपाय हैं। महानिर्वाणतन्त्रमें भी निस्तारवीजका विषय इस प्रकार लिखा है—

"कलौ पापयुगे घोरे तपोहीनेऽतिदुस्तरे।
निस्तारवीजमेतावद् ब्रह्ममन्त्रस्य साधनम्॥
साधनानि बहूनि नानातन्त्रागमादिषु।
कलौ दुर्बलजीवानामसाध्यानि महेश्वरि॥"

(महानिर्वाणतन्त्र)

घोर पापयुक्त कलिकालमें जब लोग तपोहीन हो जायँगे, तब ब्रह्ममन्त्रका साधन ही एकमात्र निस्तार बीज होगा। हे महेश्वरी! नानातन्त्र और आगमादिमें जो कई प्रकारके साधन लिखे हुए हैं वे कलिकालमें दुर्बल जीवोंके लिये असाध्य हैं। अतएव भवसमुद्र पार करनेका ब्रह्ममन्त्र ही एकमात्र उपाय है।

निस्तितीर्षत् (सं० त्रि०) निर्-तृ-सन्-शतृ। निस्ताराभिलाषी, जो निस्तार होना चाहता हो।

निस्तिमिर (सं० त्रि०) निर्गतस्तिमिरः यस्मात्। तिमिरशून्य, अन्धकारसे रहित या शून्य।

निस्तीर्ण (सं० त्रि०) निर्-तॄ-क्त। १ परित्रात, जिसका निस्तार हो चुका हो। २ पार गया हुआ, जो तै या पार कर चुका हो।

निस्तुति (सं० त्रि०) स्तुतिशून्य, प्रशंसाहीन।

निस्तुष (सं० त्रि०) निर्गता तुषा यस्मात्। १ वितुषीकृत, बिना भूसीका, जिसमें भूसी न हो। २ निर्मल। (पु०) ३ गोधूम, गेहूं।

निस्तुषक्षीर (सं० पु०) निस्तुषं परिष्कृतं क्षीरं यस्येति। गोधूम, गेहूं।

निस्तुषरत्न (सं० क्ली०) निस्तुषं निर्मलं रत्नं। स्फटिक मणि।

निस्तुषित (सं० त्रि०) निस्तुष करोति णिच्-क्त। त्वग्विहीन, जिसमें भूसी न हो।

निस्तुषोपल (सं० क्ली०) स्फटिक मणि।

निस्तृणकण्टक (सं० त्रि०) तृण और कण्टकपरिशून्य, जिसमें घास और कांटा न हो।

निस्तेज (सं० त्रि०) निर्गतं तेजो यस्मादिति। तेजोरहित, जिसमें तेज न हो।

निस्तैल (सं० त्रि०) तैलरहित, बिना तेलका, जिसमें तेल न हो।

निस्तोद (सं० पु०) निस्-तुद-भावे घञ्। नितान्त व्यथन, बहुत कष्ट।

निस्तोदन (सं० क्ली०) निस्-तुद-भावे ल्युट्। नितान्त व्यथन, निहायत तकलीफ।

निस्तोय (सं० त्रि०) तोयहीन, बिना जलका।

निस्त्रंश (सं० त्रि०) भयहीन, जिसे डर न हो।

निस्त्रप (सं० त्रि०) लज्जाहीन, बेहया, बेशर्म।

निस्त्रिंश (सं० पु०) निर्गतस्त्रिंशतोऽङ्गुलिभ्यः ततो ऽपसमे डच्, समासान्त। (संख्यायाऽस्ततपुरुषस्य डज्वाच्यः। पा ५।४।११२) इति वार्त्तिकोक्त्या डच्। १ खड्ग। २ मन्त्रभेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र। (त्रि०) ३ निर्दय, कठोर। ४ त्रिंशत्‌शून्य, जिसमें तीसकी संख्या न हो, ज्यादा हो।

निस्त्रिंशधारिन् (सं० त्रि०) निस्त्रिंशं धरतीति निस्त्रिंश-धृ-णिनि। खड्गधारी, तलवार धारण करनेवाला।

निस्त्रिंशपत्रिका (सं० स्त्री०) निस्त्रिंश खड्ग-इव पत्रमस्याः, अस्तीति ठन्। स्नुहीवृक्ष, थूहर।

निस्त्रिंशिन् (सं० त्रि०) निस्त्रिंशः खड्गः धार्यत्वेनाऽस्त्यस्य इति इनि। खड्गधारी, तलवार धारण करनेवाला।

निस्त्रुटी (सं० स्त्री०) निष्कुटी, बड़ी इलायची।

निस्त्रैगुण्य (सं० त्रि०) निष्क्रान्तः त्रैगुण्यात्, त्रिगुणकार्यात् संसारात्। १ कामादिशून्य। २ संसारातीत, जो सत्त्व, रजः और तमः इन तीनों गुणोंसे रहित या अलग हो।

निस्त्रैणपुष्पिक (सं० पु०) राजधुस्तूर, धतुरेका पेड़।

निस्राव (सं० पु०) वह बची खुची वस्तु जो बेच कर रह गई हो।

निस्नेह (सं० त्रि०) निर्गतः स्नेहः प्रेमतैलादिकं वा अस्य। १ प्रेमशून्य, जिसमें प्रेम न हो। २ तैलशून्य, जिसमें तेल न हो। (पु०) ३ मन्त्रभेद, तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र। ४ अलसीवृक्ष, तीसीका पौधा।

निस्नेहफला (सं० स्त्री०) निःस्नेह फलं यस्याः। श्वेतकण्टकारी, सफेद भटकटैया, कटेरी।

निस्पन्द (सं० त्रि०) निर्गतः स्पन्दो यस्य, बाहु० विसर्गलोपः। १ स्पन्दनरहित, जिसमें कम्पन न हो। नि-स्पन्द-घञ्। २ स्पन्दन, कंपन।

निस्पन्दतर (सं० त्रि०) निस्पन्द-तरप्। एकान्त स्पन्दनरहित।

निस्पन्दत्व (सं० त्रि०) निस्पन्दका भाव।

निस्पन्दिन् (सं० त्रि०) निस्पन्दः अस्त्यस्येति इनि। निस्पन्दयुक्त।

निस्पृश् (सं० त्रि०) १ विश्वास्य। २ आदरणीय।

निस्पृह (सं० त्रि०) निर्गता स्पृहा दृष्टादृष्टविषय भावना यस्य। स्पृहाशून्य, जिसे किसी प्रकारका लोभ न हो, लालच या कामना आदिसे रहित।

निस्पृहता (सं० स्त्री०) निस्पृह होनेका भाव, लोभ या लालसा न होनेका भाव।

निस्पृहा (सं० स्त्री०) १ अग्निशिखावृक्ष, कलिहारी नामक पेड़। २ असूल वनस्पती।

निस्पृही (हिं० वि०) निस्पृह देखो।

निस्फ (अ० वि०) अर्द्ध, आधा, दो बराबर भागोंमेंसे एक भाग।

निस्फीबंटाई (हिं० स्त्री०) वह बंटाई जिसमें आधी उपज जमींदार और आधी असामी लेता है, अधिया।

निस्बत (हि० स्त्री०) निसबत देखो।

निस्यन्द (सं० पु०) नि-स्यन्द-भावे घञ्। १ स्यन्दन क्षरण। (त्रि०) निस्यन्दते इति कर्त्तरि अच्। २ क्षरणशील। 'निस्यन्द' इसके विकल्पमें षत्व होता है। (अनुविपर्य्यभिनिभ्यः स्यन्दतेरप्राणिषु। पा ८।३।७२) अनु, वि, अभि, नि इन सब उपसर्गोंके बाद स्यन्द धातुके विकल्पमें सर षत्व होता है, प्राणीका अर्थ होनेसे नहीं होता। यथा—निष्यन्द, निस्यन्द।

निस्रव (सं० पु०) नि-स्रु-अप्। १ भक्तमण्ड, भातका माँड़। २ अपचरण, वह जो वह या भड़ कर निकले, पसेव।

निस्राव (सं० पु०) निस्राव्यते इति निस्र-णिच्-घञ्। १ भक्तसमुद्भवमण्ड, भातका माँड। पर्याय—मासर, आचाम। नि-स्रु-घञ्। २ द्रव, पसेव।

निस्राविन् (सं० त्रि०) जो क्षरणशील नहीं है, जो बहता नहीं है।

निस्व (सं० त्रि०) निर्गतं स्वं धनं यस्य। दरिद्र, हीन, गरीब।

निस्वन (सं० पु०) नि-स्वन-अप्, (नौ गद-नद-पठ-स्वनः। पा ३।३।६४) शब्द, आवाज।

निस्वान (सं० पु०) नि-स्वन-पक्षे घञ्। शब्द, आवाज।

निस्वास (हिं० पु०) निःश्वास देखो।

निस्संकोच (हिं० वि०) सङ्कोचरहित, जिसमें सङ्कोच या लज्जा न हो, बेधड़क।

निस्संतान (हिं० वि०) संततरहित, जिसे कोई सन्तान न हो।

निस्संदेह (हिं० क्रि० वि०) १ अवश्य, जरूर, बेशक। (वि०) २ जिसमें सन्देह न हो।

निस्सरण (सं० पु०) १ निकलनेका मार्ग या स्थान। २ निकलनेका भाव या क्रिया, निकास।

निस्सार (सं० त्रि०) १ साररहित, जिसमें कुछ भी सार या गूदा न हो। २ निस्तत्त्व, जिसमें कोई कामकी वस्तु न हो।

निस्सारक (सं० पु०) प्रवाहिकारोग।

निस्सारित (सं० त्रि०) निकाला हुआ, बाहर किया हुआ।

निस्सीम (सं० त्रि०) निष्क्रान्ता सीमा यस्मात्, बाहुलकात् विसर्गस्य स। १ अवधिशून्य, जिसकी कोई सीमा न हो। २ बहुत अधिक।

निस्स्रृत (हिं० पु०) तलवारके ३२ हाथोंमेंसे एक।

निस्स्वादु (हिं० वि०) १ जिसमें कोई स्वाद न हो। २ जिसका स्वाद बुरा हो।

निस्स्वार्थ (हिं० वि०) स्वार्थसे रहित, जिसमें स्वयं अपने लाभ या हितका कोई विचार न हो।

निहंग (हिं० वि०) १ एकाकी, अकेला। २ विवाह आदि न करनेवाला या स्त्री आदिसे सम्बन्ध न रखनेवाला। ३ नंगा। ४ बेहया, बेशर्म।

निहंगम (हिं वि०) निहंग देखो।

निहंगलाड़ला (हिं० वि०) जो मातापिताके दुलारके कारण बहुत ही उद्दण्ड और लापरवा हो गया हो।

निहंता (हिं० वि०) १ विनाशक, नाश करनेवाला। २ प्राणघातक, मारनेवाला।

निह (सं० त्रि०) निहन्ति नि-हन-ड। निहन्ता; मारनेवाला।

निहङ्ग—सिखोंके मध्य वैष्णव-सम्प्रदायविशेष। ये लोग नानक पर विश्वास रखते हैं सही, किन्तु अन्यान्य सिखोंके साथ इनकी कोई सदृशता देखी नहीं जाती। ये लोग अपने जीवनका ममता नहीं करते।

निहङ्ग शब्द संस्कृत निःसङ्ग शब्दका रूपान्तर है, इसमें सन्देह नहीं। उक्तलके उल्लिखित नामधारी वैष्णव विरक्त अर्थात् उदासीन हैं। ये लोग मठ बनाते

और पुजारी द्वारा विग्रह-सेवा कराते हैं। रातको ये लोग मठमें रहते हैं और दिनको व्यक्तिविशेषसे अर्थ-संग्रह कर मठका खर्च निभाते हैं। ये लोग कभी भी तण्डुलादि सामान्य भिक्षा ग्रहण नहीं करते। जन-समाजमें इनकी खूब धाक जमी रहती है। जनता निहङ्गोंके प्रति यथाविधि भक्ति और सम्मान दिखलाती है। निहङ्ग वैष्णवकी जब मृत्यु होती है, तब उनके चेले अर्थात् अनुगत निहङ्ग शिष्य मठमें ही उनका शव-दाह करते हैं और एक इष्टकमय वेदि निर्माण कर उसके ऊपर तुलसी वृक्ष रोपते और कई दिन तक उसमें जल देते हैं।

निहत (सं० त्रि०) १ फेंका हुआ। २ नष्ट। ३ मारा हुआ, जो मार डाला गया हो।

निहतौर—युक्तप्रदेशके बिजनौर जिलेकी धामपुर तहसील-का एक शहर। यह अक्षा० २९° २०´ उ० और देशा० ७८° २४´ पू०के मध्य, बिजनौर शहरसे १६ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ११७४० है। यहां बहुत सुन्दर एक प्राचीन मस्जिद है। यहांकी आय ३३००) रु०की है। यहां एक मिडिल स्कूल तथा बालक और बालिकाओंके लिए पाठशालाएं भी हैं।

निहत्था (हिं वि०) १ जिसके हाथमें कोई हथियार न हो। २ जिसके हाथमें कुछ न हो, खाली हाथ।

निहन् (सं० पु०) नि-हन्-क्विप्। हननकारी, मारने-वाला।

निहनन (सं० क्ली०) नि-हन-ल्युट्। १ मारन, वध। निघात देखो।

निहन्तृ (सं० त्रि०) नि-हन-तृच्। १ हननकर्त्ता, मारने-वाला। (पु०) २ महादेव। ये प्रलय और हनन करते हैं, इसीसे इनका नाम निहन्ता पड़ा है।

निहन्तव्य (सं० त्रि०) नि-हन-तव्य। हननयोग्य, मारने लायक।

निहन्ता (सं० त्रि०) निहंता देखो।

निहल (हिं० पु०) वह जमीन जो नदीके पीछे हट जाने-से निकल आई हो, गंगबरार, कछार।

निहलिष्ट (अं० पु०) १ वह मनुष्य जिसका यह सिद्धान्त हो कि वस्तुओंका वास्तविक ज्ञान होना असम्भव है क्योंकि वस्तुओंकी सत्ता ही नहीं है। ऐसे लोग वस्तुओं-की वास्तविक सत्ता और उन वस्तुओंके सत्तात्मक ज्ञानका निषेध करते हैं। २ रूस देशका एक दल। यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पैतृक शासनका विरोधी था, लेकिन पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक तथा राजनैतिक निमन्त्रित नियमोंका ध्वंसक और नाशक बन गया। ३ इस दलका कोई आदमी।

निहव (सं० पु०) नि-ह्वे-अप्, ततो सम्प्रसारणम्। (ह्वः-सम्प्रसारणञ्च। पा ३।३।७२) आह्वान।

निहाई (हिं० स्त्री०) सोनारों और लोहारोंका एक औजार। इस पर वे धातुको रख कर हथौड़ेसे कूटते या पीटते हैं। यह लोहेका बना हुआ चौकोर होता है और नीचेकी अपेक्षा ऊपरकी ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है। नीचेकी ओरसे निहाईको एक काठके टुकड़े-में जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय इधर उधर हिलती डोलती नहीं। यह छोटी बड़ी कई आकार और प्रकारकी होती है।

निहाका (सं० स्त्री०) नियतं जहाति भुवमिति नि-हा त्यागे कन्। (नौहः। उण् ३।४४) १ गोधिका, गोह नामक जन्तु। २ घड़ियाल।

निहानी (हिं स्त्री०) १ एक प्रकारकी रुखानी जिसकी नोक अर्द्ध चन्द्राकार होती है और जिससे बारीक खुदाई-का काम होता है, कलम। २ एक नोकदार औजार जिससे ठप्पेकी लकीरोंके बीचमें भरा हुआ रंग खुरच कर साफ किया जाता है।

निहायत (अ० वि०) अत्यन्त, बहुत, अधिक।

निहार (सं० पु०) नितरां ह्रियन्ते पदार्था येन नि-हृ-घञ्। १ नीहार, हिम, बरफ। २ ओस। ३ कुज्झटिका, कुहासा, पाला, कुहरा।

रात अथवा दिनको तृणपत्र और घास आदिके ऊपरी भाग पर जो जलकणासमूह जमा होते देखा जाता है, उसीका नाम निहार है। इसकी उत्पत्तिके विषयमें एक मत नहीं है, भिन्न भिन्न विद्वानोंने भिन्न भिन्न मत प्रकाशित किया है। अरिष्टलने किसी स्थान

पर लिखा है कि, 'यह नीहार एक प्रकारकी वृष्टि है। वायुके साथ जो जलीय वाष्प मिला रहता है उसमें किसी प्रकार ठण्ढ लगनेसे वह घनीभूत हो कर छोटी छोटी बुन्दोंमें वृष्टिकी तरह नीचे गिरता है।' किसीका कहना है कि, "शीतलताके कारण नीहार नहीं होता, नीहारसे ही शीतलताकी उत्पत्ति होती है।' कोई पदार्थविद्याविद् कहते हैं, कि शैत्य नीहार-उत्पत्तिका एक आंशिक कारण होने पर भी, जमीनसे हमेशा जो रस वाष्पाकारमें निकलता है, वह भी एक विशेष कारण है।" आधुनिक पण्डितगण इन समस्त मतोंका पोषण न करते हुए कहते हैं कि, 'यह विश्व-संसारस्थ समुदय वस्तु ही प्रतिक्षणमें तापविकीरण और ताप-ग्रहण करती हैं। इनमेंसे रातको तापग्रहणकी अपेक्षा तापविकीरणका भाग अधिक है। कारण तेजके आदिभूत सूर्यदेवसे दिवाभागमें सभी वस्तु बहुपरिमाण-में ताप ग्रहण करती हैं। किन्तु रातको उस प्रकार तापदायक द्रव्यके अभावके कारण द्रव्यमात्र ही तेज ग्रहणकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें तापविकीरण करता है। इसका फल यह हुआ कि सभी द्रव्य दिवाभागकी अपेक्षा रात्रिको अधिक शीतलता प्राप्त करते हैं। अत-एव नीहारकी उत्पत्तिके विषयमें वर्त्तमान मत यह है कि, 'सभी द्रव्य सन्ध्याके बादसे अधिक परिमाणमें तापविकीरणपूर्वक शीतलत्वको पाते हैं, इस कारण उसके निकटवर्त्ती स्थानोंका वायुसंश्लिष्ट जलीय वाष्प शीतल हो जाता है और क्रमशः घनीभूत हो कर निक-टस्थ द्रव्योंके ऊपर जम जाता है। कारण वायु जितनी ही उष्ण होती है, उतने ही उसके उपादाने विश्लिष्ट हो जाते हैं और वाष्पधारणशक्ति उतनी ही प्रबल हो उठती है। किन्तु वायु जितनी शीतलता लाभ करती है, उसके अणु उतने ही घन सन्निविष्ट होने लगते हैं। सुतरां वाष्पग्रहणशक्ति उतनी ही कम हो जाती है। यही कारण है कि वायु जब ठंढी हो जाती है, तब अधिक परिमाणमें अपने जलीय वाष्पको उस अवस्थामें धारण नहीं कर सकती और उक्त वाष्प घनीभूत हो कर जलबिन्दुरूपमें वृक्षकी पत्तियों, घास, तथा और दूसरे दूसरे द्रव्यों पर जम जाता है। ऊपरसे गिरते समय उक्त जलकणासमूहका किसी शीतल द्रव्यके साथ स्पर्श होनेसे ही वह उसमें संलग्न हो जाता है। सञ्चित जलका नाम निहार है।' पूर्वोक्त जलबिन्दु सञ्चित न हो कर जब अपेक्षाकृत सूक्ष्मतम जलबिन्दुके रूपमें प्रवर्त्तित हो जाता है, तब उसे कुहासा कहते हैं।

आकाशमें जिस दिन घोर घनघटा वा प्रबल वात्या नहीं रहती उस दिन उतना निहार जमा होते देखा नहीं जाता, सो क्यों? इसके कारणका अनुसन्धान करनेसे पूर्वोक्त मत और भी परिस्फुट वा दृढ़ हो सकता है। इसका कारण यह है कि उस दिन अधिक मेघ रहनेसे उसका तेजसमूह विकीर्ण हो कर भूपृष्ठ पर पतित होता है। सुतरां भूपृष्ठसे ताप विकीरण होनेका प्रतिबन्धक हो जाता है। इसी प्रकार प्रबल वेगसे वायु बहने पर गरम वायुके कारण तापविकीरणकार्य सुन्दर-रूपसे सम्पन्न नहीं होता। यही कारण है कि उस समय उतने परिमाणमें निहार देखा नहीं जाता। अरि-ष्टल और किसी किसी दार्शनिकका कहना है कि घोर मेघशून्य और प्रबल वात्याहीन रातको ही केवल निहार देखा जाता है। किन्तु डाक्टर वेल्स इस बातको स्वीकार नहीं करते। प्रबल वात्यासंयुक्त रातको मेघ नहीं रहनेसे अथवा घोर मेघाच्छादित रातको वायुकी गति अधिक नहीं रहनेसे घास प्रभृति द्रव्यके ऊपर जो निहार सञ्चित होता है उसे उन्होंने अपनी आंखोंसे देखा है। किन्तु घोर मेघ और प्रबल वायु-विशिष्ट रातको निहारका जमा होना कभी भी देखनेमें नहीं आता। उक्त डाक्टरके मतसे समय और स्थानके भेदसे उक्त निहारका न्यूनाधिक्य देखा जाता है। वृष्टि होनेके पीछे यथेष्ट निहारसञ्चार देखा जाता है किन्तु दीर्घकाल वृष्टि नहीं होनेसे उस प्रकार निहारसञ्चार नहीं होता। कभी कभी दिनको भी निहार देखा गया है। किसी किसी देशमें दक्षिण वा पश्चिम दिशासे जब वायु बहती है, तब निहार अधिक मात्रामें जमा होता है, किन्तु उत्तर वा पूर्व दिशासे बहनेसे उस प्रकार निहार नहीं देखा जाता। वसन्त और शरत्-कालमें जैसा निहारका गिरना सम्भव है, वैसा ग्रीष्म-कालमें नहीं। कारण पूर्वोक्त दोनों समयमें दिन और

रातकी वायुके तापका न्यूनातिरेक पूर्वोक्त कालकी अपेक्षा अधिक है। जिस दिन सवेरे अत्यन्त कुहासा छाया रहता है उसके पूर्व रात्रिको निहार यथेष्ट परिमाणमें सञ्चित देखा जाता है। हेमन्त और शीत ऋतु ही हमलोगोंके देशमें निहारपातका उपयुक्त समय है। इस समय रातको मेघादि रहनेसे निहार बहुत कम जमा होता है। किन्तु परवर्त्ती दिनमें उक्त निहार कुहासेके रूपमें परिणत हो जाता है।

फिर यदि आकाश निर्मल और वायु स्थिर रहे तो मध्यरात्रिको और सूर्योदयके पहले निहार अधिक मात्रामें सञ्चित देखा जाता है।

जिन सब द्रव्योंके ऊपर निहारसञ्चार होता है, उनका तथा तन्निकटस्थ स्थानोंका उत्ताप नीहार-सञ्चार-सूचक ताप (Dewpoint)-की कमी नहीं होनेसे उन सब द्रव्योंके ऊपर नीहार सञ्चार नहीं होता। एक ही समय वायुकी एक ही अवस्थामें भिन्न भिन्न वस्तुओं पर पृथक् परिमाणमें नीहार सञ्चित हुआ करता है। धातु द्रव्यके ऊपर अत्यन्त अल्पपरिमाणमें नीहार जमा होता है, किन्तु घास, कपड़े, खड़, कागज, रूतुआ और ग्लास-के ऊपर निहार प्रचुर परिमाणमें सञ्चित होता है। जितनी धातु हैं सभी बहुत कम तापविकीरण करती हैं, यही कारण है कि घास, कपड़े इत्यादि तापविकीरण-शक्तिसम्पन्न वस्तुओंके ऊपर अपेक्षाकृत अधिक परिमाण-में नीहार-सञ्चार होता है। फिर जो सब वस्तु आकाश-के साथ साक्षात् सम्बन्धमें विद्यमान हैं, उनके ऊपर जैसा निहार जमा होता है, वैसा और किसी पदार्थ-के ऊपर जमा नहीं होता। समान तौलके दो गुच्छे पशमको लेकर उसके एक गुच्छेको किसी तख्तेके ऊपर और दूसरे गुच्छेको तख्तेके नीचे रखो तथा इसी अवस्थामें खुले स्थानमें रातको छोड़ दो। सवेरा होने पर दोनों गुच्छेकी तौलमें फर्क पड़ जायगा। तख्तेके ऊपर जो पशम है, उसका आकाशके साथ ठीक सम्बन्ध होनेके कारण उस पर नीचेकी अपेक्षा अधिक परिमाणमें निहार जम गया है।

दिवाभागमें नीहार-सञ्चारके सम्बन्धमें मिष्टर स्लेमर-का कहना है कि, 'पृथ्वीसे रात्रि अथवा दिवा सभी समय और आकाशकी सभी अवस्थाओंमें तापविकीरणक्रिया सम्पन्न होती है। साधारणतः सूर्य जब दृष्टिपरिच्छेदक-वृत्तके ऊपर अवस्थान करता है, तब पृथ्वीकी तापविकी-रण और तापग्रहणशक्ति समान रहती है। जिन सब स्थानों पर सूर्यकी किरण लम्बभावमें नहीं गिरती, वे सब स्थान सूर्य और अन्यान्य पदार्थोंसे जो ताप ग्रहण करते, समय समय उससे अधिक तापविकीरण करते हैं; इसी कारण उन सब स्थानों पर सारा दिन निहार जमा होता रहता है।' डाक्टर जोसेफ-डि हुकारने लिखा है, कि नेपालके पूर्व भागमें कहीं कहीं सुबहके १० बजेके पहले और तीसरे पहरके ३ बजेके बाद सूर्यका मुख स्पष्ट देखा नहीं जाता। इन सब स्थानोंमें इतना अधिक ताप-विकीरण होता है कि वहां निहार हमेशा गिरते देखा जाता है।

निहारिका (Nebulæ) (सं० स्त्री०) आकाशस्थ एक प्रकारका ज्योत्स्नालोक-विशिष्ट पदार्थ, एक प्रकारका आकाशका पदार्थ जो देखनेमें धुंधले रंगके धब्बेकी तरह होता है। इसकी निर्दिष्ट आकृति नहीं है। दूरवीक्षण यन्त्र द्वारा देखनेसे यह मेघ (निहार)की आकृति-सी मालूम पड़ती है, इसीसे इसका नाम निहारिका पड़ा है।

टलेमीके सिण्टाक्सिस ग्रन्थमें निहारिकाका जो विषय है उसे देखनेसे सामान्यरूपसे ज्ञान हो जाता है। दूर-वीक्षणकी सहायतासे देखा जाता है कि अत्यन्त छोटे छोटे असंख्य नक्षत्रमण्डलकी समष्टि ही निहारिका है। १६१४ ई०में सिमयन मेरियसने एक निहारिकाका आविष्कार किया जो पूर्वाविष्कृत निहारिकासमूहसे बिलकुल पृथक् है।

१६१८ ई०में स्वीस ज्योतिर्वेत्ता सिनाट्सने ठीक उसी प्रकार एक पदार्थका 'ओरियन' नक्षत्रपुञ्जके मध्य आविष्कार किया। हाइगेनस् साहबने १६५५ ई०में इसका विषय प्रकाशित किया, किन्तु उसके पहले ही इसका जो आविष्कार हो चुका था, उसे वे नहीं जानते थे, इस कारण वे आह्लादसे अधीर हो उठे। निहा-रिकाका निकटवर्त्ती स्थान घोर तमसाच्छन्न है, इस कारण उन्होंने समझा कि आकाशके मध्य हो कर स्वर्गका

ज्योतिर्मय राज्य उनकी निगाह पर पड़ा है।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें केवल मात्र २०।२१ निहारिका देखी गई थीं। १७५५ ई०में फरासी ज्योतिर्विद लसेली (Lacailli)ने इसके सिवा और भी ४२ निहारिकाओंका विवरण प्रकाशित किया। उन्होंने इस निहारिकाको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया।

१म श्रेणी,—दूरवीक्षण द्वारा देखनेसे ये सब प्रकृत निहारिकाके रूपमें देखी जाती हैं, अर्थात् कोई निर्दिष्ट आकार देखनेमें नहीं आता; २य श्रेणीको नक्षत्रमें रख सकते हैं और ३य श्रेणी निहारिकापदार्थ परिवेष्टित नक्षत्र है। एक दूसरे फरासी पण्डितने १०३से अधिक निहारिकाओंका आविष्कार किया।

इसके बाद हार्सलने निहारिकाका वर्त्तमान विवरण प्रकाशित किया। १७८६ ई०में उन्होंने रायल सोसाइटीमें हजार निहारिकाओंकी एक तालिका दी। १७८८ ई०में उन्होंने एक हजार और निहारिकाकी तथा १८०२ ई०में पांच सौकी एक दूसरी तालिका प्रदान की। आखिरी बारमें उन्होंने नक्षत्रमण्डलके पदार्थोंको बारह भागोंमें श्रेणीबद्ध किया। यथा,—

१। अनन्यसंयुक्त तारका (Insulated stars)।

२। युग्म-तारका (Binary stars) अर्थात् दो नक्षत्र एकत्र हो कर साधारण भारकेन्द्रके चारों ओर घूमते हैं।

३। त्रय वा ततोधिक तारका (Triple or multiple)।

४। गुच्छवद्ध तारका वा छाया-पथ (Milky way)।

५। नक्षत्रपुञ्ज।

६। नक्षत्र-गुच्छ (Clusters of stars)। इसमें और ४थी श्रेणीमें विभेद यही है कि इसकी आकृति गोलाकार और केन्द्रकी ओर क्रमशः घनीभूत होती है।

७। निहारिका।

८। नाक्षत्रिक निहारिका (Steller Nebulae)। इसके सामने ये सब अतीव दूरवर्त्ती नक्षत्र-श्रेणीके समान देखे जाते हैं।

९। शुभ्र निहारिका (Milky Nebulosity)—इस श्रेणीमें तारामाला निहारिकाकी सदृश और शुद्ध निहारिका एकत्र देखी जाती है।

१०। निहारक-नक्षत्र (Nebulous stars) नैहारिक वायुसे परिवेष्टित।

११। ग्रहसम्बन्धीभूत निहारिका (Planetary Nebulae), इस श्रेणीकी निहारिका ग्रहगणकी तरह सम्पूर्ण गोलाकार, किन्तु क्षीण आलोक-विशिष्ट होती है।

१२। केन्द्रविशिष्टग्रह-निहारिका (Planetary nebulae with centres) शेषोक्त दृश्य देखनेसे सहजमें बोध होता है कि निहारिका दिनों दिन उज्ज्वल विन्दुसे क्रमशः घनीभूत होती है।

१८११ ई०में उन्होंने रायल सोसाइटीमें निहारिकाकी तारकाकृतिप्राप्तिके सम्बन्धमें एक प्रबन्ध लिख भेजा जिसका सारांश इस प्रकार है,—निहारिका आकाशमण्डलमें विच्छिन्न अवस्थामें रहती हैं। इनके छोटे छोटे अंश परस्पर आकर्षणवशतः एकत्र हो कर पदार्थमें परिणत होनेकी चेष्टा करते हैं और क्रमशः एकत्र हो कर कठिन पदार्थमें परिणत हो गये हैं।

१८३३ ई०में छोटे हार्सलने उत्तर ख-मण्डलकी निहारिकाका अच्छी तरह पर्य्यवेक्षण कर उसका विवरण प्रकाशित किया। उस विवरणमें २३०६ निहारिकाओंकी कथा लिखी हैं, उनमेंसे ५००का उन्होंने स्वयं आविष्कार किया। इसी प्रकार और भी कितने साहब इस विषयमें अनेक विवरण प्रकाशित कर गये हैं।

काण्ट (Kant) और लापलस (Laplace)-का मत है कि ब्रह्माण्डके सभी पदार्थ किसी एक समय वायवीय निहारिकावस्थामें थे। उस समय इनका ताप अत्यन्त अधिक था। पीछे क्रमागत ठण्ढा होते होते वे किसी निर्दिष्ट केन्द्रका स्थिर कर उसके चारों ओर घनीभूत होने लगे। अनन्तर उनकी गतिका आरम्भ हुआ। इस प्रकार हम लोगोंके सौरमण्डलकी सृष्टि हुई।

हम लोग केवल इसी विश्वजगत्के अस्तित्वसे अवगत हैं, इस प्रकार और भी अनेक विश्व हो सकते हैं, इसमें विन्दुमात्र भी सन्देह नहीं।

सम्प्रति ज्योतिर्विदोंका कहना है, कि जितने पदार्थ हैं, वे सभी पहले विच्छिन्नावस्थामें असंख्य उल्काप्रस्तर (Meteorites) रूपमें वर्त्तमान थे। उस समय उनका उत्ताप उतना अधिक न था। परस्पर संघर्षण और

आकर्षणसे निहारिकाओंकी सङ्कोचन-वृद्धि हुई। सङ्कोचन-वृद्धि होनेसे उल्काप्रस्तरखण्डका संघर्षण बहुत ज्यादा हुआ करता है, इस कारण निहारिकायें क्रमशः उत्तप्त होने लगी हैं। तापको दिनों दिन वृद्धि होनेसे वे उज्ज्वलता पा कर नक्षत्ररूपमें परिणत होती हैं। निहारिकायें नक्षत्र होनेके बाद प्रकृतिके नियमानुसार ये तापविकीरण करती हैं और तापविकीर्ण होनेसे क्रमशः अपेक्षाकृत शीतल होने लगती हैं, किन्तु नक्षत्ररूपमें परिणत होने पर भी, घनीकरणजन्य उत्ताप कियत्परिमाणमें बढ़ने लगता है। वह उत्ताप जिस परिमाणमें बढ़ता है उससे अधिक विकीरण-जन्य उत्ताप निकलता है। अतएव इसका फल यह होता है, कि यः नक्षत्र शीतल हो कर ग्रहरूपमें परिणत हो जाता है। ग्रहके साथ नक्षत्रका जैसा सम्बन्ध है, नक्षत्रके साथ भी निहारिका ठीक वैसा ही सम्बन्ध है अर्थात् नक्षत्र ठंढा हो कर ग्रह हो जाता है।

निहारुआ (हिं० पु०) नहरुआ देखो।

निहाल (फा० वि०) जो सब प्रकारसे संतुष्ट और प्रसन्न हो गया हो, पूर्णकाम।

निहाल—हिन्दीके एक कवि। ये लखनऊ जिलेके निगोहा ग्रामके निवासी तथा जातिके ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८२०में हुआ था। इनका कविताकाल सं० १८५० कहा जाता है।

निहाल—बरारके अन्तर्गत मेलघाटके आदिमवासी। इन लोगोंने क्षमताहीन हो कर बरारके कोर्कुओंका दासत्व स्वीकार किया। इनकी आदिम मातृभाषा लोप हो गई है। आधुनिक निहालगण कोर्कुभाषाका अनुकरण करते हैं। कोर्कुओंके साथ निहालोंकी सम्प्रीति है। किन्तु ये लोग कोर्कुओंको नीच समझते हैं, उनके साथ खान पान नहीं करते, यहां तक कि, उनके साथ बैठते तक भी नहीं। पूर्व समयमें ये लोग गायोंको चुराया करते थे, अभी खेती बारीमें लग गए हैं। ये लोग बड़े आलसी और निष्कर्मा होते हैं।

निहाल खां—अयोध्याके रायबरेली विभागके अन्तर्गत मजफ्फर खां तालुकसे १२ मील उत्तर-पश्चिममें निहालगढ़ नामक एक ग्राम है, जहां मट्टीका दुर्ग आज भी देखनेमें आता है। १७१५ ई०में निहाल खां नामक एक व्यक्तिने इस दुर्गको बनवाया।

निहालगढ़—निहालखां देखो।

निहालगढ़ चकजङ्गल—अयोध्याके सुलतानपुर जिलेका एक शहर। यह सुलतानपुरसे २६ मील पश्चिम लखनऊ जानेके रास्ते पर अवस्थित है।

निहालचा (फा० पु०) छोटी तोशक या गद्दी जो प्रायः बच्चोंके नीचे बिछाई जाती है।

निहाललोचन (फा० पु०) वह घोड़ा जिसकी अयाल दो भागोंमें बटी हो, आधी दहिनी ओर आधी बाईं ओर।

निहालसिंह—पञ्जाबकेशरी रणजित्‌सिंहके पौत्र और महाराज खड्गसिंहके पुत्र। इनकी माताका नाम चांदकुमारी था। १८३४ ई०में ये अपने सेनापति भेनतुराको और कोर्टको साथ ले पेशावर प्रदेश जीतनेके लिए अग्रसर हुए। उसी सालके मई मासमें इन्होंने पेशावर नगर और दुर्गको अपने कब्जेमें कर लिया। पीछे देरादूस्माइल खांके शासनकर्त्ता शाह नवाज खांको परास्त और राज्यच्युत किया तथा सरफराज खांसे तोस्कदुर्ग छीन लिया। १८३७ ई०में इनके विवाहके उपलक्षमें महाराज रणजित्‌सिंहने देशी राजाओं और अंगरेजी सेनापति तथा बहुतसे लोगोंको निमन्त्रण किया था। १८३९ ई०में तीन मास राज्य करनेके बाद खड्गसिंह जब राज्यभ्रष्ट किये गए, तब आप १८ वर्षकी अवस्थामें राजगद्दी पर बैठे।

साहसिकता, विचक्षणता और दूरदर्शिताके बलसे निहालसिंहने पञ्जाबके सिंहासन पर सिक्का जमाया। अंगरेज-जातिके ऊपर इनकी विशेष श्रद्धा न थी। उनके साथ युद्ध करनेकी कामनासे कई बार इन्होंने सेना इकट्ठी की थी, किन्तु गृहविवादके कारण एक बार भी इनका अभीष्ट फलीभूत न हुआ। मन्दीके राजाके विरुद्ध युद्धयात्रा करके इन्होंने उन्हें परास्त किया और कमालगढ़ दुर्ग पर अधिकार जमाया। १८४० ई०में पिताके मरने पर जब ये उनकी दाहक्रिया करके लौट रहे थे, तब ठीक राजद्वार पर पहुंचनेके साथ इनके ऊपर गुम्बज गिर-पड़ा और ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

ब्राह्मण पण्डित, बावा, फकीर आदि पर इनका यथेष्ट विश्वास था। ब्राह्मणको छोड़ कर और किसीकी सलाह ये ग्राह्य नहीं करते थे।

निहालसिंह—अहलुवालिया मिस्लके सरदार फतेसिंहके ज्येष्ठ पुत्र। १८३७ ई०में पिताकी मृत्युके बाद ये राजसिंहासन पर बैठे। इस समय कुछ गोंडे इनको हत्या करनेके लिए राजप्रासादमें छिप रहे और सुयोग पा कर गुप्तभावसे इन पर टूट पड़े, किन्तु वे इनका एक बाल भी बाँका कर न सके। १८३८ ई०में जब लार्ड आकलैण्ड पञ्जाब हो कर काबुल जा रहे थे, तब इन्होंने खाद्यादि द्वारा अंगरेजी सेनाको यथेष्ट सहायता की थी। काबुलयुद्धमें इन्होंने दो दल सेना भी भेजी थी। १८४५ ई०में प्रथम सिख-युद्धके समय इनके चरित्र पर अंगरेजोंको सन्देह हो गया। क्योंकि इस समय इन्होंने रसद आदि दे कर उनकी सहायता न की। इस अपराधमें शतद्रुके दक्षिणस्थ वार्षिक ५६५००० रु०की जो सम्पत्ति थी उसे अङ्गरेज गवर्मेण्टने छीन लिया। २य सिखयुद्धमें इन्होंने तन मन धनसे अङ्गरेजोंकी सहायता पहुंचाई। इस प्रत्युपकारमें इन्हें 'राजा'-की उपाधि मिली थी। १८५२ ई०में ये धराधामको छोड़ परलोकको सिधारे।

मरते समय ये अपना सारा राज्य बड़े लड़के रणधीरसिंहको और विक्रमसिंह तथा सुचेतसिंह नामक शेष दो लड़केको एक एक लाख रुपयेकी जागीर दे गए।

निहाली (फा० स्त्री०) १ तोशक, गद्दी। २ निहाई।

निहाव (हिं० पु०) लोहेका घन।

निहिंसन (सं० क्ली०) नि-हिंस भावे ल्युट्। मारण, वध।

निहित (सं० त्रि०) नि-धा-क्त, धा स्थाने हि। (दधातेर्हिः। पा ७।४।४२) १ आहित, बैठाया हुआ। २ स्थापित, रखा हुआ। ३ निक्षिप्त, फेंका हुआ।

निहीन (सं० त्रि०) नितरां हीनः। नीच, पामर।

निहुंकना (हिं० क्रि०) झुकना।

निहुड़ना (हिं० क्रि०) निहुरना देखो।

निहुरना (हिं० क्रि०) झुकना, नवना।

निहुराना (हिं० क्रि०) झुकाना, नवाना।

निहोरना (हिं० क्रि०) १ प्रार्थना करना, विनय करना। २ कृतज्ञ होना, एहसान लेना। ३ मनाना, मनौती करना।

निहोरा (हिं० पु०) १ अनुग्रह, एहसान, उपकार। २ आश्रय, आधार, भरोसा, आसरा। ३ प्रार्थना, विनती। (क्रि० वि०) ४ निहोरेसे, कारणसे, बदौलत। ५ के लिये, वास्ते।

निह्नव (सं० पु०) निह्नूयते सत्यवाक्यमनेनेति नि-ह्नु अप्। (ऋदोरप्। पा ३।३।५७)। १ अपलाप, अस्वीकार करना। पर्याय-निह्नुति, अपह्नुति, अपह्नव। २ निकृति, भर्त्सना, तिरस्कार। ३ अविश्वास। ४ गुप्त, गोपन, छिपाव। ५ शुद्धि, पवित्रता। ६ एक प्रकारका साम।

निह्नान (सं० क्ली०) नि-ह्नु-ल्युट्। निह्नव।

निह्निति (सं० स्त्री०) नि-ह्नु-क्तिन्। निह्नव।

निह्नुत (सं० त्रि०) छिपाया हुआ।

निह्नुति (सं० स्त्री०) गोपन, छिपाव, दुराव।

निह्राद (सं० पु०) नि-ह्राद-घञ्। शब्द, ध्वनि।

नी (सं० त्रि०) नयति नी-कर्त्तरि-क्विप्। प्रापक।

नींद (हिं० स्त्री०) १ निद्रा, स्वप्न, सोनेकी अवस्था। निद्रा देखो।

नीक (सं० पु०) नीयते इति नी प्रापणे कन् (अजियुधूनीभ्यो दीर्घश्च। उण् ३।४७) वृक्षविशेष, एक पेड़का नाम।

नीक (हिं० पु०) उत्तमता, अच्छापन, अच्छाई।

नीकर्षिन् (सं० त्रि०) प्रसारणयुक्त।

नीका (हिं० वि०) उत्तम, अच्छा, बढ़िया, भला।

नीकार (सं० पु०) नि-क्न-घञ् घञ. बाहुलकात् दीर्घः। उपसर्गस्य घञ्य मनुष्येबहुलम्। पा ६।३।१२२) न्यक्कार, भर्त्सना, तिरस्कार।

नीकाश (सं० त्रि०) नितरां काशते इति नि-काश-अच्, ततो उपसर्गस्य दीर्घः। (इकः काशे। पा ६।३।१२३) १ तुल्य, समान। (पु०) २ निश्चय।

नीकुलक (सं० पु०) प्रवरभेद।

नीके (हिं० क्रि०-वि०) अच्छी तरह, भली भांति।

नीक्षण (सं० क्ली०) नीक्ष्यतेऽनेन नि-ईक्ष करणे ल्युट्। पाकादि परीक्षासाधन काष्ठभेद।

नीग्रो (सं० पु०) हबशी। निग्रो देखो।

नीच (सं० त्रि०) निकृष्टामीं लक्ष्मीं शोभां चिनोतीति चि-ड। १ जाति, गुण और कार्यादि द्वारा निकृष्ट, क्षुद्र, तुच्छ, अधम, हेठा। संस्कृत पर्याय—विवर्ण, पामर, प्राकृत, पृथग्जन, निहीन, अपसद, जाल्म, क्षुल्लक, इतर, अपशद, क्षुल, क्षुद्र, वेतक, खुल्लक। नीचोंकी संगति करना सर्वदा वर्जनीय है। २ अनुच्च, जो ऊँचा न हो। पर्याय—वामन, न्यक्, खर्व, ह्रस्व। ३ निम्न, नीचे। (पु०) ४ चोरक नामक गन्धद्रव्य। ५ ग्रहादिका स्थानभेद।

जिस ग्रहकी जो राशि उच्चस्थान होती है, उस ग्रहके उस उच्च स्थानसे गणनामें जो राशि सातवें स्थानमें पड़ती है, वह स्थान उस ग्रहका नीच स्थान होगा। उच्चांशकी जैसी गणना है, नीचांशकी भी ठीक उसी तरह है। यथा—रविका उच्चस्थान मेष है और मेषका उच्चांश दश है। अतएव नीचांश भी दश होगा। नीचांशके शेष अंशको सुनीचांश कहते हैं। इस स्थानमें जो ग्रहगण रहते हैं, वे नितान्त दुर्बल होते हैं। इसी प्रकार अन्य राशिके नीचांश और सुनीचांशकी गणना करके ग्रहोंका बलाबल देखना होता है।

यह उच्च नीच जाननेके लिये नीचे एक तालिका दी गई है।

ग्रहका नाम	उच्च राशि	नीच राशि	उच्चांशका भोगकाल	नीचांश-भोगका काल।
रवि	मेष	तुला	१० दिन	१० दिन।
चन्द्र	वृष	वृश्चिक	१३।२० पल	१३।२० पल।
मङ्गल	मकर	कर्कट	४२ दिन	४२ पल।
बुध	कन्या	मीन	८ दिन	८ दिन।
गुरु	कर्कट	मकर	२ मास	२ मास।
शुक्र	मीन	कन्या	२५दिन०।१२पल	२५दिन०।१२पल
शनि	तुला	मेष	२० मास	१२ मास।
राहु	मिथुन	धनु	१२ मास	१२ मास।
केतु	धनु	मिथुन	१२ मास	१२ मास।

इसी प्रकार नीच राशि जाननी चाहिए। राशिके नीचस्थित होनेसे मन्दकाल होता है। (फलितज्योतिष)

६ क्षुद्र मनुष्य, नीच मनुष्य, ओछा आदमी। ७ भ्रमणकालमें किसी ग्रहके भ्रमणवृत्तका वह स्थान जो पृथ्वीसे अधिक दूर हो। ८ दशार्ण देशके एक पर्वतका नाम।

नीचक (सं० त्रि०) नीच एव स्वार्थे कन्। वामन, खर्व, नाटा।

नीचकदम्ब (सं० पु०) नीचः कदम्बो यस्मात्। १ मरुडोर, मुण्डो। २ महाश्रावणिका।

नीचकमाई (हिं० स्त्री०) १ निन्द्य व्यवसाय, तुच्छ काम, खोटा काम। २ वह धन जो बुरे कामोंसे उपार्जन किया गया हो।

नीचका (सं० स्त्री०) निकृष्टामीं शोभां चकति प्रतिहन्ति, चक प्रतिघाते अच्-टाप्। उत्तमा गो, अच्छी गाय।

नीचकी (सं० पु०) निकृष्टामीं शोभां चकति चक प्रतिघाते गौरादित्वात् ङीप्। १ उच्च, श्रेष्ठ। २ ऊपरी भाग। ३ जिसके पास अच्छी गायें हों।

नीचकुलिश (सं० क्ली०) वैक्रान्त रत्न।

नीचकैस् (सं० अव्य०) नीचैस् इत्यव्ययस्य टेः प्राग् अकच्। (अव्यय सर्वनाम्नामकच्प्राक्टेः। पा ५।३।७१) १ नीचैस्, क्षुद्र। २ अल्प। ३ अधम। ४ नीच। ५ नम्र। ६ अधम। ७ खर्व।

नीचग (सं० क्ली०) नीचं निम्नदेशं गच्छतीति गम-ड। १ निम्नगामिजल, नीचेकी ओर जानेवाला पानी। २ फलितज्योतिषके अनुसार वह ग्रह जो अपने उच्च स्थानसे सातवें पड़ा हो। (त्रि०) ३ निम्नगामी, नीचे जानेवाला। ४ पामर, ओछा। स्त्रियां टाप्। ६ नीचवर्णगामिनी स्त्री, नीचके साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगा (सं० स्त्री०) नीचग-टाप्। १ निम्नगा, नदी। २ नीचवर्णगामिनी स्त्री, नीचके साथ गमन करनेवाली स्त्री।

नीचगामी (हिं० वि०) १ नीचे जानेवाला। २ ओछा। (पु०) ३ जल, पानी।

नीचगृह (सं० क्ली०) वह स्थान जो किसी ग्रहके उच्च स्थान वा राशिसे गिनतीमें सातवाँ पड़े।

नीचता (सं० स्त्री०) नीचस्य भावः, नीच-तल्। १ नीचत्व, नीच होनेका भाव। २ अधमता, खोटाई, कमीनापन।

नीचत्व (सं० पु०) नीचता ।
नीचभोज्य (सं० पु०) नीचै र्भोज्यः । १ पलाण्डु, प्याज (त्रि०) २ नीचभोज्यमात्र, अखाद्य ।
नीचयोनिन् (सं० त्रि०) नीचा योनिरस्यस्य ब्रीह्यादित्वात् इनि । नीच-जातियुक्त ।
नीचवज्र (सं० पु०-क्ली०) नीचमनुत्कृष्टं वज्रम् । वैक्रान्त मणि ।
नीचा (हिं० वि०) १ जिसके तलसे उसके आसपासका तल ऊँचा हो, जो कुछ उतार या गहराई पर हो । २ जो ऊपरकी ओर दूर तक न गया हो । ३ जो उत्तम और मध्यम कोटिका न हो, छोटा या ओछा । ४ जो तीव्र न हो, मध्यम, धीमा । ५ जो ऊपरकी ओर पूरा उठा न हो, झुका हुआ । ६ जो ऊपरसे जमीनकी ओर दूर तक आया हो, अधिक लटका हुआ ।
नीचात् (सं० अव्य०) निकृष्टामीं चिनोति बाहुलकात् डाति । नीच, क्षुद्र ।
नीचामेढ्र (सं० त्रि०) अधोमुखलिङ्ग ।
नीचायक (सं० त्रि०) नितरां निश्चयेन वा चिनोति नि-चि-ण्वुल् । नितान्त चायक, बहुत चाहनेवाला ।
नीचावयस् (सं० त्रि०) न्यग्भावप्राप्त ।
नीचाशय (सं० त्रि०) नीच आशयः यस्य । क्षुद्रचेता, तुच्छ विचारका, ओछा ।
नीचिकी (सं० स्त्री०) नैचिकी, अच्छी गाय ।
नीचीन (सं० त्रि०) न्यगेव स्वार्थे ख अच्चतेर्न लोपात् लोपे पूर्वाणो दर्घः । न्यग्भूत, अधोमुख ।
नीचू (हिं० वि०) जो टपकता न हो, जो न चुए ।
नीचे (हिं० क्रि०-वि०) १ अधोभागमें, नीचेकी ओर, ऊपरका उलटा । २ अधीनतामें, मातहतीमें । ३ न्यून, घट कर, कम ।
नीचैर्गति (सं० स्त्री०) नीचैः गतिः । १ मन्दगमन । २ निम्नगति ।
नीचैस् (सं० अव्य०) नि-चि-डस्, नेर्दीर्घश्च । (नौ-दीर्घश्च । उण् ४।१३) १ नीच । २ स्वैर । ३ अल्प । ४ अनुच्च ।
नीचोच्चमास—चन्द्रमा २७ दिन १३ दण्ड १८ ५६ पलमें एक बार पृथ्वीके चारों ओर घूम आता है । इतने समयके मध्य चन्द्रकेन्द्रका एक बार परिभ्रमण सम्पन्न होता है । अंगरेजी ज्योतिषमें इसे Anomalistic month कहते है । 'नीच' (perigee) शब्दका अर्थ है पृथिवी और चन्द्रका गमनकालीन सर्वापेक्षा निकटवर्त्ती स्थान और 'उच्च' (apojee) शब्दका अर्थ पृथिवी और चन्द्रका सर्वापेक्षा दूरवर्त्ती स्थान । अतएव नीचोच्चमाससे उतने समयका बोध होता है जितनेमें चन्द्र 'नीच' और 'उच्च' से गमन कर पुनः उसी स्थान पर लौट आता है ।

तिथिशब्द देखो ।

नीचोच्चवृत्त (सं० क्ली०) वृत्तभेद, वह वृत्त जिसका केन्द्र किसी एक वृहत् वृत्तके मध्य भ्रमण करता है । (Epicyche) ·
नीचोपगत (सं० त्रि०) जो खगोलके निम्नभागमें अवस्थित हो ।
नीच्य (सं० त्रि०) नीचि भवः न्यनूच् यत्, नलोपाल्लोपे पूर्वाणो दीर्घः । निम्नभव, जो नीचे हो ।
नीज (हिं० पु०) रस्सी ।
नीजू (हिं० स्त्री०) रस्सी, पानी भरनेकी डोरी ।
नीठ (हिं० क्रि०-वि०) नीठि देखो ।
नीठि (हिं० स्त्री०) १ अरुचि, अनिच्छा । (क्रि०-वि०) १ ज्यों त्यों करके, किसी न किसी प्रकार । २ कठिनतासे, मुश्किलसे ।
नीठो (हिं० वि०) अनिष्ट, अप्रिय, न सुहानेवाला, न भानेवाला ।
नीड़ (सं० पु०-क्ली०) नितरां ईड्यते स्तूयते सुरक्ष्यत्वात् नि ईड़ घञ् । १ पक्षिवासस्थान, चिड़ियोंके रहनेका घोंसला । इसका पर्याय कुलाय है ।

जिस जातिकी चिड़िया जिस जिस ऋतुमें गर्भोत्पादन करती हैं ठीक उसी समय वे अपने अपने घोंसले बनानेकी फिक्रमें रहती हैं । इस घोंसलेको वे अकसर वृक्षकी ऊँची डालियों पर ही बनाते हैं । जब गर्भिणी चिड़ियाका डिम्बप्रसवकाल नजदीक आ जाता है, तब नर और मादा दोनों इधर उधरसे खर, पत्ते, घास फूस अपनी चोंचमें उठा लाते और किसी वृक्षके उच्चतम शिखर पर घोंसला बनाते हैं । यह घोंसला इस प्रकार बना होता है कि उसके बाहरी भाग पर हाथ रखनेसे काँटा चुभनेके जैसा मालूम पड़ता है, लेकिन जहां

मादा अंडा पारती है वह स्थान घरके जैसा एवं बाहरकी अपेक्षा चिकना और कोमल होता है।

चील, कौवे आदिके घोंसले भी ठीक इसी तरह होते हैं। बहुत-सी ऐसी चिड़ियां है जो पुरानी दीवारकी दरारमें घोंसला बनाती हैं। कठफोड़वा नामका पक्षी वृक्षके कोटरमें घोंसला बनाना पसन्द करता है। गृह-पालित कुक्कुट, वत्तख, कबूतर आदि पक्षी अपने अपने निर्दिष्ट स्थानमें खर, घास और निज मलसंयोगसे नीड़ बनाते हैं। वया नामक पक्षीका घोंसला बड़ा ही अजूबा होता है। यह घोंसला बाहरसे देखनेमें सूखी तुरईके जैसा लगता है। इसके भीतरका प्रवेशपथ और आवास-स्थान बड़ी कारीगरीसे बना होता है। कहते हैं, कि वया पक्षी अपने घोंसलेमें जुगनू रख कर उसी-से दीएका काम लेते हैं। अति हेय प्राणी चमगादड़ पक्षियोंके कोमल परसे अपना घोंसला ऐसे कौशलसे बनाता है कि उसे देख कर आश्चर्यित होना पड़ता है। यह अपना घोंसला भग्नगृहके बीमवरगेमें सटा कर बनाता है। भीतरी भाग और सभी पक्षियोंके घोंसलों-से मुलायम होता है। बादुर कहां घोंसला बनाता है, कोई नहीं जानता। यह अक्सर भग्नगृहादि वा निर्जन गृहादिके बीमवरगेमें अथवा किसी वृक्षकी डालीमें दिन-को लटका रहता है। काकातुआ आदि पार्वतीय पक्षी पर्वतकी दरारमें और वृक्षके ऊपर घोंसले बनाते हैं। मयूरादि पक्षिगण पर्वत पर अथवा जमीनमें गड्ढे बना कर रहते हैं। अष्ट्रेलिया और उसके निकटवर्त्ती द्वीपों-में फिलिपाइन द्वीपपुञ्जमें और वोर्णियोद्वीपके उत्तर-पश्चिममें एक जातिकी चिड़िया रहती है जो घने जङ्गलमें मट्टी वा बालूके नीचे गड्ढा बना कर अण्डा पारती है। भारतीय शकुनि जातीय पक्षी आदिके नीड़ देखनेमें कदर्य लगते हैं, लेकिन भीतरका भाग मुला-यम रहता है। अण्डे देनेके समय वे पुरातन छिन्न वस्त्र-को ला कर उसे और भी मुलायम बना लेते हैं। कभी पीयड़के बदले मनुष्यके सिरके बाल, परित्यक्त पशमादि अथवा छोटे छोटे पौधोंकी पत्तियां भी दिया करते हैं। इस नीड़का व्यास साधारणतः २से ३ फुट और लम्बाई ४से १० इञ्च तक होती है। अफ्रिकाके उष्ट्रपक्षी पहाड़-के ऊपर और जो पालित हैं वे उच्चभूमि पर अण्ड-प्रसव-के समय हंसादिके जैसा नीड़ बनाते हैं।

भारतसमुद्रके सुमात्रा, वोर्णियो और चीनदेशके समुद्र-उपकूलमें एक प्रकारकी अबाबील (Swallow) चिड़िया रहती है। यह पर्वतकी गुहामें अपने मुखकी लालसे जो नीड़ बनाती है वह चीन और यूरोप-वासीका बड़ा ही उपादेय खाद्य है। वह मुखनिःसृत लाल समुद्र-उपकूल-जात किसी पदार्थसे प्राप्त होती है। केम्फर साहब अनुमान करते हैं कि वह लाल समुद्रकीट-की समष्टिकी बनी होती है। विज्ञानविद् पैभर इसे एक प्रकारकी मछलीके अण्डे वा समुद्रकूलवर्त्ती क्षुद्र-जातीय मछलीकी सहायतासे गठित बतलाते हैं। उसकी आकृति हंसडिम्ब-सी होती है। वह नीड़ प्रकृत अवस्था-में उक्त अबाबील चिड़ियाके मल और परसे आवृत रहता है। व्यवसायी लोग पर्वतगात्रसे नीड़ संग्रह कर उक्त मल और पर धो डालते हैं, इस समय वह नीड़ देखने-में ठीक सफेद झींगुरके जैसा लगता है। वह ऐसा उपादेय होता है कि यूरोप और चीनवासी उसके गुण पर मोहित हो कर उससे शिरवा बनाते और बड़ी रुचि-से खाते हैं। वह झींगुरके जैसा पदार्थ विशिष्ट नीड़ांश ५ रुपये तोलेके हिसाबसे बिकता है और केवल धनी मनुष्य उसे खरीदते हैं।

चीनवासियोंका विश्वास है कि नीड़ खानेसे शरीर सर्वदा युवाके जैसा बना रहता है। इस कारण वे प्रति वर्ष कई हजार मन ऐसा नीड़ संग्रह कर रखते हैं। वह नीड़ अकसर दो प्रकारका होता है, एक श्वेतवर्णका नीड़ और दूसरा कृष्णवर्णका। श्वेत-वर्णविशिष्ट नीड़ अधिक मोलमें बिकता है, सैकड़े पीछे केवल ४ सफेद नीड़ पाये जाते हैं। कृष्णवर्णका नीड़ यवद्वीपकी राजधानी बटेभिया नगरमें बिकता है जहां उसे गला कर उमदा शिरीष (आटेके जैसा पदार्थ) तैयार करते हैं। किसी किसीका कहना है, कि इस काले नीड़को कुछ काल तक गरम जलमें डुबोये रखनेसे उसका रंग सफेदमें पलट आता है। पर्वतगह्वरके मध्य यह नीड़ अधिक संख्यामें पाया जाता है।

२ बैठने वा ठहरनेका स्थान। ३ रथियोंका अधिष्ठान

स्थान, रथके भीतर वह स्थान जिसमें रथी बैठता है।
"स भग्न नीड़: परिप्लुतकूबरः पपात भूमौ हतवाजिरम्बरात्"
(रामायण ३।५।३८)

४ रथावयवभेद, रथके एक अङ्गका नाम।

नीड़क (सं० पु०-स्त्री०) नीड़े कायति प्रकाशते कै-क। खग, पक्षी, चिड़िया।

नीड़ज (सं० पु० स्त्री०) नीड़े जायते जन-ड। पक्षी, चिड़िया।

नीड़जेन्द्र (सं० पु०) गरुड़।

नीड़ि (सं० पु०) नितान्तं इलन्तल, नि-इल स्पर्शे-इन् लस्य ड। निवास, वासस्थान।

नीड़ोद्भव (सं० पु०-स्त्री०) नीड़े उद्भवति, उद् भू-अच् वा नीड़े उद्भवो यस्य। खग, पक्षी।

नीत (सं० त्रि०) नी-कर्मणि क्त। १ स्थापित। २ प्रापित। ३ गृहीत। ४ अतिवाहित। (पु०) ५ धान्य, धान।

नीति (सं० स्त्री०) नीयते संलभ्यन्ते उपायादय ऐहिकामुष्मिकार्था वास्यामनया, नी-अधिकरणे वा क्तिन्। १ शुक्रादि-उक्त राजविद्या। भावे-क्तिन्। २ प्रापण। ३ तदधिष्ठात्री देवीभेद। हरिवंश २५६ अ०में लिखा है—
"शिष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्रीः कीर्तिर्द्युतिरेव च।
प्रभा धृतिः क्षमाभूतिर्नीतिर्विद्या दया मतिः॥"

४ शास्त्रविशेष।

नीतिशास्त्र हिताहित विवेचनाका शास्त्र है। इसका अध्ययन करनेसे अच्छे बुरेका ज्ञान होता है। मानव जब दुर्नीतिपरायण होते हैं, तब जगत्में नाना प्रकारकी विशृङ्खलाएँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए सबसे पहले नीतिपरायण होना नितान्त प्रयोजन है। महाभारतके शान्तिपर्वमें नीतिशास्त्रका विषय इस प्रकार लिखा है—युधिष्ठिरने जब भीष्मदेवसे नीतिशास्त्रका विषय पूछा, तब उन्होंने कहा था कि सत्ययुगमें सृष्टिके कुछ दिन बाद सभी मनुष्य पापपथ पर चलने लगे। यह देख कर देवताओंने ब्रह्माकी शरण ली। भगवान् कमलयोनिने देवताओंको सम्बोधन करते हुए कहा, 'तुम लोग डरो मत, मैं बहुत जल्द ही इसका उपाय कर देता हूं।' यह कह कर उन्होंने अचिरात् लक्ष अध्याययुक्त नीतिशास्त्रकी रचना की। उस शास्त्रमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्वर्ग; सत्त्व, रज और तम तीन गुण; वृद्धि, क्षय और समानत्व नामक दण्डज त्रिवर्ग; चित्त, देश, काल, उपाय, कार्य और सहाय नामक नीतिज षड्वर्ग; कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्ड, कृषि, वाणिज्यादि, जीविकाकाण्ड, दण्डनीति, अमात्य, रक्षार्थनियुक्त चर और गुप्तचरविषय, राजपुत्रका लक्षण, चरगणका विविधोपाय, साम, दान, भेद, दण्ड, उपेक्षा, भेदकारक मन्त्रणा और विभ्रम, मन्त्रसिद्धि और असिद्धिका फल, भय, सत्कार, वित्तग्रहणार्थं अधम, मध्यम और उत्तम तीन प्रकारकी सन्धि, चतुर्विध यात्राकाल, त्रिवर्गका विस्तार, धर्मयुक्त विजय और आसुरिक विजय, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, बल और कोष इस पञ्चवर्गके त्रिविध लक्षण, प्रकाश और अप्रकाश्य सेनाका विषय, अष्टविध गूढ़ विषय प्रकाश, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति, भारवाही, चर, पोत और उपदेष्टा यह अष्टविध सेनाङ्ग, वस्त्रादि और अन्नादिमें विषयोग, अभिचार, अरि, मित्र और उदासीनका विषय, पथगमनका ग्रहनक्षत्रादिजनित समग्र गुण, भूमिगुण, आत्मरक्षा, आश्वास, रथादि निर्माणका अनुसन्धान, मनुष्य, हस्ती, पशु और रथसज्जाका उपाय, विविधव्यूह, विचित्र युद्धकौशल, धूमकेतु आदि ग्रहोंका उत्पात, उल्कादि निपात, सुप्रणालीक्रमसे युद्ध, पलायन, अस्त्रशस्त्रका शाणप्रदान, अस्त्रज्ञान, सैन्यव्यसनमोचन, सैन्योंका हर्षोत्पादन, पीड़ा, आपद्‌काल, पदातिज्ञान, खातखनन, पताकादि प्रदर्शनपूर्वक शत्रुके अन्तःकरणमें भयसञ्चारण, चोर, उग्रस्वभाव, अरण्यवासी, अग्निदाता, विषप्रयोक्ता, प्रतिरूपकारी प्रधान व्यक्तिका भेद, वृक्षच्छेदन, मन्त्रादि प्रभावसे हाथियोंका बलह्रास, शङ्का उत्पादन और अनुरक्त व्यक्तिका आराधन तथा विश्वासजनन द्वारा परराष्ट्रमें पीड़ाप्रदान, सप्ताङ्गराज्यका ह्रास, वृद्धि और समता, कार्यसामर्थ्य, कार्यका उपाय, राष्ट्रवृद्धि, शत्रुमध्यस्थित मित्रका संग्रह, बलवान्‌का पीड़न और विनाशसाधन, सूक्ष्म व्यवहार, खलका उन्मूलन, व्यायाम, दान, द्रव्यसंग्रह, अभृतव्यक्तिका भरणपोषण, भृतव्यक्तिका पर्यवेक्षण, यथाकालमें अर्थदान, व्यसनमें अनासक्ति, भूपतिका गुण, सेनापतिका गुण, त्रिवर्गका कारण और गुणदोष, अशुभ-

अभिसन्धि, अनुगतोंके व्यवहारादिके प्रति श्रद्धा, अनवधानतापरिहार, अलब्धविषयका लाभ, लब्धवस्तुको वृद्धि, प्रवृद्ध धर्म, अर्थ, काम और व्यसन विलासके लिये दान, मृगया, अक्षक्रीड़ा, सुरापान और स्त्रीसम्भोग चार प्रकारका कामज वाक्‌पारुष्य, उग्रता, दण्डपारुष्य, निग्रह, आत्मत्याग और अर्थदूषण यह छः प्रकारका क्रोधज, कुल दश प्रकारका व्यसन; विविधयन्त्र और यन्त्रकार्य, चित्तविलोप, चैत्यच्छेदन, अवरोध, कृषि आदि कार्यों का अनुशासन, नाना प्रकारका उपकरण, युद्धयात्रा, युद्धोपाय, पण्य, आनव, शङ्ख और भेरीद्रव्य उपार्जन, लब्धराज्यमें प्रतिस्थापन, साधुलोककी पूजा और विद्वानोंके साथ आत्मीयता, दान और होमका परिज्ञान, माङ्गल्यवस्तुका स्पर्श, शरीरसंस्कार, आहार, आस्तिकता, एक पथका अवलम्बन कर अभ्युदयलाभ, सत्य मधुर वाक्य, सामाजिक उत्सव, गृहकार्य, चत्वरादिस्थानका प्रत्यक्ष और परोक्ष-व्यवहार, अनुसन्धान, ब्राह्मणोंकी अदण्डनीयता, युक्तानुसार दण्डविधान, अनुजीवियोंके मध्य जाति और गुणगत पक्षपात, पौरजनका रक्षाविधान, द्वादश राजमण्डलविषयक चिन्ता, सत्ताईस प्रकारका शारीरिक प्रतिकार, देश, जाति और कुलका धर्म, धर्मादि मूलकार्यकी प्रणाली, मायायोग, नौकानिमज्जनादि द्वारा नदीपथावरोध इन सब विषयोंका विस्तृत विवरण लिखा है।

पद्मयोनि ब्रह्माने इस नीतिशास्त्रकी रचना कर इन्द्र आदि देवताओंसे कहा, 'मैंने त्रिवर्गसंस्थापन और लोगोंके उपकार-साधनके लिए वाक्यके साररूप इस नीतिशास्त्रका उद्भावन किया है। इस नीतिशास्त्रके अध्ययन करनेसे निग्रह और अनुग्रह प्रदर्शनपूर्वक लोकरक्षा करनेकी बुद्धि उत्पन्न होगी। इस शास्त्र द्वारा जगत्‌के सभी मनुष्य दण्डप्रभावसे पुरुषार्थ फललाभमें समर्थ होंगे, इसीसे इस नीतिका नाम दण्डनीति रखा जायगा।'

इस प्रकार लक्षाध्याययुक्त नीतिशास्त्रके तैयार हो जाने पर पहले पहल महादेवने उसे ग्रहण किया। प्रजावर्गकी आयुकी कमी देख कर उन्होंने इस नीतिशास्त्रको संक्षेपमें बनाया। यह शास्त्र दश हजार अध्यायोंमें विभक्त किया गया और वैशालाक्ष्य नामसे प्रसिद्ध हुआ। पीछे भगवान् इन्द्रने उस शास्त्रको पांच हजार अध्यायोंमें बना कर उसका नाम बाहुदन्तक रखा। अनन्तर बृहस्पतिने बाहुदन्तक ग्रन्थको संक्षिप्त कर तीन हजार अध्यायोंमें विभक्त किया जो पीछे बार्हस्पत्य नामसे मशहूर हुआ। अन्तमें शुक्राचार्यने इसीको ले कर हजार अध्यायोंका एक नीतिशास्त्र बनाया और उसका शुक्रनीति नाम रखा। यही शुक्रनीति अल्पायु मानवोंके पढ़ने योग्य है। इसके पढ़नेसे हिताहितका ज्ञान होता है।

(भारत शान्तिपर्व ५८ अ०)

कालिकापुराणमें नीतिका विषय इस प्रकार लिखा है,—राजा सगरने महामुनि और्वको नीतिसम्बन्धमें बहुत-सी बातें पूछते हुए कहा, 'मुनिवर! आत्मा, पुत्र और भार्याके प्रति जिस नीतिका प्रयोग करना उचित है, उसे हमें अच्छी तरह समझा कर कहें।' इस पर और्वने उन्हें नीतिका इस प्रकार उपदेश दिया था,—

'पहले ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध और वयोवृद्ध, असूयावर्जित, उदारचित्त, विप्रमण्डलीको सेवा कर्त्तव्य है। उनसे प्रतिदिन श्रुतिस्मृतिविहित विधिव्यवस्था श्रवण करें। वे जो कुछ कहें, राजाको उचित है कि उसी समय उसे कर डालें। शरीर एक रथ है। पञ्च कर्मेन्द्रिय उसके ५ घोड़े हैं। आत्मा उसकी आरोही रथी है, ज्ञान घोड़ेका लगाम है और मन उसका सारथि है। सभी घोड़ोंको विनीत करना होता है और सारथिको रथीके वश लगामको दृढ़ तथा शरीरमें स्थैर्य सम्पादन करना अवश्य विधेय है। रथी दुर्विनीत अश्वचालित रथ पर चढ़ कर घोड़ोंके इच्छानुसार जाते जाते विपथमें पहुँचता है। फिर रथीके अवाध्य हो कर सारथिके इच्छानुसार अश्वचालना करने पर रथी यदि वीर भी रहे, तो भी वह उसे रिपुके अधीन कर डालता है। अतः विषय भोग करते समय इन्द्रिय और मनको वशीभूत करें। ज्ञान जिससे दृढ़ रहे, सबसे पहले वही करना श्रेय है। ज्ञानरूप लगामके दृढ़ होने पर और सारथिके वशवर्ती रहने पर, विनीत अश्व ठीक रास्तेसे चलेगा। इसीसे सभीको अपनी अपनी इन्द्रिय और मनको वशमें करके ज्ञानपथ पर रह कर आत्महितानुष्ठान विधेय है।

स्वेच्छाक्रमसे भोग कर सकते हैं, लेकिन कुपथको ओर ध्यान न दें। जिसे देखना उचित है, उसीको देखें, ओत्सुक्यके साथ कुछ भी न देखें। जो सुनने योग्य हो, उसे ही सुने, अतिरिक्त विषयको ओर कान न दे। धीर राजा शास्त्रतत्त्वके सिवा और किसी पर हठात् विश्वास न करे। राजा स्वेच्छाक्रमसे विषयभोग कर सकते हैं। लेकिन उसके प्रति आसक्त न होवे। ऐसा करनेसे ही वे जितेन्द्रिय होते हैं। शास्त्रानुशीलन और वृद्धसेवा ही इन्द्रियजयको हेतु है। अवृद्धसेवी और शास्त्रानभिज्ञ राजा बहुत ही जल्द शत्रुके वश हो जाते हैं। प्रसन्नता प्रागल्भ्य, उत्साह, वाक्पटुता, विवेचना, कुशलता, सहिष्णुता, ज्ञान, मैत्री, कृतज्ञता, शासनदार्ढ्य, सत्य, शौच, कार्यस्थिरता, दूसरेका अभिप्रायज्ञान, सच्चरित्रता, विपद्में धैर्य, क्लेशसहिष्णुता, गुरु, देव और द्विजपूजा, असूयाहीनता और अक्रोधता आदि गुण राजामें अवश्य रहने चाहिए। राजा कार्याकार्यविभाग, धर्म, अर्थ और कामके प्रति हमेशा लक्ष्य रखे। साम, दान, भेद और दण्ड इन चार उपायोंका यथास्थानमें प्रयोग करे। सामप्रयोगकी जगह भेदप्रयोग मध्यम, दानप्रयोगकी जगह दण्डप्रयोग वा दण्डप्रयोगकी जगह दानप्रयोग अधम और सामप्रयोगकी जगह दण्डप्रयोग अधमसे भी अधम माना गया है। साम और दान ये दोनों उपाय एक दूसरेके साहाय्यकारी हैं। राजाको इन सब उपायोंके प्रयोगकी जगह मौखिक सौजन्य प्रकाश करना चाहिए। राजाके लिये काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, अभिमान और मद इनका आतिशय्य शत्रुवत् निवार्य है। लोभ और गर्व छोड़ कर काम आदिका यथासमय कुछ कुछ व्यवहार किया जा सकता है। राजाओंका तेज ही सूर्यसा तीव्र है। गर्व उनका रोग है, अतएव रोगयुक्त देहकी तरह गर्वमिश्रित तेजका परित्याग करना चाहिए। मृगयासक्ति, द्यूतक्रीड़ा, अत्यन्त स्त्रीसम्भोग, पानदोष, अर्थ-दूषण, वाक्पारुष्य और दण्डपारुष्य इन ७ दोषोंको राजा अच्छी तरह परित्याग करे। अभिशस्त, चोर, हत्याकारी और आततायियोंके ऊपर राजा सर्वदा दण्डपारुष्यका प्रयोग करे। किन्तु वाक्पारुष्यका प्रयोग उन्हें भूल कर भी न करना चाहिए। कार्य समर्थ कर क्षमा और तेजस्विताका अवलम्बन करना अवश्य कर्त्तव्य है।

अभिमान, स्थिति, आश्रयग्रहण, द्वैध, सन्धि और विग्रह ये छः गुण राजामें हरवक्त मौजूद रहे। शत्रु, मित्र और उदासीन सभीको विविध प्रभाव दिखावे। जिगीषा, धर्मकार्य, अष्टवर्ग और शरीरयात्रानिर्वाहमें भी उत्साही होना उचित है। कृषि, दुर्ग, वाणिज्य, सेतुबन्धन, गजवाजिबन्धन, खानमें अधिकार, करग्रहण, एवं शून्यनिवेशन, चरशून्यादि स्थानमें चरादि स्थापन यही अष्टवर्ग है। इस अष्टवर्गसे चरनियोग करना चाहिए। इस अष्टवर्गमें नियुक्त व्यक्तियोंके कार्याकार्यकी देखरेख करनेके लिये ८ चरोंको नियुक्त करें।

राजाको चाहिए, कि वे मन्त्रीके साथ प्रदोषकालमें निर्जनस्थानमें बैठ कर चरके मुखसे सब वार्त्ता सुने। एकवेशधारी, उत्साहवर्जित, सर्वत्र परिचित, अतिदीर्घाकृत, खर्वकाय, सतत द्विधाचारी, वेगसम्पन्न, निर्बुद्धि, धनसम्पत्तिविहीन, पुत्रदारवर्जित ये सब मनुष्य चर होने लायक नहीं हैं। बहुदेशतत्त्ववित्, बहुभाषाभिज्ञ, पराभिप्रायवेत्ता, दृढ़भक्तिसमर्थ और निर्भय व्यक्तिको चर बनाना उचित है। अन्तःपुरमें वृद्ध, धीर और पितृतुल्यव्यक्तियोंको तथा विचक्षण वर्षधरोंको वा वृद्धा रमणियोंको चर नियुक्त करे। राजा कभी भी एकाकी भोजन वा शयन न करें। वे बहुविद्याविशारद, विनीत, सत्कुलोद्भव, धर्मार्थकुशल और सरलचित्त ब्राह्मणोंको ही मन्त्रिपद पर नियुक्त करें। स्त्रियोंको सर्वदा अस्वतन्त्र रखें। स्त्री स्वतन्त्र हो कर यदि कार्य करे, तो महत् अनिष्टकी सम्भावना है। राजा पुत्र और स्त्रीको अन्तःपुर वा वहिःप्रदेशमें स्वाधीनभावसे कोई कार्य करने न दें। राजा इन सब नीतियोंका अवलम्बन कर यदि राज्यशासन करे, तो एक भी प्रजा नीतिवहिर्भूत कोई कार्य नहीं कर सकती। राजाके दुर्नीतिपरायण होनेसे ही चारों ओर विशृङ्खला फैल जाती है और प्रजाकी उनके प्रति भक्ति श्रद्धा कुछ भी नहीं होती। इसी कारण नीतिशब्दमें पहले राजनीतिकी ही बात कही गई। (कालिकापु० ८४ अ०)

मनुष्य विनीत हैं, वा अविनीत, इसका पर्यवेक्षक

राजा ही है। राजाको उचित है, कि वे सुनीतोंका पालन करें और अविनीतोंको दण्डविधानादि द्वारा सुपथ पर लावें। इसी कारण राजाओंको राजनीति-विशारद होना उचित है।

अग्निपुराणमें नीतिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

'रामने लक्ष्मणको नीति विषयका जो उपदेश दिया था, वह इस प्रकार है,—

विनय ही नीतिका मूल है। शास्त्रनिश्चयके द्वारा विनयकी उत्पत्ति होती है। इन्द्रियविजयको ही विनय कहते हैं। सभी मनुष्यको विनीत भावमें रहना आवश्यक है। शास्त्रज्ञान, प्रज्ञा, धृति, दक्षता, प्रागल्भ्य, धारयिष्णुता, उत्साह, वाक्यसंयम, औदार्य, आपत्कालमें सहिष्णुता, प्रभाव, शुचिता, मैत्र, त्याग, सत्य, कृतज्ञता, कुल, शील और दम ये सब गुण सम्पत्तिके हेतु हैं।

इन्द्रियां मत्तहस्तीकी तरह स्वभावतः उद्दाम हो कर हृदयको विद्रावित करती हैं और विषयरूप विशाल अरण्यको ओर दौड़ती हैं। इस समय ज्ञानरूप अङ्कुश द्वारा उन्हें वश करना कर्त्तव्य है। जो मनुष्य ऐसा नहीं करते वे प्रज्वलित वह्निको सिरहनेमें रख कर सोते हैं। शत्रु, अग्नि, जल और इन्द्रिय इनमेंसे किसी पर विश्वास न रखना चाहिए। विशेषतः इन्द्रियकी शक्ति और वेग सबसे अधिक है। योगसिद्ध परमर्षिगण भी सहसा इन्द्रियवेगसे विचलित होते देखे गए हैं। धैर्यरूप आलानमें ज्ञानरूप शृङ्खलसे जब तक नहीं बंधा जायगा, तब तक इन्द्रियरूप मत्तहस्तीको वशीकरण करना बिलकुल असाध्य है। इन्द्रियवेगसे बुद्धि विचलित होती, मन घूमने लगता, हृदय चञ्चल हो जाता, आत्मा अवसन्न हो जाती, चैतन्य विच्छिन्न होता तथा ज्ञान विपन्न हो जाता है। अतएव जहां तक हो सके इन्द्रियहस्तीको वश करना हरएकका कर्त्तव्य है। इन्द्रियरूप दुर्दान्त हस्तीको वशीभूत करनेसे संसार यहां तक कि स्वयं ईश्वर भी वशीभूत और पराजित हो जाते हैं। ईश्वरको वशमें लानेसे निर्वाणरूप परमपद प्राप्त होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

काम, क्रोध, लोभ, हर्ष, मान और मद इनका नाम अरि षड़्वर्ग है। इस षड़्वर्गका परिहार नहीं करनेसे सुख किसी हालतमें मिल नहीं सकता। शास्त्रमें कामको विषाग्निस्वरूप माना है, क्योंकि इसकी ज्वाला, विष और अग्निसे भी भयानक है। नितान्त प्रशान्तचित्त और कामानलमें पतित होनेसे एकान्त अस्थिर होता है। संसारमें कामप्रभावसे मनुष्योंका जैसा अधःपतन होता है, वैसा और किसीसे नहीं होता। अतएव ज्ञानरूप सुशीतल जलसे कामानलको बुझाना एकान्त कर्त्तव्य है।

जितने प्रकारके शत्रु बतलाए गए हैं उनमेंसे क्रोध सबसे प्रधान शत्रु है। इसी कारण क्रोधको महारिपु कहा है। शरीरमें क्रोधके रहनेसे अन्य शत्रुका प्रयोजन नहीं पड़ता। क्रोध सारी पृथ्वीको विपन्न कर डालता तथा बन्धुओंको भी विक्षत करता है। क्रोध और विषधर अजगर दोनों ही एक पदार्थ हैं। सांप देखने पर मनुष्य जिस तरह डर जाते हैं, उसी तरह वे क्रोधी व्यक्तियोंसे भी डरते और उद्वेलित होते हैं। क्रोधित व्यक्तिको हिताहितका ज्ञान नहीं रहता। बहुतसे मनुष्य क्रोधमें आ कर आत्महत्या तक भी कर डालते हैं। क्रोध साक्षात् कृतान्त-स्वरूप है। रुद्रके अंशमें तमोगुणसे प्रजासंहार वा सृष्टिविनाशके लिए ही क्रोधका जन्म हुआ है। अतः क्रोधका त्याग करनेसे ही सुख मिलता है। जो क्रोधका त्याग नहीं करते, उन्हें हमेशा असुख और अस्वस्तिभोग करना पड़ता है। क्रोधी मनुष्य किसी समय शान्तिलाभ नहीं कर सकता। शान्ति नहीं होनेसे जीवन वृथा और विड़म्बनामात्र है। जान बूझ कर क्रोधको आश्रय देना कभी उचित नहीं है। इसीसे हरएकको क्रोधका परित्याग करना चाहिए। विशेषतः जो राजपद पर प्रतिष्ठित हैं, उन्हें क्रोधका परिहार करना परमधर्म है। क्रोधी नरपति नरपति नामके अयोग्य हैं।

लोभका आकार प्रकार और स्वभावादि अतीव भीषण है। समस्त संसार मिल जाने पर भी उसकी परितृप्ति नहीं होती, लोभसे बढ़ कर और दूसरा महापाप है ही नहीं। लोभसे बुद्धि विचलित और विषयलिप्सा प्रादुर्भूत होती है। विषयलोलुप व्यक्तिको किसी लोकमें सुख नहीं। लोभी व्यक्ति सदा लुब्ध वस्तुकी खोजमें रहता है। सुख उसे छोड़ कर बहुत दूर चला जाता है। इस कारण लोभीका सुख आकाशकुसुमवत् और स्वप्नकल्पना-

वत् एकान्त अश्लील है। अतएव प्रत्येकको लोभका त्याग करना विधेय है।

मोहका नाम पूर्ण विकार है। अन्यान्य विकारके प्रतिकारकी सम्भावना है, किन्तु मोहविकारकी औषध वा दवा कुछ भी नहीं है। एकमात्र सद्गुरु और सत्सङ्ग इसकी औषध है। मोहसे मृत्युकी सृष्टि हुई। अतएव मोहको दूर करना हरएकका धर्म है।

आन्वीक्षिकी, त्रयी, वार्त्ता और दण्डनीति इन विषयोंमें जो विशेष अभिज्ञ और क्रियावान् हैं, उन्हीं सब मनुष्योंके साथ राजा विनयान्वित हो कर यथायथ राजकार्यकी पर्यालोचना करें। आन्वीक्षिकीमें अर्थविज्ञान, त्रयीमें धर्माधर्म, वार्त्तामें अर्थानर्थ और दण्डनीतिमें न्यायान्याय प्रतिष्ठित है।

अहिंसा, सूनृतवाक्य, सत्य, शौच, दया और क्षमा इनका सर्वदा अनुष्ठान करना चाहिये। सतत प्रियवाक्यकथन, दूसरेका दुःख दूर करनेमें तत्पर, दरिद्रोंका भरणपोषण, दुर्बल और शरणागतोंकी रक्षा ये सब कार्य सर्वापेक्षा उपकारी हैं।

जो शरीर आधिव्याधिका मन्दिर है, जो आज वा कल अवश्य ही विनष्ट होगा, जो मांस, मूत्र और पूरीषादि असार वस्तुकी समष्टि है, उस शरीरकी रक्षाके लिए किसी प्रकारकी दुर्नीतिका अवलम्बन करना सर्वतोभावसे निषिद्ध है।

अपने सुखके लिए किसीको कष्ट देना सङ्गत नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य पूजनीय सज्जनको अञ्जलि प्रदान करते हैं, कल्याणकामनासे दुर्जनके निकट उसी प्रकार वा उससे भी बढ़ कर अच्छी तरहसे अञ्जलिका विधान करे।

क्या साधु, क्या असाधु, क्या शत्रु, क्या मित्र अथवा दुर्जन वा सुजन सभीको हमेशा प्रियवाक्यसे सम्भाषण करे। मिष्टवाक्यकी अपेक्षा श्रेष्ठ वशीकरण और दूसरा नहीं है। शत अपराध भी मीठी बातोंसे उसी समय माफ हो जानेकी सम्भावना है। यह सब जान कर मीठी बातोंका प्रयोग सर्वदा करना उचित है। जो प्रियवादी हैं, वे ही देवता और जो क्रूरवादी हैं वे ही पशु हैं। भक्ति और आस्तिकतापूर्ण हृदयसे सर्वदा देवपूजा विधेय है। देवतावत् गुरुजनोंका और आत्मवत् सुहृदोंका सादर सम्भाषण करना उचित है। प्रणिपात द्वारा गुरुको, सत्य व्यवहार द्वारा साधुको, सुकृत कर्म द्वारा देवताओंको, प्रेम दान द्वारा स्त्री और भृत्यको तथा दाक्षिण्य द्वारा इतर मनुष्यको वशीभूत और अभिमुख करना चाहिए।

परनायको अनिन्दा, स्वधर्मका प्रतिपालन, दीनों पर दया सर्वदा मधुरवाक्यका प्रयोग, अकृत्रिम मित्रका प्राण दे कर उपकार, गृहागत व्यक्तिको आत्मप्रदान, शक्तिके अनुसार दान, सहिष्णुता, अपनी समृद्धिमें अनुत्सेक, दूसरेकी उन्नतिमें अमत्सर, जिससे मनुष्यके हृदयमें चोट पहुंचे, ऐसी बातका न कहना, जिससे मनुष्यका किसी प्रकारका अनिष्ट होनेकी सम्भावना हो, ऐसे कार्यका न करना, जिससे इहलोक विनष्ट हो, ऐसे कार्यमें प्रवृत्त न होना, जिससे अपनी और दूसरेकी ग्लानि हो, ऐसे कार्यमें हाथ न डालना, मौनव्रतचरिष्णुता, बन्धुओंके साथ बहुसंयोग, स्वजन पर समदृष्टि ये सब कार्य व्यवहारनीति कहे गए हैं और यही महात्माओंका चरित्र है। (अग्निपु० १५७-१५८ अ०)

आर्यजातिकी सामाजिक उन्नतिके साथ नीतिशास्त्रका समादर है, इसका यथेष्ट प्रमाण महाभारतमें मिलता है। अभी जो सब नीतिशास्त्र प्रचलित हैं उनमेंसे उशनाप्रणीत शुक्रनीति और कामन्दकप्रणीत कामन्दकीय नीतिसार प्रधान और प्राचीन हैं। इनके अलावा क्षेमेन्द्रविरचित नीतिकल्पतरु वा नीतिलता, लक्ष्मीपतिरचित नीतिगर्भित शास्त्र, विद्यारण्यतीर्थकृत नीतितरङ्ग, नीतिदीपिका, वेतालभट्टकृत नीतिप्रदीप, वाहिवैद्यकृत नीतिमञ्जरी, शम्भुराजरचित नीतिमञ्जरी, नारायणका नीतिमयूख, वररुचिकृत नीतिरत्न, चण्डेश्वरकृत नीतिरत्नाकर, सोमदेवसूरिकृत नीतिवाक्यामृत, गजराज शुक्लरचित नीतिविलास, कर्मभट्टकृत नीतिविवेक, घटकर्परकृत नीतिसार, मधुसूदनरचित नीतिसारसंग्रह, चाणक्यनीति, हितोपदेश, पञ्चतन्त्र आदि ग्रन्थ देखनेमें आते हैं।

नीति—हिमालयपर्वतके सन्निकटस्थ गढ़वाल जिलेके अन्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा० ३०° ४६' १०"

३० और देशा० ७९° ५१´ ५०" में अवस्थित है। कुमायूनसे तिब्बत तक जितने पथ हैं सभीसे यह उत्कृष्ट पथ है। इस पथके हो जानेसे भारतवर्षके साथ तिब्बत, चीनतातार और चीनदेशको वाणिज्यरक्षाकी विशेष सुविधा हो गई है।

कप्तान वेटनने सबसे पहले धौलीनदीके किनारे इस वर्त्मको स्थिर किया। धीरे धीरे उसी नदीके तट हो कर यह पथ उत्तरकी ओर चला गया। इस पथ हो कर थोड़ी दूर और उत्तरकी ओर चल कर वहांका स्वाभाविक दृश्य और वृक्षादि देखनेमें आते हैं। वे सब वृक्ष बहुत बड़े बड़े हैं और उनका ऊपरी भाग वर्फसे ढका रहता है। वेटन साहबने पहले जिस स्थान का वर्णन किया है वह हम लोगोंके हिन्दूशास्त्रवर्णित विष्णुप्रयागके सिवा और कुछ भी प्रतीत नहीं होता। हिन्दूशास्त्रमें जिस पञ्च महाप्रयागकी कथा लिखी है वह विष्णुप्रयाग उन्हींमेंसे एक है। उसके निकट धौली और अलकानन्दाकी मुक्तवेणी है। उक्त अलकानन्दा बदरीनाथके विष्णुपादपद्मके निकट विष्णुगङ्गा नामसे प्रसिद्ध है। इस विष्णुप्रयाग-तीर्थका माहात्म्य स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें वर्णित है।

इस पथ पर प्रायः ६८४२ हाथ ऊपर एक बड़ा गांव मिलता है। यहांके अधिवासी इस ग्रामको नीति कहते हैं। ग्रामके पूर्व-दक्षिणके पर्वतसे नीति नदी निकली है। इसकी उपत्यका भूमि चारों ओरसे वृक्षादि तथा तुषारमण्डित उच्चचूड़ावलम्बी पर्वतसे घिरी है। नगरके सम्मुखभागमें नदीके समीप समतल भूमिमें खेती-बारी होती है। यहांके अधिवासी भोटोंसे दिखनेमें लगते हैं। पर्वतवासी बड़े ही सरल और निर्विवादी होते हैं। कृषिकार्यका भार केवल स्त्रियोंके ऊपर सौंपा रहता है। वर्ष भरमें चार मास वे उत्तम अनाज उपजाते हैं। शीतकालमें जैसे वे अपना आवास छोड़ निम्नदेशमें भाग आते हैं, वैसे ही ग्रीष्मके आरम्भमें पुनः अपने आवासमें लौट आते और वर्फसे ढके हुए घर आदिको बाहर निकाल लेते हैं। स्थानीय भोटजातिके लोग स्वभावतः उग्र होते और उनका पहनावा लोमश चर्मसे ढका रहता है। इन लोगोंका ऐसा स्वभाव है, कि वे किसी दूरवर्ती वस्तुके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते और न उन्हें आमोद-प्रमोदकालमें आमन्त्रण ही करते हैं।

ग्रामके उत्तर आबादी नहीं है। ऊपरका पर्वत केवल चूड़ाविशिष्ट है। दो शिखरोंके मध्य बड़े बड़े गड्ढे देखनेमें आते हैं। इस पथ हो कर जाने आनेकी सुविधाके लिए स्थान स्थान पर दो चूड़ाके ऊपर काठका पुल बना हुआ है। इस प्रदेशमें बोझ आदि ढोनेके लिए केवल बकरे और भेंड़से काम लिया जाता है।

जूनमासके आरम्भमें प्रातःकालको यहांका उत्ताप ४०°से ५०° तक और दोपहरको ७०°से ८०° तक देखा जाता है। इस समय प्रति रातको सामान्य वृष्टि और वर्फ पड़ती है। यहांकी खेती-बारीका यही प्रकृत समय है।

दिनके तीन बजते न बजते शाम-सा दीख पड़ता है। इस समय पर्वतके ऊपर मेघराशि आ कर नाना वर्णोंमें रञ्जित होती और उच्च शृङ्गके ऊपर तुषार तथा निम्नतम प्रदेशमें जल बरसता है। यद्यपि सचराचर वज्राघात वा विद्युत् देखी नहीं जाती, तो भी यहां कृष्णपक्षरात्रिमें भी वर्फावृत शिखर अपूर्व आलोकमालासे विभूषित रहता है। जूनमासमें प्रातःकालसे वर्फ गलने लगती है और तीन बजेके बादसे सारी रात तुषार पड़ता है। शीतऋतुके प्राक्कालमें उपत्यकाभूमि प्रायः वर्फसे ढकी रहती है। ग्रीष्मके आरम्भमें यह वर्फ नद नदीमें गिर कर उसके कलेवरको बढ़ा देती है।

इस नीति-घाटका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे १६८१४ फुट है। पर्वतसे प्रायः १०००० हाथ ऊपरमें वायुकी मात्रा कम रहनेके कारण श्वास आदि लेनेमें बहुत कष्ट मालूम पड़ता है। यहां तक कि निश्वास रुक जानेके कारण प्राण निकलते निकलते पर हो जाते हैं। लेकिन नीतिपर्वतके वासियोंको इसका अभ्यास पड़ गया है, इस कारण उन्हें उतना कष्ट मालूम नहीं पड़ता। कप्तान वेटन साहबका कहना है, कि यह स्थान ठीक स्काटलैण्डके सदृश और इसका प्राकृतिक दृश्य लङ्कासायरके जैसा है। इस स्थानसे तिब्बतदेश बहुत कम नजर आता है।

अक्तूबरसे मार्च मास तक यह स्थान निरवच्छिन्न

नीहारसे ढका रहता है। इस समय उक्त गिरिपथ छोड़ कर पर्वत पर चढ़नेका और दूसरा स्वतन्त्र पथ नहीं है। कुमायुन पर्वतवासी कहते हैं, कि कई वर्ष हुए वहांके अपरापर गिरिपथ दुर्गम हो गए हैं। पहले जो स्थान तरुलताओंसे शोभित था अभी वह स्तूपाकार तुषारसे आच्छादित है।

भोटवासियोंका विश्वास है, कि पर्वतशिखरसे वायुके अल्प आघातसे प्रचुर निहारराशि स्खलित हो कर निम्नदेशमें गिर सकती है, इस आशङ्कासे वे बन्दूक वा वाद्ययन्त्रका शब्द नहीं करते।

१८१८ ई०में कप्तान वेबने वाणिज्यके बहाने चीनके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेके लिए नीतिके निकटवर्त्ती चीनराज-अधिकृत देवनगरमें व्यवसाय करनेकी चेष्टा की थी लेकिन उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ।

नीतिघोष (सं०, पु०) नीतिरेव नीत्यात्मको वा घोषो यस्य। १ बृहस्पतिका रथ। नीतिर्यस्य घोषः ध्वनिः। २ नयध्वनि।

नीतिज्ञ (सं० त्रि०) नीतिं जनाति ज्ञा-क। नीतिवेत्ता, नीतिकुशल, नीतिका ज्ञाननेवाला।

नीतिप्रदीप (सं० पु०) १ नीतिरूप प्रदीप। २ ज्ञानालोक। ३ वेतालभट्टकृत एक नीतिग्रन्थ।

नीतिमत् (सं० त्रि०) प्राशस्त्येन नीतिर्विद्यतेऽस्य, मतुप्। प्रशस्त नीतियुक्त, सदाचारी।

नीतिमान् (हिं० वि०) नीतिपरायण, सदाचारी।

नीतिरत्न (सं० क्लो०) १ वह जिसमें नीतिकथारूप बहुमूल्य रत्न निहित है। २ वररुचि-कृत ग्रन्थविशेष, वररुचिका बनाया हुआ एक ग्रन्थ।

नीतिवाक्यामृत (सं० क्लो०) १ सद्विवेचनापूर्ण और ज्ञानगर्भ अमृतमय प्रसङ्ग। २ स्वनामख्यात ग्रन्थ।

नीतिविद्या (सं० स्त्री०) नीतिविषयक विद्या।

नीतिशास्त्र (सं० क्लो०) नीतीनां शास्त्रं। नीतिज्ञापक शास्त्रभेद, वह शास्त्र जिसमें मनुष्यसमाजके हितके लिए देश, काल और पात्रानुसार आचार व्यवहार तथा प्रबन्ध और शासनका विधान हो। औशनससूत्र, कामन्दक, पञ्चतन्त्र, नीतिसार, नीतिमाला, नीतिमयूख, हितोपदेश और चाणक्यसार संग्रह आदि ग्रन्थ नीतिशास्त्र नामसे प्रसिद्ध हैं। नीति देखो।

नीतिसङ्कलन (सं० क्लो०) ज्ञानगर्भ और नीतिविषयक प्रसङ्गमाला सन्निविष्ट ग्रन्थ।

नीतिसार (सं० पु०) नीतिरेव सारो यस्य। इन्द्रके प्रति बृहस्पति कर्त्तृक नीतिशास्त्रभेद। चाणक्यने इसीसे संग्रह करके चाणक्यशतक लिखा है।

नीथ (सं० पु०) नयति प्रापयतीति नी-क्थन (हनिकुषि-नीरमिकाशिभ्यः क्थन्। उण् २।२) १ नियन्ता। २ प्रापयिता। नी-भावे क्थन्। ३ नयन। ४ स्तोत्र। ५ प्राप्णहेतु, नयनहेतुभूत। (क्लो०) ६ जल।

नीध्र (सं० क्लो०) नितरां ध्रियते इति नि-धृ मूलविभुजादित्वात् कः। १ वल्मीक, छाजनकी ओलती। २ वन, जङ्गल। ३ नेमि, पहिएका चक्कर। ४ चन्द्र, चन्द्रमा। ५ रेवतीनक्षत्र।

नीनाह (सं० पु०) नि-नह-भावे घञ्, बाहुलकात् दीर्घः। निबन्ध, बन्धन।

नीप (सं० पु०) नी-प (पानीविषिभ्यः पः। उण् ३।२३) बाहुलकात् गुणभावः। १ कदम्बवृक्ष। २ भूकदम्ब। ३ बन्धूकवृक्ष, दुपहरिया। ४ नीलाशोकवृक्ष, अशोक। ५ देशभेद, एक देशका नाम। ६ गिरिका अधोभाग, पहाड़का निचला हिस्सा। ७ पारराजके पुत्र। ८ नीपका वंश।

नीप (अ० पु०) दो चीजोंको बांधने या गांठ देनेके लिए रस्सीका फेरा या फंदा।

नीपर (अ० पु०) १ लंगरमें बंधी हुई रस्सियोंमेंसे एक। २ उक्त रस्सीके बन्धनको कसनेके लिये लगा हुआ डंडा।

नीपराज (सं० पु०) राजकदम्बवृक्ष।

नीपातिथि (सं० पु०) कण्ववंशोद्भव एक ऋषि। इन्होंने ऋग्वेदके ८म मण्डलके ३४ सूक्तकी रचना की।

नीप्य (सं० त्रि०) नीपे गिरेरधोभागे भवः, नीप-यत्। १ जो पहाड़के नीचे उत्पन्न हो। (पु०) २ रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम।

नीबू (हिं० पु०) १ मध्यम आकारका एक पेड़ या झाड़ जिसका फल खाया जाता है और जो उष्णके गरम प्रदेशोंमें होता है, जम्बीर, कागजी नीबू। संस्कृत पर्याय-निम्बक, अम्लजम्बीर, दन्ताघातशोधन, अम्लसार,

वेज्ञिवोज, दीप्त, वह्नि, दन्तशठ, जम्बीरज, अम्ल, रोचन, जम्बीर, शोधन और दीपक।

राजनिर्घण्टके मतसे फलका गुण—अम्लरस, कटु, उष्ण, गुल्म, आमवात, काश, कफरोग, कण्ठरोग और विच्छर्दि नाशक, अग्निवर्द्धक, चक्षुका हितकर और पकने पर अति रुचिकर होता है।

भावप्रकाशके मतसे—यह अम्ल, वातघ्न, दीपन, पाचन, लघु, क्रमिसमूहनाशक, तीक्ष्ण, उदरश्रमनाशक, वात, कफ, पित्त और शूलरोगमें हितकर, कष्टनष्ट, रुचि और रोचनपर; त्रिदोष, अग्नि, क्षय, वातरोग और विषार्त्तमें उपकारक, मन्दाग्नि, बद्धगुद तथा विसूचिका-रोगमें प्रयोज्य है। पकने पर यह फल मिष्ट, स्वादु, गुरु, वातपित्तनाशक, विषरोग और विष, कफ, उत्क्लेश और रक्तहारक, शोष, अरुचि, तृष्णा और छर्दिघ्न, बल्य तथा बृंहण होता है।

२ टाबानीबू। पर्याय—बीजपुर, फलपूरक, रुच-, लङ्ग्स, पूरक, मातुलङ्गक, पूर, खकल, मातुलुङ्ग, सुगन्ध्याढ्य गिरिजा, पूतिपुष्पिका, बीजपूर्ण, अम्बुकेशर, छोलङ्ग, देवदूत, अत्यम्ल और मधुककटी।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—स्वादु, हृद्य, अम्ल दीपन, लघु, गुल्म, आध्मान, वातपित्त, कण्ठ, जिह्वा, हृद्रोग, श्वास, काश, अरुचि, व्रण और शोथनाशक है।

इसकी छालका गुण—तिक्त, दुर्जर और कफवात-नाशक है। इसका गूदा स्वादु, शीतल, गुरु, वायु और पित्तनाशक होता है।

३ पातीनीबू। संस्कृत पर्याय—कोषफला, निम्बपाक और निम्बा।

वैद्यकके मतसे गुण—शीतल, अम्ल, वातहर, दीपन, पाचन, सुखप्रिय, हलका, रक्तस्रावशोषक, तेजस्कर, क्रमि, उदररोग, ग्रह, मन्दाग्नि, वात, पित्त, कफ, शूल, विसूचिका और बद्धगुद इन सब रोगोंका नाशक तथा विषमें हितकर और रुचिकर।

संस्कृत ग्रन्थमें नीबू शब्दके नाना प्रकारके नाम और जाति-भेद बतलाये गए हैं। यह बहुत दिन पहलेसे ही भारतवर्षमें उत्पन्न होता आ रहा है और यहांसे ही मेसोपटेमिया तथा मिदीयामें और अन्तमें शेषोक्त स्थानसे ही इङ्गलैण्ड आदि देशोंमें इसका प्रचार किया गया है। मिदीयासे अन्य स्थानोंमें फैलनेके कारण यह Citrus Medica नामसे पुकारा जाता है। इस जातिका नीबू अङ्गरेजोंमतसे तीन प्रकारका है,—लिमन, लाइम और साइट्रन। साइट्रनका बहिर्भाग या छिलका बहुत मोटा, रुखड़ा और गन्दा; लाइम देखनेमें कमलानीबूके जैसा और इसका ऊपरी भाग चिकना होता है। सम्भवतः पूर्वोक्त जातिका आदिमस्थान पूर्ववङ्गका पार्वत्य प्रदेश विशेषतः गारो और खसिया पहाड़ जाना जाता है। किन्तु शेषोक्त जातिके नीबू पूर्वोक्त स्थानसे बहुत उत्तर हिमालयसे ले कर पञ्जाब तक फैले हुए हैं।

मिष्टलाइम—जान पड़ता है, कि यह उक्त दो जातीय नीबूके उत्पत्ति-स्थानसे बहुत दक्षिणमें है। लिमन बहुत दिन पूर्व चीनदेशके निकटवर्ती स्थानमें पहले पहल उत्पन्न होते देखा गया है। आसाममें नीबूके पेड़ बहुतायतसे मिलते हैं। लाइम मिष्ट और अम्लके भेदसे दो प्रकारका है।

चट्टग्राम, सीताकुण्ड, खसिया और गारो पहाड़ पर नीबू बिना खेतीका ही वन्यवृक्षकी तरह उत्पन्न होता है। इसकी पत्तियां मोटे दलकी और दोनों छोरों पर नुकीली होती हैं तथा उनके ऊपरका रंग बहुत गहरा हरा और नीचेका हलका होता है। पत्तियोंकी लम्बाई तीन अङ्गुलसे अधिक नहीं होती। फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुतसे पराग-केसर रहते हैं। फल गोल या लम्बोतरे तथा सुगन्धयुक्त होते हैं। साधारण नीबू स्वादमें खट्टे होते और खटाईके लिए ही खाये जाते हैं। मीठे नीबू भी कई प्रकारके होते हैं, उनमेंसे जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर जाता है तथा जिनके रसकोशको फांकें अलग हो जाती हैं वे नारङ्गीके अन्तर्गत गिने जाते हैं। साधारणतः 'नीबू' शब्दसे खट्टे नीबूका ही बोध होता है। उत्तरीय भारतमें यह दो बार फलता है—बरसातके अन्तमें और जाड़े (अगहन-पूस)में। अचारके लिए जाड़ेका नीबू ही अच्छा समझा जाता है क्योंकि वह बहुत दिनों तक रह सकता है। खट्टे नीबूके मुख्य भेद ये हैं—कागजी, जम्बीरी, बिजौरा और चकोतरा।

नीबूके पेड़से कभी कभी गोंद निकलता है। १८५५ ई०में मछलीपत्तनसे मन्द्राज-महामेलेमें इसका गोंद भेजा गया था। इसके फलसे उत्तम सुगन्धित तैल बनता है। इसके रोगमें जो जल प्रस्तुत होता है, वह इस तैलका एक प्रधान उपादान है। नीबूके छिलकेको दबा कर और वकयन्त्रकी सहायतासे भली भांति निचोड़ कर जो गन्धद्रव्य तैयार होता है; उसे सीड्राट कहते हैं।

नीबूका छिलका उष्ण, शुष्क और बलकारक होता है। इसके बीचका सारांश शैत्यगुणसम्पन्न और बीज, पत्ता तथा फूल उष्ण और शुष्ककारक एवं रस शैत्यो-त्पादक और सङ्कोचक होता है। किसी किसीका कहना है कि इस फलके सेवन करनेसे शरीरसे विषाक्त पदार्थ निकल जाता है। यदि किसीने अहितकर विष खाया हो, तो उसको नीबू कुछ अधिक परिमाणमें खिलानेसे पाकस्थलीमें एक प्रकारकी उत्तेजना होती है और विष निकल पड़ता है। गर्भावस्थामें खानेसे यह गर्भस्थ शिशुके श्वास प्रश्वासका दोष नष्ट करता है। नीबू द्वारा प्रस्तुत जल अवसादक और छिलका आमाशय पीड़ामें उपकारी होता है। चीनीके साथ इसका गूदा मिला कर एक प्रकारका खाद्य तैयार किया जाता है, किन्तु यह कुछ तिक्तस्वादविशिष्ट होता है।

इसे बङ्गालमें नेबू, बिजौरा, बेजपुरा और बड़ा नेबू, हिन्दीमें बिजौरा, निम्बूक, मधुकर्कटी चकोतरा और तुरञ्ज; पञ्जाबमें बजोरी, नीम्बू; गुजरातमें बिजौरा, तुरञ्ज और बालङ्ग; बम्बईमें बीजपूर, महालुङ्गा, लिम्बु, बिजोरी; महाराष्ट्रमें महालुङ्ग, लिम्बू; तामिलमें एलुमिच्-चम्-पजहम् वा मात्तम पजहम्; तैलङ्गमें निम्मपन्डु, मारेडव, माधिफल-पन्डु, पुल-दब्ब, बीजपुरम्; मलयमें गणपतिनारङ्ग; पारसीमें तुरञ्ज और अरबीमें उतरुज, उत्-रेज वा उतुरिञ्जो कहते हैं।

हिमालयके बाहरी गरम देशोंमें गढ़वालसे चट्टग्राम तक और मध्य भारतके नाना स्थानोंमें कागजी-नीबूका पेड़ देखा जाता है। मिट्टीके भेदसे इसके पेड़ और फलमें भी विशेषता पाई जाती है। फलका आकार प्रधानतः गोल, छिलका उजलापन लिए हरा और पकने पर पीला दिखाई पड़ता है। मानभूममें इसके पत्ते चमड़ा साफ करनेके काममें आते हैं।

वैद्यलोग इसे नीबूका इस्तेमाल किया करते हैं। उनके मतसे इसका गुण—पैत्तिक-वमननिवारक, शैत्य-कर और पचननिवारक है। इसका जल अत्यन्त सुस्वाद्य और तृष्णानिवारक तथा टटका रस मधकदंशनमें विशेष उपकारी और जीर्णनाशक होता है।

नीम (हिं० पु०) १ पत्ती झाड़नेवाला एक पेड़ जिसकी उत्पत्ति हिन्दुस्तानमें होती है और जिसकी पत्तियां डेढ़ दो बित्तेकी पतली सीकोंके दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियां चार पांच अङ्गुल लम्बी और अङ्गुल भर चौड़ी होती हैं। इनके किनारे आरीके तरह होते हैं। विशेष विवरण निम्ब शब्दमें देखो। (फा० वि०) २ अर्द्ध, आधा।

नीमचर (फा० पु०) कुश्तीका एक पेच। यह पेच उस समय काम देता है जब जोड़ पीछेकी तरफसे कमर पकड़ कर बाईं तरफ खड़ा होता है। इसमें अपना बायां घुटना जोड़की दाहिनी जांघके नीचे ले जाते हैं, फिर बाएं हाथको उसकी टांगोंमेंसे निकाल कर उसका बायां घुटना पकड़ते और दाहिने हाथसे उसकी मुट्ठी पकड़ कर भीतरकी ओर खींचते हैं। ऐसा करनेसे वह चित गिर पड़ता है।

नीमगिर्दा (फा० पु०) बढ़ईका एक यन्त्र जो रुखानी या पेचकशकी तरहका हो कर अर्द्धचन्द्राकार होता है। यह खरादनेके समय सुराही आदिकी गर्दन छीलने-के काममें आता है।

नीमच (हिं० पु०) बङ्गाल, उड़ीसा, पञ्जाब और सिंधकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली। इसका मांस खानेमें अच्छा लगता है।

नीमचा (फा० पु०) खांड़ा।

नीमजां (फा० वि०) अधमरा।

नीमटर (हिं० वि०) जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो, अधकचरा।

नीमन (हिं० वि०) १ अच्छा, भला, नीरोग, चंगा। २ दुरुस्त, जो बिगड़ा हुआ न हो। ३ सुन्दर, अच्छा, बढ़िया।

नीमर (हिं० वि०) शक्तिहीन, बलहीन, दुर्बल।

नीमरजा (फा० वि०) १ थोड़ी बहुत रजामन्दी। २ कुछ प्रसन्नता।

नीमस्तीन (हिं० स्त्री०) नीमास्तीन देखो।

नीमा (फा० पु०) जामेके नीचे पहने जानेका एक पहरावा। यह जामेके आकारका होता है पर न तो वह जामेके इतना नीचा होता है और न इसके बंद बगलमें होते हैं। यह घुटनेके ऊपर तक नीचा होता है और इसके बंद सामने हैं। इसकी आस्तीन पूरी नहीं होती है। इसके दोनों बगल सुराहियां होती हैं।

नीमावत (हिं० पु०) वैष्णवोंका एक संम्प्रदाय।

नीमास्तीन (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी फतुई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत (अ० स्त्री०) आन्तरिक लक्ष्य, उद्देश्य, आशय, सङ्कल्प, इच्छा, भाव।

नीर (सं० क्ली०) नयति प्रापयति स्थानात् स्थानान्तरमिति नी-प्रापणे रक् (स्फायितञ्चीति। उण, २।१३) वा निर्गतं री अग्नियंस्मात्। १ जल, पानी। २ रस, कोई द्रव पदार्थ। ३ फफोले आदिके भीतरका चेप या रस। ४ सुगन्धवाला। (पु०) ५ राजपुत्रभेद।

नीरक्त (सं० त्रि०) रक्तशून्य, वर्णहीन।

नीरङ्ग (सं० त्रि०) रङ्गशून्य, विना रंगका।

नीरज (सं० क्ली०) नीरे जले जायते जन-ड। १ पद्म, कमल। २ कुष्ठौषधि। ३ मुक्ता, मोती। ४ उद्रांच अम्बु, उदविलाव। ५ उशीर, खस। ६ तृणविशेष एक प्रकारकी घास। ७ जलजातमात्र, जलमें उत्पन्न मात्र। (पु०) ८ रजोगुणकार्यरागशून्य महादेव।

नीरजस् (सं० त्रि०) निर्नास्ति रजः धूलिः कुसुमपरागादिर्वा। १ निर्धूलि, जहां धूल न हो। २ परागशून्य, विना परागका। ३ रजोगुणकार्यरागादिशून्य। (स्त्री०) ४ गतार्त्तवा स्त्री, अरजस्का स्त्री, वह औरत जिसे रजोदर्शन न होता हो।

नीरजस्क (सं० त्रि०) निर्नास्ति रजः यस्य, ततो कप्। १ रजोशून्य। २ परागशून्य। ३ रजोगुणकार्यरागादिशून्य।

नीरजात (सं० त्रि०) नीरात् जायते जन-ड। १ जलजात मात्र, जो जलसे उत्पन्न होता है। (क्ली०) २ अन्नादि। वृष्टिसे अन्नादि उत्पन्न होते हैं, इसीसे नीरजात शब्दसे अन्नादिका बोध हुआ है। एकमात्र अन्नसे ही प्रजाकी उत्पत्ति और रक्षा होती है। ३ कमलादि।

नीरत (सं० त्रि०) निर्गतं रतं रमणं यस्मात्। विरत, रमणाभावयुक्त।

नीरद (सं० पु०) नीरं जलं ददातीति दा-क। १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा। (त्रि०) ३ रदशून्य, दन्तहीन, बेदांतका। ४ जल देनेवाला।

नीरधर (सं० पु०) बादल, मेघ।

नीरधि (सं० पु०) नीराणि धीयतेऽस्मिन् नीर-धा कि (कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) समुद्र।

नीरनिधि (सं० पु०) नीराणि जलानि धीयन्तेऽत्रेति निर-धा-कि। समुद्र।

नीरन्ध्र (सं० त्रि०) निर्नास्ति रन्ध्रं छिद्रं यस्मिन्। १ छिद्ररहित, जिसमें छेद न हो। २ घन, दौलत।

नीरपति (सं० पु०) वरुणदेवता।

नीरप्रिय (सं० पु०) नीरं प्रियं यस्य। १ जलवेतस, जलवेंत। (त्रि०) २ जलप्रियमात्र, जिसे पानी बहुत प्यारा हो।

नीरम (हिं० पु०) वह बोझ जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखनेके लिये रहता है।

नीररुह (सं० क्ली०) पद्म, कमल।

नीरव (सं० त्रि०) रवशून्य, स्तब्ध।

नीरवृक्ष (सं० पु०) जलमध्यवृक्ष।

नीरस (सं० पु०) नितरां रसो यत्र। १ दाड़िम, अनार। (त्रि०) निर्नास्ति रसो यत्र। २ रसशून्य, जिसमें रस या गीलापन न हो। २ शुष्क, सूखा। ३ जिसमें कोई स्वाद या मजा न हो, फीका।

नीरसन (सं० त्रि०) निर्नास्ति रसना यत्र। १ रसनाशून्य। २ विना करधनी या कमरबंदका।

नीरसा (सं० स्त्री०) निःश्रेणिकातृण, एक किस्मकी घास।

नीराखु (सं० पु०) नीरस्य आखुः। उद्र, उद्बिलाव। पर्याय—जलनकुल, जलबिड़ाल, जलप्लव, उद्र, जलाखु, नीरज, नकुल।

नीराजन (सं० क्ली०) निर्-राज-भावे ल्युट्। नीराजना, दीपदान, आरती।

नीराजना (सं० स्त्री०) नितरां राजनं यत्र, निर्-राज-णिच्-युच्, नीरस्य आमन्त्रकस्य अजनं क्षेपो यत्र वा

नीराजना वा।' १ दीपादि द्वारा प्रतिमादि देवताका आरात्रिक, देवताको दीपक दिखानेकी विधि, आरती। तिथितत्त्वमें रघुनन्दनने इस प्रकार लिखा है—

"यवपिष्टप्रदीपाद्यैश्चूताश्वत्थादिपल्लवैः।
ओषधीभिश्च मेध्याभिः सर्वबीजैर्यवादिभिः॥
नवम्यां पर्वकाले तु यात्राकाले विशेषतः।
यः कुर्यात् श्रद्धया वीर देव्या नीराजनं नरः।
शंखभेर्यादि निनदैर्जयशब्दैश्च पुष्कलैः॥
यावतो दिवसान् वीर देव्या नीराजनं कृतम्।
तावत् कल्पसहस्राणि दुर्गालोके महीयते॥" (तिथितत्त्व)

पिष्ट प्रदीपादि, चूताश्वत्थादि पल्लव, मेध्या, ओषधि आदि एवं सर्वबीज यवादि द्वारा भक्तिपूर्वक नवमी तिथि, पर्वकाल अथवा यात्राकालमें देवीकी आरती उतारनी चाहिए। इस समय शङ्ख, भेरी आदिका शब्द और जय-शब्दोच्चारण भी करना चाहिए। जो उक्त दिनोंमें देवीका नीराजन करता है, उसका कल्पसहस्र तक दुर्गालोकमें वास होता है। नीराजन पांच प्रकारसे किया जाता है—

"पंचनीराजनं कुर्यात् प्रथमं दीपमालया।
द्वितीयं सोदकाब्जेन तृतीयं धौतवाससा॥
चूताश्वत्थादिपत्रैश्च चतुर्थं परिकीर्त्तितम्।
पंचमं प्रणिपातेन साष्टांगेन यथाविधि॥"
(कालोत्तरतन्त्र)

पहले दीपमाला द्वारा आरती करनी चाहिए, पीछे उदकाब्ज अर्थात् पद्मयुक्त जल, उसके बाद धौतवस्त्र, चताश्वत्थादि पल्लव और प्रणिपात द्वारा नीराजन करनेका विधान है। इसीको पञ्चनीराजन कहते हैं। आरात्रिक प्रदीप द्वारा नीराजन करना होता है, इस प्रदीपमें ५ वा ७ बत्ती बलती हैं।

"कुंकुमागुरुकर्पूरघृतचन्दननिर्मिताः।
वर्त्तिकाः सप्त वा पंच कृत्वा वन्दापनीयकम्॥
कुर्यात् सप्तप्रदीपेन शंखघंटादिवाद्यकैः।
हरेः पंचप्रदीपेन बहुशो भक्तितत्परः॥"
(पाद्मोत्तरखण्ड १०७ अ)

कुङ्कुम, अगुरु, कपूर, घृत और चन्दन द्वारा सप्त वा पञ्च वर्त्तिका निर्माण करनी चाहिए। पीछे शङ्ख, घण्टा आदि बाजा बजाना चाहिए। विष्णुविषयमें पञ्च प्रदीप द्वारा भक्तिपरायण हो कर आरती उतारनी चाहिए। हरिभक्तिविलासमें लिखा है, कि आरती करनेके पहले मूलमन्त्रसे तीन बार पुष्पाञ्जलि देनी चाहिए और महावाद्य तथा जयशब्दपूर्वक शुभपात्रमें घृत वा कर्पूर द्वारा विषम वा अनेक वर्त्तिका जला कर नीराजन करना चाहिए।

"ततश्च मूलमन्त्रेण दत्त्वा पुष्पांजलित्रयम्।
महानीराजनं कुर्यात् महावाद्यजयस्वनैः॥
प्रज्वालयेत्तदर्थं च कर्पूरेण घृतेन वा।
आरात्रिकं शुभे पात्रे विषमानेकवर्त्तिकम्॥"
(हरिभ० वि०)

पहले विष्णुके चतुष्पादतल और नाभिदेशमें दो बार पीछे मुखमण्डलमें एक बार और सब अङ्गोंमें ७ बार आरती उतारनी चाहिये।

अनेक वत्तियां बाल कर आरती करनेसे कल्पकोटि तक विष्णुलोकमें वास होता है।

"बहुवर्त्तिसमायुक्तं ज्वलन्तं केशवोपरि।
कुर्यादारात्रिकं यस्तु कल्पकोटिं वसेद्दिवि॥"
(स्कन्दपुराण)

पूजादि मन्त्रहीन वा क्रियाहीन होनेसे यदि पीछे नीराजन किया जाय, तो पूजा सम्पूर्ण समझी जाती है अर्थात् पूजादिमें जो सब अभाव है, वह नीराजनसे पूरा हो जाता है।

'मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यत् कृतं पूजनं हरेः।
सर्वं सम्पूर्णतामेति कृते नीराजने शिवे॥' (स्कन्दपु०)

देवताका नीराजन करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। जो देवदेव विष्णुका नीराजन अवलोकन करते हैं, वे सप्तजन्म ब्राह्मण हो कर अन्तमें परमपद प्राप्त करते हैं।

"नीराजनञ्च यः पश्येत् देवदेवस्य चक्रिणः।
सप्तजन्मनि विप्रः स्यादन्ते च परमं पदम्॥"
(हरिभ० वि०)

देवताकी आरती दोनों हाथसे लेनी चाहिए, आरती अवलोकनमात्रसे भी अशेषपुण्य लिखा है। जो ऐसा करते हैं उनके कोटिकुल उद्धार पाते हैं और अन्तमें उन्हें विष्णुका परमपद प्राप्त होता है।

"धूपं चारात्रिकं पश्येत् कराभ्यांच प्रवन्दते ।
कुलकोटिं समुद्धृत्य याति विष्णोः परं पदम् ॥"
(विष्णुधर्मो०)

२ शान्तिभेद, राजाको नीराजन शान्तिकार्य सम्पन्न करके युद्धमें जाना चाहिए।

इसका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

भगवान् विष्णुके जागरित होने पर तुरङ्ग, मातङ्ग और मनुष्योंका नीराजन करना चाहिए। कार्त्तिक शुक्लपक्षको पूर्णिमा, द्वादशी और अष्टमीमें अथवा आश्विनमासमें नीराजन नामक शान्ति करनी चाहिये। नगरके उत्तर-पूर्व दिक्स्थ प्रशस्त भूमि पर बारह हाथ लम्बा और दश हाथ चौड़ा एक तोरण बनवावे। उसमें सर्ज, उदुम्बरशाखा और ककुभमय तथा कुशबहुल एक शान्तिनिकेतन निर्माण करे। उसके द्वार पर वंशनिर्मित मत्स्य, ध्वज और चक्रनिर्माण विधेय है। शान्तिगृह और अन्यान्यकी पुष्टिके लिए घोड़ोंके गलेमें प्रतिसरणमन्त्र द्वारा भल्लातक, शालिधान्य, कुष्ट और सिद्धार्थ बांध दे एवं रवि, वरुण, विश्वदेव, प्रजापति, इन्द्र और विष्णु सम्बन्धीय मन्त्रसे शान्तिगृहमें ७ दिन तक अश्वोंकी शान्ति करे। वे घोड़े पुण्याहमें यदि शङ्ख, तुर्यध्वनि और गीतध्वनि द्वारा विमुक्तभय और पूजित हों, तो परुष-वाक्य वा अन्य प्रकारसे ताड़नीय नहीं होते। अष्टम दिनमें कुश और चीर द्वारा आवृत आश्रमाग्निको तोरणके दक्षिण मुखसे उत्तर मुख वेदीके ऊपर रक्खे। चन्दन, कुष्ठ, समङ्गा (मंजीठ), हरिताल, मनःशिला, प्रियङ्गु, वच, दन्ती, अमृत, अञ्जन, हरिद्रा, सुवर्ण, अग्निमन्थ, कटम्भरा, त्रायमाणा, सहदेवी, श्वेतवर्ण, पूर्णकोष, नाग-कुसुम, स्वगुप्ता, शतावरी, सोमराजी और पुष्प इन सब द्रव्योंसे कलस पूर्ण करके प्रचुर मधुपायस यावक प्रभृति नाना प्रकारके भक्ष्योंके साथ बलिका उपहार दे। खदिर, पलाश, उदुम्बर, काश्मरी वा अश्वत्थ द्वारा यज्ञीय-काष्ठ बनावे। ऐश्वर्यप्रार्थियोंके लिए स्वर्ण वा रौप्य द्वारा स्रुक् निर्माण करना कर्त्तव्य है। राजा पूर्वकी ओर मुख करके अश्ववैद्य और दैवज्ञोंके साथ अग्निके समीप बैठें। पीछे लक्षणयुक्त अश्व और श्रेष्ठ हस्तीको स्नान तथा दीक्षित करा कर अक्षत, श्वेतवस्त्र, गन्धद्रव्य, माल्य और धूप द्वारा अभ्यर्चित करें और वाक्य द्वारा सान्त्वना तथा वाद्ययन्त्र शङ्ख, पुण्याह शब्द करते हुए उन्हें आश्रमतोरणके समीप लावें।

इस प्रकारसे लाये हुए अश्व यदि दक्षिणचरणको समुत्क्षिप्त करके बैठ जांय, तो वह राजा बहुत जल्द शत्रुको विनाश करेंगे, ऐसा जानना चाहिये; किन्तु वे अश्व यदि डर जांय, तो राजाका अशुभ होता है।

पुरोहितके यथाविधि अभिमन्त्रण करके खाद्य प्रदान करनेसे अश्व यदि उसे आघ्राण वा आहार करें, तो राजा-को जय होती है। किन्तु इसका विपरीत होनेसे फल भी विपरीत होता है। उदुम्बरको शाखाको कलसके जलमें डुबो कर पुरोहित नृप और नागसमन्वित सेना तथा अश्व-गणको शान्तिपौष्टिक मन्त्र द्वारा स्पर्श करे। पीछे राष्ट्रवृद्धिके लिये आभिचारिक मन्त्रसे भूयोभूयः शान्ति कर पुरोहित मृत्मय शत्रुप्रतिकृतिनिर्माण पूर्वक शूल द्वारा उसका वक्षः-स्थल छेद डाले और अभिमन्त्रण करके अश्वको लगाम पहनावे। बादमें राजा इस प्रकार नीराजित हो कर उत्तर-पूर्वकी ओर गमन करें। उस समय चारों ओर नाना प्रकारकी माङ्गलिक ध्वनि होनी चाहिये। इस प्रकार शान्ति स्थापन करके राजा यदि युद्धयात्रा करें, तो वे निश्चय ही सारी पृथ्वीको जय कर सकते हैं।

(वृहत्संहिता ४४ अ०)

कालिकापुराणमें नीराजनशान्तिकी विधि इस प्रकार लिखी है,—

नीराजन शान्ति द्वारा अश्व, गज आदिकी वृद्धि होती है। आश्विन मासकी स्वातियुक्ता शुक्ला तृतीयाको निज-पुरके ईशानकोणमें उत्तम स्थानका संस्कार करना चाहिये। पीछे आठवें दिनमें नीराजन करना विधेय है।

राजा महाबलिष्ट और मनोहर एक अश्वको ७ दिन तक गन्धपुष्प और वस्त्रादि द्वारा आराधना करें। तृती-यादिमें पूजा कर के उक्त अश्वको यज्ञ-स्थानमें खड़ा करावें; अश्वके चेष्टानुसार शुभाशुभ जाना जाता है,—अश्व उस स्थान पर उपस्थित हो कर यदि भाग जाय, तो राजाका क्षय; अश्रु त्याग करे, तो राजपुत्रकी मृत्यु; राह चलते प्रतिकूलाचरण करे, तो राजमहिषीकी मृत्यु; मुख, नाक, चक्षु आदिसे जिस ओर खड़ा हो कर शब्द

करे, उस घोड़के शत्रुओंका क्षय और यदि वह दक्षिण-पादके अग्रभागको राजाके सामने उठाये खड़ा रहे, तो राजा सब विपक्षियोंको पराजय करेंगे, ऐसा जानना चाहिये।

दशमी तिथिको प्रातःकालमें नीराजन करे। दैववशतः यदि उक्त तिथिमें कर न सके, तो दशमीके बाद द्वादशी तिथिमें नीराजना-शान्ति कर सकते हैं। इसमें भी यदि विघ्न पहुंच जाय, तो निजपुरके ईशानकोणमें षोड़शहस्त-परिमित स्थानके मध्य दशहस्त-परिमित विपुल तोरण निर्माण करे। ३२ हाथ लम्बा और १६ हाथ चौड़ा यज्ञमण्डल बनानेका विधान है। वेदीके उत्तरभागमें अत्युत्तम वेदी निर्माण करे। इस स्थान पर पुरोहितगण भाग संस्थापन करके पूजन और शाल, उदुम्बर अथवा अर्जुनवृक्षकी शाखाको मत्स्यसमूहाङ्कित चक्र तथा ध्वज द्वारा विभूषित करें।

पुष्टि, शान्ति और सिद्धार्थ घोटकके गलदेशमें शालिकुष्ठ और भल्लातक बांध दे। राजा वैष्णवमण्डलका निर्माण कर दिक्पाल आदिको पूजा करें। पुरोहितगण एक सप्ताह तक घृत, तिल और पुष्पको एकत्र कर सूर्य, वरुण, ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुके उद्देशसे होम करें। धर्मार्थकामादि चतुर्वर्गको सिद्धिके लिये प्रत्येक देवके उद्देशसे सहस्र बार अथवा १०८ बार होम विधेय है। तदनन्तर मृण्मय ८ घटोंमें नाना प्रकारके पल्लव दे कर उन्हें स्थापन करना होता है। पुरोहित इन सब घड़ोंमें मञ्जिष्ठा, हरिताल, चन्दन, कुष्ठ, प्रियङ्गु, मनःशिला, अञ्जन, हरिद्रा, श्वेतदण्डी आदि तथा भल्लातक, सहदेवी, शतावरी, वच, नागकेशर, सोमलता, सुमुलिका, तुत्थ, करवीर, तुलसीदल आदि द्रव्योंको डाल दें। इस प्रकार करके ७ दिन तक पूजा और होम करना होता है। जब तक इस नीराजना-शान्तिका शेष न हो जाय, तब तक राजाको रात भर घरमें रहना उचित है। शान्तिके समय उन्हें यज्ञभूमिमें रहनेको जरूरत नहीं और इतने समय तक किसी प्रकारका यानारोहण निषिद्ध है। सात दिन तक देवताओंको नाना प्रकारके नैवेद्य चढ़ाने होते हैं।

सातवें दिनमें खड्ग चर्म प्रभृतिसे विभूषित हो कर तोरण-प्रान्तमें सूर्यपुत्र रेवन्तका सूर्यपूजाविधानसे पूजन करें। इस समय राजाको होमकुण्डके उत्तरभागमें व्याघ्रचर्म पर बैठ कर अश्वको देखते रहना चाहिये। पुरोहित इस समय मन्त्रपूत अश्वपिण्ड उपस्थापित करें। यदि अश्व उस अन्नको खा ले अथवा सूंघ कर छोड़ दे, तो जानना चाहिये कि कार्यकी हानि होगी। पीछे पुरोहित उदुम्बर, आम्र अथवा वकुलकी शाखाको घटजलमें डुबो कर शान्तिमन्त्रसे सेचन करे। इस प्रकार शान्तिकार्यके शेष हो जाने पर राजा उस घोड़े पर सवार हो उत्तर पूर्वकी ओर सब प्रकारको जाति और चतुरङ्गबलके साथ प्रस्थान करें। ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्यगण सावधान हो कर शुभाशुभ देखनेके लिये घोड़ेके पीछे पीछे चलें।

इस प्रकार एक कोस तक जानेके बाद राजा पूर्वद्वार हो कर नगरमें प्रवेश करें। अनन्तर आचार्य प्रभृतिको यथोपयुक्त दक्षिणा दे कर विदा करें। इस तृतीयामें यदि राजाको जाताशौच वा मृताशौच रहे, तो भी यह नीराजना उत्सव रुक नहीं सकता।

(कालिकापु० ८५ अ०)

नीराजन (सं० पु०) १ दीपदान, आरती, देवताको दीपक दिखानेकी विधि। २ हथियारोंको चमकाने या साफ करनेका काम। ३ एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारोंकी सफाई कराते थे। यह क्वार (कार्त्तिक) में होता था जब यात्राकी तैयारी होती थी।

नीरिन्दु (सं० पु०) नि-ईर-कम्पने-भावे-क्विप्, नीरा नितरां कम्पनेन इन्दति सुभगेन शोभते ततो इदि-उन्। अश्वशाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

नीरुच् (सं० त्रि०) निश्चितं रोचते रुच्-क्विप्, ढ्रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। नितान्त दीप्तिशील, जिसमें बहुत चमक दमक हो।

नीरुज (सं० पु०-स्त्री०) निर्-रुज् भावे क्विप्, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः १ रोगाभाव। पर्याय—स्वास्थ्य, वार्त्त, अनामय, आरोग्य। (त्रि०) निर्नास्ति रुग् रोगो यस्य। २ पटु, चालाक, होशियार। पर्याय—उल्लाघ, वार्त्त, कल्य।

नीरज (सं॰ त्रि॰) निर्गता रुजा रोगो यस्य, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। १ रोगरहित, नीरोग। (क्ली॰) २ कुष्ठौषध। ३ उशीरी। (स्त्री॰) ४ रोगभेद, एक रोगका नाम।

नीरूप (सं॰ त्रि॰) निर्नास्ति रूपं यस्य, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। रूपाभावविशिष्ट, रूपहीन, कुरूप।

नीरेणुक (सं॰ त्रि॰) निर्गतः रेणुः पांशुर्यस्मात्, रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। धूलिशून्य, जहां धूल न हो।

नीरोग (सं॰ त्रि॰) रुज-घञ्, रोगः, निर्नास्ति रोगो यस्य रलोपे पूर्वाणो दीर्घः। रोगहीन, जिसे रोग न हो, चंगा, तन्दुरुस्त।

नीरोह (सं॰ पु॰) अङ्कुरित होना।

नील (सं॰ पु॰) नीलतीति नील अच्। १ स्वनामख्यात वर्ण, नीला रंग, गहरा आसमानी रंग। २ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम। यह इलावृतवर्षके उत्तर इलावृत और रम्यकवर्षको सीमारूपमें अवस्थित है। इस पर्वतके दोनों पार्श्व लवणसमुद्र तक विस्तृत हैं। इसकी लम्बाई दो हजार योजन है। (भाग॰ ५।१३८) ३ वानरभेद, एक वन्दरका नाम। ४ नीली, नीली औषधि। ५ निधिभेद, नवनिधियोंमेंसे एक। ६ लाञ्छन, कलङ्क। ७ मङ्गलघोष, मङ्गलका शब्द। ८ वटवृक्ष, बरगद। ९ भारतवर्षके दक्षिणस्थित स्वनामख्यात पर्वतभेद। १० इन्द्रनीलमणि, नीलम। इसके अधिष्ठातृदेवता शनि हैं। पर्याय—सौवीराञ्जन, नीलाश्मन्, नीलोत्पल, तृणग्राही, महानील, सुनीलक। गुण—तिक्त, उष्ण, कफ, पित्त और वायुनाशक। शरीरमें धारण करनेसे शनि उसे मङ्गल देते हैं। जिसको शनिग्रह विरुद्ध हो, उसके लिये इस मणिका दान और धारण शुभावह है। उत्पत्ति और परीक्षादिका विषय इन्द्रनील और नीलम शब्दमें देखो ११ नागभेद, एक नागका नाम। १२ क्रोधवश गणांशजात द्वापरयुगके एक राजाका नाम। १३ नीलिनीसे उत्पन्न अजमीढ़ राजाका एक पुत्र। १४ माहिष्मतीके एक राजा। इनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार लिखी है,—नील राजाके एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। अग्निदेव इस कन्या पर मोहित हो कर ब्राह्मणके वेशमें राजासे कन्या मांगने आए। कन्याका पाणिग्रहण कर अग्निदेवने राजाको वर दिया, 'तुम शत्रुसे कभी भय नहीं करोगे। जो शत्रु तुम्हारे नगर पर आक्रमण करेगा, वह भस्म हो जायगा।' पीछे पाण्डवोंके राजसूययज्ञके अवसर पर सहदेवने माहिष्मती नगरीको घेरा और महाराज नीलके साथ घोर युद्ध किया। अपनी सेनाको भस्म होते देख सहदेवने अग्निदेवकी स्तुति की। अग्निदेवने प्रकट हो कर कहा, 'नीलके वंशमें जब तक कोई भी रहेगा, तब तक मैं बराबर इसी प्रकार रक्षा करूंगा।' अन्तमें अग्निकी आज्ञासे नीलने सहदेवकी पूजा की और सहदेव उससे इस प्रकार अधीनता स्वीकार करा कर चले गए। (भारत २।३० अ॰) १५ काचलवण। १६ तालीशपत्र। १७ विष। १८ नृत्याङ्गके अष्टोत्तरशत करणान्तर्गत करणभेद, नृत्यके १०८ करणोंमेंसे एक। १९ यमभेद, एक यमका नाम। २० नीलवस्त्र, नीला कपड़ा। ब्राह्मणको नीलवस्त्र नहीं पहनना चाहिए, यदि पहने, तो एक दिन उपवास कर पञ्चगव्यसे शुद्ध हो जाना चाहिए। यदि किसीके लोमकूपमें भी नीलका रस प्रवेश करे, तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंको तप्तकृच्छ्रका आचरण करना होता है। ब्राह्मणादि तीनों वर्ण यदि इस पौधेको लगावें, तो उन्हें तीन बार कृच्छ्रचान्द्रायण करने होते हैं। स्त्रियां यदि क्रीड़ाके लिये यह नील वस्त्र पहनें, तो उसमें दोष नहीं लगता। किन्तु स्वामीके मरने पर यदि वे इस वस्त्रका परिधान करें, तो उन्हें नरकवास होता है। कम्बल और पट्टवस्त्र यदि नीलरंगके हों, तो कोई दोष नहीं। ब्राह्मणको शुभ्र वस्त्र, क्षत्रियको रक्त वस्त्र, वैश्यको पीतवस्त्र और शूद्रको नीलवस्त्र पहननेको लिखा है। अतएव इस विधानानुसार शूद्रोंके लिये नीलवस्त्र परिधान दोषावह नहीं है। २१ एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें सोलह वर्ण होते हैं। २२ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। २३ मंजुश्रीका एक नाम। २४ एक संख्या जो दस हजार अरबकी होती है, सो अरबकी संख्या, १००००००००००००। २५ वानरसेनापति भेद। इस वन्दरने रामचन्द्रजीको सेतुबन्धनके समय काफी सहायता पहुंचाई थी।

नीलवर्ण वस्तु ये हैं—शुक, शैवाल, दूर्वा, बाणतृण,

बुध, वंशाङ्कुर, मरकत, इन्द्रनील, मणि, सूर्याश्म आदि २६ सारिका पक्षि। २७ कृष्णकुरण्टक, नीलीकट-सरैया। २८ कृष्णनिर्गुण्डी। (त्रि०) २८ नीलवर्णयुक्त, नीलेरंगका, गहरे आसमानी रंगका।

नील (सं० क्ली०) वृक्षविशेष, एक पौधा जिससे नील रंग निकाला जाता है। इसका अंगरेजी, फारसी और जर्मन नाम इण्डिगो (Indigo) तथा लैटिन नाम इण्डिगोफेरा (Indigo ferra) है। नीलके पौधेकी ३००के लगभग जातियां होती हैं, पर जिनसे यह रंग निकाला जाता है वे पौधे भारतवर्षके हैं और ४० तरह के होते हैं।

जिस नीलसे रंग निकाला जाता है उसका वैज्ञानिक नाम Indigofera tinctoria है। इसे संस्कृतमें नीलिका, भोटमें दसना, तुर्कीमें श्रोस्मा, सिन्धुप्रदेशमें जिल वा नीर, बम्बई-अञ्चलमें नीला, महाराष्ट्रमें नीलि, गुजरातमें गलि वा नील, तामिलमें नीलम्, तेलगुमें नीलमन्दु, कणाड़ामें नीली, ब्रह्ममें मेनाई, मलयमें नीलम, अरबमें नीलाज और पारसमें नीलह कहते हैं।

नीलके आदि इतिहासके विषयमें कुछ भी जाना नहीं जाता। प्राचीन उद्भिद्विद्याविशारदोंका कहना है, कि भारतवर्ष, अफ्रीका और अरबदेशमें यह जंगल अवस्थामें उपजता था। किन्तु जिस नीलसे रंग निकाला जाता है, (अर्थात् Indigofera tinctoria) वह पहले पहल किस देशमें उपजाया गया, उसका कोई निर्दिष्ट प्रमाण नहीं मिलता। कोई कोई कहते हैं, कि सबसे पहले नील गुजरातमें उपजाया जाता था, दूसरी जगह नहीं। डि कान्डोलीने लिखा है, कि संस्कृत कवियोंने जब 'नीलि' शब्दका व्यवहार किया है, तब निश्चय है, कि यह भारतवर्षका ही पौधा है। नीलरंग पृथ्वीके अनेक स्थानोंमें प्रचलित था। नीलिवृक्ष (Indigofera tinctoria) के सिवा अन्यान्य वृक्षोंसे भी नील-रंग प्रस्तुत होता था। अतएव भिन्न भिन्न देशोंमें भिन्न भिन्न प्रकारके पौधोंसे नील रंग निकाला जाता था।

नील शब्दका अर्थ कृष्ण है और कोई कोई काले अर्थमें भी व्यवहार करते हैं। इसी अर्थमें संस्कृत कविगण नीलमक्षिका, नीलपक्षी, नीलगो आदि अनेक शब्दों का व्यवहार कर गए हैं।

१५वीं शताब्दीमें जब यहांसे नील यूरोपके देशोंमें जाने लगा, तबसे वहांके निवासियोंका ध्यान नीलकी ओर गया। सबसे पहले हालैण्डवालोंने नीलका काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नीलको रँगाईके लिए यूरोप भरमें निपुण समझे जाते थे। नीलके कारण जब वहां कई वस्तुओंके वाणिज्यको धक्का पहुँचने लगा, तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा वे नीलकी आमदनी बन्द करनेको विवश हुए।

१६०८ ई०में ४र्थ हेनरी (Henry IV)ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'जो कोई नील रंगका व्यवहार करेगा, उसे प्राणदण्ड मिलेगा।' जर्मनीमें भी नीलका व्यवसाय बन्द कर देनेके लिये शख्त कानून पास हुआ था। इस प्रकार यूरोपमें सब जगह वायडकी खेती (Woad plantation)की अवनति होती देख नीलको बन्द कर देनेकी बहुत कुछ चेष्टा की गई थी, किन्तु कुछ भी फल न निकला। थोड़े ही दिनोंके अन्दर भारतके नील-रंगने वहांके चिरप्रचलित रङ्गका स्थान दखल कर लिया।

रानी एलिजावेथके समयमें १५८१ ई०को नील और वायडसे प्रस्तुत रंगका समभावमें व्यवहार करनेकी अनुमति दी गई। पशमको कुछ काला करनेके लिये नीलका ही व्यवहार होने लगा। कुछ दिनों तक अर्थात् सन् १६६० तक इङ्गलैण्डमें भी लोग नीलको विष कहते रहे जिससे इसका वहां जाना बंद रहा। पीछे २य चार्लसके समयमें बेलजियमसे नीलका रंग बनानेवाले सुकौशली नीलकर बुलाए गए जिन्होंने नीलका काम सिखाया। इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने जब नीलके कामकी ओर ध्यान दिया, तब वह सूरत और बम्बईसे काफी नील भेजने लगी।

किसी किसीका कहना है, कि चन्दननगरमें फरासीसियोंकी एक कोठी थी। इसी कोठीसे नीलकी खेतीका पुनरभ्युदय हुआ था, किन्तु इससे उतनी उन्नति नहीं हुई। पीछे जब इष्ट-इण्डिया-कम्पनीने देखा कि नीलके लिये फ्रांस और स्पेन उपनिवेशके लोगोंका बाट जोहना पड़ता है, तब वह बङ्गदेशमें नीलोत्पत्तिके लिये यथेष्ट उत्साह प्रदान करने लगी।

इस समय अमेरिकासे-यूरोपीय वणिकोंने बङ्गालके नानास्थानोंमें आ कर कोठियां खोलीं। धीरे धीरे भारतवर्षमें ऐसा उत्कृष्ट नील उत्पन्न होने लगा कि वह फ्रान्स और स्पेनको मात कर गया और बहुत अच्छेमें गिना जाने लगा। १७९५ ई०में सबसे पहले यशोरमें नीलकी खेती शुरू हुई।

१८२० ई०में भी गुजरातमें नील प्रस्तुत होता था। नगर और पल्लीके निकट नीलकोठीमें व्यवहृत पुरातन पात्रादि आज भी देखनेमें आते हैं।

प्रथमतः ईष्ट-इण्डिया-कम्पनी कृषकोंको दादनी दे कर नीलकी खेती करनेमें उत्साह देने लगी। पीछे जब उन्होंने देखा कि इसमें विलक्षण लाभ है तब (१८०२ ई०में) पेशगी रुपया देना बन्द कर दिया। १८०९ ई०में कम्पनीने नकद रुपयेसे नील खरीदनेके लिये एक कोठी खोली। यथार्थमें देखा गया कि यूरोपवासियोंके उत्साहसे ही पहले पहल इस देशमें नीलकी विस्तृत खेतीका आरम्भ हुआ है। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें आध सेर नील २॥)से ले कर ५) रु०में बिकता था।

१८३७ ई०में नीलकी खेतीके लिए जमींदार और वणिकोंके साथ कृषकोंका सम्बन्ध अमङ्गलजनक और विशेष कष्टदायक हो पड़ा। अनेक स्थानोंमें जमींदार लोग साहबोंको पत्तनिकी शर्त्त पर जमीन बन्दोबस्त देने लगे। वे फिर उस जमीनको रैयतके साथ बन्दोबस्त करने लगे। किन्तु प्रत्येक रैयतको ही अपनी जमीनमें नील उपजाना पड़ता था। कहीं तो स्थानीय जमींदार प्रजा द्वारा नीलकी खेती करा लेते थे। लार्ड मेकलेने इस विषयमें एक प्रबन्ध लिखा जिसमें उन्होंने कहा, है कि नीलकी खेतीके लिए प्रजाके प्रति यथेष्ट अत्याचार होता था। प्रजाको एक तरह जमींदारके क्रीतदास कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं। उनका यह प्रबन्ध उस समयकी शोचनीय अवस्थामें विशेष फलदायक हुआ था।

इस ओर ध्यान देना आवश्यक समझ कर १८६० ई०की ९वीं धाराके अनुसार कुछ कर्मचारी नियुक्त किये गए। वे लोग सत्यासत्यका अनुसन्धान कर गवर्मेण्टको खबर देने लगे। उक्त आईनके अनुसार ठेकेदार ठेकेके अनुसार कार्य करनेको बाध्य हुए. किन्तु जहां छल बल और कौशलसे काम लिया जाता था, वहां इस ठेकेके नियमानुसार कोई भी कार्य करनेको बाध्य नहीं था। १८६८ ई०में ८वीं धाराके अनुसार यह कानून तोड़ दिया गया। १८७६-७७ ई०में बिहारमें भी इस प्रकारका अन्याय व्यवहार आरम्भ हुआ था, किन्तु दुर्भिक्षके समयमें नीलकर साहबोंने प्रजामण्डलके प्रति विशेष दया दरसायी; अतः गवर्मेण्टने इस विषयमें हस्तक्षेप न किया। केवल इतना ध्यान अवश्य रखा जाता था कि नियमके विरुद्ध कोई काम करने न पावे। वर्त्तमान समयमें इस सम्बन्धमें जो कानून प्रचलित है, उसका मर्म यह कि जो कोई इसका ठेका लेगा वह नियमके अनुसार करनेको बाध्य होगा। नहीं तो आईनके अनुसार उसे क्षतिपूरण देना पड़ेगा। बलपूर्वक कोई किसीसे नीलकी खेती करा नहीं सकता।

बीच बीचमें नील-व्यवसायियोंकी समिति बैठती है। उस समितिसे अनेक नियम बनाए जाते हैं। उसी नियमके अनुसार वे कार्य करते तथा नील कोठीके कार्य सम्पन्न करते हैं। गवर्मेण्टने जो नील परसे कर उठा दिया है, उससे दिनों दिन इस व्यवसायकी उन्नति होती देखी जाती है।

१८७५ ई० ५ अक्तूबरके पहले नीलके विदेश भेजनेमें मन पीछे ३) रु० कर देना पड़ता था। किन्तु उस समयसे नील प्रस्तुत करनेमें मन पीछे ३) रु० और नीलकी पत्तियों पर एक टन (२७ मन ९ सेर)-से ऊपर होने पर भी तीन रुपये लगने लगे। धीरे धीरे वे सब कर उठा दिए गए हैं।

बङ्गालसे नीलकी खेती धीरे धीरे अमेरिका और वेष्टइण्डीस् आदि स्थानोंमें फैल गई। जब मन्द्राजके अधिवासियोंका ध्यान उस ओर गया, तब वे भी बहुत यत्नपूर्वक इसकी खेती करने लगे। तिरहुतमें भी इसकी खेती होती है।

नीलकी खेती—भिन्न भिन्न स्थानोंमें नीलकी खेती भिन्न भिन्न ऋतुओंमें और भिन्न भिन्न रीतिसे होती है। मि० डबल्यू-एम रीडने अपने नीलकी खेतीकी व्यवसाय और उन्नतिविषयक पुस्तकमें लिखा है, कि उत्तर-बिहार

आदि उक्त स्थानोंमें नीलकी खेतीमें बहुत परिश्रम लगता है। वहां गृहस्थ लोग जमीनको पहले अच्छी तरह कुदालीसे कोड़ते हैं, पीछे उसमें नीलका बीज बो कर खाद डालनेके बाद चौकी देते हैं। चौकी देने पर भी यदि ढेला रह जाता है, तो उसे हाथसे फोड़ते अथवा बालक-बालिका मिल कर मुद्गरसे पीटती हैं।

निम्न बङ्गालमें जमीन प्रायः समुद्रसे बहुत कम ऊंची है। इस कारण वर्षाके समय वह वृष्टि और बाढ़से डूब जाती है। शरत्‌ऋतुके आने पर जल सूखने लगता है। इसी समय इस देशमें नीलका बीया बोया जाता है। अतएव यहां उत्तर-बिहार आदि स्थानोंके जैसा विशेष परिश्रम करना नहीं पड़ता। किन्तु जहांकी जमीन अपेक्षाकृत ऊंची है, वहां खेत जोत कर बीया बोया जाता है सही, लेकिन उत्तर-बिहारके जैसा कुदालसे कोड़ कर या ढेले फोड़ कर नहीं। यहां विशेष कर कातिक महीनेमें ही बीज-वपन होता है।

दक्षिण-बिहारमें वर्ष भरमें दो बार बीया बोया जाता है। एक भाद्रमासमें वृष्टिके समय जिसे आषाढ़ीनील कहते हैं। आषाढ़ीनीलका भरोसा बहुत कम रहता है। कारण काफी तौरसे धूप और पानी नहीं मिलता जिससे बीया बरबाद हो जाता है। दूसरी बार इसके बुननेका कोई निर्दिष्ट समय नहीं है, वर्ष भरमें प्रायः सभी समय बोया जा सकता है। यहां कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेतमें रहती है और कहीं अठारह महीने तक। जहां पौधे बहुत दिनों तक खेतमें रहते हैं वहां उनसे कई बार काट कर पत्तियां आदि ली जाती हैं। पर अब फसलको बहुत दिनों तक खेतमें रखनेकी चाल उठती जाती है। उत्तर-बिहारमें नील फागुन-चैतके महीनेमें बोया जाता है। गरमीमें तो फसलकी बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोरके साथ टहनियां पत्तियां निकलती और बढ़ती हैं। अतः आषाढ़में पहला कलम हो जाता है और टहनियां आदि कारखाने भेज दी जाती तथा खेतमें खूंटियां रह जाती हैं। कलम काटनेके बाद फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे बरसातका पानी अच्छी तरह सोखता है और खूंटियां फिर बढ़ कर पौधोंके रूपमें हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर कारमें होती है। कहीं कहीं ऐसा भी देखा जाता है कि जब चैत-बैसाखमें कुछ भी पानी नहीं पड़ता, तब कृषकगण बांसके डंडेमें एक तरफ जलपूर्ण बालटी और दूसरी तरफ कोई भारी चीज लटका कर कंधे पर चढ़ा लेते और खेतमें जाते हैं। जिस खेतमें पानी देनेकी आवश्यकता देखते, उस खेतको पानीसे सींच देते हैं। कहीं कहीं चमड़ेके थैलेमें पानी भर कर बैलकी पीठ पर लाद देते और खेत ले जा कर वृष्टिका अभाव पूरा करते हैं। जो धनी गृहस्थ हैं, वे कहीं कुआं खोद कर ही काम चला लेते हैं। कारण चैतमासमें यदि वृष्टि बिलकुल न हो, तो जमीन फट जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसा होनेसे बीज नष्ट हो जाते हैं और किसी तरह यदि पौधे उग भी जांय, तो पीछे वे तेजहीन हो जाते हैं। जब तक वृष्टि नहीं होती तब तक वे इसी प्रकार खेतको सींचते रहते हैं।

निम्नबङ्गालमें नील सब जगह कार्त्तिकमासमें बुना जाता है सही, पर इसकी कटाई भिन्न भिन्न समयमें होती है। एक प्रकारका ऐसा नील है, जो आषाढ़, श्रावण और कभी कभी भाद्र मासमें भी काटा जाता है। वह आरदोग नील आठ मास तक जमीनमें रहता है। कटाईके समय पहले निम्नस्थानका नील काटा जाता है। कारण बाढ़का डर बना रहता है। काटनेके बाद पौधोंको पूंटियामें बांधते और बैलकी गाड़ी पर लाद कर कोठीमें पहुंचा देते हैं।

बङ्गाल छोड़ कर भारतवर्षके अन्यान्य स्थानोंमें भी यथेष्ट परिमाणमें नील उत्पन्न होता है। उन सब स्थानोंमें जिस प्रणालीसे नीलकी खेती होती है, वह उपरि-उक्त प्रणालीसे विशेष विभिन्न नहीं है। पर स्थानविशेषसे विभिन्न समयमें बीजवपन और कटाई होती है। सुचतुर कृषकगण अनेक समय नीलके साथ साथ अन्य अनाज भी उपजाते हैं। निम्नबङ्गालमें कातिकमासमें नीलके साथ सरसों बोई जाती है। बम्बईप्रदेशमें नीलके साथ रुई, कंगनीदाना आदिकी खेती करते हैं।

प्रत्येक बीघेमें ४।५सेर नीलका बीया लगता है। कलिन साहबकी रिपोर्टसे जाना जाता है, कि बङ्गालमें प्रति बीघे प्रायः १५ बं०का नील उपजता है। नीलका

अन्य प्रतिद्वन्द्वी पाट है। पहले जिन सब जमीनमें नील होता था उसके अधिकांश स्थानमें अभी पाट होने लगा है। विदेशको रफ़तनी वस्तुओंमें ये ही दो सर्वप्रधान हैं। नीलको खेतीमें सुविधा यह है, कि रुपये पेशगी मिलते हैं।

आसाम और ब्रह्मदेशमें भी नील उपजता है। पहले ब्रह्मदेशमें कोठीकी निकटस्थ जमीनके तृतीयांशमें प्रजा वाध्य हो कर नील उपजाती थी। केवल बङ्गालमें नहीं, बल्कि तमाम भारतवर्षमें नीलकी खेतीमें प्रजाको असीम कष्ट भुगतना पड़ता था। लेकिन अब वैसा नहीं है, नील उपजाना वा नहीं उपजाना प्रजाकी इच्छा पर है।

मन्द्राजके मध्य नेल्लूर और कड़ापा जिला नीलका प्रधान स्थान है। इस अञ्चलमें कुछ विभिन्न उपायसे नील उपजाया जाता है। यहां इसकी दो प्रकारकी खेती होती है, प्रथम 'ग्रीष्मऋतुमें और द्वितीय वर्षामें। पहली प्रणालीमें जमीनमें थोड़ा पानी पड़ते ही खेत जोतने काबिल हो जाता है और तब सार दे कर चैत बैसाखमें बीया बोते हैं। इस प्रणालीमें वृष्टिके जलके ऊपर पूरा भरोसा करना पड़ता है। द्वितीय अर्थात् आर्द्र-प्रणालीमें वृष्टिके जलकी अपेक्षा नहीं करनी होती। पोखर अथवा और जलाशयके निकट बीया बोया जाता है। उस जमीनमें तालाव आदिसे जल सींचनेकी जरूरत नहीं पड़ती। इस प्रणालीमें जमीन भी कम जोती जाती है। लेकिन सार हर हालतमें दिया जाता है। कहीं कहीं खेतको उर्वरा बनानेके लिये भेंड़े तीन चार दिन तक खेतमें छोड़ दिये जाते हैं। इनके मल-मूत्रादिसे जमीनकी उर्वरताशक्ति बढ़ती है। ३।४ दिन बाद ही बीज अंकुरना शुरू कर देता है। यदि कुछ विलम्ब हो जाय, तो एक बार जल सींचनेसे निश्चय ही अंकुर निकल आवेगा। टहनियां निकल आनेके बाद प्रायः सात दिन तक जल देना पड़ता है। तीन मासके बाद इसकी पहली कटाई और फिर तीन मासके बाद दूसरी कटाई होती है।

नीलके बीज उगानेके दो उपाय हैं। कटाईके बाद खेतमें जहां तहां जो दो चार पौधे रह जाते हैं, उसको कुछ काल रहा करे। पीछे फल लगने पर उसे संग्रह करके दूसरे वर्षके लिये रख छोड़े। ये बीज सर्वोत्तम होते हैं और बोए जानेके तीन चार दिन बाद ही सबके सब उग आते हैं, एक भी नष्ट नहीं होता। पूर्व समयमें बङ्गाल आदि देशोंमें इस प्रान्तसे उक्त बीज भेजे जाते थे। बङ्गालके कोटचाँदपुरमें एक प्रकारका बीज उत्पन्न होता है जिसे 'देशी' कहते हैं। उस स्थानमें जहां ५।६ बार खेत जोत कर नील बोया जाता है, वहां इस देशी बीजकी जरूरत पड़ती है। किन्तु देशी बीजसे जो पौधे उत्पन्न होते हैं, उनकी कटाई देरीसे होती है। यशोर, पूर्णियामें देशी बीजसे जो पौधे, लगते वे भी विलम्बसे परिपक्व होते हैं; किन्तु पटने और कानपुरके बीजसे उत्पन्न पौधे कुछ पहले ही कट जाते हैं। मन्द्राजी बीजसे तो और भी शीघ्र नील उत्पन्न होता है। किन्तु यह उतना सुविधाजनक नहीं है। उसका कारण यह है, कि नदीका जल जब तक परिष्कार नहीं हो जाता तब तक कोठीका काम शुरू नहीं होता है। किन्तु जिस समय मन्द्राजी बीजका नील होता है उस समय नदी बालुकामय रहती है। नीलबीजके मूल्यको कुछ स्थिरता नहीं है। प्रति मनका दाम ४) से ले कर ४०) चालीस रुपये तक है। गया और उसके निकट-वर्त्ती स्थानोंमें प्रति बीघे ६।७ सेर बीया बोया जाता है। जो सब नीलके पौधे सतेज नहीं होते, उन्हें बीये-के लिये रख छोड़ते हैं। इस प्रकारके पौधेसे एकड़ पीछे प्रायः ६ मन बीज उत्पन्न होता है।

यद्यपि नीलकी खेती बहुत सहजमें और कम परि-श्रममें होती है, तो भी इसमें कभी कभी यथेष्ट विघ्न पड़ जाता है,—(१) वैशाख ज्येष्ठ मासमें अनावृष्टि होने पर अनके समय पत्तियां झुलस जाती हैं। (२) जब सभी पौधे परिपक्व हो जाते, तब उनमें एक इञ्च लम्बा सजवर्णका कीड़ा लगता है जो पौधेका यथेष्ट नुक-सान करता है। इस कीड़ेके उत्पन्न होनेसे ही समझ लेना चाहिए कि नील काटनेका उपयुक्त समय आ गया। किन्तु ३।४ दिन यदि काटनेमें विलम्ब हो जाय; तो कीड़े पत्तियोंको बिलकुल काट गिराते हैं। (३) १॥से २ इञ्च लम्बा एक प्रकारका कीड़ा नीलके पौधेमें देखा गया।

है। कभी कभी ऐसी नौबत आ जाती है, कि खेतका खेत उक्त कीड़ोंसे वृक्षहीन हो जाता है। (४) दृष्टि और शिलावृष्टिसे तथा कटाईके बाद पौधोंके जलमें भिगो जानेसे पत्तियां बरबाद हो जाती हैं जिससे सुन्दर रंग नहीं बनता। (५) अतिवृष्टि, अनावृष्टि दोनों ही इसके अनिष्टकर हैं। (६) पौधोंके सतेज रहने पर भी यदि वे बहुत दिनों तक खेतमें छोड़ दिये जांय, तो वृष्टि आदिसे नष्ट हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है

युक्तप्रदेशमें तथा अयोध्याके गहलो नामक स्थानमें एक प्रकारका कीड़ा उत्पन्न होता है जो नीलके पौधों-का परम शत्रु है। कभी कभी इतने जोरसे हवा बहती है, कि पौधोंके बिलकुल डंठल टूट जाते हैं, एक भी पत्ता रहने नहीं पाता। फलतः उससे रंग निकाला नहीं जा सकता। मन्द्राजमें पझ्पाल, गोझलीपुरुगु और कम्बाली-पुरुगु इत्यादि कीड़ोंसे पौधोंको विशेष क्षति होती है। वुद्धिटिमालू नामक कीट १से ८ इञ्च तकके अङ्कुरको नष्ट कर डालता है। इस अवस्थामें यदि ये सब कीट देखे जांय, तो समझना चाहिए कि इस साल नील इतना ही तक शेष है। सिवेल साहब (E. J. Sewell)-ने लिखा है, कि अङ्कुर निकल जानेके दो महीनेके अन्दर वुदिडे और आगुईमण्डल-पुठिगुलु नामक दो प्रकारका उत्पात होता है। पहलेमें पत्तियां बिलकुल सफेद हो जाती हैं और दूसरेमें काली हो कर जमीन पर गिर पड़ती हैं। मि० कफ साहब (C. kough)ने एक और नूतन रोगका उल्लेख किया है। इसमें पत्तियों पर चकत्ता-सा दाग पड़ जाता है और थोड़े ही दिनोंके मध्य पौधे मर जाते हैं।

सारे बङ्गालमें कितनी जमीनमें कितना नील उत्पन्न होता था, इसका निर्णय करनेके लिये सबसे पहले डाक्टर एच मेकन (Dr. H. Mocaun)ने चेष्टा की। स्थानीय कर्मचारियोंके विवरणसे उन्हें पता लगा था, कि १८७७-७८ ई०में प्रायः सात लाख एकड़ जमीनमें नील उपजाया जाता था। फिर १८८४-८५ ई०की गणना-से जाना जाता है, कि प्रायः तेरह लाख एकड़ जमीनमें नीलकी खेती होती थी। उस वर्षके उत्पन्न नीलकी परिमाण-संख्याके साथ तुलना करनेसे देखा जाता है कि १८७७-७८ ई०को विहारमें १८१७१६ एकड़ जमीनमें नील उपजता था और प्रत्येक एकड़में २० पौण्ड नील होता था। फिर निम्न बङ्गालकी ३४०३४० एकड़ जमीनमें नीलकी खेती होती थी और एकड़ पीछे १२ पौंड नील उत्पन्न होता था। १८८४-८५ ई०में विहार और निम्न बङ्गालमें किस हिसाबसे नील उपजता था सो ठीक ठीक मालूम नहीं। किन्तु टमास कम्पनीके विव-रणसे जाना जाता है कि उपरि-उक्त कुछ वर्षोंमें क्रमशः १८३२६०५ पौण्ड अर्थात् एकड़ पीछे ६ पौण्ड नील हुआ था। लेकिन डा० मेकनने जमीनका जैसा परि-माण दिया है, उससे अधिक परिमित स्थानमें नीलकी खेती होती थी। गत १८८८ ई०के विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि भारत भरमें कुल चौदह लाख एकड़ जमीनमें नीलकी खेती हुई थी और १५६४०१२८ पौण्ड नील विदेशमें भेजा जाता था। इस हिसाबसे प्रति एकड़ ११.१ पौंड नीलका होना साबित होता है। किन्तु भारतवर्षके व्यवहारके लिये २० लाख पौण्ड नील हरवक्त मौजूद रहता था। इससे यह ज्ञात होता है, कि बङ्गदेशमें एकड़ पीछे १२ पौण्ड और विहारमें २० पौण्ड नील उत्पन्न होता था।

नीलसे रंग निकालनेका उपाय।

नीलका रंग कोठीमें प्रस्तुत होता है। इस कोठीको लोग कनसार्न (Concern) कहते हैं। प्रत्येक कोठीमें यन्त्र रखनेके पात्रादि और दूसरे दूसरे आवश्य-कीय द्रव्यादि तथा कुली, मजदूर और कर्मचारी रहते हैं। इन सब कर्मचारियोंके ऊपर एक अध्यक्ष रहता है। कार्याध्यक्षको सुदक्ष, बहुदर्शी और सर्व-कार्य कुशल होना आवश्यक है। विशेषतः परिष्कार जलका संग्रह करना अध्यक्षका प्रधान कार्य है। कारण बिना परिष्कार जल और नीलपौधोंके कोठीको काम चल ही नहीं सकता। नीलसे रंग दो प्रकारसे निकाला जाता है। एक हरे और दूसरे सूखे पौधे।

(१) हरे पौधेसे रंग निकालना।

नील प्रस्तुत करनेमें परिष्कार जलका संग्रह करना विशेष आवश्यक है। यही कारण है कि नदी या प्रभूत जलपूर्ण जलाशयके समीप कोठी बनाई जाती है।

साधारणतः जलोत्तोलन यन्त्र द्वारा (pump) सर्वोच्च पात्रमें भी जल भर कर रख दिया जाता है। दश हजार घनफुट जल जिसमें समा सके ऐसे चहवच्चेका रहना नितान्त आवश्यक है।

उक्त चहवच्चेके अलावा छोटे छोटे और भी अनेक चहवच्चे रहते हैं। अंगरेजीमें इन चहवच्चोंको भाट्स (Vats) कहते हैं। इन सब चहवच्चोंको परस्पर संलग्न रखनेके लिए नलकी जरूरत होती है। ये सब भाट पुनः दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं, ष्टीपिंभाट (Steefing Vat) और वीटिंभाट (Weating Vat)। बड़े और छोटे चहवच्चोंका आकार कोठीके समान नहीं होता। नीलकी आमदनीके अनुसार विभिन्न कोठीमें विभिन्न आकारके चहवच्चे बने होते हैं। जिन सब कोठियोंमें १२ ष्टीपिङ्ग-भाट रहते हैं, उनका परिमाण साधारणतः २४×१८×५ फुट होना चाहिए। ये सब चहवच्चे ईंट और सीमेण्टके बने होते हैं तथा अंगोवहसे सजे रहते हैं। इनके सामने मट्टीके नीचे और भी कितने प्रशस्त और अल्प-गभीर चहवच्चे रहते जिन्हें वीटिंभाट कहते हैं। ष्टीपिं-भाटके नीचे एक छेद रहता है। बाहरमें उसमें काठकी ठेपी लगी रहती है। उस छिद्रमें नल लगा कर ष्टीपिं-भाटसे वीटिंभाटमें जोड़ दिया जाता है। पीछे उस ठेपी को खोल देनेसे ष्टीपिंभाटमें जो कुछ प्रस्तुत रस रहेगा, वह वीटिंभाटमें चला जायगा। इसी प्रकार वीटिंभाट-के ऊपर नीचे भी कितने छेद होते जो नलके साथ संलग्न रहते हैं।

ष्टीपिंभाट (अर्थात् भिगोनेका पात्र) किस लिये व्यवहृत होता है, अन्यान्य पात्रोंका विवरण देनेके पहले इसीका संक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। कटे हुए हरे पौधे कोठीमें जितने मौजूद रहते हैं उन्हें इसी चहवच्चेमें दबा कर रख छोड़ते हैं और ऊपरसे पानी भर देते हैं। बारह चौदह घंटे पानीमें पड़े रहनेसे उसका रस पानी-में उतर आता है और पानीका रंग धानी हो जाता है। पीछे ष्टीपिङ्गभाटकी ठेपी खोल देनेसे वह पानी दूसरी नांदमें अर्थात् वीटिंभाटमें जाता है। इस समय उस तरल पदार्थका वर्ण देख कर सहजमें कह सकते हैं, कि रंग कैसा होगा। यदि वह रस सब्जवर्ण लिए कुछ पीला मालूम पड़े, तो जानना चाहिए कि नील बहुत उत्कृष्ट होगा। यदि वह मदीरा (Madira)के रंग-सा मालूम पड़े, तो सुन्दर रंग; कुछ पिङ्गल और सब्जवर्ण मिश्रित तथा अल्प लालमिश्रित गाढ़ा नील-सा मालूम पड़े, तो मध्यम रंग और यदि मलीन लाल-वर्ण दीख पड़े, तो रंग खराब हो गया है, ऐसा जानना चाहिये। वीटिंभाटमें आनेके साथ ही डेढ़ दो घंटे तक वह लकड़ीसे हिलाया और मथा जाता है। मथनेका यह काम कहीं हाथसे और कहीं मशीनके चक्करसे भी होता है। दो ढाई घंटे तक मथे जानेके बाद वह रस पहले गाढ़ा सब्जवर्ण, पीछे बैंगनिया और सबसे पीछे घोर नीलवर्ण-सा दीखनेमें लगता है। इस आलोड़न पात्रमें दो क्रियाएं निष्पन्न होती हैं, १ली तरल पदार्थके ऊपर वायुस्थित अम्लजन क्रिया और २री रंग प्रस्तुतकारी कणासमूहका एकत्र हो कर एक बृहदाकार धारण। रासायनिक पण्डितोंका मत है, कि आलोड़ित होनेके पहले जलवत् पदार्थ ठीक नीला (Blue) नहीं रहता, वरं उसे सफेद नील वा ह्वाइट इण्डिगो कहते हैं।

अम्लजन वायुके साथ मिल कर यह नील रंगमें परिणत हो जाता है। आलोड़नक्रिया द्वारा अम्लजन वायुके साथ मिल जाता है, इस कारण अन्यान्य उपायसे अम्लजनके साथ मिश्रित कर नहीं मथनेसे भी काम चल सकता है, सफेद नील पानीमें गल जाता है। लेकिन जब वह अम्लजन वायुके साथ मिल कर (ब्लू) रंगविशिष्ट नील हो जाता है, तब पानीमें नहीं गलता। मथनेके बाद पानी थिरानेके लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देरमें माल नीचे बैठ जाता और तब ऊपरका पानी नल द्वारा दूसरे चहवच्चेमें बहा दिया जाता है। यह पानी कभी कभी जमीनमें सारका काम करता है। कुल पानीके निकल जाने पर वह जमा हुआ नील बाल्टी-में भर कर छननीके ऊपर रख दिया जाता है, ऐसा करनेसे उसमें जितना कूड़ा करकट तथा पत्तियां रहती, सभी निकल जाती हैं।

पीछे एक नल हो कर उसे एक पात्रमें लाते हैं। उस पात्रका नाम है पल्पभाट (Pulp Vat)। उसकी आकृति १५×१०×३ फुटकी होती है। उसीके ऊपर बायलर

रहता है। अब उस जमे हुए नीलको पुनः साफ पानीमें मिला कर उबालते हैं। उबल जाने पर वह बांसकी फट्टियोंके सहारे तान कर फैलाए हुए मोटे कपड़ेकी चाँदनी पर ढाल दिया जाता है। चाँदनी छननेका काम करती है। पानी तो निथर कर बह जाता है और साफ नील लेईके रूपमें लगा रहता है, यह गीला नील छोटे छोटे छिद्रोंसे युक्त एक सन्दूकमें, जिसमें गीला कपड़ा पड़ा रहता है, रख कर खूब दबाया जाता है जिससे उसकी सात आठ अंगुल मोटी तह जम कर हो जाती है। इसके कतरे काट कर धीरे धीरे सूखनेके लिए रख दिए जाते हैं। सूखने पर इन कतरों पर एक पपड़ी-सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नामसे बिकते हैं। इन कतरोंके ऊपर कोठीका मार्का दिया जाता है।

जब कतरे इसी तरह सूख जाते हैं, तब उन्हें एक कोठरीमें सजा कर रख देते हैं। इस घरका नाम स्वेटिंरूम है। यहां कतरे या गोलीके ऊपरके रंगको धर्माक्त करके उज्ज्वल करते हैं। इस घरमें गोलीको एक दूसरेके ऊपर इस प्रकार सजा कर रखते कि वह दीवार-सा दीख पड़ता है। बाद उसे कम्बल वा भूसीसे ढक रखते हैं। घरके दरवाजेको खूब सावधानीसे बंद रखना पड़ता है। कारण अधिक वायुके लगनेसे गोली नष्ट हो जानेकी विशेष सम्भावना रहती है। प्रायः १५ दिन तक इस प्रकार रखनेसे नीलकी गोली घर्माक्त हो जाती है पीछे धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा करके उसे खोलते हैं, एकबारगी खोलनेसे गोलीके फट जानेकी सम्भावना रहती है। ऐसा करनेसे नीलकी उज्ज्वलता बढ़ती है।

नीलके कतरेको अच्छी तरह सूखनेमें तीन मास लगते हैं। बाद उसे एक बकसमें रख देते हैं। प्रायः एक दिनको प्रस्तुत गोलीसे एक बकस भर जाता है।

२। सूखे पौधेसे रंग निकालना।

इस प्रणालीसे जो नील तैयार होता है, वह उतना अच्छा नहीं होता। तब इसमें सुविधा एक यही है कि कटाईके बाद जब इच्छा हो, तब उससे रंग निकाल सकते हैं। जिन्हें नीलकी कोठी नहीं है, दूसरेकी कोठी किराए पर ले कर रंग प्रस्तुत करते हैं, वे ही प्रायः इस उपायका अवलम्बन करते हैं। इस प्रणालीसे तथा प्रथमोक्त आर्द्र प्रणालीमें कोई विशेष पृथक्ता नहीं है। फर्क इतना ही है, कि प्रथम अवस्थामें नीलके पौधोंको न सुखा कर सड़नेके लिए रख देते हैं। पर इसमें पौधोंको सुखा लेते हैं जिससे पत्तियां झड़ कर गिर पड़ती हैं। ये सूखी पत्तियां एक मासके बाद सब्जवर्णसे नीलवर्ण लिए धूसरवर्णकी हो जाती हैं। पीछे ष्टीपिंभाटमें सूखी पत्तियां डाल कर ऊपरसे ६ गुणा जल दे देते हैं। इस अवस्थामें क्रमागत हिलाते और मथते हैं। बहुत देर तक हलनेके बाद पत्तियां नीचे बैठ जाती हैं। पीछे जल सब्जवर्णका हो कर बीटिंभाटमें जाता है और पूर्व नियमसे नील-रंग प्रस्तुत किया जाता है।

डाक्टर शर्ट (Dr. Shortt)-ने रंग निकालनेका इससे भी एक सहज उपाय बतलाया है। इस प्रणालीसे खेतसे लाया हुआ ताजा नील एकबारगी बायलरमें डाल दिया जा सकता है। पीछे जलसे सिद्ध करके काम चल जाता है। इस प्रकार सिद्ध करते करते इसमेंसे कुल रंग बाहर निकल आता है। सिद्ध करनेके समय काठके एक यन्त्रसे पत्तियोंको जलमें डुबो रखना चाहिए। बीच बीचमें इस पर विशेष ध्यान रहे कि पानी कब उबलना शुरू करता हैं। कारण उस समय आंच कम कर देनी पड़ेगी। जब इसका वर्ण कुछ लाल हो जाय, तब जानना चाहिए कि उबलना शेष हो गया। पीछे इसमेंसे क्राथको वीटिंभाटमें डाल कर मथना होता है। इसमें सुविधा यही है, कि थोड़े ही समयके अन्दर कार्य सम्पन्न हो जाता है। वीटिंभाटसे इसको पल्प बायलर (Pulp Boiler)में ले जाना पड़ता है। अनन्तर पूर्व प्रणालीके अनुसार सभी कार्य होते हैं।

सम्प्रति मि० रिचार्ड अलफार्टने रंग बनानेका एक नई तरकीब निकाली है। इसमें सब्ज, नील और नीलवर्ण नील प्रस्तुत होता है। नील पौधोंकी ताजी पत्तियोंको ष्टीपिंभाटमें डाल कर ऊपरसे किसी वस्तुका दबाव दे देते हैं। पीछे जल पड़नेसे उसमेंसे रस निकल कर जलको नीला बना देता है। यदि ग्रीन-इण्डिगो प्रस्तुत करना हो, तो पौधोंके अच्छी तरह सड़नेके पहले यह

प्रक्रिया की जाती है और यदि ब्लू-इण्डिगो बनाना हो, तो पत्तियां जितनी हो सड़ेंगी, रंग उतना ही अच्छा होगा। बाकी सभी प्रक्रियाएं पहले सी हैं।

नील प्रस्तुत करनेमें बहुत खर्च पड़ता है। येरिफ साहबकी रिपोर्ट पढ़नेसे मालूम होता है, कि कोठीके मन पीछे अर्थात् ७२ पौण्ड १० ¼ औंसमें २० रु० खर्च होते हैं। यदि नीलका पौधा अच्छा हो और नीलकी दर मध्यम हो, तो मन पीछे ५०) से लेकर ७५) रु० लाभ होते हैं।

ब्लू-नील तापके संयोगसे वायुमें गल जाता है। यदि उसमें अधिक उत्ताप दिया जाय, तो वह उज्ज्वल और धूममय शिखाविशिष्ट हो कर जलने लगता है। ०° डिग्रीसे १००° डिग्री सेण्टिग्रेड तक शुष्क क्लोरिण इसके ऊपर कोई क्रिया नहीं करती। लेकिन यदि वह नील जलसे कुछ गीला बना दिया जाय, तो उससे उसके भीतर क्लोरिण देनेसे पहले वह सब्ज वर्णका हो जाता है, पीछे हरिद्रावर्णका। वर्त्तमान रासायनिक पण्डितोंने विज्ञानशास्त्रमें नील (Indigo blue)का साङ्केतिक चिह्न C_8 H_5 NO or C_{16} H_{10} N_2 O_2 रखा है। जल, सुरासार, इथर (Ether), मृदु अरक (Dilute acid), क्षार (Alkali) इत्यादि द्रव्योंमें यह द्रव नहीं होता। गन्धक द्रावक (Sulpharic acid)के साथ द्रव हो कर एक्सट्राक्ट आव इण्डिगो (Extract of Indigo) प्रस्तुत होता है।

नील द्वारा रेशम, पशम, सूती कपड़े आदि रंगाए जाते हैं। कपड़े रंगानेके पहले ब्लू-इण्डिगो अर्थात् नीलगोटीको अन्यान्य द्रव्योंके साथ मिला कर एक चहबच्चेमें घोलते हैं। विभिन्न प्रणालीसे विभिन्न द्रव्य मिश्रित किया जाता है। किसी प्रणालीसे चूना और फेरस सलफेट (Ferrous sulphate Fe SO_4) मिश्रित किया जाता है। किसी प्रणालीसे कार्वनेट-आव पटाश (Carbonate of Potash), कूड़ा (Brans) फिर किसी उपायसे चण और कार्वनेट-आव सोडा (Carbonet of Soda) इत्यादि व्यवहृत होता है। भारतवासी साधारणतः निम्नलिखित उपायसे रंग प्रस्तुत करते हैं। एक पौण्ड नीलका चूर्ण, तीन पौण्ड चूण और चार पौण्ड कार्व नेट-आव-सोडा इन सबको जलमें घोल कर उसके साथ ४ औंस चीनी मिलाते हैं। यदि ७०८ घण्टेके मध्य पचनक्रिया आरम्भ न हो, तो फिर कुछ चीनी और चूण मिलाना पड़ता है। ठण्डे दिनमें अग्निका उत्ताप देनेसे वह नील बहुत जल्द कार्योपयोगी हो जाता है। उल्लिखित कई एक प्रणाली छोड़ कर रंग बनानेकी और भी अनेक प्रणालियां हैं। इन सब प्रणालीसे ब्लू-इण्डिगोसे शुभ्र इण्डिगो विभिन्न हो जाता है। (इसका रासायनिक चिह्न C H_6 NO or C_{16} H_{12} N_2 O_2 है।) इस सफेद इण्डिगोने अम्लजन कर्त्तृक हाइड्रोजन वायुके बहिर्गत होनेसे पुनः ब्लू-इण्डिगो प्रस्तुत होता है। उस ब्लू-इण्डिगोसे वस्त्रादि नीलवर्णमें रंगाया जाता है।

पहले जिस कपड़ेको रंगाना होगा, उसे पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार प्रस्तुत रंगके गमलेमें डाल दे। पीछे बार बार इसे रङ्गमें डुबोते रहे, किन्तु यह कार्य विशेष सावधानीसे किया जाता है। क्योंकि सम्पूर्णरूपसे आर्द्र होनेके पहले यदि वह तरलपदार्थसे बाहर उठ जाय, तो वायुस्थित अम्लजनके साथ मिश्रित हो कर विभिन्न स्थानमें विभिन्न रंग हो जायगा। अतएव वस्त्रादिके अच्छी तरह सिक्त हो जाने पर अर्थात् इसके सर्वाङ्गमें सफेद नीलका प्रवेश हो जाने पर उसे निचोड़ लेते और सुखनेके लिये अन्यत्र फैला देते हैं। इस समय वायुस्थ अम्लजन (Oxygen) उससे हाइड्रोजन (Hydrogen) ग्रहण करके जल प्रस्तुत करेगा। यह जल वाष्परूप धारण करके उड़ जायगा। अनन्तर सफेद नीलसे हाइड्रोजनके बाहर हो जाने पर यह ब्लू-नील हो कर वस्त्रखण्डके अभ्यन्तर प्रवेश करेगा जिससे कपड़ेका रंग भी खुल जायगा। यदि एक बारमें आशानुयायी रंग न पकड़े, तो फिर उसे डुबो दे। पशमी कपड़े रंगानेमें पहले इन्हें गरम जलमें सिद्ध कर लेते हैं। पीछे अल्प उष्ण जलमें निक्षेप कर रंगके बरतनमें डाल देते हैं। रंगानेके पहले गमलेसे रंगके ऊपरका फेन फेंक देना पड़ता है। रंगके बनानेमें थोड़े अरकमिश्रित जलमें (Acidulatedwater) उसे धो लेना पड़ता है। यदि अधिक पक्का रंग बनानेकी जरूरत हो, तो इसे फिर

फिटकरी अथवा बाइक्रोमेट आव पटाश (Bichromate of Potash) तथा टार्टरिक एसिड (Tartaric acid)में जलके साथ सिद्ध करना पड़ता है।

इसके पहले कहा जा चुका है, कि नील पौधेके अलावा बायड आदि अन्यान्य वृक्षोंसे भी इसी प्रकार रंग प्रस्तुत होता था। पहले अलकतरे (Coal tar)से नील रंग प्रस्तुत होता था। मन्द्राजके गेलनील (Nerium Indigo), बम्बई और राजपूतानेके वननील, परपूरिया (Tephrosia Purpuria) और हिमालयको पहाड़ी जातियां वनवेरो वा गुल्वो (Marsdenia tinctoria)-से रंग प्रस्तुत करती थीं। यवद्वीपमें (M. Parviflora) और चीनदेशीय सियाउलियाउ (Isatis Indigotica) नामक वृक्षसे भी नील प्रस्तुत किया जाता है। इसके अलावा Gymnema Tingens एवं कैवाई (Acacia Bugta) इत्यादि वृक्षजात पत्तियोंसे बढ़िया नीलका रंग निकाला जाता था।

भारतवर्षके यवनके हाथमें आनेके पहले करके बदलेमें फसलका कुछ अंश जमींदारको दिया जाता था। सम्राट् अकबरशाहने ही इस प्रथाको उठा कर नियमित करका बन्दोवस्त कर दिया। अकबरकी मृत्युके बाद तथा अंगरेजी अधिकारके पहले उक्त कर वसूल करते समय प्रजाके प्रति यथेष्ट अत्याचार किया जाता और कर मनमाना वसूल किया जाता था जिससे प्रजा तंग तंग आ गई थी। जब अंग्रेजोंका पूरा अधिकार भारतवर्ष पर हो गया, तब उन्होंने देखा कि इस प्रकारको कर-ग्रहणको प्रथाका संस्कार होना आवश्यक है और जिससे एक ही बारमें मालिकके निकट खजाना पहुंच जाय, उस विषयमें लक्ष्य रखना कर्त्तव्य है। इस आशय पर उन्होंने खजानेके विषयमें बहुतसे नियम बनाए।

मि० मैकडानेलने बङ्गालकी नीलकी खेती तथा रैयती बन्दोवस्तके सम्बन्धमें लिखा है, कि इस देशमें नीलकी खेतीका बन्दोवस्त तीन प्रकारका था। यथा—जिराट, आसामीवर और खुसगी। जिराटीमें नीलकर स्वयं वेतनभोगी कृषकोंसे नील उपजाते थे। आसामीवर नियममें जमीन प्रजाके दखलमें रहती थी, प्रजा स्वयं इससे नील उपजा कर जमींदारके यहां बेच डालती थी। किन्तु जमींदार बीघे प्रति निर्दिष्ट करसे कुछ भी बेशीका दावा नहीं कर सकते थे। खुसगीमें प्रजा अपनी इच्छाके अनुसार नील उपजाती थी। इस प्रथाके अनुसार प्रजा जमींदारसे किसी हालतमें बाध्य न थी।

मनुसंहितामें लिखा है, कि ब्राह्मणको नीलकी खेती कदापि नहीं करनी चाहिए।

नीलके बीजसे एक प्रकारका तेल निकलता है जो विशेषतः औषधके काममें आता है।

नीलका रस मृगी और स्नायविक रोगमें व्यवहृत होता है। यक्ष्मारोगमें तथा क्षतस्थानमें भी इसका प्रयोग देखा जाता है। रासायनिक प्रक्रियाकालमें नीलकी बहुत जरूरत पड़ती है।

अनेक प्रसिद्ध यूरोपीय डाक्टर नीलके अनेक गुण बतला गए हैं जिनमेंसे कुछ नीचे दिये जाते हैं।

दीर्घकालस्थायी मस्तिष्करोगमें देशीय चिकित्सक नीलरसका व्यवहार करते हैं। पेशाबके बन्द हो जाने पर नीलकी पत्तियोंकी पुलटिस देनेसे पेशाब उतर आता है। यह खनिज द्रव्यजात विषनिवारक, घोड़ोंका क्षतनाशक, उदराध्मान तथा पेशाबका सहकारी है। पशुओंके रोगमें नीलका रंग बहुत फायदामन्द माना गया है। विषको दूर करनेके लिये कहीं कहीं नीलकी जड़का क्वाथ भी दिया जाता है। नीली और नीलिका देखो।

२ आजकल हम लोगोंके देशमें एक नया पेड़ आया है जिसे सम्वादपत्रमें नीलवृक्ष बतलाया है। इसे नीलवृक्ष इसलिये कहा है कि इसकी पत्तियां बिलकुल नीली होती हैं। इस पेड़का आदि उत्पत्तिस्थान अष्ट्रेलिया देश है इसका नाम है यूकालिपटस (Eucalyptus)। वृक्षश्रेणीके मध्य विल्ववृक्ष जिस वंशके अन्तर्गत है, यह भी उसी वंशके अन्तर्गत माना गया है। उद्भिद्शास्त्रमें इस वंशको मारटासी (Myrtaceae) कहते हैं। इस नीलवृक्षके प्रायः १५० भेद हैं। यह खूब बड़ा होता है। यहां तक कि कहीं कहीं २०० हाथ तक ऊंचा देखा गया है। इससे बहुत अच्छे अच्छे तख्ते बनते हैं। पेड़मेंसे एक प्रकारका गोंद निकलता है जो मनुष्यके अनेक कामोंमें लगता है। इसकी पत्तियोंसे एक प्रकारका तेल बनता है। यह तेल दर्दके लिये महौषध है।

इसके पत्र और पुष्प देखनेमें बड़े ही सुन्दर लगते हैं। बङ्गाल देशमें इसकी बाढ़ बहुत जल्द होती है। सोलह वर्षमें यह ६० हाथ और पचासवर्षमें १५० हाथ बढ़ जाता है। इस समय इसके तनेका घेरा ४० हाथ तक होता है। इस वृक्षसे जो तख्ते आदि बनाये जाते हैं, वे बहुत टिकाऊ होते और अन्यान्य काठकी तरह इसमें घून नहीं लगते इसकी लकड़ीको जलानेसे यथेष्ट पटाश (Potash) वा चार पाया जाता है। जहां पर मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव है, वहां इस वृक्षको लगानेसे सुनते हैं, कि दूषित वायु संशोधित होती है। इसलिए किसी किसी ने इसका नाम रखा है "ज्वरनाशक वृक्ष"। इसमें मलेरिया नाश करनेका जो गुण है, उस विषयमें सचमुच डाक्टर वेण्टलीने अनेक प्रमाण संग्रह कर यह स्थिर किया है, इसको पत्तियोंको चुआनेसे जो तेल निकलता है उसकी गन्ध कपूर-सी होती है। यह अरक वा टिंचर रूपमें भी व्यवहृत हुआ करता है। अजीर्ण, पक्वाशय और अन्त्रके पुरातन रोग, सर्दी, कृमि वात आदि नाना रोगोंमें इसका व्यवहार होता है। इसकी वायुनिवारणशक्ति भी विलक्षण है।

इटली और अलजिरिया आदि देशोंमें मलेरिया ज्वरका विलक्षण प्रादुर्भाव है। वहां हालमें ही अनेक नीलवृक्ष लगाए गए हैं और यह देखा गया है, कि इससे फल भी अच्छे निकलते हैं। जहां बारहों मास मनुष्य कम्पज्वरसे पीड़ित रहता था, जहां प्लीहा यकृत् बढ़ कर पेट मृदङ्गका आकार धारण करता था, जहां शिशुओंकी प्राणरक्षा दुःसाध्य हो गई थी, वहां आज इस नीलवृक्षके गुणसे सुस्थकाय, सबल वीर पुरुषका जन्म होता है।

नील—सूर्यवंशीय राजा वीरचोलके गुरु। जब वीरचोल दाक्षिणात्यके अधीश्वर हो कर राज्यशासन करते थे, उस समय नीलने उन्हें वेदपरायण ब्राह्मणको भूमिदान करने कहा था। उन्होंने उपदेश दिया था, 'यदि तुम अपने पूर्व पुरुषोंके इन्द्रलोक जानेकी आशा रखते हो, तो मेरे उपदेशानुसार कार्य करो।' गुरुके कहनेसे राजाने "परकेशरीचतुर्वेदी मङ्गलम्" नामक ग्राम ब्राह्मणको दान दिया था।

नील—नागोंके एक राजाका नाम। इन्होंने नीलपुराणकी रचना की। जब बौद्ध लोगोंने नीलपुराणोक्त उत्सवादि बन्द कर दिए, तब आकाशसे शिलावर्षण होने लगा। अन्तमें इन्होंने चन्द्रदेव नामक किसी ब्राह्मणसे यज्ञ कराया जिससे शिलावर्षण बन्द हो गया।

नील—अफ्रिकाकी एक बड़ी नदीका नाम। अंगरेजोंने इसे नाइल (Nile) कहते हैं। इजिप्ट भरमें यह सबसे बड़ी नदी है। यह बहर-उल-अबियाद अर्थात् शुभ्र नदी और बहर-उल-अजराक अर्थात् नीलनदीसे निकल कर भूमध्यसागरमें गिरती है। १८४६ ई०में अन्वेषी भ्राताओंने अबिसीनियाके दक्षिण अक्षा० ७° ४९' उ० और देशा० ३४° ३८' पू०में इसका उत्पत्तिस्थान बतलाया था। किन्तु उनके परवर्त्ती भ्रमणकारियोंका कहना है, कि उन्होंने नील नदीकी उपनदी उमाका नील नाम रखा था। उनके मतानुसार इसका उत्पत्तिस्थान और भी दक्षिणमें है। नील नदी नायेजा ह्रदसे जल ले कर न्यरिया, हलफे, वेरवी, डमार, चाको, डङ्गोला, महस आदि देशोंको उर्वरा बनाती है। आशोयान नामक स्थानमें यह इजिप्टमें गिरती है।

इस स्थानसे क्रमान्वय उत्तरकी ओर अक्षा० २४°-से ले कर अक्षा० ३०° १२' उ० तक प्रवाहित हो कर यह दो शाखाओंमें विभक्त हुई है। एक शाखाके ऊपर रोजेटा नगर बसा हुआ है। दूसरी शाखा अलेकजन्द्रिया नगर होती हुई पश्चिमकी ओर चली गई है। प्रत्येक शाखाके पृथक् पृथक् सात मुहाने हैं। इस नदीमें छः जलप्रपात हैं जिनमेंसे इजिप्ट और न्यूबियाके सीमान्त प्रदेशमें अवस्थित प्रपात सबसे प्रधान है। इसका वर्त्तमान नाम एल-विरबी है। पुराकालमें यह फिलो (Philoe) नामसे प्रसिद्ध था।

ग्रीष्मकालमें नील नदीका जल बहुत ऊंचा चढ़ आता है। जुलाई मासके आरम्भमें सबसे पहले कायरो-नगरमें जलवृद्धि देखी जाती है। वहां रोड्स द्वीपके निकट इसकी जलवृद्धि नापनेके लिए एक स्तम्भ गड़ा हुआ है जिसे नीलोमीटर कहते हैं। पहले ६।७ दिन तक बहुत धीरे धीरे जल बढ़ता है, सुतरां इसकी ह्रास-वृद्धि कब कब होती है, जान नहीं पड़ता। इसके कुछ दिन

बाद ही यह बहुत बढ़ जाती है और २० अथवा ३० सितम्बरके मध्य जलवृद्धि चरमसीमा तक पहुंच कर रुक जाती है। पीछे धीरे धीरे घटने लगती है। इस प्रकार जलवृद्धिका कारण यह है, कि ग्रीष्मऋतुमें बहुत वर्षा होती है और वर्षाका जल नील नदी हो कर समुद्रमें गिरता है। नील नदीकी जिस शाखाके ऊपर रोजेटानगर बसा हुआ है, उसका विस्तार ६५० फुट और जिस पर डेमिएटा नगर है उसका विस्तार १०० फुटसे अधिक नहीं है। नील नदी और कायरोखालके बांधके मध्य एक मृण्मय स्तम्भ गड़ा हुआ है। वर्षाकालमें जल जितना ऊपर उठता है, इसकी ऊंचाई भी ठीक उतनी हो कर दी जाती है। इस स्तम्भको अरूसके अथवा कुमारी कहते हैं। जनसाधारण इससे नीलका जल मापा करते हैं। जब जल तीव्र वेगसे खाईमें प्रवेश करता है, तब वह स्तम्भ स्रोतसे बह जाता है। प्रवाद है, कि इजिप्टके लोग प्राचीनकालमें स्रोतका वेग रोकनेके लिए प्रतिवर्ष कुमारीका बलिदान देते थे।

नीलक (सं० क्ली०) नीलमिव स्वार्थे कन्। १ काचलवण। २ वर्त्तलोह, बीदरी लोहा। ३ असनवृक्ष, पियासाल। ४ भ्रमर। ५ भल्लातक, भिलावां। ६ कृष्णसारमृग। ७ नीलभृङ्गराज। नीलेन वर्णेन कायति-कै-क। (पु०) ८ भ्रमर, भौंरा। ९ बीजगणितमें अव्यक्त राशिका एक भेद।

नीलकण (सं० पु०) १ नीलमका एक टुकड़ा। २ ढाड़ी पर गोदे हुए गोदनेका विन्दु।

नीलकणा (सं० स्त्री०) कृष्णजीरा, कालाजीरा।

नीलकण्ठक (सं० पु०) चातक पक्षी।

नीलकण्ठ (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः कण्ठो यस्य। १ शिव। नीलकण्ठ नाम पड़नेका कारण—

अमृतोत्पत्तिके बाद भी देवताओंने समुद्र मथना छोड़ा नहीं, बल्कि वे और उत्साहपूर्वक मथने लगे। इस समय सधूम अग्निकी तरह जगन्मण्डलको आवृत करता हुआ कालकूट विष उत्पन्न हुआ। उसकी गन्धमात्रसे ही त्रिलोकस्थित लोग अचेतन हो पड़े। तब ब्रह्माके अनुरोधसे मन्त्रमूर्त्ति भगवान् महेश्वरने उस कालकूट विषको अपने गलेमें धारण कर लिया जिससे उनका कण्ठ कुछ काला पड़ गया। उसी समयसे शिवजी नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए। (भारत १।१८ अ०)

इसका विषय पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—पुराकालमें देव और दैत्योंके बीच तुमुल संग्राम छिड़ा था। उस युद्धमें देवगण क्षमताहीन और सैन्यहीन हो कर नितान्त श्रीभ्रष्ट हो गये थे। यहां तक कि उनका स्वर्गराज्य भी शत्रुओंके हाथ जाने जाने पर हो गया था। तब शत्रुदमनका उपाय सोचनेके लिये उन्होंने मेरुपर्वतके ऊपरी भाग पर एक विराट् सभा की। उस सभामें चतुर्मुख ब्रह्माने देवताओंसे चक्री विष्णुके साथ परामर्श करनेको कहा। ब्रह्माके उपदेशानुसार देवगण व्याकुल हो कर विष्णुकी शरणमें पहुंचे। विष्णुने दैत्यहस्तसे उन्हें बचानेकी प्रतिज्ञा की और उनसे पहले दैत्योंके साथ सन्धिस्थापन करके समुद्र मथनेको कहा। मन्दरपर्वत उसका मन्थनदण्ड और सर्पराज वासुकि मन्थनरज्जु बनाए गये। विष्णुने यह भी कहा था, "समुद्रमन्थन द्वारा जो अमृत उत्पन्न होगा उसे भक्षण कर पहले तुम लोग अमरत्व * लाभ करना। जब तक दैत्यगण समुद्र मथनेमें मदद नहीं देंगे, तब तक मथा नहीं जा सकता। क्योंकि वे लोग तुम लोगोंसे बल और पराक्रममें कहीं बढ़े हुए हैं।"

देवराज इन्द्र विष्णुके उपदेशानुसार सन्धिस्थापनके लिए दैत्यराज बलिके पास गए। बलिने उनका प्रस्ताव मंजूर किया, लेकिन उन्होंने भी अमृतका कुछ अंश चाहा। जब इन्द्रने अमृतका अंश देना स्वीकार किया, तब दैत्यगण देवताओंके साथ मिल कर दुग्ध-समुद्र मथनेको तैयार हो गये।

विष्णुके उपदेशानुसार दुग्ध-समुद्रके ऊपर औषधमूलक लताएं आदि फेंक कर मन्दरपर्वत और वासुकिकी सहायतासे दोनों पक्षने समुद्र मथना आरम्भ कर दिया। किन्तु अतलस्पर्श समुद्रके ऊपर मन्दरपर्वत बहता तो नहीं था, बल्कि नीचेकी ओर धंसा जाता था जिससे समुद्र मथनेमें बड़ी असुविधाएं होती

* अमृतपानके पहले देवगण भी मनुष्यकी तरह कराल कालके गालमें फंसते थे।

थीं। यह देख कर विष्णुने उसी समय कूर्मरूप धारण कर मन्दरपर्वतको अपनी पीठ पर ले लिया। पीछे देव और दैत्यगण आनन्दपूर्वक समुद्र मथने लगे।

समुद्र मथते मथते उन ओषधकी लताओंसे, जो मथनेके पहले समुद्रके ऊपर फेंकी गई थी, एक प्रकारका विष* उत्पन्न हुआ जो समुद्रके ऊपर बहने लगा। उसकी भयानक गन्ध और तेजसे कितने देव और दैत्य मृत्युकी गोद पर सो रहे। यह व्यापार देख कर मृत्युके भयसे स्वर्ग, मर्त्य और पातालवासी सबके सब उस पतित-पावन मृत्युञ्जय महादेवकी शरणमें पहुंचे। शरणागतपालक आशुतोष प्राणियोंके क्लेश दूर करनेके लिए उस भयानक विषको पी गए। जो अनादि और अनन्त हैं, अजर और अमर हैं, अजय और अजेय हैं, सामान्य विषसे उनका कोई अनिष्ट होनेकी सम्भावना न थी। पर वे सर्वौषधिनियन्ता भी उस भयानक विषका वीर्य धारण करनेमें बिलकुल समर्थ न हुए। उस भयानक विषके परिपाक नहीं होनेसे वे अत्यन्त अन्तर्दाह अनुभव करने लगे। अन्तमें ऊर्ध्वगामी हो कर उस विषने उनका गला नीलरंगमें परिणत कर दिया। इसी कारण महादेव नीलकण्ठ नामसे प्रसिद्ध हुए। २ मयूर, मोर। ३ पीतसार, पियासाल। ४ दात्यूह। ५ ग्रामचटक, गौरापक्षी। इसके गलेमें कण्ठपर काला दाग होता है, इसीसे इसे नीलकण्ठ कहते हैं। ६ पक्षिविशेष, एक चिड़िया जो बित्तेके लगभग लंबी होती है। इसका कण्ठ और डैने नीले होते हैं। शेष शरीरका रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है। चोंच कुछ मोटी होती है। यह कीड़े मकोड़े खा कर जीता है, इसीसे वर्षा और शरत्ऋतुमें उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है। विजयादशमीके दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है। जब इसका दर्शन हो, तब नीचे लिखे मन्त्रसे प्रणाम करना चाहिए। मन्त्र—

> "नीलग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद।
> पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोस्तुते॥"

> "त्वं धोगयुक्ता मुनिपुत्रकस्त्वमदृश्यतामेति शिखोद्गमेन।
> त्वं दृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां त्वं खञ्जनाश्चर्यमयो नमस्ते॥"
> (तिथितत्त्व)

यदि अश्व, गो, गज, वाजि वा महोरग इनमेंसे किसी एककी पीठ पर नीलकण्ठका दर्शन करे, तो राज्यलाभ और कुशल होता है। भस्म, अस्थि, केश, नख, रोम, और तुष पर खड़ा हो कर देखनेसे दुःख प्राप्त होता है। यदि अशुभ खञ्जन (नीलकण्ठ)का दर्शन हो, तो देवता और ब्राह्मणका पूजन तथा दान करे और पीछे सर्वौषधि जलमें स्नान करे।

शीतऋतुमें यह समस्त भारतवर्ष, सिंहलद्वीप, दक्षिण चीन और उत्तर अफ्रिकामें देखा जाता है। ग्रीष्मका प्रादुर्भाव होनेसे यह हिमालयके उत्तर शीतप्रधान देशोंमें भाग जाता है। (क्लो०) ७ मूलक, मूली। (त्रि०) ८ नीलग्रीवायुक्त, जिसका कण्ठ नीला हो।

नीलकण्ठ—नेपालके अन्तर्गत एक तीर्थस्थान। काटमण्डुसे वहां जानेमें लगभग ८ दिन लगते हैं। यह अक्षा० २८° २२´ उ० और देशा० ८५° ४´ पू०के मध्य अवस्थित है। परिव्राजकगण जुलाई माससे ले कर अगस्तमास तक इतने दिनोंके मध्य यहां आया करते हैं, दूसरे समय तुषार और वृष्टिके सबबसे यहांका आना जाना बंद हो जाता है। यहां ८ प्रस्रवण हैं जिनमेंसे एक उष्ण है। सूर्यकुण्ड यहांसे एक मीलकी दूरी पर है। इसके पास ही एक पहाड़ है जहांसे कोशिकी नदीकी एक शाखा निकली है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें नीलकण्ठ-माहात्म्य वर्णित है।

नीलकण्ठ—१ एक पण्डित। इन्होंने महावीरचरितकी एक टीका और भूमिका लिखी है। इनके पिताका नाम भट्टगोपाल और पुत्रका नाम भवभूति था। २ अशौचशतकके रचयिता। ३ आश्वलायनश्रौतसूत्रके एक टिप्पनीकारक। ४ कुण्डमण्डपविधानके रचयिता। ५ कृष्णपूजाप्रयोगके रचयिता। ६ कोकिलादेवीमाहात्म्य-संग्रहके प्रणेता। ७ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने गदाधारीकी टीका रची है। कहते है, कि पक्षलक्षणी क्रोड़ इन्हींका बनाया हुआ है। ८ चिमनीचरित्र नामक संस्कृत चरित्रके प्रणेता। ९ दायभागके टीकाकार।

* किसी किसीके मतसे वासुकिके मुखसे वह निकला था।

१० नारायणगीताके रचयिता। ११ प्रकृतिविचार-कारिकासङ्कलनकारी। १२ बालार्कपद्धतिके रचयिता। १३ विवाहसौख्यवर्णनके प्रणेता। १४ वैराग्यशतक-नामक एक क्षुद्र संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। १५ शङ्कर-मन्दारसौरभके रचयिता। १६ एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने शब्दशोभा नामक एक व्याकरणकी रचना की। १७ श्राद्धविवेकके टीकाकार। १८ एक प्रसिद्ध पौरा-णिक। इन्होंने सौरपौराणिकमतसमर्थन नामक एक सुन्दर पुस्तककी रचना की। १९ स्वराङ्कुशभाष्यकार। २० एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम चिन्तामणि था। ये अनेक ग्रन्थ लिख गए हैं जिनमेंसे ये सब प्रधान हैं—ग्रह-प्रवेशप्रकरणटीका गोचरप्रकरणटीका, ग्रहकौतुक, ग्रह-लाघव, जैमिनिसूत्रटीका, सुबोधिनी, ज्योतिषकौमुदी, टोडरराज, ताजिक, तिथिरत्नमाला, दैवज्ञवल्लभ, प्रश्न-कौमुदी, प्रश्नतन्त्र, मकरन्द, मुहूर्त्तचिन्तामणिटीका वर्ष-तन्त्र, वर्षफल, विवाहप्रकरणटीका, संज्ञातन्त्र, सारणी-कोष्ठक। २१ रामभट्टके पुत्र। इन्होंने काशिकातिलक लिखा है। २२ कुण्डोद्योतके रचयिता। इनके पिताका नाम शङ्करभट्ट था। २३ महाभारत और देवी भागवतके एक विख्यात टीकाकार। दाक्षिणात्यमें इनका जन्म-स्थान था। इनके पिताका नाम रङ्गनाथ दैशिक, माताका लक्ष्मी और गुरुका नाम काशीनाथ तथा श्रीधर था। ये शैवसम्प्रदायभुक्त थे। रत्नजीके उत्साहसे ये देवी भागवतकी टीका लिखनेमें प्रवृत्त हुए थे।

नीलकण्ठक (सं० पु०) चटकपक्षी, चातक।

नीलकण्ठत्रिपाठी—एक विख्यात हिन्दी कवि। १७वीं शताब्दीमें कानपुर जिलेमें इनका जन्म हुआ था। कहते हैं, कि इनके पिता प्रतिदिन एक मन्दिरमें की देवी-मूर्त्तिका दर्शन और पूजन किया करते थे। पूजासे सन्तुष्ट हो कर देवीने एक दिन उन्हें दर्शन दिए और मनुष्यके चार मस्तक दिखलाए जो उनके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण करनेको राजी हुए। यथासमय उनके चार पुत्र हुए जिनके नाम थे चिन्तामणि, भूषण, मतिराम और जटाशङ्कर वा नीलकण्ठ। शेषोक्त व्यक्ति एक पुण्यात्माके आशीर्वादसे कवि हुए थे।

नीलकण्ठदीक्षित—एक विख्यात पण्डित। ये ख्यात-नामा अप्पयदीक्षितके महोदर, आच्छादीक्षितके पौत्र और नारायण दीक्षितके पुत्र थे। इन्होंने आनन्दसागर-स्तव, नीलकण्ठविजयचम्पू, शिवतत्त्वरहस्य, चित्रमीमांसा अल-ङ्कार क्षतावधविवेक आदि ग्रन्थ लिखे हैं।

नीलकण्ठभट्ट—१ एक विख्यात स्मार्त्त। इन्होंने व्यवहार-मयूख नामक निबन्धकी रचना की। यह ग्रन्थ महाराष्ट्रीय आईन समझा जाता है। २ एक स्मार्त्त पण्डित; इन्होंने शुद्धिनिर्णय नामक ग्रन्थ लिखा है। अयोध्यामें इनका जन्म-स्थान था। १८७२ ई०में ये पञ्चत्वको प्राप्त हुए। ३ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इनके पिताका नाम रामभट्ट था। ये कौण्डिन्यगोत्रके थे और पाणिकावंश-में इनका जन्म हुआ था। ये तर्कसंग्रह दीपिकाप्रकाश बना गये हैं।

नीलकण्ठमिश्र—१ पर्य्यायार्णव नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ एक प्रसिद्ध हिन्दी-कवि। इनका जन्म १६०० ई०में दोआबके वहुवाँको जिलान्तर्गत शोलापुर ग्राममें हुआ था। ये व्रजभाषाके भी अच्छे कवि थे।

नीलकण्ठयतीन्द्र—यतीन्द्रप्रबोधिनी नामक धर्मनिबन्ध-कार।

नीलकण्ठरस (सं० पु०) रसेन्द्रसार-संग्रहोक्त औषधभेद, एक रसौषध जिसके बनानेकी विधि इस प्रकार है—पारा, गन्धक, लोहा, विष, चीता, पद्मकाष्ठ, दारचीनी, रेणुका, वायविडंग, पिपरामूल, इलायची, नागकेशर, सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, आंवला, बहेड़ा और तांबा सम भाग ले कर इनसे पुराने गुड़में मिलावे और बाद चनेके बराबर गोली बनावे। इसके सेवन करनेसे काश, श्वास, प्रमेह, विषम-ज्वर, हिक्का, ग्रहणी, शोथ, पाण्डु, मूत्रकृच्छ्र, मूढ़गर्भ और वातरोग आदि दूर हो जाते हैं। यह औषध ब्रह्मा-से आविष्कृत हुई है। इसके सिवा महानीलकण्ठरस नामक एक दूसरी औषध भी है।

महानीलकण्ठरसकी प्रस्तुत प्रणाली—तिमिपित्तमें भावित शोशा १ तोला, स्वर्ण १ तोला, रससिन्दुर १६ तोला, अभ्र २४ तोला इन सबको एक साथ मिला कर घृतकुमारी, ब्राह्मीशाक, सम्हालू, कचूर, मुण्डिरी, शत-मूली, गुड़च, तालमखाना, तालमूली, हस्तारक और

चीता इनकी भावना देवे। पीछे उसमें त्रिफला, त्रिकटु, मोथा, चीता, इलायची, लवङ्ग, जातिफल प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला मिला कर २ रत्ती परिमाणकी गोली बनावे। इसके सेवन करनेसे वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग और अन्य सभी रोग प्रशमित हो जाते हैं। इससे यथेष्ट आहार-क्षमता, कन्दर्प सदृशरूप, मेधावी, बलवान्, प्राज्ञ, भीमके समान विक्रम और चेष्टावान होता है। इसके सेवन करनेसे वन्ध्या नारीके भी सन्तान होती है। जबसे इस औषधका सेवन किया जाय, तबसे २१ *दिन तक मैथुनकर्म निषिद्ध है।*

नीलकण्ठलिङ्गायत्—एक श्रेणीका तांती। बीजापुर जिलेके अनेक नगरों और ग्रामोंमें इनका वास है। ये लोग दो भागोंमें विभक्त हैं, बिलेजादर और पट्टसल गिजादर। इन दो सम्प्रदायोंमें आपसमें खानपान और विवाह-शादी नहीं चलती। शेषोक्त सम्प्रदायको प्रथम सम्प्रदाय पतित समझता है। सुतरां उनके साथ वे खाते पीते तक भी नहीं। लिङ्गायतोंकी ६३ उपाधियां हैं। एक उपाधिवाले स्त्री पुरुषके मध्य विवाह नहीं होता। घरमें बैठ कर चरखा चलाते चलाते ये लोग निर्वीर्य और पाण्डुवर्ण हो गये हैं। इनका कद न उतना ऊंचा है और न नाटा। इनकी आंख बहुत नीचेमें और नाक चिपटी तथा लम्बी होती है। स्त्रियां घरके बाहर जाती और सभी काम काज करती हैं। ये पुरुषकी अपेक्षा बलवान् दीख पड़ती हैं। अन्यान्य देशीय लिङ्गायतोंकी नाईं ये लोग भी आपसमें अविशुद्ध कणाड़ी भाषा बोलते हैं। ये लोग मांस मछली तो नहीं खाते किन्तु लहसुन प्याज खाते हैं।

पुरुष प्रतिदिन और स्त्रियां सोमवार और वृहस्पतिवारको स्नान करती हैं। ये लोग तमाकू पीने और सुरती खानेके सिवा दूसरे किसी मादक द्रव्यका व्यवहार नहीं करते।

ये लोग दाढ़ी नहीं रखते और समूचा शिर मुंडा लेते हैं। तथा महाराष्ट्री-सा पहनावा पहनते हैं।

लिंगायत शब्दमें विशेष विवरण देखो।

नीलकण्ठशिका (सं० स्त्री०) मयूरशिका।

नीलकण्ठशिवाचार्य—ब्राह्मण-मीमांसाभाष्यके रचयिता।

नीलकण्ठाक्ष (सं० क्ली०) नीलकण्ठः महादेवस्तत्प्रियः अक्षो जपमाला यत्र। १ रुद्राक्ष। नीलकण्ठः खञ्जनस्तस्य अक्षिणीव अक्षिणी यस्य, समासे षच्, समासान्तः। (त्रि०) २ खञ्जनतुल्य अक्षियुक्त, जिसके खञ्जन या नीलकण्ठ-सी आखें हों।

नीलकन्द (सं० पु०) नीलः कन्दः मूलं यस्य। महिषकन्दभेद।

नीलकपित्थ (सं० पु०) १ महाराजचूत, सुन्दर आम। २ नीलवर्णका कपित्थ।

नीलकमल (सं० क्ली०) नीलं कमलं पद्मम्। नीलपद्म। पर्याय—उत्पल, नीलपङ्कज, नीलपद्म, नीलाब्ज। गुण—शीतल, स्वादु, सुगन्धि, पित्तनाशक, रुचिकर, श्रेष्ठ रसायन, देहदाढ़्र्यकर और केशहितकारक।

नीलकर (सं० पु०) वह जो नील प्रस्तुत करता हो। नीलकरके अत्याचारके विषयमें दो एक बातें पहले ही नील शब्दमें कही जा चुकी हैं। नील देखो। यहां इस विषयका कुछ विस्तारित विवरण देना आवश्यक है। धीरे धीरे नीलकरकी संख्या बढ़ने लगी। नीलकर साहबोंने नील उपजानेके लिए कुछ जमीन आसामीके हाथ लगा दी और कुछ स्वयं करने लगे। जो जमीन वे खुदसे उपजाते थे उसमें उन्होंने बहुतसे भृत्य नियुक्त किये। जो जमीन रैयतके अधीन थी, उसमें वे कृषकको पेशगी रुपये देते और उनसे एक अङ्गीकार-पत्र इस प्रकार लिखा लेते थे, "इतनी जमीनमें नील उत्पन्न कर दूंगा, इसलिए इतने रुपये पेशगी लेता हूं। यदि दुरभिसन्धि-पूर्वक अन्यथा करूं, तो आपका जो नुकसान होगा, उसे मेरे उत्तराधिकारिगण पूरा करनेमें बाध्य हैं।" एक वर्षसे ले कर दश वर्ष तक इस अङ्गीकार-पालनका नियम था। कृषकको प्रति बीघे दो रुपये दादनीमें दिये जाते थे। कृषककी जो जमीन उर्वरा थी तथा अच्छी तरह जोती जाती थी उसी जमीनमें कोठीके नौकर नील उपजानेके लिए चिह्न दे देते थे।

जितनी दादनी आसामीके अङ्गीकारमें लिखी जाती थी, नीलकरगण उसे बिलकुल चुका नहीं देते थे। जो कुछ देते थे, उसका भी कुछ अंश कोठीके नौकर हड़प कर जाते थे। ऐकसर अधार्मिक मनुष्य ही नीलकर

साहबोंके काममें नियुक्त होते थे, वे मालिकके प्रियपात्र होनेके लिए उनके अभीष्ट साधनमें एक भी गर्हित कर्म को उठा न रखते थे। कृषकगण अपनी इच्छाके अनुसार कोई फसल उपजा नहीं सकते थे। जब अन्य फसल उपजानेमें विशेष लाभ होनेकी सम्भावना रहती, तब बाध्य हो कर उन्हें बोना पड़ता था। जिस वर्ष नीलकी पत्तियां अच्छी तरह उत्पन्न नहीं होती थीं, उस वर्ष उन्हें समुचित मूल्य भी नहीं मिलता था। सुतरां वे कभी भी एक बारकी दी हुई दादनीसे विमुक्त नहीं हो सकते थे। एक बारकी दादनी लेने पर वह तीन चार पीढ़ी तक परिशोध नहीं हो सकती थी, इस महाजालमें नहीं फसनेके लिए यदि कोई चेष्टा भी करता था, तो उसकी जाति, मान, धन और प्राण सभी खो जानेकी सम्भावना हो जाती थी। बड़े बड़े ग्रामोंके सभी गृहस्थोंको यह दादनी लेनी ही पड़ती थी। जिनके हल और बैल नहीं रहते थे, उन्हें भी दूसरे लोगोंसे भूमि आवाद करा कर नील उत्पन्न करना पड़ता था। इसके अलावा नीलकरकी खास जमीनमें जो नील उपजता था उसकी बहुत कुछ काम भी इन बेचारे भोले भाले गृहस्थोंको कम तनखाहमें करना पड़ता था। फिर कोठीके व्यवहारके लिये उन्हें बांस पुआल आदि मुफ्तमें देने पड़ते थे।

सारे भारतवर्षसे नवद्वीप और यशोर जिलोंमें नीलकरका अत्याचार अपेक्षाकृत ज्यादा था। नीलकर साहबोंके दीवान, नायब, गुमास्ता, ताकीदगीर आदि भृत्यगण केवल मालिककी अभीष्ट-सिद्धिके लिए नहीं, बल्कि अपना मतलब भी निकालनेके लिये कृषकोंका सर्वस्व हरण कर लेते थे। जो सब नीलके पौधे कोठीमें लाए जाते थे, उन्हें कर्मचारिगण बिना कुछ लिये अच्छी तरह मापते नहीं थे। नीलपत्तियोंका हिसाब करते समय पुनः हाथ गरम किए बिना यथार्थ हिसाब नहीं करते थे। बेचारे कृषक जब तक अपने खेतसे अथवा गृहजात किसी द्रव्यसे उनका पेट भर नहीं देते थे, तब तक उनकी यन्त्रणा और क्षतिका पारावार नहीं। नीलकर साहब ये सब विषय जान कर भी नहीं जानते और सुन कर भी नहीं सुनते थे। नरहत्या, गोहत्या, गृहदाह इत्यादि जिस किसी कार्यका प्रयोजन होता था उसे वे अमङ्कुचित चित्तसे कर डालते थे।

पूर्व समयमें नीलकर साहबगण प्रजाके प्रति जो अत्याचार करते थे वह किसीसे छिपा नहीं है। दीनबन्धु मित्रके नीलदर्पणमें, लङ् साहबकी वक्तृतामें और हरिश्चन्द्र मुखोपाध्यायके व्याख्यानमें उसका प्रकृष्ट चित्र प्रतिफलित है। १८३२ ई०की १०वीं मईको यशोर जिलेके नीलकर साहबोंने हस्ताक्षर करके गवर्नर जनरल लार्ड विलियम वेण्टिक बहादुरके निकट एक आवेदन पत्र भेजा। उस पत्रके पढ़नेसे उनके अत्याचारकी कथा आप ही प्रकट हो जाती है। १८३० ई०में गवर्मेण्टने जो आईन निकाला, उसका प्रभाव खर्व करना ही इस आवेदनका उद्देश्य था। इसीसे उनकी दरख्वास्तमें एक जगह लिख दिया गया कि, 'इस आईनके द्वारा रैयतका विशेष मङ्गल हुआ है। नीलकर साहब प्रजाके अन्याय कार्योंमें किसी प्रकार प्रतिकारका उपाय न देख बलपूर्वक उन्हें दमन करते थे। इस आईन द्वारा उस नृशंस शासनसे प्रजा जो हमेशाके लिये विमुक्त हुई, इसमें सन्देह नहीं।' पीछे उन्होंने यह भी लिखा है कि, 'इस आईनके बलसे इस देशकी कोठीके सत्त्वाधिकारी अथवा स्थानीय दुष्ट जमींदार, तालुकदार वा मण्डल और जनसाधारणको उत्तेजनासे उत्तेजित हो कर कृषक स्वभावतः ही अवाध्यताका कर्म और दंगा फसाद करनेमें प्रवृत्त हुए हैं। फिर १८३० ई०में ५वें आईनकी ५वीं धाराके अनुसार यशोर जिलेकी दीवानी अदालतमें जितने मुकदमें दायर होते हैं, उनसे साफ साफ जाना जाता है, कि यशोर जिलेमें नीलकी खेतीका यथार्थरूपमें निर्वाह होता है। किन्तु जबसे ५वां आईन जारी हो गया है, तबसे प्रजा एकबारगी मुक्त होनेके लिये दरख्वास्त करती है।' इसके बाद ही फिर उन्होंने लिखा है, '१८३० ई०में कोई मुकदमा नहीं हुआ। परवर्त्ती १८३१ सालमें ५८,—३२ सालमें तेंतीस और—३३ ई०के जनवरी फरवरी मासके भीतर तेईस मुकदमें दायर हुए थे।' इससे सहजमें अनुमान किया जाता है, कि धीरे-धीरे इस प्रकार अत्याचारकी संख्या बढ़ती ही

चली आ रही थी। अदालतमें नालिश नहीं होनेसे ही अत्याचार चरमसीमा तक नहीं पहुंचता था, यह बात ठीक नहीं है। अत्यन्त कष्टसे प्रपीड़ित हो कर ही दरिद्र कृषक विचारपतिके आश्रय लेनेको बाध्य होते थे।

१८२८ ई०में जब प्रजाने पहले पहल आवेदनपत्र पेश किया, तब लार्ड वेण्टिङ्क बहादुरने इसकी यथार्थताका निरूपण करनेके लिये सबको बुलाया। पीछे आईन पास होनेके बाद उन्होंने वर्त्तमान आवेदनकी आवश्यकताका विचार कर उत्तर दिया था कि, नीलका मूल्य कम हो जानेसे यशोरके मजदूरोंको बड़ा ही कष्ट हुआ है। नील बनानेमें बहुत रुपये खर्च होते हैं। सुतरां हम लोग पहलेकी तरह अब उन (प्रजा)का उपकार नहीं कर सकते तथा इसके पहले उन्होंने जो रुपये कर्ज लिए हैं उन्हें वसूल करनेके लिये दावा किया जाता है।' दादनी वसूल करनेके लिये दीन प्रजाके प्रति जो अत्याचार किए गए थे, वह वर्णनातीत है तथा कितने लोगोंके जो गृहादि भस्मीभूत हुए थे, उसकी शुमार नहीं।

दादनग्राहीको नीलकरके वशीभूत रखनेके लिये अनेक प्रकारके आईन विधिबद्ध होने लगे। किन्तु दादनग्रहणकारियोंके कष्टनिवारणके लिये प्रायः कोई विधि विधिबद्ध न हुई। गवर्मेण्टने निषेध कर दिया था, कि वृटेनवासी इस देशमें भूसम्पत्ति नहीं कर सकते, तो भी वे कृषकोंको वशमें लानेके लिये जमींदारोंसे अनेक ग्राम देशीय भृत्योंके नाम पर इजारा लेते थे। देशीय जमींदार जब उनकी कामना पूरा न करते थे, तब घोर विवाद उपस्थित हो जाता था। जो दुर्बल जमींदार थे, उन्हें तो वे अवसन्न कर डालते थे। समय समय पर साहबोंके कर्मचारिगण यथायोग्य राजदण्ड भी पाते थे, तो भी तत्कालीन दण्डविधि आईनके अनुसार अंगरेजोंके जिला अदालतके विचाराधीन नहीं रहनेके कारण उन्हें कोई शारीरिक दण्ड नहीं मिलता था। इस कारण वे अपने अभीष्टकी सिद्धिके लिये जमींदार तथा प्रजाको व्यतिव्यस्त करनेसे बाज नहीं आते थे। इस प्रकार कितने कृषकोंने तो निपीड़ित हो कर अपने वासस्थान छोड़ दिये और जो कुछ बच रहे, वे उनके पदानत हो कर रहने लगे।

१८५७ ई०में सिपाहीविद्रोहके समय जब बहुतसे नीलकरोंको गवर्मेण्टकी ओरसे सहायक मजिष्ट्रेटकी क्षमता मिली, तब कृषकोंका क्लेश और भी बढ़ गया।

दुर्भाग्य कृषकोंके क्लेशनिवारणके लिये देशस्थ एवं महृदय मिशनरि यथेष्ट चेष्टा करने लगे, किन्तु कुछ भी उनका दुःखमोचन न हुआ। नीलकर साहब तथा अङ्गरेज राजपुरुष ये दोनों एक जातिके थे, एक धर्मके थे तथा आपसमें आहार-व्यवहार आदान-प्रदान चलता था, इस कारण अङ्गरेज राजपुरुष उन्हें इस काममें मदद पहुंचाते रहते थे। यह सब देख सुन कर इस प्रदेशकी जनताको अच्छी तरह मालूम हो गया, कि नील-व्यवसायमें गवर्मेण्टका विशेष स्वार्थ है। अतः यह निश्चय है कि प्रजा पर दुःखका पहाड़ ही क्यों न टट पड़े, तो भी गवर्मेण्ट प्रतिकूलके सिवा अनुकूल नहीं हो सकती। कालक्रमसे अनेक मनुष्य सुशिक्षित हुए और जिलेके नाना विभागोंमें इस देशके सुविज्ञ डिपटी-कलक्टर और पुलिसके कार्यमें शिक्षित तथा धर्मभीरु दारोगा नियुक्त होने लगे। ये लोग गवर्मेण्टका अभिप्राय प्रजाको समझाने लगे जिससे उनके हृदयसे अमूलक संस्कार धीरे धीरे दूर होने लगा। इस समय बरासत जिलेके तदानीन्तन मजिष्ट्रेट आनरेवल आस्ली इडन साहब थे। वहां जब कृषकों और नीलकरोंमें विवाद खड़ा हुआ, तब उक्त मजिष्ट्रेटने एक परवाना निकाला जिसमें लिखा था कि, 'जमीनमें फसल बोना प्रजाकी इच्छा पर निर्भर है। इसमें यदि कोई विघ्न डालेगा, तो वह राजदण्डसे दण्डित होगा।' पहले कृषकोंके चित्त-क्षेत्रमें आशाका जो अङ्कुर उगा था, वह इस परवानेके द्वारा बढ़ गया। १८५८ ई०में भारतके कृषकोंकी एक सभा हुई जिसमें यह स्थिर हुआ कि नीलकी खेती बिलकुल उठा दी जाय। फलतः बहुत जल्द ही नीलकर और प्रजामें पुनः विवाद उपस्थित हुआ। इस समय उदारचेता करुणहृदय जे० पि० ग्राण्ट साहब बङ्गालके लेफ्टेनेण्ट गवर्नर थे। उन्होंने नीलकरका कष्ट निवारण, नीलकार्यको प्रचलित प्रणालीका तत्त्वानुसन्धान तथा इस कार्यको किसी निर्दिष्टप्रणालीका निर्द्धारण करनेके लिये १८६० ई०को ११वां विधि प्रकाशित

की। प्रथमोक्त विषयनिष्पादनके लिये जितने मजिष्ट्रेट थे सब मिल कर यत्न करने लगे और शेषोक्त दोनों कार्य-के सम्पादनार्थ पांच कमिश्नर* नियुक्त हुए। कमिश्नरोंने नीलकार्य-प्रणालीमें जितने दोष थे सब लिख कर गव-मेंण्टके पास भेज दिया। इस पर नीलकर साहब, जिन्हें अब पूर्वसी क्षमता न रही, प्रजाके विरुद्ध तरह तरहके मुकदमे दायर करने लगे। इन सब मुकदमोंमें यद्यपि अनेक कृषकोंका सर्वनाश हो गया, तो भी उनकी प्रतिष्ठा अटल ही रही। अब कोई भी नीलकी खेती करनेको अग्रसर न हुआ। थोड़े ही दिनोंमें नीलकरका सौभाग्यसूर्य अस्त हो गया। उनकी जितनी कोठियां और भूसम्पत्ति थीं, सब बेच डाली गईं। अब जो इने-गिने नीलकर साहब रह गये हैं, उन्हें पूर्वसा प्रभाव नहीं है।

नीलकलम्बी (सं० स्त्री०) स्वनामख्यात लताविशेष, कालदाना।

नीलकाम्रक (सं० पु०) महाराजचूत फल, सुन्दर आम।

नीलकाचोद्भव (सं० क्ली०) काचलवण।

नीलकान्त—स्वनामख्यात पक्षिविशेष, एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालयके अञ्चलमें होती है। मसूरीमें इसे नीलकान्त और नैनीतालमें दिग्दल कहते हैं। इसका माथा, कण्ठके नीचेका भाग और छाती काली होती है। सिर पर कुछ सफेदी भी और पूँछ नीली होती है। कण्ठमें भी कुछ नीलेपनकी झलक रहती है। चोंच और दोनों पैर लाल होते हैं। इसकी लम्बाई २८ इञ्च, पूंछकी १८ इञ्च और डैनेकी ८ इञ्च होती है।

हिमालय पर्वतकी शतद्रु-उपत्यकासे ले कर नेपाल तक, आसामके नागापहाड़, श्याम, ब्रह्मदेश, आराकान मासी और तेनासेरिम तथा पूर्ववङ्गके पार्वत्य प्रदेशोंमें इस जातिके अनेक पक्षी देखे जाते हैं।

ये प्रायः तीनसे छः तक एक साथ घूमते हैं। मार्चसे ले कर जुलाई महीनेके अन्दर मादा वृक्ष पर एक साथ तीनसे पांच अण्डे पारती हैं।

* W. S. Setonkar, President, R. Temple, W. F. Ferguson, Rev. J. Sale, Baboo Chandra Nath Chatterjee.

कोई कोई इसी पक्षीको नीलकण्ठ कहते हैं, लेकिन नीलकण्ठ और नीलकान्त दोनों स्वतन्त्र पक्षी हैं। २ विष्णु। ३ मणिभेद, नीलम।

नीलकान्तशाह—मध्यभारतके नागपुर विभागस्थ चांदपुर जिलेके गोंड़ राजाओंके शेष राजा। ये अत्यन्त निष्ठुर और विश्वासघातक थे। इसीसे सभी प्रजा इन्हें बुरी निगाहसे देखती थी। १७५१ ई०में रघुजी भोन्सलाने जब चांदा पर आक्रमण किया, तब किसीने भी नील-कान्तकी तरफसे अस्त्रधारण न किया। सुतरां विना रक्तपातके ही रघुजी इस जिलेके अधीश्वर हो गए। पीछे उन्होंने नीलकान्तशाहको कैद कर समस्त स्थान अपने अधिकारमें कर लिए।

नीलकायिक (सं० त्रि०) १ नीलशरीरविशिष्ट, जिसका शरीर नीला हो। (पु०) २ बौद्धदेवताभेद।

नीलकुन्तला (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णाः कुन्तला यस्याः। पार्वतीकी एक सखिका नाम।

नीलकुरण्टका (सं० पु०) नीलझिण्टी, नीली कटसरैया।

नीलकुसुमा (सं० स्त्री०) नीलवर्ण झिण्टी, नीली कट-सरैया।

नीलकेशी (सं० स्त्री०) नीलिकावृक्ष, नीलका पौधा।

नीलक्रान्ता (सं० स्त्री०) नीलेन नीलवर्णेन क्रान्ता। विष्णुक्रान्ता, कृष्ण अपराजिता।

नीलक्रौञ्च (सं० पु०) नीलः क्रौञ्चः। नीलवक, काला बगला, वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है। पर्याय—नीलाङ्ग, दीर्घग्रीव, अतिजागर।

नीलख्यात—नेपालके मध्यवर्त्ती एक ह्रद। इसका दूसरा नाम गोसाईंकुण्ड भी है। कहते हैं, कि देवगण जब अमृतकी आशासे समुद्र मथने लगे, तब पहले पहल विषकी उत्पत्ति हुई। उस विषको शिवजी पी गये और थोड़ी देर बाद ही वे यन्त्रणासे अचेत हो रहे। पीछे दुर्गाके मन्त्रबलसे वे होशमें तो आ गए, पर यन्त्रणा पूर्व-सी बनी रही। अनन्तर ज्वालाके निवारणके लिए निभृत तुषाराच्छादित स्थानमें उन्होंने त्रिशूलसे आघात किया जिससे तीन स्रोत उसी समय निकल आए। इन तीनों स्रोतोंके मिलनेसे एक ह्रद बन गया। इसी ह्रदका नाम नीलख्यात है। स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें इस

नीलख्यात वा नीलकण्ठके माहात्म्यका वर्णन है।

नीलगङ्गा (सं० स्त्री०) नदीभेद, एक नदीका नाम।

नीलगञ्जन—१ पूर्णिया जिलेके अन्तर्गत धर्मपुर और हवेली परगनेके मध्यस्थ एक स्थान। यहां नीलकी एक कोठी है।

२ यशोरके अन्तर्गत एक स्थान जो चौगड़ासे एक कोस दूर भैरवनदीके किनारे अवस्थित है।

नीलगणेश (सं० पु०) नीलो गणेशः। नीलवर्ण गणेश।

नीलगर्भ (सं० त्रि०) नीलः गर्भे यस्य। नीलमध्य, जिसका बिचला भाग नीला हो।

नीलगाय (हिं० स्त्री०) मृगजातीय जन्तुविशेष, नीलापन लिए भूरे रंगका एक बड़ा हिरन जो गायके बराबर होता है। हम लोगोंके हिन्दूशास्त्रमें वृषोत्सर्ग-यज्ञमें नीलवृष नामक किसी जन्तुका उत्सर्ग होता था और उसके फल शास्त्रोंमें बतलाए गए हैं। नीलवृष कहनेसे सामान्यतः नीलरंगके सांड़का ही बोध होता है। किन्तु उक्त गुणयुक्त सांड़ अकसर देखनेमें नहीं आते, इस कारण आधुनिक स्मृतिकारगण नीलवृष शब्द-से किसी प्रकृत जन्तुका नाम स्वीकार नहीं करते। शुद्धि-तत्त्वमें लिखा है,—

"लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डरः।
श्वेतक्षुरविषाणाभ्यां स नीलवृष उच्यते॥"

रक्तवर्ण शरीर, मुख और पुच्छ पाण्डर, खुर और शृङ्ग श्वेतवर्ण ऐसे लक्षणाक्रान्त जीवका नाम नीलवृष है। उक्त लक्षणके नीलवृषका कौन अङ्ग नीला होता है, इसका अनुमान नहीं किया जाता। नीलगाय नामक प्रसिद्ध मृगश्रेणीभुक्त जो चतुष्पद जन्तु है वह देखनेमें लोहिताभ नीलवर्ण-सा होता है और कुछ अंश वृष-जातिसे मिलता जुलता है। अतः यही नीलगाय पूर्वतन ग्रन्थकार वर्णित नीलवृष है, इसमें संदेह नहीं।

नीलगाय कहनेसे साधारणतः स्त्रीलिङ्गमें मृगियोंका बोध होता है। यज्ञादिमें उत्सर्गके लिये वृषका प्रयोजन होता है, गायका नहीं। इस कारण शास्त्रकारोंने नीलगायका उल्लेख न कर नीलवृषका ही उल्लेख किया है।

वह जन्तु देखनेमें वृष-सा और मृग जातिका होता है, किन्तु कृष्णसारसे आकारादिमें बहुत फर्क पड़ता है। पुरुष जातीय नीलगायकी लम्बाई ६॥ से ७ फुट और ऊंचाई ४॥ फुट होती है, लेकिन स्त्रीजाति अपेक्षाकृत कुछ कम। दोनोंका वर्ण स्लेट पत्थरके जैसा, पर नीलरंगके रोएंका अग्रभाग कुछ ताम्रवर्णयुक्त होता है। मुख और मस्तक मृगके जैसा लेकिन बहुत कुछ घोड़ेके मुखसे भी मिलता जुलता है। इसके कान गायके-से और दोनों सींग टेढ़े और ७ इञ्चके लगभग लम्बे होते हैं। सींगकी जड़में चतुष्कोणविशिष्ट एक काले बालों-का दाग है। इसके दोनों कान काले, गला टेढ़ा और आगेको ओर झुका हुआ तथा दृढ़ होता है। छोटे छोटे काले बालोंका केसर (आयल) भी होता है। गलेके नीचे बड़े बालोंका एक छोटा गुच्छा सा होता है। देखनेमें यह जन्तु गाय और हिरन दोनोंसे मिलता जान पड़ता है। स्कन्धकी अपेक्षा पृष्ठदेश कुछ ऊंचा, पश्चाद्भाग गर्दभपृष्ठके जैसा और पुच्छ भी वैसा ही होता है। पृष्ठका ऊपरी भाग कुछ काले बालोंसे ढका रहता है। पैरके बाल काले और घने होते हैं। उदर और वक्षदेश प्रायः सफेद होता है।

यह जन्तु जङ्गलोंमें दल बांध कर चलता है। कभी सात, आठ वा बीस एक साथ मिल कर इधर उधर भ्रमण करते हैं। भारतवर्षके मध्यप्रदेशसे महिसुर तक, पञ्जाब राज्य और रामगढ़से ले कर हिमालयपर्वतश्रेणीकी पादभूमि तकके सभी स्थानोंमें इस प्रकारके जन्तु देखने-में आते हैं। ये घने जङ्गलमें रह नहीं सकते, छोटे छोटे गुल्मविशिष्ट अथवा जनहीन मैदानमें विचरण करते हैं। ये अत्यन्त सतर्क, द्रुतगामी और बलिष्ठ होते हैं। इनकी चाल इतनी तेज होती है, कि द्रुतगामी घोड़े पर सवार हो बहुत देर तक इनका पीछा करने पर भी सहजमें ये पकड़े नहीं जा सकते। नीलगाय पाली जा सकती है, किन्तु कभी कभी वह पालकको ही सींगसे आक्रमण करती है। आक्रमणके पहले यह सामनेके दोनों घुटनोंको जमीनमें टेक कर एक टकसे देखती और पीछे सामनेके जन्तु पर खूब जोरसे झपटती है।

यह गाय छोटे छोटे पेड़की पत्तियां, घास और फलादि खा कर अपना पेट भरती है। यह ऊंटकी तरह चारों

पैर मोड़ कर विश्राम करती है, गायकी तरह पार्श्वको ओर भार रख कर विश्राम नहीं करती। शिकारी चमड़े आदिके लिए इसका शिकार भी करते हैं। इसका चमड़ा बहुत मजबूत और पतला होता है। गलेके चमड़ेकी ढालें बनती हैं। पालित अवस्थामें यह साधारण गो-जातिकी तरह गर्भवती होती और एक ही समयमें दो शावक जनती है।

ऐतरेयब्राह्मणमें लिखा है, कि उषाने जब अपने पिता प्रजापतिके भयसे रक्तवर्ण रोहित मृगीका रूप धारण किया, तब प्रजापतिने भयानक ऋष्यरूपमें उनका पीछा किया था। देवगण जब इस अत्याचारको रोक न सके, तब अपने अपने विराट् गुणको समष्टिसे उन्होंने रुद्रमूर्त्ति-की सृष्टि की। रुद्रदेवने ऋष्यरूपी प्रजापतिको बाणसे भेद कर डाला। ऋष्यने काल (मृगशिरा पुरुष) रूप-में आकाशमें आश्रय लिया।

यह ऋष्य किस जातिका मृग था, उसका अभी निर्णय करना बहुत कठिन है। पूर्वकालीन मृगविशेष-का नाम वर्त्तमान समस्त मृगजातिके पर्यायरूपमें गृहीत हुआ है। ऐतरेयब्राह्मणभाष्यमें सायणाचार्यने ऋष्य शब्दसे मृगविशेषका नाम बतलाया है। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें 'गोमृग' शब्दसे गो और मृगके सङ्कर भयानक वन्यपशुविशेषका अर्थ लगाया है। उक्त दो मृग ही नीलगाय प्रतीत होते हैं। ऐतरेयब्राह्मणमें प्रजापतिके आश्रययोग्य मृगरूपको ही अति बलिष्ठ, उग्र स्वभावयुक्त तथा द्रुतगामी नीलगाय बतलाया है। शब्दकल्पद्रुममें भी ऋष्यको नीलाङ्कक कह कर उल्लेख किया है।

भावप्रकाशमें लिखा है—

"ऋष्यो नीलाङ्गकश्चापि गवयो रोझ इत्यपि।
गवयो मधुरो बल्यः स्निग्धोष्णः कफपित्तकृः॥"

इससे यह भी जाना जाता है, कि ऋष्यका दूसरा नाम नीलाङ्कक भी था। अतः यह साफ साफ प्रमाणित होता है कि ऋष्य जातिका हरिण नीलगायके सिवा और दूसरा कुछ भी नहीं है। इस नीलवृष-जातिका हरिण बहुत प्राचीनकालमें इस लोगोंके देशमें प्रचलित था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। वैद्यकके अनुसार नीलगायका मांस मधुर, रस बलकारक, उष्णवीर्य, स्निग्ध तथा कफ और पित्तवर्द्धक होता है।

नीलगार—जातिविशेष। नील रंग बनाना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। बीजापुर जिलेके नाना स्थानोंमें इस जाति-के लोग रहते हैं। हुब्लि और बीजापुरमें इनका प्रधान अड्डा है। साधारणतः शहर और उन्नत ग्रामोंमें ही ये लोग देखनेमें आते हैं। किन्तु कृष्णानदीके दक्षिणस्थ जिन जिन स्थानोंमें कपड़े बुननेकी प्रथा अधिक प्रच-लित है, उन्हीं सब स्थानोंमें ये लोग विशेषतः रहते हैं। इनका कुलगत कोई नाम नहीं है। स्थानके नामानुसार ये लोग अपना नाम रख लेते हैं। इनमें कोई सम्प्रदाय वा विभाग नहीं है, किन्तु शाखाएं अनेक हैं जिनमेंसे चिकल्लूर और करनबसु प्रधान है। नीलगारगण देखने-में सुन्दर, मंझोले कदके, बलिष्ठ और बुद्धिमान होते हैं। स्त्रियां पुरुषोंकी अपेक्षा पतली और सुश्री होती हैं। इनकी मातृभाषा कणाड़ी है। साधारणतः इस जातिके लोग मितभोजी, लेकिन रन्धनकार्यमें नितान्त अपटु होते हैं। इनमेंसे कितने ऐसे हैं जो लिङ्गायतों-की तरह मछली मांस नहीं खाते और न शराब ही पीते हैं। किन्तु लिङ्गायतोंके साथ इनके चरित्र और पोशाक-के विषयमें कोई विशेष प्रभेद देखनेमें नहीं आता। ये लोग सूती कपड़ोंको काले रंगमें रंगाते और बहुत कम खेती-बारी करते हैं। नील, चूना, कीकेके पेड़की राख और तरवड़का बीज इन सबको मिला कर उक्त काला रंग बनाया जाता है। विदेशीय द्रव्योंकी आम-दनी हो जानेसे इनके व्यवसायमें बहुत धक्का पहुंचा है। नीलगारोंमेंसे अधिकांश ऋणजालमें फंसे हैं। विवाह और इसी प्रकारकी विशेष घटनामें ये लोग अकसर कर्ज ले कर ही काम चलाते हैं। शुद्ध लिङ्गायतसे ये नीच समझे जाते हैं। किन्तु उनके साथ धर्मशालामें एक पंक्तिमें बैठ कर खाने-पीनेमें कोई निषेध नहीं है। ये लोग लिङ्गायतकी एक शाखामें हैं और जङ्गमका विशेष आदर करते हैं। जङ्गम इनके गुरु होते और वे ही सब काम काज करते हैं। कोलापुरके अन्तर्गत सिदगिरि नामक स्थानमें जङ्गमका वास है। इनकी समाजनीति और धर्मनीति लिङ्गायतोंसे कुछ पृथक् है। ये लोग अपने लड़कोंको पढ़ाते लिखाते नहीं हैं तथा जातीय व्यवसाय छोड़ कर और कोई व्यवसाय नहीं करते।

कुल मिला कर इनकी वर्त्तमान अवस्था शोचनीय है।

नीलगिरि—मन्द्राजप्रदेशकेअन्तर्गत एक गिरिश्रेणी और जिला। यह अक्षा० ११° १२' से ११° ४०' उ० और देशा० ७६° १४' से ७७° पू०के मध्य अवस्थित है। यह जिला पहले बहुत छोटा था। १८७३ ई०में दक्षिण-पूर्व वैनाद-का अकरलोनो विभाग इस जिलेमें मिलाया गया। पीछे १८७७ ई०में मलवारके अन्तर्गत वैनाद तालुकका नम्बलकोड़, चेरामकोड़ और मननादका कोई कोई अंश इस जिलेके अन्तर्भुक्त हो जानेसे इस जिलेका आयतन पहलेसे बहुत बढ़ गया है। जिलेका विस्तार उत्तर-दक्षिणमें ३६ मील और पूर्व-पश्चिममें ४८ मील है। क्षेत्रफल ८५८ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तर महिसुरराज्य, पूर्व और दक्षिण-पूर्वमें कोयम्ब-तोर जिला, दक्षिणमें मलवार और कोयम्बतोरका कुछ अंश तथा पश्चिममें मलवार है। राजकीय प्रधान प्रधान व्यक्ति उतकामण्डमें रहते हैं।

नीलगिरि (पहाड़) पूर्व समयमें कोयम्बतोर और मल-वारके अन्तर्गत था। पीछे १८६८ ई०में नीलगिरि प्रदेश ले कर पृथक् जिला स्थापित हुआ। एक कमि-श्नरकी नियुक्ति हुई ; वे ही खजाना वसूल करते और दौरा तथा दीवानी विचारका काम भी चलाते थे।

कमिश्नर १८८२ ई०में कलक्टर, जिला-मजिष्ट्रेट और अतिरिक्त दौरेके जजके पद पर नियुक्त हुए हैं। इनके सहकारी कमिश्नर प्रधान सहकारी कलक्टर और मजिष्ट्रेटका काम करते हैं। इसके अलावा एक सब-जज और धनागारके डिपटीकलक्टर नियुक्त हुए हैं। उतका-मण्डमें एक डिपटी तहसीलदार हैं। वर्त्तमान समयमें उतकामण्डमें समस्त विचार-विभाग स्थापित हुए हैं।

ग्रीष्मकालको इस उतकामण्डमें मन्द्राजप्रदेशकी राजधानी उठ कर आती है। नीलगिरि जिलेमें पांच उपविभाग हैं, पेरनाद, तोड़ानाद, मेकनाद, कुन्दन-नाद और दक्षिण-पूर्व वैनाद। नीलगिरि प्रदेशको आदिम अवस्था दुर्ज्ञेय है। केवल इतना ही पता लगता है, कि हैदरअलीसे १०० वर्ष पहले तोड़ानाद, मेकनाद और पेरङ्गनाद नामक स्थानमें तीन शासनकर्त्ता थे। मलाई-कोटा, हुलिकलदुर्ग और कोटागिरिमें उनका सुदृढ़ दुर्ग था। सुतरां यह गिरि पहले कोङ्गुदेश अर्थात् पूर्व चेरदेशके अन्तर्गत था और तदनन्तर १७वीं शताब्दीमें महिसुरके अन्तर्गत हुआ है, ऐसा अनुमान नितान्त अयौ-क्तिक नहीं है। फिर भी अनुमान किया जाता है कि हैदरअली पूर्वोक्त दो दुर्ग अधिकार करके अधिवासियों-से यथेष्ट कर वसूल करते थे। टीपूसुलतानने भी कोटा-गिरि दुर्ग पर अधिकार जमाया था। १८२१ ई०में मि० सुलिवनने इस स्थान पर प्रथम अङ्गरेजी कोठी खोली।

१८७३ ई०के पहले नीलगिरि जिला जब किसीके अन्तर्भुक्त न था, तब इसका आयतन बहुत कम था। इसके चारों ओर दो गिरिश्रेणीने मध्यवर्त्ती अधित्यका-को घेरे हुए जिलेको सीमाबद्ध रखा था। इस अधि-त्यका प्रदेशमें छोटी छोटी गिरिमाला नीलवर्ण रूपसे मण्डित है। जगह जगह छोटे छोटे निर्झर कल कल शब्द करते हुए बह रहे हैं। कहीं छोटे छोटे पेड़ समान ऊंचाईमें एक सीधमें खड़े हो कर पथिकोंके मन-को आकृष्ट कर रहे हैं। यह गिरि साधारणतः ६००० फुट ऊंचा है। वैनाद और महिसुरके मध्यवर्त्ती माल-भूमिसे मोयरनदी निकली है। यहांसे पश्चिमघाटके दक्षिण-पश्चिम कोणमें कुण्डपहाड़ है जिसकी एक शाखा दक्षिणकी ओर बहुत दूर तक चली गई है।

प्रधान गिरिशृङ्ग—दोदाबेत्ता ८७०० फुट ऊंचा, कुदियाकोड़ ८५०२ फुट, बेहदबेत्ता ८४८८ फुट, मकूर्त्ति ८३०२ फुट, दावरसोलबेत्ता ८३८० फुट, कुण्ड ८३५३ फुट, कुण्डमोग ७८१६ फुट, उतकामण्ड ७३६१ फुट, ताम्रबेत्ता ७२८२ फुट, होकाबेत्ता ७२६७ फुट, उरुबेत्ता ६८१५ फुट, कोड़नाद ६८१५ फुट, देवबेत्ता ६५७१ फुट, कोटागिरि ६५७१ फुट, कुण्डबेत्ता ६५५५ फुट, हिम-हट्टी ६३१५ फुट, कुनूर ५८८२ फुट और रङ्गस्वामीशृङ्ग ५८३७ फुट ऊंचा है। इस जिलेमें ६ गिरिपथ वा घाट हैं। यथा—कूनूर, सेगूर, गूडालूर, सिसपाड़ा, कोटा-गिरि और सुन्दपट्टी।

यहांकी निम्नलिखित नदियां प्रधान हैं। मोयरनदी नीलगिरिसे उत्पन्न हो कर भवानी नदीमें गिरती है। पाइकार नदी मोयरकी एक शाखा है। इसका दूसरा नाम बेयपुर है। उतकामण्डस्थ ह्रद समुद्रपृष्ठसे ७२२० फुट

ऊंचेमें अवस्थित है और प्रायः २ मील विस्तृत है। पहाड़के निम्नभागमें ढालवें स्थानके ऊपर अनेक वृक्ष लगे हुए हैं। इन सब वृक्षोंसे कार्योपयोगी सुन्दर तख्ता तैयार होता है। पूर्व समयमें पहाड़ पर बाघ, भालू, पहाड़ी बकरे इत्यादि जङ्गली जानवर अधिक संख्यामें पाये जाते थे। आजकल शिकारियोंके उत्पातसे उनकी संख्या बहुत कम हो गई है।

नीलगिरि जिलेमें दो शहर और ४८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई और पारसी लोग ही इस जिलेमें अधिक पाए जाते हैं। हिन्दुओंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, शेठो, वेल्लालर (भूमिकर्षक), इदैयर (मेषपालक), कम्मालर (सूत्रधर), कणक्कण (लेखक वा कायस्थ), कैकलर (तन्तुवाय), वन्नियम (कृषक) कुशवन (कुम्भकार) और सतानी (मिश्र-जाति) प्रधान है। ईसाइयोंमें अङ्गरेज, यूरोपखण्ड वा अमेरिकादेशीय प्रजा, मिश्र अङ्गरेज और इस देशके ईसाइयोंकी संख्या ही अधिक है। असभ्य पर्वतवासो-की संख्या भी कम नहीं हैं।

अङ्गरेज, कणाड़ी और तामिल यहांकी प्रधान भाषा है।

जिलेके आदिम अधिवासिगण ५ श्रेणियोंमें विभक्त हैं,—बड़ग, इरुलर, कुरुम्ब, कोटा और तोड़ा। ये समस्त असभ्य जातियां बहुत बलिष्ठ होती हैं। इनमेंसे तोड़ा लोग सबसे अधिक साहसी होते हैं। ये लोग लम्बे, सुडौल और शिकार तथा युद्धप्रिय हैं। इनका अङ्गसौष्ठव और बलवीर्य देखनेसे मालूम पड़ता है कि ये लोग भारतवर्षमें उत्पन्न नहीं हुए हैं। फिर सुवङ्किम नासिका, दीर्घ कपाल, गोलमुख और कृष्णवर्णको दाढ़ी और भ्रू देखनेसे ये लोग यहूदीजातिके-से मालूम पड़ते हैं। तोड़ाओंका आकार-प्रकार जिस तरह जनसाधारणसे अनेक विभिन्न है, पोशाक परिच्छद भी उसी तरह पृथक् है। इन लोगों-का आचार-व्यवहार बहुत निकृष्ट है। अपरिष्कृतावस्था-में रहना ही इनका स्वभाव है। इन लोगोंमें सभी भाई मिल कर एक स्त्रीका पाणिग्रहण करते हैं। गो-चारण और गोपका कार्य ही इन लोगोंका एकमात्र अवलम्बन है।

कणाड़ी और तामिलमिश्रित एक प्रकारकी भाषा इस जातिमें प्रचलित है। ये लोग उदर और शिकार-देवताकी उपासना करते हैं। इनका विश्वास है, कि मृत्युके बाद आत्मा पुण्यस्थानमें वा दूसरे स्थानमें जाती है।

तोड़ाओंके रहनेके लिये पांच घर होते हैं, तीनमें आप रहते हैं, एकमें गो और शेष एकमें उनका बछड़ा।

जहां तक मालूम होता है, कि बड़गेरा लोग विजय-नगर-राज्यके ध्वंसके बाद ३०० वर्ष पहले दुर्भिक्ष-प्रपी-ड़ित हो कर इस स्थानमें आ कर रहने लगे हैं। देशीय जातियोंमें इनकी ही संख्या अधिक है और धन, सौन्दर्य तथा सभ्यतामें भी ये लोग बढ़े चढ़े हैं। पुरुष लोग समतलवासियोंकी तरह पोशाक पहनते हैं। इसके अलावा एक कीमती चादरसे शरीर और कंधेको ढंके रहते हैं। इनकी स्त्रियां अलङ्कारको बहुत पसन्द करती हैं। ये विशेष कर चाँदी, पीतल वा लोहेका बाजू, बाला, कनेठी और नथनी पहनती हैं। इनका प्रधान देवता रङ्गस्वामी है।

कोटागण मध्यम आकारके, सुगठित और सुश्री होते हैं। इनका कपाल छोटा, मत्था ऊंचा, कान चौड़े और बाल लम्बे लम्बे होते हैं। स्त्रियां पुरुषके समान सुन्दर वा सुगठित नहीं होतीं। बहुतोंके कपाल ऊंचे और नाक चिपटी होती है। कोटजाति कृषिकर्मातुरत और भारवहनकार्यमें विशेष दक्ष होती है। ये लोग साधा-रणतः तोड़ा और बड़गियोंके सभी काम काज करते हैं। कितने काल्पनिक देवताओंकी पूजा ही इनमें प्रचलित है। इनकी भाषा प्राचीन कणाड़ी है। ये लोग ७ ग्रामोंमें वास करते हैं जिनमेंसे ६ पर्वतके अधित्यका-प्रदेशमें और अवशिष्ट गूड़ालूरमें है। इनके वासगृह अत्यन्त अपरिष्कृत और निम्न होते हैं।

असभ्यजातियोंमें कुरुम्ब लोग ही अत्यन्त निकृष्ट होते हैं। इनका शरीर रोगीके जैसा पतला, पेट बहुत ऊंचा, मुख बड़ा, दांत लम्बा और ओंठ मोटा होता है। स्त्रियों-की आकृतिमें कोई विशेष अन्तर देखनेमें नहीं आता, केवल उनकी नाक अपेक्षाकृत छोटी और चेहरा सूक्ष्म होता है। वे प्रायः एक कपड़ेसे शरीरको ढंकी रहती

हैं। स्त्री और पुरुष दोनों ही पूर्वोल्लिखित पीतल और लोहेके आभूषण पहनते हैं।

साधारणतः पर्वतकी उपत्यका और वनजङ्गलमें इनका वासस्थान है। अविशुद्ध तामिल भाषा इन लोगोंमें प्रचलित है। यह जाति साधारणतः कृषिकार्य नहीं करती। धर्मविश्वास इनमें कुछ भी नहीं है, ऐसा कह सकते हैं; पर वे प्राकृतिक कुछ दृश्य वस्तुओं की उपासना करते हैं। कुरुम्बियोंमें जो पर्वतवासी हैं, वे बड़गियोंका पौरोहित्य करते हैं। अन्यान्य जाति कुरुम्बोंसे अत्यन्त भय करती हैं और कुरुम्ब लोग भी तोड़ाओंके भयसे हमेशा व्यतिव्यस्त रहते हैं।

इरुलजाति नीलगिरि (पहाड़)के नीचे ढालू प्रदेशमें और पहाड़के तलदेशसे शून्य स्थान तकके जङ्गलोंमें वास करती है। यथार्थमें ये लोग पर्वतके अधिवासी नहीं हैं।

इस जातिके लोग देखनेमें न तो सुन्दर होते और न कुरूप ही होते हैं। दूसरी दूसरी जातियांसे ये लोग बलवान् जरूर होते हैं। इनकी स्त्रियां अत्यन्त बलिष्ठ और काली होती हैं। इस जातिके पुरुष घरमें लंगोटी और बाहरमें देशीय लोगोंके जैसा कपड़ा पहनते हैं। इनकी स्त्रियां कमरमें एक कपड़ेको दोहरा कर पहनती हैं और शेष अङ्गोंको अनावृत रखती हैं। ये अलङ्कारप्रिय होतीं तथा लोहे और पीतलके बाजू, बाला, कर्णठियां आदि पहनना बहुत पसन्द करती हैं। इरुल लोग सब प्रकारका मांस खाते और आखेटमें बड़े सिद्धहस्त होते हैं। इनकी भाषा तामिल, कणाड़ी और मलय-भाषाके मिश्रणसे उत्पन्न है। इन समस्त पर्वत जातियोंमें इरुल और कुरुम्ब छोड़ कर शेष जातियोंकी अवस्था उतनी शोचनीय नहीं है। बड़गजातिकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है।

नीलगिरि(पहाड़) पर जौ, गेहूं, नाना प्रकारके उरद, गोल आलू, प्याज, लहसुन, सरसों और रेंडी उत्पन्न होती हैं। वर्ष भरके भीतर यहां तीन बार गोल आलू उपजाया जाता है। इसके अलावा यहां नाना प्रकारकी बिलायती साकसब्जी भी उत्पन्न होती है।

कहवा, चाय और सिनकोना भी इस जिलेमें कम नहीं उपजता। पूर्व समयमें वैनाद और कोड़ग प्रदेश में कहवा उत्पन्न होता था, पीछे नीलगिरि (पहाड़) पर उपजने लगा है। यहां तीन प्रकारकी चायकी खेती होती है। नीलगिरि (पहाड़)के पश्चिम बहुत ऊंचे पर चाय उत्पन्न होती है। यहांकी चायकी अवस्था देख कर यह स्पष्ट जाना जाता है कि चायके पौधे शीतप्रधान देशोंमें ही अच्छे लगते हैं।

इस जिलेके समस्त स्थान आज तक भी कृषियोग्य नहीं हुए हैं। जिस नियमसे अधिकांश जमीन यहां कर्षित होती है, उसका कुछ विवरण देना यहां आवश्यक है। कहते हैं, कि तोड़ाजाति पहलेसे ही सर्वापेक्षा बलशाली और साहसी होती चली आ रही है और पर्वतकी सभी उपत्यकाओंमें अपनी उपजीविकाके उपायस्वरूप गोधन और महिषादि जीव जन्तुओंको चराया करती थी। उन सब अधिकृत प्रदेशोंमें दूसरा कोई भी गोचरण वा कृषिकार्य नहीं कर सकता था, किन्तु जब नाना स्थानोंसे नाना देशके असभ्य और सुसभ्य मनुष्य उन सब पार्वत्य प्रदेशोंमें आ कर बस गए, तब उनके जीवनोपायके लिये तोड़ाओंके अधिकृत स्थानोंको जोतने कोड़नेकी आवश्यकता जान पड़ी। सुतरां प्रभुत्वशाली तोड़ा लोग भी सुयोग समझ कर उनसे कर वसूल करने लगे। आगन्तुकगण भी बिना किसी छेड़छाड़के कर देनेको बाध्य हुए। यहां तक कि अङ्गरेजोंको भी कुछ दिन तक यह कर देना पड़ा था। प्रायः इसी तरहसे कुछ समय बीत गए।

तदनन्तर जब यह अङ्गरेजोंके हाथ लगा, तब पार्वत्य प्रदेशोंके सभी ग्रामोंकी प्रजाके मध्य रैयती जमीन बन्दोबस्त करनेका नियम जारी हुआ। प्रजा जब कर देनेमें असमर्थता प्रकट करती थी, तब भारतीय खजानेके आईन-अनुसार उनकी जमीन जब्त कर ली जाती थी।

तोड़ाजाति पहले जिस विशाल भूभागमें गोचरण आदि कार्य करती थी, उसके लिये किसीको भी खजाना नहीं देना पड़ता था। इस पर्वतश्रेणीके पश्चिम और उत्तरांचलमें वे सर्वदा गोमहिषादि चराया करते थे, सुतरां उनके विश्रामस्थलसे उन सब स्थानोंका जलवायु

खराब हो जाया करता था। इस कारण गवर्मेंटने वर्ष भरमें कुछ मास तकके लिये गो आदिका चराना बन्द कर दिया है। ये सब जमीन गवर्मेंटकी परती जमीनोंमें समझी जाती है। पर प्रत्येक तोड़ाके घरके पासकी पचास एकड़ जमीन और आसपासके जङ्गल उसके अधिकारमें रह गए हैं। उक्त जमीनके लिये एकड़ पीछे दो आना कर गवर्मेंटको देना पड़ता है। इस प्रकार प्रायः सात हजार एकड़ जमीन तोड़ाओंके अधीन हैं। किन्तु कार्यतः वे इस पार्वत्य प्रदेशके पतित जमीनमें ही गोमहिषादि चराया करते हैं। जमीन जमा.जब्त कर लेनेके नियम भी यहां प्रचलित हैं। जमीनका मूल्य गुणानुसार पृथक् है। उतकामण्डमें जमीन अभी अधिक मोलमें बिकती है।

नीलगिरि जिलेमें कभी भी दुर्भिक्षकी बातें सुनी नहीं जातीं। पर हां, समतल भागमें फसलका दाम बढ़ जानेके कारण पर्वतवासियोंको वह दुर्भिक्ष-सा हो जान पड़ता है। १८७७ ई०में यहांके गरीब अंगरेजों और नीलगिरिके अधिवासियोंको अन्नके लिये अत्यन्त कष्ट सहने पड़े थे।

नीलगिरि जिला पर्वतसङ्कुल होने पर भी यहां गमनागमनयोग्य अनेक पथ हैं, ऐसा कह सकते हैं। यहांकी प्रधान सड़क कुनूरघाट और उतकामण्ड है। उतकामण्डसे एक पथ कर्कगहल्लीमें, दूसरा गुड़ालूरमें और तीसरा अवलञ्चीमें चला गया है। प्रथम पथ हो कर महिसुरको जाते हैं। कोटागिरिघाट पथ भी वाणिज्यके लिये विशेष उपयोगी है। इनके सिवा जाने आनेके और भी कितने गिरिपथ हैं किन्तु इन सब राहों हो कर बैलगाड़ी नहीं जा सकती।

इन सब स्थानोंमें एक भी बढ़िया पदार्थ तैयार नहीं होता, पर तोड़ा लोग एक प्रकारका मोटा कपड़ा प्रस्तुत करते हैं। यहांसे चाय, कहवा और सिनकोना अन्यत्र भेजा जाता है।

उतकामण्डमें प्रति मङ्गलवारको एक बड़ी हाट लगती है, यही हाट सबसे बड़ी है। तोड़ाओंमें 'कदू' नामका उत्सव प्रचलित है। प्रति वर्ष सप्ताह तिथिमें यह उत्सव मनाया जाता है। इस उपलक्षमें महिषादि-वध और नृत्यगीतादि होते हैं। बड़गों और कोटाओंमें भी इसी प्रकारका वार्षिक उत्सव है।

नीलगिरि जिलेके उतकामण्डस्थ पुस्तकालय और लामड़ेलस्थ लारेन्स-आश्रमके विषय पर कुछ कह देना उचित है। १८५८ ई०में अट्ठाइस हजार रुपये खर्च करके एक हर्म्य बनाया गया जिसमें उक्त पुस्तकालय स्थापित हुआ। इसमें प्रायः १२००० पुस्तक हैं। इसकी वार्षिक आय ७४००) रु०की है। शेषोक्त लारेन्सनिवास-में अंगरेजी सेनाओंकी सन्तान पालित और शिक्षित होती हैं। इसकी वार्षिक आय लाख रुपयेकी है। इस जिलेसे एक अंगरेजी समाचारपत्र निकलता है।

नीलगिरि (पहाड़) पर अनेक पुरातन कीर्त्तिस्तम्भ वा मृत व्यक्तिके स्मृतिस्तम्भका भग्नावशेष देखनेमें आता है। वे साधारणतः पर्वतशृङ्ग पर ही स्थापित हैं। इन सब स्तम्भोंमेंसे कितने टट फूट गए हैं। उनके मध्य अनेक अस्त्र और नाना प्रकारके पात्रादि पाए गए हैं। तोड़ानाद और परङ्गनाद नामक स्थानके स्तम्भमें बहुप्राचीन और उत्कृष्ट ब्रोञ्जनिर्मित तरह तरहके पात्रादि और अस्त्रशस्त्र देखे जाते हैं। इन सब स्तम्भोंकी आकृति बहुत अजूबा है। किस व्यक्ति वा अभ्युदयके समय, किस व्यक्तिसे ये सब स्तम्भ बनाए गए थे, इसका पता लगाना कठिन है। कोटागिरिके निम्नभागमें जो सब कीर्त्तिस्तम्भ हैं उनमेंसे कितनोंमें मट्टीके पुतले हैं जिनके ऊपर तातारदेशीय पगड़ी दिखाई पड़ती है। डाक्टर काल्डवेल (Dr. Caldwell)का कहना है कि वर्त्तमान अधिवासियोंमेंसे कोई भी इन सब ध्वंसावशेषका अपने पूर्वपुरुषसे निर्मित होना स्वीकार नहीं करता। अतः इससे अनुमान किया जाता है कि वे सब कीर्त्तिस्तम्भ और तत्कालीन अधिवासी वर्त्तमान नीलगिरिवासियों-से बहुत पहलेके हैं। कितने स्तम्भ वृत्तस्तूपकी आकृति-विशिष्ट हैं। इनमेंसे एकको तोड़ कर देखा गया था कि उसके मध्य अनेक वृक्ष उत्पन्न हुए हैं। उन सब वृक्षोंको देखनेसे मालूम होता है कि वे सब कीर्त्ति-स्तम्भ अन्ततः ८०० वर्ष पहलेके बने हुए थे।

वर्त्तमान समयमें जो सब स्तम्भ परीक्षाके लिये तोड़े गये हैं उनमेंसे कितनोंमें पीतलके पात्र, चूड़े, मृत्पात्र

नाना प्रकारकी गृह सामग्री और तीरकी मूठ आदि पदार्थ पाए गए हैं। इससे बहुतोंका अनुमान है, कि वे सब शकदेशके अधिवासी (Scythic) और तोड़ाओं के पूर्वपुरुष थे। किन्तु इन सब कीर्त्तिस्तम्भको तोड़ने तथा उनके मध्यस्थ द्रव्यादिको उठा ले जानेमें भी तोड़ा लोग जरा भी आपत्ति नहीं करते। इसीसे बहुतोंका कहना है, कि उक्त पूर्वतन अधिवासी तोड़ाओंके आदि-पुरुष नहीं थे। यद्यपि तोड़ा लोग उन सब स्थानोंमें स्वजातिके समाधिकार्य करते हैं, तो भी वे प्रागुक्त लोगोंको अपना आदिपुरुष नहीं मानते। डाक्टर शोर्ट (Dr. Shortt) इस प्रकार लिख गए हैं, "यहांके अधिवासियोंका कहना है, कि पाण्डवराजाओं के सहचरोंने वे सब कीर्त्तिस्तम्भ बनाए होंगे, क्योंकि एक समय पाण्डवराजगण यहां राज्य करते थे।" बड़गोंमेंसे कितनोंका ऐसा ही विश्वास है, किन्तु वे कहते हैं, कि वे पाण्डववंशीयगण कुरुम्ब नामसे प्रसिद्ध थे। पाश्चात्य पण्डितों और पुरातत्त्वविदोंने भी शेषोक्त मतका समर्थन किया है। प्रवाद है, कि कुरुम्ब लोग एक समय समग्र दाक्षिणात्यमें फैले हुए थे। पीछे विदेशीय राजाओंके आक्रमणसे छिन्न भिन्न हो कर उन्होंने गिरि, जङ्गल आदि दुर्गम प्रदेशोंमें आश्रय ग्रहण किया।

मन्द्राज प्रदेशमें तथा भारतवर्षके नाना स्थानोंमें ऐसे कीर्त्तिस्तम्भ वा स्मृतिस्तम्भ हैं जिनमें प्रोथित मृतदेह-की हड्डियां आदि देखी गई हैं।

नीलगिरि (पहाड़) पर एक बहुत प्राचीन वेद्दाजाति-का वास था। ये ही सिंहलस्थ वेद्दाजातिके आदिपुरुष माने जाते हैं।

यहांका जङ्गल चार भागोंमें विभक्त किया जा सकता है। (१) नीलगिरिके पूर्व और दक्षिण ढालू प्रदेश, (२) उत्तरस्थ ढालू प्रदेश और मोयाकी उपत्यका, (३) दक्षिणपूर्व बैनाद और (४) सोल उपजनेकी उपत्यका।

प्रथमोक्त प्रदेशमें तरह तरहके सुन्दर पेड़ पाये जाते हैं। द्वितीय विभाग चन्दनवृक्षसे भरा हुआ है। तृतीय विभागमें अनेक चाराचन्दनके वृक्ष हैं। चतुर्थ विभागमें बड़े बड़े सेगुनके पेड़, शीशम, पियासाल आदिके पेड़ तथा लाल और सफेद देवदारु उत्पन्न होते हैं।

उतकामण्ड, कुनूर और वेलिंगटन आदि स्थानोंमें अभी अष्ट्रेलिया देशीय नीलवृक्ष और अन्यान्य अनेक नूतन वृक्ष रोपे जाते हैं। ये सब नीलपौधे इतनी जल्दीसे बढ़ते हैं कि १० वर्षके बाद ही वे कार्योपयोगी हो जाते हैं। नील देखो।

नीलगिरिप्रदेश प्रायः दो हजार फुट ऊंचे पर अव-स्थित है। पूर्व और पश्चिमदिक्स्थ समुद्रकूलसे दूर रहने, यथासमय दो मोनसुन (monsoon) वायुके बहने तथा पासमें इस प्रकारके अन्य कोई उच्च पहाड़के नहीं रहनेसे यहांका जलवायु नातिशीतोष्ण और स्वास्थ्य-वर्द्धक है। यहां मशकादि, कीटपतङ्ग वा क्षतिकर जीव जन्तु कुछ भी नहीं होते। स्थानीय उत्तापका औसत ५८° फारेनहीट है। अप्रिल-मई मासमें भी उतनी गरमी नहीं पड़ती, केवल दक्षिण-पश्चिम मानसुन वायुके बहनेसे ग्रीष्मकाल जाना जाता है।

वार्षिक वृष्टिपात ४५ इञ्च है। यहां ज्वर और वात-रोग अकसर हुआ करता है। फिलहाल यहांका जल-वायु बहुत अच्छा होनेके कारण यह स्थान दाक्षिणात्यके स्वास्थ्य-निवासरूपमें निर्वाचित हुआ है।

डाक्टर जेरडनका कहना है, कि इस पहाड़ पर प्रायः ११८ जातिके पक्षियोंका वास है।

शिक्षासम्बन्धमें इस जिलेका नम्बर मन्द्राज जिलों-में दूसरा आया है। यहां भिन्न भिन्न जातियोंके लिये भिन्न भिन्न स्कूल हैं। स्कूलके सिवा यहां फौजी अस्प-ताल और तीन कारागार हैं।

नीलगिरि—उड़ीसाके अन्तर्गत एक देशीय राज्य। यह अक्षा० २१° १७' से २१° ३७' उ० और देशा० ८६° २५' से ८६° ५०' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तर और पश्चिममें मयूरभञ्ज राज्य, दक्षिण और पूर्वमें बालेश्वर जिला है। इस राज्यका एकतृतीयांश पार्वत्य भूमि, एकतृतीयांश जङ्गलपरिपूर्ण और अवशिष्टांश कृषिकार्य-के उपयुक्त है। यहां एक प्रकारका कीमती काला पत्थर पाया जाता है जिससे कटोरा, रिकाब आदि बरतन प्रस्तुत होते हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, संथाल और भूमिज जातिके लोग यहां अधिक पाए जाते हैं। जनसंख्या

सत्तर हजारके लगभग है। राज्यकी वार्षिक आय १२७०००) रु० है जिसमेंसे २८००) रु० गवर्मेण्टको करमें देने पड़ते हैं। राज्य भरमें १ मिडिल स्कूल, ८ अपरप्राइमरी स्कूल और ७३ लोअर प्राइमरी स्कूल हैं। इसके अलावा एक चिकित्सालय भी है। राजाकी सैन्य-संख्या २८ है। इसमें कुल ४६६ ग्राम लगते हैं। प्रवाद है, कि छोटानागपुर राजाके किसी आत्मीयने उड़ीसाके राजा प्रतापरुद्रदेवकी कन्यासे विवाह कर इस राज्यको बसाया। क्षत्रियराज कृष्णचन्द्रीसुरदराज हरिचन्दन इस वंशके चौबीसवें राजा माने जाते हैं।

नीलगिरिकर्णिका (सं० स्त्री०) गिरिकर्णिकाभेद, नील पुष्प, नील अपराजिता।

नीलगिरिजा (सं० स्त्री०) १ विष्णुकान्ता, अपराजिता। २ आस्फोता, आपरमाली बेल।

नीलगुण्ड—१ एक क्षुद्र ग्राम। यह धारवार जिलेके गड़गसे १२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां उत्तम मर्मरप्रस्तरनिर्मित एक नारायण-मन्दिर और सामनेमें एक मण्डप विद्यमान है। मन्दिरकी छत १२ खम्भोंके ऊपर स्थापित है। इसकी दीवारमें पुराणोक्त अनेक मूर्त्तियां चित्रित हैं। ग्रामके उत्तरी फाटकके पूरब १०४४ ई०की उत्कीर्ण एक शिलालिपि है।

२ जातिभेद। ये लोग हिमालयके अन्तर्गत गढ़वाल और कुमायुन नामक स्थानमें वास करते हैं। इनका आचार-व्यवहार कृष्णदेशवासियों-सा है।

नीलग्रीव (सं० पु०) नीला नीलवर्णा ग्रीवा यस्य। १ महादेव, शिव। (त्रि०) २ नीलवर्ण ग्रीवायुक्त, जिसका गला नीला हो।

नीलङ्गु (सं० पु०) निलङ्गति गच्छतीति नि-लगि-गतौ कु-निपातनात् पूर्वदीर्घः। (खरशंकुपीयुनीलंगु लिगु। उण् १।३७) १ कृमिभेद, एक प्रकारका कीड़ा। २ शृगाल, गीदड़। ३ भ्रमर, भंवरा। ४ प्रसून, फूल।

नीलचक्र (सं० पु०) १ जगन्नाथजीके मन्दिरके शिखर पर माना जानेवाला चक्र। २ तीस अक्षरोंका एक दण्डक-वृत्त। यह अशोकपुष्पमञ्जरीका एक भेद है। इसमें गुरु-लघु १५ बार क्रमसे आते हैं।

नीलचर्मन् (सं० क्ली०) नीलं चर्म फलत्वग् यस्य। १ परुषक, फालसा। २ कृष्णाजिन। (त्रि०) ३ नीलचर्म विशिष्ट, जिसका चमड़ा या छिलका नीला हो।

नीलच्छद (सं० पु०) १ गरुड़का नामान्तर, गरुड़का एक नाम। २ खजूरवृक्ष, खजूर। (त्रि०) ३ नीलपत्र-विशिष्ट, नीले पंख या आवरणका।

नीलच्छवि (सं० पु०) कुक्कुभपक्षी, बनमुर्गा।

नीलज (सं० क्ली०) नीलाज्जायते जन-ड। १ वर्त्तलौह, बीदरी लोहा। नीलात् नीलपर्वतात् जायते इति जन-ड स्त्रियां टाप्। २ नीलपर्वतोत्पन्न नदीभेद, वितस्ता नदी। (त्रि०) ३ नीलजात।

नीलजा (सं० स्त्री०) नीलनदीसे उत्पन्न वितस्ता (झेलम) नदी।

नीलझिण्टी (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा झिण्टी। नील-वर्ण झिण्टीपुष्पवृक्ष, नीली कटसरैया। पर्याय—नील-कुरण्ट, नीलकुसुमा, बाला, बाणा, दासी, कण्टार्त्तगला। गुण—कटु, तिक्त, दन्तामय, शूल, वात, कफ, कास और त्वग्दोषनाशक है।

नीलतन्त्र (सं० क्ली०) चीनाचारादिप्रकाशक तन्त्रभेद।

नीलतरा—बौद्ध कथाओंके अनुसार गान्धारदेशकी एक नदी जो उरुवेलारण्यसे हो कर बहती थी। इस स्थान पर जा कर बुद्धदेवने उरुवेलकाश्यप, गयाकाश्यप और नदीकाश्यप नामक तीन भाइयोंका अभिमान चूर किया था। उक्त तीनों भाई अपनेको अर्हत् कहा करते थे और लोगोंको ठग कर अपना मतलब निकालते थे। बड़े भाईके पांच सौ, मध्यमके तीन सौ और छोटेके दो सौ शिष्य थे। बुद्धदेव उक्त तीनों भाइयोंको अपने मतमें लानेके लिये वहां गए और रात भर बड़े भाईकी अग्नि-शाला वा मन्दिरमें रहनेके लिये उनसे आज्ञा मांगी। उरुवेलने उत्तर दिया, कि स्थान देनेमें तो आपत्ति नहीं, लेकिन जहां ये रहना चाहते हैं वहां एक प्रकाण्ड विष-धर सर्प रहता है। बुद्धदेवने इसकी परवाह न की और सीधे मन्दिरमें प्रवेश किया। पीछे नाना उपायसे उक्त सर्पको पराभूत और बन्दी कर अपने भाइयोंका अभि-मान चूर किया। बाद वे बहुत लज्जित हो कर बुद्ध-देवका आदर करने लगे।

नीलतरु (सं० पु०) नीलस्तरुः। नारिकेल, नारियल।

नीलता (सं० स्त्री०) नीलस्य भावः नील-तल्-टाप्। १ नीलत्व, नीलापन। २ कालापन।

नीलताल (सं० पु०) नीलस्तालः। हिन्तालवृक्ष, श्याम-तमाल।

नीलदूर्वा (सं० स्त्री०) नीला दूर्वा। हरिद्वर्ण दूर्वा. हरी दूब। पर्याय—शीतकुम्भी, हरिता, शाश्वती, श्यामा, शीता, शतपर्विका, अमृता, पूता, शतग्रन्थि, अनुष्णवल्लिका, शिवा, शिवेष्टा, मङ्गला, जया, सुभगा, भूतहन्त्री, शतमूला, महौषधी, विजया, गौरी, शान्ता, वमनी।

गुण—हिम, तिक्त, मधुर, कषाय, लघु, रक्तपित्त. अतिसार, कफ, वमन और ज्वरनाशक।

भावप्रकाशके मतानुसार इसका पर्याय—रुहा, अनन्ता, भार्गवी, शतपर्विका, शष्प, सहस्रवीर्या और शतवल्ली। गुण-हिम, तिक्त, मधुर, तुवर, कफ, पित्त, अस्र, वीसर्प, तृष्णा और दाहनाशक।

नीलद्रुम (सं० पु०) नीलवर्ण असनवृक्ष।

नीलध्वज (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः ध्वज इव। १ तमाल-वृक्ष। २ नृपभेद, एक राजाका नाम। ये माहिष्मती नगरीके अधिपति थे। इनका विषय जैमिनिभारतमें इस प्रकार लिखा है,—

राजा नीलध्वज माहिष्मतीनगरीके अधीश्वर थे। इनकी स्त्रीका नाम ज्वाला और पुत्रका प्रवीर था। इनके स्वाहा नामक एक कन्या भी थी। जब वह कन्या विवाहयोग्य हुई, तब राजाने कन्यासे पूछा, 'हमारे पटमण्डपमें हजारों राजा अवस्थान करते हैं। इनमेंसे जिस किसीको चाहो, अपना पति बना लो।' स्वाहाने लज्जासे मुख नीचे किये उत्तर दिया, 'मनुष्य लोभके वशीभूत और मोहसे आच्छन्न हैं। अतः मैं मनुष्यको अपना पति बनाना नहीं चाहती। अतएव आप देव-लोकमें जा कर मेरे लिये एक उपयुक्त वरकी तलाश कीजिए।' यह सुन कर नीलध्वजने कहा, 'तुम देवराज इन्द्रको अपना पति वरो; सुना है, कि वे मानुषीका परि-ग्रहण करना चाहते हैं।' इस पर स्वाहा बोलीं, 'पितः! देवराज इन्द्रने देवताओंका सर्वस्व हरण किया है, तपस्वियोंके विरुद्ध वे अत्याचार किया करते हैं, पर-विभूति पर जलते हैं तथा उन्होंने गौतमकी भार्याका सतीत्व नष्ट किया है। ऐसे सब कुकर्म उन्होंने कितने किये हैं, मालूम नहीं। इसीसे मैं उन्हें वर नहीं सकती। अग्निदेव सभी वस्तुओंको पवित्र करते हैं, अतः मैं उन्हींको अपना पति बनाना चाहती हूं।' कन्याके इच्छानुसार नीलध्वजने अग्निदेवके ही साथ उसका विवाह कर दिया। अग्निदेव विवाह करके माहिष्मती नगरीमें रहने लगे। जब कभी कोई शत्रु इस नगर पर चढ़ाई करता था, तब अग्निदेव नीलध्वजको युद्धक्षेत्रमें सहायता पहुंचाते थे। इसीसे किसीको इनके विरुद्धा-चरण करनेकी हिम्मत नहीं होती थी। जब अर्जुन अश्वमेधका घोड़ा ले कर दिग्विजयको निकले, तब वह घोड़ा पहले इसी माहिष्मतीनगरीमें प्रविष्ट हुआ। राजाके पुत्र प्रवीर अपने सखाओंके साथ लतामण्डपमें खेल रहे थे। इसी समय वह घोड़ा उनके सामने पहुंच गया। प्रवीरने मदनमुन्दरी उस सुन्दर अश्वके मस्तक पर जयपत्र देख उसे पकड़नेको कहा।

यज्ञीय घोड़ा पकड़ा गया। प्रवीर उसे ले कर अपने पुरको चल दिये। वहां और सब तो उस अपूर्व घोड़ेको देखनेमें लग गये, लेकिन प्रवीर ससैन्य युद्धकी प्रतीक्षा करने लगे। पीछे अर्जुन और वृषकेतुके साथ घोरतर संग्राम हुआ। प्रवीर विपक्षोंके शरजालमें एकबारगी आहत हो गये। इस पर पावकप्रतिम नीलध्वज तीन अक्षौहिणी सेनाको साथ ले वहां पहुंच गए और प्रवीर-को मुक्त किया। इस समय उन्होंने अग्निका आह्वान किया। अग्निदेवके युद्धक्षेत्रमें पहुंचनेके साथ ही अर्जुन-की सेना दग्ध होने लगी। तब अर्जुनने नारायण-अस्त्र-का स्मरण किया। इस नारायण-अस्त्रको देख कर अग्निने शान्तिमूर्त्ति धारण की और राजा नीलध्वजको समझा कर कहा, 'आप घोड़ेको लौटा दें। स्वयं भगवान् विष्णु जिनके सहायक हैं, उनके साथ लड़ कर युद्धमें जयलाभ करे, ऐसा कौन व्यक्ति है? राजाने इसे युक्तियुक्त समझा और घोड़ेको लौटा देना चाहा। जब रानीको इसकी खबर लगी, तब वे कोपान्वित हो बोलीं, 'महाराज! आपके राजकोषमें विपुल अर्थ है, हयशालिनी सेना और पुत्र पौत्रादिके रहते क्षत्रियधर्म पर लात मार कों इस प्रकार घोड़ा लौटा रहे हैं?' राजा महिषीको

बात सुन कर पुनः युद्धके लिये अग्रसर हुए। इस बार भी दोनोंमें घमसान युद्ध चला। नीलध्वजका महाबलिष्ठ पुत्र और ज्वालगण मारे गये, रथ टूट फूट गया और सारथिका पतन हुआ। स्वयं नीलध्वज भी मूर्च्छित हो कर रथके ऊपर गिर पड़े। सारथि राजाको युद्धक्षेत्रसे उठा ले गये। पीछे जब वे होशमें आए, तब रानी पर बहुत बिगड़े और नाना उपहारोंके साथ अर्जुनको घोड़ा लौटा दिया तथा आप अश्वरक्षामें नियुक्त हुए। इधर राजमहिषी ज्वाला उसी समय अपने भाई उल्मूकके पास गई और अपनी दुरवस्थाका सब विषय सुनाया। पीछे रानीने अर्जुनके वधके लिये उनसे खूब अनुरोध किया, पर वे राजी न हुए। कोई उपाय न देख ज्वाला घरसे निकल कर गङ्गाके किनारे चली गई और वहां चिल्ला कर बोलीं, 'पाण्डवोंने अन्यायरूपसे भीष्मदेवका वध कर डाला है।' यह सुन कर गङ्गादेवीने क्रुद्ध हो कर अभिशाप दिया कि आजसे छः मासके भीतर अर्जुनका शिर भूपतित होगा। ज्वालाको जब मालूम हुआ कि अब उसका मनोरथ पूरा हो जायेगा, तब अग्निमें कूद कर उसने शरीर त्याग किया और भयानक वाणरूपमें आविर्भूत हो कर धनञ्जयके संहारको कामनासे बभ्रुवाहनके तरकशमें प्रवेश किया। (जैमिनिभारत १५ अ०) ४ कामरूपके एक राजा। कामरूप देखो।

नीलनाग—काश्मीर राज्यका एक ह्रद। इस ह्रदसे एक जलस्रोत निकल कर बरामूलाके समीप सिन्धुदेशस्थ द्रावती नदीके साथ मिल गया है। यह अक्षा० ३३°४८´ उ० और देशा० ७४° ४७´ पू०के मध्य, श्रीनगरसे २१ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह ह्रद हिन्दुओंका एक पवित्र तीर्थ गिना जाता है।

नीलनिर्गुण्डी (सं० स्त्री०) नीलानिर्गुण्डी। नीलवर्ण सिन्धुवारवृक्ष, नीला सम्हालु।

नीलनिर्यासक (सं० पु०) नीलवर्णो निर्यासो यस्य, कप्। १ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। २ कृष्णवर्ण निर्यास, काला गोंद।

नीलनीरज (सं० क्ली०) नीलं नीरजं पद्मम्। नीलपद्म, नीलकमल।

नीलपङ्क (सं० क्ली०) नीलं पङ्कमिव। १ अन्धकार। २ कृष्णकर्दम, काला कीचड़।

नीलपटल (सं० क्ली०) अन्धोंकी आंखोंका वह चमड़ा जिससे आंखें ढंकी रहती हैं।

नीलपट—एक कवि।

नीलपत्र (सं० क्ली०) नीलं पत्रं पर्णं पुष्पफलं यस्य। १ नीलवर्ण उत्पल, नीलकमल। २ गुण्डतृण, गोनरा घास जिसकी जड़ कसेरू है। ३ अश्मन्तकवृक्ष। ४ नीलासनवृक्ष, पियासालका पेड़। ५ दाड़िम, अनार। नीलं पत्रं कर्मधा०। ६ नीलवर्ण पत्र, नीला पत्ता। (त्रि०) ७ नीलवर्ण पत्रयुक्त, जिसके पत्ते नीले हों।

नीलपत्रिका (सं० स्त्री०) १ नीलपत्री, नील। २ कृष्णतालमूली।

नीलपत्री (सं० स्त्री०) १ नीलवृक्ष, नीलका पौधा। २ क्षुद्र नीलीक्षुप, जङ्गली नील।

नीलपद्म (सं० क्ली०) नीलं पद्मम्। नीलवर्ण पद्म, नील कमल।

नीलपर्ण (सं० पु०) १ वृक्षविशेष। (स्त्री०) २ वृन्दारक वृक्ष, वृन्दारका पेड़।

नीलपर्णी (सं० स्त्री०) विदारीवृक्ष।

नीलपल्ली—मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत गोदावरी जिलेका एक शहर। यह शहर अक्षा० १६° ४४´ उ० और देशा० ८२° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अङ्गरेजोंकी एक वाणिज्यकोठी है।

नीलपिङ्गल (सं० त्रि०) नीलश्च तत् पिङ्गलश्चेति, वर्णो वर्णेन इति सूत्रेण कर्मधारयः। नील अथच पिङ्गलवर्णयुक्त।

नीलपिङ्गला (सं० स्त्री०) नीला च पिङ्गला चेति। नील अथच पिङ्गलवर्णयुक्त गोजातिभेद, नीलो और भूरापन लिये लाल गाय।

नीलपिच्छ (सं० पु०) नीलं पिच्छं यस्य। श्येनपक्षी, बाजपक्षी।

नीलपिट (सं० पु०) बौद्धोंका राजकीय अनुशासन और वृत्तिवृत्तसंग्रह।

नीलपिष्टोड़ी (सं० स्त्री०) नीलाम्लीवृक्ष, नलबुड़गुड़ नामका पेड़।

नीलपुनर्नवा (सं० स्त्री०) नीला पुनर्नवा। कृष्णवर्ण पुनर्नवा शाक। पर्याय—नील, श्यामा, कृष्णाख्या, नीलवर्षाभु। गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रसायन, हृद्रोग, पाण्डु, श्वयथु, श्वास, वात और कफनाशक।

नीलपुर (सं० पु०) काश्मीरका एक पुर।

नीलपुराण (सं० क्ली०) पुराणभेद, एक पुराणका नाम।

नीलपुष्प (सं० पु०) नीलं पुष्पं यस्य। १ नीलभृङ्गराज, नीली भंगरैया। २ नीलाम्लान, काला कोराठा। ३ ग्रन्थिपर्ण, गठिवन। ४ नीलकुसुम, नीला फूल।

नीलपुष्पा (सं० स्त्री०) नीलं पुष्पं यस्याः। विष्णुक्रान्ता, अपराजिता।

नीलपुष्पिका (सं० स्त्री०) नीलं पुष्पं यस्याः। कप, कापि-अत इत्वं। १ अतसी, अलसी। २ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ३ नील-अपराजिता।

नीलपुष्पी (सं० स्त्री०) नीलं पुष्पं यस्याः, ङीष्। १ नीलवुह्ना, काला बौना, नीली कोयल। २ अतसी, अलसी।

नीलपृष्ठ (सं० पु०) नीलं पृष्ठं धूमरूपेण यस्य। १ अग्नि, आग। २ मत्स्यविशेष, एक किस्मकी मछली।

नीलपृष्ठा (सं० स्त्री०) नीलीवृक्ष, नीलका पौधा।

नीलपोर (सं० पु०) इक्षुभेद, एक प्रकारकी ईख।

नीलफला (सं० स्त्री०) नीलं फलं यस्याः। १ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। २ बैंगन, भण्टा। ३ वार्त्ताकुवृक्ष।

नीलफुमारी—१ बङ्गालके रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक महकूमा। इसका क्षेत्रफल ६३८ वर्गमील है। इसमें कुल ३८२ ग्राम लगते हैं। यहां हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, ब्राह्म, सन्थाल और अन्यान्य अनेक जातियोंका वास है।

२ उक्त महकूमेका एक ग्राम। महकूमेकी अदालत यहां ही लगती है।

नीलबरी (हिं० स्त्री०) कच्चे नीलकी बट्टी।

नीलबिरई (हिं० स्त्री०) सनायका पौधा, सना।

नीलभ (सं० पु०) नील इव भाति भा-क। १ चन्द्र, चन्द्रमा। २ मेघ, बादल। ३ मक्षिका, मक्खी। (त्रि०) ३ नीलवर्ण आभाविशिष्ट, जिसमें नीली रोशनी हो।

नीलभण्टा (सं० स्त्री०) पीतशालवृक्ष, पियासाल।

नीलभू (सं० स्त्री०) नीलात् भूरुत्पत्ति र्यस्य। नीलपर्वतोत्पन्न नदीभेद, नीलपर्वतसे उत्पन्न एक नदीका नाम।

नीलभृङ्गराज (सं० पु०) नीलो भृङ्गराजः। नीलवर्ण भृङ्गराज, नीला भंगरा। पर्याय—महाभृङ्ग, महानील, सुनीलक, नीलपुष्प, श्यामल। गुण—तिक्त, उष्ण, चक्षुष्य, केशरञ्जन; कफ, आम, शोफ और श्वित्रनाशक।

नीलम (फा० पु०) नीलमणि, नीले रंगका रत्न, इन्द्रनील। अंगरेजीमें इसे Sapphire कहते हैं।

सिंहलद्वीपके मध्यगत रावणगङ्गाके सन्निहित पद्माकर प्रदेशमें इन्द्रनील मिलता है। प्राचीन कालमें पारस्य और अरबदेशमें यह रत्न मिलता था। अब भारतके नीलमकी खानें नहीं रह गई हैं। काश्मीरकी खानें भी अब खाली हो चली हैं। बरमामें मानिकके साथ नीलम भी निकलता है। सिंहलद्वीप और श्यामसे भी बहुत अच्छा नीलम आता है। उत्तर-अमेरिका, दक्षिण-अमेरिका, अष्ट्रेलिया आदि स्थानोंमें भी नीलम पाया गया है, ऐसा सुननेमें आता है।

नीलम वास्तवमें एक प्रकारका कुरंड है जिसका नम्बर कड़ाईमें हीरेसे दूसरा है। जो बहुत चोखा होता है उसका मोल भी हीरेसे कम नहीं होता। नीलम अक्साइड आव एलुमिना (Oxide of alumina) और अक्साइड आव कोबाल्ट (Oxide of cobalt) इन्हीं दो पदार्थोंसे प्रस्तुत होता है। यथार्थमें यदि देखा जाय, तो अम्लजन-वायु (Oxygen) और एलुमिनियम कोबाल्ट (Aluminium Cobalt) नामक अत्यन्त सामान्य द्रव्य ही इसमें देखनेमें आता है। तब रत्नादिका मूल्य अधिक होनेका कारण यही है। कोई विज्ञानविद् पण्डित कृत्रिम उपायसे हीरकादि प्रस्तुत नहीं कर सकते। किन्तु विज्ञानकी दिनोंदिन जैसी उन्नति देखी जाती है और उल्लिखित विषय ले कर जैसी चर्चा चल रही है उससे बोध होता है, कि थोड़े ही दिनोंके मध्य यह अभाव पूरा हो जायगा।

समस्त नीलमके रंग एकसे नहीं होते। इनमेंसे कुछ नीलपद्मके जैसा, कुछ नीलवसनके जैसा, कुछ सुमार्जित तलवारके जैसा, कुछ भ्रमरके रंगके जैसा, कुछ शिव-

नीलकण्ठके जैसा, कुछ मयूरपुच्छके तारेके जैसा और कुछ कृष्ण अपराजिता पुष्पके जैसा होता है। समुद्रकी निर्मल जलराशिरूप नीलरङ्गके बुदबुद और कोकिल कण्ठके जैसा नीला नीलम भी अकसर देखनेमें आता है। यह वर्णभेदसे चार भागोंमें विभक्त है, यथा—श्वेतका आभायुक्त नील, रक्तका आभायुक्त नील, पीतका आभायुक्त नील और कृष्णका आभायुक्त नील। इन चार श्रेणियोंके इन्द्रनील यथाक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नामसे प्रसिद्ध हैं।

पद्मराग जिस तरह उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारका है, इन्द्रनीलके भी उसी तरह तीन भेद हैं, यथा, साधारण इन्द्रनील, महानील और इन्द्रनील। महानीलके सम्बन्धमें लिखा है, कि यदि वह सौगुने दूधमें डाल दिया जाय, तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा। सबसे श्रेष्ठ इन्द्रनील वह है जिसमेंसे इन्द्रधनुषकी-सी आभा निकले। पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं। नीलममें पांच बातें देखी जाती हैं—गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णाढ्यत्व, पार्श्ववर्त्तित्व और रञ्जकत्व। जिस इन्द्रनीलका आपेक्षिक गुरुत्व बहुत अधिक हो अर्थात् जो देखनेमें छोटा पर तौलमें भारी हो उसे गुरु कहते हैं। जिसमें स्निग्धत्व होता है, उसमेंसे चिकनाई छूटती है। जिसमें वर्णाढ्यत्व होता है उसे प्रातःकाल सूर्यके सामने करनेसे उसमें नीली शिखा-सी फूटती दिखाई पड़ती है। पार्श्ववर्त्तित्व गुण उस नीलममें माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चांदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े। जिसे जलपात्र आदिमें रखनेसे सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए। गुरु इन्द्रनील वंशवृद्धिकर, स्निग्ध इन्द्रनील धनवृद्धिकर, वर्णाढ्य इन्द्रनील धनधान्यादि-वृद्धिकारक, पार्श्ववर्त्ती इन्द्रनील यशस्कर और रञ्जक इन्द्रनील लक्ष्मी, यश और वंशवर्द्धक माना गया है। अभ्रक, त्रास, चित्रक, मृद्गर्भ, अश्मगर्भ और रौक्ष्य ये छः प्रकारके दोष इन्द्रनीलमें पाये जाते हैं। जिस इन्द्रनीलके ऊपरीभागमें अभ्र-सी छाया दीख पड़े, उसे अभ्रक कहते हैं। इस प्रकारके इन्द्रनीलसे आयु और सम्पत्ति विनष्ट होती है। जो इन्द्रनील विशेष चिह्न द्वारा भग्न मालूम पड़े, वही त्रासनील है। इस नीलमके धारण करनेसे दंष्ट्रीभय उत्पन्न होता है। जिसमें भिन्न भिन्न रंग दीख पड़ते हैं उसे चित्रक कहते हैं, चित्रकके दोषसे कुल नष्ट होता है। जिसके मध्यभागमें मट्टी लगी रहती है, वह मृद्गर्भ कहलाता है। मृद्गर्भके दोषसे गात्रकण्डु आदि नाना प्रकारके चर्मरोग उत्पन्न होते हैं। जिसके भीतरमें पत्थरका खण्ड दिखाई दे उसका नाम है अश्मगर्भ। अश्मगर्भ दोषविनाशका कारण है। जो शर्करायुक्त है उसे रौक्ष्य कहते हैं। रौक्ष्यदोषाश्रित इन्द्रनीलधारी व्यक्तिको यमराजका द्वार देखना पड़ता है। दोषहीन होने पर भी जो गुणयुक्त है, ऐसी इन्द्रनीलमणि जिसके पास है उसको आयु और यशकी वृद्धि होती है। जो मनुष्य विशुद्ध इन्द्रनील धारण करता है, नारायण उसके प्रति प्रसन्न होते हैं और उससे आयु, कुल, यश, बुद्धि, लक्ष्मी और समृद्धिकी उन्नति होती है। गुणसम्पन्न और दोषयुक्त पद्मराग धारण करनेमें जैसा शुभाशुभ होता है, इन्द्रनील धारणमें भी ठीक वैसा ही फल लिखा है।

जिस इन्द्रनीलमें कुछ लोहित-सी आभा दीख पड़े उसे टिट्टिभ कहते हैं। टिट्टिभजातीय मणि धारण करनेके साथ ही गर्भिणी-स्त्री सुखसे सन्तान प्रसव करती है। (गरुड़पु०)

पद्मरागके जैसा नीलम तीन अवस्थामें पाया जाता है। यथा—(१) शुभ्र स्वच्छ चूनेके पत्थर (White Crystaline lime-stone)के मध्य निहित अवस्थामें देखा जाता है; (२) पहाड़के निकटवर्ती मट्टीके मध्य शिथिल अवस्थामें पाया जाता है और (३) रत्नप्रसवि कंकड़के मध्य कभी कभी देखा जाता है। साधारणतः द्वितीय अवस्थाका नीलम ही यथेष्ट पाया जाता है।

अलङ्कारके लिये इन्द्रनीलका इतना आदर है। नीलम इतना कठिन पदार्थ है, कि इस पर नक्काशी आदि कार्य बहुत मुश्किलसे किया जाता है। इस प्रकार असुविधा रहते भी इन्द्रनीलमें खोदित मूर्त्ति देखी गई है। ग्रीसके जुपिटर (Jupiter)की उज्ज्वल मुखाकृति इस इन्द्रनील पर खोदित है, ऐसा सुना जाता है। मार्लबोरो (Marlborough) संस्थानमें जो सब प्राचीन द्रव्य संग्रह किये गए हैं उनमेंसे मेडुसाकी

मस्तक (Medusa's head) नीलम पर प्रस्तुत देखा गया है। इसके अलावा और भी कितने प्राचीन प्रतिमूर्त्तियां इस पत्थर पर निर्मित हैं।

पहले ही कहा जा चुका है, कि इन्द्रनीलसे नाना प्रकारकी व्याधि और अमङ्गलका नाश होता है। यह केवल भारतवासियोंका ही विश्वास है, सो नहीं, यूरोपके अनेक महात्मा लोग भी इसका पक्ष समर्थन कर गए हैं। एपिफेनिस् (Epiphanes)-का कहना है कि मोजेस (Moses)के निकट जो इश्र पर्वतके ऊपर उदित हुआ था और ईश्वरने सबसे पहले उनके पास जो नियमावली भेजी थी वह नीलममें ही लिखी थी। पुण्यात्मा जेरोम (St. Jerome)ने कहा है कि इन्द्रनील धारण करनेसे राजाका प्रियपात्र होता है, शत्रु वशमें आ जाते हैं और बन्धनसे छुटकारा मिलता है। वक्षमें धारण करनेसे बलवीर्यकी वृद्धि और अमङ्गल निवारित होता है। यदि कोई लम्पट मनुष्य इसे धारण करे, तो इसका औज्ज्वल्य जाता रहता है। अङ्गुलिमें पहननेसे कामवृत्ति नष्ट होती है, यही कारण है कि धर्मयाजकगण इसे अङ्गुलिमें पहनते हैं। कण्ठमें धारण करनेसे ज्वर दूर हो जाता है, कपालमें धारण करनेसे यह रक्तस्रावको बन्द कर देता है। इन्द्रनीलकी चूर्ण कर गोली तैयार करके आँख पर रखनेसे बालुकाकण, कीट आदि कुछ भी चक्षुमें क्यों न प्रवेश कर जाय, उसी समय वह बाहर निकल आता है। इसके सिवा आँखका आना अथवा वसन्तरोगजनित चक्षुप्रदाह इत्यादि आरोग्य हो जाता है। दूधके साथ इसका चूर्ण सेवन करनेसे ज्वर, मूर्च्छा, विषप्रयोग आदि प्रशमित होते हैं। विषनाशकशक्ति इसमें इतनी अधिक है कि जिस ग्लास या शीशीमें कोई विषधर प्राणी रहे उसमें यदि इसे डाल दे, तो वह उसी समय मर जाता है।

पद्मरागके जैसा इन्द्रनीलके आकारके अनुसार इसका मोल अधिक नहीं होता। हीरेकी तरह ज्योतिःपरिच्छन्नताके अनुसार मूल्यका तारतम्य हुआ करता है। बढ़ियासे बढ़िया नीलम यदि एक कैरटसे कम तोलमें हो (कैरट=प्रायः ४ रत्ती), तो वह ४०) से १२०) रु० तकमें बिकता है और एक कैरट होनेसे १२०)से २५०) रु० तकमें। किसी किसी इन्द्रनीलसे नक्षत्रकी तरह ज्योति निकलती है। इस प्रकारका नीलम हिन्दुओंका एक पवित्र पदार्थ है। इसका मूल्य २००)से १०००) रु० तक है। प्रकृत शुद्ध इन्द्रनील रात दिन सब समय नीलवर्णकी रोशनी देता है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है, कि दिनमें दो खण्ड नीलम एक सी रोशनी देते हैं, पर रात होते ही उनसे भिन्न भिन्न तरहकी रोशनी निकलती है। कभी कभी इन्द्रनीलमें अनेक दोष भी देखे जाते हैं। इसमें मैल, दाग तथा इसी तरहके कितने दोष रहते हैं। इसके अलावा इसमें तमाम एकसा रंग नहीं रहता।

सफेद नील हीरेसे मिलता जुलता है। यहां तक कि यदि यह अच्छी तरह काटा जाय और जिना पालिश का रहे, तो हीरेमें और इसमें कुछ भी फर्क देखनेमें नहीं आता। दो खण्ड काँच ले कर उनके मध्य ऐसे सुकौशलसे रंग स्थापित किया जाता है, कि वे तमाम रंगे हुए-से मालूम पड़ने लगते हैं। अनभिज्ञ लोग अकसर इनको नीलम समझ लेते हैं और अनेक समय ठगे भी जाते हैं।

अङ्गरेज राजदूतने आवानगरमें ८५१ कैरटतौलका एक खण्ड उज्ज्वलवर्णविशिष्ट इन्द्रनील देखा था। पारिस (Paris) नगरकी खनिज-चित्रशालिका (Musee-demineralogie)में १३२$\frac{1}{16}$ कैरेट तौलका एक नीलम है जिसका नाम 'वडेन-स्पून सेलर' है। यह नाम पड़नेका कारण लोग बतलाते हैं कि वङ्गदेशके काठको कलछी बेचनेवाले किसी दरिद्रने इसे पाया था। अन्तमें बहुतोंके हाथमें उलट फेर होता हुआ यह फरासी देशीय किसी वणिक्के यहां १८८००० फ्रैङ्कमें बेचा गया। पोपके राजकोषमें बहुतसे सुन्दर सुन्दर नीलम हैं। इङ्गलैण्डके ग्रीनवालटस नामक स्थानमें अत्युत्कृष्ट सुवृहत् इन्द्रनील है। इसकी किसी काउण्टपत्नी (Countess)-के पास जो अत्यन्त परिष्कार और मनोहर डिम्बाकृति इन्द्रनील था उसे पेरिसनगरके महामेलेमें देख कर लोग चकित हो गए थे। लन्दन महामेलेमें एच० टि० होप (H. T. Hope) साहबके संग्रहीत कुछ नीलम दिखलाये गए थे और वहां ए. जे.

होप (A. J. Hope) साहबने अपना खरज्योतियुक्त नीलम (Sapphire Maveilleux) सबके सामने दिखाया था जिससे दिनको नीला और रातको बैंगनी रंगकी रोशनी निकलती थी। इङ्गलैण्डके महाराज ४र्थ जार्जने राजमुकुट धारण करनेके लिए एक बड़ा नीलम खरीदा था। मिर्जापुरके महन्तके पास किसी समय अत्यन्त उत्कृष्ट एक खण्ड इन्द्रनील था।

नीलमकुष्ठ (सं० पु०) नीलवनमुद्ग, नकुल।

नीलमक्षिका (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा मक्षिका. नीली मक्खी।

नीलमञ्जरी (सं० स्त्री०) नीलनिर्गुण्डी।

नीलमणि (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः मणिः। स्वनामख्यात मणिविशेष, नीलम। नीलम देखो।

नीलमण्डल (सं० क्ली०) परुष, फालसा।

नीलमल्लिका (सं० स्त्री०) १ विल्व, बेल। २ कपित्थ, कैथ।

नीलमाधव (सं० पु०) नीलो नीलवर्णो माधवः। १ विष्णु, जगन्नाथ।

नीलमाष (सं० पु०) नीलः माषः। राजमाष, काला उरद।

नीलमौलिक (सं० पु०) नीलवर्णं निमीलनमस्त्यस्येति नील-मील-ठन्। खद्योत, जुगनू।

नीलमृत्तिका (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा मृत्तिकेव। १ पुष्पकासीस, हीराकसीस। २ कृष्णवर्ण मृत्तिका, काली मट्टी। (त्रि०) नीला मृत्तिका यत्र। ३ जहां काली मट्टी हो।

नीलमेह (सं० पु०) मेहरोगविशेष। पित्तसे नीलमेह उत्पन्न होता है। इसमें शालसारादि वा अश्वत्थ कषायका प्रयोग करना चाहिए। इस रोगसे शुक्र नीला हो कर बाहर निकलता है, इसीसे इसको नीलमेह कहते हैं। प्रमेह देखो।

नीलमेहिन् (सं० पु०) नील नीलवर्णं शुक्रं मेहति मिह-णिनि। नीलवर्ण मेहयुक्त।

नीलमोर (हिं० पु०) कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है।

नीलयष्टिका (सं० स्त्री०) कृष्णवर्ण इक्षुभेद, एक प्रकारकी काली ईख।

नीलरत्न (सं० क्ली०) इन्द्रनील-मणि।

नीलराजि (सं० पु०) नीलानां राजिः। तमस्तति, अन्धकारराशि।

नीलरुद्रोपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

नीलरूपक (सं० पु०) १ वृक्षभेद, पाकरका पेड़।

नीललोचन (सं० त्रि०) नीलं लोचनं यस्य। नीलवर्णनेत्रयुक्त, नीली आंखवाला। जो मनुष्य शाक चुराता है, उसीकी आंखें नीली होती हैं।

"शाकहारी च पुरुषो जायते नीललोचनः॥" (शातातप)

नीललोह (सं० क्ली०) नीलं नीलवर्णं लोहम्। १ वर्त्तलोह, बीदरी लोहा। २ कृष्णलौह, काला लोहा।

नीललोहित (सं० पु०) नीलश्चासौ लोहितश्चेति (वर्णो वर्णेन। पा २।१।६९) इति सूत्रेण कर्मधारयः। १ शिव, महादेव। चैत्रमासमें नीललोहित शिवके उद्देशसे व्रत करना होता है। इस व्रतमें त्रिसन्ध्या स्नान कर रातको हविष्याशी और जितेन्द्रिय हो कर नाना प्रकारके उपहार और उत्सवके साथ शिवकी पूजा करते हैं, पीछे संक्रान्तिको उपवास और होम करके व्रत समाप्त करते हैं। भगवान् शिवके प्रसन्न होनेसे कुछ भी अलभ्य नहीं है। महादेवका कण्ठ नीला और मस्तक लोहितवर्ण है, इसीसे शिवका नाम नीललोहित पड़ा है। (त्रि०) २ नीलापन लिये लाल, बैंगनी।

नीललोहिता (सं० स्त्री०) १ भूमिजम्बू, एक प्रकारका छोटा जामुन। २ शिवपार्वती।

नीललौह (सं० क्ली०) वर्त्तलौह, बीदरीलोहा।

नीलवटी (सं० स्त्री०) केशरञ्जन।

नीलवत् (सं० त्रि०) नीलं निलयो विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य वः। १ निवासयुक्त। २ नीलवर्णयुक्त।

नीलवर्ण (सं० क्ली०) १ रसाञ्जन, नीलमूलक। २ परुषफल, फालसा।

नीलवर्षाभू (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा वर्षाभूः। १ नीलपुनर्णवा। (पु०) २ कृष्णवर्ण भेक, काला बेंग।

नीलवल्ली (सं० स्त्री०) नीला नीलवर्णा वल्ली। वन्दाक, परगाछा, बांदा।

नीलवसन (सं० त्रि०) नीलया रक्तं यत्, नीलं वसनं यस्य । १ नीलवस्त्रयुक्त, नीला या काला कपड़ा पहननेवाला । (पु०) २ शनिग्रह । शनिका परिधेय वस्त्र नीला है, इसीसे नीलवसन शब्दसे शनिका बोध होता है । ३ नीलवर्ण वस्त्र, नीला कपड़ा । ४ बलराम ।

नीलवस्त्र (सं० पु०) नीलं वस्त्रं यस्य; १ बलराम । २ नीलवर्ण वस्त्र, नीला कपड़ा । ब्राह्मणादि तीनों वर्णको नीलवस्त्र नहीं पहनना चाहिए, पहननेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है । नीलवस्त्र पहन कर यदि स्नान, दान, तपस्या, होम, स्वाध्याय और पितृतर्पण आदि पुण्यकार्य किये जांय, तो वे निष्फल होते हैं ।

"स्नानं दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ।
वृथा तस्य महायज्ञो नीलीवस्त्रस्य धारणात् ॥"
(प्रायश्चित्तविवेक)

नीलवानर—एक प्रकारका बन्दर (Innus silenus) । यह बन्दरका राजा Lion monkey भी कहलाता है । इस जातिके बन्दर काले होते हैं और मस्तक रोओंसे ढंका रहता है । इसकी लम्बाई प्रायः २ फुट और लेजकी लम्बाई १० इञ्च होती है । यह वानरजाति विभिन्न श्रेणियोंमें सन्निविष्ट है । कोई तो इसे Papio, कोई Cynocephalus और कोई Macacus जातिके बतलाते हैं । किन्तु लेसन और श्रे साहब इसे स्वतन्त्र श्रेणीका बतला गए हैं । ये बहुत कुछ हनुमानसे मिलते जुलते हैं । कुछ काल पहले यूरोपवासिगण इन्हें भारतके दक्षिणांश और सिंहलवासी समझते थे । बफनने इनका जो Wanderoo नाम रखा है वह इस सिंहल देशीय हनुमान्के जैसा है । किन्तु टेमप्लेटन और लेयार्ड साहबने कहा है, कि सिंहलद्वीपमें ये कभी भी पाये नहीं जाते । भारतवर्षके पश्चिमघाट पर्वतके उच्चप्रदेशस्थ जङ्गलके मध्य इनका वास है । कोचीन और त्रिवाङ्कुड़में भी ये अधिक संख्यामें मिलते हैं । अत्यन्त निविड़ और अगम्य अरण्यमें ये रहना पसन्द करते हैं । ये प्रायः दल बांध कर बाहर निकलते हैं । एक एक दलमें १२ या २० अथवा उससे भी अधिक बन्दर देखे जाते हैं । ये बड़े सतर्क और लाजुक होते हैं, किन्तु ये क्रोधी और हिंसक भी अत्यन्त दर्जेके हैं ।

नीलवीज (सं० पु०) नीलं वीजं यस्य । नीलासनवृक्ष, पियासाल ।

नीलवृक्षा (सं० स्त्री०) नीलवर्ण वृक्षभेद, नीलाबोना नामका पेड़ ।

नीलवृक्ष (सं० पु०) नीलो वृक्षः । वृक्षप्रभेद, एक किस्मका दरख्त । पर्याय—नील, वातारि, शोफनाशन, नरनामा, नखवृक्ष, नखालु, नरप्रिय । गुण—कटु, कषाय, उष्ण, लघु, वातामय और नानाश्वयथुनाशक ।

नीलवृन्त (सं० क्ली०) नीलवर्णं वृन्तं यस्य । १ तूल, रुई । २ तृणकाष्ठ, तरकश बनानेकी लकड़ी ।

नीलवृन्तक (सं० क्ली०) नीलवृन्त-कप् । तूल, रुई ।

नीलवृष (सं० पु०) वृषविशेष, विशेष प्रकारका सांड़ या बछवा ।

श्राद्धमें नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है । जिस वृषका रंग लाल, पूंछ, खुर और सिर शंखवर्ण हों, उसे नीलवृष कहते हैं । ऐसे वृषके उत्सर्गका बड़ा फल है । इसमें गया श्राद्धादिके समान फल प्राप्त होता है ।

"जायरेन् बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् ।
यजेद्वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥" (देवीपु०)

अनेक पुत्रोंमेंसे यदि एक भी पुत्र गया जाए, अथवा अश्वमेधयज्ञ करे वा नीलवृषका उत्सर्ग करे, तो उसके पितृकुल उद्धार पाते हैं । नीलगाय देखो ।

नीलवृषा (सं० स्त्री०) नीलं नीलवर्णं पुष्पफलादिकं वर्षति प्रसूते इति वृष-क, ततष्टाप् । वार्त्ताकी, बैंगन ।

नीलव्रत (सं० क्ली०) व्रतविशेष । मत्स्यपुराणमें इस व्रतका विषय इस प्रकार लिखा है—

जो हेम, नीलोत्पल और शर्करापात्रसंयुत कर वृषभके साथ दान करते हैं, उन्हें अन्तमें वैष्णव-पद प्राप्त होता है । इसीका नाम नीलव्रत है । इस व्रताचरणके समय रातको खाना होता है ।

नीलशिखण्ड (सं० त्रि०) नीलः शिखण्डो यस्य । १ नीलवर्ण शिखण्डयुक्त । (पु०) २ रुद्रभेद ।

नीलशिग्रु (सं० पु०) नीलः शिग्रुः । शोभाञ्जनवृक्ष, सहजनका पेड़ ।

नीलशिम्बिका (सं० स्त्री०) शिम्बीभेद ।

नीलशुक (सं० पु०) महाविष वृश्चिक जातिभेद ।

नीलशोधनी (सं॰ स्त्री॰) नीली, नीलका पौधा।

नीलषण्ड (सं॰ पु॰) नीला वा काला सांढ़।

नीलसखी—हिन्दीके एक कवि। ये जैनपुर बुन्देलखण्ड-के रहनेवाले थे और इनका जन्म सम्वत् १८०२में हुआ था। इनके बनाए पद रसीले होते थे।

नीलसन्ध्या (सं॰ स्त्री॰) नीला सन्ध्येव। कृष्ण-अपराजिता।

नीलसरस्वती (सं॰ स्त्री॰) द्वितीय विद्या, तारादेवी।

नीलसस्य (सं॰ क्ली॰) शस्यविशेष, बाजरा।

नीलसहचर (सं॰ पु॰) नीलपुष्प, नीली कटसरैया।

नीलसार (सं॰ पु॰) नीलः सारो यस्य। तिन्दुकवृक्ष, तेंदूका पेड़। इसका हीर काला आबनूस होता है।

नीलसिर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी बत्तख जिसका सिर नीला होता है। यह हाथ भर लम्बी होती है और सिंध, पंजाब, काश्मीर आदिमें पाई जाती है। अण्डे यह गरमीमें देती है।

नीलसिन्धुवार (सं॰ पु॰) कृष्णवर्ण सिन्धुवारवृक्ष। पर्याय—शीतसहा, निगुण्डी, नीलसिन्दूक, सिन्दूक, कपिका, भूतकेशी, इन्द्राणी, नीलिका, नीलनिगुण्डी। गुण—कटु, उष्ण, तिक्त, रुक्ष, कास, श्लेष्मा, शोथ, वायु, प्रदर और आध्मानरोगनाशक।

नीलस्कन्धा (सं॰ स्त्री॰) नीलः स्कन्धो यस्याः। गोकर्णीलता।

नीलस्पन्दा (सं॰ स्त्री॰) नीली अपराजिता।

नीलस्वरूप (सं॰ पु॰) एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तीन भगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

नीला (सं॰ स्त्री॰) नीली नीलवर्णोऽस्त्यस्याः अच्, ततष्टाप्। १ नीलवर्ण मक्षिका, नीली मक्खी। २ नीलपुनर्नवा। ३ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ४ लताविशेष, एक लता। ५ नदीविशेष, एक नदी। ६ मल्लाररागकी एक भार्या।

नीला (हिं॰ वि॰) १ आकाशके रंगका, नीलके रंगका। (पु॰) २ एक प्रकारका कबूतर। ३ नीलम।

नीलाक्ष (सं॰ त्रि॰) नीले अक्षिणी यस्य। १ नीलवर्ण चक्षुविशिष्ट, नीली आंखका। (पु॰) २ राजहंस।

नीलाङ्कितदल (सं॰ पु॰) नीलाङ्कितं दलं यस्य। तैलकन्द।

नीलाङ्ग (सं॰ पु॰) नीलं अङ्गं यस्य। १ सारसपक्षी। (त्रि॰) २ नीलवर्णाङ्गयुक्तमात्र, नीले अङ्गका।

नीलाङ्गु (सं॰ पु॰) नितरां लिङ्गतीति नि-लिगि-गतौ कु, धातूपसर्गयोः दीर्घत्वं। १ कृमि, कीड़ा। २ भ्रमराली, भौंरा। ३ शुषिर, घड़ियाल।

नीलाचल (सं॰ पु॰) १ नीलगिरि पर्वत। २ जगन्नाथजीके निकट एक छोटी पहाड़ी।

नीलाञ्जन (सं॰ क्ली॰) नील अञ्जनं। १ सौवीराञ्जन, नीला सुरमा। यह उपधातुविशेष है। भलीभांति शोधन कर इसका व्यवहार करना होता है। नीलाञ्जनका चूर्ण को जम्बीरी नीबूके रसमें भावना दे, पीछे धूपमें उसे एक दिन सुखा कर विशुद्ध कर ले। इस प्रकारसे शोधित नीलाञ्जन व्यवहारोपयुक्त होता है। इसका गुण—कटु, श्लेष्मा, मुखरोग, नेत्ररोग, व्रण और दाहनाशक, उष्ण, रसायन, तिक्त और भेदक है। २ तुत्थ, तूतिया।

नीलाञ्जनच्छदा (सं॰ स्त्री॰) जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़।

नीलाञ्जना (सं॰ स्त्री) नीलं मेघं अञ्जयतीति अञ्ज-णिच्-ल्यु-टाप्। विद्युत्, बिजली।

नीलाञ्जनी (सं॰ स्त्री॰) नीलवत् अञ्जतेऽनयेति अञ्ज-णिच्-ल्यु, ततो ङीप्। कालाञ्जनी क्षुप, काली कपास।

नीलाञ्जसा (सं॰ स्त्री॰) १ अप्सरोभेद, एक अप्सरा। २ नदीविशेष, एक नदी। ३ विद्युत्, बिजली।

नीलाण्डक (सं॰ पु॰) रोहितमत्स्य, रोहित मछली।

नीलाथोथा (हिं॰ पु॰) तांबेकी उपधातु, तूतिया। वैद्यकमें लिखा है, कि जिस धातुकी जो उपधातु होती है उसमें उसीका-सा गुण होता है पर बहुत हीन। तांबेका यह नीला लवण खानोंमें भी मिलता है लेकिन अधिकतर कारखानोंमें निकाला जाता है। तांबेके चूरको यदि खुली हवामें रख कर तपावें या गलावें और उसमें थोड़ासा गन्धकका तेजाब डाल दें तो तेजाबका अम्ल-गुण नष्ट हो जायगा और उसके योगसे तूतिया बन जायगा। नीलाथोथा रंगाई और दवाके काममें आता है। वैद्यकमें यह क्षारयुक्त, कटु, कसैला, वमनकारक, लघु, लेखन गुणयुक्त, भेदक, शीत-

वीर्य; नेत्रोंको हितकर तथा कफ, पित्त, विष, पथरी, कुष्ठ और खाजको दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया शोध कर अल्प मात्रामें दिया जाता है।

विशेष विवरण तुत्थ शब्दमें देखो।

नीलाद्रि (सं० पु०) १ नीलपर्वत। २ श्रीक्षेत्रका नीलाचल।

नीलाद्रिकर्णिका (सं० स्त्री०) कृष्णापराजिता।

नीलाधर—हिन्दीके प्राचीन कवि। संवत् १७०५में ये उत्पन्न हुए थे। पुराने कवियोंने इनकी खूब प्रशंसा की है।

नीलापराजिता (सं० स्त्री०) नीला अपराजिता। नीली अपराजिता। पर्याय—नीलपुष्पी, महानीलि, नीलगिरिकर्णिका, गवादनी, व्यक्तगन्धा, नीलसन्ध्या, नीलाद्रिकर्णी। गुण—शिशिर, तिक्त, रक्तातीसार, ज्वर, दाह, छर्दि, उन्माद, मदभ्रमजन्य पीड़ा, श्वास और कासनाशक।

नीलाब्ज (सं० क्ली०) नीलपद्म, नीला कमल।

नीलाभ (सं० त्रि०) नीलयुक्त।

नीलाभ्र (सं० क्ली०) कृष्ण अभ्र, काला अबरक।

नीलाम (हिं० पु०) बिक्रीका एक ढंग जिसमें माल उस आदमीको दिया जाता है जो सबसे अधिक दाम बोलता है; बोली बोल कर बेचना।

नीलामघर (हिं० पु०) वह घर या स्थान जहां चीजें नीलाम की जाती हों।

नीलामी (हिं० वि०) नीलाममें मोल लिया हुआ।

नीलाम्बर (सं० पु०) नीलमम्बरं यस्य। १ बलदेव। २ शनैश्चर। ३ राक्षस। (क्ली०) नीलं अम्बरं कर्मधारय। ४ नीलवस्त्र, नीला कपड़ा। ५ तालीशपत्र। (त्रि०) ६ नीलवस्त्रयुक्त, नीले कपड़ेवाला।

नीलाम्बरी (सं० स्त्री०) एक रागिनी।

नीलाम्बुज (सं० क्ली०) नीलं अम्बुजं कर्मधारयः। नीलपद्म, नील कमल।

नीलाम्बुजन्मन् (सं० क्ली०) अम्बुनि जन्म यस्य, अम्बुजन्मन् नीलं अम्बुजन्म। नीलोत्पल, नीलकमल।

नीलाम्लान (सं० पु०) आ म्ला-ल्यु; नीलाम्लानः, नीलः आम्लानः। पुष्पभेद, काला कोरांठा। इसका गुण—कटु, तिक्त, कफ, वायु, शूल, कण्डू, कुष्ठ, व्रण, शोफ और त्वग्दोषनाशक है।

नीलाम्ली (सं० स्त्री०) नीला अम्ली। क्षुपभेद, नलबुड़गुड़। पर्याय—नीलपिष्टोड़ी, श्यामाम्ली, दीर्घशाखिका। गुण—मधुर, रुच और कफवातनाशक।

नीलारुण (सं० पु०) नीलः अरुणः वर्णो वर्णेन इति समासः। १ सूर्योदयकालमें अरुणवर्णमिश्रित नीलाभास। २ नील और अरुण वर्णविशिष्ट।

नीलालु (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः आलुः कर्मधारयः। कन्दभेद। पर्याय—असितालु, श्यामलालुक। गुण—मधुर, शीतल, पित्तदाह और श्रमनाशक।

नीलावती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका चावल।

नीलाशी (सं० स्त्री०) नीलं नीलवर्णं अश्नुते व्याप्नोति अश-अण्, गौरादित्वात् ङीष्। १ नीलनिर्गुण्डी, नील सम्हालुवृक्ष।

नीलाशोक (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः अशोकः। नीलवर्ण अशोक।

नीलाश्मजम् (सं० क्ली०) तुत्थक, तूतिया।

नीलाश्मन् (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः अश्मा। नीलवर्णप्रस्तरभेद, नीलकान्तमणि।

नीलाश्व (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

नीलासन (सं० पु०) नीलः नीलवर्णः असनो वृक्षभेदः। १ असनवृक्ष, पियासालका वृक्ष। पर्याय—नीलबीज, नीलपत्र, सुनीलक, नीलद्रुम, नीलसार, नीलनिर्यासक। गुण—कटु, शीतल, कषाय, सारक, कुष्ठ, कण्डू और दद्रुनाशक। २ रतिबन्धविशेष, एक रतिबन्ध।

नीलाहट (हिं० स्त्री०) नीलापन।

नीलाह्वा (सं० स्त्री०) कृष्ण अपराजित।

नीलि (सं० पु०) नील-इन्। जलजन्तुभेद, एक जलजन्तुका नाम।

नीलिका (सं० स्त्री०) नील क-टाप्, कापि अत-इत्वं वा नीलीव कन् टाप्, पूर्वह्रस्वः। १ नीलवरी। २ नीली निर्गुण्डी, नील सम्हालुवृक्ष। पर्याय—नीली, नीलिनी, तूली, कालदोला, नीलिका, रञ्जनी, श्रीफली, तुच्छा, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, क्लीतका, कालकेशी, नीलपुष्पा। ३ नेत्ररोगविशेष, आंखका एक रोग। सुश्रुतमें इस रोगका

विषय इस प्रकार लिखा है—दोष जब चतुर्थ पटलमें आश्रय लेता है, तब तिमिररोग उत्पन्न होता है। जिस तिमिररोगमें कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिङ्गनाश कहते हैं और जिसमें आकाशमें चन्द्र सूर्य, नक्षत्र, बिजली आदिकी-सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलका कहते हैं। जब यह रोग वायुसे उत्पन्न होता है, तब सभी पदार्थ अरुणवर्ण और सचल दिखाई देते हैं। पित्त कर्त्तृक उत्पन्न होनेसे आदित्य, खद्योत, इन्द्रधनु, तड़ित् और मयूरपुच्छकी तरह विचित्र वर्ण अथवा नील कृष्णवर्ण देखनेमें आता है अथवा सफेद बादलकी तरह अत्यन्त स्थूल और मेघशून्य समयमें मेघाच्छन्नकी तरह अथवा सभी पदार्थ जलप्लावित-से मालूम पड़ते हैं। रक्त कर्तृक इस रोगके उत्पन्न होनेसे सभी द्रव्य रक्तवर्ण और अन्धकारमय नजर आते हैं।

यदि यह रोग कफसे उत्पन्न हो, तो सभी वस्तु श्वेतवर्ण और स्निग्ध देखनेमें आती हैं। यदि यह सन्निपातज हो, तो जिधर ही नजर दौड़ाई जाय उधर ही सभी पदार्थ हरित, श्याम, कृष्ण, धूम्र आदि विचित्रवर्णविशिष्ट और विप्लुतकी तरह दीख पड़ते हैं। ४ क्षुद्ररोगभेद। क्रोध और परिश्रम द्वारा वायु कुपित हो कर तथा पित्तके साथ मिल कर मुखदेशमें आश्रय लेती है, इससे मुखमें छोटे छोटे फोड़े निकल आते हैं जिन्हें मुखव्यङ्ग कहते हैं। इस लक्षणका चिह्न जब शरीर वा मुखमें उत्पन्न होता है, तब उसे नीलिका कहते हैं।

इसकी चिकित्सा—शिरावेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग द्वारा मुखव्यङ्ग, नीलिका, न्यच्छ और तिलकालककी चिकित्सा करनी होती है। वटवृक्षकी कली और मसूरको एक साथ पीस कर उसका प्रलेप देनेसे यह रोग दूर हो जाता है। मधुके साथ मञ्जिष्ठा पीस कर उसका अथवा शशकके रक्तका वा वरुणवृक्षके छिलकेको छागमूत्रसे पीस कर लेप देनेसे मुखव्यङ्ग और नीलिका नष्ट होती है। अर्कवनके दूध और हल्दीको पीस कर उसका प्रलेप देनेसे भी बहुत दिनोंको नीलिका जाती रहती है। दूधके साथ पीसे हुए मसूरमें घी मिला कर मुखमें प्रलेप देनेसे नीलिकारोग प्रशमित होता है और मुखकी कान्ति उज्ज्वल होती है। वटवृक्षका हरा पत्ता, मालती, रक्तचन्दन, कुट और लोध्र इन सब द्रव्योंको पीस कर प्रलेप देनेसे नीलिका जाती रहती है। इस रोगमें कुङ्कुमादि तैल ही सर्वोत्कृष्ट है। कुङ्कुमादि-तैलकी प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल ८ सेर, कल्कार्थ कुङ्कुम, श्वेतचन्दन, लोध्र, पतङ्ग, रक्तचन्दन, खसकी जड़, मञ्जिष्ठा, यष्टिमधु, तेजपत्र, पद्मकाष्ठ, पद्ममूल, कुट, गोरोचना, हरिद्रा, लाक्षा, दारुहरिद्रा, गेरुमटी, नागकेशर, पलाशफूल, वटाङ्कुर मालती, मोम, सर्षप, सुरभिवच प्रत्येक द्रव्य आध छटांक, जल ३२ सेर।

इस तैलको धीमी आंचसे पाक कर प्रयोग करनेसे व्यङ्ग, नीलिका, तिलकालक, माषक, न्यच्छ आदि रोग प्रशमित हो कर चन्द्रमण्डलकी तरह मुखकान्ति उज्ज्वल होती है। (भावप्रकाश) ५ जलका ज्वर।

नीलिकाकाच (सं॰ पु॰) नेत्ररोगविशेष। नीलिका देखो।

नीलिन् (सं॰ त्रि॰) नीलः प्रशस्ततयाऽस्त्यस्य इति इन्। प्रशस्त नीलवर्ण युक्त।

नीलिनी (सं॰ स्त्री॰) नीलिन् ङीप्। १ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। २ नीलवृक्षाहरु, नीला बोना। ३ श्यामत्रिवृटा। ४ अजमोदकी पत्ती। ५ सिंहपिप्पली।

नीलिनीफल (सं॰ क्ली॰) नीलीबीज, नीलका बीया।

नीलिमा (हिं॰ स्त्री॰) १ नीलापन। २ श्यामता, स्याही।

नीली (सं॰ स्त्री॰) नीलो निष्पाद्यत्वेनऽस्त्यस्याः, नील-अच्, ततो गौरादित्वात् ङीष्। १ वृक्षभेद, नीलका पौधा। पर्याय—काला, क्लीतकिका, ग्रामीणा, मधुपर्णिका, रञ्जनी, श्रीफली, तुत्था, तूणी, दोला, नीलिनी, तूली, चोणी, मेला, नीलपत्नी, रात्री, नीलीका, नीलपुष्पी, काली श्यामा, शोधनी, श्रीफला, ग्राम्या, भद्रा, भारवाही, मोचा, कृष्णा, व्यञ्जनकेशी, महाफला, असिता, क्लीतनी, वेशी, चोरटिका, गन्धपुष्पा श्यामलिका, रङ्गपत्री, महाबला, स्थिररङ्गा, रङ्गपुष्पा, तूलि, तूलिका, श्रीणिका।

इसका गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, केशहितकर, कास, कफ, वायु और विषोदर, व्याधि, गुल्म, जन्तु और ज्वरनाशक।

भावप्रकाशकेमतमें यह रेचक, तिक्त, केशहितकर और भ्रमनाशक है।

उष्णका गुण—उदर, प्लीहा, वातरक्त और कफवायु-

नाशक। नील शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ नीलिका-रोग। ३ नीलाञ्जनिका, नीला सुरमा। ४ कालाञ्जनि, काली कपास। ५ श्रीफलिका, बेलका पेड़। ६ वृद्दारक।

नीली (हिं॰ वि॰) काले रंगकी, नीलके रंगकी, काली, आसमानी।

नीलीघोड़ी (हिं॰ स्त्री॰) १ काले अथवा सब्ज़ रंगकी घोड़ी। २ जामेके साथ सिली हुई कागजकी घोड़ी। इसे पहन लेनेसे जान पड़ता है, कि आदमी घोड़े पर सवार है। डफाली इसे पहन कर गाजी मियांके गीत गाते हुए भीख मांगने निकलते हैं।

नीलीचकरी (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पौधा।

नीलीचाय (हिं॰ स्त्री॰) यज्ञकुश या अगिया घास।

नीलीफल (सं॰ क्ली॰) श्रीफल।

नीलीराग (सं॰ पु॰) १ प्रेमभेद। २ स्थिर प्रेमपुरुष। इसका पर्याय स्थिरसौहृद है। ३ नायक-नायिकाका पूर्वरागविशेष। जिस रागमें मनोगत प्रेम अवगत नहीं होता और अतिमात्र शोभित है, उस रागको नीलीराग कहते हैं। रामसीताका राग नीलीराग है।

नीलीरोग (सं॰ पु॰) चक्षुरोगभेद, आंखका एक रोग। नीलीका देखो।

नीलू (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी घास, पलवान।

नीलेश्वर—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कणाड़ा जिलेके अन्तर्गत कासरगोड़ तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ १२° १६' उ॰ और देशा॰ ७५° ८' पू॰के मध्य अवस्थित है। यहां साधारणतः हिन्दू, मुसलमान और ईसाईका वास है। यह शहर पहले मलवारके चिरक्कलवंशके अधीन था। १७८८ ई॰में इष्ट-इण्डिया कम्पनीने इस पर अपना दखल जमाया और राजाको पेन्शन मुकर्रर कर दी। आज तक भी राजाके वंशधरोंको पेन्शन मिलती है।

नीलोत्पल (सं॰ क्ली॰) नीलं नीलवर्णं उत्पलं। नील-पद्म (A blue lotus, Nympsea caerulny), नील-कमल। पर्याय—उत्पलक, कुवलय, इन्दीवर, कन्दोत्थ, सौगन्धिक, सुगन्ध, कुड़नालक, असितोत्पल, कन्दोट, इन्दिरावर, इन्दीवार, नीलपत्र। गुण—सुस्वादु, शीत, सुरभि, सौख्यकारी, पाकमें अतितिक्त और रक्तपित्त-नाशक। उत्पल देखो।

नीलोत्पलमय (सं॰ त्रि॰) नीलोत्पल-मयट्। नीलपद्म-समाच्छन्न, नीलपद्मयुक्त, जिसमें नीलकमल हों।

नीलोत्पलाद्यघृत (सं॰ क्ली॰) नीलोत्पलाद्यं नाम घृतं। चक्रपाणिदत्तोक्त घृतौषधभेद।

नीलोत्पली (सं॰ पु॰) नीलोत्पलं धार्यत्वेन तद्धर्णं वा अस्त्यस्येति इनि। १ शिवांशभेद, शिवके एक अंग। २ बौद्धमहात्मा मंजुश्रीका एक नाम।

नीलोद (सं॰ पु॰) नीलजलविशिष्ट सागर वा नदी, वह समुद्र वा दरया जिसका पानी नीला हो।

नीलोफर (फा॰ पु॰) १ नील कमल। २ कुमुद, कुईं। हकीमी नुसखोंमें कुमुद या कुईंका ही व्यवहार होता है।

नीवं (हिं॰ स्त्री॰) १ घर बनानेमें गहरी नालीके रूपमें खुदा हुआ गड्ढा जिसके भीतरसे दीवारकी जोड़ाई आरम्भ होती है, दीवार उठानेके लिए गहरा किया हुआ स्थान। २ दीवारके लिए गहरे किये हुए स्थानमें ईंट, पत्थर, मिट्टी आदिकी जोड़ाई या जमावट जिसके ऊपर दीवार उठाते हैं, दीवारकी जड़ या आधार। ३ स्थिति, आधार, जड़, मूल।

नीव (हिं॰ स्त्री॰) नीवं देखो।

नीवर (सं॰ पु॰) नयत्यात्मानं यत्र कुत्रचित् देहयात्रा-निष्पादनायेति नी-ष्वरच् प्रत्ययेन निपातनात् गुणाभावेन साधुः (छित्वरछत्वरेति। उण् ३।१) १ भिक्षुपरिव्राजक। २ वाणिज्य। ३ वास्तव्य, रहनेकी जगह। ४ पङ्क, कीचड़। ५ जल, पानी।

नीवाक (सं॰ पु॰) निरन्तरं नियतं वा उच्यते इति नि-वच-घञ्, कुत्वं उपसर्गस्य दीर्घत्वं च १ मूल्याधिक्य-हेतु धान्यादिमें लोकसमूहका आदरातिशय। २ तुला-धारण, अकाल, दुष्प्राप्ति, महंगी। पर्याय—प्रयाम, दुष्प्राप्यत्व, दुर्लभत्व। ३ वचननिवृत्ति।

नीवानास (हिं॰ पु॰) सत्तानाश, ध्वंस, बरबादी। (वि॰) २ नष्ट, चौपट, बरबाद।

नीवार (सं॰ पु॰) नि-वृ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वं। तृणधान्यभेद, पसही वा तिन्नीके चावल। पर्याय—तृण-धान्य, वनव्रीहि, अरण्यधान्य, मुनिधान्य, तृणोद्भव, अरण्य-शालि। गुण—मधुर, स्निग्ध, पवित्र, पथ्य, लघु। धान्य देखो।

नीवारक (सं० पु०) नीवार एव स्वार्थे कन् । नीवार, तृणधान्यभेद, तिन्नी ।

नीवारतुण्डिका (सं० स्त्री०) नीवार ।

नीवि (सं० स्त्री०) निव्ययति निवीयते वा नि-व्ये-इञ्, यलोपः पूर्वस्य दीर्घः (नौव्यो यलोपः पूर्वस्य च दीर्घः । उण ४।१३५) १ पण, बाजी । २ वणिक्‌का मूलधन, पूंजी । ३ राजपुत्रादिका बन्धक । ४ स्त्रीकटीवस्त्रबन्ध, सूतकी डोरी जिससे स्त्रियां धोतीकी गांठ बांधती हैं, फुफुंदी, नारा । ५ वस्त्रमात्र, साड़ी, धोती । ६ कमरमें लपेटी हुई धोतीकी वह गांठ जिसे स्त्रियां पेटके नीचे सूतकी डोरीसे या यों ही बांधती है । ७ लहंगेमें पड़ी हुई वह डोरी जिससे लहंगा कमरमें बांधा जाता है, इजारबन्द

नीवीभार्य (सं० त्रि०) मैल आदिसे बचानेका वस्त्र-आच्छादक ।

नीवृत् (सं० पु०) नियतं वर्त्तते वसत्यत्र जनसमूहः इति नी-वृ अधिकरणे क्विप् । ततो पूर्वपदस्य दीर्घः (नहिवृतिवृधिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ । पा ६।३।११६) जनपद, देश ।

नीव्र (सं० क्ली०) नितरां व्रियते वृ-बाहुलकात् क पूर्व-दीर्घश्च । १ छदिप्रान्तभाग, छप्परका सिरा या किनारा । पर्याय—वलीक, पटलप्रान्त । २ नेमि, पहियेका घेरा । ३ चन्द्र, चांद । ४ रेवतीनक्षत्र । ५ वन ।

नीशार (सं० पु०) निःशेषेण नितरां वा शीर्यन्ते हिम-वात्यादयोऽनेन अस्मादत्र वा शॄ-घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वं । १ हिम और वायुनिवारक आवरणवस्त्र, सरदी हवा आदिसे बचावके लिये परदा, कनात । २ मसहरी ।

नीषह (सं० त्रि०) अतिक्रम, जय ।

नीस (हिं० पु०) सफ़ेद धतूरा ।

नीसानी (हिं० स्त्री०) तेईस मात्राओंका एक छन्द । इसमें १३वीं और १०वीं मात्रा पर विराम होता है । यह उपनामके नामसे अधिक प्रसिद्ध है ।

नीसू (हिं० पु०) जमीनमें गड़ा हुआ काठका कुंदा जिस पर रख कर चारा या गन्ना काटते हैं ।

नीहार (सं० पु०) निह्रियते इति नि-हृ-घञ्, उपसर्गस्य घञीति दीर्घत्वं । १ तुषार, हिम, पाला । पर्याय—अवश्याय, तुषार, तुहिन, हिम, प्रालेय, महिका, खजल, निशाजल, निहार, मिहिका । यह कफ और वायुवर्द्धक माना गया है । २ कुज्झटिका, कुहरा । निहार देखो ।

नीहार—१ हिमालयके पाददेशमें अवस्थित एक प्राचीन जनपद । यह पौराणिक उज्जिहान जनपदके दक्षिण पश्चिम-में तथा वर्त्तमान, काबुल और सरखस् नदीके सङ्गमस्थल पर जलालाबादके समीप अवस्थित था । यह नगर मत्स्य और वामनपुराणमें निगहर वा निराहार नामसे तथा आर्यावर्त्तमानचित्रमें निगहर नामसे उल्लिखित हुआ है । अध्यापक लासेनके मतानुसार इस स्थानका नाम नगरहार है । २ गोमतीतीरवर्त्ती एक ग्राम ।

नीहारस्फोट (सं० पु०) वृहदाकार नीहारपिण्ड, बर्फका बड़ा बड़ा टुकड़ा ।

नीहारिका (सं० स्त्री०) आकाशमें धूएँका कुहरेकी तरह फैला हुआ क्षीणप्रकाश पुञ्ज जो अंधेरी रातमें सफेद धब्बेकी तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है ।

निहारिका देखो ।

नु (सं० अव्य०) नौति नुदति वा । नु, नद वा मितद्र्वा-दित्वात् डु । १ वितर्क । २ अपमान । ३ विकल्प । ४ अनुनय । ५ अतीत । ६ प्रश्न । ७ हेतु । ८ अप-देश । ९ आदेश । १० अनुताप । ११ संशय । १२ सम्मान । १३ सम्बोधन । १४ अपमान ।

नु (सं० पु०) अनुस्वार ।

नुकता (अ० पु०) १ बिन्दु, बिन्दी । २ लगती हुई उक्ति, फबती, चुटकला । ३ दोष, ऐब । ४ घोड़ोंके मत्थे पर बांधनेका एक परदा । यह झालरके रूपका होता है और इसलिये बांधा जाता है जिसमें आंखमें मक्खियां न लगें ।

नुकताचीन (फा० वि०) छिद्रान्वेषी, दोष ढूँढनेवाला या निकालनेवाला ।

नुकताचीनी (फा० स्त्री०) छिद्रान्वेषण, दोष निकालने-का काम ।

नुकती (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी मिठाई, बेसनकी छोटी महीन बुंदिया ।

नुकरा (अ० पु०) १ चांदी । २ घोड़ोंका सफेद रंग । (वि०) ३ सफेद रंगका ।

नुकरी (हिं० स्त्री०) जलाशयोंके पास रहनेवाली एक

चिड़िया जिसके पैर सफेद और चोंच काली होती है।

नुकसान (अ० पु०) १ ह्रास, कमी, घटी। २ क्षति, हानि, घाटा। ३ अवगुण, दोष, विकार, बिगाड़, खराबी।

नुकाई (हिं० स्त्री०) खुरपीसे निरानेका काम।

नुकीला (हिं० वि०) १ नोकदार, जिसमें नोक निकली हो। २ सुन्दर ढबका, नोक झोंकका, बांका तिरछा।

नुकीली (हिं० वि०) नुकीला देखो।

नुक्कड़ (हिं० पु०) १ नोक, पतला सिरा। २ अन्त, सिर, छोर। ३ निकला हुआ कोना।

नुक्का (हिं० पु०) १ नोक। २ गेड़ोके खेलमें एक लकड़ी।

नुक्स (अ० पु०) १ दोष, ऐब, खराबी, बुराई। २ त्रुटि, कसर।

नुखरना (हिं० क्रि०) भालूका चित लेटना।

नुखार (हिं० स्त्री०) छड़ीकी मार जो कलन्दर भालूके मुंह पर मारते हैं।

नुगदी (हिं० स्त्री०) नुकती देखो।

नुगिन—दिल्लीके निकटवर्त्ती एक नगर। यह शाहरनपुर जिलेमें पड़ता है और अक्षा० २९° २७' ३० तथा देशा० ७८° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां अनेक प्राचीन कीर्त्तियां देखनेमें आती हैं जिनमेंसे कालूखांका दुर्ग प्रसिद्ध है।

नुङ्क्लो—आसामके अन्तर्गत एक जिला। यहांके राजा तीर्थसिंहने १८२६ ई०में अपना राज्य सन्धिपत्रके अनुसार अंग्रेजोंको सुपुर्द किया। सन्धिकी शर्त्त यह थी कि कम्पनी राजाकी विदेशीय शत्रुके आक्रमणसे बचावेगी। राजा देशके आईनके अनुसार प्रजाका पालन करेंगे। यदि कोई व्यक्ति कम्पनीके अधिकृत स्थानोंमें अन्याय कार्य करके राजाके राज्यमें आश्रय ले, तो राजा उसे कम्पनीके हाथ लगा दें।

नुचना (हिं० क्रि०) १ अंश या अंगसे लगी हुई किसी वस्तुका झटकेसे खिंच कर अलग होना, खिंच कर उखड़ना, उड़ना। २ खरोंचा जाना, नाखून आदिसे छिलना।

नुचवाना (हिं० क्रि०) नोचनेमें किसी दूसरेको प्रवृत्त करना, नोचनेका काम कराना, नोचने देना।

नुजट (हिं० पु०) संगीतमें २४ शोभाओंमेंसे एक।

नुजित् उद्दौला—रोहिलखण्डके एक शासनकर्त्ता। १८वीं शताब्दीमें इन्होंने दिल्लीका शासनभार ग्रहण किया और शाहआलमके बड़े लड़के युवराज जीवानबख्तके प्रतिनिधि हो कर राजकार्य चलाया। पानीपतकी लड़ाईके बाद १७६९ ई०में पेशवा माधोरावने बहुसंख्यक सेना संग्रह कर भारतवर्ष जीतनेके लिए उन्हें भेजा। विश्वजी कृष्ण, माधोजी सिन्धिया और तुकाजी होलकरने सैन्यदलका नेतृत्व ग्रहण किया। जब उन्होंने राजपूत राजाओंको जीत लिया, तब नुजित् उद्दौला बहुत डर गये और उनसे मेल करना चाहा। लेकिन पानीपतकी लड़ाईमें इन्होंने मराठोंके विरुद्ध विपुल संग्राम किया था, इस कारण माधोजी सिन्धियाने प्रतिहिंसानलसे दग्ध हो कर इनका सन्धि प्रस्ताव मंजूर न किया। विश्वजी कृष्णने सन्धिका समाचार पेशवाको लिख भेजा। पेशवाने हुक्म दिया कि यदि नुजित् उद्दौलाके साथ सन्धि करना किसीका जी नहीं भरता है, तो उनका प्रस्तावित विषय विचारपूर्वक सुननेमें क्या आपत्ति है? तदनन्तर महाराष्ट्रोंके कौशल-क्रमसे यह स्थान अंग्रेजोंके हाथसे ले लिया गया किन्तु उनको यह आशा फलवती न हुई। थोड़े ही दिनोंके मध्य १७७० ई०में नुजित् उद्दौलाका देहान्त हो गया।

नुजिफ खाँ (नाजिफ खाँ)—१७७३ ई०में महाराष्ट्रोंका प्रभाव खर्व होने पर नुजिफ खाँने दिल्लीसम्राट्‌की सभामें फिरसे स्थान पाया।

नवाबने वजीर नुजिफ खाँको सन्तुष्ट करनेके अभिप्रायसे सम्राट् सभामें उन्हें अपना प्रतिनिधि बनाया। नुजिफ खाँने कितनी ही लड़ाइयोंमें विजय पाई थी। रोहिलखण्डवासियोंके साथ जो लड़ाई छिड़ी थी उसमें इन्होंने अंगरेज और सुजा-उद्दौलाका साथ दिया था और पीछे जाठोंका अभिमान चूर किया। आगरा भरमें इनका प्रभाव फैल गया। जब ये दूर देशोंमें नाना कार्योंमें लगे थे, तब यहां उनके आत्मीय जनोंमेंसे कितने इनके शत्रु हो गए। ये अबदुल अहमद खांको बादशाहको सभामें अपना प्रतिनिधि छोड़ गए थे। उन्हींके हाथमें नुजिफ खाँने राजकार्य और सांसारिक कार्यका भार अर्पण किया था। इस नूतन दीवानको सुजद्द-उद्दौलाकी पदवी

दी गई थी। उन्होंने सम्राट्के यहां नुजिफ खांको शिकायत कर अपनी प्रधानता जमानेमें खूब कोशिश की। नुजिफके विरुद्ध जो सब षड़यन्त्र चल रहे थे, उन्हें वे नहीं जानते थे, सो नहीं। उस समय वे भारी कामोंमें उलझे हुए थे, इस कारण उन्होंने इस ओर कुछ भी ध्यान न दिया अपने सुशिक्षित पदातिक सैन्यके गुणसे ही वे विराट् कार्यमें कृतकार्य हुए थे। जिस समय दिल्लीके सम्राट् अंग्रेजोंके आश्रममें थे, उस समय उनके कर्तृक उक्त पदातिक सैन्यका उत्कृष्टांश सुशिक्षित हुआ था। नुजिफ खांके अधीन दो दल सेना थी जिनमेंसे एक दल जर्मनवासी समरूके और दूसरा दल फरासी मेडकके अधीन था।

नुजिफ खांने निर्विघ्नतासे अपनी असाधारण क्षमताको फैलाया। वे जुल्फिकर खांकी उपाधि ग्रहण कर अमीर-उल-उमराव हुए थे। अनन्तर न्यायपरायणता और दृढ़ताके साथ ये सम्राट् और साम्राज्य दोनोंका शासन करने लगे।

नुजिब-उद्दौला (नाजिब-उद्दौला)—रोहिलखण्डके एक ख्यातनामा सुदक्ष वीरपुरुष और जमींदार। १७५७ ई०में अहमदशाहने इन्हें सेनापतिके पद पर प्रतिष्ठित किया, किन्तु बादशाहके अनुपस्थितिकालमें वजीरने नाजिब उद्दौलाके स्थान पर अपने आदमीको नियुक्त किया। दिल्लीके राजपुत्र अलीगहर पिताके वजीरके स्वभावको सहन न कर सके और नाजिबकी शरणमें पहुंचे। बादशाहने पुनर्वार नाजिब उद्दौलाको सेनापति बनाया। इस समय २य आलमगीरके वजीर साहब उद्दीनने अपनी क्षमताको दृढ़ रखनेके लिये महाराष्ट्रोंसे सहायता मांगी। यह खबर जब रघुनाथ राव (राघव)को लगी, तब उन्होंने मालवसे दिल्लीयात्रा करके नगरमें घेरा डाला। नाजिब उद्दौला किसी तरह भाग गये। राघवने हिन्दुस्थानका त्याग कर सैन्यसमूहको दो दलोंमें विभक्त कर दिया। एक दल लाहोर चला गया और दूसरा दिल्लीमें ही रहा। शेषोक्त दलका नेतृत्व दत्तजी सिन्दियाके हाथमें था। उन्होंने साहब उद्दीनके आज्ञानुसार नाजिब उद्दौला और रोहिलखण्ड-वासियोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। अन्तमें नाजिब उद्दौलाने गोविन्दपन्थकी सेनाको तहस नहस कर गङ्गाके दूसरे पार मार भगाया। इसी बीचमें अहमदशाह १७५९ ई०में पञ्जाब जीतनेके लिए आए और नाजिबके साथ मिल गए। दोनोंने मिल कर दत्तजी सिन्दियाको अच्छी तरह परास्त किया। अहमदशाहके मरने पर उनके पुत्र अलीगहरने शाहआलमकी उपाधि धारण कर सिंहासन पर अधिकार जमाया। इस समय रोहिल्लागण बहुत क्षमताशाली हो उठे थे और दिल्लीमें आ कर रहने लगे थे। सरदार नाजिबउद्दौलाने अपनी स्वाधीनता फैला दी और रोहिलखण्डमें राज्य करने लगे। १७७० ई०के अक्तूबर मासमें इनका देहान्त हुआ।

नुजिब खाँ (नाजिब खाँ) रोहिलखण्डके एक शासनकर्ता। १७७२ ई०में महाराष्ट्रोंने रोहिलखण्ड पर आक्रमण कर इनके प्रचुर धन-रत्न छिया लिए थे।

नुजीबाबाद—मुरादाबाद जिलेका एक नगर।

नजीबाबाद देखो।

नुजुफगढ़ (नाजफगढ़)—कानपुर जिलेके अन्तर्गत इलाहाबादके मध्यवर्त्ती एक नगर। यह कानपुर शहरसे १० कोस दक्षिण-पूर्व गङ्गाके किनारे अवस्थित है। वर्त्तमान समयमें यह एक प्रसिद्ध वाणिज्य स्थानमें गिना जाता है। इसके पास ही एक नीलकोठी है जिससे यह और भी प्रसिद्ध हो गया है।

नुटका—उत्तर-अमेरिकाके पश्चिम उपकूलवासी जातिविशेष। रकिपर्वतके शीतप्रधान स्थानसे ले कर समुद्रतट तक इनका वास है। अङ्गरेजोंने इनका 'नुटका-कलम्बीय' नाम रखा है। किन्तु यह नाम उनका देशीय नहीं है। दलभेदसे ये कई नामोंसे पुकारे जाते हैं, यथा चेनुक, क्लोटसप, वाकश, सुल्टलोमा वा क्लामथ।

ये देखनेमें अङ्गरेजोंसे गोरे होते हैं। किन्तु देश व्यवहारके अनुसार ये अपने सर्वाङ्गमें नाना प्रकारकी मट्टी लेपे रहते हैं। इनके मस्तकका आकार अपरापर मनुष्योंके जैसा होता है लेकिन कुछ चिपटा होता है। इस कारण इनका मस्तक किस जातिके जैसा है, इसका निरूपण करना कठिन हो जाता है। जब लड़का जन्म लेता है तब उसके मस्तकके दोनों बगल काठकी पटरी जोरसे बांध देते हैं। कुछ कालके बाद ही उसका मस्तक सदाके लिए चिपटा हो जाता है। आश्चर्यका विषय यह

है, कि ऐसी विकृतावस्थासे उनके मस्तिष्क वा बुद्धिशक्तिको कोई हानि नहीं होती। ये लोग कर्मठ और अवस्थता-नुयायी सुचतुर होते हैं। किन्तु इतने शीतल स्थानमें रहने पर भी ये उपयोगी वस्त्रादि बुनना नहीं जानते। यही कारण है, कि ये हमेशा रोएंदार भालूका चमड़ा पहने रहते हैं। ये लोग सुकौशल और तत्परताके साथ अपने वासोपयोगी गृहादि और प्रयोजनानुसार नौकादि बनाते हैं।

इनका आहार-व्यवहार अन्यान्य मनुष्यजातिसे पृथक् है। सामन मछली ही इनकी प्रधान उपजीविका है। शीतकालमें भोजनके लिए ये पहले-से ही मछली-को संग्रह कर सुखा रखते हैं। जब इन्हें काफी मछली मिल जाती है, तब ये फूले नहीं समाते और बड़े चैन-से दिन काटते हैं। उस समय कोई कोई दलपति वन-में जा कर अनाहार ऐन्द्रजालिक मन्त्रसाधन करते हैं। इस प्रकारके तपःकारियोंको 'तामिश' कहते हैं। इन लोगोंका विश्वास है, कि दलपति तपस्याके समय 'नैलोक' नामक एक देवताके साथ कथोपकथन करते हैं और उन्हींकी कृपासे नाना प्रकारके अलौकिक कार्य कर सकते हैं।

प्रवाद है, कि तुटका लोग नरमांस खाते हैं, किन्तु यह कहां तक सत्य है, कह नहीं सकते। 'तामिश' तपस्विगण किसी किसी दिन कृष्णलोमविशिष्ट चर्मसे शरीर ढक कर और मस्तक पर वल्कलनिर्मित लालवर्णके मुकुट पहन कर वनसे बाहर निकलते और ग्राममें प्रवेश करते हैं। उन्हें देखनेके साथ ही आबालवृद्धवनिता सबके सब भाग जाते हैं, केवल जो साहसी हैं, वे ही उनके सामने आते हैं। इस समय वे उन्हें पकड़ कर उनके हाथसे दो तीन ग्रास मांस काट लेते हैं। मांस काटनेके समय धीर हो कर स्तब्ध रहना ही प्रशंसनीय है। जो ऐसा नहीं करते उनकी समाजमें निन्दा होती है। तामिश भी यदि अनायास तथा शीघ्रतासे मांस काट न सकें, तो उनकी भी निन्दा फैल जाती है। उल्लिखित प्रकारसे जितना मांस खाया जाता है, उसीसे अनुमान कर सकते हैं, कि ये लोग कहां तक मांसाशी हैं। इसके अलावा ये अन्य नरमांस भोजन नहीं करते।

इनकी भाषाका अनुशीलन करनेसे ये अजतेक जातिकी शाखा समझे जाते हैं। दोनों जातियोंकी भाषा-के अनेक शब्दोंके शेष भागमें 'तल' वा 'तली' शब्द लगा रहता है और दोनों ही एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। उदाहरणस्वरूप दो एक शब्द और उनके अर्थ नीचे दिए जाते हैं यथा—'आप् कुइक्तितल'=आलिङ्गन; 'तोमकक्तिक्तितल'=चुम्बन; 'हितलतुजितल'=जृम्भन; 'आगकोयातल'=युवती, रमणी इत्यादि।

इनके घर काठके बने होते हैं जो बहुत अपरिष्कृत और मछलीकी गन्धसे परिपूर्ण रहते हैं। घरमें काठकी अनेक पुतलियां रहती हैं। कभी कभी मछली पकड़ने-के जितने औजार हैं तथा किस प्रकारसे मछलियां पकड़ी जाती हैं, उन्हें भी दीवारमें अङ्कित कर देते हैं। इनका आवासस्थान जैसा अपरिष्कार रहता, परिधेय वस्त्रादि भी वैसा ही रहता है।

सूती कपड़ेका ये लोग जरा भी व्यवहार नहीं करते और न इसे बुनना ही जानते हैं। भालूके चमड़े-के अलावा 'पाइन' वृक्षकी छालकी बनी हुई एक प्रकार-की चटाई पहनते हैं। कभी कभी चटाईके नीचे ऊपर रोएंसे ढक कर उसे ही शरीरके ऊपर रख लेते हैं।

इनका प्रधान खाद्य मछली है। इनका घर हमेशा मछलीसे भरा रहता है। मछलीकी गन्ध इतनी तीव्र होती है कि तुटकाके सिवा अन्य मनुष्य घरमें प्रवेश नहीं कर सकते। ये लोग मछलीका तेल भी पीते हैं और उनके अण्डेसे एक प्रकारकी रोटी बनाते हैं।

ये लोग बड़े असभ्य होते हैं, इस कारण इनकी बुद्धि-वृत्ति उतनी सुतीक्ष्ण नहीं होती। शिकार खेलने तथा मछली पकड़नेके सिवा ये दूसरा कोई काम नहीं जानते। आचार-व्यवहारमें ये लोग रक्तवर्ण मार्किनजातिकी अपेक्षा सब प्रकारसे निकृष्ट हैं।

तुत (सं० त्रि०) तु स्तुतौ क्त। स्तुत, प्रशंसित, जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

तुतरिया—मालवके अन्तर्गत एक क्षुद्र शहर। यह अक्षा० २४° ७' उ० और देशा० ७५° २५' पू०के मध्य अव-स्थित है।

तुति (सं० स्त्री०) तु-भावे-क्तिन्। १ स्तुति, वन्दना। २ पूजा।

नुत्त (सं० त्रि०) नुद-क्त पाक्षिको नत्वाभावः (नुदविदेति। पा ८।२।५६) १ क्षिप्त, चलाया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ। ३ क्षुद्रपनसवृक्ष। ४ लकुचवृक्ष।

नुत्फा (अ० पु०) १ शुक्र, वीर्य। २ सन्तति, औलाद।

नुत्फाहराम (अ० वि०) १ जिसकी उत्पत्ति व्यभिचारसे हो, वर्णसंकर, दोगला। २ कमीना, बदमाश।

नुनखण्ड—बालेश्वरका एक परगना। क्षेत्रफल २०६६ वर्गमील है। इसमें कुल २७ जमींदारी लगती हैं और राजस्व ११०२०) रु०का है।

नुनखरा (हिं० वि०) स्वादमें नमक-सा खारा, नमकीन।

नुनखारा (हिं० वि०) नुनखरा देखो।

नुनना (हिं० क्रि०) लुनना, खेत काटना।

नुनी (हिं० स्त्री०) छोटी जातिका तूत। यह हिमालय पर काश्मीरसे ले कर सिक्किम तक तथा बरमा और दक्षिण-भारतके पहाड़ों पर होता है।

नुनेरा (हिं० पु०) १ नोनी मट्टी आदिसे नमक निकालनेवाला, नमक बनानेका रोजगार करनेवाला। २ लोनिया, नोनिया। लोनिया देखो।

नुन्दरवार—खान्देश जिलेका एक नगर। पहले यह नगर बहुत विस्तृत था। अभी इसके चारों ओर भग्न प्राचीर रह गए हैं। यह अक्षा० २१° २५' उ० और देशा० ७४° १५' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके पासकी जमीन बहुत उर्वरा है, किन्तु जलाभावसे उपयुक्त शस्यादि नहीं होते। नगरसे एक पावकी दूरी पर दादतपीरकी कब्र है। कब्रके ऊपर एक मन्दिर बना हुआ है। इसके अलावा और भी कितने मन्दिर देखनेमें आते हैं।

नुन्दियाल (दूसरा नाम गाजीपुर)—बालाघाट जिलेके अन्तर्गत एक बहुजनाकीर्ण शहर। इसके चारों ओर मट्टीकी दीवार है और बीचमें एक दुर्ग है। यह अक्षा० १५° २३' उ० और देशा० ७८° ३७' पू०के मध्य अवस्थित है।

नुन्न (सं० त्रि०) नुद-क्त निष्ठा तस्य पूर्वपदस्य च नः। १ नुत्त, क्षिप्त, चलाया हुआ। २ प्रेरित, भेजा हुआ।

नुब्र—लादुखके उत्तरपश्चिममें अवस्थित एक जिला। यह हिमालयके उत्तर पश्चिम सायुकनदीके किनारे अक्षा० ३४°से ३६° उ० और देशा० ७७°से ७८° पू०के मध्य अवस्थित है। तिब्बत भरमें यह स्थान बहुत ऊँचा और अनुर्वर है।

नुमङ्गलकोट—मलवार प्रदेशका एक छोटा शहर। यह अक्षा० ११° ३२' उ० और देशा० ७६° ३५' पू०के मध्य कोलिकट्से ५२ मील पूर्व-उत्तरमें अवस्थित है।

नुमाइश (फा० स्त्री०) १ प्रदर्शन, दिखावट, दिखावा। २ तड़क भड़क, ठाटबाट, सजधज। ३ नाना प्रकारकी वस्तुओंका कुतूहल और परिचयके लिए एक स्थान पर दिखाया जाना। ४ वह मेला जिसमें अनेक स्थानोंसे इकट्ठी की हुई उत्तम और अद्भुत वस्तुएं दिखाई जाती हैं।

नुमाइशगाह (फा० स्त्री०) वह स्थान जहां अनेक प्रकारकी उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ संग्रह करके दिखाई जायँ।

नुमाइशी (फा० वि०) १ दिखाऊ, दिखौवा, जो देखनेमें भड़कीला और सुन्दर हो, पर टिकाऊ या कामका न हो। २ जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो।

नुम्नि (लुम्नि)—बेलुचिस्थानके कछातके अन्तर्गत लुजकी एक श्रेणीके मनुष्य। ये लोग मुसलमान धर्मावलम्बी हैं। कराचीके नुम्निगण किसी राजपत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं, ऐसा प्रवाद है। वर्त्तमान समयमें ये लोग ४२ शाखाओंमें विभक्त हैं।

नुरुल्लापुर—त्रिपुराराज्यका एक परगना। इसका क्षेत्रफल ७३३ वर्गमील है। इस परगनेमें कुल चार जमींदारी लगती हैं।

नुरतिलङ्ग—जैन्तिया पहाड़के मध्यवर्ती एक नगर। इस स्थानके अधिवासी पत्थरके स्तम्भ बनाते हैं। लेफ्टिनेण्ट इवल साहबका कहना है कि इन स्तम्भके साथ उनके धर्मका सम्बन्ध है।

नुवलराय (नवलराय)—एतावाजिलावासी एक सक्सेनी कायस्थ। अपने जीवनके प्राक्कालमें ये अयोध्याके नवाब बुर्हन उल-मुल्कके यहां लेखकके कार्यमें नियुक्त हुए।

बुर्हानके मरने पर उनके भागिनेय सफदरजङ्ग अयोध्याके नवाब-वजीरपद पर अभिषिक्त हुए। उन्होंने

नर्बलरायको राजाकी उपाधि दे कर सैन्याध्यक्ष और अपने सहकारीरूपमें नियुक्त किया। इस समय सफदरको कई वर्ष दिल्लीमें रह कर विद्रोहियोंको दमन करना पड़ा था और नवलराय स्वयं सुजाउद्दौलाके साथ अयोध्याप्रदेशके शासनकार्य चला रहे थे। जब बादशाह महम्मदशाह अली महम्मदखांके विरुद्ध युद्धयात्रा कर शम्भल जिलेके बङ्गशदुर्गको जीत न सके, तब नवाब-वजीरके आदेशसे महाराज नवल शम्भलको गए और एक ही दिनमें दुर्ग-प्राचीरको तहस-नहस कर शत्रुको हस्तगत कर लिया। इस पर सफदरने प्रसन्न हो कर इनकी बड़ी तारीफ की और बहुमूल्य पदार्थ पुरस्कारमें दिये। १७६० ई०में जब रोहिला-अफगान विद्रोही हो उठे, तब महाराज नवल उन्हें दमन करनेके लिये अग्रसर हुए। इस युद्धमें वे महम्मद खां बङ्गशके साथ बहुत काल तक असीम साहसके साथ लड़ते हुए मारे गए। पीछे इनके लड़के खुसालसिंह राजा हुए।

नुवल (नवलसिंह)-भरतपुरके जाटवंशीय राजा सूर्यमल्लके तृतीय पुत्र, २य पत्नीके प्रथम गर्भजात। सूर्यकी प्रथमा स्त्रीके द्वितीय पुत्र रतनसिंहकी मृत्युके बाद उनके पांच वर्षके पुत्र खेरोसिंह मन्त्रिसभासे राजपद पर प्रतिष्ठित हुए। अपने भतीजेका राजकार्य चलानेके लिये नवलसिंह नियुक्त हुए। करीब एक मासके बाद खेरोसिंहकी मृत्यु हो गई। अब नुवलसिंह सिंहासन पर बैठे और स्वाधीनभावसे राज्यशासन करने लगे।

राज्यवर्द्धनकी ओर इनका विशेष ध्यान था। ११८६ हिजरीमें इन्होंने बागु जाटके पुत्र अजीतसिंहसे बामलगढ़ दुर्ग छीन लिया। इस समय अजीतकी सहायताके लिये दिल्लीसे राजसेना आई। किन्तु रास्तेमें ही नवलने उन्हें मार भगाया। इस युद्धमें इन्हें दिल्लीके अधिकारभुक्त मिर्केन्द्रा और अन्यान्य स्थान हाथ लगे। पीछे सम्राट् शाह आलमने सैन्याध्यक्ष नजफ खांको उनके विरुद्ध भेजा। हदल और वर्सानके निकट दोनोंमें लड़ाई छिड़ी। पहले नवलने जो सब स्थान अपने अधिकारमें कर लिये थे उनमेंसे नजफ खां फरीदाबाद और बल्लबगढ़ जीत कर पीछे दीग दुर्ग जीतनेके लिये अग्रसर हुए। इसी दुर्गमें नवलसिंह रहते थे। नजफ खां इस दुर्गको दो वर्ष तक घेरे रहे थे। इसी समयके मध्य नवलकी मृत्यु हुई।

नुविगञ्ज—आगराके अन्तर्गत एक नगर। यह फरुखाबादसे १८ मील दक्षिण-पश्चिममें अक्षा० २७° १४' उ० और देशा० ७९° १५' पू०के मध्य अवस्थित है।

नुसखा (अ० पु०) १ लिखा हुआ कागज। २ कागजका वह चिट जिस पर हकीम या वैद्य रोगीके लिये औषधसेवनविधि आदि लिखते हैं, दवाका पुरजा।

नुसरत् खां तुगलक (नसरत)—फिरोज तुगलकके पौत्र। १३९३ ई०में दिल्लीके जमींदारगण दो दलोंमें विभक्त हुए। इनमेंसे एक दलने बादशाह महम्मदका और दूसरेने नसरतका पक्ष अवलम्बन किया। इस प्रकार गृहविवाद खड़ा हुआ और तीन वर्ष तक विषम हत्याकाण्ड चलता रहा। १३९६ ई०में नसरत एकबाल खांके हाथकी कठपुतली बन गए। किन्तु अन्तमें एकबालने नसरत खांको दलबलके साथ नगरसे बाहर निकाल दिया था।

नूखुर—दिल्लीके अधीन एक छोटा नगर। यह अक्षा० २९° ५६' उ० और देशा ७७° १७' पू० सहारनपुर नगरसे १४ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

नूजविड़ (नूजिवीडू)—१ मन्द्राज प्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत एक जमींदारी। यह प्राचीन स्थान किसी वड्डीयु जमींदारके कब्जे था। इसका क्षेत्रफल ६९४ वर्गमील है। यह जमींदारी ६ भागोंमें विभक्त है, यथा—१ वेल्लप्रगड़ा, २ व्यंगुरु, ३ मिर्जापुर, ४ कपिलेश्वरपुर, ५ तेलोप्रोलू और ६ मदुरा। वार्षिक आय ६१७०००) रु०की है।

२ उक्त जमींदारीका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° ४७' २५" उ० और देशा० ८०° ५३' २०" पू०के मध्य अवस्थित है। बेजवाड़ासे यह २६ मील उत्तर-पूर्व एक ऊंची भूमि पर बसा हुआ है।

यहां एक प्राचीन मट्टीका दुर्ग है जो अभी जमींदारोंके आवासस्थानमें परिणत हो गया है। यहांका वेङ्कटेश्वर स्वामीका मन्दिर करीब चार सौ वर्षका पुराना है। उक्त समयका बना हुआ एक वृहत् मुसलमानधर्म-मन्दिर भी है जिसका आदर बहुत कम लोग करते हैं।

गत शताब्दीमें शत्रुके हाथसे यह नगर बचाया गया है। यहांसे १५ मील दक्षिण-पूर्व पेरिलसिङ्ग ग्राम तक जो रास्ता गया है, वही इस नगरका प्रवेशपथ है। यहां नारियल और आमके अनेक दरख्त हैं।

नूजण्डला—कृष्णा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यह विनु-कोण्डसे ८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहांके अग्न-वाहदेवमन्दिर और मण्डपके सामने स्तम्भगात्रमें शिला-लिपि उत्कीर्ण है। ग्रामसे १ मील उत्तरमें एक प्राचीन दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

नूजिकल—दक्षिण-भारतकी एक नदी। यह कुर्ग राज्यके पश्चिमघाट पर्वतकी मेरकारा शाखाके निकटवर्त्ती सम्पाजी उपत्यकासे निकलती है और पश्चिमाभिमुख होती हुई मन्द्राजके दक्षिण कणाड़ा जिलेको पार कर कासरगोड़के निकट बसवनी ग्रामके आरब्योपसागरमें गिरती है।

नूत (सं० त्रि०) नू-स्तवने कर्मणि क्त। स्तुत, प्रशंसित।

नूत (हिं० वि०) १ नूतन, नया। २ अनोखा, अनूठा।

नूतन (सं० त्रि०) नवएव तनप् नवस्य नू रादेशश्च। (नवस्य नूआदेशस्त्नप्तनप्खाश्च प्रत्ययो वक्तव्याः। वार्त्तिक ५।४।२५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या तनप्। १ अपुरातन, नया, नवीन। पर्याय—प्रत्यग्र, अभिनव, नव्य, नव, नवीन, नूत्न, सद्यस्क, अजीर्ण, अभ्यग्र, प्रतिनव। २ विलक्षण, अपूर्व, अनोखा।

नूतनगुड़ (सं० पु०) अभिनव गुड़, नयागुड़।

नूतनद्वीप—भारतमहासागरके बोर्नियो द्वीपके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित एक द्वीपपुञ्ज। इसके उत्तर और दक्षिण-में इसी नामके दो छोटे छोटे द्वीप हैं। उत्तरस्थ द्वीप-पुञ्ज अक्षा० ४° ४५' उ० और देशा० १०° ८' पू०में पड़ता है। अक्तूबरसे दिसम्बर मास तक बहुतसे जहाज इसी द्वीपके दक्षिणपथ हो कर निरापदसे चीनबन्दरको जाते आते हैं। दक्षिणस्थ द्वीपपुञ्ज अक्षा० ३° उ० और देशा० १०८° पू०के मध्य बोर्नियोद्वीपके उत्तरपश्चिममें अव-स्थित है। मध्यस्थ बृहत्द्वीप ३४ मील लम्बा और १३ मील चौड़ा है। इसकी चौड़ाई हर जगह एकसी है। इसके चारों ओर असंख्य छोटी छोटी द्वीपावली देखनेमें आती हैं। ये सब द्वीप पर्वतमय हैं। कोई कोई पहाड़ तो इतना ऊंचा है, कि उसका शिखर ४५ मील दूरसे दीख पड़ता है। यहां मलयजातिका वास है।

नूतनता (हिं० स्त्री०) नवीनता, नयापन, नूतनका भाव।

नूतनत्व (सं० पु०) नयापन, नवीना।

नूतनपल्लो—मन्द्राज प्रदेशके कर्णूल जिलेका एक ग्राम। यह नन्दोकोटकुरसे १२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहां आञ्जनेयका एक भग्नमन्दिर है जिसमें एक अस्पष्ट शिलालिपि खोदी हुई है।

नूत्न (सं० त्रि०) नव एव नवस्य त्नप्, नू रादेशश्च। नूतन, नया।

नूद (सं० पु०) नुदति रोगादिनिष्टमिति नुद-क पृषो-दरादित्वात् दीर्घः। अश्वत्थाकार ब्रह्मदारुवृक्ष, शहतूत। ब्रह्मदारु देखो।

नून—उड़ीसाके अन्तर्गत पुरी जिलेकी एक प्रधान नदी। यह जिलेके मध्यभागसे निकल कर अक्षा० १९° ५३' ३८" उ० और देशा० ८५° ३८" पू० दयानदीमें आ कर मिल गई है। इस नदीमें कभी कभी बाढ़ आ जाया करती है जिससे तीरस्थ शस्यादि नष्ट हो जाते हैं। इसकी तीर-भूमि स्वभावतः ऊंची है और जलस्रोतको रोकनेके लिए कहीं कहीं बांध भी दे दिये गए हैं।

नून (हिं० पु०) १ नोन। २ दक्षिण-भारत तथा आसाम बरमा आदि देशोंमें मिलनेवाली आलकी जातिकी एक लता। इससे एक प्रकारका लाल रंग निकलता है। इसका व्यवहार भारतवर्षमें कम लेकिन जावा आदि द्वीपोंमें बहुत होता है।

नूनम् (सं० अव्य०) नु ऊनयतीति ऊन परिहाणे अम्। १ तर्क, ऊहापोह। २ अर्थनिश्चय। ३ अवधारण। ४ स्मरण। ५ वाक्यपूरण। ६ उत्प्रेक्षा।

नूना—१ बालेश्वर जिलेके भद्रा परगनेका एक प्रकाण्ड बांध। यह अक्षा० २०° ५८' से २१° १२' उ० और देशा० ८६° ५२' से ८६° ५५' पू० तक विस्तृत है। समुद्रका जल जिससे ग्राममें प्रवेश न कर सके, इसलिये यह बांध दिया गया है। किन्तु कभी कभी यह बांध अनिष्टका कारण हो जाता है। १८६७ ई०में गमाईनदीका जल बांध रहनेके कारण बाहर निकलने नहीं पाया था जिससे

विशेष अनिष्टकी सम्भावना हो गई थी। किन्तु ईश्वरको अनुकम्पासे यह बांध जलके वेगसे टूट गया था। २ दिनाजपुरकी एक नदी।

नूनी—मुर्शिदाबादसे ७४ मील उत्तर-पश्चिमके कोनमें अवस्थित एक क्षुद्र नगर। यह अक्षा० २८° ५६' उ० और देशा० ८७° ८' पू०के मध्य अवस्थित है।

नूपुर (सं० पु० क्लो०) नू-क्विप्, नुवि पुरंति पुर अग्र-गमने-क। १ स्वर्णमरवात पादभूषण, पैरमें पहननेका स्त्रियोंका एक गहना, पैंजनी, घुंघरू। २ नगणके पहले भेदका नाम। ३ इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा।

नूपुरवत् (सं० त्रि०) नूपुरः विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य व। नूपुरयुक्त, जिसने नूपुर पहना हो।

नूर (अ० पु०) १ ज्योति, प्रकाश, आभा। २ श्री, कान्ति, शोभा। ३ ईश्वरका एक नाम। ४ सङ्गीतमें बारह मुकामोंमेंसे एक।

नूरअलीशाह—मुसलमानोंके सुफो-सम्प्रदायके एक गुरु और मीर मसुम अलीशाहके पुत्र और शिष्य। इनके पिता दाक्षिणात्यवासी और सैयद अली रजा नामक किसी मुसलमानसे दीक्षित हुए। पारस्यराज करीम खांके राजत्वकालमें ये पितापुत्र भारतवर्षको छोड़ कर सिराजनगरको चले गए और वहां इन्होंने अपने अव-लम्बित नये मतका प्रचार किया। थोड़े ही दिनोंके मध्य प्रायः तीस हजार मनुष्य उनके शिष्य हो गए। नूर-अलीने पहले इस्पाहन नगरमें धर्मोपदेशकी वक्तृता दी। उनकी अवस्था कम होने पर भी दया और बुद्धिमें वे बड़ों-को मात करते थे। मुसलमान ऐतिहासिकगण मुक्तकण्ठ-से इनका गुणानुवाद कर गए हैं। दिनों दिन इनको शिष्यसंख्या बढ़ती देख इस्पाहनके धर्मयाजकगण जल उठे। पीछे उन्होंने षड़यन्त्र करके सुफी-साम्प्रदायिक मतके विरुद्ध निन्दा करते हुए राजा अलीमर्दन खांसे पवित्र और सत्य इस्लामधर्मको स्थापनाके लिए आवेदन किया और कहा कि सत्य धर्मके ऊपर लोगोंका जो विश्वास है उसे ये लोग हटा रहे हैं। यह सुन कर राजा बहुत बिगड़े और सत्यधर्मके ऊपर विशेष आस्था दिखलाते हुए यह कहा, कि इस प्रकार सत्यधर्मका निन्दावाद धर्मविरुद्ध और राजनीतिविरुद्ध है। अतः उसी समय उन्होंने हुक्म दिया कि इन विरुद्धाचारियोंके नाक कान काट कर देशसे निकाल दो। फिर क्या था, मूर्ख सैनिकोंने आज्ञा पाते ही, जो सामने मिले उनकी नाक, कान और दाढ़ी काट डाली। इस समय मुसलमानधर्म जगत्‌में अनेक निरीह इस्लाम-धर्म-सेवियोंको यह निग्रह भोग करना पड़ा था। ये नाना स्थानोंमें पर्यटन कर मुसलनगरको लौट आए। प्रवाद है, कि विष खा कर ये मरे थे। इस समय इनके प्रायः साठ हजार शिष्य हो गए थे।

नूरउद्दीन्‌करारी—एक कवि। ९७४ हिजरीमें गिलन प्रदेश जब पारस्यराज तहमास्पके अधिकारमें आया, तब इनके पिता मौलाना अबदुर-रज्जाक निष्ठुरभावसे मारे गए थे। ये पहले गिलनके शासनकर्त्ता अहमद खांके अधीन काम करते थे। पिताकी मृत्यु और अहमदकी राज्यच्युति देख कर ये कौश्राजविनको भाग गए। पीछे वहां ९८३ हिजरीमें ये अपने भाई अबुलफत् और हुमान को साथ ले भारतवर्षको भाग आए। सम्राट् अकबर शाहने पहले इन्हें सेनाध्यक्षके पद पर नियुक्त किया, किन्तु ये अस्त्रधारणसे बिलकुल पराङ्मुख थे। एक समय जब ये बिना हथियारके अपने दलके बीच आ खड़े हुए, तब साथियोंने इनको खूब हंसी उड़ाई। इस पर उन्होंने जवाब दिया कि इनके जैसा विद्यानुरागीको युद्ध-विद्या अच्छी नहीं लगती। इन्होंने और भी कहा था, कि जब तैमूर देश जीतनेको अग्रसर हुए, तब उन्होंने ऊंट-गवादिको दलके बीचमें और स्त्रियोंको दलके पीछे रखा था। जब कोई इनसे विद्वान् व्यक्तिका हाल पूछते, तब ये कहा करते थे, कि स्त्रियोंसे भी पीछे विद्वान् और पण्डितोंके रहनेका स्थान है, कारण विद्यानुरागी व्यक्ति कभी भी साहसी नहीं हो सकते।

इनके असद्व्यवहारसे असन्तुष्ट हो कर सम्राट् अक-बरने इन्हें बङ्गालमें भेज दिया। यहां ९८८ हिजरी-में मुजफ्फर खांके शासनाधीन बङ्गालमें जो राष्ट्रविप्लव हुआ, उसीमें नूरउद्दीन्‌की मृत्यु हुई।

नूरउद्दीन् सराय—पञ्जाबके बड़ी-दोआब विभागके अन्त-र्गत एक नगर। यह इरावती नदीके बाएं किनारे २७ मील दक्षिण-पूर्व और लाहोर नगरसे २४ मील पूर्व-

दक्षिणमें अक्षा० ३१° ३०' उ० तथा देशा० ७५° ५२' पू० के मध्य अवस्थित है।

नूरउद्दीन् महम्मद—एक मुसलमान ग्रन्थकार। इन्होंने 'नामी-उल-हिकायत' नामक एक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखा जिसे १२३० ई०में दिल्लीश्वर अलतमसके सैन्याध्यक्ष निजाम-उल-मुल्क महम्मदके नाम पर उत्सर्ग किया था।

नूरउद्दीन्‌महम्मद मिर्जा—अलाउद्दीन् महम्मदके पुत्र और खाजा हुसेनके पौत्र। सम्राट् बाबरकी कन्या गुलरूख वेगमसे इनका विवाह हुआ था। इन्हींकी कन्या सलिमा सुलताना अकबरके कहनेसे १५५८ ई०में खानखाना बैराम खाँको व्याही गई थी।

नूरउद्दीन्‌सफे दूनी—एक मुसलमान कवि। हिराटके खोरासन प्रदेशके अन्तर्गत जामनगरमें इनका जन्म हुआ था मशहद शहरमें इन्होंने पढ़ना लिखना समाप्त किया। बाबरशाहसे परिचित होनेके पहले हुमायूं के साथ इनका सखा-भाव था; सम्राट् हुमायूं इन्हें खूब प्यार करते थे, सभी समय अपने साथ रखते थे। इनके आचरणसे सन्तुष्ट हो कर सम्राट्‌ने सफेदून परगना इन्हें जागीरमें दिया। तभीसे ये सफेदूनी कहलाने लगे। सम्राट् अकबरकी तरफसे इन्हें समाना परगनेकी फौजदारी और 'नवाब-तरखान'की उपाधि मिली थी। समानाके फौजदारके पद पर रह कर इन्होंने शेरमहम्मद दीवानको धनूरी नामक स्थानमें परास्त किया। ९७३ हिजरीमें इनका शरीरावसान हुआ था।

१५६९ ई० वा ९७७ हिजरीमें ये यमुना नदीसे कर्नाल तक एक नहर काट ले गए। यह नहर सैखूलहर नामसे प्रसिद्ध है। इसी साल सम्राट् अकबर शाहके पुत्र जहानूगीरका जन्म हुआ था। आदरके साथ इन्होंने सम्राट्‌पुत्रका 'सेखबाबा' नाम रखा। सुलतान सलीमके मान्यके लिये उक्त नहरका नाम सेखू पड़ा। विद्याचर्चाके लिए कोई कोई इन्हें मुल्ला नूरउद्दीन् कहा करते थे। काव्य-जगत्‌में इन्होंने विशेष ख्याति लाभ की थी। सामयिक कवियोंने इन्हें "नूरी"की पदवी दी थी। इनकी बनाई हुई "दीवान" और "सीव-माला" नामक दो पुस्तक मिलती है।

नूरउद्दीन् शेख—एक ऐतिहासिक। इन्होंने पारस्य भाषामें "तारीख-काश्मीर" नामक काश्मीरप्रदेशका एक इतिहास लिखा है। इस ग्रन्थका शेष खण्ड हैदर मल्लिक और महम्मद अजीमसे समाप्त हुआ था।

नूरउन्नीसा-वेगम—मिर्जा इब्राहिम हुसेनकी कन्या और गुलरुख वेगमकी गर्भजाता तथा मुजफ्फर हुसेन मिर्जाकी बहन। युवराज सलीमके साथ इनका विवाह हुआ था। यही सलीम भविष्यत्‌में भारतके इतिहासमें जहानूगीर नामसे प्रसिद्ध हुए। १०२३ हिजरीमें ये वर्त्तमान थे।

नूरउलहक—१ एक ग्रन्थकार, दिल्लीवासी अबदुल हकबिन सैफुद्दीनके पुत्र। इन्होंने पिताके लिखे हुए इतिहासका पूर्ण संस्कार कर "जुबदत्-उत्-तवारिख" नामसे उसको प्रकाश किया। पूर्वग्रन्थमें जो सब भूल और छूट थीं उन्हें यथास्थान पर सन्निवेशित कर इन्होंने उज्ज्वल भाषामें पुस्तक लिखी और सहीबुखारी तथा इसलामधर्मके विषयमें एक "सारा" लिखा। सम्राट् आलमगीरके राजत्वकालमें १६६२ ई०की इनकी मृत्यु हुई।

अल-मसाकी, अल-दैलावी और अल-बुखारा ये सब इनके मर्यादा-सूचक नाम है। इनके इतिहासमें बङ्गाल, दाक्षिणात्य, दिल्ली, गुजरात, मालव, जौनपुर, सिन्धु, काश्मीर आदि देशोंके राजाओंका संक्षिप्त विवरण है।

२ एक विचारपति। ये १७८६ ई०में विद्यमान थे और बरेलीमें काजीका काम करते तथा पारस्य भाषामें कविता लिखनेमें विशेष पारदर्शी थे। पारस्य भाषामें इन्होंने तीन लाखसे भी अधिक श्लोकोंकी रचना की। इनकी कवितामेंसे स्लोकके ढंग पर लिखित कुरानटीका, अरबी और पारसीभाषामें लिखित काशीदास'ग्रह कुछ मसनवी और तीस दीवान मिलते हैं। कविताशक्तिके कारण इन्हें "मुनाइम"-की उपाधि मिली थी।

नूर-उल्ला-सुस्तरी—सम्राट् अकबरशाहकी राजसभाके एक उमराव। इनका असल नाम "नूर-उल्ला-बिन-सरीफ-उल-हुसेन उस-सुस्तरी" था। इन्होंने "मजलिस-उल-मोमिनीन्" नामक एक ग्रन्थकी रचना की। इस विस्तृत जीवनीमें 'शिया' सम्प्रदायके विशिष्ट उमरावोंका इतिवृत्त लिखा है। इतिहासके सम्बन्धमें यह एक अमूल्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थके ५म मजलिस वा भागमें

केवल प्रवादगत जीवनी और व्यवहारजीवीका इतिवृत्त लिखा है। इसके अलावा प्रत्येक चिकित्सक या हकीम-के जीवनचरितके शेष भागमें उनके कृत ग्रन्थादिके नाम भी वर्णित हैं। सिया सम्प्रदायके मत पर इनकी विशेष श्रद्धा थी। इस कारण जहान्गीरके राजत्वकालमें १६१० ई०को इन्हें यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे।

नूर-व-किरात—भारतवर्षके पश्चिम सीमान्तवर्त्ती काबुल-नदीकी शाखा। नूर और किरात नामक दो शाखाएं विभिन्न स्थान होती हुई एक साथ मिल कर काबुल-नदीमें गिरी हैं।

नूरकोण्डो—दाक्षिणात्यके बीजापुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह बीजपुर राजधानीसे ३८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। लाल पत्थरके पहाड़के ऊपर यह नगर बसा हुआ है। यहांके मकान भी लाल पत्थरके ही बने हुए हैं। इसके दक्षिण-पश्चिममें अपेक्षाकृत उच्च पहाड़के ऊपर एक सुदृढ़ और दुर्भेद्य दुर्ग रक्षित है। इसका शिल्प-कार्य और गठनादि उतना सुन्दर नहीं है।

नूरगढ़—मुगलराजधानी दिल्लीके निकटवर्त्ती एक नगर। यह अभी सलीमगढ़ नामसे मशहूर है।

नूरगुल—दाक्षिणात्यके बीजापुर प्रदेशके अन्तर्गत एक छोटा जिला। यह घाटप्रभा और मालप्रभा नामक दो नदीके सङ्गमस्थल पर बसा हुआ है। इस जिलेमें बदामी और रामदुर्ग नामक दो नगर लगते हैं।

नूरघाट—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक नगर। पेशवा नारायणरावकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र मधुराव-ने १७७४ ई०में पितृपद ग्रहण किया। इनके सिंहासन पर बैठनेसे रघुनाथरावने ईर्षान्वित हो सुरतमें अङ्गरेजों-से सहायता मांगी। अङ्गरेजी सेना पूनानगरसे नूरघाटमें जो बीस कोसकी दूरी पर था, पहुंच गई। इधर महा-राष्ट्रगण भी पूनासे उक्त नगरकी ओर अग्रसर हुए। दोनों पक्षमें घमसान युद्ध चला। युद्धमें किसी भी पक्षकी जीत न हुई। किन्तु रातको अङ्गरेजी सेनाध्यक्षने पेशवा-से मेल कर लिया और रघुनाथको उनके हाथ सुपुर्द कर दिया।

नूरजहान् (नूरमहल, मेहेरुन्निसा)—भारतवर्षके मुगल-सम्राट् जहान्गीरकी प्रियतमा महिषी। १६११ ई०में इनके साथ सम्राट् जहान्गीरका विवाह हुआ था। तभीसे ले कर १६ वर्ष तक नूरजहान्की जीवनी ही जहान्गीरके राजत्वका इतिहास है। नूरजहान् महिषी हो कर अत्यन्त प्रभावसम्पन्न हो गई थीं। बिना इन-की सलाह लिए सम्राट् कोई काम नहीं करते थे। इस समय इनके कितने ही आत्मीय-स्वजन राज्यके प्रधान प्रधान पद पर अभिषिक्त हुए थे।

नूरजहान्के इतिहासका पता लगा कर जो कुछ मालूम हुआ है उससे इनके पितामह तकका कुछ कुछ विवरण जाना जाता है; उससे पहलेका कुछ भी नहीं। नूरजहान्के पितामहका नाम था ख्वाजा महम्मद शरीफ। पारस्यनगरके तेहरान् नगरमें उनका वास था। पारस्य-के अन्तर्गत खोरासान प्रदेशमें जब महम्मद-खाँ-शरफ-उद्दीन्-उगलु-ताकलु 'बेगलाके बेगी' थे, उस समय ख्वाजा महम्मद शरीफ उनके मन्त्री थे, (१) और उसी समय से उनकी प्रतिष्ठा जम गई—वे एक प्रतिष्ठापन्न कवि भी थे। "हिजरी" (२) यह उपनाम धारण कर वे कविता लिखते थे। पूर्वोक्त उगलु-ताकलुके पुत्रने जब तातारसुलतानपद प्राप्त किया, तब ख्वाजा महम्मद शरीफ ही वजीरके पद पर नियुक्त हुए। उक्त सुलतानकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कोयाजक खांके समयमें भी ख्वाजा महम्मद शरीफ ही वजीरके पद पर वर्त्तमान थे (३)। पीछे कोयाजक खाँ जब मर गए, तब पारस्यराज शाह तमास्पने ख्वाजा महम्मद शरीफको बुला कर याजद नामक राज्यका वजीरीपद प्रदान किया (४)।

किसी किसी ऐतिहासिकका मत है, कि ये पारस्यराज शाह तमास्पके ही वजीरीपद पर नियुक्त हुए थे। मुगलसम्राट् हुमायूं शाह जब शेरशाहसे भगाए गए थे, तब वे पारस्यराज शाह तमास्पके यहां अतिथि हुए थे। उस समय शाह तमास्पने जिन सब अमीरों और कर्मचारियोंको उनकी सेवा शुश्रूषामें

(१) Ikbal nama i-Jahangiri (Elliot Vol. p. 430.)
(२) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 622.)
(३) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 508.) तुजुक और एकबालनामामें कोयाजक खांका उल्लेख नहीं है।
(४) Ikbal-nama-i Jahangiri (Blochmann, p. 403.)

नियुक्त किया था, उनमेंसे वजीर ख्वाजा महम्मद शरीफ भी एक थे (५)। ९८४ हिजीरीमें ख्वाजा महम्मद शरीफ अनेक पुत्र पौत्रादिको छोड़ परलोक सिधारे।

ख्वाजा महम्मद शरीफके दो भाई थे। एकका नाम था ख्वाजा मिर्जा अहम्मद और दूसरेका ख्वाजालाजि ख्वाजा (६)।

९८४ हिजरीमें ख्वाजा महम्मद शरीफकी मृत्यु हुई। उस समय उनके आगामहम्मद-ताहिर और मिर्जा गयासुद्दीन् महम्मद नामक दो पुत्र वर्त्तमान थे। आगामहम्मद ताहिर भी पिताकी तरह, 'वासल' उपनामसे कविता लिखते थे (७)। मिर्जा गयासुद्दीन् महम्मद भी उस समय परिणतवयस्क, विवाहित, दो पुत्र और दो कन्याके पिता हो चुके थे। मिर्जा गयासुद्दीन् मुसलमान-इतिहासमें गयासबेग नामसे प्रसिद्ध थे। प्राचीन अङ्गरेज ऐतिहासिकोंने "गयासबेग" शब्दको "आयास्" शब्दका अपभ्रंश समझ कर 'आयासबेग' नामसे इनका उल्लेख किया है। गयासबेगका अलाउद्दौलाकी कन्यासे विवाह हुआ था। अलाउद्दौला (मिर्जा अलाउद्दीन्) आगामोल्लाके लड़के थे। जब ख्वाजा महम्मद शरीफको मृत्यु हुई, उस समय गयासके महम्मद शरीफ और मिर्जा अबुलहुसेन् नामक दो पुत्र तथा मनीजा और खदीजा नामक दो कन्यायें थीं। इन चारोंका पारस्य देशमें ही जन्म हुआ था।

९८४ हिजरीमें पिताकी मृत्युके बाद ही गयास स्त्री पुत्रकन्याको ले कर स्वदेशसे निकल पड़े। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि इस समय इन्हें यथेष्ट कष्ट भुगतने पड़े थे।

जो कुछ हो, गयासबेगने दारापत्यको साथ ले स्वदेशका परित्याग किया। इस समय उनकी स्त्री पुनः गर्भिणी थी। केवल गर्भिणी ही नहीं, प्रसवका समय भी निकट पहुंचा था। किन्तु दुरदृष्टके प्रभावसे गयासबेग पत्नीके प्रसवकाल तक भी देशमें ठहर न सके। आसन्नप्रसवा पत्नी और चार पुत्रकन्याको ले कर (१) उन्होंने देश छोड़ दिया। कहां जायंगे, इसका कुछ निश्चय था नहीं, निःसहाय अवस्थामें यत्किञ्चित् धनरत्न ले कर पूर्व दिशाकी ओर चल दिये। पितृवियोग-वर्षमें ही गयासबेगने स्वदेशका त्याग किया था। (२)

क्रमशः गयासबेगने पारस्य छोड़ कर अफगानिस्तानके सीमान्तवर्त्ती कन्दहारकी मरुभूमिमें प्रवेश किया। यहां डकैतोंने उनका सर्वस्व छीन लिया। विपद्के ऊपर विपद् पड़ जानेसे गयास राहमें वणिकोंसे भीख मांग मांग कर दिन बिताने लगे। इस प्रकार वे धीरे धीरे मरुभूमि पार कर वनप्रान्तमें पहुंचे। इस समय पथश्रम और दुर्दशाकी दुर्भावनासे पीड़ित हो कर गयासबेगकी पत्नी प्रसववेदनासे व्याकुल हो पड़ी। असहायके सहाय भगवान् हैं, इसलिये उस समय कोई भारी चोट न पहुंची। सुस्थशरीरसे उसने एक अपूर्व सुन्दरी कन्या प्रसव की। यही कन्या आगे चल कर भारतकी साम्राज्ञी नूरजहान् हुई।

कन्याको गोदमें लेनेके साथ ही उन दोनोंकी आंखें डब डबा आईं और उसे ले कर किस प्रकार रास्ता तै करेंगे यह सोच कर वे बहुत व्याकुल हो पड़े। सद्यःप्रसूता धनोत्कृष्टिणी गयासपत्नी यदि कन्याको गोदमें ले कर राह चलेगी, तो यह निश्चय है या तो उसीकी जान जायगी या दुग्धाभावसे जङ्गलमें वह सुकुमार बच्चा ही माताकी गोदमें सदाके लिये सो रहेगी, इस चिन्तासे वे दोनों फफक फफूट कर रोने लगे। अन्तमें सद्योजात कन्याको भगवच्चरण पर छोड़ जाना ही उन्होंने स्थिर कर

(५) विश्वकोषके ८म भाग, १५७ पृष्ठमें जहांगीर शब्द देखो।

(६) इन दोनों भाइयोंके साथ भारतका कोई संस्रव नहीं है। ज्येष्ठ मिर्जा अहम्मदके पुत्र ख्वाजा अमीन रायी (पारस्य-देशमें रायशहरवासी) वा कालान्तर मजिष्ट्रेट थे। वे एक प्रसिद्ध पर्यटक और कवि थे। १००२ हिजरीमें उनका 'हफ्त इकलिम" नामक ग्रन्थ रचा गया। सम्राट जहांगीरके यहां इस काव्य और कविका विशेष आदर था। ख्वाजाकाजी ख्वाजा और उनके पुत्र ख्वाजाशाह दोनों ही साहित्यसेवी थे। Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 503.)

(७) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 622.)

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 510-11)

(२)

लिया। वृक्षकी पत्तियों पर सुला कर, वृक्षकी पत्तियोंसे ढक कर गयासबेगने भारतकी भविष्यत् साम्राज्ञीको मरुभूमिके किनारे वनप्रान्तमें राह पर छोड़ दिया और आप घोड़े पर सवार हो वहांसे चल दिए। उस समय उनके सिर्फ दो घोड़े बच गए थे। सद्योजात सन्तानको इस प्रकार छोड़ कर गयास-वनिता अविरल धारामें अश्रुमोचन करती हुई स्वामीकी अनुवर्त्तिनी हुई। आध कोसका रास्ता तै करने भी न पाया था, कि शोक और मोहसे गयासवनिता अज्ञान हो घोड़ेकी पीठ परसे नीचे गिर पड़ी। गयासने देखा—जिसके प्राणकी रक्षाके लिये सद्योजात शिशु तकको भी छोड़ आये हैं, अभी शिशु-विच्छेदसे उसीकी जान जाने पर है। बाद पत्नीको होशमें ला कर पुनः घोड़े पर बिठा दिया और आप उस कन्याको लाने चले गये। शिशुके पास पहुंच कर गयासने देखा, कि एक विषधर सर्प शिशुके ऊपर फण काढ़े हुए है। यह देख कर ही गयासके होश उड़ गए और कुछ देर बाद भयसे चीत्कार करने लगे। चीत्कार सुन कर सर्प बहुत फुर्त्तीसे भाग चला। गयासने उस कन्याको गोदमें ले लिया और जहां तक हो सका बहुत तेजीसे परिवारवर्गके निकट पहुँच कर सारा विवरण कह सुनाया। बाद सब किसीने भगवान्को धन्यवाद देते हुए पुनः यात्रा आरम्भ कर दी।

इसी समय पीछेसे भारतगामी एक दल वणिक् आ पहुंचा। उस दलके अध्यक्ष थे मलिक मसउद। वे भी स्त्रीके साथ आ रहे थे। गयासबेग दूध मांगनेके लिये मलिक मसउदके पास पहुंचे। मलिकने गयास-परिवारका आचार-व्यवहार और आकृति प्रकृति देख कर उनका परिचय पूछा। गयासबेगने भी उनकी सहृदयतासे मुग्ध हो कर आद्योपान्त सब बातें कह सुनाईं। मलिक मसउद नवजाता कन्याके अतुलनीय रूपलावण्य पर मोहित हो उसे अपनी स्त्रीको दिखलाया। मसउदपत्नीने भी वह रूप देख कर और स्वामीके मुखसे सारा विवरण सुन कर आनन्दपूर्वक स्वयं उस कन्याके लालन-पालनका भार ग्रहण किया और कन्याकी धात्रीरूपमें कन्याकी माताको ही नियुक्त किया। गयासपत्नी यह अभावनीय आश्रय पा कर कृतज्ञतासे अभिभूत हो गईं। (१)

अब मलिक मसउद और गयासबेग दोनोंने मिल कर यात्रा की। दोनोंमें गाढ़ी प्रीति हो गई। कथा-प्रसङ्गमें गयासबेगको मालूम हो गया कि मसउदको भारतके मुगलसम्राट् अकबरके यहां खूब चलती-बनती है। गयास इस भविष्यत् सुविधाकी आशासे मलिक मसउदके निकट विशेष विनीत, कृतज्ञ और वाध्य हो कर रहने लगे। १५८६ ई०में (२) मसउद गयासबेगको साथ ले परिवार समेत भारतकी अन्यतम राजधानी लाहौर पहुंचे। बादशाह अकबर उस समय लाहौरमें ही थे (३)। ग्रीष्मकालमें वे वहीं रहते थे।

एक दिन गयासको साथ ले मलिक मसउद सम्राट्के दरबारमें उपस्थित हुए। दरबारमें गयासको एक और अभावनीय बान्धव मिला। जाफरबेग आसफ खाँ नामक एक उच्च पदके राजकर्मचारीके साथ इनका परिचय हुआ। परिचयसे मालूम हुआ कि वे दोनों एक ही वंशके हैं। इस ज्ञातिकी सहायतासे मिर्जा गयासउद्दीन, महम्मद सम्राट्-दरबारमें अच्छी तरह परिचित हो गए। सम्राट्ने उनका विवरण जान कर अपने यहां आश्रय दिया और कुछ दिन बाद उनके व्यवहारसे प्रसन्न हो कर तीन सौ सेनाका मनसबदार बनाया। अपने भाग्यके जोरसे गयासबेग तेहरानी भारतवर्षमें आ कर इस प्रकार मनसबदार हुए। इस समय अकबर बादशाहके राजत्वका ४०वां वर्ष चल रहा था।

गयासबेग इस प्रकार सम्राट् अकबरशाहसे मनसबदारके पद पर अधिष्ठित हो क्रमशः सम्राट्के प्रीतिभाजन हो गए। बाद दोनोंमें गाढ़ी प्रीति भी हो गई। कथाप्रसङ्गसे अकबरको मालूम हुआ कि सम्राट् हुमायूं शाह जब शेरशाहसे विताड़ित हो कर पारस्यदेश भाग गए थे, तब गयासबेगके पिता ख्वाजा महम्मद शरीफने उनकी अच्छी सहायता की थी। यह जान कर अकबर-

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann p. 509) विश्वकोष ८म भाग १५७ पृष्ठ देखो।

(२) विश्वकोष ८म भाग १५७ पृष्ठ देखो।

(३) Elliot's Muhammadan Historians, Vol. VI. p. 397. Dow's Hindostan III, p. 23.

शाहका हृदय कृतज्ञतासे परिपूर्ण हो गया। इस कृतज्ञताके प्रत्युपकारस्वरूप सम्राट्‌ने तीन सौ सेनाके मनसबदार गयासको पहले काबुलकी दीवानीके पद पर, पीछे एकहजारी मनसबदारके पद पर और तब बयुतात दीवानी (सांसारिक व्यापारके अध्यक्ष)-के पद पर नियुक्त किया *। क्रमशः गयासकी पत्नीके साथ अकबर-की महिषी सलीमकी माता मरियम-जमानीकी अत्यन्त घनिष्ठता और मित्रता हो गई। वे प्रायः कन्याको ले कर बादशाह बेगमके अन्तःपुरमें जाया करती थी (१)। जिस अपूर्व सौन्दर्यललामभूता कन्याने कन्दहारके मरु-प्रान्तमें जन्म लिया था, वह कन्या आज बड़ी हुई और उसका नाम रखा गया मेहेरुन्निसा अर्थात् 'रमणीकुल-शिरमणि'।

गयासबेग धीरे धीरे अपनी उन्नति करने लगे। अपने परिवारके लिए भी उन्होंने अच्छी व्यवस्था कर दी। जिस कन्याके जन्म होनेके बादसे उनकी दुर्दशाका क्रमशः अवसान हो गया, गयासने सबसे पहले उसी कन्याकी तालीम करनेके लिए जहां तक हो सका सुव्यवस्था कर दी। उसकी परिचर्याके लिए दिलारानी नामक एक धात्री नियुक्त हुई। (२)

मेहेरुन्निसाने नृत्य, गीत, वाद्य, चित्रविद्या तथा काव्य-में धीरे धीरे अच्छी व्युत्पत्ति लाभ कर ली। थोड़े ही दिनोंमें वे कविता और गानरचनामें पारदर्शिनी हो गईं। उनका सुयश चारों ओर फैल गया। सलीमकी माता उन्हें बहुत चाहती थीं, मेहेरुन्निसा कभी कभी उनको खुश करनेके लिए नाचती, गाती तथा कविता-की रचना कर उन्हें सुनाती थीं। (३)

एक दिन गयासबेगने अपने यहां राज्यके सम्भ्रान्त लोगोंको निमन्त्रण किया। शाहजादा सलीम भी निम-न्त्रित हुए। सलीमका असल नाम था महम्मद नूर-उद्दीन्। ९७७ हिजरी (१५६९ ई०)को १८वीं रबिउल अव्वलको फतेपुर शहरमें शेखसलीम चिस्तीके घरमें जन्म होनेके कारण वे सलीम नामसे प्रसिद्ध हुए। इस समय उनकी चढ़ती जवानी थी। भगवान्‌सिंहकी कन्या जोधबाई और बीकानेरके राजा राजसिंहकी कन्याके साथ उनका विवाह हो चुका था। जो कुछ हो, निमन्त्रण-में सलीम गयासके घर पहुंचे। उत्सव समाप्त हो जाने पर जितने अभ्यागत आए हुए थे, सब चले गए, केवल सलीम रह गए। गयासने उनके लिये शराब मंगवाई। उस समय ऐसा नियम था, कि राजा वा राजपुत्रोंकी अभ्यर्थना करनेमें निमन्त्रणकर्त्ताके परिवार-की रमणियोंको उनके सामने आना पड़ता था। गयास-बेगने भी वैसा ही किया। मेहेरुन्निसा और अन्यान्य रमणियोंने आ कर शाहजादाकी संवर्द्धना की। मेहेरु-न्निसाने शराबका बोतल युवराजके हाथमें दिया। सलीम कन्दर्पलाञ्छन थे, इधर मेहेरुन्निसा भी रतिविनिन्दिता थीं। ऐसे शुभ अवसरमें एकका मन दूसरेके प्रति आकृष्ट हो गया। पीछे मेहेरुन्निसा कोकिलकण्ठसे वीणा-विनिन्दितस्वरमें देवबालाका हावभाव दिखा कर गाने लगीं। उस मधुर तानसे शाहजादाकी हृदयतन्त्री बोल उठी। मेहेरुन्निसा भी उस समय युवती थीं, विद्याबल और सहवासके गुणसे लोकचरित्र भी कुछ कुछ सम-झती थीं। सलीमका भाव देख कर वे समझ गईं, कि युवराज उनके गान पर मोहित हो गए हैं। अब उन्होंने नाचना आरम्भ कर दिया। इस समय सलीम-को ऐसा मालूम होने लगा मानो उनके हाथ पैरके सञ्चालनसे रूपकणा विकीर्ण हो रही हैं। सलीमका दिमाग चकराने लगा। अपनी मर्यादाको भूलते हुए वे टक लगा कर मेहेरुन्निसाके प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गकी गठन और शोभाको देखने लगे। इस समय हठात् वायुके सञ्चालनसे मेहेरुन्निसाका घूंघट अलग हो गया। नृत्य-का ताल भङ्ग न हो जाय, इस भयसे वे उसे संभाल न सकीं। लज्जा और भीतिविजड़ित सलोचपूर्वक युव-

* विश्वकोष जहान्‌गीर शब्द देखो—८म भाग १५७ पृ०। Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 509)

(१) Dow's Hindostan III. p. 24.

(२) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 510).

Waki-at-i-Jahangiri (Elliot's History of India vol. VI. p. 394)

(३) विश्वकोष ८म भाग १५७ पृ० ; Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 524.)

राजके मुखको ओर स्वयं भरके लिये ताक कर मेहेरु-न्निसाने अपना शिर नीचे कर लिया। उस दर्शनसे, उस कटाक्षसे सलीमके हृदयमें अनुरागको ज्वाला धधक उठो। घूंघट अलग हो जानेका बहाना कर मेहेरु-न्निसाने गाना बंद कर दिया। सलीम भी अपने घरको चले गए। नृत्यके बाद जब तक वे वहां बैठे रहे, तब तक उनके मुखसे एक भी बात न निकलो। (१)

तदनन्तर दोनोंके मनमें एक दूसरेके प्रति अनुराग बढ़ने लगा। सलीम मेहेरुन्निसाको पानेके लिए नितान्त उत्सुक और यत्न-परायण हुए। यह बात धीरे धीरे पितामाताके कानमें पड़ी। बादशाह अकबरने पुत्रके इस अभिप्रायको जरा भी पसन्द न किया। क्योंकि उस समय ऐसा नियम था, कि जब किसी राजकर्मचारीको अपनी कन्याका विवाह करना होता था, तब उसे राजा-की अनुमति लेनी पड़ती थी। गयासबेगने भी इस्ता-जूलु नामक तुरुष्क जातीय अलीकुलीबेग नामक एक सुरूप सुप्रतिष्ठितके साथ जो दो सौ सेनाके मनसबदार थे, विवाहसम्बन्ध स्थिर करके सम्राट्की अनुमति ले ली थी। जिसे एक बार कन्यादान देनेकी अनुमति दी जा चुकी है, उसे अब पुत्रके अनुरोधसे अन्यथा करना बादशाहने अच्छा नहीं समझा, बल्कि जिससे प्रस्तावित पात्रके साथ पात्रीका शीघ्र विवाह हो जाय उसके लिए दीवान गयासबेगसे अनुरोध किया। उन्होंने समझा था, कि दूसरेके साथ व्याही जाने पर सलीम मेहेरुन्निसाको आशा अवश्य ही छोड़ देंगे, किन्तु वैसा न हुआ। विवाहकी पक्की बातचीत हो जाने पर भी सलीमने एक दिन पिताके सामने अपना मन्तव्य प्रकट किया। यह सुनते ही बादशाह आगबबूला हो गए और सलीमको तिरस्कार करते हुए सामनेसे निकलवा दिया। इस प्रकार तिरस्कृत हो कर लज्जासे सलीमके चेहरे पर जर्दी छा गई। उसी दिनसे उन्होंने प्रकाश्यरूपसे मेहेरु-न्निसाके पानेकी चेष्टा छोड़ दो (२)।

(१) Dow's Hindustan III. p. 24-25. विश्वकोषके जहाङ्गीर शब्दमें लिखा है, कि सलीमने मातृगृहमें नृत्यगीतपरा-यणा मेहेरुन्निसाको एक दिन हठात् देखा था। ८म भाग।

(२) Dow's Hindostan Vol. III. p. 25.

अली-कुलीबेग इस्ताजलुके प्रकृत तुरुष्कदेशीय होने पर भी इसे पहले पहल पारस्यराजका भृत्यत्व स्वीकार करना पड़ा था। ये सफावीवंशीय २य इस्माइलके 'सफर्ची' (भोजन-परिचारक) थे। इस्माइलकी मृत्यु होने पर अलीकुलीबेग कन्दहारसे भारतवर्षको चले आए। मूलतानमें इनके साथ प्रधान सेनापति मिर्जा अबदर्रहीम खानखानाका परिचय हो गया। उन्होंने इन्हें सेना-दलमें ग्रहण कर लिया। खानखाना उस समय ठटा जीतनेको जा रहे थे। अलीकुली भी उनके साथ हो लिये। युद्धमें अलीकुलीने अपना विशेष नैपुण्य दिखा कर सुख्याति लाभ की। खानखाना ९९९ हिजरी (अकबरके राजत्वके ३४वें वर्ष)-में सिन्धुको जीत कर जब दरबार लौटे, तब उन्होंने अली-कुलीबेग इस्ताजलु-का राजाके साथ परिचय करा दिया। सम्राट्ने खान-खानाके मुंहसे युद्धमें जब इस नवीन युवाको कार्यकुश-लता सुनी, तब उन्होंने इन्हें दो सौ सेनाके मनसबदारके पद पर नियुक्त किया। पीछे अलीकुली कुमार सलीमके साथ राणाप्रतापके विरुद्ध युद्धमें भेजे गए, इस समय भी उन्होंने अपनी बहादुरी दिखा कर अच्छा नाम कमा लिया था (१)। अकबर बादशाहने इस कार्यसे प्रीत हो कर उन्हें 'शेर-अफगान'की उपाधि दी (२)।

इसी समय सलीम और मेहेरुन्निसाके साथ पूर्वोक्त घटना चल रही थी। यह देख कर अकबरने दीवान गयासबेगको इसी नवयुवकके साथ कन्याका विवाह करनेको कहा था। बादशाहके अनुरोधसे उन्होंके साथ मेहेरुन्निसा व्याही गई (३)। १५९८ ई०के कुछ पहले यह

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 524.)

(२) Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot Vol. VI. p. 402.) किन्तु एकबालनामामें दूसरी जगह (Elliot Vol. VI. p. 404) लिखा है कि 'शेर-अफगान'की उपाधि जहान्गीरसे दी गई थी।

(३) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 524.)

आईन-इ-अकबरीमें लिखा है, कि जहान्गीरने सम्राट् हो कर इन्हें तुयलदारीके पद पर नियुक्त किया था, किन्तु "तुजके जहान्गीरी" नामक जहान्गीरके स्वलिखित जीवनचरितमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। आईन-इ-अकबरीके मध्य शेर-अफ-गानके हत्याकारी कुतबुद्दीनके विवरणमें लिखा है, कि जब

घटना घटी। बादशाह पुत्रको दुर्दमनीय आकांक्षाकी बात जानते थे, तिस पर भी वे निराश कर दिए गये। आगे चल कर इसका कुत्सित परिणाम क्या होगा, कौन कह सकता? अतएव सावधान होनेके लिए अली-कुली-बेगको वर्द्दमानकी जागीर और वहांकी तुइलदारीका पद दे कर सम्राट्‌ने उन्हें पत्नीके साथ बङ्गाल भेज दिया। इस प्रकार आशाका धन बहुत दूर हट जाने पर तथा सम्राट्‌के भयसे इच्छा रहते हुए भी सलीम मानो मेहेरुन्निसाको भूल गये।

बङ्गालमें आनेके पहले ही अलीकुलीने 'शेर-अफगान'-की उपाधि पाई थी। कहते हैं, कि इन्होंने निहत्थे एक बाघको मारा था, इसीसे उक्त उपाधि मिली थी (१)। सलीमके साम्राज्य लाभके पहलेका मेहेरुन्निसाके विषयमें और कोई विशेष विवरण मालूम नहीं।

१०१४ हिजरी (१६०५ ई०)में कुमार सलीम जहान्-गीर (पृथ्वीजयी)की उपाधि धारण कर राज्यसिंहासन पर बैठे। राज्य पानेके साथ ही अन्यान्य सत्कर्मोंके मध्य निजसुख आशा मेहेरुन्निसा पानेके लिये वे नाना प्रकारके आयोजन करने लगे।

जहान्‌गीरने मेहेरुन्निसाके पिता गयासबेगको पांचहजारी मनसबदारके पद पर नियुक्त किया। इस समय वे केवल हजारीमनसबदार और बादशाहके सांसारिक अध्यक्ष थे। इसी समय दीवान वजीर खांकी मृत्यु हुई। उस पद पर जहान्‌गीरने गयासबेगको ही दीवान बना कर "इतमद-उद्दौला" (राज्यका अमूल्य धन)की उपाधि दी और उसके साथ साथ नगरा, निशान आदि सम्मान-चिह्न व्यवहार करनेका आदेश दिया। पीछे उन्होंने मेहेर-उन्निसाके द्वितीय भ्राता मिर्जा अबुल हुसेनको पांचहजारी मनसबदारके पद पर नियुक्त किया। जहान्‌गीरके राजत्वके दूसरे वर्ष (१०१५ हिजरी-में) मेहेरुन्निसाके ज्येष्ठ भ्राता महम्मद शरीफ कारा-बद्ध कुमार खुशरूको राज्य देने तथा जहान्‌गीरको मार डालनेका षड़यन्त्र रचने लगे। यह बात छिपी रह न सकी—सब किसीको मालूम हो गई। फलतः महम्मद शरीफ पकड़ा गया और मार डाला गया।

इसी साल जहान्‌गीरने अपने धात्रीपुत्र कुतुब-उद्दीन् खानिचिस्तीको बङ्गालका सूबेदार बना कर भेजा। इस व्यक्तिका प्रकृत नाम शेख खुबु था। इसकी माता फतेपुर-निवासी शेख सलीमकी कन्या थी और इनका पिता भी बदाउनके शेखवंशीय था। जब कुमार सलीम पितृद्रोही हो कर इलाहाबादमें थे, उस समय उन्होंने ही इसे कुतुब-उद्दीन्‌की उपाधि दे कर बिहारका सूबेदार बना कर भेजा था। जो कुछ हो, अभी यह जो बङ्गालका सूबेदार बनाया गया, उसका एक विशेष उद्देश्य था। कुतुब-उद्दीन् शेर अफगानको दिल्लीके दरबारमें भेज देनेके लिये कहा गया था। शेर-अफगान सूबेदारके अधीन कर्मचारी हो कर और सम्राट्‌का आदेश पा कर भी जानेको राजी न हुआ। शेरअफगान ये सब बातें पहलेसे ही ताड़ गये थे। बादमें कुतुब-उद्दीन्‌ने अपने भागि-नेय गयासको शेर अफगानके पास यह कह कर भेज दिया, कि वह शेर अफगानको समझा बुझा कर कह दे कि दिल्ली जानेसे उनका कोई अनिष्ट नहीं होगा। पीछे कुतुब-उद्दीन, शेर-अफगानसे स्वयं मिलनेके लिये गये। इस समय शेर अफगान सूबेदारका स्वागत करनेके लिए जब आगे बढ़े, तब कुतुब-उद्दीन्‌ने अच्छा मौका देख अपने अनुचरोंको चाबुकद्वारा इशारा किया और उन्होंने उसी समय शेर-अफगानको चारों ओरसे घेर लिया। शेर अफगान भी उसी समय बहुत फुर्तीसे म्यानमेंसे तलवार निकाल कर कुतुबकी ओर दौड़े और समूची तलवार उनके पेटमें घुसेड़ दी। कुतुबउद्दीन् बहुत लम्बे चौड़े तथा मजबूत जवान थे, दोनों हाथोंसे अपने विद्ध-उदरको दाब कर उन्होंने अपने अनुचरोंसे शेर-अफगानका सिर काट लेनेको कहा। अम्बा खां नामक

जहान्‌गीरने कुतबुद्दीन्‌को बंगालका सूबेदार बना कर भेजा, तब शेर-अफगान वर्द्धमानके तुउलदारके पद पर अधिष्ठित थे। सुतरां उनका यह पद अकबरसे ही दिया गया था, ऐसा प्रतीत होता है। Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 496.)

(१) आईन इ-अकबरीके ५२४ पृष्ठमें लिखा है, कि राजपूतानेके युद्धमें वीरत्व दिखा कर उन्होंने जहान्‌गीरसे यह उपाधि पाई थी। लेकिन डाउ साहबका कहना है, कि जहान्‌गीर-के राज्यारोहण करनेके बाद यह उपाधि मिली थी। (Dow's Hindostan Vo. 111. p. 4-5)

एक कश्मीरी सेनापति शेर अफगान पर टूट पड़े। दोनोंमें कुछ काल तक युद्ध होता रहा। अन्तमें तलवारसे उनका सिर दो फांक हो गया, किन्तु उनके हन्ता भी जीवित रह न सके। शेर अफगानने अपने जानेके पहले अम्बा खाँको भी यमपुर भेज दिया। कुतुब-उद्दीन उस विहङ्गदरसे अश्वपृष्ठ पर बैठे हुए थे। अम्बा खाँको मरा देख उन्होंने अपनी सेनासे शेर अफगानका सिर धड़से अलग कर डालनेको कहा। अतुल साहसी शेर अफगान कुछ काल तक इन सबसे लड़ते रहे और बहुतोंको हताहत कर पीछे आप भी युद्धक्षेत्रमें खेत रहे। शेर-अफगान जब युद्धमें जा रहे थे, तब उनकी माने उनके सिर पर एक पगड़ी बांध कर आशीर्वाद दिया था, 'बेटा! युद्धमें जावो, लेकिन देखना जिससे तुम्हारी माताके अश्रु विगलित होनेके पहले तुम्हारे शत्रुकी माताकी अश्रुधारा प्रवाहित होवे।" इतना कह कर माने शिरश्चुम्बन करके उन्हें बिदा किया। शेर अफगानका मातृ-आशीर्वाद सफल हुआ था। उन्होंने मरनेके पहले कुतुब-उद्दीन्‌को शेष-श्वासावशिष्ट और अम्बा खाँको यमपुर भेज दिया था। कुतुब-उद्दीन्‌ने शेर अफगानकी मृत्यु सुन अपने भांजेको वर्द्धमान जाने और शेर अफगानके परिवारको बन्दी कर उनकी सम्पत्ति अवरोध करनेका हुक्म दिया। इतना कह कर वे स्वदेशको लौटे और रास्तेमें ही उनकी भी मृत्यु हो गई। फतेपुर शिकरीमें उनकी मृतदेह गाड़ी गई। इन्होंने ही १०१२ हिजरीमें बदाउनकी जुम्मा मस्जिद बनवाई थी। (१)

कोई कोई कहते हैं, कि शेर अफगान रणस्थलमें नहीं मारे गए। वे आहत हो कर व्यूह भेद करते हुए अपने घर लौटे और नंगी तलवारको हाथमें लिये शयनगृहके द्वार पर खड़े हो गए। उनका उद्देश्य था कि पत्नीके शत्रु-हाथमें जानेके पहले ही उसे अपने हाथसे मार कर पीछे सुस्थचित्तसे आप भी मरेंगे; किन्तु ऐसा नहीं हुआ। उनकी सास उस समय वहीं बैठी हुई थी। वह जमाईके इस भावमें आनेका उद्देश्य समझ गई और कन्याको मृत्युसे बचानेके लिये दरवाजे पर खड़ी हो रही और बोली, 'मेहेर-उन्निसाने भी सतीत्वकी रक्षाके लिये कूएँमें कूद कर प्राणत्याग किया है, तुम अब जावो और अपने घावकी चिकित्सा करो।' यह सुन कर शेर अफगान मानो निश्चिन्तसे हो गए और उसी समय उनके हृदयका आवेग घटने लगा। अधिक लोहूके निकलनेसे वे जमीन पर मूर्च्छित हो गिर पड़े और उसी समय पञ्चत्वको प्राप्त हुए। वर्द्धमानके बहराम सक्का नामक कविके पवित्र-आश्रमके निकट उनकी समाधि हुई (१)।

किसी इतिहासमें लिखा है, कि जहान्‌गीर राजगद्दी पर बैठनेके साथ ही मेहेर-उन्निसा-लाभके प्रधान प्रतिबन्धक शेर अफगानको हटानेके लिये केवल कुतुब-उद्दीनको भेज कर चुप चाप बैठे रहे, सो नहीं, उन्होंने शेर अफगानको राजधानीमें निमन्त्रण किया। शेर-अफगान जब दरबारमें पहुंचे, तब सम्राट्‌ने उनका खूब सत्कार किया। सरल स्वभावके शेरने सोचा कि अब सम्राट्‌के हृदयमें किसी प्रकारकी दुरिच्छा नहीं है। अनन्तर एक

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 497.)

(१) Khafi-Khan (I. P. 267,)—Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 528.)

एकबालनामामें लिखा है, कि शेर अफगान बङ्गालमें आ कर विद्रोही हो गए थे। कुतुब-उद्दीन् जब बङ्गालके शासनकर्ता हो कर आए, तब वे जहान्‌गीरके आज्ञानुसार शेर-अफगानको दमन करनेकी कोशिशमें लग गए। दिल्लीसे रवाना होते समय कुतुब-उद्दीन्‌को कहा गया था—शेर अफगान यदि उनकी वश्यता स्वीकार कर ले, तो उसे जागीरमें रहने देना, अन्यथा दिल्ली भेज देना। यदि दिल्ली आनेमें वह अनर्थक विलम्ब करे, तो उसे उचित दण्ड देना। शेर-अफगानने जब कुतुब-उद्दीन्‌का हुक्म न माना, तब कुतुबने यह खबर जहान्‌गीरको लिख भेजी। इस पर जहान्‌गीरने शेर-अफगानको बहुत जल्द दमन करनेका आदेश दे दिया। (Elliot, Vol. VI. p. 402.) किन्तु आईन-इ-अकबरीमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। जहान्‌गीरके स्वलिखित इतिहासमें भी इसका कुछ जिक्र नहीं है। मालूम होता है, कि शेर अफगानके इस विद्रोहव्यापारके प्रति सलीमका व्यवहार जो न्यायसङ्गत हुआ था उसको प्रमाण करनेके लिये एकबालनामाके ग्रन्थकार मुतामद खाँने ऐसा लिखा होगा। अथवा उस समय इस प्रकारकी विद्रोहघटना नित्य हुआ करती थी, किन्तु शेरअफगान सचमुच विद्रोही हुए थे वा नहीं, यह किसी मुसलमान ऐतिहासिकने नहीं लिखा है।

दिन दोनों मिल कर शिकार खेलनेके लिये किसी जङ्गल-में गए। शिकारियोंको आस पासके ग्रामवासियोंसे खबर लगी कि अमुक जङ्गलमें एक बड़ा भारी बाघ है जो उन-के मवेशीको हमेशा मारा करता है। जहांगीर दल-बलके साथ वहां पहुंच गए। बाघ चारों ओरसे घेर कर बीचमें लाया गया। सम्राट्‌ने हँसीके बहानेसे अपने अनुचरोंको कहा, 'हमारे इतने महावीर अनुचरों-मेंसे जो अकेला व्याघ्र पर आक्रमण कर सके, वह आगे बढ़े।' यह सुन कर सबके सब एक दूसरेका मुंह देख निश्चेष्ट हो रहे। बहुतोंने शेरअफगानकी ओर भी दृष्टि डाली थी। शेर-अफगान उस दृष्टिपातका मर्म समझ न सके। अन्तमें तीन अमितसाहसी उमराव हाथमें तल-वार लिए तैयार हो गए। इन्हें देख कर शेर-अफगान-के अभिमान पर धक्का पहुंचा। एक तो वे व्याघ्रशिकार-में पहलेसे ही प्रसिद्ध थे, दूसरे उनके रहते तीन प्रतिद्वन्द्वी खड़े हो गए। यह देख कर वे क्षणकाल भी ठहर न सके और बोले, "एक जंगली पशुका शिकार करनेमें अस्त्रशस्त्र लेनेका मैं कोई प्रयोजन नहीं समझता। जगदीश्वरने पशुको जिस तरह दंष्ट्रानखायुध दिये हैं मनुष्यको भी उसी तरह हस्तपदादि दिये हैं।" इस पर अमीरोंने कहा, "बाघकी अपेक्षा मनुष्य कमजोर है। सुतरां बिना अस्त्रकी सहायता लिए उसे जय करना असम्भव है।" इस पर शेर-अफगान बोले, "आप लोगोंको जो भ्रम है, उसे मैं अभी तुरन्त दिख-लाए देता हूं।" इतना कह कर वे असिचर्मका त्याग करते हुए खाली हाथसे बाघ पर टूट पड़े। जहान्गीरका हृदय नाचने लगा, किन्तु दिखावटी तौर पर उन्होंने शेर अफगानको इस दुःसाहसिक कार्यमें जाने-से निषेध किया पर शेर-अफगानने एक भी न सुनी और वे भगवान्‌का नाम स्मरण करते हुए बाघकी ओर चल पड़े। जितने मनुष्य वहां उपस्थित थे, वे उनके साहस पर प्रशंसा करेंगे या मूर्खता पर निन्दा करेंगे, उस ओर शेरने कुछ भी ध्यान न दिया। बाघके साथ शेर-अफ-गानका युद्ध हुआ। बहुत काल लड़ते रहने बाद सर्व-शरीर क्षतविक्षत हो कर शेर-अफगान भगवान्‌की कृपा-से युद्धमें विजयी हुए। उनके हाथसे बाघ मारा गया। चारों ओर जयध्वनि होने लगी। सम्राट् भीतरसे तो बहुत व्यथित हुए, पर बाहरसे उनकी प्रशंसा करते हुए उन्हें यथेष्ट पुरस्कार दिया। पीछे चत शरीरसे शेर पालकी पर बैठे राजदरबारसे अपने डेरे पर जा रहे थे, उस समय सम्राट्‌ने उन्हें राहमें मार डालनेके उद्देश्यसे महावतको गलीमें एक मतवाला हाथी रखनेका गुप्त आदेश दिया। शेर-अफगान राहमें मत्त हाथी देख कर जरा भी न डरे और शिविका ले जानेको कहा। हाथी सूंड़में आग लिये रास्ते पर खड़ा हो गया। महरा लोग मृत्यु उपस्थित देख पालकीको फेंक कर जिधर तिधर भाग गये। शेर अफगानको इस समय भारी विपद्‌की आशङ्का हुई और सर्वाङ्गमें वेदना रहते भी वे पालकी-मेंसे बाहर निकल पड़े। बाद अपनी नित्य सङ्गी छोटी तलवार द्वारा हाथीकी सूंड़में उन्होंने भीमबलसे ऐसा आघात किया कि उसी समय सूंड़ दो खंड हो कर जमीन पर गिर पड़ी। हाथी चिंघाड़ मारता हुआ भाग चला और कुछ दूर जा कर मर गया।

यह देखनेकी सम्राट्‌को बड़ी उत्कण्ठा थी। वे प्रासादके एक झरोखेसे शेर-अफगानका यह ध्वंस व्यापार देख रहे थे। वैसी हालतमें भी जब उन्होंने देखा कि शेर-अफगानने ऐसे विशाल मत्त हाथीको मार गिराया, तब वे बहुत लज्जित हो काठकी मूर्त्ति सी जहांके तहां खड़े रह गए। इधर शेर अफगान इस कामसे और भी उत्फुल्ल हो कर असन्दिग्धचित्तसे सम्राट्‌को यह सम्वाद कहने चले गए। सम्राट्‌ने मुखसे अजस्र प्रशंसा करके उन्हें विदा किया। शेर अफगान पीछे वर्द्धमानको लौट आए। छः मास तक और कोई उत्पात न हुआ। पीछे कुतुब-उद्दीन सूबेदार हो कर बङ्गालमें आए। चाहे सम्राट्‌के गुप्त आदेशसे हो; चाहे आप सम्राट्‌का प्रियकार्य साधन करके और भी प्रियपात्र होनेके लिये हो उन्होंने शेर अफगानकी हत्याके लिये ४० डकैतोंको नियुक्त किया। शेर-अफगानको जब यह गुप्त रहस्य मालूम हो गया, तब वे हमेशा दरवाजा बन्द किए रहने लगे। एक दिन रातको द्वारपालकी असावधानीसे दरवाजा बन्द नहीं किया गया। डकैतोंको गृह-प्रवेशमें अच्छा मौका हाथ लगा। शयनगृहमें वे

प्रवेश करके निद्रितावस्थामें शेर अफगानको मारनेके लिये उद्यत हुए। इनके मध्यमेंसे एक बूढ़ा बोला, "निद्रितको वध करनेके लिये ४० आघात करनेका क्या प्रयोजन! मानुषोचित व्यवहार करो, एकसे ही काम चल जायगा।" इस कथोपकथनसे शेर-अफगान जाग उठे और बातकी बातमें म्यानमेंसे अपनी तलवार निकाल कर बोले, "जो वीर है, वह युद्ध कर ले" इतना कह कर वे घरके कोनेमें खड़े हो गए और डकैतोंके आक्रमणका प्रतिरोध करने लगे। १८।२० डकैत तो आहत हो कर चम्पत हो गए शेष उसी जगह ढेर रहे। जिस वृद्धकी बातसे उनकी नींद टूटी थी, वह भागा नहीं, बल्कि उसी जगह चुपचाप खड़ा रहा। शेर-अफगानने उसे पुरस्कार दे कर कहा, 'जावो, यह सम्वाद चारों ओर फैला दो। इस समय वे सूबेदारके राजधानी-महलमें थे और इस घटनाके बाद ही वर्द्धमान-को चले आए। पीछे कुतुब-उद्दीन अधीनस्थ कर्मचारियों-की कार्यावलीको देखरेख करनेके बहाने वर्द्धमान पहुँचे। शेर अफगानने उनका स्वागत किया। पीछे कुतुब-उद्दीनका उद्देश्य समझ कर शेरने उन पर आक्रमण कर उन्हें यमपुर भेज दिया। पीछे कुतुबके अनुचरोंने उन पर हमला किया। छः गोली और असंख्य तीरका जख्म सह कर भी वे घोड़े परसे उतरे और मक्केकी ओर मुंह किए खड़े हो गए। मक्केके उद्देशसे एक मुट्ठी धूल अपने शिर पर डाल कर धार्मिकके मरणकी तरह शेषशय्या पर सो रहे (१)।

शेर-अफगानकी मृत्युके बाद मेहेर-उन्निसा पर कड़ा पहरा बैठाया गया और वह दिल्लीको भेज दी गई। वहां पहुंच कर उन्हें भी कुतुब-उद्दीनके मारे जानेके अभियोग पर बन्दिनीभावमें रहनेका हुक्म हुआ। अकबरकी महिषी रुकिया बेगमकी सहचरियोंमें वे नियुक्त हुईं (२)। किसी किसीका कहना है, कि मेहेर-उन्निसाने जहान्‌गीरकी गर्भधारिणी मरियम-जमानीके यहां आश्रय लिया (१)।

जिस मेहेर-उन्निसाने एक दिन अपने कटाक्षसे कुमार सलीमको मोहित कर दिया था, फिर जो आगे चल कर भारतकी अधीश्वरी बनाई गई थीं वह मेहेर-उन्निसा आज प्रासादमें बुरी निगाहसे देखी जा रही हैं, यह देख कर उन्हें गहरी चोट आई। जहांगीरने उनके प्रति ऐसा क्रूर व्यवहार क्यों किया, उसका स्पष्ट इतिहास नहीं मिलता। मुसलमान ऐतिहासिकोंका कहना है, कि प्रियपात्र कुतुब-उद्दीनकी मृत्यु पर वे अत्यन्त शोकार्त हुए थे।

शेर-अफगानके औरस और मेहेर-उन्निसाके गर्भसे एक कन्या उत्पन्न हुई थी जिसका आदरका नाम था लाड़ली बेगम, किन्तु यथार्थमें माताके नाम पर उसका भी नाम मेहेर-उन्निसा रखा गया था। माताके साथ बालिका भी दिल्ली आई थी।

शेर-अफगानकी मृत्युका सम्वाद जब दिल्लीमें पहुंचा तब जहान्‌गीर फूले न समाए और बोले, "वह कालामुख नराधम नरकमें चिरकाल तक सड़ेगा।"

मेहेर-उन्निसा सुलतानारुकिया बेगमके महलमें रहने लगीं। बेगमसाहबाने उसकी परिचर्याके लिये एक क्रीतदासी भी नियुक्त कर दी। प्रासादमें आनेके बाद सम्राट् जहान्‌गीरने मेहेर-उन्निसाकी कोई खोज खबर न ली। जिनके लिये उन्होंने आजीवन यत्न, कौशल और खून खराबी की, आज पार्श्ववर्त्तिनी होने पर भी उनकी ओर वे नजर तक भी नहीं उठाते। इस व्यवहार पर मेहेर-उन्निसाको तो आश्चर्य होना ही चाहिए, अन्यान्य लोग भी विस्मित हो पड़े। सम्राट्‌ने ऐसा क्यों किया, मालूम नहीं। मुसलमान ऐतिहासिकोंने भी इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। किसी किसीका कहना है, कि प्रियपात्र कुतुब-उद्दीन्‌की मृत्यु पर गभीर शोकार्त्त हो उन्होंने ऐसा किया था। जहांगीर स्वलिखित विवरणमें किसी कारणका उल्लेख न कर केवल इतना लिख गए हैं कि, "पहले पहल मैं

(१) Dow's Hindostan, vol III, p. 26-32.

(२) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 509 and Wakiat-i-Jahangiri Elliot, vol. VI, p. 398.)

(१) Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot VI, p. 404.)

उसे ग्राह्य नहीं करता था।" सुतरां इसका कारण चिर-अज्ञात रह गया। पीछे इससे भी बढ़ कर मेहेर-उन्निसाकी अवज्ञा की गई थी। उन्हें प्रतिदिन खाने-के लिये केवल ॥) आने मिलने लगे थे।

मेहेर-उन्निसा स्वामिशोक तथा बादशाहकी अवज्ञा-जनित कष्टसे दिनों दिन क्षीण होने लगीं। अन्तमें ढाढ़स बांध कर जिससे सम्राट्‌की नयन-पथवर्त्तिनी हो सकूं, उसकी चेष्टा करने लगीं। सुलताना रुकिया बेगम-साहबा उनके व्यवहारसे बहुत प्रसन्न हुईं। मेहेर-उन्निसाका अलोकसामान्यरूप देख कर वे भी मुग्ध हो गई थीं। ऐसी भुवनमोहिनी सुन्दरी ऐसी बुरी अवस्थामें रहेंगी, यह उन्हें जरा भी पसन्द न आया। स्वतःप्रवृत्त हो कर उन्होंने सम्राट्‌से अनुरोध किया। बादशाहने विमाताके अनुरोध पर भी कर्णपात न किया।

अब मेहेर-उन्निसा निराशासे दुःखित न हो ऐसा उपाय सोचने लगीं जिससे बादशाहका मन इस ओर पलट आवे। वे दैनिक व्ययके लिये जो कुछ पाती थीं, उससे अपना तथा अपनी परिचारिकाका खर्च चलाना बहुत कठिन था। इसी मूल पर उन्होंने सूई और शिल्प-कर्ममें विशेष मन दिया। आप वे सब कार्य अच्छी तरह जानती भी थीं, अब और भी तन मन दे कर असाधारण बुद्धिके प्रभावसे अच्छे अच्छे फूल, पाड़ और नक्शे निकालने, जवाहरमें बढ़िया नक्काशी उतारने और पुराने गहनोंमें कुछ परिवर्त्तन कर उन्हें और भी सुदृश्य करने लगीं। ये सब कार्य वे खुद अपने हाथसे करती और अपनी परिचारिकाको सिखा कर उससे भी कराती थीं। धीरे धीरे द्रव्यादिके प्रस्तुत हो जाने पर वे परिचारिका द्वारा उन्हें बेगम-महलके नाना स्थानोंमें बेचनेके लिये भेज देती थीं। बेगम-साहबा और कन्याएँ बहुत आग्रह तथा आदरसे उन नयी नयी विलासकी सामग्रियोंको खरीदती थीं। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें मेहेर-उन्निसाकी प्रशंसा बेगम-महल-में फैल गई। जब तक विलासनी उनके प्रस्तुत दो चार द्रव्योंको अपने घरमें रख न लेती थीं, तब तक वे अपने कमरेको सुसज्जित नहीं समझती थीं। सुतरां इसी सूत्रसे मेहेर-उन्निसाको बहुत आय होने लगी। बाद वे सुन्दर सुन्दर द्रव्यादि प्रस्तुत कर दिल्लीके समस्त अमीर उमरावोंके अन्तःपुरमें भेजने लगीं। उन स्थानोंमें भी इनका नाम फैल गया। धीरे धीरे दिल्ली-से ले कर आगरा तक उनके द्रव्यादिकी रपतनी होने लगी। इस प्रकार वे बहुत धनवती हो गईं। उपयुक्त अर्थ पा कर मेहेर-उन्निसाने अपनी परिचारिकाओंको ऐसे सब कीमती तथा कामदार कपड़े दिये कि वे हो बादशाहजादी-सी मालूम पड़ने लगीं। पीछे अपने घर-को भी उन्होंने भलीभांति सजा दिया। लेकिन आप अपने व्यवहारमें सफेद मामूली कपड़े के सिवा और कुछ भी काममें न लाती थीं। इस प्रकार चार वर्ष बीत गए। सम्राट्‌के निजअन्तःपुरके प्रत्येक घरसे, दरबारके प्रत्येक अमीर-उमरावके मुखसे, यहां तक कि दिल्ली और आगरेके सभी सम्भ्रान्त व्यक्तियोंसे मेहेर-उन्निसाकी शिल्प-प्रशंसा इतनी दूर तक फैली कि सम्राट् जहांगीरको भी इसकी खबर लग गई। फिर क्या था, जो जहांगीर एक दिन मेहेर-उन्निसाका गान सुन कर स्तब्धसे हो गए थे, आज वे उनकी शिल्प-प्रशंसा सुन कर तथा उनके शिल्पकार्यको अपनी आँखोंसे देख कर उद्दीप्त हो उठे। यहां तक, कि उन्होंने स्वयं किसी दिन मेहेर-उन्निसाके कारखाने जाने और उनके शिल्पकार्यको देखनेका सङ्कल्प कर लिया। लेकिन यह विषय उन्होंने किसीसे भी न कहा (१)।

१०२० हिजरी (जहांगीरके राजत्वके छठें वर्ष)-के प्रथम दिनमें (२) सम्राट् हठात् मेहेर-उन्निसाके कक्षमें उपस्थित हुए। कक्षशोभा और द्रव्यसज्जादिका चमत्कारित्व देख कर बादशाह सचमुच विस्मित हो पड़े। उस समय मेहेर-उन्निसा खाट पर केहुनीके बल लेटी हुई अपनी परिचारिकाओंके शिल्पकार्यको निगरानी कर रही थीं। वे आप तो सफेद मसलिनका सामान्य कपड़ा पहने हुए थीं, किन्तु बहुमूल्य शोभामय परिच्छद-परिधारिणी बहुत-सी परिचारिकाएं घरकी शोभा बढ़ाती हुई मण्डलाकारमें बैठ कर काम कर रही थीं।

(१) Dow's Hindustan vol. III, p. 34.

(२) Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot, vol. vi.

मेहेर-उन्निसा बादशाहको देख विस्मयचकितनयनसे समङ्कोच बिछावन परसे उठीं और कुर्सी दे कर उनका स्वागत किया। इस समय बादशाह सामान्य सूक्ष्मवस्त्र-मण्डित मेहेर-उन्निसाकी अतुलनीय शोभा और माधुरी देख कर अवाक् हो रहे। अङ्ग प्रत्यङ्गकी सरल गठन, परिमित आकार और सारे शरीरका लावण्य देख उन्हें मालूम पड़ा मानो सौन्दर्य ही मूर्त्तिवान् हो कर उनके सामने खड़ा है। सम्राट् कुछ काल तक टक लगाए अवाक् हो उस रूपराशिको देखते रहे। पीछे खाट पर बैठ कर उन्होंने पूछा, 'मेहेर-उन्निसा! ऐसी विभिन्नता क्यों? तुम्हारी परिचारिकाओंके परिच्छदसे इतनी पृथकता क्यों?" मेहेर-उन्निसाने उत्तर दिया "जहाँपनाह! दासत्व करनेके लिये जिन्होंने जन्म लिया है, प्रभुके इच्छानुसार ही उन्हें अपनी सजावट करनी होती है। मुझमें जहां तक शक्ति है, वहां तक मैं इन्हें सुखी बनानेकी चेष्टा करती हूं। मैं आपकी बांदी हूं, आपके अभिप्रायानुसार मैंने अपना परिच्छद मनोनीत कर लिया है।" मेहेर उन्निसाके ऐसे विनीत अथच कुछ श्लेषव्यञ्जक उत्तरसे जहांनगीर नितान्त प्रसन्न हुए। उसी समय उनका पूर्वानुराग पूर्ववत् प्रबलवेगसे उद्दीप्त हुआ। मीठी मीठी बातोंसे मेहेर-उन्निसाको आश्वासन दे वे चले आए। दूसरे दिन उन्होंने मेहेर-उन्निसाके साथ अपना विवाह तथा उसका आयोजन करनेका प्रकाश्य आदेश दे दिया (१)।

जहानगीरने निम्नलिखित विवरणमें मेहेरुन्निसा-के साथ द्वितीय बार प्रथम दर्शनका कोई विशेष कारण नहीं दिया है, केवल इतना ही लिखा है, "अन्तमें मैंने काजीको बुला मंगाया और उससे विवाह कर लिया। विवाहके समय मैंने उसे 'देनमोहर' (विवाहकालीन वरकर्त्तृक कन्याको अवश्य देय यौतुक)-स्वरूप ५ मेस्काल परिमित ८० लाख अशरफी (७ करोड़ २० लाख रु०) और एक लड़ी मुक्ताकी कंठी (इसमें ४० मुक्ता थीं, प्रत्येकका मूल्य ४० हजार रुपये; सुतरां १६ लाख रुपये) प्रदानकी थी (१)।" १०२० हिजरीके प्रथम मासकी ३री वा ४थी तारीखको सम्राट् जहान्-गीरके साथ शेर-अफगानकी विधवा पत्नी मेहेरुन्निसा बेगमका दूसरा विवाह हुआ था। मेहेरुन्निसाकी उमर उस समय ३४ वर्षकी और जहान्गीरकी प्रायः ४२ वर्षकी थी (२)।

विवाहके बाद जहान्गीरने नवपत्नी मेहेरुन्निसाका नाम बदल कर "नूरमहल" अर्थात् 'अन्तःपुरालोक' और पीछे उसे भी बदल कर अपने नामानुसार "नूरजहान्" नाम रखा।

नूरजहांने चिरवाञ्छित साम्राज्ञीका पद प्राप्त किया, साथ साथ अपने रूप और असामान्य बुद्धिके प्रभाव-से जहान्गीरके ऊपर भी अपनी क्षमता और प्रभुत्व फैलाया। जहान्गीर उनके हाथके खिलौने हो गए। वे नूरकी बुद्धिके प्रभाव पर मुग्ध हो कर कहा करते थे, "नूरजहान्से विवाह होनेके पहले मैंने विवाहका यथार्थ अर्थ नहीं समझा था। उनके हाथमें राज्यका और राजकोषके कुल मणिमाणिक्यादिका भार दे कर मैं निश्चिन्त हो गया हूं। मुझे यही एक सेर शराब और आध सेर मांसके सिवा कुछ भी प्रयोजन नहीं है (१)।" नूरजहान्के विवाहके बाद उनके पिता गयास-बेग प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त हुए और ६ हजारी मनसबदार तथा ३ हजार अश्वारोहीके अधिनायक बने। जहांगीरके राजत्वके दशवें वर्ष (१०२५ हिजरी)में गयासबेगने और भी सम्मानपद प्राप्त किया। उन्हें दर-बारके बीचमें ही स्वीय सम्मानसूचक डङ्का बजानेका हुकुम मिला। ऐसा सम्मान और किसीके भाग्यमें नहीं बदा था। इसके पांच वर्ष बाद नूरजहान्की माताका देहान्त हुआ। १०३० हिजरीमें गयासने उस सतसह-चारिणी सुख-दुःखकी सङ्गिनी प्रियतमा पत्नीको खो दिया। इस समय गयासको जामाताके साथ काश्मीर

(१) Dow's Hindustan vol. III, p. 35.

(१) Tuzuk-i-Jahangiri (Autobiographical memoirs of Jahangir by Major D. Price p. 27)

(२) सौरमानसे इनकी गणना की गई। (Ain-i-Akbari p. 506 note)

जाना पड़ा। राहमें भग्नहृदय गयास पीड़ित हो पड़े। इस समय सम्राट् और नूरजहान् ये दोनों कांगरादुर्ग देखने गये थे। गयासकी अन्तिम अवस्थामें उन्हें यह संवाद मिला और फौरन वे दोनों उन्हें देखनेको चल दिये। इस समय गयासकी मुमुर्षु अवस्था थी, किसीको वे पहचान नहीं सकते थे। नूरजहान्ने अश्रुपूर्ण नयनसे पिताकी शय्याके पास खड़ी हो कर सम्राट्को दिखाते हुए पूछा, "ये कौन हैं, पहचान सकते हैं?" गयास एक कवि थे, उस समय भी उनकी कवित्वशक्ति नष्ट नहीं हुई थी। उन्होंने कवि अनवारीकी एक कविताकी आवृत्ति करके कन्याके प्रश्नका उत्तर दिया जिसका भावार्थ था—"यदि जन्मान्ध भी यहां आ कर खड़ा हो जाय, तो वह भी ललाटकी विशालता देख कर सम्राट्की उपस्थिति समझ सकेगा।" जहांगीर श्वशुरका तकिया पकड़ कर दो घण्टे तक वहां खड़े थे। कुछ समयके बाद ही गयासकी मृत्यु हो गई। पत्नीकी मृत्युके ३ मास २० दिन बाद १०३१ हिजरीमें उनकी मृत्यु हुई थी। आगरेके निकट उनकी क़ब्र बनाई गई। इनका समाधिमन्दिर देखनेमें सुन्दर और उल्लेखयोग्य है। गयासकी मृत्यु पर जहानगीर भी शोकातुर हुए थे।

जहानगीर स्वयं कह गए हैं, कि हजारों विपन्नहृदय-युक्त वस्तुकी अपेक्षा एकमात्र उनका साथ अतीव प्रीतिकर है। गयासके एक भी शत्रु न था, सभी उन्हें चाहते थे। उनमें अगर दोष भी था तो सिर्फ यह कि वे रिशवत लेते थे (१)।

नूरजहान्ने दिनों दिन सम्राट्के ऊपर अपना इतना प्रभुत्व जमाया, कि तातार पारस्यसे प्रतिदिन उनके जितने आत्मीय दिल्लीमें आने लगे, वे सभी अच्छे अच्छे ओहदे पर नियुक्त होते गये। इनके पिता और भाईने तो अकबरके समयसे ही प्रतिपत्ति लाभ की थी। अब वहनके भारताधिश्वरी होने पर उन्होंने और भी अपनी पदोन्नति कर ली। यहां तक कि इस समय हाजीकोका नामक एक व्यक्ति राजान्तःपुरके परिचारिका-नियोगके अध्यक्ष थे। नूरजहान्की धात्री दिलारानीने नूरजहान्की कृपासे इस व्यक्तिके ऊपर भी कर्तृत्व लाभ कर "सदरी-अनास"की पदवी प्राप्त की थी। विना उसकी सलाह लिये हाजी कोका किसीको नियुक्त नहीं कर सकते और न किसीको वेतन ही दे सकते थे। इस रमणीने धर्मार्थरूपमें अपनी सभी भूमि मोहराङ्कित करके दान करती थीं। सम्राट् उसमें जरा भी छेड़छाड़ नहीं करते थे (२)।

नूरजहान्के बड़े भाईका विवरण पहले ही कहा जा चुका है। द्वितीय भ्राता मिर्जा अबुल हसन आसफ खांकी उपाधि लाभ कर पांचहजारी मनसबदार हुए थे। तृतीय भ्राता इब्राहिम खां फतेजङ्गकी उपाधि लाभ कर १६१८से १६२३ ई० तक बङ्गालके सूबेदार हुए थे। उनके कनिष्ठाभगिनीपति हाकिम-बेग दरबारमें एक अच्छे उमराव थे।

नूरजहान्के पूर्व स्वामीके औरससे लाड़ली बेगम नामक जो कन्या उत्पन्न हुई थी, उसके साथ १०३१ हिजरीमें जहान्गीरने अपने पञ्चमपुत्र शहरयारका विवाह कर दिया।

नूरजहान्ने धीरे धीरे राज्यके सभी काम अपने हाथमें ले लिए। यहां तक कि उपाधिवितरणके व्यापारमें भी उनकी सम्मतिकी आवश्यकता होती थी। शासन, युद्ध, सन्धि, राजकोष आदि सभी विषयोंमें उनकी आज्ञा ली जाती थी। केवल अपने नाम पर "खुतबा-पाठ"के सिवा और सभी विषयोंमें उन्होंने सम्राट्का अधिकार निजस्व कर लिया था। राज्यके सभी कागज पत्रोंमें तथा दलील दस्तावेज आदिमें सम्राट्के नामके बाद ही उनका भी नाम लिखा रहता था। स्त्रियोंको जो सब जमीन दान की जाती थी, उस दानपत्रमें केवल नूरजहान्का मोहर अङ्कित रहता था। राज्यकी मुद्रामें भी उनका नाम और इस प्रकारकी

(१) Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 409-10) and Autobiographical memoirs of Jahangir, p. 25. Wakiat-i-Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 382)में लिखा है, कि इनकी मृत्यु १०३० हिजरी, १७ श्रावनको हुई।

(२) Wakiat-i-Jahangiri (Elliot, Vol. VI, p. 398 and Ain-i-Akbari (Blochmann, p. 570.)

कविता मुद्रित होती थी,—"सम्राट्के आदेशसे स्वर्ण-मुद्राके वक्ष पर रानी नूरजहान्का नाम अङ्कित रहनेसे स्वर्णकी ज्योति सौ गुणी बढ़ गई है।" नूरजहान्ने इतनी क्षमता पाई थी सही, लेकिन कभी उसका अपव्यवहार न किया। उन्होंने जो पितृ-बन्धु वा आत्मीय स्वजनोंको प्रधान कर्म पर नियुक्त किया था, उसके लिये किसी ऐतिहासिकने उनके प्रति दोषारोपण नहीं किया। इसका कारण यह था, कि उन्होंने सब कर्मचारियोंको शासनके वशीभूत कर रखा था। वे लोग भी कभी राज्यका अनिष्ट करना नहीं चाहते थे। उनका सब किसीके साथ सद्व्यवहार था। वे शिष्टपालन और दुष्टदमन करते थे, अतः कोई उनसे डाह नहीं रखते थे। ये सब मनुष्य अपने अपने कर्त्तव्यपालनमें निपुण थे, इस कारण कोई उन्हें रानीका आत्मीय समझ कर विद्वेषदृष्टिसे नहीं देखते थे। उनकी पदोन्नति आत्मीयताके कारण नहीं होती थी, बल्कि कृतकारिताके कारण। यही कारण है कि ऐतिहासिकगण नूरजहान्में कोई दोष बतला न सके और वे भी अनुगतपालनके दोषसे मुक्त हो गईं।

नूरजहान् परम दयावती थीं। जब कभी इन्हें अनाथा बालिकाओंकी खबर लग जाती, तब ये उनके प्रतिपालनकी व्यवस्था और विवाहादि करा दिया करती थीं। इस प्रकार उनकी कृपासे पांच सौसे अधिक बालिकाओंका उद्धार हुआ था।

इस प्रकार क्षमता प्राप्त कर उसके सद्व्यवहारके साथ साथ नूरजहान् जहान्गीरकी मद्यपानासक्ति घटानेकी कोशिश करने लगीं। १०३१ हिजरीके शरत्कालमें जहांगीरको श्वासरोगकी बीमारी हुई। उस समय वे काश्मीरमें थे और केवल थोड़ा सा दूध पीया करते थे। बहुत-सी चिकित्सा की गई, पर फल कुछ भी अच्छा न निकला। मद्यपानसे वे कुछ आरोग्यता अनुभव कर सकते थे, इस कारण अन्तमें उसीकी मात्रा बढ़ा दी गई। वे दिनको भी शराब पीने लगे। नूरजहान्ने इसका कुफल देख कर बहुत चालाकीसे इसकी मात्रा घटा दी और सेवा करके स्वामीको आरोग्य बना दिया। इसी समयसे जहान्गीरके मद्यपानका परिमाण कुछ कम हो गया (१)।

(१) Wakiat-i Jahangiri (Elliot Vol. VI. p. 381.)

नूरजहान् केवल बुद्धिमती रमणी थी सो नहीं, वे वीर्यशालिनी भी थीं। इनके प्रथम स्वामी शेर-अफगान्ने व्याघ्रको मार कर जो साहस दिखलाया था, ये भी वैसा ही साहस रखती थीं। १०२८ हिजरीमें मथुराके निकट बाघने बड़ा उपद्रव मचाया। जहान्गीरको जब इसकी खबर लगी, तब उन्होंने हस्तिदल भेज कर बाघको चारों ओरसे घेर लेनेका हुक्म दिया। शामको नूरजहान् भी अनुचरोंके साथ पहुंचीं। जहान्गीरके नहीं जानेका कारण यह था कि उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे किसी प्राणीका वध नहीं करेंगे, इस कारण उन्होंने नूरजहान्को जाने तथा गोली चलानेका आदेश दे दिया। बाघकी गन्धसे हाथी स्थिर रह न सका। अतः हौदेके भीतरसे निशाना ठीक करना बहुत कठिन सा हो गया। उस समय केवल मिर्जा रुस्तम नामक एक अव्यर्थलक्ष्य शिकारी उपस्थित था। उसने तीन बार निशाना किया, लेकिन एक बार भी सफल न हुआ। अन्तमें नूरजहान्ने उस अस्थिर हाथीकी पीठ परसे अपूर्व-शिक्षाके बल एक ऐसी गोली चलाई कि बाघ चित हो रहा (१)।

दरबारमें किसी कविने इस घटनाका उपलक्ष्य करके कवितामें कहा था, "यद्यपि नूरजहान् स्त्री थीं, तो भी वे शेर-अफगानकी पत्नी ही तो थीं।" "जानि-शेर-अफगान" अर्थात् शेर-अफगानकी पत्नी वा व्याघ्र-नाशिनी रमणी यह विवरण जहान्गीर स्वयं लिख गए थे।

शहर्यारके नूरजहान्के जमाई होने पर तथा नूरजहान्का प्रभाव देख कर जहान्गीरके अन्यान्य पुत्रगण डर गए। सम्राट्के पुत्रोंमेंसे युवराज खुर्रम (पीछे शाहजहान्) बुद्धिमान्, वीर, कर्मकुशल तथा पितामह अकबरके प्रियपात्र थे। अजमेरके पूर्व-दक्षिण रामशिरके

(१) Wakiat-i-Jahangiri (Elliot Vol. VI. p. 367)

आईन-इ-अकबरी (५२५ पृ०)में चार बाघकी कथा लिखी है जिनमेंसे दो बाघको एक एक गोलीसे और शेष दोको दो दो गोलियोंसे नूरजहान्ने मारा था। शिकारमें उन्हें ज्यादा प्रेम था, इस कारण हठ करके सम्राट्से आज्ञा ले ही लेती थीं।

निकट रानी नूरजहान्‌की अति विस्तृत जागीर थी। १०३१ हिजरीके शेषमें जहान्‌गीरके राजत्वके सत्तरहवें वर्षके प्रारम्भमें यह सम्वाद पहुंचा कि युवराज खुर्रम-ने नूरजहान् और राजकुमार शहरयारकी जागीरका अधिकांश अधिकार कर लिया है। उस समय शहरयारके कर्मचारी ढोलपुरके फौजदार दरफ-उल-मुल्कके साथ लड़ रहे थे, जिसमें दोनों पक्षको बहुत-सी सेनाएं हताहत हो चुकी थीं। यह खबर जब जहान्‌गीरको लगी, तब उन्होंने शाहजहान्‌के अधीनस्थ सैन्यदल दिल्ली भेजने तथा उन्हें अपनी जागीरमें सन्तुष्ट रह कर कर्त्तव्यपथसे विचलित नहीं होनेके लिए एक अनुशासन-पत्र उनके पास भेजा। शाहजहान्‌ने पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन किया। प्रधान सेनापति मिर्जा अबदुल-रहीम खानखानाने शाहजहांका साथ दिया। अन्तमें २५ हजार अश्वारोही ले कर आसफ खां (नूरजहान्‌का द्वितीय भ्राता) ने बिलुचपुरके निकट विद्रोहियोंके ऊपर आंशिक जयलाभ किया। पीछे १०३२ हिजरीमें मुतामद-उद्दौला महब्बत खां कुमार परवीजके अधीन रह कर ४० हजार अश्वारोहियोंको साथ ले विद्रोहदमनमें अग्रसर हुए। अजमेरके समीप महब्बत खांने विद्रोहियों-के प्रभावको बहुत कुछ खर्व कर डाला। पीछे खान-खानाने जब शाहजहान्‌का साथ छोड़ दिया, तब वे उड़ीसा भाग गए। इस घटनासे नूरजहान् शाहजहां-के ऊपर बहुत बिगड़ीं और भविष्यमें अपने जमाई शहरयारको ही दिल्लीके सिंहासन पर बिठानेका उन्होंने सङ्कल्प कर लिया, किन्तु शाहजहांका अनिष्ट करने-को उनकी जरा भी इच्छा न थी। कारण महब्बत खां जब उनके विरुद्ध रणको ओर अग्रसर हुए, तब नूर-जहान्‌ने ही एक गुप्त पत्र लिख कर उन्हें गुजरातकी राहसे भाग जानेकी सलाह दी थी (१)।

जहान्‌गीरके राजत्वके इक्कीसवें वर्षमें १०३५ हिजरी-को महब्बत खां बङ्गालके सूबेदार हुए। सूबेदार हो कर उन्होंने बङ्गालसे हाथी (जो प्रति वर्ष पकड़ कर भेजा जाता था) भेजना बन्द कर दिया। अरबवासी दौलतसायर नामक एक कर्मचारी द्वारा हाथी भेजने तथा महब्बत खांको दरबारमें उपस्थित होनेके लिए सम्राट्‌ने कहला भेजा। महब्बतने हाथी तो भेज दिया लेकिन आप न गये। इस समय उन्हें खबर लगी कि सम्राट्‌की सलाह लिये बिना उन्होंने जो अपनी कन्या का विवाह किया है, इस कारण सम्राट्‌ने उनके जमाईको पकड़ लानेका हुकुम फिदाई खांको दे दिया है। इस समय सम्राट् दलबलके साथ काबुलकी ओर जा रहे थे। बेहात (वितस्ता) नदीके किनारे उनकी छावनी डाली गई थी। नवाब आसफ खां अपनी सारी सेनाको ले कर नदी पार हो चुके थे। महब्बत खांने निज मान सम्भ्रम और जीवनसम्पत्तिको विपद्‌में समझ कर २००० राजपूत सेना साथ ले सम्राट्‌की छावनीमें प्रवेश किया। एकबालनामाके ग्रन्थकार मुतामद खां इस समय सम्राट्‌की बकशी और मीर तुजकके पद पर अधिष्ठित थे, इस कारण वे हमेशा उन्हींके साथ साथ रहा करते थे। महब्बतने दलबलके साथ छावनीको घेर लिया। सेनाने दरवाजेके पर्देको चीर फाड़ डाला। द्वाररक्षकने भीतर जा कर सम्राट्‌को यह खबर दी। सम्राट् तुरत ही बाहर निकल आए और पालकी पर चढ़ कर जहां महब्बत खां थे, वहां पहुंचे। महब्बतने उनसे कहा, 'नवाब आसफ खांकी हिंसा और ताच्छिल्यका सहन नहीं करते हुए मैंने जहांपनाहकी शरण ली। मैं यदि प्राणदण्डके उपयोगी हूं, तो हुकुम दीजिए, आपके सामने ही दण्ड-भोग करूं।" इसके बाद योद्धागण पालकीको चारों ओरसे घेरे हुए खड़े हो गए। रागके मारे सम्राट्‌ने दो बार तलवारको खींचना चाहा, पर दोनों बार मनसुर-बदकशीने उनका हाथ पकड़ लिया और धैर्य रखने तथा ईश्वर पर निर्भर करनेका अनुरोध किया। पीछे महब्बत खांने सम्राट्‌को अपने घोड़े पर सवार होनेको कहा। लेकिन सम्राट्‌ने वैसा नहीं किया वरन् उन्होंने अपना घोड़ा और पोशाक लानेका हुकुम दिया। घोड़े-के पहुंचते ही वे तुरत सवार हो गए। थोड़ी दूर जा कर महब्बतने उन्हें हाथी पर चढ़ा लिया और दोनों अर्म्मारीमें पहरा बैठाया गया। पीछे शिकारका बहाना

(१) Maasir-i-Jahangiri, Elliot, Vol VI, p. 445.

करके महब्बत समाट्को अपने घर ले गए और अपने पुत्रोंको समाट्के रक्षकस्वरूप नियुक्त किया।

महब्बत जो समाट्को बन्दी करके ले गए, यह रहस्य किसीको मालूम होने न पाया। यहां तक कि रानी नूरजहान्को भी इसकी खबर न लगी। महब्बतने जब समाट्को कैद किया, उस समय उनके मनमें बुद्धिमती नूरजहांकी कथा जरा भी याद न थी। इस प्रकार कई दिन बीत जाने पर जब उन्हें नूरजहांका डर लगा, तब उन्होंने समाट्को पुनः राजप्रासादमें भेज देनेकी कल्पना की। किन्तु जब इधर नूरजहांको सन्देह हुआ, तब वे अपने भाईके साथ मुलाकात करनेको गईं। यह सम्वाद पा कर महब्बत अपनी भूल समझ गये और सुविधा रहते भी नूरजहांको बन्दी कर न सके यह सोच कर वे अपने ओठ चबाने लगे। अन्तमें कुमार शहरयारको समाट्के साथ बन्दी रखनेके उद्देश्यसे वे समाट्को शहरयारके घर ले गए।

इधर नूरजहां आत्मशिविरमें पहुंची और अपरिणामदर्शिताके लिये उनकी खूब निन्दा की। नवाब आसफ खां भी बहुत लज्जित हुए। उस समय सबोंने सलाह करके यह स्थिर किया कि दूसरे दिन महब्बत पर आक्रमण और समाटको उद्धार करना ही कर्त्तव्य है। यह खबर धीरे धीरे समाट्के कानमें पहुंची। उन्होंने इस व्यर्थ आयोजनको रोक देनेके लिये मुकारिब खांके हाथ संवाद भेजा और नदी पार हो कर युद्ध करनेका निषेध किया। दूत यह खबर पहुँचानेके लिये राजाकी अँगूठी ले कर चला गया था, किन्तु आसफ खांने महब्बतका कूटकौशल समझ कर उस परामर्शकी ओर कर्णपात न किया।

महब्बतको भी इसकी खबर लग गई। नदीके ऊपर जो पुल था उसे उन्होंने जला दिया। फिदाई खां समाट्का बन्दित्व सुननेके साथ ही कई एक साहसी वीरोंको साथ ले तैर कर नदी पार होने लगे। उनमेंसे कुछ नदीके वेग और जलकी शीतलतासे मर गए, केवल छः योद्धा कुशलसे पार हो सके थे। इन छःमेंसे भी फिर चार शत्रुके हाथसे मारे गए। फिदाई अपनी निर्बुद्धिता समझ पुनः तैर कर नदीके पार चले आए। अन्तमें आसफ खां नूरजहान्को साथ ले सैन्य हाथी और घोड़े द्वारा नदी पार कर गए। नूरजहान्ने दूत भेज कर सबोंको उत्साहित किया और कहा, 'अभी इतस्ततः करनेसे सब व्यर्थ हो जायंगे। शत्रु जहांपनाहको ले कर भाग जायंगे। इसमें उनके प्राण जानेकी आशङ्का भी है।"

नदी पार होनेके समय सात आठ सौ राजपूतसेनाने युद्धहस्तीको ले कर जलके बीचमें ही उन पर आक्रमण किया। नूरजहान्के हाथीकी सूंड़ पर विपक्षियोंने तलवार द्वारा बहुत जोरसे प्रहार किया। जब हाथी लौटा, तब वे तीर बरसाने लगे। कुमार शहरयारकी कन्याकी धात्रीके अङ्गमें एक तीर घुस गया (१)। नूरजहान्ने उस तीरको खींच कर बाहर फेंक दिया। धात्रीका समूचा शरीर लोहूसे रंग गया। हाथी रानीको अपनी पीठ पर लिए राजप्रासादकी ओर चल दिया। पार होते समय आसफ खां घोड़े परसे पानीमें गिर पड़े और रिकाब पकड़ कर कुछ दूर तक लटक रहे। घोड़ा उनके बोझसे पानीमें डूब मरा। इसी समय एक काश्मीरी नाविककी नजर आसफ पर पड़ी और उसने उनकी जान बचा ली। पीछे आसफ खां इस प्रकार अपने उद्देश्य और परामर्शको विफल होते देख लज्जासे मर गए। फिदाई खां कतिपय अनुचरों और सम्राट्भृत्योंको ले कर नदी पार हुए और शत्रुओं पर टूट पड़े तथा उनका व्यूह भंग करते हुए दलबलके साथ कुमार शहरयारके प्रासादमें जहां सम्राट् बन्दी थे पहुंचे। प्रासादके अन्दर विपक्षियोंके जो बहुसंख्यक अश्वारोही और पदाति बैठे हुए थे, उन्होंने फिदाईको पुरीमें प्रवेश करनेसे रोका। इस पर फिदाई खां फाटक परसे तीरकी वर्षा करने लगे। जिस घरमें सम्राट् बंदी

(१) डाउ साहबके इतिहासमें लिखा है, कि नूरजहांकी कन्या शहरयारकी पत्नी ही आहत हुई थी और यही ठीक भी प्रतीत होता है। क्योंकि ऐसे समयमें वैसी बालिकाको ले कर नूरजहां धात्रीके साथ हाथी पर सवार थीं यह अनुमानसे बाहर है। उनकी कन्याका साथ रहना कोई बड़ी बात नहीं थी। (Dew's Hindostan Vol. III, p. 91.)

थे, उस घरमें भी दो एक तीर जा गिरा। मुखलिस खाँ नामक एक व्यक्ति सम्राट्‌के जीवनकी आशङ्का देख निज शरीर द्वारा सम्राट्‌को आड़ दिए खड़ा रहा।

शत्रुओंके तीरने फिदाई खाँके कितने अनुचरोंको यमपुर भेज दिया ; वे स्वयं भी आहत हुए और उनका घोड़ा मृतप्राय हो गया। जीतको आशा न देख फिदाई खाँ लौट जानेको बाध्य हुए और नदी पार कर रोहतस दुर्गमें जा ठहरे। आसफ खाँ भी लज्जित और परास्त हो अपनी जागीरके अन्तर्गत अटकदुर्गमें भाग गए। महब्बतने जयी हो कर आसफ खाँको पकड़नेके लिये अपने लड़के बिहरोज और एक राजपूत सेनापतिको विपुल सेना साथ दे भेज दिया। आसफ खाँके सेनाबल कुछ भी न था। अतः वे सहजमें पराजित और पुत्र समेत पकड़े गए। महब्बतके पास पहुंच कर उन्होंने उनका पक्ष ग्रहण करनेका शपथ खाया। अटकदुर्ग महब्बतके अधीन रहा। सम्राट् कुछ दिन जलालाबादमें रह कर काबुलको चल दिए। महब्बत भी उनके साथ थे, उनका बन्दित्व उस समय भी दूर नहीं हुआ था (१)।

आसफ खाँके सपुत्र बन्दी होने पर नूरजहान् लाहोरसे भागी जा रही थीं। किन्तु सम्राट्‌ने उन्हें एक पत्र लिख कर सूचित किया कि महब्बतने उन्हें सम्मानपूर्वक रखा है और महब्बतके साथ जितना गोलमाल था, सब मर मिट गया है। स्वामी कुशलपूर्वक हैं, यह जान कर नूरजहान्‌को चैन पड़ा। महब्बतने भी सम्राट्‌के पत्रानुयायी सब विवाद मिट जानेकी कथा लिखी और अन्तमें नूरजहान्‌को सम्राट्‌के साथ काबुल वा जहां वे चाहें वहां जानेमें बाधा नहीं देंगे, ऐसी खबर दी। अब नूरजहान्‌ने स्वामीके पास जानेमें जरा भी विलम्ब न किया। लाहोर छोड़ कर वे उसी समय जहां सम्राट् थे वहां पहुंच गईं। महब्बतने सेना भेज कर उनकी महासम्भ्रमसे अभ्यर्थना की।

महब्बतने इस प्रकार नूरजहान्‌को हस्तगत कर उनकी कार्य्यावलीको ओर दृष्टि रखी और वे शीघ्र ही समझ गए कि नूरजहान् अपने जामाताको राजगद्दी पर बिठानेकी कोशिशमें हैं। महब्बतने इसकी खबर सम्राट्‌को दी और कहा "मौका मिलने पर रानी आपके प्राण तक भी ले सकती हैं। अतएव इस समय नूरजहान्‌को मार डालना ही उचित है।" इस पर सम्राट्‌ने उसी समय नूरजहान्‌के वधादेश पर हस्ताक्षर करके भेज दिया। महब्बतने यथासमय वह आदेशपत्र नूरजहान्‌को दिखाया। नूरजहान्‌ने कहा, "सम्राट् अभी बन्दी हैं। उन्हें स्वाधीनता कहां! मैं एक बार उनसे मुलाकात करना चाहती हूं।" उनकी प्रार्थना स्वीकार की गई। नूरजहान् पर नजर पड़ते ही सम्राट् फूट फूट कर रोने लगे। जिस हाथसे सम्राट्‌ने वधादेश लिखा था, उसे अश्रुजलसे सिक्त किया। सम्राट्‌ने व्याकुल हो कर महब्बतसे कहा, 'महब्बत! क्या तुम केवल इसे एक स्त्रीको छोड़ नहीं सकते।' यह कातरोक्ति सुन कर महब्बत भी मुग्ध हो गए और मुंहसे एक बोली भी न निकालते हुए रक्षिगणको जाने कह दिया। नूरजहान् मुक्त हो गईं। इधर महब्बतके इस आचरणसे उनके साथी लोग क्षुब्ध और विरक्त हो गये तथा बोले, 'इस दया पर, इस भूल पर एक दिन तुम्हें ठोकर खानी पड़ेगी। बाघिन जब कभी मौका पायगी तभी उसकी हड्डी चबा डालेगी। आगे चल कर हुआ भी वैसा ही। नूरजहान्‌के हृदयमें यह अपमान प्रस्तराङ्कित रेखाकी तरह बैठ गया था। (१)

बादशाह और बेगम काबुलमें छः मास तक ठहरी थीं। इस समय वे बीच बीचमें शाह इस्माइलसे मुलाकातको जाया करते थे। महब्बतकी छावनी बादशाही छावनीसे कुछ दूरमें थी और वे कभी कभी बादशाहको देखने आया करते थे।

नूरजहान्‌का हृदय पूर्व अपमानसे दिनों दिन अधिक

---

(१) एकबालनामामें नूरजहां कब कहां और किस तरह सम्राट्‌से मिलीं उसका कोई उल्लेख नहीं है। पर काबुलभ्रमणके समय वे सम्राट्‌के साथ थीं, ऐसा लिखा है। सुतरां काबुल प्रवेशके पहले ही वे जलालाबादकी छावनीमें मिली थीं ऐसा अनुमान किया जा सकता है।

(१) Dow's Hindostán Vol. III. 98.

रहा था। किस प्रकार महब्बतका बदला चुकाऊँ। रात दिन वे इसीकी फिक्रमें थी।

इस समय नूरजहान् हमेशा स्वामीके साथ रहा करती थीं और उद्धारके लिये नाना परामर्श देती थीं। किन्तु सम्राट् एक भी परामर्श न सुनते थे। उस समय वे महब्बतके साथ मिल कर विश्वास दिलानेकी चेष्टा कर रहे थे। महब्बत भी सम्राट्के व्यवहारसे दिनों दिन उस विषयमें निरुद्वेग हो रहे थे। सम्राट्को भी यह अच्छी तरह मालूम हो गया था। वे उस विश्वासको एक बारगी दूरीभूत करनेके लिए नूरजहान्के सभी परामर्शोंको निष्कपट पूर्वक महब्बतसे कहने लगे। यहां तक कि नूरजहान्ने महब्बतके प्राणनाशकी जो सलाह दी थी तथा उनकी भ्रातृपुत्र वधू (शाईस्ता खाँकी पत्नी और शाह नवाजकी कन्या)ने अवसर पा कर इन्हें गोलीसे मार गिरानेकी जो विचारा किया था उसे भी सम्राट्ने महब्बतको कह दिया।

महब्बत पिञ्जराबद्ध-विहङ्गिनीके उद्धारार्थ ये सब वृथा-चेष्टाकी कथा सुन कर हर्षाकी हंसीसे हंसते थे। नूरजहान्को इसकी भी खबर लग गई और अन्तमें वे इसे बरदाश्त कर न सकीं। वे महब्बतको पृथ्वीसे अलग करनेकी कोशिश करने लगी। उन्होंने इस बार सम्राट्को भी इसकी सूचना न दी। महब्बत जिस राह हो कर बादशाही शिविरमें आ रहे थे, एक दिन उस राह पर उन्होंने कुछ काबुली बन्दूकधारियोंको गुप्त स्थानमें रखा। महब्बत घोड़े पर चढ़ ज्यों ही गलीसे हो कर कुछ दूर आगे बढ़े, त्यों ही दोनों बगलकी अट्टालिकाओं परसे उन पर गोली बरसने लगी। सौभाग्यवश महब्बतके शरीरमें एक भी गोली न लगी। वे वायुवेगसे गली हो कर बन्दूकधारियोंको विमर्दित करते हुए सामान्य आहत पा कर अपने शिविरमें पहुंचे। काबुलियोंने सम्राट्की पांच सौ सेनाको मार डाला। पीछे नूरजहान्ने मानो इस विषयसे बिलकुल अनभिज्ञ हो, सम्राट्से इस घटनाका कारण पूछा। सम्राट् सचमुच इसका कुछ भी हाल नहीं जानते थे, सुतरां वैसा ही उत्तर दिया। बाद महब्बतने काबुलियोंके इस प्रदेशको घेर लिया। काबुली भयभीत हो गए। नगरके प्रधान प्रधान मनुष्य महब्बतके पास बहुत विनीतभावसे उपस्थित हुए। सम्राट्ने भी उन लोगोंकी ओरसे महब्बतसे क्षमा मांगी। इस घटनाके कुछ नेतागण जब पकड़वा दिये गए, तब महब्बतने भी सन्तुष्ट चित्तसे घेरा उठा दिया। उन सब नेताओंको सामान्य दण्ड दे कर मुक्ति मिली। इसके बाद ही महब्बतने काबुलसे छावनी उठा लेनेका हुकुम दिया और वे सबके सब लाहोरकी ओर चल दिए (१)।

नूरजहान्ने जब देखा कि सम्राट् उनकी बात पर कान नहीं देते, तब वे बहुत उद्विग्न हो गईं और क्या करना चाहिये उसकी तरकीब ढूढ़ने लगीं। स्वामी परसे उनका विश्वास हट गया और छिपके उद्धार पानेके लिये वे षड़यन्त्र रचने तथा सम्राट्को भी प्रबोध देनेके लिये उनके साथ मिथ्या परामर्श करने लगीं। सच पूछिये तो नूरजहान् इस समय जी जानसे छुटकारा पानेकी कोशिशमें थीं। वेतन दे कर वे अनुचरकी संख्या धीरे धीरे बढ़ाने लगीं। क्रमशः उनके कोषाध्यक्ष होशियार खाँ दो हजार मनुष्यों को संग्रह कर लाहोरकी ओर अग्रसर हुए। उस समय नूरजहांने भी राजभृत्यपरिचयसे कितने ही लोगोंको संग्रह कर रखा था। होशियारने रोहतससे कुछ दूरमें रह कर नूरजहांको सम्वाद भेजा। नूरजहांने स्वामीको निजसैन्यपरिदर्शनके लिये आग्रहपूर्वक अनुरोध किया। सम्राट्ने इसे स्वीकार कर लिया। उन्होंने निज परिचारक बलन्द खाँ द्वारा महब्बतको कहला भेजा कि उस दिन दैनिक कूचकवायद बन्द रखी जाय कारण सम्राट् बेगमके अश्वारोहीका परिदर्शन करेंगी। पहले महब्बत तो राजी न हुए, पर पीछे ख्वाजा अबुलहसनने तर्क द्वारा उन्हें राजी कराया। राजप्रासादसे ले कर नदीके किनारे तक दोनों बगल रानीके अश्वारोही एक श्रेणीमें खड़े किये गए। उधर नदीके दूसरे किनारे होशियार खाँका सैन्यदल रोहतस दुर्ग तक फैला हुआ था। बादशाह और बेगम घोड़े पर सवार हुईं। उनके कुछ

(१) Ikbal-nama-i Jahangiri · Elliot, Vol. VI, p. 420-431)

दूर जाने पर सैन्यदल धीरे धीरे सम्राट्के पीछे पीछे आने लगी। अन्तमें बहुत तेजीसे वे सबके सब बादशाह और बेगमके साथ नदी पार कर रोहतस दुर्गमें पहुंचे। इस प्रकार रानी नूरजहांकी बुद्धिबलसे सम्राट्ने चिरबन्दित्वसे उद्धार पाया। अब स्वामीको उद्धार कर वे अपने भाई और भतीजेके उद्धारकी चेष्टा करने लगीं। उन्होंने महब्बत खांको एक आदेशपत्र स्वामीसे लिखवा कर भेजवा दिया। उस पत्रमें महब्बत खांको ठट्टप्रदेशमें शाहजहांके विरुद्ध युद्धयात्रा करने, आसफ खां और उनके पुत्र आबू तालेब (पीछे शाईस्ता खाँ)-को दरबारमें भेज देने, शाहजादा दानियालके दोनों पुत्रोंको और मुखलिस खांके पुत्र लस्करी खाँको भेज देनेका आदेश था। पत्रमें यह भी लिखा था, कि उनके आदेशका उल्लङ्घन करनेसे उनके विरुद्ध सेना भेजी जायगी। महब्बतने देखा, कि इस समय बिना किसी छेड़छाड़के सबको भेज देना ही अच्छा है, नहीं तो आफत मेरे ही सिर पड़ेगी। यह सोच कर उन्होंने सब किसीको भेज दिया सिवा आसफखांके, जिसका कारण लिख भेजा कि वे ठट्ट प्रदेश जा रहे हैं, इस समय वे आसफ खांको छोड़ नहीं सकते। क्योंकि नूरजहां बेगमसे वे पदपदमें प्रतिशोधकी आशङ्का कर रहे हैं। ठट्टकी ओर जानेसे सम्भव है कि स्वाधीनता-प्राप्त आसफ खां उनके विरुद्ध अस्त्रधारण करें। अतएव लाहोर पार होनेके बाद वे छोड़ दिये जायँगे। नूरजहां यह सम्वाद पा कर आगबबूला हो उठीं। उन्होंने पुनः महब्बतको लिख भेजा कि वे फौरन आसफको छोड़ देवें अन्यथा उनके पक्षमें अच्छा नहीं होगा। इस पर महब्बतने बिना किसी ना नुंके आसफको भेज दिया, लेकिन उनके पुत्रको कुछ समय तक रोके रखा।

डाउ साहबके इतिहासमें सम्राट्के उद्धारका वर्णन और प्रकारसे लिखा है। महब्बतको राज्य पानेकी जरा भी इच्छा न थी। पद और मर्यादामें किसी प्रकारकी हानि न पहुंचेगी इस प्रकार सम्राट्से प्रतिज्ञा करा कर उन्होंने उन परसे कठोरता घटा दी, पहरुओंकी संख्याको कम कर दिया तथा जो सब राजकीय क्षमता अपने हाथमें ले ली थी उसे भी सम्राट्को प्रत्यर्पण किया। इस सद्व्यवहार पर भी नूरजहां चुप चाप बैठी न रहीं, वरन् क्षमता पानेसे उन्हें अब और भी सुयोग मिल गया। उन्होंने यह कहला भेजा कि, "जो भयानक दुर्दान्त क्षमताशाली और कुटिल मनुष्य सम्राट्को कैद कर सकता है, उसे यदि बिना दण्ड दिए ही छोड़ दें अथवा मौखिक आनुगत्यसे वशीभूत हो कर उसका आदर करें तो फिर प्रजा क्या सम्राट्को प्रकृत सम्राट् मानेगी?" यह कह कर बेगमने जनताके सामने उसे प्राणदण्ड देनेके लिये सम्राट्से अनुरोध किया। लेकिन सम्राट्ने वैसा नहीं किया, वरन् इस विषयमें कोई बात उठानेसे मना किया। स्वामीसे इस प्रकार विफलमनोरथ हो नूरजहांने एक खोजाको सम्राट्-शिविरमें प्रवेश करते वा उससे बाहर निकलते समय महब्बत पर गोली चलानेका हुकुम दिया। जहांगीरको ज्योंही इस आदेशकी खबर लगी, त्यों ही उन्होंने महब्बतको सावधान होनेके लिये कहला भेजा। महब्बत सावधान हो गए लेकिन मारे जानेका डर बरबस बना हुआ था। अन्तमें सम्राट्की बात पर विश्वास करते हुए वे छुरा कर ठट्ट प्रदेशको चल दिये।

जब नूरजहान्को मालूम हुआ कि महब्बत जान ले कर कहीं भाग गया, तब उन्हें खोजने और पकड़ लानेके लिये उन्होंने चारों तरफके शासनकर्त्ताओंके पास फरमान भेज दिये। ढिंढोरा भी पिटवा दिया गया कि महब्बत खां बागी हो गया है, जो उसको पकड़ लावेगा उसे यथेष्ट पारितोषिक मिलेगा।

आसफ खांने अपनी बहनके ऐसे कठोर आदेशको अच्छा न समझा। वे महब्बतको गुणावली जानते थे और स्वयं भी उनके सद्व्यवहारके वशीभूत थे।

महब्बत नूरजहान्के आदेशसे ताड़ित कुत्तोंकी तरह नाना स्थानोंमें छुरा कर घूमने लगे। अन्तमें एक दिन छद्मवेशमें असम साहस पर निर्भर करते हुए घोड़े पर सवार हुए और ठट्टसे दो सौ कोसका रास्ता ते कर कर्णाल नामक स्थानमें आसफ खांके शिविरमें पहुंचे। रातके ८ बजे जब वे द्वार पर आ खड़े हुए, तब एक खोजाने उसे पहचान आसफको खबर दी। आसफने महब्बतके मलिन वेश और दुर्दशा देख कर

उनका आलिङ्गन किया और दोनों रोने लगे। बहुत बातचीत होनेके बाद महब्बतने कहा, "सम्राट्‌को शैतानने ही उनका सर्वनाश किया। नूरजहां जैसी अकृतज्ञ है और उसीके लिये जब मेरी ऐसी दुर्दशा हो गई है, तब एक दूसरेको सम्राट् बनाऊंगा, ऐसी मैंने प्रतिज्ञा कर ली है। कुमार परवीज धार्मिक बन्धु होने पर भी दुर्बलमना और निर्बोध है। किन्तु शाहजहां सर्वांशमें उपयुक्त है। उसे मैंने युद्धमें परास्त किया है। अतएव यदि आप हमारी सहायता करें, तो हम आपके जामाताको राज्य दे सकते हैं।' आसफ अप्रार्थित बन्धु पा कर विस्मित और प्रीत हुए तथा सैन्य और अर्थ दे कर सहायता पहुंचानेको तैयार हो गए। बाद महब्बत वहांसे चल दिये।

तदनन्तर दक्षिणके गोलयोगका सम्वाद पहुंचा। सम्राट्‌ने महब्बतके जैसे सेनापतिका अभाव उल्लेख करते हुए आक्षेप किया। इसी मौकेमें आसफ खांने महब्बतकी मार्जनाका आदेश बाहर निकाल लिया। महब्बतने फिरसे पूर्व सम्मान और पदादि पाए तथा वे सैन्यदलके अधिनायक हो कर शाहजहांके विरुद्ध भेजे गए। (१)

मुसलमान ऐतिहासिकोंने लिखा है,—इसी बीच सम्राट् दलबलके साथ लाहोर पहुंचे। आसफ खांके वहां पहुँचने पर वे पञ्जाबके सूबेदार और प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त किए गए तथा उन्हें समस्त राजनैतिक और राजस्वसंक्रान्त मन्त्रणासभाके सभापतिरूपमें कार्य करनेका आदेश भी दिया गया। इस समय महब्बत बङ्गदेशसे २२ लाख मुद्रा साथ लिए आते थे। बिहारके निकट शाहाबाद पहुंचने पर जब सम्राट्‌को इसकी खबर लगी, तब उन्होंने सेना भेज कर उसे छीन लिया।

इसके बाद शाहजहान्‌ने ठट्ट प्रदेश होते हुए पारस्य जाने तथा वहांके अधीश्वर शाह अब्बाससे सहायता मांगनेका विचार किया। ठट्टप्रदेश पहुंचने पर कुमार शहरयारके कर्मचारी सरीफ-उल-मुल्कने दुर्गसे गोला फेंक कर उनके कितने अनुचरोंको मार डाला। इस समय २८ वर्षकी अवस्थामें कुमार परवीजकी मृत्यु हुई। अतः शाहजहां ठट्टको छोड़ कर नासिक भाग गए। महब्बत खां शाहाबादमें २२ लाख रुपयेसे वञ्चित हो कर सब आशाओंका परित्याग करते हुए राजपूतानेमें राणाके राज्यके मध्य पार्वत्य प्रदेशमें छिप रहे। पीछे जब उन्होंने सुना कि शाहजहां नासिकमें हैं, तब उनके पास एक दूत भेजा। इस समय शाहजहांको महब्बतके जैसे एक आदमीकी जरूरत थी, इसलिए उन्होंने महब्बतको अपने पास बुला भेजा। इस समय भी महब्बतके साथ २००० अश्वारोही थे। जुनिर नामक स्थान पर दोनोंमें मुलाकात हुई।

१०३७ हिजरीमें सम्राट् जहांगीर रोग-ग्रस्त हुए। दिनों दिन उनका भोजन कम होता गया। केवलमात्र एक पात्र द्राक्षा-रसके सिवा और कुछ भी खानेका उपाय न रहा। अच्छी चिकित्सा होने लगी। पर कोई फल देखा न गया। काश्मीरसे वे पालकी पर चढ़ा कर लाहोर भेज दिए गए। इस समय कुमार शहरयार एक प्रकारकी उपदंशपीड़ासे अत्यन्त दुर्दशा ग्रस्त हुए। उनके मुखमण्डलके श्मश्रु, गुल्फ, भ्रूपक्ष्म, मस्तकके बाल और गात्रलोम झड़ गए। वे नितान्त लज्जित हो पिताके निकटसे लाहोर भाग आए। सम्राट् भी पर्वतसे उतर रहे थे। राहमें वैरमकल (ब्रह्मकाल) नामक स्थान पर पहुंच कर चिरशिकारप्रिय सम्राट्‌को शिकार खेलनेकी इच्छा हुई। कुछ ग्रामवासी सम्राट्‌के आदेशसे एक हरिणको जङ्गलसे भगा लाए। सम्राट्‌ने कष्टसे बन्दूक उठा कर गोली चलाई। हरिण गोली खा कर बहुत तेजसे भागा और हरिणीके पास जा खड़ा हुआ। बाद उसी जगह उसकी जान निकल गई। कुछ लोग जो इसके पीछे पीछे दौड़े थे पर्वतसे गिर कर पञ्चत्वको प्राप्त हुए। यह देख कर दुर्बलमस्तिष्क सम्राट्‌का मन घोर विकृत हो गया। उन्हें उस समय ऐसा मालूम पड़ने लगा कि वे यमदूतको देख रहे हैं। बाद वे इस स्थानसे दो दण्डका रास्ता ते कर राजोर पहुंचे। इस समय उन्हें केवल सुराकी इच्छा थी। लेकिन वे उसे घूंट न सके। दूसरे दिन सबेरे (२८वीं सफर १०३७

(१) Dow's Hindostan Vol. III.p. 9.

हिजरोको) सम्राट् नूरउद्दीन् जहांगीर परलोकको सिधार गए (१)।

बाद आसफ खांने इरादत खानखानी आजमके साथ परामर्श किया और तदनुसार मृत युवराज खुशरूके पुत्र दौरा बक्शको बन्दित्वसे उद्धार कर उसोको राजत्वकी आशा दी। दौरा बक्शने उन लोगोंसे इस विषयमें प्रतिज्ञा कर ली। अन्तमें आसफ खांने उन्हें घोड़े पर चढ़ा उन्होंके मस्तक पर राजछत्र पहना दिया और सबके सब अग्रसर हुए। नूरजहांने इस समय भाईसे भेंट करनेके लिये अनेक बार उन्हें अनुरोध किया; किन्तु आसफ खांने कोई बहाना लगा कर मुलाकात न की। दौरा बक्शको आश्वासन दिये जाने पर भी आसफखाँ अपनी प्रतिज्ञा पर कायम न रहे। उन्होंने वाराणसी नामक एक अत्यन्त द्रुतगामी दूतको भेज कर शाहजहां और महब्बतको इसकी खबर दी, पत्र लिखनेका उन्हें अवकाश न था। अभिज्ञानस्वरूप उन्होंने अपनी अँगूठी दूतके हाथ लगा दी। ऐसा करनेका कुछ कारण था (२)। इनकी कन्या मुमताज-महलके साथ १०१८ हिजरीमें कुमार शाहजहांका विवाह हुआ था। सुतरां जामाताके लिये सिंहासनको निरापद रखनेके उद्देश्यसे दूसरे दूसरे प्रतिद्वन्द्वियोंको वाधा देनेके लिये ही उन्होंने दौरा बक्शको सिंहासनकी आशा दी थी।

दूसरे दिन भीमवरसे बड़ी धूमधामसे सम्राट्की मृतदेह लाहोर लाई गई और नूरजहान्के उद्यानमें गाड़ी गई। यहां पर अन्यान्य अमीरगण आसफ खांकी अभिसन्धि समझ कर उन्हींके मतानुसार चलने लगे। दौरा बक्श सम्राट् कह कर विघोषित किये गए और भीमवरमें उस दिन उनके नाम पर खुतबा पढ़ा गया। नूरजहां भाईके इस कार्य पर बहुत असन्तुष्ट हुईं। वे मृत सम्राट्के इच्छानुसार काम करने लगीं और उसी स्थान पर अमीर उमरावोंके मध्य स्वपक्षमें लोक संग्रह करनेके लिये चेष्टा भी की। आसफ खांने उनकी चेष्टाको विफल करनेके लिये उन्हें अपने शिविरमें बन्दिनीके स्वरूप रख दिया।

उधर शहरयार पिताका मृत्यु-संवाद पाते ही लाहोरके राजकोष पर अधिकार कर बैठे और उसीसे सैन्य संग्रह करने लगे। उनकी पत्नी नूरजहान्की कन्या मेहेरुन्निसाने स्वामीको उत्तेजित कर उन्हें सम्राट् कह कर तमाम घोषणा कर दी। सैन्य और सेनापतियोंको अपने दलमें लानेमें शहरयारके एक सप्ताहके अन्दर १० लाख रुपये खर्च हुए थे। शाहजादा दानियालके भतीजे मिर्जा बाइसिन्दरने इस समय भाग कर लाहोरमें अपने भतीजे शहरयारका आश्रय ग्रहण किया। शहरयारने चाचाको सेनापति बनाया। वे सैन्यदल ले कर नदी पार हुए और वहां किनारेको चारों ओरसे सुरक्षित कर रहने लगे। हाथी पर चढ़े हुए आसफ खां और दौरा बक्शने देखा कि नदीके किनारे तीन कोस तक विपक्ष सैन्य एक कतारमें खड़ी है। आसफकी सैन्यसंख्या बहुत कम थी। अतः वे पहले तो डर गए, पर पीछे जब उन्होंने युद्ध करनेका पक्का विचार कर लिया, तब शहरयारकी अशिक्षित सेना गोलाघातसे भीत हो कर अस्त्रचालनके पहले ही तितर-बितर हो गई। दूरमें शहरयार पर्वतशिखर पर तीन सहस्र अश्वारोही ले कर खड़े थे। जब उन्हें मालूम पड़ा कि उनकी सेना जान ले कर भग गई, तब वे पर्वत परसे उतरे और किलेमें आश्रय लिया। दूसरे दिन आसफ खांने सुशिक्षित राजभक्त सैन्य और वीरोंकी सहायतासे पुनः दुर्गको अपने अधिकारमें कर लिया।

उस समय शहरयार अन्तःपुरमें छिपे हुए थे। फिरोज खां उन्हें आसफके पास पकड़ लाए। दौरावक्शके आदेशसे उनकी दोनों आंखें उपाट ली गईं। शाहजादा दानियालके दूसरे दो पुत्र भी बन्दी हुए (१)।

उधर वाराणसी काश्मीरके पहाड़से २० दिनमें मोलकुण्डा पहुंचा और १०३७ हिजरी, १८ रबिउल

(१) Ikbal-nama-Jahangiri (Elliot. Vol. VI. p. 431-35.).

(२) Dow's Hindustan, Vol. III, p. 113 and Ikbal-nama-i-Jahangiri (Elliot, Vol. VI. p. 436.)

(१) Dow's Hindustan Vol. III. p. 114 and Elliot Vol. VI. p. 437.

अव्वलको जुनिर नामक स्थानमें महब्बत खांसे घर उपस्थित हो उसने आसफखांका प्रेरित सम्बाद कह सुनाया शाहजहान्‌को भी इसकी खबर लगी। पीछे उन्होंने २३ तारीखको गुजरातकी राह हो कर यात्रा कर दी। अहमदाबाद पहुंच कर शाहजहान्‌ने अपने श्वशुरको एक पत्र लिखा जिसमें कुमार खुसरूके पुत्र दोरा वकृश, कुमार शहरयार और शाहजादा दानियालके पुत्रोंको मार डालनेका परामर्श था। तदनन्तर १०३७ हिजरीको २री जमादियल अव्वलको लाहोरमें सर्वसम्मतिक्रमसे शाहजहां सम्राट् बनाये गए। २६ तारीखको दोरावकृश, उनके भाई गरशास्प, शहरयार और दानियाल के दोनों पुत्र मार डाले गए। आसफ खांने इस विषयमें कोई खोज खबर न ली। दूसरे दिन वे सबके सब आगराको चल दिये और २६वीं तारीखको शाहजहां दलबलके साथ आगरा पहुंच कर सर्ववादी सम्राट्‌के जैसा गद्दीन हुए।

शहरयारको मृत्यु होने पर नूरजहान्‌की सभी आशा, सभी चेष्टा धूलमें मिल गई। उन्होंने राजनैतिक व्यापारसे एकबारगी हाथ अलग कर लिया। शाहजहान्‌ने उन्हें वार्षिक दो लाख रुपयेकी वृत्ति निर्धारित कर दी। बाद वे जब तक जीती रहीं, तब तक उन्होंने सफेद वस्त्र पहन कर विधवाचारसे जीवन व्यतीत किया। इस समय वे पढ़ने तथा पारसीमें कविता बनानेमें रत रहतीं थीं। 'मुक्‌फि' उपनामसे वे स्वरचित कवितामें भणिता देती थीं। आमोद उत्सवमें इस समय इनको जरा भी अभिलाषा न थी।

नूरजहान् असामान्या रमणी थीं। राजनीतिको उन्होंने नखदर्पणमें रखवा लिया था। स्त्री हो कर वे जिस तरह भारतसाम्राज्यका शासन कर गई हैं, अकबरके जैसे राजनीतिज्ञ बादशाहके पुत्र हो कर जहांगीर भी उस तरह राज्यशासन कर न सके थे। नूरजहान्-सी बुद्धिमती रमणी यदि जहांगीरको न मिलती, तो सम्भव था कि, वे या तो विद्रोहमें सिंहासनच्युत होते, अथवा जिन्दगी भर महब्बत खांसे चिरबन्दिलमें रह कर प्राण गवांते। बुद्धि, साहस, कौशल, धूर्त्तता, दया, स्नेह, ममता और कर्त्तव्यनिष्ठता आदि गुण नूरजहांमें भरपूर थे। पर हां, महब्बतके साथ उनका व्यवहार विशेष निन्दनीय था। स्वार्थान्ध हो कर उन्होंने जो अकृतज्ञता दिखलाते हुए दुष्ट कौशलका अवलम्बन किया था, उन्हीं सब भूलोंसे उनका इतना शीघ्र पतन हुआ।

लाहोरमें ७२ वर्षकी उमरमें १०५५ हिजरी, २८वीं सोवालको भारतेश्वरी नूरजहांका शरीरावसान हुआ। स्वामीकी कब्रके बगल ही निज निर्मित कब्रमें उनकी देह समाहित हुई।

नूरजहां जैसी अतुलनीय-अपार्थिव-सौन्दर्यशालिनी थीं, वैसी ही सौन्दर्यप्रिया और विलासिनी भी थीं। शेर अफगानको मृत्युके बाद जब वे जहांगीरकी बन्दिनी थीं, तब उन्होंने नये नये आदर्शके गहने बना कर रेशमी वस्त्रमें नक्काशी करके निज शिल्पकुशलता और सौन्दर्यज्ञानका परिचय दिया था। पीछे आप महिषी हो विलासिताकी चूड़ान्त वस्तु प्रस्तुत कर भुवन पर चिर प्रसिद्धिलाभ कर गई हैं। 'अतर-इ-जहांगिरी' नामक सर्वोत्कृष्ट गुलाबजल, पेशवाजके लिये सूक्ष्म चिक्कण 'दुदामी' नामक वस्त्र (तौलमें दो दाम मात्र), ओढ़नेके लिये 'पांच तोलिया' (तौलमें ५ तोला मात्र), 'बादला' नामक बूटेदार वा गुलदार सूक्ष्म रेशमीवस्त्र और जरी इन्हींके मस्तिष्कको उद्भावित वस्तु हैं। 'फराश-इ-चन्दनी' नामक चन्दनवर्णकी कार्पेट उनके समस्त शिल्पोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ शिल्प और परम शोभाविशिष्ट है(१)।

द्वितीय बार विधवा हो कर नूरजहां ईश्वराराधना और पतिकी चिन्तामें इतनी डुबी हुई थी कि उन्होंने चिरप्रिय राजनीतिका भी परित्याग कर दिया था।

नूरजा—सिन्धुप्रदेशका एक वृहत् ग्राम। यह अक्षा० २६° २४' उ० तथा देशा० ६७° ५३' पू०के मध्य अवस्थित है। यह सेवानसे १० मील उत्तर और सिन्धुनदीसे ३ मील पश्चिम पड़ता है। इस ग्रामके चारों ओरकी जमीन समतल है और प्रति वर्ष पंकके पड़नेसे वह उर्वरा हो जाती है। यहां बहुतसी नहरें हैं। इस कारण फसलादि अच्छी लगती हैं।

---

(१) Ain i Akbari (Blochmann, p. 510)

नूरनगर—१ बङ्गालदेशके अन्तर्भुक्त त्रिपुरा जिलेके अधीन एक क्षुद्र नगर। यह अक्षा० २३° ४५' उ० और देशा० ८१° ५' पू०के मध्य ढाका शहरसे ५५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

२ खुलना जिलेके अधीन एक गण्डग्राम। यहां राजा वसन्तरायके वंशधरगण वास करते हैं।

३ युक्तप्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन एक नगर। यह अक्षा० २८° ४१' उ० और देशा ७७° ५८' पू०के मध्य मुजफ्फरनगरसे हरिद्वार जानेके रास्ते पर बसा हुआ है। यहांसे मुजफ्फर नगर २२ मील उत्तर-पूर्व पड़ता है।

नूरपुर—१ पञ्जाब प्रदेशके कांगड़ा जिलेके अन्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० ३२° १८' उ० और देशा० ७५°५५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५२५ वर्गमील और लोकसंख्या चार हजारसे ज्यादा है। यहां एक आश्चर्य-जनक लकड़ीका मन्दिर है। यहां चावल, गेहूं, मकई, जौ, चना, ईख, रुई और अन्यान्य शाक सब्जी उत्पन्न होती हैं। यहांके तहसीलदार ही दीवानी और राजस्व विभागीय विचारकार्य तथा शासनकर्त्ताके कार्य करते हैं। यहां तीन थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३२° १८' १०" उ० और देशा० ७५° ५५' १०" पू०, समुद्रपृष्ठसे दो हजार फुटकी ऊंचाई पर तथा धर्मशाला नामक स्वास्थ्य-निवाससे ३७ मील दक्षिण पश्चिम स्रोतस्वती-की एक शाखा पर अवस्थित है। पहले यह नगरी एक क्षुद्र देशीय क्षुद्र राज्यकी राजधानी थी। राजा वसुने समतल क्षेत्रसे इस नगरको उठा कर पहाड़के ऊपर बसाया और चारों ओर दुर्गसे सुरक्षित कर दिया। बहुत दिनों तक यह नगर वाणिज्यवृद्धिके कारण जिलेका प्रधान सदर था। किन्तु वर्त्तमान समयमें व्यव-सायका ह्रास हो जानेसे नगरकी पूर्वश्री जाती रही और अन्नाभावसे जनसंख्या भी दिनों दिन घटती जा रही है। फ्रान्स-प्रुसिया युद्धके बाद ही यहांके वाणिज्य-की अवनति हुई। यहां शाल और पशमीने कपड़े तो तैयार होते हैं पर वे काश्मीर वा अमृतसरके कपड़ोंसे बहुत निकृष्ट हैं।

यहांके अधिवासी विशेष कर राजपूत, कश्मीरी और क्षत्रिय हैं। ये क्षत्रियगण मुसलमान राजाओंसे उत्पीड़ित हो कर लाहोरसे आ कर इसी स्थान पर बस गए। १७८३ और १८३० ई०में जब काश्मीरमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा था, तब काश्मीरियोंमेंसे बहुतोंने स्वदेश छोड़ दिया और इसी स्थानमें आ कर रहने लगे। आते समय वे पशमीना वस्त्रादि बुननेके उपयुक्त यन्त्रादि भी अपने साथ लाए थे। इस समयसे यह स्थान शाल व्यव-सायके लिए विशेष मशहूर हो गया है।

फिलहाल वहांके काश्मीरिगण शालव्यवसायके बदले रेशमके कीड़ेकी खेती करते और उसीसे रेशमादि तैयार कर बेचते हैं। यहां एक बड़ा बाजार, अदालत, औषधा-लय, विद्यालय और दो सराय हैं। निकटवर्त्ती स्थानोंसे नाना प्रकारके द्रव्यादिकी आमदनी होती है।

इरावती और विपाशा-नदियोंके बीच १६ मील तक विस्तृत एक भूभाग है जो नूरपुर जिला नामसे प्रसिद्ध है। इसके उत्तरमें चन्द्रभागा नदी, पूर्वमें चम्बाराज्य, पश्चिममें पञ्जाबराजके अधीनस्थ कई एक हिन्दूराज्य और विपाशानदी तथा दक्षिणमें हरिपुर है। इस जिलेके प्रत्नतत्त्व-विषयमें जो कुछ पता लगा है, वह नीचे दिया जाता है। प्रसिद्ध ग्रन्थकार अबुलफजलने इस स्थानको दमरूरी बतलाया है। यहांके अधिवासी इसे 'दहमेरी' कहा करते हैं। तारीख-इ-अल्फिनामक ग्रन्थमें इसका दमाल नाम रखा गया है। उक्त पुस्तकमें लिखा है, कि यह स्थान हिन्दुस्थानके प्रान्तभागमें एक पर्वतके ऊपर बसा हुआ है।

इस दहमेरी जिलेकी राजधानी पठानकोटमें है। यह पठान-कोट नगर इरावती और विपाशा नदीके मध्य-स्थलमें अवस्थित है। यहांके निकटस्थ पर्वतों पर कांगड़ा और चम्बानगर तथा समतल क्षेत्र पर लाहोर और जलन्धरनगर बसे रहनेके कारण एक समय यह नगर वाणिज्यका एक उत्कृष्ट स्थान गिना जाता था। इस स्थानके अधीन हिन्दूराजगण पठान जातीय राजपूत-शाखासे उत्पन्न हुए हैं और पठानिया वा पैठान कहलाते हैं। ये लोग मुसलमान वा अफगान जातिकी पठान शाखासे बिलकुल विभिन्न हैं। यह पठानिया वा पैठान

शब्द! संस्कृत 'प्रतिष्ठान' नामक जनपदका अपभ्रंश समझा जाता है। हो सकता है, कि गोदावरी तीरवर्त्ती विख्यात पैठान या प्रतिष्ठान जनपदके किसी राजाने इसे बसाया हो।

इब्राहिम गजनवी नामक किसी मुसलमानने इस पठियान वा पठियानकोटके दुर्गको बहुत दिन तक घेरे रहनेके बाद जीता था। धीरे धीरे इसका पूर्वतन हिन्दू नाम लोप होता गया और वर्त्तमान मुसलमान अधिकारमें पठानकोट कहलाने लगा है।

यहांके पुरातन दुर्गका जो ध्वंसावशेष देखा जाता है, उसके चारों ओर छः सौ वर्गफुट तक एक मट्टीका स्तूप है जिसकी ऊंचाई करीब एक सौ फुटकी होगी। यहां जो सब ईंटें मिलती हैं वे बहुत बड़ी बड़ी हैं जिन्हें देखनेसे ही पता लगता है कि वे प्राचीन हिन्दुओंसे बनाई गई हैं। यहां ग्रीकराज जैलस (King Zoilus), शकनृपतियोंमें गोण्डफरेस (Gondophares), कनिष्क और हुविष्कको अनेक मुद्राएं मिलती हैं और भी आश्चर्यका विषय यह है कि पठानकोटमें हिन्दूराजाओंके समयकी भी ताम्रमुद्राएं पाई गई हैं। इस मुद्राके ऊपर पाली अक्षरमें औदुम्बर नाम खोदा हुआ है। वे सब मुद्राएं प्रायः दो हजार वर्षकी पुरानी होगी। इस प्रकारकी मुद्रा दूसरी जगह देखी नहीं जाती, केवल इसी स्थानमें पाई गई हैं। इस कारण डा० कनिंहम इस जिलेको प्राचीन औदुम्बर देश बतला गए हैं।

पाणिनिने उदुम्बरवृक्ष (Ficus glomerata) समन्वित देशको औदुम्बर बतलाया है। वर्त्तमान नूरपुर जिलेमें भी इस जातिके अनेक पेड़ देखे जाते हैं। इसके अलावा अनेकानेक देशीय ग्रन्थोंमें यह औदुम्बर देश पञ्जाबके उत्तर-पूर्वमें अवस्थित माना है। वराहमिहिरने उदुम्बरवासीके साथ कपिष्ठलवासियोंका सम्बन्ध निर्णय किया है।* मार्कण्डेयपुराणमें भी यह मत समर्थित हुआ है। विष्णुपुराणमें भी त्रिगर्त्तवासी और कुलिन्द-जातिके साथ इनका सम्बन्ध वर्णित है।* इसके सिवा प्राचीन "दहमेरी वा दहमवरी" शब्द औदुम्बरका अपभ्रंश है, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन औदुम्बर जनपद

* बृहत्-संहिता १४ वां अध्याय।

और तत्पार्श्ववर्त्ती स्थानसमूह जो एक समय दहमेरी नामसे जनसाधारणमें प्रसिद्ध था, पैठानराजाओंके समयमें पठानकोट कहाने लगा। पीछे जब यह मुसलमानके हाथमें आया, तब पठानकोट और जहांगीरके राजत्वकालमें नूरजहान्‌के नाम पर नूरपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। यहां जितनी ताम्रमुद्राएं पाई गई हैं, वे सभी चौकोन हैं। इसके एक पृष्ठ पर एक मन्दिर और दूसरे पृष्ठ पर हाथी और वृक्ष अङ्कित है। मन्दिरके पार्श्वभागमें बौद्धोंका स्वस्तिक और धर्मचक्र तथा तन्निम्नदेशमें एक 'सर्पमूर्त्ति' खोदित है। दूसरे पृष्ठ पर जो वृक्ष है वह चारों ओरसे घिरा है और उस पर औदुम्बर नाम खोदा हुआ है। इन सब प्रमाणोंके बलसे डा० कनिंहम आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने इसी स्थानको औदुम्बर राज्य स्थिर किया है।

भारतवर्षमें मुसलमान-आक्रमणके पहले यही नाम जनसाधारणमें चलता था। परवर्त्ती कालमें आबु-रिहन नामक किसी व्यक्तिने जलन्धरकी राजधानीको दमाल (अन्यान्य मुसलमान ग्रन्थोंमें इसी स्थानका नाम देहमारी है।) बतलाया है*। मालूम होता है, इसी समय त्रिगर्त्त वा काङ्गड़ावालोंने इस स्थानको अपने अधिकारभुक्त किया था। इस समयके बादसे ले कर सम्राट् अकबरके शासनकाल तक इसका कोई उल्लेख देखनेमें नहीं आता। पर हां, यह स्थान किसी एक क्षुद्र हिन्दू सरदारके अधीन था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। अकबरशाहके राज्यारोहणके पहले ९६५ हिजरीमें जब पैठान-राज अकतमल सिकन्दर-सूरके सहयोगी हो कर मानकोट नामक स्थानमें मुगलसैन्यविरुद्ध खड़े हो गये थे, तब बैराम खांने उन्हें कैद कर लिया और बड़ी बुरी तरहसे मार डाला।

नूरपुर राजवंशका प्रकृत इतिहास मुसलमान और सिखयुद्धके समयसे नहीं मिलता है। किन्तु १८४६ ई०में वेरपुरके कोतवाल शेखमहम्मद अमीरने वहांके देवीप्रसाद नामक ८५ वर्षके एक वृद्ध ब्राह्मणसे राजवंशका जो

* Hall's Edition Vishnupurana, Vol. II. p. 180. Elliots Muhammadan Historians, Vol. I. p. 62.

इतिहास संग्रह किया है तथा मुसलमान ऐतिहासिकोंने नूरपुरके इतिहासके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह एक दूसरेसे बिलकुल मिल जाता है।

यहांके राजगण विपोली, मन्दो और सुखेत आदि देशोंके राजाओंकी तरह अपनेको पाण्डुवंशोद्भव बतलाते हैं। इनकी जातीय आख्या पाण्डोर है। देवीशाहका कहना है, कि ये लोग अर्जुन वंशोद्भव तोमरजातिके राजपूत हैं। उनके मतानुसार,—जयपाल और भूपाल नामके दो भाई थे जिनमेंसे जयपाल दइमेरीमें और भूपाल पैठान नामक जनपदमें राज्य करते थे। जयपालके बादसे जो उन्होंने थोड़े राजाओंके नाम दिए हैं, उनके राजत्वकालका निर्द्धारित समय मालूम नहीं होनेके कारण अकबर बादशाहके राजत्वके पूर्व समयके केवल उन्नीस राजाओंके नाम नीचे दिए जाते हैं। यथा—

१ जयपाल, २ गोतपाल, ३ सुखीनपाल, ४ जागतपाल, ५ रामपाल, ६ गोपालपाल, ७ अर्जुनपाल, ८ वर्षपाल, ९ यतनपाल, १० विदूरथ वा विदूरथपाल, ११ जोखानपाल (इन्होंने तिर्हारव राजाकन्यासे विवाह किया), १२ राना किरातपाल, १३ कचपाल, १४ जस्सुपाल, १५ कलसपाल (इन्होंने जम्बूराजकन्याका पाणिग्रहण किया), १६ नागपाल, १७ पृथ्वीपाल, १८ विलो और १९ भकतपाल। शेष राजा १५२५ ई०में राजगद्दी पर बैठे और १५५८ ई०में मानकोटके युद्धमें बैराम खांसे मारे गए। पीछे २०वें विहारीमल्ल राजा हुए। १५८० ई०में इनकी मृत्यु हुई।

२१वें राजा वसुदेव—इन्होंने १५८० ई०में राज्यारोहण किया। सम्राट् अकबरके राजत्वके ४२वें वर्षमें ये एक बार विद्रोही हुए थे। फल यह हुआ कि सम्राट्ने उनकी राजाकी उपाधि छीन ली और वे उन्हें मान तथा पठानप्रदेशके जमींदारके रूपमें गिनने लगे। पांच वर्षके बाद फिर भी वे विद्रोही हो उठे। इस बार सम्राट्ने पठानराज्य उनके हाथसे छीन लिया। १६१३ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके लड़के राज्याधिकारी हुए।

२२वें राजा सूर्यमल्ल थे। जब ये गद्दी पर बैठे, तब जहांगीरके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। इस पर सम्राट्ने १०२१ हिजरीमें उन्हें दमन करनेके लिये राजा विक्रमजित्को भेजा। सूर्यमल्ल डर गए और उन्होंने पहले वसुराज-निर्मित नूरपुर दुर्गमें, पीछे चम्बाराजके यहां आश्रय लिया। विक्रमजित्ने उन्हें पराजित कर मौ, हारा, पहारी, ठठ, पक्षोत, सूर और जवालीके दुर्ग दखल कर लिए। बाद बहुसंख्यक हाथी, घोड़े और धन-रत्नादि लूट कर दिल्ली भेज दिये*। १६१८ ई०में सूर्यमलके राज्यच्युत होने पर उनके भाई जगत्सिंह (२३वें) राजा हुए।

सम्राट् जहांगीर जगत्सिंहको बहुत चाहते थे। अतः प्रसन्न हो कर सम्राट्ने उन्हें ३०० सेनाओंके अध्यक्षका पद और राजाकी उपाधि दी।

१०४७ हिजरीमें वे शाहजहान्के विरुद्ध हो गए। पीछे उनकी अधीनता स्वीकार करने पर छीना हुआ अधिकार लौटा दिया गया। १०४२ हिजरीमें वा १६४२ ई०में वे दाराशिकोहको कन्दहार ले गये और वहीं उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के राजा रूपने १५ सौ सेनाओंका अध्यक्षपद और राजाकी उपाधि पाई। तारागढ़के युद्धमें इनकी हार हुई और किला हाथसे जाता रहा। १०७७ हिजरीमें उनके मरने पर उनके लड़के राजा मान्धाताने राज्यभार ग्रहण किया। यह एक अच्छे कवि थे। उनके लिखित काव्यसे महामान्य वीमस् साहबने जो वंशपरिचय और अद्भुत कहानी संग्रह की है, उसका अधिकांश मि० ब्लकमैन साहबके अनुवादित पादशा-नामाकी वर्णित कहानीसे बहुत कुछ मिलता है। इस ग्रन्थमें राजा जगत्सिंहकी गुण-

* तह्-कक-इ-कांगरा नामक ग्रन्थमें लिखा है कि युद्धजयके बाद इस पर्वतीराज्यका नाम नूरउद्दीन् जहांगीरके नाम पर 'नूरपुर' पड़ा था। (Elliot Vol. VI, p. 522.)

† स्थानीय प्रवाद है तथा मान्धाताविरचित ग्रन्थमें लिखा भी है कि राजा जगत्सिंह मुसलमान सेनाको पराजित करनेमें सक्षम हुए थे। बादशाह-नामामें लिखा है कि जगत्सिंहने पराजित हो कर मौ, नूरपुर आदि दुर्ग शत्रुओंके हाथ लगा दिये और अन्तमें तारागढ़ युद्धमें आत्मसमर्पण किया। (Elliot, Vol. VII, p. 96 & Vol. V. p. 521.)

गरिमा ही अधिक गाई गई है ‡। पीछे २६वें राजा दयोधात २७वें पृथ्वीसिंह, २८वें फतेसिंह और २९वें राजा वीरसिंह (१८०५ ई०) हुए।

मुगल साम्राज्यकी अवनतिसे ले कर सिखजातिके अभ्युदय तक पञ्जाबके ऐसे छोटे छोटे राज्योंने स्वाधीनभाव धारण किया था। १७८३ ई०में मि० फरोस्ता जब नूरनगर देखनेके लिये आए थे, उस समय इस राज्यका शान्तभाव देख कर वे लिख गए हैं, कि निकटवर्ती स्थानोंसे यहांकी शासनविधि बहुत अच्छी है और सिख लोगोंका अधिक उपद्रव नहीं है। १८१५ ई०में महाराज रणजित्सिंहने वीरसिंहको कैद कर उनका राज्य अपने कब्जेमें कर लिया। वीरसिंहने किसी तरह भाग कर आत्मरक्षा की। १८२६ ई०में वे पुनः कैद कर लिए गए और मासिक ५००) रु० भत्ता उन्हें मिलने लगा। १८४६ ई०में उनकी मृत्युके बाद यशोवन्तसिंह उनके पद पर अभिषिक्त हुए।

राजा वसुदेवने समतलक्षेत्रका पठानकोट नगर अकबर बादशाहके हाथ लगा दिया। सम्भवतः इसी समय उन्होंने पर्वत पर इस नूतन नगरको बसा कर जहांगीर बादशाहको खुश करनेके लिए नूरजहानके नाम पर इस शहरका नाम रखा था *।

२ अयोध्या प्रदेशके अन्तर्गत एक नगर। यह लखनऊ शहरसे ३४ मील और कानपुरसे ७६ मील उत्तर-पूर्वमें अक्षा० २७° १८' उ० तथा देशा० ८१° १३' पू०के मध्य अवस्थित है।

४ पञ्जाबके सिन्धुसागर दोआब विभागका एक नगर। यह वितस्ता नदीके दक्षिण कूलसे २२ मील उत्तर-पश्चिम (अक्षा० ३२° ४०' उ० और देशा० ७२° ३८' पू०)-में अवस्थित है।

५ उक्त प्रदेशके दमन विभागका एक नगर। यह मुलतानसे ९० मील दक्षिण-पश्चिम अक्षा० २९° ९' उ० तथा देशा० ७०° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है।

६ बङ्गालके ढाका जिलेके अन्तर्गत जलालपुरका एक नगर। यह ढाका शहरसे २२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है और बङ्गालके छोटे लाटके शासनाधीन है।

७ संयुक्त प्रदेशके छोटे लाटके शासनाधीन बिजनौर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २९° ९' उ० तथा देशा० ७८° २८' पू०में पड़ता है।

नूरबाफ (फा० पु०) जुलाहा, तांती।

नूरम—शकबरशाहको वैमात्रेय भाई। सम्राट्के राजत्वके ३१वें वर्षमें इन्होंने खैराफर्वत पर अफगान जातिके साथ युद्ध किया था। पीछे जब मानसिंह उड़ीसा जीतनेके लिए बङ्गाल आए, उस समय ये एक हजार सेनाके नायक हो कर उनका सामना करने गये थे।

नूरमञ्जिल—आगरा नगरका एक उद्यान। इसे सम्राट् जहांगीरने लगाया था। वर्त्तमान समयमें लोग इसे 'देहराबाग' कहते हैं। उद्यानके मध्य एक बड़ा कूप है जिसे देखनेसे दोघोसा भ्रम होता है।

नूरमहम्मद—सिन्धुप्रदेशके एक शासनकर्त्ता। १७१९ ई०-में इनके पिता यारमहम्मद कलहोराके मरने पर उनके राज्य पर अभिषिक्त हुए। इधर नूरमहम्मदने दाउदपुत्रोंसे नहर उपविभाग छीन लिया, साथ साथ सेवन और तदधीन राज्य भी अपने अधिकारमें कर लिये। १७३६ ई०में इन्होंने भकर दुर्गको जीता। बाद मुलतानसे ठट्ट तक इनका अधिपत्य फैल गया। १७३९ ई०में जब नादिरशाह भारतवर्ष पर चढ़ाई करने आये, तब दिल्लीश्वरसे ठट्ट और शिकारपुर जीत कर उन्होंने नूरमहम्मदको सिन्धु और पञ्जाबका शासनभार सौंप दिया और आप स्वदेशको लौट गये। इसी बीच नूरमहम्मदने ठट्टके सूबेदार सादिकअलीको तीन लाख रुपये दे कर उनसे ठट्ट प्रदेश खरीद लिया। इस पर नादिरशाह बहुत बिगड़े और उन्हें दमन करनेके लिए सिन्धु और पञ्जाबकी ओर अग्रसर हुए। उनका आगमन सुन कर नूरमहम्मद अमरकोटको भाग गये। अन्तमें इन्होंने शिकारपुर और शिवप्रदेश नादिरको दे कर अपना पिण्ड छुड़ाया। नादिरने इन्हें शाहकुली खांकी पदवी दी और इस

‡ Proceedings Asiatic Society of Bengal, 1872. p. 156 and Journal of the Asiatic Soceity of Bengal 1875, p. 201.

* Cunnigham's Ancient Geography of India.

मान्यपुरस्कार-स्वरूप इन्हें वार्षिक २० लाख रुपये कर देने पड़ते थे। १७४८ ई०में अहमदशाह दुरानीने सिन्धुप्रदेशको जीत कर इन्हें शाह नवाज खांको उपाधि दी। १७५४ ई०में नूरमहम्मदने जब कर देनेसे इनकार किया, तब अहमद उनसे लड़नेके लिए अग्रसर हुए। दुरानीका आगमन सुन कर नूरमहम्मद जशलमेरको भाग गये और वहीं उनका शरीरावसान हुआ।

नूरमहल—पञ्जाबके जलन्धर जिलेकी फिलौर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° ६' उ० और देशा० ७५° २६' पू०, जलन्धर शहरसे १६ मील दक्षिण, सुलतानपुरसे २५ मील दक्षिण-पूर्व और फिलौरसे १३ मील पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारसे ज्यादा है। यह नगर बहुत प्राचीनकालका है। इसके विषयमें अनेक प्रमाण भी मिलते हैं। यहांकी मट्टी खोदने पर १३"×११"×३½" मापको जो ईंटें निकलती हैं, उनके ऊपर हाथका चिह्न है और हाथके तल पर एक केन्द्रसे तीन अर्द्धवृत्त अङ्कित हैं। ये सब ईंटें पूर्वतन हिन्दू राजाओंके समयको मानी जाती हैं।

इसके अलावा यहां जो सिक्के पाए गये हैं वे भी बहुत पुराने हैं। इनमेंसे छेनीको काटी हुई (Punch-marked) रौप्यमुद्रा, क्षत्रप राजुवलकी ताम्रमुद्रा और दिल्लीश्वर महीपालकी मुद्रा तथा विभिन्न समयके मुसलमान राजाओंकी मुद्रा भी पाई गई हैं। ये सब मुद्राएं नूरमहलके प्राचीनत्वका परिचय देती हैं।

सम्राट् जहांगीरने इस नगरका जीर्णसंस्कार कराके निज प्रियतमा पत्नी नूरजहांके नूरमहल नाम पर इस नगरको फिरसे बसाया। उस समय जहांगीरकी आज्ञासे यहां एक बड़ी सराय बनाई गई जो देखने लायक है। इस सरायको लोग बादशाही सराय कहते हैं। इसमें एक कोणविशिष्ट चूड़ा और कुल ५२१ वर्गफुट परिमाणफल है। इसका पश्चिमो प्रवेशद्वार लाल पत्थरोंका बना हुआ है। वे सब पत्थर फतेपुर सिकरीसे मंगाये गये थे। सरायकी दीवारमें जहां तहां देव, दैत्य, परी, हाथी, गैंडे, ऊंट, घोड़े, वानर, मयूर, अश्वारोही योद्धाओं और तीरन्दाजोंकी मूर्त्तियां खोदी हुई हैं। किन्तु इसका शिल्पकार्य उतना सुन्दर नहीं है।

प्रवेशपथके ऊपर एक खण्ड शिलाफलकमें जो लिपि खोदी हुई है उससे जाना जाता है कि यह स्थान फिलौर जिलेके अन्तर्गत है। किन्तु कोई कोई इस लिपिको 'कोटकपूर' वा 'कोटकफलोर' ऐसा पढ़ते हैं। पूर्वद्वार दिल्लीकी ओर है और पश्चिमद्वारके जैसा आज पत्थरोंका बना है। इसके ऊपर भी पारस्य भाषामें एक शिलालिपि खोदी हुई थी, किन्तु पूर्वद्वारकी गठनादि बिलकुल भूमिसात् हो गई है। इसके पश्चिम वा लाहोरमुखो द्वारके ऊपर शिलाफलक उत्कीर्ण है जिससे ज्ञात होता है, कि साम्राज्ञी नूरजहान्‌के आदेशसे फिलौर जिलेमें यह 'नूरसराय' १०२८ हिजरीमें स्थापित हुई, किन्तु इसका निर्माणकार्य १०३० हिजरीमें समाप्त हुआ था।

सम्राट् जहांगीरके राजत्वकालमें जलन्धर-सूबाके नाजिम जकरिया खांने इस सरायका निर्माण किया, किन्तु इसके पश्चिम वा पूर्वद्वारको शिलालिपिसे मालूम होता है कि बेगम नूरजहांको आज्ञासे यह 'नूरसराय' बनाई गई है। जकरिया खांको कथा नितान्त अमूलक नहीं है, कारण वहांके उत्कीर्ण फलकसे जाना जाता है, कि वे इसके निर्माणविषयमें विशेष उद्योगी थे।

यहां एक मुसलमान फकीरकी कब्र है जहां प्रति वर्ष मेला लगता है। मेलेमें दूर दूरके मुसलमान एकत्रित होते हैं। शहरमें १८६७ ई०को म्युनिसपलिटि स्थापित हुई है। यहां एक वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल है जो बोर्डके खर्चसे चलता है। इसके अलावा औषधालय, डाकघर और पुलिस-स्टेशन भी है।

नूरमा—आसामकी गोराजातिका देवताभेद।

नूरमुहम्मद—एक कवि। इनका जन्म संवत् १७७० (११२७ हिजरी) में हुआ था। आपने तीस वर्षकी अवस्थामें दोहा चौपाइयोंमें जायसीकृत पद्मावतीके ढंग पर इन्द्रावती नामक एक अच्छा प्रेमग्रन्थ बनाया है। आपने बावेला आदि फारसी शब्द, विविष्टप, स्वान्त, वृन्दारक, स्तम्बेरम आदि संस्कृत शब्द भी अपनी भाषामें रखे हैं। आपने गँवारी अवधी भाषामें कविता की है, परन्तु फिर भी उसकी छटा मनमोहिनी है। इनकी रचनासे विदित होता है, कि ये काव्याङ्ग भी जानते थे। एकाध स्थान पर इन्होंने कूट भी कहे हैं। इनका मन-

फुलवारीवाला वर्णन बड़ा ही विशद है। इन्होंने स्वाभाविक वर्णन जायसीकी भांति खूब विस्तारसे किए हैं तथा भाषा, भाव और वर्णन-चातुर्यमें अपनी कविता जायसीमें मिला दी है। इन्होंने प्रीतिका भी अच्छा चित्र दिखाया है।

नरयारवली—एक मुसलमान धार्मिक फकीर। पञ्जाबके फिरोजपुर नगरमें ये रहते थे। मरने पर इनकी कब्र फिरोजपुरमें ही बनाई गई थी। प्रति वृहस्पतिवारको मुसलमान लोग उस कब्रके पास जा कर नमाज पढ़ते हैं। आसपासके हिन्दू भी कब्रके दर्शन करने आते हैं। मुहर्रम उत्सवके कुछ दिन बाद ही वहां एक बड़ा मेला लगता है। लगभग सौ वर्ष हुए जब सर हेनरी लारेन्स इस स्थानको देखने आए थे उस समय इस छोटी कब्रके निकट अनेक लोगोंका समागम देख कर वे बहुत आश्चर्यान्वित हुए थे। अतः उन्होंने भग्नावशिष्ट कब्रको मरम्मत करनेका हुकुम दिया और आगत लोगोंके रहनेके लिये जो वहां टूटा फूटा मकान था उसे तोड़वा डाला। फिरोजपुरमें प्रवाद है, कि पहले कप्तान लारेन्सने सब कुछ भूमिसात् करना चाहा था। लेकिन रातको स्वप्नमें उन्हें मालूम पड़ा कि कोई रस्सीसे उन्हें मजबूतीसे बांध रहा है और कहता है कि, 'यदि तुम मेरा ध्वंस करोगे, तो तुम्हारी जान नहीं बचेगी।' दूसरे दिन सवेरे लारेन्स साहबने कोतवालको बुलवा कर कब्रका संस्कार कराया और पार्श्ववर्त्ती गृहादिको तोड़ डालनेका आदेश दिया।

नूरा (हिं० पु०) वह कुश्ती जो आपसमें मिल कर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरेके विरोधी न हों।

नूरात—इलाहाबादके मध्यवर्त्ती एक शहर और गिरिसङ्कट। यह अक्षा० २४° २४' उ० और देशा० ७८° ३४' पू०के मध्य तियारीसे २० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।

नूराबाद—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २४' ४५" उ० और देशा० ७८° ३' ३०" पू०के मध्य शङ्कनदीके दाहिने किनारे पर बसा हुआ है। आगरा राजधानीसे यह नगर ६० मील दक्षिण और ग्वालियरसे ११ मील उत्तर-पश्चिममें पड़ता है। मुसलमानी शासनकालमें यह नगर आगराके अन्तर्गत था।

मुगलराज्यकी अवनतिके साथ साथ इस नगरकी पूर्वसमृद्धि भी धीरे धीरे गायब हो गई। यहां जितने मकान हैं वे सभी पत्थरके बने हुए हैं। १०७१ हिजरीमें यहां एक मसजिद बनाई गई और दूसरे वर्ष मोतामिद खांने एक बड़ी सरायका भी निर्माण किया गया। इन दोनोंके ऊपर दो शिलाफलक खोदित हैं। सरायका अभी भग्नावशेष मात्र देखा जाता है।

यहां शङ्क-नदीके ऊपर सात गुम्बजका एक पुल बना है। इसके पास ही औरङ्गजेब कर्त्तृक १६६६ ई०में बना हुआ एक सुवृहत् प्रमोद-उद्यान है। इस सुरम्य उद्यानके मध्य दिल्लीश्वर अहमदशाह और उनके परवर्त्ती सम्राट् २य आलमगीरके वजीर गाजीउद्दीन खांकी पत्नी गुणाबेगमके स्मरणार्थ १७७५ ई०का एक स्तम्भ है। यह स्तम्भ आज भी ज्योंका त्यों है। इस कामिनीने अपनी प्रखर मानसिक वृत्तिके बलसे नानाशास्त्रोंमें व्युत्पत्ति लाभ की थी। उनके काव्यकी भाषा अत्यन्त सरस और प्राञ्जल है। उन्होंने हिन्दी भाषामें जो गीत बनाया है वह बहुत प्रशंसनीय है और आज भी आदरपूर्वक गाया जाता है। उक्त स्मृतिस्तम्भमें पारस्य भाषामें उत्कीर्ण जो सब बातें लिखी हैं, वे केवल उनके वियोगान्त वर्णनामूलक हैं।

नरि—मूलतानप्रदेशके सिन्धु-विभागमें फुलाली नदीके किनारे अवस्थित एक गण्ड ग्राम। यह हैदराबाद नगरसे १५ मील दक्षिणमें अवस्थित है।

नूरी (हिं० स्त्री०) एक चिड़िया।

नूरीकल-बेड़ा—कुर्ग राज्यके अन्तर्गत एक अत्युच्च पर्वत-शिखर। यह सिद्धपुरघाट जानेके रास्ते पर मेरकारासे १२ मील दूरमें अवस्थित है। इस शिखर पर खड़ा हो कर देखनेसे कुर्ग राज्यका दृश्यसमूह बहुत सुन्दर दीखता है।

नूह—१ पञ्जाब प्रदेशके गुरगांव जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २७° ५३' और २८° २०' उ० तथा देशा० ७६° ५१' और ७७° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०३ वर्गमील और जनसंख्या करीब डेढ़ लाखकी है। इसके पश्चिममें अलवार राज्य पड़ता है। तहसीलमें कुल

२५७ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेसे अधिक है। १८०८ ई०में यह स्थान ब्रटिश साम्राज्यभुक्त हुआ।

यहां बाजरा, ज्वार, जौ, चना, गेहूं, रुई, फल-मूलादि और अपरापर शस्योंकी खेती होती है। यहांके तहसीलदार ही शासनकार्य करते हैं। यहां एक दीवानी और एक फौजदारी अदालत तथा तीन थाने हैं।

२ उक्त तहसीलका सदर और म्युनिसपलिटोके अधि-ष्ठित नगर। यह अक्षा० २८° ६' ३०" उ० तथा देशा० ७७° २' १५" पू०के मध्य गुरगांव नगरसे २६ मील दक्षिण अलवार जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहांके निकटवर्त्ती स्थानोंमें तथा लवणयुक्त पुष्करिणीसे नमक प्रस्तुत हो कर नानास्थानोंमें वाणिज्यके लिये भेजा जाता था। किन्तु अभी सम्बरह्रदसे लवण प्रस्तुत होनेके कारण यहांके व्यवसायका ह्रास हो गया है। शहरमें विद्यालय और औषधालय भी हैं।

३ मथुरा जिलेके नरझील परगनेके अन्तर्गत एक नगर। यह यमुनानदीके बाएँ किनारेसे ४ मील दूर अक्षा० २७° ५१' उ० और देशा० ७७° ४२' पू०के मध्य अवस्थित है।

नूह (अ० पु०) शामी या इबरानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतोंके अनुसार एक पैगम्बरका नाम जिनके समयमें बड़ा भारी तूफान आया था। इस तूफानमें सारी सृष्टि जलमग्न हो गई थी, केवल नूहका परिवार और कुछ पशु एक किश्ती पर बैठ कर बचे थे।

नूह-होतियानी—सिन्धु प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यह उदेरलालसे तीन मील उत्तर-पश्चिम तथा मतियारीसे प्रायः ११ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांकी पीर-नूहहोतियानीकी दरगाह १०८२ हिजरीकी बनी है।

नृ (सं० पु०) नी-ऋन् डिच्च। १ मनुष्य। २ पुरुष। ३ अङ्गुल। (त्रि०) ४ नेता।

नृकपाल (सं० क्लो०) नुः कपालं ६-तत्। नरकपाल, मनुष्यकी खोपड़ी।

नृकुक्कुर (सं० पु०) १ कुत्तेका जैसा मनुष्यका शरीर। २ कुत्तेके जैसा व्यवहारविशिष्ट मनुष्य।

नृकेशरी (सं० पु०) केशरः प्राशुर्यं गाम्भीर्यस्य इति इनि, ना चासौ केशरी चेति। १ नरसिंहावतार, नृसिंहरूप विष्णु। २ मनुष्योंमें सिंहके समान पराक्रमी पुरुष, श्रेष्ठ पुरुष।

नृग (सं० पु०) १ एक राजा जिनकी कथा महाभारतमें इस प्रकार है,—

द्वारकानगरमें यदुबालकोंने किसी कुएंमें एक बड़े गिरगिटको देखा और उसे बाहर निकालनेको खूब कोशिश की, किन्तु कामयाब न हुए। बाद वे सब के सब भगवान् श्रीकृष्णके पास गये और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। कृष्ण कुएंके पास आए और उन्होंने गिरगिटको बाहर निकाल कर उसका पूर्वजीवनवृत्तान्त पूछा। इस पर गिरगिटने कहा, 'भगवन्! मैं पूर्व जन्ममें नृग नामक राजा था। मैंने हजारों यज्ञ और नाना प्रकारके सत्कार्य किए हैं।' भगवान्ने उसकी पुण्यकथा सुन कर कहा, 'जब आप ऐसे दानी और धर्मात्मा हैं, तब ऐसी दुर्गति होनेका क्या कारण?' इस पर कृकलास-रूपी महाराज नृगने जवाब दिया, "प्रभो! कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण किसी कारणवश जब परदेश गया था, तब यहां उसकी गाय मेरी गायोंके झुण्डमें आ मिली। मैंने एक बार एक ब्राह्मणको सहस्र गो दानमें दीं जिनमें यह ब्राह्मणवाली गाय भी थी। जब वह ब्राह्मण पर-देशसे लौटे और गायको घरमें न देखा, तब वे उसकी खोजमें इधर उधर निकले। जिस ब्राह्मणको मैंने गो-दान किया था उन्होंके घरके पास वह गाय चर रही थी। उक्त ब्राह्मणने अपनी गायको पहचाना और उनसे मांगा। इस पर उन्होंने कहा, 'राजा नृगने मुझे यह धेनुदान किया है।' बाद दोनों झगड़ते हुए मेरे निकट आए और सारा वृत्तान्त कह सुनाया। जिस ब्राह्मणको मैंने गाएं दान-में दी थीं, उन्हें बहुत समझा कर कहा, कि इस गायके बदलेमें मैं आपको एक हजार गायें और देता हूं, आप उनको गाय दे दें। लेकिन उनने एक भी न मानी और कहा कि ये सब गायें सुलक्षण हैं, अतएव इसे मैं लौटा नहीं सकता। इतना कह कर ब्राह्मण चल दिये। बाद मैंने निरुपाय हो असामयिक ब्राह्मणसे कहा, 'भगवन्! मैं उस गायके बदले आपको एक लाख गाएं देता हूं,

आप कृपापूर्वक उन्हें ले लें।' इस पर वे बोले, 'मैं अपना भरण-पोषण भलीभांति स्वयं कर लेता हूं, तब फिर राजाओंका दान क्यों लूं।' इतना कह कर वे विषस्म चित्तसे अपने घरको चल दिए। अनन्तर थोड़े ही दिनोंके मध्य मेरा शरीरावसान हुआ। जब मैं यम-लोक पहुंचा, तब धर्मराज यमने मेरे पुण्यकर्म की विविध प्रशंसा करते हुए मुझसे कहा, 'आपका पुण्यफल बहुत है, पर ब्राह्मणकी गाय हरण करनेका पाप भी आपको लगा है। चाहे पापका फल पहले भोगिये, चाहे पुण्यका।' इस पर मैंने पापका ही फल पहले भोगना चाहा। अतः सहस्र वर्षके लिए गिरगिट हो कर मैं इस कुएंमें रहने लगा। यमने कहा था, 'सहस्रवर्ष बीत जानेके बाद भगवान् वासुदेव आपका उद्धार करेंगे और तब आप इस सनातन लोकमें आवेंगे।' अभी आपने कृपा करके मेरा उद्धार किया।" बाद राजा नृग कृष्णके आदेशसे दिव्यविमान पर चढ़ कर सुरधामको चले गये।

महाराज नृगके स्वर्गारोहण करने पर भगवान् वासुदेवने लोगोंकी भलाईके लिए कहा था, कि नृगने ब्राह्मणका गो-धन चुराया था जिससे उन्हें ऐसी दुर्दशा भुगतनी पड़ी थी। अतएव ब्रह्मस्व-हरण करना कदापि उचित नहीं है। फिर भी देखना चाहिए कि साधुसमागमसे महाराज नृगने नरकसे उद्धार पाया था। अतएव साधुसंसर्ग भी कभी निष्फल होनेको नहीं। दान करनेमें जितना फल लिखता है, अपहरणमें उतना ही अधर्म भी होता है। (भारत अनुशासनपर्व ७० अ०)

२ ओघवतके पौत्र। ३ यौधेय वंशका आदि पुरुष जो नृगाके गर्भसे उत्पन्न उशीनरका पुत्र था। ४ मनुके एक पुत्रका नाम। ५ सुमतिका पिता।

नृगधूम (सं० पु०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

नृगा (सं० स्त्री०) उशीनरकी पत्नी और नृगराजकी माता।

नृघ्न (सं० त्रि०) नरघातक।

नृचक्षस् (सं० पु०) नॄन् चष्टे भक्ष्यत्वेन पश्यतीति नृ-चक्ष-असुन्, वा असि (चक्षेर्बहुलं शिच्च। उण् ४।२२२) १ राक्षस। २ देव। ३ मनुष्यदर्शक।

नृचक्षुस् (सं० पु०) नृणां प्रजानां चक्षुरिव। सुनीथ राज-पुत्र।

नृचन्द्र (सं० पु०) रश्मिनाथराजका एक पुत्र।

नृजग्ध (सं० त्रि०) नॄ-अत्ति, अद-क्त, ततो जग्धादेशः। नरभक्षक, मनुष्यको खानेवाला।

नृजल (सं० क्ली०) नुः जलं ६-तत्। १ मनुष्यनेत्रजल, आंसू। २ मानवमूत्र, मनुष्यका मूत्र।

नृजाति (सं० स्त्री०) नरजाति, मनुष्यजाति।

नृजित् (सं० त्रि०) १ नायकके जेता। २ एकाहभेद।

नृति (सं० स्त्री०) नृत नर्त्तने इन् संच, कित् (इगुपधात् कित्। उण् ४।११९) नर्त्तन, नाच।

नृतु (सं० पु०) नृत्यतीति नृत बाहुलकात् कुः। १ नर्त्तक, नाचनेवाला। २ भूमि, जमीन।

नृतू (सं० त्रि०) नृत-कु। १ नर्त्तक। नॄन् तूर्वति तूर्व-क्विप्। २ नरहिंसक।

नृत्त (सं० क्ली०) नृत भावे क्त। नृत्य, नाच।

नृत्य (सं० क्ली०) नृत्-क्यप्। तालमानरसाश्रय सविलास अङ्गविक्षेप, सङ्गीतके ताल और गतिके अनुसार हाथ पांव हिलाने, उछलने, कूदने आदिका व्यापार, नाच। पर्याय—ताण्डव, नटन, नाट्य, लास्य, नर्त्तन, नृत्त, नाट, लास, लास्यक, नृति।

नृत्य मानवोंका स्वभावसिद्ध है। क्या प्राचीनकाल क्या आधुनिक काल सभी सुसभ्य समयमें नृत्य प्रचलित था और है। पुराकालमें जिस प्रकार नृत्य होता था, उस प्रकार आज काल नहीं होता, रूपान्तरित भावमें हुआ करता है। शिवजी सर्वदा नृत्य किया करते हैं, स्वर्गमें अप्सरायें मनोहर नृत्य करके देवताओंको खुश किया करती हैं।

महर्षि भरत नाट्यशास्त्रके प्रणेता थे। वे खुदसे स्वर्गमें अप्सराओंको नृत्य सिखाते थे। प्रायः सभी पुराणोंमें लिखा है कि देवमन्दिरका प्रदक्षिण कर नृत्य करनेसे महापुण्य प्राप्त होता है। चैतन्यदेवने अपने शिष्योंको नामोच्चारणपूर्वक नृत्य करनेका उपदेश दिया था।

अति पुराकालमें ग्रीक लोग उत्सवोपलक्षमें नृत्य और गान करते हुए देवमन्दिरकी प्रदक्षिणा करते थे। यहूदियोंमें भी नृत्य बहुत पहलेसे प्रचलित है। इस्राइलोंने लोहितसागर पार कर आनन्दपूर्वक नृत्य किया था। ग्रीकलोगोंका नृत्य अभिनय प्रथाके अन्तर्भूत है। इनके

भयानक रसका नृत्य देख कर बहुतोंके मनमें भयका सञ्चार होता था।

ग्रीक-शिल्प विद्याविशारद भास्करोंकी प्रस्तरखोदित प्रतिमूर्त्ति पर नृत्यको नानाप्रकारकी भङ्गी प्रदर्शित हुई हैं। होमर, आरिस्ततल, पिण्डार आदिने अपने अपने ग्रन्थमें नृत्यका विशेष उल्लेख किया है। आरिस्ततलने नृत्यकी विविध प्रणालीका उद्भावन कर उसे 'पोयटीक्स' ग्रन्थके मध्य सन्निवेशित किया है।

स्पार्टनगण युद्धके समय नृत्य करनेके लिये जब उनकी उमर पांच वर्षकी होती थी, तभीसे नृत्य सीखते थे। उनके युद्धके इस नृत्यका नाम 'पाइरिक' नृत्य था।

सम्भ्रान्त रोमकगण धर्मकार्य भिन्न हम लोगोंके लिये नृत्य नहीं करते थे। हम लोगोंके निमित्त नृत्य वहांके व्यवसायियोंसे सम्पादित होता था। मिसरदेशीय नर्त्तकियोंका नाम 'आलमी' है। ये अच्छी अच्छी कविता गान करते हुए नाचती हैं। यह नृत्य हम लोगों-के नृत्यसे बहुत कुछ मिलता जुलता है।

यूरोपियोंके मध्य सम्भ्रान्त वर्गसे ले कर साधारण मनुष्य तक सभी नृत्य किया करते हैं। कोई स्त्री वा पुरुष जो नाच नहीं सकते वे अकर्मण्य और असभ्य समझे जाते हैं। यह Ball नामक नाच कई प्रकारका है, यथा—पोल्का, कोयाडिल, कनट्री डान्स इत्यादि। इसके सिवा अभिनय कार्यमें भी अनेक प्रकारके नृत्य हैं।

हम लोगोंके देशमें सङ्गीतशास्त्रोंनुसार जो सब नृत्य है अभी उन्हीं पर विचार करना चाहिये।

इतिहास, पुराण, स्मृति आदि सबमें नृत्यका उल्लेख मिलता है। जो नर्त्तक वा नर्त्तकी नृत्य करेंगी उसका सुन्दर रूप रहना आवश्यक है, अरूपा नर्त्तकीका नृत्य निन्दनीय समझा जाता है।

"नृत्येनालम् रूपेण सिद्धिर्लोकस्य रूपतः।
नाविधिज्ञान्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बना॥"

(मार्कण्डेयपु०)

अरूप नृत्य नृत्यपदवाच्य नहीं है। सुन्दररूपविशिष्ट नृत्य ही नृत्य कहलाता है। देवदेवीकी पूजामें नृत्य करनेसे अशेष प्रकारके मङ्गल प्राप्त होते हैं।

जो देवीके आगे नृत्य करते हैं वे संसारसागरसे मुक्तिलाभ कर स्वर्गलोक गमन करते हैं।

"यो नृत्यति प्रहृष्टात्मा भावैर्बहुसुभक्तितः।
स निर्दहति पापानि जन्मान्तर शतैरपि॥"

(द्वारकामाहात्म्य)

जो प्रफुल्लचित्तसे अत्यन्त भक्तियुक्त हो नृत्य करते हैं वे शतजन्मान्तरके पापसे मुक्ति लाभ करते हैं। हरिभक्तिविलासमें भी लिखा है—

"नृत्यतां श्रीपतेरग्रे तालिकावादनैर्भृशम्।
उड्डीयन्ते शरीरस्थाः सर्वे पातकपक्षिणः॥"

जो विष्णुके आगे तालिकावादन द्वारा अर्थात् ताली दे दे कर नाच करते हैं, उनके शरीरस्थित सभी पाप दूर हो जाते हैं। प्रायः सभी धर्मशास्त्रोंमें देवीके समीप जो नृत्य किया जाता है उसकी प्रशंसा लिखी है।

रामायण और भागवतके दशमस्कन्धमें नृत्यका विशेष विवरण मिलता है। महाभारतके विराटपर्वमें लिखा है कि अर्जुन उत्तम नर्त्तक थे और उसीसे वे (वृहन्नलारूपमें) विराटके अन्तःपुरमें स्त्रियोंको नाच गान सिखानेके लिये नियुक्त हुए थे।

धर्मसंहितामें लिखा है कि नृत्य जिसकी उपजीविका है, वे निकृष्ट समझे जाते हैं, यथा—रजक, चर्मकार, नट प्रभृति अति निकृष्ट जाति है। दैवात् यदि इनका अन्न भक्षण किया जाय, तो प्रायश्चित्त करना होता है। मनु प्रभृति सभी धर्मशास्त्रोंमें नट-जाति और नृत्यका उल्लेख है। अतएव इस देशमें नृत्य-चर्चा अत्यन्त पुरातन है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

नृत्यका लक्षण।

"देशरुच्या प्रतीतोऽथ तालमानरसाश्रयः।
सविलासोऽङ्गविक्षेपो नृत्यमित्युच्यते बुधैः॥"

(सङ्गीतदामोदर)

जिस देशकी जैसी रुचि है, तदनुसार ताल, मान और रसाश्रित विलासयुक्त अङ्गविक्षेपका नाम नृत्य है।

नृत्य दो प्रकारका है, ताण्डव और लास्य। पुंनृत्यको ताण्डव और स्त्रीनृत्यको लास्य कहते हैं।

तण्डु नामक मुनिने ताण्डव नृत्यकी विधि रची थी। यह विषय भरतमल्लिकने अमरकोषकी टीकामें

विस्तृतरूपसे लिखा है। ताण्डव और लास्य भी दो दो प्रकारके होते हैं,—पेलवि और बहुरूपक। अभिनयशून्य अङ्गविक्षेपको पेलवि और जिसमें छेद, भेद तथा अनेक प्रकारके भावोंके अभिनय हों उसे बहुरूपक कहते हैं।

लास्यनृत्य भी दो प्रकारका होता है—छुरित और यौवत। अनेक प्रकारके भाव दिखाते हुए नायक-नायिका एक दूसरेका चुम्बन, आलिङ्गन आदि करते हुए जो नृत्य करती हैं, वह छुरित कहलाता है। जो नाच नाचनेवाली अकेली आप ही नाचे वह यौवत है।

गानसे वाद्य और वाद्यसे लयकी उत्पत्ति है। पीछे लय और तालके समायत्त हो कर नृत्य करना होता है।

जितने प्रकारके विशेष विशेष नृत्य हैं, उनमेंसे समस्त कोई अर्थात् चित्तरञ्जक अङ्गविक्षेपको ही नृत्य वा नर्त्तन कहते हैं। नर्त्तननिर्णयमें लिखा है—

"अंगविक्षेपवैशिष्ट्यं जनचित्तानुरंजनम्।
नटेन दर्शितं यत्र नर्त्तनं कथ्यते तदा॥" (नर्त्तननिर्णय)

नट नाना प्रकारके अङ्गविक्षेपके साथ लोगोंका जो चित्तानुरञ्जन करता है, उसीको नर्त्तन वा नृत्य कहते हैं। यह नर्त्तन तीन प्रकारका है—नाट्य, नृत्य और नृत्त।

इनमेंसे नाट्यनाटकादि अर्थात् दृश्यकाव्य और तद्गत कथा, देश, वृत्ति, भाव और रसादि चार प्रकारके अभिनय द्वारा प्रदर्शित होनेसे उसे नाट्य और कोई आख्यायिका जो पुस्तकमें अनुगत वा नेपथ्य विधानके अधीन नहीं है, अथच रसभावादि अभिनय द्वारा विभूषित और तत्तद् रसभावादि अभिनय द्वारा प्रदर्शित होती है, उसे नृत्य कहते हैं। यह सर्वाङ्गसुन्दर होने पर सभी मनुष्योंका मनोहारी होता है। अभिनय-वर्जित, चमत्कारजनक अङ्गविक्षेप विशेषका नाम नृत्त है।

"हस्तपादादिविक्षेपैश्चमत्कारांगशोभितम्।
सकलाभिनयमानन्दकरं नृत्तं जनप्रियम्॥"
(नर्त्तन-निर्णय)

यह नृत्त तीन प्रकारका माना गया है—विषम, विकट और लघु। शस्त्रमल्लटके मध्य और रज्जुमें परिभ्रमण इत्यादि प्रकारका नाम विषम नृत्त है। यह नृत्त मन्द्राजी बाजीकर लोग करते हैं। वैरूप्यजनक वेशभूषादि व्यापारका नाम विकट नृत्त और अल्प उपकरण अवलम्बनपूर्वक उत्प्लुतादि गति विशेषका नाम लघु नृत्त है। यह नृत्त रासधारियोंमें व्यवहृत होता है।

नर्त्तक वा नर्त्तकीको रङ्गभूमिमें प्रवेश कर पुष्प आदि उत्कृष्ट वस्तु छिड़क देनी चाहिये और तब पहले अनुरूप तालसे कोमल नृत्य आरम्भ करना चाहिये। विषम और औद्धत्यविहीन नृत्यका नाम कोमल नृत्य है।

रङ्गप्रवेशके बाद जो नृत्य किया जाता है वह दो प्रकारका है—बन्ध और अबन्ध नृत्य। बन्ध-नृत्यमें गति, नियम और चारी प्रभृति विविध क्रियाओंका नियम रहता है। अबन्ध नृत्यमें वह नहीं रहता।

नृत्यके मध्य अनेक व्यापार और ज्ञातव्य विषय हैं। मस्तक, चक्षु, भ्रू, मुख, बाहु, हस्तक, चालक, तलहस्त, हस्तप्रचार, करकर्म, चेल, कटि, अङ्घ्रि, स्थानक, चारी, करण, रेचक प्रभृति शारीरिक अनेक प्रकारके व्यापार हैं। नृत्यशाला, नर्त्तकलक्षण, रेखालक्षण, नृत्याङ्ग और उसके सौष्ठव इत्यादि अनेक प्रकारके ज्ञातव्य भी हैं। पण्डित विट्ठलने ये सब विषय नर्त्तननिर्णयके चतुर्थ प्रकरणमें विस्ताररूपसे लिखे हैं।

नृत्य और अभिनयमें मस्तक, दृष्टि और भ्रूचालनादिके अनेक प्रकारके भेद हैं जिनमेंसे मस्तकके सम्बन्धमें १९ प्रकारके भेद बतलाये गये हैं। दोषरहित रसभावादिव्यञ्जक अवलोकनका नाम दृष्टि है। यह दृष्टि तीन प्रकारकी है—रसदृष्टि, स्थायिदृष्टि और सञ्चारिदृष्टि। इन तीनके अलावा व्यभिचारिदृष्टि भी एक है। नर्त्तक वा नर्त्तकियोंके लिये यह दृष्टिविज्ञान जैसा कठिन है, वैसा कठिन और दूसरा कुछ भी नहीं है। शृङ्गार, वीर, करुण आदि सभी रसभाव इसी दृष्टि द्वारा मूर्त्तिमान् करने होते हैं। इनमेंसे रसदृष्टि ८, स्थायिभावप्रकाशक दृष्टि ८ और व्यभिचारिदृष्टि २०, कुल ३६ प्रकारकी दृष्टि हैं। इसके सिवा ताराकर्म अर्थात् मणिविकारसाधक व्यापार भी है। भ्रूविकार ७ प्रकारका है—सहजा, उत्क्षिप्ता, कुञ्चिता, रेचिता, पतिता, चतुरा और भ्रूकुटी। अन्तःस्थित रसभाव जिससे मुखमें प्रकाश हो, ऐसे मुखवर्णको मुखराग कहते हैं। यह मुखराग

४ प्रकारका है। बाहु (अर्थात् नृत्यकालमें किस प्रकार हस्तसञ्चालन करना होता है, वह) १८ प्रकारका है— यथा ऊर्ध्व, अधोमुख, तिर्यक्, अपोविद्ध, प्रसारित, अचिन्त्य, मण्डल, गति, स्वस्तिक, वेष्टित, आवेष्टित, पृष्ठानुग, अविद्ध, कुञ्चित, सरल, नम्र, आन्दोलित और उत्सारित। नृत्यकालमें अनुरागजनक अथच अर्थप्रकाशक जो हस्ताङ्गुलिका विन्यास वा विक्षेपविशेष किया जाता है, उसे हस्तक कहते हैं। यह हस्तक तीन प्रकारका है—असंयुत, असंयुत और नृत्तहस्त। फिर संयुतहस्तके ३८, असंयुत और नृत्तहस्तके ३२ भेद बतलाये गये हैं। पताक, हंसपक्ष, गोमुख, चतुर, निकुञ्चक, सर्पशिरा, पद्मास्य, अर्द्धचन्द्रक, चतुर्मुख इत्यादि नृत्तके हो भेद कहे गये हैं।

चालक—वंशी वा अन्यप्रकारके लययन्त्रका अनुगत कर हस्त विरेचनाका नाम चालक है। नृत्तमें इस चालक-विषयके अनेक विवरण लिखे गये हैं। इसके अतिरिक्त करकर्म है, यथा—उत्कर्षण, विकर्षण, आकर्षण, परिग्रह, निग्रह, आह्वान, रोधनसंक्षेप, विश्लेषरक्षण, मोक्षण, विक्षेप, धूनन, विसर्जन, तर्जन, छेदन, भेदन, स्फोटन, मोटन, ताड़न ये सब हस्तकर्मके नामसे प्रसिद्ध हैं। नृत्तकार्यमें इन सब हस्तकर्मोंका विशेषरूपसे ज्ञान रहना आवश्यक है।

हस्तक्षेत्र—पार्श्वद्वय, सम्मुख, पश्चात्, ऊर्ध्व, अधः, मस्तक, ललाट, कर्ण, स्कन्ध, नाभि, कटि, शीर्ष, उरुद्वय ये तेरह हस्तक्षेत्र अर्थात् हस्तविन्यासके प्रधान स्थान हैं। नृत्यकालमें इन सब स्थानोंमें हस्तविन्यास करना होता है।

कटि—निर्दोष नृत्तयोग्य कटि ६ प्रकारकी है, यथा—छिन्ना, समाच्छिन्ना, निवृत्ता, रेचिता, कम्पिता और उद्वाहिता। नृत्तमें इनका साधन और लक्षण विशेषरूपसे जानना आवश्यक है।

चरण—नृत्तके उपयुक्त चरणके साधन और लक्षण तेरह प्रकारके हैं, यथा—सम, अञ्चित, कुञ्चित, सूच्यग्र, तलसञ्चर, उद्घट्टित, घट्टित, उत्सेधक, घट्टित, मर्दित, पार्ष्णिग, अग्रग और पार्श्वग। नृत्तमें इनका भी विशेष लक्षण जानना आवश्यक है।

स्थानक—अनुरक्तिजनक अङ्गमें अङ्गसन्निवेशविशेषका नाम स्थानक है। यह स्थानक असंख्य प्रकारका है, जिनमेंसे नृत्तमें २७ प्रकारके लक्षण प्रयोजनीय हैं। इनके नाम ये हैं—समपाद, पार्ष्णिविद्ध, स्वस्तिक, संहत, उत्कट, अर्द्धचन्द्र, मान, नन्द्यावर्त्त, मण्डल, चतुरस्र, वैशाख, आवहित्थक, पृष्ठोत्थान, तलोत्थान, अग्रक्रान्त, एकपादिक, ब्राह्म, वैष्णव, शैव, आलीढ़, खण्डसूचि, प्रत्यालीढ़, समसूचि, विषमसूचि, कूर्मासन, नागबन्ध, गारुड़ और वृषभासन।

चारी—इसका साधारण लक्षण यह है कि जिसमें पाद, जङ्घा, वक्ष और कटि ये सब स्थान आयत्त किये जांय। आयत्त हो जाने पर तद्द्वारा विरचन करनेका नाम भी चारी है। सञ्चरणविशेषमें उसके किसी अंशका नाम चारीकरण और किसी अंशका नाम व्यायाम है। इस व्यायामके परस्पर घटित अंशविशेषका नाम खण्ड और खण्डसमूहका नाम मण्डल है।

"चारीभिः प्रस्तुतं नृत्तं चारीभिर्वेष्टितं तथा।
चारीभिः शस्त्रमोक्षश्च चार्यो युद्धेषुकीर्त्तिताः।"
(नर्त्तकनिर्णय)

चारी प्रथमतः दो प्रकारकी है—भौमी और आकाशिका। भूमि पर सञ्चरण विशेषका नाम भौमी और शून्यमें गतिविशेषका नाम आकाशिकाचारी है। इन दोनों प्रकारकी चारीका आश्रय ८२ प्रकारका है। इनके नाम ये हैं—समपादा, स्थितावर्त्ता, शकटास्या, विचवा, अध्यर्द्धिका, आगति, एलका, क्रीड़िता, समसर्पिता, मतल्ली, उत्स्यन्दिता, उड्डिता, स्यन्दिता, बद्धा, जनिता, ऊरुमुखी, रथचक्रा, परावृत्ता, नूपुरपादिका, तिर्यङ्मुखा, मराला, करिहस्ता, कुलीरीका, विश्लिष्टा, कातरा, पार्ष्णिरेचिता, ऊरुताड़िता, ऊरुवेणी, तलोद्वृत्ता, हरिणत्रासिका, अर्द्धमण्डलिका, तिर्यक्कुञ्चिता आदि भौमी चारीके अन्तर्भुक्त हैं। अतिक्रान्ता, अपक्रान्ता, अंगर्द्धिता प्रभृति ३१ प्रकारकी आकाशचारी हैं।

करण—नृत्तकालमें हाथ हाथ जुड़ कर, पद पद जुड़ कर वा हाथ पैर जुड़ कर जो नृत्त किया जाता है उसका नाम करण है। यह करण नाना प्रकारका है जिनमेंसे १६ प्रकारके करण नृत्तोपयोगी हैं। इन सोलहोंके नाम ये हैं—लीन, समनख, छिन्न, गङ्गावतरण, वैशाख,

रेचित, पक्षोञ्जनित, पुष्पपुट, पार्श्व, जानु, ऊर्ध्वजानु, दण्डपक्ष, ललितविलासित, विश्वदृग्भ्रान्त, चन्द्रावर्त्तक, स्खलित, ललाटतिलक, नामनेता और वृश्चिक। नृत्यमें इनके लक्षणादि जानना परमावश्यक है।

ऊपरमें जिन सब पदार्थोंका उल्लेख किया गया, उनके संयोग और वियोगवशतः अनेक प्रकारके नृत्य हो सकते हैं और होते भी हैं। नृत्य कुछ भी नहीं है, कथित नियमोंको आयत्त कर तालसंयोगसे ही वह नृत्य कहलाता है। यदि नृत्य करना हो, तो पूर्वोक्त सभी नियमोंका भलीभांति जानना आवश्यक है। प्रथमतः नृत्य दो प्रकारका है; बन्ध और अनिबन्ध। गत्यादि नियमोंके अधीन जो नृत्य है, उसका नाम बन्धनृत्य और अनियमसे अर्थात् केवल तालयसंयुक्त नृत्यका नाम अनिबन्ध नृत्य है। इस बन्ध और अनिबन्ध नृत्यके अधिकांशके नाम दिये जाते हैं। यथा—क्रमलवर्त्तनिकानृत्य, मकरवर्त्तनिका और मायूरिनृत्य, भानवीनृत्य, मेनीनृत्य, मृगीनृत्य, हंसीनृत्य, कुक्कुटीनृत्य, खञ्जनीनृत्य, गजगामिनी नृत्य, नेरिनृत्य, कारणनेरिनृत्य, सिंह नृत्य, चित्रनृत्य, नेत्र, अट्टरील, कुवाड़, चक्रबन्ध, नागबन्ध, हस्तलतिका, स्वालुक, तुन, रूपक, उपरूप, रविचक्र, पद्मबन्ध इत्यादि।

नेरिनृत्य—चतुरस्रमें स्थित करके रासनामक तालसे और विलम्बित लयके अनुगत हो कर नेरिनृत्य आरम्भ करना चाहिये। पीछे रथ, चक्र, पाट और यथायोग्य गतिका अवलम्बन करना चाहिये। चारों दिशामें पताकहस्त हो कर तलसञ्चार करना चाहिये। वाम और दक्षिण भागमें नेरि वा विशुद्धि गतिका होना आवश्यक है।

चक्रबन्ध—यह नृत्य किसी द्रुततालसे आरम्भ करे, पीछे सङ्कीर्ण और अनेक प्रकारकी गति द्वारा सुन्दररूपसे प्रवृत्त कुंवाड़ नामक गीतजातिका गीत और उस जातिके तालकी योजना करे। बाद हस्त, बाहु, वामपद आदि छः अङ्ग परिमित ताल द्वारा मिला कर ल-अन्त ताल यदि समान मात्रामें लिया जाय और द्रुत एवं लघु दण्डय यदि उसमें रहे, तो पूर्व पूर्व मात्राका परित्याग कर क्रमशः अग्रिमादि आश्रयमें नृत्य करना चाहिये। नृत्यविद्याविशारदोंने इसीको चक्रबन्ध कहा है। (नर्त्तकनिर्णय)

इन सब नृत्योंका विषय अति संक्षिप्तभावमें कहा गया। आजकल इनमेंसे अधिकांश नृत्य प्रचलित देखनेमें नहीं आते। अभी सचराचर जो नृत्य प्रचलित हैं, वे सब प्रायः आधुनिक हैं। इनमेंसे खेमटा, बाईनाच आदि प्रसिद्ध है। नर्त्तकनिर्णयके सिवा नृत्य-प्रयोग, नृत्य-विलास, नृत्यसर्वस्व, नृत्यशास्त्र और अशोकमल्ल-विरचित नृत्याध्याय नामक कई एक ग्रन्थोंमें नृत्यके प्रकरणादि विशेषरूपसे वर्णित हैं। मल्लिनाथने किरातार्जुनीय नाटककी टीकामें नृत्यविलास और नृत्यसर्वस्वका उल्लेख किया है।

नृत्यकाली (सं॰ स्त्री॰) शक्तिरूपभेद।

नृत्यप्रिय (सं॰ त्रि॰) नृत्यं प्रियं यस्य। १ नर्त्तनप्रिय, जिसे नाच प्रिय हो। (पु॰) २ ताण्डवप्रिय महादेव। ३ कार्त्तिकेयका एक अनुचर।

नृत्यशाला (सं॰ स्त्री॰) नृत्यस्य शाला। नाट्यगृह, नाचघर।

नृत्यस्थान (सं॰ क्ली॰) नृत्यस्य स्थानम्। नृत्यका स्थान, नाचनेकी जगह।

नृत्येश्वर (सं॰ पु॰) महाभैरवभेद।

नृदुर्ग (सं॰ पु॰) सेनाका चारों ओरका घेरा।

नृदेव (सं॰ पु॰) नृषु नरेषु मध्ये देवः, ना देव इव इत्युपमितसमासो वा। १ राजा। २ ब्राह्मण।

नृधर्मन् (सं॰ पु॰) नुर्नरस्य इव धर्मो यस्य, इति अनिच् (धर्मादनिच् केवलात्। पा ५।४।१२४) १ कुवेर। (त्रि॰) २ नरधर्मयुक्त।

नृधूत (सं॰ त्रि॰) मनुष्य कर्त्तृक शोधित, आदमीसे शोधा हुआ।

नृनमन (सं॰ क्ली॰) नृभिर्नम्यते नम कर्मणि ल्युट् पूर्वपदादिति णत्वे प्राप्ते सति क्षुभ्रादित्वात् न णत्वम्। मनुष्यनमनीय देवादि।

नृप (सं॰ पु॰) नॄन् नरान् पाति रक्षति इति नृ-पा-क। १ नरपति, राजा।

जिनका अधिकार चौदह योजन तक विस्तृत हो, उन्हें नृप कहते हैं। इससे शतगुण अधिक होनेसे राजा वा मण्डलेश्वर और इससे भी दश गुण अधिक होनेसे राजेन्द्र कहते हैं। नृपप्रशंसा इस प्रकार है—

"अपुत्रस्य नृपः पुत्रो निर्धनस्य धनं नृपः।
अमातुर्जननी राजा अतातस्य पिता नृपः॥
अनाथस्य नृपो नाथः अभर्तुः पार्थिवः पतिः।
अभृत्यस्य नृपो भृत्यः नृप एव नृणां सखा॥
सर्वदेवमयो राजा तस्मात्तंनामयेत् नृप॥"

(कालिकापु० ५० अ०)

राजा अपुत्रका पुत्र, निर्धनका धन, मातृहीनकी माता पितृहीनका पिता, अनाथका नाथ, जिसके भर्त्ता नहीं है, उसका पति, अभृत्यका भृत्य, एकमात्र राजा ही सबके सखा हैं, राजा सर्वदेवस्वरूप हैं। नृपको दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना चाहिए। जगत्‌में अराजकता फैल जाने पर चारों ओर हाहाकार मच जाता है, मनुष्य डरसे विह्वल हो जाते हैं। इसी कारण भगवान्‌ने चराचर जगत्‌की रक्षाके लिए राजाओंकी सृष्टि की है। इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुवेर इन अष्टदिक्‌पालोंके अंशसे राजा जन्मग्रहण करते हैं। इसी कारण राजाको सर्वदेवमय कहा है।

मनुसंहितामें नृपोत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—

'राजा अष्टदिक्‌पालोंके अंशसे जन्मग्रहण करते हैं, इस कारण वे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। नरपति प्रभावमें अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुवेर, वरुण और महेन्द्रके समान हैं। नृप देवता ही हो कर मनुष्यके रूपमें अवस्थान करते हैं, इसलिए उन्हें नरदेव कहते हैं। राजा प्रयोजनीय कार्यकलाप, स्वकीयशक्ति और देशकालकी सम्यक् पर्यालोचना करके धर्मानुरोधसे सब प्रकारके रूप धारण किया करते हैं। जिनके प्रसन्न रहनेसे महती श्रीःप्राप्त होती है, जिनके पराक्रमप्रभावसे विजय लाभ होता है और जिनके क्रोध करनेसे मृत्यु हुआ करती है, वे सब तेजोमय हैं। किसीको राजाके प्रति क्रोध वा द्वेष करना कर्त्तव्य नहीं है। राजा शिष्टोंके प्रतिपालन और दुष्टोंके दमनके लिए जो धर्मनियम संस्थापन करते हैं, उन नियमोंका कभी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिए। विधाताने राजाके मङ्गलके लिए सर्वप्राणियोंके रक्षाकर्त्ता, धर्मस्वरूप और आत्मज ब्रह्मतेजोमय दण्डकी सृष्टि की। राजा स्वयं उस दण्डका परिचालन करते हैं। इस दण्डके भयसे चराचर जगत् अपना अपना सुख भोग किया करता है, कोई भी स्वधर्मसे विचलित नहीं हो सकता। एकमात्र दण्ड ही चारों वर्णोंके धर्मका प्रतिभूस्वरूप है। दण्ड ही सारी प्रजाका शासन और रक्षणाविक्षण करता है। सबोंके निद्रित होने पर एकमात्र दण्ड ही उन्हें जागरित करता है। राजाको उचित है, कि वे अनलस हो कर धर्मानुसारसे दण्डको परिचालना करें।

राजाओंके कर्त्तव्यकर्म—नरपतिको चाहिए, कि वे शास्त्रानुसार दुष्टोंको दण्डविधान, विदेशीय शत्रुओंको तीक्ष्ण दण्डसे दमन और अकपटभावसे आत्मीय स्वजनोंके प्रति सरल व्यवहार करें और कम अपराधमें ब्राह्मणोंको सजा न दें।

जो राजा सदाचार और सुप्रथापूर्वक शास्त्रानुसार राज्यशासन करते हैं, यहां तक कि यदि उन्हें उञ्छवृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करना पड़े तथा उन्हें धनसम्पत्ति बहुत थोड़ी हो, तो भी जो प्रजाकी रक्षा करनेमें मुख नहीं मोड़ते, उनकी यशोराशि संसार भरमें फैल जाती है। जिन राजाओंका आचार व्यवहार इसके बिलकुल विपरीत है, उनके अत्यन्त धनशाली होने पर भी इस लोकमें उनकी निन्दा और परलोकमें नरक होता है। राजा प्रतिदिन सवेरे शय्याका त्याग कर वेदज्ञ और नीतिशास्त्रकुशल ब्राह्मणोंकी सेवा करें और वे जो कुछ कहें उसका प्रतिपालन भी करें। राजाको विनयी होना सर्वतोभावसे उचित है। राजा कामज दश और क्रोधज आठ इन अठारह प्रकारके व्यसनोंमें कदापि आसक्त न होवें। वे मन्त्रीके साथ परामर्श करके षड्‌वर्गका विचार करें।' (मनु० ७ अ०) विशेष विवरण राजन् शब्दमें देखो। २ आरग्वध। ३ राजादनवृक्ष, खिरनीका पेड़। ४ तगर-पादुका।

नृपकन्द (सं० पु०) नृपप्रियः कन्दः, कन्दानां नृपः श्रेष्ठो वा। राजपलाण्डु, लाल प्याज।

नृपगृह (सं० क्लो०) नृपाणां गृहम्। राजमन्दिर, राजाका मकान। राजाओंका कैसा घर होना चाहिए, उसका विषय बृहत्संहिता (५३ अध्याय)में और

श्रीयलसनीतिपरिशिष्ट (१ अध्याय) में विशेषरूपसे लिखा है।

नृपञ्जय (सं० पु०) अन्यान् नृपान् जयति जि-खस्। पौरव नृपभेद।

नृपतरु (सं० पु०) १ आरग्वधवृक्ष, अमलतास। २ राजादनीवृक्ष, खिरनीका पेड़।

नृपता (हिं० स्त्री०) राजापन, राजाका गुण या भाव।

नृपति (सं० पु०) पाति पा-डति, नृणां पतिः ६ तत्। १ राजा। २ कुबेर।

नृपतिवल्लभ (सं० पु०) १ वटिकात्मक चक्रदत्तोक्त औषधविशेष। रसेन्द्रसारसंग्रहमें इसकी प्रस्तुत-प्रणाली इस प्रकार लिखी है—जायफल, लवङ्ग, मोथा, इलायची, सोहागा, हींग, जीरा, तेजपत्र, सोंठ, सैन्धवलवण, लौह, अभ्र, पारा, गन्धक और ताम्र प्रत्येक ८ तोला, मिर्च १६ तोला इन सबको बकरीके दूधमें पीस कर गोली बनाते हैं। श्रीमन् गहननाथने बड़ी खोजसे इसका आविष्कार किया है। इसके सेवन करनेसे दीर्घ जीवनलाभ और रोगी रोगसे मुक्त होता है। ग्रहणी अधिकारकी यह एक उत्तम औषध है। (रसेन्द्रसारसंग्रह, ग्रहणीचि०) इसके सिवा इस अधिकारमें बृहन्नृपतिवल्लभ और दो प्रकारका 'महाराज-नृपतिवल्लभरस' नामक औषधियोंकी प्रस्तुतप्रणाली लिखी है।

बृहन्नृपतिवल्लभकी प्रस्तुत प्रणाली।—पारा, गन्धक, लौह, अभ्र, सीसक, चिता, निसोथ, सोहागा, जायफल, हींग, दारचीनी, इलायची, लवङ्ग, तेजपत्र, जीरा, सोंठ, सैन्धवलवण और मिर्च प्रत्येक एक तोला ले कर इसे दो आने भर स्वर्ण, अदरकके रस और आँवलेके रसमें भावना दे कर दो माशे भर की गोली बनावें। प्रातःकाल उठ कर इसे खानेसे जो सब पदार्थ भोजन किये जाँय वे भलीभाँति पाक लेते हैं। इस औषधके सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अर्श, ग्रहणी आमातीसार, उदरी आदि रोग प्रशमित होते हैं। (रसेन्द्रसारसंग्रह, ग्रहणीचिकि०)। नृपतिवल्लभ औषध भैषज्य रत्नावलीमें श्रीनृपतिवल्लभ नामसे प्रसिद्ध है। बृहत् नृपतिवल्लभका नाम बृहत् नृपवल्लभ है। (भैषज्यरत्नावली) (त्रि०) २ राजाओंका प्रिय। (स्त्री०) स्त्रियां टाप्। ३ राजपत्नी, राजमहिषी।

नृपतीन्द्रवर्मा—व्याघ्रपुरके एक राजा। इनके परवर्त्ती राजा जयवर्माने महेन्द्र पर्वत पर जा कर राज्यस्थापन किया।

नृपतुङ्ग—१ दाक्षिणात्यके राष्ट्रकूट वंशीय एक राजा। ये ३य गोविन्दराजके पुत्र थे। मन्द्राज प्रदेशके आर्कट जिलेसे जो ताम्रशासन प्राप्त हुआ है उसमें इनका वंशपरिचय है। इस ताम्रशासन द्वारा इन्होंने ब्राह्मणोंको 'प्रतिमादेवी चतुर्वेदी मङ्गल' नामक ग्राम दान किया। इन्होंने भानुमालीकी कन्या पृथिवी-माणिक्यासे विवाह किया था और चालुक्य, अभ्युशख आदि जातियोंको जीत कर पीछे मान्यखेटनगरका पुनर्निर्माण किया। यही नगर इनके वंशधरोंकी राजधानीरूपमें गिना जाता था। यह प्राचीन नगर वर्त्तमान निजामराज्यके अन्तर्भुक्त मानखेरा वा मालखेड़ है।

इन्होंने बहुत दिन तक राज्य किया था। ७७१ शकमें उत्कीर्ण इनके राज्यकालका एक और ताम्रशासन पाया गया है। फ्लिट साहबने १म अमोघवर्ष और अतिशयधवल इनके दो नाम बतलाये हैं।

२ उक्त वंशके एक दूसरा राजा। ८५१-८५२ शकमें चन्द्रग्रहणके उपलक्षमें उत्कीर्ण धारवाड़ जिलेके बङ्कापुर तालुकमें इनकी एक शिलालिपि है। उस लिपिसे जाना जाता है, कि ७५५-८५७ शकके मध्य इन्होंने २य भीमराजके साथ युद्ध किया। राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

नृपत्नी (सं० स्त्री०) नृणां पतिः, पालयित्री, तात्स्थ्यात् तत्स्वात्‌ स्त्रियां ङीप्। मनुष्योंकी पालयित्री स्त्री, वृद्ध औरत जो मर्दोंका पालन करती है।

नृपत्व (सं० क्ली०) नृपस्य भावः, नृप-त्व। राजत्व, राजाका काम।

नृपद्रुम (सं० पु०) नृपप्रियो द्रुमः। १ आरग्वध, अमलतास। २ राजादनीवृक्ष, खिरनीका पेड़।

नृपद्रोही (हिं० पु०) परशुराम।

नृपप्रिय (सं० पु०) नृपाणां प्रियः। १ वेणुवंश, एक प्रकारका बाँस। २। राजपलाण्डु, लाल प्याज। ३ रामशरवृक्ष, सरकण्डा। ४ शालिधान्य, जड़हनधान। ५ आम्रवृक्ष, आमका पेड़। ६ राजशुकपक्षी, राजसुग्गा, पहाड़ी या पार्वती तोता। (त्रि०) ७ राजवल्लभ, राजाका प्रिय।

नृपप्रियफला (सं० स्त्री०) नृप प्रियं फलं यस्याः। वार्त्ताकी, बैंगन।

नृपप्रिया (सं० स्त्री०) नृपप्रिय स्त्रियां टाप्। १ केतकी २ राजखजूरी, पिण्डखजूर।

नृपबदर (सं० पु०) बदराणां नृपः, राजदन्तादित्वात् पूर्वनिपातः। राजबदरवृक्ष।

नृपमन्दिर (सं० क्लो०) नृपाणां मन्दिरम्। राजगृह, प्रासाद।

नृपमाङ्गल्यक (सं० क्लो०) नृपस्य माङ्गल्यं यस्मात्, कप्। आहुलवृक्ष, तरवटका पेड़।

नृपमान (सं० क्लो०) नृपस्य तद्भोजनस्य मानमावेदकं वाद्यं। एक प्रकारका बाजा जो राजाओंके भोजनके समय बजाया जाता था।

नृपमाष (सं० पु०) राजमाष।

नृपरुद्र—दाक्षिणात्यके पूर्व चालुक्यवंशीय एक राजा। इनके पिता त्रिपुरके कलचूरि-वंशीय थे और इनकी माता हैहयवंशसम्भूता थी। चालुक्यवंश देखो।

नृपलक्ष्मन् (सं० क्लो०) नृपाणां लक्ष्म ६-तत्। राजचिह्न, छत्रचामरादि।

नृपलिङ्गधर (सं० पु०) धरतीति धृ-अच्, नृपलिङ्गस्य धरः। नृपवेशधारी।

नृपवल्लभ (सं० क्लो०) १ चक्रपाणि-दत्तोक्त एक घृत और तैलविशेष। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—तिलतैल वा गव्यघृत ४० सेर, दुग्ध ४२ सेर, भावार्थ जीवक, ऋषभक, मेद, द्राक्षा, शालपर्णी, कण्टकारी, वृहती, यष्टिमधु, विडङ्ग, मञ्जिष्ठा, चीनी, रास्ना, नीलोत्पल, गोक्षुर, पुण्डरीककाष्ठ, पुनर्नवा, सैन्धव, पीपर प्रत्येक २ तोला। तैलके लिए प्रत्येक द्रव्य २॥ तोला करके देना होता है। नृपवल्लभ घृत वा तैलको यथाविधान प्रस्तुत कर सेवन करनेसे तिमिर, रात्र्यन्धता, लिङ्गनाश, मुखनाश, दौर्गन्ध्य आदि नाना प्रकारके रोग प्रशमित होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० नेत्ररोगाधि०)

२ राजाम्रवृक्ष। (त्रि०) ३ राजप्रियमात्र।

नृपवल्लभा (सं० स्त्री०) १ केतकी। २ महाराजचूतवृक्ष।

नृपवृक्ष (सं० पु०) राजवृक्ष, सोनालुका पेड़।

नृपशु (सं० पु०) ना पशुरिव, वा ना चासौ पशुश्चेति। १ नरपशु। २ मूर्ख।

नृपशार्दूल (सं० पु०) नृपः शार्दूल इव 'उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे' इति सूत्रेण कर्मधारयः। राजशार्दूल, राजश्रेष्ठ।

नृपशासन (सं० क्लो०) नृपस्य शासनं ६-तत्। राजशासन, राजाका शासन।

राजाको प्रजा, दास, स्वतन्त्र, भार्या, पुत्र, शिष्य आदिके प्रति किस प्रकार शासन करना चाहिये, उसका विषय शौशनस नीतिपरिशिष्टके १६ वें अध्यायमें विस्तृतरूपसे लिखा है। राजशासन देखो।

नृपसभ (सं० क्लो०) नृपाणां सभा ततः तत्पुरुषसमासे क्लीबत्वम् (सभा राजामनुष्यपूर्वा। पा २।४।२३)। राजाओंकी सभा।

राजाको चाहिए कि वे सुशुभ मनोरम त्रिकोष्ठ, पञ्च कोष्ठ वा सप्तकोष्ठ विस्तृत राजसभा प्रस्तुत करें। इस राजसभाके निर्माणका विशेष विवरण शौशनस नीतिपरिशिष्टके १ अध्यायमें लि[illegible] है। राजसभा देखो।

नृपसुता (सं० स्त्री०) नृपस्य सुता। १ राजकन्या, राजकुमारी। २ छछुन्दरी, छछूंदर।

नृपांश (सं० पु०) नृपाय देयोऽंशः भागः। १ राजाको देय षष्ठांशरूप भाग। राजाको उपजका छठा भाग करमें देना होता है इसीको नृपांश कहते हैं। २ राजपुत्र, राजाका लड़का, राजकुमार।

नृपाकृष्ट (सं० पु०) नृपेण आकृष्टः। क्रीड़ाके निमित्त राजकर्त्तृक आकृष्ट राजा, चतुरङ्ग आदि खेलनेके लिए आकृष्ट राजा।

नृपाङ्गण (सं० क्लो०) नृपस्य अङ्गनं ६-तत्। राजप्रासादका प्राङ्गण या आंगन।

नृपाण (सं० क्लो०) नॄणां पानं ततो णत्वं। १ कर्मनेताका पानयोग्य। (पु०) २ देवताओंका पानसाधन।

नृपाल (सं० पु०) नॄणां पाता रक्षकः। मनुष्योंके सर्वदा रक्षक, मनुष्योंको पालनेवाला।

नृपात्मज (सं० पु०) नृपस्य आत्मजः। १ राजपुत्र, राजकुमार। २ आम्रातकवृक्ष। ३ महाराजचूतवृक्ष।

नृपात्मजा (सं० स्त्री०) नृपात्मज टाप्। १ राजकन्या, राजकुमारी। २ कटुतुम्बी, कड़वा घीया।

नृपाध्वर (सं० पु०) नृपमात्रकर्त्तव्यः अध्वरः। राजसूय यज्ञ। प्रत्येक राजाको यह यज्ञ अवश्य करना चाहिए।

नृपानुचर (सं० पु०) राजभृत्य, राजाका नौकर।

नृपान्न (सं० क्ली०) नृप प्रियं अन्नं। १ राजान्न नामक धान्यभेद, राजभोग धान। नृपस्य अन्नं। २ राजाका अन्न।

नृपान्यत्व (सं० क्ली०) राजपरिवर्त्तन।

नृपाभीर (सं० क्ली०) अभीरयति सूचयति भोजनकाल-मिति, अभि-ईर-क, अभीर, नृपस्य अभीरं भोजनकाल-सूचकवाद्यविशेषः। एक प्रकारका बाजा जो राजाओंके भोजनके समय बजाया जाता था।

नृपामय (सं० पु०) आमयानां रोगाणां नृपः, राजदन्ता-दित्वात् पूर्वनिपातः। १ राजयक्ष्मा, क्षयरोग। यह रोग सभी रोगोंका राजा है, इसीसे इसको नृपामय कहते हैं। नृपस्य आमयो व्याधिः ६-तत्। २ नृपकी पीड़ा, राजरोग।

नृपाय्य (सं० त्रि०) नृभिर्नेतृभिर्देवैः पाय्यं। देवताओं-के पानयोग्य सोम।

नृपार्हम् (सं० क्ली०) शालिधान्य, एक किस्मका धान।

नृपाल (सं० पु०) नॄन् पालयति पालि-अण्। नृपति, राजा।

नृपालय (सं० पु०) राजप्रासाद, राजाका घर।

नृपावर्त्त (सं० क्ली०) नृप इव आवर्त्तते इति आ-वृत-अच्। राजावर्त्त रत्न, मणिविशेष।

नृपासन (सं० क्ली०) नृपस्य आसनम्। राजासन, तख्त। पर्याय—भद्रासन, सिंहासन।

नृपास्पद (सं० क्ली०) नृपस्य आस्पदं ६-तत्। राजस्थान, राजप्रतिष्ठा।

नृपाह्वय (सं० पु०) नृपं आह्वयते गर्व्वेनेति, आ-ह्वे-अच्। १ राजपलाण्डु, लाल प्याज। २ राजा कहलानेवाला, राजनामधारी।

नृपीट (सं० क्ली०) उदक, जल।

नृपीति (सं० स्त्री०) पा-रक्षणे भावे क्तिन्, आत ईत्त्वं पीतिः, नृणां पीतिः ६-तत्। १ मनुष्यरक्षण। (त्रि०) कर्त्तरि क्तिच्। २ मनुष्य-रक्षक।

नृपेशस् (सं० त्रि०) नररूप।

नृपेष्ट (सं० पु०) १ राजपलाण्डु, लाल प्याज। २ राजबदरवृक्ष, बेरका पेड़। ३ नीलवृक्ष, नीलका पौधा।

नृपोचित (सं० पु०) नृपेषु उचितः। १ राजमाष, काला बड़ा उड़द। २ लोबिया। (त्रि०) ३ राजयोग्य।

नृबाहु (सं० पु०) नृणां बाहुः। १ कर्मनेता ऋत्विकोंकी बाहु। २ नरबाहुमात्र।

नृभर्त्तृ (सं० पु०) नृणां भर्त्ता। मनुष्योंका रक्षक।

नृभोज (सं० त्रि०) आकाश जात, जो आकाशमें उत्पन्न हो।

नृमण (सं० पु०) नृषु यजमानेषु मनो यस्य, ततो णत्वं। १ रक्षितव्य यजमानके प्रति अनुग्रहबुद्धियुक्त, इन्द्रादि देव। २ धन, सम्पत्ति।

नृमणा (सं० स्त्री०) प्लक्षद्वीपकी एक महानदी।

नृमणि (सं० पु०) पिशाचभेद, एक भूत जो बच्चोंको लग कर तंग किया करता है।

नृमत् (सं०) मनुष्यविशिष्ट, जहां आदमी हो।

नृमर (सं० त्रि०) मनुष्यका हन्ता, राक्षस।

नृमांस (सं० क्ली०) नृणां मांस। नरमांस, आदमीका मांस।

नृमादन (सं० त्रि०) नृणां मादनं। ऋत्विक् और यज-मानका हर्षोत्पादक सोम।

नृमिथुन (सं० क्ली०) नृणां मिथुनम्। स्त्रीपुरुषका जोड़ा।

नृमेध (सं० पु०) ना मिध्यतेऽत्र मिध-आधारे घञ्। १ पुरुषमेधयज्ञ, नरमेधयज्ञ। यजुर्वेदके ३०वें अध्यायमें इस यज्ञका विशेष विवरण लिखा है। २ ऋषिभेद, एक ऋषिका नाम।

नृम्णं (सं० क्ली०) नृभिर्म्नायतेऽभ्यस्यते म्ना-घञर्थे क, ततो णत्वं (क्षुभ्नादिषु प्रसक्तिः । पा ८।४।३९) धन, सम्पत्ति।

नृयज्ञ (सं० पु०) नृनर्थो यज्ञः। पञ्च यज्ञोंमेंसे एक जिसका करना गृहस्थके लिए कर्त्तव्य है, अतिथि-पूजा, अभ्यागतका सत्कार। जो अतिथिसेवा करते हैं उनके पञ्चसूनाजन्य पातक नष्ट हो जाते हैं।

नृयुग्म (सं० क्ली०) नृयुग्मम्। नृमिथुन, स्त्रीपुरुषका मिथुन।

नृलोक (सं० पु०) ना एव लोकः। नरलोक, मनुष्य-लोक।

नृवत् (सं० त्रि०) ना परिचारकोऽस्त्यस्य मतुप् वेदे मस्यवः। परिचारक नरयुक्त।

नृवत्सखि (सं० त्रि०) अध्वर्य्यादि सहाययुक्त कर्म नेता।

नृवराह (सं० पु०) ना चासौ वराहश्चेति वराहरूपधृक् भगवदवतारः। वराहरूपधारी भगवान्।

यही नृवराहरूपी भगवान् वलिके हारी हुए थे।

"शौकरं रूपमास्थाय हार्यश्च दुरात्मनः।
भविष्यामि न सन्देहो मम शत्रुस्त्वरान्वितः॥"
(पद्मपु० सृष्टिख० ३८ अ०)

मैं शौकर अर्थात् वराहरूप धारण कर इस दुरात्मा वलिका हारी होऊंगा, इसमें सन्देह नहीं। नृवराहदेव की मूर्त्ति इस प्रकार है—शूकर वराहके जैसा, अङ्ग प्रत्यङ्ग मनुष्यके जैसा, हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म; दाहिनी ओर बाईं ओर शङ्ख, लक्ष्मी वा पद्म, वामकूर्प्पर में श्री और चरणयुगलमें पृथिवी तथा अनन्त है। ऐसी मूर्त्तिको घरमें स्थापना करनेसे राज्यलाभ और अन्तमें अनन्तस्वर्ग लाभ होता है। (अग्निपु० ३० अ०)

नृवाहण (सं० त्रि०) नेतृवोढा, नायकवाहक।

नृवाहन (सं० पु०) ना वाहनं यस्य। नरवाहन कुवेर। वैदिक प्रयोगमें णत्व हो कर नृवाहण होगा।

नृवाहस् (सं० त्रि०) नरवाहक, इन्द्र और उनके सारथि आदिका वाहक।

नृवेष्टन (सं० त्रि०) ना वेष्टनं यस्य। १ मनुष्यवेष्टित, आदमीसे घिरा हुआ। (पु०) २ महादेव, शिव।

नृशंस (सं० त्रि०) नॄन् नरान् शंसति हिनस्तीति नृ-शनस्-अण् (कर्मण्यण्। पा ३।२।१) १ क्रूर, निर्दय। २ परद्रोही, अनिष्टकारी, अपकारी। निन्दिता स्त्रीसे विवाह करनेसे नृशंस पुत्र उत्पन्न होता है।

चार इतर विवाह अर्थात् गान्धर्व, असुर, राक्षस और पैशाच विवाह करनेसे नृशंस, मिथ्यावादी, धर्म और वेदविद्वेषी पुत्र उत्पन्न होता है। जो नृशंस हैं, उनका अन्न तक भी खाना नहीं चाहिए।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है, कि नृशंस राजा, रजक, क्रतघ्न, वधजीवी, चैलधाव अर्थात् वस्त्रको मैल दूर करने वाला और सुराजीवी इनका अन्न खाना निषिद्ध है।

नृशंसता (सं० स्त्री०) नृशंसस्य भावः, भावे तल्, तत-टाप्। निर्दयता, क्रूरता।

नृशंसवत् (सं० त्रि०) नृशंसः विद्यतेऽस्य, मतुप् मस्य वः। पापकर्मा, अपकार करनेवाला।

नृशृङ्ग (सं० क्लो०) नृणां शृङ्गम्। अलीक पदार्थ, मनुष्य-को सींगके समान अनहोनी बात या वस्तु।

नृसोवा—दाक्षिणात्यके बीजापुर प्रदेशके अन्तर्भुक्त कोल्हा-पुर सामन्तराजके अधीन एक ग्राम। यह कृष्णा और पञ्चगङ्गा नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। यहां कृष्णानदीके किनारे सोपानराजिविराजित घाटके ऊपर नरसिंहदेवका मन्दिर है। सम्भवतः इसी नृसिंहदेवके मन्दिरसे इस स्थानका नामकरण हुआ होगा। यहां ब्राह्मण भी रहते हैं। पूर्वोक्त घाटके दूसरे किनारे करन्दर नगर है। यहांका घाट जैसा सुन्दर है, वैसा ही तीर-वर्त्ती स्थानसमूहका दृश्य भी मनोरम है।

नृषद् (सं० पु०) नरि पुरुषे अन्तर्यामितया सीदति सद्-क्विप्, वेदे षत्वम्। १ परमात्मा। २ कण्वऋषिके पिता ऋषिभेद। ३ मनुष्यस्थायी।

नृषदन (सं० क्लो०) नरः नेतारः ऋत्विजः तेषां सदनं, वेदे षत्वम्। यज्ञगृह, यज्ञशाला।

नृषद्मन् (सं० त्रि०) मनुष्यमें रहनेवाला।

नृषा (सं० त्रि०) पुत्रदाता, लड़का देनेवाला।

नृषाच् (सं० त्रि०) प्राणरूपसे मनुष्यको सेवा करनेवाला।

नृषाता (सं० स्त्री०) मनुष्योंके संभक्ता।

नृषाह् (सं० त्रि०) शत्रुओंको परास्त करनेवाला।

नृषाह्य (सं० त्रि०) शत्रुओंका अभिभावुक, दुश्मनोंको जीतनेवाला।

नृषूत (सं० त्रि०) षू-प्रेरणे कर्मणि-क्त, नृभिः षूतः ३-तत्। स्तोतृगण कर्त्तृक प्रेरित।

नृसार (सं० पु०) १ निषादन। २ महाद्रावक।

नृसिंह (सं० पु०) ना चासौ सिंहश्चेति कर्मधारयः। १ भगवदवतारभेद, नरसिंहरूपी विष्णु, नृसिंहावतार, दश अवतारोंमेंसे चौथा अवतार।

"सिंहस्य कृत्वा वदनं मुरारिः सदा करालं च सुदृकनेत्रम्।
अर्द्धं वपुर्वै मनुजस्य कृत्वा ययौ सभां दैत्यपतेः पुरस्तात्॥"
(अग्नि पु०)

भगवान् मुरारि आधा शरीर सिंहके जैसा और आधा मनुष्यके जैसा इस प्रकार नरसिंहमूर्त्ति धारण कर दैत्यपतिके सामने सभामें पहुंचे थे।

अग्निपुराणके मतसे—नृसिंहमूर्ति स्थापन करनेका ऐसा विधान है। उनका शरीर व्यादित, वाम जङ्घ पर चतदानव, गलेमें माला, हाथमें चक्र और गदा है, ऐसी अवस्थामें वे दैत्यपतिका वक्ष फाड़ रहे हैं। (अग्निपु० ३० अ०) नृसिंह तथा महाविष्णुका मन्त्र और पूजादिका विषय तन्त्रसारमें विशेषरूपसे लिखा है। नृसिंहमन्त्र इस प्रकार है, यथा—

"उग्रं वीरं वदेत् पूर्वं महाविष्णुमनन्तरं।
ज्वलन्तं पदमामाष्य सर्वतो मुखमीरयेत्॥
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं वदेत्ततः।
नमाम्यहमिति प्रोक्तो मन्त्रराजः सुरद्रुमः॥" (तन्त्रसार)

यह नृसिंहमन्त्र मायापुटित और सर्वफलप्रद है।

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखं।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥"

इसी मन्त्रसे नृसिंहदेवकी पूजा करनी चाहिए। इस मन्त्रके आदि और अन्तमें "ह्रीं" यह मन्त्र योग करके जपादि करनेसे साधकका कल्याण होता है। इस मन्त्रका पूजा-प्रयोग इस प्रकार है—सामान्य पूजापद्धतिके अनुसार प्रातःकृत्यादि करके विष्णुपूजापद्धतिक्रमसे पीठन्यासान्त समस्त कर्म कर चुकनेके बाद ऋष्यादिन्यास, करन्यास, अङ्गन्यास और मन्त्रन्यास करे। पीछे नृसिंहदेवका ध्यान करनेका विधान है।

ध्यान—"माणिक्यादिसमप्रभं निजरुचा संत्रस्तरक्षोगणं
जानुन्यस्तकराम्बुजं त्रिनयनं रत्नोल्लसद्भूषणम्।
बाहुभ्यां धृतशङ्खचक्रमनिशं दंष्ट्रोग्रवक्त्रोल्लसत्
ज्वालाजिह्वमुदारकेशरचयं वन्दे नृसिंहं विभुम्॥"

'नृसिंहदेवकी देहकान्ति माणिक्यादिकी तरह उज्ज्वल है, शरीरकी प्रभासे राक्षसगण सर्वदा डरा करते हैं, दोनों हाथ जानुके ऊपर रखे हुए हैं, इनके तीन नेत्र हैं और समूचा शरीर रत्नभूषणसे भूषित है। हाथोंमें शङ्ख और चक्र है, आधा शरीर मनुष्यके जैसा और आधा सिंहके जैसा है। विकट वदनसे अग्निशिखाकी नाईं जिह्वा बाहिर निकली हुई है।' इस प्रकार ध्यान करके मानसोपचारसे पूजा करे और अर्घ्यस्थापनपूर्वक विष्णुपूजा पद्धतिक्रमसे पीठपूजा और पुनर्वार ध्यान आवाहनादि द्वारा पूजा करके आवरणकी पूजा करनी होती है। इस मन्त्रका पुरश्चरण ३२ लाख जप है। यथाविधि पुरश्चरण करके घृतयुक्त पायस द्वारा ३२ हजार होम करना होता है।

नृसिंहदेवका मन्त्रान्तर—

"पाशः शक्तिर्नरहरिरङ्कुशो वर्म फट् मनुः।
षडक्षरो नरहरेः कथितः सर्वदः॥"

आं ह्रीं क्षौं क्रौं हुं तथा फट् ये छः अक्षर नृसिंहदेवके मन्त्र हैं, यह मन्त्र सर्वकामप्रद है। यथाविधान इस मन्त्रसे नृसिंहदेवकी पूजा करनी होती है। इस मन्त्रका पुरश्चरण भी लाख बार जप है। जप करनेके बाद घृत द्वारा छः हजार होम करनेका विधान है।

नृसिंहदेवका एकाक्षर मन्त्र—

"क्षकारो वह्निमारूढो मनुविन्दुसमन्वितः।
एकाक्षरो मनुः प्रोक्तः सर्वकामफलप्रदः॥"

क्ष्रौं यही नृसिंहदेवका एकाक्षर मन्त्र है। यह मन्त्र सर्वकामफलप्रद माना गया है। इस मन्त्रका पुरश्चरण ८ लाख जप है और जपका दशांश होम।

नृसिंहदेवका अष्टाक्षर मन्त्र—

"जयद्वयः समुच्चार्य श्रीपूर्वो नृसिंह इत्यपि।
अष्टाक्षरो मनुः प्रोक्तो भजतां कामदो मणिः॥"

'जय जय श्री नृसिंह' यही अष्टाक्षर मन्त्र है जो साधकोंके लिये कल्याणकर माना गया है। इस मन्त्रका पुरश्चरण भी ८ लाख जप है और जपका दशांश होम होगा।

नृसिंहदेवके षडक्षर मन्त्रका ध्यान—

"कोपादालोलजिह्वं विवृतनिजमुखं सोमसूर्याग्निनेत्रं
पादादानाभिरक्तप्रभमुपरिसितं भिन्नदैत्येन्द्रगात्रम्।
शङ्खं चक्रं सपाशांकुशकुलिशगदादारुणान्युद्वहन्तं
भीमं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रं मणिमयविविधाकल्पमीडे नृसिंहम्॥"

इस प्रकार ध्यान करके पूजा करते हैं।

नृसिंहदेवके यन्त्रविषयमें तन्त्रसारमें इस प्रकार लिखा है। नृसिंह यन्त्र—

"बीजं साध्यसमन्वितं प्रविलिखेन्मध्ये षट्पत्रे ध्वथो
मन्त्रार्णान् श्रुतिशो विभज्य विलिखेत् लिप्या बहिर्वेष्टयेत्।
बाह्ये कोणगबीजरुद्धवसुधागेहद्वये नावृतं
यन्त्रं क्षुद्रविषग्रहामयरिपुप्रध्वंसनं श्रीपदम्॥"

मध्य स्थलमें वीज और साध्यनामादि लिख कर अष्टदलमें यह लिखें—

"उग्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतो मुखं ।
नृसिंहं भीषणं भद्रं मृत्युमृत्युं नमाम्यहं ॥"

इस मन्त्रके चार चार मन्त्रसे विन्यास और उसके चारों ओर मातृकावर्ण अर्थात् अकारादि वर्ण द्वारा परिवृत करना होता है। उसके वहिर्भागमें दो भूपुर लिख कर उसके प्रत्येक कोनेमें क्षौं यह मन्त्र लिखना पड़ता है। इस यन्त्रका यथाविधि पूजन कर शरीर पर धारण करनेसे चद्र विष ग्रह-दोष, व्याधिनाश, शत्रुध्वंस और लक्ष्मीलाभ होता है। भूर्जपत्रलिखित यन्त्र १२ वर्ष तक धारण किया जा सकता है। (तन्त्रसार) नृसिंह-अवतारादिका विषय नरसिंह शब्दमें देखो।

२ षोड़श रतिबन्धान्तर्गत नवम बन्ध। ३ नरश्रेष्ठ, श्रेष्ठपुरुष। ४ स्वनामख्यात नृपविशेष।

नृसिंह—पञ्जावके अन्तर्गत काङ्गड़ा जिलेमें विष्णु-अवतार नरसिंह वा नारसिंहदेवका पूजन प्रचलित है। वहांके प्रायः दो तृतीयांश मनुष्य इस पूजाको विशेष श्रद्धाभक्तिसे करते हैं। स्त्रियोंका विश्वास है, कि यही नरसिंहदेव उन्हें सन्तानादि देते और विपद्कालसे उद्धार करते हैं।

इस पूजामें वे लोग एक नारियलको ले कर थाली पर रखते और पहले परिष्कार जलसे उसे धोते हैं। पीछे उसमें चन्दन घिस कर लेप देते हैं तथा उस चन्दनसे उसके ऊपर तिलक काढ़ते हैं। बादमें उस पर अरवा चावल छोड़ते और मालादिसे विभूषित कर उसके आगे धूप जलाते हैं। पूजाके बाद वे मिष्टान्नादि भोग लगाते हैं और उस प्रसादको अपने तथा पड़ोसीके बालबच्चोंके बीच बांट देते हैं। साधारणतः प्रति रविवार अथवा मासके प्रथम रविवारको यह पूजा होती है।

यहांके लोग नरसिंहदेवसे साधारणतः डरते और उनकी भक्ति किया करते हैं। सभी अपनी अपनी बाँह पर कवच पहनते हैं जिसके ऊपर नृसिंहमूर्त्ति खोदित रहती है। इसके सिवा बहुतसे मनुष्य ऐसे भी हैं जो कवच न पहन कर अपने घरमें नारियल रखते और प्रति दिन उसीकी पूजा करते हैं। माता वा सास जब यह पूजा करती है, तब कन्या वा पुत्रवधूको उनका साथ देना पड़ता है। जब कोई वन्ध्यानारी पुत्रके लिये किसी योगीसे प्रार्थना करती है, तब वह योगी उसे नरसिंह-पूजा करनेकी सलाह देते हैं। प्रवाद है, कि इस प्रकार पूजा करनेसे नरसिंहदेव रातको उन्हें स्वप्न देते हैं। जब किसीको ज्वर लगता है, तब नरसिंहका चेला आ कर उसका रोग झाड़ देता है।

नृसिंह—भारतवर्षके मध्यप्रदेशके अन्तर्गत शिवनी जिलेका एक मन्दिराकृति पर्वत। यह वैनगङ्गा नदीकी उपत्यकाभूमिसे एक सौ फुट ऊँचा है। पहाड़के ऊँचे शिखर पर नरसिंहदेवका मन्दिर और मध्यभागमें विष्णुकी नृसिंह-मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। पर्वतके निम्न-भागमें इसी नामका एक ग्राम भी है।

नृसिंह—एक राजा। ये कुमारिकाभक्त चम्पकमुनिके कुलमें उत्पन्न राजा नागमण्डनके पुत्र थे।

नृसिंह—अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम। जो जो ग्रन्थ जिनके रचित हैं, उन उन ग्रन्थोंके नाम और ग्रन्थकारोंका यथासम्भव परिचय नीचे लिखा है।

१ आपस्तम्बसोमटीका, आग्नेयमप्रयोग, चयनपद्धति, प्रयोग-पारिजात, विधानमाला और संस्कार आदि ग्रन्थोंके प्रणेता।

२ कालचक्र, जातककलानिधि, जैमिनिसूत्रटीका निबन्ध-शिरोमणि-उक्त निर्णयाह, केशवार्कको जातकपद्धतिकी प्रौढ़मनोरमा नामक टीका, यन्त्रराजोदाहरण, हिल्लाजदीपिका आदि ग्रन्थोंके रचयिता।

३ गणेश-गद्य नामक एक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

४ दत्तकपुत्रविधानके रचयिता। इनकी उपाधि भट्ट थी।

५ नलोदयटीकाके प्रणेता।

६ वन्धकौमुदी नामक ग्रन्थकर्त्ता।

७ वीरनारसिंहावलोकनके प्रणेता।

८ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता।

९ शिवभक्तिविलास नामक ग्रन्थके प्रणेता।

१० शृङ्गारस्तवकभाणके प्रणेता। ये अपनेको हारीतवंशोद्भव बतलाते थे।

११ कुमलके पुत्र। संक्षिप्तसारके अन्तर्गत धातुपाठकी गणमार्त्तण्ड नामक टीकाके रचयिता।

१२ एक ज्योतिर्विद्। ये दिवाकरके पौत्र, कृष्णदैवज्ञके पुत्र, गणेश दैवज्ञके भ्रातुष्पुत्र और कमलाकरके पिता थे। इन्होंने तिथिचिन्तामणिटीका, सिद्धान्तशिरोमणिवासनावार्त्तिक और सूर्यसिद्धान्त-वासनाभाष्य रचे हैं।

१३ जातकमञ्जरीके प्रणेता। ये नागनाथके पुत्र और मौद्गल्य गोत्रके थे।

१४ नारायण भट्टके पुत्र, नृसिंहके पौत्र और गोपीनाथके भाई। चोलपाल राज्यके अन्तर्गत वह्नवाडू ग्राममें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने प्रयोगरत्न नामक एक संस्कृत ग्रन्थकी रचना की।

१५ एक ज्योतिर्विद्। ये रामदैवज्ञके पुत्र और केशवके पौत्र थे। इन्होंने गणेश दैवज्ञसे ज्योतिःशास्त्र पढ़ा था। इनके बनाये हुए ग्रन्थकौमुदी, ग्रहदीपिका और हिल्लाजदीपिका नामक ग्रन्थ मिलते हैं।

१६ एक विख्यात पण्डित। इनके बनाए हुए कालनिर्णयदीपिकाविवरण और तिथिनिर्णय संग्रहटीका नामक दो ज्योतिर्ग्रन्थ हैं। ये भगवन्नाम कौमुदीके प्रणेता लक्ष्मीधराचार्यके पितामह और विट्ठलाचार्यके पिता थे। इनके पिताका नाम रामचन्द्राचार्य था। इन्होंने गोपालपण्डितसे विद्याशिक्षा पाई थी।

१७ शङ्करसम्प्रदायिओंके अष्टम गुरु। इनकी उपाधि तीर्थ थी।

नृसिंह अङ्गदी—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कणाड़ा जिलान्तर्गत उप्पिनङ्गडी तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १३° २' उ० और देशा० ७५° ५२' पू०के मध्य अवस्थित है। १७८४ ई०में टीपूसुलतान जब मङ्गलूरसे इसी स्थान हो कर जा रहे थे, तब उन्होंने इस स्थानको शत्रुके आक्रमणसे सुरक्षित तथा पर्वतोपरि दुरारोह स्थानमें अवस्थित देख यहांका प्राचीन नाम बदल कर जमालाबाद नामका एक नगर बसाया। इस नगरके पश्चिम अत्युच्च पर्वतशिखर पर एक दुर्ग बना कर उन्होंने इस नगरकी रक्षा की थी। १७९९ ई०में अंगरेजी सेनाके साथ टीपूसुलतानके सेनासे छः सप्ताह तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें टीपूके सेनाध्यक्षने जब आत्महत्या कर डाली, तब अंगरेज-सहकारी कुर्गके राजाने जमालाबादनगरको तहस नहस कर डाला। इसके पार्श्ववर्त्ती ग्राममें आज भी बहुसंख्यक मुसलमानोंका वास है।

नृसिंहाचार्य—१ एक पण्डित। ये कुशिकवंशके थे। कोई कोई इन्हींको रामानुजके पिता बतलाते हैं।

२ अनङ्गसर्वस्वभाणके प्रणेता लक्ष्मी नृसिंहके पिता।

३ एक दार्शनिक। इन्होंने शङ्कराचार्यकृत ऐतरेयोपनिषद्भाष्यकी टीका, नारायणोपनिषत्सार और शङ्कराचार्य-विरचित श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यकी टीका प्रणयन की।

४ शिवानन्दकृत पदार्थचन्द्रिका नामक ग्रन्थके टीकाकार।

५ अनन्तभट्टकी भारतचम्पू टीकाके रचयिता।

६ मन्त्रचिन्तामणिके प्रणेता।

७ ज्योतिःशास्त्रविशारद एक पण्डित। ये भरद्वाजगोत्रके वाधूलवंशीय वरदाचार्यके पुत्र थे। इन्होंने कालप्रकाशिका नामक एक संक्षिप्त ज्योतिर्ग्रन्थ लिखा है।

८ चम्पूभारतकी सरस्वती नामक टीकाके रचयिता।

नृसिंहकवच (सं० क्ली०) नृसिंहस्य कवचम्। तन्त्रसारोक्त नृसिंहदेवका कवचभेद, विपन्निवारक मन्त्रभेद। इस कवचको भोजपत्र पर लिख कर यथाविधि हृदयमें धारण करनेसे सब प्रकारकी विपद् जाती रहती हैं।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"नारद उवाच।
इन्द्रादिदेववृन्देश तातेश्वर जगत्पते।
महाविष्णोर्नृसिंहस्य कवचं ब्रूहि मे प्रभो॥
यस्य प्रपठनाद्विद्वान् त्रैलोक्य विजयीभवेत्॥
ब्रह्मोवाच।
शृणु नारद वक्ष्यामि पुत्रश्रेष्ठ तपोधन।
कवचं नरसिंहस्य त्रैलोक्यविजयाभिधम्॥
यस्य प्रपठनात् वाग्मी त्रैलोक्यविजयी भवेत्।
स्रष्टाहं जगतां वत्स पठनाद् धारणाद्यतः॥" इत्यादि।

एक दिन नारदने जब ब्रह्मासे महाविष्णु नृसिंहदेवके कवचके विषयमें पूछा, तब उन्होंने कहा था, 'हे नारद! तुम त्रैलोक्यविजय नामक नृसिंहकवच श्रवण करो। इस कवचके पढ़नेसे वाग्मित्व लाभ और त्रैलोक्य-विजयी होता है। मैंने इस कवचको धारण

करके स्रष्टृत्वशक्ति लाभ की है। इसीको पाठ और धारण कर लक्ष्मीदेवी त्रिजगत्का पालन करती हैं, महेश्वर इसीके प्रभावसे जगत्संहार करते हैं और देवताओंने इसीसे दिगीश्वरत्व प्राप्त किया है। यह कवच ब्रह्ममन्त्रमय है, इससे भूतादि निवारित होते हैं। मुनि दुर्वासा इसी कवचके प्रभावसे त्रिलोकविजयी हुए थे। इस त्रैलोक्यविजयकवचके ऋषि—प्रजापति, छन्दः—गायत्री, विभु—नृसिंहदेवता हैं।'

इस कवचको यथाविधि भोजपत्र पर लिख स्वर्णपात्रमें रख कर यदि कोई कण्ठ वा बाहुमें धारण करे, तो वह मनुष्य स्वयं नृसिंहरूपी हो जाता है। स्त्रियोंको यह कवच वाम बाहुमें और पुरुषोंको दक्षिण बाहुमें पहनना चाहिए। काकवन्ध्या, मृतवत्सा, जन्मवन्ध्या और नष्टपुत्रास्त्री यदि इस कवचको धारण करें, तो वे बहुपुत्रवती होती हैं। इस कवचके प्रभावसे सब प्रकारकी विपत्तियाँ जाती रहती हैं और साधकका जीवन मुक्त होता है। जिस घरमें वा जिस ग्राममें यह कवच रहता है, भूतप्रेतगण उस देशको छोड़ कर बहुत दूर चले जाते हैं। ब्रह्मसंहितामें यह कवच लिखा है। तन्त्रसारमें भी इस कवचका अन्यान्य विषय देखनेमें आता है।

(तन्त्रसार)

नृसिंहगढ़—१ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत होलकरराजके अधीनस्थ भूपाल एजेन्सीका एक छोटा राज्य और परगना। यह अक्षा० २३° २५´ से २४° उ० तथा देशा० ७६° २०´ से ७७° ११´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७३४ वर्गमील है। इसके उत्तरमें इन्दोर, खिलचीपुर और राजगढ़ ष्टेट; पूर्वमें मकसूदनगढ़ और भूपाल; पश्चिममें देवास और ग्वालियर तथा दक्षिणमें भूपाल और ग्वालियर है।

राजगढ़के रावतवंशीय सामन्तराजके मन्त्री आजवसिंहके पुत्र परशुराम १६६० ई०में पितृपद पर नियुक्त हुए। पीछे १६८१ ई०में इन्होंने रावतोंसे यह नृसिंहगढ़ राज्य बलपूर्वक पृथक् कर लिया और स्वयं इस प्रतिष्ठित राज्यके अधीश्वर हुए। १८वीं शताब्दीमें यहांके राजाने मराठोंकी अधीनता स्वीकार की और वे होलकरके साथ सन्धि करनेमें बाध्य हुए। उसी सन्धिके अनुसार राज्यकी आयमेंसे होलकर राजाको वार्षिक ८५०००) रु० देने पड़े।

पिण्डारी दस्युदलसे यह परगना उत्साहित होने पर इस स्थानके अध्यक्ष दीवान सुभगसिंह वाकी खजानेके दायी हुए। उक्त ऋणपरिशोधके लिये उन्होंने तथा उनके पुत्रकुमार चैनसिंहने वहांके सूबेदार महाराजाधिराज बहादुर ओजनकाजी सिन्धियाको एक पत्र लिखा। वह पत्र जब होलकरके दरबारमें पहुंचा, तब राजा मलहार राव होलकरने नृसिंहगढ़के अधिपति सुभगसिंहको १२१८ हिजरीमें अपना हस्ताक्षर करके परवाना भेज दिया जिसमें छः वर्षको सलीमशाही मुद्रा पर तीन लाख पचीस हजार रुपये देनेकी बात लिखी थी।

१८२४ ई०में चैनसिंहने वृटिश सेना पर धावा बोल दिया और आप ही युद्धमें मारे गये। पीछे १८७२ ई०में हनवन्तसिंह नृसिंहगढ़के सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इन्हें वृटिश गवर्मेण्टकी ओरसे राजाकी उपाधि और १५ सलामी तोपें मिलीं। १८७३ ई०में हनवन्तके मरने पर होलकरने उनके उत्तराधिकारी प्रतापसिंहसे नजराना तलब किया। लेकिन वृटिश सरकारने इस दावाको स्वीकार न किया। १८९० ई०में प्रतापकी मृत्युके बाद उनके चचा महताबसिंह सिंहासन पर बैठे। महताबकी निःसन्तानावस्थामें मृत्यु हुई। पीछे वृटिश सरकारने भाठखेर ठाकुरके वंशधर अर्जुनसिंहको १८९६ ई०में नृसिंहगढ़के सिंहासन पर अभिषिक्त किया। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इनका पूरा नाम यह है—एच, एच राजा सर अर्जुनसिंह साहब बहादुर, के० सी० आइ० ई०। इन्हें ग्यारह सलामी तोपें मिलती हैं।

राज्यको जनसंख्या लाखसे ऊपर है। सैकड़े पीछे ९० हिन्दूकी संख्या है, शेषमें अन्यान्य जातियां। राज्यकी आय पांच लाख रुपयेकी है। राजाके पास ४० अश्वारोही, पदातिक और २४ गोलन्दाज सेना हैं।

२ उक्त राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २३° ४३´ उ० और अक्षा० ७७° ६´ पू०, सेहोरसे ४४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ८७७८ है। नृसिंहगढ़के प्रथम सरदार परशुरामने इस नगरको बसाया। यहां

स्कूल, अस्पताल, कारागार तथा डाकघर और टेलिग्राफ आफिस है।

३ मध्यप्रदेशके दमोह जिलेका एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २३°५८´ उ० और देशा० ७९° २६´ पू० दमोह नगरसे १२ मील उत्तर-पश्चिम तथा हट्टपरगनेसे १५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। पहले यह नगर इलाहाबाद सहकूमतके अधीन था। मुसलमानी अमलमें यहां एक दुर्ग और मस्जिद बनाई गई। मुसलमान लोग इस स्थानको नजरनगढ़ कहा करते थे, परन्तु महाराष्ट्र-अभ्युदयमें उक्त नामके बदले नरसिंहगढ़ नाम रखा गया। यहां महाराष्ट्रोंका बनाया हुआ एक दुर्ग है। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजी सेनाने दुर्गका बहुत कुछ अंश तहस नहस कर डाला था।

नृसिंहचक्रवर्त्ती—देवीमाहात्म्यटीकाके रचयिता।

नृसिंहचतुर्दशी (सं० स्त्री०) नृसिंहप्रिया नृसिंहव्रतो-पलक्षिता वा चतुर्दशी। वैशाखमासकी शुक्लाचतुर्दशी। इस तिथिमें नृसिंहदेवके उद्देशसे व्रतानुष्ठान किया जाता है।

"वैशाखस्य चतुर्दश्यां शुक्लायां श्रीनृकेशरी।
जातस्तदस्यां तत्पूजोत्सवं कुर्वीत सव्रतम्॥"
(नारसिंह)

वैशाखमासकी शुक्लाचतुर्दशी तिथिमें नृसिंहदेव अवतीर्ण हुए थे, अतएव इस दिन उनके उद्देशसे पूजा, व्रत और महोत्सव करना चाहिए। यह व्रत प्रत्येक व्यक्तिका अवश्यकर्त्तव्य है।

व्रतविधि—"वर्षे वर्षे तु कर्त्तव्यं मम सन्तुष्टिकारणम्।
महागुह्यमिदं श्रेष्ठं मानवैर्भवभीरुभिः॥
किंच,—विज्ञाय मद्दिनं यस्तु लङ्घयेत् स तु पापभाक्।
एवं ज्ञात्वा प्रकर्त्तव्यं मद्दिने व्रतमुत्तमम्॥
अन्यथा नरकं याति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥"
(बृहद् नारसिंहपुराण)

प्रति वर्ष भगवान् नृसिंहदेवकी सन्तुष्टिके लिये यह अतिगुह्य और श्रेष्ठ व्रत सबोंका अनुष्ठेय है। इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे भवभय जाता रहता है। जो इस दिन व्रतानुष्ठान नहीं करते, वे पापभागी होते हैं। अतः मद्दिनमें अर्थात् नृसिंह-चतुर्दशीमें यह उत्तम व्रत अवश्य कर्त्तव्य है। इसका अन्यथाचरण करनेसे जब तक सूर्य और चन्द्रमा रहेंगे, तब तक नरकमें वास होगा।

इस नृसिंहव्रतका करना सबोंका अधिकार है, इसमें ब्राह्मणादि वर्णविभाग नहीं है। विशेषतः भक्तगणको एकाग्र हो कर इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिए।

प्रह्लादके भगवान् नृसिंहदेवसे इस व्रतका माहात्म्य पूछने पर उन्होंने कहा था,—पुराकालमें अवन्तीपुरमें वसुदेव नामक एक ब्राह्मण थे। वे अत्यन्त वेदपारग और नाना प्रकारके सद्गुणसम्पन्न थे। उनको पत्नीका नाम था सुशीला। सुशीला सचमुच सुशीला थी। उनके गर्भसे पांच पुत्र उत्पन्न हुए जिनमेंसे छोटेका नाम दुर्विनीत था। वह बहुत विलासी था और हमेशा विलासिनोंके घरमें रहा करता था। यहां तक कि उसने वेश्यासक्त हो उसके साथ सुरापान तक भी आरम्भ कर दिया। एक दिन वेश्याके साथ इसका विवाद हुआ। नृसिंहचतुर्दशीका दिन था। विवाद करके उस दिन दोनों उपवासी रहे, उपवास और रात्रिजागरण तो विवादछलसे हुआ, लेकिन साथ साथ इस महाव्रतका अनुष्ठान भी किया गया।

इस व्रतके प्रभावसे उस वेश्या और वसुदेवतनयने तुम्हारे समान भक्ति हो आई। वह वेश्या इस त्रिलोकमें सुखचारिणी हो कर अन्तमें स्वर्गकी अप्सरा हुई और नाना प्रकारके सुख भोग करने लगी। ब्राह्मण-कुमारके भी स्वर्गगति हुई। इस व्रतका माहात्म्य अधिक क्या कहा जाय, ब्रह्माने सृष्टि करनेके लिये स्वयं इस व्रतका अनुष्ठान किया था। इसी व्रतके प्रभावसे वे सृष्टि करनेमें समर्थ हुए हैं। देवगण इसी व्रतके प्रभावसे देवता हो कर स्वर्गमें सुखसे अवस्थान और समस्त सिद्धिलाभ करते हैं। जो मनुष्य यह व्रतानुष्ठान करते, कल्पकोटिशत वर्षमें भी उनकी पुनरावृत्ति नहीं होती। इस व्रतके प्रभावसे अपुत्र पुत्रलाभ करता है, दरिद्र लक्ष्मी पाता है और राज्यकामी राज्य प्राप्त करता है। हमारे भक्तगण यह व्रत करके जो कुछ प्रार्थना करते, वही पाते हैं। जो मनुष्य यह व्रतमाहात्म्य भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं उनके ब्रह्महत्या-जनित पाप दूर हो जाते हैं और उनकी सभी अभिलाषाएं पूर्ण होती हैं।

(बृहन्नारसिंह पु०)

व्रतदिननिर्णय यथा—

"वैशाखे शुक्लपक्षे च चतुर्दश्यां महातिथौ।
सायं प्रह्लादधिक्कारमसहिष्णुः परोहरिः॥
स्वातीनक्षत्रयोगे तु शनिवारे हि मद्व्रतम्।
सिद्धयोगस्य योगे च लभ्यते दैवयोगतः॥
सर्वैरेतैस्तु संयुक्तं हत्याकोटिविनाशनम्।
केवलं च प्रकर्त्तव्यं मद्दिनं फलकांक्षिभिः।
वैष्णवैन्तु कर्त्तव्या स्मरविद्धा चतुर्दशी॥"
(बृहत् नारसिंहपु०)

वैशाख मासकी शुक्लाचतुर्दशी महातिथिको भगवान् परब्रह्म प्रह्लादके प्रति धिक्कार सह्य न करते हुए सन्ध्या समय नृसिंहरूपमें अवतीर्ण हुए। इस दिन उनके उद्देश्यसे यह व्रत अवश्य विधेय है। यदि इस दिन स्वातिनक्षत्र, शनिवार और दैवक्रमसे सिद्धियोग हो, तो व्रतानुष्ठान करनेसे कोटिहत्याका पाप दूर जाता है। यदि यह चतुर्दशी स्मरविद्धा हो, तो वैष्णवोंको इस दिन व्रतानुष्ठान नहीं करना चाहिये। इस व्रतके करनेमें बहुत सवेरे विछावनसे उठ भगवान् विष्णुका स्मरण करके संयम करना होता है और नियमकालमें निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करना होता है।

"श्रीनृसिंह! महोग्रस्त्वं दयां कुरु ममोपरि।
अद्याहं ते विधास्यामि व्रतं निर्विघ्नतां नय॥" इत्यादि।

इस दिन मिथ्यालाप, पापिसङ्ग आदि दुष्कार्य न करे, सर्वदा नृसिंहमूर्त्तिके ध्यानमें मस्त रहे। पीछे मध्याह्नकालको नदी वा किसी पूतजलमें स्नान करके पट्टवस्त्र परिधानपूर्वक घर लौटे और वहां पवित्र स्थान पर एक अष्टदलपद्म बनावे। उस जगह एक कलसी भी स्थापन करे और उसके ऊपरमें हेममय नृसिंह और लक्ष्मीप्रतिमाकी स्थापना करके पूजा करे। इस पूजामें पहले प्रह्लादकी पूजा, पीछे मूलपूजा विधेय है। इसमें चन्दन, पुष्प, दीप और नैवेद्यकी जरूरत पड़ती है तथा पूजाका पृथक् पृथक् मन्त्र भी है। हरिभक्तिविलासके १४वें विलासमें ये सब मन्त्र तथा अन्यान्य विवरण लिखे हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं दिये गये।

नृसिंहकी पूजा कर इस मन्त्रसे प्रार्थना करनी चाहिये।

"मद्वंशे ये नरा जातो ये जनिष्यन्ति मत्पुरः।
तांस्त्वमुद्धर देवेश दुःसहात् भवसागरात्॥
पातकार्णव मग्नस्य व्याधिदुःखाम्बुराशिभिः।
तीव्रैस्तु परिभूतस्य महादुःखगतस्य मे।
करावलम्बनं देहि शेषशायिन् जगत्पते।
श्रीनृसिंह रमाकान्त भक्तानां भयनाशन॥" इत्यादि।
(हरिभ० १४)

नृसिंहठक्कुर—एक संस्कृतज्ञ पण्डित, भगवद्गीतार्थसङ्गतिनिबन्ध, काव्यप्रकाशटीका और प्रमाणपल्लव नामक संस्कृत ग्रन्थके प्रणेता। इन्होंने काव्यप्रकाशटीका रचा है। एक जगह इन्होंने धावक कविकृत रत्नावलीनाटिकाके श्रीहर्षराजके यहां विक्रय और उससे अर्थप्राप्तिविवरणका उल्लेख किया है। यह प्रसङ्ग रहनेके कारण कोई कोई इन्हें वैद्यनाथ, नागेश और जयरामप्रभृति टीकाकारोंके समसामयिक वतलाते हैं। किन्तु इनके ग्रन्थमें नागेशका मत उद्धृत रहनेके कारण ये उनके परवर्ती माने जाते हैं।

नृसिंहतापनीय (सं॰ पु॰) उपनिषद्विशेष। शङ्कराचार्यने इस उपनिषद्का भाष्य प्रणयन किया है।

नृसिंहदेव—१ कौशिक कुलोद्भव वेदान्ताचार्यके भागिनेय। ये वत्स गोत्रके थे। इन्होंने भेदधिक्कारन्यक्कार नामक संस्कृत ग्रन्थ लिखा है।

२ कर्णाटदेशके एक राजा। ये ज्योतिरीश्वर पण्डितके प्रतिपालक थे।

३ मिथिलादेशके एक राजा। इनकी सभामें कवि विद्यापति विद्यमान थे।

४ एक ज्योतिर्विद्, विष्णुदैवज्ञके पुत्र। इन्होंने सूर्यसिद्धान्तभाष्यकी रचना की।

५ उड़ीसाके एक राजा।
गाङ्गेयवंश और उत्कल देखो।

नृसिंहदेव—श्रीनिवासाचार्य के शिष्य, मानभूमके एक राजा। पदकी रचना करके ये भी चिरजीवी हो रहे हैं।

नृसिंहदेव नृपति—एक विख्यात पदकर्त्ता। प्रेमविलासमें लिखा है, कि जिस समय ठाकुर महाशयके प्रभावसे ब्राह्मणादि भी उनसे दीक्षित होने लगे, कुलकाभेद

प्रायः जाता रहा, उस समय अनेक ब्राह्मण इन्हीं नरसिंहराय की शरणमें पहुँचे। नरसिंह रायकी सभामें अनेक देशविख्यात पण्डित थे। रूपनारायण नामक दिग्विजयी पण्डित इन्होंके अमात्य रहे।

रूपनारायण देखो।

ब्राह्मणोंको प्रार्थनासे राजा उन सब पण्डितोंको साथ ले नरोत्तमके साथ शास्त्रार्थ करने गए। अन्तमें शास्त्रार्थमें परास्त हो कर उन्होंने दलबलके साथ ठाकुर महाशयका शिष्यत्व ग्रहण किया। इसी समयसे राजा कट्टर भक्त हो गए और पदकी रचना भी करने लगे।

नृसिंहदैवज्ञ—एक प्रसिद्ध ज्योतिर्विद्। इन्होंने सूर्य-सिद्धान्तके भाष्य और तिथिचिन्तामणिटोकाकी रचना की है। गोलग्राम नगरमें भरद्वाजगोत्रमें इनका जन्म हुआ था। इनका वंशपरिचय इस प्रकार मिलता है—राजपूजित दिवाकर दैवज्ञके ५ पुत्र थे जिनमेंसे कृष्णदैवज्ञ बड़े थे। कृष्णदैवज्ञने बोजसूत्रात्मक ग्रन्थ लिखा। उन्होंके पुत्र नृसिंहदैवज्ञ हैं।

नृसिंहनल्लूर—मन्द्राज प्रदेशके तिन्नवेली जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ८° ४२' उ० और देशा ७७° ४२' पू० तिन्नवेली नगरसे ३ मील पश्चिममें अवस्थित है।

नृसिंहपञ्चानन—एक ग्रन्थकार। इन्होंने न्यायसिद्धान्तमञ्जरी नामक न्यायग्रन्थको एक टीकाका सङ्कलन किया।

नृसिंहपञ्चानन भट्टाचार्य—एक नैयायिक। इन्होंने वेदलक्षण नामक तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी एक टोका लिखी है।

नृसिंहपुराण (सं० क्लो०) नारसिंहपुराण देखो।

नृसिंहपुर—नरसिंहपुर देखो।

नृसिंहपुरीपरिव्राज्—एक ग्रन्थकार। इन्होंने रत्नकोष नामक एक ग्रन्थ लिखा है।

नृसिंहभट्ट—इस नामके कई एक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं—

१ दशरूपके एक टीकाकार।

२ विष्णुधर्ममीमांसाके रचयिता।

३ विष्णुपुराणके एक टीकाकार।

४ एक स्मार्त्त पण्डित। इनकी उपाधि मीमांसक थी। "स्मृतिनिबन्ध" नामक ग्रन्थ इन्होंका बनाया हुआ है।

५ हरिहरानुकरण्यात्रा नाटकके प्रणेता।

६ संस्काररत्नावलीके प्रणेता, सिद्धभट्टके पुत्र।

नृसिंहभारती—एक ईश्वरतत्त्वज्ञ पण्डित। ये देवोमहिम्नस्तोत्र आदि कई ग्रन्थ बना गए हैं।

नृसिंहभूपति—एक चोलराज। ये पूर्वचालुक्यवंशोय चोलराज विश्वेश्वर भूपके पौत्र और उपेन्द्रके पुत्र थे।

चालुक्यराजवंश देखो।

नृसिंहमुनि—१ एक वेदान्तिक। इन्होंने वेदान्तरत्नकोषकी रचना की। २ राममन्त्रार्थ ग्रन्थ-प्रणेता।

नृसिंहयज्वन्—महिसुरवासी एक पण्डित। इन्होंने प्रयोगरत्न और श्रौतकारिका नामक दो ग्रन्थोंको रचना की।

नृसिंहयतीन्द्र—एक ख्यातनामा पण्डित। ये वेदान्तपरिभाषाकार धर्मराज अध्वरीन्द्रके गुरु थे।

नृसिंहराय—विजयनगरके नरसिंह राजा। ये और नरसिंह वा नृसिंहेन्द्रके पिता थे। इन्होंने तिप्पाजीदेवी और नागलासे विवाह किया था। विजयनगर देखो।

नृसिंहवन (सं० पु०) कूर्मविभागमें वर्णित पश्चिम-उत्तरदिक्‌स्थित एक देश।

नृसिंहवर्मा—पल्लव वंशीय एक राजा। इन्होंने प्रायः ५५० ई०में काञ्चीपुरस्थ कैलासनाथ वा राजसिंहेश्वर देवमन्दिरका निर्माण किया।

नृसिंहवल्लभमिश्रठाकुर—कालीचरण मिश्र नवाबके दीवान थे। उनके सन्तान होती थी, पर मर मर जाती थी। एक दिन एक सन्तानकी मृत्यु होने पर उनकी स्त्री नदी किनारे बैठ कर रो रही थी। इसी समय ठाकुरमङ्गल (ज्ञानदास)के साथ उनकी भेंट हुई। ज्ञानदास देखो। उन्होंने मिश्रपत्नीकी दुःखवार्त्ता सुन कर दयार्द्रचित्तसे उन्हें आश्वासन दिया और कहा,—"इस बार जो तुम्हारे पुत्र होगा, वह बचेगा और प्रभुका भक्त होगा।" यह सुन कर मिश्र ठाकुराणी विनीतभावसे बोली, 'यदि आपके वचन सत्य निकले, तो मैं उस पुत्रको ठाकुरके चरणमें अर्पण कर दूंगी।'

यही शेष पुत्र नृसिंह वल्लभ थे। जब नृसिंहकी उमर

१६ वर्षको हुई, तब ठाकुरमङ्गलने उन्हें मन्त्रदान किया। समय पा कर उनको एक पुत्र हुआ जिसका नाम हरिकृष्ण ठाकुर रखा गया।

पुत्र होनेके बाद एक दिन 'प्रभु' (शायद नित्यानन्द प्रभु)ने उन्हें दर्शन दिये और विषयत्याग करनेको कहा। आदेश पाते ही नृसिंह घर द्वार छोड़ कर वीरभूम जिलेके मैनाडल जङ्गलमें स्त्री समेत चले गये और वहीं कृष्णभजन करने लगे। इस समय बहुतसे मनुष्य उनके शिष्य हुए। इसी समय उन्होंने कांदड़ासे निम्बवृक्ष ला कर गौराङ्गकी विश्वम्भर नामक मूर्त्तिकी स्थापना की। उस मूर्त्तिके निर्माणकर्त्ता भास्करका नाम था कैनाराम। वह मूर्त्ति आज भी विराजमान है।

नृसिंह वाजपेयी—१ एक पण्डित। इनके बनाए हुए आचार और व्यवहार तथा श्रुतिमीमांसा नामक दो ग्रन्थ मिलते हैं। २ विधानमालाके रचयिता।

नृसिंहशास्त्री—एक विख्यात नैयायिक। इन्होंने अन्धकारवाद नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

नृसिंहसरस्वती—१ एक ख्यातनामा वैदान्तिक। कृष्णानन्दके शिष्य। इन्होंने १५७८ ई०में वाराणसीवासी अपने प्रतिपालक गोवर्द्धनके अनुरोधसे सुबोधिनी नामक एक वेदान्तसारटीकाकी रचना की।

२ शङ्करसम्प्रदायके १५वें गुरु।

नृसिंहसूरि—एक पण्डित। ये दाक्षिणात्यके वेङ्कटगिरिनिवासी सिङ्गणके पुत्र थे। वेङ्कटाद्रिनाथीय ग्रहतन्त्र इन्हींका बनाया हुआ है।

नृसिंहानन्द—एक विख्यात पण्डित, भास्कररायके गुरु। इन्होंने ललितासहस्रनामपरिभाषा और वारिवस्यारहस्य नामक दो संस्कृत ग्रन्थ लिखे हैं।

नृसिंहारण्यमुनि—एक पण्डित। इन्होंने विष्णुभक्तिचन्द्रोदयकी रचना की।

नृसिंहाश्रम—१ एक विख्यात पण्डित और महीधरके गुरु। २ गीर्वाणेन्द्र सरस्वती और जगन्नाथाश्रमके शिष्य तथा नारायणाश्रमके गुरु। इनके बनाए हुए अद्वैतदीपिका, अद्वैतपञ्चरत्न, अद्वैतबोधदीपिका, अद्वैतरत्नकोष, अद्वैतवाद, तत्त्वबोधिनी संक्षेपशारीरकटीका, तत्त्वविवेक, पञ्चपादिका, विवरणप्रकाशिका, भेदधिक्कार, वाचारम्भण और वेदान्तविवेक आदि ग्रन्थ मिलते हैं।

नृसिंहेन्द्र—विजयनगर राजवंशके एक राजा। ये नरग अवनिपाल वा नृसिंहरायके पुत्र थे। इनकी माताका नाम तिप्पाजी देवी था। विजयनगर देखो।

नृसेन (सं० क्ली०) नृणां सेना, ततो विकल्पपक्षे क्लीवत्वं (विभाषा सेनेति। पा २।४।२५) मनुष्योंकी सेना। विकल्पपक्षमें क्लीवलिङ्ग नहीं होनेसे 'नृसेना' ऐसा पद और स्त्रीलिङ्ग होगा।

नृसोम (सं० पु०) ना सोमचन्द्र इव, इत्युपमितकर्मधारयः। नरश्रेष्ठ, वह जो मनुष्योंमें चन्द्रमाके सदृश हो।

नृहन् (सं० पु०) नॄन् हन्ति, हन-क्विप्। नरहन्ता, नरघातक।

नृहरि (सं० पु०) ना चासौ हरिश्चेति। नृसिंहावतार, नृसिंहरूपी विष्णु।

नृहरि—दाक्षिणात्यके एक राजा। ये योगीश्वरोंके भक्त थे। भानु नामक ऋषिके कुलमें इनका जन्म हुआ था। (सह्याद्रि ३३।१२८)

ने—सकर्मक भूतकालिक क्रियाके कर्त्ताका चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है, सकर्मक भूतकालिक क्रियाके कर्त्ताकी विभक्ति। जैसे, रामने रावणको मारा। हिन्दीकी भूतकालिक क्रियाएं संस्कृतके कृदन्तोंसे बनी हैं, इसीसे कर्मवाच्यरूपमें वाक्योंका प्रयोग आरम्भ हुआ। क्रमशः उन वाक्योंका ग्रहण कर्तृवाच्यमें भी होने लगा।

नेउरालियापत्तन—सिंहलद्वीपकी काण्डी राजधानीसे ३३ मील दक्षिणमें अवस्थित एक उच्च पर्वतकी अधित्यका भूमि। यह समुद्रपृष्ठसे ५३०० फुट ऊंची है। पर्वतशृङ्गके उन्नत रहनेके कारण इस विस्तीर्ण अधित्यकाका अंश सीमान्तदेशमें कहीं कहीं बहुत ऊंचा मालूम पड़ता है। यहांका जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। यहां लोगोंका वास बहुत कम है। वासोपयोगी गङ्गरादिमें तथा प्रशस्तभूमिमें असंख्य हाथी वे-रोक टोक भ्रमण करते हैं।

नेउर—छोटानागपुरके अन्तर्गत चाङ्गभकर राज्यके मध्य प्रवाहित एक नदी। यह कोरिया राज्यके पर्वतसे निकल कर उत्तर-पूर्वको बह गई है।

नेउला (हिं॰ पु॰) नेवला देखो।

नेउली (सं॰ स्त्री॰) हठयोगभेद। रुद्रयामलमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है—

धौतीयोगके शेष हो जानेके बाद यह नेउली-योग किया जाता है। इसमें पहले मूंग अन्नादिको सिद्ध कर खाते हैं, पीछे अपना उदर चालन करते हैं। हठयोग-में इसका विषय विस्तृतरूपसे लिखा है।

नेउलवीसी—उड़ीसा विभागके अन्तर्गत कटक जिलेका एक परगना। भूमिपरिमाण ३८४ वर्गमील है। यहां वोधङ्ग और नयापाड़ा नामक दो विशिष्ट ग्राम हैं।

नेक (फा॰ वि॰) १ उत्तम, अच्छा, भला। २ शिष्ट, सज्जन। (क्रि॰ वि॰) ३ थोड़ा, जरा, तनिक।

नेकचलन (हिं॰ वि॰) अच्छे चालचलनका, सदाचारी।

नेकचलनी (हिं॰ स्त्री॰) सदाचार, भलमनसाहत।

नेकनाम (फा॰ वि॰) जिसका अच्छा नाम हो, जो अच्छा प्रसिद्ध हो, यशस्वी।

नेकनामी (फा॰ स्त्री॰) सुख्याति, कीर्त्ति, नामवरी।

नेकनीयत (अ॰ वि॰) १ शुभसङ्कल्पवाला, जिसका आशय या उद्देश्य अच्छा हो। २ उदाराशय, उत्तम विचारका, भलाईका विचार रखनेवाला।

नेकनीयती (फा॰ स्त्री॰) १ नेकनीयत होनेका भाव, अच्छा संकल्प, भला विचार। २ ईमानदारी।

नेकबख्त (फा॰ वि॰) १ भाग्यवान्, खुशकिस्मत। २ अच्छे स्वभावका, सुशील।

नेकमर्द—बङ्गालके दिनाजपुर जिलेके अन्तर्गत भवानन्द-पुर (भवानीपुर) ग्रामके मध्यस्थित एक स्थान। यह अक्षा॰ २५° ५८´ उ॰ और देशा॰ ८८° १८´ ३०´´ पू॰ कुलिक नदीसे १ मील पश्चिममें अवस्थित है। यहां पर नेकमर्दन नामक किसी मुसलमान फकीरकी कब्र रहने-के कारण यह स्थान मुसलमान समाजमें बहुत पवित्र गिना जाता है। उसी फकीरके नामानुसार इस स्थान-का नामकरण हुआ है। उन्हींके उद्देशसे यहां प्रतिवर्ष मेला लगता है जिसमें लाख डेढ़ लाख आदमी जुटते हैं। जिस तरह सोनपुरके हरिहरक्षेत्रके मेलेमें हाथी, घोड़े और गायोंकी हाट लगती है, यहां भी उसी प्रकार मवेशी आदि बिकनेको आते हैं।

नेकविहार—हिन्दुकुश पर्वतके अन्तर्गत एक दुरारोह गिरिसङ्कट। यह स्थान प्रायः सभी समय तुषारसे ढका रहता है। सन्ध्याकालसे ले कर दूसरे दिनके दो पहर तक तुषारराशि प्रबलस्रोतसे ढालवां पथ हो कर निम्न प्रदेशमें गिरती है।

नेकरी (हिं॰ स्त्री॰) समुद्रकी लहरका थपेड़ा जिससे जहाज किसी ओरको बढ़ता है, डाँक।

नेकी (फा॰ स्त्री॰) १ उत्तम व्यवहार, भलाई। सज्जनता, भलमनसाहत। २ उपकार, हित।

नेकोशियर-सुलतान—सम्राट् औरङ्गजेबके पौत्र और महम्मद अकबरके पुत्र।

नेग (हिं॰ पु॰) १ विवाह आदि शुभ अवसरों पर सम्ब-न्धियों, आश्रितों तथा कार्य वा कृत्यमें योग देनेवाले और लोगोंको कुछ दिए जानेका नियम, देने पानेका हक या दस्तूर। २ वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर सम्बन्धियों, नौकरों चाकरों तथा नाई-बारी आदि काम करनेवालोंको उनकी प्रसन्नताके लिये निय-मानुसार दिया जाता है, बँधा हुआ पुरस्कार, इनाम, बखशिश।

नेगचार (हिं॰ पु॰) नेगजोग देखो।

नेगजोग (हिं॰ पु॰) १ विवाह आदि मङ्गल-अवसरों पर सम्बन्धियों तथा काम करनेवालोंको उनकी प्रसन्नताके लिये कुछ दिए जानेका दस्तूर, देने पानेकी रीति, इनाम बाँटनेकी रस्म। २ वह धन जो मङ्गल अवसरों-पर सम्बन्धियों और नौकरों चाकरों आदिको बाँटा जाता है, इनाम।

नेगी (हिं॰ पु॰) नेगपानेवाला, नेग पानेका हकदार।

नेगीजोगी (हिं॰ पु॰) नेग पानेवाले, विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर इनाम पानेके अधिकारी।

नेचरिया (हिं॰ पु॰) प्रकृतिके अतिरिक्त ईश्वर आदिको न माननेवाला; नास्तिक।

नेजक (सं॰ पु॰) निज शब्दो ण्वुल्। निर्णेजक, धोबी।

नेजन (सं॰ क्ली॰) निज्यतेऽत्र निज अधारे ल्युट्। १ नेजकालय, धोबीका घर। २ शोधन।

नेजा (फा॰ पु॰) १ भाला, बरछा। २ निशान, साँग

नेजावरदार (फा॰ पु॰) भाला या राजाओंका निशान चलानेवाला।

नेजारामसिंह—रेवाप्रदेशमें बाघेलखण्डके अन्तर्गत बांदाका एक बघेला-सरदार। इनकी उपाधि राजाकी थी और ये अकबरशाहके समसामयिक थे। फतेपुरके हरिनाथ कविका एक दोहा सुन कर आपने उन्हें लाख रुपयेका दान किया था।

नेटा (हिं० पु०) नाकसे निकलनेवाला कफ या बलगम।

नेडुङ्कुम्—उत्तर अर्काट जिलेके वन्दिवास तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यहांके दो प्राचीन मन्दिरोंमें बहुत-सी शिलालिपियां उत्कीर्ण हैं।

नेडुमाड़ण-दाक्षिणात्यके पाण्ड्यवंशीय एक राजा। इन्होंने नलवेली युद्धमें* विजय पाई थी। चोलराजकी एक कन्यासे इनका विवाह हुआ था। आप जैन-धर्मावलम्बी होने पर भी आपकी स्त्री शैव थीं। एक समय जब राजा बीमार पड़े, तब उनकी स्त्रीने जैन पुरोहितको बुला कर उन्हें आरोग्य करने कहा था। लेकिन जब वे कृतकार्य न हुए, तब रानीने शैवाचार्य तिरुज्ञान-सम्बन्दरको बुला कर अलौकिक मन्त्रकी सहायतासे राजाको चंगा किया। शैवचार्यकी आश्चर्य क्षमता देख राजा उन्हींसे शैवमन्त्रमें दीक्षित हुए।

नेडमङ्गलम्—दाक्षिणात्यके कर्णाट राज्यके तञ्जावुर जिलेका एक नगर। यह तञ्जावुर राजधानीसे प्रायः २२ मील पश्चिम-दक्षिणमें अवस्थित है। यहां हिन्दू पथिकोंके लिए अनेक पान्थनिवास और प्राचीन देवदेवीके मन्दिरादि देखे जाते हैं।

नेड्डियावत्तम्—मन्द्राज प्रदेशको नीलगिरि-पर्वतश्रेणीके गुड़ालुरघाटके ऊपर अवस्थित एक ग्राम। इसके ऊंचे शिखर पर खड़े होनेसे मलवार-उपकूल और वैनाद जिला दृष्टिगोचर होता है।

नेडुमनगढ़—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यका एक तालुक वा उपविभाग। भूपरिमाण २४० वर्गमील है। इसमें कुल ६८ ग्राम लगते हैं।

* यह स्थान सम्भवतः तिरुणेलवेली माना जाता है। कारण पाण्ड्य-राजा जब सिंहलसे शत्रु द्वारा आक्रान्त हुए, तब अपने ही राज्यके मध्य दोनोंमें मुठभेड़ हुई थी और पीछे राजाने पराजित शत्रुओंको राज्यसे मार भगाया था।
(Ind. Ant. XXII, p. 63.)

नेत् (सं० अव्य०) नी-विच्, बाहुलकात् तुक् या नेदं-विच् बाहु० चादि०। १ शङ्का। २ प्रतिषेध। ३ समुच्चय।

नेत (हिं० पु०) १ ठहराव, निर्धारण, किसी बातका स्थिर होना। २ निश्चय, ठहराव, ठान। ३ व्यवस्था, प्रबन्ध, आयोजन। ४ मथानीकी रस्सी। ५ एक गहना।

नेतली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी पतली डोरी।

नेता (हिं० पु०) १ नायक, सरदार, अगुआ। २ प्रभु, स्वामी। ३ नीमका पेड़। ४ विष्णु। ५ निर्वाहक, प्रवर्त्तक। ६ मथानीकी रस्सी।

नेताजी पालकर—एक महाराष्ट्र-सरदार। ये १६६२ ई०में शिवाजीके कहनेसे अश्वारोही महाराष्ट्रीय सैन्य ले कर दाक्षिणात्यके मुगलराज्यको लूटने अग्रसर हुए थे। इस समय वे अत्यन्त निष्ठुरताके साथ प्रत्येक ग्राम और प्रत्येक नगरको ध्वंस करने तथा लूटने लगे। इस प्रकार धीरे धीरे एक स्थानसे दूसरे स्थानमें लूट-मार मचाते हुए ये औरङ्गाबादके पार्श्वस्थित ग्राममें जा धमके। इस समय अमीर-उल-उमरा शाइस्ता खांने राजकुमार मुआजिमके पद पर दाक्षिणात्यका प्रतिनिधित्व ग्रहण किया था। इस उपद्रवको दमन करनेके लिये वे दलबलके साथ औरङ्गाबादसे अहमदनगर और पेडगांवसे पूनाको गए। १६६३ ई०में जब शाइस्ता खां पूनामें ठहरे हुए थे, उस समय नेताजीने अहमदनगरके निकटवर्त्ती ग्रामोंको दग्ध कर धनादि लूटना आरम्भ कर दिया। शाइस्ता खांकी एक दल सेना उन पर टूट पड़ी, दोनों पक्षमें घनघोर युद्ध हुआ। पीछे जब नेताजीने देखा कि जयकी कोई सम्भावना नहीं है, तब वे भागनेका उपाय सोचने लगे। बीजापुरके सेनाध्यक्ष रुस्तम-जमानने उन्हें अभय दान दे कर छोड़ दिया। युद्धमें वे विशेषरूपसे आहत हुए थे। १६६४ ई०के मध्यभागसे ले कर १६६५ ई० तक उन्होंने पुनः इन सब प्रदेशोंको लूटना आरम्भ कर दिया। अन्तमें १६६५ ई०के अगस्तमासमें महाराष्ट्र केशरी शिवाजीने आ कर उनका साथ दिया। दोनोंने अहमदनगर और औरङ्गाबादके निकटस्थ स्थानोंको लूट कर प्रचुर रत्न संग्रह किया था।

नेतादेवी—भैरवीविशेष। नेपालके नेवारजातिके लोग इन्हें शक्तिका अंश मान कर पूजा करते हैं। नेपाल-राजधानी काठमण्डूमें जो भैरव-मूर्त्ति है, ये उन्हींकी

मङ्गिनी हैं। विपक्राटी-उत्सवके कुछ पहले काठमण्ड्
गहरमें इनके सम्मानके लिये नेपालवासी प्रति वर्ष महो-
त्सव करते हैं। इस महोत्सवमें स्वयं नेपालराज और
उनके अधीनस्थ सरदार तथा वौद्ध और हिन्दू-मतावलम्बी
सभी योगदान देते हैं। यह उत्सव नेतादेवीकी यात्रा
नामसे प्रसिद्ध है।

नेति (सं० पु०) १ हठयोगभेद। २ एक संस्कृत वाक्य
(न इति) जिसका अर्थ है "इति नहीं" अर्थात् "अन्त
नहीं है" ब्रह्म या उत्सवके सम्बन्धमें यह वाक्य उपनिषदों
में अनन्तता सूचित करनेके लिये आया है।

नेती (हिं० स्त्री०) वह रस्सी जो मथानीमें लपेटी जाती
है और जिसे खींचनेसे मथानी फिरती है और दूध या
दही मथा जाता है।

नेतीधोती (हिं० स्त्री०) हठयोगकी एक क्रिया जिसमें
कपड़ेकी धज्जी पेटमें डाल कर आँतें साफ करते हैं।
धौति देखो।

नेतीयोग (सं० पु०) हठयोगभेद। इस योगका विषय
रुद्रयामलके उत्तरखण्डमें इस प्रकार लिखा है—

नेतियोगका अवलम्बन करनेसे मस्तकमें जितना
कफ है वह दूर हो जाता है। इस योगमें पहले एक
पतले सूतेको नाकमें डाल कर मुख हो कर निकालते
हैं। इस प्रकार अभ्यास करते करते कुछ मोटे सूतसे
काम लेने लगते हैं। इस नेतियोगसे नासारन्ध्र साफ
होता है।

नेतृ (सं० पु०) नयतीति नी-तृच्। १ प्रभु। २ निर्वाहक।
३ नायक। ४ प्रवर्त्तक। ५ पोषक। ६ निम्बवृक्ष, नीम-
का पेड़। ७ विष्णु।

नेतृत्व (सं० क्ली०) नेतुर्भावः नेतृत्व, नायकता, अध्य-
क्षता।

नेतृमत् (सं० त्रि०) नेतृयुक्त, नायकरूपसे नियुक्त।

नेत्तकल—दाक्षिणात्यके वेलारी जिलान्तर्गत अदोनी
तालुकका एक ग्राम। यहां पर्वतके ऊपर आञ्जनेयका
एक मन्दिर है। उक्त मन्दिरके पीठस्थानके निकट एक
पत्थरके ऊपर तैलङ्गी भाषामें उत्कीर्ण एक शिलालिपि
है। इस ग्राम और अव्यगल ग्रामकी सीमाके मध्यभागमें
एक दूसरा शिलाफलक देखनेमें आता है।

नेत्र (सं० क्ली०) नीयते नयति वानेनेति नी-करणे ष्ट्रन्
(दाम्नी शसेति। पा ३।२।१८२) १ चक्षु, नयन, आँख। २
मन्थनदाम, मथानीकी रस्सी। ३ वस्त्रभेद, एक प्रकारका
वस्त्र। ४ वृक्षमूल, पेड़की जड़। ५ रथ। ६ जटा। ७
नाड़ी। ८ प्रापयिता। ९ वस्तिशलाका, वस्तीकी सलाई,
कटोरा। १० दोका संख्यासूचक शब्द। ११ चक्षुके गोलक-
स्थित वह्निदेवताक तैजस इन्द्रियभेद। (पु०) १२ हैहय
राजाके एक पुत्रका नाम।

नेत्रकनीनिका (सं० स्त्री०) नेत्रयोः चक्षुषोः कनीनिका।
चक्षुका तारा।

नेत्रकोष (सं० पु०) नेत्रयोः कोषः। नेत्रपटल, आँखके
पर्दे।

नेत्रच्छद (सं० पु०) नेत्रं छाद्यतेऽनेनेति छद-णिच्-क,
ततो ह्रस्वः। नेत्रपिधायक चर्मपुट, आँखके पर्दे।

नेत्रज (सं० पु०) नेत्रात् जायते जन-ड। नेत्रजात
आँसू।

नेत्रजल (सं० क्ली०) नेत्रयोर्जलम्। अश्रु, आँसू।

नेत्रता (सं० स्त्री०) नेत्रस्य भावः नेत्र-तल्-टाप्। नेत्र-
का भाव और धर्म।

नेत्रपर्यन्त (सं० पु०) नेत्रयोः पर्यन्तः अन्तः कोणः सीमा।
१ अपाङ्ग, आँखका कोना।

नेत्रपाक (सं० पु०) नेत्ररोगभेद, आँखका एक रोग।
कण्डू, उपदेह, अश्रुजात, पके डूमरके जैसा आकार,
दाह, संहर्ष, ताम्रवर्ण, तोद, गौरव, शोफ, मुहुर्मुहुः
उष्ण, शीतल और पिच्छिल आस्रावसंरम्भ आदि लक्षण
रहनेसे सशोफ नेत्रपाक और शोफ नहीं रहनेसे अशोफ
नेत्रपाक जानना चाहिए।

नेत्रपिण्ड (सं० पु०) नेत्रं पिण्ड इव यस्य। १ विड़ाल,
बिल्ली। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। (क्ली०) २ नेत्रगोलक,
आँखका ढेला।

नेत्रपुष्करा (सं० स्त्री०) नेत्रयोः पुष्करं जलं यस्याः
यत्सेवनादित्यर्थः। रुद्रजटा नामकी लता।

नेत्रप्रबन्ध (सं० पु०) नेत्रं प्रबध्यतेऽनेन प्र-बन्ध-करणे
ल्युट्। नेत्रपुट, आँखका पर्दा।

नेत्रप्रसादनकर्मन् (सं० क्ली०) चक्षुःप्रसादनकार्य-
विशेष, वह काम जिसके करनेसे चक्षुः प्रसन्न हो और

दृष्टिशक्तिको सहायता मिले ; जैसे, कज्जल इत्यादि।

नेत्रबन्ध (सं० पु०) नेत्रयोर्बन्धः ६-तत्। चक्षुद्वयको आवरणरूप बाल्यक्रीडाविशेष, आँख मिचौलीका खेल।

नेत्रबाला (हिं० पु०) सुगन्धबाला, कचमोद, बालक।

नेत्रभाव (सं० पु०) सङ्गीत या नृतमें एक भाव जिसमें केवल आँखोंकी चेष्टासे सुख दुःख आदिका बोध कराया जाता है और कोई अङ्ग नहीं हिलता डोलता, यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है।

नेत्रमण्डल (सं० पु०) आँखका घेरा।

नेत्रमल (सं० स्त्री०) नेत्रयोर्मलम्। चक्षुका मल, आँख का कीचड़, गिद्द।

नेत्रमार्ग (सं० पु०) नेत्रगोलकसे मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिसमें अन्तःकरणमें दृष्टिज्ञान होता है।

नेत्रमीना (सं० स्त्री०) नेत्रयोः मीना मुद्रणं यस्याः, पुष्पादरादित्वात् लस्य न। यवतिक्ता लता। इसकी सेवनसे आँखें बन्द रहती हैं।

नेत्रमुष् (सं० त्रि०) नेत्रं तत्प्रचारं मुष्णाति मुष-क्विप्। दृष्टिका उपघातक, दृष्टिप्रचारनाशक।

नेत्रयोनि (सं० पु०) नेत्राणि योनिभिर्जातानि यस्य, नेत्राणि योनय इव यस्य इति वा। १ इन्द्र। गौतमके शापसे इनके शरीरमें सहस्र योनि-चिह्न हो गये थे जो पीछे नेत्रके आकारमें हो गये, इसी कारण इन्द्रका नाम नेत्रयोनि पड़ा। नेत्रं अत्रिलोचनं योनिरुत्पत्ति-कारणं यस्य। २ चन्द्रमा। ये अत्रिकी आँखसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण इन्हें भी नेत्रयोनि कहते हैं।

नेत्ररञ्जन (सं० क्ली०) नेत्रे रज्यते अनेन रञ्ज करणे ल्युट्। कज्जल, काजल। कालिकापुराणमें लिखा है, कि अञ्जनके मध्य सौवीर, जाम्बल, तुत्थ, मयूर, श्रोकर और दर्विका ये ही छः प्रकारके प्रसिद्ध हैं। इनमेंसे सौवीर सुवद्रूप, यामुन, प्रस्तर, मयूर और श्रोकर रत्न, मेघनील तैजस—इन्हें शिला पर अथवा तैजसपात्रमें घिस कर रस निकाल लें और उसे देवदेवीको लगावें। ताम्रादि-पात्रमें घृत और तैलादि लेप कर आगकी गरमीसे जो काजल तैयार होता है उसे दर्विका कहते हैं। अगर किसी प्रकारका काजल न मिले तो देवीको दर्विका-ञ्जन दे सकते हैं। विधवासे प्रस्तुत किया हुआ काजल देवीको नहीं लगाना चाहिए। (कालिकापु० ७९ अ०)

नेत्ररुज् (सं० स्त्री०) रुज-क्विप्, नेत्रयोः रुक्। नेत्र-पीड़ा, नेत्ररोग।

नेत्ररोग (सं० पु०) नेत्रयोः रोगः। चक्षुपीड़ा, आँखका दर्द। इसका विषय सुश्रुतमें इस प्रकार लिखा है,—

अपने अपने अङ्गुष्ठके उदरदेशके परिमाणसे दो अङ्गुलि नेत्रमण्डलकी लम्बाई है। इसका कुल परिमाण ढाई अङ्गुल है। इसका आकार गोस्तनके जैसा सुवृत्त और यह सब प्रकारके भूतोंके गुणसे उत्पन्न हुआ है। नेत्रमण्डलका मांस क्षितिसे, रक्त अग्निसे, कृष्ण-भाग वायुसे, श्वेतभाग जलसे और अश्रुमार्ग आकाशसे सम्भूत हुआ है। नेत्रका तृतीयांश कृष्णमण्डल है और दृष्टिस्थान कृष्णमण्डलका सप्तमांश है। दोनों नेत्रके मण्डल ५, सन्धि ६ और पटल ५ हैं। पाँचों मण्डलके नाम ये हैं,—पक्ष्ममण्डल, वर्त्ममण्डल, श्वेतमण्डल, कृष्ण-मण्डल और दृष्टिमण्डल। ये सब यथाक्रमसे एक दूसरेके मध्यगत हैं। सन्धि छः प्रकारकी है, यथा—पक्ष्म और वर्त्ममध्यगत सन्धि, वर्त्म और शुक्लमध्यगत सन्धि, शुक्ल और कृष्णमध्यगत सन्धि, कृष्णमण्डल और दृष्टिमण्डलकी मध्यगत सन्धि तथा कनीनिका और अपाङ्गगत सन्धि। पहला पटल तेजजलाश्रित, दूसरा मांसाश्रित, तीसरा मेदाश्रित, चौथा अस्थि आश्रित और पांचवां दृष्टिमण्डलाश्रित है। ऊर्ध्वगत शिरानुसारी दोषसमूह द्वारा नेत्रभागमें दारुण रोग होते हैं। आवि-लता, संरम्भ, अश्रुपतन, गुरुत्व, दाह, राग प्रभृति उपद्रव होनेसे अथवा नेत्रवर्त्मकोषमें शूक पूर्णकी तरह अर्थात् आँखमें काँटा निकल आया है, ऐसा बोध होनेसे किंवा इसके प्रकृतरूप वा पूर्वोक्तरूपसे क्रियाशक्तिका व्याघात होनेसे नेत्र दोषयुक्त है, ऐसा समझना चाहिए। ऐसी अवस्था होने पर अच्छी तरह चिकित्सा करना विधेय है।

नेत्ररोगका निदान–उष्णाभिताप, जलप्रवेश, दूरदर्शन, स्वप्नविपर्यय अर्थात् दिनमें सोना और रातमें जागना; स्थिरदृष्टि, रोदन, शोक, कोप, क्लेश, अभिघात, अति-मैथुन, शुक्र, काञ्जी, अम्ल, कुलथी और उरद सेवन, वेग धारण अथवा खेद, रजो वा धूमसेवन, वमनआघात वा

अभियोग, बाष्पवेगधारण वा सूक्ष्मपदार्थ निरीक्षण इन सब कारणोंसे दोष कुपित हो कर नेत्ररोग होता है। ये नेत्ररोग ७६ प्रकारके हैं जिनमें वायुजन्य दश, कफजन्य तेरह, रक्तजन्य सोलह, सन्निपातज पचीस और बाह्य-रोग दो प्रकारके हैं। इनमेंसे हताधिमन्थ, निमेष दृष्टिगत, गम्भीरिका और वातहतवर्त्म न् ये सब वायुजन्य चक्षुरोगके मध्य असाध्य हैं। वायुज काचरोग याप्य तथा अन्यतोवात, शुष्काक्षिपाक, अधिमन्थ, अभिष्यन्द और मारुत ये सब रोग साध्य हैं। पित्तज रोगोंमेंसे ह्रस्वजात्य, जलस्राव, परिस्रायी और नीलीरोग असाध्य है। काचरोग, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, अम्लाध्युषितदृष्टि, शुक्तिका, पित्तविदग्धदृष्टि, पोथकी और लगण ये सब याप्य है। कफजात नेत्ररोगके मध्य स्रावरोग असाध्य और काचरोग याप्य है। अभिष्यन्द, अधिमन्थ, बलास-ग्रथित, श्लेष्मविदग्धदृष्टि, पोथकी, लगण, क्रमिग्रन्थि, क्लिन्न-वर्त्म और श्लेष्मापनाह श्लेष्मजरोगमेंसे ये सब रोग साध्य हैं। रक्तजात नेत्ररोगमें रक्तस्राव, अजका, शोणितार्श, अवलम्बित और शुक्ररोग असाध्य है। रक्तज काचरोग याप्य तथा मन्थ, अभिष्यन्द, क्लिष्टवर्त्म, हर्षोत्पात, सिराज, अञ्जन, सिराजाल, पर्वणी, अव्रण, शुक्र, शोणि-तार्श और अर्जुन ये सब साध्य हैं। पूयस्राव, नाकु-लान्ध्य, अक्षिपाक और अलजी ये सब रोग सर्वदोषज हैं; अतएव ये सब असाध्य हैं। सन्निपातज काचरोग और पक्ष्मकोपरोग याप्य है। वर्त्मावबन्ध, पिड़का, प्रस्ता-र्यर्म, मांसार्म, स्नाय्वर्म, उत्क्लिष्टनी, पूयालस, अर्बुद-श्याववर्त्म, अर्शवर्त्म, शुक्लार्श, शर्करावर्त्म, सशोफ और अशोफ ये दो प्रकारके पाकरोग, बहलवर्त्म, अक्लिन्नवर्त्म, कुम्भीका और बिसवर्त्म ये सब रोग साध्य हैं। सनिमित्त और अनिमित्त ये दो प्रकारके बाह्यरोग हैं।

नेत्ररोग ७६ प्रकारके हैं। इनमेंसे ९ सन्धिगत, २१ वर्त्मगत, ११ शुक्लभागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वगत, १२ दृष्टिगत और २ बाह्यरोग हैं।

नेत्रके सन्धिगतरोग ९ प्रकारके हैं—पूयालस, उप-नाह, पूयास्राव, श्लेष्मास्राव, रक्तस्राव, पित्तास्राव, पर्वणिका, अलजी और कृमिग्रन्थि। नेत्रके सन्धिस्थानमें जब पक्वशोफ हो जाता और इससे पूतिगन्धविशिष्ट पूय निकलता है, तब उसे पूयालस रोग कहते हैं। सुश्रुतमें उदरतन्त्रके पहले अध्यायसे नौ अध्याय तक नेत्ररोगका विस्तृत विवरण लिखा है।*

प्रत्येक विभिन्न रोगका विषय तत्तत् शब्दमें देखो।

भावप्रकाशके नेत्ररोगाधिकारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—अपनी अपनी हस्ताङ्गुलिसे दो अङ्गुल नेत्रमण्डलका परिमाण है। पक्ष्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण और दृष्टि ये सब इसके अङ्ग हैं तथा इसमें ७८ प्रकारके रोग होते हैं; (चरकके मतानुसार १४ प्रकारके हैं।) दृष्टिमें १२, कृष्णगत ४, शुक्लगत ११, वर्त्मगत २१, पक्ष्म-गत २, सन्धिगत ९ और समस्त नेत्रव्यापक १७ प्रकारके रोग हैं।

नेत्ररोगका निदान।—आतपादि द्वारा उत्तप्त व्यक्तिके स्नान करनेसे नयनतेजका अभिभव, दूरस्थ वस्तुदर्शन, निद्राविपर्यय अर्थात् दिवानिद्रा और रात्रिजागरण, अन्यादि द्वारा उपघात, नेत्रमें धूलि वा धूमप्रवेश, वमन-वेगधारण, अत्यन्तवमन, शुक्त, आरनाल, जल, कुलथी और उरदके अतिरिक्त सेवन, मलमूत्रका वेगधारण, अतिशय क्रन्दन, शोकजन्य सन्ताप, मस्तक पर आघात, द्रुतगामी यान पर आरोहण, ऋतुविपर्यय, दैहिक क्लेश-प्रयुक्त अभिताप, अतिरिक्तस्त्रीप्रसङ्ग, अश्रुवेगधारण और अतिसूक्ष्म वस्तुदर्शन इन सब कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो कर नेत्ररोग उत्पादन करते हैं। पूर्वोक्त कारणसे प्रकुपित दोष शिरासमूह द्वारा ऊर्ध्वदेशका आश्रय कर नेत्रपीड़ादायक होते हैं।

नेत्रदृष्टिका लक्षण—दृष्टि कृष्णमण्डलके मध्यस्थित मसूरदाल अर्थात् आधे मसूरके परिमाणको जुगनू नामक कीड़ेको जैसी या अग्निकणाकी तरह द्योतमान, सच्छिद्र और बाह्यपटलसे आवृत्त है। यह शीतसात्म्य अर्थात् शीत क्रियासे प्रशान्त, पञ्चभूतात्मक और चिरस्थायी तेजोमय है।

पटल-विवरण—बाह्यपटल रसरक्ताश्रित, दूसरा मांसा-श्रित, तीसरा मेदसंश्रित और चौथा पटल कालकास्थि-संश्रित है। पटलसमूहकी स्थिरता नेत्रमण्डलके पाँचवें अंशका एक अंश है। पहले पटलमें दोष होनेसे रोगी कभी अस्पष्ट और कभी स्पष्टरूपसे देखता है। दूसरेमें दोष दूषित होने पर स्पष्टरूपसे दिखाई नहीं पड़ता और कभी मक्षिका, मशक, केश, जालक, मण्डल,

पताका, मरीचि और कुण्डलाकृति; कभी जलप्लावितके जैसा वा दृष्टि-अन्धकार इत्यादि नाना प्रकारकी प्रतिच्छायादि दीखती हैं। दृष्टिभ्रमके कारण दूरस्थ वस्तु समीपवर्त्ती और समीपस्थ वस्तु दूरस्थ बोध होती है। कितनी ही चेष्टा करने पर भी सूईका छिद्र रोगी देख नहीं सकता।

तृतीय पटलगत दोषका विवरण—तीसरे पटलमें जब दोष हो जाता है, तब रोगी ऊपरकी ओर देख सकता, नीचे उसे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है। ऊपरके सब स्थूलाकार पदार्थ वस्त्रावृतके जैसे मालूम होने लगते हैं और प्राणिसमूहकी कान, नाक और आंख विकृत दिखाई पड़ती हैं। उसमें जो दोष बलवान् हो कर कुपित हो जाते हैं, उन्हीं सब दोषोंके अनुसार ये सब वस्तु लाल देखनेमें आती हैं। अर्थात् वाताधिष्ठित होने पर लाल, पित्ताधिष्ठित होनेसे पीला वा नीला और कफाधिष्ठानमें उजला दिखाई पड़ता है। पटलके अधोदेशमें दोष होनेसे समीपस्थ वस्तु, ऊर्ध्व देशमें होनेसे दूरस्थ वस्तु और दोषपार्श्वस्थ होनेसे पार्श्वस्थित वस्तु दीख नहीं पड़ती। इसमें यदि सब जगह दोष हो जांय, तो भिन्न भिन्न रूप मिलित भावसे दृष्ट होता है। दोषमध्यस्थ होनेसे बड़ी वस्तु छोटी; तिर्यक् और दोनों पार्श्वमें होनेसे एक ही द्रव्य दोके आकारमें तथा दोषके एक स्थानमें स्थिरभावसे नहीं रहने पर एक वस्तु असंख्य जान पड़ती है।

वाह्यपटलके दोषका विवरण—कुपितदोषके वाह्यपटलमें अवस्थान करने पर सब तरहसे दृष्टि रुद्ध हो जाती है। किसी किसीके मतसे यह तिमिर वा लिङ्गनाशरोग कहा गया है। (भावप्रकाश ४ भाग)

अन्यान्य विषय चक्षुरोगमें देखो।

सुश्रुतमें नेत्रके सब स्थानगत रोगका विषय इस प्रकार लिखा है,—अभिष्यन्द और अधिमन्थरोग चार चार प्रकारके हैं। यथा—शोफयुक्तपाक, शोफहीनपाक, हताधिमन्थ, अनिलपर्याय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषितादृष्टि, सिरोत्पात और सिराहर्ष। इनका प्रतीकार शुरूसे ही करना चाहिए। वायुजन्य अभिष्यन्द होनेसे नेत्रका स्तब्धभाव, सङ्घर्ष, परुषभाव, शुष्कभाव और इससे शीतल अश्रुपात तथा शिरोदेशमें अभिताप ये सब लक्षण दिखाई पड़ते हैं। पित्तकर्तृक अभिष्यन्दरोग होनेसे आंखमें दाह, पाक, शीतप्रियता, धूम और वाष्पका उद्गम तथा उष्ण अश्रुपात होता है और आंखें पीली हो जाती हैं। कफजन्य अभिष्यन्दरोग होनेसे नेत्रमें उष्णाभिलाष, गुरुता, शोफकण्डू, पक्ष्मसंलग्न, शीतलता और हमेशा पिच्छिलस्राव ये सब लक्षण मालूम पड़ते हैं। रक्तज अभिष्यन्दमें आंखें लाल हो जाती हैं, और लाल लाल रेखाएं दिखाई देने लगती हैं तथा इनका उजला भाग बहुत लाल हो जाता और इससे ताम्रवर्णके जैसे आंसू गिरते हैं। बाकी सभी लक्षण पित्तजके जैसे होते हैं।

यथाविधान यदि इसका प्रतीकार न किया जाय, तो क्रमशः यह बढ़ते बढ़ते अधिमन्थरोग हो जाता है। इसके होनेसे आंखोंमें बड़ी पीड़ा और नेत्र उत्पाटित तथा मथितको जैसी यातना भी होती है। वायुज अधिमन्थमें भी वैसी ही वेदना होती है और इससे संघर्ष, तोद, भेद, संरम्भ, आविलता, आकुञ्चन, आस्फोटन, आध्मान, कम्प और व्यथा ये सब उपद्रव हो कर शिरोदेशके अर्द्धभाग तक व्याप्त हो जाते हैं। पित्तज अधिमन्थमें नेत्र लाल हो जाते और सूज कर पक जाते हैं। इससे अग्नि वा क्षार द्वारा दग्धकी तरह वेदना होती है। इसके अलावा शरीरसे पसीना निकलता है, चारों ओर धुम्रला सा दिखाई पड़ता है और सिरमें जलन भी होती है। श्लेष्मजन्य अधिमन्थमें शोथ, अल्पसंरम्भ, स्राव, शीतता, गौरव, नेत्रकण्डू और पिच्छिलता ये सब उपद्रव होते, दृष्टि आविल तथा सब पदार्थ पांशुपूर्णसे दिखाई पड़ते हैं और नासिकामें आध्मान तथा मस्तकमें यातना होती है। रक्तज अभिष्यन्दमें नेत्ररसस्राव तथा तोदविशिष्ट, चारों ओर अग्निसदृश और समूचा कृष्णमण्डल रक्तमग्नके जैसा मालूम पड़ता है। इसके छूनेसे ही बहुत दर्द होता है। अधिमन्थरोगके श्लेष्मजन्य होनेसे सप्तरात्रमें, रक्तजन्य होनेसे पञ्चरात्रमें, वायुजन्य होनेसे षड़रात्रमें तथा पित्तजन्य होनेसे बहुत जल्द दृष्टि क्षीण हो जाती है।

कण्डू, उपदेह, अश्रुपात, पके उडुम्बरके जैसा आकार, दाह, संहर्ष, ताम्रवर्ण, तोद, गौरव, शोफ,

मुहुर्मुहुः उष्ण, शीतल तथा पिच्छिल आस्राव, संरम्भ और पक जाना ये सब अशोफ नेत्रपाकके लक्षण हैं। अशोफ नेत्रपाकमें शोफके सिवा और दूसरे सब लक्षण देखे जाते हैं। आंखकी आभ्यन्तरिक शिरामें वायुस्थित हो कर दृष्टिको प्रतिक्षेपणपूर्वक हताधिमन्थ नामक असाध्य रोग उत्पन्न होता है। कुपित वायुके दोनों पक्ष्म और भ्रूमें आश्रय कर सञ्चारण करनेसे कभी तो भ्रूमें और कभी पक्ष्ममें वेदना होती है, इसीको वातपर्याय कहते हैं। नेत्रवर्त्मके कठिन तथा रुक्ष होनेसे अथवा दृष्टिके क्षीण होनेसे और नेत्रको उन्मीलन करनेमें अत्यन्त कष्ट मालूम होनेसे शुष्काक्षिपाकरोग समझा जाता है। अम्ल वा विदाही द्रव्यके खानेसे आंखोंके सूजने और नीलापन लिये लाल हो जानेको हो अम्लाध्युषित दृष्टि कहते हैं। वेदना हो वा न हो, लेकिन समूची आंखोंके लाल होनेसे ही शिरोत्पातरोग कहा जाता है। इस प्रकार कुछ दिन रहनेसे आंखोंसे ताम्रवर्णके जैसे आंसू निकलते रहते हैं और रोगी देख नहीं सकता। (सुश्रुत उत्तरतन्त्र ६ अ०) अन्यान्य विवरण तथा चिकित्सा तत्तत् शब्दमें देखो।

नेत्ररोगहन् (सं० पु०) नेत्ररोगं हन्ति हन-क्विप्। वृश्चिकालीवृक्ष।

नेत्ररोम (सं० क्ली०) नेत्रयोः रोम। नेत्रपक्ष्म, आंखकी बिरनी, बरौनी।

नेत्रवस्त्र (सं० क्ली०) नेत्रयोर्वस्त्रमिव आच्छादकं। नेत्रच्छद, आंखके पर्दे।

नेत्रवस्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी पिचकारी।

नेत्रवारि (सं० क्ली०) नेत्रयोर्वारि। अश्रुजल, आंसू।

नेत्रविष् (सं० स्त्री०) नेत्रयोर्विट्। नेत्रमल, आंखका कीचड़।

नेत्रविष (सं० पु०) नेत्रे विषं यस्य। दिव्यसर्पभेद, एक प्रकारका दिव्यसर्प जिसकी आंखोंमें विष होता है।

नेत्रसन्धि (सं० स्त्री०) आंखका कोना।

नेत्रस्तम्भ (सं० पु०) नेत्रयोः स्तम्भः ६-तत्। चक्षुद्वयका उन्मीलनादि व्यापाररहित्य, आंखकी पलकोंका स्थिर हो जाना अर्थात् उठना और गिरना बन्द हो जाना।

नेत्रस्राव (सं० पु०) आंखोंसे पानी बहना।

नेत्राञ्जन (सं० क्ली०) नेत्रयोः अञ्जनं। कज्जल, काजल, सुरमा।

नेत्रानन्द—जययात्रा नामक एक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

नेत्रान्त (सं० पु०) नेत्रयो अन्तः। अपाङ्गदेश, आंखके कोने और कानके बीचका स्थान, कनपटी।

नेत्राभिष्यन्द (सं० पु०) नेत्रयोः अभिष्यन्दः ६-तत्। नेत्ररोगभेद, आंखका एक रोग जो छूतसे फैलता है, आंख आनेका रोग।

सुश्रुतमें लिखा है, कि प्रसङ्ग, गात्रसंस्पर्श, निःश्वास, एक साथ भोजन, एक शय्या पर शयन, एकत्र उपवेशन, एक वस्त्रपरिधान और माल्यप्रभृति लेपन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, शोथ, नेत्राभिष्यन्द और औपसर्गिक रोग एक व्यक्तिसे दूसरे व्यक्तिको हो जाता है, ये सब संक्रामकरोग हैं।

सर्वनेत्रगत अभिष्यन्दरोग चार प्रकारका है—वातज, पित्तज, कफज और रक्तज। इस रोगमें आंखें लाल लाल हो जाती हैं और उनमें बहुत पीड़ा होती है।

वातज अभिष्यन्दरोगमें सुई चुभनेकी सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आंखोंमें फिटकिरी पड़ी हो। इसमें ठण्ढा पानी बहता है, सिर दुखता है और शरीरके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

पैत्तिक अभिष्यन्दमें आंखोंमें जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठण्ढी चीजें रखनेसे आराम मालूम होता है।

श्लैष्मिक अभिष्यन्दमें आंखें भारी जान पड़ती हैं, सूजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजोंसे आराम मालूम होता है।

रक्तज अभिष्यन्दमें आंखें बहुत लाल रहती हैं और सब लक्षण पित्तज अभिष्यन्दकेसे होते हैं। अभिष्यन्द रोगकी चिकित्सा नहीं होनेसे अधिमन्थरोग होनेका डर रहता है। (भावप्रकाश ४र्थ भाग)

चिकित्सा।—वायुजन्य अभिष्यन्द वा अधिमन्थ होनेसे पुरातन घृत द्वारा स्निग्ध करे, पीछे यथाविधि स्वेदका प्रयोग और शिरावेधनपूर्वक रक्तमोक्षणका विधान है। इसमें तर्पण, पुटपाक, धूम, आश्चोतन, नस्य, स्नेहपरिषेचन, शिरोविरेचन, जलचर वा जलौक देशचर वातघ्न पशुके मांस अथवा अम्लशाकका परिषेचन कर्त्तव्य है। घृत, चर्बी, मेद और मज्जा सबको एक साथ गरम करके प्रयोग करनेसे यह रोग जाता रहता है। सुश्रुतमें उत्तर-

तन्त्रके ८से १२ अध्याय तक इस नेत्राभिषेकमन्त्रका विशेष विवरण लिखा है।

नेत्रामय (सं॰ पु॰) नेत्रस्य आमयो रोगः। चक्षुरोग, आंखकी बीमारी।

नेत्राम्बु (सं॰ क्ली॰) नेत्रस्य अम्बु, जलम्। अश्रु, आंसु।

नेत्राम्भस् (सं॰ क्ली॰) नेत्रस्य अम्भः। अश्रु, आंसु।

नेत्रारि (सं॰ पु॰) नेत्रस्य अरिः शत्रुः। सेहुण्डवृक्ष, सेहुंड़, थूहर।

नेत्रावती—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा॰ १३° १०' १५" उ॰ और देशा॰ ७५° २६' २०" पू॰से निकल कर पश्चिमकी ओर मङ्गलूरके निकट (अक्षा॰ १२° ५०' उ॰ और देशा॰ ७४° ५२' ४०" पू॰) समुद्रमें आ कर गिरी है। कुमारधारी नामकी एक शाखानदी उप्पिनङ्गदि ग्रामके निकट इसमें मिल गई है। जहां पर उक्त नदी इससे मिली है, वहां इसका नाम नेत्रावती पड़ा है और इस नामसे यह मङ्गलूर तक चली गई है। बाढ़के समय छोड़ कर और सभी समय इसमें वाणिज्यकी नावें आती जाती हैं।

स्कन्दपुराणके अन्तर्गत सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय हेमाङ्गद राजाके पुत्र मयूरने अहिच्छत्रसे आगत वेदवित् ब्राह्मणोंको रहनेके लिए कई ग्राम दान किए। इनमेंसे नेत्रावतीके उत्तरी किनारे पर अवस्थित गजपुरि नामक एक ग्राम था जहां त्रैविक्रम मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी। दूसरे ग्रामका नाम था त्रैकुण्ड जिसके उत्तरमें कोटीलिङ्ग, पूर्वमें सिद्धेश्वर, दक्षिणमें सीता नदी और पश्चिममें लवणसमुद्र पड़ता था। यह ग्राम देवद्विजादिके लिये जगतीतल पर विशेष मनोहर था।
(सह्याद्रि २।८।८-११)

नेत्रिक (सं॰ क्ली॰) एक प्रकारकी छोटी पिचकारी।

नेत्री (सं॰ स्त्री॰) नीयतेऽनयेति नी करणे ष्ट्रन् (दाम्नी शसेति। पा ३।२।१८२) स्त्रियां ङीप्। १ लक्ष्मी। २ नाड़ी। ३ नदी। नयतीति नी तृच् ङीप्। ४ अग्रगामिनी, अगुआ, सरदार। ५ शिक्षयित्री, राह बतानेवाली, सिखानेवाली।

नेत्रोपमफल (सं॰ पु॰) नेत्रोपमं नयनतुल्यं फलं यस्य। बादाम।

नेत्रोत्सव (सं॰ पु॰) १ नेत्रोंका आनन्द, देखनेका मजा। २ दर्शनीय वस्तु, वह वस्तु जिसे देखनेसे नेत्रोंको आनन्द मिले।

नेत्रौषध (सं॰ क्ली॰) नेत्रस्य औषधम्। १ पुष्पकसीस। २ आंखकी दवा।

नेत्रौषधी (सं॰ स्त्री॰) नेत्रस्य औषधी। अजशृङ्गी, मेढ़ासिंगी।

नेत्र्यगण (सं॰ पु॰) रसौत, त्रिफला, लोध, ग्वारपाठा, वनकुलथी आदि नेत्ररोगोंके लिये उपकारी ओषधियोंका समूह।

नेदिष्ठ (सं॰ त्रि॰) अयमेषामतिशयेन अन्तिकः, अन्तिक इष्ठन् अन्तिकशब्दस्य नेदादेशः। (अन्तिक बाढयोर्नेदसाधौ। पा ५।३।६३) १ अन्तिकतम, निकटका, पासका। २ निपुण। (पु॰) ३ अङ्कोटवृक्ष, ढेरेका पेड़।

नेदिष्ठतम (सं॰ त्रि॰) नेदिष्ठ-तमप्। अत्यन्त निकट, बहुत समीप।

नेदिष्ठी (सं॰ पु॰) नेदिष्ठं जन्मतः सन्निकृष्टस्थानं विद्यतेऽस्य इनि। १ सहोदर भाई। (त्रि॰) २ निकटस्थ, समीपका।

नेदीयस् (सं॰ त्रि॰) अयमनयोरतिशयेन अन्तिकः, अन्तिक-ईयसुन्, ततो अन्तिकस्य नेदादेशः। नेदिष्ठ, समीपका।

नेदीयस्ता (सं॰ स्त्री॰) नेदीयसो भावः तल्-टाप्। अति समीपता।

नेनमेनी—मन्द्राजके तिन्नेवल्ली जिलेके सातूर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह सातूरनगरसे ५ मील पूर्वमें अवस्थित है। यहांके अनन्तराजस्वामी-मन्दिरके सम्मुखस्थ पत्थर पर एक शिलालिपि खोदी हुई है जो चोकलिङ्ग नायक आदिके समय (१५८३ सम्वत्)की मानी जाती है। वहांके पेरुमलके मन्दिरमें भी चोकलिङ्गके समयमें उत्कीर्ण एक दूसरा शिलापट्ट देखा जाता है।

नेनुआं (हिं॰ पु॰) घियातोरई, घिवरा।

नेप (सं॰ पु॰) नयति प्रापयति शुभमिति नी-प, ततो गुणः। (पानी-विषिभ्यः। उण् ३।२३) १ पुरोहित। २ उदक, जल।

नेपच्यून—सूर्यकी परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह। इसका

पता सन् १८४६ ई०से पहले किसीको नहीं था। उसी सालके अक्तूबर मासमें फरासीसी ज्योतिर्विद् लेभिरियर (M. Leverrier)-ने इस ग्रहका पता लगाया। अब तक जितने ग्रहोंका पता लगा है उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। इसका व्यास ३७००० मील है। सूर्यसे इसकी दूरी २८०००००००० मीलके लगभग है, इसीसे इसको सूर्यके चारों ओर घूमनेमें १६४ वर्ष लगते हैं अर्थात् नेपचूनका एक वर्ष हमारे १६४ वर्षोंका होता है। जिस प्रकार पृथ्वीका उपग्रह चन्द्रमा है, उसी प्रकार नेपचूनका भी एक उपग्रह है। खगोल देखो।

नेपथ्य (सं० क्ली०) नी-निच्, गुणः, नेः नेता तस्य पथ्यम्। १ वेश। २ भूषण। ३ वेशस्थान, तुल्य, अभिनय, नाटक आदिमें परदेके भीतरका वह स्थान जिसमें नट नटी नाना प्रकारके वेश सजते हैं।

नर्त्तकनिर्णयमें नेपथ्य विधानका विषय इस प्रकार लिखा है। अभिनेयमें नेपथ्यविधि विशेष प्रयोजनीय है। नेपथ्यविधि चार प्रकारकी है—पुस्त, अलङ्कार, संजीव और अङ्गरचना। फिर पुस्त-नेपथ्य ३ प्रकारका है, सन्धिमा, भाजिमा और चेष्टिमा। वस्त्र वा चर्मादि द्वारा जो द्रव्य बनाया जाता है, उसका नाम सन्धिमा है। वह द्रव्य यदि यन्त्रघटित हो, तो उसे भाजिमा और यदि द्रव्य चेष्टमान हो, तो उसे चेष्टिमा कहते हैं। माल्य, आभरण और वस्त्रादि द्वारा यथायोग्य तत्तदङ्गशोभाके लिये जो द्रव्य बनाया जाता है, उसका नाम अलङ्कारनेपथ्य है। नेपथ्यसे जो प्राणिप्रवेश होता है उसे संजीव कहते हैं।

माल्य और आभरणादि तथा श्वेत, पीत, नील और लोहितादि वर्णद्वारा यथायोग्य स्थानमें यथापथ भावसे जो विन्यास किया जाता है, उसे अङ्गरचना कहते हैं। (नर्त्तकनि०)

नेपाल—भारतवर्षके उत्तरमें अवस्थित एक स्वाधीन राज्य। इस राज्यके उत्तरमें तिब्बत-राज्य, पूर्वमें अंगरेजी-करद सिकिमराज्य, दक्षिणमें अंगरेजाधिकृत हिन्दुस्तान और पश्चिममें अङ्गरेजाधिकृत कुमायुन और रोहिलाखण्डप्रदेश है। १८१५ ई०के पहले कुमायुन और और उसके पश्चिम शतद्रु नदीके तीर तक इस राज्यकी

सीमा विस्तृत थी। १८१६ ई०की सन्धिसूत्रसे ये सब स्थान अंगरेजोंके अधिकारमें आ गए हैं। पश्चिममें काली वा सरयू नदी, दक्षिणमें अयोध्याके मध्य डुण्डवा पर्वत, चम्पारणके मध्य सोमेश्वर पर्वतकी उच्चभूमि तथा पूर्वमें मेचीनदी और शृङ्गाट पर्वत ही नेपाल और अङ्गरेजी-राज्यके मध्य सीमा-रेखारूपमें निर्दिष्ट है।

शक्तिसङ्गमतन्त्रमें नेपालकी सीमा इस प्रकार लिखी है—

"जटेश्वरं समारभ्य योगेशान्तं महेश्वरी।
नेपालदेशो देवेशि साधकानां सुसिद्धिदः॥"

जटेश्वरसे ले कर योगेश्वर तक नेपाल देश माना गया है। यह स्थान साधकोंका सिद्धिपद है।

नेपालनामकी उत्पत्ति।

हिमालय पर्वतस्थ तटदेशके जिस पार्वतीय अंशमें गोर्खाजातिका वास है, उसे तिब्बतीय और हिमालयके उपरिस्थ अहिन्दू पार्वत्यजातिकी भाषामें 'पाल' देश* कहते हैं। वर्त्तमान नेपालराज्यके पूर्वांश और सिक्किम प्रदेशको वहांकी आदिम असभ्य लेपचाजाति 'ने' कहती थी। लेपचा, नेवार और अपरापर कई एक परस्पर संलग्न जातियोंकी चैन-भारतीय भाषामें 'ने' शब्दका अर्थ 'पर्वत गुहा है जहां गृहादिके जैसा आश्रय ले कर मनुष्य रह सकते हैं।' तिब्बत और ब्रह्ममें तथा लामाओंकी भाषामें 'ने' शब्दका अर्थ है 'पवित्र गुहा वा देवताके उद्देशसे रचित पवित्र स्थान वा पीठ।' इससे सहजमें अनुमान किया जा सकता है कि गोर्खाजातिकी वासभूमि हिमालयतटस्थ पालदेशमें जहां काथाका स्तूप† और स्वयम्भूनाथ प्रभृति 'ने' अर्थात् पवित्र तीर्थ स्थान है, उसी समष्टिको नेपाल (अर्थात् पालराज्यान्तर्गत पवित्र तीर्थ वा वासभूमि) कहते थे। फिर किसी किसीका कहना है, कि इस पाल देशके जिस भागमें नेवारजातिका वास था, वह पहले 'ने' कहलाता था।

* तिब्बतीय भाषामें 'पाल' शब्दका अर्थ है पशम। हिमालयके इस अंशमें पशमवाले अनेक छाग पाये जाते हैं, इस कारण वे लोग इस स्थानको पालदेश कहते थे।

† An account of this Stupa See Proc. of the Bengal Asiatic Society 1892.

'नें' नामक स्थानमें वास करनेके कारण ही इस जातिका नाम 'नेवार' पड़ा है। इस नेवारजातिके लामाओंने पहले बौद्धमत ग्रहण करके अपने देशमें बहुत-सी बौद्ध-कीर्त्तियां स्थापन कीं तथा उन्हींके नाम सङ्केत पर इस स्थानका नाम नेपाल हुआ था, ऐसा लोगोंका विश्वास है। यह स्थान लेप्चाकथित 'नें' नामक स्थानसे स्वतन्त्र है।

"नेपाल" यह नाम समग्र देशका नहीं है। जिस उपत्यकामें इस राज्यकी राजधानी काठमण्डू नगर अवस्थित है, उसी उपत्यकाका नाम नेपाल है। उसीसे समग्र राज्यका नामकरण हुआ है। यह राज्य पूर्व-पश्चिममें २५६ कोस लम्बा और उत्तर-दक्षिणमें ३५से ७५ कोस चौड़ा है। यह अक्षा० २६° २५' से ३०° १७' उ० और देशा० ८०° ६' से ८८° १४' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५४००० वर्गमील है।

प्राकृतिक विभाग।

नेपालराज्य स्वभावतः पश्चिम, मध्य और पूर्व इन तीन उपत्यकाओंमें विभक्त है। चार अत्युच्च पर्वत-शिखर इन तीन उपत्यका-विभागके प्रधान कारण हैं। अंग्रेजाधिकृत कुमायुन प्रदेशमें अवस्थित नन्दादेवी-शिखरकी छोटी छोटी नदियोंके एक साथ मिलनेसे काली नदीकी उत्पत्ति हुई है। यही नदी नेपालराज्यके पश्चिम उपत्यकाकी सीमा है। नन्दादेवीसे सौ कोस पूर्व धवल-गिरिशिखर (देशीय नाम दूधगङ्गा) अवस्थित है। इसके ठीक दक्षिण गोरखपुर नगर पड़ता है। यह पर्वत शिखर मध्य उपत्यकाके पश्चिमसीमारूपमें उपस्थित है। पूर्वोक्त नेपाल नामक उपत्यकाके ठीक उत्तर यह गोसाईंथान पर्वत दण्डायमान है। यह पर्वत शिखर पूर्व उपत्यकाके पश्चिम सीमा और धवलगिरि तथा गोसाईंथान पर्वतके मध्य-उपत्यका पर अवस्थित है। गोसाईंथानसे ६५ कोस पूर्व अङ्गरेजाधीन सिक्किम राज्य-में अवस्थित काञ्चनजङ्घाशिखर ही नेपालकी पूर्व-उपत्यकाकी पूर्व सीमा है। इस पर्वतके दक्षिणाङ्गके कुछ अंश और सिक्किम नेपालराज्यकी पूर्व सीमा रेखारूपमें निर्दिष्ट है।

गिरिपथ।

नेपालान्तर्गत हिमालयपृष्ठको भेद कर तिब्बतराज्य-में जानेके अनेक गिरिपथ हैं। किन्तु ये सब पथ प्रायः तुषारसे ढके रहते हैं। इनमेंसे जो पथ सबसे निम्न-भूमिमें अवस्थित है, वह यूरोपके सर्वोच्च पर्वतसे भी उच्च है।

१ थकन्ना-खर पथ वा थड़िपथ—यह नन्दादेवी और धवलगिरि-शिखरके मध्यस्थलमें है। शतद्रु-नदीके उत्पत्ति-स्थानके समीप घर्घरा नदीकी कर्णाली नामक उपनदी निकल कर इसी राह होती हुई तिब्बतको छोड़ कर नेपालमें प्रवेश करती है। जिस स्थान पर कर्णाली नदी तिब्बतसीमामें गिरती है, उस स्थान पर थक नामक ग्राम है। इसी ग्रामके नाम पर इस पथका नामकरण हुआ है। थक ग्राममें तिब्बतसे लाए हुए लवणका विस्तृत व्यवसाय होता है।

२ मस्तं पथ—यह धवलगिरिसे २० कोस पूर्वमें अवस्थित है। धवलगिरिके पादमूलमें तिब्बतकी ओर इस नामका एक प्रदेश भी है। उसी प्रदेशके नामानुसार इस पथका नाम पड़ा है। मस्तं प्रदेश धवलगिरिके उत्तर होने पर भी वहांके राजा नेपालके करद हैं। मस्तं उपत्यका हिमालयके तुषारावृत उत्तर और दक्षिण पर्वत-श्रेणीके मध्यवर्त्ती एक ऊँचे स्थान पर अवस्थित है। यह राज्य गोर्खाराज्यमालाके अन्तर्गत नहीं है। मस्तं गिरि-पथके उत्तरभागमें प्रधान रास्तेके ऊपर मुक्तिनाथ नामक एक ग्राम बसा हुआ है। यह ग्राम तीर्थस्थानमें गिना जाता है और यहां भी तिब्बतीय लवणका व्यवसाय होता है। मस्तंसे आठ दिनमें और धवलगिरिके क्रोड़स्थ मालीभूमके प्रधान नगर बीनीशहरसे चार दिनमें मुक्तिनाथ तीर्थ पहुँचते हैं।

३ कैर पथ—यह गोसाईंथान पर्वतके पश्चिममें पड़ता है।

४ कुटि पथ—गोसाईंथान पर्वतसे पूर्वमें है। ये दोनों पथ राजधानी काठमण्डूके निकटवर्त्ती होनेके कारण दोनों पथ हो कर तिब्बतीय तीर्थयात्री और व्यवसायी प्रति वर्ष शीतकालमें नेपाल आते हैं। नेपालकी राजधानी काठमण्डूसे तिब्बतकी राजधानी लासा जानेका

रास्ता केरपथ हो कर चला गया है। टेरी नामक स्थानमें यह रास्ता कुटिपथके रास्तेसे मिल गया है कुटिपथ रास्ता ही तिब्बत जानेका अपेक्षाकृत छोटा और सीधा है। किन्तु इस राह हो कर टट्टू नहीं चलता।

चीन जानेके लिये नेपालराजदूतदल कुटिपथ हो कर जाता है। किन्तु आते समय चीन देशीय टट्टू लाना होता है, इस कारण वह केरपथ हो कर लौटता है। १७९२ ई०के युद्धमें चीनसेना इसी केरपथ हो कर आई थी। कुटिपथके पश्चिमस्थ तुषाराहत पर्वतको खुद-भूमि (ताम्रभूमि) और उसके पूर्वस्थ पर्वतको तांबाकुशी कहते हैं। इसी पर्वतसे ताम्रकोशीनदीकी उत्पत्ति हुई है। यह कोशी नदीकी एक उपनदी है। सुटियानदी भी (कोशीनदीकी सप्त उपनदियोंमेंसे अन्यतम) इसी कुटिपथ हो कर बह गई है।

५ हथिया पथ—यह कुटिपथसे २०।२५ कोस पूर्वमें है। कोशीनदीको सप्त उपनदियोंमें प्रधान अरुणा नदी भी इस राह हो कर नेपालमें प्रवेश करती है।

६ वल्ल वा वल्लछन पथ—काञ्चनजङ्घाके पश्चिम नेपालके पूर्व सीमान्तमें यह पथ अवस्थित है। इन सब पथ हो कर तिब्बती लोग शीतकालमें नेपाल आते जाते हैं।

नदीकी अववाहिका।

नेपालके जिन तीन प्राकृतिक विभागोंका उल्लेख किया गया है, वे फिर भी तीन नामोंसे उल्लेख किये जा सकते हैं। नेपालमें प्रधान नदी तीन हैं, घर्घरा, गण्डक और कोशी। ये तीनों नदियां यथाक्रमसे पश्चिम और पूर्व उपत्यकाके मध्य होती हुई प्रवाहित हैं और यथाक्रम वे तीन उपत्यकाएं इन्हीं तीन नदियोंके नामसे पुकारी जाती हैं। इन तीन उपत्यकाओंको छोड़ कर गण्डकी और कोशीनदीके मध्य नेपाल-उपत्यका है। इसी उपत्यकामें काठमण्डु नगर अवस्थित है। यहां बाघमती नदी बहती है। यह नदी मुङ्गेरके समीप गङ्गामें मिली है। इन चार नदियोंकी अववाहिकामें पार्वत्यनेपालके सभी भूखण्ड स्वभावतः विभक्त हैं। इसके अलावा पार्वत्यनेपालके दक्षिणांशमें नेपालराज्यके अन्तर्गत जो भूखण्ड है, वह तराई नामसे प्रसिद्ध है।

राज्यविभाग।

पूर्वोक्त प्राकृतिक विभाग पुनः नाना खण्डोंमें विभक्त है।

१ पश्चिम-उपत्यका वा घर्घरा अववाहिका प्रदेश—यह २२ खण्डोंमें विभक्त है। इन बाईस खण्डोंको एक साथ मिला कर बाईसराज्य कहते है। फिर इन बाईस राज्योंमें बाईस राजा वा जमींदार रहते हैं जिनमेंसे एक राजा प्रधान और शेष इक्कीस उनके करद हैं। जुमला, जगवीकोट, चाम, आचाम, रुगम, मुषिकोट रोयल्या, मल्लिजम्भ, वलङ्ग, दैलिक, दरिमेक, दोती, सुलियाना, वमफी जेहरी, कालागाँव, घड़ियाकोट, गुटम और गजुर यही बाईस राज्य हैं। इनमेंसे जुमला-राज ही प्रधान हैं। वे ही शेष इक्कीस राज्यों पर आधिपत्य करते हैं। जुमलाराजको राजधानीका नाम चिञ्चिन है। इस राज्यके अधिपति गोर्खाओंसे पराजित होनेके पहले ४६ राज्योंके अधिपति थे। कालीनदी और गोर्खाराज्यके मध्य ये ४६ राज्य पड़ते थे जिनमेंसे बाईस कालीनदीकी ओर चौबीस गण्डक नदीको अववाहिकामें अवस्थित थे। ये सब सामन्त राज जुमलाराजको सलाम, पशु इत्यादि द्रव्य करस्वरूप देते थे। यद्यपि जुमलाराजका वैसा प्रभाव अभी नहीं है, तो भी अन्यान्य सामन्तराज आज भी उन्हें चक्रवर्त्ती राजा मानते हैं और निर्दिष्ट कर भी दिया करते हैं। ४६ राज्योंके मध्य गण्डक अववाहिकाके चौबीस राज्य बहादुर-शाहसे नेपालराज्यमें मिलाए गये थे। इस चौबीसी और बाईसीराज्यके राजगण आज भी राजा कहलाते हैं और राजवंशीयके जैसे सम्मानित होते हैं। ये लोग अभी नेपालराजके जागीरदार मात्र हैं। इन सब राजाओंकी चार पांच हजारसे ले कर चार पांच लाख तककी आमदनी है। इनमेंसे सबोंके पास अस्त्रधारी अनुचर हैं। किसीके पास तो चार पांच सौ तक और किसीके पास चालीस पचास भी हैं।

जुमलाराज्यके बाद ही अभी दोति राज्यका उल्लेख किया जा सकता है। इसकी राजधानीका नाम है दोति (द्युति) वा दीपैत्। इस राज्यकी जनसंख्या अपेक्षाकृत अधिक है। दोतिनगर कर्णाली नदीको श्वेतगङ्गा नामक शाखाके बाएं किनारे तथा बरेली शहरसे ४२॥

कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां दो दल पदाति और कुछ कमान हैं।

इसके बाद सुलियानानगर है। यहां अयोध्या-सीमान्त पर नेपाली-स्कन्धावर है। यह नगर लखनऊ-से ६० कोस उत्तरमें पड़ता है। यहांसे २५ कोस उत्तर-पूर्व में पैल्तानामक नगर है जहां नेपालियोंको सिलखाना और बारूदखाना है। इस प्रदेशमें शोरा बहुत पाया जाता है। सुलियानगढ़ी नामक विख्यात उपत्यका राप्ती-नदीके दोनों किनारे तक विस्तृत है।

२ मध्य उपत्यका वा गण्डक अववाहिका प्रदेश।

नेपालीलोग बहुत पहलेसे इस प्रदेशको जानते थे। वे लोग इसे सप्तगण्डकी उपत्यका कहते हैं। सप्तगण्डकी-से गण्डकनदीके उपादान-स्वरूप सात उपनदियोंका बोध होता है। ये सातों नदियां धवलगिरि और गोसाईं-थान शिखरके चिरतुषारक्षेत्रसे उत्पन्न हुई हैं। सातो नदियोंके नाम ये हैं,—भरिगर, नारायणी वा शालग्रामी, श्वेतगण्डकी, मरस्यांगढ़ी, धरमड़ी, गण्डी और त्रिशूल-गङ्गा। इनमेंसे भरिगर और नारायणी; श्वेतगण्डकी और मरस्यांगढ़ी; त्रिशूलगङ्गा, धरमड़ी और गण्डी नदी एक साथ मिल कर पुनः तीन शाखाओंमें विभक्त हुई हैं। इसके बाद जिस स्थान पर ये मिल कर गण्डक नामसे सोमेश्वर पर्वतके एक पथ हो कर विहारमें प्रवेश करती है, उस स्थानको तथा उस गिरिपथको त्रिवेणी कहते हैं। त्रिशूलगङ्गाके उत्पत्तिस्थानके समीप छोटे बड़े २२ ह्रद हैं। इनमेंसे गोसाईंथानके शिखर पर गोसाईंकुण्ड वा नीलखियत् (नीलकण्ठ) कुण्ड ही बड़ा है। इसी ह्रदके नामानुसार समस्त पर्वत गोसाईंथान कहाता है। इस ह्रदके बीचमेंसे एक नीलवर्ण डिम्बाकृति पर्वतखण्ड निकला है। यह शिखर जल भेद कर ऊपर नहीं उठा है, बल्कि जलपृष्ठसे एक फुट नीचेमें ही है। स्वच्छजल रहनेके कारण यह साफ साफ दीख पड़ता है। वह पर्वतखण्ड नीलकण्ठ महादेवकी प्रतिमूर्त्ति रूपमें पूजित होता है। आषाढ़, श्रावण और भाद्रमासमें यहां असंख्य यात्री आ कर स्नान करते और नीलकण्ठकी पूजा करते हैं। यह पथ जैसा दुर्गम है, वैसा ही भयावह भी है। इस कुण्डके उत्तरी किनारे एक अत्युच्च पर्वत है। उस पर्वतचूड़स्थ तीन गह्वरोंसे तीन निर्झरिणी निकली हैं। इन तीनोंका जल तीस फुट नीचेमें पतित हो कर पुनः एक ह्रदमें जमा होता है। इस त्रिधाराका नाम त्रिशूलधारा है। कहते हैं, कि समुद्र मथनेके समय विषपानके बाद शिवजी विषकी ज्वाला और तृष्णासे कातर हो कर हिमालयके इसी तुषारक्षेत्रमें जलकी खोज करते हुए आए। यहां जब जल नहीं मिला, तब उन्होंने पर्वत-गात्रमें त्रिशूलाघात किया जिससे तीन निर्झरिणीको उत्पत्ति हुई। पीछे शिवजी नीचे लेट रहे और त्रिधारा पान कर गए। इसी शयनस्थानमें गोसाईं कुण्ड वा नीलकण्ठ ह्रदकी उत्पत्ति हुई है।

ह्रदगर्भस्थ डिम्बाकृति प्रस्तरखण्ड ही उस शयित महादेवकी प्रतिमूर्त्तिके रूपमें गिना जाता है। तीर्थयात्रियोंका कहना है, कि ह्रदके किनारे खड़ा हो कर देखनेसे ऐसा मालूम पड़ता है मानो भगवान् नीलकण्ठ सर्प-शय्या पर ह्रदगर्भमें सो रहे हैं। मि० ओल्डफिल्ड अनुमान करते हैं कि यह शिखरोपम प्रस्तरखण्ड बहुत पहले किसी हिम-शिलाके साथ स्खलित हो कर ह्रदगर्भमें इस प्रकार जड़ीभूत है। इस तीर्थस्थानमें एक क्षुद्र प्रस्तर-मय वृष और डेढ़ फुट ऊंची नरगमूर्त्तिके सिवा और कोई प्रतिमूर्त्ति नहीं है। यहां कुछ स्तम्भ भी खड़े हैं जिनमें पहले एक वृहद्‌घण्टा लटका रहता था। अभी वह घण्टा नष्ट हो गया है। समस्त गोसाईंथान पर्वत पर और कहीं भी शिवमूर्त्ति वा लिङ्गका चिह्न नहीं है। इस ह्रदमें आनेके पथ पर चन्दनबाड़ी नामक ग्रामके पास एक फुट ऊंचा एक प्रस्तरखण्ड है जिसे लोग गणेशकी प्रतिमा समझ कर पूजा करते हैं। इस गणेशको वे "लोड़ो गणेश" कहते हैं। इस गोसाईं-कुण्डसे उत्पन्न होनेके कारण गण्डककी पूर्वीय उपनदीका नाम त्रिशूलगङ्गा पड़ा है। सूर्यकुण्डनामक ह्रदके उत्तरांशसे त्रिशूलगङ्गाको एक और उपनदी वेत्रवतीसे निकली है। इसी सूर्यकुण्डसे टाड़ी वा सूर्यवती नदीकी भी उत्पत्ति हुई है। देवीघाट नामक स्थानमें सूर्यवती त्रिशूलगङ्गामें मिली है। यह देवीघाट नयाकोट नामक एक उपत्यकाके मध्य अवस्थित है। यह भी तीर्थस्थान माना जाता है। इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवी भैरवीको

मन्दिर नवकोट शहरमें पड़ता है। किन्तु प्रतिवर्ष तुषारके गल जाने पर जब मनुष्य यहां आने लगते हैं, तब दोनों नदीके सङ्गम-स्थल पर लम्बे लम्बे तख्ते और स्तूपीकृत पर्वतराशि द्वारा एक मन्दिर बना कर उसी-में देवीको पूजा की जाती है। कहते हैं, कि देवीकी प्रतिमा पहले इसी स्थान पर थी पीछे खप्राप्रदेशसे नव-कोटमें स्थानान्तरित हुई। टाड़ी वा त्रिशूलगङ्गाका स्वभावतः वेग इतना तेज है और वर्षाके समय उसका जल इतना बढ़ आता है, कि दोनों किनारे टूट फूट जाते हैं। इसी कारण देवीने खप्राप्रदेशसे अपनी प्रतिमा स्थानान्तरित करा ली। गण्डक अववा-हिका जिन चौवीस क्षुद्र खण्डोंमें विभक्त है वा पहले जिस चौबीसोराजका उल्लेख किया गया है वह घर्घरा-अववाहिकाके अन्तर्गत बाईसी राज्याधिपति जुमला-राजकेअधीन था। उन राज्योंके नाम ये हैं,—टानाहुं, गुलकोट, मालीभूम, शतहुं, गड़हुं, पोखरा, भड़कोट, रेसिं, घेरिं, धोयार, वालवा, बेतुल, पाल्पा, गुलमी, पश्चिम नवकोट, खचि वा खच्चि, दृश्मा, घरकोट, मुषि-कोट, थिलि, सलियाना, विघा, पैसान, लटहन, दं, कचि, लमजुङ्ग और प्रथन। ये सब अभी गोर्खाराज्य-के अन्तर्निविष्ट हुए हैं। गोर्खाओंने समस्त गण्डक-अववाहिकी मालीभूम, खचि, पल्पा और गोर्खा इन चार भागोंमें विभक्त कर लिया है। मालिभूम प्रदेश ठीक धवलगिरिके नीचे भरिगर नदी तक विस्तृत है। इसकी राजधानी बिनि-शहर नारायणी नदीके किनारे बसा हुआ है। खचिप्रदेश मालिभूमके दक्षिणपूर्वमें पड़ता है। पल्पाप्रदेशका विस्तार ज्यादा नहीं होने पर भी वह सबसे प्रयोजनीय विभाग है। यह अङ्गरेजी राज्य गोरख-पुर जिलेके सीमान्तमें अवस्थित है। इसके उत्तरमें नारायणीनदी बहती है और निम्नभागमें गोरखपुरसे ठीक उत्तर "बेतुलखास" नामक तराई प्रदेश है। यह तराई अयोध्याके अन्तर्गत तुलसीपुरसे ले कर गण्डक नदीके पश्चिम पाली शहर तक विस्तृत है। शालवनसे पर्वतका निम्नप्रदेश और दक्षिणांश परिव्याप्त है। पश्चिम नवकोट विभाग गण्डक नदीके पश्चिममें अवस्थित है। यह पल्पा प्रदेशका ही एक अंश है। वर्त्तमान गोर्खाओंके पूर्वपुरुष राजपूतगण १२वीं शताब्दीमें जब मुसल-मानोंसे विताड़ित हुए, तब वे इसी प्रदेशमें आ कर रहने लगे थे। पीछे वे लोग श्वेतगण्डकीके किनारे लमजुं प्रदेशमें जा बसे। पल्पानगर ही प्रधान शहर है, उसके बाद बेतुल और गुलमी शहर है। पल्पानगरसे २॥ कोस पूर्व तानसेन शहर अवस्थित है जहां पल्पा-प्रदेशकी सेना रहती है। यहां एक दरबार, बाजार और टकशाल है। इस टकशालमें तांबेका सिक्का ढाला जाता है। पल्पा प्रदेशमें गुरुंजातिके लोग सूती कपड़े बुनते तथा तरह तरहका व्यवसाय करते हैं।

गोर्खाराज्य गण्डक-अववाहिकाके पूर्वोत्तर-अंशमें त्रिशूलगङ्गा और मर्स्यांगदी दोनों नदियोंके बीच अव-स्थित है। राजधानी गोर्खानगर हनुमानवनजङ्ग पर्वत-के ऊपर धरमड़ी नदीके किनारे बसा हुआ है और काठ मण्डूनगरसे १३ कोस दूर पड़ता है। गोर्खाप्रदेशके पश्चिम-दक्षिणांशमें पोखरा उपत्यका है। इस उपत्यकाका प्रधान शहर पोखरा श्वेतगण्डकीनदीके किनारे अवस्थित है। यह शहर बहुत बड़ा है, लोकसंख्या भी कम नहीं है। इस स्थानके ताम्रद्रव्यका व्यवसाय प्रसिद्ध है। यहां प्रति वर्ष एक मेला लगता है जिसमें समस्त पोखरा उपत्यकाके उत्पादित शस्य तथा ताम्र द्रव्यादि बिकने जाते हैं। नेपाल उपत्यकासे पोखरा उपत्यका बहुत बड़ी है। यहां बहुतसे ह्रद हैं। सर्वापेक्षा वृहत् ह्रद इतना बड़ा है कि उसका प्रदक्षिण करनेमें दो दिन लगते हैं। इन सब ह्रदोंमेंसे अधिकांश बहुत गहरे हैं। इनके किनारेसे जलपृष्ठ प्रायः १५०।२०० फुट निम्न है। सुतरां कृषिकार्यमें इन सब ह्रदोंसे कोई उपकार नहीं होता। पल्पा और बेतुल प्रदेशके मध्य गण्डकनदीके पश्चिमी किनारे गोङतालीमढ़ी नामक उपत्यका और गण्डकके पूर्व चितवन वा चेतनमढ़ी नामक उपत्यका तथा इस-के उत्तर मकवन वा माखनमढ़ी नामक उपत्यका विशेष प्रसिद्ध है। चितवन उपत्यकामें राप्ती नदी बहती है। यह भीमफेड़ी नामक स्थानसे कुछ पूर्व शिशपाणि पर्वत-से निकल कर सोमेश्वर पर्वतके उत्तर गण्डकनदीमें मिलती है। इस नदीके ऊपरमें ही हेटवारा शहर बसा हुआ है। चितवन उपत्यकामें बड़े बड़े वृक्षोंके जङ्गल

अपेक्षा बड़ी बड़ी घासोंका जङ्गल ही अधिक है। इन सब जङ्गलोंमें गैंड़ा अधिक संख्यामें पाए जाते हैं। पश्चिम और मध्य उपत्यकाके समस्त प्रधान शहरोंके मध्य हो कर एक बड़ी सड़क चली गई है। यह सड़क काठमण्डूसे नवकोट, गोर्खा, टानाहुं (उत्तरमें एक शाखा द्वारा लमजु), पोखरा, शतहुं, तानसेन, पल्पा दक्षिणमें एक शाखा द्वारा वेतुल), गुल्मि, पेल्ताना और शालियाना होती हुई दोतो (दोपैत्) तक चली गई है। थोतिसे जगरकोट और जुमला तक एक शाखा है।

३ पूर्व उपत्यका वा कोशी-अववाहिका प्रदेश—यह अववाहिका साधारणतः 'सप्तकौशिकी' नामसे मशहूर है। मिलची वा इन्द्राणी, भुटियाकोशी, तांबा (ताम्र) कोशी, लिखु, दुधकोशी, अरुण और तामोर वा ताम्बर नामक सात उपनदियोंके योगसे कोशी वा कौशिकी नदी उत्पन्न हुई है। ये सातों नदियां तुषारक्षेत्रसे निकल कर प्रायः समान्तर भावमें बहती हुई वर्षक्षेत्र वा बड़छत्र नामक स्थानमें मिल गई हैं। पीछे कोशी वा कौशिका नाम धारण कर अङ्गरेजी राज्य पूर्णिया जिलेमें आ कर राजमहल पर्वतके निकट गङ्गामें मिली है। मिलची वा इन्द्राणी नदी भुटियाकोशीके साथ मिलती है। ताम्बाकोशी, लिखु और दुधकोशी ये तीनों नदियां सप्तकोशी (स्वर्णकोशी)में गिरती हैं। अनन्तर ये दो युक्त नदियां तथा अरुणा और ताम्बोर बड़छत्रघाटमें आ कर मिल गई हैं। अरुणानदी द्वारा कोशी-अववाहिका प्रदेश दो भागोंमें विभक्त हुआ है। अरुणाके दाहिने किनारे दुधकोशी तक जो भूखण्ड विस्तृत है, उसे किरातदेश और बाएं किनारेके भूखण्डको लिम्बुयाना कहते हैं। यह प्रदेश पुनः छोटे छोटे बावन सूत्रोंमें विभक्त है। प्रत्येक सूत्रमें चार पांच ग्राम लगते हैं। लिम्बुयाना पहले सिकिम राज्यके अन्तर्भुक्त था। पीछे राजा पृथ्वीनारायणसे सदाके लिये नेपाल राज्यमें मिला दिया गया। इस प्रदेशकी बीजापुरमढ़ी उपत्यकामें ढोलापुर शहर एक प्रसिद्ध स्थान है।

कोशी-अववाहिकाके दक्षिण जो तराई है, उसीको प्रधानतः नेपाल तराई कहते हैं। यह तराई दो भागोंमें विभक्त है; जङ्गल तराई और प्रकृत तराई।

नेपालकी तराई।

नेपालतराई पश्चिममें ओरेका नदीसे ले कर पूर्वमें मीचो नदी तक विस्तृत है। इसका विस्तार ११० कोस के लगभग है। इसके उत्तरमें चेरियाघाटी पर्वतमाला और दक्षिणमें अङ्गरेजी राज्य पूर्णिया, तिरहुत, चम्पारण आदि जिलोंके सीमान्तमें उभयराज्यको सीमानिरूपक स्तम्भावली है। जहां कोशी नदी नेपाल तराई होती हुई अंगरेजी राज्यमें प्रवेश करती है, वहां नेपाल तराईका विस्तार केवल ६ कोस मात्र है और अन्यत्र १० कोससे कम नहीं होगा। यह दश कोस विस्तृत जमीन लम्बा-लम्बी दो भागोंमें विभक्त है। उत्तरांशमें अर्थात् चेरियाघाटी पर्वतमालाके दक्षिण गण्डकतीरसे कोशी तीर तकके स्थानको भबर वा शालवन कहते हैं। विशोलिया नामक स्थानके पश्चिमसे शालवनका विस्तार क्रमशः थोड़ा होता गया है। इस वनमें जो लोगोंका वास है, वह प्रायः नहींके समान है; केवल नदीके किनारे जहां आबादी हुई है, वहीं कहीं कहीं पर एक दो ग्राम देखनेमें आते हैं। शालवनमें शाल, शीशम, देवदार आदि बड़े बड़े वृक्ष हैं। चेरियाघाटी पर्वतमालाके ऊपर ये सब वृक्ष खूब बड़े बड़े होते हैं। गण्डक और मेचीनदीके मध्य बाघमती वा विष्णुमती, कमला, कोशी छोड़ कर अन्य सभी नदियां तराईके मध्य ग्रीष्मकालमें पैदल पार करते हैं। बहुत-सी नदियां ऐसी हैं जो ग्रीष्मकालमें बहुत क्षीण हो कर भूगर्भमें लुप्त हो जाती हैं। किन्तु वन पार कर वे पुनः बहती दीख पड़ती हैं। वर्षाके समय इन सब नदियोंका प्रवाह सर्वत्र एक-सा है।

नेपाल-तराईके दक्षिणांशमें अर्थात् शालवनके दक्षिण प्रकृत तराई-भूमि अवस्थित है। ओरेकासे कमला नदी तक इन तराइयोंका विस्तार अधिक है और कमलासे कोशी तक कम होता गया है। कोशीसे पूर्व मीचोपर्यन्त तराईप्रदेशको मोरङ्गदेश कहते हैं। इसका विस्तार २॥ कोससे अधिक कहीं भी नहीं है। ये सब तराईप्रदेश नेपाल राजासे शासित नहीं होते। यहांके शासनकर्त्ता खत्तावङ्ग नामक स्थानमें रहते हैं। खत्तावङ्ग विशोलियासे कुछ पूर्वमें पड़ता है। वहांके शासन-

कर्त्ताके अधीन दो दल सेना सर्वदा रहती हैं। प्रकृत तराई चार जिलोंमें विभक्त है, १ बटा और पारसा, २ रोचत, ३ मलय-सप्तारी और ४ मोहतारी। गण्डकके क्रोड़स्थ, प्रथम जिलेके मध्य हो कर ही काठमण्डूका रास्ता गया है। विशोलियाके निकटवर्त्ती पारसा नामक स्थानमें १८१५ ई०को कप्तान सिलवी परास्त हुए थे और उनको दो कमान शत्रुओंके हाथ लगी थीं। रोचत जिला पारसाकी सीमासे ले कर वाघमती तक विस्तृत है। यामिनीनदीके किनारे रोचत जिलेकी सीमा पर वाघमतीसे ७॥ कोस पश्चिम सिमरौननगरका ध्वंसावशेष नजर आता है। यह ध्वस्त स्थान बहुविस्तृत और गभीर वनाच्छादित है। ऐतिहासिक उद्देश्यसे इसका परिष्कार होना उचित है। इस ध्वंसावशिष्ट स्थानमें प्राचीन मिथिला राज्यकी राजधानी थी। उस समय मिथिला राज्य पूर्व-पश्चिममें गण्डक और उत्तर-दक्षिणमें नेपालकी पर्वतमालासे गङ्गातीर तक विस्तृत था। १०८७ ई०में मिथिलाराज नान्यपदेवसे सिमरौननगर बसाया गया। १३२२ ई०में दिल्लीके सम्राट् गयासुद्दीन् तुगलकने नान्यप वंशीय हरिसिंहदेवको परास्त कर सिमरौननगर ध्वंस कर डाला। हरिसिंहदेव नेपालको भाग गये और नेपाल जय करके वहींके राजा बन बैठे। वाघमतीके किनारे बहारबार ग्राम बहुत स्वास्थ्यप्रद और शुष्क-स्थान है। १८१४ ई०के प्रथम नेपालयुद्धमें मेजर ब्राडसने सबसे पहले इसी स्थान पर आक्रमण किया और इसे जीत लिया।

मलयसप्तारि जिला वाघमतीसे कमलानदी तक विस्तृत है। इस जिलेके सीमान्तमें प्राचीन नगर जनकपुरका भग्नावशेष है। मोहतारी जिला कमलासे कोशी तक फैला हुआ है। कोशीके दक्षिण किनारे सीमान्तरके निकट भानुरवा नामक स्थानमें सेनावास है। कोशीके पूर्वसे मेचीनदी तक तरीयर नामक मोरङ्ग समतल देश है। इस देशकी भूमि कर्दममय है। मलेरियाका यहां विशेष प्रकोप रहता है। तराईके मध्य जितने देश हैं, उनमेंसे यह देश सर्वापेक्षा अस्वास्थ्यकर है। नदियोंका जल भी बहुत दूषित है, यहां तक कि अनेक नदियोंका जल विषाक्त है। मोरङ्ग छोड़ कर तराईकी अन्यतम भूमि अत्यन्त उर्वरा है। वहां तरह तरहका शस्य, ईख, अफीम और तमाकू भी काफी उपजता है। कोशीके पश्चिमांशके जङ्गलमें हाथीकी संख्या दिनों दिन कम होती जा रही है। मोरङ्गमें अभी बहुत हाथी मिलते हैं, लेकिन पहलेके जैसा नहीं।

नेपाल-उपत्यका।

गोसाईंथान पर्वतके अन्तर्गत धैवङ्गपर्वतके ठीक दक्षिण सप्तगण्डकी और सप्तकोशिकीके मध्य जो उच्च उपत्यका प्रदेश वर्त्तमान है, उसीका नाम नेपाल उपत्यका है। यह उपत्यका त्रिकोणाङ्ग है। इसकी लम्बाई पूर्व-पश्चिममें १० कोस और चौड़ाई उत्तर-दक्षिणमें ७॥ कोस है। इस उपत्यकाके पश्चिम त्रिशूलगङ्गानदी और पूर्वमें मिलाची वा इन्द्राणीनदी है। उपत्यकाके चारों ओर पर्वतवेष्टित है जिनमेंसे उत्तरमें धैवङ्ग पर्वतमालाके शिवपुरी, काकनी, पूर्वमें महादेव-पोखरशिखर, देवचौका, पश्चिममें नागार्जुनपर्वत और दक्षिणमें शीशपानी-पर्वतमालामें चन्द्रगिरि, चम्पादेवी और फुलचौका आदि पर्वतशिखर ठीक पर्वतस्वरूपमें अवस्थित हैं। नेपाल-उपत्यका हो समुद्रपृष्ठसे ४५०० फुट ऊंची है। नेपाल-उपत्यकाके चारों ओर छोटे छोटे पर्वत रहनेके कारण उनके भी चारों ओर छोटी छोटी उपत्यका हैं। इन सब उपकण्ठ-उपत्यकाओंके मध्य दक्षिण-पश्चिममें चितलङ्ग उपत्यका, पश्चिममें धूना और कालपूउपत्यका, उत्तरमें नवकोट उपत्यका और पूर्वमें बनेपा उपत्यका उल्लेखयोग्य है।

नेपालकी गिरिमाला।

नेपालउपत्यकाके चतुष्पार्श्ववर्त्ती पर्वतमाला विशेष प्रसिद्ध है। इन सब पर्वतशिखरोंके परस्पर संयुक्त रहनेके कारण गिरिपथ और नदी धारा छोड़ कर अन्य दिशासे इस उपत्यकामें प्रवेश नहीं कर सकते।

उत्तरस्थ शिवपुरी पर्वत आठ हजार फुट ऊंचा है। इसका शिखरदेश शाल और सिन्दूरवृक्षोंसे समाच्छन्न तथा अन्यान्य पर्वतकी अपेक्षा स्थूल है।

पश्चिमस्थ काकनी पर्वतके साथ शिवपुरी पर्वतका योग है। दोनोंके मध्य हो कर 'सङ्गला' नामक गिरिपथ गया है। काकनि पर्वतकी ऊंचाई ७ हजार फुट है।

पूर्वोत्तरस्थ मणिचूड़ पर्वतके साथ भी शिवपुरी शिखरका योग है। लेकिन गिरिपथ एक भी नहीं गया है। मणिचूड़की चूड़ा भी ७ हजार फुट ऊंची है।

उपत्यकाके ठीक पूर्वमें महादेवपोखरा शिखर वर्त्तमान है। यह भी प्रायः ७ हजार फुट ऊंचा है। इसके साथ पूर्वोत्तरकोणस्थ मणिचूड़ पर्वतका योग है। दोनों शिखरके मध्य अत्योच्च पर्वतमाला विस्तृत है।

दक्षिण-पूर्वमें फुलचोया वा फुलचोक पर्वत जङ्गलमय और बहुत दूर तक विस्तृत है। इसकी ऊंचाई ८ हजार फुटके लगभग है। महादेवपोखरा-शिखरकी ओर इससे रानीचोया नामक एक शिखर निकला है। इन दो पर्वतोंके मध्य हो कर बनेपा उपत्यकामें जानेका गिरिपथ वर्त्तमान है। पश्चिम दिशामें इस पर्वतसे महाभारतशिखर नामक एक पर्वत निकल कर वाघमती नदीके किनारे तक विस्तृत है। फुलचोया पर्वतके सर्वोच्च शिखर पर सुन्दर सिन्दूरवनके मध्य देवीभैरवी और महाकालका मन्दिर है। इन दो मन्दिरोंके समीप बौद्ध मञ्जुश्रीका मन्दिर भी है। इस पर्वत परसे नेपाल उपत्यकाका समतल क्षेत्र और हिमालयका तुषारावृत शिखर बहुत मनोरम दीख पड़ता है।

उपत्यकाके ठीक दक्षिणमें पूर्वोक्त महाभारतशिखर विस्तृत है। इसीके पश्चिम सीमा हो कर वाघमती नदी नेपाल उपत्यकासे बाहर हुई है। चतुर्दिक्स्थ पर्वतवेष्टनीके मध्य इन नदी-खातको छोड़ कर और कहीं भी अवच्छेद नहीं है।

दक्षिण पश्चिममें चन्द्रगिरि पर्वत ६ हजार ६ सौ फुट ऊंचा है। इसके पूर्वांशको हाथीवन कहते हैं। इस स्थानमें वाघमती प्रवाहित है। चन्द्रगिरिके दक्षिण-पूर्वस्थ शिखरका नाम चम्पादेवी है।

उपत्यकाके ठीक पश्चिम महाभारत पर्वतके पूर्वमें इन्द्रस्थान शिखर अवस्थित है। यह ठीक पर्वतशिखर नहीं है। इसका पृष्ठदेश कुछ कुम्भाकार और नेपाल उपत्यकासे १०००।१५०० फुट ऊंचा है। यथार्थमें यह इसके पश्चिमस्थ देवचोया वा देवचोक पर्वतका अंश है। इन्द्रस्थान निविड़वनसे घिरा है। इसके दक्षिण भागमें उच्च स्थान पर एक कम गहराईका ह्रद है जिसके किनारे दो मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। वहां हाथीकी पीठ पर इन्द्र और इन्द्राणीकी प्रतिमा स्थापित है। इन्द्रस्थान पर्वतके ऊपर कैगपुर और चन्दर नामक दो नगर बसे हुए हैं। यह देवचोया-पर्वत नागार्जुन, महाभारत और फुलचोया पर्वतके साथ संयुक्त है।

पश्चिमोत्तरमें नागार्जुन पर्वत ७ हजार फुट ऊंचा है। इसके ऊपर बहुत उत्तम काष्ठोत्पादक गभीर वन है। पूर्वकी ओर इस पर्वतसे स्वयम्भुनाथ और वालाजी नामक दो शिखर निकले हैं। इन दो शिखरोंके उपत्यकाके अन्तर्दिक्‌में विस्तृत होनेसे उपत्यकाकी डिम्बाकृति सीमारेखा विकृत हो गई है। नागार्जुन पर्वत दक्षिणमें देवचोया पर्वतके साथ और उत्तरमें काकनि पर्वतके एक अत्योच्च शिखरके साथ संयुक्त है।

ये सब पर्वत नेपाल उपत्यकाके ठीक सीमान्त पर अवस्थित हैं। एतद्भिन्न उत्तर-पूर्व कोणमें भीरवन्दी और कुमार पर्वत नामक दो शिखर अवस्थित हैं। भीरवन्दी पर्वत नेपाल उपत्यकाके निकटवर्ती सब पर्वतोंसे उच्च है। इसके सर्वोच्च शिखरको कौलिया पर्वत कहते हैं। यह उपत्यकाभूमिसे भी ४ हजार फुट ऊंचा है। इसके साथ पूर्वकी ओर काकनि पर्वतका योग है। इन दोनोंके बीच जो गिरिपथ गया है, वह ६ हजार फुट ऊंचेमें अवस्थित है। इन दो पर्वतोंके उत्तर नवकोट उपत्यका और पश्चिममें कालवृ नदीकी उपत्यका है।

कुमार, भीरवन्दी, काकनि, शिवपुरी, मणिचूड़ और महादेव पोखरा ये छः पर्वत त्रिशूलगङ्गासे इन्द्राणीके तीर तक विस्तृत हैं और जिवजिविया पर्वतमालाके साथ समान्तर भावमें अवस्थित हैं। चन्द्रगिरि, फुलचोया, मणिचूड़ा, शिवपुरी, नागार्जुन आदिका उत्तरांश घने जङ्गलोंसे आच्छादित है और वहां चीता, भालू और जङ्गली सूअर पाए जाते हैं।

नेपाल उपत्यकाकी पूर्वावस्था।

हिन्दुओंके मतसे यह उपत्यका बहुत पहले एक डिम्बाकृति अति वृहत् और गभीर ह्रदके रूपमें थी। तब सभी पर्वत इसी ह्रदके किनारेसे उठे थे।

बौद्धोंका कहना है, कि मञ्जुश्री बोधिसत्त्वने ही इस वृहत्ह्रदके जलको निःसारण करके इसे सुन्दर वास

योग्य उर्वरा उपत्यकामें परिणत किया है। उन्होंने अपनी तलवारसे कोटवार नामक एक पर्वत शिखरको काट कर उसी पथ हो कर जल बहा दिया था। फुलचोया और चम्पादेवी पर्वतोंके मध्य जिस गड्ढे हो कर वाघमती नदी प्रवाहित है, कहते हैं, कि वह गड्ढा मञ्जुश्रीने इस प्रकार बनाया था। मञ्जुश्रीका उपाख्यान यदि छोड़ दें, तो भी यह स्थान एक समय जलमय था और प्राकृतिक परिवर्त्तनसे बहुत समयके बाद उपत्यकामें परिणत हो गया है, यह विश्वास किया जा सकता है।

उपत्यकाकी नदी।

वाघमती—यह शिवपुरी पर्वतके ऊपर उत्तरकी ओर वाघद्वार नामक स्थानमें एक निर्झरसे उत्पन्न हो कर शिवपुरी और मणिचूड़के मध्य होती हुई शिवपुरी पर्वतके ऊपर गोकर्ण नामक तीर्थस्थानके निकट स्यालमती वा शिवानदीके साथ मिल गई है। इस स्थानसे यह नदी दक्षिणाभिमुखमें प्राचीन बौद्धदेवल केशचैत्यके समीप पहुंच गई है। पीछे गजेश्वरी खादके मध्य होती हुई पशुपतिनाथ देवके प्रायः तीन ओर वेष्टन करके दक्षिण-पश्चिमकी ओर राजधानी काठमण्डूके निकट आई है। काठमण्डू इसके दाहिने किनारे और पाटननगर बाएं किनारे बसा हुआ है। पीछे यह दक्षिणकी ओर एक खाद होती हुई चव्वर नामक प्राचीन नगरके निकट हो कर चन्द्रगिरिपर्वत-मूलमें फैल गई है और वहांसे चम्पादेवी और महाभारतशिखरके मध्य फिरफिङ्ग पर्वतके निम्नस्थ खाद हो कर नैपाल उपत्यकाको छोड़ती हुई चली गई है। यहांके बौद्धोंका कहना है, कि गोकर्णके निकटस्थ खाद, गजेश्वरीखाद, चव्वरके निकटस्थ खाद और फिरफिङ्ग पर्वतके निकटस्थ खाद मञ्जुश्री बोधिसत्त्वकी तलवारके आघातसे उत्पन्न हुआ है। शिवमार्गी नेवार और अन्यान्य हिन्दू उनको उत्पत्तिका विष्णुके प्रति आरोप करते हैं। विष्णुमती घोबिकोला वा रुद्रमती, मनोहरा और हनुमानमती ये चार वाघमतीकी प्रधान उपनदियां हैं। विष्णुमतीका दूसरा नाम कृष्णावती है। यह शिवपुरी पर्वतके दक्षिण बड़े नीलकण्ठ ऊदसे निकल कर विष्णुनाथ नामक ग्रामके निकट पर्वतको छोड़ कर उपत्यकामें प्रवेश करती है। यहांसे यह दक्षिणकी ओर नागार्जुन पर्वतके चारों ओर घूम कर बालाजी और स्वयम्भुनाथ नामक तीर्थस्थानके बाईं ओर होती हुई काठमण्डू नगरके पश्चिमांशमें पहुंच गई है और पीछे नगरसे कुछ निम्न दक्षिण दिशामें वाघमतीके साथ मिलती है। इन दो नदियोंके सङ्गम-स्थान पर बहुतसे मन्दिर हैं और एक बड़ा घाट भी है। यहां शवदाह करना लोग पुण्यप्रद समझते हैं, इस कारण दूर दूर स्थानोंसे आ कर लोग यहां शवदाह करते हैं। वाघमती और विष्णुमतीको उत्पत्तिके विषयमें एक उपाख्यान है। बौद्धोंका कहना है, कि जब क्रकुच्छन्द नामक चतुर्थ मानव बुद्ध तीर्थदर्शनके उद्देश्यसे नैपालके शिवपुरीपर्वत पर आये, उस समय उनके कुछ अनुचरोंने उस स्थानको शोभा देख कर बौद्धधर्म ग्रहण करना चाहा और वहां चिरकाल तक रहनेकी इच्छा प्रकट की। उनके अभिषेकके लिये क्रकुच्छन्दको कहीं भी जल न मिला। तब देवशक्तिकी आराधना करके उन्होंने एक पर्वतगात्रमें अपना वृद्धाङ्गुष्ठ प्रवेश कर दिया। उस छिद्र हो कर देववलसे एक निर्झरणी निकली। उसी निर्झरको धारा वारिमती वा वाघमती नामसे प्रसिद्ध है। तदनन्तर उसी जलसे अभिषेक हुआ। नव बौद्धोंके मुण्डनके बाद स्तूपोकृत केशराशि प्रस्तरीभूत हो गई। यही वर्त्तमान बौद्धतीर्थ केशचैत्य कहाता है। उन सब केशोंका कुछ अंश वायुसे उड़ कर जहां चला गया, वहां भी फिर इसी तरहकी जलधारा वहिर्गत हुई। वही धारा केशवती वा विष्णुमती नदी कहलाती है। फिर सुवर्णमती और वदरी नामक विष्णुमतीको दो उपनदियां हैं। घोबिकोला वा रुद्रमती शिवपुरी पर्वतसे निकल कर काठमण्डूसे डेढ़ कोस पूरब वाघमतीमें मिल गई है। इसके किनारे हरिगांव और देवपाटन अवस्थित है। मनोहरा वा मनोमती मणिचूड़ पर्वतसे निकल कर पाटन नगरके सामने वाघमतीनदीमें गिरी है।

हनुमानमती महादेवपोखरा पर्वतके एक ऊदसे उत्पन्न हो कर भाटगांवनगरके दक्षिण होती हुई कंसावती नदीके साथ मिल गई है।

कृषि।

नेपालकी खेतीबारी और उद्भिज्जादिकी उत्पत्ति तथा वृद्धि वहांके जलवायु और हेमन्तादि षड़्ऋतुके ऊपर निर्भर करती है। इस राज्यके सभी स्थानोंके समतल नहीं होनेसे तथा जगह जगह उपत्यकादिके ऊंची और नीची रहनेसे यहांकी प्रकृतिका विलक्षण विपर्यय देखा जाता है। हिमालयके क्रमनिम्न प्रदेशोंमें तथा नेपालकी पार्वतीय उपत्यकादिमें सुमिष्टफल और आहारोपयोगी शाक सब्जी प्रचुर परिमाणमें उपजती है। जलवायुके गुणानुसार पर्वतांशके किसी किसी स्थानमें बड़ा बड़ा बांस और बेंतका पेड़ देखनेमें आता है। किन्तु अन्यान्य अंशोंमें केवल सुन्दरीवृक्ष और देवदारुके पेड़की ही संख्या अधिक है। इसके अलावा कहीं कहीं अखरोट, शहतूत, गोरीफल (Rashbery) आदि सुमिष्टफलोंके दरख्त भी नजर आते हैं। छोटे छोटे पहाड़ोंकी उपत्यका भूमिमें जहां ग्रीष्मकी प्रखरता अधिक है वहां सुपक्क अनानास और ईख तथा दूसरे दूसरे स्थानोंमें जौ, गेहूं, कंगनी आदिकी विस्तृत खेती होती है। यहां शीतकालमें कमलानीबू उत्पन्न होता है। पर्वतादि उच्च भूमि पर वर्षाकालमें खूब वृष्टि होती है जिससे फलादि नष्ट हो जाया करते हैं।

वर्षाकालमें पंक पड़ जानेसे ग्रीष्मऋतुमें धान जुन्दरी तथा अन्यान्य फसल अच्छी लगती है। यहां बहुत-सी जमीन ऐसी हैं जिनमें ऋतुभेदसे वर्ष भरमें तीन बार फसल लगती है। शीतकालमें जिस जमीनमें गेहूँ, जौ, सरसों आदि फसल लगती है, वसन्तके प्रारम्भमें उस जमीनमें पुनः मूली, लहसुन, आलू आदि तथा वर्षाकालमें धान, मकई आदि उपजाते हैं। ढालुवां पर्वत जहां काट कर समतल बना दिया गया है, वहां मटर, उरद, चना, गेहूं और जौ आदि भी नजर आते हैं। यहां सरसों, मञ्जिष्ठा, ईख और इलायची प्रचुर उत्पन्न होती है। जहां इलायचीका पेड़ लगता है, वहां अधिक जलका रहना आवश्यक है, नहीं तो फसल उत्तम नहीं होती।

चावल ही नेपालवासियोंका खाद्य है। इस कारण राज्यके सभी स्थानोंमें एक एक तरहके धानकी खेती होती है। एतद्भिन्न नेपालमें और भी नाना प्रकारके धानकी खेती होती है जिसे नेपाली 'घिया' कहते हैं। इन सब धानोंको परिपक्व होनेमें ग्रीष्म वा वर्षाकी जरूरत नहीं पड़ती। पर्वतके ऊपर खेत जोतनेके लिये हल वा अन्य औजारकी आवश्यकता नहीं होती। वे लोग कायिक परिश्रमसे हस्त द्वारा ही जमीनको शस्यवपनोपयोगी बना लेते हैं। जमीनकी उर्वरता बढ़ानेके लिये उसमें गोबर, एक प्रकारकी काली मट्टी तथा घरके कूड़ा-करकट आदि डाल देते हैं। नेपालके तराई नामक स्थानमें चावल, अफीम, सफेद सरसों, तीसी, तमाकू आदि उपजते हैं। इस प्रदेशके चारों ओर खाल और पर्वतनिःसृत छोटी छोटी स्रोतस्विनी बहती है जिससे यहां कभी जलाभाव नहीं होता।

इस तराई प्रदेशके वनविभागमें शाल, श्वेतशाल, पियासाल, खैर, शीशम, कृष्णकाठ, वट और भाव्र नामक एक प्रकारका पेड़, रुई, डूमर और गोंद उत्पन्नकारी वृक्ष पाए जाते हैं।

पर्वतके उपरिस्थ वनमें सुन्दरी, तिलपत्र, मन्दार, पहाड़ी कटहल, कञ्जरू, तालीसपत्र, मण्डल, शृङ्गाट, अखरोट, चम्पक, शिरीष, देवदारु और भाऊ आदि वृक्ष ही प्रधान हैं। इसके अलावा खाद्योपयोगी मेवा तथा सुगन्धविशिष्ट पुष्पवृक्ष भी देखनेमें आते हैं।

जमीनसे कृषककी सहायतासे नाना जातीय शस्य और उद्भिज्जादि उत्पन्न होने पर भी यहांकी मट्टीमें नाना प्रकारके कन्द, औषधलता आदि पाई जाती हैं। यहांके तिक्तास्वादयुक्त और सुगन्धविशिष्ट वृक्षादिके निर्याससे नाना प्रकारका रंग निकाला जाता है। 'जीया' नामक एक प्रकारकी लतासे चरस उत्पन्न होता है। इसका सेवन करनेसे नशा आता है। हम लोगोंके देशमें इसे नेपालीचरस कहते हैं। नेवारी लोग उक्त जीयाके पौधेकी नीरस पत्तियोंको कूट कर उससे सूत सरीखा एक प्रकारका पदार्थ निकालते हैं जिससे एक तरहका सूती कपड़ा तैयार होता है।

भूतत्त्व।

नेपालकी पार्वतीय अंशसे जो सब मूल्यवान् पत्थर और धातु पाई गई हैं, उनसे अच्छी तरह अनुमान

किया जाता है, कि नेपालके किसी किसी अंशमें सुवर्ण-खान विद्यमान हैं। जमीनके कुछ नीचेमें ताम्र, लोह आदिकी खान देखी गई हैं। ताम्र उत्कृष्ट होने पर भी यहांका लोह अन्यान्य स्थानोंसे निकृष्ट होता है। यहां गन्धक प्रचुर परिमाणमें मिलती है और नाना स्थानोंमें भेजी जाती है।

नेपालमें जो सब विभिन्न प्रकारके मिश्रित और अपरिष्कृत खनिज पदार्थ पाए जाते हैं, उनकी विशेष आलोचना करनेसे जाना जाता है, कि उन सब मिश्रित पदार्थोंमें अनेक मूल्यवान् अंश है। इसके अलावा यहां नाना जातीय प्रस्तर देखनेमें आते हैं जिनमेंसे मारबल, स्लेट, चूनापत्थर और लाल तथा पीतवर्णके पत्थर ही उल्लेखयोग्य हैं।

गोर्खाप्रदेशके निकट एक प्रकारका स्वच्छ स्फटिक (Crystal) पत्थर पाया जाता है। अच्छी तरह काटनेसे वह हीरेके जैसा चकमक करता है। यहांकी मट्टी इतनी उत्कृष्ट है, कि कुछ कालके बाद वह सिमेण्टकी तरह दृढ़ हो जाती है।

वाणिज्य।

नेपालराज्यके वाणिज्यके विषयमें कुछ कहनेके पहले यह देखना होगा, कि किस किस राज्यके साथ नेपालवासियोंके व्यवसायके सम्बन्धमें विशेष संस्रव है। हिमालयपर्वतके अपरपारस्थित तिब्बतदेश और दक्षिणस्थ अङ्गरेजाधिकृत भारतसाम्राज्य, इन दोनोंके साथ उनकी विशेष घनिष्ठता देखी जाती है। तिब्बतदेश जानेमें बहुतसे गिरिपथ हैं सही, लेकिन वे हमेशा तुषारसे ढके रहते हैं। केवल काठमण्डू नगरके उत्तर-पूर्व हो कर जो रास्ता कोशी नदीकी उपनदीके किनारेसे सीमान्तवर्त्ती नीलम् वा कुटी नामक अड्डा तक चला गया है, वह प्रायः १४००० फुट ऊंचेमें है और दूसरा रास्ता जो ८००० फुट ऊंचा है वह गण्डकनदीके पूर्वाभिमुखी स्रोतको अतिवाहन कर सीमान्तमें किरङ्ग ग्रामके पार्श्व हो कर ताङम् ग्रामके सन्निकट सानूपूनदीके किनारे तक चला गया है। इन्हीं दो पथ हो कर नेवारी लोग साधारणतः तिब्बतराज्यमें जाते आते हैं। पण्यद्रव्य ले कर जानेमें कोई विशेष सवारी नहीं मिलती। एकमात्र पार्वतीय बकरे और भेड़की पीठ पर माल लाद कर उक्त राहसे जाते हैं। घोड़े वा बैलकी गाड़ी ले कर ऐसे दुर्गम पथमें जाना मुश्किल है। तिब्बतसे पशमीना शाल और एक प्रकारका पशम-निर्मित मोटा कपड़ा, लवण, सोहागा, मृगनाभि, चामर, हरिताल, पारा, स्वर्णरेणु, सुरमा, मंजीठ, चरस, नाना प्रकारकी औषधियां और शुष्कफलादि नेपाल तथा आस पासके अङ्गरेजाधिकृत राज्योंमें लाये जाते हैं। फिर यहांसे तांबे, पीतल, लोहे, कांसे, विलायती कपड़े, लोहेके द्रव्यादि, भारतीत्पन्न सूती कपड़े, सुगन्धित मसाले, तमाकू, सुपारी, पान, नाना धातु और मूल्यवान पत्थरोंकी तिब्बतमें रफ्तनी होती है।

नेपाली भारतके साथ जो व्यवसाय-वाणिज्य करते हैं, वह प्रायः नेपालसीमान्तसे ७०० मीलके अन्तर्भुक्त सभी हाट बाजारोंमें ही; उसके बाहर नहीं। नेपालसे भारतके नाना स्थानोंमें सब पण्यद्रव्योंकी रफ्तनी होती है, उनके ऊपर नेपालराज्यने कर लगा दिया है। इसी प्रकार भारतसे जो पदार्थ नेपाल लाये जाते हैं, उन पर भी निर्दिष्ट कर है। इस तरहका संग्रहीत कर राजकोषका होता है। राजाके आदेशसे देशवासियोंकी शौकीनता और विलासिताके लिए जो द्रव्य नेपालमें लाए जाते हैं, उन पर अधिक शुल्क निर्धारित है। किन्तु स्वदेशीयके आवश्यकानुरोधसे जो सब वस्तुएं आमदनी होती हैं उन पर राजा बहुत कम शुल्क लगाते हैं। ये सब शुल्क वसूल करनेके लिए प्रत्येक हाटमें और भिन्न देशमें ले जानेमें प्रत्येक पथ पर एक एक कोतघर स्थापित है। कभी कभी इस कोतघरका कार्य चलानेके लिए वह ठेकेदार वा महाजनको नीलाममें दिया जाता है। तमाकू, इलायची, लवण, पैसा, हस्तिदन्त और चकोरकाठ खास नेपाल-गवर्मेण्टका होता है। इस व्यवसायको चलानेके लिए राजपरिवारभुक्त अथवा राजकृपाप्राप्त कोई व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं। एतद्भिन्न सभी द्रव्य दूसरे दूसरे लोगोंके अधिकारमें है। किन्तु शुल्क देनेको सभी बाध्य हैं। यह शुल्क द्रव्यके गुरुत्व वा संख्यानुसार लिया जाता है।

काठमण्डूसे जिस राह हो कर नेपालजात द्रव्यसमूह

भारतवर्षमें लाया जाता है, वह राह सिगौलीसे राजधानी काठमण्डूकी ओर पहले नेपाल-सीमान्तमें रक्सौल ग्रामको पार कर सम्भावासा, हतोरा, भीमफेड़ी और थानकोट नगर होती हुई राजधानीको चली गई है। पहले इस राह हो कर चम्पारण जिलेके मध्य-पटना नगरमें आते थे, किन्तु वर्त्तमान समयमें सिगौली तक रेलपथ हो जानेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। इन सब सुविधाओंके रहते भी यहांके दुर्गमपथ हो कर द्रव्यादि ले जानेमें बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ती हैं। कहीं बैल, कहीं घोड़े और कहीं कुलीकी सहायतासे माल पहुंचाया जाता है। सिगौलीसे काठमण्डू तक जो रास्ता गया है, वह प्रायः ८२ मील लम्बा है। स्थानीय नदी वा स्रोतादि हो कर केवल शाल और अन्यान्य चकोरकाष्ठ बहा कर ले जाते हैं।

चावल तथा दूसरा दूसरा अनाज, तैलकरबीज, घृत, टट्टू गो-मेषादि; शिकारीके लिए शिकरपक्षी, मैना, शाल आदिका चकोर, अफीम, मृगनाभि, चिरायता, सोहागा, मञ्जिष्ठा, नारियलका तेल, खैर, पाट, चर्म, छागका लोम, सोंठ, इलायची, मिर्च, हल्दी और चामरके लिये चामरी गौकी दुम आदि नाना द्रव्य भारतवर्षके प्रधान प्रधान नगरोंमें आमदनी होती हैं और यहांसे रुई, रुईके सूते, सूती कपड़े, पशमी कपड़े, शाल, फ्लानेल, रेशम, किंखाप वा बूटेदार चिकने कपड़े, कारुकार्ययुक्त झालर वा जरीके पाड़, चीनी, मिर्च आदि मसाले, नील, तमाकू, सुपारी, सिन्दूर, तैल, लाख, लवण, बारीक चावल, महिष, छागल, भेड़, ताम्र, पीतलके अलङ्कार, माला, आरसी, शिकारके लिये बन्दूक और बारूद तथा दार्जिलिङ्ग और कुमायुनसे 'चाय' आदि द्रव्योंकी नेपालमें रफ्तनी होती है। जिस तरह चम्पारण हो कर पटनानगर जानेका रास्ता है, उसी तरह दरभङ्गा जिलेके मिर्जापुरनगरमें तथा पुर्णिया जिलेके मोरगञ्जनगरमें नेपालसे द्रव्यादि ले कर जानेके लिये भी दो रास्ते गये हैं।

वाणिज्यार्थ उत्पन्न द्रव्य।

नेपालकी सभी जातियोंमें नेवारगण बड़े परिश्रमी होते। स्त्री-पुरुष दोनों ही कठिनसे कठिन परिश्रम कर सकते हैं। नेवारी स्त्री और पर्वतवासी मगरजातीय पुरुषगण सूती कपड़े बुननेमें विशेष पटु हैं। ये साधारणतः अपने पहननेके लायक एक प्रकारके मोटे कपड़े तैयार करते हैं और अन्यान्य देशोंमें रफ्तनीके लिये एक दूसरा वस्त्र बुनते हैं। गरीब लोगोंके लिए पशमका कम्बल प्रस्तुत होता है जिसे भुटियागण बुनते हैं। नेपाल राजगण और अन्यान्य सम्भ्रान्त व्यक्तिगण जो सब पोशाक और परिच्छद पहनते हैं, वे यूरोप आदि नाना स्थानोंसे यहां लाये जाते हैं। स्वदेशजात मोटे कपड़ेके ऊपर उनकी विशेष स्पृहा देखी नहीं जाती।

नेवारी पुरुषगण लोहे, तांबे, पीतल और कांसेसे नाना प्रकारके तैजसादि निर्माण करते हैं। पाटन और भाटगांवनगरमें इन सब धातुओंका विस्तृत कारबार है। यहां बहुत अच्छे अच्छे घंटे तैयार होते हैं। ये लोग सेकू पेड़की छालसे मोटा कागज बनाते हैं। पहले छिलकेको किसी बरतनमें रख गरम जलमें सिद्ध करते हैं। सिद्ध हो जाने पर उसे एक खलमें कूटते हैं। बाद उसे जलमें घोल कर छाननीसे छान लेते हैं। ऐसा करनेसे जो पदार्थ कपड़े पर जम जाता है उसे एक चौरस काठके ऊपर सूखने देते हैं। अच्छी तरह सूख जाने पर उसे चिकने काठकी सहायतासे घिस कर चिकना बनाते हैं। कालीनदीके तीरवर्त्ती भूटिया लोग इस प्रकारका कागज तैयार करते हैं। काठमण्डूमें तीन सेर कागज सत्तरह आनेमें बिकता है। कोई चीज बांधनेके लिए यह कागज बड़े कामका और बहुत चीमड़ होता है।

नेपाली चावल और अन्यान्य शस्यसे सुराका सार, गेहूं, महुएके फूल और चावलसे मद्य तैयार कर बाजारमें बेचते हैं। वे लोग इस मद्यको 'रक्सी' कहते हैं। यह सुमिष्ट होता है और अन्यान्य मद्यकी तरह इसमें तीव्र मादकता शक्ति नहीं रहती।

प्रचलित मुद्रा।

नेपालमें फिलहाल जो मुद्रा प्रचलित है तथा समय समय पर जो स्वर्ण, रौप्य और ताम्रमुद्रा प्रचलित थी एवं अङ्गरेजाधिकृत भारतवर्षमें उन सब मुद्राओंका क्या मोल है, उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

पूर्व प्रचलित मुद्रा	उसका दाम
स्वर्ण	
अशरफी	२०) रु०
पाटले	८)) आ०
सूका	४/) ८ पाई
सूकी	२/) ४ पाई
आना	१) ८ पाई
दाम	१२ पाई
रौप्यमुद्रा	
रूपी	॥/) ४ पाई
मोहर	।/) ८ पाई
सूका	/) ४ पाई
सूकी	) ८ पाई
आना	ऽ१०
दाम	ऽ५
ताम्रमुद्रा	
पैसा	१२ पाई
दाम	॥ आध पाई

अभी नेपालमें जो मुद्रा प्रचलित है उसका नाम मोहर है। यह मोहर हम लोगोंके देशके छः आने आठ पाईके बराबर होता है। किन्तु इस प्रकारकी मुद्राका अब प्रचार नहीं है, केवल मात्र गणनाके लिये आवश्यक है। फिलहाल नेपालमें जो मुद्रा प्रचलित है, वह इस प्रकार है—

४ दाम = १ पैसा
४ पैसा = १ आना
१६ आना = १ मोहरीरूपी

इसके अलावा यहां और भी तीन प्रकारकी ताम्रमुद्रा प्रचलित देखी जाती है। अंगरेजाधिकृत बराइचसे चम्पारण तकके स्थानोंमें जो चौका ताम्रमुद्रा देखी जाती है वह भुटिया वा गोरखपुरी पैसा नामसे परिचित है। इस प्रकारके ७५ पैसे हम लोगोंके देशके एक रुपयेके बराबर माने गये हैं। किन्तु नेपाली उस पैसेसे इतने अभ्यस्त हैं, कि इस तरहके ८ पैसेकी जगह वे लोग अंगरेजी ८ पैसेसे काम नहीं लेते। ये सब पैसे नेपालराज्यके पल्पा जिलेके अन्तर्गत तानसेन ग्रामकी टकसालमें बनाए जाते हैं।

इस राज्यके पूर्व और उत्तरपूर्वमें एक प्रकारका काला सिक्का प्रचलित है जो लोहिया-पैसा कहलाता है। इस सिक्केमें लोहा मिला रहता है, इस कारण इसका दाम भी कम है। इस प्रकारके १०७ पैसे हम लोगोंके देशके एक रुपयेके बराबर हो सकते हैं। लोहिया पैसा बनानेकी पूर्वदिक्स्थ पर्वतश्रेणीमें अनेक टकसाल हैं जिनमेंसे खिका-मैकछा ग्रामकी टकसाला ही उल्लेखयोग्य है। आज भी चम्पारण और पूर्णिया हो कर ये सब मुद्राएं उत्तरबिहारमें आती हैं।

१८६५ ई०में काठमण्डू उपत्यकामें जो नया पतला तांबेका सिक्का प्रचलित हुआ है, उसका आकार गोल है वह कलकी सहायतासे बनाया जाता है और उसके ऊपर राजाका नाम भी अङ्कित है। इस नूतन मुद्राका प्रचार हो जानेसे राजधानी भरमें लोहिया-मुद्राका प्रचार बिलकुल उठ गया है। इस मुद्राको ढालनेके लिये काठमण्डू नगरमें स्वतन्त्र टकसाला है।

पूर्व समयमें नेपालराज्यमें जो रौप्यमुद्रा प्रचलित थी, वह वर्त्तमानकालकी मुद्रासे कहीं बड़ी थी। इस राज्यके दक्षिणस्थ सभी स्थानोंमें नेपाली मोहरके बदले अंगरेजी रुपयेका प्रचार हो गया है। वहां अंगरेज प्रचलित नोटका भी आदर होता है। काठमण्डू शहरमें इस नोटका विशेष आदर है, कारण रुपयेके लेनदेनमें नोट रहनेसे उससे सैकड़े पीछे कुछ लाभ मिलता है।

फिलहाल नेपालमें जो रौप्यमुद्रा प्रचलित है, उसके एक पृष्ठ पर राजा सुरेन्द्रविक्रमशाहदेव और त्रिशूल तथा दूसरे पृष्ठ पर गोरखनाथ और बोचसें श्रीभवानी तथा त्रिपत्र अङ्कित है। बेण्डल साहबने लिखा है, कि नेपालमें प्राप्त ७वीं शताब्दीकी मुद्रासे स्थानीय प्राचीन इतिहासतत्त्वके अनेक विषय जाने जाते हैं *। किन्तु १६वीं शताब्दीके परवर्त्तीकालकी मुद्रासे ही ऐतिहासिक समय तथा राजाओंके नामका निर्णय करनेमें विशेष सुविधा हुई है †।

* Zeitschrift der deutschen morgenlaudischen Gesellschaft 1882, p. 651.

† Bendall's Catalogue of Buddhist Manuscripts Cambridge, Intro. XI.

तौल और वजन।

इस समय स्वर्ण, रौप्य, अन्यान्य धातु, शुष्क और जलीय पदार्थका वजन तथा उसका परिमाण निर्धारण करनेके लिये जो सब बटखरे वा माप प्रचलित है, वह क्रमशः नीचे दिया जाता है।

स्वर्ण	रौप्य
१० रत्ती वा लाल = १ माशा	८ रत्ती वा लाल = १ माशा
१० माशा = १ तोला	१२ माशा = १ तोला

ताम्र और पित्तलादि धातुकी माप।

४॥ तोला	=	१	कुणवा
४ कुणवा	=	१	टुकणी वा पीव
४ टुकणी	=	१	सेर

३ सेर = १ धारणी, एक धारणीका वजन = अङ्गरेजी एवर्डोपाईज ५ पौण्ड।

शुष्क द्रव्यादिकी माप	तरल पदार्थोदिका परिमाण
२ मन = १ कुड़वा	४ दीया = १ चौथाई।
४ कुड़वा = १ पाथी	२ चौथा = आधटुकणी।
२० पाथी = १मुड़ी	२ आधटुकणी = १ टुकणी
१ पाथी = अङ्गरेजी एभर्डोपाईज ८ पौण्ड	४ टुकणी = १कुड़वा = १ सेर
	४ कुड़वा = १ पाथी।

समयनिरूपण।

वर्त्तमानकालमें केवल धनी लोग ही यूरोपसे मंगाये हुए घटिकायन्त्रकी सहायतासे समयादिका निरूपण करते हैं, पर और लोग पूर्वकालसे भारतवासीका अनुकरण कर समयका जो निरूपण करते आए हैं, वह इस प्रकार है,—

६० विपल = १ पल

६० पल = १ घड़ी = २४ मिनट।

६० घड़ो = १ दिन वा २४ घण्टा

प्रभातकालमें जब हाथके रोए अथवा छतादिकी छतके ऊपरकी कोठरी साफ साफ गिनी जाती है, ठीक उसी समयसे इन लोगोंका दिन शुरू होता है।

प्राचीन समयमें नेपाली एक तांबेकी हंडोकी पेंदोमें छेद करके उसे किसी एक पात्रस्थित जलके ऊपर बहा देते थे। हंडीका छेद इस प्रकार बना रहता था, कि तलदेशस्थ जल धीरे धीरे हंडोमें प्रवेश करता और हंडीको पात्रस्थ जलके मध्य डूबनेमें एक घड़ी समय लगता था। इस प्रकार प्रत्येक वार पूरण और निमज्जन ले कर एक एक घड़ी समय निरूपित होता था। हम लोगोंके देशमें पूजादिके समय कांसेके बने हुए जिस गोलाकार घंटेका व्यवहार होता है, ठीक उसी तरहके घंटेमें वे लोग घड़ोके निरूपण हो जानेके वाद एक दो करके चोट देते थे ताकि जनसाधारणको समयका ज्ञान हो जाय। आज कल हम लोगोंके देशमें भी धनी लोगोंके यहां उसी तरहके घंटेका व्यवहार होते देखा जाता है। नेपालियोंमें दिन रात चार भागोंमें विभक्त है। पहला प्रभातसे पूर्वाह्नकाल तक, दूसरा पूर्वाह्नसे सन्ध्याकाल तक, तीसरा सन्ध्यासे दो पहर रात तक और चौथा दोपहर रातसे फिर दूसरे दिन प्रभातकाल तक। किन्तु हम लोगोंके देशमें दिवारात दो ही भागोंमें विभक्त है,—यथा दोपहर रातसे दोपहर दिन अर्थात् १२ बजे तक और १से फिर रातके १२ बजे तक।

जाति-तत्त्व

पर्वतश्रेणी द्वारा यह देश बहुधा विच्छिन्न होने पर भी राज्यमें अनेक उपत्यकाओंकी सृष्टि हुई है। इन सब उपत्यकाभूमि पर नाना प्रकारकी पार्वतीय जातियोंका वास देखा जाता है। वे लोग यहांके आदिम अधिवासी माने जाते हैं। कालोनदीके पूर्वस्थित उपत्यकाओं पर जिन प्रधान प्रधान जातियोंका वास है, उन्होंके नाम उल्लेखयोग्य हैं। (१) मगरजाति- भेरी और मत्स्येन्द्री वा मत्स्यांग्री दोनों नदियोंके मध्यवर्ती पर्वतमय प्रदेशमें इनका वास है। ये लोग बड़े साहसी हैं और सैनिकवृत्ति द्वारा जीविकानिर्वाह करते हैं। २ गुरुङ्गजाति—उक्त मगरजातिकी वासभूमिसे हिमालयके तुषारावृत स्थान पर्यन्त पर्वतखण्ड पर इनका वास है। (३) नेवार जाति—काठमण्डू उपत्यकाके 'नै' नामक प्रदेशके आदिम अधिवासी। नेपालके कृषि आदि सभी कार्य इन्होंसे सम्पन्न होते हैं सही, लेकिन ये हो लोग धनहीन भी है। इस उपत्यकाभूमिके पूर्वदिकस्थ पार्वत्य भूमिमें (४) लिम्बू वा याकथुम्बा और (५)

किराती वा खोम्बो जातिका वास है। (६) लेपचा-जाति—ये लोग सिक्किम और दार्जिलिङ्ग विभागके पश्चिमपार्श्वमें तथा नेपालके पूर्व सीमान्तमें वास करते हैं। (७) भूटिया-जाति—लिम्बु, किराती और लेपचा-जातिकी वासभूमिके उत्तरस्थ पर्वतकी उपत्यकादिमें तथा तिब्बतसीमान्त तकके स्थानोंमें इस जातिका वास है। भूटियाओंके 'लो' नामक स्थानवासी लोकपा और तत्पार्श्ववर्त्ती जाति दुकपा कहलाती है। हिमालयके दूसरे पार तिब्बतके निकटवर्त्ती देशोंमें भूटिया जातिके वासभूमिमें रंबो, सियेना वा काठभूटिया, पलुसेन, यासेन, सर्प आदि पार्वतीय जातियोंका वास है। एतद्भिन्न निम्नतर उपत्यकादिमें तथा नेपालकी तराई प्रदेशमें (८) कुशवार, (९) देनवार और (१०) हायु-बोटिया, दूरे वा दहरी, मासु, बोक्सा, चेपां, कुसुन्दा, थारु आदि जातियोंका वास है। एतदंतर्गत (११) धूनवार और (१२) मूर्मि वा तमर नामक और भी दो विभिन्न जातियां हैं।

काली वा सारदानदीके पश्चिम कुमायुन प्रदेशमें १२वीं शताब्दीको राजपूतानेसे गोर्खाजाति यहां आ कर वास करती है। इन लोगोंमें जो ब्राह्मण हैं उनकी उपाधि पांड़े और उपाध्याय तथा क्षत्रियोंकी उपाधि खुश और थप्पा है। अभी नेपालकी समस्त जातियोंके ऊपर इन्हींका आधिपत्य है। गोर्खा देखो।

सारे नेपालकी जनसंख्या अङ्गरेजराजके अनुमानसे चालीस लाखसे अधिक नहीं होगी। किन्तु नेपाली-राजदरबारकी तालिकासे जाना जाता है कि यहांकी जनसंख्या बावन लाखसे छप्पन लाख तक है। नेपालमें किसी समय मरदुमशुमारी नहीं होनेसे प्रकृत जन-संख्याका निरूपण करना बहुत कठिन है।

पूर्वोक्त आदिमजातिके रहते भी यहां बोधनाथ और स्वयम्भुनाथके मन्दिरके निकट भूटान और तिब्बतवासी जातियोंका वास है। काठमण्डू उपत्यकामें काश्मीरी और इराकी मुसलमान वणिक् सम्प्रदायका वास है। इन लोगोंने बहुत पहलेसे ही यहां उपनिवेश स्थापन कर रखा है।

नेपालमें असंख्य देवदेवियोंके मन्दिर रहनेके कारण ब्राह्मण और पुरोहितकी संख्या भी बढ़ गई है। इसके अलावा प्रत्येक गृहस्थके एक स्वतन्त्र पुरोहित रहता है। ये सब पुरोहित धर्मयाजक और गुरु अपने अपने शिष्य वा यजमानसे प्रदत्त दक्षिणा, क्रियालब्ध द्रव्यादि और ब्रह्मोत्तर जमीनसे ही अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इन लोगोंमें जो राजगुरु हैं, वे ही सबसे अधिक माननीय हैं। राज्य भरमें वे एक क्षमतापन्न व्यक्ति माने जाते हैं, उनका वाक्य अमान्य करनेकी किसीमें क्षमता नहीं है। नेपालराज प्रदत्त जमीनके उपस्वत्वभोगके सिवा वे लोग देशवासियोंके मध्य जातिगत किसी दोष-की मीमांसा करके भी प्रचुर अर्थ उपार्जन करते हैं। नेपालीगण ब्राह्मणकी विशेष भक्ति करते हैं। किसी प्रकारकी पीड़ा वा हठात् विपद्के उपस्थित होने पर ब्राह्मण-भोजनका नियम भी प्रचलित है।

ज्ञानवान् ब्राह्मणके सिवा यहां दैवज्ञोंका भी वास है। यद्यपि कोई कोई पुरोहिताई करते हैं, तो भी दैवज्ञवृत्ति ही उनका जातीय व्यवसाय है। भविष्यत् बातके ऊपर नेपालियोंकी विशेष आस्था है। यहां तक कि एक बिन्दु औषधसेवनसे युद्धयात्रा आदि दुरूह कार्य पर्यन्त जब तक दैवज्ञ शुभकालका निर्णय नहीं कर देते, तब तक वे किसी काममें हाथ नहीं डालते।

वैद्यजाति—आयुर्वेद शास्त्रकी आलोचना करना ही इनका व्यवसाय है। नेपाली चाहे जिस अवस्थामें क्यों न हो, प्रत्येक परिवारमें एक एक वैद्य नियुक्त रहता ही है। यहां जनसाधारणके उपकारार्थ कोई औषधालय नहीं है।

जो लेखक वा हिसाब-किताबका काम करते हैं वे नेवारजातिगत होने पर भी वर्त्तमानकालमें स्वतन्त्र श्रेणीभुक्त हुए हैं।

यहां व्यवहार-जीवका विशेष आदर नहीं है। पहले-की तरह अब अराजकता दीख नहीं पड़ती। सर जङ्ग-बहादुरके सुशासनसे नेपालियोंको वर्त्तमान समयमें कुकार्य करनेका साहस नहीं होता। यहांके जो प्रधान विचारपति हैं उनका मासिक वेतन दो सौ रुपयेसे अधिक नहीं है। इस कारण विचारकको स्वपक्ष समर्थनके लिये प्रतिवादिगण रिश्वत दे कर अपना काम निकाल लेते हैं।

बहुत पहले बङ्गालदेशके साथ नेपालका संस्रव था जिसका प्रकृत इतिहास यथास्थानमें दिया गया है। उसी समयसे नेपालमें बङ्गालियोंका व्यवसाय आरम्भ हुआ था। वे सब पूर्वतन बङ्गाली धीरे धीरे नेपाली आचार-व्यवहारका अनुकरण कर तथा वहांके प्रचलित हिन्दू, बौद्ध और पर्वतवासियोंकी आदि धर्मप्रथाके अनुवर्त्ती हो कर नेपालराज्यवासियोंमें परिणित हो गए हैं। वे लोग धर्मप्रचारके उद्देशसे वा अन्य किसी कारण वश स्वदेशसे विताड़ित हो कर अथवा वाणिज्यादि कार्यव्यपदेशसे इस पार्वत्य-प्रदेशसमूहमें आ उपस्थित हुए, इसमें कोई सन्देह नहीं।

पूर्वोल्लिखित जातियोंके अतिरिक्त नेपालमें जगह जगह और भी कितनी जातियोंका वास देखा जाता है। काठ-भूटिया जातिके वासस्थानके निकटवर्त्ती पर्वतमाला पर थकसिया और पकोया नामक दो जातियां रहती हैं। उनमें एक दूसरेके साथ सखाभाव है। नेपालमें जगह जगह पहि वा पधि, वायु वा कायु, खश वा खशिया कोलि, डोम, राभी, हरी, गड़वाली, कुनेत, दोगड़ा, कक्क, बब्ब, गक्कर, दर्दु और टूंबर तथा दक्षिण भागमें नेपालके तराई-प्रदेशके समीप तथा मध्यभागमें कोच, धीदो, धिमाल, कीचक, पल, कुम्स, दहि वा दरि बोधपा और अवलिया-जातिका वास है। इस अवलिया जातिके मध्य और भी कितने थाक हैं, यथा—गरी टोलखुली, बतर वा बोर, कुदो, हाजङ्ग, धनुक, मरहा, अमात्, हैब्रात्, यामि प्रभृति।

जिन सब प्रधान प्रधान जातियोंका विषय पहले लिखा गया है। उनमेंसे जातिगत व्यवसायसे जिस जिस सम्प्रदायने विशिष्ट आख्या लाभ की है तथा जिस व्यवसाय के अभिधानसे जिस थाककी उत्पत्ति हुई है उसकी एक तालिका नीचे दी जाती है।

चुनारा, सार्कि (चमकार, चमार), कामी (कमार, बढ़ई) सोनार (स्वर्णकार), गाइन (वाद्यकर और गायन), भानर (गायक, इन लोगोंकी स्त्रियां वेश्या-वृत्ति करती हैं), दमाई (दरजी), आगरी (खनन कारी), कुम्हल और किखरि (कुम्भकार), पो (डाम, ये लोग जल्लादका काम करते हैं), कुलु (चमकार), नाय (कसाई), चमाखल (धांगड़ जो मैला फेंकता है), डोङ्ग वा युगी (वाद्यकर सम्प्रदाय), को (कमार, बढ़ई), धुसी (धातुशोधनकारी), थव (स्थपति), बाल्लि (कृषक), नौ (नापित), कुमा (कुम्भकार), सङ्गत (धोबी) तह्टि (दरी आदिका बनानेवाला), गथा (माली), सावो (जोंक लगा कर लोहू निकालने-वाला), छिप्पि (रंगरेज), सिकमी, दकमी (गृहादि-निर्माता, राजमिस्त्री), लोहोङ्ककमि (पत्थरकटा)।

परिच्छद और अलङ्कार।

नेपालियोंमें गोर्खा जातिने ही वेशभूषा और पट्ट परिपाटयमें अन्यान्य जातियोंसे श्रेष्ठता लाभ की है। ग्रीष्मकालमें यहांके लोग सफेद वा नीलवर्णका सूती कपड़ा बना कर पैजामा, कुर्त्ती वा घुटने तक लम्बा चपकनकी तरह अंगरखा पहनते हैं। शीतकालमें वे लोग पूर्वोक्तरूपसे परिच्छदादि धारण करते हैं सही, किन्तु उसमें रुई भर कर। जो धनी हैं, उनके लिये स्वतन्त्र व्यवस्था है। वे कुर्त्तेके भीतर बकरेके रोएं डाल कर उसे पहनते हैं। मस्तकशोभाके लिये वे लोग शिरस्त्राणका व्यवहार करते जो जरी आदिसे जड़े रहते हैं।

नेवारी लोग साधारणतः कमर तक कपड़ा पहनते हैं और शीत तथा ग्रीष्मके अत्याधिक्यमें मोटे सूते वा पशमीने कपड़ेका व्यवहार करते हैं। इन लोगोंमें जो व्यवसाय द्वारा धनशाली हो गए हैं तथा जो अकसर कार्योपलक्षमें तिब्बतदेश जाया करते हैं, वे चूड़ीदार इजार, चपकनकी तरह लम्बा कुरता और मस्तक पर पशमनिर्मित टोपी पहनते हैं। हरसिद्धि नामक स्थानमें जो सब नेवारी रहते हैं वे स्त्रियोंके घघरेकी तरह पांवकी एंड़ी तक लम्बे कुरतेका व्यवहार करते हैं। इनके मत्थे पर सफेद वा काले कपड़ेकी टोपी रहती है।

नेपालमें और जितनी सब जातियां हैं, उनका पहनावा पूर्वोक्त प्रकारका होता है। पर स्थानविशेषमें कुछ प्रभेद भी देखा जाता है। स्त्रियोंके मध्य वेशभूषामें विशेष वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। सभी जातिकी स्त्रियां एक खण्ड कपड़ा ले कर उसे सामनेके भागमें घंघरेकी तरह कोंचो करके पहनती हैं। इनकी परिधान-

प्रथा बहुत अपूर्व है। सम्मुखभागमें जो कपड़े का कुञ्चित पटिसमूह विलम्बित रहता है, वह प्रायः दोनों पैरको ढकता हुआ मट्टीको छूता है। किन्तु पश्चाद्भागका कपड़ा उतना लटका हुआ नहीं रहता। राजपरिवारभुक्ता रमणियां तथा देशीय धनी व्यक्तिकी स्त्रीकन्यायें घंघरे की तरह कोंचो करके पहननेके लिये जिस कपड़े का व्यवहार करती हैं, उसकी लम्बाई ६०से ८० गज होती है। यह कपड़ा मसलिनकी तरह बारीक होता है। धनीकी स्त्री इस प्रकारका लम्बा कपड़ा पहन कर कभी घूमनेके लिये बाहर नहीं निकलती। धनी वा उच्च कुलोद्भवा स्त्रियां अपने वंशकी मर्यादा और सम्भ्रमकी रक्षाके लिये इस प्रकार असामान्य वेशभूषासे भूषित हो कर जनसमाजमें आदरणीय होती हैं।

सभी स्त्रियां प्रायः चूड़ीदार इत्या लगा हुआ पैजामा और साड़ी पहनती हैं। भारतके समतलक्षेत्र-वासियोंके जैसा वे कभी समूचे शरीरमें कभी कमर तक ही कपड़े-का व्यवहार करती हैं। इनके सिर पर किसी प्रकारका विशेष परिच्छद नहीं रहता। नेवाररमणियां अपने बालोंका सिरके मध्यभागमें जूड़ा बांधती हैं, किन्तु अन्यान्य स्त्रियां सांपकी तरह उसे पीठ पर लटकाये रहती हैं और उस प्रान्त भागको रेशम वा सूतेसे बांध कर बालकी शोभाको बढ़ाती हैं।

नेपाली स्त्रियां अलङ्कारको बहुत पसन्द करती हैं। वे यथाशक्ति अपने अपने अङ्गकी शोभा बढ़ानेके लिये नाना प्रकारके आभरण पहनती हैं। धनीकी स्त्री-कन्या जिस तरह मणिमुक्ताप्रवालादि जड़ित तथा स्वर्ण और रौप्यका अलङ्कार पहनती, उसी तरह पहाड़ी स्त्रियां भी अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पहनती हैं। धनी व्यक्ति निज परिवारकी अंगशोभाकी वृद्धिके लिये मस्तक पर स्वर्ण वा पीतलका बना हुआ फूल, गलेमें सोने वा प्रवालकी माला, हाथमें अङ्गूरि और बाला, कानमें कर्णफूल, नाकमें नथनी तथा इसी तरहके मूल्यवान् आभूषणों-को काममें लाते हैं। असभ्य भूटिया लोग भी स्वजातीय कामिनीकुलके लिये सुलेमानी पत्थर, प्रवाल और अन्यान्य कीमती पत्थरोंकी माला, चांदीकी माधुली वा नस्ती आदि नाना प्रकारके अलङ्कार बनवाते हैं।

स्त्रीमात्र ही सुगन्धित पुष्पकी विशेष अनुरागी होती हैं। वे शिरशोभाकी वृद्धिके लिये हमेशा सिर पर फूल गांथे रहती हैं। त्योहार आदि उत्सवमें वे अपने बालोंको फूलसे अच्छी तरह सजाए रहती हैं। स्वाभाविक सदाचारी होने पर भी उनकी पुष्पस्पृहा बहुत अधिक होती है। इसीसे जब कभी उन्हें फूल मिल जाता, तब उसे सूंघनेके लिये वे हाथमें ले लेतीं अथवा प्रकृति-सतीकी मर्यादाकी रक्षाके लिये उसे सिर पर गांथ लेतीं और इस तरह अपनेको चरितार्थ समझती हैं।

राजपुरुषोंको परिच्छदप्रथा स्वतन्त्र है। वे मस्तक पर जरी और मणिमुक्ताखचित ताज, अङ्गमें रेशमका कपड़ा अथवा चूड़ीदार इत्या लगा हुआ चपकनके जैसा लम्बा कुरता, पैजामा और पैरमें जरीका जूता पहनते हैं। सभी राजपुरुषोंके हाथमें चलनेके समय रुमाल और तलवार रहती है। राजा जङ्गबहादुर अपने मस्तक पर जो मुकुट पहनते थे, उसका मूल्य एक लाख पचास हजार रुपये था। सद्वंशजात भद्र सन्तान सब समय सिर पर टोपी, शरीरमें घुटने तक लम्बा कुरता, कमरबंद, पैजामा और जूता लगाए रहते हैं। सैनिक विभागके अध्यक्षगण साधारणतः वेशभूषामें अंगरेजी सेनानायकोंका अनुकरण करते हैं।

खाद्य और पानीय।

नेपालराज्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि जातियोंका विभाग होने पर भी खाद्यखादक विषयमें कोई पृथकता देखी नहीं जाती। यहां जो ब्राह्मण कहलाते हैं, उनका आचार-व्यवहार और खाद्य-प्रणाली सभी भारतवर्षके समतलक्षेत्रवासी ब्राह्मणोंके जैसे हैं। किन्तु अधिकांश व्यक्ति अत्यन्त मांसप्रिय होते हैं। गोर्खा-जातियां साधारणतः उत्तरस्थ पार्वतीय प्रदेश और तराई भूमिसे लाए हुए भेड़े आदिका मांस खाती हैं। ये लोग अत्यन्त शिकारप्रिय होते हैं। धनवान् सभी व्यक्ति शिकार विषयमें अच्छी तरह अभिज्ञ हैं। वे प्रायः सभी समय शिकार खेलनेको बाहर निकलते हैं और इच्छानुरूप हरिण, जंगली सूअर, सोणाशु तथा गोखांशु, कुवाक-ट्टेरी, हुरेल, बुद्रनचील आदि पर्वतजात पक्षियोंका शिकार कर उनका मांस खाते हैं।

वे लोग अकसर सूअरके बच्चेको पोसते हैं और इंगलैण्डकी प्रथाके अनुसार उन्हें खिला कर बड़ा करते हैं। बचपनसे पालित शूकर-शावक प्रतिपालकके वशीभूत हो जाते हैं। यहां तक देखा गया है, कि वे कभी कभी कुत्तेकी तरह अपने मालिकका पदानुसरण कर बाहर निकलते हैं। नेवारगण महिष, भेंड़े, छागल, हंस आदि पक्षियोंका मांस खाना बहुत पसन्द करते हैं। यहांकी मगर और गुरङ्ग जाति अपनेको हिन्दू बतलाती हैं। किन्तु उनके कार्यकलापादिके ऊपर लक्ष्य रखने से वे नीचश्रेणी से प्रतीत होते हैं। मगरजाति शूकरका मांस खाती है, महिषका नहीं। इसके विपरीत गुरङ्गलोग महिषके मांसको बहुत पसन्द करते हैं, किन्तु सूअरके मांस छूते तक भी नहीं। लिम्बू, किराती और लेपचा आदि बौद्ध धर्मावलम्बियोंकी खाद्यप्रणाली नेवार जातिकी नाईं है।

अवस्थापन्न व्यक्ति-साधारण मांसादि-भोजन और नानाप्रकारके विलास द्रव्य उपभोग करनेमें तो समर्थ हैं, पर अपेक्षाकृत दरिद्र और निम्नश्रेणीस्थ व्यक्तिके भाग्यमें मांसादिका भोग हमेशा बदा नहीं रहता। मांसप्रिय होने पर भी ये लोग अर्थाभाववशतः सब समय खाद्यके सिवा मांसका बन्दोबस्त नहीं कर सकते। इसी कारण साग सब्जी द्वारा वे लोग उदर-पूरण करनेमें वाध्य होते हैं। वे लोग अकसर चावल, साक सब्जी लहसुन, प्याज और मूली आदिकी तरकारी बना कर खाते हैं। मूली पचानेके लिये वे एक प्रकारकी चटनी बनाते हैं जिसको अन्नादिके साथ खाते हैं। इस चटनीको वे 'सिनकी' कहते हैं। यह अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और नितान्त घृणित होती है।

नेवारगण और अन्यान्य निम्नजातिके लोग मदिरासक्त होते हैं। वे अपनी अपनी पान-पिपासाको परोक्ष करनेके लिये चावल अथवा गोधूमसे एक प्रकारका निकृष्ट मद्य तैयार करते हैं जिसे रकसी कहते हैं। यहांके उच्चश्रेणीके मनुष्य शराब नहीं पीते। कारण जो समाजके नेता हैं और जातीयतामें सबसे श्रेष्ठ हैं, वे शराबकी मलमूत्रके समान समझते हैं। इस प्रकारके सभ्रान्त कुलशील भद्र व्यक्ति यदि मद्यपान कर लें, तो वे जातिसे च्युत किये जाते हैं। आश्चर्यका विषय यह है कि स्वदेशमें उत्पन्न मद्यकी अपेक्षा अभी नेपालमें विलायती ब्रैंडी और शैम्पेन मद्यकी खूब आमदनी देखी जाती है।

नेवारजाति आमोद-प्रमोदके लिये जो मद्य पान करती है, उसे वह अपने घरमें ही बनाती है। इसके लिये राजाको कोई कर देना नहीं पड़ता। किन्तु यदि कोई इस रकसी मद्यको बाजारमें बेचे, तो राजकर्मचारी उससे कर वसूल करते हैं। नेवारगण सब समय मद्य पान करते हैं, किन्तु वे कभी भी नशेमें बेहोश नहीं देखे जाते। केवल मेला आदि पर्वोपलक्षमें अथवा धान्यादिके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें रोपनेके समय वे इसमें ज्यादा शराब पीते हैं। पार्वतीय कोल जातिमें जिस तरह 'हाँड़िया' प्रचलित है उसी तरह इन लोगोंमें रकसी मद्य।

उत्तम, मध्यम और निम्न श्रेणीके सभी मनुष्य चाय पीते हैं। निम्नश्रेणीमें जो नितान्त गरीब हैं, जिन्हें चाय खरीदनेकी बिलकुल शक्ति नहीं है, केवल ऐसे ही मनुष्य चाय पीनेसे वंचित रहते हैं। यह चाय तिब्बतसे लाई जाती है। ये लोग चायको दो प्रकारसे बनाते हैं,—(१) मसालादिके साथ एकत्र सिद्ध करके जो चाय बनाई जाती है उसका स्वाद मद्य, चीनी, नेबूके रस और जायफल मिश्रित द्रव्य सरीखा लगता है। (२) दूध और घीके संयोगसे जो चाय बनाई जाती है, उसका स्वाद बहुत कुछ अंगरेजी चाकलेट (Chocolate)से मिलता जुलता है। इसके अलावा नेपाली चाय-पिटकको खाना बहुत पसन्द करते हैं। इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है;—ताजी चायकी पत्तियोंके साथ चर्बी, चावलका पानी अथवा खारयुक्त पदार्थ मिला कर उसे कुछ कालके लिये धूपमें छोड़ देते हैं। पीछे फिर आ जाने पर उसे चौकोर वा लम्बे बरतनमें भर कर आंच पर चढ़ाते हैं। यह दूध आदिके साथ भी खाया जाता है। चीन भाषामें इसका नाम तुङ्-काह है। अंग्रेजी प्रणालीसे प्रस्तुत की हुई चाय विशेष आदरणीय नहीं होती। केवल उच्चश्रेणीके नेपाली जो अकसर कलकत्ते आया करते हैं, वे ही इसके पक्षपाती हैं।

विवाह-प्रथा

गोर्खोन नेपालियोंमें बहुत विवाह प्रचलित है। विवाह इन लोगोंके लिये एक प्रकारका अङ्गसौष्ठव है। जो अपेक्षाकृत धनवान् हैं, वे एक से अधिक स्त्री रखनेसे बाज नहीं आते। बहु-पत्नीपरिवृत रहना नेपालियोंके सम्मानका चिह्न है। इस कारण ५०।६० दारपरिग्रह करने पर भी किसी किसी धनी व्यक्तिकी आशा तृप्त नहीं होती। बहु-विवाहका स्रोत नेपालमें जैसा प्रबल है, वैसा ही विधवाविवाह एकबारगी निषिद्ध है। पहले यहां हजारों विधवाएँ सती होती थीं। स्वामीकी मृत्यु पर स्त्रीके इस अपूर्व स्वार्थत्यागने नेपालियोंके कठोर हृदयमें असामान्य धर्म-ज्योतिः ढाल दी थी। ये सब स्त्रियां भी धर्मजगत्‌में 'सती' नाम क्रय कर तथा भारतके वक्ष पर धर्मस्तम्भ स्थापन कर सारे जगत्‌में अपनी इस चिरस्मरणीय कीर्त्तिकी घोषणा करके सबोंकी पूज्य हुई हैं, इसमें बिन्दुमात्र भी संशय नहीं।

पूर्वतन राजपुरुषोंकी नियमावली यथेच्छाचारिता-दोषसे दूषित रहनेके कारण तथा राजाके राज्यशासनमें शिथिल प्रयत्न होनेके कारण राज्यमें विषम विशृङ्खला उपस्थित होती है। राजपुरुषोंके आत्मविच्छेदसे राष्ट्र-विप्लव होता है। इसी समय जङ्गबहादुरने राजाको सिंहासनच्युत करके स्वयं राज्यभार ग्रहण किया था। नेपालका राज्यभार अपने हाथमें ले कर भी जब राणा जङ्गबहादुरने देखा कि अब भी वे शत्रु पक्षीयकी कुदृष्टिसे निष्कृति लाभ न कर सके, तब उन्होंने नेपालकी सम्भ्रान्त वंशीय धनियोंकी कन्याओंका पाणिग्रहण कर बहुतोंको चरितार्थ किया। इस विवाहका मुख्य उद्देश्य यह था, कि शत्रुदल अब किसी हालतसे उनके विरुद्धाचरण न करेंगे। इसी उद्देशको साधनेके लिये वे उस समय देशके गण्यमान्य और चमतापन्न सभी घरोंमें अपने पुत्र, कन्या और भ्राताओंका विवाह दे कर सम्बन्धसूत्रसे आबद्ध हुए। इस प्रकार अपनेको विपक्ष दलसे निरापद समझ कर वे १८५१ ई०में इंगलैण्ड गए और वहां एक वर्ष ठहर कर दूसरे वर्षकी ८वीं फरवरीको स्वदेश लौटे। स्वदेशमें आ कर उन्होंने अंग्रेजोंके अनुकरणमें सामरिक सम्मृङ्खला और फौजदारी आईन आदिमें हेर फेर करके देशमें सुव्यवस्था स्थापन की। इस समय उन्होंने सतीदाहको रोकनेके लिये कई एक नियम चलाए। सतीदाहके सम्बन्धमें उनकी संशोधित नियमावली इस प्रकार थी—(१) पुत्रवती स्त्रियां इच्छा रहते भी सती नहीं हो सकतीं। (२) सती सुनामाकाङ्क्षिणी कोई रमणी यदि ज्वलन्त चिताको देख कर डर जाय और साक्षात् शमनरूप अग्निमें जीवन-विसर्जन करनेमें कातरता प्रकट करे, तो कभी भी वह रमणी अग्नि-प्रवेश नहीं कर सकती। पहले यह नियम था, कि जो स्त्री मृतपतिके साथ जानेकी इच्छा प्रकट करती और यदि वह श्मशानघाट जा कर श्मशानका वीभत्स-दृश्य देख सती होना नहीं भी चाहती थी, तो भी उसे बन्धुबान्धव बलपूर्वक चितामें बैठा देते थे। यदि वह भाग जानेकी कोशिश करती, तो डंडेके प्रहारसे उसकी खोपड़ी चूर कर देते थे जिससे वह उसी समय पञ्चत्वको प्राप्त होती थी। जङ्गबहादुरकी कृपासे असहाया स्त्रियोंने ऐसे नृशंस अत्याचारके हाथसे रक्षा पाई है। ब्राह्मणों और पुरोहितोंने यद्यपि इस नवानुमोदित मतको 'असङ्गत और अयौक्तिक तथा धर्मका बाधाजनक' बतलाया था, तो भी उनके मतामतकी उपेक्षा करके निजमत स्थापनके लिये वे दृढ़सङ्कल्प हुए थे।

गोर्खाजातिकी दाम्पत्य-प्रणयमें एक बार अविश्वास हो जाने अथवा पत्नीके चरित्रमें सन्देह होने पर वे स्त्रियोंको खूब यन्त्रणा देते हैं। यदि कोई स्त्री भ्रमवश विपथगामिनी हो जाय, तो पहले उसे घरमें सुनियम-पूर्वक रख कर उसके चरित्र-संशोधनकी चेष्टा करते हैं अथवा उसके पूर्व आचरित पाप कर्मोंके प्रायश्चित्त-स्वरूप उत्तम-मध्यम वेत्राघात द्वारा उसे पुनः सुपथ पर लानेकी कोशिश की जाती है। इतना करने पर भी जब देखते हैं कि कोई फल न निकला, तब वे उसे याव-ज्जीवन कैदमें रख छोड़ते हैं। जो मनुष्य उपपति हो कर दूसरेकी पत्नी पर आसक्त होता है और उसे स्वधर्मसे भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करता है तथा यह बात यदि उस स्त्रीके स्वामीको मालूम हो जाय, तो निश्चय ही उसकी पत्नीका धर्महन्ता उपपति है। ऐसा व्यक्ति जब कभी नजर आता है, तभी उसे वेत्राघात द्वारा जमीन पर

सुला देते हैं। सर जङ्गबहादुरने जब देखा कि इस प्रकार अवैध-प्रणयसे केवलमात्र जातीयताकी अवनति होती है और सतीत्व-हरणसे स्वदेशकी ग्लानि तथा आत्मश्लाघाकी सम्भावना है, तब उन्होंने इस ध्वंस व्यापारको रोकनेके लिये एक कानून निकाला। उस कानूनके अनुसार यदि कोई मनुष्य अवैध रूपसे उपपत्नी-प्रेममें आसक्त हो जाता, तो उसे राजदरबारमें उचित दण्ड मिलता था। दोषी व्यक्तिको कैदमें रख कर उसका विचार किया जाता था। विचारमें यदि वह दोषी ठहराया जाता, तो राजाके आज्ञानुसार उस रमणीका स्वामी आ कर सबके सामने अपनी स्त्रीके सतीत्वापहारी उपपतिको दो खण्ड कर डालता था। किन्तु उसकी मृत्युके ठीक पहले प्राणरक्षाके लिये उसे एक मात्र अदृष्ट-परीक्षा करनेकी दी जाती थी। इस परीक्षामें दोषी व्यक्ति अपने जीवन संहर्त्तासे कुछ दूरमें खड़ा रहता और उसे भागनेको कहा जाता था। यदि वह दोषी व्यक्ति किसी उपायसे अपनी जीवनरक्षा कर सकता, तो वह पुनर्जीवनलाभ करता था। उसका विचार फिर नहीं होता। इसके अलावा उस उपपतिको प्राणरक्षाके और भी दो उपाय थे। किन्तु नेपाली इन उपायोंको अन्तःकरणसे हेय समझते थे। नेपालीके मतसे इस प्रकार घृणित प्रथाको अनुसरण करनेमें जातित्याग करनेकी अपेक्षा प्राणत्याग करना अच्छा है। फिर यदि वह स्त्री कह देती कि वह व्यक्ति उसका प्रथम उपपति नहीं है और न वह सबसे पहले उसे कुपथ पर ले हो गया है, तो राजा उस स्त्रीकी बात पर विश्वास करके विचाराथे लाए हुए उपपतिको छोड़ देते थे। इस प्रकार अन्य स्त्रीके साथ गुप्त भावसे प्रणय करनेमें कितने ही सम्भ्रान्तवंशीय युवकगण कराल कालके गालमें पतित हुए हैं।

व्यभिचार और जातिभङ्गदोषके लिये पूर्व समयमें नियमके अनुसार नेपालियोंको गुरुतर सजा दी जाती थी। वैसे कार्यमें ऐसा दारुण दण्ड और पाशविक अत्याचार स्वभावतः ही विद्रोहका उत्तेजक था।

वर्त्तमानकालमें उक्त नियमोंमें बहुत हेरफेर हो गया है जिसका यहां पर उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। नेवार, लिम्बु, किराती और भूटियाजातिके लोग बौद्ध होने पर भी उनमें हिन्दूधर्मका प्रभूत प्रभाव देखा जाता है। इस कारण उनमें विभिन्न श्रेणियोंकी उत्पत्ति हो गई है। इनमें परस्परका आचार-व्यवहार प्रायः एक-सा है।

यहांकी नेवार आदि जातियोंकी अपेक्षा गोर्खाओंके विवाह-बन्धनमें कुछ विशेषता देखी जाती है। भारतवासी हिन्दुओंके जैसा इन लोगोंमें भी स्त्री-वियोगका नियम नहीं है। स्त्री-त्याग और उस स्त्रीका पत्यन्तर-ग्रहण ये दोनों कार्य यथार्थमें जातीय गौरवमें हानि पहुंचाने वाले हैं। नेवारलोग अपनी अपनी कन्याका बचपनमें ही एक बेलके साथ विवाह कर देते हैं। पीछे वह कन्या जब बड़ी और ऋतुमती होती है, तब उसके लिये एक उपयुक्त वर ढूंढ़ लाना पड़ता है। यदि उस नव-दम्पतीके मनमें प्रणयसञ्चार न हुआ और सर्वदा कलह होता रहा, तो वह कन्या अपने स्वामीके सिरके तकियेके नीचे एक सुपारी रख कर पीहर वा अन्यत्र चली जाती है। ऐसा करनेसे ही वह स्वामी समझ जाता है, कि उसकी नवविवाहिता पत्नी उसे छोड़ कर कहीं चली गई है। सम्प्रति यह स्वामीत्यागप्रथा विधिबद्ध हो गई है। अभी सहजमें कोई स्त्री स्वामीको छोड़ कर अन्य स्थानमें नहीं जा सकती।

इनमें विधवा विवाह प्रचलित है। प्रायः इनमें किसीको विधवा होना ही नहीं पड़ता। इनका विश्वास है, कि पतिसे पत्यन्तर ग्रहण करने पर भी बाल्यकालमें बेलके साथ उनका जो विवाह हुआ था उसके लिये मांगका सिन्दूर कभी धुल नहीं सकता।

इनकी स्त्रियां जब व्यभिचार-दोषसे दुष्ट हो जाती हैं, तब उन्हें पति सामान्य सजा मिलती है। किन्तु जिस उपपतिके सहवाससे उसका पातिव्रत्य-धर्म नष्ट हो गया है वह उपपति यदि पत्नीपरित्यक्त स्वामीके पूर्व-विवाहका कुल खर्च न दे और उसकी स्त्रीका बिना कष्ट उठाए भोग-दखल करनेकी चेष्टा करे, तो उसे कारागारकी हवा खानी पड़ती है।

ये लोग मृतदेहका दाह करते हैं और विधवाकी इच्छा होने पर वह सती हो सकती है। किन्तु उनमें विधवाविवाह प्रचलित रहनेके कारण और दूसरा पक्ष

ग्रहण करना नहीं पड़ता। इनमें कभी कभी दो एक सतीदाह भी होते देखा गया है।

शासन-प्रणाली।

प्राचीन कालमें यदि कोई भारी दोष करता था, तो उसका कोई अङ्ग कटावा दिया जाता अथवा देहका कोई कोई स्थान चीर दिया जाता था अथवा बेतकी सजा दी जाती थी जिससे उसके कभी कभी प्राण भी निकल जाते थे। सर जङ्गबहादुर जब इंगलैण्डसे लौटे, तब उन्होंने कितने नृशंस आईन उठा दिए और राज्य-शासन सम्बन्धमें निम्नलिखित कुछ नूतन आईन प्रचार किये। जो व्यक्ति राजद्रोही होगा वा राजकीय कार्य सम्पर्कमें विश्वासघातकता करेगा उसे यावज्जीवन-कारावास अथवा शिरश्छेदकी दण्डाज्ञा मिलेगी। गवर्मेण्ट सम्बन्धीय जो व्यक्ति रिशवत लेगा अथवा राजकीय तहवीलको नष्ट करेगा अथवा बिना किसीके जाने राजकोषसे रुपये ले कर दूसरेके यहां सूद पर लगावेगा उसे जुर्माना देना पड़ेगा और साथ साथ उसकी नौकरी भी छूट जायगी।

इस राज्यमें जो गो किंवा नरहत्या करता है, उसी समय उसके शिरश्छेदकी आज्ञा होती है। यदि कोई गोके गात्रचर्मको अस्त्रादि द्वारा क्षतविक्षत करे अथवा पहले बिना सोचे विचारे क्रोधके वशीभूत हो कर उसको हत्या कर डाले, तो उसे यावज्जीवन कैदमें रहना पड़ता है। राजनियम-उल्लङ्घनकारी व्यक्तिको उसके दोषके अनुसार जुर्माना देना होता अथवा कारावास भुगतना पड़ता है।

यदि कोई नीच श्रेणीका मनुष्य अपनेको उच्चश्रेणीद्भव बतलावे और इस कारण किसी सम्भ्रान्तकुलशील व्यक्तिको अपना स्पर्श किया अन्न और जल खिलानेके लिये अनुरोध करे तथा उसे स्वजातिच्युत करनेकी कोशिश करे, तो उसे जुर्माना देना पड़ता, कैदकी सजा भोगनी पड़ती और उसकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती है। कभी कभी क्रीतदासके रूपमें वह दूसरे हाथ बेच भी दिया जाता है। किन्तु वह जातिभ्रष्ट भद्र मनुष्य उपवासादि और प्रायश्चित्त करके तथा गुरु और पुरोहितको निर्दिष्ट अर्थदण्ड दे कर स्वजातिमें फिरसे मिल जाता है।

ब्राह्मणों और रमणियोंके शिरश्छेदका विधान नहीं है। भारीसे भारी अपराध करने पर स्त्रियोंको कठिन परिश्रमके साथ चिरनिर्वासन होता है। ब्राह्मणोंके लिये भी वही एक नियम है। पर विशेषता यह है, कि ब्राह्मणगण कारागारमें जा कर जातीय गौरव-नाशके साथ साथ ही जातिच्युत होते हैं।

सेनाविभाग।

राज्य-रक्षा और राज्यशासन सम्बन्धमें नेपालराजको बहुत रुपये खर्च करने पड़ते हैं। जिस सुनियमसे सेनाओंको युद्धविद्या सिखाई जाती है, कमान और बन्दूकादि तैयार करनेमें भी वैसे ही अधिक परिश्रम और रुपये खर्च करने पड़ते हैं। यहां राजवेतनभोगी प्रायः सोलह हजार सेनाएं हैं। उक्त सेनादल २६ विभिन्न रेजिमेण्टमें विभक्त है। इसके अलावा नेपालराजके नियमानुसार कुछ मनुष्य सैनिक विभागमें निर्द्धारित समय तक युद्धविद्या सीख कर घरमें भी बैठ सकते हैं। समय पड़ने पर वे सैन्यदलभुक्त हो कर लड़ाईमें जाते हैं। राज्यमें ऐसे नियमका प्रचार रहनेके कारण नेपालराजको सैन्यसंग्रह करनेमें कोई कठिनाई उठानी नहीं पड़ती। इच्छा होने पर ही वे एक दिनमें ७० हजार शिक्षित सेनाएं संग्रह कर सकते हैं।

अङ्गरेजी प्रणालीके अनुसार यहांकी सेना शिक्षित हैं। किन्तु सभी विषयमें अङ्गरेजी नियम है, सो नहीं। सैन्यका विभाग और दलस्थ नायक और अधिनायकादि पद सभी अङ्गरेजोंके अनुरूप होने पर भी उनकी अङ्गरेजोंकी तरह क्रमिक पदोन्नति नहीं है। राजपुत्र वा राजकुटुम्बगण प्रति वर्ष उच्च पद पाते हैं, किन्तु जो वयोवृद्ध-विचक्षण कर्मचारी हैं, वे प्रायः सामरिक विभागका निम्नपद भोग करते देखे जाते हैं, इनकी सहजमें उन्नति नहीं होती।

सेनादलका दैनिक परिच्छद;नीलाङ्गका सूती अङ्गरखा और पैजामा है। सामरिक योद्धाओंको लाल रंगका अंगरखा, काला इजार, बगलमें लाल डोरी, पैरमें जूता और सिर पर टोपी तथा स्वदलको चिह्नयुक्त एक चांदीकी तख्ती रहती है। कमानवाही सेनादलकी पोशाक नीली होती है। अस्त्रादि परिचालनका ज्ञान

नहीं रहनेके कारण नेपालराज्यकी अश्वारोही सेनाकी संख्या बहुत थोड़ी है। यहां बारूद, गोले और गोली आदि तैयार करनेका कारखाना है।

आज भी सैन्य-शिक्षाके लिये कूचकवायद होती है। पार्वतीय प्रदेशमें ये लोग युद्धमें विलक्षण पटु होते हैं। अङ्गरेजोंके साथ इनका जो दो बार युद्ध हुआ था उनमें इन्होंने खूब वीरता दिखलाई थी। इनकी कमान, बन्दूक और अन्यान्य अस्त्रादि उतने सुविधाजनक नहीं हैं। फिलहाल नेपालराजके पास ४ पहाड़ी कमान (Mountain-battery) और ४५ हजार सेना हैं। जब सरदार बावरजङ्गने नेपालीसेनाका चालक हो कर अङ्गरेज-सेनाध्यक्षको अपने व्यवहारसे परितृप्त किया था, तब अङ्गरेजराजने वस्तुलके निदर्शन-स्वरूप उक्त चार यन्त्र नेपालराजको उपहारमें दिये थे। राजाके अस्त्रागारमें असंख्य कमान रहने पर भी प्रतिदिन यहाँ कमान और अस्त्रादि तैयार होते हैं।

दास-प्रथा।

नेपालमें आज भी दासदासोको विक्रयप्रथा प्रचलित है। सामान्य अवस्थापन्न व्यक्ति भी अपने अपने गृह कार्यकी सुविधाके लिए क्रीतदास खरीदा करते हैं। किन्तु यह दास-प्रथा अफ्रिकाके पूर्वप्रचलित दासव्यवसायसे भिन्न है। यहांके दासगण केवल घरके काम काज करते हैं और एक तरहसे स्वाधीन भावमें रह सकते हैं किन्तु अफ्रिकाके विक्रीत दासगण अपने प्रभुसे समय समय पर विशेषरूपसे निगृहीत होते हैं। नेपालके जो दासदासी हैं, वे बहुत कुछ भारतवासीके घरमें रक्षित दासदासियोंसे होते हैं।

नेपालको वर्त्तमान दाससंख्या प्रायः ३२ हजार है अगम्यागमन वा ज्ञाति-स्त्रीसंसर्ग आदि निकृष्ट पापोंमें लिप्त होनेसे अथवा जातिगत कोई दोष करनेसे वह स्त्री वा पुरुष राजाके आदेशसे परिवार समेत क्रीतदासरूपसे बेचा जाता है। इस प्रकार नेपालको दाससंख्या दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

क्रीतदासी हमेशा गृहकार्यमें व्यस्त रहती हैं। इसके अलावा उन्हें लकड़ी काटना, बकरे, घोड़े आदिके लिये घास काटना आदि कितने पुरुषोचित कार्य भी करने पड़ते हैं। कोई कोई धनी इन सब दासियोंको अपने घरसे बाहर निकलने नहीं देते। किन्तु वे अकसर अधिकांश समय स्वेच्छासे विचरण करती हैं। इन सब रमणियोंका चरित्र उतना पवित्र नहीं होता। ये प्रायः गृहस्थित किसी न किसी व्यक्तिके साथ अवैध-प्रणयमें आसक्त रहती हैं। यदि खरीदनेवाले गृहस्वामीके सहवाससे उस दास-रमणीके गर्भसे सन्तानादि उत्पन्न हो, तो वह स्त्री अपनी स्वाधीनता पुनः जमा सकती है। उस समय वह कभी भी उस घरका परित्याग करना नहीं चाहती। यहां क्रीतदासीका मूल्य १५०)से २००) और दासका मूल्य १००)से १५०) रु० है।

देवदेवीकी पूजा और उत्सवादि।

देवद्विजमें विशेष भक्तिप्रयुक्त नेपालमें असंख्य देवदेवियोंके मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। यहां २७३३ उल्लेखयोग्य तीर्थक्षेत्र वा देवालय हैं और उन सब देवमन्दिरोंमें पर्वोपलक्षमें उत्सव हुआ करता है। प्रायः वर्षके प्रत्येक दिन एक दो वा ततोधिक पर्वोत्सव पाये हैं। कहनेका तात्पर्य यह है, कि वर्षभरमें छः मास पूजा और उत्सवादिमें व्यतीत होते हैं। इस देशमें आनेसे ही मालूम पड़ेगा कि यहां पार्वण और उत्सवका शेष नहीं है। आश्चर्यका विषय यह कि यहांके लोग इन सब उत्सवोंमें सदा लिप्त रहते हुए भी किस प्रकार अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। प्रत्येक निर्दिष्ट पर्व दिन और तज्जन्य उत्सवादि सम्बन्धमें प्रचलित प्रवाद है। विस्तारके भयसे उनका विवरण नहीं दिया गया। यहां जो सबसे प्रधान प्रधान पीठ वा देवालय हैं उनके पर्वदिन और उत्सवादिकी उत्पत्तिकी कथा बहुत संक्षेपमें दी जाती है।

१। मत्स्येन्द्रनाथयात्रा—नेपालके अधिष्ठातृदेवता मत्स्येन्द्रनाथके विषयमें प्रचलित प्रवादादि यथास्थानमें वर्णित हैं। पाटनके अन्तर्गत भोगमती ग्राममें यह मन्दिर और लिङ्ग स्थापित है। वर्षके प्रथम दिन (वैशाखकी १ली तारीख)को प्रथम उत्सव आरम्भ होता है। इस दिन विग्रहस्नानके बाद राजाकी तलवारको मूर्त्तिके पाददेशमें रख कर उसकी पूजा करते हैं। पूजाके बाद एक सुसज्जित रथ पर मत्स्येन्द्रनाथको मूर्त्तिको बिठा कर पाटन ले जाते और वहां प्रायः एक मास तक रख

और पुनः पुण्यदिन और शुभलग्नमें वे गमती ग्राममें लाते हैं। इस दिन विग्रहको कम्बलसे ढक लेते और स्थान स्थान पर वह आवरणवस्त्र खोल कर जनताको मूर्त्ति का दर्शन कराते हैं। इससे लोगोंको यह जताया जाता है, कि देवता गरीब नहीं होने पर भी एक गुदड़ी (कम्बल) के सिवा और कुछ भी ले नहीं जाते। वे सबोंको यह बतलाते हैं, कि अपनी अपनी अवस्था पर सन्तुष्ट रहना ही अच्छा है! इसका नाम गुदड़ी-झाड़ा-उत्सव है। पाटनसे लौटते समय राहमें जहां जहां सेवकों के आहारके लिये विग्रह रखा जाता है, वहांके अधिवासिगण खाद्य द्रव्यादिका ढेर लगाते हैं। नेवारोंमें भी नेपालके अधिष्ठाता आर्यावलोकितेश्वर-मत्स्येन्द्रनाथ-देवके दो पर्व दिन निश्चित हैं। विशेष विवरण पाटन और मत्स्येन्द्रनाथ शब्दमें देखो।

२। नैतादेवीकी यात्रा वा देवीयात्रा। नैतादेवी देखो।

३। पशुपतिनाथयात्रा। पशुपतिनाथ देखो।

४। वज्रयोगिनी-यात्रा—यह बौद्धोंका उत्सव है। बौद्धके अलावा हिन्दू लोग भी अभी उनकी उपासना करते हैं। शङ्खु नामक पर्वत पर इस देवीका मन्दिर है। २ वैशाखको इस उत्सवका सूत्रपात होता है। इस समय लोग एक खाटके ऊपर वज्रयोगिनी-मूर्त्तिको रख कर कंधे पर चढ़ा शङ्खु शहरका प्रदक्षिण करते हैं। उस मन्दिरके सामने ही खड्गयोगिनीका मन्दिर है। देवीमूर्त्तिके सामने अग्नि हमेशा प्रज्वलित रहती है और वहां एक मनुष्यका मस्तकाकृति भी रखी हुई है।

५। सिथीयात्रा—काठमण्डू और स्वयम्भूनाथके मध्यवर्त्ती विष्णुमतीनदीके किनारे २१ ज्येष्ठको यह उत्सव होता है। भोजनके बाद तीर्थक्षेत्रमें उपस्थित व्यक्तिगण दो दलोंमें विभक्त हो जाते और दोनों दल एक दूसरे पर ढेला फेंकना शुरू कर देते हैं। पूर्व समयमें यह प्रथा थी कि जो कोई ईंटोंके आघातसे मूर्छित हो रहता था उसे विपक्ष-दलके लोग निकटवर्त्ती कङ्केश्वरी मन्दिरमें ले जा कर बलि देते थे। अभी राजाके आदेशसे लोकोंका ईंटोंका फेंकना बंद हो गया है।

६। गोथिया मङ्गल वा घण्टाकर्ण—घण्टाकर्ण नामक राक्षसको स्वदेशसे निकाल भगाना ही इस उत्सवका उद्देश्य है। नेवार बालक उस समय सदीखासमें खरकी एक प्रतिमूर्त्ति बना कर रास्ते रास्ते घूमते और प्रत्येक मनुष्यसे भीख मांगते हैं। १४ श्रावणको उत्सवके बाद बालकगण उक्त मूर्त्ति जला कर आमोद-प्रमोद करते हैं।

७ बांड़ा-यात्रा—बौद्धमार्गी नेवार जातिके पुरोहित ८ श्रावण और १३ भाद्र ये दो दिन प्रत्येक गृहस्थके यहां वार्षिक स्वरूप चावल और शस्यादि मांगने जाते हैं। इस भिक्षावृत्तिका अर्थ यह है कि प्राचीनकालमें बांड़ाओंके पूर्वपुरुष बौद्ध-पुरोहितगण भिक्षुक थे। उन महात्माओंके वंशधर उनके अनुष्ठेय सत्कार्यका पालन करनेके लिये वर्ष भरमें केवल दो बार भिक्षावृत्तिका अवलम्बन करते हैं। इस भिक्षालब्ध द्रव्यसे वे एक वर्ष तक गुजारा करते हैं।

उक्त दिनमें नेवारीगण अपने अपने घर और दूकानको फूल आदिसे सजाते और उस घरकी रमणियां एक एक टोकरा चावल तथा और दूसरे दूसरे शस्यको ले कर दूकान वा घरसे बाहर जा बैठती हैं। बांड़ागण जब द्वारदेश हो कर गुजरते हैं, तब सभी उन्हें काफी अनाज दे कर उनको बिदा करती हैं। धनवान् नेवारी उक्त निर्दिष्ट दिनोंके सिवा यदि दूसरे दिन गुप्तभावसे अर्थात् अकेला ही बांड़ाओंको इस प्रकार भिक्षा दे कर बिदा करनेकी इच्छा प्रगट करे, तो बिना प्रभूत अर्थव्यय किये उनकी वह मनस्कामना पूर्ण नहीं हो सकती। इस उत्सवमें जो बांड़ा सबसे पहले चौकठ पर पहुंच जाता है, उसे कुछ अधिक दान मिलता है। यदि गृहस्थ इस उत्सवके उपलक्षमें राजाको निमन्त्रण करे, तो राजाके सम्मानार्थ उसे एक रौप्यसिंहासन, छत्र और चन्दन-तैजसादि दे कर आत्ममर्यादाकी रक्षा करनी पड़ती है।

८। राखी-पूर्णिमा—श्रावणमासकी पूर्णिमाके दिन बौद्ध और हिन्दू दोनों सम्प्रदाय इस उत्सवमें योगदान करते हैं, किन्तु दोनों दलके पार्वणादि स्वतन्त्र हैं। बौद्धगण इस दिन पवित्र नदीमें स्नान करके देवदर्शनके लिए मन्दिर जाते हैं। इधर ब्राह्मण पुरोहितगण अपने शिष्य वा यजमानके हाथमें सुरक्षित सूता जिसे राखी

कहते हैं, मांगते हैं और उसके लिए उनसे कुछ दक्षिणा वसूल करते हैं। बहुतसे हिन्दू पुण्य कामनाके उद्देशसे गोसाईंथान नामक पर्वतके तटवर्ती नीलकण्ठह्रद वा गोसाईंकुण्ड नामक स्थानमें स्नान करनेको जाते हैं।

९। नागपञ्चमी—प्रति वर्ष श्रावणमासकी पञ्चमी-तिथिको नाग और गरुड़के उपलक्षमें यह उत्सव होता है। चाङ्गुनारायणके मन्दिरमें जो गरुड़मूर्त्ति प्रतिष्ठित है, नेपालियोंका विश्वास है, कि उस दिन उस मूर्त्तिके शरीरमें युद्धश्रमके कारण पसीना आ जाता है। पुरोहितगण एक तौलियासे उस पसीनेको पोंछ डालते हैं। इस प्रकार सबोंका विश्वास है, कि उस तौलियाका एक सूता भी सर्पविषका विशेष उपकारी है।

१०। जन्माष्टमी—श्रीकृष्णके जन्मोपलक्षमें यह उत्सव होता है।

११। गोरु वा गाभीयात्रा—केवलमात्र नेवारजातिके मध्य यह उत्सव प्रचलित है। किसी गृहस्थ परिवारके किसी व्यक्तिके मरने पर उस घरके सब कोई मिल कर १ भादोंको गाभीरूप धारण करते और राजप्रासादके चारों ओर भ्रमण और नृत्य करते हुए घूमते हैं।

१२। बाघयात्रा—गाभीयात्राके बाद ही २ भादोंको नेवारगण बाघको सजा कर नृत्यगीत करते हैं। यह गाभी-यात्राके अनुरूपमात्र है।

१३। इन्द्रयात्रा—२६ भादोंको काठमण्डू नगरमें यह उत्सव होता है और ८ दिन तक रहता है। प्रथम दिन राजप्रासादके सामने एक उच्च काष्ठकी ध्वजा गाड़ी जाती है और राज्यका नर्त्तकसम्प्रदाय मुखस पहन कर प्रासादके चारों ओर घूम घूम कर नृत्यगीतादि करते हैं। तृतीय दिन राजा कुछ बालिकाओंको बुला कर कुमारीपूजा करते हैं। पीछे उन्हें गाड़ी पर चढ़ा कर नगरमें घुमाते हैं। जब वे सब कुमारियां नगरका परिक्रम कर राजप्रासादमें पुनः पहुंचती हैं, तब एक गद्दीके ऊपर राजा स्वयं बैठते अथवा राज-तलवारको ला कर उसके ऊपर रख देते हैं। इस समय राजसरकारभुक्त कर्मचारिगण नाना प्रकारके उपढौकन और नजराना दाखिल करते हैं। उसी दिन अनन्तचतुर्दशी होती है। गोर्खाराज पृथ्वीनारायणने इस पर्व दिन में दलबलके साथ काठमण्डू नगरमें प्रवेश किया था। जब राजाके बैठनेके लिये गद्दी बाहर निकाली गई, तब गोर्खाराज उस गद्दी पर बैठे। नेवार लोग सबके सब उत्सवमें मग्न और नशेमें चूर थे, इस कारण वे विपक्षके प्रति अस्त्रधारण कर न सके। नेवारराज नगरसे भाग गए, पृथ्वीनारायणने निर्विवादसे नेपालराज्यको दखल कर लिया। इस पर्वके दिन यदि भूकम्प हो, तो विशेष अनिष्टपातकी सम्भावना रहती है, ऐसा नेपालियोंका विश्वास है। यही कारण है कि नेवारगण भूमिकम्पके बादसे आठ दिन तक पुनः इस उत्सवको मानते हैं।

१४। दशहरा वा दुर्गोत्सव—महालयाके बादसे विजया दशमी तक दश दिन यह उत्सव होता है। भारतवर्षमें दशहरा उत्सवके उपलक्षमें जो सब कर्मादि विहित हैं, यहां भी ठीक वही सब हैं। उत्सवका स्थितिकाल दश दिन है। इन दश दिनोंमें अनेक भैंसे और बकरेकी बलि दी जाती है, किन्तु बङ्गाल तथा बिहारके जैसा मट्टीकी दुर्गा-प्रतिमा नहीं बनाई जाती। प्रथम दिन अर्थात् घट-स्थापनके समय ब्राह्मण लोग पूजाके लिये निर्द्धारित स्थान पर यवादि पञ्च शस्य बोते और पवित्र नदीके जलसे उसे सींचते हैं। दशवें दिन वे शिष्यादिकी शिखामें जौके अङ्कुर खोंस देते और राखीकी तरह इसमें भी दक्षिणा पाते हैं।

१५। दीवाली—धनाधिष्ठात्री लक्ष्मीदेवीकी पूजाके उपलक्षमें कार्त्तिककी अमावस्याको यह पर्वोत्सव मनाया जाता है। इस दिन नगरवासी सारी रात जुआ खेलते हैं। राजनियमसे जुआ खेलना निषिद्ध होने पर भी इस उत्सवमें तीन रात और तीन दिन तक कोई रोक टोक नहीं है। जुआड़ी स्वर्ण रौप्य आदिका दांव रखते हैं। सुनते हैं, कि कभी कभी वे अपनी स्त्रीको भी दांव पर रख कर खेलते हैं। एक समय किसी मनुष्यने अपना हाथ काट कर दांव पर रखा था। जब जीत उसकी हुई, तब उसने प्रतिपक्षसे कहा, कि उसे भी हाथके बदले हाथ देना होगा अथवा जीता हुआ जो कुछ द्रव्य उसके पास है, वही लौटाना पड़ेगा। ऐसा मनुष्य संसारमें बहुत कम है।

१६। किचा-पूजा—केवल नेवार जातिमें यह उत्सव होता है। १६ कातिकको नेवारगण सिर्फ कुत्तेकी पूजा करते हैं। इस दिन नेपालके प्रायः सभी कुत्तोंके गलेमें पुष्पमाला शोभित देखी जाती है। महिष, काक और भेक आदि जीवपूजाके लिये भी इसी प्रकारका दिन निर्द्धारित है।

१७। भाई-पूजा वा भ्रातृ-द्वितीया—कार्त्तिकी शुक्लाद्वितीयाको रमणियां अपने अपने भाईके घर आती हैं और भाईके पांव धो कर उनके कपालमें तिलक लगाती और गलेमें मालादि पहना कर मिष्टान्नादि भोजन कराती हैं। भाई भी सन्तोष देनेके लिये बहनको कपड़ा अलङ्कारादि देते हैं।

१८। बाला-चतुर्दशी वा शत्त्—१४ अगहनको यह उत्सव होता है। इस दिन देशवासिगण पशुपति नाथ मन्दिरके अपर पार्श्ववर्ती मृगस्थली नामक वनमें जा कर बन्दरोंके भोजनके लिये चावल, केला और मिष्टान्नादि जमीन पर छिड़क देते हैं।

१९। कार्त्तिकी-पूर्णिमा—इस पर्वोत्सवमें एक माम पहले बहुतसी स्त्रियां पशुपतिनाथ मन्दिरमें जाती हैं और एक मास तक उपवास करती हैं। वे सब स्त्रियां केवल विग्रहके स्नानधौत जलके सिवा और कुछ भी नहीं खातीं। मासके शेष दिन अर्थात् कार्त्तिकी पूर्णिमाको उपवासके अन्तमें वे उत्सवादि करती हैं। इस दिन पशुपतिनाथका मन्दिर रोशनीसे झका झक करता है और सारी रात नाच गान होता रहता है। दूसरे दिन जिस पर्वततट पर देवमन्दिर अवस्थित है, उस कैलास-पर्वतके ऊपर रमणियां ब्राह्मण भोजन कराती और अपने कुटुम्बादिसे धन्यवाद ले कर घर वापिस आती हैं।

२०। गणेश-चौथ वा चतुर्थी—माघमासमें गणेशके मान्यके लिये यह उत्सव होता है। सारा दिन उपवास करके रातको भोजनादि करते हैं।

२१। वसन्तोत्सव वा श्रीपञ्चमी—यह उत्सव हम लोगोंके देशके जैसा होता है।

२२। होली वा दोल-लीला—फाल्गुन मासके शेष दिनमें यह उत्सव होता है। इस दिन राजप्रासादके सामने एक 'चीर' वा काष्ठखण्डको ढंक कर उसमें निशानादि शोभित करते हैं और रातको उसे जला देते हैं। नेपालियोंमें प्रवाद है, कि इस प्रकार वे गत वर्षको जला कर नूतनवर्षके आगमनकी प्रतीक्षा करते हैं।

२३। माघी-पूर्णिमा—माघमासमें नेवारयुवकगण प्रतिदिन पूतसलिला वाघमतीके जलमें स्नान करते हैं। जिनका कुछ मानसिक रहता है, मासके शेष दिनमें उनमेंसे कोई तो हाथ पर, कोई पीठ पर, कोई वक्ष पर, कोई पद पर अग्नि जला कर सुसज्जित डोली पर चढ़ते और अपने अपने स्नानघाटसे देवदर्शनको जाते हैं। दूसरे दूसरे स्नानयात्री भी अपने अपने हाथमें एक एक छिद्रयुक्त जलपूर्ण कलसी ले कर उनके पीछे पीछे चलते हैं। उस कलसीके छेदसे बुंद बुंदमें पानी गिरता है जिसे लोक पवित्र समझ कर शिर पर ले लेते हैं। इस दिन अनेक मनुष्य अग्नि जलाते हुए राह पर चलते हैं, इस कारण नेवारगण आंखमें चशमा लगाए रहते हैं। यह वाह्य उत्सव सर्वतोभावमें हास्योद्दीपक है।

२४। घोड़ा-यात्रा—एक अश्वमेला। १५ चैतको राजाके आदेशसे राजकर्मचारिगण अपने अपने घोड़े ले कर कूच कवायदके मैदानमें पहुंचते हैं। यहां सर जङ्गबहादुरकी प्रतिमूर्त्तिके निकट राजा और दूसरे दूसरे उर्द्ध्वतन कर्मचारी उपस्थित होते हैं। सभी अपने अपने घोड़े पर सवार हो घुड़दौड़ करते हैं। जिस स्तम्भके ऊपर जङ्गबहादुरकी मूर्त्ति स्थापित है, उसी स्तम्भ-निर्माणके वार्षिक उत्सवमें एक बड़ा मेला लगता है। गवर्मेण्ट-संक्रान्त कर्मचारिगण कूच कवायदके लिये निर्दिष्ट मैदानमें आ कर तम्बू लगाते हैं। यहां दीवाली-के जैसा इस दिन भी रातको अनवरत आमोद और जुआ खेला जाता है। शेष दिनमें प्रतिमूर्त्तिके चारों ओर आलोक मालासे सुसज्जित करके उत्सवभङ्ग करते हैं।

२५। पिशाच-चतुर्दशी—यह वज्रेश्वरी-बाकला देवी-का पर्वदिन है। चैत्र कृष्णाद्वादशीमें नाना स्थानोंसे इस देवमन्दिरमें लोग आ कर इकट्ठे होते हैं। इस दिन देवीके सामने नरवलि होती है। त्रयोदशीके दिन कुमार और कुमारियोंको भोजन कराया जाता है और पिशाच-

चतुर्दशीका व्रतकल्प आरम्भ होता है। उस दिन रात भर दीप जलता रहता है और अग्निरक्षा की जाती है दूसरे दिन सवेरे वज्रेश्वरी देवीको एक रथ पर चढ़ा कर नगरकी परिक्रमा करते, पीछे मन्दिरके निकटस्थ महादेवमूर्त्तिके पार्श्वमें रख देते हैं। देवीका रथयात्रापर्व बहुत धूमधामसे मनाया जाता है।

२६। पञ्चलिङ्ग-भैरवयात्रा—आश्विनकी शुक्ल पञ्चमीको यह उत्सव आरम्भ होता है। प्रवाद है, कि इस दिन महाभैरव आ कर खड्गिनी वा काशायिनी देवीके साथ उक्त स्थान पर केलीविहार करते हैं।

२७। होल्या-यात्रा—कान्तिपुर-स्थापनके बहुत पहलेसे देवमाहात्म्यप्रकाशके लिये इस उत्सवकी सृष्टि हुई है।

२८। कृष्णयात्रा—देवकीर्त्ति-घोषणार्थ महोत्सव। कान्तिपुरस्थापनके पहलेसे यह प्राचीन उत्सव नेपालमें प्रचलित है।

२९। लाखिया-यात्रा—शाक्यमुनि जब बोधिवृक्षके नीचे ध्याननिमग्न थे, उस समय इन्द्र उनका ध्यान तोड़नेके लिए आए, लेकिन उनके बलसे पराभूत हो वापिस चले गए। पीछे ब्रह्मादि देवगण शाक्यबुद्धको आशीर्वाद देने आए। इसी उद्देश्यसे इस उत्सवकी सृष्टि हुई है।

३०। भैरवी-यात्रा और विषकाटी उत्सव—भातगाँव नगरके अधिष्ठाता भैरवदेवके उद्देश्यसे नेवारजातिका उत्सव। यह उत्सव दो तीन वैशाखको मनाया जाता है। इसके पास ही शक्तिस्वरूपिणी भैरवीमूर्त्ति नेतादेवीका मन्दिर है। इस दिन भैरवमन्दिरके सामने एक चकोरकाष्ठ रख कर उसकी पूजा करते हैं। इसीका नाम लिङ्गयात्रा वा विषकाटी है।

३१। अमिताभ-बुद्धका उत्सव—स्वयम्भुनाथके मन्दिरसे नानाप्रकारके पवित्र उपकरण और साजसज्जादि तथा अमिताभ बुद्धके शिर परका मुकुट ला कर काठमण्डूमें यह उत्सव होता है। पूजादिके बाद बांड़ा नामक बौद्ध ब्राह्मणोंको धान्यादि शस्य और नानाप्रकारके द्रव्यादि दान करते हैं। तदनन्तर देवोच्छिष्ट नैवेद्यादिको रास्ते पर छिड़क देते हैं। इस समय आगत बौद्ध-नेवारीगण बुद्धका पवित्र प्रसाद पानेकी आशासे गोलमाल करते हैं। पीछे बाँड़ा-भोजन होता है। इसके बाद हो सर्व कोई मिलकर बाहर निकलते हैं।

३२। रथयात्रा—यह इन्द्रयात्रासे स्वतन्त्र है। १७४०-१७५० ई०के मध्य राजा जयप्रकाशमल्लके राजत्वकालमें इस उत्सवकी सृष्टि हुई। एक समय सात वर्षकी एक बांढ़ा-बालिकाने प्रलाप करते हुए कहा कि वह कुमारी देवी वा शक्तिकी अंशसम्भूत है। लेकिन राजाने उसे पाखण्डी समझ कर नगरसे बाहर निकाल दिया और उसकी जमीन जमा सब जप्त कर ली। उसी रातको रानी वायुरोगसे पीड़ित हुई। उनकी उन्मत्त प्रलापसे मालूम हुआ कि उन पर देवीका क्रोध है। यह देख कर राजा स्तम्भित हो रहे। उन्होंने सबके सामने उस बांढ़ाबालिकाकी ईश्वरीय अंशोद्भव बतलाया और उसी समयसे उसकी पूजादि करके देवीका क्रोध शान्त किया। पीछे राजाने उस कन्याको स्वदेशमें ला कर बहुत-सी जागीर दीं। प्रतिवर्ष उस कन्याको रथ पर चढ़ा कर नगरके चारों ओर घुमाते थे। इसीसे रथयात्रा उत्सवकी सृष्टि हुई है। जिस तरह उड़ीसामें जगन्नाथ, बलराम और उनके बीचमें सुभद्रा देवी अवस्थित हैं, उसी तरह यहां भी देवीकी मूर्त्तिके रक्षणावेक्षणके लिये दो बांढ़ा बालक नियुक्त रहते हैं। वे भैरव वा महादेवके पुत्र गणेश और कुमारके रूपमें गिने जाते हैं। वह कुमारी अष्ट-मातृका वा कालीदेवीकी तरह पूजित होती है।

३३। स्वयम्भूमेला वा स्वयम्भूत्पत्तिक-दिन—स्वयम्भूदेवके जन्मदिन-उपलक्षमें आश्विनी पूर्णिमाको यह उत्सव होता है। वर्षाके प्रारम्भमें ज्येष्ठमासको स्वयम्भूनाथकी चूड़ा आदिको वस्त्रसे ढक देते हैं। इस दिन मन्दिरावरक वस्त्रका उन्मोचन किया जाता है। बौद्धधर्मावलम्बियोंके लिये यह महापुण्यका दिन है। इस दिन नेपालकी सभी उपत्यकाओंमें बुद्धकी पूजा होती है।

३४। छोटी-मत्स्येन्द्रनाथ-यात्रा—काठमण्डू नगरका एक वार्षिक महोत्सव। पाटनमें जिस तरह पद्मपाणिका उत्सव होता है, यहां भी उसी तरह समन्त-भद्रके उद्देशसे एक उत्सव होता है। किन्तु समन्त-भद्रका नाममाहात्म्य जनसाधारणमें विशेष व्याप्त न रहनेके कारण यह पार्वणोत्सव नेपालके अधिष्ठाता मत्स्येन्द्र-नाथके

नामानुसार छोटी छोटी मत्स्येन्द्रनाथयात्रा नामसे प्रसिद्ध है। चैत्रमासकी शुक्लाष्टमी तिथिको यह पर्वोत्सव होता है और चार दिन तक रहता है। किन्तु दैवदुर्विपाकसे यदि रथचक्र टूट जाय अथवा रथयात्रामें कोई विघ्न पहुँच जाय, तो क्षतिपूरण-स्वरूप एक दिन और भी उत्सव होता है। प्रथम दिन रानी-पोखरासे आसनताल तक, दूसरे दिन आसनतालसे दरबार तक तथा तीसरे दिन दरबारसे लाघनताल तक जाते हैं और चौथे दिन लाघनतालसे पुनः रानीपोखराको लौटते हैं।

३५। रामनवमी उत्सव—श्रीरामचन्द्रके जन्मोपलक्षमें गोर्खाजातिका अनुष्ठित उत्सव। चैत्रमासकी शुक्ला-अष्टमी तिथिको सूर्यदेव उत्तरायणमें पदार्पण करते हैं, गोर्खा लोग इस शुभ दिनमें अपने अपने दलमध्यमें पूजा और देवताओंको मनोमत द्रव्यादि उत्सर्ग करते हैं। दूसरे दिन नवमी तिथि पड़ती है। इस पुख्यतिथिमें हिन्दूओंका उत्सव देख कर बौद्ध नेवारगण अष्टमीसे ले कर एकादशी तक समन्तभद्रका उत्सव दिन स्थिर करते हैं।

३६। नारायणपूजा और उत्सव—शिवपुरी पर्वतके सानुदेशमें बड़ा-नीलकण्ठ नामक ग्राममें तथा नागार्जुन-पर्वतके निम्नस्थ बालाजी ग्राममें विष्णुपूजा महा धूमधामसे होती है। पहले सिर्फ बड़ा-नीलकण्ठमें यह उत्सव होता था। यहां एक क्षुद्र पुष्करिणीके मध्यभागमें अनन्तशय्या-शायी नारायणकी सुबृहत् मूर्त्ति विद्यमान है। इस विष्णुमूर्त्तिके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और शालग्राम है। गोसाईंथान पर्वतके नीलकण्ठ कुदते रवर्त्ती महा-देवकी सुबृहत् मूर्त्ति देख कर नेपालवासी इस नारा-यणमूर्त्तिको भी महादेवकी मूर्त्ति मानते हैं।

बड़ा-नीलकण्ठतीर्थमें नेपालराज और राजपरि-वारभुक्त किसी व्यक्तिका जाना निषिद्ध है। किन्तु दूसरे दूसरे सभी बौद्ध और हिन्दूगण इस तीर्थमें जा सकते हैं। प्रायः दो सौ वर्ष हुए कि नेवारोंने उसके अनुकरणमें बालाजीमें बालानीलकण्ठ नामक नूतन नारायणकी मूर्त्ति स्थापन की है। हिन्दूगेण यहां केवलमात्र नारा-यणमूर्त्तिकी पूजा करते हैं और मानसिक द्रव्यादि उप-हार देते हैं। किन्तु बौद्धगण पूजाके बाद नागार्जुन पर्वतस्थित बौद्धचैत्यके दर्शनको जाते हैं।

३७। उपरोक्त यात्राओंके अलावा मठयात्रा, (३८) शृङ्गवेरी यात्रा, (३९) लोकेश्वरयात्रा, (४०) स्वयं-लोकेश्वरयात्रा आदि अनेक यात्राएं हैं।

स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें और स्वयम्भूपुराणमें उक्त यात्राओंमेंसे किसी किसीका विषय वर्णित है।

नेवारजातिके उत्सवमें पार्वणकार्य चाहे हो चाहे न हो लेकिन नृत्यगीत, मांसभोजन और मद्यपान अवश्य होता है।

फाल्गुनमासकी शिवचतुर्दशी तिथिको नेपालीगण शिव-पूजा और रात्रिजागरणादि करते हैं। प्रत्येक मनुष्य पशु-पतिनाथके मंदिरमें जाता और बाघमतीमें स्नान करता है।

प्रसिद्ध स्थानादि।

नेपाल उपत्यकामें सचमुच केवल चार नगर हैं। विभिन्न राजाके समयमें इन्हीं चार नगरोंमें राजधानी थी। वर्त्तमान राजधानी काठमाण्डू और प्राचीन राज-धानी कीर्त्तिपुर, पाटन और भातगांव यही चार नगर विष्णुमतीनदीके किनारे बसे हुए हैं। इसके अलावा और जो सब प्रसिद्ध स्थान हैं, उनमेंसे अधिकांश तीर्थ-स्थान या मन्दिरादिके लिए विख्यात हैं, किन्तु वे सब ग्राम मात्र हैं। नेपाल उपत्यकामें इस प्रकारके जितने ग्राम हैं उनमेंसे बड़ा नीलकण्ठ ग्राम, बालाजी वा छोटा नीलकण्ठ ग्राम, स्वयम्भूनाथ ग्राम (ये सब विष्णुमती नदीके मुहाने पर अवस्थित है), हरिग्राम, इय (रुद्रमतीके किनारे), धरिग्राय ग्राम और बोध-नाथ ग्राम (रुद्रमती और बाघमतीनदीके मध्यवर्त्ती उच्चभूमि पर अवस्थित), गोकर्ण ग्राम, देवपाटन ग्राम, चन्द्रेश्वर, फिरफिङ्गशहर, शङ्कूशहर, चाङ्गुनारायण ग्राम, तिम्मिशहर (मनोहरानदीके निकटवर्त्ती), गोदा-वरी ग्राम (गदौरी, फुलचोया-पर्वतमूल पर अवस्थित), थानकोट शहर (चन्द्रगिरि पर्वतमूल पर अवस्थित) आदि ग्राम उल्लेखयोग्य हैं।

काठमण्डू, कीर्त्तिपुर, पाटन और भातगांव ये चार नगर नेवार राजाओंके समयमें प्राचीर द्वारा चारों ओरसे घिरे थे और जाने आनेके लिए प्राचीरके नाना स्थानोंमें तोरण बने हुए थे। गोर्खाओंके समयसे ये सब प्राचीर दिनों दिन तहस-नहस होते जा रहे हैं। अधिकांश तोरण

ध्वंसावशेषमें परिणत हो गए हैं। किन्तु नगरसीमा उस प्राचीन प्राचीर तक आज भी निर्दिष्ट है। उस समयके नियमानुसार नीच जातीय हिन्दू (मेहतर, कसाई, जल्लाद आदि) किसी नगरसीमाके अन्तर्भागमें वास नहीं कर सकते। मुसलमानोंके प्रति यह नियम नहीं है। बहुतेरे मुसलमान नगरमें ही वास करते हैं। प्रति नगरके प्रत्येक फाटकसे संलग्न एक एक टोला वा पल्ली है। इन सब पल्लियोंकी म्युनिसपलिटी स्वतन्त्र है। म्युनिसपलिटीके हाथमें पल्लीके संस्कार और रक्षाका भार है। इन चार नगरोंके प्रत्येक नगरमें एक राजप्रासाद वा दरबार है जो नगरके प्रायः मध्यस्थलमें अवस्थित है। प्रत्येक प्रासादके सामने एक लम्बा चौड़ा मैदान है। उसी मैदान हो कर राजप्रासाद आना पड़ता है। मैदानके चारों ओर मन्दिर प्रतिष्ठित हैं। नगरके अन्यत्र भी इस प्रकारका खुला मैदान देखनेमें आता है। काठमण्डू नगरमें ऐसे मैदानकी संख्या ३२ है। विचारालय और साधारण कर्मस्थानादि इसी प्रकारके मैदानके किनारे अवस्थित है। काठमण्डू, पाटन और भातगांवके प्रधान प्रधान मन्दिर दरबारके पास ही बने हुए हैं। यहां तक कि उनमेंसे कितने दरबारकी सीमाके मध्य उपस्थित हैं। उसके निकटवर्त्ती कोई कोई मन्दिर आज भी भग्नावस्थामें वर्त्तमान है। दरबारोंके पीछे राज्योद्यान, हयसाल और घुड़साल है।

काठमण्डू नगर आयताकार है। बौद्धोंका कहना है, कि यह नगर मञ्जुश्री द्वारा उनकी तलवारके आकारमें बनाया गया है। लेकिन हिन्दू लोग, भवानीके खड्गाकारमें यह नगर बसाया गया है, ऐसा कहते हैं। जिस किसीका खड्ग हो, उसका मुष्टिभाग दक्षिणकी ओर वाघमती और विष्णुमतीके सङ्गम स्थल पर तथा उत्तरकी ओर तिम्मेल ग्राममें अग्रभाग कल्पित हुआ है। काठमण्डू उत्तर दक्षिणमें आध कोस और चौड़ाईमें कहीं उससे अधिक है। इसका प्राचीन नाम है मञ्जुपाटन। दरबारके सम्मुखस्थ और काष्ठमय भवनको नेवारलोग सब दिनसे काठमण्डू (काष्ठमण्डप) कहते आये हैं; जहां तक सम्भव है, कि उसीसे नगरका नाम भी "काठमण्डू" पड़ा है। १५९६ ई०में राजा लक्ष्मीन्द्रसिंहमल्लने यह काष्ठमण्डप बनवाया था। यह कोई देवमन्दिर नहीं है। देशवासी और आगन्तुक संन्यासियोंके रहनेके लिये ही यह बनाया गया है। आज भी उसमें वही कार्य होता है। लेकिन कुछ दिन हुए कि उसमें एक शिवमूर्त्ति भी प्रतिष्ठित हुई है। काठमण्डूके प्राचीन ३२ फाटकोंमेंसे कितने आज भी भग्नावस्थामें पड़े हैं किन्तु उन ३२ फाटकोंके संश्लिष्ट ३२ टोला वा ग्राम अब भी पूर्ववत् दीख पड़ते हैं। इन ग्रामोंमेंसे आसनटोला, इन्द्रचक, दरबारचक, काठमण्डू टोला, टोवा टोला और लघन टोला उल्लेखयोग्य हैं।

दरबारचकमें दरबार वा प्रासाद अवस्थित है। प्रासादके उत्तर तल्लिजु मन्दिर, दक्षिण वसन्तपुर नामक मन्त्रणागृह और नूतन-दरबार (अभ्यर्थना-गृह), पूर्व राज्योद्यान और हाथी-घोड़े रहनेके घर तथा पश्चिममें सिंह-द्वार है। प्रासादमें उस समयके नेवारोंके बने हुए प्राचीन गठनके गृहादि आज भी विद्यमान हैं।

काठमण्डू नगरमें हिन्दूके जितने मन्दिर हैं उनमेंसे तल्लिजु मन्दिर छोड़ कर और कोई मन्दिर उतना शोभायुक्त वा उल्लेखयोग्य नहीं है। बौद्धमन्दिर नगरके नाना स्थानोंमें हैं जिनमेंसे 'काठोशम्भु' और 'बौद्धमण्डल' नामक दो मन्दिर उल्लेखयोग्य हैं।

काठमण्डू नगरमें ६०से ८० हजार लोग रहते हैं जिनमेंसे नेवारोंकी संख्या ही अधिक है। नगरके बाहर पूर्वकी ओर ठण्डोखेल नामक मैदानमें सेनाओंकी कूच कवायद होती है। इसके मध्यस्थलमें प्रस्तरवेदिकाके ऊपर सर जङ्गबहादुरकी गिल्टी की हुई एक प्रतिमूर्त्ति है। १८५६ ई०में बहुत धूमधामसे जङ्गबहादुरने स्वयं इस मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की थी। बारूदखानेमें जगन्नाथका मन्दिर है जिसे १८५२ ई०में जङ्गबहादुरने प्रतिष्ठित किया। ठण्डोखेल मैदानके एक बगलमें बहुत पुराना एक छोटा मन्दिर है जहां नेपालके सभी मन्दिरोंकी अपेक्षा अधिक यात्री एकत्रित होते हैं। इस मन्दिरमें महाकाल नामक शिवकी जो मूर्त्ति है, बौद्ध लोग उसीको पद्मपाणि बोधिसत्त्व बतलाते हैं। महाकालके कपाल पर एक और भी छोटी मूर्त्ति खोदित है। हिन्दू लोग उस मूर्त्तिको क्या कहते हैं, मालूम नहीं (शायद

चन्द्रमूर्त्ति कहते हैं); किन्तु बौद्धलोग उस मूर्त्तिको पद्मपाणिके ललाटसे उत्पन्न अमिताभकी मूर्त्ति मानते हैं। जो कुछ हो, इस मन्दिरमें इसी लिये एक ही प्रतिमाको विभिन्न धर्मका विभिन्न देवता जान कर हिन्दू और बौद्ध दोनों सम्प्रदायके मनुष्य उसकी पूजा करते हैं।

नगरके उत्तर-पश्चिम कोणके रानीपोखरा नामक जिस सरोवरका उल्लेख किया गया है, उसके मध्यस्थलमें देवीका मन्दिर है। इसमें जानेके लिये पश्चिम किनारेसे पुल लगा हुआ है। पहले इस हृदकी शोभा अपूर्व थी, किन्तु जबसे जङ्गबहादुरने इसे चारों ओरसे दीवारसे घेर दिया है, तबसे इसकी शोभा नष्ट हो गई है।

रानीपोखरा सरोवरके पूर्वोत्तरकोणमें नारायणका एक छोटा मन्दिर है जिसके चार तरफ देवदारुके सुन्दर वन लगे हुए हैं, यह स्थान देखने लायक है। इसके समीप ही एक निर्झर है। इस स्थानका नाम नारायणहिटी है। इस मन्दिरके सामने आधुनिक चूना पत्थरका काम किया हुआ फतेजङ्ग-चौतरा नामक एक अट्टालिका है जहां पूर्व समयमें फतेजङ्ग वास करते थे। रानीपोखराके दक्षिण एक प्रस्तरमय हाथीके ऊपर राजा प्रतापमल्ल और उनकी महिषीकी प्रस्तरमयी मूर्त्ति है। यही महिषी इस सरोवरको खुदवा गई हैं।

काठमण्डू शहरके पश्चिम स्वयम्भूनाथ पहाड़के दक्षिण उच्चभूमि पर स्कन्धावार और कवायदका मैदान है। यहां गोलन्दाज सेनाकी कवायद होती है। शहरके दक्षिण वाघमती और विष्णुमतीके सङ्गमस्थल पर वाघमतीके दाहिने किनारे सेनापति व्योम बहादुरसे निर्मित २।३ सौ गज चौड़ा पत्थरका एक बड़ा घाट है। यह घाट काठमण्डू, कान्तिपुर, जिनदेशो आदि नामोंसे भी पुकारा जाता है। कहते हैं, कि राजा गुणकामदेवने ३८२४ कल्यब्द (७२३ ई०)-में यह नगर बसाया।

रानीपोखरासे और भी दक्षिण ठण्डोखेल वा तुड़ीखेल नामक कवायद करनेका मैदान है। इसके पश्चिम धरारा नामक एक प्रस्तरस्तम्भ है जिसे भीमसेन ठापा नामक किसी सेनापतिने बनाया है। इसकी ऊँचाई २५० फुट है। इसमें सीढ़ी और भरोखे लगे हुए हैं १८५६ ई०के वज्राघातसे इसका बहुत कुछ अंश टूट फूट गया था, फिरसे इसका संस्कार हुआ है। यहां भीमसेन निर्मित इसी प्रकारका एक और भी स्तम्भ था जो १८३३ ई०के भूमिकम्पसे तहस नहस हो गया है। वर्त्तमान स्तम्भकी गठन और कारुकार्य अत्यन्त उत्कृष्ट और शोभासम्पन्न है। काठमण्डूसे आध कोस उत्तर अंगरेजी रेसिडेण्टका आवासभवन और उद्यान है।

काठमण्डूसे जिस सेतु द्वारा वाघमती पार कर पाटन जाना होता है, उस सेतुके उत्तर एक प्रस्तरमय वृहत् कच्छपके पृष्ठ पर प्रस्तरस्तम्भ है। स्तम्भके ऊपर एक प्रस्तरमय सिंहमूर्त्ति विद्यमान है। यह अद्भुताकार स्तम्भ भी सेनापति भीमसेन ठापासे बनाया गया है। सेतु भी उन्हींकी कीर्त्ति है।

पाटन—यह नेपालमें सबसे बड़ा नगर है। इसका दूसरा नाम है ललितपत्तन। यह काठमण्डूसे दक्षिणपूर्व तीन पावकी दूरी पर वाघमतीके दाहिने किनारे अवस्थित है। गोर्खा-विजयके पहले नेपाल जो तीन राज्योंमें विभक्त था, उस समय इसी नगरमें नेवारराजकी राजधानी थी। पाटन देखो।

कीर्त्तिपुर—चन्द्रगिरि पर्वतके उपरिस्थित गिरिपथके नीचे जो सब ग्राम और नगर हैं उनमेंसे थानकोट शहर बहुत कुछ प्रसिद्ध है। इसीके पूरब पर्वतके ऊपर बहुतसे ग्राम हैं। उन ग्रामोंमें कीर्त्तिपुर ही प्रधान है। यहां पहले एक स्वाधीन राजाकी राजधानी थी। अन्तमें यह पाटनराजके हाथ लगा। कीर्त्तिपुर निकटवर्त्ती समतल भूभागसे ३-४ सौ फुट ऊँचे पर तथा पाटन और काठमण्डू नगरसे डेढ़ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यह नगर प्राचीनकालमें बहुविस्तृत नहीं था। किन्तु यहांका दुर्भेद्य दुर्ग बहुत भयङ्कर था। १७६५-से १७६७ ई० तक तीन वर्ष घेरा डाले रहनेके बाद गोर्खाराज पृथ्वीनारायणने छल करके यह नगर जीता और विश्वासघातकतासे नगरमें प्रवेश कर आबालवृद्धवनिता सबोंकी नाक काट डालीं। केवल वे ही बच गए थे, जो बांसुरी बजाना जानते थे। फादरगाइसिनो नामक एक पादरी इस समय कीर्त्तिपुरमें थे। वे अपने नेपाल-इतिहासमें इस विषयमें अनेक निष्ठुर घटनाओंका उल्लेख कर गए हैं। कर्नेल कार्कपैट्रिक भी इस

घटनाके ३० वर्ष बाद जब कीर्त्तिपुर गए थे, तब उन्होंने भी वहां कितने नकटे मनुष्योंको देखा था। कीर्त्ति-पुरकी लोकसंख्या चार हजारके लगभग है। पृथ्वीनारा-यणके आदेशसे कीर्त्तिपुरका नाम बदल कर 'नाक-काटापुर' रख गया। तभीसे यह नगर क्रमशः ध्वंस होता जा रहा है, मन्दिर और अट्टालिकाओंके संस्कार करने-की कोई चेष्टा नहीं की जाती। प्राचीन तोरण और प्राचीर आज भी ध्वंसप्राय अवस्थामें पड़ा है। यहां केवल नेवारोंका वास है। जलवायु बहुत स्वास्थ्यकर है। पर्वतसुलभ गलगण्डरोगी यहां एक भी देखनेमें नहीं आता। यहांके दरबार और निकटवर्त्ती मन्दिरादि शहरके पश्चिम छोटे पहाड़के ऊपर अवस्थित है। अभी इसका जो ध्वंसावशेष वर्त्तमान है, उससे प्रकृत आकारका निरूपण नहीं किया जा सकता। पीतवर्ण प्रस्तर (अभी इस तरहका पत्थर नेपालमें प्रस्तुत नहीं होता)-निर्मित दो मन्दिर आज भी वर्त्तमान हैं। इनकी छत गिर पड़ी है, दीवार पर जङ्गल हो गया है, किन्तु कितने हाथी, सिंह आदिकी प्रस्तर मूर्त्ति आज भी रक्षित अवस्थामें वर्त्तमान है। मन्दिर १५५५ ई०में बनाया गया था और उसमें हरगौरीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थी।

यहांके सभी मन्दिर ध्वंसप्राय हैं, केवल जिनका खर्च गोर्खा-राजाकोषसे दिया जाता है, वे ही आज तक पूर्व-वत् अवस्थामें विद्यमान हैं। भैरवका मन्दिर ही प्रधान है। यहां उत्सवके दिन बहुतसे यात्री एकत्रित होते हैं। मन्दिरमें कोई मनुष्याकृति वा लिङ्गरूपी देवप्रतिमा नहीं है। उसके बदलेमें एक प्रस्तरमय नाना रंगोंमें रञ्जित व्याघ्रमूर्त्ति है। यही मूर्त्ति देवमूर्त्तिरूपमें पूजित होती है। इस मन्दिरके पास ही और भी दो तीन मन्दिरोंका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

कीर्त्तिपुरके उत्तर पर्वतके ऊपर गणेशका एक मन्दिर है। इस मन्दिरका तोरण बहुत सुन्दर और उत्कृष्ट खोदित कारुकार्यशोभित है। इन सब खोदित शिल्पों-में अधिकांश पौराणिक चित्र है। १६६५ ई०में जैसो जातीय शेरिस्तानेवारने इस मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। तोरणकी कपालीके मध्यस्थलमें गणेश, वाम भागमें मयूरा रोहिणी कुमारी, कुमारीके वामभागमें महिषारोहिणी वाराही, और वाराहीके वामभागमें शिवारोहिणी चामुण्डा हैं तथा गणेशके दक्षिण गरुड़ारोहिणी वैष्णवी, वैष्णवीके दक्षिण ऐरावतारोहिणी इन्द्राणी और इन्द्राणीके दक्षिणमें सिंहवाहिनी महालक्ष्मी हैं। गणेशके ऊपर मध्यस्थलमें भैरव और शिवकी तथा वाम-भागमें हंसारोहिणी ब्रह्माणीकी और दक्षिणमें वृषा-रोहिणी रुद्राणीकी मूर्त्ति खोदित है। इन अष्ट देव-मूर्त्तियोंको अष्टमातृका कहते हैं। दोनों द्वारके कोनेमें मध्यविन्दुयुक्त षट्कोणी यन्त्र है और दोनों बगल पद्मयुक्त सिंहमूर्त्तिके नीचे कलस और श्रीवत्स खोदित है।

कीर्त्तिपुरके दक्षिण-पूर्वमें "चिलनदेव" नामक एक बौद्धमन्दिर है। यह मन्दिर छोटा होने पर भी इसमें बौद्ध देवदेवियों, बौद्ध शास्त्रोक्त घटनाओं और बौद्ध चिह्न यानादिके जो सब विशुद्ध चित्र स्पष्टरूपसे खोदित हैं, उन सबके लिये इस मन्दिरका विशेष आदर होता है। कीर्त्तिपुरके पूर्व काठमण्डूसे एक कोस दक्षिण चोभड़ाल नामक ग्राम और उससे भी डेढ़ कोस पूर्वमें भातगांव पड़ता है।

भातगाँव—यह महादेव-पोखराशिखरसे डेढ़ कोस और काठमण्डूसे दक्षिण-पूर्व ४ कोस दूर हनुमान्-मतीके बाएं किनारे अवस्थित है। इस नगरके पूर्व और दक्षिणमें हनुमान् मती नदी और उत्तर तथा पश्चिममें कंसावती नदी प्रवाहित है। इस नगरका आकार शङ्ख-सा है। भातगांव देखो। भातगाँव और काठ-मण्डूके मध्य नदीबुदं और थिमी नामक ग्राम बसा हुआ है। थिमी ग्राममें बहुत सुन्दर मृण्मय पात्रादि प्रस्तुत होते हैं।

फिरफिङ्ग—यह छोटा नगर बाग्मती नदीके दक्षिण बसा हुआ है।

चांपागांव—पाटनसे जो रास्ता दक्षिणकी ओर गया है उसीके ऊपर यह छोटा नगर अवस्थित है। इस नगरके समीप एक पवित्र कुञ्जके मध्य एक बहुत प्राचीन मन्दिर है।

हरिसिद्धि—पाटनसे दक्षिणपूर्वकी ओर जो रास्ता चला गया है उसीके ऊपर यह गण्डग्राम अवस्थित है।

गोदावरी वा गदौरी—फुलचोया पर्वतके पादमूलमें तथा पाटनसे दक्षिणपूर्वकी ओर जो रास्ता गया है उसी के ऊपर यह नगर अवस्थित है। यह नगर नेपाल भरमें बहुत पवित्र स्थान माना जाता है। हर बारहवें वर्ष में यहां एक निर्झरके समीप एक मासव्यापी मेला लगता है। स्थानीय लोगोंमें प्रवाद है, कि दाक्षिणात्यको गोदावरी नदीके साथ इस नदीका संयोग है और तदनुसार इस स्थानका नाम भी पड़ा है। इसके समीप बहुतसे छोटे छोटे मन्दिर और पुष्करिणी हैं। गोदावरीमें इलायचीका खेत बहुविस्तृत है। यहांकी इलायची अन्यत्र भेजी जाती है और कृषक इससे काफी लाभ उठाते हैं। यहां पर्वतके शिखर पर गुलाब, जूही, जाती आदि जंगली फूल बहुत लगते हैं, ऐसा नेपाल भरमें और कहीं भी देखनेमें नहीं आता। प्रचुर परिमाणमें फूल उपजनेके कारण ही इस पर्वतका नाम फुलोच्च वा 'फुलचोया' पड़ा है। पर्वतके ऊपर एक छोटा पवित्र मन्दिर है जहां सैकड़ों यात्री जमा होते हैं। मन्दिरके निकट दो मृत्स्तूपोंमेंसे एकके ऊपर तांतियोंके कितने भाखो और दूसरे पर एक त्रिशूल गड़ा हुआ है।

पशुपतिनाथ—काठमण्डूसे पूर्वकी ओर एक रास्ता निकल कर नवसागर, नन्दीगांव, हरिगांव, चवाहिल और देवपाटन ग्रामके मध्य होता हुआ पशुपतिनाथ तक चला गया है। यह तीर्थस्थान काठमण्डूसे डेढ़ कोस पूर्व-उत्तर कोनेमें अवस्थित है। पशुपतिनाथ देखो।

चाङ्गुनारायण—पशुपतिनाथसे दो कोसकी दूरी पर यह शहर अवस्थित है। इसके निकट मनोहरीनदी प्रवाहित है। चाङ्गुनारायण चार ग्रामोंकी समष्टि है। प्रत्येक ग्राममें चारि नामक चार नारायणके मन्दिर हैं। उन्हीं सब देवताओंके नाम पर उस ग्रामका नाम पड़ा है। चारिनारायणमूर्त्तिके दर्शन करनेके लिये दूर दूरसे देशी लोग यहां आते हैं। चारिनारायणके नाम ये हैं,—चाङ्गुनारायण, विशङ्कुनारायण, शिखरनारायण और इचाङ्गुनारायण। इन चार ग्रामोंकी सीमा प्रायः २२ कोस है।

शङ्खु—चाङ्गुनारायणसे पूर्व-उत्तर कोनेमें एक कोसकी दूरी पर यह नगर अवस्थित है। इसकी भी तीर्थस्थानमें गिनती होती है। यहां भी सैकड़ों यात्री समागम होते हैं। यहांका सिद्धिविनायक नामक गणेशका मन्दिर बहुत मनोहर है। नेपाल प्रदेशमें विनायक नामक चार गणेशकी मूर्त्ति प्रसिद्ध हैं। इन चारोंमेंसे शङ्खुनगरमें सिद्धिविनायक, भातगांवमें सूर्यविनायक, काठमण्डूमें आशु-विनायक और चव्वरनगरमें विघ्नविनायक मन्दिर अवस्थित है।

गोकर्ण—यह पशुपतिनाथसे एक कोस पूर्व-उत्तर कोनेमें वाग्मतीके किनारे अवस्थित है। यह नेपालतीर्थके मध्य विशेष प्रसिद्ध है। इसके समीप सर जङ्गबहादुरकी यत्नसे मृगयाके लिए एक वन लगा हुआ है।

बोधनाथ—पशुपतिनाथ और काठमण्डूके मध्य पशुपतिनाथसे प्रायः आध कोस उत्तर बोधनाथ (बुद्धनाथ) नामक ग्राम अवस्थित है। एक बृहत् बौद्धमन्दिरके चारों ओर चक्राकारमें यह ग्राम बसा हुआ है। मन्दिरकी वेदी गोलाकार ईंटोंसे बनी हुई है। उसी वेदीके ऊपर पूर्णगर्भ गम्बूजाकृति मन्दिर है जिसकी चूड़ा पीतलकी बनी हुई है। वेदीमें कुलङ्गीके मध्य बोधिसत्वोंकी प्रतिमा है। ये सब कुलङ्गी १५ इञ्च ऊंची और ६ इञ्च चौड़ी हैं। मन्दिरका व्यास १०० गजसे कम नहीं होगा। यह मन्दिर भूटिया और तिब्बतीय बौद्धोंका विशेष आदरका स्थान है। शीतकालमें उक्त बौद्धगण इस मन्दिरको देखने आते हैं।

नीलकण्ठ—शिवपुरी पर्वतके पादमूलमें नीलकण्ठहृदके किनारे नीलखियत् वा नीलकण्ठ नामक ग्राम वर्त्तमान है। यहांके नीलकण्ठ देवताका विवरण इससे पहले शिवपुरी पर्वतके वर्णनास्थलमें उल्लिखित हुआ है।

बालाजी—काठमण्डूसे विष्णुमती पार हो कर एक निकुञ्जप्रान्तमें नागार्जुन पर्वतके नीचे यह ग्राम बसा हुआ है। इस पर्वतका बहुत कुछ अंश सर जङ्गबहादुर द्वारा प्राचीरसे घिरा हुआ है और उसके मध्य सुरक्षित मृगवन है। इस पर्वतके नीचे कितने निर्झर बहते हैं और निर्झरके नीचे एक हृदाकार शायित महादेवकी मूर्त्ति है। इस ग्राममें नेपालाधिपतिकी उद्यानवाटिका विद्यमान है।

स्वयम्भूनाथ—काठमण्डूसे पश्चिम तीन पावकी दूरी पर स्वयम्भूनाथ ग्राम अवस्थित है। इस ग्राममें

पर्वतके शिखर पर बौद्ध देवता स्वयम्भूनाथका मन्दिर है। मन्दिरमें जानेके लिए चार सो सीढ़ियां लगी हुई हैं। मन्दिर २५० फुटकी ऊंचाई पर अवस्थित है। सीढ़ीके नीचे शाक्यसिंहकी एक प्रकाण्ड मूर्त्ति विद्यमान है और ऊपरमें ३ फुट ऊंची वेदीके ऊपर इन्द्रके वज्रकी मूर्त्ति है। स्वयम्भूनाथ देखो।
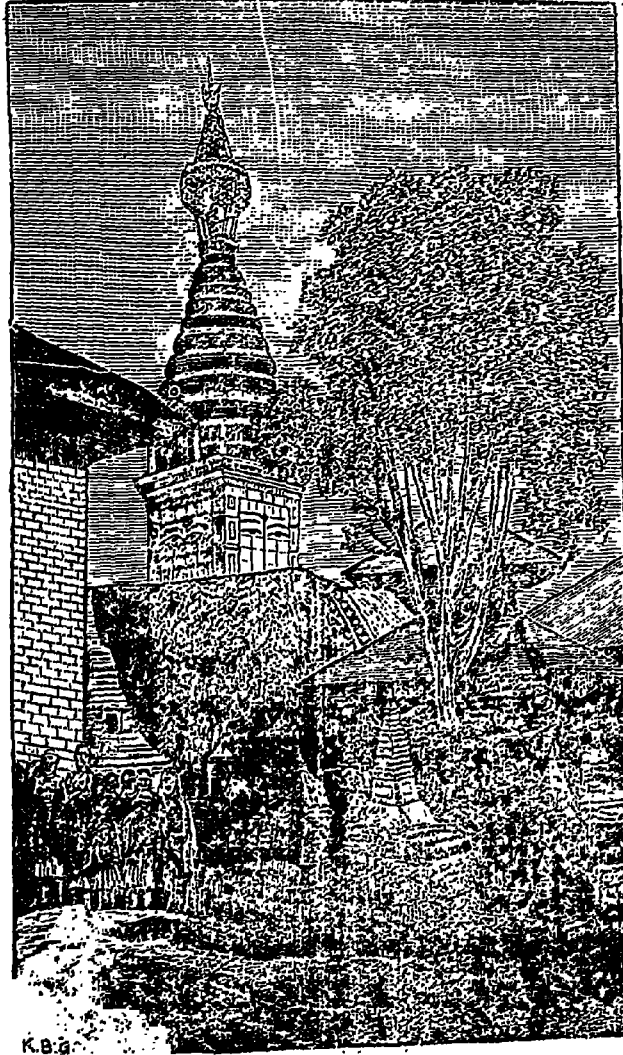
स्वयम्भूनाथका मन्दिर।

भोगमती—कीर्त्तिपुरसे ढाई कोस दक्षिण बाघमती के पूर्वी किनारे यह ग्राम अवस्थित है। रथके ऊपर इस ग्राममें मत्स्येन्द्रनाथकी प्रतिमा छः मास तक रहती है। प्रवाद है, कि नरेन्द्रदेव और आचार्य जब पाटनसे पवित्र वारिपूर्ण कलस ले कर कपोतल पर्वत पर घूम रहे थे, तब इन्होंने एक दिन इसी ग्राममें वास किया था।

नवकोट—यह नवकोट उपत्यकाका प्रधान नगर है। काठमण्डूसे पूर्व ८ कोसकी दूरी पर अवस्थित धैवङ्ग वा जिबजिबिया पर्वतके दक्षिण-पश्चिमकी ओर जो शिखर है, उसीके ऊपर यह नगर बसा हुआ है। इस नगरके पूरब आध कोसकी दूरी पर त्रिशूलगङ्गा और पूर्व तथा दक्षिण आध कोसकी दूरी पर ताड़ी वा सूर्यमती नदी प्रवाहित है। इस नगरमें दो दरबार वा प्रासाद हैं। नेपालका विख्यात भैरवीदेवीका मन्दिर इसी नगरमें अवस्थित है। अङ्गरेजों और नेपालियोंके साथ जो अन्तिम लड़ाई हुई उस समय तक इस नगरमें नेपालाधिपतिका ग्रीष्मावास था। १८१३ ई०में नेपालाधिपतिने यहांका वासस्थान छोड़ कर काठमण्डूमें ही चिरवास

करनेकी व्यवस्था की है और तभीसे यहांके प्रासादादि भग्नोन्मुख हुआ है। सूर्यमती नदीकी ओर घने शाल-का वन है। चैत्रमासमें नयाकोट उपत्यका और तराई-प्रदेशमें मलेरिया ज्वरका प्रादुर्भाव अधिक देखनेमें आता है।

देवीघाट—नयाकोट नगरसे तीन पावकी दूरी पर देवीघाट नामक स्थान है। यहां त्रिशूलगङ्गा और सूर्य-मती नदी आपसमें मिली है। इस सङ्गम स्थान पर भैरवीदेवीका मन्दिर वर्त्तमान है। वैशाखमासमें मले-रियाके प्रकोपके समय इस देवमन्दिरमें अनेक यात्री एकत्रित होते हैं। मन्दिरमें कोई प्रतिमा नहीं रहती, इस समय नयाकोटकी भैरवीदेवी यहां लाई जाती हैं।

भाग्नुर्वा—यह तराई-प्रदेशमें बसा हुआ है। इस नगरसे नेपाल जानेमें कोशीनदी पार होना पड़ता है। इस स्थानके निकट जो तृणाच्छादित सुन्दर प्रशस्त मैदान है वह सैन्यावासके लिए उपयुक्त है।

रङ्गेली—मोरङ्ग तराईके मध्य यह स्थान स्वास्थ्य-निवासके रूपमें गिना जाता है। मोरङ्गके अन्य सभी स्थान अस्वास्थ्यकर होने पर भी रङ्गेलीका जलवायु बहुत-उत्तम है। यहांका पानी भी सुस्वादु है।

तराई-प्रदेशमें हनुमानगञ्ज, जलेश्वर, बुड़हुर्वा आदि शहर लगते हैं।

नेपाल उपत्यकासे पश्चिम कुमायुन जानेमें निम्न-लिखित प्रसिद्ध स्थान राहमें पड़ते हैं—

थानकोट नेपाल-उपत्यकाका सीमान्तवर्त्ती है। यह एक छोटा सुन्दर शहर है।

महेशडोवङ्ग—यह काठमण्डूसे दश कोस पश्चिममें पड़ता है। इस ग्रामके नीचे त्रिशूलगङ्गा और महेश खोलानदीका सङ्गम है।

मङ्गकोटघाट—यह काठमण्डूसे बीस कोस पश्चिममें है। यहां सेनापति भीमसेननिर्मित कितने ही पत्थरके मन्दिर हैं।

गोर्खानगर—दरमड़ीनदीके पूर्व वा दक्षिण किनारे काठमण्डूसे २६ कोसकी दूरी पर यह नगर अवस्थित है। यह हनुमानवनजङ्ग पर्वतके उत्तर प्रतिष्ठित है और वर्त्तमान राजवंशकी प्राचीन राजधानी है।

टानाहुङ्ग—यह काठमण्डूसे ३४ कोस दूर है और इसी नामके छोटे राज्यकी राजधानी है। इसका दर-बार भग्नप्राय है।

पोखरा—यह सेतुगञ्ज नदीके किनारे बसा हुआ है और एक छोटे स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। नगर बहुत बड़ा और बहुजनाकीर्ण है। यहां सब प्रकारका अनाज उपजता है। यह ग्राम ताम्रनिर्मित द्रव्यादिके व्यवसायके लिए विख्यात है। यहां एक वार्षिक मेला लगता है।

अतहुं—पोखराकी तरह यह भी एक क्षुद्र स्वाधीन राज्यकी राजधानी है। यहां एक दरबार है।

तानसेन—पोखराकी तरह यह एक सामन्त राज्यकी राजधानी है। पल्पाप्रदेशका सेनावास इसी नगरमें है। एक हजार सेना और एक काजी यहां रहते हैं तथा एक नूतन दरबार और हाट भी है। गुरुङ्गके प्रस्तुत सूती कपड़ेका व्यवसाय यहां खूब होता है। यहांकी टकशालमें ताम्रमुद्रा ढाली जाती है। काठमण्डूसे ६१ कोस पश्चिममें यह नगर अवस्थित है।

पल्पानगर—यह काठमण्डूसे ६२ कोस दूर है। यहां एक दरबार और भैरवनाथका मन्दिर है।

पेगठाना—यह काठमण्डूसे ८६ कोस पश्चिममें है। यहां बारूद और बन्दूकका कारखाना है। निकटवर्त्ती मुशिनिया-भनजङ्ग ग्रामसे यहां शोरेकी आमदनी होती है।

सलियाना—पोखरा राज्यकी तरह स्वाधीन राज्य-की राजधानी। यह काठमण्डूसे एक सौ दश कोस पश्चिम दूबलखोला नदीके ऊपर अवस्थित है। यहां दरबार और मन्दिरादि हैं।

जजुरकोट—एक प्राचीन राजधानी। यह भेड़ी-गङ्गानदीके किनारे अवस्थित है। यहांका दरबार और देवी-मन्दिर भग्नप्राय है।

तरिया—दैवङ्ग पर्वत और जिवजिविया पर्वतकी एक शाखाके ऊपर यह ग्राम बसा हुआ है। यहां भूटिया जातिका वास है। इसके समीप एक स्वाभाविक वृहत् गुहावत् स्थान है। जहां २।३ सौ मनुष्य रह सकते हैं। गोसाईंथान पर्वतके तीर्थयात्री यहां आ कर आश्रय

लेते हैं। नेवारगण इसे भीमल पाकू और पार्वतीय लोग "भीमलगुफा" कहते हैं। प्रवाद है, कि भीमल नामक एक नेवार-काजीने तिब्बत जीतनेके लिये एक दल सेना भेजी। जब सेना वहां पहुंची, तब तिब्बतके लामा ऊपर से बड़े बड़े पत्थर उन पर फेंकने लगे। किन्तु भीमल अपने हाथोंसे उन गुहाकी छतको तरह बड़े बड़े पत्थरोंको रोकते गए और किसीका कुछ भी अनिष्ट न हुआ। तभीसे इसका नाम 'भीमलगुफा' पड़ा है।

दुमचा—यह भीमलगुफासे डेढ़ कोस दूरमें अवस्थित है। यहां प्रस्तरनिर्मित एक बुद्धमन्दिर है। इस ग्रामके निकट चन्दनवाड़ी पर्वतके ऊपर लोड़ी-विनायकका मन्दिर है। लोड़ी विनायकके मन्दिरमें एक मूर्तिहीन प्रस्तरखण्ड गणेशकी प्रतिमाके रूपमें पूजित होता है। मन्दिरकी परिक्रमा करनेमें यात्रियोंको डंडे आदि रख देने पड़ते हैं, नहीं तो उन पर विनायकका क्रोध पड़ता है।

इतिहास और पुरातत्त्व।

नेपालका विश्वासयोग्य प्राचीनतम इतिहास प्रायः नहीं मिलता। पौराणिक ग्रन्थ-समूहसे अथर्ववेदके परिशिष्टमें, स्कन्दपुराणके नागरखण्डमें (१०२।१६) और सह्याद्रिखंडमें (३८।८), रेवाखण्डमें, देवीपुराणमें, गरुड़पुराणमें (८०।२), अरिष्टनेमि-पुराणान्तर्गत जैनहरिवंशमें (११।७२), वृहन्नीलतन्त्रमें, वाराहीतन्त्रमें, वराहमिहिरकी वृहत्संहितामें और हेमचन्द्रको स्थविरावली चरित्रमें नेपालका सामान्य उल्लेख मात्र पाया जाता है। बौद्धतन्त्र और बौद्धस्वयम्भूपुराणमें तथा स्कन्दपुराणके हिमवत्खण्डमें नेपालका थोड़ा बहुत वर्णन देखनेमें आता है। किन्तु इन सब ग्रन्थोंमें केवल अलौकिक उपाख्यानावली वर्णित है। इसको ऐतिहासिक बातका पता लगाना मुश्किल है।

सुना है, कि नेपालके नाना स्थानोंमें समृद्धिशाली पुरातन वंशके घरोंमें विभिन्न समयको राजवंशावली संगृहीत है। सुप्रसिद्ध प्रत्नतत्त्ववित् भगवान्लाल इन्द्रजी जब नेपालमें ठहरे हुए थे, तब उन्हें इस प्रकारको वंशावलीकी खबर लगी थी। किन्तु दुःखका विषय है, कि वे भी उन्हें संग्रह कर न सके थे। आज कल रचित पार्वतीय-वंशावली नामक ग्रन्थमें एक प्रकार नेपाल-राजाओंका संक्षिप्त विवरण लिखा है। किसी किसी यूरोपीय ऐतिहासिकने इस प्रकारको वंशावलीके आधार पर नेपालका इतिहास लिखा है।

बौद्धपार्वतीय वंशावलीके मतसे—नेमुनि कर्तृक सबसे पहले गोपालवंशने नेपालके अन्तर्गत मातातीर्थमें राजत्व लाभ किया। इस गोपालवंशने ५२१ वर्ष तक नेपालमें राज्य किया था। इसके १५३६ वर्ष पीछे जितेदास्ति नामक किरातवंशीय एक व्यक्ति राज्य करते थे। कुरुपाण्डव-युद्धके समय जितेदास्तिने पाण्डवका पक्ष अवलम्बन किया था और कुरुक्षेत्रके समराङ्गणमें ही उनकी जीवलीला शेष हुई थी। यह विवरण प्रकृत ऐतिहासिक है वा नहीं, इसमें बहुत सन्देह है। पर इतना तो अवश्य है, कि जब किसी सभ्य आर्यसन्तानने नेपाल जा कर अपना आधिपत्य नहीं फैलाया था, तब नेपालमें गोमेष-प्रतिपालक और मृगयाशील गोपाल और किरातोंकी ही प्रधानता थी।

सम्प्रति नेपालकी तराईसे जो अशोकलिपि आविष्कृत हुई है उससे ज्ञात होता है कि नेपालके दक्षिणाञ्चलमें एक समय शाक्यराजगण राज्य करते थे और वहां शाक्यावतार शाक्यबुद्ध आविर्भूत हुए। वायु और ब्रह्माण्ड-पुराणमें शाक्यवंशीय कई एक राजाओंके नाम पाये जाते हैं जिससे अनुमान किया जाता है, कि बुद्धदेवके बाद भी शाक्यवंशीय ५।७ पीढ़ियोंने इस अञ्चलमें राज्य किया था। पीछे सम्राट् अशोकका आधिपत्य हुआ।

इसके बाद ही नेपालमें पराक्रान्त लिच्छवि राजाओंका अभ्युदय हुआ था। यद्यपि पार्वतीय वंशावलीमें 'लिच्छवि' नामका उल्लेख नहीं है, तो भी हम लोगोंने ख्यातनामा प्रत्नतत्त्वविद् भगवान्लाल इन्द्रजीके यत्नसे इस प्रथित राजवंशका विलक्षण परिचय पाया है। नेपालका पुरातत्त्व संग्रह करनेके लिये नेपालमें जा कर उन्होंने ही सबसे पहले २३ पुरातन शिलालिपियोंका उद्धार किया। उनकी संगृहीत शिलालिपियोंमेंसे १५ लिपिके ऊपर निर्भर करके डाक्टर फ्लीट और डाक्टर होरनलीने लिच्छवि राजाओंका धारावाहिक इतिहास लिखनेकी चेष्टा की। किन्तु

दुःखका विषय है, कि यथेष्ट मालमसाला उनके अधीन रहते हुए भी वे प्रकृति भित्तिस्थापनमें उतने उपयोगी न हुए। उन्होंने किस प्रकार लिच्छवि राजाओंके राज्यकालका निर्णय किया है, पहले वही लिखते हैं।

पण्डित भगवान्लालने निज संगृहीत १५ शिला-लिपियोंसे नेपाल राजाओंका जैसा धारावाहिक नाम और कालनिर्णय किया है, वह नीचे उद्धृत किया जाता है,—

१। जयदेव १म—प्रायः १ खृष्टाब्दमें। (१५ वीं लिपि)।

२। २से ले कर १२ अर्थात् ११ राजाओंके नाम शिला-लिपिमें नहीं लिखे गए हैं। (१५वीं लिपि।)

१३। वृषदेव—प्रायः २६० ई०में। (१ली और १५ वीं लिपि।)

१४। शङ्करदेव—प्रायः २८५ ई०में।

१५। धर्मदेव—(राज्यवतीके साथ विवाह हुआ था) प्रायः ३०५ ई०में।

१६। मानदेव, सम्वत् ३८६-४१३ वा ३२९-३५६ ई०में।

१७। महीदेव—प्रायः ३६० ई०में।

१८। वसन्तदेव वा वसन्तसेन—सम्वत् ४३५ वा ३७८ ई०में।

१९। उदयदेव—प्रायः ४०० ई०में। २०से २७ इन ८ राजाओंके नाम १५वीं शिलालिपिमें नहीं दिए गये हैं।

२८। शिवदेव १म, प्रायः ६१० ई०में।

महासामन्त अंशुधर्मा (पीछे महाराज) ३५-४५ श्रीहर्ष सम्वत् वा ६४०-१से ६५१—२ ई०में।

२९। १५वीं शिलालिपिमें कोई उल्लेख नहीं है।

३०—ध्रुवदेव – श्रीहर्ष सम्वत् ४८ वा ६५४ ५५ ई०में (९वीं लिपि।) जिष्णुगुप्त श्रीहर्ष सम्वत् ४६ वा ६५४-५५ ई०।

३१। } १५ वीं लिपिमें नाम नहीं दिया गया।
३२। } जिष्णुगुप्त और सम्भवतः विष्णुगुप्त। (९वीं लिपि।)

३३। नरेन्द्रदेव—प्रायः ६९० ई०में।

३४। शिवदेव २य, (आदित्यसेनको दौहित्री और मौखीराज भोगवर्माकी कन्यासे विवाह।) श्रीहर्ष संवत् ११९-१४५ वा ७२५ ६—७५१-२ ई०में।

३५। जयदेव २य, परचक्रकाम (गौड़ोड्रकलिङ्ग कोशलाधिप भगदत्तवंशीय हर्षदेवकी कन्या राज्यमती-से विवाह हुआ) श्रीहर्ष संवत् १५३ वा ७५९-६० ई०में।

उक्त विवरणके प्रकाशित होनेके बाद वेण्डल साहबने नेपालसे ३१६ संवत्में ज्ञापक शिवदेवकी एक शिलालिपि प्रकाश की। उसमें भी अंशुवर्माका नाम रहनेके कारण प्रत्नतत्त्ववित् फ्लीट साहबने उस अङ्कको गुप्तसंवत् ज्ञापक अर्थात् ६२५-६ ई०की लिपि बतलाया है। इसी लिपि-की सहायतासे उन्होंने पूर्वोक्त भगवान्लाल और डाक्टर बुह्लरसाहबका मत परिवर्त्तन कर दिया है।

डाक्टर फ्लीट साहबका मत।

डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे शिवदेवके समयमें उत्कीर्ण ३१६ अङ्क चिह्नित लिपि ही सर्वप्राचीन है। उसीके आधार पर उन्होंने जो कालानुक्रमिक संक्षिप्त काल विवरण प्रकाशित किया है (१), वही यहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

१। (मानगृहसे) भट्टारक महाराज लिच्छविकुल-केतु शिवदेव (१म) थे। इन्होंने महासामन्त अंशुवर्माके उपदेश वा अनुरोधसे ३१६ (गुप्त) सम्वत्में अर्थात् ६३५ ई०में एक ताम्रशासन प्रदान किया। इस शासनके दूतक स्वामिभोग वर्मन् थे। (२)

२। (कैलासकूटभवनसे) महासामन्त अंशुवर्माने ३४से ४५ हर्षसम्वत् अर्थात् ६४०से ६४९-५० ई० तक राज्य किया।

३। अंशुवर्माके बाद कैलासकूटभवनसे श्रीजिष्णु-गुप्तको लिपिमें ४८ सम्वत् अर्थात् ६४३ ई० और मान-गृहाधिप ध्रुवदेवका नाम है।

४। वृषदेवके प्रपौत्र, शङ्करदेवके पौत्र और धर्म-देवके पुत्र मानदेव ३८६ गुप्तसम्वत् अर्थात् ७०५ ई०में राज्य करते थे।

(१) Dr. Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol. III, pp. 177 ff.

(२) डाक्टर फ्लीट इस भोगवर्माको महासामन्त अंशुवर्माके भगिनीपति मानते हैं। p. 177n.

५। परम भट्टारक महाराजाधिराज श्रीशिवदेव (२य) ११९ हर्षसम्वत् अर्थात् ७२५ ई०में राज्य करते थे।

६। पीछे ४१३ गुप्तसम्वत्में अर्थात् ७३२-३३ ई०में मानदेव नामक एक राजाका नाम मिलता है।

७। फिर २य शिवदेवकी एक दूसरी लिपिसे जाना जाता है, कि वे १४३ हर्षसम्वत् अर्थात् ७४८ ई०में राज्य करते थे।

८। मानगृहस्थ महाराज श्रीवसन्तसेन ४३५ गुप्त सम्वत् अर्थात् ७५४ ई०में विद्यमान थे।

९। जयदेव (२य)—विरुद परचक्रकाम—१५३ हर्षसम्वत् वा ७५८ ई०में। इनकी लिपिमें पूर्वतन लिच्छवि राजाओंकी वंशावली वर्णित है।

१०। राजपुत्र विक्रमसेन ५३५ गुप्तसम्वत् अर्थात् ८५४ ई०में विद्यमान थे। डाक्टर फ्लीटने उपरोक्त राजाओंकी पर्यालोचना करके स्थिर किया है, कि नेपालके दो स्थानोंमें दो राजवंश राज्य करते थे जिनमेंसे एक वंश नेपालके प्राचीन लिच्छवि वंश था और दूसरा महासामन्त अंशुवर्मासे आरम्भ हुआ था। उन्होंने दो विभिन्न राजवंशकी तालिका इस प्रकार लिखी है—

	मानगृहके लिच्छवि वा सूर्यवंश।	कैलास कूट भवनका ठाकुरीवंश।	
	१ जयदेव १म—प्रायः ३३० ३५५ ईस्वी।		
	२, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ — शिलालिपिमें इन कई एक मनुष्योंके नाम नहीं मिलते। प्रायः ३५५-६३० ई०।		
महाराज शिवदेव १म ६३५ ई०। महाराज ध्रुवदेव ६५३ ई०।	१३ वृषदेव—प्रायः ६३०-६५५ ई०।	अंशुवर्मा महासामन्तके बाद महाराज ६३५-६५० ई०। जिष्णुगुप्त—६५० ई०।	
	१४ शङ्करदेव (वृषदेवकेपुत्र) लगभग ६५५-६८० ई०।		
	१५ धर्मदेव (शङ्करदेवके पुत्र) ६८०-७०४ ई०।		उदयदेव लगभग ६७५-७०० ई०।
	१६ मानदेव (धर्मदेवके पुत्र) ७०५-७३२ ई०।		नरेन्द्रदेव (उदयके पुत्र) लगभग ७००-७२४ ई०।
	१७ महीदेव (मानदेवके पुत्र) ७३३-७५३ ई०।		शिवदेव २य (नरेन्द्रके पुत्र) ७२५-७४८ ई०।
	१८ वसंतदेव (महीदेवकेपुत्र		जयदेव २य (शिवदेवके पुत्र) ७५०-७५८ ई०।

पीछे प्रत्नतत्त्वविद् डाक्टर हौरनलीने उक्त तालिका ग्रहण की है। (१)।

ऊपरमें दोनोंका भिन्न मत उद्धृत किया गया जिनमेंसे शेषोक्त मतको सभी ग्रहण करते हैं। किन्तु जहां तक इसको खोज की गई उससे मालूम होता है, कि यह मत समीचीन नहीं है। पूर्वोक्त शिलालिपियोंके अक्षर विन्यास, पूर्वापर घटनावली और सामयिक वृत्तान्तसे जाना जाता है, कि डाक्टर फ्लीट और डाक्टर हौरनली बहु अनुसन्धान द्वारा जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, उसका सम्पूर्ण परिवर्त्तन आवश्यक हुआ है।

पण्डित भगवानलाल और डाक्टर बुह्लरने जो मत प्रकाश किया था, उसका कोई कोई अंश भ्रान्ति-विजड़ित होने पर भी वह बहुत कुछ प्रकृत इतिहासके निकटवर्त्ती है, यह सम्यक् आलोचना द्वारा प्रतिपन्न हुआ है।

उक्त शिलालिपि-समूहकी अक्षरालोचना।

१म अर्थात् मानदेवकी लिपि ३८६ (अनिर्दिष्ट) सम्वत्में उत्कीर्ण हुई। पण्डित भगवानलाल और डाक्टर बुह्लरने उसकी अक्षरावलीको गुप्ताक्षर बतलाया है। किन्तु डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे वह ८वीं शताब्दीका अक्षर है। हम लोगोंके ख्यालमें इसकी अक्षरावली ५वीं शताब्दीकी-सी प्रतीत होती है। कारण ८वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण जो सब लिपियां उत्तरभारतसे आविष्कृत हुई हैं, उनमें मात्राकी पुष्टिका आरम्भ देखा जाता है। इसके अलावा उस समयके व्यञ्जनयुक्त स्वरादिकी अर्थात् ा, ि, ी, ु, ो, े आदि स्वर-चिह्नकी बहुत कुछ पूर्णता देखी जाती है। किन्तु मानदेवकी लिपि मात्राहीन है और इसके स्वर-चिह्न उतने पुष्ट नहीं हैं। इसका अक्षरविन्यास गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तको इलाहाबाद-लिपिके अनुरूप है। इसमें व्यञ्जनयुक्त स्वरवर्णका जो छन्द है, वह २य से ४र्थ शताब्दीकी लिपिमात्रामें ही पाया जाता है। इसमें कई जगह प्रयुक्त क, ज, त, द, ध, प इत्यादि अक्षरोंका छान्द २यसे ४र्थ शताब्दीके मध्य उत्कीर्ण शिलालिपिमें देखा जाता है। केवल इसका न, म, श, ष ये सब अक्षर हम लोगोंकी पूर्वतन लिपियोंमें नहीं मिलते, बल्कि ४र्थ और ५म शताब्दीकी उत्कीर्ण लिपियोंमें मिलते हैं। इसके सिवा अ, आ, इ, इन स्वरोंका जैसा रूप है, वह केवल २य-से ४र्थ शताब्दीकी खोदित लिपिमें अनेक अनुसन्धान करने पर भी निकाल नहीं सकते।

छठीं शताब्दीमें उत्कीर्ण महानामकी गयास्थ लिपि* और ७वीं शताब्दीमें उत्कीर्ण सोनपातसे प्राप्त सम्राट् हर्षवर्द्धनकी लिपिकी आलोचना करनेसे सहजमें जाना जा सकता है कि उक्त मानदेवकी लिपि शेषोक्त समयकी लिपिसे कितनी प्राचीन है। सुतरां मानदेवकी शिलालिपिका अक्षरविन्यास देख कर उसे ७वीं वा ८वीं शताब्दीकी लिपि कदापि नहीं मान सकते, वरं उसे ४थी वा ५वीं शताब्दीकी लिपि मान सकते हैं। इस हिसाबसे मानदेवकी लिपिमें जो अङ्क निर्दिष्ट है, उसे यदि शकाब्दज्ञापक अङ्क मानें, तो कोई अयुक्ति नहीं होगी। पण्डित भगवानलालने उसे विक्रमसम्वत्का अङ्क बतलाया है। किन्तु उत्तर भारतमें ५वीं शताब्दीके पूर्ववर्त्ती किसी लिपिमें विक्रमसम्वत् ज्ञापक अङ्क आज तक स्पष्टरूपसे पाया नहीं गया है। वरं १ली, २री, ३री और ४थी शताब्दीमें उत्कीर्ण उत्तरभारतीय बहुसंख्यक लिपियोंमें केवल 'संवत्' नामसे शकसम्वत्का ही प्रमाण पाया जाता है। इसीसे हम लोगोंने उसे शकसम्वत् ऐसा स्वीकार किया।

३य अर्थात् वसन्तदेवकी लिपिको डाक्टर फ्लीटने ८वीं शताब्दीकी लिपि माना है। किन्तु जिन जिन कारणोंसे हम लोगोंने मानदेवकी लिपिका प्राचीनत्व स्थापनकी चेष्टा की है, उन्हीं सब कारणोंसे हम लोग वर्त्तमान शिलालिपिको भी ५वीं और छठीं शताब्दीका अक्षर अर्थात् ४३५ शकसम्वत्की लिपि ग्रहण कर सकते हैं।

४थ अर्थात् ५३५ सम्वत्-अङ्कित लिपि डाक्टर फ्लीट साहबके मतसे ८वीं शताब्दीकी लिपि है। किन्तु इस लिपिके अक्षरोंका जो छान्द है वह ४थीसे ६ठी शताब्दीके

(1) Journal of the Asiatic Society of Bengal for 1889, Pt. 1, Synchronistic Table.

* Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum, Vol, III, plates XLI XXXII, B-

मध्य उत्कीर्ण लिपियोंमें देखनेमें आता है (१)। इसके किसी एक पूर्ण शब्दका छान्द ८ वीं वा ९ वीं शताब्दीकी लिपिमें नहीं मिलता (२)।

प्रथमतः शिवदेव और अंशुवर्माके समयकी लिपि देखनेसे वह ७ वीं शताब्दीको लिपि प्रतीत होती है। किन्तु जब हम लोग जापानके होरि-उजु-मठके तालपत्रके ग्रन्थोंकी प्रतिलिपि देखते हैं, तब शिवदेवकी लिपि ७वीं शताब्दीकी है, ऐसा स्वीकार करनेमें महा सन्देह उपस्थित होता है। होरी-उजुमठमें जितने ग्रन्थ हैं वे भारतके लेखकसे उत्तरभारतमें बैठ कर लिखे गए और ५२० ई०के कुछ पहले बौद्धाचार्य बोधिधर्म कर्टक चीनदेशमें लाए गए। फिर वे सब ग्रन्थ चीन देशसे ६०८ ई०में जापान भेज दिए गए (३)। उन ग्रन्थोंकी प्रतिलिपिको प्रसिद्ध अध्यापक मोक्षमूलरने प्रकाश किया है और उसे देख कर प्रत्नतत्त्ववित् डाक्टर बुह्लरने ऐसा स्थिर किया है, कि उक्त ग्रन्थ ६ठीं शताब्दीके प्रथम भागमें लिखे गए हैं (४)। उक्त ग्रन्थोंकी लिपिमें तथा शिवदेव और अंशुवर्माके समयकी लिपिमें बहुत कुछ सदृशता देखी जाती है। दोनों लिपियोंका अक्षरविन्यास एक-सा होने पर भी शिवदेवकी शिलालिपिमें उसका प्राचीन रूप रखा गया है। डाक्टर बुह्लर साहबने बहुत खोजके बाद स्थिर किया है, कि शिलालिपिमें हम लोग जो अक्षरविन्यास देखते हैं, राजकीय दलीलपत्रमें व्यवहृत होनेके बहुत पहले वह विद्वत्-समाजकी लिपि माना गया था।

लिखने पढ़नेमें पहले जो व्यवहृत होता था, धीरे धीरे वही राजकीय लिपिमें व्यवहृत होने लगा, किन्तु प्रश्न यह उठता है, कि यदि विद्वत्समाजमें पुस्तक-रचनाके समय किसी विशेष अक्षरका व्यवहार होता है, तो क्या वह उस समयकी राजकीय दलीलादिमें प्रयुक्त नहीं होगा? प्राचीन शिलालिपिकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि राजकीय शासनादि राजसभाके प्रधान प्रधान पण्डितोंसे लिखे जाते थे। यहां तक कि ताम्रशासनका कोई कोई श्लोक राजा स्वयं रच कर अपने कवित्वकी शक्तिका परिचय देते थे। इस हिसाबसे राजगण सामयिक पुस्तकादिके उपयुक्त अक्षरोंके छान्दका ग्रहण न कर पूर्वतन अक्षरोंका छान्द ग्रहण करेंगे, यह कहां तक सम्भव है, समझमें नहीं आता। इसी कारण मालूम होता है, कि गुर्जरपति राष्ट्रकूटराज दद्द प्रशान्त रागका हस्ताक्षर देख कर डाक्टर बुह्लरने लिखा है, 'अधिक सम्भव है, कि ६ठी शताब्दीके प्रथम भागमें भी उत्तरभारतके अर्द्धांशमें दो प्रकारके हस्ताक्षर प्रचलित थे (१)।'

पहले ही लिखा जा चुका है, कि डाक्टर फ्लीटके मतानुसार शिवदेवकी लिपि मानदेवलिपिके बहुत पहलेकी है। किन्तु खोदित लिपिके धारावाहिक कालानुसारी अक्षरतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है मानो मानदेवकी खोदित लिपि बहुत प्राचीन कालकी है। इस हिसाबसे कौन ग्राह्य किया जा सकता है? यदि हम लोग उपरोक्त प्रत्नतत्त्वविद्-निर्दिष्ट ७वीं शताब्दीमें अर्थात् ६२५-६५० ई०में राजा शिवदेव और महासामन्त अंशुवर्माका प्रकृत समय स्वीकार करें, तो सामयिक इतिवृत्तके साथ विरोध उपस्थित होगा। इस हिसाबसे यदि डाक्टर बुह्लरके मतानुसार एक ही समयमें दो प्रकारकी लिपिका छान्द प्रचलित था, ऐसा स्वीकार कर शिवदेव और उनके महासामन्तको पांचवीं शताब्दीके मनुष्य मानें, तो कोई गड़बड़ी नहीं रहती।

उक्त लिच्छविराजके समयकी दो खोदित-लिपिके प्रतिस्वरूप बेण्डल साहबने प्रकाश किया है, कि एक ही समयकी दोनों लिपि होने पर भी परस्पर वर्णविन्यासमें कुछ फर्क देखा जाता है। पहलेके स्वर चिह्नका छान्द

(१) Dr. Buhler's Gundriss, (Indischen Palaeographie) IV Tafel.

(२) यह लिपि द्रष्टव्य है—The inscription of Gopala (Cunningham's Arch. Surv. Reports Vol. I.) of Dharmapala (Cunningham's Mahabodhi) and of Devapala (Ind. Ant. XVII, p. 610.)

(३) *Professor Max Muller's Letter*, in the Transactions of the 6th International Congress of Orientalists held at Leiden, pp. 124-128.

(४) *Anecdota Oxoniensia*, Vol I. 5 t. III. p. 64.

(१) Dr. Buhler's Remarks on the Horiuzi palm-leaf MSS (Aned. Oxon, Vol. I. pt. III, p. 65.)

'I' 'I' देखनेसे ही मालूम पड़ता है कि वह दूसरेकी अपेक्षा आधुनिक अर्थात् ६ठी शताब्दीके बादका है। किन्तु द्वितीय लिपिका अपुष्ट 'ा' तथा 'ा' देखनेसे इसकी प्राचीनताके विषयमें उतना सन्देह नहीं रहता। पण्डित भगवान्‌लालकी प्रकाशित ५वीं शिलालिपि उक्त शिवदेव प्रदत्त होने पर भी उसका 'आ' कार देखनेसे वह बेण्डल प्रकाशित लिपिका समकालीन प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार पण्डित भगवान्‌लालकी ७वीं लिपिका आकार 'ा' तथा बेण्डलसाहबकी १ली लिपिका आकार 'ा' इन दोनोंको मिला कर देखनेसे मालूम होगा कि शेषोक्त 'ा' कई शताब्दी बादका है। पण्डित भगवान्‌लालकी १ली लिपिके आकारने उनकी ७वीं लिपिमें बहुत कुछ परिपुष्टि की है, ऐसा जान पड़ता है। यही कारण है, कि पण्डितवरने ७वीं लिपिको १ली लिपिसे बहुपरवर्त्ती कह कर उल्लेख किया है। किन्तु बेण्डल साहबकी प्रकाशित १ली और २री शिलालिपि तथा पण्डित भगवान्‌लालकी ५वीं, ६ठी, ७वीं और ८वीं लिपिके अक्षरोंकी आलोचना करनेसे ऐसा मालूम पड़ेगा कि ८वीं लिपि सबसे प्राचीन है। ८वीं लिपिकी ३री पंक्तिका "वार्त्तन" शब्दका 'वा' और १ली लिपिके द्वितीयांशकी १६वीं पंक्तिका 'वा' इन दोनोंमें कोई प्रभेद नहीं दीख पड़ता।

धारावाहिक इतिहास।

पण्डित भगवान्‌लालके संगृहीत लिच्छविराज जयदेव-परचक्रकामके शिलापट्टमें जो वंशावली है, वह इस प्रकार है—

लिच्छवि (सूर्यवंशीय)
|
सुपुष्प (पुष्पपुरका वास)
(पीछे यथाक्रमसे २३ व्यक्ति)
|
जयदेव (१म, नेपालाधिप)
|
(११ मनुष्य इसी वंशके राजा)
|
वृषदेव
|
शङ्करदेव
|
धर्मदेव
|
मानदेव (३८६-४१३ शक)
|
महीदेव
|
वसन्तदेव (४३५ शक)
|
उदयदेव (१)
|
नरेन्द्रदेव
|
शिवदेव २य (१४३-१४८ अनिर्दिष्ट संवत्)
|
जयदेव-परचक्रकाम (१५८ अनिर्दिष्ट संवत्)

नेपालाधिप लिच्छवि राजाओंके समयकी जितनी शिलालिपियां आविष्कृत हुई हैं उनमेंसे उपरोक्त १५वीं लिपिवर्णित-वंशावली प्रकृत धारावाहिक है। उक्त वंशावलीके आधार पर ही हम नेपालका प्राचीन और प्रामाण्य संक्षिप्त इतिहास लिखते हैं।

नेपालकी पार्वतीय-वंशावली अविश्वास्य अनैतिहासिक विषयपूर्ण होने पर इसके बीच बीचमें प्रकृत ऐतिहासिक कथा देखनेमें आती है जिसे पण्डित भगवान् प्रभृति प्रत्नतत्त्वविदोंने एक वाक्यसे स्वीकार किया है। इस वंशावलीमें एक जगह लिखा है,—

'सूर्यवंशीय राजा विश्वदेववर्माने ठाकुरीवंशीय अंशुवर्माको अपनी लड़की व्याह दी। इनके समयमें विक्रमादित्य नेपाल आए थे और वहां अपना अब्द प्रचलित किया था।'

'अंशुवर्मा भी राजा हुए थे। उन्होंने मध्यलखु (कैलासकूट) नामक स्थानमें अपनी राजधानी बसाई। उनके समयमें विभुवर्माने सन्निभ्झरयुक्त एक जलप्रणाली प्रस्तुत करके उसके समीप एक उत्कीर्ण शिलापट्ट (२) स्थापन किया (३)।'

(१) पण्डित भगवान्‌लालने जिस पाठको उद्धार कर प्रकाशित किया है, उसके अनुसार उदयदेवके बाद १३ राजा हुए, पीछे नरेन्द्रदेव नेपालकी गद्दी पर बैठे। ठीक उदयदेवके बाद कौन राजा हुए, यह शिलालिपिमें अस्पष्ट हैं। बादमें उसी वंशके नरेन्द्रदेव राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए।

(२) पण्डित भगवान्‌लाल प्रकाशित ८वीं शिलालिपि।

(३) Wright's History of Nepal, and Ind. Ant. 1884, p. 418.

पण्डित भगवान्‌लाल और डाक्टर बुह्लरने कहा है, 'अंशुवर्माके समयमें विक्रमादित्यका नेपाल-आगमन बिलकुल असमञ्जस है। मालूम होता है, श्रीहर्षदेवके विजय-उपलक्षमें उनका अब्द नेपालमें प्रचलित हुआ, यह उस चीण स्मृतिको विकृतरूप वंशावलीमें भूलसे दिखलाया गया है (१)।'

इसीका अनुवर्त्ती हो कर डाक्टर फ्लीटने भी अंशुवर्माके समयमें उत्कीर्ण लिपियोंके अङ्कोंको श्रीहर्ष संवत् ज्ञापक स्वीकार किया है।

अब प्रश्न यह उठता है, कि सम्राट् हर्षदेव क्या सचमुच नेपाल गये थे और वहां जा कर क्या अपने अब्दका प्रचार किया था? इस विषयमें कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है। बाणभट्टके हर्षचरितमें, चीनपरिव्राजक यूएन-चुवङ्गके भ्रमणवृत्तान्तमें, म-तोयन-लिनके विवरणमें और राजा हर्षवर्द्धनकी निज खोदित लिपिमें हर्ष द्वारा नेपालविजय और हर्षसंवत्-प्रचारकी कोई बात लिखी नहीं है। हर्षदेवने नेपाल जय किया था, उसका आज तक कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस हिसाबसे हर्षदेव कर्त्तृक नेपालविजय और हर्षसंवत्‌के प्रचारकी कथाको प्रामाणिक तौर पर ग्रहण नहीं कर सकते।

ग्रहण नहीं करनेका कारण भी है। यदि हम लोग अंशुवर्माको खोदित लिपिके अङ्कोंको श्रीहर्षसंवत्-ज्ञापक मानें, तो भी सामयिक विवरणके साथ विरोध उपस्थित होता है। अंशुवर्माके प्रसङ्गमें जो '३९', '३०', '४४' वा '४५', अङ्कके चिह्न हैं उन्हें श्रीहर्षसंवत् अङ्क माननेसे ६४०से ६५१ ई०सन् होता है। किन्तु चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने ६३७ ई०की ५वीं फरवरीको नेपालकी यात्रा की थी (२)। उन्होंने नेपाल देख कर लिखा है, "अंशुवर्मा नामक यहां एक राजा थे। वे स्वयं विद्वान् थे और विद्वान्‌का आदर भी करते थे। वे स्वयं शब्दविद्याके विषयमें पुस्तक रच गये हैं। नेपालमें उनकी कीर्त्ति बहुत दूर तक फैली हुई थी। (३)"

(१) Indian Antiquary. 1881, p. 424.

(२) *Cunningham's* Ancient Geography of India.

(३) Beel's Records of Western World, Vol. II, p. 81.

चीनपरिव्राजकका उक्त विवरण पढ़ कर कई यूरोपीय पण्डितोंने स्थिर किया है कि, 'चीनपरिव्राजकने नेपालमें कदम तक भी नहीं बढ़ाया। वे केवल वृजिकी राजधानी तक पहुंचे थे और वहींके लोगोंसे जहां तक सम्भव है, कि पूछपाछ कर कुछ लिखा होगा। यथार्थमें उस समय भी अंशुवर्माकी मृत्यु नहीं हुई थी।'

उक्त समालोचना ठीक प्रतीत नहीं होती। जिस व्यक्तिकी सुख्याति नेपाल भरमें फैली हुई थी, उनका मृत्यु-संवाद जाननेमें भूल हो गई हो, यह कहां तक सम्भव है। चीनपरिव्राजकने अंशुवर्माके रचित ग्रन्थका भी परिचय दिया है; इस हिसाबसे उनका विवरण अमूलक नहीं मान सकते। चीनपरिव्राजकके पहले ही अंशुवर्माकी मृत्यु हुई थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। सुतरां अंशुवर्माको खोदित लिपिके अङ्कको श्रीहर्षसंवत्‌का अङ्क नहीं मान सकते, बल्कि उसे गुप्तसंवत्‌का अङ्क मान सकते हैं। गुप्तसंवत् माननेका कारण भी है।

गुप्त राजाओंके साथ लिच्छवि राजाओंका घनिष्ठ संबन्ध था, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। डाक्टर फ्लीटने असङ्कोच-पूर्वक लिखा है, 'गुप्तसम्वत् यथार्थमें लिच्छविसम्वत् है। लिच्छवि-राजवंशसे आदि गुप्त राजाओंने सम्वत् ग्रहण किया है, इसमें किसी-बातकी आपत्ति उठ नहीं सकती।.........मैं समझता हूं, कि लिच्छवियोंमें साधारणतन्त्रके विलुप्त और राजतन्त्रके आरम्भसे अथवा १म जयदेवके राज्यारम्भसे ही उक्त सम्वत् आरम्भ हुआ है (१)।'

(१) 'And no objection could be taken by the Early Gupta Kings to the adoption of the era of a royal house, in their connection with which they took special pride, I think, therefore, that in all probability the so called Gupta era is Lichchhavi era, dating either from a time when the republican or tribal constitution of the Lichchhavis was abolished in favour of a monarchy; or from the commencement of the reign of Jayadeva I. as the founder of a royal house in a branch of the tribe that had settled in Nepal" (Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum. Vol. III. Intro. p. 136.)

गुप्तराजके लिच्छवीके साथ सम्बन्धसूत्रमें आवद्ध होने और इस कारण अपनेको गौरवान्वित समझनेसे, उन्होंने जो लिच्छवी-शब्द ग्रहण किया था, अनुमानके सिवा इस विषयमें और कोई प्रमाण नहीं है। वरं लिच्छवी राजाओंने गुप्तसम्वत्का व्यवहार किया था, यही अधिक सम्भवपर प्रतीत होता है।

पार्वतीय वंशावलीमें अंशुवर्मा कुछ पहले विक्रमादित्यके आगमनका प्रसङ्ग है, यह नितान्त भ्रममय मालूम नहीं पड़ता।

भारतवर्षमें विक्रमादित्य नामके कितने ही राजाओंने राज्य किया था। उनमेंसे जो नेपाल गये, वे गुप्तसंवत-प्रवर्त्तक प्रथम गुप्तसम्राट् थे। उनका नाम था चन्द्रगुप्तविक्रमादित्य। उसका लिच्छवीराज-दुहिता कुमारदेवीके साथ विवाह हुआ था। इस सम्बन्धसूत्रसे गुप्तसम्राट् अपनेको विशेष सम्मानित समझने लगे थे। इसीसे अनुमान किया जाता है, कि उनकी मुद्रा पर 'लिच्छवय' यह गौरवस्पर्शी शब्द खोदा गया है। उक्त लिच्छवीराज दुहिता कुमारदेवीके गर्भसे ही गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्त उत्पन्न हुए थे।

इन गुप्तसम्राट्ने अपने बाहुबलसे नेपालादिके सभी सीमान्त राजाओंको वशमें कर लिया था, यह उनकी इलाहाबादमें उत्कीर्ण खोदितलिपिमें साफ साफ लिखा हुआ है। किन्तु नेपालके लिच्छवी राजाओंने गुप्तराजाओंको कब पराजय किया था, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। इस हिसाबसे समुद्रगुप्तके पिता और लिच्छवीराजजामाता चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यसे नेपालमें गुप्तसम्वत् प्रचलित हुआ था, इसीका अस्फुट आभास पार्वतीय वंशावलीसे पाया जाता है।

वंशावलीमें लिखा है, 'अंशुवर्माके श्वशुर विश्वदेव जब नेपालके राजा थे, उसी समय विक्रमादित्य नेपाल गये थे और अपना अब्द चलाया था।' अगर यह ठीक मान लिया जाय, तो फिर कोई ऐतिहासिक गोलमाल नहीं रहता—

"चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यके श्वशुर वृषदेव जब नेपालके राजा थे, उस समय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने नेपाल जा कर कुमारदेवीका पाणिग्रहण किया और वहां अपना अब्द चलाया।"

प्रथम गुप्तसम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने ३१९-२० से ३४७-४८ ई० तक राज्य किया। इसके बीच वे किसी समय नेपाल गये थे।

मानदेवकी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि लिच्छवीराज ३८६ शक (४६४ ई०) में राज्य करते थे। वृषदेव उनके प्रपितामह थे। तीन पीढ़ी तक एक शताब्दी मान लेनेसे जिस समय गुप्तसम्राट् नेपाल आये, उसी समयमें हम लोग वृषदेवको लिच्छवीराज-सिंहासन पर अधिष्ठित देखते हैं। इससे यह बोध होता है, कि पार्वतीय वंशावलीके रचयिताने 'वृषदेव' की जगह 'विश्वदेव' यह प्रामादिक पाठ ग्रहण किया होगा।

वृषदेवके बाद ३५ गुप्तसम्वत्में अर्थात् ३५४-५ ई० में महासामन्त अंशुवर्माका अभ्युदय हुआ। पण्डित भगवानलाल आदि उपरोक्त पण्डितोंने लिखा है, 'पहले पहल वे राज्योपाधि ग्रहण करनेमें टालमटोल करते थे। पीछे ४८वें अङ्कसे वे 'महाराजाधिराजकी' उपाधिसे भूषित हुए।' किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि वे अपनी इच्छासे कभी राज्योपाधि ग्रहण करनेमें अग्रसर न हुए। शौर्य, वीर्य, पराक्रम और विद्याबुद्धिमें प्रधानता लाभ करने पर भी उन्होंने कभी सम्मानित लिच्छवीराजाओंकी अवहेला करके 'राज्योपाधि' ग्रहण न की। उनकी निज खोदित शिलालिपिमें 'राज्योपाधि' नहीं है। वे महासामन्तको उपाधिसे ही सन्तुष्ट थे। १म शिवदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है कि लिच्छवीराज महासामन्त अंशुवर्माके पराक्रमसे अपनी राजलक्ष्मीकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। सम्भवतः जिस समय वे अपना प्रासाद छोड़ कर दूर देशमें युद्ध करनेके लिये गये थे, उसी समय उक्त ४८वें अङ्कमें जिष्णुगुप्तकी लिपि खोदी गई होगी।

पूर्वतन और अधुनातन भारतीय सामन्तोंको अपने अपने अधिकारके समय 'राजा' 'महाराज' इत्यादि समुच्च उपाधिसे भूषित देखते हैं। महासामान्त अंशुवर्मा भी उसी तरह अपने अधिकारके समय जिष्णुगुप्त आदि अधीनस्थ व्यक्तियोंसे जो 'राजाधिराज' आख्यासे अभिहित हुए होंगे, यह असम्भव नहीं है और वैसी राजोपाधि देख वे लिच्छवी राजाओंकी अधीनतासे मुक्त हो

कर एक स्वाधीन राजाके मध्य गिने गये थे, यह ठीक प्रतीत नहीं होता। आज भी जिस तरह नेपालराजके अधीन राजा-उपाधिधारी बहुसामन्त हैं, लिच्छवी राजाओं के समयमें भी उसी तरह थे। लेकिन अंशुवर्माने सर्व प्रधान सामन्तपद पर अधिष्ठित हो कर लिच्छवी राजाओंसे राज्योचित महासम्मान प्राप्त किया था, यह असम्भव नहीं है।

उनके अभ्युदयके समय ध्रुवदेव लिच्छवीराजधानी मानगृहमें प्रतिष्ठित थे और गुप्तसम्राट् समुद्रगुप्तने समस्त भारतवर्षमें अपना आधिपत्य फैला लिया था। जिस तरह मालवराज महासेनगुप्तकी बहन महासेनगुप्ताके साथ स्थाण्वीश्वराधीप आदित्यवर्द्धनका विवाह हुआ (१) उसी तरह मालूम होता है कि समुद्रगुप्तके पुत्र २य चन्द्रगुप्त विक्रमाङ्कके साथ ध्रुवसेनकी बहन ध्रुवदेवीका परिणय कार्य सुसम्पन्न हुआ होगा (२)।

ध्रुवदेव ४६ (गुप्त) सम्वत् अर्थात् ३६७-८ ई०में राजसिंहासन पर बैठे थे। किन्तु उन्होंने कब तक राज्य किया, ठीक ठीक मालूम नहीं। उनके समयमें उत्कीर्ण जिष्णुगुप्तकी शिलालिपि देख कर कोई कोई अनुमान करते हैं, कि उक्त सम्वत्के पहले ही महासामन्त अंशुवर्माकी मृत्यु हुई थी; लेकिन यदि सच पूछिए, तो उस समय भी उनकी मृत्यु नहीं हुई थी। ३१६ (शक) सम्वत् अर्थात् ३८४ ई०में वे विद्यमान थे, यह बेण्डल साहबकी प्रकाशित लिच्छवीराज शिवदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है।

महासामन्त अंशुवर्मा ध्रुवदेव और शिवदेव दोनोंके राजत्वकालमें ही विद्यमान थे। उनके यत्नसे नेपाल उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इस समय नेपालमें लिच्छवीराजगण बौद्ध और ब्राह्मणधर्मावलम्बी सभीको समान दृष्टिसे देखते थे। अंशुवर्माके समयमें उत्कीर्ण लिपिसे मालूम होता है, कि एक ओर वे जिस तरह हिन्दूधर्मके प्रति भक्ति दिखलाते थे, दूसरी ओर उसी तरह बौद्धोंका आदर भी करते थे। नेपालमें बहुत दिन तक गुप्तसम्वत् प्रचलित था, ऐसा बोध नहीं होता। क्योंकि शिवदेवके समयसे पुनः पूर्वप्रचलित (शक)-सम्वत्का प्रचार देखा जाता है।

ध्रुवदेव और शिवदेवके बाद कालानुसार हम लोग मानदेवका नाम पाते हैं। इनके साथ ध्रुवदेव और शिवदेवका क्या सम्पर्क था, मालूम नहीं। पर हां, इतना तो अवश्य है, कि वे सबके सब लिच्छवीवंशके थे। मालूम होता है, कि शिवदेवके बाद धर्मदेव और धर्मदेवके बाद उनके पुत्र मानदेव राजा हुए।

मानदेवने ३८६से ४१३ शक (४६४से ४८१ ई०) तक शान्तिपूर्वक राज्य किया। ये बड़े मातृभक्त और महावीर माने जाते थे। उनके समयमें महासामन्त अंशुवर्मावंशीय ठाकुरी राजाओंने सम्भवतः लिच्छवीराजकी अधीनता अस्वीकार कर स्वाधीनता पानेकी चेष्टा की थी। मानदेवकी शिलापट्टमें लिखा है, "उन्होंने पूर्वकी ओर यात्रा की। वहां पूर्वदेशाश्रित सामन्तोंको वशीभूत कर राजा (मानदेव) निर्भीक सिंहकी तरह पश्चिमकी ओर अग्रसर हुए। उधर किसी एक नगरमें पहुंच कर उन्होंने सामन्तका कुव्यवहार देख गर्वित भावमें कहा था, 'यदि वह मेरे आदेशानुवर्त्ती न होगा, तो मेरे विक्रमप्रभावसे निश्चय ही पराजित होगा।' इस सामन्तका नाम क्या था, मालूम नहीं; लेकिन जहां तक सम्भव है, कि वे महासामन्त अंशुवर्मावंशीय कोई होंगे।"

मानदेवके राजत्वकालमें जयवर्मा नामक एक व्यक्तिने वर्त्तमान पशुपतिनाथके मन्दिरमें जयेश्वर नामकी एक मूर्त्तिकी प्रतिष्ठा की, लेकिन वह लिङ्ग नष्ट हो गया है। अभी उस स्थान पर मानदेवके पिता शङ्करदेवका प्रतिष्ठित १४ हाथ ऊंचा एक त्रिशूल विद्यमान है।

मानदेवके बाद उनके पुत्र महीदेव सिंहासन पर बैठे। उनके समयका कोई विवरण जाना नहीं जाता। पीछे वसन्तदेव पितृराज्यके अधिकारी हुए। ४३५ (शक) सम्वत् अर्थात् ५१३ ई०में उत्कीर्ण इनके समयकी खोदित लिपि पाई गई है। २य जयदेवकी शिलालिपिमें लिखा है, कि ये बड़े ही शूरवीर थे। विजित सामन्तगण इनकी वन्दना किया करते थे।

---

(१) Epigraphica India, Vol. 1. p. 6873.

(२) २य चन्द्रगुप्तविक्रमादित्यने ४००-४१३ ई० तक राज्य किया। मालूम होता है, राज्याभिषेकके बहुत पहले उनके साथ ध्रुवदेवीका विवाह हुआ था।

वसन्तदेवके समयमें ही सम्भवतः आर्यावलोकितेश्वरका प्रभाव नेपालमें बढ़ा चढ़ा था। पार्वतीय वंशावलीमें लिखा है,—'३६२३ कलिगताब्दको अवलोकितेश्वर नेपालमें उदित हुए।'

पहले ही कहा जा चुका है, कि पण्डित भगवानलाल आदि प्रत्नतत्त्वविदोंने स्वीकार किया है, कि पार्वतीय वंशावलीमें अनेक अनैतिहासिक विवरण रहने पर भी इनमें ऐतिहासिक कथाका भी अभाव नहीं है। ऊपर में अवलोकितेश्वरके विषयमें जो कुछ उद्धृत किया गया है, उसके मूलमें सत्य छिपा रह सकता है।

३६२३ कल्यब्द अर्थात् ५२२ ई०में मालूम होता है, कि वसन्तदेवने समस्त सामन्तोंको सम्पूर्णरूपसे वशीभूत कर नेपालमें अवलोकितेश्वरकी पूजाका प्रचार किया। उसी समयसे ले कर आज तक अवलोकितेश्वर वा मत्स्येन्द्रनाथको नेपालके अधिष्ठातृदेवता मान कर उनको पूजा करते आ रहे हैं।

वसन्तदेवके अधस्तन २य शिवदेव और २य जयदेवको शिलालिपिमें संवत् अङ्क है। मालूम होता है, कि वह उक्त अवलोकितेश्वरकी सार्वजनिक पूजा-प्रकाश तथा राजा वसन्तसेन कर्त्तृक सार्वभौमिक राजा कह कर परिचित होनेके समयसे गिना जाता होगा।

वसन्तदेवके बाद उनके लड़के उदयदेव राजा हुए। डाक्टर फ्लीटके मतसे उदयदेव लिच्छवीवंशीय नहीं थे, वे ठाकुरीवंशीय अर्थात् अंशुवर्मावंशीय थे। २य जयदेवकी शिलालिपिमें उदयदेवके पहले जिन सब राजाओंको वंशावली दी हुई है, वे लिच्छिवीवंशीय होने पर भी (उक्त पुराविद्‌के मतसे) उदयदेवसे ही ठाकुरीवंशकी वर्णनाका आरम्भ है। किन्तु मूल शिलालिपि पढ़नेसे उदयदेव लिच्छवीवंशीय और वसन्तदेवके पुत्र माने जाते हैं। उदयदेवके बाद ठीक कौन व्यक्ति राजसिंहासन पर बैठे, वह शिलालिपिमें कुछ अस्पष्ट है। किन्तु उसके बाद ही नरेन्द्रदेवका विवरण साफ साफ लिखा है।

इस नरेन्द्रदेवके पराक्रमकी बातें २य जयदेवकी शिलालिपिमें विस्तारसे वर्णित है। सम्भवतः इनके पराक्रमसे कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन नेपाल जीत नहीं सके थे। इनके राजत्वकालमें चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने कुछ समयके लिए नेपालमें पदार्पण किया था। वे इस प्रकार लिख गये हैं—

"मैं कितने पर्वतोंको लांघते हुए तथा कितनी ही उपत्यकाएं होते हुए नेपालदेशमें आया। यह देश तुषारमय पर्वतमालासे वेष्टित है। पर्वत और उपत्यका एक दूसरेसे संयुक्त हैं।" इस प्रकार देशकी प्राकृतिक और लोकसाधारणकी अवस्थाके वर्णनके बाद उन्होंने लिखा है, "यहां विश्वासी और अविश्वासी (अर्थात् बौद्ध और हिन्दू) दोनों सम्प्रदाय एक साथ वास करते हैं। यहां सङ्घाराम और देवमन्दिरकी संख्या अनेक है। महायान और हीनयान मतावलम्बी प्रायः २००० श्रवणोंका वास है। राजा क्षत्रिय और लिच्छवीवंशीय हैं। वे प्रसिद्ध, निर्मलचरित्र और उन्नतप्रकृतिके हैं। बौद्धधर्ममें उनका प्रगाढ़ विश्वास है।" इत्यादि।

चीनपरिव्राजकने जिन लिच्छवीराजका उल्लेख किया है, वे ही सम्भवतः नरेन्द्रदेव हैं। नरेन्द्रदेवके विषयमें अनेक किम्वदन्तियां आज भी नेपाली बौद्धसमाजमें प्रचलित हैं। २य जयदेवकी शिलालिपिसे जाना जाता है, कि नरेन्द्रदेवके पहलेसे ही लिच्छवीराजगण बौद्धशासनके पक्षपाती हुए थे।

नरेन्द्रदेवके बाद उनके पुत्र २य शिवदेव सिंहासन पर बैठे। मगधराज आदित्यसेनकी दौहित्री और मौखरीराज भोगवर्माकी कन्या वत्सदेवीके साथ इनका विवाह हुआ था। इनके समयमें जो शिलालिपि उत्कीर्ण हुई है, उसमें १४३, १४५ और १४८ (अनिर्दिष्ट) संवत् अङ्कित है। इससे अनुमान किया जाता है कि इन्होंने ६६५से ७७१ ई०के मध्य किसी समय राज्य किया था। पीछे इनके पुत्र २य जयदेव लिच्छवीराजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनका दूसरा नाम परचक्रकाम था। इनके समयकी १५८ सम्वत् चिह्नित शिलालिपिसे जाना जाता है, कि इन्होंने गौड़, उड्र, कलिङ्ग और कोशलाधिप हर्षदेवकी कन्या राजमतीके साथ विवाह किया। इसी हर्षदेवको हम लोगोंने इसके पहले हर्षवर्द्धन समझा था। किन्तु अभी मालूम होता है, कि ये कन्नौजराज हर्षवर्द्धन नहीं थे। जिस वंशमें कामरूपाधिपति कुमार भास्करवर्माने जन्मग्रहण

किया था, २य जयदेवके श्वशुर हर्ष देव भी उसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। आसाम अञ्चलसे आविष्कृत ताम्रशासन-समूह पढ़नेसे जाना जाता है, कि ये कुमार भास्करवर्माके पुत्र अथवा पौत्र होंगे। तेजपुरके ताम्रशासनमें ये 'हरिष' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं।

पार्वतीय वंशावलीमें शङ्करदेवके ४ पीढ़ीके बाद 'गुणकाम' नामक एक राजाका नाम मिलता है। वंशावलीके मतसे ७२३ ई०में उन्होंने काठमण्डूको बसाया। परचक्रकाम और गुणकाम यदि एक व्यक्तिकी उपाधि हो, तो २य जयदेवको ७२३ ई० तक नेपालके राजसिंहासन पर अधिष्ठित देखते हैं।

२य जयदेवके बाद प्रायः ढाई सौ वर्षका इतिहास सम्पूर्ण अन्धकाराच्छन्न है। इस समयके नेपाल इतिहासके विश्वासयोग्य विवरणादि आज तक संगृहीत नहीं हुए। नेपालाधिप राघवदेवने ८७९ ई०की २०वीं अक्तूबरको एक नया अब्द चलाया जो नेपाली सम्वत् कहाता है। तदनन्तर प्राचीन ग्रन्थोंसे बहुत अनुसन्धान करने पर अध्यापक बेण्डलसाहबने जो तालिका प्रस्तुत की है, वह नीचे दी जाती है—

राजाके नाम	शासनकाल	राजधानी
निर्भयरुद्र	१००८ ई०	
भोजरुद्र	१०१५ ई०	
लक्ष्मीकाम	१०१५-१०३९ ई०	
जयदेव		काठमण्डू
उदय		काठमण्डू
भास्कर		पाटन
बलदेव		
प्रद्युम्नकामदेव	१०६५ ई०	
नागार्जुनदेव		
शङ्करदेव	१०७१-१०७२ ई०	
वामदेव	१०८३ ई०	
रामहर्षदेव	१०९३ ई०	
सदाशिवदेव		
इन्द्रदेव		
मानदेव	११३९ ई०	
नरेन्द्र	११४१ "	
आनन्द	११६५-११६६ ई०	
रुद्रदेव		
मित्र वा अमृत		
अरिदेव		
रणशूर	१२२२ ई०	
सोमेश्वर, राजकाम, अन्यमल्ल		
अभयमल्ल	१२२४ ई०	
जयदेव	१२५७ ई०	भातगांव
अनन्तमल्ल *	१२८६-१३०२ ई०	काठमण्डू
जयार्जुनमल्ल	१३६४-१३८४ ई०	
जयस्थितिमल्ल	१३८५-१३९२ ई०	
रत्नज्योतिर्मल्ल	१३९२ ई०	
जयधर्ममल्ल	१४०३ ई०	
जयज्योतिर्मल्ल	१४१२ ई०	काठमण्डू
यक्षमल्ल	१४२९-१४५७ ई०	

यक्षमल्लके बाद नेपालराज्य उनके लड़कोंके बीच दो अंशोंमें विभक्त हो गया। एककी राजधानी भातगांवमें और दूसरेकी काठमाण्डूमें थी। राजवंशावली, उनके समयकी मुद्रा तथा शिलालिपिसे जो वर्ष मालूम हुआ है वह नीचे देते हैं—

यक्षमल्ल
(प्रायः १४६० ई०में)

भातगांव
- राय वा राम
- सुवर्ण (भुवन)
- प्राण
- विश्व
- त्रैलोक्य (१५७२ ई०)
- जगज्ज्योतिः (१६२८-१६३३)
- नरेन्द्र

काठमण्डू
- रत्न
- अमर
- सूर्य
- नरेन्द्र
- महीन्द्र
- सदाशिव (१५७६ ई०)
- शिवसिंह (१६००)

* इनके बाद ६० वर्ष तकका पता नहीं लगता।
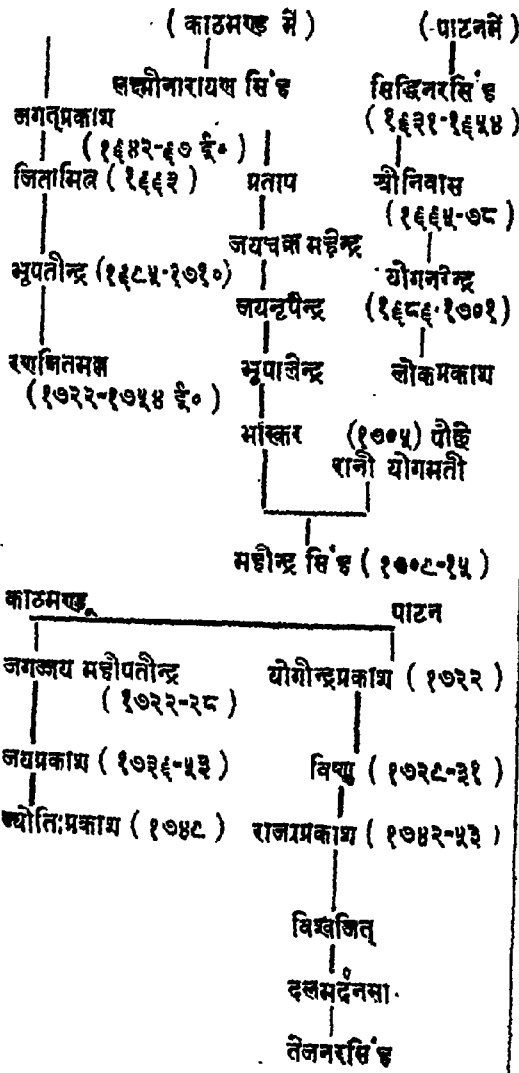
इसके बाद ही नेपालमें गोर्खाधिपत्य विस्तृत हुआ। उपरोक्त राजाओंके विषयमें जो संक्षिप्त इतिहास पाया गया, उसे संक्षेपमें लिखते हैं—

११ वीं शताब्दीमें जब मुसलमानोंने भारतवर्ष पर आक्रमण किया, उसके पहलेसे ही भारतका पश्चिमोत्तर प्रदेशसमूह छोटे छोटे खण्डराज्योंमें विभक्त था। उन सब राजाओंके एक दूसरेके प्रति आक्रोश और ईर्ष्यावशतः युद्धविग्रहमें लिप्त रहनेके कारण दिनों दिन उनकी सेना और अर्थकी हानि होने लगी जिससे वे दुर्बल होने लगे। ऐसे समयमें उन्होंने गृहशत्रुके हाथसे रक्षा पाने तथा स्वदेशमें अपनी मान मर्यादा और क्षमताको अक्षुण्ण रखनेके लिये बहिर्देशस्थ शत्रुओंको आमन्त्रण किया। इसका फल यह हुआ कि भारतवासीके आमन्त्रणसे मुसलमान लोग इस देशमें आ कर विशेषरूपसे अभ्यर्थित और सम्मानित हुए तथा रहनेके लिये एक सुरक्षित स्थान अधिकार कर बैठे। मुसलमानोंने बन्धुत्वसूत्रसे भारतवर्षमें पदार्पण किया सही, किन्तु पहलेसे ही उनकी आंखें भारत पर गड़ी हुई थीं। अतः धीरे धीरे उन्होंने बन्धुत्वके बदलेमें भारतसाम्राज्य पर अपना अधिकार जमा लिया। नेपालके भाग्यक्षेत्रमें भी एक दिन ऐसी ही अवस्था हुई थी।

१३२२ ई०में अयोध्याके सूर्यवंशोद्भव राजा हरिसिंहदेव पर जब मुसलमानोंने आक्रमण किया, तब उन्होंने अयोध्यासे मिथिलाकी राजधानी सिमरौनगढ़में दलबलके साथ भाग कर आत्मरक्षा की। ४४४ नेपालीसम्वत्में (१३२४ ई०में) वे पुनः दिल्लीश्वर तुगलकशाहसे आक्रान्त हुए। इस बार सिमरौनमें उन्होंने शत्रुओंके साथ तुमुल-संग्राम किया, पीछे पराजित हो कर नेपालमें जा आश्रय लिया। इस समय नेपालमें वर्मवंशीय राजगण राज्य करते थे। जब राजा हरिसिंहदेव यहां पहुंचे, तब उन्होंने यहांके राजाओंके पूर्व प्रभावका ह्रास देख स्वयं नेपाल राज्यको करायत्त कर लिया। प्रवाद है, कि राजा हरिसिंहदेवके राज्यमें यवनका उत्पात देख देवी तुलजाभवानीने राजाको इस मुसलमानस्पृष्ट राज्यका परित्याग कर नेपालके उच्चतम प्रदेशमें जाने और वहां राज्यस्थापन करनेका आदेश दिया था। राजा देवीके आदेशानुसार जब इस प्रदेशमें आए, तब भातगांवके ठाकुरीराजाओंने तथा वहांके अधिवासियोंने अपनी देवीका प्रत्यादेश सुन कर उन्हींके हाथ नेपाल-दरबारका कुल कार्यभार अर्पण किया।

नेपालमें राज्यभार ग्रहण करनेके साथ ही उन्होंने वहां तुलजादेवीके स्मरणार्थ एक मन्दिर बनवाया। उस मन्दिरका नाम मूल-चौक है। भोटियागण उनकी अधिष्ठित तुलजादेवीका माहात्म्य सुन कर देवमूर्त्तिको चुरा लानेके लिये भातगांवकी ओर चल दिये। जब वे लोग सप्तुस नदीके किनारे पहुंचे, तब उन्होंने देखा कि प्रज्वलित हुताशन भातगांव नगरको चारों ओरसे दहन कर रहा है। देवीकी अद्भुत क्षमता देख भोटिया लोग सबके सब डर गए और विस्मित हो वापिस चले आए।

१३२७ ई०में दिल्लीके बादशाह महम्मद तुगलकने चीनसाम्राज्य जीतनेके लिये अपने भागिनेय सेनापति खुसरू-मालिकको दश लाख अश्वारोही सेनाके साथ चीन देशमें भेज दिया। इनकी सेना इसी नेपालराज्य-के मध्य हो कर गई थी। इस समय सेनाके अत्या-चारसे नेपाल प्रायः तहस नहस हो गया था। मुसल-मानी सेनाने बहुत मुश्किलसे पर्वतादिको पार कर नेपालसीमान्तमें चीनसैन्यका सामना किया। यहां दोनोंमें घनघोर युद्ध हुआ। एक तो शीतका समय, दूसरे यह स्थान उनके लिये अस्वास्थ्यकर था, इस कारण मुसलमानी सेना दिनों दिन नष्ट होने लगी। बचो खुचो सेना रणक्षेत्रमें पीठ दिखा कर दिल्लीकी ओर भाग चली।

राजा हरिसिंहदेवने प्रायः २८ वर्ष तक राज्य किया था। पीछे उनके लड़के मतिसिंहदेवने १५ वर्ष और मतिसिंहके लड़के शक्तिसिंहदेवने २२ वर्ष तक राज्य किया था। इनके साथ चीनसम्राट्की मित्रता थी, इस कारण बनेप (वणिकपुर) ग्रामके पूर्ववर्ती पलाम-चौक ग्राममें इन्होंने राजधानी बसाई। वहांसे वे चीन-राजसभामें तरह तरहके भेंट भेजा करते थे और चीन सम्राट्ने भी इसके बदलेमें उन्हें ५३५ चीनाब्दका लिखित एक अनुमोदनपत्र और मोलमुहर भेज दी। शक्तिसिंहके पुत्र श्यामसिंहदेवके एक भी पुत्र न था। इस कारण वे १५ वर्ष राज्य कर चुकने बाद अपनी एक मात्र कन्या और जामाताको राज्यसम्पद् देनेको बाध्य हुए। राजा नान्यपदेवने जब नेपाल पर आक्रमण किया, तब नेपालके मल्लवंशीय राजाने तिरहुत भाग कर अपनी जान बचाई। उक्त मल्लराजवंशमें श्यामसिंहदेवने अपनी कन्याका विवाह किया। इस सूत्रसे नेपालमें मल्लराजवंशकी पुनः प्रतिष्ठा हुई। ५२८ नेपालसम्वत्-में यहां भयानक भूमिकम्प हुआ जिससे मत्स्येन्द्रनाथ तथा दूसरे दूसरे कितने मन्दिरादि तहस नहस हो गए।

हरिसिंहदेव-वंशका राजत्व शेष होने पर मल्लराज जयभद्रमल्लने पहले पहल नेपालराज्यमें अपनी गोटी जमाई। १५ वर्ष राज्य करनेके बाद जयभद्र परलोक-को सिधारे। पीछे उनके लड़के नागमल्ल राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने सिर्फ १५ वर्ष राज्य किया। बादमें उनके लड़के जयजगत्मल्लके ११ वर्ष तक राज्य कर चुकनेके बाद अपने लड़के नगेन्द्रमल्लके हाथ राज्यका कुल भार सौंप आप परलोकको सिधारे। राजा नगेन्द्रमल्लने १० वर्ष और उनके लड़के उग्रमल्लने १५ वर्ष राज्य किया। पीछे उनके लड़के अशोकमल्ल राज-सिंहासन पर अधि-ष्ठित हुए। इन्होंने ही विष्णुमती, वागमती और रुद्र-मती तीनों नदियोंके मध्यवर्ती स्थानमें श्वेतकाली और रक्तकालीकी स्थापना करके उस स्थानको पुण्यभूमि काशीधामके जैसा आदर्श बना दिया और उसका नाम रखा उत्तरकाशी वा काशीपुर। अपने भुजाबलसे राजा अशोकमल्लने ठाकुरी राजाओंको परास्त कर उनकी राज-धानी पाटन नगर पर अधिकार कर लिया।

तदनन्तर इनके पुत्र जयस्थितिमल्ल राजा हुए। इन्होंने पूर्वतन राजगणकृत शासन विधिका विशेष संशोधन और कुछ नये नियमोंका प्रचार किया। इन्हींके शासन-कालमें जातिमर्यादा संस्थापित हुई। समाजशासन तथा धर्मसंक्रान्त कुछ नवीन प्रथाका प्रचार कर वे जन-साधारणको श्रद्धा और भक्तिके पात्र हुए थे। आर्यतीर्थके दूसरी ओर वागमतीके किनारे इन्होंने रामचन्द्र, उनके लड़के लव और कुशकी मूर्त्तिको स्थापना तथा गोरखनाथदेव मूर्त्तिको पुनः प्रतिष्ठा की। ललित-पाटनका कुम्भेश्वर मन्दिर तथा अन्यान्य बहुसंख्यक देवमन्दिर इन्हींके प्रतिष्ठित हैं। ४३ वर्ष राज्य करने बाद इनके लड़के राजा जययक्षमल्ल राजसिंहासन पर सुशोभित हुए। इन्होंने पहले शङ्कराचार्यप्रवर्तित धर्ममत ग्रहण कर भारतके दाक्षिणात्यसे भट्टब्राह्मणको बुलाया और पशुपतिनाथदेवकी पूजाका भार उन्हींं पर सौंपा। इसी समयसे भारतवासी हिन्दूधर्मावलम्बी ब्राह्मणोंने नेपालमें प्रकृत हिन्दूमतानुसार देवपूजाविधि-का प्रचार किया। इनके राजत्वकालमें धर्मराज मौन-नाथ-लोकेश्वरका मन्दिर बनाया गया। उस मन्दिरमें समन्तभद्र बोधिसत्व, पद्मपाणि बोधिसत्व और अन्यान्य बोधिसत्व तथा नाना देवदेवियोंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं। ५७३ नेपाल-सम्वत्‌में इन्होंने एक दुर्गनिर्माण किया और उसकी देखभालके लिये कुछ विशेष नियम

बनाए। भातगांवके तचपालटोल ग्राममें इन्होंने दत्तात्रेयका एक मन्दिर बनवा दिया। राजा गुणकामदेव-प्रतिष्ठित लोकेश्वर देवमूर्त्ति ठाकुरी राजाओंके समयमें यमला नामक स्थानके भग्नमन्दिर स्तूपके मध्य पाई गई थी। उन्होंने उक्त देवमूर्त्तिका संस्कार करा कर काठमण्डूमें पुन: उसकी प्रतिष्ठा की। वह मूर्त्ति अभी यमलेश्वर नामसे प्रसिद्ध है। ये पाटन और काठमण्डूके राजाओंको स्वदेश लानेमें समर्थ हुए थे।

राजा यचमल्लके तीन पुत्र और एक कन्या थी। मरनेके पहले इन्होंने अपने बड़े लड़केको भातगांव, रायमल्ल दूसरे रणमल्लको बनेपा और तीसरे लड़के रत्नमल्लको काठमण्डू तथा कन्याको पाटनका सामन्तराज्य दे दिया था। किन्तु धीरे धीरे आपसमें विवाद हो जानेसे वे कमजोर हो गये। राजा यचमल्लके इस प्रकार अपना राज्य विभाग कर देने पर भी प्रकृत वंशधरके अभावसे अथवा किसी अभावनीय कारणसे बनेपा और पाटनराज्य भातगांव और काठमण्डू राजवंशके हाथ चला आया। इसी कारण नेपालके इतिहासमें गोर्खा-आक्रमणसे पहले उक्त दो राज्योंका थोड़ा बहुत इतिवृत्त मिलता है। ५८२ नेपाली-सम्वत्में यचमल्लकी मृत्यु होने पर नेपालराज्य इस प्रकार विभक्त हो गया। उनके बड़े लड़के रायमल्लने भातगांवका सिंहासन पाया। इस समय भातगांवका राज्य पूर्व दूधकोशी तक विस्तृत था। रायमल्लके बाद उनके लड़के प्राणमल्ल, प्राणमल्लके बाद उनके लड़के विश्वमल्ल भातगांवके राजा हुए। विश्वमल्लने अनेक मठ और देवमन्दिर बनवाये। विश्वमल्लके पुत्र त्रैलोक्यमल्लके राजत्वके बाद उनके लड़के जगज्ज्योतिमल्लने शासनभार ग्रहण किया। इन्होंने ही भातगांवमें आदिभैरवकी रथयात्राका उत्सव प्रवर्त्तन किया। इनकी मृत्युके बाद इनके लड़के नरेन्द्रमल्ल राजा हुए। इनके बाद इनके पुत्र जगत्प्रकाशमल्लने राजपद पा कर ७७५ नेपालसंवत्में अनेक कीर्त्तिस्तम्भ स्थापन किये। तचपालटोल ग्राममें हारसिंह भारो और वासिंह भारो नामक दो व्यक्तिने भीमसेनके उद्देश्यसे एक मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। ७८२ नेपालसम्वत्में उन्होंने विमलास्नेह-मण्डप और ७८७ ने०सं०में गरुड़ध्वज नामक एक स्तम्भ निर्माण किया। इनके लड़के राजा जितामित्रने (८१२ ने०सं०) एक धर्मशाला, नारायणमन्दिर और (८०३ ने०सं०) दत्तात्रेयका मन्दिर बनवाया। इनके पुत्र राजा भूपतीन्द्रमल्लके राजत्वकालमें नेपालमें एक सुवृहत् दरबार और नाना देवदेवियोंके मन्दिरकी प्रतिष्ठा की गई। इन्होंने स्वयं तथा अपने पुत्र रणजित्की सहायतासे ८३६ ने० सं०को भैरवदेवके मन्दिरमें स्वर्णकी छत बनवा दी। पिताके मरने पर रणजित्मल्ल शासनभार ग्रहण कर नेपालमें अनेक अद्भुत कीर्त्ति छोड़ गए हैं। इन्हींके राजत्वकालमें भातगांव, ललितपाटन और कान्तिपुरके राजाओंके बीच परस्पर विरोध छिड़ गया। गुर्खाधिपति राजा नरभूपालने तत्कालीन राजाओंको इस प्रकार कमजोर देख उन पर आक्रमण कर दिया। जब वे त्रिशूलगङ्गानदी पार कर नेपाल पहुंचे, तब नवकोटके वैश्यराजने उनके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस युद्धमें गुर्खाराज पराजित हो कर स्वदेशको लौट गये।

गुर्खापति नरभूपालके पुत्र राजा पृथ्वीनारायण रणजितके राजत्वके समय नेपाल देखनेको आए। रणजितने उनका आचार-व्यवहार देख अपने पुत्र वीरनृसिंहमल्लके साथ उनकी मित्रता करा दी; किन्तु युवराजकी अकाल मृत्यु होने पर भातगांवके सूर्यवंशीय राजाओंका अस्तित्व लोप हो गया।

राजा यचमल्लने द्वितीय पुत्र रणमल्लको बणिकपुर तथा और सात ग्रामोंका शासनभार अर्पण किया था। उनका आधिपत्य पूर्वमें दुधकोशी, पश्चिममें सङ्गा नामक स्थान, उत्तरमें सङ्गाचक और दक्षिणमें मेदिनामल नामक वन्यभूमि तक फैला हुआ था। बणिकपुरके किसी व्यक्तिने (६२२ ने०सं०) पशुपतिनाथको एक मूल्यवान् कवच और एकमुखी रुद्राक्ष उपहार देते समय राजाको एक दुशाला भेंटमें दिया था। वह दुशाला आज भी कान्तिपुर राजधानीमें रखा हुआ है।

राजा यचमल्लके तृतीय पुत्र राजा रत्न वा रत्नमल्लने पिताके विभागानुसार काठमण्डूका राज्यभार ग्रहण किया। इस राज्यके पूर्व सीमामें वाघमती, पश्चिममें त्रिशूलगङ्गा, उत्तरमें गोसाईंथान और दक्षिणमें पाटनविभागकी उत्तरीय सीमा है। राजा रत्नमल्लने पिताके

मरते समय उनसे तुलजादेवीका बीजमन्त्र ग्रहण किया था। प्रवाद है, कि इस मन्त्रबलसे देवी उन पर हमेशा प्रसन्न रहती थीं। इनकी भविष्यत् उन्नति देख इनके बड़े भाई जलने लगे। अन्तमें इस मनोमालिन्यसे दोनोंमें भारी विरोध खड़ा हो गया।

राजा रत्नमल्लने एक दिन स्वप्नमें देखा कि नीलताराादेवी उन्हें कह रही है, 'यदि तुम कान्तिपुर जा सको, तो काजीगण तुम्हें अवश्य ही राजा बनावेंगे।' तदनुसार राजा बहुत तड़के बिछावनसे उठ देवीको प्रणाम कर ठाकुरी राजाओंके प्रधान काजीके समीप पहुंचे। काजीने उन्हें राजा बनानेकी प्रतिज्ञा की। अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिये काजीने एक दिन बारह ठाकुरीराजाओंको अपने यहां निमन्त्रण किया और व्यञ्जनादिके साथ विष मिला कर उन बारहोंको यमपुर भेज दिया। कान्तिपुरके सिंहासन पर बैठनेके साथ ही रत्नमल्लको काजीके चरित्र पर विशेष सन्देह हो गया और आखीरको उसे मरवा ही डाला। स्वप्नदृष्ट वाक्य मिथ्या होने पर भी उन्होंने भाइयोंके साथ विवाद कर जो कान्तिपुर दखलमें कर लिया था, इसमें सन्देह नहीं।

६११ ने०सं०में इन्होंने नवकोटके ठाकुरीराजाओं-को पराजित कर उनका राज्य अपना लिया था। इस स्थानसे उन्होंने नाना प्रकारके फूल और फल ले कर पशुपतिनाथकी पूजा की थी। यही कारण है, कि आज भी वहांके लोग नवकोटसे इत्यादि ला कर उक्त देवमूर्त्ति-की पूजा करते हैं।

इनके राजत्वकालमें कुलु नामक भूटिया जातिने विद्रोही हो कर राजा पर विशेष अत्याचार आरम्भ कर दिया। राजा जब उन्हें दमन कर न सके, तब देवधर्मा-ग्रामवासी चार तिरहुतिया ब्राह्मण पल्पाके सेनराजाओं-के अधीनस्थ सेना ले कर रत्नमल्लकी सहायतामें पहुंच गए। कुकुस्यानाजोर नामक ग्राममें भूटिया लोग परा-जित हुए। राजाने ब्राह्मणोंको कई एक ग्राम और बहुत धनरत्न दान दिये। इन्हींके शासनकालमें भोटिया-विद्रोह-के बाद नेपालमें यवन (मुसलमान) जातिका वास आरम्भ हुआ।

इन्होंने ६२१ नेपालीसम्वत्‌में तुलजादेवीका एक मन्दिर बनवा कर उसमें देवमूर्त्तिकी स्थापना की। बाद इन्होंने कान्तिपुर और ललितपाटनके अधिवासियों-को वशमें ला कर शेषागढ़ि पर्वतकी चित्‌लिङ्ग उप-त्यकाकी तांबेकी खानसे तांबा निकाल कर सुकिचा (१)-के बदलेमें तांबेके पैसेका प्रचार किया।

रत्नमल्लकी मृत्युके बाद उनके लड़के अमरमल्ल काठ-मण्डूके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनके शासनकाल-में वणिकपुरके कुमारोंने अनन्तनारायणकी मूर्त्तिको ले कर पशुपतिके मन्दिरमें स्थापन करना चाहा। किन्तु राजाका आदेश नहीं मिलने पर उन्होंने उसी रात भरमें वाछला देवके मन्दिरकी बगलमें एक दूसरा मन्दिर बनवा लिया और इसीमें नारायणकी मूर्त्ति-प्रतिष्ठा की। भुवनेश्वरके उपासक मणि आचार्यके वंश-धरोंने ८ कुमार और कुमारियोंके उद्देशसे एक यात्रा-उत्सव किया। प्रति वर्ष ८ आषाढ़को यह उत्सव होता है। प्रवाद है, कि ६७७ ने०सं० जिस दिन मणिआचार्य 'मृतसञ्जीवनी'के अन्वेषणमें बाहर निकले थे, उसी दिन यह उत्सव मनाया जाता है। उनके वंशधरोंने उनके अन्तर्धान होनेका समाचार सुन कर जब अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारियां कीं, तब वे देवपाटनसे लौट कर उनका अभिप्राय समझ स्वेच्छासे अग्निमें जल मरे।

राजा अमरमल्लने मदनके पुत्र अभयराजको मुद्रा-कूलका कर्त्तव्यभार दे कर 'हाटिनायक'के पद पर अभिषिक्त किया। इन्होंने अपने खर्चसे अनेक मन्दिरादि बनवाये थे।

इस राजाने खोकनाकी महालक्ष्मीदेवी, हलचोक-देवी, मानमईजुदेवी, पचली-भैरव और लुम्बिकाजीकी दुर्गादेवी, कनकेश्वरी, घटेश्वरी और हरिसिद्धिकी पूजा-में नृत्य-उत्सवका प्रचलन किया। पूर्व समयमें कनकेश्वरी-देवीकी पूजामें नरबलि दी जाती थी, इस कारण अभी उक्त देवीकी पूजा और उत्सव बन्द हो गया है।

ललितपुर, बन्दगांव, थेचो, हरसिद्धि, लुभु, चापा-गांव, फिरफिङ्ग, मत्स्येन्द्रपुर वा बागमती, खोकना, पाङ्ग

(१) सुकिचा वा चवंनी प्राचीन नेपालीमुद्रा। इसका वर्त्तमान मोल ८ पैसे वा दो आने हैं।

कीर्त्तिपुर, थानकोट, बलम्बु, शतङ्गल, हलचोक, फुटुम, धर्मस्थली, टोखा, चपलीगाँव, लेलेग्राम, बुकग्राम, गोकर्ण, देवपाटन, नन्दीग्राम, नमशाल, मालीग्राम वा मागल आदि विशिष्ट जनपद उनके अधिकारमें थे। काठमण्डूसे पशुपति ग्राम जानेके रास्ते पर नन्दीग्राम अवस्थित है। नमशाल और मालीग्राम एक समग्र विशालनगर नामसे प्रसिद्ध था। यहां प्राचीन कीर्त्तिके अनेक ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं।

नेपालीगणनाके अनुसार ४० वर्ष राज्य करनेके बाद अमरमल्लका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के सूर्यमल राजा बने। इन्होंने भातगाँवके राजासे राजा शङ्करदेवस्थापित चाङ्गुनारायण और शङ्खपुर ग्राम जीत लिए। पीछे शङ्खपुर जा कर वज्रयोगिनीदेवीकी उपासनाके लिये वहां छः वर्ष ठहर कर अन्तमें कान्तिपुर लौटे और यहीं उनकी मृत्यु हुई। अनन्तर उनके लड़के नरेन्द्रमल्ल और पीछे नरेन्द्रमल्लके लड़के महीन्द्रमल्ल राजा हुए। इन्होंने दरबारके सामने महीन्द्रेश्वरी और पशुपतिनाथका मन्दिर बनवाया। भारतकी राजधानी दिल्ली जा कर इन्होंने सम्राट्को नाना जातीय हंस और शिकारी पक्षी उपहारमें दिए। सम्राट्से मुद्राङ्कणका आदेश मांगने पर सम्राट्ने खुशीसे इन्हें रौप्यमुद्रा प्रचलनकी अनुमति दी थी।

स्वराज्य लौट कर राजा महीन्द्रमल्ल अपने नाम पर 'मुहर' नामकी रौप्यमुद्रा ढलवाने लगे। यही मुद्रा नेपालकी प्रथम रौप्यमुद्रा थी। इसके पहले और कभी भी नेपालमें रौप्यमुद्राका प्रचार था वा नहीं, कह नहीं सकते। इस समयके पहलेकी नेपालमें जो सब ताम्रमुद्राएं पाई जाती हैं, उनके ऊपर वृष, सिंह, हस्ती आदि जन्तुओंकी प्रतिकृति अङ्कित है।

महीन्द्रमल्लके ही यत्नसे कान्तिपुर नगर बहुजनाकीर्ण हुआ था। ६६९ ने०सं०के माघमासमें इन्होंने उक्त नगरमें तुलजाभवानीकी प्रतिष्ठाके लिये एक मन्दिर बनवाया। इनके राजत्वकालमें ६८६ ने०सं०को विष्णुसिंहके पुत्र पुरन्दर-राजवंशीने ललितपाटन दरबारके सामने नारायणके लिए एक मन्दिरकी स्थापना की। राजा महीन्द्रमल्लके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम था सदाशिवमल्ल और छोटेका शिवसिंहमल्ल। इनकी माता ठाकुरी-वंशसम्भूता थीं।

पिताके मरने पर बड़े लड़के सदाशिव राज्याधिकारी हुए किन्तु वे थे लम्पट और स्वेच्छाचारी राजा। किसी मेले वा यात्राके उपलक्षमें जब किसी सुन्दरी स्त्री पर उनकी नजर पड़ जाती थी, तब वे उसकी आबरू ले लेते थे। इस प्रकार इन्होंने कितनोंही कुलललनाओंके कुलमें कालिमा लगा दी थी, उसकी इयत्ता नहीं। विलासिताके वशवर्त्ती हो कर वे धीरे धीरे राजकोष खाली करने लगे। प्रजा भी उनका ऐसा व्यवहार देख दिनों दिन श्रद्धाहीन होने लगी। एक दिन जब उन्होंने देखा, कि राजा मनोहराकी ओर जा रहे हैं, तब वे डण्डे मुद्गर आदि ले कर उन पर टूट पड़े। राजाने डर कर भातगांवमें जा कर आश्रय लिया; किन्तु भक्तपुराधिपतिने उनका जघन्य चरित्र-विषय सुन कर उन्हें कैद कर लिया। राजा सदाशिव कुछ दिनके बाद किसी तरह जान ले कर वहांसे भाग आये। इन्हींके समयमें प्रकृत सूर्यवंशका आधिपत्य नेपालसे अन्तर्हित हो गया।

प्रजाने सदाशिवको राज्यच्युत करके उनके वैमात्र भाई शिवसिंहमल्लको राजसिंहासन पर बिठाया। राजा शिवसिंह बड़े ज्ञानी थे। इन्होंने महाराष्ट्र देशसे ब्राह्मण बुला कर उन्हें गुरुपद पर अभिषिक्त किया। इनके राजत्वकालमें सूर्यवण नामक कान्तिपुरवासी कोई तान्त्रिक तिब्बतकी राजधानी ल्हासानगर गये। शिवसिंहके दो पुत्र थे, लक्ष्मीनरसिंहमल्ल और हरिहरसिंहमल्ल। छोटे हरिहर कुछ उग्र प्रकृतिके थे। पिताके जीते-जी वे ललितपाटनका शासन करनेके लिये अग्रसर हुए। इनकी माता गङ्गारानीने कान्तिपुर और बड़ानीलकण्ठके मध्य एक उद्यान लगवाया जो रानीवन नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्तमान अङ्गरेजी-रेसिडेण्टके समीप ही उक्त उद्यानके ध्वंसावशिष्ट उच्च प्राचीरादि देखनेमें आते हैं। कुछ समय पहले यही भग्न उद्यान जङ्गबहादुरके शिकारके लिए हरिणशावक पालनके स्थानरूपमें परिणत था।

एक समय हरिहरसिंहने जब देखा कि उनके पिता

शिकारके लिये बाहर गये हुए हैं, तब उन्होंने किसी विवादके कारण अपने भाई लक्ष्मीनरसिंहको दरबारसे बाहर निकाल दिया था। ७१४ ने०सं०में राजा शिवसिंहने स्वयम्भूनाथके मन्दिरका पुनः संस्कार करा दिया। कुछ समय बाद राजा और रानी गङ्गादेवीके मरने पर ज्येष्ठ पुत्र लक्ष्मीनरसिंह कान्तिपुरके राजा हुए। इनके किसी आत्मीय भीममल्लने स्वयं भोटदेशमें जा कर कान्तिपुर और भोट इन दोनों स्थानोंको वाणिज्यसूत्रसे एक कर दिया। इस प्रकार व्यवसाय व्यापारमें भोटसे स्वर्ण और रौप्य नेपाल लाया गया था। काजी भीममल्लके यत्नसे भोटराजके साथ राजा लक्ष्मीनरसिंहकी इस शर्त्त पर एक सन्धि हुई कि व्यवसाय-उपलक्षमें यदि किसी मनुष्यका तिब्बतकी राजधानी लासानगरमें जीवन नष्ट हो जाय, तो उसकी स्थावर अस्थावर सम्पत्ति नेपाल-गवर्मेण्टको देनी पड़ेगी। इनकी सहायतासे सीमान्तवर्त्ती कुटी नामक प्रदेश नेपालके अधीन किया गया।

तिब्बत-राजधानी लासानगरसे लौट कर भीममल्लने राजाको उन्नत करनेमें विशेष सहायता की थी। यथार्थमें वे राजा लक्ष्मीमल्लको नेपालके एकच्छत्र राजा बनानेमें विशेष यत्नवान थे। किसी मनुष्यने एक दिन राजासे कहा, "भीममल्ल स्वयं राजा लेनेके लिये ये सब चेष्टाएँ कर रहे हैं। आपको राजच्युत करना ही उनका मुख्य उद्देश्य है।" यह सुन कर राजाने भीममल्लका शिरच्छेद करनेकी आज्ञा दे दी। भीममल्लने अपनी जीवद्दशामें धर्मशिला विग्रहका एक ताम्र आवरण बनवा दिया था जनश्रुति है, कि दक्षिण-भारतवासी नित्यानन्दस्वामी नामक एक ब्रह्मचारी इस समय नेपालमें आए हुए थे। वे ब्रह्मचारी थे सही, किन्तु किसी मूर्त्तिको प्रणाम नहीं करते थे। यह कथा सुन कर राजा आगबबूला हो गए और ब्रह्मचारीको विग्रहादि प्रणाम करनेका हुक्म दिया। नित्यानन्दस्वामीने ज्यों ही विग्रहके सामने अपना शिर झुकाया, त्यों ही चन्द्रेश्वरी, धर्मशिला, कामदेव आदि मूर्त्तियां टूट फूट गईं। भीममल्लकी हत्या पर उनकी स्त्रीने राजाको शाप दिया था जिससे कुछ दिन बाद राजाका मस्तिष्क विकृत हो गया। जब वे राजकार्य चलानेसे असमर्थ हुए, तब उनके लड़के प्रतापमल्ल ७५८ ने०सं०में नेपालकी गद्दी पर बैठे। ७८७ नेपालसंवत्में १६ वर्ष कारागारके बाद राजा लक्ष्मीनरसिंहकी मृत्यु हुई।

उन्होंने इन्द्रपुर नगर और जगन्नाथ देवालयकी स्थापना की। ७७४ ने०सं०को माघ-शुक्ला पञ्चमीको उन्होंने कालिकादेवी-स्तोत्रकी रचना कर उसे प्रस्तरके ऊपर खुदवा दिया और जहां तहां देवालयमें भी लिखवा दिया। वह देवस्तोत्र १५ विभिन्न भाषाओंको वर्णमालामें रचा गया था *। ये विद्वान् और अनेक शास्त्रोंके पण्डित थे तथा १५।१६ विभिन्न भाषा जानते थे।

इनके राजत्वकालमें श्यामार्पा-लामा नामक कोई भोटवासी नेपाल आए और ७६० ने०सं०में उन्होंने स्वयम्भूनाथका गर्भकाष्ठ बदलवा दिया तथा देवमूर्त्तियां गिल्टी करवा दीं। उक्त मन्दिरके दक्षिणस्थ गुम्बजमें राजा लक्ष्मीनरसिंहका नाम अङ्कित है। ७७० ने०सं०में राजा प्रतापमल्लने स्वयम्भूनाथका माहात्म्य वर्णन करते हुए एक और कविताकी रचना की तथा उसे प्रस्तर-पट खोदवा कर देवमन्दिरमें रखवा दिया। उन्होंने अपनी प्रचलित मुद्रामें 'कवीन्द्र'-की उपाधि संयोजित कर अपनेको विशेष गौरवान्वित समझा था।

उन्होंने पहले दो तिरहुत-राजकन्याका पाणिग्रहण किया। पीछे यौवनस्वभावसुलभ चंचलतासे उन्होंने इन्द्रिय-लालसाको परितृप्त करनेके लिये नेपाली प्रथानुसार प्रायः तीन हजार रमणियोंको स्त्रीके रूपमें वरण किया था। इस अल्पवासनाके वशमें आ कर उन्होंने एक समय एक बालिकाको मार डाला था। स्वकृत पापोंसे भयभीत हो कर उन्होंने तथा परिवारस्थ सब किसीने पापमोचनके लिये तुलादान उत्सव किया।

इनके राजत्वकालमें महाराष्ट्रसे लम्बकर्णभट्ट और तिरहुतसे नरसिंहठाकुर नामक दो ब्राह्मण नेपाल आए और राजासे परिचित हो कर 'गुरु'-उपाधिसे भूषित हुए। राजा प्रतापमल्लके चार पुत्र थे, पार्थिवेन्द्रमल्ल, नृपेन्द्रमल्ल, महीपेन्द्र (महीपतीन्द्र)-मल्ल और चक्रवर्त्तीन्द्रमल्ल।

* D. Wright's History of Nepal नामक पुस्तकमें उक्त शिलालिपिकी एक प्रतिकृति है।

पिताके जीते-जी उन चारोंने एक एक वर्ष पिताके इच्छानुसार राज्यभोग किया। तृतीय पुत्र महीपतीन्द्रके शासनकालमें पिताने पुत्रकी सहायतासे ७८८ ने०सं०को अचोभ्यबुद्धमन्दिरके सामने धर्मधातुमण्डलमें एक इन्द्रकी वज्राकृति स्थापित की। चतुर्थ पुत्र चक्रवर्त्तीन्द्रने एक वर्ष राज्य कर जीवलीला सम्बरण की। ७८९ ने०सं०में चक्रवर्त्तीन्द्रने जो मुद्रा चलाई, उसके एक पृष्ठ पर वाणास्त्र पाश, अङ्कुश, कमल और चामर अङ्कित देखा जाता है।

पुत्रकी मृत्यु पर राजमाता जब व्याकुल हुईं, तब राजाने उनका शोक दूर करनेके लिये एक सुवृहत् पुष्करिणी और मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। यह पुष्करिणी रानीपोखरी नामसे मशहूर है। ८०८ ने०सं०को राजाकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के महीन्द्रमल्ल भूपालेन्द्र नाम धारण कर राजसिंहासन पर बैठे। ८१४ ने०सं०को भूपालेन्द्र भी पञ्चत्वको प्राप्त हुए। बादमें उनके लड़के श्रीभास्करमल्ल चौदह वर्षकी अवस्थामें राजपदको प्राप्त हुए। इनके राजत्वकालके आठवें वर्षमें दशहराका उत्सव ले कर पाटन और भातगाँववासियोंके बीच विवाद उपस्थित हुआ। इसी साल नेपालमें महामारीका प्रकोप हुआ जिससे उनकी अकाल मृत्यु हुई। उनकी मृत्युके साथ साथ कान्तिपुरका सूर्यवंशीय राजवंशका भी चिराग बुत गया। राजाकी महिषी तथा दूसरी दूसरी स्त्रियां सतीदाह होनेके पहले अपने विशेष आत्मीय जगज्जयमल्लको राजा बना गई थीं।

राजा जगज्जयके पांच पुत्र थे। राजेन्द्रप्रकाश और जयप्रकाशने उनके राज्यप्राप्तिके पहले जन्मग्रहण किया था। राज्यप्रकाश, नरेन्द्रप्रकाश और चन्द्रप्रकाश पीछे उत्पन्न हुए थे। राजाकी जीवितावस्थामें ज्येष्ठ राजेन्द्र और कनिष्ठ चन्द्रप्रकाश स्वर्गधामको सिधारे। दोनों पुत्रके वियोगसे जब राजा बहुत व्याकुल हुए, तब उनके अधीनस्थ खस-सिपाहियोंने आ कर उन्हें सान्त्वना दी और राजकुमार राज्यप्रकाशके राजपद-प्राप्तिके लिये उनसे विशेष अनुरोध किया।

इस समय जब राजाको मालूम हुआ कि गुर्खालीराज पृथ्वीनारायणने नवकोट तक राज्य फैला लिया है और उनको देवोत्तर सम्पत्ति शत्रुके हाथ लग गई है, तब वे बहुत दुःखी हुए। ८५२ ने०सं०में उनके स्वर्गारोहण करने पर उनके लड़के जयप्रकाशमल्ल काठमण्डूके सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। कुमार राज्यप्रकाशको जब सिंहासन प्राप्त न हुआ, तब वे निराश हो पाटनको चले गए और राजा विष्णुमल्लके यहां रहने लगे। राजा विष्णुमल्लको एक भी पुत्र न रहनेके कारण उन्होंने राज्यप्रकाशको ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा।

राजकर्मचारी ठारिगणने उनके कनिष्ठ भ्राता नरेन्द्रप्रकाशको देवपाटन, शङ्खु, चाङ्गु, गोकर्ण और नन्दीग्राम नामक पांच ग्रामोंका आधिपत्य प्रदान किया। ठारियोंके कार्यसे विरक्त हो कर उन्होंने उन्हें कैद कर लिया और भाईसे उक्त पञ्च ग्रामका अधिकार छीन लिया। अतः नरेन्द्रप्रकाशको पितृराजधानी काठमाण्डू छोड़ कर भातगाँव जा कर रहना पड़ा था। इसके कुछ दिन बाद नरेन्द्रप्रकाशकी मृत्यु हुई।

जो कुछ हो, उक्त ठारिकर्मचारियोंने समय पा कर कैदसे छुटकारा पाया और रानी दयावतीका पक्ष अवलम्बन कर उनके अठारह मासके लड़के ज्योतिःप्रकाशको सबके सामने राजा कह कर घोषणा कर दी। राजा जयप्रकाश दरबार छोड़ कर ललितपाटन भाग गये। किन्तु वहांके प्रधानोंने उन्हें आश्रय न दिया। इस कारण वे रानी दयावतीका आश्रय ग्रहण करनेके लिये गोदावरीको चले गए। वहांसे भी निकाले जाने पर उन्होंने गोकर्णेश्वरमें और पीछे गुह्येश्वरीके मन्दिरमें आश्रय लिया। यहां एक भक्तने उन्हें देवीका खड्ग दे कर शत्रुओंके विरुद्ध युद्ध करनेको सलाह दी। उनके विरुद्ध जो सैन्यदल कान्तिपुरसे आ रहा था, वे सबके सब उनके हाथसे मारे गए। पीछे राजाने कान्तिपुर लौट कर दरबारमें प्रवेश किया और शिशु ज्योतिःप्रकाशको दो खण्ड करके उसकी माता रानी दयावतीको लक्ष्मीपुर-चकमें कैद कर रखा।

इस प्रकार जयप्रकाशने अपने शत्रुओंको दमन कर नवकोट पर आक्रमण कर दिया। गोर्खाराज पृथ्वीनारायण परास्त हो कर स्वदेश लौटे। इसके आठ वर्ष

बाद पृथ्वीनारायणने पुनः नवकोट पर हमला बोल दिया और ३२ तिरहुतवासी ब्राह्मणों का ब्रह्मोत्तर छीन लिया। उन ब्राह्मणोंने नेपाल-राजके पास जा कर अपना दुखड़ा रोया। इसी समयसे राजाके अधःपतनका सूत्रपात हुआ। जब उन्होंने सुना कि काशीराम ठापा नामक एक व्यक्ति पृथ्वीनारायणको नवकोटका अधिकार देनेके लिये सहायता कर रहे हैं, तब उन्हें समझा कर सहायता करनेसे मना किया। काशीरामने अपनेको बिलकुल निर्दोष बतलाया, तिस पर भी जब वे चावहिल-के गौरीघाट पर सन्ध्या कर रहे थे, तब राजप्रेरित गुप्त-चरोंने आ कर उन्हें मार डाला।

गुप्तचरोंकी कृपासे जयप्रकाशने पुनः राज्यभार ग्रहण किया और कृतज्ञताके लिये मन्दिरके सामने घाट और उसके चारों ओर गृहादि बनवा दिये तथा उक्त देवीकी पूजाके लिये बहुत-सी जमीन दान दीं। वे ही उक्त देवीपूजाके उत्सवमें बहुसंख्यक लोगोंको खिलाने-की प्रथा चला गए हैं। पशुपतिनाथ-मन्दिरके समीप उन्होंने एक वेदीके ऊपर मृत्तिकानिर्मित कोटिशिव-लिङ्गपूजाकी पद्धति जारी की थी जो अभी कोटि-पार्थिव पूजाके नामसे प्रसिद्ध है।

इस समय पृथ्वीनारायणने बहुत-सी सेना ले कर कीर्त्तिपुर पर आक्रमण कर दिया। दोनों दलमें घम-सान युद्ध चला। युद्धमें नेपालराजके सरदार शक्तिवल्लभ-के अधीनस्थ बारह हजार सेना विनष्ट हुई थी। दोनों दलकी विशेष क्षति होने पर भी राजा जयप्रकाश पृथ्वी-नारायणको राज्यसे बाहर निकाल देनेमें सक्षम हुए थे। किन्तु ठारिगण सीमान्तवर्त्ती तिरहुतवासी ब्राह्मणोंके ऊपर ईर्ष्यापरतन्त्र हो कर पुनः पृथ्वीनारायणके समीप गए और उन्हें नेपालके कितने अंश प्रदान किए।

इस समय भातगाँवके राजा रणजित् मल्ल थे। वे भी गुर्खालियोंको पराजित करनेकी इच्छासे नागसिपा-हियोंको शिक्षा देने लगे। ८८७ ने०सं०के आषाढ़ मासमें यहां २४ घण्टेके मध्य २१ बार भूमिकम्प हुआ था। इसके आठ मास बाद ८८८ ने० सम्वत्‌को पृथ्वी-नारायणने पुनः कान्तिपुर पर धावा मारा। उस दिन इन्द्रयात्राका उत्सव था। नेपाली सेना और नगरवासी सबके सब नशेमें चूर चूर थे। फलतः दो एक घण्टे युद्ध करनेके बाद ही वे थक गए। राजा उस समय मन्दिरमें देवीकी उपासनामें मस्त थे। पृथ्वीनारायण-को अच्छा मौका हाथ लगा। उन्होंने पहले कान्तिपुर पर और पीछे ललितपुर पर अपनी गोटी जमा ली।

राजा यक्षमल्लने पाटन जीत कर अपनी एकमात्र कन्याको वहांका शासनभार अर्पण किया। क्रमशः यह जनपद काठमण्डू राजाके दखलमें आ गया। राजा शिवसिंहके छोटे लड़के राजा हरिहरसिंहमल्ल इस प्रदेशका शासन करने आये। हरिहरसिंहकी मृत्युके बाद उनके लड़के सिद्धिनरसिंह राजा हुए। ये अत्यन्त ज्ञानवान् थे, उनकी कीर्त्ति आज भी नेपालमें जगह जगह विद्यमान है। ७४०नेपालसम्वत्‌को उन्होंने अपने गुरु विश्वनाथ उपाध्यायकी सलाहसे तुलजादेवीको पुनः प्रतिष्ठा की। ७५७ नेपालसम्वत्‌के फाल्गुणमास पुन-र्वसुनक्षत्रको आयुष्मान योगसे उन्होंने कौव्हाड़ु तियज्ञ कर राधाकृष्णका मन्दिर बनवाया।

ये बुद्धमार्गीसम्प्रदायके ऊपर विशेष श्रद्धा रखते थे। राजाने स्वयं हठकोविहारको तोड़वा कर उनका पुन-र्निर्माण किया। इसके अलावा अन्यान्य सबोंके यत्नसे ज्येष्ठवर्ण तङ्गल, धर्मोक्तितत्व, मयूरवर्ण विष्णु-ग्रन्थ, वैश्यवर्ण, श्रीकालीरुद्र वर्ण, इक, हिरण्यवर्ण, यशो-धराव्यूह, चक्र, शक, दत्त, यष्णु, वम्बाहा, जोवाहा और धूमवाहा नामक कई एक विहार बनाए गए थे। यहांका जम्योविहार 'निर्वाणिक' है अर्थात् यह उन्होंके लिए है, जो निर्वाणतत्त्व जानना चाहते हों वे दारपरि-ग्रह नहीं करते। यहां निर्वाणसम्प्रदायियोंके और भी पाँच विहार हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि राजा लक्ष्मीनरसिंहके आत्मीय काजी भीममल्लकी सहायतासे नेपालमें तिब्बत-वासियोंके साथ वाणिज्यके लिये जो सन्धिका प्रस्ताव हुआ था, उसी शर्त पर ललितपुरका वणिक्-सम्प्रदाय भी भोटजातिके साथ वाणिज्य व्यवसाय करने लगा।

७६८ नेपालसम्वत्‌को उन्होंने भण्डारयानके निकट-वर्त्ती निजकृत धारा और पुष्करिणीके समीप एक भूगोल मण्डपका निर्माण किया। उस मन्दिरके ऊपरी भाग पर

काठके ऊपर नक्षत्रादिकी प्रतिकृति और स्वर्गीय देवताओं की मूर्त्ति खोदित है। उक्त वर्षके पौषमासकी मकरसंक्रान्तिके उत्सवमें उन्होंने बड़ालुखांवासी जगन्नाथ चक्रवर्त्ती नामक एक ब्राह्मणको अठारह महापुराण दान किये। ७७२ नेपालसम्वत्‌में वे तीर्थयात्राको निकले। ७७४ नेपालसम्वत्‌में भयानक तूफान उठा जिससे नेपालके अनेक मन्दिर और अट्टादि तहस नहस हो गये। उन्होंने अपना सारा जीवन सत्कर्ममें बिताया। ७७७ ने०सं०में उन्होंने राजासनका परित्याग कर संन्यासधर्म ग्रहण किया। प्रवाद है, कि नेपालमें ऐसे सद्‌गुणसम्पन्न राजा और कोई न हुए थे। उनका नाम लेनेसे सर्वपाप क्षय होता है।

उनकी मृत्युके बाद श्रीनिवासमल्ल १२ ज्येष्ठ सुदि (७७७ नेपालसम्वत्)को मत्स्येन्द्रनाथके उत्सव दिन नेपालके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ७७८ नेपालसंवत्‌में उन्होंने भातगांव और ललितपुर राजाके साथ मेल कर कान्तिपुर राजाके विरुद्ध लड़ाई ठान दी। इस समय श्रीनिवास और प्रतापमल्लके बीच कालिकापुराण तथा हरिवंश छू कर मित्रता स्थापित हुई एवं भातगांव, ललितपुर और कान्तिपुर जाने आनेके लिये जो एक रास्ता गया है वह इस युद्धमें खुला रखनेको आपसमें राजी हुए।

७८० नेपालसम्वत्‌में भातगांवके राजा जगत्‌प्रकाशमल्लने चाङ्गुके निकटवर्त्ती सेनानिवासमें आग लगा कर ८ मनुष्यकी हत्या कर डाली और २१को कैद कर अपने साथ ले गए। इस पर राजा श्रीनिवासने प्रतापमल्लके साथ मेल कर पहले वन्देग्राम और चम्पारण्य सेनानिवासको जीत लिया, पीछे वे चौरपुरी जीतनेके लिये अग्रसर हुए। चौरपुरी जब इनके हाथमें आ गया, तब भातगांवके राजाने हाथी घोड़े आदि दे कर इनसे मेल कर लिया। ७८२ ने०सं०में वे बोधगांव जा कर रहने लगे। वहां ७ दिन रहनेके बाद उन्होंने नकदेशगांवको जीता तथा लूटा। पीछे थेमी जीत कर वे अपनी अपनी राजधानीको लौटे।

राजा श्रीनिवासने ७८३-८८ नेपालसम्वत्‌के मध्य अनेक मन्दिर बनवाये तथा बहुतोंका संस्कार कराया। ८०१ नेपालसम्वत्‌में उन्होंने भीमसेनके उद्देश्यसे एक बृहत्‌ मन्दिरका निर्माण किया। उनके बाद उनके लड़के योगनरेन्द्रमल्ल सिंहासन पर बैठे। इन्होंने मणिमण्डप नामक एक बड़ा घर बनवाया। इनके बालकपुत्रके लोकान्तर होने पर इन्होंने राजैश्वर्यसे उदासीन हो संसारधर्मका त्याग कर दिया। इस समय जनताके आग्रहसे कान्तिपुरके राजा महीपतीन्द्र वा महीन्द्रसिंहमल्ल पाटनके राजा हुए। इनकी मृत्यु होने पर जययोगप्रकाशने राज्यभार ग्रहण किया। जययोगप्रकाशकी अकाल मृत्यु हुई। पीछे योगनरेन्द्रकी एकमात्र कन्या रुद्रमतीके पुत्र विष्णुमल्ल ८४३ ने०सं०में राजा बनाए गए। उनके राजत्वकालमें महादुर्भिक्ष और अनावृष्टि उपस्थित हुई। उन्होंने अनेक पुरश्चरण और नागसाधन करके रुष्ट देवताका शान्तिविधान किया। कोई सन्तान न रहनेके कारण उन्होंने राजप्रकाशमल्लको गोद लिया। राजप्रकाश शान्तप्रकृतिके मनुष्य थे। इसी कारण प्रधान कर्मचारियोंने षड़यन्त्र करके उन्हें दोनों आंखोंसे अन्धा बना दिया। इस पर उनके भाई जयप्रकाशने क्रुद्ध हो कर उक्त प्रधान और काजियोंको कैदमें डाल दिया। राजा राजप्रकाश चक्षु-उत्पाटनकी दारुण यन्त्रणाको सह न सके और अकालमें ही कराल कालके गालमें पतित हुए।

इस समय पाटनके ठालाछिंकाछजातीय अन्यान्य प्रधानोंने भातगांवसे राजा रणजितको बुला कर पाटनका शासनभार अर्पण किया। किन्तु वे राज्यशासन अच्छी तरह चला न सके, इस कारण एक वर्षके बाद ही राज्यच्युत किये गए। इनके बाद उन्होंने पुनः कान्तिपुरके राजा जयप्रकाशको ला कर पाटनके सिंहासन पर बिठाया। किन्तु आश्चर्यका विषय था कि एक वर्षके बाद ही जयप्रकाशको भी सिंहासनच्युत करके विष्णुमल्लके दौहित्रको राज्यभार अर्पण किया। उनका नाम था राजविश्वजित्। चार वर्ष राज्य करनेके बाद प्रधानोंने षड़यन्त्र करके विश्वजित्‌को मरवा डाला, तदनन्तर वे नवकोट गए और राजा पृथ्वीनारायणकी सलाह ले कर उनके छोटे भाई दलमर्द्दनसा नामक एक व्यक्तिको पाटनके सिंहासन पर अभिषिक्त किया। दलमर्द्दन प्रधानोंको

बिना सलाह लिए ही राजकार्य चलाने लगी। एक समय पृथ्वीनारायणके विद्रोही होने पर उन्होंने भी बड़े भाईके साथ युद्ध किया था। क्रमशः उनके आचरणसे विरक्त हो कर चार वर्ष राज्य करनेके बाद ही प्रधानोंने उन्हें निकाल भगाया और विश्वजित्के वंशोद्भव तेजनरसिंह-मल्लको सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

तेजनरसिंहने केवल तीन ही वर्ष राज्य किया था कि पृथ्वीनारायण नेपाल पहुँचे। उनके पाटन पर आक्रमण करने पर तेजनरसिंह भातगांवमें भाग गए। पृथ्वीनारायणने जब देखा कि, प्रधान ही एकमात्र कर्त्ता कर्त्ता हैं, तब उन्होंने इन विश्वासघातकोंको पकड़ा और मार डाला।

१८वीं शताब्दीके मध्यभागमें जब लार्ड क्लाइव धीरे धीरे बङ्गालके वक्षस्थल पर पदक्षेप कर ब्रिटिशगवर्मेन्टकी निर्मीकतासे भारतमें अङ्गरेजी राज्यको नीव डालनेकी कोशिशमें थे, ठीक उसी समय बङ्गालके उत्तर हिमालयके पादमूलमें नेपालराज्य छोटे छोटे सामन्तोंके अधीन हो जानेसे परस्परमें विरोध चल रहा था। पूर्वोल्लिखित भातगांव, काठमण्डू और पाटनके शेष इतिहाससे जाना जाता है, कि जब तेजनरसिंह पाटनके सिंहासन पर और अपुत्रक राजा जयप्रकाश काठमण्डूके सिंहासन पर अधिरूढ़ थे, तब भातगांवके अधिपति राजा रणजित-मल्ल किसी सामान्य कारणसे उक्त दोनों राजाओंके प्रतिद्वन्द्वी हो दलबलके साथ उन पर आक्रमण करनेके लिए अग्रसर हुए। राजा रणजित् स्वदेशवैरियोंके हाथसे छुटकारा पानेके लिए तथा अपनेको काठमण्डू, पाटन और भातगांवके एकेश्वर राजा बनानेकी कामना कर दूरस्थ गोर्खापति पृथ्वीनारायणको बहुत आदरसे बुलाया। आपने मदगर्वसे उत्तेजित रणजित्‌ने नहीं समझा कि इस स्वदेशद्रोहिताके वे गुरुत्वसे भविष्यत्‌में क्या विषमय परिणाम होगा। राजा पृथ्वीनारायण इस आमन्त्रणसे मन ही मन आनन्दित हुए—उनके हृदयमें पुनः नेपाल-जयकी आशा जग उठी। जिस नेपालमें उनके पूर्वपुरुषगण आक्रमण करके भी व्यर्थमनोरथ हुए थे और स्वयं जहांसे युद्धमें प्राण ले कर भागे थे, उनकी राज्यलिप्सा आज भी उनके हृदयसे दूर नहीं हुई थी। उनके भाई दलमर्दनको पहले पाटनका शासनभार प्रदान पीछे प्रवञ्चना करके उन्हें राज्यसे बहिष्करण-व्यापार, तब भी उनके हृदयमें विशेषरूपसे जाग्रत था। अतः इन्होंने रणमल्लके आह्वानकी उपेक्षा न की। विचक्षण रणजित् थोड़े ही दिनोंके मध्य समझ गए, कि उनके साहाय्यकारी बन्धु उन्हींके सर्वनाशसाधनमें उतारू हैं। इस पर राजा रणजितने अपनेको कमजोर समझ सन्धि करनेका प्रस्ताव पास किया और परस्परमें सन्धिबलसे दृढ़बद्ध हो उन्होंने शत्रु और शत्रुसेनाको मार भगानेका सङ्कल्प कर लिया। किन्तु कार्यतः इससे कोई अच्छा फल न निकला।

राजा पृथ्वीनारायणने पूर्वोक्त राजाओंको एकत्र देख उनके विरुद्ध युद्ध न किया। वे अपने बलकी वृद्धि करनेके लिए पार्वतीय सरदारोंको छलबलसे स्वदलमें लानेकी चेष्टा करने लगे। पहले वे भातगांवके पूर्ववर्ती धूलखेल और चौकोटवासियोंके साथ प्रायः छः बार युद्ध करके उन्हें अपने वशमें लाए। पीछे चौकोटमें एक गढ़ बना कर अपनी सेनासंख्या बढ़ाने लगे। इस समय महेन्द्रसिंहराय नामक किसी राजपुरुषने गुर्खाओंके साथ १५ दिन तक अनवरत युद्ध किया। इस युद्धमें पहले तो गुर्खा लोग हार कर भाग गए, किन्तु परवर्ती युद्धमें महेन्द्रसिंहरायके भूमिशायी होने पर चौकोटियागण रणक्षेत्रका परित्याग कर नौ दो ग्यारह हो गये। दूसरे दिन सबेरे जब पृथ्वीनारायण रणभूमि देखनेके लिए आए, तब महेन्द्रसिंहकी बरछा-विद्ध मृतदेह देख कर उनकी वीरत्वकी भूरि प्रशंसा की और उनके परिवारवर्गको कुछ दिन राजप्रासादमें रख कर आदरपूर्वक भोजन कराया। अन्तमें भरणपोषणके लिये वे उन्हें पनाअती, बनेपा, नाला, खदपू, भङ्गा आदि पांच ग्राम दान कर अपने पूर्व अधिकृत नवकोट राज्यको लौट गए।

कीर्त्तिपुरका प्रथमयुद्ध १७६५ ई०में समाप्त हुआ। इसके कुछ समय बाद राजा पृथ्वीनारायणने पुनः दो बार इस नगर पर आक्रमण किया था। तृतीय बारके आक्रमण और जयके बाद जो भीषण अत्याचार हुआ था, वह फादर गेस्पी द्वारा प्रकाशित नेपाल-मिशनकी तालिका पढ़नेसे विशेषरूपसे जाना जा सकता है।

भातगांव देखो।

कीर्त्तिपुरमें यह पाशविक अत्याचार दिखा कर पृथ्वीनारायण पाटन जीतनेकी अभिलाषासे अग्रसर हुए। पाटनराज तेजनरसिंहके आत्मसमर्पण करनेके पहले पृथ्वीनारायणने सुना कि कप्तान कीनलकके अधीन अङ्गरेजीसेना नेपाल तराईके दक्षिण प्रान्तमें पहुंच गई है। तब वे उसी समय दूसरी राह हो कर चले गए और पाटनराज तेजनरसिंह प्रायः एक वर्ष तक निश्चिन्त रहे।

कीर्त्तिपुरको यह अत्याचार कहानी नेवारराजने अङ्गरेजोंको सुनाई। १७६७ ई०के प्रारम्भमें कीनलक साहब नेपाल पर्वतके सानुदेशमें जा धमके। उस समय वर्षाका समय था, अङ्गरेजी सैन्य जलवायुनिबन्धन और खाद्यद्रव्यके अभावसे पीड़ित हो बहुत कष्ट भोगने लगी। अतः वे हरिदुर्गके सामनेसे लौट जानेको वाध्य हुए। कीनलकके ससैन्य लौटने पर भी प्रायः एक वर्ष तक गुर्खा लोग नेपालमें प्रवेश कर न सके। पुनः १७६८ ई०में इन्द्रयात्रा-उत्सवके समय पृथ्वीनारायणने काठमण्डू पर धावा बोल दिया। काठमण्डूराज और राजा तेजनरसिंहने कई बार उन्हें रोका, लेकिन कोई फल न हुआ। अन्तमें जब उन्होंने देखा कि नेपालके सभ्रान्त-व्यक्ति और उनके आत्मीयगणने पृथ्वीनारायणका पक्ष अवलम्बन किया है, तब वे और कुछ कर न सके और भातगांवमें जा कर आश्रय लिया।

राजा रणजित्‌के एकमात्र पुत्र वीर-नरसिंहको वञ्चित करनेके लिए उनके अन्य स्त्रीगर्भजात 'सात-बहालिया' (सप्तपुत्र)-गणने षड़यन्त्र रचा और गुर्खापतिको केवलमात्र राज्येश्वर नामसे आपसमें सम्पत्ति और सिंहासन बांट लेनेका बन्दोबस्त किया। पीछे उन्होंने अपना यह उद्देश्य और प्रस्ताव राजा पृथ्वीनारायणको ज्ञात किया। तदनुसार गुर्खापति प्रसन्नचित्तसे भातगांवका भविष्यत् राजत्व ग्रास करनेकी आकांक्षासे अग्रसर हुए।

गुर्खाराजने उन लोगोंके पूर्वोक्त परामर्शानुसार भातगांव पर आक्रमण कर दिया। सातबहालियागणने कुछ घण्टों तक केवल दिखानेके लिए खाली बन्दूकसे युद्ध किया और साथ ही साथ उन्होंने चुरा कर अपनी गोली और बारूदको शत्रुओंके पास भेज दिया तथा वे अपने सुरक्षित दुर्गद्वार शत्रुओंको छोड़ कर आप पश्चात्पद हो गए। गुर्खाओंने नगरमें प्रवेश कर उसे अपने अधिकारमें कर लिया। दरबारके सामने एक बार भीषण युद्ध हुआ जिसमें राजा जयप्रकाशके पैरमें सख्त चोट लगी और वे अवसन्न हो जमीन पर गिर पड़े। १७६९ ई०के प्रारम्भमें ही यह युद्ध छिड़ा था। इसी युद्धसे नेपालके पूर्वतन राजवंशका अधःपतन हुआ और गुर्खाराजवंश नेपालके सिंहासन पर भविष्यत्‌-राजरूपमें प्रतिष्ठित हुए।

राजा पृथ्वीनारायणने रणजयी हो कर दरबारमें प्रवेश किया। उस समय वहां राजा जयप्रकाश, रणजित् और तेजनरसिंह सभी बैठे हुए थे। दोनोंमें बातचीत होते होते आपसमें प्रीति हो गई। पृथ्वीनारायणने रणजित्‌मल्लको अपने भातगांव-राज्यमें पूर्ववत्‌ राजा होनेके लिए विशेष अनुनय विनय किया। किन्तु रणजितने इसमें अपनी अनिच्छा प्रकट करते हुए कहा, "आत्मीय स्वजनको विश्वासघातकतासे मैं विशेष क्षुब्ध हूं, सुतरां राज्यभार ग्रहण नहीं करूंगा; वरं इस वृद्धावस्थामें मेरी इच्छा है कि काशी जा कर विश्वेश्वरकी सेवामें जीवन व्यतीत करूं।" ऐसा अभिप्राय प्रकट करने पर गुर्खापतिने उनके लिए वैसा ही सुबन्दोबस्त कर दिया। जाते समय चन्द्रगिरिके ऊपर खड़ा हो कर उन्होंने सातबहालियोंकी शठता और पुत्र और नरसिंहको हत्या-कहानी पृथ्वीनारायणको सुनाई। राजा पृथ्वीनारायणने विश्वासघातक-राजद्रोही सातबहालियोंको सपरिवार बुलाया और राजपद पानेके लिये उन्होंने पितासे शत्रुताचरण किया है, इस अपराधमें उनके नाक कान कटवा दिए, तथा उनकी स्थावर और अस्थावरसम्पत्ति हस्तगत कर ली।

राज्यप्रकाशने प्रार्थना की, "गोलीके आघातसे मैं मुमुर्षु हो गया हूं। अतएव तुम लोग मुझे पशुपतिनाथके आर्यघाटमें ले चलो। वहां मेरा शरीरावसान होने पर अन्त्येष्टिक्रिया करना।"

ललितपुरराज तेजनरसिंहने जब देखा कि उनके आत्मीय रणजित्‌से ही यह अभावनीय विपद् नेपालके

अदृष्टमें पड़ी है, तब वे किसको दोष देवें। यह सोच कर उनके मनमें दारुण क्षोभ हुआ और आत्मग्लानि उपस्थित हुई। किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो उन्होंने मौनावलम्बन किया और एक चित्तसे ईश्वराराधना करने लगे। ठीक इसी समय पृथ्वीनारायण उनका अभिप्राय जाननेके लिए अग्रसर हुए। लेकिन जब उन्होंने देखा कि तेजनरसिंहने उन्हें एक बात भी न कही, तब वे बहुत बिगड़े और लक्ष्मीपुरमें उन्हें कैद कर रखा। यहीं पर नेपालके मल्लवंशीय शेष राजा तेजनरसिंह बहादुरने अवशिष्ट जीवन व्यतीत किया था।

नेपाल-सिंहासन पर अधिष्ठित हो राजा पृथ्वीनारायणने किरात और लिम्बुजातिको वासभूमि अपने अधिकारमें कर ली। क्रमशः एक एक करके नेपालको वर्त्तमान सीमाके अन्तर्भुक्त प्रायः सभी प्रदेश उनके हाथ लग गए थे। उत्तरमें किरोण और कूटो, पूर्वमें विजयपुर और सिकिम सीमान्तवर्त्ती मेचीनदी, दक्षिणमें मकवानपुर (माखनपुर) और तराणी (तराई) तथा पश्चिममें सप्तगण्डकी, इस सीमाके मध्यस्थित विस्तीर्ण भूभाग राजा पृथ्वीनारायणके शासनाधीन हुआ। भातगांवसे कान्तिपुरमें आ कर उन्होंने वसन्तपुर नामक एक वृहत् धर्मशाला बनवाई। इन्होंने ही सबसे पहले निकृष्ट 'पुतवर' जातिको राजाके समीप जानेको अनुमति दी थी *। प्रायः ७ वर्ष राजत्वके बाद गण्डकीतीरस्थ मोहनतीर्थमें ८८५ नेपालसम्वत्‌को उनका शरीरावसान हुआ।

पृथ्वीनारायणके दो पुत्र थे। बड़े सिंहप्रताप-शा पिताके मरने पर सिंहासन पर बैठे और छोटे सा बहादुर बेतियाराज्यमें निर्वासित हुए। आचार्योंके कुचक्रमें पड़ कर ८९८ नेपालाब्दमें उन्होंने नश्वर मानवदेहका त्याग किया। उनकी मृत्युके पश्चात् उनके पुत्र रणबहादुरने राजासन ग्रहण किया। आचार्योंके चरित्र पर इन्हें सन्देह हुआ, इस कारण उन्हें मरवा डाला। पीछे अन्य किसी कारणसे विरक्त हो उन्होंने मन्त्रि-नायक वंशराज पांडेका शिरश्छेदन किया था। इस समय इनके चाचा सा बहादुर नेपालमें आ कर रणबहादुरके प्रतिनिधि हुए। किन्तु राजमाता राजेन्द्रलक्ष्मीके साथ उनका विवाद होनेके कारण वे पुनः राज्यसे निकलवा दिए गए। अब राजमाता अपने हाथमें शासनभार ले कर राजकार्य चलाने लगीं। राजमाता अत्यन्त बुद्धिमति और कार्यक्षमा थीं। उन्हींके यत्न और उद्योगसे गुर्खाके पश्चिमस्थ पल्पा और कचिके मध्यवर्त्ती समुदय भूभाग नेपाल राज्यान्तर्गत हुआ था। उनकी मृत्युके बाद सा बहादुर नेपाल लौट कर पुनः राज्यकी परिचालना करने लगे। उनके उत्साहसे चौबीसी और बाइसी सामन्तराज्य, लमजुङ्ग और टनही तथा पश्चिममें गङ्गानदीतटवर्त्ती स्थान, श्रीनगर और कचि तकके भूभाग तथा पूर्वमें किरातराज्य और ग्रम्भेश्वर तकके स्थानने नेपाल सीमाके कलेवरकी वृद्धि की थी।

१७९१ ई०में गुर्खालोगोंने नेपाल, तिब्बत और अंगरेजाधिकृत भारतवर्षमें वाणिज्य सम्बन्धरक्षाके लिये सन्धिका प्रस्ताव किया। इस समय चीनराजके साथ गुर्खापतिका, चीनराजगुरुके अधिकृत दिगारचा नामक स्थानका आक्रमण ले कर घोर युद्ध छिड़ा। चीनमन्त्री थुमथाम और काजी धुरिनके अधीन चीन-सैन्यने आ कर खतिया, रसोआ और गोसाईंथान पर्वतके निम्नदेशमें दौराली नामक स्थान पर नेपालियोंको अच्छी तरह पराजित किया। नेपालीगण पराजित हो कर पहले धुनचू और पीछे खबोरा भाग गए। इस युद्धमें मन्त्रिनायक दामोदर पांडेने खूब वीरता दिखलाई थी।

१७९२ ई०में चीन-सैन्यसे इस प्रकार पराजित हो कर नेपालियोंने सितम्बरमासमें लार्ड कार्नवालिससे

* जब प्रथम कीर्त्तिपुरके युद्धमें राजा पृथ्वीनारायण राजा जयप्रकाशमल्लसे पराजित हो एक डोली पर चढ़े भागे जा रहे थे उस समय एक सिपाहीने उनके प्राण लेनेके लिये ज्यों ही शस्त्र उठाया, त्यों ही उसके एक दूसरे साथीने उसका हाथ पकड़ कर कहा, 'ये राजा हैं, अतः हमें इन्हें मारनेका अधिकार नहीं।' पीछे एक दुआन और एक कसाईने उन्हें कन्धे पर चढ़ा कर रात भरमें नवकोट पहुँचा दिया। राजाने दुआनकी कार्यतत्परतासे प्रसन्न हो 'शाबाश पुत्र' ऐसा कहा था। इसी दिनसे दुआनकी जाति 'पुतवर' कहलाने लगी। ये लोग राजाके अंगादि भी स्पर्श कर सकते हैं।

सहायता मांगी। कार्नवालिसने पहले तो चीनके विरुद्ध अस्त्र धारण करनेसे अस्वीकार किया, पर पीछे बहुत ऊहापोहके बाद १७९३ ई०के मार्च मासमें मेजर कार्कपैट्रिकको काठमण्डू भेज दिया। किन्तु अंगरेजोंकी सहायता पहुँचनेके पहले ही नेपालराज चीन-सम्राट्से सन्धि कर चुके थे।

१७९५ ई०में रणबहादुर जब बीस वर्षके हुए, तब उन्होंने पितृराज्य प्राप्त किया। इस समय किसी कारण-वश चाचाके साथ उनका विवाद खड़ा हुआ जिसका फल यह हुआ कि सा बहादुरको यावज्जीवन कैदमें रखा गया।

रणबहादुरने १८०० ई० तक बहुत अत्याचार और कठोरताके साथ राज्यशासन किया। इनके व्यवहार पर सबके सब बागी हो गए और उन्होंने मन्त्रिनायक दामोदरपांड़े-की सहायतासे उन्हें राज्यच्युत कर वाराणसीधाममें भेज दिया। उनकी प्रथमा पत्नी गुल्मी राजकन्याके कोई सन्तान न रहनेके कारण राजारणबहादुरने एक विधवा मिस्र-रमणीका पाणिग्रहण किया। इसके गर्भसे गीर्वाणयोध विक्रम सा नामक एक पुत्रने जन्म लिया। राजपूत-राजको ब्राह्मणकी कन्या ग्रहण करना अवैध है ; यह देख कर सब किसीने उन्हें राज्यसे निकाल भगाया।

१८०१ ई०में नेपाल और अंगरेजोंके साथ एक सन्धि हुई। उस सन्धि-शर्तके अनुसार नेपालके राज-कार्यके प्रति दृष्टि रखनेके लिये कप्तान डवल्यू डि नक्स नामक एक अंगरेजी रेसिडेण्ट हो कर नेपालमें रहने लगे। पहले तो नेपालियोंने इस अंगरेज राजपुरुषको नगरमें प्रवेश करने न दिया था, पर १८०२ ई०के अप्रिल माससे वे नेपालराजधानीमें रहने लगे थे। वहां एक वष रह कर वे १८०३ ई०में स्वदेशको लौट गए। १८०४ ई०में लार्ड वेलेस्लीने नेपालके साथ पहलेकी जितनी सन्धि थी, तोड़ दीं और १८१० ई०के मई मासमें एक नई सन्धिका प्रस्ताव पेश किया।

राजा रणबहादुर चार वर्ष तक संन्यासी वेशमें काशीधाममें रह कर पुनः नेपाल लौटे। यहां पहुँचते ही उन्होंने शत्रुवर्ग और दामोदर मन्त्रीको यमपुर भेज दिया तथा राज्य भरमें नूतन आईनका प्रचार कर आप कांगराकी ओर अग्रसर हुए। युद्धमें उन्होंने कांगराधि-पति संसारचांदको परास्त कर उनका राज्य नेपालके सीमान्तर्गत कर लिया।

राजा रणबहादुरकी मृत्युके बाद उनके पुत्र गीर्वाण-योध विक्रम सा राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राज्यरक्षा-के लिये भीमसेन ठापाको अपना प्रधानमन्त्री बनाया। १८०८ ई०में यहां भयानक भूमिकम्प हुआ जिससे अनेक मनुष्योंकी जान गई और हजारों मन्दिर बरबाद हुए।

इनके पिता रणबहादुरने सबसे पहले नेपालमें स्वर्णमुद्राका प्रचार किया था। इन्होंने भी पितृगौरव अर्जनके लिये ढाक (डबल पैसा) नामक तांबेका सिक्का अपने नाम पर चलाया और थमबहिल खेल नामक स्थानमें गोली और बारूदका कारखाना खोला। १८१० ई०में अंग-रेजराजके सन्धिप्रस्ताव करने पर भी नेपालके साथ अंग-रेज वणिकोंके वाणिज्यव्यवसायमें दिनोंदिन अवनति देखी गई। १७८७ ई०से १८१४ ई० तक नेपालियोंने अंग्रेजी सीमान्तमें आ कर खूब उपद्रव मचाया, फलतः उसी सालके नवम्बर मासमें अंगरेजोंने नेपालके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। इस युद्धमें जनरल मारली और उड विशेषरूपसे आहत हुए और जनरल जिलिस्पी मारे गए। किन्तु जनरल आक्टरलोनी ब्रटिश-गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। अंगरेजोंने जब मकवनपुर नगर और दुर्ग पर अधिकार किया, तब गुर्खाराजने १८१६ ई०में सन्धिसूत्रसे अंगरेजोंके नवाधिकृत देश छोड़ दिए और इसके कुछ दिन बाद अंगरेजोंने नेपालराजको इसके बदलेमें तराईप्रदेश अर्पण किया।

१८१६ ई०की सन्धिशर्तको कायम रखनेके लिये मि० गार्डिनर नामक कोई अंगरेज रेसिडेण्टके रूपमें निर्वाचित हो काठमण्डू पधारे। इस समय राजा नाबालिग थे, अतः सरदार भीमसेन ठापाके हाथमें ही शासनका कुल भार था। अंग्रेजी युद्धविग्रहके बाद ही नेपालमें भयानक वसन्त देखा गया। इस महामारी-के भयसे नेपालवासी बहुत डर गए। दिनके समय प्रकाश्य राजपथ हो कर नरमांस मुखमें लिए गृधिनी और कुत्ते इधर उधर घूमने फिरने लगे। नेपालका यह वीभत्सदृश्य देख कर सबके सब संकुचित हो पड़े।

राजा दरबारसे बाहर नहीं निकलते थे। शीतला देवी-को कृपासे उनका सारा शरीर गोटीसे आच्छादित था और अन्तमें इसीसे उनकी मृत्यु भी हुई।

इनकी मृत्युके बाद उनके तीन वर्षके लड़के राजेन्द्र विक्रमसा बहादुर समशेर जङ्ग नेपालके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। रण बहादुरकी विधवा पत्नी ललित-त्रिपुरा-सुन्दरीदेवी राजकर्त्री और सरदार भीमसेन थापा उनके आदेशानुसार बालकराजका राज्यशासन करने लगी। १८१७ ई०में डा० वालिच उद्भिद्का विषय जानने-के लिये नेपाल आए। १८२८ ई०में राजाके एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

भीमसेनके इस प्रकार एकाधिपत्यसे सब कोई विस्मित और स्तम्भित हो गए। पशुपतिनाथके मन्दिरमें उन्होंने जो सोने और चाँदीका किवाड़ दान किया तथा उनको छात धारा और धर्मशाला आदि देख कर धीरे धीरे राजा-के मनमें धिक्कार उपस्थित हुआ। १८३३ ई०में उन्होंने रानीके कहनेसे उन्हें कैद करनेको उतारू हुए।

१८३४ ई०के भीषण तूफानसे नेपालके बारूदखानेमें आग लग गई जिससे रेसिडेन्सी टूट फूट गई और बहुत से लोग मरे।

१८३५ ई०में राजाने सेनापति मतव्वरसिंहको कल-कत्ते भेज दिया।

१८३८ ई०में रणजङ्गपांडे जब मंझारानीसे नेपालके सेनापतिपद पर नियुक्त हुए, तब भीमसेन और मतव्वर हताश हो पड़े। इस समय किसी तरह मतव्वर पञ्जाव-केशरी रणजित्‌सिंहके निकट किसी विशेष परामर्शके लिये भेज दिए गए। कई वर्ष तक चेष्टा करके अन्तमें १८३९ ई०को राजाने भीमसेनको कैद कर लिया। कारा-गारमें ही भीमसेनने आत्महत्या करके अपने हृदयका भार लाघव किया था। नेपालके जिस वीरनेताने निष्क-ने प्रायः २५ वर्ष तक राज्य किया था, आज उसके मरने पर उसकी लाश अत्यन्त जघन्यभावसे काठमण्डू-के रास्ते हो कर विष्णुमतीके किनारे लाई गई थी।

भीमसेनकी मृत्युके बाद १८४३ ई० तक नेपालके शासन-विभागमें विशेष गड़बड़ी होती रही और इसी सूत्रसे अंग्रेजोंके साथ युद्धकी सूचना हुई। महामति हजसन साहबकी सुश्रृङ्खलासे विपदकी सभी आशङ्काएं निर्वाचित हो गईं। उसी वर्ष बड़ी रानीने रणजङ्गपांडे-का पक्ष ले कर उन्हींको राज्यका प्रधान मन्त्री बनाया। उधर छोटी रानीने भीमसेनके आत्मीय मतव्वर-सिंहके पञ्जाबसे लौटने पर उन्हींको मन्त्रिपद पर वरण किया। राजपुरुष और सैन्यदलने भी मतव्वरका पक्ष अवलम्बन किया जिससे उन्होंने निज विक्रम द्वारा शीघ्र ही उस पांडेवंशको उत्सादित कर दिया।

इस समय नेपालके एकमात्र गौरवस्थल, अद्भुतवल, बुद्धि और वीर्यशाली जङ्गबहादुर सामान्य सैनिकरूपमें अपनी भविष्यत् उन्नतिका आभास दे रहे थे। ये बाल-नरसिंह नामक नेपाली काजीके पुत्र और राजमन्त्री मतव्वरके निकट आत्मीय थे। मतव्वर इस बालककी भावी क्षमताके विषय पर विचार कर बहुत डर गए थे। अंग्रेज रेसिडेण्ट हेनरी लारेन्स इस बालककी बुद्धिमत्ता-की विशेष प्रशंसा करते थे।

जङ्गबहादुरने प्रासादस्थ प्रधान राजमहिषियोंके साथ षड़यन्त्र करके १८४५ ई०के मई मासमें मतव्वरको मार डाला और आप राज्यके एकमात्र कर्त्ताधर्त्ता हुए। किन्तु गगनसिंह प्रधान मन्त्रीके पद पर नियुक्त रहे। १८४६ ई०में जब सर हेनरी लारेन्सने नेपालका परित्याग किया, तब मि० कलभिन नेपालके रेसिडेण्ट हो कर आए।

मतव्वरकी मृत्युके बाद राजा और रानी दोनों जङ्गबहादुरके हाथमें कठपुतली-से रहने लगे। इस समय राजमन्त्री गगनसिंह और फतेजङ्ग प्रभृति राजकीय दल-के साथ रानी और जङ्गबहादुरका मतद्वैध्य उपस्थित हुआ। इस विवादसूत्रसे १८४६ ई०की १४वीं और १५वीं सितम्बरको नेपाल-राजधानीमें भीषण हत्या-काण्ड किया गया। राजा गहरी रातमें भाग कर कल-भिन साहबकी शरणमें पहुंचे। इधर नेपालके अधि-कांश सम्भ्रान्त व्यक्ति जङ्गबहादुर और उनके सैन्यदलसे यमपुर भेज दिये गए। राजाने रेसिडेन्सीसे लौट कर देखा कि कोटप्रासादके चारों ओर नालेमें रक्त स्रोत बह रहा है।

जङ्गबहादुर भ्रातृदलसे पुष्ट हो कर नेपालके मध्य एक विशेष क्षमतापन्न व्यक्ति समझे जाने लगे। जिस सब

पूर्वतन सरदारोंने उनके विरुद्ध सिर उठाया था, वे सबके सब जङ्गबहादुरकी तलवारके आघातसे यमपुर सिधारे। राजा भी अपनेको चारों ओरसे विपदसे घिरा देख वाराणसीको भग गए। जिस रानीने अपने पुत्रको सिंहासन-प्राप्तिके लिये जङ्गबहादुरकी सहायता की थी, वे भी प्रवञ्चित हो कर काशीधाम भेजी गईं। १८४७ ई०में राजाने नेपालराज्यलाभकी आशासे दो बार नेपाल पर आक्रमण किया, किन्तु वे अकृतकार्य हुए और अन्तमें तराई-युद्धमें कैद कर लिये गए। इस प्रकार राजाके राजच्युत होने पर उनके वंशधरके हाथ सिंहासन अर्पित हुआ।

राजा राजेन्द्र-विक्रमके नेपालसे बाहर जाने तथा उनका मस्तिष्क खराब हो जानेसे जनताके आग्रह और सहानुभूतिसे राजपूतकुलतिलक महाराज सुरेन्द्रविक्रमशाह समसेरजङ्ग नेपालके सिंहासन पर बैठे। राजा सुरेन्द्रविक्रमकी मृत्युके बाद उनके लड़के त्रैलोक्यवीर विक्रम शाह बहादुर समशेरजङ्ग नेपालके राजा हुए। १८४७ ई०को १ली दिसम्बरको इन्होंने जन्मग्रहण किया था।

राजा वीरविक्रमने जङ्गबहादुरको कन्यासे विवाह किया। उन्हींके गर्भ और राजाके औरससे १८७५ ई०को ८वीं अगस्तको जङ्गबहादुरके दौहित्र नेपालसिंहासनके भावी उत्तराधिकारीका जन्म हुआ।

नेपालका अधुनातन इतिहास और राज्यकी एकेश्वर क्षमता मन्त्रियोंके हाथ न्यस्त रहनेके कारण नेपालका इतिहास उन्हीं मन्त्रियोंको कार्यकारिताके ऊपर बिलकुल निर्भर है। एकमात्र प्रधान मन्त्री ही नेपालके हर्त्ताकर्त्ता और विधाता हैं; राजा इनके हाथके खिलौने हैं। राज्यके किसी विषय वा कार्यमें उन्हें हस्तक्षेप करनेका कोई अधिकार नहीं है। राना जङ्गबहादुरके समयसे ही मन्त्रिकुलकी इस मर्यादा और क्षमताकी वृद्धि हुई है तथा उन्हींके समयसे नेपालका इतिहास उनकी वंश-आख्याके मध्य गिना जाता है। नेपालके पूर्वराजवंशावलिका इतिहास शेष करके अभी जङ्गबहादुर और तत्संश्लिष्ट घटनावलीका उल्लेख कर नेपालका इतिहास शेष किया जाता है।

१८४८ ई०में दिलीपसिंहको माता चांदकुमारीने लाहोरका परित्याग कर नेपालमें अपना आश्रय ग्रहण किया। जङ्गबहादुरने राज्यके समस्त सम्भ्रान्त घरोंमें निज पुत्रकन्याका विवाह कर, विलायत जा कर, स्वदेशमें लौट नूतन आईनका प्रवर्त्तन कर, सामरिक विभागका संस्कार तथा शत्रुके हाथसे अपनी रक्षा कर बलवीर्य और उन्नतबुद्धिका यथेष्ट परिचय प्रदान किया है।

१८५३ ई०में जङ्गबहादुरने अपने भाईको पल्पा और भूतवल प्रदेशका शासनकर्त्ता बनाया। १८५५ ई०में स्लागिन्ट्वइटने वैज्ञानिक तत्त्वके अन्वेषणके लिये नेपाल जानेकी जब जङ्गबहादुरसे अनुमति मांगी, तब उन्होंने विशेष सरलताके साथ उनकी प्रार्थना अस्वीकार की।

पूर्वसन्धिके शर्तानुसार नेपालराज प्रति पांच वर्षमें नजराना और उपढौकन स्वरूप अर्थ द्रव्यादिके साथ एक दूत चीनसम्राट्के पास भेजा करते थे। उस दूतको द्रव्यादि ले कर तिब्बत हो कर जाना पड़ता था। एक समय तिब्बतवासियोंने उस राजदूतकी अवमानना की। इस पर १८५४ ई०में नेपालराज उनके ऐसे असद्व्यवहार पर क्रुध हो उन्हें दण्ड देनेके लिये अग्रसर हुए। इस युद्धसज्जामें विशेषरूपसे सज्जित होने पर भी पार्वतीय पथ हो कर जानेमें नेपालीसेनाको विशेष कष्ट उठाना पड़ा था। इसी समय नेपालीके मध्य चमरी गोमांस खानेकी प्रथा आरम्भ हुई। समतल भूमि पर तिब्बतीय और भोटिया लोगोंके परास्त होने पर भी, नेपालीगण उन्हें शुङ्गा, केरङ्ग और कुटी गिरिपथसे भगा न सके। १८५५ ई०के नवम्बर मासमें भोटियाने कुटी, केरङ्ग और शुङ्गा दखल किया। पीछे काठमण्डूसे जब नेपाली सेना आई, तब उन्होंने एक एक करके सब देश छोड़ दिए। किन्तु उनके हृदयमें विद्रोहरूपी आगका धधकना बन्द न हुआ। इस पर जङ्गबहादुरने नूतन सामरिककर ले कर छः दल सेना इकट्ठी की। १८५६ ई०के मार्च मासमें तिब्बतके साथ जो सन्धि हुई, उससे नेपालियोंने भी तिब्बतके अधिकृत प्रदेश छोड़ दिए और तिब्बतराज वार्षिक १००००) रु० देने और लासा राजधानीमें एक गुर्खा कर्मचारी रखनेको राजी हुए।

१८५६ ई० अगस्त मासमें जङ्गबहादुरने नेपालके

महामन्त्रीका पद अपने भाई बाम-बहादुरको दिया और आप महाराजकी उपाधि धारण कर काखि और लुमजङ्ग-का शासन करने चले गए। इस समय मि० स्मिथ ट्रटने नेपाल जानेकी अनुमति प्राप्त की। १८५७ ई०में नेपाली सेनाके मध्य विद्रोहके लक्षण दिखाई दिए, किन्तु जङ्ग-बहादुरके यत्नसे तमाम शान्ति बनी रही। इसी सालके जून मासमें भारतका घोर सिपाहीविद्रोह शुरू हुआ। इस समय जङ्गबहादुरने १२००० पदातिक और ५०० गोलन्दाज भेज कर अंग्रेजोंकी सहायता की। जूनमासके शेषमें आप महामन्त्री और सेनाध्यक्षका पद ग्रहण कर स्वयं अंग्रेज-शत्रुदमनमें अग्रसर हुए। १८५८ ई०में विद्रोहियोंके मध्य लखनऊकी रानी और उनके पुत्र, हजि-कादिर, नानासाहब, बालाराव, मामूखाँ, बेणीमाधव आदि प्रधान विद्रोही नेताओंने नेपाल आ कर आत्मरक्षा की। १८७५ ई० तक लखनऊकी बेगम यहाँ थापटलीके निकट रही थीं।

सिपाहीयुद्धमें इस प्रकार सहायता पा कर अंग-रेजराजने नेपालकी तराईके कुछ अंश छोड़ दिए और सरदार जङ्गबहादुरको जी० सी० बी० की उपाधि प्रदान की। भारतके सिपाहीविद्रोहके बाद नेपाल-इतिहासमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न हुई; केवलमात्र पूर्वोक्त सन्धिके मध्य 'अंगरेजीराजसे पलातक कोई दोषी व्यक्ति यदि नेपाल जा कर छिप रहे, तो नेपालराज उसे प्रत्यर्पण करने और नेपालसे यदि कोई दोषी अंगरेज-अधिकारमें आश्रय ले, तो अङ्गरेजराज उसे लौटा देनेको बाध्य हैं' इस प्रकारकी एक शर्त लिखी गई।

१८७३-७४ ई०में तिब्बतके साथ पुनः विवाद छिड़ा, किन्तु यह शीघ्र ही रुक गया। इसी साल जङ्गबहादुरने अङ्गरेजोंसे सम्मानसूचक जी. सी. एस. आइ. की उपाधि पाई थी और चीनसम्राट्ने उन्हें थोङ्ग-लिन्-पिम-मा-को-काङ्ग-वाङ्ग-स्यानको उपाधिसे भूषित किया। १८७४ ई०में इङ्गलेण्डयात्राके लिये वे सपरिवार बम्बई शहर पहुँचे और वहाँ पीड़ित हो कर स्वदेश लौट आए। साठ वर्षकी अवस्थामें १८७७ ई०की जङ्गबहा-दुरकी मृत्यु हुई। इन्हें १८ तोपोंकी सलामी मिलती थी। वे अपने जीते-जी मन्त्रिपद अपने भाई रणुदीप सिंहके हाथ छोड़ गए थे, क्योंकि उनके बड़े लड़के जगत्-जङ्ग उस समय बहुत बच्चे थे। उन्होंने यह भी कह दिया था कि बालिग होने पर जगत् मन्त्रिपदके अधि-कारी होंगे।

१८८१ ई०में नेपालके राजा महाराजाधिराज पृथ्वी-वीर विक्रम शाह सुरेन्द्र विक्रमशाहके उत्तराधिकारी हुए। इस समय इनकी अवस्था केवल छः वर्षकी थी। १८८२ ई०में उसी साल मन्त्री रणुदीपसिंह और काजाने उनके भाई धीर शमशेरके विरुद्ध षड़यन्त्र किया। इस षड़यन्त्रके नेता जगत्जङ्ग ठहराये गए और वे कुछ काल-के लिये देशसे निकलवा दिए गए। पीछे १८८५ ई०में स्वदेश लौटनेका उन्हें आदेश मिला। उसी साल धीर-शमशेरके लड़कोंने जगत् जङ्गका साथ दे कर मन्त्रिपद पानेके लिये रणुदीपसिंहके विरुद्ध अस्त्रधारण किया और उन्हें मार कर राज्यका कुल कामकाज अपने हाथमें ले लिया। जगत्सिंह मार डाले गये और धीर शमशेरके बड़े लड़के वीर शमशेर प्रधान मन्त्रिपद पर प्रतिष्ठित हुए। इनके समयमें नेपाल भरमें शान्ति विराजती थी। देश उन्नत दशामें था। इन्होंने स्कूल और अस्पताल बन वाए। ये १८८८ ई०में लार्ड कर्जनसे भेंट करनेके लिये कलकत्ते पधारे थे। १९०१ ई०में उनका शरीरावसान हुआ।

वीर शमशेरकी मृत्युके बाद उनके भाई देव शमशेर उनके उत्तराधिकारी हुए। लेकिन ३ मासके बाद वे अपने भाई चन्द्रशमशेरसे पदच्युत किये गए। फिलहाल ये ही यहांके प्रधान मन्त्री हैं। नेपालके वर्त्तमान शासन-कर्त्ताका पूरा नाम यह है,—His Magesty Sri Giri-raja Chakra Crunamany Nar-Narayanetydi Bibidhabirudabali Birajaman Manonnat Sri Man. Maharajadhiraj Sri Sri Sri Sri Sri Maharjaa Tribhuban Bir Bikram Jung Baha-dur, Shah Bahadur, Shum Shere Jung Deva.

नेपालका प्रकृत इतिहास क्या है वह आज भी किसीको मालूम नहीं। कारण नेपालीगण अङ्गरेज वा अन्य किसी भिन्न देशीय व्यक्तिको काठमण्डू राजधानीके बारेमें

और १५ मील के अहातेमें आने नहीं देते। किन्तु बृटिश-सरकारकी विशेषचेष्टासे उसका कुछ अंश उद्धार हो जानेसे इतिहासतत्त्वका बहुत कुछ आभास मालूम पड़ने लगा है। नेपालीगण प्रायः चान्द्रमाससे वर्षकी गणना करते हैं। इसके अलावा तिथिनक्षत्र मिलानेके लिये कभी कभी मास और दिनको घटा लेते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे वर्त्तमान वर्षगणनाके साथ पूर्ववर्त्ती नेपालियोंका विशेष अनैक्य लक्षित होता है।

नेपालका धर्म

नेपाल उपत्यकामें हिन्दू और बौद्धधर्मका प्रायः समान प्रभाव देखा जाता है। हिन्दूगण शिवमार्गी और बौद्धगण बुद्धमार्गी नामसे प्रसिद्ध हैं। कालप्रभावसे उभय धर्मका ऐसा अविच्छेद्य संमिश्रण हो गया है, कि अभी अनेक जगह अनेक धर्मकृत्य, बुद्धमार्गी अनेक आचार व्यवहार बौद्धधर्ममूलक हैं वा शैवधर्ममूलक यह समझमें नहीं आता।

वर्त्तमान बुद्धमार्गियोंका कृत्य, कर्त्तव्य, रीति नीति, याजकोंका विशेषाधिकार, निम्नश्रेणीको सामाजिक व्यवस्था सभी जातिभेदकी विधिके नियमसे नियन्त्रित हैं। नेवारियोंमें प्रायः अर्द्धेक हिन्दू वा शिवमार्गी और अर्द्धेक बौद्ध वा बुद्धमार्गी हैं। नेवारी हिन्दूसंघर्षमें पड़ कर तीन श्रेणियोंमें विभक्त हो गए हैं। हिन्दू चातुर्वर्ण्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकी तरह उनलोगोंके मध्य बांढा, उदास और जापू इन तीन श्रेणियोंकी उत्पत्ति हुई है। हिन्दूके क्षत्रिय वर्णके जैसा यहां बौद्धोंमें युद्धव्यवसायी कोई श्रेणी नहीं है। हिन्दू चातुर्वर्ण्यके मध्य वर्णगत पार्थक्यरक्षाको जैसी विधिव्यवस्था है, अभी नेवारीको उक्त तीन श्रेणियोंमें ठीक वैसी ही है। हिन्दू जिस तरह वर्णगत नियमादिका उल्लङ्घन करनेसे जातिच्युत होते हैं, नेपाली बौद्धगण भी ठीक उसी तरह वर्णगत नियमादिका अव्यव्यवहार करनेसे पतित होते हैं। आठ प्रकारके व्यवसायकी ये लोग बहुत घृणा करते हैं। इन आठ व्यवसायोंमेंसे यदि कोई किसीका व्यवसाय अवलम्बन कर ले तो वह जातिच्युत होता है। कसाई वा पशुमांसव्यवसायी, एक श्रेणीका गीतवाद्यजीवी, काठके कोयलेका व्यवसायी, चर्मव्यवसायी, मत्स्यजीवी, नगरका जञ्जाल अपसारक (धांगड़) तथा रजक ये सब जिस तरह हिन्दूमें नीच समझे जाते हैं, उसी तरह बौद्धोंमें भी। उक्त व्यवसायोंका अवलम्बन करनेसे बौद्धोंको भी जातिच्युति होती है।

बौद्धोंके त्रिवर्ण मध्य बांढ़ा नामक याजकश्रेणी हिन्दू ब्राह्मणको जैसी सर्वश्रेष्ठ हैं। उदासश्रेणी पण्यजीवी हैं। हिन्दू वैश्योंके साथ उनका सादृश्य है। उक्त दोनों श्रेणीके सिवा और सभी लोग जापू कहलाते हैं। हिन्दू शूद्रके साथ इनका सम्पूर्ण सादृश्य है। जापुओंमें अधिकांश कृषिजीवी हैं। इसी श्रेणीसे नेवारी दासदासी पाई जाती है। ये लोग निम्नश्रेणीके काम काज भी करते हैं।

बांढ़ा और उदासगणको ही एक प्रकारके प्रकृत बौद्धाचारी कह सकते हैं। जापूलोग शैव और बौद्धके आचारको अविमिश्रभावसे पालन करते हैं। अनेक जगह वे लोग शैव देवताको शिव मान कर भी उनकी पूजा करते हैं।

हिन्दूके चारों वर्णोंमें भी जिस तरह फिर छोटे छोटे विभाग हैं, बौद्धत्रिवर्णमें भी बहुत कुछ उसी तरह है। हिन्दुओंमें जाति भेदके अनुसार जिस तरह जीविकार्जनके लिये वंशगत व्यवसाय है, बौद्धोंमें ठीक उसी तरह है। इन सब वंशगत व्यवसायोंमेंसे अनेक व्यवसाय ऐसे हैं जिनसे अभी अच्छी तरह जीविकानिर्वाह नहीं हो सकती। ऐसी हालतमें उस व्यवसायके लोग एक प्रकारके साधारण व्यवसाय (जैसे कृषि) का अवलम्बन करते हैं। लेकिन वे किसी वंशगत व्यवसायका अवलम्बन नहीं करते अर्थात् बढ़ई यदि अपने व्यवसायसे गुजारा कर न सके, तो वह सिर्फ खेती करेगा, लोहार वा सोनारका व्यवसाय नहीं करेगा। प्रत्येक नेवारीके (क्या हिन्दू क्या बौद्ध) एक न एक वंशगत व्यवसाय अवश्य है। जीविकाके लिए वह कैसा ही क्यों न कुछ करे, उसे कभी न कभी वंशगत व्यवसाय करना ही होगा।

बौद्धोंमें बांढ़ाश्रेणी ही सर्वश्रेष्ठ और मान्य है। पूर्व समयमें जो वैराग्याश्रमका अवलम्बन करते थे, नेवारी लोग उन्हींको बाण्डा वा बांढ़ा (संस्कृत पण्डित)

कहते थे। हिन्दुस्तानके बौद्ध संन्यासीको जिस तरह श्रमण कहते थे, यहां भी उसी तरह उनका "बांड़ा" नाम था। पूर्व समयमें यह श्रेणी अर्हत्, भिक्षु और श्रावक इत्यादिमें विभक्त थी।

पहले ये लोग संन्यासी थे, अभी इस प्रकारके विभागका चिह्नमात्र भी रह न गया है। जब बौद्धमठकी छानबीन कम गई, उस समय इनके संन्यासग्रहणकी एकान्त कर्त्तव्यता भी लुप्त हो गई। अर्हत् और श्रावक आज भी देखे जाते हैं सही, लेकिन अभी वे किसी तरह भिक्षुक नहीं हैं। वे ही लोग अभी सोने चांदीका व्यवसाय करते हैं। यहांके बांड़ाओंमें नौ श्रेणी हैं। प्रत्येक श्रेणीका एक न एक वंशगत व्यवसाय अवश्य है। इन नौ श्रेणियोंमें गुभाल वा गुभाजु नामक श्रेणी ही प्रधान है। 'गुरुभज' वा 'गुरुभाइव' शब्दसे इस नामकी उत्पत्ति हुई है। याजकता ही इनका वंशगत कर्त्तव्य कार्य है, किन्तु अभी वे केवल इसी व्यवसायका अवलम्बन किए हुए नहीं हैं। इनमें कितने दारिद्र्यपीड़ित हैं, कितने खेती बारी, सूचीकार्य, अट्टालिकानिर्माण, मुद्रा प्रस्तुत आदि कार्य करके जीविकानिर्वाह करते हैं और कितने महाजनी भी करते हैं। इनमेंसे जो शिक्षित और धर्मशास्त्रादि जानते हैं, वे ही पण्डित और पुरोहितका काम करते हैं। गुभाजूके मध्य जो याजकता करते हैं, वे वज्राचार्य कहलाते हैं। प्रत्येक गुभाजूको युवावस्थाके पहले वज्राचार्यको कर्त्तव्यशिक्षा देनी पड़ती है। वज्राचार्य घृत और धान्यादि द्वारा अग्निमें होम करते हैं। यह होमाग्नि और मन्त्रादि उन्हें बचपनमें ही सिखाने पड़ते हैं। जब तक शिक्षा दी जाती है, तब तक उन्हें भिक्षु कहते हैं। कोई भिक्षु अपने घरमें भी शिक्षावस्थामें याजकता नहीं कर सकता। प्रत्येक शिक्षित भिक्षुको सन्तान-जननके पहले वज्राचार्यपदमें दीक्षित होना पड़ता है। दारिद्र्य, मूर्खता, पापाचार वा अन्य किसी कारणसे यदि कोई सन्तानजननके पहले वज्राचार्य न हो सके, तो वह मनुष्य तथा उसके वंशधर सदाके लिए वज्राचार्य होनेसे वञ्चित रहेंगे। वे वज्राचार्य न कहला कर भिक्षु नामसे ही पुकारे जाते हैं। गुभाजू श्रेणीके बालकोंको वज्राचार्य होनेका अधिकार है। वज्राचार्योंके याजकताकालमें शिक्षार्थी भिक्षुगण उनकी सहायता करते हैं।

स्वर्ण-रौप्य व्यवसायी भिक्षु नामक श्रेणीके लोग भी इस प्रकारकी सहकारिताके अनधिकारी नहीं हैं। भिक्षु लोग देवताको स्नान कराते, वेशभूषा पहनाते, उत्सवके समय वहन, देवसम्पत्तिकी रक्षा, उत्सवका आयोजन तथा तत्त्वावधान करते हैं। गुभाजूसन्तान दीक्षाभ्रष्ट होने पर वज्राचार्य नहीं हो सकती है सही, लेकिन सद्वंशजात ब्राह्मणसन्तान हिन्दू होने पर भी यदि गुभाजूगणसे दत्तकरूपमें गृहीत हों, तो उन्हें भलीभांति शिक्षादानके बाद वज्राचार्य करना होता है।

गुभाजू और भिक्षुको छोड़ कर बांड़ाओंमें ऐसी कोई श्रेणी नहीं जो याजकता करके अपना गुजारा करती हो। अन्य सात श्रेणीके बांड़ाओंके मध्य कितने ऐसे हैं जो वंशानुक्रमसे स्वर्णरौप्यका अलङ्कार, लौहद्रव्य और पित्तलादि पात्रनिर्माण, देवतागठन, कमानबन्दूकादि निर्माण और काठ पर खोदाई करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। इन नौ श्रेणियोंमें परस्पर आदानप्रदान और आहारादिकी प्रथा प्रचलित है। बांड़ा लोग अपनी नौ श्रेणियोंके बीच छोड़ कर और दूसरी श्रेणीके साथ खान पान नहीं करते। वे लोग यदि कारणवश निम्नश्रेणीके बौद्धोंके साथ खान पान तथा आदानप्रदान कर लें, तो उनकी जातिच्युति होती है और जिनके संस्पर्शसे उनकी जाति नष्ट हुई है, वे उसी जातिके हो जाते हैं। वे लोग अपना सारा मस्तक मुड़ाते हैं, किन्तु अन्यान्य बौद्धगण रुचिके अनुसार केशसंस्कार करते हैं। बहुत ऐसे हैं जो बाल बिलकुल नहीं कटाते और शिखास्थान पर दीर्घ वेणी विलम्बित रखते हैं। किसीकी यह वेणी कुण्डलीके आकारमें बँधी रहती है। बांड़ा स्त्रियां केशसंस्कारकी विशेष पक्षपातिनी हैं। उनकी पोशाकमें कोई विशेषता देखनेमें नहीं आती। किसी उत्सवादिके समय ये लोग प्राचीनकालके बौद्ध-मठवासियोंकी तरह पोशाक पहनते हैं। पूर्व समयमें नेवारियोंकी एक साम्प्रदायिक परिच्छद था, वही आज कल बांड़ाओंका नित्य पहनावा हो गया है। उत्सवके समय जब उन्हें देवमूर्त्ति ले कर कोई कार्य करना होता है, तब ये लोग

केवल अपने दाहिने हाथको अङ्गरखेसे बाहर निकाल लेते हैं। दाहिने हाथ के साथ साथ आधावक्ष भी अनावृत हो जाता है। ये सब पोशाक रक्तवर्ण वा अलक्तवर्ण-की होती हैं। बहुतसे पीतवर्णकी पोशाक भी पहनते हैं वज्राचार्य और भिक्षुओंकी पोशाकमें कोई प्रभेद नहीं हैं, केवल शिरोभूषा विभिन्न है। वज्राचार्यके मस्तक पर ताम्रवर्णका कारुकार्यविशिष्ट मुकुट, कटिबन्धमें शास्त्रीय ग्रन्थ, हाथमें वज्रदण्ड और घण्टा, गलेमें १०८ दानोंकी विचित्रवर्णकी स्फटिकमाला वा दूसरी तरहकी माला रहती है। मालाकी एक छोरमें छोटा घण्टा और दूसरी छोरमें छोटा वज्र लटका रहता है। भिक्षुओंके मस्तक पर रक्तिमवस्त्रका उष्णीष रहता है जिसे 'उड़ान टोपी' कहते हैं। इस टोपीके ऊपर एक पीतलका गुताम वा वज्र रहता है और सामनेमें एक चैत्यकी आकृति रहती है। सामान्य सामान्य उत्सवोंमें तथा बाँढ़ायात्रामें वज्राचार्य लोग भी उक्त प्रकारकी उड़ान-टोपी पहनते हैं। भिक्षुओंके गलेमें सामान्य माला, दाहिने हाथमें 'खिचिलिका' नामक दण्ड और बाएं हाथमें 'पिण्डपात्र' नामक पीतलकी थाली रहती है। इसीमें लोग भिक्षादान करते हैं।

बाँढ़ालोग जहां लगातार वास करते आए हैं वही विहार वा मठ कहलाता है। ये सब विहार वा मठादि प्रधान प्रधान बौद्ध मन्दिरोंके निकट अवस्थित हैं। अति प्राचीनकालसे ये सब वंश जो विहार वा मठमें वास करते आ रहे हैं, उनमें एक ऐसी घनिष्ठता हो गई है कि उसके अनुसार एक एक विहार वा मठवासियोंको एक एक क्षुद्रसम्प्रदाय कहते हैं। इस प्रकार एक सम्प्रदायके मध्य कितने आचार व्यवहार और रीतिनीति बद्धमूल हो गई है। उससे कौन किस विहार वा किस मठके व्यक्ति हैं यह सहजमें मालूम हो जाता है। बाँढ़ालोग शान्तस्वभावके, परिश्रमी और सदाचारी होते हैं। किन्तु इनमें अभी बौद्ध धर्मोके संन्यासी अथवा स्थविरोंका आचार-व्यवहार अविकृत भावमें प्रचलित नहीं है। बौद्धधर्ममें कहीं पर भी मत्स्यामांसाहार वा मादक व्यवहारका नियम नहीं है तथा मध्याह्नके पहले ही दैनिक आहार करनेका विधान है। किन्तु बाँढ़ा लोग उस समयके बौद्ध संन्यासीके स्थान पर अभिषिक्त हो कर इन सब सामान्य नियमोंका भी प्रतिपालन नहीं करते। सुविधा पा लेने पर ही ये लोग छाग और महिष-मांस खाते हैं, अपने हाथसे छागोंको काटते हैं, शराब खूब पीते हैं तथा दिनमें जब इच्छा होती, तभी दो चार बार खा लेते हैं। मद्यपायी होने पर भी ये लोग मतवाले-से नहीं लगते। अन्यान्य बौद्धगण बाँढ़ाओंको ठीक ब्राह्मणोंकी तरह मानते हैं। ब्राह्मणोंको दान देना हिन्दूके लिये जैसा पुण्यजनक है, बाँढ़ाओंको भी दान देना नेपाली लोग वैसा ही समझते हैं। बांढ़ा भी धर्म-हृदय व्यक्तिसे इस प्रकारका दान लेनेमें हमेशा तैयार रहते हैं।

उदासगण वाणिज्यव्यवसायी हिन्दूके वैश्यवर्णके जैसे होते हैं। इन लोगोंमें सात श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणीका नाम उदास है। तिब्बत और चीनके साथ जितने व्यवसाय चलते हैं, सभी इसी उदासश्रेणीके हाथ हैं। इन सात श्रेणियोंका एक एक वंशगत व्यवसाय है। लेकिन ये लोग बाँढ़ाओंकी तरह व्यवसाय करनेमें उतने बाध्य नहीं हैं। ये लोग सभी महाजनी करते है, इसके अलावा मिश्रधातुके द्रव्यादि और खाद्य-मिश्रित द्रव्यादि प्रस्तुत, प्रस्तरकी अट्टालिकादि और भास्कर कार्य, देवतामूर्त्ति निर्माण, नित्यव्यवहार्य तैजसादि निर्माण, छोटा छोटा घर और इष्टकादि निर्माण आदि कार्य भी करते हैं। उदास लोग कट्टर बौद्ध हैं। प्रकाश्य रूपसे ये लोग हिन्दू देवदेवाको पूजा नहीं करते और न ब्राह्मण द्वारा अपना पौरोहित्य ही कराते हैं। ये लोग धर्मकर्ममें वज्राचार्यका उपदेश ग्रहण करते हैं। उदास लोग कभी बाँढ़ा श्रेणीमें प्रवेश नहीं कर सकते, पर बाँढ़ा इनके साथ आहारव्यवहार करके इनके दलमें मिल सकते हैं। ये अपनी सात श्रेणियोंमें एक साथ आहार व्यवहार करते हैं, पर जापुओंके साथ खान पान नहीं करते। किसी समय ये लोग बहुत धनी हो गए थे, व्यवसायकी हीनतासे इनकी अवस्था आज कल उतनी अच्छी नहीं है। अभी बाँढ़ा लोग ही वाणिज्य व्यवसायमें बढ़े चढ़े हैं।

अन्यान्य सभी बौद्ध जापूश्रेणीमें गिने जाते हैं। इनकी

रीतिनीति तथा आचार व्यवहार और भी विकृत है। बौद्धाचारके साथ इन्होंने हिन्दूके आचार अविच्छेद्य-रूपसे मिला लिया है। हिन्दूके मन्दिरादिमें जा कर उत्सवके समय ये लोग पूजा करते हैं। विवाह और अन्त्येष्टिक्रिया हिन्दूकी तरह की जाती है। इनके सामाजिक कार्यके समय वज्राचार्यके साथ साथ एक ब्राह्मण पुरोहित रहते हैं। इनमें आठ श्रेणियां हैं। सभी श्रेणीका वंशगत व्यवसाय है जिनमेंसे छः श्रेणीका कृषिसंक्रान्त कर्म, एकका जमीनका परिमाणादि और शेष एक श्रेणीका कर्म कुम्भकारवृत्ति है। कृषिजीवी छः श्रेणियोंका नाम ही जापू है। इनका स्थान उदास-के बाद ही आया है। तीस प्रकारके जापुओंमें एक प्रकृत जापूगण सामाजिक विधानमें अन्यान्य श्रेणियोंकी अपेक्षा अच्छानाई हैं। प्रकृत जापू अपनी छः श्रेणियोंके अतिरिक्त दूसरी श्रेणीके साथ खान-पान तथा आदान प्रदान नहीं करते। अन्यान्य २४ श्रेणियोंमें पटुवा, उत्सवलञ्जनकारी, बढ़ई, माली, टीकादार, अश्वचिकि-त्सक, नापित, निम्नश्रेणीका डोम, दुसाध, ग्वाला, काठुरिया, द्वारपाल आदि प्रधान हैं। इनमेंसे एक श्रेणीका नाम है "सम्मि"—जिसका जातीय व्यवसाय तेल प्रस्तुत करना है। नेवारियोंमें अभी इसी सम्मिके लोग धनी हैं। अभी इन्होंने उदासोंकी तरह महाजनी और वाणिज्य व्यवसायका आरम्भ कर दिया है। शेषोक्त विंशत्य बौद्धोंके हाथका हिन्दू लोग पानी नहीं पीते। लेकिन सम्मि आदि कई एक श्रेणीके लोग अभी नेपाल-राजसरकारके अनुग्रहसे जलाचरणीय हो गए हैं।

आज कल बौद्धोंमें ये सब जातिभेद क्रमशः दृढ़बद्ध होते जा रहे हैं। इसके भिन्न दूसरा व्यवसाय अवलम्बन करनेसे बौद्धोंकी जातिच्युति होती है, वे सब व्यवसायी आठ श्रेणीके लोग 'पतित' कहलाते हैं। इनका स्पृष्ट कोई द्रव्य क्या बौद्ध क्या हिन्दू कोई भी ग्रहण नहीं करता। इन आठ श्रेणियोंके मध्य आपसमें व्यवहार नहीं चलता। इस देशके वर्णब्राह्मणोंकी तरह नीचश्रेणीके दर्शाढ़िा लोग उक्त नीच श्रेणीकी याजकता करते हैं।

नेपाली बौद्धोंके मध्य बाँड़ाओंकी समितिमें धर्म-सम्बन्धीय संशयादिकी और 'गति'के विधानानुसार सामाजिक विषयकी मीमांसा होती है। किन्तु कोई विचाराधीन विषय होनेसे वह गुर्भाओंके ब्राह्मणप्रधान शासकराजगुरुके सामने पेश किया जाता है। इस विषयमें कोई बौद्ध विचारक नहीं होते। राजगुरुके विचारालयका नाम धर्माधिकरण है और वे स्वयं धर्माधि-कारी हैं। ये हिन्दूशास्त्रानुसार जातिगत विवादका विचार करते हैं। विचारमें अर्थदण्ड, कारादण्ड, प्राण-दण्ड, कैसा ही क्यों न हो, अपराधी बौद्ध होने पर भी उसे हिन्दूशास्त्रानुसार दण्ड भुगतना पड़ता है। राजगुरु इस विषयमें बौद्धशास्त्रको ओर जरा भी ध्यान नहीं देते।

नेपाली बौद्धगण तिब्बतीय लामाओंका प्रधानत्व अस्वीकार नहीं करते। ये लोग लामाको बौद्ध धर्मका प्रधान स्थान मानते हैं। किन्तु धर्मसम्बन्धमें दोनों देश-में कोई सम्बन्ध वर्त्तमान नहीं है। तिब्बती लोग नेपाली बौद्धोंको हिन्दूकी अपेक्षा कुछ अच्छा समझते हैं। वे लोग स्वयम्भूनाथ, बौधनाथ और कैथचैत्यके दर्शन करने आते हैं, किन्तु नेपाली बौद्धधर्मकी कोई खबर नहीं लेते और न उनके उत्सवादिमें साथ ही देते हैं।

गत्तिके नियमानुसार प्रत्येक श्रेणीके प्रत्येक परिवारके कर्त्ताको एक बार करके सामाजिक व्यक्तियोंको भोज देना पड़ता है। इस प्रकार एक एक भोजमें हजारों रुपये खर्च होते हैं। गरीबके लिये यह भोज बड़ा ही कठिन हो जाता है। जो इस भोजको नहीं दे सकता, वह जातिमें हीन समझा जाता है। वह हीनता जातिच्युतिके समान है। फिर एक नियम ऐसा है जिसके अनुसार किसी परिवारमें किसीके मरने पर उस जातिके प्रत्येक परिवारमेंसे एक एक मनुष्यको उस मृतके सत्कारमें योग देना पड़ता है। केवल इतना ही नहीं, उन्हें द्वादशाह अशौचान्तके दिन भी उपस्थित होना पड़ता है। नेपाली बौद्धोंको मृतदेहका दाह होता है। प्रत्येक श्रेणीका दाहस्थान स्वतन्त्र है; पर है सबोंका नदी किनारे ही। गत्तिके नियमका उल्लङ्घन करनेसे अपराधी स्वजातीय प्रधानोंके विचारसे अर्थदण्ड पाता है। भारी अपराध करने पर जातिच्युति भी होती है। जातिच्युत व्यक्तिकी मृतदेह राह पर छोड़ दी जाती है।

नेपाली बौद्धोंका उपास्य विषय।

नेपाली बौद्धगण आदि-चैतन्यको आदिबुद्ध नामसे और आदिकारणरूपिणीको आदि-प्रज्ञा नामसे अभिहित कर सर्वश्रेष्ठ देवदेवीके रूपमें उनकी उपासना करते हैं। आदिबुद्ध स्वयम्भू, ज्ञानमय उनके कर्त्ता नहीं हैं, वे ही सबोंके कर्त्ता हैं। आदिकारणरूपिणी आदि-प्रज्ञा आदिबुद्धकी ही आश्रयस्वरूप हैं। इनके मतसे आदिबुद्ध वा आदिप्रज्ञाकी कोई मूर्त्ति कल्पित नहीं हो सकती। किसी मन्दिरमें वा कारुकार्यके मध्य इनकी कोई मूर्त्ति देखी नहीं जाती। नेपालका प्रधान बौद्ध-मन्दिर आदिबुद्धके नामसे उत्सर्गीकृत है। लोगोंका विश्वास है कि उन सब मन्दिरोंमें आदिबुद्धका आविर्भाव है।

नेपालमें ज्योतिःको ही आदि बुद्धका स्वरूप मान कर उनकी प्रणामादि करते हैं। सभी ज्योति इस प्रकार पूजी नहीं जाती। सूर्यरश्मिसे निर्गत ज्योति ही आदि बुद्धज्योतिःरूपमें पूजित होती हैं। वे सूर्यलोकको भी उन्हींकी ज्योति मानते हैं।

बौद्ध लोग त्रिमूर्त्ति वा त्रिरत्नकी पूजा करते हैं। बुद्ध, धर्म और सङ्घ यही त्रिमूर्त्ति त्रिरत्न नामसे प्रसिद्ध है। सामान्यतः बुद्ध और सङ्घ पुरुषरूपमें और धर्म स्त्रीरूपमें कल्पित और चित्रित होते हैं। स्त्रीमूर्त्ति धर्म ही प्रज्ञादेवी, धर्मदेवी और उग्रतारादेवी नामसे मशहूर हैं। नेपालमें त्रिरत्नसेवाका विशेष आधिक्य देखा जाता है। प्रायः सभी मन्दिरोंमें त्रिरत्न वा त्रिमूर्त्ति खोदित है, मनुष्य इसकी पूजा करते हैं। वहांके लोगोंके सदर दरवाजेके ऊपर चौखट पर वा प्राचीरमें, शयनगृहकी दीवारमें, बुद्ध वा बोधिसत्वके मन्दिरमें यह त्रिमूर्त्ति देखनेमें आती है। इस त्रिमूर्त्तिकी छोटी और बड़ी नाना प्रकारकी प्रतिमा होती हैं। त्रिमूर्त्तिकी तीनों मूर्त्तियां प्रायः एक दूसरेसे सटी रहती हैं। कहीं मध्यस्थलमें बुद्ध, कहीं धर्ममूर्त्ति खोदित हैं। वे त्रिमूर्त्तियां प्रस्फुटित पद्मके ऊपर बैठी हुई हैं। मध्यस्थलकी मूर्त्ति ही साधारणतः बड़ी होती है। बुद्धमूर्त्ति प्रौढ़ पुरुष, धर्ममूर्त्ति युवती रमणी और सङ्घ किशोर-वयस्क पुरुषरूपमें कल्पित होते हैं। त्रिरत्नमें अक्षोभ्य अथवा शाक्यसिंह बुद्धकी आकृति ही ली जाती है। धर्मकी मूर्त्तिके चार भुजाएँ होतीं जिनमेंसे दो ऊपरकी ओर और दो नीचेके ओर रहती हैं। ऊपरके दो हाथोंमें पद्म और जयमाला तथा नीचेके हाथोंमें पुस्तक रहती है। ऊपरके एक हाथका अङ्गुष्ठ दूसरे हाथकी तर्जनीसे जुटी रहती है। कहीं तो बोधिसत्वकी मूर्त्ति ही सङ्घमूर्त्तिके रूपमें मानी जाती है। कोई कोई सङ्घमूर्त्ति चतुर्भुज और कोई मूर्त्ति द्विभुज भी देखी जाती हैं। इनके दो हाथ पुटाञ्जलिबद्ध होते, एक हाथमें मणिगर्भ पद्म वा पुस्तक और दूसरे हाथमें मणिनिर्मित जयमाला रहती है।

प्रथमतः आदिबुद्ध और आदिप्रज्ञाकी उपासना, पीछे त्रिरत्नपूजा, तब ध्यानी और मानवभेदसे द्विविधबुद्धोंके बुद्ध तथा उनकी शक्ति एवं बोधिसत्त्वकी उपासना प्रचलित है।

ध्यानीबुद्धकी संख्या पांच (किसीके मतसे दो) और मानव बुद्धकी संख्या सात (किसीके मतसे नौ) है। ध्यानीबुद्धोंकी शक्तियां उनकी पत्नी और बोधिसत्त्वगण उनके पुत्र माने जाते हैं। ध्यानीबुद्धोंकी संज्ञा ये हैं—शक्ति, बोधिसत्त्व, गुण, भूत, इन्द्रिय, आयतन, वाहन, वर्ण, चूड़ा और मुद्राक्षतन्त्र।

मानवबुद्धोंकी तारागण पत्नी हैं सही, लेकिन बोधिसत्त्व पुत्र हैं, शिष्य नहीं। ये सभी पीत वा स्वर्णवर्णके हैं, भूमिस्पर्श मुद्राविशिष्ट है, सिंहवाहन है। जो पांच ध्यानीबुद्ध मानते हैं, वे तन्त्रके मतसे दक्षिणाचारी और जो छः ध्यानीबुद्ध मानते हैं, वे वामाचारी कहाते हैं।

७म मानवबुद्ध शाक्यसिंहको चरणपूजा भी नेपालमें प्रचलित है। इसमें ८ मङ्गलचिह्न हैं, यथा श्रीवत्स वा कौस्तुभ चिह्न, पद्म, ध्वज, कलस, चामर, छत्र, मत्स्य-युगल और शङ्ख।

मञ्जुश्री बोधिसत्त्व नेपालियोंके मध्य विशेष उपास्य हैं। ये मञ्जुश्री, मञ्जुघोष और मञ्जुनाथसे प्रसिद्ध हैं। नेपालमें प्रायः सभी जगह इनका मन्दिर है। स्वयम्भूनाथके निकटस्थ मन्दिर ही प्रधान है। ये नेपालियोंके मतसे विघ्ननायक तथा रक्षाकर्त्ता माने जाते

है। कितने नेपाली शिल्पजीविगण सरस्वती और विश्वकर्मा की तरह इनकी पूजा करते हैं। इनकी द्विभुज और चतुर्भुज प्रतिमा देखी जाती है। द्विभुज प्रतिमाके एक हाथमें खड़्ग और एक हाथमें पुस्तक है। चतुर्भुज प्रतिमाके अन्य दो हाथोंमें तीर और धनुस् है। इनके मन्दिरके सामने मण्डल नामक एक खण्ड पत्थर रहता है जिस पर मञ्जुश्री चरण-चिह्न उत्कीर्ण देखा जाता है। मञ्जुश्री चरणके गुल्फ देशमें चक्रचिह्न है। चम्पादेवी पर्वत पर इनकी एक पत्नी वरदा (लक्ष्मी) और फुलचोया पर्वत पर मोचदा (सरस्वती) नामक दूसरी पत्नीका मन्दिर है।

नेपाली बौद्धोंमें हिन्दूका शैवाचार और तन्त्राचारके मिश्रित हो जानेसे वे अनेक शैवदेवदाता और तान्त्रिक उपास्य योनिलिङ्गादिकी उपासना करते हैं। नेपालमें स्वयम्भुनाथ ही आदिबुद्धरूपमें और गुह्येश्वरी आदिप्रज्ञारूपमें पूजित होती हैं। ध्यानीबुद्धोंमें अमिताभ, तत्प्रज्ञि और पुत्र एवं मानवबुद्धोंमें शाक्यसिंह एवं बोधिसत्व मञ्जुश्री सबकी अपेक्षा प्रधान उपास्य हैं। इसके अलावा बुद्धचरण, मञ्जुश्रीचरण, त्रिकोणप्रभृति विशेष भावमें पूजित होते हैं।

नेपाली बौद्ध धातुमण्डल नामक एक और प्रकारके चिह्नकी पूजा करते हैं। धातुमण्डल दो प्रकारका है, वज्रधातुमण्डल और धर्मधातुमण्डल। वज्रधातुमण्डल वैरोचनबुद्धके साथ और धर्मधातुमण्डल मञ्जुश्री बोधिसत्वके साथ संश्लिष्ट है। बड़े बड़े बौद्धमन्दिरोंके निकट इन सब धातुमण्डलोंकी प्रतिष्ठा है। ये सब गोलाकार वा अष्टकोणी २।३ इञ्च मोटे पत्थरखण्ड पर बने होते हैं। उनमें पद्मचिह्न खोदित रहते हैं। प्रतिमा बैठानेके लिये वा चरणचिह्न खुदवानेके लिए इस प्रकारके मण्डलकी आवश्यकता होती है। जैसे बुद्ध वा बोधिसत्वोंके पवित्र स्थानादिमें वा उनके अवशेषके ऊपर चैत्य बना होता है, वैसे ही देवताके पवित्र स्थानादिके ऊपर बड़े बड़े धातुमण्डल प्रतिष्ठित होते देखे जाते हैं। बड़ा बड़ा धातुमण्डल स्तम्भ वा वेदिके ऊपर स्थापित होता है। इन सब मण्डलोंमें बौद्ध देवदेवियोंकी मूर्त्ति और चिह्नादि अङ्कित होते हैं। धर्मधातुमण्डलमें २२२ प्रकारके चिह्नोंसे कम नहीं रहते। समकोन्द्री क्रमह्रस्वृत्तके मध्य पृथक् पृथक् काच पर शास्त्रोक्त शृङ्खलानुसार एक एक प्रकारका चिह्न खोदित रहता है। वज्रधातुमण्डलमें ५०।६० प्रकारके चिह्नोंसे अधिक चिह्न नहीं रहते। इन दोनों प्रकारके मण्डलोंके चिह्नादिकी शृङ्खला एक-सी नहीं होती।

इसके अलावा हिन्दूके दिक्पालोंकी तरह बौद्धोंके भी उपास्य चार देवराज हैं। वे सब भी दिक्पाल हैं। खड्गपानि खड्गराज पश्चिमाधिपति, चैत्यधारी चैत्यराज दक्षिणाधिपति, वीणापाणि वीणराज पूर्वाधिपति और ध्वजधारी ध्वजराज उत्तराधिपति माने जाते हैं।

शिवमार्गी हिन्दुओंके निम्नलिखित देवता क्या हिन्दू क्या बौद्ध दोनों सम्प्रदायके उपास्य हैं,—

भैरव और महाकाल, भैरवी वा काली, गणेश, इन्द्र और गरुड़। भैरवका मुख मत्स्येन्द्रनाथके रथके सम्मुख भागमें संलग्न रहता है। बौद्ध लोग इस मुखको यद्यपि रथका अलङ्कार विशेष मानते हैं, तो भी अत्यन्त पवित्र समझ करके उसे एगिताहू विहारके मध्य रखते हैं। भैरवका दैत्यशवारोही विग्रह अनेक बौद्ध मन्दिरोंके भी सामनेके मन्दिरके रक्षाकर्त्ता वा द्वारपालरूपमें देखे जाते हैं। महाकाल गणाधिपति गणेशके गणभुक्त होने पर भी इनकी प्रतिमा बौद्धमन्दिरके उभयपार्श्वमें देखी जाती है। मञ्जुश्रीमन्दिरके चरणमण्डलके एक पार्श्वमें गणेश और एक पार्श्वमें त्रिशूलधारी महाकालकी मूर्त्ति है। महाकाल प्रतिमा ही अनेक स्थानोंमें वज्रपाणि बोधिसत्वके विग्रहरूपमें पूजित होती है।

सिद्धिदाता गणेशको बौद्ध लोग बुद्धिदाता मानते और श्रद्धाभक्तिके साथ उनकी पूजा करते हैं। पशुपतियोंके दण्डदेव मन्दिरके निकट अशोककन्या चारुमतीका प्रतिष्ठित एक बहुत प्राचीन गणेश-मन्दिर है। 'चारुवोधि' विहारके बांढापुरोहितगण ही इस गणेशकी पूजा करते हैं।

काली वा भैरवी मूर्त्ति किसी बौद्धमन्दिर वा उसके निकट देखनेमें नहीं आती। पर हाँ, उनके जो स्वतन्त्र मन्दिर हैं, बौद्ध लोग वहां जा कर पूजा करते हैं। अनेक कालीमन्दिरमें बांढा पूजकका काम करते हैं।

इन्द्रकी अपेक्षा इन्द्रवज्रको बौद्ध लोग पवित्र और उपास्य देवता मानते हैं। बौद्धशास्त्रमें लिखा है, कि बुद्ध देवने एक समय इन्द्रको परास्त कर उनका वज्र जयचिह्नस्वरूप छीन लिया था। वज्र भुटानियोंके मध्य 'दोर्जे' शब्दसे प्रसिद्ध है।

स्वयम्भूनाथके मन्दिरके सामने धर्मधातुमण्डलके ऊपर ५ फुट लम्बा एक वज्र प्रतिष्ठित है। अक्षोभ्य-बुद्धका चिह्न वज्र है। एक वज्रके लम्बभावमें और दूसरेके तिर्यक्भावमें स्थापित होनेसे वह विश्ववज्र कहलाता है। यह विश्ववज्र अमोघसिद्ध बुद्धका चिह्न है। हिन्दू लोग लिङ्ग और योनिको जिस तरह देवदेवीके प्रतिनिधि रूपमें पूजा करते हैं, उसी तरह नेपालमें वज्र और घण्टा बुद्ध तथा प्रज्ञादेवीके प्रतिनिधिरूपमें पूजित होता है। हिन्दूघण्टेके मुष्टिभाग पर जिस तरह गरुड़, अनन्त, पद्म आदि मूर्त्तियां होती हैं, बौद्धघण्टेके मुष्टिभाग पर भी उसी तरह प्रज्ञा वा धर्मका मुख अङ्कित देखा जाता है।

हारिती (शीतला) और गरुड़की मूर्त्ति प्रायः सभी बौद्धमन्दिरोंमें देखी जाती है। बौद्ध गरुड़की मूर्त्तिके गलेमें सर्पमाला, हाथमें सर्पवलय और चञ्चुमें मृत सर्प तथा दोनों पदके नीचे अर्द्धनारी सर्पाकार नागकन्याकी मूर्त्ति है। अमोघसिद्ध बुद्धका वाहन भी गरुड़ है। प्रायः सभी बौद्धमन्दिरोंमें और वैष्णव देवदेवोके मन्दिरमें गरुड़मूर्त्ति देखनेमें आती है। गरुड़का स्वतन्त्र मन्दिर नहीं है। लिङ्ग और योनिपूजा भी बौद्धोंमें प्रचलित है। वे लोग लिङ्गको आदिबुद्ध वा स्वयम्भू पद्मका पुष्पभाग और योनिको स्वयम्भू पद्मका मूलस्थ आदि निर्भर वा गुह्येश्वरीका स्थान मानते हैं। बौद्धोंमें अधिकांश इसके उपासक नहीं हैं। हिन्दू शिवलिङ्गके गात्रमें बौद्धलोग बौद्ध देवदेवीकी मूर्त्ति उत्कीर्ण कर उनकी पूजा करते हैं। लिङ्गमस्तकको भी उन्होंने चैत्यके आकारमें बदल दिया है। इस प्रकार खोदित लिङ्गको विशेष सूक्ष्मदृष्टिसे परीक्षा किये बिना सहजमें उसे हिन्दू शिवलिङ्ग नहीं कह सकते। हिन्दूतान्त्रिकोंके उपास्य त्रिकोण चिह्नको बौद्धलोग कभी त्रिरत्नका चिह्न, कभी गुह्येश्वरी आदि देवियोंके चिह्न मानते हैं। हिन्दू-तान्त्रिकके अङ्गमें यन्त्रधारणकी तरह बौद्ध लोग भी यह त्रिकोण यन्त्रधारण करते हैं।

बौद्धलोग जिस तरह हिन्दूदेवदेवियोंकी उपासना करते हैं, उसी तरह हिन्दू लोग भी अनेक बौद्धदेवदेवियोंको हिन्दूदेवदेवीकी प्रतिमा समझ कर उनकी पूजा करते हैं। ये लोग गुह्येश्वरीको भगवतीका स्वरूप मानते हैं। मञ्जुश्रीको हिन्दू लोग स्त्रीदेवता सरस्वतीरूपमें पूजा करते हैं। उनकी दो पत्नी भी लक्ष्मी सरस्वतीके रूपमें हिन्दूके निकट मान्य हैं। वंशीचूड़ अमिताभबुद्ध और विष्णुके अवताररूपमें गण्य होते हैं।

एतद्भिन्न स्वयम्भूनाथ पर्वत परके शीतलादेवीके मन्दिरमें हिन्दूकी तरह बौद्ध लोग भी उन्हें हिन्दूदेवी समझ कर ही पूजा करते हैं।

नेपाली शिवमार्गी हिन्दूमेंसे कितने ही तान्त्रिक शैव हैं। शाक्तकी संख्या बहुत थोड़ी है। हिन्दूओंको उपास्यदेवदेवीका विवरण इसके पहले ही पूजा और उत्सवादिके मध्य लिखा गया है। नेवार देखो।

नेपालक (सं॰ क्ली॰) नेपाल स्वार्थे-कन्। १ नेपाल। २ ताम्रधातु, तांबा।

नेपालकम्बल (सं॰ पु॰) कुथाख्य चित्रकम्बल।

नेपालजा (सं॰ स्त्री॰) मनःशिला, मैनसिल।

नेपालनिम्ब (सं॰ पु॰) नेपालोद्भवो निम्बः। नेपालदेशोद्भव निम्ब, नेपालकी नीम, एक प्रकारका चिरयता। पर्याय—नैपाल, तृणनिम्ब, ज्वरान्तक, नाड़ीतिक्त, निद्रारि सन्निपातरिपु। गुण—शीतल, उष्ण, लघु, तिक्त, योगावाहि, अत्यन्त कफ, पित्त, अस्र, शोफ, तृष्ण और ज्वरनाशक।

नेपालमूलक (सं॰ क्ली॰) हस्तिकन्द सदृश मूलभेद, हस्तिकन्दके समान एक कन्द।

नेपालिका (सं॰ स्त्री॰) १ मनःशिला, मैनसिल। २ सोमलता।

नेपाली (हिं॰ वि॰) १ नेपालका, नेपालमें रहने या होनेवाला। २ नेपाल सम्बन्धी। (पु॰) ३ नेपालका रहनेवाला आदमी। (स्त्री॰) ४ मनःशिला, मैनसिल। ५ नेवारीका पौधा।

नेपियर (सर चार्लस जेमस)—एक अङ्गरेज सेनाध्यक्ष। इनका जन्म १७८२ ई॰में हुआ था। ये ऐडमिरल नेपि-

यर (Admiral Napier)-के भातिभ्राता थे। १७६८ ई०में आइरिस-विद्रोहके समय बारह वर्षको अवस्थामें ये २२ नं० रेजिमेण्टके पताकावाहक (Ensign officer)-के पद पर नियुक्त हुए और १८०६ ई०में सर जान मूरको सहायताके लिए ५० नं० पदातिक सैन्यके अध्यक्ष हो कर स्पेन गए। इसी समय करुणाकी लड़ाई-में इनके पंजरेकी हड्डी टूट गई और ये बन्दी हुए*। बाद इङ्गलैण्ड लौट कर एक वर्ष तक ये बेकाम बैठे रहे। इसी समय इन्होंने सामरिक विभागीय नियमावली, उपनिवेश और आयरलैण्डको अवस्थाके विषय पर एक पुस्तक लिखी। बाद १८०८ ई०में ये सखेर-सेनादलमें मिल गए और स्पेनके विरुद्ध पुनः युद्धयात्रा कर दी। किन्तु इस बार इन्हें गहरी चोट लगी। इसके बाद १८१३ ई०में ये उत्तर-अमेरिकाके सामरिक कार्यमें चले गए और १८४१ ई०में भारतके सर्वप्रधान सेनाध्यक्ष (Commander-in-chief) हो कर आए। लार्ड एलेन-बरा जब गवर्नर-जनरल हो कर भारतवर्ष आए थे, तब इन्होंने उन्हें अफगानयुद्धके लिए सलाह दी थी। अफ-गानिस्तानमें अङ्गरेजोंकी दुरवस्था देख कर सिन्धुप्रदेशके अमीरगण उनकी अधीनतासे छुटकारा पानेके लिए तत्पर हुए। इसी समय यहांके रेसिडेण्ट मेजर आटरम (सर जेम्स) अमीरोंके औद्धत्यसे डर गए और राज-प्रतिनिधि एलेनबराको इसकी खबर दी। इन्होंने उक्त प्रदेशको सामरिक और राजनैतिक कार्यावलीको देखरेखके लिए नेपियरको आदेश दिया। नेपियरने सिन्धुप्रदेश जा कर पहलेकी लिखी हुई शर्त्तमें कुछ हेर फेर कर यहांके अमीरोंको अपने वशमें कर लिया।

१८४३ ई०की ८वीं जनवरीको नेपियरने मरुदेशस्थ इमामगढ़ पर आक्रमण किया। अमीरगण पहलेसे ही उनकी हठकारिताकी बात जानते थे। अतः वे युद्धकी कोई घोषणा पानेसे पहले ही इमामगढ़ पार हो कर हैदराबादकी ओर चल दिए; नेपियरने भी दुर्गको जीत और उसे ध्वंस कर अमीरोंका पीछा किया। इधर हैदरा-बादनगरमें अमीरगण एकत्र हो कर आटरमके साथ सन्धिका प्रस्ताव कर ही रहे थे, कि उन्होंने नेपियरके हैदराबादकी ओर आनेको खबर सुनी। इस समय डर-के मारे बिना आगे पीछे सोचे उन्होंने सन्धिपत्र पर अपने अपने हस्ताक्षर कर दिए। सबोंने तो हस्ताक्षर उसी समय बना दिए पर उनके अधीनस्थ जो बेलूच सरदार थे, उन्होंने अङ्गरेजोंकी वश्यता स्वीकार नहीं की। १८४३ ई०की १५वीं फरवरीको इन्होंने दल बांध कर रेसिडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। मेजर आटरम हैदराबादके वासभवनका परित्याग कर भाग गये।

सर चार्लस नेपियर यह खबर पाते ही आगबबूला हो उठे। उन्होंने १७वीं फरवरीको बेलूचों पर धावा बोल दिया। मियानीके निकट दोनों दलमें घमसान युद्ध हुआ, लेकिन बेलूच दल पराजित हो कर रणस्थल-से नौ दो ग्यारह हो गए। नेपियरने हैदराबाद पर अधिकार जमाया और अमीरोंके अलङ्कारादि अपने दखलमें कर लिए।

पुनः उसी सालकी २२वीं मार्चको बेलूच-दल अमीर शेर महम्मदके अधीन हैदराबादके निकटवर्त्ती दूबा नामक स्थान पर अङ्गरेजोंके विरुद्ध आ डटे, किन्तु इस युद्धमें भी इन्हींकी हार हुई। युद्धमें नेपियरने बड़ी वीरता दिखाई थी। यद्यपि ये सिन्धुप्रदेशके अधीन कई एक बेलूच सर-दारोंको अपने वशमें लानेमें सक्षम हुए थे, तो भी कच्छ गण्डवा, मरी, बुगटी आदि उत्तर-पश्चिमसीमान्तवासी कुछ बेलूच जातियोंने इनकी अधीनता स्वीकार नहीं की। वे उस समयके पारस्य और सिन्धु अमीरोंके प्रभाव-की उपेक्षा कर उन लोगोंके राज्यमें लूट पाट मचाया करते थे। फिर क्या था, नेपियर कब चुपचाप बैठनेवाले थे। इन्होंने १८४५ ई०को १३वीं जनवरीको उनका सामना किया। विद्रोहीदलके नेता सरदार बीजा खां युद्धमें पराजित हो कर बन्दी हुए। अन्तमें यहांके विद्रोह ने शान्तभाव धारण किया। बाद १८४७ ई०में नेपियर इङ्गलैण्ड गए और पुनः १८४९ ई०में सिक्खयुद्धके समय भारतवर्ष आए थे। इस युद्धमें भी इन्होंने असम साहसके साथ अपनी बुद्धि और रणचातुर्यका परिचय दिया था। गोविन्दगढ़के ६० नं० देशीय पदातिक दलके १८४९ ई०में विद्रोही होने पर, नेपियरने उन्हें दमन किया तथा

* Hart's "Army List" 1843.

सबोंको बरखास्त कर उनकी जगह पर गोर्खाओंको रखा। यहां पर नेपियर अपने जीवनमें उदारताका लक्षण दिखा गए हैं। उन्होंने राजद्रोहियोंको प्राणदण्ड न दे कर सबोंको दयाका पात्र समझ छोड़ दिया। उनका यह विश्वास था, कि अङ्गरेज-राजके अविचारसे ही प्रजावर्गके मध्य राजभक्तिका उच्छेद देखा जाता है।

इस निर्भीक सेनापतिने जीवनके अन्तिम समय तक भारतवर्षके विषयमें कालयापन कर पोर्टसमाउथके निकटवर्ती आकलेण्ड नगरमें १८५३ ई०को मानव-लीला संवरण की। इनकी हस्तलिपि अत्यन्त ही सुन्दर होती थी। इनकी भाषा और ग्रन्थविन्यास देख कर चमत्कृत होना पड़ता था। ये बड़े ही धीरप्रकृतिके मनुष्य थे और मद्यपानादिकी ओर इनको तनिक भी आसक्ति न थी।

नेपोलियनबोनापार्ट—जगद्विख्यात वीर। १७६८ ई०की १५वीं अगस्तको नेपोलियनने कर्सिकाद्वीपके प्रधान स्थान एजेसिओ नामक नगरमें जन्म ग्रहण किया। नेपोलियनके जन्म लेनेके दो वर्ष पहले ही फरासीसियोंने एजेसिओ पर अधिकार जमा लिया था। सुतरां नेपोलियन फरासीको प्रजा हो कर उत्पन्न हुए थे। आपके पिता चार्लस बोनापार्ट व्यवहारजीवी थे, किन्तु फरासीसियोंने जब कर्सिका पर चढ़ाई कर दी, तब उन्होंने वकालती छोड़ कर सैनिकवृत्तिका अवलम्बन किया था और पास्काल पेयलीके साथ मिल कर देशके लिये यथासाध्य युद्ध करनेमें एक भी कसर उठा न रखी थी। जब नेपोलियन मातृगर्भमें थे उस समय उनके मातापिता एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भाग कर स्वाधीनतारक्षाकी विशेष चेष्टा कर रहे थे। अन्तमें कोई उपाय न देख उन्हें फरासीसीकी अधीनता बाध्य हो कर स्वीकार करनी पड़ी। आपके पिता सम्भ्रान्त वंशोद्भव थे। आपकी माता लिटिसिया रेमोलिनी जैसी सुन्दरी थीं, वैसी सद्गुणशालिनी भी थीं। वंशमर्यादामें उनमेंसे कोई भी हीन न थे।

आप अपने पिताके द्वितीय पुत्र थे। आपके चार भाई और तीन बहन थीं। किन्तु बचपनसे ही आप बड़े भाईके ऊपर अपना प्रभुत्व जमाने लगे थे। शैशवकालमें पिताकी गोद पर बैठ कर नेपोलियन कर्सिकावासियोंके वीरत्वकी कहानी सुना करते थे। फरासीसियोंके साथ युद्धमें पेयलीने जैसा अविचलित साहस, अदम्य उत्साह और अद्भुत वीरत्व दिखलाया था, उसे सुन कर बालक मोहित होते थे। पितामाताके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भागने और उनकी कष्टसहिष्णुताका परिचय सुन कर वे समझते थे, कि उस समय यदि वे विद्यमान रहते, तो कभी सम्भव नहीं था कि फरासीसी कर्सिकाको जीत सकते।

बचपनमें ही नेपोलियनको पितृवियोगदुःखका अनुभव करना पड़ा था। पीछे आपकी माता आपका तथा अन्यान्य सन्तानोंका यत्नपूर्वक लालनपालन और शिक्षाप्रदान करने लगीं। बचपनमें आप बड़े नटखट और अभिमानी थे। माताके सिवा कोई भी आपको शासन नहीं कर सकते थे। वे भी बलप्रयोगकी अपेक्षा मीठी मीठी बातोंसे नेपोलियनको सुपथ पर लानेकी चेष्टा करती थीं। यही समझ कर लिटिसिया पुत्रका यथेष्ट आदर नहीं करती थीं। पीछे नेपोलियनने भी स्वीकार किया था कि उनकी माताने उनको चरित्रगठनको सुधारा था। आपकी मातृभक्ति अति प्रबल थी।

फरासीसियोंने कर्सिका जीत कर यह नियम चलाया था, कि सम्भ्रान्त वंशोद्भव कुछ बालकोंको यहांसे फ्रान्स ले जा कर उन्हें सामरिक विद्याकी शिक्षा दी जायगी। कर्सिकाके शासनकर्त्ता काउण्ट मारबोफका बोनापार्ट-परिवारके साथ अच्छा सद्भाव था। इसीसे दूसरे दूसरे बालकोंके साथ नेपोलियनको भी उन्होंने फ्रान्स भेजना चाहा। इस समय आपकी उमर केवल दश वर्षकी थी। जिस समय आप माताके निकट बिदाई लेने गए, उस समय आप फूट फूट कर रोने लगे और बहुत व्याकुल हो उठे। फ्रान्समें पहुंच कर ब्रीन नामक स्थानके सामरिक विद्यालयमें आप भर्त्ती किये गये। उस विद्यालयमें फ्रान्सके उच्चवंशोद्भव भूस्वामी और धनियोंके लड़के पढ़ते थे। वे लोग विदेशी बालककी पोशाक आदि देख कर उनकी हंसी उड़ाने लगे। बचपनसे ही नेपोलियन निर्जनप्रिय और चिन्ताशील थे। अभी विद्यालयमें आ कर दत्तचित्तसे पाठाभ्यास करने लगे। धनी

लड़कोंका साथ करना आप जरा भी पसन्द नहीं करते थे और न उनकी तरह वृथा समय नष्ट करना ही चाहते थे। विलासिताके आप कट्टर दुश्मन थे। यही कारण था कि विलासप्रिय धनी सन्तानोंको आप नीच निगाहसे देखते थे। एकाग्रचित्तसे पाठाभ्यास करके आप सर्वदा परीक्षामें सर्वोच्चस्थान पाते थे। परीक्षाका साफल्य देख कर धनी-सन्तान आपकी खूब खातिर करने लगी और जरूरत पड़ने पर आपको अपना दलपति भी बनाती थी। नेपोलियन उन्हें साथ करके बर्फका किला बनाते और बर्फकी गोलागोली करके दुर्गरचा और आक्रमण-शिक्षा करते थे। विज्ञान, इतिहास और अङ्कशास्त्र आपके प्रियपाठ्य थे। दर्शन, न्याय आदि तर्क प्रधान शास्त्र पर इनकी उतनी रुचि न थी। चरितपाठ और होमरके काव्यमें इनका प्रगाढ़ अनुराग था। जर्मन भाषा सीखनेमें इन्हें आनन्द नहीं मिलता था। आपकी हस्तलिपि अच्छी नहीं होती थी। १७७८ ई० तक ब्रीनके विद्यालयमें पढ़ कर आपने वृत्ति लाभ की। पीछे आप पारीके राजकीय विद्यालयमें भेजे गए। वहां केवल एक वर्ष तक शेष परीक्षामें प्रशंसाके साथ उत्तीर्ण हुए। बाद आप एक दल गोलन्दाज सेनाके लेफ्टेनेण्ट बनाये गए। सोलह वर्षके लड़केके लिये यह कम गौरवकी बात नहीं है।

नेपोलियन कुछ दिन तक सैन्यदलमें काम करके एक समय छुट्टी ले कर कर्सिका गए। माता और भ्राता-भगिनियोंके साथ मिल कर आपके आनन्दका पारावार न रहा। एक समय इन्होंने पिटसखा पेयलीके साथ मुलाकात की। पेयलीने नेपोलियनकी तीक्ष्णबुद्धि और अभिज्ञताका परिचय पा कर आग्रहपूर्वक उन्हें अपने मतमें लानेकी कोशिश की। किन्तु नेपोलियन यद्यपि पेयलीको भक्ति और सम्मानकी दृष्टिसे देखते थे, तो भी उनकी सब बातोंमें इन्होंने साथ न दिया। छुट्टी पूरी हो जाने पर नेपोलियन पुनः सैन्यदलमें आ मिले। इस सेनादलको जब जहां पर रहनेका हुकुम मिलता था, तब इन्हें भी वहीं जाना पड़ता था। वे अन्यान्य सैनिककर्मचारियोंकी तरह वृथा आमोदमें समय नहीं बिताते थे। जहां जहां वे जाते, वहां वहांके अधिवासियोंसे मिल कर उनकी रीतिनीति और अवस्थाका विषय जाननेकी चेष्टा करते थे।

१७८९ ई०में फरासीदेशमें राष्ट्रविप्लव उपस्थित हुआ। फ्रान्सकी प्रजा प्रचलित शासननीतिके विरुद्ध अच्छी तरह डट गई। इस समय बोर्बो वंशधर फ्रान्समें राज्य करते थे। राजा १६वें लुई शान्तस्वभावके और प्रजाहितैषी थे। पन्द्रह वर्षसे ज्यादा वे राजसिंहासन पर बैठ चुके थे। उनकी चेष्टा और सहायतासे अमेरिकाका युक्तराज्य अंगरेजी अधीनताका त्याग कर स्वाधीन हो गया था। उनके पूर्ववर्त्ती राजाओंके अनेक व्ययसाध्य युद्धकार्यमें लगे रहनेके कारण राजकोष खाली होता आ रहा था।

१६वें लुईके राजत्वकालमें मन्त्रियोंके अटूट परिश्रम करने पर भी राजकोष पूरा न हो सका। अन्तमें सभा कर जनसाधारणके कर्त्तव्यनिर्णयकी व्यवस्था हुई। प्रजाने प्रचलित शासननीतिका परिवर्त्तन करना चाहा। उन्होंने देखा कि फरासी श्रमजीवियोंके अमानुषिक परिश्रम करने पर भी उनका पेट नहीं भरता—अधिकांश कर-भारसे पीड़ित है। फरासी जमींदार भी बहुत बुरी तरहसे प्रजाके साथ पेश आ रहे हैं। यह सब देख कर सहानुभूतिका सूत्र दिनों दिन छिन्न होने लगा। ऐसी हालतमें प्रजाकी विद्वेषरूपी अग्निमें धनी और भूस्वामियोंके भस्मीभूत होनेकी सम्भावना थी। उन्होंने राजाकी शरण ली। राजाने उन्हें समर्थन करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। राजा यदि प्रजाके मतानुसार चलते, तो सम्भव था कि कोई उपद्रव नहीं उठता। राजक्षमताकी कुछ लाघवता अवश्य होती। जातीय सभामें सर्वप्रधान राजनैतिक सभ्य मिराबों यदि जीवित रहते, तो निश्चय था कि राजक्षमता विलुप्त न होती। उनकी मृत्यु होनेसे ही राजपक्ष नितान्त दुर्बल हो गया। राजाकी अपरिणाम-दर्शिताके शेषमें राजा, रानी दोनों ही अवमानित, निग्रहीत और बन्दी हुए। फ्रान्सका राजनैतिक आकाश मेघाच्छन्न हो गया। यूरोपके अन्यान्य राजाओंने प्रजाशक्तिके विकाश पर प्रमाद समझा। अष्ट्रीयराज लुईके साले थे। उन्होंने प्रुसीय और सार्डिनीयाके राजाओंको अपने मतमें ला कर फ्रान्सके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। फरासीसी

लोग भी लड़ाईकी तैयारियां करने लगे। अष्ट्रीय और प्रुसीय सेना पराजित हो कर नौ दो ग्यारह हो गई। फरासीसियोंको जब मालूम हुआ कि उनके राजा भग कर देशके शत्रुओंके साथ योग देनेको जा रहे हैं, तब उन्होंने राजा रानी दोनोंको देशके शत्रु समझ कर उन्हें फांसी दे दी। तदनन्तर फ्रान्समें साधारणतन्त्र स्थापित हुआ। इधर यूरोपीय राजगण पुनः युद्धका आयोजन करने लगे। चारों ओरसे फ्रान्स आक्रान्त हुआ। देश भरमें अराजकता फैल गई। जनता राजनैतिक क्षमताके लाभसे उन्मत्तप्राय हो गई और छोटे छोटे दलोंमें विभक्त हो कर आपसमें विरुद्धाचरण करने लगी। कितने स्वदेशप्रेमिक स्वाधीनचेता व्यक्ति जल्लादके हाथसे यमपुर भेजे जाने लगे। रक्तकी धारा बह निकली।

फ्रान्सके अन्तर्विद्रोहका सुयोग पा कर कर्सिकावासियोंने स्वदेशको स्वाधीन बनानेमें कमर कसी। पेयली फिरसे उनके अधिनायक हुए। नेपोलियन इस समय जातीय सैन्यके अधिनायकरूपमें कर्सिकामें थे। पेयलीने उन्हें अपने पक्षमें ला कर अङ्गरेजोंके हाथ कर्सिकाको समर्पण करना चाहा। किन्तु नेपोलियन इस पर राजी न हुए। फ्रान्सके साथ कर्सिकाका अधिकतर अवस्थागत सम्बन्ध देख कर उन्होंने पेयलीके मतका खण्डन किया; इसीसे पेयली उनके जानोदुश्मन हो गये। पेयलीकी उत्तेजनासे कर्सिकाके लोगोंने नेपोलियनका घर जला डाला। नाना विपदोंको झेलते हुए वे माता और भ्राता-भगिनीके साथ फ्रान्समें भग आए और मार्सायल नगरमें रहने लगे। तभीसे परिवार-प्रतिपालनका कुल भार उन्हींके ऊपर रहा। यहां नौकरीकी तलाश करने पर उन्हें गोलन्दाज सैन्यके कप्तानका पद प्राप्त हुआ। कुछ समय बाद आप टुलोंमें घेरा डालनेके लिए भेजे गये। टुलों फ्रान्सका समुद्रोपकूलवर्त्ती एक नगर है। वहांके राजपक्षीय अधिवासियोंने नगरको अङ्गरेजोंके हाथ सुपुर्द कर दिया था। साधारणतन्त्रके पक्षसे अनेक चेष्टा करने पर भी यह स्थान हाथ न लगा। पीछे नेपोलियनने गोलन्दाजसैनाके अधिनायकरूपमें आ कर निज युद्धकौशल द्वारा नगरको जीत लिया और अङ्गरेजोंको वहांसे भागना पड़ा। इसी स्थान पर अङ्गरेजोंके साथ नेपोलियनकी पहली मुठभेड़ हुई थी। इस काममें नेपोलियनकी पदोन्नति हुई और वे अष्ट्रीयसेनाके विरुद्ध आल्पस पर्वतके तलदेशमें भेजे गये। वहां भी उनके परामर्शानुसार कार्य करके फरासी सेनाने विजय पाई। इस समय फ्रान्स-गवर्मेण्टको नेपोलियन पर कुछ सन्देह हुआ और वे पदच्युत किए गए। दो सप्ताह बाद नेपोलियन मुक्त तो हुए, पर फिरसे नौकरी न मिली। इस कारण वे राजधानीको चल दिए। वहां अर्थके अभावसे इन्हें विशेष कष्ट उठाने पड़ा। यहां तक कि आत्महत्या द्वारा इन्होंने प्राणत्यागका भी सङ्कल्प कर लिया था। किन्तु उनके मित्र डिमाशिशकी अर्थसहायतासे उसकी जान खतरेसे बच गई। किसी समय इन्होंने तुरुष्क जा कर सुलतानके अधीन कार्य करनेकी इच्छा प्रकट की थी। जो कुछ हो, शीघ्र ही इनके कष्टका अवसान हुआ।

फरासीसियोंकी जातीय समिति १७९५ ई० तक शासनकार्य चला कर जनताकी विरागभाजन हुई। पारीनगरके जनसाधारण उनके विरुद्ध अस्त्रधारण करनेमें उद्यत हुए। इस विपदके समय उक्त समितिने नेपोलियनको राजधानीस्थित सेनाओंका सहकारी सेनापति बनाया। नाममात्रके सहकारी होने पर भी इसका कुल दारमदार नेपोलियनके हाथ था। वे छः हजार सेना ले कर विद्रोहदमनमें समर्थ हुए थे। कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप जातीय समितिने आपको सेनापतिका पद प्रदान किया।

इस समय जातीयसमितिने पांच व्यक्तियोंके हाथ शासनक्षमता, दोके हाथ व्यवस्थाप्रणयन और कार्यपरिदर्शनका भार दिया। पांचों शासनकर्त्ता डिरेक्टर नामसे प्रसिद्ध हुए। इनमेंसे वैरस नामक डिरेक्टर नेपोलियनके बन्धु और पृष्ठपोषक थे। उन्हींके यत्नसे नेपोलियन इटलीकी फरासी सेनाके प्रधान सेनापति बन कर वहां गए। इसी समय आपका प्रथम विवाहकार्य सम्पन्न हुआ। जोसेफाइन नामक एक सम्भ्रान्त विधवा महिलाका पाणिग्रहण कर आपने अपनेको कृतार्थ समझा। उक्त रमणी सर्वांशमें नेपोलियनकी उपयुक्त थीं। जैसी सुन्दरी थीं वैसीही सर्वगुणशालिनी और विनीतस्वभावा होनेके कारण उन्होंने नेपोलियनका मन हर लिया था। जोसेफाइनके प्रति आपका आन्तरिक अनुराग हो गया

था। जोसेफाइन भी वीरप्रवरको प्राणसे बढ़ कर चाहती थीं। उनके एक पुत्र और एक कन्या थी जिन्हें नेपोलियन अपनी सन्तानकी तरह मानते थे। ऐसी स्त्रीके साथ नेपोलियन अपना अधिक दिन बिता न सके। शीघ्र ही उन्हें अपनी नौकरी पर जाना पड़ा।

इस समय इटलीसीमान्त पर ४५ हजार फरासी योद्धाएं दुरवस्थामें प्राप्त थे। शत्रुसे बार बार पराजित हो कर वे बिलकुल भग्नोत्साह हो पड़े थे। उनके परिधेय वस्त्र छिन्न और पदतल पादुकाविहीन हो गए थे। कुछ मास तक वेतन नहीं मिलनेके कारण खानेकी भी विशेष तकलीफ थी। नेपोलियनने वहां पहुँचते ही उन्हें उत्साहित किया और इटलीमें ले जा कर उनके कुल अभाव दूर किये जायंगे, ऐसी आशा दी। अल्पवयस्क सेनापतिके उत्साहवाक्यसे उत्तेजित हो फरासीसेना आल्पस पर्वत पार कर शस्यपूर्ण इटलीदेशमें पहुंची और बहुसंख्यक शत्रुसैन्यको क्रमागत कई एक युद्धोंमें परास्त किया। सार्डिनियाराज नेपोलियनके साथ सन्धि करनेको बाध्य हुए। इसके बाद अष्ट्रीय सेना आक्रान्त और परास्त हुई। किन्तु हारने पर भी उन्होंने हार स्वीकार न की। युद्धविशारद सेनापतियोंके अधीन अष्ट्रीय-सम्राट् अनवरत सैन्यदल भेजने लगे। नेपोलियनने भी क्रमशः उन्हें लोडी, आर्कोला, रिभोली और कास्टिलियन आदि स्थानों पर परास्त किया और विनष्ट कर डाला। सारा लम्बार्डि-प्रदेश फरासीसियोंके अधिकारमें आया और वहां साधारणतन्त्र प्रतिष्ठित किया गया। अष्ट्रीय सम्राट्के उरमसेर, आलभिञ्जी, प्रभरी आदि समरकुशल सेनापतियोंके बार बार परास्त होने पर भी वे सन्धिस्थापनमें अग्रसर न हुए। नेपोलियनने इटलीसे अपनी सेनाका अभाव दूर कर फ्रान्समें प्रचुर अर्थ, मूल्यवान् चित्र आदि भेजे थे। अभी अन्यान्य स्थानोंकी फरासीसेनाकी सहायताके लिये भी कुछ रकम भेजी गई। इसके अनन्तर नेपोलियन अष्ट्रिया पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे। अष्ट्रीय-सेनापति राजपुत्र चार्ल्स उन्हें रोक न सके। नेपोलियनके कुछ दूर आगे बढ़ने पर अष्ट्रीय सम्राट्ने उनसे सन्धि करना चाहा। कम्पोफर्मिओ नामक स्थान पर सन्धि हुई। फरासीसियोंको उत्तर इटलीका भाग हाथ लगा।

युद्धमें विजय पा कर नेपोलियन राजधानीको लौटे। देशके लोगोंने सहस्र कण्ठसे उनकी प्रशंसा की। समस्त यूरोपकी निगाह नेपोलियनकी ओर आकृष्ट हुई। अभी सब कोई नेपोलियनको देखनेके लिये तथा उनके परिचित होनेके लिये उत्सुक हुए। इस समय नेपोलियनको इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई करनेका आदेश मिला। किन्तु इङ्गलैण्ड पर आक्रमण करना फरासीसियोंकी आन्तरिक इच्छा न थी। अतः नेपोलियन मिस्र पर चढ़ाई करनेके लिये भेजे गये। १७९८ ई०की १९वीं मईको टूलोंके बन्दरसे ४० हजार सेनाकी साथ ले नेपोलियनने मिस्रकी ओर यात्रा कर दी। कितने विद्वान्, पुरातत्त्वज्ञ और वैज्ञानिक व्यक्ति भी उनके साथ हो लिये। राहमें माल्टा जीत कर नेपोलियन मिस्रके उपकूलमें पहुँचे।

अंग्रेजोंके जंगी जहाज उनके अनुसन्धानमें इधर उधर घूम रहे थे। उन्होंने फरासीजंगी जहाजोंको राहमें पा कर उन पर आक्रमण किया और कितनेको नष्ट भ्रष्ट कर डाला। इसी बीच नेपोलियन मिस्रको जीतनेके लिये दलबलके साथ अग्रसर हुए। उस समय मिस्र नाममात्र तुरुष्कके सुलतानके अधीन रहने पर भी माम्लूक लोग वहां राज्य कर रहे थे। नेपोलियनने कई एक युद्धोंमें उन्हें परास्त किया और मिस्रको अधिकार भुक्त कर लिया। भारतवर्ष पर आक्रमण करना नेपोलियनकी एकान्त इच्छा थी। इसीसे टीपू सुलतानके साथ उन्होंने दूत भेज कर सन्धि कर ली। यदि एक बार वे भारतवर्ष पर आ सकते, तो अंग्रेजवणिकोंको विपन्न कर डालते, इसमें सन्देह नहीं। सिख और महाराष्ट्रोंके साथ मित्रता कर वे नूतन साम्राज्यस्थापनमें कृतकार्य हो सकते थे, किन्तु स्थल पथ हो कर तुरुष्ककी ओर अग्रसर होते समय एकर नामक स्थानको वे जीत न सके। अंग्रेजोंकी सहायतासे तुर्की सेनाने नेपोलियनकी अभिलाषा धूलमें मिला दी। वे हताश हो मिस्रको लौट आए। इधर अंग्रेजी सहायतासे प्रकाण्ड एक दल तुर्की सेनाने मिस्र पर आक्रमण कर दिया। किन्तु नेपोलियनके

पैरामिडमें वे सबके सब मारे गए। इस समय उन्हें खबर मिली, कि फ्रान्स चारों ओरसे आक्रान्त हुआ है। अष्ट्रीय-सम्राट्‌ने सन्धि तोड़ कर इटली पर आक्रमण कर इसे जीत लिया है। अन्यान्य राजाओंने सुयोग पा कर फ्रान्सके विरुद्ध सेना भेजी है। फरासीसी कई एक युद्धोंमें परास्त हो चुके हैं। फिर क्या था! वीर नेपोलियनमें क्रोधकी धमनियां दौड़ गई। वे क्षणकाल भी स्थिर रह न सके। मिस्रशासनकी सुव्यवस्था कर ओर साहसी सेनापति क्लेवरको सेनापति बना नेपोलियन कुछ अनुचरों और सेनाओंके साथ एक क्षुद्र पोत पर आरोहण हुए और अफ्रिकाके कूल होते हुए आगे बढ़े। १७९८ ई०की २२वीं अगस्तको उन्होंने स्वदेशकी यात्रा की ओर ४१ दिन समुद्रपथमें रह कर वे फ्रान्सके उपकूलमें पहुंचे। राहमें अंग्रेजी जङ्गी जहाजने उनके क्षुद्र पोतका पीछा किया था। लेकिन ईश्वरकी कृपासे नेपोलियन कुशल-पूर्वक स्वराज्यमें पहुंच गए।

इस समय फरासी लोग डिरेक्टर-उपाधिधारी शासन-कर्त्ताओं पर बहुत बिगड़े थे। स्वार्थलोलुप डिरेक्टर देशकी भलाईकी ओर जरा भी ध्यान नहीं देते थे। अतः शासनप्रणालीमें हेर फेर करनेकी आवश्यकता हुई थी। देशके सभी मनुष्य नेपोलियनके आगमन पर विशेष उत्साहित हुए। सब कोई उनकी सम्वर्द्धना करने लगे, किन्तु कोई कोई डिरेक्टर उनके प्रतिकूल आचरणमें प्रवृत्त हुए। वे जो सबोंके प्रिय हो गये हैं, यह कुछ स्वार्थ-पर डिरेक्टरोंको अच्छा न लगा। यहां तक कि वे उन्हें चक्रान्तकारी समझ कर पकड़ने और बन्दी करने-की भी तैयार हो गए। इसका फल यह हुआ कि नेपोलियन डिरेक्टरोंकी क्षमताका लोप कर आप ही सर्वेसर्वा हो गए। बिना किसी खूनखराबीके उन्होंने सारी क्षमता अपने हाथमें कर ली थी। आप प्रधान कान्सल (Consul) बने और अन्य दो व्यक्ति उनके सहकारी हुए। नूतन शासनप्रणाली बदली गई। सब किसीने नेपोलियनकी कार्यप्रणालीकी सराहा।

फ्रान्सके सर्वमयकर्त्ता हो नेपोलियनने प्रथमतः यूरोपीय राजाओंके साथ सन्धिस्थापनकी चेष्टा की। अष्ट्रीय-सम्राट्‌ने भी इङ्गलैण्डाधिपतिको नेपोलियनके साथ सन्धि करनेके लिए एक पत्र लिखा। लेकिन उन्होंने अनिच्छा प्रकट की। सन्धिकी आशा न देख नेपोलियन युद्धकी तैयारी करने लगे। किन्तु उस समय फ्रान्सकी आभ्यन्तरिक अवस्था इतनी शोचनीय थी, कि वे बहुत कष्टसे चालीस हजार सेना जुटा सके थे। इधर अष्ट्रीय सेनाने इटलीको जीत कर फरासी सेनापति मेसेनाको जिनोया नगरमें अवरुद्ध कर रखा था। नेपोलियनकी सेना महादुरारोह आल्प्स पर्वतके उच्च शिखरको पार कर अष्ट्रीय सेनाके पश्चाद्भागमें पहुंची। उन्होंने शत्रुके आगमनकी आशङ्का न की थी, इसीसे वे सहसा उनकी गति रोक न सके। अन्तमें मरेङ्गो नामक स्थान पर दोनों सेनामें मुठभेड़ हुई। अष्ट्रीय सेनापति मेलसने साठ हजार सेना ले फरासीसियों पर आक्रमण कर उन्हें छिन्न भिन्न कर डाला। इस समय फरासी सेनाकी संख्या कुल आठ हजार थी। नेपोलियन यद्यपि स्वयं युद्धस्थलमें उपस्थित थे, तो भी वे मेलसकी गति रोक न सके। दोनों पक्षमें घमसान युद्ध चलने लगा। फरासीसेनाने युद्धमें पीठ दिखलाई। मेलसने अपनेको युद्धमें जयी समझ यूरोपीय राजाओंको पत्र लिखा कि नेपोलियनको युद्धमें परास्त कर दिया। किन्तु कुछ देर बाद ही फ्रान्ससे एक दल सेना पहुंची। इस बार मेलस पराजित हुए और समस्त इटली शत्रुके हाथ अर्पण कर आप जान ले कर स्वदेशको भागे। नेपोलियन भी लड़ाई जीत कर राजधानीको लौटे। अष्ट्रीय सम्राट् पराजित होने पर भी सहसा सन्धि करनेको तैयार न हुए। केवल कुछ काल तक युद्ध बन्द रहा। बाद फिरसे दोनोंको बल-परीक्षा हुई। इस बार अष्ट्रीय सम्राट्‌ने पराजित हो सन्धिके लिए प्रार्थना की और कुछ प्रदेश फरासीसियों-को देनेका वचन दिया।

अङ्गरेज गवर्मेण्टने जब देखा कि उनके मित्रराज अष्ट्रीय-सम्राट् फरासिसीयोंके सन्धिसूत्रमें आबद्ध हो गए हैं, तब उन्होंने भी स्वदेशके उदारनैतिकोंकी सलाह ले कर नेपोलियनके साथ सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट की। अङ्गरेज-दूत लार्ड कार्नवालिसकी चेष्टासे सन्धि स्थापित हुई। यही एमिन्सकी सन्धि कहलाती है। १८०२ ई०की २७वीं मार्चको यह सन्धिपत्र स्वाक्षरित

हुआ था। इस सन्धि द्वारा अङ्गरेजों ने सिंहल छोड़ कर युद्धलब्ध सभी स्थान फरासी और ओलन्दाजों को दे दिए थे। इसके बाद यूरोपीय अन्यान्य राजाओं के साथ सन्धि स्थापित हुई। इतने दिनों तक यूरोपमें जो महासमरकी आग धधक रही थी, वह नेपोलियनकी चेष्टासे बुत गई। फरासीसियों ने कृतज्ञताके चिह्नस्वरूप उन्हें यावज्जीवन कान्सल बना कर उत्तराधिकारी निर्देश करनेकी क्षमता प्रदान की।

इस समय फ्रान्सके भूतपूर्व राजवंशीय राजपुत्र लुईने फ्रान्सके सिंहासनको फिरसे पानेकी आशासे नेपोलियनको पत्र लिखा था। जब वे स्वराज्यमें पुनः प्रतिष्ठित हुए, तब उन्होंने नेपोलियनको पुरस्कारस्वरूप सर्वोच्च पद देनेकी इच्छा की थी, लेकिन कई एक कारणों से वे अपना अभिलाष पूरा कर न सके। इन्होंने लुईको जो राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया, इस पर फ्रान्सके लोग मन ही मन बहुत बिगड़े और नेपोलियनकी हत्या करनेका षड़यन्त्र करने लगे। एक बार वे गुप्तभावसे नेपोलियनके अश्वयानको राहमें बारूदसे उड़ा देने गए थे, लेकिन कृतकार्य न हुए। नेपोलियनने दया दिखला कर देशसे ताड़ित जिन सब फरासीसियोंको स्वदेश लौटनेका अधिकार दिया था, आज वे ही लोग अवसर पा कर उनके प्राणनाशकी चेष्टा करने लगे।

एमिन्सकी सन्धिके बाद अंगरेज लोग वाणिज्य-विस्तार करनेका रास्ता ढूंढ़ने लगे। लेकिन नेपोलियनने फ्रान्समें व्यापार करनेकी उन्हें अनुमति न दी, क्योंकि ऐसा करनेसे फरासीसियोंके शिल्पवाणिज्यमें धक्का लग सकता था। इस पर अङ्गरेज बहुत असन्तुष्ट हुए और उन्होंने भूमध्यसागरका माल्टा नामक क्षुद्र द्वीप ले कर सन्धि तोड़ दी। पूर्वकृत सन्धि द्वारा अंगरेजोंने माल्टा छोड़ देना चाहा था। लेकिन जितना ही दिन गत होने लगा, उतनी ही उक्त द्वीप छोड़नेकी उन्हें ममता होने लगी। नेपोलियन सन्धि-शर्तके अनुसार काम करनेके लिये अंगरेजी दूतको धमकाने लगे। अन्तमें १८०३ ई०के मई मासमें अंगरेजोंके साथ नेपोलियनका विवाद छिड़ गया। एमिन्सकी सन्धिके केवल एक वर्ष सोलह दिनके बाद ही दोनों पक्ष युद्धकी तैयारी करने लगे। युद्धघोषणा करनेके पहले अंगरेजी जंगीजहाजने फरासीके कितने ही वाणिज्यपोतोंको रोक रक्खा। नेपोलियनने भी इसका बदला लेनेके लिये फ्रान्स और तदधिकृत देशोंमें जो सब अंगरेज मौजूद थे उन्हें कैद कर लिया। बाद इङ्गलैण्डेश्वरके पैतृकराज्य हैनोभरको फरासियोंने जीत लिया। किन्तु जिससे यह महा समरानल शीघ्र ही बुत जाय इसके लिये नेपोलियन खूब कोशिश करने लगे। अंगरेज लोग जलयुद्धमें प्रबल हैं, उनकी अर्थ-सहायतासे यूरोपीय सभी राजा फ्रान्सके शत्रु हो सकते हैं यह नेपोलियन अच्छी तरह जानते थे। अंगरेज-जातिको विशेष विपन्न करनेके लिये उनको उत्कट इच्छा हो गई। उन्होंने इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई करनेका सङ्कल्प कर लिया। किन्तु फरासी स्थलयुद्धमें प्रबल होने पर भी जलयुद्धमें अंगरेजोंके समान न थे। इस कारण वे जंगी जहाज बनानेका उद्योग करने लगे। फ्रान्सके सभी लोगोंने इस कार्यमें असाधारण उत्साह दिखलाया। बहुतसे लोगोंने स्वतःप्रवृत्त हो कर तन मन धनसे सहायता दी। फ्रान्सके समुद्रोपकूलमें छोटे बड़े सभी तरहके जंगी जहाज बनने लगे। बुलोयन आदि स्थानोंमें बहुसंख्यक सेना एकत्रित हुई। यह भारी युद्धसज्जा देख कर अंगरेज लोग डर गए। इस समय विलियम पिट इङ्गलैण्डके प्रधान मन्त्री थे। वे बुद्धिकौशलसे नेपोलियनको पराजित करनेकी चेष्टा करने लगे। उनके राजनीति-कौशलसे रुसिया, अष्ट्रिया और स्वेडेन आदि स्थानोंके राजगण फ्रान्स पर आक्रमण करनेको सहमत हुए। पिट साहबने उन्हें युद्धके सभी खर्च देनेके वचन दिये। इंगलैण्डकी अर्थ-सहायतासे अष्ट्रीय और रुससम्राट् सैन्य संग्रह करने लगे। यह खबर नेपोलियनको लग गई, किन्तु वे अच्छी तरह जानते थे कि इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई कर देनेसे ही ये सब भावी उपद्रव दूर हो जायंगे। इस कारण वे उसीकी कोशिश करने लगे। इधर नेपोलियनको गुप्तभावसे मारनेके लिये बोर्बोनवंशीय लोग मौका ढूंढ़ रहे थे। दो एक सेनापतिने भी इस चक्रान्तमें साथ दिया। एक राजपुत्र फ्रान्सके सीमान्तभागमें रह कर फ्रान्स पर आक्रमण करनेके अवसरकी खोजमें थे। किन्तु दैवक्रमसे फरासी

पुलिसको इसकी खबर झट मिल गई। उनके यत्नसे षड़यन्त्रकारी पकड़े गए। सब किसीने अपना अपराध स्वीकार किया और यह भी कहा कि उन्हें अङ्गरेजोंकी ओरसे अर्थसहायता मिली है। धृतव्यक्तियों-मेंसे किसी किसीने लज्जाके मारे आत्महत्या कर डाली और कुछ जल्लादके हाथसे यमपुर सिधारे। सीमान्तवासी राजपुत्र भी पकड़े गए। सामरिकविचारालयमें उनका विचार हुआ और प्राणदण्डकी आज्ञा मिली। नेपोलियनको यदि समय पर यह सम्वाद मिलता, तो सम्भव था, कि वे उन्हें प्राणदण्डकी आज्ञासे मुक्त कर देते, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसके वास्ते कोई कोई नेपोलियनको दोषी बनाते हैं। जो कुछ हो, फरासी लोग अच्छी तरह समझ सके थे, कि नेपोलियनका जीवन कैसा मूल्यवान है और गुप्तघातकके हाथसे उनके प्राण खो जानेकी कैसी सम्भावना है। इस कारण शीघ्र ही उन्होंने नेपोलियनको फ्रान्सके सम्राट्-पद पर अभिषिक्त किया। १८०४ ई०के नवम्बर मासमें उनकी अभिषेकक्रिया सम्पन्न हुई थी। रोमसे पोपने आ कर स्वयं उन्हें सम्राट्के पद पर अभिषिक्त किया था। पहले कभी भी किसी राजाके अभिषेक कालमें पोप नहीं आए थे।

सम्राट्-पद पर बैठ कर नेपोलियनने इङ्गलैण्डसे पुनः सन्धि करनेकी चेष्टा की। उन्हें यह अच्छी तरह मालूम था, कि समरानलके एक बार प्रज्वलित होनेसे वह सहजमें बुझनेकी नहीं। इस कारण सन्धिके लिये प्रार्थना करते हुए उन्होंने इङ्गलैण्डेश्वरको एक पत्र लिखा, लेकिन अङ्गरेज गवर्मेण्टने सन्धि करनेमें अनिच्छा प्रकट की। फिर क्या था! नेपोलियन कब हटनेवाले थे, तुरत ही युद्धकी तैयारी करने लगे। उन्होंने पहलेसे ही समुद्रके किनारे एक लाख साठ हजार सेना और बहुसंख्यक युद्धोपकरण संग्रह कर रक्खे थे। सैन्य पार करनेकी कितनी नावें भी संगृहीत हुई थीं। लेकिन बिना एक बेड़ा जंगीजहाजके उन्होंने यात्रा करना अच्छा न समझा। उनके नौसेनापति एक बेड़ा जंगीजहाज ले कर अमेरिका गए हुए थे। वहां अंगरेजी रणपोतने भी उनका पीछा किया था। वे लौट कर स्पेनके उपकूलमें उपस्थित हुए और उन्होंने एक बेड़ा अङ्गरेजी जहाजको परास्त किया। किन्तु कितने रणपोतके सामान्यरूपसे क्षतिग्रस्त हो जानेके कारण, वे बुलोयनोमें पहुँच न सके। नेपोलियन अधीरभावसे नौसेनापतिके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। सेनापतिके समय पर नहीं पहुंचनेके कारण वे बहुत असन्तुष्ट हुए। इसी सेनापतिके दोषसे अन्तमें फरासी-रणपोत विध्वस्त हुआ था। नेपोलियनने इङ्गलैण्ड-आक्रमणका जो सङ्कल्प किया था उसे त्याग कर अष्ट्रियाकी ओर यात्रा कर दी। उनके नौसेनापति यदि समय पर पहुँच जाते, तो इङ्गलैण्डके अदृष्टमें क्या होता, कह नहीं सकते। भाग्यबलसे इङ्गलैण्डने रक्षा पाई। इधर अष्ट्रीयसेनाने फ्रान्सके मित्रराज्य पर आक्रमण कर उलम नामक स्थानको जीत लिया। रूस-सेना उनका साथ देनेके लिये बहुत तेजीसे आगे बढ़ी। विपदका गुरुत्व समझ नेपोलियनने ससैन्य समुद्रोपकूलको छोड़ दिया और बहुत तेजीसे आगे बढ़ कर उलमकी अस्सी हजार अष्ट्रीयसेनाको चारों ओरसे घेर लिया। शत्रु-सैन्य पराजित और बन्दी हुई। पीछे नेपोलियनने अष्ट्रियाकी राजधानी भियेनाकी ओर कदम बढ़ाया। भियेना भी बातकी बातमें अधिकृत हुआ। उस समय रूस-सेना पहुँच गई थी। अष्टर्लिज नामक स्थानमें दोनोंकी मुठभेड़ हुई। समवेत अष्ट्रीय और रूससैन्य पराजित तथा विनष्ट हुई। अष्ट्रीय-सम्राट्ने कोई दूसरा रास्ता न देख सन्धिकी प्रार्थना की और स्वयं जा कर नेपोलियनसे मिले। इस समय नेपोलियन रूस-सम्राट्को दलबलके साथ कैद कर सकते थे, लेकिन ऐसा न कर उन्होंने उदारता दिखलाई और उनके साथ सन्धि कर ली। तदनन्तर वे स्वदेश लौटे। फ्रान्स पर जो ये सब विपद आ पड़ी थीं वे केवल इङ्गलैण्डेश्वरके प्रधान मन्त्रीके बुद्धि-कौशलसे ही। यूरोपीय सभी राजगण फ्रान्सके विरुद्ध डट गये थे। अभी उन सबोंकी पराजय हुई और मन्त्रीने लज्जा तथा चिन्ताके मारे प्राण त्याग किया। पिटकी मृत्युके बाद चार्ल्स फाक्स आदि उदारनैतिकोंने मन्त्रीका पद पाया नेपोलियनके साथ सन्धि करनेकी उनकी एकान्त इच्छा थी, लेकिन थोड़े ही दिनोंके अन्दर उनकी मृत्यु हो गई जिससे सन्धि न हो सकी।

राजधानी लौट कर नेपोलियन देशहितकर कार्यमें

लग गए, नाना स्थानोंमें सड़क, पुल और नहर तैयार कराने लगें। पारीशहरके निम्नभागमें जो सब पयःप्रणाली थीं उनका संस्कार किया गया। इस समय फरांसी भारतीय चीनीका व्यवहार करते थे, किन्तु अंग्रेजोंके साथ युद्ध उपस्थित हो जानेसे पर्याप्त चीनीका मिलना बन्द हो गया। इस पर नेपोलियनने बिट्‌मूलसे चीनी तैयार करनेका उपाय आविष्कृत किया। तभीसे फ्रान्स आदि देशोंमें बिट्‌चीनी प्रचलित है। इस प्रकार चारों ओर देशहितकर कार्य करके नेपोलियन सबोंके धन्यवादके पात्र हुए। इसके पहले ही उन्होंने 'कोडनेपोलियन' नामक व्यवस्थापुस्तकको विधिबद्ध कर उसका प्रचार किया था। फ्रान्समें रोमन कैथलिक धर्म विप्लवके समय अन्तर्हित हो गया था। नेपोलियनने पुनः उसकी स्थापना की। वे वंशमर्यादाका आदर न कर गुणानुसार सबोंको राजकार्यमें नियुक्त करते और गुणी तथा विद्वान् लोगोंका सम्मान भी करते थे। विद्वत्समाजके उन्नतिसाधनमें खर्च करनेमें वे ज़रा भी हिचकते न थे। फ्रान्समें विद्यालयकी स्थापना कर तथा बालिका-विद्यालयमें उत्साह दे कर आप वहां नवयुगका आविर्भाव कर गए हैं। उनकी धारणा थी, कि माता अच्छी होनेसे सन्तान भी अच्छी होती है। इस कारण बालिका जिससे आवश्यक गृहकर्म और सन्तानपालनादि भलीभांति सीख ले, इसके लिए वे विशेष यत्नवान् थे। अपने शिक्षकके उपस्थित होने पर वे उन्हें आशातीत भेंट दे कर विदा करते थे। अपनी दुरवस्थाके समय इन्होंने जिन सब सम्भ्रान्तोंसे सहायता पाई थी उन्हें अब सहायता देनेमें विशेष आह्लादित होते थे।

इसी समय नेपोलियनने बभेरिया और उरटेम्बर्गके अधिपतियोंको राजाकी उपाधि प्रदान की। यह उपाधि आज भी वे भोग कर रहे हैं। पीछे नेपलसराजको सिंहासनच्युत करके उस पद पर इन्होंने अपने बड़े भाई जोसेफको प्रतिष्ठित किया। उक्त राजाको इन्होंने तीन बार क्षमा करके राज्य छोड़ दिया था, किन्तु चौथी बार अङ्गरेजोंकी उत्तेजनासे नेपल्सराजने फ्रान्सके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी थी और जब नेपोलियन अष्ट्रियामें युद्ध करने गए थे, तब उन्होंने इटलीके फरासियों पर धावा बोल दिया था। अतः उन्हें स्वपद पर रखनेसे फ्रान्सके पक्षमें अनिष्ट होगा, यह देख नेपोलियनने उन्हें पदच्युत कर दिया। नेपल्सवासियोंने आनन्दके साथ जोसेफकी अभ्यर्थना की थी।

१८०६ ई०के मध्यभागमें प्रूसियाके साथ नेपोलियनका युद्ध अपरिहार्य हो उठा। पहली बारके अष्ट्रीय-युद्धके समयमें प्रूसिया रूसका साथ देता था, किन्तु अष्टर्लिजमें नेपोलियनने उन्हें परास्त किया, तब फिर युद्धमें अग्रसर होनेकी उन्हें साहस न हुआ। अब रूसका उत्साह और सैन्य-साहाय्य पानेकी आशासे प्रूस युद्धके लिये प्रस्तुत हुआ। प्रूसियाधिपति फ्रेडरिक विलियम शान्तस्वभावके और विज्ञ राजा थे। शान्तिके पक्षपाती होने पर भी अभी उनका मत स्थिर रह न सका। उनकी स्त्री और राजपरिवारस्थ सभी भूस्वामी तथा सेनापतियोंके साथ एकमत हो कर उन्होंने युद्ध करना ही स्थिर कर लिया। नेपोलियन अष्ट्रिया जाते समय प्रूसियाधिकृत किसी स्थान हो कर जानेमें बाध्य हुए थे। इस कारण मोठी मोठी बातोंसे प्रूसियाधिपतिको इन्होंने खुश करनेकी चेष्टा भी की थी। उन्हें अपने पक्षमें रखना नेपोलियनकी एकान्त इच्छा थी। यही कारण था कि नेपोलियनने इङ्गलैण्डेश्वरका पैतृकराज्य हनोवर जीत कर उन्हें दे दिया था। अभी प्रूसवासियोंने नेपोलियनसे हालण्ड और इटलीको छोड़ देने कहा। किन्तु नेपोलियन राजी न हुए। फिर क्या था, दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। १८०६ ई०के सितम्बरमासमें फरासियोंने प्रूसियामें प्रवेश किया। दो एक छोटी छोटी लड़ाईके बाद जेना नामक स्थानमें पुनः दोनोंमें मुठभेड़ हो गई। कई घण्टों तक भीषण युद्ध होता रहा। पीछे प्रूसवासी पराजित हो कर भाग चले। उसी दिन प्रूसके राजाने ६३ हजार सेनाके साथ नेपोलियनके एक सेनापतिको औरस्ताद नामक स्थानमें आक्रमण किया। किन्तु सेनापतिने सिर्फ २६ हजार सेनासे उन्हें परास्त किया था। पीछे छत्रभङ्ग प्रूससेना झुण्डके झुण्ड आत्मसमर्पण करने लगी। फरासियोंने उनको राजधानी बर्लिन पर अधिकार जमा लिया। प्रूसराज भाग कर

रूसकी शरणमें पहुंचे। नेपोलियनने शत्रु राज्य जीत कर भी शान्तिस्थापनको कोशिश की और प्रूस-राजको उनके राज्यका अधिकांश लौटा कर सन्धि करना चाहा, किन्तु रूससम्राट्की सलाहसे वे सन्धि करनेको राजी न हुए। इस पर नेपोलियन बहुत बिगड़े और युद्धके सिवा और कोई दूसरा उपाय न देख रूसकी ओर अग्रसर हुए। रूसियोंके साथ पहले कई एक छोटी छोटी लड़ाइयां हुईं। पीछे फ्रिडलैण्ड नामक स्थानमें जब रूससेना परास्त और विध्वस्त हुई, तब रूस-सम्राटने कोई उपाय न देख सन्धिके लिये प्रार्थना की। नेपोलियनके साथ टिलसिट नामक स्थानमें उनकी भेंट हुई। नेपोलियनने उनकी खूब खातिर की और इस प्रकार दोनों बन्धुत्वसूत्रसे आबद्ध हुए। नेपोलियन दूसरे दूसरे राजाओंकी प्रतिज्ञाभङ्ग करते देख उनके प्रति असन्तुष्ट हुए थे और रूससम्राट्को अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करने लगे। नेपोलियनके व्यवहार और कार्यसे मुग्ध हो रूस-सम्राट् अलेकसन्दरने प्रतिज्ञा की कि वे उनके चिरबन्धु होंगे।

पूर्व समयमें पोलैण्ड नामक एक स्वतन्त्र राज्य था, किन्तु रूसिया, अष्ट्रिया और प्रूसिया तीनों राज्यने उसे बांट कर अपने अपने दखलमें कर लिया था। अभी प्रूसियाके अंशमें जो चार भाग पड़े थे उन्हें नेपोलियन फिरसे स्वाधीन कर देनेमें इच्छुक हुए। साक्सनीके अधिपतिको राजोपाधि दे कर उनकी देखरेखमें यह छोटा प्रदेश रख छोड़ा। प्रूसियासे एक दूसरा भाग ले कर इन्होंने वेष्टफेलिया नामक एक राज्य संगठन किया और अपने छोटे भाई जिरोमको वहांका राजा बनाया। इसके कुछ दिन पहले आपके एक और भाई हालैण्डके सिंहासन पर अभिषिक्त हुए थे।

जब रूसके साथ युद्ध चल रहा था, उस समय अष्ट्रीय-सम्राट् छिप कर फिरसे लड़ाईकी तैयारी कर रहे थे, किन्तु रूसके पराजित होनेसे, उन्होंने लड़ाईका कुल उद्योग छोड़ दिया। अंग्रेज लोग सब किसीको युद्धमें उत्साह देते थे, अर्थसाहाय्य करते थे और युद्धमें सामान भी भेजते थे। किन्तु युरोपीय शक्तिके पराजित होनेसे उनकी सभी आशाओं पर पानी फिर गया। वे फरासी-देशमें जलपथ हो कर किसीको वाणिज्य करने नहीं जाने देंगे, ऐसा अभिप्राय जब उन्होंने प्रकट किया, तब नेपोलियनने भी अपने कर्मचारियोंको हुकुम दिया कि निजराज्य तथा मित्रराज्यमें जहां अंग्रेजोंके वाणिज्य द्रव्य मिले उसे ज़ब्त कर लो। वालटिकसागरसे भूमध्यसागरके कूल तक अङ्गरेजोंका पण्यद्रव्य लाना बन्द हो गया। रूससम्राट् और नेपोलियन दोनोंने आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा की कि दोनों एक दूसरेके शत्रुको निज शत्रु-सा मानेंगे।

इस समय युरोपके मध्य क्षुद्र पोर्त्तुगलके सिवा अङ्गरेजोंका और कोई मित्र न रहा। सभी नेपोलियनके वशीभूत हुए। विशेषतः रूससम्राट्के बन्धुत्वलाभसे नेपोलियन अभी अपनेको बलवान् समझने लगे। रूस-सम्राट् अलेकसन्दरने अङ्गरेजोंको सन्धि करनेके लिए अनुरोध किया। किन्तु अङ्गरेज लोग इस पर राजी न हुए और साथ साथ उन्होंने गर्वित भावसे उत्तर दिया। अतः वे भी अङ्गरेजोंके विरुद्ध लड़ाई करनेको प्रवृत्त हो गए। तदनन्तर पोर्त्तुगलराजको स्वपक्षमें लानेके लिए नेपोलियन कोशिश करने लगे। किन्तु नेपोलियन यदि शान्तस्वभावविशिष्ट प्रूसियापतिको अधिकांश राज्य छोड़ देते, तो सम्भव था कि वे उनकी कृतज्ञता और चिरबन्धुत्व लाभमें समर्थ होते। अथवा जब प्रूसियाकी रानीने नेपोलियनके निकट आ कर केवल मागडिवर्ग दुर्गके लिए उनसे प्रार्थना की थी, उस समय यदि वे उनकी प्रार्थना पूरी करते, तो प्रूसपति उनके चिरबन्धु हो जाते, इसमें जरा भी सन्देह न था। किन्तु रानीको युद्धका कारण समझ कर नेपोलियनने उदारता नहीं दिखलाई। प्रूसियापतिके मन ही मन नेपोलियनके प्रति विरक्त होनेका यही कारण था। इधर पोर्त्तुगलराजने नेपोलियनके कथनानुसार जब अङ्गरेजोंका पक्ष छोड़ा, तब उन्होंने उनके राज्य पर आक्रमण कर उसे जीत लिया। १८०७ ई०के शेषमें यह घटना हुई थी।

इस समय स्पेनदेशीय राजपरिवारके मध्य गृहविवादका सूत्रपात हुआ। राजा चार्लस राजकार्यकी ओर ध्यान नहीं देते थे। रानीके प्रियपात्रही राज-कार्य चलाते थे। प्रधान मन्त्री अपनी इच्छानुसार चल नहीं

सकते थे। अतः शीघ्र ही विशृङ्खला उपस्थित हुई। राजपुत्र फार्डिनेण्ड पिताको बलपूर्वक राज्यच्युत करनेका सङ्कल्प कर माताकी निन्दा करने लगे और रानीके प्रियपात्रको भी लाञ्छित करनेसे बाज नहीं आए। राजकुमारने बलपूर्वक राजा चार्ल्सको राजसिंहासन छोड़ देनेके लिये बाध्य किया और प्रजाको पिताके विरुद्ध उत्तेजित करने लगे। लेकिन बिना नेपोलियनकी सम्मतिके राजसिंहासन पर अधिकार करनेका उन्हें साहस न हुआ। अतः उनकी सलाह लेनेके लिए राजपुत्र फ्रान्स गए। इधर राजा चार्ल्स भी यह सम्वाद पा कर सपरिवार नेपोलियनके समीप पहुंचे। राजपुत्रने माताके चालचलनकी जब शिकायत की, तब रानीने भी सबके सामने राजपुत्रको जारज बतलाया। राजाने पुत्रको राजद्रोही बतला कर विचारके लिए प्रार्थना की। नेपोलियन बड़ी भारी समस्यामें पड़ गए, इस समय क्या करना चाहिए कुछ भी स्थिर कर न सके। पीछे राजा चार्ल्सने खुशीके साथ अपना राज्य नेपोलियनको समर्पण किया। राजकुमार अपना स्वत्व सहसा छोड़ न सके, लेकिन जब उन्हें राजद्रोही बतला कर विचार होनेकी बात छिड़ी, तब वे बहुत डर गए और निराश हो कर स्वदेश लौटे। इस प्रकार बिना परिश्रमके ही स्पेनराज्य नेपोलियनके हाथ लगा। पीछे उन्होंने अपने बड़े भाई जोसेफको नेपल्ससे ला कर स्पेनका राजा बनाया। यदि स्वयं न ले कर नेपोलियन स्पेनदेशके राजसिंहासन पर कनिष्ठ राजकुमारको बिठाते, तो उनको न्यायपरता प्रकट होती। इस समय स्पेनवासी नितान्त हीनावस्थामें थे। वे यूरोपीय अन्यान्य जातियोंकी अपेक्षा शिक्षा और सभ्यतामें बहुत पीछे पड़े हुए थे। स्पेनको उन्नत करनेकी नेपोलियनकी एकान्त इच्छा थी। स्पेनके उन्नतिशील मनुष्य नेपोलियनके कार्यसे अच्छी तरह सन्तुष्ट हुए, किन्तु भूस्वामी और पादरी लोग अज्ञ लेखकोंको उत्तेजित करने लगे और शीघ्र ही विद्रोहवह्नि धधक उठी। अङ्गरेज गवर्मेण्टने विद्रोहियोंका पक्ष लिया और उनकी सहायताके लिये सेना भेजी। एक दल फरासी सेनाको स्पेनवासियोंने परास्त किया। पीछे स्वयं नेपोलियन स्पेन आए और कई युद्धके बाद शान्तिस्थापनमें समर्थ हुए। अङ्गरेज सेनापति स्पेनसे भी दो ग्यारह हो गए। अङ्गरेज सेना जब जहाज पर चढ़ कर कुछ आगे बढ़ी, तब सैनिकप्रधान फरासीकी गोलीके आघातसे वे सबके सब वहीं पर ढेर हो रहे। फरासियोंने सम्मानके साथ उसे कब्रमें दिया।

नेपोलियनको स्पेनमें जानेका सुयोग देख अष्ट्रिय-सम्राट् फिरसे लड़ाईकी तैयारी करने लगे। अङ्गरेजोंने भी उन्हें सहायता देनेके वचन दिये। रूसियाके साथ नेपोलियनका जब युद्ध चल रहा था, तब अष्ट्रियावासी भी छिप कर युद्धसज्जा कर रहे थे। पीछे जब उन्होंने नेपोलियनको विजयी देखा, तब कुछ समय तक वे शान्त रहे। अभी नेपोलियन दलबलके साथ स्पेनमें रहते हैं और उसे जीतनेमें लिप्त हैं, यह सोच कर अष्ट्रिय-सम्राट्ने अस्त्रधारण किया और वे हृतराज्यके पुनरुद्धारमें लग गए। यह सम्वाद पा कर नेपोलियन बहुत चिन्तित हुए। उनकी सेनाओंके भिन्न भिन्न स्थानोंमें रहनेके कारण वे युद्धका कोई आयोजन कर न सके, अतः इस समय इन्होंने शान्तिरक्षा करना ही उचित समझा। रूससम्राट्को मध्यस्थ बना कर इन्होंने विवाद मिटाना चाहा, परन्तु अष्ट्रीयसम्राट्ने अभी अपना सुयोग समझा था, इस कारण सन्धिप्रस्तावको ओर जरा भी कर्णपात न कर फ्रान्सके मित्रराज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्धको अवश्यम्भावी देख नेपोलियन बिना विलम्ब किये ही फ्रान्सको चल दिये और वहां पहुंच कर सैन्य संग्रह करने लगे। किन्तु अनेक चेष्टाके बाद वे ४ लाख अष्ट्रीयसेनाकी गतिको रोकनेके लिये २ लाख सेना एकत्र कर सके थे। उक्त सेनाको साथ ले उन्होंने अष्ट्रियाकी राजधानी भियेना पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया। अन्तमें ओयेग्रामके युद्धमें अष्ट्रीयसेना अच्छी तरह पराजित हुई। नेपोलियनने अष्ट्रीयसाम्राज्यको अलग अलग कर देना चाहा, लेकिन न मालूम क्यों इस सङ्कल्पको पूरा न किया। इस बार अष्ट्रीय सम्राट्ने प्रतीक्षा कर ली कि वे फिर कभी नेपोलियनके विरुद्ध हाथ न उठावेंगे। इसी साल अंङ्गरेजोंने बेलजियम पर आक्रमण किया, लेकिन पराजित हो कर स्वदेशको लौट गए।

इस युद्धके बाद नेपोलियनने देखा कि यूरोपीय राज-

गण उन्हें शान्तिसुख भोग करने नहीं देते हैं। युद्धके आरम्भसे ले कर अन्त तक हजारोंकी बरबादी हुई तथा शोणितपात भी हुआ। देशहितकर कार्यमें ध्यान देनेका अवसर उन्हें नहीं मिला। फरासीसीबलके फैलाने तथा शिल्प-वाणिज्यके उन्नति-कार्यमें भी वे कुछ कर न न सके। यह सब सोच कर किसी यूरोपीय राजवंशके साथ लड़ कर मर मिटना इन्होंने स्थिर कर लिया। इनकी स्त्री जोसेफाइन अशेष गुणशालिनी थीं और नेपोलियनके औरससे उन्हें कोई सन्तान न थी। अतः नेपोलियनने किसी राजवंशीय कन्यासे विवाह करना चाहा। लेकिन एक स्त्रीके रहते दूसरी स्त्रीसे विवाह करना इन लोगोंमें निषेध था। इस कारण जोसेफाइनको छोड़ देनेकी

नेपोलियन बोनापार्ट।

आवश्यकता हुई। नेपोलियन जो इतना कर रहे थे, वह अपने स्वार्थके लिये नहीं, बल्कि फ्रान्सकी उन्नतिके लिये। फ्रान्स-हितके लिये इन्होंने अपनेको उत्सर्ग कर दिया था, स्त्रीत्यागकी बात उनके सामने कुछ भी नहीं थी। इधर देशके लिये स्वार्थत्याग जैसा प्रशंसनीय है, उधर राजनीतिके लिये स्त्री-त्याग वैसा ही दूषणीय होने पर भी आप फिरसे विवाह करनेको बाध्य हुए। फरासी सिनेट-सभाने उनके इस कार्यका अनुमोदन किया। जोसेफाइनने भी अपनी उदारता दिखला कर इसमें सम्मति दी। पीछे अष्ट्रीय-सम्राट्‌कुमारी मेरी लुइसाके साथ नेपोलियनने १८१० ई०के मई मासमें विवाह किया। १८११ ई०के मार्च मासमें इन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

इस समय नैपोलियन तथा फ्रान्सवासियोंके आनन्दका पारावार न रहा, चारों ओर शान्ति विराजने लगी।

इस समय नैपोलियनने सुना कि रूस-सम्राट् उनके मित्र हो कर भी अष्ट्रिया, प्रूसिया और स्वीडेनके साथ इङ्गलैण्डके वाणिज्यसम्बन्धमें नया प्रस्ताव कर रहे हैं। अपने राज्य हो कर अंग्रेजोंका वाणिज्यद्रव्य जाने न देंगे, ऐसी प्रतिज्ञा करने पर भी वे अंग्रेजोंको अपने राज्य हो कर वाणिज्यद्रव्य यूरोप जाने देते हैं। रूस-सम्राट् मित्रता छोड़ कर प्रतिकूलताचरण कर रहे हैं तथा अपनी पराजयका बदला लेनेका मौका ढूंढ रहे हैं। शान्तिरक्षाके प्रयासी हो कर नैपोलियनने रूस-सम्राट्को अपने पक्षमें लानेकी विशेष चेष्टा की, लेकिन कोई फल न निकला। रूससम्राट्ने तुरुष्कके अन्तर्गत कई एक प्रदेशों पर अधिकार जमाना चाहा और नैपोलियन कभी भी पोलैण्डराज्यके पुनःसंस्थापनमें कोशिश न करेंगे, ऐसा उन्होंने प्रस्ताव किया। किन्तु यह प्रस्ताव नैपोलियनको अच्छा न लगा। अतः दोनोंमें फिर युद्ध छिड़ गया।

१८१२ ई०की १२वीं जूनको तीन लाख फरासी पदाति, साठ हजार अश्वारोही और बारह सौ कमान ले कर नैपोलियन रूस-सीमान्त पर जा धमके। अष्ट्रीय और प्रूसीय सेना भी उनकी सहायताके लिये आगे बढ़ी। नैपोलियनने फिर एक बार सन्धि करनेकी चेष्टा की और रूस-सम्राट्से मिलना चाहा, किन्तु वे कृतकार्य न हुए। इस समय नैपोलियन यदि पोलैण्डराज्यका पुनःसंस्थापन कर शान्त रह जाते, तो बहुत कुछ अच्छा होता; एक साधमी जातिको स्वाधीन करना होता, रूस-सम्राट्को यूरोपीय शक्तिपुञ्जसे अलग रखना होता और रूसयुद्धमें अजस्र शोणितपात करना न पड़ता। लेकिन ऐसा नहीं हुआ, विधाताकी गतिको कोई रोक नहीं सकता। आखिरको फरासी सेनाने रूसमें प्रवेश किया। शत्रुगण पद पदमें पराजित होने लगे। बरोडिना नामक स्थानमें जो भीषण युद्ध हुआ उसमें रूसवासी पराजित हो कर भाग चले। नैपोलियनने रूसियाके प्रधान नगर मस्कों ले लिया। अभी वे फ्रांससे प्रायः हजार कोस दूर आ गये थे। नैपोलियनने सोच रखा था कि वे मस्कोनगरमें शीतकाल बिता कर दूसरे वर्ष रूसकी राजधानी सेण्ट-पिटर्सबर्ग पर आक्रमण करेंगे। लेकिन रूसवासियोंने मस्कोनगरमें आग लगा कर उनकी आशाको निर्मूल कर दिया। मस्को नगरके भस्मीभूत हो जानेसे शत्रु मित्र सभी विपन्न हो गए। मस्को-निवासी रूसियोंकी दुरवस्थाका शेष न रहा। नैपोलियन यथासाध्य उनकी सहायता करने लगे। वे रूसियोंकी बर्बरता और निष्ठुरतासे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए। अतः इस समय इन्होंने मस्को नगरका परित्याग कर वापिस जाना ही अच्छा समझा।

१८वीं अक्तूबरको फरासियोंने मस्कोनगर छोड़ दिया। इधर दारुण शीतका भी समय पहुंच गया, तुषारपात होने लगा। कुहासेसे चारों दिशाएं आच्छादित हो गईं। दिनको भी राह दीख न पड़ने लगी। भोजनके अभावसे घोड़े और सेनाके प्राण निकलने लगे। ये सब दुर्घटनाएं देख कर नैपोलियन बहुत कातर हुए और स्वयं पैदल चल कर उनके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। इस तरह ३७ दिनका रास्ता तै कर नैपोलियन सकुशल पोलैण्ड पहुंचे। उनकी सेनाओंमेंसे बहुतोंकी मृत्यु हुई और बहुत थोड़ी बच गईं।

नैपोलियनकी दुरवस्थाका सम्वाद पा कर जो सब उनके मित्र थे वे भी शत्रु हो गए। सबसे पहले प्रूसियाधिपतिने अस्त्र धारण किया। नैपोलियनके श्वसुर अष्ट्रीय-सम्राट् भीतर ही भीतर युद्धका आयोजन करने लगे। नैपोलियनके जो सब सेनापति उनकी कृपासे स्वीडेनके राजा हो गए थे, उन्होंने भी नैपोलियन तथा निज जन्म भूमिके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। अंग्रेज गवर्मेण्टने सबोंको अर्थ साहाय्य करनेका वचन दिया। स्पेन-देशमें भी दूने उत्साहके साथ युद्धारम्भ हुआ। स्पेनमें अंग्रेजसेनापति डयूक-आव-वेलिङ्गटन फरासीसेनापति मेसिनासे पराजित हो कर लिसबन् देशमें भाग गए थे। इस समय उन्होंने भी फिरसे उत्साहके साथ अग्रसर हो स्पेनमें प्रवेश किया। नैपोलियन और फरासी इससे जरा भी न डरे और लड़ाईकी तैयारी करने लगे। किन्तु इस बार वे शिक्षित बहुदर्शी सेनाके बदलेमें अल्पवयस्क अशिक्षित सेनाको साथ ले बढ़े। यद्यपि ये

तीन उमरमें बहुत कम और नौ सिखए थे, तो भी इन्होंने लटजेन और बटजेन नामक स्थानमें बहुसंख्यक शत्रुसेनाको बातकी बातमें परास्त कर डाला। नेपोलियनने ड्रेसडेनको कब्जेमें कर लिया। साकसनीके राजाने नेपोलियनका पक्ष नहीं छोड़ा था, इसीसे शत्रुओंने उनके राज्य पर आक्रमण किया। अभी नेपोलियनने उन्हें अपने राज्यमें पुनः प्रतिष्ठित किया। इसके बाद कुछ दिन तक लड़ाई बन्द रखनेके लिये रूस-सम्राट्ने प्रस्ताव किया। सन्धिस्थापनकी आशा पर नेपोलियनने उसे स्वीकार कर लिया। अष्ट्रीयसम्राट्के मध्यस्थमें सन्धिकी बातचीत होने लगी, किन्तु सन्धि करनेकी राजाओंकी इच्छा न थी। वे अच्छी तरह प्रस्तुत नहीं थे इस कारण उन्होंने कुछ काल तक युद्ध बन्द रखा था। जब वे अच्छी तरह प्रस्तुत हो गए, तब अष्ट्रीयसम्राट् अपने सम्बन्धको ओर कुछ भी ख्याल न करते हुए तीन लाख सेनाके साथ युद्ध करनेके लिए तैयार हो गए। इसके बाद वे सबके सब भयुक्तिसंगत दावा कर बैठे; क्योंकि ऐसा करनेसे नेपोलियन स्वीकार नहीं करेंगे। जो कुछ हो, इस समय नेपोलियन यदि सन्धिसूत्रको स्वीकार करते, तो चारों ओर शान्ति विराजती। कितना ही अपमानकर और लज्जाजनक क्यों न होता नेपोलियनको वह सन्धि स्वीकार करना कर्त्तव्य था। अष्ट्रीयसम्राट्ने जब देखा कि नेपोलियन इसमें राजी नहीं हैं, तब उन्होंने भी शत्रुके दलमें योग दिया। शत्रुओंने चारों ओरसे नेपोलियनको घेर लिया। ड्रेसडेनके युद्धमें नेपोलियनने रूस, प्रूस और अष्ट्रीयसेनाके ऊपर जय लाभ की। अनेकों शत्रुसेना मारी गईं। किन्तु युद्धके बाद नेपोलियनके सहसा पीड़ित हो जानेसे युद्ध-जयका सम्यक् फल वे लाभ कर न सके। नहीं तो युद्धके बाद ही शत्रुगण सन्धि करनेको बाध्य होते। लेकिन ईश्वर इस समय उनके अनुकूल थे।

तदनन्तर यूरोपीय राजगण चारों ओरसे नेपोलियन पर आक्रमण करने लगे। खण्डयुद्धमें जहां नेपोलियन स्वयं उपस्थित नहीं रहते थे, उन सब युद्धोंमें वे जयी होने लगे। अन्तमें लिपजिक नगरमें दोनों पक्षकी सेनासे मुलाकात हो गई। मिश्रित राजाओंके पक्षमें प्रायः ४ लाख सेना थी और नेपोलियनके पक्षमें केवल डेढ़ लाख। दो दिन तक घनघोर युद्ध होता रहा। तीस हजार सक्सन-सेना युद्धके समय नेपोलियनका पक्ष छोड़ कर शत्रुदलमें मिल गई। इससे नेपोलियन जरा भी न डरे, लेकिन इस समय इन्हें मालूम पड़ा कि युद्धकी सामग्री कुल शेष हो गई, उतनी भी गोली या बारूद नहीं है जिससे दूसरे दिन युद्ध किया जाय। अतः इस समय नेपोलियनको लड़ाईमें पीठ दिखानी पड़ी। इसके पहले इन्होंने बर्लिन जीत कर वहां सैन्यसंस्थापन करनेको सोचा था, किन्तु सेनापतिकी इच्छा नहीं होनेसे वे वैसा कर न सके। अभी इन्हें हट कर फ्रान्ससीमामें आना पड़ा। चारों ओरसे फ्रान्स आक्रान्त हुआ। पङ्गपालको तरह शत्रु-सेना फ्रान्समें प्रवेश करने लगी। इस समय नेपोलियनने स्पेनके राजकुमार फर्डीनेण्डको पितृराज्य छोड़ दिया। किन्तु इस पर भी युद्ध शान्त न हुआ। स्पेनीय और अङ्गरेजी सेनाने दक्षिणकी ओरसे फ्रान्स पर आक्रमण किया। पूर्व दिशासे अष्ट्रीयसेना दलके दलमें अग्रसर हुई। उत्तरसे रूस, प्रूस और स्वीडेनकी सेनाने फ्रान्सको घेर लिया। नेपोलियन अपना वीरत्व और समरकौशल दिखलाते हुए तीन मास तक शत्रुओंको रोके रहे। किन्तु एक शत्रुदलके विनष्ट होनेसे नया दल आ कर उसकी पुष्टि करने लगा। किन्तु नेपोलियन नया दल संग्रह करनेमें बिलकुल असमर्थ थे। ऐसी हालतमें भी नेपोलियनने मुट्ठी भर सेनासे बहुसंख्यक शत्रुसेनाको परास्त किया। किन्तु इस पर भी इन्हें कोई अच्छा फल हाथ न लगा। लाखों शत्रुसेनाको वे अपनी हजार सेनासे कब तक रोके रख सकेंगे। जब ये इधर एक ओर संभालने पर थे, तब उधर शत्रुसेना दूसरी ओर चढ़ाई कर देती थी। तीन मास अविश्रान्त युद्धके बाद शत्रुसेनाने राजधानी पारी नगर पर अधिकार जमा लिया। इनके विश्वस्त सेनापति और कर्मचारिगण छिपके शत्रुओंका साथ देते थे। लेकिन सेना और जनता नेपोलियनके लिए जान देनेको प्रस्तुत थी।

यूरोपीय राजाओंने बोर्बोंवंशीयोंको फ्रान्सके राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया। नेपोलियन यदि चाहते तो कुछ दिन और युद्ध चला सकते थे। लेकिन अन्तर्विद्रोह

और तथा शोणितपात होना उन्होंने अच्छा न समझा। अतः भूमध्यसागरस्थ एलबा नामक क्षुद्रद्वीपका आधिपत्य और फ्रान्ससे कुछ वृत्ति पा कर वे एलबाको चल दिए। सैकड़ों प्रभुभक्त रक्षीसेना भी उनके साथ जाने लगी। इनके स्त्रीपुत्र उस समय अष्ट्रीय सम्राट्‌के यहां थे, इस कारण उनके साथ जा न सके।

एलबा द्वीप पहुंच कर नेपोलियनने वहांके अधिवासियोंको उन्नत करनेमें मन दिया। पथ घाट प्रस्तुत होने लगा। नेपोलियन निष्कर्मा हो कर बैठना पसन्द नहीं करते थे बल्कि उन्हें यह कष्टकर मालूम पड़ता था। वहां इन्होंने यथासाध्य प्रजाहितकर कार्य आरम्भ कर दिया। इस समय कितने विदेशी मनुष्य उनसे मिलने आया करते थे। आप भी उनके साथ अमायिक व्यवहार करते और अपनी शेष युद्धविषयक कथा कह कर उन्हें अपने पक्षमें लानेकी कोशिश करते थे। नेपोलियनका अनेक समय अङ्गरेजी दूतोंके साथ बातचीत करनेमें बीतता था। जब ये फ्रान्समें राज्य करते थे उस समय घूमने फिरनेका इन्हें अवकाश नहीं मिलता था। यहां आ कर ये खूब घूमने लगे। शरीर भी पहलेसे कुछ अधिक बन ठन गया।

इधर फ्रान्समें १८वें लुई राजा हुए, चारों ओर असन्तोषका बीज अङ्कुरित होने लगा। नेपोलियन प्रजापक्षके सम्राट् थे, वंशमर्यादाकी अपेक्षा गुणका अधिक आदर करते थे। किन्तु लुई पुरानी रीतिके अनुसार वंशमर्यादाके पक्षपाती हुए। फ्रान्सके इतने बड़े विप्लवमें भी उन्हें ज्ञान न हुआ। अतः वे बहुत जल्द प्रजाके अप्रिय बन गए। शत्रु द्वारा सिंहासन पर बिठाये जानेके कारण वे जनताके अप्रियभाजन भी हुए। अभी सब कोई नेपोलियनके पुनरागमनकी कामना करने लगे। इस समय अष्ट्रियाकी राजधानी भियेना नगरमें यूरोपीय राजाओंकी बैठक होती थी। वे वहां बैठ कर राजनीतिघटित सभी विषयों पर विचार करते थे। उन्होंने नेपोलियनको स्थानान्तरित कर किसी सागरमध्यस्थ द्वीपमें बन्द रखना युक्तिसंगत समझा। यह संवाद पा कर नेपोलियन बहुत डर गए। विशेषतः स्त्री-पुत्रको उनके साथ मिलने न देना अष्ट्रीय सम्राट्‌ने मानो दारुण निष्ठुरताका परिचय दिया था। फ्रान्ससे नेपोलियनको जो वृत्ति मिलती थी वह भी बन्द कर दी गई। अब नेपोलियन स्थिर रह न सके। फरासियोंका मनोभाव समझ कर उन्होंने फ्रान्सकी यात्रा कर दी और १८१५ ई०को १ली मार्चको वे फ्रान्सके उपकूलमें पहुंचे। उनके साथ कुछ शरीररक्षी सेना भी थी। किन्तु ज्यों ज्यों आगे बढ़ते गये, त्यों त्यों सेनाकी संख्या भी बढ़ने लगी। राजा लुईने नेपोलियनकी गति रोकनेके लिये जो सेना भेजी थी वह भी उनकी सेनामें मिल गई। २०वीं मार्चको नेपोलियन राजधानीमें आ धमके। सर्वसाधारणने बड़ी धूमधामसे इनका स्वागत किया। लुई जान ले कर भागे। नेपोलियनकी पक्की धारणा थी कि यूरोपीय राजगण उनके साथ सन्धि न करेंगे, तो भी पुनः एक बार इन्होंने सन्धिकी चेष्टा की। किन्तु इनके दूत किसी राज्यमें प्रवेश कर न सके। उन सब राजाओंने नेपोलियनका आगमनसम्वाद सुन कर पुनः युद्ध करनेका विचार किया। दस लाख सेनाको फ्रान्स पर आक्रमण करनेका हुक्म मिला। अंगरेज-सेनापति डूक आव वेलिङ्गटन उनके प्रधान सेनापति नियुक्त हुए। इधर नेपोलियन भी युद्धका आयोजन करने लगे। उनकी चेष्टासे एक लाख तीस हजार सेना युद्धके लिये तैयार हुई। नेपोलियनने समझा था कि प्रूस और अङ्गरेजी सेनाको एक साथ मिलनेका अवसर न दें और तब आक्रमण कर उन्हें परास्त करें। लेकिन स्वदेशद्रोही द्वारा शत्रुओंको नेपोलियनके सभी संवाद मालूम हो जाते थे। यहां तक कि युद्धारम्भके कुछ पहले दो सेनापति शत्रु दलमें मिल गए और उन्होंने नेपोलियनकी गुप्त मन्त्रणा प्रकाश कर दी। इतना होने पर भी नेपोलियनने १४वीं जूनको प्रूससेना पर आक्रमण कर उन्हें परास्त कर दिया। वे जिससे अंगरेजोंके साथ मिल न सकें, इसके लिये उन्होंने तीस हजार सेना उनके साथ भेजी और सत्तर हजार सेनाके साथ अङ्गरेजीसेनाका सामना किया। १७वीं जूनको दोनों सेनायें युद्धमें इ हो गईं, लेकिन उस दिन समय अधिक नहीं रहनेके कारण युद्धारम्भ न हुआ। रातको मूसलधार वृष्टि हुई। यही वृष्टि नेपोलियनको काल थी। इस रातको यदि

वृष्टि न होती, तो यूरोपका मानचित्र भिन्नरूप धारण करता। नेपोलियन समस्त शत्रुसैन्यको परास्त कर जय लाभ करते और फिरसे फ्रान्समें अपनी गोटी जमानेमें कृतकार्य हो सकते थे। लेकिन होनहार हुए बिना नहीं टलती। यही-वृष्टि नेपोलियनके सर्वनाशका कारण हुई। मट्टीके गीली हो जानेसे सवेरे लड़ाई नहीं छिड़ी, क्योंकि तोपश्रेणीको उपयुक्त स्थान पर रखनेकी असुविधा दीख पड़ी। दिनके बारह बजे युद्ध शुरू हुआ। फरासीसी यदि सवेरे युद्ध शुरू कर देते, तो दो बजेके पहले ही वह शेष हो जाता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। फरासियोंने अभिमानमें आ कर अंग्रेजों पर दोनों ओरसे आक्रमण कर उन्हें पीछे हटा दिया। अङ्गरेजी सेनाके मध्य भागमें पदातिसेना अठारह चतुष्कोण आकारमें अवस्थित थीं। अंगरेजी सेनापतिकी चालीस हजार सेनाके सिवा और सब जिधर तिधर भग गई थी। फरासी अश्वारोही सेनाने अभी इस चतुष्कोण पर धावा बोल दिया। उनकी संख्या बारह हजार होने पर भी अमानुषिक वीरत्व दिखा कर उन्होंने अंगरेजी १६ तोपों पर अधिकार जमाया और अठारह चतुष्कोण पर आक्रमण कर उन्हें छत्रभङ्ग कर डाला। इस समय सात बज चुके थे। अंगरेजीसेनापति रातदिन केवल प्रूससेनाके आगमनकी प्रतीक्षा करते थे। इसी समय फरासी-सैन्य दक्षिणके भागसे साठ हजार प्रूससेना आ धमकी। इस समय उनके अनुसरणकारी फरासी सेनापति यदि पहुंच जाते, तो भी नेपोलियनकी ही जीत होती। किन्तु वे आये नहीं। बुद्धिमान् फरासी सेना विपद्‌का गुरुत्व समझ कर धीरे धीरे नौ दो ग्यारह होने लगी, केवल बारह सौ रक्षीसेना नेपोलियनके साथ रह गई। उन्होंने यथासाध्य अंग्रेजोंकी गति रोकनेकी चेष्टा की। नेपोलियनने सङ्कल्प कर लिया था कि वे शेष पर्यन्त इसी सैन्य-दलके साथ रह कर मृत्युका आलिङ्गन करेंगे, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। घोड़ेकी लगाम पकड़ कर सेनापतिने उन्हें लौटा लिया। उनके शरीररक्षिगण मृत्युका निश्चय करके समरानलमें कूद पड़े और एक एक कर सुरधामको सिधारे।

नेपोलियन फ्रान्स लौटे। इस समय भी अस्सी हजार सेना युद्धके लिये तैयार थी। किन्तु फ्रान्सकी जातीय-समितिने नेपोलियनको सिंहासनका त्याग कर देनेके लिये अनुरोध किया। साधारणतन्त्रके पक्षपातियोंने नेपोलियनके लड़केको राजा बनाना चाहा। उनके पद-त्याग करनेसे फ्रान्स रक्षा पायेगा यह सुन कर नेपोलियन-ने जरा भी विलम्ब न किया और राजचिह्न त्याग कर अन्यत्र चले जानेका सङ्कल्प कर लिया। किन्तु कार्यतः शत्रु द्वारा राजा लुई पुनः प्रतिष्ठित हुए।

अमेरिकाके युक्तराज्यमें जा कर आश्रय लेना नेपो-लियनकी एकान्त इच्छा थी। लेकिन शत्रुओंकी आंखों-के सामने अमेरिका जाना सहज नहीं है यह देख कर कुछ नौसेनापतियोंने उन्हें गुप्तभावमें ले जाना चाहा, पर नेपोलियन इस पर राजी न हुए। अन्तमें जब इन्होंने सुना कि, 'इङ्गलैण्डमें वे पदोचित अतिथिसत्कार लाभ कर सकते हैं,' तब वे अंग्रेजी जहाज पर चढ़ कर इङ्गलैण्ड को चल दिये। किन्तु इस समय उदारनैतिक राजपुरुष लोग ही इङ्गलैण्डके सर्वेसर्वा थे। उन्होंने सम्मान वा धर्मकी ओर ध्यान न देते हुए नेपोलियनको सेण्टहेलेना द्वीप ले जा कर उन पर पहरा बिठा दिया। वहां कुछ अनुदारमति राजपुरुषोंका व्यवहार नेपोलियनके प्रति प्रति निन्दनीय था। क्रोध, क्षोभ, अभिमान आदिसे नेपोलियन दिनों दिन कमजोर होने लगे। उक्त द्वीपका जलवायु भी अस्वास्थ्यकर था। इसीसे वे शीघ्र ही पीड़ित हुए और १८२१ ई०के मई मासमें काराल कालके गालमें पतित हुए। अंग्रेज-गवर्मेण्टने नेपोलियनके प्रति जीवितकालमें जैसा कठोर व्यवहार किया था, मृत्यु होने पर भी उसी तरह उनकी मृतदेहको फ्रान्समें नहीं भेज कर हृदयहीनताका परिचय दिया था। किन्तु दयामयी महारानी विक्टोरियाके सिंहासनारूढ़ होने पर फरा-सियोंने नेपोलियनकी मृतदेहके लिये प्रार्थना की। विक्टोरियाने उसी समय उनकी प्रार्थना पूरी कर दी। नेपोलियनकी मृतदेह बड़ी धूमधामसे पारी शहरमें लाई गई थी।

नेपोलियनके जैसे सर्वजनप्रिय सम्राट्‌ने आज तक पाश्चात्यदेशमें जन्म लिया है ऐसा सुननेमें नहीं आता। उनका स्वभाव निर्मल और चरित्र विशुद्ध था। वे दिवसमें

जैसे सुश्री पुरुष थे, उनका स्वभाव भी वैसा ही उत्कृष्ट था। उनकी सेना देवता सरीखा उनकी भक्ति करती थी। वे सर्वसाधारणकी श्रद्धाके पात्र थे। फरासी लोग आज भी उनका नाम भक्तिपूर्वक लेते हैं। उनके नाम पर आज भी सभी उत्साहसे उत्फुल्ल होते हैं। नेपोलियनके चिरशत्रु अंग्रेज लोग भी आज उनकी भूयसी प्रशंसा करनेमें कार्पण्य नहीं दिखलाते। इधर कच्ची उमरमें उन्होंने युद्धविद्यामें जैसी पारदर्शिता दिखलाई थी, बड़े होने पर अङ्कशास्त्रमें वैसा ही नाम भी कमा लिया था। समय समय पर उनकी दयाशीलताका भी विशेष परिचय पाया गया है। जिन सब व्यक्तियोंके साथ बाल्यकालमें तथा से निकृष्टवृत्तिके अवलम्बनकालमें उनका आन्तरिक आलाप हुआ था, सम्राट्-पद पानेके साथ ही उन्होंने उन सबको यथोपयुक्त कर्मपद अथवा वेतनस्वरूप कुछ अर्थका बन्दोबस्त कर उन्हें सन्तुष्ट किया था। विद्यालयमें पढ़ते समय जिन्होंने नेपोलियनको हस्तलिपि सिखलाई थी, अर्थाभाव जताने पर वे उन बाल्यगुरुको उसी प्रकार पुरस्कार दे कर उनके उपकृत हुए थे। पूर्वोक्त बर्फका किला बनाते समय किसी सहपाठीके साथ इनकी अनबन हो गई थी इस पर बर्फके टुकड़ेसे इन्होंने उसे ऐसा खींच कर मारा कि उसके मस्तकसे लोहू बह निकला था। नेपोलियनकी उन्नतिके समय जब उस बालकने उनके पास जा कर पूर्वोक्त बातकी याद दिलाई, तब नेपोलियनने उसे पहचान लिया और यथोचित सहायता दे कर दयाकी पराकाष्ठा दिखलाई थी। जिस डिमासिग्रके अर्थसे एक दिन नेपोलियन परिवारका गुजारा चलता था, वीर नेपोलियन जब फ्रान्सके सर्ववादिसम्मत राजा हुए, तब उन्होंने उनका ऋण परिशोध कर अपनेको कृतार्थ समझा था।

नैफा (फा० पु०) पायजामे लहंगेके घेरमें इजारबंद या नाड़ा पिरोनेका स्थान।

नैब (हिं० पु) सहायक, मंत्री, दीवान।

नैबू (हिं० पु०) नीबू देखो।

नेम (सं० पु०) नयतीति नी-मन् (अर्त्तिस्तुसुहुति। उण् १।१३८) १ काल, समय। २ अवधि। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ प्राकार, दीवार। ५ कैतव, छल। ६ अर्द्ध, आधा। ७ गर्त्त, गड्ढा। ८ नाद्यादि। ९ मन्य, और। १० सायंकाल, शाम। ११ मूल, जड़। १२ अन्न, अनाज।

नेम (हिं० पु०) १ नियम, कायदा, बंधेज। २ बंधी हुई बात, ऐसी बात जो टलती न हो। ३ रीति, दस्तूर।

नेमधित (सं० त्रि०) नेमं हितः, नेम-धा-क्त, ततो धाञो हि। अर्द्धभागधारी इन्द्र।

नेमधिति (सं० स्त्री०) नेम-धा-क्तिन्, धाञो हि। १ मलधान। नेमं धीयतेऽत्र ध-क्तिन्। २ संग्राम, युद्ध।

नेमन्विष (सं० त्रि०) नमस्कार पूर्वक गमनकारी, जो प्रणाम करके अपनी राह लेता हो।

नेमनाथमिश्र एक ग्रन्थकार। नित्यनाथ देखो।

नेमादित्य—दमयन्तीकथा वा नलचम्पू नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये त्रिविक्रमभट्टके पिता और श्रीधर पण्डितके पुत्र थे। इनका गोत्र शाण्डिल्य था।

नेमावुर—मालवप्रदेशके अन्तर्गत हिन्दियाके दूसरे किनारे नर्मदा तट पर स्थित एक नगर। यह अक्षा० २२° २७' उ० और देशा० ७७° पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर होलकरराजके अधीन है।

नेमि (सं० स्त्री०) नयति चक्रमिति नी-मि। (नियोमि। उण् ४।४३) १ चक्रपरिधि, पहियेका घेरा वा चक्कर। पर्याय—प्रधि और नेमी। कूपोपरिस्थित पट्टप्रान्तभाग, कुएँके ऊपर चारों ओर बँधा हुआ ऊंचा स्थान या चबूतरा। ३ प्रान्तभाग, किनारेका हिस्सा। ४ भूमिस्थित कूपपट्ट, कूएँकी जमवट। ५ कूप समीपमें रज्जुधारणार्थ त्रिदारु यन्त्र, कूएँके किनारे लकड़ीका वह ढांचा जिस पर रस्सी रखते और जिसमें प्रायः घिरनी लगी रहती है। इसका पर्याय त्रिका है। ६ कूपके निकट समान स्थल, कूएँके समीपकी समतल जगह। (पु०) ७ नेमिनाथ तीर्थङ्कर। ८ दैत्यविशेष, एक असुरका नाम। १० वज्र।

नेमिग्राम—चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत एक ग्राम।

नेमिचक्र (सं० पु०) परीक्षितके वंशके एक राजा जो असीमकृष्णके पुत्र थे। इन्होंने कौशाम्बीमें अपनी राजधानी बसाई थी। (भागवत ९।२२।३९)

नेमिचन्द्र—एक विख्यात तार्किक। ये वैरस्वामीके शिष्य और सागरेन्द्रमुनिके गुरु थे। सागरेन्द्रके शिष्य

माणिक्यचन्द्रने १२७६ सम्वत्‌को खरचित ग्रन्थमें इनका उल्लेख किया है।

नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव—एक विख्यात पण्डित और माधवचन्द्र त्रैविद्यके गुरु। इन्हींकी सलाहसे उक्त माधवचन्द्र त्रैविद्यने मागधी भाषामें लिखित तिलोयसार वा त्रिलोकसार ग्रन्थकी टीका संस्कृत भाषामें लिखी।

नेमिचन्द्रसूरि—उत्तराध्ययनवृत्ति नामक जैनसूत्रके टीकाकार। टीकाके अन्तमें ग्रन्थकारने आत्मपरिचय दिया है। इन्होंने आख्यानमणिकोष और वीररचित टीका नामक और भी दो ग्रन्थ रचे हैं। इनका आदिनाम देवेन्द्रगणि था। पीछे इन्होंने सैद्धान्तिक शिरोमणिकी उपाधि ग्रहण की। ये बृहद्‌गच्छ शाखासम्भूत थे।

नेमितीर्थ—एक पवित्र तीर्थस्थान। चैतन्यदेव संन्यासधर्मके प्रचारके लिए जब नाना स्थानोंमें भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने इसी नेमितीर्थमें स्नान और इसके घाट पर विश्राम किया था।

नेमिन् (सं॰ पु॰) नेम ऊर्ध्वमस्यास्तीति नेम-इनि। तिनिशवृक्ष, निवास, तिनसुना।

नेमिनाथ—एक जैन तीर्थङ्कर। इनका दूसरा नाम था नेमि वा अरिष्टनेमि। ये राजा समुद्रविजयके औरस और रानी शिवादेवीके गर्भसे ९ मास ८ दिन गर्भवासके बाद हरिवंशकुलमें श्रावणी शुक्लापञ्चमी कन्याराशि चित्रानक्षत्रको सौरीपुर नगरमें अवतीर्ण हुए। इनका हस्तस्थ चिह्न शङ्ख, शरीरमान १० धनु, वर्ण श्याम और आयुःकाल हजार वर्षका था। राजकुमार असाधारण क्षमताशाली थे। वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण आपके भ्रातृसम्पर्कीय थे। हिन्दूधर्मशास्त्रमें गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्णको अनेक अलौकिक क्षमताका उल्लेख है। जनश्रुति है, कि नारायणअवतार द्वारकापति कृष्णके सिवा और कोई भी उनका पाञ्चजन्य शङ्ख बजा नहीं सकते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि नेमिनाथने श्रीकृष्णके रक्षित शङ्खको ले कर खूब जोरसे बजाया। श्रीकृष्ण दूरसे शङ्खनाद सुन कर बहुत तेजीसे उस स्थान पर पहुँच गए और वहां आ कर उन्होंने देखा कि उनके भाई ही ऐसी उत्थित ध्वनिके एकतम कारण हैं। श्रीकृष्ण ऐसी अद्वितीय क्षमता देख उनकी प्रतिद्वन्द्विता में अग्रसर हुए। भाईके असीमबल और वीर्यको ह्रास करनेके लिए चतुरचूड़ामणिने उनके पास एक सौ गोपियां भेजी थीं। गोपकुलललनाएं उनके पास पहुँच कर उन्हें नाना प्रकारसे विद्रूप करने लगीं और उनमेंसे किसीके साथ विवाह करनेको कहा। लेकिन नेमिनाथने अत्यन्त विरक्तभावसे उसे अस्वीकार किया। पीछे विशेष रूपसे लाञ्छित और तिरस्कृत होने पर वे विवाह करनेको राजी हो गए। श्रीकृष्णका उद्देश्य था कि नेमिनाथका वीर्यक्षय होनेसे ही उनके बलक्षयकी सम्भावना है, इस लिये वे हमेशा उसीकी चेष्टामें लगे रहे। अन्तमें उन्होंने गिर्नारके राजा उग्रसेनकी कन्या राज्यमतीके साथ विवाह करना चाहा *। निर्द्धारित दिनमें नेमिनाथने जूनागढ़की ओर यात्रा की। नगरमें पहुँचते ही उन्होंने देखा कि नगरवासी सबके सब विवाहोत्सवमें मग्न हैं। विवाह-यज्ञमें आहुति देनेके लिए असंख्य छाग लाये गए हैं, उन छागोंको बलि दे कर निमन्त्रित व्यक्तियोंका भोज होगा। इस आमोदके दिन असंख्य जीवहत्या और उनका चीत्कार सुन कर इनका हृदय करुणासे भर आया। मानवजीवनका सुख अति तुच्छ है, ऐसा उन्हें मालूम पड़ा; वे जीवोंकी दुर्गतिकी कथा स्मरण कर बड़े ही कातर हुए। अतः उनकी प्राणरक्षाके लिये संसाराश्रमका त्याग कर गिर्नारपर्वत पर जा पहुंचे। श्रावणमासकी शुक्लाषष्ठीको वेतस वृक्षके तले उन्होंने एक हजार साधुओंके साथ दीक्षा ग्रहण की। पीछे ५४ दिन छद्मस्थ रह कर ५५वें दिनमें आश्विनी अमावस्याको शत्रुञ्जय नगरमें उन्हें ज्ञानलाभ हुआ। इसके बाद सात सौ वर्ष ज्ञानमार्गमें विचरण कर आषाढ़की शुक्लाष्टमी तिथिको इन्होंने शत्रुञ्जय नगरमें पद्मासनसे बैठ मोक्षलाभ किया। उज्जयन्त पर्वतके † जिस स्थान पर उनकी मुक्ति हुई थी, वह स्थान जैन-

* जूनागढ़के दुर्गके निकटवर्त्ती भूमरियोकुओ नामक स्थानके पार्श्वदेशमें इस राजप्रासादका ध्वंसावशेष आज भी देखनेमें आता है। Ind. Ant. Vol. II. p. 139.

† संस्कृत उज्जयन्त और प्राकृत उज्जन्त गिर्नारका नामान्तरमात्र है और वर्त्तमान काठियावाड़ जिलेके जूनागढ़के निकट अवस्थित है। कोई कोई इस स्थानको रैवत बतलाते हैं। उज्जयन्त देखो।

मानका ही पवित्र तीर्थ माना जाता है। यहां उनके पदचिह्नके ऊपर एक छत्र निर्मित है जो नेमिनाथ-छत्रि कहलाता है। इसके दक्षिण-पश्चिममें जो गुहा है, वह राजमतीका वासगृह मानी जाती है *।

दाक्षिणात्यवासी जैनियोंके उत्तरपुराणमें लिखा है कि त्रिखण्डाधिपति अर्थात् त्रिजगत्‌के अधिपति श्रीकृष्णने तीर्थङ्कर नेमिनाथका शिष्यत्व ग्रहण किया था §।

हेमचन्द्रसूरि-विरचित त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित नामक ग्रन्थमें नेमिनाथका आनुषङ्गिक इतिहास विस्तृतरूपसे लिखा है।

नेमिवृक्ष (सं॰ पु॰) श्वेतखदिरवृक्ष, सफेद खैरका पेड़।

नेमिशाह—रसतरङ्गिणीटीकाके प्रणेता।

नेमिसेन—दिगम्बर जैनियोंके माथुरसम्प्रदायके अन्तर्भुक्त अमितगतिके शिष्य और माधवसेनके गुरु। इन्होंने कमलाकर नामक एक व्यक्तिको स्वधर्ममें दीक्षित किया था।

नेमी (सं॰ स्त्री॰) नेमि बाहुलकात् ङीष्। तिनिशवृक्ष, तिनसुना।

नेमी (हिं॰ वि॰) १ नियमका पालन करनेवाला। २ धर्मकी दृष्टिसे पूजा, पाठ, व्रत, उपवास आदि नियम-पूर्वक करनेवाला।

नेय (सं॰ त्रि॰) १ लाने योग्य। २ अतिवाहन।

नेयतङ्कराय मन्द्राजप्रदेशके त्रिवाङ्कुड़राज्यके अन्तर्गत एक तालुक। इसका भूपरिमाण २१ वर्गमील है। इसमें कुल मिला कर १५ ग्राम लगते हैं।

नेयपाल (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद।

नेयार्थता (सं॰ स्त्री॰) काव्यदोषभेद।

नेर—१ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २१° ५६' उ॰ और देशा॰ ७४° ३४' पू॰के मध्य, धौलियासे १८ मील पश्चिम पांजरानदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। पहले यह नगर विशेष समृद्धिशाली था। चारों ओर कब्र रहनेके कारण ऐसा प्रतीत होता है कि एक समय यहां अनेक मुसलमानोंका वास था। अभी पूर्वसौन्दर्यका दिनों दिन ह्रास होते देखा जाता है।

२ बरारके अमरौती जिलेके अन्तर्गत मोर्सी तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ २१° १५' उ॰ और देशा॰ ७८° २' पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारके करीब है। इसके निकटस्थ पर्वत पर पिङ्गलीदेवीका मन्दिर है। एक समय यह बहुत बड़ा नगर था।

नेरनाला—बरारप्रदेशके अन्तर्गत एक जिला। एलिचपुरसे ले कर वरदानदी तक समस्त पार्वतीय भूभाग इस जिलेके अन्तर्गत है। इसका प्राचीन नाम नारायणालय है। नेरनाला नगर ही मुसलमान राजाओंके समयमें इसका सदर गिना जाता था। १५८२ ई॰में अबुलफजलने लिखा है, 'इस पर्वतशिखरस्थ नगरमें एक बृहत् दुर्ग और अनेक प्रासादतुल्य गृहादि हैं।' यह नगर पूर्णानदीके किनारे अवस्थित है। अभी इसकी पूर्व समृद्धि नष्ट हो गई है, जनसंख्या दिनों दिन घट रही है।

नेर-पिङ्गलाय—बरार राज्यके अन्तर्गत अमरावती जिलेका एक नगर।

नेरवती (हिं॰ स्त्री॰) नीले रंगकी एक पहाड़ी भेंड़ जो भोटानसे लद्दाख तक पाई जाती है। इसके ऊनके कम्बल आदि बनते हैं।

नेराली—बम्बई प्रदेशके बेलगांव जिलान्तर्गत एक नगर। यह शङ्केश्वर और हुकेरी नामक स्थानके मध्य अवस्थित है। यहां एक दुर्ग है। सिदोजीराव निम्बलकर (अप्पासाहब)ने १७९८ ई॰में इस दुर्ग पर आक्रमण किया था।

नेरि (नारि)—मध्यप्रदेशके चांदा जिलेकी वरोरा तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा॰ २०° २८' उ॰ और देशा॰ ७९° २९' पू॰के मध्य चिमूरसे ५ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। वर्त्तमान नगरके पार्श्वमें ही पुरातन नेरिनगरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। पुरातन नगर श्रीहीन हो गया है। यहां धान तथा तरह तरहके अनाज उपजाये जाते हैं। इसके अलावा यहांसे तांबे और पीतलके बरतन दूर दूर देशोंमें भेजे जाते हैं।

---

* गिरनार-माहात्म्य—१३वां अध्याय। विशेष विवरण जैन शब्दमें देखो।

§ Wil. Mack. Col. Vol. I. p. 146 and Ind. Ant. 11, p. 139.

पुरातीन नगरांशमें दो भग्नदुर्ग देखनेमें आते हैं। इसके अलावा यहां एक अत्यन्त प्राचीन मन्दिर भी है।

नेरिञ्जपेद—कोयम्बतूर जिलेका एक नगर। यह श्रीरङ्ग-पत्तनसे ८८ मील दक्षिण-पूर्व कावेरीनदीके पश्चिमी किनारे अवस्थित है। यहांके निकटवर्ती पहाड़ पर अनेक भालू पाये जाते हैं।

नेरूर—१ बम्बई प्रदेशके सावन्तवाड़ी जिलेका एक नगर। यह बलावली और महम्मपुर ग्रामके मध्य बसा हुआ है तथा सुन्दरवाड़ी नगरसे १५ मील उत्तरमें है। ६२२ शकमें चालुक्यवंशीय राजा विजयादित्यने देवस्वामी नामक एक व्यक्तिको यह नगर दान किया था। यहांसे अनेक शिलालिपियां पाई गई हैं।

२ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलान्तर्गत करूर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ११° ०' १५" उ० और देशा० ७८° ११' ४०" पू०के मध्य, करूरसे ५॥ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां शिव और विष्णुके दो प्राचीन मन्दिर हैं।

नेरे (हिं० क्रि०-वि०) निकट, पास, समीप।

नेरगल—बम्बई प्रदेशके धारवार जिलान्तर्गत एक नगर। यह कूदलसे दो मील दक्षिण पश्चिम और हाङ्गलसे १४ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहांका सर्वेश्वर-मन्दिर बहुत पुराना है। इसकी छत २४ सुन्दर स्तम्भों-के ऊपर रचित है। सर्वेश्वरके मन्दिरमें ८८८ शकमें उत्कीर्ण एक शिलाफलक है। इसके अलावा निकट-वर्त्ती पुष्करिणी तट पर तथा बसप्पा मन्दिरमें और भी बहुतसे शिलालेख देखनेमें आते हैं।

नेरो—हजारीबाग जिलेके भाण्डेश्वर पर्वतके निकट और अक्तीनदीको अववाहिकाके पश्चिम १७३७ फुट ऊंचा एक पर्वत है।

नेर्ला—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत वलवा उप-विभागका एक नगर। यह अक्षा० १७° ५' उ० और देशा० ७४° १६' पू०, सतारासे ४४ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ७५२४ है।

नेलकोट—मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह पेनकोण्डासे २५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। इस ग्रामके पास एक प्राचीन दुर्ग है जो पलिगारोंके समयका बना हुआ प्रतीत होता है।

नेलली—मन्द्राजके कोयम्बतूर जिलान्तर्गत धारापुर तालुकका एक ग्राम। यह धारापुर नगरसे १३ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके शिव और विष्णु-मन्दिरमें बहुतसे शिलाफलक उत्कीर्ण हैं।

नेलवेली—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत तिन्नवली वा तिन-नेलवेली जिलेका प्राचीन नाम*। तिन्नेवल्ली देखो।

नेलमङ्गल—महिसुर राज्यके अन्तर्गत बङ्गलूर जिलेका एक नगर। यह अक्षां १३° ६' १०" उ० तथा देशा० ७७° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। यह नगर नेलमङ्गल तालुकका सदर है।

नेलम्बूर—१ मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलेके अन्तर्गत पल्लदाम तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १०° ४६' १५" और देशा० ७७° ३८' २०" पू०के मध्य अवस्थित है।

२ उक्त प्रदेशके मलवार जिलान्तर्गत एर्नाद तालुकका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० ११° १७' उ० और देशा० ७६° १५' ४५" पू०के मध्य अवस्थित है। कोई कोई इस स्थानको नीलम्बूर कहते हैं।

नेलसन होरेशिव—इङ्गलैण्डके एक प्रसिद्ध नौसेनापति। १८वीं शताब्दीके अन्तमें इनके द्वारा इङ्गलैण्डके नौसेना-का गौरव विशेष वर्द्धित हुआ था। जब ये शिक्षावस्था-में थे, उस समय एक बार भारतवर्ष भी पधारे थे। भारतके उपकूलमें ही इनको शिक्षा पूरी हुई। लोग इन्हें 'ऐडमिरल नेलसन' कहा करते थे।

इङ्गलैण्डके अन्तर्गत नरफोकशायरके वार्नहम-टोपमें १७५८ ई०को नेलसनका जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम था रेभ० सि० नेलसन। ये अपने पिताके ४थे लड़के थे। नार्थ वेशम नगरमें इन्होंने पढ़ना लिखना सीखा। लेकिन जब इनकी उमर केवल १२ वर्षकी थी, तभी इनके मामा कप्तान साकलिङ्गने इन्हें नौ-सेनाविभागमें शिक्षार्थिरूपमें नियुक्त किया। कप्तान साकलिङ्ग 'रेजोनेबल' नामक जहाजके अध्यक्ष थे। कुछ दिन बाद वे भांजेको जहाज पर शिक्षा देने लगे। एक समय उस जहाजको वेष्ट-इण्डीज द्वीपपुञ्जको ओर ले जानेका हुकुम हुआ। नेलसन भी मामाके साथ जहाज पर गए। जब वे लौटे तब नाविकविद्यामें इन्होंने

* Ind. Ant, Vol. XXI, p. 83.

विशेष पटुता लाभ की। इस समय राजकीय कर्म नहीं करेंगे, ऐसा इन्होंने सङ्कल्प कर लिया। किन्तु कुछ दिन के बाद ही इनके मामा जब 'ट्रायम्फ' नामक जहाजके अध्यक्ष नियुक्त हुए, तब फिर इन्हें उनके साथ जाना पड़ा। १७७३ ई०में कमडोर फिप्स और कप्तान लाट बोजी जब उत्तर-पश्चिम समुद्र हो कर पथके आविष्कारमें बाहर निकले, तब युवक नेलसन भी लाट बोजीके जहाज पर भर्त्ती हो कर उनके साथ साथ गये। इस समय अपने कौशल, साहस आदिसे इन्होंने अच्छा नाम कमा लिया।

पीछे १७७३ ई०के अक्तूबर मासमें इन्हें सि-हर्ष नामक जहाज पर नौकरी मिली। वे अपनी दैनन्दिन लिपिमें लिख गये हैं कि, "कप्तान फार्मरके २० कमान-युक्त जहाजके प्रधान मस्तूल पर चढ़ कर चारों ओर दृष्टि रखनेके लिये मैं ही पहले पहल नियुक्त हुआ। कुछ दिन बाद मुझे 'कोयाटर-डेक'-में काम करना पड़ा। इस जहाज पर रहते समय मैंने पूर्व भारतीय द्वीपपुञ्जमें और बङ्गालसे बसोराके मध्य जितने स्थान हैं प्रायः सभी देखे हैं।" जो नौदल महाराष्ट्र-युद्धके समय भारत-की ओर आया था, ऐडमिरल सर एडवर्ड ह्यूज उसके अध्यक्ष थे। "सि-हर्ष" जहाज कप्तान फार्मरके अधीन इसी दलमें था। अब्राहम परसन्सके भ्रमणवृत्तान्तसे भी जाना जाता है कि १७७६ ई०को १७ वीं फरवरीको 'सि-हर्ष' जहाज बम्बई-उपकूलमें लङ्गर डाले हुए था। नेलसनकी दैनन्दिन लिपिमें उनके भारतदर्शन-की अभिज्ञताका विषय वा उनके देखे हुए नगरादिका कोई विवरण लिपिबद्ध नहीं है। नेलसनने १७७७ ई०में स्वदेश आ कर लेफ्टेनेण्टकी परीक्षा दी। परीक्षा-में उत्तीर्ण होनेके साथही वे लाउस्टफट्‌ फ्रिगेटके द्वितीय अध्यक्ष पद पर नियुक्त हुए। अमेरिका-युद्धमें यह फ्रिगेट वहां गया था। नेलसनने वहां भी नाम कमा लिया था। १७७८ ई०में इन्होंने 'पोष्ट-कप्तान'के पद पर नियुक्त हो कर 'हिचिनब्रोक' जहाजकी अध्य-क्षता लाभ की। यह जहाज ले कर वे वेष्टइण्डीज द्वीपपुञ्जमें गये और मेक्सिकोपसागरके तीरवर्त्ती फोर्ट सानजुअनको जीतनेके लिये विशेष यत्नवान् हुए। इन युद्धके बाद वे रोग ग्रसित हुए। आरोग्यता लाभ करने-के कुछ दिन बाद ही 'अलिबमारलि' जहाजके अध्यक्ष हुए। पीछे इन्हें बोरियस जहाजकी अध्यक्षता मिली। उस समय ड्यूक-आव-क्लारेन्स (ये ही चतुर्थ विलियम नामसे इङ्गलैण्डके राजा हुए) पेगासस नामक जहाजके कप्तान थे। यह जहाज नेलसनके अधीन था। इसी समय नेलसनका विवाह हुआ। पहले इन्होंने नेभिस द्वीपके विचारपति मि० विलियम एडवर्डकी कन्यासे, पीछे उसी द्वीपके डा० नेसबिटकी विधवा पत्नीसे विवाह किया। दूसरी पत्नीके गर्भसे नेलसनके कोई सन्तान उत्पन्न न हुई।

इसके बाद फ्रान्सके साथ जब घोर युद्ध चल रहा था उस समय 'आगमेमनन' जहाजके अध्यक्ष हो कर नेल-सन टूलोंबन्दरके सामने उपस्थित हुए। बेष्टिया अवरोध-के बाद वे दक्षिण काल्भीको गये। वहांके नौ-युद्धमें इनकी दोनों आंखें नष्ट हो गईं। इस समय इनके युद्धकौशल और तीक्ष्णबुद्धिकी कथा चारों ओर फैल गई। १७९५ ई०में ऐडमिरल हथामके अधीन नेलसनने फरासी जहाजदलके साथ बड़े साहससे युद्ध किया था। १७९६ ई०में मिनर्भा जहाज पर 'कमोडोर' नियुक्त हो कर इन्होंने फरासियोंके 'लासेबिन' नामक जहाजको रोक रखा। किन्तु जब इन्होंने देखा कि उनकी मददमें स्पेनीय जहाज पहुंच गया है, तब वे उसे छोड़ नौ दो ग्यारह हो गये। इसके बाद ही इन्होंने सेण्ट-भिनसेण्ट बन्दरको पार कर छिपके फरासी जहाजका पीछा किया। पीछे इन्होंने स्यानटिसीमा त्रिणिदादा, सान्निकोलस और सानजोसेफ पर आक्रमण कर उन्हें जीत लिया। इस कार्यके पुरस्कारस्वरूप नेलसनको के० सी० बी० की उपाधि मिली। पीछे ये केडिज-अवरोधकारी जहाजदल-के अधिनायक हो कर भेजे गये। केडिजनगरको इन्हों-ने गोलीसे उड़ा देना चाहा था लेकिन इसमें सफलता प्राप्त न हुई। तदनन्तर टेनिरिफके युद्धमें गोलीके आघात-से नेलसनकी दाहिनी भुजा नष्ट हो गई। इस युद्धमें अंग्रेजोंकी जीत नहीं हुई। आघात पा कर वे स्वदेशको लौट गये और इन्हें वार्षिक एक हजार पौण्डकी वृत्ति मिलने लगी। पेन्शन पानेके आवेदन पत्रमें लिखा है, कि बेष्टिया और काल्भी अवरोधमें इन्होंने यथेष्ट बहा-

र्यता को और इन्हें सब मिला कर १२० बार युद्ध करने पड़े थे। पीछे बहुत दिन तक नेलसन किसी कार्यमें नियुक्त नहीं हुए।

तदनन्तर जब यह खबर पहुंची कि नेपोलियन बोनापार्टने टूलोंका परित्याग किया है, तब नेलसन अर्ल माव सेण्टभिनसेण्टकी सलाहसे नेपोलियनका अनुसरण करनेके लिये भेजे गये। नेलसन जङ्गी जहाज ले कर इटलीका उपकूल घूम कर उनको खोजमें अलेकसन्द्रियाकी ओर अग्रसर हुए। लेकिन वहां उन्हें न देख कर वे हताश हो पड़े। पीछे नेलसनने सिसलीकी यात्रा की। सिसलीमें विशेष संवाद पा कर १७९८ ई०में नेलसने पुन: अलेकसन्द्रिया होते हुए आबुकीके उपसागरके मुहाने पर उपस्थित हुए। यहां उन्होंने फरासियोंको प्रथम श्रेणीके कुछ फ्रिगेटोंको लङ्गर डाले हुए देखा। ऐडमिरल नेलसनने यह देखनेके साथ ही उसी समय लड़ाई शुरू कर देनेका हुकुम दिया। निकटवर्त्ती एक द्वीपके ऊपर नेपोलियनके जङ्गी जहाजोंकी रक्षाके लिये कमानश्रेणी सज्जित थी। युद्ध छिड़ गया; नेलसनके कुछ जहाज शत्रुके जहाज-दलमें प्रविष्ट हुए। फरासी नौ-बल इस प्रकार दोनों ओरसे आक्रान्त हो कर तंग तंग आ गया। शत्रुको प्रायः हार हो गई थी, इसी समय नेलसनके 'एलवेरिएण्ट' नामक जहाजमें आग लग गई। इस आगने इतना भयंकर रूप धारण किया कि अनेक चेष्टा करने पर भी वह न बुझी। दूसरे दिन सबेरे देखा गया कि शत्रुपक्षके दो जहाज अक्षत अवस्थामें उपसागरसे बाहर हो कर सागरके गर्भमें जा रहे हैं, अन्य सभी जहाज अकर्मण्य हो गये हैं। इस युद्धका सम्वाद और जयको खबर इङ्गलैण्ड पहुंची। नेलसन सम्मानसूचक 'बेरन आव दि नाइल'की उपाधिसे भूषित किये गये और वे तभीसे लार्डको श्रेणीमें गिने जाने लगे। उनकी पेन्शन भी बढ़ा कर ३ हजार कर दी गई। विदेशमें भी इन्हें सम्मान लाभ हुआ था। नेपल्सराजने इन्हें अपने राज्यके मध्य भूसम्पत्ति दे कर ड्यूक आव ब्रण्टिको उपाधिसे भूषित किया। इसके बाद लार्ड नेलसन सिसली गये। इस समय नेपल्समें विद्रोह उपस्थित हुआ था। राजा प्रायः राज्यच्युत हो गये थे। नेलसनको ज्यों ही इसकी खबर पहुंची, त्यों ही वहां जा कर इन्होंने विद्रोह दमन किया और राजाको पुनः गद्दी पर बिठाया। देश लौट कर लार्ड नेलसन बड़े समारोहसे अभ्यर्थित हुए। इस समय यूरोपके उत्तरांशके अन्यान्य राजाओंने मिल कर इङ्गलैण्डको तहस नहस कर डालनेका षड्यन्त्र रचा। अंगरेज-गवर्मेण्ट यह सम्वाद पा कर डर गई और इस चेष्टाको व्यर्थ करनेके लिये एक बेड़ा जङ्गीजहाज तैयार किया तथा सर हाइड पार्करको प्रधान अध्यक्ष और लार्ड नेलसनको द्वितीयपद पर नियुक्त कर जहाजके साथ भेज दिया।

वह बेड़ा जब काटिगट उपसागरमें पहुंचा, तब दिनेमारोंने प्रणाली हो कर अंगरेजरणतरीको जानेसे रोका। २री अप्रिलको तीसरे पहरमें लड़ाई छिड़ गई। दिनेमारोंके १७ जहाज भस्मीभूत और निमज्जित वा अधिकृत हुए। डेन्मार्कके राजाने कोई उपाय न देख नेलसनके साथ सन्धि कर ली। पीछे लार्ड नेलसनने स्वीडेनके राजाको वाध्य करके उनसे बालटिकसागरमें अंगरेज वाणिज्यका आदेश ले लिया। इस कामके बाद नेलसन देश लौटे। इस बार इन्हें 'भाइ काउण्ट'-का पद प्राप्त हुआ।

१८०१ ई०में नेपोलियन बुयलनिके निकट इङ्गलैण्डको जीतने की कामनासे विपुल आयोजन कर रहे थे। नेलसन इस आयोजनको ध्वंस करनेके लिये अग्रसर हुए। इस बार विशेष चेष्टा करने पर भी लार्ड नेलसन शत्रुका कुछ अनिष्ट कर न सके और लाचार हो देशको लौटे। किन्तु दो एक वर्षके बाद ही पुनः युद्ध छिड़ गया। १८०३ ई०के मार्च मासमें "भिकड़ी" जहाजके अध्यक्ष बन कर ये भूमध्यसागरमें अग्रसर होने लगे। इस बार भी वे लाख चेष्टा करने पर शत्रुके बेड़ेको रोक न सके। वे बड़ी चतुराईसे टूलोंको छोड़ कर केडिजमें उपस्थित हुए। लार्ड नेलसनने अपेक्षाकृत अल्पसंख्यक नौबल ले कर फरासियोंका पीछा किया। पीछे फरासियों और स्पेनियोंने मिल कर १८०५ ई०के अक्तूबरमासमें ट्रफलगर अन्तरीपके सामने नेलसन पर चढ़ाई कर दी। २१वीं अक्तूबरको दोनों पक्षमें

लड़ाई छिड़ गई। नेलसनने "इङ्गलैण्डका प्रत्येक व्यक्ति देशरक्षाके लिये अपना अपना कर्त्तव्य पालन करेगा" इस वाक्यचिह्नित वृहत् पताकाको उड़ा दिया। उनके भिक्टरी जहाजके साथ प्राचीन प्रतिद्वन्द्वी 'स्यान-टिसोमा त्रिनिदाद' जहाजकी मुठभेड़ हो गई। विपक्षकी ओरसे नेलसनके जहाज पर शिलावृष्टिके समान अजस्र गोलीकी बौछाड़ होने लगी। वे चारों ओर घूम घूम कर अध्यक्षता कर रहे थे। इसी समय एक गोली इनके कंधे पर गिरी और इस आघातसे तीन घण्टेके मध्य लार्ड नेलसनकी प्राणवायु निकल गई। जिस समय नेलसनका जीवन नष्ट हुआ, उस समय विपक्षकी पराजय भी एक प्रकारसे निश्चित हो चुकी थी। नेलसनकी मृत्युके बाद ऐडमिरल कलिंउडने अध्यक्षता ग्रहण कर सुकौशलसे जयलाभ किया।

नेलसनकी मृत्यु पर सारे इङ्गलैण्डमें गभीर शोक छा गया। किन्तु वे इङ्गलैण्डके लिये जो कुछ कर गये, उसके प्रतिदानस्वरूप लार्ड होरेशिय नेलसनके भाई रेभरेण्ड विलियम नेलसनको आर्लकी पदवी दे कर लार्डकी श्रेणीमें उनकी गिनती की गई और उन्हें वार्षिक ६ हजार पेन्शन मिलने लगी। नेलसनकी दो बहन थीं; उन्हें भी काफी पेन्शन निर्द्धारित हुई।

१८०६ ई०के जनवरी मासमें लार्ड नेलसनकी मृत-देह सेण्टपलस कैथेड्रिलमें समाहित हुई।

नैल्लिकाद—मन्द्राज प्रदेशके दक्षिण कनाड़ा जिलेके अन्तर्गत मङ्गलूर तालुकका एक ग्राम। यह मङ्गलूर नगरसे २७ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है।

नैल्लितीर्थ—दक्षिण कनाड़ाका मङ्गलूर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मङ्गलूर नगरसे १२ मील उत्तरमें पड़ता है। यहांके एक प्राचीन मन्दिरमें कनाड़ी भाषामें लिखा हुआ एक शिलाफलक है।

नैल्लिपटला—मन्द्राज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत पलमन तालुकका एक ग्राम। यह उक्त तालुकके सदरसे पांच कोस दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है। ग्रामके उत्तर देवरकोण्डा पर्वतके शिखर पर एक भग्नमन्दिर है जिसके बाहर एक शिलालिपि उत्कीर्ण है। इसके अक्षर तेलगु भाषा-से देखनेमें लगते हैं। वर्ण-गत सादृश्य रहने पर भी उसे स्पष्ट तेलगू नहीं कह सकते।

नैल्लियम्पति—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन राज्यके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह पालघाट नगरसे १० कोस दक्षिणमें अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे यह पर्वत कहीं ३००० और कहीं ५००० फुट ऊँचा है। १५००से ४००० फुट ऊँची भूमि पर शाल, चन्दन आदि अनेक प्रकारके कीमती पेड़ लगते हैं और कहीं कहीं इलायची, अदरक, मिर्च आदिकी खेती भी होती देखी जाती है। १८६० ई०से यहां कहवेकी खेती होने लगी है। इसकी खेती दिनों दिन उन्नति पर है।

पर्वतके जङ्गलमें केदार नामक एक असभ्य जातिका वास है। इनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ दैनाद जिलेकी कुरुम्ब जातिसे मिलता जुलता है। ये लोग फल-मूल और जङ्गली आहार खा कर अपना गुजारा करते हैं। इसके अलावा ये लोग चूहे आदि छोटे छोटे जानवरोंका मांस भी खाते हैं। सभी समय ये एक जगह वास नहीं करते। इनका जातिगत कोई खास व्यवसाय नहीं है।

नैल्लू—सिंहलद्वीपजात वृक्षविशेष। यह पेड़ आठ वर्षके बाद फलता फुलता है। इसके फूलोंसे काफी मधु पाया जाता है। इस कारण सिंहलवासी इस वृक्षको मधुका पेड़ कहते हैं।

नैल्लूर—मन्द्राज प्रदेशके मध्य अंग्रेजाधिकृत एक जिला। यह अक्षा० १३° २८' से १६° १' उ० तथा देशा० ७८° ५' से ८०° १६' पू०के मध्य अवस्थित है।

जिलेके सदर नेल्लूर नगरके नामानुसार इस जिलेका नाम पड़ा है। स्थानीय भाषामें इस नगरका नाम नेल्लूर वा नेल्लि-ऊर है। ऊर शब्दसे ग्राम और नेल्लि शब्दसे आमलकी वृक्षका बोध होता है। कहते हैं, कि नेल्लूर नगर रामायणोक्त अति प्राचीन दण्डकारण्यके एकांशमें बसा हुआ है। यह आमलकी वन शायद किसी प्राचीन समयमें उक्त दण्डकवनके अन्तर्वर्त्ती था।

यह जिला नानाजातीय वृक्षादिसे परिशोभित होने पर भी यहांका स्वाभाविक सौन्दर्य उतना चित्ताकर्षक नहीं है। जलवायुकी स्वच्छताके कारण तथा स्वाभाविक

इत्यादिमें कोई विशेष परिवर्त्तन न दीख पड़नेके कारण विदेशियोंके लिये यह स्थान उतना रोचक नहीं है। पश्चिममें वेलो 'गोण्डाकी गिरिश्रेणी स्थावर-जङ्गमात्मक सुदीर्घ अवयव धारण कर विभीषिकामयी जीवजन्तुओंके साथ दण्डायमान है। पूर्वमें बङ्गोपसागरकी लवणाक्त जलराशिके आघातसे तीरवर्ती प्रस्तरभूमि चूर्ण हो कर बालुकामय हो रही है। समुद्र तीर अतिक्रम कर जमीन ऊँची होती गई है। अधिकांश स्थान पर्वतमय और वनराशिसे परिपूर्ण है।

पश्चिम दिशाकी समस्त भूमि पर्वतमय और अनुर्वर है। इस पर्वतके सर्वोच्च शिखरका नाम पेंचला कोण्डा है जो समतल क्षेत्रसे ३००० फुट ऊंचा है। इस शिखरमें संलग्न दूसरे शृङ्गका नाम उदयगिरिदुर्ग है। इसकी ऊंचाई ३०७९ फुट है। जिलेके सभी स्थानोंसे इस शिखरको ऊंची चोटी देखनेमें आती है।

इस जिलेके मध्य एक आश्चर्य स्थान है जिसे जनसाधारण अकसर देखने जाया करते हैं। उस स्थानका नाम है श्रीहरिकोटाद्वीप। उस द्वीपके एक ओर अतलस्पर्शी लवण-समुद्र और दूसरी ओर क्षीण कलेवर पालिकाट ह्रद है। दोनों जलराशिके बीचमें बालुकाभूमि बांधरूपमें दण्डायमान है जो अभी द्वीप कहलाती है। यह अवश्य कहना होगा कि वह जगदीश्वरके गौरव और स्वभावकी सुन्दरताकी बढ़ा रही है।

यहां पेन्नर (पिनाकिनी), सुवर्णमुखी और गुण्डुलाकम्मा नामक तीन नदियां प्रधान हैं जो पूर्वघाट पर्वतकी अधित्यका भूमिसे निकली हैं। इन तीनोंके सिवा पर्वत गात्रसे और भी असंख्य छोटे छोटे जलस्रोत निकल कर भिन्न भिन्न ओर बह गये हैं। इतनी नदियां रहते भी यहांकी उर्वरता वा वाणिज्यकी कोई विशेष उन्नति देखी नहीं जाती। एकमात्र पेन्नर नदी ही बाढ़के समय जलपूर्ण होती है।

जङ्गलमें इन दिनों वन्य वा हिंस्रजन्तु नहीं पाये जाते। बाघकी संख्या बहुत कम है, जो कुछ है भी वे कडपा जिलेसे यहां आये हैं। चीता बाघ, भालू, साम्भर हरिण, बाइसन जातीय महिष और वन्य वराह अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। पक्षिजातिमें कल हंस, जंगली कपोत और तीतर प्रधान हैं।

नाना जातीय प्रस्तर रहते भी यहां मट्टीके अन्दर एक प्रकारका लौहमिश्रित कर्दम पाया जाता है। वह मट्टी गृहादि तथा पथ बनानेके काममें आती है। १८०१ ई०में यहां तांबेकी खान पायी गई है। जमीनके नीचे चूर्णलौह भी पाया गया है। उस चूर्णलौहको यहांके लोग गला कर रूपान्तरित करते हैं और जरूरत पड़ने पर यन्त्रादि भी निर्माण कर लेते हैं। कहीं कहीं मट्टीमें थोड़ा सोरा भी पाया जाता है।

यहांकी जलवायुका भाव सब ऋतुमें एक सा है, कभी भी तापकी घटती वा बढ़ती नहीं होती। जलवायु स्वभावतः रुक्ष होने पर भी स्वास्थ्यप्रद है। ग्रीष्मकालमें पश्चिमसे जो उष्ण वायु चलती है वह बड़ी ही कष्टकर होती है। उत्तर-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम मौनसुन वायुके बहने पर भी वर्ष भरमें दो समय प्रचुर वर्षा होती है। उत्तर-पूर्व मौनसुनवायुसे जिलेके उत्तरमें और दक्षिण-पश्चिम वायुसे जिलेके दक्षिणमें अधिक वर्षा होती है।

जलवायुके प्रकोपसे साधारणतः यहां कई एक विशेष रोगोंकी उत्पत्ति हुआ करती है। सविरामज्वर, वात, कुष्ठ, गोद, वमि, अजीर्ण, आमाशय, विसूचिका और वसन्त आदि रोगोंका प्रभाव ही अधिक है। समय समय पर हैजा और प्लेग भी हुआ करता है।

यहां जो विस्तीर्ण वन देखा जाता है और जो एक समय सुविस्तृत दण्डकारण्यका अंश समझा जाता था, वह वन्य भूभाग अभी वेलीकोण्डाके पूर्व स्थित ढालू प्रदेश तथा रापुर, आत्मकूड़, उदयगिरि और कणिगिरि तालुकके अन्तर्भुक्त है। रक्तचन्दन, अञ्जन, पियासाल आदि मूल्यवान् वृक्षोंका जङ्गल खास गवर्मेण्टके अधीन है। पालिकट ह्रदके अन्तवर्त्ती श्रीहरिकोटद्वीपके बालुकामय स्थानमें जो वनविभाग है, उसमें भी तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं।

इस जिलेमें १० शहर और १७५८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या साढ़े दश लाखके लगभग है। सैकड़े पीछे ८९ हिन्दूकी संख्या है। यनड़ी जाति ही यहांकी आदिम अधिवासी गिनी जाती है। सभी जगह इनका वास है। श्रीहरिकोटद्वीपमें जो अल्पसंख्यक यनड़ी

रहते हैं उनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ राक्षसोंके सदृश है। १८३५ ई०में जब यह द्वीप अङ्गरेज गवर्मेंटके अधिकारमें आया, तब अङ्गरेजोंने यनडियोंका अत्यन्त दूषित और पैशाचिक आचार दूर कर उनकी जातीय अवस्थाकी उन्नतिके लिए विशेष चेष्टा की; लेकिन वे अपने वन्य और असभ्य जीवनका परित्याग कर खेती बारी और गवादिपालन द्वारा जीविका निर्वाह करनेमें राजी न हुए। ये लोग जङ्गलमें घूमना बहुत पसन्द करते हैं, खेतीको क्या चीज है उसे वे जानते तक भी नहीं। ये लोग द्राविड़वंशीय हैं, सभी तेलगु भाषामें बोलते हैं और भूतयोनिकी पूजा करते हैं। ये लोग शवदेहको जमीनमें गाड़ते हैं।

येरुकाला नामक एक दूसरी भ्रमणशील जाति है। ये लोग तामिलवंशके हैं। येरू, डोम्बारा, सुकाली वा लम्बाड़ी जातिकी भाषा मराठी है। हिन्दूके अतिरिक्त यहां अरबी, लब्बाई, मुगल, पठान, शेख, सैयद आदि मुसलमान तथा यूरोपीय और ईसाई लोग भी रहते हैं। इस जिलेमें पहले पहल रोमनकैथलिक मिशन और पीछे १८४० ई०में अमेरिकाके वैप्टिट मिसन पधारे थे। क्रमशः स्काट और जर्मनके लुथर-सम्प्रदायिकोंने भी उनका अनुसरण किया।

अति प्राचीनकालमें इस प्रदेशके वाणिज्यकी विशेष उन्नति हुई थी। भारतवासी और सिंहलद्वीपवासीके साथ दूरदेशवासी रोमकजातिका वाणिज्य-संस्रव था। १७८५-८६ ई०में नेल्लूरनगरके निकटस्थ स्थानकी जमीनसे जो सब प्राचीन रोमकमुद्रा पाई गई है, मन्द्राजके गवर्नरके मुद्रित पत्रसे वह जानी जाती है *। कर्नेल मैकेञ्जीने १८०६ ई०में कोयम्बतूर जिलेके स्थान स्थानमें बहुत-सी मुद्राएँ पाई हैं। १८४०से १८४२ ई०के मध्य कोयम्बतूर, शोलापुर, कड़ापा, मदुरा और कन्नूरसे १० मील पूर्व कोट्टायमके निकटवर्त्ती पहाड़ पर अगष्टस, क्लडियस, केलिगुला, टिभारस, एण्टोनिनस, कमोडस, गेटा, ट्राजन, डूसस, जेनो आदि राजाओंके समयकी मुद्रा पाई गई हैं। इन सब मुद्राओंसे अच्छी तरह जाना जाता है कि अति प्राचीनकालमें रोमक वणिकगण करमण्डल उपकूलमें आते और भारतीय पण्यद्रव्य खरीद कर स्वदेशको लौट जाते थे। करमण्डल उपकूल ही उस समय वाणिज्यका प्रधान स्थान माना जाता था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। चीनदेश और अरबदेशके नाना स्थानोंसे व्यवसायिगण वाणिज्यके उपलक्षमें इस प्रदेशमें आते थे। करमण्डल उपकूलमें प्राप्त चीन और अरबी मुद्रा ही उसका प्रमाण है। पूर्वमें चीनराज और पश्चिममें लोहित सागरतीरवर्त्ती मुसलमानाधिकृत राज्योंके मनुष्य उसी प्राचीन समयमें वाणिज्यके उपलक्षमें भारतवर्ष आया करते थे। १८८७ ई०में तिरुवेली जिलेमें लाख रुपयेसे अधिक स्वर्ण-मुद्रा पाई गई थीं जिनमेंसे ३१ मन्द्राज म्युजियममें रखी हुई है। इन सब मुद्राओंमेंसे बहुतोंके नाम अरबी भाषामें तथा बहुतोंके क्यूफिक भाषामें अङ्कित हैं। अरबी मुद्रा प्रायः खलीफ, आतवेग, आयुब और मामलुक-अक्वीतवंशीय राजाओंके समयकी है। ये मामलुकवंशीय राजगण इजिप्टमें राज्य करते थे इतिहास पाठक इसे अच्छी तरह जानते हैं। कितनी मुद्राओंके ऊपर लैटीन भाषामें आरागणराज तृतीय पिट्रोका नाम खोदित है।

* The Asiatic Researches, Vol. 11. p. ३३२ नामक पुस्तकमें वह पत्र मुद्रित हुआ था। उसका मर्म इस प्रकार है—नेल्लूर नगरके निकट कोई कृषक हल चला रहा था। इसी समय एक प्राचीन हिन्दूमन्दिरके शिखर पर हलकी फाल अटक गई। पीछे अनुसन्धान करनेके बाद वह स्थान खोदा गया और उस मन्दिरके मध्य एक पात्रमें बहुत-सी रोम देशीय मुद्रा और पदक पाये गये। इस समय माननीय डेभिडसन मन्द्राजके शासनकर्त्ता थे। कृषकने उस मुद्राको जब अशर्फीके मोलमें बेचना चाहा तब उन्होंने स्वयं एड्रियन और फष्टिन (Adrian and Faustina)-के समयकी अर्थात् २री शताब्दीकी दो मुद्राएं पसन्द कीं और नवाब अमीर-उल उमराने उनमेंसे तीस मुद्रायें खरीदीं। इसके अलावा ट्राजन समयकी भी अनेक मुद्रायें पाई गई थीं। उस मुद्राको गवर्नर बहादुरने अपनी आँखोंसे देखा था। उन्होंने मुद्राकी उज्ज्वलता देख कर लिखा है, कि ये सब मुद्रायें इतनी नई मालूम पड़तीं, मानो वे अभी तुरंत टकसालसे लाई गई हों। उन मुद्राओंमेंसे कुछ ऐसी भी हैं जिनके ऊपर दाग बिस गया है।

इन्होंने १२७६ ई०में राज्य लाभ किया। मामलुक-वख्तीत-वंशीय सुलतानके साथ एक समय उनकी सन्धि हुई थी। सम्भवतः उसी सन्धिसूत्रसे उनकी मुद्रा इजिप्टमें और वहांसे वाणिज्यव्यपदेशसे भारतवर्ष लाई गई होगी। त्रिवाङ्कुड़राज और रेसिडेण्ट जनरल कालेन साहबके पास बहुत-सी प्राचीन रोमक मुद्रा हैं*। फिर कितनी मुद्रा पर भी लेरटोनियन, थ्युडोसियस और यूडोसियाके नाम भी खोदित हैं। इन सब मुद्राओंका धारःवाहिकतत्त्व संग्रह करनेसे और मुसलमानोंका इतिहास पढ़नेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि कई शताब्दी तक नेल्लूर और समस्त करमण्डल उपकूल प्रसिद्ध वाणिज्य स्थान समझा जाता था†। ताजियत-तुल-असमर नामक इतिहासमें लिखा है कि कुरमसे ले कर नेल्लूर तक प्रायः तीन सौ फरलङ्ग विस्तृत समुद्रका उपकूल मायाबर कह लाता था। यहांके राजाओंको उपाधि देवर थी। चीन और महाचीनवासिगण अपने जङ्क नामक जहाज पर तद्देशजात सूक्ष्म कारुकार्यविशिष्ट दुर्लभ वस्तु लाद कर इस प्रदेशमें बेचनेके लिए लाया करते थे। सिन्धु और तत्पार्श्ववर्त्ती जनपदवासी मुसलमान भी इस देशमें वाणिज्यके लिए जहाज पर आया करते थे। इराकसे खोरासन तकके स्थान समूहमें और रोम तथा यूरोपके स्थान स्थानमें जो सब प्राचीन और सुन्दर गृहशय्या देखनेमें आती हैं उनमेंसे अधिकांश एक समय इसी भारत-उपकूलसे लाया गया था। पारस्य-उपसागरके द्वीपवासियोंका अर्थ और मणिमुक्तादि एक समय इसी प्रदेशसे आहृत हुई थीं; इसमें सन्देह नहीं। जिस समय सुन्दर पाण्ड्य इस प्रदेशके राजा थे, उस समय कायेस-द्वोपके वणिक्‌गण और मालिक-उल इस्लाम जमाल-उद्दीन् उन्हें वाणिज्यके लिए करस्वरूप प्रतिवर्ष १४०० अश्व देनेको राजी हुए थे। फिर यह भी जाना जाता है कि दूरवर्त्ती चीन और अन्यान्य देशोंसे जो सब सुन्दर और सूक्ष्म द्रव्य यहां लाये जाते थे उनमेंसे पहले राजा करस्वरूप कुछ ले लिया करते थे। इसके अलावा नेवू-काडनेजर और निकोरके समयमें वाविलन और इजिप्ट देशीय वणिक्‌गण वाणिज्यके लिए भारतवर्ष आते थे, यह उस समयका इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है।

नेवूकाडनेजर देखो।

वर्त्तमान समयमें दक्षिण भारतका वह वाणिज्य-गौरव नहीं है। प्रायः १४वीं शताब्दी तक इस प्रकारका व्यवसायस्रोत चलता रहा था। पीछे धीरे धीरे इसका बिलकुल ह्रास हो गया है। उस प्राचीन व्यवसायके साथ साथ नेल्लूरके नीलवर्ण 'सलेमपुरी' नामक वस्त्रने भी विशेष ख्याति लाभ की थी। पूर्व समयमें उस वस्त्रको वेष्ट-इण्डोजद्वीपवासी निग्रोजातिके लोग बड़े आग्रहके साथ पहनते थे। इस कारण उस वस्त्रका कभी भी अनादर नहीं हुआ। अभी नेल्लूरसे कपास-वस्त्रकी विदेशमें रफ़तनी नहीं होती। नेल्लूर नगरके निकटवर्त्ती कोवुर ग्राममें एक प्रकारका सूक्ष्म वस्त्र तथा रूमालका उपयोगी वस्त्र भी तैयार होता है। कहीं तांबे, पीतल और कांसेके भी अच्छे अच्छे बरतन तैयार होते हैं।

रेलपथ होनेके पहलेसे ही वाणिज्य अवनतिका सूत्रपात देखा जाता है। कड़ापा और कर्णूलके लोग रुई-के बदलेमें नेल्लूरसे लवण ले जाते थे। आज कल समुद्रके किनारे केवलमात्र शस्यादिकी रफ़्तनी होती है। यहां रुई, चावल, नील, तमाकू, उरद और अन्यान्य शस्यकी खेती होती है। उपकूलस्थित कोट्टपाटम तथा इटमुकूला नामक दोनों बन्दरोंसे आज भी उन सब देशजात द्रव्योंकी रफ़्तनी और विभिन्न देशोंसे वाणिज्यार्थ उत्पन्न नाना प्रकारकी द्रव्योंकी आमदनी होती है।

कभी कभी जल और वृष्टिके अभावसे, पेन्नर नदीकी बाढ़से तथा समुद्रकूलस्थ तूफानसे यहांके शस्यकी विशेष क्षति हुआ करती है। १८०४, १८०६, १८२०, १८२८, १८३२, १८३६, १८५२, १८५७, १८७४, १८७६ और १८८२ ई०में यहां तूफान और बाढ़से घोर दुर्भिक्ष पड़ा था। १८७६-७८ ई०में जो दुर्भिक्ष पड़ा था उसमें फसल बिलकुल नहीं हुई थी। इस समय प्रायः ६०००० गोमेष और असंख्य मनुष्य अन्नके अभावसे कराल कालके गालमें पतित हुए थे।

यहांके हिन्दू कट्टर सनातनधर्मावलम्बी होने पर भी

* Indian Antiquary, Vol. VI. p. 215-19.

† Indian Antiquary, Vol II p. 241-420.

मुहर्रममें मुसलमानोंका साथ देते हैं। नेल्लूर जिलेके १२० ग्रामोंमें प्रतिवर्ष मुहर्रमके उपलक्षमें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही अग्नि जला कर नृत्य करते हैं। बुन्दरशाह मदुर नामक किसी मुसलमान पीरके माहात्म्य-कीर्त्तनके लिये मुसलमान फकीरगण मधुमासमें दो विभिन्न स्थानोंमें दो बार अग्निक्रीड़ा करते हैं।

इस प्रदेशका कोई स्वतन्त्र इतिहास नहीं है। अति प्राचीनकालसे ही यह स्थान दाक्षिणात्यके तैलङ्गराज्यके अंशरूपमें गण्य होता आ रहा है। यही कारण है, कि पूर्वतन वणिकगण करमण्डल-उपकूलस्थ नेल्लूर और तन्निकटवर्त्ती तैलङ्गराज्यके अन्तर्गत बन्दरसमूहमें आ कर पण्यद्रव्य खरीदा करते थे। इस राज्यमें एक समय यादव, चालुक्य, कल्याण और गणपतिवंशीय नरपतिगण शासन करते थे और उक्त वंशीय राजाओंके समयमें यह स्थान व्यवसाय-वाणिज्यमें जो विशेष समृद्धिशाली हो उठा था, वह रोमक, चीन और अरबदेशीय मुद्रा तथा यहांके राजाओंकी शिलालिपिसे जाना जाता है।

यादव, चालुक्य आदि देखो।

यहांके मन्दिरादिमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है कि महाप्रतापशाली विजयनगरके नरपतिवंशीय राजा कृष्णदेव रायलूने कितने मन्दिरोंका निर्माण और कितनेका जीर्णसंस्कार किया *। राजा कृष्णदेवने १५०८से १५३० ई० तक राज्य किया था। स्थानीय प्रवादसे ज्ञात होता है, कि ११वीं शताब्दीमें यहां मुकन्ति नामक एक सरदार आधिपत्य करते थे और वे चोल राजाओंके सामन्तरूपमें गिने जाते थे। चोलराजाओंके पूर्ववर्त्ती समयका कोई ऐतिहासिक-तत्त्व मालूम न होनेके कारण यह अनुमान किया जाता है कि कड़ापा, बेलारी, अनन्तपुर, कर्णूल आदिके जैसे इस प्रदेशके अपरापर अंश प्रसिद्ध दण्डकारण्यके निविड़ गर्भमें निहित थे। केवलमात्र वाणिज्यके उपयोगी समुद्रतीरवर्त्ती बन्दर पूर्वोक्त राजाओंके अधिकारभुक्त रहनेके कारण यह स्थान भारतका प्राचीन वाणिज्य-गौरव समझा जाता था। मुकन्तिके बाद १२वीं शताब्दीमें सिद्दराज यहां राज्य करते थे। इस समय यादव-वंशीय कई एक सरदारोंने इस जिलेके उत्तरांशमें राज्य स्थापन किया।

नेल्लूर नगरके अति प्राचीन अधिवासी वेङ्कटगिरिके राजवंशधरोंकी प्राचीन वंशावलीसे जाना जाता है, कि इस वंशके पूर्वपुरुषोंने मुसलमानोंके साथ अनेक बार युद्ध किये थे। सम्राट् अलाउद्दीनके राजत्वकालमें मालिक काफुरने १३११ ई०में इस प्रदेश पर आक्रमण किया। पीछे कुतुबशाही वंशीय मुसलमानोंने ११८७ ई०में दाक्षिणात्य जीत कर गोलकुण्डामें राजधानी बसाई।

पहले लिखा जा चुका है, कि नेल्लूर नगरका कोई धारावाहिक इतिहास नहीं मिलता। इसका एकमात्र कारण यह है कि उस समयके राजाने इस नगरमें अपना आवास वा राजधानी बसानेकी इच्छा ही न की थी। १६२५ ई०में इस जिलेके आर्मेगोन नगरमें अङ्गरेज-वणिकोंके अवस्थानसे ही इस जिलेका इदानीन्तन इतिहास आरम्भ होता है।

१६२३ ई०में ओलन्दाजसे आम्बयना नगरमें अङ्गरेजोंके निहत और निर्जित होने पर इष्ट-इण्डिया कम्पनी नामक वणिक-सम्प्रदायने करमण्डल उपकूलके मछलीपत्तन और पटेओलि (वर्त्तमान नाम निजामपत्तन) नगरमें अपनी वाणिज्यकोठीमें आ कर आश्रय लिया। इसके चौदह वर्ष बाद ओलन्दाजोंके उत्पीड़नसे जर्जरित हो कर फ्रान्सिस डे नामक अंगरेज कर्मचारी दलबलके साथ दुर्गाराजपत्तन ग्राममें भग गये। उक्त ग्राममें पहुँचनेसे ग्रामपति मुदालियरने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्रधारण किया था। उन्हें दमन करके डे साहबने उक्त मोड़लरके नामानुसार इस ग्राममें आसुगम मुडेलियर नामक एक दुर्ग बनवाया। इसके १४ वर्ष बाद १६३८ ई०में मन्द्राजके सेण्ट जार्ज दुर्ग स्थापित हुआ।

१८वीं शताब्दीमें अङ्गरेज और फरासीके 'कर्णाटक-युद्ध'से ही यहांकी प्रकृत ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख मिलता है। इस समयका इतिहास पढ़नेसे अच्छी तरह जाना जाता है, कि दाक्षिणात्यके पूर्व उपकूलमें फरासी

* Sewell's List of Antiquities, Madras. I. p. 144.

और अङ्गरेज लोग अपना अपना आधिपत्य फैलानेमें विशेष यत्नवान् थे। १७५३ ई०में नाजिबउल्लाने अपने भाई नवाब महम्मद अलीसे प्रदत्त नेल्लूरप्रदेशका शासनभार प्राप्त किया। इसी साल महम्मद कमाल नामक किसी मुसलमानने नेल्लूर नगरमें प्रवेश कर नाजिब उल्लाको निकाल भगाया। जब वह तिरुपतिका मन्दिर ध्वंस करनेको आगे बढ़ा, तब मन्दिरका रक्षाभार अङ्गरेजोंके हाथ समर्पित हुआ। दोनों दलमें घनघोर युद्ध चला। पहले अङ्गरेजोंकी ही हार हुई, पर पीछे उन्होंने कमाल पर आक्रमण कर उन्हें कैद कर लिया।

नाजिबउल्लाने स्वराज्यमें प्रतिष्ठित हो कर कुछ दिन पीछे (१७५७ ई०में) अपनी स्वाधीनता उच्छेद करनेके लिये भाईके विरुद्ध अस्त्रधारण किया नवाब महम्मद अलीने अपने अङ्गरेज बन्धुका आश्रय ग्रहण किया। नाजिबउल्लाने भी अपना पक्ष दृढ़ रखनेके लिये फरासियोंकी सहायता ली। युद्धमें अङ्गरेजोंकी हार हुई। कर्णेल फार्ड उक्त क्षतिके उत्तरदायी हो कर मन्द्राज लौटे। १७५८ ई०में नाजिबने बलासत जङ्ग और महाराष्ट्रोंको अंग्रेजोंके विरुद्ध उभाड़ा। १७५९ ई०में जब फरासी सेनापति लाली सेना ले कर मन्द्राजसे अपसृत हुए, तब उन्होंने अंग्रेजोंसे सन्धि कर ली। पीछे वे अंग्रेजोंसे उक्त प्रदेशके शासनकर्त्ताके पद पर नियुक्त हो कर अंग्रेजोंको वार्षिक तीस हजार 'पगोड़ा' देनेको राजी हुए। १७९० ई०में टीपू सुलतानके साथ जब अंग्रेजोंका युद्ध छिड़ा, तब अंग्रेजोंने अपने हाथमें कर्णाटप्रदेशका राजस्व वसूल करनेका भार ले लिया। १७९२ ई०में टीपूके साथ सन्धि होने पर उसका शासनभार पुनः नवाबके हाथ दे दिया गया। पीछे १८०१ ई०में अंग्रेजोंने सदाके लिये इस प्रदेशका शासनभार अपने हाथ ले लिया। जिले भरमें १ कालेज, १९ सेकण्ड्री, ८८३ प्राइमरी और ७ ट्रेनिंग स्कूल है। शिक्षाविभागमें प्रतिवर्ष १७७०००) रु० खर्च होते हैं। स्कूलके अलावा यहां १० अस्पताल और १७ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह नेल्लूर और कावली तालुक ले कर संगठित हुआ है।

३ नेल्लूर उपविभागका एक तालुक। यह अक्षा० १४° २१´ से १४° ४६´ उ० और देशा० ७९° ४३´ से ८०° ११´ पू० के मध्य अवस्थित है। इसके पूरबमें बङ्गालकी खाड़ी पड़ती है। भूपरिमाण ६३८ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २२६३८३ है। इसमें नेल्लूर और अल्लूर नामके दो शहर और १४८ ग्राम लगते हैं। पेन्नर नामकी नदी तालुकको दो भागोंमें विभक्त करती है। यहां धानकी फसल अच्छी लगती है।

४ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १४° २७´ उ० तथा देशा० ७९° ५९´ पू०, पेन्नर नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीस हजारसे ऊपर है। इस नगरका प्राचीन नाम सिंहपुर था। यहांका मूलस्थानेश्वरका मन्दिर मुकन्ति नामक किसी राजासे बनाया गया है। तेलगुदेशमें ये 'मुकन्ति महाराज' नामसे प्रसिद्ध हैं। यहां मुसलमानोंके समयका एक किला है।

बादमें यह शहर 'दुर्गमिट्टा' नामसे प्रसिद्ध हुआ। आज भी नेल्लूरका उपकण्ठ इसी नामसे पुकारा जाता है। इस नगरकी गठन और आबहवा उतनी खराब नहीं है। यूरोपियनोंके आवासभवनके दूसरे पार्श्वमें नरसिंहकोण्डा पर्वतके ऊपर बहुतसे मन्दिर विद्यमान हैं। यहां १२वीं शताब्दीमें 'ठिक्कना सोमयाजुलू' नामक एक कविने तेलगु भाषामें संस्कृत महाभारतका अनुवाद किया। इन्होंके समयकी मुल्ला नामक एक स्त्री कविने भी रामायणका अनुवाद कर विद्याचर्चाके गौरवकी रक्षा की थी। राजकवि अलशानी पेद्दाना राजा कृष्णदेवकी सभामें वर्त्तमान थे। १८६६ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरकी आय प्रायः ४४०००) रु० है। यहां यूनाइटेड फ्री चर्च मिशन हाई स्कूल और वेङ्कटगिरि राजाका हाई स्कूल है। इसके सिवा और भी कितने स्कूल हैं।

नेवगी (हिं० पु०) नेगी।

नेवछावर (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

नेवज (हिं० पु०) देवताको अर्पित करनेकी वस्तु, खाने पीनेकी चीज जो देवताको चढ़ाई जाय, भोग।

नेवजा (फा० पु०) चिलगोजा।

नेवली (फा० स्त्री०) एक फूलका नाम।

नेवटिनी—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलेका एक नगर। यह मोहन नगरसे दो मील दक्षिणपश्चिम साईनदीके किनारे अवस्थित है। एक समय दीक्षित उपाधिधारी राजा राम शिकारको बाहर निकले और इस स्थानकी स्वाभाविक सुन्दरता देख कर मोहित हो गये। पीछे उन्होंने जङ्गल कटवा कर नेवटिनी शहर बसाया। नगरके एक स्थानमें प्राचीन राजाओंका दुर्ग था। वर्त्तमान अधिवासी दीह नामक स्थानको उसका ध्वंसावशेष बतलाते हैं। दीक्षित वंशीय राजाओंने यहां बहुत दिन तक राज्य किया था। अन्तमें गजनीपति महम्मदके सेनापति सरिन महम्मद और जहीर-उद्दीनने भारतवर्ष पर चढ़ाई कर राजाको राज्यसे निकाल भगाया और स्वयं राज्यभार ग्रहण किया। उक्त दोनों मुसलमानके वंशधर आज भी इस नगरमें वास करते हैं। शहरकी दिनों दिन उन्नति होती जा रही है।

नेवतना (हिं॰ क्रि॰) निमन्त्रित करना, नेवता भेजना।

नेवतहरी (हिं॰ पु॰) न्योतहरी देखो।

नेवता (हिं॰ पु॰) न्योता देखो।

नेवती—बम्बई प्रदेशके रत्नगिरि जिलान्तर्गत एक बन्दर। यह अक्षा॰ १५° ५५´ उ॰ और देशा॰ ७३° २२´ पू॰ पोर्त्तगीज राजधानी गोआसे १८ कोस उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। पहले यह नगर बीजापुरके अधीन था। यहां एक दुर्गका भग्नावशेष देखनेमें आता है। सि॰ रेनल आदि पुराविदोंने इस स्थानको टलेमी-कथित 'निङ्ग' वा प्लिनीवर्णित 'निङ्गस' बतलाया है। अभी इस स्थानके वाणिज्यकी श्रीवृद्धि जाती रही, दिनों दिन इसका ह्रास होता जा रहा है। १८१८-१९ ई॰में अंगरेजी सेनाने इस बन्दर पर आक्रमण किया और गोलेके आघातसे दुर्गको तहस नहस कर महाराष्ट्रोंके हाथसे छीन लिया।

नेवधुरा—युक्तप्रदेशके कुमायुन जिलान्तर्गत एक गिरिपथ। यह अक्षा॰ ३०° ३८´ उ॰ और देशा॰ ८०° ३७´ पू॰के मध्य अवस्थित है। इसका दूसरा नाम रङ्ग-विदङ्ग है। यहांसे धौलानदी निकली है। यह सङ्कट पार कर उत्तरकी ओर जानेसे हूणदेश अथवा तिब्बतका दक्षिणपश्चिम प्रदेश मिलता है। यहां बहुसंख्यक भूटियोंका वास है। वे धर्म नगरसे बकरे और भेड़की पीठ पर धान, गेहूं आदि अनाज, बनात, रुई, चीनीको बनी वस्तु तथा अन्यान्य द्रव्य लाद कर वाणिज्यके लिये यहां लाते हैं और यहांसे लवण, स्वर्णचूर्ण, सोहागा और पशमादि ले जाते हैं। यह स्थान समुद्रपृष्ठसे १५००० फुट ऊँचा है।

नेवर (हिं॰ पु॰) १ पैरका गहना, नूपुर। (स्त्री॰) २ घोड़ेके पैरका वह घाव जो दूसरे पैरकी ठोकर वा रगड़से हो जाता है। ३ घोड़ेके पैरसे पैरकी रगड़।

नेवरा (हिं॰ पु॰) लाल कपड़ेकी भारीकी खोली।

नेवल (हिं॰ पु॰) नेवर देखो।

नेवलदास—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता सरस और मधुर होती थी। इनका कविता-काल १८२३ संवत् कहा जाता है।

नेवला (हिं॰ पु॰) चार पैरोंसे जमीन पर रेंगनेवाला हाथ सवा हाथ लम्बा और ४-५ अंगुल चौड़ा मांसाहारी पिंडज जन्तु। यह देखनेमें गिलहरीके आकारका पर उससे बड़ा और भूरे रंगका होता है। विशेष विवरण नकुल शब्दमें देखो।

नेवहो—राजपूतानेके अन्तर्गत अजमेरका एक नगर। यह जयपुर राजधानीसे ३७ मील दक्षिणपूर्व अक्षा॰ २६° २३´ उत्तर और देशा॰ ७५° ४४´ पू॰के मध्य अवस्थित है। सौ वर्ष पहले यह नगर खूब समृद्धिशाली था और इसका आयतन भी विस्तृत था। अमीर खांने जब इस नगरको लूटा था, उस समय यहांके अधिवासी दूसरी जगह भाग गए। पीछे १८१८ ई॰में जब यहां शान्ति स्थापित हुई, तब लोगोंकी संख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी। इसके पश्चाद्भागमें सरल भावमें दण्डायमान उच्च पर्वत और सामनेमें जयपुर तक विस्तृत प्रान्तरभूमि है। पर्वतके ऊपर नहरगढ़ नामक दुर्ग है। उस दुर्गकी रक्षाके लिये १५ गोलाकार मोर्चे बने हुए हैं। नगरके सम्मुखस्थ बालुकामय जमीन पर इमली और पीपलके पेड़ खूब लगते हैं। इसके अलावा यहां जगह जगह उद्यान, देवमन्दिर, कृत्रिम चहबच्चा और सतीदाहके स्मृतिस्तम्भ रक्षित हैं।

नेवा (हिं॰ पु॰) १ रीति, दस्तूर, रवाज। २ लोकोक्ति, कहावत। (क्रि॰) ३ नाईं, समान।

नेवाज (हिं॰ वि॰) निवाज देखो।

नेवाज—१ हिन्दीके एक कवि। इनका जन्म-संवत् १८०४में हुआ था। ये जातिके जुलाहे तथा विलग्राम-वासी थे। इनकी कविता-रचना अच्छी होती थी।

२ एक हिन्दी-कवि। ये जातिके ब्राह्मण और बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। इन्होंने १८०७ संवत्‌में अखरावती नामक एक पुस्तक बनाई है। ये असोथरके राजा भगवन्त राय खोचीके यहां रहते थे।

नेवाजना (हिं॰ क्रि॰) निवाजना देखो।

नेवाड़ा (हिं॰ पु॰) निवाड़ा देखो।

नेवार—नेपाल-राज्यवासी आदिम जातिविशेष। जो स्थान अभी नेपालप्रापर कहलाता है और जिस उपत्यकाभूमि पर वर्त्तमान काठमण्डू नगर बसा हुआ है वही स्थान इस जातिका आदि वासस्थान है।

नेपाल ग्रन्थमें लिखा है, कि इस स्थानमें लोमबहुल छागजातिका वास रहनेके कारण तिब्बतवासी हिमालयकी इस तटभूमिको 'पालदेश' कहते थे (तिब्बतीय भाषामें पाल शब्दका अर्थ पशम है)। यह उपत्यका बहुत पहलेसे ही 'ने' नामसे प्रसिद्ध थी। इसी 'ने' नामक स्थानके अधिवासी होनेके कारण वे लोग नेवार वा नेवारी कहलाने लगे। आदिम नेवार जाति बहुत पहले असभ्य रहने पर भी उन्होंने बौद्धधर्मको उन्नतिके साथ साथ अपनेको भी उन्नतिके सोपान पर चढ़ानेकी चेष्टा की थी। ये ही लोग नेपालमें प्रवर्त्तित बौद्धधर्ममतके स्थापनकर्त्ता हैं। अभी नेपालराज्यमें जो सब प्राचीन बौद्ध और हिन्दूकीर्त्ति देखी जाती हैं, वह इन्हींके उद्यम और यत्नसे बनाई गई थीं। पालराज्यके 'ने' नामक स्थानवासी पूर्वतन नेवारियोंके गौरव और सम्मान रक्षार्थ उन्हींकी वासभूमिके नाम पर इस राज्यका नाम 'नेपाल' हुआ था।

इनकी आकृति गोर्खा लोगोंकी अपेक्षा खर्व है और मुखाकृति देखनेसे वे मङ्गोलीयके जैसे मालूम पड़ते हैं। भारतके साथ तिब्बतका नैकट्य रहनेके कारण दोनों जातिमें संस्रव हो गया है। बौद्धधर्मके प्रावल्यसे जब बौद्धमत तिब्बतमें प्रचारित हुआ और नेवारी लोगोंने भी जब बौद्धमत ग्रहण किया, उसी समयसे दोनों जातिमें आदान-प्रदान होता आ रहा है, ऐसा अनुमान किया जाता है। कारण नेवारजातिकी धर्मप्रथा, भाषा, वर्णविन्यास और उनकी वाङ्मगठन प्रणालीके ऊपर लक्ष्य करनेसे यह स्पष्ट बोध होता है कि तिब्बतीय संस्रव भिन्न नेवारजातिके मध्य इस प्रकार प्रकारान्तर कभी भी होनेकी सम्भावना न रहती। इनके वर्त्तमान धर्मके कुछ क्रियाकलाप ही इसके एकमात्र निदर्शन हैं।

बहुतोंका अनुमान है कि पूर्व समयमें नेपाल उपत्यका तथा इस देशसे ले कर तुषारावृत हिमालय पर्वत पर्यन्त विस्तृत स्थानमें जो सब जाति वास करती थीं वे चीन और तिब्बत जातिके मिश्रणसे उत्पन्न हुई थीं। जिस समय बौद्ध गुरु मञ्जुश्रीने महाचीनसे नेपाल आ कर बौद्ध-धर्मका प्रचार किया था, उसी समय भारतवासीके साथ तिब्बतीय अथवा महाचीन-वासीके संस्रवसे यह नेवार जाति गठित हुई होगी। फिर नेवारजातिके तिब्बतीय पूर्वपुरुषगण हिन्दुस्थानवर्त्ती पार्वतीय जातिके साथ विवाहादि करके उनके पूर्व दीक्षालब्ध बौद्धमतके अवयवोंमेंसे नवविवाहित हिन्दुओंको धर्मप्रथाके कुछ प्रकरण सन्निविष्ट कर लिए हैं। इस कारण नेपालमें प्रचलित बौद्धधर्मके साथ हिन्दुत्वका सम्मिलन हो जानेसे उन लोगोंका बौद्धधर्ममत बहुत कुछ विकृत भावापन्न हो गया है। इन लोगोंमें हिन्दूशास्त्रोक्त नियमादिका विशेष आदर देखा जाता है।

किसी किसीका कहना है कि समय समय पर भारतवर्षके समतल क्षेत्रसे असंख्य परिव्राजक, तीर्थयात्री तथा प्रवासी हिन्दूगण नेपालकी इस पवित्र उपत्यकाभूमिमें आ कर रहते थे। ये ही नवागत हिन्दूगण या इन लोगोंके वंशधर कालक्रमसे यहांके आदिमवासी अथवा औपनिवेशिक तिब्बत जातिके साथ विवाहादि सम्बन्धमें आवद्ध हुए हैं। इसी तरह सम्भव है कि भारतवासीके साथ तिब्बतीके संमिश्रणसे इस नेवारजातिकी उत्पत्ति हुई होगी। भारतसे ताड़ित हो कर अथवा स्वदेशसे जो धर्मप्रचारके उद्देश्यसे यहां आये, उनमेंसे अधिकांश बौद्धमतावलम्बी और जो तीर्थदर्शनके उपलक्षमें अथवा हिमालयप्रदेश-परिदर्शनकी कामनासे

यहां आये, उनमेंसे बहुत कुछ हिन्दू थे। इन हिन्दू-प्रवासियोंके मध्य किसीने तो नेपाल आ कर बौद्धमत ग्रहण किया और कोई स्वधर्मके ऊपर आस्था स्थापन करके हिन्दूप्रथाके अनुसार क्रिया-कलापका निर्वाह करने लगे। नेपालप्रवासी दोनों मतावलम्बियोंने इस स्थानको स्वदेश बना लिया और वहांके आदिम अधिवासियोंकी कन्यासे विवाह कर गृही हो गये। इस प्रकार प्राचीन पार्वतीय अधिवासियोंके मध्य हिन्दू और बौद्धमत एकत्रित हो जानेसे वे दोनों हो यहांके प्रधान मत समझे जाने लगे।

अति प्राचीन कालमें इस आदिम जातिके मध्य जातिगत किसी प्रकारका पार्थक्य देखा नहीं जाता था। ये लोग जिस प्रकार भारतके प्रान्तदेशमें पर्वतके ऊपर वास कर जगत्‌के स्वाभाविक सौन्दर्य पर मोहित होते थे, उसी प्रकार इस अल्पसुन्दर स्थानमें वास करके भी वे लोग स्वभावतः ही सरल और निरीह हो गये। बौद्धधर्म ग्रहण करनेके बाद इन लोगोंके मध्य उदासीन वा संन्यासी और गृही इन दो श्रेणियोंकी सृष्टि हुई। जो लोग बौद्ध-संन्यासी हैं वे बांढ़ा कहलाते हैं। धीरे धीरे यह बांढ़ाश्रेणी चार विभिन्न थाकोंमें विभक्त हो गई। इन चार श्रेणियोंके मध्य भी पुनः उच्च नीच देखे जाते हैं। जो श्रेणी जिस परिमाणमें योगाभ्यास करती है, उस श्रेणीके मनुष्य जनसाधारणमें उसी प्रकार श्रेष्ठता लाभ करते और समाजमें मान्यास्पद होते हैं। उधर गृहिगण नाना प्रकारके विषयकार्यों और व्यवसायमें उलझे रहते हैं।

जिन सब प्रवासियोंने हिन्दूधर्मकी रक्षा की थी उनके वंशधरगण अथवा अन्यान्य नेवारीलोग भी कालमाहात्म्यसे हिन्दूधर्मके पक्षपाती हो उठे। पहलेसे जो सामान्य प्रक्रियादि उनमें लक्षित होती थीं, कालक्रमसे वह परिपुष्ट हो हिन्दूधर्ममें परिणत हो गईं। इस समय हिन्दूमतावलम्बियोंने सरल स्वभाववाले पूर्वतन अधिवासियोंमेंसे कितनेको हिन्दूधर्ममें दीक्षित किया। इस प्रकार एक समय नेपालराज्यमें ब्राह्मण-धर्मकी प्रतिष्ठा हुई। इसके बाद हिन्दूनेवारोंमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार जातिगत विभाग कल्पित हुए। हिन्दुओंमें यह भेद रचित होने पर भी बौद्धगण इस प्रकार किसी स्वतन्त्र नियमसे आबद्ध नहीं हुए।

धीरे धीरे नेवारियोंमें दो विभिन्न सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई। जिन सब नेवारियोंने बौद्धमत ग्रहण किया, वे बुद्धमार्गी और जो हिन्दूधर्मके ऊपर आस्थावान् हुए, वे शिवोपासना करनेके कारण शिवमार्गी कहलाये।

इन दो श्रेणियोंके मध्य पूर्वापर किसी प्रकार वाद-विसम्वाद नहीं हुआ। समग्र नेवार जातिके मध्य प्रायः अष्टैक मनुष्य हिन्दूधर्मावलम्बी और अवशिष्ट सभी बौद्ध वा मिश्रभावापन्न हैं।

शिवमार्गी नेवारियोंके मध्य ब्राह्मणश्रेणीमें उपाध्याय, लवसु और भजु वा भाजू ये तीन विभिन्न उपाधियां हैं। क्षत्रियश्रेणीमें ठाकजू वा मल्ल (ये आदि नेवार-राजवंशीय हैं, राज्यभ्रष्ट हो कर अभी गोर्खादलमें सैनिकका काम कर रहे हैं) और निखु (ये लोग देव-मूर्त्तिको रंगाते हैं) तथा वैश्यश्रेणीमें जोसि, आचार, वस्नि और गावक आचार प्रभृति चार स्वतन्त्र उपाधियां हैं। क्षत्रिके मध्य शियासु और सेरिष्टा नामक दो थाक देखनेमें आते हैं। ये लोग आपसमें आदान-प्रदान करते हैं। शूद्रश्रेणीमें सखि, लखिपर और बचोप्राय आदि तीन थाक हैं। ये लोग सभी दासवृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करते हैं। उक्त चौदह श्रेणियोंमें सभी हिन्दू हैं, कोई भी बुद्धको पूजा नहीं करता और न बौद्ध धर्मसंक्रान्त मन्दिरमें जाता ही है। ये लोग आपसमें विवाह नहीं करते और न एक श्रेणी दूसरी श्रेणीके साथ भोजन हो करती हैं।

बुद्धमार्गी वा बौद्धधर्मावलम्बी नेवारोंमें तीन प्रधान श्रेणी-विभाग हैं—

१म।—गांड़ा बाण्डा वा बांढ़ा, इनके मस्तक मुण्डित रहते हैं।

२य।—गोंड़ा बौद्ध। ये लोग जनसाधारणमें उदास नामसे प्रसिद्ध हैं, प्रत्येक सिरके ऊपर जूड़ा बांधता है।

३य।—निम्नश्रेणीके बौद्ध। ये लोग हिन्दू और बौद्ध दोनों धर्मके सेवी हैं। सांसारिक अवस्थाकी हीनता वशतः ये लोग निम्नवृत्तिका अवलम्बन कर अपना गुजारा करते हैं।

प्रथमोक्त बाँड़ा श्रेणीके नेवारोंमें पुनः ८ स्वतन्त्र थाक हैं। यथा—१ गुभाजु, २ बड़हाजु, ३ बिखु, ४ भिक्षु, ५ नेभार, ६ निभर-भाड़ि, ७ टङ्कामि, ८ गन्धसाड़ि, और ८ चिवड़ा भाड़ि। ये लोग पौरोहित्यसे ले कर सोने चांदीके अलङ्कार, भोजनपात्रादि और बन्दूकादि बनाए, यहां तक कि सूत्रधार आदिके निकृष्ट कर्म भी करते हैं। द्वितीय उदासश्रेणी—सभी महाजन वा व्यवसायीका काम करते हैं। एक बाँड़ा-नेवार इच्छा करने पर उदास हो सकता है; किन्तु बाँड़ाकी अपेक्षा निकृष्ट उदास कभी भी बाँड़ा-श्रेणीभुक्त नहीं हो सकता। फिर उदास-नेवारको इच्छा करने पर वे जाफु नेवारके दलभुक्त हो सकते हैं। किन्तु जाफुके विशेष चेष्टा करने पर भी वे तत्श्रेणीभुक्त नहीं हो सकते। जाफु नेवारगण खेती बारी करके अपना गुजारा करते हैं। नेवार जातिके मध्य ये लोग कृषकश्रेणीभुक्त हैं। इनकी एक शाखा सर्मि है. ये लोग बड़े धनी होते हैं। एतद्भिन्न उदास श्रेणीके मध्य कमार, लोहार-कर्मि (जो पत्थर काट कर घर बनाते हैं), सिकर्मि, ताम्रत्, अवर, मट्टिकर्मि प्रभृति छः थाक हैं; तृतीय अर्थात् मिश्रित सम्प्रदायके मध्य मल्ल, दङ्ग, कुम्हार, करभुजा, जाफु वा किससिनो, बोनो, चित्रकार, दाता, छिपा कोया वा नेकर्मि, नौ (नापित), सर्मि, पुलपुल, कौशा, कोनार, गड़थो (माली), काट-ठार, टट्टो, बलहैजो, युङ्गवार, बल्ला, लमु, दल्लो, विद्दि, गाश्रोशा, नन्दगाश्रोशा, बल्लामो, गोको, नल्लो, नाई वा कसाई, जोघो, धुन्त, धोञ्चो, कुसू, पुरिया, चमुकल्लक, सं घार आदि ३८ विभिन्न थाक पाये जाते हैं।

नेपाल देखो।

यह नेवार जाति जो एक समय नेपालकी सर्वमय-कर्त्ता थी, वह नेपालके इतिहासमें विशेषरूपसे वर्णित है। नेवारराज धर्मदत्त देवपाटनमें दानदेवका मन्दिर निर्माण कर उसमें आदि बुद्धमूर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर गये हैं और पशुपतिनाथका मन्दिर भी इन्हींके द्वारा स्थापित हुआ है। १६६१ ई०में देवपाटन दरबारके खर्चसे उक्त मन्दिर-का संस्कार हुआ था। गुर्खा-आक्रमणके समय मन्दिर-का ताम्रकलस तोड़-फोड़ डाला गया था और नेवार-राजने उसीको बेच कर युद्धका खर्च चलाया था *।

नेवारियोंमें भेक और सर्पपूजा विशेष प्रचलित है। भेकपूजाके विषयमें भिन्न भिन्न लोगोंका भिन्न भिन्न मत है। कोई कहते हैं, कि जिस प्रकार सभी आदिम असभ्य जातियोंके मध्य किसी किसी विशिष्ट जन्तुकी पूजा प्रचलित है, नेवारियोंमें भेकपूजा भी उसी प्रकार है। फिर किसी किसीका कहना है, कि नेवारी लोग नागपूजा-के ऊपर विशेष आस्थावान् हैं, इस कारण सर्पके एकमात्र आहार इस भेक जातिका समादर किया करते हैं। किन्तु नेवार लोग कहते हैं, कि इस भेकके आह्वानसे ही मर्त्त्यभूमि पर वृष्टि होती है और वृष्टि होनेसे देश हरा भरा हो जाता है। भेक ही देशकी उन्नतिका एकमात्र कारण है, यह जान कर वे लोग भेककी पूजा किया करते हैं। जापान द्वीपमें भी बड़ी धूमधामसे भेककी पूजा होती है।

नेवारी लोग कार्त्तिक मासकी कृष्णा सप्तमीको यह पूजा करते हैं। इस दिन वे नाना प्रकारके द्रव्य ले कर किसी पुष्करिणीमें जाते और वहां उन सब द्रव्योंको रख कर घृतके संयोगसे अग्नि जलाते और मन्त्र पढ़ते हैं। मन्त्रका मर्म इस प्रकार है, "हे परमेश्वर भूमिनाथ! हम लोगोंकी प्रार्थनाके अनुसार यह उपहार ग्रहण कीजिए और समय समय पर जल दे कर हम लोगोंके शस्यकी रक्षा कीजिए।"

जब मञ्जुश्री महाचीनसे इस नेपालराज्यमें पधारे थे, उस समय काठमण्डूका उपत्यकादेश जलपूर्ण था। मञ्जुश्री-ने अपनी अलौकिक क्षमता दिखलानेके लिये पर्वत-को काट कर वह सञ्चित जल बाहर बहा दिया। जलमें जो सब सर्प और अन्यान्य जलजन्तु थे वे धीरे धीरे जलस्रोतसे बाहर निकल पड़े। जब नागराज कर्कोटक द्वारमुख पर आ खड़े हुए, तब मञ्जुश्रीने उन्हें भीतरमें रहनेका अनुरोध किया और उनके रहनेके लिये टण्डा नामक एक विस्तृत ह्रद वा पुष्करिणी निर्दिष्ट कर दी। नागराज कर्कोटकका माहात्म्य-प्रकाशके लिये नेपालमें सर्पपूजा प्रचलित हुई।

* H. A. Oldfield's History of Nepal. II. p. 258-259.

श्रावणमासकी नागपञ्चमीको यह पूजा और उत्सव होता है। जहां चार वा पांच जलधारा एक साथ मिल गई हैं, वही स्थान पूजाके लिये उत्कृष्ट समझा जाता है। इस पूजामें एक पुरोहित आवश्यक है। इस दिन वह पुरोहित प्रातःकृत्यादि समाप्त करके चावल, सिन्दूर, समान भागमें मिश्रित दुग्ध और जल, फूल, घृत, मक्खन, जायफल, मसाला, चन्दन और धूना आदि उपकरण एक पात्रमें रख नदीतट जाते और पूजा समाप्त करके घर लौटते हैं। अन्यान्य विवरण नेवाल शब्दमें देखो।

नेवारी (हिं॰ स्त्री॰) जूही या चमेलीकी जातिका एक पौधा। इसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं। पत्तियां इसकी कुंद या जूहीकी-सी होती हैं। यह पौधा वर्षा-ऋतुमें अधिक फूलता है। फूलोंमें बड़ी अच्छी भीनी महक होती है। इसे वनमल्लिका भी कहते हैं।

नेवाल—अयोध्या प्रदेशके बाङ्गड़-मऊ नगरसे २ मील उत्तर कल्याणी नदीके समीप -पचनाई नालाके ऊपर स्थापित एक प्राचीन ग्राम। यहां अनेक मूर्त्ति या और इष्टकादिके स्तूप देखनेमें आते हैं। यही भग्नावशेष इसके प्राचीनत्वका परिचायक है। यह कान्यकुब्जराज-धानीसे प्रायः १८ मील दक्षिणपूर्व गङ्गानदीके किनारे अवस्थित है।

चीनपरिव्राजक फाहियान और यूएनचुवङ्गका भ्रमण-वृत्तान्त पढ़नेसे जाना जाता है कि वे कान्यकुब्जसे बाहर निकल कर गङ्गानदी पार हुए। पीछे उक्त महानगरीसे प्रायः ३ योजन* वा १०० लीगका† रास्ता तै कर वे दक्षिण दिशामें नवदेवकुल (No-po-li po-Kiu-lo) नामक एक समृद्धिशाली नगर पहुंचे। यूएनचुवङ्गने इस नगर-के नामके सम्बन्धमें लिखा है, कि बुद्धदेव यहां पांच सौ राक्षसोंको धर्मका उपदेश दिया। उन असुरोंने बुद्ध-देवसे धर्मका उपदेश पा कर दस्युवृत्ति छोड़ दी और नया जन्म प्राप्त किया। इस स्थानसे नूतन देवजातिकी उत्पत्ति हुई, इस कारण ग्रामका नाम 'नवदेव-कुल' रखा गया।

डा॰ कनिंहम नेवाल ग्रामकी प्राचीन कीर्ति देख कर विस्मित हो पड़े और उन्होंने अनुमानसे समस्त ध्वंसावशेषको प्राचीन नवदेव-कुल नगरीका निदर्शन बतलाया। उन्होंने यह भी कहा है, कि युएनचुवङ्गने नगरके परिदर्शनके समय जिन सब गृहादिका उल्लेख किया है, उनकी अच्छी तरह आलोचना करनेसे मालूम पड़ता है कि वर्त्तमान नेवाल और बाङ्गड़-मऊ नगरमें जो सब भग्न गृहादि और स्तूपादिका ध्वंसावशेष है, वही उस प्राचीन कीर्त्तिका रूपान्तरमात्र है। बाङ्गड़-मऊ नगरसे नेवाल दो मील दूर होने पर भी बाङ्गड़-मऊके प्रान्तभागमें स्थित जो टीला देखा जाता है, उस स्थानसे नेवाल ग्रामकी दूरी एक मीलसे भी कम होगी। यूएनचुवङ्गने नवदेवकुल नगरका घेरा प्रायः तीन मील लिखा है। यदि ऐसा हो, तो अनुमानसे यह अवश्य कह सकते हैं, कि वर्त्तमान नेवालग्राम और बाङ्गड़-मऊके अंशमें प्राचीन भग्न गृहादि हैं। उनका बहुत कुछ अंश ले कर उस समय बहुजनतापूर्ण समृद्धिशाली नवदेवकुल नगरी गठित हुई होगी।

यहांके ध्वंसावशेषके विषयमें अधिवासियोंके मुखसे ऐसा सुना जाता है, कि एक समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली और हर्म्यादिसे परिपूर्ण था। मुसलमानों-के प्रथम आक्रमणके समय यहां नल नामक एक हिन्दू राजा वास करते थे। इस समय सैयद अलाउद्दीन बिन-घालुन नामक कोई फकीर इस स्थान पर रहनेकी इच्छासे कान्यकुब्जसे रवाना हुए। राजाने अपने राज्यमें यवनका वास होना पसन्द न किया और उस फकीरको दूसरे देश चले जानेका हुकुम दिया। फकीरने उनकी बातकी अवहेला कर दी। इस पर राजाने अपना अनुचर भेज कर उन्हें बाङ्गड़-मऊसे निकाल भगाया। जाते समय फकीरने शाप दिया, 'तेरा राज्य शीघ्र ही भूमिसात् होगा।' आज भी इस ग्रामके ध्वंसावशिष्ट अंशको यहांके लोग उल्ट खेरा (उलट पलट) नगर कहते हैं। उनका विश्वास है कि उस फकीरके शापसे यहां जितने मकान थे सभी उलटे गये और उस भग्नावशेष-का अभी केवल एक टीला रह गया है। फकीरको नेवाल-में स्थान न मिलने पर वे बाङ्गड़-मऊ नामक स्थानको

* Beal's Fa-hian, chap, XVIII. p. 71.

† Julien's Hwen Thsang, Vol, II, p. 265.

चल दिये। यहां उनकी कब्रके ऊपर लिखा है कि ७०२ हिजरीमें उनको मृत्यु हुई। सभी अधिवासी उन्हें यति वा ब्रह्मचारी मानते हैं।

किसी किसीका कहना है, कि यह बाङ्गड़-मज नगर उक्त मुसलमान संन्यासीसे बसाया गया था, किन्तु जनसाधारणोंमें ऐसा प्रवाद है, कि यहां बाङ्गड़ नामका एक धोबी रहता था; उसीके नामानुसार इस नगरका नाम बाङ्गड़-मज पड़ा। मुसलमान संन्यासीकी कब्रके सामने उसकी भी कब्र खोदी गई थी। जो कुछ हो, यह गल्प सत्य नहीं होने पर भी उस समय अर्थात् तेरहवीं शताब्दीमें जब यह फकीर नेवाल नगरमें आये हुए थे, तब वे नगरकी सुन्दरता देख कर विमोहित हो गए; इसमें जरा भी सन्देह नहीं। यथार्थमें जिस समय यूएनसुअङ्ग इस स्थानको देख गए थे, उस समय उनके परवर्त्ती छः शताब्दियोंमें भी उन सब प्राचीन कोर्त्तिके कुछ अंश बच रहे थे, यह सहजमें ही अनुमान किया जा सकता है।

बाङ्गड़के समाधिमन्दिरमें जो प्रस्तरलिपि है उससे जाना जाता है कि वह मन्दिर ७८२ हिजरीमें फिरोजशाह तुगलकके राजत्वकालमें निर्माण किया गया था। मुसलमान समाधिमन्दिरकी ईंटें १५×१२ इञ्च हैं और उन पर उनकी चार अङ्गुलियोंके चिह्न देखे जाते हैं। इसके बरामदे और सम्मुखभागमें प्राचीन हिन्दूराजाओंके समयका स्तम्भ विद्यमान है। जिस ऊंचे टीलेके ऊपर यह मन्दिर स्थापित है, वह किसी प्राचीन हिन्दू-कीर्त्तिके भग्नावशेषके जैसा देखनेमें लगता है। नेवालमें प्राचीन ध्वंसावशेषके मध्य केवल ऊंचे ऊंचे टीले, दीवार, टेढ़ी ईंटें, पत्थरकी भग्न प्रतिमूर्त्ति, जली हुई मिट्टीका कारुकार्य और पुत्तलिकादि तथा भिन्न भिन्न समयकी मुद्रा और माला पाई जाती हैं।

यहां जितने टीले हैं उनमेंसे देवराडि नामका टीला सबसे बड़ा है। इस स्थानको खोदते समय दो बड़े प्राचीर देखे गए थे जिनकी प्रत्येक ईंट १५×८ इञ्च लम्बी थी। शीतलादि टीलेमें एक चतुर्भुज विष्णुमूर्त्ति और कई एक बुद्धदेवके मुख पाये गए हैं। ग्रामसे साढ़े-तीन हजार फुट पश्चिमोत्तर दिशामें 'दानोघेरो' नामका एक दूसरा बड़ा ऊंचा टीला है। यहां ब्राह्मणोंके अधीन एक मन्दिर और कुछ प्रतिमूर्त्तियां हैं। नेवाल ग्रामके उत्तरांशमें महादेव और फुलबाड़ी नामक दो स्थान हैं। यहांके मन्दिर ब्राह्मणधर्मके परिचायक हैं। इसके पूर्व और उत्तरपूर्व दिशामें पवनाई नालाके और भी कुछ स्तूप तथा इष्टकादि देखे जाते हैं।

यूएनसुअङ्गने नवदेव नगरके विषयमें यों लिखा है,—इस नगरके उत्तरपश्चिम तथा गङ्गाके पूर्वी किनारे एक देवालय था जिसका मण्डप और शिखर बहुत ऊंचा और कारुकार्य भी मनोरम था। नगरसे एक मील पूर्व तीन बौद्ध सङ्घाराम थे। उन सङ्घारामको पार कर दो सौ पाद जानेके बाद अशोकनिर्मित १०० फुट ऊंचा एक स्तूप देखा जाता है। यहां बुद्धदेवने सात दिन तक धर्ममतकी शिक्षा दी थी। इसी स्तूप पर उनका शरीर गाड़ा गया था। इसके पास ही पिछले चार बुद्धके बैठनेके आसन और उनके भ्रमणस्थान हैं। उपर्युक्त तीन सङ्घारामसे आध मील उत्तर गङ्गाके किनारे अशोकनिर्मित दो सौ फुट ऊंचा एक और स्तूप है। यहां बुद्धदेवने ५०० राक्षसोंको अपने मतमें प्रवर्त्तित किया था। इसके समीप चार बुद्धासन हैं। कुछ दूरमें बुद्धदेवका केश और नखपीठ नामक एक दूसरा स्तूप देखनेमें आता है।

वर्त्तमान नेवालग्राम और बाङ्गड़मजमें जो सब ध्वंसावशेष हैं उनके साथ यूएनसुअङ्ग-वर्णित बौद्ध और हिन्दू कोर्त्तियोंकी तुलना करनेसे दोनोंमें बहुत सादृश्य देखा जाता है। इसके सिवा जिस स्तूप पर बाङ्गड़ रजककी कब्र है, प्रत्नतत्त्वविद् उसीको बुद्धदेवका केश और नखपीठ बतलाते हैं। कसोमाडो-कोरोसो (Csoma-de-Korose) साहबने अपने तिब्बतीय बौद्धग्रन्थकी समालोचनाके समय एक ग्रन्थसे एक गल्पका उल्लेख किया है जो इस प्रकार है,—सम्यक नामक एक शाक्य कपिलवस्तुसे भगाये जाने पर वे बुद्धके नख और केश अपने साथ ले आये थे और बागुड़ नामक स्थानमें रहने लगे थे। बागुड़के राजा हो कर उन्होंने नख और केशको मट्टीके अन्दर गाड़ दिया और उसके ऊपर एक चैत्यका निर्माण किया। वह कीर्त्तिस्तम्भ उन्हींके

सुनाम और कीर्त्तिका परिचायक है *। परिव्राजक यूएनचुअङ्गने नवदेवकुलके जिस अंशमें बुद्धके केश और नख देखे थे और जो अभी वाङ्गरमऊ कहलाता है, सम्भवतः वही तिब्बतीय बौद्ध-ग्रन्थमें वाङ्गरके अपभ्रंशरूप मागुड़ नामसे लिखा गया होगा।

नेवालगञ्ज-कुम्महाराजगञ्ज—अयोध्या प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत दो पासन्नलग्न नगर। यह अक्षा० २६° ४७' १०" उ० और देशा० ८०° ४५' २१" पू०, मोहननगरसे दो मील पूर्व अयोध्यासे लखनऊ जानेके रास्ते पर अवस्थित है। पहले नवाब सफदरजङ्गके नायब महाराज नवलरायने इस नगरको बसाया। पीछे अयोध्याके अन्तिम नवाब वाजिदअली शाहके राजस्व-सचिव महाराज बालकृष्णने उक्त नगरकी समीप महाराजगञ्ज नामक एक नया शहर बसाया। वाजिदअली शाह अङ्गरेजोंसे नजरबन्द हो कर कलकत्ते के निकट मोचीखोला (Garden Reach) नामक स्थानमें रहते थे। यहीं पर १८८७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उक्त गञ्ज बहुत बड़ा है। दोनों नगरोंमें जाने आनेके लिये पुल बने हुए हैं। यहां पीतलके बरतन तैयार होते जो भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजे जाते हैं।

नेबूकाडनेजर—बाबिलन देशका एक प्रसिद्ध प्राचीन राजा। शायद उन्होंने ६०८ से ५६२ ई०सन्के पहले राज्य किया था। पिताकी जीवदशामें ही उनका यशःसौरभ चारों ओर फैल गया था। उनके पिता नबोपल-सर मिदोयाराज सायकसारेश और इजिप्तराज निकोके साथ मिल कर ताइग्रीस नदीतीरवर्त्ती निनिभी नगर जय करनेके लिए अग्रसर हुए थे। ६०६ ईसाके सन्के पहले आसिरीयगणके अधःपतन होनेसे उक्त राज्य विभक्त हो गया था। मिदोया प्रदेश और उत्तर आसिरीयासे सायलीसिया तकका भूभाग मिदोयाराज सायकसारेशके, आसिरीयाका दक्षिणांश और अरबके कुछ अंश बाबिलनराजके तथा सायलीसियाके दक्षिण और कारके मिस देशके पश्चिमांशवर्त्ती स्थान इजिप्तके हाथ आये।

निनिभि देखो।

इसी युद्धमें नेबूकाडनेजर भी पिताके अनुवर्त्ती हुए थे। प्राचीन इतिहासमें वर्णित निनिभि-दुर्गकी जय-में उनकी गुणगरिमा समग्र पश्चिम एशियामें फैल गई थी। उन्होंने अपने प्रतिभा-बलसे बाबिलनको एशियाके पश्चिम खण्डका केन्द्रस्थल बना लिया। निकटवर्त्ती राजाओंने इस समय इनके सामने अपना-अपना सिर झुकाया था। ६०५ ईसी सन्के पहले इन्होंने पिताके आदेशानुसार इजिप्तराज द्वितीय निकोके विरुद्ध युद्ध-यात्रा की और उन्हें कारके मिस नगरके समीप परा-जित कर सोरिया पर दखल जमाया। ६०२ ईसाके सन्के पहले पैलेस्तिनमें जब विद्रोह खड़ा हुआ था, तब ये दलबलके साथ वहां उपस्थित हुए थे। जाते समय इन्होंने टायरको जीता और जूडा नगर पर आक्रमण किया। इन्होंने जूडाराज जोहाइया चीनको राज्यच्युत करके सिंहासन पर अपने चचा जेडकियाको बिठाया। पैलेस्तिनका विद्रोह दमन कर इन्होंने जूडाराजको कैद कर लिया और आप बाबिलनको लौट आये। पीछे चचाके विद्रोही होने पर ५८८ ई०सन्के पहले अपने सेनापति नेबुजरदनको सेनाके साथ उन्हें दमन करनेके लिये भेजा। ५८७ ई०सन्के पहले जेडकिया पराजित हुए और जेरुजलमनगर उनके हाथ लगा। नगरमें प्रवेश कर इन्होंने मन्दिरादि तोड़ने और समग्र नगरको जला देनेका हुकुम दिया। जेडकियाकी आंखें निकाल ली गईं और उनके लड़के यमपुरको भेज दिये गये। जेरुजलमके पवित्र मन्दिरके तैजसादि और मूल्यवान् धनरत्नादि ले कर वे स्वदेशको लौटे। राहमें जूडानगर जीता और लूटा तथा वहांके गण्यमान्य व्यक्तियोंको कैद कर अपने साथ लें चले। उसी साल इन्होंने फिर टायर नगरको अवरोध किया। प्रवाद है, कि कई वर्ष अव-रोधके बाद ५७२ ई०सन्के पहले यह नगर उनके अधि-कारमें आया था।

इसी बीच यहूदियोंने पुनः विद्रोही हो कर काल-दियाके शासनकर्त्ता गोदालियाकी हत्या की। इस अन्याय आचरणसे उत्तेजित हो कर नेबूकाडनेजरने पुनः ५८२ ई० सन्के पहले जेडानगर पर धावा बोल दिया और आमालवणिता सभीको कैद कर बाबिलन ले गये। पीछे मरुभूमिकी प्रान्तवर्त्ती जातियोंको दमन करनेका सङ्कल्प

* Asiatic Researches of Bengal, Vol. XX, p. 88.

किया तथा अरबके अन्यान्य स्थानों पर भी दखल जमाया।

५७२ ई०सन्के पहले आप अपनी सेनाके अधिनायक हो कर इजिप्ट राज्यमें गए और वहांके अधिपति होफ्रोको पराजित कर राज्यमें लूटमार मचाने लगे। पीछे अहमेश नामक एक सेनापतिको उस प्रदेशका शासनकर्त्ता बना कर आप बाबिलन लौटे। इस समय बाबिलन राज्य उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुँच गया था।

महाप्रभावशाली सम्राट् नेबूकाडनेजरके राजत्वकालमें ही वाणिज्यकी उन्नतिकी पराकाष्ठा झलकने लगी थी, उनके शासनकालमें इजिप्ट और बाबिलनवासी भारतवर्षमें वाणिज्यके लिये आया करते थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी इजिप्टराज २य निकोने वाणिज्यविस्तारके लिए नीलनदीके साथ लोहितसागरके संयोगार्थ एक नहर काटनेका इरादा किया।

नेबूकाडनेजरने बहुतसे मन्दिर बनवाये थे। बेबिलनका प्रसिद्ध 'बेगल' मन्दिर और तेमिन-समिरत्-सिति नामक स्तम्भ, यूफ्रेटिस नदीके किनारे अवस्थित तीर्थ स्थान और धर्म मन्दिर-समूह तथा बेबिलन नगरके चतुर्दिकस्थ विख्यात और प्रशस्त प्राचीरका उन्होंने पुनर्निर्माण कराया। बेबिलन महानगरीमें जो 'आकाश-उद्यान' (Hanging Garden of Babylon) सभ्य-जगत्के मध्य आश्चर्यकीर्त्ति समझा जाता है और जो निर्माताके अलौकिक कार्य तथा असीम बुद्धिका परिचायक है, सम्राट् नेबूकाडनेजर अपरिमित अर्थ व्यय करके जगत्में उस अपूर्व कीर्त्तिकी प्रतिष्ठा कर गए हैं।

दानियेल-लिखित घटनावली पढ़नेसे जाना जाता है कि नेबूकाडनेजर वृद्धावस्थामें उन्माद-रोगग्रस्त हुए। ई०सन् ५६२ वर्षके पहले उनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र अमिल मरुदकने राज्यभार ग्रहण किया। दानियेल और एजिकायेल पुस्तकमें उनके नामकी विभिन्न परिभाषा देखी जाती है। बिसुतन शिलालिपिमें उनके तीन नाम देखे जाते हैं, नवोखोद्रोसर, नबुखद्रचर और नबुखुद्रचर। मुसलमान ऐतिहासिकोंने इन्हें 'बखत् अलनसर' नामसे उल्लेख किया है।

नेष्ट (सं० त्रि०) न इष्टम्, नञर्थ न शब्देन सह सुप्सुपेति समासः। १ अनिष्ट। २ तत्साधननिषिद्ध, जो शास्त्रमें निषिद्ध बतलाया गया है, उसका अनुष्ठान करनेसे अनिष्ट होता है, इसीसे उसे नेष्ट कहते हैं।

नेष्टा (हिं० पु०) नेष्टृ देखो।

नेष्टु (सं० पु०) निश-तुन्। लोष्ट्र, ढेला।

नेष्टृ (सं० पु०) नयति शमसिति नी-तृन् प्रत्ययेन साधुः (नप्तृनेष्टृ त्वष्ट्रेति। उण् २।९६) १ ऋत्विक्। २ त्वष्टृदेव, त्वष्टा देवता।

नेस (फा० पु०) जङ्गली जानवरोंके लम्बे नुकीले दाँत जिनसे वे काटते हैं।

नेसकुन (हिं० पु०) बन्दरोंका जोड़ा खाना।

नेसर्गी—बम्बई प्रदेशके बेलगाँव जिलान्तर्गत शापगाँव तालुकका एक नगर। यह शापगाँव सदरसे ३॥ कोस उत्तर बेलगाँवसे कलादगी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। प्रति सोमवारको यहां हाट लगती है। वस्त्रवयन और अलङ्कार निर्माण यहांके अधिवासियोंका प्रधान व्यवसाय है। यहांका वासवका मन्दिर बहुत प्राचीन है। इसके ध्वंसावशेषका कारुकार्य बड़ा ही सुन्दर है। मन्दिरके सामने वासवेश्वर शिवके उद्देशसे प्रति वर्ष एक उत्सव होता है। रट्टवंशीय राजा ४र्थ कार्त्तवीर्यके राजत्वकालमें ११४१ शकमें उत्कीर्ण एक शिलालिपि मन्दिरमें संलग्न है। उक्त शिलाफलकसे जाना जाता है, कि नेसर्गी आदि छः ग्रामोंके शासनकर्त्ता बाचेयनायकने तीन मन्दिर बनवाये और राजा कार्त्तवीर्यके आदेशानुसार उक्त मन्दिरादिके व्ययके लिए कुछ भूमि दान की गई। यहांके अर्द्धभग्न जैनमन्दिरमें जो जिनमूर्त्ति प्रतिष्ठित है उसके नीचे ११वीं वा १२वीं शताब्दीके प्रचलित अक्षरोंमें खोदित एक और शिलालिपि है। १८०० ई०में ढुण्डियाबाघका पीछा करनेमें मैयानीके 'देसाई' सरदार दलबलके साथ अंग्रेज-सेनापति वेलेस्लीके साथ मिल गए थे।

नेस्त (फा० वि०) जो न हो।

नेस्ता (फा० स्त्री०) १ अनस्तित्व, न होना। २ आलस्य। ३ नाश, बर्बादी।

नेह (हिं॰ पुं॰) १ स्नेह, प्रेम, प्रीति। २ चिकना, तेल या घी।

नेहङ्ग खाँ—एक अविविनीय सेनापति। निजामशाही राज्यमें जब चाँदबीबी बालकराज बहादुर खाँकी अभिभाविका हुई थीं, उस समय (१६८४ ई॰में) नेहङ्ग खाँ सेनापतिके पद पर नियुक्त थे। राजा इब्राहिम खाँकी मृत्युके बाद प्रधान मन्त्रीने मियां मञ्जू अहमद नामक एक दूसरे बालकको राजा बनानेका विचार किया। सेनापति इखलास खाँने अहमदके राजवंशीयत्व पर सन्देह करते हुए एक और बालकको राजा बना कर घोषणा कर दी। नेहङ्ग खाँने प्रथम बुरहान निजाम शाहके वृद्ध पुत्र शाहअलीको भी जिनकी उम्र ७० वर्षकी थी, सिंहासनके प्रार्थिरूपमें उपस्थित किया। इधर सुलताना चाँदबीबीने इब्राहिमके पुत्र बहादुरको यथार्थ उत्तराधिकारी समझ रखा था। इस प्रकार एक सिंहासन पर तीन बालक राजपदके प्रतिद्वन्द्वी हुए। अकबरके पुत्र मोरङ्गने मियां मञ्जूका साथ दिया। मुगलयुद्धमें इखलास खाँ पराजित हुए। नेहङ्ग खाँ मुगलसेनाको भेद करते हुए अहमदनगर गढ़में पहुँचे और चाँद सुलतानाके साथ मिल गए। सिंहासन प्रार्थी शाहअली युद्धमें अपने अनुचरोंके साथ मारे गए। इसके बाद नेहङ्ग खाँ मन्त्रिपद पर अभिषिक्त हुए। इस समय चाँदबीबीके साथ सम्राट् अकबरका युद्ध छिड़ा। अकबरके अधीन जब मुगल लोग अग्रसर हुए, तब नेहङ्गने पहले तो उन्हें रोकनेकी खूब कोशिश की, लेकिन पीछे उन्हें जूनीर नामक स्थानमें भाग जाना पड़ा।

बहादुर निजामशाह देखो।

नेहाल—पार्वत्य आदिम जातिविशेष। बरारके अन्तर्गत बरदा नदीके किनारे मैलघाट नामका जो पर्वत है उसके जङ्गलमें इनका वास है। ये लोग फल मूल खा कर अपना गुजारा करते हैं। जातिमें ये गोंड़से निकृष्ट समझे जाते हैं। कहीं कहीं इस जातिके लोगोंने गोंड़के यहां दासत्व स्वीकार कर लिया है। खान्देशमें ये लोग भील जातिके साथ एक श्रेणीमें आबद्ध हैं।

नै (हिं॰ स्त्री॰) १ नदी। (फा॰ स्त्री॰) २ बांसकी नली। ३ हुक्केकी निगाली। ४ बांसुरी।

नैःस्व (सं॰ क्ली॰) निःस्वस्य भावः, ष्यञ्। निर्द्धनत्व।

नैक (सं॰ त्रि॰) न एकः नञर्थ-शब्देन सहसुपेति समासः। १ अनेक, बहुत। (पु॰) २ विष्णु।

नैकचर (सं॰ त्रि॰) नैकः संघीभूय चरतीति चर-ट। संघीभूयचारी, जो अकेले न चलते हों, झुंडमें चलते हों, जैसे सूअर, भेड़िया, हिरन आदि।

नैकज (सं॰ पु॰) नैकधा जायते जन-ड, पृषोदरादित्वात् धा लोपः। धर्मरक्षाके लिये अनेक बार जायमान, परमेश्वर।

नैकटिक (सं॰ त्रि॰) निकटे वसति निकट-ठक् (निकटे वसति। पा ४।४।७३) निकटवर्त्ती, निकटस्थ, समीपका।

नैकट्य (सं॰ क्ली॰) निकटस्य भावः, निकट-ष्यञ्। निकटत्व, निकट होनेका भाव।

नैकती (सं॰ स्त्री॰) नैकं तायते ताय-ड, गौरादित्वात् ङीष्। १ गोष्ठी। तत्र भव पलाद्यादित्वात् अण्। (त्रि॰) २ नैकत-गोष्ठीभव।

नैकदृश (सं॰ पु॰) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम। (भारत १३।२५३ अ॰)

नैकधा (सं॰ अव्य॰) नैक प्रकारे धाच्। अनेक प्रकार, कई तरह।

नैकपृष्ठ (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद।

नैकभेद (सं॰ त्रि॰) नैको भेदोयस्य। उच्चावच, अनेक प्रकारका।

नैकमाय (सं॰ त्रि॰) नैका माया यस्य। १ अनेक कपट, बहुप्रकार मायायुक्त। (पु॰) २ परमेश्वर।

नैकरूप (सं॰ त्रि॰) नैकं रूपं यस्य। १ नानारूप। (पु॰) २ परमेश्वर।

नैकवर्ण (सं॰ त्रि॰) बहुवर्णसमन्वित।

नैकशस् (सं॰ त्रि॰) बहुबार, अनेकबार।

नैकशस्त्रमय (सं॰ त्रि॰) नानाविध अस्त्रयुक्त।

नैकशृङ्ग (सं॰ पु॰) नैकानि चत्वारि शृङ्गाणि यस्य। परमेश्वर। "नैकशृङ्गो गदाग्रजः" (विष्णुस॰) भगवान् विष्णुके तीन पैर और चार सींग माने गये हैं।

नैकषेय (सं॰ पु॰) निकषाया अपत्यं ढक्। निकषात्मज, राक्षस।

नैकसानु (सं॰ पु॰) नैके सानवो यस्य, पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

नैकसानुचर (सं॰ पु॰) नैकसानौ चरतीति चर-ट। शिव, महादेव।

नैकात्मन् (सं॰ पु॰) नैक आत्मा स्वरूपं यस्य। पर ब्रह्म, परमेश्वर।

नैकुम्भ (सं॰ क्ली॰) जैपालवोज, जमालगोटेका बीया।

नैकृतिक (सं॰ त्रि॰) निकृत्या परापकारेण जीवति निकृत्यां निष्ठुरतया चरति वा निकृति-ठक्। १ दूसरेकी हानि करके निष्ठुर जीविका करनेवाला। २ कटुभाषी।

नैनदुर्ग—महिसुरके अन्तर्गत एक क्षुद्र नगर। यह चित्तलदुर्गसे २१ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है।

नैखान्य (सं॰ त्रि॰) निखननयोग्य, खोदने या गाड़ने लायक।

नैगम (सं॰ क्ली॰) निगम एव स्वार्थे अण्। १ ब्रह्म-प्रतिपादक उपनिषद्रूप वेदभाग। २ नय, नीति। निगमे भव-अण्। ३ वणिक् जन। ४ नागर। ५ निघण्टु-ग्रन्थांशभेद। ६ ऋति। ७ पथ। ८ नायक। ९ नगरवासी मनुष्य। (त्रि॰) १० निगमसम्बन्धी। ११ जिसमें ब्रह्म आदिका प्रतिपादन हो। १२ निगम-शास्त्रवेत्ता।

नैगम—पठारी जातिके एक राजा। सौवल्यक्षत्रिकुलमें राजा जाङ्गलिकके वंशमें इनका जन्म हुआ था। एक-वीरा इनके कुल देवता थे।

नैगम—देवार्थक। गुप्तशिलालिपिमें लिखा है, कि विष्णुवर्द्धन राजाके समयमें षष्टिदत्त नामक किसी राज-कर्मचारीने निगमविद्याका विशेष आदर हुआ। इसीसे उक्त शिलालिपिमें षष्टिदत्तको नैगमका आदि पुरुष बतलाया है।

नैगमनय (सं॰ पु॰) वह नय या तर्क जो द्रव्य और पर्याय दोनोंको सामान्यविशेषयुक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्यके बिना विशेष और विशेषके बिना सामान्य नहीं रह सकता।

नैगमिक (सं॰ त्रि॰) निगमे भवः, तस्य व्याख्यानो वा क्रतवनादित्वात् ठक्। १ निगमभव, जो निगमसे उत्पन्न हो। (क्ली॰) २ तद्व्याख्यान ग्रन्थ। ३ उसका अध्याय।

नैगमेय (सं॰ पु॰) १ कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम। २ सुश्रुतोक्त बालग्रह भेद।

नैगमेष (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त बालग्रहभेद। सुश्रुतमें ९ बालग्रहभेदका उल्लेख है जिनमेंसे नैगमेष नवम ग्रह है। इसके द्वारा पीड़ित होनेसे बच्चोंके मुंहसे फेन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपरको टंगी रहती है और देहसे चरबीकी-सी गंध आती है।

इसकी चिकित्सा—विल्व, अग्निमन्थ, नाटाकरञ्ज इन सबका क्वाथ और सुरा, कांजी, धान्याम्ल-परिषेचन, प्रियङ्गु, सरलकाष्ठ, अनन्तमूल, कुटन्नट, गोमूत्र, दधि-मस्तु और अम्लकाञ्जी इनके योगसे तैल पाक करके अभ्यङ्ग करना होता है। दशमूलका क्वाथ, दुग्ध और मधुरगण तथा खजूरकी ताड़ी इन सबके योगसे पाक करके घृतपान, हरीतकी, जटिला और वचका अङ्गमें धारण, श्वेतसर्षप, बच, हिङ्गु, कुष्ट, भल्लातक और अज-मोदा इनका धूप प्रयोज्य है। रातको सबके सो जाने पर बन्दर, उल्लू-चिड़िया और गिद्धकी विष्ठाके बने हुए धूप, तिल, तण्डुल तथा विविध प्रकारके भक्ष्यद्रव्योंसे इस ग्रहका पेड़के नीचे पूजन करना चाहिए। वट वृक्षके नीचे इसका पूजन करना प्रशस्त है। इस ग्रहका स्नान-मन्त्र इस प्रकार है—

"अजाननश्चलाक्षिभ्रूः कामरूपी महायशाः।
बालं पालयिता देवो नैगमेषोऽभिरक्षतु।"

(सुश्रुत उत्तरतन्त्र ७१ अ॰) नवग्रह देखो।

नैगमेषापहृत (सं॰ पु॰) नागोदर, सोनावंद।

नैगेय (सं॰ पु॰) सामवेदकी एक शाखा।

नैघण्टुक (सं॰ क्ली॰) निघण्टुः पर्याय-शब्दमधिकृत्य प्रवृत्तं ठक्। भाष्यकथित प्रथमाध्यायत्रयात्मक निघण्टु-ग्रन्थका प्रथम काण्ड।

नैचा (फा॰ पु॰) हुक्केकी दोहरी नली जिसमें एकके सिरे पर चिलम रखी जाती है और दूसरेका छोर मुंहमें रख कर धुआं खींचते हैं।

नैचाबंद (फा॰ पु॰) नैचा बनानेवाला।

नैचाबंदो (फा० स्त्री०) नैचा बनानेका काम।

नैचाशाख (सं० क्ली०) शूद्र-सम्बन्धी धन।

नैचिक (सं० क्ली०) नीचा भवतीति ठक्। गो-शिरो-भाग, गाय आदि चौपायोंका माथा।

नैचिकी (सं० स्त्री०) नीचैश्चरतीति ठक्, वा निचिः गोकर्णशिरोदेशः, ततः स्वार्थे कन्, प्रशस्तं निचिक-मस्याः ततो ज्योत्स्नादिभ्य इत्यण्, ततो ङीप्। उत्तम-गाभी, अच्छी गाय।

नैचित्य (सं० त्रि०) निचिते भवः, नादित्वात् ण्य। निचित देशभव।

नैची (हिं० स्त्री०) पुर मोट वा चरसा खींचते समय बैलोंके चलनेके लिये बनी हुई ढाल्, राह, रपट, पैड़ी।

नैचुल (सं० क्ली०) निचुलस्येदं अण्, फलस्य पृथक् प्रयोगे अणो न-लुप्। १ निचुलसम्बन्धो हिज्जलफलादि, निचुलका फल या बीज। (त्रि०) २ निचुलसम्बन्धी।

नैज (सं० त्रि०) निजस्येदमिति निज-अण्। निज-सम्बन्धी, अपना।

नैटी (हिं० स्त्री०) दुद्धी नामकी घास या जड़ी, दुधिया घास।

नैतम्धव (सं० पु०) सरस्वती नदीतीरवर्त्ती स्थानभेद।

नैतिक (सं० त्रि०) नीतिसम्बन्धीय, नीतियुक्त।

नैतुण्डि (सं० पु०) नितुण्ड-अपत्यार्थे इन्। नितुण्डका पुत्र।

नैतोश (सं० पु०) हननकारीका अपत्य, मारनेवालेकी सन्तति।

नैत्य (सं० त्रि०) नित्यं दीयते नित्यव्युष्टादित्वादण्। १ नित्य दीयमान, नित्य दिया जानेवाला। २ नित्यका। (क्ली०) नित्यं विहितः अण्, वा स्वार्थे अण्। ३ नित्य-विहित कर्म। ४ नित्यकर्म, रोज रोजका काम।

नैत्यक (सं० त्रि०) नैत्य-स्वार्थे कन्। नैत्य, रोजका।

नैत्यशब्दिक (सं० त्रि०) नित्यं शब्दं आह इत्यर्थे ठक्। नित्य शब्दवादी, जो शब्दको नित्यता स्वीकार करते हैं।

नैत्यिक (सं० त्रि०) नित्यं विहितः ठक्। नित्यविहित, जो प्रतिदिन किया जाता है।

"सन्ध्यां पंच महायज्ञान् नैत्यिकं स्मृतिकर्म च।" (मनु)

सन्ध्या और पञ्च महायज्ञ यह नैत्यिक कर्म है। इसके नहीं करनेसे पापका भागी होना पड़ता है।

नित्यकर्मन् देखो।

नैदाघ (सं० त्रि०) निदाघस्य इदं वेदे ग्रैष्मिकोऽण्। निदाघसम्बन्धी, ग्रीष्मका।

नैदाघिक (सं० त्रि०) निदाघस्य ऋतुवाचित्वेन 'कालात् ठञ्' इति ठञ्। निदाघ ऋतुसम्बन्धी, ग्रीष्मका।

नैदाघीय (सं० त्रि०) निदाघसम्बन्धी।

नैदान (सं० पु०) उत्पत्ति, कारण।

नैदानिक (सं० त्रि०) निदानं रोगकारणं वेत्ति, तत्प्रति-पादकं ग्रन्थमधीते वा ठक्। १ रोगनिदानाभिज्ञ, रोगोंका निदान करनेवाला। २ तत्प्रतिपादक ग्रन्थके अध्येता।

नैदेशिक (सं० त्रि०) निदेशं करोति ठक्। किङ्कर, दास।

नैद्र (सं० त्रि०) निद्रा-अण्। निद्राभव, निद्रासम्बन्धीय।

नैधन (सं० क्ली०) निधनमेव स्वार्थे अण्। १ निधन, मरण। २ लग्नसे आठवां स्थान।

नैधान (सं० त्रि०) निधानेन निर्वृत्तं सङ्कलादित्वात् अञ्। निधानसाध्य।

नैधानी (सं० स्त्री०) पांच प्रकारकी सीमाओंमेंसे एक, वह सीमा जिसका चिह्न गड़ा हुआ कोयला या तुष हो।

नैधेय (सं० पु०) निधिसम्बन्धीय।

नैध्रुव (सं० पु०) निध्रुवगोत्रप्रवर ऋषिभेद।

नैध्रुवि (सं० पु०) यजुर्वेदाध्यायक काश्यप ऋषिभेद।

नैनसुख (हिं० पु०) एक प्रकारका चिकना सूती कपड़ा।

नैनाचार्य—अधिकरणचिन्तामणि, आचार्यप्रपत्ति, आचार्यप्रार्थना, आचार्यमङ्गल, तत्त्वत्रयचुलक, तत्त्व मुक्ताकलापकण्ठी, रहस्यत्रयचुलक और सारत्रयचुलक आदि ग्रन्थोंके प्रणेता।

नैनारकोविल—मन्द्राजके अन्तर्गत मदुरा जिलेका एक स्थान। यह रामनादसे ८ कोस उत्तरपश्चिममें अवस्थित है। यहां एक बहुत प्राचीन प्रसिद्ध शिवमन्दिर है जिसका कारुकार्य देखने योग्य है। यहां शिवरात्रि आदि पर्वोंमें मेला लगता है जिसमें अनेक यात्री एकत्रित होते हैं।

नैनीताल—भारतवर्षके युक्तप्रदेशके अन्तर्गत कुमायुन

जिलेमें अवस्थित एक पार्वत्य नगर। यह अक्षा० २८° ५१´ से २८° ३७´ उ० और देशा० ७८° ४३´ से ८०° ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। नगरके नीचे एक बड़ा और सुन्दर शोभामय ह्रद है। यह एक स्वास्थ्यनिवास और यूरोपियनोंका ग्रीष्मावास है। युक्तप्रदेशके छोटे लाट ग्रीष्मकालमें इस नगरमें आ कर रहते हैं। यहांका चारों ओरका पार्वत्य प्राकृतिक दृश्य बहुत मनोहर है। समुद्र-पृष्ठसे यह नगर ६४०८ फुट ऊंचे पर बसा हुआ है। ग्रीष्मकालमें यहांकी जनसंख्या प्रायः ग्यारह हजार हो जाती है। १८८० ई०की १८वीं सितम्बरको यहां एक भारी तूफान आया था जिससे पर्वतश्रृङ्गका एकभाग ध्वंस गया था और १५० मनुष्योंकी जान गई थीं। म्युनिसिपलिटीने २ लाख रुपये खर्च करके नगरके संस्कार और रक्षाकी व्यवस्था कर दी है। सिपाही-विद्रोहके बाद यहां पीड़ित सेनानिवास स्थापित हुआ है। ३५० अंगरेजीसेना यहां चिकित्साके लिये रह सकती है। जिस ह्रदके किनारे शहर अवस्थित है उसकी लम्बाई आध कोस और चौड़ाई ४ सौ गज है। ह्रदकी दोनों बगल शेरकुदण्ड और लुड़ियाकण्ठ नामक दो पर्वतशिखर हैं। ह्रदमें मछलियां अधिक संख्यामें देखी जाती हैं। जिस उपत्यका पर नैनीताल बसा हुआ है, वह एक कोस लम्बी और आध कोस चौड़ी है। ह्रदका नाम नयनताल है। शायद नयनतालसे ही नयनीताल वा नैनीताल ऐसा नाम पड़ा है।

नैनू (हिं० पु०) १ एक प्रकारका सूती कपड़ा। इसमें आंखकी सी गोल उभरी हुई बूटियां बनी होती हैं। २ मक्खन।

नैप (सं० त्रि०) नीपस्य विकारः नीप-रजतादित्वात् अञ्। नीपविकार।

नैपातिक (सं० त्रि०) निपातनके हेतु प्रयोगयुक्त।

नैपातिथ (सं० क्ली०) साममेद।

नैपात्य (सं० क्ली०) निपातस्य भावः, ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। निपातका भाव।

नैपाल (सं० पु०) नेपाले नेपालाख्यदेशे भवः, अण्। १ नेपालनिम्ब। २ इक्षुजातिभेद, एक प्रकारकी ईख। ३ भूनिम्बविशेष। (त्रि०) ४ नेपालसम्बन्धी। ५ नेपालदेशका, नेपालमें होनेवाला।

नैपालिक (सं० क्ली०) नेपाले भवं इति ठक्। ताम्र, तांबा। ताम्र देखो।

नैपाली (सं० स्त्री०) नैपाल-ङीप्। १ नवमल्लिका, निवाली। २ मनःशिला, मैनसिल। ३ नाली, नीलका पौधा। ४ शेफालिका, एक प्रकारकी निर्गुण्डी।

नैपाली (हिं० वि०) १ नेपाल देशका। २ नेपालमें रहने या होनेवाला। (पु०) ३ नेपालका रहनेवाला आदमी।

नैपालीय (सं० त्रि०) नेपालदेशभव, नेपाल देशमें होनेवाला।

नैपुण (सं० क्ली०) निपुणस्य भावः, कर्म वा अण्। नैपुण्य, निपुणता।

नैपुण्य (सं० क्ली०) निपुणस्य भावः कर्म वा, ष्यञ् (गुणवचन ब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च। पा ५।१।१२४) निपुणता, चतुराई, होशियारी।

नैवहक (सं० त्रि०) निवहस्य अदूरदेशादि वराहादित्वात् फक्। निवहसमीप देशादि।

नैभृत (सं० क्ली०) निभृतस्य भावः ब्राह्मणादित्वात् ष्यञ्। निभृतत्व, अचाञ्चल्य।

नैमग्नक (सं० त्रि०) निमग्न वराहादित्वात् फक्। (पा ४।२।८०) निमग्नका अदूर देशादि।

नैमन्त्रणक (सं० क्ली०) निमन्त्रित व्यक्तियोंको खिलाना पिलाना, भोज।

नैमय (सं० पु०) वणिक्, व्यवसायी, रोजगारी।

नैमित्त (सं० त्रि०) निमित्ते भवः, निमित्तस्य शकुनशास्त्रस्य व्याख्यानो ग्रन्थो वा ऋगयनादित्वात् अण्। (पा ४।३।७३) १ निमित्तबोध। २ शकुनरूप निमित्त-सूचक ग्रन्थव्याख्यान।

नैमित्तिक (सं० त्रि०) निमित्तं वेत्ति, तत्प्रतिपादकग्रन्थमधीते वा उक्थादित्वात् ठक्। १ निमित्ताभिज्ञ। २ निमित्तरूप शकुनशास्त्रके अध्येता। ३ जो किसी निमित्तसे किया जाय, जो निमित्त उपस्थित होने पर या कभी विशेष प्रयोजनकी सिद्धिके लिये हो। जैसे, नैमि-

त्तिककर्म, पुत्रप्राप्तिके निमित्त पुत्रेष्टियज्ञका अनुष्ठान, ग्रहणके लिये गङ्गास्नान।

नित्य, नैमित्तिक और काम्य ये तीन भेद हैं। स्नान, ग्रहण और संक्रान्ति आदि निमित्त उपस्थित होने पर जो स्नान किया जाता है, उसे नैमित्तिक स्नान कहते हैं। स्मार्तोंने नैमित्तिकका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

निमित्तका निश्चय होने पर अधिकारीकी कर्त्तव्यता, अधिकारी अर्थात् शास्त्रमें जिसका अधिकार है, एवम्भूत अधिकारीके कार्यको नैमित्तिक कहते हैं।

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि पापशान्तिके लिये पण्डितोंको जो दान किया जाता है उसे नैमित्तिक दान कहते हैं। ४ निमित्ताधीन, निमित्तके लिये।

नैमित्तिक-लय (सं॰ पु॰) नैमित्तिकः ब्राह्मणो दिवावसाननिमित्तवशात् यो लयः। प्रलयविशेष। गरुड़पुराणमें लिखा है, कि इस प्रलयमें सौ वर्ष तक अनावृष्टि होती है। बारहों सूर्य उदित हो कर तीनों लोकोंका शोषण करते हैं। फिर बड़े भीषण मेघ सौ वर्ष तक लगातार बरस कर सृष्टिका नाश करते हैं।

नैमिश (सं॰ क्ली॰) निमिशमेव स्वार्थे अण्। निमिशारण्य। पृथ्वी पर नैमषक्षेत्र श्रेष्ठतीर्थ माना जाता है।

नैमिश्रि (सं॰ पु॰) निमिश्रस्य अपत्यं इञ्। निमिश्रका अपत्य।

नैमिष (सं॰ क्ली॰) १ अरण्यरूप तीर्थभेद, नैमिषारण्य। २ यमुनाके दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणोंमें है।

नैमिषारण्य (सं॰ क्ली) निमिषान्तरमात्रेण निहतं आसुरं बलं यत्र, ततस्तत् नैमिषं अरण्यं। अरण्यविशेष, नैमिषक्षेत्र, एक प्राचीन वन जो आज कल हिन्दुओंका एक तीर्थस्थान माना जाता है और नीमखार कहलाता है। यह स्थान अवधके सीतापुर जिलेमें है।

गौरमुख मुनिने यहां निमिषकालके मध्य असुरसैन्य और उनके बलको भस्मीभूत कर दिया था, इसीसे इस स्थानका नाम नैमिषारण्य पड़ा है। देवीभागवतमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—ऋषिलोग जब कलिकालके भयसे बहुत घबराए, तब उन्होंने पितामह ब्रह्माकी शरण की। ब्रह्माने उन्हें एक मनोमय चक्र दे कर कहा था, 'तुम लोग इस चक्रके पीछे पीछे चलो, जहां इसकी नेमि (घेरा, चक्कर) विशीर्ण हो जाय उसे अत्यन्त पवित्र स्थान समझना। वहां रहनेसे तुम्हें कलिका कोई भय नहीं रहेगा। जब तक सतयुग उपस्थित न हो, तब तक निर्भय हो कर तुम लोग वहां वास करना।' ऋषिगण ब्रह्माका आदेश पा कर समस्त देश देखनेकी इच्छासे उस चक्रके अनुगामी हुए। वही चक्र सारी पृथ्वीका परिभ्रमण कर इन लोगोंके समक्षमें ही विशीर्णनेमि हो पड़ा। तभीसे यह स्थान नैमिषक्षेत्र वा नैमिषारण्य नामसे प्रसिद्ध हुआ है। यह स्थान बहुत पवित्र है। कलिका यहां प्रवेशाधिकार नहीं है। (देवीभागवत १।२।२८।३२) कूर्मपुराणके ४०वें अध्यायमें नैमिषारण्यका जो उत्पत्ति-विवरण है वह इस प्रकार लिखा है—

"ततो मुमोच तच्चक्रं ते च तत् समनुव्रजन्।
तस्य वै व्रजतः क्षिप्रं यत्र नेमिरशीर्यत॥
नैमिषं तत् स्मृतं नाम्ना पुण्यं सर्वत्र पूजितम्॥"
(कूर्मपुराण ४० अ॰)

विष्णुपुराणमें लिखा है, कि इस क्षेत्रकी गोमती नदीमें स्नान करनेसे सब पापोंका क्षय होता है। कहते हैं, कि सौतिमुनिने इस स्थान पर ऋषियोंको एकत्र करके महाभारतकी कथा कही थी।

आईन-इ-अकबरी नामक मुसलमान इतिहास पढ़नेसे जाना जाता है, कि पूर्व समयमें यहां एक दुर्ग था। इसके सिवा हिन्दुओंके अनेक देवमन्दिर और एक वृहत् पुष्करिणी आज भी देखनेमें आती है। यह पुष्करिणी चक्रतीर्थ नामसे प्रसिद्ध है। प्रवाद है, कि दानवोंके साथ युद्धकालमें विष्णुका सुदर्शनचक्र यहां आ गिरा था। पुष्करिणीकी आकृति पट्कोणी और उसका व्यास ८० हाथका है। इसके मध्यभागसे एक जलस्रोत निर्झरके आकारमें निकल कर दक्षिणाभिमुख होता हुआ जलभूमिके ऊपर बह गया है। इस स्थानका नाम गोदावरी-नाला है। सरोवरके चारों ओर बहुतसे मन्दिर और धर्मशाला निर्मित हैं। इस पवित्र चक्रतीर्थके दक्षिण-पश्चिम उच्चभूमिके ऊपर उक्त दुर्ग स्थापित है। दुर्गको

पश्चिमांशका उच्च चूड़ा शाह-बुर्ज नामसे प्रसिद्ध है। दुर्गमें बहुतसे स्थान ऐसे हैं जिन्हें गौर कर देखनेसे मालूम होता है, कि इसका द्वार और शाहबुर्ज ये दोनों स्थान बहुत प्राचीन हैं और हिन्दू राजाके समयके बने हुए हैं। उक्त दो स्थानकी गठनादि और खस्तिकादि देखनेसे उनके प्राचीनत्वका सन्देह नहीं होता। स्थानीय प्रवाद है, कि यहां जो प्राचीन दुर्ग था, वह पाण्डव राजाओंके समयमें बनाया गया था। पीछे उसी ध्वंसावशेषके ऊपर दिल्लीश्वर अलाउद्दीन खिलजीकी वजीर हाहाजल (एक खधर्मत्यागी हिन्दू-सन्तान) ने १३०५ ई०में उस दुर्गका पुनर्निर्माण किया।

गोमतीके दूसरे किनारे ओराभार, ओराडीह और बेननगर नामक एक अत्यन्त विस्तृत गढ़वेष्टित स्थान दृष्टिगोचर होता है। वहांके लोगोंका कहना है, कि यही स्थान वेणराजाका प्रासाद माना जाता है।

नैमिषि (सं० पु०) निमिषति निमिष-क, निमिषस्यापत्यं इञ्। नैमिषारण्यवासी।

नैमिषीय (सं० पु०) निमिषस्य इदं, छ। निमिषसम्बन्धी।

नैमिषेय (सं० त्रि०) निमिषे भवं, निमिषस्येदं वा दुलकात् ठक्। १ निमिषारण्यस्थ, नैमिषारण्यमें रहनेवाला। २ नैमिषसम्बन्धी।

नैमिष्य (सं० पु०) निमिषसम्बन्धीय।

नैमेय (सं० पु०) नि+मि-प्रणिदाने अचो यत्, इति यत्, ततः स्वार्थे प्रज्ञाद्यण्। परिवर्त्त, विनिमय, वस्तुओंका बदला।

नैम्ब (सं० त्रि०) निम्बसम्बन्धीय।

नैयग्रोध (सं० क्ली०) न्यग्रोधस्य विकारः, ततः प्लक्षादिभ्योऽण्। (पा ४।३।१६४) तस्य विधानसामर्थ्यात् फले न लुक्, ततो न्यग्रोधस्य च केवलस्य। पा ७।३।५) १ न्यग्रोधफल, बरगदका फल।

नैयङ्कव (सं० क्ली०) न्यङ्कोर्विकार इति अञ् (प्राणिरजतादिभ्योऽञ्। पा ४।३।१५४) न्यङ्कुमृगजात वस्त्रचर्मादि, बारहसिंहेका चमड़ा।

नैयत्य (सं० क्ली०) नियतस्य इदं नियत-ष्यञ्। नियतत्व, नियम होनेका भाव।

नैयमिक (सं० त्रि०) नियमादागतः ठक्। नियमविधिप्राप्त कर्म, ऋतुमती स्त्रीके साथ गमनादि।

नैयाय (सं० त्रि०) न्यायस्य व्याख्यानो ग्रन्थः ऋगयणादित्वात् अण्। (पा ४।३।७३) न्यायव्याख्यान ग्रन्थ।

नैयायिक (सं० पु०) न्यायं गौतमादिप्रणीतं तर्कशास्त्रविशेषं अधीते वेत्ति वा न्याय-ठक्। (क्रतूक्थादिसूत्रात् ठक्। पा ४।२।६०) १ न्यायवेत्ता, न्यायशास्त्रका जाननेवाला। २ न्यायाध्येता। पर्याय—तापच्छाद, साम्बादिक, आर्हित।

नैयासिक (सं० त्रि०) न्यासविद्।

नैरञ्जना (सं० स्त्री०) नदीभेद। गया जिलेकी फल्गू नदी पहले इसी नामसे पुकारी जाती थी। आज भी इसकी पश्चिमाभिमुखिनी शाखा नीलाञ्जन या लीलाजन नामसे उक्त जिलेकी मोहानीनदीमें मिल गई है।

नैरन्तर्य (सं० क्ली०) निरन्तरस्य भावः निरन्तर-ष्यञ्। निरन्तरत्व, निरन्तरका भाव, अविच्छेद।

नैरपेक्ष (सं० क्ली०) निरपेक्षस्य भावः ष्यञ्। अपेक्षाशून्यत्व।

नैरयिक (सं० त्रि०) निरये वसति ठक्। नरकवासी।

नैरर्थ्य (सं० क्ली०) निरर्थस्य भावः कर्म वा, निरर्थ-ष्यञ्। निरर्थकता।

नैरात्म्य (सं० क्ली०) निरात्मनोभावः, ष्यञ्। निरात्मता।

नैराश्य (सं० क्ली०) निराशस्य निष्कामस्य भावः ष्यञ्। आशाशून्यत्व।

"आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्।
यथा सन्तज्य कान्ताशां सुखं सुष्वाप पिंगला॥"

(सांख्य०भाष्य)

आशा ही दुःखकी कारण है, नैराश्य परम सुख है, जिस प्रकार पिङ्गला कान्तको आशाका परित्याग कर सुखसे सोती है। आशाका त्याग नहीं करनेसे सुख मिलना दुर्लभ है। अतः जो सुखका अभिलाष रखते हों, उन्हें आशाका परित्याग करना सर्वतोभावसे उचित है।

नैराश्य (सं० पु०) अस्त्रागमन्त्रविशेष, बाण छोड़नेका एक मन्त्र।

नैरुक्त (सं० त्रि०) निरुक्तस्य व्याख्याने ग्रन्थः तत्र भवो वा अण्। (अनुगयनादिभ्यः। पा ४।३।७३) १ निरुक्त-सम्बन्धी। (क्ली०) २ निरुक्तसम्बन्धी ग्रन्थ। ३ निरुक्त-का जानने या अध्ययन करनेवाला।

नैरुक्तिक (सं त्रि०) निरुक्तं निर्वचनं वेत्ति, तद्ग्रन्थं अधीते वा उक्थादित्वात् ठक्। (पा ४।२।६०) १ निर्वचनाभिज्ञ। २ निरुक्तग्रन्थके अध्येता।

नैरूहिक (सं० पु०) निरूहः प्रयोजनमस्य ठक्। सुश्रुतोक्त वस्तिभेद, एक प्रकारकी पिचकारी।

निरूहवस्ति देखो

नैऋत (सं० पु०) निऋतेरपत्यं, अण्। १ राक्षस। २ पश्चिम-दक्षिण कोणका स्वामी। ज्योतिषके मतसे इस दिशाका स्वामी राहु है। ३ मूला नक्षत्र। (त्रि०) ४ निऋतिसम्बन्धी।

नैऋती (सं० स्त्री०) निऋतेरियं अण्, ततो ङीप्। दक्षिणपश्चिमके मध्यकी दिशा, नैऋत कोण।

नैऋतेय (सं० त्रि०) निऋत्या अपत्यं ठक्। निऋति-का वंशज।

नैऋत्य (सं० त्रि०) निऋतिर्देवता यस्य, आर्ष बाहुल-कात् यक्। निऋतिदेवताक पशु आदि।

नैर्गन्ध्य (सं० क्ली०) निर्गन्धस्य भावः, ष्यञ्। निर्गन्धता, गन्धहीनता।

नैर्गुण्य (सं० क्ली०) निर्गुणस्य भावः कर्म वा निर्गुण-ष्यञ्। १ निर्गुणत्व, अच्छी सिफतका न होना। निर्गुणत्व प्राप्त होनेसे ब्रह्मलाभ होता है। जब तक गुणका कोई भी कार्य रहता है, तब तक संसार और दुःख अवश्य-भावी है। नैर्गुण्य होनेसे ही उसी समय सभी दुःख जाते रहते हैं। २ कलाकौशल आदिका अभाव। ३ सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंका न होना।

नैर्घृण्य (सं० क्ली०) निर्घृणस्य भावः ष्यञ्। निर्घृणता, घृणाका न होना।

नैर्दश्य (सं० क्ली०) १ पुत्रादि जन्मके प्रथम दश दिन अतिवाहन। २ किसी विपद्‌जनक ग्रहप्रकोपयुक्त समय-की अतिक्रमण प्रणाली।

नैर्दायक (सं० त्रि०) अधीन, मातहत।

नैर्बाध्य (सं० त्रि०) हननयोग्य शत्रुके लिये प्रयुज्यमान हविः। (अथर्व ६।७५।१)

नैभृत्य (सं० क्ली०) निभृतत्व, निभृतका भाव।

नैभृत्य देखो।

नैर्मल्य (सं० क्ली०) निर्मलस्य भावः, ष्यञ्। १ निर्मलता, स्वच्छता। २ विषय-वैराग्य।

मल दो प्रकारका है, बाह्य और आभ्यन्तर। विषय-के प्रति आसक्तिको मानस-मल कहते हैं। इस मानस-मलके प्रति जो विराग है, उसीका नाम नैर्मल्य है। विषयके प्रति विराग होनेसे चित्त शुद्ध अर्थात् निर्मल होता है। बाह्य निर्मलताको नैर्मल्य नहीं कह सकते। क्योंकि बाह्य नैर्मल्य क्षणिक है। अभ्यन्तर निर्मल होनेसे प्रकृत निर्मलता लाभ होती है। चित्तके विषयमें आसक्त रहनेसे, वह कभी भी निर्मल नहीं हो सकता। जब विषय वैराग्य होता है, तब चित्त आपसे आप निर्मल हो जाता है।

नैर्मार्गिक (सं० त्रि०) अलौकिक, अनैसर्गिक।

नैर्याणिक (सं० त्रि०) निर्याण-सम्बन्धीय।

नैर्लज्ज (सं० क्ली०) निर्लज्जस्य भावः, अण्। निर्लज्जता।

नैर्वाहिक (सं० त्रि०) निर्वाहयोग्य, जो निर्वाहके लिये हो।

नैर्हस्त (सं० त्रि०) निर्गत हस्तसामर्थ्यं, निर्वीर्य हस्त। (अथर्व० ६।६६।२०२)

नैलायनि (सं० पु०) नीलस्य अपत्यं, नील-तिकादि-त्वात् फिञ्। (पा ४।१।१५४) नीलवानरका वंशज।

नैलीनक (सं० त्रि०) निलीनकदेश-सम्बन्धी।

नैल्य (सं० क्ली०) नीलस्य भावः, ष्यञ्। नीलिमा, नीलवर्ण।

नैवकि (सं० पु०) निवकस्य ऋषेरपत्यं इञ्। (पा २।४।६१) निवक ऋषिका वंशज।

नैवाकव (सं० त्रि०) निवाकोरिदम्, अण्। निवचन-शील।

नैवातायन (सं० त्रि०) निवातस्य अदूर देशादि; चतु-रर्थ्यादित्वात् फक्। (पा ४।२।८०) वातशून्यदेशसमी-पादि।

नैवार (सं० त्रि०) नीवारस्य इदं, नीवार-अण्। नीवारसम्बन्धी।

नैवासी (सं॰ त्रि॰) निवासेसाधु, गुडादित्वात् ठञ्। (पा ४।४।१०३) १ निवास साधु। २ वृक्ष पर रहने-वाला देवता।

नैविड्य (सं॰ क्ली॰) निविड़स्य भावः, ष्यञ्। १ घनत्व। २ निविड़ता। ३ अविच्छेदरूपसे संयोग, वंशीफुत्कारूप गुणभेद।

नैविद (सं॰ त्रि॰) निविद् सम्बन्धीय।

नैवेद्य (सं॰ क्ली॰) निवेदं निवेदनमर्हतीति निवेद-ष्यञ्। देवताको निवेदनीय द्रव्य, वह भोजनकी सामग्री जो देवताको चढ़ाई जाय, देवबलि, भोग।

"निवेदनीयं द्रव्यन्तु नैवेद्यमिति कथ्यते।" (स्मृति)

देवोद्देशसे निवेदनीय वस्तुमात्र ही नैवेद्यपदवाच्य है। नैवेद्यशब्दकी नामनिरुक्तिके विषयमें और भी लिखा है—

"चतुर्विधं कुलेशानि द्रव्यन्तु षड्रसान्वितम्।
निवेदनात् भवेत् तृप्तिर्नैवेद्यं तदुदाहृतम् ॥"

(कुलार्णवतन्त्र १७-४०)

हे कुलेशानि! षड्रसान्वित चतुर्विध द्रव्य-निवेदनसे मेरी तृप्ति होती है, इसीसे इसका नाम नैवेद्य पड़ा है।

नैवेद्यके द्रव्य—

"ससितेन सुघृतेन पायसेन ससर्पिषा।
सितोदनं सकदलि-दध्याद्यैश्च निवेदयेत् ॥"

(प्रपञ्चसार)

ससित (शर्करा सहित), सघृत विशुद्ध पायस, सितोदन (श्वेतान्न) कदली और दधि आदिके साथ देवदेवियोंका निवेदन करना चाहिये।

नैवेद्य पञ्चविध—

"निवेदनीयं यद्द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा।
तद्भक्षादि पञ्चविधं नैवेद्यमितिकथ्यते।
भक्ष्यं भोज्यञ्च लेह्यञ्च पेयं चोष्यञ्च पञ्चमम्।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्यास्यै निवेदयेत् ॥" (तन्त्रसार)

प्रशस्त भक्षणीय जो सब वस्तु देवताको चढ़ाई जाती है, उसका नाम नैवेद्य है। यह नैवेद्य पांच प्रकारका है—भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय और चोष्य। यथाविधान देवपूजन करके नैवेद्य चढ़ाना चाहिये।

नैवेद्यदान-समय—

"अर्वाक् विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते।
विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥
पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते सुखम्।" (गरुड़पु॰)

विसर्जनके पहले भक्ष्यद्रव्यको नैवेद्य और विसर्जन हो जाने पर उसे निर्माल्य कहते हैं।

नैवेद्यस्थापनका क्रम—

"नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठतः।
पक्वञ्च देवता वामे आमामन्नञ्च दक्षिणे ॥" (पुरश्च॰)
"दक्षिणन्तु परित्यज्य वामे चैव निधापयेत्।
अभोज्यं तद्भवेदन्नं पानीयञ्च सुरोपमम् ॥"

(तन्त्रसार)

नैवेद्य देवताके दक्षिण भागमें रखना चाहिये, आगे या पीछे नहीं। इसमें विशेषता यह है, कि पक्व नैवेद्य देवताके बाएं और कच्चा दहिने भागमें रखना चाहिये। अन्यथा वह अभोज्य और पानीय सुरा सदृश समझा जाता है।

नैवेद्यदान-फल—

"नैवेद्येन भवेत् स्वर्गी नैवेद्येनामृतं भवेत्।
धर्मार्थकाममोक्षाश्च नैवेद्येषु प्रतिष्ठिता ॥
सर्वयज्ञफलं नित्यं नैवेद्यं सर्वतुष्टिदम्।
ज्ञानदं मानदं पुण्यं सर्वभोगमयं तदा ॥"

(कालिकापु॰ ६९ अ॰)

नैवेद्यदानसे स्वर्ग और मोक्ष लाभ होता है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष नैवेद्यमें प्रतिष्ठित है। नैवेद्य दानसे सब यज्ञका फल, ज्ञान, मान और पुण्य लाभ होता है।

नैवेद्य उत्सर्ग करनेके समय मुद्रा दिखानी चाहिये।

"नैवेद्यमुद्रामाङ्गुष्ठ-कनिष्ठाभ्यां प्रदर्शयेत्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्मुद्राप्राणस्य कीर्त्तिताः ॥
तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैरपानस्य तु मुद्रिका।
अनामामध्यमाङ्गुष्ठैरुदानस्य तु सा स्मृता ॥
तर्जन्यनामामध्याभिः साङ्गुष्ठाभिश्चतुर्थिका।
सर्वाभिः सा समानस्य प्राणादिषु योजिता ॥" (यामल)

अङ्गुष्ठ और कनिष्ठ अङ्गुलिके सहयोगसे नैवेद्य-मुद्रा दिखानी चाहिये। इसमें विशेषता यह है, कि प्राण, अपान, उदान, व्यान और समान इन पांच वायुओंके

उद्देशसे निवेदन करना होता है। कनिष्ठा, अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा प्राणवायुको ; तर्जनी, मध्यमा और अङ्गुष्ठ द्वारा अपान वायुको; अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ द्वारा उदान वायुको ; तर्जनी, अनामिका और मध्यमा द्वारा व्यान वायुको तथा सभी उंगलियों द्वारा समान वायुकी मुद्रा दिखानी चाहिये।

देवोद्देशसे नैवेद्यके उत्सर्ग हो जाने पर वह ब्राह्मणको देना चाहिये। जो देवदत्त नैवेद्य ब्राह्मणको नहीं देते, उनका नैवेद्य भस्मीभूत और निष्फल होता है।

"साक्षात् खादति नैवेद्यं विप्ररूपी जनार्दनः।
ब्राह्मणे परितुष्टे च सन्तुष्टाः सर्वदेवताः॥
देवाय दत्त्वा नैवेद्यं द्विजाय न प्रयच्छति।
भस्मीभूतञ्च नैवेद्यं पूजनं निष्फलं भवेत्॥"
(ब्रह्मवै० श्रीकृष्णजन्मख० २१ अ०)

"शूद्रश्चेद्धरिभक्तश्च नैवेद्यभोजनोत्सुकः।
आमान्नं हरये दत्त्वा पाकं कृत्वा च खादति॥"
(ब्रह्मवै० २१ अ०)

हरिभक्त शूद्र यदि नैवेद्य खानेकी इच्छा करे, तो हरिको आमान्न चढ़ा कर पीछे उसे पाक कर खा सकता है।

नैवेद्यभोजन-फल—

"कृत्वा चैवोपवासन्तु भोक्तव्यं द्वादशीदिने।
नैवेद्यं तुलसीमिश्रं हत्याकोटीविनाशनम्॥
अग्निष्टोमसहस्रैश्च वाजपेयशतैस्तथा।
तुल्यं फलं भवेद्देवि विष्णोर्नैवेद्यभक्षणात्॥"
(स्कन्दपुराण)

एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीको तुलसीमिश्रित नैवेद्य खानेसे कोटिहत्याका पाप विनष्ट होता है।

सहस्र अग्निष्टोम और शत वाजपेय यज्ञका अनुष्ठान करनेमें जो फल लिखा है, हरिको निवेदित नैवेद्य खानेसे वही फल मिलता है।

आह्निकतत्त्वमें नैवेद्यका विषय इस प्रकार लिखा है,—मोचक (कदलीफल), पनस, जम्बु, प्राचीनामलक (करमर्दक), मधुक और उडुम्बर आदि फल सुपक्क होने पर नैवेद्यमें दे सकते हैं। अपर्युषित पक्व वस्तु नैवेद्यमें नहीं देनी चाहिए। खण्डाज्यादिकृत पक्व वस्तु पर्युषित नहीं होती। यव, गोधूम और शालिको घृत द्वारा संस्कृत करके तिल, मुद्गादि और माष नैवेद्यमें दिये जा सकते हैं। जो सब वस्तु अभक्ष्य हैं उन्हें नैवेद्यमें नहीं दे सकते। अभक्ष्य, जिस वर्णके लिये जिस वस्तुका खाना निषिद्ध है, वे सब वस्तु और जिस दिन जो द्रव्य खाना निषिद्ध है, वह द्रव्य उस दिन नैवेद्यमें नहीं देना चाहिए।

"माहिषं वर्जयेन्मासं क्षीरं दधि घृतन्तथा।"
(आह्निकतत्त्व-देवल)

माहिषघृत, दुग्ध और दधि द्वारा नैवेद्य नहीं देना चाहिए। घृत चण्डालादि और कुक्कुर द्वारा देखे जाने पर वह नैवेद्यमें अप्रयोज्य है।

"यद्यदिष्टतमं लोके यच्चापि प्रियमात्मनः।
तत्तन्निवेदयेन्मह्यं तदानन्त्याय कल्पते॥"
(आह्निकतत्त्व)

जो कुछ अभिलषित वस्तु है और जो विशेष प्रीतिकर है, वही सब वस्तु अभीष्ट देवताको चढ़ानी चाहिए। इस प्रकारका नैवेद्य अनन्तफलप्रद होता है।

"त्यजेत् पादोदकं यस्तु नैवेद्यं च त्यजेच्च यः।
षष्टिवर्षसहस्राणि रौरवे नरके पचेत्॥"
(आह्निकतत्त्व)

जो जिस देवताकी अर्चना करते हैं, उन्हें उस देवताका नैवेद्य खाना चाहिए। जो अवहेलापूर्वक उस नैवेद्यका त्याग कर देते वे साठ हजार वर्ष तक नरक भोग करते हैं।

जो कुछ अभिलषित वस्तु हो उसे देवताको चढ़ाये बिना न खाना चाहिए; अतएव प्रिय वस्तु मात्र ही देवताको चढ़ा कर उसे प्रसाद रूपमें खा सकते हैं।

"विष्णोर्निवेदितं पुष्पं नैवेद्यं वा फलं जलम्।
प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यं त्यागेन ब्रह्महा जनः॥"
(ब्रह्मवैवर्त जन्म० ३७ अ०)

विष्णुनैवेद्य पानेके साथ ही खा लेना चाहिए, जो इसका परित्याग कर देते हैं, उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

विष्णुनैवेद्य खानेसे जितने प्रकारके पाप हैं, वे सभी

दूर हो जाते हैं। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्ण-जन्मखण्डके २७वें अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। शिव और सूर्यका नैवेद्य खाना मना है।

"अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम्।
शालग्रामशिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम्॥"

(आह्निकतत्त्व)

फलपुष्पादि और शिवनिवेदित नैवेद्य अग्राह्य है अर्थात् भक्षण करना निषिद्ध है। इसमें विशेषता यह है, कि यदि यह नैवेद्य शालिग्राम शिलास्पृष्ट हो, तो वह पवित्र होता है। शालिग्राम-स्पृष्ट शिव-नैवेद्य खानेमें कोई दोष नहीं। इसका तात्पर्य यह कि शालग्रामशिलामें शिव-पूजा करनेसे वह नैवेद्य खाया जा सकता है।

शिवके उद्देश्यसे चढ़ाया हुआ वस्त्र और नैवेद्य फिरसे ग्रहण नहीं करना चाहिए, ग्रहण करनेसे नैवेद्य चढ़ानेका कुछ भी फल नहीं मिलता। फिर दूसरे शास्त्रमें शिवनैवेद्यका ग्रहण अग्राह्य नहीं बतलाया है—

"दत्त्वा नैवेद्यवस्त्रादि नाददीत कथंचन॥
त्यक्तवान् शिवमुद्दिश्य तदादाने न तत् फलम्॥"

(एकादशीतत्त्व)

शिवनिर्माल्य धारण करनेसे रोग, चरणोदक पीनेसे शोक और नैवेद्य खानेसे अशेष पाप नाश होते हैं।

शिवनैवेद्य भक्षण जो निषिद्ध बतलाया है उसका पौराणिक उपाख्यान इस प्रकार है—

"रोगं हरति निर्माल्यं शोकन्तु चरणोदकम्।
अशेषं पातकं हन्ति शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥"

(शाक्तानन्दतर०)

एक समय सनत्कुमार विष्णुसे भेंट करनेके लिये वैकुण्ठ गये। उस समय भगवान् विष्णु भोजन कर रहे थे। भक्तवत्सल विष्णुने सनत्कुमारको देख कर स्वभुक्तावशिष्ट कुछ प्रसाद दिया। सनत्कुमारने उस प्रसादमेंसे कुछ तो आप खा लिया और कुछ आत्मीयवर्गको देनेके लिये घर ले आये। सिद्धाश्रममें पहुंच कर उन्होंने अपने गुरु महादेवको कुछ प्रसाद दिया। महादेवने उस प्रसादको पा कर उसी समय खा लिया और नृत्य करने लगे। इसी बीच पार्वती वहां पहुंची और अपने पुत्रसे सब वृत्तान्त सुन कर शिवजी पर बहुत बिगड़ीं। यहां तक कि पार्वतीने शाप दे दिया, 'आपने जो विष्णुका प्रसाद मुझे दिये बिना खा लिया, इस कारण जगत्में आजसे जो मनुष्य आपका नैवेद्य खायगा, वह दूसरे जन्ममें कुक्कुरयोनिमें जन्म लेगा।'

"अद्यप्रभृति ये लोका नैवेद्यं भुञ्जते तव।
ते जन्मैकं सारमेया भविष्यन्त्येव भारते॥"

(श्रीकृष्णजन्मख०)

इस प्रकार शाप दे कर पार्वती जो विष्णुका प्रसाद पा न सकीं, इस कारण वे जारबजार रोने लगीं।

इसका दूसरा कारण लिङ्गार्च्चनतन्त्रके १३।१४ पटल में भी विस्तृतरूपसे लिखा है—

"दुर्लभं तव निर्माल्यं ब्रह्मादीनां कृपानिधे।
तत् कथं परमेशान! निर्माल्यं तव दूषितम्॥"

(लिङ्गार्च्चनत०)

कालिकापुराणमें नैवेद्यका विषय इस प्रकार लिखा है—

प्रशस्त और पवित्र निवेदनीय वस्तुका नाम नैवेद्य है। यह नैवेद्य भक्त (भात) प्रभृति भेदसे ५ प्रकारका है। इन पांच प्रकारके नैवेद्योंमेंसे देवीका नैवेद्य जो सबसे प्रिय है, उसीका विषय यहां लिखा जाता है। पांचों प्रकारका नैवेद्य देवीका प्रिय है। नागर, कपित्थ, द्राक्षा, आमुक, कारक, वदर, कोल, कुष्माण्ड, पनस, वकुल, मधूक, रसाल, आम्रातक, केशर, आखोट, पिण्डखर्जुर, करुण, श्रीफल, उडु, औदुम्बर, पुन्नाग, माधव, कर्कटीफल (ककड़ी), जाम्बवर, बीजपूर, जम्बल, हरीतकी, आमलक, ६ प्रकारका नारङ्गक, देवक, मधुर, शीत, पटोल, क्षीरिहिज्जल, पटल, सालज, हन्त, अग्निज, कदलीफल, तिन्दूक, कुसुम, पीत, कारवेल, कण्टफल, गर्भावर्त्त आदि तथा नाना प्रकारके वन्यफल द्वारा देवीका नैवेद्य प्रस्तुत करना चाहिये। श्लेष्मातक, विम्ब, शैलकं प्रभृति फल भिन्न सभी फल देवीके प्रिय हैं। मातुलुङ्ग, नटक, करमर्द और रसालक ये सब कामाख्या देवीको चढ़ाने चाहिये। शृङ्गाटक, कशेरु, शालुक, मृणाल, शृङ्गवेर, काञ्चन, स्थूलकन्द, कुसुम्भक आदि फल, परमान्न, पिष्टक, यावक, कृशर, मोदक, पृथुक, चिउड़ा और लड्डू इन सब द्रव्योंके नैवेद्यसे देवी

प्रसन्न होती हैं। गो, महिष, अजा, आविक और मृग इन सब पशुओंका दूध, सब प्रकारका मधु, शर्करा, सब प्रकारका अन्न, पान और मांस ये सब देवीके नैवेद्यमें प्रशस्त माने गये हैं। आमिक्षा, परमान्न, शर्करामिश्रित दधि और घृत से सब वस्तु महादेवीको अर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल मिलता है। शर्करा, मधुमिश्रित सुरा, लाङ्गल, कृसरक, रुचक, मुद्ग, मसूर, तिल और यव आदि सब प्रकारका शस्य देवीको चढ़ाना चाहिए। कैसा ही भक्ष्य द्रव्य क्यों न हो, उसका केश-करकादि संस्कार करके तब नैवेद्यमें दे सकते हैं। संस्कार्य-वस्तुका जिस प्रकार संस्कार करना होता है, उसी प्रकार संस्कार कर के नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। जो पूतिगन्धसंयुक्त हो, दग्ध तथा भोजनके अयोग्य हो, उसे नैवेद्यमें नहीं देना चाहिये। सुगन्ध कर्पूरवासित ताम्बूल देवीको चढ़ानेमें विशेष फल है। जो सब मृग और पक्षी बलिदानमें छेदित होते हैं उनका मांस, गण्डार, वार्ध्रीनस और छाग मांस तथा मत्स्य रन्धन कर देवीको नैवेद्यमें दे सकते हैं। खर्जुर, पिण्डखर्जुर तथा सघृत यवचूर्ण देवीको चढ़ानेसे राजसूययज्ञ करनेका फल मिलता है तथा कृसरान्न (खिचड़ी)के नैवेद्यसे अतुल सौभाग्य प्राप्त होता है। नारियलका जल चढ़ानेसे अग्निष्टोमयज्ञका फल और जामुन, लवली, धात्री तथा श्रीफल चढ़ानेसे भी अग्निष्टोम फल प्राप्त होता है, पीछे उसे देवलोककी प्राप्ति होती है। द्राक्षा, शर्करा और नारङ्गक, इक्षुदण्ड, नवनीत, नारियलका फल, शर्करा और दधियुक्त पेय वस्तु, नीवार और उरदको दधिके साथ कूट कर देवीको चढ़ानेसे लक्ष्मीवान् और रूपवान् होता है; पीछे मरने पर उसे मोक्ष मिलता है। मिर्च, पिप्पली, कोष, जीवक और तन्तुभ इन्हें भलीभांति संस्कृत कर देवीको चढ़ाना चाहिये। राजमाष, मसूर, पालङ्क, पोतिका, कलिशाक, कलाय, ब्राह्मीशाक, मूलक, वास्तुक लक्ष्मीक, चट्टक, हिलमोचका, कुसुम्भ पत्र और पुनर्नवा आदि शाक देवीको चढ़ा सकते हैं। अम्ल और कालविरुद्ध तथा गुरुभारसमन्वित नैवेद्य देवताको चढ़ाना निषिद्ध है। चांदी या सोनेके पात्रमें देवताको नैवेद्य चढ़ाना चाहिये। (कालिकापु॰ ७० अ॰)

घण्टा बजा कर देवताको नैवेद्य चढ़ानेको लिखा है।

"धूपे दीपे च नैवेद्ये स्नपने वसने तथा।
घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च॥"
(विधानपा॰)

नैवेश (सं॰ त्रि॰) निवेशेन निर्वृत्तं सङ्कलादित्वादण्। (पा ४।२।७५) निवेशनिर्वृत्त, विवाहनिर्वृत्त।

नैवेशिक (सं॰ क्ली॰) निवेशाय गार्हस्थाय हितं, निवेश-ठक्। १ विवाहयोग्य कन्या। २ विवाहार्थ दीयमान द्रव्य, विवाहके लिये दिये जानेका धन।

नैश (सं॰ त्रि॰) निशाया इदम् निशा-अण्। (तस्येदम् पा ४।३।१२०) १ निशासम्बन्धी। २ निशाभव।

नैशिक (सं॰ त्रि॰) निशायां भवम्, निशा-ठञ् (निशाप्रदोषाभ्याञ्च। पा ४।३।१४।) १ निशाभव। २ निशाव्यापक।

नैश्चित्य (सं॰ त्रि॰) निश्चितस्य भावः, ष्यञ्। निश्चय।

नैश्श्रेयस (सं॰ त्रि॰) निश्श्रेयसाय हितमण्। निःश्रेयससाधन।

नैश्श्रेयसिक (सं॰ त्रि॰) निःश्रेयसं प्रयोजनमस्य ठक्। निश्श्रेयसाधन। विकल्पमें 'स'-की जगह विसर्ग होकर निःश्रेयसिक ऐसा पद होगा।

नैषदिक (सं॰ त्रि॰) १ निषदभव, निषदका। २ उपवेशनकारी, बैठनेवाला।

नैषध (सं॰ पु॰) निषधानां राजा, निषध-अण्। १ नलराजा। २ निषधदेशाधिपति। ३ वर्षविशेष। ४ पितादिक्रमसे निषधदेशवासी, नैषधं नलमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः अण्। ५ नलनृपचरितरूप महाकाव्यभेद, श्रीहर्षरचित एक संस्कृत काव्य जिसमें राजा नलकी कथाका वर्णन है। यह काव्य २२ सर्गोंमें समाप्त हुआ है।

"उदिते नैषधे काव्ये क्व माघः क्व च भारविः।" (उद्भट)

इसका तात्पर्य यह कि नैषध काव्यके सामने माघ और भारवि कुछ भी नहीं है। इसके सिवा और भी प्रवाद है कि—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥" (उद्भट)

कालिदासकी उपमा, भारविका अर्थगुरुत्व और

नैषधका पदलालित्य प्रशंसनीय है तथा माघमें ये तीनों गुण पाए जाते हैं। यथार्थमें नैषध-काव्यका पदलालित्य अनुपम है। संस्कृताभिज्ञ मात्र ही इसकी यथार्थताका अनुभव कर सकते हैं। नैषधके सम्बन्धमें एक किंवदन्ति प्रचलित है,—श्रीहर्षदेवने नैषधकाव्यको रचना कर उसे अपने आत्मीय एक आलङ्कारिकको देखने दिया उन्होंने विशेषरूपसे पर्यालोचना करके कहा, 'मैंने जो एक अलङ्कार ग्रन्थ लिखा है उसके दोष-परिच्छेदके लिये मुझे कई ग्रन्थ देखने पड़े हैं। कुछ दिन पहले यदि तुम्हारी यह पुस्तक मिल जाती, तो एक ही ग्रन्थसे मेरे दोष-परिच्छेदके सभी उदाहरण संग्रह हो जाते।' संस्कृत महाकाव्यमें यह एक प्रधान काव्य है, इसमें सन्देह नहीं। (त्रि०) ६ निषधदेशसम्बन्धी, निषध देशका।

नैषधीय (सं० त्रि०) नैषधस्य इदम् 'वृद्धाच्छ' इति छ नलसम्बन्धी।

नैषध्य (सं० पु०) निषधस्य लक्षणया तन्नृपस्यापत्यम् नादित्वात् ण्य। राजा नलका पुत्र या वंशज।

नैषाद (सं० पु०) निषादस्य अपत्यं विदादित्वादञ्। निषादका वंशज।

नैषादक (सं० त्रि०) निषादेन कृतम्, कुलालादित्वात् संज्ञायां वुञ्। (पा ४।३।११८) निषादकृत पदार्थभेद।

नैषादकि (सं० पु०-स्त्री०) निषादस्य अपत्यं इति अकङ् निषादका वंशज।

नैषादि (सं० पु०) निषादस्य अपत्यं इति आर्षे इञ्। निषादका वंशज।

नैषिध (सं० पु०) निषधः नलो वाचकतयाऽस्त्यस्य, अण्, पृषोदरादित्वात् साधुः। तन्नामक नलरूप दक्षिणाग्नि।

नैष्कर्म्य (सं० क्ली०) निष्कर्मणो भावः, ष्यञ्। विधिपूर्वक सर्वकर्मत्याग। आसक्तिपरिशून्य हो कर विधिपूर्वक कर्म करते करते कर्मत्याग किया जा सकता है।

नैष्कशतिक (सं० त्रि०) निष्कशतमस्त्यस्य ठञ्। (पा ५।२।११९) निष्कशतमानयुक्त।

नैष्कसहस्रिक (सं० त्रि०) निष्कसहस्रमस्त्यस्य ठञ्। निष्कसहस्र परिमाणयुक्त।

नैष्किक (सं० पु०) निष्कं हेम्नि दीनारे तदागारे नियुक्तः ठक्। १ कोषाध्यक्ष, टकशालका अफसर। २ निष्कविकार। (त्रि०) ३ निष्कक्रीत, निष्क द्वारा मोल लिया हुआ। ४ निष्कसम्बन्धी।

नैष्किञ्चन्य (सं० क्ली०) निष्किञ्चन-ष्यञ्। निष्किञ्चनत्व, दरिद्रता।

नैष्कृतिक (सं० त्रि०) परवृत्ति-छेदनमें तत्पर, दूसरेको हानि करके अपना प्रयोजन निकालने वाला।

नैष्क्रमण (सं० क्ली०) निष्क्रमणे शिशोर्गृहाद्बहिर्गमनकाले दीयते तत्र कार्यं वा व्युष्टादित्वात् अञ्। (पा ५।१।९७) १ निष्क्रामणकालमें दीयमान वस्तु, वह वस्तु जो निष्क्रामण संस्कारके समय दान की जाती है।

नैष्ठिक (सं० त्रि०) निष्ठा विद्यतेऽस्येति निष्ठा-ठक्। १ निष्ठावान्, निष्ठायुक्त। २ मरणकालमें कर्त्तव्य। (पु०) ३ ब्रह्मचारिभेद, वह ब्रह्मचारी जो उपनयनकालसे ले कर मरणकाल तक ब्रह्मचर्य-पूर्वक गुरुके आश्रममें ही रहे।

याज्ञवल्क्यमें लिखा है, कि नैष्ठिक ब्रह्मचारिगण यावज्जीवन आचार्यके समीप, आचार्यके अभावमें आचार्यपुत्रके समीप, उसके भी अभावमें उनकी पत्नीके समीप और यदि पत्नी भी न रहे, तो अग्निहोत्रीय अग्निके समीप वास करे। जितेन्द्रिय नैष्ठिक-ब्रह्मचारी यदि विधिपूर्वक इसका अवलम्बन करे, तो अन्तमें उसे मुक्तिलाभ होता है। इस संसारमें फिर उसे जठरयन्त्रणाका भोग करना नहीं होता। यावज्जीवन ब्रह्मचर्य अवलम्बनका नाम ही नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य है।

नैष्ठुर्य (सं० क्ली०) निष्ठुरस्य इदं, निष्ठुर-ष्यञ्। निष्ठुरता, निठुराई, क्रूरता।

नैष्ठ्य (सं० त्रि०) निष्ठायुक्त, व्रतनियमादि आचरणशील।

नैष्पेष्य (सं० क्ली०) निष्पिह ष्यञ्, आर्षे षत्वम्। रागाभाव।

नैष्पेषिकत्व (सं० क्ली०) पेषणकारीका कार्य, पीसनेवालेका काम।

नैष्पेषिक (सं० त्रि०) निष्पेषणकारी, पीसनेवाला।

नैष्पुरुष्य (सं० क्ली०) निष्पुरुष-ष्यञ्। (पा ४।३।४१) निष्पुरुषका भाव।

नैष्फल्य (सं० क्लो०) निष्फल-ष्यञ् । निष्फलता ।

नैसर्गिक (सं० त्रि०) निसर्गादागत: ठक् । स्वाभाविक, प्राकृतिक, कुदरती ।

नैसर्गिक-विधान (सं० क्लो०) नैसर्गिकं यत् विधानं Natural Phenomenon स्वाभाविक विधान ।

नैसर्गिकी (हिं० वि०) प्राकृतिक ।

नैसर्गिकीदशा (सं० स्त्री०) ज्योतिषमें एक दशा । दशा देखो ।

नैसुक—हिन्दीके एक प्राचीन कवि । ये बुन्देलखण्डके वासी थे तथा संवत् १८०४में इनकी उत्पत्ति हुई थी । ये शृङ्गाररसकी सुन्दर कविता करते थे ।

नैस्त्रिंशिक (सं० पु०) निस्त्रिंशः खड्गः प्रहरणमस्य ठक् । खड्गधारी । पर्याय—असिहेति, असिहेतिक ।

नैहर (हिं०.पु०) स्त्रीके पिताका घर, मा-बापका घर, मायका, पीहर ।

नैहाटी—बङ्गालके २४ परगने जिलेके अन्तर्गत बारकपुर उपविभागका एक शहर । यह अक्षा० २२° ५४´ उ० और देशा० ८८° २५´ पू०के मध्य, हुगली नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है । जनसंख्या करीब चौदह हजार है । यहां इष्टर्ण-बेङ्गाल-ष्टेट रेलवेका एक ष्टेशन है । गङ्गाके दूसरे किनारे स्थित हुगली नगरके साथ यह नगर सेतु द्वारा संयोजित है और इष्टर्ण-बेङ्गालके साथ इष्ट-इण्डिया रेलवेका सम्बन्ध रहनेके कारण यहां वाणिज्य-की विशेष उन्नति हुई है । शहरमें विद्यालय और मजि-ष्ट्रेटकी अदालत है ।

नैहारिकनक्षत्र (सं० क्लो०) Nebulous stars वे सब नक्षत्र जो नीहारिकानक्षत्र से दीख पड़ते हों ।

नो (सं० अव्य०) नह-डो । अभाव, निषेध, नहीं ।

नोआ (हिं० पु०) दूध दुहते समय गायके पैर बाँधनेकी रस्सी, बंधी ।

नोआखाली—१ पूर्वी बङ्गाल चट्टग्रामके अन्तर्गत एक जिला । यह अक्षा० २२° १०´से २३° १८´ उ० और देशा० ९०° ४०´से ९१° ३५´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण १६४४ वर्गमील और जनसंख्या ११४१७२४ है । इसके उत्तरमें त्रिपुरा जिला और पार्वतीय-त्रिपुरा राज्य, पूर्वमें पार्वतीय-त्रिपुरा, चट्टग्राम और मेघनानदीकी मन-द्वीप नामक खाड़ी; दक्षिणमें बङ्गोपसागर और पश्चिममें मेघनानदी है । वर्षाकालमें अधिक वृष्टि होनेके कारण सारा जिला जलमय हो जाता है । इसलिए यहांके ग्रामादि कृत्रिम मिट्टीके टीले पर बसे हुए हैं । प्रत्येक गृहके चारों ओर मिट्टीके बाँधके जैसा नारियल और सुपारीके पेड़ लगाये हुए हैं । जिलेका अधिकांश स्थान निम्न और जलप्लावित होने पर भी, इसका उर्वरत्व ह्रास नहीं होता । जो सब स्थान अभी समुद्रगर्भसे निकला है, उसमें भी फसल लगती है ।

यहांका भूतत्त्व देखनेसे ऐसा प्रतीत होता है, कि यह जिला एक समय समुद्रगर्भमें मग्न था । कालक्रमसे यह उच्चभूमिमें परिणत हो गया है । यहां उच्चवंशीय हिन्दू जातिका वास नहीं था । त्रिपुराराजगणके और प्रभावका ह्रास होने पर यहां जो सब कृषक और निकृष्ट श्रेणीके मनुष्य वास करते थे, वे यथाक्रम अपने अपने अवस्थानुरूप निम्नश्रेणीके हिन्दुओंका अनुकरण कर अपनेको हिन्दू बतलाने लगे हैं । प्रवाद है, कि प्राचीन समयमें विश्वम्भर शूर नामक उच्च श्रेणीके हिन्दू चट्टग्राम अन्तर्गत सीताकुण्डमें चन्द्रनाथ देवताके दर्शन करने आये और इसी जिलेमें बस गए । बख्तियार-खिलजीके गौड़ पर आक्रमण करनेके बाद इन्होंने म्लेच्छाधिकृतराज्यमें रहना पसन्द न किया और १२०३ ई०में वे चन्द्रनाथके दर्शन कर नोआखालीमें आ बसे । इसके दूसरे वर्ष ही म्लेच्छ द्वारा पीड़ित बहुतसे मनुष्योंने भी उनका अनुसरण किया । राजा विश्वम्भरने समुद्रमें स्नान करते समय अपने राजचिह्नको खो दिया । राजाने दुःखित हो अन्तःकरण-से वाराहीदेवीकी उपासना की । बादमें देवीकी कृपासे एक बकने अग्रसर हो राजाको वह स्थान दिखा दिया । यह स्थान बेगमगञ्जके निकट आज भी 'बकदिर' नामसे प्रसिद्ध है । राजा विश्वम्भर शूरने यहां एक मन्दिर बनवा दिया और उक्त देवीके नाम-माहात्म्यसे ही यह स्थान वाराहीनगर नामसे प्रसिद्ध हुआ ।

१२७८ ई०में महम्मद तुघरलके दक्षिण-पूर्व बङ्गाल पर आक्रमण करनेके समय यहां अनेक मुसलमान आ बसे । १३५३ ई०में बङ्गालके शासनकर्त्ता शम्‌स-उद्दीनने इसे लूटा और १५२२-२३ ई०के मध्य नसरतशाहने

चट्टग्राम पर आक्रमण किया जिससे यहांके मुसलमानोंकी संख्या और भी बढ़ गई। इसके अलावा अरबदेशीय वणिग्गण सिन्धु और मलवार उपकूल होते हुए वाणिज्यार्थ यहां आये थे। धोरे धोरे यहांके मुसलमान सम्प्रदायकी दिनों दिन उन्नति होने लगी।

१५५६ ई०में सोजर-फ्रेडरिक नामक एक भिनिस-निवासो इस स्थानको देख कर लिख गये हैं,—'यहांके अधिवासिगण मूर नामक दस्यु के समान हैं। लकड़ी यहां बहुत सस्तो मिलती और नमकका बहुत बड़ा कारवार है। प्रति वर्ष लाखों मन नमक यहांसे दूसरे स्थानमें भेजा जाता है।'

सोलहवीं शताब्दीके अन्तमें कुछ पोर्त्तु गीज इस देशमें आए और आराकानराजके अधीन रहने लगे। १६०७ ई०में किसी कारण आराकानराजने उन्हें मार भगाया। बहुतोंकी जानें गई और जो कुछ बच रहे वे गङ्गानदीके मुहानेमें दस्युवृत्ति करने लगे। इनके अत्याचारसे उत्पीड़ित हो कर इब्राहिम खांने ४० जङ्गी जहाज और ६०० सेना ले कर शाहावाजपुर द्वीपमें इन पर चढ़ाई कर दी, किन्तु इस लड़ाईमें ये पराजित हुए। पोर्त्तु गीजोंने उनके जहाजादि अपने अधिकारमें कर लिए। इससे इन लोगोंने उत्साहित हो कर १६०८ ई०में सनद्वोप पर आक्रमण कर मुसलमानोंके दुर्गको अवरोध किया। शिक्षित और कौशलो पोर्त्तु गीजोंके साथ युद्धमें मुसलमानोंकी हार हुई और सनद्वीप उनके अधिकारमें आ गया।

फरासी पर्यटक वर्नियरको लिखित वर्णनासे जाना जाता है, कि जब पोर्त्तु गीज मुगल द्वारा पराजित हुए, तब आराकानराजने उन लोगोंके साथ साथ अन्यान्य अंग्रेजोंको भो आश्रय दिया और इन लोगोंकी सहायतासे चट्टग्राम बन्दरको मुगल-आक्रमणसे बचाया। मग और पोर्त्तु गीज मिश्रित दस्युसम्प्रदायके लुण्ठन और अत्याचारसे मुगल-सम्राट् औरङ्गजेब तंग तंग आ गये और बङ्गालके शासनकर्त्ता शाइस्ता खांको उन्हें दमन करनेके लिए भेजा। शाइस्ता खांने उन लोगोंको डरा धमका कर वशीभूत किया और कहा कि यदि वे लोग अत्याचार करना छोड़ दें, तो औरङ्गजेब उन लोगोंको रहनेको जगह जमीन दे सकते हैं। इस प्रकार शाइस्ता खां उन लोगोंको शान्त कर १६६५ ई०में सैयद अफगानके अधीन ५०० सेना नगरको रक्षाके लिए रख लौट आए।

१७५६ ई०में इष्ट इण्डिया-कम्पनीने कपड़े का व्यवसाय करनेके लिए यहां एक कोठो बनवाई। इसके अलावा चारपाता, काञ्चोअन्दा, कदवा और लक्ष्मोपुर ग्राममें उसी समय अनेक कोठो निर्माण की गई जिनके ध्वंसावशेष आज भो नजर आते हैं। यहांके मुसलमानगण कुरानमतानुसारो हैं। ये लोग नमाज पढ़ते और अनेक हिन्दू पूजामें योगदान देते हैं तथा अन्यान्य मुसलमान पीरकी विशेष भक्ति नहीं करते। हिन्दुओंके मध्य ब्राह्मणगण शैव और निम्नश्रेणीके हिन्दू गण वैष्णव हैं। यहां शीतलादेवी और नागपूजा ही प्रसिद्ध मानी जाती है।

यहांके क्या हिन्दू क्या मुसलमान दोनों जातिके मध्य पुत्रका १५से २० वर्ष और कन्याका १० वर्ष होनेसे विवाह होता है। यहांके मुसलमानको विवाह-प्रथामें हिन्दूसे बहुत कुछ फर्क पड़ता है। विवाहके दिन वर आत्मीय स्वजन और ग्रामस्थ निमन्त्रित वरयात्रोके साथ कन्याके घर जाता है। अभ्यागतके निर्दिष्ट स्थान पर बैठनेके बाद एक आदमी वकील और दो आदमी साक्षिरूपमें नियुक्त होते हैं। बाद वर इसो वकीलके द्वारा बहुतसे द्रव्य कन्याको उपहारस्वरूप देता है। कन्या इन सब द्रव्योंको ले कर विवाहको सम्मति प्रकट करती है। अनन्तर वकील वरके निकट आ कर कुल बातें कह सुनाते और उक्त साक्षिद्वय उनका समर्थन करते हैं। आमन्त्रित व्यक्तिगणके भोजन कर चुकने पर विवाह होता है। इसके बाद वर कन्याको अपना घर ले जाता है।

इस जिलेके नाना जातीय मनुष्य धानको खेती करते हैं। चैत वैशाखमें जो आउस धान बोया जाता है, वह श्रावण, भाद्रमें और जो ज्येष्ठ, आषाढ़में बोया जाता है, वह कार्त्तिक, अग्रहायणमें कटता है। यहां उरद, सरसों, नारियल, सुपारो, हल्दी, ईख, पाट और पानकी बहुत खेती होती है। ये सब उत्पन्न द्रव्य यहांसे ढाका चट्टग्राम आदि जिलोंमें भेजे जाते और इन सब स्थानोंसे

माना द्रव्योंकी इस जिलेमें आमदनी भी होती है। १८७६ ई०में यहां एक भयानक बाढ़ आई थी जिससे बहुत मनुष्योंके प्राण नाश हुए थे।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २२° १०' से २२° १०' ३० और देशा० ८०° ४०' से ८१° २३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १३०१ वर्गमोल और जनसंख्या ८२२८८१ है। इसमें सुधाराम नामका एक शहर और १८५५ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। सुधाराम देखो।

नोइनी (हिं० स्त्री०) नोई देखो।

नोई (हिं० स्त्री०) दूध दुहते समय गायके पैर बांधनेकी रस्सी, बंधो।

नोक (फा० स्त्री०) १ सूक्ष्म अग्रभाग, शङ्कुके आकारकी वस्तुका महीन वा पतला छोर। २ कोण बनानेवाली दो रेखाओंका सङ्गमस्थान या विन्दु, निकला हुआ कोना। ३ किसी वस्तुके निकले हुए भागका पतला सिरा, किसी ओरको बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग।

नोकझोंक (हिं० स्त्री०) १ बनाव सिंगार, ठाटबाट, सजावट। २ आतङ्क, दर्प, तेज। ३ चुभनेवाली बात, व्यंग्य, ताना, आवाजा। ४ छेड़छाड़, परस्परकी चोट।

नोकदार (फा० वि०) १ जिसमें नोक हो। २ चुभनेवाला, पैना। ३ चित्तमें चुभनेवाला, दिलमें असर करनेवाला। ४ शानदार, तड़क-भड़कका, ठसकका।

नोकना (हिं० क्रि०) ललचना।

नोकपलक (हिं० स्त्री०) आंख नाक आदिकी गढ़न, चेहरेकी बनावट।

नोकपान (हिं० पु०) जूतेकी काट छांट, सुन्दरता और मजबूती।

नोकाझोंकी (हिं० स्त्री०) १ परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण, छेड़छाड़, ताना, आवाजा। २ विवाद, झगड़ा।

नोकीला (हिं० वि०) नुकीला देखो।

नोखा (हिं० वि०) अद्भुत, विचित्र, अनूठा, अपूर्व।

नोग्राम वा नवग्राम—युक्तप्रदेशके यूसुफजाई जिलेमें अवस्थित अंगरेजाधिकृत एक ग्राम। यह मर्दानसे ११ कोस पूर्व और श्रीहिन्द नगरसे ८ कोस उत्तरमें अवस्थित है। इसके पास ही रानीघाट नामक पर्वत है। ग्राममें तथा पर्वत पर अनेक प्राचीन ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि देशको शासनकर्त्री कोई रानी इस पर्वतके उच्च शिखर पर बैठ कर चारों ओर देखा करती थीं। जब उड़ती हुई धूल नजर आती थी, तब वे समझ लेती थीं कि देशान्तरस्थ वणिक् भारतवर्ष आ रहे हैं। इस समय वे उन्हें लूटनेके लिये अपनी सेनाको भेज देती थीं। इसी रानीके नाम पर पर्वत और निकटस्थ ग्रामका रानीघाट नाम पड़ा है। आज भी रानीघाटके शिखरदेश पर रानीका प्रस्तरासन नजर आता है। विशेष विवरण रानीघाट शब्दमें देखो।

नोङ्क्रम—आसामप्रदेशके खसिया पर्वतस्थित खैरिम राज्यके अन्तर्गत एक ग्राम। इसके पास ही लोहेकी खान है। वह लोहा अग्निके तापसे गला कर समतल क्षेत्र पर रखा जाता है और पीछे बहुत उत्कृष्ट लोहा हो जाता है। इससे स्थानीय अधिवासी अपना अपना व्यवहारोपयोगी अस्त्रादि बनाते हैं।

नोङ्-ख्लाव—आसामके खसिया पहाड़के अन्तर्गत एक छोटा राज्य। यहांके राजाओंकी उपाधि सि-एम है। १८२६ ई०में खसिया राज्यके मध्य सबसे पहले इसी स्थानके राजाके साथ अंगरेजोंकी मित्रता हुई थी। फलस्वरूप सि-एम राजाने अपने राज्य हो कर उन्हें आसाम जानेका एक रास्ता बनानेका आदेश दिया। किन्तु १८२८ ई०में अंग्रेजोंके साथ इनका मनमुटाव हो गया। खसिया लोगोंने बागी हो कर इस नगरके दो अंगरेज-कर्मचारी और सिपाहियोंको मार डाला। विद्रोहियोंका दमन किये जानेके बाद अंगरेजोंने इस नगरमें पोलिटिकल एजेण्टका सदर स्थान बनाना चाहा। यहांके अधिवासी व्यवहारोपयोगी सूती कपड़े बुनते और लोहेके हथियार भी बनाते हैं।

नोङ्तरमेन—आसामप्रदेशके खसिया पर्वतके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। इसे कोई कोई द्वार-नोङ्तरमेन भी कहते हैं। यहांके राजा वा शासनकर्त्ताकी उपाधि सर्दार है।

नोङ्-ष्टोइन—खसिया पर्वतके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। यहांकी जनसंख्या दश हजारके करीब है। यहांके

राजाकी उपाधि सि एम है। चांवल, कंगन, तेजपात, रवर, लाख और मोम इस राज्यमें यथेष्ट पाया जाता है। राज्यमें चूने और कोयलेकी खान भी पाई गई है। सीलङ्गसे इस राज्यमें आनेका एक रास्ता है।

नौङ्गसोकी—खसिया पर्वतके अन्तर्भुक्त एक छोटा राज्य। यहां आलू, चावल, मकई आदिकी खेती होती है। यहांके लोग चटाईका व्यवसाय अधिक करते हैं।

नोङ्गस्तङ्ग—आसामके खसिया पर्वतका एक सामन्त राज्य। जनसंख्या दो हजारके लगभग और राजस्व ८८८) रु०का है। यहांकी प्रधान उपज धान, आलू और मधु है। राज्यमें लोहा भी पाया जाता है, लेकिन वह काममें लाया नहीं जाता।

नोच (हिं० स्त्री०) १ नोचनेकी क्रिया या भाव। २ छीनने या लेनेकी क्रिया, कई ओरसे कई आदमियोंका झपाटेके साथ छीनना या लेना। ३ चारों ओरकी मांग, बहुतसे लोगोंका तकाजा।

नोचखसोट (हिं० स्त्री०) झपाटेके साथ लेना या छीनना, जबरदस्ती खींच खींच करके लेना, छीना झपटी।

नोचना (हिं० क्रि०) १ किसी जमी या लगी हुई वस्तुको झटकेसे खींच कर अलग करना, उखाड़ना। २ शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाना कि नाखून धंस जाय, खरोंचना। ३ नख आदिसे विदीर्ण करना, किसी वस्तुमें दांत, नख या पंजा धंसा कर उसका कुछ अंश खींच लेना। ४ ऐसा तकाजा करना कि नाकमें दम हो जाय, वार बार तंग करके मांगना। ५ दुःखी और हैरान करके लेना, पीछे पड़ कर किसीको इच्छाके विरुद्ध उससे लेना, वार वार तंग करके लेना।

नोचानाची (हिं० स्त्री०) नोचखसोट देखो।

नोचू (हिं० पु०) १ नोचनेवाला। २ तंग करके लेनेवाला। ३ छीनां झपटी करके लेनेवाला। ४ तकाजोंके मारे नाकों दम करनेवाला।

नोजली—युक्तप्रदेशके सहारानपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २९° ५३´ २८´´ उ० और देशा० ७७° ४२´ ५२´´ पू०के मध्य, पाथिर नगरसे १ मील दक्षिण और बड़पुर ग्रामसे १ मील दक्षिणपश्चिममें अवस्थित है।

नोट (सं० पु०) नट-अच्, पृषोदरादित्वात् साधु। नट।

नोट (अं० पु०) १ ध्यान रहनेके लिये लिख लेनेका काम, टांकने या लिखनेका काम। २ आशय या अर्थ प्रकट करनेवाला लेख, टिप्पणी। ३ लिखा हुआ परचा, पत्र, चिट्ठी। ४ यूरोप, अमेरिका और अंगरेजाधिकृत भारतवर्षमें प्रचलित कागज (Parchment)की मुद्राविशेष, सरकारकी ओरसे जारी किया हुआ वह कागज जिस पर कुछ रुपयोंकी संख्या रहती है और यह लिखा रहता कि सरकारसे उतना रुपया मिल जायगा, सरकारी हुंडी। भारतवर्षमें नोट दो प्रकारका होता है, एक करेंसी, दूसरा प्रामिसरी। करेंसी नोट बराबर सिक्कोंके स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहें, तब मिल सकता है। प्रामिसरी नोट पर केवल सूद मिलता रहता है। सरकार मांगने पर उसका रुपया देनेके लिये बाध्य नहीं है। प्रामिसरी नोटकी दर घटती बढ़ती है।

नोटपेपर (अं० पु०) पत्र लिखनेका कागज।

नोटबुक (अं० स्त्री०) वह कापी या बही जिस पर कोई बात याददाश्तके लिये लिखी जाय।

नोटिस (अं० स्त्री०) १ विज्ञप्ति, सूचना। २ विज्ञापन, इश्तिहार। इस शब्दको कुछ लोग पुंलिङ्ग भी बोलते हैं।

नोण (सं० क्लो०) लवण, नमक।

नोणम्बवाड़ी—वर्त्तमान महिसुर जिलेका उत्तरांश जो अभी चित्तलदुर्ग कहलाता है, प्राचीनकालमें नोणम्ब-प्रजाधिष्ठित देश वा नोणम्बवाड़ी नामसे प्रसिद्ध था।

नोणम्बवीर—चालुक्यवंशीय एक राजा। चालुक्य देखो।

नोदन (सं० क्लो०) नुद भावे ल्युट्। १ खण्डन। णिच् भावे ल्युट्। २ प्रेरण, चलाने या हांकनेका काम। ३ प्रतोद, बैलोंको हांकनेकी छड़ी या कोड़ा, पैना, औगी।

नोद्य (सं० त्रि०) अपसारणयोग्य।

नोधस् (सं० पु०) नु असि- धुट्-च। ऋषिभेद।

नोधसिंह—पञ्जावकेशरी महाराज रणजित् सिंहके पूर्व पुरुष। इनके पिता बुद्धसिंह अपने पिताके आदेशानुसार नानकका धर्मग्रन्थ पढ़ कर सिखसम्प्रदायभुक्त हो गए थे। बुद्धसिंह पञ्जाबके नाना स्थानोंसे जो सब द्रव्य लूट लाते थे उन्हें सुखेरचक नामक ग्राममें, जहां उनका घर था, रख देते थे। सुखेरचक नामक ग्राममें घर रहने

कारण उनके दलभुक्त सिखगण 'सुखेर-चक-मिथल' नामसे प्रसिद्ध हुए। बुद्धसिंहके दो पुत्र थे, नोधसिंह और चान्दसिंह। नोधसिंह पिताके मिथलमें ही रहे और कनिष्ठ चान्दसिंहसे 'सिन्धियन-वाला' नामक शाखाकी उत्पत्ति हुई।

उस समय 'धारवो' वा दस्युव्यवसाय जातीयताका गौरवसूचक समझा जाता था। इसीसे नोधसिंहने अन्य कोई वृत्ति अवलम्बन करनेसे पहले सम्मानसूचक दस्यु-नेता होनेका पक्का विचार कर लिया। क्योंकि वे जानते थे, कि इस व्यवसायमें प्रचुर धन हाथ लगेगा। भविष्यत् उन्नतिकी आशासे इन्होंने रावलपिण्डीकी सीमासे ले कर अनट्रके तीरवर्त्ती सभी स्थानोंको लूट कर प्रभूत अर्थ संग्रह किया। इस समय क्या सिख, क्या जाट, क्या सीमान्तवर्त्ती सरदारगण, सबोंसे इनकी अवस्था उन्नत हो गई थी। विशिष्ट धनशाली हो कर ये अपने देश भरमें विशेष गण्यमान हो उठे थे। १७३० ई०में इन्होंने माजि-थियर सन्धि-जाटवंशीय गुलाबसिंहकी कन्याका पाणि-ग्रहण किया। इसके बाद नोधसिंह फैजलपुरिया मिथलके सरदार नवाब कपूरसिंहसे आ मिले। इसी समय अहमदशाह अवदलीने भारतवर्ष पर आक्रमण किया। नाना स्थानोंसे प्रचुर धनरत्न ले कर नोधसिंह सुखेरचकमें आ कर रहने लगे और जनसाधारणने उन्हें सुखेरचकके सरदार वा सामन्तराज मान कर घोषणा कर दी। १७४७ ई०में इनके साथ अफगानोंका एक सामान्य युद्ध हुआ। युद्धमें एक गोला इनके शिर पर आ गिरा। इस आघातसे इनकी मृत्यु तो न हुई, पर ५ वर्ष तक ये अकर्मण्य हो रहे। १७५२ ई०में आप चरत्सिंह, दलसिंह, चेत्सिंह और मसीसिंह नामक चार पुत्र छोड़ सुरधामको सिधार गए।

नोधा (सं० अव्य०) नव-धाच्, पृषो०। नवधा, नो प्रकार।

नोनगढ़—जयनगरसे ३ कोस दक्षिणपूर्व किउल नदीके किनारे अवस्थित एक ग्राम। कोई कोई इसे लोनगढ़ भी कहते हैं। यहां एक भग्नमूर्त्ति पाई गई है जिसमें ई०सन्के पहले १ली शताब्दी और बादकी १ली शताब्दी-के मध्यवर्त्ती समयके अक्षरोंमें खोदित एक शिलालिपि है। मूर्त्तिकी भास्करकार्य भी मथुरामें प्राप्त उक्त समयकी खोदित प्रतिमूर्त्तिके अनुरूप है। चीन-परि-व्राजक युएनचुवङ्ग लि-इन-नि-लो नामक स्थानमें भ्रमण कर लिख गए हैं, कि यहां एक बौद्ध सङ्घाराम और स्तूप है। वर्त्तमान नोनगढ़में भी इसी प्रकार दो चिह्नके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। यहांके स्तूपकी लम्बाई और चौड़ाई तथा उसके प्राचीनत्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि यही लोनगढ़ चीन-परि-व्राजक-वर्णित लि-इन्-नि-लो नगर है।

नोनचा (हिं० पु०) १ नमकीन अचार। २ नमकमें डाली हुई आमकी फाकोंकी खटाई। ३ वह जमीन जहां लोनी बहुत हो।

नोनछो (हिं० स्त्री०) लोनी मट्टी।

नोनहरा (हिं० पु०) पैसा। यह गन्धर्वोंकी बोली है।

नोना (हिं० पु०) १ नमकका अंश जो पुरानी दीवारों तथा सीड़की जमीनमें लगा मिलता है। २ लोनी मट्टी। ३ शरीफा, सीताफल, आत। ४ एक कीड़ा जो नाव या जहाजके पेंदेमें लग कर उसे कमजोर कर देता है, उधई कीड़ा। (वि०) ५ नमक मिला, खारा। ६ लावण्यमय, सलोना। ७ सुन्दर, अच्छा, बढ़िया।

नोनाई—आसामप्रदेशमें प्रवाहित दो नदी,—१ली भूटान पर्वतसे निकल कर दरङ्ग जिलेके पश्चिम होती हुई ब्रह्मपुत्र नदीमें गिरती है और २री मिकीर पर्वत-से निकल कर हरियामुख ग्राममें ब्रह्मपुत्रकी कलङ्ग शाखामें जा गिरी है।

नोनाखाल—२४ परगनेके अन्तर्गत विद्याधरी नदीकी एक शाखा।

नोनाचमारी—एक प्रसिद्ध जादूगरनी। इसकी दोहाई अब तक भी मंत्रोंमें दी जाती है। लोगोंका कहना है, कि यह कामरूप देशकी रहनेवाली थी।

नोनिया (हिं० पु०) लोनी मट्टीसे नमक निकालनेवाली एक नीच जाति। गया, शाहाबाद, चम्पारण, सारण आदि जिलोंमें इस जातिके लोग अधिक संख्यामें पाए जाते हैं। सोरा प्रस्तुत करना ही इनका प्रधान व्यव-साय है। इस जातिकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, मालूम नहीं। लेकिन दन्तकहानी है, कि विदुरभक्त नामक किसी योगीसे अवधियाका जन्म हुआ। उक्त

शोगी-विदूर लोनी मट्टी पर बैठ कर तपस्या कर रहे थे और उसी अवस्थामें उनका तपोभ्रष्ट हुआ था। पीछे योगाभ्यासमें उनका अधिकार न रहा। रामचन्द्रने उन्हें शाप दे कर सोरा प्रस्तुत करनेका आदेश दिया। विन्द और वेलदारकी उत्पत्तिके विषयमें ऐसा ही प्रवाद है। किसीका मत है, कि विन्द जातिके आदि पुरुषसे नोनिया और वेलदारकी उत्पत्ति हुई है।

विहारमें नोनिया जातिके सात सम्प्रदाय हैं, यथा— अवधिया वा अयोध्यावासी, भोजपुरिया, खरावत, मघैया ओड़, पचाइयां और सेमारवार। इन सम्प्रदायोंमें एक दूसरेसे विवाह शादी नहीं होती। पर हां, तीन वा पांच पीढ़ी तक छोड़ कर अन्य हिन्दू जातिके जैसा विवाह कर लेते हैं। बहुत नजदीकी सम्बन्धमें विवाह नहीं करते। ये लोग कची उमरमें ही लड़कोंको व्याहते हैं। किन्तु अर्थाभाववशतः कोई कोई अधिक उमरमें भी विवाह करते हैं। इन लोगोंमें बहु विवाह प्रचलित है, लेकिन दोसे अधिक स्त्री वाले बहुत थोड़े देखे जाते हैं। वंशरक्षाके लिये यदि कोई दो चार स्त्री भी कर ले, तो समाजमें उसकी निन्दा नहीं होती। विधवा विवाह भी इन लोगोंमें चलता है। विधवा विशेषतः अपने देवरके साथ विवाह करना ही अच्छा समझती है।

पत्नीके असती होने पर अथवा पतिपत्नीमें मेल नहीं रहने पर पञ्चायतसे पत्नीपरित्यागकी अनुमति दी जाती है। इस प्रकार एक स्वामी छोड़ देने पर नोनिया स्त्रियां अन्य स्वामी ग्रहण कर सकती हैं। किन्तु एक बार यदि अन्य जातिका सहवास करे, तो वह समाजसे अलग कर दी जाती है और फिर वह स्वजातिमें विवाह नहीं कर सकती।

तिरहुतिया ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। इन लोगोंकी विवाहप्रथा अन्यान्य जातिकी प्रथासे कुछ अन्तर पड़ती है। वरका मूल्य कुलरीतिके अनुसार केवल एक जोड़ा कपड़ा और एकसे पांच रुपये तक है। इस मूल्यका नाम तिलक है। विवाहके पहले ही इस मूल्यका निर्णय करना होता है। विवाह हो जाने पर कन्या बारातके साथ और जातिके जैसा ससुराल नहीं जाती। जब तक द्विरागमन नहीं होता, तब तक वह पीहरमें ही रहती है।

अवधिया नोनियामें 'आस्माई साड़ी' नामक एक आश्चर्य पद्धति प्रचलित है। इस पद्धतिके अनुसार वर-कन्याको विवाहके समय दूसरे स्थानमें रहना पड़ता है।

विहारमें प्रचलित हिन्दूधर्म ही नोनियाका धर्म है। इनमें शाक्तकी संख्या ही अधिक है, वैष्णव बहुत थोड़े हैं। भगवती इनकी प्रधान आराध्यदेवी हैं। ये लोग बन्दी, गोरैया और शीतलाकी पूजा मङ्गलवार, बुधवार और शनिवारको किया करते हैं। स्त्रियां और छोटे छोटे लड़के किसी देवदेवीकी पूजा नहीं करते। कभी कभी स्त्रियां शीतलापूजामें पुरुषका साथ देती हैं। संन्यासी फकीर लोग ही इस जातिके गुरु होते हैं। ये लोग मृतदेहको जलाते हैं, गाड़ते नहीं। जिसकी मृत्यु पांच वर्षके अन्दर होती है, केवल उसीकी मृतदेह गाड़ी जाती है।

लोनी मट्टीसे सोरा और लवण प्रस्तुत करना ही इनका पैतृक व्यवसाय है। वर्त्तमान समयमें इनमेंसे कुछ पथनिर्माण, पुष्करिणीखनन, अट्टालिकानिर्माण, घर छाजन आदि मजदूरका काम करते हैं।

पटना, मुङ्गेर और मुजफ्फरपुरके नोनिया कुर्मी, कोइरी आदि जातियोंके समकक्ष हैं और ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। किन्तु भागलपुर, पूर्णिया, चम्पारण, शाहाबाद और गयाके नोनियाका जल कोई हिन्दू नहीं पीता। वहां ये लोग तांतीके समान माने जाते हैं। इस जातिके प्रायः सभी लोग चूहे और सूअरका मांस खाते तथा शराब पीते हैं।

नोनी (हिं॰ स्त्री॰) १ लोनी मिट्टी। २ लोनिया, अम-लोनीका पौधा। (वि॰) ३ रूपवती, सुन्दर। ४ अच्छी, बढ़िया।

नोनेकवि—एक हिन्दी गायक कवि। बुन्देलखण्डके अन्तर्गत बाँदा नगरमें १८४४ ई॰को इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम था हरिदास।

नौनेरा—युक्तप्रदेशके आगरा विभागकी मैनपुरी तहसील-के अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह जिलेके सदरसे ८ मील उत्तर-पश्चिम ४० फुट ऊंची भूमिके ऊपर अवस्थित है। इस उच्च स्तूपके पूर्व दिशामें अवस्थित एक प्राचीन मन्दिरकी ईंटोंसे उत्तरांशमें एक दुर्ग बनाया गया था।

नौपस्थात्‌ (सं० त्रि०) न-उपतिष्ठति स्था-तृच्‌। दूरस्थ, दूरका।

नौमुर्दी—भारतवर्षकी सीमान्तवर्त्ती बेलुच जातिकी एक शाखा। बेवानसे ले कर खूटो तक इन लोगोंका वास है।

नौया (नोग्रा)—पश्चिम एशियाके प्राचीनतम ईसाइयोंके एक पेट्रियार्क वा महापुरुष। सर्वशक्तिमान्‌ जगदीश्वरने जब देखा, कि धरावासी मानवोंकी अधार्मिकता और अत्याचारसे धरित्री भारग्रस्ता हो गई है, तब उन्होंने भूभारको घटानेका सङ्कल्प किया। तदनुसार उन्होंने धार्मिक प्रवर नोयाको आत्मीय स्वजनोंके साथ एक जहाज बना कर उस पर रहनेका आदेश दिया। वह जहाज 'नोयास्‌ आर्क' वा नोयाका जहाज नामसे प्रसिद्ध हुआ। नोया सपरिवार जहाज पर चढ़ कर निरापदसे रहे। इधर जगत्‌पतिके महाप्रलयसे पृथिवी जलमग्न हो गई; सभी जीव जन्तु इस लोकको छोड़ कर परलोकमें जा बसे। सात मास तक जलस्रोतमें बहता हुआ नोयाका जहाज आरारॉट गिरिशृङ्ग पर जा लगा। यहां जब इन्हें रहनेका आश्रय मिल गया, तब जगदीश्वरको खुश करनेके लिए इन्होंने एक बलि चढ़ाई। जगदीश्वर भी उनकी मुक्तिके लिये प्रतिश्रुत हुए।

इस स्थान पर उतर कर नोयाने अङ्गूरकी खेती की। एक दिन अङ्गूरको रस पी कर वे मत्तावस्थामें अपने पुत्र श्यामको बगलमें पा सो रहे। श्यामने पिताका दौर्बल्य न समझ कर श्याम और जाफर नामक अपने दो भाइयोंको बुलाया और पिताकी मादकताजनित अङ्गशिथिलता और निद्रितावस्थाको दिखा कर वे आनुपूर्विक सभी विषय जान गए। पन्द्रह दिन तक पिताको इसी अवस्थामें देख वे बड़े लज्जित हुए और उन्हें सर्वाङ्ग एक वस्त्रसे ढक कर रख दिया। निद्राभङ्ग होने पर नोया अपने पुत्रोंके इस आचरणको समझ गये और श्याम पर असंतुष्ट हो कर शाप दिया, 'तुम्हारो भविष्यत्‌ उन्नति कदापि नहीं होगी।' पृथ्वीके जलप्लावित होनेके ३५० वर्ष बाद धार्मिक नोया स्वर्गधामको सिधार गए इनका पूर्ण जीवनकाल ८५० वर्ष था।

मुसलमान इतिहासमें भी नोयाका उल्लेख है। बास्तानिया-वंशीय ५म राजा विवर-आस्प हुसङ्गके पुत्र जमशेदको सिंहासनच्युत करके राजा बन बैठे। कुकर्मादिमें लगे रहनेके कारण जगदीश्वरने उसके पूर्वकृत पापका खण्डन करनेके लिये नोयाको उसके पास भेजा। नोयाके लाखों उपदेश देने पर भी राजाको ज्ञान न हुआ। इस पर परम पिता परमेश्वरने धराभारहरणके लिये महाप्रलय उपस्थित किया। ऐसा करनेसे पृथ्वी पर जितने पापी थे सबोंकी मृत्यु हो गई। नोयाको मृत्युके प्रायः एक हजार वर्ष बाद श्यामके पुत्र लुआक राजा हुए*।

केवाक ग्रामसे दक्षिण जेवनसे १ कोस दूर बेकार समतल क्षेत्रके ऊपर बालवेकवासिगण नोयाको कब्र बतलाते हैं। यह कब्र १० फुट लम्बी, ३ फुट चौड़ी और २ फुट ऊंची मानी जाती है। कब्रके ऊपर ६० फुट ऊंची एक आकृति बनी हुई है। यहांसे २ कोसकी दूरी पर हारमिसका भग्नमन्दिर है। अंगरेजी बाइबलके नोया, हिब्रुबाइबलके शिशुफ्रस वा एकेडियन नोया तथा अन्यान्य भाषामें इनकी घटनावली विभिन्न नामोंसे वर्णित है। मनु देखो।

नौयाकोट (नवकोट)—नेपाल राज्यके अन्तर्गत हिमालयतटस्थित एक नगर। यह त्रिशूलगङ्गा-नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है। धैवङ्ग पर्वतके निकटवर्त्ती गिरिपथ हो कर तिब्बती अथवा चीनवासिगण सहजमें नवकोट राज्यमें प्रवेश कर सकते हैं। १७९२ ई०में चीनसेनाने इसी नगर हो कर नेपाल पर आक्रमण किया था। यहांके महामाया वा भवानीके मन्दिरके ऊपरी भाग पर चीनसैन्यसे लब्ध कितने द्रव्य युद्धजयके गौरवचिह्न स्वरूप संलग्न हैं। नेपाल देखो।

नौयाबिन—भारतवर्षके उत्तर काश्मीर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिपथ। इसके एक ओर उच्च हिमालय-शिखर और पूर्वकी ओर काश्मीरकी उपत्यकाभूमि है। इसका सर्वोच्च स्थान समुद्रपृष्ठसे बारह हजार फुट है।

नौयापुर (नवपुर)—१ गुजरात प्रदेशके अन्तर्गत एक

* तारीख-इ मुकद्दसी नामक मुसलमानी इतिहासमें नोयाकी वंशावली इस प्रकार लिखी है। नोया, उनके पुत्र काया, कायाके पुत्र तारा, ताराके पुत्र अबवन्द आस्प, आस्पके पुत्र लुआक वा विवर-आस्प। Tabakat-i-Nasiri, Vol. I. p. 303n;

नगर। १८१८ ई०में यहां अङ्गरेजी सेना आ बसी थी।

२ बम्बई प्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत एक ग्राम। इस ग्रामके चारों ओर पार्वतीय अंशोंमें भील जातिका वास ही अधिक है।

नोयारबन्द—आसाम प्रदेशके कछाड़ जिलेका एक नगर। यह शिलचरसे १८ मील दक्षिणमें अवस्थित है। लुसाई और कूकी-आक्रमणसे देशकी रक्षाके लिये यहां वृटिश सरकारने सेना रखी है। इसके पास चायकी खेती बहुत होती है।

नोयिल—मन्द्राज प्रदेशके कोयम्बतूर जिलेकी एक नदी। यह वेलिनगिरिसे निकल कर कावेरीनदीमें गिरती है।

नोर—आसामके दक्षिण और आवा नगरके उत्तर तथा किन्दुयम और ऐरावती दोनों नदियोंके मध्यमें अवस्थित एक जनपद। १६९५ ई०में यह स्थान ब्रह्मके राजाके अधीन था। यहांके सामन्तराज आसाम राजवंशीय हैं।

नोरोज-इ-जलाली (वा नौराज-इ-जलाली) मुसलमान धर्मशास्त्रका एक प्रसिद्ध दिन। सुलतान मालिक-शाहके आदेशसे ज्योतिर्विदों और अङ्कशास्त्रविदोंने वर्ष, ऋतु, मास और कालनिर्णयके लिये फिरसे गणना आरम्भ कर दी। उक्त गणनासे यह स्थिर हुआ, कि द्वादश राशिके प्रथम मेषराशि ही पहले वसन्तकालकी विषुवक्रान्तिका अतिक्रम कर अयन वृत्तमें गमन करती है। इस कारण उक्त दिनसे मुसलमानोंके मास और वर्षकी गणना चली आ रही है।

नोवना (हिं० क्रि०) दुहते समय रस्सीसे गायका पैर बांधना।

नोविसेट्ला—मन्द्राजके अनन्तपुर तालुकके अन्तर्गत एक ग्राम। यह गुटीसे ३५ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके आञ्जनेयके मन्दिरमें १५५८ सम्वत्में उत्कीर्ण एक शिलालिपि देखनेमें आती है।

नोविलियस रावर्ट-डि—एक पोर्त्तुगीजमिशनरी। १५०६ ई०में ये पहले पहल मदुरा नगरमें आये। इस समय तिरुमल नायक यहां राज्य करते थे। यहांके हिन्दू अधिवासिगण खृष्टीय याजकप्रधान नोविलीको तत्त्वबोध-नागर नामसे पुकारते हैं। १६६० ई०को मन्द्राजके निकट-वर्त्ती ग्राममें इनका देहान्त हुआ। खृष्टान देखो।

नोव्रा—उत्तर-भारतके काश्मीर राज्यके लदाख विभागके अन्तर्गत एक उपविभाग। यह काराकोरम गिरिश्रेणीसे ग्यारह हजार फुट ऊँचे पर अवस्थित है और चारों ओरसे श्यायोक वा नोव्रानदीसे घिरा है। देशकित् इसका प्रधान नगर है।

नोहर (हिं० वि०) १ अलभ्य, दुर्लभ, जल्दी न मिलने-वाला। २ अद्भुत, अनोखा।

नोहला—चालुक्यवंशीय राजा अवनिवर्माकी कन्या। इनका युधतुङ्ग राजपुत्र केयूरवर्षके साथ विवाह हुआ था। इनके प्रतिष्ठित मन्दिर और शिवलिङ्ग नोहलेश्वर नामसे प्रसिद्ध हैं।

नौ (सं० स्त्री०) नुद्यतेऽनेनेति नुद्-प्रेरणे-डौ (ग्लानु-दिभ्यां डौः। उण् २।६४) १ नौका, नाव। २ यन्त्रचालीय नौभेद, प्राचीनकालकी एक नाव जो यन्त्रके सहारेसे चलाई जाती थी। महाभारतमें इस प्रकारकी नावका उल्लेख देखनेमें आता है।

इस यन्त्रचालनीय नौका शब्दसे आज कलके जहाज-का ही बोध होता है। वर्त्तमान समयमें जहाजके जो सब लक्षण देखे जाते हैं, वे पूर्वोक्त यन्त्रचालनीय नौका-के साथ मिलते जुलते हैं। अतः इस चालनीय नौकाको यदि जहाज श्रेणीमें गिनती की जाय, तो कोई दोष नहीं होगा। नौका देखो।

नौ (हिं० वि०) जो गिनतीमें आठ और एक हो, एक कम दश।

नौकड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका जुआ जो तीन आदमी तीन-तीन कौड़ियां ले कर खेलते हैं।

नौकर (फा० पु०) १ भृत्य, चाकर, टहलुवा, खिदमत-गार। २ कोई काम करनेके लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया हुआ मनुष्य, वैतनिक कर्मचारी।

नौकरानी (फा० स्त्री०) दासी, घरका काम धंधा करने-वाली स्त्री।

नौकरी (फा० स्त्री०) १ नौकरका काम, सेवा टहल, खिद-मत। २ कोई काम जिसके लिए तनखाह मिलती हो।

नौकरीपेशा (फा० पु०) वह जिसका जीवननिर्वाह नौकरीसे होता हो, वह जिसका काम नौकरी करना हो।

नौकर्णधार (सं० पु०) नावः कर्णं धारयति, धारि-अण्। नाविक, मल्लाह।

नौकर्णी (सं० स्त्री०) नौरिव कर्णौ यस्याः, ङीष्। कुमारानुचर मातृभेद, कार्त्तिकेयकी अनुचरी एक मातृका।

नौकर्म (सं० क्ली०) नावि कर्म, चालनादिव्यापारः। नौकावाहनादि कार्य, नाव चलानेका काम।

नौका (सं० स्त्री०) नौरेव स्वार्थे कन् स्त्रियां टाप्। तरणि, नाव, जहाज। पर्याय—वारिरथ, नौ, तरिका, तरणि, तरि, तरी, तरण्डी, तरण्ड, पादालिन्दा, तत्प्रका, होड़, वाधू, वार्वट, वहित्र, पोत, वहन। यान दो प्रकारका होता है, जलयान और स्थलयान। नौका निष्पद यान है।

नौका प्रभृति जलयानको निष्पदयान और अश्वादि-यानको स्थलयान कहते हैं। जलमें नौका ही एकमात्र यान है अर्थात् जलपथ हो कर जानेसे नौका ही उसका एकमात्र उपाय है। इस कारण शुभ दिन देख कर नौका प्रस्तुत और नौकारोहण करना चाहिये।

नौका बनानेमें पहले काष्ठनिर्णय करना होता है। काष्ठजाति चार प्रकारकी है—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र।

इन चार प्रकारके काष्ठोंमें जो लघु, कोमल और सुघट होता है, वह ब्राह्मण जातिका काष्ठ; जो दृढ़ाङ्ग, लघु और अघट है, वह क्षत्रियकाष्ठ; जो कोमल और गुरु होता है, वह वैश्य जातिका काष्ठ और जो दृढ़ाङ्ग तथा गुरु होता है, वह शूद्र जातिका काष्ठ कहलाता है। प्रथमतः काष्ठकी इन चार जातियोंमेंसे जिस काष्ठ द्वारा नौका बनाई जायगी, वह काष्ठ किस जातिका है, पहले उसीको स्थिर करना होता है। ये सब लक्षण ठीक करके द्विजजाति काष्ठ नौकाके लिये संग्रह करना चाहिए। भोजके मतसे क्षत्रिय जातिका काष्ठ ही नौका-के लिये प्रशस्त है। फिर दूसरे दूसरे पण्डितोंका कहना है, कि लघु और सुदृढ़ काष्ठसे जो नाव बनाई जाती है, वही सबसे बढ़िया है।

जो नौका दो विभिन्न जातिके काष्ठोंसे बनाई जाती है, वह शुभफलद नहीं होती।

नौका प्रथमतः दो प्रकारकी होती है, क्षुद्रनौका और मध्यमा नौका। जो नौका जितनी लम्बी होगी उसका चौथाई भाग यदि उसका चौड़ाई और उतनी ही ऊँचाई हो, तो उसे क्षुद्रनौका और जिसका परि-णाह लम्बाईसे आधा तथा जिसकी ऊँचाई तिहाई भागके समान हो, उसे मध्यमा नौका कहते हैं।

यह सामान्य नौका दश प्रकारकी है। यथा—क्षुद्रा, मध्यमा, भीमा, चपला, पटला, अभया, दीर्घा, पत्रपुटा, गर्भरा और मन्थरा। इन दश प्रकारकी नौकाओंमें भीमा, अभया और गर्भरा नौका शुभजनक नहीं है।

दीर्घनौकाका लक्षण—जो नौका दो राजहस्त दीर्घ उसका आठवां भाग परिणाह तथा दशवां भाग उन्नत हो, वैसी नौकाको दीर्घा कहते हैं। दीर्घा नौका भी पुनः दश प्रकारकी है—दीर्घिका, तरणि, लोला, गत्वरा, गामिनी, तरि, जङ्घाला, प्लाविनी, धारणी और वेगिनी। इन दश प्रकारकी नौकाओंमें लोला, गामिनी और प्लाविनी नौका दुःखप्रदा मानी गई है।

नौकामें नाना प्रकारकी धातु द्वारा चित्रकार्य करना होता है। यथाक्रमसे कनक, रजत और ताम्र द्वारा ब्रह्मादिकी आकृति चित्रित करे; पीछे सित, रक्त, पीत और नील आदि वर्णोंसे उसे सुशोभित बनाए रखे। केशरी, महिष, नाग, द्विरद, व्याघ्र, पक्षी और भेक इनके मुख नौकाके मुखकी ओर बने रहें। जलमें नौका भिन्न अन्य जो कोई यान है उसे जघन्ययान कहते हैं।

जलपथ-गमनमें द्रोणीयान, घटानौका, फलयान, चर्मयान, कुम्भयान और जन्तुयान ये सब यान निन्दित माने गए हैं।

उत्तम दिन चर और मकरादि ६ लग्न तथा विहित नक्षत्र देख कर नौका बनवानी चाहिये।

(युक्तिकल्पतरु)

नौकाकष्ट (सं० क्ली०) चतुरङ्गक्रीड़ाभेद।

नौकादण्ड (सं० पु०) नौकायाः परिचालनार्थं यो दण्डः। क्षेपणी, नावका डांड़, बल्ली।

नौक्रम—नौकाश्रेणीसंयुक्त सेतु, नावका बना हुआ पुल।

नौगाँव (नवग्राम)—आसामके चीफ कमिश्नरके अधीन एक जिला। यह अक्षा० २५° ४५' से २६° ४०' उ० तथा देशा० ९२° से ९३° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें ब्रह्मपुत्रनदी, पूर्वमें शिवसागर, दक्षिणमें

खसिया और जैन्तिया पर्वत तथा पश्चिममें कलङ्ग नदी और कामरूप जिला है। इसका प्रधान सदर नौगांव नगर है।

इस जिलेके चारों ओर जिस तरह कामरूप, सिकौर, खसिया और जैन्तिया पर्वतमाला सुशोभित है, उसी तरह पर्वतगात्रवाहिनी बहुतसी नदियोंसे यह उपविभाग विच्छिन्न हुआ है। इनमेंसे धानेश्वरी, कवयाणी, दिखरु, देवपानी, ब्रह्मपुत्र और कलङ्ग नदियां ही प्रधान हैं। दिजु, ननाई, कापिली, यमुना, बड़पानी, दिमाल और किलिङ्ग आदि छोटी छोटी शाखानदियां ब्रह्मपुत्र और कलङ्गकी वृद्धि करती हैं।

कामाख्या-पर्वतको कामाख्यादेवीका मन्दिर उल्लेख योग्य है। शायद यह मन्दिर कूचविहार-राजवंशके किसी राजासे बनाया गया होगा। प्रवाद है, कि यह स्थान पहले एक बौद्धतीर्थ रूपमें गिना जाता था। बौद्ध-मतावलम्बी राजा नरनारायणने १५६५ ई०में इस मन्दिर-का पुनर्निर्माण किया। कामाख्या और कामरूप देखो।

पार्वतीय असभ्य जातियोंमें मीकिर, गारो, कूकी और नागा ही प्रधान हैं। ये लोग बहुत कुछ छोटानाग-पुरके ओरावन, कोल और सन्थालोंसे मिलते जुलते हैं। यहां कोच जातिकी संख्या ही अधिक है, ये लोग अन्यान्य जातियोंसे श्रेष्ठ माने जाते हैं।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह कलङ्ग नदीके पूर्वी किनारे अवस्थित है।

३ मध्यभारतके बुन्देलखण्ड राज्यके अन्तर्गत एक नगर और सेनानिवास। इसके एक ओर अंगरेजाधिकृत हमीरपुर जिला और दूसरी ओर छत्रपुरका सामन्तराज्य है। यहां लार्ड मेयोके स्मरणार्थ बुन्देलखण्डके सामन्त-राजने 'राजकुमार-कालेज' नामक एक विद्यालयकी स्थापना की।

नौग्रही (हिं० स्त्री०) हाथमें पहननेका एक गहना जिसमें नौ कगूरेदार दाने पाटमें गुंथे रहते हैं।

नौचर (सं० त्रि०) नावा चरति चर-ट। नौकाचरणशील, जो नाव पर चढ़ कर विचरण करते हों।

नौची (फा० स्त्री०) वेश्याकी पाली हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो।

नौछावर (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

नौज (हिं० अव्य०) १ ईश्वर न करे, ऐसा न हो। २ न हो, न सही।

नौजवान (फा० वि०) नवयुवक, उठती जवानी।

नौजवानी (फा० स्त्री०) उठती युवावस्था।

नौजा (फा० पु०) १ बादाम। २ चिलगोजा।

नौजी (फा० स्त्री०) लीची।

नौजीविक (सं० त्रि०) नावा जीविका यस्य। नौचाल-नादि जीविकायुक्त, जो नाव चला कर अपना गुजारा करता हो।

नौता (सं० पु०) न्यौता देखो।

नौतार्य (सं० त्रि०) नावा नौकया तार्यं तरणीयं। नौकागम्य देशादि।

नौतेरही (हिं० स्त्री०) १ ककई ईंट, छोटी ईंट। २ एक प्रकारका जुआ जो पासोंसे खेला जाता है।

नौतोड़ (हिं० वि०) १ नया तोड़ा हुआ, जो पहले पहल जोता गया हो। (स्त्री०) २ वह जमीन जो पहली बार जोती गई हो।

नौदण्ड (सं० पु०) १ नौकादिके मध्यस्थित काष्ठदण्ड। २ डांड़।

नौदसी (हिं० स्त्री०) एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदारसे रुपया उधार लेते हैं और सालभरमें ८) रु०के १०) देते हैं।

नौध (हिं० पु०) नया पौधा, अंखुवा।

नौधा (हिं० पु०) १ नीलकी वह फसल जो वर्षारम्भ-होमें बोई गई हो। २ नए फलदार पौधोंका बगीचा, नया लगा हुआ बगीचा।

नौनगा (हिं० पु०) बाहु पर पहननेका एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं। इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दानेमें भिन्न भिन्न रंगके नग जड़े जाते हैं। इसे नौरतन भी कहते हैं।

नौना (हिं० पु०) १ नवना, झुकना। २ झुक कर टेढ़ा होना।

नौनिधिराम—एक ग्रन्थकार। इन्होंने गरुड़पुराणसार-संग्रह और टीकाकी रचना की। ये हरिनारायणके पुत्र और राजा शार्दूलके पुराणपाठक पण्डित सुखलालजीके पौत्र थे।

नौनार (हिं॰ स्त्री॰) वह स्थान जहां नोनिया लोग लोनी मट्टीसे नमक बनाते हैं।

नौबढ़ (हिं॰ वि॰) जिसे क्षुद्र या हीन दशासे अच्छी दशामें आए थोड़े ही दिन हुए हों।

नौबत (फा॰ स्त्री॰) १ बारी, पारी। २ गति, दशा, हालत। ३ वैभव, उत्सव या मंगलसूचक बाजा जो पहर पहर भर देवमन्दिरों, राजप्रासादों या बड़े आदमियोंके द्वार पर बजता है। नौबतमें प्रायः शहनाई और नगाड़े बजाते हैं। ४ स्थितिमें कोई परिवर्त्तन करनेवाली बातोंका घटना, उपस्थित दशा, संयोग।

नौबतखाना (फा॰ पु॰) फाटकके ऊपर बना हुआ वह स्थान जहां बैठ कर नौबत बजाई जाती है, नक्कारखाना।

नौबती (फा॰ पु॰) १ नौबत बजानेवाला, नक्कारची। २ फाटक पर पहरा देनेवाला, पहरेदार। ३ बिना सवारका सजा हुआ घोड़ा, कोतल घोड़ा। ४ बड़ा खेमा या तम्बू।

नौबतीदार (फा॰ पु॰) १ द्वारपाल, दरबान। २ खेमे पर पहरा देनेवाला, संतरी।

नौबरार (फा॰ पु॰) वह भूमि जो किसी नदीके हट जानेसे निकल आती है।

नौमासा (हिं॰ पु॰) १ गर्भका नवां महीना। २ वह रीति रस्म जो गर्भके नौ महीने हो जाने पर की जाती है और जिसमें पंजीरी मिठाई आदि बांटी जाती है।

नौमो (हिं॰ स्त्री॰) पक्षको नवीं तिथि।

नौयान (सं॰ क्ली॰) नौकादि पर चढ़ कर देशान्तरकी यात्रा।

नौयायिन् (सं॰ त्रि॰) नावा याति या-णिनी। नौका द्वारा नदी आदिके पारगामी। नौयायियोंको तरपण्य देना होता है। इस तरपण्यका विषय मनुमें इस प्रकार लिखा है। नदी मार्ग हो कर जानेमें नदीकी प्रबलता वा स्थिरता तथा ग्रीष्म वर्षादिकालकी विवेचना करके तरमूल्य स्थिर करना होता है। समुद्रके विषयमें यह नियम लागू नहीं है। गर्भिणी स्त्री, परिव्राजक, भिक्षु, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण इन सबसे उतराई नहीं लेनी चाहिए। खाली गाड़ी नाव पर पार करनेमें एक पण महसूल, एक मनुष्य जितना बोझ ढो सकता है उतनेमें अर्द्धपण, पशु और स्त्रीको पार करनेमें चतुर्थांश पण तथा भारशून्य मनुष्यको पार करनेमें एक पणका आठवां भाग महसूल लगता है। बीच धारमें अथवा और कहीं नाविकके दोषसे यदि मुसाफिरकी कोई वस्तु नष्ट हो जाय, तो उसका दायी नाविक होगा। नाविकके दोषसे यदि उनकी चीज चोरी हो जाय, तो नाविकको ही उस चीजका दाम लगा कर देना होगा। किन्तु दैवसंयोगसे नष्ट हो जाने पर वह उसका दायी नहीं है। (मनु ८ अ॰)

नौरग (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी चिड़िया।

नौरतन (हिं॰ पु॰) १ नवरत्न देखो। २ नौनगा नामका गहना। (स्त्री॰) ३ एक प्रकारकी चटनी जिसमें ये नौ चीजें पड़ती हैं—खटाई, गुड़, मिर्च, शीतलचीनी, केशर, इलायची, जावित्री, सौंफ और जीरा।

नौरवे—यूरोप महादेशका एक देश। नारवे और इसके पूर्ववर्त्ती स्वीडेन ये दोनों देश मिल कर स्केन्दिनेवीय उपद्वीप कहलाते हैं। नारवे अक्षा॰ ५८°से ७१° उ॰ और देशा॰ ५°से २८° पू॰के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें उत्तरमहासागर, पूर्वमें स्वीडेन, दक्षिणमें काटोगाट उपसागर और पश्चिममें जर्मन तथा उत्तरसागर है। इसकी लम्बाई उत्तर-दक्षिणमें ग्यारह हजार मील है, किन्तु चौड़ाई सब जगह समान नहीं है। भूपरिमाण १२५००० वर्गमील है।

इस विस्तीर्ण देशका अधिकांश पर्वतमय है। एक गिरिमाला उत्तरसे दक्षिण तक फैली हुई है। उत्तर भागको क्यूलेन और दक्षिण-भागको फोयलेन कहते हैं। क्यूलेन पर्वत श्रेणीका सबसे ऊँचा अंश सलीतेलमा कहलाता है जिसकी ऊँचाई ४८०६ फुट है। इसमें अनेक शृङ्ग हैं, सबसे ऊँचे शृङ्गकी ऊँचाई ६२० फुट है। क्यूलेन-पहाड़ बर्फसे ढका हुआ है; इससे बहुतसी बर्फकी नदियां निकली हैं। यहांकी नदियोंके ऊँची भूमिसे निकलने और इनकी लम्बाई अधिक न होनेके कारण वे सबके सब नौवाणिज्यकी अनुपयोगी हैं। ग्लोमिन नदी ही सबसे बड़ी है। यह दरफेल पहाड़से निकल कर स्कागारक उपसागरमें गिरती है। नारवेका पश्चिम उपकूल अति टूट और भग्न है। इसके

दक्षिणस्थ प्रदेशोंमें बड़े बड़े ह्रद नजर आते हैं। स्वीडन की सीमाके निकट फामण्ड ह्रद समुद्रपृष्ठसे २२८० फुट ऊंचा है।

यहांकी आबहवा स्थान भेदसे भिन्न भिन्न प्रकारकी है। समुद्र और उपसागरीय स्रोतके प्रभावसे उत्तरांशमें उतनी ठंढ़ नहीं पड़ती है। यहां वर्ष भरमें प्रायः आठ महीना समय खराब रहता है। शरत् और शीतकालमें हवा बहुत जोर-शोरसे बहती है और कुहासा भी देखा जाता है। बाद पूरबकी हवा बहने पर वह जाता रहता है। १५ मईसे २८ जुलाई और १८ नवम्बरसे २६ जनवरी तक यहां रात बड़ी होती है। इन कई एक महीनोंमें उत्तरकी ओर एक प्रकारका उज्ज्वल आलोक (Aurora Borialis=सोमगिरि) दिखाई पड़ता है। मत्स्य-जीवी इसी रोशनीकी सहायतासे रातमें दिनकी तरह सहजमें ही मछली आदि पकड़ सकते हैं। पश्चिमोप-कूलमें क्या जाड़ा, क्या गर्मी सब समय समान हवा चलती है, पानी बरसता है और बिजली कड़कती है तथा कभी कभी भूकम्प भी हो जाया करता है।

यहां बड़े बड़े जङ्गल देखनेमें आते हैं। इन सब जङ्गलोंमें उत्पन्न फल और काष्ठ ही यहांकी प्रधान सम्पत्ति है। मटर आदि कई तरहकी फसल भी लगती है। देशके लोग कृषिकार्य यथेष्ट परिश्रमसे करते हैं सही, लेकिन उत्पन्न द्रव्यसे यहांका अभाव दूर नहीं होता।

यहांके पहाड़ों पर आकरिक द्रव्य बहुतायतसे मिलते हैं। नरस्का फीयलेन पहाड़ पर लोहा, कांसवर्ग और आयलेसवर्ग पर रूपा, डोवरफेल्ड पर तांबा और दक्षिणस्थ प्रदेशोंमें सीसा, जस्ता, मार्बल आदि पाये जाते हैं। स्कागरक उपसागरके उपकूलवर्त्ती प्रदेशोंमें समुद्रके जलसे लवण प्रस्तुत किया जाता है।

यहांके आधेसे अधिक लोग मत्स्य, काष्ठ तथा धातुका व्यवसाय करते और अवशिष्ट लोग कृषिजीवि हैं। नेग-वती नदीके किनारे लकड़ी काटनेकी बड़ी बड़ी कलें हैं। यहां लोहे, तांबे कांच और बारूदके भी बहुतसे कारखाने देखनेमें आते हैं। समुद्रतीरस्थ अनेक नगरोंमें जहाज भी तैयार किया जाता है।

अन्यान्य देशोंके साथ नारवेका विस्तृत वाणिज्य प्रच-लित है। अरण्योत्पन्न द्रव्य, मत्स्य तथा खनिज पदार्थ इङ्गलैण्ड, स्पेन, भूमध्यसागर और बाल्टिकसागर भेजा जाता है। लोहा विदेश नहीं भेजा जाता, देशके व्यवहारमें ही खपत होता है। यहांके लोग नाविक-कार्यमें बड़े ही निपुण हैं।

इस देशमें विद्याशिक्षाकी विशेष उन्नति है। सबोंको ही लिखना पढ़ना सीखना पड़ता है। ग्राम ग्राममें विद्यालय है, प्रत्येक नगरमें उच्चश्रेणीके विद्यालय तथा १७ बड़े बड़े नगरोंमें सत्तरह विश्वविद्यालय भी हैं।

नौरवेके अधिवासिगण ट्यूटन जातिके हैं। अत्यन्त प्राचीन कालमें ये लोग समुद्रमें दस्युवृत्ति कर दिन बिताते थे। ये सब जलदस्यु उत्तर समुद्रके उपकूलवर्त्ती देशोंमें जा कर अग्निकाण्ड, नरहत्या तथा लुण्ठन किया करते थे। उस समय यहां बहुतसे छोटे छोटे राजा थे जो हमेशा आपसमें लड़ते-झगड़ते रहते थे। प्राचीन नौरवेवासियोंने आइसलैण्डका पता लगाया और वहां उपनिवेश स्थापित किया। ८७५ ई०में हेरल्ड हरफाग्रा नामक एक राजा समस्त छोटे राज्योंको मिला कर एकाधिपति हुए थे। इसके कुछ दिन बाद ही नारवे और डेनमार्कके लोगोंने मिल कर डेनमार्कके राजा केन्यूटके साथ इङ्गलैण्ड पर चढ़ाई की थी। बाद बीच-में ही दोनों जाति अलग अलग हो गई। १७८७ ई०में रानी मारगारेटके समयमें फिर उक्त दोनों जाति एक साथ मिल कर १८१४ ई० तक उसी अवस्थामें रहीं। १८१४ ई०में स्वीडन डेनमार्कसे नारवेमें मिलाया गया और तभीसे नारवे और स्वीडन एक राज्यभुक्त हुआ है।

प्रजाओंके प्रतिनिधि ले कर नारवेकी व्यवस्थापक सभा संगठित हुई है। प्रजा साक्षात्रूपसे प्रतिनिधि नियोग नहीं करतीं; वे निर्वाचक चुनती हैं और निर्वा-चकोंमेंसे प्रतिनिधि निर्वाचित होते हैं। नगरमें ५० नगरवासियोंमेंसे एक निर्वाचक चुननेका अधिकार है और छोटे छोटे गांवोंमेंसे सैकड़े पीछे एक। इन प्रति-निधियोंकी संख्या ७५ और १०० के बीच होनी चाहिए। नारवेकी व्यवस्थापक सभाका नाम है 'ष्टर्थिं'। राजा वा प्रतिनिधि उक्त सभाका कार्य शुरू करते हैं। इस

सभा द्वारा आईनमें अदल बदल करना, नया कर लगाना और तोड़ना, राजपुरुषोंकी संख्या तथा वेतन ठीक करना और अन्यान्य अनेक कार्य निर्वाहित होते हैं। इसके दो विभाग हैं, लेगथिं और ओडेलथिं। पहले विभाग-का काम आईन-कानून बनाना है और दूसरेका देशके कागजातोंको ले कर पहलेमें पेश करना। प्रत्येक तीन वर्षको १ली फरवरीको इथिंमें अधिवेशन होता है। कुल शासन-भार राजाके ऊपर रहता है। नारवेके गवर्नर, एक मन्त्री और सदस्यगण ले कर यहांकी मन्त्रि-सभा संगठित है। राजा जब नारवेसे कहीं दूसरी जगह चले जाते हैं, तब मन्त्री और दो सदस्य उनके साथ रहते और बाकी गवर्नर तथा अपरापर सदस्यगण मिल कर राज्यकी देखभाल करते हैं। नारवेके मनुष्य गवर्नर नहीं हो सकते। वे मन्त्रिसभाके अन्यान्य सभ्य हो सकते हैं। युद्ध-घोषणा करने पर राजा नौरवे और स्वीडेन दोनों देशोंके सदस्योंको बुला कर उनके अभिमतानुसार कार्य करते हैं। यहांका राजस्व लगभग दो करोड़ अस्सी लाख रुपयेका है।

नारवे और स्वीडेन एक ही राजाके शासनाधीन है। यहां ४६ जङ्गी जहाज और १३८ तोपें हैं। सैन्य-संख्या १८००० है। तेईस वर्षसे ज्यादा उम्रवाला मनुष्य ही सैनिक कार्यमें नियुक्त किया जा सकता है और तेरह वर्षसे अधिक समय तक उक्त कार्यमें कोई नहीं रह सकता।

नौरस (हिं० वि०) १ जिसका रस नया अर्थात् ताजा हो, नया पका हुआ, ताजा। २ नवयुवक।

नौरूप (हिं० पु०) नीलकी फसलकी पहली कटाई। नील देखो।

नौरोज (फा० पु०) १ पारसियोंमें नए वर्षका पहला दिन। इस दिन बहुत आनन्द उत्सव मनाया जाता था। २ त्योहारका दिन। ३ खुशीका दिन, कोई शुभ दिन।

नौल (हिं० वि०) १ नवल देखो। २ जहाज पर माल लादनेका भाड़ा।

नौलक्खा (हिं० वि०) नौलखा देखो।

नौलखा (हिं० वि०) नौ लाखका, जिसकी कीमत नौ लाख हो, जड़ाऊ और बहुमूल्य।

नौलखी (हिं० स्त्री०) जुलाहोंकी वह लकड़ी जिससे ताने दबाए जाते हैं और जिसमें इधर उधर वजनी पत्थर बंधे रहते हैं।

नौला (हिं० पु०) नेवला देखो।

नौलासी (हिं० वि०) नर्म, कोमल, मुलायम।

नौवत खाँ नवाब—सम्राट् अकबरके एक सेनापति। इन्होंने शाहजहान्‌के अन्तःपुरके निकट ८७३ हिजरीमें एक मसजिद बनवाई जिसे लोग 'नौलोक्खी' कहते हैं। अभी वह टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है।

नौवतपुर—युक्त प्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २५° १४' ३८" उ० तथा देशा० ८३° २७' ४०" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बलवन्त सिंहके तहसीलदार विश्वाम सिंहप्रतिष्ठित एक मन्दिर और सराय है। कर्मनाशानदी पार करनेके लिए यहां एक प्रस्तरनिर्मित सुन्दर सेतु है।

नौबन्धनतीर्थ—हिमालयपर्वतस्थ तीर्थविशेष। महाप्रलय-के बाद मनुने यहां आश्रय लिया था। मनु देखो।

नीलमतपुराणमें लिखा है—महर्षि कश्यप जब तीर्थपर्यटनको निकले, तब उनके पुत्र नीलने कनखल-में आ कर उनसे निवेदन किया कि संग्रह दैत्यके पुत्र जलोद्भवके उपद्रवसे धरा सशङ्कित हो गई है। तदनन्तर कश्यपने ब्रह्मा और शिवके निकट जा कर उन्हें सब वृत्तान्त कह सुनाया। मुनिकी प्रार्थनासे तुष्ट हो कर ब्रह्माने देवताओंको दलबलके साथ नौबन्धनतीर्थमें भेज दिया। कंसनागके उत्तर हिमालय पर्वतके अत्युच्च शृङ्ग पर यह तीर्थ स्थापित है। यहां पहुंच कर ब्रह्माने उत्तर, विष्णुने दक्षिण और शिवने दोनोंके बीचमें खड़े हो कर जलोद्भव दैत्यको ह्रदके भीतरसे बाहर निकलने कहा। लेकिन दुरन्त दस्युने उनकी बात अनसुनी कर दी। इस पर विष्णुके परामर्शानुसार शिवने अपने त्रिशूल द्वारा पर्वतको छेद डाला। ऐसा करनेसे जब जल निकलने लगा, तब विष्णुने अन्यमूर्त्ति धारण कर जलमें प्रवेश किया और वहां जलोद्भवके साथ युद्ध करके उसे मार डाला। कोई कोई आराराट पर्वतको जहां नोयाका जहाज आ लगा था, नौबन्धन-तीर्थ मानते हैं। नोया देखो।

नौवाह (सं॰ त्रि॰) नावं वाहयति वाहि-अण्। नौका-वाहक, जिससे नाव चलाई जाती है, डाँड़।

नौविद्या—जहाजादि परिचालन विद्या। नाविक देखो।

नौव्यसन (सं॰ क्ली॰) नावि व्यसनं। नौका पर विपद्।

नौशहर—१ उत्तरपश्चिम-सीमान्त प्रदेशके पेशावर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा॰ ३३° ४७' से ३४° ८' उ॰ और देशा॰ ७१° ४०' से ७२° १५' पू॰के अवस्थित है। भूपरिमाण ७०३ वर्गमील और लोकसंख्या लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका प्रधान नगर और छावनी। यह अक्षा॰ ३४° उ॰ और देशा॰ ७२° पू॰, पेशावरसे २७ मील पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारके करीब है। छावनी काबुल नदीकी बालुकामय जमीन पर अवस्थित है। काबुल नदी पार करनेके लिये १८०३ ई॰को १ली दिसम्बरमें एक पुल और लोहेकी सड़क बनाई गई है। शहरमें एक सरकारी अस्पताल और एक वर्नाक्यूलर स्कूल है।

३ पञ्जावके बहावलपुर राज्यके अन्तर्गत खानपुर निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा॰ २७° ५६' से २८° ५४' उ॰ और देशा॰ ७०° ७' से ७०° ३६' पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६८० वर्गमील और जनसंख्या करीब ८०७३५ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ७१ ग्राम लगते हैं। राजस्व दो लाख रुपयेका है।

४ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा॰ २८° २५' उ॰ और देशा॰ ७०° १८' पू॰ बहावलपुर शहरसे १०८ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ४४७५ है। यहां चावलकी एक कल और चिकित्सालय है।

५ बम्बईके सिन्धुप्रदेशके अन्तर्गत हैदराबाद जिलेका एक उपविभाग। इसके उत्तर और पश्चिममें सिन्धुनदी पूर्वमें खैरपुरराज्य, थर और पार्कर जिला तथा दक्षिणमें हाला उपविभाग है। भूपरिमाण २९२८ वर्गमील है।

यहां खेतीबारीकी उन्नतिके लिए ९८ नहर काटी गई हैं जिनमेंसे नसरत नामक नहर नूरमहम्मद कलहोराके राजत्वकालमें काटी गई थी। १७८६ ई॰में शाहपुर-युद्धके बाद सिन्धुप्रदेश तालपुर सरदारोंके मध्य विभक्त हो गया। इस युद्धमें मीर फते अली और रस्तम खाँसे जब अबदुन नबिकलहोरा परास्त हुए, तब कन्दियर तथा नौशहर तालपुरके शासनकर्त्ता मीर सोहाब खाँके हाथ लगा। इस विवादसूत्रसे जो युद्ध छिड़ा उसमें अलीमुरादकी जीत हुई और १८४३ ई॰में उन्हें रायकी उपाधि मिली। १८५२ ई॰तक उपविभाग मुसलमानोंके अधिकारमें रहा। पीछे उनके असद्व्यवहारसे क्रुद्ध हो कर वृटिशसरकारने इसका शासनभार अपने हाथमें ले लिया।

६ उक्त उपविभागका एक प्रधान नगर। यह मोरो नगरसे १५ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। तालपुरके मीर राजाओंके समयमें यहां गोलन्दाज सेना रहती थी। यह नगर २०० वर्ष हुए बसाया गया है।

७ शिकोहाबाद तहसीलके अन्तर्गत एक ग्राम। यह मैनपुरी नगरसे ३४ मील दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। सम्राट् शाहजहांके राजत्वकालमें हाजी अबू सैयद नामक किसी मुसलमानसे इस ग्रामका पत्तन हुआ। यहां उनके तथा उनके आत्मीय आत्मियकुटुम्बोंका समाधि-मन्दिर है। इसके अलावा यहां अनेक कूप, समाधि-मन्दिर और गृहादिके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं।

नौशहर अवो—सिन्धुप्रदेशके शिकारपुर और सक्कर उपविभागके अन्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा॰ २७° ४२' से २८° उ॰ और देशा॰ ६८° १५' से ६८° पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०८ वर्गमील और जनसंख्या प्रायः ७१०३६ है। इसमें एक शहर और ८७ ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ है। धान, ज्वार, गेहूँ और चना यहांकी प्रधान उपज है।

नौशा (फा॰ पु॰) दूल्हा, वर।

नौशी (फा॰ स्त्री॰) नववधू, दुलहिन।

नौशेरवाँ—पारस्यराज कुबादके पुत्र। ये साधुताके विशेष पक्षपाती थे। इसीसे पश्चिममें यूरोप और पूर्वमें भारतादि नानाराज्योंमें ये 'सत्' नामसे प्रसिद्ध थे। मुसलमान लोग इन्हें 'आदिल' और ग्रीकवासी खसरू (Choseroes) कहा करते थे। ५३१ ई॰में पिताकी मृत्युके बाद ये राजगद्दी पर बैठे। इस समय इन्होंने रोमन लोगोंको युद्धमें कई बार परास्त किया, मुसलमान लेखकोंने तो लिखा है कि इन्होंने रोमके बादशाहको

कैद किया था। रोमके सम्राट् उस समय जष्टिनियन थे। नौशेरवाँको अण्टियोकस पर विजय, आरमेण्य तथा भूमध्यसागरके अनेक स्थानों पर अधिकार तथा साइबेरिया यूक्राइन प्रदेशों पर आक्रमण रोमके इतिहासमें भी प्रसिद्ध है। रोमके बादशाह जष्टिनियन पारस्य साम्राज्यके अधीन हो कर प्रतिवर्ष तीस हजार अशर्फियां कर दिया करते थे। ८० वर्षकी वृद्धावस्थामें नौशेरवाँने रोम राज्यके विरुद्ध चढ़ाई की थी और दारा तथा ग्राम आदि देशोंको अधिकृत किया था। ४८ वर्ष राज्य करके परम प्रतापी और न्यायी बादशाह परलोक सिधारे।

फारसीकिताबोंमें नौशेरवाँके न्यायकी बहुतसी कथाएँ हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसी बादशाहके समयमें मुसलमानोंके पैगम्बर मुहम्मद साहबका जन्म हुआ जिनके मतके प्रभावसे आगे चल कर पारसकी प्राचीन आर्यसभ्यताका लोप हुआ। सर जान मालकम-के पारस्य भ्रमणवृत्तान्त तथा अन्यान्य पारस्य ग्रन्थोंमें पूर्वकी ओर भारत और सिन्धु प्रदेशमें तथा उत्तरकी ओर फरगणा राज्यमें नौशेरवाँके आगमन और आक्रमणकी कथा लिखी हैं। सर हेनरी पटिञ्जरसाहबने लिखा है कि वलभीराजपुत्र गुहने नौशेरवाँकी कन्याका पाणिग्रहण किया था।

नौशेरवाणी—बेलुचिस्तानवासी जातिविशेष।

नौषेचन (सं० क्लो०) नावः सेचनम्, सुषामादित्वात् षत्वम्। नौकासेचन।

नौसत (हिं० स्त्री०) शृङ्गार, सोलहों सिंगार।

नौसरा (हिं० पु०) नौ लड़ीकी माला, नौलरा हार वा गजरा।

नौसादर (हिं० पु०) एक तीक्ष्ण झालदार क्षार या नमक जो दो वायव्य द्रव्योंके योगसे बनता है। यह क्षार वायवारूपमें वायुमें अल्पमात्रामें मिला रहता है और जन्तुओंके शरीरके सड़ने गलनेसे एकत्रित होता है। सींग, खुर, हड्डी, बाल आदिका भबकेमें अर्क खींच कर यह प्रायः निकाला जाता है। गैसके कारखानोंमें पत्थरके कोयलेको भबके पर चढ़ानेसे जो एक प्रकारका पानी-सा पदार्थ छूटता है आज कल बहुत-सा नौसादर उसीसे निकाला जाता है। पूर्व समयमें लोग ईंटके पजावोंसे भी क्षार निकालते थे। उन सब पजावोंमें मट्टीके साथ कुछ जन्तुओंके अंग भी मिल कर जलते थे। नौसादर औषध तथा कलाकौशलके व्यवहारमें आता है।

वैद्यकमें नौसादर दो प्रकारका माना गया है, १ला कृत्रिम और २रा अकृत्रिम। जो और क्षारोंसे बनाया जाता है उसे कृत्रिम और जो जन्तुओंके मूत्रपुरीष आदिके क्षारसे निकाला जाता है उसे अकृत्रिम नौसादर कहते हैं। आयुर्वेदके मतानुसार नौसादर शोधनात्मक, शीतल तथा यकृत, प्लीहा, ज्वर, अर्बुद, सिरदर्द, खाँसी इत्यादिमें उपकारी है।

नौसारि—बड़ोदाराज्यके अन्तर्गत एक नगर।

नवसारि देखो।

नौसिख (हिं० वि०) नौसिखिया देखो।

नौसिखिया (हिं० वि०) जो दक्ष या कुशल न हुआ हो, जो सीख कर पक्का न हुआ हो, जिसने नया सीखा हो।

नौहँड़ (हिं० पु०) मट्टीकी नई हाँड़ी, कोरी हँड़िया।

नौहँड़ा (हिं० पु०) पितृपक्ष, कनागत। इसमें मट्टीके पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रक्खे जाते हैं।

नौहजारी—बङ्गालके २४ परगनेके अन्तर्गत एक ग्राम।

न्यका (सं० स्त्री०) नि-अकि, बाहु० न-लोपः। विष्ठाका कीड़ा।

न्यकाहका (सं० स्त्री०) नञ्क, क्रियतेऽसौ पृषोदरादित्वात् क लोपे साधु। शकृत्कीट, विष्ठाका कीड़ा।

न्यंकार (सं० पु०) नञ्क, क्रियते इति क्त घञ्। नाककरण, नीचकरण। पर्याय—अवज्ञा, परीहार, परिहार, पराभव, अपमान, परिभव, तिरस्क्रिया, तिरस्कार, अवहेला, हेला, अवहेलन, हेलन, अनादर, अभिभव, सूचण, सूचया, रीढ़ा, अभिभूति, निकृति, असूर्यण, असूचण, नीकार, अवहेल, अमानन, क्षेप, निकार, धिक्कार।

न्यक्काहका (सं० स्त्री०) पतङ्गविशेष, मलका कीड़ा।

न्यक्त (सं० स्त्री०) नि-अनुजन्क्त, ततः कुलम्। नितान्त अञ्जनयुतीकृत।

न्यक्त (सं० त्रि०) नत, नीचे रखा हुआ।

न्यक्काङ्गुली (सं० स्त्री०) नोचेकी ओर रखी हुई उंगली।

न्यंच (सं० पु० स्त्री०) नियते निकृते वा अस्मिन् वस्य समासे पंच्। १ महिष, भैंस। २ जामदग्न्य, परशुराम।

३ कात्स्न्य। (क्ली०) ४ सहिषत्व। (त्रि०) ५ निकृष्ट।

न्यग्जाति (सं० क्ली०) नीच जाति।

न्यग्भाव (सं० पु०) नीचो भावः। नीचत्व, नीच होने का भाव।

न्यग्भावन (सं० क्ली०) नीचत्वप्रापण, घृणाके साथ व्यवहार करना।

न्यग्भावयितृ (सं० त्रि०) नम्रकारी, नवाने या झुकानेवाला।

न्यग्रोध (सं० पु०) न्यक् रुणद्धि इति रुध-अच्। १ वटवृक्ष, बरगद। २ शमीवृक्ष। ३ व्यामपरिमाण, उतनी लम्बाई जितनी दोनों हाथोंके फैलानेसे होती है, पुरसा। ४ विष्णु। ५ मोहनौषधि। ६ उग्रसेन राजाके एक पुत्रका नाम। ७ महादेव। ८ बाहु। ९ वाराणसीके अन्तर्गत एक ग्राम। १० मूषिकपर्णी, मूसाकानी।

न्यग्रोधक (सं० त्रि०) न्यग्रोध, तस्यादूरदेशादि, कृश्वादित्वात् ठक्। (पा ४।२।८०) न्यग्रोधके दूरदेशादि।

न्यग्रोधपरिमण्डल (सं० पु०) न्यग्रोधः व्यामः परिमण्डलं परिणाहो यस्य। व्यामपरिमित-उच्छ्रायपरिणाह पुरुष, वह मनुष्य जिसकी लम्बाई चौड़ाई एक व्याम या पुरसा हो। ऐसे पुरुष त्रेतामें राज्य करते थे।

न्यग्रोधपरिमण्डला (सं० स्त्री०) न्यक् रुणद्धि इति न्यग्रोधं अधः प्रसृतं परितो मण्डलं नितम्बमण्डलरूपं यस्याः। स्त्रियोंका एक भेद, वह स्त्री जिसके स्तन कठोर, नितम्ब विशाल और कटि क्षीण हो।

न्यग्रोधपुटपाक (सं० पु०) वट कल्कादि पुटपाकभेद। पुटपाक देखो।

न्यग्रोधमूल (सं० क्ली०) वटवृक्षको जड़।

न्यग्रोधा (सं० स्त्री०) न्यक् रुणद्धि रुध-अच्-टाप्। न्यग्रोधी। पर्याय—दन्ती, उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ, मुकूलक, द्रवन्ती, चित्रा और मूषिकाह्वया।

न्यग्रोधादिगण (सं० पु०) सुश्रुतोक्त द्रव्य संग्रहणीयगणविशेष, वैद्यकमें द्रव्योंका एक गण या वर्ग जिसके अन्तर्गत ये द्रव्य माने जाते हैं—बरगद, पीपल, गूलर, पाकर, महुआ, अर्जुन, आम, कुसुम, आमड़ा, जामुन, चिरौंजी, मांसरोहिणी, कदम, बेर, तेंदू, सलई, तेजपत्ता, लोध, सावर, भिलावाँ, पलाश, तुन, घुँघची या मुलेठी। (सुश्रुत सूत्रस्थान ३८ अ०)

न्यग्रोधादिघृत (सं० क्ली०) घृतौषधभेद। भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—घृत ४ सेर; क्वाथके लिये वट, पीपल, गुलञ्च, अड़ूस, कुट, पाकर, जामुन, चिरौंजी, अमलतास, बेंत, सुपारी, कदम, रक्तरोड़ा और आम प्रत्येकको छाल २ पल, जल ६४ सेर, शेष ४ सेर आंवलेका रस ४ सेर; कल्कार्थ यष्टिमधु, कुसुम, पिण्डखजूर, दारुहल्दी, जीवन्तीफल, गाम्भारीफल, कंकोल, क्षीरकंकोल, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, रसाञ्जन, अनन्तमूल प्रत्येक ६ तोला, सबको मिला कर यथाविधि पाक करते हैं। इसके सेवन करनेसे नाना प्रकारके प्रदर, योनिशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, गात्रदाह और योनिदाह आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्य० स्त्रीरोगाधिकार)

न्यग्रोधादिचूर्ण (सं० क्ली०) भावप्रकाशोक्त चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—वट, यज्ञडूमर, पीपल, अमलतास, पीतशाल, जामुन, चिरौंजी, अर्जुन, धवबृक्ष, यष्टिमधु, लोध, वरुण, मंदार, मेषशृङ्गी, दन्ती, चीता, अड़हुल, डहरकरंज, त्रिफला, इन्द्रयव और भिलावाँ प्रत्येकका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण बनाते हैं। पीछे उस चूर्णको मधुके साथ खा कर त्रिफलाका पानी पीनेसे सुवाद विशुद्ध होता है। इतना ही नहीं, बीस प्रकारके प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र भी जाते रहते हैं।

न्यग्रोराम—कपिलवस्तु नगरस्थ बौद्धोंका एक सङ्घाराम। स्वयं बुद्धदेव इस स्थानमें रहते थे।

न्यग्रोधिक (सं० त्रि०) जहां बहुतसे वटवृक्ष हो।

न्यग्रोधिका (सं० स्त्री०) आखुकर्णी लता, मूसाकानी लता।

न्यग्रोधी (सं० स्त्री०) १ मूषिकपर्णी, मूसाकानी। २ दन्ती।

न्यङ्ग (सं० पु०) यानादिका अंशभेद, रथका एक अंग।

न्यङ्कु (सं० पु०) नितरां अञ्चति गच्छतीति अञ्चु गतौ उ (नावञ्चेः। उण् १।१८। न्यङ्क्वादीनाञ्च। पा ७।३।५३) इति कुत्वम्। १ मृगभेद, एक प्रकारका हिरण, बारहसिंगा। भावप्रकाशके मतसे इसका मांस स्वादु, लघु,

बलकारक और त्रिदोषनाशक होता है। २ मुनिभेद, एक ऋषिका नाम। ३ मणिभेद, एक प्रकारकी मणि। (त्रि०) ३ नितान्त गमनशील, बहुत दौड़नेवाला।

न्यङ्कुभूरुह (सं० पु०) न्यङ्कुरिव भूरुहः। १ श्योनाक-वृक्ष, सोनापाठा। २ आरग्वधवृक्ष, अमलतास।

न्यङ्कुशिरस् (सं० क्ली०) ककुभछन्द।

न्यङ्कुसारिणी (सं० स्त्री०) वृहती छन्दोभेद, एक वैदिक छन्द जिसके पहले और दूसरे चरणमें १२, १२ अक्षर और तीसरे तथा चौथे चरणमें ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यङ्क्वादि (सं० पु०) कुत्वनिमित्त शब्दगणभेद। यथा—न्यङ्कु, मद्गु, भृगु, दूरेपाक, फलपाक, क्षणेपाक, दूरेपाका, फलेपाका, दूरेपाकु, फलेपाकु, तक्र वक्र, व्यतिषङ्ग, अनुषङ्ग, अवसर्ग, उपसर्ग, श्वपाक, मांसपाक, मूलपाक, कपोतपाक, उलूकपाक।

न्यङ्ग (सं० पु०) नि अन्ज-घञ्। नितरां अञ्जन, नितान्त अञ्जन।

न्यच्छ (सं० क्ली०) नितरामच्छम्। क्षुद्ररोगविशेष। जिस रोगमें शरीर श्याम या शुक्लवर्ण हो, शरीरमें जहां तहां थोड़ा बहुत दर्द होता हो अथवा वेदना-विहीन मण्डलाकृति चिह्न हो गया हो, उसे न्यच्छरोग कहते हैं। शिरावेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग द्वारा न्यच्छरोगको चिकित्सा करनी चाहिए। क्षीरिवृक्षके कल्कको दूधसे पीस कर उसका प्रलेप देनेसे अथवा सिद्धिपत्र, वृटारक और शिशुकाष्ठको चूर्ण कर उससे उद्वर्त्तन करनेसे न्यच्छ और मुखव्यङ्गरोग नष्ट होता है। (भावप्रकाश ४र्थ० क्षुद्ररोगा०) (त्रि०) २ अत्यन्त निर्मल, बहुत साफ।

न्यञ् (सं० त्रि०) निम्नतया अञ्चति अनूच-विच्। १ निम्न। २ नीच। ३ कार्त्स्न्य।

न्यञ्चन (सं० क्ली०) नितरामञ्चनं गमनं। नितरां गमन, तेजीसे चलना।

न्यञ्चित (सं० त्रि०) नि-अञ्च-णिच्-क्त। अधःक्षिप्त, नीचे फेंका या डाला हुआ।

न्यञ्जलिका (सं० स्त्री०) निम्नकृता अञ्जलिः। निम्नभागमें न्यस्त हस्तपुट, नीचेकी ओरको हुई अंजली या हथेली।

न्यन्त (सं० पु०) नितरां अन्तः। चरमभाग, शेषभाग।

न्यय (सं० पु०) नि-इ-अच् (एरच्। पा ३।३।५६) अपचय, नाश।

न्ययन (सं० क्ली०) क्षद।

न्यर्ण (सं० त्रि०) नि-अर्ण। द्रवीभूत।

न्यर्थ (सं० पु०) नि-ऋ गतौ थन्। १ निकृष्टगति। २ ध्वंस, नाश। (त्रि०) निकृष्टो अर्थो यस्य। ३ निकृष्टार्थ।

न्यर्बुद (सं० क्ली०) १ दशगुणित अर्बुद संख्या, दश अरब।

न्यर्बुदि (सं० पु०) निकृष्टः अर्बुदिर्देवो देवान्तरं यस्मात्। रुद्रभेद, एक रुद्रका नाम।

न्यस्त (सं० त्रि०) नि-अस-कर्मणि-क्त। १ क्षिप्त, फेंका हुआ, डाला हुआ। २ त्यक्त, छोड़ा हुआ। ३ निहित, रखा हुआ, धरा हुआ। ४ स्थापित, बैठाया या जमाया हुआ। ५ विसृष्ट, चुन कर सजाया हुआ।

न्यस्तदण्ड (सं० त्रि०) जिसने डंडोंको झुकाया या नवाया हो।

न्यस्तदेह (सं० क्ली०) १ स्थापित देह। २ मृत देह।

न्यस्तशस्त्र (सं० पु०) न्यस्तं शस्त्रं येन। १ पितृलोक। (त्रि०) २ त्यक्तशस्त्र, जिसने हथियार रख दिये हों।

न्यस्तिका (सं० स्त्री०) दौर्भाग्य लक्षण।

न्यस्य (सं० त्रि०) नि-असु क्षेपे कर्मणि बाहुलकात् आर्षे यत्। १ स्थापनीय, रखने योग्य। २ त्यक्तव्य, छोड़ने योग्य।

न्यह्न (सं० पु०) अमावस्याका सायंकाल।

न्याक्य (सं० क्ली०) नितरामक्यते इति नि-अक-ण्यत्। भृष्ट तण्डुल, भूना हुआ चावल। इसका पर्याय भृष्टान्न और कुहव है।

न्याङ्कव (सं० क्ली०) न्यङ्कोरिदं न्यङ्कु-अण्। रङ्कु मृग-चर्म, बारहसिंघेका चमड़ा।

न्याद (सं० पु०) न्यदनमिति नि-अद-भक्षणे-ण (नौण च। पा ३।३।६०) आहार, भोजन।

न्याय (सं० पु०) नियमेन ईयते इति नि-इण-घञ्। (परिन्योर्नीणोर्द्यूताभ्रेषयोः। पा ३।३।३७) १ उचित बात; नियमके अनुकूल बात, हक बात, इन्साफ। पर्याय—अभ्रेषा, कल्प, देशरूप, समञ्जस। २ विधा। ३ साधु। ४ नीति। ५ जयोपाय। ६ भोग। ७ युक्ति। ८

प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमनात्मक पञ्च अवयव वाक्य। यह पञ्च अवयव वाक्य ही न्याय है। अवयव शब्दको अङ्ग कहते हैं, ये सब अवयव न्यायके अङ्ग हैं। अतएव यह पञ्च अवयवयुक्त वाक्य ही न्याय पदवाच्य है। न्याय कहनेसे न्यायशास्त्रका बोध होता है। न्याय छः दर्शनोंमें है। इसके प्रवर्त्तक गौतम ऋषि मिथिलाके निवासी माने जाते हैं।

गौतमन्याय :—गौतमकृत सूत्राकारमें ग्रथित पदार्थ समूह पर थोड़ा विचार करना यहां आवश्यक है। गौतम दर्शनके प्रतिपाद्य विषय हैं। प्रथम अध्यायके प्रथमाह्निकमें प्रमाणादि षोड़श पदार्थोंका उद्देश आत्मतत्त्व-साक्षात्कार और मोक्षरूप प्रयोजन प्रतिपादन, पीछे तत्त्वज्ञानाधीन मुक्तिका उत्पत्तिक्रम एवं प्रमाण पदार्थका प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ये चार लक्षण, पीछे दृष्टार्थ और अदृष्टार्थके भेदसे शब्दविभाग और प्रमेय लक्षण तथा प्रमेयविभागपूर्वक आत्मा शरीरनिरूपण इन्द्रिय, भूत और अर्थविभाग, बुद्धिलक्षण, मनोनिरूपण, प्रवृत्तिलक्षण और तद्विभाग, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख, अपवर्ग और संशयलक्षण, संशयका कारणनिर्देश, प्रयोजन और सिद्धान्तलक्षण, सिद्धान्त विभाग एवं सर्वतन्त्रसिद्धान्त, प्रतितन्त्रसिद्धान्त, अधिकरण—सिद्धान्त, अभ्युपगमसिद्धान्त लक्षण, न्यायावयव विभाग, प्रतिज्ञाहेतु, व्यतिरेकीहेतु, उदाहरण, व्यतिरेक्युदाहरण, उपनय और निगमनलक्षण, तर्क और निर्णयनिरूपण; द्वितीयाह्निकमें—वाद, जल्प, वितण्डालक्षण और हेत्वाभासविभाग, सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, साध्यसम और अतीतकालरूप, व्यभिचारी विरुद्ध, सत्प्रतिपक्षित, असिद्ध और वाधित यह पञ्चविध दुष्टहेतुका लक्षण है, इसके बाद छललक्षण और छलविभाग; वाक्छल, सामान्यच्छल और उपचारच्छल इन त्रिविध छलका लक्षण और तत्सम्बन्धी पूर्वपक्ष तथा समाधान, अनन्तर जाति और निग्रहस्थानका लक्षण वर्णित है। द्वितीय अध्यायके प्रथम आह्निकमें संशयसम्बन्धी पूर्वपक्ष और सिद्धान्त एवं प्रमाणचतुष्टयसम्बन्धी पूर्वपक्ष और तत्समाधान, प्रत्यक्षलक्षणमें आक्षेप और समाधान, मनःसिद्धिविषयमें युक्ति और प्रत्यक्षसिद्धान्तसूत्र, इन्द्रियसन्निकर्षमें प्रत्यक्षहेतुत्व शङ्का, प्रत्यक्षमें अनुमितत्वशङ्का और तत्समाधान अवयवी-खण्डन और तत्समाधान, अनुमानपूर्वपक्ष और तत्समाधान, उपमानपूर्वपक्ष और तत्समाधान, उपमानका अनुमानान्तर्भावत्वखण्डन एवं शब्दप्रामाण्यसम्बन्धमें पूर्वपक्ष और वेदप्रामाण्याक्षेप, तत्समाधान, वेदवाक्यविभाग, विधिलक्षण, अर्थवादविभाग और अनुवादलक्षण, वेदप्रामाण्यमें युक्ति, प्रमाण चतुष्टयसम्बन्धमें आक्षेप, तत्समाधान, शब्दका अनित्यत्वसाधन, शब्दविकार-निराकरण, केवलव्यक्ति, केवलाकृति और केवल जातिमें शक्तिका निराकरण और जात्याकृतिविशिष्ट व्यक्तिमें पदका शक्ति-प्रतिपादन, व्यक्ति, आकृति और जातिका लक्षण; तृतीय अध्यायमें आत्मादि द्वादशविध प्रमेयकी परीक्षा, इन्द्रियचैतन्यवाद, शरीरात्मवाद प्रभृति दूषण, चक्षुका अद्वैतत्वनिराकरण, मनका आत्मत्वशङ्का-निराकरण और आत्माका नित्यत्वप्रतिपादन, शरीरका एक भौतिकत्वकथन और पार्थिवत्वमें युक्ति, इन्द्रियका भौतिकत्व और नानात्व परीक्षा, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द, इस पञ्चविध अर्थके सम्बन्धमें परीक्षा, ज्ञानका अयौगपद्यप्रतिपादन, वादनिरास, बुद्धिका आत्मगुणत्वप्रतिपादन, बुद्धि जो शरीरगुण नहीं है, इसका विशेष रूपसे प्रतिपादन, मनकी परीक्षा और शरीरका पुरुषादृष्ट निष्पाद्यत्व प्रतिपादन; चतुर्थ अध्यायमें प्रवृत्ति और दोषपरीक्षा एवं जन्मान्तर सम्बन्धमें सिद्धान्त, उत्पत्तिप्रकार प्रदर्शन, दुःख और अपवर्गकी परीक्षा, तत्त्वज्ञानकी उत्पत्ति, अवयवी और निरवयवप्रकरण, पञ्चमाध्यायमें जातिविभाग, साधर्म्यसम, वैधर्म्यसम-प्रभृति अनेकविध जाति विशेषका प्रतिपादन, अनन्तर निग्रहस्थान विभाग, प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञान्तर प्रभृति बाईस प्रकारके निग्रहस्थानका लक्षण, पीछे हेत्वाभासका उल्लेख कर यह न्यायग्रन्थ समाप्त हुआ है।

संक्षिप्तभावमें न्यायदर्शनके सभी पदार्थोंकी आलोचना की जाती है, विचार प्रभृतिका विषय नव्यन्यायशास्त्र पर आलोचना की जायगी।

महर्षि गौतमने पहले सोलह पदार्थोंका निरूपण किया है। यथा—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा,

हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। इन सोलह पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे निःश्रेयस अर्थात् मुक्ति लाभ होती है। इन सब पदार्थोंके तत्त्वज्ञान हो जानेसे मुक्ति उसी समय लाभ होती है, अथवा देरीसे इसका सिद्धान्त इस प्रकार है। आत्मादि प्रमेय वा पूर्वोक्त षोड़श पदार्थका तत्त्वज्ञान हो जानेसे पहले मिथ्याज्ञान निवृत्त होता है। इस मिथ्याज्ञानके निवृत्त होनेसे तत्कार्य धर्माधर्मका भी नाश होता है। धर्माधर्मरूप निवृत्तिके नाश होने पर जन्मकी भी निवृत्ति हुआ करती है। जन्मनिवृत्ति द्वारा दुःखनिवृत्तिको ही मुक्ति कहते हैं। मिथ्याज्ञान, दोष, प्रवृत्ति, जन्म और दुःख इनमेंसे पूर्व पदार्थ एक दूसरेका कारण है। शरीरके रहते भी जीवन्मुक्त हो सकता है, किन्तु गौतम वा वात्स्यायनने इस विषयका कुछ भी जिक्र नहीं किया है। परवर्त्ती नैयायिकोंने जीवन्मुक्तका विषय कहा था। जीवन्मुक्तपुरुषके प्रारब्धकर्मके कारण शारीरिक कितने दुःख रहते हैं। किन्तु तत्त्वज्ञानवशतः मोह उत्पन्न नहीं हो सकता, इस कारण स्त्रीपुत्रादि वियोग-जनित और मानसिक दुःख एवं मोह उत्पन्न नहीं होता। यही कारण है, कि तत्त्वज्ञानीकी प्रवृत्ति (यत्न वा चेष्टा) धर्माधर्मको उत्पन्न नहीं कर सकती। सुतरां जन्मनाश नहीं होने तक जीवन्मुक्त अवस्था होता है।

इन सोलह पदार्थोंके जाननेमें प्रमाणकी आवश्यकता है। इसी कारण इसके बाद ही प्रमाणका विषय लिखा गया है।

प्रमाणका लक्षण और विभाग—

प्रमा वा प्रमिति अथवा यथार्थ ज्ञानके करणको प्रमाण कहते हैं। इसका तात्पर्य यह कि जिसके द्वारा यथार्थरूपमें सभी वस्तुओंका निर्णय किया जाय उसीको प्रमाण कहते हैं। प्रमाण चार प्रकारका है, इस कारण प्रमाणजन्य ज्ञान भी चार प्रकारका बतलाया गया है। यथा—प्रत्यक्ष, अनुमिति, उपमिति और शाब्दबोध। प्रत्यक्ष प्रमातको प्रत्यक्ष, अनुमितिको अनुमान, उपमितिको उपमान और शब्दज्ञानको शब्दप्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण—

नयनादि इन्द्रिय द्वारा यथार्थरूपमें वस्तुओंका जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसको प्रत्यक्ष प्रमिति कहते हैं। यही सहज लक्षण है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—इन्द्रियके साथ अर्थके सन्निकर्षसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है। यह प्रमाण अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और व्यवसायरूप माना गया है। अव्यपदेश्य शब्दका अर्थ नामोल्लेखके योग्य नहीं है। वात्स्यायनभाष्य देखनेसे मालूम होता है कि उक्त विशेषण उनके मतसे स्वरूपसत् विशेषण है अर्थात् अव्याप्ति वा अतिव्याप्तिवारक नहीं है। अव्याप्ति शब्दका अर्थ लक्ष्यसे लक्षणका अगमन है, इसे अप्रसङ्ग भी कह सकते हैं।

अतिव्याप्ति, (अलक्ष्यमें लक्षणका गमन) इसे अतिप्रसङ्ग वा अतिव्याप्ति कह सकते हैं। जिस पदार्थका लक्षण किया जाता है उसे लक्ष्य कहते हैं।

प्रथम इन्द्रिय-सन्निकर्षाधीन रूपरसादिका ज्ञान होनेसे रूपरसादिका नामोल्लेखपूर्वक "रूप जानता हूं, रस जानता हूं" इत्यादि प्रकारसे रूपरसादिके ज्ञानका व्यवहार हुआ करता है। व्यवहारकालमें रूपादि प्रत्यक्ष ज्ञानको शब्दमिश्रित करके शाब्दज्ञान हो सकता है। इसी भ्रमके निरासार्थ उक्त विशेषण दिया गया है। इन्द्रियसन्निकर्षसे उत्पन्न रूपादिप्रत्यक्षात्मक ज्ञान व्यवहारकालमें शब्द द्वारा उल्लिखित होने पर भी वह शब्दजन्य नहीं होनेके कारण शाब्दज्ञान नहीं है। इन्द्रियसन्निकर्षजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान व्यवहारकालमें परिवर्त्तित नहीं होता, पूर्वरूपमें ही रहता है, यही वात्स्यायन भाष्यका तात्पर्य है।

कोई कोई कहते हैं कि अनुमितिवारणार्थ अव्यपदेश्य विशेषण दिया गया है। वार्त्तिककारने कहा है, कि अनुमिति इन्द्रियसन्निकर्षके कारण नहीं होती, अतः अनुमितिमें अतिप्रसङ्ग भी नहीं हो सकता।

वात्स्यायनका कहना है कि, अव्यभिचारी शब्दका अर्थ भ्रमभिन्न और व्यवसाय शब्दका अर्थ निश्चय है। मरीचिकादिमें इन्द्रियसन्निकर्षवशतः जलादिके भ्रमसे उसके प्रत्यक्ष प्रमात्वको वारण करनेके लिये 'अव्यभिचारी' विशेषण और दूरस्थ व्यक्तिके स्थाणु आदिमें पुरुषत्वादि सन्देह प्रत्यक्षप्रमाणलक्षणके प्रसङ्गको वारण करनेके

लिये 'व्यवसाय' यह विशेषण दिया गया है। षड्दर्शनटीकाकृत् वाचस्पति मिश्र प्रभृति प्रौढ़ नैयायिकों तथा विश्वनाथ प्रभृति नव्य नैयायिकोंका कहना है कि इन्द्रिय सन्निकर्षजन्य अव्यभिचारी यथार्थ) ज्ञानमात्र ही प्रत्यक्षका लक्षण है। अव्यपदेश्य और व्यवसाय इन दो प्रत्यक्षोंका विभाग, अव्यपदेश्य शब्दका अर्थ, निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, अव्यवसाय शब्दका अर्थ और सविकल्पक प्रत्यक्ष है।

जो ज्ञान विशेष्य और विशेषणके सम्बन्धको विषय करता है, वह सविकल्पक है, यथा नील घट इत्यादि। इस ज्ञानने नीलरूपात्मक विशेषण और घटरूप विशेष्यके सम्बन्धको विषय किया है। अतएव इस सविकल्पक ज्ञानको विशिष्टबुद्धि कहते हैं। जो ज्ञान सम्बन्धको विषय नहीं करता, वह निर्विकल्पक है। घटरूपादिके साथ चक्षुके सन्निकर्ष होने पर पहले पृथक् पृथक् रूपमें घट और घटत्वादिका जो ज्ञान होता है उसमेंसे प्रथम ज्ञान निर्विकल्पक और उत्तर ज्ञान सविकल्पक है। इस निर्विकल्पक ज्ञानका आकार शब्द द्वारा दिखलाया नहीं जाता, इस कारण इसे अव्यपदेश्य कहते हैं। 'घट, घटत्व' इत्यादिरूप निर्विकल्पक ज्ञानका जो आकार दिखलाया गया, वह गौर कर देखनेसे बुद्धिमान् व्यक्ति मात्र ही समझ सकेंगे कि यह निर्विकल्पक ज्ञानका प्रकृत आकार नहीं है। क्योंकि तादृशाकारक ज्ञान और घटांशके घटत्वादिका असम्बन्ध ज्ञान हुआ करता है, इस कारण तादृशाकारक ज्ञानको सविकल्पक कहते हैं। निर्विकल्पक ज्ञानका प्रत्यक्ष नहीं होता। अतः वह अतीन्द्रिय है। किन्तु अनुमान द्वारा उसका अर्थात् निर्विकल्पक ज्ञानका अनुमितिरूप ज्ञान हुआ करता है।

साधारण नियम यह है, कि विशिष्ट-बुद्धिके प्रति विशेषण ज्ञान कारण है। क्योंकि पहले घटत्व, रक्तत्वादिरूप विशेषणका ज्ञान नहीं होनेसे घटत्वरक्तत्वादि विशिष्ट घटका ज्ञान नहीं होता। इस कारण घटभावविशिष्ट घटज्ञानके पहले विशेषणरूप घटभाव (घटत्व) का ज्ञान अवश्य स्वीकार करना होगा। किन्तु घटके सविकल्पकके पहले घटत्वका अनुमित्यादिरूप कोई सविकल्पक ज्ञान नहीं रहने पर भी घटमें चक्षुःसंयोगादिवशतः घटभावविशिष्ट घटज्ञान हुआ करता है। सुतरां आगे चल कर तादृशविशिष्टबुद्धिके पहले घटभावका निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार करना होगा। इस निर्विकल्पक ज्ञानके प्रति अन्य कारण असम्भव होनेसे इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष मात्र ही कारण स्वीकार किया गया है और इन्द्रियार्थ सन्निकर्षरूप कारण है ऐसा मान कर घटभावके निर्विकल्पक ज्ञानके साथ घटका भी निर्विकल्पक ज्ञान स्वीकार किया गया है।

यहां सोचनेकी बात यह है कि, उक्तरूपसे सविकल्पक ज्ञानके प्रति निर्विकल्पक ज्ञान कारण होने पर और निर्विकल्पक ज्ञानके प्रति इन्द्रियसन्निकर्षमात्र कारण होने पर सर्पत्वादिका और सविकल्पकनिर्विकल्पकज्ञानमें भी उक्तरूपसे कार्यकारणभाव स्वीकार करना होगा। अभी यह आशङ्का हो सकती है कि रज्जुमें चक्षुःसन्निकर्ष होनेसे रज्जु, रज्जुत्वका निर्विकल्पक ज्ञान हो कर रज्जुमें रज्जुत्वज्ञानरूप सविकल्पक ज्ञान ही हमेशा हो सकता है, एवं रज्जुमें सर्पत्वभ्रम कदापि नहीं हो सकता। क्योंकि रज्जु रज्जुत्वमें चक्षुःसन्निकर्ष है, इस कारण रज्जुत्व विशिष्ट बुद्धिके कारण रज्जुत्वरूप विशेषण ज्ञान अवश्य है और सर्पत्वमें चक्षुःसन्निकर्ष नहीं है, इस कारण यह सर्प इत्याकार सर्पत्वविशिष्ट बुद्धिके कारण सर्परूप विशेषण ज्ञान नहीं है। अज्ञानवशतः सर्पत्वकी स्मृति हो कर दूरत्व दोषनिबन्धन सर्पत्वका रज्जुमें भ्रम होता है। ऐसा कहनेसे भी आशङ्का रहती है कि सर्पत्व-भ्रम अनुमित्यात्मक या प्रत्यक्षात्मक है जिसमें व्याप्तिज्ञान और अतिदेशवाक्यजन्य स्मरण-सहकृत-सादृश्यज्ञानादि नहीं है, इस कारण वह सर्पत्वभ्रम अनुमित्यात्मक नहीं हो सकता और सर्पत्वमें सन्निकर्षका नहीं रहना प्रयुक्त सर्पत्व भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।

रज्जुमें रज्जुत्व प्रत्यक्ष नहीं होगा सो क्यों? इसका उत्तर इस प्रकार है—प्रत्यक्ष दो प्रकारका है, लौकिक प्रत्यक्ष और अलौकिक प्रत्यक्ष। इनमेंसे अलौकिक प्रत्यक्षमें इन्द्रियसन्निकर्ष कारण नहीं है। अभी यह देखना चाहिये कि रज्जुमें जो सर्पत्वभ्रम हुआ करता है, वह

लौकिक प्रत्यक्ष नहीं है। अलौकिक प्रत्यक्ष सर्पत्व-भ्रममें सर्प इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं रहने पर भी ज्ञान हो सकता है।

दूरत्व दोषनिबन्धन रज्जु और रज्जुत्वमें सम्यक् सन्निकर्ष नहीं हो सकता, इस कारण रज्जुमें रज्जुत्व-का प्रत्यक्ष नहीं होता। यहां एक और आशङ्का हो सकती है कि इन्द्रियसन्निकर्ष यदि लौकिक प्रत्यक्षमें कारण न हो, तो रज्जुमें इन्द्रियसन्निकर्षके बिना रज्जुत्व-में सर्पत्वभ्रम क्यों नहीं होता? इसका उत्तर यह है कि ज्ञानका विषय दो प्रकारका है, विशेष्य और विशेषण। इस सर्पं इत्याकारक रज्जुमें सर्पत्वभ्रममें रज्जु विशेष्य और सर्पत्व विशेषण। इसमें रज्जुज्ञान प्रत्यक्ष लौकिक-ज्ञान और सर्पत्व प्रत्यक्ष अलौकिक ज्ञानका प्रत्यक्ष लौकिक है, इस कारण रज्जु ज्ञानार्थमें चक्षुःसन्निकर्ष आवश्यक है, अतः रज्जुमें चक्षुःसन्निकर्ष नहीं रहने पर भी रज्जुमें तादृश सर्पत्व प्रत्यक्ष नहीं होगा।

यह प्रत्यक्ष ज्ञान छः प्रकारका है, घ्राणज, रासन, चाक्षुष, त्वाच, श्रावण और मानस। घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र और मन इन छः इन्द्रियों द्वारा यथाक्रम उल्लिखित छः प्रकारका प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है। मधु-रादि रस और तद्गत मधुरत्वादि जातिका रासन, नील पीतादिरूप वह रूपविशिष्ट द्रव्य, नीलत्वपीतत्व प्रभृति जाति तथा उस रूपविशिष्ट द्रव्यकी क्रिया और योग्य-वृत्ति समवायादिका चाक्षुष, उद्भूत शीत उष्णादि स्पर्श और तादृश स्पर्शविशिष्ट द्रव्यादिका त्वाच, शब्द और तद्गत वर्णत्व, ध्वनित्वादि जातिका श्रावण और सुख-दुःखादि आत्मवृत्ति गुणकी आत्माका सुखत्वादि जातिका मानसप्रत्यक्ष होता है।

अनुमान—व्याप्यपदार्थ देख कर व्यापक पदार्थका जो ज्ञान होता है, उसे अनुमिति कहते हैं। जिस पदार्थके रहनेसे जिस पदार्थका अभाव नहीं रहता उसे उसका व्याप्य और जिस पदार्थके नहीं रहनेसे जो पदार्थ नहीं रहता उसे उसका व्यापक कहते हैं। जैसे—कहीं भी बिना वह्निके धूम नहीं होता, इस कारण वह्नि धूमको व्यापक है। यही कारण है कि पर्वतादि पर धूम देख कर मनुष्य वह्निका अनुमान किया करते हैं। यह अनु-मान तीन प्रकारका है, पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतो-दृष्ट।

प्रत्यक्षको ले कर जो ज्ञान होता है वह अनुमान है। भाष्यकारने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—लिङ्ग लिङ्गीके प्रत्यक्ष ज्ञानसे उत्पन्न ज्ञानको अनुमान कहते हैं। जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहां धूआं रहता है वहां आग रहती है। इसीको नैयायिक व्याप्ति-ज्ञान कहते हैं जो अनुमानकी पहली सीढ़ी है। हमने कहीं धूआं देखा जो आगका लिङ्ग या चिह्न है और हमारे मनमें यह ध्यान हुआ कि "जिस धूएँके साथ सदा हमने आग देखी है वह यहां है।" इसीको परा-मर्श ज्ञान या व्याप्तिविशिष्ट पक्षधर्मता कहते हैं। इसके अनन्तर हमें यह ज्ञान या अनुमान हुआ कि 'यहां आग है।'

जिस पदार्थकी अनुमिति होगी उसे लिङ्गी और जिस पदार्थ द्वारा अनुमिति की जायगी उसे लिङ्ग कहते हैं। जैसे, पर्वत पर वह्निकी अनुमितिमें वह्नि लिङ्गी, धूम लिङ्ग और पर्वत पक्ष है। परवर्त्ती नैयायिकोंने लिङ्गको हेतुसाधनादि नामसे और लिङ्गीको साध्यादि नामसे उल्लेख किया है। गोतम वात्स्यायनादिने लिङ्गिविशिष्ट पक्षको साध्य बतलाया है। पक्ष शब्दका साधारणतः अर्थ है—जिस पदार्थमें अनुमिति की जायगी। किन्तु गोतम या वात्स्यायनने पक्ष शब्दका ऐसा अर्थ तो कहीं भी नहीं लगाया है, वरन् उद्योतकरादि लगाया है।

पूर्ववत्, शेषवत् और सामान्यतोदृष्ट इस त्रिविध अनुमानके वाचक पूर्ववदादि शब्दका भिन्न भिन्न लोगों-ने भिन्न भिन्न अर्थ लगाया है। किन्तु वात्स्यायनने जैसा अर्थ लगाया है वही यहां पर दिया जाता है।

पूर्ववत् अनुमान कारण देख कर कार्यके अनु-मानको पूर्ववत् अर्थात् कारणलिङ्गक कहते हैं। जैसे—मेघकी उन्नति देख कर वृष्टिका अनुमान; अत्यन्त मेघ हुआ है, यहां पर मेघरूप कारण देख कर बहुत जल्द वृष्टि होगी, इसी वृष्टिरूप कार्यके अनुमानको पूर्ववत् अनुमान कहते हैं।

शेषवत् अनुमान—कार्य देख कर कारणके अनुमान-को शेषवत् अर्थात् कार्यलिङ्गक अनुमान कहते हैं।

जैसे—नदीको अत्यन्त वृद्धि देख कर वृष्टिका अनुमान।

सामान्यतोदृष्ट अनुमान—कारण और कार्यभिन्न केवल व्याप्य जो वस्तु है उसे देख कर जो अनुमिति होती है, उसे सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहते हैं; जैसे—गगनमण्डलमें सम्पूर्ण शशधर देख शुक्लपक्षके अनुमानको हेतु करके गुणका अनुमान और पृथिवीत्व जातिको हेतु करके द्रव्यत्व जातिका अनुमान। वात्स्यायनने सामान्यतोदृष्ट अनुमानका कोई लक्षण नहीं बतलाया, लेकिन उदाहरण इस प्रकार दिया है—सूर्यका गमनानुमान यह सामान्यतोदृष्ट अनुमान है। उद्योतकर और विश्वनाथ प्रभृतिने कार्यकारण भिन्न लिङ्गक अनुमानको सामान्यतोदृष्ट अनुमान कहा है। अभी यह देखना चाहिये कि सूर्यका गमनानुमान यहां पर लक्षणके अनुसार उदाहरण हो सकता है वा नहीं? इसमें पहले देखना होगा कि उस गमनानुमानमें लिङ्ग क्या क्या है? यदि संयोग ही लिङ्ग हो, तो वह संयोग गतिके कार्यके जैसा शेषवत् अनुमानके अन्तर्गत हो जाता है, सुतरां कार्यकारणभिन्न लिङ्गक नहीं हो सकता। देशान्तरप्राप्ति और देशान्तर संयोगसे भिन्न नहीं है, अतएव देशान्तरप्राप्तिज्ञानको विषयत्वादिका हेतु करना होगा। यहां पर देशान्तरप्राप्तिके गतिकार्य होने पर भी देशान्तर प्राप्तिज्ञान विषयत्व गतिकार्य नहीं है, इससे तादृश लिङ्गक अनुमान शेषवत् अनुमानके अन्तर्गत नहीं हो सकता। सुतरां सूर्यका गमनानुमान सामान्यतोदृष्ट अनुमानका उदाहरण हो सकता है, ऐसा बहुतेरे कहा करते हैं।

वात्स्यायनका द्वितीय कल्प—जिस अनुमानका लिङ्गलिङ्गी सम्बन्ध पहले देखा गया है उसे पूर्ववत् कहते हैं; जैसे—धूमलिङ्गक वह्नि-अनुमान प्रसज्यमान (जिसकी प्रसक्ति है) इतर धर्मके निराकृत होने पर अवशिष्ट धर्मानुमान शेषवत् है। यथा शब्दमें गुणत्वानुमान और सत् * पदार्थ होनेके कारण उसमें द्रव्यत्व, गुणत्व और कर्मत्वस्वरूप धर्मत्रयकी प्रसक्ति है। अभी शब्द एक द्रव्य समवेत † होनेके कारण द्रव्य नहीं है, शब्द सजातीय जनक होनेके कारण कर्म नहीं है। सुतरां द्रव्यत्व कर्मत्वके निराकृत होने पर शब्दमें अवशिष्ट गुणत्वका अनुमान होता है। लिङ्ग प्रकृत लिङ्गीका सम्बन्ध अप्रत्यक्ष हो कर किसी धर्म द्वारा लिङ्गकी समानता (एकरूपता) निबन्धन अप्रत्यक्ष लिङ्गीका अनुमान सामान्यतोदृष्ट है; यथा, इच्छादि द्वारा आत्माका अनुमान। प्रयोग यथा—

इच्छादि गुण. गुणपदार्थ द्रव्यवृत्ति, अतएव इच्छादि और द्रव्यवृत्ति। अभी यह देखना चाहिये कि इच्छादिका आधार आत्मरूप द्रव्य है और इच्छादिका सम्बन्ध भी प्रत्यक्ष नहीं है। इच्छादिमें गुणत्वस्वरूप धर्म द्वारा द्रव्यवृत्ति अन्य गुणके साथ समानतानिबन्धन इच्छादिके द्रव्यवृत्तित्व सिद्धि द्वारा सामान्यतः द्रव्यत्वरूपमें आत्माकी ही सिद्धि हुई है।

उदयनाचार्य, गङ्गेश, विश्वनाथ प्रभृतिने पूर्ववदादिशब्दमें यथाक्रम केवलान्वयी केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी ये तीन प्रकारके अनुमान बतलाये हैं। उनके उस केवलान्वयी प्रभृतिके लक्ष्य और लक्षणने मतभेदसे नानारूप धारण किया है।

उदयनके मतसे—केवलमात्र अन्वय-सहचार ज्ञान द्वारा जहां पर हेतुसाध्यकी व्याप्तिका निर्णय होता है, वहांका हेतु केवलान्वयी; केवल-व्यतिरेक-सहचार द्वारा जहां हेतु साध्यकी व्याप्तिका निर्णय होता है, वहां हेतु केवलव्यतिरेकी और जहां उभय सहचार द्वारा व्याप्तिका निर्णय होता है, वही हेतु अन्वयव्यतिरेकी है।

गङ्गेशके मतसे—जहां केवल अन्वय व्याप्ति ज्ञान द्वारा अनुमिति होती है, वहां जो अन्वयव्याप्तिज्ञान है, वही केवलान्वयी है। केवलव्यतिरेक व्याप्तिज्ञान द्वारा अनुमिति होनेसे वह व्याप्तिज्ञान केवल-व्यतिरेकी, उभयविध व्याप्ति द्वारा व्याप्तिज्ञान अन्वयव्यतिरेकी है।

उद्योतकर प्रभृतिने यह पूर्ववदादि भिन्न केवलान्वयी, केवलव्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी अनुमान स्वीकार किया है। विस्तारके भयसे तथा यह नव्य—

---

* न्यायके मतसे द्रव्य, गुण और कर्म सत् है।

† शब्द आकाशरूप एकमात्र द्रव्यमें समवेत है। शब्दका अर्थ है समवाय सम्बन्ध। उस सम्बन्धमें अवयवमें अवयवी, द्रव्यमें गुण और कर्म, द्रव्य, गुण और कर्ममें सामान्य वा जाति एवं परमाणुमें विशेष रहता है। अवयवि द्रव्य एक द्रव्यमें नहीं रहता; द्वयादिमें रहता है, अन्य द्रव्य समवेत नहीं होता।

न्यायका विषय होनेके कारण इस पर विशेष आलोचना नहीं की गई।

अन्वय और व्यतिरेकके भेदसे गौतमके मतमें भी अनुमान जो विभिन्न है उसे गौतमोक्त हेतु प्रभृति लक्षण देख कर सभी हृदयङ्गम कर सकते हैं।

उपमान—किसी किसी शब्दके किसी किसी अर्थमें शक्तिपरिच्छेदको उपमिति कहते हैं। यथा, जिस मनुष्यने पहले गवयजन्तु नहीं देखा, किन्तु सुना है कि गोसदृश गवय होता है, अर्थात् जिस वस्तुकी आकृति अविकल गोकी आकृति-सी होती है, गवय शब्दसे उसीका बोध होता है। वह मनुष्य उस समय केवल इतना ही जानता है, कि जो वस्तु गोसदृश होगी, गवय शब्दसे उसीका बोध होगा। गवय शब्दसे गवयजन्तु समझा जाता है, सो वह नहीं जानता। किन्तु जब वह मनुष्य अपनी आंखोंसे गवय जन्तु देखता है, तब उस गवयकी आकृति गो-की आकृतिके समान देख कर तथा पूर्वश्रुत गोसदृश गवय होता है इस वाक्यका स्मरण कर वह विचार करता है कि यदि गोसदृश जन्तुसे गवय शब्दका बोध हो, तो जब यह जन्तु गोसदृश होता है, तब यही जन्तु गवयपदवाच्य होगा, इसमें सन्देह नहीं। इस प्रकार गवयशब्दके शक्तिपरिच्छेदको उपमिति कहते हैं।

गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—प्रसिद्ध-साधर्म्य द्वारा साध्यनिश्चयका नाम उपमिति है, तत्करण उपमान है। वात्स्यायनने इसकी व्याख्यामें कहा है, कि अतिदेशवाक्यप्रयोज्य स्मृति द्वारा प्रसिद्ध वस्तुके सादृश्यज्ञानसे अप्रसिद्धवस्तुविषयक संज्ञासंज्ञी बोधका नाम उपमिति है।

एक वस्तुमें अपर वस्तुके धर्मकथनको अतिदेश वाक्य कहते हैं। 'गो-के जैसा गवय' यही सद्वाक्य अतिदेश वाक्य है।

शब्द-प्रमिति वा शब्दप्रमाण—शब्द द्वारा जो बोध होता है, उसे शाब्दबोध कहते हैं। जैसे, गुरुका उपदेश वाक्य सुन कर छात्रोंको उपदिष्ट अर्थका शब्द बोध होता है। गौतमसूत्रमें इसका लक्षण इस प्रकार है—आप्तवाक्यका नाम शब्द है, ईदृश शब्द-जन्य बोध शाब्द-प्रमाण है। यह शाब्द-प्रमाण दो प्रकारका है, दृष्टार्थक और अदृष्टार्थक।

जिस शब्दका अर्थ प्रत्यक्षसिद्ध है उसे दृष्टार्थक और जिसका अर्थ अदृष्ट है उसे अदृष्टार्थक कहते हैं। इसका उदाहरण इस प्रकार है—'तुम गौरवर्ण हो', मेरी किताब अत्यन्त सुन्दर है' इत्यादि सिद्धार्थक वाक्य और 'याग करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है', 'विष्णुकी पूजा करनेसे विष्णुकी प्रीति होती है' इत्यादि विधिवाक्य हैं। गौतमने ऐसा प्रमाण दे कर प्रमेय पदार्थका निर्देश किया है।

प्रमेयपदार्थ—आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव, फल, दुःख और अपवर्गके भेदसे बारह प्रकारका है। मुमुक्षव्यक्तिके लिए उक्त आत्मादि पदार्थ यथार्थ ज्ञानयोग्य होनेके कारण प्रमेय है। प्रमाण द्वारा ही यह प्रमेय पदार्थ स्थिर करना होता है। इसीसे पहले प्रमाणका विषय लिखा जाता है।

सचमुचमें यथार्थ ज्ञान विषयरूप प्रमेय लक्षणका निखिल पदार्थ ही लक्ष्य हो सकता है। यही कारण है, कि उत्तरकालीन नैयायिकोंने निखिल पदार्थको ही प्रमेय बतलाया है। इन बारह प्रकार प्रमेयोंके यथाविध लक्षण क्रमशः लिखे जाते हैं।

आत्मा—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, ज्ञान ये सब आत्मा (जीवात्मा)-के लिङ्ग अर्थात् अनुमापक गुण हैं। कोई कोई लिङ्ग शब्दका अर्थ लक्षण ऐसा भी कहते हैं—जिसके ज्ञानादि हैं वे आत्मा हैं; जो चैतन्यमय हैं, वे आत्मपदवाच्य हैं। आत्मा सभी इन्द्रिय और शरीरादिकी अधिष्ठाता है। आत्माके नहीं रहनेसे किसी इन्द्रिय द्वारा कोई कार्य सम्भव नहीं हो सकता।

जिस प्रकार रथगमन द्वारा सारथिका अनुमान करना होता है, उसी प्रकार जड़ात्मकदेहकी चेष्टादि देख कर आत्मा भी अनुमित हो सकती है। कारण, यदि यह शक्ति शरीरादिमें रहती, तो मृतव्यक्तिके शरीरमें भी चैतन्यकी उपलब्धि होती, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं और जब मेरा शरीर क्षीण हो जाता है, मेरी आंखें विकल हो जाती हैं, तब आत्मा जो शरीर और इन्द्रियसे भिन्न है, यह स्पष्टरूपसे जाना जाता है। यह आत्मा दो प्रकारकी है—जीवात्मा और परमात्मा।

मनुष्य, कीट, पतङ्ग प्रभृति जीवात्मावदवाच्य हैं, परमात्मा एक परमेश्वर हैं। कुसुमाञ्जलिकी आलोचनाकी जगह पर आत्माके विषय पर विचार किया जायगा।

शरीर—जो चेष्टा, इन्द्रिय और सुख-दुःखके भोगका आयतन है उसे शरीर कहते हैं।

इन्द्रिय—भौतिक इन्द्रिय पांच प्रकारकी है ;—घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र। भूत भी पांच प्रकारका है—क्षिति, जल, तेज, मरुत् और व्योम।

अर्थ—(इन्द्रिय विषय) गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्दके भेदसे अर्थ पांच प्रकारका है। यहां पर अर्थ शब्द पारिभाषिक है। गन्धरसादिके एक एक इन्द्रियके एक एक विशेष विषय होनेके कारण गन्धादि मात्रको ही एक प्रकारसे इन्द्रियार्थ कहा गया है। यथार्थमें प्रत्यक्षविषय पदार्थमात्रको ही इन्द्रियार्थ समझना होगा।

बुद्धि—बुद्धि, ज्ञान और उपलब्धि ये तीनों एक प्रकारके हैं। सांख्यगण बुद्धि नामक अचेतनको अन्तःकरणरूप द्रव्य और उक्त द्रव्यके गुणविशेषको ज्ञान तथा चेतन आत्माके धर्मको उपलब्धि मानते हैं। लेकिन नैयायिक लोग इसे स्वीकार नहीं करते, इसका विषय पीछे आलोचित होगा।

जिसके स्वभावतः विषय होते हैं उसे बुद्धि कहते हैं। इस बुद्धिका विषय पीछे लिखा जायगा।

मन—आत्म-गुण और ज्ञानसुखादिप्रत्यक्षकारण है। नैयायिक लोग एक कालमें अनेक इन्द्रियजन्य ज्ञानको स्वीकार नहीं करते अर्थात् चाक्षुषप्रत्यक्ष कालमें श्रावण वा स्पार्शन प्रत्यक्षादि नहीं होता। जैसे—किसी व्यक्तिके गणित विषयमें प्रणिधान करने पर उस समय गणित शास्त्रविषयक ज्ञानके सिवा इसके किसी दूसरे शब्दादि विषयक ज्ञान नहीं होता, इसका क्या कारण है? यदि इन्द्रिय मात्र ही कारण होती, तो लिखित अक्षरादिमें जिस तरह चक्षुः सन्निकर्ष है उसी तरह तात्कालिक शब्दादिमें भी श्रोत्रादि इन्द्रियका सम्बन्ध होनेके कारण उसके अक्षरादिका चाक्षुषके सदृश शब्द प्रत्यक्ष होना उचित था लेकिन वैसा नहीं होता। अतएव यह कहना पड़ेगा कि केवल इन्द्रियसन्निकर्षमात्र प्रत्यक्षका कारण नहीं है, एक दूसरा भी कारण है जिसके रहनेसे ज्ञान होता है और नहीं रहनेसे ज्ञान नहीं होता। वह कारण और कुछ भी नहीं है, मनःसंयोग है। किन्तु यह प्रत्यक्ष नहीं है। इस कारण गौतमने कहा है कि एक समय ज्ञानद्वयका नहीं होना मनका अनुमापक है।

प्रवृत्ति (यत्न) तीन प्रकारकी है, मनःआश्रित दया और अस्पृहादि, वाक्याश्रित मधुर और परुषादि तथा शरीराश्रित परोपकार और हिंसादि। फिर इन सब यत्नोंके भी दो भेद बतलाये गये हैं, पाप और पुण्यरूप।

दोष—जो मनुष्यको प्रवृत्त करावे वही दोषशब्दवाच्य है। यह दोष तीन प्रकारका है, राग, द्वेष और मोह। राग, द्वेष और मोहके वशमें आ कर मनुष्य कार्यमें प्रवृत्त होते हैं, अन्यथा नहीं होते। राग, द्वेष और मोह इन तीनोंमें मोह अधिक निन्दनीय है। क्योंकि मोह नहीं रहनेसे राग और द्वेष नहीं होते।

राग—काम, मत्सर, स्पृहा, तृष्णा, लोभ, माया और दम्भादिके भेदसे रागपदार्थ नाना प्रकारका है। वस्तु विषयके अभिलाषको काम और अपना प्रयोजन नहीं रहने पर भी दूसरेके अभिमत विषयको निवारणेच्छाको मत्सर कहते हैं। परगुणकी निवारणेच्छा भी मत्सर कहलाती है। जिससे किसी विषयकी हानि न हो, ऐसी विषयप्राप्तिकी इच्छाको स्पृहा, सञ्चित वस्तुका व्यय न हो, ऐसी इच्छाको तृष्णा, उचितव्यय न कर धनरक्षणेच्छाको कार्पण्य, जिससे पाप हो सके ऐसी विषय-प्राप्तीच्छाको लोभ, परवञ्चनेच्छाको माया और छलपूर्वक अपने धार्मिकत्वादिको प्रकाशित कर स्वकीय उत्कृष्ट व्यवस्थापनेच्छाको दम्भ कहते हैं।

क्रोध, ईर्षा, असूया, अमर्ष और अभिमानादिके भेदसे द्वेष भी नाना प्रकारका है। नेत्रादिके रक्तताजनक द्वेषको क्रोध, साधारण धनादिसे निजांशग्राही एक अंशीके प्रति अपर अंशीका जो द्वेष होता है उसे ईर्ष्या कहते हैं। दूसरेके गुण पर विद्वेष करनेका नाम असूया है।

प्राणि-विनाशजनक द्वेषको द्रोह, दुर्दान्त अपकारीके प्रति प्रत्युपकारासमर्थ व्यक्तिके द्वेषको अमर्ष और तादृश अपकारीका अपकार न कर सकने पर तथा आत्मावमाननाको अभिमान कहते हैं।

विपर्यय, संशय, तर्क, मान, प्रमाद, भय और शोकादिके भेदसे मोह भी नाना प्रकारका है। अयथार्थ निश्चयको विपर्यय, जो जो गुण यथार्थमें अपना नहीं है वे सब गुण अपनेमें आरोप कर अपनेको उत्कृष्ट समझनेको मान, अस्थिरमतिताको प्रमाद, अनिष्टजनक किसी व्यापारके उपस्थित होने पर तन्निवारणमें अपनेको असमर्थ समझनेको भय और इष्टवस्तुके वियोग होने पर पुनर्वार उसकी अप्राप्तिको सम्भावनाको शोक कहते हैं।

प्रेत्यभाव—पुनर्जन्म, बारम्बार उत्पत्तिको अर्थात् एक बार मरण और एक बार जन्मग्रहण तथा फिरसे मरण और जन्मग्रहणरूप आवृत्तिको प्रेत्यभाव कहते हैं। आत्माकी नित्यत्व सिद्धि द्वारा पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

फल—दोष-सहकृत प्रवृत्ति-जनित जो सुख वा दुःखका भोग है, वह फल है। फलके प्रति दोषसहकृत प्रवृत्ति ही कारण है।

दुःख—जो मनुष्यका द्वेष्य वा प्रतिकूलवेदनीय है उसे दुःख कहते हैं। यह दुःख मुख्य और गौणके भेदसे दो प्रकारका है: जो दुःखान्तरको अपेक्षा न कर प्रतिकूलवेदनीय है उसे मुख्य और जो दुःखान्तरको अपेक्षा कर प्रतिकूलवेदनीय है उसे गौण दुःख कहते हैं। गौतमने कहा है कि जन्मके साथ हमेशा दुःख अनुसक्त रहता है, इसीसे जन्म होना दुःख है।

अपवर्ग—दुःखकी अत्यन्त निवृत्ति ही अपवर्ग है। अत्यन्त शब्दका अर्थ है जिसके बाद और दुःख नहीं होगा। मोक्षके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। वात्स्यायनने कहा है, कि दुःख शब्दका अर्थ है दुःखरूप जन्मका,—अत्यन्त शब्दका तात्पर्य है गृहीत जन्मका त्याग और भविष्यमें जन्म ग्रहण नहीं करना। शङ्कर मिश्र प्रभृतिका कहना है कि दुःखका अनुत्पाद ही दुःखविमोच है। विश्वनाथ प्रभृति कहते हैं कि दुःखविमोक्ष शब्दका अर्थ है दुःखनाश और जन्मविमोचन। यह स्वतःप्रयोजन नहीं हो सकता; इस कारण मुक्तिके स्वतःप्रयोजनत्वकी रक्षाके लिये प्रकृत दुःखनिवृत्तिको मुक्ति कहते हैं और तत्रस्थ दुःख शब्द भी प्रकृतदुःखपरके जैसा वर्णित है। जो कुछ हो, गौतमके अभिप्रायके साथ प्रकृत विषयमें किसीका भी विरोध नहीं है। किन्तु सुषुप्तिकालमें स्वप्न नहीं देखनेसे क्लेशका अभाव रहता है, इस कारण अपवर्ग हो सकता है। गौतमके ऐसे सूत्रमें अभाव शब्द अनुत्पादपर है, नाशपर नहीं है। क्योंकि स्वप्नादर्शन क्लेशनाशके प्रति कारण नहीं हो सकता, किन्तु स्वप्न नहीं रहनेसे क्लेश उत्पन्न नहीं होता, अतः अनुत्पादके प्रति प्रयोजक हो सकता है। अभी देखना चाहिये कि सुषुप्तिकालीन क्लेश अनुत्पादको दृष्टान्त दिया गया है। इस कारण मुक्तिप्रयोजक दोषरूप क्लेशाभाव और क्लेशानुत्पाद ही ग्रहण करना होगा तथा दोषानुत्पाद दुःखनाशका कारण नहीं होनेसे दोषका अनुत्पाद प्रयोज्य और दुःखको अनुत्पादरूप मुक्ति गौतमको अभिप्रेत है, यह समझा जाता है। यही द्वादश प्रकार प्रमेय हैं।

प्रमाण और प्रमेयका विषय कहा गया, अभी संशयका विषय कहा जाता है।

संशय—साधारण धर्मज्ञान, असाधारण धर्मज्ञान और विप्रतिपत्ति वाक्यार्थज्ञान तथा उपलब्धिको अव्यवस्था ही संशयके प्रति कारण है। अनुपलब्धिको अव्यवस्थाको भी कोई कोई स्वतन्त्र कारण बतलाते हैं। किन्तु यह वात्स्यायनादि किसीका भी मतसिद्ध नहीं है।

दोनोंके समान वा एक धर्मको साधारण धर्म कहते हैं, जैसे स्थाणु और पुरुषका ऊर्ध्वत्व समान है, सुतरां यह साधारण धर्म है। जो क्या समानजातीय, क्या असमानजातीय किसीका भी धर्म नहीं है, ऐसा धर्म असाधारण धर्म कहलाता है। श्रवणेन्द्रियग्राह्य सत्ता शब्दका असाधारण धर्म है, शब्दके सजातीय अन्यगुण वा शब्दके असजातीय द्रव्यधर्ममें कहीं भी श्रवणेन्द्रियग्राह्य सत्ता नहीं है। वह असाधारण धर्म ज्ञानाधीन शब्दमें गुणत्वादि संशय हुआ करता है। परस्परविरुद्ध वाक्यद्वयको विप्रतिपत्तिवाक्य कहते हैं। किसीने कहा आत्मा है। किसीने कहा आत्मा नहीं है, इस प्रकार 'आत्मा है वा नहीं' यह विरुद्धार्थ ज्ञानहेतु इस प्रकार संशय हुआ करता है।

उपलब्धिकी अव्यवस्था शब्दका अर्थ स्थिरताका नहीं रहना वा अप्रामाण्य संशय, सरोवरादिमें जलज्ञान सत्य होता है; किन्तु फिर मरीचिकामें प्रथम जलज्ञानका

भ्रम होनेसे, पीछे जिस समय निकट जाते हैं, उस समय जलाभावज्ञान हो कर जलज्ञानका मिथ्यात्व बोध होता है। अनुपलब्धि शब्दका अर्थ है अज्ञान वा विपरीत ज्ञानकी स्थिरताका नहीं रहना वा अप्रमाण्य-संशय। यथा—मृग विशेषमें पहले जलका ज्ञान नहीं हुआ, वरं जलका अभाव ही बोध हुआ। किन्तु पीछे जब जल देखा गया, तब जलाभावज्ञानमें मिथ्यात्व बोध हुआ, इस कारण अनाप्त जलाभावज्ञानमें अप्रमाण्य संशय हो कर जल है वा नहीं; इस प्रकार संशय हुआ करता है। अव्यवस्था शब्दका दूसरा अर्थ भी हो सकता है। विश्वनाथ प्रभृतिने अप्रामाण्य संशयका ऐसा अर्थ किया है।

प्रयोजन—जो वस्तु इच्छाक्रमतः मनुष्यमें प्रवृत्त होती है उसका नाम प्रयोजन है, जैसे सुख, दुःखनिवृत्ति प्रभृति। सुखादिके इच्छावश हो मनुष्य प्रवृत्त होते हैं। गौतमने प्रयोजनका कोई विभाग नहीं किया। गदाधरने मुक्तिवादमें गौण और मुख्यके भेदसे दो प्रकारका प्रयोजन माना है।

अभिलषणीय विषयके सम्पादकके जैसा जो विषय अभिलषणीय होता है उसे गौण और तदतिरिक्त केवल अभिलषणीय विषयको मुख्य प्रयोजन कहते हैं। जो जीवका स्वभावतः इष्ट है, वही मुख्य प्रयोजन है, यथा—सुख और सुखभोग तथा दुःखनिवृत्ति। किन्तु जो स्वभावतः इष्ट नहीं है, सुखादिका जनक हो कर इष्ट होता है, वह गौण प्रयोजन है, यथा—भोजनादि, स्वभावतः भोजनादिकी इच्छा नहीं होती। भोजन सुखजनक वा क्षुधादिजनित दुःखनिवृत्तिजनक होनेके कारण भोजनकी इच्छा हुआ करती है।

दृष्टान्त—प्रकृत विषयको दृढ़ीकरणार्थ जिस प्रसिद्ध स्थलका उपन्यास किया जाता है, उस स्थलको दृष्टान्त कहते हैं, अर्थात् लौकिक तथा शास्त्रज्ञ ये दोनों जिस विषयका स्वीकार करते हैं, उसीका नाम दृष्टान्त है। यथा—इस पर्वत पर अग्नि है क्योंकि वहां धूम देखा जाता है, जहां जहां धूम रहता है वहां वहां अग्नि रहती है। जैसे, रन्धनशाला, यहां पर रन्धनशाला यही दृष्टान्त पदार्थ है।

सिद्धान्त—अनिश्चित विषयका शास्त्रानुसार निर्णय करनेको सिद्धान्त कहते हैं। यथा,—मुक्ति किस प्रकार होती है? इस तरह जिज्ञासा करने पर "तत्त्वज्ञान होनेसे मुक्ति होती है" ऐसा निश्चित हुआ। यह सिद्धान्त चार प्रकारका है—सर्वतन्त्र, प्रतितन्त्र, अधिकरण और अभ्युपगम। जो विषय सभी शास्त्रोंमें स्वीकृत हुआ है इस प्रकार विषय स्वीकारका नाम सर्वतन्त्रसिद्धान्त है। जैसे, परधनापहरण, परस्त्रीसंसर्ग आदि दोष सर्वतोभावसे अकर्त्तव्य है, फिर दीनके प्रति दया प्रभृति सत्कर्म सभी शास्त्रोंके अभिमत हैं, इसीको सर्वतन्त्रसिद्धान्त कहते हैं। जो विषय शास्त्रान्तरसम्मत नहीं है, ऐसे विषयके स्वीकारको प्रतितन्त्रसिद्धान्त कहते हैं; अर्थात् जो एक शास्त्रसिद्ध है किन्तु अन्य शास्त्रविरुद्ध, वही प्रतितन्त्रसिद्धान्त है। यथा, इन्द्रियका भौतिकत्व सांख्य शास्त्र विरुद्ध है, लेकिन न्यायशास्त्र संगत है; अतएव यह प्रतितन्त्रसिद्धान्त हुआ।

एक पदार्थके सिद्ध होने पर उसके आनुषङ्गिक जिस पदार्थकी सिद्धि होती है वह अधिकरणसिद्धान्त है। यथा, इन्द्रियको नानात्व सिद्धि द्वारा इन्द्रियसे भिन्न आत्मरूप एकवस्तुकी सिद्धि हुई है, यही अधिकरण-सिद्धान्त है। जो विषय साक्षात् सूत्रमें नहीं कहा गया अथच उसका धर्मकथन द्वारा प्रकारान्तरमें स्वीकार किया गया है, उसे अभ्युपगमसिद्धान्त कहते हैं। यथा, गौतमने मनको साक्षात् इन्द्रिय नहीं बतलाया है, अथच मनको सुख साक्षात्कारादि करण स्वीकार कर प्रकारान्तरमें इन्द्रिय कहा है।

अवयव—विचाराङ्ग वाक्यविशेषको अवयव कहते हैं। अवयवके पांच भेद हैं,—प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। इस पञ्चावयवको न्याय कहते हैं।

प्रतिज्ञा—जिस विषयका व्यवस्थापन करना होगा, उस उपन्यासको प्रतिज्ञा कहते हैं; यथा—पर्वत पर वह्निके साधनार्थ 'पर्वतो वह्निमान्' अर्थात् पर्वत पर अग्नि है इत्यादि वाक्य।

हेतु—किस हेतु पर्वत पर वह्नि है, इस जिज्ञासाके निरासार्थ तदनुमापक हेतुका जो उपन्यास है, उसे

हेतु कहते हैं; अर्थात् साध्यको साधन करनेके लिये प्रयुक्त लिङ्गवाक्यका नाम हेतु है। जैसे—उस जगह 'धूमात्' अर्थात् धूमहेतु इस वाक्यका उपन्यास है। यह हेतु दो प्रकारका है—अन्वयी और व्यतिरेकी। पर्वत पर धूम रहनेसे वह्नि क्यों रहती है? इस आशङ्काके निवारणार्थ जिस जिस स्थान पर धूम रहता है उसी उसी स्थान पर वह्नि रहती है। यथा—रन्धनशाला इत्यादि वाक्य प्रयोजनको व्यतिरेकी उदाहरण कहते हैं।

१। प्रतिज्ञा। पर्वत पर वह्नि है वा पर्वत वह्निमान् है।

२। हेतु। धूम होनेके कारण।

३। उदाहरण। जहां जहां धूम है, वहां वहां वह्नि है। जैसे पाकशालादि।

उक्त उदाहरण वाक्य द्वारा वह्निविशिष्ट पर्वतरूप साध्यके साथ पाकशालादिरूप दृष्टान्तका धूमवत्त्वादिरूप साधर्म्य वा एक रूपभाव होनेसे यहां पर अन्वयीहेतु हुआ है।

व्यतिरेकी हेतु—फिर पूर्वोक्त शङ्कानिराकरणार्थ जहां वह्नि नहीं रहती, वहां धूम भी नहीं रहता। यथा—पुष्करिणी इत्यादि वाक्यप्रयोगको व्यतिरेक उदाहरण कहते हैं। अर्थात् जो न्यायवाक्यके अन्तर्गत उदाहरण वाक्य द्वारा साध्य है और दृष्टान्तका वैधर्म्य वा विरुद्धरूपता बोध होता है, उस न्यायान्तर्गत हेतुवाक्यको व्यतिरेकी हेतु कहते हैं।

१। प्रतिज्ञा। पर्वत पर वह्नि है।

२। हेतु। धूम होनेके कारण।

३। उदाहरण। जहां धूम नहीं है, वहां वह्नि नहीं है। यथा—ह्रद, जलाशय प्रभृति।

इस उदाहरण वाक्य द्वारा पर्वतरूप पक्ष (वह्निका अभाव प्रभृति विरुद्धधर्म)-का ह्रदमें बोध होता है, अतएव यहां पर व्यतिरेकी हेतु हुआ है।

साध्य-दृष्टान्तका एकरूपतारूप साधर्म्य निबन्धन अन्वय व्यतिरेककल्पना प्राचीन सङ्गत है। इस पर नव्य लोग कहते हैं कि न्यायके अन्तर्गत उदाहरण वाक्य द्वारा हेतु और साध्य (लिङ्गी)-का अन्वयसहचार वा अन्वयव्याप्ति बोध होती है, वही न्यायान्तर्गत हेतुवाक्य अन्वयी हेतु है। (दो वस्तुओंके एक साथ रहनेको अन्वयसहचार, अभावद्वयके एकत्रावस्थान को व्यतिरेक-सहचार और उसके इस सहचारद्वयके नियत वा अव्यभिचारी होनेसे उसे क्रमशः अन्वय और व्यतिरेकव्याप्ति कहते हैं।)

पूर्वोक्त जिस जिस स्थान पर धूम हैं वहां वहां वह्नि है, इस उदाहरण वाक्यसे धूमरूप हेतु और वह्निरूप साध्यके अन्वयसहचार वा धूममें वह्निको अन्वयव्याप्तिका बोध हुआ, अतः तत्रत्य हेतुवाक्य अन्वयीहेतु हुआ। जिस वाक्य द्वारा हेतुसाध्यके व्यतिरेकसहचार वा व्यतिरेक व्याप्तिका बोध होता है, वह न्यायान्तर्गत हेतुवाक्य व्यतिरेकी हेतु है

उपनय—पक्षमें हेतुबोधक वाक्यका नाम उपनय है। व्यतिरेकी उपनयकी जगह भी हेतुके अभावका अभाव होनेसे प्रकारान्तरमें हेतुका बोध होता है। यह उपनय भी दो प्रकारका है, अन्वयी और व्यतिरेकी। अन्वयी यथा—

जहां जहां वह्नि है, वहां धूम है। जैसे—पाकशाला। व्यतिरेकी यथा—जहां वह्नि नहीं है, वहां धूम नहीं है। जैसे ह्रदादि।

निगमन—हेतु कथन द्वारा प्रतिज्ञावाक्यके पुनः कथनको निगमन कहते हैं, अर्थात् न्यायमें प्रकृतसाध्यके उपसंहार वाक्यका नाम निगमन है। जैसे 'तस्मात् वह्निमान्' अर्थात् उस हेतु पर्वत पर वह्नि है, इत्यादि वाक्य।

निगमन—अतएव धूम है इसीसे पर्वत वह्निमान् है।

अनेक नव्यनैयायिक उपनय और निगमन वाक्यार्थबोधसे भी व्याप्तिज्ञानका स्वीकार करते हैं और पर्वत ऐसे शब्दसे वह्निनव्याप्यवान् इत्यादि अर्थ लगाते हैं। ये सब विषय और भी सूक्ष्मातिसूक्ष्मरूपसे नव्यन्यायमें आलोचित हुआ है।

यहां पर बहुतोंको आशङ्का हो सकती है कि अन्यदार्शनिकगण (वेदान्तिक) उदाहरण, उपनय और निगमन ये तीन प्रकारके अवयव स्वीकार करते हैं और ये ही तीन अवयव उनके मतसे न्याय हैं। वे गौतमका मत पञ्चावयव स्वीकार नहीं करते। गौतमने पञ्चावयव को स्वीकार किया है, इस सम्बन्धमें चिन्तामणिकार

प्रभृतिने ऐसी युक्ति दी है। पहले देखना होगा कि न्यायका प्रयोग क्यों होता है? इस विषयमें सभी स्वीकार करेंगे कि किसी विषयमें सन्देह उपस्थित होने पर उसे दूर करनेके लिए तत्त्वप्रश्नाधीन न्यायका प्रयोग हुआ करता है; अतएव यह देखना उचित है कि किस प्रकार प्रश्नसे न्यायका प्रयोग होता है। यथा—पर्वत पर अग्निका संशय होने पर वहां अग्नि है वा नहीं? ऐसा प्रश्न होता है।

इसके उत्तरमें यदि कहा जाय कि जहां धूम है वहां वह्नि है, तो प्रश्नकारीका इस वाक्य द्वारा संशय दूर नहीं होता, इस कारण अजिज्ञासित दोषरूप अर्थान्तरग्रस्त हो जाता है। अतएव इस प्रश्नके उत्तरमें पहले तुम्हें कहना होगा कि पर्वत पर वह्नि है। पीछे वह्नि है, इसका प्रमाण क्या? इसके उत्तरमें यह कहना पड़ेगा कि धूम होनेके कारण। पीछे धूम होनेके कारण वह्नि रहेगी, उसीका क्या प्रमाण है? तब कहना होगा कि जहां धूम है वहां वह्नि है। धूम रहनेसे वह्नि अवश्य रहती है। यथा—पाकशाला। अतएव प्रश्नाधीन प्रतिज्ञादिक्रमसे ही वाक्य प्रयुक्त हुआ करता है, इस कारण नैयायिकोंने प्रतिज्ञादि पञ्च अवयवको ही न्याय माना है।

वात्स्यायन-भाष्यसे मालूम होता है कि कोई कोई दश प्रकारका अवयव स्वीकार करते हैं। पूर्वोक्त प्रतिज्ञादि पांच प्रकार और जिज्ञासा, संशय, शक्यप्राप्ति, प्रयोजन तथा संशयव्युदास (संशय-निवृत्ति) यह दश प्रकार न्यायावयव है। गौतमने प्रतिज्ञादि पञ्चवाक्यको ही निर्णेतव्य अर्थके निर्णय विषयमें समर्थ बतला कर उक्त पञ्चवाक्यको ही न्यायावयव स्वीकार किया है। जिज्ञासा प्रभृति परम्पराक्रमसे निर्णेतव्य अर्थके निर्णय विषयमें उपयोगी होने पर भी स्वतः तादृश अर्थ-निर्णयमें समर्थ नहीं होती, इस कारण जिज्ञासादि पञ्चको न्यायावयव नहीं माना है।

कोई कोई उदाहरण और उपनय इन्हीं दोको न्यायावयव मानते हैं, क्योंकि यही दो साध्यसिद्धिके उपयोगी हैं। व्याप्तिपक्षधर्मतादि निर्णय द्वारा निर्णेतव्य अर्थका निर्णय करता है। इत्यादि रूप न्यायावयवके संख्याविषयमें और भी अनेक मत हैं। गौतमने न्यायका पञ्चावयव स्वीकार किया है, इस कारण पञ्चावयवका विषय ही लिखा गया, अन्यान्य मतका विषय आलोचित नहीं हुआ।

तर्क—आपत्ति विषयको तर्क कहते हैं। यथा—पर्वत पर यदि वह्नि नहीं रहती, तो वहांसे धूआं नहीं निकलता, क्योंकि धूम वह्निव्याप्य है। गौतमने तर्कका कोई विभाग नहीं किया, किन्तु अन्यान्य नैयायिकोंने इसे ५ श्रेणियोंमें विभक्त किया है; आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अनवस्था और प्रमाणबाधितार्थ-प्रसङ्ग।

निर्णय—असन्दिग्ध ज्ञान ही निर्णय है, अर्थात् विवेचना करके पक्ष और प्रतिपक्ष द्वारा जो अर्थावधारण होता है, उसे निर्णय कहते हैं।

वाद—परस्पर जिगीषु न हो कर केवल प्रकृत विषयके तत्त्व निर्णयार्थ वादी और प्रतिवादीके विचारको वाद कहते हैं, अर्थात् प्रमाण और तर्क द्वारा स्वपक्ष साधन और परपक्षदूषणपूर्वक सिद्धान्त अविरोधी पञ्चावयवयुक्त वादी और प्रतिवादीकी उक्ति तथा प्रत्युक्ति कथनको वाद कहते हैं। यहां आशङ्का हो सकती है कि वादी और प्रतिवादी दोनोंका वाक्य किस प्रकार प्रमाणतर्कादिविशिष्ट हो सकता है? इसका उत्तर यही है कि लक्षणस्थ प्रमाणादि शब्दका अर्थ जो है, वही समझना होगा। यदि मनुष्य भ्रमवश प्रमाणाभास, तर्काभास, सिद्धान्त और न्यायाभासका प्रयोग करे, तो विचारकी वादत्वहानि होती है।

वादविचारमें सभीको अधिकार नहीं है। जो प्रकृत विषयके तत्त्वनिर्णयेच्छु, यथार्थवादी, वञ्चकतादिदोषशून्य, यथाकालमें प्रकृतोपयोगी कथनमें समर्थ हैं, जो सिद्धान्तविषयका अपलाप नहीं करते तथा युक्तिसिद्ध-विषय स्वीकार करते हैं, वे ही यथार्थमें वादविचारके अधिकारी हैं।

किन्तु विजिगीषावशतः मनुष्य यदि प्रमाणादि कह कर प्रमाणभासादिका प्रयोग करे, तो वह वाद नहीं होगा। तत्त्वनिर्णयके लिये वादप्रतिवाद ही वाद लक्षणका लक्ष्य है और निजपक्ष दृढ़ करनेके लिये हेतु

उदाहरणका अधिक प्रयोग युक्त होनेसे वादविचारकी जगह अवयवका आधिक्य दोषावह नहीं है। उदाहरण वा उपनयरूप अवयवप्रयोग नहीं करनेसे प्रकृतार्थ सिद्ध नहीं होता, इस कारण लक्षणसूत्रस्थ पञ्चावयव शब्द द्वारा न्यूनावयवका ही प्रतिषेध किया गया है, अधिकावयवका नहीं। लक्षणसूत्रस्थ पञ्चावयवयुक्त इस शब्द द्वारा हेत्वाभासका निरास और सिद्धान्तविरोधी शब्द द्वारा अपसिद्धान्तका भी निरास किया गया है। हेत्वाभास निग्रहस्थानान्तर्गत होने पर भी हेत्वाभासका पृथगभिधान किया गया है। इस विषयमें वृत्तिकार और वार्त्तिककार आदिका मत इस प्रकार है।

वार्त्तिककार—वादमें कथनीय होनेके कारण हेत्वाभासका पृथगभिधान हुआ है, यह बात स्वीकार करने पर न्यूनाधिक अपसिद्धान्तादि और वादमें कथनीय होनेसे उसका भी पृथगभिधान किया जा सकता है। अतएव विद्याप्रस्थानसंदर्शनार्थ ही हेत्वाभास पृथक् रूपसे कथित हुआ है।

वृत्तिकार—निग्रहस्थानान्तर्गत हेत्वाभास कथनसे ही विद्याविषयका भेद जाना जा सकता है, इसीसे हेत्वाभासके पृथक् उपादानकी कोई आवश्यकता नहीं। इस प्रकार वार्त्तिकके प्रति दोषारोप करके अन्यरूप मीमांसा की गई है। भाष्यकारका मत ही युक्तियुक्त है, इस कारण यहां पर अन्य मत पर विचार नहीं किया गया।

जल्प—प्रमाण, तर्क, छल, जाति और निग्रहस्थान द्वारा यथायोग्य स्वपक्षसाधन और परपक्ष प्रतिषेधयुक्त वादी तथा प्रतिवादीकी उक्ति और प्रत्युक्तिको जल्प कहते हैं। जल्प विचारविजिगीषावशतः हुआ करता है। इस जल्पमें प्रमाणाभास, तर्काभास और अवयवाभास हुआ करता है। स्वपक्षसाधन और परपक्षप्रतिषेधरूप विजिगीषुद्वयकी उक्ति प्रत्युक्ति ही यथार्थमें जल्पपदवाच्य है।

वितण्डा—स्वपक्ष साधनरहित परपक्षप्रतिषेधक जल्पको ही वितण्डा कहते हैं।

हेत्वाभास—प्रकृतविषयका वास्तविक साधन नहीं होने पर भी आपाततः प्रकृतविषयके साधनके जैसा जिसका बोध होता है उसे हेत्वाभास कहते हैं। अर्थात् इसका साधारण अर्थ यह है कि असाधक वा दुष्टहेतुको ही हेत्वाभास कहा जाता है। जिसका ज्ञान होने पर प्रकृत अर्थकी सिद्धि नहीं होती, उसे अनुमितिविषयमें दोष कहते हैं। यह दोष ५ प्रकारका है, व्यभिचार, विरोध, प्रकरणसम, असिद्धि और कालात्यय। दोष ५ प्रकारका होनेसे दुष्टहेतु (हेत्वाभास) भी ५ प्रकारका है, यथा सव्यभिचार, विरुद्ध, प्रकरणसम, असिद्ध और अतीतकाल।

व्यभिचार और अव्यभिचार—हेतुमें साध्यकी व्याप्तिका अभाव रह कर साध्याभावकी व्याप्तिके नहीं रहनेको व्यभिचार और व्यभिचारयुक्त हेतुको अव्यभिचार कहते हैं। यथा पर्वत पर धूम है, वह्नि होनेके कारण; यहां पर धूम साध्य और वह्नि हेतु है। धूमशून्य अयोगोलकमें (लौहपिण्ड) तथा धूमयुक्त पर्वतादि पर वह्नि है, अतः वह्निमें धूम वा धूमाभाव किसीकी भी व्याप्ति नहीं है। अतएव धूमशून्य स्थानमें स्थिति और धूमयुक्त स्थानमें स्थिति, इन दो स्थितिरूप साध्य और साध्याभाव व्याप्तिका अभाव ही वह्निमें धूमका व्यभिचार है एवं व्यभिचारविशिष्ट वह्नि सव्यभिचार है। इसका तात्पर्य यह कि धूमके रहनेसे वह्नि अवश्य रहती है, किन्तु वह्निके रहने पर जो धूम रहेगा, सो नहीं; धूम रह भी सकता है और नहीं भी रह सकता है। पर्वतादि पर वह्नि हेतु धूम है सही, लेकिन अयोगोलकमें धूम नहीं है इसीसे यह व्यभिचार हुआ। व्यभिचारका ज्ञान रहने पर पक्षमें साध्यव्याप्यहेतुं ज्ञानरूप लिङ्गपरामर्श नहीं हो सकता। इस कारण प्रकृतार्थसिद्धि भी नहीं हो सकती। सुतरां व्यभिचार दोष हुआ।

विरुद्ध—जो प्रकृतसिद्धान्तका विरोधी है उसे विरुद्ध कहते हैं।

प्रकरणसम वा सत्प्रतिपक्ष—तुल्यबल परामर्शकालीन परस्पर विरुद्ध अर्थ साधनके निमित्त तुल्य बलसंयोग द्वारा प्रयुक्त हेतुद्वयको सत्प्रतिपक्ष कहते हैं। एक पक्षका कहना है कि शब्द रूपादिकी तरह वहिरिन्द्रियग्राह्य होनेके कारण अनित्य है; फिर दूसरे पक्षका कहना है, कि शब्द आकाशादिकी तरह स्पर्शशून्य है, अतः वह नित्य है। यहां पर जिस समय अन्यतर पक्षमें हेत्वा-

भासादिका उद्भावन नहीं होगा, उस समय वहिरिन्द्रियग्राह्यत्व एवं अर्थशून्यत्वरूप हेतु द्वारा परस्पर विरुद्धार्थ साधनमें समानबलयुक्त होनेसे सत्प्रतिपक्ष होगा। किन्तु अन्यतरपक्षमें तर्कादि द्वारा बलका आधिक्य वा हेत्वाभासादि द्वारा न्यूनता होनेसे सत्प्रतिपक्ष नहीं होगा। परस्पर विरुद्धार्थ साधनके निमित्त प्रयुक्त हेतुद्वयकी अदुष्टता नहीं हो सकती, इस कारण सत्प्रतिपक्षको जगह उत्तरकालमें जिस पक्षमें जैसा हेत्वाभास उद्भावित होगा वह पक्षीय हेतु वैसा ही हेत्वाभास द्वारा दुष्ट होगा। यदि वादी प्रतिवादी अथवा मध्यस्थ किसी पक्षमें हेत्वाभास उद्भावन न करे, तो उस समय हेतुका दुष्टत्व व्यवहार नहीं होगा।

असिद्ध—साध्यकी तरह हेतु यदि पक्षमें असिद्ध वा अनिश्चित हो, तो उसे असिद्ध कहते हैं। यथा—छाया द्रव्य, गति होनेके कारण, यहां पर छाया पक्ष है और द्रव्यत्वसाध्य गति हेतु है। अर्थात् यहां पर गतिको हेतु करके छायाका द्रव्यत्व सिद्ध किया गया है। किन्तु नैयायिकके मतसे छायामें द्रव्यभाव (द्रव्यत्व) जैसा असिद्ध है, वैसा ही गतिमत्त्व भी असिद्ध वा अनिश्चित है, अतः इस प्रकार हेतुका नाम असिद्ध वा साध्यसम है।

कालातीत वा वाधित पक्षमें साध्यसत्ताका काल अतीत होनेसे पक्षमें साध्यसाधनके लिये हेतुको कालातीत कहते हैं। जिसका एक देश निजकालके अतीत होने पर अभिहित होता है, उसी हेतुका नाम कालातीत है।

छल—वक्ता जिस अर्थतात्पर्यसे जिस शब्दका प्रयोग करता है उस शब्दका वैसा अर्थ ग्रहण न कर तद्विपरीत अर्थकी कल्पना करते हुए मिथ्या दोषारोप करनेको छल कहते हैं। वादिवाक्यको अर्थान्तरकल्पना अर्थात् वक्ताके अभिप्रायसे अन्यार्थ वा तात्पर्यको कल्पना कर वादिवाक्यके प्रत्याख्यानको छल कहते हैं। यथा—मैं हरिका प्रसाद खाता हूं। यहां पर हरि शब्दका विष्णुरूप तात्पर्य न ग्रहण कर वानररूप अर्थकी कल्पना करके उसका तिरस्कार करना, यही छल है। यह छल तीन प्रकारका है, वाक्छल, सामान्य छल, उपचार छल।

अनेकार्थ शब्द प्रयोग करनेसे वादीके अभिप्रेतार्थ भिन्न अर्थको कल्पना करके वादिवाक्य प्रत्याख्यानको वाक्छल कहते हैं। यथा—'समागत वाग्मी नवकम्बलधारी', यह वादिवाक्य सुन कर प्रतिवादी कहता है, इसके एक कम्बल है, नौ कम्बल कहां है? यही प्रतिवादीका वाक्य वाक्छल है। नवकम्बल शब्दसे नूतनकम्बल और ९ कम्बल ये दो अर्थ हो सकते हैं, किन्तु वादीने नवशब्दका 'नूतन' ऐसा अर्थ लगाया है, पर प्रतिवादीने उस अर्थका परित्याग कर ९ संख्या ऐसा अर्थ किया है। यहां पर प्रतिवादीने जो वादीके वाक्यका दूसरा अर्थ लगाया वही वाक्छल है।

सम्भवपर सामान्यतः अर्थाभिप्रायसे अभिहित वादिवाक्यके असम्भव अर्थको कल्पना करके सामान्यधर्मका कदाचित् अतिक्रम निवन्धन वादिवाक्यप्रत्याख्यानको सामान्य छल कहते हैं। यथा—वादीने कहा 'ब्राह्मण विद्वान् होते हैं।' इस पर प्रतिवादी बोला, ब्राह्मण यदि विद्वान् हों, तो ब्राह्मण शिशु भी ब्राह्मण होनेके कारण विद्वान् हो सकते हैं, किन्तु वैसा नहीं होता, सुतरां तुम्हारी बात मिथ्या है।

अभी देखना चाहिये कि वादीका अभिप्राय क्या था, उसका अभिप्राय था कि सामान्यतः ब्राह्मणमें विद्या सम्भवपर है। प्रतिवादीका कहना है, ब्राह्मण होनेसे ही विद्वान् होगा, वादिवाक्यके ऐसे असम्भूत अर्थको कल्पना कर, विद्वान् भिन्न भी ब्राह्मण होते हैं, अतएव ब्राह्मणत्वरूप सामान्यधर्म विद्याका अतिक्रम करता है, इस कारण ब्राह्मणका विद्वान् होना सम्भव है, अतएव इस वाक्यमें प्रतिवादीने मिथ्यात्वारोप किया है, सुतरां प्रतिवादीका उक्त वाक्य यहां पर सामान्य छल हुआ।

शब्दके वाच्य और लाक्षणिक भेदसे अर्थ दो प्रकारका है। इनमेंसे एकतात्पर्याभिप्रायसे वादीके शब्दप्रयोग करने पर अपरार्थको कल्पना कर वादिवाक्यके प्रत्याख्यानको उपचार छल कहते हैं। जैसे—वादीने कहा, 'मेरा मित्र गङ्गामें वास करता है,' इस पर प्रतिवादी बोला, तुम्हारा मित्र गङ्गाके किनारे रहता है, इस कारण तुम्हारी बात मिथ्या है। अब यहां गङ्गाके दो अर्थ होते हैं, प्रथम वाच्यका अर्थ गङ्गाजल और द्वितीयका गङ्गातीर। वादीने लक्ष्यार्थाभिप्रायसे वाक्यका प्रयोग

किया है। शब्दार्थ ग्रहण कर प्रतिवादीने उसका प्रत्याख्यान किया है।

जहां शब्दके शक्तिभेद वा लक्षणाभेदसे शब्दार्थ अनेक प्रकार होंगे, वहां वाक्‌छल और जहां शक्तिलक्षणाभेदसे शब्दार्थ अनेक प्रकार होंगे वहां उपचारच्छल होगा। वाक्‌छल और उपचारछलमें केवल इतना ही प्रभेद है।

जाति—व्याप्तिनिरपेक्ष किसी साधर्म्य वा वैधर्म्य द्वारा परपक्ष खण्डनको जाति कहते हैं। इस जातिका दूसरा नाम स्वव्याघातक उत्तर वा असदुत्तर भी है। असदुत्तरको अर्थात् वादिकर्त्तृक संस्थापित मत दूषणमें असमर्थ अथवा निजमतका हानिजनक जो उत्तर है उसे जाति कहते हैं। यह जाति २४ प्रकारकी है। यथा—साधर्म्यसम, वैधर्म्यसम, उत्कर्षसम, अपकर्षसम, वर्ण्यसम, अवर्ण्यसम, विकल्पसम, साध्यसम, प्राप्तिसम, अप्राप्तिसम, प्रसङ्गसम, प्रतिदृष्टान्तसम, अनुत्पत्तिसम, संशयसम, प्रकरणसम, अहेतुसम, अर्थापत्तिसम, अविशेषसम, उपपत्तिसम, उपलब्धिसम, अनुपलब्धिसम, नित्यसम, अनित्यसम और कार्यसम।

१। साधर्म्यसम—व्याप्तिनिरपेक्ष स्थापनाहेतुको वस्तुका साधर्म्यमात्र ग्रहण कर स्थापनार्थ विपरीतार्थके आपादान वा प्रसञ्जनको साधर्म्यसम कहते हैं। यथा-घटवत्, प्रयत्ननिष्पन्न होनेके कारण शब्द अनित्य है। इस पर प्रतिवादीने कहा, यदि घटका धर्म प्रयत्न निष्पन्नत्व होनेसे शब्द अनित्य हो, तो आकाशधर्म स्पर्शशून्यत्व भी शब्दमें है, इस कारण शब्द भी नित्य हो सकता है, यह प्रतिवादि-दत्त आपादन ही जाति है। इस प्रकार सभी जगह जाति होगी। वादिवाक्यका सादृश्य ग्रहण कर वादिवाक्य खण्डनमें उद्यत होनेके कारण वादिपक्षखण्डन द्वारा निज पक्ष भी खण्डित होता है, सुतरां जात्युत्तरको स्वव्याघातक उत्तर कहते हैं।

२। वैधर्म्यसम—व्याप्तिनिरपेक्ष वैधर्म्यमात्र ग्रहण कर प्रत्यवस्थानको वैधर्म्यसम कहते हैं। यथा—जो जो अनित्य नहीं है, वह प्रयत्न निष्पन्न नहीं है, जैसे, आकाश। शब्द प्रयत्ननिष्पन्न है, सुतरां शब्द अनित्य है। इस पर प्रतिवादीने कहा, 'यदि नित्य आकाशमें वैधर्म्य प्रयत्ननिष्पन्नत्व होनेके कारण शब्द अनित्य हो, तो अनित्य घटवैधर्म्य स्पर्शशून्यत्व होनेके कारण शब्द नित्य होगा। प्रयत्न निष्पन्नपदार्थ सावयव होता है। यथा—घट, शब्द सावयव नहीं है, अतएव घटवत् अनित्य नहीं है।

३। उत्कर्षसम—दृष्टान्तसाधर्म्यमात्र ग्रहण कर पक्षमें साध्यतर दृष्टान्तधर्मके आपादनको उत्कर्षसम कहते हैं। यथा—यदि घटधर्म प्रयत्न निष्पन्न होनेके कारण शब्द घटवत् अनित्य हो, तो घटवत् रूपवान् होगा।

४। अपकर्षसम—दृष्टान्तसाधर्म्य ग्रहण कर पक्षमें पक्षवृत्ति धर्मके अभावापादनको अपकर्षसम कहते हैं। यदि घटधर्म प्रयत्न निष्पन्नत्व होनेके कारण घटवत् अनित्य हो, तो घटवत् अश्रावण (श्रवणेन्द्रियका अगोचर) होगा।

५। वर्ण्यसम—पक्षसाधर्म्य आदान कर दृष्टान्त पक्षवृत्ति सन्दिग्ध साध्यत्वादिके आपादनको वर्ण्यसम कहते हैं।

६। अवर्ण्यसम—दृष्टान्तसाधर्म्य ग्रहण कर दृष्टान्त पक्षमें अवर्ण्यत्वके अर्थात् दृष्टान्तधर्म निश्चितरूपमें साध्यत्वादिके आपादनको अवर्ण्यसम कहते हैं।

७। विकल्पसम—हेतुविशिष्ट दृष्टान्तका धर्म नाना प्रकार होनेके कारण तत्साधर्म्ययुक्त पक्षमें नाना धर्मके आपादनको विकल्पसम कहते हैं।

८। साध्यसम—पक्ष और दृष्टान्तका साधर्म्य ग्रहण कर लिङ्गविशिष्ट पक्षकी तरह दृष्टान्तके साधनीयार्थ आपादनको साध्यसम कहते हैं।

इस प्रकार और सभीके लक्षण और उदाहरण लिखे हैं, विस्तारके भयसे तथा ये सब लक्षण दुर्बोध्य होंगे यह सोच कर उनका विवरण नहीं लिखा गया।

निग्रहस्थान—प्रतिज्ञात विषयमें प्रतिवादीके दोष दान करने पर उस दोषके उद्धारमें अशक्त हो प्रतिज्ञात-विषयमें परित्यागादिरूप पराजयका जो कारण है उसी-का नाम निग्रहस्थान है। अर्थात् जिसके द्वारा निग्रह हुआ करता है उसे निग्रहस्थान कहते हैं। प्रकृतार्थ-विचारोपयोगी ज्ञानका विपरीत ज्ञान तथा विचार

विषयका अज्ञानमूलक ही वादी निग्रहीत हुआ करता है, इस कारण ताहृशविप्रतिपत्ति (विपरीत ज्ञान) अप्रतिपत्ति अज्ञान द्वारा सभी निग्रहस्थानको अनुस्यूत जानना होगा। यही कारण है, कि गौतमने विप्रतिपत्ति और अप्रतिपत्तिको निग्रहस्थान बतलाया है। यह निग्रहस्थान २२ प्रकारका है। यथा प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञाविरोध, प्रतिज्ञासंन्यास, हेत्वन्तर, अर्थान्तर, निरर्थक, अविज्ञातार्थक, अपार्थक अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननुभाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, मतानुज्ञा, पर्यनुयोज्योपेक्षण, निरनुयोग, अपसिद्धान्त और हेत्वाभास। सामान्य प्रकारसे बोध करनेके लिये दो एक विषय दिये जाते हैं।

प्रतिज्ञाहानि—स्वदृष्टान्तके प्रति दृष्टान्तधर्म स्वीकारको प्रतिज्ञाहानि कहते हैं। यथा—घटवत् इन्द्रियग्राह्य होनेके कारण शब्द अनित्य है। इस स्थापना पर प्रतिवादीने कहा, कि नित्य द्रव्यत्वादि इन्द्रियग्राह्य होनेके कारण इन्द्रियग्राह्यत्व अनित्य साधक नहीं हो सकता। इस प्रकार दोषारोप करने पर वादीने कहा, तब तो द्रव्यत्वादि जातिवत् घट भी नित्य होगा।

प्रतिज्ञान्तर—प्रतिज्ञातार्थ विषयका प्रतिषेध करनेसे अन्यधर्म द्वारा प्रतिज्ञातार्थके कथनको प्रतिज्ञान्तर कहते हैं। यथा—इन्द्रियग्राह्य होनेसे घटवत् शब्द अनित्य है। इस स्थापना पर इन्द्रियग्राह्य द्रव्यत्वादि नित्य होनेसे इन्द्रिय ग्राह्यत्व ही अनित्यत्वसाधक नहीं हो सकता, प्रतिवादीने इस प्रकार दोषारोप किया। इस पर वादीने कहा, द्रव्यत्वादि बहुनिष्ठ है। किन्तु घट और शब्द बहुनिष्ठ नहीं है। अतएव जातिके साथ एकरूप नहीं होनेसे घटवत् शब्द अनित्य होगा, इत्यादि।

प्रतिज्ञाविरोध—प्रतिज्ञा और हेतुके विरोधको प्रतिज्ञाविरोध कहते हैं। यथा—घटादिद्रव्य रूपादिगुणव्यतिरेकमें घटादिकी उपलब्धि नहीं होती। रूपादिगुणव्यतिरेकमें घटादिकी अनुपलब्धि होती है। घटादिनिष्ठ रूपादिगुण भिन्नताका अनुमापक न हो कर प्रतिषेधक होता है। इस कारण प्रतिज्ञा और हेतु परस्पर विरुद्ध है।

सोलह पदार्थोंके लक्षण लिखे गये। इन सब पदार्थोंके तत्त्वज्ञान होनेसे आत्मतत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है। आत्मा जो शरीरादिसे पृथग्भूत है वह स्पष्टरूपसे प्रतीयमान होता है। सुतरां शरीरादिमें आत्मत्वबुद्धिरूप मिथ्याज्ञान फिर उत्पन्न नहीं होता। इस प्रकार राग और द्वेषका कारणस्वरूप उस मिथ्याज्ञानके निवृत्त होने पर राग और द्वेषकी उत्पत्ति नहीं होती। यदि राग और द्वेष ही निवृत्त हुआ, तो उनका कार्यस्वरूप कर्म और धर्माधर्मात्मक प्रवृत्तिकी पुनर्वार उत्पत्तिकी सम्भावना क्या? फिर जब धर्म और अधर्म ही जन्मग्रहणके मूलीभूत हुआ है, तब धर्माधर्मके निवृत्त होने पर जन्मादि निवृत्त होगा इसमें और आश्चर्य ही क्या? सुख और दुःखके आयतन स्वरूप शरीरादिके अभावमें तत्त्वज्ञानीके मरनेके बाद फिर सुख वा दुःख कुछ भी उत्पन्न नहीं होता। सुख और दुःख एक ही समयमें निवृत्त हो जाता है, उसी दुःखनिवृत्तिको मुक्ति कहते हैं।

प्रमाण और प्रमेयका विषय लिखा जाता है। प्रमाण द्वारा प्रमेयपदार्थ निरूपित होगा।

गौतमने सोलह पदार्थोंके विषयको वर्णना कर परीक्षाका विषय कहा है। संक्षेपमें इसके विषयमें दो चार बात कह देना आवश्यक है। न्यायदर्शनमें अनेक पदार्थोंकी परीक्षाका विषय लिखा गया है। किसी विषयको स्वीकार करनेमें जो युक्तिका उपन्यास किया जाता है, उसे उसकी परीक्षा कहते हैं। जिस जिस विषयका संदेह होता है उसके तत्त्वावधारणके लिये परीक्षा हुआ करती है। असन्दिग्ध विषयकी परीक्षा नहीं होती। प्रमाणादिके किसी किसी स्थानमें जो संशय है वह अति संक्षेपमें लिखा जायगा।

चार्वाकने एक प्रत्यक्षको ही प्रमाण माना है, अनुमानादि सभी जगह सत्य नहीं होता, इस कारण उसे प्रमाण नहीं माना है। यथा मेघोन्नतिदर्शनमें वृष्टिसाधक अनुमान प्रमाण नहीं हो सकता, सुतरां अनुमान भी प्रमाण नहीं है। क्योंकि अनुमान विषयमें कभी सत्य कभी मिथ्या और कभी परस्पर विभिन्नमत होनेसे अनुमानादिमें प्रामाण्यसंशय हुआ करता है। इसमें न्यायदर्शनका अभिप्राय यह है, कि प्रमाण ही अनुमान है। सामान्य मेघोन्नति देख कर वृष्टिसाधक अनुमान

प्रमाण नहीं है, मेघोन्नति विशेष दर्शन ही वृष्टिसाधक अनुमान प्रमाण है। अतएव सामान्य मेघोन्नति देख कर वृष्टिकी अनुमिति मिथ्या हुई। अनुमितिके अयोग्य स्थानमें जो अनुमिति की गई है वह अनुमाताका दोष है, अनुमानका कोई दोष नहीं। जिस प्रकार साधन प्रकृति विषयमें अनुमितिका हेतु है, यदि उसी प्रकार साधन द्वारा अनुमिति मिथ्या हो, तो अनुमानका अप्राधान्य कहा जा सकता है। भाविवृष्टि-अनुमानविशेषमें मेघोन्नति ही हेतु है, सामान्य मेघोन्नति हेतु नहीं। सुतरां सामान्य मेघोन्नतिदर्शनजात अनुमितिके मिथ्या होने पर भी उससे अनुमानका अप्रामाण्य नहीं हो सकता।

गौतमने अनुमानप्रामाण्यके सम्बन्धमें प्रतिकूल तर्क-मात्रका निरास किया है। गौतमके परवर्ती नैयायिकोंने अनुमानप्रामाण्यके सम्बन्धमें अनुकूल तर्क भी दिखलाया है। विस्तार हो जानेके भयसे वे सब मत सामान्य भावमें दिये गए हैं।

जीवमात्र ही भविष्यत्सुखलाभके लिए नाना प्रकारके उपायका अवलम्बन किया करता है। मैं देखता हूं और सुनता हूं इत्यादि अनुभव तथा श्रवणयोग्य विषय सुननेके लिए एवं दृश्यविषय देखनेके लिए यत्न किया करता हूं। किन्तु बधिर मनुष्य सुननेके लिए और अन्ध मनुष्य देखनेके लिए प्रयत्न नहीं करता। इसका कारण यह है, कि चिन्ता करनेसे सब किसीको एक स्वरसे स्वीकार करना होगा कि बधिरके श्रवणेन्द्रिय और अन्धके चक्षुरिन्द्रिय नहीं हैं। इस कारण वह अपनेको अयोग्य समझ कर देखने वा सुननेका यत्न नहीं करता। अतएव यह स्वीकार करना होगा कि बधिर और अन्ध अपनी इन्द्रियका अभाव जानता है। अभी देखना चाहिए कि निज श्रवणेन्द्रिय वा चक्षुरिन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रमाणका अगोचर होनेके कारण उसका बोध प्रत्यक्षप्रमाण नहीं हो सकता। 'अतएव मेरे चक्षु हैं' इस ज्ञानके प्रति अनुमानको ही प्रमाण स्वीकार करना होगा। पीछे नव्यनैयायिकोंने इत्यादि रूपसे बहुतर युक्ति दी है।

वैशेषिक कदेशी कतिपय पण्डितोंका कहना है कि उपमान और शब्द स्वतन्त्र प्रमाण नहीं हैं, अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत हैं। जिस प्रकार धूमज्ञानवशतः पर्वत पर वह्निका और गोसादृश्य ज्ञानवशतः जन्तुविशेषका अनुमान हुआ करता है, उसी प्रकार उपमान अनुमानसे भिन्न प्रमाण नहीं है।

जो शब्दका स्वतन्त्र प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते, वे कहते हैं, कि 'पद्म अति सुन्दर है' ऐसे स्थान पर पहले पद्म और सुन्दर ये दो शब्द श्रवण द्वारा पद्म और सौन्दर्यका स्मरण होता है। जिस प्रकार प्रत्यक्षप्रमाणादि द्वारा अप्रत्यक्ष पर्वतमध्यस्थ वह्निकी अनुमिति होती है, उसी प्रकार चैत्र जाता है इत्यादि प्रत्यक्ष शब्द द्वारा अप्रत्यक्ष चैत्रगमनादिकी अनुमिति हुआ करती है। जिस प्रकार अनुमितिकी जगह धूमादि हेतुके साथ वह्नित्वादि साध्यका नियतसम्बन्ध है, उसी प्रकार चैत्रादिपदके साथ चैत्रादि पदार्थका भी नियतसम्बन्ध है। पद और पदार्थका नियतसम्बन्ध स्वीकार नहीं करने पर चैत्रपद द्वारा जिस प्रकार चैत्रका बोध होता है, उसी प्रकार चैत्र भिन्न अन्य वस्तुका भी बोध हो सकता है। अतएव पद और पदार्थका नियतसम्बन्ध स्वीकार करना होगा। सुतरां प्रामाण्य सम्बन्धमें अनुमान शब्दका कोई पार्थक्य नहीं है।

इस विषयमें गौतमका मत इस प्रकार है—उपमान और शब्द अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत नहीं हो सकता, कारण सामान्यतः अनुमिति हेतु और साध्यका व्याप्तिज्ञान सापेक्ष है अर्थात् जहां हेतुसाध्यकी व्याप्ति मालूम है, वहीं पर अनुमिति हुआ करती है, जहां मालूम नहीं है, वहां साध्यकी अनुमिति नहीं होती। उपमिति वा शब्दजन्यबोध व्याप्तिज्ञान व्यतिरेकमें भी हुआ करता है। उपमितिकी जगह पदार्थका सादृश्य ज्ञान-मात्र आवश्यक है, व्याप्तिज्ञानकी आवश्यकता नहीं।

यहां आशङ्का हो सकती है कि यदि केवल गो-सादृश्य ज्ञान ही गवय नामधारित्वका कारण हो, तो महिषादिमें भी गवय नामधारित्वका ज्ञान हो सकता है। यदि कहा जाय, कि सामान्यतः गोसादृश्य महिषमें रहने पर भी विलक्षण गो-सादृश्य महिषमें नहीं होनेके कारण

गवय नामधारित्व नहीं होगा। सादृश्य शब्द द्वारा विलक्षण सदृश ही वक्ताका अभिप्रेत जानना होगा। विशेषतः उपमान द्वारा पहले अज्ञात गवय पदवाच्य ही ज्ञानरूप संज्ञा सभीका बोध होता है।

वह्नि और धूमादिकी तरह घटादि पद और पदार्थका कोई स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है, अतएव शब्द अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत नहीं हो सकता। नव्यन्यायमें ही ये सब विषय विशेषरूपसे आलोचित और अन्यान्य नानामत खण्डित हुए हैं।

कोई कोई कहते हैं कि प्रत्यक्ष प्रमाण और अनुमानके अन्तर्गत स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है, यह वादिमत खण्डित हुआ है।

कोई कोई तो अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव और ऐतिह्य यह ४ प्रकारका अतिरिक्त प्रमाण स्वीकार करते हैं; किन्तु गौतमने इन सबका खण्डन कर अर्थापत्ति, अभाव और सम्भवको अनुमान प्रमाणके अन्तर्गत और ऐतिह्यको शब्दप्रमाणके मध्य निविष्ट किया है।

प्रमेयपरीक्षा—कोई कोई कहते हैं, कि चक्षुरादि इन्द्रिय ही समस्त विषयको प्रत्यक्ष करती है, अतएव चक्षुरादि इन्द्रिय ही आत्मा वा ज्ञानी है। फिर किसीका कहना है, कि यह शरीर प्रत्यक्ष कर्त्ता है, कोई कोई मनको ही कर्त्ता बतलाते हैं।

इस पर नैयायिकोंका सिद्धान्त इस प्रकार है—चक्षुरादि इन्द्रियको आत्मा नहीं कह सकते, क्योंकि चक्षुरादि एक एक इन्द्रिय द्वारा सभी विषयोंका प्रत्यक्ष नहीं होता, एक एक इन्द्रिय द्वारा एक एक विषयका प्रत्यक्ष हुआ करता है। अब तुम्हें यह कहना होगा कि चक्षुरादि इन्द्रिय भिन्न होनेसे रूपस्पर्शादिका प्रत्यक्षकर्त्ता भी भिन्न भिन्न है, किन्तु हमने गुलाबका रूप और स्पर्श दोनोंको ही प्रत्यक्ष किया है और हमने पहले देखा था कि इन सबका स्पर्श किया है, इत्यादि सार्वलौकिक प्रतीति द्वारा रूप और स्पर्शका एक ही प्रत्यक्ष हुआ करता है।

तिन्तिड़ी (इमली) देखने वा इसका विषय सोचनेसे जिह्वामें अम्लरस आ जाता है, यह लोकसिद्ध है। अभी देखना चाहिये, कि यदि इन्द्रिय आत्मा होती, तो तिन्तिड़ीद्रष्टाके चक्षुका रसानुभव नहीं था। इस कारण रसकी स्मृति नहीं हो सकती और चक्षुका धर्म तिन्तिड़ीदर्शन जिह्वाका उद्बोधक नहीं हो सकता, इस कारण स्मरण नहीं हो सकता।

अचेतन दधि और गोमय-संयोगसे वृश्चिक उत्पन्न हुआ करता है और स्वेदादिजात मक्षिकादि प्रहारोद्यत मनुष्यादिको देख कर डरके मारे भाग जाती हैं। अब देखना चाहिये कि उस वृश्चिकके उपादान गोमयादि अचेतन हैं और संस्कारशून्य होनेके कारण उपादानकारणसे संस्कारका संक्रम असम्भव है। सुतरां भयहेतु स्मरण नहीं हो सकता। नैयायिकोंका मत है कि पूर्वजन्मके संस्कार द्वारा आत्माका इहजन्ममें स्मरण हो सकता है।

मनको भी आत्मा नहीं कह सकते, कारण मन सुखदुःखादि ज्ञानमें करण है, करण कर्त्तासे भिन्न होता है, इस कारण मन कर्त्ता नहीं हो सकता। चक्षुरादि ज्ञान करणसापेक्ष होने पर भी सुख दुःखादिज्ञान करणसापेक्ष नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते, क्योंकि सामान्यतः ज्ञानमात्र ही करणसापेक्ष है। यह देखा जाता है, इस कारण सुख दुःखादिका ज्ञान भी जो करणसापेक्ष है वह हम लोग अनुमान कर सकते हैं और ज्ञानद्वयका अयौगपद्य कारणार्थ मनको अति सूक्ष्ममूर्त्त द्रव्य स्वीकार करना होगा। सुतरां अतिसूक्ष्म मन आत्मा नहीं हो सकता। आत्मा नित्य है वा अनित्य, इस विषय पर कुछ विचार करना आवश्यक है।

साधारणतः मनुष्यकी प्रवृत्तिके प्रति राग (इष्टसाधनता ज्ञान) कारण है, राग नहीं रहने पर वह किसी विषयमें प्रवृत्त नहीं होता। जातमात्र बालकके स्तन्यपानमें और गर्भसे अहर्निःसृत वानर-शिशुके शाखावलम्बनमें प्रवृत्ति क्यों होती है? इस पर नास्तिकोंका कहना है कि जिस प्रकार स्वभावतः ही बिना कारणके पद्मादिका विकाश और सङ्कोच हुआ करता है, उसी प्रकार स्वभावतः ही उक्त प्रवृत्तिका उदय होता है। इसके उत्तरमें नैयायिक कहते हैं, कि कार्यमात्र ही कारणसापेक्ष है, इसीसे पद्मादिका विकाश और सङ्कोच स्वभावतः बिना कारणके नहीं होता, अतएव पद्म

प्रभृतिका विकाशादिवत् स्वभावतः प्रवृत्त होंगे', ऐसा नहीं कह सकते। किन्तु प्रवृत्ति-कारण इष्टसाधनताज्ञान इहजन्ममें असम्भव है, क्योंकि वानरादि शाखावलम्बनादि इष्टसाधन इहजन्ममें प्रत्यक्ष नहीं करते। इस जन्ममें प्रत्यक्ष नहीं करनेसे अन्य सभी अनुभवज्ञान प्रत्यक्ष-मूलक होनेके कारण इष्टसाधनताका प्रत्यक्षभिन्न अनुभवज्ञान भी स्वीकार नहीं किया जा सकता, अतएव स्मरण स्वीकार करना होगा। किन्तु स्मरण पूर्वानुभव-व्यतिरेकमें नहीं होता, इस कारण आत्माके पहले यह विषय अनुभव था, यह अवश्य स्वीकार करना होगा। वानरशिशु आदिके शाखावलम्बनमें इष्टसाधनताका अनुभवज्ञान ऐहिक असम्भव होनेसे इस जन्मके पहले भी आत्मा थी और उस समय उसका यह विषय अनुभव था। उस अनुभवजन्य संस्कारसे इहजन्ममें उस विषयमें स्मरण हो कर प्रवृत्ति हुई है, यह बात स्वीकार करना आवश्यक है। इस प्रकार पूर्वजन्मकी प्राथमिक प्रवृत्तिके विषय पर विचार करनेसे उसके पूर्वकालमें भी आत्मा थी इत्यादि रूपमें तत्पूर्ववर्त्ती सभी जन्मके पहले आत्मा भी वर्त्तमान थी, यह मानना होगा। इससे यह मालूम हुआ कि किसी भी जन्मके समयमें उत्पन्न नहीं होने पर भी अवश्य आत्माको नित्य स्वीकार करना होगा।

आत्माका प्रथम जन्मस्मरण किस प्रकार होता है, नास्तिकोंके ऐसे प्रश्न पर नैयायिक लोग कहते हैं कि आत्माका जन्म प्रवाह अनादि है, सुतरां प्रथम जन्म नहीं हो सकता। विस्तार हो जानेके भयसे इस विषय पर और कुछ नहीं लिखा गया।

शरीर-परीक्षा—शरीर-सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। कोई कोई कहते हैं कि पञ्चभूतयोगसे शरीर उत्पन्न होता है, इस कारण शरीर पाञ्चभौतिक है। फिर किसीका कहना है कि आकाशयोग शरीरमें रहने पर भी आकाश उपादान कारण नहीं है, अतएव शरीर चातुर्भौतिक है। फिर कोई कहते हैं कि वायुयोग रहने पर भी शरीरके बहिर्देश और अभ्यन्तरमें सदागमनशील वायु उपादान कारण नहीं हो सकती। इस पर गौतम कहते हैं, कि शरीर पार्थिव है। जलादि शरीरमें उपष्टम्भमात्र अर्थात् सहयोगी संयोगमात्र है।

इन्द्रिय परीक्षा—इन्द्रिय सम्बन्धमें भी मतभेद है। कोई कोई कहते हैं कि अधिष्ठान गोलकादि इन्द्रिय-विषयके साथ सन्निकर्ष नहीं होने पर इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता, सन्निकर्षव्यतिरेकमें प्रत्यक्ष स्वीकार करनेसे चक्षुःसन्निहित विषयकी तरह असन्निहित विषयका भी प्रत्यक्ष हो सकता है। अतएव इन्द्रियके साथ विषयके सन्निकर्ष प्रत्यक्षको अवश्य कारण स्वीकार करना होगा। अब देखो, कि अधिष्ठान गोलकादिको इन्द्रिय माननेसे गोलकके साथ विषयका सन्निकर्ष नहीं होता, अतएव ऐसा होनेसे घटादि विषयका प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अतः स्वीकार करना होगा कि गोलकादि अधिष्ठानसे इन्द्रिय भिन्न है, किन्तु गोलकादिसे इन्द्रिय भिन्न होने पर भी इसके उपादानादि क्या हैं? इस पर गौतमने कहा है कि इन्द्रियगण भौतिक अर्थात् घ्राण पार्थिव, रसना जलीय, चक्षु तैजस, त्वक् वायवीय और श्रोत्र आकाशीय है।

इन्द्रियकी नानात्व-परीक्षा—कोई कोई कहते हैं कि सर्वशरीरव्यापी एक त्वगिन्द्रिय स्थानभेदसे नानारूप विषय ग्रहण किया करती है। इसके उत्तरमें नैयायिक लोग कहते हैं कि एक त्वकमात्र इन्द्रिय नहीं हो सकता, कारण एक त्वक्के इन्द्रिय होनेसे हस्तादि द्वारा स्पर्श प्रत्यक्षकालमें रूपादिका भी प्रत्यक्ष हो सकता है, चक्षुरादिस्थित त्वक् ही रूपादि ग्रहण करेगा, अन्य त्वक् नहीं।

बुद्धिपरीक्षा—शरीरादि भूतसे ज्ञानवान् अतिरिक्त है; किन्तु कोई कोई कहते हैं कि आत्मा चेतन है, ज्ञानवान् नहीं, महत्तत्त्व चित्तादि नामक बुद्धिरूप अन्तःकरण ही ज्ञानवान् है। सांख्यके मतसे चैतन्य और ज्ञान विभिन्न है। उन्होंने इस विषयमें अनुभव प्रमाण दिखलाया है, यथा 'हम लोगोंके ज्ञानका विषय है' मैं जानता हूं यह कहनेसे क्या जानते हो, ऐसी एक आकाङ्क्षा रहती है। विषयव्यतिरेकमें कोई ज्ञान नहीं होता, किन्तु उसके चैतन्य हुआ है, ऐसा कहनेसे किस विषयमें चैतन्य हुआ है यह आकाङ्क्षा नहीं रहती। पहले अचेतन

(अप्रबोध) हुआ था, अभी चैतन्य हुआ है, केवल यही बोध होता है। चैतन्यका कोई भी विषय नहीं है। अतएव सविषयक और निर्विषयक चैतन्य एक नहीं हो सकता, ज्ञान ही मूल शक्ति चैतन्य है, वह आत्मा का धर्म है, ज्ञानादि बुद्धिका धर्म है, ज्ञान बुद्धिका धर्म होने पर भी बुद्धिसे अतिरिक्त नहीं है। क्योंकि बुद्धि व्यतिरेकमें ज्ञानकी कदापि उपलब्धि नहीं होती। विषयदेशमें गमन कर बुद्धि ही घटपटादिका आकार धारण कर ज्ञान नामसे पुकारी जाती है। जिसे पहले जाननेकी इच्छा की थी, उसे अभी जानता हूं इत्यादि प्रत्यभिज्ञान और स्मरण आदि द्वारा बुद्धिका नित्यत्व सिद्ध हुआ है एवं चेतन अप्राकृतिक और विभु है, आत्मामें घटादि विषय प्रतिविम्बित नहीं हो सकता, इस कारण घटादि ज्ञान भी आत्माका नहीं हो सकता। इस पर नैयायिकोंका अभिमत है कि प्रत्यभिज्ञान बुद्धि किया करती है वा आत्मा, यह सन्देह है। अतएव प्रत्यभिज्ञान द्वारा बुद्धिका नित्यत्व सिद्ध नहीं हो सकता। ज्ञानाश्रयकी नित्यता हम लोगोंको अनभिप्रेत नहीं है। चैतन्य और ज्ञान यह विभिन्न नहीं है। हमारे चैतन्य नहीं था, अभी चैतन्य हुआ है, इत्यादि सार्वलौकिक व्यवहार द्वारा चैतन्यका विषय स्वीकार करना होगा। यदि कहा जाय, 'इस विषयमें मेरे चैतन्य न था,' इसका अर्थ यह है कि इस विषयमें मेरा ध्यान नहीं था, पर मुग्धके भी मनःसंयोग होता है, इस कारण उस समय चैतन्य नहीं रहता। पुनर्वार मनके स्वाभाविक अवस्थामें आनेसे ही ज्ञान हो सकता है। इस कारण मन स्वाभाविक अवस्थाको प्राप्त हुआ है, इसी तात्पर्यसे अभी उसके चैतन्य हुआ है, इत्यादि व्यवहार होता है। चैतन्यज्ञानसे अतिरिक्त होने पर भी मनःसंयोग अतिरिक्त नहीं है। ज्ञानाश्रयमें मनःसंयोग है अतः चैतन्य भी ज्ञान है। यह एक पदार्थका धर्म नहीं है, ऐसा नहीं कह सकते। बुद्धि विषयके ज्ञानमात्र है, लेकिन उपलब्धि नहीं करती। कारण उपलब्धि ज्ञानसे विभिन्न नहीं है। अतएव यह भी अयुक्त है। बुद्धिमें ज्ञान स्वीकार करनेसे उपलब्धि भी स्वीकार करनी पड़ेगी।

चेतन, अप्राकृतिक और विभु आत्मामें स्वीकार नहीं करने पर भी बुद्धि धर्मने ज्ञानादिका प्रतिबिम्ब स्वीकार किया है, अतएव वह आत्माको प्रतिबिम्ब नहीं कर सकता, ऐसा भी तुम नहीं कह सकते। यदि कहो, कि बुद्धि और ज्ञानादि विभिन्न नहीं हैं, तो इस पर भी विचार कर देखनेसे मालूम पड़ेगा कि घटपटादि निखिल विषय ज्ञानका भी रहना आवश्यक है। किन्तु निखिल विषयज्ञान कदापि नहीं होता और निखिल ज्ञानकी सत्ता अनुभूत नहीं होती एवं एक ज्ञाननाशमें अखिल ज्ञानाश्रय बुद्धिका नाश स्वीकार करने पर सभी ज्ञानका नाश हो सकता है। एक ज्ञान नष्ट हुआ, एक ज्ञान रहा, ऐसा नहीं कहा जाता। घटज्ञान और पटज्ञान एक बुद्धिसे अभिन्न होने पर घटज्ञान और पटज्ञान एक हो सकता है, लेकिन नैयायिकोंके मतसे ज्ञानादि गुण और आत्मद्रव्य परस्पर विभिन्न है तथा घटज्ञान और पटादिज्ञान परस्पर विभिन्न है, सुतरां पूर्वोक्त आपत्ति नहीं हो सकती।

मन सभी इन्द्रियोंके साथ एक कालमें संयुक्त नहीं हो सकता, क्रमशः विभिन्न इन्द्रियके साथ विभिन्नकालमें संयुक्त हुआ करता है और निखिल विषयके साथ एक कालमें इन्द्रियका सन्निकर्ष नहीं होनेसे एक कालमें निखिल ज्ञान नहीं होता। इस बुद्धि विषयमें और भी अनेक प्रकारकी विचार-प्रणाली प्रदर्शित हुई है।

विशेष बुद्धि शब्दमें देखो।

एकमात्र त्वक् ही इन्द्रिय है ऐसा कहनेसे भी चक्षु द्वारा रूप प्रत्यक्ष कालमें स्पर्श प्रत्यक्ष हो सकता है, क्योंकि चक्षुःस्थित त्वक् द्वारा स्पर्श प्रत्यक्ष होनेके कारण चक्षुस्थ त्वक्को स्पर्श प्रत्यक्षका कारण कहना पड़ेगा। सुतरां वस्तुके साथ चक्षुका सन्निकर्ष होने पर रूपवत् स्पर्श प्रत्यक्ष भी हो सकता है।

एकमात्र त्वगिन्द्रियमें मनःसंयोग होनेसे सभी इन्द्रियोंके साथ मनका संयोग स्वीकार करना होगा। सुतरां उस मतसे एक कालमें सभी इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष हो सकता है। किन्तु नैयायिकोंके मतमें इन्द्रियके विभिन्न होनेके कारण अति सूक्ष्म मनके साथ एक कालमें सभी इन्द्रियोंका संयोग नहीं हो सकता, मनःसंयोगरूप

कारणके नहीं रहने पर प्रत्यक्ष भी नहीं होगा। यदि कहो, कि एक त्वक्‌के इन्द्रिय होने पर भी गोलकादि अधिष्ठानाश्रित त्वग्‌भाग ही चक्षुरादि इन्द्रिय स्वीकार करना होगा और तादृश त्वग्‌भावमें मनःसंयोग नहीं रहने पर प्रत्यक्ष नहीं होगा, तब यदि विभिन्न त्वग्‌-भागको इन्द्रिय मान लिया जाय, तो प्रकारान्तरसे इन्द्रियका नानात्व ही स्वीकार किया गया, ऐसा समझना होगा।

प्राचीन न्यायका विषय एक प्रकारसे कहा गया। अब नव्य-न्यायके विषयमें दो एक बातें लिखी जाती हैं।

नव्यन्यायविषय कहनेमें पहले प्रमाणका विषय कहना आवश्यक है। गङ्गेशने गौतमसूत्रके मूल पर प्रमाण, अनुमान, उपमान और शब्द इन चार प्रमाणोंका निरूपण कर चिन्तामणि प्रस्तुत की हैं। यही चिन्तामणि नव्य-न्यायका प्रथम है। नव्य-न्याय-प्रदर्शित सभी विषयोंका उल्लेख विस्तार हो जानेके भयसे नहीं किया गया, केवल प्रमाणादिका विषय संक्षिप्त भावसे लिखा जाता है।

प्रमा या यथार्थ ज्ञान—प्रभ्वादी और विसम्वादीके भेदसे प्रमा और अप्रमा दो प्रकारकी है। यह प्रमेयान्तर्गत बुद्धिका विभाग है। इनमेंसे पूर्वानुभूत वस्तुका ज्ञान ही प्रमा है, तद्भिन्न सभी अप्रमा। इस प्रकार लक्षण जो पहले था, वह प्रमाण पदार्थके चार प्रकारके विभाग द्वारा अनुमित होता है, क्योंकि नव्य-न्यायमें प्रचलित तद्वत् तत्प्रकार ज्ञान (उस पदार्थके अधिकरणमें उसी पदार्थका ज्ञान)के ज्ञानमें प्रमा इस प्रकार प्रमालक्षण होने पर स्मृति भी प्रमाके अन्तर्गत होती है। सुतरां तत्करणत्व ले कर प्रमाणकी पञ्चविधत्वापत्ति होती है। मीमांसकने गौतमका इस तात्पर्यका अनुसरण करके ही अगृहीतग्राहित्व प्रमाका यह लक्षण किया है। पर हाँ, स्मृतिके करणमें तादृश प्रमाणत्व नहीं है इस कारण उसको प्रामाण्यापत्ति नहीं होती। वस्तुतः यही युक्त है, कि अगृहीतग्राहित्व ही प्रमात्व है, इस लक्षणमें धारावाहिक प्रत्यक्षादिप्रमामें अव्याप्ति दोष होता है। क्योंकि पूर्वानुभूत वस्तुको विषय करता है, इस कारण अगृहीत (अननुभूत) पदार्थग्राहित्व उसमें नहीं रहता और भ्रममें भी अति व्याप्ति दोष होता है। इसीसे उदयनाचार्यने कुसुमाञ्जलि ग्रन्थमें लिखा है, "अव्याप्तेरधिकव्याप्तेरलक्षणमपूर्वदृक्। यथार्थानुभवो मानं अनपेक्षतयेष्यते॥" अपूर्वदृक् अर्थात् अगृहीतग्राहित्वरूप प्रमात्व लक्षणयुक्त नहीं होता, क्योंकि पूर्वोक्त प्रकार अव्याप्ति और अतिव्याप्ति दोष होता है, अतएव यथार्थानुभवत्व ही प्रमालक्षण है। स्मरणात्मक-ज्ञानमें तादृश प्रमात्व नहीं होनेके कारण प्रमाण चार प्रकारका है। उक्त कारिका द्वारा यह भी प्रतीत होता है कि अनुभव और स्मृतिके भेदसे ज्ञान दो प्रकार तथा अनुभव और भ्रम प्रमादके भेदसे दो प्रकारका है, यह प्राचीन परम्परा-अङ्गीकृत है, नहीं तो मीमांसकसम्मत सभी अनुभव ही यथार्थ होने पर "यथार्थानुभवो मानं" यहां पर यथार्थ पद व्यर्थ होता है। गौतमने जो प्रत्यक्षलक्षणमें अव्यभिचारी पद द्वारा यथार्थ इन्द्रियसन्निकर्षजन्य ज्ञानको प्रत्यक्ष बतलाया है वह भी प्रमाप्रत्यक्ष है, लक्षणाभिप्रायसे ऐसा कहना होगा। स्मृतिमें प्रमाके जैसा तान्त्विक व्यवहार नहीं रहनेका क्या कारण? स्मृति और तद्विशिष्ट तत्प्रकारकत्वरूप प्रमात्वविशिष्ट होता है। इस कारण उसे प्रमाके अन्तर्गत कहना उचित है। ऐसा होनेसे यथार्थ ज्ञानमात्र ही प्रमा लक्षणयुक्त होता है। यही कारण है कि परिच्छेद वा नव्य-न्यायमें 'भ्रमभिन्नन्तु ज्ञानमात्रोच्यते प्रमा' ऐसा लक्षण प्रचलित हुआ है। अतएव यह कहना होगा कि स्मृति, समानाकारक अनुभवसापेक्ष होनेके कारण उसमें तान्त्विकका प्रमाव्यवहार नहीं है। अनुभव समानाकारक अनुभवान्तरकी अपेक्षा नहीं करता इस कारण उसे प्रमा ही तन्त्रमें व्यवहार किया है।

"मितिः सम्यक् परिच्छित्तिस्तद्वत्ता च प्रमातृता।
तदयोगव्यवच्छेदः प्रामाण्यं गौतमे मते॥"

आचार्यका कहना है कि यथार्थानुभवत्व प्रमालक्षण होने पर ईश्वरमें तादृश प्रमानुकूल कृतिरूप लक्षण प्रमातृत्व नहीं रहता। क्योंकि ईश्वरज्ञान नित्य है, उसमें प्रमाणजन्यत्वरूप प्रमात्व या प्रत्यक्षादिका अन्यतमत्वरूप यथार्थ अनुभवत्व नहीं है, सुतरां अन्यरूप प्रमालक्षण युक्त होता है। सम्यक् परिच्छित्ति अर्थात् स्मृति भिन्न

यथार्थ ज्ञान ही प्रमा है, उसका आश्रय जो प्रमाता तद्‌योगव्यवच्छेद अर्थात् किसी समय प्रमाकी अवत्ताका नहीं रहना ही प्रामाण्य है, ऐसा गौतमका अभिप्रेत है। नहीं तो "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यं आप्तप्रामाण्यात्" इस सूत्रके आप्तप्रामाण्यपदकी सङ्गति नहीं होती, आप्त-अर्थात् वाक्यार्थगोचर यथार्थ ज्ञानवत् पुरुषरूप वेदवक्ता ईश्वरमें प्रामाण्य नहीं रहता, क्योंकि जन्यप्रमा नहीं होनेसे प्रमासाधनस्वरूप प्रमाकरणत्व भी ईश्वरमें असम्भव है। जिस प्रामाण्यको हेतु करके समस्त वेदका प्रामाण्य संस्थापित होगा, ऐसा प्रामाण्य गौतमाभिप्रेत होने पर भी 'प्रत्यक्षानुमानशब्दाः प्रमाणानि' यहां पर प्रमाण शब्द यथार्थानुभवसाधनतात्पर्यमें उक्त हुआ है ऐसा कहना होगा, नहीं तो चतुर्विध प्रमाण सङ्गत नहीं होता। तत्त्वचिन्तामणिकार गङ्गेशोपाध्यायके मतसे सभी पदार्थतत्त्वके प्रमाणाधीन सिद्धि होती है, अतएव प्रमाणतत्त्वकी विवेचना सर्वथा कर्त्तव्य है। यह सोच कर उन्होंने प्रत्यक्षादि भेदसे चार खण्ड न्यायतत्त्व चिन्तामणिकी रचना की है—"प्रमाणाधीना सर्वेषां व्यवस्थितिरतः प्रमाणतत्त्वमत्र विविच्यते" ऐसी प्रतिज्ञा करनेका अभिप्राय यह है कि यह प्रमाणतत्त्व निरूपण करता हूं इस प्रकार प्रतिज्ञा करनेसे ही मनुष्य जान सकेंगे। इस शास्त्रके श्रवण वा अध्ययन करनेसे सभी विषयोंकी अभिज्ञता होगी। गौतमने प्रमेयसंशय आदि जो कुछ निर्देश किया है वह तत्त्व और प्रमाणके विस्तारप्रसङ्गमें ही विवेचित है। वस्तुतः उसमें उन्होंने प्रमाणेतर प्रथम प्रमाणके सम्बन्धमें यह शङ्का उत्थापन की है, "प्रमाणाधीनां तत्त्वं प्रतिपादयत् शास्त्रं परम्परया निःश्रेयसेन सम्बध्यते।" अर्थात् इस शास्त्रसे जो प्रमाणादिका तत्त्व साधन उत्पन्न होता है वह परम्परा निःश्रेयससाधन होनेके कारण इस शास्त्रके साथ मुक्तिका परम्परा प्रयोज्यप्रयोजकभाव सम्बन्ध है। अतएव जो प्रमा नहीं जानता, उसके प्रमाणज्ञान नहीं हो सकता। फिर विशिष्ट ज्ञान विशेषणज्ञानसापेक्ष होनेसे जिस प्रमातत्त्वज्ञानका पहले होना आवश्यक है उस प्रमातत्त्वका ज्ञान स्वतः अथवा परतः नहीं हो सकता। क्योंकि प्रभाकरके मतसे ज्ञान प्रामाण्य स्वतः ही ग्रह होता है अर्थात् उक्त मीमांसक कहते हैं कि ज्ञानका प्रमात्व (प्रामाण्य) उसी ज्ञानका विषय है। कारण ज्ञानमात्र स्वप्रकाशस्वरूप है। अतएव मीमांसकके मतसे "त्रितिर्भासमेवञ्च ज्ञानमात्रस्य विषयः।" प्रमा और प्रमाज्ञानका आश्रय तथा विषय ये सभी उत्पन्न ज्ञानके विषय हैं, यह चिरन्तन उक्ति है। भट्टका कहना है कि ज्ञान मात्र ही अतीन्द्रिय कह कर ज्ञानोत्पत्तिके परक्षणमें ही घटज्ञात- हुआ है, यह अनुभवसिद्ध ज्ञाततालिङ्गक अनुमानका विषय ज्ञानका प्रामाण्य होता है। मुरारि मिश्र कहते हैं, कि ज्ञानोत्पत्तिके पीछे, 'मैं यथार्थरूपमें घट जानता हूं' इस प्रकार जो ज्ञानका मानस अनुभव वा अनुव्यवसाय है उसीका विषय ज्ञानीका प्रमात्व है। उन्होंने इन सब नैयायिकोंका मत प्रत्यक्ष नव्यन्यायमें उत्थापन करके अनभ्याससे दोषोत्पन्न ज्ञानमें प्रामाण्यसंशयानुपपत्ति आदि दोषोंका उल्लेख करते हुए खण्डन किया है। अनुमान यदि प्रमात्व निर्णायक हो, तो अनुमानगत प्रामाण्यके अनुमापक अनुमानान्तर तथा तद्‌गत प्रामाण्यके अनुमापकभावका अनुसन्धानापेक्षाहेतुक अनवस्थादोष लगता है। नव्य नैयायिकोंने इन सब दोषोंका उत्थापन कर सिद्धान्त किया है,—सब प्रकारके व्याप्तिज्ञानमें ही प्रामाण्य संदेह होगा और उस प्रामाण्यनिर्णयके लिये अनुमानकी अपेक्षा उसमें प्रमाण नहीं होगा, सुतरां अभ्यासोत्पन्न व्याप्तिज्ञानरूप अनुमानमें प्रामाण्यका मानस अनुभवरूप निर्णय सम्भव है, अतएव अनवस्था दोष नहीं है। उन्होंने नाना प्रकारके माध्यमिक प्रभृतिसे उत्थापित दोषके निरासपूर्वक प्रामाण्यवादमें प्रामाण्यनिर्णयका उपसंहार किया है, उससे प्राचीन न्यायसे चिन्तामणि ग्रन्थ भी स्वतन्त्र हो जाता है, इस कारण चिन्तामणि ग्रन्थकी नव्य-न्यायमें गिनती हुई है।

इन सब सिद्धान्तोंका समर्थन करनेमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचारनिबन्धन रघुनाथशिरोमणिकृत दीधिति, मथुरानाथ तर्कवागीशकृत रहस्य, जगदीशकृत दीधिति प्रकाशिका और गदाधर भट्टाचार्यकृत दीधितिटीका ये सब ग्रन्थ इतने दुरूह और विस्तृत हो गये हैं कि उन्हें हिन्दीभाषामें सम्यक्‌रूपसे समझानेकी चेष्टा करना असम्भव है। इसीसे वह विषय छोड़ दिया गया।

गङ्गेशोपाध्यायने असंख्य प्रमाके लक्षण दिखलानेमें नये नये पथोंका आविष्कार किया है अर्थात् अवच्छेद्य-अवच्छेदकभाव, प्रतियोग्यनुयोगिभाव, निरूप्यनिरूपक-भाव, विषयविषयिभाव, प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभाव, कार्य-कारणभाव और प्रकारप्रकारीभाव इन सबको विशेष-रूपसे पर्यालोचना कर लक्षणसम्बन्धी विशेषणप्रक्षेपादि-को उसके जैसा करनेमें स्वतन्त्र हो जाता है। ये सब बातें पूर्वतन ग्रन्थकारोंसे आलोचित हुई हैं, ऐसा समझ-में नहीं आता। पीछे सूक्ष्मचिन्ताप्रभावसे वह ले कर एक युगान्तर उपस्थित हुआ है, ऐसा कहनेमें भी अत्युक्ति नहीं होती।

प्रत्यक्ष प्रमा—घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् और श्रोत्र इस पञ्चविध बहिरिन्द्रियके गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्दादि और पृथिव्यादि अर्थका तथा अन्तरिन्द्रिय मनका सुख-दुःखादि आत्माके साथ सम्बन्धाधीन जो असभिन्न ज्ञान है वही प्रत्यक्षप्रमा है। यह व्यवसायात्मक निर्विकल्प भेदसे दो प्रकारका है, यह अर्थ नवीन मतसिद्ध है। क्योंकि प्राचीनोंने निर्विकल्पज्ञानको कल्पना नहीं की। भाष्यकारका कहना है कि अव्यपदेश्य (शाब्दभिन्न) व्यवसायात्मक (निश्चयात्मक) अव्यभिचारी इन्द्रियसन्नि-कर्षजन्य जो ज्ञान है वही प्रत्यक्षप्रमा है। सूत्र और भाष्यकारके परवर्त्ती नैयायिकोंने प्रत्यक्षके जनकको इन्द्रियसन्निकर्षके लौकिक और अलौकिक भेदसे दो प्रकारमें विभक्त किया है। इनमेंसे लौकिक सन्निकर्ष छः प्रकारका है। यथा—संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त समवेत समवाय, समवाय, समवेत समवाय और तद्विशे-षणता।

प्रत्यक्षको अनुमिति और शङ्कानिरास—व्याप्तिज्ञान-करणक ज्ञान ही अनुमिति है, जैसे धूमादिके हेतु वह्न्यादिका अनुमान। फिर एक देशमें इन्द्रियसन्निकर्ष-से वृक्षादिके ऊपर अंशका प्रत्यक्ष किस प्रकार सम्भव है? इस पर सिद्धान्त किया गया है कि अनुमिति भिन्न प्रत्यक्ष नामक जो प्रमिति नहीं है, यह स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि मूल वा शाखादिरूप किसी एक देशका जो इन्द्रियसन्निकर्षाधीन ज्ञान हुआ करता है, वह कभी भी अनुमितिके अन्तर्गत नहीं हो सकता। कारण उक्त ज्ञानके पहले किसी भी व्याप्तिविशिष्ट लिङ्गका ज्ञान नहीं है। अतएव विशेष गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द प्रभृतिके एक देश नहीं हैं, इस कारण वे गन्धादि प्रत्यक्ष अनुमितिमें अन्तर्भूत नहीं हो सकते। अतएव प्रत्यक्ष-प्रमाणमें अनुमितिकी शङ्का अयुक्त है, फिर वृक्षादि प्रत्यक्षकी जगह एक देशमात्रकी उपलब्धि हुआ करती है, यह भी नहीं कह सकते। कारण अवयवसे अवयव जो पृथक् है यह प्रमाण सिद्ध है, सुतरां अवयव प्रत्यक्षकालमें अवयवका भी प्रत्यक्ष क्यों नहीं होगा? चक्षुसंयोग जिस समय वृक्षके अवयवमें उत्पन्न होता है उसी समय स्वतन्त्र अवयवी जो समुदित वृक्ष हैं उसमें भी उत्पन्न होती है, यह स्वीकार करना होगा। सुतरां वृक्षमें इन्द्रियसन्निकर्षरूप कारणसम्बलनके अव्यवहित परक्षणमें जो वृक्षका ज्ञान होता है उसे अवश्य ही प्रत्यक्ष कारणजन्य होनेके कारण तथा व्याप्तिविशिष्ट हेतुज्ञान जन्य नहीं होनेके कारण प्रत्यक्ष कहना होगा। इस प्रकार एक देशमें सन्निकर्षवशतः समुदित वृक्षको प्रत्य-क्षोपपत्ति करनेके लिए गोतमने द्वितीयाध्यायके १म आह्निकमें अवयव सिद्धिप्रकरणका आविष्कार किया है, "साध्यत्वादवयविनि सन्देहः" अर्थात् सकम्पत्वनिष्कम्पत्वादि विरुद्ध धर्मद्वयका एकत्र सत्ताख्यापित साध्यत्व हेतु अवयवी अवयवसे स्वतन्त्र है वा नहीं? इस प्रकार सन्देह उद्भावन और समाधान किया है, "सर्वाग्रहणं अव-यव्यसिद्धेः" अर्थात् स्वतन्त्र अवयव अवयवी भिन्न नहीं होने पर सभीको परमाणुपुञ्ज ही कहना होगा। वृक्षादि यदि परमाणुपुञ्जसे स्वतन्त्र न हो, तो परमाणु-गत रूपादिका महत्त्वाभावनिबन्धन जिस प्रकार प्रत्यक्ष नहीं होता, उसी प्रकार परमाणुपुञ्ज और परमाणुसे भिन्न नहीं होनेके कारण वृक्षादिगत रूपादिको अनुपलब्धि आपत्ति होती है। फिर अवयवी-को स्वतन्त्र स्वीकार करने पर उसके महत्त्वप्रभावमें वृक्ष और वृक्षगत रूपादिकी उपलब्धि हो सकती है। फिर एक देशके धारण वा आकर्षणसे सभी वृक्षोंके धारण और आकर्षणको उत्पत्ति होती है, जैसे दण्डादिका एक देश उत्तोलन वा आकर्षण करनेसे दूसरा देश उत्तो-लित वा आकृष्ट होता है। परमाणु-पुञ्जात्मक होनेसे

एकके धारणसे दूसरेका धारण उस प्रकार नहीं होता, तद्रूप एकदेशी परमाणुपुञ्जके धारणसे अपर परमाणु-पुञ्जका धारण असम्भव होनेके कारण एकदेश धारण और आकर्षणसे वृक्षके धारण और आकर्षणकी अनुप-पत्ति होती है। फिर घटादि परमाणुमें स्वतन्त्र नहीं होने पर उसके द्वारा दध्यादिका आनयन भी असम्भव है। अतएव एकदेशमें चक्षुःसन्निकर्ष होनेसे भी समस्त वृक्षमें चक्षुःसन्निकर्ष हुआ है, ऐसा कहा जाता है और उस सन्निकर्षबलसे समुदित वृक्षकी उपलब्धि भी युक्त-युक्त है।

अभी प्रत्यक्षमें, चक्षुरादिका इन्द्रियके सन्निकर्ष-असान्न सम्बन्धमें यह आशङ्का हो सकती है, क्या इन्द्रिय यथास्थानमें रह कर विषयके साथ संलग्न होती है? अथवा विषयमें नहीं रह कर प्रत्यक्ष उत्पन्न करती है। चक्षु अपने स्थानमें रहते हुए अपनी रश्मि फैला कर विषयके साथ युक्त होता है, यह उत्तर सङ्गत नहीं होता। कारण सूर्यकिरणकी तरह प्रत्यक्ष नहीं होनेके कारण चक्षुकी किरण है, ऐसा नहीं कहा जाता। इसमें "रात्रिचर-नयनरश्मिदर्शनात्।" इस सूत्र द्वारा इस प्रकार सिद्धान्त होता है कि रातको मार्जार, शार्दूल आदिके चक्षुमें रश्मि देखी जाती है, अतः मनुष्य-चक्षुमें भी रश्मि है, यह दृष्टान्तबलसे सिद्ध होता है। पर हां, चक्षु-रश्मिके अनुद्भूतरूपवान् होनेसे ही उसकी उपलब्धि नहीं होती, चक्षुमात्र ही रश्मिविशिष्ट हैं। क्योंकि तेजःपदार्थ जिस प्रकार रात्रिचर मार्जारका चक्षु है, उसी प्रकार प्रयोग द्वारा मनुष्य-चक्षुमें भी रश्मिका अनुमान न्याय-सिद्ध है। फिर चक्षुके तेज पदार्थ नहीं होने पर वह रूपादि विषयका प्रकाशक नहीं हो सकता, जैसे पार्थिव घटादि एवं रूप रस गन्ध स्पर्श इन सब गुणोंमें चक्षु केवल रूप प्रकाशक है। अतएव चक्षु तेजःपदार्थ है। चक्षु यदि पार्थिव होता तो वह गन्धका भी ग्राहक होता। चक्षुकी रश्मि रहने पर भी विषयमें युक्त नहीं होनेसे वह विषयप्रकाशक है। कारण कांच और अभ्र तथा स्फटिक प्रभृति स्वच्छ पदार्थोंके अन्तरित विषयकी भी उपलब्धि होती है। "अप्राप्यग्रहणं काचाभ्रपटल-स्फटिकान्तरितोपलब्धेः" इस सूत्र द्वारा उक्त आशङ्का करके फिर "न कुड्यान्तरितानुपलब्धेर प्रतिषेधः" इस सूत्र द्वारा उसीका निरास किया है। यदि चक्षु इन्द्रिय असन्निकृष्ट पदार्थको प्रत्यक्ष करनेमें समर्थ होती, तो वह भित्तिक द्वारा अन्तरित पदार्थका भी ज्ञान उत्पन्न कर सकती थी। जब प्राचीरादि प्रतिबन्धकवशसे चक्षुः-किरण जिस वस्तु पर नहीं पड़ सकती, उस वस्तुको हम लोग कभी भी उपलब्ध नहीं कर सकते। अतएव इन्द्रियके साथ अर्थका सन्निकर्ष रहने पर भी प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है, यह सिद्धान्तसङ्गत है। पर हां, जो कांच, अभ्र आदिके व्यभिधानमें रह कर भी अर्थ चाक्षुष प्रत्यक्ष-विषय होता है, उसमें वक्तव्य यही है "अप्रति घातात् सन्निकर्षोपपत्तिः। आदित्यरश्मेः स्फटिकान्तरितेऽपि दाह्ये अविघातात्" कांच आदि स्वच्छपदार्थोंको नयनरश्मि भी प्रतिरोधक नहीं होती। अतएव काच आदि द्वारा व्यवहित वस्तु पर भी चक्षुरिन्द्रिय पतित हो सकती है। जिस प्रकार आदित्यरश्मि स्फटिक वा काच-विशेषमें अन्तःप्रविष्ट हो कर तदावृत्त दाह्य वस्तुमें लीन होती है, उसी प्रकार तेजःपदार्थ चक्षुकी रश्मि काच अभ्र प्रभृतिको भेद कर व्यवहित पदार्थमें संयुक्त क्यों न होगी? ऐसा नहीं कह सकते कि आदित्यरश्मि और स्फटिकान्तरित दाह्य पदार्थमें प्रवेश नहीं करता, यदि ऐसा हो, तो तदन्तरित लघु शुष्क दाह्य पदार्थको उष्णता और दाह उत्पन्न नहीं हो सकता है। जिस प्रकार कुम्भस्थ जलमें तेजःपदार्थ वह्नि और सूर्य प्रविष्ट हो कर उष्णतादि सम्पादन करता है, उसी प्रकार चक्षु अपनी रश्मि द्वारा दूरस्थ वस्तुमें प्रविष्ट हो कर उसका प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पादन करता है, इस प्रणालीमें चक्षुरादि इन्द्रिय जो प्राप्यकारी है, इसमें सन्देह नहीं। जो कहते हैं, कि विषयका प्रतिबिम्ब चक्षु पर पड़नेसे ही चक्षु विषयप्रकाशक हो जाता है, इसे भी युक्तिसङ्गत नहीं मान सकते। क्योंकि काच, अभ्र आदि द्वारा व्यवहित वा आवृत जो पार्थिव पदार्थ है उसका प्रतिबिम्ब चक्षु पर पड़ नहीं सकता, कारण तेजोति-रिक्त पदार्थका काचाभ्रभेद कर चक्षु पर जा प्रतिबिम्बित होनेको उसमें शक्ति नहीं है। काचाभ्र ही उसमें प्रतिबन्धक है। दर्पण आदिसे मुखका

प्रतिबिम्ब उपलब्ध हुआ करता है। मुख पर चक्षु-सन्निकर्ष व्यतीत वह किस प्रकार सम्भव हो सकता है। अतएव यह कहना होगा कि चक्षुरश्मि दर्पणादिमें प्रतिहत हो कर उलटे मुख पर पतित होती है, इस प्रकार सन्निकर्षके कारण तथा दर्पणके दोषसे मुखके विपरीत क्रमवश भ्रमात्मककी उपलब्धि होती है। अभी चक्षुरश्मिको नहीं माननेसे दर्पणादिमें मुखका प्रतिबिम्ब उपलब्धिका विषय नहीं हो सकता, अतः यह अवश्य ही स्वीकार करना होगा।

इसके बाद अनुमितिलक्षण और विभाग लिखा गया है। "अथतत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववत् शेषवत् सामान्यतो दृष्टञ्चेति।" तत्पूर्वक अर्थात् लिङ्ग लिङ्गी नियतसम्बन्धरूप व्याप्तिका प्रत्यक्षपूर्वक जो ज्ञान है, वही अनुमान कहलाता है। यह अनुमान तीन प्रकारका है, पूर्ववत् (कारणलिङ्गक), शेषवत् (कार्यलिङ्गक) और सामान्यतोदृष्ट अर्थात् कारण और कार्य भिन्न लिङ्गक है। नव्यन्यायकन्मतमें केवलान्वयी, केवल व्यतिरेकी और अन्वयव्यतिरेकी जिस प्रकार अनुमानके ये तीन भेद कहे गये हैं, उसी प्रकार स्वार्थानुमान और परार्थानुमानभेदसे अनुमान दो प्रकारका है। वह्निव्याप्ति विशिष्टहेतु पर्वत पर है इत्यादि रूप जिस हेतुमें व्याप्ति और पक्षधर्मतानिर्णय है, वही स्वार्थानुमान है। फिर वादी अथवा प्रतिवादीसे अन्य जो मध्यस्थादि उसमें निर्णयार्थ अनुमान प्रकट करता है वही परार्थानुमान है। यह परार्थानुमान न्यायसाध्य है अर्थात् पर द्वारा उच्चारित न्यायवाक्यसे उत्पन्न होता है। गोतमके न्यायलक्षण स्पष्टतः नहीं कहने पर भी प्रतिज्ञा (साध्यका निर्देश), हेतुप्रयोग (साध्यसाधकका उल्लेख), उदाहरण (दृष्टान्तकथनयोग्य व्याप्तिबोधक वाक्य), उपनय, (उदाहरणानुसारी अवयव विशेषका उपन्यास) अर्थात् प्रकृत उदाहरणमें उपदर्शित व्याप्तिविशिष्ट हेतुका पक्षवृत्तिताबोधक वाक्य, निगमन (उसी हेतु द्वारा ज्ञापनीय साध्यका उपसंहार) "यथा पर्वतो वह्निमान् धूमात्, यो यो धूमवान् स स वह्निमान्, यथा महानस; तथाचायं, तस्मादयं वह्निमानिति" इस पञ्चविध अवयवका उल्लेख करनेके लिये ही पंचावयवोपपन्नवाक्य न्याय है, यह लक्षण गोतमाभिप्रेत समझा जाता है। भाष्यकारका कहना है कि 'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः' अर्थात् प्रमाणनिचय द्वारा अर्थकी परीक्षा जिस वाक्यसे होती है, वही वाक्य न्याय है। भाष्यके अनन्तरवर्ती प्राचीन न्यायमें 'पञ्चरूपोपपन्नलिङ्गप्रतिपादकं वाक्यं न्यायः" इस प्रकार लक्षण दृष्ट होता है अर्थात् पक्षसत्त्व, सपक्षसत्त्व, विपक्षासत्त्व, असत्प्रतिपक्षितत्व और अबाधितत्व इस पञ्चविध धर्मान्वित हेतुका निर्णय जिस वाक्यसे होता है, वही न्याय है। उक्त सभी प्रकारके लक्षणोंमें अतिव्याप्त्यादि दोष लगता है, क्योंकि प्रतिज्ञा अपर न्यायका हेत्वादिघटित पञ्चवाक्य भी न्याय हो सकता है एवं हेतुके बाद प्रतिज्ञा; पीछे उदाहरणादिव्युतक्रम प्रयोगघटित वाक्यसमुदायमें अतिव्याप्ति दोष होता है। फिर भाष्योक्त प्रमाण द्वारा जिस वाक्यसे अर्थपरीक्षा होती है, वही न्याय है। इस प्रकार चिन्तामणिके लक्षणके ऊपर दीधितिकारने केवल उपनय वाक्यमें अतिव्याप्ति प्रभृति दोष देख कर स्वतन्त्र लक्षण किया है,—"उचितानुपूर्वीकप्रतिज्ञादिपञ्चकवाक्यं न्यायः" उचितानुपूर्वी अर्थात् यथाक्रम और यथोपयुक्त आनुपूर्वीक्रमसे उक्त जो प्रतिज्ञादिपञ्च हैं, तत्समुदायात्मक वाक्य न्याय कहलाता है।

हेत्वाभास।—मूलसूत्र वा भाष्यमें हेत्वाभासके सामान्य लक्षणका उल्लेख नहीं रहने पर भी चिन्तामणिकार गङ्गेशने सामान्य लक्षण निर्देश किया है, 'यद्विषयकत्वेन लिङ्गज्ञानस्यानुमितिप्रतिबन्धकत्वं" अर्थात् जिसके निर्णयसत्त्वमें अनुमिति नहीं होती तादृशदोषविशिष्ट जो पदार्थ हेतुत्वमें अभिमत होता है, वही हेत्वाभास है। हेतु नहीं है, पर हेतुके जैसा दीप्तिमान् है, वही हेत्वाभास शब्दका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है। उक्त लक्षणके अनुसार 'वह्निमान् धूमादित्यादि सद्धेतुमें अतिव्याप्ति होती है। क्योंकि वह्निशून्य पर्वत इस प्रकार भ्रमका भी वह्निमान् पर्वत इस अनुमितिका प्रतिबन्धकत्व रहनेसे जो वह्न्यभाव विषयत्वरूपमें अनुमिति प्रतिबन्धकता है वही वह्न्यभावरूप दोषविशिष्ट धूमादि होता है। इसी कारण दीधितिकारने कहा है, कि साध्य विशिष्ट विषयक निश्चयत्व जो प्रकृत अनुमितिकी

प्रतिबन्धकताके अनतिरिक्त वृत्तित्वरूप अवच्छेदकता विशिष्ट होता है, तद्‌द्वय विशिष्ट ही दोष है. जलमें वह्निसाध्य करनेसे धूमादि हेतुमें वह्निशून्य जल ही दोष होता है। क्योंकि वह्निशून्य जलविषयक निश्चयत्व प्रकृतानुमिति की जो प्रतिबन्धकता है, उसके अतिरिक्त स्थानमें आवृत्ति हुई है। किन्तु पर्वत वह्निके साध्यता-स्थलमें प्रकृतानुमिति प्रतिबन्धकताशून्य जो वह्न्यभाववान् है, इस प्रकार पक्षानवगाही वह्न्यभावमात्र प्रकारक निश्चय है, उसमें वह्निभावविषयक निश्चयत्व होनेके कारण वैसे पदमें वह्न्यभाव नहीं लिया गया। क्योंकि भ्रमका विषय जो वह्न्यभाव है, तद्विशिष्ट पर्वत नहीं होनेसे वह नहीं लिया जा सकता। पर्वत वह्निमान् है, इस अनुमितिमें शुद्ध वह्न्यभाववान् यह निश्चय भी प्रतिबन्धक नहीं होता। दीधितिकारके लक्षणके ऊपर भी दोष लगता है, कारण, बाधकालमें इच्छाप्रयुक्त जो आहार्य वा अप्रामाण्य है उसके ज्ञाना-स्कन्दित वह्निशून्य जलविषयक निर्णय अनुमितिका प्रति-बन्धकताशून्य होनेसे वह्निशून्य जलविषयक निश्चयत्व उक्त प्रतिबन्धकताशून्य वृत्ति हुआ। सुतरां वह्निशून्य जलरूप-बाधमें दोषलक्षणके भी तत्स्थलीय हेतुसे दोषवत्स्वरूप दुष्टत्व लक्षणका अव्याप्ति-दोष होता है। इसी कारण जगदीश, गदाधर प्रभृतिका कहना है कि अनाहार्य अप्रामाण्य ज्ञानानास्कन्दित निश्चय वृत्तित्वविशिष्ट यद्रूप-विशिष्ट विषयित्वका व्यापक होता है, प्रकृतानुमिति प्रतिबन्धकता तद्रूप विशिष्ट ही दोष है। तद्वत्त्व ही दुष्टत्व है। जगदीश और गदाधरने इस लक्षणके ऊपर असंख्य दोष दिखलाते हुए निवेशप्रवेशपूर्वक अनुगम और अभूत-पूर्व विचारचातुर्य दिखलाया है, साध्यसाधनग्रहके अविरोधी अथच प्रकृतसाध्य व्याप्तिग्रहके विरोधिज्ञान-का जो विषय है वही व्यभिचार है। वह व्यभिचार साधारण, असाधारण और अनुपसंहारीके भेदसे तीन प्रकारका है। साध्यशून्य-देशस्थित हेतुको साधारण कहते हैं। यथा—शब्द नित्य है, क्योंकि वह स्पर्शशून्य है, यहां पर नित्यतारूप साध्यशून्य जो शब्द है उसमें निस्पर्शत्वहेतु होनेके कारण नित्यताशून्य वृत्ति निस्पर्शत्व-में ही साधारण हुई। साध्याधिकरणमें अवृत्तिहेतु असा-धारण शब्द द्रव्यत्ववान् है, क्योंकि वह श्रवणेन्द्रियग्राह्य है। यहां पर द्रव्यत्वसाध्यके अधिकरणमें श्रवणेन्द्रिय-ग्राह्यत्व नहीं होनेके कारण असाधारण हुआ, ऐसा जानना होगा। केवलान्वयी सर्वत्र वाच्यत्वादि-पक्षतावच्छेदकादि अनुपसंहारी है। पक्षवृत्ति साध्यव्याप-कीभूताभावके प्रतियोगी हेतु विरुद्ध है। यथा—गोत्व साधक अश्वत्वादि हेतु है, पक्षमें पक्षतावच्छेदका-भावादि आश्रयसिद्धि है, हेतुशून्य पक्ष ही स्वरूपासिद्धि है, यथा—ह्रदमें वह्निसाधक धूमादि। व्यर्थविशेषणत्व-रूप व्याप्यत्वासिद्धि होती है। इस कारण नीलधूम हेतु करने पर भी दुष्टहेतु होता है। विरोधिपरामर्श-कालीनहेतु सत्प्रतिपक्षित है, यथा—शरीर अचेतन है, क्योंकि यह भौतिक है, जो जो भौतिक हैं, वे सभी चैतन्यविहीन होते हैं, जैसे घट शरीर आदि। नैया-यिकोंके इस वाक्यके समानकालमें यदि चार्वाक कहें, शरीर ही चैतन्यविशिष्ट है, क्योंकि वह सचेष्ट है, जो जो सचेष्ट हैं, वे सभी सचेतन हैं; जो सचेतन नहीं हैं, वह सचेष्ट भी नहीं हैं। इस प्रकार चैतन्यका व्याप्ति-विशिष्ट चेष्टावान् शरीर और अचेतनत्वव्याप्तिविशिष्ट, भौतिकत्ववान् शरीर इस प्रकार सचेतनत्व और अचेत-नत्व इस विरोधिपदार्थद्वयकी व्याप्तिविशिष्ट चेष्टा और भौतिकत्व हेतुके एक कालमें एक पक्षमें परामर्शकालमें सत्प्रतिपक्ष दोषयुक्त हेतुद्वय किसी भी पक्षकी साधनीय पदार्थके अनुमापक नहीं होते। तब यदि, "अशरीरं शरीरेषु अनवस्थेष्ववस्थितं महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति" इत्यादि श्रुतिका उल्लेख करें, तो शरीर चैतन्यवाद दुर्बल होता है। उस समय समानबलता नहीं होनेके कारण हेतु सत्प्रतिपक्षित नहीं होता। शरीर चैतन्याश्रय नहीं है, इसके प्रतिपादक वेदप्रमाणबलसे चैतन्यकी व्याप्ति-विशिष्ट चेष्टाके शरीररूपपक्षमें निर्णयात्मकविरोधि-परामर्शसे अप्रामाण्य ज्ञान हो कर चैतन्याभावका अनु-मान ही सत् होता है। साध्यशून्य पक्ष ही बाध है, यथा—ह्रद वह्निविशिष्ट धूमहेतुक, यहां पर वह्निशून्य ह्रद बाधदोष हुआ। परकीय हेतुमें हेत्वाभासका उद्भा-वन जैसा स्वार्थानुमान सम्बन्धमें उपयोगी है, वैसा

ही स्वीय हेतुमें व्याप्तिपक्षधर्मता दिखानेमें भी प्रकृतोपयोगी है, इस कारण व्याप्ति किस पदार्थका स्वरूप है, यह जानना आवश्यक है।

व्याप्तिवाद—अति प्राचीनकालमें लिङ्गलिङ्गीका नियतसम्बन्धस्वरूप ही व्याप्तिका उल्लेख था, अनन्तर वही अव्यभिचरित सम्बन्ध और अविनाभावसम्बन्धके जैसा उक्त होता था। पीछे सिद्धपुरुष गङ्गेशने प्राचीन परम्पराप्रचलित अव्यभिचरितत्व शब्दका ही जो पांच प्रकारके अर्थोंका उल्लेख कर दोष दिखलाते हुए निराकरण किया है उसमें साध्याभाववदवृत्तित्व इस लक्षणमें साध्यशून्यदेशमें हेतुका नहीं रहना ही व्याप्ति है। यथा—श्रुतार्थमें असम्भव होता है, क्योंकि साध्यघट उभयका अभाव और साध्य प्रतियोगिक होनेसे साध्याभाव है, उभयाभाव सब जगह है, सुतरां तदधिकरणमें वृत्तिता ही धूममें है। इस अव्याप्ति अथवा असम्भव दोषमें तथा 'धूमवान् वह्नेः' इत्यादि स्थलमें अतिव्याप्ति दोष होता है इस कारण अनन्तर, साध्यसामान्याभाव और तादृशवृत्तितासामान्याभाव आदि लक्षणोंका निवेश किया गया है। यत्किञ्चित् साध्य रहने पर भी साध्यसामान्यका अभाव नहीं रहता, सुतरां पर्वत पर वह वह्नि नहीं है, ऐसी प्रतीति होने पर भी वह्नि नहीं है ऐसा नहीं कह सकते। साध्यसामान्याभाव निवेश करके लक्षणका अर्थ यह होता है कि अनुमितिकी विधेयतारूप साध्यतामें अवच्छेदकभिन्न जो धर्म है तन्निष्ठ अवच्छेदकताका अनिरूपक और साध्यतावच्छेदकनिष्ठ अवच्छेदकताका निरूपक जो प्रतियोगिता है, उसका निरूपक जो अभाव है, तदधिकरण-निरूपित वृत्तिताभाव-व्याप्ति, वह्नि घट दोनों नहीं है, यह प्रतीतिसिद्ध अभाव साध्यतावच्छेदकके अतिरिक्त उभयत्वधर्मनिष्ठ-अवच्छेदकताका निरूपक होनेसे तादृशसामान्याभाव नहीं है अतः साध्यसामान्याभावाधिकरणधूमाधिकरण नहीं होता, सुतरां अव्याप्ति दोष नहीं लगता है। साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वसामान्याभाव निवेश नहीं करने पर भी तादृश वृत्तित्व जलत्व उभयाभावादि आदान करके व्यभिचारि-स्थलमात्रमें अतिव्याप्ति होती है। "धूमवान वह्नेः" इत्यादि अलक्ष्यस्थलमें धूमरूप साध्याभावाधिकरण जलह्रदनिरूपितवृत्तित्वाभाव वह्नि हेतुमें रहता है इस कारण तथा धूमरूपसाध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्व जलत्व एतदुभयाभाव वह्निहेतुमें रहनेसे अलक्ष्यमें लक्षण होता है, सुतरां अतिव्याप्ति है, "अतएव साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वं नास्ति" इत्याकारक प्रतीतिसिद्ध तादृशवृत्तित्व सामान्याभाव निवेशपूर्वक अतिव्याप्ति वारण करनी होती है। वृत्तित्वसामान्यभावनिवेशकी प्रणाली अति दुरूह और विस्तृत होनेके कारण यहां नहीं लिखी गई। इस रीतिसे एक एक लक्षण विशेषरूपसे निवेश प्रवेश कर अति दुरूह और नानाकारकी कल्पना करनेसे व्याप्तिग्रन्थ भी विस्तृत हुआ है। यही पांच लक्षण साध्यका अभाव अथवा साध्यविशिष्टका सामान्यभेदघटित होनेसे केवलान्वयिस्थलमें (जिसका अभाव अप्रसिद्ध है ऐसे साध्यक हेतुमें) अव्याप्ति दोषसे परित्यक्त हुआ है। पीछे सिंह-व्याघ्रोक्त लक्षणद्वय एवं सुन्दरोपाध्याय-मतसिद्ध व्यधिकरणरूपमें अभावघटित अनेक प्रकारके लक्षणोंकी कल्पना पर निराश और पूर्वपक्षोक्त बहुविधलक्षण परिहारपूर्वक सिद्धान्तलक्षण किया है, "प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः" अर्थात् जिस हेतुके आश्रयमें वर्त्तमान अभावीय प्रतियोगिताके विशेषकीभूतधर्मविशिष्टसे भिन्न जो साध्य है उसके अधिकरणमें उस हेतुकी सत्ता ही व्याप्ति है। जैसे पर्वत वह्निमान् है, क्योंकि वहां धूम है। इस प्रकार धूमहेतुक वह्नि साध्यकस्थलमें हेतुका अधिकरण जो पर्वत चत्वर, गोष्ठ और महानस उसमें वर्त्तमान जो घटाद्यभाव है, तदीय प्रतियोगितावच्छेदक जो घटत्व गोत्व प्रभृति है, तदवच्छिन्न जो घट और गो-प्रभृति है, तद्भिन्न वह्निरूप साध्यके साथ धूमरूप हेतुमें जो एकाधिकरणभाव है, वही वह्निकी व्याप्ति है, इस लक्षणमें उक्त स्थल पर ही अव्याप्तिदोष होता है हेतुके अधिकरण पर्वत पर महानसीय वह्निका, महानसमें पर्वतीय वह्निका, चत्वरमें गोष्ठादिनिष्ठवह्निका, गोष्ठमें चत्वरादिनिष्ठवह्निका जो अभाव वर्त्तमान है, तत्तदभावीय प्रतियोगिताका अवच्छेदकीभूत तत्तद्व्यक्तित्व-विशिष्ट सभी वह्नि होती है,

ऐसा कहने पर भी प्रतियोगिताका अवच्छेदकीभूतधर्मावच्छिन्न मात्र होनेके कारण वह्नि का होना नहीं मान सकते। अतएव तादृशसाध्य समानाधिकरणरूप व्याप्तिलक्षणका उक्त लक्ष्यस्थलमें नहीं होना अव्याप्तिदोष होता है। इसीसे दीधितिकार रघुनाथ शिरोमणि कहते हैं, "प्रतियोग्यसमानाधिकरणयद्रूपविशिष्टसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको यो धर्मस्तद्धर्मावच्छिन्नेन येन केनापि समं सामानाधिकरण्यं तद्रूपविशिष्टस्य तद्धर्मावच्छिन्नयावन्निरूपिता व्याप्तिः।" स्वीय प्रतियोगिताके अधिकरणमें अवृत्ति हो कर जो हेतुतावच्छेदकरूपविशिष्टके अधिकरणमें वर्त्तमान होता है, जो जो अभाव तत्तदीय प्रतियोगिताका अवच्छेदक नहीं होता, वही साध्यतावच्छेदक धर्म तद्विशिष्ट जिस किसी साध्यव्यक्तिके साथ जिस हेतुको जो ऐकाधिकरण्यस्थिति है, वही उस हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुक है, वही साध्यतावच्छेदक धर्मविशिष्ट निरूपित व्याप्ति है। एवंतीय वह्न्यादिव्यक्तिगत तत्तद् व्यक्तित्व धूमत्वरूप हेतुतावच्छेदक विशिष्टका अधिकरण एवं तद्वृत्त्यभावीय प्रतियोगिताके घटत्वादिकी तरह अवच्छेदक होने पर भी तद्भिन्न वह्नित्वरूप साध्यतावच्छेदकविशिष्ट वह्निका जो सामानाधिकरण्य है, वही वह्नित्वावच्छिन्न की व्याप्ति हुआ। अर्थात् तादृश व्याप्तिज्ञान ही वह्न्यनुमितिका जनक है। इस लक्षणके प्रतियोग्यसमानाधिकरण पदका नानारूप अर्थ आशङ्कापूर्वक नानाविध दोषोंका उल्लेख करके शिरोमणिने जो स्वतन्त्र अर्थ किया है, उसमें भी सभी लक्षण स्वतन्त्ररूप हुए हैं। "यादृशप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणत्वं हेतुमतः तादृश प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकविशिष्टसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः।" जिस प्रकार प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टके अधिकरणहेतुका अधिकरण होता है, उसी प्रकार प्रतियोगिताके अवच्छेदक धर्मभिन्न साध्यतावच्छेदकविशिष्टके अधिकरणमें हेतुका वर्त्तमानत्व ही व्याप्ति है। इस लक्षणमें पुनः कालत्वेन कालिक सम्बन्धमें घटसाध्य महाकालत्वादिहेतुमें अव्याप्ति होती है, क्योंकि साध्यतावच्छेदक कालिकसम्बन्धमें सभी वस्तुओंका अधिकरण काल होता है। सुतरां जो अभाव मान कर लक्षण किया जायगा उस अभावके प्रतियोगितावच्छेदक विशिष्टका अनधिकरण कालरूप हेत्वधिकरण नहीं होता, इस कारण किसी भी अभावकी प्रतियोगिताको तादृश प्रतियोगिता नहीं मान सकते। सुतरां उक्त लक्षण वहां नहीं जाते। इसके बाद प्रतियोग्यसमानाधिकरणदलके नानारूप पारिभाषिक अर्थकी कल्पना करनेसे उसमें भी कालका जगदाधारत्व मतमें दोष होता है। अतएव अन्तमें उन्होंने ऐसा लक्षण किया है, "निरुक्तप्रतियोग्यनधिकरणहेतुमन्निष्ठाभावप्रतियोगितासामान्ये यत्सम्बन्धावच्छिन्नत्वयद्धर्मावच्छिन्नत्वोभयाभावस्तेन सम्बन्धेन तद्धर्मावच्छिन्नस्य व्यापकत्वं बोध्यं।" इन सब लक्षणोंके प्रत्येक पदकी व्यावृत्ति और स्वतन्त्र स्वतन्त्र नानारूप लक्षणोंका आविष्कार कर जगदीश और गदाधरकृत टीका अत्यन्त विस्तृत हुई है। जिस जिस अभावकी स्वीय प्रतियोगिताके अवच्छेदक सम्बन्धमें स्वीय प्रतियोगिताका अवच्छेदक धर्मविशिष्टका अधिकरण भिन्न होता है, जो हेत्वधिकरण है उस अभावीय प्रतियोगितामें जो सम्बन्धावच्छेद्यत्व है, साध्यतावच्छेदक जो धर्मावच्छेद्यत्व है, इन दोनोंका अभाव रहता है, वह हेतुका व्यापक होता है। उस सम्बन्धमें उस धर्मविशिष्ट एवं तादृश व्यापकीभूत साध्यके अधिकरणमें हेतुकी सत्ता ही व्याप्ति हुई। स्वीय प्रतियोगी घटादिका अधिकरण धूमादिरूप हेतुके अधिकरणमें वर्त्तमान जो जो घटादिका अभाव है, उस प्रतियोगितासामान्यमें ही संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व और वह्नित्वावच्छिन्नत्व इन दोनोंका अभाव देखा जाता है। सुतरां संयोगसम्बन्धमें वह्नित्वविशिष्ट धूमका व्यापक हुआ। उसके अधिकरणमें वह धूम है, अतः धूम ही वह्निका व्याप्य हुआ। सिद्धान्त लक्षणका प्रतियोगितानवच्छेदक इसका घटक जो अवच्छेदकता है, वह किस प्रकार है, स्वरूपसम्बन्धरूप है वा प्रतियोगिताका अनतिरिक्तवृत्तिस्वरूप है? इस प्रकार आशङ्कापूर्वक अवच्छेदकत्व निर्वाचन करके अवच्छेदकत्वनिरुक्ति नामसे दीधितिकारने एक और ग्रन्थकी रचना की है। ये सब लक्षण्य पक्षके लक्षण जाननेके लिये नव्यन्यायमें व्युत्पादित अभाव और प्रतियोगिताका सम्बन्ध तथा प्रतियोगिता और अवच्छेदकताका क्या सम्बन्ध है, कौन किसका अवच्छे-

दक होता है, अवच्छेदक शब्दका क्या अर्थ है, अवच्छेदकता कितने प्रकारकी है, निरूपितत्व और निरूपकत्व, अधिकरणत्व, आधेयत्व, विषयत्व, विषयित्व, प्रकारता, प्रकारिता आदि विषय विशेषरूपसे जानना आवश्यक है और किसी पदार्थको ले कर नानारूप लक्षण और उसका दोषानुसन्धान करते करते व्याप्तिवाद भी इतना विस्तृत हो गया है कि उसके अध्ययन करनेमें तीन चार वर्ष लगेंगे।

'यस्याभावः स प्रतियोगी', जिसका अभाव है, वही पदार्थ अभावका प्रतियोगी होता है, क्योंकि प्रतियोग अर्थात् प्रतिकूलसम्बन्ध उसमें है, प्रतियोगीका असाधारण धर्मरूप जो प्रतियोगिता है उसका इतरव्यावर्त्तक विशेषक ही अवच्छेदक है। वह अवच्छेदक दो प्रकारका है,—संयोगादिमें सम्बन्ध अवच्छेदक और प्रतियोग्यंशमें प्रकारीभूत धर्म अवच्छेदक, प्रतियोगिताकी निरूपित अवच्छेदकता, अवच्छेदकताकी निरूपक प्रतियोगिता और प्रतियोगिताका निरूपक (निर्णायक) अभाव आदि विषय जो जानते हैं, वे ही उक्तविध लक्षण जाननेके अधिकारी हैं।

चार्वाकका कहना, 'सर्वमिदं व्याप्तिनिश्चये सति स्यात्' "तदेव तु न भवति उपायाभावात्" अर्थात् प्रत्यक्षातिरिक्त अनुमितिरूपतत्त्व प्रमा तभी सिद्ध होती है, जब व्याप्तिनिश्चय हो सके, वही व्याप्तिनिर्णय तुम्हारे उपायका अभावहेतु असम्भव है। इस कारण व्याप्तिका सिद्धान्त करके भी नैयायिकोंने व्याप्तिग्रहणका उपाय निर्द्देश किया है। अनेक स्थल पर यद्यपि बार बार सहचारदर्शन व्याप्तिनिर्णायक न हो, तो भी व्यभिचार ज्ञानका असहकृत सहचारज्ञान जो व्याप्तिनिर्णयका कारण है उसमें सन्देह नहीं। अन्यथा तृप्तिप्रार्थी भोजनार्थ प्रवृत्त नहीं होता और जो भविष्यद्भोजन भविष्यत्तृप्तिका कारण है उसके सम्पादनके लिये प्राणिवृन्द इतना व्याकुल नहीं होता। इष्टसाधनताज्ञान छोड़ कर जब कहीं भी प्रवृत्त देखा नहीं जाता, तब अवश्य ही कहना होगा कि भोजनप्रवृत्त पुरुषके भोजनमें तृप्तिरूप इष्टसाधनत्व निर्णीत था, तादृश इष्टसाधनत्वनिर्णय कभी भी प्रत्यक्षात्मक नहीं हो सकता। भविष्यद्भोजनमें तृप्ति-साधनत्वके सम्बन्धमें कोई भी उपदेश वा स्मृति नहीं है। केवल मात्र भोजन ही तृप्तिसाधन है, इस प्रकार भोजनमें तृप्तिसाधनत्व ज्ञानात्मक व्याप्तिनिर्णयवशतः, भविष्यद्भोजनमें तृप्तिसाधकताका अनुमानात्मक निर्णय हुआ करता है। सुतरां भोजनतृप्तिका असाधक भी होता है, इस प्रकार व्यभिचारानुसन्धानके नहीं रहनेसे किसी भी भोजनमें ही तृप्तिसाधनताका ज्ञानरूप तृप्तिसाधनताके सहचारदर्शनसे भोजनत्वमें तृप्तिसाधनताका अव्यभिचारित सम्बन्धरूप पूर्वोक्त व्याप्तिनिर्णय अवश्य ही स्वीकार्य है। इस प्रकार विचारपूर्वक सिद्धान्त करनेमें व्याप्तिग्रहोपाय नामक व्याप्तिवादके अन्तर्भूत ग्रन्थान्तर प्रणीत हुआ है। कई जगह व्यभिचार संशयके निराकरणार्थ तर्क भी विशेष उपयोगी होता है। महर्षि गोतमने कहा है, "अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितः तत्त्वज्ञानार्थं ऊहस्तर्कः।" इसका तात्पर्य यह कि व्याप्यका आरोप प्रयुक्त होता है, जो व्यापकका आरोप है वही तर्क है अर्थात् जिस पदार्थके बिना नहीं रह सकता उसका आरोप वा आपत्ति करके जो उस पदार्थका आरोप होता है, वही तर्क पदार्थ है। उस तर्क पदार्थका प्रयोजन अविज्ञाततत्त्वपदार्थका तत्त्वज्ञान है। वह तर्क नव्यन्यायके अनुसार पांच प्रकारका माना गया है—आत्माश्रय, अन्योन्याश्रय, चक्रक, अनवस्था, तदन्यबाधितार्थप्रसङ्ग। तर्कका विशेष प्रतिपादन करनेमें 'तर्क' नामक एक ग्रन्थ रचा गया है। व्यापकपदार्थका अभाववत्तानिश्चय जहां रहता है, वही स्थान व्याप्यके आरोपाधीन व्यापकका आहार्यारोपरूप तर्क हुआ करता है। पर्वत यदि वह्निशून्य हो, तो वह निर्धूम होगा। इस प्रकार वह्न्यभावात्मक व्याप्यके आरोपाधीन धूमाभावात्मक व्यापकका आरोप ही तर्क हुआ। उक्त तर्कबलसे आपादकीभूत धूमाभावकी अभावस्वरूप धूमवत्ता निर्णयाधीन आपाद्य वह्न्यभावके अभावस्वरूप वह्निका अनुमानात्मक निर्णय होता है और धूम यदि वह्निव्यभिचारी हो, तो वह वह्निजन्य नहीं होगा, इस प्रकार तर्कबल वह्निजन्यत्व निर्णयाधीन वह्निव्यभिचाराभाव धूममें निर्णीत हुआ करता है। उन्होंने चिन्तामणिमें व्याप्तिग्रहका

उपाय, तर्क निर्वचन पीछे उपाधि और सामान्यलक्षण। अनन्तर पक्षतानिर्वचन अर्थात् निर्णीत पदार्थकी अनुमिति नहीं होनेसे अनुमितिके प्रति साध्यसन्देह और इच्छारूपप्राचीन मतसिद्ध पक्षताका कारणत्वनिराश-पूर्वक अनुमित्साशून्य साध्यनिर्णयके अभावको कारण बतलाया है। इसके ऊपर जागदीशी गादाधरी आदि विस्तृत टीका रची गई हैं। गङ्गेशने परामर्शके कारणार्थ निर्वचन, पीछे न्यायावयव, तदनन्तर हेत्वाभास निरूपण. अन्तमें ईश्वरानुमानका वर्णनकर अनुमानखण्ड शेष किया है।

शेष शब्दखण्ड। शब्दका प्रामाण्य—अनुमान जिस प्रकार प्रत्यक्षातिरिक्तस्वतन्त्र प्रमाण है, शब्द भी उसी प्रकार प्रत्यक्षानुमानोपमानसे स्वतन्त्र प्रमाण है। महर्षि गौतमकृत 'आप्तोपदेशः शब्दः' इस सूत्र द्वारा शब्दप्रामाण्यका लक्षण प्रतिपादित हुआ है। आप्त अर्थात् वाक्यार्थगोचर यथार्थ ज्ञानवान् पुरुष है, तदुच्चारित जो वाक्य है वही प्रमाण है। नव्यन्यायके मतसे आसत्ति, आकाङ्क्षा, तात्पर्य और योग्यतावद्वाक्य ही प्रमाण है। क्योंकि वक्ताके वाक्यार्थविषयक ज्ञान रहने पर भी तदुच्चारित शुकादिसे अपर अभिज्ञ व्यक्तिके प्रमात्मक शब्दबोध उत्पन्न होता है। लौकिकवाक्यसे भी अनेक समय भ्रमात्मक शब्दबोध हुआ करता है, इस कारण सभी लौकिक वाक्यको प्रामाण्य नहीं है; भ्रम, प्रमाद, प्रतारणेच्छा, करणापाटव यह दोषचतुष्टयरहित आप्त पुरुषोच्चारित सभी वाक्य प्रमाण हैं। तादृश आप्तोच्चारित ही वेदका प्रामाण्य है। "मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यं आप्तप्रामाण्यात्" इस न्यायसूत्र द्वारा शब्दप्रामाण्य परीक्षाप्रकरणमें उक्त तात्पर्यमूलक ही वेदप्रामाण्य सिद्धान्त हुआ है और आसत्ति, आकाङ्क्षा, तात्पर्य और योग्यताविशिष्ट वाक्य जो स्वतन्त्र प्रमाण है उसके सम्बन्धमें पूर्वपक्ष और सिद्धान्त करनेमें शब्दाप्रामाण्य नामक चिन्तामणिके अन्तर्गत एक विस्तृत ग्रन्थ हो जाता है। आसत्ति, आकाङ्क्षा, तात्पर्य और योग्यता इन्हीं चार विषयों पर चार ग्रन्थ रचे गये हैं, तदनन्तर शब्दानित्यतावाद और पीछे प्रवाहके अवच्छेदरूप नित्यत्व सम्बन्धमें उच्छन्नप्रच्छन्नवाद नामक और भी एक ग्रन्थकी रचना की गई है। वाक्यश्रवणके बाद जो एक विशिष्ट-ज्ञान उत्पन्न होता है वही शाब्दबोध है। वह शाब्दबोध पदज्ञान ही कारण है, क्योंकि पदज्ञान पदार्थकी स्मृति उत्पन्न कर उक्त विशिष्टबोधका अनुकूल होता है। अनेक समय पदज्ञान श्रावणिक प्रत्यक्षात्मक होने पर भी पदकी असन्निधान लिपि देख कर मौनि श्रोतादिका शाब्दबोध हुआ करता है, इस कारण पदका ज्ञानमात्र ही उसका कारण है। पुस्तक देखनेसे हम लोगोंके जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह चिह्नविशेषरूप अकारादि अक्षरमें ज्ञानशून्य पदस्मृति होता है, इसी कारण उससे पुस्तक प्रतिपाद्य विषयका अनुभव होता है। इसका प्रमाण—कोई भी मनुष्य यदि कहे कि तुम्हारे पुत्र उत्पन्न हुआ है अथवा पुत्रका देहान्त हुआ है तब हर्ष और विषाद दोनों ही होते हैं, अतएव यह कहना होगा कि शब्दसे यदि केवल पदार्थोपस्थिति या पुत्रजन्म और मरण एवं सम्बन्धका स्मरण मात्र ही हो तो हर्ष और विषाद किसी प्रकारसे हो सम्भव नहीं। क्योंकि कोई भी मनुष्य जन्म अथवा मरण शब्द मात्रसे हर्षविषादोपपन्न नहीं होता। किन्तु हमारे पुत्र उत्पन्न हुआ है इत्यादि विशिष्टबुद्धि होनेसे ही हर्षादि उत्पन्न होता है। इसको विशिष्टबुद्धि स्मृति नहीं कह सकते, क्योंकि पहले ऐसा अनुभव नहीं होता। इसे प्रत्यक्ष भी नहीं कह सकते, क्योंकि तादृश विशिष्टार्थमें इन्द्रियसन्निकर्ष नहीं है। फिर यह अनुमान भी नहीं है; कारण व्याप्तिज्ञान वा व्याप्तिका उपस्थापक कोई भी नहीं है। इसे उपमान भी नहीं मान सकते, कारण तत्करणीभूत पदार्थका प्रतियोगिक कोई भी सादृश्यज्ञान नहीं है। सुतरां शब्दबोध स्वतन्त्र प्रमा और तत्करण शब्दप्रमाणान्तरसिद्ध हुआ।

घटकर्मता, आनयन कृति इत्यादि निराकाङ्क्ष वाक्य घटादि अर्थके वृत्तिवशतः उपस्थापक होने पर भी घटकर्मताक आनयन कर्त्तव्य इत्यादि विशिष्ट बुद्धि उत्पन्न नहीं होती, इस कारण घटपदोत्तरत्वविशिष्ट जो "अम्" पद तथा "अम्" पदोत्तरत्वविशिष्ट आङ्पूर्वक नीपद, नीपदोत्तरत्वविशिष्ट "हि" पदरूप "घटमानय" इत्यादि स्थलीय आकाङ्क्षा ज्ञानकी कारणता उक्त अन्वय-

बुद्धिमें अवश्य स्वीकार्य है। 'वह्निना सिञ्चति' इत्यादि योग्यताविहीन वाक्यसे अन्वयबोध नहीं होता, अतः वह्निकरणत्वाबवत्तारूप योग्यताज्ञान और शाब्दबोधमें कारण है। सेचनरूप पदार्थमें वह्निकरणत्वका बोध है, इस कारण तादृश योग्यताज्ञान असम्भव है। सुतरां वह्निकरणकसेक इत्याकार अन्वयबोध भी नहीं होता। जिस पदके अर्थके साथ अन्वयबोध होता है, उस पदके अर्थकी उस पदमें सत्ता ही योग्यता है, तादृश योग्यताका प्रमात्मक ज्ञान ही शाब्दप्रमाका निदान है। पदके अव्यवधानमें उच्चारण रूप आसत्तिज्ञान भी कारण है। वक्ताका अभिप्रायरूप तात्पर्यनिर्णयात्मक उक्त अन्वयबुद्धिमें कारण होता है।

इस शाब्दबोधमें 'घटमानय' इत्यादि आनुपूर्व्यविशेषरूप आकांक्षा और वक्ताके इच्छास्वरूप तात्पर्यका निर्णय, निकटमें उच्चारणरूप आसत्ति और जिसमें जिसका अन्वय हो उसमें उसका बोध नहीं रहनेके समान योग्यताका ज्ञान जैसा कारण है, पद पदार्थका नियत सम्बन्धरूप वृत्तिज्ञान भी वैसा ही कारण है। वह वृत्तिसङ्केत और लक्षणा अन्यतररूप है। गदाधर भट्टाचार्यका कहना है, "सङ्केतो लक्षणा चार्थे पदवृत्तिः।" "आजानिकस्त्वाधुनिकः सङ्केतो द्विविधो मतः,। नित्य आजानिकस्तत्र या शक्तिरिति गीयते।" यह जगदीशका कथन है। आजानिक और आधुनिकके भेदसे सङ्केत दो प्रकारका है जिनमेंसे भगवदिच्छारूप नित्यसङ्केत है अर्थात् इस शब्दसे यह अर्थ मनुष्यको अनुभवगम्य हो, इस प्रकार ईश्वरीय इच्छा ही नित्यसङ्केत है, उसीका नाम पदकी शक्ति है। सृष्टिकालमें गो-प्रभृति शब्दका गवार्थका तात्पर्यमें प्रयोग देख कर अनुमित होता है कि ईश्वरको ही ऐसी इच्छा है कि गो-शब्द गवार्थका अनुभावक हो, इस प्रकार भगवदिच्छारूप गो-पदका शक्तिग्रहमूलक ही कालान्तरमें 'गो आनयन' इस प्रकार साकाङ्क्ष गवादिपदज्ञानाधीन गवार्थका स्मरण हो कर गोका आनयन कर्त्तव्य है, ऐसा अनुभव होता है। शास्त्रकारोक्त नदी और वृद्धि आदि पदके स्त्रीलिङ्गविहित ऊ, ईप्, और आर्, ऐ, औ आदिमें जो आधुनिक शास्त्रकारीय सङ्केत अर्थात् शास्त्रकारका जो नदीपद है, वह ऊ, ई और वृद्धिपद आर् आदि वर्णका अनुभावक हो, इस प्रकार जो इच्छा है वही आधुनिक सङ्केत है। इसका दूसरा नाम परिभाषा है। प्रथमतः सङ्केतग्रहके उपाय वृद्धव्यवहारको ही शास्त्रकारोंने निर्देश किया है, इसीसे जगदीश कहते हैं, "सङ्केतस्य ग्रहः पूर्वं वृद्धस्य व्यवहारतः। यथा देशीयमानार्थैः शक्तिधीपूर्वकैरसौ।" प्रथमतः व्युत्पन्न किसी पुरुषके शब्दाधीन व्यवहारको देख कर बालकको शक्तिग्रह हुआ करता है, पीछे शक्तिज्ञानपूर्वक सादृश्य ज्ञानरूप उपमान व्याकरण कोष, आप्तवाक्य, सिद्धपदके सन्निधि वाक्यशेष और विवरण आदि पदकी शक्ति वा सङ्केतग्रह होता है। जिस पदके सङ्केतग्रह नहीं है, उसके शक्यसम्बन्धरूप लक्षणाज्ञान भी नहीं रहता। सुतरां उस पदका ज्ञानाधीन किसीके भी शाब्दानुभव नहीं होता। इस शक्तिको निर्वाचन करनेमें गदाधर भट्टाचार्यने अति दुरूह एक विस्तृत ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें शक्तिज्ञानका शाब्दबोधके प्रति कैसा जनकत्व है और शक्ति ही क्या पदार्थ है, किस शब्दके कैसे अर्थमें शक्तिका प्रयोग होता है इत्यादि विषय विशेषरूपसे प्रतिपादन किये हैं।

जगदीशने शब्दके प्रामाण्यके सम्बन्धमें परमत निराकरणपूर्वक शब्द जो स्वतन्त्र प्रमाण है उसे संस्थापनानन्तर प्रकृति, प्रत्यय और निपात इन तीन प्रकारोंमें सार्थकशब्दका विभाग किया है। इनमें नाम और धातुके भेदसे प्रकृति दो प्रकारकी मानी गई है। वह नाम रूढ़, लक्षक, योगरूढ़ और यौगिकके भेदसे चार प्रकारका है। जिसका जिस अर्थमें सङ्केत है, वह पद उस अर्थमें रूढ़ है; उक्त रूढ़ नाम ही संज्ञा नामसे प्रसिद्ध है। यह संज्ञा तीन प्रकारकी है—नैमित्तिकी, पारिभाषिकी और औपाधिकी। गो मनुष्य प्रभृति संज्ञा गोत्व, मनुष्यत्व जातिविशिष्टकी वाचक होनेसे नैमित्तिकी और आधुनिक सङ्केतविशिष्ट नदी वृद्ध्यादिपद ही पारिभाषिकी संज्ञा है। विशेषगुणविशिष्ट आकाशादि अनुगत उपाधिविशिष्टमें सङ्केत होनेसे भूत इत्यादि शब्द औपाधिकी संज्ञा है। लक्षक नाम नाना प्रकारका है—जहत्स्वार्थलक्षणा, अजहत्स्वार्थलक्षणा, निरूढ़लक्षणा और आधुनिकलक्षणा इत्यादि। पङ्कजादि शब्द स्वघटक

पदके वृत्तिलभ्य अर्थके साथ रूढ्यर्थ—पद्मादिका बोध-जनक होनेसे योगरूढ़ है। पाचकादि शब्द केवल स्व-घटकपदके योगार्थ मात्रका अनुभव होनेसे यौगिक हैं। ये सब विषय नामप्रकरणमें विशेषरूपसे प्रतिपादित हुए हैं। प्रकृति, प्रत्यय और निपातादिके लक्षण भी यथाक्रम वर्णित हुए हैं। तदनन्तर यौगिक नामके अन्तर्गत समासका लक्षण और विभाग प्रतिपादन करके समास नामक स्वतन्त्र प्रकरण हुआ है। बाद षट्कारक और उपकारकका व्युत्पादनपूर्वक कारक नाम सुदीर्घ प्रकरण रचा गया है। इस कारकप्रकरणमें प्रत्ययकी विभक्ति, धात्वंश, तद्धित और कृत इन चार प्रकारोंमें विभक्त विभक्ति आदिका सामान्य लक्षण और विशेष लक्षण वर्णित है। विभक्ति दो प्रकारकी है, सुप् और तिङ्। इनमेंसे सुप् कारकार्थ और इतरार्थ है, धात्वर्थमें जो विभक्त्यर्थ प्रकार कह कर अनुभवका विषय होता है, वही कार-कार्थ और तादृश सुबर्थ ही कारक है। तद्भिन्न सुबर्थ ही उपकारक है। गदाधर भट्टाचार्यने प्रथमादि व्युत्पत्ति-वाद नामक विस्तृत ग्रन्थकी रचना कर उसमें प्रथमादि-का अर्थ, उसका अन्वय और उसके सम्बन्धमें आनुषङ्गिक विचारपूर्वक समतसंस्थापन किया है। द्वितीयादिव्यु-त्पत्तिवादमें अभेदान्वयके कारणादि निर्देश और तत्स-म्बन्धमें विचार किया है तथा द्वितीयादिव्युत्पत्तिवादमें ही द्वितीयादिके अर्थ और धात्वर्थके साथ कैसा सम्बन्ध है, इत्यादि विषय लिखे हैं।

बौद्ध-न्याय।

प्रसिद्ध बौद्ध-नैयायिक धर्मकीर्ति रचित न्याय-विन्दुग्रन्थमें बौद्ध न्यायके विषयमें जो कुछ लिखा है उस-का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है। इस ग्रन्थके प्रथम परिच्छेदमें प्रत्यक्ष-ज्ञानका विषय और द्वितीय एवं तृतीय परिच्छेदमें स्वार्थ तथा परार्थानुमानका विषय प्रतिपादित हुआ है। सम्यग्ज्ञान होनेसे समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, पुरुषार्थसिद्धिके विषयमें सम्यग्-ज्ञान ही एकमात्र कारण है। सम्यग्ज्ञान हो जानेसे निर्वाण प्राप्त होता है। हिन्दून्यायमें भी लिखा है 'ज्ञानान्मुक्तिः' अर्थात् ज्ञानलाभ होनेसे मुक्ति होती है। बौद्धोंके मतानुसार सम्यग्ज्ञान होनेसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। अतएव जिससे सम्यग्ज्ञान प्राप्त हो उस-के लिये यत्न करना हरएकका कर्त्तव्य है।

इसीसे पहले सम्यग्ज्ञानका विषय लिखा जाता है—'अविसंवादक जो ज्ञान है' उसीका नाम सम्यग्ज्ञान है, जिसमें किसी प्रकार विसम्वाद (विपरीत ज्ञान) और विरोध प्रभृति न हो, वही सम्यग्ज्ञानपदवाच्य है। प्रमाण द्वारा ही वस्तुका स्वरूपबोध हुआ करता है, अत एव सम्यग्ज्ञान प्राप्त करनेमें प्रमाणकी विशेष आवश्य-कता है। अर्थावगति ही प्रमाणका फल है। प्रमाण द्वारा जो अर्थकी अवगति होती है, उसमें और किसी प्रकारका संशय नहीं रहता, उसी समय पुरुषार्थ प्राप्त होता है। अतएव जो सब विषय अधिगत नहीं है, प्रमाण द्वारा उन्हींको अवगति हुआ करती है। मनुष्य पहले पहल जिस ज्ञान द्वारा अर्थ मालूम करते हैं उसी ज्ञानके अनुसार प्रवर्त्तित हो कर अर्थलाभ किया करते हैं। ये सब अर्थ दृष्टरूपमें अवगत होते हैं, यह प्रत्यक्ष-का विषयीभूत है और जो लिङ्ग (हेतु) दर्शनहेतु निश्चयरूपमें अर्थाववोध होता है वह अनुमानका विषय है। यह प्रत्यक्ष और अनुमान निखिल अर्थसमूहका प्रदर्शक है, इसीसे ये दो प्रमाण हैं। यही सम्यग्-विज्ञान है, इसके अतिरिक्त सम्यग्विज्ञान और कुछ भी नहीं है। पानेके निमित्त शक्य जो अर्थ है, उसका नाम प्रापक है और प्रापक प्रमाणपदवाच्य है। इन दो ज्ञानोंके अतिरिक्त जो ज्ञान है उससे प्रदर्शित जो अर्थ है, वह अत्यन्त विपर्यस्त हुआ करता है। जैसे मरी-चिकामें जल, पहले ही कहा गया है कि जो पानेके लिए शक्य है वह प्रापक है और यही प्रापक प्रमाण है। किन्तु मरीचिकामें जल नहीं मिलता, यहां पर जलका प्रापकत्व नहीं है, सुतरां प्रमाण भी नहीं होगा। मरी-चिकामें जलकी अत्यन्त असत्ता है इसीसे उसमें जल-प्राप्ति असम्भव है। जहां जहां वस्तुका प्रापक नहीं होगा वहां प्रमाण भी नहीं होगा; सन्देहस्थलमें जगत्‌में भाव और अभावयुक्त कोई पदार्थ देखनेमें नहीं आता और वह वस्तुका प्रापक नहीं है, सुतरां संशय भी भ्रमवत् प्रमाण नहीं होगा। सम्यग्ज्ञान होनेसे तत्क्षणात् पुरु-षार्थसिद्धि नहीं होगी। पुरुषार्थसिद्धिके प्रति सम्यग्-

ज्ञान साक्षात् कारण नहीं है, पूर्वमात्र है। सम्यग्ज्ञान लाभ होनेसे पूर्वदृष्टका स्मरण होता है। स्मरणसे अभिलाष, अभिलाषसे प्रवृत्ति, प्रवृत्तिसे पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है इसीसे सम्यग्ज्ञान साक्षात् कारण नहीं है, पूर्वमात्र निर्दिष्ट हुआ है।

यह सम्यग्ज्ञान दो प्रकारका है, प्रत्यक्ष और अनुमान। इन्हीं दो द्वारा सम्यग्ज्ञान लाभ होता है। जहां प्रत्यक्ष द्वारा वस्तुकी उपलब्धि नहीं होती, वहां अनुमान द्वारा होती है। अनुमान-ज्ञानको भी प्रत्यक्षवत् जानना चाहिए। यह प्रत्यक्ष भी अनुमान द्वारा निखिल वस्तुतत्त्वका ज्ञान होगा। निखिल-वस्तुतत्त्वका स्वरूपबोध होनेसे तब सम्यग्ज्ञान लाभ होता है। इस प्रत्यक्ष और अनुमानको प्रत्यक्ष और मानप्रमाण कहते हैं। यथाक्रम इसका लक्षण भी लिखा जाता है।

प्रत्यक्ष—जो कल्पनापोढ़ और अभ्रान्त है वही प्रत्यक्ष है अर्थात् जो कल्पनापोढ़ (काल्पनिक) नहीं है और अभ्रान्त है जिसमें कुछ भी भ्रम नहीं है, वही प्रत्यक्ष पदवाच्य है। जिस किसी अर्थका साक्षात्कारि जो ज्ञान है, वही प्रत्यक्ष है। चक्षुके साथ विषयेन्द्रियजन्य जो ज्ञान होता है, वह प्रत्यक्ष है। इन्द्रियाश्रित ज्ञानमात्र ही प्रत्यक्ष पदवाच्य होगा।

कल्पनापोढ़ और अभ्रान्तत्व ये दो विशेषण विप्रतिपत्तिनिराकरणके लिये उक्त हुए हैं, अनुमाननिवृत्तिके लिए नहीं।

तिमिर, आशुभ्रमण, नौयान, संक्षोभ आदिमें जो ज्ञान होता है, उससे यथार्थमें वस्तुका अवरोध नहीं होता, इसलिए भ्रान्तत्वका निरास किया गया है।

यह प्रत्यक्षज्ञान चार प्रकारका है—इन्द्रियजन्यज्ञान, मनोविज्ञान, आत्मज्ञान और योगिज्ञान। इन्द्रियका जो ज्ञान है अर्थात् जो ज्ञान इन्द्रियाश्रित है, उसे इन्द्रियजन्यज्ञान कहते हैं। यह इन्द्रियजन्यज्ञान भी फिर दो प्रकारका है, परस्परोपकारी और एककार्यकारी। जो इन्द्रियज्ञानका विषय नहीं है, वही मनोविज्ञान होगा। जो सिद्धान्त द्वारा प्रसिद्ध है वह मानस प्रत्यक्ष और जो रूप द्वारा आत्मवेदिता ही वह आत्मसंवेदन वा आत्मज्ञान है।

योगका अर्थ समाधि है, जिसके यह योग है, उसको योगी कहते हैं। एवम्भूत योगीका जो ज्ञान है उसे योगिप्रत्यक्ष वा योगिज्ञान कहते हैं। धर्मोत्तराचार्यरचित न्यायबिन्दु टीकामें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है।

अनुमान—अनुमान प्रमाण दो प्रकारका है, स्वार्थ और परार्थ अर्थात् स्वार्थानुमान और परार्थानुमान। इनमेंसे परार्थानुमान शब्दात्मक है और स्वार्थानुमान ज्ञानात्मक। इन दोनोंमें अत्यन्त भेदवशतः पृथक् लक्षण निर्दिष्ट हुआ है। स्वार्थानुमान ज्ञानस्वरूप है, इसमें किसी प्रकार शब्दोच्चारण करना नहीं होता। जिस अनुमानमें आपसे आप प्रतिपन्न हो जाय अर्थात् जो अपने लिए है वह स्वार्थानुमान और जिससे दूसरेको प्रतिपादन किया जाय अर्थात् जो दूसरेके लिए है वह परार्थानुमान है। इस स्वार्थ और परार्थ ज्ञानके मध्य पहले स्वार्थानुमानका विषय कहा जाता है। स्वार्थानुमान—त्रिरूप अर्थात् त्रिविधलिङ्ग उत्पन्न अनुमेयका आलम्बन अर्थात् अनुमानके विषयीभूत जो वस्तु है उसका आलम्बन जो ज्ञान है, वही स्वार्थानुमान कहलाता है।

त्रिविध लिङ्ग यथा—अनुमेयविषयमें सत्ता (अस्तित्व) अनुमानके विषयीभूत जो वस्तु है उसमें अस्तित्व है। सपक्षमें सत्ता और असपक्षमें असत्ता इन तीन लिङ्गोंके द्वारा स्वार्थानुमान ज्ञान हुआ करता है। इस त्रिविध-लिङ्गका विषय न्यायबिन्दुटीकामें इस प्रकार देखनेमें आता है। प्रथम अनुमेय और सपक्षमें जो सत्ता है तथा असपक्षमें अर्थात् विपक्षमें जो असत्ता है, उसका नाम लिङ्ग है। अभी इसके अर्थका विषय देखना चाहिये। अनुमेय अनुमानके विषयीभूत वस्तुमात्र ही अनुमेय शब्दका तात्पर्यार्थ है। किन्तु इसके मतमें अनुमेय कहनेसे ठीक वैसा समझा नहीं जाता; निश्चेतव्य जो हेतु और लक्षण है, उस विषयमें जो धर्मी है, वही अनुमेय है। जाननेके लिये अभिलषित विषय ही धर्म है अर्थात् ज्ञातव्य विषय ही धर्म नामसे प्रसिद्ध है। यह अनुमेय जो सत्ता (अस्तित्व) है वह प्रथम है। द्वितीय सपक्षमें सत्ता—समान अर्थ सपक्ष अर्थात् साध्यधर्मके साथ तुल्य जो अर्थ है, उसे सपक्ष कहते हैं। इस सपक्षमें जो सत्ता

(अस्तित्व) है वह द्वितीय है। तृतीय असपक्षमें असत्ता है। असपक्ष सपक्षभिन्न अर्थात् विपक्ष है, उसमें जो असत्ता (अनस्तित्व) है, वह तृतीय है। इसी त्रिविध लिङ्गसे परार्थानुमान होता है।

वस्तु धारणके प्रति दो हेतु हैं, एक प्रतिषेध हेतु और दूसरा समर्थक हेतु। अर्थात् किसी एक वस्तुका साधन करनेमें उसमें प्रतिषेधकहेतु और समर्थक हेतु देना होता है। यह प्रतिषेधकहेतु ग्यारह प्रकारका है। यथा—स्वभावानुपलब्धि, कार्यानुपलब्धि, व्यापकानुपलब्धि, स्वभावविरुद्धोपलब्धि, विरुद्धव्याप्तोपलब्धि, विरुद्धकार्योपलब्धि, कार्यविरुद्धोपलब्धि, व्यापकविरुद्धोपलब्धि, कारणानुपलब्धि, कारणविरुद्धोपलब्धि और कारणविरुद्धकार्योपलब्धि।

स्वभावानुपलब्धि—स्वाभाविक अनुपलब्धि है। यथा—"नात्र धूम उपलब्धिलक्षणप्राप्तस्यानुपलब्धेः।" यहां पर धूम नहीं है, क्योंकि यहां उपलब्धि लक्षण प्राप्तिके अर्थात् जिससे धूमका बोध हो सके ऐसे किसी विषयमें उपलब्धिका बोध नहीं है। इस कारण यह स्थिर हुआ कि 'नात्र धूमः' अर्थात् धूम नहीं है; यदि धूम रहता, तो धूमोपलब्धिका बोध हो सकता था। यह धूमज्ञानका प्रतिषेधक होनेके कारण प्रतिषेधक हेतु हुआ है।

कार्यानुपलब्धि—कार्यको अनुपलब्धि यथा—"नेह प्रतिबद्धसामर्थ्यानि धूमकारणानि सन्ति धूमाभावात्।" पहले कहा जा चुका है कि धूम नहीं है, इस धूमके अभाववशतः अप्रतिबन्धसामर्थ्य जो धूम कारण है, वह भी नहीं है। जब धूम नहीं है, तब धूमकारण भी नहीं है, इसीसे कार्यकी अनुपलब्धि हुई।

व्यापकानुपलब्धि—व्यापक वस्तुकी अनुपलब्धि, यथा—"नात्र शिंशपा वृक्षाभावात्।" यहां पर शिंशपा वृक्ष नहीं है, क्योंकि वृक्षका अभाव है। शिंशपा एक प्रकारका वृक्ष है, यदि वहां कोई वृक्ष न रहे तो शिंशपा वृक्षरूप व्यापकका अभावहेतु शिंशपा व्याप्यकी अनुपलब्धि हुई।

स्वभावविरुद्धोपलब्धि—स्वभाववशतः जो विरुद्ध है, उसकी अनुपलब्धि, यथा—"नात्र शीतस्पर्शोऽग्नेरिति।" यहां पर अग्निमें शीतस्पर्श नहीं है। अग्निमें शीतस्पर्श स्वभावविरुद्ध है, अतएव स्वभावविरुद्ध वस्तुको उपलब्धि होती है। जहां अग्नि रहती है, वहां उष्णस्पर्श रहेगा। अग्निमें शीतस्पर्श वा जलमें उष्णस्पर्श नहीं हो सकता, अतएव यहां पर स्वभावविरुद्धोपलब्धि है।

विरुद्धकार्योपलब्धि—विरुद्ध कार्यकी उपलब्धि, यथा—"नात्र शीतस्पर्शो धूमादिति।" यहां पर शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है। धूम रहनेसे उष्णस्पर्श रहेगा ही, यहां विरुद्ध कार्यको उपलब्धि होती है। विरुद्धव्याप्तोपलब्धि—विरुद्ध जो व्याप्ति है उसकी उपलब्धि।

कार्यविरुद्धोपलब्धि—कार्यविरुद्ध जो वस्तु है, उसकी उपलब्धि। इत्यादि लक्षण दुर्बोध्य होनेके कारण छोड़ दिये गये।

स्वार्थानुमानके बाद परार्थानुमान लिखा जाता है।

परार्थानुमान शब्दस्वरूप है। इसमें दूसरेको समझानेके लिये अनुमानसूचक शब्दोच्चारण करना होता है। जैसे—तुम निश्चय जानोगे, कि जब धूम दिखाई देता है, तब अवश्य ही वहां वह्नि है इत्यादि। "परस्मै इदं परार्थं, परार्थं अनुमानं परार्थानुमानं"; दूसरेके निमित्त जो अनुमान है, उसे परार्थानुमान कहते हैं। कारणमें कार्योपचार अर्थात् कारण देखनेसे जो कार्यका अनुमान होता है, वही परार्थानुमान है। गौतमके मतसे लिङ्गज्ञानपूर्वक लिङ्गीका जो अनुमान है वह प्रायः एक ही प्रकार है। यह परार्थानुमान दो प्रकारका है, साधर्म्यवत् और वैधर्म्यवत्। यथार्थमें इसके अर्थमें कोई भेद नहीं है। प्रयोगकी जगह भिन्न होनेके कारण प्रयोगानुसार ही इसके दो भेद हुए हैं। इस परार्थानुमानमें व्याप्ति, अन्वय, व्यतिरेक आदिका विषय आलोचित हुआ है। इसी परार्थानुमान द्वारा भगवान् ऋषभदेव और वर्द्धमान प्रभृति तीर्थङ्करादिका जैनमत और गौतम तथा कपिल आदिका मत खण्डित हुआ है।

धर्मकीर्त्तिने पहले जैन और हिन्दू प्रभृति दार्शनिकोंका मत खण्डन कर सम्यग्ज्ञानका विषय स्थिर किया है। इस सम्यग्ज्ञानके प्राप्त होनेसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं, फिर कोई प्रयोजन नहीं रहता। इसका विशेष विवरण न्यायबिन्दु और उसकी टीकामें विस्तृतरूपसे लिखा है।

बौद्धोंके न्यायशास्त्रके जैसा जैनोंका भी स्वतन्त्र तर्कशास्त्र है। उन्होंने स्याद्वादके मध्य अधिकांश तर्कशास्त्रको आलोचना की है। स्याद्वाद देखो।

भारतीय न्यायशास्त्रका संक्षिप्त इतिहास।

किस प्रकार इस भारतवर्षमें न्यायदर्शनकी उत्पत्ति हुई थी, उसका प्रकृत तत्त्वनिर्णय करना सहज नहीं है। वर्त्तमान पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है कि बौद्ध प्रभृति विरुद्धमतावलम्बियोंका मत खण्डन करनेके लिये हिन्दुओंने तर्कके अनेक नियम प्रचार किये। हिन्दू और बौद्धोंके परस्पर संघर्षके परिणामसे खृष्टपूर्व पञ्चम-शताब्दीमें न्यायशास्त्रकी उत्पत्ति हुई।

फिर किसी भारतीय पण्डितका मत है—"वैदिक वाक्यसमूहके समन्वयसाधन-निमित्त जैमिनिने जो सब तर्क और उसके नियम विधिबद्ध किये थे, वही पहले न्याय नामसे प्रसिद्ध था। आपस्तम्ब-धर्मसूत्रके द्वितीय अध्यायमें जो न्याय शब्दका उल्लेख है, वह जैमिनिका पूर्व-मीमांसानिर्देशक है और उस अध्यायमें जो न्याय-वित् शब्द है उसका अर्थ मीमांसक है। माधवाचार्यने पूर्व मीमांसाका जो सार संग्रह किया था उसका नाम है न्यायमालाविस्तार। वाचस्पतिमिश्रने भी न्याय-कणिका नामक एक और मीमांसा ग्रन्थकी रचना की। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे जाना जाता है कि पहले न्याय शब्द मीमांसा अर्थमें ही व्यवहृत होता था। वेदका अर्थ विशद करनेके उद्देशसे जो सब तर्क वा न्याय व्यवहृत होते थे, वे सब न्याय सुशृङ्खलाभावमें संगृहीत हो कर जिस शास्त्रको उत्पत्ति हुई वही आन्वीक्षिकी-विद्या नामसे प्रसिद्ध था। यथार्थमें महर्षि जैमिनिका उद्भावित तर्क समूह ही आन्वीक्षिकी विद्याका बीज है, वही तर्कसमूह न्याय कहलाता था। शब्दका नित्यानित्य, जीवात्माका स्वरूप, मुक्ति इत्यादि तत्त्वसमूहका आन्वीक्षिकी विद्यामें अन्त-र्निविष्ट करके गौतमने जो दार्शनिक मत प्रचार किया, वह कालक्रमसे न्याय-शास्त्र नामसे प्रचलित हुआ।

पाश्चात्य और उक्त भारतीय विद्वानोंने न्यायदर्शन-की उत्पत्तिके विषयमें जो कालनिर्णय और युक्ति प्रकाश की है, हम लोगोंके क्षुद्र विचारसे उसका अधिकांश समीचीन जैसा बोध नहीं होता। बुद्धदेवके अभ्युदय-के बाद हिन्दू और बौद्धोंके संघर्षसे न्याय वा तर्क-विद्याकी उत्पत्ति हुई अथवा मीमांसाका तर्कसमूह जो पूर्वकालमें आन्वीक्षिकी नामसे प्रचलित था और पीछे गौतमका न्यायसूत्र प्रचारित होने पर आन्वीक्षिकी शब्द ही न्यायशास्त्ररूपमें गिना जाने लगा है, इस युक्तिका समर्थन नहीं किया जाता। मीमांसा देखो। न्यायशास्त्र का बीज उपनिषद्में दीख पड़ता है। उसी समयसे नाना दार्शनिकमत प्रचलित होता आ रहा है। गौतमने उसका कोई कोई मत संशोधित और परिवर्त्तित कर के अपने सूत्रके मध्य सन्निविष्ट किया है।

वैदान्तिक लोगोंका कहना है कि उपनिषद् वा वेदान्तमें हेतु, उदाहरण और निगमन ये ही तीन अवयव स्वीकृत हुए हैं। पीछे देखा जाता है कि न्यायसूत्रप्रवर्त्तक गौतमने युक्ति द्वारा प्रतिज्ञा और उपनय इन दोनोंको अतिरिक्त मान कर पञ्चावयव स्वीकार किया है। कोई कोई गौतमसूत्रके १।१।३२वें सूत्रके वात्स्यायन भाष्य-में, "दशावयवानेके नैयायिका वाक्ये सञ्चक्षते" इत्यादि उक्ति देख कर कहते हैं कि गौतमका न्यायसूत्र ग्रथित होनेके पहले भी नैयायिकगण विद्यमान थे। वात्स्या-यनके पहले कोई कोई नैयायिक १० अवयव स्वीकार करते थे, वात्स्यायनने उनका भ्रान्त मत खण्डन किया है। किन्तु गौतमके पहले किसी दूसरेने १० अवयव स्वीकार किये थे इसका प्रमाण नहीं मिलता।

सभी हिन्दूशास्त्रके मतसे—गौतम ही न्यायशास्त्रके प्रवर्त्तक थे। शौनकरचित चरणव्यूहमें इस न्याय वा तर्कशास्त्रको अथर्ववेदका उपाङ्ग बतलाया है।

"प्रतिपदमनुपदं छन्दोभाषा धर्मो मीमांसा न्यायस्तर्क इत्युपा-ङ्गानि" (चरणव्यूह)

स्मृतिशास्त्रके मतसे—न्यायशास्त्र १४वीं विद्याके अन्तर्गत है। ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है कि—"जातु-कर्ण नामक २७वें व्यासके समय प्रभासतीर्थमें योगात्मा सोमशर्माका आविर्भाव हुआ। अक्षपाद, कणाद, उलूक और वत्स ये चार उनके पुत्र थे।

प्रसिद्ध जर्मन पण्डित वेवरसाहबने अपने "संस्कृत साहित्यके इतिहासमें" लिखा है कि उन्होंने अक्षपाद

नाम माधवाचार्यके सर्वदर्शनसंग्रहमें पाया है किन्तु अक्षपाद नाम नितान्त आधुनिक नहीं है, यह ब्रह्माण्ड-पुराणकी उक्ति द्वारा प्रमाणित होता है।

पाश्चात्य पण्डितोंने लिखा है कि ५वीं शताब्दीमें ब्रह्माण्डपुराण और महाभारत यवद्वीपमें लाया गया था। सुतरां ५वीं शताब्दीके बहुत पहिलेसे 'अक्षपाद' नाम प्रचलित था, इसमें सन्देह नहीं। बौद्धोंके लङ्कावतार सूत्रमें अक्षपाद-दर्शनका उल्लेख है। उद्योतकराचार्यने न्यायवार्त्तिकमें और पीछे वाचस्पतिमिश्रने वार्त्तिक-तात्पर्यटीकामें न्यायशास्त्र प्रवर्त्तक अक्षपादको प्रणाम कर अपने अपने ग्रन्थका आरम्भ किया है। उद्योतकर और वाचस्पति दोनों ही माधवाचार्यके बहुपूर्ववर्त्ती थे, इसमें सन्देह नहीं।

अक्षपाद नाम क्यों पड़ा, इस सम्बन्धमें आधुनिक नैयायिक समाजमें जो आख्यायिका प्रचलित है वह इस प्रकार है कृष्णद्वैपायन वेदव्यासने गौतमप्रणीत न्याय-सूत्रकी निन्दा की थी। इस कारण गौतमने प्रतिज्ञा कर ली कि वे फिर कभी नहीं वेदव्यासके मुखदर्शन करेंगे। इस पर वेदव्यासने उनको यथेष्ट सान्त्वना की। किन्तु गौतमने जो प्रतिज्ञा की है, वह कदापि टलनेकी नहीं। पीछे गौतमने पादमें अक्षि प्रकाशित करके उसी द्वारा व्यासका मुखावलोकन किया। गौतम-का अक्षपाद नाम पड़नेका यही कारण है।'

यह आख्यायिका किसी पुराणादिमें लिखी नहीं है। ब्रह्माण्डपुराणसे जाना जाता है कि अक्षपाद और कणादके पीछे कृष्णद्वैपायन व्यास आविर्भूत हुए थे। फिर महाभारतके आदि पर्वमें (२।१७५) और शान्ति पर्वमें (१८०।४७-४८) आन्वीक्षिकी और तर्कविद्याका यथेष्ट निन्दावाद है।

"आन्वीक्षिकीं तर्कविद्यामनुरक्तो निरर्थिकाम्।
हेतुवादान् प्रवदिता वक्ता संसत्सु हेतुमत्॥
आक्रोष्टा चाभिवक्ता च ब्रह्मवाक्येषु च द्विजान्।"

यहां तक कि आन्वीक्षिकी और तर्कविद्यानुरागीके शृगालयोनि प्राप्तिकी कथा भी वेदव्यास और वाल्मीकि-ने लिखनेके लिये नहीं छोड़ी। मालूम होता है, इत्यादि निन्दावाद देख कर ही अक्षपादकी आख्यायिका कल्पित हुई होगी।

आन्वीक्षिकीके सम्बन्धमें मधुसूदन सरस्वतीने प्रस्थान-भेद नामक ग्रन्थमें लिखा है—

"न्याय आन्वीक्षिकी पञ्चाध्यायी गौतमेन प्रणीता।"

कृष्णद्वैपायनके समयमें जो नैयायिकगण विद्यमान थे, महाभारतसे ही उसका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

महाभारतके सुविख्यात टीकाकार नीलकण्ठने उपरोक्त महाभारतवर्णित आन्वीक्षिकी और तर्कविद्या शब्दकी ऐसी व्याख्या की है—

"ईक्षा प्रत्यक्षं तामनुप्रवृत्ता ईक्षा अन्वीक्षा धूमादि-दर्शनेन वह्न्याद्यनुमानं तत्प्रधानामान्वीक्षिकीं तर्क-विद्यां कणभक्षाक्ष-चरणादिप्रणीतं शास्त्रं।"

देवस्वामी, विमलबोध आदि महाभारतके प्राचीन-तम टीकाकारोंने भी नीलकण्ठ सरीखी व्याख्या की है। मनुसंहिताके मेधातिथि-भाष्यमें भी 'आन्वीक्षिक्यपि तर्कविद्यार्थशास्त्रादिका' ऐसा लिखा है। किसी भी प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें आन्वीक्षिकी शब्दका अर्थ 'पूर्वमीमांसावर्णित युक्ति' है ऐसा कहीं भी नहीं मिला। सुतरां आन्वीक्षिकी विद्या मीमांसाशास्त्रसम्भूत है ऐसा नहीं मान सकते। मीमांसामूलक होने पर वेदव्यास कभी भी आन्वीक्षिकी विद्याका निन्दावाद नहीं करते थे। वेदव्यासने आन्वीक्षिकी वा नैया-यिकोंकी क्यों निन्दा की है?

आदिपर्वमें २।१७५ श्लोकके—"नैयायिकानां मुख्येन वक्तव्यात्मजेन च।' इत्यादि स्थलमें विमलबोधने दुर्घ-टार्थ प्रकाशिनी नामक भारतटीकामें लिखा है, "नैया-यिकानां मुख्येन युक्तिरेव बलीयसी न तु श्रुतिरिति मन्य-मानेन' अर्थात् नैयायिक लोगोंने श्रुतिके प्रमाणकी अपेक्षा युक्तिको ही प्रधान माना है। किन्तु मीमांसकगण उसका उलटा मानते हैं। श्रुतिकी अपेक्षा युक्तिका प्राधान्य स्वीकार करनेमें ही नैयायिकगण वेदव्यासके निकट निन्दित हुए हैं।

मीमांसकगण वेदको अपौरुषेय और नैयायिकगण पौरुषेय मानते हैं, यह भी निन्दाका अन्यतम कारण हो सकता है।

मनुसंहिताके भाष्यमें मेधातिथिने भी लिखा है,—"तर्कप्रधाना ग्रन्था लौकिकप्रमाणस्वरूपेण परा न्याय-वैशेषिकलौकायतिका उच्यन्ते ।...कपिलकणादक्रिया-मविरथताजि ग्रन्थान्तादिषु हि शब्दः प्रमाणं तथा चाच-पादसूत्रम् । प्रत्यक्षानुमानोपमाः शब्दाः प्रमाणानि वैशे-षिका अपि" (१२।१०६) यहां मेधातिथिने भी न्याय-वैशेषिकको लौकायतिक, कपिल आदि निरीश्वरवादी-के साथ एक श्रेणीभुक्त किया है ।

महाभारत छोड़ कर रामायणके अयोध्याकाण्डमें भी "नैयायिक" शब्दका उल्लेख है । इससे अनुमान किया जाता है कि रामायण-रचनासे पहले ही न्याय-शास्त्रका प्रचार हुआ था । एतद्भिन्न पाणिनिने उक्-थादिगणमें 'न्याय' और उक्त गणसूत्रके ४।२।६० सूत्रमें नैयायिक शब्दस्वीकार किया है । सुश्रुतमें तर्कग्रन्थका नाम और चरकसंहितामें हेतु, उपनय, प्रत्यक्ष, अनुमान इत्यादि बहुतर पारिभाषिक शब्द द्वारा न्यायशास्त्रका प्रसङ्ग सूचित हुआ है ।

शबरस्वामीने मीमांसाभाष्यमें उपवर्षके भाष्यसे जो वचन उद्धृत किये हैं, उनसे स्पष्ट जाना जाता है कि उपवर्ष गौतमके न्यायसूत्रसे अच्छी तरह जानकार थे और उन्होंने गौतमका मत कई जगह ग्रहण किया है। श्वेताम्बर जैनोंके उत्तराध्ययनवृत्ति, त्रिषष्टिशलाकापुरुष-चरित, ऋषिमण्डल-प्रकरण आदि ग्रन्थ पढ़नेसे ज्ञात होता है कि उपवर्ष महाराज नन्दके समयमें पांचवीं शताब्दीके पहले विद्यमान थे ।

उपरोक्त अनेक प्रमाण देखनेसे यह मुक्तकण्ठसे कहा जा सकता है कि शाक्यबुद्धके आविर्भावके कई सौ वर्ष पहले गौतमका न्यायशास्त्र प्रचलित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं ।

महामहोपाध्याय चन्द्रकान्त तर्कालङ्कार महाशयने लिखा है कि सभी दर्शनसूत्रोंमें वैशेषिकसूत्र ही प्रथम है । किसी किसीका यह भी मत है कि न्यायसूत्र सभी दर्शनोंका शेष है । किन्तु भिन्न भिन्न दर्शनसूत्रसमूह-की आलोचना करनेसे कौन पहले और कौन पीछे प्रथित हुआ है इसका स्थिर करना असम्भव हो जाता है । फिर एक ही दर्शनकी एक ही बात भिन्न भिन्न दर्शनोंमें देखनेमें आती है । जैसे—गौतमसूत्रका ३।२।१४ सूत्र और ब्रह्मसूत्रका २।१।२४ सूत्र, फिर कणादसूत्रका ३।२।४ सूत्र और गौतमसूत्रका १।१।१० सूत्र मिलानेसे भिन्न दर्शन होने पर भी एक ही बात देखनेमें आती है । ऐसे स्थान पर कौन किसका पूर्ववर्ती है, यह स्थिर करना असम्भव है । इस प्रकार भिन्न दर्शनमें एक ही कथा पा कर दार्शनिक लोग अनुमान करते हैं कि गौतम, कणाद वा बादरायणके समयमें वा उनके पहले लोकसमाजमें ये सब युक्तियां वा दृष्टान्त प्रचलित थे। यथार्थमें ये सब युक्तियां वा सिद्धान्त सार्वजनिक वा सबोंके मनमें यथासमय उदित हो सकते हैं, इसलिये दूसरे स्वतःप्रवृत्त हो कर ही ग्रहण करें, तो फिर आश्चर्य ही क्या है ! किन्तु सभी दर्शनोंका एक विशेषत्व वा पारि-भाषिकत्व है जो एक दर्शनके सिवा दूसरे दर्शनमें नहीं है और विशेषत्वनिबन्धनसे ही भिन्न भिन्न दर्शनका भिन्न भिन्न नाम पड़ा है ।

जिस दर्शनका जो विशेषत्व है, उसका प्रसङ्ग यदि हम लोगोंको भिन्न दर्शनमें मिले, तो यह अवश्य कहना पड़ेगा कि जिस दर्शनने दूसरे दर्शनका विशेष मत ग्रहण किया है, वह दर्शन परवर्त्तीकालमें लिपिबद्ध हुआ है । सांख्यसूत्रमें "न वयं षट्पदार्थवादिनो वैशेषिका-दिवत्" (१।२४) इत्यादि सूत्रसे स्पष्ट वैशेषिक मत-खण्डन, "पञ्चावयवसंयोगात् सुखसम्वित्ति" (५।२७) और "षोड़शादिष्वप्येवम्" (५।८६) इत्यादि सूत्रसे गौतमसूत्रका खण्डन और "ईश्वरासिद्धेः" (१।९०) इत्यादि सूत्रसे पातञ्जलसूत्रका मत खण्डित हुआ है।

जैमिनिके मीमांसासूत्रमें "औत्पत्तिकस्तु शब्दस्या-र्थेन सम्बन्धस्तस्य ज्ञानमुपदेशोऽव्यतिरेकश्चार्थेऽनुपलब्धे-स्तत्प्रमाणं बादरायणस्यानपेक्षत्वात्." (१।१।५)

"कर्म्माण्यपि जैमिनिः फलार्थत्वात्" (३।१।४) इत्यादि सूत्रमें बादरायणका मत खण्डित हुआ है और जैमिनिका नाम पाया जाता है ।

फिर वेदान्तसूत्रमें "साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः" (१।२।२८)

"सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ।" (१।२।३१) फिर "तदुपर्य्यपि बादरायणसम्भवात् ।" (१।३।२६)

इसके अलावा १।३।३१ और १।४।१८ सूत्रमें जैमिनिका मत एवं "तर्कप्रतिष्ठानात्" (२।१।११) इत्यादि सूत्रमें न्यायशास्त्रका मत खण्डित हुआ है।

उपरोक्त प्रमाणानुसार देखा जाता है कि सांख्य-सूत्र, जैमिनिसूत्र और वेदान्तसूत्रमें अपर दर्शनका मत-खण्डन और दर्शनकारोंके नाम हैं तथा पातञ्जलसूत्रमें भी परमाणुप्रसङ्ग रहनेसे कोई कोई उन्हें वैशेषिकके परवर्ती मानते हैं। किन्तु वैशेषिक और न्यायसूत्रमें हम लोग किसी दूसरे दर्शनकारोंके नाम वा मतामत नहीं पाते। इस हिसाबसे वैशेषिकसूत्रको ही प्रचलित अपरापर दर्शनसूत्रसे प्राचीन मान सकते हैं। महामहो-पाध्याय तर्कालङ्कार महाशयने जो मत प्रकाशित किया है उसीको हम युक्तियुक्त समझते हैं।

न्यायसूत्रके (१।१।५) भाष्यमें वात्स्यायनने जो मत प्रकाशित किया है उससे मालूम होता है कि उनके पहलेसे ही सूत्रका प्रकृत पाठ और प्रकृत अर्थ ले कर कुछ गड़बड़ी हुई थी। फिर एक जगह वात्स्यायनने कहा है कि गौतमने जिसका विस्तारके भयसे उल्लेख नहीं किया, वह वैशेषिक दर्शनसे ग्रहण करना होगा। इससे जाना जाता है कि वैशेषिक और न्याय ये दो ले कर एक दर्शन गिना जाता था और नैयायिक लोग सभी बातें गौतमसूत्रमें नहीं रहनेके कारण वैशेषिक-की सहायतासे सब विषयोंकी मीमांसा करते थे। यथार्थ-में न्याय और कणादसूत्रकी आलोचना करनेसे वे दोनों एक माताके गर्भजात, एक साथ वर्द्धित और एकत्र प्रतिष्ठित हुए थे ऐसा जाना जाता है। दोनोंमें वैशेषिक बड़ा और अक्षपाद छोटा समझा जाता है। वैशेषिककी बहुत-सी बातें न्यायसूत्रमें और न्यायसूत्रकी बहुत-सी बातें वैशेषिकसूत्रमें लिखी हैं। कणादसूत्रमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ये छः पदार्थ तथा गौतमसूत्रमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ वर्णित हुए हैं।

अब प्रश्न उठता है कि गौतम और कणाद दोनोंने ही जब विशेषरूपमें तर्कशास्त्रकी आलोचना की है, तब एकका नाम न्याय और दूसरेका वैशेषिक होनेका कारण क्या?

तर्कशास्त्रकी आलोचना करने पर भी कणादने सुप्रणालीरूपमें और सुशृङ्खल भावमें इस शास्त्रको आलो-चना नहीं की। वे 'विशेष' नामसे एक विशेष पदार्थ-को स्वीकार करते हैं, इस कारण उनके दर्शनका वैशे-षिक नाम पड़ा। वैशेषिक देखो। गौतमसूत्रमें दूसरे सभी दर्शनोंकी अपेक्षा सुशृङ्खलभावमें न्यायकी विस्तृत आलो-चना है, इस कारण उसका न्यायदर्शन नाम पड़ा है। इस सम्बन्धमें रघुनाथने लौकिक न्यायसंग्रहमें लिखा है—

"असाधारण्येन व्यपदेशा भवन्ति इति न्यायः। यथा गौतमोक्तशास्त्रे प्रमाणानि षोड़शपदार्थप्रतिपादनेऽपि तदेकदेशन्यायपदार्थस्य अन्यशास्त्रापेक्षया प्राधान्येन प्रतिपादनात् न्यायशास्त्रमिति तस्य संज्ञा।"

न्यायसूत्रके भाष्यकार वात्स्यायनने लिखा है—

"प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्।
आश्रयः सर्वधर्माणां विद्योद्देशे प्रकीर्तिता॥" (१।१।१)

तर्कविद्या सभी विद्याओंका प्रदीपस्वरूप है, सभी कर्मोंका उपाय और निखिल धर्मका आश्रय है।

मानव मिथ्याज्ञानवशसे ही नाना कर्मानुष्ठान कर-के जन्मलाभ और बहु दुःखभोग करते हैं। सुतरां मिथ्याज्ञान रहनेसे मानवका दुःखोच्छेद नहीं हो सकता। दुःखोच्छेद करनेमें पहले मिथ्याज्ञानका उच्छेद आव-श्यक है। सर्वत्र तत्त्वज्ञान ही मिथ्याज्ञानका निव-र्त्तक है। आत्मतत्त्वज्ञान होनेसे ही मिथ्याज्ञान जाता जाता है। उस समय मिथ्याज्ञानजन्य दुःख आपसे आप तिरोहित हो जाता है। आत्मतत्त्वज्ञान ही मुक्ति-का परम उपाय है। इस आत्मतत्त्वके सम्बन्धमें सम्प्र-दायके भेदसे नाना प्रकारके मतभेद देखनेमें आते हैं। इस कारण इसमें लोगोंको नाना प्रकारका सन्देह हुआ करता है। उससे आत्मतत्त्वका निर्णयज्ञान होना दुष्कर है। अतएव सन्देह दूर करके निर्णय करनेमें विचार आवश्यक है। मुमुक्षु किस प्रकार उसका विचार करेंगे, महर्षि गौतमने न्यायसूत्रमें यह विचारप्रणाली निरूपण की है और विचार करनेमें उसका प्रयोजनीय

प्रमाणादि पदार्थ जाने बिना मनुष्य विचारप्रणाली नहीं जान सकती, इस कारण उन्होंने प्रमाणादि पदार्थका भी निरूपण किया है। न्यायदर्शनका मूल उद्देश्य मुक्ति है। मिथ्याज्ञान किस प्रकार दुःखका मूल कारण है और तत्त्वज्ञान हो जाने पर किस प्रणालीसे मुक्ति होती है, न्यायदर्शनमें वह भी आलोचित हुआ है। न्यायसूत्रमें निर्दिष्ट सोलह पदार्थोंका तत्त्वज्ञान मुक्तिका मूल कारण है सही, लेकिन साक्षात्कारण नहीं है, परम्पराकारण है। इस कारण तत्वज्ञान होनेसे भी परक्षणमें ही मनुष्यको मुक्ति नहीं होती। गौतमके मतसे न्यायसूत्रकथित क्रमानुसार मुक्ति हुआ करती है। मुक्तिके विषयमें चतुर्विध तत्त्वज्ञान क्रमशः हेतु हुआ करता है। यथा—तत्त्वश्रवण, तत्त्वानुमान, तत्त्वज्ञानाभ्यास और अन्तमें तत्त्वज्ञानका अभ्यास करते करते तत्त्वसाक्षात्कारलाभ। शैव पाशुपत देखो।

गौतमसूत्रके बाद ही वात्स्यायन भाष्य देखनेमें आता है। वात्स्यायन मुनिने जो भाष्य किया है, कितने ही नैयायिकोंका विश्वास है कि भाष्यग्रन्थसमूहके मध्य वही प्रथम है। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है कि वात्स्यायनभाष्य रचित होनेके पहले तथा गौतमका मत सूत्रमें निबन्ध होनेके पीछे, कोई कोई भाष्य वा न्यायविवरणमूलक ग्रन्थ प्रचलित हुआ था, वह वात्स्यायनके न्यायभाष्य और उपवर्षके मीमांसा-भाष्यसे जाना जाता है। वात्स्यायनने जो दशावयववादी नैयायिकोंका उल्लेख किया है, गौतमके पहले यदि वह दशावयववाद प्रचारित होता, तो वे अवश्य ही उसका उल्लेख करते। इस विषयमें उनके निरुत्तर रहनेसे ही हम लोग विश्वास करते हैं कि पञ्चावयवात्मक न्यायसूत्र प्रचारित होनेके बहुत पहले उक्त मत प्रचारित हुआ होगा। वात्स्यायनने उन दश अवयवोंके नाम इस प्रकार बतलाए हैं। यथा—जिज्ञासा, संशय, शक्यप्राप्ति प्रयोजन, संशयव्युदास, प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन। किस समय ये दश अवयव स्वीकृत हुए, उसका स्थिर करना बहुत कठिन है। जैनियोंके द्वादशाङ्ग-समूहके मध्य पञ्चावयवके अतिरिक्त किसी किसी अवयवका आभास पाया जाता है। यहां भगवतीसूत्रका नाम उल्लेख किया जा सकता है। इस हिसाबसे जान पड़ता है कि जैन नैयायिकोंने सबसे पहले अतिरिक्त अवयव स्वीकार किया है।

पाश्चात्य और इस देशके किसी किसी विद्वान्‌का मत है कि वात्स्यायन पांचवीं शताब्दीमें जीवित थे। किन्तु हम लोग वात्स्यायनको इतने आधुनिक नहीं मान सकते। ६ठी शताब्दीमें वासवदत्ताकारने सुबन्धु मल्लनाग, न्यायस्थिति धर्मकीर्ति और उद्योतकरके नामोंका उल्लेख किया है। न्यायवार्त्तिककार उद्योतकराचार्यने दिङ्‌नागाचार्यका मत खण्डन करके वात्स्यायनका मत स्थापन किया है। इधर दिङ्‌नागाचार्यने भी अपने "प्रमाणसमुच्चय"-में वात्स्यायनका मत निरास करनेके लिये साध्यमत चेष्टा की है। सुतरां वात्स्यायन दिङ्‌नागके पूर्ववर्ती थे, इसमें सन्देह नहीं। अब देखना चाहिये कि दिङ्‌नाग किस समय आविर्भूत हुए थे।

मोक्षमूलरप्रमुख संस्कृत विद्वानोंने घोषणा की है, कि कालिदासके समसामयिक प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक दिङ्‌नागाचार्य * छठी शताब्दीमें जीवित थे। उनका प्रमाण इस प्रकार है—

प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग ६३७ ई०में प्रसिद्ध नलन्दाविहारमें बौद्धाचार्य शीलभद्रके निकट योगशास्त्रको शिक्षा पानेके लिये आये। शीलभद्रने जयसेन नामक अपने एक शिष्यको यूएनचुवङ्गकी अध्यापनामें नियुक्त किया। मोक्षमूलरके मतसे उक्त शीलभद्र और दिङ्‌नागाचार्य दोनों ही बोधिसत्त्व आर्य असङ्गके शिष्य थे। उक्त प्रमाणके अनुसार दिङ्‌नागाचार्य यूएनचुवङ्गके सौ वर्ष पहले अर्थात् छठी शताब्दीके मनुष्य होते हैं। तारानाथ और रत्नधर्मराज नामक भोट देशीय आधुनिक इतिवृत्तकारके ऊपर निर्भर करके मोक्षमूलरने लिखा है कि तिब्बतीय बौद्धग्रन्थानुसार कनिष्क और असङ्गके बीच ५०० वर्षका अन्तर पड़ता

* मल्लिनाथने मेघदूतकी टीकामें दिङ्‌नागको कालिदासका प्रतिद्वन्द्वी बतलाया है। किन्तु मेघदूतके उक्त श्लोककी टीकामें अपर प्राचीन किसी जैन-टीकाकारने ऐसा मत प्रकाशित नहीं किया है और न किसी प्राचीन ग्रन्थमें दिङ्‌नाग तथा कालिदासके समसामयिकत्वके विषयमें कोई प्रमाण ही मिलता है।

है। ७८ ई०में कनिष्कका अभिषेक हुआ। इस हिसाबसे छठी शताब्दीके द्वितीयार्द्धमें असङ्ग और वसुबन्धुका समय मान सकते हैं। दिङ्नाग कालिदासके प्रतिद्वन्द्वी और असङ्गके शिष्य थे। असङ्ग और वसुबन्धु विक्रमादित्यके समसामयिक माने जाते हैं। सुतरां विक्रमादित्य, कालिदास और दिङ्नाग ये तीनों छठी शताब्दीके मनुष्य होते हैं।

मोक्षमूलरके उक्त मतको अभी अधिकांश लेखक ग्रहण करते हैं। किन्तु उक्त मत समीचीन-सा प्रतीत नहीं होता। यूएनचुवङ्गका भ्रमणवृत्तान्त और उनकी जीवनी पढ़नेसे ऐसा ज्ञान नहीं पड़ता कि उनके गुरु शीलभद्र असङ्ग बोधिसत्त्वके शिष्य थे। चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने असङ्गबोधिसत्त्व, उनके भाई वसुबन्धु और शीलभद्रका यथेष्ट परिचय दिया है। किन्तु कहीं भी उन्होंने शीलभद्रको असङ्गका शिष्य नहीं बतलाया है। शीलभद्र यदि असङ्गके शिष्य होते, तो चीनपरिव्राजक कभी भी उनका जिक्र किये बिना न रहते, बल्कि उनका उल्लेख करनेमें गुरुका गौरव समझते। असङ्ग बोधिसत्त्व चीनपरिव्राजकके सैकड़ों वर्ष पहले विद्यमान थे। असङ्गके भाई और शिष्य वसुबन्धुके परिचयके स्थान पर चीनपरिव्राजकने लिखा है, "बुद्धनिर्वाणके बाद हजार वर्षके मध्य वसुबन्धु और उनके शिष्य मनोहृत आविर्भूत हुए थे।" चीनशास्त्रवित् स्यामुएल बिल साहबने उक्त विवरणकी टीकामें लिखा है, 'उस समय च.नवौद्धगण ८५० ई०-सन्के पहले बुद्धके निर्वाणकालकी कल्पना करते थे।' इस हिसाबसे वसुबन्धु और उनके भाई असङ्ग दूसरी शताब्दीके मनुष्य होते हैं।

चीन-बौद्ध ग्रन्थसे जाना जाता है कि वसुबन्धु और दिङ्नागाचार्य दोनों ही असङ्गके शिष्य थे, इस तरह दिङ्नागाचार्यको भी दूसरी वा तीसरी शताब्दीके मनुष्य मान सकते हैं।

चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने लिखा है कि वसुबन्धु श्रावस्तीराज विक्रमादित्यकी सभामें उपस्थित हुए थे। चीनपरिव्राजक फाहियान ५वीं शताब्दीमें श्रावस्तीका सम्पूर्ण ध्वंसावशेष देख गये थे। इस हिसाबसे ५वीं शताब्दीके पहले वसुबन्धु जो श्रावस्तीसभामें उपस्थित हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। वसुबन्धुविरचित शतशास्त्र और बोधिचित्तोत्पादनशास्त्र कुमारजीवसे ४०४ ई०को चीनभाषामें अनुवादित हुए। एतद्भिन्न उनके दूसरे दूसरे ग्रन्थ ६ठी शताब्दीको चीनभाषामें अनुवादित हुए थे। फिर कोई कोई चीनपण्डित इत्सिंहका विवरण उद्धृत करके कहते हैं कि बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्त्ति इत्सिङ्गके समसामयिक थे। इत्सिंहने ६८५ ई०में अपना ग्रन्थ समाप्त किया। अतएव उससे कुछ पहले धर्मकीर्त्तिने ख्याति लाभ की थी। इत्सिंहकी कथा एक कालमें ही विश्वासयोग्य नहीं है। इसमें तत्कालीन समस्त इतिहासविरुद्ध ऐसी अनेक बातें हैं जो किसी मतसे प्राचीन मानी नहीं जा सकतीं। चीन और भोटके सभी बौद्धग्रन्थोंमें धर्मकीर्त्ति असङ्गके शिष्य बतलाये गये हैं। असङ्ग वसुबन्धुके ज्येष्ठ सहोदर और गुरु थे, यह चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गके भ्रमणवृत्तान्तमें लिखा है।

चीन बौद्धसमाजमें बोधिसत्त्वोंकी जो धारावाहिक तालिका प्रचलित है उससे इस प्रकार जाना जाता है—

वसुबन्धु २१वें, उनके शिष्य मनोहृत २२वें और बोधिधर्म २८वें बोधिसत्त्व हुए थे। उक्त बोधिधर्मने ५२० ई०को चीनदेशमें पदार्पण किया। इस तरह उनके बहुशतवर्ष पहले वसुबन्धुका आविर्भाव स्वीकार करना पड़ता है। मोक्षमूलरने स्वयं लिखा है, कि प्रसिद्ध नैयायिक धर्मकीर्त्ति वसुबन्धुके शिष्य थे। अतः ५वीं शताब्दीके बहुत पहले धर्मकीर्त्तिका होना साबित होता है। आधुनिक भोटदेशीय तारानाथ और रत्नधर्मराजका उपाख्यान अनैतिहासिक और असमीचीन होनेके कारण उसका परित्याग करना उचित है। बौद्धशास्त्रकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट जाना जाता है कि २री या ३री शताब्दीके मध्य असङ्ग, वसुबन्धु, दिङ्नाग और धर्मकीर्त्तिने बौद्धसमाजको अलङ्कृत किया था।

दिङ्नागादिके बहुत पहले आर्य नागार्जुन आविर्भूत हुए थे। भोटदेशीय बौद्धग्रन्थके मतसे बुद्धनिर्वाणके ५०० वर्ष पीछे राजा कनिष्क और नागार्जुनका अभ्युदय हुआ था। भोटदेशीय बौद्धोंके मतानुसार ई०सन्के छः सौ वर्ष पहले बुद्धदेवका निर्वाण हुआ। अतः

कनिष्क और नागार्जुन १ली शताब्दीके मनुष्य होते हैं। अध्यापक मोक्षमूलरने लिखा है कि कनिष्क ७८ ई०में अभिषिक्त हुए। सम्प्रति यह मत उलट गया है। एक बार ख्यातनामा प्रत्नतत्त्वविद डाक्टर बुह्लरने नवाविष्कृत बहुतसी प्राचीन मुद्राको सहायतासे भायेना-प्राच्य-समितिकी पत्रिकामें प्रकाशित किया था कि कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव प्रभृति शकराजाओंका राज्याङ्क जो शकसम्वत्‌के समान गिना जा रहा है, अभी उसे बहुत पीछेका जानना चाहिये अर्थात् ईसा-जन्मके किसी समयमें कनिष्कके समयका निर्णय करना चाहिये। उन्हींके समयमें नागार्जुन आविर्भूत हुए थे। चीनपरिव्राजक यूएनचवङ्गके विवरणसे हम लोगोंको पता लगता है, कि बोधिसत्त्व नागार्जुनने 'न्यायद्वार-तारकशास्त्र' प्रकाशित किया। चीनदेशीय दार्शनिक ग्रन्थसमूहको विवरणमूलक तालिकासे जाना जाता है कि उस पुस्तकमें हिन्दूने यायकि भरद्वाज वात्स्यका मत उद्धृत हुआ है। बौद्धाचार्यवर्णित भरद्वाज वात्स्य सम्भवतः भाष्यकार वात्स्यायन थे।

अब हिन्दूग्रन्थोंमें दिङ्नागादिका परिचय कैसा लिखा है वह देखना चाहिये।

सम्राट् हर्षवर्द्धनके सभासद् कवि वाणभट्टने अपने श्रीहर्षचरितमें वसुबन्धुके 'अभिधर्मकोष' और सुबन्धुके 'वासवदत्ता' ग्रन्थका उल्लेख किया है। केवल इतना ही नहीं, श्रीहर्षचरितके अष्टमोच्छ्वासको आलोचना करनेसे इसका अधिकांश वासवदत्ताकी नकल है, ऐसा बोध होता है। वाणभट्टने गम्भीर भावमें कहा है—

"कवीनामगलद्दर्पो नूनं वासवदत्तया।" इससे जाना जाता है कि वासवदत्ताकी सुख्याति वाणभट्टके समयमें सब जगह फैली हुई थी। इस हिसाबसे वाणभट्टसे कमसे कम ५०।६० वर्ष पहले वासवदत्ताकार सुबन्धु आविर्भूत हुए थे। वाणभट्टने ६०६से ६२० ई०के मध्य हर्षचरित प्रकाशित किया। यह सम्राट् हर्षवर्द्धनका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है। वासवदत्ताके टीकाकार नरहरिवेद्यने सुबन्धुके विषयमें लिखा है, 'कविरयं विक्रमादित्यसभ्यः। तस्मिन् राज्ञि लोकान्तरं प्राप्ते एतन्निबन्धं कृतवान्," अर्थात् कवि सुबन्धु विक्रमादित्यके सभ्य थे। राजाके स्वर्गवास होने पर कविने इस वासवदत्ताकी रचना की। यह कौन विक्रमादित्य थे? चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गने उज्जयिनीदर्शनकालमें वर्णन किया है कि उनके ६० वर्ष अर्थात् ५८० ई०के पहले शिलादित्य विक्रमादित्य नामक एक महापण्डित और बुद्धिमान् राजा उज्जयिनीमें राज्य करते थे। अभी मालूम होता है कि वासवदत्ताकार सुबन्धुने (६ठी शताब्दीमें) उक्त शिलादित्य-विक्रमादित्यकी सभा उज्ज्वल की थी। ६ठी शताब्दीमें सुबन्धुने वासवदत्तामें दिङ्नाग, न्यायस्थिति, उद्योतकर, धर्मकीर्ति, मल्लनाग आदि प्राचीन दार्शनिकोंके नाम लिखे हैं और "केचिज्जैमिनिमतानुसारिण इव तथागतमतध्वंसिनः" एवं "मीमांसान्याय इव पिहितदिगम्बरदर्शनः"—इत्यादि उक्ति द्वारा सुप्रसिद्ध कुमारिलभट्टके प्रसङ्गको आलोचना की है। उक्त प्रमाण द्वारा जाना जाता है कि ६ठी शताब्दीके पहले दिङ्नाग, उद्योतकराचार्य, धर्मकीर्ति, कुमारिल आदि आविर्भूत हुए थे। सुबन्धुके बहुत पहले उन्होंने धर्मजगत् आलोकित किया था, जैनशास्त्रोंमें उनके अनेक प्रमाण मिलते हैं।

भारतप्रसिद्ध बौद्धजैनमतोच्छेदकारी मीमांसावार्त्तिककार भट्ट कुमारिलने समन्तभद्ररचित आप्तमीमांसामें प्रतिष्ठापित स्याद्वादमतका खण्डन किया है। तदुत्तरमें उनके परवर्त्ती दिगम्बराचार्योंने जैनश्लोकवार्त्तिक तथा और दूसरे दूसरे ग्रन्थ लिख कर कुमारिल पर आक्रमण किया। इन सब प्रतिवादकारियोंमें आप्तमीमांसाकी अष्टसहस्री नामक टीकाके रचयिता विद्यानन्दका नाम पहले देखनेमें आता है। प्रसिद्ध जैनपट्टधर माणिक्यनन्दीने अपने 'परीक्षामुख' नामक ग्रन्थमें आप्तमीमांसाके टीकाकार अकलङ्क और विद्यानन्दका नाम उद्धृत किया है। फिर प्रसिद्ध जैन कवि और दिगम्बराचार्य प्रभाचन्द्रने 'प्रमेयकमलमार्त्तण्ड' नामक परीक्षामुखटीकामें अकलङ्क, विद्यानन्द और माणिक्यनन्दीका प्रसङ्ग लिखा है।

राष्ट्रकूटराज अमोघवर्षके गुरु प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनने ७०५ शक अर्थात् ७८३ ई०में हरिवंशपुराणकी रचना की। उनके आदिपुराणमें अकलङ्क, विद्यानन्द, पात्रकेशरी, प्रभाचन्द्र और उनके न्यायकुमुदचन्द्रोदय ग्रन्थका उल्लेख है—

"चन्द्रांशुशुभ्रयशसं प्रभाचन्द्रं कविं स्तुवे।
कृत्वा चन्द्रोदयं येन शश्वदाह्लादितं जगत् ॥
चन्द्रोदयकृतस्तस्य यशः केन न शस्यते।
यदाकल्पमनाम्लानि सतां शेखरतां गतम् ॥
भट्टाकलंकश्रीपालपात्रकेशरिणां गुणाः।
विदुषां हृदयारूढा हारायन्तेऽतिनिर्मलाः ॥"

उपरोक्त श्लोकमें जिनसेनने जिस प्रकार प्रभाचन्द्रकी प्रशंसा की है, वह उल्लेखयोग्य है। प्रभाचन्द्र यदि उनके समसामयिक होते, तो जिनसेन अवश्य ही उसका जिक्र करते। इस तरह हम लोग प्रभाचन्द्रको जिनसेनके पूर्ववर्ती अर्थात् ७वीं शताब्दीके मनुष्य मान सकते हैं। माणिक्यनन्दी उनके पूर्ववर्ती थे, क्योंकि प्रभाचन्द्र अपने ग्रन्थमें माणिक्यनन्दीकी यथेष्ट प्रशंसा कर गये हैं। दिगम्बरोंकी सरस्वतीगच्छकी पट्टावलीके मतसे माणिक्यनन्दी ५८५ विक्रम-सम्वत्‌में अर्थात् ५२८ ई०में पट्टधर हुए थे। पट्टधर होनेके पहले अर्थात् ६ठी शताब्दीके प्रथमभागमें माणिक्यनन्दीने 'परीक्षामुख'की रचना की। पहले ही कहा जा चुका है कि माणिक्यनन्दीने विद्यानन्द पात्रकेशरीका नाम और उनकी आप्तमीमांसाटीका उद्धृत की है। इस प्रकार विद्यानन्द माणिक्यनन्दीके पूर्ववर्ती और ५वीं-शताब्दीके किसी समयके मनुष्य होते हैं।

प्रभाचन्द्र और जैनश्लोकवार्त्तिककार विद्यानन्द दोनोंने ही कुमारिलभट्टके मतका खण्डन किया है। उनके ग्रन्थमें दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्त्ति, भर्त्तृहरि, शबरस्वामी, प्रभाकर और कुमारिलके नाम साफ साफ उद्धृत हुए हैं। इसके अलावा विद्यानन्दने 'ब्रह्माद्वैतवाद' नामक शङ्कराचार्य प्रवर्त्तित अद्वैतवादका खण्डन किया है।

अधिक दिनकी बात नहीं है, कि अध्यापक पिटर्सन साहबने गुजरातके पाटनशहरसे जैनाचार्य मल्लवादि-विरचित न्यायविन्दुटिप्पन नामक एक जैनन्याय ग्रन्थ संग्रह किया है। धर्मोत्तराचार्यने धर्मकीर्त्तिरचित न्यायविन्दुकी जो टोका लिखी है, उस टीकाका मत खण्डन करनेके लिये ही मल्लवादीने 'न्यायबिन्दु-टिप्पन' प्रकाशित किया। पिटर्सन साहबने जैनशास्त्रसे दिखलाया है, कि मल्लवादी ८८४ वीरगताब्द अर्थात् ३५८ ई०में विद्यमान थे।

अभी हम लोग जैनशास्त्रानुसार देखते हैं कि मल्लवादीके पहले धर्मोत्तर, धर्मोत्तरके पहले धर्मकीर्त्ति, उनके पहले उद्योतकराचार्य और उद्योतकरके पहले दिङ्नागाचार्य होते हैं। पहले किसी ग्रन्थका प्रचार, पीछे ख्यातिविस्तार, बादमें उसका वादप्रतिवाद हो कर टीका टिप्पनीका प्रकाश बहुत थोड़े समयमें नहीं हो सकता। जिस समयकी बात कह रहे हैं, उस समय मुद्रायन्त्र नहीं था अथवा आज कलके जैसा पुस्तकप्रचारकी सुविधा भी न थी। इस हिसाबसे एक पुस्तकके तैयार हो जाने पर सब जगह उसका प्रचार होने और भिन्न सम्प्रदायसे उसकी टीका टिप्पणी करनेमें कमसे कम ३०।४० वर्ष लगते थे। अतः मल्लवादीके सौ वर्ष पहले हम लोग दिङ्नागका होना स्वीकार कर सकते हैं। इसके पहले चीनदेशीय प्राचीन बौद्धग्रन्थानुसार मालूम हुआ है कि दिङ्नागाचार्यके गुरु असङ्ग और वसुबन्धु २री या ३री शताब्दीके किसी समय विद्यमान थे। अभी जैनग्रन्थ बौद्धमतका ही समर्थन करता है।

पहले कहा जा चुका है, कि विद्यानन्द पात्रकेशरीने ५वीं शताब्दीमें अकलङ्क और समन्तभद्रके नाम तथा ग्रन्थका उल्लेख किया है। अकलङ्कने ही अष्टशती नामक समन्तभद्रकी आप्तमीमांसाकी टीका लिखी है। सुतरां समन्तभद्र ४थी शताब्दीसे बहुत पहले आविर्भूत हुए थे, इसमें सन्देह नहीं। श्वेताम्बर जैनियोंके बृहत्खरतरगच्छकी पट्टावलीके अनुसार वनवासीगच्छप्रवर्त्तक-समन्तभद्रसूरि ५८५ वीरगताब्दके कुछ पहले अर्थात् ६८ ई०के पहले पट्टाभिषिक्त हुए। जैनियोंके मतसे उसके पहले ही उन्होंने आप्तमीमांसाकी रचना की। इस समन्तभद्रकी आप्तमीमांसामें विभिन्न दार्शनिक मतखण्डनोंमेंसे न्यायभाष्यकार वात्स्यायन मुनिका मतखण्डन भी देखा जाता है। सुतरां वात्स्यायन १ली शताब्दीके बहुत पहले आविर्भूत हुए थे।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्रने वात्स्यायनके और कितने नाम प्रकाशित किये हैं—

"वात्स्यायनो मल्लनाग: कौटिल्यश्चणकात्मजः ।
द्रमिल: पक्षिलस्वामी विष्णुगुप्तोऽङ्गुलश्च सः ॥"
(अभिधानचि०)

हेमचन्द्रकी उक्ति द्वारा वात्स्यायनको हम लोग नन्दवंशके उच्छेदकारी चाणक्य मान सकते हैं, किन्तु पाश्चात्य और देशीय संस्कृतानुरागी पुराविद्गण हेमचन्द्रके उक्त वचन पर विश्वास नहीं करते। क्योंकि वे लोग वात्स्यायनका ५वीं शताब्दीमें होना स्वीकार करते हैं। उनकी युक्ति पहले ही खण्डित हुई है। अब यह देखना चाहिये कि हेमचन्द्रकी उक्ति प्रामाण्य है वा नहीं।

६ठी शताब्दीमें सुबन्धुने 'मल्लनाग-विरचित कामशास्त्र'-का उल्लेख किया है। फिर सुप्रसिद्ध शङ्कराचार्य, उदयनाचार्य और वाचस्पतिमिश्र पक्षिलस्वामीका नाम दे कर वात्स्यायनका न्यायभाष्य उद्धृत कर गये हैं। महेश्वरने विश्वप्रकाश अभिधानमें लिखा है—

"मल्लनागोऽश्वमातङ्गे वात्स्यायनमुनावपि।" इत्यादि उदाहरण द्वारा वात्स्यायनका दूसरा नाम जो मल्लनाग और पक्षिलस्वामी था, वह प्रमाणित होता है। अब प्रश्न उठता है कि कामसूत्रके रचयिता वात्स्यायन और न्यायभाष्यकार वात्स्यायन दोनों एक व्यक्ति थे वा नहीं?

न्यायभाष्य और कामसूत्रका भाष्य अच्छी तरह पढ़नेसे यदि दोनोंको एक ही मनुष्यकी रचना मान लें तो अत्युक्ति नहीं होगी।

अभी वात्स्यायनके भिन्न भिन्न नाम, पाटलिपुत्र नगरसे कामसूत्रसंग्रह, चाणक्यकी तर्कविद्याविशारद आख्या और बौद्ध तथा जैनग्रन्थानुसार ई०सन्के बहुत पहले वात्स्यायन और चाणक्यके आविर्भाव इत्यादिको पर्यालोचना करनेसे मालूम होता है कि वात्स्यायन और चाणक्य दोनों एक ही व्यक्ति थे।

वैशेषिकसूत्रके भाष्यकार प्रशस्तपादने कई जगह बौद्धमतका निराकरण किया है। किन्तु वात्स्यायनने कहीं भी बौद्ध-प्रसङ्गका जिक्र नहीं किया। यदि उनके समयमें बुद्धमतका विशेष प्रचार होता, तो परवर्ती भाष्यकारियोंके जैसा वे भी बौद्धमतका खण्डन किये बिना न रहते। इससे ज्ञात होता है कि वात्स्यायनके समयमें बौद्धमतका विशेषरूपसे प्रचार नहीं था। इस हिसाबसे भी वात्स्यायनको अति प्राचीनकालके मनुष्य मान सकते हैं।

विभिन्न समयके नैयायिकग्रन्थोंका पाठ कर अभी हम लोग न्यायदर्शनको कई एक स्तरोंमें विभक्त कर सकते।

१म सूत्रयुग। २य भाष्ययुग। ३य संघर्षयुग। ४र्थ समर्थन वा व्याख्यायुग। ५म नव्य न्यायका आविर्भाव।

१म युगमें अर्थात् सूत्रयुगमें गौतमका मूलग्रन्थ प्रकाशित हुआ। पहले उनके मतानुवर्त्ती केवल शिष्यसम्प्रदाय ही सूत्रालोचना करते थे। उस समय केवल उनके शिष्योंमेंसे शिष्यपरम्परानुसार सूत्र अधीत वा आलोचित होता था। उस समय सूत्रसमूह नैयायिकोंके कण्ठस्थ था, लिपिबद्ध नहीं होता था। पीछे कई शताब्दी बीत जाने पर शिष्यपरम्पराके मध्य प्रकृत पाठ और व्याख्या ले कर बड़ी गड़बड़ी उठी। उसी समय न्यायसूत्र लिपिबद्ध करनेका प्रयोजन हुआ था। पार्श्वनाथ, महावीर आदि धर्मवीरोंके मतानुसारी नैयायिकगण न्यायसूत्रका अर्थ ले कर अपना अपना स्वाधीन मत, यहां तक कि वेदविरुद्ध मत प्रकाशित करने लगे। इससे ब्राह्मण-धर्मावलम्बी नैयायिकोंके हृदय पर आघात पहुंचा। उसी समय न्यायसूत्रकी व्याख्या करके जनसाधारणको प्रकृत सूत्रका अर्थ समझानेका प्रयोजन पड़ा। इस समय भाष्ययुगका परिवर्त्तन हुआ। वात्स्यायनने इस युगमें सूर्यस्वरूप प्रादुर्भूत हो कर अपनी असाधारण युक्ति और विद्याप्रभावसे भाष्य प्रकाशित किया। उनके सुविचारपूर्ण प्रमाणशास्त्रकी आलोचना करनेसे विस्मित होना पड़ता है, उनकी सुविचारप्रणालीकी पर्यालोचना करनेसे उन्हें हम लोग भारतके अरिष्टल कह सकते हैं। ई०सन्के पूर्वसे २री शताब्दीके पहले तक भाष्ययुग था अर्थात् इस समय हिन्दूनैयायिकगण स्वाधीनभावसे न्यायशास्त्रकी आलोचना करते थे।

सम्राट् अशोकके प्राधान्यलाभके साथ साथ बौद्धधर्म भी विशेष प्रबल हो उठा। हिन्दूदार्शनिकगण लुप्तप्राय होने लगे। इसी समयसे बौद्धगण वैशेषिक और

न्यायका विशेष आदर करने लगे। इस समय जो सब बौद्धग्रन्थ प्रचारित हुए थे, उनसे न्यायवैशेषिकका पूर्ण प्रभाव लक्षित हुआ। कर्मफलसे जन्मग्रहण और नाना प्रकारका योनिभ्रमण, जन्मदुःखभोग, कर्मानुसार स्वर्ग वा नरकमें जा कर पुरस्कार वा दण्डप्राप्ति, जन्मग्रहणनिवृत्ति अर्थात् मुक्ति ही दुःखसे परित्राणका उपाय है, ज्ञानोदय होनेसे मुक्ति लाभ होती है और मुक्ति ही परम पुरुषार्थ है इत्यादि न्यायवैशेषिकका मत बौद्धशास्त्रमें देखा जाता है। अधिक सम्भव है कि न्यायवैशेषिक शास्त्रसे ही बौद्धोंने उक्त मत ग्रहण किये होंगे। इसीसे मालूम होता है कि परवर्त्तीकालमें नैयायिक और वैशेषिकगण अपरापर हिन्दूदार्शनिक और धर्मशास्त्रविद्के निकट नितान्त हेय समझे गये थे। यहां तक कि मेधातिथि मनुभाष्यमें नैयायिक और वैशेषिकोंको वेदविरुद्धवादी लोकायत, बौद्ध, जैन आदिके साथ गिननेमें बाज नहीं आये। ई०सनके पहले १म शताब्दीसे संघर्षयुगका सूत्रपात हुआ। इस समय प्रसिद्ध बौद्धाचार्य नागार्जुनने 'न्यायद्वारतारकशास्त्र' प्रकाशित किया। इनसे कुछ समय बाद स्याद्वादवित् प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य समन्तभद्रने आप्तमीमांसामें न्यायशास्त्रका खण्डन किया। पीछे जैनतर्कशास्त्रविद् अकलङ्कने 'न्यायविनिश्चय' वा 'प्रमाणविनिश्चय' ग्रन्थ प्रकाशित कर जैनियोंके मध्य एक अभिनव न्याययुगका प्रवर्त्तन किया। अकलङ्कके बाद बौद्धसमाजमें नागार्जुनरचित न्यायद्वारतारकशास्त्रको धर्मपालकृत व्याख्या, वसुबन्धु-सम्पादित तर्कभद्रका न्यायानुसारसूत्र और दिङ्नागाचार्यका 'प्रमाणसमुच्चय' प्रकाशित हो कर बौद्धोंमें न्यायप्रधान्य स्थापित हुआ। इन सब न्यायग्रन्थोंमें वेदविरुद्धमत विशेषरूपसे प्रकाशित हुआ था। उक्त ग्रन्थोंमें दिङ्नागाचार्यका 'प्रमाणसमुच्चय' ग्रन्थ ही प्रधान न्यायग्रन्थके जैसा बौद्धसमाजमें गृहीत हुआ था। उन्होंने न्यायके १६ पदार्थोंमें केवल 'प्रमाण' स्वीकार कर अपने ग्रन्थमें प्रमाणके विषयमें ही विस्तृत आलोचना की है।

इस समय दिङ्नागाचार्यके विषम दंशनसे हिन्दू-न्यायकी रक्षा करनेके लिए उद्योतकराचार्यने 'न्यायवार्त्तिक'का प्रचार किया। न्यायवार्त्तिकके आघातको तत्कालीन बौद्धसमाजने असह्य समझा था। शीघ्र ही प्रसङ्गके अन्यतम शिष्य धर्मकीर्त्तिने प्रमाणसमुच्चयके ऊपर प्रमाणवार्त्तिक लिख कर उद्योतकराचार्यके मतका खण्डन किया। धर्मकीर्त्ति 'न्यायविन्दु' नामक भी एक स्वतन्त्र न्यायग्रन्थ लिख गए हैं, विनीतदेवने सबसे पहले उसकी टीका लिखी। प्रमाणवार्त्तिकका खण्डन करनेके लिए उस समय कोई हिन्दू नैयायिक वर्त्तमान न थे। ४थी शताब्दीमें सुविख्यात मीमांसक प्रभाकर और कुमारिलभट्टने प्रादुर्भूत हो कर दिङ्नाग, धर्मकीर्त्ति, समन्तभद्र आदि बौद्ध और जैनाचार्योंके मतका खण्डन किया है। मीमांसावार्त्तिककारका मत खण्डन करनेके लिये कुछ समय बाद ही बौद्धनैयायिक धर्मोत्तराचार्य तर्कसंग्राममें प्रवृत्त हुए। उनकी न्यायविन्दुटीकामें मीमांसकका मत खण्डित हुआ है। उस समय हिन्दू और बौद्धके बीच मानो शास्त्रसंग्राम चल रहा था। जैनियोंके साथ भी बौद्धोंका उसी प्रकार तर्कयुद्ध हुआ था। जैनोंकी प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है—

"एक समय शिलादित्यकी सभामें श्वेताम्बर जैन और बौद्धोंके बीच घोरतर तर्कसंग्राम उपस्थित हुआ। दोनों सम्प्रदायने आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा की थी, 'जिस पक्षके लोग विचारमें परास्त होंगे उन्हें देश छोड़ कर वनवासी होना पड़ेगा।' विचारमें बौद्ध लोगोंकी ही जीत हुई। श्वेताम्बर जैनी लोग वनवासी हुए। शत्रुञ्जयकी पवित्र आदिनाथ मूर्त्ति बुद्धरूपमें गण्य हुई। शिलादित्यका भागनेय मल्ल उस समय बहुत बच्चे थे, इस कारण बौद्धोंने उसे वन भेजना नहीं चाहा। क्रमशः वह मल्ल जब बड़े हुए, तब स्वजातिका प्रतिष्ठास्थापन और बौद्धदर्प चूर्ण करनेके लिये दिवारात शास्त्राध्ययन करने लगे। अन्तमें देवी सरस्वतीकी कृपासे उन्हें नयचक्र लाभ हुआ। इस नयचक्रके प्रभावसे मल्लने बौद्धोंको सम्पूर्णरूपसे परास्त किया। उनके पाण्डित्यप्रभावसे श्वेताम्बर धर्मकी तूती पुनः बोलने लगी। वे बादी उपाधि लाभ कर इस समयसे आचार्य मल्लवादी नामसे प्रसिद्ध हुए।

३५८ ई०के निकटवर्त्ती किसी समयमें मल्लवादीने 'न्यायविन्दुटिप्पन' प्रकाशित कर धर्मोत्तराचार्यका मत खण्डन किया। इसके कुछ समय पीछे ५वीं शताब्दीमें दिगम्बराचार्य विद्यानन्दपात्रकेशरीने समन्तभद्रका स्याद्वादमत स्थापन और कुमारिलका मत खण्डन करनेके लिये जैनश्लोकवार्त्तिकका प्रचार किया। उन्होंने 'प्रमाणपरीक्षा' नामक न्याय-ग्रन्थमें दिङ्नागका मत विशेषरूपसे खण्डन किया है। उनका वह न्यायग्रन्थ दिगम्बर समाजमें विशेष आदृत होता है।

विद्यानन्दके समयमें भारताकाशमें हम लोगोंने शङ्कराचार्यरूप वैदान्तिक सूर्यका विकाश देखा। इनकी प्रभासे बौद्ध, जैन और दूसरे दूसरे दार्शनिक नक्षत्र हीनप्रभ हो गये। वेदान्तकी गौरवप्रभा समस्त भारतमें प्रकाशित हुई। शङ्करावतार महात्मा शङ्कराचार्यने उपरोक्त उपवर्ष प्रभृति दार्शनिकोंके नाम वा मत उद्धृत तथा असाधारण उपनिषदीय ज्ञानबलसे सभी दर्शनोंका मत खण्डन किया। पहले ही कहा जा चुका है कि उनके अभ्युदयकालमें बौद्ध, जैन और मीमांसक मत ही भारतवर्षमें प्रबल था। इस समयके नैयायिक और वैशेषिकगण बौद्ध तथा जैन समाजमें मानो मिल गये थे अर्थात् इस समय बौद्धों और जैनोंके मध्य कितने ही नैयायिक और वैशेषिक दर्शनवित् आविर्भूत हुए थे। मालूम पड़ता है, कि इसी कारण शङ्कराचार्यने बौद्धों और जैनोंके साथ नैयायिकों तथा वैशेषिकोंको घृणादृष्टिसे देखा है। न्याय और वैशेषिकमें अति निकट सम्बन्ध है। न्यायदर्शनमें प्रकृत अभिज्ञता लाभ करनेमें वैशेषिकदर्शन भी पढ़ना होता था, यह न्यायभाष्यकार वात्स्यायनकी उक्तिसे हो जाना जाता है। शङ्कराचार्यने वैशेषिकको अर्द्धवैनाशिक वा अर्द्धबौद्ध बतलाया है। सम्भवतः शङ्कराचार्यके शारीरकभाष्यादि प्रचार होनेसे नैयायिक और वैशेषिकगण विच्छिन्न हो गये थे। मालूम पड़ता है कि शङ्कराचार्यका तीव्र प्रतिवाद देख कर हिन्दू नैयायिकगण वैशेषिकको अवहेला करने लग गये। वैशेषिकके विच्छिन्न होने पर न्यायदर्शनकी भी अवनतिका सूत्रपात हुआ। दिगम्बर पट्टधर माणिक्यनन्दीने ५८५ संवत् अर्थात् ५२७ ई०के कुछ पहले प्रमाण-परीक्षाके व्याख्यास्वरूप परीक्षामुखं नामक एक विस्तृत न्यायग्रन्थकी रचना की। इस ग्रन्थमें समन्तभद्र, अकलङ्क और विद्यानन्दका मत आलोचित हुआ है। उनके बाद प्रसिद्ध जैन कवि और नैयायिक प्रभाचन्द्रका अभ्युदय हुआ। उन्होंने प्रमेयकमलमार्त्तण्ड नामक परीक्षामुखकी एक टीका लिखी है। इस ग्रन्थमें जैन न्यायमतकी समालोचना और उपवर्ष, दिङ्नाग, उद्योतकर, धर्मकीर्त्ति, भर्तृहरि, शबरस्वामी, प्रभाकर और कुमारिल आदिका मत जगह जगह पर खण्डित है। एतद्भिन्न उनके ग्रन्थमें ब्रह्माद्वैतवाद भी निराकृत हुआ है।

बादमें ७वीं और ८वीं शताब्दीके बीच किसी ख्यातनामा हिन्दूनैयायिक वा हिन्दून्यायग्रन्थका सन्धान नहीं मिलता। ७वीं शताब्दीमें बाणभट्टने ईश्वरकारिभिः इत्यादिरूपमें हिन्दू नैयायिकोंका उल्लेख किया है। भवभूतिके मालतीमाधवसे भी जाना जाता है कि ८वीं शताब्दीमें न्यायशास्त्रकी विशेष चर्चा थी। इस समय विख्यात बौद्धाचार्य कमलशीलने आविर्भूत हो कर जैन और हिन्दूमतखण्डन करनेके लिये 'तर्कसंग्रह' नामक बौद्धमतपूर्ण एक न्यायग्रन्थ प्रकाशित किया। तर्कसंग्रहके पहले ही कमलशीलने लिखा है—

"कर्मतत्फलसम्बन्धव्यवस्थादिसमाश्रयम्।
गुणद्रव्यक्रियाजातिसमवायाद्युपाधिभिः॥
शून्यमारोपिताकारशब्दप्रत्ययगोचरम्।
स्पष्टलक्षणसंयुक्तप्रमाद्वितीयनिश्चितम्॥
अनीयसापि नांशेन मिश्रीभूता परात्मकम्।
असंक्रान्तिमनाद्यन्तं प्रतिबिम्बादिसन्निभम्॥
सर्वप्रपंचसन्दोह-निर्मुक्तमगतं परैः।
स्वतन्त्रश्रुतिनिःसंगो जगद्धितविधित्सया॥
अनल्पकल्पासंख्येयसात्मीभूतमहादयः।
यः प्रतीत्य समुत्पादं जगाद वदतां वरः॥
तं सर्वज्ञं प्रणम्यायं क्रियते तर्कसंग्रहः॥"

कमलशीलने अपने तर्कसंग्रहमें ईश्वरकारित्ववाद, कपिलकल्पित आत्मवाद, औपनिषद्कल्पित आत्मवाद और ब्रह्माद्वैतवाद आदिका खण्डन कर स्वतःप्रामाण्यवाद संस्थापन किया है।

९वीं शताब्दीमें शिवादित्यन्यायाचार्यने प्रशस्तपाद रचित वैशेषिक सूत्रभाष्यके ऊपर व्योमवती नामक वृत्ति और सप्तपदार्थीकी रचना कर प्राचीन मत संस्थापित किया। इसी समयसे समर्थ न्याययुगका सूत्रपात हुआ। कणादने पहले षट्पदार्थ स्वीकार किया और प्रशस्तपादने विशद भाष्य द्वारा उसे समझाया। अभी शिवाचार्यने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थोंके अलावा 'अभाव' नामक एक और अतिरिक्त पदार्थ स्वीकार किया। हिन्दू नैयायिकोंने ईश्वरकारणवाद अर्थात् जगत्स्रष्टा ईश्वरका निरूपण किया था। वात्स्यायनभाष्य, उद्योतकराचार्यके वार्त्तिक आदि प्राचीन न्याय ग्रन्थोंसे उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। बौद्ध नैयायिकोंने ईश्वरकारणवादका खण्डन कर ईश्वरको उड़ा देनेकी चेष्टा की। इधर जैनोंने भी आप्तमीमांसा, प्रमाणमीमांसा, प्रमाणपरीक्षा, प्रमाणसमुच्चय, प्रमेयकमलमार्तण्ड, प्रमेयकमलमार्त्तण्ड, न्यायावतार, धर्मसंग्रहणी, तत्त्वार्थसूत्र, नन्दीसिद्धान्त, शब्दाम्भोनिधिगन्धहस्तिमहाभाष्य, शास्त्रसमुच्चय आदि ग्रन्थोंमें जगत्स्रष्टा ईश्वरवादका खण्डन किया। शिवादित्य न्यायाचार्यके अपने ग्रन्थमें ईश्वरवाद प्रचार करनेकी चेष्टा करने पर भी उनका उद्देश्य सिद्ध न हुआ। उनके बाद ही जैनाचार्य अभयदेवसूरिने 'वादमहार्णव' नामक न्यायग्रन्थ लिख कर जैनमतका संस्थापन किया। पीछे भट्टारक देवसेनने ९९० सम्वत्में 'नयचक्र' नामक एक न्यायग्रन्थकी रचना कर तर्कशास्त्रकी आलोचना की। इसके बाद षड्दर्शनटीकाकृत् सुप्रसिद्ध वाचस्पतिमिश्रका अभ्युदय हुआ। उनका प्रकृत आविर्भाव काल ले कर मतभेद था। किन्तु उनके 'न्यायसूचीनिबन्ध'के प्रकाशित हो जानेसे उनके आविर्भावकालके विषयमें कोई गोलमाल नहीं रहता। उक्त न्यायसूचीनिबन्धके शेष भागमें लिखा है कि उन्होंने यह ग्रन्थ ८९८ शकमें समाप्त किया।

"न्यायसूचीनिबन्धोऽसावकारि सुधियां मुदे।
श्रीवाचस्पतिमिश्रेण वस्वंकवसु (८९८) वत्सरे॥"

उनकी न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीकाके प्रारम्भमें लिखा है—

"इच्छामि किमपि पुण्यं दुस्तरकुनिबन्धपंकमग्नानाम्।
उद्योतकरगवीनामतिजरतीनां समुद्धरणात्॥"

यथार्थमें उन्होंने उद्योतकरका ईश्वरकारणवादको संस्थापन करनेके लिये ही न्यायवार्त्तिक तात्पर्य टीका प्रकाशित की। इस ग्रन्थमें ईश्वरमाहात्म्य विशेषरूपसे कीर्त्तित है। उनके कुछ समय बाद प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य आविर्भूत हुए। उदयनाचार्य-रचित लक्षणावलिके शेषमें ग्रन्थरचनाका काल लिखा है—

"तर्काम्बरांकप्रमितेष्वतीतेषु शकान्ततः।
वर्षेषूदयनश्चक्रे सुबोधां लक्षणावलीम्॥"

उक्त श्लोकसे मालूम होता है कि वाचस्पतिमिश्रके ८ वर्ष पीछे अर्थात् ९०६ शकमें उदयनाचार्यने ग्रन्थकी रचना की थी। वाचस्पतिमिश्र विभिन्न मतावलम्बियोंका मत निरास कर ईश्वरवाद और आत्मवादके प्रचारमें विशेषरूपसे यत्नवान् नहीं हुए, इस कारण उदयनाचार्यने 'न्यायवार्तिकतात्पर्यपरिशुद्धि', कुसुमाञ्जलि, बौद्धधिक्कार, आत्मतत्त्वविवेक, किरणावली आदि ग्रन्थ लिख कर समस्त बौद्धादिविभिन्न मतोंका विशेषरूपसे खण्डन किया। उनके आविर्भावसे हिन्दूसमाजमें पुनः अभिनव न्याययुगका आविर्भाव हुआ, ऐसा कहनेमें भी कोई अत्युक्ति नहीं। उन्होंने ही पुनः हिन्दुओंके मध्य न्यायप्राधान्य स्थापन किया और वे ही असाधारण पाण्डित्य तथा तर्कशक्तिके प्रभावसे बौद्धोंका मूलच्छेद करनेमें अग्रसर हुए। इसी उदयनाचार्यके समय दक्षिणराढ़में हड़ाके अन्तर्गत भूरसुट ग्राममें श्रीधराचार्यने पाण्डुदास राजाके आश्रममें प्रशस्तपादभाष्यके वृत्तिस्वरूप न्यायकन्दलीकी रचना की। न्यायकन्दलीके शेषमें लिखा है, 'त्र्यधिकदशोत्तरनवशतशकाब्दे न्यायकन्दली रचिता' अर्थात् ९१३ शकाब्दमें न्यायकन्दली रची गई।

इस न्यायकन्दलीसे जाना जाता है कि ९०० वर्ष पहले भी इस देशमें न्याय और वैशेषिक शास्त्रकी विशेषरूपसे आलोचना होती थी। इसके बाद भासर्वज्ञने न्यायसारभूषण नामक एक छोटा गर्वपूर्ण न्यायग्रन्थकी रचना की। पीछे १२वीं शताब्दीके प्रारम्भमें आनन्द नामक किसी काश्मीर नैयायिकका नाम मिलता है। किन्तु दुःखका विषय है कि उनके बनाये हुए किसी ग्रन्थका

अनुसन्धान नहीं पाते। इस समय नरचन्द्रसूरि नामक किसी जैनाचार्यने न्यायकन्दली-टिप्पनकी रचना कर फिरसे जैनमत स्थापनकी चेष्टा की। उनका अनुकरण कर सिद्धसेन नामक एक दूसरे जैनने प्रायः १२४२ सम्वत्में 'प्रमाणप्रकाश' नामक एक जैन-न्यायग्रन्थका प्रचार किया। इस समय विजयसिंहगणि नामक एक और जैन-पण्डितने भा-सर्वज्ञरचित न्यायसारकी टोका लिख कर ईश्वरकारणवादको उड़ा देनेकी चेष्टा की। १२५२ ई०में सारङ्गके पुत्र राघवभट्टने न्यायसारविचार नामक न्यायसारकी एक दूसरी टीका कर हिन्दू-नैयायिकमत संस्थापन किया। बादमें रामदेवमिश्रके पुत्र वरदराजने न्यायदीपिका, तार्किकरचा आदि कई एक न्यायग्रन्थोंकी रचना की। इनमें माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें तार्किकरक्षाके वचन उद्धृत किये हैं। पीछे जयन्तभट्टने १२८६ ई०के लगभग न्यायकलिका और न्यायमञ्जरी नामक दो न्यायग्रन्थ लिखे। १२२६ शक अर्थात् १३०४ ई०में विख्यात जैनाचार्य जिनप्रभसूरि षड्दर्शनी नामक एक दार्शनिक ग्रन्थकी रचना कर ईश्वरकारणवाद खण्डन करनेमें यत्नवान् हुए। तदनन्तर तिलकसूरि और पीछे जिनप्रभके उपदेशानुसार उनके दो शिष्य, इन तीनोंने तीन न्यायकन्दलीपञ्जिका प्रणयन की। शेषोक्त दोके नाम थे रत्नशेखरसूरि और राजशेखरसूरि। राजशेखरसूरिने न्यायकन्दलीपञ्जिकामें लिखा है, कि "पहले प्रशस्तपादने वैशेषिकसूत्रका भाष्य प्रकाशित किया। पीछे व्योम शिवाचार्यने व्योमवती नामक उसकी वृत्ति, उसके बाद श्रीधराचार्यने न्यायकन्दली नामक सन्दर्भ, पीछे उदयनाचार्यने किरणावली और अन्तमें श्रीवत्साचार्यने लीलावतीकी रचना की। शेषोक्त चार ग्रन्थ जनसाधारणके सहजबोध्य नहीं होनेके कारण मैं यह न्यायकन्दलीपञ्जिका लिख रहा हूं।" उनके ग्रन्थमें न्याय-वैशेषिककी अनेक बातें रहने पर भी उन्होंने प्रच्छन्नभावसे पूर्वतन जैन-नैयायिकोंके मतका समर्थन किया है। वे प्रकाश्यरूपसे यद्यपि ईश्वरवादका निराकरण नहीं करते थे, तो भी उनका ग्रन्थ पढ़नेसे मालूम होता है कि वे एक कट्टर निरीश्वरवादी थे। सुप्रसिद्ध उदयनाचार्यके समयसे ही भारतवासी बौद्ध नैयायिकोंका सम्पूर्ण अधःपतन हुआ था। राजशेखरके बादसे ही जैनदार्शनिकोंकी भी अवनतिका सूत्रपात हुआ है। राजशेखरके कुछ पहले केशवमिश्रको तर्कभाषा रची गई। इन्हींके बाद नव्यन्यायका आविर्भाव हुआ।

१४वीं शताब्दीके प्रारम्भमें सुप्रसिद्ध गङ्गेशोपाध्याय प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने असाधारण तर्कबुद्धिके प्रभावसे 'तत्त्वचिन्तामणि' प्रकाशित कर नैयायिकोंके मध्य युगान्तर उपस्थित किया। प्राचीन नैयायिकोंने केवल सिद्धिके उद्देश्यसे जो व्यग्रता दिखाई है। उदयनके समयसे जटिल तर्कसमूहकी आलोचना तो होती थी, पर उनका लक्ष्य भ्रष्ट नहीं हुआ। वे मूल पदार्थतत्त्वकी आलोचनामें व्यापृत थे, वृथा आडम्बरमें प्रवृत्त नहीं हुए। इस समय गङ्गेशने प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द इस चार खण्डात्मक तत्त्वचिन्तामणि नामक एक विस्तृत प्रमाणग्रन्थका प्रचार किया। पूर्वतन नैयायिकोंके १६ पदार्थ स्वीकार करने पर भी इन्होंने केवल 'प्रमाण' स्वीकार किया। गौतम और वात्स्यायनादि प्रवर्त्तित न्यायदर्शनमें आत्मतत्त्व, देहतत्त्व, मुक्तितत्त्व, ईश्वरतत्त्व आदि दर्शनप्रतिपाद्य विषय वर्णित हुए हैं। नव्यन्यायके आविर्भावसे न्यायशास्त्रका दार्शनिकतत्त्व लोप होने पर आ गया। नव्यनैयायिकोंका प्रधान उद्देश्य था अपवर्ग। किन्तु प्राचीनोंने जिस पन्थका अवलम्बन किया है, नव्य लोग वैसा नहीं करते। नव्यन्यायमें कहीं कहीं मूलपदार्थतत्त्वकी अति संक्षिप्त आलोचना रहने पर भी वह उल्लेखयोग्य नहीं है। गङ्गेशकी चिन्तामणिमें ईश्वरानुमान अपूर्ववाद इत्यादि स्थान भिन्न अध्यात्मतत्त्वकी आलोचना नितान्त अल्प है। यहां तक कि गङ्गेशने बोच बीचमें गौतमका भी मत खण्डन किया है। उनके ग्रन्थमें केवल तर्कका आडम्बर देखा जाता है। इस तर्कके तूफानमें पड़ कर नव्यनैयायिक लोग प्राचीन न्यायशास्त्रसे दूर हट गये हैं। नव्यनैयायिकोंने केवल वाक्य ले कर विचार, लक्षणसमूह और विशेषणपदका खण्डन, विशेषणान्तरप्रक्षेपसे उसका समर्थन इत्यादि वाक्जालकी घटा विस्तार की है। उन्होंने धीशक्तिकी पराकाष्ठा दिखा कर केवल तर्कमार्गका

ही आश्रय लिया है। प्रत्यक्ष, उपमान, अनुमान और शब्द इन चार प्रमाणरूपभित्तिके ऊपर नव्यन्यायशास्त्र गठित हुआ है। गङ्गेश इस नव्यन्यायके प्रवर्त्तक थे, पर संस्थापक नहीं। तत्परवर्त्तीकालमें उनके पुत्र वर्द्धमान, वर्द्धमानके बाद पक्षधरमिश्र, रुचिदत्त, वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथशिरोमणि, जयराम तर्कालङ्कार, मथुरानाथ तर्कवागीश, गदाधर भट्टाचार्य, दिनकरमिश्र आदि ख्यातनामा नैयायिकगण असाधारणविचार और युक्तिके प्रभावसे नव्यन्यायका मत संस्थापन कर गए हैं।

मिथिलामें नव्यन्यायकी जन्मभूमि होने पर भी, उसे नव्यन्यायका लीलाक्षेत्र नहीं मान सकते। सरस्वतीका लीलानिकेतन नवद्वीपधाम ही प्रकृत नव्यन्यायकी रङ्गभूमि है। वासुदेव सार्वभौम और रघुनाथशिरोमणि देखो।

प्रवाद है, कि वङ्गदेशमें पहले न्यायशास्त्रकी विशेष चर्चा न थी। वङ्गवासी मिथिलामें न्यायशास्त्र पढ़ने जाया करते थे। वहां पाठ साङ्ग होने पर गुरुके निकट पढ़ी हुई पुस्तक फेंक कर घर आना पड़ता था। ग्रन्थके अभावसे वङ्गदेशमें न्यायशास्त्रकी अध्यापना नहीं होती थी। अन्तमें सुप्रसिद्ध वासुदेव सार्वभौम समस्त न्यायशास्त्र और कुसुमाञ्जलिके पद्यांश कण्ठस्थ कर वङ्गदेश आये और वे ही सबसे पहले नवद्वीपमें न्यायका विद्यालय खोल कर न्यायशास्त्रकी अध्यापना करने लगे। उनके प्रधान शिष्य रघुनाथशिरोमणिने मिथिलाके सुप्रसिद्ध नैयायिक पक्षधरमिश्रको तर्कशास्त्रमें पराजित कर नवद्वीपमें न्यायशास्त्र स्थापन किया। उनकी चिन्तामणि-दीधिति नामक तत्त्वचिन्तामणिकी टीकामें उनकी प्रतिभा और असाधारण तर्कशक्ति परिस्फुट हुई है। अद्वैत-प्रकाश नामक वैष्णवग्रन्थमें लिखा है कि महाप्रभु चैतन्यदेवने भी एक तर्कशास्त्रकी टीका लिखी है। किन्तु कोई प्रसिद्ध नैयायिक उनकी टीका देख अपने मानकी लाघवता समझ दुःख प्रकाश करेंगे, यह जान कर गौराङ्गदेवने गङ्गाजलमें अपनी टीका फेंक दी।

सचमुच श्रीचैतन्यदेवके अभ्युदयकालमें नवद्वीपमें जो न्यायप्राधान्य स्थापित हुआ, आज भी नवद्वीपका वह न्यायगौरव समस्त सभ्यजगत्‌में विघोषित होता है। आज भी मिथिला, काशी, काञ्ची, तैलङ्ग आदि दूर दूर देशोंसे शिक्षार्थिगण न्यायशास्त्र पढ़नेके लिए नवद्वीप आया करते हैं।

नव्यनैयायिकोंमेंसे जिन्होंने नाना ग्रन्थ लिख कर ख्याति लाभ की है, अकारादिक्रमसे उनके तथा ग्रन्थके नाम नीचे दिए गए हैं। इस नव्यन्याय युगमें विश्वनाथ, शङ्करमिश्र आदिने गौतमसूत्रवृत्ति और प्राचीन न्यायका संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया है। उनके कितने ग्रन्थ नव्यन्यायके अन्तर्गत नहीं होने पर भी इसी युगमें लिखे रहनेके कारण उनके नाम भी इस तालिकाके मध्य दिये गये हैं।

ग्रन्थकार। न्यायग्रन्थके नाम।

अग्निहोत्र भट्ट-तत्त्वचिन्तामणि-आलोककी टीका।

अनन्तभट्ट—पदमञ्जरी।

अनन्ताचार्य—शतकोटीखण्डन और लक्ष्यलक्षणखण्डन।

अनन्तदेव—वाक्यभेदवाद।

अनन्तनारायण—कारिकावली नामक भाषापरिच्छेदकी टीका, तर्कसंग्रहटीका।

अमृतदेव भट्टाचार्य—विषयतारहस्य।

अखण्ड—वादार्थटीका।

उमापति उपाध्याय (रत्नपतिके पुत्र)—पदार्थीय दिव्यचक्षुः।

काशीश्वर—पदार्थमञ्जरी।

कृष्णतर्कालङ्कार—साहित्यविचार।

कृष्णदत्त—मनोरमा नामक न्यायसिद्धान्तमुक्तावली-टीका।

कृष्णन्यायवागीश भट्टाचार्य (गोविन्द न्यायालङ्कारके पुत्र)—न्यायसिद्धान्तमञ्जरीकी भावदीपिका नामक टीका।

कृष्णभट्ट आर्डे (काशीवासी कृष्णभट्ट)—१ काशिका नामक गादाधरीविवृत्ति, २ मञ्जूषा वा जगदीशतोषिणी, ३ सिद्धान्तलक्षण नामक जागदीशी टीका, ४ शाब्द-चन्द्रिका, ५ कृष्णभट्टीय न्याय, ६ सिद्धान्तमञ्जरी। इसके सिवा और भी कितने छोटे छोटे खर्रे लिखे हैं; यथा—अतःपरचतुष्टयरहस्यटीका, अनुमितिग्रन्थटीका, अनुमिति-सङ्गतिविवृति, अवच्छेदकत्वनिरुक्तिरहस्यटीका, अवयव-ग्रन्थरहस्यटीका, अवयवटिप्पनी, असिद्धपूर्वपक्षग्रन्थ-

वृहट्टीका, असिद्धग्रन्थरहस्यटीका, आख्यातवादटिप्पनी, उदाहरणलक्षणवृहट्टीका, उपाधिदूषकताबीजवृहट्टीका, कूटघटितलक्षणवृहट्टीका, केवलव्यतिरेकी ग्रन्थरहस्य-टीका, केवलान्वयिग्रन्थरहस्यटीका, चतुर्दशलक्षणी, चित्ररूपविचारदीपिका, तर्कग्रन्थवृहट्टीका, तर्करहस्य-टीका, तृतीयमिश्रलक्षणवृहत्टीका, द्वितीय चक्रवर्त्ति लक्षवृहत्टीका, द्वितीय प्रगल्भलक्षणवृहत्टीका, द्वितीय-मिश्रलक्षणवृहत्टीका, पक्षतटीका, पक्षलक्षणी वृहत्-टीका, परामर्श पूर्वपक्षग्रन्थवृहत्टीका, परामर्शरहस्य-टीका, पुच्छलक्षणवृहत्टीका, पूर्वपक्षग्रन्थविवृति, प्रतिज्ञालक्षणवृहत्टीका, प्रथमचक्रवर्त्तिलक्षणवृहत्-टीका, प्रथममिश्रलक्षण वृहत्टीका, बाधसिद्धान्तग्रन्थ-वृहत्टीका, लिङ्गविशेषण, विरुद्धग्रन्थरहस्यटीका, विरुद्ध-पूर्वपक्षग्रन्थ वृहत्टीका, विशेषनिरुक्तिवृहत्टीका, विशेषव्याप्तिरहस्यटीका, व्याप्तिग्रहरहस्यटीका, व्याप्त्य-नुगमरहस्य, व्याप्तिवाद, शक्तिवाद, सङ्गतिवाद, सत्प्रति-पक्षग्रन्थरहस्य, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्त, सव्यभिचार ग्रन्थ-रहस्य, सामान्यनिरुक्तिरहस्य, सामान्यलक्षणरहस्य, सामान्याभावरहस्य, स्वप्रकाशवादार्थ, हेत्वाभास इत्यादि। इसके सिवा और भी कितने क्रोड़पत्र लिखे हैं।

कृष्णदास—नञ्वादटिप्पनी, तत्त्वचिन्तामणिदीधीति-की प्रसारिणी नामक टीका।

कृष्णभट्ट—पञ्चलक्षणीटीका, सिंहव्याघ्रटीका।

कृष्णमित्र आचार्य—अनुमितिपरामर्श, गादाधरी-टीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाश, वृहत्तर्कतरङ्गिणी, तर्कप्रतिबन्धक-रहस्य, लघुतर्कसुधा, तर्कसुधाप्रकाश, नञर्थवादटीका, लघुन्यायसुधा, पदार्थखण्डनटिप्पन-व्याख्या, पदार्थपारिजात, बोधबुद्धिप्रतिबन्धकताविचार, भवानन्दीप्रदीप, वादसंग्रह, वादसुधाकर, वायुप्रत्यक्ष-तावाद, शक्तिवादटीका, सामग्रीपदार्थ, सिद्धान्तरहस्य। (इसके अलावा कई एक क्रोड़पत्र।)

कृष्णमिश्र—चिन्तामणि।

केशवभट्ट—न्यायचन्द्रिका, न्यायतरङ्गिणी।

केशवभट्ट (अनन्तके पुत्र)—तर्कभाषाकी तर्क-दीपिका नामक टीका।

कोण्डभट्ट (भट्टोजी दीक्षितके भ्रातुष्पुत्र)—तर्क-प्रदीप, तर्करत्न, न्यायपदार्थदीपिका।

कौण्डिन्यदीक्षित—तर्कभाषाप्रकाशिका।

गङ्गाधर—तर्कदीपिकाटीका।

गङ्गाधर—न्यायचन्द्रिका, सामग्रीवाद।

गङ्गाधर (सदाशिवके पुत्र)—तर्कचन्द्रिका।

गङ्गारामभट्ट—न्यायकुतूहल।

गङ्गाराम जड़ी (नारायणके पुत्र)—तर्कामृतचषक और उसकी टीका, दिनकरीखण्डन।

गङ्गेश दीक्षित—तर्कभाषाटीका।

गणेश दीक्षित (भावा विश्वनाथ दीक्षितके पुत्र और विज्ञानभिक्षुके शिष्य)—तर्कभाषाकी तत्त्व-प्रबोधिनी नामक टीका।

गदाधरभट्टाचार्य—कुसुमाञ्जलिव्याख्या, गादाधरी नामक (तत्त्वचिन्तामणिदीधिति और तत्त्वचिन्तामण्या-लोककी टीका) सुविस्तीर्ण न्यायग्रन्थ। इनके बनाये हुए कितने खसरे पाये जाते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य हैं,—

अतएवचतुष्टयिरहस्य, अनुकरणविचार, अनुप-संहारिग्रन्थरहस्य, अनुपसंहारिवाद, अनुमाननिरूपण, अनुमितिटिप्पन, अनुमितितत्त्वाद, अनुमितिमानस-वादार्थ, अनुमितिरहस्य, अनुमितिसंग्रह, अन्यथा-ख्यातिवाद, अन्वयवादटीका, अन्वयव्यतिरेकी, अपूर्ववाद, अवच्छेदकतानिरुक्ति, अवच्छेदकता-वाद, अवयवग्रन्थरहस्य, अवयवनिरूपण, अष्टादश-वाद, असाधारणवाद, असिद्धग्रन्थरहस्य, आकाश-वाद, आख्यातवाद वा आख्यातविचार, आत्मतत्त्व-विवेकदीधितिटीका, आलोकटिप्पनी, उत्पत्ति-वाद, उदाहरणलक्षणटीका, उपनयलक्षणटीका, उपसर्गविचार, उपाधिवाद, उपाधिसिद्धान्तग्रन्थटीका, कारकवाद, केवलव्यतिरेकिरहस्य, केवलान्वयिरहस्य, चतुर्दशलक्षणी, चित्ररूपवाद, तदादिसर्वनामविचार, तर्कग्रन्थरहस्य, तर्कवाद, तात्पर्यज्ञानकारणताविचार-रहस्य, तादात्म्यवाद, त्वतलादिभावप्रत्ययविचार, द्वितीय-प्रगल्भलक्षणटीका, द्वितीयस्वलक्षणटीका, द्वितीयादि-व्युत्पत्तिवाद, धर्मितावच्छेदकप्रत्यासत्त्या धर्मितावच्छे-दकवाद, नञर्थवादटीका, नञर्थसन्दिग्धार्थविचार, नव्यधर्मितावच्छेदकवादार्थ, नव्यमतरहस्य, नव्यमत-

विचार, निर्धारणविचार, पक्षतावाद और पक्षतारहस्य, पक्षतावादार्थ, पञ्चलक्षणी, पञ्चवादटीका, परामर्श-रहस्य, परामर्शवादार्थ, पूर्वपक्षग्रन्थटीका, पूर्वपक्ष-रहस्य, पूर्व पक्षव्याप्ति, पूर्व सिद्धान्तपक्षता, प्रतिज्ञालक्षण-टीका, प्रत्यक्षखण्डसिद्धान्तलक्षण, प्रथमप्रगल्भलक्षण-टीका, प्रथमस्वलक्षणविवरण, प्रदत्ताङ्क, प्रागभाववाद, प्रामाण्यवादटीका, प्रामाण्यवादसंग्रह, बाधग्रन्थरहस्य, बाधतावाद, बाधबुद्धिवाद, बाधबुद्धिपदार्थ, बुद्धिवाद, भूयोदर्शनवाद, मङ्गलवाद, मुक्तिवाद, मुक्तिवादार्थ, मोक्षवाद, रत्नकोषवादार्थरहस्य, लक्षणवाद, लघुवादार्थ, लिङ्गकारणतावाद, लिङ्गोपलैङ्गिकवादार्थ, वायुप्रत्यक्षवाद, विधिवाद, विधिस्वरूपवादार्थ, विरुद्धग्रन्थरहस्य, विरुद्ध-पूर्वपक्षग्रंथटीका, विरुद्धसिद्धान्तटीका, विरोधवाद, विरोधिग्रंथ, विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानवादार्थ, विशिष्ट-वैशिष्ट्यबोधविचार, विशेषज्ञानपदार्थ, विशेषनिरुक्ति-टीका, विशेषव्याप्ति, विषयतावाद, वृत्तिवाद, व्यधि-करणधर्मावच्छिन्नवाद, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव, व्याप्तिग्रहोपायटीका, व्याप्तिनिरूपण, व्याप्तिपञ्चकटीका, व्याप्तिवाद, व्याप्त्यनुगमटीका, व्युत्पत्तिवाद, व्युत्पत्ति-वादार्थ, शक्तिवाद, शब्दपरिच्छेद, शब्दालोक-रहस्य, संशयपक्षतावाद, संशयवाद, संशयवादार्थ, सङ्गतिवाद, सङ्गत्यनुमितिवाद, सत्प्रतिपक्षरहस्य, सत्प्रति-पक्षपत्र, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षटीका, सत्प्रतिपक्षवाद-ग्रंथ, सत्प्रतिपक्षवाद, सर्वनामशक्तिवाद, सव्य-भिचारग्रंथरहस्य, सव्यभिचारवाद, सव्यभिचारसामान्य-निरुक्ति, सव्यभिचारसिद्धान्तग्रंथटीका, सहचारवाद, सहचारिग्रंथरहस्य, सादृश्यवाद, साधारणग्रंथरहस्य वा साधारणवाद, साधारणासाधारणानुपसंहारिविरोधग्रंथ, सामग्रीवाद, सामग्रीवादार्थ, सामान्यनिरुक्ति ग्रंथरहस्य, सामान्याभाव, सामान्याभावव्यवस्थापन, सामान्यलक्षण टीका, सामान्यवादटीका, सामान्याभावसाधन, सिंह-व्याघ्रलक्षणी, सिंहव्याघ्री, सिद्धान्तलक्षणरहस्य, सिद्धान्त-लक्षणक्रोड़, सिद्धान्तव्याप्ति, हेतुलक्षणटीका, हेत्वाभास-निरूपण, हेत्वाभाससामान्यलक्षण इत्यादि।

गुणानन्द विद्यावागीश (मधुसूदनके शिष्य)—आत्मतत्त्वविवेकदीधितिटीका, न्यायकुसुमाञ्जलिविवेक, शब्दालोकविवेक।

गुणड भट्ट—तर्कभाषाटीका।

गुरुपण्डित—भवानन्दीटीका और गुरुपण्डितीय नव्यन्यायमतविचार।

गोकुलनाथ मैथिल (महामहोपाध्याय)—तत्त्वचिन्ता-मणिकी 'रश्मिचक्र' नामक टीका, तत्त्वचिन्तामणि-दीधितिद्योत, तर्कतत्त्वनिरूपण, न्यायसिद्धान्ततत्त्व, पदार्थरत्नाकर।

गोपालताताचार्य—अनुपलब्धिवाद, अनुमितिमान-सत्वविचार, अन्तरभाववाद, आत्मतत्त्वातिसिद्धिवाद, ईश्वरवाद, ईश्वरसुखवाद, एकत्वसिद्धिवाद, कारणता-वाद, ज्ञानकारणतावाद, द्वन्द्वलक्षणवाद, नव्यमतवाद, परामर्शवादार्थ, बाधबुद्धिवाद, राजपुरुषवाद, वादडि-ण्डिम, वादफक्किका, विधिवाद, शिषशिक्षावाद, समाप्ति-वाद, सादृश्यवाद। (इसके सिवा और भी छोटे छोटे ग्रन्थ)

गोपीकान्त (वेणीदत्तके पुत्र)—न्यायप्रदीप।

गोपीनाथमिश्र—तत्त्वचिन्तामणिसार।

गोपीनाथमौनी—न्यायकुसुमाञ्जलिविकाश वा न्याय-विलास।

गोपीनाथठक्कुर (भवनाथके पुत्र)—तर्कभाषाभाव-प्रकाशिका।

गोलोक न्यायरत्न—माथुरीक्रोड़की न्यायरत्न नामक टीका। उक्त टीकाके अङ्गीभूत अनेक खसरे पाये जाते हैं, यथा—अनुमितिविशेषत्व, असिद्धपूर्वपक्ष, असिद्ध-सिद्धान्त, उपाधिपूर्वपक्ष, उपाधिसिद्ध, कूटघटितलक्षण, कूटाघटितलक्षण, केवलान्वयी, तृतीयप्रगल्भ, तृतीयमिश्र, द्वितीयमिश्रलक्षण, पक्षतापूर्वपक्ष, पक्षतासिद्धान्त, पञ्च-लक्षणी, परामर्शपूर्वपक्ष, पुच्छलक्षण, प्रतिज्ञा, प्रथम-चक्रवर्त्ती, प्रथममिश्र, बाधपूर्वपक्ष, बाधसिद्धान्त, सामान्यनिरुक्ति, हेतु इत्यादिका विवेचन।

गोवर्द्धनमिश्र (बलभद्रके पुत्र)—तर्कभाषाप्रकाश, न्यायबोधिनी नामक तर्कसंग्रहकी टीका।

गोवर्द्धनरङ्ग—न्यायार्थलघुबोधिनी नामक तर्क-संग्रहकी टीका।

गोस्वामी—गादाधरी टीका।

गौरीकान्त सार्वभौम—भावार्थदीपिका नामक

तर्कभाषाटीका, तर्कसंग्रहटीका, मुक्तावली और 'गौरीकान्तीय' नामक नव्यन्यायमतविचार।

गौरीनाथ—तर्कपल्लव।

चक्रधर—न्यायमञ्जरीग्रन्थभङ्ग।

चतुर्भुजपण्डित—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिविस्तार।

चन्द्रनारायण आचार्य—कुसुमाञ्जलिटीका, गादाधरीयानुगम, गदाधरके अनुमानखण्डकी टीका, गौतमसूत्रवृत्ति, जागदीशीक्रोड़टीका, जागदीशीचतुर्दशलक्षणीपत्रिका, तत्त्वचिन्तामणिटिप्पनी, तर्कसंग्रहटीका, न्यायक्रोड़पत्र।

चन्द्रभट्ट—तर्कपरिभाषा।

चिन्नभट्ट (विष्णुदेवाराध्यके पुत्र, १४वीं शताब्दी)—तर्कभाषाप्रकाशिका, निरुक्तिविवरण, चिन्नभट्टीय।

जगदानन्द—न्यायमीमांसा।

जगदीश तर्कालङ्कार भट्टाचार्य (भवानन्दके शिष्य १६४८ ई०के पहले)—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिप्रकाशिका, तर्कदीपिकाव्याख्या, तर्कामृत, तर्कालङ्कारटीका, न्यायलीलावतीप्रकाशदीधितिटीका, शब्दशक्तिप्रकाशिका। इनके बनाये हुए और भी कितने खसरे मिलते हैं, यथा—

अनुमितिरहस्य, अवच्छेदकत्वनिरुक्ति, अवयवग्रन्थरहस्य, आख्यातवाद, आसत्तिविचार, उदाहरणलक्षणदीधितिटीका, उपनयलक्षणदीधितिटीका, उपाधिग्रन्थरहस्य, उपाधिवादटीका, केवलव्यतिरेकिरहस्य, केवलान्वयि ग्रन्थदीधितिटीका, केवलान्वयिग्रन्थरहस्य, चतुर्दशलक्षणी, तर्कग्रन्थरहस्य, तृतीयचक्रवर्त्तिलक्षणदीधितिटीका, तृतीयप्रगल्भलक्षणदीधितिटीका, द्वितीयचक्रवर्त्तिलक्षणदीधितिटीका, द्वितीयलक्षणदीधितिटीका, पक्षताटिप्पनी, पक्षतापूर्वपक्षग्रन्थदीधितिटीका, पञ्चलक्षणी, परामर्शपूर्वपक्षटीका, परामर्शरहस्य, परामर्शहेतुताविचार, पुच्छलक्षणटीका, पूर्वपक्षरहस्य, प्रतिज्ञालक्षणदीधितिटीका, प्रथमचक्रवर्त्तिलक्षणटीका, प्रगल्भलक्षणटीका, प्रामाण्यवाद, बाधग्रन्थरहस्य, भावरहस्यंमामाद्ध, भूयोदर्शन, विरुद्धग्रन्थरहस्य, विशेषनिरुक्ति, विशेषलक्षणटीका, विशेषव्याप्तिरहस्य, विषयताव्याप्तिवादार्थ, व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावटीका, व्याप्तिग्रहोपायरहस्य, व्याप्तिपञ्चकटीका, व्याप्तिवाद, व्याप्त्यनुगमरहस्य, सङ्क्षत्वनुमितिवाद, सत्प्रतिपक्षग्रन्थरहस्य, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षग्रन्थटीका, सत्प्रतिपक्षसिद्धान्तग्रन्थटीका, सव्यभिचारग्रन्थरहस्य, सव्यभिचारसामान्यनिरुक्ति, सव्यभिचारसिद्धान्तग्रन्थटीका, सामान्यनिरुक्तिरहस्य, सामान्यनिरुक्तिटीका, सामान्यलक्षणटीका सामान्यलक्षण और सामान्याभावरहस्य, सिंहव्याघ्रटिप्पनी, सिद्धान्तलक्षणरहस्य, सिद्धान्तलक्षणटीका, हेत्वाभास इत्यादि।

जगन्नाथतर्कपञ्चानन—'जगन्नाथीय' न्याय।

जगन्नाथपण्डित—नञ्वादविवेक।

जयदेव (पक्षधरमिश्र)—तत्त्वचिन्तामणि-आलोक, (चिन्तामणिप्रकाश, मण्यालोक वा आलोक नामसे भी प्रसिद्ध है), द्रव्यपदार्थी, न्यायपदार्थमाला, न्यायलीलावतीविवेक।

जयदेव (नृसिंहके पुत्र)—न्यायमञ्जरीसार।

जयनारायणदीक्षित—तर्कमञ्जरी।

जयराम न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य (रामभद्रके शिष्य)—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, न्यायकुसुमाञ्जलिटीका, न्यायसिद्धान्तमाला, पदार्थमणिमाला। इनके अलावा और भी कितने खसरे मिलते हैं।

जयसिंहसूरि—न्यायतात्पर्यदीपिका।

जानकीनाथ—न्यायसिद्धान्तमञ्जरी।

ताच्चनारायण—गरुड़दीपिका।

तिम्मन—अन्यथाख्यातिवाद, सामान्यनिरुक्तिक्रोड़।

त्रिलोचनदेव न्यायपञ्चानन-न्यायकुसुमाञ्जलिव्याख्या।

त्रिलोचनाचार्य—न्यायसङ्केत।

त्र्यम्बकभट्ट—त्र्यम्बक-भट्टीय।

दिनकर—दिनकरी वा न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश, भवानन्दीटीका।

दुर्गादत्त मिश्र—न्यायबोधिनी।

दुलारभट्टाचार्य—गादाधरीक्रोड़टीका।

देवदास—न्यायरत्नप्रकरण।

देवनाथ—तत्त्वचिन्तामणि-आलोकपरिशिष्ट।

धर्मराजभट्ट—न्यायरत्न नामक न्यायसिद्धान्त दीपटीका।

धर्मराजदीक्षित (त्रिवेदीनारायणके पुत्र)—तत्त्वचिन्तामणि प्रकाशदीप्ति, तर्कचूड़ामणि (तत्त्वचिन्ता-

मणिसारकी टीका), न्यायशिखामणिटीका, धर्मराज-दीक्षितीय ।

नरसिंहशास्त्री—प्रकाशिका, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीको प्रभा नामक टीका ।

नागेशभट्ट—पदार्थदीपिका ।

नारायण सार्वभौम—प्रतियोगिज्ञानकारणवाद, प्रातिपदिकसंज्ञावाद ।

नारायणतीर्थ—न्यायकुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या ।

निधिराम—न्यायसारसंग्रहटीका ।

नीलकण्ठभट्ट—तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाश ।

नीलकण्ठशास्त्री—गादाधरीटीका, जागदीशीटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका ।

नृसिंहपञ्चानन (गोविन्दपुत्र)—न्यायसिद्धान्तमञ्जरी टीका ।

पट्टाभिरामशास्त्री—तर्कसंग्रहनिरुक्ति, न्यायमञ्जूषा, प्रकाशिका, प्रभा ।

प्रगल्भाचार्य (दूसरा नाम शुभङ्कर, नरपतिके पुत्र)—तत्त्वचिन्तामणिटीका और श्रीदर्पण नामक खण्डनखण्डखाद्यटीका ।

बलभद्रसूरि—प्रमाणमञ्जरीटीका ।

बलभद्रभट्ट (विष्णुदासके पुत्र)—तर्कभाषाप्रकाशिका, शक्तिवादटीका ।

बालकृष्ण—न्यायबोधिनी नामक तर्कभाषाटीका ।

बालकृष्ण—न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाश ।

भगीरथमेघ (रामचन्द्रके पुत्र और जयदेवके पौत्र)—द्रव्यप्रकाशिका, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाशिका ।

भवनाथ—खण्डनखण्डखाद्यटीका ।

भवानन्दसिद्धान्तवागीश (विद्यानिवासके पिता)—तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या, भवानन्दी वा गूढ़ार्थप्रकाशिका नामक तत्त्वचिन्तामणिदीधितिकी टीका, शब्दार्थसारमञ्जरी ।

भवानीशङ्कर—स्वप्रकाशताविचार ।

भास्करभट्ट—तर्कपरिभाषादर्पण (तर्कभाषाकी टीका)

मणिकण्ठमिश्र—कारकखण्डनमण्डन, न्यायरत्न ।

मथुरानाथ तर्कवागीश—माथुरानाथी वा माथुरी, तत्त्वचिन्तामणिटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, तत्त्वचिन्तामणि-आलोकटीका, सिद्धान्तरहस्य । इसके सिवा और भी कितने खसरे हैं जो २००से कम नहीं होंगे ।

मधुसूदन—तर्कसूत्रभाष्यटीका, तत्त्वचिन्तामणि-आलोककण्टकोद्धार ।

महादेवभट्ट—मुक्तावलीकिरण ।

महादेवभट्टदिनकर (दिनकर नामसे प्रसिद्ध)—इन्होंने पिताके सहयोगसे दिनकरी आदिकी रचना की ।

महादेवपुण्यस्तम्भकर (मुकुन्दके पुत्र)—न्यायकौस्तुभ, भवानीप्रकाश (भवानन्दीकी टीका), मितभाषिणी नामक न्यायवृत्ति ।

महेशठक्कुर—तत्त्वचिन्तामणि-आलोकदर्पण ।

महेश्वर—तत्त्वचिन्तामणिटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका ।

माधवमिश्र—अनुमानालोकदीपिका ।

माधवदेव—तर्कभाषासारमञ्जरी । न्यायसार, प्रमाणादिप्रकाशिका ।

माधवपदाभिराम—तर्कसंग्रहवाक्यार्थनिरुक्ति ।

मुकुन्दभट्ट गाड़गिल (अनन्तभट्टके पुत्र)—ईश्वरवाद, तर्कसंग्रहचन्द्रिका नामक तर्कसंग्रहकी टीका, तर्कामृततरङ्गिणी ।

मुकुन्ददास—न्यायसूत्रवृत्ति ।

मुरारिभट्ट—तर्कभाषाटीका ।

मोहनपण्डित—तर्ककौमुदीटीका ।

यज्ञपति उपाध्याय—तत्त्वचिन्तामणिप्रभा नामक तत्त्वचिन्तामणिकी टीका ।

यज्ञमूर्त्ति काशीनाथ—तत्त्वचिन्तामणिटीका ।

यतिवर्ष—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिव्याख्या ।

यतीशपण्डित—न्यायसङ्केत ।

यज्ञभट्ट—न्यायपारिजात ।

यादवपण्डित वा यादवव्यास (नृसिंहके पुत्र)—अनुमानमञ्जरीसार, न्यायसिद्धान्तमञ्जरीसार ।

रघुदेव न्यायालङ्कार भट्टाचार्य—रघुदेवी वा गूढ़ार्थदीपिका नामक तत्त्वचिन्तामणिकी व्याख्या ।

रघुनाथपर्वत—न्यायरत्न नामक गदाधरके पक्षवादकी टीका ।

रघुनाथशिरोमणि (वासुदेव सार्वभौमके शिष्य)—आत्मतत्त्वविवेकटीका, खण्डनखण्डखाद्यटीका, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति, न्यायकुसुमाञ्जलिटीका। इसके सिवा और भी कितने ग्रन्थ मिलते हैं, यथा—अद्वैतेश्वरवाद, अपूर्ववादरहस्य, अवयव, आकाङ्क्षावाद, आख्यातवाद, केवलव्यतिरेकी, गुणनिरूपणधर्मितावच्छेदक-प्रत्यासत्ति, नञर्थवाद, निर्योव्यान्वयार्थनिरूपण, निरोधलक्षण, पक्षता, प्रामाण्यवाद, योग्यतारहस्य, वाक्यवाद, व्याप्तिवाद, शब्दवादार्थ, सामान्यनिरुक्ति, सामान्यलक्षण इत्यादि।

रघुपति—तत्त्वचिन्तामणि-आलोक और शब्दालोक-रहस्य।

रघुनाथभट्ट—दिनकरीटीका।

रङ्गाचार्य—उत्तरपक्ष, गोवर्द्धनपक्ष।

रत्ननाथ—न्यायबोधिनी नामक तर्कसंग्रहकी टीका।

रत्नेश—लक्षणसंग्रह।

रमानाथ जागदीशीटिप्पनी।

राघवपञ्चाननभट्टाचार्य—आत्मतत्त्वप्रबोध।

रामाचार्य—तर्कतरङ्गिणी।

रामकृष्ण—तत्त्वचिंतामणिदीधितिटीका, न्यायदर्पण।

रामकृष्ण (धर्मराजाध्वरीन्द्र)—रुचिदत्तके तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशकी टीका।

रामकृष्ण आचार्य—न्यायसिद्धाञ्जन।

रामकृष्णभट्टाचार्य चक्रवर्ती (रघुनाथशिरोमणिके पुत्र)—न्यायदीपिका, न्यायलीलावतीप्रकाश।

रामचन्द्रन्यायवागीश—अधिवादविचार, आसत्तिरहस्य, वश्यताविचार, विधिवादविचार, विरोधिविचार, शब्दनित्यताविचार।

रामचन्द्रभट्ट—नीलकण्ठरचित तर्कसंग्रहदीपिका-प्रकाशकी टीका, न्यायसिद्धांतमुक्तावलीप्रकाश टीका।

रामचन्द्रभट्टाचार्य सार्वभौम—प्रमाणतत्त्व, मोक्षवाद, विधिवाद।

रामनाथ—तर्कसंग्रहटिप्पन, न्यायसिद्धांतमुक्तावलीटिप्पन।

रामनारायण—अनुमितिनिरूपण।

रामभद्र सार्वभौम (भवनाथके पुत्र)—कुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या, न्यायरहस्य नामक न्यायसूत्र टीका, नानात्ववादतत्त्व, समासवादतत्त्वपदार्थखण्डनटिप्पनी।

रामभद्रसिद्धांतवागीश—शब्दशक्तिप्रकाशिकाप्रबोधिनी, तर्कतरङ्गिणी।

रामभद्रभट्ट—तर्कतरङ्गिणी, तर्कसंग्रहदीपिका-व्याख्या, प्रभा, व्युत्पत्तिवादटीका, दिनकरीके मङ्गलवादटीका।

रामलिङ्ग (कृष्णाङ्गदके पुत्र)—न्यायसंग्रह नामक तर्कभाषाकी टीका।

रामानन्द—न्यायामृतव्याख्या।

रामानुजाचार्य—मणिसार नामक तत्त्वचिंतामणि-मणिसारकी समालोचना।

रायनरसिंह पंण्डित—तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाश, प्रभा नामक न्यायसिद्धांतमुक्तावलीटीका।

रुचिदत्त (देवदत्तके पुत्र और जयदेवके शिष्य)—कुसुमाञ्जलिप्रकाशमकरन्द, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, तर्कपाद, तर्कसार, पदार्थखण्डनव्याख्यामकरन्द।

रुद्रन्यायवाचस्पति (विद्यानिवासके पुत्र)—भवानन्दीकारकार्थ, निर्णयकी टीका, तत्त्वचिंतामणि-दीधिति, कुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या, न्यायसिद्धान्त-मुक्तावलीटीका, वादपरिच्छेद, विधिरूपनिरूपण, शब्दपरिच्छेद।

रेफिलवेङ्कट—चेन्नूभट्टकृत तर्कभाषाटीकाकी टिप्पनी।

लक्ष्मीदास—अनुमानलक्षण।

वंशधरमिश्र (जगन्नाथके भ्रातृपुत्र)—प्राचीचिकी वा न्यायतत्त्वपरीक्षा नामक न्यायसूत्रकी वृत्ति, योगरूढ़िविचार, विधिवाद।

वज्रटङ्क—भवानन्दप्रकाश।

वर्द्धमान उपाध्याय (गङ्गेश उपाध्यायके पुत्र)—खण्डनखण्डखाद्यप्रकाश, तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश, न्यायकुसुमाञ्जलिप्रकाश, न्यायसूत्रका न्यायनिबन्धप्रकाश, न्यायपरिशिष्टप्रकाश, प्रमेयतत्त्वबोध।

वाचस्पति—वर्द्धमानेन्दु, न्यायतत्त्वावलोक, न्यायरत्नटीका।

वामध्वज—न्यायकुसुमाञ्जलिटीका।

वासुदेव सार्वभौम—तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या, समासवाद, सार्वभौमनिरुक्ति।

विलयीन्द्रयतीन्द्र—आमोद नामक न्यायामृतकी टीका।

विनायकभट्ट—न्यायकौमुदी नामक न्यायामृतकी टीका।

विश्वेश्वरीप्रसाद—तरङ्गिणी नामक तर्कसंग्रहटीका, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीटीका।

विश्विभट्ट—तर्कपरिभाषाटीका।

विश्वनाथ—तत्त्वचिन्तामणिशब्दखण्डटीका, तर्कतरङ्गिणी, तर्कसंग्रहटीका।

विश्वनाथभट्ट—गणेशकृत तत्त्वप्रबोधिनीकी न्यायविलास नामक टीका।

विश्वनाथ न्यायपञ्चानन (विद्यानिवासके पुत्र)—भाषापरिच्छेद वा कारिकावली, मुक्तावली नामक उसकी टीका, न्यायतन्त्रबोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वालोक, सुवर्थतत्त्वावलोक।

विश्वनाथाश्रम—तर्कदीपिका।

विश्वेश्वर—तर्ककुतूहल, न्याय प्रकरण।

विश्वेश्वराश्रम—तर्कचन्द्रिका।

वीरराघवाचार्य—असम्भवपत्र।

वीरेश्वर—जागदीशीटीका।

वेङ्कटाचार्य—तत्त्वचिन्तामणिदीधितिक्रोड़, तत्त्वार्थदीपिका नामक तर्कसंग्रहटिप्पनी।

वेङ्कटराम—न्यायकौमुदी।

वैणीदत्तवागीशभट्ट—तर्कसमयखण्डन।

वेदान्ताचार्य (वत्समेघर्षिहके पुत्र)—अनुमानका पृथक्प्रामाण्यखण्डन।

वैद्यनाथ—तर्करहस्य, न्यायकुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या।

वैद्यनाथ गाड़गिल—तर्कचन्द्रिका नामक तर्कसंग्रहकी टीका।

वैद्यनाथदीक्षित—हरिदत्तरचित तत्त्वचिन्तामणिप्रकाशकी टीका।

व्रजराज गोस्वामी—न्यायसार।

शङ्करभट्ट—सामान्यनिरुक्तिक्रोड़।

शङ्करमिश्र—गादाधरीटीका, जागदीशीटीका।

शशधर आचार्य—शशधरीय वा न्यायसिद्धान्तदीप, न्यायनय, न्यायमीमांसाप्रकरण, न्यायरत्नप्रकरण, शशधरमाला।

शिवशारङ्गधर—न्यायमुक्तावली· लक्षणावलीविवृत्ति, पदार्थचन्द्रिका।

शितिकण्ठ—तत्त्वचिन्तामणिटीका।

शिवयोगी—न्यायप्रकाशटीका।

शिवरामवाचस्पति—नव्यमुक्तिवादटिप्पनी।

शेषान्त—न्यायसिद्धांतदीपप्रभा, पदार्थचन्द्रिका।

श्रीकण्ठदीक्षित—तर्कप्रकाश नामक न्यायसिद्धांतमञ्जरीटीका।

श्रीनिवासाचार्य—अवयवक्रोड़, न्यायसिद्धान्ततत्त्वामृत।

श्रीनिवासभट्ट (काशीवासी)—सुरतकल्पतरु नामक तर्कदीपिकाटीका।

सच्चिदानन्द शास्त्री—न्यायकौस्तुभ।

हनुमदाचार्य (व्यासाचार्यके पुत्र)—चिन्तामणिवाक्यार्थदीपिका, तर्कदीपिकाटीका।

हरनारायण—गादाधरीटीका, जागदीशीटीका।

हरि—प्रमाणप्रमोद।

हरिकृष्ण—उपसर्गवाद।

हरिदास न्याय वाचस्पति तर्कालङ्कार—तत्त्वचिन्तामणि·अनुमानखण्डटीका, तत्त्वचिन्तामणि·आलोकटीका, न्यायकुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या।

हरिराम तर्कालङ्कार (गदाधरके गुरु)—तत्त्वचिन्तामणिटीका।

हरिहर—तार्किकरक्षासंग्रहटीका।

वैशेषिक शब्द देखो।

पाश्चात्य-न्यायदर्शन (Logic.)

संस्कृत न्याय शब्द यूरोपीय लाजिकके प्रतिशब्दस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है। किन्तु यथार्थमें देखनेसे भारतीय न्यायदर्शन और यूरोपीय लाजिकमें सामान्य साहश्य लक्षित होता है। भारतीय न्यायदर्शनमें ऐसे अनेक विषय लिखे हैं जो

कभी भी यूरोपीय पण्डितोंके मतसे न्यायशास्त्रके अन्तभूत नहीं हो सकते। मुक्तिमार्गका सोपान निरूपण ही भारतीय प्राचीन न्यायदर्शनका प्रधान आलोच्य विषय है, किन्तु यूरोपीय पण्डितोंके मतसे वह Philosophy proper or metaphysics अर्थात् साधारणतः दर्शनशास्त्र कहनेसे जो समझा जाता है, उसीका प्रतिपाद्य विषय है। हम लोगोंके देशमें न्यायदर्शन जिस प्रकार षड्दर्शनके मध्य दर्शनविशेष है, यूरोपीय न्यायदर्शन वा लाजिक उस प्रकार दर्शनशास्त्रके अंतर्गत नहीं है। यूरोपीय न्यायदर्शन विज्ञानकी एक शाखा (Science) विशेष है और पाश्चात्य न्यायको विज्ञानके अन्तर्भुक्त मान कर ही उसीके अनुसार लाजिककी संज्ञा (Definition) लिखी गई है।

किसी किसी पण्डितने न्यायको चिन्ताका नियामकशास्त्रविशेष बतलाया है (Science of the laws of thought as thought)। किसी किसीका कहना है कि लाजिक वा न्याय युक्तिप्रयोजकशास्त्र (Sceince as well as the art of reasoning) है, फिर अन्य पण्डितोंके मतसे लाजिक कहनेसे साधारणतः प्रमाणका नियोजक समझा जाता है (Science of proof or evidence)।

सुतरां भारतीय न्यायदर्शनका जो अंश प्रमाणके अंतर्गत है अर्थात् जिसकी अंशमें प्रमाणकी नियमावली एवं प्रयोगप्रणाली वर्णित है, जो भारतीय नव्यन्यायका मुख्य विषय है, वही यूरोपीय न्यायदर्शन वा लाजिकका आलोच्य विषय है।

प्रमाणके ऊपर सभी विषयोंका सत्यासत्य निर्भर करता है। सत्यनिर्णय ही जब सब प्रकारकी चिंतावली वा कार्यप्रणालीका मुख्य उद्देश्य है, तब पहले प्रमाणका याथार्थ्य अयाथार्थ्यका निर्द्धारण करना आवश्यक है। सुतरां लाजिकमें प्रधानतः प्रमाण किसे कहते हैं, प्रमाणका उद्देश्य क्या है, निर्दोष प्रमाका स्वरूप क्या है, हेत्वाभास (Fallacies) संशोधनका उपाय क्या है, सत्यका निर्द्धारण करनेमें कैसी प्रणालीसे चिंताका प्रयोग करना आवश्यक है, ये सब विषय पुङ्खानुपुङ्खरूपसे आलोचित हुए हैं।

ग्रीक-पण्डित अरिष्टल ही पाश्चात्य न्यायके उद्भवकर्त्ता हैं। अरिष्टलके बहुत पहलेसे न्यायका अंशतः प्रचलन रहने पर भी अरिष्टलने ही पहले पहल न्यायको पृथक् शास्त्ररूपमें प्रवर्त्तित किया। अरिष्टलके पहले न्यायकी नियमावली दर्शनशास्त्रमें प्रयुक्त होती थी। न्यायशास्त्र नामसे कोई पृथक् शास्त्र नहीं था।

दार्शनिक सक्रेटिस सबसे पहले न्यायप्रचलित नियमावलीका बहुत कुछ कर गए हैं। सक्रेटिसके नक्षदर्शनके प्रामाण्य विषय भी न्यायानुमत प्रक्रियासे साधित हुए हैं। तर्कशास्त्रका संज्ञाप्रकरण (Definition of notion) सक्रेटिससे प्रवर्त्तित हुआ है। व्याप्तिसिद्धान्त (Synthetic reasoning or induction)-का सक्रेटिसने प्रचार किया है। सक्रेटिसके परवर्त्ती दार्शनिकगण सक्रेटिसका पदानुसरण कर गये हैं। दार्शनिक चिंताओंको शास्त्ररूपमें लिपिबद्ध करनेमें चिन्ताकी पद्धति वा क्रम (Method) की आवश्यकता है और चिंताका क्रम भी न्यायानुगत प्रमाणके ऊपर निर्भर करता है। सुतरां दर्शनशास्त्र जब व्यक्तिगत चिंतामात्र न हो कर शास्त्रविशेष हो जाता है, तब साथ साथ न्यायानुगत प्रमाणप्रणालीका भी (Logical method) उत्कर्ष साधित हुआ करता है। सक्रेटिसकी मृत्युके बाद दर्शनशास्त्रके अभ्युदयके साथ साथ तर्कशास्त्रकी उन्नति हुई थी। अभी तर्कशास्त्र कहनेसे जो समझा जाता है, उस समय लाजिक कहनेसे भी वही समझा जाता था। उस समय लाजिकका दूसरा नाम था Dialectic वा तर्कशास्त्र। प्लेटोके दर्शनमें भी इसी प्रकार Dialectic-का आधिपत्य देखनेमें आता है। Dialectics-ठीक हम लोगोंके देशीय न्यायदर्शनके जैसा है। Dialectics-इस प्रमाणमें प्रयोगप्रणालीके सिवा और भी दर्शनके अनेक साधारण विषय वर्णित हैं। वस्तुतः अभी Metaphysics कहनेसे जो समझा जाता है, उस समय Dialectics कहनेसे भी वही समझा जाता था।

सक्रेटिसके परवर्त्ती प्लेटोके समसामयिक दार्शनिकोंके मध्य आनटिसथिनिस (Antisthenes)-ने लाजिकका अधिक उन्नतिसाधन किया। आनटिस-

थिनिसका दार्शनिकमत वर्त्तमान Nominalism वा नामवाद है। आनटिसथिनिसके मतानुसार वस्तुमात्र संज्ञावाचक है और सभी संज्ञा वस्तुकी सत्ता है तथा युक्ति (reason) संज्ञाकी परिवर्त्तन (Transposition of names) के सिवा और कुछ भी नहीं है। सुतरां आनटिस्थिनिसके मतसे लाजिक अङ्गशास्त्रका समस्थानीय है। पीछे ष्टोइक-दर्शनमें (Stoic philosophy) तर्कका भी कुछ आधिपत्य देखनेमें आता है। सत्यान्वेषणका न्यायानुगत पन्थानिरूपण ही ष्टोइक-दार्शनिकोंके मतानुसार तर्कशास्त्रका प्रतिपाद्य विषय है और सत्यका नियामक है, (Ascertainment of the criterion of truth) यह पन्था उनके मतानुसार वाह्यविषयके ऊपर निर्भर नहीं करता है, वह सांसिद्धिक वा आन्तर धर्मविशेष (Subjective or a priori है)। ष्टोइक-दर्शनमें तर्कशास्त्रकी उन्नति यहीं पर्यवसित होती है।

एपिक्यूरियन (Epicurean) दार्शनिकोंके मतानुसार तर्कशास्त्र सत्यान्वेषणके उपायस्वरूप जड़विज्ञानके सहायकशास्त्रविशेषरूपमें परिगणित होता है। उपरि-उक्त दार्शनिक मतोंके श्रेणीविभागमें लाजिकका उल्लेख रहने पर भी यथार्थमें तर्कशास्त्रकी थोड़ी ही उन्नति हुई थी। आरिष्टलके पहले तर्क 'लाजिक' पृथक्शास्त्रके जैसा परिगणित नहीं हुआ। दार्शनिक आरिष्टलने ही तत्पूर्ववर्त्ती Dialecticको परिवर्द्धित कर उसे लाजिक वा न्यायशास्त्ररूपमें प्रवर्त्तित किया।

आरगेनन (Organon) नामक ग्रन्थमें आरिष्टलने अपने न्याय वा लाजिककी अवतारणा की। इस ग्रन्थमें केवल तर्कके अन्तर्निहित विषय ही आलोचित नहीं हुए, दर्शनशास्त्रके अन्यान्य जटिलतत्वकी मीमांसाकी भी अवतारणा की गई है। आरगेननमें Metaphysics और न्यायशास्त्रका जटिल संमिश्रण देखनेमें आता है। सुतरां आरगेननके वर्त्तमान तर्कशास्त्रका मूल ग्रन्थ होने पर भी वह अविमिश्र-तर्कशास्त्र नहीं है।

आरगेनन नामक ग्रन्थमें आरिष्टलने प्रथमत: संज्ञा वा नामप्रकरणके सम्बन्धमें (Determination of the categories) आलोचना की है। इन्द्रियग्राह्य वस्तुमात्र ही संज्ञावाचक है; पदार्थ मात्रका ही एक एक धर्म वा गुण ले कर एक एक संज्ञाका आरोप किया गया है। जो सब गुण किसी न किसी पदार्थमात्रके ही साधारण धर्म हैं, आरिष्टलने उन साधारण धर्मगुणोंको ले कर एक एक श्रेणीविभाग किया है।

आरिष्टलके द्रव्योंका श्रेणीविभाग साधारणत: दश बतलाये गये हैं। यथा—द्रव्यत्व (Substance), मेयत्व वा परिमाण (Quantity), धर्म वा गुण (Quality), सम्बन्ध (Relation), देश (Space), काल (Time), अवस्थान (Position), अधिकारित्व वा अधिकार (Possession), (द्रव्यत्व और गुणके अन्यान्य सम्बन्धको अधिकारित्व कहते हैं), कार्यकारकगुण (Action), जिस द्रव्यके ऊपर अपर कोई गुण वा पदार्थको कार्यकारी क्षमता रहती है, वह गुण (Passion)। आरिष्टलके आरगेननके प्रथम प्रबन्धमें इस प्रकार पदार्थोंका श्रेणीविभाग निर्णीत हुआ है।

आरगेननके द्वितीय प्रबन्धमें भाव और भाषाके सम्बन्धके विषयमें सविस्तर आलोचना है। भाषा किस परिमाणसे भावप्रकाशमें समर्थ है, भावमात्र ही भाषा द्वारा प्रकाशित किया जा सकता है वा नहीं, भाव और भाषामें विरोध किस प्रकार सम्भव है, सम्पूर्ण भाव किस प्रकार भाषामें प्रकाशित होता है, (Logical propositions) ये सब विषय पुङ्खानुपुङ्खरूपमें मीमांसित हुए हैं।

आरगेननका तृतीय प्रबन्ध जितने भागोंमें विभक्त हुआ है, उतने भागोंको विश्लेषणपाद (Analytic Books) कहते हैं। चिन्ताप्रणालीका क्रम किस प्रकार है, किस विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होनेसे किस प्रकार युक्तिप्रयोग करना होता है, यही इस अंशका प्रतिपाद्य विषय है। साधारणत: युक्ति (Reasoning) ले कर पुस्तकका यह अंश लिखा गया है।

एनालिटिकके प्रथम भागमें निगमनमूलकयुक्ति (Syllogism or Deductive reasoning) का विषय विवृत हुआ है। निगमनमूलक-युक्ति (Syllogistic reasoning) भित्ति किस प्रकार है, निगमनमूलक युक्तिकी प्रयोगप्रणाली कैसी है, इत्यादि इस भागके आलोच्य विषय हैं।

उक्त एनालिटिक ग्रन्थका द्वितीय भाग कई एक भागोंमें विभक्त है जिनमेंसे प्रथम दो भागोंमें स्वतःसिद्ध-युक्ति प्रणालीके सम्बन्धमें (Apodictic arguments) कुछ लिखा है। अवशिष्ट आठ भागोंमें प्रचलितयुक्ति वा वादसम्बन्धमें पर्यालोचित हुआ है। अन्तके एक प्रबन्धमें (Essay on the Sophistical Elenchi) भ्रमात्मक युक्ति वा हेत्वाभास (Fallacies)-की आलोचना है।

आरगेननके उपरि-उक्त ग्रयास'क्षेप सारोद्धारसे यह सहजमें जाना जा सकता है कि आरिष्टलके समयमें तर्कशास्त्रकी अवस्था कैसी थी और वर्त्तमान समयमें उसकी कैसी उन्नति हुई है। सामान्य अभिनिवेशपूर्वक देखनेसे ही ज्ञात होता है कि आरिष्टलके समय से इङ्गित तर्कशास्त्र (Formal or Deductive Logic)-ने बहुत कम उन्नति की है। 'फारमल लाजिक'-को आरिष्टल जिस अवस्थामें रख गये थे, सामान्य परिवर्त्तन छोड़ देनेसे वह अब भी प्रायः उसी अवस्थामें है। निगमनमूलक-न्याय (Deductive Logic की प्रयोग-प्रणाली आरिष्टलके निर्दिष्ट पथसे ही आज तक चली आ रही है। आरिष्टलका 'डिडकटिभ लाजिक' वर्त्तमान कालमें दार्शनिक काण्ट (Kant) और हमिलटन-प्रवर्त्तित फारमल लाजिकमें परिणत हुआ है। आरिष्टलके न्याय वा लाजिककी दार्शनिकभित्ति अस्तित्ववाद (Realism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। आरिष्टलने जगत्का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। उनके मतसे वाह्यजगत् और अन्तर्जगत्का ऐक्य ही सत्यका द्योतक है। अन्तर्जगत्में विरोधवशतः (Contradiction) जो अनुभव किया नहीं जाता, वाह्यजगत्में भी उसका अस्तित्व असम्भव है। सुतरां दोनोंका अवरोध ही (Absence of Contradiction) सत्यके स्वरूपकी सूचना करता है। आरिष्टलके मतसे सत्य कहनेसे चिन्ताकी सङ्गति (Inner consistency)का बोध नहीं होता; वाह्यजगत्के साथ ऐक्यका बोध होता है (Correspondance with external realities); सुतरां आरिष्टलका 'डिडकटिभ लाजिक' वर्त्तमान 'फारमल-लाजिक' नहीं है।

३री शताब्दीमें निवप्लाटोनिज्म (Neo-Platonism) नामक दार्शनिक मतका प्रचार हुआ। निवप्लाटोनिष्टोंके मतानुसार ज्ञानमार्गका अवलम्बन करनेसे सत्यके प्रकृत तत्त्वका उद्घाटन किया नहीं जाता, आत्माकी अन्तर्ज्योतिसे ही प्रकृतज्ञानका सम्भव है (Inner mystical subjective exultation), आत्माकी ऐसी उन्मेषित अवस्थाको निवप्लाटोनिक दार्शनिक आनन्दमय दशा (Ecstasy or rapture) कह गये हैं। निवप्लाटोनिक पण्डितों द्वारा भी लाजिककी कोई उन्नति साधित नहीं हुई। वे लोग भी दार्शनिकप्रवर आरिष्टलका मत अनुसरण कर गये। निवप्लाटोनिक पण्डित प्लोटिनस (Plotinus) आरिष्टल-कृत आरगेननकी उपक्रमणिका (Introduction) लिख गये हैं। तन्मतानुवर्त्ती पण्डितोंने भी आरिष्टलके दार्शनिक ग्रन्थोंकी टीका रची है।

६ठी शताब्दीके प्राक्कालमें खृष्टधर्मावलम्बी महाजन लोग भी (Church fathers) आरिष्टलके न्यायमतका ही अनुसरण कर गये हैं। इसी समयसे अरबदेशीय पण्डितों और यहूदीजातिकी विद्वन्मण्डलीमें भी आरिष्टलका दर्शन विशेषरूपसे आदृत हुआ। आरिष्टलके मतके अनुवर्त्ती अरबदेशीय पण्डितोंके मध्य आभिसेन (Avicenna) और आभिरोस (Aviroes) इन दो पण्डितोंका नाम समधिक विख्यात है।

यूरोपमें मध्ययुग (Middle Ages)में जो दार्शनिक मतसमूहका आविर्भाव हुआ, उसे साधारणतः स्कालाष्टिक फिलासफी (Scholastic philosophy) कहते हैं। स्कालाष्टिक-दर्शन एक नूतन दार्शनिक मत नहीं है। मध्ययुगमें खृष्टधर्मका प्रभाव अप्रतिहत था और आरिष्टलका प्रभाव भी उस समय सम्पूर्णरूपसे तिरोहित नहीं हुआ था। स्कालाष्टिकदर्शन इन दोनोंके संघर्षणसे उत्पन्न हुआ था। स्कालास्टिक दर्शनका विशेष लक्षण यह है कि उसका अधिकांश भाव ही ज्ञान और भक्तिके समन्वयमें व्ययित हुआ है (Reconciliation of Reason and Faith)। खृष्टधर्मके साथ दार्शनिक मतका सामञ्जस्य प्रतिपादन ही स्कालाष्टिकदर्शनका लक्ष्मीभूत विषय था। आरिष्टलके दर्शनका इस समय समधिक प्रादुर्भाव हुआ। पहले बहुतसे पण्डितोंने आरिष्टलकी टीका प्रस्तुत की है। उक्त महात्माके लाजिकको इस

समय विशेष चर्चा हुई थी। अविलार्डके पहले (Abelard 1049-1142 A. D.) आरिष्टलके लाजिकका सामान्य अंश ही विद्वन्मण्डलीमें प्रचारित हुआ था। आरिष्टलकी पदार्थविभाग-प्रणाली (The Categories) और 'डि इण्टारप्रिटेसिण'में लाजिकके इन दो अंशोंका सामान्य प्रचार हुआ था। अन्यान्य अंशोंका सामान्य विवरण बिथियस (Boethius) और अगष्टिन (Augustine) के ग्रन्थसे प्राप्त होता है। १२वीं शताब्दीके मध्यभागमें लाजिकके अन्यान्य अंशोंका प्रचार हुआ। इसके अनन्तर १५वीं शताब्दी तक आरिष्टलके लाजिकके मूलग्रन्थकी आरगेननसे अधिक आलोचना हुई थी। इस समय आरिष्टलका सिलजिष्टीक वा अन्योन्यसंश्रयात्मिकायुक्ति (Syllogistic reasoning) कुछ उन्नत दशामें थी। आरिष्टलकी संयोजनमूलक युक्तियोंमें (Syllogistic doctrine) सोराइटिस (Sorites) नामक तर्कविशेषका उल्लेख और विवरण है। मध्ययुगमें गोक्लेनियस (Goclenius) नामक पण्डितने भिन्न प्रकारसे सोराइटिस (Sorites) वा युक्तिश्रेणीका उल्लेख किया है। इसके सिवा लाजिकका क्रम वा प्रणाली एक प्रकार रहने पर भी मध्ययुगमें आरिष्टलके लाजिककी दार्शनिक भित्तिका रूपान्तर हुआ था।

अरिष्टलका न्यायमत सत्यवाद (Realism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। अरिष्टल वाह्यजगत्‌का अस्तित्व स्वीकार करते हैं और मनके वाह्यजगत्‌के व्यापारकी धारणा करनेकी शक्ति है, वह भी स्वीकार करते हैं। सुतरां जो मानसराज्यमें असङ्गत समझा जाता है, जगत्‌में भी उसका अस्तित्व नहीं है (Contradiction of things constitutes contradiction of thoughts) क्योंकि मानसराज्यके व्यापार वाह्यजगत्‌से गृहीत हुए हैं। अरिष्टलके मतानुसार सत्यका लक्षण (Criterion of truth) केवल मानसिक सङ्गति असङ्गति (Subjective consistency or inconsistency) नहीं है, वस्तुतः वाह्य वस्तुका अस्तित्व वा सङ्गतिसापेक्ष है (Objective consistency—external reality)। अरिष्टलका यह सत्यवाद (Realism) मध्ययुगमें क्लासिक पण्डितोंके समय नामवाद (Nominalism)में पर्यवसित हुआ। नामवाद कहनेसे साधारणतः समझा जाता है कि नाम ही सत्यज्ञापक है। नामव्यतीत अन्य किसी वस्तुकी सत्ता निर्देश नहीं करता। नाममें ही वस्तुकी सत्ता पर्यवसित होती है। किसी वस्तुका नाम द्वारा निर्देश करनेसे इन्द्रियगत अनुभूति (Sense-perception)का उद्बोधन किया जाता है। इसके सिवा इन्द्रियकी परीक्षा और किसी पदार्थमें अस्तित्व-निर्देश किया नहीं जाता। जैसे वृक्ष कहनेसे किसी न किसी एक निर्दिष्ट वृक्षकी प्रतिकृति मनमें उदित हुआ करती है—यही प्रतिकृति जैसे शाल, ताल, वकुल इत्यादि किसी न किसी एक वृक्षकी ही होगी। वृक्ष कहनेसे ऐसा कुछ भी समझा नहीं जाता जो शाल भी नहीं है, ताल भी नहीं है, वकुल भी नहीं है अर्थात् निर्दिष्ट किसी इन्द्रियगोचर वृक्षकी प्रतिकृति नहीं है। 'मनुष्य' यह शब्द मनमें रखनेसे साधारणतः मनमें किस प्रतिकृतिका उदय होता है? मनुष्य नामकी कोई निर्दिष्ट प्रतिकृति नहीं है। मनुष्य कहनेसे ही साधारणतः राम, श्याम या यदु अर्थात् किसी न किसी निर्दिष्ट मनुष्यकी प्रतिकृति मानसपटमें उदित होती है। वह प्रतिकृति एक निर्दिष्ट रकमकी है, वह या तो दीर्घ है, या ह्रस्व है या मध्यमाकारकी है। वर्ण गोरा, काला अथवा सांवला हो सकता है। साधारणतः राम, श्याम वा यदु कहनेसे जैसे किसी एक निर्दिष्ट आकारविशिष्ट प्रतिकृतिका मनमें उदय होता है, वैसे ही मनुष्य इस शब्दके अनुरूप ऐसी कोई प्रतिकृति नहीं जो मनुष्यमात्रकी ही प्रतिकृति कह कर गिनी जा सके। अपरापर पदार्थोंके सम्बन्धमें भी उसी प्रकार है। नाम केवल इन्द्रियगोचर प्रतिकृतिको मनमें उदित कर देता है। नामके साथ इन्द्रियगत मानसिक प्रतिकृतिका अभ्यासगत (Through experience) एक ऐसा सम्बन्ध है कि नाम उच्चारित होने पर तत्संश्लिष्ट पदार्थका मनमें ख्याल आ जाता है (Association of ideas)। इसी दार्शनिकमतको नामवाद (Nominalism) कहते हैं। मध्ययुगमें इस नामवाद (Nominalism) और अस्तित्ववाद (Realism)के सम्बन्धमें विशेष आलोचना चली थी। वर्त्तमान कालमें भी यह प्रतिद्वन्द्विता निबटी

नहीं है। उभयपक्षकी समर्थनकारी युक्तियां प्रदर्शित हुई हैं। इङ्गलैण्डदेशीय एम्पिरिकल दार्शनिक मत-समर्थक (Empirical School) ह्यम, जनष्टु आर्ट-मिल प्रभृति नामवादकी पोषकके और जर्मनदेशीय ट्रेण्डेलेनबर्ग (Trendelenburg) मतानुवर्त्ती पण्डित-गण शेषोक्त मतके समर्थक हैं। मध्ययुगके स्कलाष्टिक समय (Scholastic Period) का अधिकांश ये दो मत-भेद ले कर व्ययित हुआ है। नामवादके अत्याधिक प्रभावसे लाजिक चिन्ताप्रणालीका नियामक न हो कर वादवितण्डाशास्त्रमें परिणत हुआ था। लाजिकका व्यवहारगत अंश ही (Formal or Linguistic aspect) प्रबल हो उठा था। स्कलाष्टिक वा मध्ययुग-के दार्शनिक मतोंका आभ्यन्तरिक अन्यान्यविरोध ही इसके अधःपतनका मूल है। बाइबेलोक्त ऐश्वरिक प्रत्या-देश (Revelation)के साथ युक्तिका सामञ्जस्य विधान करना एक प्रकार असाध्यसाधन हो उठा। अधिकांश पण्डितोंने ही समझा था कि इस प्रकार सामञ्जस्यविधान एक तरह असम्भव है और इस प्रकार अस्थायी तथा असार भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित दार्शनिक मत भी अस्थायी और सारहीन है।

तद्भिन्न ग्रीक और लाटिनदर्शनशास्त्र तथा साहित्यकी चर्चा भी स्कलाष्टिसिजमके अधःपतनका अन्यतम कारण हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि मध्ययुगमें दार्श-निक चर्चा एक प्रकारसे वाद वा तर्कविस्तारको उपाय-स्वरूप हुई थी। प्लेटो और अरिष्टल आदिका दार्श-निक मत भिन्न भिन्न भाषामें आंशिकरूपसे अनुवादित हो कर विकृतभावमें वर्णित और शिक्षित होता था। मुद्रायन्त्रके उद्भावनके साथ प्लेटो और अरिष्टलकी पुस्तक ग्रीक भाषामें मुद्रित हो कर पढ़ी जाने लगीं।

धर्मसंस्कार (The Reformation) और प्रोटे-ष्टैण्ट (Protestants) मतके अभ्युदयको भी अव-नतिका अन्य कारण कह सकते हैं। याजक-सम्प्रदाय (Church)के प्रभावका ह्रास होनेके साथ साथ स्वाधीन चिन्ताका प्रसार बढ़ने लगा। सुतरां युक्ति और विश्वास-के सामञ्जस्यविधानकी चेष्टा याजकोंके एकदेशदर्शिताके ऊपर निर्भर न कर स्वाधीनचिन्ताके वशवर्त्ती हो लय-प्राप्त हुई। प्राकृतिक विज्ञानकी उन्नति भी इस स्वाधीन चिन्ताका फल है और यह भी स्कलाष्टिसिजमके अधः-पतनका दूसरा कारण है।

स्कलाष्टिसिजमके विरुद्ध जो आन्दोलन चला था, इङ्गलैण्ड देशीय लार्ड बेकन (Lord Bacon) उसके अन्यतम नायक थे। बेकनको वर्त्तमानकालके 'इण्ड-क्टिभ्' लाजिकके सृष्टिकर्त्ता हैं। अपने नोभम् आर-गेनन वा नव्यतन्त्र नामक ग्रन्थमें (Novum Organum) उन्होंने अपने मतका प्रचार किया है। बेकन आरिष्टल-कृत न्यायमतको सत्यान्वेषणका परिपोषक नहीं मानते। बेकनके मतानुसार आरिष्टल-प्रवर्त्तित युक्ति वा सिल-जिज्म् (Syllogism) सत्यान्वेषण (Scientific inve-stigation)के अनुकूल नहीं है, यह केवल वाद वा तर्कके अनुकूल (Suitable for disputation) है। मध्ययुगमें आरिष्टलके तर्कशास्त्रका जैसा आदर होता था, बेकनने केवल उसी प्रकार इसे अतिरिक्त औदासीन्य-के चक्षुसे देखा है। बेकनके नव्यतन्त्रमें निगमनअंश न्यायके अपेक्षाकृत उपेक्षित हो व्याप्ति (Inductive) भागने अधिकतर प्राधान्य लाभ किया है। न्यायशास्त्र वा लाजिकका इस प्रकार आमूल-परिवर्त्तन दार्शनिक भित्ति (Underlying philosophical basis)के परिवर्त्तनके साथ संघटित हुआ है। बेकनके पहले दार्शनिकगण अन्तर्जगत्को ही दर्शनको भित्ति और लीलाभूमि मान गये हैं। बेकनके समयमें प्राकृतिक विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ जनसाधारणकी दृष्टि बहिर्जगत्की ओर आकृष्ट हुई थी। सुतरां बहिर्जगत् ही दर्शनकी भित्तिभूमि हो कर खड़ा था। बहिर्जगत् ही अन्तर्जगत्के नियामकके जैसा स्वीकृत हुआ था (Experience became the criterion of truth)। बेकनने स्वयं पथप्रदर्शन भिन्न लाजिकका सामान्य ही उन्नतिसाधन किया है। निगमनमूलक न्यायशास्त्रमें जैसा कुतर्कका उल्लेख है और तत्सम्बन्ध-निराशका प्रक-रण प्रकटित हुआ है, बेकन वैसा ही कैसे, प्रणाली-का अवलम्बन करनेसे व्याप्ति (Induction) भ्रम-प्रमाद-के हाथसे मुक्तिलाभ कर सके, उन उपायोंका निर्देश कर गये हैं। वे ही उपाय व्याप्तिसूत्र (Canons of In-duction) कहलाते हैं। इसके सिवा बेकन द्वारा तर्कशास्त्रकी और कोई उन्नति साधित नहीं हुई।

बेकन नवप्रणालीका पन्य निर्देश कर गये हैं और उसका अनुसरण करके तत्परवर्त्ती जनष्टुयार्ट मिल एवं वेन प्रभृति पण्डितोंने वर्त्तमान व्याप्तिमूलक तर्कशास्त्र (Inductive Logic) का प्रणयन किया है और निगमनके अंशको भी (Deductive Logic) व्याप्तिकी भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित किया है।

इङ्गलैण्डके सिवा यूरोपके अन्यान्य देशोंमें भी प्राचीन ग्रीकदर्शन और मध्ययुगके स्कलाष्टिक दर्शनके विरुद्ध आन्दोलन चला था। फ्रान्सदेशीय दार्शनिक डेकार्ट (Descartes) प्राचीन दर्शन मतोंके प्रति वीतश्रद्ध हो कर निदार्शनिकमतका प्रचार किया। तद्रचित डिसकोर्स-डि-ल-मेथड (Discourse-de-la-Methode) वा चिन्ताप्रणाली नामक पुस्तकमें वे अपने दार्शनिक मतोंको लिपिबद्ध कर गये हैं। डेकार्ट अन्यान्य मतोंका भ्रान्ति-विजृम्भित स्थिर कर स्वयं सत्यानुसन्धानके प्रणालीनिर्णयमें प्रवृत्त हुए। अविसंवादित क्या सत्य है? यह प्रश्न पहले पहल ही उनके मनमें उदित हुआ। बहु चिन्ताके बाद वे इस सिद्धान्तमें उपनीत हुए कि स्वानुभव ही (Cogito, ergosum) ध्रुव सत्य है, मैं ही सोचता हूं, अतएव मैं हूं, इस ज्ञानमें संशय करनेका उपाय नहीं। कारण संशय करना भी यह अनुभवसापेक्ष है। इसी स्वानुभवकी सहायतासे अन्यान्य विषयोंका सत्यासत्य निर्णय करना होता है। इसके अनन्तर अन्यान्य विषयमें सत्यासत्यका किस प्रकार निर्द्धारण करना होगा, डेकार्टने उस विषयमें मेथड (Methods) ग्रन्थमें जो पन्थ निर्देश किया है, वह संक्षेपतः यह है—आत्मगत अनुभव और स्वतः सिद्धज्ञान ही सत्यका द्योतक है (Subjective clearness and-distinctness)। जब कोई विषय स्पष्ट और निःसंशयरूप (Subjective Certainty or intuition)-में रहता है, तब वह कात्यनिक विषय है जो डेकार्टके मतसे सत्य अर्थात् बाह्यजगत्में उसका अस्तित्व है।

उपरि-उक्त विवरणसे मालूम होगा कि डेकार्टके दार्शनिकमतमें उनके लाजिकके ऊपर किस परिमाणमें प्रभाव विस्तार किया था। स्पष्टज्ञान (Distinctness and clearness)को सत्यका द्योतक मान कर उन्होंने प्रमादकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें कहा है कि अस्पष्टज्ञान ही (Indistinctness of thought) प्रमादका कारण है। दूसरी जगह लाजिकके सम्बन्धमें उन्होंने कहा है—"बहुसंख्यक नियमोंको प्रस्तावना न कर निम्नलिखित चार नियमके अवलम्बन करनेसे ही लाजिकका उद्देश्य साधित होगा। वे चार नियम ये हैं—१म, जब तक स्पष्टतः प्रतीयमान न हो, तब तक किसी विषयको सत्य मत मानो। सत्य माननेके समय इस बात पर लक्ष्य रखना होगा कि किसी संदेहका विषय सिद्धान्तके अन्तर्निहित न रहे। दूसरा, किसी दुरूह विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होते समय उस विषयको भिन्न भिन्न-रूपमें विभाग करना होगा और प्रत्येक विभागकी विशेष रूपसे परीक्षा करनी होगी। ऐसा करनेसे मीमांस्य विषयका सिद्धान्त सुगम हो जायगा। तीसरा, किसी विषयके सिद्धान्तमें उपनीत होते समय चिन्ताप्रणालीका इस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, कि जो स्वतःसिद्ध और प्रत्यक्ष है उसीसे आरम्भ कर धीरे धीरे दुरूह विषयमें प्रवेशलाभ करना होगा। चौथा—अन्तमें मीमांस्य विषयका आन्दोलन और समालोचना करके यह देख लेना आवश्यक है कि कोई प्रयोजनीय विषय छोड़ तो नहीं दिया गया है। डेकार्टके मतानुसार उपरिउक्त चार नियमोंके प्रति लक्ष्य रखनेसे ही लाजिकका उद्देश्य सिद्ध होगा। डेकार्ट-प्रवर्त्तित कार्टेसियन स्कूलसे ला-लाजिक (La Logique) नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ। डेकार्टके परवर्त्ती मतप्राय आदि दार्शनिकगण डेकार्टके न्याय-मतको पोषकता कर गए हैं।

स्पिनोजा। डेकार्टके परवर्त्ती दार्शनिकोंमें स्पिनोजाका (Spinoza) नाम विशेष उल्लेखयोग्य है। स्पिनोजाका दार्शनिक मत बहुत कुछ इस देशके अद्वैतवादसे मिलता जुलता है। प्रत्यक्षभावमें लाजिकका कोई उन्नतिविधान वा प्रवर्त्तित प्रथाका परिवर्त्तन नहीं करनेसे भी स्पिनोजाके दार्शनिक मतने उस समयके प्रचलित लाजिकके ऊपर जो प्रभूत परिमाणमें प्रभावविस्तार किया, इसमें सन्देह नहीं। यूरोपीय लाजिक प्रमाणका नियामकशास्त्रविशेष है और सत्य ही प्रामाण्य-विषय है। सुतरां सत्य क्या है, इस विषयमें

मतभेद उपस्थित होनेसे ही लाजिकका प्रकारभेद हुआ करता है। स्पिनोजाके मतसे मानसिक प्रतिकृति वा आइडिया (Idea)के साथ वस्तु (Object)का ऐक्य ही सत्यपदवाच्य है। विशुद्धज्ञान (Intuition) द्वारा ही प्रत्यक्ष सत्योपलब्धि हुआ करती है। स्पिनोजाके मतसे ज्ञान तीन प्रकारका है—आनुमानिक वा प्रत्यक्षज्ञान (Imagiaatio), परोक्षज्ञान (Ratio) अर्थात् जो ज्ञान प्रमाणके ऊपर निर्भर करता है और विशुद्धज्ञान (Intellectus)। इनमेंसे परोक्षज्ञान ही (Ratio or immediate knowledge) लाजिकका विवेच्य विषय है; उपरि-उक्त साधारण दर्शनकी कुछ बातोंको छोड़ कर स्पिनोजा लाजिकके सम्बन्धमें और कुछ भी लिपिबद्ध नहीं कर गए हैं।

लाक। यूरोप-महादेशकी कथा छोड़ देनेसे स्पिनोजाके आविर्भाव कालमें इङ्गलैण्डमें भी दार्शनिक युगान्तर उपस्थित हुआ। इङ्गलैण्ड देशीय दार्शनिक जान लाक (John Locke)ने बेकन-प्रवर्त्तित दार्शनिक प्रणालीको मनस्तत्त्व घटित विषयमें (Psychological problems) प्रयोग किया है। पहले दार्शनिकोंको प्रवर्त्तित प्रणालीका परित्याग कर दार्शनिक-प्रवर बेकनने अभिज्ञतासापेक्ष दार्शनिक अनुसन्धान-प्रथाका उद्भावन किया (The method of philosophical inquiry based upon observation and experiments upon experience) तत्परवर्त्ती दार्शनिक लाक उन प्रथाओंका कार्यतः दार्शनिक अनुसन्धानमें प्रयोग कर गये हैं। बेकनकी कथा छोड़ देनेसे लाक ही वर्त्तमान समयके इङ्गलैण्डदेशीय एम्पिरिकल-दर्शनके सृष्टिकर्त्ता (Empirical school) माने जाते हैं। तत्प्रदर्शित पन्थानुसरण करके ही ह्यूम (Hume), मिल (Mill), बेन (Bain) आदिके आधुनिक दार्शनिकमतने स्पष्ट ही बार प्रतिष्ठा लाभ की है। लाकके परवर्त्ती अन्यान्य दार्शनिकमत परोक्षभावसे लाकके दर्शनसे निकले हैं। लाकके प्रवर्त्तित मतका खण्डन करनेके लिये दार्शनिक रीड़ (Reid) प्रवर्त्तित स्काटिश (Scottish school)की सृष्टि हुई है। जर्मन-देशीय दार्शनिकप्रवर काण्टके क्रिटिकल दर्शन (Critical Philosophy)का उद्भव भी इसी कारण हुआ है। लाक-प्रवर्तित पन्थानुगामी डेभिड ह्यूमकी नास्तिकताका खण्डन करनेके लिये ही दोनों दर्शनोंका अभ्युत्थान हुआ है। प्रत्यक्षज्ञान ही सभी ज्ञानोंका मूल है। ऐसा कोई ज्ञान रह नहीं सकता जो प्रत्यक्षमूलक न हो (Nihil est Intellectu, quod non fuerit in sensu) यही लाक प्रवर्तित दर्शनका मूलसूत्र है। लाकका यही दार्शनिक मत वर्तमान एम्पिरिकल लाजिक (Empirical Logic)का मूल है।

लिबनिज। जर्मन दार्शनिक लिबनीज (Leibnitz) अनेक विषयोंमें लाकके विरुद्धवादी थे। उन्होंने ही पहले ज्ञानतत्त्व (Theory of knowledge) के विषयमें लाकके विरुद्ध मानसिक सांसिद्धिकज्ञान अर्थात् जो वस्तु वा विषय आपसे आप मनसे उत्पन्न हुआ है, बाह्य-विषयसे गृहीत नहीं हुआ, (Doctrine of innate ideas) इस मतका पक्ष समर्थन किया है। लिबनीज अपना साधारण दार्शनिक मत "मानडोलाजि" नामक ग्रन्थमें सन्निविष्ट कर गये हैं। उनका साधारण दार्शनिकमत लिपिबद्ध करनेकी गुंजाइश न रहनेसे नीचे उसका केवल सार दिया जाता है। दार्शनिकमतके विषयमें लिबनिजने सम्पूर्णरूपसे स्पिनोजाके विपरीत पन्थ और मतका अवलम्बन किया है। स्पिनोजा जिस प्रकार समस्त जागतिक व्यापारको एक (One)का विकाश और जगत्‌में जो कुछ नानात्वज्ञापकके जैसा मालूम पड़ता है उसे, समुद्रतरङ्ग जिस तरह समुद्रकी है, उसी तरह एक ही महापदार्थका अंश बतला गये हैं, लिबनिजने उसी प्रकार दिखला दिया है कि बहु (Many)-की समष्टिसे ही एककी सृष्टि है। जगत्‌में जो कुछ एकत्वबोधक मालूम पड़ता है, वह बहुकी समष्टिसे उत्पन्न हुआ है। इन नानात्वज्ञापकपदार्थोंका लिबनिजने 'मनाड' (Monad) नाम रखा है। साधारणतः परमाणु वा आटम (Atom) कहनेसे जो समझा जाता है, लिबनीज कथित 'मनाड' ठीक उस प्रकार नहीं है। मनाड इन्द्रियका अगोचर है, सूक्ष्मपदार्थ विशेष (Metaphysical points) मनाड नाना अवस्थापन्न है, कितने अचेतन हैं। लिबनिजने इन सबकी

निद्रावशमें सुप्तचैतन्य (Sleeping monad) बतलाया है। कितने अर्द्धचेतन हैं, जैसे वृक्षादि; कितने सचेतन हैं जैसे पशुपक्ष्यादि और कितने सम्पूर्ण चेतन हैं, जैसे आत्मा (Soul) प्रभृति। इन सब मनाड के समावेशसे ही जगत्‌की उत्पत्ति हुई है। एक एक मनाड एक दर्पणकी तरह है उसमें समस्त जगत् प्रतिबिम्बित हुआ है और यह विकाशावस्था जिस प्रकार सम्पूर्ण है, वह मनाड भी उसी प्रकार उन्नत है। पहले जो निर्दिष्ट नियमवशसे मनाडका ऐसा अन्यान्यसंयोग साधित हुआ है, उसे लिवनिज पूर्वप्रतिष्ठित सामञ्जस्य (Pre-established Harmony) कहते हैं।

पूर्वोक्त संक्षिप्त विवरणमें ही लिवनिजके दार्शनिक मतका किञ्चित् आभास दिया गया है। लिवनिजने डेकार्टकी तरह कई एक सूत्रोंका उल्लेख कर लाजिककी आवश्यकता अस्वीकार नहीं की। लिवनिजके मतसे अस्पष्ट और अविशुद्ध ज्ञानसे ही भ्रमकी उत्पत्ति हुई है और यह अविशुद्ध ज्ञान जब तक विशुद्धज्ञानमें परिणत नहीं होगा तब तक भ्रमका निराकरण नहीं होगा। न्यायानुगत सभी पन्थों (Logical rules)का अनुसरण नहीं करनेसे भ्रमनिवारण असम्भव है। अतः जब तक भ्रमप्रमाद वर्त्तमान रहेगा, तब तक लाजिककी आवश्यकता स्वीकार करनी ही पड़ेगी। लिवनिजने प्रमाणके सम्बन्धमें दो नियमोंकी आवश्यकता स्वीकार की है। उन दो नियमोंमेंसे एकका नाम है अन्यान्यविरोध (The Principle of contradiction) और दूसरेका पर्याप्तयुक्ति (The Principle of suficient reason)। इसके अलावा भी जिससे लाजिकमें सम्भाव्ययुक्ति (Doctrine of probablity) नामक एक और अंश योजित हो इसके लिये लिवनिजका विशेष अभिप्रेत था। वे स्वयं उपर्युक्त अंशका सूत्रपात कर न सके थे।

लिवनिजके बाद तन्मतानुवर्त्ती दार्शनिक क्रिश्चियन उल्फ (Christian Wolf)-ने पाश्चात्य तर्कशास्त्रकी विशेष पर्यालोचना की। उन्होंने फिलजफिया राशानलिस (Philosophia Rationalis) नामक लाजिकके सम्बन्धमें अनेक गवेषणा की है। उल्फ अङ्कशास्त्रके पन्थाका अवलम्बन कर धारावाहिकरूपमें लाजिकके आलोच्य विषय लिपिबद्ध कर गए हैं। उल्फके मतसे लाजिकके तत्त्वदर्शन (Ontology) और मनस्तत्त्व (Psychology) इन दो शास्त्रोंके ऊपर प्रतिष्ठित होने पर भी, वह उनका पहले आलोच्य है। कारण, यद्यपि लाजिकके स्वीकृत विषय (Data-Specially the axioms) उक्त दोनों शास्त्रोंके ऊपर निर्भर हैं, तो भी उक्त दोनों शास्त्र लाजिककी प्रणालीका अवलम्बन करके ही शास्त्ररूपमें परिणत हुए हैं। उल्फने अनुमानखण्ड (Theoretical) और सिद्धान्तखण्ड (Practical) इन दो अंशोंमें लाजिकको विभक्त किया है। इनमेंसे संज्ञाप्रकरण (Notion) संज्ञाद्वयका अन्योन्यसम्बन्ध निराकरण अवमेयट (Judgment) और अनुमान (Inference) प्रथमांशके अन्तर्भुक्त है तथा शेषोक्त अंशमें पुस्तकप्रणयन, तत्त्वनिर्णयप्रणाली इत्यादि विषयोंमें लाजिककी आवश्यकता आलोचित हुई है। उल्फने कार्टेसियन स्कूलके साथ लिवनिजके मतका समन्वयसाधन किया है। लिवनिजके मतमें अन्योन्यका अविरोध ही सत्यकी सूचना करता है (Absence of contradiction is the criterion of truth)। उल्फ कार्टेसियनोंके मतानुवर्त्ती हो कर कहते हैं, कि केवल विरोधभाव होनेसे ही सत्यकी प्रतिष्ठा नहीं होती। सत्यका मानसप्रत्यक्षका सम्भाव्य होना आवश्यक है (The criterion of conceivability)।

लिवनिजके सहयोगी दार्शनिकोंमेंसे क्रिश्चन टमेसियस (Christian Thomesius)-का नाम उल्लेखयोग्य है। टमेसियसने अरिष्टल और कार्टेसियन इन दोनोंका मध्यवर्त्ती मत अवलम्बन किया है। लिवनिजके समकालवर्त्ती दार्शनिक लामबर्ट (Lambert)ने न्यारगेनन वा नूतन तन्त्र (Neves Organon) नामक एक पुस्तककी रचना की है।

इसके बाद ही दार्शनिकप्रवर इमानुयेल काण्ट (Emanuel Kant)का आविर्भाव हुआ। काण्टको यदि वर्त्तमान दार्शनिक जगत्‌का सूर्य कहें, तो कोई अत्युक्ति नहीं। काण्टके समय दार्शनिक जगत्‌में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। जर्मन देशमें कार्टेसियन दर्शन क्रमशः रूपान्तरित हो कर लिवनिज-प्रवर्त्तित

मनाडोलाजिमें परिणत हुआ था। इङ्गलैण्डमें लाक-प्रवर्त्तित इम्पिरिकल दर्शन (Empirical philosophy) दार्शनिक ह्यूम प्रवर्त्तित अज्ञेयवादमें (Sceptism) परिणत हुआ था। काण्टके समयमें इन दोनों दर्शनोंका विरोध प्रभूत परिमाणमें स्पष्टीकृत हो उठा था। काण्टने स्वयं कहा है, ह्यूमके अज्ञेयवादने ही उनके दार्शनिक मतका परिवर्त्तन किया है (It was Hume's sceptism that roused me from my dogmatic slumder)। काण्टने कार्टेसियन दर्शनका इनेटथिओरका (Innate theory of ideas) सम्पूर्णरूपसे समर्थन नहीं किया। उन्होंने मध्यपथका अवलम्बन किया है। काण्टने अपने इस मतको इनेटथिओरी (Innate theory) न कह कर 'इनेट'के बदलेमें 'आप्रियराई' शब्दका व्यवहार किया है। दोनों शब्दके सम्बन्धमें व्यवहारगत क्या पार्थक्य है? काण्टके दार्शनिक मतका यथासंक्षेपमें विवरण नीचे दिया जाता है।

काण्ट वाह्यजगत्का अस्तित्व अस्वीकार नहीं करते। पर हां, साधारणतः वाह्यजगत्के सम्बन्धमें हम लोगोंकी जैसी धारणा है, काण्टके मतमें वाह्यजगत् वैसा नहीं है। वाह्यजगत् कहनेसे जिन सब जागतिक वस्तुकी प्रतिकृति हम लोगोंके मानसपट पर पतित होती है, काण्ट कहते हैं, कि वाह्यजगत् ठीक उस प्रकार नहीं है। दर्पण पर पतित छायाकी तरह वाह्यजगत् मानसप्रतिकृतिके अनुरूप नहीं है। साधारणतः वाह्यजगत् कहनेसे हम लोग जो समझते हैं, वह हम लोगोंका मनःप्रसूत है। वाह्यजगत्का अस्तित्व है, इसके सिवा वाह्यजगत्का स्वरूप जाननेकी हम लोगोंमें क्षमता नहीं है। काण्टके मतसे सूर्यालोक जब कांचको कलम (Prism)के भीतर हो कर जाता है, तब वह जिस तरह नील, पीत, लोहितादि सात भिन्न भिन्न वर्णोंमें विभक्त होता है। वाह्यजगत् भी उसी तरह जब हम लोगोंके मनोमध्य प्रवेश करता है, तब मानसिक धर्मानुसारसे स्वतन्त्र अवस्था प्राप्त होती है और इस भिन्नावस्थापन्न मानसप्रतिकृतिको ही हम लोग साधारणतः वाह्यजगत् कहते हैं। कांच-कलमके भीतर हो कर देखनेसे जिस प्रकार प्रकृत सूर्यालोक कैसा है, नहीं जान सकते, उसी प्रकार हम लोगोंके मानसिक-धर्मवशसे प्रकृत वाह्यजगत् कैसा है, वह हम लोग नहीं जान सकते हैं। वाह्यवस्तुका यह प्रकृत स्वरूप जिसे हम लोग नहीं जानते, काण्टने उसे वस्तुसत्ता (Thing-in-itself) कहा है। अभी प्रश्न यह उठ सकता है कि यदि वाह्यवस्तु अज्ञात और अज्ञेय पदार्थ हो हुई, तो देश (Space) और काल (Time)का कैसा स्वरूप है? काण्ट कहते हैं, कि देश और कालका वाह्य अस्तित्व नहीं है, यह मनका धर्म वा गुणविशेष है। यदि कोई मनुष्य नील और लोहित कांचविशिष्ट चश्मेका व्यवहार करे, तो उसकी आंखोंमें जिस प्रकार सभी वस्तु इन्हीं दो रंगोंमें रंगी हुई दीख पड़ती हैं, उसी प्रकार वाह्यवस्तु भी हम लोगोंके मानसिक-जगत्में प्रवेशलाभ करते समय देश और काल ये दो मानसिक धर्माक्रान्त हो देश और कालसे संश्लिष्ट हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। देश और काल इन दो मानस-धर्मोंका दार्शनिक काण्टने "अनुभूतिका आकार" नाम रखा है। इसके सिवा और भी कितने ज्ञान वाह्य-वस्तुसे गृहीत हुए हैं। जैसे, एकत्व (Unity), बहुत्व (Plurality), समवाय (Tolality), कार्यकारण-सम्बन्ध (Causality) इत्यादि। काण्टका कहना है कि ये सब ज्ञान वाह्यवस्तुसे गृहीत नहीं है, वे सब मानसिकधर्म विशेष हैं। काण्ट इन सबको बोधका आकार विभाग (Categories of the understanding) बतला गये हैं।

वाह्यजगत्के प्रकृत स्वरूपत्व सम्बन्धमें काण्टने जिस प्रकार अज्ञेयवादका अवलम्बन किया है, ईश्वर और आत्माके सम्बन्धमें भी उनका मत उसी प्रकार है। ये दो तत्त्व ज्ञानगम्य नहीं हैं, उसे वे साफ साफ निर्देश कर गये हैं। पर हां, ईश्वर और आत्माके अस्तित्वको काण्ट अस्वीकार नहीं करते। उन्होंने तत्प्रणीत (Critique of Practical Reason) नामक ग्रन्थमें इन दोनोंका अस्तित्व स्वीकार और प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। किस प्रकार उक्त सिद्धान्तमें वे उपनीत हुए हैं, वर्त्तमान प्रस्तावमें वह आलोच्य नहीं है। अतः हम लाजिकके सम्बन्धमें उनके मतका उल्लेख करेंगे।

पहले ही कहा जा चुका है कि काण्टने बोधशक्तिको बोधशक्तिका आकार (Forms of the understanding) और बोधशक्तिका विषय (Matter of the understanding) इन दो भागोंमें विभक्त किया है। वे कहते हैं कि लाजिक बोधशक्तिका आकार वा प्रक्रिया (Forms of thought) ले कर संश्लिष्ट रहेगा, बोधशक्तिका विषय (Matter of thought) लाजिकका प्रतिपाद्य विषय नहीं है। काण्टके आकार (Form) और विषय (Matter) इस दार्शनिक श्रेणीविभागसे ही फारमल लाजिक (Formal Logic)की सृष्टि हुई है। काण्ट ही फारमल लाजिकका सूत्रपात कर गये हैं। वर्त्तमानकालमें हैमिलटन और मानसेल (Hamilton and Mansel)से वही परिवर्त्तित हो कर वर्त्तमान फारमल लाजिकमें परिणत हुआ है।

जर्मन देशमें जाकवि (Jacobi), किसेसवेटर (Kieswutter), हफवर (Hoffbauer), क्रुग (Krug) आदि दार्शनिकगण काण्टके मतका अनुसरण कर गये हैं।

काण्टके समकालीन तदीय प्रतिपक्षमतावलम्बी दार्शनिकोंमेंसे फिकटे (Fichte) दार्शनिकजगत्में सुविख्यात हैं। हम यहां पर उनके दार्शनिक मतका उल्लेख नहीं करेंगे। इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि फिकटे समस्त जगत् और जागतिक व्यापारको आत्माका विकाश (Manifestation of the Ego) बतला गये हैं। फिकटेके मतमें ज्ञानका आकार और विषय (Form and matter of thought) यह काण्ट निर्दिष्ट श्रेणीविभाग सङ्गत नहीं है। अतः उनके मतसे फारमललाजिक नामका एक पृथक् लाजिक नहीं हो सकता।

तत्परवर्त्ती सुप्रसिद्ध दार्शनिक शेलिं (Schelling)-ने फिकटेका मतानुसरण किया है। उनके मतका विशेषरूपसे उल्लेख करनेमें उनके दर्शनका उल्लेख करना होता है। किन्तु वह वर्त्तमान प्रबन्धके उपयोगी नहीं है। शेलिंके मतसे सभी एकमात्र निर्गुण (Absolute)के विवर्त्त हैं। गुण निर्गुणसे निकला है, किन्तु निर्गुण गुणसे नहीं निकला है, यह स्वयं निर्गुण हो कर भी गुणका आधार है। यह निर्गुण (Absolute) शेलिंके मतसे ज्ञानलभ्य (known dy intelletual intuition) है।

शेलिंके प्रवर्त्तित निर्गुण (Absolute)का स्वरूप कैसा है, इस विषयकी मीमांसा करना वर्त्तमान समयमें बड़ा ही दुरूह है। क्योंकि उनका मत इतनी बार प्रवर्त्तित हुआ है, कि उसके प्रकृत मतका निर्धारण करना प्रायः असाध्यसाधन हो गया है। लेकिन वर्त्तमान दार्शनिकगण पहले उन्होंके मतको युक्तियुक्त और सारवान् मानते हैं।

जब सभी वस्तु निर्गुणको विवर्त्त हैं, तब विषय (Matter) और आकार (Form) इस प्रकार पार्थक्य नहीं रह सकता। आकृति और तन्निहित पदार्थ अन्योन्यसम्बन्धविशिष्ट हैं; एकके अभावमें अन्यका अस्तित्व असम्भव है; पदार्थके रहनेसे ही आकृति रहेगी और आकृतिके रहनेसे ही पदार्थका स्थायित्व अवश्यम्भावी है। इस प्रकार अन्योन्यसम्बन्धविशिष्ट दोनों वस्तुओंका परस्पर स्वातन्त्र्य संघटन करना असम्भव है। सुतरां शेलिंके मतानुसार केवल फारमल लाजिक (Formal Logic) नामका कोई पृथक् शास्त्र नहीं रह सकता। लाजिकके यथार्थमें ज्ञान सहायक शास्त्र होनेसे आकारगत वा फारमल (Formal) और विषयगत वा मेटीरियल (Material) दोनोंका ही होना आवश्यक है।

फिकटे और शेलिंके मतका अनुसरण कर सुप्रसिद्ध दार्शनिक हेगल (Hegel)-ने भी कहा है, कि काण्टप्रवर्त्तित ज्ञानका आकार और ज्ञानका विषय (The form and content of thought) इस प्रकार एक श्रेणीविभाग नहीं हो सकता। हेगलका कहना है कि कि आकार और विषय (Form and Content), भाव और वस्तु (Thought and Being) दोनोंका ऐक्य ही लाजिककी मूलभित्ति है। हेगल अपने दार्शनिक मतको 'लाजिक' नामसे अभिहित कर गये हैं। हेगलके दार्शनिक मतको साधारणतः दार्शनिक वा मेटाफिजिकाल लाजिक (Metaphysical Logic) कहते हैं। Metaphysical Logic कहनेसे साधारण लाजिककी तरह तर्क वा युक्तिका नियामकशास्त्रविशेष समझा

नहीं जाता। हेगलका दर्शन और लाजिक ये दोनों एक ही पदार्थ हैं। हेगलका कहना है कि यह विश्वचराचर और तत्संसृष्ट समस्त व्यापार ही क्रमशः विकाश लाभ करके एक अवस्थासे दूसरी अवस्थामें लाया जाता है। यह विकाशप्रणाली धारावाहिक है, इसमें कोई व्यवच्छेद नहीं है। जिस प्रणालीके अनुसार यह जागतिक क्रमविकाश साधित होता है, उस प्रणालीको युक्तिमूलक प्रणाली वा 'डाइलेकटिकल मेथड' (Dialectical method) कहते हैं। केवल मानसिक जगत्में इस डाइलेकटिक प्रणालीका प्रभाव निबद्ध नहीं है, केवल अन्तर्जगत्‌का विकाश ही इस प्रणालीके अनुसार साधित नहीं होता, जड़जगत्‌का विकाश भी इसी नियमका सापेक्ष है। नियम संक्षेपतः इन दो विरोधी दोनों वस्तुओं वा भावोंके समन्वयमें तृतीय वस्तु वा भावका विकाश है। इसके एकका नाम पूर्वपक्ष वा थिसिस (Thesis) और इसके विरोधिभाव वा वस्तुका नाम उत्तरपक्ष वा आण्टिथिसिस (Antithesis) है तथा इस परस्परविरोधी वस्तु वा दोनों भावोंके संयोगसे मिलित तृतीय वस्तुका नाम समन्वय वा सिनथिसिस (Synthesis) है। जगत्‌की प्रत्येक दृश्यमान् वस्तु इसी नियमके अधीन है। अस्तित्व (Being) और अनस्तित्व (Not-Being) इन दो विरोधीभावोंके सम्मिलनसे विकाशकी उत्पत्ति हुई है। जागतिक सभी व्यापार ही यही विकाशसम्पन्न है। (A process of becoming) । जिस अन्तर्निहित ज्ञानशक्तिके प्रभावसे (Indwelling Reason) यह क्रमोन्नति साधित होती है, अर्थात् इस क्रमोन्नतिमें जिस शक्तिका विकाश है, वही शक्ति हेगलके मतसे अन्तर्मुखी (Immanent) है। इस अन्तर्निहित शक्तिके प्रभावसे जगत्‌की प्रक्रिया किस बाह्यशक्तिकी सहायताके बिना अपने नियमके अनुसार आपसे आप प्रधावित हुई है। किस प्रकार सम्पूर्णरूप निर्गुण अवस्था (Simple being) से इस गुणमय जगत्‌का विकाश हुआ है, हेगल अपने दर्शनमें उस सम्बन्धमें विशेषरूपसे प्रतिपन्न कर गये हैं। विस्तार हो जानेके भयसे यथासंक्षेप विवरण दिया जाता है।

हेगलका दार्शनिक मत साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त हो सकता है। प्रथमांशमें बाह्य और अन्तर्जगत्‌के भिन्न भिन्न स्तरमें भिन्न भिन्न भावका विकाश हुआ है, उसकी आलोचना है (The development of those pure universal notions or thought-determinations which underlie and form the foundation of all natural and spiritual life, the logical evolution of the absolute) इस अंशको हेगल 'लाजिक' वा भावप्रकाशप्रणाली कह गये हैं। द्वितीय अंशमें बहिर्जगत्‌की विकाशप्रणालीका वर्णना है, इस अंशको हेगलने प्रकृतितत्त्व (the philosophy of nature) नामसे उल्लेख किया है। तृतीय अंशमें अध्यात्मजगत् किस प्रकार विकाश लाभ करके धर्म, राजनीति, शिल्पनीति आदिमें परिणत हुआ है, उसका उल्लेख है। इस अंशका अध्यात्मतत्त्व (The philosophy of the spirit) नाम रखा गया है। यहां पर यह कहना जरूरी है कि हेगलको यह क्रमविकाशप्रणालीको एक सीमा वा लक्ष्यस्थल है; निर्गुणभावका विकाश ही लक्ष्यस्थल है। किस शुद्धभाव (Pure Idea) जड़जगत् और अन्तर्जगत् (Nature and spirit) इन दो विभागोंमें विभक्त हो कर पुनर्मिलित हो निर्गुणभाव (The absolute Idea) में परिणत होता है, समस्त दर्शनमें हेगलने इसे प्रतिपन्न करनेकी चेष्टा की है। भाव और वस्तुका ऐक्य ही (The unity of thought and being) इस निर्गुणभाव (Absolute Idea) का स्वरूप है। यह अनेकांशमें हम लोगोंके समाधिज्ञान, जीवब्रह्मैक्यवज्ञान वा ज्ञेय और ज्ञाताके अभेदज्ञानरूप चरमावस्थाके साथ मिलता जुलता है।

हेगलके दर्शनके अन्यान्य अंशोंका उल्लेख न कर उपस्थित प्रस्तावोपयोगी उनके दर्शनके प्रथम भागका अर्थात् जिस अंशका उन्होंने लाजिक नाम रखा है, उसी अंशका उल्लेख किया जायगा। पहले ही कहा जा चुका है कि हेगलके तदीय लाजिकमें पदार्थविभागप्रणाली (The development of notion or categories) का क्रमनिर्देश किया है। आरिष्टल, उल्फ और काण्टसे हेगलने यह पदार्थविभाग ग्रहण किया है;

किन्तु अरिष्टल प्रभृति दार्शनिकोंने जिस प्रकार पदार्थ विभागको (Categories) संक्षेपमें लिया है और किस प्रकार पदार्थ विभागका विकाश हुआ है उसे नहीं दिखलाया है; हेगलने ऐसी प्रथाका अवलम्बन नहीं किया है। जिस प्रकार डाइलेकटिक प्रथाक्रमसे (Dialectical method) भाव वा पदार्थने क्रमविकाशलाभ किया है, हेगलने उसका यथायथ विवरण किया है।

हेगलने अपने लाजिकको साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त किया है। प्रथमांशका नाम है सृष्टितत्त्व (The Doctrine of Being)। Being और Nothing इन दो विरोधात्मक भावोंके संयोगसे Becoming वा विकाश की उत्पत्ति होती है। पीछे उन्होंने अवस्था (State, thereness), व्यक्ति (Individuality), गुण (Quality), संख्या (Quantity) और परिमाण (Measure) आदि भावोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें विस्तृत आलोचना की है।

द्वितीयांशका नाम है सत्त्ववाद (The Doctrine of Essence)। सभी पदार्थोंकी सत्ता क्या (Essence) है; किस प्रकार Essence का विकाशलाभ होता है। (Essence and its manifestation), सत्ता (Essence) और विकाश (appearance)-में क्या सम्बन्ध है; इसके सिवा समत्व (Identity), बहुत्व (Diversity), विरोधत्व (Contrariety), असङ्गति (Contradiction) आदि तथा स्वरूपत्व (Actuality) इत्यादि भावोंका विकाश वर्णित है।

तृतीयांशका नाम भाववाद (The Doctrine of notion) है। इस अंशमें प्रथमतः भाव वा Notionका स्वरूप क्या है, इसीका उल्लेख है। पीछे हेगलने Notionको तीन भागोंमें विभक्त किया है; (१) मानसिक धारणा वा भाव (Subjective notion), (२) बाह्यभाव अर्थात् यह मानसिकभाव जिस प्रकार बाह्यजगत्‌में प्रतिफलित हुआ है (Sbjective notion) और (३) आइडिया (Idea); आइडिया उपरि-उक्त दोनों भावों अर्थात् Subjective और Objective भावोंका समन्वय (Synthesis) है।

बादमें हेगलने (Subjective notion)-के अन्तर्निहित भावोंको लिपिबद्ध किया है। हेगलका कहना है कि Subjective notion-से क्रमविकाशसे साधारणत्व वा सार्वभौमत्व (Universality), विशेषत्व वा विशेषभाव (Particularity) और एकत्व (Singularity) इन भावोंकी उत्पत्ति हुई है (They are the moments of the subjective notion)। पीछे वाक्य (Judgment) और युक्ति (Syllogism)का स्वरूप कैसा है, उस विषयमें आलोचना की है। एकत्वमें मध्य सार्वभौमत्व किस प्रकार अन्तर्निहित है, इस तत्त्वका निदर्शन ही (Judgment)का स्वरूप है (The Judgment enunciates the identity of the singular with the universal the self-diremption of notion)। किस प्रकार सार्वभौम भाव (Universal notion) विशेष भावकी सहायतासे (Through the particular) एकत्वमूलक भावके साथ (Singular notion) समन्वित होता है, इन सबका प्रदर्शन ही (Syllogism)-का उद्देश्य है। एक, बहु और विशेष भावोंका समन्वयसाधन (Commidiation of universal and singular through particular) युक्तिप्रणालीका मूल है।

तदनन्तर Objective notionके सम्बन्धमें आलोचना की गई है। Objective notion कहनेसे कोई मानसिक भाव समझा नहीं जाता है। Objective notion कहनेसे बाह्यवस्तुका बोध होता है। केवल बाह्यवस्तु कहनेसे Objective notion का बोध नहीं होता। सम्पूर्ण और भावज्ञापक अर्थात् बाह्यवस्तुको जो देखनेसे मनमें एक सम्पूर्ण भावका उदय होता है, उसीको हेगलने Objective notion कहा है। (Objective notion is not a outward being as such, but an outward being complete within itself and intelligently conditioned)

वस्तुगत भावकी उन्नतिका क्रम (Development of the objective notion) निम्नलिखितरूपमें लिपिबद्ध किया गया है। हेगलके मतसे बाह्यशक्ति वा मेकेनिज्म (Mechanism) इस क्रमोन्नतिका प्रथम स्तर है। दो स्वधर्मविशिष्ट वस्तु जब किसी तीसरी वस्तु वा शक्ति द्वारा एकत्र होती हैं और अभिनव एक नूतन वस्तु-

का बोध होता है, तब पूर्वोक्त दोनों वस्तुओंके इस प्रकार संयोगको बाह्य संयोग वा Mechanism कहते हैं। हेगलका कहना है, कि यह बाह्य-संयोगप्रणाली वा Mechanism सृष्टिप्रणालीका आदिम वा सबोपेक्षा निम्नतर है।

हेगल कहते हैं कि रासायनिक आसक्ति (Chemism or Chemical affinity) इस क्रमोन्नतिप्रणाली-का द्वितीय सोपान है। जिस शक्ति द्वारा दो स्वतन्त्र वस्तु एक दूसरेके प्रति आकृष्ट हो कर एक स्वतन्त्र नूतन वस्तुकी सृष्टि करती है, वही शक्ति इस जागतिक विकाशप्रणालीकी द्वितीय स्तर है। इस अवस्थामें दो स्वतन्त्र वस्तु यद्यपि एकत्र हो कर नूतन और पृथक् गुणसम्पन्न अपर वस्तुकी सृष्टि करती हैं, तो भी पूर्वोक्त दोनों वस्तुओंका अस्तित्व हमेशाके लिये लोप नहीं होता। वैज्ञानिक प्रक्रियाके मतसे अधिकांश जगह उक्त दोनों वस्तुओंको पूर्वावस्थामें ला सकने पर भी, जब दोनों वस्तु यौगिक अवस्थामें रहती हैं, तब पर-स्परका स्वातन्त्र्य (Indifference) परिहार करके जिस पदार्थका उद्भव करती हैं, वही पदार्थ सम्पूर्ण नूतन और भिन्न धर्माक्रान्त है। हेगलके मतानुसार यह रासायनिक शक्ति (Chemism) बाह्यशक्ति (Mechanism)की अपेक्षा उच्चस्तरमें अवस्थित है।

टेलिओलाजी (Teleology) इस क्रमोन्नति प्रणालीका तृतीय वा सर्वोच्च सोपान है। टेलिओलोजी कहनेसे साधारणतः निमित्त कारण (Final cause) का बोध होता है। जागतिक विकाशके जिस स्तरमें उद्देश्य (End) का सम्बन्ध देखनेमें आता है अर्थात् जब पदार्थसमूहके प्रति दृष्टिपात करनेसे किस उद्देश्यसे उनकी सृष्टि हुई है और चरम परिणति ही क्या होगी, यह समझनेमें आता है, तब वही अवस्था Teleological Stage वा नैमित्तिक स्तर कहलाती है। उद्भिद और प्राणी जगत्में (Organic Stage) इस नैमित्तिक कारणका विकाश अत्यन्त सुस्पष्ट है। किसी जीव-शरीरके प्रति दृष्टिपात करनेसे देखा जाता है कि उसका कोई अंश अतिरिक्त नहीं है और निरर्थक सृष्ट नहीं हुआ है, प्रत्येक अङ्गका एक निर्दिष्ट कार्य है और वह कार्य प्रत्येकमें स्वतन्त्र नहीं है, एक कार्य दूसरेके ऊपर निर्भर करता है; एकके अकर्मण्य होनेसे दूसरेका कार्य अव्याहत नहीं होता। देखनेसे मालूम होता है कि शरीरकी सभी अङ्गप्रत्यङ्ग मिल कर योथकारबार-के अंशीदारोंकी तरह हैं, किसी एक विशेष उद्देश्य-साधनमें नियोजित हुए हैं। उद्भिद् और प्राणिजगत्के प्रति दृष्टिपात करनेसे ही प्रतीत होगा कि शरीरपोषण-रूप उद्देश्य ही शारीरिक सभी प्रक्रियाओंको नियन्त्रित करता है।

इसके अलावा सृष्टिका जो अन्य महत्तर उद्देश्य इनके द्वारा साधित हुआ है, हेगलने उसे दूसरी जगह निर्देश किया है। जो असीम ज्ञानस्रोत सृष्टिप्रणाली-के मध्य हो कर प्रवाहित होता है और समग्र सृष्टि प्रणाली जिस उद्देश्यका लक्ष्य करके धावित होती है, हेगलके मतानुसार निरञ्जनज्ञान वा ब्रह्म (The absolute Idea) प्राप्ति ही एतद् समुदयका लक्ष्यस्थल है।

(३) हमलोगोंकी भाषामें Absolute शब्दका यथार्थ प्रतिशब्द नहीं मिलता, तब 'निरञ्जन' वा 'तत्-स्वरूप' कहनेसे बहुत कुछ हेगलके Absolute शब्दका आभास प्राप्त हो जाता है। हेगलके मतसे Absolute आध्यात्मिक नहीं है और न जड़ ही है; वस्तुतः जिससे जड़जगत् और आध्यात्मिक जगत्ने विकाश लाभ किया है, वही परमपदार्थ है (Neither subjective nor objective notion, but the notion that immanent in the object, releases it into its complete independencey, but equally retains it into unity with itself)। जड़जगत्से Absolute-का स्तर कई भागोंमें सन्निविष्ट है, हेगलने उसका उल्लेख किया है। प्रथम स्तर जीवजगत् (Life) है। जीव-जगत्में ज्ञान और जड़का एकताबन्धन देखनेमें आता है। जिस अन्तर्लीन उद्देश्यके वशवर्त्ती हो कर (The End that pervades life) प्राणिजगत् चलता है, वह ज्ञानमूलक है। लेकिन यह ज्ञान वर्त्तमान स्तरमें परोक्षभावसे कार्य करता है। तत्परवर्त्ती स्तरमें ज्ञान परोक्षभावमें कार्यकारी नहीं है, इस स्तरमें आत्मज्ञान (Self consciousness) का विकाश हुआ है। बहि-

र्जगत् और अन्तर्जगत् ये दोनों स्वतन्त्र पदार्थ नहीं हैं, एक दूसरेका प्रतिरूप हैं। 'अपनापन' ज्ञानके लिये विकाशके साथ साथ ही जगत्‌के अन्तर्निहित ज्ञानस्रोत अन्तर्मुखी हो कर आत्मज्ञानमें परिणत हुआ है (Consciousness has returned to itself), वहिर्जगत् और अन्तर्जगत्‌का विरोध आज तक भी दूर नहीं हुआ है, ज्ञानको आधार आत्मा वा मेरे निकट वहिर्जगत् अभी भी बाहरकी वस्तु है। आत्मा वहिर्जगत्‌में अपना विकाश देखती है। Absolute Idea वा महाज्ञानका विकाश होनेसे ही इस विरोधका निरास होता है, उस समय ज्ञाता और ज्ञेय, भाव और वस्तु, अन्तर्जगत् और वहिर्जगत्‌का वैषम्य नहीं रहता है (The opposite between the subject and the object, Knowing and Being, Thought and Being will cease, । यह निरञ्जनज्ञान हेगलके मतसे जागतिक सभी कार्यकलापोंमें नियन्त्रित करके अपनी ओर खींच लेता है। संक्षेपतः उपरि-उक्त विवरण ही हेगलके लाजिक वा उनके दर्शनका मूलतत्त्व है। हेगलके बहुविस्तृत दर्शनका अन्यान्य अंश छोड़ कर उनके 'लाजिक' नामधेय अंशकी आलोचना की गई है। हेगलका दर्शन एक तो दुर्बोध्य है, दूसरे हिन्दीभाषामें उनका विवरण और भी जटिल हो गया है; ऐसी अवस्थामें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अन्यान्य दार्शनिक लोग लाजिक' कहनेसे जो समझते हैं, हेगलका लाजिक उस श्रेणीकी वस्तु नहीं है। उनका लाजिक जागतिक विषयकी अस्थिमज्जासे जड़ित है। हेगल क्रमोन्नतिवादी (Evolutionist) हैं। उनके मतानुसार वहिर्जगत् और अन्तर्जगत् दोनों ही जगत्‌में इस लाजिकका विकाश साधित होता है। (Gradual development of the categories both in the subject and the object—mind and matter)।

आरिष्टलसे ले कर हेगल तक लाजिककी उत्पत्ति, परिवर्त्तन और परिणतिके सम्बन्धमें धारावाहिक इतिवृत्त दिया गया। विभिन्न दार्शनिक भित्तिके ऊपर प्रतिष्ठित हो कर लाजिकने कौन कौन भिन्नभावधारण किया है, उसका परिचय देना ही उपरि-उक्त विवरणका उद्देश्य है और वर्त्तमान समयमें ही लाजिककी कौनसी पुष्टि साधित हुई है, उपर्युक्त विवरणसे ही वह जाना जायगा।

इससे पहले लिखा जा चुका है, कि दार्शनिकप्रवर बेकन आरिष्टल-प्रवर्त्तित पन्थाका परित्याग कर स्वकीय अभिनव दार्शनिक पथका प्रचार कर गये हैं। तत्प्रणीत Novum Organum वा नव्य-तन्त्र नामक ग्रन्थसे वर्त्तमान समयकी व्याप्तिमूलक तर्क (Inductive Logic)-को सूचना कर दी है। पीछे दार्शनिक जान ष्टुयार्ट मिल (John Stuart Mill)-ने सबसे पहले व्याप्तिमूलक लाजिककी पूर्णावयव पुस्तक रची। मिल और बेकनके दोनों ग्रन्थ वर्त्तमान समयमें 'इनडकटिभ लाजिक' के सम्बन्धमें प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। दार्शनिकप्रवर काण्ट (Kant) जिस फारमल लाजिक (Formal Logic)-को सूचना कर गये हैं, वर्त्तमान समयमें वही हमिलटन और उनके शिष्य मान्सेल (Sir William Hamilton and Mansel) कर्त्तृक सामान्य परिवर्त्तन छोड़ कर एक प्रकारसे अक्षुण्णभावमें ही रक्षित हुआ है।

साधारणतः व्याप्तिमूलक लाजिकको मेटीरियल लाजिक (Material Logic) और फारमल लाजिकको 'निगमनमूलक' लाजिक कहते हैं। किन्तु यथार्थमें देखनेसे ऐसा श्रेणीविभाग युक्तिसङ्गत नहीं है। कारण Deduction वा निगमन युक्ति (reasoning)का एक प्रकार भेद मात्र है। Material लाजिकमें भी Deductive reasoning वा निगमन-मूलक युक्तिप्रणालीका प्रयोग किया गया है। मेटीरियल और फारमल दोनों ही लाजिकमें इनडकटिभ और डिडकटिभ दोनों प्रकारको युक्तिप्रणालीका प्रयोग है। प्रभेद इतना ही है कि एकमें व्याप्ति और दूसरेमें निगमन-युक्ति प्रणालीकी प्रधानता रखी गई है। लाजिककी नामकरणप्रथा भी जहां तक सम्भव है उसीके अनुसार हुई होगी। मिलका कहना है कि युक्ति मात्र ही प्रधानतः व्याप्तिमूलक है। निगमनयुक्ति प्रणाली तत्पूर्ववर्त्ती व्याप्तिके ऊपर प्रतिष्ठित है। निगमन-युक्तिप्रणालीके अन्तर्गत सिलोजिज्म (Syllogism)-का मेजर प्रेमिस (Major Premiss)

वा प्रधान पद वा पूर्वपक्ष, व्याप्ति तथा युक्तिप्रणालीका अवलम्बन करके निर्णीत हुआ है। सुतरां इण्डकसन (व्याप्ति) युक्तिप्रणालीकी सहायताके बिना डिडिक्टिभ (निगमन) युक्तिप्रणालीका प्रयोग असम्भव है। जेभन्स (Jevons) आदि पण्डित वर्ग विपरीत मतावलम्बी हैं जेभन्सका कहना है कि युक्तिप्रणाली मूलतः डिडक्टिभ (Deductive) है। इण्डकसन अवान्तर प्रकार भेद मात्र है। डिडक्टिभ युक्तिप्रणालीको विपरीत दिक्‌से देखनेसे ही इण्डक्टिभ युक्तिप्रणालीमें उपनीत हो जाता है (Induction is inverse deduction)।

उपरि-उक्त दोनों मतोंका संघर्ष अब भी दूर नहीं हुआ है। दोनों मतोंके अन्तर्निहित दार्शनिक तत्त्वका सामञ्जस्य जब तक नहीं होगा, तब तक स्थिर सिद्धान्तमें उपनीत होना असम्भव है।

लाजिककी उत्पत्ति —लाजिककी उत्पत्तिका निरूपण करनेमें यूरोपीय पण्डितोंका कहना है कि मानसिक उन्नतिके जिस स्तरमें अनुमान (Inference)-का विकाश है, लाजिककी उत्पत्ति भी उसी स्तरमें है। न्यायदर्शनके मतसे प्रत्यक्ष (Perception) जिस प्रकार चारों प्रमाणोंमें अन्यतर है, यूरोपीय विद्वान् लोग प्रत्यक्षको उस प्रकार प्रमाणके मध्य नहीं गिनते। उनके मतसे जो प्रत्यक्ष वा इन्द्रियग्राह्य है उसका फिर प्रमाण क्या, प्रत्यक्ष स्वभावतः ही स्वतःसिद्ध है। इसी कारण मनस्तत्त्व (Psychology)-के प्रत्यक्षमूलक ज्ञानको लाजिकके अधिकारसे बाहर माना है। प्रत्यक्ष और अनुमानकी सीमा इतनी दुर्लक्ष्य है कि कब प्रत्यक्षसे अनुमानमें पदार्पण किया जाता है, उसका निर्णय करना कठिन है। अनेक समय जो सम्पूर्ण प्रत्यक्षज्ञान समझा जाता है, उसके मध्य बहुतसे अनुमान अन्तर्निहित हैं। मनस्तत्त्वविदोंने इस श्रेणीके अनुमानको अज्ञानमारयुक्ति (Unconscious Reasoning) बतलाया है। अज्ञातसारमूलक युक्ति लाजिककी सीमाभुक्त नहीं है। प्रत्यक्षसे अप्रत्यक्षका अनुमान जब स्फुटतर होता है, जब अनुमानक्रिया ज्ञातसारसे साधित होती है, उसी समय लाजिककी विकाशावस्था है। पण्डितोंके मतसे युक्ति (Reasoning) बुद्धि (Thought or Intellect) की सर्वोच्चविकाश है।

लाजिककी दार्शनिक भित्ति।—लाजिक प्रमाणका विज्ञानशास्त्र है। प्रमाणका सत्यासत्य जिसके ऊपर निर्भर करता है, उसका निर्द्धारण कर सकनेसे ही लाजिकका मूलतत्त्व बोधगम्य होगा। प्रमाणका सत्यासत्य किस प्रकार है, इस विषयमें बहुत मतभेद है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मिल प्रभृति दार्शनिकोंका कहना है कि बाह्य और अन्तर्जगत्‌का सामञ्जस्य ही सत्यका प्रकृत स्वरूप है (Correspondence of thought with the external realities) तथा प्रमाणका याथार्थ्य अयाथार्थ्य इसी हिसाबसे निर्द्धारित करना होगा।

हैमिलटन प्रभृति दार्शनिकगण कहते हैं कि प्रमाणके याथार्थ्य अयाथार्थ्यका निरूपण करनेमें बाह्यजगत्‌के साथ सामञ्जस्यकी कुछ भी आवश्यकता नहीं, शुद्ध प्रमाणकी सङ्गति असङ्गति (Inner consistency or inconsistency) देखनेसे ही काम चल जायगा। हैमिलटनके मतानुसार विरोधाभाव ही (Absence of contradiction) सङ्गति और विरोध (Contradiction) असङ्गति-ज्ञापक है।

डेकार्टे प्रभृति पण्डितोंका कहना है कि परिस्फुट भाव ही (Distinctness and clearness) सत्यका लक्षण है। इस प्रकार भिन्न भिन्न मतोंके मध्य एक पक्षमें मिल, बेन प्रभृति पण्डितोंका मत, दूसरे पक्षमें हैमिलटन मानसेल प्रभृति पण्डितोंका मत समधिक प्रचलित है तथा मेटोरियल और फारमल दोनों प्रकारके लाजिकके लक्षणको सूचना करता है। दर्शन और लाजिक अन्योन्यसाहाय्यसे उद्घटित होता है तथा लाजिककी मूलभित्ति अर्थात् सत्यका लक्षण दर्शनके ऊपर प्रतिष्ठित है। इसी कारण अन्तर्निहित दार्शनिकतत्त्वका परिवर्त्तन साधित होने पर लाजिक भी भिन्नरूप धारण करके भिन्न लक्षणाक्रान्त होता है।

लाजिक और भाषा।—भाव और भाषाका सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि सांख्यशास्त्रोक्त पङ्गु और अन्धकी तरह एक दूसरेके बिना चल नहीं सकता। सभी प्रकारकी चिन्तावली भाषाकी सहायतासे साधित होती है। अतः भाषाके असम्पूर्ण भावज्ञापक और भ्रमप्रमादपूर्ण होने पर तत्संश्लिष्ट भाव भी भ्रमवर्जित नहीं हो सकता।

इसी कारण प्रत्येक लाजिकके प्रथमांशमें ही भाषापरिच्छेद सन्निविष्ट हुआ है। इसमें भाषाको भिन्नभिन्नरूपमें विश्लेषण करके (Analysing) भाषा और भावके अन्योन्य सम्बन्धके विषयमें आलोचना की गई है। प्रत्येक मानसिक भाव भाषाकी सहायतासे प्रकाशित होता है। जितने वाक्यविन्यास करनेसे एक सम्पूर्ण मनोभाव सूचित होता है, उस मनोभावज्ञापक वाक्यसमष्टिको (Acomplete sentence) लाजिकमें एक एक प्रतिज्ञा कही गई है। प्रतिज्ञाका विश्लेषण करनेसे देखा जाता है कि शब्दसमष्टि ही कर एक एक प्रतिज्ञा ग्रथित हुई है। इसीसे लाजिकके प्रथमाध्यायमें नाम-प्रकरण वा शब्दशक्तिके सम्बन्धमें आलोचना है।

नामप्रकरण —नामका प्रकृत स्वरूप कैसा है, इस विषयमें भिन्न भिन्न श्रेणीके दार्शनिकोंका मत भिन्न भिन्न है।

नामवादी (Nominalist) जिनके मतमें नाम तत्संसृष्ट पदार्थका साङ्केतिक चिह्नमात्र (Symbol) है। अभ्यासक्रमसे (Through association) किसी एक नाम वा शब्दका स्मरण होनेसे ही तत्संसृष्ट पदार्थ मनमें उदित होता है।

हे मिलटन प्रभृति पण्डितवर्ग भिन्न मतावलम्बी हैं इनके अवलम्बित मतको भाववाद वा कनसेपचुआलिज्म (Conceptualism) कहते हैं। हे मिलटनका कहना है कि जिस तरह व्यक्तिगत प्रतिकृति किसी व्यक्तिवाचक शब्दके साथ संसृष्ट है, उसी प्रकार जातिवाचक शब्दके साथ जातिगत भाव (Concept) संसृष्ट है। एक बातमें भाववादी सामान्य भाव (General idea or concept)का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, नामवाद ऐसा नहीं करते।

उपरि उक्त मतद्वय छोड़ कर भी एक और श्रेणीका मत है जिसे सत्वाद (Realism) कहते हैं, आरिष्टल और मध्ययुग (Scholastic period)के अनेक पण्डित इसी मतके अवलम्बी थे। इनका कहना है कि द्रव्यसमूहका भिन्न भिन्न गुण छोड़ कर जातित्व नामक एक स्वतन्त्र गुणका अस्तित्व है। जैसे,—अश्वके भिन्न भिन्न गुण रह सकता है। किन्तु तदतीत इसमें अश्वत्व कह कर एक साधारण गुण है, इस गुणके नहीं रहनेसे यह अश्वपदवाच्य नहीं होता। सत्वादी पण्डितगण Essence कह कर गुणका स्वतन्त्र अस्तित्व (Reality) स्वीकार करते हैं। जैसे—मनुष्यत्व, गोत्व, वृक्षत्व इत्यादि। इसीसे इन्हें Realist कहा गया है। मिलके मतानुसार गुणसमष्टि छोड़ कर Essence नामक कोई एक स्वतन्त्र गुण नहीं है।

पीछे नामकी श्रेणी विभागप्रणाली निर्दिष्ट हुई है। यह नाम एकत्ववाचक, बहुत्ववाचक और समष्टिवाचक (Collective names)के भेदसे तीन श्रेणियोंमें विभक्त हुआ है।

श्रेणीभेदके द्वितीय प्रकरणमें व्यक्तिवाचक (Concrete) और जातिवाचक (Abstract) भेदसे नाम दो प्रकारका है।

तृतीय प्रकरणमें नाम सत्त्ववाचक (Connotative) और असत्त्ववाचक अर्थात् गुणवाचक नहीं (Non Connotative) इत्यादि भेदसे दो श्रेणियोंमें विभक्त है। जिस नाम द्वारा केवल एक नाम वा गुणका प्रकाश हो, उसे Non-connotative वा असत्त्ववाचक नाम कहते हैं। राम कहनेसे राम-नामधेय व्यक्तिका ही बोध होता है, और किसीका भी नहीं। शुक्लत्व कहनेसे केवल एक गुणविशेषका ही बोध हुआ, इसके सिवा अन्य किसी तत्त्वका सन्धान नहीं पाया गया, ऐसे नामको असत्त्ववाचक वा Non connotative और जिससे गुण तथा द्रव्य दोनोंको ही प्रतीति होती है, उसे Connotative वा सत्त्ववाचक नाम कहते हैं।

चतुर्थ प्रकरणमें (Fourth principal division) Positive वा भावज्ञापक और Negative वा अभावज्ञापक भेदसे नाम दो प्रकारका है, जैसे मनुष्य, अमनुष्य, वृक्ष, अवृक्ष इत्यादि।

पञ्चम प्रकरणमें सम्बन्धसापेक्ष (Relative) और सम्बन्ध-निरपेक्ष (Absolute or non-relative) इन दो प्रकारका विवरण है। जो दोनों नाम परस्पर आकाङ्क्षासूचक हैं, उन्हें सम्बन्धसापेक्ष-नाम कहते हैं, जैसे पिता कहनेसे ही पुत्रको और राजा कहनेसे प्रजात्वकी सूचना करता है, इत्यादि।

नामका श्रेणीविभाग संक्षेपमें कहा गया। अभी नामका अर्थ विचार संक्षेपमें कहा जाता है।

दार्शनिकप्रवर अरिष्टटलने द्रव्य, गुण, परिमाण इत्यादि दश पदार्थ विभाग करके निर्देश किया है। नाम इन दश श्रेणियोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होगा। मिलने पूर्वोक्त दश प्रकारका श्रेणीविभाग करके अर्थनिर्द्धारणकी अयौक्तिकता दिखलाते हुए स्वीयमत स्थापन किया है। मानसिक चिन्ताप्रणालीका विश्लेषण कर मिलने निम्नलिखित श्रेणीविभाग निर्देश किया है।

(१) मानसिक भाव अर्थात् वाह्यवस्तुओंके मनके ऊपर क्रिया (Feelings or states of consciousness

(२) मन वा आत्मा—(The mind which experiences those feelings.)

(३) समस्त वाह्यवस्तु (The Bodies or external objects) अर्थात् जो सब वस्तु हम लोगोंके मानसिक भावोंकी जनयिता।

(४) पौर्वापर्यज्ञान (Succession) समानाधिकरण्य ज्ञान (Co-existence) सादृश्य और असादृश्य ज्ञान (Likeness and unlikeness)

जागतिक समस्तपदार्थ इन चार श्रेणियोंमेंसे किसी न किसीके अन्तर्गत होंगे हो।

लाजिककी प्रतिज्ञा (Logical propositions)—पहले कहा जा चुका है कि एक सम्पूर्ण मानसिक भाव ज्ञापक समष्टिको प्रतिज्ञा (Proposition) कहते हैं। कर्त्ता, विधेयपद और योजक पदभेदसे प्रत्येक प्रतिज्ञाके तीन अंश हैं। जिसके सम्बन्धमें कुछ उक्त वा विहित हुआ करता है उस व्यक्ति वा वस्तुको कर्तृपद (Subject), जो उक्त वा विहित हो उसे विधेयपद (Predicate) और जिस पदकी सहायतासे वस्तुपद एवं विधेय पदके मध्य सम्बन्ध स्थापित हो, उसको योजकपद (Copula) कहते है। पीछे भावज्ञापक (Affirmity) और अभावज्ञापक (Negative), सरल (Simple) यौगिक (Complex), सार्वभौमिक (Universal), विशेष (Particular), अनिर्दिष्ट (Indefinite) और व्यक्तिबोधक (Singular) इन कई श्रेणियोंमें विभक्त हुआ है। बादमें प्रतिज्ञाके अर्थविचारके सम्बन्धमें (Import of propositions) आलोचना अभिहित हुई है। सभी प्रतिज्ञाओंके अर्थसम्बन्धमें नानामत देखे जाते हैं। किसी किसी मतमें प्रतिज्ञा केवल दो मानसिक भाव वा प्रतिकृतिके मध्य सम्बन्धकी सूचना करती है (Expression of a relation between two ideas)। फिर दूसरेका मत है कि दो नामके अर्थका सम्बन्ध स्थापन ही प्रतिज्ञाका लक्ष है (Expression of a relation between the meanings of two names)। दार्शनिक हबस (Hobbes) का कहना है कि कर्तृपद (Subject) और विधेयपद (Predicate) जो एक ही बातके दो भिन्न भिन्न नाम हैं इन्हें प्रदर्शन करना ही प्रत्येक प्रतिज्ञाका उद्देश है। जैसे सभी मनुष्य प्राणिविशेष हैं; यहां पर प्रत्येक मनुष्यको ही प्राणी कहा गया है। मनुष्य और प्राणी ये दो शब्द एक ही वस्तुके नामान्तरमात्र हैं। हबसका मत एकदेशदर्शी और अनेकांशमें भ्रान्तिविजृम्भित है, इसीसे मिल प्रभृति अपरापर नामवादियोंका मत उससे स्वतन्त्र है। इस विषयमें मतभेद देखा जाता है। इन श्रेणीके दार्शनिकोंका कहना है कि कोई वस्तु किसी एक निर्दिष्ट श्रेणीके अन्तर्गत है वा नहीं (In referring something to or excluding something from, a class) इसका निर्देश करना ही प्रतिज्ञाका उद्देश है। जैसे, राम मरणशील है, ऐसा कहनेसे समझा जाता है कि मरणशील पदार्थ वा जीव नामकी जो श्रेणी है, राम उसी श्रेणीगत व्यक्तिविशेष है। हस्ती आमिषाशी जन्तु नहीं है, यह कहनेसे समझा जाता है, कि समस्त 'आमिषाशी जन्तु' ले कर जो श्रेणी गठित हुई है, हस्ती उस श्रेणीके अन्तर्निविष्ट नहीं (excluded) है, वह अन्य श्रेणीका है। इस प्रकार लाजिककी समस्त प्रतिज्ञा एक श्रेणी दूसरी श्रेणीकी अन्तर्निविष्ट है, यही सूचना करती है, जाति (Genus) श्रेणी (Speceies) इन दोनोंका पार्थक्य (Differentium) प्रभृति, मध्ययुगके स्कलाष्टिक पण्डितोंके प्रवर्त्तित श्रेणीविभागसे प्रतिज्ञाके ऐसे अर्थनिर्देशका सूत्रपात हुआ है। अरिष्टल प्रवर्त्तित सूत्र (Dictum de omni et nullo) अर्थात् एक श्रेणीके सम्बन्धमें जो विहित हो

गच्छता है, उस व्यवोगत प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें वह प्रयोज्य हो सकता है, यही सर्मुदयका मूल है।

दार्शनिक मिल उपरि उक्त मतको समीचीन नहीं मानते। उनका मत है कि कर्तृपद (Subject) और विधेयपद (Predicate) किसी एक विशेष सम्बन्धको सूचना करता है और अन्योन्य सम्बन्ध ले कर ही प्रतिज्ञाकी सृष्टि है। वे सम्बन्ध मिलके मतसे सामान्यतः पाँच हैं—पौर्वापर्य (Sequence), सामानाधिकरण्य वा समावस्थान (Co-existence), अस्तित्वमात्र (Simple existence), कार्यकारण (Causatin) और सादृश्य (Resemblance)।

प्रतिज्ञाको साधारणतः दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं-वाचकप्रतिज्ञा (Verbal proposition) और वास्तव प्रतिज्ञा (Real propootion) जिस प्रतिज्ञाका विधेयपद (Predicate) कर्तृपदका अर्थ वा अर्थांशमात्र प्रकाश करता है अर्थात् कर्तृपद जो अर्थ प्रकाश करता है तदतिरिक्त अर्थ प्रकाश नहीं करता, ऐसी प्रतिज्ञाको वाचक वा Verbal प्रतिज्ञा कहते हैं। मनुष्य बुद्धिशाली जीव है, यहां पर 'बुद्धिशाली जीव' यह विधेय पद मनुष्य अर्थमें जो समझा जाता है, तदपेक्षा किसी अतिरिक्त अर्थका प्रकाश नहीं करता। सुतरां यहां पर उपरि उक्त प्रतिज्ञा वाचक प्रतिज्ञा है। जिस प्रतिज्ञामें विधेयपद कर्तृपदके अतिरिक्त अर्थप्रकाश करता है, वैसी प्रतिज्ञाको वास्तवप्रतिज्ञा (Real proposition) कहते हैं। जैसे 'सूर्यग्रह जगत्का केन्द्रस्थल है' यहां पर "सूर्य" इस कर्तृपदके अर्थकी प्रतीति होनेसे ग्रहजगत्का केन्द्रस्थल इस विधेय पदका अर्थ तदन्तर्निविष्ट है, ऐसा समझा नहीं जाता, विधेयपद सम्पूर्ण नूतन तत्त्वप्रकाश करता है। इसीसे इस प्रतिज्ञाको वास्तव प्रतिज्ञा कहते हैं। वाचक प्रतिज्ञाका नामान्तर अर्थद्योतक प्रतिज्ञा (Explicative) और वास्तव प्रतिज्ञा (Real proposition का नामान्तर अर्थयोजक प्रतिज्ञा (Amplicative proposition है)। प्रतिज्ञाका अर्थविचार करनेमें विधेयपदका विश्लेषण आवश्यक है और विधेय पदके साथ कर्तृपदका सम्बन्ध स्थिरीकृत होनेसे ही प्रतिज्ञाका अर्थ निर्णीत हुआ।

संज्ञाप्रकरण। Definition—सभी वस्तुओंकी संज्ञाप्रणाली किस नियमसे साधित हुई है, किस प्रकार संज्ञानिर्वचनप्रणाली निर्दोष है, किस प्रकार वस्तुकी संज्ञा निर्देश (Define) की जाती है वा नहीं की जाती है इत्यादि विषय इस प्रकरणमें आलोचित हुए हैं। यहां पर यह कह देना आवश्यक है कि संज्ञा और अंग्रेजी डेफिनेशन (Defination) सम्पूर्णरूपसे समार्थसूचक नहीं है, अधिकतर उपयुक्त नामके अभावमें संज्ञाशब्द ही प्रतिशब्द स्वरूप व्यवहृत हुआ। संज्ञाप्रकरणके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न तर्कशास्त्रोंका भिन्न भिन्न मत है।

दार्शनिक अरिष्टलके मतानुसार किसी पदार्थका संज्ञानिर्देश करनेमें वह पदार्थ जिस जाति (Genus)के अन्तर्गत है, उस जातिका और तदपेक्षा जो सब अतिरिक्त गुण है उस पदार्थमें विद्यमान हैं, उसका उल्लेख करनेसे ही पदार्थका संज्ञानिर्देश किया गया (Definition per gsnus at differentias)। अरिष्टल एवं तदनुवर्त्ती मध्ययुगके अधिकांश दार्शनिक सत्वादि (Realist) थे, उपरि उक्त संज्ञाप्रकरण उनके दार्शनिक मत सम्मत है।

मिल प्रभृति नामवादी (Nominalist) दार्शनिकगण उक्त मतको समीचीन नहीं मानते। मिलका कहना है कि प्राचीन पण्डितोंके मतसे पराजाति (Summum genus) संज्ञित नहीं की जाती। उनके मतसे हम लोगोंके सरल मनोभाव (Elementary feeling व्यतीत और सभी पदार्थ संज्ञा द्वारा निर्देश किये जा सकते हैं। समस्त संज्ञा मिलके मतसे नामका केवल अर्थ प्रकाश करती है (Enumerates the connotation of the term to be defined); एक नामका स्मरण होनेसे ही तन्निहित जिन सब गुणोंसे वह नामधेय पदार्थ सूचित होता है, वे गुण स्मरण आ जाते हैं और इन गुणोंके निर्देश करनेके लिये ही मिलने 'संज्ञा' ऐसी आख्या प्रदान की है। मिलका कहना है कि जो वस्तु कोई सूचना नहीं करती, ऐसी वस्तु संज्ञा द्वारा निर्देश नहीं की जा सकती। राम कहनेसे किसी अर्थकी प्रतीति नहीं होती; राम शब्द एक वस्तु निर्देशका

चिह्नमात्र है और वह चिह्न केवल वस्तुनिर्द्देशकी सहायता करता है। अतः राम शब्द संज्ञा द्वारा निर्द्देश्य नहीं है।

यदि कोई नाम वा शब्द तन्निहित समस्त अर्थोंका प्रकाश न कर अर्धांशमात्र प्रकाशित करे, तो वहांका उक्त नाम वा शब्दकी संज्ञाको असम्पूर्ण संज्ञा कहते हैं (Imperfect definition)। इसके सिवा किसी वस्तुके समवायी गुणोंका उल्लेख न कर असमवायी गुण (Accidents) द्वारा उक्त वस्तुका निर्द्देश करनेसे, उक्त वस्तुकी संज्ञा असम्पूर्ण हुई, इस प्रकार असम्पूर्ण संज्ञा संज्ञापदवाच्य न हो कर वर्णनाशब्दवाच्य (Description) हुआ है।

लेखकके उद्देश्यानुसार उपरि उक्त वर्णना भी (Description) कभी कभी संज्ञापदवाच्य हुआ करता है। विज्ञानशास्त्रमें अधिकांश संज्ञा इसी हिसाबसे रची गई हैं। लेखकने जिस गुण वा धर्मके ऊपर लक्ष्य रख कर वस्तुओंका श्रेणीविभाग निर्द्देश किया है, वह गुण वस्तुका समधिक विशिष्ट गुण नहीं भी हो सकता है, किन्तु लेखकके उद्देश्यानुसार गुणकी विशेष सार्थकता है। इस प्रकार उक्त निर्द्देश प्रणालीकी वर्णना (Description) न कह कर वैज्ञानिक संज्ञा (Scientific difinition) कहते हैं। प्राणीतत्त्वविद् कुभियर (Cuvier)ने मनुष्यको "द्विहस्तविशिष्ट स्तन्यपायी" जीव संज्ञित किया है। उक्त संज्ञाकी वर्त्तमान प्रयोजनीयता रहने पर भी संज्ञापदवाच्य नहीं हो सकता। किन्तु कुभियरका उद्देश्य अन्य प्रकारका है। उन्होंने जिस प्रणाली (Principle)के अनुसार प्राणियोंका श्रेणीविभाग निर्द्देश किया है, उसीके अनुसार उपरि उक्त संज्ञाकी सार्थकता है। समस्त वैज्ञानिक संज्ञा इसी प्रकार प्रणालीका अवलम्बन कर ग्रथित हैं।

नामप्रकरणसे ले कर संज्ञाप्रकरण तक भाषा और भावका है। सम्बन्धनिराकरण चिन्ताप्रणालीका याथार्थ्य साधन करनेमें भाषामें किस प्रकार संस्कारकी आवश्यकता, नामप्रकरण, संज्ञानिर्द्देशप्रणाली, भाषाके अर्थनिर्द्देशका सामञ्जस्यविधान इत्यादि प्रकारोंकी अवतारणा की गई है। उपरि उक्त विषय तर्कशास्त्रके भित्तिस्वरूप है। इसके अनन्तर तर्कशास्त्रके मूल उद्देश्यसाधक "प्रमाण" नामक अंशकी अवतारणा की गई है।

अनुमान (Reasoning)।—पहले कहा जा चुका है कि न्यायशास्त्रोक्त प्रमाण-चतुष्टयके अन्तर्गत अनुमान एक प्रमाणविशेष है। यूरोपीय पण्डितगण शेष तीनको अर्थात् प्रत्यक्ष, उपमिति और शब्दको प्रमाणका स्वरूप नहीं मानते।

जिस प्रणालीका अवलम्बन कर किसी ज्ञातपूर्व विषयके ज्ञानसे किसी अज्ञात वा अदृष्टपूर्व विषयके सिद्धान्त पर पहुँचता है। ऐसी युक्तिप्रणालीको अनुमान (Reasoning or Inference in general) कहते हैं। कोई विषय सिद्ध वा प्रमाणित हुआ, यह वाक्य कहनेसे साधारणतः हम लोग क्या समझते हैं? साधारणतः इस अर्थसे यह बोध होता है कि प्रामाण्य विषयका सत्यासत्य जिस विषयके ऊपर निर्भर करता है, वह विषय हम लोगोंको ज्ञात था और उस ज्ञात विषयसे अज्ञातविषय निरूपित हुआ है।

अनुमान नाना श्रेणियोंमें विभक्त है। प्रधानतः निगमनयुक्ति (Deductive Reasoning) और व्याप्तिमूलकयुक्ति (Inductive reasoning) उपरि उक्त श्रेणीविभाग छोड़ कर एक और प्रकारके अनुमानका उल्लेख है। किन्तु यथार्थमें इस श्रेणीका अनुमान यथार्थ अनुमान (Inference) नहीं है, केवल शब्दविपर्ययहेतु (Transposition of terms) यथार्थ अनुमान जैसा बोध होता है। ऐसे अनुमानका नाम है साक्षात् अनुमान वा इमिडियेट इनफरेन्स) (Immediate Inference) जैसे, सभी मनुष्य मरणशील हैं, इस वाक्यके बदलेमें यदि कोई मनुष्य अमर नहीं है, इस पदका व्यवहार किया जाय, तो किसी नूतन सिद्धान्त पर नहीं पहुंचते, केवल एक ही बातकी वाक्यान्तरमें पुनरावृत्ति की गई है।

यूरोपीय दार्शनिकोंने तर्कशास्त्रकी प्रतिज्ञाओंको साधारणतः चार भागोंमें विभक्त किया है और यथाक्रम उनका A, E, I, O नाम रखा है। इनमेंसे A सार्वभौमिक सम्मतिज्ञापक है, यथा—सभी मनुष्य मरणशील हैं, यहां पर मरण शील पद सभी मनुष्योंके सम्बन्ध-

से विदित हुआ है। E प्रतिज्ञा सार्वभौमिक असम्मतिज्ञापक है अर्थात् किसी जगह विधेयपदके साथ कर्तृपदकी एकत्रावस्थिति नहीं है, यही ज्ञापन करना E प्रतिज्ञाका उद्देश्य है। जैसे, कोई भी वस्तु सम्पूर्ण नहीं है, यहां पर सम्पूर्ण पद प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें ही प्रत्याहार किया गया है। आंशिक सम्मतिज्ञापक और आंशिक असम्मतिज्ञापकको यथाक्रम I और O कहते हैं; जैसे, कितने जीव सम्पूर्ण हैं (I), कितने जीव सम्पूर्ण नहीं हैं (O)।

चित्र द्वारा साक्षात् अनुमान (Immediate Inference)-का स्वरूप सहजमें ही प्रदर्शित हो सकता है। जैसे, सभी 'क' ही 'ख' हैं; सुतरां कितने ख क हैं, और कितने ख क नहीं हैं, ये दोनों ही अनुमान सिद्ध हो सकते हैं। निम्नलिखित वृत्त द्वारा प्रत्येक पदकी व्याप्ति (Extension) दिखलाई गई है। क और ख नामधारी जितना वस्तु हैं वे यथाक्रम क और ख वृत्त द्वारा सूचित हुई हैं। सन्निविष्टचित्रसे देखा जायगा कि क नामधारी जितनी वस्तु हैं वे ख नामधारी वस्तुओंके अन्तर्गत हैं। सुतरां क आख्याधारी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो ख न हो। किन्तु ख वृत्तका जो अंश क वृत्तका एक स्थानीय है, उस अंशका ख ही क है, सुतरां कितने ही ख क हैं; और ख वृत्तका जो अंश क वृत्तके वहिर्भूत है, उस अंशका ख क नहीं है, अतः दोनों अनुमान सिद्ध हुए।
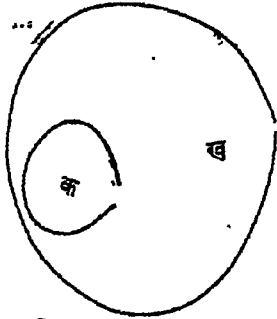
कर्तृपद और विधेयपदका जिस प्रकार स्थान विपर्यय द्वारा अनुमान साधित होता है, वह साधारणतः तीन प्रकारका है—(१) सामान्य और विशेष-विपर्यय (Simple conversion and conversion per accidents), (२) विपरीतावस्थान (Transposition) और (३) विपरीतसाधन (Obversion)। इन सब अनुमानोंकी प्रक्रियाका उल्लेख विस्तार हो जानेके भयसे नहीं किया गया। निम्नलिखित चित्रसे प्रतिज्ञाओंका परस्पर सम्बन्ध निरूपित होगा।

A वैपरीत्यज्ञापक E
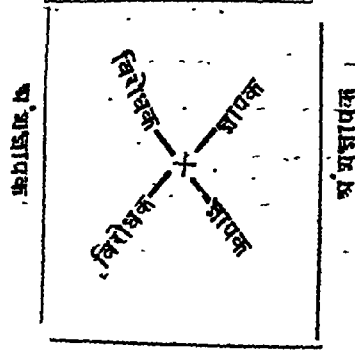
I आंशिक वैपरीत्यज्ञापक O

चित्र द्वारा प्रमाण किया जा सकता है कि दोनों ही वैपरीत्यज्ञापक प्रतिज्ञाके मध्य दोनों ही मिथ्या हो सकते हैं, किन्तु दोनों हो सत्य नहीं हो सकते। आंशिक वैपरीत्यज्ञापक दोनों प्रतिज्ञाके मध्य दोनों ही सत्य हो सकते हैं, किन्तु दोनों मिथ्या नहीं हो सकते। दोनों परस्पर विरोधज्ञापक दो प्रतिज्ञाके मध्य सत्य अथवा दोनों मिथ्या नहीं हो सकते। एकके मिथ्या होनेसे दूसरा अवश्य सत्य होगा। अंशज्ञापक दोनों प्रतिज्ञाके मध्य सार्वभौमिक प्रतिज्ञा (Universal proposition) विशेष प्रतिज्ञा (Particular proposition)-का सत्य प्रतिपादन करता है। किन्तु विशेष प्रतिज्ञाका सत्य प्रतिपन्न होनेसे सार्वभौमिक प्रतिज्ञाका सत्य प्रतिपन्न नहीं होता। विशेष प्रतिज्ञाके मिथ्या-प्रतिपन्न होने पर सार्वभौमिक प्रतिज्ञा भी मिथ्या प्रतिपन्न होती है, किन्तु सार्वभौमिक प्रतिज्ञाके मिथ्या प्रतिपन्न होने पर विशेष प्रतिज्ञा मिथ्या प्रतिपन्न नहीं होती।

उपरिउक्त साक्षात् अनुमान (Immediate Inference) के सिवा अनुमान प्रधानतः दो श्रेणियोंमें विभक्त है,—निगमनमूलक अनुमान (Deductive Reasoning) और व्याप्तिमूलक अनुमान (Inductive Reasoning)।

डिडकटिभयुक्ति। डिडकटिभ वा निगमन-प्रणालीमें युक्तिका प्रथम सोपान (First premiss or datum) सार्वभौमत्व ज्ञापन (Universality) कहते हैं, उस सार्वभौमत्वज्ञापक प्रतिज्ञाको विश्लेषण करके युक्तिप्रवाह प्रसार लाभ करता है। अरस्तूके ग्रन्थमें प्रायः अधिकांश

जगत् यही प्रणाली अवलम्बित हुई है। जैसे ज्यामिति-शास्त्रमें कितनी हो संज्ञा स्वतःसिद्ध विषय हैं और स्वीकृत विषयमें प्रथम सोपानस्वरूप मान-कर विश्लेषण प्रणालीक्रमसे अन्यान्य तत्त्व प्रमाणित हुए हैं। जागतिक जो सब कार्य कलाप साक्षात्कार द्वारा सीमांसित होनेको नहीं है, वहां पर निगमन (Deduction) युक्तिका आश्रय ग्रहण करना ही होगा। ज्योतिषशास्त्रके अनेक विषय इसी प्रकार उपाय अवलम्बनमें निर्णीत हुए हैं। न तब और यह जगत्‌के सभी तत्त्व हम लोगोंके इन्द्रियायत्त नहीं हैं, किन्तु यह जगत्‌के अनेक तत्त्व ज्यामिति द्वारा निर्णीत हुए हैं। इस प्रकार किसी तत्त्वको सूचना देखनेसे उस तत्त्वके प्रमाणीकृत होनेको उपाय और कुछ नहीं है, केवल अपरापर ज्ञात और मीमांसित घटनाके साथ उक्त तत्त्वकी सङ्गति (Consistency) है वा नहीं तथा अपरापर व्यापकतर तत्त्व (Higher principles) से उक्त तत्त्वमें पहुंचता है (Deduce) या नहीं, इसीका निराकरण है। निगमनयुक्ति (Deductive Reasoning) के जो कई प्रकारके भेद हैं, उनमें अन्योन्य संश्रयात्मिका युक्ति ही (Syllogism or Ratiocination) विशेष उल्लेखयोग्य है। नीचे उक्त प्रकारकी युक्तिका स्थूल मर्म दिया गया है।

अन्योन्यसंश्रयात्मिक युक्ति (Syllogism) और तत्स्वरूप अनुमानसे प्रतिज्ञाद्वय या दो स्वीकृत विषयके संयोगसे तृतीय विषयके सिद्धान्त पर उपनीत होना पड़ता है। प्रथमोक्त प्रतिज्ञाद्वय वा स्वीकृत विषय दोनोंको प्रेमिस (Premiss) कहते हैं। इनमेंसे जिसे प्रतिज्ञा वा वाक्यमें प्रधान पद (Major term) वा जिसे (हम लोगोंके न्यायशास्त्रानुसार) हेतुपद रहता है उस प्रतिज्ञाको प्रधान वाक्य वा मेजरप्रेमिस (Major premiss) और जिस प्रतिज्ञामें अप्रधानपद (Minor term) वा हम लोगोंके न्यायशास्त्रमें साध्यपदका उल्लेख है उस प्रतिज्ञाको अप्रधान वाक्य (Minor premiss) कहते हैं। जिस पदके सहयोगसे (Mediation) हेतु और साध्यके मध्य सम्बन्ध सूचित हो कर सिद्धान्त पर पहुंच जाता है, उस पदको मध्यपद वा लिङ्ग (Middle term) कहते हैं। प्रतिज्ञाद्वय (Premisses) की सहायतासे जिस सिद्धान्त पर उपनीत हो जाता है उसे सिद्धान्तवाक्य वा निगमन (Conclusion) कहते हैं। निम्नलिखितका उदाहरण नीचे दिया जाता है।

(१) मर्त्य मनुष्य ही मरणशील है।
(२) राम मनुष्योपाधिविशिष्ट है।
(३) अतएव राम मरणशील है।

उल्लिखित दृष्टान्तमें सर्वप्रथमोक्त प्रतिज्ञा प्रधान वाक्य (Major premiss) वा न्यायशास्त्रोक्त प्रतिज्ञा है, द्वितीय प्रतिज्ञा "राम मनुष्योपाधिविशिष्ट" अप्रधान वाक्य (Minor premiss) वा न्यायशास्त्रोक्त उपनय है और तृतीय प्रतिज्ञा "राम मरणशील" सिद्धान्त वाक्य (Conclusion) वा न्यायशास्त्रोक्त निगमन है। मरणशील, राम और मनुष्य ये तीन पद (Term) यथाक्रमसे प्रधानपद (Major term) अप्रधानपद (Minor term) और मध्यपद (Middle term), अथवा न्यायशास्त्रोक्त हेतु, साध्य और लिङ्गपदवाच्य है।

मध्यपद वा लिङ्गपद (Middle term) के अवस्थानभेदसे अनुमानके चार अवयवगत भेद हुए हैं जिनका यूरोपीय न्यायशास्त्रविदोंने सामान्यतः "अवयव" (Figure) नाम रखा है। लेकिन प्रथम अवयवोक्त (First figure) अनुमान ही समधिक प्रचलित है, दूसरोंको प्रथमावयवमें परिणत किया जा सकता है।

प्रथम अवयवोक्त अनुमानमें (First figure) मध्यपद प्रधान वाक्यका उद्देश्यपदस्वरूप और अप्रधान वाक्यका विधेय पदस्वरूप विन्यस्त हुआ करता है। यथा—

सभी क ही ख हैं। सभी ग ही क हैं। अतएव सभी ग ख हैं	कोई भी क ख नहीं है। सभी ग क हैं। अतएव कोई भी ग ख नहीं है	कोई भी क ख नहीं है। कितने ग क हैं। अतएव कितने ग ख नहीं हैं।

द्वितीय अवयवमें (Second figure) मध्य वा लिङ्गपद प्रधान (प्रतिज्ञा) और अप्रधान (उदाहरण) वाक्यका विधेय पद रूप अवस्थित हुआ करता है। यथा,—

कोई भी क ख नहीं है
सभी ग क हैं
∴ कोई भी ग ख नहीं है

बुद्धिमान कोई भी मनुष्य सुखी नहीं है, धनिकमात्र ही सुखी हैं
∴ धार्मिक मनुष्य विपर्यामत्त नहीं हैं।

तृतीय अवयव (Third figure)में मध्यपद प्रधान और अप्रधान दोनों प्रतिज्ञाका ही कर्तृपदस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है।

सभी क ख हैं
सभी क ग हैं
अतएव कितने ही ग ख हैं।

मधुमक्षिका मात्र ही बुद्धिशाली है।
मधुमक्षिका मात्र ही पतङ्गविशेष है।
अतएव कितने ही पतङ्ग बुद्धिशाली होते हैं।

यहां पर देखा जाता है, कि प्रधान और अप्रधान दोनों वाक्योंके व्यापकत्वज्ञापक वा सार्वभौमिक (Universal) प्रतिज्ञा होने पर भी सिद्धान्तवाक्य सार्वभौमत्वज्ञापक नहीं है, विशेषत्वज्ञापक (Particular) है, व्याप्तिज्ञानके ऊपर वह सिद्धान्त निर्भर करता है। प्रथम प्रतिज्ञामें मधुमक्षिका मात्र ही बुद्धिशाली है, यहां पर कर्तृपद और विधेयपदका व्यत्यय करके हम कह नहीं सकते कि बुद्धिशाली जीवमात्र ही मधुमक्षिका है। कारण मधुमक्षिका नहीं है, ऐसे कितने बुद्धिशाली जीव हैं। द्वितीय प्रतिज्ञामें भी 'पतङ्गमात्र' ही मधुमक्षिकाका विशेष है, ऐसा निर्देश करना भी सङ्गत नहीं है। इस प्रकार सिद्धान्तवाक्यका सार्वभौमत्व (Universality) निर्देश करनेसे सिद्धान्त अतिव्याप्तिदोषदुष्ट हो जाता है।

चतुर्थ अवयव (Fourth figure) विशिष्ट अनुमानमें मध्यपदकी अवस्थिति ठीक प्रथमावयवविशिष्ट अनुमानके विपरीत है। यहां पर मध्यपद प्रधान प्रतिज्ञाके विधेयस्वरूप और अप्रधान प्रतिज्ञाके कर्तृपदस्वरूप व्यवहृत हुआ करता है। यथा—

सभी ख क हैं।
सभी क ग हैं।
∴ कितने ग ख हैं।

सभी मनुष्य बुद्धिशाली हैं
सभी बुद्धिशाली जीव मस्तिष्कविशिष्ट हैं।
∴ कितने मस्तिष्कविशिष्ट जीव मनुष्य नामधारी हैं।

उपरिउक्त चार प्रकारके अनुमानसे ही देखा जायगा कि दो प्रधान और अप्रधान वाक्यद्वयके मध्य एक प्रतिज्ञाका अन्ततः व्यापक (Universal) प्रतिज्ञा होना आवश्यक है। दो विशेषत्वज्ञापकसे किसी सिद्धान्त पर पहुंच नहीं सकते। कारण प्रतिज्ञाद्वयके मध्य एकमें भी व्याप्ति नहीं रहनेसे अनुमान असम्भव है। एकत्व वा विशेषत्वबोधक प्रतिज्ञाद्वयसे कोई अनुमान हो सकता है वा नहीं इस विषयमें मतद्वैध है। मिलके मतसे इस प्रकारका अनुमान साध्य है, बेन (Alexander Bain) और अन्यान्य न्यायशास्त्रविदोंके मतसे इस प्रकारका अनुमान असाध्य है (Bain's Logic, i, 159.)

दो निषेधज्ञापक (Negative) प्रतिज्ञाद्वयसे भी किसी प्रकारका सिद्धान्त नहीं हो सकता। कारण, इस प्रकार व्याप्यव्यापक भाव नहीं रह सकता, सुतरां अनुमान असम्भव है।

तद्भिन्न मध्यपद (Middle term) दो प्रतिज्ञाका (Premisses) अन्ततः एकमें भी एक बार समग्रभावसे व्याप्त होना (Distributed) आवश्यक है। मध्यपदकी सहायतासे ही अनुमान साधित होता है, इसीसे मध्यपदको समग्र व्याप्तिका रहना आवश्यक है।

हेतु, साध्य और लिङ्ग (Major, Minor and Middle terms)के भेदसे पदका तीनसे अनधिक और अनल्प देना आवश्यक है।

इन सब नियमोंका व्यतिक्रम होनेसे जो अनुमान सब दोषान्वित होता है, वह हेत्वाभास (Fallacies) प्रसङ्गमें लिखा गया है।

उपरिउक्त नियमोंका आश्रय करके प्रत्येक अवयवके (Figure) अन्तर्गत जिन सब युक्तियोंकी सङ्गति साधित हुई है, उन्हें सिद्ध अनुमान (Valid moods) कहते हैं। तदनुसार कितनी युक्तियोंका बारबारा सेलारेण्ट (Barbara, Celarent) नामकरण हुआ है। (Jevons' Logic on Syllogism)

हमिल्टन (Sir William Hamilton) विधेयपदका सैख्य' (Quantification of the Predicates) नामक मतको अवतारणा कर कहते हैं कि इसके द्वारा सिलजिस्मके अन्यान्य नियमोंकी आवश्यकता निराकृत होगी।

अरिष्टटल कर्तृक प्रवर्त्तित व्याप्तिज्ञानबोधक सूत्र ही (Dictum de omni et nullo) अन्योन्यसंश्रयात्मिका युक्तिका भित्तिस्वरूप है। इस सूत्रका अर्थ इस प्रकार है, सभी श्रेणी (Class)के सम्बन्धमें जो विहित हो सकता है, उस श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिके सम्बन्धमें ही वह विहित है। अतः देखा जाता है कि सिलजिस्म (Syllogism) की प्रधान प्रतिज्ञा (Universal proposition) है। अप्रधान प्रतिज्ञा (minor premiss) प्रधान प्रतिज्ञाका अन्तर्निहितत्व सूचना करता है अर्थात् प्रधान प्रतिज्ञाका कर्तृपद जिस श्रेणी (Class) को सूचना करता है। अप्रधान प्रतिज्ञाका कर्तृपद उस श्रेणीके अन्तर्गत व्यक्ति है यही बोध करता है, सुतरां प्रधान प्रतिज्ञाके कर्तृपदके सम्बन्धमें जो विहित हुआ है,—अप्रधान प्रतिज्ञाके कर्तृपद उक्त कर्तृपदके अन्तर्गत होनेसे उक्त विधेयपद प्रयोज्य है; सिद्धान्त वा निगमन इसको केवल सूचना करता है।

मिल उपरिउक्त सूत्र (Dictum)को समालोचनाकी जगह कह गए हैं कि उक्त सूत्र सदोष है और किसी नूतन तत्त्वको अवतारणा नहीं करता। श्रेणीके सम्बन्धमें जो विहित है, वह श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक पदार्थके सम्बन्धमें विहित है, यह उक्ति एक ही अर्थको सूचना करती है। (Truism) समगुणविशिष्ट पदार्थ ले कर एक एक श्रेणी गठित हुई है, अतः श्रेणी व्यक्ति समष्टिके सिवा और कुछ नहीं है। इस प्रकार श्रेणीमें जो गुण है, श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक पदार्थमें वही गुण है, ऐसा कहनेसे कोई लाभ नहीं। कारण, श्रेणीके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्तिमें गुण है ऐसा कहनेसे ही श्रेणीमें वह गुण है, ऐसा कहा जाता है। पदार्थसमष्टिके सिवा श्रेणी नामका कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। (Mill's Logic, Book 11. ch. 2. p. 114.)

उपरिउक्त सूत्रको समालोचनाका अवलम्बन कर मिलने अन्योन्यसंश्रयात्मिका युक्ति (Syllogism)को समालोचना की है।

मिलका कहना है, कि इस प्रकारका अनुमान किसी नूतनतत्त्वको अवतारणा नहीं करता। केवल ज्ञातविषयको पुनरावृत्ति की जाती है। सिद्धान्तपद इस जगह एक नूतन तथ्य नहीं है। मनुष्यमात्रको ही मरणशील कह कर जब राम मनुष्य इस पदको अवतारणा की जाती है, तब राम मरणशील है यह सिद्धान्तपद 'मनुष्यमात्र ही मरणशील' इस प्रतिज्ञाके मध्य अन्तर्निहित है ऐसा समझा जाता है। सुतरां सिद्धान्तपद मिलके मतानुसार प्रधान प्रतिज्ञामें निहित है; विशेष करके निर्देश करना पुनरावृत्तिमात्र है। प्रत्येक अन्योन्यसंश्रयात्मिका युक्ति ही उनके मतमें "वृत्ताकारमें अनुमान' (Petitio Principii or argument in a circle) दोषयुक्त है। (Mill's Logic, BK, 11, chap, 3.) मिलको उक्त समालोचनाको अनेक पण्डित नहीं मानते। उनके मतमें मिलको समालोचना नामवाद (Nominalism)के ऊपर प्रतिष्ठित है। सुतरां जो नामवादके याथार्थ्यको स्वीकार नहीं करते, वे उक्त समालोचनाको सारवत्ताको भी नहीं मानते। वे कहते हैं, कि एक व्याप्ति (Universal element) नहीं रहनेसे अनुमान हो ही नहीं सकता। वे लोग मिलके विशेषसे विशेष अनुमान (Reasoning from particular to particular) को स्वीकार नहीं करते। Bosarquet's Logic देखो।

मिलने अरिष्टटलके सूत्र (Dictum)के बदलेमें निज मतोपयोगी एक सूत्रको रचना की है। यह सूत्र ठीक हम लोगोंके देशीय न्यायके लिङ्गलिङ्गीके ज्ञान अनुमानके स्वरूप हैं। मिलने भी कहा है कि जो चिह्न एक दूसरे चिह्नको सूचना करता है, वह चिह्न द्वितीय चिह्नोक्त वस्तुको भी सूचना करता है (Nota notae est nota rei ipsiuo, whatever is a mark of any mark, is a mark of that which this last is a mark of)। बेन (Bain)के मतसे उपरिउक्त सूत्र अनेक जगह सुविधा होने पर भी अनुमानको विशेष सहायता नहीं करता; कारण उपरिउक्त सूत्रसे व्याप्तिज्ञानका कोई आभास पाया नहीं जाता। (Bain's Logic i. 157.) इसके सिवा बेनने दूसरी आपत्तिकी अवतारणा की है। किसी विशेष विषयमें एक व्यापक नियमके प्रयोगसे ही निगमन अनुमानकी (Deductive reasoning) आवश्यकता (The application of

a general principle to a special case) रूप उद्देश्य मिलके सूत्र द्वारा साधित नहीं होता।

किसी सिलजिस्म (Syllogism) में अनुमानका कोई एक पद वा सोपान (Step) प्रच्छन्न रहनेसे उस प्रकारके अनुमानको प्रच्छन्नानुमान (Epicheirema or suppressed syllogism कहते हैं।

दो वा दोसे अधिक सिलजिस्मका आश्रय ले कर जो युक्तिश्रेणी (Train of reasoning) गठित हुई है, उसे युक्तिशृङ्खल (Sorites) कहते हैं। इस प्रकार प्रथम सिलजिस्मका सिद्धान्त पद द्वितीय सिलजिस्मके प्रधान वा अप्रधान प्रतिज्ञा स्वरूप व्यवहृत हुआ करता है।

पहले ही लिखा जा चुका है कि अनुमानके प्रकृत स्वरूपके सम्बन्धमें मिलके साथ स्वतःसिद्धवादी दार्शनिकों (Intuitionist and philosophers) तथा जर्मनदेशीय दार्शनिकोंका मतभेद है। मिलका मत इम्पिरिकल स्कूलका मत है (Empirical School) और मिल उक्त दार्शनिकमतके मुखपात्र है। मिलके मतका यथार्थ तत्त्व जाननेमें उनके दर्शनका जानना आवश्यक है।

जर्मन-दार्शनिकोंका कहना है कि हम लोगोंको बोधशक्ति प्रकृतिवशतः व्यापक (Reason is universal in its nature) है हम लोगोंको ज्ञानविच्छति व्यापकत्वसे विशेषत्व (From the universal to the particular) की ओर अग्रसर होती है। हम लोगोंका ज्ञानजीवन (Experience) अपरिस्फुट हो कर विशेष ज्ञानमें परिणत होता है। बीजमें जिस प्रकार समस्त भविष्यत् वृक्ष निहित हैं, ज्ञानराज्यका (Reason) विकाश भी उसी प्रकार है। इनके मतसे ज्ञानविच्छति विश्लेषण मूलक (Dissociative) है, [Caird's Introduction to the critical philosophy of Kant—On the nature of reason (Vernuff) and conceptual elements in knowledge]।

मिल और तदनुवर्त्ती दार्शनिकों (The Empirical School) का मत उपरिउक्त दोनों मतका सम्पूर्ण विपरीत है। मिलका कहना है कि हम लोगोंकी ज्ञानविच्छति विशेष होने पर व्यापकका अभिमुखी (From the particular to the universal) ज्ञान (Experience) साहचर्यमूलक (associative) है, व्याप्ति (The universal element in knowledge) विशेष विशेष वस्तुसे गृहीत है (derived from experience)। जब विशेष विशेष वस्तु हम लोगोंके इन्द्रियगोचर होती है, तब देखा जाता है कि कितनी वस्तुओंमें गुणका सामञ्जस्य है अर्थात् उन वस्तुओंमेंसे प्रत्येकमें वह गुण वर्त्तमान है। इसीसे यह गुण एक व्यापक गुण है। इस प्रकार समुदय व्यापक-पदार्थका ज्ञान इन्द्रियज्ञानमूलक है, व्याप्तिमूलकयुक्ति (Inductive reasoning) द्वारा व्यापकपदार्थके ज्ञानमें उपनीत होता है।

उपरिउक्त दोनों मतोंमेंसे कौन मत अधिक युक्तियुक्त है इसका निर्द्धारण करनेमें दोनों दर्शनको आलोचना करनी होती है। किन्तु वर्त्तमान विषयक आलोच्य नहीं होनेके कारण संक्षेपमें स्थूलमत दिया गया है।

इण्डकटिभ वा व्याप्तिमूलक युक्ति (Inductive reasoning)।—पहले कहा जा चुका है कि मिलके मतमें ज्ञान (Knowledge) स्वभावतः व्याप्तिमूलक (Inductive) है, यह विशेषसे व्यापककी ओर दौड़ता है। प्रकृत अनुमान भी (Inference) उनके मतमें व्याप्तिमूलक (Inductive) है। सिलजिस्मको व्यापक-प्रतिज्ञा, मिल कहते हैं कि व्याप्तिमूलकयुक्ति द्वारा निराकृत हुई है। सुतरां मिलके मतमें निगमनमूलक युक्ति (Deductive reasoning) उसके पहले साधित व्याप्ति (Induction) के ऊपर निर्भर करती है।

दार्शनिक प्रवर बेकन (Bacon) ने ही तत्प्रणीत 'नूतनतन्त्र' (Novum Organum) पुस्तकमें इण्डक्शन वा व्याप्तिमूलक युक्तिप्रणालीको आलोचना की है। उसके पहले अरिष्टटलके व्याप्तिका उल्लेख करने पर भी वे इसको इतनी प्रधानता स्वीकार नहीं करते बेकनके बाद मिलने अपने तर्कशास्त्रमें व्याप्तिका प्रधान प्रतिपादन किया है।

सामान्य प्रतिज्ञाके निर्देश और प्रतिपादन करनेके उपायको मिलने 'इण्डक्शन' वा व्याप्ति कहा है। कितनी विशेष घटना देख कर पीछे यदि इसी प्रकारकी एक घटना संघटित हो, तो हम लोग कहते हैं कि यहां भी फल वैसा ही होगा। पर्यायक्रमसे विष खा कर मृत्युमुखमें पतित होना इसे यदि कोई अव्यभिचारिरूपसे लक्ष्य करे अर्थात् यदि देखे कि राम, हरि, यदु, गोपाल तथा और दूसरोंने विष खा लिया है और वे मृत्युमुखमें पतित हुए हैं तो किसी दूसरेने वही विष खाया है ऐसा ज्ञान मनमें पर वह सहजमें कह सकेगा कि यह व्यक्ति भी मृत्युमुखमें पतित होगा। इस प्रकार विशेष घटनासे साधारण ज्ञानमें उपस्थित होनेका नाम इण्डकशन वा व्याप्ति (Induction) है। विष खानेसे राम, यदु और हरि मर गए हैं, अतएव गोपाल भी मरेगा तथा जो कोई विष खायगा वह भी मरेगा, इत्यादि घटनाके संख्यानुसारके ऊपर अनुमानके लिए निर्भर करना प्रकृत व्याप्तिमूलक अनुमानका स्वरूप नहीं है। केवल घटनासंख्या देख कर अनुमान करनेको बेकन (Bacon) संख्यामूलक व्याप्ति वा इण्डक्शन (Induction per enumerationem simplicem) कहते हैं। इस प्रकार अनुमान पदार्थ इण्डक्शन वा व्याप्तिपदवाच्य नहीं है। प्रत्येक ग्रहके पर्यवेक्षणके बाद यदि कहा जाय कि ग्रहमात्र ही सूर्यके आलोकसे आलोकित होता है, तो इस प्रकार सिद्धान्त 'इण्डकशन' द्वारा स्थिरीकृत हुआ है, ऐसा दिखानेसे भी यथार्थमें कोई अनुमानक्रिया साधित नहीं होता। कारण, प्रत्येक अनुमान ज्ञात विषयसे अज्ञात विषयमें ले जाता है (A process from the known to the unknown)। वर्त्तमानस्थलमें "ग्रहमात्र ही सूर्यके आलोकसे आलोकित होता है" यह सिद्धान्त एक अभिनव सिद्धान्त नहीं है वा अभिनव वस्तुके सम्बन्धमें भी आरोपित नहीं किया गया है, सभी ग्रहोंका पर्यवेक्षण करके उक्त सिद्धान्त पर पहुंच गया है, अतएव उक्त सिद्धान्त पदार्थके अनुमान नहीं है। (Not an inference properly so called)।

प्रकृत व्याप्तिका स्वरूप कैसा है, मिल तत्प्रणीत तार्किक ग्रन्थमें इसकी सविस्तर आलोचना कर गए हैं। यहां पर उनका मत संक्षेपमें लिखा जाता है।

मिलका कहना है कि स्वाभाविक नियमका अव्यभिचारित्व ही (Uniformity of nature) व्याप्तिकी भित्ति है। प्राकृतिक कार्यावली एक ही प्रक्रियाके अनुसार साधित होती है। नियमका अव्यभिचारी लक्षण यह है कि जगत्में जो घटना हो चुकी है वा हो रही है, ठीक उस प्रकार घटना परम्पराका समवाय है। वह घटना होगी ही और जितनी बार यह घटनासमवाय संघटित होगा उतनी बार घटनाका संघटन भी अवश्यम्भावी है। मनुष्य मरणशील है, इस सिद्धान्त पर हम लोग क्यों विश्वास करते? थोड़ा गौर कर देखिये तो व्याप्तिका याथार्थ्य स्थिरीकृत होगा। आज तक जितने मनुष्योंने हम लोगोंके सौ दो सौ वर्ष पहले जन्मग्रहण किया है, सभी मर चुके हैं। वर्त्तमान समयमें जिन्होंने जन्म लिया है उनमेंसे भी कितने मरे हैं; कोई देश क्यों न हो, दो सौ वर्षसे अधिक जीवित नहीं रह सकते। आज तक किसीको भी अमर हो कर रहता नहीं देखा गया है। इन सब विषयोंसे स्थिर किया जाता है कि मरण मानवजीवनका अव्यभिचारी धर्मविशेष है और उसका संघटन जीवनमें अवश्यम्भावी है। सुतरां जो सब मनुष्य वर्त्तमान समयमें जीवित हैं और जो भविष्यमें जन्मग्रहण करेंगे, सभी मरेंगे; इस प्रकारका सिद्धान्त अयुक्तिक नहीं है। यहां पर आज तक जितने मनुष्योंने जन्मग्रहण किया है सभी मर चुके हैं, अतएव सभी मरेंगे, ऐसा सिद्धान्त नहीं किया जाता। कारण, पुराकालमें जिन्होंने जन्म लिया है वे ही मरे हैं ऐसा कह कर जो वर्त्तमान हैं तथा जन्म लेंगे वे भी मरेंगे, इस प्रकारका सिद्धान्त अयुक्तिक है। क्योंकि जिन्होंने पहले जन्मग्रहण किया है, वे मरे हैं, अतएव जो भविष्यमें जन्मग्रहण करेंगे, वे भी मरेंगे ऐसा कोई नियम नहीं है। भविष्यत्कालमें मानव अमर हो सकते हैं, क्योंकि भविष्यत् जब दृष्टिके परपारमें है, तब उस समयकी बात किस प्रकार कही जा सकती है किन्तु अनुमानका यथार्थ तथ्य यही है। आज तक मानवजीवनको लक्ष्य करके देखा गया है कि मृत्यु उनका अवश्यम्भावी धर्म है। प्रकृतिका कार्य अव्य-

मिचारी है, जब तक वर्त्तमान घटनासमवाय रहेगा, तब तक क्रियाफल बन्द नहीं होगा। सुतरां जिस घटनासमवायमें मृत्यु संघटित होती है, वह जब तक रहेगा, तब तक मृत्यु होती ही रहेगी। कल सूर्य उदय होंगे ऐसा क्यों विश्वास करते? बहुकालसे सूर्य उदय होते आ रहे हैं, इसलिये कल भी उदय होंगे, इस प्रकार विश्वास करते हैं। क्योंकि जिस घटनापरम्परा संयोगसे सूर्योदय संघटित होता है, वह घटना परम्परा आज भी विद्यमान है, इसी कारण सूर्योदय होगा।

उपरोक्त प्रस्तावसे देखा जायगा कि व्याप्ति अनुमानको प्रयोजनीय अङ्ग नहीं है। अतीत वा वर्त्तमान समयमें होता है, अतएव भविष्यत्‌कालमें होगा, शुद्ध कालके ऊपर निर्भर करके इस प्रकार जिस सिद्धान्त पर पहुंचते हैं, वह सिद्धान्त निर्दोष नहीं है। इस प्रकारका अनुमान व्याप्तिस्वरूप निर्देश नहीं करता।

पहले कहा जा चुका है, कि स्वाभाविक नियमका अव्यभिचारित्व (Uniformity of Natre) व्याप्तिमूलक युक्तिको भित्ति है। सुतरां स्वाभाविक नियमकी व्यतिक्रमहीनता कैसी है तथा स्वाभाविक नियमावली (Laws of Nature) किसे कहते हैं, ये सब विषय मालूम होने पर उक्त अनुमानकी स्वरूपोपलब्धि होगी।

स्वभावके अव्यभिचारित्व सम्बन्धमें धारणा है कि स्वभावसे जो एक बार हो चुका है, वही पर्यायक्रमसे होता है। किन्तु स्वभाव यथार्थमें कुलालचक्रके सदृश वैचित्र्यहीन वस्तु नहीं है। एक वर्ष परवर्त्ती वर्षके ठीक अनुरूप नहीं है। इस वर्षमें जिस जिस दिन कोई घटना घटी है, दूसरे वर्ष उसी दिन उस प्रकारकी घटना घटेगी, ऐसा कोई स्वभाव निर्दिष्ट नियम नहीं है। पर हां, स्वाभाविक कितनी घटना बिलकुल नियमविरुद्ध भी नहीं है। रात्रि, दिन, ऋतु और संवत्सर पर्यायक्रमसे आ और जा रहा है। यथार्थमें देखनेसे मालूम पड़ेगा कि वैचित्र्यके साथ नियमका संमिश्रण ही प्रकृतिका स्वरूप है। प्रकृतिके इस वैचित्र्यके मध्य अनुमानके उपदान स्वरूप व्यतिक्रमराहित्य (Uniformity)-का निर्वाचन करना होगा। प्राकृतिक नियमावलीका स्वरूप कैसा है, वह दो एक सदोष अनुमान द्वारा स्पष्टीकृत हो जाएगा। अष्टादश शताब्दी पहले अफ्रिकावासी समझते थे कि मनुष्यमात्र ही कृष्णवर्णके होते हैं, क्योंकि उन्होंने कृष्णवर्ण व्यतीत अन्य किसी वर्णके मनुष्यको उस समय तक नहीं देखा था। उनके निकट इस प्रकार अभिज्ञताका अव्यभिचारित्व रहने पर भी सिद्धान्तको निर्दोष नहीं कह सकते। कारण, मनुष्यमात्र ही कृष्णवर्णके नहीं होते, ये बहुतोंके नजर आते हैं। अतः जानना होगा कि सिद्धान्त यथायथ प्रतिपन्न नहीं किया गया। कुछ दिन पहले यूरोपियनोंकी धारणा थी कि हंसमात्र ही श्वेत हैं, अन्यवर्ण विशिष्ट हंस कभी उनके नयनगोचर नहीं हुए थे। सिद्धान्त उनकी अभिज्ञता द्वारा समर्थित होने पर भी परवर्त्ती घटना द्वारा अर्थात् अन्यान्य वर्णविशिष्ट हंसके अस्तित्व द्वारा प्रमाणित होता है कि सिद्धान्त निर्दोष नहीं है। किन्तु यदि कहा जाय, कि एक जातिका मनुष्य ऐसा है जिसका मस्तक स्कन्धदेशके नीचे अवस्थित है, तो यह बात असम्भव और अविश्वास्य-सी प्रतीत होती है। इस प्रकारका अविश्वास नितान्त युक्तिहीन नहीं है। कारण, संसारमें वैचित्र्य इतना अधिक है कि उससे अनुमानका विशेष व्याघात नहीं पहुंचता। कृष्णवर्णकी जगह श्वेतवर्णका होना उतना विस्मयकर नहीं है। किन्तु मस्तकका स्कन्धके नीचे होना बिलकुल असम्भव है। क्योंकि, वर्णवैचित्र्यकी अपेक्षा एतादृश आकृतिगत वैचित्र्य विरल है और शरीरविद्या (Physiology)की नियमावली भी उक्त सिद्धान्तका समर्थन नहीं करती।

इस प्रकार देखा जाता है कि किसी जगह एक विषयसे ही हम लोग निर्दोष अनुमानमें पहुंच सकते हैं और दूसरी जगह बहु अभिज्ञतासापेक्ष होने पर भी अनुमान यथायथ ग्रहण नहीं किया जा सकता। उक्त अनुमानका प्रकृत स्वरूप जान सकनेसे विषयकी मीमांसा पर पहुंच सकते हैं।

स्वभावका व्यतिक्रमराहित्य (Uniformity) कहनेसे व्यतिक्रमराहित्य नामक कोई साधारण नियम समझा

नहीं जाता। स्वभावके भिन्न भिन्न व्यापार जो विभिन्न नियमवशसे साधित होते हैं, वही नियम-समष्टि स्वभावको व्यतिक्रमराहित्य है (The uniformity in question is not properly uniformity but uniformities, Vide Mill's Logic, p. 206)। इस प्रकार नियमोंमेंसे (Uniformities) जो नियम अन्य नियमोंके अन्तर्भुक्त नहीं किये जाते वे नियम अत्यन्त साधारण हैं और जिन नियमोंके स्वीकार करनेसे अन्यान्य नियम प्रतिपन्न किये जा सकते, ऐसे नियमोंको प्राकृतिक नियमावली (Laws of Nature) कहते हैं। (Mill's Logic)। ज्योतिर्विद् केपलर (Kepler)ने ग्रहोंकी गतिका पर्यवेक्षण करते समय तीन नियमोंकी अवतारणा की है, उन तीनों नियमों (Kepler's Laws)को उस समय मूल (Ultimate) नियममें गिनती होनेसे वे प्राकृतिक मूल नियम (Laws of Nature) समझे जाते हैं। इसके अनन्तर बहुत खोजके बाद यह स्थिर हुआ कि वे तीनों नियम प्राकृतिक आदि नियम नहीं हैं, गतिके नियम (Laws of Motion) के अन्तर्गत नियमत्रयमात्र हैं।

प्राकृतिक नियमावली साधारणतः दो भागोंमें विभक्त है, कार्यकारण सम्बन्ध (The Law of ausation) और समावस्थान सम्बन्ध (The Law of Co-existence)। मिलने तदीय इण्डक्टिभ लाजिकके भित्तिभागको कार्यकारणमूलक नियम (the Laws of Causation) के ऊपर सन्निविष्ट किया है। अभिज्ञतावादी दार्शनिकगण (Empirical or Experimental School) कार्यकारण ज्ञानको साधारणः पौर्वापर्य मतवाद (Succession Theory) कहते हैं। अज्ञेयवादी ह्यूम (David Hume)से यह मत प्रवर्त्तित हुआ है। ह्यूमका कहना है, कि हम लोगोंका कार्यकारणज्ञान पौर्वापर्यज्ञानके सिवा और कुछ भी नहीं है। पूर्ववर्त्ती घटना (Antecedent, event or cause) केवल परवर्त्ती घटना (Consepuent or effect)की सूचना करती है इसके सिवा कारण किस प्रकार क्रियाका उत्पादन करता है, उसे जाननेकी क्षमता हम लोगोंमें नहीं है। इन सब पूर्ववर्त्ती घटनाओंमेंसे कौन प्रकृत कारण (Real cause) है, इस विषय में मिलने कहा है कि अव्यभिचारी अन्यसापेक्ष (Not conditioned by others) पूर्ववर्त्ती घटना ही कारण पदवाच्य है (Cause may be defined to be the antecedent, or the concurrence of antecedents, on which the effect is invariably and unconditionally consequent)। पूर्ववर्त्ती सभी घटनाओंमेंसे एक ही घटना कारण होगी, सो नहीं, दो तीन घटनाके सहयोगसे क्रिया सम्पन्न होने पर सबोंको समष्टिको (Collective) कारण समझना होगा, किसीको अलग करनेसे काम नहीं चलेगा। बन्दूकके शब्दका कारण बन्दूक निहित बारूद है, अग्निसंयोग, बन्दूक और इन सबका संयोगकर्त्ता व्यक्ति कोई एक नहीं है, किन्तु इन सबका एकत्र संयोग है। इस प्रकार कार्यकारण सम्बन्धको लगा प्रकृत व्याप्तिमूलक अनुमानक्रिया साधित होती है। एक कार्यकारण सम्बन्धका निर्णय कर सकनेसे वहां पर अनुमान निर्दोष होगा, कारण कार्यकारण-सम्बन्ध अव्यभिचारी है।

किसी घटनाका कारण निर्देश करनेमें किस प्रकार पूर्ववर्त्ती अवान्तर घटनाओंको छोड़ कर प्रकृत कारण निर्देश किया जा सकता है, इस विषयमें चार नियम दिये गये हैं जिन्हें व्याप्ति सूत्र (Canons of Inductive or four Experimental methods) कहते हैं। विस्तार हो जानेके भयसे इन सबका विवरण न देकर केवल अनुमान अंशका यत्किञ्चित् आभास दिया जाता है। इसके बाद तर्कशास्त्रमें दूसरे कौन कौन विषय सन्निविष्ट हैं उन्हें उल्लेख मात्र किया जायगा।

व्याप्तिके सूत्र चार हैं—(१) सामान्यसम्बन्धनिर्देश प्रणाली (Method of agreement), (२) पार्थक्यसम्बन्ध निर्देशप्रणाली (Method of difference), (३) कार्यकारणके साहचर्य सम्बन्ध निर्देशप्रणाली (Method of concomitant variation) और (४) अवशिष्ट विषयको सम्बन्धनिर्णयप्रणाली (Method of Residues)। Mill's Logic देखो।

तर्कग्रन्थमें सन्निविष्ट अन्यान्य विषयोंमें अभ्युपगम सिद्धान्त प्रणाली (The theory of Hypothesis), सम्भाव्ययुक्ति (Calculation of chance), साश्य

ज्ञान (Analogy) किस प्रकार अनुमानको सहायता करता है उस विषयका, कार्यकारणज्ञानका प्रमाण—(Of the Evidence of the Law of Universal causation) सम्भावस्थानमूलक नियमावली और इन सब नियमोंका कार्यकारणज्ञानके ऊपर अनिर्भरत्व (Of Uniformities of Co-existence not dependent on causation) तथा प्रकृतिको अवान्तर नियमावली आदिका उल्लेख है। पीछे व्याप्तिमूलक अनुमान किस किस विषयके ऊपर निर्भर करता है उसका भी उल्लेख है। घटनावलीका यथायथ दर्शन और वर्णन (Observation and Description), दार्शनिक भाषा की आवश्यकता और उसके प्रति क्या क्या प्रयोजन है (Requisites of a Philosophical Language), श्रेणीविभागकी आवश्यकता और तत्‌प्रणाली (Classification as subsidiary to Induction) आदिका उल्लेख है।

बाद हेत्वाभास (Fallacies) आलोचित हुआ है। हेत्वाभासका स्वरूप कैसा है, कितने प्रकारका हेत्वाभास है। (Classification of fallacies); सामान्यज्ञानमूलक हेत्वाभास (Fallacies of simple inspection); अभिज्ञतामूलक हेत्वाभास (Fallacies of Observation) सामान्यतोदृष्ट हेत्वाभास (Fallacies of generalisation) निगमनमूलक हेत्वाभास (Fallacies of Ratiocination) और अस्पष्ट ज्ञानमूलक हेत्वाभास (Fallacies of Confusion) इत्यादि विषयोंका उल्लेख है।

इसके अनन्तर न्यायानुमत नियमावलीका प्रयोग दिखलाया गया है। मनस्तत्त्व नीतिज्ञान (Moral Science समाज-विज्ञान (Social Science) आदि विभिन्न शास्त्रोंकी आलोचना किस प्रकार न्यायानुगत पद्धतिका अनुसरण करती है उसकी आलोचना इसके मध्य सन्निविष्ट है। इसी कारण उक्त दार्शनिकोंने चार पन्थों या पद्धतियोंका उल्लेख किया है—प्रत्यभिज्ञामूलक पन्था (Chemical on experimental method), गणितविज्ञानमूलक पन्था (Geometrical or Abstract method) विषयमूलक निगमनप्रणाली (Concrete Deductive method or physical method), विपरीत निगमनप्रणाली (Inverse deductive method) इत्यादि।*

७ युक्तिमूलक दृष्टान्त विशेष। जिन सब दृष्टान्तोंमें नाना प्रकारकी युक्ति प्रदर्शित हुई हैं उन्हें न्याय कहते हैं। यह न्याय कई प्रकारका है। इसे लौकिक न्याय कहते हैं। इस लौकिक न्यायमेंसे कितनेके नाम, लक्षण और प्रमाण लिखे जाते हैं।

१ अजाकृपाणीयन्यायः।

अजा छाग और कृपाण अस्त्रविशेष, तत्तुल्य न्याय। अजागमनकालीन हठात् कृपाणके पतनसे यह न्याय हुआ करता है अर्थात् कृपाण उठा हुआ था, इसी बीच एक छाग आ रहा था। दैवक्रमसे वह कृपाण छागके गले पर गिर पड़ा जिससे छाग कट गया। दैवक्रमसे छाग पर कृपाण गिरा, इस कारण इसे अजाकृपाणीय न्याय कहते हैं। जहां पर दैवक्रमसे कोई विपत्ति उपस्थित हो कर अनिष्टको सूचना करती है, वहां पर इस न्यायका दृष्टान्त हो सकता है।

२। अजातपुत्रनामोत्कीर्त्तनन्यायः।

अजातपुत्र, जिसके पुत्र नहीं हुआ है, उसके पुत्रका नामकरण, तत्तुल्य न्याय। जिसके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ है, उसके पुत्रका नामकरण नहीं हो सकता। अतएव अजातपुत्र नामकरण मानो कुहकिनी आशाकल्पित है। उसी प्रकार जहां मनुष्य आशाके वशीभूत हो नाना प्रकारकी कल्पना करते हैं, वहां इस न्यायका दृष्टान्त हो सकता है। तात्पर्य यह कि भाविकार्यके निर्देशकी जगह ही इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है।

३। 'अधिकन्तु प्रविष्टं न च तद्धानिः' इति न्यायः।

जहां पर अधिक प्रविष्ट होनेसे उसकी हानि न हो, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। जैसे लौकिक

---

* जो पाश्चात्य तर्कशास्त्रका निगूढ़ मर्म जानना चाहते हों, वे निम्नलिखित ग्रन्थ देखें—Grote's Aristotle, Hamilton's Logic, Mansel's Logic, Bain's Logic. Venn's Empirical Logic, Venn's Logic of chane, Bosarquet's Logic, Bradley's Logic, Fowler's Logic, Jevon's & Whately's Logic &c.

प्रवाद है; 'अधिकन्तु न दोषाय' अधिक होनेसे दोषावह नहीं। ऐसे स्थान पर इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है। जैसे, किसी एक पूजामें दश हजार जप करने होंगे, किन्तु वहां पर १२ हजार जप हो गये हैं, इस न्यायके अनुसार वह दोषावह नहीं होगा।

४। अध्यारोपन्यायः।

अवस्तुमें वस्तुके आरोपको अध्यारोप कहते हैं। वेदान्तके मतसे सच्चिदानन्द, अद्वय ब्रह्म ही एकमात्र वस्तु है। ब्रह्मातिरिक्त सभी पदार्थ ही अवस्तु हैं। ब्रह्ममें मिथ्याभूत इस जगत्का आरोप करनेसे अध्यारोप हुआ है। जैसे रज्जुमें सर्पका और शुक्तिकामें रजतका आरोप, जिसप्रकार रज्जु और शुक्तिकाका याथार्थ्य-ज्ञान होनेसे मिथ्याभूत सर्पका ज्ञान दूर होता है, उसी प्रकार ब्रह्मका स्वरूप जान सकनेसे मिथ्याभूत जगत्का ज्ञान जाता रहता है। जिस अज्ञानवशतः ब्रह्ममें जगत्रूपकी भ्रान्ति होती थी, उस अज्ञानकी निवृत्ति होनेसे जगत्रूप मिथ्या ज्ञानकी भी निवृत्ति हुआ करती है। जहां पर किसी वस्तुमें अवस्तुका आरोप होगा, वहीं पर इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है। वेदान्त दर्शनमें इस न्यायका उल्लेख देखनेमें आता है।

५। अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्।

गृहादिका निर्माण न कर सर्पकी तरह परगृहमें सुखी हो जाता है। चूहे बड़े कष्टसे गृहादिका निर्माण करते हैं, किन्तु सर्प उसमें प्रवेश कर सुखसे वास करते हैं। इसका उद्देश्य यह है कि मुमुक्षु व्यक्तिको रहनेके लिये गृहादिका आडम्बर नहीं करना चाहिये।

६। अन्धकूपपतनन्यायः।

अन्धका कूप-पतन, तद्विषयक न्याय। कोई अन्धा साधुसे उपदिष्ट हो कर राहमें जा रहा था। किन्तु थोड़ी दूर जानेके बाद ही वह एक कुएँमें गिर पड़ा। अन्धा साधुका उपदेश लेकर जा रहा था सही, लेकिन अन्धता वशतः वह उपदेशके अनुसार चल न सका, कुपथसे जानेके कारण वह कूपमें गिर पड़ा था। वेदादिशास्त्रमें धर्मपथ निर्दिष्ट हुआ है, किन्तु हम लोग विषयान्ध हो कर शास्त्रनिर्दिष्ट पथसे विच्युत हो कूपपतनकी तरह नरकमें पतित होते हैं। तात्पर्य यह कि साधुने प्रकृत पथका निर्देश कर दिया था सही, लेकिन उनका अन्धको राह दिखलाना अच्छा न हुआ और अन्धको भी वह बात सुन कर जाना उचित न था। साधुने अनधिकारीको उपदेश दिया था जिसका फल हितकर न हो कर अहितकर हुआ। यदि वे अन्धेको उपदेश न दे कर आँखवालेको उपदेश देते, तो उनका उपदेश सफल होता। इस प्रकार अज्ञव्यक्ति सदुपदेशके रहते हुए भी अपथसे जाते और पतित होते हैं। अज्ञको सदुपदेश देना भी साधुका कर्त्तव्य नहीं है और देनेसे भी उसका फल नहीं होता।

७। अन्धगजन्यायः।

अन्धकर्त्तृक निर्द्धारित गज अर्थात् हस्ती तत्‌न्याय। कुछ जन्मान्ध मनुष्योंने एक आँखवालेसे पूछा था, 'हाथी कैसा होता है, उसका स्वरूप यदि कृपया बतला दें, तो बड़ा उपकार मानेंगे।" इस पर उस आदमीने उन्हें गजशाला ले जा कर हाथीका एक एक अवयव स्पर्श कराया और कहा, यही हाथी है। उन अन्धोंने हाथीका एक एक अङ्ग स्पर्श किया। उनमेंसे जिस जिसने जो जो अङ्ग स्पर्श किया था, उसने उसी उसी अङ्गको हाथी मान लिया। इस प्रकार हाथीके स्वरूपका निर्णय करके वे सबके सब घर लौटे। एक दिन हाथीका स्वरूप ले कर उनमें विवाद छिड़ा। जिसने हाथीका पद स्पर्श किया था, उसने कहा, हाथी स्तम्भाकार होता है; जिसने शुण्डका स्पर्श किया था उसने हाथीका आकार सर्पसा, जिसने उदर स्पर्श किया उसने ढाकसा; जिसने पुच्छ स्पर्श किया उसने गोलाङ्गुल-सा, जिसने कर्ण स्पर्श किया था उसने हाथीका आकार सूपसा बतलाया। इस प्रकार वे सब अपने अपने अनुमानका समर्थन करते हुए आपसमें झगड़ने लगे। इसी प्रकार जो ईश्वरके स्वरूपसे अवगत नहीं वे अन्ध हस्तिज्ञानकी तरह सामान्यज्ञानसे ईश्वरका निर्णय करनेमें आपसमें झगड़ते हैं। किन्तु कोई भी स्वरूप-निर्णय करनेमें समर्थ नहीं होते। यही इस न्यायका दृष्टान्त है।

८। अन्धगोलाङ्गुलन्यायः।

अन्धकर्तृक गृहीत गोलाङ्गूल, तद्विषयक न्याय। एक अन्धा अपने कुटुम्बके यहां जा रहा था। अन्धतावशतः वह एक घोर जङ्गलमें जा कर दीनभावसे बैठ गया किसी दुष्टमतिने वैसी अवस्थामें देख कर उसे पूछा, 'भाई! तुम कहां जाओगे?' इसपर अन्धेने अपने मनकी सब बातें कह दी। वह दुष्ट बोला, 'अब तुम्हें चिन्ता करनेकी कोई जरूरत नहीं, मैं एक गाय ला देता हूं उसीकी पूंछ पकड़ लेना, वह तुम्हें शहर तक पहुंचा देगी।' अन्धेने दुष्टमतिके उपदेशानुसार गायकी पूंछ पकड़ी और वह गाय ऊर्ध्वश्वाससे भागने लगी। इससे अपने अभीष्ट देश पहुंचनेकी बात तो दूर रही,बरन् उसे बड़ी विपत्ति उठानी पड़ी। इस न्यायका तात्पर्य यह है, कि मूर्खका उपदेश कदापि ग्रहण न करना चाहिये, ग्रहण करनेसे उक्त अन्धेके जैसा विपत्ति झेलनी पड़ेगी। वह अन्धा गोलाङ्गूल पकड़ कर बड़ी मुश्किलमें पड़ गया था, इस कारण इसका गोलाङ्गूलन्याय नाम पड़ा है।

९। अन्धचटकन्यायः।

अन्धकर्तृक गृहीत चटक, तत्तुल्य न्याय। एक समय एक चटक (गौरैया पक्षी) दैवात् किसी अन्धेके हाथ पर गिरा। अन्धेने उसे पकड़ लिया। इस पर अन्धेने एक चटक पकड़ा है, इस प्रकार प्रवाद हो गया। यदि हठात् किसी अभीष्ट वस्तुका लाभ होता है, तो वहां पर इस न्यायका उदाहरण हो सकता है। 'अजाकृपाणीय' न्याय और इस न्यायमें प्रभेद यह है कि जहां पर हठात् अनिष्ट होगा, वहां पर 'अजाकृपाणीय' न्याय और जहां अभीष्ट लाभ होगा वहां अन्धचटक न्याय होगा।

१०। अन्धपरम्परान्यायः।

अन्धपरम्परा—अन्धसमूहतत्तुल्य न्याय। एक अन्धेने दूसरे अन्धेको उपदेश दिया। उसने फिर तीसरे अन्धेको भी इसी प्रकार उपदेश दिया था। अन्धपरम्परासे प्रदत्त उपदेश जिस प्रकार प्रमाणरूपमें नहीं गिना जाता उसी प्रकार अज्ञका उपदेशसमूह भी प्रमाणित नहीं माना जा सकता है।

अन्यविध—संयोबद्ध अन्धोंमें यदि एक अन्धा गड्ढेमें गिर जाय, तो सभी एक एक कर गड्ढेमें गिर जायंगे, कोई भी आगे पीछेका विचार नहीं करेगा।

११। अन्धस्यैवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे इति न्यायः।

अन्धलग्न अन्धको पद पदमें विपत्ति उठानी पड़ती है। एक अन्धा यदि दूसरे अन्धेका अवलम्बन हो, तो प्रतिपदमें विपत्तिकी सम्भावना रहती है। जहां पर दोनोंको ही विपत्ति उठानी पड़े, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

१२। अन्धपङ्गुन्यायः।

अन्ध और पङ्गु तत्तुल्य न्याय। एक अन्धा और एक लंगड़ा आदमी था। इन दोनोंमेंसे अकेला कोई भी कार्य नहीं कर सकता, लेकिन यदि दोनों मिल कर कार्य करें, तो सभी काम सम्पन्न हो सकते हैं। लंगड़ा यदि अन्धेके कन्धे पर चढ़ जाय, तो दोनोंके संयोगसे भारीसे भारी काम साबित हो सकता है। सांख्यदर्शनमें इस न्यायका उदाहरण इस प्रकार लिखा है—

प्रकृति और पुरुषके संयोगसे सृष्टि हुआ करती है प्रकृतिको अकेला कोई कार्य करनेकी शक्ति नहीं है, वह पुरुषके संयोगसे सृष्टि किया करती है। पुरुष जब प्रकृतिसे अलग हो जाता है, तब फिर सृष्टि नहीं होती। इसका और भी एक उपाख्यान इसप्रकार है। एक महापुरुषके चेतन्न नामक एक पङ्गु दास और प्रकृति नामक एक अन्धदासी थी। महापुरुषने एक दिन पङ्गु दाससे कहा, 'मैंने अपने संसारका भार तुम्हें दिया।' दूसरे दिन अन्धदासीको भी उन्होंने इसी प्रकार आज्ञा दी। पीछे खञ्जभृत्य प्रभुका इस प्रकार आदेश पा कर, 'मैं लंगड़ा हूं, किस प्रकार संसारका कार्य चला सकता' इस तरह चिन्ता करने लगा। अन्धदासी भी इसी प्रकार चिन्ता कर रही थी। इसी समय काकतालीय न्यायमें दोनोंका मिलन हो जानेसे तथा एक दूसरेके विषयसे अवगत हो कर दोनोंने एक तरकीब निकाली। पङ्गुदास अन्धदासीके कन्धे पर चढ़ गया और इस प्रकार परस्परकी सहायतासे दोनों प्रभुके आज्ञानुसार महापुरुषके संसारके सभी काम करने लगे।

१३। अपवादन्यायः।

अपवाद तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार रज्जुविवर्त्त सर्पका अर्थात् रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे पीछे भ्रम-

नाश होने पर सर्पज्ञानका उच्छेद हो केवल रज्जुमात्र रहती है, उसी प्रकार वस्तुविवर्त्त अवस्तुका अर्थात् सच्चिदानन्द ब्रह्म वस्तुमें अज्ञानादि जड़प्रपञ्च जो भ्रम है उसका नाश होनेसे पश्चात् ब्रह्ममात्रकी अवस्थिति होती है, इसीको अपवाद न्याय कहते हैं। "अपवादो नाम रज्जुविवर्त्तस्य सर्पस्य रज्जुमात्रत्ववत्, वस्तुविवर्त्तस्य अवस्तुनः अज्ञानादेः प्रपञ्चस्य वस्तुमात्रत्वम्।" (वेदान्तसार)

वेदान्तसारमें इस न्यायका उक्तरूप लक्षण निर्दिष्ट हुआ है इस न्यायका तात्पर्य है कि अधिकरणमें भ्रान्तिरूपमें प्रतीयमान वस्तुके यथा—स्थाणुमें भ्रान्तिरूपमें प्रतीयमान पुरुषके स्थाण्वादि अतिरिक्त द्वारा जो अभाव निश्चय है, उसे अपवाद कहते हैं। इसे और भी कुछ बढ़ा चढ़ा कहते हैं। एक प्रकारकी वस्तुके अन्य प्रकार को होनेसे वह विवर्त्त है। दुग्ध दधि होता है, यह दुग्ध का विकार जानना होगा, रज्जु सर्पाकारमें प्रतीत होती है, यह विवर्त्त है। जगत् ब्रह्मका विकार नहीं है। यह दृश्य जगत् इन्द्रजाल सरीखा है। तात्त्विक सत्ताशून्य अर्थात् मिथ्या है। ब्रह्ममें जगतरूपमें अभाव निश्चय हो अपवाद है। यथार्थमें जगत् सत्य नहीं है, ब्रह्म ही एक मात्र सत्य है। ब्रह्ममें प्रतीत जो यह जगत् है उसका अभाव निश्चय अर्थात् बाध है, यह तीन प्रकारसे दूर होता है। यथा—श्रौत, यौक्तिक और प्रत्यक्ष। नेति नेति' 'नानास्ति किञ्चन' यह नहीं है, यह नहीं है, तदतिरिक्त और कुछ भी नहीं है इत्यादि श्रुतिमें कहा गया है इसे श्रौतबाध कहते हैं। कनकादिके अभावमें जिस प्रकार कटकादिके अभावका बोध होता है, उसी प्रकार निखिल कारण ब्रह्मातिरिक्तमें निखिल-प्रपञ्चका अभाव हुआ करता है, यह यौक्तिबाध है और रज्जुमें सर्पका भ्रम होनेसे यह रज्जु नहीं सर्प है, इस प्रकार उपदेश द्वारा जिस तरह भ्रमके तिरोहित होनेसे रज्जुका ज्ञान जाता रहता है, उसी प्रकार तत्त्वमस्यादि शास्त्रजनित मैं चैतन्यस्वरूप हूं इस प्रकार बोध होनेसे प्रपञ्चरूपसे अभावनिश्चय होता है, इसको प्रत्यक्षबाध कहते हैं।

१४। अपराह्णछायान्यायः।

अपराह्णकालीन छाया तत्तुल्य न्याय। जितना ही दिन ढलता जाता है, उतनी ही छाया बढ़ती जाती है। इसी प्रकार साधुओंका चाहना जितना ही शेष होता है, उतनी ही उसकी वृद्धि होती है।

१५। अपसारिताग्निभूतलन्यायः।

भूतलसे अग्नि हटाये जाने पर भी जिस प्रकार कुछ काल तक भूतलमें अग्निका उत्ताप रह जाता है, उसी प्रकार धनी धनसे विच्युत होने पर कुछ काल तक उसको धनोष्मा रहती है।

१६। अपथगामं तु गच्छन्तं सोदरोऽपि विमुञ्चति, इति न्यायः।

सहोदर भी यदि अन्याय स्थानमें जाय, तो सहोदर भी उसका परित्याग कर देता है। इस न्यायका तात्पर्य यह है कि अन्यायाचारी आत्मीय भी परित्याग करने योग्य है।

१७। अरण्यरोदनन्यायः।

अरण्ये रोदन, तत्तुल्य न्याय। अरण्यमें बैठ कर रोदन करनेसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार निष्फल कार्यमें इस न्यायका उदाहरण दिया जा सकता है कि जिस कार्यमें कोई फल नहीं है, वह कार्य परित्यागके योग्य है।

१८। अर्के मधुन्यायः।

अर्कमें मधुलाभ, तत्तुल्य न्याय। अर्कमें अर्थात् अर्क वृक्षमें यदि मधुलाभ हो, तो पर्वत पर जाना निष्प्रयोजन है। अर्कमें इसका पाठान्तर अक्के इस प्रकार भी है, 'अक्के' में अर्थात् घरके कोनेमें मधु मिल जानेसे दूर देश जाना बेकाम है। जो कार्य सहजमें सिद्ध हो जाय, उसके लिए आयास करनेका प्रयोजन ही क्या?

"अर्के (वब) चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्।
इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ को विद्वान् यत्नमाचरेत्॥"
(तर्ककौमुदी)

अल्पायाससाध्य कार्यमें पण्डितोंको कभी भी यत्न नहीं करना चाहिए। मतलब है कि "मक्खी मारनेमें कमानकी सजावट!" यहां पर यह इस न्यायका विषय हो सकता है।

१९। अर्द्धजरतीयन्यायः।

अर्द्धजरतीय—तत्तुल्य न्याय। एक वृद्ध ब्राह्मण दुर

वैसा़में पड़ जानेसे प्रति हाटमें अपनी गायको बेचने ले जाया करते थे। गाहकके गायकी उमर पूछने पर वह ब्राह्मण कहा करते थे कि यह गाय बहुत दिनकी है। बूढ़ी गाय समझ कर गाहक लौट जाते थे। ब्राह्मण प्रति हाटमें गाय ले जाते थे, किन्तु खरीददार उनकी बात सुन कर चले आते थे। इस प्रकार गाय किसीके हाथ न बिकी। एक दिन किसी ब्राह्मणने गोस्वामीसे आ कर कहा, 'महाशय! आप प्रति हाटमें गाय ले जाते हैं और फिर ले आते हैं, बेचते नहीं, इसका क्या कारण?' ब्राह्मणने जवाब दिया, 'मनुष्यको अधिक उमर होने पर लोग उसको प्राचीन समझ कदर करते और अधिक दे कर ग्रहण करते हैं, यही सोच कर मैं गौकी उमर अधिक दिनकी बतलाता हूं, इस पर कोई गाहक नहीं खरीदता, लौट जाता है। यही कारण है कि मैं प्रति हाटमें गौ ले कर घर वापिस आता हूं।' ब्राह्मणने उनका मनोभाव समझ कर कहा, 'आप फिर कभी नहीं इस गायको उमर अधिक दिनकी बतावेंगे, बल्कि कहेंगे कि यह हालकी बिआई गाय है, अधिक दूध देती है, ऐसा कहनेसे ही लोग इस पर लट्टू हो जांयगे और खरीद लेंगे।'

ब्राह्मण अपने मन ही मन सोचने लगे, 'मैंने पहले इसे बूढ़ा बतलाया है, अब किस प्रकार तरुणी कहूं।' अन्तमें उन्होंने स्वयं स्थिर किया कि यह गाय आत्मांश-में आत्मा वृद्ध पुरुष है, जरती है, शरीरांशमें तरुणी हो सकती है। अतएव इसे अर्द्धजरती बतला सकता हूं। इस प्रकार ब्राह्मणके तत्त्वविचार स्थिर कर चुकने पर किसी गाहकने आ कर गौका हाल पूछा। इस बार ब्राह्मणने कहा, 'मेरी यह गाय अर्द्धजरती और अर्द्ध-तरुणी है।' ब्राह्मणको विषयानभिज्ञ समझ कर गाहक-ने गाय खरीद ली। जहां पर वादी और प्रतिवादियों-का मत कुछ ग्रहण किया जाता है और कुछ नहीं ग्रहण किया जाता है वहां पर इस न्यायका उदाहरण होगा।

२०। अर्द्धं त्यजति पण्डितो न्यायः।

पण्डित व्यक्ति अर्द्धका परित्याग करते हैं, तत्तुल्य न्याय। यदि सभी वस्तुओंके नाशकी सम्भावना हो और वहां पर यदि अर्द्धका परित्याग करनेसे विपदसे उद्धार हो जाय, तो पण्डितगण वैसा ही करते हैं, सबोंको रखनेकी कोशिश नहीं करते।

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पण्डितः।" (चाणक्य)

२१। अशोकवनिकान्यायः।

अशोकवनिका, अशोकवनगमन, तत्तुल्य न्याय। अशोकवनमें जानेसे जिस प्रकार यथाभिलषित छाया और सौरभ पा कर अन्यत्र जानेकी इच्छा नहीं होती, उसी प्रकार यथेष्ट लाभ होने पर अन्यस्थानमें फिर जानेका अभिलाष नहीं होता, ऐसी जगहमें यह न्याय हुआ करता है।

२२। अश्मलोष्ट्रन्यायः।

अश्म-प्रस्तर, लोष्ट्र-ढेला, तत्तुल्य न्याय। रूईकी अपेक्षा ढेला कठिन है और ढेलेकी अपेक्षा पत्थर और भी कठिन है। जहां पर जिसकी अपेक्षा जिसका वैषम्य रहेगा, वहीं पर यह न्याय होगा। अश्म और लोष्ट्र अश्मने लोष्ट्रकी विषमता ही इस न्यायका उद्देश्य है। जहां पर जिसकी अपेक्षा जो लघु है, उसका विषय वर्णित होगा, वहां पर 'पाषाणेष्टक न्याय' होता है। पाषाण-से इष्टक लघु है, अतएव जहां पर जो लघु तदुद्देश्य होगा, वहां पर अश्मलोष्ट न्याय न हो कर पाषाणेष्टक न्याय होगा।

२३। असाधारण्येन व्यपदेशो भवन्तीति न्यायः।

असाधारणके द्वारा व्यपदेश होता है, तत्तुल्य न्याय। यथा—गौतमप्रणीत न्यायदर्शनमें प्रमाणादि षोडश पदार्थ निर्णीत हुए हैं। यद्यपि इस दर्शनके षोडश पदार्थोंका निरूपण ही प्रतिपाद्य विषय है, तो भी इसमें प्रमाण विशेषरूपसे दिखलाया गया है, इस कारण षोडश पदार्थोंके मध्य अन्य किसीका भी नाम न हो कर न्याय-दर्शन यही नाम हुआ है, अन्य सभी पदार्थ अप्राधान्य-रूपसे कथित हुए हैं। इस प्रकार जहां पर प्राधान्यरूप-से निर्देश होगा, वहां पर यह न्याय होता है।

२४। असम्भवानुचिन्तनं न्याय्यं भरतवत्।

जो युक्तियां असम्भव वा अनुपयोगी हैं, उनकी चिन्ता करनेसे भरतके समान होना पड़ता है। राजा

भरत दुःखपाय हो कर भी हरिणीको चिन्तामें आकृष्ट हो मुक्त न हो सके थे।

२५। अस्नेहदीपन्यायः।

अस्नेहदीप—तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार स्नेह-शून्य दीप थोड़े समयमें ही बुत जाता है, उसी प्रकार जहां शीघ्र अनिष्ट होनेकी सम्भावना है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

२६। अहिकुण्डलन्यायः।

अहिकुण्डल—सर्प वलय तत्तुल्य न्याय। सर्पोंकी कुण्डलाकृति वेष्टन जिस प्रकार स्वाभाविक है, उसी प्रकार जहां पर किसी स्वभावसिद्धविषयका कथन हो वहां पर यह न्याय होता है।

२७। अहिनकुलन्यायः।

अहि और नकुल, तत्तुल्य न्याय। सांप और नेवल जिस प्रकार स्वाभाविक शत्रु हैं, उसी प्रकार जहां पर स्वाभाविक विवादका विषय कहा जाता है, वहां पर यह न्याय होता है। यथा—काकोलूक।

२८। अहिनिर्ल्वयनीवत्।

सर्प निर्मोकको तरह स्नेह नहीं करना चाहिये। सांपके निर्मोक (केंचुल) छोड़ देने पर भी वह ममता-प्रयुक्त स्थानको छोड़ नहीं सकता। किसी आहितुण्डिक (संपेरिया)ने उस केंचुलका अनुसरण करके उसे पकड़ा था। तात्पर्य यह कि किसी वस्तु पर स्नेह, ममता नहीं रखनी चाहिये और बहुकालोपभुक्त प्रकृत-को हेय जान कर छोड़ देना चाहिये।

२९। आकाशापरिच्छिन्नत्व न्यायः।

आकाश जिस प्रकार अपरिच्छिन्न है, उसी प्रकार जहां पर अपरिच्छिन्न वस्तुका वर्णन होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

३०। आदावन्ते वा इति न्यायः।

यह कार्य पहले अथवा पीछे करो, जहां पर इस प्रकारके कार्यको पहले वा पीछे करनेसे कार्यकी सिद्धि होती है, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है।

३१। आभाणकन्यायः।

लौकिक प्रवाद तत्तुल्य न्याय। लोकप्रसिद्ध कथन-को आभाणक कहते हैं, यथा—इस ग्रामके अमुक वट वृक्ष पर भूत रहता है, ऐसा लोकप्रवाद है। इस प्रकार जनप्रवादमूलक विषय जहां पर कहा जाता है, वहां पर यह न्याय होता है।

३२। आम्रवणन्यायः।

आम्रवण, ततुल्य न्याय। किसी काननमें बहुतसे वृक्ष हैं जिनमेंसे आम्रवृक्षकी संख्या ही अधिक है। कानन-में दूसरे दूसरे वृक्ष भी हैं, पर आम्रवृक्षकी संख्या अधिक रहनेसे वनका नाम आम्रवन पड़ा है। इस प्रकार प्रधानरूपमें जो विषय वर्णित होगा, इस न्यायके अनुसार उसीका निर्देश होगा।

३३। आयुर्घृतमिति न्यायः।

घृत ही एक मात्र आयु है अर्थात् घी खानेसे आयुकी वृद्धि होती है। इस प्रकार जहां मङ्गल हो, ऐसे विषयको कहे जानेसे यह न्याय हुआ करता है।

३४। इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः।

एकाग्र रह सकनेसे इषुकारकी तरह समाधिच्युत होना नहीं पड़ता। इषुकार जिस प्रकार एकाग्रसमय-में समीपवर्त्ती राजाको भी देख न सके थे, उसी प्रकार समाधिस्थ पुरुष भी एकाग्रताकालमें जगत् नहीं देख सकते हैं।

३५। उत्पाटितदन्तनागन्यायः।

उत्पाटित दन्तनाग अर्थात् सर्प, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार सांपके दांत तोड़ देनेसे उसमें और कोई क्षमता नहीं रहती, केवल गर्जन मात्र रहता है, उसी प्रकार जिसके कार्यमें कोई क्षमता नहीं है अथच गर्जन है। ऐसे स्थल पर यह न्याय हुआ करता है। प्रवाद भी है कि दांत उखाड़ा हुआ सांप। लोग यह भी कहा करते हैं तुम्हारे विषदांत तोड़ दिये गये, अर्थात् तुममें और कोई क्षमता न रही, छीन ली गई।

३६। उदकनिमज्जनन्यायः।

जलमें डूबना, तत्तुल्य न्याय। उदकनिमज्जन एक प्रकारकी विद्या है। पापाने पाप किया है या नहीं, इसकी सत्यता और असत्यता जाननेके लिये पापी जलमें डुबोया जाता है और उसे कहा जाता है कि तुम जलके अन्दर रहो। इधर मैं तीर छोड़ता हूं, जब तक वह तीर लौट न आवे तब तक तुम उसी हालतमें रहना। तीर

आनेके पहले यदि तुम्हारा कोई अङ्ग दीख पड़े, तो तुम दोषी और यदि न दीख पड़े तो निर्दोषी समझे जाओगे। जहां पर सत्यासत्य विषय कथित होगा, वहां पर यह न्याय होता है।

३७। उपयन् अपयन् धर्मो विकरोति हि धर्मिणमिति न्यायः।

उपगत और अपगत धर्म धर्मीको विकृत करता है, तत्तुल्य न्याय। अर्थात् जहां पर धर्मीके पूर्व धर्मका अपगत होनेसे अन्य धर्मकी उत्पत्ति होती है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

३८। उपवासाद्वरं भैक्ष्यमिति न्यायः।

उपवाससे भिक्षा श्रेष्ठ है, भिक्षावृत्ति क्लेशजनक है, सही, पर उपवासमें जो क्लेश होता है उससे भिक्षाका क्लेश कम है। इस प्रकार जहां पर अधिक क्लेशकर विषय अल्प क्लेशकर विषय उपदिष्ट होगा, वहां पर यह न्याय होता है।

३९। उभयतः पाशरज्जुन्यायः।

दोनों ओर ही बन्धन रज्जु है, जिस ओर जांयगी उसी ओर बंध जांयगी। इस प्रकार जहां पर सभी पक्ष दुष्ट हो, वहां यह न्याय होगा।

४०। ऊषरवृष्टिन्यायः।

मरुभूमिमें वृष्टि होनेसे जिस प्रकार कोई फल नहीं होता, उसी प्रकार जिस कार्यमें कोई फल नहीं वहां यह न्याय हुआ करता है।

४१। उष्ट्रकण्टकभक्षणन्यायः।

ऊँट जिस प्रकार कांटा खाता है, खाते समय तो वह कांटा बहुत दुःख देता है, पर जब पेटके अन्दर चला जाता, तब किञ्चित् मात्र सुख होता है, उसी प्रकार जहां बहुत कष्ट उठा कर थोड़ा सुख प्राप्त हो, वहां पर यह न्याय होता है। मानव अकिञ्चित्कर सुखके लिये बहुतर कष्ट उठाते हैं।

४२। ऋजुमार्गेण सिध्यतोऽर्थस्य वक्रेण साधनायोग इति न्यायः।

जब सरल पथसे कार्य सिद्ध हो जाय, तो वक्रपथसे जानेकी क्या जरूरत? अर्कमधुन्यायके साथ इस न्यायका सादृश्य है।

४३। एकदेशविकृतमनन्यवद्भवति इति न्यायः।

एक देशका विकृत अनन्यवत् हुआ करता है, तत्तुल्य न्याय। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

४४। एकं सन्धित्सतोऽपरं प्रच्यवत इति न्यायः।

एक ओर सन्धान करने जाय और दूसरी ओर भङ्ग हो, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार कांसेके भग्न बरतनको एक ओर जुड़ाते समय दूसरी ओर आगकी गरमीसे भग्न हो जाता है, उसी प्रकार एक उपकार करनेमें साथ साथ एक अपकार भी करना पड़ता है; ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है। उदयनाचार्यने कुसुमाञ्जलि और बौद्धधिक्कारमें इस न्यायका उदाहरण दिया है।

४५। एकवाक्यतापन्नानां सम्भूयैकार्थं प्रतिपादकत्वमिति न्यायः।

एक वाक्यतापन्न वाक्य मिल कर जिस प्रकार एक अर्थका प्रतिपादक होता है, उसी प्रकार जहां पर मिल कर कोई काम किया जाता है वहां पर यह न्याय होगा।

४६। एकसम्बन्धिज्ञानमपरसम्बन्धिस्मारकमिति न्यायः।

जिस प्रकार हाथीका दर्शन होनेसे अपर सम्बन्धी माहुतका स्मरण होता है, उसी प्रकार जहां पर एक सम्बन्धीका ज्ञान होनेसे अपर सम्बन्धीका ज्ञान होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है।

४७। एकाकिनी प्रतिज्ञा हि प्रतिज्ञातं न साधयेदिति न्यायः।

केवल प्रतिज्ञा प्रतिज्ञात वस्तुका साधन नहीं कर सकती। प्रतिज्ञादिपञ्चक अर्थात् प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, निगमन और उपनय यही पांच कार्य साधन करते हैं। प्रतिज्ञामात्रसे अर्थसिद्धि असम्भव है, इस कारण हेत्वादिकी अर्थसिद्धिके लिये आवश्यक है, ऐसा जहां होता है, वहां यह न्याय हुआ करता है।

४८. एकामसिद्धिं परिहरतो द्वितीया आपद्यते इति न्यायः।

एक विपद्से उद्धार लाभ करनेमें दूसरी विपद् आ खड़ी होती है। जहां पर एक दुःखसे उद्धार मिल जाय पर दूसरा दुःख उपस्थित हो जावे, वहां पर यह न्याय होता है।

"एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे।"

यही उदाहरण है।

४९। औपाधिकाकाशभेदन्यायः।

औपाधिक आकाशभेद, तत्तुल्य न्याय। जैसे एक आकाश उपाधिभेदसे अनेक है, यथा—घटाकाश, पटाकाश इत्यादि। किन्तु इन सब उपाधियोंके तिरोहित हो जानेसे केवल एक आकाश बच जाता है। इस प्रकार जहां पर एक वस्तु आधारभेदसे अनेक होती है, वहां पर यह न्याय होता है।

"घटसंवृत आकाशे नीयमाने यथा पुनः।
घटो नीयेत नाकाशं तद्वद् जीवो नभोपमः॥" (श्रुति)

एक ही चैतन्य सब जीवोंमें विराजमान हैं। वही एक अखण्ड चैतन्य ब्रह्म हैं। यह अनन्त ब्रह्मचैतन्य उपाधि भेदसे अर्थात् आधार देहादि भेदसे विभिन्न हो कर अनेक हुआ करते हैं। वस्तुतः वह अभिन्न है, विभिन्न नहीं। उपाधिके अन्तर्हित होनेसे ही वे एक हैं अनेक नहीं।

५०। कण्ठचामीकरन्यायः।

कण्ठस्थित सुवर्णभूषण, तत्तुल्य न्याय। सुवर्ण-हार तो गलेमें है, पर भ्रमवश हार खो गया है इस ख्यालसे चारों ओर उसको तलाश करते हैं। इस प्रकार जहां वस्तु है, अथच भ्रमवशतः नष्ट हो गई है, यह समझ कर दुःखानुभव होता है, पीछे भ्रम मालूम हो जाने पर सुख होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। इसका उदाहरण वेदान्तमें इस प्रकार लिखा है— स्वतःसिद्ध ब्रह्मात्मक जीव जो अज्ञानवशतः स्वयं सुख दुःख शून्य जान कर अज्ञानवशतः दुःख भोग करता है, पीछे जब तत्त्वमसि प्रभृति वाक्यज आत्मसाक्षात्कार होता है, तब भ्रमवशतः जो दुःख था, वह तिरोहित हो जाता है।

५१। कदम्बगोलक न्यायः।

गोलाकार कदम्बपुष्प जिस प्रकार अपने समस्त अवयवोंमें एककालीन पुष्पोद्गम होता है, उसी प्रकार जहां पर समस्त प्रदेशोंमें एककालीन कार्यप्रवृत्ति होती है, वहां यह न्याय हुआ करता है। कदम्बगोलकमें सभी पुष्प एक ही समय निकलते हैं।

५२। कफोनिगुड़न्यायः।

केहुनीमें गुड़ नहीं रहने पर भी गुड़ है ऐसा समझ कर उसे चाटना, तत्तुल्य न्याय। जहां पर वस्तु नहीं है अथच उस वस्तुकी प्रत्याशामें काम ठान दिया जाता है, वहां पर यह न्याय होता है।

५३। करकङ्कणन्यायः।

कङ्कण यह शब्द कहनेसे ही करभूषणका बोध होता है। कर यह शब्द निष्प्रयोजन है, किन्तु करकङ्कण यह शब्द कहनेसे करसंलग्न कङ्कण समझा जायगा, तत्तुल्य न्याय। इस प्रकार जहां पर कहा जायगा, वहां पर यह न्याय होता है।

५४। काकतालीयन्यायः।

काकगमनकालमें तालपतन तत्तुल्यन्याय। एक तालफलके ऊपरसे किसी काकके उड़ते समय यदि ताड़ गिर जाय, तो लोग अनुमान करेंगे कि कौवेने ही ताड़ गिराया है। किन्तु यथार्थमें वह नहीं है, तालका पतनसमय होनेसे ही वह गिरा है। कोई एक पथिक क्षुधासे कातर हो तालवृक्षके नीचे बैठ कर कुछ सोच रहा था, इसी बीचमें ऊपरसे एक ताल गिरा और उसने उसीसे अपनी भूखको निवृत्त करना चाहा। उस वृक्ष पर पक्वतालके ऊपर पहले एक काक बैठा था, वह काक उसी समय उड़ गया, बाद एक ताल नीचे गिरा। इससे पथिकका अभीष्ट सिद्ध हुआ। पथिकने 'काक और ताल'का व्यापार देख कर समझा, कि काकके उड़नेसे ही ताल गिरा है, किन्तु यथार्थमें काक अन्य किसी कारण-वश उड़ गया है और पतनकाल उपस्थित होनेसे ताल गिरा है। तालपतनके प्रति काकगमन कारण नहीं होने पर भी आपाततः कारण समझा गया। इसीको काक-तालीयन्याय कहते हैं।

जहां पर इस प्रकारकी घटना होती है, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है। अतर्कित भावमें इष्ट वा अनिष्ट होनेसे ही यह न्याय होता है।

"यदतया मेलनं यत्र लाभो मे यश्च सुभ्रुवः।
"तदेतद् काकतालीयमवितर्कितसम्भवम्॥"
(चन्द्रालोक)

५५। काकदध्युपघातकन्यायः।

काकसे दधिकी रक्षा करो, इस प्रकार एक आदमीको उपदेश दिया गया, 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' इससे यह समझा गया कि काकसे दधिकी रक्षा करो, केवल यही नहीं, जो कोई जन्तु दधि नष्ट करे, उसोको निवारण करना होगा। काक पद लक्षणापद है, जहां पर ऐसा होगा, वहीं पर यह न्याय हुआ करता है।

५६। काकदन्तगवेषणान्यायः।

काकके दन्त हैं वा नहीं और वे सब दन्त शुक्ल हैं वा कृष्ण यह अन्वेषण जैसा निष्फल है वैसा ही जहां जिसका अन्वेषण निष्फल होता है, वहां यह न्याय हुआ करता है।

५७। काकमांसं शुनोच्छिष्टं स्वल्पं तदपि दुर्लभमिति न्यायः।

एकतो कौएका मांस, दूसरे कुत्तेका जूठा, स्वल्प और अति दुर्लभ, तत्‌लक्षन्याय। जहां पर अति निकृष्ट और अति तुच्छ वस्तु भी दुर्लभ होती है, वहां यह न्याय होता है।

५८ काकाक्षिगोलकन्यायः।

काकका एक चक्षु जिस प्रकार प्रयोजनानुसार उभयचक्षुगोलकमें सञ्चार होता है, उसी प्रकार जहां एक पदार्थको उभयस्थलमें सम्बन्धविवक्षा होती है, वहां यह न्याय हुआ करता है।

५९। कारणगुणप्रक्रमन्यायः।

कारणगुण कार्यमें संक्रमित होता है, तत्सूचक न्याय। "कारणगुणाः कार्यगुणमारभन्ते" कारणका गुण सजातीय कार्यप्रवर्त्तक होता है, यथा—तन्तुका रूपादि सजातीय पटमें हुआ करता है, इसी जगह यह न्याय होता है।

६०। कारयितुः कर्त्तृत्वन्यायः।

जो कार्य कराते हैं, वे ही कर्त्ता हैं, तत्सूचक न्याय। कार्य स्वयं नहीं करने पर भी दूसरे द्वारा करानेसे इस न्यायके अनुसार उनका कर्त्तृत्व सिद्ध होता है, जैसे युद्ध तो राजाकी सैन्यादि करती है, पर हार जीत राजाकी होती है। सांख्यके मतसे पुरुष कोई कार्य नहीं करता, बुद्धि ही करती है, तथापि पुरुषका कर्त्तृत्व व्यपदेश हुआ करता है।

६१। कार्येण कारणानुमानन्यायः।

जहां पर कार्य द्वारा कारणका ज्ञान होता है, वहां पर यह न्याय हुआ करता है। जैसे—धूम द्वारा वह्निका ज्ञान, वृक्ष द्वारा बीजका ज्ञान इत्यादि।

६२। कुशकाशावलम्बनन्यायः।

सन्तरणसे अनभिज्ञ व्यक्ति यदि नदीमें पड़ कर कुश वा काशका अवलम्बन करे, तो यह जिस प्रकार उसके पक्षमें निष्फल होता है, उसी प्रकार प्रबलयुक्तिके निराकृत होने पर दुर्बलयुक्तिका अवलम्बन करनेसे यह निष्फल होता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

६३। कूपखानकन्यायः।

जो मनुष्य कूप खनन करता है उसके शरीरमें कर्दम लग जाता है, पीछे जब कूपसे जल निकलता है, तब उस जलसे वह कर्दम दूर हो जाता है। इसी प्रकार विग्रहावच्छिन्न ईश्वरभेद बुद्धि। अर्थात् भगवान् रामरूपधारी हैं, कृष्णरूपी हैं इस तरह हम लोगोंकी जो भेदबुद्धि है और यह भेद बुद्धिजनित जो दोष है, वह भगवान्‌की उपासना करते करते ही अद्वैतबोध हो जाता है, तब तज्जन्य दोष भी निराकृत होता है। ऐसी जगह पर यह न्याय हुआ करता है।

६४। कूपमण्डूकन्यायः।

समुद्रस्थित मण्डूकने एक दिन किसी कूपमण्डूकके विवरमें प्रवेश किया। कूपमण्डूकने उसे देख कर पूछा, 'तुम कहांसे आ रहे हो?' 'मैं समुद्रसे आ रहा हूं' समुद्रमण्डूकने जवाब दिया। इस पर कूपमण्डूकने पुनः उससे पूछा, 'समुद्र कैसा होता है?' जवाबमें समुद्रमण्डूकने कहा, 'बहुत लम्बा चौड़ा।' कूपमण्डूकने फिरसे कहा, 'इस कूपके जैसा?' समुद्रमण्डूकने उत्तर दिया, 'समुद्रसे बड़ा और कुछ भी नहीं होता, समुद्र सभी नदियोंका पति है।' यह सुन कर कूपमण्डूक बोला, 'तुम मिथ्या कह रहे हो, कूपसे बड़ा कोई भी नहीं है।' यह सुन समुद्रमण्डूक मन ही मन उसकी हंसी उड़ाने लगा। कूपमण्डूक समुद्रको न जान कर और उसकी महिमासे अवगत न हो कर जिस प्रकार उपहसनीय हुआ था, उसी प्रकार जो दूसरेके सिद्धान्तको न जान कर उसके ऊपर दोषारोपण

करते हैं, वे भी इसी प्रकार उपहासास्पद होते हैं। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

६५। कूपयन्त्रघटिकान्यायः।

कूपको अत्यन्त गभीर होने पर जिस प्रकार यन्त्रघटिका द्वारा उससे सहजमें जल निकाला जाता है, उसी प्रकार शास्त्रार्थ यद्यपि अत्यन्तदुर्बोध है, तो भी वह उपदेशपरम्परा द्वारा सहज हो जाता है। इसी स्थान पर यह न्याय होता है।

६६। कूर्माङ्गन्यायः।

कूर्म (कच्छप) जिस प्रकार अपने अङ्गका स्वेच्छापूर्वक सङ्कोच और विकाश कर सकता है, उसी प्रकार जहां पर जो इच्छापूर्वक सृष्टि और लय करते हैं, वहीं पर यह न्याय होता है।

"यथा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।" (गीता)

६७। कृते कार्ये किं मुहूर्त्तप्रश्नेन इति न्यायः।

कार्य अनुष्ठित होने पर मुहूर्त्तप्रश्न अर्थात् समय अच्छा है वा बुरा, इस प्रकारकी जिज्ञासा निष्फल है। जहां पर कार्य करके उसकी फलाफलकी जिज्ञासा की जाती है, वहीं पर यह न्याय होता है।

६८। कृदभिहितो भावः द्रव्यवत् प्रकाशते इति न्यायः।

भाववाच्यमें कृत् प्रत्यय होनेसे वह द्रव्यवत् प्रकाशित होता है, इसी प्रकार जहां भावविहित प्रत्यय द्रव्यवत् हो, वहां यह न्याय होता है।

६९। कैमुतिकन्यायः।

जहां पर दुर्बोध और दुःसाध्य विषय सहजमें हृदङ्गम हो जाय, वहां सुबोध और सुसाध्य विषय अनायास समझा जाता है। इसका तात्पर्य यह कि जो भार दुर्बल भी वहन कर सकता है वह भार बलवान् अवश्य ही सहन कर सकेगा। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७०। कोषपानन्यायः।

किसी एक मनुष्यने झूठी बात कही है वा नहीं, उसका निश्चय करनेके लिये उसे कोषपान दिव्य कराना होता है। दिव्यके नियमानुसार पूर्व दिन उपवास करके दूसरे दिन दिव्यकालमें उसे जलपान करनेको दिया गया। २।४ अञ्जलि जलपान करनेसे पापीको कुछ कालके लिये सुख हुआ है, लेकिन शास्त्रनिर्दिष्ट पर्यन्त जलपान करके उसे अत्यन्त दुःख हुआ। इस प्रकार वे ष्णवने विष्णुके प्रति भक्तिपरायण हो कर शक्तिकी निन्दा की। निन्दाके समय कुछ सुख तो हुआ, पर निन्दाजन्य पापभोगके समय कुम्भीपाकादि घोर नरक होगा और तब बहुत कष्ट भुगतना पड़ेगा। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७१। क्रिया हि विकल्प्यते न वस्तु, इति न्यायः।

क्रियाका विकल्प होता है वस्तुका विकल्प नहीं होता, तत्सम्बन्ध न्याय। इच्छा रहने पर सभी मनुष्य कार्य कर सकते हैं, अच्छा भी कर सकते और बुरा भी। करना वा नहीं करना और अन्यथा करना इसमें सकल हेतु क्रियाका ही विकल्प होता है। वस्तुका नहीं। वेदान्तदर्शनके शारीरिकभाष्यमें इसका उदाहरण इस प्रकार दिया गया है।

लौकिक अथवा वैदिक कर्म किया भी जाता है अथवा उसको अन्यथा भी की जा सकती है, लेकिन वस्तुका विकल्प वा अन्यथा नहीं की जा सकती। जैसे, अतिरात्रमें षोड़शी ग्रहण करो अथवा नातिरात्रमें। यहां पर षोड़शी ग्रहण करनी होगी, इसका विकल्प नहीं होगा। किन्तु अतिरात्र वा नातिरात्रमें इसी क्रियाका विकल्प हुआ करता है। पद द्वारा रथ द्वारा वा अन्य जिस किसी प्रकारसे जा सकते हो, यहां पर भी वस्तुका विकल्प नहीं होता है, क्रियाका ही विकल्प होता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७२। खले कपोतन्यायः।

वृद्ध, युवा और शिशुकपोत जिस प्रकार एक ही कालमें खल पर पतित होते हैं, उसी प्रकार जहां सब पदार्थ एक कालमें अन्वयविशिष्ट हों, वहां यह न्याय होता है।

७३। गजभुक्तकपित्थन्यायः।

हस्ती जिस प्रकार कपित्थ (कैथ) खाता है अर्थात् उसके भीतरका सिर्फ गूदा खा लेता है और ऊपरका भाग ठीक वैसा ही रहता है, उसी प्रकार जहां जिसका भीतरी भाग शून्य होता जा रहा है और बाहरसे सब ठीक है, वहां यह न्याय होता है।

७४। गड्डलिकाप्रवाहन्यायः।

भेड़के झुण्डमेंसे यदि एक नदीमें गिर जाय, तो सभी एक एक कर नदीमें गिर जायगी। इस प्रकार दलके मध्य एक जो कुछ करता है, शेष सभी अच्छा बुरा सोचे बिना उसे कर डालते हैं। इसीको बोल-चालमें भेड़ियाधसान भी कहते हैं। ऐसे स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७५। गतानुगतिकन्यायः।

कुछ ब्राह्मण तर्पणके अर्घेको किनारे रख गङ्गमें डुबकी लगाने गए। स्नान कर चुकने पर जब उन्होंने तर्पणके लिए अर्घ अपने अपने हाथमें लिये तब मालूम पड़ा कि अर्घा एक दूसरेसे बदला गया है। इस प्रकार-की घटना एक दिन नहीं, कई दिन हो गई। एक दिन किसी वृद्ध ब्राह्मणने अपनी पहचानके लिए अर्घे पर एक ईंट रख दी और आप स्नान करने चले गये। उस ब्राह्मणको देखादेखी सब कोई अपने अपने अर्घेके ऊपर ईंट रख स्नान करने चले गये। इस पर वृद्धने उनका उपहास करके कहा कि सभी मनुष्य गतानुगतिक अर्थात् देखा देखी काम करते हैं, वस्तुतः यथायोग्य कोई भी विवेचना नहीं करते। यदि बुद्धिसे काम लेते, तो सब कोई इस प्रकार एक-सा चिह्न न देते। इसी प्रकार प्रायः सभी मनुष्य गड्डलिकाप्रवाह (भेड़ियाधसान) अथवा अन्धपरम्परा न्यायसे संसारान्धकूपमें पतित होते हैं। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

७६ गुड़जिह्विकान्यायः।

बालकको निम्बपान करानेमें जिस प्रकार उसकी जिह्वा पर गुड़ घिस कर नीम खिलाया जाता है, इस स्थान पर निम्ब भोजन कराना ही प्रयोजन है, गुड़लेप प्रलोभनमात्र है। एक बालक कड़वी दवा जान कर उसे नहीं खाता था। आखिरको उसे कहा गया कि यह दवा खावो, तुम्हें मिठाई दूंगा। इस प्रलोभनमें पड़ कर लड़केने उस कड़वी दवाको खा लिया जिससे उसका रोग जाता रहा। इस प्रकार कर्मसमूह अति दुष्कर होने पर भी शास्त्रमें निर्दिष्ट हुआ है, कि अमुक व्रत करनेसे अक्षय स्वर्ग होगा। इस स्वर्ग-लाभाशासे व्रतादि अति दुष्कर होने पर भी उन्हें कर डालते हैं। इसमें अवान्तर फलसे प्रलोभित करके मोक्षके लिये सभी कर्मोंका विधान किया है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है। मलमासतत्त्वमें इस न्यायका विषय लिखा है।

७७। गोवलीवर्दन्यायः।

वलीवर्द अर्थसे वृषभका बोध होता है, अथच गो शब्दपूर्वक वलीवर्द इस शब्दके प्रयोगसे और भी शीघ्र वृषभका बोध होता है। जहां एक शब्द प्रयोगसे अर्थ-का बोध होने पर भी और भी शीघ्र अर्थबोध हो, ऐसे शब्द प्रयोगमें यह न्याय हुआ करता है।

७८। घट्टकुटीप्रभातन्यायः।

घट्टकुटीके समीप प्रभात तत्तुल्य न्याय। पार होने-के लिए पैसा देनेके डरसे चोरवणिक् विपथ हो कर भागे जा रहे थे, जब वे घट्टकुटीके समीप आये तब सवेरा हो गया। इन चोरवणिकोंको विपथ हो कर जाना भी पड़ा और पार होनेका पैसा भी देना पड़ा। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

७९। घुणाक्षरन्यायः।

वंशखण्डमें घुन लग कर वंशके कुछ अंश काट जानेसे उसमें अक्षरसे चिह्न निकल गये हैं, अर्थात् बांस इस तरह काटा गया है कि वह ठीक अक्षरके जैसा हो गया है। घुन बांसको अक्षरके जैसा काटता नहीं, दैवात् वैसा होता है। इस प्रकार जहां अन्यार्थमें प्रवृत्त कार्य दैवात् अन्यार्थका निष्पादन करे, वहां यह न्याय होता है।

८०। चतुर्वेदविद्न्यायः।

किसी एक दाताने प्रचार किया कि चतुर्वेद ब्राह्मणोंको मैं यथेष्ट सुवर्णमुद्रा दान करूंगा। यह सम्वाद पा कर कोई मूढ़ दाताके पास जा कर बोला, 'मैं चतुर्वेद सम्यक् रूपसे जानता हूं, मुझे दान दीजिए।' उस मूढ़को धन तो मिला नहीं साथ साथ उसकी हंसी भी उड़ाई गई। इसी प्रकार जो सच्चिदा-नन्दरूप प्रत्यगभिन्न ब्रह्मसे वस्तुतः अवगत न हो कर 'मैं ब्रह्म जानता हूं" ऐसा कहता है, उसकी पोल खुल जाती और साथ साथ वह उपहास योग्य भी हो जाता है। जहां पर ऐसी घटना हो, वहां पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

८१। चम्पकपटवासन्यायः।

चम्पाका फूल कपड़ेमें बन्धे रहनेसे दूसरे दिन उसे फेंक देने पर भी जिस तरह उसमें सुगन्ध रह जाती है, उसी प्रकार विषयभोगके हेतु चित्तमें एक संस्कार होता है। विषयसंसर्ग नहीं रहने पर भी जिस प्रकार कपड़ेमें सुगन्ध रह जाती, उसी प्रकार चित्तमें उस विषयका संस्कार सूक्ष्म भावमें रहता है। ऐसे स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

८२। चालनीयन्याय:।

चलनीमें कोई वस्तु रख कर यदि उसे घुमावें, तो जिस प्रकार चलनीके छेदसे सभी वस्तु गिर जाती हैं, उसी प्रकार किसी एक पावस्थित वस्तुका इस प्रकार पतन होनेसे यह न्याय होता है।

८३। चिन्तामणिं परित्यज्य काचमणिग्रहणन्याय:।

चिन्तामणिका परित्याग कर काचमणिका ग्रहण, तत्तुल्यन्याय। जहां पर उत्तम वस्तुका परित्याग कर तुच्छ वस्तुका ग्रहण किया जाता है, वहां यह न्याय होता है।

"जन्मेदं वन्ध्यतां नीतं भवभोगोपलिप्सया।
काचमूल्येन विक्रीतो हन्त चिन्तामणिर्मया॥"

(शान्तिश०)

यह इस न्यायका उदाहरण हो सकता है।

८४। चौरापराधेन माण्डव्यदण्डन्याय:।

एक चोरके अपराधमें माण्डव्य ऋषिका शूलारोपणरूप दण्ड पुराणप्रसिद्ध है। किसी चोरने चोरी की, उसके लिए माण्डव्य ऋषिको शूल हुआ, यह पुराणशास्त्रमें लिखा है। इस प्रकार जहां पर अपराध करे कोई और दण्ड पावे कोई, वहां यह न्याय होता है।

८५। छिन्नहस्तवद्वा।

छिन्न हस्तका दृष्टान्त अनुसरणीय है। एक मुनिने अन्य मुनिके आश्रममें जा कर बिना उनसे कहे सुने फल मूल ले लिया। मुनिने उसे चोर समझ कर दण्ड देना चाहा। इस पर उसने बड़ी विनती की और 'इस पापसे छुटकारा पानेके लिए कोई रास्ता बतला देनेको कहा। मुनिने इसके प्रायश्चित्तमें हाथ काट डालनेकी अनुमति दी। उस चोर मुनिने उसी समय वैसा ही किया। इस आख्यानका उद्देश्य यह है कि अकार्य करना उचित नहीं है, करनेसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है। (छान्दग्य० ४ अ०)

८६। जलतुम्बिकान्याय:।

तुम्बिकाको जिस प्रकार कर्दमादिसे लिप्त कर जलमें फेंक देनेसे वह डूब जाता है और उस तुम्बिकासे कर्दम धो डालनेसे वह जिस प्रकार हेलने लगती है, उसी प्रकार जीव देहादि सम्बन्ध हेतु मृत्तादियुक्त होने पर संसारसागरमें निमग्न होता है और देहादिमल दूर होनेसे मोक्ष पाता है।

८७। जलानयनन्याय:।

जल लाओ, ऐसा कहनेसे जिस प्रकार जलके साथ अनुक्त जलपात्र भी लाया जाता है उसी प्रकार एकके कहनेसे अनुक्त तदाधारादिकी भी प्रतीति होती है, ऐसे ही स्थान पर यह न्याय हुआ करता है।

८८। तण्डुलभक्षणन्याय:।

तण्डुलभक्षण एक प्रकारका दिव्यभेद है। इसे बोल चालमें चावल पढ़ना कहते हैं। किसी चीजके चोरी जाने पर मन्त्र पढ़ा हुआ चावल जिस जिस पर सन्देह हो उसे खानेको दो। चावल खानेसे उनमेंसे जिसने चोरी की होगी उसके मुखसे रक्त निकलने लगेगा। इस प्रकार जहां सद्य: अनिष्ट हो, वहां यह न्याय होता है।

८९। तत्क्रतुन्याय:।

क्रतु सङ्कल्प अर्थात् ध्यान करना, जो जिस निरन्तर भावसे ध्यान करता है, उसे वही मिलता है। यही श्रौत उपदेश ही तत्क्रतु नामसे प्रसिद्ध है। इस न्यायके अनुसार जो ब्रह्मक्रतु होगा, उसे ब्राह्मी ऐश्वर्य प्राप्त होगा। इस तत्क्रतु न्यायसे जिस जिस विषयकी चिन्ता की जायगी, वही विषय प्राप्त होगा। वेदान्तदर्शनके ४।३।१६ सूत्रमें इस न्यायका विषय लिखा है।

९०। तप्तपरशुग्रहणन्याय:।

जहां पर सत्याभिसन्धका मोक्ष और मिथ्याभिसन्धका बन्ध कहा जाता है, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है। इसने चोरी की है या नहीं, इस प्रकारका सन्देह होने पर न्यायाधीशको चाहिए कि वे एक परशुको तपा कर उसे ग्रहण करावें। यदि उस मनुष्यका ता

परशुग्रहणसे हाथ न जले, तो उसे निष्पाप और यदि हाथ जलने लगे, तो उसे पापी समझना चाहिए। इस प्रकार मुक्तिविषयमें प्रयोजक 'अहं ब्रह्म' यही वाक्य सत्य और बन्ध प्रयोजक 'अहं ब्रह्म' यह वाक्य असत्य है, ऐसा स्थिर हुआ। छान्दोग्य उपनिषद्‌में यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

८१। तप्तमाषहोहरणन्यायः।

तप्तपरशुग्रहण न्याय भी यह न्याय हो सकता है। तप्तमाषक ग्रहण भी एक प्रकारका दिव्यविशेष है। तैलादि स्नेह पदार्थको गरम कर उसमें सुवर्णमाषक डाल देना पड़ता है। उस तप्त तैलादिसे माषक निकालनेमें यदि हाथ न जले, तो निर्दोष और यदि जल जाय तो उसे दोषी समझना चाहिए। इस न्यायको भी सत्याभिसन्धका मोक्ष और मिथ्याभिसन्धका बन्ध समझना होगा।

८२। तद्विस्मरणे भेकीवत्।

तत्त्वज्ञान विस्मृत होने पर भेकीके दृष्टान्तसे दुःखी होना पड़ता है। किसी राजाने एक भेकराजकन्याको ग्रहण किया। दोनोंमें बात यही ठहरी कि जल दिखानेसे भेकवाला राजाको छोड़ कर भाग जायगी। एक दिन राजाने भूलक्रमसे तृष्णार्त्त भेककन्याको जल दिखाया। इस पर पूर्व शर्तके अनुसार भेकवाला राजाके पाससे चली गई। राजाको पीछे अपनी भूल सूझी और वे बड़े दुःखी हुए। इस प्रकारकी विस्मृतिके स्थान पर यह न्याय होता है। सांख्यदर्शनमें प्रकृतिपुरुष-प्रसङ्गमें यह न्याय वर्णित है।

८३। तुष्यतु दुर्जन इति न्यायः।

दुर्जन तुष्ट हो, तत्तुल्य न्याय। जहां पर प्रतिवादी द्वारा उक्त पक्ष दुष्ट होने पर भी वादी प्रौढ़िवाद द्वारा उसे स्वीकार कर ले, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है।

८४। तृणजलौकान्यायः।

तृण और जलौका (जोंक) तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार जलौका जब तक एक तृणका आश्रय न ले लेती, तब तक पूर्वाश्रित तृणको नहीं छोड़ती, उसी प्रकार प्राणी सूक्ष्म शरीरके साथ एक देहका अवलम्बन किये विना पूर्वाश्रित देहको नहीं छोड़ती है। इसी प्रकार जहां विना एक अवलम्बनके पूर्वावलम्बन परित्यक्त नहीं होता वहां यह न्याय हुआ करता है।

८५। तृणारणिमणिन्यायः।

तृण, अरणि और मणि इन तीनोंसे अग्नि उत्पन्न होती है। किन्तु तार्ण अर्थात् तृणसे उत्पन्न वह्निके प्रति तृणकी ही कारणता है। इसी प्रकार अरणि और मणिका भी जानना चाहिए। अतः जहां पर कार्यका कारणभाव बहुत है अर्थात् कार्यतावच्छेदक और कारणतावच्छेदक अनेक हैं; वहां पर यह न्याय होता है।

८६। दग्धपत्रन्यायः।

पत्र दग्ध होने पर उसका पत्रत्व नहीं रहता, किन्तु आकृति पूर्ववत् ही रहती है। इस प्रकार जिस वस्तुको दाह होने पर उसकी प्रकृति पूर्व-सी बनी रहती है, पत्रके पूर्वाकार द्वारा अवस्थानमात्रका बोध होता है, वहां यह न्याय होता है।

८७। दग्धबीजन्यायः।

बीज दग्ध होने पर जिस प्रकार उसमें अङ्कुर उत्पन्न करनेकी शक्ति नहीं रहती, उसी प्रकार पुरुषकी अविवेकतावशतः ही जीवका संसार है। जब यह अविवेक नाश हो जाता है, तब फिर दग्धबीजन्यायानुसार जीवका संसार नहीं हो सकता। सांख्यदर्शनमें इस न्यायका विषय लिखा है।

८८। दण्डचक्रन्यायः।

एक धर्मावच्छिन्न घटत्वादिके प्रति जिस तरह दण्ड, चक्र, सूत्र आदिका भी कारणत्व है, उसी तरह जहां उस एक धर्मावच्छिन्नके प्रति बहुतोंका कारणत्व रहे, वहां यह न्याय होता है।

८९। दण्डापूपन्यायः।

पिष्टकसंलग्न दण्डका एक भाग यदि चूहेने खा लिया हो, तो जानना चाहिये कि उसने पिष्टक भी खाया है, तत्तुल्य न्याय। किसी गृहस्थने एक दण्डमें एक अपूप अर्थात् पिष्टक बांध रखा था। कुछ दिन बाद उसने देखा कि दण्डका कुछ भाग चूहेने खा लिया है। इस पर उसने मन ही मन यह स्थिर किया कि जब चूहेने दण्डका एक भाग खा लिया है, तब निश्चय ही उसने

पिष्टक खाया होगा, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। क्योंकि दण्ड पिष्टककी अपेक्षा बहुत कुछ कठिन है। जब दण्ड खानेकी उसमें शक्ति हुई, तब उसने सुकोमल अपूपको पहले न खा कर इसे खाया होगा, यह सम्भव नहीं। इस प्रकार किसी दुष्कारक कार्यकी सिद्धि देख कर किसीसुसाध्य कार्यको सिद्धिका अनुभव करनेको ही लोग दण्डापूपन्याय कहते हैं।

१००। दशमन्याय:।

किसी समय दश गृहस्थ देशान्तर गये। राहमें उन्हें एक नदी मिली जिसे सन्तरण भिन्न पार होनेका और कोई उपाय न था। वे दशों युक्ति करके नदी तैर कर पार कर गये। दूसरे किनारे आ कर उन्होंने सोचा कि हम लोगोंमेंसे सभी मौजूद हैं अथवा कोई नक्रजन्तुसे ग्रस्त हुआ है, यह जाननेके लिये उन्होंने आपसमें एक एक कर गणना की। किन्तु गिननेवाला अपनेको नहीं गिनता था जिससे एककी संख्या कम हो जाती थी। इस पर उन्हें सन्देह हुआ कि हममेंसे एक व्यक्ति अवश्य नष्ट हो गया है। इस कारण वे सबके सब अनेक प्रकारसे शोक ताप करने लगे। इसी समय एक विज्ञ पथिक उसी रास्ते हो कर गुजर रहा था। उन लोगोंके करुण विलापसे नितान्त व्यथित हो मुसाफिरने उन्हें विलापका कारण पूछा। इस पर उन्होंने आद्योपान्त सब हाल कह सुनाया। मुसाफिरने जब उनकी गणना की, तब ठीक दशो निकले। बाद उसने उन लोगोंसे कहा, 'तुम लोग फिरसे गिनो, दशों हैं, एक भी नष्ट नहीं हुआ है।' इस पर वे पूर्ववत् गणना करने लगे। नौ तककी गिनती हो चुकने पर पथिकने गिननेवालेसे कहा कि, तुम हो दश हो। इस उपदेशसे उनका शोक मोह सब दूर हुआ। इस प्रकार जहां साधुके उपदेशसे भ्रम दूर हो कर भ्रमजन्य सुख और दुःखादिका शेष होता है, वहां यह न्याय हुआ करता है। वेदान्त दर्शनमें यह न्याय दिखलाया गया है। यथा—अज्ञानोहितजीव तत्त्वमस्यादि महावाक्य सुननेसे उसकी मनुष्यत्वादि भ्रान्ति दूर हो जाती है। तत्त्वमस्यादि महावाक्य भी शिष्यको मनुष्यभ्रान्ति दूर करके ब्रह्मसाक्षात्कार उत्पादन करता है। उपदेशात्मक तत्त्वमस्यादि महावाक्यजिज्ञासु शिष्यके मनमें ब्रह्माकारावृत्ति उत्पन्न करता है, इससे धीरे धीरे उसकी 'मैं मनुष्य हूं' यह चिराभ्यस्त भ्रान्तिवृत्ति विदूरित वा निवृत्त होती है। ऐसा होनेसे उसका वह चिरसिद्ध ब्रह्मभाव अर्थात् ब्रह्मभाव स्थिरीकृत होता है, यही उसका मोक्ष है।

१०१। देवदत्तापुत्रन्याय:।

देवदत्ताका पुत्र, तत्तुल्य न्याय। पुत्रके प्रति माता और पिता दोनोंका सम्बन्ध है। जहां पर माताका प्रधान्य कहा जाय, वहां 'देवदत्तापुत्र' और जहां पितृप्राधान्य कहा जाय, वहां देवदत्त, ऐसा होगा। अतएव जहां जिसका प्राधान्य समझा जाय, समान सम्बन्ध रहने पर भी उसका निर्देश होगा।

१०२। घटारोहणन्याय:।

घटारोहण अर्थात् तुलारोहण एक प्रकारका दिव्य है, तत्तुल्य न्याय। इसमें शास्त्रानुसार तुला पर बैठनेसे यदि वृद्धि हो, तो शुद्ध और यदि समान भार हो, तो वह अशुद्ध माना जाता है। इस प्रकार जहां सत्याभिसन्धकी शुद्धि और मिथ्याभिसन्धकी अशुद्धि होती है, वहां पर यह न्याय होता है।

१०३। धर्माधर्मग्रहणन्याय:।

धर्माधर्मग्रहण भी एक प्रकारका दिव्य है। इस दिव्यके नियमानुसार यदि धर्ममूर्त्ति ग्रहण की जाय, तो विशुद्ध और अधर्ममूर्त्ति ग्रहण की जाय तो उसे अशुद्ध जानना चाहिये। अतएव जहां पर जो सत्य और असत्य देखनेमें आवे, वहां यह न्याय होता है।

१०४। नकालनियम: वामदेववत्।

'तत्त्वज्ञानका कालनियम नहीं है अर्थात् एक कालमें तत्त्वज्ञान होगा ऐसा कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। वामदेव मुनिकी तरह शीघ्र और इन्द्रकी तरह विलम्ब भी हो सकता है, ऐसा जहां होगा वहां यह न्याय होता है।

१०५। नष्टाश्वदग्धरथन्याय:।

एक दिन दो मनुष्य रथ पर चढ़ कर वनभ्रमणको निकले थे। दैवक्रमसे उस वनमें आग लग जानेसे एकका रथ और दूसरेका अश्व विनष्ट हुआ था। इस प्रकार

एक मनुष्य नष्टाश्व और दूसरा दग्धरथ हो वनमें अलग अलग रहने लगा। एक दिन दैवात् दोनोंमें मुलाकात हो गई। बाद परस्पर युक्ति करके दोनोंने स्थिर किया कि एकके रथमें दूसरेका अश्व जोत कर हम लोग अपने गन्तव्यस्थानको पहुंच सकते हैं। इस न्यायके अनुसार निष्काम शुद्ध धर्मरूप रथमें ज्ञानाश्व संयोजना करके यदि मनुष्य चलें, तो निश्चय ही वे गन्तव्य परमेश्वरको पा सकेंगे।

१०६। नहि करकङ्कणदर्शनायादर्शापेक्षा इति न्यायः।

करकङ्कण चक्षुका हो गोचर है, यह देखनेमें जिस तरह आरसीकी जरूरत नहीं होती उसी तरह प्रत्यक्ष प्रमाणमें फिर अनुमानादिकी आवश्यकता हो क्या? ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१०७। नहि त्रिपुत्री त्रिपुत्रः कथ्यत इति न्यायः।

त्रिपुत्र कहनेसे त्रित्वको व्यापकतावशतः द्विपुत्रत्व आपसे आप समझा जाता है, किन्तु द्विपुत्र कहनेसे त्रिपुत्रका बोध नहीं होता। इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय होता है।

१०८। नहि दृष्टे अनुपपन्नं नाम इति न्यायः।

जहां पर प्रत्यक्ष प्रमाण पाया जायगा, वहां पर अन्य प्रमाणका अन्वेषण निष्फल है, ऐसे हो स्थान पर यह न्याय होता है।

१०९। नहि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्त्तते किन्तु विधेयं स्तोतुमिति न्यायः।

निन्दा निन्दनीयकी निन्दा करनेसे प्रवर्त्तित होती है, केवल वही नहीं, पर वह विधेयका स्तव (प्रशंसा) भी करती है। निन्दार्थवाद इतर वस्तुके प्राशस्त्यके लिये ही निन्दा प्रवर्त्तित होती है। केवल निन्दाके लिये नहीं, इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय हुआ करता है।

११०। नारिकेलफलाम्बुन्यायः।

नारियल फलके भीतर जिस तरह जलका सञ्चार होता है और यह जलसञ्चार जिस प्रकार कोई नहीं जान सकता, उसी प्रकार जहां अतर्कितभावसे लक्ष्मी प्राप्त होती है, वहां यह न्याय हुआ करता है। चलित प्रसिद्धि भी है कि लक्ष्मी नारिकेलफलाम्बुकी तरह आती और गजभुक्त कपित्थकी तरह जाती है।

१११। निम्नगाप्रवाहन्यायः।

नदीका प्रवाह स्वभावतः जिस ओर बहता है, लाख चेष्टा करने पर भी जिस प्रकार उसको गतिको लौटा नहीं सकते, उसी प्रकार जन्मांतरीय संस्कारके वशसे परमेश्वरविषयमें ध्यानात्मक चित्तवृत्तिप्रवाहको उससे अन्य स्थलमें लौटानेके लिये अतिशय यत्न करने पर भी वह विफल होता है; ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होगा।

११२। नृपनापितपुत्रन्यायः।

प्रवाद है, कि किसी राजाके एक नापित भृत्य था। राजाने एक दिन उसे एक अत्यन्त रूपवान् बालक लाने कहा। नापितने आज्ञा पाते ही सारे नगरमें रूपवान् बालक ढूंढ़ा, पर अपने लड़केसे बढ़कर किसीको रूपवान् न पाया। अतः उसने अपने लड़केको ही राजाके पास ला कर कहा, 'राजन्! मैंने सारा शहर ढूंढ़ डाला, पर अपने लड़केसे बढ़ कर किसीको सुन्दर न पाया।' नापितपुत्र निहायत कुरूप था, अतः राजा उसे देख कर बहुत बिगड़े और नापितसे कहा, 'क्या तुम मेरा उपहास कर रहे हो?' नापितने अपने गलेमें गमछा डाल हाथ जोड़ कर कहा, 'प्रभो मुझे ऐसा मालूम पड़ा कि त्रिलोकमें भी मेरे इस लड़केके जैसा रूपवान् कोई नहीं है, इसकी सुन्दरताके विषयमें और मैं क्या कहूं। इसी विश्वास पर मैं आपके पास इसे लाया हूं।' राजाने समझा कि नापित स्नेहके वशीभूत हो कर कुरूपको भी सुन्दर बतला रहा है। यह समझ कर उन्होंने क्रोध शान्त किया। रागातिशयवशतः नापितको जिस प्रकार अति कुरूपमें भी सर्वोत्तमत्व बुद्धि हुई थी, उसी प्रकार मन्दबुद्धियोंके जन्मान्तरीण संस्कारवशतः वे सर्वोत्तम हरिहरादि देवताका परित्याग करके भी क्षुद्र देवताके प्रति विशेष भक्ति करते हैं, ऐसे ही स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

११३। पङ्कप्रक्षालनन्यायः।

पङ्क (कीचड़) प्रक्षालन करनेकी अपेक्षा दूरसे स्पर्श नहीं करना ही श्रेय है। कीचड़को न धो कर जिससे कीचड़ न लगे, वही करना अच्छा है। इस

प्रकार अन्याय करके उसके निवारणकी चेष्टाकी अपेक्षा अन्याय कार्य नहीं करना ही अच्छा है; ऐसी ही जगह पर यह न्याय होता है।

११४। पञ्जरचालनन्यायः।

दश पक्षी यदि एक पञ्जरमें रहें और वे एकत्र मिल कर जिस प्रकार पञ्जरके तिर्यक् और ऊर्ध्वनयन-रूप क्रियादि करनेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय और पञ्चकर्मेन्द्रिय एक प्राणरूप क्रिया उत्पा-दन करके देहचालन करती हैं।

११५। पञ्जरमुक्तपक्षिन्यायः।

पञ्जरस्थित पक्षी जिस प्रकार अपने अभीष्ट देश जानेमें समर्थ होते हैं, उसी प्रकार जीव बन्धनसे मुक्त हो कर ऊर्ध्व आकाशमें अवस्थान करनेमें समर्थ होते हैं। जैन-मतमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

११६। पतन्तमनुधावतो बद्धोऽपि गतः इति न्यायः।

किसी एक बहेलियेके जालमें बहुत-सी चिड़िया फंस गईं। उनमेंसे कुछ तो बंध गईं और कुछ जाल ले कर उड़ीं। उड़ती हुई चिड़ियोंको पकड़नेकी आशासे उस बहेलियेने कुछ दूर तक उनका पीछा किया, पर व्यर्थ हुआ। इधर जो जालमें बंध गई थीं वे भी जाल ले कर भागीं। इस प्रकार जो ध्रुव वस्तुकी रक्षा न कर अध्रुवकी आशा पर जाते हैं उनसे ध्रुव और अध्रुव दोनों ही नष्ट होते हैं; ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है।

११७। पाषाणेष्टकान्यायः।

रूईसे ईंट कठिन है, ईंटसे भी पत्थर कठिन होता है, इस प्रकार जहां एकसे बढ़ कर एक है, वहां इस न्यायका प्रयोग होता है।

११८। पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि।

किसी आचार्यने एक शिष्यको अरण्यमें ले जा कर तत्त्वका उपदेश दिया था। उस उपदेशको सुन कर एक पिशाच मुक्त हो गया। तत्त्वोपदेश अन्यार्थमें उपदिष्ट हुआ था सही, लेकिन पिशाच उसे सुन कर मुक्त हो गया था। तात्पर्य यह है कि तत्त्वोपदेश प्रसङ्गक्रमसे प्राप्त होने पर भी ज्ञान हो सकता है। (सांख्यद० ४ अ०)

११९। पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात्।

पिता और पुत्र दोनोंमेंसे कोई भी किसीको जानता नहीं था, परन्तु उपदेश पा कर जाना था। एक ब्राह्मण अपनी गर्भिणी स्त्रीको घरमें छोड़ देशान्तर गया। बहुत दिनके बाद जब वह घर लौटा, तब पुत्रको पह-चान न सका, पुत्रने भी पिताको नहीं पहचाना। पीछे स्त्रीके उपदेशसे एकने दूसरेको पहचान लिया। तात्पर्य यह कि सुहृदके उपदेशसे भी ज्ञान होता है।

(सांख्यदर्शन ४ अ०)

१२०। पिष्टपेषणन्यायः।

पिष्ट वस्तुका पेषण जैसा निरर्थक है, वैसा ही निष्फल कार्यारम्भकी जगह यह न्याय हुआ करता है।

१२१। पुत्रलिप्सया देवं भजन्त्या भर्त्ताऽपि नष्ट इति न्यायः।

पुत्र लाभ करनेके लिए देवताकी आराधना करते करते स्वामी भी विनष्ट हुआ। मसल है—"पूत मांगे गई भतार खो आई।" इस प्रकार किसी मङ्गल कार्य-का अनुष्ठान करते करते जब उसका मूल तक भी नष्ट हो जाय, तब इस न्यायका प्रयोग होता है।

१२२। प्रपाणकन्यायः।

जिस प्रकार शर्करा आदि वस्तुके योगसे एक अद्भुत अति सुमिष्ट वस्तु बनती है, उसी प्रकार जहां बहुमासन द्वारा एक चित्ररूप वस्तु होती है, वहां यह न्याय होता है। जहां विभाव और अनुभावादि द्वारा शृङ्गारादिरस-की अभिव्यक्ति होती है, वहां भी यह न्याय हुआ करता है।

१२३। प्रदीपन्यायः।

जिस प्रकार तैल, सूत्र और अग्निके संयोगसे दीप प्रज्वलित हो कर प्रकाशमान होता है, उसी प्रकार सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण परस्पर विरोधी होने पर भी परस्पर मिल कर देहधारणरूप कार्य करते हैं। सांख्य-दर्शनमें न्याय प्रदर्शित हुआ है।

"प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः।" (सांख्यका०)

१२४। प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्त्तते इति न्यायः।

कोई प्रयोजन नहीं रहने पर मूढ़ व्यक्ति भी कार्यमें प्रवर्त्तित नहीं होते। इस प्रकार प्रयोजनवशतः

कार्यमें प्रवृत्त होनेसे यह न्याय होता है।

१२५। प्रासादवासिन्यायः।

एक व्यक्ति प्रासादमें रहता है, लेकिन उसे कार्यानुरोधसे कभी कभी नीचे आना पड़ता है और दूसरी जगह भी जाना पड़ता है। ऐसा होने पर भी उसे जिस प्रकार प्रासादवासी कहते हैं, उसी प्रकार वर्णनीय विषयके प्राधान्यानुसार ही उसका नाम होगा।

१२६। फलवत्सहकारन्यायः।

पथिक फलयुक्त आम्रवृक्षके नीचे छायाके लिये बैठा हुआ है और पक्व फल जिस प्रकार बिना मांगे उसके आगे आपसे आप गिरता, उसी प्रकारको घटना जहां होगी, वहां यह न्याय होता है।

१२७। बहुवृककाकृष्टन्यायः।

जिस प्रकार बहुतक भेड़ियासे आकृष्ट एक मृगका एकत्र स्थिति नहीं होती, उसी प्रकार जहां बहुतोंका परस्पर विवाद होता है वहां पर एक विषयकी स्थिरता नहीं रहती। जहां पर ऐसी घटना होगी, वहां यह न्याय होता है।

१२८। बहुभिर्योगे विरोधो रागादिभिः कुमारीशङ्खवत्।

बहुत मनुष्योंका साथ नहीं करना चाहिए, करनेसे रागादि द्वारा कुमारीशङ्खकी तरह कलह होता है। धान कूटते समय किसी कुमारीके हाथमें-का शङ्खाभरण बज उठा। देहली पर कुटुम्ब बैठे हुए थे, कुमारीको बड़ी लज्जा हुई, सो उसने सब आभूषण उतार दिये, केवल एक रहने दिया। एकके रहनेसे आवाज नहीं होती थी। तात्पर्य यह कि मुमुक्षु व्यक्तिको अकेला रहना चाहिए, बहुतोंके साथ नहीं। आमङ्गलिप्सा महद्दोष और ज्ञानलाभका प्रतिबन्धक है।

१२९। बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि साराादानं षट्पदवत्।

नाना शास्त्र और नाना उपासनादिके रहने पर भी भ्रमरके जैसा सारग्राही होना चाहिये। भ्रमर जिस प्रकार पुष्पका परित्याग कर मधुमात्र ग्रहण करता है उसी प्रकार मुमुक्षु व्यक्तिको शास्त्रोक्त विद्या मात्र ग्रहण करनी चाहिए, उपविद्या नहीं।

१३०। बहूनां मनुग्राह्यो न्याय्य इति न्यायः।

बहुत मनुष्योंका अनुग्रह न्याय्य है, तत्तुल्य न्याय। सामान्य वस्तु होने पर भी उसके मेलसे कठिनसे कठिन काम साधित होते हैं। जैसे, तृण यद्यपि क्षुद्र वस्तु है, तो भी उसके मेलसे मत्त हाथी बांधे जाते हैं। इस प्रकार अनेक असार वस्तुका मिलन भी कार्यसाधक होता है।

"बहूनामप्यसाराणां मेलनं कार्यसाधकम्।
तृणैः सम्पाद्यते रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते॥"

१३१। विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत्।

विरक्त मनुष्यको हंसकी तरह हेय अंशका परित्याग कर उपादेय अंश ग्रहण करना चाहिए। दुग्धमिश्रित जल हंसको देनेसे हंस केवल दूध पी लेता है, जल छोड़ देता है। तात्पर्य यह कि असारसे सारग्रहण विधेय है।

१३२। बिलवर्त्तिगोधान्यायः।

गोधा (गोह) गर्त्तके मध्य रहनेसे उसका जिस प्रकार विभाग नहीं हो सकता, उसी प्रकार अज्ञातपरसिद्धान्तको बिना जाने उसमें दोष लगानेसे यह न्याय होता है।

१३३। ब्राह्मणग्रामन्यायः।

एक ग्राममें अनेक जातिके लोग रहते हैं, किन्तु उनमेंसे ब्राह्मणकी संख्या अधिक रहनेसे लोग उसे जिस प्रकार ब्राह्मणग्राम कहते हैं, उसी प्रकार प्राधान्यकी विवक्षा होनेसे ही इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१३४। ब्राह्मणश्रमणन्यायः।

श्रमणका अर्थ बौद्धयति है। ब्राह्मणके निजधर्मका परित्याग कर बौद्ध-धर्म ग्रहण करने पर भी उसे जिस प्रकार ब्राह्मणश्रमण कहते हैं, उसी प्रकार जहां भूतपूर्व गति द्वारा निर्देश हो वहां यह न्याय होता है।

१३५। भिक्षुपादप्रसारणन्यायः।

कोई एक भिक्षुक यथेष्ट भोजनादि पानेकी आशासे किसी धनीके घर गया। एक समय सभी अभीष्ट लाभ करना असम्भव है। अतः पहले पादप्रसारण, पीछे परिचय और इससे सभी अभिलाष पूरे होंगे, ऐसा सोच वह पहले थोड़ी भिक्षा और बहुत सोच विचारके बाद

उससे सभी अभीष्ट लाभ करता है। ऐसे ही स्थानपर यह न्याय होता है।

१३६। मज्जनोन्मज्जनन्यायः।

जो तैरना नहीं जानता हो ऐसा मनुष्य यदि नदीमें गिर जाय तो वह जिस तरह एक बार निमज्जित और एक बार उन्मज्जित होता है, उसी तरह दुष्टवादीके स्वपक्ष समर्थनके लिए यत्नवान् होने पर भी वह प्रबल युक्ति न पा कर सन्तरणानभिज्ञकी तरह क्लेश पाता है। ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है।

१३७। मणिमन्त्रन्यायः।

मणि और मन्त्रकी अग्निके दाहके प्रति जिस प्रकार साक्षात् प्रतिबन्धकता है, इसमें जिस प्रकार प्रमाणापेक्षा नहीं करता, उसी प्रकार जिनको कामिनीजिज्ञासा है, उनके ज्ञानमात्रकी प्रतिबन्धकता है, इसमें भी किसी युक्तिकी अपेक्षा नहीं करता है। ऐसे स्थान पर इस न्यायका प्रयोग होता है।

१३८। मण्डूकतोलनन्यायः।

कोई एक कपट-वणिक द्रव्य बेचते समय एक मण्डूक (बेंग)को पलड़े पर रख कर उसीसे तौलने लगा। मण्डूक उछल कर भाग गया, उसी समय वणिककी कपटता सबको मालूम हो गई। इस प्रकार कार्य करते समय जहां कपटताका प्रकाश हो जाय, वहां यह न्याय होता है।

१३९। मरणादरं व्याधिरिति न्यायः।

मरणसे व्याधि श्रेय है, तत्तुल्यन्यायः। अत्यन्त दुःखजनक विषय उपस्थित होने पर, उसकी अपेक्षा दुःख ही प्रार्थनीय है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१४०। मुञ्जादिषीकोद्धरणन्यायः।

मुञ्ज तृणविशेष, इषीका गर्भस्थतृण, उसका उद्धरण, तत्तुल्य न्याय। मुञ्जसे इषीका निकाल लेने पर जिस प्रकार उसकी क्षति नहीं होती, उसी प्रकार जहां जिस वस्तुका गर्भस्थित उखाड़ लिया जाय और उसको कोई क्षति न हो, वहां यह न्याय होता है।

१४१। यत्कृतकं तदनित्यमिति न्यायः।

जो कृतक अर्थात् कार्य है, वह अनित्य है, तत्तुल्य न्याय। कार्यमात्र ही अनित्य है, इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४२। यत्परः शब्दः स शब्दार्थः इति न्यायः।

जहां जो प्रस्तुत विषय है उसमें उसीका प्रामाण्य अधिक है अन्य, इतर विषयमें प्रामाण्य हो भी सकता और नहीं भी हो सकता। सांख्यदर्शनमें विज्ञानभिक्षुने भाष्यमें न्याय द्वारा कहा है, कि सांख्यदर्शनमें प्रधान वर्णनीय दुःखनिवृत्ति है। इस दुःखनिवृत्तिके विषयमें यही दर्शन अन्य दर्शनकी अपेक्षा अधिक प्रामाण्य है, किन्तु ईश्वरांशमें यह दर्शन दुर्बल है। क्योंकि ईश्वर इस दर्शनका प्रधान विषय नहीं है, किन्तु वेदान्तादि दर्शनमें ब्रह्मविषयका ही अधिक प्रमाण है। जहां ऐसा होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४३। यत्रोभयोः समो दोषः न तत्रैकोऽनुयोज्य इति न्यायः।

जहां पर दोनोंका दोष और परिहार समान है, वहां पर कोई भी पक्ष पर्यनुयोज्य अर्थात् ग्रहणीय नहीं है।

"यत्रोभयो समो दोषः परिहारश्च यः समः।
नैकः पर्यनुयोज्यः स्यात् तादृगर्थविचारणे॥"

वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है, जहां पर दोष और दोषका परिहार दोनों ही समान हैं वहां कोई पक्ष अवलम्बनीय नहीं है।

१४४। यादृशं मुखं तादृशं चपेटमिति न्यायः।

जैसा मुख वैसो चपेट अर्थात् जहां पर तुल्यरूप परिहार होगा वहां यह न्याय होता है।

१४५। यादृशो यक्षस्तादृशो बलिरिति न्यायः।

जैसा यक्ष वैसो ही उसको बलि, जहां तुल्यरूप उपचार होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४६। येन उपक्रम्यते उपसंह्रियते स वाक्यार्थः इति न्यायः।

जिससे उपक्रम और उपसंहार हो वही वाक्यार्थ, तत्तुल्य न्याय। जैसे, गिरि अग्निमान् ऐसा कहनेसे इस प्रतिज्ञा वाक्य द्वारा पर्वतका ही उपक्रम किया जाता है और क्यों वह्निमान् नहीं है, इस कारण वह्निमान् है। इस निगमनवाक्यसे भी पर्वतका बोध होता है। यहां पर

उपक्रम और उपसंहारमें पर्वत ही वाक्यार्थ हुआ, ऐसा ही स्थान पर यह न्याय होता है।

१४७। योजनप्राप्यायां कावेर्यां मल्लबन्धनन्यायः।

योजनप्राप्या कावेरीमें मल्लबन्धन (मल्ल के वस्त्र जाति विशेष, उसका वस्त्रबन्धन, अथवा मल्ल योद्धृपुरुषके जैसा बन्धन) तत्तुल्य न्याय। यदि अल्प जलाशय हो, तो मल्लबन्धन करके जलाशय अनायास पार हो सकता है। लेकिन नदी यदि योजनप्राप्या हो, तो मल्लबन्धन करके पार होना असम्भव है, इस प्रकार जहां होगा, वहां यह न्याय होता है।

१४८। रक्तपटन्यायः।

जहां पर निराकाङ्क्ष वाक्यमें आकाङ्क्षा उत्थापित करके एक वाक्यमें किया जाय, वहां पर यह न्याय होता है। यथा—पटोऽस्ति, यह पट है, इस वाक्यमें किसी प्रकारकी आकांक्षा नहीं है। इस निराकाङ्क्ष वाक्यमें आकाङ्क्षा उत्थापित करके अर्थात् कैसा पट, ऐसी आकाङ्क्षा निकाल कर उसमें एक वाक्यता की गई अर्थात् रक्त पट। जहां ऐसा कहा जायगा, वहां यह न्याय होता है।

१४९। रज्जुसर्पन्यायः।

रज्जुमें सर्पभ्रम, तत्तुल्य न्याय।

यत्र विश्वमिदं भाति कल्पितं 'रज्जुसर्पवत्।' (अष्टावक्र सं०)

अस्फुटालोकमें रज्जु देखनेसे मनुष्यको सर्पका भ्रम होता है, किन्तु जब स्फुटालोकमें वह अच्छी तरह देखा जाय, तब फिर सर्पभ्रम नहीं रहता। इस प्रकार हम लोगोंके अज्ञानके अस्फुटालोकसे ब्रह्ममें जगत्‌भ्रम होता है। जब श्रवण, मनन और निदिध्यासन द्वारा अज्ञानलोक चला जायगा, ज्ञानालोक उद्भासित होगा, तब फिर ब्रह्ममें जगत्‌भ्रम नहीं रहेगा। वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है। भ्रान्तिकी जगह इस न्यायका प्रयोग होता है।

१५०। राजपुत्रव्याधन्यायः।

किसी समय कुछ चोर एक राजपुत्रको उठा ले गये और एक व्याधके यहां बेच डाला। व्याधभवनमें पालित होनेसे 'मैं व्याधपुत्र हूं' ऐसी राजपुत्रको धारणा हो गई। पीछे उसके किसी आत्मीयने जब राजपुत्रसे उसका जन्मवृत्तान्त कह सुनाया, तब राजपुत्रकी व्याधभ्रान्ति दूर हुई और स्वरूपका बोध हुआ। इस प्रकार जहां भ्रान्ति हो कर वाक्यमें अपनोदन होता है, वहां पर यह न्याय होता है। वेदान्तदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है। हम लोगोंकी ब्रह्ममें इस भ्रान्ति होती है, किन्तु तत्त्वमस्यादिके वाक्यमें उसका अपनोदन हो कर 'अहं ब्रह्म' यही ज्ञान अविचलित है। यही स्थान इस न्यायका विषय है। सांख्यदर्शनके चतुर्थ अध्यायमें 'राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात्' इस सूत्रमें यह वृत्तान्त देखनेमें आता है।

१५१। राजपुरप्रवेशन्यायः।

राजा जब किसी नगरमें जाते हैं, तब उन्हें देखनेके लिये लोगोंकी भीड़ लग जाती है, ऐसी हालतमें विशृङ्खलता उपस्थित हो सकती है। किन्तु वे सब मनुष्य रक्षियोंके पीड़नभयसे नगोवद्धभावमें अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार जहां सुशृङ्खलभावसे कार्य निर्वाह होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१५२। लक्षणप्रमाणाभ्यां हि वस्तुसिद्धिरिति न्यायः।

लक्षण और प्रमाण द्वारा वस्तु सिद्ध होती है, इस प्रकार जहां लक्षण और प्रमाणसे वस्तुकी सिद्धि हुआ करती है, वहां यह न्याय होता है।

१५३। लूतातन्तुन्यायः।

लूता कीटविशेष, उससे तन्तुनिर्गम तत्तुल्य न्याय। लूता (मकड़ा) जिस प्रकार स्वयं अपनी देहसे सूत निर्माण करती है और निज देहमें ही संहार करती है, उसी प्रकार ब्रह्म इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं और संहारके समय ब्रह्ममें ही यह जगत् लीन हो जाता है। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१५४। लोष्ट्रलगुडन्यायः।

जिस प्रकार लगुड़ द्वारा लोष्ट्र चूर्णीकृत होता है, उसी प्रकार उपमर्द्य और उपमर्दक होनेसे वहां यह न्याय होता है।

१५५। लौहचुम्बकन्यायः।

लौह और चुम्बक दोनों ही निश्चल हैं, किन्तु चुम्बक लौहे सन्निधिमात्रसे ही उसे आकर्षण करता है, इस प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी—प्रकृतिसन्निधानमें

कार्य प्रवर्त्तक होता है। सांख्यदर्शनमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१५६। वरगोष्ठीन्याय:।

गोष्ठी अर्थात् वर और वधूपक्षके परस्पर आलापसे एकमत हो कर जिस प्रकार वरलाभरूप कार्य सम्पन्न किया जाता है, उसी प्रकार जहां एकमत्य हो कर कोई एक कार्य साधन किया जाता है, वहां यह न्याय होता है। गोष्ठी वर और वधू पक्षके आलापसे एकमत्य हो कर वरलाभ होता है, इसीसे इस न्यायका नाम वरगोष्ठी न्याय पड़ा है।

१५७। वरघाताय कन्यावरणमिति न्याय:।

विवाह करना जरूरी है अथच विषकन्यासे विवाह करनेसे मृत्यु हो सकती है, अतः विषकन्यासे विवाह नहीं करना ही श्रेय है। जहां अभीष्ट वस्तु लाभ करनेमें अनिष्टान्तरकी सम्भावना हो, वहां अभीष्ट वस्तुका लाभ नहीं करना ही अच्छा है। ऐसे स्थान पर ही यह न्याय होता है।

१५८। वह्निधूमन्याय:।

धूमरूप कार्य देखनेसे जिस प्रकार कारणरूप कार्यका अनुमान होता है, उसी प्रकार कार्यदर्शनमें कारणके अनुमान-स्थल ही यह न्याय होता है।

१५९। विल्वखल्वाटन्याय:।

खल्वाट अर्थात् जिसके सिरके बाल झड़ गये हों। खल्वाट मनुष्य धूपसे अत्यन्त क्लिन्न हो कर छायाके लिये एक विल्ववृक्षके नीचे बैठा हुआ था। इसी समय एक बेल उसके सिर पर गिरा जिससे उसका सिर चूर चूर हो गया। इस प्रकार जहां अभीष्ट प्राप्तिकी आशासे जा कर अनिष्ट लाभ होता है; वहां इस न्यायका प्रयोग होता है।

१६०। विशिष्टे विशेषणं तत्रापि च विशेषणमिति न्याय:।

विशिष्टमें विशेषण, उसमें भी विशेषण तत्तुल्य न्याय। जैसे, भूतल घटवत् और जलवत्, यहां पर भूतलमें घट विशेषण है और यह विशेषण भूतलांशमें प्रदत्त हुआ है, इस प्रकार विशेषण इस रीतिसे जहां भासमान होगा, वहां यह न्याय होता है।

१६१। विषभक्षणन्याय:।

पापीने पाप किया है वा नहीं, यह जाननेके लिये विषभक्षणरूप दिव्य करना होता है। नियमपूर्वक पापीको विष खिलानेसे यदि उसने यथार्थमें पाप न किया हो, तो उसे अनिष्ट नहीं होगा और यदि अनिष्ट हो जाय, तो उसे पापी समझना चाहिये। इस प्रकार जहां सत्याभिसन्धका मोच और मिथ्याभिसन्धका बन्ध हो, वहां यह न्याय होता है।

१६२। विषवृक्षन्याय:।

अन्य वृक्षकी बात तो दूर रहे, यदि विषवृक्ष भी वर्द्धित किया जाय, तो उसे भी काटना उचित नहीं है। उसी प्रकार निज अर्जित वस्तुका स्वयं नाश नहीं करना चाहिये, ऐसे ही स्थान पर यह न्याय होता है। "विषवृक्षोऽपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्।" (कुमार २ सं०)

१६३। वीचितरङ्गन्याय:।

नदीकी तरङ्ग जिस प्रकार एकके बाद दूसरी उत्पन्न होती है, उसी प्रकार जहां परम्पराक्रमसे कार्योत्पत्ति हो, वहां यह न्याय होता है।

'वीचितरङ्गन्यायेन तदुत्पत्तिस्तु कीर्त्तिता।' (भाषापरि०)

नैयायिकोंके मतसे ककारादिवर्ण वीचितरङ्ग न्यायके अनुसार उत्पन्न होते हैं।

१६४। वीजाङ्कुरन्याय:।

वीजसे अङ्कुर अथवा अङ्कुरसे वीज, विना वीजके अङ्कुरोत्पत्ति नहीं होती और अङ्कुरके नहीं होने पर वीज भी नहीं होता, सुतरां अङ्कुरके प्रति वीज कारण है वा वीजके प्रति अङ्कुर कारण है, इसका कुछ स्थिर नहीं किया जाता तथा वीजाङ्कुरप्रवाह अनादि है यह स्वीकार करना होगा। इस प्रकार जहां होगा, वहां पर यह न्याय होता है। वेदान्तदर्शनके शारीरक भाष्यमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१६५। वृक्षप्रकम्पनन्याय:।

कोई एक आदमी एक पेड़ पर चढ़ा था। नीचे दो आदमी खड़े थे। एकने उसे एक शाखा और दूसरेने कोई और शाखा हिलानेको कहा। वृक्ष पर चढ़ा हुआ आदमी उनके परस्पर विसंवादीवाक्यसे कुछ भी कर न सका। इधर एक तीसरे आदमीने जड़ पकड़ कर समूचा वृक्ष हिला दिया जिससे सभी शाखाएं

छिलने लगीं। इस प्रकार जहां सभी वस्तुओंका अवि-रोधाचरण हो, वहां पर यह न्याय होता है।

१६६। वृद्धकुमारीवाक्यन्यायः।

एक दिन इन्द्रने एक वृद्ध कुमारीसे वर मांगने को कहा। इस पर उसने प्रार्थनाकी थी, 'मेरे जिससे अनेक पुत्र हों, बहु क्षीर हो, घृत हो तथा मैं काञ्चनपात्रमें भोजन करूं, यही वर मुझे दीजिये।' वह स्त्री कुमारी थी, विवाह नहीं हुआ था, विवाहादि नहीं होनेसे पुत्र और धनादि नहीं हो सकता। किन्तु उस कुमारीने एक ही वरसे पति, पुत्र, गो, धान्य और हिरण्य प्राप्त किया। इस प्रकार उपासना द्वारा एक मोक्षसाधन तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेसे तदन्तर्भुक्तचित्तशमादि संगृहीत होती हैं, उसी प्रकार जहां एक वाक्य द्वारा नाना अर्थका प्रतिपादन हो, वहां यह न्याय होता है। महाभाष्यमें यह न्याय प्रदर्शित हुआ है।

१६७। वृद्धिमिष्टवतो मूलमपि विनष्टमिति न्यायः।

किसी एक वणिक्ने मूलधन बढ़ानेके लिये व्यवसाय आरम्भ किया था। उसके कितने नौकरोंने अन्यान्य व्यवहार करके उसका मूलधन तक भी नष्ट कर दिया। इस प्रकार जहां होता है, वहीं इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१६८। व्रतनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत्।

ज्ञानसाधक व्रतादिका परित्याग करनेसे लोकदृष्टान्तमें ज्ञानरूप प्रयोजन नष्ट हो जाता है। तात्पर्य यह कि वृथा व्रतग्रहण करनेसे पाषण्डता उत्पन्न होती है और वृथा परित्यागसे भी अनर्थ होता है।

१६९। शङ्खवेलान्यायः।

शङ्खध्वनि द्वारा जिस प्रकार समय विशेषका और घण्टा द्वारा समयका ज्ञान होता है, उसी प्रकार जहां भिन्न भिन्न अर्थ जाना जाता है, वहां यह न्याय होता है।

१७०। शतपत्रभेदनन्यायः।

सौ पत्तोंको एक सुई द्वारा विद्ध करनेसे एक ही बार वे भिद गये, ऐसा जान पड़ता है, किन्तु सो नहीं, प्रत्येक पत्र भिन्न भिन्न समयमें भिदा गया है, पर कालकी सूक्ष्मताप्रयुक्त उसका अनुमान नहीं होता। इस प्रकार जहां बहुतसे कार्य एक दूसरेके बाद होने पर भी एक समयमें हुए हैं ऐसा जान पड़ता है, वहां यह न्याय होता है। सांख्यदर्शनमें यह न्याय दर्शित हुआ है।

१७१। शालिसम्पत्तौ कोद्रवाशनन्यायः।

शालि उत्तम धान्यविशेष है और कोद्रव अधम, उत्तम धानके रहते अधम धानका खाना, तत्तुल्य न्याय जहां उत्तम वस्तुके रहते अधम वस्तुका सेवन किया जाय, वहां यह न्याय होता है।

१७२। शिरोवेष्टनेन नासिका स्पर्श इति न्यायः।

मस्तक वेष्टन करके नासिकास्पर्श, तत्तुल्य न्याय। जहां अल्पायाससाध्य कार्यमें बहु परिश्रम लगता हो, वहां यह न्याय होता है।

१७३। श्यामरक्तन्यायः।

जिस प्रकार घटादिका श्यामगुण नाश हो कर रक्तगुण होता है, उसी प्रकार जहां पूर्वगुणका नाश हो हो कर अपर गुणका समावेश हो, वहां यह न्याय होता है।

१७४। श्यालशुनकन्यायः।

किसी आदमीने एक कुत्ता पाला था और वह उसे श्यालक (साला) नामसे पुकारा करता था, जिस दिन उसे अपनी स्त्रीको चिढ़ानेका मन होता था, उस दिन वह उस कुत्तेको तरह तरहकी गाली देता था। स्त्री उस कुत्तेको अपना भाई समझ कर बहुत गुस्सा जाती थी। श्यालकके प्रति गाली देना वक्ताका अभिप्राय नहीं था, वहां उसकी स्त्रीके क्रोधका कारण नहीं रहने पर भी नामका ऐक्य सुन कर वह क्रोधान्विता होती थी। इस प्रकार जहां होगा, वहीं यह न्याय होता है।

१७५। श्वःकार्यमद्य कुर्वीतेति न्यायः।

जो कार्य कल करना होगा उसे आज, जो आज करना होगा उसे अभी कर डालना चाहिए। इस प्रकार जहां पर कर्त्तव्य कार्य पहले किया जाय वहां यह न्याय होता है।

"श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्।
नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्॥"

१७६। श्येनवत् सुखदुःखो त्यागवियोगाभ्यां।

जीव त्याग और वियोग इन दोनों द्वारा श्येन पक्षी-

की तरह सुखी और दुःखी होता है। किसी आदमीने एक श्येनशावक पाला था। कुछ दिन बाद उसने सोचा कि इसे वृथा कष्ट क्यों दूं, छोड़ देना ही अच्छा है। इस लिये पिञ्जरमेंसे निकाल उसे उड़ा दिया। श्येन बन्धनमुक्त हो कर सुखी हुआ और पालकके विच्छेदसे दुःखी भी हुआ। तात्पर्य यह कि संसारमें निरवच्छिन्न सुख नहीं है।

१७७। सन्दंशपतितन्यायः।

सन्दंश (सड़सी) जिस प्रकार मध्यस्थित पदार्थ ग्रहण कर सकता है। उसी प्रकार पूर्वोत्तर पदार्थके मध्यस्थित पदार्थके ग्रहणकी जगह यह न्याय होता है।

१७८। सन्निहितादपि व्यवहितं साकाङ्क्षं बलीय इति न्यायः।

सन्निहितसे व्यवहित पद यदि आकाङ्क्षायुक्त हो, तो यह बलवान् होता है तत्तुल्य न्याय। शाब्दबोधकी योग्यताके कारण साकाङ्क्षपदको अर्थात् स्वार्थान्वयबोधकी प्रयोजकता है इस नियमसे उसके आसत्तिक्रमका अनादर करके अन्वययोग्य पदार्थवाचक शब्दका व्यवहितत्व रहने पर भी जहां अन्वय होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

१७९। सन्निहिते बुद्धिरन्तरङ्गमिति न्यायः।

सन्निहित और विप्रकृष्ट इन दोनोंमें यदि दोनोंके अन्वयकी सम्भावना हो, तो सन्निहितमें आसक्ति वशतः अन्वय होता है, विप्रकृष्टका अन्वय नहीं होता। ऐसे स्थान पर यह न्याय होता है।

१८०। समुद्रवृष्टिन्यायः।

समुद्रमें वर्षा होनेसे जिस प्रकार उसका कोई उपकार नहीं होता, उसी प्रकार जहां निष्फल कार्य होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग करते हैं।

१८१। समूहालम्बनन्यायः।

जहां उपस्थित पदार्थोंके मध्य विशेषण और विशेष्य भाव द्वारा अन्वयकी असम्भावना हो, वहां उपस्थित पदार्थके समूहका अवलम्बन करके अन्वयका बोध होगा, जैसे घट, पट इत्यादिकी जगह घट और पट दोनों को विशेष्यपद हैं। इस विशेष्यपदका अवलम्बन करके अन्वयका बोध होगा। ऐसे स्थल पर यह न्याय होता है।

१८२। सम्भवत्येकवाक्यत्वे वाक्यभेदो न चेष्यते इति न्यायः।

एक वाक्यकी सम्भावना होनेसे वाक्यभेद अभिलषणीय नहीं है, जहां पर ऐसा होगा, वहां यह न्याय होता है।

१८३। सर्वं विशेषणं सावधारणमिति न्यायः।

विशेषण मात्र ही सावधारण है, जैसे—'श्वेत शङ्ख' यहां पर शङ्ख श्वेतवर्ण ही है, इस प्रकार जहां सावधारण वाक्य-बोध होगा, वहां यह न्याय होता है।

१८४। सर्वापेक्षान्यायः।

बहुतसे मनुष्योंको निमन्त्रण दिया गया, उनमेंसे अभी केवल एक आया है, उसे जिस प्रकार भोजन नहीं दिया जाता है, सबोंकी अपेक्षा करनी पड़ती है, उसी प्रकार जहां ऐसी घटना होगी, वहां यह न्याय होता है।

१८५। सविशेषणे हि विधिनिषेधौ विशेषणमुपसंक्रामतः सति विशेष्ये बाधे इति न्यायः।

विशेष्यपदके बाधित होने पर विशेषणके साथ वर्त्तमान विधि और निषेध विशेषणमें उपसंक्रान्त होती है, तत्तुल्य न्याय। जैसे—'घटाकाशमानय नान्याकाशं' घटाकाश लाओ, अन्याकाश लानेकी जरूरत नहीं। यहां पर विशेष्यपद आकाशसे बाधयुक्त आनयन और निवारण यह विधि है और निषेध होनेसे घटादिरूपमें विशेषण उपसंक्रान्त हुआ अर्थात् घट लाओ, यही बोध हुआ। इस प्रकार जहां होता है वहीं इस न्यायका प्रयोग करते हैं।

१८६ साक्षात् प्रकृतौ विकारलय इति न्यायः।

साक्षात् प्रकृतिमें विकारका लय होता है, तत्तुल्य न्याय। जिस प्रकार घटादिका साक्षात् प्रकृति कपालादिमें लय होता है, परमाणुमें नहीं होता, उसी प्रकार जहां पर विकारका स्वीय प्रकृतिमें लय होगा, वहीं यह न्याय होता है।

१८७। सावकाशनिरवकाशयोर्मध्ये निरवकाशो बलीयान् इति न्यायः।

सावकाश और निरवकाशविधिकी जगह निरवकाश विधि ही बलवान् है, तत्तुल्य न्याय। जिसके अनेक विषय अर्थात् स्थल हैं, वह सावकाश विधि और जिसके

केवल एक विषय है, वही निरवकाश विधि है। यदि कहीं पर ये दो विधियां समान रहें, तो वहां निरवकाश-विधिकी ही प्रधानता होगी। जहां इस प्रकार निरवकाश विधिकी प्रधानता होती है, वहीं पर यह न्याय होता है।

१८८। सिंहावलोकनन्यायः।

सिंह जिस प्रकार एक मृगका वध करके आगे बढ़ने बढ़ते पीछेकी ओर देखता है, उसी प्रकार जहां आगे और पीछे दोनोंका अन्वय हो, वहीं यह न्याय होता है।

१८९। सूचीकटाहन्यायः।

अल्पायाससाध्य सूची निर्माणके बाद कटाह निर्माण। एक दिन किसी आदमीने एक कर्मकारके यहां जा कर उसे एक कटाह बनाने कहा। इसी बीच एक दूसरा आदमी भी वहां पहुँच गया, उसने सूचीके लिये प्रार्थना की। कर्मकारने पहले सूची बना कर पीछे कटाह बना डाला। इस प्रकार जहां स्वल्पायास साध्य निबटा कर बहु आयाससाध्य कार्य किया जाता है, वहां यह न्याय होता है।

१९०। सुन्दोपसुन्दन्यायः।

सुन्द और उपसुन्द नामक प्रबल पराक्रान्त दो असुर थे। ये दोनों भाई परस्पर विवाद करके नष्ट हुए। इस प्रकार जहां परस्पर विनष्ट होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग करते हैं।

१९१। सूत्रशाटिकान्यायः।

सूत्र द्वारा शाटिका होती है। सूत्र शाटीका उपादान होनेसे सूत्रको शाटी इस भाविसंज्ञा द्वारा निर्देश होती है। इस प्रकार जहां उपादानका भाविसंज्ञा रूपमें निर्देश होता है, वहां यह न्याय होता है।

१९२। सोपानारोहणन्यायः

प्रासादके ऊपर जानेकी इच्छा होने पर जिस प्रकार सोपान पर चढ़ कर जाना पड़ता है अर्थात् एक एक सोपान पार कर क्रमशः प्रासादके ऊपर चढ़ते हैं, उसी प्रकार ब्रह्म जाननेमें पहले एक एक सोपान पार करनेसे ब्रह्मको जान सकते हैं। अर्थात् धीरे धीरे वैराग्य आदि उत्पन्न होता है और उसके साथ ही साथ अज्ञान भी दूरको जाता है। क्रमशः सम्पूर्ण अज्ञान तिरोहित ब्रह्म साक्षात्कार होते है। ऐसे ही स्थान पर यह होता है।

१९३। सोपानावरोहणन्याय।

जिस प्रकार सोपान पर चढ़ा और उतरा जाता है, उसी प्रकार जहां होगा वहां यह न्याय होता

१९४। स्थविरलगुडन्यायः।

वृद्धहस्तपतित लगुड़ जिस तरह लक्ष्यस्थल पतित नहीं होता, उसी तरह लक्ष्यस्थल पर पतित न होनेसे यह न्याय होता है।

१९५। स्थूणानिखननन्यायः।

स्थूणा गृहस्तम्भभेद उसका निखनन। स्तम्भ रोपण करनेमें उसकी दृढ़ताके लिए पुनः पुनः कर द्वारा उत्तोलन और चालन कर जिस प्रकार निखनन किया जाता है, उसी प्रकार जहां अपना पक्ष समर्थितपक्षको दृढ़ता के लिए उदाहरण और युक्ति आदि द्वारा पुनः पुनः समर्थन किया जाय, वहां यह न्याय होता है।

१९६। स्थूलारुन्धतीन्यायः।

विवाहके बाद वर और वधूको अरुन्धती दिखानी होती है। यह अरुन्धती बहुत दूरमें अवस्थित है, इसीसे अत्यन्त सूक्ष्म है। अति दूरत्वके कारण इसे हठात् देख नहीं सकते। किन्तु अङ्गुलि निर्देश पूर्वक मनुष्य पहले सप्तर्षिको, पीछे उसके समीपवर्त्ती अरुन्धतिको बतलाते हैं और उससे क्रमशः अरुन्धतीका ज्ञान भी होता है, इस प्रकार जहां अतिसूक्ष्म और दुर्विज्ञेय वस्तु जाननेके लिये धीरे धीरे उसका बोध होता है, वहां यह न्याय होता है।

१९७ स्वामिभृत्यन्यायः।

सभी भृत्य प्रभुके अभिप्रायानुसार कार्य सम्पादन करके प्रसादलाभसे अपनेको लाभवान् समझते हैं। इस प्रकार जहां परस्परके उपकार्य और उपकारक भावका बोध होता है, वहां इस न्यायका प्रयोग किया जाता है।

कितने ही लौकिक न्यायके लक्षण लिखे गये। इसके सिवा और भी बहुतसे लौकिक न्याय हैं। विस्तार हो जानेके भयसे उनका विवरण नहीं किया गया। केवल आरादि क्रमसे तालिका दी जाती है।

१ अग्नातपनन्याय, २ अत्यन्तं बलवन्तोऽपि पौरजानपदा इति न्याय, ३ अदग्धदहनन्याय, ४ अनधीते महाभाष्ये इति न्याय, ५ अनन्तरस्य विधिर्वा भवति प्रतिषेधो वा इति न्याय, ६ अन्ते या मतिः सा गतिरिति न्याय, ७ अन्ते रण्डाविवाहश्चेदादावेव कुतो न स इति न्याय, ८ अन्धदर्पणन्याय, ९ अनामुक्तन्याय, १० अंशभक्षणन्याय, ११ अभाण्डलाभन्याय, १२ अर्द्धवैशस न्याय, १३ अवश्यापेक्षितानपेक्षितयोरिति न्याय, १४ अश्वतरीगर्भन्याय, १५ अश्वभृत्यन्याय, १६ अहिनिपुल-न्याय, १७ अहिकुण्डलन्याय, १८ आषाढ़वात-न्याय, १९ इक्षुरसन्याय, २० इक्षुविकारन्याय, २१ इच्छेष्यमानयोः समभिव्याहारे इष्यमाणस्यैव प्राधान्यमिति न्याय, २२ इषुवेगक्षयन्याय, २३ उपजनिष्यमाननिमित्तोऽप्यपवादो जातनिमित्तमपि उत्सर्गं बाधत इति न्याय, २४ उपजीव्योपजीवकन्याय, २५ उष्ट्रलगुड़-न्याय, २६ एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थः अन्यत्रापि तथा इति न्याय, २७ कण्टकन्याय, २८ करिबृंहितन्याय, २९ कांस्यभोजीन्याय, ३० कामनागोचरत्वेन शब्दबोध एव शब्दसाधनताऽन्वय इति न्याय, ३१ कालनाशे कार्यनाशन्याय, ३२ किमज्ञानस्य दुष्करमिति न्याय, ३३ कीटभृङ्गन्याय, ३४ कुक्कुटध्वनिन्याय, ३५ कुम्भीधान्य-न्याय, ३६ कूपन्याय, ३७ कृताकृतप्रसङ्गी यो विधिः स नित्य इति न्याय, ३८ कोषपालन्याय, ३९ कौण्डिन्यन्याय ४० कौन्तेयराधेयन्याय, ४१ खलमैत्रीन्याय, ४२ खादक-घातकन्याय, ४३ गजघटान्याय, ४४ गणपतिन्याय, ४५ गर्दभारामगणनान्याय, ४६ गलेपादुकन्याय, ४७ गुणोपसंहारन्याय, ४८ गोचौरं खदन्ते दृष्टमिति न्याय, ४९ गोमयपायसन्याय, ५० गोसहिषादिन्याय, ५१ घटप्रदीपन्याय, ५२ चक्रभ्रमणन्याय, ५३ चर्मतन्तौ मिहसौ हन्तीति न्याय, ५४ चितास्थितन्याय, ५५ चित्र-पटन्याय, ५६ चित्राङ्गनान्याय, ५७ छिन्नानलन्याय, ५८ जलमग्न न्याय, ५९ जामातृर्थं श्रपितस्य सूपादेरतिथ्युपकारकत्वमिति न्याय, ६० ज्ञानधर्मि स्वभ्रान्तप्रकारे तु विपर्यय इति न्याय, ६१ ज्ञानादेर्निष्कर्षं वस्तुतः कर्णोऽप्यङ्गीकार्यं इति न्याय, ६२ ज्योतिन्याय, ६३ तत्तादृगवगम्यत इति न्याय, ६४ तदभिन्नत्वमिति न्याय, ६५ तदागमेऽपि दृश्यते इति न्याय, ६६ तमःप्रकाशन्याय, ६७ तरतमभावापन्नमिति न्याय, ६८ तामसं परिवर्जयेदिति न्याय, ६९ तालसर्पन्याय, ७० तिर्यगधिकरण-न्याय, ७१ तुशोन्नमनन्याय, ७२ त्यजेदेकं कुलस्यार्थे इति न्याय, ७३ त्वाज्या दुष्टाटिनी इति न्याय, ७४ दग्धा-रसनन्याय, ७५ दग्धेन्धनवह्निन्याय, ७६ दन्तसर्प-मारणन्याय, ७७ दधिपयसि प्रयत्नो ज्वर इति न्याय, ७८ दन्तपरीक्षान्याय, ७९ दानशालकटन्याय, ८० दारुकदाह्य न्याय, ८१ दुर्बलैरपि बाध्यन्ते पुरुषैः पार्थिवाश्रितैरिति न्याय, ८२ देवताधिकरण न्याय, ८३ देवदत्तहन्तृहतन्याय, ८४ देहलीदीपन्याय, ८५ देहाधीसुखत्वन्याय, ८६ धर्मकल्पनान्याय, ८७ धर्मिकल्पना न्याय, ८८ धान्यपललन्याय, ८९ नहि प्रत्यभिज्ञामात्रेणार्थसिद्धिरिति न्याय, ९० नहि भिक्षुको भिक्षुकमिति न्याय, ९१ नहि विवाहानन्तरं वरपरीक्षा क्रियते इति न्याय, ९२ नहि शाब्दमशाब्देनान्वेति इति न्याय, ९३ नहि सुतीक्ष्णाप्यसिधारा स्वयमेव छेत्तुमाहितव्यापारा भवतीति न्याय, ९४ नागोष्ट्रपति न्याय, ९५ नाज्ञातविशेषणा विशिष्टबुद्धिः विशेष्यं संक्रामतीति न्याय, ९६ नीरक्षीरन्याय, ९७ नीलेन्दीवरन्याय, ९८ नौनाविकन्याय, ९९ पटन्याय, १०० पदमप्यधिकाभावात् स्मारकात् न विशिष्यत इति न्याय, १०१ परिघ-न्याय, १०२ पर्वताधित्यकान्याय, १०३ पर्वतोपत्यका-न्याय, १०४ पिण्डं हित्वा करं लेढीति न्याय, १०५ पुरस्तादपवादा अनन्तरान् विधीन् बाधते नेतरानिति न्याय, १०६ पुष्टलगुडन्याय, १०७ पूर्वं सपवादा निविशन्ते पश्चादुत्सर्गा इति न्याय, १०८ पूर्वात् परबलीयस्त्व न्याय, १०९ प्रकल्प्यापवादविषयं पश्चादुत्सर्गोऽभिनिविशते इति न्याय, ११० प्रकाशाश्रयन्याय, १११ प्रकृतिप्रत्ययार्थयोः प्रत्ययार्थस्य प्राधान्यमिति न्याय, ११२ प्रधानमल्लनिबर्हण न्याय, ११३ प्रमाणवन्त्यदृष्टानि कल्प्यानि सुबहून्यपीति न्याय, ११४ प्रसङ्गपठितन्याय, ११५ बहुच्छिद्रघटप्रदीपन्याय, ११६ बहुराजकपुरन्याय, ११७ ब्राह्मणवशिष्ठन्याय, ११८ भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिरिति न्याय, ११९ भामतीन्याय, १२० भावप्रधानमाख्यातमिति न्याय, १२१ भ्वादिन्याय, १२२ भूलिङ्ग-

पचिनन्याय, १२३ भूमैत्योत्थानन्याय, १२४ भेरवन्याय, १२५ भ्रमरन्याय, १२६ मचिकान्याय, १२७ मण्डूकप्लुतिन्याय, १२८ मत्स्यकण्टकन्याय, १२९ मल्लग्रामन्याय, १३० महिषी प्रसवोन्मुखीतिन्याय, १३१ मात्स्यन्याय, १३२ मूकभयेन कथात्यागन्याय, १३३ मूर्खसेवनन्याय, १३४ मृषासिक्तताम्बन्याय, १३५ मृगभयेन शस्यानाश्रय इति न्याय, १३६ मृगवागुरान्याय, १३७ मृतमारणन्याय, १३८ यः कारयति स करोत्येव इति न्याय, १३९ यः कुरुते स भुङ्क्ते इति न्यायः, १४० यत्प्रायः श्रूयते यादृक् तत्तादृगवगम्यते इति न्याय, १४१ यदर्थो प्रवृत्तिः तदर्थः प्रतिषेधः इति न्याय, १४२ यद्विवाहगीतगानमिति न्याय, १४३ यस्याज्ञानं भ्रमस्तस्य भ्रान्तः सम्यक् च वेद स इति न्याय, १४४ यावच्छिरस्तावच्छिरोऽन्यथा इति न्याय, १४५ येन चाप्राप्ते न यो विधिरारभ्यते स तस्य बाधको भवति इति न्याय, १४६ रथवड़वान्याय, १४७ रश्मिलक्षणादिन्याय, १४८ राजसं नाममत्तेति न्याय, १४९ रामभरटितन्याय, १५० रूढ़िर्योगमपहरतीति न्याय, १५१ रेखागवयन्याय, १५२ रोगिन्याय, १५३ लाङ्गलजीवनमितिन्याय, १५४ लौहाग्निन्याय, १५५ वंकबन्धनन्याय, १५६ विधिनिषेधौ सति विशेषवाधे विशेषणं उपसंक्रामेत इति न्याय, १५७ विधेयं हि स्तूयते वल्लितिन्याय, १५८ विपरीतं बलाबलमिति न्याय, १५९ विवाहप्रवृत्तभृत्यन्याय, १६० विशिष्टवर्त्तोरिति न्याय, १६१ विशिष्टस्य वैशिष्ट्यमिति न्याय, १६२ वृश्चिकीगर्भन्याय, १६३ वैशेष्यात्तु तद्वाद इति न्याय, १६४ व्यञ्जकव्यङ्गन्याय, १६५ श्वाग्नीचोरन्याय, १६६ शणगोधन्याय शस्त्रग्रहणमिति न्याय, १६७ शालिबीजन्याय, १६८ शक्तिः सहकारिणीतिन्याय, १६९ शवोद्वर्त्तनन्याय, १७० शाखाचन्द्रन्याय, १७१ शब्दोत्थाकाङ्क्षा शब्देनैव पूरणीयेतिन्याय, १७२ शंखूचीन्याय, १७३ शृपुच्छोन्नामनन्याय, १७४ सच्छिद्रघटाम्बु न्याय, १७५ सति बोधे न जानातीति न्याय, १७६ सर्वं शास्त्रप्रत्ययमेकं कर्मेति न्याय, १७७ साचात्प्रकृतमितिन्याय, १७८ साधुमैत्रीन्याय, १७९ सार्वजनो न तुल्यायव्ययन्याय, १८० सिंहमृगन्याय, १८१ सुतजनिमृतिन्याय, १८२ सुभगाभिक्षुकन्याय, १८३ सुन्दोपसुन्दन्याय, १८४ स्थालीपुलाकन्याय, १८५ स्थावरजङ्गमविषन्याय, १८६ स्फटिकलौहित्यन्याय, १८७ स्वकारकुचन्याय, १८८ स्वपन्हानिकदन्तलात् स्वकुलाङ्गारतां गत इति न्याय, १८९ स्वप्नप्राप्तन्याय, १९० स्वर्णशिशुमपि सुवर्णमिति न्याय, १९१ हस्तामलकन्याय।

श्री रामदयालुमिश्र रघुनाथविरचित लौकिकन्याय संग्रहमें उक्त न्यायसमूहका विवरण लिखा है।

न्यायकर्त्ता (सं॰ पु॰) न्याय करनेवाला, दो पक्षोंके विवादका निर्णय करनेवाला, इंसाफ करनेवाला।

न्यायकोकिल (सं॰ पु॰) एक बौद्धाचार्य।

न्यायतः (सं॰ अव्य॰) न्याय-तसिल्। १ न्यायानुसार, धर्म और नीतिके अनुसार, ईमानसे। २ ठीक ठीक।

न्यायता (सं॰ स्त्री॰) न्याय भावे तल् टाप्। न्यायका भाव, उपयुक्तता।

न्यायदेव—भरतप्रणीत सङ्गीतनृत्यकार ग्रन्थके टीकाकार।

न्यायदेश (सं॰ क्ली॰) १ विचारालय, अदालत। २ विचारसम्बन्धीय कर्म।

न्यायपथ (सं॰ पु॰) न्यायोपेतः पन्थाः, समासे अच् समासान्तः। १ मीमांसाशास्त्र। २ आचरणका न्यायसम्मत मार्ग, उचित रीति।

न्यायपरता (सं॰ स्त्री॰) न्यायपरस्य भावः, तल् टाप्। १ न्यायवान् कार्य, इंसाफका काम। २ न्यायशीलता, न्यायी होनेका भाव।

न्यायवत् (सं॰ त्रि॰) न्यायः विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। न्याययुक्त, न्याय पर चलनेवाला।

न्यायवर्त्ती (सं॰ त्रि॰) न्याय-वृत-णिनि। न्याय पर चलनेवाला।

न्यायवागीश (सं॰ पु॰) काव्यचन्द्रिका नामक एक अलङ्कार ग्रन्थके प्रणेता, विद्यानिधिके पुत्र।

न्यायवान् (हिं॰ पु॰) विवेकी, न्यायी।

न्यायविहित (सं॰ त्रि॰) न्यायेन विहितः। न्यायानुसार कृत, जो न्यायपूर्वक किया जाय।

न्यायवृत्त (सं॰ क्ली॰) न्यायोपेतं वृत्तम्। १ शास्त्रविहिताचार। (त्रि॰) २ शास्त्रविहिताचारी।

न्यायविरुद्ध (सं॰ त्रि॰) प्रत्यक्ष-प्रमाणके विरोधी।

न्यायशास्त्री (सं॰ पु॰) महाराष्ट्रदेशमें धर्मप्रवक्ताकी उपाधि।

न्यायसभा (सं॰ स्त्री॰) वह सभा जहां विवादोंका निर्णय हो, कचहरी, अदालत।

न्यायसारिणी (सं॰ स्त्री॰) न्यायं सरति सृ-णिनि। युक्तिपूर्वक कर्मानुसारिणी।

न्यायाधीश (सं॰ पु॰) १ उपाधिविशेष, व्यवहार या विवादका निर्णय करनेवाला अधिकारी, मुकदमेका फैसला करनेवाला अधिकारी, जज।

न्यायालय (सं॰ पु॰) वह स्थान जहां न्याय अर्थात् व्यवहार या विवादका निर्णय हो, वह जगह जहां मुकदमोंका फैसला हो, अदालत, कचहरी।

न्यायी (सं॰ त्रि॰) न्यायोऽस्त्यस्य इनि। न्याय पर चलनेवाला, नीतिसम्मत आचरण करनेवाला, उचित पक्षग्रहण करनेवाला।

न्याय्य (सं॰ त्रि॰) न्यायादनपेतं न्याय यत् (धर्मपथार्थन्यायादनपेते। पा ४।४।९२) न्याययुक्त, न्यायसङ्गत। पर्याय—युक्त, औपयिक, लभ्य, भजमान, अभिनीत, क्रमोचित।

न्यारा (हिं॰ वि॰) १ जो पास न हो, दूर। २ जो मिला या लगा न हो, अलग, जुदा। ३ विलक्षण, निराला, अनोखा। ४ अन्य, भिन्न, और ही।

न्यारिया (हिं॰ पु॰) सुनारोंके निआरको धो कर सोना चांदी एकत्र करनेवाला।

न्यारे (हिं॰ क्रि॰-वि॰) १ पास नहीं, दूर। २ पृथक्, अलग।

न्याव (हिं॰ पु॰) १ नियम-नीति, आचरणपद्धति। २ दो पक्षोंके बीच निर्णय, विवाद या झगड़ेका निबटेरा, व्यवहार या मुकद्दमेका फैसला। ३ उचित पक्ष, कर्त्तव्यका ठीक निर्धारण, वाजिब बात। ४ उचित अनुचितकी बुद्धि, इंसाफ।

न्यास (सं॰ पु॰) न्यस्यते इति नि-अस्-घञ्। १ उपनिधि, किसीको वस्तु जो दूसरेके यहां इस विश्वास पर रखी हो कि वह उसकी रक्षा करेगा और मांगनेपर लौटा देगा, धरोहर, थाती। निःक्षेप देखो। २ विन्यास, स्थापन, रखना। ३ अर्पण। ४ त्याग। ५ काशिकाख्यपाणिनिसूत्रव्याख्यान्ग्रन्थविशेष। ६ संन्यास। ७ किसी रोग या बाधाकी शान्तिके लिये रोगी या बाधाग्रस्त मनुष्यके एक एक अङ्ग पर हाथ ले जा कर मन्त्र पढ़नेका विधान। ८ पूजाकी तान्त्रिक पद्धतिके अनुसार देवताके भिन्न भिन्न अंगोंका ध्यान करते हुए मन्त्र पढ़ कर उन पर विशेष वर्णोंका स्थापन। पूजा करनेमें न्यास करना होता है। तन्त्र और पुराणमें इसका विधान लिखा है।

प्रातःकाल, पूजाके समय वा होमकर्म इन सब समयोंमें न्यास करना होता है। न्यास पूजाका अङ्ग है। तन्त्रमें अनेक प्रकारके न्यासका विवरण देखनेमें आता है जिनमेंसे तन्त्रसारोक्त कई प्रकारके न्यासका विषय नीचे दिया जाता है। सभी पूजामें मातृकान्यास करना होता है।

"अस्य मातृका मन्त्रस्य ब्रह्मऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयो मातृकान्यासे विनियोगः। शिरसि ओं ब्रह्मणे ऋषये नमः, मुखे ओं गायत्रीच्छन्दसे नमः, हृदि ओं मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः, गुह्ये ओं व्यंजनेभ्यो बीजेभ्यो नमः, पादयोः स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः।"

"मातृकां शृणु देवेशि न्यसेत् पापनिकृन्तनीं।
ऋषिर्ब्रह्मास्य मन्त्रस्य गायत्री छन्द उच्यते॥
देवता मातृकादेवी बीजं व्यंजनसंचयम्।
शक्तयस्तु स्वरा देवि षडंगन्यासमाचरेत्॥"

मातृकान्याससे पापका नाश होता है। इस न्यासके ऋषि ब्रह्मा, छन्द गायत्री, देवता मातृकासरस्वतीदेवी, बीज व्यञ्जन और शक्ति स्वरसमूह है।

अङ्ग और करन्यास—अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां स्वाहा, उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां वषट्, एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां हुं, ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां वौषट्, अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्। इसी प्रकार हृदयमें भी जानना चाहिए। यथा—अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः इत्यादि। पूर्वकथित वर्ण यथाक्रमसे शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, कवचाय हुं, नेत्रत्रयाय वौषट्, करतलपृष्ठाभ्यां अस्त्राय फट्, इन सब शब्दोंको पूर्व पूर्व प्रणालीके अनुसार वर्ण विन्यास करना होता है। यही

दो न्यास अङ्ग और करन्यास हैं। ज्ञानार्णवतन्त्रमें इन अङ्ग और करन्यासका विधान इस प्रकार लिखा है—

'अं आं मध्ये कवर्गञ्च इं ईं मध्ये चवर्गकम्।
उं ऊं मध्ये टवर्गन्तु एं ऐं मध्यगे तवर्गकम्॥" इत्यादि।

अङ्गन्यास और करन्यास ही मातृकान्यासका षडङ्गन्यास है। यह पापनाशक माना गया है। इसमें ६ मन्त्रोंसे ६ अङ्गोंमें न्यास करना होता है, इसीसे इसे षडङ्ग कहते हैं। ६ मन्त्र ये हैं—नमः, स्वाहा, वषट्, हुं, वौषट् और फट्, तथा पञ्चाङ्गुलि, करतलपृष्ठ, हृदयादि पञ्चअङ्ग और करतल-पृष्ठ ये छः अङ्ग हैं। इन्हीं ६ अङ्गोंमें उक्त ६ मन्त्रोंसे न्यास किया जाता है। इसीसे इस न्यासको अङ्ग, कर वा षडङ्ग कहते हैं।

मातृकाका ऋष्यादिन्यास, पूर्वोक्त प्रकारसे करन्यास और अङ्गन्यास करके अन्तर्मातृकान्यास किया जाता है। इस अन्तर्मातृकान्यासका विषय अगस्त्यसंहितामें इस प्रकार लिखा है—

देहके मध्य आधारादि भ्रूमध्य तक ६ पद्म हैं। उन्हीं सब पद्मोंमें यह अन्तर्मातृकान्यास करते हैं। कण्ठस्थलमें जो षोड़श दलपद्म हैं, उनके षोड़श पत्रोंमें अकारादि षोड़श स्वरोंको अनुस्वारयुक्त करके—अं नमः, आं नमः इत्यादि रूपसे, न्यास करना होता है। यथा—हृदयस्थित द्वादशदलपद्ममें ककारादि द्वादशवर्ण, अर्थात् क-से ठ पर्यन्त वर्ण, नाभिमूलस्थित दश दल पद्ममें डकारादि दशवर्ण, ड-से फ पर्यन्त, लिङ्ग मूलस्थित षड्दल पद्ममें बकारादि षड्वर्ण, ब-से ल पर्यन्त, मूलाधार स्थित चतुर्दल पद्ममें वकारादि चार वर्ण, व-से स पर्यन्त एवं भ्रूमध्यस्थित द्विदल पद्ममें ह, क्ष इन दो वर्णोंका न्यास करना होता है। न्यासमें प्रत्येक वर्णको अनुस्वारयुक्त करके अर्थात् 'कं नमः, चं नमः' इत्यादि प्रकारसे न्यास किया जाता है। इस प्रकार मन ही मन आन्तरिक न्यास करके बाह्यन्यास करते हैं। विशुद्धविषयमें आधारादि मस्तक तक षट्पद्ममें निम्नलिखित क्रमसे वर्णन्यास विधेय है। मूलाधारस्थित सुवर्णाभ चतुर्दल पद्ममें व, श, ष, स ये चार वर्ण, लिङ्गमूलस्थित विद्युदाभ षड्दल स्वाधिष्ठानपत्रमें ब-से ल पर्यन्त, नाभिमूलस्थितनीलमेघप्रभ दशदल मणिपूर पद्ममें ड-से फ पर्यन्त वर्ण, प्रवालसदृश हृदयस्थित द्वादशदल अनाहत पद्ममें क-से ठ पर्यन्त, कण्ठस्थित धूम्रवर्ण षोड़श दल विशुद्धाख्य पद्ममें अकारादि षोड़श स्वर और भ्रूमध्यस्थित चन्द्रवर्ण द्विदल पद्ममें ह क्ष ये दो वर्णविन्यास विधेय हैं। हिमवर्ण सर्ववर्ण-विभूषित समाहित चित्तमें इस प्रकार ध्यान करनेको ही आन्तर मातृकान्यास कहते हैं।

इस न्यासमें प्रथमतः मातृका देवीका ध्यान करना होता है।

बाह्यमातृका ध्यान—

"पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोःपन्मध्यवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम्।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलसं विद्याञ्च हस्ताम्बुजे
बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये॥"

मातृकादेवीका शरीर अकारादि पञ्चाशद्वर्णमय, ललाट पर उज्ज्वल चन्द्र निबद्ध, दोनों स्तन बहुत स्थूल, चारों हाथोंमें मुद्रा, जपमाला, सुधापूर्ण कलस और विद्या हैं। यह मातृकादेवी विशदप्रभा और त्रिनयना हैं।

इस प्रकार मातृका देवीका ध्यान करके पुनः न्यास करना होता है। न्यासविषयमें अङ्गुलि-नियम इस प्रकार है—ललाटदेशमें अनामिका और मध्यमाङ्गुलि द्वारा न्यास विधेय है। इसी प्रकार मुखमें तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, दोनों नेत्रमें वृद्धा और अनामिका, दोनों कानमें अङ्गुष्ठ, दोनों नाकमें कनिष्ठा और अङ्गुष्ठ, दोनों गण्डमें तर्जनी, मध्यमा और अनामिका, दोनों ओष्ठमें मध्यमा, दोनों दन्तपंक्तिमें अनामिका, मस्तक पर मध्यमा, मुखमें अनामिका और मध्यमा, हस्त, पाद, पार्श्व और पृष्ठ पर कनिष्ठा, अनामिका और मध्यमा, नाभिदेशमें कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा और अङ्गुष्ठ, उदरमें सर्वाङ्गुलि, वक्षःस्थल, दोनों ककुत्स्थल, हृदयसे हस्त, हृदयसे पाद और मुख तक सभी स्थानोंमें हस्ततल द्वारा न्यास करना होता है। इसका नाम है मातृकामुद्रा। इस मुद्राके जाने विना न्यास करनेसे निष्फल होता है।

मातृकान्यासका स्थान—ललाट, मुख, चक्षु, कर्ण, नासिका, गण्ड, ओष्ठ, दन्त, मस्तक, मुख, हस्तपादसन्धि, हस्तपादाग्र, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, नाभि, उदर, हृदय, स्कन्ध-

पृष्ठ, ककुद, हृदादि मुख, इन सब स्थानोंमें न्यास करना होता है। न्यासके सभी स्थानों पर प्रणवादि नमोऽन्त कर प्रयोग करनेका विधान है।

यथा—ओं अं नमो ललाटे, ओं आं नमो मुखवृत्ते, इं ईं चक्षुषोः, उं ऊं कर्णयोः, ऋं ॠं नसोः, लृं लॄं गण्डयोः, एं ओष्ठे, ऐं अधरे, ओं अधोदन्ते, औं ऊर्ध्व-दन्ते, अं ब्रह्मरन्ध्रे, अः मुखे। कं दक्षबाहु मूले, खं कूर्परे, गं मणिबन्धे, घं अङ्गुलिमूले, ङं अङ्गुल्यग्रे और चं छं जं झं ञं वामबाहुमूलसन्ध्यग्रेषु, इत्यादि। इस प्रकार पञ्चाशद्वर्णका विन्यास कर न्यास किया जाता है।

"ओमाद्यन्तो नमोऽन्तो वा सबिन्दुर्बिन्दुवर्जितः।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमादुक्तो मनीषिभिः॥"

संहारमातृकान्यास।—इस न्यासमें संहारमातृका देवीका ध्यान करना होता है।

ध्यान—"अक्षस्रजं हरिणपोतमुदग्रटंकं
विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्रां।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दरामां
वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्॥"

जो अपने चारों हाथमें अक्षमाला, हरिणशावक, मृदङ्कटङ्क और विद्या धारण की हुई हैं और जो त्रिनयनी हैं, अर्द्धचन्द्र जिनके मौलिदेश पर विराजमान हैं तथा जो अरविन्दवासिनी हैं, उन्हीं वर्णेश्वरी स्तनभार-विनता देवीको प्रणाम करता हूं। इस प्रकार संहार मातृकाका ध्यान करके 'हृदादि मुखे क्षं नमः हृदादि उदरे हं नमः' इत्यादि रूपसे न्यास करते हैं। यह मातृकावर्ण चार प्रकारका है—केवल, विन्दुयुक्त, विसर्ग-युक्त और विन्दु तथा विसर्ग उभययुक्त। इस केवल मातृकान्यासमें विद्या, विन्दु और विसर्ग उभययुक्त न्यास में भक्ति, विसर्गयुक्त न्यासमें पुत्र और विन्दुयुक्त न्यासमें वित्त लाभ होता है।

"चतुर्धा मातृका प्रोक्ता केवला विन्दुसंयुता।
सविसर्गा चोभया च रहस्यं शृणु कथ्यते॥
विद्याकरी केवला च सोभया भक्तिदायिनी।
पुत्रदा सविसर्गा तु सविन्दुर्वित्तदायिनी॥"

विशुद्धेश्वर तन्त्रमें लिखा है, कि वाक्सिद्धि कामनामें वाग्बीज (ऐं), श्रीवृद्धिकी कामनामें श्रीबीज (श्रीं), सर्व सिद्धिकी कामनामें नमः और लोकवशी-करणमें कामबीज (क्लीं) आदिमें योग करके न्यास करे। यह (अः) आदिमें योग करके न्यास करनेसे सभी मन्त्र प्रसन्न होते हैं। नवरत्नेश्वरग्रन्थमें श्रीविद्याके विषय-में लिखा है, कि आदिमें वाग्बीज (ऐं) और अन्तमें नमः योग करके अर्थात् 'ऐं अं नमः' ऐं आं नमः' इत्यादि पञ्चाशद्वर्ण द्वारा न्यास करनेसे अणिमादि अष्टसिद्धि लाभ होती है। यामलमें लिखा है, कि भूतशुद्धि और मातृका-न्यास किये विना जो पूजा की जाती है वह निष्फल होती है। अतएव सभी देवपूजामें मातृकान्यास अवश्य विधेय है। गौतमीयतन्त्रमें सामान्य न्यासका अङ्गुलिनियम इस प्रकार लिखा है—मन ही मन पुष्प द्वारा अथवा अनामिका और अङ्गुष्ठ द्वारा न्यास करें, इसका विपरीत करनेसे निष्फल होता है। साधारण न्यासमें यह नियम है, श्यामादि विद्याविषयमें मातृकान्यासमें और कुछ विशेष है।

पीठन्यास—'ओं आधारशक्तये नमः' इस प्रकार प्रकृति, कूर्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका और रत्नसिंहासन ये सब न्यास करने होते हैं यह न्यास हृदयमें करना होता है। पीछे दक्षिणस्कन्धमें धर्म, वामस्कन्धमें ज्ञान, वाम ऊरुमें वैराग्य, दक्षिण ऊरुमें ऐश्वर्य, मुखमें अधर्म, दक्षिणपार्श्वमें अज्ञान, नाभिमें अवैराग्य और वाम-पार्श्वमें अनैश्वर्य इन सबका न्यास किया जाता है। सभी जगह प्रणवादि नमोऽन्तका प्रयोग होगा।

"अंसोरुयुग्मयोर्विद्वान् प्रादक्षिण्येन साधकः।
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं क्रमशः सुधीः।
मुखपार्श्वे नाभिपार्श्वे स्वधर्मादीन् प्रकल्पयेत्॥"

फिरसे हृदयमें न्यास करना होगा, ओं अनन्ताय नमः, इस प्रकार पद्म, अं द्वादशकलात्मक सूर्यमण्डल, उं षोडश कलात्मक सोममण्डल, मं दश कलात्मक वह्नि-मण्डल, सं सत्त्व, रं रजस्, तं तमस्, आं आत्मन्, अं अन्तरात्मन्, पं परमात्मन्, ह्रीं ज्ञानात्मन्, अन्तमें नमः शब्दका योग करके न्यास करना होता है। शारदा-तिलकमें इस न्यासका विषय इस प्रकार लिखा है—

ऋष्यादिन्यास—

"मन्त्रेणाध्ययनात्मा यः साक्षात्दर्शा मुनिः ।
संप्रावर्तति गुरुत्वात् स तस्य ऋषिरीरितः ॥
गुरुत्वान्मस्तके चास्य न्यासस्तु परिकीर्त्तितः ।
सर्वेषां मन्त्रतत्त्वानां छादनाच्छन्द उच्यते ॥"

जिन्होंने पहले महादेवके मुखसे मन्त्र श्रवण करके तपस्या द्वारा मन्त्र सिद्ध किया है, वे उसी मन्त्रके ऋषि होते हैं। ऋषि ही मन्त्रके आदि गुरु हैं, इस कारण उनका मस्तकमें न्यास करना चाहिए। सब प्रकारके मन्त्रतत्त्वको जो आच्छादन किए रहते हैं, उनका नाम छन्द है। सभी छन्द अक्षर और पदघटित हैं, अतः छन्दका मुखमें न्यास करनेका विधान है। सब प्रकारके जन्तुओंको जो सर्व कार्यमें प्रेरण करते हैं, वे देवता हैं। अतः हृत्पद्ममें उनका न्यास किया जाता है। ऋषि और छन्दको बिना जाने न्यास करनेसे कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता। तन्त्रान्तरमें लिखा है, कि मस्तक पर ऋषि मुखमें छन्द, हृदयमें देवता, गुह्यदेशमें बीज, पादद्वयमें शक्ति और सर्वाङ्गमें कीलक न्यास करे। पीछे मन्त्रोक्त न्यास करना होता है। ज्ञानार्णवतन्त्रमें लिखा है कि जो मनुष्य आगमोक्त विधानसे प्रतिदिन न्यास करते हैं उनका मन्त्र सिद्ध होता है और अन्त-में देवलोकको जाते हैं। जो न्यास करके मन्त्रका जप करते हैं, उनके सब विघ्न भागे रहते हैं। अज्ञानता प्रयुक्त जो न्यासादि किये बिना मन्त्र जपते हैं उनके सभी काम निष्फल होते हैं।

षडङ्गन्यासका अङ्गुलि-नियम—तीन, दो, एक, दश, तीन और दो अङ्गुलि द्वारा हृदयादि षडङ्गमें न्यास करे। राघवभट्टकृत आगमग्रन्थके वचनमें लिखा है कि मध्यमा, अनामिका और तर्जनी अङ्गुलि द्वारा हृदयमें, मध्यमा और तर्जनी अङ्गुलि द्वारा मस्तकमें, अङ्गुष्ठद्वारा शिखा-स्थानमें, सर्वाङ्गुलि द्वारा कवचमें, तर्जनी, मध्यमा और अनामिका द्वारा नेत्रमें तथा तर्जनी और मध्यमा द्वारा करतल पर न्यास करना होता है। जिस देवताका न्यास करना होता है, उस देवताके यदि दो नेत्र हों, तो तर्जनी और मध्यमा द्वारा नेत्रमें न्यास करनेका विधान है। हृदयाय नमः, शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, इत्यादि पूर्वोक्तक्रमसे हृदयादि षडङ्गमें न्यास करे। जहां पर पञ्चाङ्ग न्यास कहा गया है, वहां पर नेत्रको छोड़ कर दूसरे पञ्चाङ्गमें न्यास करे। विष्णुके विषयमें अङ्गुष्ठहीन सरलहस्त शाखा द्वारा हृदय और मस्तकमें न्यास करे तथा अङ्गुष्ठ मध्यगत मुष्टि द्वारा शिखा, उभय हस्तको सर्वाङ्गुलि द्वारा कवच, तर्जनी और मध्यमा द्वारा नेत्रमें न्यास करके अङ्गुष्ठ और तर्जनी द्वारा करतल पर ध्वनि करनी चाहिये। जहां पर षडङ्गमन्त्र निर्दिष्ट नहीं हुआ है, वहां पर देवता नामके आदि अक्षर द्वारा अङ्गन्यास करना होता है। इसके विषयमें ब्रह्मयामलमें लिखा है, कि सभी देवताओंके नामके आदि अक्षर द्वारा अङ्गन्यास किया जा सकता है।

इस प्रकार न्यासादि करके देवताका मुद्राप्रदर्शन, ध्यान और पूजनादि करनेका विधान है।

(तन्त्रसार आगमोक्त पूजाक्रम)

यह जो मातृका प्रभृति न्यासोंका विषय लिखा गया वह सभी पूजामें किया जाता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है। मातृकान्यास और भूतशुद्धि नहीं करनेसे पूजादि निष्फल होती हैं।

"कृत्वास्यादावाल' यो भूतशुद्धिं प्रकरोत्यनुम् ।
सर्वविघ्नैः स बाध्यः स्यात् ... दुर्लभा ॥"

(तन्त्रसार)

यह न्यास भिन्न भिन्न देवताके विषयमें भिन्न भिन्न प्रकारका है। विस्तारके भयसे कुछ विवरण नहीं लिखा गया, केवल थोड़ेसे नाम दिए गये हैं,—

विष्णुविषयमें न्यास केशवकीर्त्यादि, मूर्त्तिपञ्जर, तत्त्व, मूर्तिपञ्जर, दशाङ्ग, षडङ्ग; शिवविषयमें श्रीकण्ठादि, ईशानादि पञ्चमूर्त्ति, मन्त्र, मूर्त्ति, गोलक, सुमन्यादि और भूषण; अन्नपूर्णाविषयमें षडङ्गन्यास; श्रीविद्याविषयमें वशिन्यादि, न्यायन्यासक, पीठ, तत्त्व, पञ्चदशी, षोड़शी, संहार, स्थिति, सृष्टि, नाद, षोढ़ा, गणेश, ग्रह, नक्षत्र, योगिनी, राशि, त्रिपुरा, षोड़शनित्या, कामरति, सृष्टिस्थिति, प्रकटयोगिनी, आयुध; ताराविषयमें न्यास, रुद्र, ग्रह, लोकपाल है (तन्त्रसार) इन सब न्यासोंको प्रणाली तन्त्रसारमें विस्तृत रूपसे लिखी है। अन्यान्य न्यासका विवरण उसी ग्रन्थमें देखो।

न्यासस्वर (सं॰ पु॰) वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त किया जाय।

न्यासिक (सं० त्रि०) न्यासेन चरति पर्थ्यादित्वात् ष्ठन् (पा ४।४।१०) न्यासकारी, धरोहर रखनेवाला, जो किसीकी थाती रखे। स्त्रियां षित्वात् ङीष्।

न्यासिन् (सं० त्रि०) नि-अस-णिनि। १ त्यागी। २ संन्यासी।

न्युङ्ख (सं० पु०) नि-उङ्ख-घञ्, पृषोदरादित्वात् साधुः। १ ऋग्भेद। गीतिमें उदात्त अनुदात्तरूप सोलह ओकार हैं जिनमेंसे तीन प्लुत और तेरह अर्द्धौकार है। २ सम्यक्। ३ मनोज्ञ।

न्युब्ज (सं० क्ली०) न्युब्जति अधोमुखो भवति नि-उब्ज अच्। १ कर्मरङ्गफल, कमरख। २ आद्यादि पात्र-भेद। ३ दर्भमय स्रुक्। ४ कुश। ५ स्रुक्, एक यज्ञपात्र। ६ व्यथा, कष्ट। ७ रोगी, बीमारी। (त्रि०) न्युब्जति अधोमुखो भवतीति। ८ कुब्ज, कुबड़ा। ९ अधोमुख औंधा। १० रोगभुग्न, रोगसे जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो।

न्युब्जखड्ग (सं० पु०) न्युब्जः खड्गः। कुब्ज खड्ग, टेढ़ी तलवार। इसका पर्याय कटीतल्ल है।

न्युराय—युक्तप्रदेशके आगरा विभागान्तर्गत ईटा तहसील-का एक ग्राम। यह तहसीलके दरसे ४ मील उत्तर पूर्वमें अवस्थित है। यहां एक सुन्दर मन्दिर है।

न्यूगीनी - प्रशान्तमहासागरस्थ पूर्वद्वीपपुञ्जके अन्तर्गत एक द्वीप। इसका दूसरा नाम तानापपूया है। यहांका ओयेनष्टेनलि गिरिशृङ्ग (३०,० फुट ऊंचा है। इसका उत्तर-पश्चिम उपद्वीप भाग ओलन्दाजों और दक्षिण-पूर्व भाग ब्रटिश गवर्मेण्टके अधिकारमें है। यहां प्रसिद्ध पपूया-जाति रहती है। यह अफ्रिकाको निग्रो और मिओरीजातिसे बहुत कुछ मिलती जुलती है। इनके अङ्गप्रत्यङ्ग और मस्तकादि देखनेसे वे पलिनेसीय शाखा-भुक्त-से मालूम पड़ते हैं। यहांकी फ्लाई नदीके तीर-वासिगण गहरे पीले, खूब लम्बे चौड़े और बलिष्ठ तथा पूर्व उपद्वीपके अधिवासी हरापन लिए कुछ पीले होते हैं। अपरापर जातियां पपूआमलयसे उत्पन्न हुई हैं।

छुड उपसागरके निकटवर्ती ग्रामवासिगण युद्धविद्या में निपुण, श्रमशील, नाविकविद्यापारदर्शी, मिट्टीके अच्छे अच्छे बरतन और खिलौने आदि बनानेमें पटु हैं। मोराहवि बन्दरवास, कोई-तापु और कोयरीजाति यहां-की आदिम अधिवासी हैं।

न्यूगीनीके दक्षिण पूर्व प्रायः तीन सौ मीलके मध्य पचीस विभिन्न भाषाएं देखनेमें आती हैं। इससे सहजमें जाना जा सकता है, कि यहां बहुत सी असभ्य-जातियोंका वास है। यहां तक कि कोई कोई जाति वृथा ही मनुष्योंको मारती और उनके मांस खाती है। इसी कारण यहांके वणिक्‌गण प्रनायास अपनी जिन्दगी खो बैठते हैं। यहां पक्षी, मछली और फलादि अधिक परिमाणमें मिलते हैं उनमेंसे ईख, कुम्हड़ा, तरबूज, आम, खीरा सुपारि, साबु और नारियल प्रधान हैं।

न्यू-आयर्लैण्ड, न्यूब्रिटेन्-द्वीप, न्यूकालिडोनिया, मालिकोला और ताना आदि इस द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत हैं।

न्यूजीलैण्ड—अङ्गरेजाधिकृत एक उपनिवेश, दक्षिण गोलार्द्धके प्रशान्तमहासागरमें एक द्वीपपुञ्ज। इसमें बड़े बड़े द्वीप और इसके दक्षिणमें एक छोटा द्वीप है। यहांके रहनेवाले इन दो बड़े द्वीपोंमेंसे उत्तरस्थ द्वीपको पहिनोमलक और दक्षिणस्थको टवैल-पोनाम्मू कहते हैं जो कुकके मुहाना द्वारा एक दूसरेसे पृथक् किये जाते हैं। किन्तु उपनिवेश-स्थापनकारी उत्तरीय द्वीपको न्यूअलष्टर, दक्षिणीय बड़े द्वीपको न्यूमानष्टर और छोटेको न्यूलिनष्टर कहते हैं।

यह द्वीपपुञ्ज अक्षा० ३४° २५' से ४७° १७' दक्षिण और देशा० १६६° २६' से १७८° ३६' पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या ८५०००० और भूपरिमाण १०४४७१ वर्गमील है। यहांकी आबहवा इङ्गलैण्डकी आबहवासे बहुत कुछ अंशोंमें मिलती जुलती है। जाड़ेमें खूब ठंड पड़ती है और इसके सिवा अन्यान्य ऋतुओंमें भी जाड़ा मालूम होता है। वर्षा प्रायः सब समय हुआ करती है, किन्तु शीत और वसन्त ऋतुमें कुछ अधिक होती है।

जिस समय यूरोपीयगण इस देशमें आये थे, उस समय यहांके अधिवासी तारो (Caladium esculentum) और कुमेरा नामक मोठे आलू (Kumera or Sweet potato convolvulus potato) की खेती करते थे। फलोंमें सफेदा (Areca Sapida) ही सर्वोत्कृष्ट है। यहांके अधिकांश स्थान जङ्गलसे भरे हुए हैं जिनमें

नाना प्रकारके बड़े बड़े वृक्ष देखनेमें आते हैं। यहांकी प्रधान उपज ज्वार गेहूं, आलू, शलगम आदि है, किन्तु आलूकी ही खेती अधिकतर होती है और यह दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। पहले पहल यहांके ग्राम्य पशुओंमें केवल कुत्ते ही देखे जाते थे, लेकिन वर्त्तमान समयमें यूरोपवासिगण गाय, घोड़े, भेड़, शूकर प्रभृति गृह-पालित पशु लाये हैं।

खनिज द्रव्य यहां उतने अधिक नहीं मिलते। १८५२ ई०को करमण्डलमें सोनेकी खानका पता लगा था। तांबे, लोहे और कोयलेकी खानें भी कहीं कहीं देखनेमें आती हैं।

मलय भाषा (Malay language) और यहांके अधिवासियोंकी भाषा एक आदिभाषासे ही उत्पन्न हुई है, किन्तु इन लोगोंकी भाषामें दूसरी दूसरी भाषाएं भी मिली हुई हैं। जब कप्तान कुकने पहले पहल न्यूजीलैण्डका आविष्कार किया था उस समय यहांके लोग यहींके उत्पादित शस्यादिसे जीवन-निर्वाह करते और पहाड़के ऊपर छोटे छोटे घर बना कर रहते थे।

यहांके अधिवासी यूरोपके उपनिवेशस्थानकारी और स्थानीय आदिम निवासी हैं। स्थानीय अधिवासी इन लोगोंको मेवरी कहते हैं जो दीर्घकाय, बलिष्ठ और सुन्दर गठनविशिष्ट होते हैं। शासन विभागकी यहां एक कमीटी कायम है। उसमें एक गवर्नर रहते हैं जिनको देशसे तनखाह मिलती है। देशकी देखभाल व्यवस्थापिका सभा द्वारा होती है जिसमें पैतालिस मेम्बर और अस्सी प्रतिनिधि रहते हैं। मेम्बर प्रत्येक सातवें वर्षमें और प्रतिनिधि प्रत्येक तीसरे वर्षमें बदले जाते हैं। इसकी देख रेख गवर्नरके ही अधीन रहती है। यहां म्युनिसिपलिटीकी भी व्यवस्था है। शिक्षाविभागका भी सुप्रबन्ध है। यहां अनेक प्राइमरी मिडिल और हाई स्कूल हैं तथा चार प्रसिद्ध शहरोंमें कालेज भी हैं जहां लड़के सब प्रकारकी शिक्षा पाते हैं।

किसी किसीका कहना है, कि सोलहवीं शताब्दीमें स्पेनवासियोंने न्यूजीलैण्डका पता लगाया। किन्तु इस विषयका कोई सन्तोषजनक प्रमाण नहीं मिलता। ओलन्दाज नाविक आबेल तासमानने १६४२ ई०में यहां आ कर पहले पहल न्यूजीलैण्डका नाम जनसाधारणमें फैलाया।

न्यूटन आइजक—एक विख्यात दार्शनिक और ज्योतिःशास्त्रज्ञ पण्डित। इङ्गलैण्डमें लिनकोलन प्रदेशके कोलष्टरवर्थ गिर्जाके अन्तर्भुक्त उलथर्प नामक एक छोटेसे गांवमें १६४२ ई०को २५वीं दिसम्बरको न्यूटनका जन्म हुआ था। इनके मातापिता दोनों ही प्राचीन सम्भ्रान्तवंशसे उत्पन्न हुए थे। ये न्यूटनवंश पहले लिनकोलन प्रदेशके हुस्टरि नगरमें वास करते थे। बाद उलथर्पकी तालुकदारी पा कर वे लोग यहीं आ कर रहने लगे। इनके पिताने रटलैण्डवासी जेम्स अस्काफकी कन्याके साथ विवाह किया था। न्यूटन जिस समय माताके गर्भमें थे, उसी समय इनके पिताकी मृत्यु हो गई थी। इस प्रकार शोकसागरमें निमग्न हो उनकी माताने असमयमें ही पुत्र प्रसव किया। ये अपने माता-पिताकी एक ही सन्तान थे। न्यूटनकी परिवारके भरण-पोषणोपयोगी आय न रहनेके कारण उनकी विधवा माता नार्थवेथमके धर्मयोजक (Rector)के साथ पुनः विवाह करनेको बाध्य हुईं। इस समय तीन वर्षके बालक न्यूटनने मातामहीके तत्त्वावधानमें रह कर विद्याशिक्षा आरम्भ की। बारह वर्षकी उम्रमें वे ग्रन्थामके व्याकरण-विद्यालयमें भर्ती होने पर भी विद्याभ्यासकी कोई विशेष उन्नति दिखानेमें समर्थ न हुए। इस समय उन्होंने यन्त्रविद्या (Mechanic) पढ़नेकी इच्छा प्रकट की और यथासाध्य कौशलके साथ वायवीय-यन्त्र (Windmill), जलघड़ी (Water clock) तथा शङ्कुयन्त्र (Sun dial) बनाये। इन सब विषयोंमें विशेष पारदर्शिता दिखाने पर भी विद्याचर्चामें वे दूसरे दूसरे लड़कोंकी अपेक्षा हीन थे। जीवनी-लेखक ब्रुष्टारने लिखा है कि इनके उपरिस्थ एक बालकने एक दिन उनकी उपेक्षा कर इनके पेटमें एक लात मारी। इस पर इन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा की कि, "जब तक उसकी विद्याका अभिमान चूर न कर दूंगा, तब तक किसीसे बातचीत न करूंगा।" उनकी इस आन्तरिक दृढ़ताने विद्वान्-जगत्का सर्वोच्च आसन दिलाया था। १६५६ ई०में इनके द्वितीय पिता 'रेभरेण्ड बारनाबास स्मिथ'की मृत्यु होने पर इन्हें माताके साथ

पुनः उलथर्प लौट आना पड़ा। इस समय आप माताके आदेशसे विद्या-शिक्षा का परित्याग कर खेतीबारी तथा उद्यानादिके उत्कर्षसाधनमें यत्नवान् हुए और इन सब कार्योंके अनिच्छुक होने पर भी आप उन्हें करनेको बाध्य हुए। जब हटवारमें न्यूटन साथियोंके साथ ग्रन्थाम-के उत्पन्न द्रव्योंको विक्रय करनेके लिये जाते थे, तब वे किसी स्थान पर कलकारखाना देख ठहर जाते तथा उसके चक्रादिको गति विशेष रूपसे देखते थे। नगरमें प्रवेश कर वे अपने मित्र एक औषध-विक्रेताके घर पर जा उनके पुस्तकालयको पुस्तकें पढ़ते थे। इस तरह पुराने ग्रन्थपाठसे वे ऐसा आनन्द-अनुभव करते थे कि उनके संगी जब तक द्रव्यादि विक्रय कर उन्हें नहीं पुकारते. तब तक वे पाठसे उठते नहीं थे। उनको विद्याभ्यासमें एकान्त अनुरक्ति देख कर उनके मामा 'रेभरेण्ड डबलिउ अस काफ'-ने उन्हें फिर विद्यालयमें भेजनेका विचार किया। १७ वर्षकी अवस्थामें वे केम्ब्रिजके अन्तर्गत त्रिनिटि कालेजमें पाठाभ्यासके लिये भेज दिये गये।

यहां उन्होंने १६६० ई०में प्रथम प्रवेशिका (Matriculation) परीक्षा पास की। १६६१ ई०में आपने अवैत-निक 'सब-सीजर' (Sub sizar) हो विद्यालयमें शिक्षा-शिक्षा देनेकी अनुमति पाई तथा १६६४ ई०में आप शिक्षित श्रेणीभुक्त हुए और १६६५ ई०में आपको 'बी० ए०'-की उपाधि मिली।

उन कई वर्षोंमें इनकी कोई विशेष उन्नति नहीं देखी गई। जब इनकी अवस्था २४ वर्षकी हुई, तब इन्होंने ज्ञानकी पराकाष्ठा दिखा कर बीजगणितके अन्तर्गत द्विपद उपपाद्य (Binominal theorem) विश्लेषण गणितकी परमाणुकी गति अनुधावनके हेतु नियमावली (Principles of flexion) तैयार की और गतिके नियम (Law of force) व्याख्याकालमें ग्रहगणके यहां तक कि चन्द्रका भी सूर्याभिमुख आकर्षण है यह उनके अन्तःकरणमें सहसा जाग उठा। उन्होंने कई एक अंशोंमें उक्त विषय प्रतिपादन करनेमें यत्न किया था और उत्क्षिप्त पत्थरको पृथिवीकी ओर आकृष्ट देख समझा था कि जिस प्रकार समस्त ग्रहगण परस्पर आकर्षणशील हैं, उसी प्रकार पृथिवी भी आकृष्टिशक्तिके अधीन है।

१६६४-६५ ई०में न्यूटन त्रिनिटि कालेजके आईन-सदस्य (Law-fellowship) होनेके लिए 'राबर्ट उम-डेल' साहबके प्रतिद्वन्द्वी हुए थे, किन्तु दोनोंके सम्यक् ज्ञानवान् होने पर भी उनके अध्यापक 'डा० व्यारो' मि० उमडेलको पुरातन तथा वयोवृद्ध विवेचनाके सदस्य रूपमें लाये। १६६७ ई०में वे जुनियर सदस्य और 'एम० ए०'की उपाधि पा कर दूसरे वर्षमें सिनियर सदस्य नियुक्त हुए। १६६८ ई०में उन्होंने लुकासी (Lucasian)-के अध्यापक हो व्यारो साहबका पद अधिकार किया।

गणितशास्त्रमें प्रवेश कर उन्होंने पहले 'डेकार्ट' (Descartes) लिखित ज्यामिति अध्ययन की और उक्त अध्यापकके प्रदर्शित ज्यामितिके साथ बीजगणित-को संयोजनाका अभ्यास किया। इसके बाद उन्होंने 'वालिस' रचित Arithmetica Infinitorum नामक गणितग्रन्थ पढ़ा। इसके भी पढ़नेसे इन्हें विशेष लाभ हुआ था। यह पर्यालोचना करते समय इसके उपक्रममें वे द्विपदराशिपाद्य गणित गणनाके उपाय उद्भावन करनेमें सफल हुए।

न्यूटनने परमाणुकी प्रवहनशीलगति-गणनाका पहला उपाय १६६५ ई०में कल्पना किया और उसके प्रतिपाद-नार्थ दूसरे वर्ष "Analysis per Epuationés Numero Terminorum Infinitas" नामका एक छोटा लेख भी लिखा। इसमें किसी तरहकी भूल हो सकती है, इस भयके कारण इन्होंने पहले उक्त लिपि किसीको भी न दिखाई और अन्तमें उसे अपने हितैषि-बन्धु डा० व्यारो साहबको दिया। व्यारो साहबने इनकी अनुमति ले कर उक्त हस्तलिखित प्रबन्ध मि० कालिन्को दिखाया। इन्होंने इसे अपनी पुस्तकमें लिख लिया और १७१२ ई०में इसका प्रथम मुद्राङ्कण हुआ।

१६६५-६६ ई०में जब इङ्गलैण्डमें महामारी फैली थी, तब आप केम्ब्रिज छोड़ कर उलथर्पमें आ बसे थे। यहां आ कर आपने पहले सब वस्तुओंकी स्वाभाविक-शक्ति और पृथिवीको उपरिस्थ वस्तुसमूहका भूकेन्द्र (Centre of Earth)की ओर स्वाभाविक आकर्षणकी चिन्ता आरम्भ की थी और यह भी अनुमान किया था

कि यही शक्ति क्रमानुसार वर्द्धित हो कर चन्द्र और उस के पारिपार्श्विक ताराओंको आकर्षण करती है। इन समस्त तारागणसे परिवेष्टित चन्द्रने भी परस्परकी वृत्तस्थित केन्द्रापसारिणी आकृष्ट शक्ति (Centrifugal force)-से पृथिवीकी दूरीके अनुसार इस चौथशक्तिको अपनी ओर आकर्षण कर दोनों शक्तिको बीचमें स्थिर कर रखा है। इस हेतु यह स्पष्ट अनुभूत होता है, कि ये समस्त ग्रह और तारागण अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे (पृथिवीके) कक्षावृत्त रास्ते पर भ्रमण कर स्थिर भावसे ठहरे हुए हैं। चन्द्र जिस प्रकार अपनी कक्षा (Orbit) पर घूर्णमान केन्द्रापसारिणी (Centrifugal) शक्तिसे अपने ही वृत्त-पथ पर स्थिर हैं, उसी प्रकार सौरजगत्‌के केन्द्र (Centre) स्वरूप सूर्यके चारों ओर चक्रप्रभृति ग्रहगणका अपने अपने वृत्त-पथ पर अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे घूमना न्यूटनके न्याय चिन्ताशील मस्तिष्कमें ऐसी धारणा उत्पन्न हुई थी। इनके पहले वैज्ञानिक बूलों (Bouillaud)ने सूर्यसे आगत इस आकर्षणशक्तिका प्रतिपादन किया था; किन्तु वे इसको सरल भाषामें समझानेमें समर्थ न हुए थे। महामति न्यूटनने स्वयं कहा था कि ग्रहगण अपनी अपनी शक्तिके प्रभावसे कक्षच्युत न हो स्थिर भावसे ठहरे हुए हैं। उन्होंने देखा था कि केप्लर-प्रतिपादित ग्रहगणके मध्याकर्षकी दूरता (Mean distance) और भ्रमणकाल (Periodic time-) दोनों ही समभावमें वर्त्तमान हैं और यह परस्परका स्वाभाविक-आकर्षण आकृष्ट वस्तुकी दूरीका अनुगामी है, उसी दूरीके व्यस्तवर्गफल (Inverse square)से इस शक्तिकी कमी वा बेसी देखी जाती है। बूलों साहबके इस मतके प्रकाश करने पर न्यूटनने उसका पक्ष समर्थन करते हुए कहा, कि यह शक्ति सभी पदार्थोंमें स्वतःसिद्ध भावमें वर्त्तमान है। न्यूटनने यह भी कहा, कि किसी वस्तुकी आकृष्टि-शक्ति कितनी ही प्रबल क्यों न हो जिससे ग्रहोंको केन्द्रापसारिणी शक्तिको मध्यस्थलमें स्थिर रखा है, उसी शक्तिकी प्रबलता निर्दिष्ट समयके मध्य किसी भुजवृत्तकी उत्क्रमज्या (Versed sine of the arc)का समानुपात होनेसे सहजमें अनुमान किया जा सकता है। अतः समय यदि अल्प हो, तो इसांशके वर्गफलको निर्दिष्ट ग्रहके मध्याकर्ष (Mean distance)की दूरतासे भाग देनेसे अथवा रेखाविशिष्ट गतिवेगके वर्गफलको इसी दूरतासे भाग करनेसे उक्त शक्तिका अनुपात स्थिर किया जाता है।

इस प्रकार ग्रहगणकी सूर्यकी ओर आकृष्टि स्थिर कर, वे पृथिवीके साथ चन्द्रका आकर्षण निराकरण करनेमें अग्रसर हुए थे। १६६६ ई०में महामारीके प्रकोपके इङ्गलैण्डसे चले जाने पर वे फिर केम्ब्रिजनगर आये। यहां आ कर वे दत्तचित्तसे इन सब विषयोंके तथ्यकी खोज करने लगे। इस प्रकार उनको मानसिक कल्पना १६ वर्ष तक इसमें अन्तर्निविष्ट रही। बाद १६८२ ई०में इन्होंने रायल सोसायटीके अधिवेशनमें उपस्थित हो पिकर्ड साहब-अनुष्ठित याम्योत्तररेखांश (Arc of a meridian)का परिमाण जान कर पृथिवीके व्यासार्द्धका परिमाण ठीक किया था। इस समय इनका पूर्वसञ्चित आकर्षण-शक्ति-प्रकरण जिसकी कल्पना इनके हृदयमें बहुत दिनोंसे आ रही थी, क्रमशः परिस्फुटित होने लगा। इससे ये इतने उत्तेजित और स्नायवीय दुर्बलतामें ऐसे चञ्चल हुए कि उक्त गणना समाधान कर वे उठ न सके थे इसके दूसरे वर्ष इन्होंने केन्द्राभिमुखिनी (Centripetal) शक्तिको सहायतासे पदार्थ समूहकी गति निराकरण कर एक प्रबन्ध लिखा। १६८६ ई०में यह प्रबन्ध डा० मिन्सेण्ट द्वारा रायल सोसायटीमें दिया गया और अनेक वादानुवादके बाद स्वीकृत हो १६८७ ई०में वह इनके बनाए हुए "प्रिन्सिपिया" नामक ग्रन्थमें पहले पहल प्रकाशित हुआ। इसके बाद इन्होंने सौरजगत्‌के प्रत्येक अणु परमाणुके परस्परके प्रति आकृष्टि और किस विशिष्ट वस्तुके आकर्षणसे वे सब उसमें संलग्न भावसे स्थित हैं, ये सब विषय निर्दिष्ट किये। यही माध्याकर्षण शक्ति है जिसको बहुत दिन पहले हमारे देशके पण्डितगण स्थिर कर गये हैं।

माध्याकर्षण देखो।]

ग्रहगणकी परिचालना देखनेके लिये न्यूटनने १६७१ ई०में अपने हाथसे एक दूरवीक्षणयन्त्र बनाया। यह यन्त्र आज भी रायल सोसायटीमें वर्त्तमान है। १७०२

ई०में ये उक्त सभाके सदस्य निर्वाचित हुए और १६८८ ई०में शिक्षाविभागके प्रतिनिधि हो पार्लियामेण्ट महासभाका आसन ग्रहण किया। इसके कुछ दिन बाद ये वार्षिक ६०० पौण्ड वेतन पर टकशालके प्रधानाध्यक्षके पद पर नियुक्त हुए। १६९९ ई०में ये पेरिस (Paris) नगरको 'रायल एकडिमी-आफ-साएन्स' सभाके फारेन-एसोसियेट और १७०३ ई०में रायल-सोसायटीके प्रेसिडेण्ट हो कर मृत्यु पर्यन्त उक्त पद पर सम्मानके साथ अधिष्ठित रहे। १७०५ ई०में इङ्गलैण्डकी महारानी एनी (Queen Anne)ने इन्हें 'नाइट'की उपाधि दी। १७२२ ई०में इन्होंने मूत्र और वातरोगसे आक्रान्त हो कर केनिंग्टननगरमें १७२७ ई०को ८५ वर्षकी उम्रमें मानवलीला सम्वरण की। इन्होंने कुल बारह पुस्तकोंकी रचना की जिनमेंसे प्रिन्सिपियो, अपटिक्स, एनालिसिस पर इकोएशनिस न्यूमेरी टरमिनोरम इनफिनीटम, एमथड आफ् फ्लक्शन, एनालिसिस, बाइ इनफिनिट सीरीज और बाइबलके संस्कारक ये सब ग्रन्थ प्रधान हैं। उन्होंने जो सब छोटी छोटी प्रबन्धावली रायल-सोसायटीमें अर्पण की थी, वे सब उक्त सोसायटीको कार्य-विवरणी (Transactions)के ७मसे ११श भागमें सन्निविष्ट हैं।

न्यून (सं० त्रि०) न्यूनयति नि-ऊन परिहाणि अच्। १ गर्ह्य, नीच, क्षुद्र। २ ऊन, कम, थोड़ा।

न्यूनतर (सं० त्रि०) प्रचलित परिमाणका ह्रास, चलते हुए वजनसे कम।

न्यूनता (सं० स्त्री०) न्यूनस्य भावः, तल्, टाप्। १ क्षुद्रता, हीनता। २ अल्पता, कमी।

न्यूनपञ्चाशद्भाव (सं० पु०) न्यूनपञ्चाशतः ऊनपञ्चाशद्वायुनां भावो यत्र। ऊनपञ्चाशद्भाव, पागल।

न्यूनाङ्ग (सं० स्त्री०) १ हीनाङ्ग, जो अङ्ग किसीका हीन हो। २ खञ्ज, लङ्गड़ा।

न्यूनेन्द्रिय (सं० त्रि०) जो एक न एक इन्द्रियका हीन हो।

न्यूफाउण्डलैण्ड—ग्रेटब्रटेनके अधिकृत एक द्वीप। यह अटलाण्टिक महासागरमें अक्षा० ४६° ४०' से ५१° ३७' उ० और देशा० ५२° २५' से ५९° १५' पश्चिममें अवस्थित है। १००० ई०के पहले नारवे देशवासियोंने इस देशका प्रथम आविष्कार किया। बाद १४९७ ई०में जानकेबट (John Cabot)ने इसका फिर पता लगाया। इस स्थानमें उपनिवेश स्थापनके लिए सर जार्ज कलभर्ट (Sir George Calvert) कई बार चेष्टा कर अकृतकार्य हुए। अन्तमें १६२३ ई०में इस द्वीपके दक्षिण पूर्वांशमें एक उपनिवेश स्थापित हुआ। धीरे धीरे दूसरे दूसरे उपनिवेश भी स्थापित हुए हैं।

इस द्वीपका क्षेत्रफल ६०००० वर्गमील है। यहांके अधिवासियोंमेंसे अधिकांश मत्स्यजीवी हैं और बहुत थोड़े मनुष्य खेतीबारी करते हैं। सभी खृष्टधर्मावलम्बी हैं—कुछ प्रोटेष्टण्ट (Protestant) और कुछ रोमन कैथलिक (Roman Catholic) हैं। अटलाण्टिकके मध्य अवस्थित और अधिकांश समय तक वर्फसे ढके रहनेके कारण यहांकी ग्रीष्मऋतु अत्यन्त मनोरम होती है। इसी समय दिन और रात अत्यन्त सुखजनक है। सम्प्रति यहांके देशवासियोंने कृषिकार्यमें विशेष ध्यान दिया है। गेहूं, उरद, जौ, धान आदि यहां प्रचुर परिमाणमें होते हैं। स्थानीय गवर्मेण्ट नाना देशोंसे नाना प्रकारके शस्योंके बीजोंको आमदनी करती है। किन्तु मछली पकड़ना ही द्वीपवासियोंकी प्रधान उपजीविका है। तैल और चमड़ेके लिए मकर (Seals) और तैल प्रस्तुत करनेके लिए कड (Cod) मछली भी पकड़ी जाती है। बहुसंख्यक लोग इस व्यवसाय द्वारा जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं। यहांसे प्रचुर सामन (Salmon) मछली अमेरिका आदि स्थानोंमें भेजी जाती है।

यहांकी राजधानी सेण्टजानस (St. Johns) है जो द्वीपके दक्षिण-पूर्वांशमें अक्षा० ४७° ३३' उ० और देशा० ५२° ४३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां पानी और गैसकी कलें हैं और एक वाणिज्यगृह (Custom-house) भी बनाया गया है।

उक्त द्वीपकी दक्षिण-पूर्वकी तीरभूमि बहुत बड़ी है। किसी समुद्रकी ऐसी विस्तृत तीरभूमि देखनेमें नहीं आती। यह विशाल तीरभूमि (Great Bank) ६० मील चौड़ी है।

एक शासनकर्त्ता, व्यवस्थापक सभा और कार्य-निर्वाहक सभा द्वारा यहांका शासनकार्य चलता है।

न्यौकस् (सं० त्रि०) नियतं ओको यस्य। नियत स्थान-युक्त।

न्यौचनी (सं० स्त्री०) दासी।

न्यौछावर (हिं० स्त्री०) निछावर देखो।

न्यौजस् (सं० त्रि०) नि-उज्ज असिच् लोपि गुणः। आर्जव शून्य, कुटिल।

न्यौतना (हिं० क्रि०) १ किसी रीति रस्म या आनन्द उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिए इष्ट मित्र, बन्धु-बान्धव आदिको बुलाना, निमन्त्रित करना। २ दूसरेको अपने यहां भोजन करनेके लिए बुलाना।

न्यौतनी (हिं० स्त्री०) वह खाना पीना जो विवाह आदि मङ्गल अवसरों पर होता है।

न्यौतहरी (हिं० पु०) निमन्त्रित मनुष्य, न्यौतेमें आया हुआ आदमी।

न्यौता (हिं० पु०) १ किसी रीति, रस्म, आनन्द, उत्सव आदिमें सम्मिलित होनेके लिए इष्टमित्र, बन्धु-बान्धव आदिका आह्वान, निमन्त्रण, बुलावा। २ भोजन स्वीकार करनेकी प्रार्थना, अपने स्थान पर भोजनके लिए बुलाना। ३ वह भोजन जो दूसरेको अपने यहां कराया जाय या दूसरेके यहां किया जाय, दावत। ४ वह भेंट या धन जो अपने इष्टमित्र सम्बन्धी इत्यादिके यहांसे किसी शुभ या अशुभ कार्यमें सम्मिलित होनेका न्यौता पा कर उसके यहां भेजा जाता है।

न्यौरा (हिं० पु०) बड़े दानोंका घुंघरू, नेवर।

न्यौला (हिं० पु०) नेवला देखो।

न्यौली (हिं० स्त्री०) नेती, धोती आदिके समान हठ-योगकी एक क्रिया जिसमें पेटके नलोंको पानीसे साफ करते हैं।

नृस्थिमालिन् (सं० त्रि०) नृणामस्थिमाला, नृस्थिमाला, सा अस्त्यस्येति इनि। १ शिव, महादेव। २ नरास्थि, मालाविशिष्ट। ३ शुभ।

न्वाजिसमहम्मद—नवाब अलीवर्दीके भतीजे। अलीवर्दी जब विहारके नवाबीपद पर नियुक्त हुए, तब उन्होंने छोटे भतीजेके साथ अपनी कन्याको व्याहा। इसके गर्भसे मिर्जामहम्मद उत्पन्न हुए। यही मिर्जामहम्मद आगे चल कर सिराजुद्दौला नामसे प्रसिद्ध हुए। सिराजमें नाना दोष रहते भी अलीवर्दीने १७५६ ई०में उन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया। इस पर न्वाजिस मह-म्मदको बहुत दुःख हुआ, क्योंकि सिंहासन पर उन्होंका दावा अधिक था। कुछ वर्ष तक ढाकाका शासन भार ग्रहण कर उन्होंने कुछ रुपये संग्रह कर लिये और उसीसे एक दल सेना रखी। किन्तु वे स्वयं असा-धारण धीसम्पन्न अथवा युद्धविशारद नहीं थे; उनके दोनों मन्त्री हुसेनकुली खाँ और हुसेनउद्दीनके हाथमें विशेष क्षमता थी। सिराजुद्दौलाने देखा कि जब तक इनका विनाश नहीं किया जायगा, तब तक निरापदकी सम्भावना नहीं। इस समय न्वाजिसमहम्मद और हुसेन-उद्दीन दोनों एक साथ मुर्शिदाबादमें रहते थे और हुसेनउद्दीन ढाकामें शासनकर्त्ताके प्रतिनिधि स्वरूप हो कर। अलीवर्दीने सोचा कि सावधानताके साथ इन दोनों मन्त्रियोंको कामसे अलग कर सकनेमें ही मङ्गल है। पीछे न्वाजिसने उनका अभिप्राय समझ ढाका जा कर स्वाधीनता कायम कर ली। सिराजुद्दौला इस भयसे चुपचाप बैठे न रहे और उनके हाथसे अपनेको बचाने-के लिए कुछ घातकोंको नियुक्त किया। इन लोगोंने ढाका जा कर दोपहर रातको हुसेनउद्दीनको मार डाला और २१४ दिन बाद मुर्शिदाबादके शहरमें दिन-दहाड़े होसेनकुलीको भी हत्या की। न्वाजिस और उनके भाई सैयद अहम्मद नवाबीपद पानेके लिये लड़ रहे थे। किन्तु इस समय दोनों मिल गए और सिराजु-द्दौलाके विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। किन्तु सिराजुद्दौला बड़े वीर थे उन्होंने उपरोक्त उपायसे दोनों भाइयोंको यमपुर भेज ही दिया।

न्यैभा-जुआन-डि—पोर्त्तुगालके एक सेनापति। १५०१ ई०-में पोर्त्तुगीजोंने जब तीसरी बार भारतवर्ष पर आक्र-मण किया उस समय ये सेनापति बन कर इस देशमें आए। कोचिनमें पहुंच कर उन्होंने देखा, कि वहांके राजा पोर्त्तुगीजोंके साथ सद्व्यवहार कर रहे हैं। कना-नूरके राजाने उन्हें मिर्च और अन्यान्य पण्यद्रव्य उधार दिए थे। किन्तु कालिकटके सामरीराजने प्रतिहिंसासे

उद्विग्न हो कर व्वेभाके विरुद्ध युद्धजहाज भेजा। कोचिनके राजाने उन्हें छिप रहनेकी सलाह दी, किन्तु व्वेभा वैसे कापुरुष नहीं थे। ज्यों ही विपक्षके जहाज सामने होने लगे, त्यों ही उन्होंने एक एक कर उनके सौ जहाजों पर इस प्रकार आक्रमण किया कि वे बचावका कोई उपाय न देख सन्धिसूचक पताका उठानेको बाध्य हुए। व्वेभाने उनके साथ ऐसा उदार व्यवहार किया था, कि सामरी-राजने उन्हें कालिकट देखनेका निमन्त्रण किया, किन्तु आशङ्का हो जानेके कारण उन्होंने निमन्त्रण स्वीकार न किया और अपने जहाज पर माल असबाब लाद कर स्वदेशको चल दिये।

प

प—पकार, पञ्चमवर्गका प्रथम वर्ण, व्यञ्जनवर्णका इक्कीसवां अक्षर। इसका उच्चारण ओठसे होता है, इसलिये शिक्षामें इसे ओष्ठ्यवर्ण कहा गया है। इसके उच्चारणमें दोनों ओठ मिलते हैं; इसलिये यह स्पर्शवर्ण है। इसके उच्चारणमें शिक्षाके अनुसार विवार, श्वास, घोष और अल्पप्राण नामक प्रयत्न लगते हैं। प के पीछे रहनेसे विसर्गके स्थानमें उपाध्मानीय वर्ण होता है। वर्णाभिधानतन्त्रमें इसके वाचक शब्द ये हैं,—सुरप्रियता, तीक्ष्णा, लोहित, पञ्चम, रमा, गुह्यकर्त्ता, निधि, शेष, कालरात्रि, सुरारिहा, तपन पालन, पाता, देवदेव, निरञ्जन, सावित्री, पातिनी, पान, वीरतन्त्र, धनुर्द्धर, दक्षपार्श्व, सेनानी, मरीचि, पवन, शनि, उड्डीश, जयिनी, कुम्भ, अनलरेखा, मूला, द्वितीया इन्द्राणी, लीलाक्षी, मन और आत्मक।

इस वर्णका स्वरूप—

यह 'प' अक्षर अव्यय और चतुर्वर्गप्रद है। इसकी प्रभा शरत्कालीन चन्द्रमा-सी है। यह वर्ण पञ्चदेवमय और परमकुण्डली, पञ्चप्राणमय, सर्वदा त्रिशक्तिसमन्वित, त्रिगुणावहित, आत्मादितत्त्वसंयुत एवं महामोहप्रद है। (कामधेनुतन्त्र ५)

इस वर्णमें शम्भु, ब्रह्मा और भगवती अवस्थान करती हैं।

इसका उत्पत्तिप्रकार—

"ऋहुरेफषकाराश्च मूर्द्धगो दन्तगस्तथा।
लृतवर्गलसानोष्ठ्यानुपूपध्मानसंज्ञकान् ॥" (प्रपञ्चसार)

इसका ध्यान—

"विचित्रवसनां देवीं द्विभुजां पङ्कजेक्षणाम्।
रक्तचन्दनलिप्ताङ्गीं पद्ममालाविभूषिताम् ॥
मणिरत्नादिकेयूर-हारभूषितविग्रहाम्।
चतुर्वर्गप्रदां नित्यां नित्यानन्दमयीं पराम् ॥
एवं ध्यात्वा पकारन्तु तन्मन्त्रं दशधा जपेत् ॥"

मातृकान्यासमें इस वर्णका दक्षिण पार्श्वमें न्यास किया जाता है। काव्यादिमें इसवर्णका प्रथम प्रयोग करनेसे सुख होता है।

'सुखभयमरणक्लेशदुःखं पवर्गः" (वृत्तरत्ना० टीका)

प (सं० पु०) पातयति वेगेन वृक्षादीन पत-कर्त्तरि ड। १ पवन, हवा। पतति वृक्षात् ड। २ पर्ण, पत्र, पत्ता। पीयते इति पा-ड। ३ पान। ४ पालन। ५ अन्त। ६ पाता, वह जो पालन करता हो। पाति रक्षति पा-क, इसी व्युत्पत्तिसे पाता यह अर्थ हुआ। यह किसी शब्दके बाद प्रयुक्त हुआ करता है। यथा—गोप, नृप इत्यादि।

"राजस्नातकयोश्चैव स्नातको नृपमानभाक्।"
(मनु २।१३९)

मुग्धबोध व्याकरणमें यह अनुबन्धरूपमें लिखा गया गया है। पमुचादि। मुचादियोंका सङ्केत है प।
"नः स्वादिः पो मुचादिर्मःशमादिर्मोनिचीशुणमेः।"
(कविकल्पद्रुम)

पंख (हिं॰ पु॰) पक्ष, पर, डैना, वह अवयव जिससे चिड़िया, फतिङ्गे आदि हवामें उड़ते हैं।

पँखड़ी (हिं॰ स्त्री॰) पखड़ी देखो।

पंखा (हिं॰ पु॰) वह पदार्थ जिसे हिला कर हवाका झोंका किसी ओर ले जाते हैं, बिजना, बेना। यह भिन्न भिन्न वस्तुओंका तथा भिन्न भिन्न आकार और आकृतिका बनाया जाता है। इसके हिलानेसे वायु चल कर शरीरमें लगती है। छोटे बड़े जितने प्रकारके पदार्थोंसे वायुमें गति उत्पन्न की जाती है, सबके लिये केवल 'पंखा' शब्दसे काम चल सकता है। पंखके आकारका होनेके कारण अथवा पहले पंखसे बनाये जानेके कारण इसका नाम पंखा पड़ा है।

पंखाकुली (हिं॰ पु॰) वह कुली जो पंखा खींचनेके लिये नियत किया गया हो।

पंखाज (हिं॰ पु॰) पखाउज देखो।

पंखापोश (हिं॰ पु॰) पंखेके ऊपरका गिलाफ।

पंखी (हिं॰ पु॰) १ पक्षी, चिड़िया। २ पखड़ी। ३ वह पतली पतली हलकी पत्तियां जो साखूके सिरे पर होती हैं। ४ सूतकी वह बत्ती जो कबूतरके पंखसे दूँसी होती है और जिसे ढरकीके छेदोंमें अँटका देते हैं। ५ पाँखी, पतिंगा। ६ एक प्रकारका ऊनी कपड़ा जो भेड़के बालसे पहाड़ोंमें बुना जाता है। (स्त्री॰) ७ छोटा पंखा।

पँखुड़ा (हिं॰ पु॰) मनुष्यके शरीरमें कंधेके पासका वह भाग जहां हाथ जुड़ा रहता है, कंधे और बांहका जोड़, पखोरा।

पंखुरा (हिं॰ पु॰) पंखुड़ा देखो।

पँखेरू (हिं॰ पु॰) पखेरू देखो।

पंग (हिं॰ वि॰) १ पङ्गु, लंगड़ा। २ स्तब्ध, बेकाम। (पु॰) ३ आसामकी ओर, सिलहट-कछार आदिमें होनेवाला एक पेड़। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और मकानोंमें लगती है। इसका कोयला भी बहुत अच्छा होता है। लकड़ीसे एक प्रकारका रंग भी प्रस्तुत करते हैं। ४ एक प्रकारका नमक जो लिवरपुलसे आता है।

पंगत (हिं॰ स्त्री॰) १ पंक्ति, पाँती। २ भोजनके समय भोजन करनेवालोंकी पंक्ति। ३ सभा, समाज। ४ जुलाहोंके करघेका एक औजार जो दो सरकंडोंसे बनाया जाता है। इस औजारको वे कँघीकी तरह स्थान स्थान पर गाड़ देते हैं। इनके ऊपरी छेदों पर तानेके किनारेके सूत इसलिये फंसा दिये जाते हैं जिसमें ताना फैला रहे। ५ भोज।

पँगला (हिं॰ वि॰) पङ्गु, लंगड़ा।

पंगा (हिं॰ वि॰) १ पङ्गु, लँगड़ा। २ स्तब्ध, बेकाम।

पंगायत (हिं॰ पु॰) पायताना, गोडवारी।

पंगास (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी मछली।

पंगो (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका कीड़ा जो धानके खेतमें लगता है।

पंगो (हिं॰ स्त्री॰) मट्टी जिसे नदी अपने किनारे बरसात बीत जाने पर डालती है।

पंच (हिं॰ पु॰) १ पांचकी संख्या या अङ्क। २ पांच या अधिक मनुष्योंका समुदाय, समाज, सर्वसाधारण, जनता, लोक। ३ पांच या अधिक मनुष्योंका समाज जो किसी झगड़े या मामलेको निबटानेके लिये एकत्र हो, न्याय करनेवाली सभा। ४ दलाल। ५ वह जो फौजदारीके दौरेके मुकद्दमेमें दौरा जजको अदालतके मुकदमेमें जजकी सहायताके लिये नियत हो।

पंचकुर (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी बंटाई जिसमें खेतको उपजके पांच भागोंमेंसे एक भाग जमींदारको दिया जाता है।

पंचकोस (हिं॰ पु॰) पांच कोसकी लम्बाई और चौड़ाईके बीचमें बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि, काशी।

पंचकोसी (हिं॰ स्त्री॰) काशीकी परिक्रमा।

पंचतोलिया (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका झीना महीन कपड़ा।

पंचनाथ (हिं॰ पु॰) बदरीनाथ, द्वारकानाथ, जगन्नाथ, रंगनाथ और श्रीनाथ।

पंचनामा (फा० पु०) वह कागज जिस पर पंच लोगों ने अपना निर्णय या फैसला लिखा हो।
पंचपात (हिं० पु०) पंचौली नामका पौधा, पंचपनड़ी।
पंचपीरिया (हिं० पु०) मुसलमानोंके पांचों पीरोंकी पूजा करनेवाला।
पंचभर्त्तारी (हिं० स्त्री०) द्रौपदी।
पंचमेल (हिं० वि०) १ जिसमें पांच प्रकारकी चीजें मिली हों। २ साधारण। ३ जिसमें सब प्रकारकी चीजें मिली हों, मिला जुला ढेर।
पंचरंगा (हिं० वि०) १ पांच रंगका। २ तरह तरहके रंगोंका, रंग बिरंगका।
पंचलड़ा (हिं० वि०) पांच लड़ोंका।
पंचलड़ी (हिं० स्त्री०) गलेमें पहननेकी पांच लड़ोंकी माला।
पंचलरी (हिं० स्त्री०) पंचलड़ी देखो।
पंचहजारी (फा० पु०) १ पांच हजारकी सेनाका अधिपति। २ एक पदवी जो मुगलसाम्राज्यमें बड़े बड़े लोगोंको मिलती थी।
पंचानवे (हिं० वि०) १ नब्बे और पांच, पांच कम सौ। (पु०) २ नब्बेसे पांच अधिककी संख्या या अङ्क जो इस प्रकार लिखा जाता है,—९५।
पंचामृत (हिं० पु०) पञ्चामृत देखो।
पंचायत (हिं० स्त्री०) १ किसी विवाद, झगड़े या और किसी मामले पर विचार करनेके लिये अधिकारियों या चुने हुए लोगोंका समाज। २ एक साथ बहुतसे लोगोंकी बकवाद। ३ बहुतसे लोगोंका एकत्र हो कर किसी मामले या झगड़े पर विचार, पंचोंका वाद-विवाद।
पंचायती (हिं० वि०) १ पंचायतका किया हुआ, पञ्चायतका। २ पञ्चायत सम्बन्धी। ३ बहुतसे लोगोंका मिला जुला, साझेका, जो कई लोगोंका हो। ४ सर्वसाधारणका, सब पञ्चोंका।
पंचालिस (हिं० वि०) पैंतालीस देखो।
पंचो (हिं० पु०) गुल्ली डण्डेके खेलमें डण्डेसे गुल्लीको मार कर दूर फेंकनेका एक ढंग। इसमें गुल्लीको बाएँ हाथसे उछाल कर दहने हाथसे मारते हैं।
पंचोली (हिं० स्त्री०) १ पश्चिम भारत, मध्यप्रदेश, बम्बई और बरारमें मिलनेवाला एक पौधा। इसके पत्तों और डंठलोंसे एक प्रकारका सुगन्धित तेल निकलता है। इस तेलका व्यवहार यूरोपके देशोंमें बहुत होता है। इसकी खेती पानकी भीटोंमें की जाती है। पौधे दो दो फुटके फासले पर लगाए जाते हैं। जो पौधे एक बार लगाये जाते हैं उनसे दो बार छः छः महीने पर फसल काटी जाती है। जब दूसरी फसल कट जाती है, तब पौधे खोद कर फेंक दिये जाते हैं। डंठल सूख जाने पर उन्हें बड़े बड़े गट्ठोंमें बांधते और बिक्रीके लिये भेज देते हैं। डंठलोंसे भवके द्वारा तेल निकाला जाता है। ६६ सेर लकड़ीसे करीब १२से १५ सेर तक तेल निकलता है। यूरोपमें इस तेलका व्यवहार सुगन्ध द्रव्यकी भांति होता है। इसे पंचपात और पंचपनड़ी भी कहते हैं। (पु०) २ वह उपाधि जो वंशपरम्परासे चली आती हो। प्राचीन कालमें किसी नगर या ग्राममें व्यवस्था रखने और छोटे मोटे झगड़ोंको निबटानेके लिये पांच प्रतिष्ठित कुलके लोग चुन लिये जाते थे जो पञ्च कहलाते थे।
पंछा (हिं० पु०) १ पानीकी तरहका एक स्राव जो प्राणियोंके शरीरसे या पेड़ पौधोंके अंगोंसे चोट लगने पर या यों ही निकलता है। २ छाले, फफोले, चेचक आदिके भीतर भरा हुआ पानी।
पंछाला (हिं० पु०) १ फफोला। २ फफोलेका पानी।
पंछी (हिं० पु०) पक्षी, चिड़िया।
पंजड़ी (हिं० स्त्री०) चौसरके एक दांवका नाम।
पंजना (हिं० क्रि०) धातुके बरतनमें टांके आदि द्वारा जोड़ लगाना, झलना, झाल लगना।
पंजरना (हिं० क्रि०) पजरना देखो।
पंजरी (हिं० स्त्री०) अर्थी, टिकठी।
पंजहजारी (फा० पु०) एक उपाधि जो मुसलमान राजाओंके समयमें सरदारों और दरबारियोंको मिलती थी। ऐसे लोग या तो पाँच हजार सेना रख सकते थे अथवा पांच हजार सेनाके नायक बनाये जाते थे।
पंजा (फा० पु०) १ पाँचका समूह, गाही। २ हाथ या पैरकी पाँचों उंगलियोंका समूह, साधारणतः हथेलीके सहित हाथकी और तलवेके अगले भागके सहित

पैरकी पाँचों उंगलियाँ। ३ पंजा लड़ानेकी कसरत या बलपरीक्षा। ४ जुएका दाँव जिसे नक्की भी कहते हैं। ५ तासका वह पत्ता जिसमें पांच चिह्न या बूटियाँ हों। ६ पुट्ठेके ऊपरका मांस। ७ उंगलियोंके सहित हथेलीका संपुट, चंगुल। ८ जूतेका अगला भाग जिसमें उंगलियां रहती हैं। ९ पंजेके आकारका बना हुआ पीठ खुजलानेका एक औजार। १० बैल या भैंसको पसलीकी चौड़ी हड्डी जिससे भंगी मैला उठाते हैं। ११ मनुष्यके पंजेके आकारका कटा हुआ टीन या और किसी धातुकी चद्दरका टुकड़ा जिसे लंबे बाँस आदिमें बाँध कर झण्डे या निशानकी तरह ताजियेके साथ ले कर चलते हैं।

पंजातोड़ बैठक (हिं० स्त्री०) कुश्तीका एक पेंच। इसमें सलामीका हाथ मिलाते हुए जोड़के पंजेको तिरछा लेते हैं, फिर अपनी कुहनी उसकी पेटके नीचे रख पकड़े हुए हाथको अपनी गर्दन या कंधे परसे ले जा कर बगलमें दबाते हैं और झटकेके साथ खींच कर जोड़को चित गिराते हैं।

पंजाब (फा० पु०) पञ्जाब देखो।

पंजाबल (हिं० पु०) पानीके कारीगरोंकी बोली। जब आगेमें ऊंची भूमि मिलती है, तब यह बोली काममें लाते हैं।

पंजाबी (फा० वि०) १ पञ्जाब सम्बन्धी, पञ्जाबका। (पु०) २ पंजाबका रहनेवाला, पञ्जाबनिवासी।

पंजारा (हिं० पु०) १ जो रुईसे सूत कातता हो। २ रुई धुननेवाला, धुनिया।

पंजीरी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मिठाई। यह आटेके चूर्णको घीमें भून कर उसमें धनिया, सोंठ, जीरा आदि मिला कर बनाई जाती है। इसका व्यवहार विशेषतः नैवेद्यमें होता है। जन्माष्टमीके उत्सव तथा सत्यनारायणकी कथामें पंजीरीका प्रसाद बंटता है। यह प्रसूता स्त्रीके लिये भी बनती है और पठावेमें भी भेजी जाती है। २ मलाबार, मैसूर तथा उत्तरी सरकारमें मिलनेवाला एक पौधा। यह औषधके काममें आता है तथा इसमें उत्तेजक, स्वेदकारक और कफनाशक गुण माना गया है। जुकाम या सर्दीमें इसकी पत्तियों और डंठलोंका काढ़ा दिया जाता है। संस्कृतमें इसे इन्दुपर्णी और अजपाद कहते हैं।

पंजेरा (हिं० पु०) बरतन झालनेका काम करनेवाला, बरतनमें टाँके आदि दे कर जोड़ लगानेवाला।

पंडल (हिं० वि०) १ पाण्डुवर्णका, पीला। (पु०) २ शरीर, पिंड।

पंडव, पंडवा (हिं० पु०) पाण्डव देखो।

पंडवा (हिं० पु०) भैंसका बच्चा।

पंडा (हिं० पु०) १ किसी तीर्थ या मन्दिरका पुजारी, घाटिया, पुजारी। २ रोटी बनानेवाला ब्राह्मण, रसोइया। (स्त्री०) ३ विवेकात्मिका बुद्धि, विवेक, ज्ञान, बुद्धि। ४ शास्त्रज्ञान।

पंडित (हिं० पु०) पण्डित देखो।

पंडिताई (हिं० स्त्री०) विद्वत्ता, पाण्डित्य।

पंडिताऊ (हिं० वि०) पंडितोंके ढंगका।

पंडितानी (हिं० स्त्री०) १ पण्डितकी स्त्री। २ ब्राह्मणी।

पंडुक (हिं० पु०) कपोत या कबूतरकी जातिका एक पक्षी। यह ललाई लिये भूरे रंगका होता है। यह प्रायः जङ्गल, झाड़ियों और उजाड़ स्थानोंमें होता है। इसकी बोली कड़ी होती है और उसके गलेमें कण्ठा-सा होता है जो नीचेकी ओर अधिक स्पष्ट दिखाई देता है, पर ऊपर साफ नहीं मालूम होता। बड़े और छोटेके भेदसे यह पक्षी दो प्रकारका है। बड़ेका रंग भूरा और खुलता तथा छोटेका रंग मटमैला लिये ईंट-सा लाल होता है। कबूतरकी तरह पंडुक जल्दी पालतू नहीं होता। पंडुक और सफेद कबूतरके जोड़से कुमरी पैदा होती है।

पंडोह (हिं० पु०) नाबदान, परनाला, पनाला।

पंथ (हिं० पु०) १ मार्ग, रास्ता। २ आचारपद्धति, व्यवहारका क्रम, चाल, रीति, व्यवस्था। ३ धर्ममार्ग, सम्प्रदाय, मत। पन्थ देखो। ४ वह हलका भोजन जो रोगीको लङ्घन या उपवासके पीछे शरीर कुछ स्वस्थ होने पर दिया जाता है।

पंथी (हिं० पु०) पथिक देखो।

पंद (फा० स्त्री०) शिक्षा, उपदेश, सीख।

पंद्रह (हिं० वि०) १ जो संख्यामें दश और पांच हो। (पु०) २ दश और पांचकी संख्या या अंक, १५।

पंद्रहवां (हिं० वि०) जो पंद्रहके स्थान पर हो।

पंघलाना (हिं० क्रि०) फुसलाना, बहलाना।

पंप (अं० पु०) १ वह नल जिसके द्वारा पानी ऊपर खींचा या चढ़ाया जाता है अथवा एक ओरसे दूसरी ओर पहुंचाया जाता है। २ पिचकारी। ३ एक प्रकारका हलका अंगरेजी जूता। इसमें पंजेसे ऊपरका ही भाग ढका रहता है।

पंबा (फा० पु०) एक प्रकारका पीला रंग जो ऊन रंगनेमें काम आता है। इसको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—४ छटांक मोटा हलदीकी बुकनीको १½ छटांक गंधकके तेजाबमें मिलाते हैं। हल हो जाने पर उसे ८ सेर उबलते हुए पानीमें मिला देते हैं। पीछे इस जलसे ऊनको धो लेते और एक घंटे तक छायामें सुखाते हैं। यह रंग कच्चा होता है, पर यदि हलदीकी जगह अकलबीर मिलाया जाय, तो रंग पक्का होता है।

पँवर (हिं० स्त्री०) पँवरी देखो।

पँवरना (हिं० क्रि०) १ तैरना। २ थाह लेना, पता लगाना।

पँवरि (हिं० स्त्री०) प्रवेशद्वार या फाटक, वह फाटक या घर जिसमें हो कर किसी मकानमें जांय, ड्योढ़ी।

पँवरिया (हिं० पु०) १ द्वारपाल, दरवान। २ सन्तानके जन्म लेने पर या किसी और मङ्गल अवसर पर दरवाजे पर बैठ कर मङ्गल-गीत गानेवाला याचक।

पँवरी (हिं० स्त्री०) पँवरि देखो। २ पादत्राण, खड़ाऊँ, पाँवरी।

पँवाड़ा (हिं० पु०) १ कल्पित आख्यान, कहानी, दास्तान। २ बढ़ाई हुई बात, बातका बतंगड़। ३ एक प्रकारका गीत।

पँवार (हिं० पु०) राजपूतोंकी एक जाति। परमार देखो।

पँवारना (हिं० क्रि०) हटाना, दूर करना, फेंकना।

पँवारी (हिं० स्त्री०) लोहारोंका एक औजार जिससे वे लोहेमें छेद करते हैं।

पंसरहटा (हिं० पु०) वह बाजार जहां पंसारियोंकी दूकानें हों।

पँसारी (हिं० पु०) वह बनिया जो हलदी, धनिया आदि मसाले तथा दवाके लिए जड़ी बूटी बेचता है।

पंसासार (हिं० पु०) पासेका खेल।

पंसुरी (हिं० स्त्री०) पंसुली देखो।

पंसुली (हिं० स्त्री०) पसली देखो।

पंसेरी (हिं० स्त्री०) पांच सेरकी तोल।

पइता (हिं० पु०) एक छन्द। इसे कोई कोई पाईता भी कहते हैं। इसमें एक सगण, एक भगण और सगण होता है।

पउंरी (हिं० स्त्री०) पैरी देखो।

पकड़ (हिं० स्त्री०) १ पकड़नेकी क्रिया या भाव, धरनेका काम। २ लड़ाईमें एक एक बार आ कर परस्पर गुथना भिड़न्त हाथापाई। ३ दोष भूल आदि ढूंढ़ निकालनेकी क्रिया या भाव। ४ पकड़नेकी तरकीब।

पकड़धकड़ (हिं० स्त्री०) धरपकड़ देखो।

पकड़ना (हिं० क्रि०) १ ग्रहण करना, थामना, धरना। २ पता लगाना, ढूंढ़ निकालना। ३ कुछ करनेसे रोक रखना, स्थिर करना, ठहराना। ४ गिरफ्तार करना, काबूमें करना। ५ संचार करना, लग कर फैलना या मिलना। ६ अपने स्वभाव या वृत्तिके अन्तर्गत करना, धारण करना। ७ कुछ करते हुएको कोई विशेष बात आने पर रोकना, टोकना। ८ किसी फैलनेवाली वस्तुमें लग कर उसका अपनेमें संचार करना। ९ दौड़ने, चलने या और किसी बातमें बढ़े हुएके बराबर हो जाना। जैसे—यदि तुम परिश्रमसे पढ़ोगे, तो दो महीनेमें उसे पकड़ लोगे।

पकड़वाना (हिं० क्रि०) पकड़नेका काम किसी दूसरेसे कराना, ग्रहण कराना।

पकड़ाना (हिं० क्रि०) १ किसीके हाथमें देना या रखना, थामना। २ पकड़नेका काम कराना, ग्रहण कराना।

पकना (हिं० क्रि०) १ पक्वावस्थाको पहुंच जाना, कच्चा न रहना। २ सिद्ध होना, सीझना, रिंधना, चुरना। ३ कौमत ठहराना, सौदा पटना। ४ फोड़े फुंसी आदिका इस अवस्थामें पहुंचना, कि उनमें मवाद आ जाय, पीबसे भरना। ५ चौसरमें गोटियोंका सब घरोंको पार करके अपने घरमें आ जाना।

पकना (हिं० पु०) फोड़ा।

पकवान (हिं० पु०) वह खानेकी वस्तु जो घीमें तल कर बनाई जाती है।

पकवाना (हिं० क्रि०) १ पकानेका काम कराना, पकानेमें प्रवृत्त करना। २ आंच पर तैयार कराना।

पकसालु (हिं० पु०) पूर्व और उत्तर बङ्गाल, आसाम, चटगांव तथा वरमामें मिलनेवाला एक प्रकारका बांस। पानी भरनेके लिये इसके चोंगे बनते हैं। इससे छाता तथा पतली फट्टियोंसे टोकरे भी बनते हैं।

पकाई (हिं० स्त्री०) १ पकानेकी क्रिया या भाव। २ पकानेकी मजदूरी।

पकाना (हिं० क्रि०) १ फल आदिको पुष्ट और तैयार करना। २ आंच या गरमीके द्वारा गलाना या तैयार करना। ३ माला पूरी करना, सौदा पूरा करना। ४ फोड़े, फुंसी घाव आदिको इस अवस्थामें पहुंचाना कि उसमें पीव या मवाद आ जाय।

पकार (सं० पु०) प-स्वरूपे कारः। प स्वरूपवर्ण, 'प' अक्षर।

पकारादि (सं० त्रि०) जिसके आदिमें 'प' अक्षर हो।

पकारान्त (सं० त्रि०) जिसके अन्तमें 'प' अक्षर हो।

पकाव (हिं० पु०) १ पकनेका भाव। २ पीव, मवाद।

पकि—जातिविशेष। दाक्षिणात्यके मदुराचल और रैकपल्ली तालुकमें इनका वास अधिक है। झाड़ूदारका काम करनेके कारण ये निकृष्ट समझे जाते हैं। इनमें जो विशाखपत्तनके निकटवर्त्ती स्थानमें वास करते हैं, वे जातीय कार्यपालनके विशेष पक्षपाती हैं।

पकुङ्ग—सर्पविशेष, मणिपुरके हिन्दू-राजवंशके उपास्य देवता। मणिपुरके वर्त्तमान राजवंशगण अपनेको पकुङ्ग-नागके वंशजात बतलाते हैं। जो स्त्रियां इस नागपूजामें पुरोहिताई करती हैं वे साधारणतः 'मइबी' कहलाती हैं। ये किसी मन्त्रसे सर्पको वशीभूत करके आसन पर बिठाती हैं और उसे खुश करनेके लिए विधिके अनुसार पूजा करती हैं।

पकुलमती—तैलङ्गदेशके नियोगी ब्राह्मणोंका एक भेद। ये लोग स्मार्त्त सम्प्रदायके हैं। इनके आचार विचार तथा युक्त प्रदेशीय आचार विचारके नियमोंमें बड़ी भिन्नता है।

पकीनट्टी—एक भ्रमणशील जाति। महिसुर और तैलङ्ग देशमें इनका वास है। १८वीं शताब्दीमें राजपुरुषोंके अत्याचारसे भगाये जाने पर ये लोग जहां तहां चले गये। तभीसे ये किसी खास जगह घर बना कर नहीं रहते। तैलङ्गदेशान्तर्गत बेल्लरी जिलेके किसी किसी ग्रामके मराठलगण इसी कृषाणजातिसे उत्पन्न हुए हैं।

पकोरेश - सिन्धुप्रदेशके शकवंशीय एक राजा। पहली शताब्दीमें ये शासन करते थे। इनकी प्रचलित मुद्रा भी कितनी पाई गई हैं।

पकौड़ा (हिं० पु०) घी या तेलमें पका कर फुलाई हुई बेसन या पीठोकी बड़ी।

पकौड़ी (सं० स्त्री०) पकौड़ा देखो।

पक्कटी (सं० स्त्री०) वृक्षवृक्ष, पाकर नामक पेड़।

पक्कण (सं० पु० क्ली०) पचति श्वादिनिकृष्टमांसमिति-पच-क्विप्, पक्, शवरः, तस्य कणः कलहशब्दः कोलाहल-शब्दो वा यत्र। शवरालय, चाण्डालोंका वासस्थान।

पक्कपौड़ (सं० पु०) वर्द्धमवृक्ष, पकौड़ा।

पक्करस (हिं० पु०) मदिरा, शराब।

पक्कवारि (हिं० पु०) कांजी।

पक्का (हिं० वि०) १ अन्न या फल जो पुष्ट हो कर भक्षणके योग्य हो गया हो, जो कच्चा न हो, पका हुआ। २ जो अपनी पूरी बाढ़ या प्रौढ़ताको पहुंच गया हो, पुष्ट। ३ जिसमें पूर्णता आ गई हो, जिसमें कसर न हो, पूरा। ४ जो आंच पर कड़ा या मजबूत हो गया हो। ५ जिसके संस्कार वा संशोधनकी प्रक्रिया पूरी हो गई हो, साफ और दुरुस्त, तैयार। ६ अनुभवप्राप्त, निपुण, दक्ष, होशियार, तजरुबेकार। ७ आंच पर गलाया या तैयार किया हुआ, आंच पर पका हुआ। ८ जो अभ्यस्त वा निपुण व्यक्तिके द्वारा बना हो। ९ जिसे अभ्यास हो, जो मंज गया हो। १० स्थिर, दृढ़, निश्चित, न टलनेवाला। ११ दृढ़, मजबूत, टिकाऊ। १२ जिसका मान प्रामाणिक हो, टकसाली। १३ प्रामाणिक, प्रमाणोंसे पुष्ट, जिसे भूल या कसरके कारण बदलना न पड़े या जो अन्यथा न हो सके, ठीक जंचा हुआ, नपा तुला।

पकाइत (हिं० स्त्री०) दृढ़ता, मजबूती, निश्चय, पोढ़ाई।

पक्खर (हिं० वि०) पक्का, पुख्ता।

पक्‌चान—अंगरेजाधिकृत ब्रह्मराज्यके अन्तर्गत तेना-सेरिम प्रदेशके सीमान्तमें प्रवाहित एक नदी। यह ४० कोस बह कर विक्टोरिया पॉइण्टके निकट गङ्गोपसागरमें गिरी है।

पक्तपीड़ (सं० पु०) वृक्षविशेष, पखोड़ा नामका एक पेड़। पर्याय—पत्त्रकृत्य, वर्द्धन, पत्त्ररञ्जक। गुण—दृष्टिके अञ्जनके विषयमें प्रशस्त, कटु और जीर्णज्वरनाशक।

पक्तव्य (सं० त्रि०) पच-तव्य। १ पाकयोग्य। २ जठराग्नि द्वारा जीर्ण करणीय।

पक्ति (सं० स्त्री०) पच्यते परिणम्यते इति भावे क्तिन्। १ गौरव २ पाक।

पक्तिशूल (सं० क्लो०) पक्तौ भुक्तस्यान्नादिकस्य परिणामे जायते यत्शूलं रोगविशेषः। परिणामशूल। पर्याय—पाकज, परिणामज।

पक्तृ (सं० त्रि०) पचतीति पच-पाके तृच्। १ पाककर्त्ता, पाक करनेवाला। (पु०) २ अग्नि, आग।

पक्त्र (सं० क्लो०) पच्यतेऽनेन पच-त्र (गुधृवीपचिवचीति। उण् ४।१६६) गार्हपत्य अग्नि।

पक्त्रिम (सं० त्रि०) पाकेन निर्वृत्तं पच् क्त्रि, मम्। (ड्वितः क्त्रिः। पा ३।३।८८) 'क्त्रेर्मम् नित्य' इति मम। सुपद्म प्रभृति व्याकरणमें 'ड्वितस्त्रिमगिति' इस सूत्रके अनुसार 'त्रिमक्' प्रत्यय द्वारा यह पद सिद्ध हुआ है। पाकिम, पाक निर्वृत्त, जो पाक द्वारा सम्पन्न हो।

पक्थ (सं० पु०) पच बाहुलकात् थक्। १ राजभेद। २ पाक।

पक्थिन (सं० त्रि०) पक्थ-अस्त्यर्थे इनि। पाकयुक्त।

पक्‌प्रणाली—भारतकी दक्षिणी सीमा कुमारिकासे कालो-मियर अन्तरीप तक तथा सिंहलद्वीपके मध्यवर्त्ती जो समुद्र विभाग है वही पक्‌प्रणाली कहलाता है। ओल-न्दाज शासनकर्त्ता पकके नामानुसार ही इस प्रणाली-का नामकरण हुआ है। इसीके मध्यस्थलमें भारत और सिंहलद्वीपके मध्य कितनी ही द्वीपावली देखी जाती हैं। वहाँ भारतवासीका 'रामेश्वर सेतुबन्ध' और यूरोपियनोंका 'एडामस ब्रिज' है। प्रवाद है कि लङ्कासे लौटते समय श्रीरामचन्द्रने अपने निर्मित सेतुका खण्डविखण्ड कर डाला, यही छोटे छोटे द्वीप उसके एक एक खण्ड हैं। इस प्रणालीके मध्यस्थित रामेश्वर द्वीपपुञ्ज और उनके परस्परके आभ्यन्तरिक संस्रव देख कर अनुमान किया जाता है कि एक समय सिंहल-द्वीप भारतके साथ संलग्न था। इस प्रणाली हो कर जहाजादि इस मार्ग आ जा नहीं सकते।

पक्व (सं० क्लो०) पच्यते स्म पच क्त, (पचो वः। पा ८।२।५२) इति निष्ठा तस्य वत्वं। खिन्नतण्डुलादि, भक्तप्रभृति, भात आदि। अन्नपाकका विधिनिषेध इस प्रकार लिखा है—

"पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा उत्तराशामुखेन वा।
पचेदन्नञ्च मध्याह्ने सायाह्ने च विवर्जयेत्॥
अग्न्याशाभिमुखे पक्त्वा अमृतान्नं निबोध च।
पूर्वमुखो धर्मकाम शोकहानिश्च दक्षिणे॥
श्रीकामश्चोत्तरमुखो पतिकामश्च पश्चिमे।
ऐशान्याभिमुखे पक्त्वा दरिद्रो जायते नरः॥"

(मत्स्यसू० ४२ प०)

पूर्व वा उत्तरकी ओर मुख करके मध्याह्नकालमें अन्नपाक करना चाहिए, सायंकालमें नहीं। अग्निकोण-में अन्नपाक करनेसे वह अमृत तुल्य होता है। धर्मार्थी-को पूर्वमुख, धनार्थीको उत्तरमुख और पतिकामीको पश्चिममुखमें पाक करना चाहिये। ईशानाभिमुखमें पाक करनेसे दरिद्र होता है।

"यदा तु आयसे पात्रे पक्वमश्नाति वै द्विजः।
स पापिष्ठोऽपि भुंक्तेऽन्नं रौरवे परिपच्यते॥"

ब्राह्मणको लौहपात्रमें पक्व वस्तु खानी नहीं चाहिये, खानेसे रौरवनरक होता है।

"ताम्रे पक्त्वा चक्षुर्हानिर्मणौ भवति वै क्षयं।
स्वर्णपात्रे तु यत् पक्वं अमृतं तदपि स्मृतं॥"

ताम्रपात्रमें पाक करनेसे चक्षुकी हानि होती है, मणिमयपात्र तथा स्वर्णपात्रमें पाक करनेसे वह अमृत-तुल्य होता है।

मत्स्यसूक्तके मतसे मातुल, कनिष्ठा भगिनी और असगोत्रके हाथका पकान्न खाना निषेध है।

"मातुलेन तु यत् पक्वं भगिन्या च कनिष्ठया।
असगोत्रेण यत् पक्वं शोणितं तदपि स्मृतम्॥"

अभक्त और स्त्रियोंके पक्व तथा पक्वपात्रमें जो पक्व अन्न रहता है, वह निष्फल है। उदुम्बर, कदम्ब, शिरीष, वक्ष, दद्रुराड, शाल्मलि और शालकी लकड़ीसे पाक किया हुआ अन्न खाना नहीं चाहिए। अवीरा स्त्रीका अन्न तथा जि के सन्तान न हुई हो, ऐसी स्त्रीका पक्वान्न भी दूषणीय है, उनके घरमें भी भोजन करना मना है। मृण्मयपात्रमें अन्न पाक करनेसे मास, पक्ष वा ८ दिनमें उसे परित्याग करना चाहिए। पाकके समय पाकपात्रका तीन भाग जलसे भर दे। मोदक, कन्दुपक्व, गव्याज्य और घृतसंयुत अन्न पुनः पुनः खानेमें कोई दोष नहीं।

"मोदकं कन्दुपक्वं च गव्याज्यं घृतसंयुतम्।
पुनः पुन र्भोजने च पुनरन्नं न दुष्यति ॥"

(मत्स्यसू० २२ पटल)

पक्व (सं० त्रि०) पच-क्त, तस्य व। १ परिणत, पक्का। २ निष्ठाप्राप्त। ३ सुदृढ़, परिपुष्ट। ४ परिणतबुद्धि। ५ विनाशोन्मुख, प्रत्यासन्नविनाश।

पक्वकृत् (सं० पु०) पक्वं करोति वेदनान्वितस्थलं परिणमयति निष्पिष्टलवणादिभिरिति कृ-क्विप्, तुक्। निम्बवृक्ष, नीमका पेड़। इसकी पत्तियोंको पीस कर फोड़े आदिमें लगानेसे वे पक जाते हैं। (त्रि०) पक्वं करोति पचन्त्यादिकं। २ पाककर्त्ता, पकानेवाला।

पक्वकेश (सं० त्रि०) १ शुक्लकेशयुक्त, जिसके बाल पक गए हों। (पु०) शुक्लकेश, सफेद बाल।

पक्वगात्र (सं० त्रि०) जलगात्र, जिसका प्रत्येक अङ्ग स्फोटकसमन्वित हो।

पक्वता (सं० स्त्री०) पक्वस्य भावः, तल्-टाप्। पक्वावस्था, पक्व होनेका भाव, पक्वापन।

पक्वमांस (सं० क्ली०) पक्वं मांसं। १ पाकसिद्ध मांस, सिद्ध किया हुआ मांस। इसका गुण—हितकर, बल और वीर्यवर्द्धक है। २ बृहद्बदर, बड़ा बेर।

पक्वमान (सं० त्रि०) पच्यमान, पकाया हुआ, सिद्ध किया हुआ।

पक्वरस (सं० पु०) पक्वस्य गुड़ादेः रसः। मद्य, मदिरा।

पक्ववारि (सं० क्ली०) पक्वस्य अन्नादेर्वारि, यद्वा पक्वं वारि स्विन्नसलिलं। १ काञ्जिक, कांजी। २ पक्वजल, उबाला हुआ पानी।

पक्वश (सं० पु०) पुक्कश पृषोदरादित्वात् साधुः। चण्डाल जातिभेद, एक अन्त्यज नीच जाति। पर्याय—पुक्कश, पुष्कस और पक्वण।

पक्वशखोपमोवति (सं० पु०) पक्वशस्यस्य उपमा यत्र ताद्दशी उन्नतिर्यस्य। राजकदम्ब।

पक्वातीसार (सं० पु०) सुश्रुतोक्त आमातीसार भिन्न पञ्चप्रकार अतीसाररोग, एक प्रकारका अतीसार, आमातीसारका उलटा। आमातीसारमें मलके साथ आँव गिरती है, पक्वातीसारमें नहीं। अतिसार देखो।

पक्वान्न (सं० क्ली०) पक्वमन्नं। कृतपाक तण्डुलादि, पका हुआ अन्न। २ घी, पानी आदिके साथ आग पर पका कर बनाई हुई खानेकी चीज।

"आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते ॥"

(तिथितत्त्व)

शूद्र अन्नादि पाक करके देवपूजा और ब्राह्मणादिको सेवा नहीं करा सकता, केवल ब्राह्मणादि तीनों वर्ण देवताको पक्वान्न चढ़ा सकते हैं।

"त्रिषु वर्णेषु कर्त्तव्यं पाकभोजनमेव च।
शुश्रूषामपि सर्वेषां शूद्राणांच वरानने ॥
एतच्चातुर्वर्ण्यपाककरणं कलीतरपरं" (तिथितत्त्व)

रघुनन्दनने दुर्गोत्सवमें जो मत लिखा है उससे बोध होता है कि शूद्र भी ब्राह्मण द्वारा पाक करा कर उसे नैवेद्यमें दे सकता है। जिस प्रकार शूद्रगृहमें वृषोत्सर्गको जगह चरुपाक करके उस चरु द्वारा होमादि कार्य सम्पन्न होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण द्वारा पक्वान्न भी देवोद्देशसे निवेदन किया जा सकता है।

'आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्ट मुच्यते।
इति स्वयं पाकविषयं।" (तिथितत्त्व)

इस वचनके अनुसार शूद्र भी ब्राह्मण द्वारा अन्न पाक करके नैवेद्य दे सकता है। किन्तु ऐसा व्यवहार देखनेमें नहीं आता। ब्राह्मण शूद्रगृहमें शूद्रकालका कन्दुपक्व, पायस, दधिसक्तु भोजन कर सकते हैं और शूद्र भी इसे देवोद्देशसे चढ़ा सकता है।

"कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिसक्तवः।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ॥"

(तिथितत्त्व)

पक्वाशय (सं॰ पु॰) पक्वस्य आमादेराशय आधानम्। पाकाशय, नाभिका अधोभाग। यह वास्तवमें अन्त्रका ही एक भाग है। थूकके साथ मिल कर खाया हुआ भोजन अन्नकी नली द्वारा नीचे उतरता है और आमाशयमें जाता है। यह आमाशय मशकके आकारकी थैलो-सा होता है। इसी थैलीमें आ कर भोजन इकट्ठा होता है और आमाशयके अम्लरससे मिल कर तथा मांसके आकुञ्चन प्रसारण द्वारा मथा जा कर ढीला और पतला होता है। जब भोजन अम्लरससे संयुक्त हो कर ढीला हो जाता है, तब पक्वाशयका दरवाजा खुल जाता है और आमाशय बड़ी तेजीसे उसको उस ओर धक्का देता है। पक्वाशय यथार्थमें छोटी आंतके ही प्रारम्भका बारह अङ्गुल तकका भाग है जिसके तन्तुओंमें एक विशेष प्रकारकी कोष्ठाकार ग्रन्थियां होती हैं। इसमें यकृत्से आ कर पित्तरस और क्लोमसे आ कर क्लोमरस भोजनके साथ मिलता है। क्लोमरसमें तीन विशेष पाचक पदार्थ होते हैं। ये पदार्थ आमाशयमें कुछ विश्लेषित हो कर आये हुए द्रव्यका और सूक्ष्म अणुओंमें विश्लेषण करते हैं जिससे वह घुल कर श्लेष्ममयी कलाओंसे हो कर लोहूमें जाने लायक हो जाता है। पित्तरसके साथ मिलनेसे क्लोमरसमें तीव्रता आती है और वसा या चिकनाई पचती है।

पक्वेता—नूरपुरके निकटवर्त्ती एक जनपद।

नूरपुर देखो।

पक्ष (सं॰ पु॰) पक्ष्यते परिगृह्यते देवपितृकार्याय यः पक्ष्यते चन्द्रस्य पञ्चदशानां कलानामापूरणं क्षयो वा येन, पक्ष-घञ्। यद्वा पच-स (शृधि पच्योर्दकौ च। उण् ३।६८) कृत्यान्तादेशः। १ पञ्चदश अहोरात्र, पन्द्रह पन्द्रह दिनोंके दो विभाग, पन्द्रह दिनका समय, पाख। पक्ष दो हैं, शुक्ल और कृष्ण। शुक्लप्रतिपदासे ले कर पूर्णिमा तक शुक्लपक्ष और कृष्ण प्रतिपदासे अमावस्या तक कृष्णपक्ष कहलाता है। पक्षभेदसे तिथिकी व्यवस्था इस प्रकार स्थिर करनी होती है—

"शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्य यस्यामभ्युदितो रविः।
कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः॥"

(तिथितत्त्व)

जिस तिथिमें सूर्य उदय होते हैं, शुक्लपक्षमें वह तिथि और जिसमें सूर्य अस्त होते हैं, कृष्णपक्षमें वह तिथि ग्राह्य है।

२ पक्षियोंका अवयवविशेष, चिड़ियोंके डैना, पंख, पर। पर्याय—गरुत् छद, पत्र, पतत्र, तनूरुह। ३ शरपक्ष, तीरमें लगा हुआ पर। इसका पर्याय वाज है। ४ सहाय, समूह। केश शब्दके बाद पक्ष शब्द रहनेसे वह समूहार्थबोधक होता है। यथा—केशपक्ष। ५ महाकालशिव, कालोपाधिमें पक्ष अन्तर्निविष्ट है, इसीसे पक्षशब्दसे महादेवका बोध होता है।

"ऋतुः संवत्सरो मासः पक्षः संख्या समापनः।"

(भारत १३।१७।१३८)

६ किसी स्थान वा पदार्थके वे दोनों छोर या किनारे जो आगे और पिछलेसे भिन्न हों, किसी विशेष स्थितिसे दहने और बाएं पड़नेवाले भाग, पार्श्व, ओर, तरफ। 'ओर' 'तरफ' आदिसे 'पक्ष' शब्दमें यह विशेषता है कि यह वस्तुके ही दो अङ्गोंको सूचित करता है, वस्तुसे पृथक् दिक्मात्रको नहीं। ७ किसी विषयके दो या अधिक परस्पर भिन्न अङ्गोंमेंसे एक किसी प्रसङ्गके सम्बन्धमें विचार करनेको अलग अलग बातोंमेंसे एक, पहलू। ८ किसी विषय पर दो या अधिक परस्पर भिन्न मतोंमेंसे एक, वह बात जिसे कोई सिद्ध करना चाहता हो और जो किसी दूसरेकी बातके विरुद्ध हो। ९ दो या अधिक बातोंमेंसे किसी एकके सम्बन्धमें ऐसी स्थिति जिससे उसके होनेकी इच्छा, प्रयत्न आदि सूचित हो, अनुकूलमत या प्रवृत्ति। १० झगड़ा या विवाद करनेवालोंमेंसे किसीके अनुकूल स्थिति। ११ निमित्त, सम्बन्ध, लगाव। १२ वह वस्तु जिसमें साध्यकी प्रतिज्ञा करते हैं। जैसे—'पर्वत वह्निमान् है।' यहां पर्वत पक्ष है जिसमें साध्य वह्निमान्की प्रतिज्ञा की गई है। (न्याय) १३ किसीकी ओरसे लड़नेवालोंका दल, फौज, सेना, बल। १४ सजातीयवृन्द, सहायकों या सवर्गोंका दल, साथ रहनेवाला समूह। १५ सखा, सहायक, साथी। १६ वादिप्रतिवादि द्वारा दर्शित प्रतिपत्ति, वादियों प्रतिवादियोंके अलग अलग समूह। १७ गृह, घर। १८ चुल्लीरन्ध्र, चूल्हेका छेद। १९ राजकुञ्जर, राजाका

छाती। २० विहग, पक्षी, चिड़िया। २१ मलय, छायमें पहननेका कड़ा।

पक्षक (सं० पु०) पक्ष इव प्रतिकृतिः (इवे प्रतिकृतौ। पा ५।३।९६) इति कन्। १ पक्षद्वार। २ पार्श्वद्वार। ३ पार्श्वमात्र। ४ सहाय।

पक्षगम् (सं० त्रि०) १ जो पंखकी सहायतासे चलता हो। (पु०) २ पक्षी, चिड़िया। ३ पर्वत।

पक्षगुप्त (सं० पु०) पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पक्षग्रहण (सं० क्ली०) पक्षस्य ग्रहणम्। साहाय्यग्रहण, किसीको सहायता लेना।

पक्षग्राह (सं० त्रि०) पक्षग्रहणकारी, पक्ष लेनेवाला।

पक्षग्राहिन् (सं० त्रि०) पक्ष-ग्रह-णिनि। पक्षग्रहणकारी।

पक्षघात (सं० पु०) पक्षस्य देहार्द्धस्य घातः विनाशनं यस्मात् यत्र वा। स्वनामख्यात वातरोगविशेष, पक्षाघातरोग। पक्षाघात देखो।

पक्षघ्न (सं० त्रि०) पक्षं हन्ति हन-क। पक्षनाशक।

पक्षङ्गम (सं० त्रि०) पक्षगम देखो।

पक्षचर (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे चरतीति चर-ट। १ चन्द्रमा। २ पृथक्चारिगज।

पक्षच्छिद् (सं० त्रि०) पक्षं छिनत्ति पक्षच्छिद्-क्विप्। इन्द्र।

पक्षज (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे जायते जन-ड। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ पक्षजातमात्र।

पक्षजन्मन् (सं० पु०) पक्षे शुक्लपक्षे जन्म उत्पत्तिर्यस्य। १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ पक्षजातमात्र।

पक्षता (सं० स्त्री) पक्षस्य भावः, तल् ततो टाप्। न्यायोक्त अनुमानेच्छाभाव समानाधिकरणे साध्यवत्ता निश्चयाभाव, अनुमित्साविरहविशिष्टसिद्धयभाव। यही पक्षता अनुमितिको कारण है।

पक्षति (सं० स्त्री०) पक्षस्य मूलं (पक्षात्तिः। पा ५।२।२५) इति पक्षति। १ प्रतिपद्तिथि। २ पक्षमूल, डैनेकी जड़।

पक्षत्व (सं० क्ली०) पक्ष भावे त्व। पक्षधर्मता, पक्षता।

पक्षद्वार (सं० क्ली०) पक्षे पार्श्वे स्थितं द्वारम्। पार्श्वद्वार, खिड़कीका दरवाजा।

पक्षधर (सं० पु०) धारतीति धर, धृ-अच्। पक्षस्य धरः। १ चन्द्रमा। २ महादेव, शिव। ३ पक्षी, चिड़िया। (त्रि०) ४ पक्षधारणकर्त्ता, तरफदार।

पक्षधर—तत्त्वचिन्तामणिआलोकके प्रणेता जयदेवका नामभेद। जयदेव देखो।

पक्षधरमिश्र—१ प्रसिद्ध नैयायिक, वटेश्वर महामहोपाध्यायके पुत्र। इन्होंने तत्त्वनिर्णय नामक एक न्यायग्रन्थकी रचना की है। अपनी प्रतिभाके बलसे इन्होंने महामहोपाध्यायकी उपाधि पाई थी।

पक्षनाड़ी (सं० स्त्री०) डैनेका पालक या पर।

पक्षपात (सं० पु०) पक्षे अन्याय्यसाहाय्ये पातः अभिनिवेश। १ अन्याय्यसाहाय्यकरण, अन्यायपक्षालम्बन, बिना उचित अनुचितके विचारके किसीके अनुकूल प्रवृत्ति या स्थिति, तरफदारी। २ गरुतांकरण। पक्षाणां गरुतां पातः पतनं यत्र। ३ पक्षियोंका ज्वर, पक्षियोंके ज्वर होनेसे उनके पर झड़ने लगते हैं।

पक्षपातकारिन् (सं० त्रि०) पक्षपात-कृ-णिनि। अन्यायरूपमें पक्षसमर्थनकारी।

पक्षपातिता (सं० स्त्री०) पक्षपातिनः साहाय्यकारिणः भावः, पक्षपातिन्-तल्-टाप्। सहायता, मदद।

पक्षपातिन् (सं० त्रि०) पक्षपातः विद्यतेऽस्य इनि। अन्यायपक्षमें समर्थनकारी, बिना उचित अनुचितके विचारके किसीके अनुकूल प्रवृत्त होनेवाला, तरफदार।

पक्षपाती (हिं० वि०) पक्षपातिन् देखो।

पक्षपालि (सं० पु०) पक्षस्य गृहस्य पालिरिव। पार्श्वद्वार, खिड़कीका दरवाजा।

पक्षपुट (सं० पु०) पक्षियोंका डैना।

पक्षपोषण (सं० त्रि०) पक्षपोषणकारी, पक्षसमर्थक, तरफदार।

पक्षप्रद्योत (सं० क्ली०) नृत्यकालमें हस्तका अवस्थापनभेद।

पक्षभाग (सं० पु०) पक्षस्य पार्श्वस्य पक्ष एव वा भागः। हस्तिपार्श्वभाग, हाथीका कोख।

पक्षमार्जार (सं० पु०) पक्षविड़ाल।

पक्षमूल (सं० क्ली०) पक्षस्य मूलम्। १ पक्षति, डैना, पर। २ प्रतिपदा तिथि।

पक्षयालि (सं० पु०) खिड़की।

पक्षरचना (सं० स्त्री०) पक्षगठन, षड़यन्त्रकरण, किसीका पक्ष साधनके लिये रचा हुआ आयोजन, चक्र।

पक्षरूप (सं० पु०) महादेव, शिव।

पक्षवञ्चितक (सं० पु०) नृत्यकालमें हाथका अवस्थान-भेद।

पक्षवत् (सं० त्रि०) पक्षः विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। १ पक्षविशिष्ट, जिसके पर हो। २ उच्चकुलोद्भव, जो उच्च कुलमें पैदा हुआ हो। (पु०) ३ पर्वत, पहाड़।

पक्षवध (सं० पु०) वातव्याधिविशेष, पक्षाघात।

पक्षवर्द्धिनी (सं० स्त्री०) द्वादशी तिथिभेद, वह द्वादशी तिथि जो सूर्योदयसे ले कर सूर्योदय तक रहे।

पक्षवाद (सं० पु०) १ एक पक्षकी उक्ति। २ पक्षसमर्थन।

पक्षवान् (हिं० वि०) १ पक्षवाला, परवाला। २ उच्चकुलमें उत्पन्न। (पु०) ३ पर्वत। पुराणोंमें लिखा है कि पहले पर्वतोंके पंख होते थे और वे उड़ते थे। पीछे इन्द्रने उनके पर काट लिये।

पक्षवाहन (सं० पु०) पक्षौ वाहनमिव यस्य। पक्षी, चिड़िया।

पक्षवाहु (सं० पु०) कुमारिकाखण्डवर्णित भरतखण्डके अन्तर्गत जनपदविशेष।

पक्षविन्दु (सं० पु०) कङ्कपक्षी।

पक्षशस् (सं० त्रि०) पक्ष वारार्थे शस्। पक्षपक्षमें, प्रतिपक्षमें।

पक्षस् (सं० क्लो०) पचतीति (पचिवचिभ्यां सुट्च। पा ४।२।१८) इति असुन् सुट्च। गरुत्।

पक्षसन्धि (सं० पु०) पक्षयोः सन्धिः। पर्वसन्धिकाल।

पक्षसुन्दर (सं० पु०) पक्षे देहाङ्गे कुसुमे सुन्दरः। लोध्र।

पक्षहत (सं० त्रि०) १ पक्ष द्वारा आहत। २ एक ओर पक्षाघात।

पक्षहोम (सं० पु०) पक्षव्यापको होमः। पक्षपर्यन्त कर्त्तव्य होमभेद।

पक्षाघात (सं० पु०) पक्षस्य आघातं विनाशनं यस्मात् यत वा। वातरोगविशेष। भावप्रकाशमें इसका लक्षण इस प्रकार है—

"गृहीत्वार्द्धं ततो वायुः शिराःस्नायु विशोष्य च।
पक्षमन्यतमं हन्ति सन्धिबन्धान् विमोक्षयन्॥
कृत्स्नोऽर्द्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः।
एकांगवातं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः॥ (भावप्र०)

वायु कुपित हो कर शरीरका अर्द्धांश ग्रहण करती है और उसकी एक शिरा तथा स्नायु समूहको शोषण एवं सन्धिबन्धनपूर्वक मस्तकको शिथिल करके देहके वाम वा दक्षिणभागके एक पक्षको अर्थात् बाहु, पार्श्व, जरु और जङ्घादिको नष्ट कर डालती है। इस रोगमें शरीरका अर्द्धभाग किसी कामका नहीं रहता। इस अङ्गमें सामान्यरूपसे स्पर्शज्ञानादि रहता है। इसीको एकाङ्ग वात वा पक्षवध अथवा पक्षाघात कहते हैं।

पक्षाघातका साध्यासाध्य लक्षण—पक्षाघात पित्त-संसृष्ट वायु कर्त्तृक होने पर गात्रदाह, सन्ताप, अन्तर्दाह और मूर्च्छा तथा कफसंसृष्ट वायुकर्त्तृक होने पर शीत बोध, देहका गुरुत्व और शोथ होता है।

किसी वायुकर्त्तृक पक्षाघात होने पर कृच्छ्रसाध्य और अन्य दोष अर्थात् पित्त और कफका संस्रव रहनेसे वह साध्य समझा जाता है। धातुक्षय जन्य पक्षाघात असाध्य है। गर्भिणी, सूतिकाग्रस्त, बालक, वृद्ध, क्षीण और जिसके रक्तका क्षय हुआ हो, उनके पक्षाघातरोगको असाध्य समझना चाहिये। इस रोगमें यदि रोगीको दर्दका अनुभव न हो तो उसे भी असाध्य जानना होगा।

भावप्रकाशके मतसे इसकी चिकित्सा इस प्रकार है—माषादिक्काथ अर्थात् उरद, कौंचकी फली, भिलावेंकी जड़, अडूस और जटामांसी सब मिला कर २ तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव, इसका भलीभांति काढ़ा बना कर उसमें एक माशा हींग और एक माशा सैन्धव डाल दे। इसके पीनेसे पक्षाघात प्रशमित होता है।

ग्रन्थिकादितैल—तैल ३४ सेर, कल्कार्थ पीपल, चीता, पीपलमूल, सोंठ, रास्ना और सैन्धव सबोंको मिला कर एक सेर। क्काथार्थ उरद १६ सेर, जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर। इस तैलको यथाविधानसे पाक कर सेवन करनेसे पक्षाघात रोग जाता रहता है।

माषादितैल—तैल ४ सेर, कल्कार्थ उरद, कौंचकी

फलोंका बीज, अतीस, अंडीकी जड़, रासना, शतमूली और सैन्धव सब मिला कर एक सेर; कल्कार्थ उरद १६ सेर, जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर, अड़ूस १६ सेर, जल १ मन २४ सेर, शेष १६ सेर। यथानियम इस तेलको पा कर व्यवहार करनेसे पक्षाघात चंगा हो जाता है। (भावप्र० २ भाग)

सुश्रुतमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है—भगवान् स्वयम्भू ही वायु नामसे अभिहित हैं। यह वायु जब कुपित होती है, तब नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। वायु अत्यन्त कुपित हो जब अधो, ऊर्ध्व और तिर्यग्गामिनी धमनीके मध्य प्रवेश करती है, तब वह एक ओरके अङ्गके सन्धिबन्धनको विश्लिष्ट कर डालती है। इससे शरीरका एक पक्ष नाश हो जाता है, इसीसे इसको पक्षाघात कहते हैं। वायु कर्त्तृक पीड़ित हो कर शरीरका समस्त वा अर्द्ध अङ्ग अकर्मण्य और निस्पन्द हो जाने पर रोगी उसी समय पृथ्वी पर गिर पड़ता है, वा प्राणत्याग करता है। पक्षाघात केवल वायुजन्य होने पर वह असाध्य हो जाता है। उस वायुके साथ यदि पित्त वा श्लेष्मा मिला हो, तो वह सहजमें आरोग्य हो जाता है। क्षयजन्य पक्षाघातको असाध्य समझना चाहिये।

(सुश्रुत निदानस्थान १ अ०)

यह पक्षाघातरोग वातव्याधिका एक भेद है। वायु कुपित हो कर जो सब रोग उत्पन्न करती है, उसीको वातव्याधि कहते हैं। पक्षाघातरोगमें रोगीका शरीर म्लान नहीं होने पर तथा शरीरमें वेदना रहने पर रोगी यदि प्रकृतिस्थ और उपकरणविशिष्ट हो, तो उसकी चिकित्सा विधेय है। प्रथमतः स्नेहस्वेद द्वारा अल्पवमन करा कर रोगीको संशोधन करा लेना चाहिए। पीछे अनुवासन और आस्थापनका प्रयोग करना चाहिए। अन्तमें आक्षेपक रोगके विधानानुसार चिकित्सा विधेय है। कुछ दिन तक यदि विशेषरूपसे सुचिकित्सा कराई जाय, तो रोग अवश्य आरोग्य हो सकता है। (सुश्रुत)

एलोपैथीके मतसे पक्षाघात वा आङ्गिक अवशता पांच विभिन्न कारणोंसे उत्पन्न होती है—(१) पन्समें लोराइ, दोनों कोष और कशेरुकरज्जुके ऊर्ध्वांशमें रक्तस्राव, (२) डिफथिरिया वा त्वगाच्छादनरोगका परिणाम (३) शिशुकालकी सार्वाङ्गिक अवशता, (४) स्थिरावस्था, (५) क्षययुक्त अवशताकी शेषावस्था। ज़िला इत्यादि विभिन्न सार्वाङ्गिक अवशताका विषय आवश्यकतानुसार यथास्थानमें लिखा जायगा।

शरीरका अर्द्धांश अनुलम्बभावमें अवश होने पर उसे अर्द्धाङ्गाक्षेप (Hemiplegia) कहते हैं। अङ्गरेजी भाषामें इसका पर्याय है (Paralytic Stroke)। पृष्ठवंशीय मज्जाके ऊपरस्थ जो वृहत् अंश (Medulla oblongata) कशेरुकामें व्याप्त है, उसके मध्यस्थ शुभ्र स्नायु तिर्यक् भावमें गमन करती है। उसके ऊर्ध्वांशमें यदि कोई वैधानिक पीड़ा रहे, तो विपरीत पार्श्वमें अवशता दीख पड़ती है। लेकिन यदि निम्नांशमें कोई परिवर्त्तन हो, तो जो पार्श्व पीड़ित है, उसी पार्श्वमें अवशता होती है। फिर यह भी देखा जाता है कि Corpus Striatum अथवा आभ्यन्तरिककोष (Internal Capsule)-के ऊपर रक्तस्राव वा अन्य कोई परिवर्त्तन दीख पड़े, तो केवल अवशता एवं दर्शनक्रिया सम्बन्धीय मस्तिष्कके पार्श्वस्थ दोनों कोषों (Optic thalamus)-के ऊपरका गोलाकार आच्छादक भाग आक्रान्त हो जाते हैं और तब स्पर्शशक्तिकी न्यूनता होती है। मस्तिष्क और मज्जाका वैधानिक पीड़ाविबन्धन इसी रोगकी उत्पत्ति है। किन्तु अन्यान्य व्याधिमें मस्तिष्कक्रियाका भावान्तर होने पर भी यह रोग हो सकता है। यथा—मृगी, कोरिया, हिष्टिरिया आदि। उपदंशरोग भी इस पीड़ाका एक भारी कारण है।

लक्षण।—मस्तिष्कके मध्य शुभ्र अंशकी कोमलता अथवा सामान्य परिमाणमें संयत रक्त (clot) दिखाई पड़नेसे पीड़ा आरम्भ होनेमें भी रोगीको ज्ञान रहता है। किन्तु अधिक रक्तस्राव होनेसे रोगी ज्ञानशून्य हो जाता है। रोगके आक्रमणप्रणालीके तारतम्यानुसार रोगीके शरीरमें जो सब विभिन्न विशेष लक्षण देखे जाते हैं, पहले उसीकी आलोचना की गई। सज्ञानमें अर्द्धाङ्गाक्षेप (Hemiplegia with consciousness) होनेसे रोगी हाथ वा पैरके किसी अंशमें सामान्य अवशता अनुभव करता है जो क्रमशः वर्द्धित हो कर अङ्गके एक पार्श्वस्थ हस्त और पदको अवश कर डालती है। ज्ञानशून्य अवस्थामें

अर्द्धाङ्गाक्षेप (Hemiplegia without consciousness) होनेसे कितने ही पोर्विंक लक्षण दीख पड़ते हैं; यथा—वाक्यकी अस्पष्टता, स्थानिक अवशता, मुखके एक पार्श्वकी आकृष्टता, स्मरणशक्तिका ह्रास और बीच बीच में वमन. पीछे रोग प्रकृत होने पर आक्षेप और अचैतन्य हुआ करता है। इसके सिवा और भी कितने साधारण लक्षण हैं जिनसे रोग सहजमें पहचाना जा सकता है।

अर्द्धाङ्गाक्षेप रोग पूर्ण और असम्पूर्णके भेदसे दो प्रकारका है। मस्तिष्कके मध्य अधिक रक्तस्राव होनेसे उसमें दर्द मालूम पड़ता है। यदि मस्तिष्कके दक्षिण पार्श्वमें रक्तस्राव हो, तो वाम पार्श्व आनुलम्बन भावमें अवश होते देखा जाता है और मस्तिष्क तथा दोनों चक्षु धीरे धीरे दक्षिणको ओर आकृष्ट होते हैं। वाम भागका ऊर्ध्व अक्षिपल्लव किञ्चित् अवनत, वामहस्त और पद तथा मुखका वाम पार्श्व अवश, जिह्वा वहिर्गत करनेसे अवशाङ्गको ओर वक्र और वक्ष तथा उदरकी वामपार्श्वस्थ पेशियां सामान्य भावमें क्षीण और अवश मालूम पड़ती हैं। हस्त मस्तिष्कके निकटवर्त्ती होनेसे अवशता अधिक परिमाणमें और पद दूरवर्त्ती होनेसे वह अपेक्षाकृत अल्पमात्रामें हुआ करता है। सुतरां अधिकांश जगह पदका पक्षाघातरोग पहले आराम हो जाता है। उदर और वक्षकी पेशीकी अवशता शीघ्र ही दूर हो जाती है। मस्तिष्क अथवा उसकी मालिकाके (Meninges मध्य अधिक रक्तस्राव होनेसे हस्त पदकी अवशताके साथ दृढ़ता वर्त्तमान रहती है। मस्तिष्ककी कोमलताके हेतु इस रोगमें हस्तपदकी पेशियोंकी शिथिलता देखी जाती है, किन्तु कोमलता क्षतस्थान क्रमशः सङ्कुचित अथवा उसके मध्य धमनलक, उत्पन्न होनेसे उक्त पेशियां दृढ़ हो जाती हैं। इस पीड़ामें चतुर्थ और षष्ठ स्नायु तथा पञ्चम स्नायुका चालक अंश (Motor) कभी कभी आक्रान्त हुआ करता है। किसी किसी स्थानमें चक्षुपल्लव संयुक्त पेशी भी सामान्य भावमें अवश हो जाती है। पीड़ित अङ्गके पार्श्वदेशमें स्पर्श और तापका अनुभव नहीं होता। पञ्चम और नवम स्नायुके आक्रान्त होनेके कारण रोगी साफ साफ नहीं बोल सकता। पीड़ित मांसपेशियोंमें प्रत्यावर्त्तनिक क्रिया हुआ करती है और फलकास्थि (Petella)-की प्रतिक्षिप्त-क्रिया वर्धित और गुल्फ-सन्धिका प्रक्षेपण भी दीख पड़ता है। पेशियां एकबारगी क्षयप्राप्त नहीं होतीं। पीड़ाकी तरुणावस्थामें पेशियां वैद्युतिक स्रोत द्वारा स्वाभाविक अथवा अधिक परिमाणमें सङ्कुचित होती हैं किन्तु रोग पुरातन होने पर उक्त सङ्कोचन अति सामान्य परिस्फुट हुआ करता है। चलते समय रोगी मुख-भागको ओर कुछ झुक कर चलता है। पीड़ितस्कन्ध उच्च और हस्त वक्षके पार्श्वमें आन्दोलन करके पद कुछ गोलाकार भावमें (Circumduction) सञ्चालन करता है। पैरकी उंगलियां भूमिकी ओर झुकी रहती हैं। दक्षिण पार्श्वकी अवशतामें कोमलता पहुंच जाती है। मस्तिष्क-क्रियाके व्यतिक्रम हेतु जो पीड़ा उत्पन्न होती है उसमें अर्थात् गुल्मवायु (Hysteria), अपस्मार (Epileptic) और ताण्डवरोग (chorea) आदिमें मुख आक्रान्त नहीं होता। गुल्मवायुरोगजनित पीड़ामें रोगी अपने हाथको पश्चिमको ओर निक्षिप्त और अवनत करके पीड़ित पदको खिंच कर चलता है। सन्न्यासके वैधानिक पीड़ाघटित अर्द्धाङ्गाक्षेप रोगमें रोगीको ज्ञान-रहता है और मुख आक्रान्त नहीं होता। अर्द्धाङ्गाक्षेपका यान्त्रिकविकार होनेसे रोग आरोग्य नहीं होता, अन्यान्य प्रकारके रोग आरोग्य हो जाते हैं।

चिकित्सा।—तरुण अवस्थामें मस्तक ऊंचा करके रोगीको शयनावस्थामें रखे। यदि पीड़ित अङ्गकी पेशियां दृढ़ रहे, तो रक्तमोक्षण वा ग्रीवाके ऊपर आर्द्र कपिं करना विधेय है। पीछे कालामेल ५ ग्रेन और केष्टर आयल १ आंस अथवा बुंद क्रोटन आयलको चीनीके साथ मिला कर सेवन करावे। अनन्तर पोटाशी आयोडाइड पांच ग्रेन मात्रामें ३।४ घंटेके पीछे देना आवश्यक है। यदि सभी मांसपेशियां शिथिल हो जांय, तो ग्रीवामें ब्लिष्टार तथा बलकारक औषधकी व्यवस्था करे। रोग पुरातन हो जाने पर पीड़ित अङ्गमें पत्तानिलका बन्धन, मर्दन और वैद्युतिक स्रोत संलग्न करना विधेय है। तरुणावस्थामें अथवा शिरःपीड़ामें वैद्युतिक स्रोतको संलग्न रखना उचित नहीं। टिंचरष्टील, लाइकर-ष्टिकनिया और अन्यान्य बलकारक औषध देनी चाहिये।

यदि यह मालूम हो जाय कि इस प्रकारका पक्षाघात रोगग्रस्त रोगीके पहले उपदंशरोग हुआ था, तो पोटाशी ओडाइडका व्यवहार करना चाहिए मज्जाकी पीड़ाके कारण यदि पक्षाङ्गहीन हो तो हिं आनट और वैसे हीना विशेष उपकारी है। मस्तिष्कमें रक्ताधिक्य होनेसे छिन्नलिवा फलदायक नहीं है। गुल्मवायु आदि रोग घटित पीड़ामें यथेष्ट औषधका प्रयोग करे।

अन्यान्य रोगोंके साथ मिलनेसे पक्षाघात रोगका विभिन्न नाम हो जाता है। मानसिक प्रकृतिके परिवर्त्तनमें जो अवशताका लक्षण उपस्थित होता है, उसे चित्तावस्थाकी अवशता (General paralysis of the insane) कहते हैं। सप्तम वायुमूलमें अथवा उसकी दृढ़शाखा (Portio Dura)में कोई परिवर्त्तन होनेसे मुखकी मांसपेशियां अवश हो जाती हैं। इस रोगको Bell's palsy or Facial paralysis कहते हैं। एतद्भिन्न Paralysis agitans, P. diphthertic, P. Duchene's, P. Glosso labio laryngeal. P. infantile, P. landrys और Scrivener's Paralysis आदि पक्षाघात रोगोंमें भी औषधादि प्रायः एक सी हैं। पर हां, रोगविशेषका लक्षण परस्पर स्वतन्त्र है।

धर्मशास्त्रमें लिखा है कि यह पक्षाघात रोग महापातकके कारण हुआ करता है। पूर्वजन्ममें जो सब पाप किये जाते हैं, मनुष्य उन पापोंका भाग कर पुनः जब जन्म लेता है, तब महापातकके चिह्नस्वरूप ये सब व्याधियां हुआ करती हैं। इस प्रकार महापातकज चिह्न सात जन्म तक रहता है। पक्षाघात और कुष्ठादिरोग महापातकज हैं।

जिसके पक्षाघात आदि महापातकज रोग होते हैं, उसे प्रायश्चित्त करना होता है। महापातकरोगी यदि प्रायश्चित्त न करे, तो उसे किसी धर्मकर्ममें अधिकार नहीं रहता और बिना प्रायश्चित्त किये यदि इस रोगसे उसकी मृत्यु हो जाय, तो प्रायश्चित्त किए बिना उसका दहन, वहन वा अशौचादि कुछ भी नहीं होगा। इस पाप का प्रायश्चित्त करके उसके दाहादि कार्य करने होंगे।

महापातकमें प्रायश्चित्त पराकव्रत है। यदि यह न कर सके, तो पञ्चधेनु दानरूप प्रायश्चित्त विधेय है। इस पञ्चधेनुका मूल्य १५ रु० है। इस पक्षाघातरोगका प्रायश्चित्त करते समय प्रायश्चित्तकी व्यवस्था लेनी होती है। व्यवस्थापत्रमें इस प्रकार लिखा रहना चाहिये।

"पक्षाघातरोगसंसूचितपापक्षयाय पराकव्रताचरणको ब्राह्मणेन अग्निगादिना वा यत्किञ्चिद्दक्षिणासहपञ्चधेनुप्रत्याम्नायरूपिणीदानरूपं प्रायश्चित्तं कार्यमिति विदुषां मतम्।"

प्रायश्चित्तके अन्यान्य विवरणके लिये प्रायश्चित्त देखो।

पक्षादि (सं० पु०) पक्ष आदिर्यस्य। पाणिनि उक्त शब्दगणभेद। यथा—पक्ष, तक्ष तुष, कुण्ड, अण्ड, कम्बलिका, वलिक, चित्र, अस्ति, पथिन्, पन्था, कुम्भ, सीरक, सरक, सकल, सरस, समल, अतिश्वन्, रोमन्, लोमन्, हस्तिन्, मकर, लोमक, शीर्ष निवात पाक, सिंहक, अङ्कुश, सुवर्णक, हंसक, कुत्स, विल, खिल, यमल, हस्त, काला, सकर्णक इन पक्षादियोंके उत्तर फक् प्रत्यय होता है। (पाणिनी)

पक्षाध्याय—न्यायशास्त्रके अन्तर्गत विवादमत अध्याय।

पक्षान्त (सं० पु०) पक्षस्य अन्तो यत्र काले। १ अमावस्या, पूर्णिमा। पर्याय—पञ्चदशी, यज्ञकाल, इन्दुक्षयेन्दुसंपर्व, पक्षावसर। पक्षान्तरमें यात्रा नहीं करनी चाहिये, करनेसे निष्फल होता है।

"पक्षान्ते निष्फला यात्रा मासान्ते मरणं ध्रुवम्॥
(ज्योतिस्तत्त्व)

२ पक्षका अवसान।

पक्षान्तर (सं० क्ली०) अन्यत्पक्षं पक्षान्तरं। १ अपरपक्ष, दूसरी तरफ। २ मतान्तर।

पक्षाभास (सं० पु०) १ हेत्वाभास, सिद्धान्ताभास। २ मिथ्या अनुयोग।

पक्षालिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद, कुमारकी अनुचरी मातृका।

पक्षालु (सं० पु०) पक्षो विद्यते यस्य, पक्ष मत्वर्थे आलुच्। पक्षी, चिड़िया।

पक्षावसर (सं० पु०) पक्षस्य अवसरोऽपसरणं यत्र। पूर्णिमा, अमावस्या।

पक्षाहार (सं० त्रि०) जो एक पक्षके मध्य एक बार भोजन करते हों।

पक्षिणी (सं० त्रि०) १ पक्षवाली। (स्त्री०) २ चिड़िया,

भादाचिड़िया। ३ पूर्णिमा। ४ दो दिन और एक रातका समय। ५ वनकार्पासी, जङ्गली कपास।

पक्षितीर्थ—एक अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र। यह दक्षिणप्रदेशके मन्द्राज नगरसे १८ कोस दक्षिण समुद्र-तीरवर्ती सद्रम और चिङ्गलपटके मध्यस्थलमें अवस्थित है। इसका वर्त्तमान नाम है तिरुकड़ु कुनरम् (तिरु-कजुकु नरम) अर्थात् पवित्र चीलोंका पर्वत। यह पवित्र भूमि एक समय हिन्दू और बौद्ध सम्प्रदायोंके मध्य बहुत प्रसिद्ध हो उठी थी। तारनाथके भारतीय बौद्धधर्मके इतिहास नामक तिब्बतीय ग्रन्थमें यह स्थान बौद्धोंका अति पवित्र पक्षिसङ्घाराम नामसे उल्लिखित हुआ है। वर्त्तमान समयमें भी यहांके मन्दिरमें शिव और शक्तिमूर्त्ति प्रतिष्ठित हैं तथा उन सब देवदेवियों-की पूजा प्रचलित देखी जाती है। किन्तु उक्त मन्दिरमें जैन-प्रादुर्भावके समयकी उत्कीर्ण शिलालिपि भी देखी जाती है। तिरुक्कुकुण्डम् देखो।

यहांके स्थल पुराणसे जाना जाता है कि चारों वेदने किसी समय देवादिदेव महादेवके पास जा कर प्रणति-पूर्वक अपने चिरस्थायी वासके लिये निर्दिष्ट स्थान मांगा और वहां रह कर जिससे वे उनके चरणकी पूजा कर सकें इस प्रकार मनोभिप्राय भी प्रकट किया। उनकी प्रार्थनासे संतुष्ट हो कर शिवजीने उन्हें पर्वता-कारमें रूपान्तरित करके परस्पर संलग्न कर रखा और इस पर्वतशृङ्गोंमेंसे एक पर अपना वासस्थान चुन लिया। यहांकी शिवमूर्त्ति "वेदगिरीश्वर" वा वेद-पर्वतके अधिष्ठातृदेवताके रूपमें पूजित होती है। प्रवाद है कि इस पर्वतके जिस स्थान पर महादेवने एक कोटी रुद्रको रणमें परास्त किया था, वहां उनकी विजयघोषणाके लिये एक मन्दिरका निर्माण किया गया। वह मन्दिर अति प्राचीन और बड़ा है। पूर्वोक्त युद्ध और मन्दिर स्थापनके बादसे यह ग्राम "रुद्रकोइल" नामसे प्रसिद्ध हुआ है।

उपरिउक्त दो मन्दिरोंको छोड़ कर गिरिशृङ्गोंके पाददेशमें एक और मन्दिर है जो यहांके अन्यान्य मन्दिरोंसे बड़ा है। इसके चार गोपुर देखे जाते हैं। मन्दिरा-भ्यन्तरमें शिवकी अर्द्धाङ्गिनी शक्तिदेवी है। देवीकी मूर्त्ति कालक्रमसे क्षयप्राप्त होती जा रही है। चैत्र-मासमें देवीके अभिषेकके समय यहां बहुतसे लोग एकत्र होते हैं।

१५वीं शताब्दी तक इस स्थानके माहात्म्यके विषय-में कुछ भी मालूम नहीं। पीछे पेरुम्बिल तम्बिरन नामक किसी उपासकके उद्यम तथा वक्तृतासे जन-साधारण शिव-महिमासे विमोहित हुए थे और क्रमशः उन्होंकी चेष्टासे तिरुकड़ुकुण्डम् नवीन आकार धारण कर दक्षिणभारतमें काञ्चीपुरके सदृश तीर्थमालामें विभूषित हुआ है।

स्थलपुराणके मतसे—जहां देवराज इन्द्रने आ कर महादेवकी उपासना की थी, वह स्थान आज भी इन्द्र-तीर्थ नामसे मशहूर है। प्रवाद है कि इन्द्र शिवपूजा-के उद्देश्यसे प्रति बारहवें वर्ष अपने वज्रको धराधाम पर भेजते हैं। उस समय वज्र पहले पर्वतके ऊपर मन्दिर-के शिखर पर आ कर गिरता है। पीछे वह तीन बार मन्दिरस्थ देवमूर्त्तिका प्रदक्षिण कर पर्वतमें विलीन हो जाता है। बारहवें वर्षके अन्तमें विग्रहका यह अद्भुत अभिषेक साधारणका कौतूहलोद्दीपक और नैसर्गिक माना जाता है। प्रति बारहवें वर्ष इस स्थानसे दो शङ्ख निकलते हैं। शङ्ख निकलनेके दो तीन दिन पहले जल मैला और फेन युक्त हो जाता है और मुहुर्मुहुः गर्जन सुनाई देता है। इस समय नगरवासिगण पुष्करिणी-के किनारे आ कर सतृष्णदृष्टिसे शङ्खके उत्थानकी अपेक्षा करते हैं। यथासमय शङ्खके उत्थित होने पर लोग महा-समारोहसे उसे लाते और एक रौप्यपात्रमें रखते हैं तथा नगरप्रदक्षिणके बाद पर्वत निम्नस्थ मन्दिरमें पूर्वोत्थित शङ्खके पास रख देते हैं।

इसके सिवा और भी आश्चर्यका विषय है कि यहां प्रति दोपहरको अर्थात् १२॥से १ बजेके भीतर दो सफेद चीलें आ कर भोजन करती हैं। उक्त दोनों पक्षियोंको आहार देनेके लिये एक पंडा नियुक्त रहता है। वह पंडा दोनों पक्षियोंके आनेके पहले ही पर्वत-शिखर पर चढ़ जाता और चावल तथा चीनी देकर भोजन प्रस्तुत करता है। वहां पक्षियोंके पीनेके लिये कुछ घी भी मौजूद रहता है। दोनों पक्षी यथासमय

पर्वत पर उतरते और मन्दिर आ कर विग्रहमूर्त्तिको अभिवादनपूर्वक पंडेके पास भोजन करने जाते हैं। भोजन कर चुकने पर परितुष्ट हो वे स्वस्थानको लौट जाते हैं। पीछे वह पंडा उपस्थित व्यक्तियोंके मध्य पक्षिभुक्त प्रसाद वितरण करते हैं। यह सत्य घटना बहुतोंने अपनी आंखोंसे देखी है। इसी कारण इस पर्वतका तिरुकड़ कुण्डम् नाम पड़ा है। प्रवाद है कि उक्त दोनों पक्षी पहले ऋषि थे, पीछे किसी पापके कारण वे इस अवस्थाको प्राप्त हुए हैं।

शङ्खतीर्थमें प्रतिदिन सुबह और शामको स्नान कर पर्वत पर भ्रमण, देवमूर्त्तिदर्शन और सतत उनका ध्यान तथा अल्प आहार करनेसे थोड़े ही समयके मध्य कुष्ठ, पक्षाघात, उन्माद और अन्यान्य नाना रोग उपशम होते देखे जाते हैं। बहुतेरे मनुष्य रोगमुक्त होनेको आशासे यहां आया करते हैं। अन्यान्य तीर्थके सम्बन्धमें भी अनेक तरहकी किंवदन्तियां प्रचलित हैं। ये सब अलौकिक घटना सुन कर सद्रसके श्रीलन्दाजगण कौतूहल निवारणेच्छासे १६६२ ई०को यहां आये और पर्वत पर स्वनाम अङ्कित कर गये हैं।

पक्षिन् (सं० पु० स्त्री०) पक्षौ विद्यते यस्य पक्ष-इनि। विहङ्गम, चिड़िया। पक्षी देखो।

पक्षिपति (सं० पु०) पक्षिणां पतिः ६-तत्। १ पक्षिराज। २ सम्पाति।

पक्षिपात (सं० पु०) पतङ्गज्वर।

पक्षिपानीयशालिका (सं० स्त्री०) पक्षिणां पानीयस्य पानार्थं जलस्य शालिका। पक्षीका जलपानस्थान, वह जगह जहां चिड़िया आ कर पानी पीती है।

पक्षिपुङ्गव (सं० पु०) पक्षिश्रेष्ठ जटायु।

पक्षिप्रवर (सं० पु०) पक्षिश्रेष्ठ, गरुड़।

पक्षिमृगता (सं० स्त्री०) पक्षित्व और मृगत्व।

पक्षिराज (सं० पु०) पक्षिणां राजा, टच् समासान्तः। गरुड़, पक्षीन्द्र।

पक्षिल (सं० पु०) पक्षिलस्वामी, वात्स्यायन। इन्होंने गौतमसूत्रका भाष्य प्रणयन किया।

पक्षिलजशालि (सं० पु०) स्वनामख्यात शालिधान्यविशेष, पक्षिराज धान।

पक्षिशाला (सं० स्त्री०) पक्षिणां शाला ६-तत्। खोंड़, घोंसला। इसका पर्याय कुलायिका है।

पक्षिसिंह (सं० पु०) पक्षी सिंह इव, अथवा पक्षिषु सिंहः श्रेष्ठः। पक्षिराज, गरुड़।

पक्षिस्वामिन् (सं० पु०) पक्षिणां स्वामी। गरुड़।

पक्षी (सं० पु० स्त्री०) पक्षौ विद्यते यस्य पक्ष-इनि। विहङ्गम, चिड़िया। पर्याय—खग, विहङ्ग, विहंग, विहङ्गम, विहायस, शकुन्ति, शकुनि, शकुन्त, शकुन, द्विज, पतत्रिन्, पत्रिन्, पतग, पतत्, पत्ररथ, अण्डज, नगौकस, वाजिन्, विकिर, वि, विष्किर, पतत्रि, नीड़ोद्भव, गरुत्मत्, पित्सत्, नभसङ्गम, नाड़ीचरण, कण्ठाग्नि, पतङ्ग, अगौकस, पत्रभृत्, कुरण्ड, सरण्ड, पिपतिषु, पत्रवाह और खग।

पक्षियोंकी उत्पत्तिका विषय अग्निपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"अरुणस्य भार्या श्येनी वीर्यवन्तौ महाबलौ।
सम्पातिञ्च जटायुञ्च प्रसूतौ पक्षिसत्तमौ॥" (अग्निपु०)

अरुणकी भार्या श्येनी थी, इसी श्येनीने पहले पहल जटायु और सम्पाति नामक दो पक्षी प्रसव किये। इन्हीं दोसे पक्षी जातिकी उत्पत्ति है। दूसरी जगह लिखा है—स्थलचर, जलचर और मांसाशी पक्षी क्रोधवशासे उत्पन्न हुए हैं। मत्स्यपुराण और विष्णुपुराणमें लिखा है—शुकी, श्येनी, भासी, गृध्री, सुग्रीवी और शुचि ये छः ताम्राकी कन्या थीं। इनमेंसे शुकीके गर्भसे शुकपक्षी और उलूकगण, श्येनीके गर्भसे श्येनगण, भासीके गर्भसे भास और कुररपक्षिगण, गृध्रीके गर्भसे गृध्र, कपोत और पारावत जातीय पक्षी, सुग्रीवीके गर्भसे छाग, मेष, गर्दभ और उष्ट्र तथा शुचिके गर्भसे हंस, सारस, कारण्ड और वानरगण उत्पन्न हुए हैं।

भावप्रकाशके मतसे जो सब पक्षी कूलचर हैं, वे उत्कृष्ट और लघु तथा अनूपदेशज पक्षी बलकारक, स्निग्ध और गुरु होते हैं। पक्षीके अण्डोंमें किञ्चित् स्निग्ध, पुष्टिकारक, मधुररस, वायुनाशक, गुरु और अत्यन्त शुक्रवर्द्धक गुण माना गया है। (भावप्रकाश)

पक्षी अण्डज जीव हैं। जैसे हम लोगोंके दो हाथ होते हैं, वैसे ही उनके दो डैने हैं। उन्हींसे वे उन्न-

मार्ग आकाशमें इधर उधर उड़ सकते हैं। इनके मुखविवरमें ले कर ओष्ठाग्रभाग तक कठिन अस्थिके सदृश चञ्चुयुक्त है। चञ्चुके ऊपरी भागमें दो छोटे छोटे नासाछिद्र हैं। उदरके अधोदेशमें केवल दो पैर हैं, उन्होंसे वे वृक्षादिकी शाखा, मृत्तिका, पर्वत और गृहादिकी छतके ऊपर खड़े हो कर जिधर तिधर इच्छानुसार गमनागमन कर सकते हैं। दोनों पैरके मध्यस्थानमें गांठ रहती है। प्रत्येक पैरमें चारसे पांच अङ्गुल और उनके अग्रभागमें टेढ़े किन्तु तीन नाखून होते हैं। ये दोनों पैर समय समय पर हाथके भी काम करते हैं। विशेषतः बाज, शिकरे (Hawks) आदि पक्षियोंके लिए ये विशेष उपयोगी हैं। दोनों पैरके पश्चाद्भागमें मलत्याग वा जननेन्द्रिय-विवर और उसके भी पश्चाद्भागमें पुच्छ रहता है। पूंछ और डैनेमें साधारणतः बड़े बड़े पर जमते हैं तथा समूचा शरीर पशम सरीखे कोमल छोटे छोटे परोंसे ढका रहता है। इनके ऊपरके पर इतने चिकने होते हैं कि उन पर जरा भी पानी नहीं ठहरता। यही कारण है कि वनके मध्य खुले मैदानमें जब वृष्टि होती है तब इनका शरीर भींग कर भारी नहीं होता। अतः इस समय यदि कोई उन्हें पकड़ने जाय, तो वे सहजमें उड़ सकते हैं।

पक्षीमात्र ही खेचर हैं, क्योंकि ऐसा एक भी पक्षी नहीं जो कुछ भी उड़ना नहीं जानता हो, लेकिन जो कम उड़ सकते (अर्थात् जो हमेशा जमीन पर चला करते हैं) और जो अन्यान्य पक्षीकी अपेक्षा भारशील हैं, वे ही स्थलचर कहलाते हैं—जैसे सारसके सदृश पक्षी, उष्ट्रपक्षी, कुक्कुट प्रभृति। एतद्भिन्न स्थलचर होने पर भी जो सब पक्षी स्वतः ही जलमें विचरण करना पसन्द करते और जलसे साधारणतः खाद्यवस्तु संग्रह किया करते हैं, वे जलचर पदवाच्य हैं। जैसे, बक, पण्डुक आदि।

प्राणितत्त्वज्ञोंने जलचर पक्षियोंके मध्य कुछ सामान्य लक्षण निर्देश करते हुए इनकी जातिका निर्णय किया है। उन सब लक्षणोंमें अङ्गुलाभ्यन्तरस्थ एक प्रकारका हृदपल्लक ही प्रधान है जिसकी सहायतासे वे आसानीसे पानीमें तैर सकते हैं। इसीसे इनका एक और नाम रखा गया है, जालपाद। यह जाल (मुक्तलक) इनके पदके पुरोभागस्थ तीन अंगुलियोंमें परस्पर संलग्न है। इनके दोनों पैर देहके पश्चाद्भागमें स्थापित हैं। जातिभेदसे इस पदसंस्थानका तारतम्य देखा जाता है। पेङ्गुइन नामक पक्षीके पद अकसर पुच्छमूलमें संलग्न रहते हैं। इस कारण जब ये जमीन पर बैठते हैं, तब खड़े जैसे मालूम पड़ते हैं। इस श्रेणीमें १म शीतप्रधान देशज पेङ्गुइन और २य निमज्जकादि, ३य गगन-भेदादि, ४र्थ धान-कोटादि, ५ म शङ्खचिल्लादि और ६ष्ठ हंसादि हैं।

शकुनशास्त्रविदोंने पक्षिवर्गको इस प्रकार आठ गणोंमें विभक्त किया है—

१म शाखाचारी (Passeres) अर्थात् जो सर्वदा वृक्षकी शाखा पर विचरण करते हैं, यथा—चटक, काक, नीलकण्ठ टुनटुनी, श्यामा आदि।

२य काण्डचारी (Scansores) अर्थात् जो वृक्षकाण्ड पर विचरण करते हैं,—जैसे, दार्वाघाट (कठफोड़ा), टोकान, काकातूआ, नूरी टीया आदि।

३य द्रुतचारी (Cursores) अर्थात् जो पृथ्वी पर बहुत फुर्तीसे पैर रख कर चलते हैं, जैसे—शुतुरमुर्ग, कशोवारी, उष्ट्रपक्षी आदि।

४र्थ जलचारी (Grallatores) अर्थात् जो जलमें विचरण करते हैं,—जैसे, बक, सारस, पण्डुक आदि।

५म तरपदी (Natatores) अर्थात् जो पद द्वारा तैरते हैं,—जैसे, हंस, पेङ्गुइन।

६ष्ठ वर्षकपदा (Rasores) अर्थात् जो पक्षी नख द्वारा भूमि विदारण करते हैं—जैसे, कुक्कुट, मयूर, मोनाल, तीतर आदि।

७म कपोत (Columbæ) अर्थात् पारावत और उसीके समान पक्षी, जैसे पायरा, घूघू इत्यादि।

८म आखेटक (Raptores) अर्थात् जो सब पक्षी आखेट वा शिकार करके अथवा मांसभक्षण द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं,—जैसे, पेचक, बाज, शिकरा, चील, गीध, कुरकुल, शकुनि इत्यादि।

आधुनिक प्राणितत्त्वविद् पक्षिजातिके आभ्यन्तरिक गठन और अस्थ्यादिके संस्थानकी आलोचना करके इनके मध्य

कुछ जातिगत पार्थक्य बतलाया है। उन्होंने नानाजातीय पक्षियोंके मध्य अल्पविस्तर पार्थक्यकी विवेचना कर इन्हें अनेक जातियोंमें विभाग किया है। पक्षिजातिके शरीरतत्त्वकी आलोचना करनेमें विज्ञानविद् पण्डितगण मस्तिष्क, पदतल, पुच्छ और वुक्षास्थि आदिका परस्पर समावेश और विभिन्नता दिखा कर जिस सिद्धान्त पर पहुंचे हैं उसका विवरण सहजबोध्य नहीं है। शरीर-तत्त्वज्ञ व्यक्तिगण यदि इस विषयमें आलोचना करें, तो वे बहुत कुछ समझ सकेंगे। साधारणतः जो सब विषय कहनेसे सहजमें बोध हो सकता है, उसीका यहां पर उल्लेख किया गया।

प्रथमतः पक्षिजातिका कोई विभाग निर्देश करनेमें उनका वाह्यदृश्य पुङ्खानुपुङ्खरूपसे लक्ष्य करना उचित है। जैसे कुछ पक्षियोंकी पूंछ शरीरकी अपेक्षा बड़ी और कुछकी छोटी है। कितनेके करभ अचल-सन्धि और कितनेके सचल-सन्धि हैं। किसीकी भी वुक्षास्थि सरल और लम्बी नहीं है। इस प्रकार छोटे छोटे तथ्योंके अनु-वर्त्ती हो कर शकुनविदोंने निर्देश किया है कि जिन सब पक्षियोंके डैनेकी मौलिक-प्रगण्डास्थि पदाङ्गुलिके नख सदृश अस्थिकी अपेक्षा छोटी है तथा हृदाङ्गुलि कुछ बड़ी है, वे ही वेटिटी श्रेणी (Group) भुक्त और एपटिरोगिडि (Apterygidoe) शाखाके अन्तर्गत है। जिनकी हृदाङ्गुलि वैसी नहीं है वे डिनरनिथिडी (Dinornithidoe) और कसुयारियाइडि Casua-riidoe) शाखाके मध्य सन्निवेष्ट हुए हैं। जिनकी प्रगण्डास्थि बड़ी और अङ्गुलिके दो नखास्थिसमन्वित हैं तथा जिनकी वक्षणास्थि त्रिकास्थि (पृष्ठदण्डकी निम्न प्रान्तस्थ अस्थि)में आ कर मिल गई है और उदराधःप्रदेश परिच्छन्न है, उस शाखाका नाम रिडी (Rheidae) है अमेरिका देशीय उष्ट्रपक्षी (Ostrich) इसी शाखाके अन्तर्गत है। जिन सब पक्षियोंकी वक्षणास्थि सरल और उदराधःप्रदेश तलपेटकी उपस्थास्थि-की सन्धिमें संलग्न है इसी शाखामें (Struthionidoe) अफ्रिका और अन्यान्य स्थानवासी उष्ट्रपक्षी गिने जा सकते हैं। उसी प्रकार जिन सब पक्षियोंकी नासाफल-कास्थि पश्चाद्भागमें प्रशस्त हो तथा तालुसम्पर्कीय पक्ष-वत् अस्थिके मध्यभागमें और गलेका तलदेश कोलाकार अस्थिविशिष्ट हो, तो उस श्रेणीके पक्षियोंको केरिनेटी (Carinatae) कहते हैं।

फिर जिन सब पक्षियोंकी नासाफलकास्थि पश्चाद्भाग-में पतली और गलेकी तलदेशस्थ कोलाकार अस्थि तालु और मस्तकाभ्यन्तरस्थ पक्षवत् अस्थिके साथ ग्रथित है तथा जिनके तालु-सम्बन्धीय हनुद्वय सरल और नासा-फलकास्थि सूचाग्र है, वे सब पक्षी Carinatae श्रेणी-के अन्तर्गत होने पर भी, उनके मध्य विभिन्न शाखा और विभिन्न नाम देखे जाते हैं। उदाहरणस्वरूप उनमेंसे एकका विषय नीचे लिखा जाता है। जैसे प्लोभार पक्षी (Plover) हम लोगोंके देशमें इसे तीतर कहते हैं। विज्ञानविदोंने इसे Carinatoe श्रेणी-भुक्त करके भी इनके मध्य कार्सोरिना (Cursorina) और काराड्रिना (Charadrinoe or Charadriomor-phoe) नामक दो स्वतन्त्र शाखा निर्देश की है और देश तथा स्थानके भेदसे इस जातिके पक्षियोंमें आकृति-गत वैलक्षण्य देख कर उन्होंने एक एकका विभिन्न नाम रखा है। तीतर पक्षीको प्रथमोल्लिखित शाखामें Indian courier, Double bounded, Large Swa-llow and Small Swallow एवं निम्नोक्त शाखामें Grey, Golden, Large sand, Small sand, Kentish ring, Indian ringed और Lesser ringed आदि जातियां वा संज्ञायें देखी जाती हैं। एतद्भिन्न चील, वक, कुक्कुट, पारावत, हंस आदि पक्षी जातिके मध्य असंख्य जातिगत विभाग और नामस्वातन्त्र्य लक्षित होता है। कपोत और काक प्रभृति शब्द देखो।

इसके बाद उन्होंने करोटी और तन्मध्यस्थ अस्थि तथा मस्तिष्कादिकी उत्पत्ति और वृद्धिके सम्बन्धमें जैसी गभीर आलोचना की है उसका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है। किस प्रकार जरायुके मध्य सञ्चित शुक्र अण्डेमें परिणत होता है, वह किस प्रकार बढ़ कर परिपुष्ट होता है और प्रसवान्तमें उससे अंडे फोड़नेके बाद क्या क्या अवस्थान्तर होता है, संक्षेपतः इसीका हाल यहां दिया जाता है।

सभी जातिके पक्षी एक समयमें अण्डे नहीं देते।

ऋतु और कालभेदसे ये घोंसले बनाते और सन्तान उत्पादन करते हैं। अकसर देखा जाता है कि काक, चील, शालिख प्रभृति विभिन्न श्रेणीके पक्षिगण विभिन्न समयमें अण्डे देते हैं। उन अण्डोंको बाहरी आकृतिसे इनकी जातिगत पृथकता जानी जाती है। साधारणतः अण्डोंकी एक ओर कोणाकार और दूसरी ओर गोलाकार होती है। कोणाकार अंश ही पहले प्रसव पथ हो कर बाहर निकलता है और साथ साथ मोटे गोल अंशके लिये पथ परिष्कार कर देता है। इसी प्रकार सभी पक्षी अण्डे प्रसव करते हैं, सो नहीं, कहीं कहीं इसका वैलक्षण्य देखा जाता है। एतद्भिन्न विभिन्न जातीय पक्षीके अण्डावरक कठिन त्वक्के ऊपर विभिन्न प्रकारका रंग देखा जाता है। विज्ञानविदोंका कहना है कि जरायुसे प्रसवद्वारमें आनेके समय वह वहांके एक प्रकारके रंगीन पदार्थमें लिप्त हो बाहर निकलता है। बादमें देखा जाता है कि अंडोंके ऊपर भिन्न भिन्न रंगोंके भिन्न भिन्न दाग पड़े हैं। ये सब दाग उन पर समान भावसे नहीं पड़ते। पितामाताके दुर्बल होने पर अण्डेको वृहत् आकृतिके कारण गर्भद्वारमें अटक जानेसे तथा भीत अथवा अत्यन्त उत्तेजित होनेसे भी डिम्बके ऊपर रंगकी अल्पता वयस जितनी अधिक होगी, उसके ऊपरका रंगीन दाग भी उतना ही उज्ज्वलतर होता है। जो मादा दो वा दोसे अधिक अण्डे देती हैं उनके प्रथम अण्डों पर रंगकी अधिकता और परवर्ती अंडों पर रंगकी अल्पता लक्षित होती है। इन सब अंडोंमें यदि कुछ अन्तर पड़ जाय, तो भी वे एक जातिके समझे जाते हैं। चड़ाई नामक एक प्रकारकी चिड़िया (Passer montanus) है जो ५से ६ अंडे एक साथ देती है, ये सब अंडे भिन्न भिन्न तरहके होते हैं। अन्तिम अंडा बिलकुल सफेद होता है। हंस और कुक्कुट मादा प्रायः १५ अंडे देती हैं। इनके प्रथम प्रसूत अंडेकी अपेक्षा शेष अंडे अपेक्षाकृत छोटे देखे जाते हैं।

इसके बाद उन्होंने डिम्बके आवरक कठिन त्वक्की मसृणता सादृश्य आदि देख कर इनका जातिगत पार्थक्य निर्देश किया है। उनका कहना है, कि उत्तर अफ्रिकाके उष्ट्रपक्षीका डिम्ब हस्ति-दन्तके सदृश मसृण और उत्तमाशा अन्तरीपके निकटवर्त्ती स्थानजात उष्ट्रपक्षीका डिम्ब खुरखुरा और वसन्तकी तरह व्रणचिह्नयुक्त होता है। वे दो सादृश्यगत विभिन्नता रहने पर भी उनको जातिगत कोई पृथकता देखी नहीं जाती। इसी कारण उन्होंने इस पक्षी (Ratitae)-को श्रेणीभुक्त करके विभिन्न शाखाओंमें विभक्त किया है। अण्डेकी आकृतिकी भिन्न भिन्न तरहसे आलोचना करके भी उन्होंने इनकी पृथकता स्वीकार की है। पेचक (Strigidae) जातीय पक्षीका डिम्ब प्रायः गोल होता है। जिन सब पक्षियोंका डिम्ब न्यूनाकार गोल न हो कर कुछ लम्बा हो गया है, उनमेंसे कुछ Limicolae और कुछ Alcidae शाखाभुक्त है। फिर वनकुक्कुट (Pterocleidae) जातीय पक्षियोंका अण्डा नलकी तरह बहुत कुछ गोल होता है। इसके सिवा शकुनविदोंने डिम्बका आकृतिगत वैषम्य दिखा कर इनका विभिन्न जातित्व निरूपण किया है। दाँड़काक (Corvus Corax) और गिलिमट (The guillemot) एक आकृतिके होने पर भी दोनों पक्षियोंके डिम्बमें बहुत अन्तर देखनेमें आता है। डिम्बकी आकृतिमें १से १० इस प्रकार प्रभेद है। कादाखोंचा (Snipe or Scolopax gallinago) और ब्लाकबर्ड (Black Bird or Turdus merula) पक्षीके डिम्बमें भी इसी प्रकार असादृश्य देखा जाता है। कादाखोंचा और Partridge (Perdix cinerea) पक्षीका डिम्ब समानाकृतिका होने पर भी इनमें विशेषता यह है कि कादाखोंचा केवल चार अण्डे प्रसव करती है, किन्तु पेटिज चिड़िया साधारणतः १२से कम प्रसव नहीं करती।

अण्डाप्रसव होनेके साथ ही वे गरमी देना आरम्भ करते हैं। जो बारह अण्डे पारती वे भी प्रथमसे ही गरमी देती हैं। कोई कोई शाखाचारी (Passeres) जातीय चिड़िया डिम्ब फोड़नेके लिए १०।११ तक उसे सेवती हैं, अन्यान्य जातियोंके मध्य कोई १३; कोई २१ और कोई २८ दिन तक गरमी पहुंचानेके लिए अण्डेको डैनेसे छिपाये रहती है। फिर जलचर और शिकारी पक्षियोंका डिम्ब फूटनेमें एक माससे अधिक समय लगता है। इसका

डिम्ब फूटनेमें प्रायः छः सप्ताह समय लगता है। डिम्बमें गरमी पहुंचा कर बच्चा निकालना केवल मादा पक्षीका काम है। एक जातिका ऐसा भी पक्षी है जिस में एकमात्र पुरुषके ऊपर यह भार सौंपा जाता है। उष्ट्र पक्षीगण बालुमय स्थान वा मट्टीको खोद कर उसीमें डिम्ब पारते हैं और पीछे उन अण्डोंको मट्टीसे ढक देते हैं। सिर्फ अण्डा पारना ही मादाका काम है, उनकी देखरेख नर करता है। दिनके समय वे मिट्टीसे ढके हुए अण्डे सूर्यके उत्तापसे उत्तप्त होते हैं। शाम को मादा आ कर अण्डेको सेवती है। कुछ पक्षी ऐसे हैं जो स्वयं अण्डे सेवना नहीं जानते। हम लोगोंके देशकी कोयल और अमेरिका महाद्वीपकी काउबर्ड (Cowbird) दोनों ही दूसरेके घोंसलेमें अण्डे देती हैं।

डिम्ब सेवनेके चार दिन बाद ही अर्थात् चौथे दिनके शेष भाग और पांचवें दिनके आरम्भसे डिम्बके बीच का कुसुम और स्राव रूपान्तरित होने लगता है, अण्डस्थ शावकको करोटीको गठनका सूत्रपात इसी समय होता है। पहले यह तरल पदार्थसे गाढ़ा हो कर उपास्थिमें परिणत होता है, पीछे धीरे धीरे वह करोटी मजबूत और क्षुद्रक्षुद्र विन्दुयुक्त मालूम पड़ती है। यह करोटी भी कुछ दिन बाद कांचवत् स्वच्छ अस्थिमें रूपान्तरित होती है। इस प्रकार क्रमशः आवश्यकतानुसार गरमी देनेके बाद डिम्बके भीतरमें पक्षीकी गठन-प्रणाली किस प्रकार निष्पादित होती है वह सहजमें ही समझा जा सकता है। डिम्बसे शावकके निकलने पर और उसकी नाभिस्थ नालके गिर जाने पर आँख फूटती दीख पड़ती है। किन्तु इस समय भी गरमी पानेके लिए उस शावक को पिता वा माताके डैनेके नीचे रहना पड़ता है। क्रमशः दो चार दिन बाद उनके शरीरमें सूक्ष्म सूक्ष्म लोम निकलते देखे जाते हैं।

सभी जीवोंके शरीरके भीतर नाना अंशोंकी अस्थि है—अर्थात् मस्तिष्कावरक करोटी और उसकी उपास्थि, हृत्पिण्डावरक पञ्जरास्थि, वक्ष और उदरावरक लम्बमान वुकास्थि प्रभृति। अण्डे फोड़ कर जब शावक बाहर निकलता है, तब इस अस्थिसमूहके उपरिभाग पर लकूकी तरह सामान्य अंश जड़ा हुआ दीख पड़ता है। पिता माताके यत्नसे पालित हो कर तथा उपयुक्त चारा खा कर वह शावक धीरे धीरे पुष्ट होने लगता है। क्रमशः मांसपेशी वर्द्धित हो कर कलेवर वृद्धिके साथ साथ उन मांसपेशीके सूक्ष्म सूत्रसमूहके तेजोवर्द्धक पदार्थका कुछ अंश डैने और पुच्छके दीर्घाकार परमें तथा कुछ अंश पृष्ठ, वक्ष और उदरस्थ छोटे छोटे परमें परिणत होता है।

पक्षियोंकी पार्श्विक कशेरुकास्थिके परिचालनके कारण पृष्ठवंशके गले और पुच्छ भागमें मांसपेशीकी अधिकता देखी जाती है।

उनकी वुकास्थि (Sternum) बहुत दूर तक फैली रहनेके कारण उदरदेशमें साधारणतः पेशीकी स्वल्पता देखी जाती है। केवल कुछ मांसपेशीके सूक्ष्म सूत्रपञ्जरसे पेशी आच्छादक झिल्लीने सुखमें आ कर फुसफुसके औदरिक अन्तद्वारको आवरण किया है। इन सबकी क्रमिक परिपुष्टि ही पक्षियोंके आकाशमार्गमें विचरणका प्रधान कारण है। किस प्रकार पक्षिगण अपने डैनेको उच्च और निम्न कर के वायु मार्गमें गमन करते हैं, उसका पहला कारण यह है कि वायुके गुरुत्वकी अपेक्षा पक्षीका गुरुत्व बहुत कम है और दूसरा उनकी वक्षस्थल स्थित पेशीके काक-चञ्चुवत् स्कन्धास्थि (Scapulo-coracoid)-के मध्य हो कर आपसमें ग्रथित रहनेके कारण वह प्रगण्डास्थिमें मिल गई है। इसी पेशीके रहनेसे पक्षी कलकी तरह अपने डैने आसानीसे उठाता और फैलाता है। इनके निम्नपद और उंगलियां शरीरकी अपेक्षा पतली होती हैं और ऊपरी भाग शरीरानुयायी मोटा होता है। यही कारण है कि पक्षिगण अवलीलाक्रमसे वृक्षकी शाखा पर पैर रख कर सो सकते हैं।

करोटीके गर्त्तके मध्य ही मस्तिष्कका अवस्थान है। इसमें संश्लिष्ट अन्यान्य शिराएँ मस्तिष्कके दोनों पार्श्ववर्ती (अर्थात् कर्णके सन्निकटस्थ) गर्त्तके मध्य निहित रहती हैं। ये शिराएँ मस्तिष्कसे भिन्नाशयमें जाते समय दोनों गर्त्तके व्यवच्छेदक अस्थि-प्राचीरमें अनुप्रस्थभावसे छिद्र करके उसके मध्य हो कर गमन करती हैं। कितनी शिराएं इसी प्रकार परिपुष्ट हो कर दो स्वतन्त्र चक्षुगोलकमें परिवर्त्तित होती हैं। इनके साथ मूल

मस्तिष्कका संश्रव रहने पर भी दोनों चक्षुगोलक विभिन्न अस्थि आवरकके मध्य सन्निविष्ट हैं। इसके सिवा मस्तिष्कके सबसे पीछे एक और भी आधार है। इस कोषके मध्य पृष्ठवंशावलम्बी कशेरुक रज्जु की मध्यनली प्रवेश करके वृद्धिको प्राप्त हुई है। इसका मध्यभाग जालवत् मस्तिष्कावरक झिल्ली और अन्यान्य छोटी छोटी शिराओंसे आच्छादित है। यही शिरायें परस्परकी सहायतासे इन्द्रियज्ञान उत्पन्न करती हैं।

पक्षिजातिके चक्षुकी गठनप्रणाली गोधिका, कूर्म, कुम्भीर आदि सरीसृपजातिके साथ बहुत कुछ मिलती जुलती है। इनका अक्षिपल्लव कन्दार-रज्जु द्वारा पूर्णमात्रामें चक्षुस्पन्दनकारी सूक्ष्मसूत्र समूहमें निबद्ध है। यही कारण है कि वे चक्षुपल्लवको सहजमें उठाते और बन्द कर सकते हैं। इसका चक्षुगोलक चार सरल मांसपेशी और दो वक्रभावापन्न मांसपेशीकी सहायतासे इच्छानुसार विभिन्न और परिचालित होता है। चक्षुगोलकके योजकत्वक् (Conjunctive के अव्यवहित बहिर्देशमें अवस्थित कठिन घनत्वक (Sclerotic के सामने अङ्गुरीयककी तरह गोलाकार सूक्ष्म आंशिक शल्क अस्थिका पात (plate) है। चक्षुमणिके पार्श्ववर्ती तारकामण्डल सूक्ष्म सूक्ष्म मांसपेशी द्वारा आपसमें समान्तरभावसे संयोजित होता है। पक्षिजातिके चक्षुके सम्मुख भागका घनत्वक् Sclerotic) उपास्थिविशिष्ट (Cartilaginous) है। पक्षिमात्रको ही श्रवणेन्द्रिय वर्त्तमान रहने पर भी उनमेंसे सभी सुन नहीं सकते कुछ जातिके पक्षी ऐसे हैं जो दूसरेका स्वर और भाषा अच्छी तरह सुन सकते और उसे याद रखते हैं। फिर कुछ पक्षी ऐसे हैं जो कुछ भी नहीं सुनते। उनके श्रवणविवरस्थ कर्णपटह ऐसे छोटे छोटे परोंसे आवृत हैं, कि उनके मध्य हो कर कोई शब्द सहजमें प्रवेश नहीं कर सकता। कूर्म, कुम्भीर आदि सरीसृप जातियोंके साथ पक्षिजातिको श्रवणेन्द्रियका कोई पार्थक्य देखा नहीं जाता।

सरीसृप और सर्प शब्द देखो।

पक्षीकी जिह्वाके साथ सरीसृपजातिका विशेष समानता है। कुछ पक्षियोंकी जिह्वा तीराकार सूच्यग्र और मूलदेश कण्टकयुक्त है और कुछ पक्षी ऐसे हैं जिनके कुम्भीरकी तरह जिह्वा नहीं होती। Totipalmatos और Balaeniceps जातीय पक्षीकी जिह्वा छोटी और गोल होती है Rapaces जातीय पक्षीकी जिह्वा मोटी और किनारेमें कटी होती है Picidae श्रेणीकी जिह्वामूलास्थि विस्तृत करनेके कारण उनकी जिह्वा भी बड़ी और चौड़ी होती है तथा प्रकृत जिह्वाग्रभाग तीरके फलके जैसा और कण्टकमय होता है।

किसी किसी पक्षीके अन्त्रकी उपरिस्थ अन्ननाली प्रसारणशील है। छोटे और बड़ेके भेदसे अन्त्र दो प्रकारका है। सभी पक्षियोंमें वृहत् अन्त्र अस्थिप्रतिनालामें मिला हुआ है। यह स्थान अन्त्रावरक झिल्ली द्वारा परिवेष्टित है। अधिकांश पक्षियोंके पाकाशयके अधोभागान्तके निकटस्थ रन्ध्र वा अन्त्र द्वारा और गुह्यद्वार एक दूसरेके सम्मुखवर्ती है। Alectoromorphae और Aetomorphae गण श्रेणीमें ईगल और शिकरा (Hawk) आदि पक्षियोंके गलेकी नाली बड़ी हो कर कण्ठनालस्थ पक्षियोंके खाद्याधारमें परिणत हुआ है, किन्तु पारावतादिके गलेकी नालीमें दो छेद होते हैं। जो सब पक्षी केवलमात्र मटर गेहूं आदि खा कर जीवनधारण करते हैं उनके पाकाशयकी झिल्लियां विशेष परिपुष्ट होती हैं और साथ साथ उनकी श्लैष्मिक झिल्लीका त्वक् बढ़ कर मोटा और कठिन तथा खाद्य परिपाकके उपयोगी हो जाता है। कोई कोई पत्थरको भी पचा सकता है, वैसे पक्षियोंका पाकाशय प्रस्तरचूर्णकारी पदार्थोंसे गठित है। पशुओंके जैसा पक्षिजातिके भी हादगाङ्कुलान्त्रके सन्धिस्थानके छिद्रमुखमें लोम है। पक्षियोंकी अस्थिपूतिनालीका पश्चाद् प्रदेश सन्धिविशिष्ट कोषयुक्त है।

इन सब शिराओंकी सहायतासे खाद्यसमूह कण्ठनाली हो कर पाकाशयमें लाया जाता है और वहां परिपाक हो कर भिन्न भिन्न शिरा और धमनीके योगसे वह रस पहले रक्ताशयमें और पीछे हृदयन्त्रमें प्रेरित हुआ करता है। पक्षिजातिका फुसफुस और शरीर सम्बन्धीय कोशिका नाड़ी ही रक्तप्रवाहका मूलयन्त्र है। जिन दो कोषोंके कुञ्चनसे हृद्‌कोषसे रक्त अन्यान्य धमनियोंमें विक्षिप्त होता है, वे कोष परस्पर भिन्न और मध्यमें पतले परतके समान अस्थिपात द्वारा विभक्त हैं। पक्षियोंका

हृदवेष्टनीकोष झिल्लीपटलवत् होने पर भी वह दृढ़ है और उसके चतुर्दिक्स्थ वायुकोषके बहिर्देशका आच्छादक है।

आहारकी परिपुष्टिसे जिस प्रकार शरीरमें रक्तादिका सञ्चालन होता है, उसी प्रकार उक्त शिरा सम्बन्धीय कार्यप्रणालीसे उनके श्वासप्रश्वास और नाना प्रकारके स्वरका उत्थान देखा जाता है। कितने पक्षी ऐसे हैं जो केवल कर्कशस्वर बोलते हैं। जैसे—काक, पेचक, सारस आदि। फिर कितने ऐसे भी हैं जो गीतकी तरह लययुक्त सुमिष्ट स्वर उत्पन्न करते हैं। इस पक्षिश्रेणीके मध्य हम लोगोंके देशके पपीहा, कोयल, मैना, श्यामा, मणिया और इङ्गलैण्डका Nightingale तथा दक्षिण अमेरिकाके घण्टापक्षी (Bell-bird) आदि देखे जाते हैं। कुछ पक्षी गीत गा सकते हैं और कुछ नहीं, इसका कारण जाननेके लिये प्राणितत्त्वविदोंने जो गम्भीर आलोचना की है, उसका बहुत कुछ अंश उल्लेखयोग्य है। उनका कहना है कि जिन सब शिराओंकी सहायतासे वायु फुसफुसके मध्यसे ध्वनित हो कर सुमिष्ट और श्रुतिमधुरस्वर उत्थित होता है उसकी प्रणाली इस प्रकार है—पक्षीकी डाक वा तत्कृत ध्वनि कण्ठनलीसे नहीं निकलता, वरं कण्ठनलीकी निम्नस्थ श्वासनली, श्वासनली और वायुनलीके संयोगस्थान तथा केवलमात्र वायुनलीसे ध्वनि पुष्ट हो कर कण्ठनलीसे प्रकाश पाती है। Ratitae और Cathartidae (अमेरिका देशीय श्येन) श्रेणीके केवलमात्र कण्ठनलीनलस्थ श्वास और वायुनलीसे शब्द निकलता है। हम लोगोंके देशके गायक पक्षिविशेषकी आभ्यन्तरिक गठनप्रणाली भी उसी तरह है। काक प्रभृति पक्षियोंकी स्वरव्यक्तिके मध्य प्रणालीगत होने पर भी वे गान नहीं कर सकते। कण्ठनलीके आभ्यन्तरिक छिद्रमुखमें एक सुगठित कोष है। उक्त कोषस्थ ढक्का छिद्रमुखमें संलग्न है। इसके ठीक पार्श्वदेशमें वायुनलियां विभिन्न और फैल कर ढक्केकी मध्यरेखामें अवस्थित हैं। वहां पर आवरककी एक वायुनली दूसरीके भीतर हो कर चली गई है। इस आवरकका अग्रभाग सरल और सूक्ष्मस्नायवन्ध-झिल्ली-विशिष्ट है, किन्तु इसका अग्रभाग क्रमशः उपास्थिके आकारमें परिणत हो कर ढक्केके साथ मिल गया है। इसके दूसरी ओर वायुनलीभुजके आभ्यन्तरिक छिद्र वलयाकारमें परिणत हो कर वायुनली शाखाके बहिर्देशमें परस्पर स्पर्श करते हैं। इसके अभ्यन्तरमें स्थितिस्थापक स्यूहतन्तु सञ्चित हो कर श्लैष्मिक झिल्ली उत्पन्न करते हैं। श्लैष्मिकझिल्ली और मणिबन्धझिल्लीके व्यवधानमें जो गह्वर गठित होता है उसके मध्य हो कर फुसफुसकी वायु बहिर्गमनकालमें इसके स्थितिस्थापक पार्श्वदेशको स्पन्दित और अनुरणन (Vibrating) करते हैं। इसी प्रकार कण्ठनालीके मध्य हो कर सुमिष्ट गीतिस्वर निकलता है। स्थितिस्थापक पार्श्वदेशोंके वितान और वायुप्रसारिणी श्वासनलीस्तम्भकी वृद्धिके अनुसार स्वरका तारतम्य हुआ करता है। उक्त शब्दोत्पादक दोनों गह्वरमें मांसपेशीके सङ्कोचहेतु शब्दका तारतम्य होनेके कारण वह पेशी वाह्य और अन्तरके भेदसे दो प्रकारकी हैं। Alectoromorphae, Chenomorphae और Dysporomorphae आदि पक्षिजातियोंके अभ्यन्तर पेशी नहीं है। Coracomorphae शाखाभुक्त पक्षीके ५।६ जोड़ा आन्तरिक गर्भयुक्त पेशी है। वह पेशी श्वासनली और ढक्केके निकटसे ले कर वायुनली-वलय तक विस्तृत है। तोतापक्षीके तीन जोड़ा आन्तरिक पेशी है, किन्तु उनके व्यवधान-आवरक (Septum) नहीं है।

पक्षियोंकी मूत्रग्रन्थिमें विभिन्नाकार बहुतसे उपखण्ड है। मूत्रकोषके सर्वाग्रे स्थित उभय पार्श्ववर्त्ती गोलाकार सूक्ष्म दोनों भागों (Lobes)-में इनका अण्डकोष स्थापित है। शीतकी प्रबलतासे वह अण्डकोषभाग सङ्कुचित होता है और ग्रीष्मकी अधिकतासे अर्थात् वैशाख ज्येष्ठमासमें उसकी वृद्धि देखी जाती है। यही कारण है कि वे ग्रीष्मकालमें अधिक सन्तान उत्पन्न करती हैं।

पक्षियोंके जिस उपायसे पर निकलते हैं, जातिभेदसे उनके मध्य भी स्वातन्त्र्य देखा जाता है। मस्तक, गला, देहयष्टि (वक्ष और उदरभाग), पुच्छ और पदद्वय आदि विभिन्न स्थानोंके पक्ष परस्पर स्वतन्त्र हैं। बकजातिके गलेके पर इतने कोमल होते हैं कि दूसरे किसी

पक्षीमें वैसे पर नहीं निकलते। इस कारण बकका गला विशेष आदरकी वस्तु और मूल्यवान् है। मयूरके पुच्छ और कण्ठके पर सुन्दर तथा नानावर्णोंमें रंगे होते तथा डैनेके पर भी हंस जातिके डैनेके परकी तरह कलमके लिए विशेष आहृत हैं। काकातुआ जातीय पक्षीकी चूड़ामें और पारावतादिके पैरोंमें पर होते हैं। पक्षिजातिमात्रमें ही परकी विभिन्नता देखी जाती है। परकी उत्पत्ति और वृद्धि शरीरकी पुष्टिसे साधित होती है। प्रत्येक परकी जड़में गोश्टङ्गके गूदेकी तरह रक्तमिश्रित मांसका अस्तित्व देखा जाता है।

पक्षिशावकके गात्रमें पहले जो पर निकलते हैं वे कुछ दिन बाद झड़ जाते है और फिर नये पर निकल आते हैं। पक्षिमात्र ही वर्ष भरमें एक बार अपने पुरातन और वृष्टि आदिसे नष्ट परका त्याग करते हैं और नववस्त्रपरिधानवत् उनके अङ्गमें नये पर निकल आते हैं। साधारणतः जिस ऋतुमें जो पक्षी सन्तान उत्पादन करती है ठीक उसके अव्यवहित बाद ही उस पक्षीका पक्षत्याग हुआ करता है। इसके अलावा और भी दो एक समयमें किसी किसी पक्षीको पुच्छका परित्याग करते देखा जाता है। पक्षिगण पुरातन परोंको त्याग कर नये परोंको क्यों धारण करते हैं तथा चतुष्पदियोंको लोमका त्याग और सर्पजातिको केंचुलीका त्याग क्यों होता है इसको अच्छी तरह आलोचना न कर संक्षेपमें केवल इतना ही कह देते हैं कि उनके डैनेके परके ऊपर उनके आकाशमार्गमें गमनागमन और जीविकार्जन होता है, इसी कारण उन्हें नूतन पक्षकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार उनके डैनेके नष्ट पर यदि परिवर्तित नहीं होते, तो वे उड़ नहीं सकते, यहां तक कि वे जड़वत् अकर्मण्य हो कर हिंस्रजन्तुसे खाये जाते अथवा विनष्ट हो जाते।

सभी पक्षी एकवारमें पर नहीं छोड़ते। पर छोड़नेका समय आनेसे ही वे डैनेके दोनों छोरोंके एक एक परको छोड़ते हैं। क्रमशः उन दोनोंकी जगह जब नूतन पर निकल आते हैं तब पुनः वे दूसरे परको इसी प्रकार छोड़ते हैं। ऐसा करनेसे उन्हें उड़नेमें किसी प्रकारकी तकलीफ नहीं होती। अधिकांश श्रेणीके पक्षिशावकगण प्रायः वर्ष भरमें प्रथम बार पर नहीं छोड़ते, किन्तु Gallinae नामक श्रेणीके पक्षिशावकगण बहुत बचपनमें ही उड़ते हैं, इस कारण वे पूर्णावयव पानेके पहले ही एक बार पर छोड़नेमें बाध्य होते हैं। हंसश्रेणी (Anatidae)के मध्य पूर्वोक्त प्रथाका विशेष वैलक्षण्य है। वे एक ही समयमें डैनेके पर छोड़ते हैं और प्रायः एक ऋतुकालमें उन्हें उड़नेकी क्षमता नहीं रहती। Anatinae और Fuligulinae नामक हंसश्रेणीके नाके पर जब झड़ जाते हैं, तब वे शोभ्रष्ट दिखने में लगते हैं। नूतन परके निकलने पर वे फिरसे आकाशमें उड़ सकते हैं, किन्तु इनके मध्य Micropterus cinereus थाकके हंसगण जब इस प्रकार पर छोड़ते हैं, तब वे आकाशमें उड़ नहीं सकते। टर्मिगन नामक (Ptarmigan=Lagopus mutus) एक प्रकारका पक्षी है जो सन्तानोत्पादक ऋतु (Breeding Season)के बाद यद्यपि नर मादा दोनों ही पक्ष त्याग करके नूतन पर धारण करते हैं, तो भी शीतसे अपनी रक्षाके लिये शीतकालमें नूतन पर धारण करते हैं और शीतकालके बीत जाने पर फिरसे तृतीय बार शीतवस्त्रका त्याग करके वसन्तऋतुमें विशिष्टवर्णयुक्त पक्षावरणसे अपनेको ढंक लेते हैं। यह परिवर्त्तन केवलमात्र उनके देहसम्बन्धमें ही हुआ करता है। पुच्छ वा डैनेके पर वे त्याग नहीं करते। एक श्रेणी वा जातिगत किसी किसी विभिन्न थाकके पक्षीको वर्ष भरमें दो बार पर छोड़ते देखा जाता है। जिस श्रेणीमें Garden Warbler (Sylvia salicaria) वर्ष भरमें दो बार पक्ष त्याग करता है, उसी श्रेणीमें Blackcap (S. atricapilla) नामक पक्षिगण वर्षके अन्दर केवल एक बार पर छोड़ा करते हैं। Emberizidae श्रेणीके पक्षी भी इसी नियमका प्रतिपालन करते हैं और Motacillidae जातिके मध्य भरतपक्षी (Alaudidae) वर्ष भरमें एक बार और पापिट नामक पक्षी (Papits=Anthinae) वर्ष भरमें दो बार पर परिवर्त्तन करते हैं, किन्तु कोई भी डैने वा पूंछके पर नहीं छोड़ते। शाखाचारी पक्षियोंको भी कभी कभी पक्षका त्याग करते देखा जाता है। वे समयानुसार कभी पुच्छ, कभी गात्रके इसी प्रकार सभी स्थानोंके पर बदला करते हैं।

पक्षिजातिके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे देखा जाता है कि एक समय इस भूगर्भमें नाना जातिके पक्षियोंका वास था। कालप्रभावसे उनके अन्तर्गत कुछ जातियां कहां विलीन हो गई हैं, उसका निरूपण करना बड़ा ही कठिन है। भारतमहासागरस्थ मरिसस (Mauritius) द्वीपमें एक समय डोडो (Dodo) नामक एक जातिके पक्षीका वास था। विगत शताब्दीमें कोई कोई शकुनशास्त्रविद् इस पक्षीको अपनी आंखोंसे देख कर उसकी प्रतिकृतिकी बतला गये हैं। किन्तु वर्त्तमान शताब्दीमें इस पक्षीकी सजीवताका चिह्नमात्र भी नहीं है। मृत्तिकानिहित प्रस्तरीभूत अस्थिसे ही केवल उनके पूर्व अस्तित्वकी आलोचना की जा सकती है। इसी प्रकार कई शताब्दी पहले जो सब पक्षिकुल कुटिलकालके कवलमें पड़ कर पृथ्वीके मध्य प्रोथित हुए हैं और अभी जिनकी प्रस्तरीभूत अस्थि छोड़ कर एक भी सजीव पक्षी मिलनेकी सम्भावना नहीं है, वे पक्षिगण किस श्रेणीके हो सकते हैं, शकुनशास्त्रविदोंने भूगर्भसे उत्तोलित प्राचीन पक्षी जातियोंकी प्रस्तरीभूत अस्थिसे उनकी श्रेणीका निर्वाचन किया है।

न्यू इङ्गलैण्डकी कनेकटिकट उपत्यकामें जिन सब पक्षियोंकी अस्थि पाई गई है, उनकी विशेष आलोचना करके प्राणिविदोंने उन्हें Amblonyx, Argozoum, Brontozoum, Grallator, Ornithopus, Platypterna, Tridentipes आदि श्रेणियोंमें विभक्त किया है। कोई कोई इनकी कुछ अस्थियोंको सरीसृपजातिकी अस्थि समझते हैं। Brontozoum श्रेणीके पक्षीकी आकृति बहुत बड़ी है। इनके पदचिह्न १६॥ इंच हैं और एक एक पादक्षेपका व्यवधान ८ फुट है। बभेरियाके जिस पत्थरमें पक्षीकी कुछ प्रस्तरीभूत अस्थि और पक्ष संलग्न थे, उनके पुच्छकी कोमेरु-अस्थिमें सरीसृपकी तरह बीस गांठें थीं और एक एक गांठसे दो दो करके पर निकले हुए हैं। इस जातिके पक्षीको उन्होंने Archaeopteryx श्रेणीके अधीन रखा है। इवसिन युग (Eocene period)में हम लोग कितने पक्षियोंके वृत्तान्तसे अवगत हैं। उस समयके एक वृहत्काय पक्षी (Gastornis parisiensis)की अस्थि पाई गई है। उस पक्षीकी आकृति उष्ट्र पक्षीकी तरह बड़ी है। इसके बाद गृध्र (Vulture)की तरह एक प्रकारके पक्षीका प्रकाश था। वह पक्षी एमेन नामक पक्षीकी अपेक्षा छोटा था, किन्तु दोनों ही Lithornis श्रेणीभुक्त थे।

वामसेडहन नामक स्थानसे जहां पूर्वोक्त पक्षिजातिकी अस्थि थी, वहां एक और Dasornis जातीय वृहत् पक्षीकी करोटी पाई गई है। इस पक्षीके (Odontopteryx toliapicus) दन्तमूलमें दन्त है। इवसिन युगमें और भी असंख्य पक्षियोंकी प्रोथितास्थि पाई गई हैं। किन्तु उनके मध्य अधिकांश पक्षीजाति वर्त्तमानकालमें देखी जाती हैं, केवल Agnopterus श्रेणीकी संख्या लोप हो गई है। इस समयके प्रोथित अमेरिकाके वोमिंग (Wyoming) शहरमें जिन सब पक्षियोंकी प्रस्तरीभूत अस्थि पाई जाती हैं, उनमेंसे एक सरीसृपकी अस्थिका वजन प्रायः चालीस हजार पौंड है। टर्सियारि मृत्तिका-स्तरनिहित (Tertiary deposits) हिमालय पर्वतके निम्नस्तरमें उष्ट्रपक्षी Struthio और Phaeton श्रेणीके वृहदाकार पक्षीकी अस्थि पाई गई है। उत्तर अमेरिकाके टर्सियारि युगके निम्नतरमें Uintornis श्रेणीके एक प्रकारके पक्षीकी अस्थि पाई गई है, यह जाति भी अब बिलकुल लोप हो गई। यहां माउसिन युगकी जो सब अस्थि पाई जाती हैं, उन सब जातियोंके पक्षी अमेरिकामें आज भी मिलते हैं। इसके परवर्त्ती प्लिवसिन युगमें नाना जातीय पक्षियोंकी मृत्तिकाप्रोथित अस्थि पाई जाती है।

एकजिन फरासीदेशके गुहाभ्यन्तरमें नाना जातीय पक्षियोंका कङ्काल पाया गया है। यहां एक प्रकारके वृहदाकार वकजाति (Grus primigenia)की अस्थि और शुभ्र पेचक (Snowy Owl-Nyctea scandiaca) और Willow grouse (Lagopas albus) पक्षीका निदर्शन है। माल्टाद्वीपका वृहदाकार हंस (Cygnus falconeri) और दक्षिण अमेरिकाके सण्ड प्रदेशके Crux और Rhea नामक पक्षी उल्लेखयोग्य हैं, शेषोक्त दोनों पक्षिजाति लुप्त हो गई हैं। Rhea नामक पक्षी उष्ट्र पक्षीकी तरह दौड़ सकता था।

डेनमार्कके एक स्थानसे (Capercally-Tetrao urogallus और Great Auk or Garefowl-Alca-impennis) दो पक्षिजातिकी अस्थिप्रस्तरीभूत अस्थि पाई गई है। अभी उस जातिके पक्षी इस देशमें नहीं मिलते। इङ्गलैण्डके अन्तर्गत नारफोक प्रदेशमें और इलाईद्वीपमें कई एक (Pelecanus) श्रेणीके पक्षियों-की अस्थि पाई जाती है। उनकी आकृति वर्त्तमान P. onocrotalus-की अपेक्षा बड़ी है। मडागास्कर द्वीपके दक्षिणांशसे कितनी Struthio श्रेणियोंकी पक्षिजातिकी अस्थि पाई गई है उनमेंसे हिलोयर साहब (M. Is. Geoffroy St. Hilaire)ने १८५१ ई०में AEpyornis maximus श्रेणीके एक पक्षीका अंडा पैरी शहरमें भेज दिया था। न्यूजीलैण्डद्वीपमें भी नाना जातीय वृहदाकार पक्षीकी अस्थि पाई जाती है। इस द्वीपमें सेवरों उपनिवेश स्थापित होनेके पहले उस देश-के वासियोंने अनेक पक्षियोंको मार कर खा डाला है। यहांकी Harpagornis श्रेणीभुक्त शिकारी पक्षी इतने बड़े होते हैं, कि वे Dinornis श्रेणीके पक्षीको पछाड़ सकते हैं। पहले आष्ट्रेलिया द्वीपमें ये पक्षी अधिक संख्यामें पाये जाते थे, किन्तु अभी उनको-संख्या बिलकुल गायब हो गई है। प्रसिद्ध एमन पक्षि-गण भी इसी श्रेणीके माने जाते हैं। ये उष्ट्रपक्षीको तरह नहीं उड़ सकते, किन्तु दौड़नेमें बड़े तेज हैं।

पहले ही कहा जा चुका है कि कुछ जातिके पक्षी गत दो शताब्दीके मध्य कालके अनन्त स्रोतमें लुप्त हो गये हैं। मरीसस द्वीपमें जो दोदो (Dildus inpetus) पक्षीकी कथाका उल्लेख किया है, वह १६८१ ई०में 'बार्क्स कासल' नामक जहाजके मालिम बेंजामिन हैरी इस जातिके जीवित पक्षीको देख कर लिख गये हैं। उनके लिखित कागजादि आज भी इङ्गलैण्डीय जादुघरमें रक्षित हैं। इस द्वीपके दक्षिणस्थ बोर्बो रावनियन, मेसकारिन, नाम आदि द्वीपोंमें ऐसे अनेक पक्षियोंकी निदर्शनास्थि पाई गई हैं जिनका वंश इस संसारसे बिलकुल लुप्त हो गया है। उक्त द्वीपोंके पूर्व और अवस्थित रड्रिगो नामक द्वीपमें एक और प्रकार (Pezophaps solitarius)की पक्षिजातिका वास था। ये दोदोसे सम्पूर्ण भिन्न थे। १६९१-९३ ई०में एक निर्वासित हिउजिनट इस पक्षीकी प्रतिकृतिको अङ्कित कर गये हैं। पीछे १८६८ ई०में Edward Newton नामक किसी यूरोपवासीने इसकी अस्थि पा कर उसके पूर्वास्तित्वका स्वीकार किया है। अभी इस पक्षिजातिका चिह्नमात्र भी नहीं है। इसके अलावा मारिससद्वीपमें एक और प्रकारका तोता पक्षी (Lophopsittacus mauritianus) था। उलफार्ट हर्मान्स्जून १६०१ ई०में जब मारिससद्वीप भ्रमण करते करते पहुंचे, तब उन्होंने इस जातिके पक्षीको जीवित देखा था। मारिसस और मसकारागनिस आदि द्वीपोंमें और भी कितने तोते, उल्लू आदि नाना जातीय पक्षियोंकी अस्थिका निदर्शन पाया गया है। प्राणि-तत्त्वविदोंने उनकी स्वतन्त्र आख्या प्रदान की है। यहां Aphanapteryx जातीय एक प्रकारका पक्षी था जिसकी चोंच बहुत लम्बी थी। रावनियन और रड्रिगोद्वीपमें एक समय नाना जातीय पक्षियोंका वास था। धीरे धीरे वे सब पक्षी लयप्राप्त होते जा रहे हैं। प्रायः ४० वर्ष पहले Starling (Fregilupus varius) नामक पक्षी जीवित था। एतद्भिन्न एक प्रकार-का छोटा पेचक (Athenemurivora), बड़ा तोता (Necropsittacus rodericanus) इस प्रकारका घूघू और एक जातिका बक (Ardea megacephala) Miserythrus liguati नामक नाना जातीय पक्षी जो एक समय उक्त द्वीपमें जीवित थे वह हम लोग भ्रमण-कारियोंकी तालिकासे जानते हैं। फरासी-अधिकृत गोआडेलोप और मार्टिनिक द्वीपमें छः विभिन्न श्रेणियों-के पक्षी (Psittaci) ५०।६० वर्ष पहले जीवित थे, किन्तु उनमेंसे आज एक भी देखनेमें नहीं आता। लाब्रेडर देशीय वृहदाकार हंस (Somateria labra-dora) प्रायः सत्तर वर्ष पहले ग्रीष्मऋतुमें सेण्टलारेन्स और लाब्रेडरके मैदानमें विचरण करते थे। जब ठंढ अधिक पड़ती थी, तब वे इस स्थानको छोड़ कर नभा-स्कोसिया, न्यूब्रन्सविक आदि दक्षिणदिकस्थ उष्ण-प्रधान देशोंमें भाग जाते थे। शृगालादि मांसभुक् चतु-ष्पद प्राणीसे ये अपने अंडोंकी रक्षा करनेके लिए पर्वत-मय छोटे छोटे द्वीपोंमें अण्डादि प्रसव करते थे। हिंस्र

जन्तुसे अपनेको बचाये रखने पर भी वे मनुष्यके हाथोंसे अपनेको बचा नहीं सकते थे। कौतुकप्रिय मानवोंने शिकार करनेको अभिलाषासे इस वंशको उच्छेद कर डाला, किन्तु किसीने इस ओर ध्यान न दिया कि ऐसा करनेसे यह वंशजाति सदाके लिए इस मर्त्यभूमिको छोड़ कर चली जायगी। १८५८ ई०में कर्नल वेडरवार्न् ब्रालिकाक्स बन्दरमें इस पक्षीको देख कर उल्लेख कर गए हैं। फिलिपद्वीपके एक जातीय तोता पक्षी (Nestor productus) विगत कई वर्षोंके मध्य लोप हो गये हैं। इस प्रकार कितने पक्षी ऐसे हैं जिनकी संख्या एक देशमें लोप होने पर भी दूसरे किसी न किसी देशमें उस जातिकी संख्या आज भी लक्षित होती है। जैसे पहले Capercally नामक पक्षी आयरलैण्ड और स्काटलैण्डमें देखा जाता था, किन्तु अभी आयरलैण्डमें इस जातिका एक भी पक्षी नहीं मिलता।

किस प्रकार इन सब पक्षी जातियोंका ध्वंस हुआ, उसके प्रकृत कारणका पता लगाना कठिन है। लेकिन अनुमान किया जाता है कि इन सब द्वीपोंमें अन्यान्य स्थानोंसे जब मनुष्य वास करने आये, तब उनके वासोपयोगी स्थान बनानेके लिए आस पासके झाड़-जङ्गल जला दिए गए। ऐसा करनेसे कितने पक्षी जल मरे और जो कुछ बच रहे वे सुसभ्य यूरोपवासियोंके शिकार बन गये।

एतद्भिन्न नाना देशीय पौराणिक ग्रन्थोंमें बहुतेरे पक्षियोंका उल्लेख है जिनके स्मृतिचिह्नके सिवा और कोई निदर्शन नहीं मिलता है। हिन्दुओंके पुराणमें गरुड़पक्षी, रामायणोक्त जटायु, जैन्दोंका इरोग, पारस्यवासियोंका कक और शाहसुर्ग, अरबवासियोंका अङ्का तुर्कोमानोंका कार्किस, इजिप्त और ग्रीकोंका फिनिक्स, एड्डावासियोंका यग्द्रसिल और जापानवासियोंके किरनी नामक अति प्राचीन पक्षियोंका उल्लेख देखा जाता है।

पृथ्वीके प्रायः सभी स्थानोंमें पक्षिजातिका वास है, किन्तु देश और जलवायुके पार्थक्यानुसार पक्षिजातिमें भी कितनी विभिन्नता देखी जाती है। यही कारण है कि शकुनशास्त्रविदोंने सारी पृथ्वीको छः भागों (Region) में विभक्त किया है और एक एक भागके मध्य भी भिन्न भिन्न विभाग (Subregion) कर पक्षिजातिका श्रेणी विभाग निर्द्धारित किया है। एक एक Region और सीमा उन्होंने अक्षांश और द्राघिमान्तर द्वारा निर्दिष्ट किया है,—

१। अष्ट्रेलियन (अष्ट्रेलिया अर्थात् भारतमहासागरके सभी द्वीप इस श्रेणी (Group)-में निबद्ध हैं।) इसके मध्य चार उपविभाग (Subregion हैं:—(क) (Papuan Subregion) अर्थात् पपूआ द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत मलक्का, सिलिबिस आदि द्वीपजात पक्षी। (ख) Australian subregion अर्थात् अष्ट्रेलिया द्वीपान्तर्गत तासमानिया (Tasmania or Van Diemen's Land) आदि स्थानजात पक्षी। इस द्वीपके अन्यान्य सभी पक्षियोंकी अपेक्षा कृष्णवर्ण हंस (Black Swan) विशेष उल्लेखयोग्य हैं। (ग) Polynesian subregion अर्थात् पालिनेशिय द्वीपपुञ्जके अन्तर्गत विभिन्न द्वीपजात पक्षी। (घ) New Zealand Subregion अर्थात् न्यूजीलैण्ड द्वीप और तत्पार्श्ववर्त्ती लार्ड होई, नारफोक, कार्माडक, चथाम, आकलैण्ड आदि द्वीपजात पक्षी।

२। न्यूट्रपिकाल—अर्थात् समस्त दक्षिणी अमेरिका इरन अन्तरीपसे ले कर पनामायोजक तक तथा उत्तरी-अमेरिकाके २२ उत्तर अक्षांश और फकलैण्ड तथा वेष्ट इण्डीज द्वीप प्रभृति। इसके मध्य फिर दो उपविभाग (Sub-region) हैं,—

३। नियार्टिक—अर्थात् अलटियन पर्वतमाला और उसके निकटवर्त्ती स्थानसमूह। कालिफोर्नियां, कनेडा, बर्मूदास आदि स्थान इसीके अन्तर्गत हैं।

४। पेलिआर्टिक (Palaeartic)—अर्थात् आफ्रिकाका उत्तरांश, समग्र यूरोप, आइसलैण्ड, स्पिटसबर्गेन, भूमध्यसागरस्थद्वीप, एशियामाइनर, पलेस्तिन, पारस्य, अफगानिस्तान और हिमालय पर्वतके उत्तरस्थित समुदाय एशियाखण्ड। स्थानभेदसे इसके भी कई एक विभाग किए गये हैं—(क) European, (ख) Mediterranian, (ग) Mongolian, (घ) Siberian प्रभृति।

५। इथिवपियन—अर्थात् बर्बरी राज्य छोड़ कर समस्त अफ्रिका, केपमाउ'द्वीप मडागास्कर, सिचिलिस, सकोट्रा, अरब आदि स्थान। इसके मध्य—(क) Libyan, (ख) Guinean, (ग) Caffrarian, (घ) Mosambican, (ङ) Madagascarian.

इण्डियन—अर्थात् भारतवर्ष और तन्निकटवर्त्ती सिंहल, सुमात्रा, मलक्का, फर्मोसा, हैनान, कोचीन, चीन, ब्रह्म, श्याम आदि देशजात। फिर इसके मध्य भी कितने स्वतन्त्र थाक वा Sub-region हैं:—(क) Himalo-chinese, (ख) Indian अर्थात् भारतवर्षके अन्तर्गत राजपूताना, मालव, छोटानागपुर, सिंहल आदि स्थान। (ग) Malayan अर्थात् फिलिपाइन द्वीपपुञ्ज, मलय उपद्वीप, बोर्णियो, सुमात्रा, जावा, बाली आदि द्वीप।

प्राणितत्त्वविदोंने जो छः श्रेणीविभाग किये हैं, उनकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि उन छहोंके एक एक भाग (Region)में जितने पक्षियोंको श्रेणी वा थाक हैं, वे प्रायः एक दूसरेके समान हैं और उन सब पक्षियोंकी श्रेणी वा थाकमें इतनी विभिन्नता है कि उसकी विस्तृत आलोचना करना बिलकुल असम्भव है। पहले ही लिखा जा चुका है कि चील (Kites) जातिका पक्षी स्थानभेदसे विभिन्न प्रकारका है। उन नानास्थानजात एक जातिके पक्षियोंका आकारगत वैलक्षण्य देख कर उन्हें विभिन्न थाकके अन्तर्गत करके विशेष विशेष संज्ञाओंसे अभिहित किया गया है,—जिस प्रकार Casuarius श्रेणी वा जातिगत पक्षिगण विभिन्न स्थानवासी हैं और उस उस स्थानके जलवायुसेवी हो कर विभिन्न आकार धारण करते हैं, उसी प्रकार उनके नाममें भी पृथक्‌ता देखी जाती है—

पक्षिजाति		स्थान
C. galeatus	...	Ceram
C. Papuanus	...	Northern New guinea
C. Westermanni	...	Jobie Island
C. Uniappendiculates	...	New guinea
C. Picticollis	...	South New guinea
C. beccarii	...	Wokun, Aru Island
C. Bicarunculatus	...	Aru Island
C. australis	...	North Australia
C. Bennetti	...	New Britain

इस प्रकार देखा जाता है कि प्रत्येक पक्षिजातिका एक पृथक् पृथक् नाम है। विस्तार हो जानेके भयसे उन सबका उल्लेख नहीं किया गया। ऋतु-परिवर्त्तनके साथ ही साथ अनेक पक्षियोंका वास-परिवर्त्तन हुआ करता है। कुछ जातिके पक्षी ऐसे हैं जो एक ऋतुको पसन्द करते हैं और जब एक देशमें उस ऋतुका परिवर्त्तन हो कर एक दूसरी ऋतुका आगमन होता है, तब वे उस स्थानको छोड़ कर अपने अभ्यस्त ऋतुयुक्त स्थानमें फिर चले जाते हैं। कोकिल आदि पक्षिगण वसन्तप्रिय हैं। जब इस देशमें वसन्तका आगमन होता है, तब कोकिल जातिका भी अभ्युदय होता है। फिर जब वसन्तकाल चला जाता है और ग्रीष्मऋतु आती है, तब उक्त पक्षियोंका वास भी बदल जाता है अर्थात् कोकिल पक्षी इस देशको छोड़ कर वसन्ताश्रित स्थानको चले जाते हैं। इसी प्रकार चील जातिमें एक वैलक्षण्य देखा जाता है। शीत-ग्रीष्मादि ऋतुमें इस जातिके पक्षी हम लोगोंके देशमें अनेक देखे जाते हैं, किन्तु वर्षाके आरम्भ होते ही इनकी संख्या धीरे धीरे कम होने लगती है। इसका कारण यह है कि चीलजातिके पक्षी वर्षाकालके पक्षपाती नहीं हैं। हम लोगोंके देशमें प्रवाद है कि रावणका चूल्हा हमेशा जलता रहता है, पीछे वर्षाकालमें वह आग बुझ जाती है, इसी आशङ्कासे विष्णु भगवान् चीलोंको अपनी रक्षा करनेका आदेश देते हैं, यही कारण है कि चील पक्षी वर्षाके आरम्भ होते ही उसी देशमें चले जाते हैं। उत्तरी अमेरिकाके शोर (Shore) नामक पक्षी कभी कभी इङ्गलैण्ड और नौरवेके पश्चिम कूलमें आते देखे जाते हैं। अत्यन्त शीतप्रधान देशमें (High Northern latitudes) इनकी मादा सन्तानोत्पादन करती हैं। उत्तरदेशमें उनके चले जानेका यही कारण है। इस समय उत्तर अटलाण्टिक महासागरमें हवा जोरोंसे बहती है। उस पश्चिमी वायुसे कितने पक्षी अपने अभीष्ट पथमें जाने नहीं पाते और वायुके झोंकेसे वे जिधर तिधर जा लगते हैं। एतद्भिन्न कुछ श्रेणीके पक्षी ऐसे हैं जो

केवल शीतकालमें दिखाई देते हैं। बाज शिकरे आदि पक्षियोंको इसी श्रेणीके अन्तर्गत ले सकते हैं। शरत्-कालमें श्यामलशस्यक्षेत्रसमूह शोभित होने लगता है, तब नाना जातिके पक्षी आ कर धान्यादि शस्य खाते हैं। इनमेंसे बलुई नामक एक प्रकारका छोटा पक्षी है जो केवल धानको नष्ट करनेके लिए आता है। इस समयके सिवा वे किसी और समयमें दिखाई नहीं पड़ते। इङ्गलेण्ड-देशमें भी इसी प्रकार Swallow, Nightingale, Cuckow, Corncrake, Song-thrush, Red breast आदि पक्षी भी ऋतुकी विभिन्नताके अनुसार स्थान परिवर्त्तन करते हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि केवल ऋतुके प्राखर्य्यानुसार ही वे स्थानपरिवर्त्तन करते हैं, सो नहीं, सम्भवतः उस समय उन सब स्थानोंमें स्वास्थ्यके उपयोगी खाद्यादि नहीं मिलनेके कारण वे स्थानपरिवर्त्तन करनेको बाध्य होते हैं।

न्यूगिनी, अरुद्वीप, मिसल, सालवती आदि द्वीपपुञ्जमें एक जातिके पक्षीका वास है जिनके शरीरके पर इतने सुन्दर और उज्ज्वल होते तथा इस प्रकार सजे रहते हैं कि उन्हें देखनेसे ही यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि वे सभी पक्षियोंके राजा हैं। शकुनशास्त्रविदोंने इस पक्षीको शाखाचारी (Passeres) श्रेणीभुक्त किया है। इस पक्षीको अरुद्वीपवासी 'बुरङ्गमति', यवद्वीपवासी 'मानुकदेवता' और मलयवासी 'बुरङ्गदेवता' कहते हैं। ओलन्दाज वणिक्गण जब पहले पहल इस द्वीपमें आये, तो उन्होंने पक्षीके आकृतिगत सौन्दर्यसे आकृष्ट हो कर इसका Birds of Paradise अर्थात् देवपक्षी वा नन्दनपक्षी नाम रखा। द्वीपवासियोंका विश्वास है, कि इस जातिके पक्षिगण स्वर्गधामसे मर्त्यपुरीमें आते हैं और कुछ काल यहां ठहर कर जब वृद्ध हो जाते, तब मृत्युका आगमन जान कर वे पुनः स्वर्गको चले जाते हैं; किन्तु मनुष्य-जगत्में रह कर उनका शरीर भाराक्रान्त हो जाता है। इस कारण वे ऊपर उठ कर जमीन पर गिर पड़ते और विनष्ट हो जाते हैं। इन पक्षियोंकी परस्पर विभिन्नतासे तथा डैने और पुच्छ आदिके परोंकी सुन्दरतासे इनके मध्य विभिन्न श्रेणियोंकी सृष्टि हुई है। पहले लोगोंका विश्वास था, कि द्वीपवासी जो सब मृत पक्षी यूरोपीय वणिकोंके हाथ बेचते थे वे अपनी इच्छानुसार उनके पैर काट डालते थे। इन पक्षियोंमें जो पन्नेके जैसे वर्णविशिष्ट और बड़े (Paradisea apoda) होते, जो कुछ छोटे (Paradisea minor) होते वे तथा राजनन्दनपक्षी (Cicinnurus regius) और लालवर्णके नन्दनपक्षी (P. rubra) Paradiseidae familyके अन्तर्गत हैं एवं जिन सब पक्षियोंकी चोंच अपेक्षाकृत लम्बी जरद-वर्णकी (Seleucides alba) होती, वे Epimachidal *family*-के अन्तर्गत माने गए हैं। इनमेंसे कितनों-के पुच्छके पर रस्सीके समान (Semioptera wallacei) होते हैं।

नाविकगण समुद्रपथ हो कर चलते समय महासागर वक्षमें भी अनेक पक्षियोंके दर्शन करते हैं, किन्तु वे किस देशके रहनेवाले हैं, इसका आज तक भी निर्णय नहीं हुआ। उन पक्षियोंमें तिमिपक्षी (Prion Desolatus), नटनपक्षी (OEstrelata-Lessoni) और Black-night Hawk प्रभृति पक्षी ही उल्लेखयोग्य है।

प्राणितत्त्वविदोंने विशेष गवेषणाके साथ पक्षियों-को उनकी गठनके पार्थक्यानुसार प्रायः ६३० प्रधान जातियों वा श्रेणियोंमें विभक्त किया है।

पक्षीन्द्र (सं॰ पु॰) पक्षिषु इन्द्रः श्रेष्ठः। १ पक्षिश्रेष्ठ, गरुड़। २ जटायु।

पक्षीश्वर (सं॰ पु॰) पक्षिणां ईश्वरः। गरुड़।

पक्षेष्टि (सं॰ वि॰) १ पाक्षिक, एक पक्षमें होनेवाला। (पु॰) २ पाक्षिक भाग, वह यज्ञ जो प्रति पक्ष किया जाय।

पक्ष्णु (सं॰ त्रि॰) पच-स्नु (ग्लाम्लास्थाक्षिपचपरिमृज; स्नुः। मुग्धबोध) पानकर्त्ता, पीनेवाला।

पक्ष्म (हिं॰ पु॰) आंखकी बिरनी, बरौनी।

पक्ष्मकोप (सं॰ पु॰) सुश्रुतोक्त नेत्ररोगभेद, आंखकी बिरनी या पलकोंका एक रोग।

पक्ष्मघात (सं॰ पु॰) पक्ष्मगत नेत्ररोगभेद। पक्ष्मवध-रोग।

पक्ष्मन् (सं॰ क्ली॰) पक्षते परिगृह्णाति आतपतापादि-कमनेन पक्षकरणे मनिन्। १ अक्षिलोम, नेत्राच्छादकलोम, आंखकी बिरनी, बरौनी। २ पद्मादिका केसर। ३ सूता-

दिका अल्प भाग। ४ खगादिका पक्ष, गरुत्।

पक्ष्मप्रकोप (सं॰ त्रि॰) पक्ष्मकोपरोगभेद।

पक्ष्मल (सं॰ त्रि॰) पक्ष्मन् सिध्मादित्वात् मत्वर्थे इलच्। पक्ष्मयुक्त।

पक्ष्माघ (सं॰ त्रि॰) पक्ष्मकोप-रोगभेद।

पक्ष्मार्श (सं॰ क्ली॰) नेत्रवर्त्मार्श रोग।

पक्ष्मोत्कङ्क (सं॰ पु॰) पक्ष्मशोथरोग।

पक्ष्य (सं॰ त्रि॰) पक्ष दिगादित्वात् यत् (पा ४।३।५४) पक्षीय, पक्षावलम्बी।

पखंड (हिं॰ पु॰) पाखंड देखो।

पखंडी (हिं॰ वि॰) पाखंडी देखो।

पख (हिं॰ स्त्री॰) १ ऊपरसे व्यर्थ बढ़ाई हुई बात, तुर्रा। २ ऊपरसे बढ़ाई हुई शर्त, बाधकनियम, अड़ंगा। ३ झगड़ा, बखेड़ा, झंझट। ४ त्रुटि, दोष, नुक्स।

पखड़ी (हिं॰ स्त्री॰) फूलोंका रंगीन पटल जो खिलनेके पहले आवरणके रूपमें गर्भ या परागकेसरको चारों ओरसे बन्द किये रहता है और खिलने पर फैला रहता है, पुष्पदल।

पखनारी (हिं॰ स्त्री॰) चिड़ियोंके पंखोंको डंठी। इसे जुलाहे ढरकीके छेदमें तिली रोकनेके लिए लगाते हैं।

पखपान (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका आभूषण जिसे पैरमें पहनते हैं। इसे कोई कोई पांवपोश भी कहते हैं।

पखराना (हिं॰ क्रि॰) पखारनेका काम करना, धुलवाना।

पखरी (हिं॰ स्त्री॰) पंखड़ी और पाखर देखो।

पखरैत (हिं॰ पु॰) वह घोड़ा, बैल या हाथी जिस पर लोहेकी पाखर पड़ी हो।

पखरौटा (हिं॰ पु॰) वह पानका बीड़ा जो सोने या चाँदीके वर्कसे लपेटा हुआ हो।

पखवाड़ा (हिं॰ पु॰) पखवारा देखो।

पखवारा (हिं॰ पु॰) १ महीनेके १५-१५ दिनके दो विभागोंमेंसे कोई एक। २ पन्द्रह दिनका समय।

पखाउज (हिं॰ पु॰) पखावज देखो।

पखाटा (हिं॰ पु॰) धनुषका कोना।

पखाना (हिं॰ पु॰) कथा, कहावत, कहनूत, मसल।

पखारना (हिं॰ क्रि॰) पानीसे मैल आदि साफ करना, धो कर साफ करना, धोना।

पखाल—हैदराबादके निजामराज्यके अन्तर्गत एक बड़ा ह्रद वा जलाशय। भूपरिमाण १२ वर्गमील है। इसके चारों ओरका घेरा करीब २५ कोस होगा। इसके तीन ओर छोटे छोटे पहाड़ हैं और एक ओर करीब १ मील लम्बा एक बाँध है। जलकी गहराई प्रायः ४० फुट है। इस ह्रदमें बहुतसे मत्स्यादि जीव और जंगली हाथी देखे जाते हैं।

पखाल (हिं॰ स्त्री॰) १ पानी भरनेकी बैलके चमड़ेकी बनी हुई बड़ी मशक। २ धौंकनी।

पखालपेटिया (हिं॰ पु॰) १ वह जिसका पेट पखालकी तरह बड़ा हो, बड़े पेटवाला। २ वह आदमी जो बहुत खाता हो, पेटू।

पखाली—मुसलमान जातिका एक सम्प्रदाय। पखाल या मशकमें पानी भर कर ढोना ही इनकी प्रधान उपजीविका है। ये लोग पहले हिन्दू थे, पीछे महिसुरके राजा हैदरअलीसे (१७६३-८२ ई॰के मध्य) मुसलमानीधर्ममें दीक्षित हुए। ये लोग स्व-सम्प्रदायके मध्य दक्षिण हिन्दुस्तानी भाषामें और अन्यान्य मनुष्योंके साथ मराठी और कनाड़ी भाषामें बातचीत करते हैं। पुरुष दृढ़काय और सबल होते तथा स्त्रियाँ अपेक्षाकृत पतली, काली और पुरुषके बराबर लम्बी होती हैं। बाल मुड़वाने और दाढ़ी रखनेकी प्रथा इन लोगोंमें प्रचलित है। इच्छानुसार कोई कोई दाढ़ी भी कटाते हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही स्वभावतः परिष्कार और परिच्छन्न होते हैं। पूनाके पखाली कुछ अपरिष्कार रहते हैं। ये लोग पखाल या मशकका जल ईसाई, मुसलमान, पारसी तथा निम्नश्रेणीके हिन्दुओंके यहां बेच कर उससे अपना गुजारा करते हैं। इस प्रकार वे महीनेमें १५से २०) रु॰ तक उपार्जन कर लेते हैं। धारवारके पखाली अत्यन्त पानासक्त होते, किन्तु साधारणतः खजूरकी ताड़ी पीना ही पसन्द करते हैं। सामाजिक झगड़ा निबटानेके लिए इनमें एक 'पटेल' या चौधरी कहलाता है।

ये लोग हानिफी श्रेणीके सुन्नी सम्प्रदायभुक्त हैं, किन्तु कोई भी कलमा नहीं पढ़ता और न मसजिद ही जाता है। पर हां मुसलमानकी तरह ये लोग भी लिङ्गच्छेद कराते हैं। केवल स्वजातिके मध्य ही विवाह-शादी

चलती है। मुसलमान होने पर भी ये लोग हिन्दूके त्योहारमें उत्सवादि करते हैं और इसे वे अपना कर्त्तव्य कार्य समझते हैं। आश्विनमासके दशहरा उत्सवमें ये हिन्दूका साथ देते हैं। धारवाड़, सतारा, पूना, शोलापुर बीजापुर आदि दाक्षिणात्यके प्रधान प्रधान नगरोंमें इनका वास है। इनका दूसरा नाम भिश्ती भी है।

पखावज (हिं० स्त्री०) मृदङ्गसे छोटा एक प्रकारका बाजा।

पखावजी (हिं० पु०) वह जो पखावज बजाता हो।

पखिया (हिं० पु०) झगड़ालू, बखेड़ा मचानेवाला।

पखुड़ी (हिं० स्त्री०) पखड़ी देखो।

पखुवा (हिं० पु०) भुजमूलका पार्श्व, बाँहका वह भाग जो किनारे वा बगलमें पड़ता है।

पखेरू (हिं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

पखेव (हिं० पु०) गाय वा भैंसका वह खाना जो बच्चा जननें पर छः दिन तक उसे दिया जाता है। इसमें सोंठ, गुड़, हलदी, मँगरैला और वर्द्का आटा होता है।

पखोआ (हिं० पु०) पंख, पर।

पखोटा (हिं० पु०) १ डैना, पर। २ मछलीका पर।

पखोड़ा (हिं० पु०) पखोरा देखो।

पखोण्ड़ा (सं० पु०) पक्षपोड़ वृक्ष, एक पेड़का नाम।

पखोरा (हिं० पु०) स्कन्ध और भुजदण्डको सन्धि, कंधे परकी हड्डी।

पग (हिं० पु०) १ पैर, पाँव। २ गमन करनेमें एक स्थानसे दूसरे स्थान पर पैर रखने को क्रियाको समाप्ति, डग, फाल। ३ जिस स्थानसे पैर उठाया जाय और जिस स्थान पर रखा जाय, दोनोंके बोचको दूरी, डग, फाल।

पगडंडी (हिं० स्त्री०) जङ्गल या मैदानमें वह पतला रास्ता जो लोगोंके चलते चलते बन गया हो।

पगड़ी (हिं० स्त्री०) उष्णीष, पाग, चीरा, साफा।

पगतरी (हिं० स्त्री०) जूता।

पगदासी (हिं० स्त्री०) १ जूता। २ खड़ाऊँ।

पगना (हिं० क्रि०) १ रसकी चाश परिपक्व हो कर मिलना, शरबत या शोरेमें इस प्रकार पकाना कि शरबत या शीरा चारों ओर लिपट और सूख जाय। २ अत्यन्त अनुरक्त होना, किसीके प्रेममें डूबना, मग्न होना। ३ रस ... के साथ ओतप्रोत होना, सनना।

पगनियां (हिं० स्त्री०) जूती।

पगपान (हिं० पु०) एक आभूषण जो पैरमें पहना जाता है। इसे कोई कोई पलानी या गोड़सांकर भी कहते हैं।

पगरना (हिं० पु०) सोने चाँदीके नक्काशोंका एक औजार। यह औजार नक्काशी करते समय गड्ढा बनानेके काममें आता है।

पगरी (हिं० स्त्री०) पगड़ी देखो।

पगला (हिं० पु०) पागल देखो।

पगहा (हिं० पु०) पशु बांधनेको रस्सी, निरांव, पघा।

पगा (हिं० पु०) दुपट्टा, पटका।

पगान—१ उच्च ब्रह्मदेशके मैमनसिंह जिलेका एक उपविभाग। इसमें पगान, सेल और क्योकपदौङ्ग नामके तीन शहर लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका एक सदर। यह अक्षा० २०' ५३' से २१' २०' उ० और देशा० ९४' ४८' से ९५' १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५८२ वर्गमोल और जनसंख्या करीब साठ हजार है।

३ ब्रह्मदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २१' १०' उ० और देशा० ९४' ५२' पू० इरावती नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छः हजारसे ऊपर है। वर्त्तमान राजधानीके दक्षिणांशमें प्रायः ३ कोस तक प्राचीन पगानका ध्वंसावशेष पड़ा है। इसके ठीक पश्चाद्भागमें धारोविच्छिन्न नामक गिरिमाला रहनेके कारण नदी किनारेसे इसका दृश्य देखनेमें बहुत मनोरम लगता था। केवल मन्दिरादिके ऊँचे शिखर छोड़ कर कोई भी नजरको रोकता नहीं था। कर्णेल खिउ साहबने विशेष पर्यालोचना करके देखा है कि इस अल्पपरिसर क्षुद्र नगरमें एक समय हजार मन्दिर शोभा पाते थे। सभी मन्दिर हिन्दू और बौद्धधर्मके परिचायक रहे। अनोरथ सोमन नामक किसी बौद्धने जब यहां बौद्धमत फैलाया, तब उन्होंके मतानुसार बौद्धोंने थान्तुमके मन्दिरादिके अनुकरणमें यहां बहुतसे मन्दिर बनवाये। ६ठी शताब्दीके शेष भागमें यह नगर राज-

पानीके कूपमें गिरा जाने लगा। यहांकी शिलालिपि देखनेसे मालूम पड़ता है कि ८४७-८४८में ले कर १२वीं शताब्दी तक यह नगर विशेष उन्नत दशामें था। इरावती नदीके किनारे ब्रह्मकी पूर्वतन राजधानीके उत्तर प्राचीन पगान नगर अवस्थित है। १२८४ ई०में कुब्लाई खांके राजत्वकालमें मुगलसेनाने आ कर इस नगरको तहस नहस कर डाला।

पगाना (हिं० पु०) १ पागनेका काम कराना। २ अनुरक्त करना, मग्न करना।

पगार—मध्यप्रदेशके होशङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक छोटा राज्य। यह महादेवपर्वतके ऊपर बसा हुआ है। पर्वत पर जो मन्दिर है उसीके पंडोंमेंसे एक यहांके सरदार हैं।

पगार (हिं० पु०) १ पैरोंसे कुचली हुई मट्टी, कीचड़ या गारा। २ वह पानी या नदी जिसे पैदल चल कर पार कर सकें, पायाब। ३ ऐसी वस्तु जिसे पैरोंसे कुचल सकें। ४ वेतन, तनख्वाह।

पगाह (फा० स्त्री०) यात्रा आरम्भ करनेका समय, भोर, तड़का।

पगुरना (हिं० क्रि०) १ पागुर करना, जुगाली करना। २ हजम कर जाना, डकार जाना, ले जाना।

पगा (हिं० पु०) पीतल या कांसा गलानेकी घरिया, पागा।

पगी—गुजरातवासी भीलजातिकी एक शाखा। ये लोग पद-चिह्नका अनुसरण करके चोर और खूनीको बहुत दूरसे भी पकड़ सकता है।

पघा (हिं० पु०) वह रस्सा जो गायों बैलों आदि चौपायोंके गलेमें बांधा जाता है। ढोरोंको बांधनेकी मोटी रस्सी।

पघाल (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत कड़ा लोहा।

पघिलना (हिं० क्रि०) पिघलना देखो।

पचैया (हिं० पु०) गांवों आदिमें घूम घूम कर माल बेचनेवाला व्यापारी।

पङ्क (सं० पु० क्लो०) पच्यते व्याप्यते क्रियते वा अनेन पच-घञ्, कुत्वञ्च। १ कर्दम कीचड़, कीच। २ पानीके साथ मिला हुआ पोतने योग्य पदार्थ, लेप। ३ पाप।

पङ्ककर्वट (सं० पु०) पङ्केषु कर्वटः, मनोहरः। जलयुक्त पङ्क, पानीके साथ मिला हुआ पोतने योग्य पदार्थ।

पङ्ककीर (सं० पु०) पङ्कप्रियः कीरः पक्षिविशेषः। कोयष्टिक पक्षी, टिटिहरी नामकी चिड़िया।

पङ्कक्रीड़ (सं० पु०) पङ्के पङ्केन वा क्रीड़ति पङ्क-क्रीड़-अच्। १ शूकर, सूअर। (त्रि०) २ कर्दमखेलक, कीचड़में खेलनेवाला।

पङ्कक्रीड़नक (सं० पु०) पङ्कक्रीड़ स्वार्थे कन्। शूकर, सूअर।

पङ्कगड़क (सं० पु०) पङ्के स्थितो गड़कः। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी छोटी मछली।

पङ्कगति (सं० स्त्री०) पङ्के गतिर्यस्य। पङ्कगड़क मत्स्य, एक प्रकारकी छोटी मछली।

पङ्कग्राह (सं० पु०) पङ्के स्थितो ग्राहः। जलजन्तुभेद, मगर।

पङ्कज (सं० क्लो०) पङ्के पङ्काद्वा जायते पङ्क-जन कर्त्तरि ड। १ पद्म, कमल। (त्रि०) २ कीचड़में उत्पन्न होनेवाला।

पङ्कजन्मन् (सं० क्लो०) पङ्के जन्म यस्य। पद्म, कमल।

पङ्कजजन्मन् (सं० पु०) पङ्कजे जन्म उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ ब्रह्मा, पद्मयोनि।

पङ्कजराग (सं० पु०) पद्मरागमणि।

पङ्कजवाटिका (सं० स्त्री०) तेरह अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक भगण, एक नगण, दो जगण और अन्तमें एक लघु होता है। इसका दूसरा नाम एकावली और कंजावली भी है।

पङ्कजात (सं० पु०) १ भृङ्गराजक्षुप। १ पद्म, कमल।

पङ्कजावली (सं० स्त्री०) १ छन्दोभेद। २ पद्मसमूह।

पङ्कजासन (सं० पु०) ब्रह्मा।

पङ्कजित् (सं० पु०) गरुड़के एक पुत्रका नाम।

पङ्कजिनी (सं० स्त्री०) पङ्कजानि सन्त्यस्याम् इति इनि (पुष्करादिभ्यो देशे। पा ५।२।१३५) १ पद्माकर, कमलाकर। २ कमलिनी, कमलक्षुप। ३ पद्मसमूह, कमलका ढेर।

पङ्कण (सं० पु०) मांसादिनिमित्तके पापाचारकर्मणि कणः कलहो यस्य सः, पृषोदरादित्वात् साधुः। पक्कण, शबरालय, चाण्डालका घर।

पङ्कदिग्ध शरीर (सं० पु०) १ दानवभेद, एक दानवका नाम। २ कर्दमाक्त देह, कीचड़से भरा हुआ शरीर।

पङ्कदिग्धाङ्ग (सं० पु०) कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

पङ्कधूम (सं० पु०) नरकभेद, जैनियोंके एक नरकका नाम।

पङ्कपर्पटी (सं० स्त्री०) सौराष्ट्रमृत्तिका, गोपीचन्दन।

पङ्कप्रभा (सं० स्त्री०) पङ्कस्य प्रभा प्रकाशो यस्यां। कर्दमयुक्त नरकविशेष, कीचड़से भरे हुए एक नरकका नाम।

पङ्कमण्डूक (सं० पु०) पङ्के मण्डूक इव। १ शम्बूक, घोंघा। २ जलशुक्ति, छोटी सीप, सुतही।

पङ्करुह् (सं० क्ली०) पङ्के रोहतीति पङ्क-रुह-क्विप्। पद्म, कमल।

पङ्कला—देशावलीवर्णित मल्लभूमस्थ एक नदी। यह विष्णुपुरसे दो कोस उत्तरमें प्रवाहित है।

पङ्कवत् (सं० त्रि०) पङ्कः विद्यतेऽस्य, पङ्क-मतुप, मस्य वः। कर्दमयुक्त, कीचड़से भरा।

पङ्कवारि (सं० क्ली०) काञ्जिक, काँजी।

पङ्कवास (सं० पु०) पङ्के वासो यस्य। १ कर्कट, केकड़ा। २ मत्स्यादि, मछली आदि।

पङ्कशुक्ति (सं० स्त्री०) पङ्के स्थिता या शुक्तिः। १ जलशुक्तिभेद, तालमें होनेवाली सीप, सुतही। २ शम्बूक, घोंघा।

पङ्कशूरण (सं० पु०) पङ्के शूरण इव। शम्बूक, घोंघा। २ पद्मकन्द।

पङ्कार (सं० पु०) पङ्कमृच्छति पङ्कं प्राप्य वर्द्धते इति यावत् पङ्क-ऋ उपपदे अण्। १ जलज वृक्षविशेष, एक पेड़ जो नदियोंके कीचड़में होता है। इस पौधेमें स्त्री और पुरुष दो अलग जातियाँ होती हैं। २ सैवाल, सेवार। ३ सेतु, पुल। ४ सोपान, सीढ़ी। ५ बाँध। ६ जलकुब्जक, सिंघाड़ा।

पङ्किल (सं० त्रि०) पङ्कोऽस्त्यस्मिन् पङ्क-इलच् (लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः। पा ५।२।१००) सकर्दम, जिसमें कीचड़ हो, कीचड़वाला। पर्याय—सजम्बाल, पङ्कयुक्त, कर्दमान्वित।

पङ्केज (सं० क्ली०) पङ्के जायते इति जन-ड (सप्तम्यां जनेर्डः। पा ३।२।९७) इति सप्तम्या अलुक्। पद्म, कमल।

पङ्केरुह (सं० क्ली०) पङ्के रोहतीति पङ्क-रुह-क ततो सप्तम्यां अलुक्। १ पद्म, कमल। (पु०) २ सारसपक्षी।

पङ्केशय (सं० त्रि०) पङ्के शेते शी-अच्, ततः सप्तम्या अलुक्। १ पङ्कशायी, पङ्कमें रहनेवाला। (स्त्री०) २ जलौका, जोंक।

पङ्क्ति (सं० स्त्री०) पच्यते व्यक्तीक्रियते श्रेणीविशिष्टयेति यावत् पचि—व्यक्ति करणे-क्तिन्, इदित्वान्नुम् वा पञ्चयति विस्तारयति पच विस्तारे क्तिच्। १ सजातीय संस्थानविशेष, श्रेणी, पाँती, कतार, लाइन। पर्याय—वीथी, आलि, आवलि, श्रेणी, वीथि, आली, आवली पंक्ती, श्रेणि, राजि, सन्तति, श्रेणीली, पालि, पाली, वीथिका २ पञ्चाक्षरपादक छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें पाँच पाँच अक्षर अर्थात् एक भगण और अन्तमें दो गुरु होते हैं। भागवतमें लिखा है—

"मज्जायाः पंक्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत्।"
(३।१२।४६)

मज्जासे पंक्ति और प्राणसे बृहती उत्पन्न हुई है। ३ दशाक्षरपादच्छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरणमें पाँच पाँच अक्षर होते हैं। ४ दशसंख्या, दसका अदद। ५ पृथ्वी। ६ गौरव। ७ भोजमें एक साथ बैठ कर खानेवालोंकी श्रेणी। हिन्दू आचारके अनुसार पतित आदिके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करनेका निषेध है।

"न संवसेच्च पतितैर्न चाण्डालैर्न पुल्कसैः।
न मूर्खैर्नावलिप्तैश्च नान्त्यैर्नान्त्यावसायिभिः॥
एकशय्यासनं पंक्तिर्भाण्डपक्वान्नमिश्रणम्।
याजनाध्यापने योनिस्तथैव सह भोजनम्॥
सहाध्यायस्तु दशमः सहयाजनमेव च।
एकादश समुद्दिष्टा दोषाः सांकर्यसंज्ञिताः॥"
(कूर्मपु० १५ अ०)

पतित, चण्डाल, नीच और मूर्ख आदिके साथ वास, एक आसन पर बैठना, एक साथ खाना, उनका यजन, अध्यापन प्रभृति दूषणीय है। यह दोष ग्यारह प्रकारका

है। एक पंक्तिमें बैठ कर यदि एक दूसरेको स्पर्श न करे अथवा भस्म और अग्निव्यवधान रहे, तो पंक्ति-साङ्कर्य दोष नहीं लगता।

"एक पंक्त्युपविष्टा ये न स्पृशन्ति परस्परम्।
भस्मना कृतमर्यादा न तेषां संकरो भवेत्॥
अग्निना भस्मना चैव पङ्क्तिः पंक्तिर्विभिद्यते।"

८ सेनामें दश दश योद्धाओंको श्रेणी। ९ कुलीन ब्राह्मणोंको श्रेणी।

पङ्क्तिकण्टक (सं॰ पु॰) पङ्क्तौ एकपङ्क्तौ कण्टक इव। पंक्तिदूषक।

पङ्क्तिका (सं॰ स्त्री॰) श्रेणी, पांती।

पङ्क्तिकृत (सं॰ स्त्री॰) पङ्क्ति-कृ अभूत तद्भावे च्वि। श्रेणीवद्ध।

पङ्क्तिग्रीव (सं॰ पु॰) पङ्क्तिः दशसंख्यका ग्रीवा यस्य। रावण।

पङ्क्तिचर (सं॰ पु॰) पङ्क्त्या श्रेणीवद्धः सन् चरतीति पंक्ति-चर-ट। कुररपक्षी।

पङ्क्तिच्युत (सं॰ त्रि॰) किसी कलङ्क, दोष आदिके कारण जातिको श्रेणीसे बाहर किया हुआ, बिरादरीसे निकाला हुआ।

पङ्क्तिदूष (सं॰ पु॰) पंक्तिं एकपंक्तिं भोजने दूषयति दूषि-अण्। पंक्तिदूषक।

पङ्क्तिदूषक (सं॰ पु॰) श्राद्धकाले भोजनार्थमुपविष्टानां व्रतस्नातानां ब्राह्मणानां पंक्तिं श्रेणीं दूषयति यः, पंक्ति-दूष कर्त्तरि ण्वुल्। अपाङ्क्तेय, श्राद्धभोजनानर्ह ब्राह्मण, ऐसा ब्राह्मण जिसके साथ पंक्तिमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते। पद्मपुराणके स्वर्गखण्ड २५ अध्याय-में लिखा है—कितव, स्त्रूणहा, यक्ष्मारोगी, पशुपालक, निराकृति, ग्रामप्रेष्य, वार्द्धुषिक, गायन, सर्वविक्रयी, अगारदाही, गरद, कुण्डाशी, सोमविक्रयी, सामुद्रिक, राजदूत, तैलिक, कूटकारक, पिताके साथ विवादकारी, अभिशप्त, स्तेन, शिल्पोपजीवी, मित्रद्रोही, पारदारिक, परिहृत्ति, दुश्चर्मा, गुरुतल्पग, कुशीलव, देवलक, नक्षत्रो-पजीवी, खदष्ट, ब्रह्महगामी और जिसके घरमें उपपति आता जाता हो, ये सब ब्राह्मण अपाङ्क्तेय हैं।

जिस श्राद्धमें गुरुतल्पग और दुश्चर्मा भोजन करता है, उस श्राद्धमें पितृगण भोजन नहीं करते और वह श्राद्ध निष्फल होता है। जो ब्राह्मण शूद्रोंको उपदेश देते हैं, उन्हें भी श्राद्धमें खिलाना नहीं चाहिये।

(पद्मपु॰ स्वर्गख॰ २५ अ॰)

मनुसंहितामें पंक्तिदूषकका विषय इस प्रकार लिखा है—

क्लीवता, नास्तिकता, ब्रह्मचारीका अनध्ययन, चर्म-रोग, द्यूतक्रीड़ा, बहुयाजन, चिकित्सा, प्रतिमापरिचर्या, देवल ब्राह्मणका कार्य, मांसविक्रय, वाणिज्य, ग्राम वा राजाका सरकारी कार्य, कुत्सित, नखरोग, श्यावदन्त, गुरुके प्रतिकूलाचार, श्रौत और स्मार्त्त अग्निपरित्याग एवं कुसीद, यक्ष्मारोग, छाग, गो प्रभृति पशुपालन, पञ्च-महायज्ञ नहीं करना, ब्रह्मद्वेष, परिवित्ति, साधारणके लिये उत्सृष्ट धनादिका उपभोग, नर्त्तन वा गायनादिवृत्ति, स्त्रीसम्पर्क द्वारा ब्रह्मचर्यहानि, असवर्णा-विवाह, शूद्रा-विवाह और जिसकी जायाका उपपति है, वेतन ले कर वेद पढ़ाना, शूद्रको पढ़ाना, निष्ठुरवाक्य, जारजदोष, पिता माता और गुरुजनका अकारण परित्याग, पतितके साथ अध्ययनादि और कन्यादानादि द्वारा सम्बन्ध, प्राणनाशके लिये विष प्रदान, सोमविक्रय, समुद्रयात्रा, स्तुतिवादादि द्वारा जीविका, तेलके लिये तिलादि वीज पेषण, तुलामान वा लेख्यादिविषय, द्यूतक्रीड़ा नहीं जानने पर भी अर्थ दे कर दूसरे द्वारा क्रीड़ा, मद्यपान, पापरोग, छद्मवेश, इक्षु आदिका रसविक्रय, धनुष और शरनिर्माण, ज्येष्ठाभगिनीका विवाह हुए बिना कनिष्ठा-भगिनीका पाणिग्रहण, मित्रद्रोह, अपस्मार, गण्डमाला, श्वेतकुष्ठ, उन्माद और अन्धरोग, वेदनिन्दा, हस्ती, गो, अश्व और उष्ट्रका दमन वा पालन, नक्षत्रादिकी गणना, सेतुभेदादि द्वारा प्रवहमान स्रोतका अवरोध, वास्तुविद्या, दौत्यकार्य, वेतनभोगी हो कर वृक्षरोपण, क्रीड़ा दिखाने-के लिये कुक्कुर पालन, श्येनपक्षीके क्रयविक्रयादि द्वारा जीविकानिर्वाह, कन्यकागमन, हिंसा, शूद्रसेवा, नाना जातीय लोक-याजकता, आचारहीनता, धर्मकार्यमें निरुत्साह, स्वयं कृषि द्वारा जीविकानिर्वाह, व्याधि द्वारा स्थलदेह, साधुओंकी निन्दा, परपूर्वा अर्थात् एक बार विवाह हो चुका है ऐसी स्त्रीका फिरसे ग्रहण

महत्त्व, धनग्रहण करके अववहन और ब्राह्मणनिन्दिताचार, जिन ब्राह्मणोंके उपरोक्त कोई दोष है, वे पंक्तिप्रवेशके अयोग्य हैं, अर्थात् ये एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते। अतएव इस प्रकारके ब्राह्मण अपाङ्क्तेय वा पंक्तिदूषक कहलाते हैं। श्राद्धमें इन सब ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे वह श्राद्ध निष्फल होता है। (मनु ३ अ०)

पंक्तिदूषकका विषय हेमाद्रि श्राद्धकाण्डमें विशेष रूपसे लिखा है।

पङ्क्तिपावन (सं० पु०) पङ्क्तिं श्राद्धोपलक्षे भोजनायोपविष्टानां वेदविद्याविशारदानां ब्राह्मणानां श्रेणीं पुनाति पावयति वा पङ्क्ति-पावि-ल्यु। १ श्रेणीपवित्रकर्त्ता, वह ब्राह्मण जिसको यज्ञादिमें बुलाना, भोजन कराना और दान देना श्रेष्ठ माना गया है।

पद्मपुराणमें लिखा है—

"इमे हि मनुजश्रेष्ठ! विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः।
विद्यावेदव्रतस्नाता ब्राह्मणाः सर्व एव हि॥
सदाचारपराश्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावनाः।
मातापित्रोर्यश्च वश्यः श्रोत्रियो दशपूरुषः॥
ऋतुकालाभिगामी च धर्मपत्नीषु यः सदा।
वेदविद्याव्रतस्नातो विप्रः पंक्तिं पुनात्युत॥"

(पद्मपुराण स्वर्गख० ३५ अ०) इत्यादि

वे इविद् ब्राह्मण, जो सदाचारपरायण हैं, जो पिता और माताके वशीभूत हैं, श्रोत्रिय और जो ऋतुकालमें धर्मपत्नीमें उपगत रहते हैं, स्वधर्मपरायण, वेदादिपारग और स्नातक ये सब ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र करते हैं। सत्यवादी, धर्मशील, स्वकर्मनिरत, तीर्थस्नायी, अक्रोधी, अचपल, क्षान्त, दान्त, जितेन्द्रिय, भूतोंके हितकारक, ऐसे ब्राह्मणोंको दान देनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है और ये ही पंक्तिपावन कहलाते हैं। जिनके किसी प्रकारका दोषाघात नहीं है, अर्थात् पहले पंक्तिदूषककी जगह जिन सब दोषोंका उल्लेख किया गया है, वे ही दोषरहित ब्राह्मण पंक्तिपावन हैं। २ पञ्चाग्निरक्षक, वह ब्राह्मण जो पञ्चाग्नियुक्त हो।

पङ्क्तिबद्ध (सं० त्रि०) श्रेणीबद्ध, पाँतिमें लगा हुआ, कतारमें बँधा हुआ।

पङ्क्तिरथ (सं० पु०) पङ्क्तिषु दशसु दिक्षु गतो रथो यस्य। राजा दशरथ।

"अयोध्यायां महाराजः पुरा पंक्तिरथो बली।
तस्यात्मजो रामचन्द्रः सर्वशूरशिरोमणिः॥"

(पद्मपुराण पातालख०) (रघु० ८।७४)

पङ्क्तिराधस् (सं० त्रि०) ब्राह्मणोंके हविष्पङ्क्त्यादि द्वारा समृद्ध यज्ञ।

पङ्क्तिबाह्य (सं० त्रि०) जातिच्युत, पंगतिसे निकाला हुआ।

पङ्क्तिबीज (सं० पु०) पंक्तिभूतानि बीजानि यस्य। १ बबूरवृक्ष, बबूल। २ आरग्वधवृक्ष, डरगा। ३ कर्णिकावृक्ष, कर्णिकार।

पङ्खो—चट्टग्राम पार्वत्यप्रदेशवासी जातिविशेष। शङ्ख नदीके पूर्वी किनारे बोल्मोङ्ग-प्रदेशको कर्णफुलीनदीके किनारे तीन ग्रामोंमें ये अधिक संख्यामें पाये जाते हैं। यहांके वनयोगी जातिके लोग भी अपनेको इसी वंशके बतलाते हैं। इनका कहना है, कि दोनों ही जाति एक पिताको दो सन्तानसे उत्पन्न हुई हैं—एक पुत्रका वंश पङ्खो और दूसरेका वंश वनयोगी कहलाता है। इन दो जातियोंकी भाषा, आचारव्यवहार और रीतिनीति प्रायः एक-सी है। ये लोग अपनेको ब्रह्मके मानव शोङ्गब बतलाते हैं। दोनों जातियोंमें फर्क इतना ही है कि वनयोगी लोग मस्तकके अग्रभागमें जूड़ा बांधते हैं और पङ्खो लोग मस्तकके पश्चाद्भागमें।

जगत्की उत्पत्तिके विषयमें इन लोगोंके मध्य एक आश्चर्य गल्प प्रचलित है। इनके पूर्वपुरुषोंके वंशमें ल्लोम्ब्रोकपा नामक एक राजा हुए। वे विशेष क्षमतावान् थे। उनका विवाह किसी एक देवकन्यासे हुआ था। एक समय इस पर्वत प्रदेशमें आग लगी। देवकन्याको सलाहसे पर्वतवासिगण समुद्रतीरस्थ समतल क्षेत्रमें उतर आये और तभीसे वे निम्नप्रदेशमें रहने लगे हैं। इनका कहना है, कि पहले सभी जीवजन्तु बात चीत कर सकते थे। एक दिन सबने मिल कर देवकन्यासे मांस खानेको मांगा, इस पर देवबालाने भगवान्‌को कह कर जीवोंकी वाक्‌शक्ति हरण कर ली। तभीसे जीव पुनः हत्याजनित कष्ट बोल कर प्रकाश कर

नहीं सकते। पचेन और खोजिं यही दो इनके कुल-देवता हैं।

पहले इन लोगोंमें नरहत्या प्रचलित थी। अभी अंगरेज गवर्मेण्टके कठोर शासनसे वह वीभत्स व्यापार बंद कर दिया गया है। इनमें कोई पर्व नहीं होता, केवल धानकी काटनीके समय ये लोग विशेष आमोद प्रमोद करते हैं। वनयोगी लोग शवदेहको गाड़ देते हैं, जलाते नहीं।

पङ्गपाल (टिड्डी)—पतङ्ग जातिविशेष, टिड्डी। प्राणि-तत्त्वविदोंने इन्हें (Orthoptera) अर्थात् प्रकृत डैनेके उपरिभागस्थ कठिन आच्छादनयुक्त और लम्फनशील (Saltatoria) बतलाया है। उन्होंने Gryllidae और Locustidae नामक दो जाति गतसंख्याका निर्देश कर पुनः इनके मध्य अनेक श्रेणियोंका विभाग किया है। इनके पश्चाद्भागके पैर साधारणतः शरीरकी अपेक्षा बड़े होते हैं। इन्हीं पैरोंके ऊपर शरीरका कुल भार दे कर ये उछलते कूदते हैं। किन्तु सामनेके पैर अपेक्षाकृत छोटे होते हैं। मस्तकके सामने सूतकी तरह बहुत बारीक कड़े बाल रहते हैं उन्हींमें इनका अग्रंशान होता है। अन्यान्य पतङ्गोंकी तरह इनकी देहयष्टि भी तीन भागोंमें विभक्त हैं, यथा—मस्तक, वृक्ष और उदर। गुल्फास्थि भी तीन ग्रन्थियोंमें आवद्ध है। इनके डैने पेटसे भी अधिक चौड़े होते हैं और उनके ऊपरमें जो कठिन ढक्कन (Elytra) होते हैं, उन्हींके परस्पर संघर्षणसे पुरुषजाति एक प्रकारका अस्फुट शब्द करती है। यह शब्द पीठ पर जो ग्रन्थि है उसीसे उत्पन्न होता है। नरके आकारसे मादाके आकारमें बहुत फर्क पड़ा।
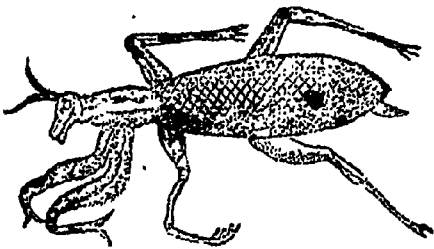
पंगपाल।

विभिन्न देशोंमें इस पङ्गपाल जातिका विभिन्न नाम देखा जाता है। बिहारमें टिड्डी, या पङ्गपाल, उड़ीसामें झिण्टिकी, अरबमें जरद और जरद्‌-उल-बह्‌र, रोजगमें फरिदो, फ्रान्समें Sauterelle, जर्मनीमें Heushrecke, ग्रीसमें Opheomachez, हिब्रुमें चारगोल, आरबे, इटलीमें Locusta, अङ्गरेजीमें locust, पोर्तुगीजमें Logosta, स्पेनमें Langosta, पारसमें मारग मलख, मलख-इ-हलाल, मलख-इ-हराम, मलख-इ-दरियाई आदि अनेक नाम पाए जाते हैं।

स्थान, वर्ण और आकृतिके तारतम्यानुसार इनमें भी श्रेणीविभाग हुए हैं।

(१) इङ्गलैण्डदेशका सब्ज रंगका पङ्गपाल (Acrida viridi-sima) प्रायः दो इञ्च लम्बा होता है।

(२) पङ्गपाल श्रेणीके मध्य Gryllus migratorius साधारणतः बड़े होते हैं। ये अनेक समय एक एक जिला नष्ट कर डालते हैं।

(३) उड़ीसाकी झिण्टको प्रायः १ इञ्च लम्बी होती है।

(४) Phymatea punctata देखनेमें बड़े ही सुन्दर होते हैं। इनके पेटका तलभाग लाल और वक्षभाग जरद तथा ब्रोञ्ज रंगका होता है। इस जातिके छोटे छोटे कीट भी वृक्षके विशेष हानिकारक हैं।

(५) अफ्रिका और एशियाके दक्षिणांशमें Acrydium (Oedipoda) migratorium देखनेमें सब्ज रंगके, डैनेका कठिन आवरक स्वच्छ, पांशु और सफेद तथा पैर लालपन लिए पीले रंगके होते हैं। ये शून्यमार्गमें प्रायः १८ मील उड़ सकते हैं।

(६) सिनाई प्रदेशका Gryllus gregarius।

(७) A. peregrinum लाल और पीले रंगके होते और रानीगञ्ज तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें कभी कभी देखे जाते हैं।

(८) Acrydium lineole बागदादके बाजारमें खानेके लिए बिकते हैं।

(९) Oedipoda migratoria फ्रान्सकी राजधानी पेरिससे ले कर पारसकी राजधानी इस्पाहन तक और मध्य अफ्रिकासे ले कर तातार तकके सभी स्थानोंमें आ कर कभी कभी फसलकी बड़ी हानि पहुंचाते हैं।

अष्ट्रेलिया द्वीपमें जो सब पङ्गपाल देखे जाते हैं, वे

Tettigoniae जातिके हैं। ये केवल वृक्षके ऊपर घूमते और पत्रादि खाते हैं। जातिभेदसे कोई सब्ज, कोई नारंगी रंगका और कोई काला होता है। इनके जाल-वत् सूक्ष्म त्वक् विशिष्ट पर सुन्दर इन्द्रधनुषके रंगोंमें रंगे होते हैं।

पङ्गपालका उपद्रव चिरप्रसिद्ध है। जिस समय इसका दल लाल बादलकी घटाके समान उमड़ कर चलता है उस समय आकाशमें अन्धकार-सा हो जाता है और मार्गके पेड़, पौधे तथा खेतोंमें पत्तियां नहीं रह पातीं। जिन जिन प्रदेशोंसे हो कर ये उड़ते हैं, उनकी फसलको नष्ट करते जाते हैं। शास्त्रमें दुर्भिक्ष और मारी-भय जैसा दैवकृत निदारुण अत्यर्थ है, वैसा ही पङ्ग-पाल-पतन भी दुर्लक्षण और दैवघटित उपद्रवसमूहका निदर्शन है। दुर्भिक्षके साथ इनका समागम भी हुआ करता है। इतिहासमें इनके भूरि भूरि प्रमाण लिखे हैं। संस्कृत भाषामें इस जातिका पतङ्ग 'शलभ' नामसे प्रसिद्ध है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूमिकम्प, जलप्लावन जिस प्रकार दुर्भिक्षादि अलक्षणका पूर्वलक्षण है, पङ्गपालका आगमन भी उसी प्रकार जानना चाहिये। पङ्गपाल और मूषिक आदिका उपद्रव राज्यके अमङ्गलकी सूचना करता है। हिन्दूशास्त्रमें लिखा है—

"अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः।
प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥"

(कामन्दक १३।६३-६४)

महाभारतमें लिखा है, कि शलभ दन्तके खरधारसे जिस प्रकार पेड़ों वा पौधोंको काट डालते हैं, अर्जुनके सुतीक्ष्ण वाणसे भी शत्रुओंकी वैसी ही दशा हुई थी।

(विराटपर्व ४६।४)

प्राचीन समयमें भी शलभोंका उपद्रव सर्वजन विदित था, इसमें सन्देह नहीं। रामायणमें भी वाण-के साथ शलभकी तुलना की गई है। इसके अलावा बायबलमें भी ईसाजन्मके बहुत पहले पङ्गपालके भीषण उपद्रवकी कथा लिखी है। १८७६ ई०में अमेरिकाके डामो राज्यमें पङ्गपालका उपद्रव दूर करनेके अभिप्रायसे प्रजाको ईश्वरकी स्तवस्तुति करनेकी आज्ञा हुई थी। पङ्गपालकी ध्वंसशक्ति दुर्निवार्य है। जिस स्थान हो कर पङ्गपाल उड़ते हैं, वहां काला मुंहवाला कीड़ा देखा जाता है। दिनके समय ये सब कीड़े बहुत छोटे दीख पड़ते हैं। रातको वे धानके पौधों पर चढ़ जाते और सिरेको जमीनमें काट गिराते हैं। इसी प्रकारके कुछ कीड़ोंको पकड़ कर देखा गया है कि ८।१० दिनके बाद ही उनका आकार बड़ा हो जाता और तब ठीक वड़े फतिंगे-से देखनेमें लगते हैं। मादा खुले मैदानमें गड्ढे बना कर अंडे देती हैं। जिस खेतकी हलसे मट्टी अलग कर दी गई है, उसी नरम स्थानमें वे प्रायः अंडे देना पसन्द करती हैं। प्रत्येक गड्ढेमें प्रायः ५०।६० अंडे रहते हैं। दार्शनिक अरिष्टटलका कहना है, कि ये शीत-कालमें (अर्थात् अगस्तसे अक्तूबरमासमें) अंडेको जमीन-के अन्दर रखती हैं। वसन्तकालमें उन अंडोंके फूट जाने पर शावककीड़े बाहर निकल आते हैं। प्रसवके बाद मादाके उदरसे रालकी तरह एक प्रकारकी श्लेष्मा निक-लती है। उसीसे वे अंडोंको बचाये रखती हैं। अंडे-के फूटने पर कीड़े जमीनके बाहर निकलते हैं। पीछे उन्हें पूर्णाङ्ग होनेमें प्रायः डेढ़ दो मास लगते हैं। जिस खेतमें गेहूंकी खेती होती है उस खेतमें पङ्गपालके अंडोंसे अधिक कीड़े निकलते हैं, किन्तु सरसोंके खेतमें २।५से अधिक कीड़े कभी भी निकलते नहीं देखे जाते। ये सभी प्रकारकी फसल, कच्ची और सूखी पत्तियां, पेड़की सूखी छाल और लकड़ी, कागज, रुई, पशमीने वस्त्र, यहां तक कि भेड़ोंकी पीठ पर बैठ कर उसके शरीर परकी पशम भी खा डालते हैं। तमाकू, कच्चा फल, मृतपक्षी, बादुर आदि इनके विशेष उपादेय हैं। सांप, बिल्ली, बेंग, सूअर तथा नाना जातिके पक्षी इनके विषम शत्रु हैं। अंडे वा कीड़े पानेसे ही वे उसी समय निगल जाते हैं। इनके अंडोंको यदि नष्ट करना चाहें, तो आसानीसे कर सकते हैं। हलसे मट्टी-को उलट देनेसे अथवा जमीन पर मिट्टीका तेल छिड़क देनेसे प्रायः सभी अंडे नष्ट हो जाते हैं। पङ्गपालके आक्रमणसे खेतकी रक्षा करनेके और भी कितने उपाय हैं जिनका उल्लेख करना निष्प्रयोजन है।

अति प्राचीनकालसे ही यहूदी आदि पाश्चात्य जाति-योंके मध्य पङ्गपाल खाद्यपदार्थमें व्यवहृत होता था

रहा है। यहूदी लोग केवल मात्र पङ्गपाल खाते हैं। वे लोग इसे शुद्ध और भगवत्प्रेरित मानते हैं। बुखाराके मुसलमान भी एक जातिका पङ्गपाल खाते हैं। अरबवासी लवणमें सिद्ध कर मक्खन वा चर्बीके साथ अथवा आगमें जला कर इसे खाते हैं। मरक्कोवासी भी पङ्गपालको भुन कर खाते हैं। यहांके बाजारमें भुना हुआ पङ्गपाल बिकता है। अफ्रिका, रूस, अमेरिका, परशिया, इथिओपिया, ब्रह्म और आराकान आदि देशवासियोंमेंसे कोई जलाकर, कोई भुन कर कोई मसाले आदि डाल कर इसे खाते हैं। पङ्गपाल विशेषतः पर्वतकी कन्दराओं और रेगिस्तानोंमें रहते हैं।

पङ्गु (सं० पु०) खञ्जित गतिवैकल्यं प्राप्नोतीति खजि गतिवैकल्ये बाहुलकात् कु। ततः खस्य पत्वं जस्य गादेशः नुम् च (बाहुलकात् कुः खजयोःपगौ नुमागमश्च। उण् १।३७) १ शनैश्चर, शनिग्रह। २ परिव्राट्, परिव्राजक।

> 'भिक्षार्थे गमनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च।
> योजनान्न परं याति सर्वथा पङ्गुरेव सः॥"
>
> (चिन्तामणि)

३ वातव्याधिविशेष, वातरोगका एक भेद। वैद्यकका मत है कि कमरमें रहनेवाली वायु जांघोंकी नसोंको पकड़ कर सिकोड़ देती हैं जिससे रोगीके पैर सिकुड़ जाते हैं और वह चल फिर नहीं सकता। खञ्ज देखो। (त्रि०) ४ खञ्ज, लंगड़ा। इसका पर्याय श्रोण और जङ्घाहीन है।

पङ्गु (सं० पु०) १ सह्याद्रिखण्डवर्णित एक सोमवंशीय राजा। ये सरस्वतीभक्त थे तथा अश्विन् (अश्विन्) राजाके औरससे उत्पन्न हुए थे। विश्वामित्र इनका गोत्र था। अङ्गहीन रहनेके कारण इनका पङ्गु नाम पड़ा था। ऋष्यशृङ्गके परामर्शसे इन्होंने अनेकों सत्कार्य करके आरण्यक नामक एक पुत्र प्राप्त किया था।

(सह्याद्रि० ११२२ अ०)

२ चन्द्रवंशीय एक राजा, कामराजके पुत्र।

पङ्गुक (सं० त्रि०) पङ्गु-स्वार्थे कन्। पङ्गु, लंगड़ा।

पङ्गुगति (सं० स्त्री०) वर्णिक छन्दोंका एक दोष। जब किसी वर्णिक छन्दमें लघुकी जगह गुरु और गुरुकी जगह लघु आ जाता है, तब यह दोष माना जाता है।

पङ्गुग्राह (सं० पु०) १ मकर नामक जलजन्तु, मगर। २ मकरराशि।

पङ्गुता (सं० स्त्री०) पङ्गोर्भावः, पङ्गु-तल्-टाप्। पङ्गुत्व, लंगड़ापन।

पङ्गुत्वहारिणी (सं० स्त्री०) पङ्गुत्वं हरति पङ्गुत्व-हृ-णिनि स्त्रियां ङीप्। शिमुड़ीक्षुप, चंगोनी।

पङ्गुल (सं० पु०) १ शुक्लवर्ण अश्व, सफेद रंगका घोड़ा। २ एरण्डवृक्ष, अंडीका पेड़। (त्रि०) ३ पङ्गु, लंगड़ा।

पङ्गुलहारिणी (सं० स्त्री०) सेवनेन पङ्गुत्वं पङ्गुत्वं हरति हृ-णिनि। शिमुड़ीक्षुप, चंगोनी।

पच (सं० त्रि०) पचति यः पच्-अच् (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। पा ३।१।१३४) पाककर्त्ता, रसोई बनानेवाला।

पचक (हिं० पु०) काश्मीरजात एक प्रकारके गुल्मकी जड़ 'Cossyphus, Auckland ia'। स्थानभेदसे इसके विभिन्न नाम देखे जाते हैं, यथा—संस्कृत और बङ्गला कुष्ठ और कुड़, अरब-कुस्त-इ हिन्दि, कुस्त-इ-अरबी, ग्रीक्-Kust Kustus, हिन्दी—पचक, कुट, उप्लेत, लाटिन Costus Arabica, मलय पर्चा, सिंहली, गट्टमंहनिल, सिरीयभाषामें—कुश्ठा, तेलगु—चेङ्गला प्रभृति। इसके पेड़ साधारणतः ४।५ हाथ लम्बे होते हैं। आश्विन कार्त्तिकमासमें इसकी जड़ खंड खंड कर बड़े बड़े शहरोंमें भेजी जाती है। चीनवासी धूप धूनेके जगह इसकी जड़को जलाते और सुगन्धसे विमोहित हो जाते हैं। वे लोग इसमें कामोद्दीपक गुण बतलाते हैं।

पचकना (हिं० क्रि०) पिचकना देखो।

पचकल्यान (हिं० पु०) पञ्चकल्याण देखो।

पचखना (हिं० वि०) जिसमें पांच खंड वा मंजिल हों।

पचगुना (हिं० वि०) पञ्च गुणा, पांच गुना, पांच बार अधिक।

पचग्रह (हिं० पु०) मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनिका समूह।

पचड़ा (हिं० पु०) प्रपञ्च, बखेड़ा, झंझट। २ लावनी या खयालके ढङ्गका एक प्रकारका गीत। इसमें पांच पांच चरणोंके टुकड़े होते हैं।

पचत (सं० पु०) पचतीति पच-अतच् (भृमृदृशियजिपर्वि-पच्यमितमिनमिहर्यीऽतच्। उण् ३।११०) १ सूर्य । २ अग्नि । ३ इन्द्र । (त्रि०) ४ परिपक्व ।

पचतभृज्जता (सं० स्त्री०) पचत भृज्जत इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। पाक करो, भर्जन करो, ऐसी आदेशक्रिया ।

पचति (सं० पु०) पच-धातुस्वरूपे श्तिप् । पच धातु-का स्वरूप ।

पचतिकल्प (सं० क्ली०) ईषदूनं पचतीति तिङन्तात् कल्पप् । ईषदून पाककर्त्ता, बहुत कम ऐसा पाक करनेवाला ।

पचतूरा (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा ।

पचतोलिया (हिं० पु०) पांच तोलेका बाट ।

पचत् (सं० त्रि०) पचति यः, पच-शतृ । पाककर्त्ता, रसोई करनेवाला ।

पचत्पुट (सं० पु०) पचत् पुटं यस्य । सूर्यमणिवृक्ष ।

पचत्य (सं० त्रि०) पचते पाके साधु यत् । पाकविषयमें साधु ।

पचन (सं० क्ली०) पच्यते इति पच-भावे ल्युट् । १ पाक, पकानेकी क्रिया या भाव । २ पकनेकी क्रिया या भाव । ३ अग्नि । (त्रि०) ४ पाककर्त्ता, पकानेवाला ।

पचना (हिं० क्रि०) १ भुक्त पदार्थोंका रसादिमें परि-णत हो कर शरीरमें लगने योग्य होना, हजम होना । २ शरीर मस्तिष्क आदिका गलना, सुखना या क्षीण होना, बहुत हैरान होना । ३ क्षय होना, समाप्त या नष्ट होना । ४ दूसरेका माल इस प्रकार अपने हाथमें आ जाना कि फिर वापिस न हो सके, हजम होना । ५ अनुचित उपायसे प्राप्त किए हुए धन या पदार्थका काममें आना । ६ एक पदार्थका दूसरे पदार्थमें अच्छी तरह लीन होना, खपना ।

पचनागार (सं० पु०) पाकशाला, रसोईघर, बावरची-खाना ।

पचनाग्नि (सं० पु०) जठराग्नि, पेटको आग जो खाये हुए पदार्थको पचाती है ।

पचनिका (सं० स्त्री०) कड़ाही ।

पचनी (सं० स्त्री०) सुपक्वजम्बीरादिकं पच्यतेऽनया पच-

करणे ल्युट्, स्त्रियां ङीप् । वनवीजपूरक, विहारी नीबू ।

पचनीय (सं० पु०) पचने योग्य, हजम होने लायक ।

पचनेही—बांदा जिलेका एक ग्राम । यह बांदा नगरसे ८ मील उत्तरमें अवस्थित है । यहां ७ हिन्दू-मन्दिर और १ मसजिद है ।

पचन्ती (सं० स्त्री०) ओदनादीन् पचति पच-शतृ, स्त्रियां ङीप् । पाककर्त्री, पकानेवाली ।

पचपच (सं० पु०) पचप्रकारः पच-प्रकारे द्वित्वं वा पचस्य पाक-स्य इत्यादेरपि पचो वा । महादेव, शिव ।

पचपच (हिं० स्त्री०) १ पचपच शब्द होनेकी क्रिया या भाव । २ कीचड़ ।

पचपचा (हिं० वि०) वह अधपका भोजन जिसका पानी अच्छी तरहसे सूखा या जला न हो ।

पचपचाना (हिं० क्रि०) १ किसी पदार्थका जरूरतसे ज्यादा गीला होना । २ कीचड़ होना ।

पचपन (हिं० वि०) १ पचास और पांच, पांच कम साठ । (पु०) २ पचास और पांचकी संख्या, ५५ ।

पचपनवां (हिं० वि०) जो गिननेमें चौवनके बाद पचपन-की जगह पड़े ।

पचपल्लव (हिं० पु०) पंचपल्लव देखो ।

पचप्रकुट (सं० स्त्री०) पच प्रकुट इत्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। पाकच्छेदनाय नियोग-क्रिया, पाक करो छेदन करो, ऐसा आदेश ।

पचमान (सं० त्रि०) पचतेऽसौ इति पच-शानच् (लटः शतृशानचौ । पा ३।२।१२४) १ पाककर्त्ता, पकानेवाला । (पु०) २ अग्नि ।

पचमेल (हिं० वि०) जिसमें कई या सब मेल हों ।

पचम्पचा (सं० स्त्री०) पचं पचं पचति पचेः खश्, ततो मुम् स्त्रियां टाप् । दारुहरिद्रा, दारुहलदी ।

पचम्बा—बिहारके हजारीबाग जिलान्तर्गत गीरीडीह उप-विभागका एक ग्राम । यह अक्षा० २५° १३' उ० और देशा० ८६° १६' पू० गीरीडीह रेलवेस्टेशनसे २ मीलकी दूरी पर अवस्थित है । समुद्रतलसे तीन हजार-से ऊपर है । यहांसे एक छोटे पहाड़के ऊपर प्रायः १०।१२ कहा जमीनके अन्दरसे अमीम तापमानित

पात और कुठार आदि बुद्धकालके सामान पाये गये हैं।

पचरंग (हिं० पु०) चौक पूरनेकी सामग्री, मेंहदीका चूरा, अबीर, बुक्का, हल्दी और सुरवालीके बीज। इस सामग्रीमें सब जगह ये ही ५ चीजें नहीं होतीं, कुछ चीजोंकी जगह दूसरी चीजें भी काममें लाई जाती हैं।

पचरंगा (हिं० वि०) १ जिसमें भिन्न भिन्न पांच रंग हों, पांच रंगका। २ जो पांच रंगोंसे रंगा हुआ हो तथा जो पांच रंगोंके सूतोंसे बुना हुआ हो। ३ जिसमें बहुतसे रंग हों, कई रंगोंसे रँगा हुआ। (पु०) ४ नवग्रह आदिकी पूजाके लिए पूरा जानेवाला चौक। इस चौकके खाने या कोठे पचरंगके पांच रंगोंसे भरे जाते हैं।

पचरा (हिं० पु०) पचड़ा देखो।

पचरान—अयोध्या प्रदेशके गोण्डा तहसीलके अन्तर्गत एक ग्राम। यह जिलेके सदरसे ८ कोस उत्तर अवस्थित है। इसके पास २० फुट ऊँचा एक स्तूप है जिसके ऊपर एक मन्दिरमें पृथ्वीनाथका लिङ्ग प्रतिष्ठित है। १८६० ई०में राजा मानसिंहने स्तूपके ऊपर जो जङ्गल था उसे काटते समय एक विग्रह पाया था और मन्दिर निर्माण कर इसमें उनकी प्रतिष्ठा की थी। सम्भवतः यही स्थान प्राचीन समयमें पञ्चारण्य नामसे प्रसिद्ध था। दूसरे स्तूपके ऊपर पृथ्वीनाथका मन्दिर स्थापित है। इसकी बाहरी ईंटोंकी गठन देखने होसे यह बौद्धस्तूप-सा मालूम होता है।

पंचलड़ी (हिं० स्त्री०) एक आभूषण जो मालाकी तरह होता और जिसमें पांच लड़ियां रहती हैं। यह गलेमें पहना जाता है और इसकी अन्तिम लड़ी प्रायः नाभि तक पहुंचती है। कभी कभी प्रत्येक लड़ीके और कभी कभी केवल अन्तिमके बीचों बीच एक जुगनू लगा रहता है। इसके दाने सोने, मोती अथवा अन्य रत्नके होते हैं।

पचलवण (सं० क्ली०) पच लवणमित्युच्यते यस्यां क्रियायां मयूरव्यंसकादित्वात् समासः। लवण पाक करो ऐसा आदेश।

पचलोना (हिं० पु०) १ वह जिसमें पांच प्रकारके नमक मिले हों। २ पंचलवण देखो।

पचवाई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी देशी शराब जो चावल, जौ, ज्वार आदिसे चुआई जाती है।

पचहत्तर (हिं० वि०) १ सत्तर और पांच, सत्तरसे पांच अधिक। (पु०) २ वह संख्या जो सत्तर और पांचके जोड़से बनी हो, ७५।

पचहत्तरवां (हिं० वि०) जिसका स्थान क्रममें पचहत्तर पर हो, गिनतीमें पचहत्तरके स्थान पर पड़नेवाला।

पचहरा (हिं० वि०) १ पांच बार मोड़ा या लपेटा हुआ, पांच परतों या तहोंवाला, पांच आवृत्तियोंवाला। २ पांच बार किया हुआ।

पचा (सं० स्त्री०) पच्यते इति पचेर्भिदादित्वादङ्, ततष्टाप्। १ पाक, पकानेकी क्रिया या भाव। २ पाककर्त्री, पकानेवाली।

पचाड़—बम्बई प्रान्तके रायगढ़के निकटवर्ती एक ग्राम। यहां शिवाजीने रसदसंग्रह करनेके लिए एक किला बनवाया था। यहांका रामस्वामीका मन्दिर प्रसिद्ध है।

पचादि (सं० पु०) पच आदि यस्य। पाणिन्युक्त गणभेद। यथा—पच, वच, वप, वद, चल, पत, नदट्, भषट्, प्लवट्, चरट्, गरट्, तरट्, चोरट्, गाहट्, सूरट्, देवट्, दोषट्, रज, मद, क्षप, सेव, मेष, कोष, मेध, नर्त्त, व्रण, दर्श, दम्भ, दर्प, जार, भर और श्वपच। इन पचादि धातुओंके उत्तर अच् प्रत्यय होता है, अच् प्रत्ययके कारण इन्हें पचादिगण कहते हैं।

पचानक (हिं० पु०) एक पक्षी जिसका शरीर एक बालिश्त लम्बा होता है। इसके डैने और गर्दन काली होती है। दक्षिण भारत और बङ्गाल इसके स्थायी आवासस्थान हैं पर अफगानिस्तान और बलूचिस्तानमें भी यह पाया जाता है।

पचाना (हिं० क्रि०) १ पकाना, आंच पर गलाना। २ खाई हुई वस्तुको जठराग्निकी सहायतासे रसादिमें परिणत कर शरीरमें लगाने योग्य बनाना, हजम करना, जीर्ण करना। ३ अवैध उपायसे हस्तगत वस्तुको अपने काममें ला कर लाभ उठाना। ४ पराए मालको अपना कर लेना, हजम कर जाना। ५ क्षय करना, समाप्त या नष्ट करना। ६ अत्यधिक परिश्रम ले कर या क्लेश दे कर शरीर मस्तिष्क आदिको गलाना या सुखाना। ७ एक पदार्थका दूसरे पदार्थको अपने आपमें पूर्ण रूपसे लीन कर लेना, खपाना।

पचार (हिं॰ पु॰) बांस या लकड़ीका वह छोटा डंडा जो लूएमें बांई ओर होता है और सीढ़ीके डंडेकी तरह उसके ढांचेमें दोनों ओर ठुका रहता है।

पचारना (हिं॰ क्रि॰) ललकारना, किसी कामके करनेके पहले उन लोगोंके बीच उसकी घोषणा करना जिनके विरुद्ध वह किया जानेवाला हो।

पचाव (हिं॰ पु॰) पचनेकी क्रिया या भाव।

पचास (हिं॰ वि॰) १ चालीस और दश, साठसे दश कम। (पु॰) २ चालीस और दशकी संख्या या अङ्क, ५०।

पचासवां (हिं॰ वि॰) गिनतीमें पचासकी जगह पर पड़नेवाला।

पचासा (हिं॰ पु॰) एक ही प्रकारकी पचास चीजोंका समूह।

पचासी (हिं॰ वि॰) १ नब्बेसे पांच कम, ८०से ५ अधिक, अस्सी और पांच। (पु॰) २ वह अङ्क या संख्या जो अस्सी और पांचके जोड़से बनी हो, अस्सी और पांचके योगकी फलरूप संख्या, ८५।

पचासीवां (हिं॰ वि॰) जो क्रममें पचासीके स्थान पर हो, गिनतीमें पचासीकी जगह पर पड़नेवाला।

पचि (सं॰ पु॰) पचतीति पच्-इन् (सर्वधातुभ्यः इन्। उण् ४।११७) १ अग्नि, आग। २ पाचन, पकानेकी क्रिया या भाव।

पचित (हिं॰ वि॰) पची किया हुआ, बैठाया हुआ, जड़ा हुआ।

पची (हिं॰ स्त्री॰) पच्ची देखो।

पचीस (हिं॰ वि॰) १ पांच ऊपर बीस, तीससे पांच कम, पांच और बीस। (पु॰) २ पांच और बीसके योगफलरूप अङ्क या संख्या, वह संख्या या अङ्क जो बीस और पांचके जोड़नेसे बने, २५।

पचीसवां (हिं॰ वि॰) जो क्रममें पचीसके स्थान पर पड़े, गणनामें पचीसके स्थान पर पड़नेवाला।

पचीसी (हिं॰ स्त्री॰) १ एक प्रकारका खेल जो चौसरकी बिसात पर खेला जाता है। इसकी गोटियां और चाल भी उसीकी तरह होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि इसमें पासेकी जगह सात कौड़ियां होती हैं जो खड़खड़ा कर फेंकी जाती हैं। चित और पट कौड़ियोंकी संख्याके अनुसार दांव निश्चय होता है। २ एक ही प्रकारकी पचीस वस्तुओंका समूह। ३ किसीकी आयुके पहले पचीस वर्ष। ४ एक विशेष गणना जिसका सैकड़ा पचीस गाहियों अर्थात् १२५का माना जाता है। आम, अमरूद आदि सस्ते फलोंकी खरीद बिक्रीमें इसीका व्यवहार किया जाता है।

पचूका (हिं॰ पु॰) पिचकारी।

पचेलिम (सं॰ पु॰) पचत्यसौ पच-एलिमच् (पच एलिमच्। उण् ४।३७) १ सूर्य। २ अग्नि, आग। (त्रि॰) ३ जो आपसे आप पका हो।

पचेलुक (सं॰ पु॰) पचत्योदनादीन्, पची बाहुलकात् एलुकः। सूद, पाचक, वह जो ओदनादि पाक करे।

पचोतर (हिं॰ वि॰) किसी संख्यासे पांच अधिक, पांच ऊपर।

पचोतरसौ (हिं॰ पु॰) एक सौ पांच, सौ और पांचका अङ्क या संख्या, १०५।

पचोनरा (हिं॰ पु॰) कन्यापक्षके पुरोहितका एक नेग। इसमें उसे दायजमें वरपक्षको मिलनेवाले रुपयों आदिमेंसे सैकड़े पीछे पांच मिलता है।

पचोमी—युक्तप्रदेशके बरेली जिलेका एक ग्राम। यह बरेलीसे ८ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहांका प्राचीन भग्नावशेष और स्तूप समूहकी पर्यालोचना करनेसे पूर्व कीर्त्तिके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं। दारुण वृष्टिके समय यहांके वृहत् स्तूपके धुल जानेसे भारतवर्षके शक राजाओंकी प्रचलित ताम्रमुद्रा बाहर हुई थी। ये सब ध्वंसराशि देखनेसे यह स्थान प्राचीन 'पंचभूमि'के जैसा प्रतीत होता है।

पचौआ (हिं॰ पु॰) किसी कपड़े पर छींट रूप चुकनेके पीछे ८ या १२ दिन पर्यन्त उसे घाममें खुला रखना। ऐसा करनेसे छापते समय समस्त स्थान पर जो धब्बे आ जाते हैं वे छूट जाते हैं।

पचौर (हिं॰ पु॰) ग्रामका प्रधान, गामका मुखिया, सरदार, सरगना।

पचौली (हिं॰ पु॰) १ ग्रामका सरदार, सरगना। २ मध्यभारत तथा बम्बईमें अधिकतासे मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसके पत्तोंसे एक प्रकारका तेल निकाला

जाता है जो विलायती एंजिन आदिमें पड़ता है।

पचौवर (हि॰ वि॰) पाँच तह या परत किया हुआ, पांच परतका।

पचड़ (हि॰ पु॰) पच्चर देखो।

पच्चर (हि॰ स्त्री॰) लकड़ी या बांसकी फट्टी, काठका पैवन्द। इसे चारपाई, चौखट आदि लकड़ीकी बनी चीजोंमें माल या जोड़को कसनेके लिए उनमें छूटे हुए दरारमें ठोंकते हैं। छिद्र को भरनेके लिए इसका एक सिरा दूसरेसे कुछ पतला किया जाता है, लेकिन जब इससे दो लकड़ियोंको जोड़नेका काम लेना होता है, तब इसे उतार चढ़ाव नहीं बनाते, एक फट्टी या गुल्ली बना लेते हैं।

पच्ची (हि॰ स्त्री॰) १ किसी वस्तुके फैले हुए तल पर दूसरी वस्तुके टुकड़े इस प्रकार खोद कर बैठाना कि वे उस वस्तुके तलके मेलमें हो जांय और देखने या छूनेमें उभरे या गड़े हुए न मालूम हों तथा दरज या सीम न दिखाई पड़नेके कारण आधार वस्तुके ही अंग जान पड़ें। २ किसी धातुके बने हुए पदार्थ पर किसी अन्य धातुके पत्तरका जड़ाव।

पच्चीकारी (हि॰ स्त्री॰) पच्ची करनेकी क्रिया या भाव।

पच्चीसे—गुजराती ब्राह्मण समुदायका एक भेद। पचीस ग्राम इन्हें जीविकाके लिए मिले थे, इसीसे ये लोग पच्चीसे कहाये।

पच्छकाट (सं॰ पु॰) आमकी मझोली जड़ जो रंगाईके काममें आती है।

पच्छपात (हि॰ पु॰) पक्षपात देखो।

पच्छम (हि॰ पु॰) पश्चिम देखो।

पच्छिम (हि॰ पु॰) १ पश्चिम देखो। (वि॰) २ पिछला, पीछेका।

पच्छिवँ (हि॰ पु॰) पश्चिम देखो।

पच्छी (हि॰ पु॰) पक्षी देखो।

पच्छस् (सं॰ अव्य॰) वीप्सार्थे पाद पादाभ्यां पद्भ्यः, ततः शस्। पद पदमें, चरण चरणमें।

पच्य (सं॰ त्रि॰) पच कर्मणि यत्। पाकाह, पकाने योग्य।

पच्यमान (सं॰ त्रि॰) पच्यतेऽसौ पच कर्मणि शानच्। जो पकाया जा रहा हो।

पछड़ना (हि॰ क्रि॰) १ लड़नेमें पटका जाना। २ पिछड़ना देखो।

पछताना (हि॰ क्रि॰) किसी किये हुए अनुचित कार्यके सम्बन्धमें पीछेसे दुःखी होना, पश्चात्ताप करना, पछताना करना।

पछताव (हि॰ पु॰) पछतावा देखो।

पछतावा (हि॰ पु॰) पश्चात्ताप, अनुताप, अपने कियेको बुरा समझनेसे होनेवाला रंज।

पछवत (हि॰ स्त्री॰) वह चीज जो फसलके अन्तमें बोई जाय।

पछवाँ (हि॰ वि॰) १ पश्चिम दिशाकी, पश्चिमदिशा-सम्बन्धी, पच्छिमी। (स्त्री॰) २ अंगियाका वह भाग जो पीठकी तरफ मोढेके पीछे रहता है।

पछाँह (हि॰ पु॰) पश्चिम पड़नेवाला प्रदेश, पश्चिमकी ओरका देश।

पछाँहिया (हि॰ वि॰) पश्चिमप्रदेशका, पछाँहका।

पछाड़ (हि॰ स्त्री॰) मूर्च्छित हो कर गिरना, अधिक शोक आदिके कारण अचेत हो कर गिरना।

पछाड़ना (हि॰ क्रि॰) १ कुश्तीको लड़ाईमें पटकना, गिराना। २ धोनेके लिए कपड़ेको जोर जोरसे पटकना।

पछाड़ी (हि॰ स्त्री॰) पिछाड़ी देखो।

पछाया (हि॰ पु॰) किसी वस्तुके पीछेका भाग, पिछाड़ी।

पछारना (हि॰ क्रि॰) कपड़ेको पानीसे साफ करना, धोना।

पछावरि (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पकवान।

पछाहीं (हि॰ वि॰) पश्चिम प्रदेशका, पछाँहका।

पछिआना (हि॰ क्रि॰) पीछे पीछे चलना, पीछा करना।

पछिताना (हि॰ क्रि॰) पछताना देखो।

पछिताव (हि॰ पु॰) पछतावा देखो।

पछिनाव (हि॰ पु॰) पशुओंका एक रोग।

पछियाना (हि॰ क्रि॰) पछिआना देखो।

पछियाव (हि॰ पु॰) पश्चिमकी हवा।

पछिलना (हि॰ क्रि॰) पिछड़ना देखो।

पछिला (हि॰ वि॰) पिछला देखो।

पछियाँ (हि॰ वि॰) १ पश्चिमकी। (स्त्री॰) २ पश्चिमको हवा।

पछुवाँ (हिं॰ वि॰) १ पश्चिमको। (स्त्री॰) २ पश्चिम-की हवा।

पछुवा (हिं॰ पु॰) कड़ेके आकारका पैरमें पहननेका एक गहना।

पछेगाम—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़के अन्तर्गत गोहेल-वाड़ विभागस्थ एक क्षुद्रराज्य। जूनागढ़के नवाब और बरोदाके गायकवाड़को यहांके अधिपति कर दिया करते हैं। यहां नागर ब्राह्मणोंका वास अधिक है।

पछीत (हिं॰ स्त्री॰) १ मकानके पीछेका भाग, घरका पिछवाड़ा। २ घरके पीछेकी दीवार।

पछेड़ा (हिं॰ पु॰) पीछा।

पछेलना (हिं॰ क्रि॰) आगे बढ़ जाना, पीछे छोड़ना।

पछेला (हिं॰ पु॰) १ हाथमें पहननेका स्त्रियोंका एक प्रकारका कड़ा जिसमें उभरे हुए दानोंकी पंक्ति होती है। २ पीछेकी मठिया। (वि॰) ३ पिछला।

पछेलो (हिं॰ स्त्री॰) पछेला देखो।

पछोड़ना (हिं॰ क्रि॰) सूप आदिमें रख कर साफ करना, फटकना।

पछोरना (हिं॰ क्रि॰) पछोड़ना देखो।

पछोहा—अयोध्याप्रदेशके हरदोई जिलान्तर्गत एक पर-गना। यहांके अधिवासिगण पनवार जातिके हैं।

पछौरा (हिं॰ पु॰) पिछौरा देखो।

पछ्यावर (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका शरबत।

पजनकुंवरि—एक हिन्दी-कवि। इन्होंने बुन्देलखण्ड-बोलीमें बारहमासी नामक पुस्तक बनाई।

पजनसिंह—हिन्दीके एक कवि। ये जातिके कायस्थ और बुन्देलखण्डके वासी थे। इन्होंने पजनप्रश्नज्योतिष नामक ग्रन्थ बनाया है।

पजनेश—एक हिन्दी-कवि। ये बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे तथा इनका जन्म सं॰ १८७२में हुआ था। इनका बनाया मधुप्रिया नामक ग्रन्थ भाषासाहित्यमें उत्तम है। इनकी अनूठी उपमा, अनुठे पद, अनुप्रास, यमक आदि प्रशंसाके योग्य हैं। इन्होंने नखसिखवर्णन भी बनाया है।

पजर (हिं॰ पु॰) १ चूने वा टपकनेकी क्रिया। २ झरना।

पजहर (फा॰ पु॰) एक प्रकारका पत्थर जो पीलापन या हरापन लिये सफेद होता है और जिस पर नक्काशी होती है।

पजावा (फा॰ पु॰) ईंट पकानेका भट्ठा, आवां।

पजूसण (हिं॰ पु॰) जैन मतका एक व्रत।

पजोखा (हिं॰ पु॰) किसीके मरने पर उसके संबन्धियोंसे शोक प्रकाश, मातमपुरसी।

पजोड़ा (हिं॰ पु॰) दुष्ट, पाजी।

पज्ज (सं॰ पु॰) पद्भ्यां जातः, पद्-जन-अम्पर्-ड। शूद्र। शूद्र पदसे जन्मग्रहण करता है, इसीसे उसे पज्ज कहते हैं।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहुराजन्यः कृतः।
ऊरु तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥" (श्रुति)

पञ्जर (हिं॰ पु॰) पांजर देखो।

पज्झटिका (सं॰ स्त्री॰) १ मात्रावृत्तभेद, एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्रायें इस नियमसे होती हैं—प्रथम पादमें प्रथम ४ लघु, फिर १२ गुरु; द्वितीयपादमें प्रथम ४ लघु, पीछे १ गुरु, उसके बाद दो लघु, फिर एक गुरु, पीछे दो लघु और दो गुरु; तृतीय चरणमें प्रथम गुरु पीछे ६ लघु, १ गुरु, २ लघु, और २ गुरु, चतुर्थ चरण तृतीय चरणके जैसा होता है। २ क्षुद्र घण्टिका, छोटा घंटा।

पञ्च (सं॰ वि॰) १ हविर्लक्षणान्नयुक्त। २ पाप द्वारा जीर्ण। (पु॰) ३ अङ्गिराका नामान्तर।

पञ्चहोमिन् (सं॰ पु॰) प्रसिद्ध सोना इन्द्र और अग्नि।

पञ्चिय (सं॰ वि॰) अङ्गिराकुलजाता, अङ्गिराकुलसे उत्पन्न।

पञ्च (सं॰ पु॰) पञ्चन् देखो।

पञ्चक (सं॰ क्ली॰) पञ्चैव इति स्वार्थे कन्। १ पञ्च-संख्यान्वित, पांचका समूह। २ पञ्चकाधिकृत शास्त्र, शकुनशास्त्र। ३ धनिष्ठा आदि पांच नक्षत्र जिनमें किसी नए कार्यका आरम्भ निषिद्ध है*। ४ पांच सैकड़ेका व्याज। ५ वह जिसके पांच अवयव हों। ६ पाशुपत दर्शनमें गिनाई हुई आठ वस्तुएं जिनमेंसे प्रत्येकके पांच

* "अग्निचौरभयं रोगः राजपीड़ा धनक्षतिः।
संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते वस्वादिपञ्चके॥" (चिन्तामणि)

पांच भेद किये गये हैं। वे आठ वस्तुएँ ये हैं—लाभ, सत्त्व, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीक्षा, कारिक और बल। (त्रि०) ७ पञ्च, पांच। ८ पञ्चांशयुक्त। ९ पञ्चभूतियुक्त। १० पञ्चमुखान्वित।

पञ्चकन्या (सं० स्त्री०) पुराणानुसार पांच स्त्रियां जो सदा कन्या ही रहीं अर्थात् विवाह आदि करने पर भी जिनका कन्यात्व नष्ट नहीं हुआ। अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा और मंदोदरी ये पांच कन्याएँ कही गई हैं।

पञ्चकपाल (सं० क्ली०) पञ्चसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः (संस्कृतं भक्षाः। पा ४।२।१६) इत्यन् (ततो द्विगोर्लुगनपत्ये। पा ४।१।८८) इत्यणो लुक्। यज्ञविशेष। पञ्चानां कपालानां समाहारः परनिपातः। २ कपालपञ्चक वह पुरोडाश जो पांच कपालोंमें पृथक् पृथक् पकाया जाय।

पञ्चकर्ण (सं० क्ली०) उत्तम लोह द्वारा पञ्चचिह्नित कर्ण।

पञ्चकर्पट (सं० पु० महाभारतके अनुसार एक देश। यह देश पश्चिम दिशामें था जिसे नकुलने राजसूययज्ञके समय जीता था।

पञ्चकर्मन (सं० क्ली०) पञ्चानां कर्मणां समाहारः। १ वैद्यकोक्त कर्मपञ्चकभेद, चिकित्साकी पांच क्रियायें—वमन, विरेचन, नस्य, निरूहवस्ति और अनुवासन। कुछ लोग निरूहवस्ति और अनुवस्तिके स्थानमें स्वेदन और वस्तिकरण मानते हैं।

"वमनं रेचनं नस्यं निरूहश्चानुवासनम्।
पञ्चकर्मेदमन्यच्च कर उत्क्षेपणादिकम्॥" (शब्दचन्द्रिका)

२ भाषापरिच्छेदोक्त पञ्चकर्म, वैशेषिकके अनुसार पांच प्रकारके कर्म—उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमन।

"उत्क्षेपणं ततोऽवक्षेपणमाकुञ्चनं तथा।
प्रसारणञ्च गमनं कर्मण्येतानि पञ्च च॥"
(भाषापरिच्छेद ६ अ०)

पञ्चकर्मेन्द्रिय (सं० क्ली०) हस्त, पाद, पायु, उपस्थ और जिह्वा। इन्हीं ५ इन्द्रियको पञ्चकर्मेन्द्रिय कहते हैं।

पञ्चकलस—बम्बई प्रदेशवासी शूद्रजातिभेद। पहले इनकी सामाजिक अवस्था अत्यन्त हीन थी। खेत जोतना, दूध दुहना और दूध बेचना इनका व्यवसाय था। अभी ये लोग पूर्व व्यवसायको छोड़ कर महाजनी अथवा सरकारी नौकरी करने लगे हैं तथा समाजमें उन्नति लाभ करके अपनेको राजपूत वंशीय क्षत्रिय सन्तान बतलाते हैं।

पञ्चकल्याण (सं० पु०) वह घोड़ा जिसका सिर और चारों पैर सफेद हों और शेष शरीर लाल, काला या और किसी रंगका हो। ऐसा घोड़ा शुभफल देनेवाला माना जाता है।

पञ्चकवल (सं० पु०) पांच ग्रास अन्न जो स्मृतिके अनुसार खानेके पहले कुत्ते, पतित, कोढ़ी, रोगी, कौए आदिके लिये अलग निकाल दिया जाता है। यह कार्य बलिवैश्वदेवका अङ्ग माना गया है, अग्रासन, अग्रासन।

पञ्चकषाय (सं० पु०) पञ्चविधः कषायः अथवा पञ्चानां वृक्षाणां कषायः, वल्कलरसः। पांच प्रकारका कषाय द्रव्य, तन्त्रके अनुसार इन पांच वृक्षोंका कषाय—जामुन, सेमर, खिरैंटी, मौलसिरी और बेर। यह पञ्चकषाय भगवती दुर्गाका अत्यन्त प्रीतिकर है।

"जम्बूशाल्मलिवाट्यालं बकुलं वदरं तथा।
कषायाः पंच विज्ञेया देव्याः प्रीतिकराः शुभाः॥"
(दुर्गोत्सवप०)

पञ्चकाम (सं० पु०) पञ्च कामाः कर्मधारयः, संज्ञात्वात् न द्विगुः। पञ्चप्रकारकाम। तन्त्रके अनुसार पांच कामदेव जिनके नाम ये हैं—काम, मन्मथ, कन्दर्प, मकरध्वज और मीनकेतु।

"पंचकामा इमे देवि ! नामानि शृणु पार्वति।
काममन्मथकन्दर्पमकरध्वजसंज्ञकाः॥
मीनकेतुर्महेशानि पंचमः परिकीर्तितः॥" (तन्त्रसार)

पञ्चकारण—(सं० पु०) जैनशास्त्रके अनुसार पांच कारण जिनसे किसी कार्यकी उत्पत्ति होती है। उनके नाम ये हैं—काल, स्वभाव, नियति, पुरुष और कर्म।

पञ्चकीर (सं० पु०) जलकुक्कुभ।

पञ्चकुल—प्राचीन हिन्दूराजाओंकी प्रवर्तित एक नगर-सुरक्षिणी सभा। पांच सदस्य द्वारा सभाके सभी काम चलाये जाते थे। ये पांच व्यक्ति पांच सम्भ्रान्तवंशसे निर्वा

चित होते थे। धीरे धीरे वह सभा पञ्चकुल कहलाने लगी। आज भी किसी किसी विशिष्ट कायस्थवंशमें उक्त उपाधि अपभ्रंशसे 'पञ्चोली' नाममें परिणत हो गई है।

पञ्चकृत्य (सं० पु०) पञ्च विस्तृतं कृत्यं शाखापत्रवादिकं यस्य। १ पत्रपीड़वृक्ष, पखौड़ेका पेड़। (क्ली०) पञ्च प्रपञ्चितं कृत्यं कार्यं सृष्टयादिकम्। २ सृष्टि प्रभृति पञ्च प्रकार कार्य, ईश्वर या महादेवके पांच प्रकारके कर्म।

"यस्मिन् सृष्टिस्थिति ध्वंसविधानानुग्रहात्मकं।
कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्भासते तं नुमः शिवम्॥"
(चिन्तामणि)

सृष्टि, स्थिति, ध्वंस, विधान और अनुग्रह यही पांच कार्य हैं, इसीका नाम पञ्चकृत्य है। जिनसे ये पांच कृत्य हैं, उन महादेवको नमस्कार करता हूं।

पञ्चकृष्ण (सं० पु०) सौम्यकीटभेद, सुश्रुतके अनुसार एक कीड़ेका नाम।

पञ्चकोट—मानभूम जिलेके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह बराकरसे १० मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसके दक्षिण-पूर्व पादमूलमें पहले एक दुर्ग था। एक समय इस स्थानकी गिनती राजप्रासादमें होती थी। अभी वे सब प्राचीन कीर्त्तियां ध्वंसावशेषरूपमें परिणत हो गई हैं। इस पर्वततटस्थ राजवासका पञ्चकोट नाम क्यों पड़ा इस विषयमें बहुतेरे बहुत तरहकी बातें कहते हैं। किसी किसीका कहना है कि यहांके राजा पांच विभिन्न सामन्त राजाओंके ऊपर कर्तृत्व करते थे। फिर कोई अनुमान करते हैं कि 'कोट' पांच स्वतन्त्र प्राचीर द्वारा रक्षित रहनेके कारण इस स्थानका नाम 'पञ्चकोट' पड़ा है। स्थानवासी इस स्थानको 'पञ्चकोटके अपभ्रंशमें पचेत वा पञ्चेत कहते हैं।

दुर्गके उत्तर उन्नतगिरिमाला विराजित है तथा पश्चिम, दक्षिण और पूर्वकी ओर एकके बाद दूसरा इस क्रमसे ४ कृत्रिम प्राचीर हैं और उनके भीतरकी ओर स्वभावजात पर्वतका उच्चनिम्न भूमिभाग एक स्वतन्त्र प्राचीरकी तरह दण्डायमान हो कर दुर्गकी रक्षा करता है। प्रत्येक प्राचीरके मध्यस्थलमें गहरी और चौड़ी खाई कटी हुई है जो पर्वतगात्रस्थ स्रोतमालाके साथ इस प्रकार संयोजित है कि उसमें इच्छानुसार जल रख सकते हैं। आज तक भी उन नालाओंमें जल जमा है। पहले प्राचीरमें अनेकों द्वार थे। अभी प्राचीरगात्रस्थ जो गर्त्त हैं, वही उसका प्रमाण देते हैं। अभी एकका भी द्वार देखनेमें नहीं आता। दुर्गके चारों ओर पत्थर काट कर जो चार वृहत् द्वार रक्षित थे, आज भी उनमेंसे कितने दिखाई पड़ते हैं। दुर्गके बाहरमें जो प्राचीर था उसकी लम्बाई पांच मील थी। वहांके लोगोंका कहना है, कि दुर्गके चारों ओरका पर्वतमाला-परिवेष्टित स्थान प्रायः १२ मील था।

यहांके अनेक प्राचीर ध्वंसावस्थामें दीख पड़ते हैं। कितने घरों वा मन्दिरोंके चारों ओर खाई रहनेसे तथा कुछ घने जङ्गलसे आवृत होनेसे उनके भीतर जानेमें बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ती हैं। सुन्दर सुन्दर ईंटें तथा मट्टीकी पुत्तलिकायें प्रायः सभी स्थानोंमें देखी जाती हैं। पर्वतगात्रमें प्रायः ३०५ फुटकी ऊंचाई पर दुर्गके ठीक सामने बहुत-से वृहत् तथा उत्कृष्ट कारुकार्ययुक्त मन्दिर हैं। इन मन्दिरोंमें रघुनाथका मन्दिर और उसका महामण्डप उल्लेखयोग्य है। राजा रघुनाथके नाम पर मन्दिरका नाम पड़ा है। पर्वतके पाददेशमें अनेक सुन्दर मन्दिर और बड़े बड़े मकानोंके ध्वंसावशेष नजर आते हैं। ये सब सुदृढ़ विस्तृत ध्वंसावशेषादि प्रायः सौ वर्षके अभ्यन्तर ही गभीर जङ्गलमें परिणत हो गये हैं। दुर्गमध्यस्थ प्रासादमें जो चहबच्चा और मकरमुखी फुहारा है वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लगता है। काशीपुरके राजा नीलमणि सिंह देवके वृद्ध प्रपितामह रघुनाथनारायण सिंह देव पहले पञ्चकोट छोड़ केशरगढ़में जा कर रहने लगे थे, पीछे नीलमणिके पिताने पुनः काशीपुरमें स्थानपरिवर्त्तन किया।

यहांके 'द्वारबांध'के उत्तर बङ्गला अक्षरमें खोदित जो शिलाफलक है, उसमें 'श्रीवीरहम्बीर' नामका उल्लेख देखा जाता है। ये वनविष्णुपुर, बांकुड़ा, कातना आदि स्थानोंमें राज्य करते थे। यह सब देख कर अनुमान किया जाता है कि सम्राट् अकबरशाह जब दिल्लीके सिंहासन पर और राजा मानसिंह बङ्गालके प्रतिनिधित्वमें

प्रतिष्ठित थे, उस समय अथवा उसके कुछ पहलेसे ही पञ्चकोटकी श्रीवृद्धि हुई थी। पञ्चकोटके पूर्वतन राजवंशकी उत्पत्ति और राजपदप्राप्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार एक वंश-इतिहास पाया जाता है।

काशीपुरके अनन्तलाल नामक किसी राजाने स्त्रीको साथ कर जगन्नाथपुरीकी यात्रा की। राहमें गर्भवती रानीने अरण्यवनमें एक पुत्र प्रसव किया। तीर्थयात्रामें विलम्ब होनेसे फल नहीं होगा, इस भयसे राजा और रानी दोनों ही इच्छा नहीं रहते हुए भी उस पुत्रको वहीं छोड़ ठाकुरद्वारकी ओर चल दिए। इस समय अरण्यवनमें कपिला गाय भ्रमण कर रही थी। दयापरवश हो वह उस शिशुका भरण-पोषण करने लगी। एक समय एक दल शिकारी वहां आया और शिशुको जीवित देख उसे पावापुर ले गया। यहां जब वह शिशु बड़ा हुआ, तब देशवासियोंने उसे मांझी वा दलपति बनाया। क्रमशः राजाके अभावमें चौरासी परगनोंके राजपद पर वही अभिषिक्त किया गया। अन्य वंशावलीमें लिखा है, कि राजा और रानीने स्वेच्छासे पुत्रका परित्याग न किया। यात्रा कालमें वह शिशु घोड़ेकी पीठ परसे गिर पड़ा था। उन दोनोंने पुत्रको मरा जान वहीं छोड़ दिया। पुरुलियाके दक्षिणांशस्थ कपिला पहाड़ पर कपिला गाय रहती थी। उसने दूध पिला कर उस पुत्रको जीवित रखा था। पीछे अदृष्टफलसे पांच राजाओंने उसे गोमुखीराज नामक पञ्चकोटमें प्रतिष्ठित किया। कोई कोई कहते हैं, कि ये राजपूतवंशीय थे। उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे पहले मानभूममें और पीछे जयकी आशासे प्रणोदित हो उन्होंने इस स्थानमें आ कर राज्य संस्थापन किया।

बादशाहनामामें लिखा है, कि पञ्चकोटके जमींदार राजा वीरनारायण सम्राट् शाहजहान्‌के राजत्वकालमें सात सौ मनसबदारके पद पर अभिषिक्त हुए। उनके राजत्वके छठें वर्ष (१०४२-४३ हिजरी)में वीरनारायणका प्राणवियोग हुआ। नवाब अलीवर्दी खांके राजत्वकालमें यहां राजा गरुड़नारायण राज्य करते थे। १७७७ ई०में रघुनाथ नारायणके शासनकालमें झालिदा परगना इनके हाथ लगा।

यहांकी बौड़ी जातिके मध्य भद्रावतीकी पूजा और उत्सव प्रचलित है। भाद्रमासकी संक्रान्तिमें पूजा होनेके कारण यह उत्सव भादू कहलाता है। पूजाके बाद प्रतिमा जलमग्न की जाती है। प्रवाद है, कि पञ्चकोटके किसी राजाके एक अलोकसामान्यरूपसम्पन्ना और दयाशील कन्या थी। वहांके अधिवासिगण उनके दयागुण पर मुग्ध हो उन्हें भूमण्डल पर अवतीर्णा साक्षात् दयादेवी समझते थे। यह कन्या बौड़ी आदि निकृष्ट जातिकी दरिद्रता देख दुःखित होती और समय समय पर उन्हें प्रचुर धन दिया करती थीं। बाद वह थोड़ी ही उमरमें कुटिल कालके गालमें फँस गई। काशीपुरके पार्श्ववर्त्ती ग्रामवासिगण उनके वियोग पर बड़े ही शोकसन्तप्त हुए और उनकी पूजा तथा उपासना करने लगे। भाद्रमें कन्याकी मृत्यु होनेके कारण वह उत्सव भादू कहलाता है। कोई कोई कहते हैं कि भादू उत्सव सबसे पहले पञ्चकोटके राजभवनसे जनसाधारणमें प्रचारित हुआ। कन्या भद्रावतीकी मृत्युसे नितान्त व्याकुल हो रानी स्वयं एक प्रतिमूर्त्तिका निर्माण कर उसकी पूजा करने लगीं। धीरे धीरे वह पूजा पद्धति बौड़ी आदि जातियोंके मध्य फैल गई।

पञ्चकोण (सं० क्ली०) १ पञ्चकोणात्मक क्षेत्रविशेष, पांच कोनेवाला खेत। २ तन्त्रोक्त यन्त्रविशेष, तन्त्रके अनुसार एक यन्त्रका नाम। ३ लग्नावधि नवम पञ्चमक स्थान, कुण्डलीमें लग्नसे पांचवां और नवां स्थान। (त्रि०) ४ पञ्चकोणयुक्त, जिसमें पांच कोने हों, पंचकोना।

पञ्चकोल (सं० क्ली०) पाचनविशेष। पीपल, पिपरामूल, चई, चितवामूल और सोंठ इन पांच प्रकारके द्रव्योंको समभाग करके मिलानेसे पाचन बनता है। वैद्यकमें इन्हें पाचन रुचिकर तथा गुल्म और प्लीहा रोगनाशक माना है।

पञ्चकोलघृत (सं० क्ली०) चरकोक्त घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गायका घी ७४ सेर; चूर्णके लिये पिपरामूल, चई, चितक, नागर प्रत्येक एक पल, दूध ७४ सेर। यथानियमसे घृत पाक कर सेवन करनेसे गुल्मरोग जाता रहता है।

पञ्चकोष (सं० पुं०) पञ्च पञ्च ते कोषाश्चेति, संख्यात्

कर्म धारय:। वेदान्तमतसिद्ध कोषपञ्चक, उपनिषद् और वेदान्तके अनुसार शरीर संघटित करनेवाले पांच कोश जिनके नाम ये हैं - अन्नमयकोष, प्राणमयकोष, मनोमयकोष, विज्ञानमयकोष और आनन्दमयकोष। इनमें स्थूल शरीरको अन्नमयकोष, पांचों कर्मेन्द्रियों सहित प्राणको प्राणमयकोष, पंचो ज्ञानेन्द्रियोंके सहित मनको मनोमयकोष, पांचों ज्ञानेन्द्रियोंके सहित बुद्धिको विज्ञानमयकोष तथा अहंकारात्मक वा अविद्यात्मकको आनन्दमयकोष कहते हैं। पहलेको स्थूल शरीर, दूसरेको सूक्ष्म शरीर और तीसरे, चौथे तथा पांचवेंको कारण शरीर कहते हैं।

पञ्चकोशी (सं० स्त्री०) पञ्चानां क्रोशानां समाहारः। काशीके मध्यस्थित दीर्घ और विस्तृतियुक्त ५ क्रोश स्थान, पांच कोसको लम्बाई और चौड़ाईके बीच बसी हुई काशीकी पवित्र भूमि। काशीमें पापकार्य करनेसे पञ्चक्रोशीमें विनष्ट होता है। पञ्चक्रोशीकृत पाप अन्तर्गृहमें नाश होता है।

'वाराणस्यां कृतं पापं पंचक्रोश्यां विनश्यति।

पंचक्रोश्यां कृतं पापं अन्तर्गृहे विनश्यति ॥' (काशीख०)

पञ्चक्लेश (सं० पु०) योगशास्त्रानुसार अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश नामक पांच प्रकारके क्लेश।

पञ्चक्षारगण (सं० पु०) पंचानां क्षाराणां गणः। क्षारपंचक, पंचलवण।

'क्षारैस्तु पंचभि प्रोक्तः पंचक्षाराभिधो गणः।

काचसैन्धवसामुद्रविट्सौवर्चलकैः समैः ॥

स्यात पंचलवणं तच्च मूत्रोपेतं षड्‌ाह्वयम् ॥''

(राजनि०)

काच लवण, सैन्धव, सामुद्र, विट, और सौवर्चल लवण इस पंचलवणको पंचक्षार कहते हैं।

पञ्चखट्व (सं० क्ली०) पंचानां खट्वानां समाहारः। पंचखट्वाका समाहार, सम्मिलन।

पञ्चगङ्गा (सं० स्त्री०) १ पांच नदियोंका समूह—गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा और धूतपापा। इसे पंचनद भी कहते हैं। २ काशीका एक प्रसिद्ध स्थान जहां गङ्गाके साथ किरणा और धूतपापा नदियां मिली थीं। ये दोनों नदियां अब पट कर लुप्त हो गई हैं।

पञ्चगङ्गा—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत कोल्हापुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। इसके किनारेके नागरखाना और बिड़ वा बेरड़ ग्राममें बहुतसे प्राचीन मन्दिरोंका भग्नावशेष दिखनेमें आता है।

पञ्चगङ्गाघाट—पुण्यक्षेत्र वाराणसीधामके अन्तर्गत एक पवित्र तीर्थ। वैष्णवधर्मप्रचारक रामानन्दने यहां रह कर अपना अवशिष्ट जीवन बिताया था। जहां वे रहते थे वहां भजन करनेका एक मन्दिर था। अभी केवलमात्र पत्थरकी वेदी देखी जाती है।

पञ्चगढ—उड़ीसाके अन्तर्गत एक परगना। इसमें कुल १० छोटे छोटे शहर लगते हैं। भूपरिमाण ४२॥ वर्गमील है। यहांके अधिवासिगण खाजुई जातिकी गिचकी शाखासे उत्पन्न हुए हैं। कृषिकार्य ही इनकी एक मात्र उपजीविका है।

पञ्चगण (सं० पु०) पञ्चानां गणो यत्र। वैद्यकोक्त गणविशेष, वैद्यक शास्त्रानुसार इन पांच औषधियोंका गण विदारीगन्धा, बृहती, पृश्निपर्णी, निदिग्धिका और भूकुष्माण्ड।

पञ्चगणि—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक स्वास्थ्यनिवास। सह्याद्रि पर्वतकी जो शाखा महाबालेश्वरसे बाईं और विस्तृत है उसी शाखाके ऊपर यह स्वास्थ्यनिवास बसा हुआ है। यह समुद्रपृष्ठसे ४३७८ फुट ऊंचा है।

पञ्चघन (सं० क्ली०) बीजगणितोक्त पञ्चवर्णयुक्त राशि, बीजगणितके अनुसार वह राशि जिसमें पांच वर्ण हों।

पञ्चगवधन (सं० त्रि०) पञ्चगावो धनं यस्य। पञ्चसंख्यान्वित गवधनस्वामी।

पञ्चगव्य (सं० क्ली०) गोविकारः गव्यं पञ्चगुणितं गव्यं। गो सम्बन्धी पञ्च प्रकार द्रव्य, गायसे प्राप्त होने वाले पांच द्रव्य—दूध, दही, घी, गोबर और गोमूत्र। पञ्चगव्यको मन्त्रपूर्वक शोधन करके लेना चाहिये। मोदकादि भक्ष्यद्रव्य, पायसादि भोज्यद्रव्य, शकटादि यान, शय्या, आसन, पुष्पमूल और फलका अपहरण करनेसे जो पाप होता है, वह पञ्चगव्य पान करनेसे जाता रहता है।

"भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य च ।
पुष्पमूलफलानां च पंचगव्यं विशोधनम् ॥"
(मनु ११।१६५)

पञ्चगव्यका परिमाण—दूध, घी और गोमूत्र एक एक पल, गोबर दो तोला और दही ३ तोला इन सब-को मिलानेसे पञ्चगव्य तैयार होता है। गौतमीयतन्त्रमें इसका भाग इस प्रकार लिखा है—

"पलमात्रं दुग्धमानं गोमूत्रं तावदिष्यते ।
घृतं च पलमात्रं स्यात् गोमयं तोलकत्रयम् ॥
दधि प्रसृतमात्रं स्यात् पंचगव्यमिदं स्मृतम् ।
अथवा पंचगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥"
(गौतमीयतन्त्र)

फिर दूसरी जगह परिमाणका विषय इस प्रकार लिखा है—

गोशकृद्द्विगुणं मूत्रं पयः स्यात्तच्चतुर्गुणम् ।
घृतं तद्द्विगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥"
(गौतमीयतन्त्र)

जितना गोमय होगा, उसका दूना मूत्र, चौगुना दुग्ध तथा घृत और दधि इसका दूना होना चाहिये।

पञ्चगव्यपानफल—पञ्चगव्य द्वारा पवित्र होनेसे अश्वमेधका फल प्राप्त होता है। यह पञ्चगव्य परम मेध्य है। सौम्य मुहूर्त्तमें पञ्चगव्य पान करनेसे यावज्जीवन पाप विनष्ट होते हैं।

"पञ्चगव्येन पूतस्तु वाजिमेधफलं लभेत् ।
गव्यन्तु परमं मेध्यं गव्यादन्यन्न विद्यते ॥
सौम्ये मुहूर्ते संयुक्ते पञ्चगव्यन्तु यः पिबेत् ।
यावज्जीवकृतात् पापात् तत्क्षणादेव मुच्यते ॥"
(वराहपुराण)

गरुड़पुराणमें पञ्चगव्यके विषयमें और भी एक विशेषता देखी जाती है। पञ्चगव्य लेनेमें काञ्चनवर्णा गाभीका दुग्ध, श्वेतवर्णा गाभीका गोमय, ताम्रवर्णाका मूत्र, नीलवर्णाका घृत और कृष्णवर्णा गाभीका दधि तथा उसके साथ कुशोदक लेनेसे पंचगव्य बनता है। इसका परिमाण—गोमूत्र ८ माशा, गोमय ४ माशा, दुग्ध १२ माशा, दधि १० माशा और घृत ५ माशा इन पांचों द्रव्योंको मिलानेसे पंचगव्य बनता है।

"पयः काञ्चनवर्णायाः श्वेतवर्णाश्च गोमयम् ।
गोमूत्रं ताम्रवर्णायाः नीलवर्णाभवं घृतं ॥
दधि स्यात् कृष्णवर्णाया कुशोदकसमायुतम् ।
गोमूत्रमाषकास्त्वष्टौ गोमयस्य चतुष्टयम् ॥
क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश उच्यते ।
घृतस्य माषकाः पंच पंचगव्यं महापहम् ॥"
(गारुड़पु० प्रायश्चित्ताध्या०)

हेमाद्रिके व्रतखण्डमें पंचगव्यका विस्तृत विवरण लिखा है। यह प्रायः सभी पूजाओंके होम और यज्ञमें व्यवहृत हुआ करता है। ताम्रपात्र या पलाशपत्रमें पञ्चगव्य मिला कर 'आर्षीमेशा' इत्यादि वैदिक मन्त्रसे पूत करके पान करना होता है। गायत्री द्वारा गोमूत्र, 'गन्धद्वारेति' मन्त्रसे गोमय, 'आप्यायस्वेति' मन्त्रसे दुग्ध, 'दधिक्राव्ण' मन्त्रसे दधि, 'तेजोऽसीति' मन्त्रसे घृत और 'देवस्येति' मन्त्रसे कुशोदक शोधन करके लेना होता है।

पञ्चगव्यघृत (सं० क्ली०) चक्रदत्तोपदेशके, आयुर्वेदके अनुसार बनाया हुआ एक घृत जो अपस्मार (मिरगी) और उन्मादमें दिया जाता है। यह घृत स्वल्प और वृहत्के भेदसे दो प्रकारका है।

स्वल्पपञ्चगव्यघृत—इसकी प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ७४ सेर, गोमयरस ७४ सेर, अम्लगव्यदधि ७४ सेर, गव्य-दुग्ध ७४ सेर और गोमूत्र ७४ सेर, पाकार्थ जल १६ सेर। यह घृत एक दिनमें पाक करना होता है। इसके पान करनेसे अपस्मार और ग्रहोन्माद जाता रहता है।

वृहत्पञ्चगव्यघृत—प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ७४ सेर, क्वाथके लिये दशमूल, त्रिफला, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, कुटजकी छाल, अपाङ्गका मूल, नीलवृक्ष, कुटकी, डूमरकी जड़, कुट, दुरालभा प्रत्येक २ पल, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ कम्प्रिका, अकवन, त्रिकटु, निसोथकी जड़, त्रिलाजका बीज, गजपिप्पली, अरहरका फल, मूर्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता, चितामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रक्तरोहा, गन्धतृण, मैनाफल प्रत्येक २ तोला; गोमयरस ७४ सेर, गोमूत्र ७५ सेर, गव्यदुग्ध ७४ सेर, अम्लगव्यदधि ७४ सेर। यथाविधान इस घृतको पाक कर सेवन करनेसे अपस्मार और ग्रहोन्माद दूर होता है। (भैषज्यरत्ना० अपस्माराधिकार, चक्रदत्त, चरक चिकि० ९५ अ०)

पञ्चगांर—१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां १७७५ ई०में रघोजी भोंसलाने मुगलसेनाओंको परास्त किया था। यहां एक सुन्दर मन्दिर है।

२ उड़ीसाके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° २८' १" उ० और देशा० ८५° ३०' ४" पू०के मध्य अवस्थित है।

पञ्चगीत (सं० पु० श्रीमद्भागवतके दशमस्कन्धके अन्तर्गत पांच प्रसिद्ध प्रकरण। इनके नाम ये हैं—वेणुगीत, गोपीगीत, युगलगीत, भ्रमरगीत और महिषीगीत।

पञ्चगु (सं० त्रि०) पञ्चभिः गोभिः क्रीतः द्विगुसमासः, ठक्, तस्य लुक्। ओकारस्य ह्रस्वः। पंचगोद्वारा क्रीत।

पञ्चगुण (सं० पु०) पंचगुणितः गुणः कर्मधारयः। १ शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच गुण। (स्त्री०) पंचगुणा अस्याः टाप्। २ पृथ्वी, पृथ्वीके पांच गुण हैं, इसीसे पृथ्वीका पंचगुण नाम पड़ा है। ३ पंच द्वारा गुणित, वह जो पांचसे गुणा किया गया हो। ४ पंचप्रकार, पांच तरह।

पञ्चगुप्त (सं० पु०) पंचानामिन्द्रियाणां चापरं गुप्तं यत्र वा पंचानां पदार्थानां गोपनं यत्र। १ चार्वाकदर्शन जिसमें पंचेन्द्रियका गोपन प्रधान माना गया है। २ कच्छप, कछुआ। कच्छपके दो हाथ, दो पैर और मस्तक छिपे रहते हैं इस कारण उसे पंचगुप्त कहते हैं।

पञ्चगुप्तिरसा (सं० स्त्री०) स्पृक्का, असवरग।

पञ्चगृहीत (सं० त्रि०) पंचद्वारा लब्ध।

पञ्चगौड़ (सं० पु०) ब्राह्मणोंका एक विभाग। सारस्वत, कान्यकुब्ज, गौड़, मैथिल और उत्कल इन पंचश्रेणीको ले कर पंचगौड़ विभाग कल्पित हुआ है। कुरुक्षेत्रके ब्राह्मण अपनेको 'आदि गौड़' बतलाते हैं। वैदिक युगमें सरस्वती-तीरवासी ब्राह्मणगण ही सारस्वत कहलाते थे। ये याज्ञिक सारस्वत ब्राह्मण यज्ञोपलक्षमें कान्यकुब्ज, गौड़ आदि स्थानोंमें बस गये। धीरे धीरे यहां उनकी सन्तान सन्तति कान्यकुब्जादि कहलाने लगी। सारस्वत, कान्यकुब्ज आदि नाम देशवाची हैं। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है,—

"ब्राह्मणा दशधा प्रोक्ता पंचगौड़ाश्च द्राविड़ाः।"

"ब्राह्मणा दशधा चैव ऋषिद्युत्पत्तिसम्भवाः।
देशे देशविभाचारा एवं विस्तारिता मही।" (सह्या० २।१।१५)

पंचगौड़ और पंचद्राविड़ ये दश प्रकारके ब्राह्मण ऋषिसम्भव थे। पीछे जो जिस देशमें बस गये उन्होंने उसी देशका आचारव्यवहार अवलम्बन कर लिया।

पञ्चद्राविड़ देखो।

राजतरङ्गिणीमें पंचगौड़ नामक विस्तृत जनपदका उल्लेख है। काश्मीरके राजा जयादित्यने पंचगौड़के राजाको जीता था। हरिमिश्ररचित कुलाचार्यकारिकामें महाराज आदिशूर पंचगौड़ाधिप उपाधिसे सम्मानित हुए थे (१)। इससे अनुमान किया जाता है कि पंचगौड़ नामक एक विस्तृत राज्य था। कूर्म और लिङ्ग पुराणमें लिखा है, कि सूर्यवंशीय श्रावस्तीके पुत्र वंशकने गौड़देशमें श्रावस्ती नगरी बसाई (२)। रामचन्द्रजीकी मृत्युके बाद जब अयोध्या नगरी जनशून्य हो गई, तब इसी श्रावस्ती नगरीमें लवका राजपाट प्रतिष्ठित हुआ*। वर्त्तमान अयोध्या प्रदेशका गोण्डा जिला तथा उसके *निकटवर्त्ती कुछ स्थानोंको ले कर गौड़देश अवस्थित* था†। विष्णुशर्माके हितोपदेशमें लिखा है, "अस्ति गौड़विषये कौशाम्बी नाम नगरी‡।" हितोपदेश-रचनाकालमें प्रयागके पश्चिमस्थ कुछ जनपद गौड़विषय कहलाते थे। राष्ट्रकूटराज गोविन्द प्रभूतवर्षके ७३० शकमें उत्कीर्ण ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि राष्ट्रकूटवंशीय राजा ध्रुवने वत्सराजको परास्त कर गौड़ पर अधिकार

(१) विश्वकोषमें कुलीन शब्द देखो।

(२) "श्रावस्तेश्च महातेजा वंशकस्तु ततोऽभवत्।
निर्म्मिता येन श्रावस्तिर्गौड़देशे द्विजोत्तमाः॥"
(कूर्म और लिङ्गपुराण)

* रामायण उत्तरकाण्ड १०८ सर्ग।

† अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलेमें गौड़ नामक एक अति प्राचीन ग्राम है। यहां ८वीं या ९वीं शताब्दीका बनाया हुआ एक सूर्य मन्दिर है। Cunningham's Arch. Sur. Re., Vol. XI. 70.

‡ प्राचीन कौशाम्बी नगरी अभी कोशाम, इनाम और कोशाम खिराज कहलाती है। यह प्रयागसे १४ कोस दूर यमुनाके किनारे अवस्थित है। Arch. Sur. of India by A. Fuhrer, Vol. I. 140

जमाया। फिर ७५० शकके उत्कीर्ण एक दूसरे ताम्र-शासनमें वत्सराजको अवन्तिपति बतलाया है। इसके सिवा नरचन्द्रसूरिके हम्मीरकाव्यमें मालवराज्य उदयादित्य भी गौड़ेश उपाधिसे भूषित हुए हैं। इससे यह जाना जाता है, कि मालवराज्यके कितने अंश एक समय गौड़देश कहलाते थे। मुसलमान ऐतिहासिकोंने खान्देश और उड़ीसाके मध्यवर्ती एक विस्तीर्ण विभागका गोण्डवाना नामसे उल्लेख किया है। इस प्रदेशका अधिकांश पृथ्वीराज रायसामें गौड़ नामसे अभिहित हुआ है। राष्ट्रकूटराज गोविन्ददेवके ७३० शकमें उत्कीर्ण ताम्र-शासनमें इस गौड़देशका सर्व प्रथम उल्लेख देखनेमें आता है। विल्फोर्ड साहब इस स्थानको 'पश्चिम गौड़' नामसे उल्लेख कर गए हैं। पुराविद् कनिंहम् साहबके मतसे बैतुल, छिन्दवाड़ा, शिवनी और मण्डला इन चार जिलाओंको ले कर यह गौड़देश संगठित हुआ है।

ऊपरमें जो सब प्रमाण दिये गये हैं उनसे यह स्थिर किया जाता है कि विन्ध्यगिरिके उत्तर कुरुक्षेत्रसे ले कर वङ्गदेशकी पूर्वी सीमा तकके विभिन्न स्थान गौड़ नामसे प्रसिद्ध थे। सारस्वत, कान्यकुब्ज, मिथिला, गौड़ और उत्कल यह पांच जनपद ही पूर्वोक्त किसी न किसी एक गौड़में शामिल थे अथवा उनके अंश समझे जाते थे। इस कारण पञ्चगौड़ कहनेसे उक्त पञ्चजनपदवासी ब्राह्मण विशेषका बोध होता था। इस प्रकार एक समय समग्र आर्यावर्त्तके अधीश्वरका बोध करनेके लिये एक पंचगौड़ेश्वर शब्दका व्यवहार होता था। माधवाचार्यके चण्डीमंगलमें सम्राट् अकबर पंचगौड़ेश्वर नामसे अभिहित हुए हैं। पहले ही लिखा जा चुका है कि महाराज आदिशूरने भी पंचगौड़ेश्वरकी उपाधि पाई थी। पहले जो आर्यावर्त्तके सम्राट् होते थे, वे ही इस स्पर्द्धाजनक उपाधिग्रहणसे अपनेको सम्मानित समझते थे। वहुपरवर्त्तीकालमें भी विद्यापतिके पृष्ठपोषक मिथिलाराज शिवसिंह, कृत्तिवासके आश्रयदाता गौड़ाधिप और सुलतान हुसैन शाह आदि इस समुच्च उपाधिसे भूषित रहे।

पञ्चग्रामी (सं० स्त्री०) पंचानां ग्रामाणां समाहारः, स्त्रियां ङीप्। पंचग्रामके समुच्च।

"स्वसीम्नि दश दद्यामस्तु पदं वा यत्र गच्छति।
पंचग्रामी वहिःक्रोशाद्दशग्राम्यथवा पुनः॥"

(याज्ञ० २।२।७)

पञ्चचक्र (सं० क्लो०) पञ्चविधं चक्रं। तन्त्रशास्त्रानुसार पांच प्रकारके चक्र जिनके नाम ये हैं—राजचक्र, महाचक्र देवचक्र, वीरचक्र और पशुचक्र। जो वीरभावसे यजन करते हैं, उन्हें पंचचक्रसे पूजा करनी चाहिए।

"चक्रं पंचविधं प्रोक्तं तत्र शक्तिं प्रपूजयेत्।
राजचक्रं महाचक्रं देवचक्रं तृतीयकम्॥
वीरचक्रं चतुर्थंच पशुचक्रंच पंचमम्।
पंचचक्रे यजेद्दिव्यो वीरश्च कुलसुन्दरि॥"

(प्राणतोषिणी)

पञ्चचत्वारिंश (सं० त्रि०) पंचचत्वारिंशत् संख्याका पूरण, पैंतालीसवां।

पञ्चत्वारिंशत् (सं० स्त्री०) पैंतालीस।

पञ्चचामर (सं० क्लो०) छन्दोविशेष, छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १६ अक्षर रहते हैं जिनमेंसे २रा, ४था, ६ठां, ८वां, १०वां, १२वां और १६वां अक्षर गुरु तथा शेष अक्षर लघु होते हैं।

पञ्चचितिक (सं० पु०) पंच चितयः प्रस्तारा यस्मिन्। अग्निभेद।

पञ्चचोर (सं० पु०) पंच चौराणि यस्य। १ मञ्जुश्रीका नामान्तर। २ मञ्जुघोष।

पञ्चचूड़ा (सं० स्त्री०) पंचसंख्यकाः चूड़ा शिरोरत्नानि यस्याः। अप्सरोविशेष।

'उर्वशी मेनका रम्भा पंचचूड़ा तिलोत्तमा॥'

(रामा० ६।९२।७१)

पञ्चछत्र—एक पवित्र क्षेत्र और ब्राह्मणोंका पवित्र आश्रम। रामचन्द्रजी रावणको मार कर जब अयोध्या लौटे, तब उन्होंने राक्षसहत्याजनित पापक्षयके लिए यहांके हत्याहरण सरोवरके किनारे कुछ काल तक वास किया था।

पञ्चजटा (सं० स्त्री०) पंचमूल।

पञ्चजन (सं० पु०) पञ्चभिर्भूतैर्जन्यतेऽसौ पंच-जन-कर्मणि घञ्, (जनिवध्योश्च। पा ७।३।३५) इति न वृद्धिः। १ पुरुष। पंचभूत द्वारा पुरुष उत्पन्न होते हैं, इसीसे पंचजन कहनेसे पुरुषका बोध होता है।

"सद्भावश्रथादिका दृश्यतेन शीशब्दलांछिता: ।
पंच पंचजनेन्द्रेण पुरे तस्मिन् निवेशिताः ॥" (राजतर० ३)

२ मनुष्यसम्बन्धी प्राणादि, मनुष्य, जीव और शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राण आदि । ३ मनुष्यतुल्य देवादि, गन्धर्व, पितरदेव, असुर और राक्षस । ४ मनुष्यभेद ब्राह्मणादि, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद । ५ दैत्यविशेष । सह्लादकी पत्नी कृतिके गर्भसे इसका जन्म हुआ था । ६ एक असुर जो पातालमें रहता था । यह श्रीकृष्णचन्द्रके गुरु संदीपनाचार्यके पुत्रको चुरा ले गया था । कृष्णचन्द्र इसे मार कर गुरुके पुत्रको छुड़ा लाये थे । इसी असुरकी अस्थिसे पञ्चजन्य शङ्ख बना था जिसे भगवान् कृष्णचन्द्र बजाया करते थे । ७ राजा सगरके एक पुत्रका नाम । हरिवंशमें लिखा है, कि महाराज सगरके तपोबलसम्पन्ना दो महिषी थीं, बड़ी महिषीका नाम केशिनी और छोटीका महती था । वे क्रमशः विदर्भराज और अरिष्टनेमिकी दुहिता थीं । और्व ऋषिने दोनों महिषियों पर प्रसन्न हो कर उन्हें वर मांगनेको कहा । इस पर केशिनीने एक वंशधर पुत्रके लिये और महतीने प्रभूतवीर्यशाली अनेक पुत्रोंके लिये प्रार्थना की । और्व 'तथास्तु' कह कर चल दिए । तदनुसार केशिनीके सगरके औरससे असमञ्जा नामक एक पुत्र हुआ । यही असमञ्जा भविष्यमें पंचजन नामसे प्रसिद्ध हुए । महतीके गर्भसे साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुए । इन सब पुत्रोंमें पंचजन ही राजा बने । पंचजनके पुत्र अंशुमान् और अंशुमानके पुत्र दिलीप हुए । (हरिवंश १५अ०) ८ प्रजापतिभेद, एक प्रजापतिका नाम । ९ पांच या पांच प्रकारके जनोंका समूह ।

पञ्चजनालय (सं० क्ली०) आभीरोंकी संज्ञाभेद ।

पञ्चजनी (सं० स्त्री) पंचानां जनानां समाहारः ततो ङीप् । १ पांच मनुष्योंकी मण्डली, पंचायत । २ विश्वरूपकन्या ।

पञ्चजनीन (सं० पु०) पंचसु जनेषु व्यापृतः, दिक्संख्ये संज्ञायामिति समासः पंचजने हितं, पंचजन-ख (पंचजनादुपसंख्यानमिति ख । पा ५।१।९) १ भण्ड, भांड़, नकल करनेवाला । २ नट, अभिनेता, स्वांग बनानेवाला । ३ पञ्च मनुष्योंका नायक वा प्रभु । (त्रि०) ४ पंचजनसम्बन्धीय ।

पञ्चजन्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध शङ्ख जिसे श्रीकृष्ण बजाया करते थे । यह पंचजन राक्षसकी हड्डीका बना हुआ था ।

पञ्चजीरकगुड़ (सं० पु०) चक्रदत्तोक्त गुड़ौषधभेद । यह सूतिकारोगमें हितकर है ।

पञ्चज्ञान (सं० पु०) १ पंचानां पदार्थानां ज्ञानं यत्र । २ बुद्ध । ३ पाशुपतदर्शनाभिज्ञ ।

पञ्चत् (सं० पु०) पंचपरिमाणस्य पंचन्-ति । पंचसंख्यायुक्त वर्ग ।

पञ्चतक्ष (सं० क्ली०) पंचानां तक्ष्णां समाहारः । पंचतक्षका समाहार ।

पञ्चतत्त्व (सं० क्ली०) पंचानां तत्त्वानां समाहारः । १ पंचभूत, पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश । २ पंचमकार, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन ।

"मद्यं मांसं तथा मत्स्यं मुद्रा मैथुनमेव च ।
पंचतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे ॥
मकारपंचकं देवि देवानामपि दुर्लभम् ।"
(कैवल्यतन्त्र १ प०)

मद्यादि पंचमकार निर्वाणमुक्तिके कारण हैं । यह पंचमकार देवताओंके भी दुर्लभ हैं । पंचतत्त्वविहीन मनुष्योंको कलिमें सिद्धि नहीं होती । पञ्चमकार देखो ।

"पंचतत्त्वविहीनानां कलौ सिद्धिर्न जायते ।"
(तन्त्रसार)

वैष्णवोंके लिये गुरुतत्त्व, मन्त्रतत्त्व, मनस्तत्त्व, देवतत्त्व और ध्यानतत्त्व यही पंचतत्त्व है ।

"तत्त्वज्ञानमिदं प्रोक्तं वैष्णवे शृणु यत्नतः ।
गुरुतत्त्वं मन्त्रतत्त्वं मनस्तत्त्वं सुरेश्वरि ।
देवतत्त्वं ध्यानतत्त्वं पञ्चतत्त्वं वरानने ।"
(निर्वाणतन्त्र १२ प०)

वैष्णवोंके लिये यही पंचतत्त्वज्ञान तत्त्वज्ञान है । यह पंचतत्त्वज्ञान निम्नलिखित प्रकारसे प्राप्त किया जाता है । पहले गुरुतत्त्व गुरुमन्त्र प्रदान करें, इससे सतैलवर्त्तिकायुक्त देहस्थित ब्रह्माग्निका उद्दीप होगा, बाद इस मन्त्रप्रभावसे इष्टदेवताका स्फूर्ति उत्पन्न होता है । इष्टदेवताके सभी मन्त्र वर्णमय हैं । इस मन्त्रवर्णमें ईश्वरका अक्षय वीर्य निहित है, पीछे मन ही मन उक्त मन्त्रसे

'मैं स्वयं देवतास्वरूप हूं' इत्यादि रूपसे चिन्ता करें। तदनन्तर उस मन्त्रसे ध्यान करें। मन्त्रध्यान करते करते सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। यह पंचतत्त्व सिद्ध होने पर मनुष्य विष्णुरूप हो जाते हैं और कदापि यममन्दिर नहीं जाते।

पंचभूत पंचतत्त्व हैं। तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है— पञ्चतत्त्वका उदय स्थिर करके शान्तिकादि षट्कर्म करने होते हैं। शान्तिकार्यमें जलतत्त्व, वशीकरणमें वह्नितत्त्व, स्तम्भनमें पृथ्वीतत्त्व, विद्वेषमें आकाशतत्त्व, उच्चाटनमें वायुतत्त्व और मारणमें वह्नितत्त्व प्रशस्त है। पंचतत्त्वमें उदय-निर्णय करके शान्तिकादि कार्य करने होते हैं, इसीसे पंचतत्त्वोदयका विषय अति संक्षेपमें लिखा गया। भूमितत्त्वका उदय होनेसे दोनों नासापुटसे दण्डाकारमें श्वास निकलता है, जलतत्त्व और अग्नितत्त्वके उदयकालमें नासिकाके ऊर्ध्वभाग हो कर श्वास प्रवाहित होता है। वायुतत्त्वके उदयके समय वक्रभावमें तथा आकाशतत्त्वके उदय होनेसे नासिकाके अग्रभाग हो कर श्वास निकला करता है। इन सब श्वास निर्गमन द्वारा किस समय किस तत्त्वका उदय होता है, उसका स्थिर करना होगा। पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्तम्भन और वशीकरण, जलतत्त्वके उदयमें शान्ति और पुष्टिकर्म, वायुतत्त्वके उदयमें मारणादि क्रूरकर्म तथा आकाशतत्त्वके उदयके समय विषादि नाशकार्य प्रशस्त है।

पञ्चतत्त्वक मण्डल—जिस तत्त्वके उदयमें जो सब कार्य कहे गये हैं, उस तत्त्वका मण्डल निर्माण कर कार्य-साधन करना होता है। आकाशतत्त्वमें ६ बिन्दुयुक्त मण्डल, वायुतत्त्वमें स्वस्तिकोपेत त्रिकोणाकार मण्डल, अग्नितत्त्वमें अर्द्धचन्द्राकृति, जलतत्त्वमें पद्माकार और पृथ्वीतत्त्वमें सवज्र चतुरस्र मण्डल करके कार्य करना होता है। (तन्त्रसार) तत्त्व देखो।

पञ्चतन्त्र (सं० क्ली०) नीतिशास्त्र विशेष, विष्णुशर्मा-विरचित एक संस्कृत ग्रन्थ। राजा सुदर्शनके पुत्रको धर्म और नीतिविषयमें ज्ञान देनेके लिए हो उन्होंने ५वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ बनाया। ६ठीं शताब्दीके प्रथम भागमें नौशेरवानके राजत्वके समय यह ग्रन्थ पह्लवी भाषामें और पीछे ८वीं शताब्दीके मध्य भागमें अबदुल्लाबिन मुस्तफा कर्तृक अरबी भाषामें अनुवादित हुआ। पीछे यह उर्दूमें तथा तुर्कभाषामें 'हुमायुन् नामा' नामसे भाषान्तरित हुआ। इसके बाद इसका सिमन सेथ कर्तृक ग्रोक भाषामें और पीछे हिब्रु, आरामेइक, इटाली, स्पेन और जर्मनभाषामें अनुवाद किया गया। १३वीं शताब्दीको हिब्रुके अनुकरणमें कापूआराजाके कहनेसे यह ग्रन्थ लैटिन भाषामें अनुवादित हुआ था। १६वीं शताब्दीको अङ्गरेजीमें; पीछे १६४४ और १७०८ ई०को फरासी भाषामें तथा इनसे धीरे धीरे यूरोपकी समस्त वर्त्तमान भाषाओंमें यह ग्रन्थ अनुवादित हो कर 'पिल्पेका गल्प' (Pilpay's fables) नामसे प्रसिद्ध हुआ। तामिल और कणाड़ी प्रभृति दाक्षिणात्य भाषाओंमें भी इसका अनुवाद देखा जाता है। विभिन्न स्थानोंसे प्राप्त पञ्चतन्त्र ग्रन्थका कुछ पाठान्तर देखनेमें आता है। संस्कृत और कणाड़ीमें जो पंचतन्त्र लिखा गया है उसके पढ़नेसे मालूम होता है कि गङ्गानदीके किनारे पाटलीपुत्र नगरमें राजभवन था, किन्तु अन्य किसी किसी ग्रन्थमें दाक्षिणात्यके महिलारोप्य नगरमें इस राजभवनकी कथा लिखी है। ईसाई धर्म-ग्रन्थ बाइबल छोड़ कर और कोई भी ग्रन्थ पंचतन्त्रकी अपेक्षा जगत्‌में विस्तृति और ख्यातिलाभ न कर सका।

पञ्चतन्मात्र (सं० क्ली०) पंचगुणितं शब्दादिभूत सूक्ष्मात्मकं तन्मात्रम्। सूक्ष्मपंच महाभूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तन्मात्र हो पंचतन्मात्र है। इसी पंचतन्मात्रसे पञ्चमहाभूतकी उत्पत्ति हुई है। सांख्यके मतसे—प्रकृतिसे महत् (बुद्धि), महत्‌से अहङ्कार, अहङ्कारसे एकादश इन्द्रिय और पंचतन्मात्रकी उत्पत्ति हुई है। यह पंचतन्मात्र प्रकृतिविकृति अर्थात् प्रकृतिको विकृति है। शब्दतन्मात्रसे आकाश है, इसी कारण आकाशके गुण शब्द है, शब्द और स्पर्शतन्मात्रसे वायु है, इसीसे वायुके दो गुण हैं, शब्द और स्पर्श, शब्द, स्पर्श और रूपतन्मात्र तेज है, इसीसे तेजके तीन गुण माने गये हैं, शब्द, स्पर्श और रूप। शब्द, स्पर्श, रूप और रसतन्मात्रसे जलको उत्पत्ति हुई है, इस कारण जलमें ४ गुण हैं, यथा—शब्द, स्पर्श, रूप और रस। गन्धतन्मात्र पृथिवी है, इसीसे पृथ्वीके पांच गुण हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध।

इस प्रकार पंचतन्मात्रमें पंचमहाभूतकी उत्पत्ति हुई। फिर जब पंचमहाभूत लीन हो जाता है, तब आकाश शब्दतन्मात्रमें, वायु स्पर्शतन्मात्रमें, तेज रूपतन्मात्रमें, जल रसतन्मात्रमें और पृथ्वी गन्धतन्मात्रमें लीन हो जाती है। इसी प्रकार सभी भूतोंकी सृष्टि और लय हुआ करता है, जब तक प्रकृतिकी सृष्टि रहेगी, तब तक इसी प्रकार उत्पत्ति और लय हुआ करेगा। जब प्रलयकाल उपस्थित होगा, तब पंचतन्मात्र बुद्धिमें और बुद्धि प्रकृतिमें लीन हो जायगी। (सांख्यतत्त्वकौ॰)

पञ्चतप (सं॰ पु॰) पंचभिस्तेजस्विभिः अग्निचतुष्टय-सूर्य्यैस्तपति तप-अच्। वह जो पंचाग्नि द्वारा तपस्या करते हैं।

पञ्चतपस् (सं॰ त्रि॰) अग्न्यादिभिः पंचभिस्तेजःपदार्थैस्तपति यः पंच-तप-असुन्। अग्निचतुष्टय और सूर्य्य यह पंचकयुक्त तपस्वी। चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके ग्रीष्मकालमें जो खुले मैदानमें बैठ कर तपस्या करते हैं, उन्हींको पंचतपस् कहते हैं।

"तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गम्यते।
पञ्चमः पञ्चतपसस्तपनो जातवेदसाम्॥"
(शिशुपा॰ २।५१)

पञ्चतपा (हिं॰ पु॰) पञ्चतपस् देखो।

पञ्चतय (सं॰ त्रि॰) पञ्च अवयवा यस्य, अवयवे तयप्। पंचावयव, पंचसंख्या, पांचका अदद।

पञ्चतरु (सं॰ पु॰) पांच वृक्ष, मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन।

पञ्चता (सं॰ स्त्री॰) पंचानां भूतानां भावः तल् टाप्। मृत्यु, मौत, विनाश। मृत्यु होनेसे पञ्चभूत स्वरूपमें अवस्थान करता है, इसीसे पंचता शब्दसे मृत्युका बोध होता है।

"स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते।
नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश॥"
(भागवत ५।८।५२)

२ पंचभाव, पांचका भाव।

"धान्ये सदे लवे चाद्ये नाति क्रामति पञ्चतां॥"
(मनु॰ ८।१५१)

पञ्चताल (सं॰ पु॰) अष्टतालका एक भेद। इस भेदमें पहले युगल, फिर एक, फिर युगल और अन्तमें शून्य होता है।

पञ्चतालेश्वर (सं॰ पु॰) शुद्ध जातिका एक राग।

पञ्चतिक्त (सं॰ क्ली॰) पंचगुणितं तिक्तं। पंचविध तिक्त द्रव्य, पांच कड़ुई औषधियोंका समूह—गिलोय, कण्टकारी, सोंठ, कुट और चिरायता। पञ्चतिक्तका काढ़ा ज्वरमें दिया जाता है। भावप्रकाशमें पञ्चतिक्त ये हैं—नीमकी जड़की छाल, परवलकी जड़, अड़ूसा, कण्टकारि और गिलोय। यह पंचतिक्त ज्वरके अतिरिक्त विसर्प और कुष्ठ आदि रक्त दोषके रोगों पर भी चलता है।

पञ्चतिक्तघृत (सं॰ क्ली॰) घृतौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ४ सेर; क्वाथार्थ नीमकी छाल, परवलकी जड़, कण्टकारी, गुलंच, अड़ूसेकी छाल, प्रत्येक १० पल; पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष १६ सेर; कल्कार्थ मिश्रित त्रिफला ८१ सेर। पीछे यथानियम घृत पाक करके सेवन करनेसे कुष्ठ, दुष्टव्रण और ८० प्रकारकी वातज व्याधि विनष्ट होती हैं। (भैषज्यर॰ कुष्ठरोगाधि॰)

पञ्चतिक्तघृतगुग्गुलु (सं॰ पु॰) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—घृत ४ सेर; क्वाथार्थ नीमकी छाल, गुलंच, अड़ूसेकी छाल, परवलकी पत्तियां, कण्टकारी प्रत्येक १० पल; अग्रपोट्टलीवद्ध गुग्गुलु ५ पल; पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष ८ सेर, काढ़ेको छान कर जब वह उष्ण रहे, उसी समय उसमें पोटलीका गुग्गुलु मिला दे। बाद घीमें इस क्वाथ-जलको पाक करना होगा। कल्कार्थ अकवन, विड़ङ्ग, देवदारु, गजपिप्पली, यवक्षार, साचिक्षार, सोंठ, हल्दी, सौंफ, चई, कुट, ज्योतिष्मती, मिर्च, इन्द्रयव, जीरा, चितामूल, कुटकी, भिलावां, वच, पिपरामूल, मञ्जिष्ठा, अतीस, त्रिफला, वनयवानी प्रत्येक २ तोला। यथानियम घृतपाक करके सेवन करनेसे कुष्ठ, नाड़ीव्रण, भगन्दर, गण्डमाला, गुल्म, मेह आदि रोग जाते रहते हैं। (भैषज्यरत्ना॰ कुष्ठाधि॰)

पञ्चतीर्थ (सं॰ क्ली॰) पंचानां तीर्थानां समाहारः। तीर्थपंचक। यह पंचतीर्थ स्थान स्थानमें भिन्न प्रकारका है। यथा—काशीस्थित पंचतीर्थ;

"ज्ञानवापीमुपस्पृश्य नन्दिकेशं ततोऽर्च्चयेत्।
तारकेशं ततोऽभ्यर्च्य महाकालेश्वरं ततः।
ततः पुनर्दण्डपाणिमित्येषा पञ्चतीर्थिका॥"
(काशीखं॰ १००।२८)

ज्ञानवापी, नन्दिकेश, तारकेश, महाकालेश्वर और दण्डपाणि यही पंचतीर्थ हैं। पुरुषोत्तम स्थानमें मार्कण्डेयवट, कृष्ण, रौहिणेय, महासमुद्र और इन्द्रद्युम्न सरोवर यही पंचतीर्थ हैं। पुरुषोत्तममें पंचतीर्थ करनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।

"मार्कण्डेये वटे कृष्णे रौहिणेये महोदधौ।
इन्द्रद्युम्नसरः स्नात्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥" (तीर्थतत्त्व)

पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं उनमें स्नान करनेसे जो पुण्य लिखा है, एक एक पंचतीर्थमें स्नान करनेसे वही पुण्य प्राप्त होता है।

"पृथिव्यां यानि तीर्थानि सर्वाण्येवाभिषेचनात्।
तत् पञ्चतीर्थस्नानेन समं नास्त्यत्र संशयः ॥"
(वराहपुराण)

एकादशीमें विश्रान्ति, द्वादशीमें शौकर, त्रयोदशीमें नैमिष, चतुर्दशीमें प्रयाग तथा कार्तिकमासमें पुष्कर तीर्थमें स्नान करनेसे अक्षय फल प्राप्त होता है।

पञ्चतृण (सं० क्लो०) कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यही पंचतृण।

"कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चैव तृणोद्भवम्।
पञ्चतृणमिदं ख्यातं तृणजं पञ्चमूलकम् ॥"
(परिभाषाप्र०)

भावप्रकाशके मतसे पंचतृण यह है—शालि, इक्षु, कुश, काश और शर।

पञ्चत्रिंश (सं० त्रि०) ३५ संख्याका पूरण, पैंतीसवां।

पञ्चत्रिंशत् (सं० त्रि०) ३५, पैंतीस।

पञ्चत्रिंशति (सं० स्त्री०) ३५की संख्या।

पञ्चत्व (सं० क्लो०) पंचानां क्षित्यादि भूतानां भावः। १ मरण, शरीर संघटित करनेवाले पांचों भूतोंका अलग अलग अवस्थान। २ पंचका भाव, पांचका भाव।

पञ्चथ (सं० त्रि०) पंचानां पूरणः, (थट् च छन्दसि। पा ५।२।५०) इति वेदे थट्। पंचसंख्याका पूरण, पांचवां।

पञ्चम (सं० पु०) कोकिल, कोयल।

पञ्चदक (सं० पु०) देशभेद, एक देशका नाम।

पञ्चदश (सं० त्रि०) पंचदशानां पूरणः, पूरणे डट्, पंचाधिका दश यत्र वा। १ पंचदश संख्याका पूरण, पन्द्रहवां। (पु०) २ पन्द्रहकी संख्या। ३ तिथि।

पञ्चदशकृत्वस् (सं० अव्य०) पंचदश-कृत्वस्। पंचदश-वार, पन्द्रह बार।

पञ्चदशधा (सं० अव्य०) पंचदश-प्रकारे धाच्। पंचदश प्रकार, पन्द्रह तरहका।

पञ्चदशन् (सं० त्रि०) पंचाधिका दश। पंचाधिक दश-संख्या, पन्द्रह।

पञ्चदशाह (सं० पु०) पंचदश-अहन्। १५ दिन।

पञ्चदशाहिक (सं० त्रि०) पंचदश दिन मध्य व्रतभेद, १४, १५ दिनमें होनेवाला व्रत।

पञ्चदशिन् (सं० त्रि०) पंचदश परिमाणस्य परिमाणार्थे इनि। पंचदश परिमाणयुक्त, पन्द्रहवां।

पञ्चदशी (सं० स्त्री०) पंचदशानां पूरणी-डट् स्त्रियां ङीप्। १ पूर्णिमा, पूर्णमासी। २ अमावस्या। ३ वेदान्तका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ।

पञ्चदीर्घ (सं० त्रि०) पंचसु अवयवेसु दीर्घः शरीरस्य स्मृतिशास्त्रोक्तलक्षण। पंचस्थल। शरीर पंचावयव-लक्षणविशेष। शरीरके पांच स्थान जिनके दीर्घ होते हैं, वे सुलक्षणाक्रान्त हैं।

"बाहू नेत्रद्वयं कुक्षिर्द्वे तु नासे तथैव च।
स्तनयोरन्तरञ्चैव पञ्चदीर्घः प्रशस्यते ॥" (सामुद्रिक)

बाहु, नेत्र, कुक्षि, नासा और वक्ष दीर्घ होनेसे शुभ जनक समझा जाता है।

पञ्चदेव (सं० पु०) पञ्चदेवता देखो।

पञ्चदेवता (सं० स्त्री०) पंचदेवताः मंगलात् कर्मधारयः। पांच प्रधान देवता जिनकी उपासना आज कल हिन्दुओंमें प्रचलित है—आदित्य, गणेश, देवी, रुद्र और केशव। सभी पूजामें इस पंचदेवताकी पूजा करनी होती है। पंचदेवताकी पूजा किये बिना अन्य किसी देवताकी पूजा नहीं करनी चाहिए।

"आदित्यं गणनाथञ्च देवीं रुद्रञ्च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत् ॥" (आह्निकतत्त्व)

इन देवताओंमें यद्यपि तीन वैदिक हैं पर सबका ध्यान और पूजन पौराणिक तथा तान्त्रिकपद्धतिके अनुसार होता है। इन देवताओंमें प्रत्येकके अनेक विग्रह हैं जिनके अनुसार अनेक नाम रूपोंसे उपासना होती है। कुछ लोग तो पांचों देवताओंकी उपासना समान

भावसे करते हैं और कुछ लोग किसी विशेष सम्प्रदायके अन्तर्गत हो कर किसी विशेष देवताकी उपासना करते हैं। विष्णुके उपासक वैष्णव, शिवके उपासक शैव, सूर्यके उपासक सौर और गणपतिके उपासक गाणपत्य कहलाते हैं।

पञ्चद्राविड़—द्राविड़राजके अधीन पांच विशिष्ट जनपद। राजा राजेन्द्रचोड़के राजत्वकालमें उक्त पंच जनपद (८४०-६४ शकमें) दक्षिण भारतमें विशेष प्रसिद्ध हो गये थे। आर्यावर्त्तमें जिस प्रकार एक समय 'पंचगौड़' नामक एक विशिष्टब्राह्मणसमाज स्थापित हुआ था, उसी प्रकार दाक्षिणात्यके ब्राह्मणगण भी पंचद्राविड़ नामक एक स्वतन्त्रसमाजमें गठित हुए। विन्ध्यगिरिके दक्षिण-भागमें द्राविड़, अन्ध्र, कर्णाट, महाराष्ट्र और गुर्जर नामक पंच जनपद पाण्ड्यराजाओंके अधीन उन्नतिके उच्च सोपान पर पहुंच गये थे। स्कन्दपुराणमें लिखा है—

"कर्णाटाश्चैव तैलङ्गा गुर्जरा राष्ट्रवासिनः।
आन्ध्राश्च द्राविड़ाः पञ्च विन्ध्यदक्षिणवासिनः॥"

दाक्षिणात्यके ये पांच स्थान और उनके अधिवासि-गण अन्यान्य निकृष्ट वन्य जातीयके श्रीवृद्धिस्थान माने गये हैं। इन पांच स्थानोंको भाषा तामिल, तेलगु, कणाड़ी, मराठी और गुजरातीके भेदसे स्वतन्त्र है। पाण्ड्यराज राजेन्द्रचोड़ 'पंचद्रमिलाधिपति' उपाधिसे विभूषित थे।

पञ्चधा (सं० अव्य०) पंचन्-धा (संख्यया विधार्थे-धा। पा ५।३।४२) पंचप्रकार।

पञ्चधुनी—कठोराचारी वैष्णव तपस्विसम्प्रदाय, पर-मार्थसाधनके उद्देशसे शरीरमें कष्ट दे कर धर्मचर्या करना ही इनका प्रधानकार्य है। इनमेंसे कोई कोई अपने शरीरके चारों बगल और सामनेमें आग जला कर तपस्या और होम करते तथा अभिलषित द्रव्यादि भोग दिया करते हैं। इनका पंचधुनी नाम पड़नेका यही कारण है। इनमेंसे कुछ साधु ऐसे हैं जो चारों ओर चौरासी धुनी प्रज्वलित कर उनके बीचमें बैठते और जपादि करते हैं।

पञ्चन् (सं० त्रि०) पचि-कनिन्। १ संख्याविशेष, पांच। पञ्चवाचकशब्द—पाण्डव, शिवास्य, इन्द्रिय, सर्ग, व्रताग्नि, महापाप, महाभूत, महाकाव्य, महामख, पुराण-लक्षण, अङ्ग, प्राण, बाण, इन्द्रियार्थ, बाण। २ पंच-संख्यायुक्त, जिसमें पांचका अदद हो।

पञ्चनख (सं० पु०) पंच नखा यस्य। १ हस्ती, हाथी। २ कूर्म, कछुआ। ३ व्याघ्र, बाघ। जिन सब जन्तुओंके पंच नख होते हैं उन्हींको पंचनख कहते हैं। जिनके पंचनख ऐसे हैं जिनका मांस भक्षणीय माना गया है।

"शशकः शल्लकी गोधा खड्गी कूर्मश्च पञ्चमः॥" (स्मृति)

शशक, शल्लकी, गोधा, खड्गी और कूर्म ये पंच-नख हैं।

"भक्ष्याः पञ्चनखाः सेधागोधाकच्छपशल्लकाः।
शशश्च मत्स्येष्वपि हि सिंहतुण्डकरोहिताः॥"
(याज्ञवल्क्य १।१७६)

सेधा, गोधा, कच्छप, शल्लक और शश इन पंच-नखोंका मांस खाया जा सकता है।

पञ्चनद (सं० पु०) पंच पंचसंख्यकाः नद्यः यत्र सन्ति इति टच्। १ पंचनदीयुक्त देशविशेष, पञ्जाब प्रदेश जहां पांच नदियां बहती हैं। इसका नामान्तर वाह्लीक और मद्र-देश है। सतलज, व्यास, रावी, चनाव और झेलम यही पांच नदियां जिनसे पञ्जाब नाम पड़ा है, मूलतान नगर-के दक्षिण भागमें आ कर सिन्धुनदीमें मिल गई हैं।

पञ्जाब देखो।

"इव; पञ्चनदे जातु दुस्तरैः सिन्धुसंगमैः॥"
(राजतर० ४।२४८)

सिन्धुनदके उत्तरदेशमें एक जगह और भी सात नदियोंका सङ्गम देखा जाता है। ये सात नदियां सप्त-सिन्धु नामसे प्रसिद्ध है। सप्तसिंधु देखो।

(क्ली०) पंचानां नदानां समाहारः। २ पांच नदियोंका समाहार। सतलज, व्यास, रावी, चनाव और झेलम ये पांच नदियां। ३ काशीस्थित नदीरूप तीर्थ-रूपतीर्थ। काशीखण्डमें इस पंचनद तीर्थका विवरण इस प्रकार लिखा है—धूतपापा सब प्रकारके पाप दूर करनेमें समर्थ है। इसके साथ पहले धर्मनद अर्थात् पवित्र मङ्गलमय धर्मनद हृदमें सर्वपापापहारिणी धूत-पापा और किरणा आ कर मिल गई है। पीछे यथासमय भगीरथानीत भागीरथी, यमुना और सरस्वती ये तीनों नदियां आ कर मिली हैं। धर्मनदमें ये पांच नदियां

मिली हैं इस कारण इसे पंचनद कहते हैं। इस पंचनद तीर्थमें स्नान करनेसे जीवको पुनः पञ्चभौतिक शरीर धारण नहीं करना पड़ता। सभी तीर्थोंकी अपेक्षा पंचनदतीर्थका माहात्म्य अधिक है। इस तीर्थमें यथापूर्वक श्राद्ध करनेसे श्राद्धकर्त्ताके पितृपितामहगण नाना योनिगत होने पर भी बहुत जल्द मुक्त हो जाते हैं। ४ अपर तीर्थभेद, एक दूसरे तीर्थका नाम। महाभारतमें इसका उल्लेख देखनेमें आता है।

"अथ पञ्चनदं गत्वा नियतो नियताशनः।
पञ्चयज्ञानवाप्नोति क्रमशो येऽनुकीर्तिताः॥"

(भार० ३।८३।७९)

५ असुरभेद, एक असुरका नाम।

"हत्वा पञ्चनदं नाम नरकस्य महासुरम्॥"

(हरिवंश १२०।८८)

पञ्चनमस्काल्—तैलङ्ग देशवासी बढ़ई जाति। ये लोग महिसुरमें पञ्चवल और द्राविड़में कम्मालर नामसे प्रसिद्ध हैं। ताम्र लौह आदि धातु, प्रस्तर और काष्ठादिका कारुकार्य ही इनका जातीय व्यवसाय है। कहते हैं, कि यह जाति शिवजीके पंचमुखसे निकली है, इस कारण इस जातिके लोग 'पंचनम्' कहलाते हैं। ये लोग यज्ञोपवीत पहनते और अपनेको साधारण देवलब्राह्मणश्रेणीसे उच्च बतलाते हैं। आचार-व्यवहारमें विशेष परिपाटी नहीं है, साधारणतः सभी अपरिष्कार रहते हैं। यही कारण है कि नीचसे नीच जाति भी इनके हाथका छूआ जल नहीं पीते। पूर्व समयमें ये लोग विवाहादिमें भी पालकी पर चढ़ने नहीं पाते थे तथा छतरी और जूतेका व्यवहार भी इनमें निषिद्ध था।

व्यवसाय विशेषसे इनके मध्य पांच विभिन्न थाकोंकी उत्पत्ति हुई है। जो लोग सोनेके काम करते वे कंशाली, लोहेके काम करनेवाले कमारी तथा पीतलके काम करनेवाले कसेरा कहलाते हैं। इनके मध्य एकमात्र स्वर्णकारगण ही चतुर होते तथा थोड़ा बहुत लिखना पढ़ना जानते हैं। अवशिष्ट सभी श्रेणीके लोग मूर्ख होते हैं। द्राविड़के कम्मालरोंके मध्य पांच थाक रहने पर भी वे तैलङ्गवासीकी अपेक्षा उच्चश्रेणीके समझे जाते हैं। पञ्चवलका विवरण पञ्चवल शब्दमें देखो।

पञ्चनवत (सं० त्रि०) पंचानवेवां।

पञ्चनवति (सं० स्त्री०) पंचानवेकी संख्या, ९५।

पञ्चनाथ—मलमास माहात्म्यके प्रणेता।

पञ्चनाथी—विजयनगरके तिरुनाथके विख्यात मन्दिरके सामने एक पुण्यतीर्थ और पुष्करिणी। यह तञ्जावुरसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यह तीर्थक्षेत्र और मन्दिर तिसोसर नामक एक ऋषिने बनाया गया है। यहां प्रति वर्ष 'शवयन्तनम्' उत्सवमें लाखों आदमी जमा होते हैं। कहते हैं, कि इस पुष्करिणीमें स्नान करनेसे सर्वरोगक्षय होता है।

पञ्चनाथेरमलय—दक्षिण आर्काट जिलेके अन्तर्गत तीण्डूर ग्रामके निकटवर्त्ती एक पर्वत। इसके शिखर पर पत्थर काट कर तीन कन्दरायें बनाई गई हैं जिनमें प्रस्तरनिर्मित शय्यादि और बुद्धमूर्त्ति प्रतिष्ठित तथा रक्षित हैं।

पञ्चनामन् (सं० त्रि०) पंचनामयुक्त, जिसके पांच नाम हों।

पञ्चनिदान (सं० क्ली०) रोग जाननेके पांच प्रकारके उपाय, निदान, पूर्वरूप, उपशय, सम्प्राप्ति और रोगविज्ञान इन्हीं पांचोंको पंचनिदान कहते हैं।

पञ्चनिधन (सं० क्ली०) सोमभेद।

पञ्चनिम्ब (सं० क्ली०) नीमके पांच अवयव—पत्ता, छाल, फूल, फल और मूल।

पञ्चनिम्बचूर्ण (सं० क्ली०) औषधभेद, नीमकी पत्तियां, छाल, फूल, फल और मूल कुल मिला कर एक भाग, विड़ङ्क २ भाग और सत्तू १० भाग। इन सबको एक साथ मिला कर मीठा करनेके लिए उसमें चीनी डाल दे। प्रति दिन २ मात्रा करके सेवन करनेसे पित्तश्लेष्मा जनित शूल और अम्लपित्त रोग जाता रहता है। इसका अनुपान जल और मधु है।

पञ्चनी (सं० स्त्री०) पञ्चाते प्रपञ्च्यते पाशकोऽत्रनियमो यत्र, पचिविस्तारे ल्युट्, स्त्रियां ङीप्। शारिफलक।

पञ्चनीराजन (सं० क्ली०) पंचानां नीराजनानां समाहारः। पंच प्रकार आरात्रिक, पांच तरहकी आरती।

नीराजन देखो।

पञ्चपक्षिन् (सं० पु०) शिवोक्त पक्षिपञ्चकाविकार द्वारा प्रश्नादि जाननेके लिए शाकुनशास्त्रभेद। इस शाकुन-

शास्त्रमें अ, इ, उ, ए और ओ ये पांच स्वर पारिभाषिक पंचपक्षीरूपमें निर्दिष्ट हुए हैं, इसीसे इस शास्त्रका पञ्चपक्षिशास्त्र नाम पड़ा है।

पञ्चपक्षिशाकुन नामक ग्रन्थमें लिखा है, एक समय मुनियोंने महादेवसे पूछा था, 'प्रभो! भविष्यकी बातें जाननेका कौन-सा उपाय है।' इस पर शिवजीने कहा था, 'वर्त्तमान, भूत और भविष्यत् ये सब वृत्तान्त जाननेके लिए पंचपक्षी अर्थात् शकुनशास्त्र प्रकाशित करता हूं। इस शकुनशास्त्रके अनुसार सभी कार्यों में लाभालाभ, शुभाशुभ और जयपराजय आदि जाने जायंगे। कल्पित पक्षियोंका बलाबल, शत्रु मित्रभाव आदि विशेषरूपसे जानना आवश्यक है। प्रश्नकर्त्ता जब प्रश्न करें, तब दैवज्ञको सतर्क हो कर उसका निरीक्षण करना चाहिए। पीछे प्रश्नकर्त्ताका कार्य देख कर उनके मानसिक भावका निरूपण करना चाहिये।'

पंचपक्षी अ, इ, उ, ए और ओ इन पांच स्वरोंको पक्षीकी कल्पना करनी होती है। पक्षियोंके नाम श्येन, पिङ्गल, वायस, कुक्कुट और मयूर हैं। इनकी भोजन, गमन, राज्य, निद्रा और मरण ये पांच अवस्था हैं। उक्त पक्षियोंमें श्येन पूर्व दिशाका अधिपति, पिङ्गल दक्षिण दिशाका, काक पश्चिम दिशाका, कुक्कुट उत्तर दिशाका और मयूर चारों कोनोंका अधिपति है। इनमेंसे श्येन और काक भविष्यत् काल, कुक्कुट वर्त्तमानकाल, पिङ्गल और मयूर भूतकाल है। पक्षियोंके मध्य श्येन हिरण्य वर्ण, पिङ्गल श्वेतवर्ण काक रक्तवर्ण, कुक्कुट विचित्रवर्ण और मयूर श्यामलवर्ण है। श्येनादि पक्षीसे काक बलवान् है। श्येन और वायस पुरुष, पिङ्गल स्त्री, कुक्कुट स्त्री और पुरुष तथा मयूर नपुंसक है। इनमेंसे श्येन और पिङ्गल पक्षी ब्राह्मणजाति, काक क्षत्रिय, कुक्कुट वैश्य और शूद्र तथा मयूर अन्त्य जातिका है। पक्षियोंकी जाति, मित्र, वर्ण, अवस्था आदि द्वारा प्रश्नका शुभाशुभ जाना जायगा।

यह प्रश्नगणना दो प्रकारसे की जा सकती है। प्रथम प्रश्न, वाक्य अथवा उसके नामके प्रथममें जो स्वरवर्ण रहेगा अथवा उसके प्रथमवर्णमें संयुक्त जो स्वर रहेगा उसका अवलम्बन करके अ, इ, उ, ए और ओ इन पांच स्वरोंके मध्य स्वजातीय एक स्वरकी कल्पना कर लेनी होगी यथा—मेरे मनमें क्या है, ऐसा प्रश्न करने पर 'मेरे' इस शब्दका आद्यस्वर एकार है, इसका स्वजातीय स्वर ऐकार है, इसे स्वरकी कल्पना करनी होगी। इस प्रकार प्रश्नकर्त्ताका प्रश्नवाक्य सुन उसका आद्यस्वर वा आद्यवर्ण संयुक्त स्वर ग्रहण करके निम्नलिखितरूपसे वारनिर्णय करना होगा, पीछे उस कल्पित वार द्वारा शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षके भेदसे पक्षीका निरूपण करके प्रश्नोक्त द्रव्य स्थिर करना होगा। तदनन्तर पक्षीकी भोजनादि-अवस्था देख कर शुभाशुभ फल कह देना चाहिये।

प्रश्नवाक्यके आद्यस्वर द्वारा वारकी कल्पना करके उस वारमें जो पक्षी होगा पहले उसी पक्षीको ले कर गणना करनी होगी। यह पक्षी दिनपक्षी पदवाच्य है। दिनपक्षी कार्यरूपी है। इस दिनपक्षी द्वारा नष्ट और चिन्तित द्रव्य-समुदाय तथा स्त्री पुरुष आदिका शुभाशुभ फल जाना जाता है। प्रश्नकालमें लग्न स्थिर करके उस लग्नमें उस पक्षीकी भोजन आदि अवस्था मालूम हो जानेके बाद फल निश्चय करना गणकका कर्त्तव्य है। गणकको पहले वस्तु और विषय स्थिर करके पीछे उसका फलाफल कह देना चाहिए।

आकारसे ले कर ओकार तक पांच स्वर पक्षिरूपमें माने गये हैं, यह पहले ही कहा जा चुका है। इन पांच स्वरोंके मध्य अ, आ इन दो स्वरोंमें अ; इ, ई इन दो स्वरोंमें इ; उ, ऊ इन दो स्वरोंमें उ; ए, ऐ इनमें ए; ओ, औ इनमें ओ वर्ण ग्रहण करना होगा। इस प्रकार सभी वर्णों द्वारा पक्षीकी कल्पना करनी होगी। ऋ, ॠ, ऌ, ॡ ये चार वर्ण गणनामें नहीं लिये जाते। यदि प्रश्नके आदि वर्णमें यही स्वर रहे, तो उन्हें व्यञ्जनके मध्य सन्निवेशित करके उच्चारणमें जो स्वर आयेगा, वही स्वर ग्राह्य करना होगा। अ पूर्वदिशाका, इ दक्षिणदिशाका, उ पश्चिमदिशाका, ए दोनों दिशाओंका, ओ अवशिष्ट सभी दिशाओंका अधिपति है। दिशा जाननेकी यदि जरूरत हो, तो उसे दिगधिपति पक्षी द्वारा जानना चाहिए। प्रश्नके आद्यवर्णमें जो स्वर रहेगा, उसका पंचम स्वर जिस दिशाका अधिपति होगा, उस

दिशाको सभी कर्मोंमें विशेषतः यात्राकालमें त्याग करना चाहिये।

व्यञ्जनवर्णकी जगह इस प्रकार पञ्चस्वर स्थिर कर लेने होते हैं—क, छ, ड, ध, व इन व्यञ्जनवर्णोंमें अ; इ स्वरमें ख, ज, च, न, स, श; उ स्वरमें ग, भ, त, प, य, ष इसी प्रकार ए, ओ इन दो स्वरोंमें इनके बादके व्यञ्जनवर्ण ग्रहण करने होंगे, इसी प्रकार स्वर द्वारा वारनिर्णयकी जगह अ स्वरसे रवि और मङ्गल; इ स्वरसे सोम और बुध; उ स्वरसे बृहस्पति; ए स्वरमें शुक्र; ओ स्वरसे शनिवारका बोध हुआ करता है। तिथिनिर्णय स्थलमें अकारादि पञ्चस्वरमें यथाक्रम नन्दा, भद्रा, रिक्ता, जया और पूर्णा ये पांच तिथियां जाननी होंगी। लग्नका निरूपण करनेमें अ स्वरमें मेष सिंह और विच्छा, इ स्वरमें कन्या, मिथुन और कर्कट; उ स्वरमें धनु और मीन; ए स्वरमें तुलाऔर वृष तथा ओ स्वरमें मकर कुम्भकी कल्पना करनी होती है। लक्षण निरूपण करनेमें अकारमें रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा ये सात नक्षत्र; इ स्वरमें पुनर्वसु, पुष्या, अश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी ये छः नक्षत्र; उकारमें उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाति, विशाखा और अनुराधा ये छः नक्षत्र; एकारमें ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा और श्रवणा ये पांच नक्षत्र; ओकारमें धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती ये पांच नक्षत्र, इसी प्रकार नक्षत्रोंका स्थिर करना होता है। स्वराधिपति स्थिर करनेमें इस प्रकार कल्पना करनी होगी—अकारका अधिपति ईश्वर, इकारका पवन, उकारका इन्द्र, एकारका आकाश और ओकारका अधिपति सदाशिव है। पूर्व और अकारमें पृथिवीतत्त्व और बृहस्पति, दक्षिण और इकारमें जलतत्त्व और शुक्र, पश्चिम और उकारमें मङ्गल और अग्नितत्त्व, उत्तर और एकारमें वायुतत्त्व और बुध, ऊपर ओकारमें आकाशतत्त्व और शनिकी कल्पना की जाती है।

पृथिवीतत्त्वमें संग्रामविषयक प्रश्न होने पर युद्ध, जलतत्त्वमें प्रश्न होने पर सन्धि, अग्नितत्त्वमें प्रश्न होने पर संग्रामजय, वायुतत्त्वमें प्रश्न होने पर युद्धमें भङ्ग और मृत्यु हुआ करती है। वायुतत्त्वमें रोगादि विषयक प्रश्न होने पर वायुजन्यरोग, अग्नितत्त्वमें प्रश्न होने पर पित्तजनितरोग, जलतत्त्वमें प्रश्न होने पर कफजन्यरोग और पृथिवीतत्त्वके समय प्रश्न होने पर वायुपित्तकफका मिश्रताजनित रोग हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। प्रश्नकर्त्ता यदि वायुतत्त्वकालमें प्रश्न करके अग्नितत्त्वके समय चला जाय, तो वातपित्तजनित रोग हुआ है, ऐसा स्थिर करना चाहिए। सभी तत्त्वोंके वर्णका निरूपण करके वर्ण स्थिर किया जाता है। वायुतत्त्व नीलवर्ण, अग्नितत्त्व रक्तवर्ण, पृथिवीतत्त्व पीतवर्ण और जलतत्त्व शुक्लवर्णका है। पक्षियोंके भोजनादि अवस्थानुसार फल हुआ करता है। पक्षियोंकी भोजनावस्थामें प्रश्न होने पर एक मासमें, गमनावस्थामें प्रश्न होने पर एक पक्षमें, राज्यावस्थामें प्रश्न होने पर एक दिनमें और स्वप्नावस्थामें प्रश्न होने पर एक वर्षमें फल मिलता है। इसी प्रकार फलके कालका निरूपण किया जाता है। पिङ्गल द्वारा चतुष्पद जीव, श्येन और वायु द्वारा द्विपदजन्तु, कुक्कुट द्वारा नखायुध और शृङ्गायुध जन्तु तथा मयूर द्वारा पक्षिजाति लक्षित होगी। काक सबसे बलवान् है। काकसे श्येन, श्येनसे कुक्कुट, कुक्कुटसे पेचक और पेचकसे मयूर दुर्बल है, ऐसा स्थिर करना चाहिए। इसी प्रकार पक्षी, तत्त्व, वार और लग्न आदिका स्थिर कर फलाफल निर्णय किया जाता है।

धातुविषयक प्रश्न होने पर पहले स्वर द्वारा वारका उदय स्थिर करना होगा। सोमवार और शुक्रवारके उदय होने पर रौप्य, बुधवारमें उदय होने पर सुवर्ण, बृहस्पतिवारके उदयमें रत्नयुक्त सुवर्ण, रविवार होने पर मुक्ता, मङ्गलवार होने पर ताम्र और शनिवार होने पर लौह स्थिर करना होगा।

उद्भिद्विषयक प्रश्नमें यदि सोम वा शुक्रवारका उदय हो, तो गुल्म वा वल्ली, बुधवारमें उदय होनेसे लता वा कन्द, बृहस्पतिवारके उदयमें पत्र, रविवारमें फल, शनि वा मङ्गलवारमें मूल यही स्थिर करना होता है। गुप्तधनादिविषयक प्रश्न होने पर श्येनपक्षी द्वारा धन पृथिवीमें गड़ा हुआ है, ऐसा जानना चाहिए। इसी प्रकार पिङ्गल द्वारा गुप्तद्रव्य जल और पङ्कके मध्य, काक

द्वारा अपहृत द्रव्य हृतमध्य, कुक्कुट द्वारा असमध्य, श्येन और मयूर द्वारा जानना होगा कि हृतद्रव्य गृहमध्य तथा श्येन और पेचक द्वारा यह निरूपण करना चाहिए कि हृतधन ग्रामके मध्य है। काक द्वारा यह जाना जाता है, कि किसी आत्मीयने उसे पाया है, मयूर द्वारा हृतधन दूसरे ग्राममें पहुंच गया है,ऐसा स्थिर करना चाहिए। इत्यादि प्रकारसे हृतवस्तुकी प्रश्नगणना की जाती है।

इन पंचपक्षियोंमें फिर शत्रु मित्र हैं। श्येनका मित्र मयूर, मयूरका मित्र पिङ्गल, कुक्कुटका मयूर और पिङ्गल, काकका मयूर, पिङ्गलका मयूर और कुक्कुट तथा काक और कुक्कुट श्येनके शत्रु, श्येन और काक कुक्कुटके शत्रु, पिङ्गल, श्येन और कुक्कुट काकके शत्रु माने गए हैं।

रवि और मङ्गलवार तथा शुक्ल और कृष्णपक्षमें श्येनपक्षी, शनिवार शुक्लपक्षमें मयूर, कृष्णपक्षमें काक, शुक्रवार शुक्लपक्षमें मयूर और कृष्णपक्षमें कुक्कुट, बृहस्पतिवार शुक्लपक्षमें काक और कृष्णपक्षमें पिङ्गल, सोम और बुधवार शुक्लपक्षमें पिङ्गल और कृष्णपक्षमें कुक्कुट अधिपति हुआ करता है। इसीका नाम दिनपक्षी है। इस दिनपक्षी द्वारा प्रश्न द्रव्यका निरूपण किया जाता है। शुक्लपक्षके दिन जिस वारमें जिस पक्षीके बाद जिस पक्षीका उदय होता है, कृष्णपक्षकी रातको उस वारमें उस पक्षीके बाद उसी पक्षीका उदय हुआ करता है। कृष्णपक्षके दिन जिस वारमें जिस पक्षीके बाद जिस पक्षीका उदय होता है, शुक्लपक्षकी रातको भी उस वारमें उस पक्षीके बाद उसी पक्षीका उदय होता है। कृष्णपक्षके दिन पहले जिस पक्षीका उदय होता है, उसके एक एक पक्षीके बाद एक एक पक्षीका उदय होगा। परवर्त्ती सभी पक्षी क्रमशः उदय हुआ करते हैं।

शुक्लपक्षके दिन और कृष्णपक्षकी रातको रवि और मङ्गलवारके सूर्योदयमें पहले श्येन, पीछे क्रमशः पिङ्गलादि पक्षीका उदय हुआ करता है। इन पक्षियोंकी बाल्य, कुमार, तरुण, वृद्ध और मृत ये पांच अवस्थाएं हैं। इन सब अवस्थाओं और तत्वादिको अच्छी तरह जान कर दैवज्ञ प्रश्नका उत्तर करें। पंचपक्षी द्वारा सभी प्रश्नोंकी गणना की जा सकती है।

(शिवोक्त पंचपक्षी)

इस शिवोक्त पंचपक्षीके अलावा कार्त्तिकोक्त पंचपक्षी भी देखनेमें आते हैं। इसे पारिजात-पञ्चपक्षी भी कहते हैं। कार्त्तिकने यह महादेवसे सीख कर मुनियोंके निकट लोकहितार्थ प्रकाशित किया था।

"शृणुध्वं मुनयः सर्वे प्रश्नशास्त्रमनुत्तमम्।
भूतभाव्यार्थविज्ञानं स्कन्दप्रोक्तं महार्थदम्॥
पार्वतीशिववक्त्राभ्यां स्कन्दः श्रुत्वा महामनाः।
प्रश्नशास्त्रमनुस्लाप प्रोवाचेदं महार्थकम्॥" (पञ्चपक्षी)

कार्त्तिकोक्त पांच पक्षी ये हैं—भेरुण्डक, चकोर, काक, कुक्कुट और मयूर। श्वेत, पीत, अरुण, श्याम और कृष्ण क्रमशः इन पांचोंके वर्ण हैं। इस पंचपक्षी द्वारा भी सभी फलाफल जाने जा सकते हैं।

पञ्चपञ्चाश (सं० क्लो०) पञ्चपनकी संख्या, ५५।

पञ्चपञ्चाशत् (सं० स्त्री०) पंचाधिका पंचाशत्। पांच अधिक पचास संख्या का पूरण, पचपनवां।

पञ्चपत्त्रिन् (सं० त्रि०) भागपंचक।

पञ्चपञ्चिनी (सं० स्त्री०) पंच पंच ऋचः परिमाणमस्याः डिनि। पंचदशस्तोमकी विष्टुतिभेद।

पञ्चपत्र (सं० पु०) चण्डालकन्द, एक पेड़।

पञ्चपत्रिका (सं० स्त्री०) गोरक्षी नामका पौधा।

पञ्चपथ—उत्तर पश्चिम भारतके यमुनानदीके दक्षिण तीरवर्त्ती पांच ग्राम जिनके नाम ये हैं—पाणिपथ (पानीपत), सोणपथ, इन्द्रपथ, तिलपथ और वकपथ। ये पंचग्राम धृतराष्ट्रने पाण्डुपुत्रोंको दान किये थे।

पञ्चपदी (सं० स्त्री०) पंच पादा अस्याः अन्त्यलोपः ततो ङीपिपद्भावः। १ ऋग्भेद। २ कुशद्वीपस्थ नदीभेद।

पञ्चपरिषद्—पंचमवार्षिकी सभा। इसका दूसरा नाम मोक्षमहापरिषद् है। चीनपरिव्राजक जब कान्यकुब्जराज शिलादित्यको परित्याग कर आये, तब प्रायः ६४० ई०में अपने राजत्वकालमें राजाने इसी प्रकारकी छठी सभा की थी।

पञ्चपर्णिका (सं० स्त्री०) पंच पंचपत्राण्यस्याः ततः कप, कापि अतः इत्वं गोरक्षीक्षुप, गोरक्षी नामका पौधा।

पञ्चपर्वत (सं० क्ली०) हिमालयके एक शृङ्गका नाम।
पञ्चपर्वन् (सं० त्रि०) चतुर्दशी अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और रविसंक्रान्ति ये पांच दिन।

"चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावस्या च पूर्णिमा।
पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥"
(आह्निकतत्त्व)

पञ्चपल्लव (सं० क्ली०) पंचानां पल्लवानां समाहारः। आम्रादि पत्रपंचक। आम, जामुन, कैथ, बीजपूरक (बिजौरा) और बेल इन पांच पेड़ोंके पत्ते पंचपल्लव कहलाते हैं। गंधकर्ममें यह पंचपल्लव देना होता है।

"आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवं॥"
(शब्दचन्द्रिका)

पूजादि कार्यमें घटस्थापन करते समय पंचपल्लव देना होता है। आम, पीपल, वट पाकड़ और यज्ञोडुम्बर इन पांच वृक्षोंके पल्लव भी पंचपल्लव कहलाते हैं। वैदिकोक्त पूजादि कार्यमें यह पल्लव काम आता है। तान्त्रिक कार्यमें इस पंचपल्लवका व्यवहार नहीं होता।

"अश्वत्थोडुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवाः।
पञ्चपल्लवमित्युक्तं सर्वकर्मणि शोभनम्॥"
(ब्रह्माण्डपु०)

तान्त्रिक घटस्थापनमें कटहल, आम, पीपल, वट और मौलसिरी इन पांच वृक्षोंके पल्लवग्रहणीय हैं।

"पनसाम्रं तथाश्वत्थं वटं बकुलमेव च।
पञ्चपल्लवमुक्तञ्च मुनिभिस्तन्त्रवेदिभिः॥"
(तन्त्रसार)

तान्त्रिक और वैदिक पूजादिमें घटोपरि पंचपल्लव दे कर घटकी स्थापना की जाती है।

पञ्चपहाड़ी—बिहार जिलेके अन्तर्गत सोननदीके तीरवर्ती एक क्षुद्र पर्वत और तदुपरिस्थ एक ग्राम। प्रत्नवित् कनिंहमने इस स्थानका अनुसन्धान करके इष्टकका भग्नस्तूप देखा था। वे ही इस पर्वतको उपगुप्तपर्वत कह गये हैं। तवक्त्-इ-अकबरी नामक मुसलमान इतिहासमें लिखा है, कि बहु प्राचीनकालमें यहां पांच गुम्बजका एक पांच खनवाला मकान था। ९८२ हिजरीमें जब मुगलसेना पटना जीतनेको आई, तब उन्होंने इस भवन को तथा इसको बगलका दाउदका किला देखा था।

पञ्चपाड़ा—उड़ीसाके बालेश्वर जिलान्तर्गत एक नदी। यह बाम, जमीरा, भैरिङ्गी आदि छोटी छोटी नदियोंके योगसे उत्पन्न हुई है।

पञ्चपात्र (सं० क्ली०) पंचानां पात्राणां समाहारः। १ पंचपात्रका सम्मिलन, गिलासके आकारका चौड़े मुँहका एक बरतन जो पूजामें जल रखनेके काममें आता है। इसके मुँहका घेरा पेंदेके घेरेके बराबर ही होता है। २ पंचपात्रकरणक पार्वणश्राद्ध। इसे अन्वष्टका श्राद्ध भी कहते हैं। दो देवपक्ष और तीन पितृपक्ष इन पंचपात्रोंसे श्राद्ध करना होता है। इसीसे इसका नाम पंचपात्र पड़ा है।

पञ्चपाद (सं० त्रि०) पंच पादा यस्य अन्त्यलोपः, समासान्तः। १ पंचपादयुक्त, जिसके पांच पैर हों। (पु०) २ संवत्सर। ऋग्वेदके भाष्यमें लिखा है कि संवत्सर पंच ऋतुस्वरूप है अर्थात् संवत्सर पंचऋतुस्वरूप हुआ करता है। हेमन्त और शिशिर ये दो ऋतु पृथग्भावसे अभिहित नहीं होतीं।

पञ्चपितृ (सं० पु०) पंच पितरः, संज्ञात्वात् कर्मधारयः। पांच पिता।

"जनकश्चोपनेता च यश्च कन्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः।"
(प्रायश्चित्तविवेक०)

जन्मदाता, उपनेता या आचार्य, कन्यादाता, अन्नदाता और भयत्राता ये पांच पिता माने गये हैं।

पञ्चपित्त (सं० क्ली०) पंचगुणितं पंचविधं पित्तं वा पंचविध। पित्त, पित्तपंचक। वराह, छाग, महिष, मत्स्य और मयूर इन पांच प्रकारके जन्तुओंके पित्तको पंचपित्त कहते हैं।

"वराहच्छागमहिषमत्स्यमायूरपित्तकम्।
पंचपित्तमिति ख्यातं सर्वेष्वेव हि कर्मसु॥" (वैद्यकश०)

इनका पित्त निम्बादि द्रव्यमें भावित होनेसे विशुद्ध होता है।

पञ्चपीर—भारतवर्षके उत्तर-पश्चिमसीमान्तवर्त्ती यसुफ

जाई प्रदेशके समतलक्षेत्रके निकटवर्ती एक छोटा पहाड़। यह समुद्रपृष्ठसे २१४० फुट और उच्चसमतलक्षेत्रसे ८४० फुट ऊंचा है। इस गिरिशृङ्ग पर केवल एक वाटिका है जो पांच मुसलमान महापुरुषोंके नाम पर उत्सर्ग की हुई है। पांच पीरोंका आवास होनेके कारण इस पर्वतका नाम पञ्चपीर पड़ा है। सर्वप्राचीन महात्मा-का नाम था बहा-उद्दीन जखारिका। ये मूलतानवासी थे और लोग इन्हें बहावलहक कहा करते थे। निकट-वर्ती हिन्दू अधिवासियोंका कहना है, कि यह स्थान पहले 'पञ्चपाण्डव' नामसे प्रसिद्ध था, पीछे मुसलमानों-के अधिकारमें आनेसे यह उन्हींकी कीर्त्ति प्रकाशित करता है।

पञ्चपीर—मुसलमानोंके पांच महात्मा या पीर। मुसल-मान लोग पञ्चपीरके मान्यके लिए जैसे उत्सवादि करते हैं, निम्न श्रेणीके हिन्दुओंमें भी वैसे ही पञ्चपीरकी पूजा प्रचलित देखी जाती है। जब छोटे छोटे बच्चोंके शिर अथवा और किसी अङ्गमें दर्द होता है, तो उनके मातापिता पञ्चपीरको दूध, जल अथवा सिरनी, जिलेबी आदि भोग दे कर उन्हें खुश करते हैं। उन लोगोंका विश्वास है कि ऐसा करनेसे उनकी पीड़ा बहुत जल्द जाती रहती है। कहीं मुसलमान मुल्ला और कहीं निकृष्ट हिन्दूका पुरोहित इनकी पुरोहिताई करते हैं।

पञ्चपुकुरिया—त्रिपुरा जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां पाट, चावल और चमड़ेका व्यवसाय जोरोंसे चलता है।

पञ्चपुर—पटियालाराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका वर्त्तमान नाम पञ्जोर है। १०३० ई०में आवुरि हनने उक्त स्थान पर पहुंचनेका इस प्रकार पथ बतलाया है—कनौजसे ५० फरजङ्ग उत्तर-पश्चिममें सरसा है, वहांसे १८ फरजङ्ग और दूर जानेसे पञ्जोर नगर मिलता है। यहां प्राचीन ब्राह्मणधर्मके अनेक निदर्शन पाये गये हैं। किन्तु मुसलमान प्रादुर्भावमें वे बिलकुल नष्ट हो गए हैं। आज भी यहां एक पुष्करिणीके किनारे कितने प्राचीन हिन्दुओंके निर्मित स्तम्भ देखनेमें आते हैं। इस पुष्करिणीका जल पवित्र और पुण्यप्रद समझ कर बहुत-से लोग आज भी यहां स्नान करने आते हैं। इस प्राचीन हिन्दूकीर्त्तिके ऊपर मुसलमानोंने जो मसजिद बनाई है, उसके गात्रस्थ प्रस्तरादिमें पञ्चपुर नाम खोदा हुआ है। यहां तीन शिलालिपियां हैं जिनमेंसे सबसे पुरानी टूट फूट गई है।

पञ्चपुराणीय (सं० त्रि०) प्रायश्चित्तार्थं पञ्चकार्षापणलभ्य धेनुभेद।

पञ्चपुष्प (सं० क्ली०) पंचगुणितं पुष्पं। देवीपुराणके अनुसार वे पांच फूल जो देवताओंको प्रिय हैं—चम्पा, आम, शमी कमल और कनेर।

"चम्पकाम्रशमीपद्मकरवीरञ्च पञ्चकं॥"

(देवीपुराण १०७ अ०)

पञ्चप्रदीप (सं० पु०) पंच प्रदीपाः यत्र। १ पंचदीपयुक्त आरती। २ पंचप्रदीपयुक्त धातुमय प्रदीप।

पञ्चप्रस्थ (सं० क्ली०) पंच विषयाः शब्दादयः प्रस्थाः सानव इव यस्य। १ संसाररूपवन। भागवतमें इसका विषय यों लिखा है—

एक समय राजा पुरञ्जन रथ पर (स्थूलदेह पर) चढ़ कर जहां पंचप्रस्थ पांच सानु (शब्दादिविषय) हैं, उसी वन (भजनीय देश)-में गये थे अर्थात् पुरञ्जयने संसारमें प्रवेश किया था। इनका शरासन (कर्त्तृत्वभोक्तृत्वाद्य-भिमान) बहुत बड़ा था। वे जिस रथ पर सवार हुए थे, वह रथ बड़ा ही विचित्र था। रथमें अत्यन्त द्रुतगामी पांच घोड़े (ज्ञानेन्द्रिय) थे। ये पांचों घोड़े दो दण्डों (अहन्ता और ममता)-में निबद्ध थे। रथमें चक्र दो (पाप और पुण्य) अक्ष एक (प्रधान), ध्वजा तीन (सत्त्व, रजः और तमः) बन्धन पांच (प्राणादि पंचवायु), प्रग्रह एक (मन), सारथि एक (बुद्धि), रथीका उप-वेशन स्थान एक (हृदय) और युगबन्धनस्थान दो (शोक और मोह) तथा विषय पांच (पांच कर्मेन्द्रिय) थे। इस प्रकार पुरञ्जय मृगयाकारोके वेशमें रथ पर बैठे हुए थे। इनके गात्रमें स्वर्णमय कवच (रजो गुण) और पृष्ठदेश पर अक्षय तूण था। एकादश अर्थात् अह-ङ्कारोपाधि मन उनका सेनापति हो कर इनके साथ गया था। राजा पुरञ्जय अरण्य (संसारवन)में प्रवेश कर धनुर्वाण (भोगाद्यभिनिवेश और रागद्वेषादि) ग्रहण कर-के शिकारको बाहर निकले। शिकारके ये बड़े प्रिय थे।

इस अनुरक्तिसे समोपवर्त्तिनी धर्मपत्नी (विवेकबुद्धि)-ने उन्हें परित्याग कर दिया था। यद्यपि धर्मपत्नी त्यागको अयोग्य थीं, तो भी राजा उन्हें छोड़ चले गए थे। धर्मपत्नीके साथ रहनेसे स्वेच्छानुसार कार्य करना कठिन हो जाता है इस कारण उन्हें परित्याग कर राजाने कार्यका पथ सुगम कर लिया था। बाद उन्होंने अरण्यप्रदेशमें यथेच्छरूपसे आसुरी वृत्तिका अवलम्बन कर निशित बाण (रागादि) द्वारा वहां जितने वनचारी (भजनीय विषय) थे सबों (आत्मीयको भी)-को मार डाला। इस प्रकार पुरञ्जयने शिकारमें अनेक पशुओंकी हत्या की अर्थात् वे संसारक्षेत्रमें विचरण कर विवेकबुद्धिहीन हो घर लौटे। घर आ कर वे नाना प्रकारके कामोपभोग करने लगे। इस प्रकार संसारारण्यमें विचरण करते करते उनकी नवीन वयस मुहूर्त्तकी तरह बीत गई। अन्तमें पुरञ्जयने संसारारण्यमें विचरण कर देहका परित्याग किया। पीछे उन्होंने फिरसे जन्म लिया, इसी प्रकार वे अनियत जन्मग्रहण करने लगे। भागवत ४र्थ स्कन्धके २५, २६, २७, २८, २९ अध्यायमें इनका विषय विस्तृत रूपसे लिखा है।

इस संसारारण्यका विषय जो लिखा गया उसका तात्पर्य यह कि पुरञ्जय शब्दका अर्थ पुरुष अर्थात् जीव है। वे पुर अर्थात् देहको प्रकटित करते हैं, इसीसे उनका नाम पुरञ्जय पड़ा। यह पुर एक प्रकारका नहीं, अनेक प्रकारका है। इस पुरुषके सखा ईश्वर हैं जो अज्ञेय हैं। पुरुष पुरमात्रका अवलम्बन करते हैं, पर यही संसारारण्य है। पुरुष प्रकृतिकी मायासे विमोहित हो कर अपना स्वरूप नहीं पहचानता और बारम्बार जन्म और मृत्युमुखमें पतित होता है।

विशेष पुरञ्जय शब्दमें देखो।

२ धृतराष्ट्रप्रदत्त पांच ग्राम। पञ्चपथ देखो।

पञ्चप्राण (सं० पु०) पञ्च च ते प्राणाश्च। देहस्थित वायुपञ्चक। शरीरके मध्य जो वायु रहती है, उसे प्राण कहते हैं। यह प्राण पांच है—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान।

"प्राणोऽपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः॥" (अमर)

यह पंचप्राण सारे शरीरमें फैले हुए हैं जिनमेंसे हृदयदेशमें प्राणनामक वायु, गुह्यदेशमें अपानवायु, नाभिदेशमें समानवायु, कण्ठदेशमें उदानवायु और सारे शरीरमें व्यानवायु अवस्थान करता है।

"हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिदेशस्थितः।
उदानः कण्ठदेशे च व्यानः सर्वशरीरगः॥" (तर्कामृत)

वेदान्तके मतसे—इस पंचप्राणके मध्य ऊर्ध्वगमनशील नासाग्रस्थायी वायुका नाम प्राण, अधोगमनशील वायुके पायुस्थानमें स्थायी वायुका नाम अपान, सभी नाड़ियोंमें गमनशील समस्त शरीरस्थित वायुका नाम व्यान है। ऊर्ध्वगमनशील कण्ठस्थित उत्क्रमण वायुको उदान और जो वायु भुक्त अन्नपानादिको समीकरण है अर्थात् रस रुधिर शुक्र पुरीषादि करती है उसे समान वायु कहते हैं। इसके अलावा कोई कोई (सांख्यमतावलम्बी) कहा करते हैं कि नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनञ्जय नामक और भी पंचवायु है। इनमें उद्गिरणकारी वायुको नाग, उन्मीलनकारी वायुको कूर्म, क्षुधाजनक वायुको कृकर, जृम्भनकारी वायुको देवदत्त और पोषणकर वायुको धनञ्जय कहते हैं। किन्तु वैदान्तिक आचार्य प्राणादि पंचवायुमें इस नागादि पंचवायुका अन्तर्भाव करके प्राणादि पंचवायु ही कहा करते हैं। यह मिलित पंचवायु आकाशादि पंचभूतके रजः अंशसे उत्पन्न होती है।

यह पंचप्राण पंचकर्मेन्द्रियके साथ मिल कर प्राणमय कोष कहलाता है। वेदान्तदर्शनके मतसे प्राणकी ५ वृत्तियां हैं, यथा—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। प्राग्वृत्तिका नाम प्राण है इसका काम उच्छ्वासादि है। अवाग्वृत्तिका नाम अपान है, इसका काम मलमूत्रत्याग प्रभृति। जो उक्त दोनोंके सन्धिस्थलमें वृत्तिमान है, उसका नाम व्यान है, इसका काम वीर्यवत् कार्यनिर्वाह और जो सारे शरीरमें समवृत्ति है, उसका नाम समान है। इस समान वायु द्वारा भुक्तान्न रसरक्तादि भाव प्राप्त हो कर सारे अङ्गोंमें लाया जाता है।

(वेदान्तद० २।४।१२)

पञ्चप्रासाद (सं० पु०) प्रसीदन्ति मनांसि यत्र, प्र-सद अधिकरणे घञ्, उपसर्गस्य दीर्घत्वं। १ पंचचूड़ान्वित

प्रासाद, वह प्रासाद जिसमें पांच शिखर हों। २ देव-गृहविशेष जिसे पंचरत्न भी कहते हैं।

"पञ्चवेष्टकचितं रम्यं पंचप्रासादसंयुतम्।
कारयित्वा हरेर्धाम धूतपापो व्रजेद्दिवम्॥" (अग्निपु०)

पञ्चबन्ध (सं० पु०) पंचमः बन्धः भागो यत्र। नष्टद्रव्यका पंचमांश दण्ड।

पञ्चबला (सं० स्त्री०) वैद्यकोक्त पांच प्रकारकी बला जिसके नाम ये हैं—बला, अतिबला, नागबला, राजबला और महाबला।

पञ्चबाण (सं० पु०) पञ्च बाणाः शरा यस्य। १ कामदेव। कामदेवके पांच बाण हैं।

"द्रवणं शोषणं बाणं तापनं मोहनाभिधम्।
उन्मादनं च कामस्य बाणाः पंचप्रकीर्त्तिताः॥"

द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन यही पंच बाण हैं। कामदेवके पांच पुष्पबाणोंके नाम ये हैं—कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल।

"अरविन्दमशोकंच चूतंच नवमल्लिका।
नीलोत्पलश्च पंचैते पंचबाणस्य सायकाः॥"
(शब्दकल्पद्रुम)

(त्रि०) २ पंचबाणविशिष्ट, जिसमें पांच बाण हों।

पञ्चबाहु (सं० पु०) पंचबाहवो यस्य। महादेव।

पञ्चब्रह्म (सं० क्ली०) उपनिषद्भेद।

पञ्चभद्र (सं० पु०) पंचसु अङ्गभेदेषु भद्रः शुभः पुष्पितत्वात्। १ अश्वभेद, जिस अश्वके पांच जगह पुष्पचिह्न हों, उसे पंचभद्र कहते हैं। २ पाचनविशेष, वैद्यकमें एक औषधिगण जिसमें गिलोय, पित्तपापड़ा, मोथा, चिरायता और सोंठ हैं।

पञ्चभूत (सं० क्ली०) पंचानां भूतानां समाहारः क्वचित् संज्ञाप्रयुक्तत्वात् पञ्च च तानि भूतानि चेति कर्मधारयः। क्षिति, अप्, तेज, मरुत् और व्योम यह भूतपञ्चक (जगत् पञ्चभूतात्मक) है। इस पञ्चभूतके संमिश्रण तथा विश्लेषणसे इस जगत्की सृष्टि और नाश होता है। बहुत संक्षेपमें इस पञ्चभूतका विषय लिखा जाता है।

"अभूत्तस्मादहंकारस्त्रिविधः सृष्टिभेदतः।
वैकारिकादहङ्काराद्देवा वैकारिका दश॥
दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः।
तैजसादिन्द्रियाण्यासंस्तन्मात्राक्रमयोगतः।
भूतादिकादहङ्कारात् पञ्चभूतानि जज्ञिरे॥" (शारदाति० १ प०)

सृष्टिभेदसे तीन प्रकारके अहङ्कार उत्पन्न होते हैं। इन तीन प्रकारके अहङ्कारोंमेंसे वैकारिक अहङ्कारसे वैकारिक दश देवता, तैजस अहङ्कारसे समस्त इन्द्रियां और भूतादिक अहङ्कारसे पञ्चभूत उत्पन्न होता है। इस मतमें अहङ्कार ही पञ्चभूतका कारण है।

राघवभट्ट-धृत वचनसे जाना जाता है, कि वैकार अहङ्कार सात्त्विक, तैजस अहङ्कारका नाम राजस और भूतादि अहङ्कार ही तामस अहङ्कार पदवाच्य है। इसी भूतादिसे पञ्चभूतकी उत्पत्ति हुई है।

सांख्यदर्शनके मतमें पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत हुआ है। प्रकृतिसे महान् (बुद्धि), महत्से अहङ्कार, अहङ्कारसे पञ्चतन्मात्र और इस पञ्चतन्मात्रसे पंचमहाभूतकी उत्पत्ति होती है। शब्दतन्मात्रसे आकाश, इसी प्रकार स्पर्श, रूप, रस और गन्धतन्मात्रसे यथाक्रम वायु, तेज, जल और पृथ्वीकी उत्पत्ति मानी जाती है। इसी प्रकार पंचमहाभूतकी उत्पत्ति होती है और लयकालमें यह पंचमहाभूत तन्मात्रमें लीन हो जाता है। वेदान्तके मतानुसार पहले आत्मासे आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथिवी इस प्रकार पंचभूत उत्पन्न हुआ है।

नैयायिकोंका कहना है, कि क्षित्यादिभूतसमूह द्रव्यपदार्थके अन्तर्भुक्त है। क्षिति, जल, तेज, मरुत् और व्योम यह पंचभूत तथा काल, दिक्, देह और मन यही नौ द्रव्य पदार्थ हैं।

जिसके गन्ध है, उसे पृथ्वी कहते हैं। वायु और जलादिमें जो गन्ध मालूम होती है, वह पृथ्वीकी ही है। इसके सिवा पृथ्वीके और भी कई गुण हैं, यथा—गन्धवत्त्व, नाना जातीय रूपवत्त्व, षड़्विधरसवत्त्व और पाकजस्पर्शवत्त्व। पृथ्वी छोड़ कर और किसीमें गन्ध नहीं है, इसीसे गन्धवती कहनेसे पृथ्वीका बोध होता है; अतः गन्धवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। पाषाणादिमें गन्ध मालूम नहीं होती, किन्तु जब पाषाण भस्म किया जाता है, तब उससे एक प्रकारकी गन्ध निकलती है। कोई कोई कहते हैं, कि प्रस्तरादि स्वभावतः ही गन्ध

हीन है ; उसे भस्म करते समय पाकज गन्ध उत्पन्न होती है। पाकज गन्धादि भी पृथिवी भिन्न और किसी भी पदार्थमें नहीं रहती। कारणमें जो गुण नहीं है, कार्यमें वह गुण कभी भी नहीं रह सकता। पाषाणमें गन्ध थी, इसीलिये पाषाणभस्मसे गन्धानुभूति हुई। वायुमें गन्ध नहीं है किन्तु पुष्पादिपराग जब वायुके साथ मिल जाता है, तब वायुसे गन्ध निकलती है। इसीसे वायुको गन्धवह कहते हैं ; पर वह गन्धवान् नहीं है।

नाना जातीय रूप पृथिवी भिन्न और किसीमें नहीं है, इसीसे नानाजातीय रूपवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। जल और तेजमें रूप है सही, पर वह सफेद है। पार्थिवांशवशतः जलमें वर्णभेद देखा जाता है और अग्निका भी पार्थिवांश ले कर विभिन्न रूप हुआ करता है। नाना जातीय रूप केवल पृथिवीमें ही है।

षड्विध रस केवल पार्थिव पदार्थमें वर्त्तमान है; इसीसे षड्विधरसवत्त्व पृथिवीका लक्षण है। जलका स्वाभाविक रस मधुर है। कषाय, लवण आदि रस पार्थिवांशसे उत्पन्न होते हैं। पाकजस्पर्श पृथिवी भिन्न और किसीमें भी नहीं है, इसीलिए पाकज स्पर्शवत्त्व पृथ्वीका लक्षण है। पार्थिव घटशरावादिका जो आमावस्थामें एक प्रकारका स्पर्श रहता है, पीछे अग्निमें पाक होने पर एक और प्रकारका स्पर्श हो जाता है। अग्निमें पाक होनेके बाद कठिनत्व स्पर्श होता है, अथच जल वायु वा विशुद्ध तेजका स्पर्श रहता है, वह विभिन्न नहीं होता। इससे देखा जाता है, कि पाकज स्पर्श केवल पृथ्वीमें ही है, पृथ्वीका स्पर्श उष्ण वा शीत नहीं है। लेकिन उष्णशीतस्पर्श जो देखा जाता है वह जलीयांश और अग्नि योगसे हुआ करता है।

पृथिवीमें कुल १४ गुण हैं, यथा—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग, गुरुत्व और नैमित्तिक द्रवत्व। इनमेंसे रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये चार विशेष गुण हैं। यह पृथिवी दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। पार्थिव परमाणु नित्य और दूसरी सभी पृथिवी अनित्य है। इसी नित्य पृथ्वी अर्थात् पार्थिव परमाणुसे इस सुविशाल पृथिवीकी सृष्टि हुई है। परमाणुके अवयव नहीं है। इस पार्थिवपरमाणुमें भी गन्ध तथा जो सब गुण उल्लिखित हुए हैं, वे सभी गुण हैं, किन्तु वे अनुभूत नहीं होते। मूल पृथिवीमें गुण नहीं रहने पर स्थूल पृथिवीमें गुण नहीं रह सकता। स्थूल पृथिवीकी आदि और अन्त अवस्था परमाणु है।

अनित्य पृथिवी तीन भागोंमें विभक्त है—देह, इन्द्रिय और विषय। यह पार्थिव देह चार प्रकारकी है—जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। मनुष्यादिकी देह जरायुज, पक्षीकी अण्डज जूँ, खटमल आदिकी स्वेदज और लतागुल्मादिकी देह उद्भिज्ज है। इन चार प्रकारकी देहोंमें पूर्वोक्त दो प्रकारकी देह योनिज और शेषोक्त दो अयोनिज है। घ्राणेन्द्रिय ही पार्थिवेन्द्रिय है। जिस इन्द्रिय द्वारा गन्ध मालूम की जाती है, वही घ्राणेन्द्रिय है। नासिकाका नाम घ्राणेन्द्रिय नहीं है। इन्द्रियका अधिष्ठानस्थान नासिका पर्यन्त है। जो देह नहीं है, इन्द्रिय भी नहीं है, अथच पृथिवी है, वही विषय है।

जल यह द्वितीय भूत है। इसके भी अनेक गुण हैं यथा—शुक्लरूप मात्रवत्त्व, मधुर रसमात्रवत्त्व, शीतल स्पर्शवत्त्व, स्नेहवत्त्व और सांसिद्धिक द्रवत्ववत्त्व। जलमें शुक्लरूपके सिवा और कोई रूप नहीं है। पृथिवीमें नाना प्रकारके रूप हैं, इसीसे शुक्लरूपमात्र-विशिष्ट कहनेसे केवल जलका ही बोध होता है। इसीसे शुक्लरूपमात्रवत्त्व जलका लक्षण है। जलमें केवल मधुर रस है और कोई रस नहीं। पृथिवीमें षड्विध रस है, केवल मधुर रस पृथिवीमें नहीं है। सुतरां मधुर रसमात्र-विशिष्ट कहनेसे जलका ही बोध होता है। इसीसे मधुर रसमात्रवत्त्व जलका लक्षण है। शीतलस्पर्श केवल जलमें है और किसीमें भी नहीं ; पृथिवी आदिमें जो स्पर्श है, वह शीतल नहीं है, इसीसे शीतल स्पर्शमात्र जलका लक्षण है। स्नेहवत्त्व और मसृणता जलका लक्षण है, स्नेह और किसीमें भी नहीं है। घृतादिमें जो स्नेह है वह जलका है, इसीसे स्नेहविशिष्ट कहनेसे जलका ही बोध होता है। जलमें एक और गुण सांसिद्धिक द्रवत्व और स्वाभाविक तरलता है। जलमें कुल १४ गुण हैं। नित्य और अनित्यके भेदसे जल दो प्रकारका है।

तेज यह तृतीय भूत है। तेजका लक्षण है—उष्ण

स्पर्श वत्त्व, भास्वर शुक्लरूपवत्त्व और नैमित्तिक द्रवत्व-वत्त्व। जिसमें उष्ण स्पर्श, भास्वर शुक्ल और नैमित्तिक द्रवत्व है, वही तेज है। तेजमें कुल ११ गुण हैं। तेज दो प्रकारका है, नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेज नित्य और सब अनित्य है।

मरुत्, यह चतुर्थ भूत है। वायुमें अपाकज अनुष्णाशीत स्पर्शवत्त्व और तिर्यक्‌गमनवत्त्व गुण है। वायुमें न रूप है, न रस और न गन्ध, केवल स्पर्श है। तिर्यक्‌गमन वायुके लक्षण और स्पर्शादि द्वारा अनुमेय है। यह वायु भी दो प्रकारकी है, नित्य और अनित्य। परमाणुरूप तेज नित्य और सब अनित्य है।

आकाश पंचम भूत है। जो शब्दका आश्रय है, वह आकाश है। शब्दका आश्रय और कोई नहीं है, केवल आकाश है। शब्द और किसी भी द्रव्यमें नहीं रहता, केवल आकाशमें रहता है। विशेष विवरण तत्तत् शब्दमें देखो।

सांख्य और वेदान्तके मतसे—आकाश ही भूतसमूहका उपादान है। एक आकाशसे क्रमशः अन्य सभी भूतोंकी उत्पत्ति हुई है। यह जगत् पंचभूतात्मक है. मनुष्य शुभाशुभ अदृष्टवशसे नाना योनियोंमें भ्रमण करते हैं। जीव पंचभूतात्मक देह धारण करता है। जब इस भोगदेहका अवसान होता है, तब मनुष्य अदृष्ट हो कर सूक्ष्मतम अवयवविशिष्ट सूक्ष्मदेहमें इस पांचभौतिक देहका परित्याग करता है। पंचमहाभूत पंचतन्मात्रमें लीन हो जाता है। मातापितृज जो शरीर रहता है वह रसान्त वा भस्मान्त हो जाता है। सूक्ष्म शरीर शब्दमें एकादश इन्द्रिय, पंचतन्मात्र और महत् यही सप्तदश है। (सांख्यद०) वेदान्तके मतसे स्थूलभूत पंचीकृत है। पंचीकरण आकाशादि पंचभूतके मध्य प्रत्येक भूतको दो समान भागोंमें विभक्त करनेसे जो दश भाग होते हैं उनमेंसे प्रत्येक पंचभूतके प्रत्येक प्राथमिक पंच भागको समान चार अंशोंमें विभक्त करते हैं, फिर वह प्रत्येक चार अंश जब अपने द्वितीयार्द्ध भागको परित्याग कर इतर चार भूतके द्वितीयार्द्ध भागके साथ मिल जाता है, तब पंचीकृत होता है। पंचभूत पंचात्मक रूपमें समान होने पर भी प्रत्येकमें पृथक् पृथक् आकाशादिका व्यवहार होता है। इस प्रकार पञ्चीकृत पंचभूतसे भूः आदि लोक और ब्रह्माण्ड तथा चतुर्विध स्थूल शरीर तथा उनके भोगोपयुक्त अन्नपानादि उत्पन्न हुए हैं। (वेदान्तसार)
पञ्चीकरण देखो।

ब्रह्मज्ञानतन्त्र और निर्वाणतन्त्रमें देखा जाता है, कि पंचभूतसे सृष्टि होती है। बादमें प्रलयकाल उपस्थित होने पर सभी भूत पहले पृथिवी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें और वायु आकाशमें लीन हो जाती है।

"मही संलीयते तोये तोयं संलीयते रवौ।
रविः संलीयते वायौ वायुर्नभसि लीयते।
पंचतत्त्वाद्भवेत् सृष्टिस्तत्त्वे तत्त्वं विलीयते॥"
(ब्रह्मज्ञान और निर्वाणतन्त्र)

ब्रह्मज्ञानतन्त्रमें पंचभूतोंमेंसे एक एक भूतके अस्थि आदि पांच पांच करके गुण लिखे हैं। यथा—अस्थि, मांस, नख, नाड़ी और त्वक् ये पांच पृथिवीके गुण; मल, मूत्र, शुक्र, श्लेष्मा और शोणित जलके गुण; हास्य, निद्रा, क्षुधा, भ्रान्ति और आलस्य तेजके गुण; धारण, चालन, क्षेप, सङ्कोच और प्रसर ये पांच वायुके गुण तथा काम, क्रोध, लोभ, लज्जा और मोह ये पांच आकाशके गुण हैं।

पंचभूतके सभी नक्षत्रोंको एक-एक भूत मान कर ये सब नक्षत्र पाये जाते हैं। धनिष्ठा, रेवती, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवणा, अभिजित और उत्तराषाढ़ा इन सब नक्षत्रोंको पृथ्वी कहते हैं। इसी प्रकार पूर्वाषाढ़ा, अश्लेषा, मूला, आर्द्रा, रोहिणी और उत्तरभाद्रपद ये सब नक्षत्र जल; भरणी, कृत्तिका, पुष्या, मघा, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वफल्गुनी, पूर्वभाद्रपद तथा स्वाति ये सब तेज तथा विशाखा, उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, पुनर्वसु और अश्विनी ये सब नक्षत्र वायु नामसे पुकारे जाते हैं।
(स्वरोदय)

पञ्चभङ्ग (सं० क्लो०) वैद्यकोक्त पांच प्रकारके वृक्ष, देवताड़क, शमी, भङ्ग (सिद्धि), तालीशपत्र और निर्गुण्डी।

पञ्चभद्र—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़के अन्तर्गत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यह पलिताणासे १२ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। भूपरिमाण ७८ वर्गमील है।

पञ्चम (सं० त्रि०) पंचानां पूरणः (पूरणे डट्., ततः मान्ता दिति मट् ।) १ पंचमसंख्याका पूरण, पांचवां। २ रुचिर, सुन्दर। ३ दक्ष, निपुण। (पु०) पंचनां स्वराणां पूरणः। ४ तन्त्रीकण्ठोत्थित स्वरविशेष, सात स्वरोंमेंसे पांचवां स्वर। इसका उत्पत्तिस्थान—

"वायुः समुद्गतो नाभेरुरो हृत्कण्ठमूर्द्धसु ।
विचरन् पंचमस्थानप्राप्त्या पंचम उच्यते ॥" (भारत)

नाभिदेशसे वायु निकल कर वक्ष, हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा इन पांचों स्थानमें विचरण करती है, पञ्चम स्थान प्राप्तिके कारण इसे पञ्चम कहते हैं।

"प्राणोऽपानः समानश्च उदान व्यान एव च ।
एतेषां समवायेन जायते पञ्चमः स्वर ॥"
(संगीतदामोदर)

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान इस पञ्च-वायुके मेलसे पञ्चमस्वरकी उत्पत्ति हुई है। सङ्गीतशास्त्रमें इस स्वरका वर्ण ब्राह्मण, रंग श्याम, देवता महादेव, रूप इन्द्रके समान और स्थान क्रौंचद्वीप लिखा है। यमली, निर्मली और कोमली नामकी इसकी तीन मूर्च्छनायें मानी गई हैं। इसके कूटतान १२० हैं, प्रत्येक तान ४० करके कुल ४८०० तान हैं। यह स्वर पिक वा कोकिलके स्वरके अनुरूप माना गया है। ५ रागभेद, एक राग जो छः प्रधान रागोंमें तीसरा है। कोई इसे हिंडोल रागका पुत्र और कोई भैरवका पुत्र बतलाते हैं। कुछ लोग इसे ललित और वसन्तके योगसे बना हुआ मानते हैं और कुछ लोग हिंडोल गांधार तथा मनोहरके मेलसे। सोमेश्वरके मतानुसार इसके गानेका समय शरदऋतु और प्रातःकाल है। विभाषा, भूपाली, कर्णाटी, वडहंसिका, मालश्री, पटमञ्जरी नामकी इसकी छः रागिनियां हैं, पर कल्लिनाथ त्रिवेणी, स्तम्भतीर्था, आभीरी, ककुभ, वरारी और सावेरीको इसकी रागिनियां बतलाते हैं। कुछ लोग इसे औड़व जातिका राग मानते हैं और ऋषभ कोमल पञ्चम तथा गान्धार स्वरोंको इसमें वर्जित बतलाते हैं। ६ मैथुन, स्त्री-प्रसङ्ग।

पञ्चम—१ दाक्षिणात्यवासी लिङ्गायतोंकी शाखाभेद। लिङ्गायत् देखो।

२ जैनोंके ८४ गच्छोंमेंसे एक।

पञ्चम—हिन्दीके एक प्राचीन कवि। ये जातिके वन्दी और बुन्देलखण्डके रहनेवाले थे। इनका जन्म संवत् १७३५में हुआ था। पन्नाके महाराज छत्रसाल बुन्देलाके दरबारमें ये रहते थे।

पञ्चमऋषि—हिन्दुओंका एक उत्सव। भाद्रमासमें सप्तर्षि-नक्षत्रके उद्देशसे यह उत्सव मनाया जाता है।

पञ्चमकवि—१ बुन्देलखण्डवासी एक गायक कवि। ये अजयगढ़के राजा गुमानसिंहकी सभामें विद्यमान थे। इनका जन्म १८५४ ई०में हुआ था।

२ रायबरेली जिलेके डलमऊ नगरवासी एक गायक कवि। ये १८६७ ई०में विद्यमान थे।

पञ्चमकार (सं० क्ली०) पञ्चसंख्यकं मकारं तत्त्वं यत्र। मद्यादि मकारपञ्चक, मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन।

"मद्यं मांसं तथा मत्स्यो मुद्रा मैथुनमेव च।
पञ्चतत्त्वमिदं देवि निर्वाणमुक्तिहेतवे ।
मकारपञ्चकं देवि देवानामपि दुर्लभम् ॥"
(गुप्तसा०त० ७ पटल)

यह मद्यादि पञ्चमकार निर्वाणमुक्तिका कारण और देवताओंको दुर्लभ है।

महासाधुओंको पञ्चमुद्रा द्वारा अम्बिकाकी पूजा करनी चाहिये। निम्नलिखित नियमसे यदि उनकी पूजा न की जाय, तो देवता और पण्डितगण उनकी निन्दा करते हैं। इस कारण कायमनोवाक्यसे पंचतत्त्व-पर होना चाहिये।

"मद्यैर्मांसैस्तथामत्स्यैर्मुद्राभिर्मैथुनैरपि ।
स्त्रीभिः सार्द्धं महासाधुरर्चयेज्जगदम्बिकाम् ॥
अन्यथा च महानिन्दा गीयते पण्डितैः सुरैः ।
कायेन मनसा वाचा तस्मात्तत्त्वपरो भवेत् ॥"
(कामाख्यात० १ प०)

इस पंचमकारके मध्य मद्यादि प्रसिद्ध है। जो सुरा सभी कामोंमें बतलाई गई है, वैसा ही सुरापान श्रेयस्कर है। शूद्रोंके खाने योग्य जो सब मांस कहे गये हैं, वही मांस है, जिन सब मत्स्यभोजनका विधान है, वही मत्स्य है। पृथुक, तण्डुल, गोधूम और चणकादि

जब भुने जाते हैं, तब उन्हें मुद्रा कहते हैं। पाँचवाँ मैथुन है। यही पञ्चमकार है।

मत्स्यादिकी व्युत्पत्ति—मायामलादि-प्रशमन, मोक्षमार्ग-निरूपण और अष्टविध दुःखादि नष्ट होते हैं, इसीसे मत्स्य नाम पड़ा है। माङ्गल्यजनन, सम्विदानन्ददान और सब देवताओंका प्रिय है इसीलिए मांस नाम रखा गया है। बिना पञ्चमकारके जपादि वृथा हैं। पञ्चमकार भिन्न सिद्धि भी दुर्लभ है। पञ्चमकारका शोधन कर अनुष्ठान करना चाहिए।

पञ्चमकारके मध्य मद्य प्रधान है, किन्तु सभी धर्मशास्त्रोंमें मद्यपानकी विशेष निन्दा और प्रायश्चित्त विधान है। अतएव पञ्चमकारानुष्ठानसे यदि मद्यपान किया जाय, तो प्रायश्चित्त नहीं होता, सो क्यों? प्राणतोषिणीमें इसकी मीमांसा इस प्रकार लिखी है। जो केवल मद्यादि पान करते हैं, उन्हींके लिये यह विधि है। किन्तु पञ्चमकार शोधन करके खानेसे प्रायश्चित्त करना नहीं पड़ता, वरं पञ्चमकारानुष्ठान नहीं करनेसे कार्यकी सिद्धि नहीं होती। पञ्चमकारके शोधनका विषय प्राणतोषिणीमें इस प्रकार लिखा है—

पहले अपने वामभागमें षट्कोणके अन्तर्गत त्रिकोण विन्दु लिख कर और वाह्यदेशमें चतुरस्रवृत्त अङ्कित कर सामान्यार्घ्य जलसे अभ्युक्षण करे। पीछे 'आधारशक्तये नमः।' इस मन्त्रसे पूजा कर 'नमः' इस मन्त्रसे प्रक्षालन, बादमें मण्डलोपरि संस्थापन करके 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे पूजन करनेके बाद 'फट्' इस मन्त्रसे कलसको प्रक्षालित करे। तदनन्तर उस कलसमें सुरा भर कर रक्त वस्त्र और माल्यादि विविध भूषणसे भूषित करके उसे देवी समक्ष स्थापित करे। 'मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे आधारपूजा, 'अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे कलसपूजा, 'सों सोममण्डलाय षोड़शकलात्मने नमः' इस मन्त्रसे पूजा करे। बादमें 'फट्' इस मन्त्रसे द्रव्य सन्ताड़न, 'हुं' इस मन्त्र और अवगुण्ठन मुद्रा द्वारा वीक्षण, 'नमः' इस मन्त्रसे अभ्युक्षण, पीछे मूलमन्त्रसे तीन बार गन्ध आघ्राण करके 'ऐं' इस मन्त्रसे कुम्भमें पुष्प डालने बाद 'हसौ' इस मन्त्रसे त्रिकोणमण्डल बनावे। पीछे 'हसौ' इस मन्त्रसे तथा 'क्रों' क्रों' परमस्वामिनि परमाकाशशून्यवाहिनि चन्द्रसूर्याग्निभक्षिणि पात्रं विश विश स्वाहा।' इस मन्त्रसे घट पकड़ कर दश बार जप करे। बादमें 'ऐं ह्रीं क्रीं आनन्देश्वराय विद्महे सुधादेव्यै धीमहि तन्नोऽर्द्धनारीश्वरः प्रचोदयात्।' यह गायत्री जप करके मद्यका शापविमोचन करना होगा।

शाप-विमोचनका मन्त्र—

"एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवं।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहं॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम्॥"

इत्यादि मन्त्रसे घट पकड़ कर तीन बार पढ़ने होते हैं। तदनन्तर 'ओं वां वीं वुं वैं वौं वः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' यह मन्त्र तीन बार पढ़ना होता है। पीछे 'ओं शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापाद्विमोचितायै सुधादेव्यै नमः' इस मन्त्रका दश बार जप करके इन्द्रशाप विमोचन करनेका विधान है। तत्पश्चात् 'ऐं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः कृष्णशापं विमोचय अमृतं स्रावय स्वाहा।' यह मन्त्र दश बार जप करके कृष्णशाप विमोचन करना होता है। 'ओं हंसः शुचिसद्वसुरन्तरीक्षसद्धोता वेदिसदतिथिर्दुरोणसत् नृसद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्' यह मन्त्र द्रव्यके ऊपर तीन बार पढ़ना होता है। इसके बाद द्रव्यके मध्य आनन्दभैरव और आनन्दभैरवीका ध्यान करना पड़ता है। ध्यान और इनकी पूजा करके शक्तिचक्र लिखना होता है। इस चक्रमें शिव और शक्तिका समायोग स्थिर करके मद्य अमृतस्वरूप है, ऐसा समझना होता है। पीछे धेनुमुद्रा अमृतीकरण करके 'वं' यह वरुणबीज और मूलमन्त्र ८ बार जप करके मद्यको देवतास्वरूप मानना चाहिए। ऐसा करनेसे मद्य शोधित होता है।

मांसशोधन—'ओं प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठा यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा' इस मन्त्रसे मांस शोधन करना होता है।

मीनशुद्धि—

"ओं त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥"

—द्राशोधन—

"ओं तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः
दिवीव चक्षुराततम्।
ओं तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः।
स समिन्धते विष्णो यत् परमं पदं॥"

मैथुनशुद्धि—

"ओं विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु।
आसिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते॥
गर्भं देहि सिनीवाली गर्भं देहि सरस्वती।
गर्भं ते अश्विनौ देवावधत्तां पुष्करस्रजौ॥"

इसी मन्त्रसे मैथुन शोधन करना पड़ता है। इस प्रकार पञ्चमकारका शोधन किए बिना सेवन करनेसे पद पदमें विघ्न हुआ करता है। (प्राणतोषिणी)

पञ्चमढ़ी—मध्यप्रदेशके होसिङ्गाबाद जिलान्तर्गत एक अधित्यका। इसके चारों ओर चौरादेव, जाटपहाड़ और धूतगढ़ गिरिमाला विराजित है। यहां समतलक्षेत्रसे २५०० फुटकी ऊंचाई पर सोहागपुर नगर बसा हुआ है जहां अनेक प्राचीन सुदृश्य मन्दिर सुशोभित हैं। यहांके सरदार काकुवंशके हैं और महादेवपर्वतके भोपाओंके प्रधान व्यक्ति ही मन्दिरादिकी देखरेख करते हैं।

पञ्चमण्डली—ग्राम्यपञ्चायत। अभी जिस प्रकार बड़े बड़े ग्रामोंमें पंचायतसे नाना विषयकी मीमांसा होती है, पूर्वकालमें उसी प्रकार इसी पंचमण्डलीसे ग्रामके सभी विवादोंकी मीमांसा और सभी प्रकारके विचार कार्य सम्पन्न होते थे। गुप्तसम्राट् २य चन्द्रगुप्तकी साञ्चिकी शिलालिपिमें (८३ गुप्तसम्वत्में) सबसे पहले इस 'पंचमण्डली' शब्दका उल्लेख देखा जाता है।

पञ्चमनगर—मध्यप्रदेशके दामो जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २४° ३' उ० और देशा० ७६° १३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां बढ़िया कागज तैयार होता है।

पञ्चमय (सं० त्रि०) पंच-मयट्। पंचम भागीय।

पञ्चमवत् (सं० त्रि०) पंचम मतुप् मस्य वः। पंच संख्यायुक्त।

पञ्चमहल—बम्बई प्रदेशके उत्तरीय विभागका एक जिला। यह अक्षा० २२° १५' से २३° ११' उ० और देशा० ७३° २५' से ७४° २९' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६०६ वर्गमील है। यहां बहुतसी छोटी छोटी नदियां हैं जो प्रायः ग्रीष्मके उत्तापसे सूख जाती हैं। सभी नदियोंमेंसे माहीनदी बड़ी है जो जिलेके उत्तर-पश्चिम दिशामें बह गई है। जिलेके गोधड़ा (गोध्रा) उपविभागमें ओरवादा नामक एक ह्रद है। इसका जल कभी भी नहीं सूखता। इसके अलावा यहां प्रायः ७५० बड़े बड़े जलाशय और असंख्य कूप हैं।

जिलेके दक्षिण-पश्चिम कोनेमें पावागढ़ नामक एक पहाड़ है। इसका शिखरदेश वहांके समतलक्षेत्रसे प्रायः २५०० फुट ऊंचा है। पूर्व समयमें पहाड़के शिखर पर एक किला था। १०२२ ई०में तुअरके राजगण इस प्रदेशके तथा पावा दुर्गके अधीश्वर थे। पीछे चौहान राजाओंने दुर्गको अपने दखलमें कर लिया। १४१२ ई०में मुसलमानोंने इस स्थान पर आक्रमण किया सही, लेकिन कृतकार्य न हो सके और भाग गए। १७६१-१७७० ई०के मध्य सिन्धियाराजने इस प्रदेश पर अधिकार जमाया और १८०३ ई० तक उन्हींके वंशधर यहां राज्य करते रहे। उसी सालके अन्तमें कर्नल विडिंटनने उसे चढ़ाई कर अपने कब्जेमें कर लिया। १८०४ ई०में अङ्गरेजोंने पुनः यहांका शासनभार सिन्धियाके राजाके हाथ सौंप दिया। पीछे १८५३ ई०में अङ्गरेजोंने फिरसे इसका शासनभार अपने हाथमें ले लिया।

चम्पानेर नगरका इतिहास ही यहांका प्राचीन इतिहास समझा जाता है। उक्त नगरका ध्वंसावशेषमात्र देखनेमें आता है। ३५०-१३०० ई० तक यहां अनहलवाड़ाके तुआर राजाओंने और पीछे १४८४ ई० तक चौहान राजाओंने राज्य किया। इसी समयसे ले कर १५३६ ई० तक चम्पानेरनगर गुजरातकी राजधानीके रूपमें गिना जाता था।

१५३५ ई०में हुमायुन् इस नगर पर आक्रमण और ध्वंस कर दूसरे वर्ष अहमदाबादमें राजधानी उठा कर ले गए। यहांके नायकड़ा अधिवासिगण चम्पानेरके प्राचीन अधिवासियोंके वंशधर हैं।

जिलेमें ४ शहर और ६८८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है जिसमेंसे सैकड़े पीछे ८० हिन्दू, ५ मुसलमान और शेषमें अन्यान्य जातियां हैं। अधिकांश लोगोंकी भाषा गुजराती है। जिलेकी प्रधान उपज जुनहरी, चना, गेहूं, बाजरा, धान और तिल है। जिलेमें ३३१ वर्गमील वनविभाग है। पहले यहां तरह तरहके हरिण, हस्ती तथा व्याघ्र पाए जाते थे। अभी उनकी संख्या बहुत कम हो गई है। वनविभागसे १३ रु०की आमदनी है। गुजरातकी अपेक्षा इस जिलेमें खानें भी अधिक देखनेमें आती हैं। पहाड़ पर लोहे, रांगे और अबरखकी खान है। इस जिलेसे अनाज, महुवेके फूल, देवदारु और तेलहन अनाज गुजरात भेजे जाते हैं और वहांसे तमाकू, नमक, नारियल, धातुकी बनी चीजें तथा कपड़ेकी आमदनी होती है।

१८४५ ई०में टिड्डीसे फसल नष्ट हो जानेसे और १८७६ ई०में अनावृष्टिके कारण यहां भारी अकाल पड़ा था। जिलेकी आबहवा एक प्रकार अच्छी है। तापपरिमाण ८३° है। विद्याशिक्षामें यह जिला अष्टम है। जिलेमें हाई स्कूल, मिडिल स्कूल और प्राइमरी स्कूल हैं इस प्रकार स्कूलोंकी संख्या कुल १२४ है। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और सात चिकित्सालय भी हैं।

पञ्चमहापातक (सं० क्ली०) मनुस्मृतिके अनुसार पांच महापातक जिनके नाम ये हैं—ब्रह्महत्या, सुरापान, चोरी, गुरुकी स्त्रीसे व्यभिचार और इन पातकोंके करनेवालोंके साथ संसर्ग। ब्राह्मण यदि एक भरी सोना चुरावे, तो वह स्तेयपदवाच्य होगा। स्तेय शब्दसे चोरीका ही बोध होता है, किन्तु पर-वचनमें विशेषरूपसे उल्लेख रहनेके कारण यहां ऐसा अर्थ होगा, चौर्यमात्र ही महापातक नहीं होगा।

"ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥" (मनु)

जो उक्त पाप करते हैं, उन्हींको महापातकी कहते हैं। महापातकीका संसर्ग भी महापातक है, इसीसे यत्नपूर्वक उनका संसर्ग छोड़ देना चाहिए।

महापातक देखो।

पञ्चमहायज्ञ (सं० पु०) पञ्चगुणितो महायज्ञः। गृहस्थ कर्त्तृक प्रतिदिन कर्त्तव्य दैव और पैत्रादि यज्ञपंचक, पांच कार्य जिनका नित्य करना गृहस्थोंके लिए आवश्यक है। गृहस्थ प्रतिदिन पंचसूनाजनित जो पापानुष्ठान करते हैं, वह पंचयज्ञ द्वारा विनष्ट होता है। इस पंचयज्ञका विषय भगवान् मनुने इस प्रकार कहा है— "पंचसूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पंचक्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनां॥
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतः नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥"

(मनु ३।६८-७०)

चूल्हा, जांता, ढेंकी, झाड़ू और जलपात्रके बिना गृहस्थका काम नहीं चलता, अथच ये सब एक एक सूना अर्थात् प्राणिवधके स्थान हैं। चूल्हेमें आग देनेसे रसोई बनती है, किन्तु उस जलते हुए चूल्हेमें कितने कीड़े मरते हैं, उसकी शुमार नहीं। कण्डनी अर्थात् ओखली आदिसे भी अनेकों जीव मरते हैं। चुल्ली आदि वधस्थान द्वारा जो पाप उत्पन्न होता है, उस पापसे निष्कृति पानेके लिए महर्षियोंने गृहस्थके लिए प्रतिदिन पंचमहायज्ञका विधान कर दिया है। अध्ययन अध्यापनका नाम ब्रह्मयज्ञ, अन्नादि वा उदक द्वारा पितृलोकको तर्पण देनेका नाम पितृयज्ञ, होमका नाम देवयज्ञ, पशुपक्ष्यादिको अन्नादि प्रदानरूप बलिका नाम भूतयज्ञ और अतिथि सेवाका नाम मनुष्ययज्ञ है। शक्ति रहते जो गृहस्थ इस पञ्चमहायज्ञका एक दिन भी परित्याग नहीं करते, वे नित्यगार्हस्थ्यमें वास करते हुए भी पञ्चसूना पापसे लिप्त नहीं होते। देवता, अतिथि, पोष्यवर्ग, पितृलोक और आत्मा इन पांचोंको जो मनुष्य उक्त पंचयज्ञ द्वारा अन्नादि नहीं देते, वे निःश्वासप्रश्वासविशिष्ट होते हुए भी जीवित नहीं है अर्थात् उनका जीवन निष्फल है। किसी किसी वेदशाखामें यह पंचमहायज्ञ अहुत, हुत, प्रहुत, ब्राह्महुत और प्राशित इन पांच नामोंसे अभिहित हुआ है; ब्रह्मयज्ञ वाजपेयका नाम अहुत, होमका नाम हुत, भूतयज्ञका नाम प्रहुत, नरयज्ञ वा ब्राह्मणोंकी अर्चनाका नाम ब्रह्महुत और

पितृतर्पणका नाम प्राशित है। (मनु ३ अ०) तैत्तिरीय आरण्यकमें इस पंचमहायज्ञका विधान इस प्रकार लिखा है—

"पंच वा एते महायज्ञाः सतति प्रतायन्ते। देवयज्ञः पितृयज्ञः मनुष्ययज्ञः भूतयज्ञः ब्रह्मयज्ञः इति।" (तैत्तिरीय आर०)

इस पञ्चयज्ञके मध्य वेदपाठ और वेदाध्यापन ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। इस ब्रह्मयज्ञका अनुष्ठान करनेसे तत्त्वज्ञान होता है। तत्त्वज्ञान होनेसे सब प्रकारके दुःख जाते रहते हैं। गृहस्थ यदि आहार न करे, तो भी उसे पञ्चयज्ञानुष्ठान कर्त्तव्य है, साग्निक ब्राह्मणको वैश्वदेव और निरग्निक मनुष्योंको होम करना चाहिए। इस प्रकार होम समाप्त करके विश्वदेव, सभी भूतवृन्द और पितृलोकके उद्देशसे बलिदान करनेका विधान है। पीछे देवता और पितरोंके उद्देशसे बलि दे कर यदि मन तृप्त न हुआ हो वा इच्छा बनी ही रहे, तो निम्नलिखित मन्त्रसे बलिप्रदान करना चाहिए।

"देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसंघाः।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम्॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु॥
भूतानि सर्वाणि तथान्नमेतदहञ्च विष्णुर्नयतोऽन्यदस्ति।
तस्मादहं भूतनिकायभूतमन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम्॥
येषां न माता न पिता न बन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयान्तु तृप्तिं मुदिता भवन्तु॥"
(आह्निकतत्त्व)

गृहस्थ दोपहर दिनको चतुष्पथमें पवित्र भूभाग पर बैठ कर सभी जीवोंके उद्देशसे इस प्रकार मन्त्रपाठ करें—देवगण, दैत्यगण, पशुपक्षिगण, यक्षसिद्धगन्धर्वगण, प्रेतपिशाचगण, वृक्षगण, कीटपतङ्गपिपीलिकावृन्द और समस्त अन्नभोजनाभिलाषी जीववृन्दके उद्देशसे ही मैं अन्न दान करता हूं, अतएव भोजन करके वे तृप्ति लाभ करें। जो निराश्रय हैं, जिनके पिता, माता, भ्राता और बन्धु कोई भी नहीं हैं, इस भूतल पर उनको तृप्तिके लिये मैं अन्न दान करता हूं, वे तृप्ति लाभ करें, इत्यादि। इस प्रकार भूतसमूहके उद्देशसे बलि देनेके बाद गृहस्थ स्वयं भोजन करे। इत्यादिरूपसे पंचमहायज्ञका अनुष्ठान करना गृहस्थका मुख्य कर्त्तव्य है। जो इस महायज्ञका अनुष्ठान नहीं करते, वे आखिरको घोर नरकमें जाते हैं।

पञ्चमहाव्याधि (सं० पु०) वैद्यकशास्त्रके अनुसार ये पांच बड़े रोग—अर्श, यक्ष्मा, कुष्ठ, प्रमेह और उन्माद।

पञ्चमहाव्रत (सं० पु०) योगशास्त्रके अनुसार ये पांच आचरण—अहिंसा, सूनृता, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन्हें पतञ्जलिजीने 'यम' माना है। जैन जातियोंके लिए इनका ग्रहण जैनशास्त्रमें आवश्यक बतलाया गया है।

पञ्चमहाशब्द (सं० पु०) पांच प्रकारके बाजे जिन्हें एक साथ बजवानेका अधिकार प्राचीनकालमें राजाओं महाराजाओंको ही प्राप्त था। इसमें ये पांच बाजे माने गए हैं—सींग, खंजड़ी, शङ्ख, भेरी और जयघण्टा।

पञ्चमहिष (सं० क्लो०) पंचगव्यवत् महिषके मूत्रादि पंचक, सुश्रुतके अनुसार भैंससे प्राप्त पांच पदार्थ—मूत्र, गोबर, दही, दूध और घी।

पञ्चमार (सं० पु०) १ बलदेवके पुत्रका नाम। २ पांच प्रकारके काम। ३ एक जैनधर्मसंस्कारक। ये महावीरके शिष्य थे। महावीरके मरने बाद इन्होंने ही उनका पद प्राप्त किया था।

पञ्चमाषिक (सं० त्रि०) पंचमाषाः प्रमाणमस्य ठक् न पूर्वपदवृद्धिः। स्वर्णमाषपंचकमित दण्डादि, पांच माशेकी तौलकी सजा।

पञ्चमास्य (सं० पु०) पंचमो रागः स्वरो वा आस्ये यस्य। १ कोकिल, कोयल। पञ्चसु मासेषु भवः यत्। (त्रि०) २ पंचमासभव, पांच महीनेका।

पञ्चमिन् (सं० त्रि०) पञ्चयुक्त।

पञ्चमी (सं० स्त्री०) पंचानां पाण्डवानामियम् अथवा पञ्चपतीन मिनोति सेवास्नेहादिभिर्बध्नाति या पंचमीक्विप्। १ पाण्डव-पत्नी, द्रौपदी। पंचानां पूरणो डट्, ततो मट्, स्त्रियां ङीप्। २ शर्करामृत्तिका। ३ तिथिविशेष, शुक्ल या कृष्णपक्षकी पांचवीं तिथि। पञ्जिकाके सङ्केतसे शुक्लपक्षकी पंचमी होनेसे ५ संख्या और कृष्णपक्षकी पंचमी होनेसे २० संख्या लिखी जाती है।

व्रत आदिके लिए चतुर्थीयुक्ता पंचमी तिथि ग्राह्य मानी गई है।

"सा च चतुर्थीयुता प्राह्या युग्मात् ।
पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या चतुर्थीसहिता विभो ॥"

(तिथितत्त्व)

आषाढ़मासकी शुक्लापंचमीमें मनसा और अष्टनाग-पूजा करनी होती है। माघ मासकी शुक्लापंचमीका नाम श्रीपंचमी है। इस दिन लक्ष्मी और सरस्वतीकी पूजा की जाती है। नागपञ्चमी और श्रीपञ्चमी देखो।

माघमासकी शुक्लापंचमीके दिन जो व्रत किया जाता है, उसे पंचमीव्रत कहते हैं। यह व्रत ६ वर्ष तक करना होता है, इसीसे इसका दूसरा नाम षट्पंचमीव्रत भी है। पहले माघमासकी शुक्लापंचमीमें इस व्रतका आरम्भ करके प्रति शुक्लापंचमीको व्रतोक्त नियमसे पूजा और कथादि श्रवण करनी होती है। इस प्रकार ६ वर्ष तक अनुष्ठित होने पर इसका उद्यापन होता है। इस पंचमी व्रतका विषय ब्रह्मपुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"क्षीरोदे च पुरा सुप्तं लक्ष्मीसमन्वितं हरिम् ।
प्रणम्य परिपप्रच्छ नारदो मुनिसत्तमः ॥
नारद उवाच । केनोपायेन देवेश नारीणांच सुखं भवेत् ।
सौभाग्यमतुलं याति तन्मे त्वं वक्तुमर्हसि ॥
श्रुत्वा तद्वचनं देवो नारदस्य महात्मनः ।
संप्रेक्ष्य कमलां सद्ये ब्रूहि देवि शुभानने ॥
इंगितं वायुरालोक्य पद्मपत्राक्ष वल्लभा ।
वल्लभं तं पुरस्कृत्य प्रोवाच व्रतमुत्तमं ह ॥
देव्युवाच । अस्ति श्रीपञ्चमी नाम व्रतं परमदुर्लभम् ।
यत्कृत्वा प्राप्यते लोकैः सुखं सौभाग्यमुत्तमम् ॥"

(ब्रह्मपुराण)

एक समय क्षीरोदसमुद्रमें लक्ष्मी और नारायण सोये हुए थे। उसी समय नारद वहां पहुंच गए और उनसे बोले, 'भगवन्! ऐसा कौन-सा उपाय है जिससे नारी सुखी और अतुल सौभाग्यवती हो।' इस पर लक्ष्मीने भगवान्‌के इशारानुसार नारदसे कहा था, 'श्रीपंचमी नामक एक परमदुर्लभ व्रत है। इस पंचमीको मेरी और नारायणकी विधि तथा भक्तिपूर्वक पूजा करनी चाहिए। जो स्त्री भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती हैं, वे लक्ष्मीतुल्य हैं। इसका विधान इस प्रकार है— माघमासकी विशुद्ध शुक्लापंचमीसे इस व्रतका आरम्भ है और ६ वर्ष तक किया जाता है। इन छः वर्षोंमेंसे प्रथम दो वर्ष तक पंचमीके दिन लवण खाना निषिद्ध है। पीछे दो वर्ष तक हविष्यान्न, बादमें एक वर्ष तक फल और सबसे अन्तमें उपवास विधेय है। ६ वर्ष पूरा हो जाने पर व्रतप्रतिष्ठाके विधानानुसार इस व्रतकी प्रतिष्ठा की जाती है। यही व्रत नारियोंका एकमात्र सौभाग्यवर्द्धक है।' व्रतमाला और हेमाद्रिके व्रतखण्डमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है।

अग्निपुराणमें पंचमी व्रतका जो विवरण लिखा है, वह इस प्रकार है—श्रावण, भाद्र, आश्विन और कार्त्तिक मासमें शुक्लापंचमीको व्रत करके यथाविधान पूजा करनी चाहिए। वासुकि, तक्षक, कालीय, मणिभद्र, ऐरावत, धृतराष्ट्र, कर्कोटक और धनञ्जय, इनकी पूजा करके व्रतानुष्ठान करना होता है। इस प्रकार व्रतानुष्ठान करनेसे आयु, विद्या, यश और सम्पत्ति आदिकी प्राप्ति होती है। (अग्निपुराण ११५ अ०)

पहले ब्रह्मपुराणोक्त पंचमी व्रतका विषय जो लिखा गया है, भविष्यपुराणमें भी उस व्रतका उल्लेख है। इस व्रतको षट्पंचमीव्रत कहते हैं, व्रतकी जो कथा है, वह भविष्यपुराणोक्त है। ब्रह्मपुराणोक्त व्रतका विषय जैसा लिखा गया है, भविष्यपुराणमें भी ठीक वैसा ही है।

पंचमी तिथिको जन्म होनेसे भूपालमान्य, कृपालु, पण्डिताग्रणी, वाग्मी, गुणी और बन्धुओंके निकट माननीय होता है।

"भूपालमान्यो मनुजः कृतज्ञः कृपाप्रनेत्तो विदुषां वरेण्यः ।
वाग्मी गुणी बन्धुजनैकमान्यः प्रसूतिकाले यदि पंचमी स्यात् ॥"

(कोष्ठीप्र०)

४ मन्त्रोक्त विद्याविशेष। तन्त्रसारमें इस विद्याका विषय इस प्रकार लिखा है—

"वाग्भवं प्रथमं कूटं शक्तिकूटन्तु पंचमम् ।
मध्यकूटत्रयं देवि कामराजं मनोहरम् ।
कथिता पञ्चमी विद्या त्रैलोक्यशुभमोदया ॥"

(तन्त्रसार)

पंचमी विद्याका विषय लिखा जाता है, यथा— क, ए, ई, ल, ह्रीं इसीका नाम वाग्भवकूट है।

कामराजमन्त्रका प्रथमकूट यह है—ह, स, क, ल, ह्रीं। यह मन्त्र परमदुर्लभ है। ह, क, ह, ल, ह्रीं इसका नाम स्वप्नावती मन्त्र है, इसे द्वितीय कामराजकूट कहते हैं। क, ह, ए, ल, ह्रीं का नाम मधुमती मन्त्र और ह, क, ल, स, ह्रीं का नाम शक्तिकूट है। कुलोड्डीशमें लिखा है, कि पहले वाग्भवकूट और मध्यमें कामराजकूटत्रय इस पञ्चमीकूटमें पंचमीविद्या होगी। यह पञ्चमीविद्या त्रिभुवनकी सौभाग्यप्रदा है।

इस पञ्चमीविद्याके विषयमें महादेवने स्वयं कहा था, 'हे देवि! अति दुर्लभ शक्तिकूट मैं कहता हूं, ध्यान दे कर सुनो। पहले वाग्भवकूट और पीछे कामराजकूटत्रय योग करनेसे जो मन्त्र होता है, उसका नाम शक्तिकूट है। अथवा स, ह, क, ल, ह्रीं इसका नाम शक्तिकूट है। वाग्भवकूट और शक्तिकूट यह कूटत्रयात्मिका विद्या शत्रुनाशिनी, सिद्धिप्रदा और सर्वदोषविवर्जिता है। वाग्भवकूट चार प्रकारका और शक्तिकूट दो प्रकारका है, अतएव पंचमी-विद्या आठ प्रकारकी हुई। यामलमें लिखा है, कि पंचमीविद्या दो प्रकारकी है। उसके आद्यकूटत्रय और पंच पंचाक्षर है। कामराजविद्याका मध्यकूटषड़क्षर और कामराजविद्याका शक्तिकूट चतुरक्षर है। वाग्भवकूट चार प्रकारका होनेके कारण उक्त विद्या भी चार प्रकारकी है। यामलमें और भी लिखा है, कि क, ह, हं, सः, ल, ह्रीं यह कूट परमदुर्लभ है। तत्त्वबोधमें क, ह, स, ल, ह्रीं यह मन्त्र लिखा है। तन्त्रसारमें क, ह, स, ल, ह्रीं इस कूटको परम दुर्लभ बतलाया है। उक्त विद्या भी पूर्ववत् ८ प्रकारकी और अन्य विद्या ४ प्रकारकी है, सुतरां कुल पंचमीविद्या ३६ प्रकारकी हैं।' श्रीक्रममें लिखा है, कि महादेवने भगवतीसे कहा है, 'देवि! पूर्वोक्त विद्यासमूहका प्राण-मन्त्र सुनो। श्रीं, ह्रीं, हं, सः, इस मन्त्रको वाग्भवकूटके आदिमें योग करके ७ बार जप करो। पंचमीविद्याके विशेष इस वाग्भवकूटके आदिमें श्रीं, ह्रीं, हं, सः, शक्तिकूटके अन्तमें हं सः ह्रीं श्रीं और कामराजमन्त्रके प्रथमकूटके आदिमें क्लीं, मध्यकूटके आदिमें ह्रीं और तृतीयकूटके आदिमें ह्रीं यह बीज योग करके जप करनेसे सर्व काम सिद्ध होता है। (तन्त्रसार)

५ रागिणीविशेष। यह रागिणी वसन्तरागकी स्त्री मानी जाती है।

"वसन्ती पञ्चमी दोली वहारी रूपमञ्जरी।
रागिण्य ऋतुराजस्य वसन्तस्य प्रिया इमाः॥" (संगीतद०)

वसन्तरागिणीका ध्यान—

"संगीतगोष्ठीषु गरिष्ठभावं समाश्रिता गायनसम्प्रदायैः।
खर्वांगिणी नूपुरपादपद्मा सा पञ्चमी पञ्चमवेदवेद्या॥"
(संगीतदर्पण)

६ नदीविशेष। ७ व्याकरणमें अपादान कारक। ८ एक प्रकारकी ईंट जो एक पुरुषकी लम्बाईके पाँचवें भागके बराबर होती थी और यज्ञोंमें वेदी बनानेमें काम आती थी।

पञ्चमीव्रत (सं० क्ली०) पंचम्यां माघशुक्लपंचमीमारभ्य षड्वर्षं यावत् प्रतिमासीयशुक्लपंचम्यां क्रिया कर्त्तव्यं व्रतं नियमविशेषः। स्त्रियोंके करने योग्य व्रतविशेष। यह माघमासकी शुक्लापंचमीमें आरम्भ करके ६ वर्ष तक प्रति मासकी शुक्लापंचमीको किया जाता है।
पञ्चमी शब्द देखो।

पञ्चमुख (सं० पु०) पंचं विस्तृतं मुखं यस्य। १ सिंह। पंच मुखानि यस्य। २ शिव, महादेव।

"शिवस्तत्र स्थितः साक्षात् सर्वपापहरः शुभः।
स तु पञ्चमुखः ख्यातो लोके सर्वार्थ-साधकः॥
पञ्चब्रह्मात्मको यस्मात् तेन पञ्चमुखः स्मृतः।
पश्चिमे तु मुखे सद्यो वामदेवस्तथोत्तरे॥
पूर्वे तत्पुरुषं विद्यादघोरञ्चापि दक्षिणे।
ईशानः पञ्चमो मध्ये सर्वेषामुपरि स्थितः।
एते पञ्चमुखा वत्स पापघ्ना मलनाशनाः॥"
(देवीपुराण)

महादेवके पांच मुख हैं, इसीसे उनका पंचमुख नाम पड़ा है। इन पांचों मुखमेंसे पश्चिम मुखका नाम सद्योजात, मध्यका वामदेव, पूर्व ओरका तत्पुरुष, दक्षिण ओरका अघोर और सबसे ऊपर मध्यभागमें जो मुख है उसका नाम ईशान है। यह पंचवदन पाप और मलनाशक है। इस पंचमुखके मध्य सद्योजात शुक्ल, वामदेव पीतवर्ण, तत्पुरुष रक्त, अघोर कृष्णवर्ण और ईशान नानावर्णात्मक है। यह पंचवक्त्र शिव कामद, कामरूपी और ज्ञानस्वरूप है।

"सद्योजातं भवेत् शुक्लं वामदेवस्तु पीतकं ॥
रक्तस्तत्पुरुषो ज्ञेयोऽघोरः कृष्णः स एव च ॥
ईशानः पश्चिमस्तेषां सर्ववर्णसमन्वितः ।
कामदः कामरूपी स्यात् ज्ञानाधारः शिवात्मकः ॥"
(देवीपुराण)

३ रुद्राक्षविशेष, एक प्रकारका रुद्राक्ष जिसमें पांच लकीरें होती हैं। यह पंचमुख रुद्राक्षविशेष शुभफलद है। रुद्राक्ष देखो।

४ इलाहाबाद जिलान्तर्गत कच्छूना तहसीलका एक ग्राम।

पञ्चमुखी (सं० स्त्री०) पंचमुखानीव सन्त्यस्याः। १ वासक, अडूसा। २ जपापुष्पविशेष, गुड़हलका फूल। पंच विस्तृतं मुखं यस्याः, स्त्रियां ङीप्। ३ सिंह-स्त्री, सिंहिनी। स्फटिकाले पंचमहाभूतान्येव पंचमुखानीव यस्याः शर्वः। ४ शिवपत्नी, पार्वती।

पञ्चमुद्रा (सं० स्त्री०) पंचविधा मुद्रा। पूजाविधिमें कर्त्तव्य पांच प्रकारकी मुद्राएं—आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, सम्बोधिनी और सम्मुखीकरणी। पूजाप्रदीपमें पंचमुद्राका विषय इस प्रकार लिखा है—

"सम्यक्सम्पूरितः पुष्पैः कराभ्यां कल्पितोऽञ्जलिः।
आवाहनी समाख्याता मुद्रा देशिकसत्तमैः ॥
अधोमुखी त्वियं चेत् स्यात् स्थापनी मुद्रिका भवेत्।
उच्छ्रितांगुष्ठमुष्ट्योस्तु संयोगात् सन्निधापनी ॥
अन्तःप्रवेशितांगुष्ठा सैव सम्बोधनी मता।
उत्तानमुष्टियुगला सम्मुखीकरणी मता ॥"
(पूजाप्रदीप०)

इस पंचमुद्रा द्वारा देवताओंका आवाहन करना चाहिए। तन्त्रमतसे योनि प्रभृति मुद्रापंचकका नाम पंचमुद्रा है। (तन्त्रसार)

पञ्चमुष्टिक (सं० पु०) १ सान्निपातिक ज्वरमें देय औषधविशेष, एक औषध जो सन्निपातमें दी जाती है। जौ, बदरीफल, कुलथी, मूंग और आंवला इन पांच प्रकारके द्रव्य एक एक मुट्ठी ले कर इनके ८ गुने जलमें पाक करते होते हैं। यह यूष शूल, गुल्म, कास, श्वास, क्षय और ज्वरनाशक माना गया है। २ तोलक, तोला, बारह माशेका वजन।

पञ्चमूत्र (सं० क्ली०) पंचविधं मूत्रम्। गो, अजा, भेडी, महिषी और गर्दभी इन पांच जन्तुओंका मूत्र।

पञ्चमूल (सं० क्ली०) पंच प्रकारम् पंचगुणितं वा मूलम्। पाचनविशेष। पांच द्रव्योंके मूलसे यह पाचन बनता है, इसीसे इसे पंचमूल कहते हैं। यह पंचमूल-पाचन बृहत्, स्वल्प, तृण, शतावरी, जीवन, बला, गोक्षुर, गुड़ूची प्रभृतिके भेदसे नाना प्रकारका है। यथाक्रम इन सब पाचनोंका विषय लिखा जाता है।

बृहत् पञ्चमूल—बिल्व, श्योनाक, गाम्भारी, पटल और गणिकारिका इन पांच द्रव्योंके मूलसे जो पाचन बनता है, उसे बृहत् पंचमूल कहते हैं।

स्वल्पपंचमूल—शालपर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कण्टकारिका और गोक्षुर, इन पांच द्रव्योंका मूल। यह अश्मरीनाशक और अत्यन्त अग्निसन्दीपक माना गया है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, शर, इक्षु और दर्भ इन पांच प्रकारके मूलोंका नाम तृणपञ्चमूल है।

शतावर्यादिपञ्चमूल-शतावरी, विदारीकन्द, जीवन्ती, शिवाली और जीवक इस पंचविध द्रव्योंके मूलसे यह पाचन बनता है। इसका गुण स्तन्यकार, गुरु, हृद्य, चक्षु, शीतल, कान्तिद और अग्निवृद्धिकर है।

जीवकादि पंचमूल—जीवक, ऋषभ, मेदा, महामेदा और जीवनी इन पांच प्रकारके द्रव्योंका मूल। गुण—हृद्य, चक्षुका हितकर, धातुवर्द्धक, दाह, पित्त, ज्वर और तृष्णानाशक।

बलादिपंचमूल—बला, पुनर्नवा, एरण्ड, मुद्गपर्णी और माषपर्णी इन पांच प्रकारके द्रव्योंका मूल। गुण—भेदक, शोफ और ज्वरनाशक।

गोक्षुरादिपंचमूल—गोक्षुर, बदरी, इन्द्रवारुणी, कासमर्द और सर्षप इनका मूल।

गुड़ूच्यादिपंचमूल—गुड़ूची, मेषशृङ्गी, शारिवा, विदारि और हरिद्रा इन पांचोंकी जड़।

वल्लीपञ्चमूल—करमर्द, त्रिकण्टक, सैरीयक, शतावरी और गृध्रनखी, इन पांच द्रव्योंका मूल। पञ्चमूलके यही नौ भेद हैं।

पञ्चमूलसूतिका (सं० स्त्री०) १ पैत्तिक सूतिकातिसारकी

ओषधविशेष। यह नीलोकटसरैया, वंधप्रसारी, कचूर, सोया, गुड़चके मेलसे बनती है। इसमें स्वल्पपंचमूल मिलानेसे सूतिका-दशमूल बनता है। २ मूलपंचक, पांच मूलोंका समाहार।

पञ्चमूली (सं० स्त्री०) पंचानां मूलानां समाहारः (द्विगोः। पा ४।१।२१) इति ङीप्। स्वल्पपंचमूल-पाचन।

पञ्चमूल्यादि (सं० क्ली०) १ पाचनभेद। पंचमूली, बला, बेलसोंठ, धनिया, नीलोत्पल और कचूर इन सब द्रव्योंका काढ़ा पीनेसे वातातिसार नष्ट होता है। २ चक्रदत्तोक्त पाचनभेद, स्वल्प और वृहत्‌के भेदसे यह दो प्रकारका है।

स्वल्पपञ्चमूल्यादि—शालपर्णी, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोखुर, बला, बेलसोंठ, गुलञ्च, मोथा, सोंठ, आकनादि, चिरायता, बाला, कूटजकी छाल और इन्द्र-यव कुल मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शेष ८ तोला। इससे सब प्रकारके अतीसार, ज्वर और वमि आदि उपद्रव नष्ट होते हैं।

वृहत् पञ्चमूल्यादि—विल्व, श्योनाक (सोनापाठा), गाम्भारी, पढ़ार, गनियारी, सोंठ, शालिपर्णपत्र, मोथा, यासपत्र, दाड़िमपत्र, विजवन्दकी जड़, बाला, गुलंच, आकनादि, बेलसोंठ, वराक्रान्ता, कूटजकी छाल, इन्द्र-यव, धनिया, धवका फूल, कुल मिला कर २ तोला; जल ३२ तोला, शेष ८ तोला; प्रक्षेप अतीसका चूर्ण २ माशा, जीराचूर्ण २ माशा। इसके सेवन करनेसे सब प्रकारके अतीसार रोग जाते रहते हैं।

पैत्तिकमें स्वल्प पंचमूलादि और वातश्लेष्मप्रधानमें वृहत्पंचमूल्यादि व्यवस्थेय है।

पञ्चमेश (सं० पु०) फलित ज्योतिषके अनुसार पांचवें घर-का स्वामी।

पञ्चयज्ञा (सं० स्त्री०) तीर्थभेद, एक तीर्थका नाम।

पञ्चयज्ञ (सं० पु०) पंचविधाः यज्ञाः। गृहस्थकर्त्तव्य पंच प्रकारका यज्ञविशेष। पञ्चमहायज्ञ देखो।

पञ्चयाम (सं० पु०) पंचयामा यत्र। १ दिवस, दिन।

"त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टये।
नाड़ीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते॥"
(आह्निकतत्त्व)

शास्त्रोंमें पांच पहरका दिन और तीन पहरकी रात मानी गई है। रातके पहले चार दण्ड और पिछले चार दण्ड दिनमें लिए गए हैं। २ तदभिमानी देवताभेद।

"विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिष-मातपम्।
पञ्चयामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु॥"
(भागवत ६।६।१५)

पञ्चयुग (सं० क्ली०) पंचभिः पंचभिः युगम्। इन्द्रादि पांच पांच वर्ष द्वारा द्वादश वर्षात्मक पष्टिसंवत्सर।

पञ्चरक्षक (सं० पु०) पत्रगोड़वृक्ष, पलोड़का पेड़।

पञ्चरत्न (सं० क्ली०) पञ्चानां रत्नानां समाहारः, वा पंचविधं पंचगुणितं रत्नं। १ पांच प्रकारके रत्न। कुछ लोग सोना, हीरा, नीलम, लाल और मोतीको पञ्चरत्न मानते हैं और कुछ लोग मोती, मूंगा, वैक्रान्त, हीरा और पन्नाको।

"कनकं हीरकं नीलं पद्मरागञ्च मौक्तिकम्।
पंचरत्नमिदं प्रोक्तमृषिभिः पूर्वदर्शिभिः॥
रत्नानांचाप्यभावे तु स्वर्णं कर्षार्द्धमेव वा।
सुवर्णस्याप्यभावे तु आज्यं ज्ञेयं विचक्षणैः॥" (हेमाद्रि)

इस पंचरत्नके अभावमें कर्षार्द्ध परिमाण सुवर्ण और उसके अभावमें आज्य ग्रहणीय है, यही पण्डितोंका मत है। विधानपारिजातके मतसे पञ्चरत्न नीलक, वज्रक, पद्मराग, मौक्तिक और प्रवाल है।

"नीलकं वज्रकञ्चेति पद्मरागश्च मौक्तिकम्।
प्रवालं चेति विज्ञेयं पञ्चरत्नं मनीषिभिः॥"
(विधानपारि०)

हेमाद्रिकृत व्रतखण्डमें लिखा है—

"सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्त्तं प्रवालकम्।
रत्नपंचकमाख्यातम्" (हेमाद्रिव्रतख०)

सुवर्ण, रजत, मुक्ता, राजावर्त्त और प्रवाल यही पञ्चरत्न है। पञ्चरत्नानीव उपदेशकत्वात् यत्र। २ नीति-गर्भ कवितापंचक।

"नागः पोतस्तथा वेद्यं क्षान्तिशक्यौ यथाक्रमम्।
पंचरत्नमिदं प्रोक्तं विदुषाऽपि सुदुर्लभम्॥" (काव्यसं०)

३ कामरूपके अन्तर्गत 'योगीगुफा'के सन्निकटस्थ नदीतीरवर्त्ती एक पर्वत। (क्ली०) ४ पञ्चचूड़ देवदह-विशेष।

पञ्चरश्मि (सं० पु०) पञ्च पञ्चवर्णा रश्मयो यस्य। पिङ्गलादि पँचवर्ण रश्मिकसूर्य। सूर्यकी किरणमें पिङ्गलादि पांच वर्ण हैं, इसीसे पञ्चरश्मि शब्दसे सूर्यका बोध होता है, छान्दोग्य उपनिषद्में यह प्रतिपादित हुआ है। यथा—सूर्यरश्मिमें पिङ्गल, शुक्ल, नील, पीत और लोहित ये पांच वर्ण हैं।

पञ्चरसलौह (सं० क्लो०) वर्त्तलौह।

पञ्चरसा (सं० स्त्री०) पंचोविस्तीर्णो रसो यस्याम्। १ आमलकी, आंवला। २ हरीतकी, हड़।

पञ्चरास्नादिक्वाथ (सं० क्लो०) रास्ना, गुलंच, एरण्ड, कचूर और एरण्डमूलका काढ़ा। यह आमवातनाशक माना गया है।

पञ्चराजिफल (सं० पु०) पटोललता, परवलकी लता।

पञ्चरात्र (सं० क्लो०) पञ्चानां रात्रीणां समाहारः समासे अच्। १ रात्रिपंचक, पांच रातोंका समह।

"त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा॥"

(चक्रपाणि)

२ पंचरात्रसाध्य अहीनयागभेद, एक यज्ञ जो पांच रातमें होता था। ३ वैष्णवशास्त्रभेद, वैष्णवधर्मका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ। इस शास्त्रका नाम पंचरात्र पड़नेका कारण नारदपंचरात्रमें इस प्रकार लिखा है—

"रात्रञ्च ज्ञानवचनं ज्ञानं पञ्चविधं स्मृतम्।

तेनेदं पञ्चरात्रञ्च प्रवदन्ति मनीषिणः॥" (१।१ अ०)

रात्रका अर्थ ज्ञानगर्भवचन है, यह ज्ञान पांच प्रकारका है, इसीसे इसका नाम पंचरात्र पड़ा है।

पंचरात्रमतावलम्बीगण पंचरात्र वा भागवत नामसे प्रसिद्ध हैं।

पंचरात्रमत अति प्राचीन है। बहुतोंका विश्वास है, कि पंचरात्र वा सात्वतमतसे ही आदि वैष्णवधर्म निकला है। वासुदेवादि चतुर्व्यूह, प्रेम और भक्ति इस मतका प्रधान लक्ष्य है।

महाभारतके मोक्षधर्ममें सांख्य, योग, पाशुपात, वेद आदिके साथ पञ्चरात्रमतका उल्लेख मिलता है।

(मोक्षधर्म ३५० अ०)

भारतमें लिखा है, "पुराकालमें उपरिचर (वसु) नामक हरिभक्तिपरायण परम धार्मिक एक राजा रहते थे। वही राजा सबसे पहले सूर्यमुखनिःसृत पञ्चरात्रशास्त्रका अवलम्बन करते हुए विष्णुकी अर्चना करके अन्तमें पितरोंकी पूजा करते थे।......वे पञ्चरात्रशास्त्रका अवलम्बन कर नित्यकार्य और नैमित्तिक यज्ञीय सभी कार्य किया करते थे। उनके भवनमें पञ्चरात्रवित् प्रधान प्रधान श्रोत्रियगण शास्त्रनिर्दिष्ट भोग्यद्रव्य प्रीतिपूर्वक सबसे पहले भोजन करते थे। (मोक्षधर्म ३३६ अ०)

पञ्चरात्रकी उत्पत्ति और मुख्य विषयके सम्बन्धमें महाभारतमें दूसरी जगह लिखा है—"कुरु-पाण्डवकी लड़ाईमें जब महावीर अर्जुन क्षुब्ध हो पड़े, तब महात्मा मधुसूदनने उन्हें जो ऐकान्तिक धर्म (गीताधर्म)-का उपदेश दिया था वह सबको विदित है। वह धर्म अति दुष्प्रवेश्य है, मूढ़ व्यक्ति उसे नहीं जान सकते। सत्ययुगमें भगवान् नारायणने उस सामवेदसम्मत ऐकान्तिक धर्मकी सृष्टि की, तभीसे वे इसे धारण किये हुए हैं। पहले धर्मपरायण महाराज युधिष्ठिरने जब वासुदेव और भीष्मके सामने नारदको धर्मविषय पूछा, तब उन्होंने उन्हें जो कहा था उसे वेदव्यासने वैशम्पायनके निकट वर्णन किया।

"ब्रह्मा नारायणके इच्छानुसार जब उनके मुखसे निकले, तब उन्होंने आत्मकृत धर्मका अवलम्बन कर देवों और पितरोंकी आराधना की थी। पीछे फेनप नामक महर्षिगण उस धर्मके अनुवर्त्ती हुए। बादमें वैखानस नामक महर्षियोंने फेनपोंसे वह धर्म ले कर चन्द्रमाको प्रदान किया। इसके बाद वह धर्म अन्तर्हित हो गया। फिर ब्रह्माने नारायणके चक्षुसे द्वितीय बार जन्म ले कर चन्द्रमासे वह धर्म ग्रहण किया और रुद्रदेवको दे दिया। रुद्रदेवसे वालखिल्योंने उसे प्राप्त किया। पीछे वह सनातन धर्म नारायणके मायाप्रभावसे पुनः तिरोहित हो गया। अनन्तर ब्रह्माने नारायणके वाक्यसे तृतीय बार उदय हो कर फिरसे उस धर्मका आविष्कार किया। महर्षि सुपर्ण तपस्या, नियम और दमगुणके प्रभाव द्वारा नारायणसे वह धर्म पा कर प्रति दिन तीन बार करके उसका पाठ करने लगे। उस धर्मका त्रिसौपर्ण नाम पड़नेका यही कारण है। तदनन्तर वायुने सुपर्णसे, पीछे महर्षियोंने वायुसे और अन्तमें समुद्रने महर्षियोंसे

इसे पाया। बादमें वह फिरसे नारायणमें विलीन हो गया। इस बार ब्रह्माने नारायणके कर्णसे पुनः जन्म ले कर आरण्यक वेदके साथ सरहस्य उस श्रेष्ठ धर्मको प्राप्त किया। पीछे उन्होंने स्वारोचिष मनुको, स्वारोचिष मनुने अपने लड़के शङ्खपदको और शङ्खपदने पुनः दिक्पाल सुवर्णाभको प्रदान किया। त्रेतायुगमें वह धर्म अन्तर्हित हुआ था। इस बार ब्रह्माने जब नारायणकी नाभिकासे जन्म लिया, तब नारायणने उसे ब्रह्माको, ब्रह्माने सनत्कुमारको, सनत्कुमारने प्रजापति वीरणको वीरणने अपने लड़के रैभ्यको और रैभ्यने दिक्पति कुक्षिको वह धर्म अर्पण किया। अन्तमें वह धर्म पुनः अन्तर्हित हो गया।

इसके बाद ब्रह्माने अण्डसे जन्म ले कर नारायणके मुखसे पुनः उस धर्मको पाया। पीछे ब्रह्माने बर्हिषदोंको, बर्हिषदोंने ज्येष्ठ नामक एक सामवेदपारदर्शी ब्राह्मणको और ज्येष्ठने महाराज अविकम्पनको वह धर्म सिखलाया था। अन्तमें वह सनातनधर्म तिरोहित हो गया। पश्चात् ब्रह्माने जब सप्तम बार नारायणकी नाभिसे जन्म लिया, तब नारायणने उनके सामने यह धर्म गाया। पीछे ब्रह्माने दक्षको, दक्षने अपने बड़े लड़के आदित्यको, आदित्यने विवस्वान्को, विवस्वान्ने मनुको और मनुने पुत्र इक्ष्वाकुको वह धर्म अर्पण किया। तभीसे ले कर आज तक वही धर्म चला आ रहा है। प्रलयकाल उपस्थित होने पर वह पुनः भगवान्में लीन हो जायगा। हरिगीता (भगवद्गीता)के यतिधर्मप्रसङ्गमें वह धर्म कीर्त्तित हुआ है। देवर्षि नारदने नारायणसे वह ऐकान्तिक धर्म प्राप्त किया। वह सनातन सत्य धर्म ही सबोंका आदि, दुर्ज्ञेय और दुरनुष्ठेय है। किन्तु संन्यास धर्मावलम्बी ही उसका प्रतिपालन किया करते हैं। ऐकान्तिक धर्म और अहिंसाधर्मयुक्त सत्कर्मके प्रभावसे नारायण प्रसन्न होते हैं। उस महात्माकी कोई तो केवल अनिरुद्धमूर्त्तिमें, कोई अनिरुद्ध और प्रद्युम्नमूर्त्तिमें तथा कोई अनिरुद्ध, प्रद्युम्न, सङ्कर्षण और वासुदेव मूर्त्तिमें उपासना किया करते हैं। ये समतापरिशून्य, परिपूर्ण और आत्मस्वरूप हैं। इन्होंने पृथिव्यादि पञ्चभूतके गुणोंको अतिक्रम किया है। ये मन और पञ्च इन्द्रियस्वरूप हैं। ये त्रिलोकके नियन्ता, सृष्टिकर्त्ता, अकर्त्ता, कार्य और कारण हैं। ये ही इच्छानुसार जगत्के साथ क्रीड़ा किया करते हैं।"

(मोक्षधर्म ३४८ अध्याय)

मोक्षधर्मके अन्यस्थानमें लिखा है,—

"नरनारायणने नारदको सम्बोधन करके कहा, 'देवर्षे! तुमने श्वेतद्वीपमें भगवान् नारायणको जो अनिरुद्ध मूर्त्तिमें देखा है, दूसरेकी बात तो दूर रहे, प्रजापति ब्रह्माको भी आज तक उनके दर्शन नहीं हुए हैं। तुम उनके नितान्त भक्त हो, इसी कारण उन्होंने तुम्हें अपनी मूर्त्ति दिखलाई है। वे परमात्मा जहां तपोनिमग्न हैं, वहां हम दोनोंको छोड़ तीसरे नहीं जा सकते। वे स्वयं जहां विराजित हैं, वहांकी प्रभा सहस्र सूर्य समान समुज्ज्वल है। उसी विश्वपतिसे क्षमागुण उत्पन्न हुआ था जिस क्षमागुणसे पृथ्वी भूषित है। रस उन्हींसे सर्वलोकहितकर देवतासे उत्पन्न हो कर सलिलमें आश्रय किये हुए है। सूर्यरूपात्मक तेज लाभ करके प्रभाजाल फैला रहे हैं। वायु उन्हीं पुरुषोत्तमसे समुत्पन्न स्पर्शगुण लाभ करके वह रही है। शब्दके उन्हींसे निकल कर आकाशमें आश्रय लेनेसे आकाश अन्य वस्तु द्वारा अनावृत रहता है। सर्वभूतगत मन उनसे समुत्पन्न हो कर चन्द्रमाको आश्रय किये हुए उन्हें प्रकाशशाली कर रहा है। तमोनाशक दिवाकर सभी लोकोंके द्वारस्वरूप हैं। मुमुक्षु व्यक्तिगण सबसे पहले उस सूर्यमण्डलमें प्रवेश करते हैं। पीछे वे आदित्यसे दग्धदेह, अदृश्य और परमाणुस्वरूप हो कर उस सूर्यमण्डलके मध्य नारायणमें, नारायणसे निष्क्रान्त हो कर अनिरुद्धमें, पीछे मनःस्वरूप हो कर प्रद्युम्नमें, प्रद्युम्नसे निर्गत हो कर जीवसंज्ञक सङ्कर्षणमें और अन्तको सङ्कर्षणसे त्रिगुणहीन हो कर निर्गुणात्मक सबोंके अधिष्ठानभूत क्षेत्रज्ञ वासुदेवमें प्रवेश किया करते हैं।' (शान्तिपर्व मोक्षधर्म ३५ अ०)

महाभारतके श्रेष्ठधर्मकीर्त्तनप्रसङ्गमें वासुदेवसम्बन्धीय जो सब कथाएँ लिखी हैं, वे ही पञ्चरात्रके प्रतिपाद्य विषय हैं। वासुदेवको परब्रह्मरूपमें स्वीकार करना ही पञ्चरात्रका उद्देश्य है।

पञ्चरात्रके अति प्राचीनत्वको स्थापनाके लिए महाभारतमें जो जो आख्यायिकायें वर्णित हुई हैं, पुराविद्गण उन्हें स्वीकार नहीं करते। महाभारतमें पञ्चरात्रका दूसरा नाम सात्वत धर्म बतलाया है (१)। वसु उपरिचर इसी सात्वत-विधिके (२) अनुसार धर्मानुष्ठान करते थे। फिर महाभारतमें ही लिखा है कि रणस्थलमें अर्जुनको क्षुब्ध देख वासुदेवने उस धर्मका प्रकाश किया था (३)। रामानुजस्वामीने 'सात्वतसंहिता' नामक एक पञ्चरात्रग्रन्थका उल्लेख किया है। भागवतमें श्रीकृष्ण सात्वतर्षभ (१।१२।१) और सात्वतपुङ्गव (१।८।३२) नामसे अभिहित हुए हैं। भागवतमें लिखा है, कि सात्वतगण यादवोंकी एक शाखा (१।१४।१३, ३।१।१८) हैं, वे लोग वासुदेवको परब्रह्म समझ कर उनकी अर्चना करते थे। भागवतमें सात्वतगण कर्तृक जो हरिकी विशेष उपासना लिखी है, वह पञ्चरात्रशास्त्रानुमोदित है। इन सब प्रमाणोंसे ज्ञात होता है, कि वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णने ही इस पञ्चरात्र वा भागवत-मतका प्रचार किया होगा। श्रीकृष्णके अनुरक्त सात्वतोंने ही सबसे पहले यह धर्ममत ग्रहण किया था, इस कारण महाभारतादिमें इसे सात्वतधर्म बतलाया है। वासुदेवको भगवान् समझ कर मतावलम्बिगण उनकी पूजा करते थे, इस कारण वे भागवत कहलाते थे, पतञ्जलिके महाभाष्यसे उसका आभास पाया जाता है। पाञ्चरात्रगण वासुदेवको नारायण समझते थे। इसीसे पञ्चरात्रशास्त्रको नारायणोक्त शास्त्रके जैसा मानते हैं।

डाक्टर भण्डारकरने लिखा है—"वासुदेव सात्वतवंशीय एक प्रसिद्ध राजा थे। सम्भवतः उनकी मृत्युके बाद वे सात्वतोंके निकट देवस्वरूपमें पूजित हुए होंगे और उसी उपासनासे विशेष मत निकला होगा। धीरे धीरे सात्वतोंसे दूसरे दूसरे भारतवासियोंने यह मत ग्रहण किया। पहले जब इस मतकी सृष्टि हुई, तब यह वैसा जटिल न था। क्रमशः धीरे यह परिपक्व हो कर पञ्चरात्रशास्त्रमें परिणत हुआ। इस समय नाना संहितादि रचे गये। इस वासुदेव धर्ममें परवर्त्तिकालको विष्णु, नारायण, गोविन्द और कृष्णके नाम आये और उसीसे नाना प्रकारके आधुनिक वैष्णवधर्मोंकी सृष्टि हुई।"

पाञ्चरात्रमत वेदमूलक है वा नहीं, यह ले कर एक समय घोर आन्दोलन चल रहा था। शङ्कराचार्यने शारीरभाष्यमें पञ्चरात्रमतको वेदविरुद्ध बतला कर उसका खण्डन इस प्रकार किया है।

"भागवत (पाञ्चरात्र)-गण समझते हैं, कि भगवान् वासुदेव एक हैं, वे निरञ्जन, ज्ञानवपुः और परमार्थतत्त्व हैं। वे अपनेको चार प्रकारोंमें विभक्त करके प्रतिष्ठित हैं। वासुदेवव्यूह, सङ्कर्षणव्यूह, प्रद्युम्नव्यूह और अनिरुद्धव्यूह ये चार प्रकारके व्यूह उन्हींके स्वरूप हैं। वासुदेवका दूसरा नाम परमात्मा, सङ्कर्षणका जीव, प्रद्युम्नका मन और अनिरुद्धका दूसरा नाम अहङ्कार है। इन चार प्रकारके व्यूहोंमें वासुदेवव्यूह ही पराप्रकृति वा मूलकारण है, सङ्कर्षण आदि उन्हींसे समुत्पन्न हुए हैं। सुतरां सङ्कर्षणादि उसी पराप्रकृतिका कार्य है। जीवोंके दीर्घकाल तक कायमनोवाक्यसे भगवद्गृहगमन, पूजाद्रव्यादि आहरण, पूजा, अष्टाक्षरादि मन्त्रका जप और योगसाधनमें रत रहनेसे निष्पाप होता है। भागवतगण जो कहते हैं कि नारायण प्रकृतिके अतिरिक्त, परमात्मा नामसे प्रसिद्ध और सर्वात्मा हैं सो श्रुतिविरुद्ध नहीं है तथा वे जो अपनेको अनेक प्रकारों वा व्यूहभावोंमें अवस्थित बतलाते हैं, सो भागवतमतका यह

---

(१) "ततो हि सात्वतो धर्मो व्याप्य लोकानवस्थितः।" (१२।३४८।३४)

"दुर्विज्ञेयो दुष्करश्च सात्वतैर्धार्यते सदा।" (१२।३४८।५५)

(२) "सात्वतं विधिमास्थाय प्राक्सूर्यमुखनिःसृतं। पूजयामास देवेशं तच्छेषेण पितामहान्॥" (१२।३३५।१९)

(३) "एवमेष महान् धर्मः स ते पूर्वं नृपोत्तम। कथितो हरिगीतासु समासविधिकल्पितः॥" (१२।३४६।११)

"समुपोढ़ेष्वनीकेषु कुरुपाण्डवयोर्मृधे। अर्जुने विमनस्के च गीता भगवता स्वयं॥" (१२।३४८।८)

अंश निराकरणीय नहीं है अर्थात् श्रुतिसङ्गत है। केवल परमात्मा 'एक प्रकारके होते और अनेक प्रकारके भी होते' इत्यादि श्रुतिमें परमात्माके बहुभावमें अवस्थान कहा गया है। 'निरन्तर अनन्यचित्त हो कर अभिगमनादिरूप आराधनामें तत्पर होना होगा' यह अंश भी विरुद्ध नहीं है। क्योंकि श्रुति-स्मृति दोनोंमें ही ईश्वरप्रणिधानका विधान है। वे लोग कहते हैं. 'वासुदेवसे सङ्कर्षणका, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नका और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म होता है।' इस अंशके निराकरणके लिए यह वेदान्तसूत्र कहा गया। सूत्रका अर्थ यह है 'अनित्यत्वादि दोष प्रयुक्त होता है, इस कारण वासुदेवसंज्ञक परमात्मासे सङ्कर्षणसंज्ञक जीवकी उत्पत्ति असम्भव है।' जीवकी यदि उत्पत्तिमान् मान लें, तो उसमें अनित्यादि दोष रहेगा ही। जीव यदि अनित्य अर्थात् नश्वरस्वभावका हो, तो उसे भगवत्प्राप्तिरूप मोक्ष ही हो नहीं सकता। कारणके विनाशमें कार्यका विनाश अवश्यम्भावी है। आचार्य व्यासने जीवकी उत्पत्ति (२।३।७) सूत्रमें यह निषेध नहीं किया है। अतएव भागवतोंकी यह कल्पना असङ्गत है।

वह कल्पना जो असङ्गत है, उसके लिए हेतु भी है। क्योंकि लोक-मध्य देवदत्तादि भी कर्त्तासे दात्रादि करणकी उत्पत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती। अथच भागवतोंने वर्णन किया है, कि सङ्कर्षण नामक कर्त्ता, प्रद्युम्न नामक करण मनको उत्पादन करते हैं। फिर कोई कर्तृजन्मा प्रद्युम्न (मनु)-से अनिरुद्ध (अहङ्कार)-की उत्पत्ति बतलाते हैं। भागवतोंकी इन सब कथाओंको हम लोग बिना दृष्टान्तके ग्रहण और मान नहीं सकते। उस तत्त्वका अवबोधक श्रुतिवाक्य भी नहीं है।

भागवतोंका ऐसा अभिप्राय हो सकता है कि उक्त सङ्कर्षणादि जीवभावान्वित नहीं हैं। वे सभी ईश्वर हैं, सभी ज्ञानशक्ति और ऐश्वर्यशक्ति, बल, वीर्य तथा तेजसम्पन्न हैं, सभी वासुदेव हैं, सभी निर्दोष, निरधिष्ठित और निरवद्य हैं। सुतरां उनके सम्बन्धमें उत्पत्ति-असम्भव-दोष नहीं है, यह पहले ही कहा जा चुका है। उक्त अभिप्राय रहते भी उत्पत्ति-असम्भव-दोष आ जाता है, सो क्यों? कारण यों है—वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये परस्पर भिन्न हैं, एकात्मक नहीं है, अथच सभी समधर्मी और ईश्वर हैं; इस प्रकार अभिप्रेत होनेसे अनेक ईश्वर स्वीकार किए जा सकते हैं। किन्तु अनेक ईश्वर स्वीकार करना वृथा है। क्योंकि एक ईश्वर स्वीकार करनेसे ही कार्यसिद्धि हो सकती है। फिर भगवान् वासुदेव एक अर्थात् अद्वितीय और परमार्थतत्त्व हैं, इस प्रकार प्रतिज्ञा रहनेसे सिद्धान्तहानिदोष लगता है। ये चतुर्व्यूह भगवान्‌के ही हैं तथा वे सभी समधर्मी हैं, ऐसा होने पर भी उत्पत्ति-असम्भव-दोष रह जाता है। कारण छोटा बड़ा नहीं होनेसे वासुदेवसे सङ्कर्षणका, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नका और प्रद्युम्नसे अनिरुद्धका जन्म नहीं हो सकता। कार्यकारणके मध्य अतिशय अर्थात् छोटा बड़ा रहना ही नियम है, जैसे मट्टी और घड़ा। अतिशय नहीं रहनेसे कौन कार्य और कौन कारण है, उसका निर्देश नहीं किया जा सकता। फिर भी देखो, पञ्चरात्रसिद्धान्तीगण वासुदेवादिका ज्ञानैश्वर्यादि तारतम्यकृत भेद नहीं मानते, बल्कि चारों व्यूहोंको अन्तमें वासुदेव मानते हैं। भगवान्‌के व्यूह चार ही संख्यामें पर्याप्त हैं, सो नहीं। ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त समस्त जगत् भगवान्-व्यूह है, यह श्रुति और स्मृतिमें दिखलाया गया है।

भागवतों (पंचरात्रादि)-के शास्त्रमें गुण, गुणिभाव आदि नाना विरुद्ध कल्पनायें देखी जाती हैं। स्वयं ही गुण और स्वयं ही गुणी हैं, यह असम्भव ही विरुद्ध है। भागवतोंका कहना है कि ज्ञानशक्ति, ऐश्वर्यशक्ति, बल, वीर्य, तेज ये सब गुण हैं और प्रद्युम्नादि भिन्न होने पर भी आत्मा भगवान् वासुदेव हैं और सो उनके शास्त्रमें वेदनिन्दा भी की गई हैं। यथा—

"शाण्डिल्यने चारों वेदमें परम श्रेयः न पा कर अन्तमें यह शास्त्र प्राप्त किया था इत्यादि। इन सब कारणोंसे भागवतोंकी उक्त कल्पना असङ्गत और असिद्ध है।" (१)

(१) आनन्दगिरिके शंकरदिग्विजयके ८वें प्रकरणमें पञ्चरात्र निराकरण प्रसंग है।

शङ्कराचार्यने पंचरात्रमतका उद्धार कर उसका जो खण्डन किया है, पंचरात्र-मतावलम्बी रामानुज और मध्वाचारी आदि उसे असमीचीन मानते हैं। परम वैष्णव रामानुजाचार्यने अपने श्रीभाष्यमें पूर्वपक्षके जैसा उपरोक्त शङ्कराचार्यको युक्तियोंका उद्धार कर जिस प्रकार उसका निराकरण किया है, उसके पढ़नेसे पंचरात्रमतके सम्बन्धमें बहुत कुछ जाना जा सकता है। रामानुजका मत नीचे उद्धृत किया गया है—

'कपिलादि शास्त्रकी तरह भगवदुक्त परममङ्गलसाधन पंचरात्रशास्त्रका भी कोई कोई अश्रुतिमूलक ग्रंथ शङ्कराचार्यसे अप्रामाण्य निराकृत हुआ है। उक्त पंचरात्रशास्त्रमें यह भागवत प्रक्रिया दी हुई है, कि परमकारण ब्रह्मस्वरूप वासुदेवसे सङ्कर्षण नामक जीवकी उत्पत्ति, सङ्कर्षणसे प्रद्युम्न नामक मनकी उत्पत्ति और मनसे अनिरुद्धसंज्ञक अहङ्कारकी उत्पत्ति हुई है। किन्तु यहां जीवकी उत्पत्ति नहीं बतलाई जा सकती। क्योंकि वह श्रुतिविरुद्ध अर्थात् अश्रुतिमूलक है। 'ज्ञानसम्पन्न जीव कभी नहीं जनमता और न कभी मरता ही है' इस वाक्य द्वारा सभी श्रुतियोंने जीवको अनादित्व अर्थात् उत्पत्तिराहित्य कहा है। सङ्कर्षणसे प्रद्युम्नसंज्ञक मनकी उत्पत्ति बतलाई गई है, यहां पर कर्त्ता जीवसे करण मनका उत्पत्तिसम्भव नहीं। कारण परमात्मासे ही प्राण, मन और सभी इन्द्रिय उत्पन्न हुई हैं, श्रुतिने भी यही कहा है। अतएव यदि जीव सङ्कर्षणसे करण मनकी उत्पत्ति कहें, तो परमात्मासे ही उत्पत्ति एवंवादी श्रुतिके साथ विरोध होता है। अतएव यह शास्त्र श्रुतिविरुद्ध अर्थका प्रतिपादन करता है इस कारण इसका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध होता है। 'वा' शब्द द्वारा वे पक्षका वैपरीत्य कल्पना करके कहते हैं, कि ब्रह्मविज्ञानादि सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इनका परब्रह्मभाव विद्यमान रहनेसे तत्प्रतिपादक शास्त्रका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध नहीं हो सकता अर्थात् ये सङ्कर्षणादि साधारण जीवकी तरह अभिप्रेत नहीं हैं, ये सभी ईश्वर हैं; सभी ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि ऐश्वर्य धर्मोंसे युक्त हैं, अतएव उक्त वादिशास्त्रका मत अप्रमाणित नहीं है। 'जीवोत्पत्तिविरुद्ध अभिहित हुआ है' जो भागवतप्रक्रियासे अनभिज्ञ हैं यह उन्हींकी उक्ति हो सकती है। भागवतप्रक्रिया इस प्रकार है कि जो स्वाश्रितवत्सल वासुदेवाख्य परमब्रह्मके जैसा अनभिज्ञ हैं, वे अपने इच्छानुसार स्वाश्रित और सम अवणीयतावशतः चार प्रकारसे अवस्थान करते हैं। पौष्करसंहितामें इस प्रकार लिखा है, कि 'क्रमागत ब्राह्मणोंसे कर्त्तव्यताहेतु स्वसंज्ञा द्वारा जहां चातुरात्म्य उपासित होता है, वही आगम है।' वह चातुरात्म्य उपासना जो वासुदेवाख्य परमब्रह्मकी ही उपासना मानी गई है, वह सात्वतसंहितामें भी उक्त हुआ है। वासुदेवाख्य परमब्रह्म, सम्पूर्ण, षाड्गुण्यवपु, सूक्ष्म, व्यूह और विभव ये सब भेद भिन्न हैं और अधिकारानुसार भक्तोंसे ज्ञानपूर्वक कर्म द्वारा अर्चित हो कर सम्यक् रूपसे लभ्य हुआ करता है। विभवार्चनसे व्यूहप्राप्ति और व्यूहार्चनसे वासुदेवाख्य सूक्ष्म परमब्रह्म प्राप्त हुआ करता है। विभव अर्थात् कृष्ण आदि प्रादुर्भावसमूह, सूक्ष्म अर्थात् केवलमात्र षाड्गुण्यविग्रह, व्यूह अर्थात् वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्धरूप चतुर्व्यूह है। पौष्करसंहितामें लिखा है, 'इस शास्त्रसे ज्ञानपूर्वक कर्म द्वारा वासुदेवाख्य अव्यय परब्रह्म प्राप्त हुआ करता है।' अतएव सङ्कर्षणादिका भी परब्रह्मत्व सिद्ध हुआ, कारण वे स्वीय इच्छानुसार विग्रह धारण करते हैं। जन्मपरिग्रह न कर वे बहुरूपोंमें जन्म लेते हैं, यह श्रुतिसिद्ध और शरणागतवत्सल है। इस कारण स्वेच्छाधीन विग्रह धारण करनेके हेतु तदभिधायक शास्त्रका प्रामाण्य प्रतिषिद्ध नहीं है। इस शास्त्रमें सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये तीनों जीव, मन और अहङ्कार मत्स्वके अधिष्ठाता हैं, इसीसे इन्हें जीवादि शब्दसे जो अभिहित किया गया है उसमें विरोध नहीं है। जिस प्रकार आकाश और प्राणादि शब्द द्वारा परब्रह्मका अभिधान हुआ करता है अर्थात् जिस प्रकार आकाश और प्राण परब्रह्मके स्वरूप नहीं होने पर भी आकाश और प्राण परब्रह्म माने जाते हैं, उसी प्रकार जीव, मन और अहङ्कारतत्त्वके अधिष्ठाता सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूपमें अभिहित हुए हैं।

शास्त्रमें जीवोत्पत्ति प्रतिषिद्ध हुई है, कारण परम-

संहितामें लिखा है, कि चेतनारहित, केवल परप्रयोजन-साधक, अथच नित्य, सर्वदा विक्रियायुक्त, त्रिगुण और कर्मियोंका क्षेत्र यही प्रकृतिका रूप है। इसके साथ साथ पुरुषका सम्बन्ध व्याप्तिरूपमें है, यह सम्बन्ध अनादि और अनन्त है, यह परमार्थ सत्य है। इस प्रकार सभी संहिताओंमें जीवको नित्य माना है, इस कारण उसकी उत्पत्ति पञ्चरात्रके मतसे प्रतिषिद्ध हुई है। जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश अवश्यम्भावी है। जीवकी उत्पत्ति स्वीकार करनेसे उसका विनाश भी स्वीकार करना होगा। जीव जब नित्य है, तब नित्यत्व खिरोक्त होने पर उत्पत्ति आप ही आप प्रतिषिद्ध होगा। पहले परमसंहितामें लिखा है, कि प्रकृतिका रूप सतत विक्रियायुक्त है, उत्पत्ति विनाश आदि जो हैं उन्हें सततविक्रियाके मध्य अन्तर्निविष्ट जानना होगा। अतएव सङ्कर्षणादि जीवरूपमें उत्पन्न होते हैं, यह जो दोष शङ्कराचार्यने लगाया था सो निराकृत हुआ।

कोई कोई कहते हैं, कि 'शाण्डिल्य सङ्कवेदमें पराशक्ति न पा कर पञ्चरात्रशास्त्र अध्ययन करते हैं, इसमें वेदकी निन्दा हुई। क्योंकि वे वेदमें पराशक्ति लाभ नहीं कर सकते, अतएव यह पञ्चरात्रशास्त्र वेदविरुद्ध है।' जो वेदविरुद्ध है, वह कभी भी ग्रहणीय नहीं है। इस कारण यह शास्त्र प्रामाण्य नहीं है। इसके उत्तरमें ये लोग कहते हैं, कि नारद और शाण्डिल्य ऋजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और इतिहास पुराण आदि ये सभी विद्यास्थान होनेके कारण मन्त्रविद् और आत्मविद् थे। शाण्डिल्य वेदान्तवेद्य वासुदेवाख्य परब्रह्मतत्त्वसे अवगत हुए हैं। वेदका अर्थ अत्यन्त दुर्ज्ञेय है, इसीसे सुखावबोधके लिए इस शास्त्रका आरम्भ हुआ है। परमसंहितामें इस प्रकार लिखा है,—

'हे भगवन! मैंने साङ्गोपाङ्ग सभी वेद विस्तृतरूपसे अध्ययन किए हैं और वाक्ययुत वेदाङ्ग आदि भी सुने हैं, किन्तु इनमेंसे जिससे सिद्धि लाभ हो, ऐसा श्रेय पथ बिना संशयके कहीं भी देखनेमें नहीं आता।' फिर भी लिखा है, 'निखिल-विद्यावित् भगवान्‌ने हरिभक्तोंके प्रति दया दिखला कर सभी वेदान्तोंका यथासार संग्रह कर डाला है। अतएव उस निखिल हेयके विरोधस्वरूप जो कल्याण, तदेकतान और अनन्त ज्ञानानन्दादि अपरिमित सद्गुणसागर वेदान्तवेद्य परब्रह्म हैं, उन्हीं अपरिमित कारुण्य, सौशील्य, वात्सल्य और औदार्यशाली भगवान् सत्यसङ्कल्प वासुदेवने चातुर्वर्ण्य और चातुराश्रम्याश्रममें अवस्थित भक्तोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षाख्य पुरुषार्थचतुष्टयमें उन्मुख देख तथा स्वस्वरूप, स्वविभूतिस्वरूप, स्वस्वरूपब्रह्मके आराधन और आराधनाके लिये फलके यथायथज्ञापक, अपरिमित शाखासमन्वित ऋग यजु आदि चारों वेदोंको सुरतरके लिए दुरवगाह समझ कर स्वयं उस वेद समुदायका यथायथ अर्थज्ञापक पञ्चरात्र नामक शास्त्र प्रणयन किया है, यह स्पष्टरूपसे प्रतीत होता है। पर हां, दूसरे दूसरे व्याख्यातृगणने किसी एक विरुद्धांशमें सूत्रचतुष्टयको अप्रामाण्य समझ कर उसकी जो व्याख्या की है, वह सूत्राचरके अननुगुण और सूत्रकारका अभिप्रेत नहीं है। सूत्रकारने वेदान्ताभिधायि सूत्रोंका प्रणयन कर वेदोपबृंहणके निमित्त जः लक्षश्लोकी भारतसंहिताकी रचना की है. उसके मोक्षधर्म-उन्नेखकी जगह ज्ञानकाण्डमें कहा है. कि 'गृहस्थ, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और भिक्षुक, इनमेंसे यदि कोई व्यक्ति सिद्धि अवलम्बन करनेकी इच्छा करें, तो पहले उसे किसी देवताकी उपासना करनी चाहिये।' इसीसे आरम्भ करके अतिमहत् प्रबन्ध द्वारा उन्होंने पञ्चरात्र-शास्त्रकी प्रक्रिया भी प्रतिपादन की है। इस प्रकार लिखा है कि 'यह शास्त्र अतिविस्तृत भारताख्यानसे मतिरूप मन्थन-दण्ड द्वारा दधिसे घृत और नवनीतकी तरह उद्धृत हुआ है। जिस प्रकार द्विपदोंके मध्य ब्राह्मण, निखिल वेदमें आरण्यक और औषधियोंमें अमृत श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सभी शास्त्रोंमें चतुर्वेदसमन्वित और पञ्चरात्रानुगब्दित यही शास्त्र श्रेष्ठ माना गया है। यह महोपनिषद् हैं, यह परमश्रेय है, यही परब्रह्म हैं और यही ऋक्, यजु, साम और आङ्गिरस द्वारा सम्बलित अनुत्तम हित है।' अथवा यही अनुशासन प्रमाणरूपमें गण्य होगा। यहां सांख्ययोग शब्द द्वारा ज्ञानयोग और कर्मयोग निर्दिष्ट हुआ है।

वेदव्यासने भीष्मपर्वमें भी कहा है—'सात्वतविधि-

अवलम्बनकारी सङ्कर्षण द्वारा जो कीर्त्तित हुए हैं, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और प्रपन्न शूद्रोंको उन्हीं माधवकी अर्चना, सेवा और पूजा करना चाहिए।'

अतएव जिन्होंने सात्वतशास्त्रकी इस प्रकार भूरि प्रशंसा और श्रेष्ठता प्रतिपादन की है, वे वेदविद्‌श्रेष्ठ भगवान् बादरायणको किस प्रकार वेदान्तवेद्य परब्रह्मस्वरूप वासुदेवके उपदेशात्मक सात्वतशास्त्रका अप्रामाण्य कहेंगे?

फिर भी उन्होंने कहा है, 'हे मुने! सांख्य, योग पञ्चरात्र, वेद और पाशुपत इन सबका इन शास्त्रके ऊपर आदर है। शारीरकभाष्यमें भी सांख्यादि प्रतिषिद्ध हुए हैं, अतएव यह उसके समान है वा नहीं? उसमें भी उन्होंने शारीरकोक्त न्यायकी अवतारणा की है। ये सब क्या एक निष्ठ हैं अथवा पृथक्‌निष्ठ? इस प्रश्नका उत्तर यह है कि—सांख्य, योग, पाशुपत, वेद और पञ्चरात्र ये सब क्या एकतत्त्वप्रतिपादनकारी हैं अथवा पृथक् पृथक् तत्त्वके प्रतिपादयिता? अथवा ये जो एकतत्त्वका प्रतिपादन करेंगे, क्या वही तत्त्व है? जिस समय पृथक् पृथक् तत्त्वको प्रतिपादयिता होगी, उस समय इनके परस्पर विरुद्ध अर्थको प्रतिपादनपरता और वस्तुमें विकल्पनासम्भवके हेतु एक ही प्रमाण स्वीकार्य होगा। वह प्रमाण ही क्या है? इसका उत्तर लिखनेमें 'हे राजर्षे! इन सब ज्ञानोंको नानामत समझो। सांख्यके वक्ता कपिल हैं' इत्यादि रूपसे आरम्भ कर कपिल, हिरण्यगर्भ और पशुपतिकृत सांख्ययोग तथा पाशुपतका पौरुषेयत्व प्रतिपादन कर वेदका अपौरुषेयत्व स्थापन किया है। स्वयं नारायण निखिल पञ्चरात्रतत्त्वके वक्ता हैं, वे ही सभी वस्तुओंके एकमात्र निष्ठा हैं और तत्तत् तन्त्राभिहित तत्त्वोंके 'यह विश्वब्रह्मनारायण है' इत्यादि वाक्य द्वारा ब्रह्मात्मकता-अनुसन्धानकारी सबोंके एकमात्र नारायण ही निष्ठा हैं, यही ज्ञान होता है। अतएव वेदान्तवेद्य परब्रह्मभूत स्वयं नारायण ही इस पञ्चरात्रके वक्ता हैं और वह तन्त्र भी तत्स्वरूप तथा तदुपासनाविधायक है। इसीसे उस तन्त्रमें इतर तन्त्रका साधारण्य है। इसे कोई भी उद्भावन नहीं कर सकता।'

उसी तन्त्रमें लिखा है, कि सांख्य, योग, वेद और आरण्यक ये परस्पर सभी अङ्गोंके एक ही तत्त्वका प्रतिपादन करते हैं, इस कारण उसका पंचरात्र नाम रखा गया है।

सांख्योक्त पंचविंशतितत्त्व, योगोक्तयमनियमादि याग और वेदोक्त कर्मस्वरूप अङ्गोकारक आरण्यक इन्होंने क्रमशः तत्त्वसमुदायके ब्रह्मात्मकत्व, योगकी ब्रह्मोपासना प्रकारता और कर्मोंको तदाराधनारूपताका अभिधान करके जो एकमात्र ब्रह्मस्वरूपका प्रतिपादन किया है, इस पञ्चरात्रतन्त्रमें भी परब्रह्म नारायणने स्वयं ही उस समुदायको विशदरूपसे अभिव्यक्त किया है। अतएव सांख्य, योग, पञ्चरात्र, वेद और पाशुपत ये आत्मप्रमाण हैं, इन्हें हेतु द्वारा खण्डन करना उचित नहीं। तत्तत् अभिहित स्वरूपमात्रको ही अङ्गोकार करना विधेय है।'

रामानुजके शिष्योक्त सूत्रभाष्यकी टीकामें सुदर्शनाचार्यने गहरी आलोचना द्वारा वराहपुराणादि नाना शास्त्रोंके प्रमाणादि उद्धृत करके पञ्चरात्रशास्त्रके प्राधान्य-स्थापनकी चेष्टा की है।

पाञ्चरात्रगण यजुर्वेदके वाजसनेय शाखानुसार संस्कार किया करते हैं। इनमेंसे किसीके एकायनशाखानुसार संस्कारादि सम्पन्न होते हैं। पाञ्चरात्रोंका कहना है, कि संसार-बन्धनसे मुक्तिलाभ करनेके पांच उपाय हैं। १म कायमनोवाक्य संयत करके देवमन्दिराभिगमन, प्रातःस्तव और प्रणिपातपूर्वक भगवदाराधना; २य भगवदाराधनाके लिए पुष्पचयन और पुष्पाञ्जलिप्रदान; ३य भगवत्सेवा; ४र्थ भागवतशास्त्रपठन, श्रवण और मनन तथा ५म सन्ध्या, पूजा, ध्यान और धारणा एवं भगवान्‌के ऊपर सम्पूर्ण चित्तार्पण। इस प्रकार क्रियायोग और ज्ञानयोग द्वारा वासुदेवलाभ होते हैं तथा उनकी सान्निध्यलाभके साथ भक्तगण परमैश्वर्यमय निर्वाण मुक्तिलाभ करते हैं।

नारदीय पञ्चरात्रमें—१ ब्राह्म, २ शैव, ३ कौमार, ४ वाशिष्ठ, ५ कापिल, ६ गौतमीय और ७ नारदीय इन सात प्रकारके पंचरात्रोंका उल्लेख है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे—पंचरात्र ५ हैं, १ वाशिष्ठ २ नारदीय, ३ कापिल, ४ गौतमीय और ५ सनत्कुमा-

गीय पंचरात्र। (ब्रह्मवै० जन्मख० १३२ अ०) रामानुजके श्रीभाष्यमें सात्वतसंहिता, पौष्करसंहिता और परमसंहिता इन तीन पंचरात्रशास्त्रोंका प्रमाण मिलता है।

आनन्दगिरिके शङ्करविजयमें पंचरात्रागमदीक्षित माधवकी उक्ति और पंचरात्रागम नामक स्वतन्त्र ग्रन्थ पाया जाता है। पंचरात्रमतावलम्बी वैष्णवगण गीता, भागवत, शाण्डिल्यसूत्र और उपरोक्त ग्रन्थोंको अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं।

एतद्भिन्न हयग्रीव, पृथु, ध्रुव आदि कई एक पंचरात्र नामक ग्रन्थ पाये जाते हैं।

हयग्रीवके मतानुसार पंचरात्र २५ हैं। यथा—१ हयग्रीव, २ त्रैलोक्यमोहन, ३ वैभव, ४ पौष्कर, ५ नारदीय, ६ प्रह्लाद, ७ गार्ग्य, ८ गालव, ९ श्रीप्रश्न (लक्ष्मी), १० शाण्डिल्य, ११ ईश्वरसंहिता, १२ सात्वत, १३ वाशिष्ठ, १४ शौनक, १५ नारायणीय, १६ ज्ञान, १७ स्वायम्भुव, १८ कापिल, १९ गारुड़, २० आत्रेय, २१ नारसिंह, २२ आनन्द, २३ अरुण, २४ बौधायन और २५ विश्वावि।

ये २५ पंचरात्र छोड़ कर शिवोक्त और विष्णुप्रोक्त भागवत, पद्मपुराण, वाराहपुराण, सामान्यसंहिता, व्याससंहिता और परमसंहिता ये भी भागवतोंके शास्त्र समझे जाते हैं*।

उपरोक्त २५ पंचरात्रोंके मध्य श्री वा लक्ष्मीसंहिता (३३५० श्लोक), ज्ञानामृतसार (१४५० श्लोक), परमसंहिता वा परकागम (१२५०० श्लोक), पौष्करसंहिता (६३५०), पद्मसंहिता (९०००) और ब्रह्मसंहिता (४५००) ये छः नारदीय पंचरात्रके भी अन्तर्गत लिए गये हैं†।

* "तन्त्रं भागवतञ्चैव शिवोक्तं विष्णुभावितम्।
पद्मोद्भवं पुराणहि वाराहं च तथा परम्॥
इमे भागवतानान्तु तथा सामान्यसंहिता।
व्यासोक्ता संहिता चैव तथा परमसंहिता॥
यदन्यत् मुनिभिर्गीतं एतेष्वेवाश्रितं हि तत्॥"
(हयशीर्षप०)

† Dr. R. G. Bhandarkar's Report of the Sanskrit Mss.

पञ्चरात्रिक (सं० पु०) पंचरात्रमुपासनासाधनतयाऽस्त्यस्य ठन्। विष्णु।

पञ्चराशिक (सं० पु०) पञ्च राशयो यत्र कप्। लीलावती-उक्त पञ्चराशिकी अधिकारभेदसे गणितभेद, गणितमें एक प्रकारका हिसाब जिसमें चार ज्ञात राशियोंके द्वारा पांचवीं अज्ञात राशिका पता लगाया जाता है।

पञ्चरीक (सं० पु०) सङ्गीतशास्त्रके अनुसार एक ताल।

पञ्चरोहिणी (सं० स्त्री०) वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और रक्तज रोग।

पञ्चल (सं० पु०) शकरकन्द।

पञ्चलक्षण (सं० क्ली०) सर्गादीनि पंचविधानि लक्षणानि यत्र। पुराणके पांच लक्षण जो ये हैं—सृष्टिकी उत्पत्ति, प्रलय, देवताओंकी उत्पत्ति और वंशपरम्परा, मन्वन्तर, मनुके वंशका विस्तार।

पञ्चलवण (सं० क्ली०) पंचानां लवणानां समाहारः वा पंचगुणितं लवणं। वैद्यकके अनुसार पांच प्रकारके लवण—कांच, सेंधा, सामुद्र, विट् और सोंचर। इसका गुण—मधुर, विण्मूत्रकृत्, स्निग्ध, वलापह, वीर्यकर, उष्ण, दीपन, तीक्ष्ण, कफ और पित्तवर्द्धक।

पञ्चलाङ्गलक (सं० क्ली०) मुक्तादिविभूषितदशवृषयुक्तानि सारदारुनिर्मितानि पंचलाङ्गलकानि यस्मिन्। महादानभेद। मत्स्यपुराणमें इस दानका विषय इस प्रकार लिखा है—

"अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम्॥
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगादिग्रहणादिकम्।
भूमिदानं ततो दद्यात् पञ्चलांगलकान्वितम्॥"
((२८७ अ०)

जो सब महादान कहे गये हैं, उनमें पंचलाङ्गलक एक है। यह दान महापातक-नाशक माना गया है। शुभ तिथिकी पुण्यकालमें संयतचित्त हो यह दान करना होता है। इस दानमें पांच लाङ्गल (हल) और दश वृष भूमिके साथ विशुद्ध ब्राह्मणको दान करनेका विधान है। वे पांचों हल उत्तम सारयुक्त काष्ठके बने हों तथा वृष उत्तमरूपसे स्वर्णादि द्वारा विभूषित हों। इस दानसे अशेष पुण्य प्राप्त होते तथा महापातकजन्यपाप जाते

रहते हैं। मत्स्यपुराणके २५७ अध्यायमें और हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

पञ्चलिङ्गकोण—मन्द्राजप्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक नगर। यह नेल्लूरके सीमान्तवर्त्ती मल्लमकोण्डा पर्वतके मध्य बसा हुआ है। यहांकी एक गुहामें ५ लिङ्गमूर्त्ति आविष्कृत हुई हैं।

पञ्चलिङ्गाल—मन्द्राजके कर्णूल जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह तुङ्गभद्रानदीके उत्तर कार्ईननगरसे २॥ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहांके पंचलिङ्गेश्वर मन्दिरमें एक प्राचीन शिलालिपि उत्कीर्ण है।

पञ्चलोकपाल (सं० पु०) पंच च ते लोकपालाश्चेति संज्ञात्वात् कर्मधारयः। अष्टयज्ञाद्यङ्गविनायकादि देवपंचक। विनायक, दुर्गा, वायु और दोनों अश्विनोकुमार ये पंच देवता पञ्चलोकपाल कहलाते हैं।

"विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च।
अश्विनौ क्रमतः पञ्चलोकपालान् प्रपूजयेत्॥"
(विधानपारि०)

पञ्चलोह (सं० क्ली०) पञ्चं विस्तीर्णं लोहम्। १ सौराष्ट्रकलोह। पंचगुणितं लोहम्। २ पांच प्रकारका लोहा; सुवर्ण, रजत, ताम्र, सीसक और वङ्ग इन पांच धातुओंको पंचलोह कहते हैं।

पञ्चलोहक (सं० क्ली०) पञ्चानां लोहकानां धातूनां समाहारः। पांच धातुएँ—सोना, चाँदी, ताँबा सीसा और रांगा।

"सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रयमेतत् त्रिलोहकम्।
रंगनागसमायुक्तं तत्प्राहुः पञ्चलोहकम्॥"
(राजनि० व० २२)

वाभटके मतसे सुवर्ण, रजत, ताम्र, त्रपु और कृष्णायस यही पंचधातु पंचलोह हैं।

पञ्चलौह (सं० क्ली०) पांच प्रकारका लोहा—वज्रलौह, मुण्डलौह, कान्तलौह, पिण्डलौह और क्रौंचलौह।

पञ्चसह—भारतवर्षकी मध्यप्रदेशवासी स्वर्णकार जाति।

पञ्चवक्त्र (सं० पु०) पंचवक्त्राणि यस्य। १ शिव, महादेव।

'विश्वाद्यं विश्ववीजं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्।"
(शिवध्यान)

इनके मन्त्रादिका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—

"समस्तानां स्वराणान्तु दीर्घाः शेषाः सविन्दुकाः।
क्लृकृशून्याः सार्द्धचन्द्रा उपान्ते नाभिसंहिताः॥
एभिः पञ्चाक्षरैर्मन्त्रं पञ्चवक्त्रस्य कीर्त्तितम्।
क्रमात् सम्मदसन्दोहमादगौरवसंज्ञकाः॥
प्रासादन्तु भवेत् शेषं पञ्चमन्त्राः प्रकीर्त्तिताः।
एकैकेन तथैकैकं वक्त्रं मन्त्रेण पूजयेत्॥"
(कालिकापु० ५० अ०)

महादेवके सम्मद, सन्दोह, माद, गौरव और प्रासाद ये पांच मन्त्र हैं, इन पांच मन्त्र द्वारा एक एक मुखकी पूजा करनी होती है अथवा केवल प्रासादमन्त्रसे भी पूजा कर सकते हैं। पांच मन्त्रोंमें प्रासाद नामक मन्त्र श्रेष्ठ है। महादेवकी प्रसन्नता लाभ करनेके कारण इस मन्त्रका नाम प्रासाद पड़ा है तथा महादेवके आनन्दप्रद होनेके कारण सम्मदमन्त्र, मनके अभिलाष पूरणके कारण सन्दोहमन्त्र, आकर्षक होनेके कारण माद और गुरु होनेके कारण गौरवमन्त्र नाम पड़ा है। महादेवके पांच मुखोंके नाम ये हैं—सद्योजात, वामदेव तत्पुरुष, अघोर और ईशान। इन पांचों मुखोंमें सद्योजात निर्मल स्फटिकसदृश; वामदेव पीतवर्ण अथच सौम्य और मनोरम; अघोर नीलवर्ण, भयजनक, और दन्तविशिष्ट; तत्पुरुष रक्तवर्ण, देवमूर्त्ति और मनोरम तथा ईशान श्यामवर्ण और नित्य शिवरूपी है। महादेवकी पंचमूर्त्तिका स्वरूप इसी प्रकार है। दक्षिण ओरके ५ हाथोंमें यथाक्रम शक्ति, त्रिशूल, खट्वाङ्ग, वर और अभय तथा वाम ओरके ५ हाथोंमें अक्षसूत्र, वीजपूर, भुजङ्ग, डमरू और उत्पल नामक पांच द्रव्य वर्त्तमान हैं। पूर्वोक्त सम्मदादि मन्त्र द्वारा महादेवकी पूजा करनेसे सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं और इस पञ्चवक्त्र शिवपूजामें वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, काली, कलविकारिणी, बलप्रमथिनी, सर्वभूतदमनी और मनोन्मथिनी इस अष्ट देवीकी पूजा करनी होती है। २ सिंह। ३ पञ्चमुख रुद्राक्ष। यह पञ्चमुख रुद्राक्ष धारण करनेसे सब प्रकारके पाप जाते रहते हैं।

"पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निरिति भाषतः।
अगम्यागमनाच्चैव अभक्ष्यस्य च भक्षणात् ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात् ॥"

(तिथितत्त्व)

पञ्चवक्त्ररस (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गन्धक, पारद, संहागेको खोई, मिर्च और विष इन सब वस्तुओंको धतूरेके पत्तोंके रसमें एक दिन भिगो कर सुखा लेते हैं, पीछे २ रत्तीको गोली बनाते हैं। इसका अनुपान अदरकका रस है। इसका सेवन करनेसे सान्निपातिकज्वर जाता रहता है। (भावप्र॰ भैषज्यरत्ना॰)

पञ्चवट (सं॰ पु॰) पञ्च विस्तीर्णो वटः। १ यज्ञसूत्र। इसका पर्याय जोटिङ्ग, महाव्रती और वाम्बयज्ञोपवीतक है। (त्रि॰) पञ्चसंख्यक वटा यत्र। २ पञ्चवटी वन।

पञ्चवटी (सं॰ स्त्री॰) पंचानां वटानां समाहारः, ततो ङीप्। १ पांच प्रकारका वृक्ष; अश्वत्थ, विल्व, वट, धात्री और अशोक।

इस पञ्चवटीको यत्नपूर्वक पांच ओर लगाना चाहिये। इनमेंसे अश्वत्थको पूर्वकी ओर, विल्वको उत्तर, वटको पश्चिम, आमलकीको दक्षिण और अशोकको अग्निकोणमें स्थापन कर पांच वर्ष बाद उसको प्रतिष्ठा करनी चाहिए। जो इस प्रकार पंचवटीको स्थापना करते हैं, उनको अनन्त फल लाभ होते हैं। इस पंचवटीके मध्यस्थलमें चार हाथ परिमित वेदी बनानी पड़ती है। यह पंचवटी सामान्य पंचवटी है। इसके अलावा वृहत् पंचवटी भी है। वृहत्पंचवटी स्थापनका नियम इस प्रकार है—चारों ओर चार विल्ववृक्ष और मध्यभागमें एक विल्व, चारों कोनेमें ४ वटवृक्ष, २५ अशोक वर्त्तुलाकारमें और दिक्विदिक्में एक एक तथा चारों ओर अश्वत्थवृक्ष लगाना पड़ता है। इस नियमसे जो वृक्ष लगाया जाता है उसीको वृहत्पंचवटी कहते हैं। नियमपूर्वक जो इस वृहत् पंचवटीको स्थापना करता है, वह साक्षात् इन्द्रतुल्य है और इस लोकमें सर्व्वार्थसिद्धि तथा परलोकमें परमगति प्राप्त होती है। प्रतिष्ठाविधिके अनुसार इसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। वृहत् पञ्चवटीके मध्यस्थलमें भी वेदिका बनानी पड़ती है।

२ दण्डकारण्यस्थ वनविशेष। रामचन्द्रजी वनवासके समय इसी अरण्यमें रहे थे। यह स्थान गोदावरीके किनारे नासिकके पास है। लक्ष्मणने जहां सूर्पनखाकी नाक काटी थी, वहां रामचन्द्रजीका बनाया हुआ एक मन्दिर आज भी भग्नावस्थामें पड़ा है। सीताहरण यहीं हुआ था। नासिक देखो।

पञ्चवदन (सं॰ पु॰) शिव, महादेव।

पञ्चवदरी—वदरीनाथक्षेत्रके अन्तर्गत तीर्थभेद। यहां बदरीनाथ मन्दिरके पास ही योगवदरी, ध्यानवदरी, वृद्धवदरी, आदिवदरी और भविष्यवदरी नामक और भी पांच मन्दिर हैं जो पंचवदरी नामसे प्रसिद्ध हैं। वदरीनाथमें नरसिंहमूर्त्ति, योगवदरीमें वासुदेव मूर्त्ति, ध्यानवदरीमें वृद्धकेदार और कपिलेश्वर मूर्त्ति, वृद्धवदरीमें गौतम मुनिके सामने प्रतिष्ठित विष्णुमूर्त्ति और शुभानीमें आदिवदरी तथा धौलगङ्गातीरवर्त्ती योशीमठमें भविष्यवदरी मन्दिर वर्त्तमान है। शेषोक्त दोनों मन्दिरोंमें विष्णु, गरुड़ और भगवतीको मूर्त्ति विराजमान हैं।

पञ्चवर्ग (सं॰ पु॰) पंचवर्गा प्रहारा यत्र। १ पंचप्रहरणान्वित यागभेद, पांच पहरमें होनेवाला एक यज्ञ। पंचानां चाराणां वर्गः। २ चारपंचक, पांच प्रकारके चर।

"कृत्स्नं चाष्टविधं कर्म पञ्चवर्गञ्च तत्त्वतः।
अनुरागापरागौ च प्रचारं मण्डलस्य च ॥"

(मनु ७।१५४)

आय, व्यय, कर्मचारियोंके आचरण प्रभृति अष्टविध राजकर्मके प्रति और पंचविध चार अर्थात् कापटिक, उदास्थित, गृहपतिव्यञ्जन, वैदेहिक व्यञ्जन और तापसव्यञ्जन इनके प्रति राजाको दृष्टि रखना कर्त्तव्य है। पंचानां वर्गाणां समाहारः, ङीप्। ३ पंचवर्गी। ४ जैनद्वीपादिपंचक। यह पंचवर्गी वस्त्रानयनकी क्रियाविशेष है।

पञ्चवर्ण (सं॰ क्ली॰) पंचवर्णा यस्य। १ पंचवर्णान्वित तण्डुलचूर्ण। चावलको चूर कर उसमें पांच रंग मिलानेसे पंचवर्ण बनता है।

"रजांसि पञ्चवर्णानि मण्डलार्थं हि कारयेत्।
शालितण्डुलचूर्णेन शुक्लं वा यवसम्भवम् ॥

"रक्तं कुसुम्भसिन्दूरगैरिकादिसमुद्भवं ।
हरितालोद्भवं पीतं रजनीसम्भवं क्वचित् ॥
कृष्णं दग्धपुलाकैस्तु कुष्णद्रव्यैरथापि वा ।
हरितं बिल्वपत्राद्यं पीतकृष्णविमिश्रितम् ॥"
(हेमाद्रि० व्रतख०)

मण्डलके निमित्त पंचवर्णका चूर्ण करे। सर्वतोभद्रमण्डल, अष्टदलपद्म आदि स्थलमें पंचवर्णके चूर द्वारा मण्डल बनावे। तण्डुल वा यवचूर्ण करके उसमें शुक्ल वर्ण चूर्ण और तण्डुलचूर्णमें कुङ्कुम, सिन्दूर और गैरिकादि द्वारा रक्तवर्ण, तण्डुलचूर्णमें हरितालमिश्रित करके पीतवर्ण, दग्धपुलाक (कृष्णद्रव्य) मिश्रित करके कृष्णवर्ण और पीत तथा कृष्णवर्णमिश्रित बिल्वपत्रीय हरित यही पंचवर्ण है। पूजा प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें इस पंचवर्णका चूर्ण विशेष आवश्यक है। २ प्रणवके पांच वर्ण अर्थात् अ, उ, म, नाद और विन्दु। ३ स्त्री गायत्री। ४ वनभेद, एक जङ्गलका नाम। ५ पर्वतभेद, एक पहाड़का नाम।

पञ्चवर्णक (सं० पु०) धुस्तूरवृक्ष, धतूरेका पेड़।

पञ्चवर्णगुड़िका (सं० स्त्री०) पञ्चवर्णका चूर्ण। पञ्चवर्ण देखो।

पञ्चवर्द्धन (सं० पु०) पखोड़वृक्ष।

पञ्चवर्षीयक (सं० त्रि०) १ पञ्चवर्षव्यापी। २ पञ्चवर्षयुक्त। ३ पांच वर्षका पुराना।

पञ्चवल—महिसुरवासी बढ़ईकी एक जाति। पञ्चवनमवल्लु देखो।

पञ्चवल्कल (सं० क्ली०) पंचानां वल्कलानां समाहारः। वल्कलपंचक। वट, गूलर, पीपल, पाकर और वेंत या सिरिसकी छाल; कोई वट, पीपल, यज्ञडुमर, पाकड़ और वेंतकी छालको तथा कोई वट, गूलर, पाकर पारिस और पीपलकी छालको पंचवल्कल कहते हैं। गुण—हिम, योनिरोग और व्रणनाशक, रूक्ष, कषाय, मेदोघ्न, विसर्प, शोक, पित्त, कफ और अस्रनाशक, स्तन्यकर और भग्नास्थियोजक।

पञ्चवाण (सं० पु०) १ कामदेवके पांच वाण जिनके नाम ये हैं—द्रवण, शोषण, तापन, मोहन और उन्मादन। कामदेवके पांच पुष्पवाणोंके नाम—कमल, अशोक, आम्र, नवमल्लिका और नीलोत्पल। २ कामदेव, मदन।

पञ्चवातीय (सं० क्ली०) राजसूयाङ्ग फाल्गुन-शुक्ल प्रतिपदमें कर्त्तव्य पंचाग्निसाध्य होमकर्मभेद। यह पञ्चवातीय राजसूययज्ञका कर्त्तव्य अङ्ग है। यह फाल्गुनमासकी शुक्लप्रतिपदसे आरम्भ करना पड़ता है।

पञ्चवाद्य (सं० पु०) तन्त्र, आनद्ध, सुषिर, घन और वीरोंका गर्जन।

पञ्चवायु (सं० पु०) शरीरके मध्य प्रतिष्ठित प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान आदि वायु।

पञ्चवारि (सं० क्ली०) कौप, नादेय, आन्तरीक्ष, ताड़ाग और सामुद्र जल।

पञ्चवार्षिक (सं० त्रि०) पञ्चसु वर्षेषु भवं। पञ्चवर्षसाध्य कार्य, जो पांच वर्षोंमें होता है। जैसे—बौद्धोंका पञ्चवर्षव्यापी महोत्सव, महात्मा अशोक-प्रतिष्ठित पञ्चवर्षव्यापी बौद्धसङ्घ वा महापरिषद्।

पञ्चवाहिन् (सं० त्रि०) पञ्चवाह्य जिसे पांच आदमी ढो कर ले जा सकें।

पञ्चविंश (सं० त्रि०) २५ संख्यायुक्त।

पञ्चविंश—१ सामवेदान्तर्गत ब्राह्मणभेद। पचीस अंशोंमें विभक्त होनेके कारण इनका नाम पंचविंश-ब्राह्मण पड़ा है। २ स्तोमभेद। प्रौढ़ ब्राह्मण देखो।

पञ्चविंशक (सं० त्रि०) १ पंचविंश सम्बन्धीय, पचीस वर्षका। २ पचीस वर्षका पुराना।

पञ्चविंशति (सं० स्त्री०) पंचाधिका विंशति। पचीसकी संख्या।

पञ्चविंशतितम (सं० त्रि०) पचीसवां।

पञ्चविंशतिम (सं० त्रि०) पचीस।

पञ्चविध (सं० त्रि०) पञ्चविधा यस्य। पांच प्रकार।

पञ्चविधप्रकृति (सं० स्त्री०) पंचविधा प्रकृतिः। १ पांच प्रकारका राजाङ्ग; यथा, स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, अर्थ और दण्ड। २ पंचभूत। पञ्चभूत देखो।

पञ्चविधेय (सं० त्रि०) पंचप्रकार, पांच तरहका।

पञ्चविन्दुप्रसृत (सं० क्ली०) नृत्यकी एक जाति।

पञ्चविष (सं० क्ली०) ताम्र, हरिताल, सर्पगरल, करवीर और वत्सनाभ, स्थावर और जङ्गमात्मक नाना प्रकारके रहने पर भी ये सब प्रधानतम तथा औषधार्थमें अधिक प्रयोजनीय है।

पञ्चविसूचिकायोग (सं० क्लो०) अपामार्गमूलक्काथ, कारवेल्लपत्रक्काथ और तिल, कचिमूलाका क्काथ और पीपरका चूर्ण, वेलसोंठ, कचूरका क्काथ तथा वेलसोंठ, कचूर और कटफलका क्काथ। यह पञ्चयोग विसूचिकारोगमें उपकारी है।

पञ्चबीज (सं० क्लो०) पांच प्रकारका बीज, जैसे— ककड़ी, खीरा, अनार, कमल और अलकुशीका बीज। अन्यविध-रायसरसों, यमानी, जीरा, तिल और पोस्ता।

पञ्चवीरगोष्ठ (हिं० पु०) पञ्चवीरोंके बैठनेका स्थान, वह स्थान जहां युधिष्ठिरादि पांचों भाई बैठ कर मन्त्रणा करते थे।

पञ्चबुद्धीन्द्रिय (सं० क्लो०) इन्द्रियादि ज्ञानपञ्चक, यथा,— स्पर्शन, रसन, घ्राण, दर्शन और श्रोत्र।

पञ्चवृक्ष (सं० क्लो०) पांच वृक्ष, मन्दार, पारिजात, सन्तान, कल्पवृक्ष और हरिचन्दन नामक स्वर्गस्थ पांच वृक्षोंके नाम।

पञ्चवृत्ति (सं० स्त्री०) पंचगुणिता वृत्तिः। पातञ्जलोक्त पांच प्रकारकी मनोवृत्ति। चित्तकी परिणामी वृत्तियां ५ प्रकारकी हैं। इन वृत्तियोंमें कुछ क्लिष्ट और कुछ अक्लिष्ट हैं। जिस वृत्ति द्वारा चित्त क्लिष्ट होता है उसे क्लिष्टवृत्ति कहते हैं, जिससे क्लेश न रहे, वह अक्लिष्टवृत्ति है। वृत्ति पांच प्रकारकी है, यथा— प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। प्रत्यक्ष अनुमान और आप्तवाक्यको प्रमाणवृत्ति कहते हैं। इस प्रमाण द्वारा सभी स्वरूप जाने जाते हैं। एक वस्तु भ्रमवश यदि अन्य वस्तु समझी जाय, तो उसे विपर्यय कहते हैं, जैसे शुक्तिमें रजतज्ञान। वस्तुके स्वरूपकी अपेक्षा न कर केवल शब्दजन्य ज्ञानानुसार जो एक प्रकारका बोध होता है, उसीको विकल्पवृत्ति कहते हैं, जैसे देवदत्तका कम्बल। यहां पर देवदत्तके स्वरूप जो चैतन्य है उसकी अपेक्षा न कर देवदत्त और कम्बलमें जो भेद ज्ञान होता है, वही विकल्पवृत्ति है। जिस अवस्थामें चित्तमें अभाव उपलक्षित होता है, उसका नाम निद्रा है। पहले प्रमाण द्वारा जो जो विषय अनुभूत हुए हैं, कालान्तरमें असंस्कार द्वारा उन विषयोंका बुद्धिमें जो आरोप होता है, उसे स्मृति कहते हैं। अभ्यास और वैराग्य द्वारा यह पंचवृत्ति निरुद्ध होती है। (पातञ्जलदर्शन)

पञ्चशत (सं० क्लो०) पंचाधिकं शतं। १ पांच सौकी संख्या। २ एक सौ पांचकी संख्या।

"क्षत्रियायामगुप्तायां वैश्ये पञ्चशतं दमः॥"

(मनु ८।३८४)

पञ्चशततम (सं० त्रि०) ५००, पांच सौ।

पञ्चशतिकावर्त्ति (सं० स्त्री०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—नीलोत्पलपत्र १००, निस्तुषयव १००, मालती-फूल १००, पीपरका चावल १०० इन सबको पीस कर बत्ती बनाते हैं। इससे तिमिरादिरोग जाते रहते हैं।

त्रिकुट, त्रफला, हरीतकी, कुट, रसाञ्जन आदिकी बत्तीके अञ्जनसे अर्बुद, पटल, कांच, तिमिर, अर्म और अश्रुपात निवारित होते हैं।

पञ्चशब्द (सं० पु०) १ पांच मङ्गलसूचक बाजे जो मङ्गल कार्योंमें बजाये जाते हैं—तन्त्री, ताल, झांझ, नगारा और तुरही। पञ्चमहायज्ञ देखो। २ पांच प्रकारका ध्वनि—वेदध्वनि, वन्दीध्वनि, जयध्वनि, शङ्खध्वनि और निशानध्वनि। ३ व्याकरणके अनुसार सूत्र, वार्त्तिक, भाष्य, कोष और महाकवियोंके प्रयोग।

पञ्चशर (सं० पु०) पंचशरा यस्य। १ कन्दर्प, कामदेव। २ पंचगुणिताः शराः। ३ पंचबाण, कामदेवके पांच बाण।

"सम्मोहनोन्मादनौ च शोषणस्तापनस्तथा।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणा प्रकीर्त्तिताः॥"

(ब्रह्मवैवर्तपु० कृष्णज० ३२ अ०)

पञ्चशर (सं० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारद और गन्धककी शिमुलमूलके रसमें पृथक् पृथक् २१ बार भावना दे कर कज्जली बनावे। पीछे उसे बालुकायन्त्रमें पाक करे। इसकी मात्रा २ रत्ती और अनुपान पान है। मांस, मद्य, पायस, महिषदुग्ध आदि पथ्य है। इसके सेवन करनेसे निश्चय ही वीर्यकी वृद्धि होती है।

पञ्चशलाकाचक्र—ज्योतिषोक्त चक्रभेद।

सप्तशलाकाचक्र देखो।

पञ्चशस् (सं० अव्य०) पंच पंच आरार्थे शस्। पंच पंच, पाँच पाँच।

पञ्चशस्य (सं॰ क्लो॰) पञ्चानां शस्यानां समाहारः। शस्य-पञ्चक, धान, मूंग, तिल, जौ और सफेद सरसों। कोई कोई सफेद सरसोंको जगह उरदको लेते हैं।

(दुर्गोत्सवपद्धति)

पञ्चशाख (सं॰ पु॰) पञ्च शाखा इव अङ्गुलयो यस्य। १ हस्त, हाथ। पञ्चानां शाखानां समाहारः। (क्लो॰) २ पञ्चशाखाका समाहार, पञ्चशाखा। ३ पञ्चशाखाविशिष्ट, जिसमें पांच वत्तियां हों।

पञ्चशारदीय—शरत्कालमें अनुष्ठेय प्राचीन यागभेद। आश्विन अथवा कार्त्तिकमासमें विशाखा नक्षत्रयुक्त अमावस्यामें यह यज्ञ आरम्भ किया जाता था। मरुत्‌को तृप्तिके लिये इस यज्ञमें बहुत-सी गौओंको हत्या की जाती थी। यज्ञमें आहुति देनेके लिये १७ ककुद्‌हीन एवं काय-वृषभ और तीन वर्षकी कई एक वछियोंकी आवश्यकता होती थी। पहले यथाविहित पूजा और उत्सर्गके बाद उक्त वृषभगण छोड़ दिये जाते थे। पीछे यज्ञके यथायोग्य प्रक्रियानुसार आहुति देनेके बाद प्रति-दिन तीन तीन करके गाभीको देवोद्देशसे बलि देते थे। पाँचवें दिन दो और अर्थात् पांच गो-हत्या करके यज्ञ समाप्त करते थे। शरत्कालमें पांच दिन तक यह यज्ञ होता था, इसीसे इसका नाम पञ्चशारदीय पड़ा है। सामवेद-के अन्तर्गत ताण्ड्य-ब्राह्मणमें लिखा है, कि इस यज्ञमें प्रत्येक परवर्त्ती वर्ष विभिन्नवर्णकी गो आवश्यक है। उक्त ग्रन्थके मतसे—प्रथम वर्षमें आश्विनमासको शुक्ला-सप्तमी वा अष्टमीको यज्ञारम्भ करना होता है और पर-वर्त्ती वर्षके कार्त्तिकमासकी षष्ठीको यज्ञानुष्ठान विधि-सिद्ध है। वेदके उपाख्यानसे जाना जाता है कि पहले पहल प्रजापतिने स्वयं इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। तैत्तिरीय ब्राह्मणमें लिखा है कि जो धनशाली और स्वाधीन होना चाहते उन्हें पंचशारदीय यज्ञानुष्ठान द्वारा देव-पूजा करनी चाहिये।

पञ्चशिख (सं॰ पु॰) पंचा विस्तीर्णा शिखा केशरादिर्यस्य। १ सिंह। २ मुनिविशेष। सांख्यशास्त्रके आप एक प्रधान आचार्य थे। वामनपुराणमें लिखा है कि धर्मके अहिंसा नामक एक स्त्री थी जिसके गर्भसे पंचशिखमुनि उत्पन्न हुए थे। महाभारतके शान्तिपर्वमें लिखा है, कि एक समय कपिलापुत्र पंचशिख नामक एक महर्षि सारी पृथ्वी पर पर्यटन करते हुए मिथिला नगरीमें पहुंचे। ये समस्त संन्यासधर्मका यथार्थतत्त्व जाननेमें समर्थ, निर्द्वन्द्व, असन्दिग्धचित्त, ऋषियोंके मध्य अद्वितीय, कामनापरिशून्य और मनुष्योंके मध्य शाश्वत सुखमें स्था-पनमें अभिलाषी थे। उन्हें देखनेसे मालूम पड़ता था कि सांख्यमतावलम्बी जिन्हें कपिल कहते हैं, मानो वे ही पंचशिख नाम धारण कर सभी मनुष्योंके हृदयमें विस्मय उत्पादन करते हैं। ये महात्मा आसुरिके प्रधान शिष्य और चिरजीवी थे तथा इन्होंने सहस्र वर्ष तक मानस यज्ञका अनुष्ठान किया था।

भगवान् मार्कण्डेयने पंचशिखका वृत्तान्त इस प्रकार कहा है—एक समय कपिलमतावलम्बी असंख्य महर्षि एक साथ बैठे हुए थे। इसी बीच ब्रह्मयज्ञपरा-यण अन्नमयादि पञ्चकोषाभिज्ञ शमदमादिगुणान्वित पञ्च-शिख महर्षि वहां आ पहुंचे और अनादि अनन्त पर-मार्थ विषय उन समागत ऋषियोंसे पूछा। उस जगह महामति आसुरि भी उपस्थित थे। उन्होंने पंचशिखको शिष्यके उपयुक्त समझ कर उन्हें अपना शिष्य बना लिया। महात्मा आसुरि आत्मज्ञान-लाभके लिये कपिलके शिष्य हो शरीर और शरीरीय विषय उनसे अच्छी तरह जान गये थे। कपिलकी कृपासे उन्होंने सांख्ययोग जान कर आत्मतत्त्वको साक्षात्कार किया था। आसुरिके कपिला नामक एक सहधर्मिणी थी। पंचशिख उन्हींके शिष्य थे, अतएव पुत्रभावमें कपिलाका स्तन्यपान करते थे। इस कारण इन्हें ब्रह्मनिष्ठ बुद्धि और कपिलाका पुत्रत्व लाभ हुआ था। कपिलाका स्तन्यपान करनेसे ये 'कपिलापुत्र' कहलाने लगे। (महाभारत १२।२।१८ अ॰)

ईश्वर कृष्णकी सांख्यकारिकामें लिखा है—कपिल-ने आसुरिको और आसुरिने पंचशिखको सांख्यशास्त्रका उपदेश दिया। इसी पञ्चशिखसे ही सांख्यशास्त्र प्रचा-रित हुआ। सांख्य देखो।

पञ्चशिर—अफगान-सीमान्तवर्त्ती हिन्दूकुशपर्वतकी पार्श्व-स्थित एक उपत्यकाभूमि। यह काबुल नगरसे उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहां प्राचीन कपिश नगर बसा हुआ था। २५७ हिजरीको याकुबलाई, काबुल नगर

जीत कर वहांके राजा बन गये और उन्होंने पंचगिर नगरमें अपने नाम पर सिक्का चलाया। यहां पहले परिजक नामक स्थानमें एक दुर्ग अवस्थित था।

पञ्चशील—बुद्धप्रोक्त धर्मप्रकरण वा आचारभेद।

पञ्चशीर्ष (सं० पु०) पंचशीर्षाणि यस्य। १ सर्पभेद। २ चीनदेशस्थ सञ्चो पर्वतका प्राचीन नाम। इसके पांच शिखर होनेके कारण लोग इसे पहले पञ्चशीर्ष कहा करते थे। प्रवाद है, कि प्रत्येक शिखर पूर्वसमयमें हीरा, मोती, पन्ना आदि धातुओंसे मण्डित था। (स्वयम्भुपुराण)

पञ्चशुक्ल (सं० पु०) पंचसु शुक्लः। कीटभेद, एक प्रकार का कीड़ा। यह सौम कीटजातिका है। इसके काटनेसे कफजन्यरोग होता है। कीट देखो।

पञ्चशूरण (सं० क्ली०) पंच शूरणा यत्र। पांच प्रकारका शूरण या कन्द—अत्यम्लपर्णी, काण्डवेल, मालावन्द, सूरन, सफेद सूरन।

पञ्चशैरीषक (सं० क्ली०) शिरीष वृक्षस्य इदम् शैरीषकं, पञ्चसंख्यकं शैरीषकम्। सिरीसवृक्षके पांच अंग जो औषधके काममें आते हैं—जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल।

पञ्चशैल (सं० पु०) १ मेरुके दक्षिणस्थित पर्वतभेद। (मार्कण्डेयपुराण ५५ अ०) २ राजगृहके चारों ओर अवस्थित वैभार, विपुल, रत्नकूट, गिरिव्रज और स्वर्णाचल नामक पांच शैल। बौद्ध, जैन और हिन्दू इन तीनों सम्प्रदायके निकट यह पञ्चशैल महातीर्थरूपमें गिना जाता है। महाभारतके मतसे—वैभार, विपुल, ऋषिगिरि, चैत्यक और गिरिव्रज इन पांचोंको ले कर पञ्चशैल हुआ है। (महाभारतसभा०)

रामायणके मतसे इस पञ्चशैलके मध्य गिरिव्रजनगर अवस्थित है।

"पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते॥"

(रामा० आदि० ३२ सर्ग)

पञ्चश्वास—महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, क्षुद्रश्वास और तमकश्वास।

पञ्चष (सं० त्रि०) पंचधा षड्वा परिमाणं येषां ते। जिसका परिमाण पांच या छः हो। यह शब्द बहुवचनान्त है।

पञ्चषष्ट (सं० त्रि०) पैंसठ।

पञ्चषष्टि (सं० स्त्री०) पैंसठकी संख्या।

पञ्चषष्टितम (सं० त्रि०) पैंसठवां।

पञ्चसत्व (सं० क्ली०) जनपदभेद।

पञ्चसन्धि (सं० स्त्री०) व्याकरणमें सन्धिके पांच भेद—स्वरसन्धि, व्यञ्जनसन्धि, विसर्गसन्धि, स्वादिसन्धि और प्रकृतिभाव।

पञ्चसप्तत (सं० त्रि०) पचहत्तर।

पञ्चसप्तति (सं० स्त्री०) पचहत्तरकी संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है, ७५।

पञ्चसप्ततितम (सं० त्रि०) पचहत्तरवां।

पञ्चसप्तन् (सं० त्रि०) पांच गुना सात, पैंतीस।

पञ्चसर्पिणी (सं० स्त्री०) औषधविशेष, एक प्रकारकी दवा जो क्षयावर्गके विचित्र मण्डलविशिष्ट, सर्पाकार और पञ्च अरलिप्रमाण दीर्घ होती है।

"मण्डलैः कपिलैश्चित्रैः सर्पाभा पंचसर्पिणी॥"

(सुश्रुतचिकि० ३ अ०)

पञ्चसारपानक (सं० पु० क्ली०) पानीयविशेष। द्राक्षा, मधुक, खर्जुर, काश्मर्य और परूषक इन पांच द्रव्योंके बराबर बराबर भागको मिला कर पानक बनानेसे पंचसारपानक होता है।

वैद्यक द्रव्यगुणके मतसे काश्मीर, मधु, खर्जुर, मृद्वीका और फालसेका फल, इन सब द्रव्योंका जल जमा कर उसमें मिर्च, शर्करा और आर्द्रकादि मिलाते हैं, पीछे भलीभांति छान लेनेसे पानक तैयार होता है। इसका गुण—वृष्य, गुरु, धातुकर, पित्त, तृष्णा, श्रम और दाहनाशक है। (द्रव्यगुण)

पञ्चसिद्धान्त (सं० क्ली०) ब्रह्मसूर्यसोमायुक्त पञ्चज्योतिष सिद्धान्त।

पञ्चसिद्धौषधिक (सं० पु०) पञ्च सिद्धौषधयो यत्र कप्। वैद्यकमें पांच औषधियां जिनके नाम ये हैं—तैलकन्द, सुधाकन्द, क्रोड़कन्द, रुदन्ती और सर्पाक्ष।

पञ्चसुगन्धक (सं० क्ली०) पञ्च सुगन्धा यत्र, कप्। पांच सुगन्ध द्रव्य—लौंग, शीतलचीनी, अगर, जायफल, कपूर अथवा कपूर, शीतलचीनी, लौंग, सुपारी और जायफल।

पञ्चसुगन्धिक (सं० क्ली०) पंचसुगन्धक।

पञ्चसूना (सं० स्त्री०) सूना प्राणिवधस्थानं पञ्चगुणिता सूना। पांच प्रकारका प्राणिवध-स्थान। गृहस्थोंके घरमें प्रतिदिन पांच प्रकारसे प्राणिहिंसा होती है, इसी से इसका नाम पञ्चसूना पड़ा है।

"पंचसूना गृहस्थस्य चूल्लीपेषण्युपस्करः।
कण्डनी चोदकुम्भश्च वध्यते यास्तु वाहयन्॥"
(शुद्धि त०)

चूल्हा जलाना, आटा आदि पीसना, झाड़ू देना, कूटना और पानीका घड़ा रखना यही पांच गृहस्थोंकी पञ्चसूना है। प्रतिदिन इस पञ्चसूनासे असंख्य प्राणि हत्या होती है। इन्हीं पांच प्रकारकी हिंसाओंके दोषोंको मिटानेके लिये पञ्च महायज्ञोंका विधान किया गया है। पञ्चमहायज्ञ देखो।

पञ्चस्कन्ध (सं० पु०) आत्माके लोकान्तरगमन और जीव तथा जड़जगत्‌की उत्पत्तिका कारण बतलानेके लिये बौद्ध शास्त्रकारोंने हिन्दूशास्त्रोक्त पञ्चतन्मात्रके आधार पर और भी पांच गुणमय पदार्थोंका उल्लेख किया है, वही पञ्चस्कन्ध है। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पांच गुणोंके मेलसे जिस प्रकार पञ्चभूतकी उत्पत्ति हुआ करती है, उसी प्रकार बौद्धोंके मतसे भी पांच वस्तुसत्ता वा विभिन्न गुणसमष्टिसे मानवजातिका उद्भव हुआ है। किन्तु हिन्दुओंके साथ आत्मासम्बन्धमें और किसी भी अंशमें इनका सादृश्य नहीं देखा जाता। पञ्चतन्मात्र और पञ्चभूत देखो।

बौद्धोंके मतसे रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये पांच स्वरूप हैं—गुणकी समष्टिका नाम स्कन्ध है। बौद्धमत ग्रहण करनेमें इन पांचोंको अनुभूति और प्रकृष्ट ज्ञानलाभ करना आवश्यक है। इसी उद्देश्यसे यद्यपि ये पञ्चगुण शास्त्रके मध्य जटिलभावसे सन्निवेशित हुए हैं, तो भी उनका मर्म ग्रहण करनेके लिये यथासम्भव व्याख्या की गई है। बौद्धोंने पञ्चस्कन्धको जो एक तालिका दी है, वह इस प्रकार है:—

१। रूपस्कन्ध—वस्तुसत्ता वा वस्तुतन्मात्र।

क्षिति, अप्, तेज और मरुत् आदि चार भूत; चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् (देह) ये पांच इन्द्रिय; आकृति, शब्द, गन्ध, स्वाद और द्रव्यादि ये पांच पदार्थ पंचवस्तुतन्मात्र; स्त्री और पुरुष ये दो लिङ्गतन्मात्र; चेतना, जीवितेन्द्रिय और आकार ये तीन मूल अवस्था; अङ्गसञ्चालन और वाक्यस्फूर्ति यह मनोभावज्ञापनका प्रधान उपाय और स्थूलजीवदेहकी चित्तप्रसादकता, स्थितिस्थापकता, समताकरण, समष्टिकरण, स्थायित्व, क्षय और परिवर्त्तनशीलता आदि इन सातों विभिन्नगुणोंके अस्तित्व हैं। इस प्रकार कुल २८ गुण माने गये हैं।

२। वेदनास्कन्ध—रूपस्कन्धसे ही वेदनास्कन्धकी उत्पत्ति होती है। यह वेदनास्कन्ध पांच ज्ञानेन्द्रियों और मनके भेदसे छः प्रकारका होता है जिनमें प्रत्येकमें रुचि, अरुचि, स्पृहाशून्यता ये तीन तीन भेद होते हैं।

३। संज्ञास्कन्ध—इसे अनुमितितन्मात्र भी कहते हैं। इन्द्रिय और अन्तःकरणके अनुसार इसके छः भेद हैं। वेदना होने पर ही संज्ञा होती है।

४। संस्कारस्कन्ध—यह साधारणतः ५२ संज्ञाओंमें विभक्त है। किन्तु इनमेंसे प्रत्येक स्वतन्त्र भावापन्न नहीं हैं। इनमें कितने पूर्ववर्णित तीन भागोंके अन्तर्गत और सामर्थ्यज्ञापक हैं। पूर्वोक्त रूप, वेदना और संज्ञा ये तीनों बाह्यभावके अवलम्बन पर गठित हैं और संस्कारतन्मात्र मानसिक धारणा की सहायतासे उत्पन्न हुआ है। इसके ५२ भेदोंके नाम ये हैं—१ स्पर्श, २ वेदना, ३ संज्ञा, ४ चेतना, ५ मनसिकार, ६ स्मृति, ७ जीवितेन्द्रिय, ८ एकाग्रता, ९ वितर्क, १० विचार, ११ वीर्य जो अन्यान्य शक्तियोंकी उन्नतिमें सहायता करता है, १२ अधिमोक्ष, १३ प्रीति, १४ छन्द, १५ मध्यस्थता, १६ निद्रा, १७ मिद्ध वा तन्द्रा, १८ मोह, १९ प्रज्ञा, २० लाभ, २१ अलोभ, २२ उत्ताप, २३ अनुत्ताप, २४ ह्री (लज्जा), २५ अह्रीक, २६ दोष, २७ अदोष, २८ विचिकित्सा, २९ श्रद्धा, ३० दृष्टि, ३१-३२ शारीर और मानस प्रसिद्धि, ३३-३४ शारीर और मानस लघुत्व, ३५-३६ शारीर और मानस मृदुता, ३७-३८ शारीर और मानस कर्मज्ञता, ३९-४० शारीर और मानस प्राज्ञता, ४१-४२ शारीरिक और मानसिक उद्यातता, ४३-४५ शारीर और मानस साम्य, ४६ करुणा, ४७

मुदिता, ४८ ईर्षा, ४६, मात्सर्य, ५० कार्कश्य, ५१ औद्धत्य और ५२ मान वा अभिमान।

५। चित्त, आत्मा और विज्ञानको समष्टिसे ही इस पञ्चमस्कन्धकी उत्पत्ति है। हिन्दूशास्त्रोंमें कहे हुए चित्त आत्मा और विज्ञान इसके अन्तर्भूत हैं। इस स्कन्धके चेतनाके धर्माधर्म भेदसे ४८ भेद किये गये हैं। बौद्धदर्शनोंके मतानुसार विज्ञानस्कन्धके क्षय होनेसे ही निर्वाण होता है।

ऊपरमें लिखित अभिव्यक्तियोंसे जाना जाता है, कि मनुष्यमात्रको ही शारीरिक और मानसिक गठन तथा मानसशक्तिगुणादि विज्ञानकी प्रक्रियाके ऊपर निर्भर हैं; किन्तु इनमेंसे कोई भी स्थायी नहीं है। रूपतन्मात्र-जनित पदार्थादि फेनकी तरह क्रमशः संचित हो कर पीछे रूपान्तरित वा लोप हो जाते हैं। वेदनाजनित पदार्थादि जलबुदबुदकी तरह क्षणस्थायी हैं। संज्ञा-प्रकरणमें अनुमितिसे सूर्यरश्मिमें अनिश्चित मरीचिका-की तरह अनुमान है, चतुर्थ अर्थात् संस्कारसे मानसिक और नैतिक पूर्वानुरागका उद्भव हुआ करता है, किन्तु वे आसक्तियां कदलोस्तम्भकी तरह अस्थायी और सार-वस्ताहीन है तथा पंचम वा विज्ञान जो जन्म है, वह छाया वा इन्द्रजालिक मायाकी तरह भ्रमदृश्य समझा जाता है।

बौद्धोंके त्रिपिटक ग्रन्थमें इसका विषय साफ साफ लिखा है। उक्त ग्रन्थ पढ़नेसे जाना जाता है, कि ज्ञान-विशिष्ट जीवान्तर्गत यह पंचस्कन्ध वा गुण आत्मासे बिलकुल स्वतन्त्र है। मनुष्यकी देह परिवर्त्तनशील है। जीवदेहस्थ इन्द्रियोंके साथ वाह्यजगत्‌के पदार्थोंके स्पर्श-हेतु जीवित देहके परिवर्त्तनके साथ साथ इस पंच-गुणका परिवर्त्तन भी जीवदेहमें हुआ करता है. बौद्धोंके पंचस्कन्धका मर्म इतना कठिन और दुर्बोध्य है कि सुदूरविस्तृत इस बौद्धधर्मके अन्तर्गत पंचस्कन्धकी विभिन्न धर्मावलम्बियोंमेंसे कोई भी तत्प्रतिष्ठित धर्म-मतका मूल धर्म नहीं मानते। सूत्रपिटकमें गौतमकी प्रथम उक्तिमें लिखा है—"हे भिक्षुगण! आचार्य लोग (श्रमण और ब्राह्मण) आत्माको पंचस्कन्ध मानते हैं, किन्तु जो स्वल्पज्ञानी हैं अर्थात् जो धार्मिकका साथ नहीं करते अथवा धर्मगत नहीं सीखते. वे ही रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार, चेतना आदि एक एक गुणकी स्थिति, धृति और व्याप्तिके कारण आत्माका अनुरूप मानते हैं। इसके बाद पंचेन्द्रिय, मन, अविद्या और गुण इन सबसे 'मैं कौन हूं' इस प्रकार एक ज्ञानकी उपलब्धि होती है। स्पर्श और अविद्याजनित वेदनासे कामासक्त अज्ञानी व्यक्तिगण भी 'मैं कौन हूं' इस प्रकार एक धारणा पर पहुंच जाते हैं सही, किन्तु हे भिक्षुगण! जो उचित आचार्यके ज्ञानवान् शिष्य हैं, वे ही पंचेन्द्रियकी सहायतासे अविद्याको दूर करके ज्ञान मार्ग पर चढ़ सकते हैं। अविद्यारूप अन्धकार उनके अन्तःकरणसे दूर हो जाने पर तथा ज्ञानके विकाश होने पर 'मैं कौन हूं' ऐसा जो अनुमान है, वह उनके हृदयमें स्थान नहीं पाता।

बौद्धगण पंचस्कन्धातिरिक्त आत्माको स्वीकार नहीं करते। इसीसे जीव वा आत्माका पूर्वोक्तरूप अस्तित्व उनके प्रचारित धर्ममतके विरुद्ध है। यही कारण है कि बौद्धशास्त्रमें स्वकीय दृष्टि और आत्मवाद नामक दो शब्द कल्पित हुए हैं। सत् और ज्ञानी बौद्धमात्रको ही वह परिवर्जनीय है, कारण दोनों ही मोहवशसे मानव को कुपथ पर विचरण कराते हैं। कामाचार, अनन्तत्व और ध्वंसका विरुद्धवाद, व्रतादि क्रियाकलापको कार्य-में आस्था और उपादान आदि विषय इनके समर्थगोका और जन्म, मरण, जरा, शोक, परिवेदना, दुःख दौर्मनस्य तथा हताश आदिका एकमात्र कारण है। एतद्भिन्न नागार्जुनकृत माध्यमिकसूत्रमें भी पंचस्कन्ध-की कथा विशेषरूपसे लिखी है। स्वयं नागार्जुन वा नागसेनने पञ्जावके अन्तर्गत शाकलाधिपति ग्रीकराज मिनान्दरको पंचस्कन्द समझाते समय कहा था, कि जिस प्रकार चक्र, चक्रदण्ड, रज्जु और काष्ठादि ले कर एक यान तैयार होता है और इसके सिवा कोई द्रव्य रथ वा यानकी समष्टि नहीं हो सकता, केवल शब्दमात्र ही उसका भाव ज्ञापन करता है और रथकी आकृति तथा गठनके अनुमान द्वारा मानसनेत्रमें वहन करता है, उसी प्रकार मनुष्यमात्र ही इस पंचस्कन्धके गुण द्वारा कार्यकारी हो कर सभी द्रव्य अनुमिति और ज्ञान द्वारा

हृदयमें ग्रहण किया करता है। स्वयं बुद्धदेवने कहा था, कि जिस प्रकार केवल काष्ठ वा रज्जु, कल, चक्र आदिका एक एक पदार्थ रथपदवाच्य नहीं हो सकता, समस्त काष्ठरज्ज्वादिके सहयोगसे रथादिका अस्तित्व स्वीकार करना पड़ता है, उसी प्रकार रूप, विज्ञान, वेदना, संज्ञा और चेतनाके एकत्र होनेसे जीवदेहको उत्पत्ति और आत्माका विकाश हुआ करता है। जो कुछ हो सभी बौद्धोंने थोड़ा बहुत करके जीवात्माका अस्तित्व स्वीकार किया है।

पञ्चस्कन्धविमोचक—बुद्धदेवकी एक उपाधि।

पञ्चस्नेह (सं० पु०) घी, तेल, चरबी, मज्जा और मोम।

पञ्चस्रोतस् (पु० क्ली०) पञ्च स्रोतांसि यत्र। १ तीर्थभेद। २ यागभेद। महर्षि पञ्चशिखने हजार वर्ष तक यह पञ्चस्रोतोयज्ञ किया था।

पञ्चस्वरा (सं० स्त्री०) पञ्च स्वरा यत्र। प्रजापतिदास संकलित ज्योतिर्ग्रन्थभेद। इस ग्रन्थमें ७ अध्याय हैं जिनमें शिशुरिष्ट, मातृरिष्ट, पितृरिष्ट, स्वोत्पन्नस्कादि स्थान, सुखदुःख, रिष्टच्छेदादियोग और मृत्युस्थाननिर्णय आदि निरूपित हुए हैं।

"पञ्चस्वराभिधानञ्च ग्रन्थं निदानसम्मतम्।
किंचिदुद्देशमय्यं च स्वल्पं वक्ष्यामि शाश्वतम्॥"

(पञ्चस्वरा)

जातबालकके शुभाशुभ विषयकी गणना करनेमें पहले आयुर्गणना करना आवश्यक है। पहले मृत्युका निर्णय किये बिना शुभाशुभ गणना निष्फल है। कारण मनुष्यका मरण होनेसे उक्त शुभाशुभका फल कौन भोगेगा। इसलिये सबसे पहले मृत्युनिर्णय करना चाहिए। जन्मसमयसे ले कर २४ वर्ष तक रिष्टदोष रहता है, इस समय आयुर्गणना न कर रिष्टगणना करनी होती है। इन सब रिष्टगणनादिका विषय पञ्चस्वरामें विशेषरूपसे लिखा है। वह सहजबोध्य नहीं है और विस्तार हो जानेके भयसे नहीं दिखलाया गया। अ, इ, उ, ए, ओ इन पांच स्वरोंको प्रधान बना कर यह गणना हुई है, इसीसे इसका नाम पञ्चस्वरा पड़ा है।

(फलितज्योतिष पंचस्वरा)

इस प्रकार स्वरादिका निर्णय करना होता है। प्रथमतः एकादिक्रमसे ५ अङ्कोंकी स्थापना करके उनके नीचे क्रमशः अ, क, छ, डादि, क्रमसे सभी वर्णोंको रखें। ५ स्वरोंके नीचे ङ, ञ, ण भिन्न ककारादि हकारपर्यन्त सभी वर्णोंको ५ भागोंमें विभक्त कर संस्थापन करे। ङ, ञ, ण ये तीन वर्ण नामके आदिमें प्रायः नहीं लगते, इस कारण ये तीनों वर्ण छोड़ दिये गये। यदि ये तीनों वर्ण किसीके नामके आदिमें रहें, तो ग, ज, ड, ये तीन अक्षर ग्रहण करने होते हैं। यदि किसीके भी नामके आदिमें संयुक्तवर्ण रहे, तो उस संयुक्तवर्णके आदिमें जो अक्षर रहेगा, वही वर्ण ग्रहण करना होगा। इस पञ्चस्वरामें प्रथम अङ्कके नीचे अ, क, छ, ड, ध, भ, व ये ७ वर्ण; द्वितीय अङ्कके नीचे इ, खि, जि, टि, नि, पि, शि; तृतीय अङ्कके नीचे उ, गु, झु, तु, पु, य, षु; चतुर्थ अङ्कके नीचे ए, घे, टे, थे, फे, रे, से और पञ्चम अङ्कके नीचे ओ, चो, ठो, दो, बो, लो, हो वर्ण रखें। इससे पांच प्रकारके स्वर निर्णीत होते हैं। जिनके नामका आदि अक्षर जहां पड़ता है, उस स्थानके स्वराङ्कको ग्रहण करके गणना करनी होती है। इस पञ्चस्वरके पांच नाम हैं, यथा—प्रथम स्वरका नाम उदित, द्वितीय स्वरका नाम भ्रमित, तृतीयका क्रान्त, चतुर्थका सन्ध्या और पञ्चमस्वरका नाम अस्त है। इसके और भी पांच नामान्तर हैं, जन्म, कर्म, आधान, विग्रह और छिद्र। इन पांच स्वरोंके मध्य अकार स्वरके नीचे मेष, सिंह और वृश्चिक; इकार स्वरके नीचे कन्या, मिथुन और कर्कट; उकार स्वरके नीचे धनु और मीन तथा एकार स्वरके नीचे मकर और कुम्भराशि स्थापन करनी पड़ती है। राशिनिर्णय इसी प्रकार करना होता है। राशिनिर्णय करके स्वरके नीचे राशि और राशिके नीचे उनके अधिपति ग्रहोंकी संस्थापना करे। जिस राशिका अधिपति जो ग्रह होगा, उस राशिके स्वरको उस ग्रहका स्वर कहते हैं। अकारमें रवि और मङ्गल, इकारमें चन्द्र और बुध, उकारमें वृहस्पति, ए स्वरमें शुक्र और ओ स्वरमें शनि, इस प्रकार ग्रहसन्निवेश होगा।

इस पञ्चस्वरके पांच नाम और भी हैं, यथा—प्रथम बाल, इस प्रकार यथाक्रम कुमार, युवा, वृद्ध और मृत। इनके अवस्थानुसार शुभाशुभ फल निश्चय किया जाता है।

उक्त उदितादि पञ्चस्वरको बालादि पञ्च अवस्था जान कर नामके आदि अक्षरके अनुसार स्वरनिश्चित करके फलका निरूपण करना होता है। जिस घरमें जिस नामका आदि अक्षर होगा, उस घरमें जो स्वर रहेगा, वही उस व्यक्तिके सम्बन्धमें उदित स्वर समझा जायगा। एक एक स्वरके नीचे २ मास १२ दिन करके रख देनेसे इस प्रकार पञ्चस्वरके नीचे स्थापित मासादिमें एक वर्ष पूरा होगा।

कार्त्तिकके शेष ६ दिनसे आरम्भ करके मास स्थापन करना होता है। अ-स्वरमें कार्त्तिकके शेष ८ दिन, अग्रहायण, पौष और माघमासके तीन दिन; इ स्वरमें माघके २७ दिन, फाल्गुन और चैत्रके १५ दिन; उ-स्वरमें चैत्रके १५ दिन, वैशाख और ज्येष्ठके २७ दिन; ए-स्वरमें ज्येष्ठके तीन दिन, आषाढ़, श्रावण और भाद्रके ८ दिन; ओ-स्वरमें भाद्रके २१ दिन, आश्विन और कार्त्तिकके २१ दिन, इस प्रकार प्रति स्वरमें ७२ दिन करके पञ्चस्वरमें समस्त वर्ष पूर्ण होंगे। तिथियोग करनेसे अ-स्वरमें नन्दा, इ-स्वरमें भद्रा, उ-स्वरमें जया, ए-स्वरमें रिक्ता और ओ-स्वरमें पूर्णातिथि होगी। प्रत्येक स्वरकी तिथिका अङ्क पृथक् पृथक् योग करनेसे अ-स्वरमें ८१, इ-स्वरमें ८७, ओ-स्वरमें ८३, ए-स्वरमें ८८, ओ-स्वरमें १०५ अङ्क होंगे। यही सब अङ्क स्वराङ्क हैं। इनके द्वारा मृत्यु, वर्षका पहले निर्णय कर पीछे वार, तिथि, मास, आदिका विषय स्थिर करना होगा। इस पञ्चस्वराके मध्य सप्तशून्य गणनानुसार आयुवर्ष स्थिर कर लेना होगा।

वयसके अङ्क, स्वराङ्क और राशिके अङ्कको एक साथ जोड़ कर ५से भाग देनेसे अवशिष्टाङ्क द्वारा नन्दादि तिथि निर्णीत होगी अर्थात् १ अवशिष्ट रहनेसे नन्दा होगी, इत्यादि। वयस, राशि, स्वराङ्कको एक साथ जोड़ कर ६से भाग देनेसे अवशिष्टाङ्क द्वारा नन्दादि तिथिके मध्य किस तिथिमें मृत्यु होगी, सो मालूम हो जायगा। वयस, राशि और स्वरके अङ्कको एकत्र योग कर ७से भाग देनेसे जो अवशिष्ट बचेगा, उस अङ्क द्वारा वार जाना जायगा। यदि गणित तिथिमें वारका मिलन न हो, तो तिथि अथवा वारमें १ योग वा वियोग करनेसे जिससे तिथि वार मिल जाय इस प्रकार कर लेना चाहिये। अष्टमी तिथिमें एक योग वा वियोग करना नहीं होगा। पञ्चस्वरामें सप्तशून्य होनेसे उसी वर्ष मृत्यु होगी ऐसा जानना चाहिये। समरसार देखो।

पञ्चस्वरोदय (सं॰ पु॰) पञ्चानां स्वराणामुदयो यत्र। ज्योतिषभेद।

'कालं वक्ष्यामि संसिद्धै रुद्र पंचस्वरोदयात्।
राज्ञा माला उदासा च पीड़ामृत्युस्तथैव च॥"

(गरुड़पुराण)

गरुड़पुराणमें इस पंचस्वरोदयका विषय लिखा है। पांच घर काट कर उन घरोंमें पांच वर्ण विन्यास करके गणना करनी होती है, इसीसे इसका नाम पञ्चस्वरोदय पड़ा है।

पांच घरोंमें अ, इ, उ, ए, ओ ये पांच स्वर लिखने होते हैं। विशेष विवरण गरुड़पुराणमें देखो।

पञ्चस्वेद (सं॰ पु॰) वैद्यकके अनुसार लोष्ट्रस्वेद, वालुकास्वेद, वाष्पस्वेद, घटस्वेद और ज्वालास्वेद।

पञ्चहस्त (सं॰ क्ली॰) काश्मीरस्थ स्थानभेद।

पञ्चहिक्का (सं॰ स्त्री॰) अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महाहिक्का प्रभृति।

पञ्चहोत्र (सं॰ पु॰) वैवस्वत मनुके एक पुत्रका नाम। (हरिवंश ७ अ॰)

पञ्चहृदतीर्थ (सं॰ क्ली॰) तीर्थभेद।

पञ्चहृद्रोग (सं॰ क्ली॰) वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और क्रमिज रोग होनेसे उसे पञ्चहृद्रोग कहते हैं।

पञ्चांश (सं॰ पु॰) पञ्च च ते अंशाश्चेति इत्थौ संख्यावचनस्य पूरणार्थत्वस्वीकारेण पञ्चशब्दः पञ्चमार्थे कर्मधा॰। त्रिंशदंशात्मक राशिका पञ्चम अंश। नीलकण्ठोक्त ताजिकमें लिखा है, कि राशिका फलाफल जाननेमें किस राशिका अधिपति कौन ग्रह है वह जानना आवश्यक है। क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, चतुर्थांश, पञ्चमांश आदिमें किस अंशका अधिपति कौन ग्रह है वह जानना विधेय है। यहां पर पञ्चमांश चक्र दिया जाता है, इससे किस किस अंशका अधिपति कौन ग्रह है, वह सहजमें मालूम हो जायगा।

	मेष	वृष	मिथुन	कर्कट	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	
१ पञ्चमांश	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	६।
२ पञ्चमांश	श	बु	श	बु	श	बु	श	बु	श	बु	श	बु	१२।
३ पञ्चमांश	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	बृ	१८।
४ पञ्चमांश	बु	श	बु	श	बु	श	बु	श	बु	श	बु	श	२४।
५ पञ्चमांश	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	शु	मं	३०।

पञ्चाक्षर (सं० पु०) पंच अक्षराणि यत्र। १ मन्त्रभेद। २ प्रतिष्ठाख्य छन्दोभेद। ३ प्रणव। इसमें पांच अक्षर होनेके कारण इसे पंचाक्षर कहते हैं। ४ 'नमः शिवाय' यह पांच अक्षरयुक्त मन्त्र। लिङ्गपुराणके ८५ अध्यायमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। (त्रि०) ५ जिसमें पांच अक्षर हों।

पञ्चाख्यान (सं० क्ली०) पंचाख्यायिकायुक्त ग्रन्थ, पंचतन्त्र।

पञ्चागन्तुच्छर्दि (सं० स्त्री०) वीभत्सज, दौहृदज, असात्मज, क्रमिज और अजीर्णज छर्दि भेद।

पञ्चाग्नि (सं० क्ली०) पंचानां अग्नीनां समाहारः। १ पंच अग्निका समाहार, चारों ओर प्रज्वलित चार अग्नि और मध्यमें सूर्याग्नि। (पु०) पंच च ते अग्नयश्चेति संज्ञात्वात् कर्मधारयः। २ पांच प्रकारको अग्नि, यथा—अन्वाहार्यपचन, गार्हपत्य, सभ्य, आहवनीय और आवसथ्य।

"पचनः पावनस्त्रेता यस्य पञ्चाग्नयो गृहे॥" (हारीत)

३ उक्त अग्नियों द्वारा विहित कार्यकारक तपस्विभेद।

जिन सब साग्निक ब्राह्मणोंके अर्थात् जिनके त्रेता अग्नि हैं, उन्हें पंचाग्नि कहते हैं। दक्षिण गार्हपत्य और आहवनीय इस अग्नित्रयको त्रेताग्नि कहते हैं।

"उदरे गार्हपत्याग्निर्मध्यदेशे तु दक्षिणः।
आस्ये आहवनीयोऽग्निश्च सभ्यः पर्वा च मूर्द्धनि॥
यः पञ्चाग्नीनिमान् वेद आहिताग्निः स उच्यते॥"
(गरुड़पुराण)

उदरमें जो अग्नि है, उसका नाम गार्हपत्य, मध्यदेशको अग्निका नाम दक्षिण, मुखको अग्निका नाम आहवनीय अग्नि और मस्तककी अग्निका नाम सभ्य और पर्वा है, यही पंचाग्नि है। मनुमें लिखा है कि जिसके घरमें पंच-अग्नि है उसे पंचाग्नि कहते हैं।

"त्रिणाचिकेतः पञ्चाग्निस्त्रिसुपर्णः षडङ्गवित्॥"
(मनु ३।१८५)

छान्दोग्य उपनिषदके मतसे स्वर्ग, पर्जन्य, पृथ्वी, पुरुष और योषात्मक अग्नितुल्य आहुतिके आधार पदार्थ हैं।

४ आयुर्वेदके अनुसार चीता, चिचड़ी, भिलावाँ, गन्धक और मदार नामक औषधियां जो बहुत गरम मानी जाती हैं। (त्रि०) ५ पंचाग्निको उपासना करनेवाला। ६ पंचाग्निविद्या जाननेवाला। ७ पंचाग्नि तापनेवाला।

पञ्चाङ्ग (सं० क्ली०) पंचानां अङ्गानां एकवृक्षस्य त्वक्पत्रपुष्पमूलफलानां समाहारः। १ एक वृक्षका त्वक्, पत्र, पुष्प, मूल और फल। २ पुरश्चरणविशेष। जप, होम, तर्पण, अभिषेक और विप्रभोजन यही पंचाङ्गोपासना है।

"जपहोमौ तर्पणञ्चाभिषेको विप्रभोजनम्।
पञ्चाङ्गोपासनं लोके पुरश्चरणमिष्यते॥" (तन्त्रसार)

३ वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करणात्मक पञ्जिका।

यह पंचाङ्गफल सुननेसे गङ्गास्नानका फल मिलता है। पञ्जिका देखो।

"तिथिवारश्च नक्षत्रं योगः करणमेव च।
पञ्चांगस्य फलं श्रुत्वा गङ्गास्नानफलं लभेत्॥"
(ज्योतिष)

(पु०) पंच अङ्गानि यस्य। ४ कमठ, कच्छप, कछुआ। ५ अश्वविशेष, एक प्रकारका घोड़ा। पर्याय—पंचभद्र, पुष्पिततुरङ्गम। ६ प्रणामविशेष।

"बाहुभ्यां चैव जानुभ्यां शिरसा वचसा दृशा।
पञ्चांगोऽयं प्रणामं स्यात् पूजासु प्रवराविमौ॥"
(तन्त्रसार)

बाहु, जानु, मस्तक, वाक्य और दृष्टि इस पंचाङ्ग द्वारा जो प्रणाम किया जाता है, उसे पंचाङ्ग-प्रणाम कहते हैं। ७ राजनीति, राजाओंकी पंचसिद्धि।

"सहायाः साधनोपाया विभागो देशकालयोः।
विनिपातः प्रतीकारः सिद्धिः पञ्चांग इष्यते॥"
(कामन्दक)

सहाय, साधन, उपाय, देश और कालका विभाग तथा विपद् प्रतीकार इन पांचोंको पंचाङ्ग कहते हैं। यही पंचाङ्गसिद्धि है। ८ आगमादिपंचकयुक्त भोग।

"आगमो दीर्घकालश्च निश्छिद्रोऽन्यरवोज्झितः।
प्रत्यर्थिसन्निधानञ्च पञ्चांगो भोग इष्यते॥"
(कात्यायन)

आगम, दीर्घकाल, निश्छिद्र, अन्यरवोज्झित और प्रत्यर्थिसन्निधान यही प्रकारके भोग हैं। ९ पांच अङ्ग या पांच अङ्गोंसे युक्त वस्तु।

पञ्चाङ्गगुप्त (सं० पु०) पंचसंख्यकानि अङ्गानि गुप्तानि यस्य। कच्छप, कछुआ।

पञ्चाङ्गपत्र (सं० क्लो०) पञ्जिका। पञ्चाङ्ग देखो।

पञ्चाङ्गशुद्धि (सं० स्त्री०) पंचाङ्गस्य शुद्धिः। पंचाङ्गविषयक शुद्धि, तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करण यही पंचाङ्गविषयक शुद्धि है।

पञ्चाङ्गविप्रहीन (सं० क्लो०) बुद्धदेवको एक उपाधि।

पञ्चाङ्गिकपञ्चगण (सं० पु०) पांच प्रकारका पंचमूल, स्वदंष्ट्र, महत्, तृण, वल्ली और कण्टक इन पांचोंकी जड़। पञ्चमूल देखो।

पञ्चाङ्गी (सं० स्त्री०) करिका कटिबन्धनदाम, वह रस्सा जो हाथीकी कमरमें बंधा रहता है।

पञ्चाङ्गुरि (सं० त्रि०) १ पंचाङ्गुलीविशिष्ट, जिसमें पांच उंगलियां हों। (स्त्री०) २ हस्त, हाथ।

पञ्चाङ्गुल (सं० पु०) पंच अङ्गुलय इव पत्राणि यस्य। १ एरण्डवृक्ष, अण्डी, रेंड़। २ तेजपत्र, तेजपत्ता। (त्रि०) ३ पंचाङ्गुलपरिमाणयुक्त, जो परिमाणमें पांच अङ्गुल का हो।

पञ्चाङ्गुलि (सं० त्रि०) पञ्च अङ्गुलि युक्त, जिसमें पांच उँगलियां हों।

पञ्चाङ्गुली (सं० स्त्री०) लक्षाह्वक्षुप, एक प्रकारको बेल।

पञ्चाज (सं० क्ली०) अजाका पुरीषादिपंचक, बकरीका मूत्र, विष्ठा, दही, दूध और घी।

पञ्चाञ्जन (सं० क्ली०) रसाञ्जन, स्रोताञ्जन, सौवीराञ्जन, खर्पर और सीस इन पांच द्रव्यों द्वारा जो अञ्जन प्रस्तुत होता है, उसे पंचाञ्जन कहते हैं।

पञ्चातप (सं० पु०) पंचभिरग्निसूर्यैरातप्यते इति आ-तप-अच्। तपस्याविशेष, एक प्रकारकी तपस्या जो चारों ओर आग जला कर ग्रीष्म ऋतुमें धूपमें बैठ कर की जाती है। यह तपस्या बहुत दुःसाध्य है।

पञ्चात्मक (सं० पु०) पंच आकाशादय आत्मा स्वरूपं वा यस्य। आकाशादि पंचभूत स्वरूप, जो सब वस्तु पञ्चभूतोत्पन्न हैं वे सभी पंचात्मक हैं।

पञ्चात्मन् (सं० पु०) शरीरस्थित पंचवायु, प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। श्रुति आदिमें प्राणको ही आत्मा बतलाया है। प्राण पंचाङ्ग हैं, इस कारण पंचात्मन् शब्दसे पंचप्राणका बोध होता है।

पञ्चान—विहार विभागके राजगृह पर्वतमालाके दक्षिण ओर प्रवाहित एक नदी। अभी यह नदी प्रायः सूखी पड़ी हुई है। वर्षाकालमें पहाड़से जो पानी निकलता है, वह इसी नदी हो कर गङ्गामें गिरता है।

पञ्चानन (सं० पु०) पंच आननानि यस्य। १ शिव, महादेव। पंचं विस्तृतं आननं यस्य। २ सिंह। ३ ज्योतिषोक्त सिंहराशि। ४ रुद्राक्षविशेष, एक प्रकारका रुद्राक्ष जिसके पहननेसे मङ्गल होता है। ५ सङ्गीतमें स्वरसाधनकी एक प्रणाली।

सा रे ग म प। रे ग म प ध। ग म प ध नि। म प ध नि सा।

अवरोही—सा नि ध प म। नि ध प म ग। ध प म ग रे। प म ग रे सा।

(त्रि०) ६ जिसके पांच मुख हों, पंचमुखी।

पञ्चाननगुड़िका (सं० स्त्री०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—शुद्ध पारा ४ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला इन दोनोंसे कज्जली बना कर उसे १ पल परिमित ताम्रपात्रके चारों ओर लीप दे। पीछे उस ताम्रपात्रको मुखावद्ध और पंचलवण द्वारा आच्छादित करके गजपुटमें पाक करे। इस प्रकार प्रस्तुत ताम्रचूर्ण १ पल, पारद, गन्धक, पुटदग्ध लौह, यमानी, अभ्र, शतपुष्पा, त्रिकटु, त्रिफला, निशोथका मूल, चव्य, दन्तीमूल, अपाङ्गमूल, जीरा, कृष्णजीरा प्रत्येक १ पल, मान, ग्रन्थिक, चित्रक, कुलीश प्रत्येक आध पल। इन सब द्रव्योंको अदरकके रसमें डुबो कर १ माषेकी गोली बनावे। इससे अम्लपित्त आदि रोगोंकी शान्ति होती है। पथ्य दूध और मांसका शिरवा। इसमें गुरुद्रव्यको छितकर बतलाया है।

पञ्चाननघृत (सं० क्ली०) औषधभेद। घृत वा तैल ७४ सेर, क्वाथार्थ शालिञ्च २ पल, पुनर्णवा २ पल, पाकार्थ जल ७४ सेर, शेष ७१ सेर। पाक सिद्ध होने पर हरीतकी, चितामूल, यवचार, सैन्धव और सोंठको अच्छी तरह कपड़ेमें छान कर प्रत्येक दो तोला काढ़ेमें डाल दे। घी खाने और तेल लगानेके काममें आता है। यह श्लीपद आदि पीड़ाका शान्तिकारक है। श्लेष्मामें गोमूत्र और वात तथा पित्तकी अधिकतामें दुग्धसेवनीय है।

पञ्चाननभट्टाचार्य—देशीय राजशेखरकोष नामक एक अभिधान ग्रन्थके प्रणेता।

पञ्चाननरस (सं० क्ली०) रसौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—पारा, तूतिया, गन्धक, जयपाल, पोपर इन सबको बराबर बराबर भागको पीस कर उसे थूहरके दूधके साथ घोटे। इसका अनुपान आंवलेका रस है। इसके सेवन करनेसे गुल्मरोग जाता रहता है।

अन्यविध—विष ४ भाग, मिर्च ४ भाग, हिङ्गुल १ भाग, गन्धक ३ भाग, ताम्र १२ भाग, इन्हें अकवनके दूधके साथ पीस कर एक रत्तीको गोली बनाते हैं। अनुपान अवस्था जान कर देना होता है।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा, हरिताल, तूतिया, सोहागा, अड़ूस और गन्धक इनके समभागको करेलेके रसमें एक दिन तक पीस कर उसे ताम्रपात्रमें रख दे। पीछे उस ताम्रपात्रको ढक कर उसके ऊपर बालू रख कर पाक करे। भलीभांति पाक हो जाने पर उसे तुलसीपत्रके रसमें तीन पहर तक घोट कर तीन रत्तीको गोली बनावे। इसका अनुपान तुलसीका रस और मिर्च है। इसके सेवनसे विषम त्रिदोष और दाहयुक्त सब प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। धातुगत ज्वरमें पीपरचूर्ण और मधु अनुपान है तथा पथ्य चीनीके साथ दूध, भात और मूंगकी दाल।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गन्धकको आंवलेके रसमें घोट कर द्राक्षा, यष्टिमधु और खजूर इनमेंसे प्रत्येकके काढ़ेमें एक एक दिन भावना देते और २ रत्तीकी गोली बनाते हैं। अनुपान आंवलेका चूर्ण और चीनी है। इसके सेवनसे हृद्रोगकी शान्ति होती है।

पञ्चाननरसलौह (सं० क्ली०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—जारित और पुटित लौह ५ पल, गुग्गुल ५ पल, अभ्र २॥ पल, पारद २॥ पल, गन्धक २॥ पल, क्वाथार्थ त्रिफला प्रत्येक ५ पल, जल ३० सेर, शेष ३ सेर ६ पल। इस क्वाथमें लौह, अभ्र, गुग्गुलको पाक करे। घृत ३२ पल, शतमूलीका रस ३२ पल और दुग्ध ३२ पल इसे लोहे वा मट्टीके बरतनमें लौहदर्वी द्वारा धीमी आंचमें पाक करे। आसन्न पाकमें विड़ङ्ग, सोंठ, धनिया, गुलञ्चरस, जीरा, पंचकोल, निसोथ, दन्तीमूल, त्रिफला, इलायची और मोथा इन सबको अच्छी तरह पीस कर अर्द्धपल मात्र डाल दे। पीछे रस और गन्धककी कज्जली करके कुछ गरम रहते ही मिला देना कर्त्तव्य है। बादमें औषधको नीचे उतार कर ठण्ढे बरतनमें रख दे। घृत और मधुके साथ उसे मिला कर गुलंच, सोंठ और एरण्डमूलके काढ़ेके साथ सेव्य है। औषध सेवन करनेके पहले विरेचकादि द्वारा देहको शोध लेना उचित है। इससे आमवात, सन्धिवात, कटीशूल, कुक्षिशूल आदि उत्कटरोग दूर हो जाते हैं।

पञ्चाननवटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर, अभ्र, लौह, ताम्र और गन्धक प्रत्येक एक तोला, सिलावां ५ तोला इन्हें ८ तोले ओलके रसमें एक दिन तक घोंट कर एक माशेकी गोली बनाते हैं। अनुपान घृत है। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके अर्श और कुष्ठरोग नाश होते हैं। यह औषध स्वयं शङ्कर-कथित है।

अन्यविध प्रस्तुत प्रणाली—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्र, गुग्गुल और जयपालबीज इनके समान भागोंको घीके साथ पीस कर बेरकी आंठीके बराबर गोली बनाते हैं। इसके सेवनसे शोथ और पाण्डुरोगकी शान्ति होती है।

पञ्चाननी (सं० स्त्री०) शिवकी पत्नी, दुर्गा।

पञ्चानन्तरीयकर्म्मन्—मातृहत्या, पितृहत्या, अर्हत्‌नाश, किसी बुद्धका रक्तपात और याजकसम्प्रदायके मध्य विवादसंघटन आदि पंचमहापाप हैं। ऐसे पापोंकी मुक्ति नहीं है।

पञ्चानन्द—हिन्दूके उपास्य ग्राम्य-देवताभेद। बङ्गाल और महिसुर प्रदेशमें कैवर्त्त, बाग्दी, जलिया, चण्डाल आदि जातियोंके मध्य इस देवताकी उपासना अधिक प्रचलित है। बहुत-से स्थानोंमें उच्चश्रेणीकी हिन्दू-महिलागण अपनी अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिए इस देवताको पूजा किया करती हैं। वृक्षके नीचे, मैदानमें वा सरोवरके किनारे इनकी पूजा होती है। कहीं इनकी मूर्त्ति बना कर अथवा कहीं कलस बैठा कर पूजन किया जाता है। किसी भी प्राचीन हिन्दूशास्त्रमें इस पञ्चानन्दकी उपासना-कथा नहीं लिखी है। महिसुरके मनुष्य इन्हें महादेव समझते हैं और इनकी माहात्म्य-घोषणाके लिए पंचानन्द-माहात्म्य नामक एक अप्राचीन संस्कृत ग्रन्थकी दुहाई देते हैं। नेपालके बौद्धगण क्षेत्रपालकी पूजा करते हैं। इस क्षेत्रपालके साथ पंचानन्दका बहुत कुछ सादृश्य देखा जाता है।

पञ्चानन्द (सं० पु०) तञ्जोरके निकटवर्त्ती तिरुवैरु ग्रामस्थ शिवलिङ्गभेद। पंचानन्दमाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है।

पञ्चानुगान (सं० स्त्री०) सामभेद।

पञ्चान्नग्राम—कलकत्तेके उपकण्ठस्थ ५५ ग्राम। ये सब ग्राम १७५७ ई०में अङ्गरेज वणिक्‌के साथ मीरजाफरकी जो सन्धि हुई, उसी सन्धि-शर्त्तके अनुसार इष्ट-इण्डिया कम्पनीको मिले थे। अभी ये २४ परगनेके अन्तर्भुक्त हो गये हैं।

पञ्चाप्सरस (सं० क्ली०) रामायण और पुराणोंके अनुसार दक्षिणमें पंपा नामक तालाब। इस तालाब पर शातकर्णि मुनि तपस्या करते थे। इनके तपसे भय खा कर इन्द्रने इनका तप भङ्ग करना चाहा और इस उद्देश्यसे उन्होंने पांच अप्सरायें भेजी थीं। रामायणमें शातकर्णिको जगह माण्डकर्णि लिखा है। रामचन्द्रजीने स्वयं इस तालाबको देखा था। (रामायण ३।११।११)

पञ्चाब्जमण्डल (सं० क्ली०) सर्वतोभद्रमण्डलान्तर्गत पंचपद्मात्मक मण्डलभेद। पृथिवी पर चौकोण मण्डल बना कर उसमें ६४ कोठ अङ्कित करना चाहिए। इस प्रकार अङ्कित क्षेत्रके मध्य चारों बगलमें चार और बीचमें एक पद्म अङ्कित करना होता है। यह पंचाब्जमण्डल दीक्षा और देव-पूजाकार्यमें आवश्यक है। (तन्त्रसार)

पञ्चाभिज्ञा—बौद्धके मतसे ५ ऐश्वरिक गुणशाली।

पञ्चाभिषेक—नेपालवासी नेवारी बौद्धोंमेंसे जो 'वाड़ा' होना चाहते हैं, उन्हें पूर्वापर कई एक संस्कारोंका पालन करना होता है। गुरुको सूचना देनेके बाद, उनकी सम्मति ले कर गुरुदेव आशीर्वादी उपहारग्रहण करते हैं और शिष्यकी भलाईके लिए पहले पहल 'कलसी-पूजा' तथा इसके बाद 'कलसी'-का अभिषेक करना होता है। इसे 'दूसल' कहते हैं। इस दिन निकटवर्त्ती विहारसे चार और नायक-'वाड़ा' ला कर गुरुदेव शिष्यकी मङ्गल-कामनाके लिये उसके मस्तक पर शान्तिजल देते और सब कोई मन्त्र-पाठ करते हैं। तीसरे दिन 'प्रव्रज्याव्रत'-की समाप्ति होती है और बादमें "पंचाभिषेक"-की। इस दिन गुरु और चार नायक मिल कर कलसीके जलको शङ्खमें ले शिष्यके माथेके ऊपर गिराते हैं। इसके बाद नायक उसे ऊपरमें बैठाते और गुरुमण्डल पूजाके बाद गुरुदेव उसको 'चीवर' और 'निवास' दान देते हैं। इसी समय उसका पहला नाम बदल कर दूसरा नाम रखा जाता है। शिष्य भी धीरे धीरे अपने इस नूतन 'वाड़ा' धर्मग्रहणके लिए

संसारवैराग्य ज्ञापन करता और इस जन्ममें विषय सम्पत्तिसे कोई सम्पर्क नहीं रखता है।

पञ्चामरा (सं० स्त्री०) पंच मरा संख्यात्वात् कर्मधारयः। अमरलतापंचक। दूर्वा, विजया, विल्वपत्र, निर्गुण्डी और काली तुलसी इन्हीं पांच द्रव्योंको पंचमरा लता कहते हैं। (रुद्रयामल)

पञ्चामरादियोग (सं० पु०) प्राणतोषिण्युक्त पांच प्रकारके योगभेद, प्राणतोषिणीके कहे हुए पांच प्रकारके योग। यथा—नेती, दन्तीयोग, धौती, मल और आलन यही पांच प्रकारके योग सब योगोंमें श्रेष्ठ हैं। जो इस पंचामराका योगानुष्ठान करते, वे अमर होते हैं। इसीसे इसका नाम पंचामरादियोग पड़ा है। यह योग अनुष्ठान कर प्रतिदिन भक्तिपूर्वक श्रीकुण्डलीदेवीका सहस्रनामाष्टक पाक करना चाहिये।

पञ्चामृत (सं० क्लो०) पंचानां अमृतानां समाहारः। १ एक प्रकारका स्वादिष्ट पेय द्रव्य जो दधि, दुग्ध, घृत, मधु और चीनी मिला कर बनाया जाता है।

"दुग्धं सशर्कराञ्चैव घृतं दधि तथा मधु।
पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वकर्मसु॥" (ज्योतिस्तत्त्व)

गर्भवती स्त्रीको पंचामृत खिलाना चाहिए; किन्तु इसके खिलानेका विशुद्ध दिन होना आवश्यक है। ज्योतिस्तत्त्वमें लिखा है,—पंचममासको गर्भावस्थामें रवि, वृहस्पति और शुक्रवारको, रिक्ता भिन्न तिथिमें, रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्या, स्वाति, मृगा, मघा, अनुराधा, हस्ता और उत्तरफल्गुनी नक्षत्रमें पुरुष और स्त्रीको लग्नशुद्धिमें पंचामृत दान करना होता है। इससे देवपूजा और महास्नान आदि भी होते हैं। २ वैद्यकमें पांच गुणकारी ओषधियां—गिलोय, गोखरू, मुसली, गोरखमुण्डी और शतावरी।

पञ्चामृतपर्पटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली-गन्धक ८ माशा, पारा ४ माशा, लोहा २ माशा, तांबा २ माशा इन सब द्रव्योंको मिला कर लोहेके बरतनमें पीसते और बेरकी लकड़ीसे आगमें गलाते हैं। बाद पर्पटीकी तरह गोबरके ऊपर इसे केलेके पत्ते पर डाल देते हैं। इसके सेवनकी मात्रा २ रत्तीसे ले कर ८ रत्ती तक बतलाई गई है। इसका अनुपान घी और मधु है। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी, अरुचि, अर्श, छर्दि, अतीसार, ज्वर, रक्तपित्त, क्षय वलिपलित, नेत्ररोग प्रभृति जाते रहते हैं। यह हृद्य और आग्नेय है। (रसेन्द्रसा० ग्रहणीचि०)

भैषज्यरत्नावलीके मतसे—गन्धक ८ तोला, पारा ४ तोला, लोहा ४ तोला, अबरख १ तोला और तांबा आध तोला इन पांच द्रव्योंको पहले एक साथ मिला कर लोहेके बरतनमें पीसना चाहिये। बाद एक दूसरे लौहपात्र (कड़ाही आदि)-में रख कर धीमी आंचमें पाक करते और केलेके पत्ते पर डाल कर उसकी पर्पटी बनाते हैं। इसीको पंचामृतपर्पटी कहते हैं। इसके सेवनकी मात्रा २ रत्ती तथा अनुपान घी और मधु है। प्रतिदिन सेवन-मात्रा बढ़ा कर ८ वा १० रत्ती तककी व्यवस्था करनी होती है। एक सप्ताह तक सेवन करनेसे नाना प्रकारकी ग्रहणी, अरुचि, वमि, अनेक दिनका अतीसार और नेत्ररोग आदि जाते रहते हैं। दीर्घातीसार वा चिरोत्थितातीसारमें गन्धकका परिमाण उक्त परिमाणसे आधा कम कर देना चाहिये।

पञ्चामृतपिण्ड (सं० पु०) अश्वके बलपुष्टिकर पिण्डविशेष, घोड़ोंकी ताकतको बढ़ानेवाली एक प्रकारकी औषध। कटुका, जयन्ती, भ्रमरी, सुरसा और घन ये पांच प्रकारके अमृत सभी घोड़ोंके लिये उपकारी हैं।

पञ्चामृतयूष (सं० पु०) कुलत्थादि पंचद्रव्यकृत यूषविशेष। कुलथी, मूंग, अरहर, उरद और मटर इन पांच चीजोंका जूस बनानेसे पंचामृतयूष होता है। गुण—सन्दीपन, पाचन, धातुवृद्धिकर, लघु, अरुचिनाशक, बलकर, ज्वर, क्षय और अङ्गमर्दनाशक। (वैद्यकनि०)

पञ्चामृतरस (सं० पु०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, सोहागा ३ भाग, विष ४ भाग, मिर्च ५ भाग इन सब द्रव्योंको अदरकके रसमें पीस कर पांच रत्तीकी गोली बनाते हैं। इस औषधका अनुपान विशेषसे प्रायः सभी रोगोंमें व्यवहार किया जा सकता है। यह जलदोष, जलोदर, सन्निपात, पीनस, नासारोग, व्रण, व्रणशोथ, उपदंश, भगन्दर, नाड़ीव्रण, ज्वर, नखदन्ताघात और क्षत आदि रोगोंमें प्रशस्त है। (रसेन्द्रसा० नासारोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीके मतसे शुद्ध पारा १ तोला, गन्धक १ तोला, सोहागीकी खोई ३ तोला, विष ३ तोला, मिर्च ३ तोला इन सबको चूर्ण कर जलके साथ अच्छी तरह पीसते हैं। पीछे एक रत्तीकी गोली बना कर सेवन करते हैं। इसका अनुपान अदरकका रस है। इससे शोथ आदि नाना रोग उपशम होते हैं।

अन्यप्रकार—शोधित पारा १ तोला, गन्धक २ तोला, अबरक २ तोला, मिर्च १० भाग और विष १ तोला इन्हें नीबूके रसमें पीस कर उरदके बराबर गोली बनाते हैं। इसका अनुपान बहेड़े फलकी छालका चूर्ण और मधु है। इससे वातकास नष्ट होता है।

पञ्चामृतलौहमण्डूर (सं॰ पु॰) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—लोहा, ताँबा, गन्धक, अबरक, पारा, त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग, चीता, चिरायता, देवदारु, दारुहल्दी, हल्दी, कुट, यमानी, जीरा, कृष्णजीरा, कपूर, धनिया, चव्य प्रत्येकका चूर्ण १ तोला, कुल मिला कर जितना चूर्ण हो, उसका आधा शोधितमण्डूर, मण्डूर चूर्णका ४ गुण गो-मूत्र, ८ गुण पुनर्णवाका क्वाथ इन सबको एक साथ पाक कर आसन्न पाकमें लौहादि चूर्णको डाल दे और अच्छी तरह मिला कर उतार ले। शीतल हो जाने पर उसमें एक पल मधु डाल दे। इसकी मात्रा रोगीकी अवस्थाके अनुसार होगी। इससे ग्रहणी, कामला और शोथ आदि रोग जाते रहते हैं।

पञ्चाम्नाय (सं॰ पु॰) पंचसंख्यकः आम्नायः। महादेवके पञ्चवक्त्रविनिर्गत तन्त्रशास्त्रविशेष। महादेवने पूर्व-मुखसे जिस तन्त्रका विषय कहा है, वह पूर्वाम्नाय है। इस प्रकार पांचों तन्त्रके नाम ये हैं—पूर्वाम्नाय, शब्द-रूप, दक्षिण कर्णरूप, पश्चिम प्रश्नाम्नाय, उत्तर उत्तरात्मक और ऊर्ध्व ऊर्ध्वाम्नाय तत्त्वबोध वा केवलानुभवात्मक।

"पूर्वाम्नायः शब्दरूपः दक्षिणः कर्णरूपकः।
पश्चिमः प्रश्नरूपः स्यात् उत्तरश्चोत्तरस्तथा।
ऊर्ध्वाम्नायस्तत्त्वबोधकेवलानुभवात्मकः॥"
(भैरवतन्त्र)

महादेवने स्वयं कहा था, कि हमारे ५ मुखसे यह तन्त्र निकला था, इसलिए इसका नाम पञ्चाम्नाय पड़ा है।

"मम पञ्चमुखेभ्यश्च पञ्चाम्नायाः समुद्‌गताः॥"
(कुलार्णवतन्त्र)

पञ्चाम्र (सं॰ क्ली॰) अमन्ति रसानि प्राप्नुवतीति अम-रक्, दीर्घश्चोपधयो इति आम्राः वृक्षाः (अमितम्योर्दीर्घश्च। उण् २।१६) पंचानां आम्राणां अश्वत्थादीनां समाहारः। वृक्षविशेषका समाहार, अश्वत्थ आदि कई एक वृक्ष।

एक अश्वत्थ, एक पिचुमर्द (नीम), एक न्यग्रोध (बरगद), दश प्रकारके फूल, दो मातुलङ्ग ये सब वृक्ष पंचाम्र हैं। जो यह पंचाम्र लगाते हैं, उन्हें नरक भुगतना नहीं पड़ता।

तिथितत्त्वके मतसे पीपर १, नीम १, चम्पा २, केशर ३, ताड़ ७ और नारियल ८ यही पंचाम्र है।

पञ्चाम्ल (सं॰ क्ली॰) पञ्चानामाम्लानां कोलादीनां समाहारः। अम्लपंचक, वैद्यकमें ये पांच अम्ल या खट्टे पदार्थ—अमलवेद, इमली, जँभीरी नीबू, कागजी नीबू और बिजौरा। मतान्तरसे—बैर, अनार, विषाबलि, अमलवेद और बिजौरा नीबू। अधिक प्यास लगने पर पंचाम्लका लेप मुहमें देनेसे प्यास बुझ जाती है।

"कोलदाड़िम्बवृक्षाम्लचुक्रीकाचुलिकारसः।
पञ्चाम्लको मुखे लेपः सदा तृष्णां नियच्छति॥"
(सारकौमुदी)

पञ्चायत—भारतवर्षको सर्वव्यापी ग्राम्यविचारसभा। किसी जाति वा किसी विशिष्ट समाजके मध्य किसी प्रकारका गोलमाल उपस्थित होने पर ग्रामस्थ गण्यमान्य व्यक्तियोंको मध्यस्थ बना कर एक सभा गठित होती है। उनके पास विवाद वा मनोमालिन्यकी प्रकृत घटनाकी दोनों पक्षके लोग सुनाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिसमष्टिके विचारको ही पंचायतका विचार कहते हैं। पांच व्यक्ति ले कर सभा गठित होती है, इसीसे इसका नाम पंचायत पड़ा है। प्रायः देखा जाता है, कि सभी देशोंमें निम्नश्रेणीके व्यक्तियोंके मध्य जब कोई विवाद खड़ा होता है, तब पंचायतसे ही उसका निबटेरा होता है। एलफिन्स्टन साहबने स्वीकार किया है, कि

'राजकीय शासनप्रणालीसे प्रजा जिन सब विषयोंमें सम्यक्‌रूपसे विचार पानेको आशा नहीं करती, एकमात्र पंचायत ही उनके इस अभावको पूरा करती है।' जब जिरल्ड एजियर बम्बईके शासनकर्त्ता नियुक्त हुए (१६६८-१६७७), उस समय उन्होंने हिन्दू, पारसी और मुसलमानोंके विचारके लिए प्रत्येक सम्प्रदायसे ५ व्यक्तियोंको चुन कर स्वायत्तशासनविधिके अनुकरण पर पंचायतको संगठन की थी। एतद्भिन्न महाराष्ट्र प्रादुर्भावके समय दाक्षिणात्य प्रदेशमें पेशवाओंने इस प्रकार अनेकोंका विचारकार्य राजपुरुषोंके हाथ सौंपा था सही, लेकिन अवशिष्ट सभी कार्य ग्राम्यपंचायतीको ही करने होते थे। इस समय दीवानी अदालतमें कृषकोंको जमीनके अधिकार ले कर जो मामला चलता था, वह पंचायत सभा ही उसका चूड़ान्त विचार करती थी। व्यवसायी व्यक्तियोंमेंसे ही अथवा उस जातीय सम्प्रदायकोंसे ही पांच आदमी चुन लिए जाते थे। सामरिक विभागका विचारकार्य सरदारोंकी पंचायत द्वारा निष्पन्न होता था। पंचायत द्वारा निष्पादित मुकदमेके कागजादि राजदरबारके कागजादिके मध्य गिने जाते थे। आज भी सभी स्थानोंमें निम्नश्रेणीके मध्य पंचायतका विचारकार्य दृष्टिगोचर होता है। सभा किसी खुले मैदानमें अथवा वृक्षादिके तले बैठती है। इस प्रकारकी पंचायतमें केवल पांच ही आदमी बैठते हैं सो नहीं, उनमें पांचसे अधिक व्यक्ति भी लक्षित होते हैं। विचारके पहले वादी और प्रतिवादी दोनों पक्षको ही पंचायत तथा उभयपक्षीय साक्षी और स्वजातीय समवेत व्यक्तियोंको मिष्टान्न खिलाना होता है। उसके बाद पंचायतके विचारमें जो निष्पन्न होता है उसे दोनों पक्ष पालनेको बाध्य हैं। वर्त्तमान अङ्गरेजीशासनकालमें जिस प्रकार जूरीकी प्रथा तथा प्रजातन्त्र शासनप्रणाली प्रचलित है, उसी प्रकार इस देशमें पंचायत-प्रथा भी प्रचलित देखी जाती है। हम लोगोंके देशमें प्राचीनकालमें भी पंचायत-प्रथा प्रचलित थी, ताम्रशासनादिसे उसका प्रमाण मिलता है।

पञ्चमण्डली देखो।

हम लोगोंके देशमें यह भी देखा जाता है, कि जहां म्युनिसपलिटी नहीं है, वहां घाट, रास्ता, पुष्करिणी आदिका प्रबन्ध यहां तक कि चौकीदार आदिका नियोग भी इसी पंचायत द्वारा होता है।

पञ्चायतनी (सं० स्त्री०) पञ्चानामुपास्य देवरूपानामायतनानां समाहारः। पंच उपास्य देवताका समाहार। एक प्रकारकी दीक्षा। तन्त्रसारमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—पंचायतनी दीक्षामें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश इन पंच देवताओंके ५ यन्त्र बना कर उनमें शक्ति, विष्णु, शिव, सूर्य और गणेश इन पंच देवताओंकी पूजादि करनी होती है। इसीसे इसका नाम पंचायतनी दीक्षा पड़ा है। इसमें विशेषता यह है, कि गुरु यदि इन पंचदेवताके मध्य शक्तिको प्रधान समझें, तो उसके यन्त्रको मध्यस्थलमें चिह्नित कर पूजा करे और उस यन्त्रके ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैऋतकोणमें गणेश तथा वायुकोणसे सूर्यका यन्त्र बना कर इन सबकी पूजा विधेय है। यदि मध्यस्थलमें विष्णुकी अर्चनाकी जाय, तो ईशानकोणमें शिव, अग्निकोणमें गणेश, नैऋतकोणमें सूर्य और वायुकोणमें अम्बिका यन्त्र चिह्नित कर पूजा करे। यदि मध्य भागमें शङ्करकी पूजा करनी हो, तो ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें सूर्य, नैऋतकोणमें गणेश और वायुकोणमें पार्वतीकी पूजा; यदि मध्यमें सूर्यकी पूजा करनी हो, तो ईशानकोणमें शिव, अग्निकोणमें गणेश, नैऋतकोणमें विष्णु और वायुकोणमें भवानीयन्त्रकी पूजा; यदि मध्य भागमें गणेशकी पूजा करनी हो, तो ईशानकोणमें विष्णु, अग्निकोणमें शिव, नैऋतकोणमें सूर्य और वायुकोणमें पार्वतीयन्त्रकी पूजा करनी होती है। इन सब स्थानोंको छोड़ कर अन्यत्र पूजा करनेसे अशुभ होता है ऐसा गणेशविमर्षिणी तन्त्रमें लिखा है। रामार्चनचन्द्रिका और *गौतमीयतन्त्र*के मतसे—मध्यस्थलमें विष्णु, अग्निकोणमें गणेश, ईशानकोणमें सूर्य, वायुकोणमें पार्वती और नैऋतकोणमें महादेवकी पूजा विधेय है। किसी किसीके मतसे ईशानादिकोण विभागमें विकल्प होता है। गन्धादि द्वारा अर्चना करके षड़ङ्गमें पूजा करनी होती है। पूजाके बाद २० बार मन्त्रजप और नमस्कार करके जप समाप्त करना पड़ता है। पीठ-

देवताकी पूजाके बाद अङ्गदेवतापूजा, पीछे पीठन्यास, प्राणप्रतिष्ठा, आवाहन आदि करके पूजा करना विधेय है। प्रतिष्ठित यन्त्रादिस्थलमें देवताको पुष्पाञ्जलि दे कर अङ्गदेवताकी पूजा करनी होती है। श्यामा, भैरवी, तारा, छिन्नमस्ता, मञ्जुघोष और रुद्रमन्त्र इन सबको पंचायतनीदेवा पण्डितोंका अभिमत नहीं है।

(तन्त्रसार)

पञ्चायुध (सं० पु०) विष्णुका एक नाम।

पञ्चारी (सं० स्त्री०) पंचजन्यसंख्यामृच्छतीति ऋगती अण् (कर्मण्यण्। पा ३।२।४) ततो गौरादित्वात् ङीष्। शारिशृङ्खला, चौसरकी बिसात।

पञ्चार्चिस् (सं० पु०) पंच अर्चिः यस्य। बुधग्रह।

पञ्चाल (सं० पु०) पचि विस्तारवचने कालन् (तमिविशि-विडिमृणिकुलीति। उण् १।११७) १ देशविशेष। विष्णुपुराणमें पंचाल नामकी इस प्रकार व्युत्पत्ति लिखी है—महाराज हर्यश्वके ५ पुत्र थे, मुद्गल, सृञ्जय, वृहदिषु, प्रवीर और काम्पिल्य। पिता अपने पुत्रोंको देख कर कहा करते थे कि ये पांचों मेरे अधीन ५ देशोंको रक्षा भलीभांति कर सकते हैं। इसीसे वे सब देश पंचाल नामसे प्रसिद्ध हुए।

महाभारतमें लिखा है, कि नीलराजकी पांचवीं सीढ़ीमें हर्यश्व नामक राजा हुए। महाराज हर्यश्व अपने भाईसे लड़ कर अपनी ससुराल मधुपुरी चले गये और ससुर मधुकी सहायतासे उन्होंने अयोध्याके पश्चिमके देशों पर अधिकार कर लिया। जब लोगोंने आ कर उनसे अयोध्याके राजाके आक्रमणकी बात कही, तब इन्होंने पांच पुत्रोंकी ओर देख कर कहा, ये पांचों हमारे राज्यकी रक्षाके लिए अलम् (पंचालम्) हैं। तभीसे उनके अधिकृत देशका नाम पंचाल पड़ा।

हरिवंशमें हर्यश्वकी जगह बाह्याश्व ऐसा नाम लिखा है। उनके मुद्गर, सृञ्जय, वृहदिषु, यवीनर और क्रमिलाश्व नामक पांच महावीर्यशाली अमृततुल्य पुत्र थे। उन्हीं पंच-पुत्रोंसे इस प्रदेशका पंचाल नाम पड़ा था।

तन्त्रसारमें लिखा है—

"कुरुक्षेत्रात् पश्चिमेषु तथा चोत्तरभागतः।
इन्द्रप्रस्थान्महेशानि दशयोजनकद्वये॥
पंचालदेशो देवेशि सौन्दर्यगर्वभूषितः॥"

(शक्तिसंगम)

कुरुक्षेत्रके पश्चिम और इन्द्रप्रस्थके उत्तर बीस योजन विस्तृत भूभाग पंचालदेश कहलाता था।

वर्त्तमान अयोध्याप्रदेश और दिल्लीनगरके उत्तर-पश्चिमस्थ गङ्गानदीके उभयतीरवर्त्ती स्थान इसी राज्यके अन्तर्गत थे। पर महाभारतमें हिमालयके अंचलसे ले कर चंबल तक फैले हुए गङ्गाके उभय पार्श्वस्थ देशका ही वर्णन पंचालके अन्तर्गत आया है। अति प्राचीन वैदिक ग्रन्थादिमें भी पंचालराज्य और वहांके अधिपति राजाओंका उल्लेख देखनेमें आता है। रामायणमें लिखा है—

"ते हस्तिनापुरे गंगां तीर्त्वा प्रत्यङ्मुखा ययुः।
पांचालदेशमासाद्य मध्येन कुरुजाङ्गलम्॥"

(राम० २।६८।१३)

इससे अच्छी तरह अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान दिल्ली नगरके उत्तर और पश्चिमवर्त्ती स्थान-समूह पांचालराज्यके अन्तर्भुक्त था। महाभारतके आदिपर्वमें लिखा है,—

पंचालराज पृषतने अपने लड़के द्रुपदको शास्त्राध्ययनके लिए महामुनि भरद्वाजके आश्रममें भेजा था। यहां द्रोणाचार्यके साथ द्रुपदने खेल कूद तथा पढ़ने लिखनेमें बड़े चैनसे दिन बिताते थे। पिताके मरने पर द्रुपद पंचालके राजा हुए। एक समय द्रोण जब द्रुपदके समीप पहुंचे, तो दाम्भिक पांचालराजने उनकी अवहेला तथा उपहास किया। इस पर रुष्ट हो कर द्रोणने पञ्चपाण्डवकी सहायतासे छत्रावती* राजा द्रुपदको निर्जित और कैद कर लिया था। अन्तमें उन्होंने उनके राज्यको दो भागोंमें बांट कर उत्तरभाग तो आपने ग्रहण किया और दक्षिणभाग द्रुपदके हाथ रहने दिया।

भागीरथीके उत्तरतीरस्थ छत्रावती-नगरीसमन्वित स्थान उत्तर पञ्चाल और द्रुपदाधिकृत भागीरथीके

* महाभारतोक्त यह नगरी अहिक्षेत्र वा अहिच्छत्र नामसे प्रसिद्ध थी। अहिच्छत्र शब्द देखो।

दक्षिणकूलस्थ भूभाग दक्षिण पञ्चाल कहलाता था। दक्षिण पञ्चालकी राजधानी काम्पिल्यनगरमें थी। इसी राजधानीमें पाञ्चाली अर्थात् द्रौपदीका स्वयम्वर रचा गया था।

प्राचीन दक्षिण पञ्चालराज्यका पूर्व चिह्न लक्षित नहीं होता। केवलमात्र बदाऊन और फरुखाबाद जिले के मध्यवर्ती दोआबप्रदेशमें गङ्गाके प्राचीन गर्त्तको खाई और कितने भग्न इष्टकादि पाये गये हैं। यहां तथा उत्तर पञ्चालको अहिच्छत्रापुरीमें जो सब खोदित ध्यानी-बुद्ध, तीर्थङ्कर और पार्श्वनाथादिको मूर्त्तियां पाई गई हैं, वे बौद्ध और जैनधर्मके प्रतिपत्तिकालमें संस्थापित हुई थीं; ऐसा बोध होता है। पुराविद् कनिंहम इन सब मूर्त्तियोंको देख कर लिख गये हैं, कि ये मूर्त्तियां खृष्टपूर्व प्रथम शताब्दीसे ३य वा ४र्थ शताब्दीकी होंगी।(१) रोहिलखण्डके अन्तर्गत कपिलनगरसे भास्कर-कार्ययुक्त एक प्राचीन चतुरस्र वेदी भारतीय यादु-घरमें लाई गई है।

बदाऊनसे प्राप्त लक्ष्मणपालको शिलालिपिसे हम लोग मालूम कर सकते हैं, कि पञ्चालके अन्तर्गत वोदाम-युता नगरमें राष्ट्रकूटसम्बन्धीय राजाओंने प्रबलप्रतापसे राज्यशासन किया था। उक्त शिलालिपिमें लक्ष्मणके पूर्वतन और भी १० राजाओंके नामोंका उल्लेख है।

पञ्चालः देशविशेषः सोऽभिजनोऽस्य, तस्य राजा वा अण् बहुषु अणोलुक्। २ पञ्चालदेशवासी। ३ पञ्चाल-देशके राजा। ४ एक ऋषि जो बाभ्रव्य गोत्रके थे। ५ महादेव, शिव। ६ छन्दोभेद, एक छन्द जिसके प्रत्येक चरणमें एक तगण होता है। ७ सर्पविशेष, एक सांप-का नाम। ८ विषयुक्त कीट, विषैला कीड़ा।

पञ्चाल—सौराष्ट्रके अन्तर्गत एक उपविभाग। इसके पश्चिममें वनाशनदी और पूर्वमें शावरमती है। साधा-रणतः यह स्थान देवपंचाल नामसे प्रसिद्ध है। यह जनपद प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्गसे सौराष्ट्रके मध्यस्थित (पंचालके अधीन) आनन्दपुर नामसे ही उक्त हुआ है। यूएनचुवङ्गने लिखा है, कि आनन्दपुरसे वलभी प्रायः ७०० लीग है। किन्तु यथार्थमें आनन्दपुर

(१) Cunnigham's Arch. Reports, Vol. I. p. 264.

वलभीसे ३२ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। पूर्व समय-में वलभी और आनन्दपुरके मध्य जो सब पार्वत्यप्रदेश थे, वे सभी वनाकीर्ण और दुर्गम थे। इस कारण उस समय घूम कर (अर्थात् गोघा हो कर आरम्भ करनेसे प्रायः ११५से ११७ मीलका रास्ता ले कर) जाना होता था। यही आनन्दपुर यथार्थमें 'देवपंचाल' कहलाता था। यहां अनेक प्राचीन निदर्शन पाये जाते हैं।

महाभारतमें लिखा है—इक्ष्वाकुवंशसम्भूत राजा हर्यश्व अपने भाईसे अयोध्यासे निकाल दिए जाने पर जङ्गल चले गये। साथमें उनकी एकमात्र स्त्री मधुमती थीं। मधुमतीके कहनेसे हर्यश्व ससुराल चले गये। मधुदानवने जामाताके आगमन पर बड़े प्रसन्न हो मधु-वनको छोड़ समस्त सौराष्ट्रराज्य उन्हें प्रदान किया और आप तपस्याके लिए वरुणालय समुद्रके किनारे चल दिये। हर्यश्व भी पर्वतके ऊपर आनर्त्त नामक एक राजधानी बसा कर वहीं आनन्दसे रहने लगे।

प्रवाद है, कि सौराष्ट्रके अन्तर्गत इसी पंचाल जन-पदमें द्रौपदीका जन्म हुआ था, इसी कारण उस स्थानको अभी देवपंचाल कहते हैं। यहांके वर्त्तमान थान नामक नगरीके प्राचीनत्वकी कथा भी विशेष रूपसे लिखी है। यह स्थान पहले 'त्रिनेत्रेश्वर' नामसे प्रसिद्ध था। स्कन्दपुराणान्तर्गत त्रिनेत्रेश्वर महात्म्यमें उनकी वर्णना पाई जाती है। चीनपरिव्राजकोक्त आनन्दपुरकी पूर्व कीर्त्तियोंका आख्यान तथा वहांके आनुषङ्गिक भीमार्जुन और कर्ण आदिके समयका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि हरिवंशोक्त सौराष्ट्रान्तर्गत हर्यश्व-का बसाया हुआ आनर्त्तपुर ही परवर्त्तिकालमें आनन्द-पुर वा 'देवपंचाल' नामसे मशहूर हुआ है।

यहां एक अत्यन्त सुन्दर मन्दिर है जिसे सब कोई अनहलवाड़ाराज सिद्धराज जयसिंहसे निर्मित बतलाते हैं। इसके अलावा यहांके अन्यान्य मन्दिरोंमें नाग-देवताओंकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित थीं। इस उपविभागमें वासुकि आदि महानागोंकी पूजा प्रचलित है।

आनन्दपुरसे ३ कोस पूर्व भोकलवा नगरकी बगलमें धुन्धन पर्वत और नगर अवस्थित है। इस पर्वत पर पहले

धुन्ध नामक एक राक्षस रहता था। मुङ्गीपुर पाटनके अधिपति शाकवन्धि शालिवाहनके पुत्र गोहिलवंशीय राजा रसालुने उस राक्षसका नाश किया था।

आनन्दपुरके राजाओंकी प्रतिष्ठाप्रकाशक अनेक कविता और दोहा प्रचलित हैं जिनसे कितने ऐतिहासिक आभास पाये जाते हैं। लेकिन उनसे सन् तारीख आदिकी गड़बड़ी दीख पड़ती है। कनकके पुत्र अनन्तरायने पंचालके अन्तर्गत अनन्त वा आनन्दपुर नगर बसाया। इनके वंशधरोंने १३२० सम्वत् तक यहांका शासन किया था। शेष वंशधर अमरसिंहके अधिकारकालमें दिल्लीपति महम्मद तुगलक और गुजरातके सुलतानोंकी उपर्युपरि चढ़ाईसे पंचालराज्य ध्वंसप्राय हो गया। क्रमशः चारों ओर वनाकीर्ण हो जानेसे काठोके सरदारोंने १६६४ सम्वत्में प्राचीन ध्वंसप्राप्त नगरके शेष ऐश्वर्यका उपभोग करनेके लिये इस वन्यभूमि पर अपना दखल जमाया।

वसुवन्धुके शिष्य स्थिरमती स्थविर इसी देवपञ्चाल नगरमें रहते थे। तारानाथकृत ग्रन्थमें मगधराज-वंशावलीके वर्णनमें लिखा है, कि गम्भीरपक्ष नामक किसी बौद्धराजाने पञ्चालनगरमें आ कर राज्य स्थापन किया और ४० वर्ष तक वे इसी नगरमें रहे। कहना नहीं पड़ेगा, कि यही नगर बौद्धप्रभावापन्न आनन्दपुर है। परिव्राजक यूएनचुवङ्गके समयमें यहांके १० सङ्घारामोंमें प्रायः हजार यति सम्मतीय शाखाका हीनयान मत सीखते थे।

पञ्चाल—दाक्षिणात्यवासी एक परिश्रमी जाति। ये लोग हमेशा एक जगह वास नहीं करते। जब जहां ये रहते हैं, तब वहीं अपने रहनेके लिये एक घासकी भोंपड़ी बना लेते हैं। इनके नामकी उत्पत्तिके विषयमें लोगोंका कहना है, कि उनको पांच 'चाल' अर्थात् सोना, रूपा, लोहा, तांबा और पीतल, इस पंचधातुसे उनकी जीविका चलती है, इसीसे उनका पंचाल नाम पड़ा है। स्थान भेदसे ये लोग कहीं कहीं रेशम और पत्थरके भी काम करते हैं। ये लोग जनेऊ पहनते हैं*। दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंके साथ इनका हमेशा वैरिभाव होते देखा जाता है। ब्राह्मणगण दक्षिणमार्गी और पंचालगण वाममार्गी हैं। कुछ अंशोंमें बौद्धाचारी हो जानेसे इनकी शिष्यसंख्या बहुत थोड़ी है। आज भी ये लोग छिप कर बुद्धकी पूजा करते हैं; किन्तु दिखलानेके लिये हिन्दू देवदेवीका पूजन करते हैं। कोई कोई अनुमान करते हैं, कि ये लोग पहले पंचगोल मान कर चलते थे; शायद इसी कारण धीरे धीरे ये लोग अपभ्रंशमें 'पंचाल' कहलाने लगे हैं। इनका कहना है, कि स्वजातिके मध्य बुद्धदेवकी पूजाके लिए इनके स्वतन्त्र पुरोहित हैं। एतद्भिन्न कोङ्कण, कर्णाट और दक्षिण पंचालोंके मध्य बौद्धधर्मविषयक अनेक ग्रन्थ हैं। किन्तु पूना आदि स्थानोंके पंचालगण प्राचीन ग्रन्थादिकी कथाओंको जरा भी नहीं मानते। ये लोग अपनेको विश्वकर्माके वंशज बतलाते हैं।

पञ्चालक (सं० पु०) अग्नि प्रकृति कीटविशेष।

पञ्चालचण्ड (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

पञ्चालपदवृत्ति (सं० पु०) छन्दोविशेष, एक वर्णवृत्तका नाम।

पञ्चालर—मन्द्राजप्रदेशके चित्तूर जिलावासी बढ़ई जाति। पांच श्रेणियोंमें विभक्त होनेके कारण ये लोग पञ्चालर कहलाते हैं। ये लोग अपनेको विश्वब्राह्मण बतलाते हैं और जनेऊ पहननेके बाद आचार्यकी उपाधि धारण करते हैं। यथार्थमें ये लोग ब्राह्मणोंको अपवित्र और विद्वेशीय समझ कर उनसे घृणा करते हैं। इन लोगोंको धारणा है कि पहले पांच वेद थे, पीछे वेदव्यास आदि अन्यान्य ऋषियोंने तोड़ ताड़ कर चार वेद कायम किये।

धर्मीय क्रिया काण्ड, विवाह आदि कार्य ये लोग अपनेसे ही कर लेते हैं। स्वजातिमेंसे ही किसीको अपना 'गुरु' बनाते हैं। वही मनुष्य सभी शुभ कार्योंमें उपस्थित हो कर कार्य कराता है। वहांके पुरोहित ब्राह्मणगण ऐसे आचार पर असन्तुष्ट हो कर उनका विवाह-'पण्डाल' तोड़ फोड़ डालनेकी चेष्टा करते हैं। इधर पञ्चालरगण भी विश्वब्राह्मणके अनुष्ठेय 'पण्डाल'-प्रचारको विवाहके समय विशेषरूपसे सम्पादन करनेको

* यज्ञसूत्रके अधिकार ले कर वीरशैवों और वीरवैष्णवोंमें एक समय विवाद खड़ा हुआ था। इसी शुभवसरमें पंचालोंने उपवीत धारण किया।

कोशिश करते हैं। इस विवादको ले कर दोनों सम्प्रदायके मध्य अकसर विवाद हुआ करता है। कई बार देखा गया है, कि इस प्रकार लड़ते झगड़ते वे अदालत तक भी पहुंच गये हैं और आखिरको विश्वब्राह्मणोंकी ही जीत हुई है।

पंचालरगण किस प्रकार वाममार्गियोंके समर्थपोषी हुए, इसके उत्तरमें वे कहते हैं कि नेरराज परिमलके समयमें वेदव्यास नामक कोई ब्राह्मण राजदरबारमें आये और राजपरिवारके पवित्र व्रतकर्मादि करानेके लिये राजासे प्रार्थना की। इस पर राजाने जवाब दिया कि 'पंचालरगण (विश्व-ब्राह्मण) इस विषयमें विशेष कार्यदक्ष हैं, इस कारण आपकी प्रार्थना मैं स्वीकार नहीं कर सकता।' राजाकी मृत्युके बाद उक्त व्यास पुनः दरबारमें पहुंचे। राजपुत्रने भी पूर्व-सा उत्तर दिया। इसके बाद व्यासने राजाके एक दूसरे लड़केके पास जा कर पूर्वतन राजा और पंचालरोंके सम्बन्धमें अनेक तरहकी झूठी बातोंसे उनका कान भर दिया। इस प्रकार राजपुत्रके मनको अपनी ओर खींच कर वेद-व्यासने पुरोहितके पद पर वरण करनेके लिये भी उनसे स्वीकारता ले ली। कुछ दिन बाद जब राजपुत्र सिंहासन पर बैठे, तब अपनी पूर्व प्रतिज्ञाके पालनमें विशेष यत्नवान् हुए। किन्तु वे पंचालरोंको इस अधिकारसे च्युत न कर सके। दोनोंके बीच सुलह कराना तथा क्रियाकलापादिको बांट देना ही उनका उद्देश्य था। पंचालरगण इस प्रस्ताव पर सम्मत न हुए। इस पर राजाने उन्हें निकाल भगाया। पीछे राज्य भरमें भारी अशान्ति फैल गई। प्रजाने जब देखा कि पंचालरको धर्मकार्य करनेका पूरा अधिकार नहीं दिया गया, तब उन्होंने खेती-बारी सब छोड़ दी। इस प्रकार चारों ओर हलचल मच गई। व्यासकी मन्त्रणासे राजाने जनसाधारणमें यह घोषणा कर दी, कि जो राजपक्षका अवलम्बन करेंगे वे दक्षिणाचारी और जो पंचालरोंका पक्षावलम्बन करेंगे, वे वामाचारी समझे जायेंगे।

पंचालरोंके प्रति इस प्रकार अपमानसूचक बातें सुन कर निकटवर्ती राजाओंने उनके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। उन्होंने कलिङ्गकी ओर अग्रसर हो कर साम्राज्य पर अधिकार कर लिया। व्यास भी उस समय काशीधामको भाग गये। पूर्वोक्त उपाख्यान ही दक्षिणाचारी और वाममार्गियोंकी उत्पत्तिका एकमात्र कारण है।

पञ्चालि (सं० स्त्री०) पाञ्चालि देखो।

पञ्चालिक (सं० क्ली०) ग्राम्य पंचायत। नेपालकी प्राचीन शिलालिपिमें इस पञ्चालिकका उल्लेख है।

पञ्चालिका (सं० स्त्री०) पंचाय प्रपञ्चाय अलति अल् ण्वुल् तत टाप्, स्वार्थे कन् कापि अत इत्वं च। वस्त्रादि-कृत पुत्तली, पुतली, गुड़िया।

पञ्चाली (सं० स्त्री०) पंचाल गौरादित्वात् ङीष्। १ वस्त्रादिकृत पुत्तलिका, पुतली, गुड़िया। २ गीतिविशेष, एक प्रकारका गीत। ३ पांचाली, द्रौपदी। ४ शारि-शृङ्खला, चौसरकी बिसात।

पञ्चालेश्वर—पूनाके अन्तर्गत एक प्राचीन शिवमन्दिर। अभी यह वृहत् मन्दिर भग्नावस्थामें पड़ा है।

पञ्चावट (सं० क्ली०) पंच विस्तृतसुरःस्थलमावटति वेष्टते आ-वट-अच्। १ उरस्राट, बालकका यज्ञोपवीत-विशेष, वह जनेऊ जो लड़कोंको किसी त्योहार पर मालाकी तरह पहनाया जाता है। पंचानां वटानां समाहारः, निपातनात् साधुः। २ पंचवटी।

पञ्चावर्त्त (सं० क्ली०) पांच भागोंमें विभक्त यज्ञीय चरु आज्य-प्रभृति।

पञ्चावर्त्तिन् (सं० क्ली०) पंचधा आवर्त्तः खण्डनमस्त्यत। पंचधा खण्डित चरु प्रभृति।

पञ्चावर्त्तीय (सं० त्रि०) पंचावर्त्त यज्ञसम्बन्धीय।

पञ्चावयव (सं० पु०) पंच प्रतिज्ञादयोऽवयवा यस्य। प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमनात्मक अवयवपञ्चक न्यायवाक्य। न्यायके यही पांच अवयव हैं।

पञ्चावस्थ (सं० पु०) पंचसु भूतेषु स्वकारणेषु अवस्था यस्य। शव, प्रेतदेह। देहावसान होने पर पंचभूत अपने अपने कारणमें लीन हो जाता है।

पञ्चाविक (सं० क्ली०) भेंड़ीका दही, दूध, घी, मूत और मल यही पांच द्रव्य।

पञ्चावी (सं० स्त्री०) पंच अवयवः प्रमाणात्मककाला वयोऽस्याः ङीप्। १ साढ़े वर्षद्वयपरिमित वृषसहित

स्त्री गवी, वह गाय जिसका बछड़ा केवल ढाई वर्षका हुआ हो।

पञ्चाश (सं० त्रि०) पचासवां।

पञ्चाशक (सं० त्रि०) पंचाश स्वार्थे कन्। पचास, साठ से दश कम।

पञ्चाशत् (सं० त्रि०) पंचदशतः परिमाणस्य (पंक्ति विंशतित्रिंशदिति। पा ५।१।५८) इति निपातनात् साधुः। १ संख्याविशेष, पचास। २ पंचाशसंख्यायुक्त, जिसमें पचासकी संख्या हो।

पञ्चाशत्तम (सं० त्रि०) पंचाशत् तमप्। पंचाशत् संख्याका पूरण, पचासवां।

पञ्चाशति (सं० त्रि०) पचासी।

पञ्चाशतृक (सं० त्रि०) पंचाशत्सम्बन्धीय, पचासका।

पञ्चाशद्भाग (सं० पु०) ५० भाग।

पञ्चाशिका (सं० स्त्री०) पञ्चाशिन् स्वार्थे-क, टाप्, टापि अत इत्वं। १ पंचाश अधिक शत वा सहस्रयुक्त। २ वह पुस्तक जिसमें पचास श्लोक वा कविता आदि हों।

पञ्चाशिन् (सं० त्रि०) पंचाशत्-इनि। पंचाशत् अधिक शत और सहस्र संख्या।

पञ्चाशीत (सं० त्रि०) पचासीवां।

पञ्चाशीति (सं० स्त्री०) पंचाधिका अशीतिः। पचासीकी संख्या।

पञ्चाशीतितम (सं० त्रि०) पंचाशीति तमप्। पचासीवां।

पञ्चास्य (सं० पु०) पंच विस्तृतं आस्यं यस्य। १ सिंह। पंचानि आस्यानि यस्य। २ शिव, महादेव। (त्रि०) ३ पंचमुखविशिष्ट, पांच मुखवाला।

पञ्चाह (सं० पु०) १ पंचदिनव्यापी यज्ञीय कार्य, एक यज्ञका नाम जो पांच दिनमें होता था। २ सोमयागके अन्तर्गत वह कृत्य जो सुत्याके पांच दिनोंमें किया जाता है। (त्रि०) ३ पाँच दिनमें होनेवाला।

पञ्चाहिक (सं० त्रि०) पाँच दिनमें होनेवाला।

पञ्चिका (सं० स्त्री०) पुस्तकादिका विभाग वा खण्ड, पांच अध्यायों वा खण्डोंका समूह।

पञ्चिन् (सं० त्रि०) पंचपरिमाणस्य इनि। पंच परिमाणयुक्त।

पञ्चीकरण (सं० क्ली०) पंचभूतानां भागविशेषेण मिश्रीकरणम्। अपंचतात्मक वस्तुका पंचात्मकतासम्पादन, पंचभूतोंका विभागविशेष। वेदान्तसारमें पंचीकरणका विषय इस प्रकार लिखा है—भूतोंको यह स्थूलाकृति पञ्चीकरण द्वारा होती है जो निम्नलिखित प्रकारसे होता है। पांचों भूतोंको पहले दो समान भागोंमें विभक्त करते हैं, फिर प्रत्येकके प्रथमार्द्धको चार भागोंमें बांटते हैं। पुनः इन सब बीसों भागोंको ले कर अलग रखते हैं। अन्तमें एक एक भूतके द्वितीयार्द्धमें इन बीस भागोंमेंसे चार भाग फिरसे इस प्रकार रखते हैं कि जिस भूतका द्वितीयार्द्ध हो उसके अतिरिक्त शेष चार भूतोंका एक एक भाग उसमें आ जाय, इसको पंचीकरण कहते हैं। इस विषयमें श्रुति प्रमाण है। प्रत्येक पंचभूतको समान दो भागोंमें बांट कर पीछे प्रत्येक पञ्चभूतके प्रथम भागको चार अंशोंमें करते हैं। बादमें अपर पंचभूतके प्रत्येक प्रथमांशमें उन चार अंशोंका एकांश कर योग करनेसे पंचीकृत होता है। श्रुतिमें पञ्चीकरणका साफ साफ उल्लेख नहीं रहने पर भी त्रिवृत्करण श्रुति द्वारा वह सिद्ध हुआ है। सभी भूत पंचीकृत हो कर आकाशादि पृथक् पृथक् नामसे व्यवहृत हुआ करते हैं। भूतोंके इस प्रकार पञ्चीकरणकालमें आकाशमें शब्दगुण; वायुमें शब्द और स्पर्श; अग्निमें शब्द, स्पर्श और रूप; जलमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथिवीमें शब्द, स्पर्श, रूप, गन्ध और रस अभिव्यक्त होता है।

इस प्रकार पंचीकृत पंचभूतसे परस्पर ऊपरमें विद्यमान जो भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, मह, जन, तप और सत्यलोक हैं तथा नीचेमें विद्यमान जो अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताललोक, ब्रह्माण्ड, चतुर्विध स्थूल शरीर और इनके भोगोपयुक्त अन्नपानादि हैं, वे सबके सब उत्पन्न हुए हैं। पंचीकृत पंचभूत ही इनकी उत्पत्तिका कारण है (वेदान्तसार)

देवीभागवतमें पंचीकरणका विषय इस प्रकार लिखा है—

ज्ञान और क्रियासंयुक्त निखिल कामके घनीभूत होने पर वह ओङ्कार मन्त्रका वाच्य होता है। तत्त्वदर्शी महोदयोंने इस ओङ्काररूप मायाबीजको ही अखिल

ब्रह्माण्डका आदि तत्त्व माना है। इस श्रोङ्कारवाच्य मायावोजरूप आदि तत्त्वसे क्रमशः शब्दतन्मात्ररूप अपञ्चीकृत आकाश उत्पन्न होता है। इस आकाशसे स्पर्शात्मक वायु, वायुसे रूपात्मक तेज, तेजसे रसात्मक जल और जलसे गन्धगुणात्मक पृथ्वी उत्पन्न होती है। इस अपञ्चीकृत पंचभूतसे व्यापकसूत्र उत्पन्न होता है जो लिङ्गदेह नामसे अभिहित है। यह लिङ्गदेह सर्व-प्राणात्मक है और इसीको परमात्माको सूक्ष्म देह कहते हैं। यह अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत पंचीकृत हो कर जगत् उत्पादन करता है। इस पंचीकृत भूतपंचकका कार्य विराट्‌देह है, वही परमेश्वरकी स्थूलदेह कहलाती है। इस पञ्चीकृत पञ्चभूतस्थित प्रत्येकके सत्त्वांश द्वारा श्रोत्र और त्वगादि पञ्चज्ञानेन्द्रियको उत्पत्ति होती है। फिर इन ज्ञानेन्द्रियोंमेंसे प्रत्येकका सत्त्वांश मिल कर एक अन्तःकरण होता है। पञ्चीकृत पञ्चभूतमेंसे प्रत्येकके रजोअंशसे वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपस्थ नामक पञ्चकर्मेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। इनमेंसे प्रत्येकका रजो-अंश मिल कर प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान यह पंच वायु उत्पन्न होती है। इस प्रकार पंचीकृत पंचभूतसे ही सभी उत्पन्न हुए हैं।

(देवीभा० ७।३२ अ०)

श्रुतिमें त्रिवृत्करणका विषय लिखा है। त्रिवृत्करणसे पंचीकरणकी उपलब्धि होती है। सुरेश्वराचार्यने पंचीकरण वार्त्तिकमें इसका विषय बढ़ा चढ़ा कर लिखा है।

पञ्चीकृत (सं० त्रि०) जिसका पञ्चीकरण हुआ हो।

पञ्चेध्मीय (सं० पु०) पंचभिरिध्मभिः निर्वृत्तः। पञ्चेध्म-साध्य होमभेद।

"रात्रौ निशायां पञ्चध्मीयेन च।" (आपस्तम्ब)

पञ्चेन्द्र (सं० त्रि०) पंच इन्द्राण्यो देवता यस्य। इन्द्रादि पंचदेवताके उद्देश्यसे देय हविः प्रभृति।

पञ्चेन्द्रिय (सं० क्ली०) पंचानां ज्ञानेन्द्रियाणां समाहारः। श्रोत्र, त्वक्, नेत्र, रसना और घ्राण ये पांच ज्ञानेन्द्रिय। इसके सिवा पांच कर्मेन्द्रिय हैं, यथा—वाक्, पाणि, पायु, पाद और उपस्थ। इन्द्रिय ग्यारह हैं; पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक मन।

पञ्चेषु (सं० पु०) पंच इषवो यस्य। कामदेव जिनके पांच इषु या शर हैं।

पञ्चोपविष (सं० क्ली०) पञ्चसंख्यकं उपविषम्। उपविष-पञ्चक, पांच प्रकारके उपविष। मनसा, अर्क, करवी, विषलाङ्गली और विषमुष्टि ये पांच द्रव्य पञ्चोपविष कहलाते हैं।

पञ्चोषण (सं० क्ली०) चित्रक, मिर्च, पिप्पली, पिप्पली-मूल और चव्य नामक पांच ओषधियां। (शब्दच०) वैद्यनिघण्टुके मतसे पञ्चकोल, पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक और शुण्ठी नामक पञ्चविध द्रव्य।

पञ्चोष्मन् (सं० पु०) पंच उष्माणः, संज्ञात्वात् कर्म-धारयः। आहारपाचक शरीरस्थित पंचाग्नि शरीरके भीतर भोजन पचानेवाली पांच प्रकारकी अग्नि।

पञ्चौदन (सं० पु०) पञ्चधा विभक्तः ओदनः। १ पञ्चाङ्गुलि द्वारा पांच भागमें विभक्त ओदन, पांच उंगलियोंसे पांच भागोंमें बांटा हुआ चावल। २ एक यज्ञका नाम।

पञ्जनिगर—बम्बई प्रदेशको शोलापुरवासी एक जाति। ये लोग काले, मजबूत और डीलडौलमें उतने लम्बे नहीं होते। पुरुष दाढ़ी रखते और मुसलमानके जैसा कपड़ा पहनते हैं। स्त्रियां अपेक्षाकृत सुन्दरी और सुश्री होती हैं। इनका आभूषण मराठोंकी तरहका है। स्त्री पुरुष दोनों ही कष्टसहिष्णु होते हैं। इन लोगोंमें एक सरदार होता है। ये लोग आपसमें ही विवाह-शादी करते हैं। ये सब इनफो अंशोंके सुन्नी-सम्प्रदायभुक्त हैं, किन्तु कभी कलमा नहीं पढ़ते।

पञ्जर (सं० क्ली०) पञ्जयति रुध्यते उदरयन्त्रमनेन, पजि-रोधे-अरन्। १ कायास्थिवृन्द, देहकी अस्थिसमूह, शरीरका अस्थिपञ्जर। २ शरीरका वह कड़ा भाग जो अणुजीवों तथा बिना रीढ़के और क्षुद्र जीवोंमें कोश या आवरण आदिके रूपमें ऊपर और रीढ़वाले जीवमें कड़ी हड्डियोंके ढांचेके रूपमें भीतर होता है। हड्डियोंका ठट्टर या ढांचा जो शरीरके कोमल भागोंको अपने ऊपर ठहराये रहता है अथवा बन्द या रक्षित रहता है, ठटरी, कङ्काल। पंजयति रुध्यते पक्ष्यादिरत्र। ३ पक्षी आदिका बन्धनगृह, पिंजड़ा। ४ देह, शरीर। आत्मा-

शरीरमें बद्ध रहती है, इसलिए पंजर शब्दसे शरीरका बोध होता है। ५ कलियुग। ६ गायका एक संस्कार ७ कोलकन्द।

पञ्जरक (सं० पु०) खांचा, झावा, बेंत या नरकटोंसे डण्ठलों आदिका बुना हुआ बड़ा टोकरा।

पञ्जराखेट (सं० पु०) पञ्जरमिव यन्त्रेण आखेटो मृगया यस्मात्। मछली पकड़नेका यन्त्रविशेष, टापा।

पञ्जल (सं० पु०) पंज-अलच्, कोलकन्द।

पञ्जाब—भारतवर्षके उत्तर पश्चिम सीमान्तमें अवस्थित एक देश। प्राचीन ग्रन्थादिमें यह स्थान पञ्चनद नामसे प्रसिद्ध है। झेलम, चनाब, रावी, व्यासा, शतलज नामक पांच नदियां इस जनपदके मध्य प्रवाहित हो कर सिन्धु-नदीमें गिरती हैं। मुसलमान ऐतिहासिकोंने पंचनदीके कारण पंचनद प्रदेशका नाम स्वजातीय भाषामें पंज अर्थात् पंच और आब (अप्) अर्थात् जल इस अर्थमें 'पञ्जाब' नाम रखा है।

पहले पंचनद और काश्मीर दो स्वतन्त्र जनपद थे। पञ्जाबकेशरी रणजित्सिंहके अभ्युदयमें उक्त दो जनपद तथा पार्श्ववर्त्ती अनेक भूभाग पञ्जाबके सीमाभुक्त हुए थे। वर्त्तमान अंग्रेजी शासनमें काश्मीर प्रदेशके स्वतन्त्रभावसे अंगरेज-गवर्मेण्टके करद स्वाधीन रहनेसे उसका शासनकार्यादि निर्वाह होता है। किन्तु देशीय सरदारोंके अधीन पञ्जाबके अवशिष्ट छोटे छोटे राज्य पञ्जाबके छोटे लाटके अधीन हैं। छोटे छोटे सामन्त राज्योंको ले कर सारा पञ्जाबप्रदेश भारतवर्षका दशांश होगा और जनसंख्या भी प्रायः भारतवर्षकी एक दशांश होगी। इसके उत्तरमें काश्मीरराज्य, स्वात और चीनका सामन्तराज्य; पूर्वमें दिल्लीसन्निहित यमुनानदी, युक्तप्रदेश और चीनसाम्राज्य; दक्षिणमें सिन्धुप्रदेश, शतद्रुनदी और राजपूताना तथा पश्चिममें अफगानिस्तान और वेलुचिस्तानराज्य है। इसकी राजधानी लाहोर है, किन्तु मुगलराजत्वकी राजधानी दिल्लीनगरका इतिहास ही उल्लेखयोग्य विषय है। यह अक्षा० २७° ३९' से ३४° २' उ० और देशा० ६९° २३' से ७९° २' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण कुल १३३७४१ वर्गमील है।

पञ्जाब कहनेसे एकमात्र शतद्रु, विपाशा, वितस्ता, चन्द्रभागा और इरावती-परिवेष्टित भूखण्डका ही बोध होता है। किन्तु वर्त्तमान बन्दोबस्तमें सिन्धुसागर दोआब, सिन्धु और सुलेमान पहाड़के मध्यस्थित डेरा-जात विभाग और शतद्रु तथा यमुनाके मध्यवर्ती सर-हिन्दकी उपत्यका भूमि तक इसकी सीमामें सन्निविष्ट हुई है। पहले लिखा जा चुका है, कि पञ्जाबका कुछ अंश अंग्रेजोंके अधीन और कुछ सामन्तराजाओंके करद स्वाधीन है। सारा पञ्जाब प्रदेश अंगरेजोंके अधीन ३२ जिलाओंमें और देशस्थ सामन्तराजाओंके अधीन ३४ छोटे छोटे राज्योंमें विभक्त है। इन सब राज्योंमें-से पटियाला और बहावलपुर सबसे बड़ा तथा चम्बा, मन्दी, सुकेत, नाहन, बिलासपुर, बसहर, नालगढ़ आदि हिमालय पर्वतस्थ २० सामन्तराज्य मझारी और दारकुटीका सामन्तराज्य सबसे छोटा है।

यहांकी पर्वतमाला साधारणतः ४ भागोंमें विभक्त है। उत्तरपूर्वांशमें हिमालयपर्वत संलग्न शिवालिक, बरा, लाचा, पीरपञ्जाल आदि पर्वतमाला; दक्षिण-पूर्वांशमें गुरगांव और दिल्ली जिला तक विस्तृत अर-वली पर्वतश्रेणीकी विस्तृत शाखा; पश्चिम ओरके दक्षिणांशमें सुलेमान पहाड़ और उत्तरपश्चिमांशमें काश्मीर देशमें विस्तृत हिमालय-श्रेणी, मिनला और हजारा पर्वतश्रेणी सुफितकी, लवणपर्वत और पेशा-वर पर्वतमाला है। इन सब पहाड़ोंसे असंख्य नदियां निकली हैं जिनमेंसे विपाशा, यमुना, इरावती, चन्द्रभागा, पुष्प, वितस्ता, शतद्रु, सिन्धु आदि प्रधान प्रधान नदियां दक्षिणकी ओर बहती हुई सिन्धुनदमें मिल कर अरब सागरमें गिरती हैं। इन सब नदियोंमें शीत-कालमें बहुत कम जल रहता है। जब गरमी अधिक पड़ती है, तब हिमालयके शिखर परकी बरफ-राशि गल कर प्रबल स्रोतसे नदीमें आ मिलती है। इस समय नदीका जल इतना बढ़ आता है, कि नदीके उभय तीरवर्ती बहुत दूर तकके स्थान बह जाते हैं। वर्षा ऋतुके बाद ही शीतका प्रादुर्भाव देख पड़ता है और साथ साथ जलस्रोत भी धीरे धीरे बढ़ने लगता है। जब जल घट जाता है, तब जमीनके ऊपर पङ्क जमा हुआ

मालूम पड़ता है। यह जलसिक्त मट्टी जमीनको नरम बना देती है और यह इतनी उपजाऊ होती है, कि कृषकोंको इस खेतमें सार देनेकी जरूरत नहीं रहती।

पञ्जाबके चारों ओर पर्वतश्रेणी होने पर भी पूर्वमें यमुना नदी और पश्चिममें सुलेमान पहाड़का मध्यवर्ती स्थान समतल है और जलसिञ्चनके लिये उसके बीच हो कर नहरें बह गई हैं। अरवली पर्वतकी ऊंची शाखा और झङ्ग राज्यके अन्तर्वर्त्ती चोनोवट और कराना पर्वतमालाने पञ्जाबके दक्षिणांशको उन्नत कर रखा है। दिल्लीके उत्तर पश्चिमांशमें, रोहतक और हिमालयके दक्षिणमें, हिसार और शीर्षाके मध्य भागमें हिमालयके ढालू प्रदेशसे ले कर लाहोरके दक्षिण तक विस्तृत भूभाग तथा दक्षिण-पश्चिममें अरवली पर्वतके तटदेशसे ले कर बीकानेर राज्यके पश्चिम तक विस्तृत भूखण्ड प्रायः समतल है। हिमालय और अरवलीका ढालू देश ऐसा समतल है, कि प्रत्येक मीलमें बहुत मुश्किलसे दो अथवा तीन फुटसे अधिक ऊंचा स्थान दीख पड़ता है।

प्रायः सभी समतल क्षेत्रों पर पङ्क जम जानेसे फसल अच्छी लगती है। पहाड़का किनारा छोड़ कर कहीं भी बड़ा पत्थर नजर नहीं आता। अबरकको तरह चिकने बालूके कण तमाम पाये जाते हैं। यहां कहीं भी प्रकृत मट्टी नहीं पाई जाती, तमाम बालुकामय पङ्कसे जमीन आच्छादित मालूम पड़ती है। बालूके तारतम्यानुसार उक्त पङ्कका गुणागुण निर्दिष्ट हुआ करता है। वितस्ता, चन्द्रभागा और सिन्धु नदीके मध्यभागमें जो सुवृहत् 'थल' भूमि नजर आती है, वह दक्षिणमें राजपूतानेकी मरुभूमि तक विस्तृत है। जहां कृत्रिम उपायसे नदी आदिका जल बांध कर रखा जाता है, वहांकी जमीनके ऊपर नमक पड़ जाता है। ऐसी जमीनको 'रे' कहते हैं। रे-के उठनेसे जमीनको सारसत्ता नष्ट हो जाती है। जिस जमीनमें रे नहीं निकलता अर्थात् जो स्थान बालुकाछन्न नहीं है, वह स्थान हमेशा उर्वरा रहता है। किन्तु खेतीके बाद जलसिंचनको जरूरत पड़ती है। पंजाबके पश्चिम सीमावर्त्ती स्थान यद्यपि उर्वरा नहीं है, तो भी वहां लम्बी लम्बी घास उगनेके कारण जमीन पीछे कुछ उर्वरा हो जाती है। यह स्थान 'बाड़' नामसे प्रसिद्ध है। यहां अकसर मवेशी आदि चरा करते हैं। इस स्थानमें जमीनके नीचे कहीं तो कम गहराईमें और कहीं अधिक गहराईमें जल मिलता है। नदी वा पर्वतादिके निकट अकसर १०से ३० फुट नीचे और सुदूरवर्त्ती स्थानमें प्रायः १५०से २०० फुट नीचेमें जल पाया जाता है। यह जल प्रायः लवणाक्त होता है, इसीसे जन्तु और औद्भिज्जादिके लिये विशेष उपकारी नहीं है।

पूर्वोक्त विभागानुसार देखा जाता है, कि हिमालय पर्वतके उपरिस्थ सामन्तराज्यादि, शिवालिक पर्वतश्रेणी और पूर्व-पश्चिमदिकस्थ समतल भूमि पर ठाकुर, राठी और रावत आदि पार्वतीय राजपूत, मिराठ, ब्राह्मण, कुनेत, डागि, गुजर, पठान, बेलुची आदि पहाड़ी जातियोंका वास देखा जाता है। पर्वतवासी जातियोंमेंसे कुछ अपनेको मुसलमान और कुछ हिन्दू बतलाते हैं।

पश्चिमदिकस्थ गुल्मादिपरिवृत 'बाड़' नामक स्थानमें भ्रमणशील एक जाति रहती है। ये लोग वहां श्यामलक्षेत्रके ऊपर अपने अपने ऊँट, गाय, बैल, भेड़, बकरे आदिको चराया करते हैं। इस स्थानके तृणादि शेष हो जाने पर वे अन्यान्य तृणाच्छादित क्षेत्रमें जाते हैं। जैसे ऊँट नई नई ऋतुओंमें नये नये गुल्मादि खाना पसन्द करते हैं, वसे ही प्रत्येक ऋतुमें स्वभावतः ही उनके उपयोगी नये नये उद्भिज्जादि उत्पन्न हुआ करते हैं। पश्चिमांशवर्त्ती इस भूमि पर एकमात्र मूलतान नगर प्रतिष्ठित है।

पञ्जाबका पश्चिमांश सिन्धु, शतद्रु आदि नदियोंसे विच्छिन्न हो कर छः दोआबोंमें परिणत हो गया है। इस राज्यका पूर्वांश नदी द्वारा और पश्चिमांश पर्वत द्वारा विभक्त है। इसके मध्य विभिन्न जातिके लोगोंका वास है। उत्तर-पश्चिम सीमान्तप्रदेश जो लवणपर्वतवेष्टित है, वहां पेशावर, रावलपिण्डी, झलम, कोहाट और बन्नू आदि कई एक जिले हैं। रावलपिण्डी जिलेके अन्तर्गत हजारा, मूरी और कहुटा तहसील ही प्रधान है। इस पार्वतीय अंशमें पेशावर और रावलपिण्डीके सिवा

और कोई नगर नहीं है। डेराइस्माइल खाँ छोड़ कर मध्य-एशिया और काबुल आदि स्थानोंका वाणिज्यद्रव्य एकमात्र पेशावर हो कर भारतवर्षमें लाया जाता है। यहां रुई और रेशमके वस्त्र प्रस्तुत हो कर दूर दूर देशोंमें भेजे जाते हैं। स्थानीय अधिवासियोंकी जीविका खेतीके ऊपर ही निर्भर है और पार्वतीयगण गो-मेषादिका पालन कर अपना गुजारा करते हैं।

यहांके जङ्गलमें खजूर, पीपल, वट आदि तरह तरहके पेड़ और बाघ नीलगाय, हरिण, गोमेषादि नाना जन्तु तथा विभिन्न वर्णके पक्षी देखे जाते हैं।

यहां मुसलमानोंके मध्य पठान, शेख, बेलुची वा अफगान, सैयद, काश्मीरी और पीछे मुगल लोग बस गये। हिन्दुओंके मध्य ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अनेकों ही पूर्वकालसे मुसलमान धर्ममें दीक्षित हुए हैं। हिन्दुओंमें राजपूत और जाटराजपूतकी संख्या ही अधिक है। जाटराजपूतोंमेंसे जो इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हुए हैं, वे मुसलमान जाट नामसे प्रसिद्ध हैं। एतद्भिन्न मुसलमानोंके मध्य अराइन, अवान, जुलाहा, गुजर, चुहरा, मोची, कुम्हार, तर्खान, तेली, मिरासी, नाई, लोहारमच्छी, कस्सब, फ्रोनवरसब, धोबी, फकीर, खोजा, मनियार, दुगड़, बकेला, मुल्ला, चमारली और बक्कर आदि कई एक विभिन्न श्रेणीके लोग देखे जाते हैं। शतद्रुके पूर्वांशमें, दिल्ली, हिसार, काङ्गड़ा, रोहतक, जलन्धर, अमृतसर, लाहोर आदि स्थानोंमें अधिकांश मनुष्य हिन्दू-मतानुयायी हैं। उधर रावल पिण्डी, कोहाट और पेशावरप्रदेशके अधिवासियोंके मध्य मुसलमानोंका अनुकरण देखा जाता है। सभी अधिवासी सिख कहलाते हैं। ये लोग गुरु नानकके शिष्य हैं। युद्धविद्या और साहस इनका एक अद्वितीय गुण है। ऐसी अनेक ऐतिहासिक कहानियां सुनी गई हैं जिनसे सिखसैन्यके अमित तेज, अतुल साहस और युद्धकौशलने उन्हें वीर्यवत्ताकी चरमसीमा तक पहुंचा दिया है। साधारणतः ये लोग मूर्ख होते हैं। स्वयं महाराज रण-जित्सिंह भी लिखना पढ़ना नहीं जानते थे। उनके अद्भुत वीर्यकी कहानी किसी भारतवासीसे छिपी नहीं है। सिख, नानक, रणजित् शब्द देखो।

हिन्दू लोग प्रधानतः सिख, जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय, बनिया, हिन्दूजाट आदि उच्च श्रेणियोंमें हैं तथा हिन्दू-मिश्रोंकी निम्नश्रेणीमें चमार, चुहरा, धोबी, तर्खान, झिनवार, कुम्हार, बिराठ, गुजर, नाई, अहीर, सोनार, लोहार, दुलिन, रोरी आदि विभिन्न जातियां देखी जाती हैं। काङ्गड़ा जिलेके कुल्लु उपविभागमें तथा शिमला-शैमाल आदि राज्यमें बौद्धधर्मावलम्बीकी संख्या अधिक है। एतद्भिन्न यहां पारसी और विभिन्न सम्प्रदायी ईसाई रहते हैं।

पञ्जाबका सामाजिकगठन देखनेसे दो स्पष्ट चित्र दिखाई देते हैं। यहांके पूर्वांशवर्त्ती और हिमालय-पर्वतके पादांशवर्त्ती स्थानोंमें जातीय व्यवसायसे पहचान कर आपसमें पृथकता निर्देश की जाती है। कायिक परिश्रमार्जित वृत्ति द्वारा सामान्य व्यक्तिगण जिस प्रकार वंशाख्या पाते हैं, जमींदारोंके मध्य भी जो राजकीय शासनादि कार्योंमें व्यापृत रहते हैं, वे भी उसी प्रकार पदमर्यादा प्राप्त करते हैं। प्रायः अधिकांश मनुष्योंका जातीय व्यवसाय परम्परासे चला आ रहा है। इनके मध्य असवर्ण वा असाम्प्रदायिक विवाह प्रचलित नहीं है। पश्चिमांशवर्त्ती दाय स्थानों और सिन्धुप्रदेशमें जो सब जाति हैं वे प्रकृत एक जाति नहीं हैं। सम्प्रदाय और सामाजिक क्रियाकलापके भेदसे ये लोग भिन्न भिन्न थाकमें विभक्त हो गये हैं।

यहां यदि कोई अपवित्र कर्मानुष्ठान अथवा गर्हित द्रव्यका व्यवसाय करे, तो उसकी जातीयता हानि होती है और उसे समाजमें घृणित तथा अपदस्थ होना पड़ता है। इसीसे इस प्रकारका कार्य उनके मध्य बिलकुल निषिद्ध है। स्वजाति विवाहमें इनके मध्य कोई रोक-टोक नहीं है। एकमात्र धनरत्न ही उनका अन्तराय है। जिसकी सामाजिक अवस्था जितनी उन्नत है, वह वैसा ही वर पा कर विवाह करता है। धनी व्यक्ति कभी भी गरीबके साथ विवाह सम्बन्ध स्थिर नहीं करता। यहां जातीयताका विशेष समादर नहीं है। पूर्वोक्त दोनों स्थानोंका सामाजिक गठनकी अपेक्षा लवण-पर्वत और सिन्धुनदके पार्श्ववर्त्ती स्थानोंका सामाजिक चित्र मध्यम प्रकारका है। धर्ममतके वैषम्यके कारण

जो इनके मध्य पृथकता संघटित हुई है, सो नहीं; पञ्जाबके पूर्वाञ्चलमें मुसलमानोंने इसलाम-धर्मका प्रचार करके साम्प्रदायिकताकी जड़ यद्यपि मजबूत भी कर दी, तो भी इसलामधर्मसे दीक्षित पूर्वतन हिन्दुओंने अपने नाम, मर्यादा, जाति और धर्ममें पक्षपातिताकी अक्षुण्णभावसे रक्षा की है। समस्त पञ्जाब प्रदेशमें जातिगत, सम्प्रदायगत और श्रेणीगत पद्धतिके अनुसार तथा पूर्वकृत आचार-व्यवहारके वशवर्त्ती हो कर वे धर्म-जीवनका पालन करते आ रहे हैं। इसका कारण यह है कि पूर्वांशवर्त्ती व्यक्तिगण सर्वदा जिस प्रकार उत्तर-पश्चिमाञ्चलवासी भारतीय हिन्दूप्रणाली और आचार-व्यवहारका अनुकरण करते हैं, ठीक उसी प्रकार बहुत पहलेसे ही पश्चिमांशवर्त्ती पंजाबी लोग मुसलमानोंके साथ वास कर उनकी प्रथाके अनुसार सभी विषयोंकी नकल करने लग गये हैं। मुसलमान-अनुकारी व्यक्तिगण सहजमें ही मुसलमान धर्ममें आ फंसे हैं।

पञ्जाबमें १५० नगर और ४३६६० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ढाई करोड़से ऊपर है। इसके अलावा १ दिल्ली, २ अमृतसर, ३ लाहोर, ५ मूलतान, ६ अम्बाला, ७ रावलपिण्डी, ८ जलन्धर, ९ सियालकोट, १० लुधियाना, ११ फिरोजपुर, १२ भिवनी, १३ पानीपत, १४ बाटला, १५ रिवारी, १६ कर्णाल, १७ गुजरानवाला, १८ डेरागाजी खाँ, १९ डेरा इसमाइल खाँ, २० होसियारपुर २१ झीलम आदि स्थान राजधानीमें गिने जाते हैं। हिमालय पर्वतके ऊपर शिमला (गवर्नर जनरलका ग्रैष्मावास), मूरी (रावलपिण्डी जिलेमें), धर्मशाला (कांगड़ा पर्वत पर) और डलहौसी (गुरुदासपुरमें) आदि स्थान ग्रीष्मकालमें रहनेके लिये विशेष हितकारी और मनोरम है।

अधिवासियोंमेंसे अधिकांश खेतीबारी करके अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। अति प्राचीनकालमें अर्थात् दो तीन हजार वर्ष पहले जिस प्रकार सरलभावमें खेती चलती थी, आज भी उसी प्रकार चल रही है। यहां साधारणतः दो प्रकारकी खेती होती है, वसन्तमें रब्बी और शरत्कालमें खरीफ धान। धान, ईख, रुई, मकई, ज्वार, जीरा आदिकी खेती खरीफके अन्तर्गत है; तमाकू, उरद और साग-सब्जी रब्बी शस्यमें गिनी जाती है। उत्तर-पश्चिम भारतमें जिन सब अनाजोंकी खेती होती है, यहां भी वही सब अनाज उपजाये जाते हैं। खेती छोड़ कर दासवृत्ति, वाणिज्य, मसीजीवि, व्यवहारजीवि प्रभृतिके कार्य भी जनसाधारणमें देखे जाते हैं। अंगरेज गवर्मेण्ट और साधारण मनुष्य अश्वगवादिका पालन करते हैं। जब वे बच्चे जनती हैं, तब उन्हें बड़े होने पर वे बाजारमें बेच डालते हैं। गवर्मेण्टके अधिकृत वन्यप्रदेशमें तरह तरहके पेड़ हैं; उनका अधिकांश सामन्तराजाओंके अधीन है। किन्तु गवर्मेण्ट सत्त्वभोगी है और डिपटी कमिश्नर उसके रक्षाकर्त्ता हैं।

वाणिज्यादिकी सुविधाके लिये यहां अनेक नहर काटी गई हैं। बड़ी दोआब, पश्चिम यमुना, सरहिन्द और स्वात नदीकी खाईमें सब समय जल रहता है। उत्तर शतद्रु, दक्षिण शतद्रु, चन्द्रभागाकी नहर, शाहपुर जिलेकी तीन नहर, सिन्धुनदीकी नहर और मुजफ्फरगढ़की नहर ये सब नहरें खेतादिमें जलसिञ्चनके लिए काटी गई थीं। इसके अलावा अम्बाला, लुधियाना, जलन्धर, अमृतसर, लाहोर, मूलतान, सक्कर, पेशावर आदि प्रधान प्रधान स्थानोंमें रेलपथ हो जानेसे वाणिज्यकी विशेष सुविधा हो गई है। ये सब रेलपथ दिल्ली हो कर उत्तरपश्चिम प्रदेश, कलकत्ता और राजपूताना होते हुए कराची तथा बम्बई शहरके साथ मिल गये हैं। आज भी यहां नाव द्वारा वाणिज्यद्रव्य समुद्रके किनारे लाये जाते हैं।

पञ्जाब प्रदेशके कृषिजात द्रव्योंमें विभिन्न शस्यादि, रुई, सैन्धवलवण और तदुत्पन्न अन्यान्य फलमूलादिकी नाना स्थानोंमें रफतनी तथा कपासके कपड़े, लोहे, लकड़ी और अपरापर व्यवहार्य द्रव्योंकी भिन्न भिन्न देशोंसे यहां आमदनी होती है। एतद्भिन्न यहां सोने वा चाँदीकी जड़ी, शाल, उत्तम कारुकार्ययुक्त काष्ठनिर्मित द्रव्यादि, लोहपात्रादि तथा चमड़ेका काम होता है। खनिज पदार्थोंमें एकमात्र सैन्धवलवण ही प्रधान है। मेवखनी, कालाबाग, लवणपर्वत, झीलम, शाहपुर और कोहाट जिलोंमें काफी नमक पाया

जाता है। उत्तर और पश्चिम सीमान्तवर्ती पथ हो कर इस देशमें गरम, तरह तरहके रंग, छागलके पशम, रेशम, सुपारी और फल, काष्ठ, लोम तथा शाल आदि द्रव्योंका व्यवसाय होता है।

यहां साधारणतः शीतका प्रकोप अधिक देखा जाता है। ग्रीष्मकालमें भी कुछ कुछ जाड़ा मालूम पड़ता है। अक्तूबर माससे दिनको गरमी रहने पर भी रात को खूब जाड़ा पड़ता है। इसके बाद क्रमशः जाड़े की वृद्धि हो कर जनवरी मासमें तुषारराशि पतित होती है। पार्वत्य प्रदेशोंमें दिसम्बर मासके मध्यभागसे ले कर जनवरीके मध्य तक तूफान और तुषारपात देखा जाता है। अत्यन्त ग्रीष्माधिक्यमें यहां ८०°से अधिक उत्ताप लक्षित नहीं होता।

पञ्जाबके सीमान्तवर्ती ३६ सामन्तराजाओंके अधिकारभुक्त सभी स्थान वहांके लेफ्टिनेण्ट गवर्नरके अधीन हैं। उक्त ३६ राज्योंमें पटियाला, बहवलपुर, झिन्द और नाभा नामक जनपद ही श्रेष्ठ तथा छोटे लाटके शासनाधीन हैं। चम्बा भूभाग अमृतसरके कमिश्नरके और मालकोटला, कालसिया तथा २२ हिमालय पर्वतस्थित राज्य अम्बालाके कमिश्नरके अधीन हैं। कपूरथला, मन्दी और सुखेत जलन्धरके; पतौदी दिल्लीके तथा लाहोर और दुजाना आदि स्थान हिसारके कमिश्नरके अधीन हैं। पूर्वोक्त सामन्तराज्योंमेंसे कुछ तो समतल क्षेत्रके ऊपर और कुछ पहाड़के ऊपर बसे हुए हैं। उक्त राज्योंके परिमाण और नाम नीचे दिये जाते हैं।

समतलक्षेत्र पर पटियाला (५८८७ वर्गमील), नाभा (८२८), कपूरथला (६२०), झिन्द (१२३२), फरीदकोट (६१२), मालकोटला (१६४), कालसिया (१७८), दुजाना (११४), पतौदी (४८), लोहारु (२८५) और बहवलपुर (१५,०००) तथा पार्वत्य प्रदेश पर मन्दी (१०००), चम्बा (३१८०), नाहन (१०७७), बिलासपुर (४४८), बसाहर (३३२०) नालगढ़ (२५२), सुखेत (४७४), केउन्थल (११६), बाघल (१२४), जब्बल (२८८), भज्जी (८६), कुम्हारसाईं (८०), महैलोग (४८), बाघत (३६), बलसन (५१), कुठार (७), धामी (२६), तरोक (६७), माङ्गी (१६), कुनहियर (८), बीजा (४), मङ्गल (१२), रबई (३), धरकोटी (५), दाधी (१) आदि।

इन सब सामन्तराज्योंमें बहवलपुराधिपति अंगरेजोंके साथ सन्धिसूत्रमें आबद्ध हैं तथा दूसरे दूसरे राजगण गवर्नर जनरलसे प्राप्त सनदकी शर्तके अनुसार आबद्ध हो कर उन सब स्थानोंका भोग कर रहे हैं। पटियाला, झिन्द और मालकोटला राज्यके सामन्त राजगण अपने भुक्तराज्योंके करस्वरूप अंगरेजोंको युद्धविग्रहके समय अश्वारोही सैन्य दे कर सहायता पहुंचानेमें बाध्य हैं। दूसरे दूसरे राजाओंको करमें रुपये देने पड़ते हैं। पटियाला, झिन्द और नाभा राज्यके राजवंशधरगण 'फुलकिया' वंशीय हैं। यदि कोई राजवंश पुत्रादिके अभावमें लोप होता हो, तो पूर्व सनदकी शर्तके अनुसार वे निकटवर्त्ती सगोत्र तथा अपनी मर्यादाके समकक्ष किसी सामन्तराजके पुत्रको गोद ले सकते हैं। अन्य वंशीय जो पुत्र पोष्यपुत्ररूपमें सिंहासन पर बैठते हैं उन्हें नजराना स्वरूप अंगरेज गवर्मेण्टको कुछ रुपये देने पड़ते हैं।

पूर्वोल्लिखित तीन राज्योंके फुलकिया वंशीय सरदारगण तथा फरीदकोटके राजा जो अंगरेजोंके साथ नियमसूत्रमें आबद्ध हैं, उसमें शर्त यह है कि वे अपने अपने राज्यके सभ्य न्याय-विचार करेंगे तथा प्रजावर्गकी भलाईकी ओर विशेष लक्ष्य रखेंगे। जिससे उनके राज्यमें सतीदाह, दासविक्रय और शिशुकन्याहत्यारूप जघन्यकार्य होने न पावें, इस विषयमें वे यत्नपर होंगे। यदि अंगरेजों पर कोई शत्रु आक्रमण करे, तो वे सैन्य और रसदसे उन्हें मदद देंगे। जब कभी अङ्गरेज सरकार उनके राज्य हो कर रेलपथ वा सरकारी (Imperial) रास्ता ले जाना चाहेगी, तभी उक्त राजगण बिना मूल्यके जमीन छोड़ देनेको बाध्य होंगे। इधर अंगरेजोंने भी उक्त राज्योंका भोग करनेका पूरा अधिकार दे दिया है। केवलमात्र पटियाला, नाभा, झिन्द, फरीदकोट और बहवलपुर आदि सामन्तराजगण दोषी व्यक्तिको फांसी दे सकते हैं; किन्तु दूसरे दूसरे राजाओंको ऐसी क्षमता नहीं है।

बहवलपुर, मालकोटला, पतौदी, लोहारु और दुजाना आदि स्थानोंके सामन्तराजगण मुसलमान वंशीय हैं। पटियाला, झिन्द, नाभा, कपूरथला, फरीदकोट और कलसियाके राजगण सिखवंशसम्भूत तथा अवशिष्ट सभी राजगण हिन्दू हैं। बहवलके नवाब दाउदपुत्रवंशीय मुसलमानोंमें श्रेष्ठ तथा बहवल खाँके वंशधर हैं। मालकोटलाके नवाबगण अफगान जातिके हैं। भारतवर्षमें इनका शुभागमन मुगलोंके अभ्युदयमें हुआ था और मुगलवंशकी अवनतिके बाद ही इन्होंने अपनी स्वाधीनता हासिल की थी। पतौदी और दुजानाके सरदारगण अफगानजातिसम्भूत और लोहारुके नवाब मुगलवंशीय हैं। एक समय इन्होंने लार्ड लेकको अच्छी सहायता पहुंचाई थी। इससे अङ्गरेजराजने प्रसन्न हो इन्हें और भी कुछ सम्पत्ति दी है।

यहांके सिख-सरदारगण प्रधानतः जाटवंशीय हैं। पटियाला आदि फुलकिया राजाओंके पूर्वपुरुष चौधरी फुल १६५२ ई०में परलोकको सिधारे। १८वीं शताब्दीमें मुगलसाम्राज्य विलुप्त होनेके समय तथा पारस्य, अफगान और महाराष्ट्रीयगणके उपर्युपरि आक्रमणसे भारतवर्षमें विशेष अशान्ति फैल गई। ठीक उसी समय चौधरीकुलके वंशधरोंने दस्युवृत्तिकी इच्छासे सिख-सम्प्रदायका नेतृत्व ग्रहण किया। कपूरथलाके राजा कलाल जातिभुक्त हैं और यशसिंहके वंशधर होने पर भी विगत शताब्दीके मध्यभागमें सिख-सरदार हुए थे। फरीदकोटके राजा बुराड़ जाटवंशीय हैं। सम्राट् बाबरको सहायता करनेके कारण वे विशेष माननीय हो गये और उच्च मर्यादाको प्राप्त हुए। शोभसिंहने खालसा राज्य बसाया। पर्वतवासी अन्यान्य सरदारगण अपनेको राजपूत तथा अति प्राचीन सम्भ्रान्त राजपूतकी सन्तान बतला कर अपना वंशपरिचय देते हैं।

पंजाबका इतिहास।

पञ्जाब वा पञ्चनद प्रदेश वैदिक आर्योंका लीलाक्षेत्र है। ऋक्‌संहितामें जो सप्त सिन्धुका उल्लेख है बहुतोंका विश्वास है, कि वह इसी पञ्चनद प्रदेशमें प्रवाहित है। उक्त आदि ग्रन्थोंमें अंशुमती, अञ्जसी, अनितभा, अश्मन्वती, असिक्नी (Akesines), आपया, आर्जीकिया, कुभा (Kophen वा काबुल नदी), कुलिशी, क्रमु, गङ्गा, गोमती, गौरी, जाह्नवी, तृष्टामा, दृषद्वती, परुष्णी, मरुद्वृधा, मेहत्नु, विपाट् (विपाशा), यमुना, रसा, वितस्ता, वीरपत्नी, शिफा, शुतुद्री, शर्यणवती, श्वेतयावरी, श्वेती, सरयू, सरस्वती, सिन्धु (Indus), सुवास्तु, सुसोमा, सुसर्त्तु, सीता, हरियूपीया वा यव्यावती इन सब नदियोंका जो उल्लेख है वे सभी वर्त्तमान पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत हैं। आर्यशब्दमें विस्तृत विवरण देखो। मनुसंहितावर्णित ब्रह्मर्षिदेश एक समय इसी पञ्जाब प्रदेशके अन्तर्गत था। जिस कुरुक्षेत्रके महासमर ले कर महाभारतकी उत्पत्ति है वह कुरुक्षेत्र इसी प्रदेशके अन्तवर्त्ती है।

महाभारतमें जो मद्र, वाह्लिक, आरट्ट और सैन्धव-राजका उल्लेख है वे सब राजा इसी पञ्चनद प्रदेशके अन्तर्गत स्थानविशेषमें राज्य करते थे। अभी जैसे पञ्जाब प्रदेशके मध्य पटियाला, झिन्द, नाभा आदि देशीय सामन्तराजाओंके अधीन विभिन्न जनपद देखे जाते हैं, महाभारतके समयमें भी इस पञ्जाब प्रदेशमें मद्र, आरट्ट, वसाती आदि वैसे ही विभिन्न जनपद थे।

पञ्चनदके लोगोंकी रीति नीतिके सम्बन्धमें महाभारतके वनपर्वमें इस प्रकार है—"मद्रदेशमें पिता, पुत्र, माता, श्वश्रू, श्वशुर, मातुल, जामाता, दुहिता, भ्राता, नप्ता, बन्धुबान्धव, दासदासी सभी मिल कर मद्यपान करते थे। स्त्रियां इच्छानुसार परपुरुषके साथ सहवास करती थीं। सत्तू, मछली, गोमांस आदि इनका खाद्य पदार्थ था। नशेमें चूर हो कर वे कभी रोते, कभी हंसते और असम्बन्ध प्रलाप करते थे। गान्धारोंके बीच और मद्रकोंकी सङ्गति नहीं थी। मद्रदेशी कामनियां निलज्ज, कम्बलावृत, उदरपरायण और अशुचि होती थीं। काञ्जिक उनका अत्यन्त प्रिय था। उनका कहना था, कि वे पति वा पुत्रको छोड़ भी सकती, पर काञ्जिकको कभी नहीं छोड़ सकती हैं।"

महाभारतमें मद्रदेशका जो परिचय है आज भी पञ्जाबके पश्चिम पार्श्वस्थप्रदेशमें वैसा ही व्यवहार देखा जाता है। महाभारतमें जयद्रथके पुत्रका नाम तक पाया जाता है। उसके बादसे लेकर बुद्धदेवके अभ्युदय

तक किसने कब तक राज्य किया, उसका विवरण नहीं मिलता।

माकिदनराज अलेकसन्दरके आगमनकालमें यह प्रदेश तक्षशिला, पुरु, चान्द्रगोल* आदि राजाओंके अधीन नाना अंशोंमें विभक्त था। तक्षशिला राजाने अलेकसन्दरकी अधीनता स्वीकार करने पर भी पुरुराजने बड़ी वीरता और साहससे माकिदन वीरकी गतिको रोक रक्खा था। अन्तमें वे यद्यपि परास्त भी हो गये, तो भी अलेकसन्दरने उनके वीरत्वकी भूरि प्रशंसा की थी और उन्हें अपना सखा बना लिया था।

पुरु देखो।

उनके परवर्त्तीकालमें सुगमसेन, अमित्रकेतु, मिलिन्द (Menander), कनिष्क, तोरमानशाह प्रभृति मद्र और शक-राजाओंका उल्लेख मिलता है।

सम्राट् अशोकके राजत्वकालमें यहां बौद्धधर्मका यथेष्ट प्रचार हुआ था। पेशावरके अन्तर्गत यूसुफजाई उपत्यकामें प्राप्त अशोककी उत्कीर्ण शिलालिपि ही इसका प्रमाण है। सातवीं शताब्दीमें जब चीनपरिव्राजक यूएनचुअङ्ग इस देशमें आए थे, तब वे ध्वंसावशिष्ट बहुत-सी बौद्धकीर्त्तियोंका उल्लेख कर गये हैं। बौद्ध प्रभावके अवसान होने पर किसी समय यहां हिन्दू-धर्मकी पुनःप्रतिष्ठा हुई थी, ऐसा जाना जाता है। ब्राह्मण्यधर्मके विस्तार और मुसलमानोंके अभ्युदयमें बहुतसे बौद्ध-मन्दिर सङ्घाराम मसजिद तथा ब्राह्मणोंके देवमन्दिरमें रूपान्तरित अथवा पुनर्निर्मित हुए हैं। सातवीं शताब्दीसे ही पञ्जाब प्रदेशमें मुसलमानोंका आगमन हुआ। फिरिस्ता पढ़नेसे जाना जाता है कि ६८२ ई०में करमानसे एक दल मुसलमानने पञ्जाब आ कर लाहोरके हिन्दू-राजासे कुछ जमीन छीन ली थी। बाद लगभग ८७५ ई०में महमूदके पिता खुरासानराज सवक्तगीनने सिन्धुनद पार कर इस प्रदेशमें मुसलमानोंकी गोटी जमाई। लाहोरके अधिपति जयपालने पहले निडर हो कर इनका विरुद्धाचरण किया। पीछे गजनीके सुलतान सवक्तगीन द्वारा भेजे हुए दूतको इन्होंने कैद कर लिया। इस पर गजनीपतिने अपमानित और क्रुद्ध हो कर इनके विरुद्ध युद्धयात्रा कर दी। इस युद्धमें जयपाल पराजित हो कर अपनी राजधानी चले आये और पञ्चत्वको प्राप्त हुए। इनके मरने पर इनका लड़का अनङ्गपाल यत्नपूर्वक स्वदेशको विदेशियोंके आक्रमणसे रक्षा करनेमें समर्थ हुए थे। इसके बाद १०२२ ई०में द्वितीय जयपालके राजत्वकालमें सवक्तगीनके पुत्र गजनीपति महमूदने काश्मीरसे आ कर अनायास लाहोर पर दखल जमाया। हिन्दूराज भाग कर अजमेर चले गये। १०४५ ई०में मोदूदके नेतृत्वमें हिन्दूसेना लाहोर पर चढ़ आई और छः मास अवरोधके बाद अकृतकार्य हो राजधानी छोड़ कर वहांसे नौ दो ग्यारह हो गई। अलविरूणीने लिखा है, "यहीं पर हिन्दूराजाओंका राज्याधिष्ठान लोप हो गया। ऐसा कोई वंशधर न था जो प्रदीपको जला सकता।" गजनीपतिके लाहोर पर दखल जमानेके समय पहले पहल यहां एक शासनकर्त्ता नियुक्त हुए, किन्तु इन्होंने ३य मसाउद ईरान और तुरान नामक देशस्थित अपने अधिकृत देशोंको शत्रुके हाथ सौंप कर बारहवीं शताब्दीके आरम्भमें इरावती नदीके किनारे अपना राज्य बसाया। उक्त शताब्दी (लगभग ११८३ ई०)-में द्वितीय राजवंशके प्रतिष्ठाता महम्मदगोरी लाहोरसे दिल्ली नगरमें राजधानी उठा लाये। पठानराजाओंके समयमें पञ्जाब-प्रदेशका शासनभार राजप्रतिनिधि द्वारा परिचालित होता था। इस समय आगरा और दिल्ली नगरी ही अफगानवासी मुसलमान राजाओंकी राजधानी थी और लाहोरनगरमें उनके वंशोयगणने आधिपत्य जमाया था। लगभग १२४५ ई०में चङ्गोज खाँ और १३९८में तैमूरशाह इस प्रदेश पर आक्रमण कर इसे लूट ले गये थे। इसके बाद रावलपिण्डीमें गक्कर-जातिका अभ्युत्थान और सुलेमान पहाड़ तथा सिन्धुनदके मध्यवर्त्ती स्थानमें अफगान वा बलूचीगणका बस जाना ही एक ऐतिहासिक घटना हुई।

* ग्रीक इतिहासमें Sandrakouptos नामसे वर्णित है। पाश्चात्य पुराविदोंने इनको मगधराज चन्द्रगुप्त बतलाया है; किन्तु जैन तथा बौद्ध प्राचीन ग्रन्थोंसे जाना जाता है, कि चन्द्रगुप्त अलेकसन्दरके आनेसे बहुत पहले ही राज्य करते थे।

१५२४ ई०में लाहोरराज दोलत खाँ लोदीके आमन्त्रण करने पर मुगलसम्राट् बाबर भारतमें आये और उन्होंने सारे पञ्जाबसे ले कर सरहिन्द तकका स्थान अपने अधिकारमें कर लिया। इसके दो वर्ष बाद फिर इन्होंने अफगानिस्तानसे आ कर पानीपतकी लड़ाईमें अफगानी सेनाको परास्त कर दिल्लीके सिंहासन पर मुगल-साम्राज्य स्थापन किया। इनके समयमें लाहोर, दिल्ली और आगरा ये तीनों नगर राजधानीके रूपमें गिने जाते थे। शेरशाहको लड़ाईके समय पञ्जाब-राज्यने दुर्गरूपमें मुगलोंकी रक्षा की थी। जिस समय मुगलराज उन्नतिकी चोटी पर थे, उसी समय सिख-जातिकी पञ्चनद-राज्यमें तूती बोल रही थी। धीरे धीरे इन्होंने मुगलराजकी अधीनताकी उपेक्षा कर पञ्जाब-प्रदेशमें स्वाधीनराज्य विस्तार किया।

१५वीं शताब्दीके अन्तमें लाहोरमें बाबा नानकने जन्म ग्रहण किया। उन्हींके शिष्य "सिख" नामसे प्रसिद्ध हैं। यह सिखजाति इतनी प्रबल हो उठी थी कि पञ्जाबक्षेत्रमें उस समय इनका सामना करनेवाला कोई न था। सिखोंके ४र्थ गुरु रामदासने सम्राट् अकबरसे सिखधर्मके प्रचारके लिये अमृतसर नामक स्थान पाया था। यहां इन्होंने पुष्करिणी खुदवा कर एक मन्दिर बनवाना शुरू किया, किन्तु काम पूरा होने भी न पाया था कि इनकी मृत्यु हो गई। बाद इनके लड़के तथा सिख-गुरु अर्जुनमल्लने इस मन्दिरका गठनकार्य सम्पन्न किया। सिखोंके इस ऐश्वर्यको देख कर मुगलराजगण जल मरे और पीछे उनके विरोधी हो गये। लाहोरके मुगलशासनकर्त्ताने सिखजातिके साथ लड़ाई ठान दी और अर्जुनमल्लको बन्दी तथा कारारुद्ध किया।

अमृतसर देखो।

इस अत्याचार पर सिखगण बड़े ही उत्तेजित हो उठे। वे निरोह और प्रजारूपमें रह न सके, राजाकी आज्ञाको उल्लङ्घन कर देश भरमें उत्पात मचाने लगे। अर्जुनमल्लके पुत्र हरगोविन्दको अपना नेता बना कर वे गुरु-हत्याका परिशोध लेनेके लिए अग्रसर हुए। मुगलशासनकर्त्ताने सिखोंकी ऐसी अवस्थामें देख लाहोरसे निकाल भगाया। पार्वत्यप्रदेशमें जा कर भी सिखोंने अपनी युद्ध-शिक्षा न छोड़ी और न वे पूर्वकृत अत्याचारकी कथा विस्मृत हो कर मुसलमानोंसे शत्रुता करनेको ही भूले। अन्तमें १६७५ ई०में हरगोविन्दके पौत्र गुरुगोविन्द (ये नानकसे दशम थे)-ने ही इनके धर्म और युद्ध-प्राणने जन-साधारणमें प्रतिपत्ति लाभ की थी। पहले सिखसैन्यकी संख्या बहुत कम रहनेके कारण गुरुगोविन्द पराजित हुए और उनकी माता तथा पुत्रकन्यागण शत्रुसे समूल नष्ट की गईं। १७५८ ई०में गुरुगोविन्द जब दक्षिण-प्रदेशके नन्देर ग्राममें गुप्तरूपसे मुसलमानों द्वारा मार दिए गए, तब सिखसम्प्रदाय और भी क्षिप्त हो उठे तथा उन्होंने प्रतिहिंसासे प्रज्वलित हो कर गोविन्दके शिष्य बंदाके अधीन पञ्जाबके पूर्वाञ्चवर्त्ती स्थानों पर धावा बोल दिया। उन्मत्त सिखोंके ऐसे क्रोधानलमें पड़ कर कितने मुल्ला अपने दुर्लभ जीवनको खो बैठे थे, उसकी शुमार नहीं। कितनी मसजिदें तोड़ फोड़ कर भूमि-सात कर दी गईं थीं और बालक-बालिका स्त्री-पुरुष आदि हजारों मुसलमान इस क्रोधानलमें पड़ कर भस्म-भूत हो गये थे। कब्रके मध्य जो सब मृत-देह गाड़ी गई थीं उन्हें निकाल कर गीदड़, कुत्ते, गीध आदिको खिला दिए गये। सरहिन्दमें मुगलशासनकर्त्ताको पराजित करके जो वीभत्स अत्याचार चल रहा था उसकी शेष सीमा सहारनपुर तक पहुंच गई थी। पीछे वहांके मुगलसेनाने जब उनका सामना किया, तब सिख-जातिने लुधियाना और पार्वत्य प्रदेशमें आश्रय लिया। दूसरी बारके आक्रमणमें सिख लोग इधर लाहोर और उधर दिल्ली तकके स्थानोंमें लूट पाट तथा मुसलमान-हत्या करके भाग गये।

सिखोंके ऐसे आचरण पर क्रुद्ध हो कर सम्राट् बहादुरशाह उनको दमन करनेके लिए दाक्षिणात्यसे लौटे। किन्तु दावर नामक दुर्गमें सिखोंके मुगलसैन्य कर्त्तृक अवरुद्ध होने पर भी बन्दा अनुचरोंको साथ ले पहाड़की ओर भग गये। बहादुरशाहकी मृत्युके बाद सिखोंने पुनः सेना-संग्रह करके राज्यादिमें लूट पाट मचाना आरम्भ कर दिया। १७१६ ई०में सम्राट् फर्रुखसियरके आदेशसे काश्मीरके शासनकर्त्ता अबदुल समज खाँने कई बार सिखों पर आक्रमण किया और

आखिर वंदाको युद्धमें परास्त कर दिल्ली भेज दिया। यहीं पर बंदा और अन्यान्य सिखसरदारोंकी मृत्यु हुई।

१७३९ ई०में नादिरशाहने दलबलके साथ पञ्जाब पर आक्रमण किया और कर्णाल नगरके समीप मुगल सेनाको परास्त कर दिल्लीकी राजधानी लूटी। इसके बाद सिखगण पुनरुत्साहसे सैन्यसंग्रह कर मुगलसेनाके विरुद्ध अग्रसर हुए। इस बार भी वे मुगलोंसे पराजित और विध्वस्त हुए। किन्तु कई बार परास्त होने पर सिखगण जरा भी विचलित न हुए। १७६१ ई०को पानीपतके युद्धक्षेत्रमें जब महाराष्ट्रीयगण अहमदशाहसे पराहत हुए, तब सिखगण भी बलहीन हो पड़े। स्वदेश लौटते समय अहमदशाहने अमृतसरको तहस नहस कर डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने मन्दिर भी तोड़ फोड़ डाला, पुष्करिणीको भरवा दिया और पीछे गो-हत्या करके उस पवित्र स्थानमें चारों ओर रक्त लगा दिया। अहमदशाहके चले जाने पर सिखगण इस अत्याचारका प्रतिशोध लेनेके लिये पुनः अग्रसर हुए। इस बारके युद्धमें सिखोंने अपनी खोई हुई स्वाधीनता पुनः प्राप्त की।

उसी समय नानक प्रवर्त्तित शान्तिमय धर्मका बहुत कुछ परिवर्त्तन हुआ। धीरे धीरे सिखगण शान्तिमय जीवनका विसर्जन कर एक एक योद्धृ-दल वा 'मिशल' अर्थात् दलमें विभक्त हो पड़े। किन्तु सबोंको पवित्र अमृतसर नगरमें आ कर मिलना पड़ता था। मुगलराज दुरानीको पञ्जाब राज्य दे देने पर भी सिखोंने १७६२ ई०से पञ्जाबके पूर्वांशवर्त्ती स्थानों पर आधिपत्य फैला लिया था। १८०९ ई०में अफगान राज्यमें विप्लव उपस्थित होने पर भी सिख-सरदार रणजित्सिंहका अभ्युत्थान हुआ। १७९९ ई०में काबुलके दुरानीवंशीय शासनकर्त्ता जमालशाहने रणजित्को लाहोरका शासनभार अर्पण किया। धीरे धीरे अपने बाहुबलसे पञ्जाबकेशरीने इस प्रदेशके अधिकांश स्थानों पर अपना प्रभाव फैलाना चाहा। इसी उद्देश्यसे उन्होंने १८०८ ई०में शतद्रु नदीके वामकूलस्थित अन्यान्य सिखसरदारोंके अधिकृत राज्यों पर धावा बोल दिया। वहांके सामन्त राजाओंने उत्तर-पश्चिम-प्रदेशमें अङ्गरेजोंका आश्रय ग्रहण किया। इस समय रणजित्ने अङ्गरेजोंके साथ मित्रता कर ली और शतद्रुके वामकूलवर्त्ती राज्यों पर जो आक्रमण करना चाहा था उसे कुछ कालके लिये रोक दिया। उसी समय अङ्गरेजोंने शतद्रुके उत्तरस्थित स्थानों पर अपना अधिकार जमाया। १८१८ ई०में रणजित्ने मुलतान पर आक्रमण किया और उसे अपने दखलमें कर लिया, पीछे सिन्धुनद पार कर पेशावर, डेराजात और काश्मीर जीता। इस प्रकार उन्होंने वर्त्तमान पञ्जाबप्रदेश और काश्मीरके अधिकारभुक्त सामन्तराज्यों पर अपना पूरा अधिकार जमाया। रणजित्के जीते-जी सिखबल उन्नतिकी चरमसीमा तक पहुंच गया था। १८३९ ई०में रणजित्के मरने पर उनके लड़के खड्गसिंह लाहोरके सिंहासन पर बैठे। किन्तु दूसरे ही वर्ष विषप्रयोगसे उनकी मृत्यु हो गई।

रणजित्सिंह और खड्गसिंह देखो।

खड्गसिंहकी मृत्युके बाद पञ्जाबमें अराजकताका सूत्रपात हुआ। उद्धत सिखसेना अङ्गरेजी राज्य पर चढ़ाई करनेका उद्योग करने लगी। तदनुसार उन्होंने ६०००० सैन्य और १२५ कमान ले कर शतद्रु पार हो मुदकी नगरमें (१८४५ ई० १८ दिसम्बर) अङ्गरेजों पर आक्रमण कर ही दिया। इसके तीन दिन बाद फिरोज शहरमें लड़ाई छिड़ी। इसके बाद सोब्राउन नगरके समीप सिख और अङ्गरेजी सेनामें ४थी बार युद्ध हुआ। इसी युद्धमें सिखगण अच्छी तरह परास्त हो कर सन्धि करनेको बाध्य हुए। सन्धिके अनुसार लाहोर नगर अङ्गरेजोंके हाथ लगा। इतना ही नहीं, लाहोरके दरबारमें जो सन्धि हुई उसके अनुसार अङ्गरेजोंने शतद्रु और विपाशा नदीके मध्यवर्त्ती स्थानोंको वृटिश गवर्मेण्टके अधिकारभुक्त कर लिया। युद्धके खर्चमें रुपये देनेकी जो बात थी उसके लिए सिखोंने हजारा और काश्मीर तथा विपाशा और सिन्धुके मध्यवर्त्ती सामन्तराज्य अङ्गरेजोंको अर्पण किए। महाराज गुलाबसिंहके हाथ अङ्गरेज बहादुरने काश्मीरका शासनभार सौंपा। किन्तु काश्मीरके इस प्रकार दूसरेके हाथ चले जानेसे वहां बड़ी हलचल मच गई। लाहोर दरबारके अध्यक्ष लालसिंहकी परोचनासे सिखसरदार प्रतिद्वन्द्वी हो गए। अन्तमें लालसिंहकी पदच्युति हुई

और फिरसे नई सन्धि की गई। तदनुसार नाबालिग दलीपसिंहके राज्यपरिचालनके लिये राजकार्यका भार अङ्गरेज रेसिडेण्ट और अभिभावक सभा (Council of regency)-के ऊपर रखा गया।

इस समय सिख लोग छत्रभंग हो पड़े; किन्तु उनके अन्तःकरणकी जलती हुई आग न बुझी थी। किसी एक सामान्य बातको छेड़ कर वे अपना आक्रोश प्रकाश करने लगे। अन्तमें १८४८ ई०को पदच्युत दीवान मूलराजकी उत्तेजनासे विद्रोही हो कर उन्होंने दो अङ्गरेज सेनापतिको मार डाला। धीरे धीरे चारों ओरसे सिख-सेना मुलतान नगरमें एकत्रित हुई, साथ साथ सीमान्तवर्त्ती सामन्तोंने भी आ कर उनका साथ दिया। पीछे अङ्गरेज-सेनापति विश (General Whish) दल बलके साथ सिख-दलमें आ मिले। छत्रसिंह और शेरसिंहके उद्योगसे अफगानपति अमीर दोस्त महम्मदने सिखजातिकी सहायताके लिए सेना भेज दी। १८४८ ई०में अङ्गरेज सेनाध्यक्ष लार्ड गफ शतद्रुको पार कर गये। रामनगरके निकट शेरसिंहके साथ उनकी मुठ-भेड़ हो गई। इस युद्धमें परास्त हो कर सिखोंने अपनी पीठ दिखाई। बादमें १८४९ ई०की १३वीं जनवरीको चिलियनवाला रणक्षेत्रमें सिख-सेना प्रबल प्रतापसे सिख-गौरवकी रक्षा करनेमें समर्थ हुई थी। इस युद्धमें अङ्गरेजोंको क्षतिग्रस्त होना पड़ा था। चिलियनवालाके विख्यात युद्धके दो तीन दिन बाद शेरसिंहके दलमें उनके पिता छत्रसिंह ६००० अफगान अश्वारोहीके साथ मिल गए। १२वीं फरवरीको लार्ड गफने गुजरातके युद्धमें पूर्वपराजयके कलङ्कका प्रतिशोध लिया। सिखोंके पराजित होने पर अङ्गरेजी सेनाने पेशावरमें अमीर दोस्त महम्मद पर चढ़ाई कर दी। अमीर किसी तरह प्राण ले कर भागे।

१८४९ ई०को २९वीं मार्चको महाराज दलीपसिंह जिस सन्धिसूत्रमें आबद्ध हुए थे उसका मर्म इस प्रकार है—(१) महाराज दलीप राज्यसंक्रान्त अधिकारको छोड़ देवें। (२) जहां जो राजकीय सम्पत्ति पाई जायगी उसे इष्ट-इण्डिया कम्पनी युद्धके खर्च तथा अङ्गरेज गवर्मेण्टके निकट लाहोर-राजके ऋणकी बाबतमें ले लेगी। (३) महाराज रणजित्ने शाहसुजाउलमुल्कसे जो कोहिनूर पाया है उसे लाहोरके महाराज इङ्गलैण्डकी महारानीको दे देंगे। (४) महाराज दलीपसिंह सपरिवारके भरणपोषणके लिए वार्षिक लाख रुपये पावेंगे। (५) महाराजको अङ्गरेज गवर्मेण्ट मान्य और सम्भ्रमकी निगाहसे देखेंगे। दलीपसिंह देखो।

पञ्जाब अङ्गरेजोंके हाथ लगा। १८४९ ई०से आरम्भमें इसका शासनकार्य विचारक सभा द्वारा परिचालित होता था। पीछे इसे अङ्गरेजी शासनानुसार विभिन्न जिलोंमें विभक्त कर एक चीफकमिश्नरके हाथ रखा गया। सिपाही-विद्रोहके बाद ही यह प्रदेश छोटे लाटके शासनाधीन हुआ।

१८५७ ई०को दिल्ली नगरमें सिपाही-विद्रोहका सूत्रपात हुआ। पञ्जाब प्रदेशमें अवस्थित देशीय सेनाओंके मध्य असन्तोष भाव दिखाई देता था। १२वीं मईको जब दिल्लीसे भयानक हत्याका सम्वाद लाहोर पहुंचा, तब मण्टगोमरी (Sir R. Montgomary) साहबने सहिष्णुताका अवलम्बन करके मियानमीरमें ३००० सेनाके अस्त्रादि छीन लिये। फिरोजपुरके अस्त्रागार सुरक्षित होनेके बाद १५वीं मईको सिपाहीगण स्पष्टतः विद्रोही हो उठे। उसी मासकी २१वीं तारीखको ५५ नं० देशीय पदातिदल अङ्गरेजोंके विरुद्धाचारी हो बहुतोंको हत्या करके पार्वत्यभूममें भाग गये। ७वीं और ८वीं जूनको जलन्धरके सिपाहियोंने विद्रोही हो कर दिल्लीमें विद्रोहियोंका साथ दिया। जुलाई और अगस्तमासके मध्यमें पेशावर, झीलम, सियालकोट, मूरि और लाहोरके दक्षिण इरावती तथा शतद्रु नदीके मध्यवर्त्ती स्थानोंकी सेनाने अङ्गरेजोंके विरुद्ध अस्त्र धारण किया। पटियाला, झिन्द, नाभा, कपूरथला आदि सामन्तराजाओंने इस दारुण विप्लवके समय अङ्गरेजोंको विशेष सहायता की थी। इस उपकारके प्रत्युपकारस्वरूप अङ्गरेजराजने भी उन्हें काफी पुरस्कार दिया था।

सिपाहीविद्रोह देखो।

सिपाहीविद्रोहके बादसे ही पञ्जाबके वाणिज्य और कारुकार्यकी उन्नतिका आरम्भ हुआ। प्रथम वर्षमें ही अमृतसरसे मूलतान तक रेलपथ चलाया गया और

बड़ी टोआवको नहर काटो गई। १८७६ ई०में महारानीके ज्येष्ठ पुत्र प्रिंस आव वेल्स यहां पधारे थे। १८७७ ई०में यहांके सामन्तराजगण दिल्लोको महासभामें एकत्र हुए थे। अफगान युद्धकालमें यह स्थान युद्धके सरञ्जमादिके केन्द्रस्थलरूपमें गिना जाने लगा था। पटियाला, बहवलपुर, झिन्द, नाभा, कपूरथला, फरीदकोट और नाहन आदि स्थानोंके सामन्तराजाओंने अफगानयुद्धमें विशेष सहायता को थो। १८७४-१८८० ई० तक यहां जलाभावके कारण भारी अकाल पड़ा था जिससे लाखोंको जान गई थीं। युद्धविग्रहके कारण पश्चिमदेशका वाणिज्य बन्द हो गया जिससे प्रजाके कष्टका पारावार न था। किन्तु कोहाटसे पेशावर तक जो रेलपथ खोला गया उसीमें काम करके बहुतोंने अपनी जान बचाई थी। युद्धावसानके बाद ही सरहिन्दकी नहर काटो गई। इससे पञ्जावके अनेक स्थानोंका जलकष्ट दूर हो गया।

विद्याशिक्षाकी ओर यहां विशेष ध्यान दिया जाता है। लाहोरमें एक विश्वविद्यालय है जो १८८२ ई०में स्थापित हुआ है। इस विश्वविद्यालयको विज्ञान, शिल्प, कला, डाक्टरी, कानून, इन्जिनियरिंग परीक्षोत्तीर्ण छात्रोंको खिताब देनेका भी अधिकार है। पञ्जाव भरमें ४० हाई स्कूल, नारमल स्कूल, २०० मिडिल स्कूल, प्राय मरी स्कूल, ट्रेनिङ्ग स्कूल और १२ शिल्पकलाके स्कूल हैं। इनके सिवा कुछ ऐसे भी कालेज और स्कूल हैं जिनमें सरकारसे कुछ भी सहायता नहीं ली जाती है, जैसे, लाहोरमें मुसलमान सम्प्रदायसे १८९२ ई०में स्थापित इस्लामिया कालेज, अमृतसरमें सिखोंसे १८९७ ई०में स्थापित खालसा कालेज। १८८८ ई०में आर्यसमाजकी ओरसे लाहोरमें एक स्कूल खोला गया जिसका नाम दयानन्दएङ्गलोवैदिक स्कूल है। १८६० ई०के अक्तूवरमासमें मेडिकल कालेज स्थापित हुआ है जहां व्यवसाय-सम्बन्धी विषयोंमें उच्च शिक्षा दी जाती है। फिलहाल पञ्जावकी हर हालतमें उन्नति होती जा रही है।

पञ्जि (सं० स्त्री०) पञ्ज-इन्। १ सूत्रनालिका, नरी। २ पञ्जिका, पञ्चांग।

पञ्जिका (सं० स्त्री०) पञ्जि-स्वार्थे कन् टाप। १ तूलनालिका, रुईको नरी। २ व्याख्यानग्रन्थ, टीकाविशेष।

"टीका निरन्तरव्याख्या पंजिका पदभंजिका॥"

(हेमचन्द्र)

जिसमें निरन्तर व्याख्यान हो, उसे टीका और जिसमें निरन्तर पदभञ्जन हो, उसे पञ्जिका कहते हैं। ३ पाणिनीय सूत्रवृत्तिभेद। ४ तिथिवारादि पञ्चाङ्गयुक्त पत्रिका, पञ्चांग। वर्षके आरम्भमें ज्योतिषोसे पञ्जिका सुननी चाहिये, इसके सुननेसे अशुभ जाता रहता है।

"वारो हरति दुःस्वप्नं नक्षत्रं पापनाशनं।
तिथिर्भवति गंगाया योगः सागरसङ्गमः।
करणं सर्वतीर्थानि श्रूयन्ते दिनपंजिकाः॥" (देवल०)

दिनपंजिका सुननेसे वारफलसे दुःस्वप्ननाश, नक्षत्रसे पापनाश, तिथिसे गंगातुल्यफल, योगसे सागरसङ्गम सदृश और करणसे सब तीर्थोंका फल होता है। ज्योतिस्तत्त्वधृत वराहपुराणमें लिखा है, कि वार और नक्षत्र ये दुःस्वप्न और पापनाशक हैं, तिथि आयुष्कारी, योग वृद्धिवर्द्धक, चन्द्र सौभाग्यप्रद आदि। जो प्रतिदिन पञ्जिका श्रवण करते हैं उन्हें ये सब फल प्राप्त होते हैं।

"दुःस्वप्ननाशको वारो नक्षत्रं पापनाशनम्।
तिथि रायुष्करी प्रोक्ता योगो वृद्धिविवर्द्धकः॥
चन्द्रः करोति सौभाग्यमंशकः शुभदायकः।
करण लभते लक्ष्मीं यः शृणोति दिने दिने॥"

(ज्योतिस्तत्त्वधृतवचन)

पञ्जिकामें तिथि, वार, नक्षत्र, करण और योग आदि दैनन्दिन विषय लिखे हुए हैं।

विरपञ्जिका—शकाब्दानुसार वारगणना होती है। जिस शकाब्दमें जिस मासके जिस दिवसका वार जानना होगा उस शकाब्दको अङ्कसंख्यामें शकाब्दका चतुर्थांश जोड़ कर उसमें फिर निम्नलिखित मासाङ्क और उस मासको दिनसंख्या तथा अतिरिक्त दो जोड़ते हैं। इस प्रकार जो योगफल होगा उसको सातसे भाग दे कर जो बचेगा, उससे वार जाना जाता है। एक अवशिष्ट रहनेसे रविवार, दोसे शनिवार इत्यादि। मासाङ्क यथा—

मासाङ्क	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्त्तिक	अग्रहायण	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र
	०	३	६	३	०	३	५	०	२	५	४	६

यदि शकाब्दका चतुर्थांश पूर्णाङ्क न हो कर भग्नाङ्क हो, तो उस भग्नाङ्कके बदलेमें १ मानना होता है। फिर जिस शकाब्दका चतुर्थांश भग्नाङ्क न हो, उस शकाब्दके केवल भाद्रके ६ और आश्विनके २ मासाङ्क लेने होते हैं। इस गणनामें यदि नहीं मिले, तो उसमेंसे एक निकाल लेने पर अवश्य मिल जायगा, इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

उदाहरण—१७९८शकाब्दमें ३१ चैत्र कौन वार होगा। यहां शकाब्द १७९८ है जिसमें इसका चतुर्थांश ४५०, मासाङ्क ६, दिनाङ्क ३१ और अतिरिक्त २ जोड़नेसे २२८८ हुआ। इसमें जब सातसे भाग देते हैं, तब शेष ६ बच रहता है। अतएव यह मालूम हुआ कि वह दिन शुक्रवार होगा।

सनको जगह भी इसी तरह किया जाता है। इस प्रकार वारकी गणना करके तिथिकी गणना करनी होती है। तिथिगणना इस प्रकार है—शकाब्दकी संख्याको १९से भाग दे कर जो बच रहे उसे ११से गुणा करते हैं। अब इस अङ्कमें निम्नलिखित मासाङ्क, दिनसंख्या और अतिरिक्त ६ जोड़ कर ३०से भाग देने पर जो बचेगा, उस अङ्कमें जो तिथि होगी, उसी दिनमें वह तिथि जाननी होती है। इसी नियमसे तिथि स्थिर की जाती है। मासाङ्क यथा—

मासाङ्क	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्त्तिक	अग्रहायण	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र
	०	२	३	५	७	८	१०	१०	८	८	१०	१०

ऐसी गणनासे यदि ठीक न मिले, तो मासके प्रथममें होनेसे १ बाद और शेषमें होनेसे १ जोड़ देना पड़ता है।

नक्षत्रगणना—तिथि गणनाके अनुसार उस दिनकी तिथि स्थिर करके उसमें निम्नलिखित मासाङ्क जोड़ देते हैं। यदि वह योगफल २८से अधिक हो, तो उसमेंसे २७ बाद दे कर जो बच रहे उसी अङ्कके अनुसार नक्षत्र स्थिर किया जाता है। इससे यदि ठीक न मिले, तो मासका पूर्वार्द्ध होने पर १ योग और शेषार्द्ध होने पर १ बाद देनेसे मिल जायगा। किन्तु उस दिनकी जो संख्या होगी यदि उसकी अपेक्षा उस दिनकी तिथिका अङ्क अधिक हो, तो उस मासका मासाङ्क न जोड़ कर उसके पूर्व मासका मासङ्क जोड़ना होता है।

मासाङ्क	वैशाख	ज्येष्ठ	आषाढ़	श्रावण	भाद्र	आश्विन	कार्त्तिक	अग्रहायण	पौष	माघ	फाल्गुन	चैत्र
	२	५	८	७	१०	१५	१४	१५	१६	१८	२२	२५

राशिगणना।—पूर्व नियमके अनुसार नक्षत्र स्थिर करके उसे ४से गुणा कर ९से भाग देते हैं। अवशिष्ट जो रहता है उसमें १ जोड़ कर जो योगफल हो, उसी संख्याके अनुसार राशि होगी; १ होनेसे मेष, २ होनेसे वृष इत्यादि। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जाता है। १७९८ शककी १८वीं चैतको जिसका जन्म हुआ है, उसकी क्या राशि है? ऐसे प्रश्न पर पूर्व नियमसे नक्षत्रगणनामें २३ संख्या अर्थात् धनिष्ठा नक्षत्र होता है। पीछे उस संख्याको ४से गुणा करनेसे ९२ तथा ९२को ९से भाग देनेसे भागफल १० हुआ और अवशिष्ट २ रहा। उस १० संख्यामें १ जोड़नेसे ११ हुआ। ११ संख्यामें कुम्भराशि स्थिर हुई। जिससे तिथि, वार और नक्षत्र आदिका विवरण जाना जाता है, उसीका नाम पञ्जिका है। सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थानुसार पञ्जिकाकी गणना की जाती है। आज कल बहुतसी पञ्जिकाओंका प्रचार देखा जाता है। दिनचन्द्रिकाके मतसे भी पञ्जिकागणना हुआ करती है; इसे पञ्चाङ्गसाधन कहते हैं। वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण इन पञ्चाङ्गोंकी गणना रहती है, इसीसे इसका पञ्चाङ्गसाधन नाम पड़ा है। इस पञ्जिकागणनाका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा गया है।

दिनचन्द्रिकाके मतसे पञ्जिका-गणना—

इष्ट शकाङ्कमें जिस वर्षकी पञ्जिकागणना करनी होगी, उस वर्षमें १५२३ घटा देनेसे जो बच रहेगा, उसे अब्दपिण्ड जानना होगा। इस अब्दपिण्डको १९से

गुना करके उसमें ४३०० जोड़ दे। योगफलको ६०००० से भाग देनेसे जो लब्धाङ्क होता है, उसका नाम तिथि-दिन है। पहले इसी प्रकार तिथि-दिन स्थिर करना होगा।

अब्दपिण्डको ८३३से गुणा करे, गुणनफलमें १५१०० जोड़ कर २०००० हजारसे भाग दे। इस प्रकार भाग देनेसे जो लब्धि होगी, वही नक्षत्रदिन और भोगदिन है। अब्दपिण्डको ११से गुणा करके उसमें १२, और पूर्वोक्त मतसे जो तिथिदिन हुआ है उसे एकत्र जोड़ कर ३०से भाग दे। भाग देनेसे जो शेष बचेगा वह उस वर्षकी प्रथम तिथि है। यदि शून्य अवशिष्ट रहे, तो ३० अमावस्या प्रथम तिथि होगी। अब्दपिण्डको १०से गुणा कर ११ जोड़ दे और पूर्वोक्त मतसे जो नक्षत्रदिन और योगदिन हुआ है उस अङ्कको उसमेंसे घटा कर २७से भाग दे। भागमें जो अवशिष्ट रहेगा, वह अङ्क उस वर्षका प्रथम नक्षत्र होगा। यदि शून्य रहे, तो २७ नक्षत्र होता है। यही प्रथम नक्षत्र है।

अब्दपिण्डको ७।७।८।५।५।१।२७ इस प्रत्येक अङ्कसे गुणा करके पृथक् पृथक् स्थानमें रखते हैं। उसके बाद शेषको अर्थात् २७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कको ६०से भाग देनेसे जो लब्धि होगी उसे ५१ पूरित अब्दपिण्डमें जोड़ देते हैं। अब इस योगफलमें ६०से भाग और ५ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग देना होता है। फिर इसे ६०से भाग और ८ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग, पीछे पुनः इसे ६०से भाग और ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्क योग विधेय है। तदनन्तर इसे ६०से भाग और ८ पूरित अब्दपिण्डाङ्कका योग देना होता है। पीछे उसे भी ६०से भाग करके भागफलमें ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कको जोड़ते हैं।

तिथि-दिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानके तिथि-दिनको ३०३से भाग दे कर दूसरे स्थानके तिथि-दिनके साथ योग करते हैं। यह योगाङ्क और पूर्व कथित नियमानुसार जो अङ्क हुआ है उसे यथाक्रम ०।११।५८ शेषाङ्कके साथ योग करना होता है। योग करके जो समष्टि होगी उसके प्रथमाङ्कको ६०से गुणा करके द्वितीय अङ्कके साथ जोड़ देते हैं। पीछे उसे १६८५से भाग देने पर,जो अवशिष्ट रहेगा उसे ६०से भाग करके लब्धाङ्कको बाईं ओर रखनेसे जो होता है, वही तिथिकेन्द्र है। १६८५से भाग देनेसे जो भागफल होता है उसका नाम है तिथिकेन्द्रभ्रम।

अब्दपिण्डको पूर्वोक्तरूपसे यथाक्रम १।६८।४८।३१से गुणा करके पूर्वोक्त रीतिसे ६० द्वारा भाग करते हैं और और भागफलको ४८।१८।१ पूरिताब्द पिण्डाङ्कमें योग करके योगफलमेंसे ३।२४।१५।१४ घटाने होते हैं; बादमें पूर्वोक्त तिथिकेन्द्रभ्रमको ३२से गुणा करके उसे ६०से भाग देते हैं और भागफल तथा अवशिष्टको पूर्णाङ्क (३।२४।१५।१४ घटानेसे जो बच रहता है, उस अङ्क)-मेंसे घटाते हैं। पीछे पहलेके जैसा तिथिदिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके तिथिदिनको ३००से भाग देते और भागफलको दूसरे स्थानके तिथि-दिनके साथ जोड़ कर पूर्वाङ्कमें जोड़ते हैं। इस प्रकार गणना करनेसे वार, तिथि और तिथिके दण्डपलादि स्थिर हो जाते हैं। अब्दपिण्डको १५००से भाग देने पर जो भागफल होता है, उसे तिथि वारादिके पलके साथ योग करते हैं और वाराङ्कको ७से भाग देने पर जो भागशेष रह जाता है वही वार है तथा उससे पहले यदि प्रथम तिथिको पृथक् करके रखें, तो वे तिथि वारादि होंगे। अब्दपिण्डको पहलेके जैसा यथाक्रम ७।०।४।४५।५३।३।३४।१२से गुणा कर पूर्ववत् शेषको ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होता है उसे यथाक्रम ३४, ३, ५३, ४५, ०, ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कमें योग करना होता है। नक्षत्रदिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके नक्षत्र-दिनको १२००से भाग दे कर उसमें अन्य स्थानके नक्षत्रदिनको जोड़ देते हैं। अब योगफलको पूर्णाङ्कमें घटाते हैं और उसमें ०।३५।१७ योग करके प्रथमाङ्कको ६०से गुणा और द्वितीयाङ्कको उसके साथ योग करते हैं। पीछे उस योगफलको १६३५से भाग करके जो भागशेष रह जाता है उसे पुनः ६०से भाग दे कर भागफलको बाईं ओर रखते हैं, इसका नाम नक्षत्रकेन्द्र है। इस नक्षत्रकेन्द्रको १६३५ से भाग देनेसे जो भागफल हुआ था, उसका नाम नक्षत्रकेन्द्रभ्रम है।

अब्दपिण्डको पहलेके जैसा यथाक्रम १।१३।२५।१८। १४।३१।१२से गुणा करके पूर्ववत् ६०से भाग देते हैं,

पीछे भागफलको यथाक्रम ३१, १४, १८, २५, १३, १ पूरित अब्दपिण्डाङ्कमें जोड़ते हैं। नक्षत्र दिनको दो स्थानमें रख कर एक स्थानके नक्षत्र दिनको १२००से भाग करके उसे अन्य स्थानके नक्षत्रदिनमें जोड़ देते हैं। योगफल जो होता है, उसे पूर्वाङ्कसे घटा लेते हैं। इस प्रकार घटानेसे जो बच रहता है, उसमें ४।२७।५२। २६ योग करते हैं। पूर्वोक्त नक्षत्रकेन्द्रभ्रमको १८से गुणा करके उसमें ६०का भाग देते हैं। भागफल जो होता है तथा अवशिष्ट जो रह जाता है, उसे पूर्वाङ्कमें (४।२७। ५२।२६ योग करनेके बाद जो अब्द हुआ है उस अङ्कमें) योग करते हैं। इससे वार, दण्ड, पल आदि निकल आते हैं। वारको ७से भाग देने पर जो शेष रहेगा, वह वार दिन होगा और उसके पहले नक्षत्रको पृथक् करके रखना होगा, यही नक्षत्र-वारादि है।

अब्दपिण्डको पूर्ववत् यथाक्रम ७।३३।१५।३५।५२। ५८·४८से गुणा करके पूर्व नियमानुसार ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होते हैं उन्हें ५८, ५२, ३५, १५, ३३, ७ पूरित अब्दपिण्डाङ्कमें योग करते है। पीछे योगदिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानमें योगदिनको ३००से भाग और दूसरे स्थानके योगदिनके साथ योग करते हैं। पीछे उस अङ्कको पूर्णाङ्कमेंसे घटा लेते हैं। उसमें यदि ०।२८।१८ योग करें, तो वह युताङ्क होगा। इस युताङ्कको ६०से गुणा करनेसे गुणनफलमें इसके बादके अङ्कको जोड़ देते हैं। अब इस योगफलको १७६२से भाग देनेसे जो अवशिष्ट रहेगा, उसे पुनः ६०से भाग देते हैं। भागफल जो होगा उसे बाईं ओर रखनेसे योग-केन्द्र होगा। फिर इस योगकेन्द्रमें १७६२का भाग देनेसे जो भागफल होगा, उसका नाम योगकेन्द्र-भ्रम है।

अब्दपिण्डको पहलेके यथाक्रमसे जैसा १।४६।१० २८।३०। ३८से गुणा करके पूर्वनियमानुसार ६०से भाग देते हैं। पीछे लब्ध अङ्कशेषोंको ३०, २८, १०, ४६, १ पूरित अब्द-पिण्डाङ्कमें योग करना होता है। बादमें योगदिनको दो स्थानोंमें रख कर एक स्थानके योगदिनको २४०से भाग दे कर उसे अन्यस्थानके योगदिनके साथ योग और उस पूर्वाङ्कसे वियोग करना होगा। पूर्वोक्त योग-केन्द्रभ्रमको ११०से गुणा करके उसे ६०से भाग दे कर पूर्वाङ्कमेंसे वियोग करना होता है। ऐसा करनेसे वार, दण्ड, पल आदि होंगे। वारको ७का भाग देनेसे शेष जो बचेगा, वह वार होगा। इसके पहले प्रथमयोगको पृथक् करके रखना होगा, ऐसा होनेसे ही योग वारादि होंगे।

सुमेरु पर्वत और गङ्गाको मध्यगत भूमिके ऊपर हो कर उत्तर-दक्षिणमें विस्तृत जो एक रेखा कल्पित हुई है, उसका नाम मध्य रेखा है। उस मध्य रेखासे अपना देश जितने योजनके अन्तर पर रहेगा उस योजनको दशसे गुणा करके १३से भाग देते हैं; भागफल जो होता है, वह पल है। वह पल यदि ६०से अधिक हो, तो उसे ६०से भाग करके जो दण्डपलादि होंगे उन्हें मध्यरेखाके पूर्वदेशमें जो सब तिथिवारादि, नक्षत्रवारादि, योगवारादि और मेषसंक्रान्ति ध्रुव हुए हैं उनके साथ जोड़ना होता है।

विषुवदिनके वारादि ध्रुव और केन्द्रध्रुवको दो स्थानोंमें पृथक् करके उः वारध्रुव और केन्द्रध्रुवके साथ प्रतिदिनके वारध्रुवक्षेपाङ्क और केन्द्रध्रुवक्षेपाङ्कका योग करते हैं। योगफल प्रतिदिनका शुद्धवारध्रुव और शुद्धकेन्द्रध्रुव होगा। उस शुद्धकेन्द्रध्रुव संख्यामें खण्डा ग्रहण करके उसे एक स्थानमें रखते हैं। बादमें खण्डा उस स्थापित खण्डासे जितनी अधिक होगी, उसका नाम धनभोग्य है और स्थापित खण्डासे जितनी कम होगी उसका नाम ऋणभोग्य है। केन्द्रका अङ्क जो अवशिष्ट रहेगा उसे भोग्य द्वारा गुणा करके षष्टिलब्धको शोधित करना होगा तथा धनभोग्यस्थल पर स्थापित खण्डाके पलके साथ योग तथा ऋणभोग्यस्थल पर स्थापित खण्डा-के पलके साथ वियोग करना होता है।

उस खण्डाको वारादि ध्रुवखण्डके साथ योग करनेसे ही प्रतिदिनको तिथि आदि दण्डादि होंगी। वह दण्डादि यदि ६० दण्डसे अधिक हो, तो उसे ६०से भाग करके लब्धाङ्कवारमें जोड़ना होता है। अवशिष्ट दण्डादि रहेगा। इससे प्रथम राशि तिथि होगी, इसी प्रकार वार दिवसमें तिथिका स्थितिकाल हुआ करता है। एक दिवसमें यदि वार लब्ध न हो अर्थात् रविवारके

बाद मङ्गलवार हो, तो जानना होगा कि सोमवारको वह तिथि ५० दण्ड है तथा मङ्गलवार दिनमें लब्ध दण्ड है। दोनों दिनमें यदि एक हो बार लब्ध हो, तो प्रथम लब्ध-दण्ड तक एक तिथि तथा द्वितीय लब्धदण्ड तक एक और तिथि होगी। इससे जाना जाता है, कि यह दिन त्र्यहस्पर्श होगा। यह त्र्यहस्पर्श गणनास्थलमें परलब्ध दण्डसे पूर्वलब्धदण्ड बाद देनेसे स्थिर किया जाता है।

केन्द्र यदि अपने अपने भ्रमसे अधिक हो अर्थात् तिथिकेन्द्र यदि २८।५, नक्षत्रकेन्द्र २७।१५ तथा योग-केन्द्र यदि २८।२२ संख्यासे अधिक हो, तो उसे अपने अपने केन्द्रमें बाद दे कर तिथि वारादि दण्डमें ३२ बाद, नक्षत्र वारादिके दण्डमें १८ योग और योग वारादिके दण्डमें ११०का वियोग करना होता है। ऐसा करनेसे शुद्ध वारादि होंगे। तिथिकेन्द्रका भ्रम २८।५. नक्षत्रकेन्द्रका भ्रम २७।१५ और योगकेन्द्रका भ्रम २८।२२ है।

तिथिकी अङ्कसंख्या जितनी होगी उसे द्विगुण करके यदि तिथिमानके पूर्वार्द्धमें करण करनेकी आवश्यकता हो, तो द्विगुणाङ्कमें २ बाद और तिथिमानके परार्द्ध होने पर १ बाद देना होता है। अवशिष्ट अङ्कमें ७ बाद दो कर भाग देनेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसीका वव, बालव इत्यादि क्रमसे करण जानना होगा।

अब्दपिण्डको १००७से गुणा करके ८००का भाग दो, लब्धाङ्क वार, दण्ड इत्यादि होगा। फिर अब्दपिण्ड-को ७से गुणा करके ३०से भाग दो और भागफलको पलमें जोड़ दो। उसके साथ ४।४४।८।१३ इस क्षेपाङ्कको जोड़ो और योगफलको ७से भाग दो. इस प्रकार जो अवशिष्ट रहेगा, वह विषुवसंक्रान्तिका वारादि होगा। इसमें पूर्व नियमसे देशान्तरसंस्कार और चरार्द्धसंस्कार करनेसे ही विषुवसंक्रान्तिका शुद्ध वारादि होगा। इसी समय सूर्य मेषराशिमें जाते हैं। सूर्यके मेषराशिमें जाने-से वैशाखमास हुआ। उस वैशाखसे आरम्भ कर पुनः चैत्र तक गणना करनेसे एक वर्षको गणना हुई। मेषादिके क्षेपवारादि अङ्क इस प्रकार हैं।

मेषक्षेपवारादि — ४।४४।८।१३,
वृषक्षेपवारादि —२।५६।४८,
मिथुनक्षेपवारादि—६।२२।२८,
कर्कटक्षेपवारादि— ६।१ ३,
सिंहक्षेपवारादि—६।२८।०,
कन्याक्षेपवारादि—१।२८।२०,
तुलाक्षेपवारादि—४।५५।०,
वृश्चिकक्षेपवारादि—६।४७।५१,
धनुःक्षेपवारादि १।१६।५२,
मकरक्षेपवारादि—२ ३६।१,
कुम्भक्षेपवारादि ४।३।२४,
मीनक्षेपवारादि— ५।५३।८।

विषुवसंक्रान्तिके शुद्ध वारादिमें इन वृषादिके क्षेपाङ्क-का योग करनेसे उस समय सूर्य वृष मिथुन इत्यादि राशिमें गमन करते हैं अर्थात् मासके शेषमें उस उस वारमें उस उस समय संक्रमण होता है। कौन मास कितने दिनोंमें शेष होगा उसका विवरण नीचे दिया जाता है—

	दिन,	दण्ड,	पल,		दिन,	दण्ड,	पल.
वैशाख	३०	५६	४८	कार्तिक	२९	५२	५६
ज्यैष्ठ	३१	२५	३८	अग्रहायण	२९	२९	१
आषाढ़	३१	३८	३५	पौष	२९	१९	८
श्रावण	३१	२७	५७	माघ	२९	२७	२३
भाद्र	३१	०	२०	फाल्गुन	२९	५०	४
आश्विन	३०	२५	४०	चैत्र	३०	३२	३

स्थूलगणनासे ३६५।१५।३१ पलका एक संवत्सर, पर सूक्ष्म गणनासे ३६५।१५।३१।३१।२४ अनुपलका वत्सर होता है। जिस प्रणालीसे पञ्जिका तैयार होती है, उसी-का साधारणभावसे दिखाना उचित है। जो पञ्जिका बनाते हैं, उन्हें सूर्यग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये।

वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण यही पांच पञ्जिकाके प्रधान विषय हैं। इन सब गणनाओं द्वारा स्थिर हो जाने पर राशि, राशिमें ग्रहोंका अवस्थान, संक्रान्ति, त्र्यहस्पर्श, ग्रहण आदि गणना उन्हीं सब नियमोंके अनुसार हुआ करती है। (दिनचन्द्रिका०)

आज कल अनेक पञ्जिकाएं छपती हैं जिनमें पञ्जिकाके

सभी विषय और तदानुषङ्गिक नाना प्रकारकी गणनायें रहती हैं। वार, तिथि, नक्षत्र, योग, करण, श्रवम, त्र्यहस्पर्श, ग्रहोंका अवस्थान, ग्रहस्फुट, शुभाशुभ दिनकी तालिका, कालाकाल, ग्रहण और उसकी व्यवस्था, राशियोंके सञ्चार आदिकी गणनायें परिस्फुटभावसे सन्निवेशित होती हैं। पहले जब मुद्रायन्त्र नहीं था, तब हाथसे पञ्जिका लिखी जाती थी। उस समय वार, तिथि, नक्षत्रयोग, करण और राशिचक्रमें ग्रहोंकी अवस्थान, ग्रहोंकी सञ्चार और ग्रहणमात्र गणना रहती थी।

दिनचन्द्रिकाके मतसे पंजिकागणनाका विषय संक्षेपमें लिखा जा चुका। इस पञ्जिकागणनामें पहले अब्दपिण्ड और तिथि दिन आनयन, पीछे नक्षत्रदिन और योगदिन, बादमें प्रथम तिथि, प्रथम नक्षत्र और प्रथम योग, तिथिवारादि, नक्षत्रकेन्द्र, नक्षत्रवारादि, योगकेन्द्र, योगवारादि, प्रतिदिवसकी तिथि, नक्षत्र, योगका स्थितिदण्ड और फलादि साधन, नक्षत्रानयन, योगानयन, करण और संक्रान्ति यथाक्रमसे इन सबकी गणना करनेसे पञ्जिका प्रस्तुत होती है।

पञ्जिकाकारक (सं॰ पु॰) पञ्जिं करोतीति कृ-ण्वुल्। १ कायस्थजाति। २ पञ्जिकाकार, दैवज्ञ, ज्योतिषी।

पञ्जी (सं॰ स्त्री॰) पञ्जि-बाहुलकात् ङीप्। १ सूत्रनालिका, नली। २ पञ्जिका, पञ्चाङ्ग। यथा कुलपञ्जी। इसमें वंश और अंशका विवरण विशेषरूपसे वर्णित है।

पञ्जीकर (सं॰ पु॰) पञ्जीं पञ्जिका करोतीति कृ-ट। कायस्थजाति।

पट (सं॰ पु॰ क्लो॰) पटयत्यनेन पट-वेष्टने चुरादि-क। १ वस्त्र, कपड़ा। इसका पर्याय सुचेलक है। २ चित्रपट, कागजका वह टुकड़ा जिस पर चित्र खींचा वा उतारा जाय। देवीपुराणमें पटका विषय इस प्रकार लिखा है। जो देवोका पट बनाता है, उसे सिद्धिलाभ होता है। नूतन वस्त्र पर पट बनाना होता है। यह पट सर्वाङ्गसुन्दर, समान तन्तुविशिष्ट और ग्रन्थि तथा केश विहीन होना आवश्यक है। पटमें यदि कोई छेद रहे, तो बनानेवालेका अमङ्गल होता है।

नवधा, विभक्त वस्त्रके सभी कोणोंमें देवगण, दशान्त और पाशान्तके मध्य नरगण तथा अवशिष्ट तीन अंशोंमें राक्षसोंका आवास स्थान है। नूतन वस्त्र विशुद्ध दिन देख कर पहनना चाहिए। वृहत्संहिताके ७१वें अध्यायमें इसका विवरण विस्तृतरूपसे लिखा है। (पु॰) ३ पियार, चिरौंजीका पेड़। ४ भूतृण, गन्धतृण, ५ कर्पास, कपास। ६ कोई आड़ करनेवाली वस्तु, पर्दा, चिक। ७ लकड़ी, धातु आदिका वह चिकना टुकड़ा या पट्टी जिस पर कोई चित्र वा लेख खुदा हुआ हो। ८ वह चित्र जो जगन्नाथ, वदरिकाश्रम आदि मन्दिरोंसे दर्शनप्राप्त यात्रियोंको मिलता है। ९ छप्पर, छान। १० सरकंडे आदिका बना हुआ वह छप्पर जो नाव या बहलीके ऊपर डाल दिया जाता है।

पट (हिं॰ पुं॰) १ साधारण दरवाजोंके किवाड़। २ सिंहासन। ३ किसी वस्तुका तलप्रदेश जो चिपटा और चौरस हो, चिपटी और चौरस तलभूमि। ४ पालकीके दरवाजेके किवाड़ जो सरकानेसे खुलते और बन्द होते हैं। ५ टांग। ६ कुश्तीका एक पेच। इसमें पहलवान अपने दोनों हाथको जोड़की आंखोंकी तरफ इसलिये बढ़ाता है, कि वह समझे कि मेरी आखों पर थप्पड़ मारा जायगा और फिर फुरतीसे झुक कर उसके दोनों पैर अपने सिरकी ओर खींच कर उसे उठा लेता और गिरा कर चित कर देता है। यह पेच और भी कई प्रकारसे किया जाता है। ७ किसी हलकी छोटी वस्तुके गिरनेसे होनेवाली आवाज, टप। (वि॰) ८ ऐसी स्थिति जिसमें पेट भूमिकी ओर हो और पीठ आकाशकी ओर, चितका उलटा, औंधा। (क्रि॰ वि॰) ९ शीघ्र, तुरत, फौरन।

पटइन (हिं॰ स्त्री॰) पटवा जातिकी स्त्री, पटहार जातिकी स्त्री।

पटक (सं॰ पु॰) पटेन छदनेन कायति प्रकाशते इति कै-क। १ शिविर, तंबू, खेमा। २ सूती कपड़ा।

पटकन (हिं॰ स्त्री॰) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ चपत, तमाचा। ३ छोटा डंडा, छड़ी।

पटकना (हिं॰ क्रि॰) १ जोरके साथ ऊंचाईसे भूमिकी ओर झोंक देना, किसी चीजको झोंकके साथ नीचेकी ओर गिराना। २ किसी खड़े या बैठे व्यक्तिको उठा कर जोरसे नीचे गिराना। 'पटकना' और 'ढकेलना'में फर्क

इतना ही है, कि जहां ऊपरसे नीचेकी ओर झोंका देने या जोर करनेका भाव प्रधान है, वहां पटकना और जहां बगलसे झोंका दे कर किसी खड़ी या ऊपर रखी चीजको गिरावें, वहां ढकेलना या गिराना कहेंगे। २ कुश्तीमें प्रतिद्वन्द्वीको पछाड़ना, गिरा देना या दे मारना। ३ पट शब्दके साथ किसी चीजका दरक या फट जाना। ४ गेहूं, चने, धान आदिका शीत या जलसे भीग कर फिर सुख कर सिकुड़ना। ५ सूजन बैठना या पचकना।

पटकनिया (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव, पटकान। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ें खानेकी क्रिया या अवस्था, लोटनिया, पछाड़।

पटकनी (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ें खानेकी क्रिया या अवस्था। ३ पटके जानेकी क्रिया या भाव।

पटकारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बेल।

पटका (हिं० पु०) १ कमर बांधनेका रूमाल या दुपट्टा, कमरबंद, कमरपेच। २ सुन्दरता बढ़ानेके लिये दीवारमें जोड़ी हुई पट्टी या बंद।

पटकान (हिं० स्त्री०) १ पटकनेकी क्रिया या भाव। २ भूमि पर गिर कर लोटने या पछाड़ खानेकी क्रिया या अवस्था। ३ पटके जानेकी क्रिया या अवस्था।

पटकार (सं० पु०) पटं शोभनवस्त्रं चित्रं वा करोति कृ-अण। १ कपड़ा बुननेवाला, जुलाहा। २ चित्रपट बनानेवाला, चित्रकार।

पटकुटी (सं० स्त्री०) पटस्य पटनिर्मिता वा कुटी। कपड़े का घर, खेमा, तंबू। पर्याय—कैणिका, गुणालयनिका।

पटच्चर (सं० क्ली०) भूतपूर्वं पटत् भूतपूर्वं चरट् वा पटदित्यव्यक्त शब्दं चरतीति पटत्-चट-अच्। १ जीर्ण-वस्त्र, पुराना कपड़ा। २ चौर, चोर। ३ महाभारत और पुराणोंमें वर्णित एक प्राचीन जनपद। महाभारतके टीकाकार नीलकण्ठके मतसे यह देश प्राचीन चोल है। लेकिन महाभारत सभापर्वमें सहदेवका दिग्विजय प्रकरण पढ़नेसे जान पड़ता है, कि इसका स्थान मत्स्यदेशके दक्षिण चेदिके निकट है।

पटड़ी (हिं० स्त्री०) पटरी देखो।

पटत् (सं० अव्य०) १ अव्यक्तानुकरण शब्दभेद। (क्ली०) २ पट।

पटत्क (सं० पु०) पटदिव वेष्टित इव कायति कै-क। चौर, चोर।

पटत्कक्त्य (सं० क्ली०) पटत्कस्य कन्था क्लीवत्वं। चोरकी गुदड़ी।

पटतर (हिं० पु०) १ समता, तुलना, समानता, बराबरी। २ सादृश्यकथन, उपमा, तशबीह।

पटतरना (हिं० क्रि०) बराबर ठहराना, उपमा देना।

पटतारना (हिं० क्रि०) १ खांड़ा, भाला आदि शस्त्रोंको किसी पर चलानेके लिए पकड़ना या खींचना, संभालना। २ असमतल भूमिको समतल करना, पड़तारना।

पटताल (हिं० पु०) मृदङ्गका एक ताल। यह ताल १ दीर्घ या २ ह्रस्व मात्राओंका होता है। इसमें एक ताल और एक खाली रहता है।

पटद (सं० पु०) कार्पासवृक्ष, कपास।

पटधारी (हिं० वि०) १ जो कपड़े पहने हो। (पु०) २ तोशाखानेका अधिकारी, तोशाखानेका मुख्य अफसर।

पटना (हिं० क्रि०) १ समतल या चौरस होना। २ मकान कुएँ आदिके ऊपर कच्ची या पक्की छत बनना। ३ सींचा जाना, सेराब होना। ४ किसी स्थानमें किसी वस्तुकी इतनी अधिकता होना कि उसमें शून्य स्थान न दिखाई पड़े, परिपूर्ण होना। ५ मकानकी दूसरी मंजिल या कोठा उठाया जाना। ६ खरीद, बिक्री, लेन देन आदिमें उभय पक्षका मूल्य, सूद, शर्त्त आदि पर सहमत हो जाना, तै हो जाना, बैठ जाना। ७ मन मिलना, बनना। ८ ऐसी मित्रता होना जिसका कारण मनोंका मिल जाना हो। ९ ऋणका देना, चुकता हो जाना, पाई पाई अदा हो जाना।

पटना—१ बिहारका एक प्रादेशिक विभाग। यह अक्षा० २४° १७´ से २७° ३१´ उ० तथा देशा० ८३° १९´ से ८६° ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें नेपाल, पूर्वमें भागलपुर और मुङ्गेर जिला, दक्षिणमें लोहरडङ्गा और हजारीबाग तथा पश्चिममें मीर्जापुर, गाजीपुर और गोरखपुर है। पटना, गया, शाहाबाद, दरभङ्गा, मुजफ्फरपुर, सारण और चम्पारण आदि जिलोंको ले कर पटना विभाग सङ्गठित हुआ है। जनसंख्या

प्राय: १५५१४८८७ है। इसमें ३५ शहर और ३४१६८ ग्राम लगते हैं। पटना शहर ही सब शहरोंमें बड़ा है। यह वाणिज्य तथा शिल्पकार्यका एक प्रधान स्थान है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० २४° ५७´से २५° ४४´ उ० और देशा० ८४° ४२´से ८६° ४´ पू० के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २०७५ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तरमें गङ्गानदी, पूर्वमें मुङ्गेर, दक्षिणमें गया और पश्चिममें सोननदी है।

पटना जिलेका अधिकांश समतल भूमि है, केवल दक्षिणांशमें छोटे छोटे गण्डशैल या पहाड़ देखनेमें आते हैं। गङ्गातटवर्ती प्रदेश अत्यन्त उर्वरा है। इन सब जमीनमें सभी प्रकारके शस्य उत्पन्न होते हैं। इस जिलेके दक्षिणपूर्वांशमें राजगृहशैलश्रेणी है। इस पर्वतश्रेणीकी ऊंचाई कहीं कहीं १००० फुट है और छोटे छोटे घने जङ्गलोंसे आच्छादित है। बौद्धधर्मके प्राचीन स्मारकचिह्न रहनेके कारण राजगृहशैलश्रेणी प्रत्नतत्त्वविदोंके निकट समधिक विख्यात है। इस शैलश्रेणीके उत्तर एक और पहाड़ है जिसे कनिंहम् साहबने चीनभ्रमणकारी यूएनचुवंगकथित कपोतिका बतलाया है। राजगृहशैलश्रेणीमें अनेक उष्ण प्रस्रवण हैं। राजगृह देखो।

पटना जिलेके मध्य प्रवाहित नद नदियोंमें गङ्गा और सोन नदी प्रधान है। एतद्व्यतीत पुनपुन नामकी एक और नदी उल्लेखयोग्य है।

पटना जिलेमें वन, जङ्गल, जलाभूमि और गोचारण भूमि नहीं है। प्रायः सभी जमीन आबाद होती है। खनिज पदार्थोंमें गृहनिर्माणोपयोगी प्रस्तर शिलाजतु नामक भेषज पदार्थ, कङ्कर और खनिज लवण ही प्रधान हैं।

जीवजन्तुओंके मध्य राजगृहशैल पर भालू, भेड़िया, शृगाल और नाकेश्वरी बाघ देखनेमें आता है।

पटना जिला ऐतिहासिक प्रत्नतत्त्वविदोंके पक्षमें विशेष आदरणीय है। कहते हैं, कि ई० सनके छः शताब्दी पहले गौतमके समसामयिक राजा अजातशत्रु ने पटना शहर बसाया और उस समय यह पाटलिपुत्र नामसे प्रसिद्ध था। पटना जिलेके दक्षिणांशमें मुसलमानोंका स्थापित विहार नगर अवस्थित है। इसके अलावा इस जिलेमें चीनभ्रमणकारी फाहियान और यूएनचुवंग द्वारा वर्णित अनेक स्थानोंका निर्देश पाया जाता है। पाटलिपुत्र देखो।

पटना जिला दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाका क्षेत्र है। १७६३ ई०में अंगरेजोंके साथ जब नवाब मीरकासिमका विवाद खड़ा हुआ, तब पटना कोठीके अध्यक्ष एलिस् साहब अपने सिपाहियों द्वारा पटना शहर पर अधिकार कर बैठे। इस पर नवाब बड़े बिगड़े और सैन्य भेज कर उन्होंने पटना शहरमें घेरा डाला तथा अङ्गरेजोंको वहांकी कोठीमें बन्द रखा। पीछे इस कोठीमें कासिमबाजारकी कोठीके अङ्गरेज कर्मचारिगण तथा मुङ्गेरसे हे साहब भी लाये गये। इस घटनाके बाद गड़िया और उधुआनालाके युद्धको पराजयके बाद नवाबने अङ्गरेज-सेनापति मेजर आडम्सको कहला भेजा कि 'यदि हमारे विरुद्ध विवाद और बढ़ता हो जायगा, तो हम एलिस साहब तथा पटनाके अन्यान्य अङ्गरेज कर्मचारियोंके सिर कटवा डालेंगे।' तदनन्तर समरु नामक सेनापतिकी सहायतासे नवाबने यह कार्य करके ही दिखला दिया। यही घटना इतिहासमें पटना-हत्याकाण्ड कहलाती है। प्रायः ६० अङ्गरेजोंकी मृतदेह निकटवर्त्ती कूपमें फेंकी गई थी। उसका स्मृतिचिह्न आज भी पटनेमें विद्यमान है।

दूसरी ऐतिहासिक घटना थी 'पटनेके निकटवर्त्ती दानापुरका गदर।' १८५७ ई०में ७, ८ और ४० नम्बर सेना दानापुरमें रहती थी। सेनाध्यक्ष लायड-साहबका उक्त सिपाहियोंके ऊपर प्रभूत विश्वास रहनेके कारण उन्हें अस्त्रत्याग करनेको नहीं कहा गया। पीछे पटना विभागके कमिश्नर टेलरसाहब तथा अन्यान्य अङ्गरेजोंकी प्ररोचनासे सेनाध्यक्ष लायडने उन्हें निरस्त्र करना चाहा। पर उनकी सभी चेष्टाएं निष्फल हुईं। उलटे फल यह निकला कि तीन रेजिमेण्टसेना उसी समय विद्रोही हो कर अस्त्र शस्त्र लिए चली गईं। इन सिपाहियोंमेंसे बहुतोंने गङ्गा पार होनेकी चेष्टा की। पर उनकी नावों पर गोली बरसने लगी और ष्टीमरसे नावें डुबाई जाने लगीं जिससे अधिकांश बन्दूककी

गोलोंसे हत और जलमग्न हो स्वर्गधामको सिधार गये।

जगदीशपुरके जमींदार कुमारसिंहने विद्रोही सिपाहियोंका नेतृत्व ग्रहण कर आराके युरोपीय अधिवासियोंको घेर लिया। उनके उद्धारके लिए दानापुरसे जो टोमर भेजी गई वह चरमें अटक रही। पीछे एक दूसरी टीमर भेजी गई जो बड़ी मुश्किलसे किनारे लगी। टीमरसे उतर कर अङ्गरेजीदलने सहायताके लिए जब आराको ओर यात्रा की, तब शत्रुगण आमके पेड़ोंकी आड़से गोला छोड़ने लगे। उक्त दलके नेता कप्तान डनबरने गोलाके आघातसे शीघ्र ही प्राणत्याग किया और अङ्गरेजी दल तितर बितर हो गया। जब वे लोग लौटनेकी तैयारी कर रहे थे, कि उसी समय शत्रुओंने उन पर आक्रमण करके बहुतोंको मार डाला। दानापुरसे प्रेरित ४०० सिपाहियोंमेंसे आधा भी लौट कर गया था कि नहीं, इसमें भी सन्देह है, पर इतना तो ठीक है, कि उनमेंसे ५० घायल देहसे लौटे थे।

मैकडनेल और राज सैंगल्स नामक दो अङ्गरेज राजपुरुषोंने इस घटनामें विलक्षण शौर्य प्रकाशित किया था। फिर सहायता देनेमें अकृतकार्य हो कर जब अङ्गरेजीदल नाव पर चढ़ कर लौटने पर थे, तब उन्होंने देखा कि नावका लङ्गर रस्सीसे किनारेसे बांध दिया गया है। मैकडनेल उतने आदमीके बीच नाव परसे कूद पड़े और रस्सी काट कर नावको बहा दिया। मैङ्गल्स साहबने एक आहत सैनिकको ५ मील तक कंधे पर चढ़ाये नाव पर बिठा दिया था।

इस जिलेकी लोकसंख्या प्रायः १६२४९८५ है। यहां भारतवर्षके सभी जातिके लोग रहते हैं। हिन्दू और मुसलमानकी संख्या अधिक है। यहांके भूमिहार अपनेको सरवरिया ब्राह्मण बतलाते हैं। इनमेंसे अधिकांश जमींदार हैं। यहांके मुसलमान सम्प्रदायमें ओहबी-सम्प्रदाय विशेष सम्मानार्ह है। सुन्नीमतसे ओहवीमत उत्पन्न होने पर भी ओहबी लोग सिया और सुन्नी दोनों सम्प्रदायको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। ओहवीदलपति सैयद अहमद १८२० ई०में पहले पहल पटना आये। १८६४-६५ ई०को राजद्रोहिताके अपराधमें ११ ओहबी यावज्जीवन निर्वासित हुए थे।

इस जिलेमें सात शहर और ४८५२ ग्राम लगते हैं। इन सातों शहरोंमें पटना, बिहार, दानापुर, बाढ़, खगोल, फतुआ, महम्मदपुर, बैकुण्ठपुर, रसूलपुर और मोकामा प्रधान हैं। इनमेंसे पटना शहर सर्वप्रधान वाणिज्यस्थान है। इसके पास ही बांकीपुर सदर और कुछ दूरमें दानापुर पड़ता है।

इस जिलेमें ऐतिहासिकोंके द्रष्टव्य राजगृह वा राजगीर, गिरियक और शेरपुर हैं।*

* शेरपुर और राजगृह देखो।

यहां बीरी और हेमन्तिक शस्य अच्छा लगता है। यहांकी प्रधान उपज गेहूं और जौ है। यहां यद्यपि उतनी वृष्टि नहीं होती, तो भी गङ्गा और सोननदीकी बाढ़से जनताकी बहुत क्षति होती है। १८६९ और १८९८ ई०की बाढ़ उल्लेखयोग्य है। इन दोनों बाढ़ोंसे अनेकों जीवजन्तुओंके प्राणनाश और शस्यकी क्षति हुई थी।

यहांसे गेहूं, तिलहनके बीज, दाल, सरसोंके बीज, चमड़े, चीनी, तमाकू और अफीमकी रफतनी तथा चावल, धान, नमक, कोयले, किरासन तेल आदिकी आमदनी होती है। जिलेके उत्तरी भागमें ८४ मील तक इष्ट-इण्डियन रेलवेकी लाइन चली गई है। प्रधान स्टेशनके नाम हैं—मोकामा, बाढ़, बख्तियारपुर, पटना, बांकीपुर और दानापुर। बांकीपुरसे एक शाखा गयाको और दूसरी दीघाघाटको चली गई है।

पटना जिलेमें राजस्वकी क्रमशः वृद्धि देखी जाती है। शासनकी सुविधाके लिये यह जिला पांच उपविभागों और १८ थानोंमें विभक्त है। उपविभागोंके नाम ये हैं—बांकीपुर, बिहार, बाढ़, पटना शहर और दानापुर।

यहां शिक्षाविभागकी ओर लोगोंका मन बहुत आकृष्ट हुआ है। दिनों दिन इसकी उन्नति होती जा रही है। शिक्षाविस्तारके लिये १८६२ ई०में पटना कालेज स्थापित हुआ। इसके अलावा यहां २ शिल्पकालेज २५ सेकण्ड्री, १२५५ प्राइमरी और ५४७ स्पेशलस्कूल हैं। शिक्षाविभागमें लगभग वार्षिक चार लाख रुपये खर्च होते हैं। स्कूलों और कालेजोंमें प्रधान ये सब

है—पटना कालेज, पटना मेडिकल कालेज, बिहार इनजिनियरिंग स्कूल, बिहार नेशनल कालेज, फोमेल हाई स्कूल और अङ्गरेजोंके लिये सेण्टमेझस् कालेज। पहले ये सब स्कूल और कालेज कलकत्ता विश्वविद्याके अधीन थे, अब पटना विश्वविद्यालयके स्थापित हो जानेसे वहांसे कोई सम्पर्क नहीं रहा।

यहांका जलवायु अति स्वास्थ्यकर है। यहां ४१८१ इञ्चसे अधिक जलपात नहीं होता। तापका पारा ४३.५° (फारेनहीट)से ११०° डिग्री तक ऊपर चढ़ता है।

२ पटना जिलेका सदर। यह अक्षा० २५° ३७' उ० और देशा० ८५° १०' पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। पटना शहरके पूर्व भागमें बांकीपुर है। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। वर्त्तमान पटना शहर शेरशाहसे बसाया गया है। शेरशाह देखो।

डाक्टर बुकनन हैमिल्टन (Dr. Buchanan Hamilton)-ने लिखा है, कि ८१० ई०में पटना शहर कहनेसे वही अंश समझा जाता था जो कोतवालीके अन्तर्गत था। उस समय पटना शहर १६ मुहल्लोंमें विभक्त था और १५ दारोगा शहरका शान्तिरक्षणकार्य चलाते थे। प्रत्येक मुहल्लेके कुछ अंशमें शहर और कुछ अंशमें जलभूमि तथा बागान था। इस हिसाबसे उस समय पटना शहरकी लम्बाई ८ मील और चौड़ाई २ मील थी। सुतरां शहरका परिमाण प्रायः १८ वर्गमील था। अभी पटना शहरकी लम्बाई पूर्वसे पश्चिम तक प्रायः डेढ़ मील और उत्तरसे दक्षिण तक प्रायः ½ मील होगी। बुकननहैमिल्टनके समयमें पटना शहरके निकट जो सब प्राचीन दुर्ग भग्नावस्थामें पड़े थे, वे अभी देखनेमें नहीं आते। जनप्रवाद है, कि वे सब दुर्ग बादशाह औरङ्गजेबके पौत्र आजिमसे बनाये गये थे। किन्तु उक्त दुर्गोंके द्वारदेशस्थित प्रस्तरलिपि देखनेसे जाना जाता है, कि १०४२ हिजरीमें फिरोजजङ्ग खाँसे उनका निर्माण हुआ। अन्यान्य प्राचीन अट्टालिकाओंके मध्य कम्पनीके अमलका अफीमका गुदाम, चावलका गुदाम और कितने प्राचीन इष्टकालय विद्यमान हैं। गवमेंटका जो प्राचीन गोला-घर है उसके निर्माणके विषयमें कुछ विशेषत्व दीख पड़ता है। घरकी गठनप्रणाली बहुत कुछ मधुमक्खीके छत्तेकी तरह है। दो सीढ़ी बाहरकी तरफसे छत तक लगी हुई है। इसमें ऐसा बन्दोबस्त है, कि अनाज छतके ऊपरसे घरके भीतर गिरा दिया जाता है और उसे बाहर निकालनेके लिये नीचे कुछ छोटे छोटे द्वार बने हुए हैं। इस घरकी दीवार प्रायः २१ फुट मोटी है। दुर्भिक्षनिवारणके लिये १७८४ ई०में कम्पनीसे यह गोला-घर बनाया गया था। इसके मध्य शब्द करनेसे उसकी प्रतिध्वनि स्पष्ट सुनी जाती है।

पटना शहरसे प्रायः ३ मील पूर्व गुलजारबाग नामक स्थानमें सरकारी अफीमका कारखाना है। इसके पास ही दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं। इनमेंसे एक मुसलमानोंकी मसजिदरूपमें और दूसरा हिन्दूदेवमन्दिरके रूपमें व्यवहृत होता है।

पटना शहरका पश्चिमी द्वारदेश दानापुरसे प्रायः १२ मील दूर है। शहरके दक्षिण मारूफगञ्ज नामक स्थानमें, जो पहले पोड़वी विद्रोहियोंसे अधिकृत हुआ था, अभी एक बाजार बसाया गया है। इसके सन्निकटस्थ रोमनकैथलिक गिरजाके दूसरे पार्श्वमें मोरकासिम कर्तृक निहत अङ्गरेजोंका कब्रस्तान है।

पश्चिम शहरतलीमें शाह अर्जनीकी मसजिद मुसलमानोंकी उपासनाका प्रधान स्थान है। शाह अर्जनीका १०३२ हिजरीमें देहान्त हुआ। चैत्रमासमें यहां तीन दिन तक मेला लगता है जिसमें प्रायः ५००० यात्रियोंका समागम होता है। इस कब्रसे कुछ दूर करबला है जहां मुहर्रमके समय प्रायः लाख मुसलमान एकत्रित होते हैं। इसके पास ही एक पुष्करिणी है, जिसे कहते हैं, कि एक साधुने खुदवाया था। यहां प्रति वर्ष अनेक यात्री स्नान करने आते हैं। शेरशाहकी मसजिद शहर भरमें सबसे प्राचीन अट्टालिका है और गिल्पने पुस्तके सम्बन्धमें मालिक खाँका मदरसा सर्वोत्कृष्ट है। पीरबाहरकी कब्र शहरके मध्य एक प्रसिद्ध उपासनाका स्थान है। यह कब्र ढाई सौ वर्ष पहले की बनी हुई थी। यहां हरमन्दिर नामक सिखोंका एक प्रसिद्ध उपासना-स्थान है जो सिख लोगोंके दशम गुरु गोविन्द सिंहका जन्मस्थान कह कर विख्यात है। १७६० ई०में यहां बिहारके

मुसलमान शासनकर्त्ताओंका चहालसातुन नामक एक विख्यात राजप्रासाद था। १८१२ ई० तक भी इसका ध्वंसावशेष देखा गया था।

वाणिज्य—शहरके मध्य मारूफगञ्ज, मनसुरगञ्ज, किला, मिरचाईगञ्ज, महाराजगंज, चाटकापुर, अला-वक्सपुर, गुलजारबाग और कर्णलगञ्ज ये सब स्थान व्यवसायके प्रधान अड्डे हैं। इन सब स्थानोंमेंसे मारूफगञ्ज बाजार ही सबसे बड़ा है। इस प्रदेशके सभी प्रकारके तैलबीजकी इस बाजारमें आमदनी होती है। जलपथकी सुविधा रहनेके कारण बिहारके उत्तर भाग और उत्तर-पश्चिम प्रदेशसे बहु पण्यद्रव्य मारूफ-गञ्ज, कर्णलगंज और गुलजारबागके बाजारमें आते हैं। मनसुरगंजका बाजार मारूफगंजके बाजारसे बड़ा नहीं होने पर भी शाहाबाद, आरा और पटना जिलेमें उत्पन्न शस्यादि गाड़ी पर लाद कर यहां लाये जाते हैं। पटनेमें प्रधानतः कपासद्रव्य, तेलबीज, मजीमट्टी, खड़ी, लवण, चीनी, गेहूं, दाल, चावल और अन्यान्य शस्यादि-की आमदनी होती है।

ऐतिहासिक विवरण पाटलिपुत्र शब्दमें देखो।

पटना—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक क्षुद्र राज्य। यह अक्षा० २०° ८′ से २१° ४′ उ० और देशा० ८२° ४१′ से ८३° ४०′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण २३९९ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखसे ऊपर है। इसके उत्तर और पश्चिमसे बड़सम्बर और खड़ियार सामन्तराज्य तथा दक्षिण और पूर्वमें कलहन्डी और सोनपुर राज्य है। यह राज्य तरङ्गायित समतल है, बीच बीचमें पहाड़ है। इसका उत्तरी भाग उच्च गिरि-मालावेष्टित है। यहांके महाराज अपनेको मैनपुरीके निकटवर्त्ती गड़सम्बरके राजपूत राजवंशीय बतलाते हैं। उक्त राजवंशके शेष राजा हिताम्बरसिंह दिल्ली-पतिके विरुद्ध खड़े हुए और मारे गये। उनकी स्त्री इस पटना राज्यमें भग आई। यहां उनके एक पुत्रने जन्म-ग्रहण किया जिसका नाम रामदेव रखा गया। उस समय यह राज्य आठ गढ़ोंमें विभक्त था। कोलागढ़के सरदारने रामदेवको गोद लिया और पीछे उसीको अपना राज्य प्रदान किया। उस समय ऐसा नियम था कि आठ गढ़ोंके प्रत्येक सामन्त एक एक दिन करके समस्त राज्यका शासन कर सकते थे। जब रामदेवकी बारी आई, तब उन्होंने शेष सामन्तोंको मरवा कर आठों गढ़ पर अधिकार जमाया और महाराजकी उपाधि ग्रहण की। पीछे रामदेव उत्कलकी राजकन्याका पाणिग्रहण करके और भी शक्तिशाली हो उठे।

रामदेवसे अधस्तन १०वीं पीढ़ीमें वैजलदेवने जन्म लिया। ये स्वयं विद्वान् थे और पण्डितोंका विशेष आदर करते थे। इन्होंने कितने ही संस्कृत ग्रन्थकी रचना कर अपनी विद्यावत्ता दिखलाई है। इनके समयमें पटना राज्य भी बहुत विस्तृत था। उत्तरमें फुलझर और माङ्ग-गढ़, पूर्वमें गाङ्गपुर, बामड़ा और विन्ध्रानवगढ़ तथा पश्चिममें खरियार राज्य यहां तक कि महानदीके वाम-कूलवर्त्ती भूभाग, राइराखोल और रतनपुर तकके भाग पटना राज्यके अन्तर्गत थे। फुलझर दुर्गदुर्ग बनाया गया। वैजलके पौत्र राजा नरसिंहदेवने अपने अधिकारयुक्त ओङ्गनदीके उत्तरकूलवर्त्ती समस्त राज्य अपने छोटे भाई बलरामदेवको अर्पण किया। इस बलरामदेवने सम्बलपुर नगर बसाया। पीछे नाना स्थान इनके अधिकारयुक्त हो जानेसे धीरे धीरे सम्बलपुर ही सर्वप्रधान गिना जाने लगा। इसी समयसे पटनेके अधःपतनका सूत्रपात हुआ। नरसिंहदेवके बाद कई पीढ़ी तक दूसरे गढ़के सरदार लोग पटनाराजकी प्रधा-नता स्वीकार करते थे। धीरे धीरे शेष सभी गढ़ोंसे पटना नितान्त हतश्री हो गया है।

यहां धान, उरद, सरसों, ईख और कपासकी खेती होती है। पटना शहरके चारों ओर प्रायः २६ मील तक विस्तृत वन है जहां तरह तरहके पेड़ पाये जाते हैं। इस वनमें बड़े बड़े बाघ, भालू, चीते और महिष मिलते हैं।

१८७१ ई०में पटनाराजकी मृत्युके बाद वृटिश-गवर्मेण्ट उनके नाबालिग पुत्रके अभिभावक नियुक्त हुई। वृटिश-गवर्मेण्टके यत्नसे इस राज्यकी यथेष्ट उन्नति हुई। १८७८ ई०में महाराजाके मरनेके बाद उनके भतीजे रामचन्द्र सिंह गद्दी पर बैठे। इन्होंने १८७२ ई०में जन्म ग्रहण किया था और राजकुमार कालेजमें

पढ़ना लिखना माखा था। १८८५ ई०में इन्होंने राज-प्रासादके भीतर गोलीसे अपनी स्त्रीको मार डाला और आप भी उसी समय मर गये। उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण गवर्मेण्टकी ओरसे उनके चाचा लाल-दलगंजन सिंह राज्याधिकारी ठहराये गये। गव-मेंण्टने उनकी देखरेख करनेके लिए एक दीवान नियुक्त किया। राज्यकी आमदनी २०००००) रु०की है। यहां दो मिडिल स्कूल और ३७ प्राइमरी स्कूल हैं। यहां दातव्य चिकित्सालय भी खुला है।

पटनाखाल (Patna Canal)—गया जिलेके अन्तर्गत एक खाल। यह वरुणग्रामसे ४ मील दूर, जहां सोन-नदीका बांध (Anicut) पूर्व और पश्चिम खालको विभिन्न करता है, वहां पूर्वखाल (Eastern Canal)-से पटना-खाल निकली है; इसकी लम्बाई ७८ मीलके करीब है।

पटनिया (हिं० वि०) १ वह वस्तु जो पटना नगर या प्रदेशमें बनी हो। २ पटना नगर या प्रदेशसे सम्बन्ध रखनेवाला।

पटनी (हिं० स्त्री०) १ कोठेके नीचेका कमरा, पटौंहा। २ जमींदारीका वह अंश जो निश्चित लगान पर सदाके लिये बन्दोबस्त कर दिया गया हो। ३ खेत उठानेकी वह पद्धति जिसमें लगान और किसान या असामीके अधि-कार सदाके लिये निश्चित कर दिये जाते हैं। ४ कोई चीज रखनेको दो खूंटियोंके सहारे लगाई हुई पटरी।

पटपट (हिं० स्त्री०) १ हलकी वस्तुके गिरनेसे उत्पन्न शब्द-की बार बार आवृत्ति। (क्रि० वि०) २ लगातार पट ध्वनि करता हुआ, 'पटपट' आवाजके साथ।

पटपटाना (हिं० क्रि०) १ भूख प्यास या सरदी गरमीके मारे बहुत कष्ट पाना, बुरा हाल होना। २ किसी वस्तुसे पटपट ध्वनि निकलना। ३ पश्चात्ताप करना, खेद करना, शोक करना। ४ किसी चीजको बराबर पीट कर 'पट-पट' शब्द उत्पन्न करना।

पटपर (हिं० वि०) १ समतल, बराबर, चौरस। (पु०) २ नदीके आसपासकी वह भूमि जो बरसातके दिनोंमें प्रायः सदा डूबी रहती है। इसमें केवल रब्बीकी खेती की जाती है। ३ ऐसा जङ्गल जहां घास, पेड़ और पानी तक न हो, अत्यन्त उजाड़ स्थान।

पटबंधक (हिं० पु०) एक प्रकारका रेहन। इसमें महा-जन या रेहनदार रेहन रखी हुई सम्पत्तिके लाभमेंसे सूद लेनेके बाद जो कुछ बच जाता है उसे मूलऋणमें मिनहा करता जाता है। इस प्रकार जब सारा ऋण परिशोध हो जाता है, तब सम्पत्ति उसके वास्तविक स्वामी को लौटा देते हैं।

पटबीजना (हिं० पु०) खद्योत, जुगनू।

पटवेकर—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत सतारा, पाटन और शोलापुरवासी एक जाति। प्रायः दो सौ वर्ष पहले ये लोग कार्य-उपलक्षमें गुजरातसे उक्त स्थानोंमें आ कर बस गये। इनके मध्य कवाड़े, कुतारे, पोवर, शालगर और शिरालकर नामक कई एक पदवियां और भारद्वाज, काश्यप, गौतम और नारदिक आदि चार गोत्र देखे जाते हैं। एक पदवी और समगोत्र होनेसे विवाह नहीं होता। ये लोग देखनेमें उच्चश्रेणीके हिन्दू सरीखे होते हैं। पुरुष सिर पर शिखा और जूड़ा रखता है, लेकिन दाढ़ी सभी मुड़वा लेते हैं। साधारणतः ये लोग घरमें गुजराती और बाहरमें मराठी भाषा बोलते हैं। निरामिषाशी होने पर भी ये लोग केवल पूजोत्सवमें एक दिन भेड़का मांस खाते हैं, अधिकांश ही मद्यपायी हैं। पुरुष कुरता, टोपी, जूता आदि पहनते हैं और स्त्रियां मराठी रमणीकी तरह वेशभूषा करती हैं तथा मांगमें सिन्दूर लगाती हैं। इनमें-से प्रायः सभी सबल, सहिष्णु, कर्मठ और शान्तिप्रिय होते हैं। रेशमकी पट्टी, पालकी, अश्वसज्जा और आभूषण आदि बांधनेके लिये नानावर्णोंमें रेशम रंगाना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये इन सब द्रव्योंको ले कर निकटवर्त्ती स्थानोंमें बेचनेके लिये निकलते हैं। ये लोग स्थानीय सभी देव देवियों और ब्राह्मणोंकी उपास्य देवदेवियोंकी पूजा करते हैं। तुलजापुर-की जगदम्बादेवी ही इनकी कुलदेवी हैं। ग्रामस्थ ब्राह्मण ही इनका पौरोहित्य करते हैं। जो ब्राह्मण इनके धर्मोपदेष्टा हैं वे 'गोपालनाथ' नामसे पूजित होते हैं। विधवा-विवाह और बहुविवाह इनमें प्रचलित है। ये लोग शवदाह करते हैं। सामाजिक विवाद विसम्वाद-की स्वजातीय पञ्चायतसे ही निष्पत्ति हुआ करती है।

पटवेगार—१ बम्बई प्रदेशवासी मुसलमान-जाति। रेशमका

फुंदना, धागा आदि बनाना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। ये लोग पहले हिन्दू थे। पीछे औरङ्गजेबके राजत्वकालमें इसलाम धर्ममें दीक्षित हुए। स्त्री और पुरुषोंकी वेशभूषा प्रायः पटवेकरी-सी होती है। फर्क इतना ही है, कि ये लोग दाढ़ी रखते हैं तथा खूब परिष्कार और परिच्छन्न रहते हैं। आचार व्यवहार प्रायः साधारण मुसलमान सरीखा होता है। ये लोग समान अथवा निम्न श्रेणीके मुसलमानोंमें विवाह शादी करते हैं। सभी हनफी शाखाभुक्त सुन्नी सम्प्रदायी मुसलमान हैं। काजीको सभी खातिर करते हैं। विवाह और मृत्युमें काजी आ कर याजकता करते हैं। इस जातिका कोई भी मुसलमान कलमा नहीं पढ़ता। हिन्दूधर्मके ऊपर इनकी पूरी श्रद्धा है। हिन्दू देव-देवियोंकी पूजा, हिन्दूके पर्वमें योगदान और हिन्दू-उपवासादिके पारण आदि विषयोंमें इनका लक्ष्य है।

२ उक्त जातिकी प्राचीन हिन्दू शाखा। रेशमका फुंदना आदि बनाना इनका भी व्यवसाय है। बागलकोटवासी पटवेगारोंका कहना है कि ये लोग भी एक ही समय गुजरात से यहां आ कर बस गए हैं। प्रति दो वर्षमें बड़ोदासे एक भाट (घटक) आ कर इनकी वंशतालिका लिख जाते हैं। लिङ्गायतोंके ऊपर इनकी उतनी श्रद्धा नहीं है। ये लोग शिखा रखते और जनेऊ पहनते हैं। तुलसीपत्रमें इनकी विशेष भक्ति है, ग्रामके नामसे ही इन्हें पदवी प्राप्त होती है और उस ग्रामके नामसे ही इनकी विभिन्न शाखायें जानी जा सकती हैं। इनके मध्य भर्त्तारगड़गण काश्यपगोत्रमें कठवशाखासम्भूत हैं। इसी प्रकार दाजीगण पारिख्रगोत्रमें दाजीशाखा, जालनापूकरगण गोकुल गोत्रमें रूपेकतरशाखा, कलवर्गीकारगण गोकुलगोत्रमें गम्भवशाखा और मालजीगण गौतमगोत्रमें सोनेकतरशाखासम्भूत हैं। इनके मध्य एक गोत्रमें विवाह प्रचलित होने पर भी पात्र पात्रीका विभिन्न शाखाभुक्त होना जरूरी है। रङ्गारी जातिके साथ इनका आचारगत कोई वैलक्षण्य नहीं देखा जाता। खाद्यादि रीति नीति और परिच्छद दोनोंका ही एक-सा है, रेशम रंगाना इनका जातिगत व्यवसाय होने पर भी इनमेंसे किसी किसीने रेशमी वस्त्र बुनना सीखा है।

ये लोग अपनेको क्षत्रियसम्भूत बतलाते हैं, अन्य किसी जातिको ये अपनी मण्डलीमें लाना नहीं चाहते। स्वजाति छोड़ कर अन्य किसीके हाथका ये लोग अन्नादि ग्रहण नहीं करते हैं। इस प्रकार सामाजिक दृढ़ता रहते भी लोगोंने इन्हें तन्तुवायश्रेणीभुक्त किया है। तुलजापुरकी अम्बाबाई ही इनकी उपास्य देवी हैं। इनका कहना है, कि जब परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर डाला, तब हिङ्गलाजदेवीने आश्रय दे कर उनकी रक्षा की थी। उक्त अम्बाबाई उनकी अंशसम्भूता हैं। अम्बाबाई छोड़ कर पण्ढरपुरकी विठोवा मूर्त्तिकी पूजा करनेके लिये ये प्रायः शोलापुर जाया करते हैं। प्रत्येक मनुष्यके घर गृहदेवताके रूपमें जक्षमादेवी अवस्थान करती हैं। जक्षमादेवीकी पूजार्थ ये लोग उन्हें दूध और गुड़ चढ़ाते हैं। किन्तु पक्की रसोई चढ़ानेका इन्हें अधिकार नहीं है। हिन्दू-पर्वमें ये लोग उपवास और पारणादि करते हैं। शिवचतुर्थी और आषाढ़मासकी शुक्ला एकादशी इनकी पुण्यतिथि है। शङ्कराचार्यको ये अपना गुरु मानते हैं। इनके सिवा इनके एक और भी गुरु वा धर्मोपदेष्टा हैं जो जातिके भाट हैं। शिष्यगण उनकी खातिर करते और भेंटमें रुपये पैसे देते हैं। ये लोग भविष्यद्वक्ताकी बात पर विश्वास करते और विवाहादि कार्यमें इनका परामर्श ले कर शुभदिनका निर्णय करते हैं।

बालकोंका ५से १० वर्षके भीतर जनेऊ होता है। अन्यान्य सभी क्रियाकलाप रङ्गारोंके जैसे होते हैं। इनके मध्य बाल्यविवाह प्रचलित है। स्त्रियां जब विधवा होती हैं, तब वे केवल एक बार विवाह कर सकती हैं। किन्तु एक स्वामीके जीवित रहते वे अन्य स्वामी ग्रहण नहीं कर सकतीं। पुरुषोंके मध्य बहुविवाह देखा जाता है। विवाहकालमें पहले वर और कन्या दोनोंको एक गलीचेके ऊपर आमने सामने बैठाते हैं और सामनेमें एक सफेद चादर बिछा देते हैं। पीछे पुरोहित और समवेत भद्रलोकगण आ कर वर और कन्याको धान्यसे आशीर्वाद देते हैं। पीछे कन्याकर्त्ता कन्यादान करता है। इस समय नवग्रह-पूजा करनी होती है। विवाह हो जाने पर कन्याका पिता जब यौतुक देता है, तब

उपस्थित बन्धुबान्धव और कुटुम्बगण भी यथासाध्य यौतुक देते हैं। वर कन्याको ले कर जब घर पहुंचता है, तब वहां ५ सधवाओंके साथ स्वामीको भोजन कराना पड़ता है।

ये लोग शवदाह करते हैं। जो उत्तराधिकारी है वह एक रुपये और ५ पैसे कांस्रगव्याके सामने रखता है। दाहके बाद उसी स्थान पर वे पिण्डदान करते हैं। जो सब हड्डी जल कर खाक नहीं होती, तीसरे दिन मुखाग्निका अधिकारी वहां जा कर उन हड्डियोंको चूर करके जलमें फेंक देता है। ग्यारहवें दिन बन्धुओंको भोज देना होता है। मृताशौचमें ये लोग अपवित्र रहते हैं, इस कारण तेरहवें दिन कोई कार्य नहीं करते। सामाजिक विवादकी निष्पत्ति पञ्चायतसे होती है।

बेलगाम जिलावासियोंमें मधर चौधरी, नायकवाड़, पवार, शिरोलकर, सातपुत और रङ्गराज आदि उपाधियां देखी जाती हैं। ये लोग आपसमें भोजन और पुत्रकन्यादिका आदानप्रदान करते हैं। देशस्थ ब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। सभी अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं। पुत्रकी उमर दश वर्षकी होनेसे ही उसका उपनयन होता है। इस समय पुरोहित यथाविहित होम और मन्त्रपाठ करते हैं। मछली, मांस, मद्य और धूमपानका पुरुषमात्र ही व्यवहार करते हैं।

विवाहके पहले एक दिन 'गोन्दल' नृत्य होता है। पीछे देवोद्देशसे ब्राह्मण और जातिकुटुम्बको भोजन कराते हैं। इस दिन ग्रामको उपस्थित कुटुम्बगण वर और कन्याको ग्रामस्थ देवमन्दिरमें ले जाते हैं। यहां कन्याका पिता वरकी पूजा करता है और कन्याकी माता वरके दोनों पैरों पर जल चढ़ाती है। पीछे पिता पैरोंको रगड़ता और अपने अंगरखेसे जल पोंछ डालता है। तदनन्तर उपस्थित व्यक्तियोंको पान और सुपारी दे कर विदा करना होता है। दूसरे दिन शुभलग्नमें सवेरे अथवा गोधूली लग्नमें विवाहकार्य सम्पन्न हो जाता है। विवाहके दूसरे दिन कन्याकर्त्ता वरयात्रियोंको एक भोज देता है। इसमें विधवाविवाह और बहुविवाह प्रचलित है। ये लोग शवदाह करते हैं और १० दिन तक मृताशौच मानते हैं। खण्डोबा, महालक्ष्मी, जलमा इनके उपास्य देवता हैं। बेलगामके पटवेगार रेशमके सिवा रुईका भी व्यवसाय करते हैं।

धारवाड़ जिलावासियोंके साथ इनका अनेक विषयोंमें सादृश्य है। ये लोग खत्रि वा क्षत्रिय कहलाते हैं। भरद्वाज, जमदग्नि, काश्यप, कात्यायन, वाल्मीक, वशिष्ठ और विश्वामित्र आदि इनके गोत्र देखे जाते हैं। आश्विनमासकी शुक्लप्रतिपद्को कदलीपत्रके ऊपर मट्टी बिछा कर उसमें पांच प्रकारके बीज बोते और उस पत्रको गृहदेवताके सामने रखते हैं। उक्त मासकी शुक्लाष्टमीमें दुर्गादेवीको एक छागबलि दी जाती है। दशमीके दिन जब उस पञ्चशस्यसे कोंपल निकलती है, तब स्त्रियां उन्हें ले कर बड़ी धूमधामसे गाती बजाती हुई नदी अथवा किसी गड्ढेके जलमें उन्हें फेंक देती हैं। दोलपूर्णिमाके समय रमणियां दल बांध कर मन्दिर जातीं और वहां नंगी हो कर देवार्चना करती हैं। इन लोगोंमें विधवा-विवाह निषिद्ध है।

पटभाच (सं० पु०) प्रेक्षणसाधन यन्त्रभेद, प्राचीनकालका एक यन्त्र जिससे आंखको देखनेमें सहायता मिलती थी।

पटभेदन (सं० क्ली०) पुटभेदन, नगर।

पटम (हिं० वि०) वह जिसकी आँखें भूखसे पटपटा या बैठ गई हों, जो भूखके मारे अन्धा हो गया हो।

पटमञ्जरी (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक शुद्ध रागिनी जो हिंडोल रागकी स्त्री है। हनुमत्के मतसे इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—प ध नि सा रे ग म प। इसका गानसमय १ दण्डसे १० दण्ड तक है। कोई कोई इसे श्रीरागकी रागिनी मानते हैं। इसका गानसमय एक पहर दिनके बाद है।

पटमण्डप (सं० पु०) पटानां वस्त्राणां मण्डपः। पटकुटी, वस्त्रगृह, तंबू, खेमा।

पटमय (सं० क्ली०) पट-मयट्। १ वस्त्रगृह, तंबू। २ शाटी, लहंगा।

पटर (सं० त्रि०) पट बाहुलकात् अरम्, वा पटं वाति रा-क। १ गतिशील। २ वस्त्रदायक।

पटरक (सं० पु०) पटर-स्वार्थे कन्। गुन्द्रतृण, पेटर, गोंदपटेर।

पटरा (हिं॰ पु॰) १ तख्ता, पल्ला, काठके ऐसे भारी टुकड़ों जिसके चारों पहल बराबर या करीब करीब बराबर हों अथवा जिसका घेरा गोल हो, 'कुंदा' कहते हैं। कम चौड़े पर मोटे लम्बे टुकड़ेको 'बल्ला' या 'बल्ली' कहते हैं। जो बहुत ही पतली बल्ली है वह छड़ कहलाती है। २ धोबीका पाट। ३ हेंगा, पाटा।

पटरानी (हिं॰ स्त्री॰) किसी राजाकी विवाहिता रानियोंमें सर्वप्रधान, राजाकी सबसे बड़ी या मुख्य रानी।

पटरी (हिं॰ स्त्री॰) १ काठका पतला और लम्बोतरा तख्ता। २ लिखनेकी तख्ती, पटिया। ३ नरिया जमानेका चौड़ा खपड़ा। ४ वे रास्ते जो नहरके दोनों किनारों हो कर गये हों। ५ एक प्रकारकी पट्टोदार चौड़ी चूड़ी जो हाथमें पहनी जाती है और जिस पर नक्काशी बनी होती है। ६ जन्तर, चौकी, तावीज। ७ उद्यानमें क्यारियोंके इधर उधरके तंग रास्ते जिनके दोनों ओर सुन्दरताके लिये घास लगा दी जाती है, रविश। ८ सुनहरे या रुपहले तारोंसे बना हुआ वह फीता जिसे साड़ी, लहंगे या किसी कपड़ेकी कोर पर लगाया जाता है। ९ सड़कके दोनों किनारोंका वह कुछ ऊंचा और कम चौड़ा भाग जो पैदल चलनेवालोंके लिये होता है।

पटल (सं॰ क्ली॰) पटं विस्तृतं लाति पट-ला-क, वा पटतीति पट-कलच् (कृपादिभ्यश्चित्। उण् १।१०८) १ छप्पर, छान, छत। २ नेत्ररोग, मोतियाबिन्द नामक आँखका रोग, पिटारा। ३ परिच्छद, लाव-लश्कर, लवाजमा। ४ पिटक, पुस्तकका भाग या अङ्गविशेष। ५ तिलक, टीका। ६ समूह, ढेर, अंबार। ७ दृष्टिका आवरक, आंखके पर्दे। माधवकरके निदानमें लिखा है, कि चक्षुमें ४ पटल हैं, प्रथम वाह्यपटलरस और रक्ताश्रय, द्वितीय मांससंश्रय, तृतीय मेदसंश्रित तथा चतुर्थ कालकास्थिसंश्रित।

सुश्रुतके मतसे पटल पांच हैं—वाह्यपटल अथवा प्रथम पटल, यह तेज और जलाश्रित है। द्वितीय मांसाश्रित, तृतीय मेद-आश्रित, चतुर्थ अस्थि-आश्रित और पञ्चम दृष्टिमण्डलाश्रित।

सुश्रुतमें लिखा है, कि दृष्टि पञ्चभूतके गुणसे उत्पन्न हुई है। इसका वाह्यपटल अव्ययतेजसे आवृत है। दोषसमूह विगुण हो कर सभी शिराओंके अभ्यन्तर गमन करता है और सभी रूप अव्यक्तभावमें दृष्ट होते हैं। विगुणित दोष जब द्वितीय पटलमें रहता है, तब दृष्टि विकृति होती है। दोषके तृतीय पटलमें रहनेसे सभी वस्तु विकृतभावमें दिखाई देती हैं और चतुर्थ पटलमें रहनेसे तिमिररोग होता है। (सुश्रुत उत्तरत॰ ८ अ॰)

भावप्रकाशके मतसे प्रथम पटलमें दोषका सञ्चार होनेसे कभी अस्पष्ट, कभी स्पष्टभावमें दिखाई पड़ता है। प्रथम पटल शब्दसे चतुर्थ पटल समझना चाहिए, वाह्य पटल नहीं। दृष्टिके अभ्यन्तरस्थ पटलमें दोष सञ्चित हो कर पर्यायक्रमसे एक एक पटल प्राप्त होता है। दोषके द्वितीय पटलाश्रित होनेसे नाना प्रकारका दृष्टिविभ्रम होता है, दूरस्थित वस्तु निकटमें और निकटस्थित वस्तु दूरमें दिखाई देती है। बहुत कोशिश करने पर भी सूईका छेद देखनेमें नहीं आता।

तृतीय पटलमें दोष अधिष्ठित होनेसे ऊपरकी ओर दिखाई देता और नीचेकी ओर कुछ भी नहीं। ऊपरकी ओर स्थूलकाय पदार्थ वस्त्रावृतकी तरह मालूम पड़ते हैं और एक वस्तु नाना रूपोंमें दिखाई पड़ती है।

कुपित दोषके वाह्यपटलमें रहनेसे दृष्टिरोध होता है जिसे कोई तिमिर और कोई लिङ्गनाश कहते हैं।

अन्यान्य विवरण नेत्ररोगमें देखो।

पाटयति दीप्यते यः, पट-अलच्। (पु॰ स्त्री॰) ८ ग्रन्थ, पुस्तक। ९ वृक्ष, पेड़। १० कासमर्द वृक्ष, कसौंदा। ११ कार्पासवृक्ष, कपास। १२ पटलवृक्ष, परवलकी लता। १३ आवरण, पर्दा। १४ परत, तह, तबक। १५ पार्श्व, पहल। १६ लकड़ी आदिका चौरस टुकड़ा। पटरा, तख्ता।

पटलक (सं॰ पु॰) १ राशि, स्तूप, समूह, ढेर। २ आवरण, पर्दा, झिलमिली, बुरका। ३ कोई छोटा सन्दूक।

पटलप्रान्त (सं॰ क्ली॰) पटलस्य छदिसः प्रान्तं। गृहचालिकाका अन्तभाग, छप्परका सिरा या किनारा। पर्याय—वलीक, नीव्र।

पटली (सं० स्त्री०) पटल-ङीष्। छप्पर, छान, छत।

पटव (सं० पु०) जनपदभेद, एक देशका नाम।

पटवर्द्धन—दाक्षिणात्यवासी महाराष्ट्रीय ब्राह्मणका गोत्रभेद। इनके मध्य हारीत, शाण्डिल्य, भरद्वाज, गौतम, काश्यप आदि चार गोत्र देखे जाते हैं। प्राचीन शिलालिपिमें यह वंश पट्टवर्द्धिनी नामसे उल्लिखित है।

पटवा (हिं० पु०) १ वह जो रेशम या सूतमें गहने गूथता हो, पटहार। २ नारंगी रंगका एक प्रकारका बैल। यह बैल मजबूत और तेज चलनेवाला होता है।

पटवाद्य (सं० पु०) एक प्रकारका प्राचीन बाजा जो झांझके आकारका होता था और जिससे ताल दिया जाता था।

पटवाना (हिं० क्रि०) १ पाटनेका काम दूसरेसे कराना। २ आच्छादित कराना, छत डलवाना। ३ गर्त्त आदिको पूर्ण कर आस पासकी जमीनके बराबर कराना, भरवा देना। ४ पानीसे तर कराना। ५ दाम दिलवा देना, चुकवा देना। ६ शान्त करना, मिटाना, दूर कर देना।

पटवाप (सं० पु०) पट उप्यते प्राचुर्येण दीयते यत्र। पटवप-घञ्। वस्त्रगृह, तंबू, खेमा।

पटवारगरी (हिं० स्त्री०) १ पटवारीका काम। २ पटवारीका पद।

पटवारी (हिं० पु०) १ वह छोटा कर्मचारी जो गांवकी जमीन और उसके लगानका हिसाब-किताब रखता हो। (स्त्री०) २ कपड़े पहनानेवाली दासी।

पटवास (सं० पु०) पटस्य पटनिर्मितो वा वासः। १ वस्त्रगृह, तम्बू, खेमा। २ शारी, लहंगा। पटं वासयति सुरभि करोति-पट-वास-अण्। ३ वस्त्रसुरभिकारण द्रव्यभेद, वह वस्तु जिससे वस्त्र सुगन्धित किया जाय। वृहत्संहितामें इसको प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार लिखी है—त्वक् और उशीरपत्रके समान भागमें उसका अर्द्धक भाग छोटी इलायची डाल कर उसे चूर्ण करते हैं। पीछे उसे मृगकपूरमें प्रबोधित करनेसे उत्कृष्ट गन्धद्रव्य प्रस्तुत होता है, इसीका नाम पटवास है।

पटवासक (सं० पु०) पटो वास्यतेऽनेनेति पट-वास-घञ्, ततः स्वार्थे कन्। पटवासचूर्ण, वस्त्र बसानेवाली सुगन्धियोंका चूर्ण। इसका नामान्तर पिष्टात है।

पटवेश्मन् (सं० क्लो०) पटनिर्मितं वेश्म। वस्त्रगृह, तंबू, खेमा।

पटव्य (सं० त्रि०) पटवे हितं पटु-यत्। (तस्मै हितं। पा ५।१।५) पटु विषयमें हितकर।

पटसन (हिं० पु०) १ एक प्रसिद्ध पौधा जिसके रेशेसे रस्सी, बोरे, टाट और वस्त्र बनाए जाते हैं। यह गरम जलवायुवाले प्रायः सभी देशोंमें उत्पन्न होता है। विशेष विवरण पाट शब्दमें देखो। २ पटसनके रेशे, पाट, जूट।

पटसाली (हिं० पु०) धारवाड़ प्रान्तको जुलाहोंकी एक जाति जो रेशमी वस्त्र बुनती है।

पटहंसिका (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह रागि १७ दण्डसे २० दण्ड तकके बीचमें गाई जाती है।

पटह (सं० पु० क्लो०) पटेन हन्यते इति पट-हन् ड, वा पटत् शब्दं जहाति पटत्-हा-ड निपातनात् साधुः। १ आनकवाद्य, दुंदुभी, नगाड़ा। २ बड़ा ढोल। ३ समारम्भ। ४ हिंसन।

पटहघोषक (सं० पु०) वह मनुष्य जो ढोल बजा कर घोषणा करता है।

पटहता (सं० स्त्री०) पटहका भाव या ध्वनि।

पटहभ्रमण (सं० त्रि०) जो ग्रामवासियोंको एकत्रित करनेके लिये ढोल बजाता फिरता है।

पटहार (हिं० त्रि०) १ जो रेशमके डोरे बनाता हो, रेशमके डोरोंसे गहना गूंथनेवाला। (पु०) २ रेशम या सूतके डोरेसे गहने गूंथनेवाली एक जाति, पटवा।

पटहारिन (हिं० स्त्री०) १ पटहारकी स्त्री। २ पटहार जातिकी स्त्री।

पटा (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी लोहेकी फट्टी जो दो हाथ लम्बी और किर्चके आकारकी होती है। इससे तलवारकी काट और बचाव सीखे जाते हैं। २ चटाई। ३ चौड़ी लकीर, धारी। ४ लेनदेन, सौदा। ५ लगामकी सुदरी। ६ अधिकारपत्र, सनद, पट्टा।

पटाई (हिं० स्त्री०) १ पटानेकी क्रिया या भाव, सिंचाई, आबपाशी। २ सिंचाईकी मजदूरी। ३ पाटनेकी क्रिया या भाव। ४ पाटनेकी मजदूरी।

पटाक (सं० पु०) पटति गच्छतीति पट-आक निपातनात् साधुः। पक्षिविशेष, एक चिड़ियाका नाम।

पटाक (हिं० पु०) किसी छोटी चीजके गिरनेका शब्द।

पटाका (सं० स्त्री०) पटाक-टाप्। पताका, झंडा।

पटाका (हिं० पु०) १ पट या पटाक शब्द। २ पट या पटाक शब्द करके छूटनेवाली एक प्रकारकी आतशबाजी। ३ पटाकेकी ध्वनि, कोड़े या पटाखेकी आवाज। ४ तमाचा, थप्पड़, चपत।

पटाक्षेप (सं० पु०) रङ्गभूमिमें नाटकके प्रति गर्भाङ्कमें दृश्य परिवर्त्तनके लिये जो निर्दिष्ट चित्रपट रहता है, उसका नाम क्षेपण हैं।

पटाखा (हिं० पु०) पटाका देखो।

पटाना (हिं० क्रि०) १ पाटनेका काम कराना, गड्ढे आदिको भर कर आस पासकी जमीनके बराबर कराना। २ छतको पीट कर बराबर कराना। ३ छत बनवाना, पाटन बनवाना। ४ बेचनेवालेको किसी मूल्य पर सौदा देनेके लिये राजी कर लेना। ५ ऋण चुका देना, अदा कर देना।

पटापट (हिं० क्रि० वि०) १ निरन्तर पटपट शब्द करते हुए, लगातार बार बार 'पटध्वनि'के साथ। (स्त्री०) २ निरन्तर पटपट शब्दकी आवृत्ति।

पटापटी (हिं० स्त्री०) वह वस्तु जिसमें अनेक रंगोंके फूल पत्ते कढ़े हों, वह वस्तु जो कई रंगसे रंगी हुई हो।

पटार (हिं० स्त्री०) १ पिंजड़ा। २ मञ्जूषा, पेटी, पिटारा। ३ रेशमकी रस्सी या निवार। ४ कनखजूरा।

पटालुका (सं० स्त्री०) पट इव अलतीति पट-अल-उलकात् उक-ततष्टाप्। जलौका, जोंक।

पटाव (हिं० पु०) १ पाटनेकी क्रिया। २ पटा हुआ स्थान। ३ पाटनेका भाव। ४ लकड़ीका वह मजबूत तख्ता जिसे दरवाजेके ऊपरी भाग पर रख कर उसके ऊपर दीवार उठाते हैं, भरेठा। ५ दीवारोंके आधार पर पाट कर बनाया हुआ ऊंचा स्थान, पाटन।

पटि (सं० स्त्री०) पट-इन्। १ पटभेद, कोई छोटा वस्त्र या वस्त्रखंड। २ कुम्भिका, जलकुंभी।

पटिका (सं० स्त्री०) पटि स्वार्थे कन्, ततष्टाप्। १ पटि, वस्त्र, कपड़ा। २ यवनिका, पर्दा।

पटिमन् (सं० पु०) पटोर्भावः पटु पृषोदरादित्वात् इमनिच, (पा ५।१।१२२) पटुत्व।

पटिया (हिं० स्त्री०) १ चिपटा चौरस शिलाखंड, फलक। २ काठका छोटा तख्ता, खाट या पलंगकी पट्टी, पाटी। ३ पट्टी, मांग। ४ संकरा और लम्बा खेत। ५ लिखनेकी पट्टी, तख्ती। ६ हेंगा, पाटा। ७ कम्मल या टाटकी एक पट्टी।

पटियाला—१ पञ्जाब गवर्मेण्टके अधीन एक बड़ा देशीय राज्य। यह अक्षा० २९° २३'से ३०° ५५' उ० और देशा० ७४°४०' से ७६°५६' पू०के मध्य अवस्थित है। यह राज्य दो भागोंमें विभक्त है जिनमेंसे बड़ा भाग शतद्रुनदीके दक्षिण भागमें अवस्थित है और दूसरा भाग पहाड़से परिपूर्ण तथा शिमला तक विस्तृत है। भूपरिमाण ५४१२ वर्गमील है। इसमें १४ शहर और ३५८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पन्द्रह लाखसे ऊपर है।

इस राज्यमें शिमलेके निकट स्लेटकी खान और सुबाथुके निकट सीसेकी खान है। प्रतिमासमें प्रायः ४० टन सीसा खानसे निकाला जाता है। इसके अलावा यहां मार्बल और तांबेकी भी खान है।

पटियालाके वर्त्तमान राजा फुलके द्वितीयपुत्र रामके वंशोद्भव और सिधु जाट सम्प्रदायके शिखधर्मावलम्बी हैं। अधिकांश जाटोंकी तरह सिधुवंशधर अपनेको राजपूत तथा जयसलमीर नगरके स्थापयिता जयशालके वंशधर बतलाते हैं। जयशालके पुत्र सिधु और सिधुके पुत्र चौधर थे। इन्होंने पानीपतकी लड़ाईमें बाबरकी सहायता दी थी। इस उपकारमें बाबरने इनके लड़के रवियासके ऊपर एक जिलेका राजस्व वसूल करनेका भार सौंपा था। फुल इन्हींके वंशधर थे। सम्राट् शाह जहान्ने इन्हें चौधरी वा ग्रामका मंडल-पद प्रदान किया था।

राजा फुल ही पटियाला, झिन्द और नाभा राजवंशके आदि पुरुष हैं। रामके पुत्र और फुलके प्रपौत्र आलासिंहने सम्राट्के सेनापतित्वमें नवाब सैयद-आसद-अली खांकी कर्णालके युद्धमें पराम्त किया था। उन्हींके यत्नसे पटियालामें एक दुर्ग बनाया गया। उन्होंने १७६२ ई०में अहमदशाह दुरानीसे पराम्त हो कर उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और उनसे राजाकी उपाधि

ग्राम की। अहमदशाह दुर्रानी जब भारतवर्षसे लौटे, तब आलासिंहने सरहिन्द प्रदेशके मुसलमान शासनकर्त्ताको आक्रमण किया और मार डाला। अहमद शाहने जब दूसरी बार भारतवर्ष पर चढ़ाई की, तब आलासिंहसे कुछ रुपये ले कर उनका अपराध क्षमा कर दिया। आलासिंह पटियालाराज्यका संस्थापन कर के १७६५ ई०में इस धराधामको छोड़ स्वर्गधामको सिधारे।

आलासिंहके उत्तराधिकारी अमरसिंहने अहमद शाह दुर्रानीसे 'राजा-इ-राजगांव बहादुर'की उपाधि पाई। १७७२ ई०में मरहट्टोंने इस राज्य पर आक्रमण करनेका भाव दिखलाया और उसी समय अमरसिंहके भाई विद्रोही हो गये। १७८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। १७८३ ई०में पटियाला राज्यमें घोरतर दुर्भिक्ष और अराजकता फैली। राजाके दीवानके यत्नसे यह घोरतर विपद दूर हुई।

१८०३ ई०में जनरल लेक द्वारा दिल्लीविजयके बाद अंगरेजोंने उत्तर भारतमें एकाधिपत्य लाभ किया। इस समय रणजित्सिंहने पटियाला राज्यको अपने अधीन लानेकी चेष्टा की। किन्तु अंगरेजोंने पटियाला राज्यको सहायता देनेका वचन दे कर रणजित्से सन्धि कर ली।

१८१५ ई०में जब गुर्खा और अङ्गरेजके बीच लड़ाई छिड़ी, तब पटियालाके राजाने अंगरेजोंको खासी मदद पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारके लिए इन्हें कुछ जागीर मिली। १८४५-४६ ई०में जब सिखोंने शतद्रु नदी पार कर अंगरेजी राज्य पर आक्रमण किया, उस समय पटियालाके महाराजने अंगरेजोंका पक्ष लिया था। १८५७ ई०के गदरमें राजाने धन और सेनासे अंग्रेजोंको सहायता की थी। इस कारण अन्यान्य पुरस्कारके सिवा इन्हें झझर राज्यका नर्माल विभाग मिला। १८६२ ई०में नरेन्द्रसिंहके पुत्र महेन्द्रसिंह राजा हुए। इन्हींके समयमें १८८२ ई०को सरहिन्द नहर काटी गई थी जिसमें १ करोड़ २३ लाख रुपये खर्च हुए थे। ये बड़े उदारचेता थे और प्रजाकी भलाईके लिए अनेक कार्य कर गए हैं। १८७३ई०में इन्होंने एक मुश्तसे ७००००) रु० लाहोर विश्वविद्यालयमें दान दिए थे और बङ्गालके दुर्भिक्ष-पीड़ित मनुष्योंकी रक्षाके लिए १० लाख रुपये गवर्मेण्टके अधीन रख छोड़े थे। १८७५ ई०को इन्हींके सम्मानार्थ लार्ड नार्थब्रूकने पटियाला पधार कर 'महेन्द्रकालेज' खोला था। १८७१ ई०में इन्हें जी० सी० एस० आई०की उपाधि मिली थी। १८७६को आप इस धराधामको छोड़ सुरधामको जा बसे। उस समय उनके लड़के राजेन्द्रसिंह केवल चार वर्षके थे। इनके नाबालिग-काल तक कान्सिल आव-रेजेन्सी (Counsil of Regencey)-ने सरदार सरदेवसिंह के० सी० एस० आई०के अधीन राज्य कार्य चलाया। १८९० ई०में राजेन्द्रसिंहने राज्यका कुल भार अपने हाथ ले लिया। इन्होंने १९०० ई० तक सुचारुरूपसे राजकार्य चलाया। पीछे उसी साल उनकी मृत्यु हुई। बादमें उनके लड़के भूपेन्द्रसिंह राजगद्दी पर बैठे। ये ही वर्त्तमान महाराजा हैं। इनकी उपाधि G. C. I. E., G. C. S. I., G. C. B. E. है। ये वृटिश गवर्मेण्टको १०० अश्वारोहीसे सहायता देनेमें बाध्य हैं। इन्हें सरकारकी ओरसे १७ सलामी तोपें मिलती हैं। राज्यकी आमदनी एक करोड़से ज्यादा है। सैन्य संख्या २७५० अश्वारोही, ६०० पदातिक, १०९ कमान और २३८ गोलन्दाज हैं।

शिक्षाविभागमें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। कुछ दिन हुए महाराजाका इस ओर ध्यान आकृष्ट हुआ है। अभी यहां एक शिल्प स्कूल, २१सेकेण्डरी, ८४ प्राइमरी और १२९ एलिमेण्टरीस्कूल हैं। शिक्षाविभागमें प्रति वर्ष ८३३०३ रुपये व्यय होते हैं। स्कूलके अलावा राज्यभरमें ३४ अस्पताल और चिकित्सालय हैं। इनमेंसे १० अस्पतालमें रोगियोंके रहनेके लिये अच्छी व्यवस्था की गई है। इस ओर राज्यकी ओरसे वार्षिक ८७०७६ रु० खर्च होते हैं। यहांका सदर और लेडी डफरिन अस्पताल उल्लेखयोग्य है। १९०६ ई०में नर्सके लिए एक ट्रेनिंग स्कूल खुला है। सब मिला कर राज्यकी आबहवा स्वास्थ्यकर है। वार्षिक वृष्टिपात २५-से४० इञ्च है।

२ पटियाला राज्यके कर्मगढ़ निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा० ३०° ८´से ३०° १७´ उ० और देशा०

७६° १७' से ७६° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७३ वर्गमील और जनसंख्या १२१२२४ है। इसमें पटियाला और सनौर नामके दो शहर तथा १८७ ग्राम लगते हैं।

२ पटियाला राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३०° २०' उ० और देशा० ७६° २८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या पचास हजारसे ऊपर है। राजधानीके उल्लेखयोग्य स्थान ये सब हैं, महेन्द्रकालेज, राजेन्द्र विक्टोरिया डायमण्ड जुबली लाइब्रेरी, राजेन्द्र अस्पताल, मोतीबाग, विक्टोरिया मेमोरियल दीनभवन। यहां हालमें हो म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है।

पटियाली—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत अलीगञ्ज तहसीलका एक प्राचीन नगर। यह एटा नगरसे २२ मील उत्तर-पश्चिम गङ्गाके किनारे अवस्थित है। वर्त्तमान पटियाली नगर प्राचीन नगरके ध्वंसावशेषके ऊपर अवस्थित है। महाभारतके समयमें भी यह नगर विद्यमान था। शाहबुद्दीन घोरीने यहां एक दुर्ग बनाया था जिसका भग्नावशेष आज भी देखनेमें आता है। रोहिलाओंके समय यह एक समृद्धिशाली नगरमें गिना जाता था। किन्तु अभी यह सामान्य ग्राममें परिणत हो गया है। अङ्गरेजोंने १८५७-५८ ई०में यहां विद्रोहियोंको परास्त किया था।

पटिष्ठ (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पटुः पटु इष्ठन् (अतिशायने तमविष्ठनौ। पा ५।३।५५) अतिशय पटु, बहुत होशियार।

पटी (सं० स्त्री०) पट-इन्, बाहुलकात् ङीप्। १ वस्त्रभेद, कपड़ेका पतला लम्बा टुकड़ा, पट्टी। २ यवनिका, पर्दा। ३ नाटकका पर्दा। ४ पटका, कमरबंद।

पटीमा (हिं० पु०) छीपियोंका वह तख्ता जिस पर वे छापते समय कपड़ेको बिछा लेते हैं।

पटीयस् (सं० त्रि०) अयमेषामतिशयेन पटुः, पटु-ईयसुन्। अतिशय पटु, बहुत चालाक।

पटीर (सं० क्ली०) पटतीति पट-गतौ ईरन्। १ मूलक, मूली। २ केदार। ३ ऊंचाई। ४ वारिद, मेघ, बादल। ५ वेणुसार, वंशलोचन। ६ चन्दन। ७ खदिर, वाला। ८ उदर, पेट। ९ कन्दर्प। १० कलोंका वृक्ष। ११ वटवृक्ष। १२ हरणोय। १३ चालनी। १४ मन्थिवाह।

पटीलना (हिं० क्रि०) १ किसीको उलटी सीधी बातें समझा बुझा कर अपने अनुकूल करना, ढंग पर लाना। २ परास्त करना, नीचा दिखाना। ३ सफलतापूर्वक किसी कामको समाप्त करना, पूर्ण करना, खतम करना। ४ ठगना, छलना। ५ मारना, पीटना। ६ अर्जित करना, प्राप्त करना, कमाना।

पटु (सं० त्रि०) पाटयतीति पट-गतौ णिच् नत उ, पटादेशश्च। (टलिक पाटीति। उण् १।१८) १ दक्ष, निपुण, कुशल। २ निरोग, रोगरहित, स्वस्थ। ३ चतुर, चालाक, होशियार। ४ मधुर, सुन्दर, मनोहर। ५ तीक्ष्ण, तेज, तीखा। ६ स्फुट, प्रकाशित, व्यक्त। ७ निठुर, अत्यन्त कठोर हृदयवाला। ८ धूर्त्त, छलिया, मक्कार, फरेबी। ९ उग्र, प्रचण्ड। (क्ली०) १० छत्रा, खुमी। ११ लवण, नमक। १२ पांशुलवण, पांगा नमक। १३ पटोल, परवल। १४ पटोलपत्र, परवलका पत्ता। १५ कांडीरलता, चिटपिटा नामको बेल। १६ कारवेल्ल, करेला। १७ चोरक नामक गन्धद्रव्य। १८ शिग्रु। १९ चोन-कर्पूर, चीनका कपूर। २० जीरक, जीरा। २१ वचा, बच। २२ छिक्किणी, नकछिकनी।

पटु—श्रीकण्ठचरितके रचयिता मङ्खके समसामयिक एक कवि।

पटुआ (हिं० पु०) पटुवा देखो।

पटुक (सं० पु०) पटु-स्वार्थे कन्। पटोल, परवल।

पटुकल्प (सं० त्रि०) ईषदूनः पटुः पटु-कल्पप्। ईषदून पटु, कुछ कम पटु, जो पूर्ण कुशल या चालाक न हो।

पटुका (हिं० पु०) १ पटका देखो। २ चादर, गलेमें डालनेका वस्त्र। ३ धारीदार चारखाना।

पटुकोट्टई—१ मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ९०८ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलका सदर। यह तञ्जोरसे २७ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां ७वीं शताब्दीके

नायकवंशीय राजा विजयराघवका बनाया हुआ एक किला है।

पटुजातीय (सं॰ त्रि॰) पटुप्रकारः, पटु जातीयर्। पटुप्रकार।

पटुता (सं॰ स्त्री॰) पटोर्भावः, पटु-तल्, टाप्। १ दक्षता, चतुराई, चालाकी। २ पटु होनेका भाव, प्रवीणता।

पटुतूलक (सं॰ क्ली॰) लवण-तृण, एक घास।

पटुतृणक (सं॰ क्ली॰) पटु लवणं तत्प्रचुरं तृणं ततः कन्। लवण-तृण, एक प्रकारकी घास।

पटुत्रय (सं॰ क्ली॰) लवणत्रय, विट्, सैन्धव और सौवर्च्चल लवण।

पटुत्व (सं॰ क्ली॰) पटु भावे त्व। पटुता, दक्षता।

पटुपञ्चक (सं॰ क्ली॰) लवणपञ्चक।

पटुपत्रिका (सं॰ स्त्री॰) पटु पत्रं यस्याः, कप् टापि अत इत्वं। १ क्षुद्र चञ्चुप, छोटे चेंचका पौधा। २ क्षीरिका, पिण्डखजूर।

पटुपर्णिका (सं॰ स्त्री॰) पटु पर्णं यस्याः, कप्, टाप्, अत इत्वं। क्षीरिणीवृक्ष, एक प्रकारकी कटेहरी।

पटुपर्णी (सं॰ स्त्री॰) पटुपर्ण ङीष् (पाककर्णपर्णपुष्प-फलेति। पा ४।१।६४) स्वर्णक्षीरी, सत्यानाशी कटेहरी।

पटुमेदनिका (सं॰ स्त्री॰) कृष्णजीरक, काला जीरा।

पटुमत् (सं॰ पु॰) अन्ध्रवंशीय एक राजा। किसी किसी पुराणमें इनका नाम पटुमान् और पटुमायि मिलता है।

पटुमित्र (सं॰ पु॰) राजपुत्रभेद।

पटुरूप (सं॰ त्रि॰) प्रशस्तः पटुः। पटु-रूपप्। अतिशय पटु, बहुत चालाक।

पटुलिका (सं॰ स्त्री॰) नागवल्लीभेद।

पटुली (हिं॰ स्त्री॰) १ काठकी वह पटरी जो झूलेकी रस्सों पर रखी जाती है। २ वह लम्बा चिपटा डंडा जो गाड़ी या छकड़ेमें जड़ा रहता है। ३ चौकी, पीढ़ी।

पटुवा—एक जाति। ये लोग अपनेको ब्राह्मण-वर्णमें मानते हैं, परन्तु यह मत सर्वसम्मत नहीं है। इनकी विशेष स्थिति गुजरात तथा राजपूतानेमें है। ये सदैवसे यज्ञोपवीत धारण करते चले आये हैं, खान पानमें शुद्ध

हैं और वैष्णव सम्प्रदायी हैं। इनका विवरण स्कन्द-पुराणमें लिखा है। रेशमी वस्त्रों पर कसीदा काढ़ना और रेशमी डोरोंमें गहनोंको पोना इनकी मुख्य जीविका है।

पटुवा (हिं॰ पु॰) १ पटसन, जूट। २ करेमू। ३ गूनके सिरे पर बँधा हुआ डंडा जिसे पकड़ कर मांझी लोग गून खींचते हैं। ४ शुक, तोता।

पटुश (सं॰ पु॰) राक्षसभेद।

पटुस (सं॰ पु॰) राजभेद।

पटूत्तम (सं॰ क्ली॰) सैन्धव नमक।

पटेबाज (हिं॰ पु॰) १ वह जो पटा खेलता हो, पटेसे लड़नेवाला। २ एक खिलौना जो हिलानेसे पटा खेलता है। ३ व्यभिचारी और धूर्त पुरुष। ४ कुलटा परन्तु चतुरा स्त्री, छिनाल औरत।

पटेर (हिं॰ स्त्री॰) सरकण्डेकी जातिका एक प्रकारकी घास जो पानीमें होती है। इसकी पत्तियां प्रायः एक इञ्च चौड़ी और चार पांच फुट तक लम्बी होती हैं। इन पत्तियोंसे चटाइयां आदि बनाई जाती हैं। इसमें बाजरेकी बालकी तरह बालें लगती हैं जिसके दानोंका आटा सिंधदेशके दरिद्र निवासी खाते हैं। वैद्यकमें यह कसैली, मधुर, शीतल, रक्तपित्त-नाशक और मूत्र, शुक्र, रज तथा स्तनोंके दूधको शुद्ध करनेवाली मानी जाती है।

पटेरक (सं॰ क्ली॰) मुस्तकतृण, मोथा।

पटेरा (हिं॰ पु॰) १ पटेला देखो। २ पटैला देखो।

पटेल (हिं॰ पु॰) १ ग्रामका प्रधान, गांवका मुखिया, गांवका चौधरी। २ एक प्रकारकी उपाधि। इस उपाधिके लोग मध्य और दक्षिण भारतमें पाये जाते हैं।

पटेलना (हिं॰ क्रि॰) पटीलना देखो।

पटेला (हिं॰ पु॰) १ वह नाव जिसका मध्यभाग पटा हो। बैल घोड़े आदिको ऐसी ही नाव पर पार उतारते हैं। २ एक घास जिसकी चटाइयां बनाते हैं। ३ हेंगा। ४ सिल, पटिया। ५ कुश्तीका एक पेंच जिससे नीचे पड़े हुए जोड़को चित किया जाता है। बाएं हाथसे जोड़े-की गरदन पर कलाई जमा कर उसकी दाहिनी बगल पकड़ लेते और दाहिने हाथसे उसकी दाहिनी ओरका

आंधिया पकड़ कर स्वयं पीछे हटते हुए उसे अपनी ओर खींचते हैं, जिससे वह चित हो जाता है।

पटेली (हिं० स्त्री०) छोटी पटेला नाव।

पटेश्वर—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह सताराने ६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहांके पटेश्वर नामक पहाड़की चोटी पर ५ गुहाएं हैं। इन गुहाओं तथा इनमें संलग्न वाटिकादिके सिवा यहां और भी कई एक मन्दिर हैं। मन्दिर और गुहामें महादेवकी लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

पटैत (हिं० पु०) पटेबाज, पटा खेलने या लड़नेवाला।

पटैला (हिं० पु०) १ लकड़ीका बना हुआ चिपटा डंडा जो किवाड़ोंको बन्द करनेके लिये दो किवाड़ोंके मध्य आड़े बल लगाया जाता है। इसे एक ओर सरकानेसे किवाड़ बन्द होते और दूसरी ओर सरकानेसे खुलते हैं, डंडा, ब्योंड़ा। २ पटेला देखो।

पटोटज (सं० क्लो०) पटस्य छदिषः उटे तृणादौ जायते यत्, जन-ड। छत्राक, जलबवूल।

पटोर (हिं० पु०) १ पटोल। २ कोई रेशमी कपड़ा।

पटोरी (हिं० स्त्री०) १ रेशमी साड़ी या धोती। २ रेशमी किनारेकी धोती।

पटोल (सं० क्लो०) पट गतौ पट-ओलच् (कपिगडि गण्डीति। उण् १।६७) १ वस्त्रभेद, एक प्रकारका रेशमी कपड़ा जो प्राचीनकालमें गुजरातमें बनता था। २ स्वनाम प्रसिद्ध लतिकाफल, परवलकी लता। (Trichosanthes dioica)। पर्याय—कुलक, तिक्तक, पटु, कर्कशफल, कुलज, वाजिमान, लताफल, राजफल, वरतिक्त, अमृताफल, कटुफल, कटुक, कर्कशच्छद, राजनामा, अमृतफल, पाण्डु, पाण्डुफल, बीजगर्भ, नागफल, कुष्ठारि, कासमर्दन, पञ्जर, आलोफल, ज्योत्स्नी, कच्छुघ्नी। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, सारक, पित्त, कफ, कण्डुति, असृक, ज्वर और दाहनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—पाचन, हृद्य, वृष्य, लघु, अग्निदीपक, स्निग्ध, कासदोष और क्रिमिनाशक। परवलकी जड़ विरेचनकर और पत्तियां पित्तनाशक तथा तिक्त होती हैं। (भावप्रकाश)

यह लता सारे उत्तरीय भारतवर्षमें पञ्जाबसे ले कर बङ्गाल आसाम तक होती है। पूरबमें पानके भीटों पर परवलकी बेलें चढ़ाई जाती हैं। फल चार पांच अंगुल लम्बे और दोनों सिरोंकी ओर पतले या नुकीले होते हैं। फलोंके भीतर गूदेके बीच गोल बीजोंकी कई पंक्तियां होती हैं। स्थानभेदसे इसके नाममें विभिन्नता देखी जाती है, जैसे—हिन्दीमें परवल, बङ्गालमें पटोल, उड़ीसामें पटल, गुजराती—पोढ़ल, तामिल—कम्बु-पुडालई; तेलगु—कम्मु पोटला; मलय—पटोलम्।

इस लताकी पत्तियां, फल और जड़ औषधके काममें आती हैं। पित्तकी अधिकता और ज्वरमें पत्तियां विशेष उपकारी है। इनमें वीर्यकर, लघु, सुखरोचक, तिक्त और पुष्टिकर गुण माना गया है। परवलके कच्चे फलका गुण शीतल और रोचक है। कच्चे फलको छिल कर उसका रस अन्यान्य औषधके अनुपानरूपमें व्यवहृत होता है। सुश्रुतके मतसे इसकी जड़के कन्दका गुण विरेचक है। पित्ताधिक्य ज्वरमें इसकी पत्ती और धनियेके समभागको सिद्ध कर खिलानेसे ज्वर नाश होता तथा दस्त साफ उतरता है। सुरासारमें रख कर कच्चे परवलसे जो निर्यास निकलता है वह रेचक औषधमें गिना जाता है। आयुर्वेद शास्त्रके मतसे उदरी और कुष्ठरोग चिकित्सामें पटोल विशेष उपकारी है। परवलका मुरब्बा खानेमें बड़ा उमदा लगता है।

पटोलक (सं० पु०) पटोल इव कायति प्रकाशते इति कै-क। शुक्ति, सीपी, सुतही।

पटोलपत्र (सं० क्लो०) १ वल्लीशाकभेद, एक प्रकारकी पोई। २ परवलके पत्ते।

पटोलादि (सं० पु०) सुश्रुतोक्त गणभेद। पटोलपत्र, चन्दन, मूर्वा, गुड़ूची, आकनादि और कटुकीके मेलको पटोलादिगण कहते हैं। इसका गुण—पित्त, कफ और अरुचिनाशक, व्रणका हितकर तथा वमन, कण्डु और विषनाशक है।

भैषज्यरत्नावलीके मतसे—पटोलपत्र, गुलञ्च, मोथा, अड़ूसकी छाल, दुरालभा, चिरायता, नीमकी छाल, कटकी और पित्तपापड़ कुल मिला कर दो तोलेको आध सेर जलमें सिद्ध करते हैं। जब जल आध पाव रह जाता है, तब उसे उतार लेते हैं। इस काढ़ेको पीनेसे

अपक्व वसन्त प्रशमित और पक्व वसन्त शुष्क हो जाता है। विस्फोटक ज्वरमें यह विशेष उपकारी है।

पटोलादिक्वाथ (सं० पु०) पटोलपत्र, कटकी, शतमूली, त्रिफला, गुलञ्च सब मिला कर २ तोला, जल आध सेर, शेष आध पाव। इस काढ़ेको पीनेसे दाहयुक्त पैत्तिक वातरक्त अच्छा हो जाता है।

(भैषज्यरत्ना० वातरक्ताधिकार)

पटोलाद्यघृत (सं० क्ली०) चक्रदत्तोक्त घृतभेद। घृत ८४ सेर, क्वाथार्थ पटोलपत्र, कटकी, दारुहरिद्रा, नीमकी छाल, अड़ूसकी छाल, त्रिफला, दुरालभा, पित्तपापड़, कुमर प्रत्येक १ पल, आंवला २ सेर, कूटजकी छाल, मोथा, यष्टिमधु, रक्तचन्दन और पीपर कुल मिला कर १ सेर। यथानियम घृत पाक कर सेवन करनेसे चक्षु-रोग और अन्यान्य रोग प्रशमित होते हैं।

पटोलिका (सं० स्त्री०) स्वादुपटोल, सफेद फूलकी तुरई वा तरोई। गुण—स्वादु, पित्तघ्न, रुचिकृत, ज्वरघ्न, बल-कर, दीपन और पाचन।

पटोली (सं० स्त्री०) पटोल जातित्वात् ङीष्। ज्योत्स्नी, तुरई।

पटोनी (हिं० पु०) मल्लाह, माँझी।

पटोहाँ (हिं० पु०) १ पटा हुआ स्थान। २ पटावके नीचेका स्थान। ३ वह कमरा जिसके ऊपर कोई और कमरा हो। ४ पटबंधक।

पट्ट (सं० क्ली०) पट-गतौ क्त इडभावः। १ नगर। (पु०) २ पेषण-पाषाण, शिला, पटिया। ३ व्रणादिका बन्धन, घाव पर बांधनेका पतला कपड़ा, पट्टी। ४ राजादिका शासनान्तर, पट्टा। ५ पीठ, पीढ़ा, पाटा। ६ ढाल। ७ उष्णीषादि, पगड़ी। ८ दुपट्टा। ९ कौषेय, रेशम। १० लोहित कौषेय उष्णीषादि, लाल रेशमी पगड़ी।

राजगण मस्तक पर किरीटस्वरूप जो पट्ट धारण करते हैं, उसका विषय वृहत्संहितामें इस प्रकार लिखा है—

"आचार्योंने पट्टका निम्नलिखितरूप लक्षण बतलाया है। जिस पट्टका मध्य आठ अंगुल विस्तृत होता है, वह राजाओंके लिये शुभजनक है। सप्ताङ्गुल विस्तृत होनेसे राजमहिषीका, ६ अङ्गुल विस्तृत होनेसे युवराज-का और ४ अङ्गुल विस्तृत होनेसे सेनापतिका शुभ होता है। दो अङ्गुल विस्तृत पट्ट प्रासादपट्ट कहलाता है। यही पांच प्रकारका पट्ट है। सभी पट्ट विस्तारका दूना और पार्श्व विस्तारका आधा होना चाहिये। पञ्चशिखायुक्त पट्ट नृपतिके लिये, त्रिशिखायुक्त पट्ट युवराज और राजमहिषीके लिये तथा एकशिख पट्ट सेनापतिके लिये शुभजनक है। शिखाहीन प्रासादपट्ट भी राजाओंका शुभद माना गया है। यदि पट्टका पत्र आसानीसे फैलाया जा सके, तो भूमि पतिकी वृद्धि और जय होती तथा प्रजा सुखसम्पद् लाभ करती है। पट्टमध्य व्रण समुत्पन्न होनेसे राज्य विनष्ट होता है। जिसका मध्यदेश स्फुटित हो, वह परित्यज्य है। जिस पट्टमें किसी प्रकारका अशुभ चिह्न न रहे, राजाओंके लिये वही शुभफलप्रद है" (वृहत्संहिता ४८ अ०)

१० राजसिंहासन। ११ चतुष्पथ, चौराहा। १२ शाक-भेद, एक प्रकारका साग। १३ पट्टी, तख्ती, लिखनेकी पटिया। १४ तांबे आदि धातुओंकी वह चिपटी पट्टी जिस पर राजकीय आज्ञा या दान आदिकी सनद खोदी जाती थी। १५ किसी वस्तुका चिपटा या चौरस तल भाग। १६ पाट, पटसन। (त्रि०) १७ मुख्य, प्रधान।

पट्टक (सं० पु०) पट्ट एव इत्यर्थे स्वार्थे कन्। १ पट्ट, लिखने-की पट्टी या पटिया, तख्ती। २ ताम्रपट या चित्रपट। ३ ताम्रपट पर खुदी हुई राजाज्ञा या अन्य विषय। ४ पटका, कमरबन्द। ५ वह रेशमी वस्त्र जिसकी पगड़ी बनाई जाय। ६ वृक्ष विशेष, एक पेड़का नाम।

पट्टज (सं० क्ली०) पट्टात् कौषेयात् जायते जन-ड। वस्त्रभेद, टसरका कपड़ा।

पट्टदकल—बम्बई प्रदेशके बीजापुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। इसका प्राचीन नाम किशुवोलल वा पट्ट किशु-वोलल है। यह अक्षा० १५° ५७' उ० तथा देशा० ७५° ५२' पू०के मध्य मालप्रभा नदीके बाएं किनारे बदामीसे ४ कोसकी दूरी पर अवस्थित है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। यहां अनेक प्रधान मन्दिर और शिलाफलक उत्कीर्ण हैं। प्राचारपरिवेष्टित ४ एकड़ भूमिके मध्य ४ बड़े और ६ छोटे मन्दिर हैं। बड़े मन्दिरोंकी गठन और कारुकार्य द्राविड़ देशके जैसा प्रतीत होता है। यहांके सबसे बड़े मन्दिरमें विरूपाक्षकी मूर्ति प्रतिष्ठित है। जैनमन्दिरादिके जैसा इस मन्दिरके चारों ओर और भी कितने विभिन्न

देव-देवियोंकी मूर्त्ति छोटी छोटी गुहाके मध्य सन्निविष्ट देखी जाती हैं। विरूपाक्षके मन्दिर स्तम्भ गृहमें तीन पद्मके ऊपर लक्ष्मीदेवी बैठी हुई हैं जिनके दोनों हाथ सिरके ऊपर और शुण्डमें कलसी है। प्राचीरके गात्रसे जो चतुष्कोणाकृति स्तम्भ बाहर निकाला हुआ है उसके गात्रमें स्त्रीमूर्त्ति खोदित हैं। उन मूर्त्तियोंका केशविन्यास देखनेसे कौङ्कणस्थ देवदासी रमणियोंका ख्याल आ जाता है। इसके ऊपरी भाग पर कीर्त्तिमुखोंके चित्र अङ्कित हैं। गर्भपीठके द्वारके सामने और भी कितनी स्त्रीमूर्त्तियां शोभा दे रही हैं। बाहरकी दीवार पर विष्णु और शिवकी नाना प्रकारकी मूर्त्ति खुदी हुई देखनेमें आती हैं। ये सब मन्दिर चालुक्य आदि राजाओंके समयके बने हुए हैं। कुल १२ शिलालिपि उत्कीर्ण हैं। अन्यान्य मन्दिरोंके मध्य मल्लिकार्जुन, संगमेश्वर, चन्द्रशेखर, वेलगुड़ी, गलीकनाथ, आदिकेश्वर, विजयेश्वर, पापविनाशन वा पापनाथ आदि देवमूर्त्तियां प्रतिष्ठित देखी जाती हैं। पापविनाशन आदि दो एक शिवमन्दिरके द्वारदेशके ऊपरी भाग पर राम, रावण खर, दूषण, सूर्पनखा, लक्ष्मण, सीता, जटायु शेषनाग आदिके चित्र अङ्कित हैं। संगमेश्वरके मन्दिरमें उत्कीर्ण सिन्धराज २य चावुन्दाकी शिलालिपिसे जाना जा सकता है कि वे पश्चिम चालुक्यराज २य तैलका अधिकार स्वीकार करते थे। ये स्वयं, स्त्री देमालदेवी तथा पुत्र २य आचो तीनों किशुवोललकी विजयेश्वर शिवपूजाके खर्च वर्चके लिए बहुत-सी जमीन दान कर गए हैं। पट्टद किशुवोललमें इनकी राजधानी थी।

पट्टदेवी (सं० स्त्री०) पट्टे सिंहासने स्थिता, तदर्हा वा देवी। महादेवी, राजाकी प्रधान स्त्री, पटरानी।

पट्टदोल (सं० स्त्री) कपड़ेका बना हुआ झूल या पालना।

पट्टन (सं० क्ली) पटन्ति गच्छन्ति वाणिज्ये यत्र। पट गतौ बाहुलकात् तनप्। १ पत्तन, नगर। २ बड़ा नगर।

पट्टनी (सं० स्त्री०) पट्टन गौरादित्वात् ङीष्। पत्तन, नगर।

पट्टमङ्गलम्—मदुरा जिलेके अन्तर्गत एक नगर जो रामनादसे १२ कोस उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। यहां पाण्ड्य राजाओंका निर्मित शिवमन्दिर है।

पट्टमहिषी (सं० स्त्री०) राजाकी प्रधान स्त्री, पटरानी।

पट्टरङ्ग (सं० क्ली०) पट्टं वस्त्रं रज्यतेऽनेन पट्ट-रञ्ज-घञ्। पत्तरङ्ग, वक्कम।

पट्टरञ्जक (सं० क्ली०) पट्टानां वस्त्राणां रञ्जनं ततः कन्। पत्तरङ्ग, वक्कम।

पट्टराज (सं० पु०) महाराष्ट्रके उन ब्राह्मणोंकी उपाधि जो पुजारीका काम करते हैं।

पट्टराज्ञी (सं० स्त्री०) पट्टार्हा राज्ञी, पटरानी।

पट्टला (सं० स्त्री०) १ जमीनविभाग, जिला। २ सम्प्रदाय।

पट्टबन्धोत्सव—दाक्षिणात्यवासी हिन्दूराजाओंके राज्याभिषेक समयका एक उत्सव। शायद अभिषेककालमें उनकी कमरमें पट्टबन्धनी दी जाती होगी, इसीसे ऐसा नाम पड़ा है। चालुक्यवंशीय राजा विक्रमवर्षकी शिलालिपिमें इस उत्सवकी कथा लिखी है। उत्सव उपलक्षमें राजगण अनेक भूमिदान करते थे।

पट्टशाक (सं० पु०) शाकभेद, पटुवा नामका साग जो रक्तपित्त-नाशक, विष्टम्भी और वातवर्द्धक माना जाता है।

पट्टशाली—बारवाड़ प्रदेशवासी तन्तुवाय जाति। रेशमके वस्त्रादि बुननेके कारण इनका यह नाम पड़ा है*। इनके किसी प्रकारकी पदवी नहीं है, एकमात्र नाम ही इनका जातिसंज्ञानिर्देशक है। कर्णाटके उत्तरस्थ वासवमूर्त्ति, वेल्लारीके निकटवर्त्ती पार्वती और वीरभद्रकी मूर्त्ति ही इनकी प्रधान उपास्य हैं। स्वभावतः ये लोग दृढ़काय और सबल, साधारणतः लिङ्गायतोंके जैसे होते हैं और खूब परिष्कार परिच्छन्न रहते हैं। इनका खाद्यादि उच्चश्रेणीके हिन्दूके जैसा होता है। सभी निरामिषभोजी हैं, मछली मांस वा शराब कोई छूता तक भी नहीं। वेशभूषा भी साधारण हिन्दू सरीखा है। पुरुष स्त्रीकी तरह कानमें कनैठी और हाथमें कंकण पहनते हैं। स्त्रियां कान, उंगली, नाक और पैरकी उंगलीमें कनैठीकी तरह आभूषण और हाथमें कंकण तथा गलेमें हार पहनती

* कनाड़ीभाषामें 'पट' शब्दका अर्थ रेशम और मराठी भाषामें 'शाली'का अर्थ तन्तुवाय या तांती है।

हैं। स्त्रोपुरुष दोनों ही 'लिङ्ग' धारण करते हैं। कपड़ा बुनना ही इनका जातीय व्यवसाय है। प्रतिदिन सुबहसे ले कर शाम तक ये परिश्रम करते हैं। हिन्दूके पर्व दिन ये लोग कोई काम काज नहीं करते। ब्राह्मणों पर इनको उतनी श्रद्धा नहीं है, इसीसे ब्राह्मणोंके उपास्य देवताको भी ये लोग विशेष मान्य नहीं करते। ये लोग कट्टर लिङ्गायत हैं। विवाह तथा व्रतादि कार्यमें ये लिङ्गायत पुरोहितको बुला कर उन्हींसे काम कराते हैं। चिक्केरिस्वामी नामक इनके एक साधारण गुरु हैं जिनका वास निजाम राज्यके अन्तर्गत सुलतानपुरमें है।

भौतिक क्रिया, भोजविद्या आदिमें इनका दृढ़ विश्वास है। लड़केके जन्म लेने पर उसकी नाड़ी काट कर उसके मुखमें अंडोका तेल दिया जाता और तब माता तथा जातपुत्र दोनोंको स्नान कराया जाता है। पांच दिन तक सपरिवारमें अशौच रहता है। पांचवें दिन धाई आ कर षष्ठी मूर्त्तिकी स्थापना करती है। गर्भिणी माताको उस मूर्त्तिकी पूजा करनी होती है पीछे उपस्थित पांच सधवाओंको चने देने होते हैं। छठें दिन लिङ्गायत पुरोहित आ कर जमीन पर चावलके चूरको पानीमें घोलता और उसीसे आठ रेखायुक्त एक चित्र अङ्कित करता है। पीछे उस पर २ पान, १ सुपारी और २ पैसे रख कर जातशिशुको सुलाता है। अनन्तर वह पुरोहित जातशिशुके पिता वा माताके बाएं हाथमें एक लिङ्ग रख उसे चीनी, मधु, दूध और दहीसे नौ बार धुलाता है, पीछे उसके ऊपर १०८ बार सफेद सूतेको लपेट कर रखता है। सूत समेत लिङ्गको रेशमके वस्त्रसे आवृत कर शिशुके गलेमें बांध दिया जाता है। बाद पुरोहित तीन बार शिशुके शरीरमें अपना पैर लगा कर आशीर्वाद करता और उसे माताकी गोदमें सुला देता है। माता भी पुरोहितको प्रणाम करती है। तेरहवें दिन जातबालककी मौसी आ कर पुत्रका नामकरण करती है, इसीसे उसे एक कुरता इनाम दिया जाता है।

विवाहके प्रथम दिन वर और कन्या दोनोंको ही हल्दी और तेल लगा कर स्नान कराते हैं। पीछे लिङ्गायत पुरोहित, बन्धुबान्धव और आत्मीय कुटुम्ब एक साथ भोजन करते हैं। इस भोजका नाम है 'अरिषानद उता' अर्थात् वर वा कन्याको मङ्गलकामना और मान्यार्थ भोज। दूसरे दिन देवकार्योड उता' (अर्थात् देवताके उद्देश्यसे दत्त भोज्यकार्य) सम्पादन होता है। विवाहरात्रिमें जातिकुटुम्ब एकत्र हो कर विवाहसभामें उपस्थित होते और जानेके समय उन्हें पान सुपारी मिलती है। पांच सधवा स्त्रियां जो कन्याका भार ग्रहण करती हैं वे 'अदगित्ते' और जो दो पुरुष वरके साहचर्यमें नियुक्त रहते हैं वे 'इगुगिरेर' कहलाते हैं। इस दिन जातिके मोड़ल 'गव्द'को भी निमन्त्रण दिया जाता है। उसे पांच बार पान और सुपारी उपढौकनमें देनी होती है विवाहके बाद तीसरे दिन कन्याका पिता वरके हाथमें कपड़ा, चावल, जलपात्र आदि देता है। पीछे वर और कन्या दोनोंको उच्चासन पर बिठा कर लिङ्गायत पुरोहित आशीर्वादमें उनके सिर पर धान फेंकता है, साथ साथ मन्त्र पढ़ कर कन्याके गलेमें मङ्गलसूत्र बांधता है। बादमें रोशनी जला कर दोनोंको ही वरण किया जाता है। यही विवाहका शेष कार्य है। जो सब स्त्री और पुरुष वर तथा कन्याकी परिचर्यामें नियुक्त रहते हैं, वे भी उपयुक्त पारिश्रमिक उपहार पाते हैं।

लिङ्गायतकी तरह ये लोग शवको जमीनमें गाड़ देते हैं। जन्म और मृत्यु, दोनोंमें केवल पांच दिन तक अशौच रहता है। स्त्रियोंके आर्त्तवमें भी तीन दिन अशौचविधि प्रचलित है। बाल्यविवाह और विधवाविवाहमें कोई रोक टोक नहीं है। सामाजिक गोलमाल उपस्थित होने पर ग्राम्य पञ्चायत द्वारा उसका निपटेरा होता है।

पट्टसूत्रकार—जातिविशेष। रेशमके कोड़े तथा रेशमके सूतादि प्रस्तुत करना इनका जातिगत व्यवसाय है।

पट्टा (स० पु०) १ किसी स्थावर सम्पत्ति विशेषतः भूमिके उपभोगका अधिकारपत्र जो स्वामीकी ओरसे असामी, किरायेदार या ठेकेदारको दिया जाय।

मालिक अपनी सम्पत्तिको जिस कामके लिये और जिन शर्तों पर देता है तथा जिनके विरुद्ध आचरण

करनेसे उसे अपनी वस्तु वापस ले लेनेका अधिकार होता है वे शर्तें इसमें लिख दी जाती हैं। साथ ही उसकी सम्पत्तिसे लाभ उठानेके बदले असामीसे वह वार्षिक या मासिक धन या लाभांश उसे देनेकी जो प्रतिज्ञा कराता है उसका भी इसमें निर्देश कर दिया जाता है। पट्टा साधारणतः दो प्रकारका है, मियादी या मुद्दती पट्टा और इस्तमरारी पट्टा। मियादी पट्टेके द्वारा मालिक कुछ निश्चित समय तकके लिये प्रजाको अपनी चीजसे लाभ उठानेका अधिकार देता है और उतना समय जब बीत जाता है, तब मालिकको उसे बे-दखल कर देनेका अधिकार होता है। इस्तमरारी पट्टेके द्वारा मालिक प्रजाको हमेशाके लिये अपनी वस्तुके उपभोगका अधिकार देता है। प्रजा यदि चाहे, तो उस जमीनको दूसरेके हाथ बेच भी सकती है, इसमें मालिक कुछ भी छेड़ छाड़ नहीं कर सकता। जमींदारीका अधिकार जिस पट्टेके द्वारा निश्चित समय तकके लिये दूसरेको दिया जाता है उसे ठेकेदारी या मुस्ताजिरी पट्टा कहते हैं। प्रजा जिस पट्टेके द्वारा असल मालिकसे प्राप्त अधिकार या उसका अंश विशेष दूसरोंको देता है उसे शिकमी पट्टा कहते हैं। पट्टेकी शर्तोंका स्वीकार सूचक जो कागज प्रजाकी ओरसे लिखकर मालिक या जमींदारको दिया जाता है उसे कबूलियत कहते हैं। पट्टे पर मालिकका और कबूलियत पर प्रजाका हस्ताक्षर अवश्य होना चाहिये।

२ चूड़ियोंके बीचमें पहननेका एक गहना। ३ पीढ़ा। ४ कोई अधिकारपत्र, सनद। ५ कुत्तों, बिल्लियोंके गलेमें पहनाई जानेकी चमड़े या बानात आदिकी बद्धी। ६ एक प्रकारका गहना जो घोड़ोंके मस्तक पर पहनाया जाता है। ७ चमड़ेका कमरबंद, पट्टी। ८ कन्या पक्षके नाई, धोबी, कहार आदिका वह नेग जो विवाहमें वरपक्षसे उन्हें दिलवाया जाता है। देहातके हिन्दुओंमें यह रीति है कि नाई, धोबी, कहार, भंगी आदिको मजदूरीमेंसे उतना अंश नहीं देते जितना पड़तेसे अविवाहिता कन्याके हिस्से पड़ता है। जब कन्याका विवाह हो जाता है, तब सारी रकम इकट्ठी कर वरके पितासे उन्हें दिलवाई जाती है। ८ एक प्रकारकी तलवार जो महाराष्ट्रदेशमें काममें लाई जाती है। १० कामदार जूतियों परका वह कपड़ा जिस पर काम बना होता है। ११ घोड़े के मुंह परका लम्बा सफेद निशान। यह निशान नथुनोंसे ले कर माथे तक होता है। १२ पुरुषके सिरके बाल जो पीछेकी ओर गिरे और बराबर कटे होते हैं। १३ वह वृत्ताकार पट्टा जिसमें चपरास टंकी रहती है। १४ चपरास।

पट्टाचार्य (सं० पु०) दक्षिणदेशमें बसनेवाले प्राचीन पण्डितोंकी उपाधि।

पट्टाभिरामशास्त्री—तैलङ्गवासी एक विख्यात पण्डित। इन्होंने कई एक न्याय ग्रन्थोंकी रचना की।

न्याय शब्द देखो।

पट्टार (सं० पु०) एक प्राचीन देश।

पट्टारक (सं० त्रि०) पट्टारे देशे भवः धूमादित्वात् वुञ्। पट्टार-देशभव, पट्टारमें उत्पन्न।

पट्टार्हा (सं० स्त्री०) पट्टे नृपासने अर्हा योग्या। पटरानी।

पट्टिका (सं० स्त्री०) पट्टिरिव कायति कै-क, स्त्रियां टाप्। १ पट्टिकाख्य लोध्र, पठानी लोध। २ वितस्ति प्रमाण वस्त्र, एक बित्ता लम्बा कपड़ा। ३ छोटी तख्ती, पटिया। ४ छोटा ताम्रपट या चित्रपट। ५ कपड़ेकी छोटी पट्टी। ६ रेशमका फीता।

पट्टिकाख्य (सं० पु०) पट्टिका आख्या यस्य। रक्तलोध्र, पठानी लोध।

पट्टिकार (सं० त्रि०) पट्टवस्त्रवयनकारी, रेशमीके कपड़े बुननेवाला।

पट्टिकालोध्र (सं० पु०) पट्टिका एव लोध्रः। रक्तलोध्र, पठानी लोध। पर्याय—क्रमुक, वल्कलोध्र, बृहद्दल, जीर्णबुध्न, बृहद्वल्क, शीर्णपत्र, अक्षिभेषज, गालव, श्वेतलोध्र, गालव, बृहत्त्वच, पट्टी, लाक्षाप्रसाद, वल्क, स्थूलवल्कल, जीर्णपत्र, बृहत्पत्र। इसका गुण—कषाय, शीतल, वात, कफ, अस्र और विषनाशक तथा चक्षुका हितकर है। लोध्रोंके मध्य वल्कलोध्र श्रेष्ठ है। इसमें ग्राही, लघु, पित्तरक्त, पित्तातिसार और शोथनाशक गुण माना गया है। (भावप्र०)

पट्टिकावापक (सं० पु०) वह जो लोध्र वपन करता है।

पट्टिकावायक (सं॰ पु॰) वह जो रेशमका फीता बुनता है।

पट्टिडिवण्डलु—पि॰ इलद्वीपवासी कोयजातिकी एक शाखा। ये लोग ममिलीदेवीकी उपासना करते हैं, समय समय पर नरबलि भी देते हैं। ये लोग मृतदेह दाह करते हैं और पीछे उस भस्मराशिको गोलीकी तरह बना कर जमीनमें गाड़ देते हैं। गो-मांस भी ये लोग खाते हैं।

पट्टिन् (सं॰ पु॰) पट्टिका लोध्र, पठानी लोध।

पट्टिल (सं॰ पु॰) पट्टी विद्यतेऽस्य पट्ट अस्त्यर्थे इलच्। पूतिकरञ्ज, पलङ्ग।

पट्टिलोध्र (सं॰ पु॰) पट्टिकालोध्र, पठानी लोध।

पट्टिलोध्रक (सं॰ पु॰) पट्टिलोध्र स्वार्थे कन्। पट्टिकालोध्र, पठानी लोध।

पट्टिश (सं॰ पु॰) पट गतौ बाहुलकात् टिशच्। अस्त्रविशेष, यह तलवारके जैसा होता है। आग्नेय धनुर्वेद, वैशम्पायनीय धनुर्वेद और शुक्रनीति इन तीन ग्रन्थोंमें इस अस्त्रका उल्लेख देखनेमें आता है।

"पट्टिशः पुंप्रमाणः स्यात् द्विधारस्तीक्ष्णशृङ्गकः।
हस्तत्राणसमायुक्तोमुष्टिः खड्गसहोदरः॥" (वैशम्पायन)

पट्टिश अस्त्र खड्गका सहोदर है अर्थात् इसका आकार खड्गके जैसा होता है। इसकी लम्बाईकी तीन मापें हैं। उत्तम ४ हाथ, मध्यम ३॥ हाथ और अधम ३ हाथ लम्बा होता है। मुठियाके ऊपर चलानेवालेकी कलाईके बचावके लिये लोहेकी एक जाली बनी होती है। धार इसमें दोनों ओर और अत्यन्त तीक्ष्ण होती है। यह प्राचीन कालका अस्त्र है। आज कल जिसे पटा कहते हैं, वह इससे केवल लम्बाईमें कम होता है और सब बातें दोनोंमें समान हैं।

पट्टिशी (सं॰ पु॰) १ वह जो पट्टिश बांधता हो। २ वह जो पट्टिशसे लड़ाई करता हो।

पट्टिस (सं॰ पु॰) पट-टिसच्। अस्त्रभेद, पट्टिश, पटा।

पट्टी (सं॰ स्त्री॰) पट्ट बाहुलकात् ङीप्। १ पट्टिकालोध्र, पठानीलोध। २ ललाटभूषा, एक गहना जो पगड़ीमें लगाया जाता है। ३ तलधारक, तोबड़ा। ४ अश्ववक्षः-स्थस्थ बन्धन रज्जु, घोड़ेकी तंग।

पट्टी (हिं॰ स्त्री॰) १ लकड़ीकी वह लम्बोतरी चौरस और चिपटी पटरी जिस पर प्राचीन कालमें विद्यार्थियोंको पाठ दिया जाता था और अब आरम्भिक छात्रोंको लिखना सिखाया जाता है, पाटी, पटिया, तख्ती। २ लकड़ीकी वह बल्ली जो खाटके ढांचेकी लम्बाईमें लगाई जाती है, पाटी। ३ धातु, कागज या कपड़ेकी धज्जी। ४ कपड़ेकी वह धज्जी जो घाव या अन्य किसी स्थानमें बांधी जाती है। ५ वह उपदेश जो उपदेशक स्वार्थसाधनके लिये दे, बहकानेवाली शिक्षा। ६ उपदेश, शिक्षा, सिखावन। ७ पत्थरका पतला, चिपटा और लम्बा टुकड़ा। ८ पाठ, सबक। ९ मांगके दोनों ओरके कंघीसे खूब बैठाये हुए बाल जो पट्टीसे दिखाई पड़ते हैं, पाटी, पटिया। १० पंक्ति, पांती, कतार। ११ सूती या ऊनी कपड़ेकी धज्जी जिसे सर्दी और थकावटसे बचनेके लिये टांगोंमें बांधते हैं। यह चार पांच अंगुल चौड़ी और प्रायः पांच हाथ लम्बी होती है। इसके एक सिरे पर मजबूत कपड़ेकी एक और पतली धज्जी टंकी रहती है जिससे लपेटनेके बाद ऊपरकी ओर कस कर बांध देते हैं। बहुतसे लोग ऐसे हैं जो इसे केवल जाड़ेमें बांधते हैं, पर सेना और पुलिसके सिपाहियोंको इसे सभी ऋतुओंमें बांधना पड़ता है। १२ एक प्रकारकी मिठाई जिसमें चाशनीमें अन्य चीजें जैसे चना, तिल मिला कर जमाते और फिर उसके चिपटे पतले और चौकोर टुकड़े काट लिये जाते हैं। १३ ठाठके ओरकी बल्लियोंकी पांती। १४ सनकी बुनी हुई धज्जियां जिनके जोड़नेसे टाट तैयार होते हैं। १५ कपड़ेका छोर या किनारी। १६ वह तख्ता जो नावके बीचों बीच रहता है। १७ लकड़ीकी लंबी बल्ली जो छत या छाजनके ठाठमें लगाई जाती है। १८ किसी जमींदारीका उतना भाग जो एक पट्टीदारके अधिकारमें हो, थोकका एक भाग। १९ हिस्सा, भाग, विभाग, पट्टी। २० वह अतिरिक्त कर जो जमींदार किसी विशेष प्रयोजनके लिये आवश्यक धन एकत्र करनेके लिये असामियों पर लगाता है, नेग, अबवाब। २१ घोड़ेकी वह दौड़ जिसमें वह बहुत दूर तक सीधा दौड़ता चला जाय, लंबी और सीधी सरपट।

पट्टी—१ युक्त प्रदेशके प्रतापगढ़ जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ३९' से २६° ४' उ० और देशा० ८१° ५६' से ८२° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४६७ वर्गमील और जनसंख्या लगभग तीन लाखकी है। इसमें ८०२ ग्राम लगते हैं। शहर एक भी नहीं है। इस तहसीलमें साई और गोमती नामकी दो नदी बह गई हैं। तहसीलका उत्तरी भाग दक्षिण भागसे उपजाऊ है। जिले भरकी अपेक्षा यहां ऊखकी खेती बहुत होती है।

२ पञ्जाबके लाहोर जिलान्तर्गत कसूर तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० ३१° १७' उ० और देशा० ७४° ५२' पू०, लाहोर शहरसे ३८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ८८८७ है। ७वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध चीनपरिव्राजक यूएनचुवङ्ग चीनपती नामसे इस नगरका उल्लेख कर गये हैं।

वार्नेश साहबने लिखा है, कि यह नगर सम्राट् अकबरके समयमें बसाया गया था। किन्तु अकबरके पहले हुमायूँने यह परगना अपने नौकर जौहरको दान किया था। अबुलफजल इस स्थानको पट्टी-हैबतपुर नामसे उल्लेख कर गये हैं। यहां जो बड़ी बड़ी कब्र हैं उन्हें स्थानीय अधिवासिगण 'नौगज' या नौगज कहा करते हैं। उनका विश्वास है, कि वृहदाकार राक्षस सदृश मनुष्यगण उक्त कब्रमें गाड़े गये हैं। उत्तर-पश्चिम भारतमें इस प्रकारकी अनेक कब्रें देखी जाती हैं। उन्हें देख कर अनुमान किया जाता है, कि गजनीपति महमूदके समयमें जो सब गाजी सेना मारी गई थीं, उन्हींकी कब्रोंके ऊपर अकबरके समयमें स्तम्भ खड़ा किया गया था।

यूएनचुवङ्गके वर्णनानुसार चीनपती जिलेकी परिधि ३३३ मील थी। शकराज कनिष्कके समयमें भी इस नगरका उल्लेख पाया जाता है। उक्त राजाने चीन अतिथियोंके रहनेके लिये यह स्थान पसन्द किया था। चीनपरिव्राजकने लिखा है, कि भारतवर्षमें पहले अमरूद फल नहीं था। चीनवासिगण ही उक्त फल इस देशमें लाये थे।

नगरके चारों ओर प्राचीरपरिवेष्टित और सभी घर आदि इष्टकनिर्मित हैं। नगरमें २०० गज उत्तर-पूर्वमें एक प्राचीन किला है जो अभी पुलिस और पथिकोंके विश्रामावासमें परिणत हो गया है। यहांके अधिवासी साधारणतः बलिष्ठ हैं। अधिकांश मनुष्योंने सैनिक-वृत्तिका अवलम्बन किया है। ३ जमीनका एक परिमाणभेद, जमीनकी एक माप। ४ गन्धभेद, एक प्रकारका गंध।

पट्टीकाड़—मन्द्राज प्रदेशके कोचीन जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह त्रिचरसे ४ कोस दूरमें अवस्थित है। यहांके निकटवर्त्ती वनमें अनेक देवमन्दिर देखे जाते हैं।

पट्टीकोण्डा—१ मन्द्राज प्रदेशके कर्नूल जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १५° ७' से १५° ५२' उ० और देशा० ७७° २१' से ७८° १' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११३४ वर्गमील और लोकसंख्या प्रायः १४३०२३ है। इसमें १०४ ग्राम लगते हैं, शहर एक भी नहीं है। १८७६-७७में यहां भारी अकाल पड़ा था। तुङ्गभद्रा और हिन्द्री नामकी दो नदी इस उपविभागमें बहती हैं।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १५° २४' उ० और देशा० ७७° ३१' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे ऊपर है। यहां १८२७ ई०में अङ्गरेज सेनापति सर टामस मनरोकी हैजेसे मृत्यु हुई थी। उनके स्मरणार्थ यहां कूप और टोले बनाये गये हैं।

पट्टादार (सं० पु०) १ वह व्यक्ति जिसका किसी सम्पत्तिमें हिस्सा हो, हिस्सेदार। २ वह व्यक्ति जो किसी विषयमें दूसरेके बराबर अधिकार रखता हो, बराबरका अधिकारी। ३ संयुक्त सम्पत्तिके अंशविशेषका स्वामी, पट्टीदारोंके मालिकोंमेंसे एक। ४ हिस्सा बटानेके लिये झगड़ा करनेका अधिकार रखनेवाला।

पट्टीदारी (हिं० स्त्री०) १ पट्टी होनेका भाव, बहुतसे हिस्से होना। २ वह जमींदारी जिसके बहुतसे मालिक होने पर भी जो अविभक्त सम्पत्ति समझी जाती हो, भाईचारा।

पट्टीदारी जमींदारीमें अनेक विभाग और उपविभाग होते हैं। प्रधान विभाग थोक और उसके अन्तर्गत उप-

विभाग पट्टी कहलाता है। प्रत्येक पट्टीका मालिक अपने हिस्सेकी जमीनकी स्वतन्त्र-व्यवस्था करता और सरकारी कर देता है। परन्तु किसी एक पट्टीमें माल-गुजारी बाकी रह जाने पर वह सारी जायदादसे वसूल की जा सकती है। प्रायः प्रत्येक थोकमें एक एक लंबर-दार होता है। जिस पट्टीदारीकी सारी जमीन हिस्से-दारोंमें बँट गई हो उसे पूर्ण पट्टीदारी और जिसमें कुछ जमीन तो उनमें बांट दी गई हो और कुछ सरकारी कर तथा गांवकी व्यवस्थाका खर्च देनेके लिये साझेमें हो अलग कर ली गई हो उसे अपूर्ण पट्टीदारी कहते हैं। अपूर्ण पट्टीदारीमें जब कभी अलग की हुई जमीन-का मुनाफा सरकारी कर देनेके लिये पूरा नहीं पड़ता, तब पट्टीदारोंके सिर पर अस्थायी कर लगा कर वह पूरा किया जाता है। २ पट्टीदार होनेका भाव, हिस्से-दारी।

पट्टीवार (हिं॰ क्रि॰ वि॰) १ इस प्रकार जिसमें हर पट्टीका हिसाब अलग अलग आ जाय। (वि॰) २ जो पट्टीके भेदको ध्यानमें रख कर तैयार किया गया हो।

पट्टीश (सं॰ पु॰) १ महादेव, शिव। २ अस्त्रभेद।

पट्टिश देखो।

पट्टीश्वरम्—मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह कुम्भकोणसे ३॥ मील दक्षिण-पश्चिममें अव-स्थित है। यहां एक प्राचीन शिव-मन्दिर है जिसके गात्र-में शिलाफलक देखा जाता है।

पट्टू (हिं॰ पु॰) १ एक ऊनी वस्त्र जो पट्टीके रूपमें बुना जाता है। इस प्रकारका कपड़ा काश्मीर, अल्मोड़ा आदि पहाड़ी प्रदेशोंमें तैयार होता है। वह खूब गरम होता है, पर ऊन इसका मोटा और कड़ा होता है। २ धारीदार एक प्रकारका चारखाना। ३ शुक, तोता, सुवा।

पट्टकोट—१ मन्द्राज प्रदेशके तञ्जोर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा॰ ९° १९' से १०° ३५' उ॰ तथा देशा॰ ७८° ५५' से ७९° २२' पू॰के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९०६ वर्गमील और जनसंख्या लगभग २९५८९४ है। इसमें १ शहर और ७९२ ग्राम लगते हैं। विद्या-शिक्षामें यह तालुक बहुत पीछे पड़ा हुआ है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा॰ १०° २६' उ॰ और देशा॰ ७९° १९' पू॰के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या सात हजारसे ऊपर है। नगरके चारों ओर एक कारुकार्यविशिष्ट प्राचीन शिवमन्दिर और तत्-संलग्न एक शिलालिपि है। नगरके उपकण्ठवर्त्ती महा-समुद्रम् नामक स्थानमें एक और मन्दिर है। यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। १८१५ ई॰में फरासीके ऊपर अङ्गरेजोंकी जयके उपलक्षमें तञ्जोरराज सरभोजीने प्राचीन दुर्ग पर एक नूतन दुर्ग बनवाया। इस दुर्गके अभ्यन्तर एक फलक है जिसमें बोनापार्टके अधःपतन और अङ्गरेजोंकी जयकी बातें लिखी हैं। शहरमें तांबेके बरतन, चटाई और मोटे कपड़े प्रस्तुत होते हैं।

पट्टूभट्ट—दाक्षिणात्यवासी एक कवि। प्रसङ्गरत्नावली नामक उनका काव्य पढ़नेसे मालूम होता है, कि उन्होंने राजा सिंहभूपके अनुरोधसे १३३८ शकमें उक्त ग्रन्थकी रचना की। वे वाधूल वंशीय ब्राह्मण थे। राज-प्रासादमें रहनेके लिये उन्हें मछलीपत्तनसे ४० कोस दूर काकास्वामीपुरी नामक स्थान मिला था।

पट्टूरु—मन्द्राज प्रदेशके कड़ापा जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यहां इन्द्रनाथ स्वामीका एक प्राचीन मन्दिर है। लोगोंका विश्वास है, कि कलियुगके आरम्भमें स्वयं इन्द्रने इस मन्दिरको बनवाया था। वे यह भी कहते हैं, कि इस स्थानके माहात्म्यके सम्बन्धमें विस्तृत विवरण ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है। इसके सिवा यहां दो और भी प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं। गदाधर स्वामीके मन्दिरके दक्षिणांशमें जो दो मन्दिर और एक मण्डप बने हुए हैं, प्रवाद है, कि वे चोल राजाओंके कीर्त्तिस्तम्भ हैं।

पट्टेपछाड़ (हिं॰ पु॰) कुश्तीका एक पेंच। यह पेंच उस समय चित करनेके लिये काममें लाया जाता है जिस समय जोड़ कुहनियां टेक कर पट पड़ा हो और इस कारण उसे चित करनेमें कठिनाई पड़ती हो। इसमें उसके एक हाथ पर जोरसे थाप मारी जाती है और साथ ही उसी जांघको इस जोरसे खींचा जाता है कि वह उलट कर चित हो जाता है। यदि थाप दाहिने

हाथ पर मारी जाय, तो बाईं जांघ और यदि बाएं हाथ पर मारी जाय तो दाहिनी जांघ खींचनी पड़ेगी।

पट्टेबैठक (हिं० पु०) कुश्तीका एक पेंच। इसमें जोड़का एक हाथ अपनी जांघोंमें दबा कर और अपना एक हाथ उसकी जांघोंमें डाल कर अपनी छातीका बल देते हुए उसे चित कर फेंक दिया जाता है।

पट्टेग्राम—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह गोदावरी नदीके गर्भस्थ एक छोटे द्वीपमें पहाड़के ऊपर अवस्थित है। यहां प्राचीन चार मन्दिरोंमें चार शिलालिपि हैं। स्थानमाहात्म्य रहनेके कारण दाक्षिणात्य-वासियोंके मध्य यह स्थान प्रसिद्ध तीर्थस्थानके रूपमें गिना जाता है।

पट्टेत (हिं० पु०) १ पटेत। २ बेवकूफ। ३ वह कबूतर जो बिलकुल लाल, काला वा नीला हो और जिसके गलेमें सफेद कंठा हो।

पट्टोपाध्याय (सं० पु०) वह जो दानपट्ट वा दानविषयक पट्टा लिखता है।

पट्टोलिका (सं० स्त्री०) पट्टं पट्टाख्यं उलति प्राप्नोति उल-गतौ ण्वुल्, टापि इत्वं। भूमिके करग्रहणका व्यवस्थापत्र, पट्टा।

पट्ठा (हिं० पु०) १ तरुण, जवान। २ मनुष्य पशु आदि चर जीवोंका वह बच्चा जिसमें यौवनका आगमन हो चुका हो, नवयुवक, उठंत। चौपाइयोंमें घोड़े, पक्षियोंमें कबूतर तथा उल्लू और सरीसृपोंमें सांपके यौवनोन्मुख बच्चेको पट्ठा कहते हैं। ३ दलदार या मोटापत्ता। ४ स्नायु, मोटी नस। ५ कुश्तीबाज, लड़ाका। ६ पेडूके नीचे कमर और जांघके जोड़का वह स्थान जहां छूनेसे गिल्टियां मालूम होती हैं। ७ एक प्रकारका चौड़ा गोटा जो सुनहला और रूपहला दोनों प्रकारका होता है। ८ अतलस, सासनपेट आदिकी पट्टी पर बेल बुन कर बनाई हुई गोट।

पट्ठापछाड़ (हिं० वि०) खूब हृष्टपुष्ट और बलवती।

पट्ठी (हिं० स्त्री०) पठिया देखो।

पठ (हिं० स्त्री०) वह जवान बकरी जो ब्याई न हो, पाठ।

पठक (सं० पु०) पठतीति पठ-ण्वुल्। पाठक, पढ़नेवाला।

पठदृशा (सं० स्त्री०) पाठकी अवस्था, पढ़नेका समय।

पठन (सं० क्ली०) अध्ययन, पाठ, पढ़ना।

पठनीय (सं० त्रि०) पठ-अनीयर्। पढ़ने योग्य।

पठमञ्जरी (सं० स्त्री०) श्रीरागकी चतुर्थ रागिणी। इसका न्यासांश ग्रह पञ्चम है और गान समय एक दिनके बाद है। इसका ध्यान वा लक्षण—

"वियोगिनी कान्तवितीर्णपुष्पां स्रजं वहन्ती वपुषातिमुग्धा।
आश्वास्यमाना प्रियया च सख्या विधूसरांगी पठमंजरीयम्॥"
(संगीतदामो०)

पठान—महम्मदीय धर्मावलम्बी एक प्रधान जाति।

'पठान' शब्दकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक मतभेद हैं। डाक्टर बेल्यू (Dr. Bellew) साहब कहते हैं, कि पठान शब्दकी उत्पत्तिका निर्णय करनेमें अति प्राचीनसे इसका अनुसन्धान करना होता है। पठान शब्द अरबी वा पारसी शब्द नहीं है, यह अफगानदेशीय 'पुखटाना' शब्दका हिन्दी अपभ्रंश मात्र है। पुखटुनखुवा नामक स्थानके लोगोंको पुखटन और वहांकी प्रचलित भाषाको पुखटा वा पुखटो कहते हैं। पुखटो शब्दका प्रकृत अर्थ क्या है, ठीक ठीक मालूम नहीं। पर पुखट शब्दका अर्थ शैल वा छोटा पहाड़ है, इसका फारसी प्रतिशब्द 'पुषट्' है।

ईसाजन्मके चार सौ वर्ष पहले ग्रीक ऐतिहासिक हेरोदोतस उक्त स्थानको पाकूटिया वा पाकूटियाका (Pactya, Pactyaca) नामसे उल्लेख कर गये हैं। अफगानिस्तानके पूर्वांशमें चलित ख अक्षरके उच्चारणकालमें पश्चिमांशके अधिवासी 'ष'-का व्यवहार किया करते हैं जिससे पुखटून शब्दका उच्चारण पुष्टून होता है। आफ्रिदी पुखटू और हेरोदोतस्-कथित पाकटिया (Pactya) शब्द एक है और एक स्थानके अधिवासियोंके लिये प्रयुक्त हुआ है।

आधुनिक वंशविदोंका कहना है, कि शाल (Saul) के पिता कैस वा किओस (Kais or Kiohs) के वंशसे पठान लोग उत्पन्न हुए हैं। पैगम्बर महम्मदने कैसके कार्यसे खुश हो कर उन्हें पठानकी उपाधि दी और

अपनी सन्तान सन्ततिको तत्प्रवर्त्तित धर्मपथ पर चलनेको फरमाया। इसीके अनुसार उनकी सन्तान सन्ततिगण 'पठान' कहलाने लगी। फिर बहुतेरे लोगोंका कहना है, कि अफगान शब्दका अर्थ मुसलमान है; लेकिन कुछ लोग इस सिद्धान्तको समीचीन नहीं मानते। गान्धार देशका एकांश अश्वक है। पञ्जाबके लोग कुभा वा काबुल नामक स्थानके अधिवासियोंको उक्त देशमें उत्कृष्ट अश्व मिलनेके कारण अश्वक देशवासी कहते थे। अलेकसन्दरके समकालवर्त्ती ग्रीक ऐतिहासिकगण 'अश्शकानि' वा 'अश्शकेनि' शब्दका व्यवहार कर गये हैं। कोई कोई समझते हैं, कि अश्शकेनि और अभगान वा अफगान एक ही शब्द है। कोई कोई हिन्दो शब्द पठसे पठान शब्दकी उत्पत्ति बतलाते हैं।

अफगानियोंके मध्य किंवदन्ती है, कि उनका आदिम वासस्थान सिरिया देशमें था। इनके पूर्वपुरुषको जब नबुकनासर (Nebuchaduzzor)-ने कैद कर पारस्य तथा मिडियादेशके विभिन्न स्थानोंमें निर्वासित किया, तब वे वहांसे धीरे धीरे घोर देश तक फैल गये। यहांके अधिवासी इन्हें बनि-अफगान वा बेनी-इस्राइल अर्थात् अफगान वा इस्राइल-सन्तान कहते थे। एलफिनसका कहना है, कि इस्राइलोंकी जो दस जाति कैद हुई थीं, वे पीछे अर्सारेथ नामक स्थानको भाग गईं और अर्सारेथदेश ही वर्त्तमान समयमें हजारा प्रदेश नामसे प्रसिद्ध है जो घोर प्रदेशका एक अंशमात्र है। तबकत ई नासिरी नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि घोरदेशमें संसबीवंशके राजत्वकालमें बेनि-इस्राइल नामक एक जातिके लोग रहते थे जिनमेंसे अधिकांश वाणिज्यकार्यमें लगा रहता था। बरयर्ण साहब कहते हैं, कि वे यहूदीवंशके थे, यहूदियोंके आचार-व्यवहारके साथ इनका आचार-व्यवहार बहुत कुछ मिलता जुलता था। विपद्से बचनेके लिये प्रायश्चित्त करके रक्तसे घरके द्वारदेशको रंगाना, देवोद्देशसे बलिदान देना, धर्मनिन्दाकारियोंकी हत्या करना, सामयिक भूमिदान आदि अनेक आचार-व्यवहार दोनों ही जातिके मध्य प्रचलित हैं।

पञ्जाबके पश्चिम सीमास्थित पठानोंके मध्य ही समाजबन्धन अति दृढ़ है। बलूचियोंकी अपेक्षा पठानोंके मध्य एक श्रेणीके लोगोंका समावेश देखा जाता है अर्थात् विभिन्न वर्णोंका समावेश नहीं है। सैयद, तुर्की और अन्यान्य श्रेणी पठानोंके संस्रवमें आने पर भी इनके साथ बिलकुल संश्लिष्ट नहीं हो सकतीं। अनेक बिलकुल पठान नहीं होने पर भी वे साहचर्यके संस्रवसे अपनेको पठान बतलाते हैं। पठानोंकी प्रत्येक श्रेणीके मध्य भिन्न भिन्न सम्प्रदाय हैं। प्रत्येक सम्प्रदायके सरदारका नाम है मलिक वा मालिक। अनेक जातियोंके भीतर एक एक शाखा है जिसे खाँ, खेल वा प्रधानवंश कहते हैं। इस खाँ खेलके मालिकका नाम खाँ है जिसके ऊपर समस्त शाखाओंका कर्त्तृत्वभार सौंपा रहता है। स्वजातिके ऊपर प्रभुत कर्त्तृत्व रहने पर भी उसे उतनी क्षमता नहीं है। युद्धविग्रहका भार और अन्यान्य जातिके साथ सन्धिस्थापनका प्रस्ताव उसीके हाथ है। जिरगा नामक मालिकोंकी प्रतिष्ठित एक सभा है जिसके हाथ प्रकृत क्षमता रहती है। वंशवाचक शब्दमें खेल वा जाई यह शब्द जोड़ कर एक एक जाति वा सम्प्रदायका नामकरण हुआ करता है। पुश्तू 'जाई' शब्दका अर्थ है सन्तति वा वंश और अरबी 'खेल' शब्दका सभा वा सम्प्रदायवाचक। ये नाम सभी समय यथायथरूपसे व्यवहृत नहीं होते। एक नामसे भिन्न जाति और सम्प्रदायका भी बोध होता है। वे सब नाम इस प्रकार मिश्रित हो गये हैं कि वैदेशिकगण नाम द्वारा सम्प्रदायनिर्णयकालमें कभी कभी भ्रममें पड़ जाते हैं। अनेक जातियोंने प्राचीन पूर्वपुरुषोंके नामका परित्याग कर अपेक्षाकृत आधुनिक पूर्वपुरुषोंके नाम पर अपने सम्प्रदायका नाम रख लिया है। इस प्रकार एक जातिके मध्य विभिन्न सम्प्रदायकी सृष्टि हुई है। अंगरेजी अधिकारके मध्यस्थ सिन्धुनदीकी उपत्यकामें सामान्त प्रदेशस्थित पठानोंकी अनेकों जमीन हैं। जो सब हिन्दू इनके अधीन जमीन ले कर कृषिकार्य करते हैं उन्हें ये लोग अहं हमसायक हिन्दकी नामसे पुकारते हैं। जिन सब हिन्दुओंने मुसलमानी धर्म ग्रहण किया है, वे भी इसी नामसे पुकारे जाते हैं।

गत लोकगणनामें इस प्रदेशके पठान निम्नलिखित विभागोंमें विभक्त किये गए हैं।

आफ्रिदी, बंगरजाई, बङ्गास, बरैक, बुनारवल, दाऊदजाई, दिलजाक, दुरानी, गिलजाई, घोरगश्ति, घोरी, काकर, काजिलवाश, खलिल, खटक, लोदी, लेहमाद, महम्मदजाई, रोहिला, तरिन, असुंज, उस्तरियानी, बराकजाई, वाजिरो, याकुबजाई और युसुफजाई।

आफ्रिदीपठान—ऐतिहासिक हिरोदोतस आफ्रिदी पठानोंका 'अपारिटी' नाम रक्खा है। उन्होंने पाकटियानी वा पठानोंको ४ श्रेणियोंमें विभक्त किया है,—अपारिटी वा आफ्रिदीशवगिहि वा खटक, दादिको वा दादि और गन्धारी। आफ्रिदिदेशकी प्राचीन सीमा उत्तर-दक्षिणमें सुफेतपर्वत और उसके उत्तर तथा दक्षिणस्थ कुरम और काबुल नदीके मध्यस्थ समस्त प्रदेश, पूर्वपश्चिममें पेशावर पर्वतश्रेणीसे सिन्धुनदी जिस स्थान पर काबुल और कुरम् नदियोंके साथ मिली है, वहां तक विस्तृत है। आफ्रिदि देशके प्राचीन अधिवासिगण शान्तिप्रिय, परिश्रमी और जीवहिंसा-निरत थे। वर्त्तमान आफ्रिदियोंको देखनेसे वे निरीह बौद्ध वा अग्नि उपासकोंको सन्तान सन्तति सरीखे नहीं मालूम पड़ते। वर्त्तमान आफ्रिदिगण धर्मतः मुसलमान होने पर भी उनके किसी प्रकारका धर्म-जीवन है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। मुसलमानी धर्मका प्रकृततत्त्व क्या है उसे आफ्रिदिगण कुछ भी नहीं जानते। ये लोग सम्पूर्ण निरक्षर होते हैं, किसीके शासनाधीन रहना नहीं चाहते। इनकी जनसंख्या तीन लाखसे कुछ कम है। अधिकांश चोरी और डकैती करके अपना गुजारा चलाते हैं। इनका चरित्र इतना हीन है, कि इन पर जरा भी विश्वास नहीं किया जा सकता। इनके स्वजाति पठान लोग भी इन्हें विश्वासघातक कहा करते हैं। ये लोग धूर्त्त, सन्दिग्धचित्त और व्याघ्रवत् हिंस्रक होते हैं। नरहत्या और दस्युवृत्ति इनके जीवनका प्रधान अवलम्बन है।

बङ्गास पठान शकवंशोद्भूत हैं, तुर्मानके अन्तर्गत गुर्देज प्रदेशमें इनका आदि निवास था। ये लोग चौदहवीं शताब्दीमें गिलजाइयोंसे उत्पीड़ित हो कर कुरमनदीके किनारे आ कर रहने लगे। गिलजाई लोग लुकमानके वंशोद्भव हैं। उत्तर-पश्चिमके अन्तर्गत फरक्काबादमें इस जातिके अनेक पठानोंने उपनिवेश स्थापित किया है।

बुनारवल पठान—पेशावरके उत्तरपश्चिमस्थ बुनारदेशके ये लोग अधिवासी हैं।

दाऊदजाई पठान—काबुलनदीके वामकूलमें बारनदीके सङ्गम तक इन लोगोंकी वासभूमि है।

दिलजाक पठान शकवंशसम्भूत हैं। पठानोंके आगमनके पहले पेशावर उपत्यका इनकी आवासभूमि थी। ५वीं और ६ठी शताब्दीमें जाठ और काठियोंके साथ ये लोग पञ्जाबमें आ कर बस गये। धीरे धीरे वे इतने क्षमताशाली हो उठे कि सिन्धुनदके पूर्व उपकूल तक इनकी क्षमता फैल गई। १०वीं शताब्दीमें युसुफजाई और मामन्द पठानोंने इन्हें सिन्धुनदके पार चकपाखलीको मार भगाया। पीछे हृत अधिकार ले कर जब दोनोंमें कुछ काल तक विवाद चलता रहा, तब बादशाह जहांगीरने हिन्दुस्तान और दाक्षिणात्यके विभिन्न स्थानोंमें उन्हें बसा दिया।

दुरानी पठान—दुरानी शब्द सम्भवतः दुर-इ-दौरान (अर्थात् उस समयकी सर्वोत्कृष्ट मुक्ता अथवा दुर-इ-दुरान अर्थात् सर्वोत्कृष्ट मुक्ता) शब्दसे उत्पन्न हुआ है, अहमदशाह अबदलीके सिंहासनारोहणके समय वंशानुक्रमिक नियमानुसार उन्होंने अपने दाहिने कानमें मुक्ताका कुंडल पहना था। उसी समयसे उक्त नामकी सृष्टि हुई है। दुरानी पठान साधारणतः निम्नलिखित सम्प्रदायोंमें विभक्त है—सदोजाई, पपलजाई, बराकजाई, आलकोजाई, आचाकजाई, नूरजाई, ईशाकजाई और खागवानी। कन्धारमें इनका आदिम वासस्थान था। पहली शताब्दीमें इन्होंने हेलमण्ड और अरगन्धाव नदीके तीरवर्ती हजारा प्रदेश तक विस्तृति लाभ की थी। काबुल और जलालाबाद तक समस्त अफगानिस्तानमें ये लोग छोटे छोटे दलोंमें विभक्त हो कर भिन्न भिन्न स्थानोंमें वास करते हैं। इस दलके सरदारोंने युद्धकालमें सहायता दे कर पुरस्कारस्वरूप जागीर पाई है। स्थानीय अधिवासिगण इनके अधीन कृषिकार्य करते हैं।

गिलजाई पठान तुर्कोंके वंशसम्भूत हैं। ये गिलजाई

शब्द तुर्की 'खिलची' शब्दसे उत्पन्न हुआ है, 'खिलची' शब्दका अर्थ है तलवारधारी। ये लोग घोर प्रदेशके सियावन्द गिरिमालामें रहते थे। अस्त्र चलाना इनका जातिगत व्यवसाय था। यहां बस जानेके कारण ये लोग पारसिकोंके साथ मिल गये।—गिलजाई शब्दका स्थानीय उच्चारण गालेजी है। महमूद गज़नीने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया था, तब ये लोग उनके साथ आये थे। पीछे जलालाबाद-से ले कर खिलात-इ-गिलजाई तकके समस्त प्रदेशों पर इन्होंने अधिकार जमा लिया। आठवीं शताब्दीके प्रारम्भमें ये विद्रोही हो कर उैसनामक सरदार-के अधीन कन्दहारमें प्रतिष्ठित हुए और पीछे उन्होंने पारस्य देश तक धावा बोल दिया। अनन्तर पारस्याधिपति नादिरशाह इन लोगोंको अपने देश लाये। प्रचलित किंवदन्ती है, कि शाह हुसेनके पिताने अपनी कन्याका धर्म नष्ट किया था, इस कारण लोग हुसेनके पुत्रको गिलजो अर्थात् चोर-पुत्र कहा करते थे। उसीसे गिलजाई शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

गिलजाई पठान साधारणतः अन्यान्य जातियोंके संस्रवमें आना नहीं चाहते और उनका आचार-व्यवहार भी अफगानिस्तानके अन्यान्य जातीय अधिवासियोंके आचार-व्यवहारसे बिलकुल भिन्न है। गिलजाइयोंके मध्य कोई कोई सम्प्रदाय ग्राममें आ कर कृषिकार्य-अवलम्बनपूर्वक बस गया है। किन्तु इस जातिके अधिकांश मनुष्य नाना स्थानोंमें घूम घूम कर जीवन-यात्रा निर्वाह करते हैं। कृषिजीवी गिलजाई लोग अत्यन्त कलहप्रिय होते हैं और अपनी तथा अन्यान्य जातिके मध्य अकसर लड़ाई झगड़ा किया करते हैं। ये लोग देखनेमें बड़े सुन्दर होते हैं। देहकी गठन और बलवीर्यके सम्बन्धमें ये लोग अफगानिस्तानकी अन्यान्य जातियोंसे किसी अंशमें कम नहीं हैं। ये अत्यन्त प्रतिहिंसा-परायण होते और युद्धकालमें नृशंसकी तरह व्यवहार करते हैं। ये लोग भेंड़के पशमसे मोटा गलीचा तथा अन्यान्य पशमीने प्रस्तुत करते हैं। गिलजाई जातिभुक्त अनेक व्यक्ति मध्य एशिया, भारतवर्ष और अफगानिस्तानमें सब जगह व्यवसाय करते हैं। इनमें नियाजी, नासर, खरोटी और सुलेमान खेल ये सौ व्यवसायजीवी हैं। इसीसे इन्हें पोविन्द, लवानी वा लोहानी कहते हैं।

घोरगष्ति पठान—घोरगष्ति शब्द घिरगिस्त वा घरगष्त शब्दका अपभ्रंश है। पठानवंशके आदिपुरुष कैसके तृतीय पुत्रका नाम घिरगिस्त वा घरगस्त था। उक्त शब्द गिरगिस् वा घिरघिस शब्दका रूपान्तर मात्र है जिसका अर्थ होता है "प्रान्तर भ्रमणकारी।" इससे अनुमान किया जाता है कि तुर्किस्तानके उत्तरांशसे ये लोग आये हैं।

घोरी पठान—होरटके पूर्ववर्ती घोर देशमें इनका आदिम वासस्थान था, इस कारण उन्हें उक्त आख्या मिली है।

काकर पठान—बेलीसाहबका कहना है, कि काकर पठान यदुवंशसम्भूत हैं और रावलपिण्डी तथा भारतके अन्यान्य स्थानोंके अधिवासी गोक्कर अथवा गोत्तरोंके एक वंशीय हैं। अफगानिस्तानके प्रचलित प्रवादके अनुसार काकर घरगस्तके पौत्र अर्थात् घरगस्तके द्वितीय पुत्र दानीके वंशजात थे। उक्त सम्प्रदायस्थ पठान लोग जो राजपूत वंशजात माने गये हैं सो एक प्रकारसे ठीक है। कैसके प्रथमपुत्र सारावनके दो पुत्र थे, शार्यन और क्रष्टन। ये दोनों नाम सूर्य और कृष्ण शब्दके अपभ्रंश हैं, यह साफ साफ झलकता है। पीछे ये दोनों नाम रूपान्तरित हो कर यथाक्रम सरबुद्दीन और खरसुद्दीन आख्याप्राप्त हुए हैं। पञ्चपाण्डवने जब गजनी और कन्दहार तक अपना राज्य फैला लिया था, तब उक्त मत कुछ भी असम्भव नहीं है।

काजिलवास पठान—ककेसस पर्वतके पूर्वप्रान्त-स्थित प्रदेशमें इनका आदि वासस्थान था। एक समय इनमेंसे अधिकांश पारस्याधिपतिके अश्वारोही सैन्यदल-भुक्त थे। ये लोग तातार जातिके हैं। नादिरशाहने जब भारत पर आक्रमण किया, तब काजिलवास पठान उनके सैन्यदलभुक्त थे।

मुगल सम्राटोंके समय अनेक राजमन्त्री काजिल-वास जातिके थे। सम्राट् औरङ्गजेबके विख्यात मन्त्री मीर जुमला उनके अन्यतम थे। एक प्रकारकी लाल

टोपी सिर पर धारण करनेके कारण ये लोग काजिल-वास कहलाते थे। पारस्यदेशीय सोफी-राजवंशके प्रतिष्ठाताने इस प्रथाका प्रचार किया; सिया-सम्प्रदाय-का यह एक विशेष चिह्न है।

खगोल पठान—खैवर गिरिसङ्कटके सम्मुखस्थ बारा-नदीके वामतीरवर्त्ती प्रदेश इनका वासस्थान था। ये लोग अभी चार सम्प्रदायोंमें विभक्त हैं—साट्जाई, बारोजाई, ईशाकजाई और तिलारजाई। इनमेंसे बारो-जाई सम्प्रदाय ही सबसे क्षमताशाली हैं।

खटक पठान—खटकसे वंशोद्भव होनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है। खटकके दो पुत्र थे, तुर्कमान और बुलाक। बुलाकके वंशधरोंको बुलाकी कहते हैं। तुर्कमानके पुत्र तराईने इतनी प्रतिपत्ति लाभ की, कि दो प्रधान सम्प्रदाय 'तरिन्' और 'तरकाई' उन्हींके नामसे पुकारे जाते हैं। खटक पठान साधारणतः सुश्री और वीर्यवान् होते हैं। अन्यान्य पठान जातियोंसे इनकी आकृति और आचारमें बहुत अन्तर पड़ता है। ये लोग सातिशय युद्धप्रिय होते और निकटवर्त्ती अन्यान्य जातियोंसे सर्वदा युद्धविग्रहादि किया करते हैं। कुछ व्यवसाय और कुछ कृषिकार्यसे अपना गुजारा चलाते हैं। कोयत और बुनार प्रदेशके लवण-व्यवसायको खटक पठानोंका एक प्रकारका खास व्यवसाय कह सकते हैं। ये लोग सभी सुन्नी-सम्प्रदायभुक्त हैं।

लोदी पठान—दिल्लीके लोदीवंशीय पठान बादशाह धर्मश्रेणीके अन्तर्गत थे। लोदी पठान प्रधानतः व्यव-सायजीवी हैं और भारतवर्ष, अफगानिस्तान तथा मध्य एशिया इन कई एक प्रदेशोंमें व्यवसाय कार्य करते हैं। शरत्कालके पहले ये लोग बुखारा और कन्दहारसे पण्यद्रव्य, मेष, उष्ट्र, गवादिपशु लाते और स्त्रीपुत्र परि-वार सहित गजनीके पूर्वस्थित प्रान्तरमें समागम होते हैं तथा वहांसे काकर तथा वजीरी देश होते हुए सुलेमान पर्वतश्रेणीको पार कर डेरा-इस्माइल खाँ जिलेमें आते हैं। यहां स्त्री-पुत्रादि तथा पश्वादिको रख कर पण्यद्रव्य ऊंटकी पीठ पर लादते और मुलतान, राजपूताना, लाहोर, अमृतसर, दिल्ली, कानपुर, काशी और पटना तक उन्हें बेचने चले जाते हैं। वसन्तकाल आने पर सभी इकट्ठे हो पूर्वपथ होते हुए गजनी और खिलात-इ-गिलजाईके निकटवर्त्ती स्वदेश लौटते हैं। ग्रीष्मा-रम्भमें भारतसे लाये हुए पण्यद्रव्यको ले कर वे अफगानि-स्तान और मध्यएशियाके अनेक स्थानोंमें चले जाते हैं।

महम्मदजाई—दौलतजाई जातिके मध्य यही सम्प्र-दाय सबसे बड़ा है। भूपालका वर्त्तमान नवाब वंश इसी सम्प्रदायका है।

रोहिला पठान—पूर्वोक्त पाखटुनखवा नामक प्रदेश-को विदेशिगण 'रो' कहते हैं। 'रो' शब्दसे पर्वत और रोहिलासे पर्वतवासीका बोध होता है। वर्त्तमान रोहिलखण्डका नाम सम्पूर्ण आधुनिक है। १७०७ ई०में बादशाह औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद जब बरेली-वासी हिन्दुओंके मध्य विवाद खड़ा हुआ, तब रोहिला पठानोंके सरदार अली महम्मद खाँने इस प्रदेश पर आक्रमण किया। १७४४ ई०में कुमायुनके अलमोरा तकका स्थान उनके अधिकारमें आ गया। दो वर्ष पीछे वे बादशाह महम्मद शाहसे परास्त हुए। बादमें हाफिज रहमत खाँके समय वारेन हेष्टिंस रोहिलोंके संस्रवमें आ गये। रोहिलोंके मतसे वे इजिप्ट देशीय कोप्त-जाति-सम्भूत हैं। फेरोसे विताड़ित हो कर उन्होंने अन्यान्य देशोंमें आश्रय लिया है। रोहिला पठान बड़े साहसी और अत्यन्त कलहप्रिय होते हैं।

तरिन् पठान—जातीय प्रवाद है, कि प्रायः तीन चार सौ वर्ष पहले यूसुफजाई और मोमन्द जातीय पठान लोग तर्णक तथा अर्घासन नदीके किनारे आ कर वास करने लगे। उक्त स्थानसे और भी नीचे तरिन्-जातीय पठान रहते थे। उनकी कर्षित जमीन अनु-वर थी और उसमें जलसिञ्चनका कोई उपाय न था। इसीसे तरिनोंने क्रमशः मन्दार और मोमन्द पठानोंकी जमीन छीन ली है।

उस्तुरियानीपठान—ये लोग उस्तरियानीके पुत्र हनरके वंशोद्भूत हैं। हनर शिराणीसम्प्रदायस्थ एक रमणीका पाणिग्रहण करके उसी स्थानमें बस गये। प्रायः एक शताब्दी पहले व्यवसाय और पशुपालन ही इनके जीवनका प्रधान अवलम्बन था। पीछे मुसाखेलोंके साथ विवाद उपस्थित हो जाने पर जब पश्चिमकी ओर जाने

आनेकी सुविधा न रह गई, तब इन लोगोंने व्यवसाय करना बिलकुल छोड़ दिया। अभी ये लोग खेती-बारी करके अपना गुजारा करते हैं। सुलेमान पर्वतके पूर्वी किनारे इनका वासस्थान है। इनके मध्य और भी अनेक सम्प्रदाय हैं जिनमेंसे अहमदजाई और गगलजाई यही दो सम्प्रदाय प्रधान हैं। ये लोग निरीह और शान्तिप्रिय होते हैं। बहुतेरे सरकारी पुलिस सैन्यविभागमें नौकरी करते हैं। ये सबके सब सुन्नीसम्प्रदायभुक्त हैं।

वाजिरी पठान—खटकोंको दूरीभूत करके सुलेमान पर्वतश्रेणी पर बस गये। ये लोग सोढ़ाजातीय पठानों-की एक श्रेणी विशेष हैं। सोढ़ा पठान प्रमा-राजपूतों की एक शाखा माने जाते हैं। प्रायः पांच या छः शताब्दी पहले इन्होंने खटकों पर आक्रमण कर कोहाट उपत्यकासे शाम तक अपना अधिकार फैला लिया। ये लोग क्षमताशाली स्वाधीन जाति हैं, अधिकांश एक जगह वास नहीं करते, नाना स्थानोंमें घूम फिर कर अपनी जीविका निर्वाह करते है। इनकी आकृति और आचार-व्यवहारमें अन्यान्य पठानोंसे बहुत अन्तर पड़ता है।

यूसुफजाई पठान—सोयत, बुनार, लन्धखवार और राणिजाई उपत्यकामें इनका वास है।

पठानोंका चरित्र और आचार व्यवहार।—सीमान्तवासी और पञ्जाबके कतिपय स्थानोंके अधिवासी प्रकृत पठान अत्यन्त असभ्य हैं। ये लोग अति-निर्दय, प्रतिहिंसा-परायण तथा असहिष्णु होते हैं। धर्म और सत्यवादिता किसे कहते हैं, ये लोग जानते तक भी नहीं। अफगान विश्वासघातक होते हैं, यह प्रवाद अन्यान्य जातिके मध्य प्रचलित है। छलसे, बलसे जिस किसी प्रकारसे क्यों न हो, ये शत्रुका विनाश कर ही डालते। जो कुछ हो, इनमें तीन अच्छी प्रथा प्रचलित हैं,—(१) शत्रुके शरणा-गत होने पर उसकी रक्षा अवश्य करनी होगी, (२) अनिष्ट करने पर उसकी प्रतिहिंसा लेना अवश्य कर्त्तव्य है तथा (३) आतिथ्य सत्कार अलङ्घनीय है। चलित प्रवाद है, कि पठान एक मुहूर्त्तमें देव और एक मुहूर्त्तमें दानव है। सीमान्तवासी पठान जो कई शताब्दीसे अपनी स्वाधीनताकी अक्षुण्णभावसे रक्षा करते आ रहे हैं, यह उनकी वीरत्वव्यञ्जक आकृतिसे ही देदीप्यमान है। ये लोग दीर्घाकार और गौरवर्ण होते तथा मुखश्री शौर्यव्यञ्जक होती है। देखनेसे ही ये आजन्मस्वाधीन मालूम होते हैं। सीमान्तदेशस्थित पठान बड़े बड़े बाल रखते हैं। इनका पहनावा ढीला पाजामा, ढीली चपकन, छागललोमनिर्मित कोट, कम्बल वा ऊनी प्रकारका रेशमी कपड़ा है। पठान स्त्रियां भी ढीला पाजामा पहनती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही अत्यन्त अपरिष्कार रहते हैं।

भारतवर्षीय पठान बहुत कुछ सभ्य हैं। इनमेंसे कितने खेती बारी करके अपनी जीविका चलाते हैं। स्त्रियोंकी सतीत्वरक्षाके सम्बन्धमें पठान विशेष ध्यान देते हैं। इनमेंसे अधिकांश विवाद स्त्री ले कर ही होता है। स्वजातिमें ही इनकी विवाहप्रथा चलती है। भारतवर्षीय पठानोंके सम्बन्धमें यह यथायथ नहीं होने पर भी सीमान्त प्रदेशके पठानोंके विषयमें ठीक है। इनके मध्य उत्तराधिकारप्रथा महम्मदीय नियमानु-सार न हो कर जातीय नियमानुसार हुआ करती है। अभी दो एक जो शिक्षित वंश हैं वे महम्मदीय आईनके अनुसार चलते हैं। इनमें विभिन्न जातिके मध्य भिन्न भिन्न प्रथा प्रचलित है। रोहिलखण्डके पठान ही सर्वापेक्षा शिक्षित हैं जिनमेंसे अधिकांश अंगरेज गवर्मेण्टके अधीन राजस्व, पुलिस और अन्यान्य विभागोंके उच्च कार्यमें नियुक्त है।

पठान-स्थापत्य और शिल्प।

पठान-राज्यकी जब इस देशमें जड़ मजबूत हो गई, तब उन्होंने स्थपतिकार्यकी ओर ध्यान दिया। पहले पहल उन्होंने जयचिह्नसूचक अजमेर और दिल्लीमें दो मसजिद बनवाईं। युद्धकार्यमें हमेशा लिप्त रहनेके कारण वे अट्टालिकादि प्रस्तुतकार्यमें निपुण शिल्पीको ला न सके थे। उनका यह अभाव विजितोंके द्वारा ही पूरा हुआ था। अनेक जैन मन्दिरोंको पठानोंने मसजिदमें परिणत किया। दिल्लीके निकट जो मसजिद थी उसके साथ अजमेरकी मसजिदकी तुलना नहीं हो सकती। दिल्लीकी मसजिद यद्यपि अभी भग्ना-वस्थामें है, तो भी उसका दृश्य अतीव सुन्दर है। यह

मसजिद एक पहाड़की ढालवीं जमीन पर बनी हुई है। इसके सामने पहले एक ह्रद था। मसजिदके स्तम्भ हिन्दू मन्दिरके जैसे बने हुए थे।

कन्नौजमें अभी जो मसजिद है वह पहले जैन-मन्दिर था, इसमें कोई सन्देह नहीं। मसजिदकी छत और गुम्बज जैनमन्दिरके जैसे हैं। केवल इसका बहिर्भाग मुसलमानी प्रथानुसार बना हुआ है। इस मसजिदमें जो गुम्बज है वह बहुत बड़ा और बढ़िया है। मध्यस्थलके गुम्बजका परिमाण चौड़ाईमें २२ फुट और ऊंचाईमें ५३ फुट है। गुम्बज किस तरह बनाया जाता है वह पठान लोग अच्छी तरह जानते थे, किन्तु वैज्ञानिक ज्ञान उतना नहीं रहनेके कारण उन्होंने हिन्दू शिल्पियों पर इसका कुल भार सौंप दिया था।

कुतबमिनार पठानोंकी एक और कीर्त्ति है। इसके तलप्रदेशका घेरा ४८ फुट ४ इञ्च है। १७८४ ई०में इसकी ऊंचाई २४२ फुट थी। इसमें ४ बरामदे हैं। पहला बरामदा ८ फुट ऊंचे पर दूसरा १४८ फुट, तीसरा १८८ फुट और चौथा २१४ फुट ऊंचे पर अवस्थित है। इसके सिवा चारों ओर विस्तर कारुकार्य हैं। इसके कितलका ऊपरी भाग सफेद पत्थरका बना हुआ है और निचला भाग लाल बालुकापत्थरका।

कुतबमिनारसे ४७० फुट उत्तरमें अल्लाउद्दीनने एक दूसरा स्तम्भ बनवाना शुरू किया था, पर राजधानी दूसरी जगह चली जानेके कारण उसका निर्माणकार्य पूरा होने न पाया, अधूरा ही रह गया। इसकी ऊंचाई केवल ४० फुट मात्र हुई थी।

यहां एक और विस्मयजनक लौहस्तम्भ है जिसकी ऊंचाई २३ फुट २ इञ्च है। यह स्तम्भ बहुत पुराना है। इसमें जो खोदित लिपि है उसमें कोई तारीख लिखी न रहनेके कारण इसके निर्माणकालका पता नहीं चलता। कोई इसे ३री और कोई ४थी शताब्दीका बना हुआ मानते हैं। जो कुछ हो, वाह्लिकोंके सिन्धुदेशमें पराजित होनेके बाद विजयस्तम्भ-स्वरूप यह स्तम्भ निर्मित हुआ है।

अजमेरकी मसजिदकी कथा जो ऊपर कही जा चुकी है वह १२०० ई०में आरम्भ हो कर अलतमशके शासनकालमें शेष हुई। किंवदन्ती है, कि इस मसजिद का निर्माण ढाई दिनमें शेष हुआ, लेकिन ज्ञात पड़ता है कि जैनमन्दिरका भग्नावशेष अलग करनेमें ढाई दिन लगे होंगे, इसीसे इस प्रकारकी किंवदन्ति प्रचलित है। मसजिदका गुम्बज ही इसका सौन्दर्य है। इसमें जो सब खोदित शिलालिपि हैं, वह बहुत बढ़िया हैं।

अल्लाउद्दीनकी मृत्युके बाद पठान-स्थपति-विद्याकी विभिन्नता परिलक्षित हुई। पहले पठान लोग अपने घरों, मसजिदों आदिमें तरह तरहकी नक्शें दिया करते थे और निर्माणकार्यमें हिन्दुओंसे सम्पूर्ण सहायता लेते थे। किन्तु तुगलकशाहके समयमें पठान लोग बिना हिन्दूकी सहायताके मसजिदादि बनाने लगे। इन सब मसजिदों और अट्टालिकाओंमें विशेषता यह कि उनमें इतने चित्रादि नहीं होते थे।

समाधिस्थल बनानेमें पठानोंने जो निपुणता दिखलाई उसका शेष शेरशाहके समयसे हुआ। शाहाबादमें शेरशाहका समाधिमन्दिर है जिसका चित्र ६४१ पृष्ठमें दिया गया है।

ऐसा सुन्दर समाधिमन्दिर भारतवर्षमें बहुत कम देखनेमें आता है।

भारतमें पठान-शासन।

एक समय पठानोंने सारे भारतवर्ष पर अपना अधिकार जमा लिया था। मुगलोंके प्रभावसे भारतीय पठानोंका गौरवरवि अस्तमित हुआ।

भारतवर्ष और बङ्गदेश देखो।

नीचे दिल्लीके पठान राजाओं और बङ्गके शासनकर्त्ताओं तथा स्वाधीन पठान राजाओंकी वंशतालिका दी गई है।

पठान-शासनकर्त्तृगण।

१। महम्मद-इ-बख्तियार-खिलजी	११८८-१२०५ ई०
२। महम्मद-इ-शिरान्	१२०५—१२०८ ,,
३। अलीमर्द्दन	१२०८-१२११ ,,
४। सुलतान गयासुद्दीन	१२११-१२२७ ,,
५। नसिरुद्दीन	१२२७-१२२८ ,,
६। अलाउद्दीन	१२२८ ,,
७। सैफुद्दीन आइबक	१२३३ ,,
८। इज्जुउद्दीन अबुलफते तुग्रिल-तुघान खाँ	१२३३-१२४५
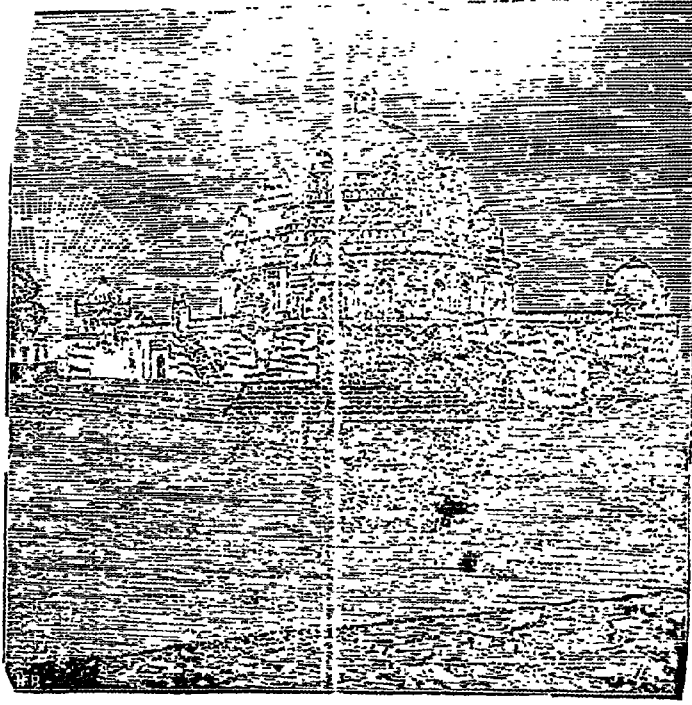
शेरशाहका समाधिमन्दिर।

९। कमरुद्दीन तैमुर खाँ   १२४५-१२४७ ई०

१० इख्तियार-उद्दीन युजबकी तुघ्रिल खाँ
(सुलतान मुग्निसुद्दीन)   १२४७-१२५८ ई०

११। जलालुद्दीन मसाउद मालिकजानी
१२५८-१२५९ ई०

१२। इज्जुद्दीन बलबन   १२५९ ई०

१३। महम्मद अर्सलन तातार खाँ   १२६४ „

१४। तुघ्रिल (सुलतान मघिसुद्दीन)   १२७९ „

१५। नासिरुद्दीन महमूद
(बगरा खाँ) १२८२

१६। रुकन-उद्दीन कैकाउस शाह १२९१-१२९६ ई०

१७। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर फिरोजशाह
१३०२-१३२२ „

१८। गयासुद्दीन बहादुरशाह   ?-१३३५ ई०

१९। कदर खाँ   १३२६-१३३९ ई०

२०। बहराम खाँ   १३३५-१३३८ ई०

२१। अजोम-उल-मुल्क   १३२४-१३३९ ई०

वङ्गके स्वाधीन पठान-सुलतानगण।

१। फखरुद्दीन अबुल मुजफ्फर मुबारकशाह
१३३८-१३४९

२। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर अलीशाह
१३३९-१३४५

३। इख्तियारउद्दीन अबुल मुजफ्फर गाजीशाह
१३५०-१३५२

४। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर इलियसशाह
१३३९-१३५७

५। अबुल मजाहिद सिकन्दरशाह १३५७-१३८९

६। गयासुद्दीन अबुल मुजफ्फर आजमशाह
१३८९-१३९६

७। सैफउद्दीन अबुल मजाहिद हामजाशाह
१३९६-१४००

८। शमसुद्दीन   १४०१-१४०२

इलियस शाहीवंश।

९। नासिरउद्दीन अबुल मुजफ्फर महमूदशाह
१४४७-१४५७

(६४२ पृष्ठमें देखो)

दिल्लीके पठानराजवंश।
कुतुब-उद्दीन् एबक
(१२०६से १२१० ई० तक)
आराम
कन्या
पति—शमसुद्दीन् अलतमश
(१२१०-१२३५)
नासिर-उद्दीन् मह्मूद हसन-कुरम
रुक्न-उद्दीन् फिरोज
(१२३५-१२३६)
सुलताना रज़िया
(१२३६-१२३८)
मुइज़उद्दीन् बहरामशाह
(१२३८-१२४१)
अला-उद्दीन् मसाउद
(१२४१-१२४६)
नासिर उद्दीन् मह्मूद
(१२४६-१२६६)
ग्यास-उद्दीन् बलबन
(१२६५-१२८७)
महम्मद
बुघरा खाँ
कै-खुसरु
मुइज-उद्दीन् कैकोबाद (१२८७-१२९०)
खिलजी-वंश।
जलाल-उद्दीन् फिरोजशाह
(१२९०-१२९५)
अला-उद्दीन महम्मदशाह
(१२९५-१३१५)
खान-ई खानान्
अर्कलीखाँ
कादिरखाँ
(१२९५-१२९६)
खिजिरखाँ
सादीखाँ
मुबारक कुतब-उद्दीन्
(१३१६-१३२०)
माह्व-उद्दीन्
तुगलक-वंश।
गाजीबेग वा ग्यास-उद्दीन् तुगलकशाह
(१३२०-१३२५)
महम्मदबीन् तुगलक
(१३२४-१३५१)
सिपहसालार रजब
फिरोजशाह (१३५१-१३८८)
नासिर-उद्दीन् महम्मदशाह
(१३८९-१३९२)
जाफरखाँ
फतेखाँ
अबूबकर (१३८८-१३८९)
ग्यास-उद्दीन् तुगलकशाह
(१३८८-१३८९)
हुमायूँ सिकन्दरशाह
(१३९२ ई० सिर्फ ४५ दिन)
मह्मूदशाह
(१३९२-१४१२)
(तैमूर द्वारा दिल्ली पर आक्रमण)
लोदी-वंश।
दौलतखाँ लोदी (१४१२-१४१४)

सैयद-वंश

सैयद-खिजिर खाँ (१४१४-१४२१)

सैयद मुबारकशाह (१४२१-१४३३)

महम्मदबिन् फरीद (१४३३-१४४३)

अला-उद्दीन् (आलमशाह) (१४४३-१४५०)

लोदी-वंश

बहलोललोदी (१४५०-१४८८)

सिकन्दरलोदी निजाम खाँ (१४८८-१५१७)

इब्राहिमलोदी (१५१७-१५३०

१०। रुकनुद्दीन अबुल मजाहिद बारबकशाह १४५८-१४७४

११। शमसुद्दीन अबुल मुजफ्फर यूसुफशाह १४७४-१४८१

१२। सिकन्दरशाह (२य) १४८१

१३। जलालउद्दीन अबुल मुजफ्फर फतेशाह १४८१-१४८७

हुसेनी-वंश।

१४। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर हुसेनशाह १४८३-१५२० वा-२२

१५। नासिरुद्दीन अबुल मुजफ्फर नसरतशाह १५२२-१५३२

१६। अलाउद्दीन अबुल मुजफ्फर फिरोजशाह (२य) १५३२

१७। गयासुद्दीन अबुल मुजफ्फर महमूदशाह (२य) १५३२-१५३७

सूरवंश।

१८। शेरशाह सूर	१५३९-१५४५
१९। महम्मद खाँ	१५४५-१५५५
२०। बहादुरशाह	१५५५-१५६१
२१। जलालशाह और उनके पुत्र २२। गयासुद्दीन	१५६१-१५६३

करानी-वंश।

२३। हजरत-इ-आला मीयाँ सुलेमान	१५६३-१५७२
२४। बयाजिद	१५७२
२५। दाऊद	१५७२-१५७६

पठानकोट—विपाशा और इरावती नदीके मध्य भागमें अवस्थित एक प्राचीन दुर्ग। बहुतोंका अनुमान है, कि पठानोंके नाम पर ही इस दुर्गका नामकरण हुआ है। किन्तु हिन्दुओंके मतसे पठानिया (नूरपुरके राजवंशकी उपाधि)-से इसका नाम पठानकोट पड़ा है। यह प्राचीन दुर्ग अभी भग्नावस्थामें पड़ा है। यहां हिन्दू और मुसलमानकी अनेक मुद्राएं पाई गई हैं।

पठानिन (हिं॰ स्त्री॰) पठानी देखो।

पठानी (हिं॰ स्त्री॰) १ पठान जातिकी स्त्री, पठान-स्त्री। २ पठान जातिकी चरित्रगत विशेषता, रक्तपात-प्रियता आदि पठानोंके गुण, पठानपन। ३ पठान होने-का भाव। (वि॰) ४ पठानोंका। ५ जिसका पठान या पठानोंसे सम्बन्ध हो, पठानोंसे सम्बन्ध रखनेवाला।

पठानीलोध (हिं॰ पु॰) एक जङ्गली पेड़ जिसका काठ और फूल औषध तथा पत्ते और छिलके रंग बनानेके काममें आते हैं। यह रोपा नहीं जाता, केवल जङ्गली-रूपमें पाया जाता है। इसकी छालको उबालनेसे एक प्रकारका पीला रंग निकलता है। यह रंग कपड़ा रंगनेके काममें लाया जाता है। बिजनौर, कुमाऊं और गढ़वालके जङ्गलोंमें इसके वृक्ष बहुतायतसे पाये जाते हैं। चमड़े पर रंग पक्का करने और अबीर बनानेमें भी इसकी छाल व्यवहृत होती है।

विशेष विवरण पट्टिकालोध्र शब्दमें देखो।

पठार (हिं॰ पु॰) एक पहाड़ी जाति।

पठावन (हिं॰ पु॰) संदेशवाहक, दूत।

पठावनि (हिं॰ स्त्री॰) १ किसीको कहीं कोई वस्तु या सन्देश पहुंचानेके लिये भेजना। २ किसीके भेजने-से कहीं कुछ ले कर जाना।

पठावर (हिं॰ पु॰) एक प्रकारकी घास।

पठि (सं॰ स्त्री॰) पठ-इन् (सर्वधातुभ्य इन्। उण् ४।११७) पठन, पाठ।

पठित (सं॰ त्रि॰) पठ-क्त। १ वाचित, कृतपाठ, जिसे पढ़ चुके हों। २ शिक्षित, पढ़ालिखा।

पठितव्य (सं० त्रि०) पठ-तव्य। पढ़नेके योग्य।

पठिताङ्ग (सं० क्ली०) मैलकामिट।

पठिति (सं० स्त्री०) छन्दःशास्त्रभेद।

पठियर (हिं० स्त्री०) वह तख्ती या पटिया जो कुएँके मुंह पर बीचोबीच रख दी जाती है। पानी निकालनेवाला उसी पर पैर रख कर पानी निकालता है। इस पर खड़े हो कर पानी निकालनेमें घड़ेके कुएँकी दीवार से टकरानेका भय नहीं रहता।

पठिया (हिं० स्त्री०) यौवनप्राप्त स्त्री, जवान और तगड़ी औरत।

पठोर (हिं० स्त्री०) १ जवान पर बिना ब्याई बकरी। २ जवान पर बिना ब्याई मुर्गी।

पठौनी (हिं० स्त्री०) १ किसीको कुछ दे कर कहीं भेजनेकी क्रिया या भाव। २ किसीको कोई चीज ले कर कहीं जानेकी क्रिया या भाव।

पठ्यमान (सं० त्रि०) पठ-शानच्। जो पढ़ा जाता हो।

पड़छत्ती (हिं० पु०) १ दीवारको पानीसे बचानेके लिये लगाया जानेवाला छप्पर या टट्टी। २ कमरे आदिके बीचमें तख्ते या लट्ठे आदि ठहरा कर बनाई हुई पाटन जिस पर चीज असबाब रखते हैं, टांड़।

पड़ता (हिं० पु०) १ किसी वस्तुको खरीद या तैयारीका दाम। २ सामान्य दर, औसत, नरदर, शरह। ३ दर, शरह। ४ भू-करकी दर, लगानकी शरह।

पड़ताल (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुकी सूक्ष्म छानबीन, गौरके साथ किसी चीजकी जांच। २ ग्राम अथवा नगरके पटवारी द्वारा खेतोंकी एक विशेष प्रकारकी जांच। यह जांच खरीफ, रब्बी और फस्ल जायद नामक तीनों फसलोंके लिए अलग अलग तीन बार होती है। खेतमें कौन-सी चीज बोई गई है, कितनी बोई है, खेत सींचा गया है या नहीं आदि बातें इस जांचमें लिखी जाती हैं। ग्रामका पटवारी करएक पड़तालके बाद जिंसवार एक नकशा बनाता है। इस नकशेसे मालके अधिकारियोंको यह मालूम होता है, कि इस वर्ष कौन-सी चीज कितने बीघेमें बोई गई है, उसकी क्या अवस्था है और कितनी उपजेगी आदि। ३ मार।

पड़तालना (हिं० क्रि०) अनुसन्धान करना, छान बीन करना।

पड़ती (हिं० स्त्री०) भूमि जिस पर कुछ कालसे खेती न की गई हो। मालके कागजातमें पड़तीके दो भेद किए जाते हैं—पड़ती जदीद और पड़ती कदीम। जो भूमि केवल एक सालसे न जोती गई हो उसे पड़ती जदीद और जो एकसे अधिक सालोंसे न जोती बोई गई हो उसे पड़ती कदीम कहते हैं।

पड़ना (हिं० क्रि०) १ पतित होना, गिरना। 'गिरना' और 'पड़ना'के अर्थोंमें फर्क यह है, कि पहली क्रियाका विशेष लक्ष्य गति-व्यापार पर और दूसरीका प्राप्ति या स्थिति पर होता है; अर्थात् पहली क्रिया वस्तुका किसी स्थानसे चलना या रवाना होना और दूसरी उसका किसी स्थान पर पहुंचना या ठहरना सूचित करती है। २ बिछाया जाना, डाला जाना। ३ अनिष्ट या अवाञ्छनीय वस्तु या अवस्था प्राप्त होना। ४ हस्तक्षेप करना, दखल देना। ५ प्रविष्ट होना, दाखिल होना। ६ विश्रामके लिये सोना या लेटना। ७ डेरा डालना, पड़ाव करना, ठहरना। ८ मार्गमें मिलना, रास्तेमें मिलना। ९ आय, प्राप्ति आदिका औसत होना, पड़ता होना। १० प्राप्त होना, मिलना। ११ पड़ना खाना। १२ खाट पर पड़ना, बीमार होना। १३ जांच या विचार करने पर ठहरना, पाया जाना। १४ प्रसङ्गमें आना, उपस्थित होना, संयोगवश होना। १५ उत्पन्न होना, पैदा होना। १६ स्थित होना। १७ मैथुन करना, सम्भोग करना। यह केवल पशुओंके लिये व्यवहृत होता है। १८ देशान्तर या अवस्थान्तर होना। १९ पर्यन्त इच्छा होना, धुन होना।

पड़पड़ (हिं० स्त्री०) १ निरन्तर पड़पड़ शब्द होना। २ पटपट देखो। (पु०) ३ मूलधन, पूंजी।

पड़पड़ाना (हिं० क्रि०) १ पड़पड़ शब्द होना। २ मिर्च, सोंठ आदि कड़वे पदार्थोंके स्पर्शसे जीभ पर जलन-सी मालूम होना, चरपराना।

पड़पड़ाहट (हिं० स्त्री०) पड़पड़ानेकी क्रिया या भाव, चरपराहट।

पड़पूत—त्रिवाङ्कुड़के अगस्त्येश्वर तालुकके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह त्रिवाङ्कुड़नगरसे ३८ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। यहां बहुतसे प्राचीन मन्दिर हैं जिनमें शिलालिपि उत्कीर्ण हैं।

पड़पोता (हिं॰ पु॰) प्रपौत्र, पोतेका पुत्र, पुत्रका पोता।

पड़वेड़ू—उत्तर आर्कट जिलेके पोलूर तालुकके अन्तर्गत एक विध्वस्त नगर। कोई कहते हैं, कि यहीं पर कुरुम्बरोंकी राजधानी थी। प्रायः १६ मील घेरेके अन्दर प्रासाद, देवमन्दिर और छत आदिके भग्नावशेष पड़े हैं जिनसे नगरको प्राचीन समृद्धिका यथेष्ट परिचय मिलता है। प्रवाद है, कि कुलोत्तुङ्गचोलके पुत्र अडोण्डईने इस नगरको विध्वस्त और जनमनवशून्य कर डाला था, तभीसे इसकी अवस्था सुधरी नहीं है। पड़वेड़ू नामक यहांके नूतन ग्राममें बहुत कम लोग रहते हैं। इसी ग्राममें रेणुका और रामस्वामीके मन्दिरमें शिलालिपि देखी जाती है। १४६८ ई॰में उत्कीर्ण शिलालिपिमें 'पड़वेड़ू'-का उल्लेख है।

पड़म (हिं॰ पु॰) खेमे आदि बनानेके काममें आनेवाला एक प्रकारका मोटो सूती कपड़ा।

पड़वा (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्येक पक्षकी प्रथम तिथि।

पड़वाना (हिं॰ क्रि॰) पड़नेका काम दूसरेसे कराना, गिरवाना।

पड़वी (हिं॰ स्त्री॰) बैसाख या जेठ मासमें बोई जानेवाली एक प्रकारकी ईख।

पड़ाइन (हिं॰ स्त्री॰) पंडाइन देखो।

पड़ाका (हिं॰ पु॰) पटाका देखो।

पड़ाना (हिं॰ क्रि॰) झुकाना, गिराना।

पड़ापड़ (हिं॰ क्रि॰ वि॰) पटापट देखो।

पड़ाव (हिं॰ पु॰) १ गाड़ीसमूहका यात्राके बीचमें अवस्थान। २ वह स्थान जहां यात्री ठहरते हों, चट्टी, टिकान।

पड़ाशी (सं॰ स्त्री॰) पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़।

पड़िया (हिं॰ स्त्री॰) भैंसका मादा बच्चा।

पड़ियाना (हिं॰ क्रि॰) १ भैंसका भैंसेसे संभोग होना, भैंसाना। २ भैंसको मैथुनार्थ भैंसेके समीप पहुंचाना।

पड़िवा (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्येक पक्षको प्रथम तिथि, पड़वा, प्रतिपदा।

पड़ेरू (हिं॰ पु॰) पड़रू देखो।

पड़ोरा (हिं॰ पु॰) परवल देखो।

पड़ोस (हिं॰ पु॰) १ प्रतिवेश, किसीके समीपके घर। २ किसी स्थानके समीपवर्त्ती स्थान।

पड़ोसी (हिं॰ पु॰) प्रतिवासी, प्रतिवेशी, पड़ोसमें रहनेवाला।

पड़ौसी (हिं॰ पु॰) पड़ोसी देखो।

पड्‌ष्टभि (सं॰ पु॰) असुरभेद, एक राक्षसका नाम।

पड्‌वीश (सं॰ क्ली॰) १ पादबन्धन। २ पादबन्धनयोग्य रज्जु।

पढ़ंत (हिं॰ स्त्री॰) १ पढ़नेकी क्रिया या भाव। २ मन्त्र, जादू।

पढ़ना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी पुस्तकका लेख आदिको इस प्रकार देखना कि उसमें लिखी बात मालूम हो जाय। २ मध्यम स्वरसे कहना, उच्चारण करना। ३ किसी लेखके अक्षरोंसे सूचित शब्दोंको मुंहसे बोलना। ४ नया पाठ प्राप्त करना, नया सबक लेना। ५ स्मरण रखनेके लिये किसी विषयका बार बार उच्चारण करना। ६ मन्त्र फूंकना, जादू करना। ७ शिक्षा प्राप्त करना, अध्ययन करना। ८ तोते, मैना आदिका मनुष्योंके सिखाये हुए शब्द उच्चारण करना। ९ एक प्रकारकी मछली।

पढ़िना देखो।

पढ़नी (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका धान।

पढ़नी-उड़ी (हिं॰ स्त्री॰) कसरतमें एक प्रकारका अभ्यास जिसमें आदमी, टीला या अन्य कोई ऊंची चीज उछल कर लांघी जाती है। इसके दो भेद हैं—एकमें सामनेकी ओर और दूसरेमें पीछेकी ओर उछलते हैं, उछलनेवालोंके अभ्यासके अनुसार टीलेकी ऊंचाई रहती है।

पढ़वाना (हिं॰ क्रि॰) १ किसीसे पढ़नेकी क्रिया कराना, बंचवाना। २ किसीके द्वारा किसीको शिक्षा दिलाना।

पढ़वैया (हिं॰ पु॰) १ शिक्षार्थी, पढ़नेवाला।

पढ़ाई (हिं॰ स्त्री॰) १ विद्याभ्यास, अध्ययन, पठन, पढ़नेका काम। २ वह धन जो पढ़नेके बदलेमें दिया जाय। ३ पढ़नेका भाव। ४ अध्यापन, पाठन, पढ़ौनी। ५ पढ़ानेका भाव। ६ अध्यापन शैली, पढ़ानेका ढंग। ७ वह धन जो पढ़ानेके बदलेमें दिया जाय।

पढ़ाना (हिं॰ क्रि॰) १ अध्यापन करना, शिक्षा देना। २

सिखाना, समझाना। ३ कोई कला या हुनर सिखाना। ४ तोते, मैंना आदि पक्षियोंको बोलना सिखाना।

पढ़िना (हिं० पु०) तालाब और समुद्रमें पाई जानेवाली एक प्रकारकी बिन सेहरेकी मछली। यह मछली प्रायः सभी मछलियोंसे अधिक दिन तक जीती है और डील-डौलवाली होती है। कोई कोई पढ़िना दो मनसे अधिक भारी होता है। यह मांसाशी है। इसके सारे शरीरके मांसमें बारीक बारीक कांटे होते हैं जिन्हें दांत कहते हैं। वैद्यकमें इसे कफपित्तकारक, बलदायक निद्राजनक, कोढ़ और रक्तदोष उत्पन्न करनेवाला लिखा है। इसके और भी नाम हैं, जैसे-पाठीन सहस्रदंष्ट्र, बोदालक, वदालक पढ़ना और पढ़िना।

पढ़ैया (हिं० पु०) पाठक, पढ़नेवाला।

पण (सं० पु०) पण्यतेऽनेन पण व्यवहारे अप्। (नित्यं पणः परिमाणे। पा ३।३।६६)। १ कर्षपरिमित ताम्र, किसीके मतसे ११ और किसीके मतसे २० माशेके बराबर तांबेका टुकड़ा। इसका व्यवहार प्राचीनकालमें सिक्केकी भांति किया जाता था। २ निर्वंश, वेतन, तनखाह। ३ भृति, नौकरी। ४ द्यूत, जुआ। ५ ग्लह, बाजी। ६ मूल्य, कीमत। ७ अशीति-वराटक, अस्सी कौड़ी। ८ धन, सम्पत्ति, जायदाद। ९ कार्षापण। १० प्रतिज्ञा, शर्त, कौलकरार। ११ वह वस्तु जिसके देनेका करार या शर्त हो। १२ शुल्क, फीस १३ व्यवहार, व्यापार, व्यवसाय। १४ स्तुति प्रशंसा। १५ प्राचीन कालकी एक विशेष माप जो एक मुट्ठी अनाजके बराबर होती थी। १६ शौण्डिक, कलवार। १७ गृह, घर। १८ विष्णु। विवाहादिमें कन्याकर्त्ता वरकर्त्ताको अथवा वरकर्त्ता कन्याकर्त्ताको जो रुपया देता है, उसे भी पण कहते हैं। (त्रि०) २० क्रयविक्रयादिकारक, खरीदने बेचनेवाला।

पणग्रन्थि (सं० पु०) पणस्य विक्रयादेर्ग्रन्थिरिव। हट्ट, हाट, बाजार।

पणधा (सं० स्त्री०) पणाख्या तृण, एक प्रकारकी घास।

पणन (सं० क्ली०) पण व्यवहारे ल्युट्। १ विक्रय, बेचनेकी क्रिया या भाव। २ खरीदनेकी क्रिया या भाव। ३ व्यापार या व्यवहार करनेकी क्रिया या भाव। ४ शर्त लगाने या बाजी बदनेकी क्रिया या भाव।

पणनीय (सं० त्रि०) १ धन दे कर जिससे काम लिया जा सके। २ जिसे खरीदा या बेचा जा सके।

पणफर (सं० क्ली०) लग्नस्थानसे द्वितीय, पञ्चम, अष्टम और एकादश स्थान, कुण्डलीमें लग्नसे २रा, ५वां और ११वां घर।

पणव (सं० पु०) पणं स्तुतिं वातीति पण-वा-क। १ एक प्रकारका वाद्ययन्त्र, छोटा नगाड़ा। २ छोटा ढोल। ३ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक भगण, एक नगण, एक यगण और अन्तमें एक गुरु होता है। इसमें १६-१६ मात्राएं होती हैं, इस कारण यह चौपाईके भी अन्तर्गत आता है।

पणबन्ध (सं० पु०) पणस्य बन्धः। ग्लह, बाजी बदना, शर्त लगाना।

पणवा (सं० स्त्री०) पणव-टाप्। पणव, छोटा नगाड़ा या छोटा ढोल।

पणवानक (सं० पु०) नगाड़ा, धौंसा।

पणविन् (सं० पु०) महादेव, शिव।

पणस (सं० पु०) कण्टालुफलवृक्ष। (Artocarpus integrifolia) कटहलका पेड़। भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे पुकारा जाता है, जैसे—हिन्दी—कटहल, महाराष्ट्र—फणस, कर्णाट—हलसिन, तैलङ्ग—उत्पनस, तामिल—पिला। इसके फलका गुण—मधुर, पिच्छिल, गुरु, हृद्य, बलवीर्यवृद्धिकर, श्रम, दाह और शोषघ्न, रुचिकर, ग्राहक और दुर्जर। बीजका गुण—ईषत् कषाय, मधुर, वातल, गुरु और त्वग्दोषनाशक। कच्चे कटहलफलका गुण—नीरस और हृद्य। मध्यपक्वका गुण—दीपन, रुचिकर और लवणादियुक्त। पक्वफलका गुण—रक्तवर्द्धक, मधुर, शीतल, दुर्जर, वातपित्तनाशक, श्लेष्म, शुक्र और बलकर। मज्जाका गुण—शुक्रल, त्रिदोषनाशक, गुल्मरोगमें विशेष हितकर। इसका क्वाथ मांसग्रन्थिशोफमें हितकर तथा कोमल पल्लव चर्मरोगमें हितकर है। कटहल देखो।

पणस (सं० पु०) पणायते इति पण-असच् (अत्यविचमीति। उण् ३।११७) पण्य द्रव्य, क्रय विक्रयकी वस्तु, सौदा।

पणसुन्दरी (सं० स्त्री०) बाजारी स्त्री, रंडी, वेश्या।

पणस्त्री (सं० स्त्री०) पणेन धनेन लभ्या स्त्री। वेश्या, रंडी।

पणातीर्थ—गौड़ीय वैष्णवोंका एक पवित्र तीर्थ। श्रीहट्टके सुनामगञ्ज उपविभागके अधीन लाउड़ परगना है और लाउड़ पर्वतकी अधित्यका पर ही पणातीर्थ अवस्थित है। पण एक प्रस्रवण मात्र है। प्रति वारुणी-योगमें अनेक मनुष्य यहां स्नान तर्पणके लिये आते हैं।

पणाङ्गना (सं० स्त्री०) पणेन लभ्या अङ्गना। वेश्या, रंडी।

पणाया (सं० स्त्री०) पणाय्यते व्यवह्रियते इति पण-व्यवहारे स्तुतौ च, स्वार्थे आय ततो भावे अप्, ततः टाप्। १ स्तुति, प्रशंसा। २ द्यूत, जुआ। ३ क्रयविक्रय-रूप व्यवहार, व्यापार, व्यवसाय।

पणायित (सं० त्रि०) पणाय्यते स्म, पण स्वार्थे आयः ततः क्तः (आयादय आर्द्धधातुके वा। पा ३।१।३१) १ स्तुत, जिसकी प्रशंसा की गई हो। २ व्यवहृत, जिसका व्यवहार किया गया हो। ३ क्रीत, जो खरीदा गया हो।

पणास्थि (सं० क्ली०) पणस्य पणाय वा यदस्थि। कपर्दक, वराटक, कौड़ी।

पणास्थिक (सं० क्ली०) पणास्थि स्वार्थे कन्। वराटक, कौड़ी।

पणाहान—१ युक्तप्रदेशके आगरा जिलान्तर्गत एक तहसील। इसके उत्तर यमुनानदी और दक्षिण चम्बलनदी पूर्व-पश्चिममें विस्तृत है। इसका भूपरिमाण ३४१ वर्गमील है। यहां सर्वपोंका विस्तृत व्यवसाय होता है।

२ उक्त तहसीलका सदर और प्रधान नगर। यह अक्षा० २६° ५२´ ३८´´ उ० तथा देशा० ७८° २४´ ५८´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां तीन कारुकार्ययुक्त सुन्दर हिन्दू देवमन्दिर हैं।

पणि (सं० स्त्री०) पण आधारे इन्। पण्यवीथिका, क्रयाविक्रयका स्थान, हाट, बाजार।

पणिक (सं० पु०) पण।

पणिकावर्त्त (सं० पु०) राजावर्त्तमणि।

पणित (सं० त्रि०) पण्यते स्म इति पण क्त, आयाभाव पक्षे सिद्धं। १ व्यवहृत। २ स्तुत। ३ क्रीत। ४ विक्रीत। (क्ली) ५ बाजी। ६ जुआ।

पणितव्य (सं० त्रि०) पण्यते इति पण-तव्य। १ विक्रेय द्रव्य, बेचनेयोग्य। खरीदने योग्य। २ ३ स्तोतव्य, प्रशंसा करने योग्य। ४ व्यवहार्य, व्यवहार करने योग्य।

पणितृ (सं० त्रि०) पण तृच्। विक्रेता, बेचनेवाला।

पणिन् (सं० त्रि०) व्यवहारो द्यूतं स्तुतिर्वा पणः अस्त्यर्थे इनि। १ क्रयादि व्यवहारयुक्त। २ स्तुतियुक्त। (पु०) ३ ऋषिभेद।

पण्टलश्रोरो—बम्बई प्रदेशके रेवाकान्तके अन्तर्गत संखेड़ा मेवास. अधिकृत एक क्षुद्र सामन्तराज्य। भूपरिमाण ५ वर्गमील है। यहां नाथूखाँ और नाजिरखाँ नामक दो सरदार रहते थे।

पण्टालियन—एक प्राचीन ग्रीकराजा। पञ्जाबके किसी स्थानमें यह राज्य करते थे। तक्षशिला नामक स्थानसे इसके समयकी मुद्रा पाई गई है।

पण्ड (सं० पु० पण्डते निष्फलत्वं प्राप्नोतीति पडि-गतौ पचाद्यच्, वा पण ड। १ क्लीव, नपुंसक, हिजड़ा। त्रि०। २ निष्फल, जिसमें फल न लगे।

पण्डक (सं० पु०) १ सावर्णि मनुके एक पुत्रका नाम। २ नपुंसक, हिजड़ा।

पण्डग (सं० पु०) १ खोजा, नपुंसक। २ पण्डकका पाठान्तर।

पण्डरदेवी—निजाम राज्यके बरार प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यह बून नगरसे ११ कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहां हेमाड़ पन्थियोंका एक भग्नावशेष मन्दिर देखनेमें आता है। जिन सब स्तम्भोंके ऊपर छत अवलम्बित थी, उनका अधिकांश टूट फूट गया है, केवल ३ स्तम्भ रह गये हैं। इसका बाहरी भाग सुन्दर शिल्पकार्य-विशिष्ट है।

पण्डरानी—मलबार उपकूलवर्त्ती एक प्रधान बन्दर। दक्षिण-पश्चिम मोनसूनवायुके बहने पर वहां जहाज आदि रखनेकी विशेष सुविधा थी। इसके पूर्व सौन्दर्यका ह्रास हो गया है। वर्त्तमान कालमें कुछ मत्स्यजीवि इस ग्राम-के अधिकारी हैं। प्रसिद्ध पोर्त्तुगीजनाविक भास्को-डिगामा भारतवर्ष पदार्पण करते समय पहले पहल इसी बन्दरमें ठहरे थे। ११५० ई०के एद्रिसीके वृतान्तसे जाना जाता है, कि यह नगर मलवार उपकूलके नदीके मुख पर स्थापित था। पहले यहां नाना द्रव्योंका व्यवसाय होता था और असंख्य धनी तथा व्यवसायी यहां रहते

थे। भारतवर्षके नाना स्थान, सिन्ध और चीन आदि देशोंके व्यापारी इस बन्दरमें लंगर डाल कर बहुमूल्य द्रव्यादि खरीदते थे।

पण्डा (सं॰ स्त्री॰) पण्ड टाप्। १ तीक्ष्ण बुद्धि। २ शास्त्रज्ञान। ३ वेदोज्ज्वला बुद्धि।

पण्डापूर्व (सं॰ क्ली॰) पण्डं निष्फलं अपूर्वं अदृष्टं। १ फलसाधनयोग्य फलानुपहित धर्माधर्मात्मक अदृष्ट, मीमांसा शास्त्रानुसार वह धर्माधर्मात्मक अदृष्ट जो अपने कर्मका फल देनेमें अयोग्य हो। मीमांसाका मत है, कि प्रत्येक कर्मके करते हो चाहे वह अधर्म हो वा धर्म एक अदृष्ट उत्पन्न होता है। इस अदृष्टमें अपने कर्मके शुभाशुभ फल देनेकी योग्यता होती है परन्तु कितने कर्मोंके शुभाशुभ फल तो मिलते हैं और उनके फलोंके मिलनेका वर्णन अर्थवाद वाक्योंमें है, पर कितने ऐसे भी हैं जिनका फल नहीं मिलता। मीमांसकोंका मत है, कि सन्ध्यावन्दनादिका अनुष्ठान नहीं करनेसे दुरदृष्ट उत्पन्न होता है। इसके अनुष्ठानसे किसी प्रकारका शुभादृष्ट नहीं होता, किन्तु पापक्षय होता है, इसीसे इसको फलानुपहित धर्माधर्मात्मक अदृष्ट कहते हैं। २ फलका अप्रतिपादक अदृष्टभेद। नैयायिक लोग इस प्रकारके अदृष्टको नहीं मानते।

पण्डारम—नीच वा शूद्रश्रेणीका हिन्दूसंन्यासी। ये लोग दक्षिण भारत और सिंहलद्वीपमें निम्नश्रेणीके हिन्दुओं का पौरोहित्य करते हैं। इनमें कितने वैष्णव और शैव हैं। सिंहलद्वीपके नागतम्बोरण देवमन्दिरमें और महिसुरके अन्तर्गत चेर नामक स्थानके शिवमन्दिरमें ये लोग पुजारीका काम करते हैं।

पण्डारदेव—विजयनगरके राजा। १४१४ ई॰में विजयरायके मरने पर ये सिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। राजपद पानेके साथ ही इनका राज्यवृद्धिकी ओर ध्यान दौड़ा। नाना आयोजनके बाद १४४२ ई॰में इन्होंने तुङ्गभद्रानदी पार कर सागर और बीजापुर पर आक्रमण किया। यहां सुद्गल और तुङ्गभद्रा नदीके मध्यस्थलमें हिन्दू और मुसलमानोंके बीच तीन बार युद्ध हुआ *। युद्धमें दो मुसलमान सेनापति बन्दी हो कर राजाके समीप भेज दिये गए थे। १४५० ई॰में पण्डारदेवकी मृत्यु हुई।

पण्डित (सं॰ पु॰) पण्डा वेदोज्ज्वला तत्त्वविषयिणी वा बुद्धिः सा जाताऽस्य, इतच्। (तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्। पा ५।२।३६), वा पण्ड्यते तत्त्वज्ञानं प्राप्यतेऽस्मात् गत्यर्थे क्त। १ शास्त्रज्ञ, वह जो शास्त्रके यथार्थ तात्पर्यसे अवगत हो।

'निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिक श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम्॥"

(चिन्तामणि)

जो प्रशंस्य कार्योंका अनुष्ठान करते हैं और निन्दित विषयोंकी सेवा नहीं करते तथा जो अनास्तिक और श्रद्धावान् हैं, वही पण्डित कहलाते हैं। महाभारतमें लिखा है—

"पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः॥"

(भारत वनपर्व)

पठक और पाठक, जो सर्वदा शास्त्रकी आलोचना करते तथा जो क्रियावान् हैं उन्हें पण्डित और जो व्यसनासक्त हैं उन्हें मूर्ख कहते हैं। गीतामें लिखा है—

"विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥"

(गीता ५।१७)

विद्याविनयसम्पन्न ब्राह्मण, गो, हस्ती, कुक्कुर, चण्डाल आदि सभी जीवोंमें पण्डितगण समदर्शी होते हैं। जो कोई वस्तु परिदृश्यमान होगी, उसे ही जो ब्रह्मभावसे देखते हैं, वही पण्डित हैं। जिन्होंने श्रवणादि द्वारा आत्मतत्त्वका साक्षात्कार किया है, वे ही पण्डित पदवाच्य हैं।

पण्डित शब्दके पर्याय—विद्वान्, विपश्चित्, दोषज्ञ, सत्, सुधी, कोविद, बुध, धीर, मनीषी, प्राज्ञ, संख्या-

* खुरासान राजदूत अबदुल रज्जाक (१४४२-४३ ई॰में) जब भारतवर्ष पधारे, तब वे इस युद्ध तथा विजयनगरके अतुल ऐश्वर्य और हिन्दूधर्मके अविचलित प्रतापको देख कर अपने रोजनामचेमें इसका उल्लेख कर गये हैं। W. Major ने उक्त पुस्तिकाका अनुवाद कर India in the fifteenth century नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया।

वान्, कवि, धीमान्, सूरि, कृती, कृष्टि, लब्धवर्ण, विचक्षण, दूरदर्शी, दीर्घदर्शी, विशारद, कवी, विदग्ध, दूरदृक्, वेदी, वृद्ध, बुद्ध, विधानग, प्रश्निल, कृश्नि, विज्ञ, मेधावी और सिद्धक।

२ महादेव। (त्रि०) ३ कुशल, प्रवीण, चतुर। ४ संस्कृत भाषाका विद्वान्।

पण्डितक (सं० पु०) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। पण्डित स्वार्थे कन्। २ पण्डित शब्दार्थ।

पण्डितजातीय (सं० त्रि०) १ सांड-ग्रामभेद। २ महामात्रभेद।

पण्डितता (सं० स्त्री०) पण्डित-भावे तल्, स्त्रियां टाप्। पण्डितत्व, पाण्डित्य।

पण्डितमानिक (सं० त्रि०) जो अपनेको पण्डित बतला कर अभिमान करता है, मूर्ख।

पण्डितमानिन् (सं० त्रि०) आत्मानं पण्डितं मन्यते पण्डित-मन-इनि। मूर्ख।

पण्डितम्मन्य (सं० त्रि०) आत्मानं पण्डितम्मन्यते यः, पण्डित-मन खश्, मुम् (आत्ममाने खश्च। पा ३।२।८३) अपनेको विद्वान् माननेवाला, मूर्ख।

पण्डितमन्यमान (सं० त्रि०) पण्डिताभिमानी, मूर्ख।

पण्डितराज (सं० पु०) पण्डितानां राजा, टच् समासान्तः। पण्डितश्रेष्ठ।

पण्डितसूरि—नरसिंहचम्पूके प्रणेता।

पण्डिता (सं० त्रि०) विदुषी।

पण्डिताइन (हिं० स्त्री०) पण्डितानी देखो।

पण्डिताई (हिं० स्त्री०) विद्वत्ता, पाण्डित्य।

पण्डिताऊ (हिं० वि०) पण्डितोंके ढंगका।

पण्डितानी (हिं० स्त्री०) १ पण्डितकी स्त्री। २ ब्राह्मणी।

पण्डितिमन् (सं० पु०) पण्डितस्य भावः, दृढ़ादित्वात् इमनिच्। पाण्डित्य।

पण्डु (सं० त्रि०) १ पीलापन लिये मटमैला। २ पीला। ३ श्वेत, सफेद।

पण्डुआ—बङ्गाल प्रदेशमें इस नामके तीन ग्राम हैं, पहला मालदह जिलेमें, दूसरा हुगली जिलेमें और तीसरा मानभूम जिलेमें।

मालदह जिलेमें जो पण्डुआ ग्राम है उसे बोलचालमें पेंडुआ या बड़ा पेंडो और हुगली जिलेके पण्डुआ ग्रामको पेंड़ो वा छोटा पेंड़ो कहते हैं। मालदह जिलेका पण्डुआ अक्षा० २५° ८' उ० और देशा० ८८° १०' पू० तथा हुगलीका पण्डुआ अक्षा० २३° ५' उ० और देशा० ८८° १७' पू०के मध्य अवस्थित है। बड़ा पेंडो अभी जनशून्य है और छोटे पेंड़ोमें करीब तीन हजार मनुष्योंका वास है। एक समय ये दोनों स्थान बड़े ही समृद्धिशाली थे, पर अभी यहांकी पूर्वश्री बिलकुल जाती रही। पहले यहां बङ्गालकी राजधानी थी। सुविख्यात गौड़ नगरकी अपेक्षा इसकी प्रतिपत्ति किसी अंशमें कम न थी। अब भी यहां प्राचीन कीर्त्तियोंके यथेष्ट भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। हुगली जिलेमें जो पण्डुआ ग्राम है उसीका संक्षिप्त विवरण यहां पर दिया जाता है। १७६० ई०में यह स्थान अंगरेजोंके अधीन तथा वर्द्धमानराजके जमींदारीभुक्त हुआ था। यहांके प्राचीन दुर्गकी खाई आज भी विद्यमान है। प्राचीन मस्जिद तथा बड़े बड़े सुदृढ़ घाट आदिका भग्नावशेष देखनेसे मालूम होता है, कि यह एक समय अतिसमृद्धिशाली नगर था। १८वीं शताब्दीके आरम्भमें भी यहांका कागजका कारबार विशेष प्रसिद्ध था। 'पेंड़ुई' कागजकी कथा आज भी मुसलमानोंके मुखसे सुनी जाती है। कहते हैं, कि पण्डुआका कागज दीर्घकालस्थायी और पतला होता था। लोग विशेषतः इसी कागजको काममें लाते थे।

पण्डुआके अधिवासी प्रधानतः मुसलमान हैं; हिन्दूकी संख्या प्रायः नहींके समान है। यहांके सभी मुसलमान अपनेको शाह सफी उद्दीन् नामक एक पीरके वंशधर बतलाते हैं।

आईन-इ-अकबरीके सिवा उससे भी प्राचीन किसी मुसलमानी इतिहासमें छोटे पण्डुआका नाम नहीं मिलता।

इसकी नामोत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार अनुमान किया जाता है,—गौड़की प्राचीनतम राजधानी पौण्ड्रवर्द्धनसे जब आदिशूरके वंशधर पालराज द्वारा भगाये गये, तब शूरवंशीय नृपतिगण दक्षिणराढ़में आ कर राज्य करने लगे। सम्भवतः उन्होंने ही पूर्वतम पौण्ड्रके

नामानुसार नव राजधानीका नाम 'पौण्ड्र' वा 'पुण्ड्र' रखा। उसी पौण्ड्रका अपभ्रंशरूप पण्डुआ वा छोटा पुंडो हुआ है। यहां जो पहले शूर पीछे सेनराजगण राज्य करते थे, वह प्राचीन कुलाचार्यग्रन्थ और वर्त्तमान पण्डुआसे ढाई कोसकी दूरी पर, रणपुर, बल्लालदिग्गी आदिके नाम देखनेसे ही सहजमें अनुमित होता है। पाल, सेन और शूरराजवंश देखो।

यहां पेंडोका मन्दिर नामक स्तम्भ, एक भग्न प्राचीन मसजिद और सफीउद्दीन् समाधि-मन्दिर ही प्राचीन कीर्त्तियोंमें प्रधान हैं। रेल-ष्टेशनसे ये सब प्रायः आध घण्टेके पथ पर अवस्थित हैं। उक्त भग्न-मसजिदके सिवा अभी कुतुबशाही नामकी एक और मसजिद विद्यमान है। कहते हैं, कि ११४० हिजरीमें (१७२७-२८ ई०में) सूरवंशीय शुजाखांके पुत्र फतेखांने इस मसजिदका निर्माण किया।

अब मालदह जिलेके पण्डुआका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है,—इसे लोग हजरत पण्डुआ भी कहते हैं। यह अभी बङ्गालकी राजधानी गौड़ नगरीके ध्वंसावशेषसे १० कोस और मालदह नगरसे ३ कोस दूर उत्तरपूर्वमें अवस्थित है। गौड़की तरह यह उतना विख्यात तो नहीं है, पर एक समय मुसलमान शासकोंकी यहां राजधानी होनेके कारण इसके अनेक ऐतिहासिक विवरण मिलते हैं। दुर्गप्रासादादिका भग्नावशेष अब भी देखनेमें आता है। मालदह जिलेका यह अंश तथा इसके पार्श्ववर्त्ती दिनाजपुर जिलेके भूभाग महास्थानगढ़ प्रभृति स्थान ऐतिहासिक अनुसन्धित्सुके निकट बड़े ही प्रयोजनीय हैं। दुःखका विषय है, कि अंगरेजी मानचित्रमें गौड़ जङ्गलका स्थान तो निर्दिष्ट है, पर पण्डुआका स्थान निर्दिष्ट नहीं है। पूर्वोक्त हुगली जिलेमें जो पण्डुआ है उसके साथ इस पण्डुआ नगरीका कोई गोलमाल न हो जाय, इस कारण डा० कनिंहम इसका नाम 'हजरत पण्डुआ' रख गये हैं।

पण्डुआके नामके सम्बन्धमें कनिंहम साहब कह गये हैं, कि हिन्दू लोगोंने पाण्डुवंशके संश्रवसे इसका नाम 'पाण्डवीय' पीछे 'पण्डुआ' रखा है, किन्तु इस प्रदेशमें 'पाण्डवी' नामक एक प्रकारका जलचर पक्षी अधिक संख्यामें पाया जाता है, शायद इसी सूत्रसे पण्डुआ नाम पड़ा होगा। कनिंहमने यहां पर एक अद्भुत नामतत्त्व प्रकाशित किया है, किन्तु अनेक ऐतिहासिकोंने अभी यही सिद्धान्त किया है, कि यह 'पौण्ड्रवर्द्धन' नामका ही अपभ्रंश है। महाभारतीय कालसे पौण्ड्र-राज्य विख्यात है। बौद्धयुगमें पौण्ड्रवर्द्धनका विशेष प्रभाव था। डा० कनिंहमने महास्थानगढ़के ऐतिहासिकतत्त्व-विचारके समयमें पौण्ड्रवर्द्धन नाम ले कर एक और अद्भुत युक्तिकी अवतारणा की है। वहां पर उन्होंने कहा है, कि पुण्ड्र नामक ताम्रवर्ण इक्षुकी प्रचुरतासे इस अञ्चलका नाम पौण्ड्र पड़ा है। जो कुछ हो, ये सब तर्क 'पौण्ड्र-वर्द्धन' शब्दमें सीमाबद्ध होंगे।

मुसलमानी प्राचीन इतिहासमें सुलतान अलाउद्दीन अलीशाहके राजत्वकालमें पण्डुआका उल्लेख देखा जाता है। इन्होंने ही फकीर जलालउद्दीन तब्रेजीका समाधि-मन्दिर बनवाया। अलाउद्दीन अलीशाहके राजत्वसे सौ वर्ष पहले (६४१ हिजरी वा १२४४ ई०में) फकीर जलाल-उद्दीनकी मृत्यु हुई। सुतरां उस समय भी पण्डुआकी प्रसिद्धि थी, ऐसा कहना होगा। इस हिसाबसे अन्ततः १२४४ ई०में भी पण्डुआका अस्तित्व पाया जाता है। उसके बाद इलियस शाहके राजत्वकालमें इसका द्वितीय बार उल्लेख देखा जाता है। तुगलक वंशीय फिरोज शाहके आक्रमण पर इलियस शाह पण्डुआका परित्याग कर एकडाला नामक स्थानको भग गये। फिरोज शाह एकडालेमें घेरा डाल कर पण्डुआ आ कर ही लौटे थे। पीछे ७५९ हिजरी (१३५८ ई०)में सिकन्दर शाह कर्त्तृक पण्डुआ फिरसे स्थायी राजधानीरूपमें परिगृहीत हुआ। इस समय उनने पण्डुआकी विख्यात अदीना मसजिद बनाई। तदनन्तर जलालउद्दीन और अहमदके राजत्वकालमें भी पण्डुआमें ही राजधानी थी। किन्तु प्रथम महम्मदके राज्यारोहणके साथ साथ पण्डुआसे राजधानी उठा कर पुनः गौड़में लाई गई। इसी समयसे पण्डुआकी भग्नदशा आरम्भ हुई है।

यहांकी वारद्वारी मसजिद, कुतुबशाहकी मसजिद, सोना-मसजिद, एकलाखी-मसजिद, अदीना-मसजिद, सिकन्दरकी कब्र और सत्ताईस घर विशेष प्रसिद्ध हैं।

विशेष विवरण पौण्ड्रवर्द्धन शब्दमें देखो।

पण्डक (सं० पु०) १ वातरोगयुक्त, वह जिसे वात रोग हुआ हो। २ पङ्गु, लंगड़ा।

"विधर्मागश्च पूर्वाह्णे सन्ध्याकाले च पण्डकाः।"

(मार्कण्डेय पुराण)

सायंकालमें स्त्रीगमन करनेसे जो सन्तान जन्म लेती है वह पण्डक होती है। ३ खोजा, नपुंसक।

पण्ढरपुर—१ बम्बईके प्रदेशके शोलापुर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १७´ २८´से १७´ ५६´ उ० तथा देशा० ७५´ ६´ से ७५´ ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४७८ वर्गमील और जनसंख्या लाखके करीब है। इसमें २ शहर और ८१ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान नदी भीमा और मान है। जलवायु शुष्क है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १७´ ४१´ उ० तथा देशा० ७५´ २६´ पू० भीमानदीके दक्षिण किनारे अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः ३२४०५ है। वर्षाकालमें जब नदीका जल खूब बढ़ आता है, तब आस पासके सभी स्थानोंसे पण्ढरपुर नगर देखनेमें बहुत सुन्दर लगता है। नदी गर्भमें चरके ऊपर विष्णुपद और नारद-मन्दिर तथा अदूरवर्त्ती तीरभूममें असंख्य सोपानावली है और उन सोपानोंके ऊपर कहीं तो मन्दिरादिके उच्च शिखर, कहीं छायाविस्तारिणी वनराजिके मध्य हर्म्यादि और कहीं कब्रके ऊपर स्मृतिस्तम्भ विराजित हैं। इन सबसे नगरकी शोभा और भी बढ़ जाती है। दाक्षिणात्यमें यहांका स्थानमाहात्म्य सर्वप्रसिद्ध है। हिन्दुओंके मध्य पूर्वापर जिस प्रकार गयाधाम, विष्णुपाद और बुद्धगया आदिका तीर्थमाहात्म्य तथा विष्णुपदमें श्राद्धक्रियादि विहित हैं उसी प्रकार दाक्षिणात्यमें आर्य हिन्दूधर्मके विस्तारके साथ साथ ब्राह्मणगण इस स्थानको दाक्षिणात्यका गयातीर्थ मानते हैं। पितृपुरुषकी श्राद्धशान्ति और पिण्डदानादि सभी कार्य यहां होते हैं। यहां तक कि गयाधामके जैसा यहां भी कसौटीके ऊपर विष्णुपद अङ्कित हो कर बाजारमें बिकती हैं। इसी कारण पण्ढरपुरमें सभी समय अनेक तीर्थयात्रियोंका समागम हुआ करता है।

दाक्षिणात्यवासी ब्राह्मणगण पण्ढरपुरके विठोबादेवका अधिकतर मान्य करते हैं। उक्त विग्रहमूर्त्ति विष्णुभगवान्‌का एक भेद है। नगरके मध्यस्थलमें जहां विठोबाका मन्दिर प्रतिष्ठित है, उसके निकटस्थ स्थान 'पण्ढरिक्षेत्र' नामसे प्रसिद्ध है। वैशाख, आषाढ़ और अग्रहायणमासमें प्रायः बीस हजारसे ले कर डेढ़ लाख तक मनुष्य एकत्रित होते हैं। प्रति मासकी शुक्ला-एकादशीको यहां प्रायः दश हजार यात्रियोंका समागम होता है।

पण्ढरपुर नगर पहले बौद्धोंका वासस्थान था। हिन्दूधर्मके प्रचार और आधिपत्य विस्तारके साथ साथ पण्ढरपुरका बौद्धाधिकार लोप हो गया है। सचमुचमें विठोबाकी प्रतिमूर्त्ति देखनेसे वे बुद्धकी मूर्त्ति-सी मालूम पड़ती हैं। पण्ढरपुरमें आज भी ७५ घर जैन वास करते हैं। उनका मत है, कि विठोबा जैनियोंके एक तीर्थङ्कर हैं। उक्त ७५ घरोंमेंसे ८ घरकी उपाधि 'विट्ठलदास' है। ये लोग देवमन्दिरके सामने नृत्यगीत और वाद्य करते हैं। यहांके 'बड़वे' नामक गङ्गापुत्रगण ब्राह्मण श्रेणीभुक्त हैं। वे लोग यात्रियोंको साथ करके देवमूर्त्ति दिखाते और उनके दिए हुए उपहारादि ग्रहण करते हैं। प्रसिद्ध विष्णुभक्त तुकाराम पण्ढरिक्षेत्रको स्वर्गके समान मानते थे। उन्होंने तथा उनके गुरु नामदेवने अपनी जीवनलीला यहीं पर शेष की थी।

तुकाराम और नामदेव देखो।

१६५८ ई०में बीजापुरके सैन्याध्यक्ष अफजल खांने यहां छावनी डाली थी। १७७४ ई०में पेशवा रघुनाथरावके साथ त्र्यम्बकराव मामाका युद्ध हुआ। उसी साल नाना फड़नवीस और हरिपन्थफड़के नारायणरावकी विधवा पत्नी गङ्गाबाईको यहां नजरबंद करके राजकार्यकी पर्यालोचना करते थे। नाना फड़नवीस देखो।

१८१५ ई०में पेशवा बाजीरावकी प्रतारणासे महाराष्ट्रसचिव गङ्गाधर शास्त्री विठोबा-मन्दिरके सामने गुप्तभावसे मरवा दिये गए थे। १८१७ ई०में यहां अङ्गरेजोंके साथ पेशवाका एक युद्ध हुआ था।

१८४७ ई०में दस्युसरदार रघुजी अङ्ग्रिया जनरल गेलसे पकड़े गये और पण्ढरपुर भेज दिये गये। इसके बाद प्रायः १० वर्ष तक इन्होंने धनागार आदि लूटा। १८७८ ई०में वासुदेव बलवन्त फड़के नामक कोई विख्यात दस्युसरदार पण्ढरपुर जाते समय अङ्गरेजोंके पञ्जे में पड़ गये थे। यहांसे प्रतिवर्ष 'बूका' नामक गन्धद्रव्य, उरद, धूप, कुसुमफूलके तेल, कुङ्कुम, नस्य आदि द्रव्योंकी नाना स्थानोंमें रफ्तनी होती है।

पण्य (सं० त्रि०) पण्यते इति पण-य, निपातनात् साधुः (अवद्यपण्य-वर्यो गर्ह्येति। पा ३।१।१०१) १ पणितव्य, वेचने योग्य। २ खरीदने योग्य। ३ व्यवहार्य, व्यवहार करने योग्य। ४ स्तोतव्य, प्रशंसा करने योग्य। (पु०) सौदा, माल। ५ व्यापार, व्यवसाय। ६ हट्ट, हाट बाजार। ७ दूकान।

पण्यता (सं० स्त्री०) पण्यस्य भावः पण्य-तल-टाप्। पण्यका भाव, पणविषयता।

पण्यदासी (सं० स्त्री०) धन ले कर सेवा करनेवाली स्त्री, लौंडी, मजदूरनी, बांदी।

पण्यपति (सं० पु०) पण्येन लब्धः यः पतिः। १ भारी व्यापारी, बहुत बड़ा रोजगारी। २ बहुत बड़ा साहूकार, नगरसेठ।

पण्यपरिणीता (सं० स्त्री०) १ मूल्य दे कर विवाहकृता स्त्री। २ राजाओंके भोगविलासके लिये रक्षिता स्त्री-विशेष।

पण्यफल (सं० पु०) व्यापारमें प्राप्त लाभ, मुनाफा, नफा।

पण्यभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां माल या सौदा जमा किया जाता हो, कोठी, गोदाम, गोला।

पण्यमूल्य (सं० क्ली०) वह मूल्य जिससे पण्यद्रव्य खरीदना होता है।

पण्ययोषित् (सं० स्त्री०) पण्यस्त्री, कुलटा, वेश्या, रंडी।

पण्यविक्रयशाला (सं० स्त्री०) पण्यका विक्रयगृह, दूकान।

पण्यविक्रयिन् (सं० पु०) वणिक्, सौदागर।

पण्यविलासिनी (सं० स्त्री०) पण्यस्त्री, वेश्या, रंडी।

पण्यवीथिका (सं० स्त्री०) पण्यानां विक्रयद्रव्याणां वीथिका गृहं। क्रय-विक्रयका स्थान, बाजार, हाट।

पण्यवीथी (सं० स्त्री०) पण्यानां वीथी विक्रयगृहं। क्रयविक्रय स्थान, हाट, बाजार।

पण्यशाला (सं० स्त्री०) पण्यानां विक्रयद्रव्याणां शाला। विक्रयगृह, दूकान।

पण्यस्त्री (सं० स्त्री०) पण्या मूल्येन लभ्या या स्त्री, या पण्ये हट्टादिस्थले स्थिता स्त्री। वेश्या, रंडी।

पण्या (सं० स्त्री०) मालकंगनी।

पण्याङ्गना (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

पण्याजीव (सं० पु०) पण्यैः क्रयविक्रयद्रव्यैः जीवति प्राणिति आ-जीव-क। क्रयविक्रयिक, वणिक्, सौदागर।

पण्याजीवक (सं० क्ली०) पण्यैः क्रयविक्रयद्रव्यैराजीवति तिष्ठतीति, पण्याजीवस्ततः स्वार्थे कन् अभिधानात् क्लीवत्वं वा पण्याजीवैः वणिग्भिः कायति शब्दायते कै-क। हट्ट, हाट, बाजार।

पण्यान्धा (सं० पु०-स्त्री०) पण्यं अन्धयति स्वगुणेन या अन्ध-अच् टाप्। तृणविशेष कंगनी नामका धान। पर्याय—कङ्गुनीपत्रा, पणाधा, पणधा। गुण—समवीर्य, तिक्त, क्षार, मारक।

पण्डन—युक्त प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह तहसीलके सदरसे ५ मील दक्षिणमें अवस्थित है। यहां भरराजाओंका बनाया हुआ एक दुर्ग था जिसका अभी सिर्फ भग्नावशेष देखनेमें आता है। उक्त दुर्गके शिखर पर अचलेश्वर महादेवको लिङ्गमूर्त्ति प्रतिष्ठित है। यहांकी फकीर महम्मदशाहकी दरगाह जनसाधारणमें प्रसिद्ध है।

पतंखा (हिं० पु०) एक प्रकारका बगला जिसे पतोखा भी कहते हैं।

पतंग (हिं० पु०) १ पतङ्ग देखो। २ भारत तथा कटक प्रान्तमें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। ग्रीष्म ऋतुमें अर्थात् वैशाख ज्येष्ठमासमें जमीनको अच्छी तरह जोत कर इसके बीज बो दिये जाते हैं। प्रायः बीस वर्षमें जब इसका पेड़ चालीस फुट ऊंचा होता है तब काट लिया जाता है। इसकी लकड़ीको छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट कर प्रायः दो पहर तक

पानीमें उबालते हैं जिससे एक प्रकारका बहुत बढ़िया लाल रंग निकलता है। पहले यह रंग बहुत बिकता था और अधिक परिमाणमें भारतवर्षसे विदेशोंमें भेजा जाता था। परन्तु जबसे विलायती नकली रंग तैयार होने लगा तबसे इसकी मांग घट गई है। आज कल कई प्रकारके विलायती लाल रंग भी 'पतंग'-के नामसे ही बिकते हैं। कुछ लोग इसे 'लालचन्दन' ही समझते हैं, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। इसको बक्कम भी कहते हैं। (स्त्री०) ३ हवामें ऊपर उड़ानेका एक खिलौना। यह बांसकी तीलियों। ढांचे पर एक ओर चौकोना कागज और कभी कभी बारीक कपड़ा मढ़ कर बनाया जाता है, गुड्डी, तिलंगी इसका ढांचा दो तीलियोंसे बनाया जाता है। एक बिलकुल सीधी रखी जाती है, पर दूसरीको लचा कर मिहराबदार कर देते हैं। सीधी तीलीका नाम ढड्ढा और मिहराबदारका नाम कमांच या कांप है। ढड्ढेके एक सिरेको पुछल्ला और दूसरेको मुड़ढा कहते हैं। पुछल्ले पर एक और तिकोना कागज मढ़ देते हैं। कमांचके दोनों सिरेको कुव्वे कहते हैं। ढड्ढे पर कागजकी दो छोटी चौकोर चकतियां सटी होती है; एक उस स्थान पर जहां ढड्ढा और कमांच एक दूसरेको काटते हैं, दूसरी पुछल्लेकी ओर कुछ निश्चित अंतर पर। इन्हींमें सूराख करके कन्ना अर्थात् वह डोरा बांधा जाता है जिसमें चरखी या परेते-की डोरीका सिरा बांध कर पतंग उड़ाया जाता है। यद्यपि देखनेमें पतंगके चारों पार्श्वोंकी लम्बाई बराबर जान पड़ती है, पर मुड्ढे और कुव्वेका अन्तर कुव्वे और पुछल्लेके अन्तरसे अधिक होता है। जिस डोरीसे पतंग उड़ाते हैं वह नख, ताना, रील आदि कई प्रकार-की होती है। बांसके जिस विशेष ढांचे पर डोरी लपेटी रहती है उसके भी दो भेद हैं—एक चरखी और दूसरा परेता। विस्तारभेदसे पतंग कई प्रकारकी होती है। बहुत बड़ी पतंगको तुक्कल कहते हैं। बनावटका दोष, वायुकी प्रखरता आदि कारणोंसे अकसर पतंग वायुमें चक्कर खाने लगती है। इसे रोकनेके लिये पुछल्लेमें कपड़े-की एक धज्जी बंधी होती है जिसे पुछल्ला ही कहते हैं। भारतवर्षमें सिर्फ जी बहलानेके लिये पतंग उड़ाते हैं, परन्तु पाश्चात्य देशोंमें इसका कुछ व्यवहारिक उपयोग भी किया जाने लगा है।

पतंगकुरी (हिं० स्त्री०) बिगुन, चुगुलखोर, चवाई।

पतंगबाज (हिं० पु०) १ वह जिसका प्रधान कार्य पतंग उड़ाना हो। २ पतंग उड़ा कर मनोरञ्जन करने-वाला, पतंगका शौकीन।

पतंगबाजी (हिं० स्त्री०) १ पतंग उड़ानेकी कला। २ पतंग उड़ानेकी क्रिया या भाव, पतंग उड़ाना।

पतंगा (हिं० पु०) १ पतङ्ग, फतिंगा। २ परदार कीड़े-की जातिका एक विशेष कीड़ा जो प्रायः घासों अथवा वृक्षकी पत्तियों पर रहता है ३ स्फुलिंग चिनगारी। ४ दीपककी बत्तीका वह अंश जो जल कर उससे अलग हो जाता है, फूल, गुल।

पत (सं० त्रि०) पततीति पति-अच्। १ पुष्ट। (क्लो०) २ पतनकर्त्ता।

पत (हिं० स्त्री०) १ लज्जा, आबरू। २ प्रतिष्ठा, इज्जत।

पतई (हिं० स्त्री०) पत्र, पत्ती।

पतक (सं० पु०) पतनशील व्यक्ति वा वस्तु।

पतकुम्भ (सं० पु०) पक्षिविशेष, कोई चिड़िया।

पतखोवन (हिं० पु०) वह जो प्रायः ऐसे कार्य करता फिरे जिससे अपनी वा दूसरेकी बेइज्जती हो।

पतग (सं० पु०) पत उत्पतितः सन् गच्छति वा पतेन पक्षेण गच्छति पत-गम-ड। १ पक्षी, चिड़िया। स्त्रियां जातित्वात् ङीप्। २ स्वधाकारके अन्तर्गत पञ्चाग्निमेंसे एक।

पतङ्ग (सं० पु०) पतति गच्छतीति पति-अङ्गच्। (पते-रंगच्। उण्, १।११८) १ पक्षी, चिड़िया। २ सूर्य। ३ क्षुद्राकृति जीवभेद, फतिंगा। इनका शरीर ग्रन्थियुक्त होनेके कारण इनकी गिनती ग्रन्थिविशिष्ट जीवश्रेणीमें की जाती है। ग्रन्थि-देह सभी जीव साधा-रणतः पांच भागोंमें विभक्त है—१ कर्कटीवर्ग (Crustcaea), २ लूतावर्ग (Arachnida), ३ वृश्चिकवर्ग वा शत-पादिक (Myriapoda), ४ पतङ्गवर्ग (Insecta) और ५ कीटवर्ग (Vermes)। ग्रन्थिविशिष्ट प्राणीमात्र ही कीटजातिके अन्तर्गत हैं। इनकी उत्पत्ति और अवयव-की परिपुष्टि एक ही प्रकारकी है। आकृतिके भेद और

अवस्थाके परिवर्त्तनसे इनके नामोंमें विभिन्नता देखी जाती है। वृश्चिक, केन्नो आदि कीट बहुग्रन्थिविशिष्ट होने पर भी वे कीटश्रेणीके अन्तर्गत हैं।

विशेष विवरण कीट और पङ्गपालमें देखो।

जिन सब कीड़ोंके तीन ग्रन्थि हैं, वे पतङ्ग कहलाते हैं। पतङ्गके मध्य फिर तीन विभाग देखे जाते हैं, १म, पूर्ण परिवर्त्तक (Metabola) अर्थात् जो जन्मसे ही हमेशा देह परिवर्त्तन करते हैं—जैसे डांस, दंश, मसक, मक्षिका और प्रजापति। २य, ईषत् परिवर्त्तक (Hemi-metabola) अर्थात् जो जन्मसे ही बहुत कम देह-परिवर्त्तन करते हैं, जैसे फतिंगा, टिड्डी, वल्मीक। ३य, अपरिवर्त्तक (Ametabola) अर्थात् जो अंडेसे निकलनेके बाद कभी देहावयवको बदलते ही नहीं। जैसे पिपीलिकादि।

मक्खी, मधुमक्खी आदि नाना जातीय छोटे छोटे पक्षयुक्त कीट हैं, ऐसा कि पंखयुक्त पिपीलिकाको भी पतङ्ग कहते हैं। किन्तु साधारणतः पतङ्ग शब्दसे अन्य प्राणीका बोध न हो कर एक मात्र फतिंगेका ही बोध होता है। प्रजापति पतङ्गश्रेणीके अन्तर्भुक्त होने पर भी अभी विशिष्ट अभिधान प्राप्त हुआ है। प्रजापति शब्द देखो।

ग्रीष्मप्रधान देशोंमें अधिक उत्तापके समय पतङ्गका उपद्रव देखा जाता है। इस समय मक्खीकी तरह छोटे छोटे कीड़ोंकी उत्पत्ति अधिक संख्यामें देखी जाती है। ये कीड़े मनुष्यको विरक्त किया करते हैं।

हेमन्तकालमें गङ्गा फतिंगेकी तरह 'श्यामा कीड़ा' नामक एक जातिका छोटा पतङ्ग उत्पन्न होता है। ये रातको आ कर प्रदीपों पर गिर पड़ते और अपने प्राण गंवाते हैं। अफ्रिकादेशमें एक प्रकारका पतङ्ग (Tsetse-fly) पाया जाता है जिसके डंसनेसे गाय, घोड़े, भैंस आदि मर जाते हैं। Quassia Sima-ruba नामक एक प्रकारके तिक्त वृक्ष-पत्रके साथ चीनी पीस कर उसे बरतनमें रख देनेसे पतङ्गादि आ कर उसमें गिर पड़ते और नष्ट हो जाते हैं। इटली देशमें Erigreon viscosum नामक एक प्रकारका छोटा गुल्म पाया जाता है जिसे इटलीके लोग दूधमें डुबो कर घरमें लटका देते हैं। पतङ्गगण उड़ कर उस पात्र पर बैठनेसे मर जाते हैं। साधारणतः वे वृक्षादिकी पत्तियां खा कर जीवनधारण करते हैं। कहीं कहीं इन्हें सड़ा हुआ मांस खानेको दिया जाता है। उधर चीन, ब्रह्म आदि देशवासिगण पतङ्गको रांध कर खाते हैं। मादा कहीं वृक्षपत्र पर, कहीं मट्टीके नीचे अंडे देती है, प्रसवके बाद गर्भिणी मर जाती है। पीछे जगदीश्वरकी कृपासे सूर्यके उत्ताप द्वारा वह अंडा फुट जाता और बच्चा बाहर निकल आता है।

४ शलभ, टिड्डी। ५ शालिप्रभेद, एक प्रकारका धान, जड़हन। ६ सूत। ७ पारद, पारा। ८ चन्दन-भेद, एक प्रकारका चन्दन। ९ शर, वाण। १० अग्नि, आग। ११ अश्व, घोड़ा। १२ मक्षिकादि, मक्खी। १३ कोई परदार कीड़ा जो आग देखनेसे ही पहुंच जाता है। १४ पिशाच। १५ कृष्णका एक नाम। १६ प्रजापतिके पुत्रका नाम। १७ पर्वतभेद, एक पहाड़-का नाम। १८ ग्रामका नाम। १९ कुशद्वीपवासी जातिभेद। २० तार्क्ष्यकी स्त्रीका नाम। २१ नौका, नाव। २२ शरीर, देह। २३ जलमधुक वृक्ष, जल महुआ। २४ जैनोंके एक देवता जो वाणव्यन्तर नामक देवगणके अन्तर्गत है। २५ एक गन्धर्वका नाम। २६ चिनगारी।

पतङ्गकवच—ह्रद, बिल, पुष्करिणी आदिमें मिलनेवाला एक प्रकारका कीट। इसकी साधारण आकृति पतङ्ग-की जैसी होती और देह पतङ्गके कवचकी तरह दृढ़-कवचसे आवृत रहती है। अंगरेजीमें इसे Entrom-ostraca कहते हैं। ट्रदलक (Trilobites), कालि-गस (Calegus) आदि जलजकीट इसी श्रेणीके अन्त-र्गत हैं।

पतङ्गम (सं० पु० स्त्री०) पतन-उत्प्लवन् सन् गच्छति गम-खच्, मुमच। १ पक्षी, चिड़िया, पखेरू। स्त्रियां जातित्वात् ङीष्। २ शलभ, टिड्डी।

पतङ्गर (सं० पु०) पतङ्ग पतनेन उत्प्लवनेन गमनं प्रत्यर्थे कं। उत्प्लवन द्वारा गतियुक्त।

पतङ्गवृत्त (सं० त्रि०) पतङ्गस्य वृत्तं इव वृत्तं यस्य। १ पतङ्गकी तरह आचारविशिष्ट। (क्ली०) २ पतङ्गका आचरण।

पतङ्गा (सं॰ स्त्री॰) १ अश्व, घोड़ा। २ नदीविशेष, एक नदीका नाम।

पतङ्गिका (सं॰ स्त्री॰) पतङ्ग-स्वार्थे संज्ञायां वा कन्, स्त्रियां टाप्, अत इत्वं। मधुमक्षिकाविशेष, मधुमक्खियोंका एक भेद। इसका पर्याय पुत्तिका है।

पतङ्गिन् (सं॰ पु॰) पतङ्ग उत्प्लवनेन गमनमस्त्यस्य इनि। खग, पक्षी, चिड़िया, पखेरू।

पतङ्गेन्द्र (सं॰ पु॰) पक्षिराज, गरुड़।

पतचोली (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारका पौधा।

पतझड़ (हिं॰ स्त्री॰) १ वह ऋतु जिसमें पेड़ोंकी पत्तियां झड़ जाती हैं, शिशिर ऋतु, माघ और फाल्गुन मास। इस ऋतुमें वायु अत्यन्त रूखी और सर्राटेकी हो जाती है। इस कारण वस्तुओंके रस और स्निग्धताका शोषण होता है और वे अत्यन्त रूखी हो जाती हैं। वृक्षोंकी पत्तियां रूक्षताके कारण सूख कर झड़ जाती हैं और वे ठूंठे हो जाते हैं। सृष्टिका सौन्दर्य और शोभा इस ऋतुमें बहुत घट जाती है, वह वैभवहीन हो जाती है। वैद्यकके अनुसार इस ऋतुमें कफका सञ्चय होता है और पाचकाग्नि प्रबल रहती है। इस समय स्निग्ध और भारी आहार सरलतासे पचता है। सुश्रुतके मतसे माघ और फाल्गुन ही पतझड़के महीने हैं, पर अन्य अनेक वैद्यक ग्रन्थोंने पूस और माघको पतझड़ माना है। लेकिन यथार्थमें माघ और फाल्गुन ही पतझड़ माने गये हैं। २ अवनतिकाल, खराबी और तबाहीका समय।

पतझार (हिं॰ स्त्री॰) पतझड़ देखो।

पतञ्चल (सं॰ पु॰) गोत्र प्रवर्त्तक ऋषिभेद। इनका दूसरा नाम काप्य भी है। शतपथ ब्राह्मणमें इनका उल्लेख आया है।

पतञ्चिका (सं॰ स्त्री॰) पतं अभिमतं शरं चिक्षयति पीड़यति स्वारोपित शरेणेति, पृषोदरादित्वात् साधुः। धनुर्ज्या, धनुषकी डोरी, कमानकी तांत, चिल्ला।

पतञ्जलि (सं॰ पु॰) पतन् अञ्जलिर्मस्यतया यस्मिन्, शकन्ध्वादित्वात् साधुः। १ योगशास्त्रप्रणेता मुनिभेद, पातञ्जलदर्शनकर्त्ता। पातञ्जलदर्शन देखो।

२ पाणिनिके महाभाष्यप्रणेता।

महाभाष्यपतञ्जलिकी असाधारण कीर्त्ति है, केवल संस्कृत ही नहीं, संसारकी किसी भी भाषामें ऐसा विचारमूलक सुविस्तृत व्याकरण ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता। किस समय और किस उद्देश्यसे यह महाग्रन्थ रचा गया, यह ले कर बहुत दिनोंसे पाश्चात्य और देशीय संस्कृतविदोंके मध्य वादानुवाद चला आ रहा है। किसीके मतसे पतञ्जलिका महाभाष्य १लो शताब्दीमें, किसीके मतसे पूर्वी शताब्दीमें और फिर किसीके मतसे २री शताब्दीमें रचा गया।

अब किसका मत समीचीन है, वही देखना चाहिये। कोई कहते हैं, कि पाणिनिका मत निरास कर निजमत स्थापन करनेके लिये कात्यायनने वार्त्तिककी रचना की और पाणिनिको वार्त्तिककारके आक्रमणसे बचानेके लिये तथा जनसाधारणमें विशुद्ध व्याकरणज्ञान और पाणिनीय मतका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ही पतञ्जलिने महाभाष्य बनाया,—डाक्टर गोल्डष्टुकारने इस मतका बहुत कुछ प्रचार किया है।

किन्तु महाभाष्य केवल वार्त्तिककी समालोचनाके जैसा प्रतीत नहीं होता। वार्त्तिक पाणिनिसूत्रका परिशिष्ट और वृत्तिस्वरूप है। पाणिनिका जो मत कात्यायनके समयमें आर्ष वा तत्कालप्रचलित व्याकरणके विरुद्ध हुआ था, कात्यायनने तत्कालीन भाषाको उपयोगी करनेके लिये उन उन स्थानकी समालोचना की है। पतञ्जलिने फिर पाणिनिसूत्र और कात्यायनके वार्त्तिककी विस्तृतभावसे समझानेके लिये ही महाभाष्यकी रचना की है। वार्त्तिक और महाभाष्यका उद्देश्य एक ही है; दोनोंका ही उद्देश्य सामयिक भाषाके साथ सामञ्जस्य करके पाणिनिके मतका प्रकाश करना है। प्रचलित संस्कृत भाषाका अनुगत करनेके लिये ही पतञ्जलि कहीं कहीं कात्यायनके मतकी समालोचना और अपना मत प्रकाशित करनेमें बाध्य हुए हैं। इसीसे जहां जहां सूत्र वा वार्त्तिकमें अभाव है, वहां वहां पतञ्जलिने पूरा करनेकी चेष्टा की है। वास्तविकमें संस्कृत भाषाकी प्रकृति क्या है, किस वैज्ञानिक उपादानसे संस्कृत भाषा गठित हुई है, उसका प्रदर्शन करनेमें ही पतञ्जलिका भाष्य इतना विस्तृत हो गया

है। इस महाभाष्यमें यदि प्रविष्ट होना चाहें, तो संस्कृतशास्त्रमें अनन्तज्ञानका होना प्रयोजन है। इसीसे इस महाग्रन्थका दूसरा नाम फणिभाष्य वा महाभाष्य पड़ा है। महाभाष्यमें भारद्वाजीय, सौनाग, कुणरवाड़व, वाड़व, सौर्य्यभगवत्, कारिकाकार व्याघ्रभूति और श्लोकवार्त्तिककार कात्यायन आदि वैयाकरणोंका उल्लेख है। सुतरां उक्त वैयाकरणगण पतञ्जलिके पूर्ववर्त्ती हैं, इसमें सन्देह नहीं।

महाभाष्यसे पतञ्जलिका अति सामान्य परिचय पाया जाता है। (प्रथमाध्यायके ४र्थ पादके ३य आह्निकमें) उन्होंने गोणिका-पुत्र और (प्रथम अध्यायके प्रथमपादके ५म आह्निकमें) गोनर्दीय नामसे अपना परिचय दिया है। हेमचन्द्रकी अभिधान-चिन्तामणि और त्रिकाण्डशेष अभिधानमें पतञ्जलिका दूसरा नाम गोनर्दीय और 'चूर्णिकृत्' लिखा है। शब्दरत्नावलीमें पतञ्जलिका दूसरा नाम है 'वररुचि'। किन्तु इस नामके ऊपर कोई आस्थावान् नहीं है। कारण कात्यायनका भी दूसरा नाम वररुचि है, किन्तु पतञ्जलिका दूसरा नाम जो वररुचि है उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। काशिका-(१।१।७५)-में पूर्वदेशव्यापी उदाहरणस्वरूप 'गोनर्दीय' शब्द व्यवहृत हुआ है। पुराणमें भी भारतकी पूर्वविभाग-वर्णनामें गोनर्द देशका उल्लेख मिलता है।

डाक्टर भण्डारकरका कहना है, कि अयोध्या प्रदेशके मध्य जो गोण्डा जिला है और उस जिलेके मध्य इसी नामका जो एक नगर है, वही प्राचीन गोनर्द है। यहीं पर भाष्यकार पतञ्जलिका जन्म हुआ था।

महाभाष्यमें एक जगह लिखा है कि 'पुष्यमित्रने यज्ञ किया। याजकोंने उनका याजन किया।' इसके सिवा और भी दो एक जगह पुष्यमित्रके नाम और पुष्यमित्रकी सभाका उल्लेख है। इससे पुराविद्गण अनुमान करते हैं, कि पतञ्जलि पुष्यमित्रकी यज्ञसभामें उपस्थित थे। विष्णु, मत्स्य आदि पुराणोंसे जाना जाता है, कि मौर्यवंशीय शेष राजा बृहद्रथको मार कर उनके सेनापति (शुङ्गवंशीय) पुष्यमित्रने पाटलिपुत्रके सिंहासन पर अधिकार जमाया था। महाभाष्यमें भी लिखा है, 'मौर्योंने हिरण्यके लोभसे देवपूजा प्रकल्पित की है।' फिर एक दूसरी जगह लङ् उदाहरणके स्वरूप पतञ्जलिने लिखा है, 'यवनने साकेत (अयोध्या) पर आक्रमण किया है। उन्होंने माध्यमिकों पर भी आक्रमण किया है।' इस पर डाक्टर गोल्डष्टुकर और भण्डारकर कहते हैं, कि जिस समय ग्रीक यवनोंने अयोध्या-प्रदेश पर चढ़ाई की थी, उस समय पतञ्जलि विद्यमान थे। ग्रीक ऐतिहासिक ष्ट्राबोंने लिखा है,—"मिनान्द्रस' (Menandros)ने यमुना तक आक्रमण किया था। पालिग्रन्थमें ये मीनराज मिलिन्द नामसे प्रसिद्ध थे और पञ्चनदके अन्तर्गत शाकल नामक स्थानमें इनकी राजधानी थी। पुराविदोंने अभी स्थिर किया है, 'पुष्यमित्रके समकालमें ही मिलिन्द राज्य करते थे। पतञ्जलिने इस मिलिन्दके अयोध्याक्रमणकी कथाका उल्लेख किया है।

भर्तृहरिने वाक्यप्रदीप नामक ग्रन्थमें लिखा है, 'संक्षेप या सम्यक् भावमें नवविद्यापरिग्राहक वैयाकरणोंको सहायतासे तथा 'संग्रह' लाभ करके उस तीर्थदर्शी गुरु पतञ्जलिने समस्त न्यायवीजको महाभाष्यमें निबद्ध किया था। किन्तु जो शास्त्र गभीरताप्रयुक्त अगाध है और जिनकी बुद्धि परिपक्व नहीं हुई है, ऐसे मनुष्य केवल जगर ही ऊपर बह चलेंगे, ऐसा निश्चय कर, शुष्कतर्कानुसारी, संग्रहप्रियवैजि, सौभर और हर्यक्षने उस आर्ष (महाभाष्य) ग्रन्थको खण्ड खण्ड कर डाला था। उस समय उनके शिष्योंसे प्राप्त पतञ्जलि-प्रणीत उस आगमका एक ग्रन्थ केवल दाक्षिणात्योंके मध्य था। पीछे भाष्यानुरागियोंने पर्वतसे उस आगमको पाया और फिर चन्द्राचार्यादिने उस आगमको ले कर अनेक खण्डोंमें विभक्त कर डाला। पीछे प्रसिद्ध न्यायशास्त्रवित् स्वदर्शनज्ञ हमारे गुरुने इस आगमका संग्रह प्रणयन किया।'

राजतरङ्गिणीमें भी लिखा है कि अभिमन्यु जब काश्मीरके सिंहासन पर बैठे, उस समय चन्द्राचार्य आदिने भिन्न देशोंसे आगम वा गुरु-मुखसे विद्यालाभ कर महाभाष्यका प्रचार किया था।

अभिमन्युके समयमें महाभाष्य प्रचारित होने पर भी फिर कुछ समय बाद महाभाष्यका पठन-पाठन बन्द हो गया। कारण राजतरङ्गिणीमें लिखा है, कि ८वीं

शताब्दीको काश्मीरराज जयादित्यने विच्छिन्न महाभाष्य-का उद्धार कर फिर अपने राज्यमें उसका प्रचार किया।

जो कुछ हो, अब यह अमूल्य महारत्न विलुप्त न होगा। मुद्रायन्त्रके प्रभावसे बम्बई और काशीधाममें कैयटकी 'भाष्यप्रदीप' नामक टीका समेत यह महाभाष्य मुद्रित हुआ है।

कैयट छोड़ कर शेष-नारायण, नृसिंह, रामचन्द्रा-नन्द, लक्ष्मण, शिवरामेन्द्र, सरस्वती, सदाशिव प्रभृति रचित कुछ टीकाएं पाई गई हैं। कैयटके भाष्यप्रदीप-के ऊपर भी अनन्तभट्ट, अन्नम्भट्ट, ईश्वरानन्द, नागेश नारायण, नीलकण्ठ दीक्षित, प्रवर्त्तकोपाध्याय, राम-चन्द्रसरस्वती और हरिराम आदि कुछ व्यक्तियोंने टिप्पनीकी रचना की है। नागेशने महाभाष्यप्रदीपो-द्योतके ऊपर, फिर वैद्यनाथपायगुण्डेने 'छाया' नाम-की एक सुन्दर वृत्ति लिखी है।

पतत् (सं॰ त्रि॰) पत-शतृ, बाहुलकात् अति वा। १ पतनकर्त्ता, नीचेकी ओर जाने वा आनेवाला। २ उड़ता हुआ। (पु॰) ३ पक्षी, चिड़िया।

पतत्पतङ्ग (सं॰ पु॰) डूबता हुआ सूर्य।

पतत्प्रकर्ष (सं॰ पु॰) काव्यमें एक प्रकारका रसदोष।

पतत्र (सं॰ क्ली॰) पत-गतौ अत्रन्। १ वाहन, सवारी। २ पक्ष, पंख, डैना।

पतत्रि (सं॰ पु॰) पतति उत्पतनतीति पत-अत्रिन् (पतेर-त्रिन् उण् ४।६८।) पक्षी, चिड़िया, पखेरू।

पतत्रिकेतन (सं॰ पु॰) पतत्री केतनं यस्य। गरुड़ध्वज, विष्णु।

पतत्रिन् (सं॰ पु॰) पतत्र अस्त्यर्थे इनि। पक्षी, चिड़िया।

पतत्रिराज (सं॰ पु॰) पतत्रिणां राजा, टच् समासान्तः। पक्षिराज, गरुड़।

पतद्ग्रह (सं॰ पु॰) पतत् मुखादिभ्यः स्खलत् जलादि गृह्णातीति पतत् ग्रह-अच्। १ प्रतिग्राह, पीकदान। २ वह कमण्डलु जिसमें भिखारी भिक्षान्न लेते हैं, भिक्षा-पात्र, कासा।

पतद्भीरु (सं॰ पु॰) पतन् पक्षी भीरुर्यस्मात्। श्येन पक्षी, बाज नामक पक्षी।

पतन (सं॰ क्ली॰) पत-भावे ल्युट्। १ गिरने या नीचे आनेकी क्रिया या भाव, गिरना। २ नीचे जाने धंसने या बैठनेकी क्रिया या भाव। ३ अवनति, अधोगति तनज्जुली, अवाल। ४ नाश, मृत्यु। ५ पाप करनेसे ही पतन हुआ करता है, इसीसे पतन शब्दसे पापका बोध होता है। जो सब कार्य शास्त्रमें निर्दिष्ट हैं उनका नहीं करना तथा निन्दित कार्य करना और यथाशास्त्र इन्द्रिय-संयम नहीं करना, इन्हीं सब कारणोंसे पतन हुआ करता है। कारण रहनेसे कार्य होगा ही। विहित कार्यका अनुष्ठान आदि कारण रहनेसे कार्यका जो पतन होता है, उसे कोई नहीं रोक सकता। ६ पातित्य, जातिच्युत। ७ उड़नेकी क्रिया या भाव, उड़ान, उड़ना। ८ किसी नक्षत्रका अक्षांश। (त्रि॰) ९ गिरता हुआ या गिरनेवाला। १० उड़ता हुआ या उड़नेवाला।

नीचाभिगमन, गर्भपात, स्वामिहिंसा करनेवाली स्त्रीका अवश्य पतन होता है।

पतनशील (सं॰ त्रि॰) जिसका पतन निश्चित हो, जो बिना गिरे न रह सके।

पतना (हिं॰ पु॰) योनिका तट भाग, योनिका किनारा।

पतनारा (हिं॰ पु॰) परनाला, नाबदान, मोरी।

पतनीय (सं॰ त्रि॰) पत-अनियर्। १ जिसका गिरना अथवा अधोगत होना सम्भव हो, पतित होनेवाला, गिरनेवाला। (क्ली॰) २ वह पाप जिसके करनेसे जाति-से च्युत होना पड़े, पतित करनेवाला पाप।

पतनोन्मुख (सं॰ त्रि॰) जो गिरनेकी ओर प्रवृत्त हो, जिसका पतन, अधोगति या विनाश निकट आता जाता हो।

पतन्तक (सं॰ क्ली॰) अश्वमेध-यागभेद।

पतपानी (हिं॰ पु॰) १ प्रतिष्ठा, मान, इज्जत। २ लाज, आबरू।

पतम (सं॰ पु॰) पतति कर्मक्षये यस्मात्, पत-अम। १ चन्द्रमा। २ पक्षी, चिड़िया। ३ पतङ्ग, फतिंगा।

पतयालु (सं॰ त्रि॰) पति-आलुच्। पतनशील, गिरने-वाला। इसका पर्याय पातुक है।

पतयिष्णु (सं॰ त्रि॰) पति-बाहुलकात् इष्णुच्, न णि-लोपः। पतनशील, गिरनेवाला।

पतयिष्णुक (सं० त्रि०) इतस्ततः पतनशील, जो इधर उधर गिरता हो।

पतर (सं० त्रि०) पत-बाहुलकात् अरन्। गन्ता, जानेवाला।

पतरा (हिं० पु०) १ वह पत्तल जिसे तंबोली लोग पान रखनेके टोकरे या डलियामें बिछाते हैं। २ सरसोंका साग, सरसोंका पत्ता। (वि०) ३ पतला देखो।

पतराई (हिं० स्त्री०) सूक्ष्मता, पतलापन।

पतरिंग (हिं० पु०) एक पक्षी जिसका सारा शरीर हरा और चोंच पतली तथा प्रायः दो अंगुल लम्बी होती है। इस प्रकारका पक्षी मकड़ियोंको पकड़ कर खाता है। इसको गिनती गानेवाले पक्षियोंमें की जाती है।

पतरी (हिं० स्त्री०) पतल देखो।

पतरु (सं० त्रि०) पत-बाहुलकात् अरु। पतनशील, गिरनेवाला।

पतला (हिं० वि०) १ कृश, जो मोटा न हो। २ जिसकी देहका घेरा कम हो, जो स्थूल या मोटा न हो। ३ जिसका दल मोटा न हो, झीना, हलका। ४ अधिक तरल, गाढ़ेका उलटा। ५ अशक्त, असमर्थ, कमजोर, हीन।

पतलाई (हिं० स्त्री०) पतलापन, पतला होनेका भाव।

पतलापन (हिं० पु०) पतला होनेका भाव।

पतली (हिं० स्त्री०) द्यूत, जुआ।

पतलून (हिं० पु०) वह पाजामा जिसमें मियानी नहीं लगाई जाती और पायंचा सीधा गिरता है।

पतलो (हिं० स्त्री०) १ सरकण्डा, सरपत। २ सरकंडेकी पताई, सरपतकी पताई।

पतवर (हिं० क्रि० वि०) पंक्तिक्रमसे, बराबर बराबर।

पतवा (हिं० पु०) एक प्रकारका मचान जिस पर बैठ कर शिकार खेलते हैं। यह मचान लकड़ीका बनाया जाता है और चार हाथ ऊँचा तथा उतना ही चौड़ा होता है। लम्बा इतना होता है कि ८ आदमी बैठ कर निशाना मार सकें। इसके चारों ओर पतली पतली लकड़ियोंकी टट्टियां लगी रहती हैं जिनमें निशाना मारनेके लिये एक एक बित्ता ऊँचे और चौड़े सुराख बने रहते हैं। टट्टियोंके ऊपर हरी हरी पत्तियां समेत टहनियां रख दी जाती हैं जिसमें बाघ आदि शिकारियोंको न देख सके।

पतवार (हिं० स्त्री०) नावका एक विशेष और मुख्य अंग जो पीछेकी ओर होता है। इसीके द्वारा नाव मोड़ी या घुमाई जाती है। प्रायः आधा भाग इसका जलके नीचे और आधा जलके ऊपर रहता है। जो भाग जलके ऊपर रहता है उसमें एक चिपटा डंडा जड़ा रहता है। इस डंडे पर एक मल्लाह बैठा रहता है। पतवारको घुमानेके लिए वह डंडा मुठियेका काम देता है। यह डंडा जिस ओर घुमाया जाता है उसके विपरीत ओर नाव घूम जाती है, कन्हर, पतवाल।

पतवारी (हिं० स्त्री०) १ ऊखका खेत। २ पतवार देखो।

पतवाल (हिं० स्त्री०) पतवार देखो।

पतवास (हिं० स्त्री०) पक्षियोंका अड्डा, चिकलस।

पतस (सं० पु०) पततीति पत-असच् (अत्यविचमीति। उण्. ३।११७) १ पक्षी, चिड़िया। २ चन्द्र, चन्द्रमा। ३ पतङ्ग, फतिंगा।

पतसाहा (हिं० पु०) अग्नि, आग।

पता (हिं० पु०, १ किसी वस्तु या व्यक्तिके स्थानका ज्ञान करानेवाली वस्तु, नाम या लक्षण आदि, किसीका स्थान सूचित करनेवाली बात जससे उसको पा सकें। २ अनुसन्धान, खोज, सुराग, टोह। ३ गूढ़ तत्त्व, रहस्य, भेद। ४ चिट्ठीको पीठ पर लिखी हुई पतेकी इबारत। ५ अभिज्ञता, जानकारी, खबर।

पताई (हिं० स्त्री०) किसी वृक्ष या पौधेकी वे पत्तियां जो सूख कर झड़ गई हों, झड़ी हुई पत्तियोंका ढेर।

पताकरा (हिं० पु०) बङ्गाल, आसाम और पश्चिमी घाटमें होनेवाला एक वृक्ष। इसकी लकड़ी सफेद रंगकी और मजबूत होती है तथा घर बनानेमें उसका बहुत उपयोग किया जाता है। इसके फल खाये जाते हैं।

पताकांशु (सं० पु०) पताका झंडा।

पताका (सं० स्त्री०) पत्यते ज्ञायते कस्यचित् भेदोऽनया, पत-आक प्रत्ययेन साधुः (बलाकादयश्च। उण् ४।१४) १ ध्वजा, निशान, झंडा। पर्याय—वैजयन्ती, केतन, ध्वज, पटाका, जयन्ती, वैजयन्तिका, कदली, कन्दूली, केतु, कदलिका, व्योममण्डल, चिह्न। इन सब शब्दोंमें केतन

और ध्वज शब्द पताकाके दंडार्थमें व्यवहृत होते हैं। साधारणतः मङ्गल वा शोभा प्रकट करनेके लिये पताका-का व्यवहार होता है। देवताओंके पूजनमें भी लोग पताका खड़ी करते या चढ़ाते हैं। हेमाद्रिके दानखंड-में पताकाका विषय जो लिखा है वह इस प्रकार है—

देवमंडपमें जो पताका देनी होगी, उसका परिमाण ७ हाथ १० अङ्गुल विस्तृत और दंड १० हाथ होना चाहिए। इन सब पताकाओंको सिन्दूर, कर्बूर, धूम्र, धूसर, मेघनिभ, पांडु और शुभ्र इन आठ प्रकारके वर्णोंमें पूर्वादिक्रमसे सन्निविष्ट करना चाहिये, ऐसी पताका शुभजनक मानी गई है। लोकपालादिके उद्देश-से जो पताका चढ़ानी होगी, वह उनके वर्ण तथा अस्त्र-के अनुसार होनी चाहिए। जो सब वस्त्र खण्ड त्रिकोणा-कार होता है, उसे पताका और जो चतुष्कोणाकार होता है, उसे ध्वज कहते हैं। २ सौभाग्य। ३ तीर चलानेमें उंगलियोंका एक विशेष न्यास वा स्थिति। ४ दश खर्वकी संख्या। ५ पिङ्गलके ८ प्रत्ययोंमेंसे ८वां। इसके द्वारा किसी निश्चित गुरुलघु वर्णके छन्द अथवा छन्दोंका स्थान जाना जाता है। उदाहरणार्थ प्रस्तार द्वारा यह मालूम हुआ कि ८ मात्राओंके कुल ३४ छन्दभेद होते हैं और मेरु प्रत्यय द्वारा यह भी जाना गया कि इनमेंसे ७ छन्द १ गुरु और ६ लघु वर्णके होंगे। अब यह जानना रहा कि ये सातों छन्द किस किस स्थानके होंगे। पताका-की क्रियासे यह मालूम होगा, कि १३वें, २१वें, २६वें, २८वें, ३१वें, ३२वें, ३३वें स्थानके छन्द १ गुरु और ६ लघुके होंगे। ६ वह डंडा जिसमें पताका पहनाई हुई होती है। ७ नाटकमें वह स्थल जहां किसी पात्रके चिन्तागत भाव या विषयका समर्थन या पोषण आग-न्तुक भावसे हो। जहां एक पात्र एक विषयमें कोई बात सोच रहा हो और दूसरा पात्र आ कर दूसरे सम्बन्धमें कोई बात कहे, पर उसकी बातसे प्रथम पात्र-के चिन्तागत विषयका मेल या पोषण होता हो, वहां यह स्थल माना जाता है।

पताकाङ्क (सं॰ पु॰) पताकास्थान देखो।

पताकादण्ड (सं॰ पु॰) पताकाका डंडा, झंडेका डंडा।

पताकास्थान (सं॰ क्ली॰) नाटकाङ्गभेद। नाटकके मध्य पताकास्थान सन्निवेशित करना होता है। नाटकमें उत्तमरूपसे स्थानकी विवेचना कर अर्थात् ऐसे स्थान-में पताका सन्निवेशित करनी होगी जहां वर्णनका चमत्कारित्व विशेषरूपसे बढ़े। इसका लक्षण इस प्रकार है,—

अन्य किसी एक अर्थ वा विषयकी जब चिन्ता की जाती है, तब यदि आगन्तुक भाव द्वारा अतर्कितभावसे आ कर वह अर्थ समर्थित वा उपस्थित हो, तो पताका स्थान होता है। इसका एक उदाहरण दिया जाता है—रामचन्द्रजी मन ही मन चिन्ता कर रहे हैं, 'सीताविरह मेरे लिये एकमात्र दुःसह है।' ऐसे समयमें दुर्मुखने आ कर निवेदन किया, 'देव उपस्थित'। यहां पर रामकी इच्छा थी कि सीताविरह न हो। पर दुर्मुखके 'उपस्थित' ऐसा कहनेसे रामको दुःसह सीताविरह उपस्थित हुआ, यही सूचित होता है। अतएव यह स्थान पताकास्थान हुआ। राम, सीताका विरह न हो, इस प्रकारकी चिन्ता कर रहे थे, आगन्तुक भावसे सीताका विरह उप-स्थित हुआ, यही सूचित होता है। नाटकके ऐसे स्थान पर पताकास्थान होता है।

यह पताकास्थान ४ प्रकारका है जिनका लक्षण यथा-क्रमसे नीचे दिया जाता है।

१। अतर्कितभावसे परम प्रीतिकरी अर्थसम्पत्ति लाभ हो, वहां प्रथम पताकास्थान होता है।

२। वाक्यके अत्यन्त श्लिष्ट और नाना प्रकार बन्धयुक्त होने पर द्वितीय पताकास्थान होता है।

३। फलरूप कार्यकी सूचना और श्लिष्ट प्रत्युत्तर-युक्त होनेसे तृतीय पताकास्थान होता है।

४। द्वार्थ एवं सुश्लिष्ट वचनविन्यास तथा प्रधानान्त-रापेक्षी होनेसे चतुर्थ पताकास्थान होता है।

इन सबका उदाहरण विस्तारके भयसे नहीं दिया गया। साहित्यदर्पणके ६ठे परिच्छेदमें इनके उदाहरण दिये गये हैं।

पताकिक (सं॰ त्रि॰) पताकाऽस्त्यस्य व्रीह्यादित्वात् ठन्। १ पताकायुक्त, जिसमें पताका हो। २ पताका-धारक, झंडावरदार, झंडी उठानेवाला।

पताकिन् (सं॰ त्रि॰) पताका विद्यतेऽस्य, पताका-इनि। १ वैजयन्तिक, पताकाधारी, झंडी उठानेवाला।

२ रिष्टारिष्टबोधक चक्रविशेष । २४ वर्ष तक रिष्ट-की गणना करनी होती है, सुतरां जब तक २४ वर्ष न हो, तब तक पताका प्रभृति रिष्ट देखने होते हैं । यह चक्र बनानेमें पहले ऊर्ध्वभावमें तीन और तिर्यक्भावमें तीन रेखाकी कल्पना करनी होती है । पीछे परस्पर रेखाओंको काटनेके लिये तिर्यक्भावमें ६ रेखायें उत्तर की ओर खींचनी होती हैं । इस प्रकार चक्र प्रस्तुत करनेसे पताकीका वेध जाना जायगा । जन्मकालमें ग्रहों-के अवस्थान द्वारा रिष्टका बोध हुआ करता है । पताकि-चक्रमें ग्रहको संस्थापन करनेमें ऊर्ध्वभागस्थ सर्वशेष रेखा-को मेषराशि मानते हैं । पीछे उसकी वामदिक् स्थित रेखाओंको क्रमशः वृष, मिथुन, कर्कट, सिंह, कन्या, तुला आदि राशिकी कल्पना करते हैं । इस चक्रकी रेखामें अङ्कस्थापन करना होता है । मीन, कर्कट, तुला, कुम्भ, सिंह, वृश्चिक, मकर, कन्या और धनुमें क्रमशः ४।५। २०।३।८।६।१४।२।१० अङ्क यथाक्रम स्थापित करने होंगे ।

वसुन्धराके मतसे पताकावेध चार प्रकारका है । मेषादि द्वादश राशियोंकी जो राशि लग्न होगी, उस राशिको सम्मुख राशि और दक्षिण तथा वामदिक् स्थित राशि उससे विद्ध हुआ करती है । वेध भी दण्डाधिपति ग्रह द्वारा होता है और विद्ध राशिके अङ्कसंख्यानुसार वर्ष, मास और दिन परिमित कालमें जातबालकका रिष्ट होगा, यह जाना जा सकता है । यदि सबल पाप-ग्रह कर्तृक विद्ध हो, तो विद्धराशिकी अङ्कसंख्या दिन-रूपमें और यदि मध्यबलसे विद्ध हो, तो मासरूपमें व्यव-हृत होती है । इस प्रकार विद्ध शुभग्रहके बलानुसार दिनादि परिमित कालमें बालककी मृत्यु होती है ।

यदि लग्नमें पापग्रह रहे, अथवा बलवान् पाप-ग्रहसे दृष्ट हो, तो विद्धराशिके परिमित अङ्कको दिन-संख्यामें बालककी अवश्य मृत्यु होती है । इस पताकी-वेधमें किस राशिके साथ किस राशिका वेध है वह नीचे कहा जाता है,—धनु और मीनराशिके साथ कर्कट राशिका वेध, सिंहके साथ वृश्चिक और कुम्भराशिका, कन्याके साथ मकर और तुलाका, तुलाके साथ मीन और कन्याका, वृश्चिकके साथ कुम्भ और सिंहराशिका, धनुके साथ मकर और कर्कटका, मकरके साथ धनु और कन्याका, कुम्भके साथ सिंह, धनु और मीनका, वृषके साथ वृश्चिक और कुम्भका तथा मिथुनके साथ मकर, कर्कट और तुला राशिका वेध जानना होगा ।

पहले तीन राशिमें मेषादि जो सब अङ्क उल्लिखित हुए हैं, उन सब अङ्कों और उनके सम्मिलन द्वारा वेध जाना जाता है । कर्कट राशिको १८, सिंहको १७, कन्याको २६, तुलाको २६, वृश्चिकको १७, धनुको २८, मकरको २६, कुम्भको १७, मीनको २८, मेषको १६, वृषको १७ और मिथुनको २८ संख्या निर्द्धारित है । ज्योतिस्तत्त्वके मतसे पताकिनिर्णय—पताकिचक्रमें तीन खड़ी और तीन पड़ी रेखा खींच कर समभावमें सबोंके साथ वेध करे । उसमें ५।८।२।२०।६।१०।१४।३।४ ये सब अङ्क कर्कटसे ले कर मीन तक देने होते हैं । लग्नसे शुभ-दण्डमें वेध होने पर जातबालकका शुभ और पापदण्डमें वेध होने पर अशुभ होता है । नीचे एक चक्र दिया जाता है ।

पहले जातबालकका जन्म दिवारात्रके भेदसे यामार्द्ध और यामार्द्धाधिपति स्थिर करना होगा । रविके शेष दो दण्ड, चन्द्रके आदि और शेष दण्ड, मङ्गलके शेष दण्ड, बुध और बृहस्पतिके प्रथम दो दण्ड और शुक्रका प्रथम दण्ड यामार्द्धाधिपतिका शुभदण्ड है । शनिके ४ दण्ड किसी भी समय प्रशस्त नहीं ।

पताकिचक्रमें लग्न, सम्मुख, वाम और दक्षिण ये ४ प्रकारके वेध अवधारित हुए हैं । मेषादि द्वादश राशि-के मध्य किस किस राशिके वाम वेध हैं वह नीचे लिखा जाता है । कर्कट, सिंह और कन्या इन तीन राशियों-के वाम वेध नहीं है, केवल दक्षिण, सम्मुख और लग्न वेध है । मकर, कुम्भ और मीन इनके दक्षिण वेध-

भिन्न अन्य तीन वेध हैं। तुला, वृश्चिक और धनु इनके सम्मुख वेध नहीं है; अन्य तीन प्रकारके वेध हैं। मेष, वृष और मिथुन इन तीन राशियोंके वाम, दक्षिण सम्मुख और लग्न यही चार प्रकारके वेध होते हैं। वृष, कुम्भ, सिंह और वृश्चिक ये वृषलग्नके वेधस्थान माने गये हैं तथा इन सब राशियोंके ८।६।३ अङ्क हैं। इन सब अङ्कोंको परस्पर संयुक्त कर ८।११।१४।१७ इन सब अङ्कपरिमित दिन वा मास वा वर्षमें बालकका पताकि-रिष्ट होगा। यदि दण्डाधिपति ग्रह पूर्ण बलवान् हों, तो ८।६ इत्यादि दिनके किसी एक दिनमें बालकका विनाश होगा।

किसी किसीके मतानुसार विद्धस्थलमें पापग्रहके रहनेसे पताकि-रिष्ट होता है। किन्तु वह रिष्ट प्राण-नाशक न हो कर पीड़ादायक है। उस रिष्टका निम्न-लिखित रूपसे निरूपण करना होता है—

जैसे वृष, कुम्भ, सिंह और वृश्चिक ये चार राशि वृषको वेधस्थान हैं। इन चार राशियोंमेंसे किसी एक राशिमें यदि कोई पापग्रह रहे, तो मतभेदसे पताकि-रिष्ट हुआ करता है। मेष, वृष और मिथुन ये तीन राशि चार प्रकारको वेधयुक्त हैं। अतएव इनकी रिष्टविचारस्थल पर चार प्रकारकी वेधस्थान-दृष्टि करके रिष्टका निरूपण करना होता है और जिस जिस राशिके वाम वा सम्मुख वेध नहीं है, उनका रिष्ट इस प्रकार निरूपण करना होगा। सिंह, कन्या और तुला इन राशियोंके वाम वेध भिन्न अन्य तीन वेध हैं। कर्कट, धनु और मीन यही तीन राशि कर्कट राशिको वेधस्थान हैं। इनमेंसे किसी एक राशिमें यदि दण्डाधिपति पापग्रह रहे, तो ५।१०।१४।८।१३।१६।१८ परिमित दिन, मास वा वर्षमें बालकका रिष्ट स्थिर करना होगा। मकर, कुम्भ और मीन राशियोंके दक्षिण वेध नहीं है तथा तुला, वृश्चिक और धनु राशिके सम्मुख वेध हैं। अतएव इनका रिष्ट विचार वेधस्थान ले कर करना होगा। (ज्योतिस्तत्त्व, पञ्चस्वरा)

पताकीका विषय संक्षेपमें लिखा गया। इसका विशेष विवरण यदि जानना हो, तो पञ्चस्वरा, ज्योतिस्तत्त्व, दीपिका, सत्कृत्यमुक्तावली, ज्योतिःसारसंग्रह आदि ज्योतिषग्रन्थ देखो।

केतुपताकीका विवरण केतुपताकी शब्दमें लिखा है। केतुपताकी द्वारा वर्षाधिपति ग्रह आदि जाने जाते हैं। केतुपताकी गणनामें एक एक ग्रह एक वर्षका अधिपति होता है। जिस वर्षका अधिपति जो ग्रह है, उस वर्षमें उसी ग्रहकी दशा होती है।

पताकिनी (सं० स्त्री०) १ एक देवी। २ सेना, ध्वजिनी।

"न प्रमेहे स रुद्ध कैपथावर्षदुर्दिनं।
रथवर्त्मरजोऽप्यस्य कुत एव पताकिनी ॥" (रघु ४।८२)

पतापत (सं० त्रि०) पत-यङ्, लुक् अच् निपातनात् साधुः। १ अतिशय पतनायुक्त, जिसमें बहुतसे झंडे हों। (क्ली०) २ उड़ती हुई पताकाका अस्फुट शब्द।

पतारी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

पतारी (हिं० स्त्री०) उत्तर भारतके जलाशयोंके किनारे मिलनेवाला बत्तखकी जातिका एक जलपक्षी। ऋतुके अनुसार यह अपने रहनेके स्थानमें परिवर्त्तन करता रहता है। लोग इसका शिकार करते हैं।

पताल (हिं० पु०) पाताल देखो।

पतालआँवला (हिं० पु०) एक पौधा जो औषधके काममें आता है। यह बहुत बड़ा नहीं होता। पौधेके नीचे पतली डंडी निकलती है और इसी डंडीमें फल लगते हैं। वैद्यकके अनुसार यह कड़ुवा, कसैला, मधुर, शीतल, वातकारक, प्यास, खाँसी, रक्तपित्त, कफ, पाण्डुरोग, क्षत और विषका नाशक तथा पुत्रप्रदायक है। पर्याय—भूम्यामलकी, शिवा, ताली, वेतामली, तामलकी, सूक्ष्मफला, अफला, बमला, बहुपुत्रिका, बहुवीर्या, भूधात्री आदि।

पतालकुम्हड़ा (हिं० पु०) एक प्रकारका जंगली पौधा। इसकी बेल शकरकन्दकी लताकी तरह जमीन पर फैलती है और शकरकन्द ही की तरह इसकी गाँठोंसे कंद फूटते हैं। कंदोंका परिमाण एक सा नहीं होता, कोई छोटा और कोई बहुत बड़ा होता है। यह दवाके काममें आता है।

पतालदंती (हिं० पु०) वह हाथी जिसके दाँतका झुकाव भूमिकी ओर हो। ऐसा हाथी ऐबी समझा जाता है।

पतावर (हिं० पु०) पेड़के सूखे हुए पत्ते।

पतासो (हिं' स्त्री०) बढ़इयोंका एक औजार, छोटी रुखानी ।

पति (सं० पु०) पाति रक्षतीति पा-रक्षणे डति । १ मूल । २ गति । ३ पाणिग्रहीता, दूल्हा, शौहर, खाविंद, स्त्री विशेषका विवाहित पुरुष जिसका उस स्त्रीसे व्याह हुआ हो। संस्कृत पर्याय-धव, प्रिय, भर्त्ता, कान्त, प्राणनाथ, गुरु, हृदयेश, जीवितेश, जामाता, सुखोत्सव, नर्मकील, रतगुरु, स्वामी, रमण, वर, परिणेता और रहो। विधिपूर्वक जो पाणिग्रहण करता है, उसीको पति कहते हैं। पति चार प्रकारका होता है,—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ । इनके लक्षणादि रसमञ्जरीमें लिखे हैं। उक्त चार प्रकारके लक्षण नायक शब्दमें देखो।

स्त्रियोंके पति ही देवता हैं। सर्वदा अनन्यचित्तसे ही पतिकी सेवा करना उनका एकमात्र धर्म है।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें प्रकृतिखण्डके ४३वें अध्यायमें स्त्रियोंके पतिके प्रति व्यवहारका विषय विस्तृत रूपसे लिखा है। पतिव्रता शब्द देखो।

"भार्याया भरणाद्भर्त्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः ॥"

(भारत १।४१८८ श्लोक)

४ अधिपति, किसी वस्तुका मालिक। पर्याय—स्वामी, ईश्वर, ईशिता, अधिभू, नायक, नेता, प्रभु, परिवृढ़ और अधिप।

"ग्रामस्याधिपतिं कुर्यात् दशग्रामपतिं तथा ।
विंशतीशं शतेशञ्च सहस्रपतिमेव च ॥"

(मनु ७।११५)

५ प्रतिष्ठा, मर्यादा, इज्जत, लज्जा, साख। ६ पाशुपतदर्शनके अनुसार सृष्टि, स्थिति और संहारका वह कारण जिसमें निरतिशय ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति हो तथा ऐश्वर्यसे जिसका नित्य सम्बन्ध हो, शिव या ईश्वर।

पतिआना (हिं० क्रि०) विश्वास करना, मानना।

पतिंवरा (सं० स्त्री०) पतिं वृणोति या सा वृ बच् ततो मुम्, (संज्ञायां भृतृवृजीति। पा ३।२।४६) १ स्वयंवरा। जो स्त्री स्वयं पतिको वरण करती है, उसे पतिंवरा कहते हैं। क्षत्रिय-रमणियां पूर्व समय प्रायः इसी प्रकार विवाह करती थीं। दमयन्ती, इन्दुमती प्रभृतिने स्वयं पतिवरण किया था। २ कृष्णजीरक, काला जीरा।

पतिक (हिं० पु०) कार्षापण नामक एक प्राचीन सिक्का।

पतिकामा (सं० त्रि०) पति-अभिलाषिणी, स्वामीको चाहनेवाली।

पतिघातिनी (सं० स्त्री०) पतिं हन्ति हन-णिनि। १ पतिनाशिनी स्त्री, स्वामीको मारनेवाली औरत। २ पतिनाशक हस्तरेखाविशेष। स्त्रियोंके हाथमें एक प्रकारकी रेखा होती है जिसके रहनेसे उनके पतिका विनाश होता है। कर्कटलग्नमें वा कर्कटस्थ चन्द्रमें और मङ्गलके तीसवें अंशमें जिस स्त्रीका जन्म होता है, वही स्त्री पतिघातिनी होती है। (बृहज्जातक) जिस स्त्रीके अङ्गुष्ठमूलसे ले कर एक रेखा कनिष्ठाङ्गुलिमूल तक चली गई हो, जिसकी आंखें लाल, नाकके ऊपर काला तिलसा और जिसका वक्षस्थल अत्युच्च तथा विस्तार हो, ऐसी स्त्री पतिघातिनी समझी जाती है।

(रेखा सामुद्रिक)

पतिघ्न (सं० त्रि०) पतिं हन्ति पति-हन-टक्, (लक्षणे जायापत्योष्टक्। पा ३।२।५२) पतिनाशसूचक लक्षणभेद। स्त्रियां ङीप्। पतिघ्नी, स्त्रियोंकी पतिनाशसूचक हस्तरेखा। स्त्री पतिघातिनी होगी या नहीं, विवाहके पहले ही इसकी परीक्षा करनी चाहिए। आश्वलायनगृह्यसूत्रमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—विवाहसे पहले क्षेत्र प्रभृति आठ स्थानोंसे मट्टी संग्रह कर उसे अलग अलग आठ भागोंमें रखे। बाद अभिमन्त्र-पूर्वक कुमारीको उनमेंसे एक भाग छूने कहे। यदि वह कुमारी श्मशानकी मिट्टीको छू ले, तो उसे पतिघातिनी समझना होगा।

पतिजिया (हिं० स्त्री०) जीयापोता नामक वृक्ष।

पतित (सं० त्रि०) पतित भ्रष्टो भवति स्वधर्मात् शास्त्रविहितकर्मणः, सदाचारादिभ्यो वा यः, पत-कर्त्तरि क्त। १ चलित, गया हुआ। २ गलित, गिरा हुआ, ऊपरसे नीचे आया हुआ। ३ आचार, नीति या धर्मसे गिरा हुआ नीतिभ्रष्ट, आचारच्युत। ४ जातिच्युत, जातिसे निकाला हुआ, जाति या समाजसे खारिज। ५ स्वधर्म च्युत, अतिपातकी, नरकगमनसूचक कर्म।

"स्वधर्मं यः समुच्छिद्य परधर्मं समाश्रयेत् ।
अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्तितः ॥"
(मार्क० पु०)

जो मनुष्य अनापद्‌कालमें अर्थात् विपत्तिके उपस्थित नहीं होने पर भी अपना धर्म छोड़ दूसरे धर्मका आश्रय लेता है, पंडित लोग उसीको पतित कहते हैं।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि जो ब्राह्मण चंडालादि अन्त्यज-स्त्री-गमन करते, उनके अन्नको खाता और अज्ञानपूर्वक उनसे लेन देन करता है, वह पतित और ज्ञानपूर्वक करनेसे उनके समान होता है।

शुद्धितत्त्वधृत ब्रह्मपुराणमें लिखा है, कि आग लगानेवाला, विष देनेवाला, पाषंड, क्रूरबुद्धि और क्रोधवशतः विष, अग्नि, जल, उद्बन्धन आदिसे मर जानेवाला पतित माना जाता है। पतित व्यक्तिका दाह, अन्त्येष्टिक्रिया, अस्थिसञ्चय, श्राद्ध, यहां तक कि उसके लिए आंसू भी बहाना अकर्त्तव्य है। पतितका संसर्ग, उसके साथ भोजन, शयन वा बातचीत करनेवाला भी पतित होता है।

वराहपुराणमें लिखा है, कि जो पतितके साथ बैठ कर खाते, सोते और बातचीत करते, वे पतित होते हैं। किन्तु पतितव्यक्ति प्रायश्चित्त करके शुद्ध हो सकता है। यह व्यक्ति जब तक प्रायश्चित्त नहीं कर लेता, तब तक उसे वैदिककर्ममें अधिकार नहीं रहता और अन्तमें वह नरकगामी होता है। पतितके संसर्गसे जो पतित होते उनके उदकादि कार्य होते हैं।

पतितमात्र ही त्यजनीय है; केवल माताके पतित होने पर उसे त्याग नहीं करना चाहिये।

"पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कदाचन।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी ॥"
(मत्स्यपुराण)

गुरु यदि पतित हों, तो उन्हें परित्याग कर सकते हैं पर माताको कभी भी नहीं। क्योंकि माता गर्भधारण और पोषण द्वारा सबसे श्रेष्ठ है। आत्मपुराणमें लिखा है—ब्रह्महा, कृतघ्न, गोघाती और पशुघातकी इनके उद्देशसे गयामें पिंड देनेसे उद्धार हो सकता है। ब्रह्मपुराणमें भी इसका समर्थन किया है। पतितोंके उद्देशसे एक वर्षके बाद गयाश्राद्धादिका अनुष्ठान करना होता है।

हेमाद्रि और प्रायश्चित्तविवेक प्रभृतिमें लिखा है—एक वर्षके बाद नारायणबलि दे कर पतितका श्राद्धादि हो सकता है। नारायणबलि देखो।

कोई कोई कहते हैं, कि प्रायश्चित्त करनेसे पिताका पाप नाश होगा, पर इसका कोई प्रमाण नहीं है; किन्तु आत्मघातीके जगह प्रमाण है, कि पुत्रके प्रायश्चित्तसे पिताका पाप नाश होता है।

पतितका उदक-विषय—हेमाद्रिने लिखा है कि यदि कोई व्यक्ति पतितके प्रति दया दिखला कर उसका तृप्तिसाधन करना चाहे तो उसे एक दासीको बुला कर कुछ अर्थ दे यह कहना चाहिए, "तुम मूल्य ले कर तिल लाओ और जलपूर्ण एक घड़ेको ले कर दक्षिण मुँह बैठ वामचरण द्वारा उसे फेंको तथा बारबार पातकीका निर्देश और पान करो।" दयापरवश व्यक्तिको यह बात सुन कर यदि कोई दासी अर्थ ले कर ऐसा आचरण करे, तो पतितोंको तृप्ति होती है। इस प्रकारका कार्य लगातार दिन करना होता है। मदनरत्नमें लिखा है, कि जो आत्मघाती हैं, उनके सम्बन्धमें यह विधान कहा गया है। किन्तु किसीका कहना है, कि उपलक्षणक्रमसे सभी पतितविषयोंमें यह नियम लागू है। (निर्णयसिन्धु ५ परि०)

पतितका विषय प्रायश्चित्तविवेकमें इस प्रकार लिखा है,—ब्रह्महा, सुराप, गुरुतल्पगामी, चोर, नास्तिक और निन्दित कर्माभ्यासी प्रभृति पतित हैं। साधारणतः जिन्होंने महापातक वा अतिपातकका कार्मानुष्ठान किया है, वे ही पतित हैं।

पतित-उधारन (हिं० वि०) १ पतितोंको गति देनेवाला। (पु०) २ सगुण ईश्वर, पतित जनोंके उद्धारके लिए अवतार लेनेवाला ईश्वर। ३ ईश्वर, परमात्मा।

पतितता (सं० स्त्री०) १ पतित होनेका भाव, जाति या धर्मसे च्युत होनेका भाव। २ अपवित्रता। ३ अधमता, नीचता।

पतितत्व (सं० पु०) पतित होनेका भाव।

पतितपावन (सं० त्रि०) १ पतितको शुद्ध करनेवाला,

पतितको पवित्र करनेवाला। (पु०) २ ईश्वर। ३ सगुण ईश्वर।

पतितवृत्त (सं० त्रि०) पतित दशामें रहनेवाला, जातिच्युत हो कर जीवन बितानेवाला।

पतितव्य (सं० क्ली०) पत-तव्य पतनयोग्य, गिरनेवाला।

पतितसावित्रीक (सं० त्रि०) १ सावित्री परिभ्रष्ट, जिसका उपनयन संस्कार न हुआ हो या विधिपूर्वक न हुआ हो। २ प्रथम तीन प्रकारके व्रात्योंमेंसे एक।

पतितस्थित (सं० त्रि०) भूपतित, पृथ्वी पर गिरा हुआ

पतित्व (सं० क्ली०) पत्युर्भावः त्व। १ स्वामित्व, स्वामी, प्रभु या मालिक होनेका भाव। २ पाणिग्राहकता, पाणिग्राहक या पति होनेका भाव।

पतित्वन (सं० क्ली०) यौवन।

पतिदेवता (सं० स्त्री०) पतिरेव देवता यस्याः। पतिव्रता, जिस स्त्रीका आराध्य या उपास्य एकमात्र पति हो।

पतिदेवा (सं० स्त्री०) पतिरेव देवो यस्याः। पतिव्रता स्त्री।

पतिद्विष् (सं० स्त्री०) पत्यौ द्वेष्टि द्विष-क्विप्। पतिद्वेषिणी स्त्री, वह स्त्री जो अपने पतिसे प्रति द्वेष करती है।

पतिधर्म (सं० पु०) पत्युर्धर्मः। १ स्वामीका धर्म। २ पतिके प्रति स्त्रीका धर्म।

पतिधर्मवती (सं० त्रि०) पति सम्बन्धी कर्त्तव्योंका भक्तिपूर्वक पालनकरनेवाली, पतिव्रता।

पतिघ्नुक (सं० त्रि०) पतिको न चाहनेवाली।

पतियान (सं० त्रि०) स्वामि-पथानुवर्त्ती, पतिका पदानुसरण करनेवाली।

पतियाना (हिं० क्रि०) विश्वास करना, प्रतीत करना, सच मानना।

पतिराम—हिन्दीके एक कवि। सं० १७०१में इनका जन्म हुआ था। इनके बनाए पद्य हजारोंमें पाये जाते हैं।

पतिरिप् (सं० स्त्री०) पतिद्वेषिणी स्त्री, पतिसे द्वेष करनेवाली स्त्री।

पतिलोक (सं० पु०) पतिभोग्यो लोकः स्वर्गादिः मध्यपदलोपी कर्मधा०। १ पतिके साथ धर्माचरण द्वारा प्राप्य स्वर्गादि लोक, पतिव्रता स्त्रीको मिलनेवाला वह स्वर्ग जिसमें उसका पति रहता है। मनुने लिखा है, कि जो स्त्री कायमनोवाक्यसे संयत रह कर पतिकी अवहेला नहीं करती और नारीधर्ममें अपना जीवन बिताती है, उसे इस लोकमें परमकीर्त्ति और परलोकमें गति होती है। (मनु ५।१६५-१६६) २ पतिके समीप।

पतिवती (हिं० वि०) सौभाग्यवती, सधवा।

पतिवत्नी (सं० स्त्री०) पतिर्विद्यते यस्याः, पति-मतुप् निपातनात् वत्वं, नुग गमश्च, ततो ङीप्। सभर्त्तृका, सधवा स्त्री।

पतिवेदन (सं० पु०) पतिं वेदयति विद-लाभे णिच्-ल्यु। १ पतिप्रापक, महादेव। २ जो पति प्राप्त करावे, पति लाभ करानेवाला।

पतिव्रत (सं० पु०) पतिमें निष्ठापूर्वक अनुराग, पातिव्रत्य।

पतिव्रता (सं० स्त्री०) पतिव्रतमिव धर्मार्थकामेषु कायवाङ्-मनोभिः सदोपास्योऽस्याः। साध्वी स्त्री, स्वामीके प्रति एकान्त अनुरक्ता स्त्री। पर्याय—सुचरित्रा, सती, साध्वी, एकपत्नी।

पतिव्रता स्त्रीका लक्षण—

"आर्त्तार्त्ते मुदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा।
मृते म्रियत या पत्यौ सा स्त्रीज्ञेया पतिव्रता॥"

(शुद्धितत्त्व)

जो स्त्री स्वामीके दुःखसे दुःखी और सुखसे सुखी होती है तथा स्वामीके विदेश चले जाने पर मलिना और कृशा तथा मरने पर अनुमृता होती है, उसको पतिव्रता जानना चाहिये।

मनुमें लिखा है, कि विवाहकालमें जो सम्प्रदान किया जाता है, उसीसे स्त्रीके ऊपर स्वामीका सम्पूर्ण स्वामित्व रहता है। उसी समयसे स्त्रियोंके लिये स्वामीपरतन्त्रता ही एक मात्र विधेय है। पतिव्रता स्त्रीको आजन्म पतिकी आज्ञाका अनुसरण करना चाहिये। कोई ऐसी बात न करनी चाहिये जो पतिको अप्रिय हो। पति कितना ही दुःशील, दुर्गुणी, दुराचारी और पातकी क्यों न हो, पतिव्रताको सदा सर्वदा उसे अपना देवता

मानना चाहिये। जो बातें पतिको अप्रिय हों, उसकी मृत्युके बाद भी वे पतिव्रताके लिये अकर्त्तव्य हैं। पतिकी मृत्युके पश्चात् पतिव्रता स्त्रीको फल मूल आदि खा कर पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना चाहिये।

जो सब स्त्रियां पातिव्रत्यधर्मका उल्लङ्घन कर पर-पुरुषादि ग्रहण करती हैं, वे इस लोकमें निन्दित होती हैं और मरनेके बाद शृगालयोनिमें जन्म लेती हैं तथा तरह तरहके पाप रोगोंसे आक्रान्त हो कर कष्ट भोगती हैं। (मनु ६ अ०) याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि पतिव्रता स्त्रीको सभी कार्योंमें स्वामीकी वशवर्त्तिनी होना चाहिये। पतिके विदेश होनेकी दशामें उसे शृङ्गार, हास परिहास, क्रीड़ा, सैर तमाशेमें या दूसरेके घर जाना आदि कार्य त्याग देना चाहिये। (याज्ञवल्क्य० १ अ०)

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके श्रीकृष्णजन्मखण्डमें पतिव्रता स्त्रीधर्मका विषय इस प्रकार लिखा है। सती स्त्री प्रति दिन भक्तिभावसे पतिपादोदकका सेवन करे। सम्पूर्ण व्रत, पूजा, तपस्या और आराधना त्याग कर पतिसेवामें रत रहना ही पतिव्रताके लिये एकमात्र धर्म है। वह पतिको नारायणसे भी श्रेष्ठ समझे। पतिव्रता स्त्री स्वामीके वाक्य पर समान प्रत्युत्तर न करे। स्वामी यदि क्रोधमें आ कर उसे दण्ड भी दे, तो भी क्रोध न करे, भूख लगने पर स्वामीको तत्काल भोजन करावे और निद्रा-भङ्ग कदापि न करे। पुत्रकी अपेक्षा पतिको सौगुना अधिक प्यार करे। पति उसे सब पापोंसे छुड़ा देता है। पृथ्वी पर जितने तीर्थ हैं, वे सब तीर्थ तथा देवताके तेज सतीके पादतलमें अवस्थित हैं। स्वयं नारायण, देव-गण, मुनिगण आदि सतीसे भय खाते हैं। पतिव्रताके पदरेणुसे वसुन्धरा पवित्र होती है। सतीको नमस्कार करनेसे सभी पाप नाश हो जाते हैं।

पतिव्रता स्त्री यदि चाहे, तो क्षण भरमें तीनों लोकोंका नाश कर सकती है। सतीके पति और पुत्र सर्वदा निःशङ्क रहते, उन्हें कहीं भी डर नहीं। जो पतिव्रता कन्या प्रसव करती हैं वे बतौर पुत्रवती ही समझी जाती हैं तथा कन्याके पिता भी जीवन्मुक्त होते हैं।

पतिव्रता स्त्रीको प्रतिदिन स्वामीका पूजन करना चाहिये जिसका विधान इस प्रकार है—पत्नी सवेरे उठ कर रात्रिवासका परित्याग करे, पीछे स्वामीको प्रणाम और स्तव करके गृहकार्य कर डाले। तदनन्तर स्नान करके धौतवस्त्र, चन्दन और शुक्ल पुष्पादि ग्रहण कर पहले पतिको मन्त्रपूत जलमें स्नान करावे, पीछे वस्त्र पहना कर पैर धो दे। बादमें आसन पर बिठा ललाट-में चन्दन, गलेमें माला और गात्रमें अनुलेपन आदि दे कर भक्तिपूर्वक पतिको प्रणाम करे।

"ओं नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा" मन्त्रसे पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, चन्दन, नैवेद्य, सुवासित जल और ताम्बूलादि दे कर पूजा करनी होती है। बादमें पत्नी निम्नलिखित स्तवका पाठ करे।

"ओं नमः शान्ताय शास्त्रे च शिवचन्द्रस्वरूपिणे।
नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च।
नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः॥
पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च।
ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णु पतिरेव महेश्वरः।
पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूप नमोऽस्तुते॥
क्षमस्व भगवन्! दोषं ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत्।
पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व च॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्याद्यौ पद्मया कृतम्।
सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज॥
सावित्र्या च कृतं भक्त्या कैलासे शङ्कराय च।
मुनीनाञ्च सुराणाञ्च पत्नीभिश्च कृतं पुरा॥
पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतत् शुभावहं।
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता।
नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितं॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनं।
रोगी च मुच्यते रोगात् बद्धो मुच्येत बंधनात्॥
पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत्।
फलञ्च सर्वतपसां व्रतानाञ्च व्रजेश्वर॥
इदं स्तुत्वा नमस्कृत्य भुङ्क्ते सा तदनुज्ञया।
उक्त पतिव्रताधर्मो गृहिणां श्रूयतां व्रज॥"

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८३ अ०)

और भी दूसरे दूसरे पुराणोंमें अनेक पतिव्रताके नाम

लिखे हैं। कुछके नाम इस प्रकार हैं—सूर्यकी स्त्री सुवर्चला, इन्द्रकी शची, वशिष्ठकी अरुन्धती, चन्द्रकी रोहिणी, अगस्त्यकी लोपामुद्रा, च्यवनकी सुकन्या, सत्यवानकी सावित्री, कपिलकी श्रीमती, सौदासकी मदयन्ती, सगरकी केशिनी, नलकी दमयन्ती, रामकी सीता, शिवकी सती, नारायणकी लक्ष्मी, ब्रह्माकी सावित्री, रावणकी मन्दोदरी, अग्निकी स्वाहादेवी, प्रभृति। ये सभी पतिव्रताओंमें अग्रणी हैं।

जितने पुराण हैं सभीमें पातिव्रत्यधर्मका विशेष विवरण लिखा है।

स्त्रियोंका पातिव्रत्य ही दान, यज्ञ, तपस्या आदि सभी कार्योंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। इसके साथ किसी यागादिकी तुलना नहीं हो सकती। जो सब स्त्रियां पातिव्रत्यसे स्खलित हैं वे नरकगामी होती हैं और उनकी अधोगतिकी परिसीमा नहीं रहती।

पतिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन पतिता इष्ठन् ततस्तृणोलोपः। १ अतिशय पतनशील, गिरनेवाला। २ अतिशय पतिता।

पती (हिं० पु०) पति देखो।

पतीयाली—आगरा विभागके अलीगञ्ज तहसीलके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह इटानगरसे ११ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। गङ्गाके पुरातन गर्भ पर प्राचीन ध्वंसावशेषके ऊपरकी ऊंची जमीन पर यह बसा हुआ है। यहां ग्यासुद्दीन घोरीका बनाया हुआ किला आज भी देखनेमें आता है। प्रवाद है, कि यह नगर पहले मन्दिरादिसे परिशोभित था। विजेता ग्यासुद्दीनने उन सब मन्दिरोंको तहस नहस कर उनके उपकरणोंसे उक्त दुर्गके चतुर्दिक्स्थ प्राचीर बनवाये थे।

पतीर (हिं० स्त्री०) पंक्ति, कतार, पांति।

पतीरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी चटाई।

पतील (हिं० वि०) पतला देखो।

पतीली (हिं० स्त्री०) तांबे या पीतलकी एक प्रकारकी बटलोई। इसका मुंह और पेंदी साधारण बटलोईकी अपेक्षा अधिक चौड़ी और दल मोटा होता है, देगची।

पतुरिया (हिं० स्त्री०) १ वेश्या, रंडी, नाचने गानेका व्यवसाय करनेवाली स्त्री। २ व्यभिचारिणी स्त्री, छिनाल औरत।

पतुली (हिं० स्त्री०) कलाईमें पहननेका एक आभूषण, जिसको अवध प्रान्तकी स्त्रियाँ पहनती हैं।

पतुही (हिं० स्त्री०) मटरकी वह फली जिसके दाने रोग, आधिदैविक बाधा या समयसे पहले तोड़ लिये जानेके कारण यथेष्ट पुष्ट न हो सके हों, नन्हें नन्हें दानोंवाली छीमी।

पतूख (हिं० स्त्री०) पतोखी देखो।

पतेर (सं० पु० स्त्री०) पतति गच्छतीति पत-एरक्, (पतिकठिकुठिगडिगुडिदंशिभ्य एरक्। उण् १।५८) १ पक्षी, चिड़िया। २ आढ़क, अरहर। ३ गर्त्त, गड्ढा। (त्रि०) ४ गन्ता, जानेवाला।

पतैनीदेवी—मध्यप्रदेशमें उचहरसे ८ मील उत्तर और पिथोरासे ४ मील पूर्व पर्वतके ऊपर अवस्थित एक मन्दिर। यह प्राचीन गुप्तमन्दिरादिके अनुकरणसे वृहत् प्रस्तरखण्ड द्वारा निर्मित और छत समतल एक खण्ड पत्थरसे बनायी गई है। देवीमूर्ति ३॥ फुट ऊंची तथा चतुर्हस्तविशिष्ट है। इसके अलावा यहां चामुण्डा, पद्मावती, विजया, सरस्वती प्रभृति पञ्चदेवी तथा वामभागमें अपराजिता, महामनती, अनन्तमति, गान्धारी, मानस ज्वालामालिनी, मानुषी और दक्षिण भागमें जया, अनन्तमति, वैराता, गौरी, काली, महाकाली तथा वज्रांसकला आदि मूर्त्ति खोदित हैं और उनके नीचे नाम भी हैं।

डा० कनिंहमने लिखा है, कि यह मन्दिर निःसन्देह बहुत पुराना है और गुप्त राजाओंके समयका बना हुआ मालूम पड़ता है। अभ्यन्तरस्थ देवी मूर्त्तिके पाददेशमें खोदित जो लिपि है, वह सम्भवतः देवीमूर्त्तिके साथ साथ अथवा परवर्त्ती-समयकी लिखी गई है। पृष्ठपूरिका देवीके प्राचीन मन्दिर और पवित्र तीर्थ चक्रकी कहानियां जो उक्त ताम्रशासनमें लिखी हैं, वही प्राचीन पृष्ठपूरिकादेवी मन्दिरके परवर्त्ति कालमें पतैनीदेवीके नामसे जनसाधारणमें परिचित हुई हैं।

पतोई (हिं० स्त्री०) वह फेन जो गुड़ बनाते समय खौलते रसमें उठता है।

पतोखद (हिं० स्त्री०) १ वह ओषधि जो किसी वृक्ष, पौधे या लताका पत्ता या फूल आदिका हो, घास पातकी दवाई, खरबिरई। २ चन्द्रमा।

पतोखदी (हिं० स्त्री०) पतोखद देखो।

पतोखा (हिं० पु०) १ दोना, पत्तेका बना पात्र। २ एक प्रकारका बगला जो सफेद बगलेसे छोटा और किलचिपासे बड़ा होता है। इसका पर खूब सफेद, चिकना, नरम और चमकीला होता है। टोपियों आदिके बनानेमें प्रायः इसीके पर काममें लाये जाते हैं, पतंखा।

पतोखी (हिं० स्त्री०) १ पत्तोंका बना छोटा छाता, घोघी। २ एक पत्तेका दोना, छोटा दोना।

पतोरा (हिं० पु०) पत्तोरा देखो।

पतोह (हिं० स्त्री०) पतोहू देखो।

पतोहू (हिं० स्त्री०) पुत्रवधू, बेटेकी स्त्री।

पतौञ्जा—अयोध्या प्रदेशके सीतापुर जिलेका एक ग्राम। यहांसे ३ मील उत्तर-पश्चिम सुलतान नगरके समीप तक एक सुविस्तृत प्राचीन नगरका प्रवेशद्वार तथा मन्दिरादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पतौदो—१ पञ्जाबके अधीनस्थ एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २८° १४´ से २८° २२´ उ० और देशा० ७६° ४´ से ७६° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५२ वर्गमील और जनसंख्या २१८३३ है। इसमें इसी नामका एक शहर और ४० ग्राम लगते हैं। महम्मद मुमताजहुन-अली खाँ यहांके वर्त्तमान नवाब हैं। ये बलूची वंशके हैं। इनके पूर्वपुरुष फाइजतलब खाँने होलकरकी सेनाके विरुद्ध युद्ध किया था जिसके लिये लार्ड लेकने १८०६में उनको यही भूसम्पत्ति दान दी थी। यहां एक अस्पताल, प्राइमरी स्कूल तथा चार आस्य-पाठशालाएं हैं। यहांकी कुल आय ७६६२१ रु० है।

२ उक्त राज्यका सदर। यह अक्षा० २८° २०´ उ० और देशा० ७६° ४८ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४१७१ है। यह जलाल-उद्दीन् खिलजीके राजत्वकालमें बसाया गया है। यहां पतौदीके नवाबका निवासस्थान और राज्यके अनेक आफिस हैं।

पत्काषिन् (सं० त्रि०) पादेन कषति गच्छति काष-णिनि, ततः पादस्य पदादेशः। पाद द्वारा गन्ता, पैरसे चलनेवाला।

पत्त (सं० पु०) पतत्यनेन पतवाहुलकात् करणे तन्। १ पाद, पैर, पांव। २ पत्र देखो।

पत्तङ्ग (सं० क्ली०) पत्ताङ्ग पृषोदरादित्वात् साधुः। १ रक्तचन्दन, पतंग नामक लकड़ी, बक्कम (Caesalpinia suppan)। इसे हिन्दीमें पतंग, तैलङ्गमें ओकमुकट्ट और उत्कलमें बकमो कहते हैं। संस्कृत पर्याय पत्ताङ्ग, रक्तकाष्ठ, सुरङ्गद, पत्ताख्य, पट्टाङ्ग, भार्यावृक्ष, रञ्जक, लोहित, रङ्गकाष्ठ, रोगकाष्ठ, कुचन्दन, पट्टरञ्जक, सुरङ्ग। गुण—कटु, रूक्ष, अम्ल, शीत, वातपित्तज्वर, विस्फोट, उन्माद और भूतनाशक है। (पु०) २ भृङ्गराज, भीमराज। ३ केयराज। ४ शालिधान्यभेद, एक प्रकारका धान।

पत्ततस् (सं० अव्य०) पत्त-तस्। पादसे।

पत्तन (सं० क्ली०) पतन्ति गच्छन्ति जना यस्मिन्। पत-तनन् (वीपतिभ्यां तनन्। उण् ३।१५०) १ नगर। २ मृदङ्ग।

पत्तन—पाटन देखो।

पत्तनवणिज (सं० पु०) पत्तनस्य नगरस्य वणिक्। नगर-वणिक्। पर्याय—स्वष्यायी।

पत्तना—बङ्गाल प्रदेशके शाहाबाद जिलान्तर्गत भबुआ थानेका एक प्राचीन नगर जिसे शवर जातीय हिन्दू राजसे प्रतिष्ठित बतलाते हैं।

पत्तनाधिपति (सं० पु०) पत्तनस्य अधिपतिः। राजभेद।

पत्तनीप्रभु—बम्बई प्रदेशवासी क्षत्रिय-जातीय एक श्रेणीके कायस्थ वा मसीजीवी। बम्बई और कर्णाटक प्रदेशमें चार प्रकारके मसीजीवी प्रभु देखे जाते हैं, कायस्थ-प्रभु, दमनप्रभु, ध्रुवप्रभु और पत्तनप्रभु। इन चार श्रेणियोंके प्रभु वा कायस्थोंके बीच पत्तनप्रभुगण ही अपनेको श्रेष्ठ और विशुद्ध क्षत्रियसन्तान बतलाते हैं।

स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें लिखा है, कि पहले ये लोग 'पठारीय' नामसे प्रसिद्ध थे। किस प्रकार उनका पत्तनप्रभु नाम पड़ा, इस विषयमें सह्याद्रिखण्डमें जो लिखा है वह इस प्रकार है—

"ब्रह्माके मानसपुत्र काश्यप थे, काश्यपके पुत्र सूर्य, सूर्यके पुत्र वैवस्वतमनु, तद्वंशमें दिलीप, दिलीपके पुत्र रघु, रघुके पुत्र अज, अजसुत दशरथ, दशरथसुत राम, तत्सुत

कुश, तत्पुत्र अतिथि, तत्सुत निषध, तत्सुत नभः, तत्पुत्र पुंडरीक, तत्पुत्र क्षेमधन्वा, तत्पुत्र देवानीक, तत्पुत्र वासी, तत्सुत दल, तत्पुत्र शील, तत्पुत्र उनाभ, तत्पुत्र व्रजनाभ, तत्पुत्र खंडन, तत्सुत पुषित, तत्पुत्र विश्वसम, तत्सुत आह्लाख्य, तत्सुत हिरण्यनाभ, तत्सुत कौशल्य, तत्सुत सोम, तत्पुत्र ब्रह्मिष्ठ, तत्सुत पुष्य, तत्सुत सुदर्शन और सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण हुए। अग्निवर्णके एक पुत्र थे जिनका नाम था अश्वपति। पहले राजा अश्वपतिके कोई पुत्र न था। पीछे उन्होंने भरद्वाज आदि बारह ऋषियोंको सर्वस्व दक्षिणा दे कर पुत्रेष्टियज्ञ किया जिससे उन्हें अनुज प्रभृति १२ पुत्र हुए। इन १२ पुत्रोंके गोत्र १२ ऋषियोंके नाम पर रखे गए और इन बारह ऋषियोंकी आराध्यशक्ति इन बारह राजपुत्रोंकी कुलदेवी मानी गईं। एक समय राजा अश्वपति पुत्रोंके साथ पैठन नगरमें तीर्थयात्रा करनेको गये। वहां उन्होंने शास्त्र विधिके अनुसार तुलापुरुषादि अनेक सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया। भृगुऋषि राजदर्शनके लिये वहां पहुंचे। किन्तु घटनाक्रमसे मुनिको देख कर अश्वपति न उठे और न पाद्य अर्घ्य द्वारा उनकी पूजा ही की। इस पर ऋषि बड़े बिगड़े और राजाको इस प्रकार शाप दे चले, "तूने राज्यैश्वर्यसे मदोन्मत्त हो कर मेरी अवमानना की है, इस कारण तेरा राज्य और वंशनाश होगा।" राजा अश्वपतिने अपना अपराध समझ कर ऋषिके पैर पकड़े और कातरभावसे कहा, "प्रभो! मैं दानादि कार्यमें अन्यमनस्क था, इसी कारण यह अपराध हुआ है, कृपया क्षमा कीजिये।" राजाके कातर वचन सुन कर मुनिवर संतुष्ट हुए और बोले, "मेरा शाप तो वृथा हो नहीं सकता, तब तुम्हारा वंश रहेगा सही, लेकिन वे राज्यहीन हो कर निःशौर्य होंगे और लिपिकावृत्तिका अवलम्बन करेंगे। इस पैठन-पत्तनमें मैंने क्रोधवश शाप दिया है, इस कारण वे प्रसिद्ध पाठारीयगण 'पत्तन' नामसे प्रसिद्ध होंगे और इन पत्तनवंशधरोंकी उपाधिमें 'प्रभु' पदयुक्त रहेगा (१)।" इतना कह कर भृगुमुनि चल दिये।

वर्त्तमान सूर्यवंशीय पत्तनप्रभुगण अश्वपतिके उक्त १२ पुत्रोंको ही अपने आदिपुरुष मानते हैं। सह्याद्रिखण्डानुसार उक्त १२ जनोंके नाम, गोत्र और कुलदेवीका परिचय तथा प्रत्येकके वंशमें अभी जो पदवी चलती है, वह नीचे लिखी गई है—

नाम	गोत्र	कुलदेवी	देवीका स्थान	पदवी
१ अनुज	भरद्वाज	प्रभावती	महिम्	राजे
२ देवक	पुतमाष	कालिका	शृंगं	प्रधान
३ पुष्ठ	वशिष्ठ	चण्डिका	दमोल	कोठारे
४ ऋतुपर्ण	काश्यप	महालक्ष्मी	कोल्हापुर	नवलकर
५ शय	हारित	योगेश्वरी	योगेश्वरी	पत्तनराव
६ सुषेण	हरिविश्व	इन्द्राणी	विमला	धुरन्धर
७ सौदास	अघमर्षणादृश	कामाक्षी	कांचीपुर	अधिकारीकर
८ सुमन्त	गोवत्स	एकवीरा	माहुर्गाम	देशाई
९ कौण्डिन्य	कौण्डिन्य	अम्बिका	पुजपात	नायक
१० मधुक	माण्डव्य	महेश्वरी	महेश्वर	मनकर
११ कौशिक	कौशिक	दुर्गा	कलकत्ता	चौलकर
१२ मार्त्तण्ड	विश्वामित्र	ललिता	मगेपट्टनजा	अधकारकर

[illegible]

इनके सिवा एक श्रेणीके और भी पत्तनीप्रभु हैं जो अपनेको चन्द्रवंशीय क्षत्रिय कामपतिकी सन्तान बतलाते हैं। स्कन्दपुराणके सह्याद्रिखण्डमें कामपतिका परिचय इस प्रकार है—

कश्यप, तत्पुत्र अत्रि, अत्रिकी आंखसे चन्द्रमा, चन्द्रमाके पुत्र बुध, बुधके पुरूरवा, तत्सुत नहुष, तत्सुत ययाति, ययातिके पुत्र आयु, आयुके तपू, तपूके वाम, वामके कुश, कुशके भानु, भानुके सोम, सोमके शिरा,

(१) "त्वं चेच्छरणमापन्नो वंशवृद्धिर्भविष्यति।
त्वद्‌वंशजाश्च राजानो निःशौर्या राज्यहीनतः॥
अद्यप्रभृति तेषां वै लिपिकाजीवनं भवेत्।
पैठने पत्तने शप्ता मया कोपवशात् किल॥
पाठारीयाः प्रसिद्धास्ते पत्तनाख्या भवन्तु वः।
प्रभुत्वपदं तेषां पत्तनप्रभवाश्च ये॥"

(सह्याद्रि १।२८।१३-१५)

शिवाके पुत्रादिक्रमसे धनञ्जय, माङ्गल्य, कामराज, पुष्परविमण्डल, रविके वंशमें सर्वजित् सर्वजित्से नघु, नीके पुत्रादिक्रमसे इन्दुभूपाल, दृष्ट, दुर्मणा, धर्म, काम, कौशिक, रणमण्डन, रणमण्डनके वंशमें सिमिराज, सिमिराजके पुत्र वागलालन, उनके वंशमें वज्रनाभ, वज्रनाभके पुत्र इन्दुमण्डल इन्दुमण्डलके कामपाल, कामपालके वंशमें मलिन, मलिनके पुत्र अमघ, अमघके पुत्र काशी और काशीके वंशमें कामपतिने जन्मग्रहण किया। पहले कामपतिके कोई सन्तान न थी। उन्होंने ऋषियोंको सलाहसे पुत्रेष्टियज्ञ किया जिससे उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए।

नीचे कामपतिकी वंशधारा, उनके गोत्र और कुलदेवीके नाम दिये जाते हैं,—

पूर्वपुरुष।	कुलदेवी।	गोत्र।
१ पद्मराज	योगेश्वरी	पद्माक्ष।
२ ग्राम *	महालक्ष्मी	च्यवन।
३ पृथु	एकवीरा	गौतम।
४ श्रीधर	कालिका	कौण्डिन्य।
५ ब्रह्म	पद्मावती	मौनस्य।
६ चम्पक	कुमारिका	चम्पक।
७ नीलराज	जगदम्बा	वशिष्ठ।
८ विद्युत्पति	सरस्वती	विश्वामित्र।
९ सुरथ	उमा	भृगु।
१० रघु	वागीश्वरी	अत्रि।
११ मागध	वागीश्वरी	अत्रि।
१२ शैल	ललिता	भरद्वाज।
१३ श्रीपति *	चण्डिका	हारित।
१४ शैल	रेणुका	देवराज।
१५ नकुल	महाकाली	भूचण्ड।
१६ दमन	तामसी	अङ्गिरा।
१७ शैल	इन्द्राणी	गर्ग।
१८ यदु	पद्मावती	मौनस्य।
१९ पौण्ड्रक *	नीलाम्बा	पार्श्वत।
२० जघन	कोलाम्बा	प्रियर्षि।
२१ मन्मथ	अम्बा	वृद्धविष्णु।
२२ पारसि	वागीश्वरी	वैवस्वत।
२३ रत्नक	रक्ताक्षी	भद्र।
२४ प्रदीप	महादेवी	कृपायु।
२५ दानराज	वज्रिणी	मार्त्तण्ड।
२६ शशिराज	तामसी	चामर।
२७ सारङ्ग	सानन्दा	दाण्ड्य।
२८ वज्रदंष्ट्र *	नीला	पूतिमाष।
२९ हेमराज	जगदेव्य	जाम्बोल।
३० मल्लोइव	मातृका	गणक।
३१ श्रीपाल *	मोहिनी	वैकुच।
३२ काममाली	भीमा	गर्ग।
३३ मयूरध्वज	भद्रा	वैतन।
३४ शूरसेन	ऊर्मिला	जमदग्नि।
३५ नृहरि	योगेश्वरी	भानु।
३६ भार्गव	वर्णाक्षी	नानाभि।
३७ सुग्रीव	कराला	दुन्दुभि।
३८ सत्यमन्य	पातमालिनी	द्रविण।
३९ चैत्रराज	चम्पावती	गोप।
४० धर्मराज	दुर्गा	कुमार।
४१ रिपुनाश	ईश्वरी	कुमार।
४२ शाश्वत	वीरेश्वरी	मित्र।
४३ दानराज	षड्गुणी	मण्डन।
४४ शाल्मलि *	पाटला	वक्रदालभ्य।
४५ जायवान्	त्वरिता	रोमहर्ष।
४६ प्राणनाथ	मालमालिनी	कूर्म।
४७ विदर्भ	मुञ्जा	सुकुमार।
४८ वैजयन्त	माहेश्वरी	सात्त्वन।
४९ पार्थिव *	कात्यायनी	मान्धवन्त।
५० द्रुपद	अम्बरा	आन्तरिक्ष।
५१ वासुकि *	दाड़िमा	सुदत्त।
५२ सुरवर	वैष्णवी	पार्णव।
५३ वासुदेव	उग्रिणी	अगस्त्य।
५४ अतिवार	मोहिनी	शाल्मलि।
५५ सुदेष्ण	सुवर्णा	आत्रेय।
५६ रुक्मरथ	भैरवी	भीमपर्ण।
५७ सुरथ *	भामिनी	महातप।
५८ आदिराज	जातिका	उपमन्यु।

५८ महाराज सौमिनी शांडिल्य।
६० अरिमेद दलिनी विभांडक।
६१ प्रीतिमान् दैत्यनाशिनी धार्मिक।
६२ चित्ररथ शिलादेवी ब्रह्मर्षि।
६३ सहस्रजित् प्रभावती सात्विक।
६४ सोमल्ल वगला जनार्दन।
६५ गज * भासिनी विमल।
६६ महीधर अमरा त्राता।
६७ श्वेत * चित्ररेखा वारण।
६८ सुचेत्र शक्ति उग्र।
६९ स्वर्णवाह सोमेश्वरी प्रेम।
७० श्रीधर महामारी भाषण।
७१ महाविद्वान् तुलना सोमर्षि।
७२ प्रजापाल लालनिका नभाः।
७३ सुविद्वान् पन्नगेश्वरी वायु।
७४ कामद त्रिपुरा वामक।
७५ वेदवाद अन्तभैरवी प्रयाण।

सह्याद्रिखण्डमें जो ७५ धारायें वर्णित हैं, वर्त्तमानकालमें चन्द्रवंशीय पत्तनीप्रभुके मध्य इसकी अधिकांश धारा ही नहीं है; जान पड़ता है, कि वे लोग भिन्न श्रेणी वा जातिके हो गए होंगे। दमनकी सन्तान दमनप्रभु नामसे मशहूर हैं, किन्तु वे लोग पत्तनीप्रभुके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रखते। अभी पत्तनीप्रभुओंके मध्य कामपतिके वंशमें केवल १५ धाराओंका परिचय मिलता है जो दूसरे कालममें दिया गया है।

कामपतिके पुत्रोंके नाम	गोत्र	वर्त्तमान वंशधरोंकी उपाधि	कुलदेवी	कुलदेवीके जहां मन्दिर है
१ शाम	च्यवनभार्गव	रणजित्	एकवीरा	कानी
२ पृथु	गौतम	गोरक्षकर	वज्री	भाण्डी
३ ब्रह्म	शाण्डिल्य	राव	वज्रिणी	वजरवाई
४ श्रीपति	देवदत्त	जयाकर	योगेश्वरी	योगाई
५ पुण्डरीक	मार्त्तण्ड	धाराधर	तारादेवी	काशी
६ वज्रदंष्ट्र	जामदग्नि	तलपड़े	योगेश्वरी	योगेश्वरी
७ श्रीपाल	नानाभि	कीर्त्तिकर	कनका	कनेरी
८ शाल्मली	मुद्गल	अजिङ्क	घण्टेश्वरी	ठाना
९ पार्थिव	चनाक्ष	धैर्यवान्	चण्डिका	दभोली
१० वासुकि	भार्गव	सेनजित्	वज्रिणी	वजरवाई
११ सुरथ	उपमन्यु	विजयकर	जातिका	काशी
१२ गज	महेन्द्र	त्रिलोककर	वज्रिणी	वजरवाई
१३ आनन्द	पुलस्त्य	प्रभाकर	जीवेश्वरी	जीवदान
१४ श्वेत	गर्ग	वज्रकर	एकवीरा	काली
१५ अंश	वैशम्पायन	आनन्दकर	हरदेवी	सूरत (१)

सह्याद्रिखण्डके अतिरिक्त कौस्तुभचिन्तामणि, विम्बाख्यान, जनार्दन, गणिका प्रभुचरित्र, ज्ञानेश्वरी, सेनोर-सेतन-दे-सुजाका महिम् 'इतिहास' (१) आदि ग्रन्थोंमें इस जातिका उल्लेख देखनेमें आता है। विम्बाख्यान ग्रन्थमें लिखा है, कि यादववंशीय राजा रामराज १२९८ ई०में जब पैठनके निकट मुसलमानोंसे पराजित हुए, तब उनके पुत्र विम्बदेव कोङ्कण देशको भाग गये। उनके साथ सूर्यवंशीय और चन्द्रवंशीय प्रभु अमात्यगण भी सपरिवार आए थे। उन प्रभुओंके नाम ये हैं, यथा—

सूर्यवंशमें भरद्वाज गोत्रमें विक्रम राणे और मधुसूदन प्रधान; पूतमाषगोत्रमें भीम, श्यामराय, शिव और श्रीपत्राव प्रधान; वशिष्ठगोत्रमें विक्रमसेन, केशवराव, गोदाल, भीम, नारायण, विश्वनाथ, त्रिम्बकराव, शिवदास और दामोदर कोठारे; काश्यपगोत्रमें काशीश्वर, लक्ष्मराव, गोविन्दराव, चन्द्र, महादेव, भास्कर, त्रिम्बक, नारायण और केशव नवलकर; हारित गोत्रमें सेनजित्, श्रीपत्, राम और शङ्कर पत्तेराव; वृद्धविष्णु गोत्रमें मान्धाता, त्रिम्बक, दामोदर, सुरदास, शिवराम और केशव धुरन्धर, ब्रह्मजनार्दन गोत्रमें सहस्र-

* चिह्नित पुरुषोंकी धारा आज भी देखी जाती हैं, किन्तु गोत्र और कुलदेवीका अधिकांश जगह परिवर्त्तन हुआ है।

(१) Senhor Caitan De Souza's Mahin Historae

(१) History of the Pattana Prabhus, p. 6. Table II.

सेना, गणेश, विश्वकराव, शिव, श्यामराव, पद्माकर और कर्ण ब्रह्माण्डकर ; सौनक्यगोत्रमें पुण्डरीक, दादा शिव, गोविन्दराव और शिवराम देशाई; कौण्डिनगोत्रमें अनन्तकीर्त्ति, देव, भीम, शिव और गोविन्दराव नायक ; मांडव्य गोत्रमें वासुदेव, गोविन्द, नारायण, श्याम, भीम, श्रीपतराव, भास्कर और नरहरि मानकर ; कौशिक गोत्रमें सुमन्त, केशव, कृष्ण, विश्वक, श्रीपाल, भीम, सुरदास और रघुनाथ वेलकर, विश्वामित्र गोत्रमें जयवन्त दामोदर, गोरक्ष, शिवराम और भीम व्यवहारकर।

चन्द्रवंशमें—च्यवनभार्गवगोत्रमें दामोदर, शिव, भीम, रणजित् ; गौतमगोत्रमें मधुसूदन और भीम गोरक्षकर ; शाण्डिल्यगोत्रमें वासुदेव, श्रीपति और कृष्णराव ; देवदत्तगोत्रमें केशव और दामोदर नवाकर ; मार्कण्डगोत्रमें नारायण, लक्ष्मीधर और भीमधराधर ; जमदग्निगोत्रमें नारायण और केशवतलपडे ; नानाभिगोत्रमें सूरदास और भरदास कीर्त्तिकर ; मुद्गलगोत्रमें श्रीपाल अजीङ्कर ; धनाचगोत्रमें सुमन्त, विपल और रघुनाथ धैर्यवान् ; भार्गवगोत्रमें शमदेवसञ्जीव ; साण्ड्यगोत्रमें केशवराव और सुमन्त त्रिलोकाकर ; पौलस्त्यगोत्रमें रामप्रभाकर ; गर्गगोत्रमें धर्मसेन वककर, वैशम्पायनगोत्रमें लक्ष्मीवर आनन्दकर और उपमन्युगोत्रमें नारायण व्यवहारकर।

राजा विम्बदेवके आश्रयमें प्रभुगण उच्च राजकीय पद पर नियुक्त होने लगे। विम्बदेवके प्रदत्त ताम्रशासनसे जाना जाता है, कि प्रभुगण कोङ्कण प्रदेशके नाना स्थानोंमें महासामन्त वा शासनकर्त्ताके रूपमें नियुक्त थे। उनमेंसे किसी किसीने तो राजपद तक भी पा लिया था। इनमेंसे महिमके प्रभुराजाओंका विवरण कौस्तुभचिन्तामणि और पोर्त्तु गीजोंके लिखित महिमके इतिहासमें पाया जाता है।

पोर्त्तुगीजोंके आगमनकाल तक प्रभुगण सालसेटी, बसाई, महिम और बम्बई नगरके निकटवर्त्ती छोटे द्वीपोंका शासन करते थे। १५१२ ई०में पोर्त्तुगीजोंने इस स्थान पर अधिकार जमाया। इस समय प्रभुगण अपना पूर्वाधिकार खो बैठे। पोर्त्तुगीजोंके दौरात्म्य और उत्पीड़नसे यहांका हिन्दूसमाज तंग तंग आ गया था। पोर्त्तुगीजोंके निकट जातिविचार था नहीं, वे ब्राह्मणको पकड़ पकड़ कर पीटते और गदहे दुलाते थे। राजवंशीय किसीको भी राहमें पा लेनेसे वे उसे पकड़ कर ले जाते और नीच नौकरोंके जैसा काम कराते थे। इस प्रकार वे हिन्दूसमाजको उच्च जातिमेंसे किसीके भी मान अपमानकी ओर ध्यान नहीं देते थे। पोर्त्तुगीजशासनकर्त्ताओंने प्रभुओंको कार्यकुशल और चतुर समझ कर इनमेंसे किसी किसीको ग्राम और नगरके उच्च राजकीय पदों पर नियुक्त किया था। उनके ये सब कार्यग्रहणकी इच्छा नहीं रहने पर भी पोर्त्तुगीज राजपुरुषोंके उत्पीड़न और भयसे वे कार्यग्रहण करनेको बाध्य होते थे। पोर्त्तुगीजगण उच्च हिन्दू समाजके ऊपर जितना ही अत्याचार करते थे, ब्राह्मणादि हिन्दूगण उतना ही समझते थे कि प्रभु कर्मचारियोंके परामर्शसे ही ऐसा अन्याय और उत्पीड़न हो रहा है। इस विश्वास पर धीरे धीरे सभी ब्राह्मण प्रभुओंके ऊपर अत्यन्त विरक्त हुए और 'प्रभुलोग नीच जाति हैं, उनके साथ कोई भी सम्बन्ध रखना ब्राह्मणोंको उचित नहीं है' ऐसा मत तमाम प्रकाश करने लगे। जब तक प्रभुओंका राजकीय प्रभाव रहा, तब तक ब्राह्मण लोग उनका कुछ भी अनिष्ट कर न सके। शिवाजीके अभ्युदयकालमें महाराष्ट्र ब्राह्मणोंने प्रभुओंके सर्वनाश करनेकी चेष्टा की थी। किन्तु हिन्दूकुलतिलक शिवाजीने ब्राह्मणोंका मन्द अभिप्राय समझ कर प्रभुओंका अनिष्ट करनेसे उन्हें मना किया। इतना ही नहीं, शिवाजीने प्रभुओंको अपने सेनापतिके पद पर नियुक्त कर सम्मानित किया था। शिवाजीके इतिहासमें इन सब प्रभु-सेनापतिओंकी कार्यदक्षता और वीर्यवत्ताका यथेष्ट परिचय मिलता है। सम्भाजी, राजाराम और ताराबाईके समयमें भी प्रभुओंको समाजमें हेय करनेके लिये ब्राह्मणोंने कोई कसर उठा न रखी थी, पर इस समय भी उनका यह प्रयत्न निष्फल गया था। इस प्रकार दोनों जातिके बीच विद्वेष भाव चलने लगा। महाराष्ट्र राजाओंके लाख चेष्टा करने पर भी विद्वेषवह्नि न बुझ सकी। प्रभुओंने महाराष्ट्रपति शाहुके

पास यह अभियोग किया, कि ब्राह्मण लोग उनके कुल-विवरणसूचक सह्याद्रिखण्डमें तथा दूसरे दूसरे पुराणोंमें आधुनिक श्लोक प्रक्षिप्त कर उन्हें समाजमें हेय बनानेकी चेष्टा कर रहे हैं। बालाजी बाजीरावके पास भी यह नालिश की गई। उन्होंने साहूको इसकी खबर दी। शिवाजीकी तरह साहू भी प्रभुओंको बहुत चाहते थे। उन्होंने आज्ञा दी, कि प्रभुलोग बहुकालसे जिस प्रकार क्षत्रियोचित संस्कारादि करते आ रहे हैं, आज भी उसी प्रकार करेंगे। उन्होंने खंड और माहुली ग्रामके ब्राह्मणोंको हुकुम दिया कि वे विजयपुरके राजाओंके समयसे जिस प्रकार पौरोहित्यादि कर्म करते आये हैं, आज भी उसी प्रकार करेंगे। साहूके ऐसे आदेश करने पर भी उनके प्रतिनिधि जगजीवन राव पंडितने उनके आदेशको दबा रखा। इसी समय एक सम्पत्तिशाली प्रभुने बहुलेश्वरके निकट सिद्धिविनायक नामक एक गणेश-मन्दिरकी प्रतिष्ठा की। उस प्रतिष्ठाके उपलक्षमें प्रभुओंके साथ चित्पावन और अपरापर ब्राह्मणोंका विवाद उपस्थित हुआ। चित्पावनोंने अपनेको बम्बईके प्रथम ब्राह्मण बतला कर प्रतिष्ठाकार्यमें व्रती होना चाहा। किन्तु प्रभु लोगोंने चेउलनिवासी वेदमूर्त्ति राजश्रीचिन्तामणि धर्माधिकारी प्रभृतिको बुला कर विनायकका अभिषेकादि सम्पन्न किया। इस पर बसाई-निवासी ब्राह्मणगण बहुत बिगड़े और उन्होंने वहांके सूबेदार राजश्री शङ्करजी केशवके पास जा कर इस प्रकार मिथ्या अभियोग किया, 'प्रभुगण राजा बिम्बदेवके अनुवर्त्ती राजपूत क्षत्रिय-सन्तान नहीं हैं, वे जैसे तैसे ब्राह्मणको बुला कर धर्म कर्म करते हैं। उनके द्विजोचित अधिकार नहीं रहने पर भी वे यज्ञसूत्र पहनते और गायत्री उच्चारण करते हैं। उनके प्रधान पुरोहित वेदमूर्त्ति विश्वनाथ नामक एक ब्राह्मणने प्रभुओंके उत्पत्तिसम्बन्धमें एक मिथ्या गल्प लिखा है। उस गल्पमें उन्होंने यह साबित करनेकी चेष्टा की है कि पत्तन वा पाठारीय प्रभुगण सूर्यवंशीय अश्वपति और चन्द्रवंशीय कामपतिकी सन्तान हैं।' सूबेदारसे उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि, 'हम लोगोंका मत न ले कर आप पञ्चकलस, सोनार, भण्डारी और अन्यान्य नीचश्रेणीके धनी लोगोंको बुला कर प्रभुकी जातिका विषय जान सकते हैं।' इसके सिवा उन्होंने समाजच्युत कुछ प्रभुओंको बुला कर उनसे यह कहवाया कि प्रभुओंके मध्य बहुविवाह और विधवाविवाह प्रचलित है।

सूबेदारने तदनुसार प्रभुओंके विरुद्ध पेशवा बालाजी बाजीरावके निकट एक अभियोग भेजा। १७४३ ई०में पेशवाने चेउलके अन्तर्गत प्रत्येक नगर और ग्रामके प्रधान प्रधान ब्राह्मण और राजकर्मचारियोंको यह हुकुम दिया कि, 'कोई भी ब्राह्मण प्रभुओंके संस्कारादि कार्य नहीं कर सकते, करनेसे उन्हें दण्ड मिलेगा। प्रभु लोग गायत्री उच्चारण नहीं कर सकते और न यज्ञसूत्र ही पहन सकते हैं।' पेशवाके आदेशसे प्रभुओंका ब्राह्मण-पुरोहित बन्द हुआ। इस समय ब्राह्मण सूबेदारके आदेशसे सैकड़ों प्रभु-सन्तान निग्रहीत, लाञ्छित और मृत्युमुखमें पतित हुई थीं। जिस प्रभुके घरमें उपनयन वा विवाह उपस्थित होता था, उसके कष्टकी परिसीमा न रहती थी। प्रचुर अर्थदण्ड दे सकने पर धनी लोग कष्टसे रक्षा पाते थे किन्तु जो गरीब थे वे फिर समाजमें सुख नहीं दिखा सकते थे। प्रभु लोगोंने इस प्रकार पांच वर्ष तक ब्राह्मणोंके हाथसे दारुण निग्रह भोग किया। पीछे षष्टि प्रदेशके सूबेदार रामजी महादेवने प्रभुसमाजके करुण आवेदनसे विचलित हो पेशवाको यह जताया कि "प्रभुगण प्रकृत क्षत्रियसन्तान होने पर भी उन लोगोंके प्रति कोई सुविचार नहीं होता है, वरन् वे विशेषरूपसे उत्पीड़ित होते हैं। शङ्कराचार्य स्वामीने अपने सम्मति-पत्रमें इस जातिको क्षत्रिय बतलाया है।" इत्यादि।

इसके कई वर्ष बाद प्रभुओंके विपक्षगणने पूना जा कर पेशवाके निकट प्रभु जातिकी शिकायत की। पेशवाके आदेशसे प्रधान धर्माधिकारी रामशास्त्रीने बम्बई और सष्टिवासी सभी महाराष्ट्रोंको यह सूचना दी कि, 'कोई भी ब्राह्मण प्रभुओंके घरमें किसी प्रकारका कर्मानुष्ठान नहीं कर सकते, यदि करेंगे, तो वह ब्राह्मण-जातिका विरुद्ध कर्म समझा जायगा।'

इस समय शृङ्गेरिके शङ्कराचार्य स्वामी बम्बई नगर पहुंचे। ऐसे सुयोगमें प्रभुओंने वहां जा कर उनकी

शरण ली। बादमें उन्होंने सह्याद्रिखण्ड, कुलपञ्जिका, कोलापुरके शङ्कराचार्य स्वामीका सम्मतिपत्र, विश्व-देवका ताम्रशासन आदि उपस्थित किया एवं उसे देख कर उनकी जाति और अधिकार निर्णय करनेकी प्रार्थना की। शङ्कराचार्य स्वामीने प्रभुसमाज-को शोचनीय अवस्था सुन कर और उनके कुल सम्बन्ध पर आलोचना कर उन्हें प्रकृत क्षत्रिय ही बतलाया और ऐसा ही सम्मतिपत्र दिया। इस समय स्वामीजीने प्रभुओंको पूर्वाधिकार देनेके लिये पेशवाको भी अनु-रोधके साथ लिख भेजा। उस समय माधोराव (२य) पूनामें पेशवा पद पर अधिष्ठित थे। उनकी सभामें जब शङ्कराचार्यकी लिपि पढ़ी गई, तब उन्होंने बसाई-निवासी ब्राह्मणोंको उसी समय सभासे निकल जानेका हुकुम दिया। इतना ही नहीं, प्रभुगण जिससे पूर्ववत् निर्विघ्नतया अपने अपने धर्मका पालन कर सकें उसकी भी अनुमति दे दी।

मन्त्रिवर नाना फड़नवीस पेशवाके कार्यसे उतने सन्तुष्ट न थे। उन्होंने पुनः पूनाके धर्माधिकारी राम-शास्त्री और प्रभुपचीय घनश्यामशास्त्रीको अपने घर बुलाया और प्रभु जातिके सम्बन्धमें उनका अभिप्राय जानना चाहा। रामशास्त्रीने, प्रभुओंके क्षत्रियत्व सम्बन्धमें इसके पहले जितनी आलोचना हुई थीं, सब फड़नवीसको कह सुनाई और प्रभु लोग जो प्रकृत-क्षत्रिय हैं, यह भी जता दिया। प्रभुओंके प्रति दुर्व्यव-हारकी कथा सुन कर नाना फड़नवीस भी विचलित हुए थे और भविष्यमें उनके प्रति ब्राह्मण लोग फिर किसी प्रकारका अत्याचार न कर सकें, इसकी भी घोषणा कर दी। इतने दिनोंके बाद ब्राह्मण और प्रभुका विवाद शान्त हुआ।

प्रभु लोग कट्टर हिन्दू हैं। बसाई आदि स्थानोंके ब्राह्मणोंने यद्यपि उनके प्रति यथेष्ट अत्याचार किया था, तो भी उनके हृदयसे ब्राह्मण-भक्तिका जरा भी ह्रास न हुआ। वे लोग शास्त्रीय विधानानुसार क्षत्रियोचित सभी संस्कारोंका पालन करते हैं। प्रभुओंके मध्य विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रामण, अन्नप्राशन, चूड़ाकरण, उपनयन वा मौञ्जी बन्धन, समावर्त्तन और अन्त्येष्टि ये सब संस्कार प्रधान हैं।

प्रभुओंके मध्य बाल्यविवाह आदरणीय है। कन्या और वरका एक गोत्र होनेसे विवाह नहीं होता। बालक १०से १६ और कन्या ४से ८ वर्षके भीतर ब्याही जाती है। पूर्वकालमें इनके मध्य दो प्रकारका विवाह प्रचलित रहने पर भी अभी केवल ब्राह्मण-विवाह ही प्रचलित देखा जाता है।

इन लोगोंके विवाहमें बहुत रुपये खर्च होते हैं तथा इतना अनुष्ठान और किसी जातिमें देखा नहीं जाता। पात्र जब पसन्द हो जाता है, तब कन्यापक्षीय पुरोहित जा कर पहले वरकर्त्ताके निकट इस बातकी चर्चा करते हैं। वरकर्त्ताका अभिमत होने पर वर और कन्याकी कोष्ठी मिलाई जाती है। दोनोंकी कोष्ठीके मिल जाने पर तथा देना पावना स्थिर हो जाने पर तिथि और लग्न स्थिर किया जाता है। तिथिनिश्चय वा लग्नपत्रका निर्णयकार्य वरके घरमें आठ नौ बजे रातको सम्पन्न होता है।

विवाहके दो सप्ताह पहले निमन्त्रण दिया जाता है। पहले जाति-कुटुम्ब स्त्रीपुरुष दोनों पक्षका ही निमन्त्रण होता है। जब विवाह केवल एक सप्ताह रह जाता है तब कन्याकी माता अपने लड़के और नौकरको साथ ले वरकी माता और उनकी ज्ञाति-कुटुम्बिनीको निमन्त्रण करने आती है। विवाहके चार दिन पहले वरकी माता कन्याकी माताको 'कल फुल-दान होगा' यह कहला भेजती है। दूसरे दिन वरकी माता एक बालकको सजा कर कन्याको लाने भेजती है। कन्या नाना अलङ्कार और महामूल्य वसनोंसे विभूषित हो पालकी वा गाड़ी पर चढ़ कर प्रायः दो पहरको वरके घर आती है। यहां वरकी माता आदि रमणियां कन्याके पास जाती और उसे गोदमें बिठा कर नीचे उतारती हैं। पीछे कन्याको अच्छे अच्छे अल-ङ्कारों और वस्त्रोंसे सजा कर जाति कुटुम्बरमणियोंके पास दिखाने ले जाती हैं। देखने सुननेमें शाम हो जाती है। पीछे उसी दिन सन्ध्याके बाद कन्या पित्रा-लय चली आती है। दूसरे दिन वर भी कन्याको

तरह सज-धज कर कन्याके घर जाता है। कन्यापक्षसे वर भी उत्कृष्ट वेशभूषा पा कर अपने घर चला आता है। दूसरे दिन आहार और व्यवहारोपयोगी पदार्थ संग्रहीत होते और विवाहमण्डप बनाया जाता है।

विवाहके दो एक दिन पहले पातहरिद्रा होती है। पांच सधवा स्त्रियां मिल कर ओखलीमें हलदी कूटती हैं। पीछे एक छोटी चौकीके ऊपर वरको बिठा एक सधवा स्त्री हल्दी तेल आदिको मिला कर वरके कपाल-में लगाती है। बादमें वे पांचो स्त्रियां हल्दी मिश्रित कुछ धनिया और गुड़ आपसमें खाती हैं। दूसरी जगह बरामदे पर एक चौकी रखी जाती है और उसके चारो कोनेमें चार कलसी रख कर उन्हें सूतेसे लपेट देती हैं। तदनन्तर वर वहां आता और चौकी पर बैठता है। इस समय वाद्यक लोग बाजा बजाते और बालिकाएं गान करती हैं। गान शेष हो जाने पर जिस बालिकाने पहले पहल शरीरमें हल्दी लगाई थी, वही वरको स्नान कराती है। स्नानके बाद वर नया कपड़ा पहनता और गलेमें माला डाल लेता है। बादमें बालिकाएं उसकी आरती उतारती हैं। कन्याके घरमें भी ठीक उसी तरह होता है। अभीसे वर-कन्याकी 'नवरदेव' अर्थात् विवाहके देवतामें गिनती होती है और वे दोनों विवाहके चार दिन शेष नहीं होने पर घरसे बाहर नहीं निकलते हैं। इस दिन अपराह्नकालमें गणेश, विवाह-मण्डप, वरुणदेवता, पितृगण और नवग्रहकी पूजा होती है तथा कुम्हड़े और गूलरकी बलि दी जाती है। कुम्हड़ाबलिके उत्सवका नाम है "कहल्यामुहूर्त"। इस समय वरके भगिनीपति वा कोई विवाहित आत्मीय कुम्हड़ेको तलवारसे दो खण्ड कर डालते हैं। जो कुम्हड़ेको काटेगा उसके कन्धे पर शाल रहता है और पीछेमें उसकी स्त्री खड़ी रहती है। इसी भावमें वे दोनों विवाहमण्डपमें पहुंचते हैं। इस समय एक सधवा आती है और दम्पतिके शालके छोर ले कर गांठ बांध देती है। उसी समय पुरोहित उसके हाथमें तल-वार देता है और वह एक ही वारमें कुम्हड़ेको दो खंडोंमें काट डालता है। स्त्री कुम्हड़े में हल्दी लगा कर पुनः पीछे आ खड़ी होती है। उसका स्वामी दो वारमें कुम्हड़ेको चार खंड कर डालता है, बादमें स्त्री उसकी आरती उतारती है।

गूलरबलिका नाम उदुम्बर वा 'उम्बर आमन्त्रण' है, यह उत्सव भी कुम्हड़ेबलिके जैसा समाप्त होता है। इसमें तलवारसे गूलरकी शाखा काटी जाती है। जो यह काम करता है वह स्त्री समेत शालका जोड़ा वा उसी तरहका अन्य बढ़िया कपड़ा उपहारमें पाता है।

इस दिन मध्याह्नके बाद वरपक्षकी कुछ आत्मीया गान करती हुई नाना प्रकारके मिष्टान्न, खिलौने और तेज-पत्रादिके साथ कन्याके घर पहुंचती हैं। कन्याकी बहन आ कर वरकी बहनको वरण करती और अन्तःपुर ले जाती है। यहां वरकी बहन कन्याको अपने पास बिठा कर उसका जूड़ा बांधती और अच्छे अच्छे कपड़े पहना कर गलेमें फूलकी माला डाल देती है। अन्तमें उसकी आरती ली जाती है। पीछे कन्या कुछ मिष्टान्न मुखमें दे कर खिलौनेको हाथमें लेती और माता तथा आत्मीयों-के पास आ कर उसे दिखाती है। तदनन्तर वर पक्षवाले तत्त्वकी सामग्री ले कर चले आते हैं। उस दिन कन्यापक्षसे भी उसी प्रकार वरके घर उपहारादि भेजे जाते हैं। कन्याको जिस प्रकार वरपक्षसे अलङ्कार खिलौने आदि मिलते हैं उसी प्रकार कन्यापक्षसे वरको उत्कृष्ट पोशाकके साथ कुर्सी, अलमारी, डेस्क, पुस्तक, शतरंजका पाशा, जूता, छाता और चाय पीनेके लिये चांदीके बरतन आदि मिलते हैं।

विवाहके दिन प्रधान अनुष्ठान ११ हैं—फलदान, तेल-उत्सर्ग, चौर, स्नान, पदप्रक्षालन, गूलरकी पूजा, वर-यात्रा, विवाह, निमन्त्रित व्यक्तियोंका आवाहन, विदाई और वरगृहमें पुनरागमन।

विवाहके दिन बहुत सवेरे वरपक्षीय कोई रमणी ज्ञाति कुटुम्बकी स्त्रियोंको बुला लाती हैं। एक बजे दिन-को निम्नलिखित स्त्रियां, पुरोहित ठाकुर, वरका कोई विवाहिता भ्राता, भृत्य (वस्त्र अलङ्कार फलमूलादिको माथे पर रख कर) और वाद्यकर लोग बाजा बजाते हुए कन्याके घर पहुंचते हैं। कन्याको कोई आत्मीया आ कर वरकी बहनको वरण करती और उसे घरके भीतर ले जाती है। विवाहमण्डपमें वरका भाई पुरोहितकी सहायतासे

गणपति और वरुणकी पूजा करता है। इस समय उसे कन्याको वस्त्रालङ्कार देना होता है। कन्या उस नवीन वस्त्रालङ्कारको पहन कर पिताके पास आ बैठती है। बादमें कन्याके पिता और वरके भाईके उत्तरीयमें ५ खण्ड हलदी और कुछ सुपारियां बांध दी जाती हैं। इसके अनन्तर कन्याको उत्कृष्ट वस्त्रालङ्कारसे विभूषित कर विवाहमण्डपमें ले जाते हैं और उसको गोदमें कुछ फल दे कर एक सधवा वरण करती है। इस समय वरपक्षीय दो एक रमणियां अतरदान, गुलाबपाश और एक टोकरी पान ले कर अन्तःपुरके मध्य कन्यापक्षीय रमणियोंको हल्दी लगाती हैं, सिर पर केसर, चन्दन और गुलाबजल छिड़कती हैं तथा पान, सुपारी और नारियल खानेको देती हैं। इसके बाद उपस्थित सभी रमणियोंके बीच नारियल वितरण किया जाता है। वरपक्षवालोंके चले जाने पर कन्याकी माता नाना अलङ्कारोंसे विभूषिता हो आत्मीय रमणियों और नौकरोंके साथ वरके घर जाती हैं।

इस समय वर आ कर रमणियोंके बीच खड़ा होता है। कन्याकी बहन वरके आगे जल फेंकती हुई आती है और वरके दोनों हाथोंमें हल्दी लगा देती है। बादमें वर और कन्या दोनोंके पक्षमें दो दो सधवा धानसे आशीर्वाद करती हैं। इस समय वरकी बहन सुनहली पाड़का एक रेशमी कपड़ा वरको देती है।

कन्याकी माता आ कर वर और वरकी माताका पैर धोती है, इस समय चार सधवाओंको एक एक वस्त्र दिया जाता है। इसके बाद ही वरको बहन छिपके एक पत्तेमें हल्दी लाती और वरके हाथमें दे देती है। कन्याकी माता वरको जब कटोरेमें भर कर दूध देने जाती है तब वर उस हल्दीको सासके मुखमें लगा देता है। इस समय वरके अपरापर आत्मीय हल्दी ले कर आमोद-प्रमोद करते हैं। पीछे तीन बजे दिनको दोनों पक्षसे चार चार करके ८ मनुष्य कालिकामन्दिरमें तेल उत्सर्ग करने जाते हैं।

वरयात्रा करनेसे पहले कन्यापक्षवाले वरके घरमें उसके पैर धोने आते हैं। वरको एक चौकी पर बिठा कर कन्याका पितादूधसे उसके पैर धोते और पीछे रुमालसे पोंछ लेते हैं। इसके सिवा वे वरके कपालमें चन्दन लगा कर, उंगलीमें सोनेकी अंगूठी पहना कर और गुलाबजल तथा इतर दे कर चले आते हैं। पैर धोनेके बाद दोनोंके घरमें गूलरको बलि होती है। पीछे महा समारोहसे बारात निकलती है। वरके साथ उसके आत्मिकुटुम्ब पुरुष-रमणी सबके सब जाते हैं। राहमें अमङ्गल निवारणार्थ बीच बीचमें नारियल काटते जाते हैं। वर घोड़े पर चढ़ कर सबसे आगे चलता है। पहले हाथमें एक तलवार रहती थी, अभी, उसके बदलेमें छुरी रहती है।

जब बारात कन्याके दरवाजे पहुंचती है, तब कन्याकी मौसी आ कर वरण करती है और सभी लोकाचार विधि कर जाती है। अन्तमें कन्याका पिता वरके मुखमें एक मिठाई दे देता और उसे अपनी गोदमें बिठा कर विवाहसभामें ले आता है। ज्योतिषी लग्नपत्र ले कर विवाहका ठीक समय कह देते हैं कन्या और वरपक्षीय दोनों पुरोहित मन्त्र उच्चारण करते हैं।

इधर कन्याकी माता आ कर पहले वरको पाद-वन्दना करती, पीछे अन्यान्य रमणियोंके साथ उसे अन्तःपुर ले जाती है। बादमें वरको विवाह-वेदी पर लाया जाता है।

विवाहमें ये सब प्रधान अनुष्ठान हैं—मधुपान, पदधौतकरण, लाजाञ्जलि, मुहूर्त्तनाम, दानसामग्री-लिखन, वस्त्रपूजा, कन्यादान, शपथ, सप्तपदीगमन और वरकन्याभोज। विवाहके अङ्गके मध्य फिर कुछ विशेषत्व है—मातृकापूजाके साथ युक्त तलवारपूजा और ब्राह्मणोंके मङ्गलाष्टक पाठ आदि।

कन्यादानादि मूल विवाहकार्य तथा निमन्त्रित व्यक्तियोंको आदर-अभ्यर्थना शेष होनेके बाद वर उसी रातको अपने घर चला आता है। विदाईके समय प्रत्येक निमन्त्रित व्यक्तिके कपाल पर चन्दनका तिलक लगाते और प्रत्येकको दो दो नारियल देते हैं। जब वर अपने घरके सामने पहुंचता है, तब दो भृत्य वर और कन्याको अपनी अपनी गोदमें ले कर नाच गान करते हैं। पीछे कन्याको आगे करके वरके घरमें जाते हैं। प्रवेश-कालमें वरकी बहन दरवाजे पर कुछ

पुरस्कार पानेके लिये खड़ी रहती है। बादमें वरकन्या दोनों ही देवस्थानमें जाते हैं। जब स्त्रीको लोकाचार-विधि शेष हो जाती है, तब वरके मातापिता उसके कानमें नववधूका नूतन नाम कह देते हैं। तदनुसार वर भी वधूके कानमें अपना नाम कह देता है। यह सब हो जानेके बाद निमन्त्रित व्यक्ति दूध और शरबत पी कर अपनी अपनी राह लेते हैं। कन्या बालिकाओंके साथ और वर बालकोंके साथ रात्रियापन करता है।

इसके बाद भी चार दिन तक उत्सव रहता है। विवाहके बाद अर्थात् कन्याकी उमर बारह वर्ष होनेके पहले 'मुहूर्त्त माद' वा शुतवस्त्रपरिधान होता है। वरका पिता शुभ दिन दिखा कर कन्याको नूतन वस्त्र और खाद्य सामग्री भेज देता है। पुरोहित कन्याके घर आ कर यथारीति पूजा करके कन्याको वह साड़ी और चोली पहनने कहते हैं। इस समय स्त्रियां नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करती हैं।

पीछे 'पदरमाद' नामक उत्सव स्थिर होता है। इस दिन वधू घूंघट काढ़ कर वयस्का स्त्रियोंके जैसा कपड़ा पहनती है।

ऋतुमती नहीं होने तक कन्या पतिके साथ रात्रि-वास करने नहीं पाती, तब तक उसे पितृगृहमें ही रहना पड़ता है। ऋतुमती हो जाने पर कन्याको माता कौलिक रीति-आचारके बाद उसे ससुराल भेज देती है। वहां उसका ससुर उसे किसी पृथक् घरमें रहने देता है। चार दिन तक कन्याकी माता और अपरापर रमणियां आ कर प्रथाके अनुसार उसे स्नानादि करा जाती हैं।

पांचवें दिन पतिपत्नीका प्रथम मिलनोत्सव और गर्भाधानकार्य सम्पन्न होता है। इस दिन पुरोहितके साथ और भी दस ब्राह्मण आ कर गणपति और ममंमातृकाकी पूजा, नवग्रहहोम तथा भुवनेश्वरका आवाहन करते हैं। स्त्रियां दम्पतिको रमणीय वेशभूषासे सजा कर नृत्य गीतादि नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद करती हैं।

स्त्रीके गर्भ रह जाने पर पांचवें महीनेमें पञ्चामृत होता है। उसी समयसे गर्भिणीको उसके इच्छानुसार खाने और पहननेको दिया जाता है। प्रसवके बाद दाई नवजातशिशुको गरम जलसे धो डालती हैं। पीछे धाई शिशुकी नाड़ी काटती है और सिर तथा नाकको कुछ ऊपर खींच कर ठीक कर देती है। गृहस्वामी जन्म-कालको लिख रखते हैं। ४० दिन तक प्रसूति सूतिका-गृहमें रहती है। इतने दिनोंके बीच उसे ठंढा जल पीने नहीं दिया जाता। लोहेको दग्ध कर जलमें उसे डुबो रखते हैं और वही जल प्रसूतिको पीनेके लिये दिया जाता है।

जन्मदिन अथवा उसके बादके दिन शिशुका पिता पुरोहित, ज्योतिषी और दो एक बन्धुबान्धवके साथ पुत्रमुख देखने आता है। ज्योतिषी गृहस्वामीसे जन्मका समय जान कर एक स्लेटके ऊपर खड़ीसे कोठी बनाते हैं और शिशुके शुभाशुभका गणना करके कहते हैं। तद-नुसार पिता शुभलग्नमें पुत्रमुखदर्शन और जातकर्म करता है।

यदि शिशुके जन्मलग्नमें कोई दोष रहे, तो पिता पुत्र-मुख नहीं देखते, बल्कि उसके कल्याणके लिये ब्राह्मणों-को दान देते और स्वस्त्ययनादि कराते हैं। जन्मोत्सवके उपलक्षमें नर्त्तकी आ कर नाच गान करती है। मिष्टान्न बांटा जाता है। पुरोहित और ज्योतिषी उपयुक्त विदाई पा कर अपने घर जाते हैं।

तीसरे दिन प्रसूति और शिशुको स्नान कराया जाता है। इसी दिन प्रसूति शिशुको प्रथम स्तन्यपान कराती है। पांचवीं रातको षष्ठीपूजा होती है। इस दिन धावी शिशुको अपनी गोदमें ले कर रात भर जगी रहती है। दसवें दिन प्रसूति और शिशुको स्नान करा कर नया वस्त्र पहननेको दिया जाता है। इस दिन सभी घरोंमें गोबर और जल सींचते हैं। प्रसूतिके . . . सभी गृहस्थ भी पञ्चगव्य पी कर परिशुद्ध होते हैं। इधर शिशुका पिता और निकटगृहवासी सभी सगोठी यज्ञो-पवीत बदलते और पञ्चगव्य खाते हैं।

ग्यारहवें, बारहवें या तेरहवें दिन कुछ सधवा स्त्रियां आ कर हिंडोले पर पुत्र को झुलाती हुई उसका नाम-करण करती हैं। ४०वें दिन प्रसूति आतुरघरका परि-त्याग करती और स्नान करके शुद्ध हो जाती है। इस दिन नवीन कांचकी चूड़ी पहनना पड़ता है और चूड़ी-वालेको इस उपलक्षमें कुछ पुरस्कार भी मिलता है।

पीछे तीसरे वा पांचवें मासमें शिशु पितृगृहमें लाया जाता, ६से १२ मासके भीतर कर्णवेध और टीकाग्रहण होता, दाँत निकलने पर एक दिन दन्तोद्गम नामक उत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता, पीछे चूड़ाकरण और चारसे दस वर्षके भीतर मौञ्जी-बन्धन वा उपनयन और विवाह होता है।

विवाहकी तरह मौञ्जीबन्धन भी इनका एक प्रधान संस्कार है। बालकका पिता ज्योतिषी द्वारा जन्मकोष्ठी दिखा कर शुभदिन स्थिर करता और तभीसे उपनयनका आयोजन होने लगता है। मौञ्जी होनेसे एक सप्ताह पहले शुभदिनमें एक छटांक हल्दी, सिन्दूर, धनिया, जख और सूता इन सब चीजोंको बाजारसे खरीद लाते और कुलदेवताके सामने रखते हैं। दो तीन दिन बाद परिवारस्थ दो तीन बालक-बालिका एक वाद्यकरको साथ ले आत्मीय कुटुम्बके घर जाती हैं और मौञ्जीके दिन सबोंको उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण कर आती हैं। इस समय एक मण्डप बनाया जाता है। दूसरे दिन बालकके शरीरमें हल्दी लगाई जाती और विवाहके पहले जो सब अनुष्ठान करने होते हैं, वही अनुष्ठान इस उपवीतग्रहणके उपलक्षमें भी किये जाते हैं। इस दिन दो पहरको निमन्त्रित महिलाओं और उस बालकको भोज दिया जाता है। भोजके पहले सभी रमणियोंके पात्रसे चार चार अन्न ले कर बालक और उसकी माताके पात्रमें दिया जाता है। उसी अन्नको बालक खाता है। इस दिन रातको पुरुषभोज होता है। दूसरे दिन सवेरे मण्डपके चारों ओर लीप दिया जाता है और उसके बीचमें दो चौका रखा जाता है। बालक और बालिका उस चौकी पर आ कर बैठती है। इसी तरह गीतवाद्य होने लगता है और कुछ सधवा आ कर दोनोंका जलसे अभिषेक करती हैं, बादमें वरण करके चली जाती हैं। मण्डपके एक पार्श्वमें जहां लीपा रहता है, वहां चौकाके ऊपर बालक आ कर बैठता है और इसका मामा तथा पीसी सामने खड़ी रहती हैं। पहले मामा बालकके दाहिने हाथकी अनामिकामें एक सोनेकी अंगूठी पहना देते हैं, पीछे कैंचीसे सामनेके बालोंका गुच्छ काट डालते हैं। बालककी पीसी उस बालको ले कर एक कटोरेमें जो दूधसे भरा रहता है, रख देती है। बादमें नाई शिखा छोड़ कर सिरके सभी बालोंको मुंड़ देता है। इसके बाद सधवा स्त्रियां बालकको स्नान कराती और वरण करती हैं। तदनन्तर बालकका मामा अपने भांजेको एक सफेद कपड़ेसे ढंक कर गोदमें उठा लेते और बरामदे पर जाते हैं। यहां वरण होनेके बाद उसे पूजागृहमें ले आते हैं। इसके कुछ समय बाद बालक आठ उपनीत अथच अविवाहित बालकोंके साथ एकत्र भोजन करता है। भोजन कर चुकनेके बाद शुचि हो कर और अलङ्कार पहन कर बालक देवगृहमें पिताकी बगल पूर्वमुखी हो बैठ जाता है। शुभमुहूर्त्तमें ज्योतिषी, पुरोहित और दूसरे दूसरे ब्राह्मणगण स्तोत्र-पाठ करते हैं। ज्योतिषीके कथनानुसार ठीक समयमें सभी निस्तब्ध होते हैं। पुरोहित उत्तरमुख करके कपड़ेको खींच कर पकड़ते हैं। इस समय वाद्यकर जोरसे बाजा बजाता है और अभ्यागतगण करतलध्वनि करते हुए खड़े होते हैं। पुरोहित वामस्कन्धसे दाहिनी ओर यज्ञसूत्र और मध्यस्थलमें मुञ्जतृणके साथ कृष्णसारकी छाल बांध देते हैं। बालक इस समय उठ कर पिताको प्रणाम करता और उनकी गोद पर जा बैठता है। आचार्य्य कानमें 'गायत्री' मन्त्र कह देते हैं। उपस्थित स्त्रियां जिससे गायत्रीका कोई अक्षर सुनने न पावें, उसके लिये पुरुष लोग उच्चःस्वरसे स्तोत्रपाठ करते हैं। पीछे आत्मीय बन्धुगण बालकको स्वर्ण, रौप्य वा जड़ी हुई अंगूठी अथवा रुपये दे कर आशीर्वाद करते हैं। बादमें पुरोहित होम करते हैं, उस अग्निकी ज्वाला कमसे कम पांच दिन तक रहती है। पांच दिन तक किसीको भी स्पर्श नहीं कर सकता और न वह घरसे बाहर ही निकल सकता है। उपनयनके बाद मध्याह्नकालमें बालक भिक्षाकी झोली और दण्ड हाथमें ले कर वेदीके पार्श्व खड़ा होता और भिक्षा मांगता है। आत्मीय कुटुम्ब स्त्री-पुरुष दोनों ही भिक्षा देते हैं। इस दिन जातिकुटुम्बका भोज होता है। रातके ८बजे बालक 'काशी जाता हूं' यह कह कर मामाके घर चला आता है। उसके आत्मीय कुटुम्ब भी कुछ समय

बाद ही मामाके घर पहुंच जाते हैं। यहां सब कोई चोनी-मिश्रित पीठा और नारियल खा कर बालकको साथ लिए आते हैं। दूसरे दिन ब्राह्मणभोज हो कर मौञ्जी-उत्सव शेष होता है।

मृत्युकाल उपस्थित होने पर गो-पूजा, गो-लाङ्गुल-स्पृष्ट, जलपान, आचार्यको गोदान, गीतापाठ, मृत्युके बाद मृत व्यक्तिके मुखमें गङ्गाजल, तुलसीपत्र और एक खण्ड सुवर्णप्रदान, मृत्युके दिन मृतके पुत्र वा अति निकट आत्मीयका केशमुंडन और श्वेतवस्त्र परिधान मृतकी विधवा रमणीका अलङ्कारादिमोचन, आत्मीय स्वजन एकत्र हो खाट पर शव ले कर (रामनाम करते हुए) श्मशानक्षेत्रमें गमन, श्मशानमें कर शेष मुखाग्नि-प्रभृति, अन्त्येष्टिक्रिया, १० दिन प्रेतके उद्देश्यसे केलेके पत्तेमें दुग्ध और जलप्रदान आदि कार्य सम्पन्न होते हैं। जो मुखाग्नि करता है, वह दश दिन घरसे बाहर नहीं निकलता। इतने दिनोंके मध्य परिवारस्थ कोई भी रन्धनादि नहीं करता, केवल आर्त्तनाद और शोकप्रकाश करता है। आत्मीय कुटुम्ब उसके घर खाद्यपदार्थ भेज देते हैं और आ कर खिला भी जाते हैं। ११वें दिनमें श्राद्धाधिकारी किसी धर्मशालामें जा कर पुरोहितकी सहायतासे यथारीति श्राद्ध और दानादि सम्पन्न करते हैं। १२वें दिन भी प्रेतात्माकी क्षुधा-तृष्णा दूर करनेके लिये तिलतर्पण किया जाता है।

यदि किसी व्यक्तिका अति दूर देशमें देहान्त हो जाय अथवा किसीको भी भार्या पतिको छोड़ उसके कुलमें कालिमा लगा कर चली जाय, तो उसके भी उद्देश्यसे यथारीति श्मशान जा कर अन्त्येष्टिक्रिया और श्राद्धादि करने होते हैं। ऐसी हालतमें वह पति पत्नीका फिर कभी मुख नहीं देखता।

अभी सभी प्रभुगण प्रायः शैव देखे जाते हैं। शृङ्गेरिमठके शङ्कराचार्यको हो ये लोग अपना सर्वप्रधान धर्मगुरु मानते हैं और बचपनसे ही संस्कृत स्तोत्रपाठ और देवपूजा करना सिखते हैं। अधिकांश प्रभुके घरमें गणपति, महादेवका बाणलिङ्ग और शालग्राम शिला रहता है तथा प्रतिदिन उनकी पूजा की जाती है।

सभी प्रभुगण हिन्दूपर्वका पालन करते हैं। इसके सिवा उनके कई एक विशेष पर्व हैं, यथा—चैत्रशुक्ल प्रतिपद्की ध्वजदान, रामनवमी, हनुमान्पूर्णिमा, अक्षयतृतीया, कदलीपूर्णिमा, आषाढ़ी शुक्ल एकादशी, नागपञ्चमी और नारिकेल-पूर्णिमा, कृष्णकी जन्माष्टमी, हरितालतृतीय, गणेशचतुर्थी, महापञ्चमी, गौर्यष्टमी, वामनद्वादशी, अनन्तचतुर्दशी, महालया, दशहरा, कोजागरा, पूर्णिमा, दिवाली, यमद्वितीय, तुलसी-एकादशी, दीपसंक्रान्ति, होली वा दोलपूर्णिमा।

प्रभुओंके मध्य किसी प्रकारकी पञ्चायत नहीं होती है।

पत्तर (हिं॰ पु॰) १ धातुका ऐसा चिपटा लम्बोतरा टुकड़ा जो पीट कर तैयार किया गया हो और पत्तेकी तरह पतला होने पर भी कड़ा हो तथा जिसकी तह या परत की जा सके, धातुका चादर। २ पत्तल देखो।

पत्तरङ्ग (सं॰ क्ली॰) पटरङ्ग पृषो॰ साधुः। १ रक्तचन्दन, बक्कम। पतङ्ग देखो।

पत्तल (हिं॰ स्त्री॰) १ पत्तोंको सींकोंसे जोड़ कर बना हुआ एक पात्र। इससे थालीका काम लिया जाता है। पत्तल प्रायः बरगद, महुए या पलास आदिके पत्तोंकी बनाई जाती है। इसकी बनावट गोल होती है। व्यासकी लम्बाई एक हाथसे कुछ कम या अधिक होती है। हिन्दुओंके यहां बड़े बड़े भोजोंमें इसी पर भोजन परसा जाता है। अन्य अवसरों पर भी इसका थालीके स्थान पर उपयोग किया जाता है। जङ्गली मनुष्य तो सदा इसीमें खाना खाते हैं। २ पत्तल भर दाल चावल या पूरी लड्डू आदि, परोसा। ३ पत्तलमें परसी हुई भोजन-सामग्री।

पत्तलक—अश्मवंशीय एक राजा।

पत्तस् (सं॰ अव्य॰) रश्मिसंज्ञक पाद द्वारा।

पत्ता (हिं॰ पु॰) १ पेड़ या पौधेके शरीरका वह हरे रंगका फैला हुआ अवयव जो काण्ड वा टहनीसे निकलता है, पत्र, पर्ण, छदन। विशेष विवरण पत्र शब्दमें देखो। २ एक प्रकारका गहना जो कानमें पहना जाता है। ३ धातुकी चादर, पत्तर। ४ मोटे कागजका गोल या चोकोर खण्ड। (वि॰) ५ बहुत हलका।

पत्ति (सं॰ पु॰) पद्यते विपक्ष-सेनां प्रति पद्भ्यां गच्छ-

तीति पट-ति (पदिप्रथिभ्यां नित्। उण् ४।१८२) १ पदातिक, पैदल सिपाही। २ वीर योद्धा, बहादुर। (स्त्री०) पद-भावे क्तिन्। ३ गति, चाल। ४ प्राचीन कालमें सेनाका सबसे छोटा विभाग। इसमें १ रथ, १ हाथी, ३ घोड़े और ५ पैदल होते थे। किसी किसीके मतसे पैदलोंकी संख्या ५५ होती थी।

पत्तिक (सं० पु०) पत्ति-कन्। १ पदाति, पैदल सिपाही। २ प्राचीनकालमें सेनाका एक विशेष विभाग। इसमें १० घोड़े, १० हाथी, १० रथ और १० प्यादे होते थे। ३ उपर्युक्त विभागका अफसर। (त्रि०) ४ पैदल चलनेवाला।

पत्तिकाय (सं० पु०) पदातिक सैन्य, पैदल सेना।

पत्तिगणक (सं० त्रि०) पत्तिं गणयतीति गण-ण्वुल्। पत्तिगणयिता, प्राचीन सेनामें एक विशेष अधिकारी जिसका कर्त्तव्य पैदल सैनिकोंकी गणना करना तथा उन्हें एकत्र करना होता था।

पत्तिन् (सं० त्रि०) पद्भ्यां तेलति तिल-गतौ वा डिन्। पाद द्वारा गमनशील, पैरसे चलनेवाला।

पत्तिसंहति (सं० स्त्री०) पत्तीनां संहतिः ६-तत्। पत्तिसमूह, सेनावृन्द।

पत्ती (हि० स्त्री०) १ छोटा पत्ता। २ भाग, हिस्सा। ३ फूलकी पंखड़ी, दल। ४ भाँग। ५ पत्तीके आकारका लकड़ी, धातु आदिका कटा हुआ कोई टुकड़ा जो प्रायः किसी स्थानमें जड़ने, लगाने या लटकाने आदिके काममें आता है, पट्टी।

पत्तीदार (हि० पु०) साझीदार, हिस्सेदार।

पत्तूर (सं० पु०) गतौ बाहुलकादूर, तस्य च हित्वं। १ शालिञ्चशाक, शान्ति नामक साग। २ जलपिप्पली, जलपीपर, ३ पर्णटोहक, पाकड़का पेड़। शमीवृक्ष, समीका पेड़। ५ कुचन्दन। ६ पतङ्गकी लकड़ी। ७ वातशमन।

पत्य (हि० पु०) पथ्य देखो।

पत्थर (हि० पु०) १ पृथ्वीके कड़े स्तरका पिण्ड या खण्ड। विशेष विवरण प्रस्तर शब्दमें देखो। २ सड़कको मापसूचित करनेवाला पत्थर, मीलका पत्थर। ३ रत्न, जवाहिर, हीरा, लाल, पन्ना आदि। ४ चन्द्रोपल, बिनौली, ओला। ५ बिलकुल नहीं, कुछ नहीं, खाक। ६ पत्थरको तरह कठोर, भारी अथवा हटने गलने आदिके अयोग्य वस्तु।

पत्थरकला (हि० पु०) पुरानी चालको बन्दूक जिसमें बारूद सुलगानेके लिये चकमक पत्थर लगा रहता था। तोड़ेदार या पलीतेदार बन्दूक, चाँपदार बन्दूक।

पत्थरकूल (हि० पु०) शैलाख्य, करीला।

पत्थरचटा (हि० पु०) १ एक प्रकारकी घास जिसकी टहनियां नरम और पतली होती हैं। २ एक प्रकारका साँप जो पत्थर चाटता है। ३ एक प्रकारकी मछली जो सामुद्रिक चट्टानोंसे चिपटी रहती है। ४ कञ्जूस, मक्खीचूस। (वि०) ५ जो घरकी चारदीवारीसे बाहर न निकलता हो।

पत्थरचूर (हि० पु०) एक प्रकारका पौधा।

पत्थरफोड़ (हि० पु०) हुदहुद पक्षी।

पत्थरफोड़ा (हि० पु०) पत्थर तोड़नेका पेशा करनेवाला, संगतराश।

पत्थरबाज (हि० पु०) १ वह जो पत्थर फेंक कर किसीको मारता हो। २ वह जो प्रायः पत्थर या ढेला फेंका करे। ३ वह जिसे पत्थर फेंकनेका अभ्यास हो, ढेलवाह।

पत्थरबाजी (हि० स्त्री०) पत्थर फेंकनेकी क्रिया, पत्थर फेंकाई, ढेलवाही।

पत्थल (हि० पु०) पत्थर देखो।

पत्नी (सं० स्त्री०) पत्युर्यज्ञे सम्बन्धो यया, इति नकारादेशः ङीप् च (पत्युर्नो यज्ञसंयोगे। पा ४।१।३३) वेदविधानानुसार ऊढ़ा, विवाहिता स्त्री। जो कन्या शास्त्रानुसार व्याही जाती है उसे पत्नी कहते हैं। पर्याय—पाणिगृहिती, सहधर्मिणी, भार्या, जाया, दारा, सधर्मिणी, धर्मचारिणी, दार, गृहिणी, सहचरी, गृह, क्षेत्र, वधू, जनि, परिग्रह, ऊढ़ा, कलत्र।

"पत्नीमूलं गृहं पुंसां यदिच्छन्दोऽनुवर्त्तिनी।
गृहाश्रमसमं नास्ति यदि भार्या वशानुगा॥"
(दक्षसंहिता।)

दक्षसंहितामें लिखा है कि पत्नी ही गृहधर्मको जड़ है। यदि पत्नी पुरुषकी वशवर्त्तिनी हो, तो गार्ह-

स्थाश्रम अतुलनीय है। पत्नी वशमें रहनेसे उसके साथ धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गका फल लाभ होता है। पत्नी यदि स्वेच्छाचारिणी हो और उसे यदि निवारण न किया जाय, तो वह व्याधिकी तरह क्लेशदायिका होती है। जो पत्नी स्वामीकी अनुकूला, वाक्यदोषरहिता, कार्यदक्षा, सती, मिष्टभाषिणी और पतिभक्तिमती है वह साक्षात् देवीके सदृश है। जिसकी पत्नी वशवर्त्तिनी नहीं है उसे इसी लोकमें नरक-वास होता है। पत्नी और पतिका परस्पर अनुराग रहना स्वर्गमें भी दुर्लभ है। गृहस्थाश्रममें वास केवल सुखके लिये है, किन्तु पत्नी ही इस गार्हस्थसुखकी जड़ है। जो स्त्री विनीता है और पतिका मनोगत भाव समझ कर चलती है वही स्त्री पत्नीशब्दवाच्य है। जिस पत्नीमें उक्त गुण नहीं है उससे केवल दुःख भोग होता है।

निन्दिता पत्नी जोंकके समान है; अलङ्कार वस्त्र प्रभृति द्वारा उत्तमरूपसे परिपालित होने पर भी वह हमेशा पुरुषोंके रक्त चूसती है और एक दण्ड भी स्वच्छन्दसे रहने नहीं देता। जब तक पति और पत्नीकी उमर थोड़ी रहती है, तब तक पत्नी सर्वदा शङ्कायुक्त रहती है। जो पत्नी सर्वदा हृष्टचित्ता है, गृहोपकरण द्रव्यसमूहके अवस्थान और परिमाण विषयसे जानकार है तथा अनवरत पतिके प्रीतिकर कार्य करती है, वही पत्नी प्रकृत पत्नी है। ये सब गुण जिसमें नहीं हैं, वह केवल शरीरक्षयकारिणी जरा है। पुरुषकी प्रथम विवाहिता जो स्त्री है, वही स्त्री धर्मपत्नी है। अपर विवाहिता पत्नी कामपत्नी मानी गई हैं। इन सब पत्नियोंसे दृष्टफल होता है, अदृष्टफल धर्म आदि कुछ भी नहीं होता। (दक्षसंहिता ४ अ०)

मनुमें लिखा है—पतिको पत्नीके प्रति नियत सद्व्यवहार करना चाहिये। जो स्त्री पतिकी कामना करती हैं, विविध सत्कार्यकालमें हो अथवा नित्य हो, अशन, वसन और भूषणादि द्वारा स्त्रियोंका आमोद विधान करना उनका कर्त्तव्य है। जिस परिवारके मध्य पति और पत्नी दोनों एक दूसरेके ऊपर नित्य सन्तुष्ट रहते हैं, निश्चय ही उस कुलका कल्याण होता है। वस्त्र और आभरण आदि द्वारा कान्तिमती नहीं होने पर नारीका पुरुष पर प्रेम नहीं हो सकता और जब तक स्वामी पर प्रेम नहीं होता, तब तक सुसन्तान हो ही नहीं सकती। पत्नी यदि भूषणादि द्वारा मनोहरभावमें सुसज्जित रहे, तो सभी घर शोभा पाते हैं अन्यथा वे शोभाहीन हो जाते हैं जिस कुलमें नारियोंका सम्यक् समादर है, वहां देवता भी प्रसन्न रहते हैं और जहां स्त्रियोंकी पूजा नहीं है, उस परिवारके यागादि क्रियाकर्म निष्फल होते हैं। जिस परिवारमें स्त्रियां सदा दुःखित रहती हैं, वह परिवार बहुत जल्द नाश हो जाता है। स्त्रियां जिस परिवारमें असत्कृत हो कर अभिसम्पात देती हैं, वह परिवार अभिचारहतकी तरह विनष्ट हो जाता है। (मनु ३ अ०)

पत्नीत्व (सं० क्ली०) पत्नी भावे त्व। पत्नीका भाव वा धर्म।

पत्नीमन्त्र (सं० पु०) एक वैदिक मंत्र।

पत्नीयूप (सं० पु०) यज्ञमें देवपत्नियोंके लिए निश्चित स्थान।

पत्नीवत् (सं० त्रि०) स्त्रीकी तरह, स्त्रीके जैसा।

पत्नीव्रत (सं० पु०) अपनी विवाहिता स्त्रीके अतिरिक्त और किसी स्त्रीसे गमन न करनेका सङ्कल्प या नियम।

पत्नीशाला (सं० स्त्री०) पत्न्याः शाला। यज्ञकालमें पत्नीके लिये निर्मित गृहभेद, यज्ञमें वह घर जो पत्नीके लिये बनाया जाता है। यह यज्ञशालाके पश्चिम ओर होता है।

पत्नीसंयाज (सं० पु०) वैदिक कर्मभेद।

पत्नीसंयाजन (सं० क्ली०) पत्नीसंयाजरूप वैदिक कर्मविशेष, विवाहके पश्चात् होनेवाला एक वैदिक कर्म।

पत्नीसंहनन (सं० क्ली०) पत्न्याः संहननं ६-तत्। मेखला द्वारा पति-प्रकोष्ठ यज्ञदीक्षाके लिये यजमान और पत्नीका बन्धनभेद।

पत्न्याट (सं० पु०) अटल्वत अट-आधारे घञ्, आटः, पत्न्याः आटः। पत्नीगृह, स्त्रीका घर।

पत्मन् (सं० त्रि०) १ शीघ्र गमन-साधन। २ वायुगमन सदृश गतिविशिष्ट। ३ वायु द्वारा अन्तरीक्षमें गमनशील। ४ पतननिमित्त वृष्टि।

पत्य (सं० क्ली०) पतिका भाव, जैसे सेनापत्य।

पत्यारा (हिं० पु०) पतिआरा देखो।

पत्यारी (हिं० स्त्री०) पंक्ति, कतार।

पत्योरा (हिं० पु०) एक पकवान जो कच्चूके पत्तोंको पोठीमें लपेट कर घी या तेलमें तलनेसे तैयार होता है, एक प्रकारका रिकवच।

पत्र (सं० क्लो०) पतति वृक्षात् पत-ष्ट्रन् (सर्वधातुभ्यष्ट्रन्। उण् ४।१५८) १ वृक्षावयवविशेष, पत्ता। पर्याय—पलाश, छदन, दल, पर्ण, छद, पात्र, छादन, वर्ह, वर्हण, पत्रक।

पत्रके बीचकी जो मोटी नस होती है वह पीछेकी ओर टहनीसे जुड़ी होती है। यह नस आगेको ओर उत्तरोत्तर पतली होती जाती है। इस नसके दोनों ओर अनेक पतली नसें निकलती हैं। ये खड़ी और आड़ी नसें ही पत्रका ढांचा होती हैं। नसों नसोंका यह जाल हरे आच्छादनसे ढका होता है। बहुतसे पेड़ों और पौधोंके पत्तोंका अन्तिम भाग नोकदार अथवा कुछ कुछ गावदुम होता है, पर कुछके पत्ते बिलकुल गोल भी होते हैं। नया निकला हुआ पत्ता हरापन लिये हुए लाल होता है। इस अवस्थामें उसे कोंपल कहते हैं। कुछ पेड़ोंके पत्ते प्रति वर्ष पतझड़के दिनोंमें झड़ जाते हैं; इस समय वे प्रायः वर्णहीन होते हैं। इन दो अवस्थाओंके अलावा अन्य सब समय पत्ता हरा ही होता है। पत्ता वृक्ष या पौधेके लिये बड़े कामका अङ्ग है। वायुसे उसे जो आहार मिलता है वह इन्हींके द्वारा मिलता है। निरिन्द्रिय आहारका सेन्द्रिय द्रव्यमें परिवर्तित कर देना पत्ते हीका काम है। कुछ वृक्षोंके पत्ते हाथका भी काम देते हैं। इनके द्वारा पौधे वायुमें उड़नेवाले कीड़ोंको पकड़ कर उनका लोहू चूसते हैं।

विष्णुके उद्देशसे पत्र निवेदन करनेसे अशेष पुण्य प्राप्त होते हैं। इन सब पत्रोंका विषय नारसिंहपुराणमें इस प्रकार लिखा है—अपामार्गका पत्र, भृङ्गारकपत्र, खदिर, शमी, दूर्वा, कुश, दमनक, बिल्व और तुलसीपत्र (पुष्पके साथ) विष्णुके विशेष प्रीतिकर है। जो पुष्पके साथ इन सब पत्रों द्वारा विष्णुकी अर्चना करते हैं, वे सभी प्रकारके पापोंसे मुक्त होते हैं और अन्तमें वे विष्णुलोक जाते हैं। पूर्व पत्रकी अपेक्षा पर पत्र अधिक पुण्यजनक है।

कालिकापुराणमें लिखा है—अपामार्गपत्र, भृङ्गारपत्र, गन्धिनीपत्र, वलाहक, खदिर, वञ्जुलस्तवक, जम्बू, बीजपुर, कुश, दूर्वाङ्कुर, शमी, आमलक और आम ये सब यथाक्रमसे देवी भगवतीके अधिक प्रीतिकर हैं तथा इन सबकी अपेक्षा बिल्वपत्र अधिक है। (कालिकापु० ६८ अ०)

नारायणको तुलसीपत्र और शिव तथा दुर्गा आदिको बिल्वपत्रकी अपेक्षा और कोई वस्तु प्रिय नहीं है। विष्णु पूजनमें तथा शान्तिस्वस्त्ययन सभी कर्मोंमें विष्णुको तुलसीपत्र प्रदान करनेसे सभी प्रकारके विघ्न जाते रहते हैं। शक्ति-पूजनमें भी बिल्वपत्र इसी प्रकार श्रेष्ठ माना गया है।

२ तेजपत्र, तेजपत्ता। पर्याय—तेजपत्र, तमालपत्र, पत्रक, छदन, दल, पलाश, अंशुक, वास, तापस, सुकुमारक, वस्त्र, तमालक, राम, गोपन, वसन, तमाल, सुरनिगन्ध। गुण—कटु, तिक्त, उष्ण, कफ, वात, विष, वस्ति और कण्ड तिदोषनाशक।

३ वाहन। ४ शरपक्ष। ५ पक्षिपक्ष। पत्यते पात्यते शास्त्रबोधाय वर्णनिचयोऽनेन, पत करणे ष्ट्रन्। ६ लिखनाधार, धातुमय पत्राकृति द्रव्य। पात्यते स्थानात् स्थानान्तरं समाचारोऽनेन। ७ पत्री, चिट्ठी। पत्र द्वारा सम्वाद एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भेजा जाता है।

वररुचिकृत पत्रकौमदीमें पत्र लिखनेका प्रकार और पत्रका अन्यान्य विषय विस्तृतरूपमें लिखा है। यहां पर बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है—

पत्रको लिख कर रंगा देना चाहिये। जो पत्र सुवर्ण द्वारा रंगाया जाता है, वह उत्तम, रौप्य द्वारा होनेसे मध्यम और रङ्गादि द्वारा होनेसे अधम होता है। एक हाथ छः अङ्गुल प्रमाणका पत्र उत्तम, हस्तप्रमाण मध्यम और मुष्टि हस्त प्रमाण सामान्यपत्र माना गया है। पत्रभङ्गका विषय इस प्रकार लिखा है—पत्रको तीन समान भागोंमें करके मुड़ना होता है। इन तीन भागोंमेंसे दो भाग छोड़ कर शेष भागमें गद्य वा पद्यादि संयुक्त वर्ण लिखना चाहिये।

पत्ररचनाका क्रम—राजा अपने लेखकको बुला कर पत्ररचनाका आदेश करें। लेखक गद्य वा पद्यादि

पदयुक्त पत्र प्रस्तुत करके दो पण्डितोंके साथ दो वा तीन दिन तक विचार करके जैसा स्वरूप होगा, वैसा ही पत्र पुस्तकमें लिखे और सामान्य पत्रमें लिख कर छिपके राजाको सुनावे। पीछे राजलेखक राजाके आज्ञानुसार शुभपत्र लिखे।

लेखनप्रकार—पत्रके पहले मङ्गलार्थ अङ्कुश, मध्यमें बिन्दु और सप्ताङ्क लिखना चाहिये। तदनन्तर स्वस्ति शब्दका प्रयोग और श्री-शब्द पूर्वक संस्कृत वा चलित भाषामें कुशल लिख कर शुभवार्त्ता लिखनी चाहिये। कीर्त्ति और प्रीतियुक्त पद्य, पीछे 'किमधिकमित्यादि' लिख कर शेष करना चाहिये। इसके बाद पत्रलय-प्रेरण श्लोक और मस्यादिका अङ्क लिखना होता है। इस प्रकार पत्र लिखनेकी विधि जान कर जो पत्र लिखते हैं, वे स्वदेश और विदेशमें कीर्त्तिलाभ करते हैं। जो शास्त्र नियमको जाने विना राजपत्र लिखते हैं, वे मन्त्रीके साथ महत् अयश पाते हैं।

पत्र लेनेका नियम—राजपत्र, गुरु, ब्राह्मण, यति, संन्यासी और स्वामी इनके पत्रको आदर पूर्वक मस्तक पर धारण करना चाहिये। मन्त्रीके पत्रको ललाट-देशमें; भार्या, पुत्र और मित्र इनके पत्रको हृदयमें और प्रवीरके पत्रको कण्ठदेशमें धारण करना होता है। इसके सिवा अन्य लोगोंके पत्रधारणमें कोई विशेष नियम नहीं है।

पत्रपाठका नियम—पहले पत्रको पकड़ कर नमस्कार करना चाहिये। पीछे राजाके समीप दक्षिण ओर फैला कर दो बार मन ही मन पढ़ लेना चाहिये, तीसरी बार परिस्फुट भावसे राजाको पढ़ कर सुना देना उचित है। गोपनीय पत्रको निर्जन स्थानमें और शुभपत्रको राजाके आज्ञानुसार सभामें पढ़ सकते हैं। पाठकको इस प्रकार पत्रार्थ सुन कर राजसमीपमें राजाज्ञाका प्रतिपालन करना चाहिये।

पत्र चिह्नका नियम—ऊर्ध्वदेशमें छः अङ्गुल स्थान छोड़ कर वर्त्तुल चन्द्रबिम्बके समान कस्तुरी और कुङ्कुम द्वारा चिह्न करके राजाको पत्र देना होता है। इसी प्रकार मन्त्रीका पत्र कुङ्कुम द्वारा, पण्डित और गुरुका चन्दन द्वारा, स्वामीका सिन्दूर द्वारा, भार्याका अलक्तक द्वारा, पिता, पुत्र और संन्यासीका पत्र चन्दन द्वारा, यतियोंका कुङ्कुम द्वारा और भृत्यका पत्र रक्त-चन्दन द्वारा चिह्नित करना चाहिये। केवल शत्रुको जो पत्र दिया जाता है उसे रक्त द्वारा पत्रचिह्नित करते हैं। सभी पत्रोंके ऊर्ध्वदेशमें सुवर्त्तुल चिह्न करना आवश्यक है।

राजपत्रके कोनेमें छेद नहीं करना चाहिये। राज-पत्रादिमें राजाको महाराजाधिराज, दानशौण्ड, सच्चरित और कल्पवृक्षस्वरूप इत्यादि यथायोग्य पदन्यास विधेय है। इसी प्रकार मन्त्रीके पत्रमें गुणानुसार प्रवर, प्राज्ञ और सच्चरितादिका उल्लेख; पण्डितके पत्रमें पद-तलमें संख्यापूर्वक प्रणाम, शास्त्रार्थनिपुण इत्यादि; गुरुके पत्रमें चरणमें प्रणतिपूर्वक सांख्यसिद्धान्तनिपुणादि; स्वामिपत्रमें सनमस्कार प्राणप्रियादि पद; भार्याके पत्रमें साध्वी और सच्चरितादि तथा प्राणप्रिया प्रभृति पद; पुत्रके पत्रमें आशीर्वादपूर्वक प्राणपुत्र इत्यादि; पितृपत्रमें प्रभुचर्य नमस्कार और सच्चरितादि; संन्यासियोंके पत्रमें सकलवाञ्छाविनिर्मुक्त, सर्वशास्त्रार्थ-पारग इस प्रकार पदविन्यास करना होता है।

गुरुके पत्रमें ६ श्रीशब्द, स्वामीके पत्रमें ५, भृत्यके पत्रमें २, शत्रुके पत्रमें ४, मित्रके पत्रमें ३, पुत्र और भार्याके पत्रमें १ श्रीशब्दका प्रयोग करना चाहिये।

(वाङ्गविकृत पत्रकौमुदी)

पत्र शब्दसे पहले साधारणतः वृक्ष पत्रका ही बोध होता है, पीछे उस परकी लिखित वस्तुका। वर्त्तमान समयमें जो मनोभाव कागज पर लिख कर पत्रके मध्य सन्निवेशित होता है, वही एक समय तालपत्र वा भोज-पत्र पर लिख कर व्यवहृत होता था। पूर्व समयमें वृक्ष पत्रादि पर लिखा जाता था; इस कारण इस प्रकार लिखित मनोभाव 'पत्र' वा 'चिट्ठी' नामसे चला आ रहा है।

पूर्व समयमें जब इस लोगोंके देशमें कागजका प्रचार नहीं था, तब भोजपत्र, कदलीपत्र अथवा ताल-पत्र पर चिट्ठी लिख कर अपने आत्मीय स्वजनोंको मनो-भाव जताते थे। आज भी पल्लिग्रामस्थ गुरुमहाशय-की पाठशालामें बालकगण पहले तालपत्रके ऊपर वर्ण

माला लिखना सीखते हैं। पीछे हस्ताक्षर सरल हो जाने पर कटकीपत्रके ऊपर 'शिवजादि' पाठ (चिट्ठी, अमींदारी वा महाजनी आदि) लिखा करते हैं। पूर्ण-वयस्क होने पर अर्थात् जब प्रकृत विषयकर्म में हस्तक्षेप करनेमें समर्थ हो जाते हैं, तब वे कागजके ऊपर लिखना आरम्भ करते हैं। अभी प्रायः वृक्षपत्रादिके ऊपर लिखन-प्रणाली उठ गई है। केवलमात्र उड़ीसा देशसे प्रेरित दो एक तालपत्र पर लिखित 'चिट्ठी' (भाषा-पत्र) और प्राचीन ग्रन्थादिकी नकल लिख कर नाना देशोंमें भेजी जाती हैं। विवाहादि कार्य स्थिर हो जाने पर शुभ दिनमें शुभक्षणमें विवाहबन्धन दृढ़ करनेके लिये दश पांच मनुष्योंके सामने एक कागज पर विवाहके पात्र और पात्री तथा वरकर्त्ता और कन्या-कर्त्ता एवं विवाहके प्रकृत लग्न और दिन निश्चित कर जिस कागज पर लिखा जाता है, उसे भी पत्र कहते हैं। यूरोप देशोंमें जिस प्रकार विवाहका Contract लिख कर रजिष्ठी होती है, इस लोगोंमें भी उसी प्रकार आत्मीय कुटुम्बोंके सामने उस पत्र पर चन्दन और रुपयेका छाप दे दिया जाता है। इसके बाद हल्दी दे कर दोनों पक्षवाले यह स्वीकार करते हैं, कि हम दोनों इस सम्बन्धके स्थापनमें राजी हैं। कोष्ठी देखो।

पत्रक (सं० क्लो०) पत्र स्वार्थे कन्, नदिव कायति वा कै-क। १ वृक्षका पत्र, पत्ता। २ पत्रावली, पत्तोंकी लड़ी। ३ तेजपत्र, तेजपत्ता। ४ शालिञ्च शाक, शान्ति साग। ५ पलाशवृक्ष, ढाकका पेड़।

पत्रकल्क (सं० क्लो०) १ पत्रका कल्क, गन्धमसाला दिया हुआ पत्तोंका चूर। तेल पक जाने पर गरम अवस्थामें गन्धकी वृद्धिके लिये जो कुछ दिया जाता है, उसे पत्रकल्क कहते हैं। २ महासुगन्धित तैल, खुशबू-दार तेल।

पत्रकाहला (सं० स्त्री०) पत्रकाणां आहला शब्दः। १ पत्रशब्द, पत्तोंके हिलनेसे होनेवाला एक प्रकारका शब्द। २ पिञ्जोला।

पत्रकृच्छ्र (सं० पु०) पत्रैः पत्र-क्वाथः साध्यं कृच्छ्रं। व्रतविशेष, एक व्रत जिसमें पत्तोंका काढ़ा पी कर रहा जाता है।

पत्रगुप्त (सं० पु०) पत्राणि गुप्तानि यस्य। स्नुही वृक्ष-भेद, तिधारा, थूहर।

पत्रघना (सं० स्त्री०) पत्रमेव घनं यस्याः, पत्र बाहुल्यात् तथात्वं। सातला वृक्ष, सेंहुड़।

पत्रङ्ग (सं० क्लो०) पत्रमज्यते अञ्ज-कर्मणि घञ्, शक-न्ध्वादित्वात् साधु। पत्राङ्ग, रक्तचन्दन, बक्कम।

पत्रचारिका (सं० स्त्री०) भौतिक क्रियाभेद।

पत्रछेदक (सं० त्रि० पत्रच्छेदनकारी, छेने काटनेवाला।

पत्रच्छेद्य (सं० त्रि०) छिन्नपत्र, जिसके छेने कटे हों।

पत्रज (सं० पु०) तेजपत्र, तेजपात।

पत्रजासव (सं० पु०) पटोल और तालपत्रीय आसव, वह मद्य जो परवल और ताड़के पत्तोंसे चुआई जाय।

पत्रझङ्कार (सं० पु०) पत्रेषु झङ्कारस्तद्वत् शब्दोयस्य। पुरोटीवृक्ष।

पत्रणा (सं० स्त्री०) पत्रैः शरो योजनमिव यत्र। शरपत्र-रचना।

पत्रतण्डुली (सं० स्त्री) पत्रेषु तण्डुलवत् विद्यते यस्याः, अर्श आदित्वादच्, ततो गौरादित्वात् ङीष्। यवतिक्ता-लता।

पत्रतरु (सं० पु०) पत्रप्रधानस्तरुः। विट्खदिरवृक्ष, दुर्गन्ध खैर।

पत्रतालक (सं० क्लो०) वंशपत्र हरिताल।

पत्रदारक (सं० पु०) पत्रवत् दारयति वृक्षाणि इति दृ-णिच् ण्वुल्। क्रकच, करौतका पेड़।

पत्रद्रुम (सं० पु०) तालवृक्ष, ताड़का पेड़।

पत्रनाड़िका (सं० स्त्री०) पत्रस्य नाड़िका। पत्रशिरा, पत्तेकी नस।

पत्रनामक (सं० क्लो०) तेजपत्र, तेजपत्ता।

पत्रपरशु (सं० पु०) पत्रे धातुनिर्मितपत्राकारे परशु-रिव, तच्छेदकत्वात् तथात्वं। स्वर्णकार प्रभृतिका यन्त्र-भेद, सोनार लोहार आदिका एक औजार, छेनी।

पत्रपा (सं० स्त्री०) अपत्रपामिति अप-त्रप-अच् निपात-नादकारलोपः। अपत्रपा, लज्जा।

पत्रपाल (सं० पु०) पत्रवत् पाल्यते प्राप्यतेऽसौ पत्र-पल-घञ्। आयता छुरिका, लम्बा छुरा या कटार।

पत्रपाली (सं० स्त्री०) पत्रपाल-ङीष्। १ कर्त्तनी,

कैंची, कतरनी। २ वाणका पिछला भाग।

पत्रपाश्या (सं० स्त्री०) पाशानां समूहः पाश्या, पत्राणां पाश्या। स्वर्णादिरचित ललाटभूषण, टीका, तिलक।

पत्रपिशाचिका (सं० स्त्री०) पत्रैः पत्रेण वा पिशाचीव, इवार्थे कन्। १ जलनी, जलवारणसाधन यन्त्रभेद। पर्याय—खर्पर, वारिता, मूर्द्धखोल। २ मस्तक पर पलाशपत्रबन्धन।

पत्रपुष्प (सं० पु०) पत्रं पुष्पमिव यस्य। १ रक्ततुलसी, लाल तुलसी। २ एक विशेष प्रकारकी तुलसी जिसकी पत्तियां छोटी छोटी होती हैं। ३ लघु उपहार, छोटी भेंट।

पत्रपुष्पक (सं० पु०) पत्रपुष्प इव कायति कै-क। भूर्ज-पत्र, भोजपत्र।

पत्रपुष्पा (सं० स्त्री०) पत्रपुष्प टाप्। १ तुलसी। २ छोटे पत्तोंकी तुलसी।

पत्रबन्ध (सं० पु०) पत्राणां बन्धो बन्धनं यस्मिन्। पुष्प-रचना, पत्र पुष्पादिकी सजावट।

पत्रबाल (सं० पु०) पत्रवत् बलतेऽस्मिन् बल-अधि-करणे घञ्। तुलावट, खेपणो, डाँड, बल्ली।

पत्रभङ्ग (सं० पु०) पत्राणां लिखितपत्राकृतीनां भङ्गो विचित्रता यत्र। १ स्तन और कपोलादिमें कस्तूरि-कादि रचित पत्रावली, वे चित्र या रेखाएं जो सौन्दर्य-वृद्धिके लिये स्त्रियां कस्तूरी केसर आदिके लेप अथवा सुनहले रुपहले पत्तरोंके टुकड़ोंसे भाल, कपोल, स्तन आदि पर बनाती हैं। पर्याय—पत्रलेखा, पत्रवल्ली, पत्र-लता, पत्राङ्गुली, पत्राङ्गुलि, पत्रभङ्गि, पत्रभङ्गी, पत्रक, पत्रावली। २ पत्रभङ्ग बनानेकी क्रिया।

पत्रभङ्गी (सं० स्त्री०) पत्रभङ्ग देखो।

पत्रभद्र (सं० पु०) एक प्रकारका पौधा।

पत्रमञ्जरी (सं० स्त्री०) पत्राणां मञ्जरी १ पत्रका अग्रभाग, पत्तेका अगला हिस्सा। २ पत्राकार मञ्जरी-युक्त तिलकभेद, एक प्रकारका तिलक जो पत्रयुक्त मञ्जरीके आकारका होता है।

पत्रमाल (सं० पु०) पत्राणां माला यत्र। वेतसवृक्ष, वेंतका पेड़।

पत्रमाला (सं० स्त्री०) पत्राणां माला। पत्रसमूह, पत्तों-की माला।

पत्रमूल (सं० क्ली०) पत्राणां मूलं। पत्रका मूल, पत्त-की जड़।

पत्रयौवन (सं० क्ली०) पत्राणां यौवनं यत्र। पत्र, नया पत्ता, कोंपल।

पत्ररचना (सं० स्त्री०) पत्रभङ्ग।

पत्ररथ (सं० पु० स्त्री०) पत्रं पक्षो रथो यानमिव यस्य। पक्षी, चिड़िया।

पत्ररेखा (सं० स्त्री०) पत्ररचना देखो।

पत्रल (सं० क्ली०) १ पत्तलदुग्ध, पतला दूध। २ द्रप्स, पतला दही।

पत्रलता (सं० स्त्री०) पत्राकारा लता यत्र। १ पत्राकार तिलकभेद। २ पत्रप्रधानलता, वह लता जिसमें प्रायः पत्ता ही पत्ता हो।

पत्रलवण (सं० क्ली०) पत्रविशेषेण पक्वं लवणं। सुश्रुतोक्त लवणभेद, एक प्रकारका नमक। यह एरण्ड, मोखा, अड़ूस, करंज, अमिलतास और चीतेके हरे पत्तोंसे निकाला जाता है। इन सब पत्तोंको खुलमें कूट कर घी या तेलके किसी बरतनमें रखते और ऊपरसे गोबर लीप कर आगमें जलाते हैं। यह नमक वात-रोगोंमें लाभकारक होता है।

पत्रलेखा (सं० स्त्री०) पत्राणां कस्तूरिकादिरचित-पत्राकृतीनां लेखा रचना। पत्रभङ्ग, साटी।

पत्रवर्ण (सं० पु०) समष्ठवर्णवृक्ष।

पत्रवल्लरी (सं० स्त्री०) पत्रयुक्ता वल्लरीव। १ तिलक-भेद। २ पत्रभङ्ग।

पत्रवल्ली (सं० स्त्री०) पत्राणां रचितपत्राकृतीनां वल्ली लतेव। १ पत्रभङ्ग। २ रुद्रजटा। ३ पलाशी लता। ४ पर्णलता। ५ पान।

पत्रवाज (सं० पु०) १ पक्षी, चिड़िया। २ वाण, तीर।

पत्रवाह (सं० पु०) पत्रेन पक्षछेदेन उह्यते इति वह-घञ्। १ वाण, तीर। २ पक्षी, चिड़िया। ३ हरकारा, चिट्ठीरसां। (त्रि०) पत्रं लिपिं वहतीति वह-अण्। ४ लिपिवाहक।

पत्रवाहक (सं० पु०) पत्रवहनकारी, पत्र ले जानेवाला, चिट्ठीरसां, हरकारा।

पत्रविशेषक (सं० क्ली०) पत्रमिव विशेषो यत्र कप्। १ तिलक। २ पत्रभङ्ग, साटी।

पत्रविष (सं० क्लो०) पत्तोंसे निकलनेवाला विष।

पत्रवृश्चिक (सं० क्लो०) पत्रमिव वृश्चिकः। पत्राकार वृश्चिकभेद, पतविछिया, पतविछिया।

पत्रवेष्ट (सं० पु०) पत्रमिव वेष्टते वेष्ट-कम णि घञ्। १ ताड़ङ्क, तरकी। २ करनफूल नामका कानमें पहनने-का गहना।

पत्रव्यवहार (सं० पु०) चिट्ठो लिखने और उत्तर पाते रहनेकी क्रिया या भाव, खत-किताबत।

पत्रशबर (सं० पु०) प्राचीनकालको एक अनार्य जाति।

पत्रशाक (सं० पु०) पत्रप्रधानः शाकः शाकपार्थिवादि-त्वात् कर्मधा०। भक्ष्यशाकमात्र वह पौधा जिसके पत्तोंका साग बना कर खाया जाता हो।

पत्रशिरा (सं० स्त्री०) पत्रस्य शिरेव। १ पत्रभङ्ग, साटो। २ पर्णपंक्ति, पत्तोंकी माला। ३ पर्णनाड़ी, पत्तोंकी नस।

पत्रशृङ्गि (सं० स्त्री०) पत्रं शृङ्ग मिव यस्याः ङीष्। मूषिककर्णिका, मूसाकानी नामको लता।

पत्रश्रेणी (सं० स्त्री०) पत्राणां श्रेणीव। १ द्रवन्तीलता, मूसाकानी। २ पत्रपंक्ति, पत्रावली।

पत्रश्रेष्ठ (सं० पु०) पत्रं श्रेष्ठं यस्य। विल्वपत्र, बेल-का पत्ता। यह पत्ता महादेव और दुर्गाको अत्यन्त प्रीतिकर है, इसीसे पत्तोंमें श्रेष्ठ माना गया है।

पत्रसुन्दर (सं० पु०) पत्रं सुन्दरं यस्य। स्वनामख्यात वृक्षविशेष।

पत्रसूचि (सं० पु०) पत्राणां सूचि रिव। कण्टक, काँटा।

पत्रहिम (सं० पु०) पत्रेषु हिमं यस्मिन् दिने। हिम-दुर्दिन।

पत्रा (हिं० पु०) १ तिथिपत्र, जन्त्री, पंचांग। २ पन्ना, वर्क, सफहा।

पत्राख्य (सं० क्लो०) पत्रमेव आख्या यस्य। १ तेजपत्र, तेजपत्ता। २ तालीशपत्र।

पत्राख्या—कामरूपके अन्तर्गत श्रीपीठके दक्षिण अव-स्थित एक नदी।

पत्राङ्ग (सं० क्लो०) पत्रमिव अङ्गं यस्य। १ रक्तचन्दन, लालचन्दन। २ रक्तचन्दन सदृश काष्ठविशेष, बक्कम ३ भूर्जपत्र, भोजपत्र। ४ पद्मक, कमलगट्टा।

पत्राङ्गासव (सं० पु०) औषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—बक्कम और खैरकी लकड़ी, अड़ूस और विजबन्दकी छाल, श्यामालता, अनन्तमूल, जवापुष्पकी कोढ़ी, आमकी गुठलीका गूदा, दारुहरिद्रा, चिरायता, अफीमका फल, जीरा, लोह, रसाञ्जन, कचूर, गुड़त्वक्, कुङ्कुम, लवङ्ग प्रत्येक एक पल। इन सब द्रव्योंको भलीभांति चूर कर किसी एक बरतनमें रखते हैं। पीछे उसमें द्राक्षा २० पल, धवका फूल १६ पल, चीनी १२॥ सेर, मधु ६। सेर, जल १२८ सेर डाल कर एक मास तक रख छोड़ते हैं। बाद आध पल करके दिन भरमें सेवन करनेसे श्वेत और रक्तप्रदर तथा तत्संयुक्त वेदना ज्वर, पाण्डु आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

पत्राङ्गुलि (सं० स्त्री०) पत्रं अङ्गुलिरिव यत्र। पत्रभङ्ग, साटो।

पत्राञ्जन (सं० क्लो०) पत्रं लेखनपत्रमज्यतेऽनेन पत्र-अञ्ज करणे ल्युट्। मसी, काली, स्याही।

पत्राढ्य (सं० क्लो०) पत्राढ्यं। १ पिप्पलीमूल, पिपरामूल। २ पर्वततृण, पहाड़ पर होनेवाली एक घास। ३ गन्धतृणविशेष, एक प्रकारकी सुगन्धित घास। ४ पत्राङ्गचन्दन। ५ वंशपत्र हरिताल। ६ तालीश-पत्र।

पत्राम्य (सं० क्लो०) १ पत्तङ्ग, बक्कम। २ लालचन्दन।

पत्राम्ला (सं० स्त्री०) पत्रे अम्लं यस्याः। चुक्रिका, अम-लोनीका साग।

पत्राली (सं० स्त्री०) पत्राणां आलीरिव। १ पत्रावली। २ पत्रश्रेणी।

पत्रालु (सं० पु०) पत्र- अस्त्यर्थे आलुच्। १ कासालु। २ इक्षुदर्भ।

पत्रावलि (सं० स्त्री०) पत्राणां पत्राकृतीनां आवलिः पंक्तिरिव रचना यस्याः। १ गैरिक, गेरू। २ पत्रश्रेणी।

पत्रावली (सं० स्त्री०) पत्रावलि-बाहुलकात् ङीष्। १ पत्रभङ्ग, साटो। २ पत्तोंकी पंक्ति। ३ नवदुर्गासम्प्र-दानक मधुमिश्रित यवचूर्णयुक्त नवाश्वत्थ-पत्र। जौके चूरको मधुमें मिला कर नौ पीपलके पत्तोंमें रख नवदुर्गा-को दान करना होता है।

"अमायां निशि संघे तु पत्रे चाश्वत्थसंज्ञके।
क्रमात् पत्रावली देया मधुना यवचूर्णकम्॥"
(कैवल्यतन्त्र)

पत्रिका (सं० स्त्री०) पत्री एव, स्वार्थे कन्, ततो ह्रस्वः। १ पत्री, चिट्ठी, खत। २ कोई छोटा लेख या लिपि। ३ कोई सामयिक पत्र, समाचारपत्र, अखबार। प्रशस्त पत्रं विद्यते यस्याः, पत्र-ठन्। ४ कदली आदि नव-पत्रिका। ५ कर्पूरभेद, एक प्रकारका कपूर।

पत्रिकाख्य (सं० पु०) पत्रिका आख्या यस्य। १ कपूर-भेद, एक प्रकारका कपूर, पानकपूर। २ पत्रिका-नामक।

पत्रिन् (सं० पु०) पत्रं पक्षो विद्यते यस्य। पत्र-इनि। १ वाण, तीर। २ पक्षी, चिड़िया। ३ श्येन, वाज। ४ रथी। ५ पर्वत, पहाड़। ६ वृक्ष, पेड़। ७ ताल, ताड़। ८ श्वेतकिणिहीवृक्ष। ९ गङ्गापत्री। (त्रि०) १० पत्रविशिष्ट, जिसमें पत्ते हों।

पत्रिणी (सं० स्त्री०) पत्रिन् स्त्रियां ङीप्। नवाङ्कुर, पल्लव, कोंपल।

पत्रिवाह (सं० पु०) पत्रवाहक, हरकारा, चिट्ठीरसाँ।

पत्री (सं० स्त्री०) पत्र-स्त्रियां ङीप्। १ लिपि, पत्र, चिट्ठी। २ दमनकवृक्ष, दौनेका पेड़। ३ महासुगन्धित तैल। ४ गङ्गापत्री। ५ दुरालभा। ६ खदिरवृक्ष। ७ तालवृक्ष। ८ जातीपत्री। ९ महातेजपत्र।

पत्री (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जिसे हाथमें पहनते हैं। इसे जहांगीरी भी कहते हैं।

पत्रोपस्कर (सं० पु०) पत्रमेव उपस्कर उपकरणं यस्य। कासमर्दवृक्ष, कसौंदी।

पत्रोर्ण (सं० क्ली०) पत्रजा ऊर्णा साधनत्वेनास्त्यस्य अर्श आदित्वादच्। १ धौतकौषेय, रेशमी कपड़ा। (पु०) पत्रेषु ऊर्णा यस्य। २ श्योनाकवृक्ष।

पत्र्य (सं० पु०) पत्रस्य हितं यत्। श्योनाकवृक्ष।

पत्मन् (सं० पु०) पत-भावे मनिन्। १ पतन, नाश। २ पतनसाधन।

पत्वन् (सं० पु०) पतत्यत्र पत-आधारे वनिप्। मार्ग, रास्ता।

पत्सल (सं० क्ली०) पतति गच्छति अस्मिन् पत-सरन्, रस्य लत्व (पतेरश्च लः। उण् ३।७४) पन्था, मार्ग, रास्ता।

पत्सुतस (सं० अव्य०) पत्सु तस्। पादमें।

पथ (सं० पु०) पथति गच्छति पथ-बजर्थे अधिकरणे-क। १ पन्थ, मार्ग, राह। २ व्यवहार या कार्य आदिकी रीति, विधान।

पथ (हिं० पु०) पथ्य, रोगके लिये उपयुक्त हलका आहार।

पथक (सं० पु०) पथि कुशलः, पथ-कन्। १ मार्गकुशल, पथ जाननेवा या बतलानेवाला। २ प्रान्त, मार्ग, रास्ता। ३ कपिलद्राक्षा।

पथकल्पना (सं० स्त्री०) इन्द्रजाल, जादूका खेल।

पथगामी (हिं० पु०) पथिक, रास्ता चलनेवाला।

पथत् (सं० पु०) पथति पथ-शतृ। १ गमनकर्त्ता, वह जो जाता हो। २ पथ, रास्ता, राह।

पथचारी (हिं० पु०) रास्ता चलनेवाला।

पथदर्शक (सं० पु०) राह दिखानेवाला, रास्ता बत-लानेवाला।

पथनार (हिं० स्त्री०) १ गोबरके उपले बनाना या थापना, पाथना। २ पीटने या मारनेकी क्रिया।

पथप्रदर्शक (सं० पु०) मार्गदर्शक, रास्ता दिखानेवाला।

पथरकला (हिं० पु०) एक प्रकारकी बन्दूक या कड़ाबीन जो चकमक पत्थरके द्वारा अग्नि उत्पन्न करके चलाई जाती थी, वह बन्दूक जिसकी कल या घोड़ेमें पत्थरी लगी रहती हो। इस प्रकारकी बन्दूकका व्यवहार पहले होता था, अब नहीं होता है।

पथरचटा (हिं० पु०) १ पाषाणभेद या पखानभेद नाम-की ओषधि। २ एक प्रकारकी छोटी मछली जो भारत और लङ्काकी नदियोंमें पाई जाती है। यह मछली एक बालिश्त लम्बी होती है।

पथरना (हिं० क्रि०) औजारोंको पत्थर पर रगड़ कर तेज करना।

पथराना (हिं० क्रि०) १ सूख कर पत्थरकी तरह कड़ा हो जाना। २ नीरस और कठोर हो जाना। ३ स्तब्ध हो जाना, जड़ हो जाना, सजीव न रहना।

पथरिया—मध्यप्रदेशके दमोह जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २३° ५३´ उ० और देशा० ७९° १८´ पू०के

मध्य अवस्थित है। यहां सरकारी विद्यालय, औषधालय और डाकबंगला है।

पथरी (हिं॰ स्त्री॰) रोगभेद मूत्रकृच्छ्र। इस रोगका संस्कृत नाम है अश्मरी।

सुश्रुतमें इस रोगका विषय इस प्रकार लिखा है—अश्मरी चार प्रकारकी है। श्लेष्मा ही उनका आधार है। श्लेष्मा, वायु, पित्त और शुक्रसे यह रोग उत्पन्न होता है। अपथ्यकारी व्यक्तिको श्लेष्मा बिगड़ कर जब वस्तिदेशमें आश्रय लेती है, तब यह रोग होता है। यह रोग होनेसे वस्तिदेशमें पीड़ा, अरुचि, मूत्र कृच्छ्र, वस्ति, शिरः मुष्क और उपस्थमें वेदना, ज्वर, देहकी अवसन्नता और मूत्रमें बकरे-सी गन्ध होती है। ये सब पूर्वलक्षण होने पर कारणभेदसे वेदना, मूत्रका वर्णदोष और गाढ़ता तथा आविलता होती है। रोग उपस्थित होने पर पेशाब निकलते समय नाभि, वस्ति, सेवनी और उपस्थ इनमें किसी न किसी स्थान पर वेदना अवश्य होती है। धावन, लम्फन, सन्तरण, अश्वादिकी पृष्ठ पर गमन वा पथश्रम द्वारा भी वेदना होती है। अति सेवनसे श्लेष्मा वर्द्धित हो कर अधोभागसे वस्तिमुखमें अवस्थान करके स्रोतका मार्ग रोकती है जिससे मूत्र प्रतिहत हो कर भेदकरण वा सूचि-विद्धकरणकी तरह पीड़ा उत्पन्न होती है एवं वस्तिदेश गुरु और शीतल हो जाता है। श्लेष्म-जन्य अश्मरी श्वेत, स्निग्ध, वृहत् कुक्कुटाण्ड वा मधूकपुष्पकी तरह वर्णविशिष्ट हो जाती है।

श्लेष्माके पित्तयुक्त होनेसे वह संहत और पूर्वोक्तरूपमें वृद्धिप्राप्त हो कर वस्तिमुखमें अधिष्ठानपूर्वक स्रोतमार्गको रोकती है। इससे मूत्र प्रतिहत हो कर उष्णता, दाह और पाक होनेके सदृश यन्त्रणा तथा वस्ति उष्ण वायुयुक्त होती है। पित्ताश्मरी रक्तयुक्त और पीताभ तथा कृष्ण वर्णकी हो जाती है।

श्लेष्मा वायुयुक्त हो कर संहत और पूर्वोक्तरूपसे वर्द्धित होती है। यह वायुयुक्त श्लेष्मा वस्तिमुखमें अधिष्ठान करके नाड़ीपथको रोकती है जिससे तीव्र वेदना उत्पन्न होती है। रोगी जब वेदनासे अत्यन्त कातर हो जाता है, तब वह दन्तपेषण, नाभि और मेढ्रदेशमर्दन तथा मलद्वार स्पर्श करता है। ऐसा करनेसे रोगी अतिशीर्ण हो जाता है। वायुज-अश्मरी—श्यामवर्ण, परुष, खरस्पर्श, विषम और कदम्बपुष्पकी तरह कण्टकयुक्त होती है। दिवास्वप्न, असम वा अतिरिक्त आहार तथा शीतल, स्निग्ध और मधुरपाक द्रव्य खानेमें प्रिय मालूम पड़ता है, इस कारण पूर्वोक्त तीन प्रकारको अश्मरी विशेषतः बालकको ही होती है। उनके शरीर और वस्तिदेशका परिमाण अल्प तथा शरीरमें मांस वृद्धि न होनेसे प्रयुक्त पथरी वस्तिदेशसे सहजमें निकाली जाती है।

वयःस्थ लोगोंको शुक्रजन्य शुक्राश्मरी होती है। मैथुनके अभिघातसे वा अतिरिक्त मैथुन द्वारा चलित शुक्र निःसृत न हो कर अन्य पथ हो कर बहने लगता है। पीछे वायुकर्तृक वह शुक्र उन सब स्थानोंसे संगृहीत हो कर मेढ्र और मुष्क द्वारके मध्य सञ्चित होता तथा पीछे सूख जाता है। इससे मूत्रमार्ग आवृत हो कर मूत्रकृच्छ्र, वस्तिवेदना और दोनों मुष्कोंका श्वयथु होता है। वह स्थान दाबनेसे पथरी मिल जाती है।

शर्करा, सिकता और भस्मनामक मेह भी पथरीका विकृतिमात्र है। मूलाधार और मलाशय आधाका आश्रयस्थान है। जिस प्रकार नदी सागरकी ओर जल वहन करती हैं पक्वाशयगत मूत्रवहा नाड़ियां भी उसी प्रकार वस्तिके मध्य मूत्र वहन करती हैं। जो सब नाड़ी आमाशयके मध्यसे मूत्र वहन करती हैं, उनके मुख अत्यन्त सूक्ष्म रहनेके कारण देखनेमें नहीं आते। जाग्रत् वा स्वप्नावस्थामें मूत्र चरित हो कर मूत्राशयको परिपूर्ण कर देता है। किसी एक नूतन घड़ेको जलके मध्य डुबो कर रखनेसे जिस प्रकार चारों ओरसे जल आ कर घड़ेको भर देता है उसी प्रकार वस्तिदेश भी मूत्र द्वारा भर जाता है। इस प्रकार वातपित्त वा कफ जब मूत्रके साथ मिल कर वस्तिमें प्रवेश करता है, तब पथरी रोग उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार नये घड़ेमें निर्मल जल रखनेसे भी क्रमशः उसकी पेंदीमें कीचड़ जम जाता है, उसी प्रकार वस्ति के मध्य पथरी जनमती है। आकाशीय वायु अग्नि और वैद्युती शक्ति द्वारा जिस प्रकार जल संहत हो कर बरफके रूपमें परिणत हो जाता है, उसी प्रकार वस्तिकी मध्यस्थित श्लेष्मा वायु भी उष्णता द्वारा संहत हो कर पथरी उत्पन्न

करती है। वायुके सरल रहनेसे वस्तिदेशमें मूत्रसञ्चारित होता है, इसका विपरीत होनेसे नाना प्रकारके विकार उपस्थित होते हैं। मूत्राघात आदि सबोंकी उत्पत्ति वस्तिदेशसे बतलाई गई है।

(सुश्रुत निदानस्था० ४ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि पथरी रोग चार प्रकारका होता है, वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज। इन चार प्रकारकी पथरियोंके मध्य वातजादि त्रिविध श्लेष्माश्रित है। शुक्रज पथरी केवल शुक्रसे होती है। उपयुक्त चिकित्सा नहीं होने पर यह रोग कृतान्तकी तरह प्राणहारक हो जाता है। किसी किसीका कहना है, कि शुक्राश्मरी भी श्लेष्माश्रित होती है।

पथरीका निदान—जब वायु, वस्तिस्थित शुक्रके साथ मूत्रको और पित्तके साथ कफको सुखा देती है, तब गो पित्तसे जिस प्रकार गोरोचना उत्पन्न होती है, उसी प्रकार पथरी रोग होता है। सभी प्रकारको पथरी त्रैदोषिक है। इनमेंसे दोषकी प्रधानताके अनुसार वातजादि भेदसे नामकरण हुआ करता है।

पथरीका पूर्वलक्षण—पथरी होनेसे पहले वस्तिदेशमें आध्मान, वस्तिके निकटस्थ चतुःपार्श्वमें अत्यन्त वेदना, छागमूत्रकी तरह मूत्रमें गन्ध, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है।

इसका सामान्य लक्षण—यह रोग उत्पन्न होनेसे नाभि, सेवनी और मूत्राशयके ऊपरी भागमें वेदना होती है। पथरीसे जब मूत्रद्वार बंद हो जाता है तब विच्छिन्न धारामें मूत्र निकलता है। मूत्ररन्ध्रसे पथरीके हट जाने पर बिना क्लेशके गोमेदककी तरह किञ्चित् लोहितवर्ण स्वच्छ मूत्र निकलने लगता है। यदि पथरी सञ्चरणके हेतु मूत्रवहा स्रोतमें क्षत हो जाय, तो रक्तसंयुक्त मूत्र निकलता है और कुन्थन करनेसे अत्यन्त वेदना होती है।

वातोल्वण अश्मरीका लक्षण—वातज पथरीसे पीड़ित व्यक्ति आर्त्तनादके साथ दाँत पीसता है और उसके शिश्न तथा नाभिदेशमें पीड़ा होती है। मूत्रत्यागके समय शब्दके साथ मल त्याग होता है और पीछे बुंद बुंदसे मूत्र निकलता है। यह वातज पथरी श्यामवर्ण रूक्ष और कण्टक परिवेष्टित होती है।

पित्तज पथरी रोगमें—मूत्राशयमें दाह और अग्नि द्वारा दग्ध होता है, ऐसा मालूम पड़ता है। यह भिलावेंके बीजके सदृश होती तथा इसका वर्ण रक्त, पीत या कृष्णवर्ण होता है।

श्लेष्माश्मरी रोगमें—रोगीका मूत्राशय शीतल, गुरु और सुई चुभोने-सी वेदना होती है। यह पथरी बड़ी, चिकनी, सफेद या कुछ पिङ्गलवर्ण होती है।

यह तीनों प्रकारकी अश्मरी प्रायः बचपनमें ही उत्पन्न होती है। बचपनमें मूत्राशय छोटा और अल्पमांसविशिष्ट होता है। इससे शुक्रक्रियाके बाद पथरी सहजमें आकर्षण और ग्रहणकी जा सकती है।

शुक्राश्मरी—शुक्रवेग रोकनेसे वयःप्राप्त व्यक्तियोंको यह रोग होता है। बालकोंके शुक्रवेग धारण करनेसे अहितकी सम्भावना नहीं है। जब कामवेगवशतः स्वस्थानच्युत शुक्र स्खलित न हो कर वायु कर्तृक शिश्न और मुष्कद्वयके मध्यगत वस्तिमुखमें धृत और शोषित हो जाता है, तब शुक्राश्मरी होती है। इस शुक्रज पथरीमें मूत्राशयमें वेदना और बहुत कष्टसे मूत्र निकलता है तथा दोनों मुष्क सूज जाते हैं। इसके उत्पन्न होनेसे ही शुक्र गिरने लगता है। शिश्न और मुष्कको दबानेसे पथरी भीतर घुस जाती है।

शर्करा और सिकतारोग पथरीका अवस्थान्तर मात्र है। पथरी जब वायु कर्तृक भिन्न अर्थात् चीनी-कणके सदृश होती, तब उसे शर्करा और इसी प्रकार जब बालुकाकण-सी होती है, तब उसे सिकता कहते हैं। शर्करा और सिकता इन दोनोंमें प्रभेद यह है, कि शर्कराकी अपेक्षा सिकताका रेणुसमूह सूक्ष्म होता है। वायुकर्तृक प्रभिन्न शर्करा और सिकतारोगमें यदि वायु स्वपथगामिनी हो, तो मूत्रके साथ वे रेणु निकल आते हैं और वायुके विपथगामी होनेसे वे निकलने नहीं पाते तथा मूत्रस्रोतके साथ संलग्न होनेसे दुर्बलता, शरीरकी अवसन्नता, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, पिपासा, हृद्रोग और वमि आदि उपद्रव होते हैं। पथरीमें यदि रोगीको नाभि और मुष्कद्वयमें शोथ तथा मूत्ररोध हो जाय, तो रोगीका जीवननाश होता है।

इसकी चिकित्सा—वातजन्य पथरीके पूर्व लक्षण

उपस्थित होनेसे स्नेहादि द्वारा चिकित्सा करनी होती है। कचूर, गणियारी, पाषाणभेदी, सोहिञ्जन, वरुण, गोक्षुर और गाम्भारी इनके काढ़ेमें हिङ्गु, यवचार और सैन्धव चूर्ण डाल कर पान करनेसे पथरी रोग प्रशमित होता है। यह अग्निप्रदीपक और पाचक है। इसका नाम शुण्ठादिकषाय है।

इलायची, पीपर, यष्टिमधु, पाषाणभेदी, रेणुका, गोक्षुर, अडूस और भरेण्डका मूल, इनके काढ़ेमें ३ या ४ माशा शिलाजतु डाल कर पान करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। इसका नाम है एलादिक्वाथ। वरुणछालके काढ़ेमें सोंठचूर्ण, गोक्षुर, यवचार और पुराना गुड़ डाल कर पान करनेसे श्लेष्मज पथरी विनष्ट होती है। इसका नाम वरुणादिकषाय है। पाषाणभेदाद्य घृत भी इस रोगमें विशेष फलप्रद है।

पित्तजन्य पथरी। कुशाद्यघृत द्वारा चार, यवागू, क्काथ, दुग्ध वा किसी प्रकारका आहारीय द्रव्य पाक कर सेवन करनेसे पित्तज पथरी और पित्ताश्मरी भी अच्छी हो जाती है।

श्लेष्मज अश्मरी। वरुणघृत और वरुणादिगणका सेवन करनेसे श्लेष्माजन्य पथरी आरोग्य हो जाती है।

शुक्राश्मरीरोग। ८ तोला पुराने कोंहड़ेका रस, १२ माशा यवचार और छः माशा गुड़ इन सबको एकत्र मिला कर पान करनेसे शुक्राश्मरी जाती रहती है। अभी यह औषध प्रायः अर्द्धमात्रामें ही व्यवहृत होती है। तिल, अपामार्ग, कदली, पलाश, यव और वेलसोंठ इनका क्काथ पान तथा मैबुक, कसक और नीलोत्पल इनके समान भागके चूर्णमें गुड़ मिला कर उष्णजलके साथ पान करनेसे पथरी मूत्रके साथ बाहर निकल आती है। पाषाणभेदी, गोक्षुर, भरंण्डमूल, वृहती, कण्टकारी और कोकिलाच मूल इनके समान भागके चूर्णको दूधसे पीस कर दधिके साथ पान करनेसे पथरीरोग नष्ट होतो है। कुटजचूर्ण दधिके साथ पान करके या दधिके साथ खानेसे भी यह पथरी दूर हो जाती है।

खीरेका बीज अथवा नारियलके फूलको दूधके साथ पीस कर पान करनेसे थोड़े ही दिनोंके अन्दर पथरी नष्ट हो जाती है। गोक्षुर, वरुणवृक्ष और कचूरका क्काथ मधुके साथ पान करनेसे तथा पुराने कोंहड़ेका रस, हिङ्गु और यवचार एकत्र कर सेवन करनेसे पथरी आरोग्य हो जाती है। पुनर्णवा, लौह, हरिद्रा, गोक्षुर, प्रियङ्गु, प्रवाल और उत्पुष्प इन सब द्रव्योंको दुग्ध, आम्लरस और सद्यक्षत इक्षुरस द्वारा मर्दन करके सेवन करनेसे पथरी नष्ट हो जाती है।

वरुणवृक्षकी छाल, पाषाणभेदी, सोंठ और गोक्षुर इनके काढ़ेमें यवचार और चीनी डाल कर पान करनेसे भी उपकार होता है। इसके सिवा त्र्यण्वकमूलाद्यघृत, वरुणतैल और कुशाद्यतैलका व्यवहार करनेसे अश्मरी बहुत जल्द आरोग्य हो जाती है। वरुणत्वग्, मृणाल, तालमूली, काश, इक्षुवालिका, इक्षुमूल, कुश और सुगन्धवाला इन्हें मधु और चीनीके साथ खानेसे यह रोग जाता रहता है। वरुणाद्यचूर्ण, वरुणकगुड़, कुलत्थाद्यघृत, शराद्य पञ्चमूलाद्यघृत और पुनर्णवादि तैल पथरी रोगमें विशेष फलप्रद है। (भावप्रकाश अश्मरीरोगाधि०) इन सब औषधियोंका विषय उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

रसेन्द्रसारसंग्रहकी पथरी-चिकित्सामें पाषाणवज्ररस, त्रिविक्रमरस, लोहनाशक और अश्मरीनाशक ये सब औषधियाँ लिखी हैं। भैषज्यरत्नावलीके अश्मरीरोगाधिकारमें वरुणादि क्काथ, वृहद्वरुणादि, कुलत्थाद्यघृत, वरुणघृत, पाषाणभिन्न और आनन्दयोग आदि औषधियाँ बतलाई गई हैं। इन सब औषधोंका विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

यह पथरीरोग महापातकसे हुआ करता है। जिसको यह रोग होता है, उसे प्रायश्चित्त करना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति पथरीरोगसे मृत्युमुखमें पतित हो, तो उसका प्रायश्चित्त किये विना दहन, वहन और अग्निकार्यादि कुछ भी नहीं होगा।

"मूत्रकृच्छ्राश्मरीकासा अतीसारभगन्दरौ।
दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनं॥
इत्येवमादयो रोगा महापातोद्भवाः स्मृताः॥"

(प्रायश्चित्तवि०)

पथरीरोग होनेसे ही पापशान्तिके लिये प्रायश्चित्त अवश्य कर्त्तव्य है। पापशान्ति हो जानेसे रोगका प्रशमन

भी होता है। पथरी रोगके प्रायश्चित्तादिका विषय महापातक शब्दमें और डाक्टरी चिकित्सा अश्मरी शब्दमें देखो। २ कटोरेके आकारका एक पात्र जो पत्थरका बना होता है। ३ चकमक पत्थर जिस पर चोट पड़नेसे तुरत आग निकल आती है। ४ कुरंड पत्थर। इसके चूर्णको लाख आदिमें मिला कर औजार तेज करनेकी सान बनाते हैं। ५ पत्थरका वह टुकड़ा जिस पर रगड़ कर उस्तरे आदिकी धार तेज करते हैं, सिल्ली। ६ एक प्रकारकी मछली। ७ कोङ्कण और उसके दक्षिणी प्रान्तके जङ्गलोंमें होनेवाला जायफलकी जातिका एक वृक्ष। इस वृक्षकी लकड़ी साधारण कड़ी होती है और इमारत बनानेके काममें आती है। इसके फल जायफलके जैसे होते हैं जिन्हें उबालने या पेरनेसे पीले रंगका तेल निकलता है। यह तेल औषध और जलावन दोनों काममें आता है।

पथरीला (हिं॰ वि॰) पत्थरोंसे युक्त, जिसमें पत्थर हो।

पथरोट—निजाम राज्यके बरार प्रदेशके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां हेमाड़पन्थियोंका 'श्रीदेवी लक्ष्मीजी'-मन्दिर विद्यमान है। इस प्राचीन मन्दिरका प्रायः १६५ वर्ष पहले संस्कार हुआ था। इसका विस्तृत सभामण्डप १६ स्तम्भोंके ऊपर स्थापित है।

पथरौटी (हिं॰ स्त्री॰) पत्थरकी कटोरी, पथरी, कूंड़ी।

पथरौड़ा (हिं॰ पु॰) पथौरा देखो।

पथसिगौली—युक्त प्रदेशके झांसी जिलेका एक ग्राम। यह ईरिछ नगरसे २ कोस दक्षिणपूर्वमें अवस्थित है। यहां एक बड़े ह्रदके सामने एक सुवृहत् चन्देला मन्दिरका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है। यहां एक अत्युच्च और स्थूलाकार विष्णुमूर्त्ति आज भी रक्षित है।

पथारी—मध्यप्रदेशके खैरागढ़ राज्यका एक ग्राम। यह एक वृहत् पहाड़के पादेश पर अवस्थित है। इस ग्राम और पहाड़के मध्यवर्त्ती स्थानमें एक सुन्दर जलाशय है तथा उसके ठीक मध्यस्थलमें एक प्रस्तरस्तम्भ विद्यमान है। जलाशयके पश्चिमकूल पर बहुसंख्यक छतरी और अधुनातन समयका एक छोटा दुर्ग तथा पूर्वकूल पर दो मन्दिर और दरगाह है। उपरोक्त पहाड़के दक्षिणपूर्वमें सदरमल नामक एक प्राचीन मन्दिरका भग्नावशेष देखा जाता है। इस मन्दिरके उत्तर और उत्तरपूर्वमें एक जलाशय है जिसमें किसी समय प्रचुर जल जमा रहता था। अभी यह जलाशय अगभीर और जङ्गलपूर्ण हो गया है। ग्रामके मध्य अनेक मूर्त्तियां प्रतिष्ठित हैं जिनमेंसे बुद्ध, परशुराम, वराह, वामन आदि अवतारोंकी मूर्त्तियां ही प्रधान हैं। सदरमल मन्दिरके ऊपर पश्चिमकी ओर अनेक जैन-मन्दिरोंका भग्नावशेष है। यह भग्नावशेष प्रायः ६ वर्गमील तक विस्तृत है।

पथिक (सं॰ पु॰) पन्थानं गच्छति यः पथिन् ष्कन् (पथः ष्कन्। पा ५।१।७५) १ पथगन्ता, मार्ग चलनेवाला, यात्री, मुसाफिर, राहगीर। पर्याय—अध्वनीन, अध्वग, अध्वन्य, पान्थ, गन्तु, यातु, पथक, यात्रिक, यात्रक और पथिल।

पथिकशाला (सं॰ स्त्री॰) पथिकोंका आवासस्थान, पान्थगृह, सराय।

पथिकसंहति (सं॰ स्त्री॰) पथिकानां संहतिः। पथिकसमूह।

पथिकसन्तति (सं॰ स्त्री॰) पथिकानां सन्ततिः समूहः। पथिकसङ्घ, पथिक समूह। इसका नामान्तर हारि है।

पथिका (सं॰ स्त्री॰) पथिक-टाप्। कपिलद्राक्षा, मुनक्का।

पथिकार (सं॰ त्रि॰) पन्थानं करोति-कृ-अण्। मार्गकारक, रास्ता बनानेवाला।

पथिकाश्रय (सं॰ पु॰) पथिकोंके रहनेका स्थान, धर्मशाला।

पथिकृत् (सं॰ त्रि॰) पथिन् कृ-क्विप्, तुक् च। यजमानोंका सन्मार्ग करणशील।

पथिचक्र (सं॰ क्ली॰) ज्योतिःशास्त्रोक्त चक्रभेद, फलित ज्योतिषमें एक चक्र जिससे यात्राका शुभ और अशुभ फल जाना जाता है।

पथिदेय (सं॰ क्ली॰) पथि मार्गे देयं, अलुक् समासः। राजाको देय करभेद, वह कर जो किसी विशिष्ट पथ पर चलनेवालोंसे लिया जाता है।

पथिद्रुम (सं० पु०) पथि प्रासगुणो द्रुमः। खदिरवृक्ष, सफेद खैर।

पथिन् (सं० पु०) पथ आधारे इनि। मार्ग, पथ, रास्ता। पथ कहां किस प्रकारका होना चाहिये, उसका विषय देवीपुराणमें इस प्रकार लिखा है। देश मार्ग ३० धनु, ग्रामपथ २० धनु, सीमापथ १० धनु और राजपथ १० धनुका होना चाहिये। जो राह चलते हैं, उनके मेध, कफ, स्थूलता और सौकुमार्यादि नष्ट होते हैं। जिस भ्रमणसे शरीरमें तकलीफ मालूम न पड़े, ऐसा पथगमन इन्द्रियशोधण और आयु, बल, मेधा और अग्निवृद्धिकारक होता है।

पथिप्रज्ञ (सं० त्रि०) पथाभिज्ञ, राह जाननेवाला।

पथिमत् (सं० त्रि०) पथिशब्दयुक्त।

पथिरक्षस् (सं० पु०) पन्थानं गच्छति रक्ष-असुन्। १ रुद्रभेद। (त्रि०) २ मार्गरक्षक।

पथिल (सं० त्रि०) पथति गच्छतीति पथगतौ इलच्, (मिथिलादयश्च। उण् १।५८) इति निपातनात् साधुः। १ पथिक, राह चलनेवाला। २ मारवाहक, बोझ ढोनेवाला। ३ शाकुनिक। ४ निष्ठुर, कठोर।

पथिषद् (सं० पु०) रुद्रभेद।

पथिष्ठा (सं० त्रि०) पथियोंमें श्रेष्ठ।

पथिस्थ (सं० त्रि०) पथि-तिष्ठति स्था-क। पथमें अवस्थित, जो राहमें मिले।

पथी (हिं० पु०) पथिन् देखो।

पथीय (सं० त्रि०) १ पथ-सम्बन्धी। २ सम्प्रदाय सम्बन्धी।

पथेरा (हिं० पु०) ईंटें पाथनेवाला, कुम्हार।

पथेष्ठा (सं० त्रि०) पथि मार्गे तिष्ठति स्था-क्विप्, अलुक् समासः वेदेषत्वम्। मार्गमें वर्त्तमान, जो मार्गमें हो।

पथौरा (हिं० पु०) वह स्थान जहां उपले पाथे जाते हों, गोबर पाथनेकी जगह।

पथ्य (सं० पु०) पथोऽनपेतः पथिन् यत् (धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। पा ४।४।९२) १ हितचिकित्सादि, बढ़िया इलाज। २ हितकारक भोज्यद्रव्यभेद, वह हलका और जल्दी पचनेवाला खाना जो रोगीके लिये लाभदायक हो। पर्याय—करण, हित, आत्मीय, आशुपर। ३ सैन्धव, सेंधा नमक। पथिसाधुः दिगादित्वात् यत्। ४ हरीतकीवृक्ष, छोटी हड़का पेड़। ५ तण्डुलीय शाक। ६ हित, मङ्गल, कल्याण।

पथ्यकरी (सं० स्त्री०) रक्तक शालि, एक प्रकारका लाल धान।

पथ्यका (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

पथ्यकारिन् (सं० पु०) षष्टिक धान्य, साठी।

पथ्यभोजन (सं० क्ली०) पथ्यं भोजनं। हितभोजन, लाभदायक आहार।

पथ्यशाक (सं० पु०) तण्डुलीय शाक, चौईका साग।

पथ्या (सं० स्त्री०) पथ्य-टाप्। १ हरीतकी, हड़। २ चिर्भिटा। ३ चिर्भिटा। ४ वन्ध्याकर्कोटकी, वनकेकड़। ५ गङ्गा। ६ आर्याछन्दका एक भेद। इसके और कई अवान्तर भेद हैं।

पथ्यादि (सं० पु०) पाचनभेद; हरीतकी, देवदारु, वच, मोथा, कचूर, अतीस इन सब द्रव्योंका क्वाथ। इस क्वाथके सेवन करनेसे आमातीसार प्रशमित होता है।

अन्यविध—हरीतकी, मञ्जिष्ठा, पिठवन, अड़ूस, कचूर, अतीस और देवदारु इन सब द्रव्योंका क्वाथ सेवन करनेसे गुल्मरोगीकी अग्नि प्रदीप्त होती है।

पथ्यादिक्वाथ (सं० पु०) भावप्रकाशोक्त क्वाथौषधभेद, वैद्यकमें एक प्रकारका पाचक जो त्रिफला, गुड़ूच, हलदी, चिरायते और नीम आदिको उबाल कर उसमें गुड़ मिलानेसे बनता है। इस क्वाथको नासिकारन्ध्र में देनेसे भ्रू, कर्ण, चक्षु और शिरःशूल आदि प्रशमित होते हैं। (भावप्रकाश शिरोरोगा०)

पथ्यादिगुग्गुलु (सं० पु०) औषधभेद, एक प्रकारकी दवा।

पथ्यादिलेप (सं० पु०) प्रलेपौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकी, डहरकरंज, श्वेतसर्षप, हरिद्रा, सोमराजी, सैन्धव तथा विड़ङ्ग इनके बराबर भागोंको गोमूत्रसे पीसते हैं। बाद शरीरमें उसका प्रलेप देनेसे कुष्ठरोग प्रशमित होता है।

पथ्यादिलौह (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—कचूर, तिल और गुड़के समान भागको दूधसे पीस कर लेपन करनेसे परिणामशूल प्रशमित होता है। शम्बूकभस्मचूर्णको आध तोला गरम जलके साथ पीनेसे भी

परिणामशूल जाता रहता है। लौह, हरीतकी, पिप्पली और कचूरका चूर्ण इनके बराबर बराबर भागोंको आध तोला घी और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणामशूल बहुत जल्द आराम हो जाता है।

(भावप्र० परिणामशूलचिकित्सा)

पथ्याद्यचूर्ण (सं० क्लो०) चूर्णौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली - हरीतकी, कचूर और यवानीका बराबर बराबर भाग ले कर इसे आध तोला तक उष्ण जल वा काँजीके साथ सेवन करनेसे आमवात, शोथ, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, कास, हृद्रोग, स्वरभंद और अरुचि नष्ट होती है।

पथ्यापथ्य (सं० क्लो०) पथ्यं रोगिणां हितकरं अपथ्यं अशुभकरं द्वयोः समाहारः। रोगके हित और अहित कारक द्रव्य। रोगमें जो वस्तु हितकर है, उसे पथ्य और जो अहितकर है, उसे अपथ्य कहते हैं। जिस रोगमें जो अपथ्य है, उसका सेवन करनेसे उस रोगको वृद्धि होती है और जो पथ्य है, उसका सेवन करनेसे वह रोग जाता रहता है। इसका विषय पथ्यापथ्यविनिश्चयमें विस्तार रूपसे लिखा है, पर यहां अत्यन्त संक्षिप्त भावमें दिया जाता है।

नवज्वरमें पथ्य—वमन, अष्टाह लङ्घन, यवागु, स्वेदन, कटु और तिक्तरसका सेवन।

नवज्वरमें अपथ्य—स्नान, विरेचन, सुरतक्रीड़ा, कषाय, व्यायाम, अभ्यञ्जन, दिवानिद्रा, दुग्ध, घृत, स्वेदन, आमिष, तक्र, सुरा, स्वादु, गुरु और द्रवद्रव्य, अन्न, प्रवात, भ्रमण और कोप।

मध्यज्वरमें पथ्य—पुरातन षष्टिक, पुरातनशालि, वार्त्ताकु, सोहिञ्जन, कारवेल्ल, वंत्ताग्र, आषाढ़फल, पटोल, कर्कोटक, मूलकपोतिका, मूंग, मसूर, चना और कुलथी आदिका जूस, सोनापाठा, अमृता, वास्तूक, सुपक्व अङ्गूर, कपित्थ, अनार और वैकङ्कत फल, लघु तथा सात्म्य भेषज।

पुराने ज्वरमें पथ्य—विरेचन, छर्दन, अञ्जन, नस्य, धूम, अनुवासन, शिरावेध, संशमन, अभ्यङ्ग, अवगाहन हिमशिरोपचार, एण और कुलिङ्ग प्रभृतिका मांस, गाय और बकरीका दूध तथा घी, हरीतकी, पर्वतनिर्भर जल, इंङ्गोका तेल, लालचन्दन, ज्योत्स्ना और प्रियालिङ्गन।

अतीसाररोगमें पथ्य—वमन, लङ्घन, निद्रा, पुराना चावल, लाजमण्ड, मसूरका जूस, सब प्रकारकी छोटी मछली, शङ्गी, तैल, छागघृत तथा दुग्ध, गोदधि और तक्र, गाय अथवा बकरीके दूध या दहीसे निकाला हुआ मक्खन, नवरम्भापुष्प और फल, मधु, जम्बूफल, नीम, शालुक, कपित्थ, मौलसिरी, विल्व, तिन्दुक, अनार, तिलक, गजपिप्पली, चाङ्गेरी, विजया, अरुणा, जाद-फल, अफीम, जीरा, गिरिमल्लिका, सब प्रकारके कषाय-रस, दीपन, लघु अन्न और पान।

अतीसारमें अपथ्य—स्वेद, अञ्जन, रुधिरमोक्षण, अम्बुपान, स्नान, व्यवाय, जागरण, धूम, नस्य, अभ्यञ्जन, सब प्रकारके वेगधारण, रुक्ष, असात्म्य अशन, विरु-द्धान्न, गोधूम, कलाय, जौ, राजमूल, काकमाची (मकोय), निष्पाव, कन्द, मधुशिग्रु, रसाल, पूग, कुष्माण्ड, अलावु, बदर, गुरु अन्न और पान, ताम्बूल, इक्षु, गुड़, मद्य, अङ्गूर, अम्लवेतसफल, लहसुन, धात्री, दुष्टाम्बु, मस्तु, गृहवारि, नारियल, स्नेहन, सब प्रकारके पत्रशाक, पुनर्णवा, इर्वारुक, लवण और अम्ल।

ग्रहणी रोगमें पथ्य—निद्रा, छर्दन, लङ्घन, पुराना चावल, लाजमण्ड, मसूर तथा मुद्गादिका जूस, निःशेषो-द्धृतसार गव्यदधि, गौ वा छागीके दुग्धका नवनीत, बकरीका घी, तिलतैल, सुरा, माक्षिक, शालूक, मौल-सिरी, अनार, केलेका फूल और फल, तरुणबिल्व, लवा (बटेर) और खरगोश आदिके मांसका जूस, सब तरहकी छोटी मछलियां और सर्व कषायरस।

ग्रहणी रोगमें अपथ्य—रक्तस्राव, जागरण, अम्बु-पान, स्नान, वेगविधारण, अञ्जन, स्वेदन, धूमपान, श्रम, विरुद्धभोजन, आतप, गोधूम, निष्पाव, कलाय, जौ, आद्रक, कुष्माण्ड, तुम्बी, कन्द, ताम्बूल, इक्षु, बदर, पूग-फल, दुग्ध, गुड़, मस्तु, नारिकेल, पुनर्णवा, सब प्रकारके साग, दुष्टाम्बु, अङ्गूर, अम्ल, लवणरस, गुरु अन्न और पान तथा सब प्रकारके यूप।

अर्श रोगमें पथ्य—विरेचन, लेपन, रक्तमोक्षण, क्षार, अग्निकर्म, शस्त्रकर्म, पुरातनलोहितशालि, जौ, कुलथी, नेवल आदिका मांस, पटोल, ओल, नवनीत, तक्र, सर्षपतैल और वातनाशक अन्नपान।

अश्म रोगमें अपथ्य—आनूप, आमिष, मत्स्य, पिण्याक, दधि, पिष्टक, कलाय, निष्पाव, बिल्व, तुम्बी, पक्का आम, आतप, जलपान, वमन, वस्तिकर्म, नदीजल, पूर्व ओरको हवा, वेगरोध और पृष्ठयान।

अग्निमान्द्य और अजीर्णादिमें पथ्य—श्लैष्मिक प्रकृतिमें पहले वमन, पैत्तिकमें मृदुरेचन, वातिकमें स्वेदन, नाना प्रकारके व्यायाम, पुरातन मुद्ग और लोहित शालि, लाजमण्ड, सुरा, एण आदिका मांस, नव तरहकी छोटी मछली, शालिञ्चशाक, वेत्ताग्र, लहसुन, वृद्धकुष्माण्ड, नवीन कदलीफल, पटोल, वार्त्ताकु, अनार, जौ, अम्लवेतस, जम्बीर, नवनीत, घृत, तक्र, तुषोदक, धान्याम्ल, कटुतैल, लवणार्द्रक, यमानी, मिर्च, मेथी, धनिया, जीरा, दही, पान, कटु और तिक्तरस।

अग्निमान्द्य और अजीर्णादिका अपथ्य—विरेचन, विष्ठा, मूत्र और वायुवेगधारण, अतिरिक्ताशन, अध्यशन, जागरण, विषमाशन, रक्तश्रुतिमत्स्य, मांस, जलपान, पिष्टक, सर्वशालुक, कुर्चिका, क्षीर, प्रपानक, ताड़की गरी, स्नेहन, दुष्टवारि, विरुद्ध पानान्न, विष्टम्भी और गुरुद्रव्य है।

क्रिमिरोगमें पथ्य—आस्थापन, कायविरेचन, शिरोविरेचन, धूम, कफनाशक द्रव्यसमूह, शरीरमार्जना, पुराना चावल, पटोल, वेत्राग्र, केलेका नया फूल, हड़तीफल, मोचिकमांस, विड़ङ्ग, निम्बतैल, सर्षपतैल, मोदीर, गोमूत्र, ताम्बूल, सुरा, यमानिका और कटु, तिक्त तथा कषाय रस।

क्रिमिरोगमें अपथ्य—छर्दि, तद्वेगविधारण, विरुद्ध पानाशन, दिवानिद्रा, द्रवद्रव्य, पिष्टान्न, अजीर्णभोजन, घृत, माष, दधि, पत्रशाक, मांस, दुग्ध, अम्ल और मधुर रस।

रक्तपित्तमें पथ्य—अधोगममें छर्दन, ऊर्ध्वनिर्गममें विरेचन, उभयत्र लङ्घन, पुरातन शालि, मूंग, मसूर, चना, अरहर, चिङ्गट और वर्मिमत्स्य, खरगोश आदिका मांस, कषायवर्ग, घी, पनस, पियाल, रम्भाफल, पटोल, वेत्राग्र, मत्स्याद्रक, पुराना कुष्माण्डफल, पक्कताल, अनार, खजूर, धात्री, नारियल, कपित्थ, शालूक, पिचुमर्द पत्र, तुम्बी, कलिङ्ग, अङ्गूर, गुड़, सेक, अवगाह, अभ्यङ्ग, शिशिर, प्रदेह, चन्दन, मनोऽनुकूल विविध कथा, क्षौमवस्त्र, सुशीतोपवन, प्रियङ्गु, वराङ्गनालिङ्गन और हिमवालुक।

रक्तपित्तमें अपथ्य—व्यायाम, अध्वनिषेवन, रविकिरण, तीक्ष्ण कर्म, क्षोभ, वेगधारण, चपलता, हस्त्यश्वयान, स्वेद, अस्रस्रुति, धूमपान, सुरत, क्रोध, कुलथी, गुड़, वार्त्ताकु, तिल, माष, सर्षप, दही, पान, मद्य, लहसुन, विरुद्धभोजन, कटु, अम्ल, लवण और विदाहिद्रव्य।

राजयक्ष्मा रोगमें पथ्य—घृतपक्क मिर्च और जीरा द्वारा संस्कृत लाव और तित्तिर रस, गेहूं, दूध, चना, छागमांस, नवनीत और घी, शशाङ्ककिरण, मधुर रस, मेधा, पनस, पक्का आम, धात्री, खजूर, नारियल, शोहिञ्जन, वकुल, ताड़की गरी, अङ्गूर, मत्स्यण्डिका, शिखरिणी, मदिरा, रसाला, कपूर, मृगमद, लालचन्दन, अभ्यञ्जन, सुरभि, अनुलेपन, स्नान, वेशरचन, अवगाहन, मृदुवस्त्र, गीत, लास्य, हेमचूर्ण मुक्तामणि आदिका भूषणधारण, होम, प्रदान, देव और ब्राह्मणपूजा तथा हृद्यान्नपान।

राजयक्ष्मारोगमें अपथ्य—विरेचन, वेगधारण, श्रम, स्त्री, स्वेद, अञ्जन, प्रजागर, साहस, कर्म, सेवा, रुक्षान्नपान, विषमाशन, ताम्बूल, कलिङ्ग, कुलथी, कलाय, लहसुन, वंशाङ्कुर, अम्ल, तिक्त, कषाय, सब प्रकारके कटुद्रव्य, पत्रशाक, क्षार, विरुद्धभोजन, शिम्बी, कर्कोटक और विदाहिद्रव्य।

कासरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेचन, छर्दि, धूमपान, शालि गेहूं, कलाय, जौ, कोद्रव, श्यामगुप्ता, मूंग और कुलथीका रस, मांस, सुरा, पुरानी सरसों, छागदुग्ध और घृत, वायसीशाक, वार्त्ताकु, बालमूलक, कण्टकारी, कासमर्द, जीवन्ती, अङ्गूर, वासक, त्रुटि, गोमूत्र, लहसुन, पथ्या, गरम पानी, लाज, मधु, दिवानिद्रा और लघुअन्न।

कासरोगमें अपथ्य—वस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण, व्यायाम, दन्तघर्षण, आतप, दुष्ट पवन, मार्गनिषेवन, विष्टम्भी, विदाही और विविध रुक्षद्रव्य, मलोद्गारादिका वेगधारण, मत्स्य, कन्द, सर्षप, तुम्बी, दुष्टाम्बु, दुष्टान्नपान, विरुद्धभोजन, गुरु और शीतान्नपान।

हिक्कारोगमें पथ्य—स्वेदन, वमन, नस्य, धूमपान,

विरेचन, निद्रा, स्निग्ध और लघु अन्न, लवण, जीर्ण कुलत्थ, गोधूम, शालि और जौ, एणादिमांस, पक्वकपित्थ, लहसुन, पटोल, कचिमूल, कृष्णतुलसी, मदिरा, उष्णोदक, माक्षिक, सुरभिजल, वातश्लेष्मनाशक, अन्नपान, शीताम्बुसेक, सहसा त्रास, विस्मापन, भय, क्रोध, हर्ष, प्रियोद्वेग, दग्ध और सिक्त मृद्घ्राण तथा नासिका अर्ध्व पीड़न।

हिक्कारोगमें अपथ्य—वात, मूत्र, उद्गार और कास इनके सक्षत् वेगधारण, रज, अनल, आतप, विरुद्धभोजन, विष्टम्भी, विदाही, रुक्ष और कफजनक द्रव्य, निष्पाव, पिष्टक, माष, आनूप, आमिष, दन्तकाष्ठ, वस्ति, मत्स्य, सर्षप, अम्ल, तुम्बी, कन्द, तैल, भृष्ट, गुरु और शीतान्नपान।

स्वरभेदमें पथ्य—स्वेद, वस्ति, धूमपान, विरेचक, कवलग्रह, नस्य, भालशिरावेध, जौ, लोहितशालि, हंसाटवी, सुरा, गोक्षुरक, काकमाची, जीवन्ती, कचिमूला, अङ्कुर, पथ्या, मातुलङ्ग, लहसुन, लवणार्द्रक, ताम्बूल, मिर्च और घी।

स्वरभेदमें अपथ्य—कच्ची निर्मली, वकुल, शालुक, जाम्बव, तिन्दुक, कषाय, वमि, स्वप्न और प्रजल्पन।

छर्दि (वमी)में पथ्य—विरेचन, लङ्घन, स्नान, मृजा, लाजमण्ड, पुरातन षष्टिक, शालि, मुद्ग और कलाय, गेहूं, जौ, मधु, सुरा, वेत्राग्र, कुकुम्बुक, नारिकेल, हरीतकी, अनार, बीजपुर, जायफल, वास, गुड़, करिकेशर, कस्तूरिका, चन्दन, चन्द्रकिरण, हित और मनःप्रीतिकर, भक्ष्य तथा स्वमनोऽनुकूलरूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श।

छर्दि (वमी)में अपथ्य—नस्य, वस्ति, स्वेद, स्नेहपान, रक्तस्राव, दन्तकाष्ठ, द्रवान्न, भीति, उद्वेग, रम्भा, बिम्बी, कोषवती, सधुक, चिञ्चा, सुरसा, सर्षप, देवदाली, व्यायाम, छत्रिका और अञ्जन।

तृष्णामें पथ्य—शोधन, वमन, निद्रा, स्नान, कवलधारण, दोषदग्ध हरिद्रा द्वारा जिह्वा और अधःशिराद्वयका दाह, कोद्रव, शालि, लाजसक्तु, अन्नमण्ड, शर्करा, मूंग, मसूर और चनेका रस, रम्भापुष्प, तेलकूर्च, अङ्कूर, कपित्थ, कोल, मञ्जिष्ठा, कुष्माण्ड, अनार, धात्री, ककंटी जम्बीर, करमर्द, बीजपुर, गोदुग्ध, तिक्त और मधुर द्रव्य, नागकेशर, इलायची, जायफल, पथ्या, कुसुम्बुक, टङ्कन, शिशिरानिल, चन्दनार्द्र, प्रियालिङ्गन, रत्नाभरणधारण और हिमानुलेपन।

तृष्णामें अपथ्य—स्नेह, अञ्जन, स्वेद, धूमपान, व्यायाम, नस्य, आतप, दन्तकाष्ठ, गुरुअन्न, अम्ल, लवण, कषाय, कटु, स्त्री, खराब पानी और तीक्ष्णवस्तु।

मूर्च्छामें पथ्य—सेक, अवगाह, मणि, हार, शीत, व्यजनानिल, शीत तथा सुगन्धयुक्त पान, धारागृह, चन्द्रकिरण, धूम, अञ्जन, लावण, रक्तमोच, दाह, नखान्तपीड़ा, दशनोपदंश, विरेचन, छर्दन, लङ्घन, क्रोध, भय, दुःखकराशय्या, विचित्र और मनोहर कथा, छाया, शतधौत, सर्पिः, तिक्त वस्तु, लाजमण्ड, मूंगका जूस, गव्यपयः, गुड़, पुराना कुष्माण्ड, पटोल, शोहिञ्जन, हरीतकी, अनार, नारियल, मधुकपुष्प, तुषोदक, लघुअन्न, लालचन्दन, कर्पूर-जल, अत्युग्रगन्ध, अद्भुतदर्शन, उत्कृष्ट गीत और वाद्य, श्रम, स्मृति तथा चिन्तन।

मूर्च्छामें अपथ्य—ताम्बूल, पत्रशाक, व्यवाय, स्वेदन, कटु, तृष्णा तथा निद्राका वेगरोध और तक्र।

मदात्ययमें पथ्य—संशोधन, संशमन, स्वपन, लङ्घन, श्रम, एणादिका मांस, हृद्य मद्य, पयः, गुड़, पटोल, अनार, धात्री, नारियल, पुरातन सर्पिः, कर्पूर, शिशिरानिल, धारागृह, मित्रसङ्गम, चौमाम्बर, प्रियालिङ्गन, उद्धतगीतवादित्र, शीताम्बु, चन्दन और स्नान।

मदात्ययमें अपथ्य—स्वेद, अञ्जन, धूमपान, दन्तघर्षण और ताम्बूल।

दाहरोगमें पथ्य—शालिधान्य, मूंग, मसूर, चना, जौ, लाजमण्ड, लाजसक्तु, गुड़, शतधौत, घृत, दुग्ध, नवनीत, कुष्माण्ड, ककंटी, सोहिञ्जन, पनस, स्वादु, अनार, पटोल, खजूर, धात्रीफल, सब प्रकारके तिक्त सेक, अभ्यङ्ग, अवगाहन, उत्तमशय्या, शीतलकानन, विचित्र कथा, गीत, शिशिर, मीठी बोली, उशीर, चन्दनलेप, शीताम्बु, शिशिरानिल, धारागृह, प्रियास्पर्श, चन्द्रकिरण, स्नान, मणि और मधुररस।

दाहमें अपथ्य—विरुद्ध अन्नपान, क्रोध, वेगधारण, हाथी और घोड़ेकी सवारी, मद्य, क्षार, पित्तकर द्रव्य,

व्यायाम, आतप, तक्र, ताम्बूल, मधु, व्यवाय, तिक्त और कषाय।

वातरोगमें पथ्य—अभ्यङ्ग, मर्दन, वस्ति, स्नेह, स्वेद, अवगाहन, संवाहन, संशमन, वातवर्जन, अग्निकर्म, उपनाह, भूशय्या, स्नान, आसन, शिरोवस्ति, नस्य, आतप, सन्तर्पण, बृंहण, दधि, कुर्चिका, तैल, वसा, मज्जा, स्वादु, अम्ल और लवणरस, कुलथीका रस, सुरा, छागादिका मांस, पटोल, वार्त्ताकु, अनार, पक्का ताल, जम्बीर, वटर तथा शुक्रवर्द्धक क्रिया।

वातरोगमें अपथ्य—चिन्ता, प्रजागर, वेगधारण, छर्दि, श्रम, अनशन, चना, कलाय, मूंग, करीरजम्बू, कशेरु, मृणाल, निष्पाववीज, शालुक, वालताल, पत्रशाक, विरुद्ध अन्न, क्षार, शुष्कपल्लव, चलज स्रुति, क्षौद्र, कषाय, कटु और तिक्तरस, व्यवाय, हस्त्यश्वयान, चक्रमण, खट्टा और दन्तघर्षण।

शूलरोगमें पथ्य—छर्दि, स्वेद, लङ्घन, पायु वर्त्ति, वस्ति, निद्रा, रेचन, पाचन, तप्तक्षीर, पटोल, सोहिञ्जन, वार्त्ताकु, पक्का आम, अंगूर, कपित्थ, रुचक, पियाल, शालिञ्चपत्र, वास्तूक, सामुद्र, सौवर्चल, हिङ्गु, विड्ल, विड्, लहसुन, लवङ्ग, रेंड़ीका तेल, सुरभिजल, तप्ताम्बु, जम्बीररस और कुष्ठ।

शूलरोगमें अपथ्य—विरुद्ध अन्नपान, जागरण, विषमाशन, रूक्ष, तिक्त, कषाय, शीतल, गुरु, व्यायाम, मैथुन, मद्य, वैदल, लवण, कटु, वेगरोध, शोक और क्रोध।

हृद्रोगमें पथ्य—स्वेद, विरेक, वमन, लङ्घन, वस्ति पुरातन रक्तशालि, जाङ्गल, मृग और पक्षीका जूस, मूंग और कुलथीका रस, पटोल, कदलीफल, पुराना कुष्माण्ड, रसाल, अनार, सम्पाकशाक, नवमूलक, रेंड़ीका तैल, सैन्धव, अङ्गूर, तक्र, पुराना गुड़, सोंठ, लहसुन, हरीतकी, कुष्ठ, कुस्तुम्बुरु, आर्द्रक, सौवार, मधु, वारुणीरस, कस्तूरिका, चन्दन और ताम्बूल।

हृद्रोगमें अपथ्य—तृष्णा, छर्दि, मूत्र, वायु, शुक्र, कास, उद्गार, श्रम, श्वास, विष्ठा और अश्रुवेगधारण, दूषित जल, कषाय, विरुद्ध, उष्ण, गुरु, तिक्त, अम्ल, क्षार, मधुक, दन्तकाष्ठ और रक्तस्रुति।

मूत्रकृच्छ्रमें पथ्य—वायुजन्य होनेसे अभ्यङ्ग, निरूहवस्ति, स्नेह, अवगाह, उत्तरवस्ति और सेक, पित्तजन्य होनेसे अवगाह, वस्तिविधि, विरेचन, श्लेष्मज होनेसे स्वेद, विरेक, वस्ति, क्षार, यवान्न, तीक्ष्ण, उष्ण, पुरातन लोहितशालि, गायका दूध, मक्खन और दही, मूंगका रस, गुड़, पुराना कुष्माण्डफल, पटोल, महार्द्रक, गोक्षुरक, कुमारी, गुवाक, खर्जुर, नारियल और ताड़की कोंपल, ताड़की गरी, शीतपान, शीताशन और हिमवालुका।

मूत्रकृच्छ्रमें अपथ्य—मद्य, श्रम, सुरत, गजवाजियान, विरुद्धभोजन, ताम्बूल, मत्स्य, लवण और आर्द्रक, हिङ्गु, तिल, सर्षप, वेगरोध, कलाय, अतितीक्ष्ण, विदाही, रूक्ष और अम्ल।

अश्मरीमें पथ्य—वस्ति, विरेक, वमन, लङ्घन, स्वेद, अवगाह, वारिसेचन, जौ, कुलथी, पुराना चावल, शराब, पुरातन कुष्माण्ड, वारुण शाक, आर्द्रक, यवशूक, वेणु और अश्मसलाकर्षण।

अश्मरीमें अपथ्य—मूत्र और शुक्रका वेगधारण, अम्ल, विष्टम्भी, रूक्ष और गुरु अन्नपान तथा विरुद्ध पानाशन।

प्रमेहमें पथ्य—लङ्घन, वमन, विरेचन, प्रोद्वर्त्तन, शमन, दीपन, नीवार, यव, श्यामाक, गोधूम, शालि, कलम, मूंग आदिका जूस, लाज, पुरातन सुरा, मधु, तक्र, षोडश्वर, लहसुन, सोहिञ्जन, पत्तूर, गोक्षुरक, मूषिकपर्णी, शाक, मन्दारपत्र, त्रिफला, कपित्थ, जम्बू, कषाय, हाथी और घोड़ेकी सवारी, अतिभ्रमण, रविकिरण और व्यायाम।

प्रमेहमें अपथ्य—मूत्रवेग, धूमपान, स्वेद, रक्तमोक्षण, दिवानिद्रा, नवान्न, दधि, आनूप मांस, निष्पाव, पिष्टान्न, मैथुन, सौवीरक, सुरा, शुक्त, तैल, क्षीर, घृत, गुड़, तुम्बी, ताड़की गरी, विरुद्धाशन, कुष्माण्ड, इक्षु, स्वादु, अम्ल, लवण और अभिष्यन्दी।

कुष्ठरोगमें पथ्य—पक्ष पक्षमें छर्दन, मास मासमें विरेचन, प्रत्येक तीन दिनमें नस्य, छह महीनेमें रक्तमोक्षण, सर्पिर्लेप, पुरातन यवादि सात्त्विक, जाङ्गलामिष, आषाढ़फल, वेत्राग्र, पटोल, हस्तीफल, काकमाची, नीम, लहसुन, हिलमोचिका, पुनर्णवा, मेष-

गुड़, भिलावाँ, पक्का ताड़, खदिर, चित्रक, नागपुष्प, गाय, गदही, ऊँटनी, घोड़ी और भैंसका मूत्र, कस्तूरिका, गन्धसार, तिक्त, वस्तु और क्षारकर्म।

कुष्ठरोगमें अपथ्य—पापकर्म, कृतघ्नभाव, गुरुनिन्दा, गुरुधर्षण, विरुद्ध पानाशन, दिवानिद्रा, चण्डांशुताप, विषमाशन, स्वेद, मैथुन, वेगरोध, इक्षु, व्यायाम, अम्ल, तिल, माष, द्रव, गुरु और नवान्न भोजन, विदाही, विष्टम्भीमूलक, आनुप, मांस, दधि, दुग्ध, मद्य और गुड़।

मुखरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेक, वमन, गण्डूष, प्रतिसारण, कवल, रक्तमोक्षण, नस्य, धूम, शस्त्र और अग्नि-कर्म, तृणधान्य, जो, मूंग, कुलथी, जाङ्गलरस, पटोल, बालमूलक, कर्पूरनीर, ताम्बूल, तप्ताम्बु, खदिर घृत, कटु और तिक्त।

मुखरोगमें अपथ्य—दन्तकाष्ठ, स्नान, अम्ल, मत्स्य, आनूपमांस, दधि, क्षीर, गुड़, मांस, रुक्षान्न, कठिनाशन, अधोमुख शयन, गुरु, अभिष्यन्दकारक और दिवानिद्रा।

कर्णरोगमें पथ्य—स्वेद, विरेक, वमन, नस्य, धूम, शिरावेधन, गेहूं, शालि, मूंग, जो, हरिणादि, ब्रह्मचर्या और अभाषण।

कर्णरोगमें अपथ्य—विरुद्धान्नपान, वेगविरोध, प्रजल्पन, दन्तकाष्ठ, शिरस्नान, व्यवाय, श्लेष्मन, गुरु द्रव्य, कण्डूयन और तुषार।

नासारोगमें पथ्य—निर्वात-निलयस्थिति, प्रगाढ़ोष्णीय धारण, गण्डूष, लङ्घन, नस्य, धूम, सर्दी, शिरावेध, कटुचर्णका नासारन्ध्रमें करके तीन बार प्रवेशन, स्वेद, स्नेह, शिराभङ्ग, पुरातन यव और शालि, कुलथी और मूंगका जूस, कटु, अम्ल, लवण, स्निग्ध, उष्ण और लघु भोजन।

नासारोगमें अपथ्य—विरुद्धान्न, दिवानिद्रा, अभिष्यन्दी, गुरु स्नान, क्रोध, शकृत्, मूत्र, अश्रुजलका वेगधारण, शोक, द्रव और भूशय्या।

नेत्ररोगमें पथ्य—आश्च्योतन, लङ्घन, अञ्जन, स्वेद, विरेक, प्रतिसारण, प्रपूरण, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, लेपन, आज्यपान, सेक, मनोनिवृत्ति, पदाभ्यङ्ग, मूंग, जो, लोहित धान्य, कुलथी, रम, प्याज, लहसुन, पटोल, वार्त्ताकु, सोहिञ्जन, नवमूलक, पुनर्णवा, काकमाची, अङ्गूर, चन्दन, तिक्त और लघु।

नेत्ररोगमें अपथ्य—क्रोध, शोक, मैथुन, अश्रु, वायु, विष्ठा, मूत्र, निद्रा और वमि आदिका वेगधारण, सूक्ष्मदर्शन दन्तविघर्षण, स्नान, निशाभोजन, आतप, प्रजल्पन, छर्दन, अम्बुपान, मधूक, पुष्प, दधि, पत्रशाक, पिण्याक, मत्स्य, सुरा, अजाङ्गल-मांस, ताम्बूल, अम्ल, लवण, विदाही, तीक्ष्ण, कटु, उष्ण और गुरु अन्नपान।

शिरोरोगमें पथ्य—स्वेद, नस्य, धूमपान, विरेक, लेप, छर्दि, लङ्घन, शीर्षवस्ति, शालि, दुग्ध, पटोल, अङ्गूर, वास्तूक, आम्र धात्री, अनार, मातुलङ्ग, तैल, तक्र, नारियल, कुष्ठ, भृङ्गराज, मोथा, उशीर और गन्धसार।

शिरोरोगमें अपथ्य—क्षव, जृम्भ, मूत्र, वाष्प, निद्रा, विष्ठा आदिका वेगधारण, अञ्जन, खराब पानी, विरुद्धान्न, दन्तकाष्ठ और दिवानिद्रा।

गर्भिणीका पथ्य—शालि, षष्टिक, मूंग, गेहूं, लाजसक्तु, नवनीत, घी, क्षीर, मधु, शर्करा, पनस, कदली, धात्री, अङ्गूर, अम्ल, स्वादु, शीतल, कस्तूरी, चन्दन, माला, कर्पूर, अनुलेपन, चन्द्रिका, स्नान, अभ्यङ्ग, मृदुशय्या, हिमानिल, सन्तर्पण, प्रियवाक्, मनोरमविहार और भोजन।

गर्भिणीका अपथ्य—स्वेद, वमन, क्षार, कलह, विषमाशन, नक्तव्यवहार, चौर्य, अप्रियदर्शन, अति व्यवाय, आयास, भार, अकाल जागरण, स्वप्न, शोक, क्रोध, भय, उद्वेग, यान, वेगविधारण, उपवास, अध्वगमन, तीक्ष्ण उष्ण, गुरु और विष्टम्भिभोजन, नक्त, निरशन, मद्य, आमिष, उत्तानशयन और स्त्रियोंको अनीप्सित वस्तु।

प्रसूता स्त्रीका पथ्य—लङ्घन, मृदुस्वेद, विशोधन, अभ्यञ्जन, तैलपान, कटु, तिक्त, उष्ण, सेवन, दीपन, पाचन, मद्य, कुलथी, लहसुन, वार्त्ताकु, बालमूलक, पटोल, ताम्बूल, अनार, ७ दिनके बाद किञ्चित् बृंहण और १२ दिन बाद आमिष।

प्रसूतिका अपथ्य—श्रम, नस्य, मुक्ति, मैथुन,

विषमाशन, विरुद्धान्न, वेगरोध, अतिभोजन, दिवानिद्रा, अभिष्यन्दी, विष्टम्भी और गुरु भोजन।

विषरोगमें पथ्य—अरिष्टाबन्धन, मन्त्रक्रिया, छर्दि, विरेचन, शोणिताकृष्टि, परिषेक, अवगाहन, हृदयावरण, नस्य, अञ्जन, प्रतिसारण, उत्कर्त्तन, प्रशमन और प्रलेप, वह्निकर्म, उपधान, प्रतिविष, धूप, संज्ञाप्रबोधन, प्रियङ्गु, मूंग, तैल, सर्पि, वार्त्ताकु, धात्री, निष्पाव, तण्डुलीय, मण्डूकपर्णी, जीवन्ती, कालशाक, लहसुन, अनार, प्राचीनामलक, कपित्थ, नागकेशर, गो, छाग और नरमूत्र, तक्र, शीताम्बु, शर्करा, अविदाही, अन्नसैन्धव, मधु, कुङ्कुम, पश्चिमोत्तर वात, हरिद्रा, लालचन्दन, मोथा, शिरीष, कस्तूरी, तिक्त और मधुर।

विषरोगमें अपथ्य—क्रोध, विरुद्धाशन, अध्यशन, व्यवाय, ताम्बूल, आयास, प्रवात, सर्वाम्ल, सर्वलवण, निद्रा, भय और धूमविधि।

वातिकरोगमें पथ्य—अभ्यङ्ग, परिमर्दन, शमन, संस्नेहन, बृंहण, स्नेह, स्वेदन, शयन, संवाहन, वस्ति, नस्य, प्रावरण, समीरण-परित्याग, अवगाह, शिरोवस्ति, विस्मरण, सूर्यकिरण, स्नान, विस्मापन, गाढ़ोपनाह, सुरा, भूशय्या, सुखशीलता, मज्जा, तैल, वसा, कुलथी, तिल, गेहूं, कशर, मोथा, गोमूत्र, दधि, कूर्चिका, एणादिका मांस, रोहितादिमत्स्य, वार्त्ताकु, लहसुन, अङ्गूर, कपित्थ, शिवा, पक्वताल, बकुल, वास्तूक, मन्दारफल, ताम्बूल, शर्करा, लवण, लोध्र, अगुरु, गुग्गुल, कुङ्कुम जाति प्रभृतिके फूलको माला।

वातिकरोगमें अपथ्य—चिन्ता, जागरण, रक्तमोक्षण, वमि, लङ्घन, व्यायाम, गज और वाजिवाहनविधि, सन्धारण, मैथुन, आघात, प्रपतन, धातुक्षय, क्षोभन, शोक, संक्रमण, विरुद्धाशन, जलदागम, रजनीशेष, अपराह्न, भय, कषाय, तिक्त, कटु, क्षार, अत्यन्त शीत आदिका भक्षण, तृणधान्य, अरहर, कङ्गु, उद्दाल, जौ, श्यामक, शिम्बी, कलाय, चना, मूंग, कुलथी, विष, शालूक, तिन्दुक, नवतालको गूदा, तालास्थिमज्जा, पिण्याक, शिशिराम्बु, गदहीका दूध, पत्रशाक, त्रिवृत्, भूनिम्ब, करीर, माक्षिक, धूम और वृद्धमरुत्।

पैत्तिकमें पथ्य—सर्पिःपानविधि, विरेचन, रक्तमोक्षण लोहितशालि, गेहूं, अरहर, चना, मूंग, मसूर, जौ, पर्युषित मण्ड, पयः, माक्षिका, लाज, घृत, सितावर, शीतोदक, कदल, वेताग्र, आषाढ़का, मृद्वीका, कुष्माण्ड तुम्बी, अनार, धात्री, कोमलतालशस्य, अभया, खजूर, कषाय, तिक्त, मधुर, निम्ब, त्रिवृत्, चन्दन, सितसमागम, सुशीतलवण, धारागृह, चन्द्रिका, भूशय्या, स्नान, भूमिगृह, प्रियकथा, मन्दानिल, अभ्युक्षण, वादित्र श्रवण, उत्तम नृत्यदर्शन, कर्पूर और शीतक्रिया।

पैत्तिकमें अपथ्य—धूम, स्वेद, आतप, मैथुन, सन्धारण, क्रोध, क्षार, अध्वा, गजवाजि-वाहनविधि, तीक्ष्णकर्म, व्यायाम, ग्रीष्म, विरुद्धाशन, मध्याह्न, जलदात्यय, रजनीमध्य, मध्यवयः, व्रीहि, वेणुफल, तिल, लहसुन, कलाय, कुलथी, गुड़, निष्पाव, मदिरा, अतसी, उष्णोदक, जम्बीर, हिङ्गु, लकुच, मूल, भिलावां, ताम्बूल, दधि, सर्षप, वदर, तैलाशन, तिन्तिड़ी, कटु, अम्ल, लवण और विदाही।

श्लैष्मिकरोगमें पथ्य—छर्दि, लङ्घन, अञ्जन, निधुवन, स्वेदन, चिन्ता, जागरण, श्रम, अग्निगमन, तृष्णावेगधारण, गण्डूष, प्रतिसारण, प्रशमन, हस्त्यश्वयान, धूम, प्रावरण, नियुद्ध, अतिसंक्षोभ, नस्य, भय, पुरातन शालि, निष्पाव, तृणधान्य, चना, मूंग, कुलथीका रस, क्षार, सर्षपतैल, उष्णजल, राजिका, वेत्राग्र, वार्त्ताकु, औडुम्बर, कर्कोट, लहसुन, शोहिञ्जन, शक्राशन, शूरण, निम्ब, मूलकपोतिका, वरुण, तिक्ता, त्रिवृत्, माक्षिक, ताम्बूल, पुरानी मदिरा, व्योष, लाज, तिक्त अञ्जन, मौक्तिक, कटु और कषायरस।

श्लैष्मिकरोगमें अपथ्य—स्नेह, अभ्यञ्जन, आसन, दिवानिद्रा, स्नान, विरुद्ध भोजन, शिशिर, वसन्तसमय, भुक्तमात्रसमय, कलाय, नवतण्डुल, मत्स्य, मांस, इक्षुविकृति, दुग्धविकृति, तालास्थिमज्जा, द्रव, पनस, छत्राक, आषाढ़क, खर्जुर, अनुलेपन, पयः, पायस, स्वादु, अम्ल, लवण, गुरु, तुहिन और सन्तर्पण।

वसन्त ऋतुमें पथ्य—वमन, सुरत, व्यायाम, भेद, भ्रमण, अग्निसेवा, कटु, तिक्त, विदाही, तीक्ष्ण, कषाय और मध्वोदन।

वसन्तऋतुमें अपथ्य—दिवानिद्रा, सन्तर्पण, आलस्य,

चन्द्रसेवा; पिण्डालुक, स्वादु, गुरुदक और अन्न, पिष्टक, दधि, चीर तथा घृत।

ग्रीष्मऋतुमें पथ्य—चन्दन, शीतवात, छाया, अम्बु, कक्षाशयन, प्रसून और प्रियभोजन।

ग्रीष्म ऋतुमें अपथ्य—कटु, तिक्त, उष्ण, क्षार, अम्ल, रौद्र, भ्रमण, अग्निसेवा, उन्निद्रता, भास्कर-तप्त तोयस्नान, अतिपान, दधि, तक्र और तैल।

वर्षामें पथ्य—लवण, अम्ल, मिष्ट, सार, प्रिय, स्निग्ध, गुरु, उष्ण, वल्य, अभ्यङ्ग, उद्वर्त्तन, अग्निसेवा, तप्तासवपान और दधि।

वर्षामें अपथ्य—पूर्व पवन, वृष्टि, घर्म, हिम, श्रम, नदीतीर, दिवानिद्रा, रुच और नित्य मैथुन।

शरत्कालमें पथ्य—शीतरसाम्बुपान, तरुच्छाया, चन्दन, इन्दुसेवा, गुड़, मूंग, मसूर, गायका दूध, ईख और शाल्योदन।

शरत्कालमें अपथ्य—लवण, अम्ल, तीक्ष्ण, कटु, पिष्ट, अतसी, विदाही, सुरा, नाल, दधि, तक्र, तैल, क्रोध, उपवास, आतप और मैथुन।

हिमऋतुमें पथ्य—तप्तजल, उपनाह, पयः, अन्न-पान, घृत, स्त्रीसेवा, वह्निसेवा, गुरु और यथेष्ट भोजन।

हिमऋतुमें अपथ्य—दिवानिन्द्रा, कुभोजन, अभोजन, लङ्घन, पुरातनान्न, लघुपाकी द्रव्य, शैत्य और शीत जलावगाहन।

शिशिरमें पथ्य—स्त्री और वह्निसेवा, मत्स्य, छाग-मांस, दधि, दुग्ध और घृत।

शिशिरमें अपथ्य—तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, अम्ल, कषाय और तिक्त, सामुद्रक, आर्द्र भोजन, दिवानिद्रा, चन्दन, चन्द्रसेवा, ठंढे पानीसे स्नान आदि। (पथ्यापथ्यविनिश्चय)

भग्न, भगन्दर, उपदंश, शुक्रदोष, विसर्प, विस्फोट, मसूर, क्षुद्ररोग आदि रोगोंका इसी प्रकार पथ्यापथ्य लिखा है। विस्तारके भयसे यहां उन सब रोगोंका विषय नहीं लिखा गया।

जो सब वस्तु हितजनक हैं, वह पथ्य और जो अहितकर हैं, वह अपथ्य है। पथ्यापथ्यका विचार करके और ऋतु विशेषमें जो हितजनक है, उसे सेवन करनेसे शरीर सुस्थ और सबल रहता है।

पथ्यावक्त्र (सं० क्ली०) मात्रावृत्त भेद। इसके प्रति-पादमें आठ आठ अक्षर होते हैं।

इसके प्रथम चरणमें १,३,६,७वां वर्ण गुरु और शेष वर्ण लघु; द्वितीय चरणमें १,२,६,८ वां गुरु और अन्यवर्ण लघु; तृतीय चरणमें १,२,३,६,७,८ वां वर्ण गुरु और अन्य वर्ण लघु; चतुर्थ चरणमें १,२,३,६,८वां वर्ण गुरु और अन्यवर्ण लघु होते हैं।

पद् (सं० पु०) पद्यते गच्छत्यनेन पद्-क्विप। १ पाद, चरण। कोई कोई कहते हैं कि पद् शब्द नहीं है, पाद शब्द है, पर यहां पाद शब्दको जगह पद् आदेश हो कर 'पद्' ऐसा शब्द हुआ है; लेकिन यह सङ्गत नहीं है।

पद (सं० क्ली०) पद अच् (नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणि-न्यचः। पा ३।१।१३४) १ व्यवसाय, काम। २ त्राण, रक्षा। ३ स्थान, जगह। ४ चिह्न, निशान। ५ पाद, पैर, पाँव। ६ वस्तु, चीज। ७ शब्द, आवाज। ८ प्रदेश। ९ पादचिह्न, पैरका निशान। १० श्लोकका पाद, श्लोक या किसी छन्दका चतुर्थांश। ११ किरण। १२ पुराणानुसार दानके लिये जूते, छाते, कपड़े, अंगूठी, कमण्डलु, आसन, बरतन और भोजनका समूह, जैसे ५ ब्राह्मणोंको पददान मिला है। १३ कः अङ्कुलका एक पद। १४ ऋक् वा यजुर्वेदका पद-पाठ। १५ सुप् तिङन्तचय वाक्य, जिस वाक्यके अन्तमें सुप् और तिङ् विभक्ति रहती है, उसे पद कहते हैं।

यह पद तीन प्रकारका है—वाच्य, लक्ष्य और व्यङ्ग्य। अभिधा शक्ति द्वारा अर्थबोध होनेसे वाच्यपद, लक्षणा द्वारा अर्थबोध होनेसे लक्ष्य पद और व्यञ्जना द्वारा अर्थावगति होनेसे व्यङ्ग्यपद होता है। योग्यता, आकाङ्क्षा और आसत्तियुक्त पदसमूह वाक्य कहलाता है। वाक्योच्चय ही महावाक्य है।

विभक्तियुक्त शब्द और धातुको पद कहते हैं। पद ही वाक्यमें व्यवहृत होता है, शब्द और धातुका व्यवहार नहीं होता। पद दो प्रकारका है, नाम और क्रिया। शब्द और धातुके उत्तर जब प्रत्यय लगता है, तब उसे पद और धातुको प्रत्ययान्त कहते हैं। प्रत्ययान्त होने पर भी वे शब्द या धातु ही रहते हैं। तदुत्तर विभक्तियोग

व्यतीत वे पद नहीं होते और पद नहीं होनेसे वे वाक्यमें व्यवहृत नहीं होते।

शब्दके उत्तर विभक्ति जोड़नेसे नाम-पद और धातुके उत्तर विभक्ति जोड़नेसे क्रियापद होता है। प्रातिपदिक और धातुका एक एक अर्थ है, पर विभक्ति-युक्त अर्थात् पद नहीं होनेसे अर्थबोध नहीं होता 'कृ' धातुका अर्थ है करना, किन्तु धातुरूपमें इसका व्यवहार नहीं होता। दो वा दोसे अधिक पद मिल कर जब पूर्ण अर्थ प्रकाशित करता है, तब उस पदसमष्टिको वाक्य कहते हैं। यह पद पांच प्रकारका है—विशेष्य, सर्वनाम, विशेषण, अव्यय और क्रिया।

नैयायिकोंके मतसे—अर्थबोधक शक्तिविशिष्ट होनेसे उसे पद कहते हैं।

१६ योग्यताके अनुसार नियतस्थान, दर्जा। १७ मोक्ष, निर्वाण। १८ ईश्वरभक्तिसम्बन्धी गीत, भजन।

पदक (सं० पु०) पदं वेत्ति यः पद-वुन् (क्रमादिभ्यो वुन्। पा ४।२।६१) १ पदज्ञाता वेदमन्त्रपदविभाजक ग्रन्थके अध्येता, वह जो वेदोंका पदपाठ करनेमें प्रवीण हो। २ गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद। ३ स्वनामख्यात कण्ठभूषण, एक प्रकारका गहना जिसमें किसी देवताके पैरोंके चिह्न अङ्कित होते हैं और जो प्रायः बालकोंको रक्षाके लिये पहनाया जाता है। (क्लो०) ४ पूजन आदिके लिये किसी देवताके पैरोंके बनाये हुए चिह्न।

ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि सोने चांदी वा पत्थर पर श्रीकृष्णका पदचिह्न प्रस्तुत करके पूजा करनी होती है। पदचिह्नकी पूजा करनेसे सब प्रकारकी सिद्धियां लाभ होती हैं। सुवर्णादिमें पदचिह्न अङ्कित करके दक्षिण पदाङ्गुष्ठमूलमें चक्र, मध्यमाङ्गुलिके मूलमें कमल, पद्मके अधोदिकमें ध्वज, कनिष्ठामूलमें वज्र, पार्ष्णिमध्यमें अङ्कुश, अङ्गुष्ठपर्वमें यव और वामाङ्गुष्ठमूलमें पाञ्चजन्य ये सब चिह्न देने होते हैं। (पद्मपु० पाताल १२अ०) ५ सोने चांदी या किसी और धातुका बना हुआ सिक्केकी तरहका गोल या चौकोर टुकड़ा। यह किसी व्यक्ति अथवा जनसमूहको कोई विशेष अच्छा या अद्भुत कार्य करनेके उपलक्षमें दिया जाता है। इस पर प्रायः दाता और ग्रहीताका नाम तथा दिये जानेका कारण और समय आदि अङ्कित रहता है। यह प्रशंसासूचक और योग्यताका परिचायक होता है।

पदकार (सं० पु०) पदविभागं करोति कृ-अण्। वेदका मन्त्रपदविभाजक ग्रन्थकर्त्ता।

पदक्रम (सं० पु०) वेदमन्त्रका पदविभाजकक्रम।

पदक्रमक (सं० क्लो०) पदं क्रमश्च तो वेत्त्यधीते वा वुन्। १ पद और क्रमवेत्ता। २ तद्ग्रन्थाध्येता।

पदग (सं० पु०) पदाभ्यां गच्छतीति गम-ड। १ पदातिक, पैदल चलनेवाला, प्यादा। (त्रि०) २ पद द्वारा गमनकर्त्ता।

पदगति (सं० स्त्री०) पदस्य गतिः। पदसञ्चार।

पदगोत्र (सं० क्लो०) पदानां गोत्रं। भारद्वाजादि पदका गोत्र, भरद्वाज आदि चार ऋषियोंका गोत्र।

पदचतुरूर्द्ध (सं० पु०) छन्दोविशेष, विषमवृत्तोंका एक भेद। इसके प्रथम चरणमें ८, दूसरेमें १२, तीसरेमें १६ और चौथेमें २० वर्ण होते हैं। इसमें गुरु, लघुका नियम नहीं होता। इसके अपीड़, प्रत्यापीड़, मंजरी, लवली और अमृतधारा ये पांच अवान्तर भेद होते हैं।

पदचर (सं० पु०) पैदल, प्यादा।

पदचारी (सं० त्रि०) पैदल चलनेवाला।

पदचिह्न (सं० पु०) वह चिह्न जो चलनेके समय पैरोंसे जमीन पर बन जाता है।

पदच्छेद (सं० पु०) सन्धि और समासयुक्त किसी वाक्यके प्रत्येक पदको व्याकरणके नियमोंके अनुसार अलग अलग करनेकी क्रिया।

पदच्युत (सं० त्रि०) जो अपने पद या स्थानसे हट गया हो, अपने स्थानसे हटा या गिरा हुआ।

पदच्युति (सं० स्त्री०) अपने पदसे हटने या गिरनेकी अवस्था।

पदज (सं० पु०) १ पैरकी उंगलियां। २ शूद्र। (त्रि०) ३ जो पैरसे उत्पन्न हो।

पदजात (सं० क्लो०) पदानां जातं। आख्यात नाम निपात और उपसर्गरूप पदसमूह।

पदज्ञ (सं० त्रि०) पदं जानाति ज्ञा-क। मार्गज्ञ, राह जाननेवाला।

पदज्वल (सं० पु०) ऋषिभेद।

पदगडा—वालिद्वीपवासी ब्राह्मणोंके गुरु वा पुरोहितकी उपाधि। ये लोग जातिसे ब्राह्मण हैं। जब किसीको विद्या, ज्ञान और धर्मकी उन्नतिके लिए पदगडाकी उपाधि ग्रहण करनी होती है, तब उसे गुरुकी अनुमति स्वीकार करनी पड़ती है, उसके साथ साथ और अनेक परीक्षाएं होती हैं। कितने क्रियाकलापोंके बाद उसे पवित्रीकरणके समय अपना मस्तक गुरुके पद पर रखना होता है और गुरुका पादोदक पान करना होता है। बादमें गुरु आते हैं और ब्राह्मण कुमारको एक दण्ड दान करते हैं। दण्ड पानेसे वह सर्वजनपूज्य और सब लोगोंका धर्म उपदेष्टा हो सकता है। दण्ड धारण करनेके कारण ही पदगडा नाम पड़ा है। इनका दूसरा नाम पण्डित भी है। ये लोग कभी कभी पुरोहिताई भी करते हैं। ब्राह्मण, वालिद्वीप शब्द देखो।

पदतल (सं० पु०) पैरका तलवा।

पदता (सं० स्त्री०) पदस्य भावः पद-तल-टाप्। पदत्व, पदका धर्म।

पदत्याग (सं० पु०) अपने पद या ओहदेको छोड़नेकी क्रिया।

पदत्राण (सं० पु०) पैरोंकी रक्षा करनेवाला, जूता।

पदत्रान (हिं० पु०) पदत्राण देखो।

पदती (सं० पु०) पक्षी, चिड़िया।

पददलित (सं० त्रि०) १ पैरोंसे रौंदा हुआ, पैरोंसे कुचला हुआ। २ जो दबा कर बहुत हीन कर दिया गया हो।

पददारिका (सं० स्त्री०) बिवाई नामका पैरका रोग।

पददेवता (सं० स्त्री०) पदानामाख्यातादीनां देवता। आख्यातादिके सोमादि देवता।

पदनिधन (सं० क्ली०) पदमधिकृत्य निधनं। सामभेद।

पदनी (सं० त्रि०) पथप्रदर्शक।

पदन्यास (सं० पु०) पदस्य न्यासः। १ चरणार्पण, पैर रखना, चलना, कदम रखना। पदस्य गोपस्य इव न्यासो यत्र। २ गोक्षुर, गोखरू। ३ तन्त्रोक्त अन्नपूर्णामन्त्रस्थित पदका न्यास, पैर रखनेकी एक मुद्रा। अन्नपूर्णेश्वरी भैरवीकी पूजा और मन्त्रसे पदन्यास करना होता है। तन्त्रसारमें इस न्यासका विषय इस प्रकार लिखा है,—अन्नपूर्णेश्वरी भैरवीपूजाके पहले पूजापद्धतिके अनुसार पूजा करके पदन्यास करना चाहिए। पदन्यासमें विशेषता यह है—एक बार ब्रह्मरन्ध्रसे गुह्यदेश तक, दूसरी बार गुह्यदेशसे ब्रह्मरन्ध्र तक न्यास विधेय है। इस न्यासका विषय ज्ञानार्णवमें भी लिखा है जो इस प्रकार है—पहले ब्रह्मरन्ध्रमें ओं नमः, मुखमें ह्रीं नमः, हृदयमें श्रीं नमः, नासिकामें भगवति नमः, मूलाधारमें क्लीं नमः, भ्रूमें नमोनमः, कण्ठमें माहेश्वरी नमः, नाभिदेशमें अन्नपूर्णे नमः, लिङ्गमें स्वाहा नमः, इस प्रकार न्यास करना होता है।

(तन्त्रसार अन्नपूर्णापूजाप्र०)

पदपंक्ति (सं० स्त्री०) १ पदचिह्न, पदश्रेणी। २ एक वैदिक छन्द जिसके पांच पाद होते हैं और प्रत्येक पादमें पांच वर्ण होते हैं।

पदपद्धति (सं० स्त्री०) पदचिह्न।

पदपल्लटी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका नाच।

पदपाठ (सं० पु०) पदस्य पाठः। वेदपद-विभाजक ग्रन्थभेद।

पदपूरण (सं० क्ली०) पदस्य पूरणं। १ पदका पूरण, पादपूरण। (त्रि०) २ पदपूरणविशिष्ट।

पदबन्ध (सं० पु०) पदचिह्न, पैरका निशान।

पदभञ्जन (सं० क्ली०) विभक्तियुक्तानां पदानां भञ्जनं विश्लेषो यत्र वा पदानि भज्यन्तेऽनेन भञ्जकरणे ल्युट्। निरुक्त, गूढ़ार्थ शब्दव्याख्या।

पदभञ्जिका (सं० स्त्री०) पदानां भञ्जिका विश्लेषिका। पञ्जिका, टिप्पणी।

पदम—आसाम अञ्चलवासी पार्वतीय जातिभेद। बर वा आबर जाति इसके अन्तर्गत है। आबर देखो।

पदम (हिं० पु०) १ पद्म देखो। २ बादामकी जातिका एक जङ्गली पेड़। यह सिन्धुसे आसाम तक २५००से ७००० फुटकी ऊंचाई तक तथा खासियाकी पहाड़ियों और उत्तर बरमामें अधिकतासे पाया जाता है। कहीं कहीं इस पेड़को लगाते भी हैं। इसमेंसे जो अधिक परिमाणमें गोंद निकलता है, वह किसी काममें नहीं आता। इसमें एक प्रकारका फल लगता है जिसमेंसे कडुए बादामके तेलकी तरहका तेल निकलता है। ये सब

फल खाये जाते हैं और कहीं कहीं फकीर लोग उनकी मालाएं बना कर गलेमें पहनते हैं। यह फल शराब बनानेके लिये विलायत भी भेजा जाता है। इस पेड़की लकड़ीसे छड़ियां और आरायशी सामान बनाये जाते हैं। कहते हैं, कि गर्भ न रहता हो तो इसकी लकड़ी घिस कर पीनेसे गर्भ रह जाता है और यदि गर्भ गिर जाता है तो स्थिर हो जाता है।

विशेष विवरण पद्मकाष्ठमें देखो

पदमकाठ (हिं० पु०) पदम देखो।

पदमचल (हिं० पु०) रेवन्द चीनी।

पदमण (हिं० स्त्री०) स्त्री।

पदमनाभ (हिं० पु०) १ विष्णु। २ सूर्य।

पदमाकर (हिं० पु०) जलाशय, तालाब।

पदमाला (सं० स्त्री०) पदानां माला। १ पदश्रेणी। २ सोहनशीलाविद्या।

पदमूल (सं० पु०) पैरका तलवा।

पदमैत्री (सं० स्त्री०) अनुप्रास, वर्णमैत्री, वर्णसाम्य। जैसे, मल्लिकान मंजुल मलिन्द मतवारे मिले मंद मंद मारुत मुहीम मनसा की है।

पदम्मी (हिं० पु०) गज, हाथी।

पदयोजना (सं० स्त्री०) कविताके लिये पदोंका जोड़ना, पद बनानेके लिये शब्दोंको मिलाना।

पदयोपन (सं० त्रि०) १ पदगतिरोध। २ पदस्खलन।

पदर (हिं० पु०) १ एक प्रकारका पेड़। २ घोड़ोंदारों के बैठनेका स्थान।

पदरथी (सं० पु०) पादुका, खड़ाऊं, जूता।

पदरवन एक प्राचीन जनपद। पावा देखो।

पदरिपु (हिं० पु०) कण्टक, कांटा।

पदल—दाक्षिणात्यवासी गौड़जातिकी एक शाखा। इनकी पचड़ी, प्रधान वा देसाई आदि कई एक जातीय उपाधियां हैं। उच्च श्रेणीके गोंडोंको धर्मोपदेश देना और भाटका काम करना ही इनका प्रधान व्यवसाय है। इस जातिसे उत्पन्न एक मिश्रजाति देखी जाती है जो वाद्यकार और तन्तुवायका काम करती है।

पदवाद्य (सं० पु०) प्राचीन कालका एक प्रकारका ढोल।

पदवाना (हिं० क्रि०) पदानेका काम दूसरेसे कराना।

पदवाय (सं० त्रि०) पथप्रदर्शक, राह दिखानेवाला।

पदवि (सं० स्त्री०) पद्यते गम्यतेऽनया पद गतौ पद 'पद्यटिभ्यामवि' इति अवि। १ पद्धति, परिपाटी, तरीका। २ पथ्य रास्ता। ३ उपनाम, उपाधि। ४ वह प्रतिष्ठा या मानसूचक पद जो राज्य अथवा किसी संस्था आदिकी ओरसे किसी योग्य व्यक्तिको मिलता है, उपाधि, खिताब। ५ निर्णय।

पदविक्षेप (सं० पु०) पदस्य विक्षेपः। पदन्यास।

पदविग्रह (सं० पु०) पदेन विग्रहो यत्र। १ समास, समासवाक्य।

पदविच्छेद (सं० पु०) पदस्य विच्छेदः। पदका विच्छेद, पदका विश्लेषण।

पदविद् (सं० त्रि०) पदं वेत्ति विद्-क्विप्। पदवेत्ता, पदज्ञ।

पदवी (सं० स्त्री०) पदवी पक्षे ङीष्। १ पन्था, राह, रास्ता। २ पद्धति, परिपाटी, तरीका। ३ पद, उपाधि, खिताब। ४ ओहदा, दरजा। ५ क्षितष्ठीतुप।

पदवीय (सं० क्ली०) वस्तुका अनुसन्धान।

पदवृत्ति (सं० स्त्री०) पदद्वयका मध्यच्छेद।

पदव्याख्यान (सं० क्ली०) पदस्य व्याख्यानं यत्र। १ वेदमन्त्रका विभाजक ग्रन्थभेद। तस्य व्याख्यानग्रन्थ तत्र भवो वा ऋगयनादिलादण्। (त्रि०) २ पदव्याख्यान ग्रन्थको व्याख्या वा तत्र भव।

पदशस (सं० अव्य०) क्रमशः, पद पदमें।

पदश्रेणि (सं० स्त्री०) पदानां श्रेणिः। पदश्रेणि, पदपंक्ति।

पदष्ठीव (सं० क्ली०) पादौ च अष्ठीवन्तौ च तयोः समाहारः, (अचतुरविचतुरेति। पा ५।४।७७) इति निपातनात् सिद्धं। पाद और जानुका समाहार।

पदसंघाट (सं० पु०) पदसंग्राहक ग्रन्थकर्त्ता वा टीकाकार, वह जो शब्द या पद संग्रह करता हो।

पदसंहिता (सं० स्त्री०) पदसंयोजना।

पदसधातु (सं० क्ली०) गीतका प्रसरणभेद।

पदसन्धि (सं० पु०) श्रुतिमधुर पदसंयोजना।

पदसमूह (सं० पु०) १ पदश्रेणी। २ कविताचरण, पदपाठ।

पदस्तोभ (सं० पु०) पदस्थितः स्तोभः। पदमध्य पठित निरर्थक शब्दभेद।

पदस्थ (सं० त्रि०) पदे तिष्ठति स्था-क। १ दण्डायमान, जो अपने पैरोंके बल खड़ा हो। २ कर्मपद पर अधिष्ठित वा नियुक्त, जो किसी पद पर नियुक्त हो। ३ जो पैरोंके बल चल रहा हो।

पदस्थान (सं० क्ली०) पदचिह्नयुक्त स्थान।

पदस्थित (सं० त्रि०) पदस्थ, जो अपने पैरोंके बल खड़ा हो।

पदाक (सं० पु०) सर्प, सांप।

पदाङ्क (सं० पु०) पदस्य अङ्कश्चिह्नं। क्रमाङ्क, पादचिह्न, पैरोंका निशान जो चलनेके समय बालू या कीचड़ आदि पर बन जाता है।

पदाङ्गी (सं० स्त्री०) १ हंसपदीलता। २ रक्तलज्जालुका, लाल रंगका लजालू।

पदाजि (सं० पु०) पादाभ्यामजतीति अज-गतौ-इन्। (पादे च। उण् ४।१३१) पादशब्दस्थाने पदादेशः। पदातिक, पैदल सिपाही।

पदात (सं० पु०) पदाभ्यामतति गच्छतीति पद्-अत्-अच्। पदातिक।

पदाति (सं० पु०) पादाभ्यामतति गच्छतीति पाद-अति (पादे च। उण् ४।१३१) पादशब्दस्थाने पदादेश। पदातिक, पैदल सिपाही। पर्याय—पत्ति, पतग, पादातिक, पदाजि, पद्ग, पदिक, पादात्, पदातिक, पदात्, पायिक, शवरालि।

पदातिक (सं० पु०) पदाति स्वार्थे कन्। १ पदाति, पैदल सिपाही। २ वह जो पैदल चलता है।

पदातिन् (सं० पु०) पदातिसैन्य।

पदातीय (सं० पु०) पदाति।

पदात्यध्यक्ष (सं० पु०) पदातीनामध्यक्षः। पदाति सेनाका अधिपति।

पदादि (सं० पु०) पदस्य आदिः। पदका आदि।

पदादिका (हिं० पु०) पैदल सेना।

पदाद्यविद् (सं० पु०) पदादिं न वेत्ति विद-क्विप्। अपकृष्ट छात्र, वह छात्र जो पदका कुछ भी उच्चारण न कर सकता हो।

पदाधिकारी (सं० पु०) वह जो किसी पद पर नियुक्त हो, ओहदेदार, अफसर।

पदाध्ययन (सं० क्ली०) पदस्य अध्ययन। पदका अध्ययन, पद-पाठके अनुसार वेदका पठन।

पदानत (सं० त्रि०) चरण पर पतित, एकान्त अधीन।

पदाना (हिं० क्रि०) १ पादनेका काम दूसरेसे कराना। २ बहुत अधिक दिक करना, तंग करना, छकाना।

पदानुग (सं० पु०) पदेऽनुगच्छति अनु-गम-ड। पदानुसरण, वह जो किसीका अनुगमन करता हो।

पदानुराग (सं० पु०) पदे अनुरागः। पदमें अनुरक्ति, देवचरणमें भक्ति।

पदानुशासन (सं० क्ली०) पदानि अनुशिष्यन्तेऽनेन अनु-शास-करणे ल्युट्। शब्दानुशासनव्याकरण।

पदानुस्वार (सं० पु०) सामभेद। निधनस्वरको स्वार कहते हैं। यह स्वार दो प्रकारका है, क्षायिकस्वार और पदानुस्वार। वामदेव्य पद क्षायिकस्वार है और औशन पदानुस्वार।

पदान्त (सं० पु०) पदस्य अन्तः अवसानं। १ पदका अवसान, पदका शेष। २ व्याकरणमें जिसकी पदसंज्ञा की गई है, उसका अन्त। व्याकरणके कितने प्रत्ययादि पदान्त विषयमें और कितने अपदान्त विषयमें हुआ करते हैं।

पदान्तर (सं० क्ली०) अन्यत्पदं पदान्तरं। १ भिन्न पद, दूसरा पद। २ स्थानान्तर।

पदान्तीय (सं० त्रि०) पदान्त सम्बन्धी।

पदाभिषेक (सं० त्रि०) पदे अभिषिक्तः। पद पर स्थापित।

पदाम्भोज (सं० क्ली०) पदारविन्द, पादपद्म।

पदार (सं० पु०) पदं ऋच्छति प्राप्नोतीति ऋ-अच्। पादधूलि, पैरोंकी धूल।

पदारविन्द (सं० क्ली०) पादपद्म।

पदार्घ्य (सं० पु०) वह जल जो किसी अतिथि या पूज्यको पैर धोनेके लिये दिया जाय।

पदार्थ (सं० पु०) पदानां घटपटादीनां अर्थोऽभिधेयः। शब्दाभिधेय द्रव्यादि। पर्याय—भाव, धर्म, तत्त्व, सत्व, वस्तु।

दर्शनभेद इके मतभेदसे पदार्थ भी नाना प्रकारका है। किसी दर्शनमें छः पदार्थ, किसीमें सात और किसीमें सोलह पदार्थ माने गये हैं। वस्तुमात्र ही पदार्थ पदवाच्य है। गौतमादि ऋषियोंने तपःप्रभावसे जागतिक वस्तुनिचयको पहले कई एक श्रेणियोंमें विभक्त किया है। किसी किसी दर्शनमें पदार्थकी संख्या जो निरूपित हुई है, उसका विषय बहुत संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है। पदार्थ तत्त्व वा सत्त्व एक ही पदार्थको किसी दर्शनमें पदार्थ और किसीमें तत्त्व बतलाया है। आधुनिक नैयायिकोंके मतसे पदार्थ ७ प्रकारका है।

"द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकं।
समवायस्तथा भावः पदार्थाः सप्तकीर्तिताः॥"

(भाषा परि० २)

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव यही सात पदार्थ है। नव्य नैयायिकोंने पदार्थको ७ भागोंमें विभक्त कर अखिल पदार्थको इन सात पदार्थोंके मध्य निविष्ट किया है। वैशेषिकदर्शनकृत् कणाद सप्त पदार्थोंको नहीं मानते। अभाव भिन्न पूर्वोक्त छः पदार्थ ही उनका अभिमत है। वे अभावको पृथक् पदार्थ नहीं स्वीकारते। परवर्त्ती नैयायिकोंने घट,पदार्थको भाव पदार्थ बतलाया है। केवल भाव पदार्थ स्वीकार करनेसे अभावको उपलब्धि नहीं होती, इसीसे अभावको एक और पृथक् पदार्थमें स्वीकार कर उन्होंने सप्त पदार्थ निर्देश किये हैं।

इन सात पदार्थके अतिरिक्त और कोई पदार्थ ही नहीं है। इन्हींके मध्य तावत् पदार्थ अन्तर्भूत होगा। कोई कोई इन सात पदार्थोंके भिन्न तमः 'अन्धकार'को एक और पृथक् पदार्थ बतलाते हैं। किन्तु अन्धकारादि स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है, क्योंकि आलोकका अभाव ही अन्धकार है। इसके सिवा अन्धकार पदार्थमें और कोई प्रमाण नहीं है। किन्तु कोई कहते हैं 'नीलं तमश्चलति' अर्थात् नीलवर्ण अन्धकार चलता है, इस प्रकार जो व्यवहार हुआ करता है, वह भ्रमात्मक है। सच पूछिये, तो अन्धकार पृथक् पदार्थ हो ही नहीं सकता, क्योंकि अभाव पदार्थमें नीलगुण और चलनक्रिया सम्भव नहीं है। सभी पदार्थोंका ज्ञान हो सकता है और उन्हें निर्देश तथा प्रमाणसिद्ध कर सकते हैं, इस कारण सभी पदार्थ उभय वाच्य और प्रमेयरूपमें निर्देश किये जाते हैं।

पहले जिन सात पदार्थोंका जिक्र किया, उनका विषय इस प्रकार है :—

द्रव्यपदार्थ ८ हैं; यथा—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन।

गुण पदार्थ २४ हैं; यथा—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या' परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, यत्न, गुरुत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म और अधर्म।

नील पीतादि वर्णका नाम रूप है। यह रूप वर्णभेदसे कई प्रकारका है। तर्कामृत ग्रन्थके मतसे शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, कपिश और चित्र ये सात प्रकारके रूप हैं। जिस वस्तुके रूप नहीं है, वह दृष्टिगोचर नहीं होती। इसीसे रूप ही दर्शनका कारण है।

रस छः प्रकारका है, कटु, कषाय, तिक्त, अम्ल, लवण और मधुर। गन्ध दो है, सौरभ और असौरभ। स्पर्श तीन प्रकारका है—उष्ण, शीत और अनुष्णाशीत। संख्या एकत्व द्वित्व और त्रित्वादिके भेदसे नाना प्रकारकी है। संख्या स्वीकार नहीं करनेसे किसी प्रकारकी गणना नहीं कर सकते। क्योंकि इस प्रकारकी गणना संख्यापदार्थके अवलम्बनसे ही होती है। परिमाण चार प्रकारका है—स्थूल, सूक्ष्म, दीर्घ और ह्रस्व। जिसका अवलम्बन करके घट पटसे पृथक् है, ऐसा व्यवहार हुआ करता है, उसको पृथक्त्व कहते हैं। असन्निकृष्ट वस्तुद्वयके मिलन और सन्निकृष्ट वस्तुद्वयके वियोगको यथाक्रम संयोग और विभाग कहते हैं। परत्व और अपरत्व प्रत्येक दैशिक और कालिकके भेदसे दो प्रकारका है—दैशिक परत्व और दैशिक अपरत्व। दैशिक परत्वमें अमुक नगरसे अमुक नगर दूर है, इस दूरत्वका ज्ञान होता है और दैशिक अपरत्वमें अमुक स्थानसे अमुक स्थान निकट है, यह समझा जाता है। इस प्रकार कालिक परत्व और अपरत्व यथाक्रम ज्येष्ठत्व और कनिष्ठत्व व्यवहारके उपयोगी है। बुद्धि शब्दसे ज्ञानका बोध होता है। ज्ञान दो प्रकारका है जिनमेंसे

यथार्थ ज्ञान प्रमा और अयथार्थ ज्ञान अप्रमापदवाच्य है। निश्चय और संशयके भेदसे भी ज्ञानको दो भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। संशय नाना कारणोंसे हुआ करता है। सुख और दुःख यथाक्रम धर्म और अधर्म द्वारा उत्पन्न होता है। सुख सभी प्राणियोंका अभिप्रेत है और दुःख अनभिप्रेत। आनन्द भी चमत्कारादिके भेदसे सुख और क्लेशादि दुःख नाना प्रकार का है। अभिलाषको ही इच्छा कहते हैं। सुख और दुःखाभावमें जो इच्छा है, वह उन सब पदार्थोंका ज्ञान होनेसे होती है। जिस विषयसे दुःख होनेकी सम्भावना रहती है, उस विषयमें द्वेष उत्पन्न होता है और यदि उस विषयसे किसी प्रकारकी इष्टसिद्धिकी सम्भावना न रहे, तो भी द्वेष उपजता है। यत्न तीन प्रकारका है—प्रवृत्ति, निवृत्ति और जीवनयोनि। जिस विषयमें जिसकी चिकीर्षा रहती है। उस विषयमें उसकी प्रवृत्ति होती है और जिसे जिस विषयमें द्वेष रहता है, वह उस विषयसे निवृत्त होता है। इसीसे प्रवृत्ति और निवृत्तिका यथाक्रम चिकीर्षा और द्वेष कारण है। जिस यत्नके रहनेसे प्राणी जीवित रहता है, उसे जीवनयोनियत्न कहते हैं। जीवनयोनियत्न नहीं रहनेसे प्राणी क्षण काल भी जीवित नहीं रह सकता। इसी यत्न द्वारा प्राणियोंके श्वास प्रश्वासादि निर्वाहित होते हैं। गुरुत्व पतनका कारण है। जिसके गुरुत्व नहीं है, वह पतित नहीं होता, जैसे तेजः प्रभृति। द्रवत्व क्षरणका हेतु है, यह स्वाभाविक और नैमित्तिकके भेदसे दो प्रकारका है। जलका द्रवत्व स्वाभाविक और पृथिव्यादिका द्रवत्व निमित्ताधीन हुआ करता है। जलीय जिस गुणका सद्भाव होता है और जिसकी द्वारा सक्तु प्रभृति चूर्ण वस्तु पिण्डीकृत होती है, उसे स्नेह कहते हैं। स्नेह उत्कृष्ट और अपकृष्टके भेदसे दो प्रकारका है। उत्कृष्ट स्नेह अग्निज्वलनका और अपकृष्ट स्नेह अग्नि निर्वाणका कारण है। यथा—तैलान्तर्वर्त्ती जलीय भागका उत्कृष्ट स्नेह रहनेसे उसकी द्वारा अग्नि प्रज्वलित होता है और अन्यान्य जलका अपकृष्ट स्नेह रहनेसे उसकी द्वारा अग्नि निर्वापित होती है। संस्कार तीन प्रकारका है, वेग, स्थितिस्थापक और भावना। वेग क्रियादि द्वारा उत्पन्न हुआ करता है। अदृष्ट धर्म और अधर्म है तथा शुभादृष्ट पुण्यादि पदवाच्य है। यज्ञ गङ्गास्नान और यागादि द्वारा उत्पन्न होता है। पापकर्मसे अशुभादृष्ट होता है। शब्द दो प्रकारका है, ध्वनि और वर्ण। मृदङ्गादि द्वारा जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे ध्वनि और कण्ठादिसे जो शब्द उत्पन्न होता है, उसे वर्ण कहते हैं। गुण पदार्थ द्रव्यमात्रमें रहता है और क्रियामें नहीं। ये २४ गुण क्षिति प्रभृति द्रव्य पदार्थ हैं।

कर्म—क्रियाको कर्म कहते हैं। यह कर्म पदार्थ उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण और गमनके भेदसे पांच प्रकारका है। ऊर्ध्वप्रक्षेपको उत्क्षेपण, विस्तृत वस्तुओंके सङ्कोच करनेको आकुञ्चन और सङ्कुचित वस्तुओंके विस्तार करनेको प्रसारण कहते हैं। भ्रमण, ऊर्ध्वज्वलन, तिर्यग्गमन आदिके गमनसे ही अन्तर्भाव होगा, यह स्वतन्त्र क्रिया नहीं है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन इन पांच द्रव्योंमें क्रिया रहती है।

जाति पदार्थ नित्य है और अनेक वस्तुओंमें रहता है। जैसे घटत्व जाति सभी घटमें है। पर और अपरके भेदसे जाति दो प्रकारकी है। जो जाति अधिक स्थानमें रहती है, उसे परजाति और जो अल्पदेशमें रहती है, उसे अपर जाति कहते हैं। सत्तानामक जाति द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनोंमें है, इसीसे उसका परजाति नाम पड़ा है। घटत्व और नीलत्व आदि जो जाति है, वह अपर जाति है।

विशेष पदार्थ नित्य है, आकाश और परमाणु आदि एक एक नित्य द्रव्यमें एक एक विशेष पदार्थ है। यदि विशेष पदार्थ न रहता, तो कभी भी परमाणुओंकी परस्पर विभिन्नरूपताका निश्चय नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार अवयवी वस्तुद्वयके परस्परको अवयवगत विभिन्नता देख कर विभिन्नरूपताका निश्चय किया जाता है, उसी प्रकार परमाणु आदिके जब अवयव नहीं है, तब किस प्रकार उनकी विभिन्नताका निश्चय किया जा सकता? किन्तु विशेष पदार्थ स्वीकार करनेसे इस प्रकारका सन्देह नहीं रहता। कारण ऐसा होनेसे इस

परमाणुमें जो विशेष है, वह अन्य परमाणुमें नहीं है, अतः वह परमाणु अन्य परमाणुसे भिन्न है और अन्य परमाणुमें जो विशेष है, वह अपर परमाणुमें नहीं है। इस कारण अन्य परमाणु अपर परमाणुसे पृथक् है। इसी रीतिसे जितने परमाणु हैं सबोंकी परस्पर विभिन्नता निरूपित होती है।

समवाय—द्रव्यके साथ गुण और कर्मका ; द्रव्य, गुण और कर्मके साथ जातिका ; नित्य द्रव्यके साथ विशेष पदार्थका और अवयवके साथ अवयवीका जो सम्बन्ध है, उसे समवाय कहते हैं।

यही षट् पदार्थ है। इसके अलावा अभावपदार्थको ले कर सप्तपदार्थ कल्पित हुआ है। अभाव दो प्रकारका है, संसर्गाभाव और अन्योन्याभाव। घटइसे पुस्तक भिन्न है, पुस्तक घट नहीं है, लेखनीमें घटका भेद है इत्यादि स्थलमें जो अभाव प्रतीयमान होता है, उसे संसर्गाभाव कहते हैं। अत्यन्ताभाव, ध्वंसाभाव और प्रागभावके भेदसे संसर्गाभाव तीन प्रकारका है। जिस वस्तुको जिससे उत्पत्ति होगी, उस वस्तुका उसमें पहले जो अभाव रहता है, उसे प्रागभाव कहते हैं। प्रागभावकी उत्पत्ति नहीं है, किन्तु विनाश है। विनाशको ध्वंस कहते हैं। नित्य संसर्गाभावत्व ही अत्यन्ताभाव है।

गौतमने सोलह पदार्थ स्वीकार किये हैं। यथा—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान। गौतमके मतसे इनके अलावा और कोई पदार्थ नहीं है। जितने पदार्थ हैं, वे सभी इन्हीं सोलहके अन्तर्गत लिये गये हैं। परवर्त्ती नैयायिकोंने कणाद और गौतमके मतको न मान कर सात पदार्थ स्थिर किये हैं।

न्याय और वैशेषिकदर्शन शब्द देखो।

रामानुजने अपने दर्शनमें तीन प्रकारका पदार्थ बतलाया है, चित्, अचित् और ईश्वर। चित् जीवपदवाच्य है, भोक्ता, असङ्कुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल ज्ञानस्वरूप और नित्य है ; अनादिकर्मरूप अविद्यावेष्टित भगवदाराधना और तत्पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव। केशाग्रको सौ भागोंमें विभक्त कर पुनः उसे सौ भाग करनेसे जितना सूक्ष्म होता है, जीव उतना ही सूक्ष्म है।

अचित् भोग्य और दृश्य पदवाच्य है, अचेतन स्वरूप, जड़ात्मक, जगत् और भोग्यत्वविकारास्पदत्वादि स्वभावशाली है। यह अचित् पदार्थ तीन प्रकारका है—भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसका भोग किया जाता है, उसे भोग्य ; जिसके द्वारा भोग किया जाता है, उसे भोगोपकरण और जिसमें भोग किया जाता है उसे भोगायतन कहते हैं।

ईश्वर सबोंके नियामक तथा हरिपदवाच्य हैं। ये जगत्के कर्त्ता हैं, उपादान हैं, सबोंके अन्तर्यामी हैं और अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य तथा वीर्यादि-सम्पन्न हैं। चित् और अचित् सभी वस्तु इनके शरीर स्वरूप हैं। पुरुषोत्तम वासुदेव आदि इन्हींकी संज्ञाएं हैं। इस दर्शनके मतसे पूर्वोक्त तीन पदार्थोंके अतिरिक्त और कोई भी पदार्थ नहीं है।

शैवदर्शनके मतसे भी पदार्थ तीन प्रकारका है, पति, पशु और पाश। पतिपदार्थ भगवान् शिव हैं और पशुपदार्थ जीवात्मा। पाशपदार्थ मल, कर्म, माया और रोधशक्तिके भेदसे चार प्रकारका है। स्वाभाविक अशुचिको मल, धर्माधर्मको कर्म, प्रलयावस्थामें सभी पदार्थ जिसमें लीन हो जाते हैं और सृष्टिकालमें जिससे उत्पन्न होते हैं, उसे माया कहते हैं। इसी पाशत्रयवद्को 'संकल' कहते हैं।

आर्हतोंके मध्य पदार्थ वा तत्त्वके विषयमें अनेक मतभेद हैं। किसीके मतसे तत्त्व दो हैं, जीव और अजीव। जीव बोधात्मक है और अजीव अबोधात्मक। किसीके मतसे पञ्चतत्त्व, किसीके मतसे सप्ततत्त्व और किसीके मतसे नवतत्त्व स्वीकृत हुआ है।

सांख्यदर्शनके मतसे—प्रकृति, प्रकृतिविकृति, विकृति और अनुभय ये चार प्रकारके पदार्थ हैं। मूल प्रकृति और महदादि प्रकृति, षोड़शविकृति तथा अनुभय पुरुष है। सांख्यके मतसे इसके अलावा और कोई पदार्थ नहीं है। पातञ्जलदर्शनमें भी ये सब पदार्थ हैं और इनके अतिरिक्त ईश्वर पृथक् पदार्थ माने गये हैं।

वेदान्तदर्शनमें केवल दो पदार्थ हैं, आत्मा और अनात्मा। अनात्मा माया पदवाच्य है।

विशेष विवरण वेदान्त शब्दमें देखो।

वैद्यकके मतसे पदार्थ पांच हैं—रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति।

"द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पदार्थाः पञ्च तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च॥"
(भावप्रकाश)

२ पुराणानुसार धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। ३ पदका अर्थ, शब्दका विषय। ४ वस्तु, चीज।

पदार्थवाद (सं० पु०) वह वाद या सिद्धान्त जिसमें पदार्थ, विशेषतः भौतिक पदार्थोंको ही सब कुछ माना जाता हो और आत्मा अथवा ईश्वरका अस्तित्व स्वीकार न होता हो।

पदार्थवादी (सं० पु०) वह जो आत्मा या ईश्वर आदिका अस्तित्व न मान कर केवल भौतिक पदार्थोंको ही सब कुछ मानता हो।

पदार्थविज्ञान (सं० पु०) वह विद्या जिसके द्वारा भौतिक पदार्थों और व्यापारोंका ज्ञान हो, विज्ञानशास्त्र।

पदार्थविद्या (सं० स्त्री०) जिस शास्त्रमें पदार्थके गुणागुणका विचार कर उसके कार्यादि वर्णित हुए हैं उसे पदार्थविद्या वा Natural Philosophy कहते हैं। जागतिक पदार्थोंका विषय जाननेमें पहले पदार्थ क्या है, इसका जानना आवश्यक है। पदार्थ शब्दका अर्थ है, पदका अर्थ। पदको अर्थ सङ्गतिसे होनेसे जो ज्ञान उपलब्ध होती है, उसीको पदार्थ कह सकते हैं। द्रव्य गुण या कर्म प्रभृति सभी पदके अर्थ द्वारा प्रकाश किये जाते हैं। सुतरां ये सभी पदार्थ पदवाच्य हैं। शुद्ध वस्तु या द्रव्य अर्थमें भी शब्दका प्रचार देखा जाता है। इस अर्थमें पदार्थ दो प्रकारका है, चित् और अचित् अर्थात् चेतन और अचेतन।

जिस पदार्थमें चैतन्य है वह चित् वा चेतन और जिसमें चैतन्य नहीं है वही अचित् अर्थात् अचेतन पदार्थ है। एकमात्र परमात्मा ही चिन्मय, विशुद्ध और चैतन्य स्वरूप हैं। जीवोंकी आत्मा चैतन्यमय है सही, पर वह जड़मय देहधारी है। सुतरां वह जड़ और चित यही उभयभावापन्न है। फिर मिट्टी, पत्थर आदि जो सब वस्तु चेतनहीन हैं उन्हें अचेतन वा जड़पदार्थ कहते हैं। इत्यादि उद्भिज्जको 'उद्भिद्' रूपमें कोई कोई स्वतन्त्र पदार्थ मानते हैं।

चक्षु, रसना, नासिका, त्वक् और कर्ण इन पांच ज्ञानेन्द्रिय द्वारा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द आदि प्रत्यक्ष ज्ञानकी अनुभूति होती है। इन सब प्रत्यक्ष ज्ञानके कारणस्वरूप चैतन्यशून्य पदार्थका नाम जड़पदार्थ है। मूल, मिश्र और यौगिकभेदसे पदार्थ तीन प्रकारका है।

रासायनिकोंके मतसे जड़पदार्थको विश्लिष्ट करनेसे जो दो वा दोसे अधिक अन्य प्रकारके जड़पदार्थ पाये नहीं जाते, वही मूल जड़पदार्थ है। रसायनशास्त्रज्ञोंके मतसे स्वर्ण, रौप्य, लौह, ताम्र पारद और गन्धक आदि द्रव्य ही मूलपदार्थ हैं। क्योंकि इन सब पदार्थोंको विश्लिष्ट करनेसे तत्तत् द्रव्यजात पदार्थ छोड़ कर अन्य प्रकारका कोई भी द्रव्य निकाला नहीं जा सकता। क्षिति, अप् और वायु विश्लेषणशील हैं, क्योंकि इन सब द्रव्योंसे अन्यविध पदार्थ निकाला जाता है। युरोपवासी जड़विज्ञानविद्गण तेजको स्वतन्त्र पदार्थ नहीं मानते। व्योम शब्दसे शून्य आकाश पदार्थका ही बोध होता है, किन्तु उसका अर्थ शून्य वा नभोमण्डल नहीं है।

दो अथवा दोसे अधिक मूलपदार्थ एक दूसरेके साथ रासायनिक प्रक्रियायोगमें संयुक्त हो कर जो भिन्न धर्माक्रान्त पदार्थ उत्पादन करते हैं उसका नाम यौगिकपदार्थ है। फिर जहां दो वा दोसे अधिक भिन्नजातीय द्रव्य एक दूसरेके साथ रासायनिक संयोगमें संयुक्त न हो कर आपसमें संयुक्त अथवा मिल जाते हैं, वहां इस प्रकारके मिलनसे जो द्रव्य उत्पन्न होता है उसे मिश्रपदार्थ कहते हैं। मिश्रपदार्थमें उनके उपादानभूत पदार्थके अनेक गुण रहते हैं, किन्तु यौगिक पदार्थके गुणके साथ उनके उपादानभूत मूलपदार्थके गुणका कोई सादृश्य नहीं देखा जाता। जलयौगिक पदार्थ है। क्योंकि अम्लजन और जलजन (Hydrogen and Oxygen) वायु इसको उपादान है। दोनोंके रासायनिक संयोगसे जलकी उत्पत्ति है। इसके गुणके साथ उनके गुणका कोई सादृश्य नहीं देखा जाता। वायु

राशि मिश्र पदार्थ है; क्योंकि वायुराशिका प्रधान उपादान अम्लजन है। अम्लजन और यवक्षारजन (Oxygen and Nitrogen) दोनों वायु रासायनिक संयोगसे संयुक्त न हो कर केवल मिली हैं। सुतरां वायुराशिमें उभयगुणका अस्तित्व पृथक् पृथक् रूपमें प्रत्यक्षीभूत होता है।

पदार्थके सूक्ष्मतम अंशको परमाणु कहते हैं। इन सूक्ष्म परमाणुसमष्टिके योगसे सभी जड़ पदार्थकी उत्पत्ति हुई है। वैशेषिक दर्शनकारने सबसे पहले इस मतका प्रचार किया। वे कहते हैं "जिसके स्वयं अवयव नहीं है, अथच जिस परम्परामें सभी अवयव है और यावत् सूक्ष्मपदार्थका शेष सीमास्वरूप है, उसका नाम परमाणु है। सभी परमाणु आकर्षण और विकर्षण गुणसम्पन्न हैं।" परमाणुओंका नाश नहीं है।

अणु, परमाणु और वैशेषिक देखो।

कठिन, तरल और वायवीय (Solid, liquid and Gas)-के भेदसे जड़ वस्तुकी अवस्था तीन प्रकारकी है कठिन अवस्थामें जड़ वस्तुके अणुओंका दृढ़ सम्बन्ध रहता है, किन्तु तरल और वायवीय द्रव्योंके अणु विरल विनिवेशवशतः सहजमें विच्छिन्न हो जाते हैं। इष्टकादि कठिन द्रव्य है, जल तरल और कठिन तथा तरल वस्तुमें तापके योगसे जो वायवीय द्रव्य उत्पन्न होता है, उसे वाष्प कहते हैं। वायुराशिका वायवीय भाव स्वाभाविक है और जलीय वाष्प आदिका वायवीय भाव नैमित्तिक।

जड़पदार्थमात्र ही अचेतन है, निश्चेष्ट, स्थानव्यापक और मूर्त्तिविशिष्ट है। सुतरां अचेतनत्व, निश्चेष्टत्व, स्थानव्यापकत्व और मूर्त्तत्व जड़के ये चार एक स्वाभाविक धर्म हैं। जड़पदार्थमात्रमें ही ये सब गुण पाये जाते हैं। सूक्ष्म, स्थूल, परमाणु, मूल, मिश्र वा यौगिक, कठिन, तरल आदि यावतीय पदार्थोंमें इन प्रकारके गुण नहीं है अथच जड़ पदार्थ है, ऐसे पदार्थोंका अस्तित्व असम्भव है। जो गुण शुद्ध कठिन द्रव्यसे देखा जाता है वह कठिन द्रव्यका असाधारण वा विशेष धर्म है और पूर्वोक्त गुण विविध भावापन्न सभी द्रव्योंमें लक्षित होते हैं, इस कारण वह कठिनादि जड़द्रव्यका साधारण धर्म है। विभाज्यता और सान्तरता-गुण परमाणुका धर्म नहीं है, किन्तु परमाणु समष्टिरूप स्थूल पदार्थमात्रके ही कठिन, तरल और वायवीय सभी अवस्थाओंमें उक्त दो गुण लक्षित होते हैं। सुतरां वे दो जड़के स्वाभाविक धर्म नहीं होने पर भी कठिन, और तरल वायवीय साधारण धर्म हैं। स्थानव्यापकत्व जड़त्व, विभाज्यत्व और सान्तरत्व ये सब जड़ पदार्थके साधारण गुणोंमें प्रधान हैं। स्थानावरोधकत्व और मूर्त्तत्व, स्थानव्यापकत्व गुणसापेक्ष है। यदि सभी द्रव्य स्थानव्यापक न होते, तो वे स्थानावरोधक नहीं हो सकते और न उनके आकारकी कोई मूर्त्ति हो रहती। चैतन्य-शून्यत्व और निश्चेष्टत्व ये दोनों ही गुण जड़त्व शब्द द्वारा सूचित होता है। फिर आकुञ्चनीयता, प्रसारणीयता, स्थितिस्थापकता और विभाज्यता आदि गुण सान्तरता गुण-सापेक्ष हैं।

जड़पदार्थमात्र ही कुछ स्थानमें व्यापित हो कर रहता है। जिस गुणके कारण जड़ पदार्थ सभी स्थानोंमें व्यापित रहते हैं, उसका नाम है स्थानव्यापकता। इसी स्थानव्यापकता गुणसे सभी जड़द्रव्य तीन और विस्तृत हो कर स्थानको अधिकार करते हैं। इस प्रकार विस्तृत रह कर जड़ वस्तु जिस स्थानको अधिकार करती है, उसे 'आयतन' कहते हैं। जिन सब गुणोंसे सभी जड़द्रव्य अपने अपने अधिकृत स्थानमें अन्य द्रव्यकी अवस्थितिका अवरोध उत्पन्न करते हैं, उसका नाम स्थानावरोधकता है; जैसे किसी जलपूर्ण पिचकारीका मुंह बंद कर यदि उसका अर्गल दबाया जाय, तो पिचकारीके भीतर अर्गल प्रविष्ट नहीं होता है, क्योंकि अर्गल और जल एक समयमें एक स्थान पर नहीं रह सकता। यह स्थानावरोधकत्व गुणपरमाणुनिष्ठधर्म है। जड़द्रव्यके परमाणु जो आपसमें संलग्न रहते हैं सो नहीं, उनके मध्य कुछ कुछ अवकाश वा अन्तर रहता है। जड़वस्तुको परमाणु स्थानावरोधक है सही, लेकिन उनके अन्तर्गत अवकाशका ह्रास तथा वृद्धि हुआ करती है और एकके परमाणुओंके अन्तर्गत अवकाश स्थलमें अन्यके परमाणु कभी कभी प्रविष्ट होते मालूम पड़ते हैं, लेकिन वास्तविकमें वैसा नहीं है।

जिस गुणके कारण जड़ वस्तु आकार वा मूर्त्ति धारण करती है, उसका नाम मूर्त्तत्व है। जड़-पदार्थ मात्र ही साकार और मूर्त्त पदार्थ हैं। ये स्थान पर फैले हुए रहते हैं, इस कारण इनके आयतन और आकृति। जिसके चैतन्य नहीं है, उसे हम लोग अचेतन वा जड़ पदार्थ कहते हैं। शक्ति सम्पन्न नहीं होनेसे जड़ पदार्थ स्पन्दित नहीं होता—शवकी तरह प्रतीयमान होता है। जड़पदार्थरूप शवके ऊपर जब शक्ति नृत्य करती है, तभी यह जगत्कार्य हुआ करता है। शुद्ध जड़पदार्थसे कोई कार्य नहीं होता। सभी जड़पदार्थ आपसे आप नहीं चल सकते और चालित होने पर आपसे स्थिर भी नहीं हो सकते, इसीसे उनको निश्चेष्ट गुण-सम्पन्न कहते हैं। इस प्रकार पदार्थादिकी विभाज्यता, सान्तरता, आकुञ्चनीयत्व, प्रसारणीयत्व, स्थितिस्थापकता, कठिनत्व, कठोरत्व कोमलत्व, भङ्गप्रवणता, घातसहत्व, तान्तवता और भारसहत्व आदि ये सब विभिन्न गुण किसी न किसी द्रव्यमें देखा जाता है। पदार्थादिको आणविक शक्तिके सम्बन्धमें आणविक आकर्षण, संहति, संशक्ति, कौशिक आकर्षण वहिःप्रवाह और अन्तःप्रवाह गुणादि एवं द्रव्यादिका रासायनिक विश्लेषण और सम्मिलन आदि पदार्थविद्यामें मीमांसित हुए हैं। एतद्भिन्न मध्याकर्षण, द्रव्यादिका भार, वायु, शब्द, आलोक, जल, ताड़ित, गति वा वेग, अयस्कान्त और अयःकर्षणी शक्तिका विषयमें भी इस पदार्थविद्यामें विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। स्वभावजात द्रव्य मात्रको सविस्तार आलोचनाको ही वैज्ञानिक भाषामें Physic कहते हैं। जिस ग्रन्थसे पदार्थविद्याका तत्त्व अवगत होता है, उसे पदार्थविद्या कहते हैं।

पदार्पण (सं० पु०) १ किसी स्थानमें पैर रखने या जानेकी क्रिया। इस शब्दका प्रयोग केवल प्रतिष्ठित व्यक्तियोंके सम्बन्धमें ही होता है।

पदालिक (सं० पु०) पदस्य चरणस्यालिकमिव। चरणोपरिभाग।

पदावनत (सं० त्रि०) १ जो पैरों पर झुका हो। २ जो प्रणाम करता हो। ३ नम्र, विनीत।

पदावली (सं० स्त्री०) पदानां आवली। १ पद-श्रेणी, पदसमूह, वाक्योंकी श्रेणी। २ भजनोंका संग्रह।

पदावृत्ति (सं० स्त्री०) पदकी आवृत्ति।

पदाश्रित (सं० त्रि०) १ जिसने पैरों पर आश्रय लिया हो, शरणमें आया हुआ। २ जो आश्रयमें रहता हो।

पदास (सं० स्त्री०) सामभेद।

पदास (हिं० स्त्री०) १ पादनेका भाव। २ पादनेकी प्रवृत्ति।

पदासन (सं० क्ली०) पदः पादस्य वा आसनं। पादपीठ, वह जिस पर पैर रखा जाय।

पदासा (हिं० पु०) जिसको पादनेकी इच्छा या प्रवृत्ति हो।

पदि (सं० पु०) पद कर्मणि इन्। गन्तव्य, जाने लायक।

पदिक (सं० पु०) पादेन चरतीति पाद-ठन् (पर्पादिभ्यः ष्ठन्। पा ४।४।१०) ततः पादस्य पदादेशः। पदाति सैन्य, पैदल सेना।

पदिका (सं० स्त्री०) रक्तलज्जालुका, लाल रंगका लजालू।

पदिन्याय (सं० पु०) जैमिनिसूत्रोक्त न्यायभेद।

पदिहोम (सं० पु०) पदि पादस्थाने होमः अलुक्समासः। श्रुतिविहित होमभेद।

पदुम (हिं० पु०) १ घोड़ोंका एक चिह्न या लक्षण जो मोरवोंके पास होता है। भारतवासी इसे दोष नहीं मानते, पर ईरानके लोग मानते हैं। २ पद्म देखो।

पदुमिनी (हिं० स्त्री०) पद्मिनी देखो।

पदेन्द्राभ (सं० पु०) विष्किपक्षिविशेष।

पदोड़ा (हिं० पु०) १ जो बहुत पादता हो, अधिक पादनेवाला। २ डरपोक, कायर।

पदोदक (सं० पु०) १ वह जल जिसमें पैर धोया गया हो। २ चरणामृत।

पदोपहत (सं० त्रि०) पादेन उपहतः पादस्य पदादेशः। पाद द्वारा उपहत।

पदौक (हिं० पु०) बरमामें मिलनेवाला एक वृक्ष, इसकी लकड़ी मजबूत और कुछ लाली लिए सफेद रंगकी होती है।

पद्ग (सं० पु०) पद्भ्यां गच्छतीति पद्-गम-ड। पदातिक, पादचारी।

पद्घोष (सं० पु०) पादस्य घोषः, पादशब्दस्य पदादेशः। पादशब्द।

पद्द (हिं॰ पु॰) पदोड़ा देखो।

पद्धटिका (सं॰ पु॰) एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें १६ मात्राएँ होती हैं और अन्तमें जगण होता है।

पद्धड़ी (हिं॰ स्त्री॰) पद्धटिका देखो।

पद्धति (सं॰ स्त्री॰) पद्भ्यां हन्ति गच्छतीति, हन्-क्तिन् (हिमकाषिहतिषु च। पा ६।३।५४) इति पादस्य पदा-देशः, ततो ङीष्। १ वर्त्म, पथ, राह। २ पंक्ति, कतार। ३ ग्रन्थार्थबोधक ग्रन्थ, वह पुस्तक जिसमें किसी दूसरी पुस्तकका अर्थ या तात्पर्य समझा जाय। ४ पदवी, उपनामभेद, जैसे, ठाकुर, घोष आदि। ५ प्रणाली, रीति, तरीका, ढंग। ६ आचार ग्रन्थ, वह ग्रन्थ जिसमें किसी प्रकारकी प्रथा या कार्य-प्रणाली लिखी हो। ७ कार्यप्रणाली, विधिविधान। ८ रीति, रस्म, रिवाज, परिपाटी।

पद्धरि (हिं॰ पु॰) पद्धटिका देखो।

पद्धिम (सं॰ क्ली॰) पादस्य हिमं, पादस्य पद्भावः। पादकी शीतलता।

पद्दी (हिं॰ स्त्री॰) खेलमें किसी लड़केका जीतने पर दांव लेनेके लिये हारनेवाले लड़केकी पीठ पर चढ़ना।

पद्म (सं॰ पु॰ क्ली॰) पद्यते इति पद गतौ मन् (अर्त्तिस्तु सु-हु-सृ इत्यादि। उण् १।१३८) १स्वनामख्यात कोमल वृक्ष और तज्जात पुष्पविशेष, कमल। पर्याय—नलिन, अरविन्द, महोत्पल, सहस्रपत्र, कमल, शतपत्र, कुशे-शय, पङ्केरुह, तामरस, सारस, सरसीरुह, विषप्रसून, राजीव, पुष्कर, अम्भोरुह, पङ्कज, अम्भोज, अम्बुज, सरसिज, श्रीवास, श्रीपर्ण, इन्दिरालय, जलजात, अब्ज, नल, नलीका, नालिक, वनज, अब्जान, पुटक।

साधारणतः श्वेत, लोहित, पीत और असित इन चार वर्णोंके पद्म हम लोगोंके नयनगोचर होते हैं। वर्णसादृश्य रहने पर भी इनके मध्य आकृतिका वैल-क्षण्य देखा जाता है। आकृतिके वैलक्षण्यके कारण पद्मोंके अनेक नाम पड़े हैं। हम लोगोंके देशमें पद्मके अनेक पर्याय-शब्द रहने पर भी वे किस किस जातिके हैं, इसका सहजमें निर्णय नहीं हो सकता। श्वेत, रक्त और नीलोत्पलके विभिन्न संज्ञानिर्देशक पर्याय शब्द उत्पल शब्दमें लिखे गये हैं। उत्पल देखो।

भिन्न भिन्न स्थानोंमें पद्मके विभिन्न नाम देखे जाते हैं हिन्दी—कमल, बङ्गाल—पद्म पदम; उड़ीसा—पदम बिजनौर—बेशेन्दा, उत्तरपश्चिमप्रदेशमें—पद्मिन् पञ्जाब—पम्पाघ, कमाकाकड़ी, सिन्धु—अब्वन, दक्षिणमें कुड़बेनका गुड्ड, बम्बई—कमल, कांकड़ी; कणाड़ी—तवरिभिजा, तवरिगड्ड; खान्देश—दुधमल्लिदाकन्द, पूना गन्धकन्द, तामिल—शिवप्पु-तामरश्वेर, अम्बल; तेलगु—एररा तामरश्वेरु, मलय—तमर, सिङ्गापुर—नेलुम, ब्रह्म—ग-दुधम्मा, अरब—नीलुफर, उसुलनीलु-फार; पारस्यनीलुफर, नीलुफु,-बेखनीलुफर; अंगेजी—The Sacred lotus (Pythagorian or Egyptian Bean)-विज्ञानशास्त्रमें - Nelumbium Speciosum or Nymphaea Asiaticem.

साधारणतः पुष्करिणी, झील और छोटे छोटे जला-शयों तथा नदी आदिमें पद्म उत्पन्न होता है। पद्म लता है, या गुल्म वा वृक्ष इसका निश्चय करना कठिन है। पुष्करिणीके मध्यस्थ कर्दम (कीचड़)से पद्म निकलता है। पहले पद्मके बीजसे कोंपल और कन्द गठित होता है। पीछे वह कोंपल परिवर्द्धित हो कर ऊपरकी ओर उठती है। ऊपर जा कर उन कोंपलोंमेंसे कोई पत्रमें और कोई पुष्पमें परिणत होती है। जिस दण्डसे पत्र वा पुष्प निकलता है, वह बहुत कोमल और कण्टक-युक्त होता है जो नाल कहता है। पद्मको जड़से पत्र वा पुष्पकी नाल छोड़ कर एक और प्रकारका डंठल निकलता है जो नालकी अपेक्षा छोटा, श्वेत, कण्टक-हीन और कोमल होता है। इस डंठलको मृणाल कहते हैं। यह खानेमें सुमिष्ट और सुस्वादु होता है। हस्ती और हंस प्रभृति प्राणिगण जब किसी पद्मवनमें जाते हैं, तब केवल मृणाल तोड़ कर खाते हैं।

पद्मकी पत्तियां कुछ गोल होती हैं। इनका जलपृष्ठ-भाग शैवालकी तरह कोमल और ऊपरका भाग चिकना होता है। इसीसे कविगण मानवजीवनको 'पद्मपत्रे जलबिन्दु यथा' इस प्रकार उपमा दिया करते हैं अर्थात् पद्मपत्र पर जिस प्रकार जलबिन्दु स्थिर नहीं रहता, मानवजीवन भी उसी प्रकार चणस्थायी और नश्वर है। उत्तरमें काश्मीर और हिमालयके पार्वत्य-

प्रदेशसे ले कर दाक्षिणात्य तक सारे भारतवर्षमें कमल उत्पन्न होता है। इसके अलावा यूरोप, अमेरिका, अफ्रिका और अष्ट्रेलियाद्वीपमें भी नाना जातीय पद्म पाये जाते हैं। प्रायः ग्रीष्म ऋतुमें ही पद्मका पुष्प निर्गम होता है और पुष्पके गर्भस्थानमें अर्थात् किञ्जल्क स्थानके मध्य जो बीज होता है वह साधारणतः वर्षागममें परिपक्क होने लगता है। कच्चा बीज खानेमें ठीक बादामकी तरह मोठा लगता है, अधपका बीज मोसनकी खोईको तरह भून कर खाया जाता है। सुपक्क बीजसे अक्षिमन्त्र-जपकी सुन्दर माला प्रस्तुत होती है। प्रत्येक फलमें १८।१८ बीज रहते हैं।

पद्मको नाल वा डंठलसे एक प्रकारका जरदाभ श्वेत वर्णका सूक्ष्म सूत निकलता है। इस सूतसे हिन्दू-देवमन्दिरादिमें प्रदीप बालनेके लिये एक प्रकारका पलीता प्रस्तुत होता है। वैद्योंके मतसे उक्त सूत द्वारा निर्मित वस्त्रसे ज्वर दूर होता है। पद्मके बीच बाल की तरह बारीक अंश रहता है जिसे किञ्जल्क कहते हैं। उसमें धारकता शक्ति है और वह स्वभावतः शीतल होता है। अङ्गके प्रदाह, अर्शसे रक्तस्राव और रज-साधिक्य रोगमें (Menorrhagia) यह विशेष उपकारी है। बीजका सेवन करनेसे वमनेच्छा निवारित होती है। बालक-बालिकाके प्रस्राव बन्द हो जाने पर यह मूत्रकारक और शैत्यकारक औषधरूपमें व्यवहृत होता है। गात्रचर्मके दाहसमन्वित प्रखर ज्वरमें रोगीको पद्मपत्र पर सुलानेसे गात्रदाह उपशम होता है। कहीं कहीं देवमन्दिरादिमें पद्मपत्र पर नैवद्यादि लगाया जाता है। साधारण मनुष्य पद्मपत्र पर भोजन करते हैं। पद्मको नाल और पत्रसे दूधकी तरह एक प्रकारकी राल निकलती है जो उदरामयरोगमें अमोघ औषध है। पुष्पके दलमें धारकता शक्ति है। डाक्टर इरसनके मतसे इसकी जड़को पीस कर दद्रुरोग अथवा अन्यान्य चर्मरोगमें प्रलेप देनेसे त्वक्रोग विमुक्त होता है। इस लताके रसको वसन्तरोगमें शरीर पर लगानेसे गात्रकी ज्वाला निवारित हो कर अङ्ग इतना शीतल हो जाता है, कि गात्रचर्म पर अधिक परिमाणमें गोटी निकलने नहीं पाती। गात्रकण्डू, विसर्प आदि सभी प्रकारके सस्फोटकरोगमें यह प्रलेप हितकर है।

Nelumbium Speciosum जातीय उत्पलके दलको आकृति २॥ से ३॥ इंच लम्बी होती है। इसका वर्ण बादामकी तरह गोलाकार पाटलवर्ण, हिङ्गुलवर्ण वा लोहिताभ श्वेतवर्ण होता है। इसमें कोई विशेष गन्ध वा स्वाद नहीं है इसका पक्क बीज सुपारीकी तरह कठिन और काला तथा आकृति गोल वा डिम्ब-सी होती है। इसका मकरन्द गूदा सुस्वादु और तैलाक्त होता है, पदार्थतत्त्व और भैषज्यतत्त्वके सम्बन्धमें इसके दल, नाल और जड़का गुण कुमुदपुष्प (Nymphaea Lotus) के समान है। डाक्टर एण्डरसन (Civil Surgeon J. nderson M. B. Bijnor, N. W. P.)-ने लिखा है, कि इसका बीज स्नायवीय दौर्बल्यमें एक बलकारक औषध है। चीनी और जलके साथ अल्प मात्रामें (½ Drachm) पान करनेसे ज्वरमें शैत्यकारक होता है। अधिक ज्वरमें प्रयोग करनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर हो जाता है और पसीना निकलने लगता है। आतपदुष्ट (Solar fever) तथा दाहयुक्त ज्वरमें इसकी जड़, नाल, पत्र और पुष्प विशेष उपकारी है। पद्मपुष्पसे मधुमक्खी द्वारा आहृत जो मधु छत्तेमें पाया जाता है, उसे लवङ्गके साथ घिस कर आंखकी पलक पर लगानेसे चक्षुरोग जाता रहता है। इसके कन्दविशिष्ट जड़के अंशको मीठा तिल तैलमें सिद्ध कर मस्तक पर मालिश करनेसे चक्षु और मस्तिष्कका प्रदाह नष्ट हो जाता है। कभी कभी जड़को चर कर उसके रसको मिलानेसे ही काम चल सकता है। सर्पदंष्ट व्यक्तिको इसका गर्भकेशर काली मिर्चके साथ पीस कर खिलानेसे तथा वहिस्थ क्षतस्थान पर प्रलेप देनेसे विष बहुत जल्द दूर होता है।

भारतवासी इसकी जड़ और मृणाल खाते हैं। आश्विनमासमें पत्र लगे हुए डंठलको तोड़ रखते हैं और जब तक उसकी पत्तियां झड़ नहीं जातीं, तब तक उसे छूते तक भी नहीं। बादमें उसे खण्ड खण्ड कर भूनते हैं अथवा अन्यान्य मसालेके साथ चटनी बनाते हैं। सिन्धु और बम्बईप्रदेशके नाना स्थानवासी इसकी जड़

खाते हैं। इसकी नाल और पुष्पको भून कर बहुतेरे व्यञ्जनादि प्रस्तुत करते हैं। चीनवासिगण इसकी जड़का ग्रीष्मके समय बर्फके साथ शरबत बना कर पीते हैं।

पद्मपुष्प हिन्दुओंकी एक आदरकी वस्तु है। वैदिक कालसे पद्मका व्यवहार देखा जाता है। रामायणमें श्रीरामके 'नीलोत्पल नेत्र' और पद्मकी कथा तथा महाभारतमें विष्णुके नाभिपद्मसे ब्रह्माकी उत्पत्ति आदि कथाएं लिखी हैं। एतद्भिन्न वेदाधिष्ठात्री देवीसरस्वती पद्मके ऊपर बैठी हुई हैं और वैकुण्ठपति नारायणके हाथमें पद्मका पुष्प शोभायमान है, अनेक प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख देखनेमें आता है, हिरोदोतस्, ष्ट्रावो, थियफ्रेष्टस आदि प्राचीन ग्रीक कवियोंके ग्रन्थमें भी पद्मका उल्लेख है।

कुमुद नामका एक प्रकारका क्षुद्राकार श्वेतपद्म काश्मीरप्रदेशमें ५३०० फुटकी ऊंचाई पर उगता है जिसे विज्ञानविद् Nymphaea alba (The White Waterlily) और भिन्न भिन्न स्थानवासी नीलोफर और ब्रोम्पोष कहते हैं। यूरोपके जलाशय, छोटे छोटे स्रोत और लवणवर्जित ह्रदादिमें यह पुष्प देखनेमें आता है। इसके मूलमें गेलिक एसिड (Gallic acid) रहनेसे यह द्रव्यादि रंगानेके काममें आता है। इसमें कटुकषाय तथा रालके समान पदार्थमिश्रित गुण रहनेके कारण आमाशयरोगमें इसकी जड़ विशेष लाभदायक मानी गई है। डाक्टर उसफिन्सीके मतसे यह धारकता और मादकता गुणयुक्त है। इसका पुष्प कामदमनकर माना गया है। उदरामय रोगमें तथा विषमज्वरमें यह स्वेदजनक औषधरूपमें व्यवहृत होता है। इसके पुष्प और फलको जलसिक्त (Infusion) करके सेवन करनेसे उक्त रोग प्रशमित होता है। इसके मूलमें श्वेतसार (Starch) रहता है जिससे प्रान्तवासी एक प्रकारका 'बियर' नामक मद्य प्रस्तुत करते हैं।

रक्त कम्बल वा लाल कमल नामक पद्मजातीय एक और प्रकारका क्षुद्राकार जलज पुष्प देखा जाता है जिसका विज्ञानविदोंने Nymphala lotus नाम रखा है। इसकी आकृति नीलाम्बुजकी सी होती है। भिन्न भिन्न स्थानोंमें इसका नाम भिन्न भिन्न प्रकारका है, हिन्दी—लाल कमल, बङ्गाल—शालुक, नाल, रक्तकम्बल; उड़ीसा—धावलकईं, रङ्गआई; सिन्धु—भूणो, पुणो; दाक्षिणात्य—अल्लोफूल; गुजरात—नीलोफल, नामिल—अल्लीत मराई, अम्बल; तैलङ्गु—अल्लीतामर, तेल्लकलव, कोतेम्, एर्डाकोलुक, कलहारम्; कणाडी—न्यादल-हूबु; मलय-अमफल; ब्रह्म—क्या-फ्यु-किया-नि; सिङ्गापुर—ओलु; संस्कृत—कमल, कुमुद, कह्लार, हल्लक, सभ्रिक; अरब और पारस्य—नील फर।

इसमें सफेद पुष्प लगते हैं। इस जातिका एक और भी पुष्प (N. pubescens) देखा जाता है जिसकी पत्तियों और फलोंका आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है।

उदरामय, विसूचिका, ज्वर और यकृत्‌संक्रान्त पीड़ामें इसकी सूखी पत्तियां अग्नि-उद्दीपक हैं। अर्श, रक्तामाशय और अजीर्ण रोगमें इसकी जड़का चूर्ण स्निग्धकर औषधरूपमें व्यवहृत होता है। कुष्ठ, दद्रु आदि चर्मरोगोंमें तथा सर्पविषमें इसका बीज स्निग्धकर है। पाकस्थली वा अन्त्रसमूहसे रक्तस्राव होने पर अथवा रक्तपित्तरोगमें इसके पुष्प और नालके चूर्णको खिलानेसे रोगी चंगा हो जाता है।

लोग इसकी जड़को यों ही अथवा भून कर खाते हैं। अपुष्टफल कच्चा खानेमें भी अच्छा लगता है। पक्वबीजको भून कर खाया जाता है।

नीलपद्म नामसे प्रसिद्ध जो फूल पुष्करिणी आदिमें देखा जाता है वह प्रकृत नीलोत्पल नहीं है। विज्ञानशास्त्रमें इसे Nymphaea Stellata, हिन्दीमें नीलपद्म, उड़ीसामें शुदिकायम, बिजनौरमें बम्बेर, बम्बईमें उप्पिया-कमल, तैलङ्गुमें नीलकलव, मलयमें चित्-अम्बेल, संस्कृतमें नीलोत्पल, उत्पल और इन्दीवर कहते हैं। इस श्रेणीमें और भी तीन प्रकारके पुष्प देखे जाते हैं, (१) N. Cyanea मध्याकृति गन्धहीन और नीलवर्ण होता तथा अजमीर और पुष्करह्रदमें उत्पन्न होता है। (२) N. perviflora अपेक्षाकृत छोटा होता है और (३) N. Versicolor सबोंसे बड़ा, सफेद, नील और बैंगनी रंगका होता है। इसमें अनेक पुंकेशर रहते हैं।

इजिप्टके दक्षिण भागमें, रोजेटा, डामियेटा और कायरोनगरके निकटवर्त्ती स्थानोंमें एक प्रकारका नील-

पद्म (ymphoea aerulea or Blwabrnelily) पाया जाता है। इसको सुमधुर गन्धसे इजिप्टवासिगण इतने प्रसन्न होते हैं, कि वह प्राचीनकालसे उन्होंने इस पद्मको पवित्र समझ कर मन्दिरादिमें खोद रखा है। उत्तर अमेरिकाके कनाड़ासे ले कर केरोलिना तक विस्तृत स्थानोंमें एक प्रकारका सौगन्धयुक्त पद्म (N. Odorata) उत्पन्न होता है जिसका रंग लाल है। यह पूर्वलिखित पद्मके जैसा गुणविशिष्ट माना गया है।

डेमेरारा नामक स्थानमें Victoria rigia नामक एक प्रकारका बड़ा पद्म पाया जाता है। इस पद्मका व्यास १५ इञ्च और पत्रका व्यास ६॥ फुट होता है। पत्तोंकी आकृति थालीकी तरह गोल होती हैं और चारों ओरका किनारा थालीके जैसा ३से ५ इञ्च तक ऊपर उठा रहता है। अन्यान्य पत्तोंकी तरह इसका निचला भाग कटा नहीं होता। ऊपरी भाग सफेद, सबज और चिकना होने पर भी भीतरकी पीठ लाल और कण्टकयुक्त होती है। इस पृष्ठ पर पञ्जरास्थिकी तरह अनेक ऊंची नीची शिराएं पत्रके तल भाग पर देखी जाती हैं। पत्र और पुष्पको नाल तथा पत्रका तलदेश कण्टकाकीर्ण है। यह पुष्प नाना रंगोंका तथा असंख्य पत्तोंका होता है। उत्तर और पूर्व अष्ट्रेलिया द्वीपांशमें एक प्रकारका बड़ा नील पद्म पाया जाता है। ऐसे प्रस्फुटित पद्मका व्यास प्रायः १२ इञ्च देखा गया है। बीज और विकसित पुष्पको नालमें रेशे नहीं रहनेसे वह वहांके आदिम अधिवासियोंका एक उपादेय खाद्य पदार्थ समझा जाता है। अलावा इसके छोटा रक्त कमल (Nymphaea rosea) और चीन, रूष तथा खासिया पर्वत पर हाफक्राउन मुद्राकी तरह एक प्रकारका क्षुद्र पद्म (Nymphaea Pygmia) उत्पन्न होते देखा जाता है।

पहले जिस पीत वा जरद वर्णके पद्मकी कथाका उल्लेख किया है, वह अक्सर भारतवर्षमें नहीं मिलता, उत्तर अमेरिका, साइबिरिया, उत्तर जर्मनी, लापलैण्ड, नौरवे, स्काटलैण्ड आदि स्थानोंमें मिलता है। Nuphar lutea or yellow water-lily, N. pumila Dwarf yellow waterlily और फिला डेलफिया तथा कनाड़ा नामक स्थानमें N. advena नामका फुल लवणाक्त अथवा मिष्ट दोनों प्रकारके जलमें उगते देखा गया है।

हिन्दू और बौद्ध शास्त्रोंमें पद्मकी विशेष सुख्याति देखनेमें आती है। बौद्धशास्त्रमें पद्म 'पद्ममणि' नामसे उल्लेख किया गया है। स्वस्तिककी आकृति पद्मसा है। एतद्भिन्न पद्मके ऊपर दण्डायमान वा उपविष्ट हिन्दू और बौद्ध, जापानी तथा चीन देशीय देवदेवीकी मूर्त्ति कल्पित और चित्रित होती देखी जाती है।

साधारणतः जो तीन प्रकारके पद्म देखे जाते हैं उनमेंसे श्वेत पद्म पुण्डरीक, लाल पद्म कोकनद और नीलोत्पल इन्दीवर नामसे प्रसिद्ध है।

समग्र वृक्ष पद्मिनी, फल कर्णिकार, पुष्पस्थित मधु-मकरन्द, पत्र और पुष्प डंठल नाल, जलमध्यस्थ नाल मृणाल, पुष्पका गर्भस्थ सूक्ष्म सूक्ष्म सूत्रविशिष्ट स्थान किञ्जल्क, उसके ऊपरका भाग बीजकोष, उसके पार्श्वस्थ सूक्ष्म सूत्र पद्मकेशर, उसके ऊपरके छोटे छोटे सफेद बीजसी तरहका पदार्थ पुष्परेणु वा किञ्जल्क कहलाता है कविगण पद्मसे प्रायः नर नारी अथवा देवदेवीके चक्षु और मुखकी उपमा देते हैं।

वैद्यकके मतसे पद्म कषाय, मधुर, शीतल, पित्त, कफ और अस्रनाशक, पद्मबीज वमननाशक, पद्मपत्रकी शय्या शीतल और दाहनाशक तथा पद्मपुष्पगुदभ्रंशहर माना गया है।

२ पद्मक, हाथीके मस्तक या सूंड़ पर बने हुए चित्र विचित्र चित्र। ३ व्यूहविशेष, सेनाका पद्मव्यूह।

"यतश्च भयमाशङ्केत् ततो विस्तारयेद्दलं।
पद्मेन चैव व्यूहेन निविशेत सदा स्वयं।"

(मनु ७।१८८)

४ निधिभेद, कुवेरकी नौ निधियोंमेंसे एक निधि। ५ संख्याविशेष, गणितमें सोलहवें स्थानकी संख्या। ६ तत् संख्यात्, वह जिसमें उतनी संख्या है। ७ पुष्कर मूल। ८ पद्मकाष्टौषधि, कुट नामकी औषधि, ९ बौद्धके मतसे नक्षत्रभेद, बौद्धोंके अनुसार एक नक्षत्रका नाम। १० सीसक, सीसा। ११ काव्यविशेष,

पुराणानुसार एक कल्पका नाम। १२ शरीरस्थित षट्पद्म, तन्त्रके अनुसार शरीरके भीतरी भागका एक कल्पित कमल जो सोनेके रंगका और बहुत ही प्रकाशमान माना जाता है। इसमें छः दल हैं। १३ वैद्यकमें पद्म शब्दके उल्लेखकी जगह प्रायः पद्मकेशरका ही बोध होता है। १४ दाशरथि। १५ नागविशेष, एक नागका नाम। १६ पद्मोत्तरात्मज। १७ बलदेव। १८ सोलह प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे एक।

"हस्ताभ्याञ्च समालिङ्ग्य नारी पद्मासनोपरि।
रमेद्गाढ़ं समाकृष्य बन्धोऽयं पद्मसंज्ञकः॥" (रतिम०)

१९ नरकभेद, पुराणानुसार एक नरकका नाम। २० काबुलके एक हिन्दू राजा। इन्होंने ८७८से ८८७ ई० तक राज्य किया था। इनके समयकी ताम्रमुद्रा पाई गई है। २१ एक प्राचीन नगर। २२ सर्पभेद। २३ जम्बूद्वीपके दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित एक भूभाग। २४ मारवाड़ राज्यके एक राजा। इन्होंने उड़ीसा और तेजमान यदुसे बगालका प्रदेश जीता था। २५ गङ्गाका पूर्वनद। पद्मा देखो। २६ एक राजा। चन्द्रवंशके पार्श्वस्थ मुनिगोत्रमें इनका जन्म हुआ था। २७ कुमारानुचरभेद, कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम। २८ जैनोंके अनुसार भारतके नवें चक्रवर्तीका नाम। २९ काश्मीरके एक राजमन्त्री। इन्होंने पद्मस्वामीका मन्दिर और पद्मपुर नगर स्थापन किया था। ३० सामुद्रिकके अनुसार पैरमेंका एक विशेष आकारका चिह्न। यह चिह्न भाग्यसूचक माना जाता है। ३१ किसी स्तम्भके सातवें भागका नाम। ३२ विष्णुके एक आयुधका नाम। ३३ एक प्रकारका आभूषण जो गलेमें पहना जाता है। ३४ शरीर परका सफेद दाग। ३५ सांपके फन पर बने हुए चित्र विचित्र चिह्न। ३६ एक ही कुरसी पर बना हुआ एक ही शिखरका आठ हाथ चौड़ा घर। ३७ एक पुराणका नाम। पुराण देखो। ३८ एक वर्णवृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें एक नगण, एक सगण और अन्तमें लघु-गुरु होते है।

पद्मक (सं० क्ली०) पद्ममिव कायतीति पद्म-कै-क, पद्मप्रतिकृतिलक्षणत्वात् तथात्वं। १ गजमुखस्थित पुष्पाकार बिन्दुसमूह। २ पद्मकाष्ठ। इसका गुण—तुवर, तिक्त, शीतल, वातल, लघु, विसर्प, दाह, विस्फोट, कुष्ठ, श्लेष्म, अस्र और पित्तनाशक, गर्भसंस्थापक, रुचिकर, वमि, व्रण और तृष्णानाशक। ३ कुष्ठौषधि, कुट नामकी औषधि। पद्मस्वार्थे कन्। ४ पद्म शब्दार्थ। ५ रटडायतनभेद। ६ श्वेतकुष्ठ, सफेद कोढ़। ७ सेनाका पद्मव्यूह।

पद्मकण्टक (सं० पु०) क्षुद्ररोगभेद, एक प्रकारका रोग।

पद्मकन्द (सं० पु०) पद्मस्य कन्दः। १ कमलकन्द, कमलकी जड़, मुरार। पर्याय—शालूक, पद्ममूल, कटाह्वय, शालुक, जलालूक। गुण—कटु, विष्टम्भी। भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—शीतल, वृष्य, पित्त, दाह, रक्तदोषनाशक, गुरु, संग्राही। २ जलपक्षिविशेष पानीमें रहनेवाली एक प्रकारकी चिड़िया।

पद्मकर (सं० पु०) पद्मं करे यस्य। पद्महस्त विष्णु, पद्मपाणि।

पद्मकरवीर (सं० पु०) पुष्पवृक्षविशेष।

पद्मकर्कट (सं० पु० स्त्री०) कमलाक्ष, पद्मबीज।

पद्मकर्णिका (सं० स्त्री०) १ पद्माकारमें सज्जित सेनामण्डलीका मध्य भाग। २ कमलकर्णिका।

पद्मकल्प (सं० पु०) कल्पभेद, विगत शेष कल्प।

पद्मकाद्यघृत (सं० क्ली०) चक्रदत्तोक्त एक घृतभेद।

पद्मकाष्ठ (सं० क्ली०) पद्ममिव गन्धवत् काष्ठं। औषधिविशेष, स्वनामख्यात सुगन्ध काठ। पर्याय—पद्मक, पीतक, पीत, मालय, शीतल, हिम, शुभ, केदारज, रक्त, पाटलापुष्पसन्निभ, पद्मवृक्ष। गुण—शीतल, तिक्त, रक्तपित्तनाशक; मोह, दाह ज्वर, भ्रान्ति, कुष्ठ, विस्फोट और शान्तिकारक। विशेष विवरण पद्म शब्दमें देखो।

पद्मकाह्वय (सं० क्ली०) पद्मकाष्ठ, पदम नामका वृक्ष।

पद्मकिञ्जल्क (सं० पु०) पद्मकेशर, कमलका केसर।

पद्मकिन् (सं० पु०) पद्मकं बिन्दुजालमस्त्यस्य इति भूर्जवृक्ष, भोजपत्रका पेड़।

पद्मकीट (सं० पु०) अग्निप्रकृतिकीटभेद, एक प्रकारका जहरीला कीड़ा।

पद्मकूट (सं० क्ली०) प्राचीन जनपदभेद, एक प्राचीन देश जहां सुभीमाका प्रासाद बनाया गया था।

पद्मकेतन (सं० पु०) १ गरुड़ात्मजभेद, पुराणानुसार गरुड़के एक पुत्रका नाम

पद्मकेतु (सं० पु०) केतुभेद, वृहत्संहिताके अनुसार एक पुच्छल तारा जो मृणालके आकारका होता है। यह केतु पश्चिमकी ओर एक ही रातके लिए दिखलाई पड़ता है।

पद्मकेशर (सं० पु० क्ली०) पद्मस्य केशरः। किञ्जल्क, कमलका केसर। गुण—मलसंग्राहक, शीतल, दाहनाशक और अर्शका स्रावनाशक।

पद्मकोष (सं० पु०) पद्मस्य कोषः। १ पद्मका कोष, कमलका संपुट। २ कमलके बीचका छत्ता जिसमें बीज होते हैं।

पद्मक्षेत्र (सं० क्ली०) उड़ीसाके अन्तर्गत चार पवित्र क्षेत्रोंमेंसे एक।

पद्मखण्ड (सं० क्ली०) १ पद्मपरिवेष्टित स्थान। २ पद्म समूह।

पद्मगन्ध (सं० त्रि०) पद्मस्येव गन्धो यस्य। १ पद्मतुल्य गन्धयुक्त, जिसमें कमल-सी गन्ध हो। (क्ली०) २ पद्मकाष्ठ, पद्म नामका वृक्ष।

पद्मगन्धि (सं० पु०) पद्माख या पदम नामका वृक्ष।

पद्मगर्भ (सं० पु०) पद्मं गर्भः कुक्षिरिव यस्य विष्णुनाभि-कमलजातत्वात् तथात्वं। १ ब्रह्मा। २ विष्णु। ३ सूर्य। ४ बुद्ध। ५ एक बोधिसत्त्व। ६ कमलका भीतरी भाग। ७ शिव, महादेव।

पद्मगिरि—नेपाल राज्यके काठमण्डू नगरसे दक्षिण पश्चिममें अवस्थित गिरिभेद। इस पर्वतके ऊपर स्वयम्भुनाथका मन्दिर है। पद्मगिरिपुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

पद्मगुणा (सं० स्त्री०) पद्मं गुणयति आसनत्वेन गुणक, टाप्। लक्ष्मी।

पद्मगुप्त - मालवराज वाक्पतिकी सभाके एक राजकवि। इन्होंने नवसाहसाङ्क-चरितकी रचना की। इस ग्रन्थमें मालवका बहुत कुछ ऐतिहासिक विवरण भी वर्णित है। परमार-राजवंश देखो।

पद्मग्राम—विन्ध्य प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।

पद्मगृहा (सं० स्त्री०) पद्मालया, लक्ष्मीका एक नाम।

पद्मचाटी (सं० स्त्री०) १ स्थलकमलिनी, स्थलपद्म। २ नवनीतखोटी।

पद्मचारिणी (सं० स्त्री०) पद्ममिव चरतीति चर-णिनि स्त्रियां ङीप्। १ उत्तरापथ प्रसिद्ध स्वनामख्यात लताभेद, स्थल-कमलिनी, गेंदा। पर्याय—अव्यथा, अतिचरा, पद्मा, चारटी। २ भार्गी, वरङ्गी। ३ शमीवृक्ष। ४ हरिद्रा, हलदी। ५ लाक्षा, लाख। ६ वृद्धि, तरङ्गी।

पद्मज (सं० पु०) पद्मात् विष्णुनाभिकमलात् जायते जन-ड। ब्रह्मा, चतुर्मुख।

पद्मतन्तु (सं० पु०) पद्मस्य तन्तुः। मृणाल, कमलकी नाल।

पद्मतीर्थ (सं० क्ली०) पुष्करमूल।

पद्मदर्शन (सं० पु०) १ श्रीवास, लोहबान। २ सर्जरस।

पद्मधातु करुणापुण्डरीक नामक बौद्धग्रन्थवर्णित द्वीपभेद। अरनेमि नामक एक राजा यहां रहते थे।

पद्मनन्दी—१ प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्दका नामान्तर। कुन्दकुन्दाचार्य देखो। २ राघवपाण्डवीय टीकाके रचयिता।

पद्मनाड़िका (सं० स्त्री०) स्थलपद्मिनी।

पद्मनाभ (सं० पु०) पद्मं नाभौ यस्य, अच् समासान्तः (अच् प्रत्यन्ववपूर्वात् सामलोम्नः। पा ५।४।७५) ब्रह्मोत्पत्तिकारिणी भूतपद्ममस्य नाभिजातत्वादस्य तथात्वं। १ विष्णु। शयनकालमें पद्मनाभ विष्णुका नाम लेनेसे अशेष फल प्राप्त होता है।

> "औषधे चिन्तयेद्विष्णुं भोजने च जनार्दनं।
> शयने पद्मनाभञ्च विवाहे च प्रजापतिं॥"
>
> (वृहन्नन्दिकेश्वर पु०)

२ महादेव। पद्ममिव वर्त्तुलाकृतिः नाभिर्यस्य। ३ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ४ नागविशेष, एक सर्पका नाम। ५ उत्सर्पिणीका जिनभेद, जैनोंके अनुसार भावी उत्सर्पिणीके पहले अर्हतका नाम। ६ स्तम्भनास्त्रविशेष। ७ शत्रुके फेंके हुए अस्त्रको निष्फल करनेका एक मन्त्र या युक्ति। ८ मार्गशीर्षसे एकादश मास।

पद्मनाभ—१ मन्द्राज प्रदेशके अन्तर्गत भीमुनिपत्तन जिलेका एक प्राचीन ग्राम। यह अक्षा० १७° ५८' उ० और देशा० ८३° २०' पू०के मध्य विजयनगरसे १० मीलकी दूरी पर अवस्थित है। पद्मनाभ या विष्णुका पवित्र-

क्षेत्र होनेके कारण यह स्थान प्रसिद्ध है। यहांके क्षेत्र-माहात्म्यमें लिखा है, कि यहांके गिरिशिखर पर आवि-र्भूत हो कर श्रीकृष्णने वनवासी पाण्डवोंसे कहा था, "मैं अपना शङ्ख और चक्र यहीं छोड़ जाता हूं, तुम लोग इनकी पूजा करना।" इतना कह कर भगवान् शिखरदेश पर शङ्ख-चक्र रख कर चले गये। उन्हींके नामानुसार इस गिरि और निकटवर्त्ती नगरका पद्म-नाभ नाम पड़ा है।

पर्वतके शिखर पर अति प्राचीन शङ्ख-चक्र प्रतिष्ठित है और प्राचीन मन्दिरका ध्वंसावशेष भी देखनेमें आता है। इसके पास ही विजयरामराजने एक मन्दिर बनवा दिया है। मन्दिरके ऊपर जानेके लिये १२८० सीढ़ियां लगी हुई हैं। गिरि-शिखर परसे भी मुलिपत्तन बन्दर, नानापत्त, सिंहाचल और विजयनगरका दृश्य नयन-गोचर होता है। पर्वतके पश्चाद्देशमें कुन्तिमाधव स्वामीका मन्दिर, कुछ ब्राह्मण और सैकड़ों शूद्रके मकान हैं। इसके पास ही पुण्यसलिला गोदोहनी नामकी एक छोटी स्रोतस्वती बह गई है। विजयरामराज अनेक समय तक पद्मनाभमें रहे थे। १७९४ ई०की १० वीं जूनको उनके साथ अंग्रेजी सेनाका घोरतर युद्ध हुआ। युद्धमें विजयरामराजकी मृत्यु हुई।

पद्मनाभ दाक्षिणात्यवासीका एक पवित्र तीर्थ है। रामानुजस्वामी, गौराङ्गदेव आदि इस तीर्थमें आये थे।

२ त्रिवाङ्कुड़ राज्यके अन्तर्गत एक अति पुण्यस्थान और प्राचीन नगर। अनन्तशायी विष्णुका क्षेत्र होनेके कारण यह स्थान अनन्त-शयन नामसे प्रसिद्ध है। ब्रह्माण्ड उपपुराणके अन्तर्गत अनन्तशयन-माहात्म्यमें इस स्थानका पौराणिक आख्यान वर्णित है।

पद्मनाभ—१ भास्कराचार्यधृत एक प्राचीन ज्योतिर्विद्। इनका बनाया हुआ बीजगणित 'पद्मनाभबीज' नामसे प्रसिद्ध है।

२ दशकुमारचरितोत्तरपीठिकाके रचयिता।

३ माधान्दिनाय आचारसंग्रह दीपिकाके रचयिता।

४ लक्ष्मीनाथके शिष्य, रामाखेटकाकाव्यके प्रणेता।

५ रुक्माङ्गदीय महाकाव्यके रचयिता।

६ कृष्णदेवके पुत्र, एक विख्यात ज्योतिर्विद्।

पद्मनाभरचित निम्नलिखित ग्रन्थ पाये जाते हैं—नाम्नंदी नामक करणकुतूहलटीका, ग्रहणस्वभावविचार, ज्ञानप्रदीप, भुवनमणाविचार। इस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने नामंदात्मज नामसे अपना परिचय दिया है। भुवनदीप वा ग्रहभाव प्रकाश, मेषानयन, सप्तांक, व्यवहार प्रदीप।

७ एक प्रसिद्ध नैयायिक। इनके पिताका नाम बलभद्र, माताका विजयश्री और भ्राताका गोवर्द्धनमिश्र तथा विश्वनाथ था। इन्होंने किरणावलीभास्कर, तत्त्व-चिन्तामणिपरीक्षा, तत्त्वप्रकाशिकाटीका, राधान्तमुक्ता-हार और कणादरहस्य नामकी उसकी टीका और १६४८ सम्वत्‌में वीरभद्रदेव चम्पकी रचना की।

पद्मनाभदत्त—एक प्रसिद्ध वैयाकरण। इन्होंने सुपद्म-व्याकरण, सुपद्मपञ्जिका, प्रयोगदीपिका, उणादिवृत्ति, धातुकौमुदी, यङ्लुक्‌वृत्ति, परिभाषा, गोपालचरित, आनन्दलहरीटीका, स्मृत्याचार-चन्द्रिका और भूरि-प्रयोग नामक संस्कृत अभिधान बनाये हैं। इन्होंने परिभाषामें अपने पूर्वपुरुषोंका इस प्रकार परिचय दिया है—

सर्वशास्त्रविशारद वररुचि, उनके पुत्र फणिभाष्यार्थतत्त्ववित् न्यासदत्त, न्यासदत्तके पुत्र पाणिनीयार्थ-तत्त्ववित् दुर्घट, दुर्घटके पुत्र मीमांसाशास्त्रपारग जयादित्य, जयादित्यके पुत्र सांख्यशास्त्रविशारद गणेश्वर (गणपति), गणेश्वरके पुत्र रसमञ्जरीकार भानुदत्त, भानुदत्तके पुत्र वेदशास्त्रार्थतत्त्ववित् हलायुध, हलायुधके पुत्र स्मृतिशास्त्रार्थतत्त्ववित् श्रीदत्त, श्रीदत्तके पुत्र वैदान्तिक भवदत्त, भवदत्तके पुत्र काव्यालंकारकारक दामोदर, दामोदरके पुत्र पद्मनाभ।

पद्मनाभदीक्षित—एक विख्यात स्मार्त्त। इनके पिताका नाम था गोपाल, पितामहका नारायण और गुरुका शितिकण्ठ। इन्होंने कात्यायनसूत्रपद्धति, प्रतिष्ठादर्पण और प्रयोगदर्पणकी रचना की।

पद्मनाभबीज (सं० क्ली०) पद्मनाभरचित बीजगणित।

पद्मनाभि (सं० पु०) पद्मं नाभौ यस्य, समासान्तविधेर-नित्यत्वात् न अच्। पद्मनाभ, विष्णु।

पद्मनाल (सं० क्ली०) पद्मस्य नालं। मृणाल, कमलकी नाल।

पद्मनिधि (सं० स्त्री०) कुबेरको नौ निधियोंमेंसे एक निधिका नाम।

पद्मनिमेक्षण (सं० त्रि०) पद्मसदृश चक्षुयुक्त, कमलके समान नेत्रवाला।

पद्मनिमीलन (सं० पु०) प्रस्फुटित पद्मका सङ्कोचन।

पद्मनेत्र (सं० पु० १ बुद्धविशेष बौद्धोंके अनुसार एक बुद्धका नाम जिनका अवतार अभी होनेको है। २ एक प्रकारका पक्षी।

पद्मपण्डित—नागरसर्वस्व नामक संस्कृत ग्रन्थके रचयिता।

पद्मपत्र (सं० क्ली०) पद्मस्य पत्रमिव, पद्मपत्रसादृश्यादस्य तथात्वं। १ पुष्करमूल पुष्करमूल। पद्मस्य पत्रं। २ कमलदल।

पद्मपर्ण (सं० क्ली०) पद्मस्य पर्णं पत्रं। पद्मपत्र, पुष्करमूल।

पद्मपलाशलोचन (सं० पु०) पद्मस्य पलाशे पत्रे लोचने यस्य। विष्णु।

पद्मपाणि (सं० पु०) पद्मं पाणौ यस्य। १ ब्रह्मा। २ बुद्धमूर्त्तिभेद, ४र्थ बोधिसत्त्व। अमिताभके देवपुत्र। नेपालके पौराणिक ग्रन्थमें पद्मपाणिके कुछ नामान्तर ये हैं—कमली, पद्महस्त, पद्मकर, कमलपाणि, कमलहस्त, कमलाकर, आर्य्यावलोकितेश्वर, आर्यावलोकेश्वर, लोकनाथ।

तिब्बतमें ये 'चेनरेसी' (अवलोकितेश्वर), 'थुगचिग' 'साल' (एकादशमुख), 'चग तोङ्ग' (सहस्र रचक), 'चकन पद्मकर्पो' (पद्मपाणि) इत्यादि नामोंसे तथा चीनदेशमें 'क्वनसे उते' और 'क्वन्-शे-यिन्' (परमकारुणिक) इत्यादि नामोंसे पुकारे जाते हैं। बौद्धसमाजमें पद्मपाणिकी उपासना और धारणीविशेष प्रचलित है। नेपालमें विशेषतः तिब्बतमें बौद्धगण दूसरे सभी बौद्धदेवदेवियोंसे पद्मपाणिकी पूजा और उनके प्रति अधिक भक्ति दिखलाते हैं। तिब्बतवासियोंका कहना है, कि पद्मपाणि ही शाक्यमुनिके प्रकृत प्रतिनिधि हैं। बोधिसत्त्वके निर्वाणलाभ करने पर लोग कहने लगे—अब जीवोंके प्रति कौन दया करेंगे? बादमें पद्मपाणि बोधिसत्त्वरूपमें आविर्भूत हुए। उन्होंने बुद्धमार्गकी रक्षा, अपने मतका प्रचार और सब जीवों पर दया करनेके लिये आत्मोत्सर्ग कर दिया। उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली कि जब तक मैत्रेय बुद्ध आविर्भूत न होंगे, तब तक वे निर्वाणलाभ करके सुखावतीधाम जानेकी चेष्टा नहीं करेंगे। बौद्ध लोग आपद्-विपद्में पद्मपाणिका स्मरण किया करते हैं।

पद्मपाणिकी नानामूर्त्ति कल्पित हुई हैं, कहीं एकादशमुख, अष्टहस्त और कहीं कुछ। एकादशमुख चूड़ाकारमें थाक थाकमें विभक्त रहता है। प्रत्येक थाकका वर्ण भिन्न भिन्न है। कण्ठके निकट जो तीन मुख हैं वे सफेद हैं, पीछेके तीन मुख पीले, बाद तीन लाल, दशवां मुख नीला और ग्यारहवां मुख लाल है। तिब्बतमें इसी प्रकारकी मूर्त्ति देखी जाती हैं। जापानमें ये ११ मुख बहुत छोटे मुकुटाकारमें हैं, उनके मध्यमें दो पूर्ण मूर्त्ति देखी जाती हैं। ऊपरकी मूर्त्ति खड़ी और नीचेकी बैठी है।

नेपाल और तिब्बतमें दो हाथवाले पद्मपाणि देखे जाते हैं, एकके हाथमें श्वेतपद्म है। बोधिसत्त्व देखो।

तिब्बतवासियोंका विश्वास है, कि पद्मपाणिकी ज्योतिर्विकीर्ण हो कर कभी कभी दलईलामाके रूपमें अवतीर्ण होती है। ३ सूर्य। ४ पद्महस्तक।

पद्मपाद—शङ्कराचार्य्यके एक प्रधान शिष्य। माधवाचार्यकी शङ्करविजयमें लिखा है—सनन्दन नामक एक शिष्य शङ्कराचार्यके बड़े ही भक्त और आज्ञानुवर्त्ती थे। शङ्कर उन्हें अपने पास रख कर सर्वदा परमात्मतत्त्वका उपदेश दिया करते थे और स्वरचित भाष्यसमूहको उन्हें तीन बार पढ़ा चुके थे। एक दिन शङ्करने गङ्गाके दूसरे किनारेसे उन्हें बुलाया। उनकी अचला गुरुभक्ति देख कर पार होते समय गङ्गा उनके पद पदमें पद्मसमूह विकसित करने लगीं। सनन्दन उन कमलकुसुमोंके ऊपर पैर रखते हुए किनारे पहुंचे। उनकी भक्तिकी तुलना नहीं है यह कह कर शङ्कराचार्यने उन्हें आलिङ्गन किया और उनका पद्मपाद नाम रखा। पद्मपाद हमेशा गुरुके पास ही रहते थे। उन्होंने कापालिकके कराल कवलसे गुरुका उद्धार किया था।

शङ्कराचार्य देखो।

सौरपुराणके ३८वें और ४०वें अध्यायमें ये पद्मपादुका-चार्य और परम अद्वैततत्त्ववित् नामसे वर्णित हुए हैं। मध्वाचार्य देखो।

पद्मपाद अनेक वेदान्तिक ग्रन्थोंकी रचना कर गए हैं जिनमेंसे सुरेश्वराचार्यकृत लघुशक्तिककी टोका, आत्मानात्मविवेक, पञ्चपादिका और प्रपञ्चसार नामक ग्रन्थ पाए जाते हैं। पद्मपादके अनुवर्त्ती शिष्योंसे ही दशनामियोंकी 'तीर्थ' और 'आश्रम' शाखा निकली है।

पद्मपादाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद। पद्मपाद देखो।

पद्मपुर—१ काश्मीरराज वृहस्पतिके मन्त्रीका बसाया हुआ एक नगर। इसका वर्त्तमान नाम पामपुर है। यह काश्मीरको राजधानी श्रीनगरसे ४ कोस दक्षिण-पूर्व बेहत नदीके किनारे अवस्थित है। आज भी यहाँ अनेक मनुष्योंका वास है। जाफरान् खेतके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है। २ राधातन्त्रवर्णित यमुना-तीरस्थ एक पुण्यस्थान।

पद्मपुराण (सं० क्लो०) व्यासप्रणीत अष्टादश महापुराण-के अन्तर्गत महापुराणभेद। नारदीयपुराणमें इस पुराण-का विषय इस प्रकार लिखा है—प्रथम सृष्टिखण्ड है। इसमें पहले सृष्ट्यादिक्रम, नाना आख्यान और इति-हासादि द्वारा धर्मविस्तार, पुष्करमाहात्म्य, ब्रह्मयज्ञ-विधान, वेदपाठादिलक्षण, दान-कीर्त्तन, उमाविवाह, तारकाख्यान, गोमाहात्म्य, कालकेयादिदैत्यवध, ग्रहोंका अर्चन और दान ये सब विषय वर्णित हैं। द्वितीय भूमि-खण्ड—इसके प्रथममें पितृ-मातृ आदिकी पूजा, शिव-शर्मकथा, उत्तमव्रतकी कथा, वृत्रवध, पृथु और वेणका धर्माख्यान, पितृशुश्रूषणाख्यान, नहुषकथा, ययातिचरित, गुरुतीर्थनिरूपण, बहु आश्चर्य कथा, अशोकसुन्दरीकी कथा, हुण्डदैत्यवधाख्यान, कामोदाख्यान, विहुण्डवध, कुञ्जलसम्वाद, सिद्धाख्यान, सूतशौनकसंवाद ये सब विषय प्रदर्शित हुए हैं।

तृतीय स्वर्गखण्ड—इसमें ब्रह्माण्डोत्पत्ति, सभूमलोक-संस्थान, तीर्थाख्यान, नर्मदोत्पत्ति कथन, कुरुक्षेत्रादि तीर्थकी कथा, कालिन्दीपुण्यकथन, काशीमाहात्म्य, गया तथा प्रयागमाहात्म्य, वर्णाश्रमानुरोधसे कर्मयोगनिरूपण, व्यासजैमिनिसम्वाद, समुद्र-मथनाख्यान, व्रतकथा ये सब विषय वर्णित हैं।

चतुर्थ पातालखण्ड—पहले रामका अश्वमेध और राज्याभिषेक, अगस्त्यादिका आगमन, पौलस्त्यवंशकी-र्त्तन, अश्वमेधोपदेश, हयचर्या, नानाराजकथा, जगन्नाथ-वर्णन, वृन्दावनमाहात्म्य, नित्यलीलाकथन, माधव-स्नानमाहात्म्य, स्नानपूजार्चन, धरावराहसम्वाद, यम और ब्राह्मणकी कथा, राजदूतसंवाद, कृष्णस्तोत्र, शिव-शम्भुसमायोग, दधीच्याख्यान, भस्ममाहात्म्य, शिव-माहात्म्य, देवरातसुताख्यान, गौतमाख्यान, शिवगीता, कल्पान्तरीरामकथा, भरद्वाजाश्रमस्थिति ये सब विषय वर्णित हैं।

पञ्चम उत्तरखण्ड—प्रथम गौरीके प्रति शिवका पर्वताख्यान, जालन्धरकथा, श्रीशैलादिका वर्णन, सागरकथा, गङ्गा, प्रयाग और काशीका आधिपुण्यक, आत्मादिदानमाहात्म्य, महाद्वादशीव्रत, चतुर्विंशैका-दशीका माहात्म्यकथन, विष्णुधर्मसमाख्यान, विष्णुनाम-सहस्रक, कार्त्तिकव्रतमाहात्म्य, माघस्नानफल, जंबूद्वीप और तीर्थमाहात्म्य, साभ्रमतीका माहात्म्य, नृसिंहो-त्पत्तिवर्णन, देवशर्मादि-आख्यान, गीतामाहात्म्य-वर्णन, भक्त्याख्यान, श्रीमद्भागवतका महात्म्य, इन्द्र-प्रस्थका माहात्म्य, बहुतीर्थकी कथा, मन्त्ररत्नाभिधान, त्रिपादभूत्यनुवर्णन, मत्स्यादि अवतारकथा, रामनाम-शत और तन्माहात्म्य, उत्तरखण्डमें यही सब वर्णित हुए हैं।

पद्मपुराण इन्हीं पांच खण्डोंमें विभक्त है। ये पञ्च-खण्ड पद्मपुराण जो भक्तिपूर्वक श्रवण करते हैं, उन्हें वैष्णवपद लाभ होता है, इस पद्मपुराणमें ५५ हजार श्लोक हैं। पुराण देखो।

दिगम्बर जैनियोंके भी इस नामके दो पुराण हैं जिनमेंसे एक रविसेनविरचित है। जैन हरिवंशकार जिनसेनने ८वीं शताब्दीमें इस पद्मपुराणका उल्लेख किया है। जैनोंकी अनेक पौराणिक आख्यायिका इस पद्म-पुराणमें देखी जाती हैं। सचराचर जैन लोग इस वृहत् पद्मपुराण मानते हैं। इस पुराणके सुलोचना आदि कुछ उपाख्यान हिन्दू-पद्मपुराणमें भी देखे जाते हैं।

पद्मपुष्प (सं० पु०) पद्ममिव पुष्पं यस्य। १ कर्णिकार-वृक्ष, कनेरका पेड़। २ पिकाङ्गपक्षी, एक प्रकारकी चिड़िया। ३ पारिभद्रकवृक्ष।

पद्मप्रभ (सं० पु०) पद्मस्येव प्रभा यस्य। चतुर्विंशति अर्हदन्तर्गत षष्ठअर्हद्भेद।

पद्मप्रभ—१ एक पण्डित। इन्होंने मुनिसुव्रतचरित्र नामक एक ग्रन्थ रचा है। ग्रन्थरचनाकालमें १२८४ सम्वत्को इनके शिष्य पद्मप्रभसूरिने इनको सहायता की थी। तिलकाचार्यने तत्कृत आवश्यकनिर्युक्तिको लघुवृत्तिके शेषभागमें इस विषयका उल्लेख किया है। मुनिसुव्रतचरित्रके शेषभागमें ग्रन्थकारने जो निज गुरुपरम्पराका परिचय दिया है, वह इस प्रकार है—चन्द्रवंशमें १ वर्द्धमान, २ जिनेश्वर और बुद्धिसागर, ३ जिनचन्द्र, अभयदेव, ४ प्रसन्न, ५ देवभद्र, ६ देवानन्द, ७ देवप्रभ, विबुधप्रभ और पद्मप्रभ।

पद्मप्रभनाथ—जैनोंके छठें तीर्थङ्कर। ये कौशाम्बी नगरमें श्रीधरराजके औरस और सुसीमाके गर्भसे कार्त्तिक कृष्ण द्वादशी चित्रानक्षत्र कन्यालग्नमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सोमदेवालयमें दो दिन पारण करके कार्त्तिक त्रयोदशीको दीक्षा और सम्मेतशिखर पर अग्रहायण कृष्ण एकादशीको मोक्षलाभ किया था। इनका शरीर रक्तवर्ण, शरीरमान २५० धनु, आयुर्मान ३० लाख पूर्व था और शरीरमें पद्मका चिह्न शोभता था। जैनके बृहत् पद्मपुराणमें इनका चरित्र विस्तृतभावसे वर्णित है। जैन देखो।

पद्मप्रभपण्डित—एक जैन ग्रन्थकार। धर्मघोषके शिष्य और प्रद्युम्नमिश्रके गुरु।

पद्मप्रिया (सं० स्त्री०) पद्मानि प्रियाणि यस्याः। १ जरत्कारुमुनिपत्नी मनसादेवी। २ गायत्रीरूप महादेवी।

पद्मबन्ध (सं० पु०) पद्मस्येव बन्धः रचना यस्य। १ चित्रकाव्यविशेष, एक प्रकारका चित्रकाव्य जिसमें अक्षरोंको ऐसे क्रमसे लिखते हैं जिससे एक पद्म या कमलका आकार बन जाता है। इसका उदाहरण इस प्रकार लिखा है—

"सारमा सुषमा चारु रुचा मार वधूत्तमा।
मात्त धूर्त्ततमा वासा सा वामा मेऽस्तु मा रमा॥"

पद्मबन्धु (सं० पु०) पद्मस्य कमलस्य बन्धुः। १ सूर्य। पद्मेन बध्यते रुध्यतेऽसौ निशायां मधुलोभात्, बन्ध-उन्। २ भ्रमर, भौंरा।

पद्मभास (सं० पु०) विष्णु।

पद्मभू (सं० पु०) पद्मं विष्णुनाभिभवकमलं भूरुत्पत्तिस्थानं यस्य, यद्वा पद्मात् उद्भवतीति भू-क्विप्। ब्रह्मा। ब्रह्मा विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, इसीसे इनका नाम पद्मभू पड़ा है। भागवतमें इनका उत्पत्ति-विवरण इस प्रकार लिखा है,—

"परावरेषां भूतानामात्मा यः पुरुषो परः।
स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन॥
तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः।
तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयम्भूश्चतुराननः॥"

(भाग० ९।१।८-९)

परावर जगत्के कर्त्ता प्रधान पुरुष आत्मा ही एकमात्र थे, कल्पान्तमें और दूसरा कुछ भी न था। उनके नाभिकमलसे स्वयम्भू ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई।

पद्ममय (सं० त्रि०) पद्म स्वरूपे मयट्। पद्मयुक्त, पद्मनिर्मित।

पद्ममालिनी (सं० स्त्री०) १ गङ्गा। (पु०) २ पद्ममालाधारी राक्षसभेद।

पद्ममाली (सं० पु०) राक्षसका एक नाम।

पद्ममिहिर (सं० पु०) काश्मीरदेशके एक पुरातन इतिहास प्रणेता।

पद्ममुख (सं० त्रि०) पद्ममिव मुखं यस्य। १ कमल सदृश मुखयुक्त, कमलके जैसा जिसका मुख हो। (पु०) २ दुरालभा, धमासा नामका कटीला पौधा।

पद्ममुखी (सं० स्त्री०) १ कण्टकारी, भटकटैया। २ दुरालभा, धमासा।

पद्ममुद्रा (सं० स्त्री०) तन्त्रसारोक्त मुद्राविशेष, तांत्रिकोंकी पूजामें एक मुद्रा जिसमें दोनों हथेलियोंको सामने करके उंगलियां नीचे रखते हैं और अंगूठे मिला देते हैं।

पद्ममेरु—एक प्रसिद्ध जैन पण्डित, पद्मसुन्दरके गुरु और आनन्दमेरुके शिष्य। इन्होंने १६१५ सम्वत्में रायमल्लाभ्युदय नामक महाकाव्यकी रचना की।

पद्मयोनि (सं० पु०) पद्मं विष्णुनाभिकमलं योनिरुत्पत्तिस्थानं यस्य। १ ब्रह्मा। २ बुद्धका एक नाम।

पद्मरज (सं० पु०) पद्मकेशर, कमलका केसर।

पद्मरथ (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

पद्मराग (सं० पु०) पद्मस्येव रागो यस्य। रक्तवर्ण मणिविशेष।

असली लाल चुन्नीको ही पद्मराग कहते हैं। चुन्नी शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। 'अगस्तिमत' नाम रत्नशास्त्र-में लिखा है—

त्रैलोक्यकी भलाईके लिए पुराकालमें जब इन्द्रने असुरको मारना चाहा, तब उन्होंने जिससे उसका बिन्दुमात्र भी रक्त पृथ्वी पर गिरने न पावे, इस ख्यालसे सूर्यदेवको धारण किया। किन्तु दशाननको देख कर सूर्य डर गये और वह रक्त विच्छिन्न हो कर सिंहलदेश-में रावण गङ्गानदीमें पतित हुआ। रातको उस नदीके दोनों किनारे तथा मध्यमें वह रुधिर खद्योताग्निवत् जलने लगा। उन्हींसे एक जातीय तीन प्रकारके पद्म-रागकी उत्पत्ति हुई।

वराहमिहिरकी वृहत्संहिताके मतसे—सौगन्धिक, कुरुविन्द और स्फाटिकसे पद्मरागमणिकी उत्पत्ति हुई है। इनमेंसे सौगन्धिकजात पद्मराग भ्रमर, अञ्जन, पद्म और जम्बुरसके जैसा दीप्तिशाली; कुरुविन्दजात पद्मराग बहुवर्णयुक्त मन्दद्युतिसम्पन्न और धातुविद्ध तथ स्फाटिक जात पद्मराग विविध वर्णयुक्त द्युतिमान् और विशुद्ध होता है।

अगस्त्यके मतसे पद्मराग एक जातिका होने पर भी वर्णभेदके अनुसार यह तीन प्रकारका है, सुगन्धि, कुरुविन्द और पद्मराग। पद्मराग देखनेमें पद्मपुष्पके जैसा, खद्योतकी तरह प्रभायुक्त, कोकिल, सारस वा चकोर पक्षीके चक्षुके जैसा और समवर्णयुक्त होता है। सौग-न्धिक देखनेमें ईषत् नील, गाढ़ रक्तवर्ण, लाक्षारस, हिङ्गुल और कुङ्कुमके जैसा आभायुक्त है। कुरुविन्द देखनेमें अधारक्त, लोध्र, सिन्दूर, गुञ्जा, बन्धूक और किंशुकके जैसा अतिरक्त और पीतवर्णयुक्त होता है।

अगस्त्यके मतसे सिंहल, कालपुर, अन्ध्र और तुम्बुर नामक स्थानमें पद्मराग पाया जाता है। इनमेंसे सिंहल-में अतिरक्तवर्ण, कालपुरमें पीतवर्ण, अन्ध्रमें ताम्रभानु-वत्वर्ण और तुम्बुरमें हरित् छायाकी तरहका पद्मराग मिलता है।

मतान्तरसे—सिंहलमें जो रक्तवर्णका पद्मराग मिलता है वही उत्तम पद्मराग है। कालपुरोत्पन्न पीत-वर्णको कुरुविन्द कहते हैं। तुम्बुरमें जो नील-छाया-वत् मणि पाई जाती है, वही नीलगन्धि है। इनमेंसे सिंहलदेशोद्भव पद्मराग उत्तम, मध्यदेशज मध्यम और तुम्बुरुदेशोद्भव पद्मराग ही निकृष्ट माना गया है।

युक्तिकल्पतरुमें लिखा है—रावणगङ्गा नामक स्थान-में जो कुरुविन्द उपजता है वह खूब लाल और परि-ष्कार प्रभायुक्त होता है। अन्ध्रदेशमें एक और प्रकारका पद्मराग मिलता है जो रावणगङ्गाजात पद्मरागके जैसा वर्णयुक्त नहीं होता और उसका मूल्य भी उससे कम है। इसी प्रकार स्फटिकाकार तुम्बरवंशोद्भव पद्मराग भी कम दामका है, किन्तु देखनेमें सुन्दर होता है।

कौन पद्मराग उत्कृष्ट जातिका है और कौन विजा-तीय है, इसका निर्णय करनेकी व्यवस्था युक्तिकल्पतरुमें इस प्रकार लिखी है—

कसौटी पर घिसनेसे जिस की शोभा बढ़ती अथच परि-माण भी नष्ट नहीं होता, वही जात्यपद्मराग है। जिस-में ऐसा गुण नहीं है उसे विजातीय समझना चाहिये। हीरक हो चाहे माणिक्य, सजातीय दो पद्मरागको सटा कर रखनेसे अथवा एक दूसरेमें घिसनेसे यदि कोई दाग न पड़े, तो उसीको जातिपद्मराग जानना चाहिए। फिर भी, जिसमें छोटे छोटे बिन्दु हों, जो देखनेमें उतना चमकीला न हो, मर्दनसे जिसकी दीप्ति कम हो जाती हो, उंगलीमें धारण करनेसे जिसके पार्श्वमें काली आभा दिखाई पड़ती हो वही विजाति पद्मराग है। इसके अलावा दो मणि ले कर वजन करनेसे जिसका वजन भारी होगा वह उत्तम और जिसका कम होगा वह निकृष्ट पद्मराग समझा जाता है।

एतद्भिन्न रत्नशास्त्रविद् पद्मरागमें ८ प्रकारके दोष, ४ प्रकारके गुण और १६ प्रकारकी छायाके विषयका वर्णन कर गये हैं।

देखनेमें पद्मरागकी तरहका, ऐसा विजातीय पद्म-राग पांच प्रकारका है—कलशपुरोद्भव, सिंहलीय, तुम्बुरीय, मुक्तामालीय और श्रीपूर्णक। कलशपुरोद्भव-के ऊपर तुषके जैसा दाग रहता है, तुम्बरमें कुछ कुछ

ताम्रभाव और सिंहलीयमें कालो आभा लक्षित होती है। इसी प्रकार मुक्तामाला और ओपर्णिकमें भी वे जात्य-बोधक चिह्न देखा जाता है। चुनी और माणिक्य देखो।

पद्मरागमय (सं० त्रि०) पद्मराग-मयट्। पद्मरागविशिष्ट।

पद्मराज (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

पद्मराजगणि—ज्ञानतिलकगणिके गुरु और पुण्यसागरके शिष्य। इन्होंने १६६० सम्वत्में गौतमकुलकवृत्तिकी रचना की।

पद्मरेखा (सं० स्त्री०) पद्माकारा रेखा। हस्तस्थित पद्माकार रेखाभेद, सामुद्रिकके अनुसार हथेलीकी एक प्रकारकी प्राकृतिक रेखा जो बहुत भाग्यवान् होनेका लक्षण मानी जाती है।

पद्मरेणु (सं० पु०) पद्मकेसर।

पद्मलाञ्छन (सं० पु०) पद्मं विशा कमलं वा लाञ्छनं यस्य। १ ब्रह्मा। २ सूर्य। ३ कुवेर। ४ नृप ५ बुद्ध। (स्त्री०) ६ तारा। ७ लक्ष्मी। ८ सरस्वती। (त्रि०) ९ पद्मरेखायुक्त।

पद्मलेखा (सं० स्त्री०) काश्मीरराजकन्याभेद।

पद्मवत् (सं० त्रि) पद्मं विद्यतेऽस्य, पद्म-मतुप्, मस्य व। १ पद्मयुक्त। (पु०) २ स्थलकमलिनी, गेंदा।

पद्मवर्ण (सं० पु०) पुराणानुसार यदुके एक पुत्रका नाम।

पद्मवर्णक (सं० क्ली०) पद्मस्येव वर्णो यस्य कप्। १ पुष्करमूल। २ कमलतुल्य वर्णयुक्त। ३ पद्मकाष्ठ।

पद्मवासा (सं० स्त्री०) पद्मे वासो यस्याः। पद्मालया लक्ष्मी।

पद्मविजय—एक प्रसिद्ध जैनयति। ये यशोविजयगणिके सतीर्थ थे। इन्होंने ज्ञानविन्दु प्रकाशकी रचना की है।

पद्मवीज (सं० क्ली०) पद्मस्य वीजं। कमलवीज, कमलगट्टा। पर्याय—पद्माक्ष, गालोड्य, कन्दली, भेण्डा, क्रौञ्चादनी, कोञ्चा, श्यामा, पद्मकर्कटी। गुण—कटु, स्वादु, पित्त, छर्दि, दाह और रक्तदोषनाशक, पाचन तथा रुचिकारक।

भावप्रकाशके मतसे इसका गुण—हिम, स्वादु, कषाय, तिक्त, गुरु, विष्टम्भि, वलकर, रुक्ष और गर्भसंस्थापक।

पद्मवीजाभ (सं० स्त्री०) पद्मवीजस्य आभा इव आभा यस्य। मखान्नफल, मखाना।

पद्मवृक्ष (सं० क्ली०) पद्मकाष्ठ।

पद्मवृषभविक्रामिन्—भावी बुद्धभेद।

पद्मव्यूह (सं० पु०) १ समाधिभेद, एक प्रकारकी समाधि। २ प्राचीनकालमें युद्धके समय किसी वस्तु या व्यक्तिकी रक्षाके लिये सेनाको रखनेकी एक विशेष स्थिति। इसमें सारी सेना कमलके आकारकी हो जाती थी।

पद्मशायिनी (सं० स्त्री०) जलचर पक्षिभेद, पानीमें रहनेवाली एक चिड़िया।

पद्मशाली—बम्बई प्रदेशवासी शाली जातिकी एक शाखा। शाली देखो।

पद्मश्री (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

पद्मषण्ड (सं० क्ली०) पद्मसमूह, कमलका ढेर।

पद्मसमासन (सं० पु०) पद्मसमं आसनं यस्य। १ ब्रह्मा। (त्रि०) २ जिसके पद्मतुल्य आसन हो।

पद्मसम्भव (सं० पु०) पद्मं विष्णुनाभिकमलं सम्भव उत्पत्तिस्थानं यस्य। १ ब्रह्मा। २ एक विख्यात बौद्ध पंडित।

पद्मसुन्दर—एक विख्यात जैनपण्डित। ये पद्ममेरुके शिष्य और आनन्दमेरुके प्रशिष्य थे। हर्षकीर्त्तिके धातुपाठसे जाना जाता है, कि पद्मसुन्दर तपागच्छके नागपुरीय शाखाभुक्त थे। इन्होंने दिल्लीश्वर अकबरकी सभामें एक विख्यात पण्डितको परास्त किया था। इस पर सम्राट्ने प्रसन्न हो कर इन्हें एक ग्राम, वस्त्र और सुखासन पारितोषिकमें दिये थे। इन्होंने संस्कृत भाषामें १६१९ सम्वत्को 'रायमल्लाभ्युदय महाकाव्य' और १६२२ सम्वत्को 'पार्श्वनाथकाव्य' तथा प्राकृतिभाषामें 'जम्बूस्वामिकथानक'की रचना की।

पद्मसरस् (सं० क्ली०) काश्मीरस्थ ह्रदभेद।

पद्मसागरगणि—एक जैनाचार्य, विमलसागरगणिके शिष्य। इन्होंने १६८७ सम्वत्में उत्तराध्ययन वृहद्वृत्तिकथाकी रचना की।

पद्मसूत्र (सं० क्ली०) पद्मका सूत्र या माला।

पद्मसूरि—वृहद्गच्छभुक्त एक जैनाचार्य। आसडरचित

विवेकमञ्जरीका बालचन्द्रने जो टीका रची थी, पद्मसूरिने उसीका संशोधन किया था।

पद्मस्नुषा (सं० स्त्री०) १ गङ्गा। २ दुर्गा।

पद्मस्वस्तिक (सं० पु०, पद्मचिह्नयुक्त स्वस्तिकभेद, वह स्वस्तिकचिह्न जिसमें कमल भी बना हो।

पद्महस्त (सं० पु०) प्राचीन कालकी लम्बाई नापनेकी एक प्रकारकी माप।

पद्महास (सं० पु०) विष्णु।

पद्मा (सं० स्त्री०) पद्मं वासस्थलत्वेनास्त्यस्याः, अर्श आदित्वादच्, टाप् च। १ लक्ष्मी। २ लवङ्ग, लौंग। ३ पद्मचारिणीलता। ४ पन्नगी, मनसादेवी। मनसा देखो। ५ फञ्जिकावृक्ष, गेंदेका वृक्ष। ६ अर्हत् मातृभेद। ७ कुसुम्भपुष्प, कुसुमका फूल। ८ बृहद्रथराज-कन्या। कल्किदेवके साथ इसका विवाह हुआ था। विवाहके बाद कल्किदेव नवविवाहिता स्त्रीके साथ सिंहलद्वीपमें रहने लगे थे। कल्किपुराणके १०वें अध्यायमें इनका पूरा हाल लिखा है। कल्कि देखो। ९ बङ्गदेशमें प्रवाहित गङ्गाकी पूर्वी शाखा। ८वीं शताब्दीमें रचित जैनोंके हरिवंशमें यह पद्मागङ्गा-पूर्वनद नामसे वर्णित है। गङ्गा देखो। १० भादों सुदी एकादशी तिथि। ११ मृणाल, कमलका नाल। १२ मञ्जिष्ठा, मजीठ।

पद्माकर (सं० पु०) पद्मस्य आकरः। १ पद्मजनक जलाशय, बड़ा तालाब या झील जिसमें कमल पैदा होते हों। पर्याय—तड़ाग, कासार, सरसी, सरस्, सरोजिनी, सरोवर, तड़ाक, तटाक, सरस, सर, सरक। २ हिन्दीके एक प्रसिद्ध कविका नाम।

पद्माकरदेव—नरपतिविजय नामक ज्योतिःग्रन्थके रचयिता।

पद्माकर भट्ट—१ निम्बार्क सम्प्रदायके एक महन्त। ये कृष्णभट्टके शिष्य और श्रवणभट्टके गुरु थे।

२ हिन्दीके एक कवि। आप बाँदा बुन्देलखण्डके वासी मोहनभट्टके पुत्र थे। सं० १८३८में आपका जन्म हुआ था। आप पहले आपा साहब रघुनाथ राव पेशवाके यहाँ रहते थे। आपके एक कवित्तसे प्रसन्न हो कर आपा साहबने आपको एक लाख रुपये पारितोषिकमें दिये। पुनः यहाँसे आप जयपुर गये और वहाँ सवाई जगत् सिंहके नाम जगद्विनोद नामक ग्रन्थ बनाया। इस ग्रन्थको बना कर आपने जयपुरके राजासे बहुत धन पाया। वृद्धावस्थामें आपने गङ्गासेवन किया था। उसी समयका बनाया आपका गङ्गालहरी नामक स्तुति-ग्रन्थ विशेष आदरणीय है।

पद्माक्ष (सं० क्ली०) पद्मस्य अक्षीव, समासे षच्, समासान्तः। १ पद्मबीज, कमलगट्टा। पद्मे इव पद्मयुगलवत् अक्षिणी यस्य। २ पद्मनेत्र, कमलके समान आंख। ३ विष्णु।

पद्माचल—भारतके पश्चिम उपकूलस्थित गोकर्णके निकटवर्त्ती एक पवित्र गिरि। यहां पद्मगिरीश्वर नामक शिव और अभिरामी नामक उनकी शक्तिका एक मन्दिर है। पद्माचलमाहात्म्यमें इसका पौराणिक आख्यान वर्णित है।

पद्माट (सं० पु०) पद्मं पद्मसादृश्यं अटति गच्छति अट-गतौ-अण्। १ चक्रमर्द, चकवंड़। (क्ली०) २ चकवंड़के बीज। ३ महाभल्लातक गुड़।

पद्माधोश (सं० पु०) विष्णु।

पद्मानन्द—पद्मानन्दशतकके रचयिता।

पद्माम्बर (सं० क्ली०) पद्मपत्र, कमलके पत्ते।

पद्मालय (सं० पु०) ब्रह्मा।

पद्मालया (सं० स्त्री०) पद्ममेव आलयो वासस्थानं यस्याः। १ लक्ष्मी। २ लवङ्ग। ३ गङ्गा।

पद्मावती (सं० स्त्री०) पद्म-अस्त्यर्थे-मतुप्, मस्य वत्वं संज्ञायां दीर्घः। १ मनसादेवी। २ नदीविशेष, पद्मानदी। ३ पद्मचारिणी, गेंदेका वृक्ष। ४ प्रसिद्ध कवि जयदेवकी पत्नी। ५ पटना नगरका प्राचीन नाम। ६ पन्ना नगरका प्राचीन नाम। ७ एक मात्रिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें १०, ८ और १४-के विरामसे ३२ मात्राएं होती हैं और अन्तमें दो गुरु होते हैं। ८ जरत्कारु ऋषिकी स्त्रीका नाम, लक्ष्मी। ९ पुराणानुसार स्वर्गकी एक अप्सराका नाम। १० युधिष्ठिरकी एक रानीका नाम।

पद्मावती—१ पौराणिक जनपदभेद। विष्णु, मत्स्य आदि पुराणोंमें लिखा है—"पद्मावती, कान्तिपुरी और मथुरामें

नवनाग राज्य करेंगा।" यह पद्मावती नगरी कहां है? इसके उत्तरमें भवभूतिने मालती माधवमें लिखा है—'जहां पारा और सिन्धुनदी बहती है, जहां पद्मावतीके उच्च सौधमन्दिरावलीको चूड़ा गगनस्पर्श करती है, वहां लवणकी चञ्चल तरङ्गिणी प्रवाहित होती है।' विन्ध्यशैलमालाके मध्यमें अवस्थित वर्त्तमान नरवारका नलपुर दुर्गके पार्श्वमें आज भी सिन्धु, पारा, लवण वा नूननदी तथा मडुवार वा मधुमती नामक स्रोतस्वती बहती है। इससे यह सहजमें अनुमान किया जाता है, कि वर्त्तमान नरवर ही पूर्वकालमें पद्मावती नामसे प्रसिद्ध था।

२ सिंहलराजकन्या। चित्तौरके राजा रत्नसेन उसे हर लाये थे और उससे विवाह कर लिया था। गजनी-निवासी हुसेनने पारसी भाषामें 'किस्सा पद्मावत' नामक एक ग्रन्थमें उक्त उपाख्यानकी प्रथम वर्णना की है। राव गोविन्द मुंशीने १६५२ ई०में 'तुकवत् उलव' नामसे उक्त उपाख्यानको पारसी भाषामें प्रकाशित किया। उक्त पद्मावतीका उपाख्यान ले कर उत्कलके राजकवि उपेन्द्रभञ्जने तथा प्रायः २५० वर्ष पहले आराकानके प्रसिद्ध मुसलमान कवि आलायलने बङ्गालमें पद्मावतीकाव्यकी रचना की।

चित्तौरका पद्मिनी-उपाख्यान ही विकृतभावसे इस पद्मावती काव्यमें वर्णित है। चित्तौराधिप पद्मावतीके कवि द्वारा रत्नसेन नामसे विवृत हुए। उपाख्यान विकृत होने पर भी इस काव्यके शेषमें अलाउद्दीनका पराजयप्रसङ्ग है। कवि आलायलने आराकानराजके अमात्य मागन ठाकुरके आदेशसे पद्मावतीकी रचना की। वह ग्रन्थ यद्यपि मुसलमान कविसे बनाया गया है और उसमें मुसलमानी भाव अवश्य है, तो भी हिन्दू समाजका आचार-व्यवहार और प्रकृत पारिवारिक चित्र अत्यन्त सुन्दर अङ्कित हुआ है। ग्रन्थ पढ़नेसे ग्रन्थकारकी संस्कृताभिज्ञताका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

पद्मावतीप्रिय (सं० पु०) पद्मावत्याः प्रियः स्वामी। १ जरत्कारुके मुनि। २ जयदेव।

पद्मासन (सं० क्ली०) पद्ममिव पद्माकारेण बद्धं आसनं। १ योगासनविशेष। गोरक्षसंहितामें इस पद्मासनका विषय इस प्रकार लिखा है—वाम ऊरुके ऊपर दक्षिण ऊरु रखते हैं और छाती पर अङ्गुष्ठ रख कर नासिकाके अग्रभागको देखते हैं। यह पद्मासन व्याधिनाशक है।

२ पूजाके निमित्त धातुमय पद्माकार आसन। पद्मं विष्णुनाभिकमलं आसनं यस्य। ३ ब्रह्मा, कमलासन। ४ शिव। ५ सूर्य। ६ स्त्रीके साथ प्रसङ्ग करनेका एक आसन।

पद्मासनडंड (सं० पु०) एक प्रकारका डंड जो पालथी मार कर और घुटने जमीन पर टेक कर किया जाता है। इससे दम बढ़ता है और घुटने मजबूत होते हैं।

पद्माह्वा (सं० स्त्री०) पद्मस्य आह्वा आख्या यस्याः। १ पद्मचारिणी लता, गेंदा। २ लवङ्ग, लौंग।

पद्मिन् (सं० पु०) पद्मानि सन्त्यस्मिन्, पुष्करादित्वात् इनि। १ पद्मवृन्द। २ पद्मधारी विष्णु। विष्णु शङ्ख-चक्रगदापद्मधारी हैं इसीसे उन्हें पद्मिन् कहते हैं। (त्रि०) ३ पद्मधारिमात्र। ४ पद्मयुक्त।

पद्मिनी (सं० स्त्री०) पद्मिन् स्त्रियां ङीप्। १ पद्मलता। पर्याय—नलिनी, बिसिनी, मृणालिनी, कमलिनी, पङ्कजिनी, सरोजिनी, नालीकिनी, नालोकिनी, अरविन्दिनी, कुमुदिनी, पुष्करिणी, जलजालिनी, अब्जिनी।

इसका गुण—मधुर, तिक्त, कषाय, शीतल, पित्त, कफ, मददोष, वमि, भ्रम और सन्तापनाशक है। पद्मस्य गन्ध इव गन्धो विद्यते शरीरे यस्याः। २ कोकशास्त्रके अनुसार स्त्रियोंकी चार जातियोंमेंसे सर्वोत्तम जाति। कहते हैं, कि इस जातिकी स्त्री अत्यन्त कोमलाङ्गी, सुशीला, रूपवती और पतिव्रता होती है। ३ सरोवर, तालाब। ४ पद्म, कमल। ५ मृणाल, कमलकी नाल। ६ हस्तिनी, मादा हाथी।

पद्मिनी—भीमसेनकी प्रधान महिषी (पटरानी) और हमीरशङ्ककी कन्या। १२७५ ई०में लक्ष्मणसिंह मेवारके सिंहासन पर बैठे। नाबालिग होनेके कारण उनके चचा भीमसिंह राजकार्यकी देखभाल करते थे। इसी भीमसिंहने भारतप्रसिद्ध पद्मिनीका पाणिग्रहण किया था।

रूपमें गुणमें ऐसी रानी बहुत कम देखी गई है। इस सौन्दर्यमयी अलौकसामान्या रमणीको लक्ष्य कर

देशीय और विदेशीय कितने ही कवि काव्य लिख कर प्रतिष्ठा लाभ कर गए हैं। पद्मावती देखो। राजपूतभाटगण आज भी उनको राजपूत-जननी कह कर सम्बोधन करते और उनकी कीर्त्ति गाथा गा गा कर सर्वसाधारणको मुग्ध किया करते हैं।

पद्मिनीका रूप ही राजपूतजातिके अनर्थका कारण था। सुलतान अलाउद्दीनने पद्मिनीको पानेकी आशासे ही चित्तौरमें घेरा डाला था। बहुत दिन तक घेरे रहनेके बाद उन्होंने यह प्रचार कर दिया कि 'पद्मिनीको पा लेनेसे ही वे भारतवर्ष छोड़ कर चले जायंगे।' परन्तु वीरचेता राजपूतोंने यह सुन कर प्रतिज्ञा की कि जब तक एक भी राजपूत जीता जागता रहेगा, तब तक कोई भी मुसलमान चित्तौरकी रानी पर हाथ नहीं रख सकता। जब अलाउद्दीनने देखा, कि उनका उद्देश्य सिद्ध होनेका नहीं है, तब उन्होंने भीमसिंहको कहला भेजा, 'मैं उस अनुपमा सुन्दरीकी प्रतिच्छायाको सिर्फ एक बार दर्पणमें देख कर देश लौट जाऊंगा।' भीमसिंह इस प्रस्ताव पर सहमत हो गये। धूर्त्त अलाउद्दीनने कुछ सेना ले कर चित्तौरमें प्रवेश किया। भीमसेनने आतिथ्य सत्कारमें एक भी कसर उठा न रखी। यहां तक कि वे अलाउद्दीनके बिदाई-कालमें उनके साथ दुर्ग तक आये थे। धूर्त अलाउद्दीनने चिकनी चुपड़ी बातोंसे राजपूतोंको लुभा लिया। भीमसेन अलाउद्दीनके साथ शिष्टालाप कर ही रहे थे, कि इतनेमें एक दल सशस्त्र यवनसेना गुप्त स्थानसे निकल कर एकाएक भीमसिंह पर टूट पड़ी और उन्हें कैद कर लिया। अलाउद्दीनने यह घोषणा कर दी, कि जब तक पद्मिनी न मिलेगी तब तक भीमसिंहको नहीं छोड़ सकते।

इस दारुण संवादको सुन कर चित्तौरमें खलबली मच गई। बाद बुद्धिमती पद्मिनीने पतिके उद्धारके लिए एक नई तरकीब ढूंढ निकाली। उन्होंने अलाउद्दीनको कहला भेजा, 'हम आत्मसमर्पण करनेको तैयार हैं, लेकिन इसके पहले आपको अवरोध उठा लेना पड़ेगा। हमारी सहचरीगण आपके शिविर तक हमारे साथ आना चाहती हैं, जिससे उनकी मर्यादामें कोई हानि न पहुंचे, इसका भी आपको बन्दोबस्त करना होगा। हमारी जो चिरसङ्गिनी हैं वे भी हमारे साथ दिल्ली तक जानेको तैयार हैं। इन सब भद्रमहिलाओंकी मर्यादा और सम्मानरक्षामें जिससे कुछ त्रुटि न हो तथा जिससे कोई इन सब पुरमहिलाओंके निकटवर्ती हो कर अन्तःपुरविधिका व्यभिचार न करे, इसका भी आपका उचित प्रबन्ध करना होगा और अन्तिम बिदाई लेनेके लिये आपको भीमसेनके साथ हमारा मुलाकात कराना होगा।' अलाउद्दीन पद्मिनीके उक्त प्रस्तावों पर सहमत हो गये।

पीछे निर्दिष्ट दिनमें सात सौ आवरणयुक्त शिविका मंगाई गई। चुने हुए सात सौ सशस्त्र राजपूत वीर उन शिविकाओंमें जा बैठे। आच्छादित शिविकाएं धीरे धीरे यवनशिविरके अभ्यन्तर पहुंचीं। आध घण्टेके लिए भीमसेनको प्राणप्रियतमासे मिलनेका आदेश हुआ। आज्ञा पाते ही भीमसेन यवनशिविरमें रानीसे मुलाकात करने आये। यहां पहुंचते ही उनको कुछ सेनापतिओंने बहुत छिप कर उन्हें शिविकामें बिठा लिया और नगरकी ओर यात्रा कर दी। पद्मिनीकी सहचरियां अन्तिम बिदाई ले कर लौट रही हैं, ऐसा समझ यवनोंमेंसे कोई भी कुछ न बोला। जब आध घण्टा बीत गया और भीमसेन नहीं लौटे, तब अलाउद्दीन आगबबूला हो उठे। अब वे जरा भी ठहर न सके और अपने योद्धाओंको हुकुम दे दिया कि ये सब शिविकाएं जो अभी शिविरके भीतर हैं उनका आवरण उतार डालो। किन्तु आवरण उतार लेने पर उन्होंने जो देखा उससे एक ओर तो नैराश्यने और दूसरी ओर महाक्रोधने आ कर उनके हृदयमें स्थान लिया। शिविकासे निकल कर राजपूत वीरगण यवनों पर टूट पड़े। दोनों दलोंमें घनघोर युद्ध हुआ। राजपूतोंके मध्य जब तक एक भी जीता रहा, तब तक उन्होंने मुसलमान सैनिकोंको पलायित राजपूतोंका पीछा करनेका मौका न दिया। इस प्रकार अलाउद्दीनकी आशा पर पानी फिर गया।

इधर भीमसिंहने राहमें एक घोड़े पर सवार हो निरापदसे चित्तौर-दुर्गमें प्रवेश किया। पीछे पठानसेनाने आ कर दुर्ग पर धावा बोल दिया। राजपूत वीरगण प्राणपणसे दुर्गकी रक्षा करने लगे। इस समय

पद्मिनीके चचा गोरेने और उनके बारह वर्षके भतीजे बादलने असामान्य वीरता दिखलाई थी।

पठानोंके बार बार आक्रमणसे ही चित्तौर ध्वंसप्राय होता गया। एक एक राजपूतवीर बहुसंख्यक यवनसेनाको मार कर समरशायी होते गये। क्रमशः भीमसिंहको मालूम हो गया कि वे अब प्राणप्रियतमा पद्मिनी और चिरसुखके आवास चित्तोरनगरकी रक्षा किसी हालतसे नहीं कर सकते। उन्होंने फिर स्वप्नमें देखा, कि चित्तौरकी अधिष्ठात्रीदेवी नितान्त क्षुधातुर हो बारह राजपूतोंका शोणित चाहती हैं। तदनुसार एक एक कर ग्यारह राजपूतोंने जन्मभूमिके लिए रणस्थलमें आत्मोत्सर्ग किया। अब भीमसिंह स्थिर न रह सके। राजवंशका पिण्डलोप होनेकी आशङ्कासे अन्तमें वे स्वयं आत्मोत्सर्ग करनेको अग्रसर हुए। राजपूत महिलागण जहरव्रतका अनुष्ठान करनेके लिये अग्रसर हुईं। राजस्थानकी प्रफुल्लकमलिनी पद्मिनीने सदाके लिये पतिचरणको चूमती हुई ज्वलन्त चितामें देह विसर्जन करके निर्मल सतीत्वरत्न और राजपूतकुल गौरवकी रक्षा की। राजपूत-महिलाओंने भी पद्मिनीका अनुसरण किया। भीमसिंह भी निश्चिन्त मनसे सैकड़ों वैरिहृदयको विदीर्ण कर आत्मीय स्वजनोंके साथ अनन्तशय्या पर सो रहे। चित्तौर वीरशून्य हुआ और अलाउद्दीनके हाथ लगा। किन्तु जिस पद्मिनीके लिए अलाउद्दीन इतने दिनोंसे लालायित थे, जिस पद्मिनीके लिए कितनी खूनखराबी हुई, वह पद्मिनी अलाउद्दीनके हाथ न लगी। जहां पद्मिनीने अपना शरीर विसर्जन किया था, उस स्थानको अलाउद्दीनने जा कर देखा, कि उस समय भी तमसाच्छन्न गह्वरसे धूमराशि निकल रही थी। तभीसे वह गह्वर एक पवित्र स्थानमें गिना जा रहा है।

पद्मिनीकण्टक (सं० पु०) पद्मिनीकण्टक इव आकृतिर्विद्यते यस्य। क्षुद्ररोगविशेष। भावप्रकाशमें लिखा है—जिस रोगमें गोलाकार पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त अथच पद्मनालके कांटेकी तरह कण्टक द्वारा परिवृत मण्डल उदित होता है, उसे पद्मिनीकण्टक कहते हैं। इस रोगमें नीमके काढ़ेसे वमन और नीम द्वारा घृत पाक कर मधुके साथ उसका सेवन विधेय है। घृतकी प्रस्तुत प्रणाली—गव्यघृत ⅟४ सेर; कल्कार्थ निम्बपत्र और अमलतासपत्र दोनों मिला कर ⅟१ सेर, निम्बपत्रका क्वाथ ⅟६ सेर। यथानियम इस घृतका पाक कर ८ तोला परिमाणमें सेवन करनेसे ही पद्मिनीकण्टक रोग आराम हो जाता है। (भावप्र० क्षुद्ररोग०)

सुश्रुतके मतसे पद्मके कण्टककी तरह गोलाकार और उसका मण्डल पाण्डुवर्ण, ऐसे व्रणको पद्मिनीकण्टक कहते हैं। यह वायु और कफ द्वारा उत्पन्न होता है।

पद्मिनीकान्त (सं० पु०) पद्मिन्याः कान्तः। सूर्य।

पद्मिनीवल्लभ (सं० पु०) पद्मिन्याः वल्लभः। सूर्य।

पद्मी (हिं० पु०) १ पद्मयुक्तदेश। २ पद्मधारी, विष्णु। ३ पद्मसमूह। ४ बौद्धोंके अनुसार एक लोकका नाम। ५ उक्त लोकमें रहनेवाले एक बुद्धका नाम जिनका अवतार अभी इस संसारमें होनेको है। ६ गज, हाथी।

पद्मेश—एक हिन्दी कवि। सम्वत् १८०३में इनका जन्म हुआ था। इनकी कविता सुन्दर होती थी।

पद्मेशय (सं० पु०) पद्मे शेते शी-अच्। (अधिकरणे शेते। पा ३।२।१५, शयवासवासिष्विति पा ६।३।१८ इति अलुक्।) विष्णु।

पद्मोत्तम (सं० पु०) कुसुम्भपुष्पवृक्ष, कुसुम फूलका पेड़।

पद्मोत्तर (सं० पु०) पद्मादुत्तरः, वर्णतः श्रेष्ठः। १ कुसुम्भ, कुसुम। २ कुसुम्भबीज, कुसुमका बीया। ३ एक बुद्धका नाम।

पद्मोत्तरात्मज (सं० पु०) पद्मोत्तरस्य आत्मजः पुत्रः जिनचक्रवर्त्तीविशेष।

पद्मोद्भव (सं० पु०) पद्मं उद्भव उत्पत्तिस्थानमस्य। ब्रह्मा।

पद्मोद्भवा (सं० स्त्री०) पद्मोद्भव टाप्। मनसादेवी।

पद्य (सं० क्ली०) १ जातिविशेष (सह्याद्रि ३१।५८)। पदं चरणमर्हतीति पद-यत्। २ कविकृति, श्लोक। ३ श्रुतिमधुर शब्दविन्यासमें रचित कविता वा काव्य। तुलसीदासके रामायण तथा महाभारत आदि ग्रन्थोंकी जो भाषा है, वह गद्यमें ही लिखी गई है। हम लोग जिस भाषामें हमेशा बोल-चाल किया करते हैं, वह गद्य है। विशेष विवरण गद्य शब्दमें देखो।

पादलक्षणरहित पदसमूहको गद्य कहते हैं। किन्तु पादलक्षणयुक्त वृत्तमात्र समन्वित पादसन्निवेश पद्य कहलाता है। काव्य देखो।

संस्कृत भाषामें विभिन्न छन्दोंमें पद्यादि लिखे जाते हैं। छन्दादिका लक्षण और वाक्यविन्यास छन्द शब्दमें तथा साहित्यदर्पणमें विशेषरूपसे लिखा है। वेदादि ग्रन्थोंकी भाषा पद्य वा गद्य है, किन्तु उसका छन्द और मात्रादि स्वतन्त्र है। तत्परवर्त्ती पुराणयुगमें—रामायण अथवा महाभारतके समयमें—वेदकी भाषा विकृत हो कर वा सर्वाङ्गीणता लाभ कर काव्यरूप नूतन आकारमें देखी गई थी। उस प्राचीन समयके हिन्दुओंमें मध्य जो सब ग्रन्थ लिखे हुए हैं, उन सभी ग्रन्थोंकी रचना पद्यमें है। केवल प्राचीन हिन्दूगण ही कविके भावमें ग्रन्थादिको रचना करते थे सो नहीं। होमर, भर्जिल, ओभिद, एसकाइलस, सफोक्लिस, मिलटन, स्पेनसर, वड्सवर्थ आदि सुदूरवासी पाश्चात्य कविगण भी पद्य लिख कर जगत्‌में प्रसिद्ध हो गये हैं। इन सब ग्रन्थादिमें लिखित ज्वलन्तमान भाषा शब्दयोजना और स्वभाववर्णना देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। Ballad, Drama, Epic, Lyric, Ode आदि कई प्रकारके पद्योंका नमूना उन सब ग्रन्थोंमें देखा जाता है।

पुराणादि रचे जानेसे पहले कालिदास, भारवि, भवभूति, वररुचि, भर्तृहरि, माघ, दण्डी, शूद्रक, विशाखदत्त, क्षेमीश्वर, भट्टनारायण, श्रीहर्ष आदि ख्यातनामा कवियोंकी बनाई हुई कवितावली जगत्‌में अतुलनीय और पद्यजगत्‌का आदर्शस्थल है। इसके बाद जयदेव गोस्वामीका आविर्भाव हुआ। उनकी बनाये हुए गीतगोविन्द नामक ग्रन्थमें 'प्रलयपयोधिजले' 'ललितलवङ्गलतापरिशीलन' और 'स्मरगरलखण्डनम् मम शिरसि मुण्डनम्' आदि कविताएं रसमाधुर्यमें जैसी है उसकी तुलना नहीं की जा सकती। चण्डीदास, ज्ञानदास, गोविन्ददास, कृष्णदास कविराज, नरोत्तमदास आदि वैष्णव कवियोंके पद मनोहर और प्रेमःप्रकाशक हैं। असंख्य वैष्णव कवियोंकी पदलहरी इतनी मनोरम है, कि उनके रचित पद्यादिका पाठ करनेसे अन्तःकरण पुलकित होता है। वर्त्तमान कवियोंमें माइकल मधुसूदन दत्तने काव्य जगत्‌में नूतनयुग परिवर्त्तन किया है। उक्त महात्माने 'मेघनाद-वध' तथा 'तिलोत्तमासम्भव-काव्यमें मिल्टन और होमर आदि यूरोपीय कवियोंके आधार पर कविता लिख कर खूब नाम कमाया है। गीत, स्तोत्र आदि साधारणतः पद्य भाषामें लिखे जाते हैं। इसके अलावा सत्यनारायणकी कथा देवविषयकरचना पद्यमें ही लिखी देखी जाती है।

पद्यकी मात्रादि और छन्दादिके विवरण, कवि, पाञ्चाली और वैष्णव कवि-कृत पद्यादिके उदाहरण उन्हीं सब शब्दोंमें तथा ग्रन्थकारोंके जीवनीमें विशेषरूपसे आलोचित हुए हैं।

छन्दोमञ्जरीमें पद्यका लक्षण इस प्रकार लिखा है—

"पद्यं चतुष्पदी तच्च वृत्तं जातिरिति द्विधा।
वृत्तमक्षरसंख्यातं जातिमात्रा कृता भवेत्॥"
(छन्दोम०)

चार चरणविशिष्ट वाक्य पद्य है। यह पद्य दो प्रकारका है, जाति और वृत्त। जिसके अक्षर समान हैं उसे वृत्त और जो मात्रानुसार होता है उसे जाति कहते हैं। समवृत्त, अर्द्धसम और विषमवृत्तके भेदसे वृत्त भी तीन प्रकारका है। जिसके चार पद समान हैं उसे समवृत्त, जिसके प्रथम और तृतीय पाद तथा द्वितीय और चतुर्थ पाद समान हैं उसे अर्द्धसम और जिसके चारपद विभिन्न हैं उसे विषमवृत्त कहते हैं। छन्दोबन्ध पदमात्र ही पद्य है।

४ श्लोक। पद-यत् (पदमस्मिन् दृश्यं। पा ४।४।८७) ५ नातिशुष्क कर्दम, वह कीचड़ जो सूखा न हो। (पु०) पद्भ्यां जातः पद-यत्। ६ शूद्र। शूद्रने ब्रह्माके पदसे जन्म ग्रहण किया है, इसीसे पद्य शब्दसे शूद्रका बोध होता है।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहूराजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यत् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो व्यजायत॥"
(शुक्लयजु० ३१।११)

पद्यमय (सं० त्रि०) पद्य-स्वरूपे मयट्। पद्यस्वरूप।

पद्या (सं० स्त्री०) पदाय हिता, पाद-शरीरावयवात् यत्, ततः पादस्य पद्भावः। (पद्यत्तदर्थे। पा ६।३।५२) १ स्तुति, प्रशंसा। २ पथ्या, राह, रास्ता। ३ शर्करा, गुड़।

पद्यात्मक (सं० त्रि०) जो पद्यमय हो, जो छन्दोबद्ध हो।

पद्र (सं० पु०) पद्यतेऽस्मिन्निति पद-गतौ रक्, (स्फायित-

ऽचीति । उण् २।१३) १ ग्राम । २ ग्रामसंघ । ३ भूलोक, ४ देशभेद ।

पद्रथ (सं॰ पु॰) पद् रथ इव यस्य । पदगामी, पादचारी ।

पद्व (सं॰ पु॰) पद्यते गम्यतेऽस्मिन्ननेन वा पद् गतौ (सर्वनिघृष्वरिष्वेति । उण् १।१५३) इति निपातनात् सिद्धं । १ भूलोक । २ रथ । ३ पन्थ ।

पद्वन् (सं॰ पु॰) पद्यते गम्यते यत्र पद-गतौ वनिप् (स्नामदिपद्यर्त्तीति उण् ४।११२) पन्था, राह ।

पधरना (हिं॰ क्रि॰) किसी बड़े, प्रतिष्ठित या पूज्यका आगमन ।

पधराना (हिं॰ क्रि॰) १ आदर पूर्वक ले जाना । २ किसीको आदरपूर्वक ले जा कर बैठानेकी क्रिया या भाव, पधारनेकी क्रिया ।

पधारना (हिं॰ क्रि॰) १ गमन करना, जाना, चला जाना । २ आ पहुंचा । ३ गमन करना, चलना । ४ आदरपूर्वक बैठाना, प्रतिष्ठित करना । इस शब्दका प्रयोग केवल बड़े या प्रतिष्ठितके आने अथवा जानेके सम्बन्धमें आदरार्थ होता है ।

पनंग (हिं॰ पु॰) सर्प, सांप ।

पन (हिं॰ पु॰) १ प्रतिज्ञा, सङ्कल्प, अहद । २ आयुके चार भागोंमेंसे एक । साधारणतः लोग आयुके चार भाग अथवा अवस्थाएं मानते हैं, पहली बाल्यावस्था, दूसरी युवावस्था, तीसरी प्रौढ़ावस्था और चौथी वृद्धावस्था ।

पनकटा (हिं॰ पु॰) वह मनुष्य जो खेतोंमें इधर उधर पानी ले जाता या सींचता है ।

पनकपड़ा (हिं॰ पु॰) वह गीला कपड़ा जो शरीरके किसी अंग पर चोट लगने या कटने या छिलने आदि पर बांधा जाता है ।

पनकाल (हिं॰ पु॰) अति वर्षाके कारण अकाल ।

पनकुकड़ी (हिं॰ स्त्री॰) पनकौवा देखो ।

पनकुट्टी (हिं॰ स्त्री॰) वह छोटा खरल जिसमें प्रायः वृद्ध या टूटे हुए दांतवाले लोग खानेके लिये पान कूटते हैं ।

पनकौवा (हिं॰ पु॰) एक प्रकारका जलपक्षी, जलकौवा ।

पनखट (हिं॰ पु॰) जुलाहोंकी वह लचीली धुनकी जिस पर उनके सामने बुना हुआ कपड़ा फैला रहता है ।

पनगाचा (हिं॰ पु॰) पानीसे भरा या सींचा हुआ खेत ।

पनगोटी (हिं॰ स्त्री॰) मोतिया गोटला ।

पनघट (हिं॰ पु॰) पानी भरनेका घाट, वह घाट जहांसे लोग पानी भरते हों ।

पनच (हिं॰ स्त्री॰) प्रत्यंचा, धनुषकी डोरी ।

पनचक्की (हिं॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी चक्की जो पानीके जोरसे चलती है । नदी या नहर आदिके किनारे जहां पानीका वेग कुछ अधिक होता है उसी जगह लोग कोई चक्की या दूसरी कल लगा देते हैं । उस चक्की या कलका सम्बन्ध एक ऐसे बड़े चक्करसे साथ होता है जो बहते हुए जलमें प्रायः आधा डूबा रहता है । जब बहावके कारण वह चक्कर घूमता है, तब उसके साथ सम्बन्ध करनेके कारण वह चक्की या कल चलने लगती है । सभी काम पानीके बहावकी द्वारा ही होता है ।

पनचो (हिं॰ स्त्री॰) गेड़ीके खेलमें खेलनेके लिये पतली लकड़ी या गेड़ी ।

पनचोरा (हिं॰ पु॰) वह बरतन जिसका पेट चौड़ा और मुंह बहुत छोटा हो ।

पनडुब्बा (हिं॰ पु॰) १ वह जो पानीमें गोता लगाता हो, गोताखोर । ये लोग प्रायः कूएं या तालाबमें गोता लगा कर गिरी हुई चीज ढूंढ़ते अथवा समुद्र आदिमें गोते लगा कर सीप और मोती आदि निकालते हैं । २ पानीमें गोता लगा कर मछलियां पकड़नेवाली चिड़ियां । ३ जलाशयोंमें रहनेवाला एक प्रकारका कल्पित भूत । इसके विषयमें लोगोंका विश्वास है, कि वह नहानेवाले मनुष्योंको पकड़ कर डुबा देता है । ४ मुरगाबी ।

पनडुब्बी (हिं॰ स्त्री॰) १ पानीमें डुबकी मार कर मछलियां पकड़नेवाली चिड़िया । २ पानीके अन्दर डूब कर चलनेवाली एक प्रकारकी नाव । इसका आविष्कार अभी हालमें पाश्चात्य देशोंमें हुआ है, सब मेरिन । ३ मुरगाबी ।

पनपना (हिं॰ क्रि॰) १ पुनः अङ्कुरित या पल्लवित होना, पानी मिलनेके कारण फिरसे हरा हो जाना । २ रोगमुक्त होनेके उपरांत स्वस्थ तथा हृष्ट पुष्ट होना ।

पनपनाहट (हिं० स्त्री०) 'पन' 'पन' होनेका शब्द जो प्रायः वायु चलनेके कारण होता है।

पनपाना (हिं० क्रि०) ऐसा कार्य करना जिससे कोई वस्तु पनपे।

पनफर (सं० पु०) ज्योतिषोक्त संज्ञाभेद। केन्द्रस्थानके दूसरे दूसरे स्थान अर्थात् लग्नसे द्वितीय, अष्टम, पञ्चम और एकादश स्थानका नाम पनफर है।

पनबट्टा (हिं० पु०) पानके लगे हुए बीड़े रखनेका छोटा डिब्बा।

पनबिछिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका कीड़ा जो पानीमें रहता है और डंक मारता है।

पनबुड़वा (हिं० पु०) पनडुब्बा देखो।

पनभता (हिं० पु०) केवल पानीमें उबाले हुए चावल, साधारण भात।

पनभरो—कोलियोंकी एक श्रेणी। इनका दूसरा नाम मलहारी और मलहार-उपासक है। दाक्षिणात्यके प्रत्येक ग्राममें इनका वास देखा जाता है। ये लोग ग्रामवासियोंको जल पहुंचाते और ग्राम परिष्कार रखते हैं। पण्ढरपुरके निकट अनेक मलहारी कोलि ग्राम रक्षकका काम करते हैं। खान्देश और अहमदनगरमें इस श्रेणीके कोलि सरदार हैं। पूनाके दक्षिण मलहारी कोलि वंशपरम्परासे पुरन्दर, सिंहगढ़, तर्णा और राजगढ़ नामक पार्वत्य दुर्गको रक्षा करते आ रहे हैं।

प्रवाद है, कि पूर्वकालमें दाक्षिणात्यके पश्चिम वाड़सियोंके अधीन ये लोग वास करते थे। वाड़सी लोग लङ्काधिपति रावणके नायक थे। पीछे गावलियों (एक जातिका गोप)-ने वाड़सियोंको परास्त किया। उनका दमन करनेके लिये एक दल सेना भेजी गई, किन्तु वे सबके सब गावलियोंके हाथसे अच्छी तरह पराजित हुए। गावलियोंका देश अत्यन्त दुर्गम और अस्वास्थ्यकर होनेके कारण कोई भी उनके विरुद्ध युद्ध करनेको राजी न हुआ। अन्तमें सञ्जयगोपाल नामक एक महाराष्ट्रीयने बैंकोजी कोकड़ा नामक एक कोलिको सहायतासे गावलियोंको अच्छी तरह परास्त और ध्वंस किया। गावलियोंका देश जनशून्य हो पड़ा। इस जनशून्य देशमें खेतीबारी करनेके लिये निजामराज्यके मध्य अवस्थित महादेव पर्वतसे कुछ कोलि लाये गये। गावलियोंमें जो बच रहे थे, वे क्रमशः कोलियोंके साथ मिल गये। इस समयसे कोलि लोग दक्षिण भारतमें प्रधान हो उठे थे। १३४० ई०में महम्मद तुगलकके समय सिंहगढ़ एक कोलि सरदारके अधीन था। देवगिरि-यादवोंके अधःपतनके बाद कोलियोंने जोहर प्रदेश पर अपना आधिपत्य जमा लिया। बाह्मणी और अहमदनगरके राजाओंके समय कोलि लोग स्वाधीन भावमें वास करते थे। इस समय पनभरियोंने अनेक उच्च पद प्राप्त किये थे।

१७वीं शताब्दीके मध्यभागमें कोलि लोग बागी हो गये। १६३६ ई०में अहमदनगर राज्य ध्वंसके बाद टोडरमल अहमदनगरकी जमीन नापने गये। जब कोलियोंकी जमीन मापी गई और तदनुसार राजस्व भी निर्द्धारित हुआ, तब वे सबके सब बिगड़ गये। खेमिनायक नामक एक कोलि सरदारने अन्यान्य कोलियोंको मुगलोंके विरुद्ध उत्तेजित किया, पीछे शिवाजीसे बार बार मुसलमानोंको पराजित होते देख कोलि लोग विद्रोही हो गये और यह विद्रोह बड़ी मुश्किलसे शान्त किया गया। विद्रोहदमन हो जाने पर औरङ्गजेबने कोलियोंके प्रति दया दरसायी थी। पेशवाओंके आधिपत्यकालमें कोलि लोग पार्वत्य दुर्ग जीतनेमें विशेष पटु हो गये थे। १८वीं शताब्दीके शेष भागमें और वृटिशशासनके प्रारम्भमें अहमदनगरके पश्चिम तथा कोङ्कण प्रदेशमें कोलि-डकैत भारी उत्पात मचाते थे। १८५७ ई०में जब सिपाही-विद्रोह आरम्भ हुआ, उस समय कप्तान नटाल (Captain Nuttal)-के अधीन ६०० अस्थायी कोलि सैन्यदलमें नियुक्त थे। ये लोग थोड़े ही दिनोंके अन्दर युद्धनिपुण हो उठे। पैदल चलनेमें इनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। गदरके समय इन्होंने अंग्रेजोंको खासी सहायता पहुंचाई थी। १८६१ ई० तक ये लोग सेनामें भर्ती रहे, पीछे इन्हें इस कार्यसे छुटकारा दिया गया। कोई कोई कोलि पुलिसमें काम करता है, किन्तु अधिकांश खेती बारी करके अपना गुजारा चलाते हैं। कोलि देखो।

पनमड़िया (हिं० स्त्री०) पतली मांड़ जो जुलाहे लोग बुनते समय टूटे तागोंको जोड़नेके काममें लाते हैं।

पनरौती—दक्षिण आर्काटका एक नगर और रेलष्टेशन। यह अक्षा० ११° ४६´ ४०´´ उ० और देशा० ७८° ३५´ १६´´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक विस्तृत वाणिज्य स्थान है।

पनलगवा (हिं० पु०) खेतमें पानी सींचने या लगानेवाला मनुष्य, पनकटा।

पनलोहा (हिं० पु०) ऋतुके अनुसार रंग बदलनेवाला एक पक्षी।

पनवां (हिं० पु०) हमेल आदिमें लगी हुई बीचवाली चौकी जो पानके आकारकी होती है, टिकड़ा, पान।

पनवाड़ी (हिं० स्त्री०) १ वह खेत जिसमें पान पैदा हो, बरेजा। (पु०) २ वह जो पान बेचता हो, तमोली।

पनवारा (हिं० पु०) १ पत्तोंको बनी हुई पत्तल जिस पर रख कर लोग भोजन करते हैं। २ एक पत्तल भर भोजन जो एक मनुष्यके खाने भरका हो। ३ एक प्रकारका सांप।

पनवारी (हिं० स्त्री०) पनवाड़ी देखो।

पनवेल—कोलाबा जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान नगर। पहले यह थाना जिलेके अन्तर्गत था। यह अक्षा० १८° ५८´ ५०´´ उ० और देशा० ७३° ८´ १०´´ पू०के मध्य थाना शहरसे १० कोस दक्षिण पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। यहां भिन्न भिन्न प्रकारके शस्योंका वाणिज्य होता है। १५७० ई०से यूरोपीयगण यहांके बन्दरमें वाणिज्यार्थ आया करते थे। यहां सबजजकी अदालत, डाकघर आदि हैं।

पनस (सं० पु०) पनाय्यते स्तूयतेऽनेन देवः मनुष्यादिर्वेति, पन-असच् (अतविचमितीति। उण् ३।११७।) १ फलवृक्षविशेष, कटहलका पेड़। पर्याय—कण्टकिफल, महासर्ज्ज, फलिन, फलवृक्षक, स्थूल, कण्टफल, मूलफलद, अपुष्पफलद, पूतफल, चम्पकोष, चम्पालु, कण्टकीफल, रसाल, मृदङ्गफल, पानस।

इसके फलका गुण—मधुर, सुपिच्छिल, गुरु, हृद्य, बल और वीर्यवर्द्धक, श्रम, दाह तथा शोषनाशक, रुचिकारक, ग्राही, पतिदूजर है। बीजगुण—ईषद् कषाय, मधुर, वातल, गुरु, रुचिकर। भावप्रकाशके मतसे पक्के पनसका गुण—शीतल, स्निग्ध, पित्त और वायुनाशक, तर्पण, बृंहण, स्वादु, मांसल, श्लेष्मल, बलकर, शुक्रवर्द्धक, रक्तपित्त, क्षत और व्रणनाशक। अपक्वफल—विष्टम्भी, वातल, गुरु, दाहजनक, बलकर, मधुर, गुरु, मूत्रशोधक। पनसको मज्जा—बलकर, वातपित्त और कफनाशक। गुल्म और अग्निमान्द्यरोगमें पनस विशेष निषिद्ध है। कटहल देखो। २ रामदलका एक बन्दर। ३ विभीषणके चार मन्त्रियोंमेंसे एक।

पनसखिया (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका फूल। २ इस फूलका वृक्ष।

पनसतालिका (सं० स्त्री०) पनसं दीर्घत्वेन तुल्यं यत्तालं, तद्वत् फलमस्यस्याः, ठन्। कण्टकिफल, कटहल।

पनसनालिका (सं० पु०) कटहल।

पनसल्ला (हिं० स्त्री०) वह स्थान जहां पर राह चलतोंको पानी पिलाया जाता हो, पनसाल, प्याऊ।

पनसाखा (हिं० पु०) एक प्रकारकी मशाल जिसमें तीन या पांच बत्तियां साथ जलती है। इसमें बांसके एक लम्बे डंडे पर लोहेका एक पंजा बंधा रहता है जिसकी पांचों शाखाओंको कपड़ा लपेट कर और तेलसे चुपड़ कर मशालको भांति जलाते हैं।

पनसार (हिं० पु०) पानीसे किसी स्थानको सराबोर करनेको क्रिया या भाव, भरपूर सिंचाई।

पनसारी (हिं० पु०) पंसारी देखो।

पनसाल (हिं० स्त्री०) १ वह स्थान जहां सर्वसाधारणको पानी पिलाया जाता है, पौसरा। २ पानीकी गहराई नापनेका उपकरण। ३ पानीकी गहराई नापनेकी क्रिया या भाव।

पनसिका (सं० स्त्री०) पनसवत् कण्टकमयाकृतिर्विद्यते यस्याः पनस-ठन्-टाप्। क्षुद्ररोगविशेष, कानमें होनेवाली एक प्रकारकी फुंसी जो कटहलके कांटेकी तरह नोकदार होती है।

चिकित्सकको प्रथमतः पनसिका रोगमें स्वेदका प्रयोग करना चाहिए। पीछे मनःशिला, कुट, हरिद्रा, हरिताल और देवदारु इन सबको पीस कर प्रलेप दे। यदि वे सब फुंसियां पक जांय, तो शस्त्रपात

करके व्रणकी-तरह चिकित्सा करे। (भावप्रकाश)

सुश्रुतके मतसे—यह रोग वायु और श्लेष्मासे उत्पन्न होता है। इस जातिके व्रण कर्ण और पृष्ठके चारों ओर फैल जाते हैं। यह रोग अत्यन्त यातनाप्रद माना गया है। (सुश्रुत क्षुद्ररोगा०)

पनसी (हिं० स्त्री०) १ कटहलका फल। २ पनसिका।

पनसुइया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नाव। इस पर एक जो खेनेवाला दो डांड़ चला सकता है।

पनसूर (हिं० पु०) एक प्रकारका बाजा।

पनसेरी (हिं० स्त्री०) पंसेरी देखो।

पनसोई (हिं० स्त्री०) पनसुइया देखो।

पनस्यु (सं० त्रि०) पनस्य-उ। प्रशंसा या तारीफ सुननेका इच्छुक, जिसे प्रशंसित होनेकी इच्छा हो।

पनहड़ा (हिं० पु०) वह हांड़ी जिसमें तंबोली पान अथवा हाथ धोनेके लिये पानी रखते हैं।

पनहरा (हिं० पु०) १ पानी भरनेका नौकर, पनभरा। २ वह थवरी जिसमें सोनार गहने धोने आदिके लिए पानी रखते हैं।

पनहा (हिं० पु०) १ कपड़े या दीवार आदिकी चौड़ाई। २ गूढ़ आशय या तात्पर्य, मर्म, भेद। ३ वह जो चोरीका पता लगाता हो। ४ वह पुरस्कार जो चुराई हुई वस्तु लौटा या दिला देनेके लिये दिया जाय।

पनहारा (हिं० पु०) वह जो पानी भरनेका काम करता हो, पनभरा।

पनहान—अयोध्याप्रदेशके उनाव जिलेकी पूर्वी तहसीलके अधीन एक नगर और पनहान परगनेका सदर। यह उनाव शहरसे १२ कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां कई एक प्राचीन हिन्दू-देवालय हैं। एक मुसलमान पीरके सम्मानार्थ यहां वर्ष भरमें दो बार मेला लगता है जिसमें चार पांच हजारके करीब मनुष्य एकत्रित होते हैं।

पनहिया (हिं० स्त्री०) पनही देखो।

पनहियाभद्र (हिं० पु०) यथेष्ट उपानह-प्रहार, सिर पर इतने जूते पड़ना कि बाल उड़ जायं, जूतोंकी वर्षा।

पनही (हिं० स्त्री०) उपानह, जूता।

पना (हिं० पु०) एक प्रकारका शरबत जो आम इमली आदिके रससे बनाया जाता है। यह शरबत कच्चे पक्के दोनों प्रकारके फलोंसे तैयार किया जाता है। पक्के फलका रस या गूदा यों ही अलग कर लिया जाता है और कच्चेका गूदा अलग करनेके पहले उसे भूना या उबाला जाता है। बादमें उसको खूब मसल कर मीठा मिला देते हैं। लवङ्ग, कपूर और कभी कभी लवण तथा लाल मिर्च भी पनेमें मिलाई जाती है और हींग, जीरे आदिका बघार दिया जाता है। वैद्यकके अनुसार पना रुचिकारक, तत्काल बलवर्द्धक और इन्द्रियोंको तृप्ति देनेवाला माना गया है।

पनाती (हिं० पु०) पुत्र अथवा कन्याका नाती, पोते अथवा नातीका लड़का।

पनार—पूर्णिया जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह नदी नेपालसे निकली है।

पनारा (हिं० पु०) परनाला देखो।

पनाला—बम्बई प्रदेशके कोल्हापुर राज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह कोल्हापुर नगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। दुर्ग भग्नप्राय अवस्थामें रहने पर भी इसके अभ्यन्तर भागमें प्रत्नतत्त्व-अनुसन्धित्सु व्यक्तियोंको आलोचना करनेके अनेक उपकरण हैं। १२वीं शताब्दीमें भोजराज शिलाहार कर्तृक यह दुर्ग बनाया गया है। उक्त राजाके नामानुसार दुर्गके ऊपरी भाग पर एक ऊंचा स्तम्भ दण्डायमान देखा जाता है। यहां बहुत-सी गिरिगुहाएं हैं जिनमेंसे परशुराम ऋषि नामक गुहा पर्वतकी पूर्वी सीमा पर अवस्थित है। इसके द्वार आदि भग्नप्राय होने पर भी उसका कारुकार्य अधिवासियोंके गुणगौरव-व्यञ्जक है। भोजराजकी चूड़ाके मध्यभाग पर मुसलमान राजाओंसे दो बड़े बड़े 'अम्बरखाना' निर्मित हुए थे। बौद्धधर्मके प्राबल्यसे वे सब गिरिगुहाएं ध्यानियोंकी वासभूमिमें परिणत हो गई थीं।

पनाला (हिं० पु०) परनाला देखो।

पनासना (हिं० क्रि०) पोषण करना, पोसना, परवरिश करना।

पनासा—पनाशा देखो।

पनाह (फा० स्त्री०) १ त्राण, संकट या कष्टसे रक्षा पानेकी क्रिया या भाव, त्राण, बचाव। २ रक्षा पानेका स्थान, बचावका ठिकाना, शरण, आड़।

पनिक (हिं० पु०) जुलाहोंका एक कंघोनुमा औजार जिस पर ताना फैला कर पाई की जाती है, कंडाल।

पनिख (हिं० पु०) पनिक देखो।

पनिघट (हिं० पु०) पनघट देखो।

पनिचक्खलपुरुषोत्तमसूनु—एक ग्रन्थकार इन्होंने धर्मप्रदीप नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

पनिहो (हिं० स्त्री०) पण्डरीकवृक्ष, पुंडरिया।

पनियां (हिं० पु०) १ पानीके सम्बन्धका। २ पानीमें उत्पन्न। ३ जिसमें पानी मिला हो। ४ पानीमें रहनेवाला।

पनिया—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक नगर। पैना देखो।

पनियाला—१ पञ्जाब प्रदेशके डेराइस्माइल खाँ जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० ३२° १४´ ३०´´ उ० और देशा० ७०° ५५´ १५´´ पू०के मध्य डेराइस्माइल खाँ नगरसे १६ कोस दूर लागो उपत्यकाके प्रवेशपथ पर अवस्थित है।

२ युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलेके भगवानपुर परगनेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यहां सोलानदीके किनारे विस्तीर्ण आम्रवन नयनगोचर होता है।

पनियाला (हिं० पु०) एक प्रकारका फल।

पनियासोत (हिं० वि०) जिसमें पानीका सोता निकला हो।

पनिवा (हिं० पु०) पनुआं देखो।

पनिष्टम (सं० त्रि०) पन-कर्मणि इसुन्, अतिशयेन पनिः तमप्। स्तुततम।

पनिष्ठ (सं० त्रि०) अतिशयेन पनिता इष्ठन्, तृणोलोपः। स्तोतृतम।

पनिसिगा (हिं० पु०) जलपीपल देखो।

पनिस्पद (सं० त्रि०) स्पन्द-यङ्लुक्-अच् अभ्यासे निगागमः। अत्यन्त स्पन्दमान।

पनिहा (हिं० वि०) १ पानीमें रहनेवाला। २ जिसमें पानी मिला हो, पनमेल। ३ पानी-सम्बन्धी।

पनिहार (हिं० पु०) पनहरा देखो।

पनीर (फा० पु०) १ फाड़ कर जमाया हुआ दूध, छेना। दूधको फाड़ कर यह बनाया जाता है। पीछे नमक और मिर्च मिला कर छेनेको सांचेमें भरा जाता है जिससे उसकी चकतियां बन जाती हैं। २ वह दही जिसका पानी निचोड़ लिया गया हो।

पनीरी (हिं० स्त्री०) १ फूल पत्तोंके वे छोटे पौधे जो दूसरी जगह ले जा कर रोपनेके लिये लगाये गये हों, फूल पत्तोंके बेहन। २ गलगल नीबूकी फांकोंके ऊपरका गूदा। ३ वह क्यारी जिसमें पनीरी जमाई गई हो, बेहनकी क्यारी।

पनीला (हिं० वि०) जिसमें पानी हो, पानी मिला हुआ।

पनु (सं० स्त्री०) पन-उ। स्तुति, प्रशंसा, तारीफ।

पनुआं (हिं० पु०) एक प्रकारका शरबत। यह गुड़के कड़ाहसे पाग निकाल लेनेके पीछे उसे धो कर तैयार किया जाता है। पाग निकाल लेनेके बाद कड़ाहेमें तीन चार घड़े पानी छोड़ देते हैं। फिर कड़ाहेको उससे अच्छी तरह धो कर थोड़ी देर तक उसे गरमाते हैं। उबलना शुरू होने पर प्रायः शरबत तैयार समझा जाता है।

पनेथा (हिं० स्त्री०) पानी मिला कर पोई हुई रोटी, मोटी रोटी।

पनेरी (हिं० स्त्री०) १ पनीरी देखो। २ पान बेचनेवाला, तंबोली।

पनेहड़ी (हिं० स्त्री०) पनहड़ा देखो।

पनेहरा (हिं० पु०) पनहरा देखो।

पनेला (हिं० पु०) एक प्रकारका गाढ़ा, चिकना और चमकीला कपड़ा जो प्रायः गरम कपड़ोंके नीचे अस्तर देनेके काममें आता है। जिस पौधेके रेशेसे यह कपड़ा बुना जाता है वह फिलिपाइन द्वीपपुञ्जमें होता है। इस द्वीपपुञ्जकी राजधानी मनीला है। सम्भवतः वहांसे चालान किये जानेके कारण पहले रेशेका और फिर उससे बुने जानेवाले कपड़ेका मनीला नाम पड़ा है।

पनौआ (हिं० पु०) एक पकवान जो पानके पत्तेको बेसन या चौरोठेमें लपेट कर घी या तेलमें तलनेसे बनता है।

पनौटी (हिं० स्त्री०) पान रखनेकी पिटारी, पानदान, बेलहरा।

पन्तोनीभट्ट—समयकल्पतरुके रचयिता। ये लक्ष्मणभट्टके पुत्र थे।

पन्थ—महाराष्ट्रदेशमें अमात्य वा सचिव प्रभृति राजकीय कर्मचारीकी उपाधि।

पन्थक (सं० त्रि०) पथि जातः कन्। पथिजात, पथोत्पन्न।

पन्थपिम्लावद्—पश्चिम मालवाके अन्तर्गत एक ठाकुरात सम्पत्ति।

पन्थप्रतिनिधि—राजाके प्रतिनिधि स्वरूप पन्थ उपाधिधारी कर्मचारी (Viceroy)। महाराष्ट्रीय राजाओंके समयमें जो व्यक्ति राजाके प्रतिनिधि हो कर काम करते थे, उनके वंशधरकी आख्या भी पन्थप्रतिनिधि हुई है। इस पन्थप्रतिनिधिवंशकी असंख्य कीर्त्तियां दाक्षिणात्य प्रदेशमें देखनेमें आती हैं। सतारा तालुकके अन्तर्गत माहुली नामक स्थानमें श्रीपतराव पन्थप्रतिनिधिप्रतिष्ठित भूतेश्वर और विश्वेश्वर आदि अनेक सुन्दर मन्दिर हैं।

पन्थलिका (सं० स्त्री०) अपरिसर पथ, सकरी गली।

पन्थी—ब्रह्मदेशवासी मुसलमान-सम्प्रदाय। ये लोग यूनान प्रदेशसे इस देशमें आ कर बस गये हैं। १८६७-१८७३ ई०के मध्य इन्होंने तलिफू नामक स्थानमें अपना आधिपत्य विस्तार किया था। ब्रह्मदेशमें ये लोग पथिकुल नामसे प्रसिद्ध हैं।

पन्दर (सं० पु०) गिरिभेद, एक पहाड़का नाम।

पन्दाई—चम्पारणदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह सोमेश्वर पर्वतसे निकल कर रामनगर राज्यके मध्य होती हुई नेपालसीमान्तमें भोगे नगर तक चली आई है और पहले पश्चिममुखी और पीछे दक्षिण-पूर्वकी ओर बहती हुई शिकारपुरसे एक कोस पूर्व धोराम् नदीमें आ गिरी है।

पन्दारिया—१ मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलेकी मुङ्गेली तहसीलके अन्तर्गत एक छोटी जमींदारी। यहांके सामन्तराज राजगोंड़ कहलाते हैं। गड़मण्डलके गोंड़ राजाने तीन शताब्दी पहले इस वंशके पूर्वपुरुषको यहांका अधिकार स्वत्व दान किया था। इसमें कुल मिला कर ३१२ ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ४८६ वर्गमील है।

२ मुङ्गेली तहसीलका प्रधान ग्राम। यहां सम्पत्तिके अधिकारी जमींदारका प्रासाद है।

पन्दौल—दरभङ्गा जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। यहां राजा शिवसिंहकी पुष्करिणीकी बगलमें एक चीनीकी कल है और दूसरी जगह तिरहुतके मध्य सुवृहत् नीलकोठीका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पन्धाना—मध्यप्रदेशके नीमार जिलेकी खाण्डोवा तहसीलके अन्तर्गत एक ग्राम। यह खाण्डवा नगरसे ५ कोस दक्षिण-पश्चिममें अक्षा० २१° ४२´ उ० और देशा० ७६° १६´ पू०के मध्य अवस्थित है।

पन्न (सं० त्रि०) पत-क्त। १ च्युत, गिरा हुआ। २ गलित। (पु०) पन स्तुतौ पन-न (जॄ कॄ जॄ वि दृ पनीति। उण् ३।१०) ३ अधोगमन, रेंगना, सरकते हुए चलना।

पन्नई (हिं० वि०) पन्नेके रंगका, जिसका रंग पन्नेकासा हो।

पन्नग (सं० पु०) पन्नं अधोगमनं पतितं वा गच्छतीति गम-ड पद्भ्यां न गच्छतीति वा। १ सर्प, सांप। यह पैरसे नहीं चलता, इसीसे इसको पन्नग कहते हैं। २ औषधविशेष, एक बूटी। ३ पद्मकाष्ठ, पदम।

पन्नगकेशर (सं० पु०) नागकेशर पुष्प।

पन्नगनाशन (सं० पु०) पन्नग-नाश ल्यु। गरुड़।

पन्नगमय (सं० त्रि०) पन्नग-मयट्। सर्पसङ्कुल साँपोंका समूह।

पन्नगारि (सं० पु०) पन्नगानामरिः। गरुड़।

पन्नगाशन (सं० पु०) पन्नगं सर्पं अश्नातीति अश-ल्यु। गरुड़।

पन्नगी (सं० स्त्री०) पन्नग जातौ ङीष्। १ पन्नगपत्नी, नागिन, सांपिन। २ मनसादेवी।

पन्नद्धा (सं० स्त्री०) पदि नद्धा बद्धा। चर्मपादुका, जूता।

पन्नद्ध्री (सं० स्त्री०) पदोश्चरणयोर्नद्ध्री। चर्मपादुका, जूता।

पन्ना (हिं० पु०) १ उज्ज्वल हरिद्रावर्ण मणिविशेष, फिरोजेकी जातिका हरे रंगका एक रत्न जो प्रायः इसलेट और ग्रेनाइटकी खानोंमें निकलता है। इसके संस्कृत नाम ये हैं—मरकत, गारुत्मक, अश्मगर्भ, हरिन्मणि, राजनील, गरुड़ाङ्कित, रौहिणेय, सौपर्ण, गरुड़ोद्गीर्ण, बुधरत्न गरुड़, गरलारि। पन्नेका वर्ण शुकपक्षीके पक्ष सदृश, स्निग्ध, लावण्ययुक्त और सुनिर्मल होता है। इसका मध्यभाग सूक्ष्म सुवर्णचूर्णसे परिपूरित माना

जाता है। किन्तु यह लक्षण सभी पन्नोंमें नहीं रहता।

पन्नेकी उत्पत्ति और आकारके सम्बन्धमें गरुड़-पुराणके ७१वें अध्यायमें इस प्रकार लिखा है,—

सर्पाधिपति वासुकि दैत्यराजका पित्त ग्रहण कर के जब आकाशपथ हो कर जा रहे थे, तब पक्षीन्द्र गरुड़ उन्हें प्रहार वा ग्रास करनेको उद्यत हुआ। वासुकिने उसी समय उस पित्तरागको तुरुष्कदेशके पादपीठस्वरूप वा प्रत्यन्त पर्वतमें नालिकावन-गन्धीकृत उपत्यका प्रदेश में फेंक दिया। इस पित्तके गिरते ही तत्समीपस्थ पृथिवीके समुद्रतीरवर्त्ती स्थानसमूह मरकत मणिके आकारमें पलट गया। (गरुड़पु०)

डाक्टर रामदास सेनका कहना है, 'कि पित्तका वर्ण सब्ज होनेके कारण पन्नाका रंग भी सब्ज है। इस उपमाका उपलक्ष्य करके रूपकप्रिय पौराणिकोंने असुरके पित्तसे पन्नाका जन्म हुआ है, ऐसा बतलाया है और तुरुष्कदेशक समुद्रतीरवर्त्ती पर्वत तथा उपत्यका पर उसका आकर है, यह भी निर्णय किया है।

पन्नाका गुण—जो सर्पविष औषध वा मन्त्रसे निवारित न हो, पन्नेसे उसका विष अवश्य दूर होता है। यह निर्मल, गुरु, कान्तियुक्त पित्तकारक, हरिद्वर्ण और रञ्जक होता है। पन्ना धारण करनेसे सभी पाप क्षय होते हैं। रत्नतत्त्व-विशारद पण्डितोंके मतसे पन्ना धन धान्यादि वृद्धिके विषयमें, युद्धमें और विपत्ति नाश करनेमें अति प्रशस्त है।

पन्नेका दोष—रूक्ष वा अस्निग्ध पन्ना धारण करनेसे पीड़ा, विस्फोट पन्ना धारण करनेसे अस्त्राघात द्वारा मृत्यु, पाषाणखण्डयुक्त पन्ना धारण करनेसे इष्टनाश, मलिन पन्ना धारण करनेसे नाना व्याधिकी उत्पत्ति, कंकरीला पन्ना धारण करनेसे पुत्रनाश, कान्तिहीन पन्ना धारण करनेसे जन्तु और वह्निभय तथा विरुद्धवर्णयुक्त पन्ना धारण करनेसे मृत्युका डर होता है।

पन्नेकी छाया पन्नेमें आठ प्रकारकी छाया देखी जाती है। यथा—मयूरपुच्छके सदृश, नीलकण्ठ पक्षीके सदृश, हरिद्वर्ण काँचके सदृश, नवदूर्वादलके सदृश, शैवालके सदृश, खद्योत पृष्ठके सदृश, शुकपक्षीके सदृश और शिरीषकुसुमके सदृश। उक्त आठ प्रकारकी छाया युक्त पन्ना ही सर्वश्रेष्ठ है।

पन्नेकी परीक्षा—रत्नतत्त्व-विशारदका कहना है, कि पन्ना कृत्रिम है वा अकृत्रिम, इसकी यदि परीक्षा करनी हो तो इसे पत्थर पर घिसे। घिसनेसे कृत्रिम पन्ना टूट जायगा, लेकिन जो अकृत्रिम पन्ना है वह कितना ही क्यों न घिसा जाय तो भी नहीं टूटता। दूसरी परीक्षा—तीक्ष्णाग्र लौहशलाका द्वारा अङ्कित करके चूर्ण लेपन करनेसे अकृत्रिम पन्ना उज्ज्वल हो जायगा और कृत्रिम पन्ना मलिन। कौसव परसे घिसनेसे पूतकाकी तरह वर्णविशिष्ट कृत्रिम पन्नेकी दीप्ति नष्ट हो जाती है। वजन द्वारा भी कृत्रिम पन्नेका निर्णय किया जाता है।

पन्नेका मूल्य—एक खण्ड पद्मराग और एक खण्ड पन्ना तौलमें समान होने पर पद्मरागकी अपेक्षा पन्नेका मूल्य अधिक होगा।

प्राप्तिस्थान—यूरोपके यूराल और अलटाई पर्वत पर सर्वोत्कृष्ट पन्ना पाया गया है। १८३० ई०में पहले पहल यूराल पर्वतके उत्तरीभागमें पन्ना पाया गया था। इसके बाद यहां अनेक उत्कृष्ट पन्ना आविष्कृत हुआ। अष्ट्रियामें भी अनेक वृहत् और उत्कृष्ट पन्ने पाये गये हैं।

एशिया महादेशमें साइबेरियाके उपकूल तथा ब्रह्मदेशमें कई जगह पन्नेकी खान है। अयोध्याके सम्राट्ने महारानी विक्टोरियाको जो पन्ना दिया है, वह ब्रह्मदेशमें पाया गया था।

अफ्रिका महादेशके मिस्रदेशमें बहुमूल्य पन्ना मिलता है। सहरार पर्वत और पुरक नदीका पन्नेकी खान सर्वत्र प्रसिद्ध है।

अमेरिका महादेशसे ही अभी सर्वोत्कृष्ट पन्नेकी आमदनी होती है। स्पेनवासियों द्वारा पेरु-जयके बादसे यहां पन्ना प्रचुर परिमाणमें आविष्कृत हुआ है।

प्राचीनकालके मनुष्य पन्नेको अच्छी तरह जानते थे और उसका यथेष्ट व्यवहार करते थे; इसमें जरा भी सन्देह नहीं। भिन्न भिन्न देशोंमें यह विभिन्न नामसे प्रचलित है। अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थमें मरकतका उल्लेख मिलता है। पम्पि और हरकुलेनियमके भूगर्भसे पन्नेका अलङ्कार पाया गया है। प्लिनि, थाइसिडरस

हैलो, वेनमनसुर आदि प्राचीन पुराविद्गण इस रत्नका उल्लेख कर गये हैं। पारसके लोग अन्यान्य मणिकी अपेक्षा पन्नेका विशेष आदर करते थे। हिन्दू लोग अति प्राचीनकालसे इसका व्यवहार करते आ रहे हैं। अलङ्कार और सुन्दर सुन्दर द्रव्योंमें यह रत्न प्रचुर परिमाणमें व्यवहृत होता है। रणजित्सिंह सर्वोत्कृष्ट पन्नेके बने हुए कड़े पहना करते थे।

पन्नेकी खोदाई—पन्नेको खोद कर सुन्दर सुन्दर मूर्त्ति बनाई जा सकती है। श्यामदेशके बुद्धदेवके मन्दिरमें दो फुट ऊंची एक देवमूर्त्ति है। कहते हैं, कि वह मूर्त्ति एक पन्नेकी बनी हुई है।

प्रसिद्ध पन्ना।—दिल्लीके मुगल सम्राट् जहांगीरके एक अंगूठी थी जो एक ठोस पन्ना काट कर बनाई गई थी और जिसमें हीरा तथा दो छोटे छोटे पन्ने जड़े हुए थे। यह अंगूठी शाहसुजाने इष्टइण्डिया कम्पनीको उपहारमें दे दी थी। पीछे गवर्नर जनरल लार्ड आकलैण्डने उसे खरीद लिया। यह अभी कुमारी इमुनके पास है। दलीपसिंहके निकट तीन इञ्च लम्बा दो इञ्च चौड़ा और इञ्च भर मोटा एक पन्ना था जिसका वर्ण अति सुन्दर तथा जिसमें बहुत कम दाग थे। मालूम पड़ता है, कि वही पन्ना १८५१ ई०के ग्लासगोके प्रसिद्ध महामेलेमें प्रदर्शित हुआ था।

अट्टियाके राजकोषमें २००० कैरटका और डयूक-आव-डिभनसायरके पास ६ औंस (प्रायः डेढ़ पाव)का एक पन्ना है। यह पहले न्युआनाडाकी खानसे निकाला गया। पीछे डम-पिड्रोसे डयूक-आव-डिभनसायरने इसे खरीदा। इसका व्यास दो इञ्च है और यह उज्ज्वल वर्णविशिष्ट है।

वैद्यकमें पन्ना शीतल मधुररसयुक्त, रुचिकारक, पुष्टिकर, वीर्यवर्द्धक और प्रेतबाधा, अम्लपित्त, ज्वर, वमन, श्वास, मन्दाग्नि, बवासीर, पाण्डुरोग और विशेष रूपसे विषका नाश करनेवाला माना गया है।

२ पुस्तक आदिका पृष्ठ, पत्ता, वरक। ३ भेड़ोंके कानका वह चौड़ा भाग जहांका ऊन काटा जाता है। ४ देशी जूतेके एक ऊपरी भागका नाम जिसे पान भी कहते हैं।

पन्ना—चित्तोरकी एक राजपूतरमणी, राणा संग्रामसिंहके शिशुपुत्र उदयसिंहकी धात्री। राणा संग्रामसिंहके मरने पर चित्तोरमें भारी गोलमाल उपस्थित हुआ। अन्तमें सरदारोंने उदयसिंहको नाबालिगीमें राजकार्य चलानेके लिये पृथ्वीराजके जारजपुत्र बनवीरको चित्तोर सिंहासन पर अधिष्ठित किया। सिंहासन पर बैठनेके कुछ समय बाद ही बनवीरकी दुराकाङ्क्षावृत्ति प्रबल हो उठी। उन्होंने अपने समस्त प्रतिद्वन्द्वियोंको स्थानान्तरित करनेका संकल्प किया। उदयसिंहकी अवस्था उस समय केवल छः वर्षकी थी। इस नन्हें बच्चेका विनाश करनेके लिये बनवीर तैयार हो गये। एक रातको उदयसिंह खा पी कर सो रहे थे। धात्री पन्ना उनके सिरहाने बैठी थी। इसी समय अन्तःपुरमें घोर आर्त्तनाद सुनाई पड़ा। भय और विस्मयसे पन्नाका हृदय कांपने लगा। ठीक उसी समय अन्तःपुरचारी नापित राजकुमारका जूठा उठाने आया और पन्नासे बोला कि बनवीरने अभी तुरत राणा विक्रमजितको मार डाला है। इस हत्याकाण्डकी बात सुन कर पन्ना ताड़ गई कि केवल इतनेसे बनवीरकी जिघांसा निवृत्त न होगी, वह अपने प्रधान प्रतिद्वन्द्वी उदयसिंहका भी खून करने अवश्य आवेगा। अब जरा काल भी वह विलम्ब न कर सकी और राजकुमारको बचानेका उपाय सोचने लगी। उसने रहस्यपूर्ण पुष्पकरण्डिकाके मध्य निद्रित राजकुमारको रख कर ऊपरसे कुछ निर्माल्य बिल्वपत्र बिछा दिया और नापितके हाथमें उसे समर्पण कर बहुत तेजीसे दुर्गके बाहर निकल जानेको कहा। नापितने बिना किसी तर्क वितर्कके उसी समय पन्नाके उपदेशका प्रतिपालन किया। इधर पन्नाने राजकुमारके बदलेमें अपने पुत्रको उसकी शय्या पर सुला दिया और आप पूर्ववत् सिरहानेमें बैठ गई। इसी बीच बनवीर कालान्तक यमकी तरह उस घरमें आ धमका और 'उदयसिंह कहां है', धात्रीसे पूछा। डरके मारे धात्रीके मुंहसे एक शब्द भी न निकला। उसने राजकुमारकी शय्याकी ओर उंगलीका इशारा किया और नृशंस बनवीरके तीक्ष्ण छुरिकाघातसे निज पुत्रका हृदयविदारण अपनी आंखोंसे देखा। पुत्रशोकसे उसका हृदय विदीर्ण होने लगा,

लेकिन डरके मारे वह फूट फूट कर रो भी नहीं सकती थी कि शायद यह रहस्य खुल भी न जाय। तदनन्तर धैर्य धारण कर पन्नाने आंसू पोंछ लिया और अपने पुत्रकी अन्त्येष्टिक्रिया करनेके बहाने उदयसिंहको तलाशमें चली गई। इस प्रकार पन्नाने अपने पुत्रको निछावर कर उदयसिंहकी जान बचा ली। अन्तःपुरचारिणी महिलाओंको इस अलौकिक आत्मत्यागके विषयमें कुछ भी खबर न थी। संग्रामसिंहका वंशलोप हुआ, यह समझ कर वे विलाप करने लगीं। इधर चितौरको पश्चिम प्रान्तप्रवाहिनी बीरानदीके किनारे उदयसिंहको ले जा कर वह नापित पन्नाकी प्रतीक्षा कर रहा था। यथासमय पन्ना वहां पहुंच गई और देवलराज सिंहरावके यहां आश्रय ग्रहण करनेकी इच्छासे वे दोनों कुमारके साथ वहांसे चल दिये। लेकिन वहां जब उनका मनोरथ सफल न हुआ, तब वे डूंगरपुरको रवाना हुए। वहां भी आश्रय न पा कर वे सबके सब रावल ऐशकर्ण नामक किसी सामन्तराजको शरणमें पहुंचे। राजाने आश्रय देनेको बात तो दूर रहे तुरत उन्हें राज्यसे निकल जानेको बाध्य किया। अन्तमें पन्ना दुर्भेद्य वनमय प्रदेश समूहको पार कर कमलमीरमें पहुंची और वहांके शासनकर्त्ता आशा-साहुके हाथ राजकुमारको अर्पण कर आप वहांसे रवाना हो गई। इस प्रकार पन्नाने अति विश्वस्त भावसे अपने कर्त्तव्यकर्मका पालन किया। जो रमणी अपने पुत्रका जीवन उत्सर्ग कर इस प्रकार न्यस्त विषयकी रक्षा कर सकी थी, वह रमणी सामान्या नहीं। उसका यह अद्भुत आत्मत्याग सर्वथा अनुकरणीय है।

पन्ना (पर्णा)—१ मध्यभारतको बुन्देलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्गत एक सनद राज्य। यह अक्षा० २३° ४८´ से २४° ५३´ ३० और देशा० ७८° ४५´ से ८१° ३ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें अंग्रेजाधिकृत बाँदा और चरखारी राज्य; पूर्वमें कोठी, सुहाल, नागोद और अजयगढ़ आदि छोटे छोटे राज्य; दक्षिणमें दमोह और जब्बलपुर जिला तथा पश्चिममें छत्रपुर और अजयगढ़का सामन्तराज्य है। भूपरिमाण २५६६ वर्गमील और जनसंख्या १९२९८६ है जिनमेंसे अधिकांश हिन्दू ही हैं। यहांका अधिकांश स्थान विन्ध्य-अधित्यकाभूमिके ऊपर अवस्थित और जङ्गलसे परिपूर्ण है।

हीरक-खानके लिये यह स्थान चिरप्रसिद्ध है। पहले इस खानमें प्रचुर हीरक मिलता था और उसी समयसे पन्ना एक समृद्धिशाली नगरमें परिणत हुआ। आज कल यहां पहलेके जैसा स्वच्छ वर्णहीन हीरक (Diamond of the first water, of completely colourless) नहीं मिलता। अगर मिलता भी है, तो मुक्ताफलको तरह सफेद, हरिताभ, पीताभ, लोहिताभ और कृष्णवर्ण का। पगसन साहबने यहांसे प्राप्त हीरकजातीय प्रस्तरके साधारणतः चार नाम बतलाये हैं;— १ 'मोतीचल' परिष्कार तथा उज्ज्वल, २ 'माणिक' हरिताभ, ३ 'पन्ना' कमला नीबूके जैसा रंगविशिष्ट और ४ 'बैन्पत' कृष्णवर्ण विशिष्ट। यहां लोहेको भी खान है।

महाराज छत्रसालके समय पन्ना उन्नतिको चरमसीमा तक पहुंच गया था। छत्रसाल और बुन्देल सरदारोंके उनके समयमें भूषणत्रिपाठी, प्रतापशाही, शिवनाथ कवि, प्राणनाथी-सम्प्रदायके प्रवर्त्तक प्राणनाथ, निवाज, पुरुषोत्तम, विजयाभिनन्दन आदि प्रसिद्ध हिन्दी-कवि यहां रह कर अपने अपने कवित्वका परिचय देते थे।

छत्रसालने अपने बड़े बेटे हृदयशाहको पन्ना (पर्णा) राज्य दिया। हृदयशाह यहां उत्तम राजधानी बसा कर रहने लगे। उनके राजत्वकालमें लालकवि विद्यमान थे। हृदयशाहके सभासिंह वा सभाशाह और पृथ्वीसिंह नामक दो पुत्र थे। पिताके मरने पर सभाशाह राजगद्दी पर बैठे। उनके समयमें रतनकवि तथा करणभट्ट नामक दो हिन्दी-कवियोंने राज-सभाको उज्ज्वल कर दिया था।

सभासिंहके तीन पुत्र थे,—अमानसिंह, हिन्दूपत और कनसिंह। हिन्दूपतने बड़े भाई अमानसिंहको गुप्तभावसे मार कर और छोटे भाई कनकको बन्दी कर पितृराज्यको अधिकार किया। हिन्दूपत थे तो अत्याचारी; पर साहित्यकी ओर उनका विशेष प्रेम था। मोहनभट्ट रूपशाही और करण ब्राह्मण आदि हिन्दी-कविगण उनकी सभाको सुशोभित करते थे। महाराज हिन्दूपतके तीन पुत्र थे, ज्येष्ठ सरमेदसिंह (द्वितीय

पत्नीके गर्भसे) और अनिरुद्धसिंह तथा धोकलसिंह (ज्येष्ठ महिषीके गर्भसे)। मरते समय हिन्दूपत अनिरुद्धसिंहको ही समस्त राज्य सौंप गये थे। उनकी नाबालिगीमें दीवान वेणीहजूरी तथा कालिञ्जरके किलेदार और कोषाध्यक्ष कायमजी चौबे राज्यकी देखरेख करते थे। हुजूरी और कायमजी सहोदर भाई होने पर भी राज्यकी समस्त श्रेष्ठ क्षमता पानेके लिए आपसमें लड़ पड़े। यहां तक कि एक दूसरेके जानी दुश्मन हो गये।

अन्तमें कायमजीने सरमेद सिंहका पक्ष ले कर उन्हें राजा बनाना चाहा। अतः दोनों दलमें कई बार घोरतर संग्राम छिड़ गया।

कुछ दिन बाद राजा अनिरुद्ध सिंहकी मृत्यु हुई। अभी दोनों भाइयोंने अपना अपनी क्षमता अक्षुण्ण रखने के लिए धोकलसिंहको राजसिंहासन पर बिठाया। इस पर सरमेदसिंहने भग्नमनोरथ हो कर बांदाराज गुमानसिंहके सेनापति नोनी अर्जुनसिंहको बुलाया।

अर्जुनसिंहने आ कर धोकलसिंहको राज्यसे मार भगाया और आप बांदाराजके नामसे पन्नाराज्यका अधिकांश अधिकार कर बैठे तथा शिशुबांदाके राजा भक्तसिंहका अभिभावक हो कर चैन उड़ाने लगे। इस प्रकार सरमेदसिंह पुनः हताश हो हिन्दुपतप्रदत्त राजनगर नामक स्थानमें जा कर रहने लगे। वहां वे मुसलमानीके गर्भजात हरसिंह नामक एक पुत्रको छोड़ परलोक सिधार गये।

इधर धोकल सिंहने अनेक चेष्टाके बाद पैतृकराज्यका उद्धार तो किया, पर वे और अधिक दिन तक उसका भोग न कर सके। किशोर सिंह नामक उनके एक अवैध पुत्रने सिंहासन लाभ किया।

अंग्रेजोंने जब बुन्देलखण्ड पर अधिकार जमाया, तब किशोरसिंह उनके साथ पहले पहल सन्धिसूत्रमें आबद्ध हुए। ब्रिटिश गवर्मेण्टने १८०७ ई०में उनको एक सनद दी। उनकी सभामें प्रद्युम्न नामक एक हिन्दी-कवि रहते थे। किशोर सिंह धीरे धीरे बड़े ही प्रजापीड़क हो गये। अपने अन्याय कार्य के लिये उन्हें राज्यसे निर्वासित होना पड़ा। पीछे हरवंशराय राजगद्दी पर बैठे। १८३४ ई०में किशोर सिंहका निर्वासित अवस्थामें प्राणान्त हुआ। हरवंश अपने भाई नरपति सिंहकी सहायतासे राजकार्य चलाने लगे। नरपतिसिंह बड़े ही कवितानुरागी और विद्योत्साही थे। उन्होंने बलभद्र, मानसिंह, हरिदास आदि हिन्दी कवियोंको आश्रय दिया था। १८४९ ई०में हरवंश रावकी मृत्यु होने पर नरपति सिंहने राजसिंहासन सुशोभित किया। उन्होंने १८५७ ई०के गदरमें अंग्रेजोंको खासी सहायता पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें ब्रिटिश गवर्मेण्टकी ओरसे उन्हें २००००) रु० की एक पोशाक, पोष्यपुत्र ग्रहणकी क्षमता और ११ सलामी तोपें मिलीं। महाराज नरपति सिंहकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के रुद्रप्रतापने प्रिन्स आव वेल्सके हाथसे उच्च सम्मान और खिलअत पाई। रानी विक्टोरियाके भारतेश्वरी उपाधिग्रहणके उपलक्षमें वे भी वहां उपस्थित थे। उनके सम्मानार्थ १३ तोपोंकी सलामी उतारी गई थी। १८८३ ई०में वे के० सि० एस० आइ० बनाये गये। १८९७ ई०में वे इस धराधामको छोड़ सुरधामको सिधारे। पीछे लोकपाल सिंह राजसिंहासन पर बैठे। उनके समयमें कोई विशेष घटना न हुई। अनन्तर माधोसिंह उनके उत्तराधिकारी हुए। कुछ दिन बाद अपने चचा राव राजा खुमान सिंहकी हत्याकाण्डमें वे सिंहासनच्युत किये गये। तत्पश्चात् मृत रावजीके लड़के यादवेन्द्र राजगद्दी पर बैठे। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इनका पूरा नाम है,—'एच० एच० महेन्द्र यादवेन्द्रसिंह साहब बहादुर।' इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है और ३० घुड़सवार, १५० पदाति, १२ गोलन्दाज और १८ बन्दूक रखनेका अधिकार है। इस राज्यमें १ शहर और १००८ ग्राम लगते हैं। राज्यकी कुल आय पांच लाख रुपयेकी है। यहां ३५ स्कूल, १ अस्पताल और ४ चिकित्सालय हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी और प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ४३´ उ० और देशा० ८०° १२´ पू० नवगङ्गसे सतना जानेके राजपथ पर अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। नगर परिष्कार परिच्छन्न और अट्टालिकादि परिशोभित है। यहां अनेक बड़े बड़े

मन्दिर हैं जिनमेंसे बलदेवका मन्दिर ही प्रधान है। नूतन प्रासादके एक कमरेमें मेजके ऊपर मूल्यवान जरीका कपड़ा बिछाया हुआ है और उसीके ऊपर प्राणनाथका ग्रन्थ रचित है। प्राणनाथ जातिके क्षत्रिय थे। उन्होंने हिन्दू और मुसलमानोंका धर्मग्रन्थ पढ़ कर दोनों धर्मावलम्बियोंको एक मतमें लानेकी चेष्टा की थी और इस कारण उन्होंने नवीन मतका प्रचार किया था। उनके मतावलम्बी उक्त ग्रन्थको बहुत पवित्र मानते हैं।

पन्नागार (सं० पु०) गोवप्रवर्त्तक स्तूपभेद।

पन्नि—मलबार उपकूलवासी एक जाति। खेतीबारी और दासत्व इनकी प्रधान उपजीविका है।

पन्निक (हिं० पु०) पनिक देखो।

पन्निगाए—जातिविशेष। ये लोग चमड़ेके ऊपर सुनहलीका काम करते हैं।

पन्नियार—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ६´ १२″ उ० तथा देशा० ७८° २´ २″ पू०के मध्य ग्वालियर दुर्गसे ६ कोस दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। १८४३ ई०को २९वीं दिसम्बरको यहां अंग्रेजी सेनाके साथ महाराष्ट्र सेनाका भीषण युद्ध हुआ था। मेजर जेनरल ग्रे आगरा नगरसे सर ह्यू गगफ-परिचालित अंग्रेजवाहिनीके साथ मिलनेके लिये चांदपुरके निकट सिन्धुनदी पार कर गये और जब वे दो कोस आगे बढ़े तब मङ्गोर ग्रामके निकट मराठी सेनाने उन पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजोंने पन्नियार आ कर छावनी डाली और उपर्युपरि आक्रमण तथा पूर्वयुद्धमें नष्ट कमानादिका उद्धार कर मराठी सेनाको पन्नियारसे मार भगाया।

पन्निष्क (सं० पु० क्ली०) पादो निष्कस्य, एकदेशिस० बाहुलकात् पदादेशः। निष्कका चतुर्थ भाग। जहां पदादेश नहीं होगा, वहां पादनिष्क ऐसा पद होगा।

पन्नी (हिं० स्त्री०) १ वह कागज या चमड़ा जिस पर सोने या चांदीका लेप किया हुआ रहता है, सुनहला या रुपहला कागज। २ रांगे या पीतलके कागजकी तरह पतले पत्तर जिन्हें सुन्दरता तथा शोभाके लिए छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट कर दूसरी वस्तुओं पर चिपकाते हैं। ३ एक लम्बी घास जिसे प्रायः छप्पर छानेके काममें लाते हैं। ४ बारूदकी एक तौल जो आध सेरके बराबर होती है। (पु०) ५ पठानोंकी एक जाति।

पन्नीसाज (हिं० पु०) वह मनुष्य जिसका व्यवसाय पन्नी बनाना हो, पन्नी बनानेवाला।

पन्नीसाजी (हिं० स्त्री०) पन्नी बनानेका काम, पन्नी बनानेका धंधा या पेशा।

पन्नू (हिं० पु०) एक पुष्पवृक्ष, एक फूलका पौधा।

पन्य (सं० त्रि०) पनस्तुतौ अघ्न्यादित्वात् यत्। स्तुत्य, प्रशंसाके योग्य।

पन्यस् (सं० त्रि०) पनःग्रसुन् युगागमः। १ स्तोता, प्रशंसा करनेवाला। २ स्तुत्य, प्रशंसाके योग्य।

पन्यारी (हिं० स्त्री०) मझोले कदका एक जंगली पेड़। यह पेड़ सदा हरा रहता है। मध्यप्रदेशमें यह अधिकतासे पाया जाता है। इसकी लकड़ी टिकाऊ और चमकदार होती है। उससे गाड़ियां, कुर्सियां और नावें बनती हैं।

पन्हारा (हिं० स्त्री०) एक तृणधान्य जो गेहूंके खेतोंमें आपसे आप होता है।

पन्हैयां (हिं० स्त्री०) पनही देखो।

पपटा (हिं० पु०) १ पापड़ा देखो। २ छिपकली।

पपड़ा (हिं० पु०) १ लकड़ीका रूखा करकरा और पतला छिलका, चिप्पड़। २ रोटीका छिलका।

पपड़िया (हिं० वि०) पपड़ीसम्बन्धी, जिसमें पपड़ी हो, पपड़ीदार।

पपड़ियाकत्था (हिं० पु०) श्वेतसार, सफेद कत्था। यह कत्था साधारण कत्थेसे अच्छा समझा जाता है और खानेमें अधिक स्वादु होता है। वैद्यकमें इसको कड़वा, कपैला और चरपरा तथा व्रण, कफ, रुधिरदोष, मुखरोग, खुजली, विष, क्रमि, कोढ़ और ग्रह तथा भूतकी बाधामें लाभदायक लिखा है।

पपड़ियाना (हिं० क्रि०) १ किसी चीजकी परतका सूख कर सिकुड़ जाना। २ अत्यन्त सूख जाना, तरी न रह जाना।

पपड़ी (हिं० स्त्री०) १ किसी वस्तुकी ऊपरी परत जो तरी या चिकनाईके अभावके कारण कड़ी और सिकुड़ कर जगह जगहसे चटक गई हो और नीचेकी वस्तु

तथा स्निग्ध तहसे अलग मालूम होती हो। २ घावके ऊपर मवादके सूख जानेसे बना हुआ आवरण या परत, खुरंड़। ३ वृक्षकी छालकी ऊपरी परत जिसमें सूखने और चिटकनेके कारण जगह जगह दरारें-सी पड़ी हों। ४ छोटा पापड़। ५ सोहन पपड़ी या अन्य कोई मिठाई जिसकी तह जमाई गई हो।

पपड़ीला (हिं० वि०) जिसमें पपड़ी हो, पपड़ीदार।

पपनी (हिं० स्त्री०) पलकके बाल, बरौनी।

पपरियाकत्था (हिं० स्त्री०) पपड़ियाकत्था देखो।

पपरी (हिं० स्त्री०) १ एक पौधा जिसकी जड़ दवाके काममें आती है। २ पपड़ी देखो।

पपहा (हिं० पु०) धानकी फसलको हानि पहुंचानेवाला एक कीड़ा। २ एक प्रकारका घुन जो जौ, गेहूं आदिमें घुस कर उनका सार खा जाता है और केवल ऊपरका छिलका ज्योंका त्यों रहने देता है।

पपि (सं० पु०) पाति लोकं, पिबति वा, पा-कि, द्वित्वञ्च। (आदृगमहनजनः किकिनौ लिट् च। पा ३।२।१७१) १ चन्द्रमा। (त्रि०) २ पालनकर्त्ता, पीनेवाला।

पपी (सं० पु०) पाति लोकं पा-रक्षणे ईक, द्वित्वञ्च (पापोः कित्द्वे च। उण् ३।१५८) १ सूर्य। २ चन्द्रमा।

पपीहा (हिं० पु०) १ कीड़े खानेवाला एक पक्षी। यह वसन्त और वर्षा ऋतुमें अकसर आमके दरख्तों पर बैठ कर बड़े मीठे स्वरसे गान करता है। इसका दूसरा नाम है चातक। देशभेदसे यह कई रूप, रंग और आकारका होता है। उत्तर भारतमें इसकी आकृति प्रायः श्यामा पक्षीके बराबर और रंग हलका काला या मटमैला होता है। दक्षिण भारतका पपीहा आकृतिमें इससे कुछ बड़ा और रंगमें चित्रविचित्र होता है। अन्यान्य स्थानोंमें और भी कई प्रकारके पपीहे पाये जाते हैं जो कदाचित् उत्तर और दक्षिणके पपीहेकी संकर सन्तानें हैं। मादा पपीहेका रंगरूप प्रायः सब जगह एक ही-सा होता है। यह पक्षी पेड़से नीचे प्रायः बहुत कम उतरता है और उस पर भी इस प्रकार छिप कर बैठा रहता है कि मनुष्यकी दृष्टि कदाचित् ही उस पर पड़ती है। इसकी बोली बहुत ही मीठी होती है और उसमें कई स्वरोंका समावेश होता है। कोई कोई कहते हैं, कि इसकी बोलीमें कोयलकी बोलीसे भी अधिक मिठास है। हिन्दी-कवियोंने मान रखा है कि यह अपनी बोलीमें "पी कहां?" "पी कहां?" अर्थात् 'प्रियतम कहां है?' बोलता है। वास्तवमें ध्यान देनेसे इसकी रागमय बोलीसे इस वाक्यके उच्चारणके समान ही ध्वनि निकलती जान पड़ती है। कहते हैं, कि यह पक्षी केवल वर्षाकी बूंदका ही जल पीता है। यदि यह प्याससे मर भी जाय, तो भी नदी, तालाब आदिके जलमें चोंच नहीं डुबोता। जब आकाश मेघाच्छन्न रहता है उस समय यह अपनी चोंचको बराबर खोले आकाशकी ओर इस ख्यालसे टक लगाये रहता है, कि कदाचित् कोई बूंद उसके मुंहमें पड़ जाय। बहुतोंने तो यहां तक मान रखा है, कि यह केवल स्वाती नक्षत्रमें होनेवाली वर्षाका ही जल पीता है और यदि यह नक्षत्र न बरसे, तो साल भर प्यासा ही रह जाता है। इसकी बोली कामोद्दीपक मानी गई है। इसके अटल नियम, मेघ पर अनन्य प्रेम और इसकी बोलीकी कामोद्दीपकताको ले कर संस्कृत तथा भाषाके कवियोंने कितनी ही अच्छी अच्छी उक्तियां की हैं। यद्यपि इसकी बोली चैतसे भाद्र तक लगातार सुनाई पड़ती रहती है, परन्तु कवियोंने इसका वर्णन केवल वर्षाके उद्दीपनोंमें ही किया है।

वैद्यकमें इसके मांसको मधुर, कषाय, लघु, शीतल कफ, पित्त और रक्तका नाश तथा अग्निकी वृद्धि करनेवाला लिखा है। २ सितारके छः तारोंमेंसे एक जो लोहेका होता है। ३ आल्हाके बापका घोड़ा जिसे मांड़ाके राजाने हर लिया था। ४ पपैया देखो।

पपीता (हिं० पु०) एक प्रसिद्ध वृक्ष जो अकसर बगीचोंमें लगाया जाता है। इसका पेड़ ताड़की तरह सीधा बढ़ता है और प्रायः बिना डालियोंका होता है। यह २० फुटके लगभग ऊंचा होता है। इसकी पत्तियां अंडीकी पत्तियोंकी तरह कटावदार होती हैं। छालका रंग सफेद होता है। इसका फल अधिकतर लंबोतरा और कोई कोई गोल भी होता है। फलके ऊपर मोटा हरा छिलका होता है। गूदा कच्चा होनेकी दशामें सफेद और पक जाने पर पीला होता है। फलके

ठीक बीचमें बीज होते हैं। बीज और गूदेके बीच एक बहुत पतली झिल्ली होती है जो बीजकोष या बीजाधारका काम देती है। कच्चा और पक्का दोनों तरहका फल खानेके काममें आता है। कच्चे फलको अकसर तरकारी बनाते हैं। पक्का फल मीठा होता है और खरबूजेकी तरह यों ही या शक्कर आदिके साथ खाया जाता है। इसके गूदे, छाल, फल और पत्तोंमेंसे भी एक प्रकारका लसदार दूध निकलता है जिसमें भोज्य द्रव्यों विशेषतः मांसको गलानेका गुण माना जाता है। इसीसे इसको मांसके साथ प्रायः पकाते हैं। कहते हैं, कि यदि मांस थोड़ी देर तक इसके पत्तेमें लपेटा रखा रहे, तो भी वह बहुत कुछ गल जाता है। इसके अधपके फलसे दूध जमा कर 'पपेन' नामकी एक औषध भी बनाई गई है। यह औषध मन्दाग्निमें उपकारक मानी जाती है। फल भी पाचनगुणविशिष्ट समझा जाता है और अधिकतर इसी गुणके लिए उसे खाते हैं।

दक्षिण अमेरिकासे पपीतेकी उत्पत्ति हुई है। अन्यान्य देशोंमें वहींसे गया है। भारतमें पुर्तगालियोंके संसर्गसे आया और कुछ ही बरसोंमें भारतके अधिकांशमें फैल कर चीन पहुंच गया। इस समय विषुवत रेखाके समीपस्थ सभी देशोंमें इसके वृक्ष अधिकतासे पाए जाते हैं। भारतवर्षमें इसके दो भेद दिखाई पड़ते हैं। एकका फल अधिक बड़ा और मीठा होता है, दूसरेका छोटा और कम मीठा। प्रथम प्रकारका पपीता प्रायः आसामके गोहाटी और छोटानागपुर विभागके हजारीबाग स्थानोंमें होता है। वैद्यकमें इसको मधुर, स्निग्ध, वातनाशक, वीर्य और कफका बढ़ानेवाला, हृदयका हितकर और उन्माद तथा व्रण रोगोंका नाशक लिखा है।

पपु (सं० पु०) पाति रक्षति पा-कु द्वित्वञ्च (कुम्रश्चेति । उण् १।२३) १ पालक। (स्त्री०) २ धात्री।

पपुरिष्य (सं० त्रि०) सम्पर्कार्ह, सम्पर्क योग्य।

पपुरि (सं० त्रि०) पृ-कि द्वित्व। पूरणशील।

पपैया (हिं० पु०) १ सीटी। २ एक प्रकारकी सीटी जिसे लड़के आमकी अंकुरित गुठलीको घिस कर बनाते हैं। ३ आमका नया पौधा, अमोला।

पपोटन (हिं० स्त्री०) एक पौधा जिसके पत्ते बांधनेसे फोड़ा पकता है। इसका फल मकोयकी तरह होता है।

पपोटा (हिं० पु०) आंखके ऊपरका चमड़ेका पर्दा। यह हिलेकी ढंक रहता है और इसके गिरनेसे आंख बन्द होती है तथा उठनेसे खुलती है, पलक।

पपोरना (हिं० क्रि०) अपनी बाहें ऐंठना और उनका भराव या पुष्टता देखना।

पपोलना (हिं० क्रि०) पपोलेका चुभलाना, चबाना या मुंह चलाना।

पपोता (हिं० स्त्री०) वाम मछली, गुंगवहरी।

पप्रि (सं० त्रि०) प्र-पूरणे कि, द्वित्व। पूरणशील।

पफक (सं० पु०) गोत्रप्रवर्त्तक ऋषिभेद।

पबई (हिं० स्त्री०) मैनाकी जातिका एक पक्षी। इसकी बोली बहुत मीठी होती है।

पबलिक (अं० स्त्री०) १ सर्वसाधारण, जनता, आम लोग। (वि०) २ सर्वसाधारण-सम्बन्धी, सार्वजनिक।

पबलिकवर्क्स (अं० पु०) १ निर्माण-सम्बन्धी वे कार्य जो सर्वसाधारणके लाभके लिए सरकारकी ओरसे किये जायेंगे, पुल नहर आदि बनानेका कार्य। २ इंजीनियरोंका मुहकमा।

पब्बै (हिं० पु०) पवि देखो।

पभोसा—इलाहाबाद जिलेके अन्तर्गत और यमुनाके दाक्षिण किनारेमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम। यह प्रयागसे ३२ मील दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है। इसका प्राचीन नाम प्रभास है।

प्राचीन कोशाम्बी दुर्गसे ३ मील उत्तर-पश्चिममें प्रसिद्ध पभोसाशैल अवस्थित है। इस शैलके शिखर पर एक कृत्रिम गुहा है जिसमें एक प्रवेशद्वार और दो झरोखे हैं। गुहाके दक्षिणभागमें किसी साधुके उद्देश्यसे प्रस्तरशय्या और प्रस्तरका उपाधान है। इसके गात्रमें गुप्ताक्षरमें उत्कीर्ण १० शिलालिपियां हैं। गुहाकी पश्चिमी दीवारमें मौर्योंके समयके अक्षरमें उत्कीर्ण ३ शिलालिपि देखी जाती हैं। उन शिलालिपियोंसे जाना जाता है, कि आषाढ़सेनने उक्त गुहाका निर्माण किया। गुहाके प्रवेशद्वारके वाम ऊर्ध्वभागमें लिपियोंकी ७ पंक्ति हैं जिनमें आषाढ़सेनका परिचय और उनका निर्माणकाल

लिखा है। आषाढ़सेन व पिदर-वंशीय गोपाल और गोपालीके पुत्र राज वप्यअग्निमित्रके मातुल थे। प्रवाद है, कि इस गुहामें नाग रहता है। यूएनचुयङ्ग, सुंगन आदि चीनपरिव्राजक भी बुद्धसे उक्त सर्पदमनकी कथा वर्णन कर गये हैं। उक्त चीनपरिव्राजकोंकी वर्णनासे जाना जाता है, कि सम्राट् अशोकने यहां २०० फुट ऊंचा एक स्तूप बनवाया था। किन्तु अभी उस प्राचीन बौद्धकीर्त्तिका कुछ भी निदर्शन नहीं पाया जाता १८२४ ई०में गिरिशिखर पर जैनतीर्थङ्कर पद्मप्रभनाथका एक मन्दिर बनाया गया है। गिरिके पाददेशके समीप देवकुण्ड नामक एक सरोवर और एक छोटा हिन्दूदेवालय देखा जाता है।

पमरा (हिं० स्त्री०) सतुकी नामक गन्धद्रव्य।

पमार (हिं० पु०) १ अग्निकुलके क्षत्रियोंकी एक शाखा, प्रमार, पवार। २ चक्रमर्दक, चकवंड़, चकौंड़ा।

पम्प—१ कर्णाटी भाषाके एक कवि। आप कविताशुणार्णव, पुराणकवि, सुकविजन मनोमानसोत्तंसहंस, सुजनोत्तंस, हंसराज इत्यादि उपाधियोंसे भूषित थे। साधारणतः ये पद्मगुरुपम्प नामसे ही प्रसिद्ध थे। पहले कनाड़ी-लिखित ग्रन्थको भाषारूपमें गिनती नहीं होती थी, इन्होंने ही सबसे पहले कनाड़ी भाषामें पुस्तककी रचना कर कनाड़ी भाषाका गौरव बढ़ाया। अपने आदिपुराणमें इन्होंने जो अपना परिचय दिया है वह इस प्रकार है—

वेङ्गीमण्डलके अन्तर्गत विक्रमपुर-अग्रहारमें वत्सगोत्रमें मानव सोमयाजी उत्पन्न हुए। उनके पुत्र अभिमानचन्द्र, अभिमानके पुत्र कोमरय्य, कोमरय्यके पुत्र अभिरामदेव राय थे। अभिरामने जैनधर्म ग्रहण किया था। अभिरामके पुत्र कविताशुणार्णव पम्प थे। इन्होंने ८२४ शकमें जन्मग्रहण किया था। जोलाधिपति चालुक्य अरिकेशरीके उत्साहसे इन्होंने कन्नड़ (कर्णाटी) भाषामें ग्रन्थरचना आरम्भ की। इनकी कवितामें मुग्ध हो कर राजाने इन्हें धर्मपुरका शासन प्रदान किया। ये ८६३ शक (९४१ ई०)में पहले आदिपुराण, पीछे पम्पभारत वा विक्रमार्जुनविजय, एतद्भिन्न लघुपुराण, पार्श्वनाथपुराण, परमागम प्रभृति काव्यग्रन्थ प्रकाशित कर विख्यात हुए।

२ एक दूसरे जैन-कवि। ये अभिनव पम्पनामसे प्रसिद्ध थे। ये कनाड़ी भाषामें राघवपाण्डवीय आदि कुछ काव्य लिख कर प्रसिद्ध हुए। ये १०७६ शकके कुछ पहले विद्यमान थे।

पम्पा (सं० स्त्री०) पाति रक्षति महर्षादीन् पा बाहुलकात् निपातनात् साधुः (खण्डशिलवल्लपम्पा तल्पाः। उण् ३।२८)। दक्षिणस्थ नदीभेद, दक्षिण देशकी एक नदी और उसीके समीपस्थ एक ताल तथा नगर जिनका उल्लेख रामायण और महाभारतमें इस प्रकार आया है—पम्पा नदीसे लगा हुआ ऋष्यमूक पर्वत है। ये दोनों कहां हैं, इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हुआ है। विलसन साहबने लिखा है, कि पम्पा नदी ऋष्यमूक पर्वतसे निकल कर तुङ्गभद्रा नदीमें मिल गई है। रामायणसे इतना पता तो और लगता है, कि मलय और ऋष्यमूक दोनों पर्वत पास ही पास थे। हनुमान्ने ऋष्यमूकसे मलयगिरि पर जा कर रामसे मिलनेका वृत्तान्त सुग्रीवसे कहा था। आज कल त्रावणकोर राज्यमें एक नदीका नाम पम्बै है जो पश्चिमघाटसे निकलती है। इस नदीको वहांवाले 'अनमलय' कहते हैं। अतएव यही नदी पम्पानदी जान पड़ता है और ऋष्यमूक पर्वत भी वही हो सकता है।

ऋष्यमूक देखो।

पम्पातीर्थ—तीर्थभेद। यह बेलारी जिलेको तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणी किनारे हाम्पीनगरमें उपस्थित है।

पम्पापति देखो।

पम्पापति—शिवलिङ्गभेद। यह विजयनगर राज्यके अन्तर्गत हाम्पी नगरमें अवस्थित है। पम्पापतिके मन्दिरको कोई कोई विरूपाक्षदेवका मन्दिर कहते हैं।

पम्पापुर—एक प्राचीन नगर, विन्ध्याचल एक समय इसी नगरकी सीमाके अन्तर्गत था। यहां प्राचीन पम्पापुर नगरका दुर्ग और उसके ऊपरके स्तम्भादिका ध्वंसावशेष देखनेमें आता है।

पम्बर—भारतवासियोंके मध्य दाक्षरमणियोंकी एक प्रकारकी विवाहप्रथा। इस प्रकारके विवाहमें स्त्रीके ऊपर स्वामीका कोई अधिकार नहीं रहता। नाम मात्रका विवाह करके स्वामी अभीष्ट स्थानको चला जाता है। रमणीके गर्भजात पुत्रगण उसी पिताके

कहलाते हैं। उस पुत्र और कन्याके ऊपर उक्त रमणीका एकमात्र अधिकार रहता है।

पम्बाई—मन्द्राजप्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यमें प्रवाहित एक नदी। यह पश्चिमघाट पर्वतसे निकल कर अलभी नदीमें जा गिरी है।

पम्मन (हिं० पु०) एक प्रकारका गेहूं जो बड़ा और बढ़िया होता है, कठिया गेहूं।

पयःकन्दा (सं० स्त्री०) पयः कन्दे यस्याः। क्षीरविदारी, भूकुम्हड़ा।

पयःकुण्ड (सं० क्ली०) पयभाण्ड, दूध या जल रखनेका घड़ा।

पयःपयोष्णी (सं० स्त्री०) पयःप्रचुरा पयोष्णी, मध्यपदलो० कर्मधा०। नदीभेद, एक नदीका नाम।

पयःपान (सं० क्ली०) दुग्धपान।

पयःपुर (सं० पु०) पुष्करिणी वा ह्रद, छोटा तालाब।

पयःपालिनी (सं० स्त्री०) १ बालक। २ उशीर।

पयःपेटी (सं० स्त्री०) नारिकेल, नारियल।

पयःप्रसाद (सं० पु०) निर्मलीवीज।

पयःफेनी (सं० स्त्री०) पयो दुग्धमिव फेनं यस्यां गौरादित्वात् ङीष्। एक प्रकारका छोटा वृक्ष, दुग्धफेनी।

पयश्चय (सं० पु०) पयसं चयः समूहः। जलसमूह।

पयस् (सं० क्ली०) पय्यते गीयते वा पय गतौ पाने वा असुन्। १ जल, पानी। २ दुग्ध, दूध। ३ अन्न, अनाज। ४ रात्रि, रात।

पयःमात्य (सं० क्ली०) तक्र, मट्ठा।

पयस्य (सं० त्रि०) पयसो दुग्धस्य विकारः, तत्र हितं वा पयस्-यत्। १ पयोविकार, दूधसे निकला या बना हुआ। २ पयोहित। (पु०) ३ पयः पिबतीति यत्। ३ विड़ाल। ४ दूधसे निकली या प्राप्त वस्तु, दुग्धविकार, जैसे घी, मट्ठा, दही आदि।

पयस्या (सं० स्त्री०) पयस्य-टाप्। १ दुग्धिका। २ क्षीरकाकोली। ३ अर्कपुष्पिका। ४ कुट्टुम्बिनी क्षुप। ५ आमिक्षा, पनीर। ६ स्वर्णक्षीरि।

पयस्वत् (सं० त्रि०) पयस् अस्त्यर्थे मतुप्, मस्य वः, सान्तत्वात्, न पदकार्यं। जलविशिष्ट।

पयस्वती (सं० स्त्री०) नदी।

पयस्वल (सं० त्रि०) पयोऽस्त्यस्य वलच्, सान्तत्वात् न पदकार्यं। १ जलयुक्त। (पु०) २ छाग।

पयस्वान् (हिं० वि०) पानीवाला।

पयस्विन् (सं० त्रि०) पयोऽस्त्यस्य विनि न पदकार्यं। १ पयोविशिष्ट, पानीवाला। (स्त्री०) २ नदी। ३ धेनु। ४ रात्रि। ५ काकोली। ६ क्षीरकाकोली। ७ दुग्धफेनी। ८ क्षीरविदारी। ९ छागी, बकरी। १० जीवन्ती। ११ गायत्रीस्वरूपा महादेवी।

पयस्विनी (सं० स्त्री०) पयस्विन् देखो।

पयस्वी (हिं० वि०) पानीवाला, जिसमें पानी हो।

पयहारी (हिं० पु०) वह तपस्वी या साधु जो केवल दूध पी कर रह जाता हो।

पया (सं० स्त्री०) शुण्ठी, कचूर।

पयादा (हिं० पु०) प्यादा देखो।

पयान (हिं० पु०) गमन, यात्रा, जाना।

पयार (हिं० पु०) पयाल देखो।

पयाल (हिं० पु०) धान, कोदों आदिके सूखे डंठल जिनके दाने झाड़ लिए गए हों, पुआल।

पयोगड़ (सं० पु०) पयसो गड़ इव। १ घनोपल, ओला। २ द्वीप।

पयोगल (सं० पु०) पयो गलति यस्मात् गल अपादाने क। १ घनोपल, ओला। २ द्वीप।

पयोग्रह (सं० पु०) पयसो दुग्धस्य ग्रहः, आधारे-अच्। यज्ञीय पात्रभेद।

पयोघन (सं० पु०) पयसा घनः निविड़ः। वर्षोपल, ओला।

पयोज (सं० पु०) पद्म, कमल।

पयोजन्मा (सं० पु०) १ बादल, मेघ। २ मुस्तक, मोथा।

पयोद (सं० पु०) पयो ददाति दा-क। १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा। ३ यदुवंशीय पुत्रभेद, एक यदुवंशी राजा। (स्त्री०) ४ कुमारानुचर मातृकाभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृका।

पयोदन (हिं० पु०) दूधभात।

पयोदा (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृकाभेद, कुमारकी अनुचरी एक मातृका।

पयोदेव (सं० पु०) वरुण।

पयोधर (सं० पु०) धरतीति धरः धृ-अच्, पयसो दुग्धस्य

जलस्य वा धरः। १ स्तीस्तन। २ मेघ। ३ मुस्तक, मोथा। ४ कोषकार। ५ नारिकेल, नारियल। ६ कसेरु। ७ तड़ाग तालाब। ८ गायका आयन। ९ मदार, अकौवा। १० एक प्रकारकी ऊख। ११ पर्वत, पहाड़। १२ कोई दुग्धवृक्ष। १३ दोहा छन्दका ११वां भेद। १४ समुद्र। १५ छप्पय छन्दका २७वां भेद।

पयोधरा—नदीभेद, एक नदीका नाम। यह बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलेके कलस बुद्रुख ग्रामके उत्तरमें प्रवाहित है। अभी यह नदी प्रवरा नामसे प्रसिद्ध है।

पयोधस् (सं॰ पु॰) पयो दधाति धा-असुन्। १ समुद्र। २ जलाधार।

पयोधा (हिं॰ पु॰) पयोधस् देखो।

पयोधारा (सं॰ स्त्री॰) पयसां जलानां धारा। १ जलधारा। पयसां धारा यत्र। २ नदीभेद।

पयोधि (सं॰ पु॰) पयांसि धीयन्तेऽस्मिन्, धा-कि (कर्मण्यधिकरणे च। पा ३।३।९३) समुद्र।

पयोधिक (सं॰ क्ली॰) पयोधौ समुद्रे कायति प्रकाशते इति कै-क। समुद्रफेन।

पयोनिधि (सं॰ पु॰) पयांसि निधीयन्तेऽस्मिन् धा-धाराणि अधिकरणे कि। समुद्र।

पयोमुख (सं॰ त्रि॰) दूधपीता, दुधमुंहा।

पयोमुच् (सं॰ क्ली॰) पयो मुञ्चति मुच-क्विप्। १ जलमुच्, मेघ। २ मुस्तक, मोथा।

पयोऽमृततीर्थ (सं॰ क्ली॰) तीर्थभेद।

पयोर (सं॰ पु॰) पयो जलं रातीति रा-क। खदिर, खैरका पेड़।

पयोलता (सं॰ स्त्री॰) क्षीरविदारी, दूधविदारीकंद।

पयोवाह (सं॰ पु॰) १ मेघ, बादल। २ मुस्तक, मोथा,

पयोवृध् (सं॰ त्रि॰) जलप्लावित, जलपरिवर्द्धित।

पयोव्रत (सं॰ पु॰) पयोमात्रपानसाध्यो व्रतः। पयोमात्र पान रूप व्रतविशेष।

"पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकं।
पयोव्रतत्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा॥"

(मत्स्यपुराण १५२ अ॰)

पुण्यतिथिमें त्रिरात्रसाध्य वा एकरात्रसाध्य पयोव्रत करना चाहिये। इस व्रतमें केवल जल पी कर रहना होता है। यह व्रत दो प्रकारका है, प्रायश्चित्तात्मक और काम्य। २ वत्सरोचित व्रतभेद। इस व्रतका विषय भागवतमें इस प्रकार लिखा है—फाल्गुनमासके शुक्लपक्षमें प्रतिपत्से ले कर त्रयोदशी तक अर्थात् १२ दिन इस व्रतका अनुष्ठान करना होता है। प्रातःकालको प्रातःस्नानादि करके समाहित चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णकी यथाविधान पूजा करनी चाहिये। इस व्रतमें केवल पयःपान करके रहना होता है, इसीसे इसका नाम पयोव्रत पड़ा है। इस व्रतानुष्ठानमें समय किसी प्रकारका असदालाप वा अन्य किसी प्रकारका निषिद्ध कर्म करना मना है। इस व्रतमें श्रीकृष्णकी पूजा ही प्रधान है। व्रत समाप्त हो जाने पर ब्राह्मणभोजन और नृत्यगीतादि उत्सव करना होता है। यह व्रत सभी यज्ञों और व्रतोंमें श्रेष्ठ है। इस व्रतमें निम्नलिखित मन्त्रसे प्रार्थना करनी होती है—

"त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता।
उद्धृतासि नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय॥"

भागवतके ८।१६ अध्यायमें इस व्रतका विशेष विवरण लिखा है।

पयोष्णा—नदीभेद। यह तापी नदीमें मिली है।

(तापीख॰ ७।१४)

पयोष्णी (सं॰ स्त्री॰) विन्ध्यापर्वतके दक्षिण दिशामें प्रवाहित एक नदी। राजनिघण्टके मतसे इस नदीका जल रुचिकर, पवित्र तथा पाप और सब प्रकारका आमयनाशक, सुख, बल और कान्तिप्रद तथा लघु माना गया है। इसका वर्त्तमान नाम पायनुनि है।

पयोष्णीजाता (सं॰ स्त्री॰) पयोष्णी जाता यस्याः, पृषोदरादित्वात् साधुः। सरस्वती नदी।

परंतु (हिं॰ अव्य॰) एक शब्द जो किसी वाक्यके साथ उससे कुछ अन्यथा स्थिति सूचित करनेवाला दूसरा वाक्य कहनेके पहले लाया जाता है, पर, तौभी।

परंदा (फा॰ पु॰) १ पक्षी, चिड़िया। २ एक प्रकारकी हवादार नाव जो काश्मीरकी झीलोंमें चलती है।

पर (सं॰ क्ली॰) पृ भावे कर्त्तरि वा अप् (ऋदोरप्। पा ३।३।५७) १ केवल। २ मोक्ष। ३ ब्रह्मा। ४ ब्रह्म।

५ विष्णु। ६ ब्रह्माकी आयु। ७ शत्रु। ८ शिव। (त्रि०) ९ श्रेष्ठ, आगे बढ़ा हुआ। १० दूर, जो परे हो। ११ अन्य, दूसरा। १२ उत्तर। १३ नैयायिकोंके मतसे द्रव्य, गुण और कर्मवृत्तिसत्ता, व्यापक सामान्य।

सामान्य दो प्रकारका है, पर और अपर। द्रव्य, गुण और कर्म इन तीनोंमें जो वृत्ति अर्थात् सत्ता है, उसे पराजाति कहते हैं। परभिन्न जातिका नाम अपरा-जाति है। जाति देखो।

पर (हिं० अव्य०) १ पश्चात्, पीछे। २ एक शब्द जो किसी वाक्यके साथ उससे अन्यथा स्थिति सूचित करने-वाला वाक्य कहनेके पहले लाया जाता है, परन्तु, किन्तु, लेकिन। (फा० पु०) ३ चिड़ियोंका डैना और उस परके रोएं, पक्ष, पंख।

परःकृष्ण (सं० त्रि०) परः कृष्णात् पारस्करादित्वात् सुट्। कृष्ण से भिन्न।

परःशत (सं० त्रि०) शतात् परं। शताधिक संख्या, सौसे ज्यादा।

परःश्वस् (सं० अव्य०) श्वो दिनात् परम् ः परः श्वः परः सहस्रात् पारस्करादित्वात् सुट्। परदिन, परसों।

परःषष्ट (सं० स्त्री०) परः षष्टेः निपातनात् सुटागमः। १ साठसे अधिककी संख्या। (त्रि०) २ जिसमें उतनी संख्या हो।

परःसहस्र (सं० त्रि०) सहस्रात् परं निपातनात् सुटा-गमः। सहस्राधिक संख्या।

परई (हिं० स्त्री०) दीपके आकारका पर उससे बड़ा मिट्टीका एक बरतन, पारा, सराव।

परउर्वी (सं० स्त्री०) उर्व्याः परः। उपसदुभेद।

परक (सं० पु०) कोशराज।

परकई—मन्द्राज प्रदेशके त्रिवाङ्कुड़ राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अगस्त्येश्वरसे ५॥ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। यहांके मन्दिरादिमें तामिलग्रन्थ और तुलु अक्षरमें लिखित १३ शिलालिपियां पाई जाती हैं।

परकटा (हिं० वि०) जिसके पर या पंख कटे हों।

परकना (हिं० क्रि०) १ परचना, हिलना मिलना। २ अभ्यास पड़ना, चसका लगना।

परकर्मन् (सं० क्ली०) परका कार्य, दूसरेका काम।

परकर्मनिरत (सं० त्रि०) परकार्यमें नियुक्त।

परकलत्र (सं० क्ली०) परस्त्री, दूसरेकी औरत।

परकलत्राभिगमन (सं० क्ली०) परस्त्रीगमन, दूसरेकी औरतके साथ मैथुन।

परकाजी (हिं० वि०) दूसरेका काय साधन करने वाला, परोपकारी।

परकान (हिं० पु०) तोपका कान या मुंह, तोपका वह स्थान जहां रंजक रखी जाती है वा बत्ती दी जाती है।

परकाना (हिं० क्रि०) १ परचाना, हिलाना, मिलाना। २ कोई लाभ पहुंचा कर या कोई बात बेरोक टोक करने दे कर उसको ओर प्रवृत्त करना, धड़क खोलना, चसका लगाना।

परकायप्रवेश (सं० पु०) अपनी आत्माको दूसरेके शरीरमें डालनेकी क्रिया जो योगकी एक सिद्धि समझी जाती है।

परकार (फा० पु०) वृत्त या गोलाई खींचनेका औजार। यह पिछले सिरों पर परस्पर जुड़ी हुई दो शलाकाओं-के रूपका होता है।

परकार्य (सं० क्ली०) अन्यका कार्य, दूसरेका काम।

परकाल (हिं० पु०) परकार देखो।

परकाला (हिं० पु०) १ सीढ़ी, जीना। २ चौखट, देहली, दहलीज। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ शीशेका टुकड़ा। ५ अग्निकण, चिनगारी।

परकाश (हिं० पु०) प्रकाश देखो।

परकीय (सं० त्रि०) पराया, दूसरेका, बेगाना।

परकीया (सं० स्त्री०) परकीय-टाप्। नायिकाभेद। गुप्तभावसे जो पर-पुरुष पर प्रेम रखती है, उसे परकीया कहते हैं। यह दो प्रकारकी है, परोढ़ा और कन्यका। कन्यकागण पित्रादिके अधीन रहती हैं, इसीसे वे पर-कीया हैं।

गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, कुलटा, अनुशयाना और मुदिता आदि नायिका परकीयाके अन्तर्गत हैं। गुप्ता नायिका तीन प्रकारकी है, वृत्तसुरतगोपना, वर्त्तिष्य-माणसुरतगोपना और वर्त्तमानसुरतगोपना। विदग्धा दो प्रकारकी है, वाग्विदग्धा और क्रियाविदग्धा।

परकृति (सं० स्त्री०) १ अन्यके कृतकार्यका चरित्र

स्थान, दूसरेकी क्षतिका वर्णन। २ दूसरेकी कृति, दूसरेका किया हुआ काम। ३ कर्मकाण्डमें दो परस्पर विरुद्ध वाक्योंकी स्थिति।

परकेशरी—चोलवंशीय एक राजा। कच्छवंशीय राजा हस्तिमल्लके शासनमें इनका नामोल्लेख है। सम्भवतः ये ही मदुराजयी कोपरकेशरी वर्मा हैं।

परकेशरीचतुर्वेदीमङ्गल—कावेरी नदीके तीरवर्ती एक ग्राम। वीरचोल नामक किसी युवराजने यह ग्राम १५० ब्राह्मणोंको दान दिया था।

परकेशरीवर्मा—चोलवंशीय एक राजा। कोई इन्हें वीर राजेन्द्रदेव, कोई पूर्व चालुक्य वंशीय २य कुलोत्तुङ्ग चोड़ मानते हैं।

परकोटा (हिं० पु०) १ किसी गढ़ या स्थानकी रक्षाके लिये चारों ओर उठाई हुई दीवार। २ पानी आदिको रोकनेके लिये खड़ा किया हुआ धुस, बांध, पुश्ता।

परक्रम (सं० पु०) परवर्त्ति क्रम।

परक्राथन् (सं० पु०) महाभारतोक्त एक योद्धा। महाभारतकी लड़ाईमें ये कुरुकी ओरसे लड़े थे।

परक्रान्तिज्या (सं० स्त्री०) योजनात्मिका ज्या।

परक्षुद्रा (सं० स्त्री०) वेदादिमें लिखित छोटा कविता।

परक्षेत्र (सं० क्ली०) परस्य क्षेत्रं पत्न्यादि। १ परपत्नी, पराई स्त्री। २ पराया खेत। ३ दूसरेका शरीर।

परख (हिं० स्त्री०) १ गुण दोष स्थिर करनेके लिये अच्छी तरह देख भाल, जांच, परीक्षा। २ कोई वस्तु भली है या बुरी, यह जान लेनेकी शक्ति, पहचान।

परखना (हिं० क्रि०) १ गुण दोष स्थिर करनेके लिये अच्छी तरह देखना भालना, परीक्षा करना, जांच करना। २ भला और बुरा पहचानना, कौन वस्तु कैसी है यह ताड़ना। ३ प्रतीक्षा करना, इन्तजार करना, आसरा देखना।

परखवाना (हिं० क्रि०) परखाना देखो।

परखवैया (हिं० पु०) परखनेवाला, जांचनेवाला।

परखाई (हिं० स्त्री०) १ परखनेका काम। २ परखनेकी मजदूरी।

परखाना (हिं० क्रि०) १ परखनेका काम दूसरेसे कराना, परीक्षा कराना, जंचवाना। २ कोई वस्तु देते या सौंपते समय उसे गिन कर या उलट पलट कर दिखा देना, मिलवाना, संभलवाना।

परखाम—मथुरा जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह आगरा नगरसे २५ मील और मथुरासे १४ मीलकी दूरी पर एक मिश्र मृत्तिकास्तूपके ऊपर अवस्थित है।

यहां जखाइयाके सम्मानके लिये माघमासमें प्रति रविवारको मेला लगता है। वर्त्तमानकालमें इस ग्रामकी कोई विशेष उल्लेखयोग्य घटना नहीं रहने पर भी यहां शक राजाओंके समयकी असंख्य प्रस्तरमूर्त्ति पाई जाती हैं। इनमेंसे एक मनुष्यकी मूर्त्ति है जिसकी ऊंचाई ७ फुट है। यह मूर्त्ति अभी भग्नावस्थामें रहने पर भी इसका पूर्वाकार गठन और मसृणता आज भी ज्योंकी त्यों बनी है। इसके परिच्छदादि स्वतन्त्र हैं। परवर्त्ती शक-राजाओंके शासनकालमें खोदित मूर्त्तिके परिच्छदसे भिन्न है। गलेमें एक प्रकारकी माला लटक रही है। इसके गलेमें जो लिपि खोदित है वही आदरकी चीज है। उसके अक्षर सम्राट् अशोकके समयकी लिपिके जैसे मालूम होते हैं। यह मूर्त्ति ३री शताब्दीकी बनी हुई है, ऐसा जान पड़ता है। मूर्त्तिके दो हाथ टूट जानेसे वह किसकी मूर्त्ति है, इसका पता नहीं चलता।

परखुरी (हिं० स्त्री०) पखड़ी देखो।

परखैया (हिं० पु०) परखनेवाला।

परगांव—१ बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह पाटससे ११ मील उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां तुकाई देवीका एक मन्दिर है। देवीकी मूर्त्ति तुलजापुरसे यहां लाई गई थी।

२ थाना जिलेके अन्तर्गत एक ग्राम। इसकी सीमा पर गर्दभ और स्त्री-मूर्त्ति रक्षित है।

परग (हिं० पु०) पग, कदम, डग।

परगत (सं० त्रि०) परं गतः द्वितीयाश्रितातीतेति २-तत्। परप्राप्त, अपरगत।

परगना (फा० पु०) एक भूभाग जिसके अन्तर्गत बहुतसे ग्राम हों। आज कल एक तहसीलके अन्तर्गत कई

परगने होते हैं। बड़े परगने कई तप्पों या टप्पोंमें बंटे होते हैं।

परगनी (हिं स्त्री०) परगहनी देखो।

परगहनी (हिं० स्त्री०) सुनारोंका एक औजार जो नलीके आकारका होता है और जिसमें बरछीको तरह डांड़ी लगी होती है। इस नलीमें तेल दे कर उसमें चांदी या सोनेकी गुलियां ढालते हैं. परगनी।

परगाछा (हिं० पु०) एक प्रकारका पौधा। यह गरम देशोंमें दूसरे पेड़ों पर उगता है, इसकी पत्तियां लम्बी और खड़ी नसोंकी होती हैं। इसमें सुन्दर तथा अद्भुत वर्ण और आकृतिके फूल लगते हैं। एक ही फूलमें गर्भकोश और परागकेशर दोनों होते हैं। पर गाछेकी जातिके बहुतसे पौधे जमीन पर भी होते हैं। लोग इसे फूलोंकी सुन्दरताके लिये बगीचोंमें लगाते हैं। ऐसे पौधे दूसरे पेड़ोंकी डालियों पर उगते तो हैं, पर सब परिपुष्ट नहीं होते परगाछेकी कोई टहनी या गांठ भी बीजका काम देती है। उससे भी नया पौधा अंकुर फोड़ कर निकल आता है। परगाछेको संस्कृतमें वदाक और हिन्दीमें बांदा भी कहते हैं।

परगाछी (हिं० स्त्री०) अमरवेल, आकाशबौंर।

परगामिन् (सं० त्रि०) परं वाच्यं गच्छति लिङ्गेन समत्वात्, पर, गम णिनि। वाच्यलिङ्ग शब्द।

परगासना (हिं० क्रि०) प्रकाशित होना वा करना।

परगुण (सं० त्रि) उपकारी।

परग्रन्थि (सं० पु०) परेषा ग्रन्थियंत्र। पर्वावधि, उंगली की गिरह।

परघनी (हिं० स्त्री०) परगहनी देखो।

परचंड (हिं० वि०) प्रचण्ड देखो।

परचक्र (सं० क्लो०) परस्य शत्रोश्चक्रं। १ शत्रुकी राजा-प्रभृति। २ शत्रुराज्यसे उत्पन्न ईतिभेद। ३ विपक्ष राजा।

परचक्रकाम (सं० पु०) १ परराज्यपिपासु, वह जो दूसरेका राज्य लेना चाहता हो। २ नेपालराज २य जयदेवका एक नाम।

परचना (हिं० क्रि०) १ घनिष्ठता प्राप्त करना, हिलना, मिलना। २ चसका लगाना, घड़क खुलना जो बात दो एक बार अपने अनुकूल हो गई हो या जिस बातको दो एक बार बेरोक टोक मनमाना करने पाए हों उसीकी ओर प्रवृत्त रहना।

परचर (हिं० पु०) अवध प्रान्तके खोदी जिलेमें पाई जानेवाली बैलोंकी एक जाति।

परचा (फा० पु०) १ चिट्ठी, खत, पुरजा। २ परीक्षामें आनेवाला प्रश्नपत्र। ३ कागजका टुकड़ा, चिट, कागज। ४ परिचय, जानकारी। ५ प्रमाण, सबूत। ६ परीक्षा, परख, जांच। ७ जगन्नाथजीके मन्दिरका वह प्रधान पुजारी जो मन्दिरकी आमदनी और खर्चका प्रबन्ध करता तथा पूजा सेवा आदिकी देख रेख रखता है।

परचाना (हिं० क्रि०) १ आकर्षित करना, हिलाना, मिलाना, किसीसे इतना अधिक लगाव पैदा करना कि उससे व्यवहार करनेमें कोई संकोच या खटका न रहे। २ धड़क खोलना, चसका लगाना, टेव डालना।

परचार (हिं० पु०) प्रचार देखो।

परचारना (हिं०, क्रि०) प्रचारना देखो।

परचित्तज्ञान (सं० क्लो०) परचित्तस्य ज्ञानं। दूसरेका मनोभाव जानना।

परचित्तपर्यायज्ञान (सं० पु०) अपने चित्तसे दूसरेके चित्तका भाव जानना।

परचून (हिं० पु०) आटा, चावल, दाल, नमक, मसाला आदि भोजनका फुटकर समान।

परचूनी (हिं० पु०) १ परचूनवाला, आटा, दाल, नमक आदि बेचनेवाला बनिया। (स्त्री०) २ परचून या परचूनीका काम या भाव।

परचै (हिं० पु०) परिचय देखो।

परच्छन्द (सं० त्रि०) परस्य छन्दो यत्र। १ पराधीन। परस्य छन्दः ६-तत्। २ पराभिलाष।

परच्छन्दवत् (सं० त्रि०) परच्छन्दः विद्यतेऽस्य मतुप्, मस्य व। परच्छन्दयुक्त।

परछत्ती (हिं० स्त्री०) १ घर या कोठरीके भीतर दीवारसे लगा कर कुछ दूर तक बनाई हुई पाटन जिस पर सामान रखते हैं, टांड, पाटा। २ हलका छप्पर जो दीवारों पर रख दिया जाता है, फस आदिकी छाजन।

परछन (हिं० स्त्री०) विवाहकी एक रीति। इसमें बरात जब द्वार पर आती है, तब कन्या पक्षकी स्त्रियां वरके समीप जाती हैं और उसे दही, अक्षत की टीका लगातीं, उसकी आरती उतारतीं तथा उसके ऊपरसे मूसल बट्टा आदि घुमाती हैं।

परछना (हिं० क्रि०) द्वार पर बरात लगने पर कन्या-पक्षकी स्त्रियोंका वरका आरता आदि करना परछन आदि करना।

परछा (हिं० पु०) १ वह कपड़ा जिससे तेली कोल्हूके बैलकी आंखोंमें अंधोटी बांधते हैं। २ जुलाहोंका नला जिस पर सूत लपेटा जाता है, सूतकी फिरकी, थिरनी। ३ बहुतसी वस्तुओंके घने समूहमेंसे कुछके निकल जानेसे पड़ा हुआ अवकाश, विरलता, छीड़। ४ घनेपन या भीड़की कमी, भाड़का छंटाव। ५ समाप्ति, निबटेरा, फैसला।

परछाईं (हिं० स्त्री०) १ प्रकाशके मार्गमें पड़नेवाले किसी पिण्डका आकार जो प्रकाशसे भिन्न दिशाकी ओर छाया या अंधकारके रूपमें पड़ता है, छायाकृति। २ जल, दर्पण आदि पर पड़ा हुआ, किसी पदार्थका पूर्ण प्रतिरूप, अक्स।

परच्छिद्र (सं० क्ली०) परस्य छिद्रं। परदोष, दूसरेका ऐब।

परज (हिं० स्त्री०) १ एक रागिनी जो गान्धार, धनाश्री और मारूके मेलसे बनी हुई मानी जाती है। (वि०) २ परजात, दूसरेसे उत्पन्न। (पु०) ३ कोकिल, कोयल।

परजवट (हिं० पु०) परजोट देखो।

परजा (हिं० स्त्री०) १ प्रजा, रैयत। २ आश्रितजन, कामधंधा करनेवाला। ३ जमींदारकी जमीन पर बसनेवाला या खेती आदि करनेवाला, असामी।

परजात (सं० त्रि०) परेण जातः, परपुष्टत्वात् तथात्वं। १ अन्योत्पन्न, दूसरेसे उत्पन्न। (पु०) २ कोकिल, कोयल। यह कौवेसे पाली पोसी जाती है, इसीसे इसको परजात कहते हैं। ३ दूसरी जातिका मनुष्य। ४ दूसरी बिरादरीका आदमी।

परजाता (हिं पु०) भारतवर्षमें मिलनेवाला एक प्रकारका पेड़। इसकी पत्तियां पांच छः अंगुल लंबी और चार अंगुल चौड़ी होती हैं। ये आगेकी ओर बहुत नुकीली होती हैं और इनके किनारे नीमकी पत्तीके किनारोंकी तरह कुछ कुछ कटावदार होते हैं। केवल फूलोंके लिये ही इसके पेड़ लगाये जाते हैं। फूल गुच्छोंमें लगते और छोटे छोटे तथा डांडीदार होते हैं। डांड़ीका रंग लाल या नारंगी और दलोंका रंग सफेद होता है। सूखी हुई डांड़ियोंको उबाल कर पीला रंग निकालते हैं, यह पेड़ शरद ऋतुमें फूलता है। फल बराबर झड़ते रहते, पेड़में कम ठहरते हैं। पत्तियां दवाके काममें आती हैं और बहुत गरम होती है। ऐसा देखा जाता है, कि ज्वरमें लोग प्रायः परजातेकी पत्ती देते हैं। इसका दूसरा नाम हरसिंगार भी है।

परजाति (सं० स्त्री०) दूसरी जाति।

परजित (सं० त्रि०) परेण जितः। १ परपुष्ट। २ शत्रुसे पराजित।

परजोट (हिं० पु०) १ वह सालाना किराया जो मकान बनानेके लिए ली हुई जमीन पर लगे। २ घर बनानेके लिए सालाना किराए पर जमीन लेने देनेका नियम।

परञ्च (सं० अव्य०) १ और भी। २ परन्तु, लेकिन, तो भी।

परञ्ज (सं० पु०) परं जयतीति जि-जये बाहुलकात् ड। १ तैलनिष्पेषण यन्त्र, तेल पेरनेका कोल्हू। २ छुरीका फल। ३ फेन।

परञ्जन (सं० पु०) परायाः पश्चिमस्याः दिशो जनः स्वामी, निपातनात् साधुः। वरुण।

परञ्जय (सं० पु०) परां पश्चिमां दिशं जयति स्वामित्वेन जि अच्, पुंवद्भावः मुम् च। १ वरुण। २ शत्रुजयकर्त्ता, शत्रुको जीतनेवाला।

परण (सं० त्रि०) १ पार। २ पठन।

परतंचा (हिं० स्त्री०) प्रतञ्चिका देखो।

परतः (हिं० अव्य०) १ अन्यसे, दूसरेसे। २ पश्चात्, पीछे। ३ परे, आगे।

परतःप्रमाण (सं० पु०) जो स्वतः प्रमाण न हो, जिसे दूसरे प्रमाणोंकी अपेक्षा हो।

परत (हिं० स्त्री०) १ मोटाईका फैलाव जो किसी सतहके

ऊपर हो, स्तर, तह । २ कपड़े कागज आदिके भिन्न भिन्न भाग जो जोड़नेसे नीचे ऊपर हो गए हों।

परतन्त्र (सं० त्रि०) परस्तन्त्रं प्रधानं यस्य । १ पराधीन, परवश । (क्ली०) परस्य तन्त्रं । २ परकीयशास्त्र । परं श्रेष्ठं तन्त्रं । ३ उत्कृष्टशास्त्र । ४ उत्तम परिच्छेद ।

परतर्कुक (सं० त्रि०) परः शत्रुस्तर्कुरिव यस्य, कप् । शत्रुसे भययुक्त ।

परतल (हिं० पु०) लादनेवाले घोड़ोंकी पीठ पर रखनेका बोरा या गून ।

परतला (हिं० पु०) चमड़े या मोटे कपड़ेको चौड़ी पट्टी जो कन्धेसे ले कर कमर तक छाती और पीठ परसे तिरछी होती हुई आती है और जिसमें तलवार लटकाई जाती है ।

परतवाड़ा—बरार राज्यके इलिचपुर जिलेका सदर और सेनानिवास । यह अक्षा० २१° १८' उ० और देशा० ७७° २३' २०" पू०के मध्य इलिचपुर नगरसे एक कोस दूर बिछननदीके किनारे अवस्थित है ।

परतस् (सं० अव्य०) परस्मिन्नर्थे तसिल् । १ परस्मात्, दूसरेसे । २ पराधीन, परवश ।

परता (सं० स्त्री०) पर-तल् । १ चरमसीमा । २ श्रेष्ठता ।

परता (हिं० पु०) पड़ता देखो ।

परतांजना (हिं० पु०) सोनारोंका एक औजार । इससे वे गहनों पर मछलीके सेहरेका आकार बनाते हैं ।

परंतापन (सं० पु०) परं तापयतीति पर-तापि-ल्यु । १ परतापक, परपीड़क, वह जो दूसरेको सताता हो । २ गरुड़के एक पुत्रका नाम ।

परतापसाहि—हिन्दीके एक कवि । इन्होंने सं० १७६१में जन्म-ग्रहण किया था । ये बुन्देलखण्डके वासी और कवि रतनेशके पुत्र थे तथा महाराज छत्रसालके दरबारी कवि थे । इन्होंने कई एक ग्रन्थ भी बनाये हैं । भाषा साहित्यमें इनका बनाया काव्यविलास नामक ग्रन्थ मनोहर है । विक्रमासाहिकी आज्ञासे इन्होंने भाषाभूषण और बलभद्रके नखसिखकी टीका बनायी है । इनके विज्ञानार्थकौमुदी नामक ग्रन्थकी बड़ी प्रशंसा है ।

परताल—बङ्गदेशके अन्तर्गत स्थानभेद ।

परताल (हिं० स्त्री०) पड़ताल देखो ।

परती (हिं० स्त्री०) १ वह खेत या जमीन जो बिना जोती हुई छोड़ दी गई हो । २ वह चद्दर जिससे हवा करके भूसा उड़ाया जाता है ।

परतेला (हिं० वि०) वह रंग जो तैयार होनेके लिये कुछ समय तक घोल या उबाल कर रखा जाय ।

परतोग्राह्य (सं० अव्य०) परस्मात् ग्राह्यः । परप्रामाण्य ।

परतोली (हिं० स्त्री०) गली ।

परत्र (सं० अव्य०) परस्मिन् काले पर-त्रल् । १ परकालमें, परलोकमें । २ अन्यत्र, और जगह ।

परत्रभीरु (सं० त्रि०) परत्रलोकान्तरघटनाविषये भीरुः । धार्मिक, जिसे परलोकका भय हो ।

परत्व (सं० क्ली०) परस्य भावः, पर-त्व । परता, पहले या पूर्व होनेका भाव । वैशेषिकमें द्रव्यके जो २४ गुण माने गए हैं उनमें 'परत्व' 'अपरत्व' भी हैं । 'परत्व' 'अपरत्व' देश और कालके भेदसे दो प्रकारके हैं—कालिक और दैशिक । यथा—'उसका जन्म तुमसे पहलेका है' यह कालसम्बन्धी 'परत्व' और 'उसका घर पहले पड़ता है' यह देशसम्बन्धी परत्व हुआ । देशसम्बन्धी परत्व अपरत्वका विपर्यय हो सकता है, पर कालसम्बन्धी परत्व अपरत्वका नहीं ।

विशेष विवरण वैशेषिक शब्दमें देखो ।

परथन (हिं० पु०) पलेथन देखो ।

परदा (फा० पु०) १ आड़ करनेके काममें आनेवाला कपड़ा, टाट, चिक आदि, पट । २ लोगोंकी दृष्टिके सामने न होनेकी स्थिति, आड़, ओट, छिपाव । ३ दृष्टि या गतिका अवरोध करनेवाली वस्तु, आड़ करनेवाली वस्तु, व्यवधान । ४ रोक जिससे सामनेकी वस्तु कोई देख न सके या उसके पास तक पहुंच न सके, आड़, ओट, ओझल । ५ नावकी पतवार । ६ सितार, हारमोनियम आदि बाजोंमें वह स्थान जहांसे स्वर निकाला जाता है । ७ फारसीके बारह रागोंमेंसे एक । ८ अंगरखेका वह भाग जो छातीके ऊपर रहता है । ९ स्त्रियोंको घरके भीतर रखनेका नियम । १० वह दीवार जो विभाग करने या ओट करनेके लिए उठाई जाय । ११ तह, परत, तल । १२ वह झिल्ली चमड़ा आदि जो कहीं पर आड़ या व्यवधानके रूपमें हो ।

परदातीश्वर--शिवलिङ्गभेद।

परदादा (हिं० पु०) प्रपितामह, दादाका बाप।

परदानशीन (फा० वि०) अन्तःपुरवासिनी, परदेमें रहनेवाली।

परदार (सं० पु०) परस्य दाराः। परभार्या, दूसरेकी औरत।

"परदाररताश्चैव परद्रव्यहराश्च ये।
अधोऽधो नरके यान्ति पीड्यन्ते यमकिंकरैः॥"
(कर्मलोचन)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि जो कोई मनुष्य परदारगमन करता है, लक्ष्मी उसके घरसे निकल जाती हैं। जो पाणिगृहीत स्त्रीको परित्याग कर अन्य स्त्रीके साथ गमन करता है, उसके नित्य नैमित्तिक और काम्यकर्म निष्फल होते हैं और अन्तमें उसे नरक होता है।
(ब्रह्मवैवर्तपु० श्रीकृष्ण जन्मख० ६१ अ०)

परदारगमन (सं० क्ली०) परस्त्री-गमन।

परदारगामिन् (सं० त्रि०) जो परस्त्रीके साथ गमन करता है।

परदाराभिगमन (सं० क्ली०) परस्त्री-गमन।

परदारिक (सं० त्रि०) परदारानुरक्त।

परदारिन् (सं० त्रि०) परदार-इनि। जो परस्त्रीके साथ गमन करती है।

परदिवस (सं० क्ली०) आजसे अन्य दिन, कल, परसों।

परदेवता (सं० स्त्री०) परा श्रेष्ठा देवता। परम देवता, श्रेष्ठ देवता, इष्टदेव।

परदेश (सं० पु०) देशात् परः, वा परः भिन्नः देशः। १ अपर देश, दूसरा देश, विदेश। २ दाक्षिणात्यके अन्तर्गत स्थानभेद।

परदेशी--१ बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत अहमदनगर जिलावासी ब्राह्मण। ये लोग उत्तर-भारतसे धर्मोपलक्षमें यहां आये हैं, इस कारण परदेशी नाम पड़ा है। इनके मध्य गौड़, कनौज, मैथिल, सारस्वत और उत्कलस्थ योंके ब्राह्मण देखे जाते हैं। इनमेंसे फिर ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी हैं। इन पांच श्रेणियोंके मध्य परस्पर आहार व्यवहार वा विवाहमें आदान-प्रदान प्रचलित नहीं है। लेकिन कन्याके पिता यदि आशातीत अर्थ दे सकें, तो उनकी कन्या उच्च कुलमें व्याही जा सकती हैं। परदेशीके मध्य प्रधानतः आङ्गिरस, वृहस्पति, भरद्वाज, काश्यप कात्यायन और वशिष्ठ गोत्र देखे जाते हैं। समानगोत्र, होने पर भी सम्प्रगोत्रके मध्य विवाह नहीं होता। इनके मध्य अग्निहोत्री, वाजपेयी, चौबे, दूबे, मिश्र, पांडे, पाठक, शुक्ल, तिवारी, त्रिवेदी इत्यादि उपाधियां देखी जाती हैं। आहार व्यवहार बहुत कुछ हिन्दुस्थानीके जैसा है। पुरुष लोग मराठी ब्राह्मणोंके जैसा पगड़ी बाँधते हैं, पर रमणियां आज भी हिन्दुस्थानी रमणीकी पोशाक, कुरते और ओढ़ने आदिका व्यवहार करती हैं।

परदेशी ब्राह्मणोंमेंसे कितने तो ऐसे हैं जो एक ही शाम खाते हैं। मछली, मांस वा मद्य कोई छूते तक भी नहीं। लेकिन गांजा और भंग खानेमें कोई आपत्ति नहीं करते। ये लोग ब्राह्मणोचितव्रत उपवासादि पालन करते, पर जीविकानिर्वाहके लिये कितनोंने पुरुषानुक्रमसे सैनिकवृत्ति, वणिक और सौदागर आदिका कार्य अवलम्बन किया है। दाक्षिणात्यमें वास करने पर भी ये लोग ५वें दिन षष्ठीपूजा न कर ६ठे दिन षष्ठिपूजा करते हैं।

दाक्षिणात्यमें ब्राह्मणके साथ इनका आहार-व्यवहार प्रचलित नहीं है, लेकिन आपसमें जलपान चलता है।

इन लोगोंकी अवस्था उतनी खराब नहीं है। ये लोग स्त्री-शिक्षाके विरोधी हैं, पर पुत्रादिको यत्नपूर्वक लिखना पढ़ना सिखाते हैं।

२ शोलापुर, सतारा आदि अञ्चलमें परदेशी कहनेसे साधारणतः हिन्दुस्थानसे आये हुए ब्राह्मण और राजपूत दोनों ही जातिका बोध होता है। इन सब परदेशियोंमेंसे कोई भी इस अञ्चलमें स्थायीरूपसे वास नहीं करता, इस कारण वे स्त्रियोंको साथ नहीं लाते हैं। सभी देशीय रमणी रखते हैं। उनके गर्भसे जो सन्तानादि जन्म लेती हैं, उनके प्रति ये लोग उतना प्रेम नहीं रखते। लेकिन जो लोग यहां विवाह करके बस गये हैं, उनकी बात स्वतन्त्र है। पर ऐसे परदेशी बहुत कम देखनेमें आते हैं। इनके पुत्रादि बहुत कुछ मराठी भावापन्न हैं। लेकिन जो देशसे स्त्री लिये आते हैं, उनका आचार-व्यवहार हिन्दुस्थानीके जैसा है।

परदेशी (हिं० पु०) अन्य देशनिवासी, विदेशी।

परदुःख (सं० क्ली०) परेषां दुःखं। परका दुःख, दूसरेकी तकलीफ।

परद्दक (सं० पु०) काक, कौवा।

परद्रव्यहरा (सं० स्त्री०) अग्निपर्ण, गठिवन।

परद्वेषिन् (सं० त्रि०) परेभ्यो द्वेष्टि पर-द्विष-णिनि। १ विदूषक। २ परद्वेष्टा, परदूषक, खल।

परधर्म (सं० पु०) परः श्रेष्ठः धर्मः। १ परमधर्म, श्रेष्ठ धर्म। परस्य धर्मः। २ दूसरेका धर्म।

"श्रेयान् स्वधर्मो विगुणो परधर्मात् स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥" (गीता ३।३५)

गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनको उपदेश दिया है कि सम्पूर्ण रूपसे परधर्म अनुष्ठित होनेकी अपेक्षा कथञ्चित् अङ्गहानि होते हुए भी स्वधर्म साधन श्रेष्ठ है। परधर्म अत्यन्त भयसङ्कुल है। तात्पर्य यह कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण तथा ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रमविहित धर्म ही मनुष्यके निजोचित धर्म हैं। तपश्चर्या ब्राह्मणका धर्म है, किन्तु वह क्षत्रियका धर्म नहीं है—परधर्म है। युद्ध करना क्षत्रियका धर्म है, ब्राह्मणका पर धर्म है। केवल भगवान्‌का नामकीर्त्तनादि ब्राह्मणका धर्म है, यह प्राणिमात्रका ही स्वधर्म है। वर्णाश्रमोचित मन्त्र, देवता आदि कर्माङ्गको छोड़ कर जो धर्म किया जाता है, वह विगुण होने पर भी सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठित परधर्मकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ है। परधर्म निज प्रकृतिविरुद्ध है, इसासे स्वधर्म साधनपूर्वक प्रकृतिका निर्माण करते करते मृत्यु हो जाने पर भी मङ्गल होता है। परधर्म कभी भी शुभफलद नहीं होता। जो प्रकृतिविरुद्ध है उससे क्या कभी शुभफल मिल सकता है? कभी नहीं। भगवान्‌के इस उपदेशका तात्पर्य यह है, कि किसीको परधर्मानुष्ठान नहीं करना चाहिये; करनेसे पद पदमें दुःख होता है।

परधाम (सं० पु०) १ वैकुण्ठधाम, परलोक। २ ईश्वर, विष्णु।

परध्यान (सं० क्ली०) परं श्रेष्ठं ध्यानं। १ ध्यानविशेष, श्रेष्ठ ध्यान। परस्य ब्राह्मणि ध्यानं यद्वापर ब्रह्मविषयकं ध्यानमिति। २ ब्रह्मचिन्तन। परेषां ध्यानं। ३ दूसरेका अनिष्ट चिन्तन।

परन (हिं० पु०) १ मृदङ्ग आदि बाजोंके बजाते समय मुख्य बोलोंके बीच बीचमें बजाए जानेवाले बोलोंके खण्ड। २ प्रतिज्ञा, टेक। ३ आदत, अभ्यास।

परपैठ (हिं० स्त्री०) हुंडीकी तीसरी नकल।

परपोता (हिं० पु०) पुत्रके पुत्रका पुत्र, पोतेका बेटा।

परपोरो—मध्यप्रदेशके रायपुर जिलान्तर्गत दुर्ग तहसीलका एक सामान्तराज्य। यहांके सरदार गौड़ जातिके हैं। इस राज्यमें कुल २४ ग्राम लगते हैं। भूपरिमाण ३२ वर्गमील है।

परनाना (हिं० पु०) नानाका पिता।

परनानी (हिं० स्त्री०) नानीकी माता।

परनाम (हिं० पु०) प्रणाम देखो।

परनाला (हिं० पु०) वह मार्ग जिससे घरमेंका मल या पानी बह कर बाहर निकल जाता है, पनाला, मोरी।

परनाली (हिं० स्त्री०) १ छोटा परनाला, मोरी। २ अच्छे घोड़ोंकी पीठका नीचापन जो उनको तेजी प्रकट करता है।

परनि (हिं० स्त्री०) आदत, टेव।

परनिपात (सं० पु०) परत्र निपातः उच्चारणं। समासविषयमें पीछे निपात अर्थात् उच्चारण होता है। जैसे 'दन्तानां राजा' यहां पर विभक्तिका लोप हो कर 'दन्तराज' ऐसा पद होना उचित था, लेकिन परनिपात हो कर अर्थात् दन्त शब्द राजन् शब्दके पीछे उच्चारित हो कर राजदन्त ऐसा पद हुआ। 'राजदन्तादिषु परं' इस सूत्रके अनुसार परनिपात हुआ है।

परनी (हिं० स्त्री०, राँगेका महीन पत्तर जिसमें सुनहली या रुपहली चमक होती है और जिसे सजावटके लिये चिपकाते हैं, पन्नी।

परनौत (हिं० स्त्री०) नमस्कार, प्रणाम, प्रणति।

परन्तप (सं० त्रि०) परान् शत्रून् तापयतीति तप-खच्, खचि ह्रस्वः (द्विषत्परयोस्तापे। पा ३।२।३९) ततो मुम्। १ १ परतापी, शत्रुओंको ताप देनेवाला, वैरियोंको दुःख देनेवाला। २ जितेन्द्रिय। (पु०) ३ चिन्तामणि। ४ तामस मनुके एक पुत्रका नाम।

परन्तु (हिं॰ अव्य॰) परंतु देखो।

परप चक (हिं॰ वि॰) मायावो, नखरेहिया, फसादी।

परपंचो (हिं॰ वि॰) १ धूर्त, मायावो। २ फसादी, नखरेहिया।

परपक्ष (सं॰ पु॰) १ विरुद्ध पक्ष, विरोधियोंका दल। २ विपक्षोको बात, मनका विरोध करनेवालेकी बात।

परपट (हिं॰ पु॰) समतल भूमि, चौरस मैदान।

परपटी (हिं॰ स्त्री॰) पर्पटी देखो।

परपतिका (सं॰ स्त्री॰) क्षुद्रचञ्चु क्षुप।

परपद (सं॰ क्लो॰) परं श्रेष्ठं पदं। १ श्रेष्ठस्थान, मुक्ति। परस्य परेषां वा पदं। २ पररराष्ट्र।

परपराना (हिं॰ क्रि॰) मिर्च आदि कड़ुई चोजोंका जीभ या शरीरके और किसी भागमें एक विशेष प्रकारका उग्र संवेदन उत्पन्न करना, तीक्ष्ण लगना, चुनचुनाना।

परपराहट (हिं॰ स्त्री॰) परपरानेका भाव, चुनचुनाहट।

परपाकनिवृत्त (सं॰ पु॰) परार्थात् पाकात् निवृत्तः। परो-द्देशक पाकरहित, जो दूसरेके उद्देश्यसे भोजन न निकाले, पञ्चयज्ञ न करनेवाला।

परपाकरत (सं॰ पु॰) परस्य पाके रतः। परपाकरुचि, वह जो स्वयं पञ्चयज्ञ करके दूसरेका दिया अन्न भोजन करके रहे।

मिताक्षरामें लिखा है, कि जो सबेरे उठ कर पञ्चयज्ञ समाप्त करके पराऽन्न द्वारा जीविकानिर्वाह करता है, उसे परपाकरत कहते हैं। परपाकरत और परपाकनिवृत्तका अन्न खानेसे चन्द्रायण करना होता है।

"परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च।

अपचस्य च भुक्त्वान्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥"

(मिताक्षरा)

परपाजा (हिं॰ पु॰) आजा या दादाका बाप, पितामह-का पिता, प्रपितामह।

परपार (हिं॰ पु॰) उस ओरका तट, दूसरी तरफका किनारा।

परपिण्डाद (सं॰ त्रि॰) परस्य पिण्डं अन्नादिकं अत्ति अद-अण्। पराऽन्नोपजीवो, पराऽन्नभोजो, दूसरेका अन्न खा कर जोनेवाला।

परपीड़क (सं॰ पु॰) १ दूसरेको पोड़ा या दुःख पहुंचाने-वाला। २ पराई पोड़ाको समझनेवाला।

परपुरञ्जय (सं॰ पु॰) शत्रु पुरजेता, शत्रुका देश जीतने-वाला।

परपुरुष (सं॰ पु॰) परः श्रेष्ठः पुरुषः। १ विष्णु। २ अन्यपुरुष। ३ उपनायक।

परपुष्ट (सं॰ पु॰) परेण कालेन पुष्टः पालितः। कोकिल, कोयल। कोयल अपने अंडेको घोंसलेसे निकाल कर कौवेके घोंसलेमें दे देती है। कौवा उसे अपना अंडा समझ कर पालता-पोसता है। इस प्रकार कौवेसे प्रति-पालित होनेके कारण कोयलको परपुष्ट कहते हैं।

परपुष्टमहोत्सव (सं॰ पु॰) परपुष्टानां कोकिलानां महो-त्सवो यत्र। आम्र, आमका पेड़।

परपुष्टा (सं॰ स्त्री॰) परेण परपुरुषेण पुष्टा पालिता। १ पराश्रया, वेश्या, रंडी। २ परगाछा, बाँदा।

परपूटा (हिं॰ वि॰) पक्क, पका।

परपूर्वा (सं॰ स्त्री॰) परोऽन्यः पूर्वोभर्त्ता यस्याः। वह स्त्री जो अपने पहले पतिको छोड़ दूसरा पति करे। क्षता और अक्षता दो प्रकारकी परपूर्वा कही गई हैं। नारदने इसके सात भेद बतलाये हैं—तीन प्रकारकी पुनर्भू और चार प्रकारकी स्वैरिणी।

परपोत्र (हिं॰ पु॰) प्रपौत्रका पुत्र, पोतेके बेटेका बेटा।

परपोरवतन्तव (सं॰ पु॰) विश्वामित्रके एक पुत्रका नाम।

परप्रणव—रुचिवधूगलरत्नमालाके प्रणेता।

परप्रातनप्त (सं॰ पु॰) प्रतिनप्तः परः अनन्तरः। वृद्ध-प्रपौत्र।

परप्रपौत्र (सं॰ पु॰) प्रपौत्रात् परः अनन्तरः, बाहुलकात् परनिपातः। वृद्धप्रपौत्र।

परप्रेष्य (सं॰ पु॰ स्त्री॰) परेषां प्रेष्य। १ दास। २ दासी।

परफुलित (हिं॰ पु॰) प्रफुल्ल देखो।

परबंद (हिं॰ पु॰) नाचको एक गत। इसमें दोनों पैर इस प्रकार खड़े रखते हैं, कि कमर पर दोनों कुहनियां सटी रहती हैं।

परब (हिं॰ पु॰) १ पर्व देखो। (स्त्री॰) २ किसी रत्न या जवाहिरका छोटा टकड़ा।

परबत्ता (हिं॰ पु॰) पहाड़ी तोता या सुग्गा। पहाड़ देखो

तोतेसे बड़ा होता है और इसके दोनों डैनों पर लाल दाग होते हैं, करमैल।

परवस (हिं० वि०) परवश देखो।

परवाल (हिं० पु०) आंखकी पलक पर वह फालतू निकला हुआ बाल या बिरनी जिसके कारण बहुत पीड़ा होती है।

परवी (हिं० स्त्री०) पर्वका दिन, उत्सवका दिन।

परवीन (हिं० वि०) प्रवीण देखो।

परवेस (हिं० पु०) प्रवेश देखो।

परबोध (हिं० पु०) प्रबोध देखो।

परबोधना (हिं० क्रि०) १ ज्ञानोपदेश करना २ जगाना। ३ प्रबोध देना, दिलासा देना, तसल्ली देना, समझाना।

परब्रह्मन् (सं० क्ली०) परं ब्रह्म। १ निर्गुण निरुपाधिक ब्रह्म। इसका विषय ब्रह्मन् शब्दमें देखो। २ तत्प्रतिपादक उपनिषद्वेद।

परभाग (सं० पु०) परस्य श्रेष्ठस्य भागः। १ गुणोत्कर्ष, अच्छापन। २ सुसम्पद्। ३ शेषांश, बचा हुआ भाग। ४ पश्चिम भाग। ५ दूसरी ओरका भाग।

परभाग्योपजीवी (सं० त्रि०) दूसरेकी कमाई खा कर रहनेवाला।

परभात (हिं० पु०) प्रभात देखो।

परभाती (हिं० स्त्री०) प्रभाती देखो।

परभाषा (सं० स्त्री०) संस्कृत भिन्न अन्य भाषा।

परभुक्त (सं० त्रि०) परेण भुक्तः। अपर कर्त्तृक भुक्त, दूसरेसे भोगा हुआ।

परभुक्ता (सं० स्त्री०) परेण परपुरुषेण भुक्ता। अन्य पुरुष-सम्भोगविशिष्टा, दूसरेसे भोगी हुई स्त्री। ब्रह्मवैवर्त्त-पुराणमें लिखा है, कि जो परभुक्ता स्त्रीका उपभोग करता है, वह जब तक सूर्य और चन्द्रमा पृथ्वी पर रहेंगे, तब तक नरकमें वास करता है। परभुक्ता स्त्री दैव, पैत्र आदि किसी कार्यमें पाक करनेकी योग्य नहीं है। भर्त्ता अन्यभुक्ताके आलिङ्गनसे हतश्री हो जाता है, उसके तपआदि सभी निष्फल होते हैं।

परभृत् (सं० पु०) परान् कोकिलान् बिभर्त्ति भृ-क्विप्, तुगागमः। १ काक, कौवा। (त्रि०) २ परजनपोषक, दूसरेको पालनेवाला।

"चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां।
नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन्॥"
(भागवत २।२।५)

परभृत (सं० पु०) परेण भृतः पुष्टः। १ कोकिल, कोयल। (त्रि०) २ अन्यपुष्टमात्र।

परभृत्य (सं० त्रि०) परस्य भृत्य। अन्यका सेवक, दूसरेकी सेवा करनेवाला।

परम् (सं० अव्य०) पृ-पूर्त्तौ अम्। १ नियोग। २ क्षेप। ३ पश्चात्। ४ किन्तु। ५ अधिक, ज्यादा।

परम (सं० अव्य०) अनुज्ञा, हाँ।

परम (सं० त्रि०) परं उत्कृष्टं मातीति मा-क (अतोऽनुपसर्गे कः। पा ३।२।३) १ पर, उत्कृष्ट, जो बढ़ चढ़ कर हो। २ प्रधान, मुख्य। ३ अत्यन्त, सबसे बढ़ा चढ़ा, हदसे ज्यादा। ४ आद्यः, आदिम। (पु०) ५ महादेव, शिव। ६ विष्णु।

परम—१ कौतुकलीलावतीके प्रणेता। २ यदुमणिके पुत्र और प्रयागके पौत्र। इन्होंने १५३५ ई०में राजा मुकुन्द सेनकी विजय घोषणा कर मुकुन्दविजय नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

परमक्रान्ति (सं० स्त्री०) सूर्यसिद्धान्तोक्त सूर्यकी शेष-क्रान्ति।

परमक्रोधिन् (सं० पु०) १ विश्वदेवभेद। (त्रि०) २ अत्यन्त क्रोधान्वित।

परमगति (सं० स्त्री०) परमा गतिः। १ मुक्ति, मोक्ष (त्रि०) २ मोक्षहेतु।

परमगव (सं० पु० स्त्री०) परमश्चासो गौश्चेति। श्रेष्ठ गाभि, सुन्दर गाय।

परमजा (सं० स्त्री०) प्रकृति।

परमज्या (सं० पु०) इन्द्र।

परमट (हिं० पु०) सङ्गीतमें एक ताल।

परमणि (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

परमतत्त्व (सं० पु०) १ मूलतत्त्व जिससे सम्पूर्ण विश्वका विकाश है, मूलसत्ता। २ ब्रह्म, ईश्वर।

परमद (सं० पु०) सुरापानजन्य रोगभेद, अत्यन्त मद्य पीनेसे होनेवाला एक रोग। इसमें शरीर भारी रहता है, मुंहका स्वाद बिगड़ा रहता है, प्यास अधिक लगती है, माथे और शरीरके जोड़ोंमें दर्द होता है।'

परमदेव—हिन्दुस्थानवासी एक प्रभावशाली राजा। गजनीपति महमूद सोमनाथको जीत कर जब स्वदेश लौट रहे थे, उस समय इन्होंने ससैन्य उन पर आक्रमण किया था।

परमदेवी (सं० स्त्री०) १ श्रेष्ठादेवी, महादेवी। २ महासामन्त और महाराजोंकी महिषीकी उपाधि।

परमधाम (सं० पु०) वैकुण्ठ।

परमन्यु (सं० पु०) कक्षेयुके पुत्रभेद।

परमपद (सं० पु० क्ली०) पद्यते ज्ञानिभिः प्राप्यते इति पदं, परमं पदं कर्मधा०। १ श्रेष्ठ स्थान। २ परमदेवताचरण।

परमपिता (सं० पु०) परमेश्वर।

परमपुरुष (सं० पु०) परमः श्रेष्ठः पुरुषः। पुरुषोत्तम, विष्णु।

परमपूतिक (सं० पु०) अहिफेन, अफीम।

परमफल (सं० पु०) १ सबसे उत्तम फल या परिणाम। २ मोक्ष, मुक्ति।

परमवक्कुड़ी—मन्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत रामनाद तालुकका एक नगर। यह अक्षा० ९° ३१´ उ० और देशा० ७८° ४२´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां कपड़े बुननेका एक बड़ा कारबार है।

परमवन्दीजन—एक हिन्दी-कवि। ये महोबेके रहनेवाले थे। इनका जन्म सं० १८७१में हुआ था। इन्होंने नखसिखवर्णन बनाया है जो उत्तम है।

परमब्रह्मचारिणी (सं० स्त्री०) दुर्गा।

परमब्राह्मण्य (सं० पु०) वह जो ब्रह्माकी पूजा करते हैं, ब्रह्माके उपासक।

परमभट्टारक—सर्वश्रेष्ठ मान्यके पात्र, महाराजाधिराज, एक छत्रराजाओंकी उपाधिभेद।

परमभट्टारिका—राजमहिषियोंकी सम्मानसूचक उपाधि।

परमभागवत—भगवान् विष्णुकी उपासना करनेवाले, वैष्णवोंकी साम्प्रदायिक उपाधि। धर्मप्राण प्राचीन हिन्दू राजगण और प्रधान वैष्णवाचार्यगण इस प्रकारकी सम्मानसूचक उपाधि पाते थे।

परममहत् (सं० क्लि०) परमं सर्वोत्कृष्टं महत्। सबसे बड़ा और व्यापक। काल, आत्मा, आकाश और दिक् ये सर्वगत होनेके कारण परममहत् कहलाते हैं।

मैत्री प्रभृति भावना द्वारा जब चित्त निर्मल होता है, तब एकाग्रता अभ्यास सिद्ध होता है। उस समय चित्त क्या परमाणु क्या परममहत् सब जगह स्थिर हो जाता है। सूक्ष्मतम परमाणुसे ले कर वृहत्तम पर्यन्त सभी वस्तुएं उसके ग्राह्य, प्रकाश्य और वश्य हो जाती हैं।

परममाहेश्वर—महेश्वरकी उपासना करनेवाले, शैवोंकी साम्प्रदायिक उपाधि।

परमरस (सं० पु०) जलमिश्रित तक्र, पानी मिला हुआ मट्ठा।

परमर्दिदेव (परमाल)—१ बुन्देलखण्डके अन्तर्गत महोबा प्रदेशके एक राजा। ये चन्देलवंशीय राजपूत थे। जब समर-राजकन्याको हरण कर दिल्लीश्वर पृथ्वीराज भागे जा रहे थे, उस समय जिन्होंने पृथ्वीराजको सहायता की थी, उन्हें परमालने यमपुर भेज दिया। यहीं ले कर दोनोंमें घनघोर युद्ध छिड़ा। शिरस्वा नामक स्थानमें पृथ्वीराजने परमाल पर आक्रमण किया। युद्धमें चन्देलराजकी अनेक सेना मारी गई और अन्तमें लाचार हो कर उन्हें दिल्लीश्वरको शरण लेनी पड़ी।

विशेष विवरण चन्द्रात्रेयवंश शब्दमें देखो।

परमर्षि (सं० पु०) परमश्चासौ ऋषिश्चेति। १ वेदव्यासादि ऋषि।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि विद्या, सत्य, तपस्या और वेद ये सब जिनमें हैं उन्हें ऋषि और जो ऋषिकी अपेक्षा समधिक ज्ञानशाली हैं उन्हें परमर्षि कहते हैं। २ भेलादिऋषिविशेष। (त्रिकाण्ड० २।७।१६)

परमल (हिं० पु०) १ ज्वार या गेहूंका एक प्रकारका भुना हुआ दाना या चबेना। परिमल देखो।

परमल्ल—एक कवि, शङ्करके पुत्र। इन्होंने श्रीपालकथा नामक एक जैनग्रन्थकी रचना की।

परमवैष्णव—विष्णुके प्रधान उपासक। ताम्रशासनोलिखित प्राचीन हिन्दू राजाओंको इसी प्रकारकी उपाधि देखी जाती है।

परमशिवाचार्य—सिद्धान्तभूति-प्रकाशिका नामक ग्रन्थप्रणेता।

परमशिवेन्द्रसरस्वती—एक विख्यात पण्डित, अभिनवनारायणेन्द्र-सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने वेदसारसहस्रनामव्याख्या और शिवसहस्रनामभाष्य नामक दो ग्रन्थोंकी रचना की।

परमसुख—एक विख्यात ज्योतिर्विद, सीताराम के पुत्र। इनके बनाए हुए ग्रन्थ ये सब पाये जाते हैं—गर्गमनोरमाटीका, पञ्चस्वरानिर्णय, पराशरटीका, बालबोधिनी नामक ज्योतिषरत्नमालाटीका, बीजविवृत्तिकल्पलता, मुहूर्त्तगणपतिटीका, यन्त्रमालिकाटीका, रमलनवरत्न, रमलामृत और शम्भुहोराप्रकाशिका।

परमसौगत—सुगत अर्थात् बुद्धके उपासक। प्राचीन बौद्धधर्मावलम्बी भारतीय राजाओंमें भी यह उपाधि देखी जाती थी।

परमस्वामी—सर्वश्रेष्ठ राजा, राजचक्रवर्त्ती।

परमहंस (सं० पु०) परमः श्रेष्ठः हंस, सोऽहं आत्मा यस्य। संन्यासिविशेष, संन्यासियोंका एक भेद। परमहंस-उपनिषद्‌के मतसे, जो ब्रह्म वेदान्तादिमें पूर्णानन्द परमात्मा कह कर निरूपित हुए हैं, मैं ही वह ब्रह्म हूं; ऐसे अनुभवकारी योगी परमहंस हो सकते हैं।

जीव और ब्रह्मके एकत्वज्ञानके कारण उनमें भेदबुद्धि नहीं रहती। यही एकत्वबुद्धि दोनों आत्माकी सन्धिसे उत्पन्न होती है, इस कारण सन्ध्या है। वह सन्ध्या रात्रि और दिनके सन्धिभागमें अनुष्ठीयमान क्रियाकी तरह है। सभी काम छोड़ कर अद्वैतब्रह्ममें ही परमस्थिति है। जो ज्ञानदण्डधारण करते हैं, उन्हींको एकदण्ड कहते हैं। फिर जिसके ज्ञान नहीं है, सभी वस्तुओंमें आस्था है, वह काष्ठदण्डधारी महारौरव नामक घोर नरकमें पतित होता है। जो इनका अन्तर जान कर अर्थात् ज्ञानदण्ड और काष्ठदण्डका भेद समझ कर उत्तम ज्ञानदण्ड धारण करते हैं वे ही परमहंस कहलाते हैं।

इनका लक्षण।—जो निर्द्वन्द्व, निराग्रह, सर्वदा तत्त्वमार्गमें सम्यक् सम्पन्न और शुद्धचित्त हैं, जो केवलमात्र यथासमय प्राणधारणोपयोगी भिक्षावृत्ति द्वारा जीविका चलाते हैं, लाभालाभमें जिनका समानज्ञान है, जो शून्यागार, देवगृह, तृणकूट, वल्मीक, वृक्षमूल, कुलालशाला, अग्निहोत्र, नदीपुलिन, गिरिकुहर और कन्दरादिमें अवस्थान करते हैं, जिनके किसी प्रकारका यत्न नहीं है, जो निर्मम, शुक्लध्यानपरायण, अध्यात्मनिष्ठ हैं तथा जो शुभाशुभ कर्मोंको निर्मूल करनेके लिये संन्यास द्वारा देहत्याग करते हैं, उन्हींको परमहंस कहते हैं। जो दिग्वस्त्र हैं, जिन्हें किसीको भी नमस्कार करना नहीं पड़ता, जिनके लिये श्राद्धादि पितृकार्य भी अनावश्यक है और जिनके निकट निन्दा तथा स्तुति स्थान नहीं पाती, ऐसे निश्चेष्ट भिक्षु ही परमहंस कहलाते हैं। जिन्हें दुःखमें उद्वेग और सुखमें अभिलाष नहीं है, राग अर्थात् रञ्जन हेतुमें जिनका त्याग है और जिनके निकट इन्द्रियग्राम प्रसर नहीं पाता, जो किसीसे भी द्वेष नहीं करते और न प्रीतिकर वस्तु देख कर प्रसन्न ही होते हैं, जो सर्वदा आत्मामें ही अवस्थान करते हैं, वे ही योगी हैं। कुटीचर, बहूदक, हंस और परमहंस इन चार प्रकारके अवधूतोंमें परमहंस श्रेष्ठ हैं।

> "चतुर्णामवधूतानां तुरीयो हंस उच्यते।
> त्रयोऽन्ये भोगयोगाढ्या मुक्ताः सर्वे शिवोपमाः॥"
>
> (महानिर्वाण)

परमहंस होनेमें पहले यज्ञोपवीत प्रभृति चिह्न छोड़ कर कौपीनादि धारण करने होते हैं। सूतसंहितामें लिखा है—परमहंसको त्रिदण्ड, गोवालमिश्रित रज्जु, जलपवित्र शिक्य, पवित्र कमण्डलु, अजिन, सूची, सूत्रखनित्री, कृपाणिका, शिखा और यज्ञोपवीत आदि छोड़ देना चाहिये, केवल कौपीन, आच्छादन वस्त्र, शीतनिवारिका, कन्था, योगपट्ट, बहिर्वस्त्र, पादुका, छत्र, अक्षमाला और छिद्रादिहीन वैणवदण्ड धारण करना चाहिये।

निर्णयसिन्धुमें लिखा है—परमहंसोंके मध्य जो अविद्वान् हैं उन्हें एकदण्ड धारण करना चाहिये। विद्वान् परमहंसको दण्डादि कुछ भी धारण करना नहीं पड़ता।

सूतसंहितामें लिखा है कि परमहंसको सर्वदा प्रणवमन्त्रका जप करना चाहिये। क्योंकि प्रणवमें तीनों वेद पर्यवसित हुए हैं। इन्हें निर्जन स्थानमें समाहितचित्तसे यथाशक्ति समाधिका अवलम्बन करना चाहिये

परमहंसोंको 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्यका अवलम्बन कर सर्वदा आत्मज्ञानका अनुशीलन करना उचित है। 'सोऽहं शिवोऽहं' इत्यादि वाक्य कह कर इन्हें तत्त्वज्ञानावलम्बनका परिचय देना चाहिये।

उक्त चार प्रकारके उपासकोंकी अन्त्येष्टिक्रिया भी एक-सी नहीं है। निर्णयसिन्धुमें परमहंसके विषयमें जो लिखा है, वह इस प्रकार है—

परमहंसोंका देहावसान होने पर उनका शरीर न जला कर जमीनमें गाड़ देना चाहिये। किन्तु वायुसंहिताके मतसे परमहंस भिन्न अन्य तीन प्रकारके संन्यासीको पहले जमीनमें गाड़ कर, पीछे दाह करना चाहिये। केवल परमहंसको मृतदेहको जमीनमें गाड़ सकते हैं। उनको मृत्युमें अशौच नहीं होता और न जलक्रिया ही होता है।

साधारणतः परमहंस संन्यासी ही हम लोगोंके नयनगोचर होते हैं, शेष तीन प्रकारके संन्यासी बहुत कम नजर आते हैं। प्रधानतः परमहंस दो प्रकारका है, दण्डी और अवधूत। जिन्होंने दण्डका त्याग कर परमहंसाश्रम अवलम्बन किया है, वे दण्डिपरमहंस और जो अवधूत-वृत्तिका अनुष्ठान कर शेषमें परमहंस हो गये हैं, वे अवधूत-परमहंस कहलाते हैं। यही दो प्रकारके परमहंस केवल प्रणवकी उपासना किया करते हैं। साधुओंका कहना है, कि परमहंसोंका ज्ञान ही एकमात्र दण्ड है। यद्यपि ये लोग ओंकारके उपासक और तत्त्वज्ञानके अवलम्बी हैं, तो भी प्रयोजन पड़ने पर कोई कोई देवप्रतिमूर्त्तिकी अर्चना करते हैं, किन्तु उन्हें नमस्कार नहीं करते। इनके मध्य भी कोई कोई सुरापान किया करते हैं। भक्तावधूत दो प्रकारका है, पूर्ण और अपूर्ण। पूर्णभक्तावधूतको परमहंस और अपूर्णको परिव्राजक कहते हैं।

महानिर्वाणतन्त्रके अष्टमोल्लासमें लिखा है—

'तत्त्वमसि महाप्राज्ञ हंसः सोऽहं विभावय।
निष्कामो निरहङ्कारः स्वभावेन सुखं चर॥"

शिष्य इस प्रकार महामन्त्र ग्रहण कर अपनेको आत्मस्वरूप समझे। तन्त्रके मध्य उल्लिखित ब्रह्ममन्त्र उपदेश देनेकी व्यवस्था है। किन्तु संन्यासी लोग सचराचर इस प्रकार अर्थ-प्रतिपादक निम्नलिखित सच्चिदानन्दका मन्त्र ग्रहण किया करते हैं।

"ओम् सोऽहं हंसः परमहंसः परमात्मा देवता।
चिन्मयं सच्चिदानन्दस्वरूपं सोऽहं ब्रह्म॥"

ओं! मैं वही हंस, परमहंस, परमात्मादेवता हूं, मैं वही ज्ञानमय सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म हूं।

इस मन्त्रको एक गायत्री भी है जिसका अभ्यास कर जप करना होता है। वह गायत्री यों है—"ओं हंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।" ओं! जिससे हंसमें* ज्ञान हो, परमहंसकी चिन्ता करें, वही हम लोगोंको प्रदान कीजिये।

जावालोपनिषद्‌में संवर्त्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, दुर्वासा, ऋभु, निदाघ, जड़भरत, दत्तात्रेय और रैवतक आदि परमहंस नामसे वर्णित हुए हैं। ये लोग अव्यक्तलिङ्ग, अव्यक्ताचारी और उन्मत्त नहीं होते हुए भी उन्मत्तवत् आचरण करते हैं। (जावालउ० ६) परमहंसका विस्तृत विवरण हंसोपनिषत्, जावालोपनिषत्, सूतसंहिता, नारदपञ्चरात्र, परमहंससंहिता, निर्णयसिन्धु आदि ग्रन्थोंमें लिखा है।

२ परमात्मा। ३ तत्प्रतिपादक उपनिषद्भेद।

परमा (सं० स्त्री०) चव्य, चई।

परमा (हिं० स्त्री०) शोभा, छवि, खूबसूरती।

परमाख्य (सं० त्रि०) परमा आख्या यस्य। परमार्य।

परमाटा (हिं० पु०) १ संगीतमें एक ताल। २ एक प्रकारका चिकना, चमकीला और दबीज कपड़ा। परमाटा आष्ट्रेलियामें एक स्थान है। प्राचीनकालमें वहांसे जिस ऊनकी रफ्तनी होती थी उससे एक प्रकारका कपड़ा बनता था। उस कपड़ेका ताना सूतका और बाना ऊनका होता था। उसीको परमाटा कहते थे। लेकिन अब परमाटा सूतका ही बनता है।

परमाणु (सं० पु०) परमः सर्वचरमकः अणुः। सर्वोपकृष्ट परिमाणयुक्त वैशेषिकमतसिद्ध क्षिति, जल, तेज और वायुका सूक्ष्मांशभेद, पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतोंका वह छोटेसे छोटा भाग जिसके फिर विभाग

* हंस शब्दका अर्थ शिव, सूर्य, विष्णु, परमात्मा इत्यादि है। इन सब मन्त्रोंमें हंस ब्रह्मप्रतिपादक है।

नहीं हो सकते। यह परमाणु नित्य और निरवयव है। परमाणुसे सूक्ष्म और कोई पदार्थ हो नहीं है।

"नित्यानित्या च सा द्वेधा नित्या स्यादणुलक्षणा।
अनित्या तु तदन्या स्यात् सैवावयवयोगिनी॥"
(भाषापरि०)

परमाणु नित्य और अनित्य है। इनमेंसे अनुलक्षणा नित्या और सभी अनित्या हैं। यह अवयवयोगिनी है। गवाक्षमार्ग हो कर सूर्यकिरण पड़नेसे उसमें जो छोटे छोटे रजःकण देखनेमें आते हैं, उसके छठे भागका नाम परमाणु है।

"जालान्तर ते भानौ यत् सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
भागस्तस्य च षष्ठो यः परमाणुः स उच्यते॥"
(तर्कामृत)

भाग करते करते जिसका फिर विभाग नहीं हो सकता, वही परमाणु है। परमाणु प्रत्यक्ष नहीं होता, परमाणुद्वय संयुक्त हो कर द्व्यणुक और त्रसरेणु होनेसे तब प्रत्यक्ष होता है। सावयव द्रव्यके अवयवोंका विभाग करते करते जहां विभागका शेष होगा, जिसका फिर विभाग नहीं किया जायगा अथवा जो फिर विभक्त नहीं हो सकता, उसका नाम परमाणु है। यह परमाणु चार प्रकारका है—भौम, जलीय, तैजस और वायवीय। जब जगत् सृष्ट होता है, तब प्रथमतः अदृष्ट कारणोंसे वायवीय परमाणुमें क्रिया उत्पन्न होती है, वह क्रिया वायवीय परमाणुको परस्पर संयुक्त करती है। इस प्रकार संयुक्त होनेसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है। क्रमशः त्र्यणुक, चतुरणुक इस प्रकार वायुकी उत्पत्ति हुआ करती है। इसी प्रणालीसे क्रमशः अग्नि, जल और पृथ्वी आदिकी सृष्टि होती है। प्रलयकालमें इस प्रकार परमाणुके विभक्त होनेसे हो सभी भूतोंका नाश होता है, केवल परमाणु-मात्र रह जाता है। ऐसी अवस्थाको प्रलय कहते हैं। परमाणु परिमाणका कारणत्व नहीं है।

वैशेषिक-दर्शनमें जो परमाणु नामसे व्यवहृत होता है, सांख्यदर्शनके मतमें वह तन्मात्रके जैसा अनुमित होता है। यह तन्मात्र वा परमाणु स्थूल भूतपञ्चक और भौतिक-जगत्का उपादान-कारण है। सांख्यका तन्मात्र शब्द यौगिक है, तत्+मात्र अर्थात् केवल या वही। नैयायिक लोग जिस प्रकार पार्थिव परमाणुका जातीय परमाणु और तैजस परमाणुका विशेष विशेष नामोंसे व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार सांख्याचार्य भी गन्ध-तन्मात्र रसतन्मात्र आदि विशेष विशेष नामोंको काममें लाते हैं। तन्मात्र शब्दको तरह परमाणु शब्द यौगिक है, परम+अणु अर्थात् अति सूक्ष्म। परिमाणु तीन प्रकारका है, अणु, मध्यम और महत्। इसका प्रथम क्षुद्रतावोधक और तृतीय वृहत्त्ववोधक है प्रथम परिणाम और महत् परिणाम यदि यतुपरोनास्ति हो उठे, तो उसे जाननेके लिये उस अणु और महत् शब्दके पहले एक परम शब्द-का प्रयोग होता है। इसीसे यतुपरोनास्ति सूक्ष्म वस्तुका नाम परमाणु है, इसी प्रकार वृहत् परिमाणका नाम परमवृहत् है। परमाणुका दूसरा नाम है परिमण्डल और मूलधातु। शास्त्रान्तरमें यह सूक्ष्मभूत नामसे परिभाषित हुआ है।

परमाणु और तन्मात्र यही दो अनुमेय पदार्थ हैं, परमाणुका अनुमान इस प्रकार है—स्थूल वस्तुमात्र ही विभाज्य है। जो विभाज्य है, उसका अंश हुआ करता है। वस्तु विभक्त होनेसे उसे पृथक् पृथक् अंशोंमें व्यवस्थित होते देखा जाता है। यह भी देखा जाता है, कि प्रत्येक विभक्त अंश प्रत्येक विभाज्यको अपेक्षा सूक्ष्माकार धारण करता है, इस प्रकार जहां सूक्ष्मताका शेष होगा, वह अविभाज्य और अवयवशून्य वस्तु हो परमाणु है।

नैयायिकोंके मतसे—आकाश जिस प्रकार असीम और अनन्त है, परमाणु भी उसी प्रकार अगणनीय, असीम और अनन्त है। महाप्रलयमें ग्रह, नक्षत्र, तारका, सागर, शैल आदि समस्त विश्व विध्वस्त होने पर उनके परमाणु आकाशगर्भमें निहित वा छिपे रहते हैं। वैशेषिक दर्शनके मतसे परमाणुसे जगत् उत्पन्न हुआ है। कणाद सृष्टिप्रक्रियाको जगह कहते हैं, कि सभी परमाणु प्रलयावस्थामें निश्चल रहते हैं। जब सृष्टिका आरम्भ होता है, तब वे सब परमाणु जीवात्माके प्रभावसे सचल हो जाते हैं। वे ज्यों ही सचल होते हैं, त्यों ही संयुक्त होने लगते हैं। पीछे द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि रूपोंमें समुदय-

जड़जगत् उत्पन्न होता है। इस मतसे गिरि, नदी, समुद्रादिविशिष्ट ये सभी विश्वब्रह्माण्ड सावयव हैं। जिस हेतु सावयव है उसी हेतु इसका आद्यन्त हैं, उत्पत्ति और प्रलय दोनों हो हैं। कार्यमात्र हो सकारण है, बिना कारणके कोई कार्य नहीं होता, परमाणुराशि हो जगत्‌का कारण है। कणादका कहना है, कि क्षिति, जल, तेज और वायु ये चार भूत सावयव हैं। सुतरां परमाणु भी चार प्रकारका है। जिस कालमें यह पृथिव्यादि चरम विभागमें विभक्त होती हैं अर्थात् परमाणु हो जाता हैं, उसी कालका नाम प्रलय है। प्रलयकालमें चरम अवयव अनन्त परमाणु ही रहता है, उस समय फिर अवयवी नहीं रहता। सृष्टिकालमें इसी परमाणुसे जगत्‌की उत्पत्ति होती हैं। जिस समय दो परमाणुसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है, उसी समय परमाणुनिष्ठ रूपादि गुणविशेष जो शुक्लादि नामसे प्रसिद्ध है, वह अन्य शुक्लादि गुणविशेष उत्पन्न करता है। केवल परमाणुनिष्ठ अन्य गुण है—पारिमाण्डिल्य (परिमण्डल—परमाणु) परमाणुका परिमाण है। द्व्यणुकमें अन्य पारिमाण्डल्य नहीं उत्पन्न होता। द्व्यणुकका परिमाण अणु और ह्रस्व है। द्व्यणुकादि क्रमसे स्थूल भूतोत्पत्ति होती हैं। (वैशेषिकद०)

वेदान्तदर्शनमें परमाणु-कारण-वाद निराकृत हुआ हैं। भगवान् शङ्कराचार्य परमाणुसे जगत्‌की सृष्टि हुई है, यह स्वीकार नहीं करते। उन्होंने कणादके इस मतको भ्रान्त साबित किया है। यहां पर बहुत संक्षेपमें इस विषयकी आलोचना की जाती है। भगवान् शङ्कराचार्यका कहना है, कि परमाणु राशि या तो प्रवृत्तिस्वभाव है या निवृत्तिस्वभाव, या उभयस्वभाव अथवा अनुभयस्वभाव अर्थात् नित्यस्वभाव। वैशेषिकको इन चार प्रकारमेंसे एक प्रकार अवश्य ही स्वीकार करना होगा, किन्तु इन चार प्रकारोंमेंसे किसी भी प्रकारका उत्पन्न नहीं होता। प्रवृत्तिस्वभाव होनेसे प्रलय हो ही नहीं सकता और फिर निवृत्ति-स्वभाव होनसे सृष्टि भी नहीं हो सकती। एकाधार पर प्रवृत्ति और निवृत्ति ये दोनों रह नहीं सकतीं। निःस्वभाव होनेसे नैमित्तिक-प्रवृत्ति निवृत्ति तो हो सकती है, पर तन्मतके निमित्त सभी हैं अर्थात् काल, अदृष्ट और ईश्वरेच्छा, नित्य तथा नियत सन्निहित हैं। सुतरां उस पक्षमें भी नित्य-प्रवृत्ति और नित्य निवृत्तिकी आवृत्ति हो सकती है। अदृष्टादि कारण-निचयको अस्वतन्त्र अथवा अनित्य कहनेसे भी नित्य अप्रवृत्तिकी आपत्ति होती है। अतएव परमाणु कारणवाद सर्वदा अयुक्त है। सावयव द्रव्यका शेष विभाग ही परमाणु है। वैशेषिकोंकी यह कल्पना नितान्त अयुक्त है, क्योंकि उनका कहना है, कि रूपादिमान् परमाणु नित्य हैं और वे ही भूतभौतिक पदार्थके आरम्भक हैं। रूपादि कहनेसे ही परमाणुमें अणुत्व और नित्यत्व इन दोनोंका वैपरीत्य पाया जाता है अर्थात् वैशेषिकके परमाणु परम कारणापेक्षा स्थूल और अनित्य यही उपलब्ध होता है, किन्तु वह उनके अभिप्रायके विपरीत है। रूपादि रहनेसे उसमें जो स्थूलत्व और अनित्यत्व रहता है वह लोगोंमें दृष्ट होता है। यह सब जगह देखा जाता है, कि रूपादिमद्वस्तु सभी-सकारणापेक्षा स्थूल और अनित्य हैं। वैशेषिकोक्त परमाणु भी रूपादिमान् है। जिस हेतु रूपादिमान् है उसी हेतु उसका कारण (मूल) है और परमाणु उस कारणकी अपेक्षा स्थूल तथा नित्य है, यह सहजमें प्रतीत होता है। वैशेषिककारने जो अणुके नित्यतासाधनके लिये 'अविद्या च' यह सूत्र कहा है, वह उनके मतसे अणु-नित्यताका तृतीय कारण है। यदि अणुनित्यतासाधक उक्त अविद्याशब्दकी ऐसी व्याख्या सम्मत हो कि दृश्यमान् स्थूलकार्य (जन्यद्रव्य)का मूलकारण प्रत्यक्षके द्वारा गृहीत नहीं होता अर्थात् वह अप्रत्यक्ष है, तो उसी कारण उसका नाम अविद्या है। वह अविद्या अणु-नित्यताका अन्यतम हेतु है। 'अविद्या च' इस सूत्रका अर्थ कथित प्रकार होनेसे द्व्यणुक और नित्य हो सकता है। "अविद्या परमाणुनिचयकी नित्यता स्थापन करनेमें समर्थ है" ऐसी व्याख्या करनेसे भी निश्चितरूपमें अणु नित्यसिद्ध नहीं होगा। कारण यह है, कि विनश्वर वस्तु उन्हीं दो कारणोंसे नष्ट होती है। अन्य प्रकारसे नष्ट नहीं होती, ऐसा कोई नियम ही नहीं है। यदि आरम्भ शब्दके बहु अवयव संयुक्त हो कर द्रव्यान्तर उत्पन्न करता है, ऐसा अर्थ हो, तो उस नियमसे विनाशकी सिद्धि तो हो सकती है, पर विशेषवर्जित

सामान्यात्मक कारणकी विशेष अवस्था उपस्थित होनेको आरम्भ कहा जाय, तो इतरकाठिन्यविनाश-का दृष्टान्त घनीभूत अवस्थाके विनाशसे भी विनाश-का होना सङ्गत नहीं हो सकता। अतएव परमाणुके सम्बन्धमें वैशेषिकका जो गूढ़ अभिप्राय था, वह अभिप्राय रूपादि स्वीकार करनेसे ही विपर्यस्त हुआ है। इसीसे परमाणु कारणवाद अयुक्त है; अर्थात् परमाणु ही जो परम कारण है, सो नहीं। मन्वादि ऋषियोंने प्रधान कारणवादके किसी किसी अंशको वैदिक और सत्कार्यतादि अंशको उपजीवनार्थ माना है। किन्तु परमाणु कारण शब्दका कोई भी अंश किसी भी ऋषिसे गृहीत नहीं हुआ है। इस कारण वेदवादीके निकट परमाणुवाद अत्यन्त आदरणीय है।

वेदान्तदर्शन, वैशेषिकदर्शन और अणु शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

परमाणुवाद (सं० पु०) न्याय और वैशेषिकका यह सिद्धान्त कि परमाणुओंसे जगत्‌की सृष्टि हुई है।

परमाणु देखो।

परमाणुवादी (सं० पु०) परमाणुओंके योगसे सृष्टिकी उत्पत्ति माननेवाला।

परमाण्वङ्क (सं० पु०) परमाणुरङ्कं यस्य, ततः कप्। ईश्वर, विष्णु। परमाणु द्वारा जगत्‌की सृष्टि होती है, इसीसे परमाणु ईश्वरका अंश माना गया है।

परमात्मक (सं० त्रि०) परमात्मन् स्वार्थे-कन्। परमात्मा-स्वरूप।

परमात्मन् (सं० पु०) परमः केवल आत्मा। परब्रह्म, ईश्वर। पर्याय—आपोज्योति, चिदात्मा।

"परमात्मा परंब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः।
कारणं कारणानाञ्च श्रीकृष्णो भगवान् स्वयं॥"
(ब्रह्मवै० प्रकृ० २३ अ०)

परमात्मा-विषयमें दर्शनसम हमें मतभेद देखा जाता है। उपनिषद् और दर्शनसमूहमें यह जिस भावसे आलोचित हुआ है, वही यहां पर संक्षेपमें लिखा जाता है।

परमात्माका विषय कहनेमें पहले आत्माके विषयकी पर्यालोचना करना आवश्यक है।

उपनिषदादि प्राचीन ग्रन्थोंमें केवलमात्र 'आत्मा' शब्द द्वारा ही विभिन्न आत्माका विषय वर्णित हुआ है।

दार्शनिक लोग प्रधानतः जीवात्मा और परमात्मा यह दो आत्माको स्वीकार करते हैं। कई जगह वैदान्तिकों-ने केवल 'आत्मा' शब्द द्वारा परमात्माको ही समझानेकी चेष्टा की है। परमात्मा ही वैदान्तिकोंके परब्रह्म हैं।

जीवात्माको जाने बिना परमात्माका स्वरूप जानना कठिन है। इस कारण पहले जीवात्माका स्वरूप ही लिखा जाता है।

सदानन्द योगीन्द्रने वेदान्तसारमें लिखा है, 'कौन कौन व्यक्ति किस किस वस्तुको जीवात्मा मानते हैं यह कहते हैं—

मूढ़ व्यक्ति श्रुतिका प्रमाण दिखा कर कहते हैं, "आत्मा ही पुत्र हो कर जन्म लेती है, अपनेमें जैसी प्रीति है, पुत्रमें भी वैसी प्रीति होती है।" फिर उनका कहना है कि पुत्रकी पुष्टि होनेसे हमारी पुष्टि होगी अथवा पुत्रके नष्ट होनेसे हम भी नष्ट होंगे। इस प्रकार 'पुत्र ही आत्मा है' ऐसा वे कहते हैं।

कोई कोई चार्वाक 'अन्नरसका विकार पुरुष ही आत्मा है' इस श्रुतिका प्रमाण दे कर स्थूलशरीर-को ही जीवात्मा मानते हैं। उनका कहना है, कि पुत्रको फैंक देने पर भी वह प्रदीप्त गृहसे आते देखा जाता है। किन्तु सभी यह समझते हैं कि 'मैं स्थूल हूं मैं कृश हूं' इत्यादि। फिर किसी चार्वाकका कहना है, 'मैं अन्ध हूं', मैं बधिर हूं', इत्यादि सभी समझते हैं।' फिर इन्द्रियोंके अभावमें शरीर अचल हो जाता है। इस-के सिवा 'वे सब इन्द्रियां प्रजापतिके निकट गई थीं' इत्यादि श्रुतिप्रमाण भी है। इस युक्तिके बलसे इन्द्रिय-गण ही आत्मा हैं।'

फिर कोई चार्वाक 'शरीरादिसे भिन्न प्राणमय अन्त-रात्मा है' इस श्रुतिप्रमाण द्वारा और 'प्राणके अभावमें इन्द्रियोंकी क्रियाका अभाव होता है' इस युक्ति द्वारा प्राणको ही आत्मा कहते हैं।

कोई चार्वाक मनको ही आत्मा बतलाते हैं। वे यह श्रुतिप्रमाण देते हैं, "शरीर इन्द्रिय और प्राणसे भिन्न मनोमय अन्तरात्मा है।" इसके सिवा यह भी युक्ति देते हैं, कि मनके सुप्त (निस्तब्ध) होने पर प्राणादिका भी अभा-

होता है। वे लोग, 'मैं सङ्कल्पविशिष्ट हूं', मैं विकल्प विशिष्ट हूं' इत्यादि, ऐसा समझते हैं।

बौद्ध लोग विज्ञान वा बुद्धिको हो आत्मा मानते हैं। उनकी युक्ति यों हैं 'कर्त्ताके अभावसे करणका अभाव होता है', इत्यादि।

प्रभाकर-मतावलम्बी मीमांसकों और नैयायिकोंका कहना है, 'शरीरादिसे भिन्न आनन्दमय अन्तरात्मा है' इस श्रुतिप्रमाण द्वारा और 'सुषुप्तिकालमें अज्ञानतावश बुद्धिका भी लय होता है' और 'मैं अज्ञ हूं, मैं ज्ञानी हूं' इत्यादि अनुभव द्वारा अभाव ही आत्मा है।

फिर चार्वाकोंमेंसे कोई स्थूल शरीरको, कोई इन्द्रिय-गणको, कोई प्राणको, कोई 'मैं अज्ञ हूं, मैं ज्ञानी हूं' इत्यादि अनुभव द्वारा अज्ञानको हो आत्मा कहते हैं।

कुमारिल-मतावलम्बी मीमांसकोंके मतसे अज्ञान द्वारा उपहित चैतन्य ही आत्मा है। वे श्रुतिप्रमाण इस प्रकार देते हैं, 'प्रज्ञान घनस्वरूप आनन्दमय ही आत्मा है।' उनकी युक्ति यों है, 'सुषुप्तिकालमें जब सभी लीन हो जाते हैं, तब अज्ञानोपहित चैतन्यका प्रकाश होता है।'

किसी किसी बौद्धके मतसे शून्य हो आत्मा है। वे यह श्रुतिप्रमाण देते हैं 'यह जगत् पहले असत् था' और युक्ति इस प्रकार देते हैं 'सुषुप्तिकालमें सबोंका अभाव होता है।' उनका अनुभव है कि 'सुषुप्तिकालमें मेरा अभाव हुआ था, सुषुप्तिसे उत्थित व्यक्तिमात्रको हो इस प्रकार उप-लब्धि हुआ करती है।'

इस प्रकार विभिन्न मतावलम्बियोंका निर्दिष्ट पुत्र वा इन्द्रिय वा प्राण अथवा मन, बुद्धि, अज्ञान वा अज्ञान द्वारा उपहित चैतन्य अथवा शून्यता, इनमेंसे कोई भी जीवात्मा नहीं है। वैदान्तिकके मतमें पुत्रादिसे ले कर शून्य तक सबोंके जो प्रकाशक नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त और सत्यस्वरूप प्रत्यक् चैतन्य हैं, वही जो जीवात्मा है।

नास्तिकोंका कहना है, कि स्थूल शरीर ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी आत्मा नहीं है। लेकिन यह अनात्मवाद अतिशय भ्रान्त है। सभी दर्शनों में अनात्मवाद निन्दित और खण्डित हुआ है। अवैदा-न्तिकगण पूर्वोक्तरूपसे आत्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते।

रामानुज-दर्शनके मतसे चित् और ईश्वरको क्रमशः जीवात्मा और परमात्मा माना है। इस मतमें 'चित्' जीव-वाच्य, भोक्ता, अपरिच्छिन्न, निर्मल, ज्ञानस्वरूप, नित्य और अनादि कर्मरूप अविद्यावेष्टित, भगवदाराधना और तत्-पदप्राप्त्यादि जीवका स्वभाव है। ईश्वर जगत्स्रष्टा, अन्त-र्यामी और अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य और वीर्यादिगुण-शाली हैं। परमात्माके साथ जीवका भेद, अभेद और भेदाभेद यही तीन हैं। 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' इत्यादि श्रुतिसे जीवात्मा और परमात्माके शरीरात्मभावमें किसी किसीने अभेद बतलाया है, फलतः इसके द्वारा अभेद प्रतीत नहीं होता। जो जीवात्मा और परमात्माको एक मानते हैं, वे नितान्त मूढ़ हैं। श्रुतिमें जहां ईश्वरको निर्गुण बतलाया है, उसका तात्पर्य यह कि वे प्राकृत जनकी तरह रागद्वेषादि गुणसम्पन्न नहीं हैं। रामानुज-ने शारीरक सूत्रका ऐसा मत संस्थापन कर संक्षिप्तभाव-में एक भाष्यका प्रणयन किया है।

पूर्णप्रज्ञदर्शनके मतसे—जीवात्मा और परमात्मा ये दो हैं।

नकुलीशपाशुपतदर्शनके मतसे—परमकारुणिक महा-देव ही परमेश्वर हैं और जीव पशु कह कर अभिहित हुए हैं। यही परमेश्वर परमात्मा और जीव जीवात्मा पदवाच्य है।

शैवदर्शनके मतसे शिव ही परमेश्वर वा परमात्मा है और जीवगण पशु। यही पशु जीवात्मा पदवाच्य है। नकुलीशपाशुपतदर्शनावलम्बी परमात्माके कर्मादिको निरपेक्ष कर्तृत्व नहीं मानते। उनका कहना है, कि जीवगण जैसा कर्म करते हैं परमेश्वर उन्हें वैसा ही फल देते हैं।

प्रत्यभिज्ञादर्शनके मतसे जीवात्मा और परमात्मामें कोई भेद नहीं माना है। इनका कहना है, कि जीवात्मा ही परमात्मा है और परमात्मा हो जीवात्मा। लेकिन जो परस्पर भेदज्ञान हुआ करता है, वह भ्रममात्र है। जीवात्माके साथ परमात्माका जो अभेद है, वह अनु-मान-सिद्ध है। इस दर्शनके मतसे प्रत्यभिज्ञा उत्पन्न होनेसे जीवात्मा और परमात्माका अभेद ज्ञान हुआ करता है। इस मतमें परमात्मा स्वतः प्रकाशमान हैं

अर्थात् आपसे आप प्रकाश पाते हैं। कोई कोई इस मत पर आपत्ति करते हुए कहते हैं, कि जीवात्मा और परमात्माका यदि अभेद कल्पित हो और परमात्मा स्वतः प्रकाशमान हों, तो जीवात्मा भी स्वतः प्रकाशमान क्यों न होगा ? इस प्रकार आपत्तिकी मीमांसा करते हुए उन्होंने जीवात्मा और परमात्माका अभेद इस मतमें संस्थापित किया है।

रसेश्वरदर्शनके मतमें भी महेश्वरको परमेश्वर और जीवात्माको परमात्मा माना है।

वैशेषिकदर्शनके मतसे आत्मा दो प्रकारकी है, जीवात्मा और परमात्मा। जिसके चैतन्य है, उसे आत्मा कहते हैं। यदि आत्माको स्वीकार न करें, तो किसी इन्द्रिय द्वारा कोई भी कार्य नहीं होता। मनुष्य, कीट, पतङ्ग आदि सभी जीवात्मा पदवाच्य हैं। परमात्मा एकमात्र परमेश्वर हैं। न्यायदर्शनमें भी यह मत समर्थित हुआ है।

अभी उपनिषद् और वेदान्तशास्त्रमें इसका विषय जिस प्रकार पर्यालोचित हुआ है, उसी पर थोड़ा विचार करना आवश्यक है। आत्मोपनिषत् कहते हैं कि पुरुष तीन प्रकारका है, बाह्यात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। त्वक्, अस्थि, मज्जा, लोम, अङ्गुलि, अङ्गुष्ठ, पृष्ठवंश, नख, गुल्फ, उदर, नाभि, मेढ्र, कटी, ऊरु, कपोल, भ्रू, ललाट, बाहु, पार्श्व, शिर, धमनी, नेत्रद्वय, कर्णद्वय तथा जिसकी उत्पत्ति और विनाश है, वही बाह्यात्मा है।

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, आकाश, इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, काम, मोह और विकल्पनादि एवं स्मृति, लिङ्ग, उदात्त, अनुदात्त, ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, स्खलित, गर्जित, स्फुटित, मुदित, नृत्य, गीत, वादित्र और प्रलयपर्यन्त, जो श्रवण करता है, जो घ्राण करता है, जो आस्वादन लेता है, जो समझता है, जो समझ बूझ कर काम करता है, वही अन्तरात्मा है।

जो अक्षय और उपासनाके योग्य है, प्राणायाम, प्रत्याहार, समाधि, योग, अनुमान और जो अध्यात्मचिन्ताका विषय है, वही परमात्मा है।

रामपूर्वतापनीयके मतसे आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और ज्ञानात्मा यही चार प्रकारकी आत्मा है।

दीपिकाकार नारायणके मतसे आत्मा लिङ्ग, अन्तरात्मा जीव, परमात्मा ईश्वर और ज्ञानात्म' ब्रह्म अर्थात् ये चार बिन्दु, नाद, शक्ति और शान्तात्मक हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद्में परमात्माका विषय इस प्रकार लिखा है—आत्मा, परमात्मा या ब्रह्म ये सब एक ही अर्थमें व्यवहृत होते हैं। आत्माकी सर्वदा उपासना करो, आत्माका अन्वेषण करनेसे सबोंका अन्वेषण किया जायगा। आत्मतत्त्व सबोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है, इसीसे उसका अन्वेषण विधेय है। आत्मज्ञानलाभके लिये मैं ही ब्रह्म हूं, ऐसा समझना होता है।

'आत्मा सभी भूतोंमें निगूढ़ भावसे रहती है' इत्यादि ब्राह्मणवाक्य परमात्माका ही जीवत्व प्रकाश करता है। वाक् पाणि प्रभृति सभी इन्द्रिय सुखदुःखादि कर्मफल हैं और इन्द्रियाधिष्ठात्री सभी देवता हैं, यहां तक कि ब्रह्मादि स्तम्ब पर्यन्त समस्त प्राणी परमात्मासे उत्पन्न होते हैं। यह जो स्थावर जङ्गमादि समस्त जगत् हैं, अग्निस्फुलिङ्गकी तरह जिससे रात दिन निकलता है, जिसमें विलीन होता है और स्थितिकालमें जल-विम्बवत् जिसमें जा कर रहता है, वही आत्मा है। इस आत्माकी सत्ताके बलसे ही प्राणकी सत्ता है, नहीं तो प्राण किसी भी चालनसे आत्मलाभ नहीं कर सकता। जो सर्वज्ञ हैं, विशेषरूपसे सर्वविद्, असङ्ग और सब प्रकारके संक्रमणोंसे रहित हैं, जिस अक्षरपुरुषके शासनसे सूर्य और चन्द्र रात दिन चलते हैं, जो अन्तर्यामिरूपमें सभी भूतोंमें रह कर सभी भूतोंको वहन करते हुए भी स्वयं उनके अतीत हैं, वे ही जन्ममरणादि शून्य सर्वव्यापी आत्मा हैं और सभी संसारके विधारक सेतुस्वरूप हैं। उसी आत्माने सभी संसारको वशीभूत कर रखा है और जो सबोंके ईश्वर तथा नियन्ता हैं, जो सब प्रकारके पाप, ताप, जरा और मृत्यु विहीन हैं, उन्होंने ही तेजकी सृष्टि की है। इस जगत्प्रपञ्चकी सृष्टिके पहले एकमात्र आत्मा ही थी। उसी आत्मासे सभी उत्पन्न हुए हैं। (बृहदारण्यक)

कोई कोई कहते हैं "एतस्मादात्मनः" इस श्रुतिमें भी संसारी आत्मा (जीवात्मा)-से ही समस्त भूतोंकी उत्पत्ति बतलाई गई है। जो ऐसा कहते हैं,

उनका मत सत्य नहीं है। क्योंकि श्रुतिमें ही लिखा है 'य एषोऽन्तर्हृदय आकाश' यहां आकाश शब्दसे परमात्माका बोध हुआ है, अतएव वहां आत्माका अर्थ परमात्मा है। उसी परमात्मासे सभी उत्पन्न हुए हैं। यदि कहो, कि आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा यह किसने कहा, जीव अर्थ होनेसे ही क्या दोष होता? इसके उत्तरमें श्रुतिने कहा है, "क्वैष तदा अभूत्" जीव (जीवात्मा) उस समय अर्थात् सुषुप्ति कालमें कहां था? जब कुछ भी नहीं था, एकमात्र आत्मा ही थी और श्रुतिमें भी लिखा है "य एषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिन् शेते" हृदयाभ्यन्तरस्थ जो आकाश है उसीमें उस समय निद्रित था। इसीसे जानना होगा, कि जीव (जीवात्मा) कभी भी अपने ऊपर शयन नहीं कर सकता। सुतरां आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा ही कहना होगा। जीव सुषुप्तिकालमें सत्परमात्माके साथ मिल जाता है। श्रुतिवाक्योंकी पर्यालोचना करनेसे यह साफ साफ प्रतीत होता है, कि वहां आकाश शब्दका अर्थ परमात्मा है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

संसारी जीव (जीवात्मा)में विचित्र विश्वसंसारकी सृष्टि, स्थिति और संहार करनेकी शक्ति नहीं है। ब्रह्मविद्याकी जगह लिखा है, "ब्रह्म ते ब्रुवाणि, ब्रह्म ज्ञापयिष्यामि" हे गार्गि! तुम्हें ब्रह्मका विषय कहूंगा, ब्रह्म बताऊंगा। उसी जगह लिखा है, कि ब्रह्म (परमात्मा) कर्तृत्व-भोक्तृत्वादिरहित, नित्य शुद्धमुक्त ज्ञानरूप और असंसारी है। कोई कोई इस पर आपत्ति करते हुए कहते हैं, कि ब्रह्म जब जीवसे अत्यन्त उत्कृष्ट है तथा जीव ब्रह्मकी अपेक्षा अत्यन्त निकृष्ट है, तब 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ही सर्वशक्तिमान ब्रह्म हूं, ऐसा कहना वा इसी भावमें उपासना करना किसी हालतसे जीवका सङ्गत नहीं हो सकता। इस प्रकारकी असदाशङ्का सङ्गत नहीं है। कारण, श्रुतिसे जाना जाता है, कि 'परमात्माने' प्रथमतः द्विपदचतुष्पदादिका निर्माण कर उनके अभ्यन्तर प्रवेश किया, वे प्रत्येक वस्तुके अनुरूप हुए।' 'परमात्मा सभी वस्तुओंकी सृष्टि और नामकरण कर स्वयं उसमें रहने लगे', इत्यादि सर्वशाखामें समानवाक्य सम स्वरमें कहे गये हैं। परमात्माने इन सबोंकी सृष्टि करके और आप उसमें प्रविष्ट हो कर जीव नाम धारण किया है। परमात्माने आकाशादि पञ्चभूतोंमें जीवरूपसे प्रविष्ट हो कर नाम (संज्ञा) और रूप (मूर्त्ति)का प्रकाश किया है।

जब प्रायः सभी श्रुतियोंने ब्रह्मको आत्मा बतलाया है, "सर्वभूतान्तरात्मा" यहां भी आत्मा शब्दसे ब्रह्मका ही उल्लेख किया है और श्रुतिमें अनेक जगह जब परमात्मा अतिरिक्त संसारी आत्माके अभावकी सूचना की है, तब "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं यह कह कर आत्माकी उपासना करना असङ्गत नहीं है। ऐसे उत्तर पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि जीव और ब्रह्म अर्थात् जीवात्मा और परमात्माका एकत्व ही यदि प्रकृत शास्त्रार्थ है, तो परमात्माको भी सांसारिक सुख दुःखादिका भोग करना होता है, यह बात भी अवश्य स्वीकार करनी पड़ेगी। ऐसा होनेसे ब्रह्मज्ञानोपदेशक सभी शास्त्र निरर्थक हो जाते हैं। प्राणियोंके सुखदुःखादि द्वारा जीवात्मा लिप्त नहीं होते. वे स्फटिकमणिवत् समुज्ज्वल रहते हैं। इस विषय पर कोई कोई कहते हैं, कि परमात्मा सर्वभूतोंमें प्रवेश करते समय अपना निर्विकार रूप परित्याग कर विकृतावस्था धारण करके जीवात्माको प्राप्त होते और वह जीवात्मा परमात्मासे भिन्न और अभिन्न उभयरूपोंमें प्रतीयमान होते हैं। यथार्थमें अभिन्न कहनेसे ही 'नाहं ब्रह्म' अर्थात् "मैं ब्रह्मभिन्न हूं" यह ज्ञान नहीं होता और सांसारिक अवस्थामें इसे भिन्न कहनेसे ही परमात्माकी उपासना की जाती है, अभेद होनेसे उपासना नहीं हो सकती।

श्रुतिमें 'नेति नेति' अर्थात् यह ब्रह्म नहीं है, यह ब्रह्म नहीं है, यह कह कर सभी प्रकारके औपाधिकविशेष धर्म परिहारपूर्वक परमात्माका स्वरूप निर्णीत हुआ है। (बृहदारण्यकोपनि०)

श्रुतिमें जहां परमात्माका विषय उल्लिखित हुआ है वहां वह प्रायः सभी जगह ब्रह्मबोधक माने गये हैं, इसकारण इनका विषय और अधिक आलोचित नहीं हुआ। ब्रह्म देखो।

वेदान्तदर्शनमें लिखा है कि इन्द्रियान्वित शरीरके अध्यक्ष और कर्मफलभोक्ता जीव नामक आत्मा हैं,

इसे भी जीवात्मा कह सकते हैं। यह जीवात्मा आकाशादिको तरह ब्रह्मसे उत्पन्न हुआ है अथवा ब्रह्मको तरह नित्य है, इस प्रकार संशय हो सकता है; कारण एतदर्थप्रतिपादक विभिन्न श्रुति देखनेमें आती हैं। किसी किसी श्रुतिने अग्निस्फुलिङ्गका दृष्टान्त देकर कहा है, कि जीवात्मा परब्रह्म (परमात्मा)-से उत्पन्न हुआ है। फिर अन्य श्रुतिका कहना है, कि अविकृत परब्रह्म ही सृष्टशरीरमें प्रविष्ट हैं और जीवभावमें विराजित हैं तथा श्रुतिसे जाना जाता है कि एक विज्ञानमें सभी विज्ञान होते हैं। सभी वस्तु ब्रह्मप्रभाव नहीं होनेसे एक विज्ञानमें सभी विज्ञान नहीं हो सकते। अविकृत परमात्मा ही जो शरीरमें जीवभावसे विराजित हैं, इसका जाननेका कोई उपाय नहीं है। क्योंकि परमात्मा और जीवात्मा सब लक्षणके हैं। परमात्मा निष्पाप, निष्क्रिय, निर्धर्मक हैं। जीव उसके सम्पूर्ण विपरीत हैं। विभाग रहनेसे ही जीवका विकारत्व (जन्ममरण) जाना जाता है। आकाशादि जो कुछ विभक्त वस्तु हैं वे सभी विकार अर्थात् जन्य-पदार्थ हैं। जीव पुण्यपापकारी, सुखदुःखभोगी और प्रति शरीरमें विभक्त है, इसीसे जीवकी भी जगदुत्पत्ति-कालमें उत्पत्ति हुई थी, ऐसा कहना हो सङ्गत है। फिर भी देखो, जैसे अग्निसे छोटे विस्फुलिङ्ग निकलते हैं, वैसे परमात्मासे भी जीवात्मा उत्पन्न होता है, फिर प्रलयकालमें उसीमें लीन हो जाती है। इस प्रकार अर्थ-प्रतिपादक श्रुति द्वारा यह जाना जाता है, कि भोगात्मा अर्थात् जीवात्माकी सृष्टि उपदिष्ट हुई है। फिर सैकड़ों श्रुतियोंसे जाना जाता है, कि जिस प्रकार प्रदीप्त पावकसे पावकरूपी सहस्र सहस्र स्फुलिङ्ग जन्म लेते हैं, उसी प्रकार एक परमात्मासे परमात्मसमानरूपी विविध पदार्थ उत्पन्न होते और फिर उसी परमात्मामें लीन हो जाते हैं। इस श्रुतिमें समानरूपी यह शब्द रहनेसे जीवात्माकी उत्पत्ति और विनाश कहा गया है, ऐसा समझना होगा। स्फुलिङ्ग अग्नि समानरूपी हैं, जीवात्मा भी परमात्मा समानरूपी है अर्थात् दोनों ही चेतन हैं, सुतरां समानरूपी हैं। इन सब श्रुतिप्रभृति द्वारा परब्रह्म (परमात्मा)-से जीव (जीवात्मा)की उत्पत्ति मानी गई है।

परमात्मा नित्य और निर्गुण हैं। जिस प्रकार पद्मपत्र पर जल रहनेसे भी वह जलमें लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार गुणातीत परमात्मा भी कर्मफलमें लिप्त नहीं होते। जो कर्मात्मा अर्थात् कर्माश्रय जीव हैं, उन्हींका बन्धन और मोक्ष हुआ करता है। जलमें सूर्यप्रतिबिम्ब जिस प्रकार बिम्बभूत सूर्यका आभास (प्रतिबिम्ब) है, उसी प्रकार जीव भी परमात्माका आभास है, ऐसा जानना होगा। जिस हेतु आभास है, उसी हेतु जीव साक्षात् परमात्मा नहीं है, पदार्थान्तर भी नहीं है।

विस्फुलिङ्ग जिस प्रकार अग्निका अंश है, जीव (जीवात्मा) भी उसी प्रकार परमात्माका अंश है। परमात्मा साकार है या निराकार? इसके उत्तरमें वेदान्तने कहा है, कि परमात्मा निराकार या रूपादि-रहित हैं। कारण, इस परमात्मप्रतिपादक श्रुतिनिचयने यही अर्थ समर्थन किया है। वे स्थूल नहीं हैं, सूक्ष्म नहीं हैं, ह्रस्व वा दीर्घ भी नहीं हैं, अशब्द, अस्पर्श, अरूप और अव्यय है, प्रसिद्ध आकाश नाम और रूपके निर्वाहक हैं, नाम और रूप जिनके भीतर हैं वे ही परमात्मा हैं। वे दिव्य, मूर्त्तिहीन पुरुष, अर्थात् पूर्ण हैं। सुतरां बाहर और भीतर विराजमान हैं, वे अज (जन्मरहित) हैं, वे अपूर्व, अनपर, अनन्तर और अबाह्य हैं। श्रुतिने यह भी कहा है, कि परमात्मा निर्विशेष, एकाकार और केवल-चैतन्य हैं। जैसे, लवणखण्ड अनन्तर, अबाह्य, सम्पूर्ण और रसघन है, उसी प्रकार परमात्मा भी अनन्तर, अबाह्य, पूर्ण और चैतन्यघन (केवल चैतन्य) हैं। इसमें यही कहा गया, कि परमात्माके अन्तर्वाह्य नहीं है, चैतन्य भिन्न अन्यरूप वा आकार नहीं है। निरवच्छिन्न चैतन्य ही परमात्माका सार्वकालिक रूप है।

श्रुतिसे जाना जाता है, कि परमात्माके दो रूप हैं, मूर्त्ति और अमूर्त्ति। परमार्थकल्पमें वे अरूप हैं और उपाधिके अनुसार उनका आरोपित रूपमूर्त्त और अमूर्त्त है। मूर्त्त मूर्त्तिमान अर्थात् स्थूल है और अमूर्त्त तद्रहित अर्थात् सूक्ष्म। पृथिवी, जल और तेज ये भूतत्रय ब्रह्मके मूर्त्तरूप हैं और वायु तथा आकाश ये दोनों

अमूर्त्तरूप। मूर्त्तरूप मर्त्य अर्थात् मरणशील है और अमूर्त्तरूप अमृत अर्थात् अविनाशी।

श्रुतियोंमें परमात्माके अतिरिक्त जीव अर्थात् जीवात्माका विषय उल्लिखित है और अद्वैतबोधक श्रुति भी है। महामति शङ्कराचार्य परमात्मातिरिक्त पृथक् जीवात्माका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। (वेदान्तदर्शन)

शङ्कराचार्यके आत्मबोधमें लिखा है—जो सूक्ष्म, स्थूल, ह्रस्व और दीर्घ नहीं हैं, जिनके जरा, व्यय, रूप, गुण और वर्ण नहीं है, वे ही परमात्मा हैं। जिनके किसी प्रकारका आकार नहीं है, जिनकी ज्योतिसे ज्योतिष्मान् हो कर सूर्यादि ज्योतिष्कगण प्रकाश पाते हैं, जिन्हें सूर्यादि कोई भी प्रकाशित नहीं कर सकते और जिनसे यह अखिल ब्रह्माण्ड दीप्ति पाता है, वही परमात्मा हैं। जिस प्रकार प्रतप्त लौहपिण्ड अन्तर और वाह्यमें प्रदीप्त हो कर आलोक प्रदान करता है उसी प्रकार परमात्मा वाह्य और अभ्यन्तरमें सभी जगत्‌को प्रकाशित करते और स्वयं प्रकाशित होते हैं। परमात्मा भिन्न इस अनन्त ब्रह्माण्डके प्रकाशक और कोई भी नहीं है। परमात्मा जगत्‌के अतीत हैं अथच परमात्मा भिन्न और कुछ भी नहीं है। जिस प्रकार मरुभूमिमें मरीचिका होनेसे स्थलमें जलज्ञान होता है, किन्तु वह जल जिस प्रकार मिथ्या है, उसी प्रकार परमात्माभिन्न जो कुछ है वे सभी मिथ्या हैं। हम लोग जो कुछ देखते और सुनते हैं, वही परमात्माका स्वरूप है, परमात्मा भिन्न और कुछ भी नहीं है। तत्त्वज्ञान होनेसे ही उस सच्चिदानन्दमय अव्यय परमात्माका लाभ होता है। तत्त्वज्ञान भिन्न परमात्मप्राप्तिका कोई उपाय नहीं। जिसके ज्ञानसूर्य प्रोद्भासित हुआ है, वे ही परमात्माको देख सकते हैं। जिस प्रकार सुवर्णको अग्निमें उत्तप्त करनेसे उसका मल निकल जाने पर वह उद्दीप्त हो कर स्वयं प्रकाश पाता है, उसी प्रकार जीवके श्रवणमननादि द्वारा ज्ञानाग्नि उद्दीप्त हो कर अज्ञानरूप मलके विनाश होने पर ही वह स्वयं प्रकाशित होता है। उसी समय जीव परमात्मस्वरूप प्राप्त करता है। (आत्मबोध)

परमात्मतत्त्वनिर्णय अति दुरूह है, क्योंकि श्रुतिने कहा है "यतो वाचो निवर्त्तन्ते अप्राप्य मनसा सह" अर्थात् वाक्य जहां जा नहीं सकता और मनके साथ लौट आता है, इस कारण वाक्यसे परमात्माका निर्णय नहीं किया जा सकता।

मनीषियोंने श्रुतिसमूहका जैसा अर्थ समझा है, परमात्मविषयमें भी वैसा ही अवधारण किया है।

जीवात्मन् और ब्रह्म शब्द देखो।

परमाचार्य—वस्तुपूजनपद्धतिके रचयिता।

परमाद्वैत (सं० पु०) परमं अद्वैतं यत्र। १ सर्वभेदरहित परमात्मा। २ विष्णु।

"नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक।
नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम॥" (गरुड़पुराण)

परमानन्द (सं० पु०) परमः सर्वोत्कृष्टः आनन्दः। सब आनन्दोंमें उत्कृष्ट आनन्दात्मक परमात्मा। परमानन्द ही परमात्मा है। "परमानन्दमाधव।" (श्रीधर) उपनिषदादिमें ब्रह्मको ही परम आनन्दस्वरूप माना है।

परमानन्द—इस नामके कितने संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम पाये जाते हैं। यथा—

१ अमरकोषमालाके रचयिता।

२ खण्डनमण्डन नामक हर्षरचित खण्डनखण्डखाद्यके टीकाकार।

३ मकरन्दसारिणी नामक ग्रन्थके रचयिता।

४ वेदस्तुतिटीकाके प्रणेता।

५ वेदान्तसारटीका-कर्त्ता।

६ सांख्यतरङ्गटीकाके प्रणेता।

७ एक जैन ग्रन्थकार। इन्होंने गर्गप्रणीत 'कर्मविपाक' नामक ग्रन्थकी एक संस्कृत टीका प्रणयन की है। ये अपने ग्रन्थमें अपने धर्मगुरुओंका इस प्रकार परिचय दे गये हैं—पहले भद्रेश्वरसूरि, उनके शिष्य शान्तिसूरि और अभयदेवसूरि, अभयदेवसूरिके शिष्य परमानन्द। लोग इन्हें यशोदेव कहा करते थे।

८ एक क्षत्रिय राजा। इन्होंने सम्राट् अकबरशाहसे भक्करप्रदेशका शासन-भार पाया था।

९ वैणीदत्तके पुत्र। इन्होंने प्रश्नमाणिक्यमाला नामक एक ग्रन्थकी रचना की है।

परमानन्दघन—एक विख्यात पण्डित, चिदानन्द ब्रह्मेन्द्रसरस्वतीके शिष्य। इन्होंने प्रयोगरत्नावली, ब्रह्मसूत्रविवरण और स्मृतिमहोदधि नामक तीन ग्रन्थ बनाये हैं।

परमानन्द चक्रवर्त्ती—१ काव्यप्रकाशविस्तारिका नामक काव्यप्रकाशकी टीकाके रचयिता। इन्होंने इस ग्रन्थमें ईशान नामक अपने गुरुका परिचय दिया है।

२ सर्वानन्दके पुत्र और देवानन्द तथा भवानन्दके भ्राता। इन्होंने महिम्नस्तवटीका नामक एक टीका प्रणयन की है।

परमानन्ददास—व्रजवासी एक हिन्दी-कवि। कृष्णानन्द व्यासदेवकृत रागसागरोद्भव रागकल्पद्रुम नामक ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख देखा जाता है।

परमानन्ददास—श्रीचैतन्यसम्प्रदायी वैष्णव कवि कर्ण-पूरका प्रकृत नाम परमानन्ददास था। गौराङ्ग महाप्रभु इन्हें पुरीदास कहा करते थे। इनका जन्म १४४६ सम्वत्‌को हुआ था। इनके पिताका नाम था शिवानन्द-सेन जो गौराङ्गदेवके एक परमभक्त थे। परमानन्दकी उम्र जब सात ही वर्षकी थी, उसी समय ये अपने पिताके साथ महाप्रभुके दर्शन करनेके लिये श्रीक्षेत्र गए थे। महाप्रभुने कृपा दरसा कर अपने श्रीचरणका वृद्धा-ङ्गुष्ठ बालकके मुखमें दिया था। परमानन्दने श्रीगौराङ्ग-देवका पदाङ्गुष्ठ चाट करके अपूर्व कवित्वशक्ति पाई थी। चैतन्यचरितामृतग्रन्थमें लिखा है, कि इस समय महा-प्रभुने परमानन्दसे कृष्णलीलाका वर्णन करने कहा। कहते हैं, कि बालक परमानन्दने प्रभुका आदेश पाते ही आर्य्याच्छन्दमें एक श्लोकको रचना कर महा-प्रभुको सुनाया था।

इनके बनाये हुए अनेक संस्कृत ग्रन्थ वैष्णवसमाज-में प्रचलित हैं, यथा—आर्याशतक, चैतन्यचरितामृत-महाकाव्य, चैतन्यचन्द्रोदयनाटक, आनन्दवृन्दावन-चम्पू, कृष्णलीलोद्देशदीपिका, गौरगणोद्देशदीपिका और अलङ्कारकौस्तुभ।

परमानन्ददेव—संस्कृतरत्नमाला नामक ग्रन्थके प्रणेता।

परमानन्दनाथ—भुवनेश्वरीपद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता।

परमानन्दपाठक—कर्पूरस्तवदीपिका नामक ग्रन्थके प्रणेता।

परमानन्दभट्टाचार्य—महाभारत टीकाके प्रणेता।

परमानन्दमिश्र—१ योगवाशिष्टसारोद्धारके रचयिता। २ तन्नामक मेलकी प्रकृति। मेल देखो।

परमानन्दयोगीन्द्र—परमानन्दलहरीस्तोत्रके रचयिता।

परमानन्दराय—चन्द्रद्वीप देखो।

परमानन्दलक्षापुराणोक—एक हिन्दी-कवि ; बुन्देलखण्ड-के अन्तर्गत अजयगढ़में १८३७ ई०में इनका जन्म हुआ था। नायक-नायिकाका प्रणयघटित 'नखसिख' नामक ग्रन्थ इन्हींका बनाया हुआ है।

परमान्न (सं० क्ली०) परमं देवपितृप्रियत्वात् श्रेष्ठं अन्नं। पायस, खीर। यह देवता और पितरोंका अत्यन्त प्रिय है, इसीसे इसको परमान्न कहते हैं। इसको प्रस्तुत प्रणाली भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखी है,—जब दूध आधा पक जाय, तब उसमें घृतात्त तण्डुल डाल दे। पीछे उसमें घृत और शर्करा मिलानेसे परमान्न तैयार होता है। गुण—दुर्जर, बल और धातुपुष्टिकर, गुरु, विष्टम्भी, पित्त, रक्तपित्त, अग्नि और वायुनाशक।

परमापूर्व (सं० क्लो०) परमं अपूर्वं। स्वर्गादिफल-साधन अपूर्वभेद।

परमामुद्रा (सं० स्त्री०) त्रिपुरादेवीको पूजाङ्ग मुद्राभेद। तन्त्रसारमें इस मुद्राका विषय इस प्रकार लिखा है—दोनों हाथोंकी मध्यमाको मध्यस्थलमें रख कर दोनों हाथोंके कनिष्ठाद्वयको मध्यमाद्वय द्वारा आवद्ध करते हैं और दोनों तर्जनीको दण्डाकारमें करके मध्यमाद्वय-के ऊपरी भाग पर रखनेसे यह मुद्रा बनती है। यह परमामुद्रा सर्वसंक्षोभकारिणी है। इस मुद्रासे त्रिपुरा-देवीका ध्यान करना होता है।

त्रिपुराके पूजाङ्गमें एक और प्रकारकी परमामुद्रा लिखी है जिसे योनिमुद्रा भी कहते हैं। इसका प्रकार यों है—दोनों मध्यमाको वक्र कर उसके ऊपर तर्जनी रखनी होती है। पीछे अनामिका और कनिष्ठाको मध्यगत कर-के अङ्गुष्ठ द्वारा परिपीड़न करनेसे यह मुद्रा होती है।

परमायु (हिं० स्त्री०) परमायुस् देखो।

परमायुष (सं० पु०) परमं आयुर्यस्य, पृषोदरादित्वात् अच् समासान्तः। असनवृक्ष, विजयसालका पेड़।

परमायुस् (सं० क्लो०) परमं आयुः कर्मधा०। जीवित-काल। "शतायुर्वै पुरुषः" (श्रुति) मानवकी परमायु सौ वर्ष है। शब्दमालामें परमायुकाल इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है,—१२० वर्ष ५ दिन मानवका परमायुकाल और हाथीका भी उतना हो, ३२ वर्ष अश्वका, १२ वर्ष कुक्कुरका, २५ वर्ष खर और करभका, २४ वर्ष वृष और महिषका, मृग और शूकरका परमायुकाल तब तक माना गया है जब तक उनके छः दाँत न निकलें। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है—

"अज्ञानादायुषः सर्वं विफलं कीर्त्तितञ्च तत्।
तस्मादानयनं तस्य स्फुटार्थममिधीयते॥" (फलितज्योतिः)

मानवका जीवितकाल यदि न जाना जा सके, तो सभी विफल होते हैं, इस कारण सबसे पहले आयुका परिमाण जानना आवश्यक है। मनुष्यका ऐहिक और पारत्रिक सभी कार्य परमायुके ऊपर निर्भर करते हैं।

मनुष्यकी परमायुकी गणना चार प्रकारसे की जाती है, यथा—अंशायु, पिण्डायु, निसर्गायु और जीवायु। जिसका लग्न बलवान् है उसके लिये अंशायुकी गणना, इसी प्रकार सूर्य बलवान् होनेसे पिण्डायु:गणना, चन्द्र बलवान् होनेसे निसर्गायु और जिसके तीनों ही दुर्बल हैं उसकी जीवायुगणना की जाती है। यह गणना करनेमें ग्रहोंकी उच्च और नीच राशि उच्चांश और नीचांशका जानना आवश्यक है। अंशायु:वर्षादि आनयन ग्रहोंके अपने अपने कर्मयोग्य गुणक अङ्क द्वारा स्व स्व आयुपलके अङ्कको गुणा करनेसे जो अङ्कसंख्या होगी, उसे ६०से भाग देना होगा, पीछे भागफलको १२०००से भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा वही उस ग्रहका दण्डायुर्वर्ष होगा।

अवशिष्टाङ्कको १२से गुणा करके उसे १२००० द्वारा भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा, वह मास होगा। अवशिष्टांशको ३०से गुणा करनेसे जो गुणनफल होगा, उसे १२०००से भाग दो, अब भागफल दिन होगा। भागावशिष्ट अङ्कको ६०से गुणा करके १२००० द्वारा भाग देनेसे जो उत्तर आवेगा, उसे दण्ड समझो, इसी नियमसे गणना करनेसे पल और विपल जाना जाता है।

यदि लग्नका बल सबसे अधिक हो, तो लग्न स्फुटकी राशिका अङ्क जितना होगा, उतने वर्षका अङ्क लग्न दण्ड आयुर्वर्षाङ्कके साथ योग करो, उससे आयुकी वर्षवृद्धि जानी जायगी।

अंश, कला और विकला प्रत्येकको १२ से गुणा करके उसे तीन स्थानोंमें रखना होता है। प्रथमतः विकलाके अङ्कको ६०से भाग दो और भागफलको कलाके अङ्कमें जोड़ दो। भागावशिष्ट अङ्कको एक स्थानमें रख देना होता है, पीछे उस योगज कलाके अङ्कको ६० से भाग देकर भागफलको अंशाङ्कके साथ जोड़ देना होगा। अवशिष्टाङ्कको कलाङ्ककी बाईं ओर रखना होता है। पीछे उन योजक अंशाङ्कको ३०से भाग देनेसे जो लब्ध होगा तथा उसका अवशिष्टाङ्क जो रहेगा, उसे पूर्वस्थापित कलाङ्ककी बाईं ओर बादमें उस ३० लब्धाङ्कको भी उसके वाम भागमें रखो। उस लब्धाङ्क द्वारा क्रमशः मास, दिन, दण्ड और पल आदि जाने जायेंगे। उस मासादिको लग्नदत्तायुके मासादिके साथ जोड़नेसे लग्नदत्तायुका वर्ष, मास, दिन, दण्ड और पल होगा तथा सूर्य आदि सप्तग्रह और लग्नको दत्तायुका वर्ष, मास, दिन, दण्ड और पलादि सभी योग करनेसे जितना वर्ष, मास, दिन और दण्ड पलादि होगा, उतनी संख्या अंशायुर्गणनानुसार परमायु होगी।

अंशायुके मतसे आयु:पल निकालना।—जन्मकालमें ग्रहगण जिस राशिके जिस अंशादिमें रहते हैं, उस उस राशि और अंश, कला तथा विकलाङ्कको पृथक् पृथक् स्थानमें रखो। पीछे एक एक ग्रहस्फुटकी राशिके अङ्कको ३०से गुणा करके गुणनफलको उस ग्रह स्फुटके अंशके साथ जोड़ दो। पीछे उस योजक अङ्कको ४०से भाग दे कर अवशिष्ट अङ्कको ६०से गुणा करो। अब उस गुणनफलको उसके बादके विकलाङ्कके साथ योग करनेसे जो अङ्कसंख्या होगी, उसीका नाम उस ग्रहका अंशायु:पल है। इस प्रकार प्रत्येक ग्रहस्फुट और लग्नस्फुटकी राशि, अंश, कला और विकलाङ्कको इसी प्रकारकी प्रक्रिया करनेसे जो अङ्कसंख्या होगी, वही उस उस ग्रह और लग्नका अंशायु:पल होगा। पिण्डायुगणना करनेमें निसर्गायु शब्दको जगह जो आयु:पल निकालनेका विषय लिखा गया है, उसीके अनुसार आयु:पल निकाल करके जो अङ्क होगा उसे तीनसे भाग दो और भागफलको दो स्थानमें रखो। पीछे उसके एक अङ्कको २०से भाग दे कर जो भागफल हो उसे द्वितीय अङ्कसे वियोग करो। अब जितनी कला विकला अवशिष्ट रहेगी उतना दिन और दण्ड रविप्रदत्त पिण्डायु होगा। चन्द्रका आयु:पल ले कर जो अङ्क बनेगा उसे ५से गुणा करो और गुणनफलको १२०से भाग दो। अब भागफलमें कला-विकलादिका जितना अंश रहेगा, उतना दिन और दण्डादि चन्द्रप्रदत्त पिण्डायु होगा।

मङ्गल और वृहस्पतिका आयु:पल ग्रहण कर उसे ४से भाग दो, भागफल जितनी कला विकला होगी, उतना दिन और दण्डादि मङ्गल तथा वृहस्पतिका दत्तपिण्डायु होगा। बुधका आयु:पल ग्रहण कर उसे ५से

भाग करनेसे जितनी कला-विकलादि भागफलमें आवेगी, उतना दिन और दण्डादि बुधकी प्रदत्त आयु समझो। शुक्रका आयुःपल ग्रहण करके उसे ७से गुणा करनेसे गुणनफल जितना होगा, उसे २०से भाग देनेसे भागफलमें जितनी कला विकलादि आवेगी उतना दिन और दण्डादि शुक्रप्रदत्त पिण्डायु होगा। शनिका आयुःपल ग्रहण कर उसे ३से भाग देनेसे जितनी कला विकलादि भागफल होगा, उतना दिन और दण्डादि शनिप्रदत्त पिण्डायु होता है। निसर्गायु देखो।

परमायु-हानिके विषयकी इस प्रकार गणना की जाती है। जातव्यक्तिका लग्नस्फुट स्थिर करके उसकी राशिके अङ्कको ३०से गुणा करो, गुणनफल जो होगा उसे अंशाङ्कके साथ जोड़ दो। पीछे उस युक्ताङ्कको ६०से गुणा करके गुणनफलको परवर्त्ती कलाङ्कके साथ जोड़ दो, योगफल जो होगा उसे एक स्थानमें रखो। पीछे पूर्व प्रणालीके अनुसार एक एक ग्रहकी दत्त आयु स्थिर कर उसे उक्त स्थापित अङ्क द्वारा गुणा करो। अब गुणनफल को २१६०००से भाग देनेसे जो वत्सरादि भागफल होगा उसे अपने अपने ग्रहकी प्रदत्त आयुके वत्सरादिसे वियोग करो, वियोगफल जो होगा उसीको परमायु समझो। यदि लग्नमें पापग्रह रहे, तो इसी प्रकार स्थिर करना होगा। यदि पाप-ग्रहयुक्त लग्नमें किसी शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो अपने अपने ग्रहकी प्रदत्त आयुमेंसे उक्त भागफलका आधा वियोग कर आयु स्थिर करो। दो वा तीन शुभग्रह लग्नमें रहनेसे उनके मध्य जो ग्रह शुभफल प्रदान करेगा, उस ग्रहके भागफल द्वारा ग्रहप्रदत्त आयुको गुणा करके पहलेके जैसा कार्य करना होता है। लग्नमें यदि दो वा तीन पापग्रह रहें, तो उनके मध्य जो ग्रह बलवान रहेगा उसके भागफल द्वारा ग्रहप्रदत्त आयुको गुणा करो, अब गुणनफल ले कर पूर्ववत् कार्य करना होगा। लग्नमें यदि पाप ग्रह रहे और वह पापग्रह यदि लग्नाधिपति हो, तो आयुर्हानिकी गणना नहीं करनी होगी।

इस प्रकार समस्त ग्रहों और लग्नोंकी आयुकी पृथक् पृथक् गणना कर एकत्र योग करनेसे जितने वत्सरादि होंगे, उतना ही जातव्यक्तिकी परमायु समझो।

आयुःकी गणना करके जिसकी जितना वर्ष परमायु होगी, उस अङ्कको दो स्थानमें रखो। पीछे एक अङ्कको ७०से भाग दे कर जितना होगा उससे उसका १२८वां भाग वियोग करनेसे जो अवशिष्ट रहेगा उसे स्थापित द्वितीय अङ्कसे वियोग करो; अब वियोगफल जो होगा वही प्रकृत परमायु है। जो व्यक्ति पथ्याशी, स्वधर्मानुरक्त, सत्कुलजात, जितेन्द्रिय, द्विज और देवार्चनारत हैं, उन्हींको इस प्रकार प्रकृतपरमायु प्राप्त होगी।

जो सब मनुष्य पापी, लुब्ध, कृपण, देव और ब्राह्मणनिन्दक हैं तथा बन्धुपत्नी और गुरुपत्नीमें आसक्त रहते हैं, वे सब मनुष्य उक्तरूपकी निर्दिष्ट आयु न पा कर अकाल ही मृत्युमुखमें पतित होते हैं।

जातकालङ्कारमें योगज आयुका विषय इस प्रकार लिखा है। जिसके जन्मकालमें लग्नाधिपतिग्रह पूर्ण बलवान् हो कर केन्द्रस्थित शुभग्रहसे देखा जाय, वह व्यक्ति दीर्घजीवन लाभ करता है। जन्मकालमें शुभग्रह केन्द्रस्थित वा स्वक्षेत्रस्थित तथा चन्द्र उच्च स्थानस्थित होनेसे यदि लग्नाधिपति ग्रह बलवान् हो कर लग्नस्थित हो, तो जातव्यक्तिकी आयु ६० वर्षकी होती है। जिसके जन्मकालमें वृहस्पति लग्नमें रहे और लग्न वा चन्द्रसे केन्द्र अर्थात् प्रथम, चतुर्थ, सप्तम वा नवम स्थानमें शुभग्रह तथा इन सब शुभग्रहोंके प्रति दशम स्थानस्थित पापग्रहकी दृष्टि न पड़ती, तो उस मनुष्यकी ७० वर्षकी परमायु होती है। जन्मकालमें मूलत्रिकोणमें शुभग्रह और तुङ्ग स्थानमें वृहस्पतिके रहनेसे यदि लग्नाधिपति बलवान् हो, तो जातव्यक्तिकी परमायु ८० वर्षकी समझनी चाहिये। जिसके जन्मकालमें बुधग्रह बलवान् हो कर केन्द्र अर्थात् लग्नमें चतुर्थ, सप्तम वा दशम स्थानमें रहे और अष्टम स्थानमें यदि पापग्रह न रहे, तो वह व्यक्ति ३० वर्ष तक जीता है। उस अष्टम स्थानमें शुभग्रहकी दृष्टि पड़नेसे उसकी परमायु ४०वर्षकी होती है। जन्मकालमें वृहस्पतिके अपने क्षेत्र वा द्रेक्काणमें रहनेसे जातव्यक्तिकी २७ वर्ष परमायु होगी। जिसके जन्मकालमें चन्द्रमा अपने क्षेत्र वा लग्नमें रहे और सप्तम स्थानमें शुभग्रह हो, तो उसकी ६० वर्षकी परमायु होती है। जन्मकालमें पञ्चम या नवममें शुभग्रहके रहनेसे यदि वृहस्पति कर्कटमें रहे, तो जातव्यक्तिकी परमायु ८० वर्ष होगी।

यदि वृश्चिक जन्मलग्न हो और इस जन्मलग्नमें वृहस्पति रहे, तो ८० वर्ष उसकी परमायु मानी जाती है। जिसके जन्मकालमें अष्टमाधिपति नवमस्थान और लग्नाधिपति अष्टमस्थानमें रहे तथा उस लग्नाधिपतिके प्रति पापग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो उसकी परमायु २४ वर्ष होगी, ऐसा जानना चाहिये। जन्मकालमें लग्नाधिपति और अष्टमाधिपति ये दोनों ग्रह यदि अष्टम स्थानमें रहें, तो जातव्यक्तिकी परमायु २७ वर्षकी होगी। जिसके जन्मकालमें कोई पापग्रह और वृहस्पति ये दोनों यदि लग्नस्थित हों तथा उक्त ग्रहके प्रति यदि चन्द्रकी दृष्टि पड़ती हो, तो उस व्यक्तिकी परमायु २२ वर्षकी होती है। जन्मकालमें शुक्र और वृहस्पति यदि केन्द्रस्थानमें अर्थात् लग्नमें, चतुर्थमें, सप्तममें वा दशममें रहे, तो जातव्यक्तिको सौ वर्ष परमायु होगी। जन्मकालमें कर्कटमें वृहस्पति और केन्द्रस्थान शुक्रके रहनेसे जातव्यक्तिको सौ वर्षकी आयु होगी। जिसके जन्मकालमें लग्न वा नवम स्थानमें चन्द्रमा रहते हैं उसकी भी आयु सौ वर्षकी मानी गई है। लग्न, चतुर्थ, पञ्चम सप्तम, नवम वा दशम स्थानमें यदि कोई पाप-ग्रह न रहे और धनु वा मीन जन्म-लग्न हो तथा केन्द्रस्थानमें वृहस्पति वा शुक्र रहे एवं लग्नसे अष्टम और नवममें शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो, तो उनकी भी सौ वर्षकी परमायु होती है। लग्न और चन्द्रसे अष्टमस्थानमें यदि कोई पाप ग्रह न रहे तथा वृहस्पति और शुक्र बलवान् हो, तो उस व्यक्तिकी परमायु १३० वर्ष होगी। जन्मकालमें वृहस्पति और शुक्र केन्द्रस्थानमें तथा एकादशमें चन्द्र रहे, तो जातव्यक्तिकी १२० वर्ष परमायु होती है। जन्मकालमें मीनलग्नमें शुक्र, अष्टम स्थानमें चन्द्र और केन्द्रमें वृहस्पतिके रहनेसे तथा चन्द्रके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि पड़नेसे जातव्यक्तिकी सौ वर्ष परमायु होती है। इत्यादि प्रकारसे परमायुका विषय स्थिर करना होता है। फिर भी लिखा है, कि ज्योतिर्विद्गण स्थिर चित्त हो ग्रहोंका बलाबल विचार कर धर्मके प्रति दृष्टि रखते हुए आयुयोगका उपदेश देते हैं, इत्यादि। यही परमायुर्गणनाका विषय है जो संक्षेपमें कहा गया। विशेष विवरण वृहज्जातक और जातकालङ्कार आदि ज्योतिर्ग्रन्थोंमें लिखा है।

ज्योतिषमें गोमहिषादिकी परमायुके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है। मनुष्य और हाथीकी परमायु १२० वर्ष ५ दिन, व्याघ्र और छागादिकी परमायु १६ वर्ष, गो और महिषकी परमायु २४ वर्ष, उष्ट्र और गर्दभकी परमायु २५ वर्ष, कुक्कुरकी परमायु १२ वर्ष और अश्वकी परमायु ३८ वर्ष है*।

इन सबके जन्मसमयके लग्न और ग्रहसंस्थिति द्वारा उक्त आयुर्गणनाकी प्रणालीके अनुसार आयुके वत्सरादि स्थिर करके उसे हस्ती आदिकी अपनी अपनी निरूपित आयु द्वारा गुणा करो। पीछे उस गुणनफलको १२०से भाग दो। भागफल जो होगा, वही उक्त हस्ती आदिकी परमायु है।

सचराचर मानवादि जितने वर्ष तक जीते हैं, उसीको परमायु माना गया है। किन्तु १५० वर्ष यहां तक कि १६५ वर्षके भी मानवका नाम सुना जाता है, किन्तु ऐसा बहुत कम है। योगबलसे किसी किसीने तीन चार सौ वर्ष तक जीवनरक्षा की है, ऐसा भी सुना जाता है।

---

* "पञ्चाहानवमूर्भशा शूकरिणां व्याघ्राद्यजादेर्नृपाः
गोकाल्योर्हिजिनारतथोष्ट्रखरयोस्तत्तानि सूर्याः शुनः।
अश्वायुः परमं रदा नृवदिहानिर्यायुरेषां परायु
निघ्नं नृपरायुषा च विहृतं तेषां स्फुटायुर्भवेत् ॥" (ज्योतिष)

द्वादश भाग समाप्त